

श्रीहरिः

श्रीमदानन्दरामायणस्थविषयानुक्रमणिका

विषय

पृष्ठ

विषय

पृष्ठ

सारकाण्ड

प्रथम सर्ग

मङ्गलारचन

रघुवंशकी संक्षिप्त वंशावली

रावणका ब्रह्मासे अपने मरणका हेतु पूछना, ब्रह्माका रामके हाथों रावणके मरणका भविष्य बतलाना और रावणका कौसल्याको सन्दूकमें बंद करके समुद्रनिकासी विनिगलकी सौंपना

महाराज दशरथके साथ कौसल्याका साधर्व-विवाह

दशरथकी सुमित्रा-कैकेयीके साथ विवाह, महाराज दशरथका वैश-दानवदुष्टमें जाना

उस युद्धमें कैकेयीका रथकी टूटी धुरीमें अपना हाथ लगाकर राजा दशरथके प्राण बचाना, जिससे दशरथकी कैकेयीको भी परदान देना तथा अयोध्याको सकुशल लौटना

राजा दशरथ द्वारा अरण्यका व्रत और अरण्यके भवे माता-पिताका श्राप देना

ऋष्यभृङ्ग द्वारा पुनर्हि वन सम्पन्न होना और अग्निका प्रकट होकर हवि देना

द्वितीय सर्ग

पृथ्वीका दुःखित होकर देवताओंके पास जाना और सब देवताओंका खीरसागर जाकर विष्णुमहेश्वरकी स्तुति करना और समयावधी आकाशवाणी सुनना, राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्नका जन्म और उन पुत्रोंकी माल-सीला

शुभ वसिष्ठका रामादि चारों भाइयोंको शास्त्रीय शिक्षा देना

तृतीय सर्ग

महामुनि विश्वामित्रका राजा दशरथकी समामें जाकर यज्ञरक्षार्थ राम-लक्ष्मणको मांगना, मार्गमें विश्वामित्रका दोनों बालकोंको वसुधास्वकी शिक्षा देना और श्रीरामके हाथों ताडुकावध

१

२

३

४

५

६

७

८

९

१०

राम-लक्ष्मणको लेकर विश्वामित्रका जनक-पुरको प्रस्थान और बहुत्वोद्वार

रामके भाग्यमनसे जनकपुरनिवासिनी लक्ष्मणोंका हर्षोल्लास

राजा जनक द्वारा अपनी प्रतिज्ञाकी घोषणा

रावण द्वारा शत्रुघ्न उठानेका प्रयास और उसमें विफलता, समामें रामका ज्ञातमन

सीताका रामको देखना और मुग्ध होकर मत्त हो मन देवताओंसे प्रार्थना करना

रामके हाथों शिवशत्रुघ्न टूटना

राजा जनकके आज्ञानुसार सीताका राजसमामें जाना और रामके गलेमें वरमाळा बाँधना

राजा जनकका महाराज दशरथके पास निर्मलपूजेना, रामादि चारों भ्राताओंके विवाहका निश्चय और सीताके जन्मका वृत्तान्त

राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्नका क्रमशः सीता-जमिना-वाण्डवो और श्रुतकीर्तिके ज्ञात विवाह और एक साथ बाद महाराज दशरथका अयोध्याको प्रस्थान

मार्गमें राम-शत्रुघ्नरामका साक्षात्कार

राम द्वारा परशुरामका गर्वभञ्जन और परशुरामका रामको आत्मकथा सुनाना

महाराज दशरथका अयोध्यामें पहुँचना और उत्सव मनाना

चतुर्थ सर्ग

दीपावलीके अवसरपर पुनः राजा जनकका महाराज दशरथको बुलाना और तदनुसार उसका प्रस्थान

जनकपुरमें राजा दशरथका सत्कार और जनक-पुरसे लौटते समय रास्तेमें जनको बहुतेरे बँदी

राजाओंका पेरना

रामका उन राजाओंके साथ शीर युद्ध और मालती मूर्च्छित होना

रामके आज्ञानुसार लक्ष्मणका मुद्राङ्ग मुक्तिके माध्यमसे सञ्जीवनी वृक्ष लेने जाना

और आत्मभवासियों द्वारा उपस्थित की गयी

११

१२

१४

१५

१७

१८

१९

२१

२०

२१

२२

२३

२४

२५

२६

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
बाधाओंको दूर करके हठात् संजीवनी लाकर मरतमो जोवित करना	३७	सप्तम सर्ग	
महाराज दशरथका मुनि मुद्गलसे रामके भविष्यका प्रश्न और उसका संतोषजनक उत्तर पाना	३८	रामके द्वारा विराधका वध	६२
वृंदाका वृत्तांत और उसके द्वारा बिष्णु मगधाव- के सापित होनेका इतिहास	३९	सुतीरुणके आश्रमपर रामका जाना और वहाँसे मण्डस्वके आश्रमपर होते हुए पञ्चवटी पहुँचना, वहाँ जटायुसे मिलना और लक्ष्मणके हाथों सूर्यनक्षत्रके पुत्र साम्बका मरण	६३
सीताएके एक मित्रु ब्राह्मण तथा उसकी स्त्री कलहाका उपास्थान	४१	लक्ष्मणका सूर्यनक्षत्रके नाक-कान काटना	६४
पञ्चम सर्ग		रामके हाथों शरद्वेषण-विशिखा और उनकी चौदह हजार राक्षसों सेनाका विधन तथा सूर्यनक्षत्रका लंकामें रावणके पास जाना	६५
यमदत्त विप्र द्वारा कलहाका उद्धार	४५	सीताके अनुरोधसे रामका भूम मारीचके घरको जाना और रावण द्वारा सीताका हरण	६७
रामका सीताके साथ अयोध्यामें सातव- दिवास	४८	जटायु-रावणयुद्ध, पञ्चवटीको कुछ विशेष कथार्य	६८
रामकी संक्षिप्त दिनचर्या	४९	राम-लक्ष्मणका लौटकर आश्रम पहुँचना, वहाँ मरणोन्मुख जटायुसे रावण द्वारा सीताहरणका वृत्तांत सुनना और रामका मृत जटायुको अपने हाथों दाहकृत्य करना	६९
महाराज दशरथका रामसे ज्ञानोपदेश सुनाने की प्रार्थना करना और रामका ज्ञानोपदेश देना	५१	सीताको स्वयंभावसे लोजते हुए रामको देखकर पारवतीका वहाँ पहुँचना और उनके ईश्वरत्वकी परीक्षा करना, कबन्धवध और कदम्बकी आरम्भकथा	
षष्ठ सर्ग		रामका खनरीके आश्रमपर पहुँचना और खनरीकी मुक्ति प्राप्त होना, वहाँसे रामका पम्पासरोवर जाना	७१
नारदका रामको देवताओंका संदेश सुनाना	५१	अष्टम सर्ग	
राम-सीताका परस्पर वनगमनसम्बन्धी परामर्श	५४	राम-सुग्रीवकी मित्रता और सुग्रीवका रामको अपना वृत्त सुमाना	७२
रामके राजप्राभिवेककी तैयारी, गुरु दक्षिण- का रामके महलोंमें जाना और उपदेश देना, अभिवेककी तैयारी देखकर अन्यराका दुःखित होना	५५	वालि-सुग्रीवयुद्ध और रामके हाथों वालिका मरण तथा रामका वालिकी वरदान	७५
महाराज कैकेयीके पास जाकर उसे उत्ते- जित करना और घरोहुरस्वरूप रखे दोनों वरदान माँगनेको प्रेरित करना, तदनुसार कैकेयीका कोपवदनप्रवेश, राजा दशरथका उसके पास पहुँचना और वरदानकी बात सुनकर विकल होना, प्रातःकाल रामका पिताके पास जाकर वर्य देना	५६	रामका प्रवर्धन पर्वतपर निवास, कालांतरमें सुग्रीवको सीताकी खोजके विषयमें निश्चित देखकर रामका लक्ष्मणको भेजना	७९
कैकेयीके रामवनगमनसम्बन्धी वरदान माँगने- के समाचारसे पुरवाचियोंकी व्याकुलता दूर करनेके लिए धामदेवको रामको प्रेषित तथा नारदके वागमनकी बात बताना	५७	सुग्रीवका बहुतेरे जानरोंको सीताकी खोजके लिखे भेजना और हनुमान्-मङ्गद आदिका एक तपस्विनीसे मिलना	८३
राम-लक्ष्मण-सीताका वनगमन	५७	अङ्गद आदिका सम्पातीसे मिलना और सम्पातीका बताना पूर्ववृत्तांत बताते हुए सीताके मिलनेका उपाय बताना	८९
तथागत होते हुए रामका चित्रकूट पहुँचना, अनंतकी कथा तथा दशरथमरण	५८	नवम सर्ग	
मरुतका गतिहाससे आकर पिताकी क्रिया करनेके बाद चित्रकूट जाना और रामके अनुरोधसे उनकी करणपादुका लेकर अयोध्या लौटना	६०	हनुमान् द्वारा तपुत्रलङ्घन और मार्गमें नागमाता सुरधादे से साक्षात्कार	९९
रामका अत्रिके आश्रमपर जाना	६०		

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
हनुमान्जीके द्वारा सिंहकावध, समुद्रपार पहुँच- कर रात्रिके समय हनुमान्जीका लङ्कामें प्रवेश और लङ्कानीसे साक्षात्कार		आदिसे मिलना और वहाँसे चलकर समुद्र होते हुए रामके पहुँचकर उन्हें सीताका हाल सुनाना	१८
हनुमान्का रावणके भवनमें उसकी बाड़ी-मूँछ जलाना, मन्दोदरीको सीताके सदृश सुन्दरी देखकर हनुमान्का चकराना, सीता और मन्दोदरीके साक्ष्यका		दशम सर्ग	
हनुमान्जीका सीताके समक्ष पहुँचना उसी समय रावणका सीताके विविध प्रलोभन देना और सीताका रावणको मार्गदर्शक		हनुमान्का रामको लङ्काका स्वरूप बतलाना	१९
मार्गसे हटकर रावणका सीताको मारनेके लिए उद्यत होना और मन्दोदरीका रोकना		रामका लङ्काको प्रस्थान	१००
बहुतेरी राजादियोंको सीताको डराने- बमकानेके लिए नियुक्त करके रावणका अपने पर आना		उपर लङ्कामें हनुमान्का पराक्रम देखकर रावणका चढ़ाना और राजसभामें जाकर परामर्श करना, विमोचनका समयमाना और रावणसे छिरस्कृत होकर रामकी धरणमें आना	१०१
मिथटाका सीताकी आश्वसन, हनुमान् द्वारा रामस्य वर्णन और प्रकट होकर राममुद्रिका- प्रदान		राम-विमोचनमें मंत्री, रामका कुपित होकर समुद्रपर आनेवाले बलानेकी होना और समुद्रका सेतुबन्धके लिए आग बताना, रामका समुद्रतटपर शिबालिप स्थापित करनेका निषेध करके हनुमान्को शिबालिप लानेके लिए काशी भेजना	१०२
हनुमान्का अशोकवाटिका उजाड़ना हनुमान्का रावणके बेचे हुए बहुतेरे छैनकोंको मारना		शिवजीका हनुमान्को एक प्राचीन इतिहास बताना	१०४
मेघनादके ब्रह्मपाशमें बँधकर हनुमान्का रावणके समक्ष आना		विष्णुपर्वतकी वृद्धिसे देवताओं तथा मनुष्योंकी बधड़ाहट और अगस्त्य मुनिका विष्णुके कोपको साँत करनेके लिए काशीका	१०५
हनुमान्का रावणको समुद्रदेह और रावणका देवियोंको हनुमान्की पूँछ जलानेका आदेश देना		राम द्वारा हनुमान्का सर्वहरण हनुमान्का अपनी सभी मूर्तियोंका अलग स्थापित करना और रावणका शरदान देना	१०७
हनुमान् द्वारा लङ्कावहन		शिवजीका रामको एक प्राचीन इतिहास बताना और रामके आज्ञानुसार सेतुरचना करना	१०८
लङ्का भस्म कर देनेपर सीताके बी जल मरने- की बात सोचकर हनुमान्का दुःखी होना और आकाशवाणी सुनकर शीरज धरना		रावणको धुकका समुद्रदेह और उसके द्वारा धुकका तिस्तुत होना, धुकके पूर्वजन्मकी कथा	११२
लङ्काका प्राचीन इतिहास, मज्ज-शाहकपाके प्रसंगमें शाहके पूर्वजन्मकी कथा, शाहका सहस्रवर्षव्यापी युद्ध और समवाय द्वारा उद्धार		रामके आदेशसे बङ्गदका लङ्का जाना और नोटते समय रावणका एक महल उठाते जाना बङ्गदके मुखसे रावणकी वर्णित सुनकर सुग्रीवका रावणके पास जाना और उसके पास मल्लमुद्र	११३
गण्डका एक गजको लेकर भक्षण करनेके लिए त्रिकूट पर्वतपर पहुँचना और हनुमान्का अशोक- वाटिकामें सीतासे फिर मिलना		मात्स्यवाक्का रावणको उपदेश	११४
लङ्कासे लौटते समय एक मुनिके द्वारा हनुमान्का गर्वविहार		एकादश सर्ग	
समुद्रके इस पार आकर हनुमान्का बङ्गद		राम-रावणका युद्धारम्भ	११५
		बानरी सेवापर मेघनादका क्षतिप्रयोग और रामकी आज्ञासे हनुमान् द्वारा सभी हुई प्रोत्साहि- की बोधिते लङ्की पूर्ण दूर होना	११७

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
रामका लक्ष्मणपर सक्तिप्रयोग और हनु- मायका ह्रीनगिरि लाते समय कासनेमिसे भेंट	११८	रामका राज्याभिषेक	११९
तवागपर पीनेके लिए गये हनु- मायको मगरीका पकड़ना, हनुमायके हाथों नेमिका बंध और बहति	१२०	श्रीशिवजीके द्वारा रामकी स्तुति	१४०
हनुमायका मरत- बाणप्रहारसे घूर्छित होकर गिरना	१२०	राज्याभिषेकोत्सवपर स्वर्णसे महाराज शशरथ- माना, रामका बाह्यनों-मित्रों तथा परिवारके सीनोंको उपहार देना	१४१
ऐरावत-मैरावत द्वारा रामका हरण	१२०	हनुमायको रामके विविध वरदान और बोजनके समय हनुमायका कौतुक	१४२
हनुमायका राम-लक्ष्मणको लोजने पाताल जाना, वहाँ मकरध्वजसे भेंट, मकरध्वजका अपनी जन्मकथा सुनाना और हनुमायका कामाक्ष्यादेवीके मंदिरमें प्रवेश	१२१	पुष्पक-विमान, भुजीव तथा विमोचनकी विषाई	१४३
हनुमायका मैरावतकी पत्नीसे ऐरावत-मैरावत- के मरणका उपाय पूछना और उस नागकन्याका उस दोनोंकी मृत्युका	१२२	रामके रणयज्ञकी समाप्तिका वर्णन	१४४
रामके द्वारा ऐरावत-मैरावतका बंध	१२४	अधोदश सर्ग	
उस नागकन्याको रामका वरदान, रामका कुम्भकर्णको जगाना, रामको प्रेरणासे समरभूमिमें जाना और रामके हाथों कुम्भकर्णका निधन	१२५	रामके वहाँ जगत्स्य आदि ऋषियोंका भाग- मन, रामका जगत्स्यसे मेघनादका वृत्तांत पूछना और उनका बताना	१४५
मेघनादका निकुम्भिका देवीके मंदिरमें जाकर यज्ञ करना और हनुमाय तथा लक्ष्मण द्वारा यज्ञविध्वंस	१२६	नाग-कुम्भकर्ण आदिकी जन्मकथा भाताकी आज्ञासे रामका शिवलिंग लेने कैलाश जाना और अपने मस्तक काटकर शिवजीको प्रसन्न करना तथा वरदान पाना	१४८
मेघनादका निकुम्भिका देवीके मंदिरमें जाकर यज्ञ करना और हनुमाय तथा लक्ष्मण द्वारा यज्ञविध्वंस	१२६	राम कुम्भकर्ण-विमोचनका उप करके ब्रह्मा- की प्रसन्न करना और उनसे पाना	१४९
मेघनादका निकुम्भिका देवीके मंदिरमें जाकर यज्ञ करना और हनुमाय तथा लक्ष्मण द्वारा यज्ञविध्वंस	१२६	रामको कुबेरपुत्र मलकुबरका श्राप, मेघनाद- का इन्द्रको पराजित करना और उसका इन्द्रचित्त जाम पड़ना	१५०
मेघनादका निकुम्भिका देवीके मंदिरमें जाकर यज्ञ करना और हनुमाय तथा लक्ष्मण द्वारा यज्ञविध्वंस	१२६	रामका बालिसे लड़ने जाना और बालिका उसे अपनी काँधमें रख लेना	१५१
मेघनादका निकुम्भिका देवीके मंदिरमें जाकर यज्ञ करना और हनुमाय तथा लक्ष्मण द्वारा यज्ञविध्वंस	१२६	रामका बानरराज बालिसे युद्ध करने जाना और परास्त होना	१५२
मेघनादका निकुम्भिका देवीके मंदिरमें जाकर यज्ञ करना और हनुमाय तथा लक्ष्मण द्वारा यज्ञविध्वंस	१२६	रामका राजा जनरथसे युद्ध और उनका रामको श्राप	१५३
मेघनादका निकुम्भिका देवीके मंदिरमें जाकर यज्ञ करना और हनुमाय तथा लक्ष्मण द्वारा यज्ञविध्वंस	१२६	राम-सनत्कुमारका बार्तालाप, रामकी श्वेत- होपधारा और वहाँकी स्त्रियोंके हाथों पिटना	१५४
मेघनादका निकुम्भिका देवीके मंदिरमें जाकर यज्ञ करना और हनुमाय तथा लक्ष्मण द्वारा यज्ञविध्वंस	१२६	बालि-सुग्रीवकी जन्मकथा	१५५
मेघनादका निकुम्भिका देवीके मंदिरमें जाकर यज्ञ करना और हनुमाय तथा लक्ष्मण द्वारा यज्ञविध्वंस	१२६	ब्रह्माका बालिको किञ्चिबाका राज्य देना और हनुमायकी जन्मकथा	१५६
मेघनादका निकुम्भिका देवीके मंदिरमें जाकर यज्ञ करना और हनुमाय तथा लक्ष्मण द्वारा यज्ञविध्वंस	१२६	हनुमायका सूर्यको निगलना, हनुमायपर ब्रह्माका वरदान	१५७
मेघनादका निकुम्भिका देवीके मंदिरमें जाकर यज्ञ करना और हनुमाय तथा लक्ष्मण द्वारा यज्ञविध्वंस	१२६	इन्द्रका रामको सूर्य देना और हनुमायको भुनियोंका मिलना	१५८
मेघनादका निकुम्भिका देवीके मंदिरमें जाकर यज्ञ करना और हनुमाय तथा लक्ष्मण द्वारा यज्ञविध्वंस	१२६	रामराज्यके पुष्पका वर्णन	१५९
मेघनादका निकुम्भिका देवीके मंदिरमें जाकर यज्ञ करना और हनुमाय तथा लक्ष्मण द्वारा यज्ञविध्वंस	१२६		

विषय

पृष्ठ

यात्राकाण्ड**प्रथम सर्ग**

श्रीशिवजीसे पार्वतीके प्रश्न और शङ्करजीका उत्तर

१६१

सहस्र मात्मोक्तिके मुखसे कविताका प्रादुर्भाव
ब्रह्माका वात्सीकिके आश्रमपर आकर राम-
चरित्र लिखनेका आग्रह करना

१६२

१६३

द्वितीय सर्गवात्सीकिका रामायणनिर्माण, उसे सुननेके
लिए देवता-यक्ष-नागादिकोंका आगमन

१६४

रामायण प्राप्त करनेके लिए उनमें परस्पर
कलह और विष्णुमगधम् द्वारा रामायणका
विभाजन

१६५

भारद्वीके द्वारा व्यासजीको चार लोक
वांछ होना

१६७

तृतीय सर्गपार्वतीका शंकरजीसे रामदास विष्णुदासके
परिचयविषयक प्रश्न और शिवजीका उत्तर

१६९

सीताका रामसे गङ्गातटपर चलनेकी प्रार्थना
रामका लक्ष्मणको यात्राकी तैयारी करनेका
आदेश देना

१७१

१७२

गङ्गायात्रासम्बन्धी समाचारसे प्रभावितमें
चत्सालकी लहर

१७३

चतुर्थ सर्गरामचन्द्रका ज्योतिषी बुलाकर उत्तम भूतों
पूचना

१७४

रामचन्द्रका गंगातटकी प्रस्तावना
यात्राकालीन उल्लासका वर्णन

१७५

१७६

रामका महर्षि मुद्गलके आश्रमपर पहुँचना
महर्षि मुद्गलका अपने नवीन आश्रमसे

१७८

रामके दर्शनार्थ प्राचीन आश्रमपर जाना
और पूछनेपर आश्रमस्थानका कारण बतलाना,रामका मुनि मुद्गलसे सरयूकी श्रेष्ठताके विषयमें
प्रश्न और मुनिका उत्तर

१७९

रामके आदेशसे लक्ष्मणका दाय बलकर
सरयूके दो भाग करके एक भागको मुद्गलके पूर्व
आश्रमपर लाना

१८०

पञ्चम सर्गसीताका गङ्गापूजनकी तैयारी करना, कौसल्या
बादि साधुओं, शोहागिन स्त्रियों तथा बहूतेरे

विषय

पृष्ठ

ब्राह्मणोंके साथ सीताका चतुमारोह गङ्गापूजन
करना

१८१

रामके दर्शनार्थ व्यवहृत मुनिका आना और
भाग्योत्ति प्राप्त होनेवाले कहोका वर्णन करना,
उनका दुःख दूर करनेके लिए रामका अपने बाणसे
अलंघ्य लाई सोदना

१८२

कुम्भोदर मुनिका रामपूतोंसे वार्तालाप, वृत्तोंके
आग्रह करनेपर भी उत्तरा बिना मोक्ष किये
लौटना और पूछनेपर कारण बताना

१८३

कुम्भोदर मुनिके आशेष सुनकर रामका तीर्थ-
यात्राकी तैयारी करना, पुण्यक विमानका रामके
आदेशसे इस योजना विस्तृत और जो
होना

१८४

रामका तीर्थयात्राके लिए प्रस्ताव
रामकी चार मन्त्रियोंका वर्णन

१८५

१८६

षष्ठ सर्गरामका सदात-बल प्रमाण पहुँचना, वहाँसे
चलकर काशी पहुँचना और विविध लोकोप-
कारी कार्य तथा दान करते हुए एक साधु
वहाँ रहना

१८७

काशीमें रामका अनेक तीर्थोंकी स्थापना
करना

१८८

रामकी गयायात्रा, वहाँ फल्गुनवीमें सीताके
बालूकाको दुर्गा बनाते समय राजा दशरथका अपने
हाथों बालूकापिण्ड लेना

१९१

पिताको पिण्डदान देते समय राजा
दशरथका हाथ न दोसनेपर रामका विस्मित होना,
लक्ष्मण और सीतासे पूछनेपर सीताका कारण
बतलाना

१९२

सीताका आश्रमस्थ, फल्गुनवी, गयावाल
ब्राह्मणों, बिल्ली तथा अश्वको साथी देने-
के लिए कहना और उनके इनकार करनेपर
छाप देना, अन्तमें सूर्यकी साक्षीसे प्रसन्न रामकी
पिता दशरथका प्रत्यक्ष प्रकट होना

१९३

सप्तम सर्गरामकी दक्षिण भारतकी तीर्थयात्राका विवरण
तोतादिमें कन्याकुमारिका रामसे भेंट और

१९५

रामका उसे आग्रह देना

१९८

अष्टम सर्गभारतके पश्चिमी प्रदेशके तीर्थोंकी यात्राका
विवरण, सवारीपर बैठकर यात्रा करनी चाहिए या

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
नहीं, इस विषयमें रामदास-विष्णुदासका प्रश्नोत्तर	२००	उसी देशमें अथाह भतिसे घूमकर घोंड़ेका	
पुष्पक विमानपर नित्य करोड़ों बाहुजोंके		अयोध्या लौटना	२२०
भोजनका प्रबन्ध	२०१	चतुर्थ सर्ग	
रामके पुष्पक विमानको देखकर अम्भाम्य		रामके अम्भमेध यज्ञमें सब देवताओं तथा	
सीधवासियोंकी विविध कल्पनावें	२०३	शिवजीका आगमन, राम द्वारा सबका स्वागत-	
नवम सर्ग		सत्कार होना और राम तथा शिवजीमें कुछ मनो-	
उत्तर दिशाकी सीधवासियोंका विवरण, राम-		रञ्जक वार्तालाप	२२१
की बदरीनारायण तथा मानसरोवरकी झांझ,		अम्भमेध यज्ञमें कुम्भोदर मुनिका आग-	
बहुसि सँकास जाना और यहाँपर सीताका कामधेनु	२०४	मन, रामके साथ बातचीत और कुम्भोदर	
गो पाना		मुनिका अष्टोत्तरशतनाम स्तोत्रसे रामकी स्तुति	२२३
सीताकी आज्ञा करके रामका अयोध्या		पञ्चम सर्ग	
लौटना	२०५	विष्णुदासका शुद्ध रामदाससे अष्टोत्तरशतनाम-	
अयोध्यामें रामका नम्य स्वागत	२०६	विषयक वक्त और उनका उत्तर	२२८
यात्राकाण्डकी फलश्रुति	२०७	रामाष्टोत्तरशतनामस्तोत्र	२२५
यागकाण्ड		रामाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रका माहात्म्य	२२७
प्रथम सर्ग		षष्ठ सर्ग	
अम्भमेध यज्ञके लिए रामका गुरु बसिष्ठसे		यज्ञके समय रामकी दिनचर्या	२२८
परामर्श	२०८	सप्तम सर्ग	
बसिष्ठका सङ्गमणकी यज्ञकी तैयारीके लिये		अञ्जारोपणव्रतके विषयमें प्रश्नोत्तर	२३१
निर्देश देना	२१०	अञ्जारोपणविधि, माहात्म्य एवं फलश्रुति	२३२
यज्ञकी सामग्रियोंका विवरण	२११	अष्टम सर्ग	
द्वितीय सर्ग		अम्भमेध यज्ञकी समाप्तिपर रामकी अवभृथ-	
राम-सीताका यज्ञकी बोझा लेना	२१३	स्नानके लिए जाना	२३५
क्षामकर्ण घोड़ेकी पूजा करके मृधमणके लिये		यात्राकालमें रामके दर्शनार्थ जनताकी	
छोड़ना और शत्रुघ्न-सुमन्त आदिका तख्ती रखाके		अप्यता और रामका सङ्गमणकी सुप्रबन्धके लिए	
किये जाना	२१४	निर्देश	२३७
यज्ञसमारोहमें बहुतेरे ऋषियोंका भाग	२१५	रामका सरयूमें स्नानपर अवभृथस्थान	२३८
वहाँ जाए हुये ऋषियोंका रामके द्वारा स्वागत-		कामधेनु गो देनेकी बात रामसे शिवजीका	
सत्कार और कामधेनुकी पूजा करके वाक्यात्ममें		सीताको दातमें माँगना	२३९
बाँधना तथा उससे मनचाही वस्तुयें प्राप्त करके		तदनुसार सीताकी आज्ञा देना और	
अम्भमेधोंकी इच्छा पूर्ण करना	२१६	पुनः बसिष्ठकी बतायी योजनाके अनुसार सुवर्णराशि	
तृतीय सर्ग		देकर सीताको वापस लेना	२४०
क्षामकर्ण घोड़ेके साथ शत्रुघ्नका अज्ञात		नवम सर्ग	
पहुँचना, वहाँ नीकाकी फकावटसे दुखी होकर		अम्भमेध यज्ञकी समाप्तिपर शिवजीका रामसे	
मञ्जाकी प्रार्थना करना और मञ्जाका प्रसन्न होकर		वरदान माँगना और उनका देना	२४१
उन्हें मार्ग देना	२१७	पार्वतीका सीताजीसे वर माँगना और	
क्षामकर्ण घोड़ेका यज्ञमें पहुँचना और वहाँके		उनका देना	२४३
राजासे उपहार पाना	२१८		

विषय	पृष्ठ
यज्ञके श्रुतिजोंको रामका दान और यति- थियोंको उपहार नोट	२४४
सिंहासनासन रामकी नदी-समुद्र तथा अन्यान्य देवताओंसे विविध प्रकारके उपहार मिलना	२४५
अयोध्यामें रामका दरबार	२४६
यज्ञमें जाये हुए अतिथियोंका प्रस्थान	२४७

—:०:—

विलासकाण्ड

प्रथम सर्ग

विषहृत रामस्तवराज	२४९
-------------------	-----

द्वितीय सर्ग

रामके द्वारा सीताके सौन्दर्यका वर्णन और पत्नियों द्वारा रामकी स्तुति	२५७
---	-----

तृतीय सर्ग

सीतामें प्रश्न करनेपर रामका देहरामायण- वर्णन	२६१
---	-----

अपने दिये हुए जानके विषयमें रामका प्रश्न और सीताका उत्तर	२६३
---	-----

चतुर्थ सर्ग

रामकी दिनचर्या और बन्दीजनोंकी स्तुति	२६६
सीताके अर्णवगत जलकारोका वर्णन	२६८

पञ्चम सर्ग

राम-सीताका अलविहार	२७२
--------------------	-----

षष्ठ सर्ग

राम-सीताके शयनका वर्णन, राम-सीताका विहार	२७६
---	-----

राम और सीताका एक छतपरसे बाजारके कोतुक देखना, सीताका एक दोन-हीन ब्राह्मणोंको अपना कच्चा लिये मौल्य माँगनेपर उत्तर देकर, सीताका उससे उसकी दरिद्रताका कारण पूछना और उसका बताना, सीताका उस ब्राह्मणोंको एक लास स्वर्णमुद्रा दिलवाना	२७७
--	-----

सीताका लक्ष्मणके द्वारा सारे देशमें यह घोषणा करवाना कि कोई भी स्त्री बिना वस्त्राभूषणके दिख- लायी न दे। यदि वह वनाभावके कारण वस्त्राभूषण न धारण कर पाती हो उसे राज्यसे दिया जाय मगवान् रामकी तत्कालीन दिनचर्या	२७८ २७९
--	------------

विषय	पृष्ठ
------	-------

सप्तम सर्ग

रामके यहाँ व्यासजीका आगमन	२७९
---------------------------	-----

व्यासका रामके एक पत्नीव्रतकी प्रशंसा करना रामका व्यासजीसे अगले जन्ममें बहुत-सी स्थितियोंको प्राप्त करनेका उपाय पूछना	२८०
--	-----

व्यासजीके आज्ञानुसार रामका सोलह सीताकी सुवर्णमूर्तियों दान देना, रामके सम्मुख कितनी ही देवांगनाओंका जाकर रामपर मुग्ध होना	२८१
---	-----

उन स्थितियोंको रामका बरदान	२८२
----------------------------	-----

अष्टम सर्ग

पुनर्वतीका वृत्तान्त, अरव्यमें पुनर्वतीके पतिका मरण	२८३
--	-----

पुनर्वतीका अयोध्यामें रामके सम्मुख पहुँचना, रामकी तत्कालीन सीमाका वर्णन	२८४
--	-----

पुनर्वतीका रामका बरदान मिलना	२८५
------------------------------	-----

विमल नामकी वेश्याका रामके समक्ष पहुँचना, राम द्वारा विमलाका वृत्तान्त सुनकर सीताका क्रुपित होना	२८६
---	-----

क्रोधवश सीताका मरनेके लिए उद्यत होना, रामकी विकलता, बाधो रातके समय रामका गुह वसिष्ठको बुलानेके लिए लक्ष्मणको भेजना, मुझे करण छूकर रामका शयन जाना	२८८
---	-----

सवेरे सीताका विमला वेश्याको बुलाकर झटका और मारना, विमलाको सीताका शयन और उससे उद्धारका समय निर्धारित करना	२८९
--	-----

नवम सर्ग

रामकी कुसुमव्याधा, सीतामुद्रा और जानकी- कीकी वातचीत	२८९
--	-----

सीतामुद्रासे शास्त्रार्थमें सीताकी विजय	२९०
---	-----

विलासकाण्डका साहाय्य एवं विलासकाण्डके पाठकी विधि	२९२
---	-----

—:०:—

जन्मकाण्ड

प्रथम सर्ग

बापोंके मुखसे रामका सीताके गर्भिणी होनेका समाचार सुनना	२९३
---	-----

सीताका जंगलोंमें सँवर करनेकी इच्छा प्रकट करना और इसकी तैयारीके लिए रामका लक्ष्मणको आदेश देना	२९४
--	-----

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
पालकीपर बढ़कर रामका सीता ——— परिवारको साथ लेकर वनकी यात्रा करना	२९५	पुष्पक विमान द्वारा उस समय ——— भी वहाँ पहुँचना और बादमें रामका लो अश्वमेध यज्ञ करनेका निश्चय करना	३०९
इत लोगोंका वनमें पहुँचना और वनकी धोमाका वर्णन	२९६	स्वर्णमयी सीता बनाकर रामका वनारण्य, रामके लक्ष्मण ——— पूर्ण होता और कुशकी उत्पत्तिका वृत्तान्त	३१०
द्वितीय सर्ग		वाल्मीकिका कुश-लवको रामायणकी शिक्षा देना और अल्प समयमें उनका सीखना	३११
राम-सीताका वनविहार	२९८	पञ्चम सर्ग	
छठे मासमें सीमन्तोन्नयनसंस्कार और अश्वमेधसे रामका सीतात्यागसम्बन्धी आर्तिनाम	२९९	विष्णुवासका रामदाससे रामरक्षास्तोत्रके विषयमें प्रश्न और रामरक्षास्तोत्रका पार	३१२
वनमें, जहाँ कि सीता जाकर रहनेवाली थी, वहाँपर अश्वमेधका ———	३००	रामरक्षास्तोत्रका माहात्म्य	३१३
तृतीय सर्ग		रामनामके स्मरणका फल	३१५
रामका सीताको त्यागनेका कारण बतलाना रामका विजय नामक पुत्र-वत्से जनताके पुत्र विचार पूछना	३०१ ३०२	षष्ठ सर्ग	
उसके मुँहसे प्रवाके हृदयकी यह बात मालूम करना कि सीता कितने ही वर्ष रावणके यहाँ रह चुकी थी, फिर भी उसे रामने अपना लिया । — अच्छा नहीं किया । विजयका रामको एक घोषीकी बात सुनाना । कँकेयोका सीतासे रावणकी आकृति पूछना और सीताका दोषारमें केवल रावणके एक अंगूठेका आकार बनाना	३०३	सीताका वाल्मीकिसे पतिवियोग दूर करनेके लिए कोई व्रत पूछना और उनका बतलाना सीताका वनारण्य और लवका रामके बगीचे- से कमल लाने जाना	३१६ ३१७
सीताके चली जानेपर कँकेयोका उस अंगूठे- के अनुरूप रावणके सारे शरीरकी तसवीर बना देना और इसी समय रामका पहुँचना, तसवीरके विषयमें रामके पूछनेपर कँकेयोका सीताकी बनायी बतलाना	३०४	लवका बगीचेके रक्षकसे मुठभेड़ और विजयी होकर लौटना	३१८
प्रातःकालके समय सीताको वनमें त्यागनेके लिए लक्ष्मणका प्रस्थान	३०५	दूसरे दिन फिर ——— उन लोगोंसे युद्ध और लवकी विजय	३१९
वाल्मीकिके आश्रमपर पहुँचकर गर्गव बाभी- — लक्ष्मणका सीताको सब वृत्तान्त बतलाना	३०६	रामका लवको पकड़नेके लिये वाल्मीकि आश्रमपर दूत भेजना, इसपर वाल्मीकिका यह ज्ञान देना कि चलो, — रामके अपराधीको लेकर स्वयं वहाँ जाता हूँ	३२०
चतुर्थ सर्ग		सप्तम सर्ग	
रामकी उस आज्ञा पालन करनेके लिए लक्ष्मणका विचार करना—जिसमें उन्होंने कहा था कि लौटते समय सीताके दोनों हाथ काट ले जाना । उस निर्मम कार्यको करनेमें लक्ष्मण लक्ष्मणका प्राण त्यागनेपर उद्यत होना और रुईके रूपमें विश्वकर्मसि भेंट	३०७	रामका अन्तिम यज्ञके लिये स्वामर्कण बोझ छोड़ने और गुहरीतिसे वाल्मीकिका सीताके साथ रामके यज्ञमें जाना	३२१
विश्वकर्माका सीताकी मुखा बनाकर देना और उसे लेकर लक्ष्मणका अधोध्या लौटना	३०८	कुश-लवका रामायणगान सुनकर सबका मुग्ध होना और बादमें रामकी सजामें लव-कुशका रामा- यणमान	३२२
अर्धरात्रिके समय सीताके गर्भसे पुत्ररत्न उत्पन्न होना	३०८	रामका उन दोनों बालकोंको पुस्कार दिव- वाना और उनका लेनेसे इनकार करना	३२३
		लवका रामके स्वामर्कण बोझको पकड़ना और लव तथा लक्ष्मणका संग्राम, लवका हनुमान्, सुमन्त्र और भरतको काँसमें दबाकर मर्त्या सीताके पास ले जाना	३२४
		रामके आज्ञानुसार लवकी पकड़नेके लिये	

विषय	पृष्ठ
लक्ष्मणका जाना, लव और लक्ष्मणमें युद्ध	३२५
लक्ष्मणका लवकी ब्रह्मपाद्यमें बांधकर राम- से समझ ले जाना, रामके आज्ञानुसार लोचो- का तबपर जलके घड़े उड़ेलना और लवका लड़ना	३२६
लवकी छुड़ानेके लिए कुशका जाना	३२७
राम-लक्ष्मण और कुशका युद्ध	३२८

अष्टम सर्ग

रामका एक भन्त्रीकी बाल्मीकिके पास भेजना	३२९
रामकी समामें बाल्मीकिका सीताको साथ लिये हुए जाना	३३०
रामके प्रति बाल्मीकिकी उक्ति और सीताको हाथों सहित देखकर रामका सन्देह	३३१
सीताकी ब्रह्म, सीताका पृथ्वीमें उल्लेख करना और पृथ्वीसे रामकी प्रार्थना	३३२
पृथ्वीपर रामका कोप और रामका पृथ्वीसे सीताको वापस पाना	३३३
यज्ञमें जाये हुए राजाओं और ऋषियोंकी बिवाई	३३४

नवम सर्ग

उमिला, माण्डवी तथा मृतकीर्ति जादिका गमिणी होना और यथासमय पुत्र उत्पन्न करना, पुत्रोंकी उत्पत्तिके अवसरपर रामका उत्साह	३३५
रामका कुलगुरु बशिष्ठमें बच्चोंके पुनापुन लक्षण पूछना और बशिष्ठका सब बालकोंके लक्षण बतलाना	३३६
पुत्रवती बहिनोके साथ सीताका आनन्दमय जीवन बिताना	३३८
गुरु बशिष्ठसे रामका लव-कुशके उपनयनका परामर्श और व्रतबन्धकी तैयारियोंके लिये रामका लक्ष्मणको आदेश	३३९
व्रतबन्ध (उपनयन) संस्कार समारोह	३४०
व्रतबन्धसंस्कार	३४१
लव-कुश जादि बालकोंका वेदाध्ययन, बालकोंका गुरुगृहसे वापस आनेपर अयोध्या नगरीके उत्साहका वर्णन	३४२
जन्मकाण्डके सुननेका फल और उसकी सहिष्णुताका वर्णन	३४३

विषय	पृष्ठ
------	-------

विवाहकाण्ड

प्रथम सर्ग

रामकी समामें महाराज भूरिकीर्तिका स्वयंवर पत्र जाना	३४५
पत्र पढ़नेके अनन्तर रामका स्वयंवरमें जानेकी तैयारी करना, रामकी स्वयंवरत्याग	३४६
रामका अपने पुत्रोंके साथ स्वयंवरमें पहुँचना	३४७
रामका आग्रहमन मुनकर राजा भूरिकीर्तिका नगरनिवासिनी महिलाओंकी प्रसन्नताका वर्णन	३४८

द्वितीय सर्ग

दूसरे रोज रामका स्वयंवर-समामें जाना और रामके दूतोंका वहाँ जाये हुए राजाओंका परिचय देना	३४९
समामें बम्बिका नामकी राजकन्याका प्रवेश	३५०
बम्बिकाको साथ लिये मुनन्दाका सब राजाओंके समक्ष जाना और बम्बिकाकी उन राजाओंकी स्थिति समझाना	३५१
बम्बिकाका सब राजाओंके सामनेसे हाँकर रामके सम्मुख पहुँचना	३५३
अन्तमें बम्बिकाका कुशके सामने पहुँचना और कुशके गलेमें बरमाला डालना	३५४

तृतीय सर्ग

मुनन्दाका मुमति नामकी दूसरी राजकन्याको साथ लेकर पहिलेकी तरह सब राजाओंका यश सुनाना	३५५
मुमतिका राजाओंके सामनेसे होकर स्वके समक्ष पहुँचना और उनके गलेमें बर- माला डालना, दूसरे दिन भूरिकीर्तिका रामके पास जाकर बिवाहके लिए मुहूर्त निश्चित करना	३५७
विवाहकार्यका प्रारम्भ	३५८
लव-कुशका विवाहमण्डपमें पहुँचना और विवाह सम्पन्न होना	३५९

चतुर्थ सर्ग

विवाहके अनन्तर होनेवाले लोकाचार	३६०
भूरिकीर्तिका नभरीसे राम जादिकी बिवाई, आज्ञा अयोध्या पहुँचना और अयोध्यावासियों द्वारा उनका स्वागत	३६३

विषय	पृष्ठ
विवाहोत्सवमें आये हुए अभ्यासियोंकी विवाह, रामदासका विष्णुदासको हुसके विषयमें अविषयकी बातें बतलाना	३६५
पञ्चम सर्ग	
सीता तथा भ्राताओंके साथ रामका वनमें जगस्यके आश्रमपर आना	३६३
जगस्य ऋषि द्वारा रामका स्तुकार और वनमें रामकी गाँव अप्सराओंका मिलना	३६४
जगस्यसे उन अप्सराओंके विषयमें रामका प्रश्न और उनका उत्तर, रामके साथ मारनेके लिए उद्यत होनेपर बलदेवियोंका प्रकट होना और बारह कन्यायें रामको धरित करना	३६५
षष्ठ सर्ग	
बहुतसे गंधर्वों और वनवासियों आना और रामको स्तुति करना, अपने तथा लक्ष्मण आदिके पुत्रोंकी कुछ अविषयकी बातें जगस्य ऋषिसे रामको मान्य होना	३६६
गंधर्वोंकी अयोध्या आनेकी आज्ञा देकर रामका अपनी पुरीकी वापस लौटना	३६७
अयोध्यामें पहुँचकर उन कन्याओंकी बहिरङ्गके यहाँ रहना, गंधर्वों और नागोंका अयोध्यापुरीमें पहुँचना तथा विवाहके सुहृदोंका निश्चित होना	३६८
सप्तम सर्ग	
उन कन्याओंके साथ राम आदिके पुत्रोंके विवाहकी तैयारी	३६९
कंजनयनी नामकी कन्याके साथ उनका विवाह, अन्य कन्याओंके सङ्ग अन्य पुत्रोंका विवाह, राम आदिके मातृत्वका वर्णन	३७१
अष्टम सर्ग	
रामके पास कम्बुकण्ठ नामक राजाका पत्र आना, कम्बुकण्ठकी कन्या मदनमुन्दरीके पास नारदोंका पहुँचना	३७३
मदनमुन्दरीका नारदोंसे रामचन्द्रकी परीक्षा करनेका उपाय पूछना और नारदका उसे उपाय बताना	३७३
नारदका अयोध्या पहुँचना और उसके मुखसे सब हाल सुनकर दूधकेतुका कान्तिपुरीकी बह देना	३७४
दूधकेतुको न देखकर परिवार समेत राम-	

विषय	पृष्ठ
का बिह्वल होना और नारदका सब हाल बतलाना, दूधकेतुका अपने मोहनास्त्रसे सब राजाओंको मोहित करके मदनमुन्दरीको बरना	३७५
दूधकेतुका सब राजाओंके साथ युद्ध	३७६
दूधकेतुका जङ्ग उठाकर अपने ससुर कम्बु- कण्ठकी मारनेके लिए उद्यत होना और मदन- मुन्दरीकी शार्ङ्गसे छौंड़ देना, मार्गमें शत्रुघ्नसे दूधकेतुका साक्षात्कार और सहस्रि लोटकर फिर कान्तिपुरीकी जाता	३७७
नवम सर्ग	
दूतके मुखसे दूधकेतुका सब समाचार ज्ञात होनेपर रामका कान्तिपुरीके लिए प्रस्थान, कान्तिपुरीमें आनन्दपूर्वक रामका पहुँचना	३७८
वहाँ दूधकेतुका विवाह होना, ममवामकी स्तुति करके नारदका प्रस्थान, विवाहकाण्डका अन्तःफल	३७९
विवाहकाण्डके अनुष्ठानकी विधि	३८०

राज्यकाण्ड (पूर्वार्द्ध)

प्रथम सर्ग

रामसहस्रनामके विषयमें विष्णुदासका प्रश्न और रामदासका उत्तर	३८१
सनसुमार और पण्डितका बर्ताव	३८२
राम सहस्रनाम	३८३
रामसहस्रनामका माहात्म्य	३९१

द्वितीय सर्ग

कल्याणके विषयमें रामदास-विष्णुदासका प्रश्नोत्तर	३९२
रामके पास लाख हजार शिष्योंके साथ दुर्वासा- आश्रमन और सबके लिए भोजन तथा पूजनके लिए ऐसे कूल भोगना, जिन्हें संसारमें किसीने न देखा हो	३९३
रामका पत्रके साथ एक ब्राह्मण इन्द्रके पास सेजना और इन्द्रका कल्याण तथा परिचाय स्वयं साकर अयोध्यामें रामका देना	३९४
सीताका कल्याणकी स्तुति करके उसके द्वारा प्राप्त शापभीते शिष्यों समेत दुर्वासाकी भोजन कराना	३९५
भोजनके बाद प्रश्न दुर्वासाका रामकी स्तुति करके प्रस्थान	३९६

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
तृतीय सर्ग		सीताके हाथों मूलकासुरका मग	४२१
रामोपासक तथा कृष्णोपासक दो विग्रहों		ब्रह्मा आदि देवताओं द्वारा सीताकी स्तुति	४२२
परस्पर मधुर विवाद	४१७	रामके हाथों विभीषणका राज्याभिषेक	४२३
दोनों ब्राह्मणोंका विवाद निपटानेके लिए		विभीषणके द्वारा मलीयाति सम्मानित होकर	
आकाशवाणीका होना	४०९	रामका विजयका उत्कार करना	४२४
चतुर्थ सर्ग		रामका अयोध्या लौटना	४२५
एक कौएकी रामका बरदान		लवणासुरसे मरुत भुनियोंका रामके पास जाना	
रामपर आसक्त श्री नागरिक स्त्रियोंका	४०७	और भवन भुनिका लवणासुरके पूर्वजन्मका वृत्तांत	४२५
भाग्यमग	४०८	रामकी आज्ञासे शत्रुघ्नका लवणासुरको मारने-	
उन स्त्रियोंकी अनुचित प्रार्थनापर रामका	४०९	के लिये मधुवन जाना	४२६
उत्तर और बरदान		सप्तम सर्ग	
रामका दास-दासियोंकी बुलाना, किन्तु वहाँ		शत्रुघ्न द्वारा लवणासुरका मग	४२८
किसीका उपस्थित न रहना, लवणका मारने दूत		अपनों सेनाके रामका दिग्भ्रमके लिए	
भेजकर उन्हें बुलवाना और दास-दासियोंका	४१०	प्रस्थान	४२९
हरिकीर्तन छोड़कर मानसे इन्कार करना		गुजरवा तीन राजाओंके साथ रामका	
मध्य रात्रिमें एक स्त्री (निद्रा) का कदन	४१०	मुमुक्षु युद्ध	४३०
सुनकर पुष्पक द्वारा रामका उसके पास जाना और	४११	उन्हें जीतकर रामका प्रसूत जाना और	
उसे बरदान देना		बहोते यक्षगादि विविध देशोंकी यात्रा	४३१
शुभमकर्मके पोष पोषककी लंकापर बढ़ाई		अष्टम सर्ग	
करके विभीषणको परास्त करना और विभीषणका	४१२	रामको किम्बुद्वय आदि देशोंकी विजययात्रा,	
रामके पास आकर अपना पुत्र मुदाना		मारुतार्थके विविध द्वीपों, द्वीपस्थ नदियों और	
रामका लंका आकर पोषकको परास्त करके	४१३	पर्वतोंका वर्णन	४३१
विभीषणको राजगद्दीपर बिठाना, कास बाद		नवम सर्ग	
मूलकासुरसे परास्त होकर विभीषणका रामकी	४१४	रामकी प्लव्यादि द्वीपोंकी विजययात्रा	४३५
घरणमें जाना		विविध द्वीपोंपर विजय प्राप्त करते हुए रामका	
सामन्त राजाओंके साथ रामकी मूलकामु-	४१५	मृतोदसागर पहुँचना	४३७
पर बढ़ाई और मोक्ष युद्ध होना		रामकी राजद्वीप यात्रा	४३८
ब्रह्माजीके द्वारा मूलकासुरके घरकी गुरु	४१५	रामका पुष्करद्वीप पहुँचना	४३९
पुत्रिका शांत होना और रामका सीताकी लानेके		लोकालोक पर्वत तक जाकर अयोध्या	
लिए गइकी भेजना		लौटना	४४०
सर्ग		बीछे हुए द्वीपोंपर राम द्वारा अपने माइनों	
रामके विरहसे सीताकी अथाक्क वर्णन	४१६	और पुत्रोंकी निपुक्ति	४४१
रामसे मिलनेके लिए सीताका विविध	४१७	दशम सर्ग	
मनोतिथी		रामका अश्वमेधसे एक कुत्तेके रोदनका कारण	
सीताका मरुतपर आकृष्ट होकर प्रस्थान, राम-	४२०	पुछना	४४१
सीताका मिलान और मूलकासुरका मग		पुछनेपर कुत्तेका अर्पण करनेवाले एक संन्यासी-	
करनेके लिए रथपर सवार होकर सीताका राम-	४२०	की अपराधी बताना	४४२
भूमिकी प्रयाण		रामका संन्यासीको बुलवाना और दोष	
गृह सर्ग		प्रमाणित हो जानेपर कुत्तेसे ही अपराधीको	
सीता-मूलकासुरका और पार्श्विका	४२०		

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
वध देनेके लिए कहना और कुत्तेका सन्यासीको कहींका मठाघोष बंदनेका दण्ड देना	४४३	उनका कारणिक मारीगीत सुनकर रामका प्रकट होना और वरदान देना	४६०
इस दण्डपर अधिक लोगोंका कुत्तेसे कारण पूछना और उसका इतलाना, एक दिन एक विष्णुका अपने धरे हुए बच्चेको लेकर रामके समक्ष आना और राना	४४४	उन सबको साथ लेकर रामका समक्ष बादिके पास जाना और वहाँसे एक शरीरपर पहुँचना	४६१
रामका उसे [] देना और बच्चेके धड़को तैलकी भाँसे रखवाना	४४५	रात्रिके समय रामका बाराहमृगमा करना बहते रामका मधुरा जाना, वहाँ एकान्तमें रामके [] रात्रिमें मारीक्य कारण करके वधुनाका मायमन	४६२
उसी समय भृङ्गवेरपुरमें एक और घण्टका जाना	४४६	कालिन्दी (वधुना) को राम वरदान	४६३

उसकी विषयाको साक्षात्कार देकर रामका
पुष्पक विमानपर चढ़कर बाहर निकलना,
उसके चले जानेपर और पक्षियोंका अगोप्य
जाना

रामका दण्डकधनमें एक शूद्रको उस सग
कासे देसना, उससे बात करना और वरदान
देना

रामके समक्ष एक मुँह और समूहका अभि-
योग तथा रामका न्याय

रामका पूर्वोक्त सातों मृतकोंकी जीवित
करना

एकादश सर्ग

मृगधाके लिए रामकी जाना और
जनवर्णन

रामका एक विष्णुका घोसा करते हुए अपने
साथियोंसे बिछुड़कर यन्त्रमें दूर निकल जाना, वहाँ
सिंहको मारना और मृत विष्णुका अपनी आत्मकथा
सुनाना

रामका एक कम्हरासे चुकना, वहाँ चार
स्त्रियोंको मृतप्राय दशामें देसना और उन्हें जीवित
करना

रामका उन स्त्रियोंसे वात्सल्य, उनका रामपर
मोहित होना और उनको रामका [] देना

द्वादश सर्ग

उन चारोंके साथ जाते चलकर एक स्थानपर
रामका सोलह हजार स्त्रियोंको देसना

उन [] स्त्रियोंका रामपर मोहित होना

उन सबका वरण करनेके लिए रामको विवश
करना और रामका भक्तार्थन होना

रामके विद्योत्तमें उन स्त्रियोंकी कल्या-
नका वर्णन

राज्यकाण्ड (उत्तरार्द्ध)

त्रयोदश सर्ग

समाधि बैठे हुए रामका एक मनुष्यकी हँसी
सुनकर घबराना

रामका अपने राज्यमें हँसनेकी मनाही
करना

रामके इस आवेगसे मनुष्यों तथा देवताओंमें
आतंक छा जाना और विरोध-प्रदर्शनायें बह्मका
अगोप्यके एक पीपल वृक्षमें प्रविष्ट होकर
जोरोसे हँसना

एक दिन उनमें किसी दूतकी हँसी देखकर
रामका हँसना और बाधमें पकड़ावे हुए अपनी
हँसीपर विचार करना

कारण [] होनेपर मनुष्योंकी हँसनेवाला
पीपल काट डालनेकी [] देना, उसे काटनेकी गये
हुए सेवकोंका बह्मकी उपसर्गवर्ति बाह्य होकर
पीपलर करना

बाधने रामकी आज्ञासे मुमंथका जाना, वहाँ
पत्थरोंकी सारसे उनका भी मूर्च्छित होना और
रामका अविष्टकी बुलाकर कारण पूछना

अविष्टका कारण बतलाना, बह्मकी मूर्च्छा सुनकर
रामका कुमिष होना और क्रुद्ध रामकी भविष्य
वात्स्यकिका समझाना

मानन्दरामायणकी मूर्च्छा

वात्स्यकिका बह्मकी बुलवाना

बह्मका रामकी स्तुति करना और अविष्टका
दो विष्णुसुक्तोंके विषयमें एत

चतुर्दश सर्ग

अविष्टके प्रसन्न बह्म द्वारा उत्तर, अविष्टकी-
कुमारोंका विष्णुके एक प्रय-विषयकी धाप देना और

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
उद्धारके समयका निर्देश	४७४	कंकण देना, उस कंकणकी प्राप्तिके विषयमें	
जय-विजयके अगले जन्मकी कथा, चट्टा- की स्तुतिसे रामका प्रसन्न होना, महर्षि बाल्मीकिसे रामके कुछ प्रश्न	४७५	अनन्यसे सबका प्रश्न और ■■■ मुनिका उत्तर	५००
वाल्मीकिका अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त बताना, तत्कारवृत्तिपरायण वाल्मीकिका एक विप्रका दण्डकमण्डल तथा जुते आदि छेनना, बादमें लपटी रेतपर चलते हुए बाह्याणका सुनो देखकर दयावश जुते लौटा देना	४७६	एक स्वर्गीय प्राणीको मड़े हुए भुद्रेका मांस खाने देखकर अपत्यका विस्मित होना, उससे कारण पूछना और उत्तर बतलाना	५००
वाल्मीकिका ■■■ विप्रसे ■■■ पूर्वजन्मका हाल पूछना	■■■	दंडकारण्यके विषयमें महर्षि अनन्यसे सबका प्रश्न और ऋषिक उत्तर	५०१
राक्षस वाल्मीकिके पूर्वजन्मका वृत्तान्त बताना, वेदमासक वाल्मीकिकी स्त्रीकी सेवा और आश्वामेध वाल्मीकिका देहाग्न और उनकी स्त्रीका सती होना	४७८	दंडकारण्यकी कथा, राधा दण्डकका भृगुकी कन्याके साथ बलात्कार और राजाको भृगुका धाप	५०२
उनके अगले जन्ममें कृष्ण नामके ऋषि- का शीर्ष एक सपिथीका ■■■ और उनसे वाल्मीकिका जन्म, किराणों द्वारा पालित होनेके कारण वाल्मीकिका वंशधरुत्ति स्वीकार करना	४७९	अष्टादश सर्ग	
वाल्मीकिकी सप्तपिथीका उपदेश	४८०	रामभृगुकी रचनाविधि	५०३
उनके उपदेशसे वाल्मीकिका 'मरा-मरा' यह मंत्र जगते हुए ■■■ तप करना और बहुत वर्षों बाद सप्तपिथीका फिर बड़ा माना और उन्हें बाँधीसे बाहर निकालना, वाल्मीकिके मुकुटमें श्लोकका जन्म	४८१	विष्णुनामका रामनाथपुरीके वासियोंको रामभृगुका हित मिलानेका कारण पूछना और रामदासका उत्तर	५०४
अकारादि श्रमसे रामनामकी महिमा	४८२	बहुत समय ■■■ एक बुद्ध राजा द्वारा महापद्म नामेवर उन ब्राह्मणों द्वारा वह शिक्षा एक मरीचकमें कैदना	५०७
पञ्चदश सर्ग	४८३	उस मरीचककी बाधसे हनुमान्जीका उन ब्राह्मणोंकी रक्षा करना और रामभृगुका हित मिलानेका सरोवरमें निकालना	५०८
रामराज्यकी विधेयतायें	४८५	वह शिक्षा दिलाकर हनुमान्जीका उस बुद्ध राजाको गुप्तोपर बसाना और ब्राह्मणोंकी आस्थासे देना	५०९
षोडश सर्ग		एकोनविंश सर्ग	
रामका लव-कुश आदि पुत्रों तथा भरत- लक्ष्मण आदि भ्राताओंको राजनीतिक उपदेश	४९०	रामकी दिनचर्या	५१०
सप्तदश सर्ग		■■■ और ज्योतिषीसे रामका वातावरण	५११
कुशकी पुत्री हेमाका स्वयंवर	४९६	रामकी सभा और उसकी शोभा	५१२
विश्रागध द्वारा हेमाका अपहरण और उसके साथ लव-कुश आदिका शोषण युद्ध	४९७	कुशकी उत्पत्तिके बाद सीताके गर्भ न रहनेका कारण	५१९
उस युद्धमें कुशका मित्रयो होना और प्रसन्न होकर रामका उन्हें एक कंकण देना, उस कंकण- की प्राप्तिके विषयमें कुशका महर्षि अनन्यसे प्रश्न और उनका उत्तर	४९८	बीसवाँ सर्ग	
हनुमान्जीका मुद्गल ऋषिके आश्रममें संजीवनी बूटी लेकर सबकी मूर्च्छा दूर करना	४९९	लवका वसिष्ठमें रात्रिमें सोते समय कानमें झोंकनेके समान होनेवाले शब्दका कारण पूछना और बसिष्ठका उत्तर देना	५१८
लवकी श्री ■■■ एक अनन्यप्रवृत्त		रामका रामावतारको श्रेष्ठ बतलाना	५१९
		मात्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, कृष्ण, ■■■ कल्कि अवतारके दोषोंका वर्णन	५२०
		राम ह. . . रामवतारके सुखोंका वर्णन	५२२
		इक्कीसवाँ सर्ग	
		वैजसनायके समय सीताका दर्शन करनेके लिए बहुतेरी स्त्रियोंका जाना	५२५
		रामका पूर्वकालके कार्योका सिंहावलोकन	५२६

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
रामका पुत्र अश्विहस्ते पोषियोंके प्रत्येक परमें ■ और भी तथा दूसरे और राम लिखनेका कारण पूछना और उनका ■■■■	५२७	सूर्यका वनको ले ■■■■ रामसे कहा सैमबाना	५४६
रामका एक दासोंको बरदान देना, रामका एक ही समय दो रूप धारण करके विश्वामित्र और बाल्मीकिके वहाँ जाना	५२८	रामका अपने राज्यभरमें धार्मिक आदेश राज्यका उनके धाराधनका माहात्म्य	५४७ ५५१
आईसर्वाँ सर्ग		मनोहरकाण्ड	
रामका मुरिभीतिके यहाँसे बहुतेरा सौभाग्य जाना और बिना रामको अर्पण किये सीताका उसमेंसे एक फूल चूँच लेना	५३१	प्रथम सर्ग	
एकादशीके रोज सीताकी साड़ीसे कंध- कर एक तुलसीका पत्र छूटना और उसी समय भारवका ना पहुँचना	५३२	रामदाससे विष्णुदासका नारायणविठ रामायण (कपुराभाषण) ■■■■ सार पूछना	५५३
भोजन परोखेपर भारवका सीतामें संस्पृष्ट भोजन करनेसे इनकार करना और रामके पूछने पर ■■■■ बहाना	५३३	द्वितीय सर्ग	
सीताका छूटा तुलसीपत्र छद्मीमें जोड़नेके प्रयासमें विफल होना	५३४	अयोध्यावासियोंका रामसे कुछ उपदेश देनेके लिए प्रार्थना करना	५५०
भारवकी बतानी सुनिते फिर सीताका प्रयत्न करना और तुलसीपत्रका भुङ्ग जाना	५३५	रात्रिके समय वृत्तोंका प्रजाजनोंको उपदेश प्रतःप्रतः पुनः धुरवासियोंका रामसे वार्तालाप	५५१ ५५२
भारवका रामस्तुति	५३६	एक दिन कंकियोंका रामसे उपदेश देनेकी प्रार्थना करना और रामका कंकियोंको भेड़ोंके उपदेश दिलवाना	५५४
तेईसर्वाँ सर्ग		मेइँसे प्राप्त ज्ञानके विषयमें रामका कंकियोंसे प्रश्न	५५५
मानन्दरामायणका ■■■■ करनेसे एक साधारण शिपाहीका रसमन्त्री हो ■■■■	५३८	सुमित्राको रामका ज्ञानोपदेश पाता कौमल्यको रामका गोकुलसे कहनेसे	५५६ ५५८
उसका मध्युद्ध देखकर ■■■■ शिपाहियोंका मानन्दरामायणके आराधनमें लग जाना, शिपाहियोंके बलावसे बचकर सब राजाओंका रामके पास ■■■■	५३९	कालांतरमें कौसल्या सुमित्रा आदिका वेदव्यास	५५९
मानन्दरामायणके प्रबणसे बमपुरका सूना होना और बमराजका सह्या-शिव आदि देवताओंके साथ भोग्यता ■■■■	५४०	तृतीय सर्ग	
उनकी दुःखताका सुनकर रामका मानन्द- राधाधनपर प्रतिबन्ध डगाना	५४१	विष्णुदासका रामदाससे रामकी मानसी पूजा- विधि पूछना	५७०
चौबीसर्वाँ सर्ग		रामदासका उत्तर और सुनके लक्षण बहाना	५७१
रामका मृत सुमन्त्रको बमभूतोंसे कीतकर बापसे लाना	५४२	विभिन्नसंस्कृत बसरोंवाले राममन्त्र	५७२
सुमन्त्रकी वन्यकालीन भाषा	५४३	मानसी पूजाका विधि-विधान	५७३
कुपित बमराजकी मधोभ्यापर चढ़ाई	५४४	नमस्काराहकमन्त्र	५७५
■■■■ और बमराजमें बमानक मुँह, लवके बहादुरकी मारसे बमराजकी बबलुहट और सुर्व बगदाजका बाकर लवकी समझाना	५४५	बहुःपूजाविधान	५७७
		अवपुण्यश्रितिके विषयमें विष्णुदास-रामदासका प्रश्नोत्तर और चन्द्र-अतिथिद्व आदि नौ भक्तोंकी कथा	५८२
		उन नवों भक्तोंका कठोर तप करना और उन्हें रामका प्रत्यक्ष दर्शन मिलना	५८३
		इन नवों भक्तोंको रामका बरदान	५८४
		चतुर्थ सर्ग	
		अयोध्यागत रामसिगतोदर आदिके स्निग्धमें विष्णुदासका रामदाससे प्रश्न और उनका उत्तर	५८५ ५८९
		रामदासका विष्णुदासको आध्यात्मिक उपदेश	५८९

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
राममुद्राको पूर्ण करनेकी विधि	५९१	किस कामनाकी पूर्ति के लिए किस देवताकी	
मष्टोत्तरशत रामलिंगतोषकके भेद	६०२	आराधना करनी चाहिए	६७०
सर्ग		रामके रकरादि नामोंका महत्त्व	६७१
रामलिंगतोषक आदि विविध मन्त्रोंकी		रामतारक मन्त्रका माहात्म्य	६७२
रचनाविधि	६०४	दशम सर्ग	
अष्टम सर्ग		चैत्रमासकी महिमा	६७३
रामतोषकमें तत्तद्देवताओंकी स्थापनाविधि	६०७	चैत्रस्नान करनेवालोंके लिए कुछ विशेष नियम	६७४
श्रीरामकी प्रिय वस्तुओंका विकरण	६२०	स्त्रियोंके लिए शीतल गोरोस्नान तथा पूजन-	
प्रतिदिन रामकी पूजाविधि	६२२	विधि	६७९
रामनवमीका व्रत करनेवाले एक दिनकी	६२७	रामनवमीको रामचन्द्रके पूजनका विधान, चैत्र-	
एक रात्रिमें रावतेवर्षोंका जाकर		में आनन्दरामायणके पारायणका विधान	६८०
विश्रको मताना	६४०	अन्य विधि-विधान	६८१
हनुमान्जीके गर्जनसे राज्यके		एकादश सर्ग	
मरण, तभीसे उस राज्यमें हवीराज्य होगा	६४१	चैत्रमासके महत्त्वका कारण	६८२
उस राज्यमें पुण्य उत्पन्न न होनेका कारण	६४२	देवताओंको वरदान	६८४
रामनवमी व्रतकी कलाश्रुति	६४३	चैत्रस्नान करनेवाले मुनिह् शास्त्राणकी कथा	६८५
सप्तम सर्ग		सम्भु शास्त्राणकी कथा	६८८
रामचरितनाम आदि लिखनेकी रीति और		सम्भु विप्रका एक बहुलियेको उपदेश	६८९
अस्थापनाविधि	६४४	सम्भु द्वारा वही भाषे हुए एक राजसका उद्धार	६९१
रामनामकी महिमा	६४५	सम्भु विप्र तथा व्यासकी अयोध्यायात्रा	६९२
राजा मुषिष्ठिरका श्रीकृष्णसे रामनामजप तथा		सम्भुके मार्गमें एक सिंह तथा हाथीका सामने	
पूरणकरणविधि पूछना और जोड़णका मताना	६४७	आना, उस सिंह तथा हाथीके पूर्वजन्मकी कथा	६९३
आनन्दरामायणके पाठ और धामका माहात्म्य	६४९	सम्भुका उन दोनोंके उद्धारका आश्वासन	६९४
रामनामजपकी महिमा	६५०	आगे बढ़नेपर सम्भुकी एक कर्पटिक	
कविताओंका स्वरूप और कवियोंकी श्रेणी	६५२	(कौशरयो से घेंट और आर्तालाप	६९५
अष्टम सर्ग		सम्भु द्वारा अयोध्याकी योगाका वर्णन	६९७
बेबाहिकोंके पाठका माहात्म्य	६५३	कर्पटिकके साथ सम्भु विप्रका अयोध्यासे लौटकर	
दानपात्रके विषयमें रामदास-विष्णुदासका		उस पूर्व आश्वासित राजसका उद्धार करना	७०१
प्रश्नोत्तर	६५४	द्वादश सर्ग	
शास्त्रोंके अध्ययनकी महिमा	६५५	मृगयाके प्रसंगमें रामकी एक शबरीसे घेंट	७०२
विविध रामायणोंकी भर्षा	६५६	रामका दुर्गामन्दिरमें जाकर बहुतेरी स्त्रियोंकी	
रामायणके पाठ और रामकृष्णकी कविता		पूजा स्वीकार करना और वरदान देना	७०५
करनेका फल	६५८	रामनामकी महिमा	७०६
आयुर्वेदादिकोंके अध्ययनका फल	६५९	रामका मुनियोंको उपदेश	७०७
दानियोंको दानपात्रका विचार करना ही		त्रयोदश सर्ग	
चाहिए और शास्त्राणका धन हड़पनेका कुफल	६६०	हनुमत्कवच और उसका माहात्म्य	७०८
विष्णुदास-रामदासमें रामकी विशेष पूजाके			७१४
विषयमें प्रश्नोत्तर, रामकी पूजाके मास		चतुर्दश सर्ग	
योंका निर्देश	६६१	सीताकवचके विषयमें विष्णुदासका प्रश्न और	
दोलापूजनकी विधि	६६२	सीताकवच	७१७
वसन्त पञ्चमीको धामका और पीनेका माहात्म्य	६६७	सीतामोत्तरव्रतनामस्तोत्र	७२०

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
स्त्रियोंके लिए कुछ उपयोगी क्त	७२२	ब्रह्माका सोमवंशी राजाओंको लेकर	
रामनामस्तोत्रकी रचनाविधि	७२३	रामके पास जाना और काम भोगवाना	७७१
पंचदश सर्ग		रामका बाल्मीकिके भोजना और	
लक्ष्मणकवच	७२५	बाल्मीकिके परामर्शसे सोमवंशी राजाओंको स्त्रियोंका	
सरसकवच	७२७	सीताके पास जाना	७७२
समुद्रकवच	७२९	सीताके अनुरोधपर भृशचिराक, ब्रह्माका रामसे	
मनन एवं कीर्तन करने योग्य राममन्त्र	७३१	बैकुण्ठधाम पधारनेकी प्रार्थना करना और रामकी	
षोडश सर्ग		स्वीकृति	७७३
रामाक्षसप्रवेगके बावके कर्तव्य	७३८	पञ्चम सर्ग	
गदहकी शंका और रामके द्वारा समाधान	७३९	रामकी पत्नी राम जानेके लिये उद्यत होकर	
कानरोंकी उत्पत्तिका इतिहास और कानरोंको		सूयेण, सुपीर, विभीषण आदिजन अपने साथ ले	
ब्रह्माका वरदान	७४०	चलनेके लिये बाणहूँ करना	७७४
हनुमत्पराकारोपणविधान	७४१	पृथ्वीमें हुए राजाओं, मिथी तथा पुत्रोंकी	
सप्तम सर्ग		विदाई और उनकी स्वामी-स्थानपर निशुक्ति	७७५
श्रीरामचन्द्रोपस्थित शत्रु रामाक्षस	७४३	रामके आज्ञानुसार कुछका अयोध्या जाना	७७६
अष्टादश सर्ग		रामका लक्ष्मणको वरदान	७७७
जयपुरके कविभञ्ज भाय पढ़नेका कारण	७४५	षष्ठ सर्ग	
पूर्णकाण्ड		दूसरे दिन सुबेरे रामका अक्षय्यकी बुलाकर	
प्रथम सर्ग		जाने परम घाम जानेकी वतलाना	७७८
रामकी समाधि हस्तिनापुरमें भूतका जाना	७५७	रामके आज्ञानुसार बाण जानकर स्वर्गके देव-	
बाल्मीकिका गदहकी चंद्रवंशी राजाओंका		सामने उसकाहका मन्थार	७७९
इतिहास सुनाना	७५८	श्रीशिवजीका रामके समक्ष स्तुति करना	७८०
द्वितीय सर्ग		गदहपर बैठकर रामका बैकुण्ठधाममें जाना	
रामका सामन्त राजाओंको बुलवाना	७६१	और रामके साथ गये सभी अयोध्यावासीयोंको	
रामका भरतकी सलद्वीपपतिके पदपर अभिविक्त		सांसारिक लोक छोड़ होना	७८१
करनेका संकल्प करना, किन्तु भरतका यह पद		सप्तम सर्ग	
स्वीकार न करना. अन्तमें उस पदपर कुछका अभिवेक	७६२	कुछके बादवाले पूर्ववंशी राजाओंकी वंशावली	७८२
हस्तिनापुरीपर चढ़ाईके लिये भरतमर्ष, रामका		अस्य रामाक्षसों तथा भानुन्दरामाक्षसोंमें भेदका	
सरयू और अयोध्याको वरदान	७६४	कारण	७८३
रामका हस्तिनापुरको प्रस्थान	७६५	अष्टम सर्ग	
तृतीय सर्ग		विष्णुदासका रामदाससे भानुन्दरामाक्षसकी	
रामका हस्तिनापुर पहुँचना	७६६	अनुक्रमिका पूरक और रामदासका अनुक्रमिका-	
राम और सोमवंशी राजाओंका युद्ध	७६७	सर्ग कहना	७८४
उस भीषण युद्धको देखकर देवताओंमें घब-		नवम सर्ग	
राह और पान्तिका उग्रता होचना	७६८	भानुन्दरामाक्षस सुननेका	७८८
चतुर्थ सर्ग		अनुष्ठानविधि	७८९
कुछका ब्रह्मरूप संघाल करना और ब्रह्माका		पारायणविधि	७९०
आकर रोचना	७७०	भानुन्दरामाक्षसका संक्षिप्त माहत्म्य	७९२
		पार्वतीजी और शिवजीका रामदास-विष्णुदास-	
		के विषयमें प्रश्नोत्तर	७९३

श्रीसीतापतये नमः
श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं

आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ इत्या भाषाटीकयाऽऽटोक्तम्

सारकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

(दशरथ-कौसल्याविवाह तथा शत्रुघ्न द्वारा पुत्रोष्टि)

श्रीवाल्मीकिस्तुतः

वामे भूमिसुता पुरस्तु हनुमान् पृष्ठे सुमित्रासुतः

शत्रुघ्नो भरतश्च पार्श्वदलयोर्वाग्वादिकोणेषु च ।

सुग्रीवश्च विभीषणश्च युवराट् तारासुतो जाम्बवान्

मध्ये नीलसरोजकोमलरुचिं रामं भजे श्यामलम् ॥ १ ॥

जादौ रावणमर्दनं द्विजगिरा तीर्थाटनं सीतया साकेते दशकाजिमेघकरणं पत्न्या विलासाटनम् ।

श्रीपुत्रग्रहणं स्तुवार्थमटनं पृथ्व्याश्च संरक्षणं रामार्चादिनिरूपणं दयितया स्वीयं स्थलारोहणम् ॥ २ ॥

एकदा पार्वती देवी शंकरं प्रहृष्टा दृष्ट्वा । कलासवासिनं नत्वा राममक्षयैकतत्परा ॥ ३ ॥

पार्वत्युवाच

शंभो त्वया पुराणानि कथितानि ममांतिके । रघुनाथस्य चरितं जन्मकर्मसमन्वितम् ॥ ४ ॥

कथयस्वाधुना देव मम प्रीतिविचर्दनम् । आनन्ददायकं कर्म रघुवीरेण यत्कृतम् ॥ ५ ॥

श्रीवाल्मीकि मुनि कहते हैं कि जिनके बायें भागमें सीताजी, सामने हनुमान, पीछे लक्ष्मण, दोनों बगल शत्रुघ्न और भरत, दायाँ हिस्से ईशान अग्नि तथा मंजुलोकमें क्रमशः सुग्रीव, विभीषण, तारापुत्र युवराज शत्रुघ्न और जाम्बवान् हैं, उनके बीच विराजमान श्याम कमलसदृश मनोहर कान्तिवाले परम पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका मैं भजन करता हूँ ॥ १ ॥ इस ग्रन्थके सारकाण्डमें ऋषिवाक्यसे रावणका हनन, दूसरे यात्राकाण्डमें सीताके साथ रामकी तीर्थयात्रा, तीसरे यात्राकाण्डमें अयोध्यामें अश्वमेध यज्ञ, चौथे विलासकाण्डमें पत्नीके विलास, पाँचवें जन्मकाण्डमें लव-कुशकी उत्पत्ति तथा सीताकी पुनः स्वीकृति, छठे विवाहकाण्डमें लवकुशके विवाहके लिए प्रस्थान, सातवें राज्यकाण्डमें धर्मपूर्वक पृथ्वीका रक्षण, आठवें मनोहरकाण्डमें रामकी पूजा आदिका वर्णन और नवें पूर्णकाण्डमें सीतासहित भगवान् रामचन्द्रके स्वधाम पधारने आदिका सुन्दर चरित्र वर्णित है ॥ २ ॥ एक समय रामचन्द्रजीकी भक्तिमें तत्पर देवी पार्वतीने कहा—हे शम्भो ! आपने बहुतसे पुराणोंकी सुन्दर मुझे सुनायी । हे देव ! आप कृपा करके मेरी प्रीति बढ़ानेवाले रघुवीर रामचन्द्रके आनन्ददायक कर्म और उनके जन्म आदिकी मनोहर

सम्यक् पृष्टं त्वया कान्ते रामचन्द्रकथानकम् । कथयामि सविस्तारं महामंगलकारकम् ॥ ६ ॥
 आदिनारायणाद्भद्राऽभून्मरीचिर्विधेः सुतः । मरीचेः कश्यपः पुत्रस्तत्सुतः सूर्य उच्यते ॥ ७ ॥
 सूर्यपुत्रः श्रावदेवो मनुर्वैवस्वतस्त्विति । स एव प्रोज्यते तस्येष्वाकुः पुत्रः प्रतापवान् ॥ ८ ॥
 इक्ष्वाकोस्तु विकुक्षिर्हि शशादथ स एव हि । विकुक्षेस्तु ककुत्स्थश्च स एवात्र पुरञ्जयः ॥ ९ ॥
 एवोक्तश्चन्द्रबाहः ककुत्स्थनृपतेः सुतः । अनेनास्तस्य पुत्रोऽभूद्विश्वरन्धिश्च तत्सुतः ॥ १० ॥
 चन्द्रश्चन्द्रस्य पुत्रोऽभूद्युवनाथः प्रतापवान् । श्रावस्तो युवनाथस्य श्रावस्तस्य सुतो महान् ॥ ११ ॥
 बृहदथ इति ख्यातस्तस्माज्जज्ञे नृपोत्तमः । कुवल्याश्वो नृपतिर्दृढाशस्तत्सुतः स्मृतः ॥ १२ ॥
 हर्यश्च इति तत्पुत्रो निकुम्भस्तत्सुतः स्मृतः । बर्हणाश्वो निकुम्भस्य बर्हणाश्वनृपोत्तमात् ॥ १३ ॥
 कृताश्वो नृपतिः प्रोक्तः श्येनजित्तत्सुतः स्मृतः । युवनाथः श्येनजितो युवनाथनृपोत्तमात् ॥ १४ ॥
 मान्धाता व्रसहस्युर्हि स एव कथितो भुवि । पुरुकुत्सश्च मान्धातुः पुरुकुत्सस्य वै पुनः ॥ १५ ॥
 व्रसहस्युरिति ख्यातोऽनरण्यश्चापि तत्सुतः । अनरण्यस्य हर्यश्चो हर्यश्चस्याक्षः सुतः ॥ १६ ॥
 त्रिबन्धनोऽरुणाज्जातस्त्रिबन्धनसुतो महान् । सत्यव्रतः स एवात्र त्रिशंकुरिति वै स्मृतः ॥ १७ ॥
 सत्यव्रतस्य पुत्रोऽभूद्विश्वरन्ध्रः प्रतापवान् । रोहितस्तत्सुतः प्रोक्तस्तस्माच्च हरितः स्मृतः ॥ १८ ॥
 हरितस्य सुतश्चम्पः सुदेवश्चम्पदेहजः । सुदेवादिजयः प्रोक्तस्तत्पुत्रो भरुकः स्मृतः ॥ १९ ॥
 भरुकस्य वृकः पुत्रो वृकपुत्रस्तु बाहुकः । बाहुकात्सगरो जज्ञेऽसमञ्जः सगरात्मजः ॥ २० ॥
 असमञ्जसश्च पुत्रोऽभूदंशुमानिति नामतः । तस्य पुत्रो दिलीपस्तु दिलीपाच्च भगीरथः ॥ २१ ॥
 भगीरथान्छ्रुतो जातः श्रुताश्रमः प्रकीर्त्यते । नामस्य सिन्धुद्वीपश्च अयुतायुश्च तत्सुतः ॥ २२ ॥
 ऋतुपर्णस्त्वयुतायोः सुदासस्तस्य कीर्त्यते । मित्रसहः एवात्र कल्माषांघ्रिः स एव हि ॥ २३ ॥
 सुदासस्याश्वकः पुत्रो मूलकोऽश्वकदेहजः । एव नारीकवचो मूलकस्य सुतो महान् ॥ २४ ॥
 नाम्ना दक्षरथः प्रोक्तस्तस्य पुत्रः प्रतापवान् । नाम्ना त्वेदविडः प्रोक्तस्तस्य विशसहः स्मृतः ॥ २५ ॥
 तस्य पुत्रस्य खट्वाङ्गः खट्वाङ्गादीर्घबाहुकः । दिलीपश्च एवात्र तस्य पुत्रो रघुः स्मृतः ॥ २६ ॥

कथा सुनाइये ॥ ३-५ ॥ सिकजी बोले-हे कान्ते ! तुमने श्रीरामचन्द्रका कथाविषयक बड़ा अच्छा प्रश्न किया है । मैं उस मङ्गलकारिणी कथाको विस्तारपूर्वक कहता ॥ ६ ॥ आदि विष्णुसे ब्रह्माजी जायमान हुए । ब्रह्मासे मरीचि, मरीचिसे कश्यप, कश्यपसे सूर्य और सूर्यसे श्रावदेव हुए ॥ ७ ॥ ८ ॥ उन्हींको वैवस्वत मनु भी कहते हैं । उनके बड़े प्रतापी इक्ष्वाकु, इक्ष्वाकुसे विकुक्षि शशाद और विकुक्षिके ककुत्स्थ अर्थात् पुरञ्जय हुए । ककुत्स्थसे चन्द्रबाह, चन्द्रबाहसे अनेना, अनेनासे विश्वरन्धि, विश्वरन्धिसे चन्द्र और चन्द्रका युवनाथ नामक प्रतापी पुत्र हुआ । युवनाथसे श्रावस्त, श्रावस्तसे बृहदस्वसे कुवल्याश्व सर्वश्रेष्ठ राजा हुए । कुवल्याश्वसे दृढाश्व, दृढाश्वसे हर्यश्व, हर्यश्वसे निकुम्भ, निकुम्भसे बर्हणाश्व, बर्हणाश्वसे कृताश्व, कृताश्वसे श्येनजित्, श्येनजित्से युवनाथ, युवनाथसे मांधाता हुए । जो संसारमें व्रसहस्यु नामसे प्रसिद्ध थे । मांधातासे पुरुकुत्स, पुरुकुत्ससे फिर दूसरे व्रसहस्यु हुए । व्रसहस्युसे अनरण्य, अनरण्यसे हर्यश्व, हर्यश्वसे अक्ष, अक्षसे त्रिबन्धन, त्रिबन्धनसे सत्यव्रत हुए । उनका नाम त्रिशंकु भी था ॥ १७ ॥ सत्यव्रतसे हरिश्चन्द्र नामके बड़े सत्यवादी और प्रतापी राजा हुए । हरिश्चन्द्रसे रोहित, रोहितसे हरित, हरितसे चम्प, चम्पसे सुदेव, सुदेवसे विजय, विजयसे भरुक, भरुकसे वृक, वृकसे बाहुक, बाहुकसे सगर, सगरसे असमञ्जस, असमञ्जससे अंशुमान्, अंशुमान्से दिलीप, दिलीपसे भगीरथ, भगीरथसे श्रुत, श्रुतसे नाम, नामसे सिन्धुद्वीप, सिन्धुद्वीपसे अयुतायु, अयुतायुसे ऋतुपर्ण और ऋतुपर्णसे सुदास हुए । वे मित्रसह और कल्माषांघ्रि नामसे भी प्रसिद्ध थे ॥ १८-२३ ॥ सुदाससे अश्वक, अश्वकसे मूलक, मूलकसे नारीकवच, नारीकवचसे दक्षरथ,

रघोः पुत्रो राज्ञः प्रोक्तस्त्वस्मादश्वरथः स्मृतः । राक्षो दशरथाज्जातः श्रीरामः परमेश्वरः ॥२७॥
 यस्य नामान्यनन्तानि गृणन्ति मुनयः सदा । विष्णोरारभ्य कथिता एकषष्टिर्नृपा मया ॥२८॥
 एकषष्टिर्नृपाग्रो मध्ये रामो विराजते । तस्य ते चरितं कृत्स्नं संक्षेपाच्च ब्रवीम्यहम् ॥२९॥
 इक्ष्वाकुवंशप्रवरः क्षत्रियो लोकविश्रुतः । बलवान् सरयुतारोऽप्योध्यायां पार्थिवोत्तमः ॥३०॥
 नाम्ना दशरथः श्रीमान् जम्बूद्वीपपतिर्महान् । शशास राज्यं धर्मेण सैन्येन महताऽऽवृतः ॥३१॥
 अयोध्यायास्तु साविध्ये देशे श्रीकोसलाह्वये । कोसलायां महापुण्यः कोसलारूपो नृपो महान् ॥३२॥
 तस्यासीद्बहुहिता रम्या कौसल्या पतिकामुका । तस्या दशग्रहेनैव विवाहो निश्चितो मुदा ॥३३॥
 लग्नार्थं तं ममानेतुं दत्ता दशरथं नृपम् । ययुर्विनिश्चयं कृत्वा विवाहदिवसस्य च ॥३४॥
 तदा दशरथश्चापि साकेते सरयुजले । नौकास्थो जलजां कीडां चक्रे वे मंत्रिबन्धुभिः ॥३५॥
 निशायां सेनया युक्तः स्तुतो भामधवदिभिः । रत्नदीनप्रकाशैश्च नवतुर्वारयोपितः ॥३६॥
 तस्मिन्काले तु लंकायां विधिं पप्रच्छ रावणः । कस्मान्मे मरणं ब्रह्मन् तत्त्वं मां वक्तुमर्हसि ॥३७॥
 तत्रावणबन्धः श्रुत्वा कथयामास तं विधिः । कौसल्यायां दशरथाद्रामः साक्षाज्जनार्दनः ॥३८॥
 चतुर्धा पुत्ररूपेण भूत्वा स निहनिष्यति । पञ्चमेऽहनि लग्नस्य राक्षो दशरथस्य हि ॥३९॥
 दिवसो निश्चितो विप्रैः कौसल्यारूपेण रावणः । तद्विधेर्वचनं श्रुत्वा पुष्पकस्थो दक्षाननः ॥४०॥
 अयोध्यां सत्वरं गत्वा राक्षसैः परिवेष्टितः । नौकास्थं तं दशरथं जित्वा युद्धं सुदारुणः ॥४१॥
 बभञ्ज निजपादेन तां नौकां सरयुजले । तदा सर्वे मृतास्तत्र सरयवा निमले जले ॥४२॥
 दशरथसुमन्त्रौ द्वौ नौकासण्डोपरि स्थितौ । जनैः जनैः प्रवाहेण गत्वा भागीरथीं नदीम् ॥४३॥

दशरथसे ऐडविड, ऐडविडसे विश्वसह, विश्वसहसे सट्वाङ्ग, सट्वाङ्गसे दीर्घबाहु हुए । उन्होंनेका नाम दिलीप भी था । दिलीपसे रघु, रघुसे अज और अजसे [] प्रतापी महाराज [] हुए । दशरथसे साक्षात् परमेश्वर मर्यादापुत्रोत्तम रामचन्द्रजा आयमान हुए ॥ २४-२७ ॥ उनके अनन्त नाम हैं । जिनको मुनिलोग सदा गाया करते हैं । विष्णुसे लेकर ६१ (इकसठ) राजे मैने गिनाये । उन राजाओंके बाद रामचन्द्रजी प्रकट हुए । उनका चरित्र [] तुमको संक्षेपमें बतलाता [] ॥ २८ ॥ २९ ॥ इक्ष्वाकुकुलमें श्रेष्ठ, लोगोमें प्रसिद्ध, बलवान् क्षत्रिय, सरयू नदीके किनारे बसी हुई अयोध्या नगरीके राजा, जम्बूद्वीपके स्वामी, बड़े भारी श्रीमान् राजा दशरथ विशाल सेना रखकर धर्म तथा न्यायपूर्वक राज्यका शासन करते थे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ अयोध्याके पास ही कोसलदेशकी कोसलपुरीमें कोसल नामका एक बड़ा पुण्यात्मा राजा राज्य करता था ॥ ३२ ॥ उसकी विवाहके योग्य एक सुन्दरी कौसल्या नामकी पुत्री थी । उसका उसके पिता कोसलने दशरथके साथ विवाह निश्चित किया । बादमें मानन्दके साथ विवाहके दिनका निश्चय करके उन्होंने लग्नके निमित्त राजा दशरथको बुलानेके लिए दूतोंको भेजा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ उस समय राजा दशरथ सरयूनदीके बीच नौकापर बैठकर इष्टमित्रों तथा मन्त्रियोंके साथ जलक्रीड़ा कर रहे थे । रात्रिका समय था, चारों ओर सैनिक खड़े थे, चारणगण स्तुति कर रहे थे और रत्नोंके दीपके प्रकाशसे [] नाम जगमगा रही थी । बाराङ्गनामें नानाप्रकारके नृत्य-गान कर रही थीं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ उसी समय लङ्काके राजा रावणने ब्रह्मासे पूछा - हे ब्रह्मन् ! मेरा किसके हाथों मरण होगा ? यह आप स्पष्ट कहिये ॥ ३७ ॥ रावणका वचन सुनकर ब्रह्माने कहा कि दशरथकी स्त्री कौसल्यासे साक्षात् जनार्दन भगवान् राम यदि चार पुत्रोंके रूपमें उत्पन्न होंगे । उनमेंसे राम तुमको मारेंगे । कोसलराजने ब्रह्माण्डसे पूछकर राजा दशरथके लग्नका आजसे पाँचवाँ दिन निश्चित किया है । ब्रह्माका यह वचन सुना तो रावण बहुतसे राक्षसोंको साथ लेकर शीघ्र अयोध्यानगरीकी बल पड़ा । वहाँ आ और धीरे युद्ध करके उसने नौकापर बैठे राजा दशरथको पराजित किया और पादप्रहारसे नावको तोड़कर सरयूके जलमें डुबो दिया । उस समय और सब तो जलमें डूबकर भग गये । परन्तु राजा दशरथ तथा सुमन्त्र नामका मन्त्री दैवैश्वर्यसे नावके टुकड़ोंपर बैठकर धीरे-धीरे

ततः समुद्रमध्ये हि जीवितार्वाक्षरेच्छया । रावणः कोसलं गत्वा कृत्वा परमसंगरम् ॥४४॥
 कोसलाख्यं नृपं जित्वा कौसल्यां तां जहार सः । ततः प्रमुदितो लंकां यथावाकाशवर्त्मना ॥४५॥
 दृष्ट्वा तिमिगिलं मन्स्यं वमनं लवणार्णवे । चित्ते विचारयामास देवास्ते ॥४६॥
 लंकायाश्च हरिष्यन्ति कौमल्यां गुमत्रिग्रहाः । अतस्तिमिङ्गिलायमां न्यासभृतां करोम्यहम् ॥४७॥
 इति निश्चित्य मनसि पेटिकायां निधाय नाम् । मन्स्यं समर्प्य दृष्ट्वात्मा यथा लंकां दशाननः ॥४८॥
 तिमिङ्गिलोऽपि तामास्ये घृत्वाऽर्धा न्यचरन्मुग्रम् । अग्रे दृष्ट्वा रिपुं स्त्रीयं तेन युद्धार्थमुद्यतः ॥४९॥
 द्वीपे तां पेटिकां स्थाप्य संग्रामं रिपुणाऽकरोत् । एतस्मिन्नन्तरं नाकाखंडं तं द्वीपमागतम् ॥५०॥
 तदा तौ मंत्रिनृपतौ द्वौपं तमारुहदुतः । सत्र तां पेटिकां दृष्ट्वा समुद्राद्याविचिस्मिता ॥५१॥
 तस्यां दृष्ट्वाऽथ कौमल्यां ज्ञात्वा वृत्ते परस्परम् । तथा मुहूर्तसमये द्वीपे दशरथो नृपः ॥५२॥
 गान्धर्वाख्यं विवाहं च चकार मुदितामनः । ततो राजाऽथ कौसल्यां सुमंत्रो मंत्रिसचमः ॥५३॥
 त्रयःस्थित्वा पेटिकायां तद्द्वारं पिदधुः पुनः । तिमिगिलो रिपुं जित्वा चकारास्ये ॥ पेटिकां ॥५४॥
 लक्ष्यां रावणश्चापि समाहूय विधिं पुनः । ॥ प्रहसन्वाक्यं सभायां संस्थितः सुखम् ॥५५॥
 विधिं तव मृषा वाक्यं रावणेन मया कृतम् । इतो दशरथस्तोयं कौसल्या गोपिता मया ॥५६॥
 तद्वावणवचः श्रुत्वा सभायां पद्मसंभवः । दीर्घस्वरेण प्रोवाच अँपुण्याहमिति स्फुटम् ॥५७॥
 रावणः संभ्रमात्प्राह किमिदं न्याहृतं त्वया । विधिः प्रोवाच लभ्यं तु जातं दशरथस्य हि ॥५८॥
 तदा विधिं मृषा कर्तुं दूतान्संप्रेष्य मादरम् । तिमिङ्गिलासमार्गाय पेटिकां प्रहणोऽन्तिके ॥५९॥
 समुद्रादथ ददर्शाक्षी तत्र तस्यां दशाननः । तदाऽन्तिचकितः क्रुद्धस्तान् इतुं सज्जमाददे ॥६०॥

जन्मप्रवाहकं सहारे गंगानदीमें जा पहुँच ॥ ३८-४३ ॥ वहाँसे बहते हुए वे दोनों समुद्रमें जा मिले । उधर रावण अयोध्यासे चलकर कोसलनगरमें ॥ पहुँचा और मथानक मुठ करके राजा कोसलको जीत लिया । तदनन्तर कोसल्याका हरण करके वह आनन्दक ॥ आकाशमार्गसे लङ्काको चला ॥ ४४ ॥ ४५ ॥
 रास्तेमें सार समुद्रमें रहनेवाली तिमिङ्गिल मछलीको देखकर उसने सोचा कि सब देवता मेरे शत्रु हैं । कहीं क्षय बदलकर वे लङ्कासे कौमल्याको चुरा न ले जायें । इसीलिये इसको यहीं ॥ तिमिङ्गिलको घरोहररूपमें सोर दू तो ठीक हों ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ऐसा सोचकर उसने कोसल्याको पिटारीमें बांध करके तिमिङ्गिल मछलीको सोप दिया और स्वयं आनन्दक साथ लङ्का चला गया ॥ ४८ ॥ वह मछली ॥ पिटारीको मुखमें लेकर मुखपूर्वक समुद्रमें घूमने लगी । सहसा अपने शत्रुको सामने देखकर उसने शत्रुके साथ मुठ करनेका निश्चय किया ॥ ४९ ॥ तदनुसार पिटारीको एक टापूपर रखकर वह शत्रुसे मुठ करने लगी । उसी समय वह नावका टुकड़ा भी उसी टापूके किनारे आ लगा ॥ ५० ॥ ॥ राजा दशरथ ॥ सुमन्त्र उसी द्वीपमें उतर पड़े । वहाँ उनकी दृष्टि उस पिटारीपर पड़ी । खोलकर देखनेपर उसमें कौसल्याको देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ५१ ॥ बादमें एक दूसरेसे सब बातोंको जान करके प्रसन्न हुए और अष्टौ मुहूर्तमें वहाँपर राजा दशरथने प्रसन्नतापूर्वक कौसल्याके साथ गान्धर्व विवाह कर लिया । पश्चात् राजा, कौसल्या तथा मन्त्रियोंमें श्रेष्ठ मन्त्री सुमन्त्र ये तीनों पुनः पिटारीमें धुस गये और ढकना ॥ कर लिया । मछलीने भी शत्रुको जीतकर उस सन्दूकको फिर अपने मुखमें ॥ लिया ॥ ५२-५४ ॥ उधर लङ्कामें रावण सुखपूर्वक सभाके बीचमें बैठा और ब्रह्माजीको बुलाकर हँसते हुए बोला— ॥ ५५ ॥ हे ब्रह्मा ! मैंने आपके वचनको भी सूँठा कर डाला । दशरथको जसमें डुबोकर कौसल्याको छुपा दिया ॥ ५६ ॥ भरी सभामें रावणके इस वचनको सुनकर ब्रह्माने ओरसे ॥ मन्त्रोंमें “अँपुण्याहम्” ऐसा कहा ॥ ५७ ॥ यह सुनकर रावणने पूछा कि यह आपने क्या कहा ? ब्रह्माजी बोले—अरे ! राजा दशरथका विवाह हो गया ॥ ५८ ॥ रावण ब्रह्माके वचनको असत्य प्रमाणित करनेके लिये दूसों द्वारा मछलीसे पेटो मंगवायो और उधों ही खोलकर ब्रह्माजीको दिखलाना चाहता, त्यों ही उसमें सुमन्त्रके साथ दशरथ कौसल्याको देखकर

तदाऽतिभ्रमादेशा रावणं वाक्यमब्रवीत् । किं करोषि दशस्य त्वं माऽधुना साहसं कुरु ॥६१॥
 कौसल्येकास्थाविताऽस्यां पेटिकायां त्वया पुरा । त्रयस्तत्र तु संजाना भविष्यन्त्यत्र कोटिभिः ॥६२॥
 भविष्यति वधस्तेऽद्य रामोऽर्धव जनिष्यति । साहसं कुरु माऽर्धव सन्वायुषि दशानन ॥६३॥
 यद्भविष्यं तद्भवतु तदग्रे माऽस्तु साग्रतम् । एतान्दूतः प्रेषयाद्य माकेतं त्वं सुखी भव ॥६४॥
 न भविष्यति मद्राणी मृषा जानीहि निश्चयम् । यद्भाष्यं तद्भवत्येव गहना कर्मणो गतिः ॥६५॥
 तद्विधेर्वचनं सत्यं भत्वा भान्तो दशाननः । पेटिकां प्रेषयामास माकेतं स्वभटैर्जवात् ॥६६॥
 साकेतो पेटिकां त्यक्त्वा भटास्ते रावणं गताः । अयोध्यायां महानामात्मभ्रमो नृपदशनात् ॥६७॥
 अयोध्यावासिनां नृणां कौसलाधिपनेरपि । ततः पुनर्विवाहस्य संभ्रमं कौसलाधिपः ॥६८॥
 कृत्वा स्वराज्यं जामात्रे ददौ प्रीत्या हि पुत्रिकाम् । तदारभ्य कौसलेन्द्राः प्रोच्यन्ते गविवंशजाः ॥६९॥
 ततो राजा दशरथः सुमित्रां मगधेशजाम् । विवाहेनापरां पत्नीं चकार दयितां प्रियाम् ॥७०॥
 कैकेयनृपतेः कन्यां कैकेयीं पद्मलोचनाम् । विवाहेनाकरोद्भार्यां तृतीयां परमादरात् ॥७१॥
 तथाऽन्यानि सप्तशतकलत्राण्यकरोन्नृपः । एवं राजा दशरथः रुद्रास जगर्तातलम् ॥७२॥
 दानिर्भोगर्दशरथो बभूव अरुणे महान् । नाभवत्संततिस्तस्य धार्मिकस्यावर्णापतेः ॥७३॥
 कौसल्या च सुमित्रा च कैकेयी च गिराद्रिजे । एताः कुलीनाः सुभगा रूपयौवनमधुताः ॥७४॥
 तस्मिन् शासति राज्यं तु स्थितेऽयोध्यापुरि प्रिये । देवानां दानवानां च राज्यार्थं विग्रहो महान् ॥७५॥
 तत्र वागभवच्छ्रेष्ठा यत्रायोध्यापतिमहान् । त्रयस्तत्र न संदेहस्तां भ्रुत्वा पवनो जवान् ॥७६॥
 प्रार्थयामास नृपतिं गत्वा युद्धाय सादरम् । ततो गत्वा दशरथश्चकार कन्दनं महत् ॥७७॥
 पहले तो बहुत चकित हुआ । फिर क्रुद्ध होकर उन्हें मारनेके लिये उसने क्षत्रवार निकाल ली ॥ ५९ ॥ ६० ॥
 तब महाने रावणको राककर कहा—अरे दशवदन ! यह क्या करता है ? इस समय ऐसा साहस मत कर
 ॥ ६१ ॥ देख, तूने केवल कौसल्याको ही इसमें रक्ता था । किन्तु ये एकसे एक तोन हो गये । वैसे हा इन
 तीनोंसे करोड़ों हो जायेंगे । ६२ ॥ राम भी आज हो जन्म ले लगे और तू मारा जायगा । आयु शेष रहते
 क्यों धर्य भरना चाहता है ? इसलिये ■ ऐसा साहस रयाग दे ॥ ६३ ॥ जो होगी होगी तो भागे होगी ।
 अभी तू कुछ मत कर और इन तीनोंका दूत द्वारा इनके स्थानका भंजवाकर सुग्रा हो ॥ ६४ ॥ मेरी बात
 कभी झूठ न होगी । ■ बातका निश्चय रख । कर्मकी गति बड़ी गहन होती है । कर्मके अनुसार जो होनेवाला
 होता है, सो होकर ही रहता है ॥ ६५ ॥ इस घटनाको घटित होत देखकर रावण कुछ डर गया और
 ब्रह्माजीकी बातको सच्ची मानकर वह पिटारी अपने दूतों द्वारा शीघ्र अयोध्या भेज दी ॥ ६६ ॥ राजा दशरथ
 आदिको सकुशल आया देखकर अयोध्यावासियों तथा कौसलदेशके राजा आदिको बड़ा प्रसन्नता हुई और
 आश्चर्य भी हुआ । बादमें कौसलाधिपतिने बड़े समारोहके साथ फिरसे विवाह करके अपनी कमनीय कन्या
 कौसल्या तथा अपना संपूर्ण राज्य अपने दामाद राजा दशरथको दहेजरूपमें दे दिया । सबसे कौसलदेशके
 राजे भी सूर्यवंशी कहलान लगे ॥ ६७-६९ ॥ तदनन्तर राजा दशरथने मगधदेशके राजाकी कन्या सुमित्राको
 ब्याहकर अपनी दूसरी प्राणप्रिया रानी बनायी ॥ ७० ॥ कैकेय देशके राजाकी कमलनयनी कन्या कैकेयीको
 ब्याहकर उन्होंने बड़े आदरपूर्वक तीसरी पत्नी बनायी ॥ ७१ ॥ इन तीनोंके अतिरिक्त अन्य भी उनकी ■
 सौ स्त्रियें थी । इस प्रकार आनन्दपूर्वक राजा दशरथ दान-मान-भोग-ऐश्वर्य आदिके द्वारा पृथ्वीका शासन
 करते हुए वृद्ध हो गये । परन्तु उन वरम धार्मिक राजा दशरथके कोई सन्तान नहीं हुई ॥ ७२ ॥ ७३ ॥
 हे प्रिये पार्वती ! पुत्रके दिना राजाको रूपयौवन युक्त मनोश कौसल्या, कैकेयी तथा सुमित्रा आदि स्त्रियें,
 राज्य और विशाल अयोध्यापुरी तूनी तथा अर्थ खोजने लगी । उसी ■ देवताओं और दानियोंके राज्य-
 के लिए बड़ा भारी युद्ध आरम्भ हो गया ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ उस युद्धमें यह भाकाशवाणी हुई ■ 'जिसके पक्षमें
 अयोध्यापति राजा दशरथ होंगे, उसी पक्षको विजय होगी' । उस वाणीको सुनकर पवनदेवने भीष्म जाकर

एतस्मिन्नन्तरे तत्र संग्रामेऽतिभयावहे । भिक्षाश्वं स्वरथं राजा नाविदद्विदसंभ्रमात् ॥७८॥
 गङ्गाऽन्तिके स्थिता सुभ्रूः कंकरी रणकीतुकम् । पश्यन्ती स्वरथं भिक्षं ददर्श समरांगणे ॥७९॥
 अक्षकन्या निजं हस्तं चकार जघहेतवे । तथा तु पूर्वं बाल्यत्वान्मभ्यास्यं कस्यचिन्मुनेः ॥८०॥
 कृष्णवर्णं कृतं तेन शम्भा तैऽप्यवदादतः । सुखमग्रे निरीक्षयन्ति नैव लोकाः कदाचन ॥८१॥
 ततस्तं गतुमुद्युक्तं कंकरी वामहस्ततः । दंडादिकं ददौ तस्य मुनेर्हस्तेऽतिभक्तितः ॥८२॥
 तस्यै ददौ वरं विप्रस्तव वामकरो वगन् । भविता वक्रकठिनः क्वापि नाशं न चैष्यति ॥८३॥
 कंकरी तं वरं स्मृत्वा स्वं चकाराक्षयङ्करम् । अध जित्वा रणे दंत्यान् दृष्ट्वा तत्कर्म पार्थिवः ॥८४॥
 ददौ वरं द्वी तस्यै स न्यासभूर्ता कर्ता तथा । यदाऽहं याचयिष्यामि तदा त्वं देहि तौ मम ॥८५॥
 तथेत्युक्त्वा नृपः पत्नीं ययां स्वनगरीं प्रति । एकदा स निशायां तु भृगयार्या महावने ॥८६॥
 चकार वारिधेयं चावधौदनचरान् बहून् । एतस्मिन्नन्तरे तत्र वने वाराणसीपथा ॥८७॥
 करंडस्थां स्वपितरौ स्वस्कंधे श्रवणो बहून् । काक्षी नेतुं ययो वैश्यो धर्मबाधामयान्निशि ॥८८॥
 नीरं पातुं शिशो देहि चावयोश्चेति प्रार्थिनः । ताभ्यां करंडके न्यस्थ तटाके जलसंनिधौ ॥८९॥
 गत्वा जले स्वयं कुम्भं न्युञ्जतस्थौ जले क्षणम् । कुम्भस्य न्युञ्जतः शब्दो बभूव करिणो यथा ॥९०॥
 वनद्विषो न हंतव्यश्चेति जानन्नपि नृपः । वैश्यं राजा द्विषं मत्वा विव्याध स पतस्त्रिणा ॥९१॥
 पपात श्रवणस्तोयं केनऽहं प्रताडितः । म्रुवन्श्चेति तद्वाक्यं श्रुत्वाऽभूद्विह्वलो नृपः ॥९२॥
 गत्वा जलाद्विर्वेगात् कुम्भाऽऽकण्ठ्यं तद्विरा । सर्वं वृत्तं विश्रुत्वा तं चकार मयविह्वलः ॥९३॥

राजा दशरथसे युद्धमें सम्मिलित होनेका सादर प्रार्थना की। तदनुसार राजा दशरथ वहाँ आकर दानवीसे घोर युद्ध करने लगे ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ उस भयानक संग्रामके समय राजाके रथका धुरा टूट गया, किन्तु दैववत् राजाका नहीं लगा ॥ ७८ ॥ राजाके बेटा सुन्दर भौंहावाली रानी कंकरी सयामका कौतुक देख रही थी। उसने सहसा रणमें अपने रथका धुरा टूटते देख लिया ॥ ७९ ॥ तत्काल उसने विजयलामके लिए अपने बायें हाथको घुरेको जगह लगा दिया। बचपनमें कंकरीने किसी सोते हुए मुनिका मुँह स्याहीसे काला कर दिया था। तब मुनिने उसे शाप दे दिया कि जा, तेरा मुँह भी अपव्यक्तके कारण ऐसा काला होगा कि कोई देखना नहीं चाहेगा ॥ ८० ॥ ८१ ॥ मुनि वहाँसे चलने लगे, तब कंकरीने अक्षिपूर्वक बायें हाथसे उनका दण्ड-कमण्डल उन्हें दे दिया ॥ ८२ ॥ सेवासे प्रसन्न होकर मुनिने उसे वरदान दिया कि जा, तेरा बायाँ हाथ समय पड़नेपर जैसा कठोर हो जायगा और किसी तरह धायल न होगा। ८३ ॥ कंकरीने उस वरका स्मरण करके ही अपने हाथको घुरेके सट्टा बनाकर रथमें लगा दिया था। रणमें दंत्योंको जीतनेके बाद राजा दशरथने कंकरीके इस साहस भरे कार्यका देखकर प्रसन्नतापूर्वक उससे दो वर माँगनेके लिए कहा। उसने भी उन दोनों वरोंको राजाके ही घरींहरूपमें रख दिया और कि मैं माँगूँ, तब आप ये दो मुझे दीजियेगा ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ 'वदत अन्धा' कहकर राजा अपनी स्त्रीके साथ अयोध्या लौट आये। एक दिन रात्रिके समय राजा दशरथ जिकार नखनेके लिये सरयूके किनारे गहन वनमें जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने बाणोंकी वर्षा करके नदीका जन्मप्रवाह रोक दिया और बहुतसे वनपशुओंको मारा। उसी समय श्रवण अपने धूँड़े तथा अंधे माता-पिताको काँवरमें बिठाकर काँवेपर उठाये हुए उस वन्य मार्गसे काशी ले जा रहा था। तभी गर्भीसे पीड़ित होकर वृद्ध माता-पिताने अपने पुत्रसे जल पिलानेकी कहा। उनकी आज्ञा पाते ही श्रवण काँवरको जलके किनारे रख तथा घड़ेको टेढ़ा करके जल भरने लगा तो उस घड़ेसे हाथीके शब्द जैसा शब्द निकला ॥ ८६—८७ ॥ 'वनैले हाथीको नहीं मारना चाहिये' इस बातको जानते हुए भी राजा दशरथने उस वैश्य श्रवणको हाथीके भ्रमसे शब्दवेधी बाण मारकर धौंध दिया ॥ ९१ ॥ 'हाय ! मुझ निरपराधको किसने मारा' ऐसा चिल्लाकर श्रवण घड़ामसे जलमें गिर पड़ा। मनुष्यकी बोली सुनकर राजा दशरथ खड़ा उठे और दौड़कर वहाँ गये। उसकी चक-

तावंधापि तत्पुत्रवधं श्रुत्वा रुोदतुः । कारयित्वा नृपतिना चितिं पुत्रसमन्वितौ ॥९४॥
 दशरथाय तौ श्रापं ददतुः पुत्रदुःखितौ । पुत्रशोकादावयोर्हि यथा मृत्युस्तवास्त्विति ॥९५॥
 ययौ नृपोऽपि नगरीं गुरुं वृत्तं न्यवेदयत् । वसिष्ठो नृपतेर्दोषज्ञान्त्यर्थं तुरगाध्वरम् ॥९६॥
 नृपेण कारयामास साकेते सग्युतटे । रोमपाद इति ख्यातस्तस्मै दशरथः सखा ॥९७॥
 शान्तां स्वकन्यां प्रायच्छत्तद्वाप्रेऽभूदवर्णम् । विभांडकाश्रमं वारनारीः संग्रहेष्य तन्मुतम् ॥९८॥
 रोमपादो मोहयित्वा श्रव्यशृंगं ममानयत् । वारस्त्रियो वने गत्वा समानिन्पुर्कषैः सुतम् ॥९९॥
 नाट्यसंगीतवादित्रैर्विभ्रमालिङ्गनार्हणैः । तत्प्रतापादभूद्वृष्टिः पुत्रोऽपि नृपतेर्भूत ॥१००॥
 ततस्तुष्टो रोमपादस्तस्मै शान्तां ददौ सुताम् । दशरथोऽपि स्वपुत्रीमानयामास तं हृदि ॥१०१॥
 स तु गङ्गोऽनपत्यस्य निरूप्येष्टं मरुन्वतः । प्रत्यक्षं हि चकाराग्निं यज्ञकुण्डान्सपायसम् ॥१०२॥
 आत्रिर्भूत्वा स्वयं वह्निर्ददौ राज्ञे सुपायसम् । राज्ञा विभक्तं स्त्रीभ्यस्तन्कैकेय्या दृष्टमावतः ॥१०३॥
 अहरत्पायसं हस्ताद्गृध्रीं शापविमोचकम् । सुवर्चलाऽप्सरोगोमुखा नृत्यमंगात्स्वयंभुवा ॥१०४॥
 शप्ता जाता तु सा गृध्री तथा वेधाः मुनोषितः । तस्यै तुष्टो विधिः प्राह कैकेयीपायसं ददा ॥१०५॥
 प्रक्षिपस्यजनिगिरौ तदा ते भविता गतिः । अप्सरा त्वं पूर्ववत्त्वमविष्यसि न संशयः ॥१०६॥
 तस्मात्सा पायसं नीत्वाऽक्षिपदंजनिपर्वते । निजं स्वरूपं सा लब्ध्वा जगाम सुरमंदिरम् ॥१०७॥
 ततस्ताभ्यां तु कैकेय्यं दत्तं किञ्चित् पायसम् । अथ ता मधयामासुरतर्गभास्तदाऽभवन् ॥१०८॥

से बाहर निकालकर उसके मुँहसे ■■■ वृत्तान्त सुना तां भयसे कापते हुए राजाने उस वैश्यबालकके शरीरसे बाण निकाला ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ राजाके मुखसे पुत्रमरणकी बात सुनकर वे दोनों अंधे अतिशय विलाप करने लगे और राजासे चिता बनवाकर पुत्रके साथ जलकर गमलोंके सिंघार गये । मरते समय पुत्रवियोगसे दुःखित वे दोनों अन्धी-अन्धे ■■■ दशरथको यह ■■■ देने गये कि 'जैसे हम दोनों पुत्रशोकसे मर रहे हैं, वैसे ही तुम भी पुत्रशोकसे ■■■ मरोगे' ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ राजाने नगरमें आकर यह सब हाल गुह-वसिष्ठजीको सुनाया । कुछ दिनों बाद वसिष्ठजाने राजाकी दोषनिवृत्ति तथा पुत्रप्राप्तिके लिए उनरी सरयूके किनारे ऋष्यशृङ्गको बुलवाकर अश्वमेध यज्ञ ■■■ । राजा दशरथके मित्र अंगदेशके राजा रोमपादने अपनी ■■■ नामकी कन्या ऋष्यशृङ्गको दे दी थी । क्योंकि एक बार राजा रोमपादने देशमें वर्षा न होने तथा उन्हें कोई पुत्र ■■■ होनेके कारण मन्त्रियोंके कथनानुसार ऋष्यशृङ्गके पिता विभांडकके आश्रमसे वेश्याओंके द्वारा मोहित करवाकर उन्हें अपने देशमें बुलवाया । वेश्यायें वनमें गयीं और नाचकर, गाना गाकर, बाजे बजाकर, हावभाव, आलिङ्गन तथा पूजा आदिके द्वारा मोहित करके ऋष्यशृङ्गको ले आयीं । उनके यज्ञ करानेसे राज्यमें वृष्टि हुई और राजाको पुत्र भी प्राप्त हुआ ॥ ९६-१०० ॥ तब प्रसन्न होकर राजा रोमपादने ऋष्यशृङ्गको अपनी शान्ता नामकी कन्या दान करके दे दी । अतएव दशरथ भी उन ऋष्यशृङ्गको अपने नगरमें ले आये ॥ १०१ ॥ उन पुनिने संतानरहित राजा दशरथसे इष्टि (यज्ञ) करवाकर खीर लिये हुए अग्निदेवको यज्ञकुण्डसे प्रत्यक्ष प्रकट किया ॥ १०२ ॥ इस प्रकार अग्निने स्वयं प्रकट होकर राजाको सुन्दर पुत्र देनेवाला पायस (खीर) दिया । राजाने यह खीर लेकर तीनों स्त्रियोंमें बाँट दी । तभी कैकेयीके भागको एक गृध्री यह सोचकर कि यदि इसको मैं ले जाऊँगी तो मेरा शाप छूट जायगा । इस स्वार्थसे खीर छीन ले गयी । कथान्तर । एक समय सुवर्चा नामकी अप्सराओंमें उत्तम अप्सराको नृत्यभङ्गके अपराधसे ब्रह्माने गृध्री होनेका शाप दे दिया । जब फिर उसने स्तुतिके द्वारा ब्रह्माको प्रसन्न किया । ■■■ ब्रह्माजने कहा कि जब तुम कैकेयीके पायसको छीनकर अंजनिपर्वतपर फेंकोगी । तब तुम्हारी पुनः सुगति हो जायगी और पूर्ववत् तुम अप्सरा हो जाओगी ॥ १०३-१०६ ॥ इसी कारण उस गृध्रीने खीर लेकर अंजनिगिरिपर डाल दी । जिससे वह अपने अप्सरा-रूपको प्राप्त होकर पुनः स्वर्ग चली गयी ॥ १०७ ॥ बादमें कौसल्या तथा सुमित्राने अपने-अपने भागमेंसे

आसंस्तासां दोहदास्ते पुत्राणां भाविकर्मभिः । पुत्राणां भाविकर्माणि विदुस्ते दोहदैर्जनाः ॥१०९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः

(राम लक्ष्मण भरत तथा अश्वत्थमा)

श्रीशिव

एतस्मिन्नतरे भूमिर्दशस्यादिप्रपीडिता । प्रार्थयामास विष्णुं सोऽपि तदाऽब्रवीत् ॥ १ ॥
भूम्यामवतरिष्यामि भवंतु कपयः सुराः । गंधर्वा दंदुमीनाम्नी भूम्याः कार्यार्थसिद्धये ॥ २ ॥
मंयराऽग्रे भवत्वद्या राज्यविघ्नार्थमिदृशे । पश्चात्पुनर्द्वापरांते कृञ्जात्वं कंसमंदिरे ॥ ३ ॥
अथ विष्णुश्चैत्रमासि नवम्यां मध्यमे रवौ । सुतिकागृहमध्येऽथ कौसल्यायाः पुरोऽभवत् ॥

चतुर्भुजः पीतवासा मेघश्यामो महाद्युतिः ॥ ४ ॥

साऽपि दृष्ट्वा बालमावं प्रार्थयामास तं हरिम् । ततो जातस्तदा बालः कणाद्रुक्मविभूषितः ॥ ५ ॥
हेमवर्णः कंजनेत्रश्चन्द्रास्यस्तपनप्रभः । ततः सुमित्रापुरतः शेषोऽभूद्बालरूपधृक् ॥ ६ ॥
आधिर्मतो द्वौ यमलौ कंकेय्याः शंसचक्रके । एवं ते जनिता बालाश्चत्वारः समये शुभे ॥ ७ ॥
देवदुंदुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः शुभाऽपनत् । जातकर्मोदिसंस्कारान् गुरुणा नृपतिस्तदा ॥ ८ ॥
कारयामास विधिवन्नृतुर्वारयोपितः । ज्येष्ठं रामं तु कौसल्यातनयं ब्राह्म वै गुरुः ॥ ९ ॥
सुमित्रातनयं नाम्ना लक्ष्मणं गुरुनवीत् । ततो भरतश्चतुर्धननामनी ब्राह्म वै गुरुः ॥१०॥

थोड़ा-थोड़ा पायस कंकेयीको दे दिया । इस प्रकार सबने पायस खाया और सबने गर्भ धारण किया ॥ १०८ ॥
भावी पुत्रोत्पत्तिके गर्भचिह्नोंको देख तथा सुनकर होनहार पुत्रोंके द्वारा किये जानेवाले अद्भुत कार्योंको लोग पहले ही जान गये ॥ १०९ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे भाषाटीकायां प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीशिवजी बोले—हे प्रिये ! इसी बीच रावण आदि दृष्ट राक्षसोंसे पीडित होकर पृथ्वी माता ब्रह्माके साथ विष्णुभगवान्के गयी और उनसे अपनी तथा धर्मकी रक्षाके लिये प्रार्थना की । विष्णुभगवान्ने कहा कि 'मैं तुम्हारे लिये भूमिपर अवतार लूंगा' । ऐसा कहकर उन्होंने देवताओंसे कहा—हे देवताओ ! तुम लोग मेरी सहायताके लिये वानररूपसे पृथ्वीपर जन्म लो । दुन्दुभी गंधर्वी पृथ्वीकी रक्षाके लिये पहिलेसे जाकर मन्युरारूपसे जन्म ले और रामके राज्याभिषेकमें विघ्न ठामे । द्वारके अन्तमें रहो कंसके यहाँ कुञ्जा बनेगी ॥ १-३ ॥ कुछ काल बाद साक्षात् विष्णुभगवान् चैत्र महीनेके कृष्णपक्षकी नवमी तिथिको मध्य सूर्यके समय प्रसूतिगृहमें कौसल्याके सामने चार भुजाधारी पीताम्बर पहिने हुए यक्षाकृतुकालीन मेघके श्याममरीर तथा तेजस्वी रूपमें प्रकटे ॥ ४ ॥ कौसल्याने वह रूप देखकर भगवान्से बालवभाव स्वीकार करनेकी प्रार्थना की । तब भगवान् भरमें स्वर्णभरणोंसे भूषित, सुवर्णके सहस्र कान्तिसम्पन्न, कमलके नेत्र तथा चन्द्रतुल्य मुख एवं सूर्यके समान तेजस्वी बालक बने । बादमें सुमित्राके गर्भसे शेषावतार लक्ष्मणजी बालभावसे प्रकट हुए । फिर कंकेयीके गर्भसे विष्णुके शंस-चक्र अवतार लेकर एक साथ भरत-शत्रुघ्न पैदा हुए । वे चारों बालक शुभ समय, अच्छे लग्न और शुभ नक्षत्रमें उत्पन्न हुए ॥ ५-७ ॥ देवताओंने प्रसन्न होकर नगाड़े बजाये और पुष्पवृष्टि की । राजाने गुरु वसिष्ठसे बालकोंका जातकर्म (संतानके उत्पन्न होनेपर किया जानेवाला कर्म) आदि संस्कार विधिपूर्वक करवाया । उस उत्सवपर केशवाओं द्वारा अनेक प्रकारका नृत्य भी करवाया गया । वसिष्ठजीने कौसल्याके सबदे बड़े पुत्रका नाम राम । सुमित्राके पुत्रका लक्ष्मण और कंकेयीके दोनों पुत्रोंके नाम भरत तथा शत्रुघ्न

रमणाद्वाम एवासौ लक्ष्मणर्लक्ष्मणस्त्विति । भरणाद्भरतश्चेति शत्रुघ्नः शत्रुघ्नर्जनात् ॥११॥
 अथ बह्विधे सर्वे लक्ष्मणो गणवेण हि । शत्रुघ्नो भरतेनापि चकार कौडनादिकम् ॥१२॥
 रुक्मकंकणमजीरन् पुरैस्ते विभूषिताः । केयूरमञ्जनाहारकुण्डलैर्गणितोभिताः ॥१३॥
 मृत्खलान्द्वरुक्मादिनिर्मितेषु वरेषु च । दोलकेषु च ते सर्वे दोलिता रेजिरे सुखम् ॥१४॥
 भाले स्वर्णमयाश्चत्थपणान्यतिमद्गानि च । मुक्ताफलप्रलंबानि शोभयन्ति स्म बालकान् ॥१५॥
 कंठे रत्नमणित्रातमध्यद्वीपिनखांचिताः । कर्णयोः स्वर्णसंपन्नरत्नार्जुनमुतालकाः ॥१६॥
 मित्राणामणिमजीरकटिश्चार्गदेयुताः । स्मितचक्राल्पदश्रुता इन्द्रर्नालमणिप्रभाः ॥१७॥
 अगणे रिगमाणाश्च संस्कारः संस्कृताः शुभाः । ते नाना रजयामासुर्मान्धापि विशेषतः ॥१८॥
 कौमल्या नृपतिश्चापि नानावर्णः सुभूषणः । शोभयामासनुर्बालान्नानान्याग्रनखादिभिः ॥१९॥
 रामः स्वपितरं दृष्ट्वा भोजनस्थं नृगन्धिवतः । दुग्धं कवलं पात्राद्भृशदीप्त्या स पुनर्वहिः ॥२०॥
 कौमल्या बालकं धर्तुं दुग्धं नृपनादिना । न नम्याः कर्मधर्मायोगिनामप्यगोचरः ॥२१॥
 पण्डितश्च स्वयं रामः करेण मृदूलेन च । कौमल्यास्ये नृपास्येऽपि कवलावकरोन्मुदा ॥२२॥
 एवं नानाकौतुकैश्च रजयामास गणवः । नानाशिशुर्कोडनकेशैश्चैर्नृगंधाभापितः ॥२३॥
 बालकृत्रिमपुद्गश्च गमनमृत्तचूर्नः । पितरौ निजचारिर्त्रयाह्ननारोहणादिभिः ॥२४॥
 ततस्ते बालकाः सर्वे वस्त्रालंकारभूषिताः । सभायां पितरं नम्या तस्थुः सिंहासनोपरि ॥२५॥
 अथ पित्रोपनीतास्ते गुरुणा मुनिभिर्मुदा । गमनसंयन्मरे पष्टे जन्मतः पंचमे समे ॥२६॥
 ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे । राहो बालार्थिनः पष्टे वैश्यस्यार्थार्थिनोऽष्टमे ॥२७॥

रमणा ॥ = १० ॥ मनोहर तथा आनन्ददायक होनेमें राम, शुभ लक्षणोंसे युक्त होनेसे लक्ष्मण, प्रजाका भरण-
 पोषण धरनेमें निपुण होनेसे भरत और अयुनाशक होनेमें वसिष्ठने उनका शत्रुघ्न नाम रक्ता ॥ ११ ॥ लक्ष्मण
 रामके साथ और शत्रुघ्न भरतके साथ मिलते हुए, बढ़ते लगे ॥ १२ ॥ मुखोंके काने तथा नूपुरोंसे भूषित
 बाजूबन्द, हार, कर्णधारी तथा कुण्डलोंमें सुजाभित, गोलोंकी सिकड़ियोंकी गलेमें पहने हुए वे बालक सुवर्ण-
 चटित, रत्नजटित तथा कंकणों साकणोंमें भी हुए हिलोलोंपर उड़ने हुए, बहुत ही सुन्दर लगते थे ॥ १३ ॥ १४ ॥
 लज्जाटस्थलमें बड़े हुए, सुवर्णनिर्मित पापलोक पतके आकारवाले एवं जिसके अग्रभागमें बड़े-बड़े मोती लटक
 रहे थे, ऐसे सुन्दर आभूषणोंसे उन [] की जोभा और भी बढ़ी-बढ़ी दीखती थी । उनके कण्ठमें विविध
 मणि तथा वधनवे सुजाभित हों रहे थे । कानोंमें कनकके बने हुए रत्नजटित कुण्डल लहरा रहे थे । सिरपर
 घुंघराले बाल कहला रहे थे । पाँजोंमें मणिमण्डित जोहार झनझना रहे । हाथोंमें बाजूबन्द और कमरमें
 कर्णधारी खनखना रहे थी । चन्द्रमाके सदृश शुभ्र हाम्य धरे मुखमें किरणोंके समान छोटे-छोटे दाँत चमकमा
 रहे थे । इन्द्रर्नालमणिके समान व्यास कान्तिवाने, अंगनाईमें पड़नोंके बल रंगते हुए, संस्कारोंसे
 पन्कृत और देखतेमात्रसे मन मोह लेनेवाले वे कुमार अपने माता-पिताके मनकी मुग्ध करने लगे ॥ १५-१६ ॥
 कौमल्या और राजा दशरथ भी अनेक प्रकारके वस्त्र तथा वधनवा आदि अलङ्कारोंसे अपने बालकोंको
 भूषित करने लगे ॥ १९ ॥ राम अपने पिताको [] भोजन करने देखते तो आकर उसमेंसे एक
 ग्राम हाथमें लेकर बगहर भाग जाते । राजाके कहनेपर कौमल्या रामको पकड़नेके लिए जब दौड़ती तो
 दोलियोंकी भी अगम्य राम उनके हाथ नहीं आते थे । बादमें वे स्वयं वीरमें आकर पीछेसे आनन्दपूर्वक
 अपने कौमल हाथोंसे माता-पिताके नुड्गमें वह कौर रख देते थे ॥ २०-२२ ॥ ऐसी अनेक कौतुकयुक्त बालकीड़ा,
 बालवेष्टा, मधुर-मनोहर भाषण, बालकोंके कृत्रिम युद्ध, नाना प्रकारकी चालें, मुखचुम्बन और तरह-तरहकी
 जनाबटी सवारियोंपर सवार होकर राम आदि चारों बालक माता-पिताके मनकी लुभाने तथा आनन्दित
 करने लगे ॥ २३ ॥ २४ ॥ कालान्तरमें सब बालक वस्त्र-आभूषण आदिसे भूषित हो पिताको प्रणाम करके
 पद्मामें सिंहासनपर बैठने लगे । तब राजाने ऋषियों द्वारा सानन्द उनका यज्ञोपवीत संस्कार करवाया ।

विद्वद्भिश्चोपनयनमेवं छात्रेषु निर्णयः । गुरोरास्यात्सुगृहर्ते वेदान् सांगीधनुर्विधान् ॥२८॥
 चक्रुर्मुक्तोद्गतानेव बालाः शास्त्रादिकान्यपि । नक्षत्रयसमाप्ती ते तीर्थानि जग्मुरादरात् ॥२९॥
 सेनया भञ्जिमहिता वसिष्ठेन समन्विताः । कण्मासैः पुनरागत्य साकेतं विविशुर्मुदा ॥३०॥
 एवं ते मतिमन्तश्च प्रिया गतो ब्रह्मे स्थिताः । पितरं रजयामासुः पीरान् जानपदानपि ॥३१॥
 इति श्रीशतकोटिरामचरितातर्कते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे रामजन्मनाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः

(ताडुकावध-ब्रह्मन्पोद्धार तथा सीतास्वयंवर)

श्रीशिव उवाच

एतिस्मर्त्तरेऽयोध्यां विश्वामित्रो ययौ मुनिः । यज्ञमंरत्तणार्थाय राजानं मुनिरब्रवीत् ॥ १ ॥
 गर्भं च लक्ष्मणं चापि मयं देहि कियदिनम् । गुरूनामंभ्य राजाऽपि प्रेषयामास तौ तदा ॥ २ ॥
 जग्मुर्यज्ञरक्षार्थं गाधिजेन रथस्थितौ । ततः प्रहृतो गाधेयः स्थित्वा कामाश्रमे पथि ॥ ३ ॥
 प्रभाते स्नानयोः स्नातः प्रादाद्विद्यास्तयोर्मुदा । माहेश्वरी च सद्भिद्यां धनुर्विद्यापरःसराय् ॥ ४ ॥
 आर्त्तामार्त्तां लौकिकीं च रथविद्यां गजोद्भवाम् । अश्वविद्यां गदाविद्यां मन्त्राह्वानविसर्जने ॥ ५ ॥
 वृत्तृश्चमविलोपिन्यौ ब्रह्ममतिब्रह्ममपि । सर्वविद्यास्त्ववाप्याथ ह्यधुमौ तौ रामलक्ष्मणौ ॥ ६ ॥
 वनौकसां द्वितार्थाय ब्रह्मन्तुस्तत्र गतस्तान् । पथि पांथजनध्वंसकारिणीं नाम ताटिकाम् ॥ ७ ॥
 राक्षसीमेकवाणेन जघान रघुनन्दनः । अप्सरा मुनिं पूर्वं धीमयामास कानने ॥ ८ ॥

भास्त्रोका भी यही सिद्धान्त है कि ब्रह्मचर्यम् (ब्रह्मतेज) की इच्छावाले ब्राह्मणकुमारका यज्ञोपवीत गमने छठे अथवा जन्मसे पाँचवें वर्ष होना चाहिये । वल चाहनेवाले सत्रियका छठे और धन चाहनेवाले वैश्य-कुमारका यज्ञोपवीत आठवें वर्ष होना जाना चाहिये ॥ २५-२७ ॥ तदनन्तर अच्छे गृहर्तमें गुरूके मुखसे राम-लक्ष्मणने सांग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष सहित) चारों वेद, छः शास्त्र (न्याय-वेदान्त आदि) और चौंसठ कला (गाना-खजाना आदि) सीख-सुद्धकर हृदयंगम कर लिया । ब्रह्मचर्यकी समाप्तिके बाद राम आदि चारों धाता सेनाको, मन्त्रियोंको तथा गुरु वसिष्ठको साथ लेकर समूह तीर्थयात्रा करने गये । छः महीनेमें वहाँसे लौट आये और आनन्दपूर्वक अयोध्यामें रहने लगे ॥ २८-३० ॥ इस प्रकार बुद्धिमान्, माता-पिताके परम भक्त, परम प्रिय तथा उनकी आज्ञापर चलनेवाले वे चारों बालक पिताको, नगरके लोगोंको उस देशकी प्रजाको अपने सद्बचवहारके द्वारा मोहित करने लगे ॥ ३१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितातर्कते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे पं० रामतेजपाण्डेयकृतभाषा-टीकायां रामजन्मनाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

श्रीशिवजी बोले—हे पार्वती ! तदनन्तर मुनि विश्वामित्र अयोध्या आये और राजा दशरथसे कहा कि यज्ञकी रक्षा करनेके लिए राम तथा लक्ष्मणको मुझे दे दीजिये । गुरु वसिष्ठके समझानेपर राजाने न चाहते हुए भी दोनों बालकोंको उनके साथ कर दिया ॥ १ ॥ २ ॥ तदनन्तर गाधिपुत्र विश्वामित्रके रथपर बैठकर उनके यज्ञकी रक्षा करनेके लिए राम-लक्ष्मण चल दिये । रास्तेमें कामाश्रममें सबेरे स्नान करके प्रसन्न विश्वामित्रजीने स्नान किये हुए राम-लक्ष्मणको विविध विद्यार्थें सिखायीं । महेश्वर (शिवजीसे प्राप्त माहेश्वरी धनुर्विद्या, मातृविद्या, अश्वविद्या, लौकिकी विद्या, रथविद्या, गजविद्या, अस्त्रविद्या, गदा चलानेकी विद्या, मन्त्रके द्वारा अस्त्रादिका आवाहन और विसर्जन करनेकी विद्या, मूल-व्यासको मिटानेवाली बला और अतिबला नामकी दो विद्याएँ) अन्यान्य सब विद्याओंको प्राप्त करके राम-लक्ष्मण बनवासी ऋषि-मुनियोंके मुखसे लिये राक्षसोंको मारने लगे । रास्तेमें पथिकोंको मारकर ला जानेवाली ताडुका नामकी राक्षसीको रघुनन्दन रामचन्द्रने एक ही वाणसे मार डाला । सुन्दकी स्त्री और सुकेतु यक्षकी

राक्षसी तस्य शापेन बभूव मुंदकामिनी । मारीचश्च मुवाहुश्च मुंदाचस्याः सुताबुधौ ॥ ९ ॥
 रामबाणाद्भविस्तस्याः कीर्तिता मुनिना पुरा । सा प्राप्य दिव्यदेहत्वं नत्वा रामं दिवं गता ॥ १० ॥
 विश्वामित्राश्रमं रामो गत्वा तद्वज्रवातकान् । राक्षसान्निशितैर्बाणैर्जघान रघुनन्दनः ॥ ११ ॥
 प्रारम्भं रणयज्ञस्य चकार रघुनन्दनः । हत्वा सहस्रशः श्रीमान् राक्षसान् निशितः शरैः ॥ १२ ॥
 क्षिप्त्वा बाणेन मारीचं शतयोजनमागरे । हत्वा मुवाहुं चैकेन बाणेन रघुसत्तमः ॥ १३ ॥
 स कृत्वा गाधियज्ञस्य समाम्निं रघुनन्दनः । नाकरोट्टणयज्ञस्य समाम्निं स्वकृतस्य च ॥ १४ ॥
 कालानलमर्तुं तं दृष्ट्वा तत्तृमिहेतवे । श्रुत्वा जनकगेहे वै तत्कन्यायाः स्वयंवरम् ॥ १५ ॥
 गमलक्ष्मणसंयुक्तो मुनिस्तं नगरं ययौ । गमनावसरे मार्गे भर्तृशर्मां शिलां मुनिः ॥ १६ ॥
 मुनिरूपिमहेन्द्रेण भुक्ता रहसि शोभनाम् । गीतमस्यांगनां नाम सद्गुण्यां चावदत्तयोः ॥ १७ ॥
 ब्रह्मणा निर्मिताऽहल्या दिमुखी गोःपरिक्रमान् । दत्ता पुरा गीतमाय विस्तृज्यंद्रादिकान्सुरान् ॥ १८ ॥
 तत्स्मरन् मधवा वैरं तां भुक्त्वा मुनिश्चापनः । सहसा भगवान् जातः सहस्रलोचनस्ततः ॥ १९ ॥
 श्रीरामचन्द्रो निजपादपद्मस्पर्शेन तां गीतमधर्मपत्नीम् ।

निष्कल्मषामङ्गुतरूपयुक्तां चकार देवः करुणामुद्रः ॥ २० ॥

नदारूपा जनस्यानेऽहल्या गीतमश्रापतः । गमेण भ्रमताऽरण्ये स्वाधिस्पर्शात्समुद्भूता ॥ २१ ॥
 कल्पभेदाद्ददन्तीत्थं मुनयश्चापि केचन । नैव श्रापोऽस्ति सर्वेषु कल्पेषु सत्कथा तथा ॥ २२ ॥
 ततस्तौ सुरगन्धर्ववर्षिणी पुष्पवृष्टिभिः । दत्त्वाऽहल्यां गीतमाय जग्मतुर्जाह्नवीं प्रति ॥ २३ ॥

पुत्री ताड़का पहिले बड़ी सुन्दर अप्सरा थी । परन्तु बादमें जब उसने अगस्त्य ऋषिको वनमें सताया, तब उनके शापसे यह कृष्ण राक्षसी बन गयी । उससे मार्गेच और मुवाहु ये दो राक्षस पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३-९ ॥ 'रामके बाणसे तारी गति होंगी' ऐसा भगवन् मुनिने उससे कहा था । इसलिए रामबाणसे इस समय अमर तथा दिव्य शरीर धारण करके यह स्वर्गको चला गयी ॥ १० ॥ वहाँसे चार तथा विश्वामित्रके आश्रममें जाकर रघुनन्दनने यज्ञमें विघ्न डालनेवाले समस्त राक्षसोंको अपने तीनों बाणोंसे मार डाला ॥ ११ ॥ रघुवर्ति रामचन्द्रने वही रणयज्ञ (युद्धरूपी यज्ञ) प्रारम्भ कर दिया । श्रीमान् रामने हजारों राक्षसोंको तीक्ष्ण बाणोंसे मारकर मारीचको एक बाणकी मारसे सौ योजन (चार सौ कोस) दूरीपर समुद्रमें फेंक दिया । उन्होंने दूसरे बाणसे मारीचके भाई मुवाहुको मार डाला ॥ १२ ॥ १३ ॥ विश्वामित्रजाने यज्ञकी तो उन्होंने राक्षसोंको मारकर निर्विघ्न समाप्ति कर दी । परन्तु अपने द्वारा प्रारम्भ युद्धयज्ञकी समाप्ति नहीं की अर्थात् उसका श्राव्य शास्त्र नहीं हुआ ॥ १४ ॥ श्रीरामको प्रत्यक्षकान्तिन अग्निके सङ्ग उग्र तथा युद्धसे अनृप्त देखकर मुनि विश्वामित्रने उनकी कृतिके लिए राजा जनकके यहाँ उनकी कन्याका स्वयंवर सुनकर राम-लक्ष्मणको लेकर जनकपुरको प्रयाण किया । चलते-चलते रास्तेमें मुनिने अहल्याको देखकर कहा कि यह मुनिवेषधारी इन्द्रके द्वारा भोगी गयी परमसुन्दरी गीतमकी स्त्री है । यह भेद विश्वामित्रने राम-लक्ष्मणको बताया ॥ १५-१७ ॥ इस मनोहर मुग्धवाली अहल्याकी बनाकर ब्रह्माने पृथ्वीको परिक्रमा करनेवाले गीतम ऋषिको दे दिया । किसी इन्द्रादि देवताको नहीं दी ॥ १८ ॥ इन्द्रने उस वैरका स्मरण करके कपटसे एकान्तमें उसके साथ भोग किया । तदनन्तर गीतम मुनिके शापसे इन्द्र हजार भग (योनि) वाले हो गये । फिर प्रार्थना करनेपर गीतमकी कृपासे वे हजार नैत्रवाले बन गये । अब विश्वामित्रके अनुरोधसे करुणानिधि एवं साक्षात् देवतास्वरूप रामचन्द्रने दया करके अपने चरणकमलके स्पर्शसे उस शिलास्वरूपिणी गीतमकी धर्म-पत्नी अहल्याको दोषसे मुक्त करके अति अद्भुत स्वरूपवाली सुन्दरी स्त्री बना दिया ॥ १९ ॥ २० ॥ दण्डक वनके पास एक स्थानमें मुनिके शापसे शापित नर्दारूपा अहल्याका अरण्यमें भ्रमण करते हुए रामचन्द्रने अपने परम पवित्र चरणस्पर्शसे उद्धार कर दिया ॥ २१ ॥ कुछ लोग इस कथाको कल्पभेदसे रामसे और कहते हैं कि सब कल्पोंमें यह शापकी बात एक जैसी नहीं मिलती ॥ २२ ॥ इसके बाद

रामं नौकां कोक्षमाणं नौकापो चाक्यमब्रवीत् ।

नाविक उवाच

आदावहं क्षालयित्वा पादरेणूँस्त्व प्रभो ॥ २४ ॥

पद्मान्नौकां स्पर्शयामि तव पादौ रघुद्वह । नोचेच्छत्पादरजसा स्पृष्टा नारी भविष्यति ॥ २५ ॥

क्षालयामि तव पादपङ्कजं नाथ दारुटपदोः किमन्तरम् ।

मानुषीकरणवर्णमस्ति ते इति लोके हि कथा प्रचीयसी ॥ २६ ॥

अस्ति मे गृहिणी गेहे किं करोम्यपरां क्षिपम् । इति तद्वाक्यमाकर्ण्य विहस्य रघुनन्दनः ॥ २७ ॥

तेन संक्षालितपदो नौकां वामाल्लोह सः । ततस्तोन्वा जाह्नवीं ते मिथिला मुनिभिर्वयुः ॥ २८ ॥

मिथिलायां समाहूताः कोटिशः पाथिवा वयुः । चाग्नास्याहंशस्योऽपि भुत्वाग्नाच्छस्वमंत्रिभिः ॥ २९ ॥

अनाहूतः पुष्पकेण सेनया परिवारितः । न यया पुत्रविरहाद्राजा दशरथस्तदा ॥ ३० ॥

अत्पादरैर्विदेहेन समाहूतोऽपि भक्तितः । श्रीरामलक्ष्मणभ्यां च विश्वामित्रो मुनीश्वरः ॥ ३१ ॥

अनैर्मुदा स मिथिलां वहिश्चोपवनं यया । विश्वामित्रं समानेतुं जनको मन्त्रिभिः सह ॥ ३२ ॥

यावद्गन्तुं मनश्चक्रे तावच्छिष्यः समाययी । विश्वामित्रस्य तं दृष्ट्वा ननाम जनकस्तदा ॥ ३३ ॥

ततः शिष्यः करं धृत्वा जनकस्य करेण हि । नीत्वा रहसि प्रोवाच वचनं स्वशुरोः स्फुटम् ॥ ३४ ॥

त्वामाह गाधिजो राजन् राज्ञो दशरथस्य हि । मया पुत्रो समानीतो वीर्यं श्रीरामलक्ष्मणौ ॥ ३५ ॥

तौ सीतोर्मिलयोः पाणिग्रहणं हि करिष्यतः । पर्णीकृतं त्वया चापं रामोऽयं खण्डयिष्यति ॥ ३६ ॥

असौ वरविधानेन तौ पुरीं नेतुमर्हसि । एतद्भूतं चापभंगपर्यन्तं स्फुटं कुरु ॥ ३७ ॥

देवताओं और गन्धर्वों ने जिनके ऊपर दिव्य पुष्पोंकी वृष्टि की थी, ऐसे राम तथा लक्ष्मण गौतमको अहल्पा सौंपकर जाह्नवी (यक्षा) की ओर चल पड़े ॥ २३ ॥ गङ्गातटपर पहुँचकर रामचन्द्र पार उतरनेके लिये खोज ही रहे थे कि इतनेमें एक नाववाला बोला—हे प्रभो! हे रघुद्वह रामचन्द्रजी! यदि आप कहें तो मैं पहिले आपके चरणकी धूलि भी लूँ, बादमें आपको नावपर बैठाकर पार उतार दूँ। क्योंकि ऐसा न करनेपर कहीं आपकी पदरज छूनेसे मेरी नाव भी खीन न झन जाय। क्योंकि पत्थर और लकड़ीमें कोई बहुत अन्तर नहीं होता। यह बात जगत्में प्रसिद्ध है कि आपके चरणकी रजमें जड़की भी मनुष्य बनानेकी सामर्थ्य है। इसलिये आपका चरण घोंना आवश्यक है ॥ २४-२६ ॥ क्योंकि मेरे घरमें एक स्त्री है। अतएव मैं दूसरीको लेकर कहूँगा। इस अटपटे वाक्यको सुनकर आनन्दकन्द रामचन्द्र हँस पड़े ॥ २७ ॥ बादमें जब उस बीवरने पाँव भी लिया, तब रामचन्द्रजी मुनियोंके साथ नावपर सवार होकर गङ्गा पार हुए और वहाँसे मिथिलापुरीकी ओर चले ॥ २८ ॥ मिथिलामें निमन्त्रित राजाओंका एक प्रकारका छोटा-सा समुद्र एकत्र हो या। रावण भी बिना बुलाये चारणोंके मुखसे सुनकर ही सेना तथा मंत्रियोंसे घिरा हुआ पुष्पक विमानपर चढ़कर वहाँ जा पहुँचा। उस समय राजा दशरथ आदर तथा भक्तिपूर्वक जनकके द्वारा बुलाये जानेपर भी पुत्रविरहसे दुखी होनेके कारण नहीं आये थे। उसी समय मुनियोंके ईश्वर विश्वामित्र भी राम और लक्ष्मणके धीरे-धीरे आनन्दपूर्वक मिथिलाके बाहर एक उपवनमें जा पहुँचे। राजा जनक विश्वामित्रको लिखा लानेके लिए जाना ही चाहते थे। विश्वामित्रका एक शिष्य वहाँ आ पहुँचा। उसको विश्वामित्रका शिष्य जानकर राजाने नमस्कार किया ॥ २९-३३ ॥ शिष्यने राजाका हाथ पकड़ एकान्तमें ले जाकर अपने गुल्फा भेजा हुआ सन्देश भलीभाँति कह सुनाया ॥ ३४ ॥ उसने कहा—गाधिपुत्र विश्वामित्रने कहा है कि मैं अपने साथ राजा दशरथके दो बुरबीर पुत्रों राम-लक्ष्मणको यहाँ ले आया हूँ ॥ ३५ ॥ ये दोनों सीता तथा उमिलाका पाणिग्रहण करेंगे और आपका पर्णीकृत धनुष रामचन्द्रजी तोड़ेंगे ॥ ३६ ॥ इसलिये वरको ने आनेके विधानसे इस दोनोंको नगरमें लाना चाहिये। जबतक धनुष भङ्ग न हो, तबतक यह वृत्तान्त किसीको न बसाइया ॥ ३७ ॥ राजा

ह्युक्त्वा जनकं शिष्यः स्वगुरुं शीघ्रमाययौ । जनकोऽपि मुदा युक्तमूर्त्त्यामेव पुरीं निजाम् ॥३८॥
 तोरणाद्यैः शोभयित्वा सैन्येन परिवेष्टितः । वारणेन्द्रं पुरस्कृत्य समार्यम्नर्तृपैः सह ॥३९॥
 सुमेधादिप्रमदाभिर्नानावार्धर्मनोहरैः । विद्यामित्रांतिकं गत्वा नत्वा संपूज्य तं मुनिम् ॥४०॥
 अज्ञात इव तौ पृष्ट्वा श्रुत्वा तद्ब्रह्ममादरात् । वस्त्रालंकारभूषाद्यैः सत्कृत्य विधिवन्मृषः ॥४१॥
 गजयोस्तौ समारोप्य चामराद्यैः मुक्ताजिता । विश्वामित्रेण मुनिना निनाय मिथिलां पुरीम् ॥४२॥
 ननृतुर्वारनार्यश्च तुष्टुर्वर्चस्विमागभाः । नेदृर्नानामुवाचाणि जगुस्ते तु नटादयः ॥४३॥
 तदा तौ हृष्टमार्गेण जग्मतुश्चातिशोभिता । श्रुत्वा च पुनर्यश्च वीर्यं श्रीरामलक्ष्मणी ॥४४॥
 समागताविति मुदा जग्मतुश्चातिशोभिता । कञ्जनेत्रदंष्ट्रशुक्लौ ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥४५॥
 तदा परस्परं प्रोचुः सीतायोम्यां चम्पक्यम् । गमोऽस्माकं रोचते हि कमेन्वेवं विधिस्तु सः ॥४६॥
 उमिलायास्तु योग्योऽयं लक्ष्मणोऽस्ति मुलक्षणः । अस्माकं सुकृतेरग्रा तयोरेतां पती शुभा ॥४७॥
 श्रीरामलक्ष्मणौ रम्या भवतश्चोत्तमोत्तमा । एवं तासां कामिनीनां वचनानि नृपात्मजौ ॥४८॥
 शुश्रूवतु शुभान्येव सार्धस्यौ तौ ददर्शतुः । ततस्ते मिलिताः सर्वे नृपाः प्रोचुः परस्परम् ॥४९॥
 एतादृशो विदेहेन यदाऽस्माभिः समागतम् । तदोत्सवः कृतो नैव ह्यनयोः क्रियते कथम् ॥५०॥
 किमंतःस्थेन राज्ञाऽद्य सीता समाय साऽपिता । किमस्माकं समाह्वय मानसगोऽधनः कृतः ॥५१॥
 एवं तेषां नृपाणां च वचनानि नृपात्मजौ । जनको गाधिजश्चापि शुश्रूवस्ते समततः ॥५२॥
 ततः शनैः शनैर्वीरौ गवाक्षैः क्षीमिगीक्षिता । जग्मतुर्वाद्यघोषाद्यैर्जनकस्य सभां प्रति ॥५३॥
 ततोऽवतरतुर्वीरौ गजाभ्यां मुनिना सह । तत्स्वयंवरशालायामुपविष्टपु रावसु ॥५४॥

जनकजीसे यह कहकर शिष्य मोक्ष अपने गुरुजीके पास लौट गया । राजा भी इस बातको मनमें रखकर बड़ी प्रसन्नताके साथ अपनी मिथिला नगरीको तोरण तथा रंग-बिरंगी पताकाओं आदिसे सजवाकर गहने, जरीकी झूल तथा सोनेके होवसे सुशोभित उत्तम एवं दर्शनीय हाथीको आगे करके सेना, सभी राजाओं, सुमेधा आदि स्त्रियों और अनेक प्रकारके मनोहर मांगलिक बाजे लेकर अपनी मार्याके साथ विश्वामित्र मुनिके पास गये और उनकी पूजा की ॥३८-४०॥ मुनिसे जनकजीकी तरह उन दोनों बालकोंका परिचय पूछकर विधिवत् वस्त्र-आभूषणसे उनका सत्कार करके हाथियोंपर चढ़ाकर चमर डुलवाते हुए जनकजी विश्वामित्रके साथ दोनों भाइयोंको मिथिलापुरीमें ले चले ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ उस समय बहनेरी वाराणसी मुन्दर नृत्य करने लगीं । वारण तथा लोग स्तुतिपाठ एवं जयजयकार करने लगे । नाना प्रकारके बाजोंके मधुर स्वरसे दर्शों विशाये गुंज उठीं । गायकजन मनोहर गायन गाने लगे ॥ ४३ ॥ इस प्रकार शूरवीर तथा अति सुन्दर राम-लक्ष्मण बाजारकी सड़कापर पहुँचे । उन्हें आते देख तथा औरोंसे सुनकर आनन्दके मारे पहिलेसे ही नगरका सब स्त्रिये नगरके प्रधान दरवाजेपर, अपने-अपने घरकी छतोंपर, झरोखों और अटारियोंपर जा बैठीं और अपने कमलसदृश नेत्रोंसे उन्हें बड़े भावसे देखती हुई उनपर फूलोंकी वर्षा करने लगीं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ फिर वे आपसमें कहने लगीं कि ये राम सीताके योग्य वर है । हमको तो राम बहुत प्रिय लगते हैं । इस लिए ईश्वर भी वैसा ही करे तो अच्छा हो । ये शुभ लक्ष्मणोंसे युक्त लक्ष्मण उमिलाके योग्य वर हैं । हमारे भाग्यसे ये दोनों उत्तम, रमणीय तथा सुन्दर दासवाले राम और लक्ष्मण सीता तथा उमिलाके पति हों तो बहुत अच्छा हो । इस प्रकार उनके मनोहर वचनोंको सुनकर राम-लक्ष्मण दोनों भाई ऊपर मुँह उठाकर उन्हें देखने लगे । बादमें वे सब राजे परस्पर कहने लगे—॥ ४६-४९ ॥ जब हम यहाँ आये, तब तो राजा जनकने ऐसा उत्सव नहीं किया । अब इन बालकोंके लिये ऐसा क्यों किया ॥ ५० ॥ राजाने कहीं चुपकेसे सीता रामको तो नहीं दे दी है ? ऐसा ही या तो हम लोगोंको बुलाकर अपमानित क्यों किया गया ॥ ५१ ॥ उनकी बातें राम-लक्ष्मण, राजा जनक तथा विश्वामित्रजीने भी सुनी ॥ ५२ ॥ इधर झरोखोंमें बैठी हुई स्त्रियोंके हाथ अबलोकित वे दोनों वीर गाने एवं बाजेकी ध्वनि

विश्वामित्रानुमो तो हि मुनिशाला प्रजामतुः । ऋद्धाया मुनिशालायां मुनेरग्रे निषीदतुः ॥५६॥
 एवं सभायामृद्धायां राक्ष्सा कन्याप्रतिग्रहे । प्रतिज्ञातं धनुस्तत्सज्जं त्वमुपस्थितम् ॥५७॥
 यदाऽधीता धनुर्विद्या यत्तः परशुधारिणा । तदा दत्तं मया तस्मै धनुस्त्रिपुरदाइकम् ॥५८॥
 तेनैकविंशद्वारं हि निःशत्रा पृथिवी कृता । सहस्रबाहुर्निहतः स्वपितृघातकारणात् ॥५९॥
 तन्मैषिलोगणे स्थाप्य जामरन्ध्र्यो नृपं ययौ । अश्ववत्तनुः कृत्वा जानकी क्रोधनं व्यधात् ॥६०॥
 जामदग्न्यस्तेन सीतां ज्ञात्वा लक्ष्मीं तदिच्छया ददौ नृपं पणार्थं तद्धनुरन्यैर्दुरासदम् ॥६१॥
 पणीकृतं धनुस्तच्च विदेहेन स्वयम्वरे । ततः सभायामृद्धायां जनकः प्राह अंकितः ॥६२॥
 तंस्थाप्य राक्ष्सां पुरतस्त्वन्मे स्थापमनुत्तमम् । शस्त्रागारात्सभानीतं श्रुपैः पंचशतैस्तु यत् ॥६३॥
 सीतास्वयंवराय यन्न्यस्तं परशुधारिणा । नृपः प्राह सभामध्ये यो वीरस्त्वद्य सदसि ॥६४॥
 करिष्यति धनुः सज्जं तं वै सीता वरिष्यति । तत्तस्य वचनं श्रुत्वा धनुर्दृष्ट्वाऽचलोपमम् ॥६५॥
 बभौमुखास्तदा सर्वे बभूवुः पाथिवोद्यमाः । केचिद्भूमेः समुद्रोद्धुं धनुः शक्ता न चाभवन् ॥६६॥
 भूमेरुच्छालिते केचिदूर्ध्वं नेतुं न चाशकम् । सर्वेऽप्युच्छालिते तस्य नृपाः शक्ता न चाभवन् ॥६७॥
 सज्जीकारः कुतस्तस्य ममसाऽप्यविचितितः । धनुः सज्जीकृता सर्वाभूपान् शात्वा पराङ्मुखान् ॥६८॥
 वृदातिगर्वसंरुढः सभायां रावणोऽब्रवात् । धनुषः समिधिं गत्वा विहसन् जनकं प्रति ॥६९॥
 येन वै निर्जिता देवास्त्रैलोक्यं स्ववशे कृतम् । आन्दोलितो भुजामिहि कंलासो येन वै मया ॥७०॥

आदिमें साथ धीरे-धीरे राजा जनकके सभामण्डपमें पहुँचे ॥ ५३ ॥ वहाँ वीर राम-लक्ष्मण तथा मुनिगण हाथियोंसे नीचे उतरे । पश्चात् सभामण्डपमें राजाओंके यथास्थान बैठ जानेपर विश्वामित्रजीके साथ आकर वे बालक भी मुनिमण्डपमें मुनिके आगे बैठ गये । ५४ ॥ ५५ ॥ इस प्रकार सभाके भर जानेपर कथादानके लिये नियत किये हुए धनुषगर उघा (ताँत या डोरी) चढ़ानेके लिये राजाओंसे राजा जनकने कहा ॥ ५६ ॥ श्रीशिवजी कहते हैं—हे गार्वती । जब परशुरामजीने मुझसे धनुर्विद्या प्राप्त की, उस समय मैंने उनको निपुरको जलानेवाला धनुष दिया था ॥ ५७ ॥ उसके द्वारा उन्होंने इक्कास बार पृथ्वीको शत्रियोसे शून्य बनाया और अपने पिताके घातक सहस्रबाहुको भी उसीसे मारा ॥ ५८ ॥ तदनन्तर परशुरामजी उस धनुषको राजा जनकके आँगनमें रख आये । बचपनमें जानकीजी उस धनुषको लकड़ीका जोड़ा बनाकर खेला करती थीं ॥ ५९ ॥ इस व्यवहारसे परशुराम सीताको लक्ष्मी समझने लगे और इसी अभिप्रायसे हर एकके लिये दुर्लभ यह धनुष राजा जनकको प्रतिज्ञापालनार्थ दे दिया ॥ ६० ॥ तदनुसार विदेहने उस धनुषको सीतास्वयम्वरमें प्रणकी जयहूँपर नियत किया । पश्चात् मरी सभामें सर्वोक्त भावसे जनकजीने उस मेरे सर्वोत्तम धनुषको सबके सामने रखकर राजाओंको अपनी प्रतिज्ञा कह सुनायी । यह धनुष शास्त्रागारसे पाँच सौ बलों द्वारा खिचवाकर राजा जनकने सीता-स्वयंवरके लिये यहाँ स्थापित किया था । मरी सभाके मध्यमें राजा जनकने राजाओंसे कहा—‘जो राजा इन सन्नासकोंके सामने धनुषको समिज्जत करेगा, उसीको सीता वरेगी ।’ राजाके बचनको सुन तथा गर्वसे सभाभ्रमल उस धनुषको देखकर सबके सब राजाओं ठया महाराजाओंने मुख नीचे/कर लिया । उनमेंसे कुछ तो धनुषको जमीनसे हनिक भी नहीं उठा सके ॥ ६१-६२ ॥ कुछ लोगोंने कुछ ऊँचा/भी किया तो जमीनसे बिल्कुल नहीं उठा सके । बादमें सबके सब मिलकर उठाने लगे तो भी यह जमीनसे पूरा नहीं उठा । तब फिर उसपर डोरी चढ़ाना तो और भी कठिन काम था । सभामें धनुष चढ़ानेसे सब राजाओंको पराङ्मुख देखकर रावण सर्वके हाथ धनुषके पास गया और हँसकर राजा जनकसे कहने लगा—‘६३-६४ ॥ हे राजन् ! जिस रावणने समस्त देवताओंको जीत लिया है, जिसने हीमों लोकोंको अपने वशमें लिया है तथा अपनी ही भुजाओंसे जिसने शिवजीके निवासस्थान कैलास पर्वतको हिला दिया है, उस रावणका यदि तुम राजाओंसे मरी सभामें एक वेसना चाहते

तस्य मे जनकाय त्वं बलं पार्थिवसंसदि । इष्टमिच्छसि कित्वस्मिन् लघुचापे तृणोपमे ॥७०॥
 एवं वदन् दशस्यः स ऋगो भूत्वा महद्भुजः । गृहीतुं वामहस्तेन चालयामास वै तदा ॥७१॥
 न तच्चाल किञ्चिच्च तदा दक्षिणसत्करम् । पुरः कृत्वा गृहीतुं तच्चालयामास वै पुनः ॥७२॥
 न तच्चचाल तदपि तदाश्चर्येण रावणः । भुजाभ्यां चालयामास तदा चापं चचाल न ॥७३॥
 एवं क्रमेण सर्वाभिर्भुजामिवालयन् धनुः । त्रिंशदोर्मिरेकदेशं चापस्योर्ध्वं चकार सः ॥७४॥
 एकोनविंशदोर्मिश्च घृत्वा चैव महद्भुजः । गुणं भूम्यां निपतितं गृहीतुं हि दशाननः ॥७५॥
 किञ्चिद्भूत्वा विनम्रः स दोष्णा जग्राह तं गुणम् । एतस्मिन्तरे तच्च पपात तद्बृहदये धनुः ॥७६॥
 न तद्विंशतिभुजामिश्च चचाल हृदयाद्भुजः । तदा समायामूर्ध्वास्यः पपात स दशाननः ॥७७॥
 मुकुटः पतितो भूमौ मुक्तकच्छोऽप्यमृतदा । तदा विजडसुः सर्वे समार्या पार्थिवोत्तमाः ॥७८॥
 तदा प्राणांतिकं चासीद्रावणस्य समांगणे । अक्षीणि भ्रामयामास लालास्येभ्यो विनिर्ययी ॥७९॥
 तदा तं वेष्टयामासुर्भूत्रिणो राक्षसास्तदा । धनुरुच्छालने अक्तास्तेऽभवन्नैव संसदि ॥८०॥
 सद्रश्मेषु दशस्यः स विष्टामूत्रं तदाऽकरोत् । ततः समार्या जनकः पुनः प्राहातिशंकितः ॥८१॥
 कोऽपि वीरोऽस्ति भूमौ न किं निर्वीरं हि भूतलम् । येदस्ति कश्चिन्मदसि तर्हि सोऽद्यसमांगणे ॥८२॥
 जीवदानं करोत्वस्मै दशस्याय नृपाग्रतः । इति वाक्यशगघातमिन्नौ तौ रामस्मर्या ॥८३॥
 ददर्शतुर्गाधिस्य मुखं तौ स्फुग्निभ्रुवौ । विश्वामित्रस्तदा प्राह राम चोभिष्ट राघव ॥८४॥
 किमंतं रावणस्याद्य त्वं पश्यसि समांगणे । जीवर्यनं राक्षसेन्द्रं सज्जं कुरु धनुस्त्वदम् ॥८५॥
 तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा तथैत्युक्त्वा स राघवः । तदोत्थायासनाद्वेगात्प्रजनाम मुनीश्वरम् ॥८६॥
 निष्कास्य कंठाद्वारादीन् कटिं बद्ध्वा तदा प्रभुः । मुकुटादि दृढं कृत्वा क्षनैः प्राप समांगणम् ॥८७॥

हो तो भले ही देख लो, किन्तु इस तिनकेके समान हत्के धनुषमें क्या बीगता देखोगे ॥ ६६ ॥ ७० ॥ ऐसा कहकर दशमुख रावणने उस बड़े भारी धनुषको पहिले अपने बाएँ हाथसे ही हिलाना चाहा ॥ ७१ ॥ लेकिन वह तनिक भी नहीं हिला । तब उसने दाहिने हाथसे पकड़कर हिलाना चाहा, तिसपर भी जब वह नहीं हिला, तब रावणको बड़ा आश्चर्य हुआ और एक दोनों हाथोंसे उठाना चाहा । फिर तीनसे, फिर चारसे इस प्रकार करते-करते जब चारों भुजायें एक साथ लगा दीं, तब कहीं वह एक ओरसे कुछ ऊँचा हुआ ॥ ७२-७४ ॥ तब उसने उन्नोस भुजाओंसे महान् धनुषको सम्हाला तथा बीसवीं भुजासे जमीनपर लटकती हुई तलिकी पकड़कर ज्यों ही उपरको उठाना चाहा, त्यों ही वह धनुष उलटकर उसकी छातीपर गिर पड़ा ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ तब बीसों हाथोंसे भी रावण उस धनुषको अपनी छातीपरसे नहीं हटा सका और उपर मुख किये पृथ्वीपर घड़ामसे गिर पड़ा ॥ ७७ ॥ उसके सिरका मुकुट दूर गिरा और घोतीकां लाग खुर गयी । यह देख सबके राजे खिलखिलाकर हँस पड़े ॥ ७८ ॥ रावण बेचारेके पसोना निकलने लगा, आँसे घूमने लगीं और मुखसे लार गिरने लगी ॥ ७९ ॥ उसके सब मन्त्रियों तथा सैनिकोंने आकर घेर लिया, परन्तु उन सबसे भी धनुष नहीं उठा ॥ ८० ॥ पहिले हुए सुन्दर वस्त्रोंमें रावणका भल-मूत्र निकल पड़ा । रावण जैसे वीरको यह दशा देख राजा जनकको और भी शंका हुई और वे घबड़ाकर कहने लगे— ॥ ८१ ॥ कोई भी खोर पुरुष भूतलपर नहीं रहा ? क्या पृथ्वी वीरोंसे शून्य हो गयी ? यदि कोई हो तो इस सभामें राजाओंके सामने रावणको जीवनदान देकर बचाये । उनके इस वाक्यरूपी बाणसे पीड़ित होकर राम तथा रुद्रमण जिनकी भीहें क्रोधके भारे पड़क रही थीं, विश्वामित्रके मुखकी ओर देखने लगे । तब विश्वामित्र बोले—हे राघव ! खड़े हो जाओ और इस रावणके प्राण बचाओ । तुम्हारे देखते रावण मर रहा है । सो ठीक नहीं है । इसे बचाकर धनुषको भी सज्जित करो ॥ ८२-८५ ॥ मुनिके सुन बहुत बच्चा कहकर राम तुरन्त आसनसे उठ खड़े हुए और मुनिकी किया ॥ ८६ ॥ उन्होंने गलेमेंसे हार आदि आभूषण उतारकर रख दिये, कमरको कस लिया,

तं राममागतं दृष्ट्वा जनाः सर्वेऽतिविस्मिताः । चकिताः पार्थिवाः सर्वे ददृशुर्नैवपंकजैः ॥८८॥
 परस्परं तदा प्रोचुः किमूढोऽस्ति शिशुस्त्वयम् । यथास्माभिः स्मिनं नृष्णीं तत्रापि किं करिष्यति ॥८९॥
 केचिदाकुरदशब्दं हि द्रष्टुं बालः समागतः । केचिद्वर्णालवेषा क्रियते शिशुनाऽत्र हि । ९०॥
 केचिद्वचुः किमर्थं हि दारा मुक्तास्त्वनेन हि । केचिद्वर्णाधिनेन चापं प्रति सुयोजितः ॥९१॥
 केचिद्वर्णैर्गुदया चोदितः किं शिशुस्त्वयम् । वमार्थं चापधातेन विश्वामित्रेण राघवः ॥९२॥
 केचिद्वर्णैर्लं त्वस्य मुनिनाऽत्र निरीक्षितम् । चोदितोऽस्त्यत्र श्रीसमन्वापेऽपि किं करिष्यति ॥९३॥
 एवं नानाविधास्तर्कान्यावत्कुर्वन् पार्थिवाः । तावद्दृष्ट्वाऽग्रतो रामं जनकः प्राह गाधिजम् ॥९४॥
 किमर्थं प्रेषितस्त्वत्र मुने बालः समागते । लत्रैते रावणाद्याम् नृपाः सर्वेऽपि कुण्ठिताः ॥९५॥
 तस्मिन्वापे त्वयं बालः किमागत्य करिष्यति । यच्चयः शिष्यवाक्येन पूर्वं चाहं प्रचोचितः ॥९६॥
 तत्सर्वं तु मृपैवाद्य चापाशे मुनिमत्तम् । कार्यं बालः कोमलांगः श्वेदं चापं मुदूर्ध्वम् ॥९७॥
 किं चातकस्त्रपाक्रांतः नागरं शोषयिष्यति । एतस्मिन्नन्तरे सर्वाः सुमेधायाः स्त्रियश्च ताः ॥९८॥
 द्विजराजानन चारुदोर्दण्डद्वयशोभितम् । हेमवर्णोऽमरुत्तं मृत्तलानुपुगंघ्रिणम् ॥९९॥
 मृत्तलाकंककबरद्वयशोभितसत्करम् । दिव्यकुण्डलमुकुटमृत्तलालंकारशोभितम् ॥१००॥
 सुजंघं सुषदं शूरं सुजानुं सुन्दरोदग्म् । सुस्कंधं सुहनुं कंबुकंठं त्रिचलिशोभितम् ॥१०१॥
 स्मितास्थं कोमलोष्ठं सुदंतावलिराजितम् । सुनासं मुक्तापोलं च कज्जपत्रायितेक्षणम् ॥१०२॥
 सुभ्रुभावं च सुस्निग्धं कुंचितालकशोभितम् । मुक्तामाणिक्यरत्नादिनान्नालंकारशोभितम् ॥१०३॥

मुकुटको अच्छी प्रकार बांध लिया और पीछेसे तथाके बीचमें एक छेद हुआ ॥ ९९ ॥ रामकी वहाँ खड़े देख सब लोग बड़े विस्मयमें पड़ गये और चकित होकर सबके सब राजे उन्हें अपने कमलसदृश मधतोषि देखते हुए परस्पर कहने लगे कि यह बालक कौसा मूर्ख है । बरे, जहाँ हम लोगोंको नृप होना पड़ा, वहाँ यह क्या करेगा ? ॥ १०० ॥ कोई कहने लगा कि यह बालक केवल रावणको देखनेके लिए आया । किसीने कहा कि यह बालक तो मानों खेलने गया हो, ऐसा लगता है ॥ १०१ ॥ कोई बोला-तब इसने गलेसे हार तथा माला क्यों उतार दी ? किसीने उत्तर दिया कि इसको विश्वामित्रने धनुष उतारनेके लिए भेजा है ॥ १०२ ॥ कोई बोला कि हम बालकको विश्वामित्रने गन्धुलावण भेजा है, जिससे यह धनुषसे दबकर मर जाय ॥ १०३ ॥ दूसरोंने कहा कि नहीं, मुनिने इसका बल देखनेके लिए भेजा है । परन्तु राम इस धनुषके विषयमें क्या कर सकता है ? ॥ १०४ ॥ इस प्रकार राजा योग अनेक तरहके तर्क-वितर्क कर ही रहे थे कि रामको देखकर जनकने विश्वामित्रसे कहा—हे मुनिराज ! आपने इस बालकको क्यों भेजा है ? जिस धनुषके विषयमें बड़े-बड़े राज-महाराजे तथा राजणकी भी शक्ति कुण्ठित हो गयी, वहाँ यह बालक जाकर क्या करेगा ? श्री आपने पहले अपने शिष्यके द्वारा कहा भेजा था, सो सब आज इस धनुषके सामने झूठ होगा । क्योंकि कहाँ कोमल अंगका बालक और कहाँ यह जति दुर्घर्ष तथा महान् धनुष । चातक चाहे कितना ही प्यासा क्यों न हो, तों भी वही समुद्रको तोल सकता है ? इसी समय सुमेधा आदि स्त्रिये श्रीरक्षसि, जालियोंसे, चीकरों और छतोंपरसे सुन्दर तथा कोमल अङ्गवाने, कमलके सदृश नेत्रवाले, चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखवाले, श्वेद-वर्ण भूजाओंसे शोभित, सुवर्णसदृश कान्तिसम्पन्न, तूपुर और सिक-हियोंको दावेमें पहिने ॥ १०५-१०६ ॥ जिनके हाथोंमें सिकड़ी और कड़े शोभित हो रहे थे । जिनके सिर-पर दिव्य मुकुट, कानोंमें दिव्य कुण्डल, हृदयपर रत्न तथा मणियोंके विशाल हार रहे थे, वेष्ट कलाटमें त्रिचली पड़ी हुई थी । शंखके समान कंठ देखनेमें बड़ा ही अच्छा लगता था । जिनकी विकनी ठोड़ी, कोमल कंधोल, हंसता हुआ मुखचंद्र, अनारकी पोंतिके समान दाँत, सुन्दर लम्बी और पतली नाक तथा लाल-लाल होंठ थे । माणिक्य, मोती, रत्न हीरों आदिसे बड़े हुए अनेक अलंकारोंसे अलंकृत,

मुक्तारत्नपुष्पमालान्यस्तमप्यतिशोभितम् । न्यस्तहारं न्यस्तवस्त्रं वद्वपीताम्बरान्वितम् ॥१०४॥
 दिव्यमुद्रागुलिलसत्पंकजद्वयसत्करम् । एवं दृष्ट्वा स्त्रियो रामं समाङ्ग्याविराजितम् ॥१०५॥
 न्यस्तकोदण्डतूणारं शिवचापाभिसंयुक्तम् । प्रार्थयामासुस्ताः सर्वा ऊर्ध्वास्या ऊर्ध्वसत्कराः ॥१०६॥
 पश्यन्त्यो गमने श्रुत्वा मोहान्नारायणं विधिम् । साक्षान्नारायणं रामं न शक्त्वा ताश्च वै स्त्रियः ॥१०७॥
 हे शंभो हे रमाकान्त हे विधेऽस्मत्पुराकृतैः । व्रतदानादिपुण्यं च चापं सज्जीकरोत्वयम् ॥१०८॥
 पुष्पाभिर्नः सुकृतैश्च कर्तव्यं पुष्पवदनुः । अद्यास्य कंठदेशेऽत्र मालां सीता दधात्वियम् ॥१०९॥
 नो भवत्त्वद्य नेत्राणां साफल्यं दर्शनादिह । सीतया रामचंद्रस्य वेदिकायां स्थितस्य हि ॥११०॥
 एतस्मिन्नंतरे सीता रामं दृष्ट्वा सभांगणे । दिव्यप्रासादसंरूढा सखीभिः परिवेष्टिता ॥१११॥

श्रोच्चचालासनाद्देगादानंदस्वेदमप्लुता ।

सख्यास्तुलस्याः कंठे स्वां दोलतां क्षिप्य सादरम् ॥११२॥

अत्रवीन्मधुरं वाक्यं रत्नालंकारमंडिता । किंपणोऽत्र कृतः पित्रा मम शत्रुस्वरूपिणा ॥११३॥
 क्व रामः सुकुमारांगः क्वेदं चापं नगोपयम् । हा विधे किं करोष्यद्य किमस्त्यंतर्गतं तव ॥११४॥
 रामाद्विनाऽन्यं पुरुषं मनसाऽहं न रोचये । यदि तातो यत्नादन्यं मां दास्यति तदा ब्रह्मम् ॥११५॥
 त्यजामि जीवितं त्वद्य प्रासादपतनादिना । हे शंभो हे विधे दुर्गे हे सावित्रि सरस्वति ॥११६॥
 हे गायत्री स्वरे मानो मधवन्यम तोयप । हे कुबेरानल रमे हे विष्णो खगनायक ॥११७॥
 हे क्षणींद्र निशानाथ हे सर्वे निर्जरादयः । पुष्पाकं प्रार्थयाम्यद्य प्रसार्य करपल्लवम् ॥११८॥
 सर्वैरेतन्महच्चापं करणीयं तु पुष्पवत् । प्रवेशनीयं पुष्पाभिः श्रीरामभुवदंडयोः ॥११९॥
 चतुर्दश वत्सराणि मुनिवृत्त्याऽनुवर्तिनी । विचरामि वने चाहं धनुः सज्जं करोत्वयम् ॥१२०॥

पद्मा, लाल, पुष्कराज, मुक्ता तथा हरे-पीले अनेक रङ्गकां पुष्पमालाओंसे मनोहर, पीताम्बर आदि सुन्दर वस्त्रोंको पहिने हुए, शङ्ख चक्र गदा आदि शुभ चिह्नोंसे चिह्नित करकमलवाले, सभामण्डपके बीच खड़े, दोनों कन्धोंपर धनुष और सूणीरको टांगे तथा शिवधनुषके सामने मुक्त किये हुए रामको देखकर उन्हें साक्षात् नारायण न समझता हुई वे महिलायें आकाशमें स्थित शिव, विष्णु और ब्रह्माको देख उनसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगीं-॥ १००-१०७ ॥ हे शंभो ! हे रमाकान्त ! हे ब्रह्मन् ! हमारे पूर्वोपाजित व्रत-दानजन्य पुष्पोंसे यह बालक धनुष चढ़ानेमें समर्थ हो ॥१०८॥ आप लोग हमारे पुष्पप्रतापसे इस धनुषको पुष्पके समान हल्का बना दें । जिससे हमारी सीता इनके गलेमें वरमाला डाले ॥ १०९ ॥ हमलोग सीतासहित रामचन्द्रको विवाहकी वेदीपर बैठे देखकर अपने नेत्रोंको सफल करें ॥ ११० ॥ उसी समय वस्त्रों तथा अलङ्कारोंसे सुशोभित सखियोंके साथ दिव्य भवनकी छतपर बैठी हुई सीता रामको सभाके बीच खड़े देख आनन्दके स्वेदसे परिप्लुत होकर शीघ्र आसनसे उठ खड़ी हुई । अपनी प्रिय सखी तुलसीके गलेमें हाथ डाल तथा तनिक अगाड़ी बढ़कर आदरपूर्वक यह मधुर वाक्य बोलीं-शात्रुस्वरूप मेरे विस्ताने यह कैसी प्रतिज्ञा की है ? कहाँ ये कोमल अङ्गवाले बालक राम और कहाँ यह पर्वतके समान भारी तथा कठिन धनुष । यह इनसे कैसे चढ़ सकेगा ? हा ईश्वर ! तुमने यह क्या और क्या करनेका विचार है ? चाहे ओ हो, मैं रामको छोड़कर दूसरे किसीको नहीं चढ़ूँगी । यदि मेरे पिता मुझे दूसरे किसीको देंगे तो मैं महलपरसे गिरकर अथवा विध आदिके द्वारा शीघ्र प्राण त्याग दूँगी । हे शंभो ! हे विधे ! हे दुर्गे ! हे सरस्वती ! हे गायत्री ! हे स्वरे ! हे सूर्य ! हे इन्द्र ! हे जलपति वरुण ! हे कुबेर ! हे अग्ने ! हे रमे ! हे विष्णो ! हे गरुड ! हे फणीन्द्र ! हे चन्द्र ! हे समस्त देवताओं ! मैं आँचल फेंकाकर प्रार्थना करती हूँ कि आप इस धनुषको फूलके समान हल्का बना दें और रामचन्द्रके भुजदण्डमें प्रवेश करके उन्हें बल प्रदत्त करें । जिससे राम धनुष चढ़ानेमें समर्थ हों और मुनिवृत्ति धारण करके रामकी

एवं नानाविधैर्वाक्यैः सीता देवानतोषयत् ।

एवं प्रासादमस्थायाः सीताया विविधानि च ॥१२१॥

तथा तासां हि नारीणां नृपाणां जनकस्य च ।

वाक्यानि शृण्वन् श्रीरामः किञ्चित्कृत्वा स्मिताननम् ॥१२२॥

ययौ चापं नमस्कृत्य कृत्वा तं च प्रदक्षिणम् । पुनर्नृत्या शिवं ध्यात्वा गुरुं दक्षयज्ञं नृपम् ॥१२३॥

कौसल्या च गुरुं ध्यात्वा वामहस्तेन तर्धौ । सूर्यहस्तेन चापस्य गुणं धृत्वा अधूतम् ॥१२४॥

वामहस्तेन नम्रं तच्चकार सदसि क्षणात् । तदा निनेदुर्वाधानि तुष्टुर्बुर्बन्दिमागधाः ॥१२५॥

एतस्मिन्नन्तरे रामो वामहस्तबलाद्बभूव । मध्येऽभवत्त्रिस्तुलं तच्छिष्यं प्रार्थानमुत्तमम् ॥१२६॥

चापमङ्गलान्महानादस्तदाऽभूद्भगनागणे । चक्रपे धरणी त्वं चालिङ्गयन्मां भवाद्दृढम् ॥१२७॥

बुधुभुः सागराः सर्वे निनेदुस्ता दिशो दध । तारा निपेतुर्धरणीं शिरः शेषोऽप्यचालयत् ॥१२८॥

बभुर्वाताः सुगन्धाश्च देवास्ते गगने स्थिताः । वादयामासुर्वाद्यानि पुष्पैर्घैः समवाकिरन् ॥१२९॥

स्वर्चश्या ननृतुः स्त्रे हि देवास्तोषं प्रपेक्षिरे । तदा निनेदुः सदसि मेयो दृढमयो वराः ॥१३०॥

नववाद्यस्वनाः सर्वे बभूवुर्जयनिःस्वनाः । ननृतुर्वारिनायश्च तुष्टुर्माणधादयः ॥१३१॥

स्त्रियो गवाक्षरंघ्रश्च रामं पुष्पैश्चाकिरन् । तदा म गवणस्तूष्णीं लज्जयाऽऽनतमस्तकः ॥१३२॥

मुकुटरपि हीनश्च मुक्तकण्ठोऽतिविह्वलः । सभायां न क्षणं तस्थौ नृणं लंकापुरीं पयौ ॥१३३॥

रामेण श्रयं तच्चापं दृष्ट्वा नार्यो मुदान्विताः । चक्रुर्जयस्वतैर्घेष्विन्करैश्च करतालिकाः ॥१३४॥

सीताऽपि मुदिता जाता हर्षरोमाश्चनिर्मला । अनिमेषा कंजनेत्रा गममुत्कण्ठिता हभूत् ॥१३५॥

एतस्मिन्नन्तरे राजा जनकः प्राह मन्त्रिणः । करिणीस्थामत्र सीतामानयध्वं समुत्सवैः ॥१३६॥

भनुगामिनी बनकर जनके कीरह सर्व तक वनमें भ्रमण कर ॥ १११-१२० ॥ प्रकार विविध वाक्योंसे सीता देवताओंको मनाने लगीं । प्रासादपर स्थित सीताके, जन स्थियोंके, राजा जनकके तथा अन्यराजाओंके ऐसे-ऐसे वाक्योंको सुनकर मुसकाते हुए श्रीराम भनुवके पास गये । वहाँ जाकर उन्होंने भनुवको नमस्कार किया, प्रदक्षिणा की और शिवजीका ही मन ध्यान धारके प्रणाम किया । बादमें राजाओंमें श्री राजा दशरथ, माता कौसल्या तथा गुरु वसिष्ठका मन ही मन ध्यान धारके प्रणाम किया । फिर बायें हाथसे धनुष और दाहिने हाथसे उसकी तल पकड़कर क्षणभरमें सभाके सामने बायें हाथसे धनुषको झुकाकर तल चढ़ा दी । उस समय बाजे बजने लगे, पुष्पवृष्टि होने लगी और चारधमरा रामका यज्ञ गाने लगे । इसनेमें राक्षके बायें बाहुवलसे उत्तम तथा पुगलन शिवधनुषके बीचसे सीत टुकड़े हो गये ॥ १२१-१२६ ॥ धनुषके टूटनेसे बड़ा घनघोर शब्द हुआ । जिससे समस्त गगनमण्डल गूँज उठा । धरती काँप उठी । हे पार्वती ! तुम भी उस समय मारे डरके हमसे चिपट गयी थीं । सब समुद्र पलायमान हो गये । दिशायें सुभित हो गयीं । तारे टूट-टूटकर धुंधीपर धिरने लगे । गेयनागका सिर घूमने लगा । सुगन्धयुक्त वायु बहने लगे । देवता आकाशसे फूल बरसाने और बाजे बजाने लगे । स्वर्गकी देवियाँ आकाशमें नृत्य करने लगीं और देवता आनन्द मनाने लगे । उस समय सभामण्डलमें भी उत्तम दोल तथा नगाड़े बजने लगे ॥ १२७-१३० ॥ नये-नये बाजों तथा जयजयकारका घोष होने लगा । वाराङ्गनाएँ नाचने लगीं । भीट आदि स्तुति करने लगे । शरीरोंसे स्त्रियें रामपर फूल बरसाने लगीं । तब राक्षण पुपचाप लज्जासे सिर नीचा किये हुए बिना लीय ल्हाये मुकुटरहित हो घबराहटके साथ शीघ्र मिथिलापुरीसे निकलकर लङ्काको भाग गया । वहाँ वह क्षणभर भी नहीं ठहरा ॥ १३१-१३३ ॥ रामने धनुषको तोड़ आता, यह देखकर स्त्रियें हर्षास्त्रिकसे जयजयकार करने और तालियाँ बजाने लगीं ॥ १३४ ॥ सीताके शरीरमें मारे आनन्दके रोमांच हो आया । उत्कण्ठापूर्वक निमेषरहित होकर कमलसदृश नयनोंसे वे रामको निहारने लगीं ॥ १३५ ॥ सभी राजा जनकने

रक्षणीया निजैः सैन्यैर्वेष्टयित्वा समन्ततः । तथेति ते मन्त्रिणश्च ययुर्वेगेन जानकीम् ॥१३७॥
 प्रोचुस्ते मधुरं वाक्यं प्रवद्वक्त्रसंपुटाः । हे सीते कञ्जनयने धन्याऽसि गजगामिनि ॥१३८॥
 रविर्वशोद्धवेनाद्य दशरथसुतेन च । रामेण भग्नं मदसि चापमुत्तिष्ठ वेगतः ॥१३९॥
 करिणीपृष्ठमारुह्य राम न्य गंतुमर्हसि । रामकण्ठोऽर्पयस्वाद्य रत्नमालां मुदान्विता ॥१४०॥
 तन्मन्त्रिणां वचः श्रुत्वा सीता नत्वा स्वमातरम् । मर्खाभिः करिणीपृष्ठे संस्थितासीन्मुदान्विता ॥१४१॥
 तदग्रे नववाद्यानि निनेदुर्मञ्जुलानि वै । निनेदुः पृष्ठमागेऽपि नानावाद्यानि वै मुहुः ॥१४२॥
 चित्रोष्णीष्ठाः कंचुकिनः शतशो वज्रपाणयः । सीताकरिण्याश्वाग्रे ते द्रुद्रुदूर्ध्वनिःस्वनाः ॥१४३॥
 वायन् जनसंमर्दं सीतां द्रष्टुं जनैः कुतम् । नमृतुर्वारनार्यश्च बभूवुर्यन्त्रनिःस्वनाः ॥१४४॥
 सुधुधुर्माणधाद्याश्च नटा गानं प्रचक्रिरे । करिणीं वेष्टयामासुः सीतादास्यः सहस्रशः ॥१४५॥
 अश्वाकृदाश्चामरादि विभ्रन्त्यो रुक्मशोभिताः । ततोऽश्वसंस्थाः शतशस्ता ययुश्चोपमातरः ॥१४६॥
 जरठाः शस्त्रधारिण्यः स्वर्णदंडलसत्कराः । ततः पुरुषवद्वेषान्विभ्रन्त्यः प्रमदोत्तमाः ॥१४७॥
 ययुस्तक्षयः शतशः शम्भहस्ताः सुभूषिताः । गोपितास्याः कंचुकिन्यस्तुरमादिषु संस्थिताः ॥१४८॥
 ततस्ते मन्त्रिणः सर्वे नानावाहनसंस्थिताः । स्वसैन्यैर्वेष्टयामासुः सीतायाः करिणीं मुदा ॥१४९॥
 चामरैर्वर्जनेः सशपो मुहुः सीतामर्वाजयन् । स्त्रियो गवाक्षरंघ्रैश्च सीतां पुष्पैरवाकिरन् ॥१५०॥
 एव नानासमुत्साहैः शनैः सीता तडित्प्रभा । नवरत्नमयीं मालां विभ्रती दक्षिणे करे ॥१५१॥
 रामं नेत्रकटाक्षश्च पश्यन्ती मुदितानना । सभायां राघवं गत्वा करिण्याश्चावरुह्य च ॥१५२॥
 क्षनैः पद्मयां ययौ रामं तद्ग्रीवाया सुलज्जिता । मुमोच निजबाहुभ्यां रत्नमालां मुदान्विता ॥१५३॥
 चकार नमनं रामं पादयोः स्थाप्य वै शिरः । तस्याववाङ्मुखी सीता सभायामतिलज्जिता ॥१५४॥

अपने मन्त्रियोंको आता ही कि सुन्दर हथिनीपर सेनाकी दल-रेखमें समाराहके साथ सीताको यहा ले आओ ॥ १३६ ॥ 'बहुत अच्छा' कहकर मन्त्रिगण तुरन्त जानकीजीके पास गये ॥ १३७ ॥ वे हाथ जोड़कर इस प्रकार मधुर वाणीमें कहने लगे—हे गजगामिनी और कमलनयनी सीता ! तुम धन्य हो ॥ १३८ ॥ सूर्यधरा दशरथपुत्र रामने सभामें घनुष तोंड़ डाला । जल्दी उठकर सड़ा हो जाओ ॥ १३९ ॥ हथिनीपर चढ़कर अभी रामके पास चलना है । वहाँ चलकर आनन्दपूर्वक अभी उनके गलेमें यह रत्नोंकी माला (वरमाला) डाल दो ॥ १४० ॥ सीताने मन्त्रियोंके इस वाक्यको सुनकर माताके चरणोंमें नमस्कार किया और सहस्र सत्त्वियोंके साथ हथिनीकी पीठपर सवार हो गयी ॥ १४१ ॥ उनके आगे तथा पीछे माना प्रकारके मनोहर वाज्र वजने लगे ॥ १४२ ॥ रङ्ग-विरङ्गी पगड़ियें बाँधे और हाथमें वे लिये अन्तःपुरके संकड़ों दरवाज हथिनीके आगे-आगे जोरसे चिल्लाते हुए चलने लगे ॥ १४३ ॥ वे रास्तेमें सीताको देखनेके लिये खड़ी भीड़की हटा रहे थे । बेधवार्य नाचने लगी । विविध वाद्योंके निनाद होने लगे । भोट स्तुति करने और नट गाने लगे । सीताकी हजारों दासियोंने उन्हें घेर लिया ॥ १४४ ॥ १४५ ॥ उनके पीछे अश्वपर सवार तथा सुवर्णभूषित चमर आदि लिये हुए बहुतसी स्त्रियें तथा उनके पीछे पाँड़ोंपर सवार संकड़ा उपमातायें (दाइयाँ) चलीं ॥ १४६ ॥ उनके पीछे शस्त्रधारिणी तथा सोनेकी छड़ियें लिये हुए संकड़ों बूँदों स्त्रियें चलीं ॥ उनके बाद जवान स्त्रियें पुष्पका नेप वनाये और हाथमें शस्त्र लिये हुए चलीं । उनके बाद उसी वेजमें मुख ढाँके और कुरता पहिने घाँड़ोंपर सवार होकर अस्त्र लिये हुए कुछ सुन्दरी स्त्रियें चलीं ॥ १४७ ॥ १४८ ॥ सबके पीछे विविध बाहनोंपर सवार मन्त्रिगण अपनी-अपनी सेनाके द्वारा सीताकी हथिनीको घेरे हुए चले ॥ १४९ ॥ सखागण चँवर तथा पंखे सीताजीपर डुलाने लगीं । नगरकी स्त्रियें गवाक्षमार्गसे उनपर फूल वरसाने लगीं ॥ १५० ॥ तबहु अनेक प्रकारसे सज-धजकर धीरे-धीरे विजलीके सदृश दीप्तिवाली तथा दाहिने हाथमें नवरत्नोंका हार लिये हुए अपने नेत्रकटाक्षोंसे रामको देखती हुई सीता सभामण्डपके पास जा तथा हथिनीसे उतरकर धीरे-धीरे रामके नयीं और लज्जापूर्वक अपने हाथोंसे उनके गलेमें वह रत्नोंकी माला डाल दी ॥ १५१-१५३ ॥

ददर्श सीतां रामोऽपि हारशोभितहृत्स्थलाम् । अवाप तोषं नितरां ननाम गाधिजं प्रभुः ॥१५५॥
 तदा रामं समालिख्य विश्वामित्रो भुनीश्वरः । निवेशयन्निजांके तं स प्रेम्णाऽऽघ्राय मस्तके ॥१५६॥
 तदा जनकः सीतां गाधिजांके न्यवेशयत् । सीतया रघुनाथेन शुश्रुमे स मुनिस्तदा ॥१५७॥
 मानयामास स मुनिर्जन्यसाफन्यतां हृदि । ततः समायां जनको विश्वामित्रं वचोऽजवीत् ॥१५८॥
 प्रसादात्तव रामस्य लामो जातोऽद्य मे मुने । घन्योऽस्म्यहं कुलं घन्यं घन्यौ तौ पितरौ मम ॥१५९॥
 योऽहं श्रीरामश्शुश्रूषेति लोके प्रयां गतः । इत्युक्त्वा गाधिजं नत्वा प्रणनाम रघूत्तमम् ॥१६०॥
 तदा ते पार्थिवाः सीतां दृष्ट्वा तत्र तद्विप्रभाम् । विचोष्टीं चंद्रवदनां तन्नेत्रशरदाहिताः ॥१६१॥
 भभ्रवृत्तिकलास्तत्र दुर्दैवं मेतिरे निजम् । केचिन्मूर्छां ययुस्तत्र तान्समागत्य मैथिलः ॥१६२॥
 प्रार्थयामास नृपतीन्विषण्णान् सदसि स्थितान् । नष्टश्रोम्लानवदनान् लज्जया नतकंधरान् ॥१६३॥
 युष्माभिर्मेऽत्र कन्याया विवाहं विनिवर्त्य च । गंतव्यं स्वपुराण्येव करणीया कृपा मयि ॥१६४॥
 तदा ते पार्थिवाः सर्वे मंत्रांश्चक्रुः परस्परम् । यदि युद्धे विजेतव्यः श्रीरामोऽद्य रणांगणे ॥१६५॥
 नर्हस्मिन् समये दुष्टे जयो नो न भविष्यति । कुमुहर्ते वयं यातास्तूर्णीं गत्वा पुराणि हि ॥१६६॥
 सुमुहर्ते पुनर्योद्धुं यास्यामः सकला बलेः । भविष्यति तदाऽस्माकं जयो युद्धे विनिश्चयात् ॥१६७॥
 यदा रामं चापभिन्नं पश्यामः पतितं रणे । भविष्यामः कुतकृत्यास्तदा सर्वे वयं नृपाः ॥१६८॥
 तर्दवास्यापमानस्य दुःखं मर्मस्थलं गतम् । त्यजामः पार्थिवाः सर्वे जेष्यामो सधवं पदा ॥१६९॥
 किमर्थमधुना वैरं दर्शनीयं नृपाय वै । इति संमन्य ते सर्वे तद्येन्युक्त्वा नृपोत्तमम् ॥१७०॥
 कृत्वा सीताविवाहं च गच्छामः स्वस्थलानि हि । तदा तान् सकलं वस्तु गृहाणि जनको मुदा ॥१७१॥

तत्पश्चात् रामके नरणोपर अपना सिर रख तथा तमस्कार करके सभामें लज्जितवश कुछ नीचा मुक्त किये हुए सड़ी गयी ॥ १५४ ॥ उस हारसे सुभांभितहृदय रामने भी सीताको ओर देखा और अत्यन्त सन्तुष्ट होकर उन्होंने विश्वामित्रजीको प्रणाम किया ॥ १५५ ॥ मुनिके ईश्वर विश्वामित्रने रामको आलिङ्गन करके प्रेमसे गोदमें बिठाया और जनका सिर सूँघा ॥ १५६ ॥ तब राजा जनकने सीताको भी ले जाकर विश्वामित्रजीकी गोदमें बैठा दिया । उस समय सीता रामके सहित विश्वामित्रजी बड़ी ही शोभाको प्राप्त हुए ॥ १५७ ॥ मत ही अपने जन्मको सफल समझने लगे । तदनन्तर राजा जनकने सभामें विश्वामित्रसे कहा—॥ १५८ ॥ हे मुनिराज ! आपकी कृपासे आज मुझे रामचन्द्र जैसा रामाद प्राप्त हुआ है । मैं अपनेको, अपने माता-पिताको अपने कुलको घन्य समझता हूँ ॥ १५९ ॥ क्योंकि मैं रामचन्द्रके भ्रातृनामसे संसारमें विख्यात हुआ । ऐसा कहकर उन्होंने विश्वामित्रको तथा रघुकुलतिरोमणि रामचन्द्रको प्रणाम किया ॥ १६० ॥ उस समय वहाँ एकत्रित राजे चपलाके समान धमकनेवाले विष्णु अर्थात् पके हुए कुंदरूपफलके सदृश ओंठ और चन्द्रमाके सदृश मुखवाली सीताको देखते ही उसके नेत्ररूपी धानीसे धावल होकर व्याकुल हो गये और दुर्भाग्य समझने लगे । कुछ वही मूर्छित हो गये । तब मिथिलाके अधिपति राजा जनकने वहाँ जाकर उन कान्ति नष्ट हो जानेसे मलीनमुख, दुःखी, लज्जासे तोषी गरदन करके सभामें बैठे राजाजीसे प्रार्थना की—॥ १६१—१६३ ॥ कृपा करके मेरी कन्याके विवाहका उत्सव समाप्त करके ही आपलोग अपने-अपने नगरोंको आइयेगा ॥ १६४ ॥ तब मे सजे विचार करने लगे कि यदि रामको युद्धमें जीतना ही हो तो भी इस कुसनयमें हमलोगोंको विजय लाभ नहीं होगा । क्योंकि हमलोग कुमुहर्तमें आये हैं । अतएव सभी वहाँसे चुपचाप अपने-अपने स्थानोंको जाकर फिर अच्छे मुहूर्तमें दलबलके सहित आयेगे । उस समय रामको रणभूमिमें धावलकर और विजय प्राप्त करके हम सब कृतकृत्य होंगे तथा अपमानजनित हृदयगत दुःखको नास्त करेंगे । इसलिए इस समय राजा जनकसे वैर बण्डा नहीं है । सीताके विवाहको करवाकर चलेंगे । ऐसा विचार करके सब राजाजीने जनकसे 'बहुत बण्डा' ऐसा कहा ॥ १६५—१७० ॥ तब राजा जनकने सर्व रघूत्तम

कल्पयामास विधिवन्मुनिश्चापि रघूत्तमम् । ततो गाधिजवाक्येन त्रिदहः प्रेष्य मन्त्रिणः ॥१७२॥
 समानेतुं दशरथं तत्प्रतीक्षां चकार सः । तेषां राक्षसा मन्त्रिणश्च दृष्ट्वा दशरथं नृपम् ॥१७३॥
 वृत्तं निषेध सकलं तं बत्वा तत्पुरःस्थिताः । वृत्तं दशरथः श्रुत्वा तुतोष नितरां तदा ॥१७४॥
 सैन्येन नागरैः सर्वैः स्वाभिर्जनपदैः सह । मिथिलामगमच्छीघ्रं तदा दशरथो नृपः ॥१७५॥
 तदा महोत्सवेनैव नृपं दशरथं पुरीम् । नेतुं गजं पुरस्कृत्य जनकः पार्थिवैर्ययौ ॥१७६॥
 तदा दशरथाग्रं सौ दृष्ट्वा कैकेयजामुनी । श्रीरामलक्ष्मणावत्र कुतः प्रामौ व्यचिन्तयन् ॥१७७॥
 तावद्रामलक्ष्मणाभ्यां युक्तं तं गाधिजं मुनिम् । स्वसेनायां नृपो दृष्ट्वा विस्मयं प्राग मधिलः ॥१७८॥
 ततो दशरथं बत्वा वसिष्ठं प्रणिपत्य च । गाधिजं जनकः प्राह कावेनो रामरूपिणो ॥१७९॥
 ततस्यं गाधिजः प्राह रामांश्चाद्भुतस्त्वयम् । लक्ष्मणांश्चाच्च शत्रुघ्नः कैकेय्या नन्दनातिमौ ॥१८०॥
 तच्छ्रुत्वा जनकः प्राह राजानं गाधिजं गुरुम् । सीतां रामाय दास्यामि लब्धा भूमानशोनिजाम् ॥१८१॥
 देहजाधुर्मिलानाम्नी लक्ष्मणायार्षयाम्यहम् । कुशधर्म्य मे बन्धोः श्रुतकीर्तिश्च मांडवी ॥१८२॥
 वत्से बालिके रम्ये रूपयौवनमण्डिते । सीतोर्मिलाभ्यामपि ये मया नित्यं प्रलालिते ॥१८३॥
 दास्याम्यहं भरताय मांडवी मंडनान्विताम् । शत्रुघ्नाय श्रुतकीर्तिमर्पयाम्यहमादरात् ॥१८४॥
 एवं स्तुपाश्चतस्रश्च स्वमंगीकुरु पार्थिव । तथेति जनकं प्राह राजा दशरथो मुदा ॥१८५॥
 ततो दशरथः प्राह व्रतानंदं पुरोहितम् । अहस्याजहरोद्भूतं मधिलाग्रे स्थितं मुनिम् ॥१८६॥
 कथं लब्धा भुवः सीता तत्सर्वं वक्तुमर्हसि । व्रतानंदस्तथेत्युक्त्वाऽनवीदशरथं नृपम् ॥१८७॥

व्रतानंद उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया राजन् भृगुर्ध्वकाग्रमानसः । आसीत्पुरा नृपः कथित्वांश्च इति विश्रुतः ॥१८८॥

रामके लिये, मुनियोंके लिये तथा राजाओंके लिये सब प्रकारकी वस्तुओंका यथोचित प्रबन्ध कर दिया ॥ १७१ ॥ तदनन्तर विश्वामित्रके कहनेपर राजा जनकने मवधनरेश महाराज दशरथको बुलानेका निश्चय करके मन्त्रियोंको अयोध्या भेजा । तदनुसार वे राजा दशरथके पास गये और वृत्तान्त निवेदन करनेके बाद नमस्कार करके सामने खड़े हो गये । इस वृत्तान्तको सुनकर राजा दशरथ बहुत प्रसन्न हुए ॥ १७२-१७४ ॥ फिर राजा दशरथ स्त्रियोंको, सेनाको, नगर तथा देशके सब लोगोंको साथ लेकर आनन्दपूर्वक शीघ्र मिथिलापुरीको चल पड़े ॥ १७५ ॥ उधर राजा जनक बड़े समारोहपूर्वक वाद्य-गात्रके साथ एक हार्थीको सजाकर सब राजाओंके संग उनकी अगवाजीके लिए सामने आये ॥ १७६ ॥ महाराज दशरथके आगे कैकेयीके पुत्र भरत तथा शत्रुघ्नको देखकर राजा जनक विचारने लगे कि ये राम-लक्ष्मण यहाँ कहसि आ गये । बादमें जब विश्वामित्रके साथ राम-लक्ष्मणको अपनी सेनामें देखा तो आश्चर्यचकित होकर राजा जनकने महाराज दशरथ और मुनि वसिष्ठको प्रणाम करके विश्वामित्रसे पूछा कि ये दोनों राम-लक्ष्मणके समान रूपवाले दूसरे बालक कौन हैं ? ॥ १७७-१७९ ॥ विश्वामित्रजीने उत्तर दिया कि रामके अंशस्वरूप भरत तथा लक्ष्मणके अंश शत्रुघ्न ये दोनों कैकेयीके पुत्र हैं ॥ १८० ॥ यह सुनकर राजा जनक गुरु विश्वामित्र राजा दशरथसे कहने लगे कि अयोतिजा (योनिसे नहीं उत्पन्न) तथा पृष्णीसे प्राप्त सीताको मैं रामके लिए देता । तथा बारीरसे उत्पन्न उर्मिलाको लक्ष्मणके लिए दे रहा हूँ । उन्हें आप ग्रहण करें । मेरे भाई कुशध्वजकी श्रुतकीर्ति तथा माण्डवी नामकी सुन्दर तथा रूपयौवनसे सम्पन्न दो कन्याएँ हैं । जिनको कि सीता तथा उर्मिलाके साथ-साथ पालकर मैंने बड़ी की है ॥ १८१-१८३ ॥ उनमें भूषणोंसे भूषित मांडवीको भरतके लिए तथा श्रुतकीर्तिकी शत्रुघ्नके लिए देता हूँ । हे पार्थिव ! आप इन चारों पुत्र-वधुओंको स्वीकार करें । तब राजा दशरथने सहर्ष 'तथास्तु' कहा ॥ १८४ ॥ १८५ ॥ तदनन्तर राजा दशरथने राजा जनकके सामने खड़े अहस्याकी कोखसे उत्पन्न पुरोहित मुनि व्रतानन्दसे पूछा कि सीता भरतीमेंसे कौसे प्राप्त हुई । तो व्रतानन्द आप कहें । व्रतानन्दने 'बहुत अच्छा' कहकर बताना आरम्भ किया ॥ १८६ ॥ १८७ ॥

स दृष्ट्वा सकलाँहो कान लक्ष्मीकामैकतन्पगन् । चिन्तयामास मनसि लक्ष्मीं कन्यां करोम्यहम् ॥१८९॥
 तपसैव निजाके तां रञ्जयामि निरन्तरम् । इति निश्चित्य स नृपस्तप्त्वा तीव्रं महत्तपः ॥१९०॥
 दृष्ट्वा प्रसन्नमग्रे तु लक्ष्मीं वचनमब्रवीत् । दुहिता मे भव त्वं हि सा प्राह नृपतिं प्रति ॥१९१॥
 परतंत्राऽस्म्यहं राजन् विष्णुं त्वं प्रार्थयाधुना । स चेदास्यति मां ते हि तर्थाहं दुहिता तव ॥१९२॥
 भविष्यामि न भ्रूदेहस्वधेन्युक्त्वा नृपः पुनः । तप्त्वा तीव्रं तपो विष्णुं चकार वरदोन्मुखम् ॥१९३॥
 नत्वा तं नृपतिः प्राह देहि कन्यां ममां मम । तद्राजवचनं श्रुत्वा मातुलुङ्गफलं हरिः ॥१९४॥
 पद्माभाय ददां श्रेष्ठ स्वयमनर्दधे विभुः । तद्धित्वा नृपतिः कन्यां ददधं कनकप्रभाम् ॥१९५॥
 तां दृष्ट्वा साभिलाषः स कन्यां मनो निजां शुभाम् । पद्माक्षनृपतेः कन्यां पद्मां लोका वदन्ति ॥१९६॥
 आह्वयामासुस्तां स्मर्यां भवन्ति कर्जनाम् । शकले मातुलुङ्गस्य भूर्त्त्वक्त्र फलं पुनः ॥१९७॥
 जातं दृष्ट्वा दधाराय स्वहस्ते नृपतेः मुता । सा स्ववर्षत नृपतेरंके चन्द्रकला यथा ॥१९८॥
 शुक्लपक्षे च तां दृष्ट्वा पद्माक्षोऽचितयद्बुद्धिः । कस्मै देया मया कन्या ह्यस्य योग्यो वरोऽत्र कः १९९॥
 ततः समन्त्रं नृपतिः स्वयंवरमधारयत् । स्वयंवरेऽथ पद्माया यज्ञारम्भं चकार सः ॥२००॥
 स्वयंवराय यज्ञाय परैराकारयन्नृपान् । तेऽपि शृङ्गारयुक्ताश्च ययुः पद्मास्वयंवरम् ॥२०१॥
 पद्मास्वयंवरं श्रुत्वा ययुस्तत्र मुनीश्वराः । ययुर्देवाः सगंधर्वा दानवा मानवाः खगाः ॥२०२॥
 नगा नद्यः समुद्राश्च भूरुहाः कामरूपिणः । ययुर्यक्षाः किन्नराश्च राक्षसा रावणादयः ॥२०३॥
 सर्वान्समागतान् दृष्ट्वा पद्माक्षः प्राह तान् प्रति । आकाशनीलवर्णेन यः स्वांगं परिलेपयेत् ॥२०४॥
 ददामि तस्मै पद्मं यं सत्यं ज्ञेयं वचो मम । तद्राजवचनं श्रुत्वा दुर्धटं नृपसत्तमाः ॥२०५॥

गतामन्द बोले—हे राजन् ! आपने जो वृत्तान्त पूछा सो बहुत अच्छा किया । मैं कहता हूँ, आप ज्ञानसे
 मुनें । पूर्वकालमें पद्माक्ष नामका एक प्रसिद्ध राजा था ॥ १८८ ॥ उसने लोकोका लक्ष्मीको कामनामें
 तत्पर देखकर मनमें सोचा कि मैं आपके द्वारा लक्ष्मीको पुत्रा बनाऊँ और अपना गोदमें लाड़-प्यार करके
 बड़ा करूँ । ऐसा निश्चय करके उसने लक्ष्मीको प्राप्त करनेके लिए बड़ा कठोर किया ॥ १८९ ॥ १९० ॥
 जब प्रसन्न होकर लक्ष्मी सामने आ खड़ी हुई तो उसने कहा कि तुम मेरी पुत्री बनो । यह सुनकर
 लक्ष्मीने राजासे कहा—॥ १९१ ॥ हे राजन् ! मैं तो विष्णुभगवान्के अधीन हूँ—स्वतन्त्र नहीं हूँ । इसलिए तुम
 विष्णुकी प्रार्थना करो । यदि मुझे तुम्हारे लिये दे देंगे तो मैं तुम्हारी पुत्री होऊँगी । इसमें सन्देह नहीं
 है । 'अच्छी बात है' कहकर राजा पद्माक्षने तप करके विष्णुभगवान्का प्रसन्न किया ॥ १९२ ॥ १९३ ॥
 विष्णुने उसे एक श्रेष्ठ मातुलुङ्गफल (विजोरा नोबू अथवा नारंगीका फल) दिया और स्वयं अन्तर्धान हो गये ।
 राजा पद्माक्षने उस फलको फोड़ा तो उसमें सुवर्णक समान जगमगाती कन्याको विद्यमान देखा ॥१९४॥१९५॥
 कन्याभिलाषी राजाने बालिकाको देखकर उसे अपनी ही माना । सबके चित्तको आनन्द देनेवाली उस
 रमणीय कन्याको देखकर वहाँके सब लोग भी सहर्ष 'यह राजा पद्माक्षको कन्या लक्ष्मी है' ऐसा कहने लगे ।
 सभी उस विजोराके टुकड़ोंका मिलकर फिर समुदा फल गया । यह देखकर राजाकी पुत्रीने उसे अपने
 हाथोंमें ले लिया । वह बालिका राजाके अंक (गोद) में शुक्लपक्षकी चन्द्रकलाकी भाँति बढ़ने लगी । उसे
 देखकर राजाके मनमें चिन्ता हुई कि 'यह कन्या मैं किसको दूँ, इसके योग्य वर कौन है' ॥ १९९-१९९ ॥
 तदनन्तर राजाने विचार करके उसका स्वयंवर रचाया । उसी समयमें उन्होंने भी आरम्भ कर दिया
 ॥ २०० ॥ स्वयंवर तथा यज्ञके लिए निमन्त्रणपत्र भेजकर पद्माक्षने राजाओंको बुलाया । वे लोग शृङ्गार करके
 बड़े ठाट-बाटसे पद्माके स्वयंवरमें आकर सम्मिलित हुए । स्वयंवरका सुनकर बड़े-बड़े मुनीश्वर, देवता,
 गन्धर्व, दानव, मानव, जैसा चाहें वैसा धारण करनेवाले स्त्रा, पर्वत, तटी, समुद्र, यज्ञ, किन्नर और
 रावणादि भी वहाँ पहुँचे ॥ २०१-२०३ ॥ उन सबको हुआ देखकर राजाने उनसे कहा कि जो

पद्मासौन्दर्यसंभ्रांतास्तां हर्तुं ते समुद्यताः । तान् कन्याहरणोद्युक्तान् नृपान् दृष्ट्वा सनिर्जगन् ॥२०६॥
 वकार संगरं तैः स पद्माक्षो लोमहर्षणम् । तस्मात्पीडिता देवा मानवा विमुखा रणे ॥२०७॥
 नभुस्तत्र दैत्यैश्च पद्माक्षो निहतो रणे । ततस्ते मिलिताः सर्वे तां घर्तुं द्रुद्रुर्जवात् ॥२०८॥
 सा दृष्ट्वा घर्तुमुद्युक्तान् जुहावाग्नौ कलेवरम् । तामदृष्ट्वा नृपाद्यास्ते विचिन्वन्नमरे तदा ॥२०९॥
 वर्मजुर्नृपगेहानि भूमिं चक्रुरितस्ततः । श्मशानतुल्यं नगरं जगन् वै क्षणमाव्रतः ॥२१०॥
 पद्माक्षनृपतेर्लक्ष्मीसंगाज्जातेदृशी दशा । तस्मान्न मुनयो लक्ष्मीं कामयन्ति कदाचन ॥२११॥
 लक्ष्म्याश्चित्तस्य चांचल्यं भयं शोको वधोऽपि च । भवन्नेव महदःखं तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥२१२॥
 पद्माक्षो निहते युद्धे नृपपत्न्यः सहस्रशः । भर्त्रा सहैव गमनं चक्रुस्ता भयनिर्भराः ॥२१३॥
 ततस्ते दैत्यवर्याद्या ययुः स्वं स्वं स्थलं प्रति । एकदा वह्निकुण्डात्सा पद्मा शक्तिः स्थिरा हरेः ॥२१४॥
 वह्निर्निर्गत्य कुण्डस्य समीपे समुपाविशत् । एतस्मिन्नन्तरे तत्र पुष्पकस्थो दक्षाननः ॥२१५॥
 विचरन् जगतीं जेतुमाकाशवर्त्मना ययौ । सारणस्तां ददर्शथि वह्निकुण्डे वह्निः स्थिताम् ॥२१६॥
 सारणो दर्शयामास रावणाय वचोऽप्रवीत । पुनः सुरामुगधाश्च यां घर्तुं समुपस्थिताः ॥२१७॥
 तस्य पद्माक्षनृपतेः कन्या पद्माऽग्निसन्निधौ । तन्सारणवचः श्रुत्वा तां दृष्ट्वा काममोहितः ॥२१८॥
 यानाज्जवादुत्पपाततां घर्तुं साऽनलेऽविशत् । तामग्नौ संप्रविष्टां स दृष्ट्वा ज्ञान्वाऽथ तत्स्थलम् ॥२१९॥
 ननः प्राह दशास्यः स त्वया देवा नृपादयः । कृत्वाऽग्नौ वसतिं पद्मे श्रमग्रस्ताः कुताः पुनः ॥२२०॥
 नदद्य वासस्थानं ते मया ज्ञातं मनोरमे । पद्मंऽधुनाऽहं त्वां घर्तुं शोभयाम्यनलस्थलम् ॥२२१॥

कोई अपने शरीरको आकाशके नीचे रंगसे रंग लेगा (अर्थात् जो ऐसा कर सकेगा) उसे ही मैं यह अपनी पद्म नामकी कन्या दूँगा । यह मेरी दृढ़ प्रतिज्ञा है । राजाके इस दुपंटे वचनको सुनकर वे नृपश्रेष्ठ पद्माके सौंदर्यपर मोहित होते हुए उसका वचन हरण करनेके लिए उद्यत हो गये । देवताओं सहित उन राजाओंको कन्याहरणके लिए उद्यत देखकर राजा पद्माक्षने उनके साथ लोमहर्षण अर्थात् रोमांचकारी युद्ध किया । उनके धाणोंसे पीड़ित होकर मनुष्य तथा देवता रणसे भागने लगे । परन्तु अन्तमें दैत्योंके द्वारा राजा पद्माक्ष रणमें मारा गया । तदनन्तर वे ■ मिलकर पद्माको पकड़नेके लिए बड़े वेगसे दौड़े । उनको पकड़नेके लिए आते देखकर पद्मा अग्निमें कूद पड़ी । उसको ■ देखकर राजाओंने उसे सारे नगरमें ढूँढ़ना आरम्भ किया । राजमहल छोड़कर गिरा दिया और बहुत-सी इधर-उधरकी जमीन खाँद डाली । क्षणभरमें सारा नगर श्मशान बन गया ॥ २०४-२१० ॥ लक्ष्मीके संगमसे राजा पद्माक्षकी ऐसी दशा हुई । इसीलिये मुनि लोग लक्ष्मीकी कभी नहीं चाहते ॥ २११ ॥ लक्ष्मासे चितकी चंचलता बढ़ती है, भय बढ़ता है, शोक बढ़ता है, मनुष्य मारा जाता ■ और बड़ा भारी दुःख पाता है । ■ वास्ते लक्ष्मीसे दूर रहना चाहिए ॥ २१२ ॥ युद्धमें राजा पद्माक्षके मारे जानेपर राजाकी हजारों दिव्यें भयभीत होकर राजाके साथ ही सती हो गयीं ॥ २१३ ॥ बादमें वे सब दैत्य भी अपने अपने स्थानको चले गये । एक समय श्रीहृरिकी स्थिरशक्तिरूपा लक्ष्मी अग्निकुण्डसे बाहर निकलकर कुण्डके समीप बैठी थी । इतनेमें रावण पुष्पक विमानपर बैठकर विचरता हुआ जगत्को जीतनेके लिए आकाशमार्गसे उधर हो निकला । तब रावणका मंत्री सारण पद्माको अग्निकुण्डके बाहर बैठी देख रावणको दिखलाकर कहने लगा कि पूर्वकालमें जिस राजा पद्माक्षकी कन्याके लिए देवताओं और असुरोंको राजाके साथ युद्ध करना पड़ा था, वही कन्या अग्निकुण्डके पास बैठी है । सारणके इस वचनको सुन तथा पद्माको देख कामसे मोहित होकर रावण आँ ■ वेगसे उसको पकड़नेके लिए नीचे कूदा, त्यों ही वह फिर अग्निमें प्रवेश कर गयी । उसको अग्निमें प्रवेश करती तथा उस स्थानको देखकर रावण कहने लगा-॥ २१४-२१६ ॥ हे पद्मे ! तुमने रहिले भी अग्निमें प्रवेश करके राजाओं ■ देवताओंको बड़ा भारी दुःख दिया है । हे मनोरमे ! तुम्हारा निवास-स्थान आज मैंने देख लिया है । अब मैं तुमको खोजनेके लिये सारा अग्निकुण्ड छान बाजूँगा

इत्युक्त्वा जलकुम्भैश्च विप्रेचारिण दशाननः । यावत्प्रस्थति कक्षायां तावत्तत्र ददर्श ह ॥२२२॥
 पंच रत्नानि दिव्यानि गृहीत्वा तानि रावणः । करंडिकायां संस्थाप्य विमानेन ययौ पुरीम् ॥२२३॥
 करंडिकां देवमेदे संस्थाप्य गवणस्तदा । रात्री मंदोदरीं प्राह मंचकस्थां रहःस्थितः ॥२२४॥
 हे मंदोदरि रत्नानि मया त्वत्तोपदानि हि । समार्नातानि यस्मिन् नन्दर्थं सुरसद्यनि ॥२२५॥
 करंडिकायां वर्तन्ते गच्छ गृहीष्व तानि हि । तद्दृष्ट्वास्त्वचः भुत्वा सा ययौ देवमन्दिरम् ॥२२६॥
 करंडिकां तत्र दृष्ट्वा तां नेतुं पतिमन्निर्भा । यावद्बृच्चालयामास न चचाल तदा भुवः ॥२२७॥
 तदा सा लज्जिता गत्वा गवणाय न्यवेदयत् । तच्छ्रुत्वा स प्रदृश्याथ स्वयं नेतुं ययौ तदा ॥२२८॥
 तां मोऽप्युच्चालयामास न चचाल करंडिका । यदा विशद्भूर्जभूर्भूम्या न चचाल करंडिका ॥२२९॥
 तदा स विस्मयाविष्टो भयं मेने दशाननः । तत्रयोद्घाटयामास रावणस्तां करंडिकाम् ॥२३०॥
 तावद्दर्श नम्यां स कन्यां सूर्यप्रभोपमाम् । तन्नेत्रोद्गर्भेऽस्त्रकान्यामश्नुषि रक्षसाम् ॥२३१॥
 तां द्रष्टुं बालिकां रम्यां ययुः मुह्यन्मुतादयः । तदा मंदोदरीं प्राह तस्या वृत्तं रणोद्भवम् ॥२३२॥
 पद्माक्षकुलजायादि सर्वं वृत्तं दशाननः । कोबान्मन्दोदरीं प्राह भयभीता दशाननम् ॥२३३॥
 इयं कन्या प्रचंडा च कुलविध्वंसकारिणी । लंकां हिमर्थमानीता ह्यस्या ज्ञात्वाऽपि चेष्टितम् ॥२३४॥
 दृष्ट्वा स्ववंशघाताय त्वर्जनां मन्त्रं मेने । बालन्वेऽर्षोदृष्ट्वा गुर्वी तारुण्ये किं करिष्यति ॥२३५॥
 बधोऽस्यास्तव जानेऽहं मृत्युरेव भविष्यति । स्थापनीया न लंकायामियमग्नौव रावण ॥२३६॥
 इति तस्या वचः श्रुत्वा मन्त्रं मेने दशाननः । मन्त्रिभिश्चाथ सम्पन्नप दूतानांशापयत्तदा ॥२३७॥
 करंडिकेयं नीन्याऽयं विमाने स्थाप्य यत्नतः । त्यक्तव्या मम वाक्यास्तु वने गच्छत वेगतः ॥२३८॥
 ततस्ते राक्षसाः सर्वे संभाल्य पुष्पकेऽथ ताम् । करंडिकां तु संस्थाप्य निन्युश्चाकाशवर्त्मना ॥२३९॥

॥ २२० ॥ २२१ ॥ ऐसा कहकर दशाननने पानोंके घड़ोमें अग्निकी बुझा दिया और ज्यों ही राक्षसों
 देखने लगा, त्यों ही उसमें उसे दिव्य गांधर्व रत्न दिखायी दिये ॥ २२२ ॥ रावणने उन पाँचों रत्नोंको उठा
 लिया और एक सन्दूकमें रख तथा विमानपर चढ़कर अपनी नगरीको चला गया ॥ २२३ ॥ वहाँ जाकर
 रावणने उस सन्दूकको देवगृहमें रखकर रात्रिके [] एकान्तमें परलगपर धेड़ी हुई मन्दोदरीसे कहा—
 ॥ २२४ ॥ हे मन्दोदरी ! जिन्हें देवदेव तुम सन्तुष्ट हो आओगी, ऐसे कुछ रत्न में बड़े परिश्रमसे तुम्हारे लिए
 ले आया हूँ । वे देवालयमें सन्दूकके भीतर रखे हैं । जाकर ले आओ । रावणका वचन सुनकर वह देवालयमें
 गयी ॥ २२५ ॥ २२६ ॥ सन्दूकको देख उसने पतिके पास में आनेके लिये उठाया तो वह जमीनसे तनिक भी
 नहीं उठी ॥ २२७ ॥ तब उसने लज्जित होकर रावणसे सब हाल कहा । यह सुना तो हँसकर रावण स्वयं उसे लानेके
 लिये गया और उसे उठाया, किन्तु पेटों जमानसे नहीं हिली ॥ २२८ ॥ २२९ ॥ इससे रावण बड़ा विस्मित हुआ
 और २२ गथा । फिर उसने वहाँ उसको खोला ॥ २३० ॥ तब उसमें सूर्यके समान कान्तिवाली एक कन्या
 दिखायी दी । उसके तेजसे तत्प्रभ होकर राक्षसोंकी आँखें चकपकाने लगीं ॥ २३१ ॥ [] मनोहर बालिकाको
 देखनेके लिये उसके मित्र तथा पुत्र आदि आने लगे । उस समय रावणने मन्दोदरीको मुद्रका तथा जंसे वह
 राजा पद्माक्षके कुलमें उत्पन्न हुई थी, [] सब वृत्तान्त [] सुनाया । मन्दोदरी भयभीत होकर क्रोधपूर्वक
 दशाननसे कहने लगी— ॥ २३२ ॥ २३३ ॥ इस कृतघ्ना, कुलविध्वंसकारिणी तथा प्रचण्डाके कर्मोंको जानते हुए
 भी तुम इसको लंकामें क्यों ले आये ? ॥ २३४ ॥ यह दुष्टा हमारे कुलका नाश करनेवाली है । इसको भीष्म
 धनमें छुड़वा दो । वधपनमें ही यह इतनी भारी है तो जवानोंमें न जाते क्या करेगी ॥ २३५ ॥ इससे
 तुम्हारी मृत्यु होगी । ऐसा मुझे जान पड़ता है । इसको लंकामें घड़ी भर भी नहीं रखना चाहिये ॥ २३६ ॥
 रावणने मन्दोदरीकी बात सत्य समझ तथा मन्त्रियोंसे मन्त्रणा करके दूतोंकी आज्ञा दी— ॥ २३७ ॥ इस
 सन्दूकको यत्नपूर्वक शीघ्र विमानमें रखकर [] ही मेरे कथनानुसार धनमें छोड़ आओ ॥ २३८ ॥ पश्चात् वे
 [] राक्षस इकट्ठे हो तथा उस सन्दूकको विमानमें रखकर आकाशमार्गसे चले ॥ २३९ ॥ उस समय

दशास्यपत्नी तानाह कार्या भूमिगता त्वियम् । स्वापनीया बहिर्नेयं दर्शनाद्वचकारिणी ॥२४०॥
 गृहस्थाभ्रमयुक्तो यस्तथा च विजितेन्द्रियः । वृद्धिमेप्यति तद्गेहे कुमारीयं शुभानना ॥२४१॥
 चराचरेषु सर्वत्र आत्मरूपेण यः स्थितः । तस्य गेहे चिरं कालं स्थास्यतीत्यं संशयः ॥२४२॥
 इति मन्दोदरीवाक्यं श्रुत्वा दूताः सविस्तरम् । यावत्ते गंतुमुद्युक्तास्नावत्कन्या वचोऽब्रवीत् ॥२४३॥
 यस्मिन्महं पुनर्लङ्कां राक्षसानां बधाय च । निधनाय दशास्यस्य सपुत्रस्य समन्त्रिणः ॥२४४॥
 अथ तृतीयवेलायामागम्याहं पुनन्विह । निकुम्भजं पौंड्रकं तं श्रुतशीर्षं च रावणम् ॥२४५॥
 हनिष्यामि पुनर्गन्वा पुनर्यास्यामि त्वत्पुरीम् । अहं चतुर्थवेलायामद्भुतं मूलकासुरम् ॥२४६॥
 कुम्भकर्णसुतं शूरं मर्दयिष्याम्यहं पुनः । तस्यैवावचनं श्रुत्वा हृदि विद्धो दशाननः ॥२४७॥
 जातास्ते राक्षसाः सर्वे भयभीताः शवोपमाः । रावणश्चित्तवामाम हंतव्याऽर्धव वालिका ॥२४८॥
 तीक्ष्णं खड्गं करे धृत्वा पद्मां दुद्राव रावणः । हतुकामं पतिं दृष्ट्वा मयकन्या न्यवारयत् ॥२४९॥
 साहसं कुरु माऽर्धव सत्यायुषि दशानन । भविष्यति वधस्त्वद्य तव नास्या वचो मृषा ॥२५०॥
 यज्जविष्यति भवतु तदग्रे त्यज कानने । कालान्तरेण यो मृत्युस्तमद्य त्वं किमिच्छामि ॥२५१॥
 इति भार्यावचः श्रुत्वा तूष्णीमास दशाननः । ततः सा पेटिका दूर्तनीता यानेन वै अवात् ॥२५२॥
 पश्यन् वनानि मर्वाणि मीतार्यैर्मन्थिलस्य । कृता भूमिगता दूर्तस्तदा सर्वैः करण्डिका ॥२५३॥
 ततो ययुः पुनर्लंकां दूतास्ते रावणस्य च । न्यवेदयन् रावणाय सर्वं वृत्तं यथाकृतम् ॥२५४॥
 सा भूमिः सूर्यग्रहणे विदेहेन समर्पिता । ब्राह्मणाय द्विजश्चापि तां कर्षयितुमुद्यतः ॥२५५॥
 पश्यन् मुहूर्तं प्रियः स प्रत्यब्दं वै पुनः पुनः । चिरकालेन दृष्ट्वाऽथ मुहूर्तं परमोदयम् ॥२५६॥

रावणकी स्त्रीने उनसे कहा कि दर्शनमात्रसे वध करनेवाली इस यातिनीको बाहर खली न रखना, बल्कि जमीनमें गाड़ आना ॥ २४० ॥ गृहस्थाधर्मी होते हुए भी जो जितेन्द्रिय होगा, उसीके घरमें यह शुभानना कुमारी वृद्धिको प्राप्त होगी ॥ २४१ ॥ सब चराचरके साथ अपनी आत्माके समान बर्ताव करनेवाला जो होगा, उसके घरमें यह चिरकाल स्थित रहेगी । सन्देह नहीं (अर्थात् समदर्शी तथा जितेन्द्रियके घरमें ही लक्ष्मी चिरकाल तक रहती है—दूतरेके यहाँ नहीं) ॥ २४२ ॥ इस प्रकार मन्दोदरीकी बात सुनकर ज्यों ही दूत लोग चलनेको उद्यत हुए, त्यों ही कन्या कहने लगी—॥ २४३ ॥ मैं फिर राक्षसों तथा मन्त्री और पुत्रसहित रावणका वध करनेके लिए लंकामें आऊँगी ॥ २४४ ॥ पुनः तीसरी बार यहाँ आकर निकुम्भपुत्र पौंड्रकको तथा सौ सिरवाले रावणको मारूँगी । फिर बादमें पुनः चौथी बार आकर मूलवीर कुम्भकर्ण तथा मूलकासुरको मारूँगी । उसके वचनको सुनकर दशाननका हृदय विद्ध हो गया ॥ २४५-२४७ ॥ वे सब राक्षस भी भयभीत होकर स्तब्ध सरीखे हो गये । रावणने सोचा कि इस वालिकाको अभी मार डालना चाहिये । वह विचार तथा तीक्ष्ण तलवार हाथमें लेकर वह पद्माकी तरफ दौड़ा । पतिको इस प्रकार कन्याको मारनेके लिये उद्यत देखकर मयदानवकी कन्या मन्दोदरीने कहा—॥ २४८ ॥ २४९ ॥ हे दशानन ! आयु जैसा रहनेपर भी आज ही तुम यह साहस मत करो । इससे तुम्हारी मृत्यु हो जायगी । हमका वचन झूठा न होगा ॥ २५० ॥ आगे जो होनेवाला होगा सो होगा । अभी तो तुम इसे वनमें छुड़वा दो । कालान्तर्गमें होनेवाली मृत्युको आज ही क्यों बुलाते हो ? ॥ २५१ ॥ भाव्यकि इस वचनको सुनकर दशानन चुप हो गया । पश्चात् दूत उस सन्तूकचीको गोघ्न विमानमें रखकर ले गये ॥ २५२ ॥ सीताके योग्य मिथिला नरेशके वनोंको देखने हुए वहीपर सब दूतोंने उस करण्डिकाको भूमिमें गाड़ दिया ॥ २५३ ॥ तदनन्तर दूत लट्ठा लौट गये और जो किया था, सो सब वृत्तान्त रावणसे निवेदन कर दिया । ॥ २५४ ॥ राजा विदेहने वह जमीन सूर्यग्रहणके अवसरपर एक ब्राह्मणको दान दे दी थी । ब्राह्मणने उस जमीनको जुतवानेका विचार किया ॥ २५५ ॥ प्रतिवर्ष शुभ मुहूर्त देखते-देखते बहुत वर्षों बाद

शूत्रेण कर्षयामास भूमिं कृष्यर्थमादगत । तदा हलसिताग्रेण निर्गता सा करंडिका ॥२५७॥
 तां गृहीन्वा स भूदोऽपि ययौ भूमिपतिं द्विजम् । स मत्वा तन्निधानं तु हर्षान्प्राह द्विजोत्तमम् ॥२५८॥
 श्रेष्ठस्तव मुहूर्तोऽयं महामास्यं तव द्विज । इमां हलाग्रमभूतां गृहाण त्वं करंडिकाम् ॥२५९॥
 निधानपूर्णितां गुर्वी मया यत्नेन बाहिताम् । ततः स द्विजवर्षस्तु तां जग्राह करंडिकाम् ॥२६०॥
 तामानीच विदेहाय सभामध्ये ददा मुदा । नृपतिं प्राह हृतं तद्विप्रः श्रुत्वा नृपोऽपि सः ॥२६१॥
 उवाच ब्राह्मणं भक्त्या मया भूमिः समर्पिता । तस्यां लब्धा त्वया चेयं तर्ध्वाम्तु करंडिका ॥२६२॥
 विदेहनृपतेर्नाक्यं श्रुत्वोवाच द्विजः पुनः । मया समर्पिता पूर्वं भूमिरेव न्वया नृप ॥२६३॥
 नेयं करंडिका रम्या वसुपूर्णा समर्पिता । यद्भूमी वर्तते वित्तं तन्नृपस्य न संशयः ॥२६४॥
 मा माधधर्मः भूयस्तु गृहाणमां करंडिकाम् । एवं नृपस्य विप्रेण कलहोऽभून्मुदाकुणः ॥२६५॥
 तदा यमामराः सर्वे नृपतिं वाक्यमब्रुवन् । मा कार्यः कलहो राजन् पश्यास्या किं नु वर्तते ॥२६६॥
 तां तदोक्ताटयामास दूतैर्नृपतिमन्तमः । तस्यां दृष्ट्वा बालिकां तु विस्मयं प्राप पार्थिवः ॥२६७॥
 द्विजस्य क्त्वा ययौ मेघं पालयामास तां नृपः । तदा स्वेचरवाद्यानि नेदुः कुसुमघृष्टिभिः ॥२६८॥
 ववर्षुः सुमंघाध नां कन्यां जनकं नृपम् । गंधर्वा गायनं चक्रुर्नृतुभाप्सरोगणाः ॥२६९॥
 तदा मेने तिर्जा कन्यां जनकस्तोषमाप सः । जातकं कार्यामाम विप्रैस्तस्थाः भविस्तस्य ॥२७०॥
 ददा दानानि विप्रैभ्यो ननृतुर्वाग्योषितः । मातुलुङ्गनिर्गता या मातुलुङ्गीति सा स्मृता ॥२७१॥
 अग्निशासादग्निगर्भा तथा रत्नावलीति च । रत्नावतरनिवासोच्च प्रीच्यते जगतीतले ॥२७२॥
 धारण्या निर्गता यस्मात्तस्माद्वरणिजेति च । जनकेनाविता यस्माज्जानकीति प्रकीर्ण्यते ॥२७३॥

अच्छा तथा गरम उदयको करनेवाला मुहूर्त देखकर ॥ २५६ ॥ उस ब्राह्मणने आदरपूर्वक श्रद्धासे उस जमीनमे खेतोंके लिए हल चलवाया । उसी समय हलके फालमे वह सन्दूक निकल आयी । २५७ ॥ उसको लेकर वह बूढ़ जमीनके मालिकके पास गया और उसको वह खजाना समझकर शर्ष ब्राह्मणसे कहने लगा—हे द्विज ! आप बड़े भाग्यशाली हैं । आपने अच्छे मुहूर्तमें खेतो आरम्भ करवायी । यह हलके अग्रभागमे (अर्थात् फालमे जिसको संस्कृतमे सीता कहते हैं । संभूत (प्राप्त) सन्दूकको नाजिये । मैं खजानेमे भरी हुई बड़ी भाग्य इन पिटारीको बड़ी कठिनाईमे यहाँ ले आया हूँ ।
 द्विजने उसको ले लिया । २५८-२६० ॥ उसको ले आकर ब्राह्मणने सभाके सामने राजा विदेहको दिया और सब समाचार कह सुनाया । राजा भी यह सुनकर ब्राह्मणने कहने लगे कि मेने तो भूमिसे भूमि आपको समर्पण कर दी है । उसमेमे मिली हुई यह पिटारी भी आप ही की है ॥ २६१ ॥ २६२ ॥ राजा विदेहके वचनको सुनकर ब्राह्मण उनसे कहने लगा—हे नृप ! आपने मुझे भूमि ही दी है ॥ २६३ ॥ यह धनपूर्ण सुन्दर सन्दूक नहीं दी थी । इसलिये जो भूमिमें धन है, वह निविदाव राजाका ही होता है । २६४ ॥ मुझे अबमेमे न डालें और इस पिटारीको आप स्वीकार करें । इस प्रकार राजा तथा ब्राह्मणमे बड़ा झगड़ा होने लगा । तब सब सभासदोंने राजासे कहा—हे राजन् ! कलहको छोड़ें और देखें कि इसमें क्या है ? ॥ २६५ ॥ २६६ ॥ तब नृपतिदोमे श्रेष्ठ नृपति विदेहने दूसरे सन्दूक खुलवायी । उसमे बालिकाको देखकर राजा बड़े विस्मित हुए । ब्राह्मण उसे वहीं छोड़कर घर चला गया ।
 राजाने ही उस कन्याको पाल लिया । तब देवताओंके बाजे बजे और उन्होंने उस कन्या तथा राजाके ऊपर पुष्पवृष्टि की । गन्धर्व गाने लगे । अप्सरायें नृत्य करने लगीं ॥ २६७-२६९ ॥ तब राजा जनकने प्रसन्न होकर उसको अपनी पुत्री माना । ब्राह्मणोंके द्वारा विस्तारपूर्वक उसका जातकर्मसंस्कार (सन्तानके उत्पन्न होनेपर करनेका संस्कार) करवाया ॥ २७० ॥ विप्रोंको बहुतसे दान दिये और वेश्याओंका गायन करवाया गया । जगत्में वह कन्या मातुलुङ्गफलसे निकलनेके मातुलुङ्गी, अग्निमे वास करनेसे अग्नि-वर्मा तथा रत्नोंमें निवास करनेसे रत्नावली कही जाने लगी ॥ २७१ ॥ २७२ ॥ घरणीसे निकलने-

मोग्राभिर्गता यस्मान्सीतेत्यत्र प्रसीयते । पद्माक्षनृपतेः कन्या तस्मात्प्रसीति सा स्मृता ॥२७४॥
 एवं नामान्यननानि सीतायाः संति मो नृप । आकाशनीलवर्णाभवपुषाऽनेन जानकी ॥२७५॥
 लब्ध्वा रामेण पद्माक्षप्रतिज्ञा मफलीकृता । एवं स्वया पथा पृष्टं तथा त्वा विनिवेदितम् ॥२७६॥

चतस्रस्त्वं स्तुषास्त्वत्र कर्तुमर्हसि मो नृप ।

श्रीशिव उवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र पूर्वं दशरथेन च ॥ २७७ ॥

ममाहूता ययुः सेन्यैः स्रोपुत्रैः यशुराश्च ते । कोसलो मगधेशश्च कैकेयश्च पुषाजितः ॥२७८॥
 मानयामास तान् राजा जनकोपि मुदान्वितः । ततो दशरथं पूज्य भीरुमं लक्ष्मणं तथा ॥२७९॥
 भरतं चापि शत्रुघ्नं न पूज्याभरणादिभिः । निनाय जनकस्तुष्टः स्वपुरीं परमोत्सवैः ॥२८०॥
 तदा रामो नृपं नत्वा राज्ञा चालिपितो मुहुः । वसिष्ठं गाधिजं मन्त्रा कौसल्यादिं प्रणम्य च ॥२८१॥
 राज्ञो दशरथस्याग्रं तैः स्त्रीभिर्वन्धुभिः सह । गजारूढो ययावप्रे तेऽप्यभूवन् गजस्थिताः ॥२८२॥
 नदन्सु वाजसंधेषु स्तुवन्सु पागभादिषु । नर्तन्सु चारनारीषु विवेषु नगरीं प्रभुः ॥२८३॥
 तदाऽऽश्रीत्संभ्रमः पौरस्त्रीणां श्रीरामदशमे । विमृज्य स्वायकुल्यानि दद्रुवुर्गोपुरादिषु ॥२८४॥
 कट्यां निधाय बालाश्च ददृशु रघुनन्दनम् । राजमार्गगतं रामं ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥२८५॥
 एवं महोत्सवैर्वाग्मस्थलं दशरथः सुतैः । यया वस्त्रान्नतोर्थाधैः परिपूर्णं मनोरमम् ॥२८६॥
 कृत्वा ज्वातिर्विदा लग्नदिवसस्य विनिश्चयम् । मंडपांश्च तोरणानि पताकाश्च ध्वजास्तथा ॥२८७॥
 रोपयामासुः सवत्र मंत्रिणो मिथिलां पुरीम् । मार्गाश्रदनलिप्ताश्च पुष्पराज्यादितः अपि ॥२८८॥
 मालाभिस्तोरणैः पुष्पघोषाद्यैस्ते चकाशिरं । ततो मुहूर्तसमये वधूच्छिष्टां निशां शुभाम् ॥२८९॥

क कारण धराजजा । नवक द्वारा पालित हानसे जानकी, साता (फाल) के अग्रभागसे प्रकट होनेके कारण साता और राजा पद्माक्षकी कन्या होनेसे वह पद्मा कहलायी ॥ २७३ ॥ २७४ ॥ हे महाराज दशरथ ! इस प्रकार सीताके अनेक नाम हैं । आकाशके समान नीलवर्णके रङ्गवाले रामने साताको प्राप्त करके राजा पद्माक्षकी प्रतिज्ञा पूर्ण कर दी । इस प्रकार जो आपने पूछा सो मैंने निवेदन कर दिया । अब आपका ये चारों पुत्रवधुएं स्वाकार करनी चाहिये । शिवजी बोले—इतनेमें पहिलेसे राजा दशरथके द्वारा बुलवाये गये उनक भूसुर कोसलराज तथा मगधराज पुषाजित् नामके कैकेयराज अपनी स्त्रा और दनाका साथ लेकर वहाँ आ पढ़ने । राजा जनकने भी उनका प्रेमपूर्वक स्वागत किया । पश्चात् राजा दशरथकी वस्त्र-आभूषण आदिने और राम लक्ष्मण भरत तथा शत्रुघ्नकी पूजा करके राजा जनक महान् उत्सवके साथ अपने नगरमें ले गये ॥ २७५-२८० ॥ तदनन्तर रामने राजा दशरथको प्रणाम किया । राजाने उन्हें हृदयसे लगाया । फिर रामने गुरु वांछिकों तथा कौसल्या आदि माताओंको प्रणाम करके राजा दशरथके आगे उन स्त्रियों तथा वस्तुओंके सहित हाथियोंपर चढ़कर आगे-आगे चले । उनके पंख और सब लोग गजारूढ़ होकर चल पड़े । इस प्रकार वाद्यसमूहक शब्दोंको सुनते, चारणोंकी स्तुतियोंकी श्रवण करते तथा वेश्याओंके नाचको देखते हुए प्रभु रामने नगरमें प्रवेश किया । उस समय रामके दशमेके लिये नगरकी स्त्रियें व्याकुल हो उठीं । अपने-अपने गृहकार्योंको छोड़ सबकी बालकोंको गोदमें लिये नगरके दरवाजे आदिपर जाकर रघुनन्दन रामका दर्शन करने लगीं । राम जब सड़कपर आ गये, तब उन्होंने उनपर पुष्पवृष्टि की ॥ २८१-२८५ ॥ तब महोत्सवके राजा दशरथ राम आदिकों लेकर अग्र भोजनका सामान, वस्त्र (ओढ़ने-विछानेका सामान) तथा जल (नहाने-बोरे तथा पीने पानी) आदिसे परिपूर्ण मनोहर वासस्थानपर (वरके ऊहनेके स्थानपर) गये ॥ २८६ ॥ मन्त्रियोंने ज्योतिषीके द्वारा लग्नका दिन निश्चय कराकर मिथिलापुरीको मण्डपोंसे, तोरणोंसे, पताकाओंसे रङ्ग-बिरङ्गी ध्वजाओंसे सजका दिया । बड़े-बड़े रास्तोंको चमकसे लिपवाया गया । उनपर आदि-

सुमेलाद्यां स्त्रियः सर्वाः कौसल्यायास्तु मातरः । रामादीन् वारालिप्यादौ नाराजनपुरःसरम् ॥२९०॥
 करकुंभांसोयपूर्णश्रुतिक्षु सदीपकान् । संस्थाप्य स्नापयामासुर्महाबाधपुरःसरम् ॥२९१॥
 तदाभ्यंगं स्वयं चापि कृत्वा सस्तुभ मातरः । रामादीन् पुरतः कृत्वा वस्त्रालंकारभूषिताः ॥२९२॥
 अभ्यङ्गपूर्वकं सस्नौ राजा दशरथोऽपि सः । समाहूय नृपस्त्रीश्च समायां स्वस्तिकं गुरुः ॥२९३॥
 मुक्तायिनिर्मिते राज्ञः पार्श्वे वाधे न्यवेशयत् । अग्रे रामादिकान्कृत्वा ताः स्त्रियोऽवनताननाः ॥२९४॥
 हरिद्राकुंकुमालिप्तचरणा रेजिरेऽङ्गणे । वसिष्ठो ब्राह्मणैर्युक्तो राक्षा रामादिभिर्भुदा ॥२९५॥
 कृत्वा गणपतेः पूजां पुण्याह्वादिप्रयं क्रमात् । कारयामास विधिवत्प्रतिष्ठां देवकस्य च ॥२९६॥
 आभाचारं कुलाचारं वृद्धाचारं तथा पुनः । देशाचारं च प्रमदाचारादीनकरोन्मृपः ॥२९७॥
 तोयकुम्भं मंडपादिकानां पूजनमाचरत् । कौसल्यायाः स्त्रियः सर्वा हरित्पीताकणवर्णाः ॥२९८॥
 हेमतत्त्वंकिर्तव्यंस्त्रीरेजुर्मंडपांगणे । जनकश्च नृपैर्युक्तो महाबाधपुरःसरम् ॥२९९॥
 रामादीन्स निजं गेहं नेतुकामः समाययौ । मंडपे पूजयामास रामादान् जनकस्तदा ॥३००॥
 हेमनन्तुर्वर्दिन्यैर्वस्त्रैरामरणादिभिः । तदा विरेजुस्ते बालाः सर्वे प्रभुदिताननाः ॥३०१॥
 ततस्ते वारणंद्रस्था दिव्यचामरवीजिताः । भृग्वंतो वाद्यघोषांश्च वर्षिता पुष्पवृष्टिभिः ॥३०२॥
 हरिद्रांकितधान्यैश्च मांगल्यैर्भीक्तिकादिभिः । मातृभिवारणस्तोषु मंस्थिताभिर्भुहुर्मुहुः ॥३०३॥
 एवं ते राघवाद्याश्च पुरस्त्रीमिर्निरीक्षिताः । प्रासादोपरि मंस्थाभिर्लज्जाभिर्वर्षिता मुहुः ॥३०४॥
 ददृशुर्नर्तनान्यग्रे वारस्त्रीणां स्मिताननाः । वारिकाः पुष्पवृक्षाणां वरमृत्पात्रनिर्मिताः ॥३०५॥

भौतिके पुष्प बिस्तर दिये और छास-छास स्थानोंमें मालाएँ तथा तोरण बंधवा दिये । पुष्पलताओं और
 माङ्गलिक शब्दों द्वारा उस समय नगरी और भी दिव्य मालूम पड़ने लगी । तदनन्तर शुभ गुरुसमं
 जिस रातको सीताके भारीरमें स्त्रियोंके द्वारा तेल-हल्दी आदि मला गया । उस रातमें कौसल्या
 आदि माताओंने आंगन स्त्रीतथा राखका पानी छिड़काकर जलपूर्ण दीपक सहित चार सुन्दर घड़ोंको
 चारों दिशाओंमें स्थापित करके राम लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्नको वाद्यध्वनिके साथ माङ्गलिक स्नान कराया
 ॥ २९७-२९९ ॥ फिर तेल आदि मलकर अपने आप भी सब माताओंने स्नान किया । पहिले राम
 आधिको धस्त्र तथा अलङ्कारोंसे भूषित करके तेल-हल्दी आदिका शरीरमें अङ्गुष्ठ करके (मलकर) राजा
 दशरथने भी स्नान किया । पश्चात् गुरु वशिष्ठने राजाकी सब स्त्रियोंको मभामण्डपमें बुलाकर राजाके
 वामभागमें मुक्तानिर्मित स्वस्तिक अंकित (वेदी या आसन) पर बैठाया । उस समय सभाके आंगनमें स्त्रियें राम
 आदि बालकोंको सामने बैठाकर निम्न मुख किये तथा हल्दी और तेल चरणोंमें लगाये अत्यन्त सुशो-
 भित होने लगीं । ब्राह्मणोंके सहित वर्णिष्ठजीने सब दशरथ तथा रामादिके द्वारा गणपतिपूजन तथा
 पुण्याह्वाचन ये दोनों कर्म क्रमसे करवाये और तीसरा कर्म विधिवत् देवताकी प्रतिष्ठा करवायी ।
 राजा दशरथने भी बादमें प्रसन्नतापूर्व रामाचार, कुलाचार, वृद्धाचार, देशाचार प्रमदाचार
 आदि किया ॥ २९२-२९६ ॥ तदनन्तर जलपूर्ण कुम्भ तथा मण्डप आदिकी पूजा की । मण्डपके आंगनमें
 हरी, लाल, पीली अरोक्षर लक्ष्मियोंको पहिनकर कौसल्या आदि स्त्रिये बड़ी सुन्दर दीखने लगी ।
 बड़े बड़े बाजोंको वज्रवाते हुए अन्य राजाओंके सहित राजा जनक राम आदिको अपने भवनमें
 लिखा ले जानेके लिये वही आये । मण्डपमें जाकर राजा जनकने राम आदिका पूजन किया ॥ ३०० ॥
 उस समय प्रसन्न मुखवाले वे सब अरोक्षर दिव्य वस्त्रों तथा आभरणोंको पहने हुए बड़े सुन्दर
 लगने लगे ॥ ३०१ ॥ बादमें वे सब जो कि उत्तम हावियोंपर बड़े हुए थे, जिनपर सुन्दर चंवर हुल
 रहे । हावियोंपर बेशी हुई माताएँ चारों तरफसे बारम्बार जिनपर मोतियों, माङ्गलिक हल्दीभिश्चित
 चावलों तथा पुष्पोंकी धौडार कर रही थीं । जिनकी ओर नगरकी स्त्रिये बड़े चावसे देख रही थीं तथा
 भवनोंपरसे धानका बरसा रही थी । आनन्दभरे मुखोंसे वहाँके रास्तेमें वेश्याओंके नृत्य

तथा कृत्रिमवृक्षांश्च पताकाश्च ध्वजांस्तथा । वह्निसंगादोपवीनां पुष्पवृक्षविनिर्मितान् ॥३०६॥
 तडित्प्रभोपमाश्चापि गगनान्तर्विगात्रितान् । वह्निसङ्गादोपधोम्यः प्राकारान् विविधान् वरान् ॥३०७॥
 चन्द्रज्योत्स्नाकृत्रिमांश्च दीपवृक्षान् महस्रजः । दीपमालाश्च व्याघ्रादीन्कृत्रिमान् रथसंस्थितान् ॥३०८॥
 ओषधीभिः पूरितांश्च केकीचक्रोपमादिकान् । ददृशुर्वारुणैर्द्रव्या एवं ते राघवादयः ॥३०९॥
 तदा देवा विमानस्था ददृशुः कौतुकं मुदा । एवं नानोत्सवैर्वाला ययुर्जनकमंदिरम् ॥३१०॥
 अवल्लभ्य गजेन्द्रैर्म्यस्तस्थुस्ते मंडपांगणं । मधुपर्कविधानानि विष्टरादीनि च क्रमात् ॥३११॥
 तयोर्गुरु चक्रतुस्तौ वसिष्ठगीतमात्मजौ । वान्मीक्यादिमुनिगणैर्वेष्टितौ तुष्टमानसौ ॥३१२॥
 ततः पूजां वधूनां च मुदा दशरथो नृपः । चकार गुरुणा युक्तस्तदा स मंडपाङ्गणे ॥३१३॥
 ततो लग्नमुहूर्ते तान् वधूभिश्च पृथग्वरान् । वेदिकासु स्थितान् कृत्वा दम्पत्योरंतरे पटान् ॥३१४॥
 कृत्वा मंगलघोषांश्च मुनिभिश्चक्रतुर्गुरु । तदा तूष्णीं सभायां ते शुभ्रवुः सकला जनाः ॥

पुष्पौषः पीतधान्यैश्च वधुपुर्दम्पतीन् स्त्रियः ॥ ३१५॥

श्रीदेवीतनयौ शिवः सुखकरो मित्रः शशा कंषनः सर्वे ते मुनयश्चला दश दिशः सर्पा मृगेंद्राः स्वगाः ।
 नद्यः पुष्पसरोवराणि दितिजास्तीर्थानि कंजामनश्चंद्रौ बह्वयमरा नदी जलधयः कुर्वतु वो मंगलम् ३१६॥
 तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराचलं चंद्रचलं तदेव । विद्याचलं देवचलं तदेव काशीपतेर्यत्स्मरणं विधेयम् ३१७॥
 एवं मंगलशब्दैश्च महावाद्यपुरःसरम् । तेषामंतःपटान्मुक्त्वा ॐ पुण्योऽस्तु चतुर्गुरु ॥३१८॥
 तासां ते पाणिग्रहणविधानं विधिपूर्वकम् । लाजाहोमादिकं सर्वं चक्रमंगलपूर्वकम् ॥३१९॥
 तदा महावाद्यघोषा निनेदुर्मंडपांगणे । ननृतुर्वारजार्यश्च जगुर्मागधवदिनः ॥३२०॥

मनोहर मिट्टी आदिके बने हुए गमलों, वृक्षों तथा फूल-पत्तियोंसे बनी हुई काटिकाओंको, कृत्रिम वृक्षोंको, पताकाओंको, ध्वजाओंको, अग्निके संयोगसे जलनेवाले, तडितके समान रोशनीवाले और आकाशमें चमकानेवाले नाना प्रकारकी आतशबाजोंसे सजे पुष्प-वृक्ष-लता आदिको, हजारों चन्द्रमाओंकी चांदनीके कृत्रिम दीपवृक्षोंको, दीपमालाओंको, रथोंमें रखे हुए वनावटा व्याघ्र-नाज आदिको, औषधियोंसे भरे हुए मोर तथा चत्तरी आदिको देखने लगे ॥३०२-३०६॥ सब दम्पता भी आनन्दसे उस कौतुकका देख रहे थे ।
 ■ प्रकार विविध उत्सवों सहित ■ राम आदि बालक राजा जनकके भवनका गये ॥ ३१०॥ वहाँ जाँ तथा ह्वायियोंसे उत्तरकर ये मण्डपके अँगनमें लड़े हाँ गये । वाल्मीकि आदि मुनियोंसे घिरे हुए दोनों पक्षके गुरु वसिष्ठ तथा गीतमपुत्र शतानन्दने प्रसन्नतासे मधुपर्क (मधुनिश्चित दही) का विधान और आसन आदिका विधान क्रमशः करवाया ॥ ३११॥ ३१२॥ पश्चात् राजा दशरथने गुरु वसिष्ठको साथ लेकर सहर्ष भावी पुत्रवधुओंकी पूजा की । फिर शुभ मुहूर्त ■ सुलग्नमें मुनियों तथा गुरुजनतांने उन-उन वधुओं और उन-उन धीर बालकोंको पृथक्-पृथक् वेदियोंपर बैठाकर उन दम्पतियोंके बीचमें बस्त्रका आड़ करके मंगल-मय शब्दोंका उच्चारण किया । सभाके सभी मनुष्य चुप होकर उसे सुनने लगे । स्त्रियें केसरसे रंगे पाले धावल तथा फूल वरवधूके ऊपर वरसाने लगीं ॥ ३१३-३१४॥ सरस्वती, देवीतनय गणपति, सुखकारक शिव, सूर्य, चन्द्र, वायु, सब मुनि, चल-अचल जीव, वसों दिशाएँ, सर्प, मृगेंद्र, खग, नदी, पवित्र सरोवर, दैत्य, तार्थ, ब्रह्मा, इन्द्र, अग्निदेवता तथा नदी-समुद्र आदि तुम लोगोंका कल्याण करें ॥ ३१६॥ काशीपति श्रीविश्वनाथ भगवानका स्मरण ही तुम्हारे लिए सुन्दर लग्न, शुभ दिन, मङ्गल, विद्याचल तथा देवचल बन जाय ॥ ३१७॥ ऐसे मांगलिक शब्दों और मांगलिक वाजोंकी ध्वनि होने लगी । उसके बाद दोषमें पड़े हुए वस्त्रोंको हटा दिया गया और दोनों ओरके गुरुओंने "ॐ पुण्योऽस्तु" ऐसा कहा ॥ ३१८॥ इस प्रकार उन लोगोंने मिलकर विधिपूर्वक उनका विवाहकार्य तथा लाजाका हवन आदि सभी कुर्य मङ्गलपूर्वक संपादित कर दिया ॥ ३१९॥ तब मण्डपकी अँगनाईमें बड़े-बड़े बाजोंका विवाद होने लगा, वेस्वार्थें नाचने लगी, नाट और बन्दीबज यशोगान करने लगे ॥ ३२०॥

नटा मंगलगार्तेश्वरं हृष्टवृत्ते महाम्बुजैः । तदा दानान्यनेकानि चक्रतुस्ती नृपोत्तमौ ॥३२१॥
 अथ ते बालकाः सर्वे वक्रः स्थाप्य कर्डापुर्वं । कौसल्यादिवनिताभिर्जग्मुस्ते भोजनगृहान् ॥३२२॥
 तत्राग्निसिचनं चक्रुः संपूज्य त्वां च मामपि । ततो रामादिकाः सर्वे स्वस्वपत्न्या पृथङ्मुखाः ॥३२३॥
 चक्रुस्ते भोजनं दृष्टाः स्नाभिः सर्वत्र वेष्टिताः । राजा दक्षयश्चापि सुदृढिश्च नृपोत्तमैः ॥३२४॥
 पारैर्जानपदैरिष्टमुनिभिः परिवारितः । जनकस्य गृहं गत्वा चकार भोजनं मुदा ॥३२५॥
 कौसल्यायाः स्त्रियः स्त्रीभिश्चक्रुर्भोजनमुत्तमम् । सुमेधया प्रार्थितास्ता वंदिताश्च मुहुर्मुहुः ॥३२६॥
 एवं नानाममुत्साहांश्चकार जनको मुदा । अथ ते बालकाः सर्वे स्त्रीवाक्यान्मातृमभिधी ॥३२७॥
 स्वस्वपत्न्याः पादयोः स्वशिरोभिर्नननं मुहुः । चक्रुस्तुष्टचेतसस्ते तास्ता नेमुः पृथक् पृथक् ॥

कुङ्कुमाङ्कितपादाश्च तेषामकेषु ता ददुः ॥३२८॥

श्रीरामः समवाप्य भूमितनयामाशां जगत्स्वामिनीं सर्वात्मा वरहेतुमुन्दरतनुः कारुण्यपूर्णक्षणः ॥
 विद्युद्वर्णविराजमानवसनस्रलोकपचूडामाणः शोभापाप जगत्त्रयेऽन्यनुपमां मुक्ताविराजद्गलः ॥३२९॥
 चतुर्थे दिवसे राज्ञा वंशपात्रविराजितैः । दीपैर्नीराजिताः सर्वे विरेज् राघवादयः ॥३३०॥
 रामादीनां पारिवर्हान् ददौ जनकस्तदा । निघृतान् वारणेंद्रांश्च शिषिकाश्चापि तन्मिताः ॥३३१॥
 तुरगान् दशलक्षांश्च निघृतान् स्पन्दनान् ददौ । नानालङ्कारवासानि गोदामीसंवकादिकान् ॥३३२॥
 ददौ स राघवादिस्यो येषां मुख्या न विद्यन्ते । एवं सम्मानितास्तेन ते बाला जनकेन हि ॥३३३॥
 पूर्ववदुत्सवैश्च स्वस्वपत्न्या समन्विताः । गजार्हटा नृत्यगार्तस्ताभिः स्वमंडपं ययुः ॥३३४॥
 ततो राजा मासमेकं निनाय नृपवाक्यतः । ततः सैन्येन स्वपुर्गं गन्तुं पुर्या वहिर्ययौ ॥३३५॥
 सीतायां निर्यधुर्मुग्धाः साश्रुनेत्राः सुविह्वलाः । सुमेधास्ताः समालिख्य सौत्वयित्वा व्यसर्जयत् ॥३३६॥

नट लोग जोरसे मङ्गलगार्तेशोंको गंकर स्तुति करने लगे और दोनों नृपश्रेष्ठोंने अनेक दान दिये ॥ ३२१ ॥
 तदनन्तर वे सब बालक अपनी-अपनी बहूको कमरपर चढ़ाकर कौसल्या आदि माताओंके साथ भोजनालयमें
 गये ॥ ३२२ ॥ हे पार्वति ! वहाँ आग्निसंचन करके तुम्हारी तथा हमारी (शिव-पार्वतीकी) पूजा करनेके
 बाद राम आदिने अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ आनन्दपूर्वक भोजन किया और सब स्त्रियाँ उन्हें
 घेरकर लड़ी हो गयीं । राजा दक्षयने भी दूसरे राजाओंको, गृहजोंको, नगर तथा देशके लोगोंको
 और मुनियोंको से तथा जनकके घण्टर जाकर सहर्ष भजन किया ॥ ३२३-३२५ ॥ सुमेधासे वार-
 वार प्रार्थित तथा आनंदित कौसल्या आदि मित्रोंने भी अगान्ध मित्रोंके मान जाकर भोजन किया ॥ ३२६ ॥
 जनकके यहाँ अनेक सज्जारोह हुए । फिर उन बालकों ने होकर स्त्रियोंके कहनेसे माताओंके
 सम्मुख अपनी-अपनी स्त्रियोंके पैरोंपर आना-आना सिर रखकर नमस्कार किया । पश्चात् उन स्त्रियोंने
 भी उनकी अलग-अलग नमस्कार करके उनकी गोदीमें कुङ्कुमसे रंजित पावें रखे ॥ ३२७ ॥ ३२८ ॥
 समस्त संसारके आत्मारवरूप सुन्दर शरीरके धारण किये हुए, करुणापूर्ण नेत्रोवाले, विद्युत्के समान
 वर्णवाले, पीले वस्त्रोंका धारण किये हुए, बिलोकोके चूड़ामणित्वरूप गलेमें मोतीकी माला पहने हुए श्रीराम
 जगत्की आदिस्वामिनी और भूमितनया सीताको प्राप्त करके तीनों लोकोंमें अनुपम शोभाको प्राप्त हुए
 ॥ ३२९ ॥ चौथे दिन बालके पात्रमें जलाये हुए दीपकोंमें भीराजित तथा पूजित राम आदि चारों
 भाई बड़े ही शोभायमान होने लगे ॥ ३३० ॥ राजा जनकने राम आदिको ब्रह्मज दिव्य-दस लाख हाथी, दस
 लाख पालकियाँ, दस लाख घोड़े तथा दस लाख गधे, असंख्य अलङ्कार, पोशाक, गौर तथा दास-दासिएँ
 दीं । इस प्रकार राजा जनकके द्वारा सम्मानित वे बालक ॥ ३३१-३३३ ॥ अपनी-अपनी स्त्रियोंको साथ
 ले तथा हाथीपर सवार होकर नृत्य-गीत तथा वाजोंके अपने भण्डपको लौट आये ॥ ३३४ ॥ पश्चात्
 राजा दक्षय राजा जनकके आयहसे एक महीना वहीं व्यतीत करके अपने पुरको आनेके लिये सेनाके साथ
 उक्त पुरीसे बाहर आये ॥ ३३५ ॥ सीता आदि अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे बहुत विह्वल होकर बली । सुमेधाने उनकी

अथ राजा दशरथो जनकं विन्यवर्तयत् । तदा दशरथं प्राह जनकः साश्रुलोचनः ॥३३७॥
 अमरं कवोष्णम्लानस्यो विरहाद्द्रुमाक्षरः । एतावत्कालपर्यन्तं मीनाद्याः लालिना मया ॥३३८॥
 अधुना न्वमिमाम्बग्रे लालयन् कृतेक्षणैः । इन्द्रकन्या नृपतिं नन्वा मिथिलां जनको ययी ॥३३९॥
 ततो दशरथश्चापि स्नुषास्त्रीतनयादिभिः । नृपैः सन्धेन स्वपुत्रीं ययौ मार्गे सनैः शनैः ॥३४०॥
 अथ गच्छति श्रीरामे मैथिलाद्योजनत्रयम् । निमित्तान्यनिधोराणि ददर्श नृपसत्तमः ॥३४१॥
 नन्वा वसिष्ठं प्रवृच्छ किमिदं मुनिपुङ्गव । निमित्तानीह दृश्यन्ते विपमाणि समन्ततः ॥३४२॥
 वसिष्ठस्तमथो प्राह भयममार्गं सूच्यते । पुनरप्यभ्यां नेऽद्य शीघ्रमेव भविष्यति ॥३४३॥
 मृगाः प्रदक्षिणयांत त्वां पश्य शुभसूचकाः । पृथं वै वदतस्तस्य ववी घोस्तगोर्जनलः ॥३४४॥
 मुष्णंश्चतूपि सर्वेषां पांसुवृष्टिभिर्ययत् । ततो ददर्श एगमं जामदग्न्यं महाप्रभम् ॥३४५॥
 नीलमेघानिभं प्राञ्जुं अशमण्डलमंडितम् । धनुः रघुहस्तं च साक्षात्कालमिव स्थितम् ॥३४६॥
 कार्तवीर्यतिकं रामं दमश्चरियमर्दनम् । प्राप्तं दशरथस्याग्रे रक्तास्थं रक्तलोचनम् ॥३४७॥
 तं दृष्ट्वा भयमंत्रस्तो राजा दशरथस्तदा । अर्घ्यादिपूजां निस्मृत्य ब्राहि त्राहीति चाब्रवीत् ॥३४८॥
 दंडप्रवणिषत्याह पुत्रप्राणान्प्रयच्छ मे । इति ब्रुवंतं राजानमनादृत्य रघूत्तमम् ॥३४९॥
 उवाच निष्ठुरं वाक्यं क्रोधात्प्रचलितेन्द्रियः । न्यं गम इति मन्त्राग्ना चरमि श्रित्रियाधम ॥३५०॥
 द्वंद्वयुद्धं प्रयच्छाशु यदि त्वं क्षत्रियोऽसि मे । पुराणं जर्जरं चापं भवन्त्या न्यं दत्तमे मुधा ॥३५१॥
 इदं तु वैष्णवं चापमारोपयामि चैवगुणम् । तदिं युद्धं त्वया मादृ न करोमि नृपत्मज ॥३५२॥
 नो चेत्सर्वान्हनिष्यामि क्षत्रियांतकरस्त्वहम् । इति तद्वचनं श्रुत्वा राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥३५३॥

छातीसे लगाया तथा आश्वासन देकर दिया किया ॥ ३३६ ॥ तब राजा दशरथने राजा जनकका सौतेनेके लिये कहा । राजा जनक आँखोंमें आँसू भरकर कुछ गरम पानी लेते हुए, सौतेन पुरा विये पुत्रियोंके वियोगसे गद्गदस्वर होकर राजा दशरथसे कहने लगे कि आज तक मैंने सीता अर्थात् साक्ष्म-पाक्ष्म किया और आजसे आप अपनी कृपादृष्टिसे इनका पालन-पोषण करें । ऐसा कह और राजाको नमस्कार करके राजा जनक मिथिलाको नौट गये ॥ ३३७-३३९ ॥ राजा दशरथ भी पुत्रों, पुत्रवधुओं, स्त्रियों, राजाओं तथा सेनाकी साथ लेकर घेरे-घेरे अपनी नगरोंको चले ॥ ३४० ॥ तब श्रीराम मिथिल देशमें निवलकर वाण्ट कोस भागे वढ़े । तब राजा दशरथको अतिघोर अपशकुन दिखाई दिये ॥ ३४१ ॥ तब वे नमस्कार करके वसिष्ठजीसे कहने लगे—हे मुनिपुङ्गव ! यह मत धारण है कि जागें तरक ये अपशकुन दिखाई दे रहे हैं ? ॥ ३४२ ॥ वसिष्ठजीने कहा कि ये भारी भारी सूचक हैं । परन्तु शीघ्र ही आपका भय निवृत्त हो जायगा ॥ ३४३ ॥ देखिए, शुभसूचक हरिण गधिनो ओर जा रहे हैं । इतना कहना ही कि घोरतर वायु बहने लगी ॥ ३४४ ॥ उसने धूलसे सबकी आँखें भर दी । वायुमें वढ़े तेजस्वी, नीले मेघके समान रंगवाने, ऊँची जटाओंसे सँवला, हाथमें धनुष तथा परशु लिये, साक्षात् कालके समान लाल मुँह किये हुए, जलतेकीर्प (सहस्रबाहु) की जगमेदाने, उद्दण्ड तथा घमण्डी क्षत्रियोंका नाश करनेवाले परशुरामजी दमरुके आगे खड़े हो गये ॥ ३४५-३४७ ॥ राजा जनक देखकर भयसे विह्वल हो सत्कार-पूजा भूत्कर ब्राहि-ब्राहि करने लगे ॥ ३४८ ॥ उन्होंने दृढकर प्रणाम करके कहा कि आप मेरे पुत्र रामके प्राण वचाये । परन्तु परशुरामने अधातुर होकर राजाका आदेश करके रघूत्तम रामसे इस प्रकार निष्ठुर वचन कहा—अरे क्षत्रियाधम राम ! तू मेरे नामसे संसारमें सुठ-सुठ क्यों प्रसिद्ध हुआ फिरता है ? ॥ ३४९ ॥ ३५० ॥ यदि तू सच्चा क्षत्रिय हो तो मेरे साथ युद्ध कर । पुराना सड़ा हुआ धनुष तोड़कर क्यों अपनी बड़ाईकी झूठी शोण हाँक रहा है ? ॥ ३५१ ॥ ओ रघुवंशज ! यदि तू विष्णुके धनुषपर शोरी बड़ा दे तो मेरे साथ युद्ध करेगा ॥ ३५२ ॥ नहीं तो तुम सबको मार डालूँगा । क्योंकि क्षत्रियोंका नाश करता ही मेरा ॥ ३५३ ॥ परशुरामका यह वचन सुनकर रामने कहा—॥ ३५३ ॥

वयमेकगुणाः स्वामिन् पृथं चैव गुणाधिकाः । गोविप्रदेवनासीषु राधवा नास्तधारिणः ॥३५४॥
 मयैतैश्च जीवितानि तव पादार्पितानि हि । यथेष्टं घातयास्माकं विप्रैर्युद्धं करोमि न ॥३५५॥
 इति ब्रुवति रामे वै चचाल वसुधा भृशम् । क्रुद्धं दृष्ट्वा जामदग्न्यं क्षत्रियांस्तमुपस्थितम् ॥३५६॥
 अंधकारो बभूवाथ चुक्षुभुः सप्त सागराः । भग्नो दाशरथिर्हीनो वीक्ष्य तं भार्गवं रुवा ॥३५७॥
 धनुराच्छिष्टं तदस्तादारोप्य गुणमंजसा । तुण्डीराद्व्याणमादाय संधायाकृष्य वीर्यवान् ॥३५८॥
 उवाच भार्गवं रामः मृणु वचो भग्न । लक्ष्यं दर्शय बाणस्य ह्यमोघो रामसायकः ॥३५९॥
 लोकान् पादयुगं बापि वद क्षीघ्रं ममाश्रया । एवं वदति श्रीरामे भार्गवो विकृताननः ॥३६०॥
 संस्मरन् पूर्ववृत्तांतमिदं वचनमब्रवीत् । राम राम महाबाहो जाने त्वां परमेश्वरम् ॥३६१॥
 पुराणपुरुषं विष्णुं जगत्सर्गलपोद्भवम् । बान्येऽहं तपसा विष्णुमाराधयितुमंजसा ॥३६२॥
 गत्वा हि तीर्थे गोमत्यास्तपसा तोम्य शक्तिजम् । अहर्निशं महात्मानं नारायणमनन्यधीः ॥३६३॥
 वस्याज्ञेन मया भूम्यामवतारो घृतोऽस्ति हि । भूभारहर्णार्थाय कार्तवीर्यवधेऽप्यस्य ॥३६४॥
 ततः प्रसन्नो देवेशः शंखचक्रगदाधरः । उवाच मां रघुश्रेष्ठ प्रसन्नमुखपंकजः ॥३६५॥

श्रीभगवानुवाच

उत्तिष्ठ तपसो ब्रह्मन् विदितं ते तपो महत् । भच्चिदंशेन युक्तस्त्वं जहि हृदयपुंगवम् ॥३६६॥
 कार्तवीर्यं पितृहणं यदर्थं तपसा श्रमः । ततस्त्रिःसप्तकत्वस्त्वं इत्वा क्षत्रियमडलम् ॥३६७॥
 कृत्स्नां भूमिं कश्यपाय दत्त्वा शान्तिमुपावह । त्रेतायुगे दाशरथिर्भत्वा रामोऽहमव्ययः ॥३६८॥
 उत्पत्स्ये परया भक्त्या तदा द्रक्ष्यसि मां पुनः । मत्तेजः पुनरादास्ये त्वयि दत्तं मया कृतम् ॥३६९॥
 तदा तपश्चरंल्लोके तिष्ठ त्वं ब्रह्मणो दिनम् । इन्मुक्त्वाऽन्नर्द्धधे देवस्तथा सर्वं मया कृतम् ॥३७०॥
 स एव विष्णुस्त्वं राम जातोऽसि ब्रह्मणाऽर्चितः । मयि स्थितं तु त्वत्तेजस्त्वयैव पुनराहृतम् ॥३७१॥

हे स्वामिन् ! हम एक गुणवाले तथा आप अनेक गुणवाले हैं । रघुवंशी लोग गी, बाह्यण, देवता तथा स्त्रीपर
 हास्य नहीं उठाते ॥ ३५४ ॥ मैंने और इन सबने आपके चरणोंमें जांवत अर्पण कर दिया है । आप जैसा चाहें
 वैसा करें । यदि चाहें तो भार डालें, परन्तु मैं बाह्यणके साथ युद्ध करादि नहीं कहेंगा ॥ ३५५ ॥ रामके
 ऐसा कहनेपर क्षत्रियोंके नाशकस्वरूप जामदग्न्य (परशुराम) को क्रुद्ध देखकर वसुधा कांपने लगी ।
 धारों और अन्धकार छा गया तथा सातों समुद्र क्षुब्ध हो उठे । तब दशरथपुत्र वीर रामने श्री परशुरामको
 कोबसे देखकर उनके हाथसे धनुष छीन लिया और दोनों चढ़ा तथा भागेसे बाण निकाल और उसपर चढ़ा
 तथा बलपूर्वक खींचकर भार्गव परशुरामसे कहने लगे—हे ब्रह्मन् ! मेरी बात सुनिए और मुझे कष्ट
 बताइए । मेरा बाण खाली नहीं जा सकता ॥ ३५६-३५७ ॥ क्षीघ्र ही मुझे या तो लोकोंको विद्ध करनेकी
 आज्ञा दीजिए अथवा अपने दो चरणोंको । रामके इस वचनको सुनकर विह्वलमुख होते हुए परशुरामने
 पूर्व वृत्तान्तको स्मरण करते हुए कहा—हे राम ! हे राम ! हे महाबाहो ! मैं आपको जगत्की उत्पत्ति,
 स्थिति तथा प्रलयके कारणस्वरूप पुराणपुरुष साक्षात् परमेश्वर विष्णु हूँ । वचनमें मैंने गोमटो-
 तीर्थमें जाकर शार्ङ्गधनुषचारी विष्णुभगवान्को, जिनके एक वंशसे मैंने संसारमें भूभार हरण करने तथा
 कार्तवीर्यको मारनेके लिए अवतार लिया है, उन्हें अपने तपसे प्रसन्न किया । तब प्रसन्नमुख होकर शंख-
 चक्रगदापद्मधारी उन देवोंने मुझसे कहा ॥ ३६०-३६५ ॥ श्रीभगवान् बोले— हे ब्रह्मन् ! तप करना छोड़कर तू
 उठ खड़ा हो । तेरे तपोबलको जान लिया है । मेरे चिदंशसे पुनः होकर तू हृदयस्थ तथा अपने पिताको
 मारनेवाले कार्तवीर्यको भार । जिसके लिए तूने उपका परिश्रम किया है । बादमें इसकीस बार क्षत्रिय-
 समुदायका नाश करके पृथिवी कश्यपको दान देकर शान्त हो । पश्चात् त्रेतायुगमें मैं ब्रविताशी
 दाशरथी राम होकर उत्पन्न होऊँगा । तब तू परम भक्तिसे मुझे देखेगा । उस समय मैं तुझे दिया हुआ
 अपना तेज लौटा दूँगा ॥ ३६६-३६९ ॥ तदनन्तर ब्रह्माके एक दिन तक तू करता हुआ संसारमें

अद्य मे सकलं जन्म प्रतीतोऽसि मम प्रभो । नमोऽस्तु जगतां नाथ नमस्ते भक्तिभावन ॥३७२॥
 नमः कारुणिकान्तं रामचन्द्र नमोऽस्तु ते । देव यद्यत्कृतं पुण्यं मया लोकजिगीषया ॥३७३॥
 तत्सर्वं तव दाणाय भूयाद्राम नमोऽस्तु ते । ततो मुक्त्वा शरं रामस्तत्कर्म भस्ममान्करोत् ॥३७४॥
 ततः प्रसन्नो भगवान् श्रीरामः करुणामयः । जामदग्न्यं तदा प्राह वरं वरय चेति सः ॥३७५॥
 ततः प्रीतेन मनसा भार्गवो राममब्रवीत् । यदि मेनुग्रहो राम तवास्ति मधुसूदन ॥३७६॥
 त्वद्भक्तसंगस्त्वत्पादे मम भक्तिः सदाऽस्तु वै । तथेति राघवेणोक्तः परिक्रम्य प्रणम्य तम् ॥३७७॥
 पूजितस्त्वदनुज्ञातो महेन्द्राचलमन्वगात् । रावणेन जिता देवाः सगर्वो रावणो महान् ॥३७८॥
 सहस्रबाहुना बद्धः सोऽर्जुनो भार्गवेण हि । इतः क्षणेन समरे सोऽद्य श्रीभार्गवोऽपि च ॥३७९॥
 जितस्त्वदनुपा वाणमोचनाद्राघवेण हि । एवं श्रीरामचन्द्रस्य पौरुषं किं वदाम्यहम् ॥३८०॥
 अथ राजा दशरथो रामं मृतमिवागतम् । दृढमालिख्य हर्षेण नेत्राभ्यां जलमुत्सृजन् ॥३८१॥
 ततः प्रीतेन मनसा स्वस्थचित्तः पुरीं ययौ । अयोध्यायां सुपत्रोऽपि नृपं श्रुत्वा समागतम् ॥३८२॥
 नगरीं शोभयामास पताकाध्वजतोरणैः । वाणैर्द्रुपुष्कृत्य रामं प्रत्युद्ययौ जघान् ॥३८३॥
 अथो नदस्तु बाघेषु राजा पुत्रः सुहर्जनः । विवेश नगरं पौरैः पश्यन्नुत्पादिकं पथि ॥३८४॥
 रामादयः स्वपत्न्या तै रजसंस्था ययुः पुरीम् । ननुतुर्वाग्भार्यश्च तुष्ट्युर्मगधादयः ॥३८५॥
 एवं राजा गृहं गत्वा वाक्कैः स्वीयमघनि । रमापूजाः कारयित्वा ददौ दानान्यनेकशः ॥३८६॥
 तदाऽलङ्कारवस्त्राद्यैः सुहृदः पार्थिवादयः । रामादीन्पूजयामासुस्तथा दशरथं नृपम् ॥३८७॥

रह । ऐसा कहकर प्रभु अन्तर्धान हो गये । मैंने भी [] वैसे [] किया ॥ ३७० ॥ हे राम ! वही आप ब्रह्मासे प्राप्त होकर पृथिवीपर अवतीर्ण हुए हैं । मेरे तनमें स्थित अपना तेज आपने ही फिर आज आहरण कर लिया है ॥ ३७१ ॥ आपके दर्शनसे मेरा जन्म सकल हो गया । हे भक्तिभावन ! हे जगन्नाथ ! हे करुणाशील ! हे रामचन्द्र ! आपको नमस्कार है । हे देव ! लोकोको जीतनेकी इच्छासे मैंने जो जो कर्म किये हैं, वे सब आपके वाणको समर्पित हैं (अर्थात् उन्हें आप अपने वाणका लक्ष्य बनाकर नष्ट कर दें) । तब रामने वाण छोड़कर उनके कर्मोंको भस्म कर दिया ॥ ३७२-३७४ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होकर करुणामय भगवान् श्रीरामने परशुरामसे कहा कि तुम वर मांगो, [] तुमपर प्रसन्न हूँ ॥ ३७५ ॥ यह सुनकर प्रसन्न मनसे भार्गवने रामसे कहा—हे मधुसूदन राम ! यदि [] मेरेपर अनुग्रह रम्बते हों तो मुझे सदा आप अपने भक्तोंका संग तथा अपने विषयमें निर्मल भक्ति प्रदान करें । तब रामचन्द्रजीने 'तयाग्यु' कहा । तदनन्तर परशुराम उन्हें नमस्कार तथा परिश्रमा करके और आज्ञा लेकर महेन्द्राचलकी ओर चल दिये । जिस रावणने देवताओंको जीता था, उस सगर्व महान् रावणको सहस्रबाहु अर्जुनने बाँध लिया था । उसी अर्जुनको परशुरामने गुद करके क्षणभङ्गमें मार डाला था । उन परशुरामको भी रामने वहींके दिये हुए धनुषपर वाण चड़ाकर जीत लिया । हे पार्वती ! इस प्रकार रामके पुरुषार्थका वर्णन मैं कहाँ तक कहूँ । उनके बल-वीर्यका अन्त नहीं है ॥ ३७६-३८० ॥ पश्चात् राजा दशरथ रामको मरकर लौटे हुए की तरह आलिंगन करके हर्षके आँसू बहाने लगे ॥ ३८१ ॥ बादमें प्रसन्न मन होकर वे स्वस्थ चित्तसे अयोध्यापुरीको चल पड़े । उधर अयोध्यामें सुमन्त्रने [] राजा दशरथके आगमनकी बात सुनी तो उन्होंने नगरीको पताका, ध्वजा तथा तोरणोंसे खूब सजाया और हाथी लेकर रामको लेनेके लिए आगे आये ॥ ३८२ ॥ ३८३ ॥ राजा दशरथने पुत्र-मित्र तथा नगरनिवासियोंके साथ रास्तेमें नृत्य आदि देखते हुए बाजे-गाजेके साथ नगरमें प्रवेश किया ॥ ३८४ ॥ राम आदिने भी अपनी स्त्रियोंके साथ हाथियोंपर बँडकर पुरीमें प्रवेश किया । वेश्यायें नृत्य करने लगीं तथा भाट आदि स्तुति करने लगे ॥ ३८५ ॥ राजाने धर जाकर दासोंसे लक्ष्मीका पूजन करवाया और अनेक प्रकारके दान दिये ॥ ३८६ ॥ पश्चात् सुहृदों तथा राजाओंने बस्त्र-अलङ्कारसे राम कादिकी और राजा दशरथकी पूजा की ॥ ३८७ ॥

दशरथोऽपि तान्सर्वान् पूजयामास वैभवं । तसस्ते सुहृदः सर्वे नृपाश्च स्वस्थलं ययुः ॥३८८॥
प्रीत्या युधाजितं राजा स्थापयामास स्वांतिकम् । रामाद्या रमयामासुः स्वस्वदारैः स्वसन्धसु ॥३८९॥

पार्वत्युवाच

श्रीविष्णोस्तु चिदंशेन जामदग्न्यस्त्वया स्मृतः ॥३९०॥

तद्व्यायं राघवः किं नुद मे संशयं प्रभो ।

श्रीशिव उवाच

अष्टावंशेन विधृता अवताराश्च विष्णुना ॥३९१॥

रामकृष्णावतारौ च पूर्णरूपेण तौ धृतौ । वरिष्ठौ सकलेश्वेवावतारेषु ॥३९२॥

तयोरपि वरः पूर्वः सत्यसंधो जितेन्द्रियः । ज्ञेयो रामावतारो हि नानेन सदृशः परः ॥३९३॥

कृष्णः कृष्णरुचिर्ज्ञेयः श्रीरामो रुक्मसंरुचिः । एवं गिरीद्रजे प्रोक्तं सीतायाश्च स्वयंवरम् ॥

अस्य सर्गस्य श्रवणान्मंगलं लभ्यते नरैः ॥३९४॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे सीतास्वयंवरौ नाम तृतीयः सर्गः ॥३॥

चतुर्थः सर्गः

(रामका शत्रु राजाओंके साथ युद्ध तथा विष्णुको बुन्दाका श्राप)

श्रीशिव उवाच

अथ सीतायुतः श्रीमान् रामः साकेतसंस्थितः । बुभुजे विविधान् भोगान् राजसेवापरोऽभवत् ॥ १ ॥

शरत्कालाश्विने मासि जनकेन स्वमन्त्रिणः । आह्वानाय च राजानं प्रेषितास्त्वरितं ययुः ॥ २ ॥

तानागतान्दशरथः शीघ्रं सत्कृत्य सादरम् । पप्रच्छागमने हेतुं तेऽपि नत्वा तभूचिरे ॥ ३ ॥

दीपावत्युत्सवार्थं त्वां स कुटुम्बं समन्त्रिणम् । पौरजानपदैः साकमाह्वयामास ते सुहृत् ॥ ४ ॥

तत्तेषां वचनं श्रुत्वा दूतानाह्वापयन्नृपः । कथ्यतां नगरे राष्ट्रे गमनं मिथिलां प्रति ॥ ५ ॥

राजा दशरथने भी जन सबका अनेक विभवोंसे सत्कार किया । बादमें ॥ सब सुहृद् तथा राजा लोग अपने-अपने स्थानोंको चले गये ॥ ३८८ ॥ किन्तु राजाने प्रीतिपूर्वक युधाजित्को रोक लिया । राम-रुक्मण तथा भरत आदि भी अपनी-अपनी स्त्रियोंके ॥ जाकर अपने-अपने महलोंमें रमण करने लगे ॥ ३८९ ॥ पार्वतीजी कहने लगीं—हे शिवजी ! श्रीविष्णुके चिदंशसे परशुरामजीका अवतार आपने बताया और उसीसे आपने रघुपति रामचन्द्रजीका भी अवतार ॥ है । फिर इन दोनोंमें ॥ अन्तर ॥ ? सो कहकर मेरी शक्का दूर कीजिये । श्रीशिवजीने उत्तर दिया कि विष्णुभगवानने अपने अंशसे कुल आठ अवतार धारण किये थे । उनमेंसे राम ॥ कृष्णका पूर्ण अवतार था । सब अवतारोंमें ॥ दो अवतार श्रेष्ठ थे ॥ ३९०-३९२ ॥ उन दोनोंमें भी सत्यवादी ॥ जितेन्द्रिय रामावतार उत्तम था । रामके समान और कोई नहीं था ॥ ३९३ ॥ कृष्णको कृष्णरुचिवाले ॥ रामको रुक्मरुचिवाले जानो । इस प्रकार शिवजीने गिरीन्द्रतनया (पार्वती) को सीताका स्वयंम्बर कह सुनाया । इस सर्गको सुननेवाले भगुणोंको मङ्गल लाभ होता है ॥ ३९४ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये 'ज्योत्स्ना'-भाषाटीकायां सारकाण्डे सीतास्वयंवरौ नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

श्रीशिवजी बोले—हे देवि । श्रीमान् ॥ सीताके ॥ अयोध्यामें विविध राजभोगोंका सुख भोगने लगे ॥ १ ॥ शरत्कालके आश्विन महीनेमें राजा जनकने अपने मन्त्रियोंको महाराज दशरथको बुलानेके लिये भेजा । वे शीघ्र अयोध्या जा पहुँचे ॥ २ ॥ ॥ दशरथने उनका आदर-सत्कार करके अनेक कारण पूछा । मन्त्रियोंने नमस्कार करके कहा—॥३॥ आपके मित्र ॥ जनकने सकुटुम्ब आपको मन्त्रियों, पुत्रवासियों तथा

सुमुहूर्ते ततो राजा हस्त्यश्वरथपक्षिभिः । पौरैर्जनपदैः शकं ययौ करिविराजितः ॥ ६ ॥
 रातः पृष्ठे समाजग्मूर्गजोपरि विराजिताः । रामलक्ष्मणभग्नशत्रुघ्नास्ते स्वलंकृताः ॥ ७ ॥
 कौसल्याद्या राजदाराः स्नुषाभिस्ताः पृथक् पृथक् गन्मणिक्चमुक्तादिशो धितासु वरासु च ॥ ८ ॥
 करिणीषु समासीना वेष्टिता वेत्रपाणिभिः । धातुकाभिः स्वदासीभिर्ययुर्वस्त्रादिभूषिताः ॥ ९ ॥
 आगतं नृपतिं भुत्वा जनकः पौरवासिभिः । प्रत्युज्जगाम हर्षेण निनाय नगरीं प्रति ॥ १० ॥
 वाद्यधोषनिनादैश्च दुन्दुभीनां महास्वर्नैः । वारांगनानां नृत्यार्चगायकानां च गायनैः ॥ ११ ॥
 मार्गे मार्गे महासौधारूढस्त्रीणां कदम्बकैः । पुष्पवृष्टिविवर्षाभिर्ययौ नृपगृहं नृपः ॥ १२ ॥
 ततो गृहाणि रम्याणि पूरितान्यभवारिभिः । प्रविवेश नृपश्रेष्ठो जनकेनातिमानितः ॥ १३ ॥
 ततो नानासमुत्साहैर्मिष्टार्चनृत्यगायनैः । वस्त्राभरणैः सर्वान् जामातृन् विश्लेषतः ॥ १४ ॥
 मणिरत्मादिदीपैश्च मुहुर्नीराजनैरपि । जनकः पूजयामास दीपावल्यां महादिने ॥ १५ ॥
 दीपोत्सवैर्महापुष्पैर्वलिराज्यं प्रवर्तते । आनन्दः सर्वलोकानां मंगलानि गृहे गृहे ॥ १६ ॥
 अभ्यंगोद्वर्तनार्चश्च वरपक्षाभमोजनैः । गोदासदासीदानैश्च हस्त्यश्वरथपक्षिभिः ॥ १७ ॥
 चकार तुष्टान् जामातृन् जनको नृपतिं तथा । नृपपत्नी स्वदुहितरयोष्यास्थादिकान् क्रमात् ॥ १८ ॥
 ततः प्रस्थानमकरोत्पुत्रीं दशरथो नृपः । ततो राजा दशरथः सैन्येन परिवेष्टितः ॥ १९ ॥
 ययौ शनैः शनैर्मार्गं सुहृन्मन्त्रिपुरःसरः । एतस्मिन्नन्तरे मार्गे सीतार्थं धनुषा पुरा ॥ २० ॥
 भग्नमाना नृपतयः पूर्वैरमनुस्मरन् । असंख्याताः ससैन्यास्ते रुहधुर्नृपतिं पथि ॥ २१ ॥

देशवासियोंके सहित दीवालीके उत्सवपर बुलाया है ॥ ४ ॥ उनका यह वचन सुनकर राजाने दूतों द्वारा मिथिला चलनेका समाचार सारे गाँवों तथा नगरोंमें कहला दिया ॥ ५ ॥ फिर शुभ मुहूर्त देखकर राजा अश्वारूढ़, गजारूढ़ तथा पैदल सैनिकोंको लेकर नगर तथा राज्यके लोगोंके हाथोंपर सवार होकर चले ॥ ६ ॥ राजाके पीछे सुन्दर अलंकार धारण करके हाथीपर सवार होकर राम, लक्ष्मण, भरत और लघुग्न चले ॥ ७ ॥ उनके पीछे कौसल्या आदि राजाकी स्त्रिएँ भी अपनी-अपनी पुत्रवधुओंके साथ रत्न-मणिक्च-मोती आदिसे सुशोभित उत्तम हथिनियोंपर अलग-अलग सवार हो बैलचारी सिपाहियों, बाइयों तथा दासियोंसे घिरी हुई वस्त्र आदिसे भूषित होकर चल पड़ीं ॥ ८ ॥ ९ ॥ राजा दशरथका आगमन सुनकर राजा जनक पुरवासियोंको साथ लेकर स्वागत करनेके लिए गये और राजा दशरथको नगरमें ले आये ॥ १० ॥ रास्तेमें जगह-जगह बाइयोंका धोषनाद और मगाहोंका नुमूल निनाद होने लगा, वारांगनाएँ नाचने लगीं, गायकोंके गाने होने लगे तथा बड़े-बड़े महलोंकी अटारियोंपर स्थित स्त्रियोंके झुण्ड फूलोंको बौछार करने लगे । इस प्रकार राजा दशरथ राजभवनमें पहुँचे ॥ ११ ॥ १२ ॥ पश्चात् जनकसे सम्मानित होकर अन्न-जल आदिसे परिपूर्ण भवनोंमें प्यारे ॥ १३ ॥ बादमें विशेषरूपसे राजा जनकने जामाताओंकी विविध उत्सवोंसे, मिष्टान्नसे, नृत्यसे, गीतसे, वस्त्रसे, अलंकारसे तथा मणिरत्नमय दीपकोंका आरतीसे दीपावलीके शुभ दिन बारम्बार पूजन तथा सत्कार किया ॥ १४ ॥ १५ ॥ दीपोत्सवके महापुष्पसे राजा बलिका राज्य आरम्भ हुआ था । इसीसे सब लोगोंको आनन्द हुआ तथा घर-घर मंगल होने लगा ॥ १६ ॥ राजा जनकने उन जामाताओंके शरीरमें तेल और घन्दन आदि लगा तथा गुलाबजल छिड़ककर इत्र आदि लगाया और उन्हें सुन्दर पकवान जिम्मा तथा हाथी, घोड़े, रथ, गाएँ, प्यादे, दास तथा दासिएँ देकर जमाइयों और राजा दशरथको सन्तुष्ट किया । तदनन्तर क्रमशः राजाको, स्त्रियोंको, अयोध्यानिवासियोंको और अपनी लड़कियोंको भी राजा जनकने यथेच्छ वस्तुएँ देकर सन्तुष्ट किया ॥ १७ ॥ १८ ॥ तदनन्तर जब कि राजा राजाओं, मन्त्रियों, सेना मित्रोंके साथ बीरे-धीरे अयोध्याको जा रहे थे । उसी समय उन राजाओंने जिनका कि सीतास्वयम्बरमें भागभाग हुआ था, वैरका स्मरण करके असंख्य सेनाओंके साथ आकर राजा दशरथको घेर लिया । उनको देखा

तान्दृष्ट्वा नृपतीश्चापि किमेतदिति विह्वलः । मन्त्रिभिर्मन्त्रयामास जनकः स्वजनरपि ॥२२॥
 एतांस्मन्न्तरे रामः श्रुत्वा चिन्तामवे निजम् । निमग्नं पितरं शीघ्रं ययौ लक्ष्मणसंपुतः ॥२३॥
 नरवा दशरथं रामः किञ्चिन्नम्र इदं जगौ । तान् राजन्न कर्तव्या चिन्ता मति मयि त्वया ॥२४॥
 क्षणादेव वधिष्यामि पश्य न्वं कौतुकं मम । ततो रामवधः श्रुत्वा राजाऽऽलिङ्ग्य रघूत्तमम् ॥२५॥
 ग्राह पञ्चापिको बालस्त्वं कथं योद्धामच्छसि । अरण्ये सकुटुम्बोऽहं वेष्टितोऽस्मि नृपाधर्मः ॥२६॥
 अहमेव गमिष्यामि योद्धुं रक्षस्व बाहिनीम् । तत्तातवचनं श्रुत्वा रामस्तं पुनरग्रवीत् ॥२७॥
 यदा मे कुठितांशुर्गति पश्यामि न्वं रणागणे । तदा मे कुरु साहाय्यं तावदत्र स्थिरो भव ॥२८॥
 स्वां बाहिनीं सकुटुम्बां तात न्वं रक्ष मद्भिः । इत्युक्त्वा पितरं नत्वा सज्जीकृत्य शरासनम् ॥२९॥
 जगाम रथमारूढो लक्ष्मणोऽपि तमन्वगात् । तां दृष्ट्वा भरतश्चाथ अनुष्मोऽपि जगाम सः ॥३०॥
 तान्दृष्ट्वा दशसाहस्रीं राजसेनामचोदयत् । ननस्ते पाथिवाः सर्वे रथस्थं तं रघूत्तमम् ॥३१॥
 निर्भीक्ष्य दर्शयामासुः स्वसेनायां परस्परम् । समागतोऽयं श्रीरामः स्वपितृस्यन्दनस्थितः ॥३२॥
 एष र्वं सुमहच्छ्रीमान् विटर्पी सम्प्रकाशते । विराजत्युज्ज्वलस्कन्धः कोविदारच्वजो रथे ॥३३॥
 दशरथाश्रया तस्य रथे शस्त्रैर्धूपरिते । पञ्चवदपताकोच्चकोविदारे स्थितस्त्वयम् ॥३४॥
 एवं वदन्तस्ते सर्वे रथैर्धुं समाययुः । ततोऽभवन्महद्युद्धं घोरं तन्व परस्परम् ॥३५॥
 अश्वः शस्त्रंभिन्दिपालः शतघ्नीभिः परस्पर्धः । रामस्य सैनिकान् भुक्त्वा राजानो राममन्वयुः ॥३६॥
 ते वर्षर्षुर्महाशस्त्रैर्बाणव्याप्य दिगम्बरम् । तान्दृष्ट्वा नृपतीन् सर्वान् राममेवामिसम्मुखान् ॥३७॥
 लक्ष्मणः प्राद्वक्ष्यीद्य भरतोऽपि च शत्रुदा । स्वामितारकवदोरमासीद्युद्धं सुदारुणम् ॥३८॥
 ततो नृपतयः सर्वे शस्त्रैर्धर्मरतं तदा । विष्वा मूर्च्छितं चक्रुः स्पन्दनात्पतितो ह्रवि ॥३९॥

तो घबराकर राजा दशरथ मन्त्रियों तथा स्वजनोको पास बुलाकर विचार करने लगे कि यह क्या है ? ॥ १९-२२ ॥ अपने पिताको चिन्तासमुद्रमें डूबा सुनकर राम लक्ष्मणके साथ उनके पास गये ॥ २३ ॥ पिता दशरथको नमस्कार करके राम नम्रतापूर्वक कहने लगे—हे । हे राजम् ! मेरे रहते हुए आपका चिन्ता नहीं करना चाहिए ॥ २४ ॥ मैं इन सबको मार डालूँगा । आप मेरा कौशल देखिये । रामके वचनको सुनकर राजाने उनका आलिंगन करके कहा - राम ! वर्षका बालक तू युद्ध करेगा ? इस अरण्यमें सकुटुम्ब भुक्षको इन नीच राजाओंने घेरा है । इसलिए मैं ही इनको मारूँगा और सैन्याको रक्षा कर । पिताके इस वचनको सुनकर राम उनसे फिर कहने लगे—॥ २५-२७ ॥ जब आप मेरी शक्तिकी रणाङ्गणमें कुप्तिस्त होते देखें, तब मेरी सहायता करिएगा । तबतक आप मेरे कहनेसे यहीं रहकर सकुटुम्ब अपनी सेनाकी करें । ऐसा कहकर रामने पिताको नमस्कार किया और अनुपको ठीक करके रथपर चढ़कर चले दिये । उनके लक्ष्मण भी गये । उन दोनोंको जाते देख भरत और शत्रुघ्न उनके साथ चल दिये ॥ २८-३० ॥ उन सबको जाते देखकर राजा दशरथने दस हजार सैनिकोंकी सेना उनके साथ भेजी । उधर राजे रथस्थित रामको जाते देख अपनी सेनामें एक दूसरेको दिलाते लगे कि राम अपने पिताके रथपर चढ़कर रहा है । यह बड़ा तेजस्वी है । विशाल शास्त्रावाने पेड़के समान ऊँचे तथा शोभित कन्धेवाला राम तयमें कोविदार (कश्मिर या रक्तकाचन) की लगाये हुए अपने पिताकी आज्ञासे उनके ही रथपर सवार होकर आ रहा है । ऐसा कहकर राजे युद्ध करनेके लिए रथ लेकर चले । पश्चात् परस्पर बड़ा भारी युद्ध होने लगा ॥ ३१-३५ ॥ सब एक दूसरेपर अश्व, शस्त्र, तीर, शीप तथा फरसे चलाने लगे । वे राजे रामके सैनिकोंको छोड़कर रामपर सपटे ॥ ३६ ॥ वे लोग आकाशको व्याप्त करके बड़े-बड़े शस्त्रों तथा बाणोंकी वर्षा करने लगे । उन सब राजाओंको अकेले रामके साथ युद्ध करते देख लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न भी दौड़ पड़े और उनमें शरकासुर तथा कालिकेमकी तरह भयानक होने लगा । तब

भरतं पतितं दृष्ट्वा शत्रुघ्नं विन्यधुः शरैः । तं चापि विरथं कृत्वा द्रुवुर्लक्ष्मणं नृपाः ॥४०॥
 वधुर्निशितैर्वाणश्चकुस्तं व्याकुलं रणे । तथैव राघवं चापि शरैराच्छादयन्नुपाः ॥४१॥
 ततः श्रीरामचन्द्रोऽपि लीलया समरांगणे । पश्यन्सु जालरंघ्रंश्च कौमल्याद्यासु मातृषु ॥४२॥
 सीतया भ्रातृपत्न्याषु पित्रा मंत्रिकुलेष्वपि । टणत्कुल्य महच्चाप वायव्यास्त्रेण तान्नुपान् ॥४३॥
 शुष्कपर्णवदुदूय प्राक्षिपदन्धरोधमि । मोहनास्त्रेण शेषान् हि मोहयामास राघवः ॥४४॥
 लुलुंठ सकलं सैन्यं हस्त्यश्वरथसंकुलम् । ततो मूर्छितमालोक्य भरतं कैकेयी रणे ॥४५॥
 करिण्याः शीघ्रमुत्प्लुत्य शुशोचाकं निधाय तम् । ततो दशरथश्चापि कौसल्याया नृपस्त्रियः ॥४६॥
 सात्वयित्वाऽथ तान् रामः सौमित्रिं प्राह वेंगतः । इतो विदूरं मौभित्रं मुद्गलस्य तपोनिधेः ॥४७॥
 आश्रमोऽस्ति हि तत्र त्वं गत्वा बह्वीः शुभावहाः । संजीविन्यादिकाः सर्वाः शीघ्रमागत्य लक्ष्मण ॥४८॥
 मुनेस्तपःप्रभावेण बहवः संति तत्र वै । तथेति लक्ष्मणो गत्वा स्पन्दनस्थस्त्वरान्वितः ॥४९॥
 अवकृष्ट रथाद्वीरः संविवेशाश्रमं मुनेः । निवारितः ॥ वदुकैः समाधिविरमे मुनेः ॥५०॥

याश्चां कृत्वा शुभा बह्वीः प्राप्स्यसे त्वं न चान्यथा ।

कालातिक्रममीत्या स लक्ष्मणोऽपि रघूत्तमम् ॥५१॥

वृत्तं निवेदयामास पुनस्तं राघवोऽनवीत् । निवारयित्वा वदुकान् विना शस्त्रैस्त्वरान्वितः ॥५२॥
 आगत्य त्वं शुभा बह्वीर्मांशकां च मुनेः ॥ सोऽपि राम शया गत्वा निवार्य वदुकान् क्षणात् ॥५३॥
 बलात्कारेण सा बह्वीर्गृहीत्वा राममागतः । भरतं जीवयामास विशल्यं कृत्य सानुजम् ॥५४॥
 ततः समुत्थितं दृष्ट्वा कैकेयी भरत मुदा । संतोष परमं चक्रे कैकेयी पितरं तदा ॥५५॥
 राघवं सा समालिख्य भरतं परिष्वजे । ततो राजाऽतिसंतुष्टः समालिख्य रघूत्तमम् ॥५६॥

राजाओंने शरशोसे भरतको बीचकर मूर्छित कर दिया और ॥ ३७-३९ ॥ भरत-
 को पृथ्वीपर गिरा देखकर राजाओंने शरासे शत्रुघ्नको भी विद्ध किया । उनको भी गिराकर वे राजे
 लक्ष्मणको और दौड़े ॥ ४० ॥ उनपर भी बाणोंका वर्षा करके व्याकुल कर दिया । इसी प्रकार राघव
 रामको भी राजाओंने बाणोंसे आच्छादित कर दिया ॥ ४१ ॥ बादमें श्रीरामचन्द्रने समरके मैदानमें
 पालकियोंकी छिड़कियोंमें लगी हुई चिकोंसे देखतो हुई कौसल्या आदि माताओंके, सीताके तथा
 अपने भाइयोंकी स्त्रियोंके समक्ष राजाओ और मन्त्रियोंके सामने अपने बड़े भारी धनुषका टंकोर करके उस-
 पर वायव्यास्त्र चढ़ाकर उससे उन राजाओंको सूखे पत्तोंकी तरह उड़ाकर समुद्रके किनारे फेंक दिया । बाकी
 लोगोंको रामने माहनास्त्रसे मूर्छित कर दिया ॥ ४२-४४ ॥ हाथी, घोड़े, ॥ तथा पैदलोंकी समस्त सेना-
 को जमीनमें लिटा दिया । रणमें भरतको मूर्छित देख कैकेयी हृदिनीसे उतरी और उनको गालमें
 लेकर विलाप करने लगी । तदनन्तर राजा दशरथ तथा उनकी स्त्रिये कौसल्या आदि भी विलाप करने
 लगीं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ रामने सबको ॥ ॥ देकर कहा—लक्ष्मण ! यहाँसे कुछ दूरपर एक तपोनिधि
 मुद्गलमुनिका आश्रम है । वहाँ जाकर तुम कल्याणकारिणी संजीवनी आदि वृत्तियोंको ले आओ
 ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ मुनिके तपके प्रभावसे वहाँ अनेक प्रकारको जड़ियें उगी हुई हैं । 'बहुत बण्ठा' कहकर बीर
 लक्ष्मण रथपर चढ़कर शीघ्र मुनिके आश्रममें गये । वहाँके बह्मचारियोंने उनको वृत्तिये लेनेसे
 रोका और कहा कि तुम मुनिके समाधिसे उठनेपर उनसे पूछकर ही वृत्तियें ले जा सकते हो—अन्यथा
 नहीं । ॥ बीच जानेके डरसे लक्ष्मणने आकर रामसे ॥ हाल कहा । रामने फिर कहा कि उन
 वदुकोंको अस्त्रके बिना हाथसे हटाकर शीघ्र ही उन शुभ जड़ियोंको ले आओ । मुनिसे मत डरो । रामकी
 आज्ञा पाकर वे वहाँ गये ॥ बलश्रयोगके बिना ही वदुकोंका हटाकर उन जड़ियोंको लेकर रामके पास
 लौट आये । सब रामने भरतके शरीरसे बाण निकालकर उन्हें जड़ीसे जीवित किया । भरतको स्वस्थ देखकर
 कैकेयी बहुत प्रसन्न हुई । उसने रामका आलिङ्गन करके भरतको छातीसे ॥ लिया । राजाने भी ॥

हर्षान्नानोन्मवांस्तत्र शकार गुरुणा द्विजैः । ततस्ते वटवः सर्वे हाहाकृत्य मुनीश्वरम् ॥५७॥
 वृत्तं निवेदयामासुः समाधिविरमे मुनेः । स मुदलोऽपि तच्छ्रुत्वा विस्मयेनामर्वाद्भटून् ॥५८॥
 को लक्ष्मणः किमर्थं कस्याज्ञया सोऽहरद्भुमम् । विदिन्वा सकलं वृत्तमागच्छन् त्वरान्विताः ॥५९॥
 तथेति ते दशरथं गत्वा प्रोचुस्त्वरान्विताः । कस्त्वं किमर्थमार्नीता वल्ल्यो लक्ष्मणहस्ततः ॥६०॥
 तान्द्रष्ट्वा क्रोधसंप्लुक्तान् राजा चिन्तातुरोऽमर्षीत् । अहं दशरथो वल्ल्यो भरतार्थं ममाज्ञया ॥६१॥
 आनीता मुनये सर्वे ब्रुवध्वं नतिपूतकाः । अहमप्यागमिष्यामि मुनिं सांत्वयितुं जवात् ॥६२॥
 ततस्ते मुनये सर्वं नृनामाद्यवर्णयन् । श्रुत्वा रामस्य पितरं क्रोधं संहस्य वेगतः ॥६३॥
 दर्शनार्थं मतिं शक्यं तावद्दृष्टो नृपः पुरः । वदन्वा करसंपुटं तं प्रणमंतं नृपोत्तमम् ॥६४॥
 प्रार्थयन्तं समुत्थाप्य पूजयामास सादरम् । रामाद्या नृपपुत्राश्च कौसल्याद्या नृपस्त्रियः ॥६५॥
 प्रणम्याथ मुनिं स्तुत्वा तस्थुर्मुदलमार्यया । सुमत्या पूजिताः सर्वा राजदारा विशेषतः ॥६६॥
 ततो दशरथः प्राह मुनिं स्तुत्वा पुनः पुनः । मयाऽपराधितं राजा क्षम्यतां तत्त्वया मुने ॥६७॥
 मुनिर्दशरथं प्राह श्रुपकारो महान् कुतः । नोचेत्कथं दर्शनं मे ध्यानस्यस्य सुतस्य ते ॥६८॥
 धारामस्य ससीतस्य भृषेयस्य हि मायया । इति तस्य वचः श्रुत्वा दृष्ट्वा तुष्टं मुनीश्वरम् ॥६९॥
 उवाच नृपतिर्नत्वा किञ्चित्प्रष्टुमना मुनिम् । श्रुत्वा नृपस्य स मुनिर्हृदयं प्रष्टुकामुकम् ॥७०॥
 एकांते तुलसीखंडं नीत्वा तं नृपमेव सः । पप्रच्छ किं ते वांछाऽस्ति वदस्व कथ्यते मया ॥७१॥
 राममर्वाद्भटून् धीरामस्य हि भावि यत् । हिताहितं सविस्तारं ज्ञातुमिच्छे मुनीश्वर ॥७२॥
 नृपस्य वचनं श्रुत्वा राजानं मुनिरमर्षीत् ।

मुदल उवाच

साक्षान्नारायणो विष्णुः सर्वव्यापी जनार्दनः ॥ ७३ ॥

होकर ॥ हृदयसे लगाया । उस समय उन्होंने आनन्दसे युक्त तथा बाह्याणों द्वारा अनेक उत्सव कराये ।
 उधर समाधिसे निवृत्त होनेपर सब बटुकोने हाहाकार करके मुनिको ॥ हाल सुनाया । सब मुदल मुनि
 विस्मित होकर बटुकोसे कहने लगे—॥ ५९-६० ॥ जाओ, यह लक्ष्मण कौन है, किस लिये और किसके
 कहनेसे बूढियां ले गया है । शोध इस बातका पता लगाकर आओ ॥ ५९ ॥ 'अच्छा, कहकर उन्होंने
 दशरथके पास जाकर पूछा कि तुम कौन हो और तुमने लक्ष्मणके द्वारा जड़ियें क्यों मँगवायी हैं ? ॥ ६० ॥
 उन्हें क्रुद्ध देखकर राजा चिन्तापूर्वक कहने लगे ॥ मैं राजा दशरथ हूँ । लक्ष्मण मेरे कहनेसे भरतके लिये
 अड़ियें ले आया है । मेरा नमस्कार कहकर मुनिसे यह सब वृत्तान्त कह दें । मैं भी मुनिको समझानेके
 लिये शोध ॥ आ रहा ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ लोटकर बटुकोने मुनिको राजाका नाम आदि ॥ सुनाया । रामके
 पिताका नाम सुना तो मुनिने क्रोधको रोक तथा शोध जाकर राजासे मिलनेका विचार किया ही था कि
 इतनेमें राजा दशरथ स्वयं आकर सामने खड़े हो गये और हाथ जोड़ प्रणाम करके प्रार्थना करने लगे ।
 सब खड़े होकर मुनिने उनकी सादर पूजा की । राम आदि राजाके पुत्र तथा कौसल्या आदि राजाकी
 स्त्रियें भी मुनिको प्रणाम करके उनको स्तुति करती हुई खड़ी हो गयीं । मुदल मुनिको भार्या सुमतिने
 विशेषरूपसे राजाकी स्त्रियोंका सत्कार किया ॥ ६३-६६ ॥ राजाने बारम्बार स्तुति करके मुनिसे कहा—हे मुनि !
 मुझसे जो अपराध हुआ है । उसको ॥ करें ॥ ६७ ॥ मुनिने महाराज दशरथसे कहा कि नहीं, तुमने
 मेरा बड़ा भारी उपकार किया ॥ । नहीं तो ध्यानयोग्य और मायासे मनुष्यका ॥ धारण किये हुए सीताके
 सहित आपके पुत्र रामका दर्शन मुझे कैसे मिलता ? मुनिके वचन सुन ॥ उन्हें ॥ देखकर राजाने
 नमस्कार करके उनसे कुछ पूछना चाहा । इतनेमें मुनि राजाके हृदयकी बात जान गये और एक ओर
 तुलसीकी झाड़ीमें ले जाकर वे स्वयं राजासे कहने लगे—हे राजन् । कहो, तुम्हारी क्या पूछनेकी इच्छा
 ॥ ॥ उसका उत्तर देना ॥ ६८-७१ ॥ राजाने कहा—हे मुनीश्वर ! रामका मण्डित कौसा ? ॥

भूमारहरणार्थाय तवापि वरदानतः । अवतीर्णोऽस्ति त्वत्तो हि तव पुण्यमहोदयात् ॥७४॥
 अधर्मस्य विनाशं च वृद्धिं धर्मस्य सादरम् । निर्दलनं हि दुष्टानां सज्जनानां च पालनम् ॥७५॥
 करिष्यति महानेप तव पुत्रो रघून्मः । दशवर्षमहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥७६॥
 करिष्यति महद्राज्यं गते त्वयि दिवं नृप । समद्वीपपतिश्चायं भविष्यति नृपो महान् ॥७७॥
 द्वौ तौ भविष्यतः पुत्रौ चतस्रश्च स्नुषास्तथा । चतुर्विंशतिपौत्राश्च पौत्र्यस्तु द्वादशैव हि ॥७८॥
 असंख्यात्राः प्रपौत्राद्या भविष्यन्ति सुतस्य ते । कियद्दिनैरयं वृंदाशरणं भोक्तुं हि दंडके ॥७९॥
 गमिष्यति ततः पश्चान्महद्राज्यं करिष्यति । तप्तस्य वचनं श्रुत्वा नृपः प्राह मुनिं पुनः ॥८०॥

दशरथ उवाच

■ वृंदा कस्य मार्गा सा कथं शसो हरिस्तया । मत्सर्वं विस्तरेणैव कथयस्व मुनीश्वर ॥८१॥

मुद्गल उवाच

पुनः जलधरेणासौघदं श्रीशंकरस्य च । वृंदापातिव्रतबलाद्भक्षितं विष्णुना तदा ॥८२॥
 ज्ञात्वा तद्भक्षितपथा पार्वत्या धर्षणादिना । जालंधरपुरं गत्वा तदेत्यपुटमेदनम् ॥८३॥
 पातिव्रत्यस्य भंगाय वृंदायाश्चाकरोन्मतिम् । अथ वृंदाका देवी स्वप्नमध्ये ददर्श ह ॥८४॥
 भर्तारं महिषारूढं तैलम्यक्तं दिगंबरम् । दक्षिणाश्रगतं मुण्डं तमसाऽप्यावृतं तदा ॥८५॥
 ततः प्रमुद्रासां बाला तं स्वप्नं स्वं विचिन्तती । कुत्रापि नालभच्छर्म गोपुगडालभूमिषु ॥८६॥
 वतः सखीद्वययुता नगनेद्यानमागता । वनाद्वनान्तरं याता ददर्शान्तां भीषणी ॥८७॥
 राक्षसौ सिंहवन्मादौ दंष्ट्रानयनभीषणी । तां दष्ट्वा विह्वलाऽनीव पलायनपरा तदा ॥८८॥
 ददर्श तापसं शान्तं सश्लिष्यं मौनमास्थितम् । ततस्तत्कठमासज्य निजबाहुलतां भयात् ॥८९॥
 मुने मां रक्ष शरणमागतमिम्यभाषत । तप्तस्या वचनं श्रुत्वा ध्यानं मुक्त्वा स वै मुनिः ॥९०॥

हित-अहित जानना चाहता हूँ ॥ ७२ ॥ राजाको बात सुनकर पुनि मुद्गल कहने लगे—मातात् नारायण तथा सर्वव्यापी जनार्दन विष्णुभगवान् पूज्योक्त। भार उतारने तथा पूर्वजन्ममें आपकी वरदान देनेके कारण आपके पुण्य-प्रतापसे स्वयं अवतरे है। मे अचमक करके धर्मकी वृद्धि करेंगे। रामचन्द्रजी दुष्टोंका दण्डन करके सज्जनोका पालन करेंगे। हे नृप ! आपके जलंधर नाम के जानेपर ये दस हजार दस बी वर्ष तक राज्य करेंगे। ये समुद्रोंके अधिपति और महान् राजा होंगे ॥ ७३-७७ ॥ इनके दो पुत्र और चार पुत्रवधुएँ होंगी। सोतीस पोते और बारह पोतियाँ होंगी। आपके पुत्र रामके पत्नीसे असंख्य होंगे। कुछ दिनोंके लिए ये दण्डकारण्यमें वन्दे में प्राप्त आपको छुड़ाने जायेंगे। उसके बाद विशाल राज्य करेंगे। यह मुनिकर राजाने फिर मुनिसे कहा ॥ ८०-८० ॥ राजा दशरथ बोले - वृंदा कीन थी तथा किसकी स्त्री थी ? उसने भगवान्को क्यों श्राप दिया ? हे मुनीश्वर ! यह सब विस्तारपूर्वक कहें ॥ ८१ ॥ मुद्गल बोले—दूतकालमें जलंधर नामका एक दैत्य था। वृंदा उसकी बड़ी पतिव्रता स्त्री थी। उसके पातिव्रतके बलसे वह शिवजीके साथ युद्ध करके भी नहीं हारा। तब भगवान् विष्णु पार्वतीसे उसका कारण जानकर उनके कथनानुसार जालंधरपुर गये। वहाँ दैत्यभियुक्तका भेदन करके वृंदाका पातिव्रत भङ्ग करनेके लिए उन्होंने उसके साथ भोग करनेका विचार किया। तभी वृंदादेवीने स्वप्नमें अपने पति की तैलसे नहाये, नंगे शरीर, भीसेपर चढ़कर दक्षिण दिशाको जाते, सिर मुड़ाये तथा तमसे आच्छादित देखा। जब वह बाला जागी तो स्वप्नपर विचार करने लगी। गोपुर, छत तथा अंतरा आदिपर उसे कहीं चैन नहीं मिला ॥ ८२-८६ ॥ तब वह अपनी दो सखियोंको साथ लेकर नगरके बाहर जागमें मन बहलाने लगी। वहाँ एकसे दूसरे और दूसरेसे तीसरे जागमें वह जब फिरने लगी, तब उसको भयानक सिंहके समान गर्जन करनेवाले और भयंकर दाँत तथा नेत्रवाले दो राक्षस दिखाई दिये। उनको देख तथा विह्वल होकर वह इधर-उधर भागने लगी। उसे वहाँ सहसा शिष्योंसे युक्त एक मौनव्रतधारी शांत तपस्वी दिखायी दिये। तब वह अपनी दोनों भुजारूपिणी

उन्मील्य नयने वृंदा हृदि दृष्ट्वाऽप्रवाङ्मनः । तिष्ठ त्वं बालिके ह्यत्र मा भयं कुरु सर्वथा ॥९१॥
 इत्थुक्त्वा पुरतो दृष्ट्वा राक्षसौ पुनस्तच्चमः । निर्भर्त्सर्यतौ हुंकारैः क्रोधेन मदता वृतः ॥९२॥
 तौ तदुंकारतस्तौ पलायनपरौ तदा । तन्सामर्थ्यं मुनेर्दृष्ट्वा वृंदा सा विस्मयाभृता ॥९३॥
 प्रणम्य दंडवद्भूमौ मुनिं वचनमब्रवीत् ।

वृन्दोवाच

रक्षितोऽहं त्वया योगद्वयादस्मात्कृपानिधे ॥९४॥

किंचिद्विद्वत्सुमिच्छामि कृपया तद्वदस्व माम् । जलंधरो हि मे भर्ता रुद्रं योद्धुं गतः प्रभो ॥९५॥
 ■ तत्रास्ते कथं युद्धे तन्मे कथय सुव्रत । मुनिस्तद्वाक्यमाकर्ण्य कृपयोर्ध्वमवैक्षत ॥९६॥
 तावत्कृपो समायातौ तं प्रणम्याग्रतः स्थितौ । ततस्तद्भूलतासंज्ञामयुक्तौ गगनांदराद् ॥९७॥
 गत्वा सुगार्धादागत्य वानरावग्रतः स्थितौ । क्षिरःकरं बहस्तौ च दृष्ट्वाऽन्धितनयस्य ■ ॥९८॥
 पपात मूर्च्छिता भूमौ भर्तृव्यसनदुःखिता । कर्मदलुजलैः सिक्ता मुनिनाऽऽश्वासिता तदा ॥९९॥
 रुदिस्वा सुचिरं वृंदा नं मुनिं वाक्यमब्रवीत् ।

वृन्दोवाच

कृपानिधे मुनिश्रेष्ठ जीवर्यनं मुने प्रियम् ॥१००॥

त्वमेवास्य पुनः शक्तो जीवनाय मतो मम ।

मुनिस्त्वाच

नायं जीवयितुं शक्यो रुद्रेण निहतो युधि ॥१०१॥

तथापि रक्षकृपाविष्टः पुनः संजीवयाम्यहम् । इत्थुक्त्वा तदर्थे यावत्सावत्सागरनंदनः ॥१०२॥
 वृंदामालिङ्ग्य तद्वक्त्रं चुचुञ्च प्रीतमानसः । अथ वृंदाऽपि भर्तारं दृष्ट्वा हर्षितमानसा ॥१०३॥
 रेमे तद्वनमध्यस्था तद्युक्ता बहुवासरम् । कदाचित्सुरगत्स्यांति दृष्ट्वा विष्णुं तमेव हि ॥१०४॥

लक्षाएँ उनके गलेमें डालकर भयभीतभावसे कहने लगी—हे मुने ! आपकी शरणमें आयी हुई मुक्त अवलाकी रक्षा करिए । उसके इस आर्त वचनको सुना तो ध्यान छोड़कर मुनिने उसे अपने हृदयसे लिपटो हुई पाया । ■ उससे कहने लगी—बालिके ! तुम यहाँ निर्भय होकर रहो ॥ ८९-९१ ॥ उधे इस प्रकार समझाकर मुनिश्रेष्ठने डराते तथा हुंकार करते हुए उन दोनों राक्षसोंको अपने सामने देखा । तब क्रुद्ध होकर वे भी हुंकार करने लगे । उनके हुंकारसे अस्त होकर वे दोनों राक्षस भाग गये । मुनिके इस अद्भुत सामर्थ्यको देख्ना तो वृन्दा आश्चर्यचकित होकर भूमिपर दण्डवत् प्रणाम करके कहने लगी । वृन्दा बोली हे कृपानिधे ! मुझे आपने इस घोर संकटसे बचा लिया । अब मैं आपसे कुछ पूछना चाहती हूँ । सो कृपा करके कहिये । हे भर्ता ! मेरा पति जलंधर शिवजीसे युद्ध करने गया है । हे सुव्रत ! वह वहाँ किस दशामें है, यह मुझे बताइए । मुनिने उसकी बात सुनकर कृपापूर्वक ऊपरकी ओर देखता तो उपरसे दो बन्दर आये और मुनिको प्रणाम करके सामने खड़े हो गये । उनके हाथोंमें वृन्दाने अन्धितनय जलन्धरका कटा सिर, ■ तथा धड़ देखा । यह देखनेके साथ ही वह पतिविहीनके दुःखसे दुःखित ■ मूर्छित होकर धरतोपर गिर पड़ी । तब मुनिने उसके मुँहपर कमण्डलुका ■ छिड़का और संचित करके जात किया ॥ ९२-९६ ॥ बहुत ■ ■ रोजेके बाद वृन्दा कहने लगी—हे कृपानिधे ! हे मुनिश्रेष्ठ ! आप मेरे प्रिय पतिको जीवित कर ■ ॥ १०० ॥ मेरी समझमें आप ही इसको जिलानेमें समर्थ हैं । मुनि बोले—युद्धमें शिवजीके द्वारा निहत जलन्धरको जीवित करना असम्भव है । फिर भी तुमपर दया करके मैं इसे जीवित करता हूँ । ऐसा कहकर वे अन्तर्धान हो गये । इतनेमें सागरनन्दन जलन्धर ■ ही गया और आनन्दसे वृन्दाका आलिङ्गन करके मुक्त वृम्बन करने लगा । वृन्दाने भी अपने पतिको देखा तो प्रसन्न होकर उस वनमें बहुत दिनतक उसके साथ रमण करती रही । एक दिन संयोगके अनन्तर उसी जलन्धरको विष्णु के रूप में

निर्मत्स्य क्रोधमंपुक्ता वृन्दा वचनमब्रवीत् ।

वृन्दावाच

तव ज्ञातं हरे शीलं परदाराभिगामिनः ॥१०५॥

त्वं ज्ञातोऽसि मया सम्यङ्मायी प्रन्यस्तपसः । यौ त्वया मायया द्वौ तौ स्वकीयो दर्शितौ मम ॥१०६॥
तावेव राक्षसौ भून्वा तव भार्गवं विनेष्यतः । जयविजयनामानौ ज्ञातौ कृत्रिमरूपिणौ ॥१०७॥
यं चापि भार्यादःस्वार्तो वने कपिसहायवान् । भव सर्वेश्वरोऽपि त्वं यत्ने शिष्यौ समगतौ ॥१०८॥
पुण्यशीलसुशीलौ तौ कपिरूपधराबुधौ । अतस्ते वानरस्तु संगतिर्दण्डके वने ॥१०९॥
वदुरूपधरः शिष्यो यन्तात्पर्यमेति वेषयद्वम् । इत्युक्त्वा मा तदा वृन्दा प्रविवेश हुताशनम् ॥११०॥
तनो जालधरो दैन्यो निहतो युधि शंभुना । तस्माद्वाजबिदानीं तौ कुम्भकर्णदशाननौ ॥१११॥
जालो सागरमप्ये तौ लंकयामधुना स्थितौ । नीत्वा जनकजां बालां पञ्चवत्यास्तु मातृवत् ॥११२॥
पालयित्वाऽथ पणमासान् रामघाणान्मरिष्यति । रामोऽपि बालिनं हत्वा सुग्रीवेण समन्वितः ॥११३॥
शिलाभिः सागरं बद्ध्वा सीतामादाय यास्यति । यात्रायश्नविलासांश्च सप्तद्वीपप्ररक्षणम् ॥११४॥
करिष्यति दयितया बन्धुभिश्च यथासुखम् । इदं गोप्यं त्वया राजन् कथनीयं न कुत्रचित् ॥११५॥

श्रीशिव उवाच

इत्युक्त्वा मुद्गलः सर्वं भावि रामस्य कौतुकात् । चरित्रं वर्णयामास यदा यद्यत्करिष्यति ॥११६॥
तन्महं नृपतिः श्रुत्वा तुष्टः पप्रच्छ तं पुनः । पूर्वजन्मनि कथाहं किं मया सुकृतं कृतम् ॥११७॥
तन्महं वद मां मत्तान् यस्माज्जातो हरिः सुतः । मम साक्षाद्रामचंद्रौ लक्ष्मीःसीता त्वभूत्सुधा ॥११८॥

इति ॥ वचः श्रुत्वा नृपमाह पुनर्मुनिः ।

मुद्गल उवाच

आसीत्सद्माद्रिविषये करवीरपुरे पुरा ॥११९॥

ब्राह्मणे धर्मवित्कश्चिद्धर्मदत्त इति श्रुतः । विष्णुव्रतकरः सम्यग्विष्णुपूजारतः सदा ॥१२०॥

इत्था तो क्रुद्ध होकर चिककारती हुई वृन्दा बोली—हे हरे ! तुम्हारे इस परस्त्रीगमनरूपी व्यवहारको चिककार है ॥ १०१ ॥ मैंने अब जाना कि तुम मायावी तथा बनावटी तपस्वी हो । तुमने अपने निजी दो दूतोंको वातर-
णमें मुझे दिखलाया था, वे ही दोनों राक्षस होकर तुम्हारी स्त्रीका हरण करेंगे । ॥ दोनों कृत्रिमरूपधारी जयविजय तुम्हारे पार्षद थे ॥ १०२-१०७ ॥ सर्वेश्वर होनेपर भी तुम स्त्रीके वियोगसे दुःखी होकर वानरोंके साथ वनमें ॥ लगाओगे । तुम्हारे वे दोनों पुण्यशील-सुशील शिष्य भी वातर वनें । उनमेंसे तात्पर्य नामका शिष्य वदुरूप धारण करेगा । और भी बहुतसे वानर दण्डकवनमें तुमको मिलेंगे । इतना कहकर वृन्दा अग्निमें प्रविष्ट हो गयी ॥ १०८-११० ॥ इस प्रकार वृन्दाका पातित्तत्त्व लडित होनेके बाद जलम्बर वास्तविकरूपमें मनुके द्वारा मारा गया । ॥ महाराज दशरथ ! इस शापके कारण इस समय रावण-कुम्भकर्ण जन्म लेकर समुद्र-
के बीच लंकामें निवास करते हैं । वे पंचवटीसे जनककी पुत्री सीताको ले आकर छः मास तक माताकी तरह नन्दन करनेके पश्चात् रामके वाणोंसे मारे जायेंगे । राम भी बालीको मारकर सुग्रीवके साथ वत्सरोसे समुद्रको बांध तथा उस पार जाकर सीताको ले आयेंगे । पश्चात् प्राणप्रिया सीता तथा बन्धुओंके साथ राम तीर्थयात्रा, राज तथा विलास करते हुए सप्तद्वीपोंकी रक्षा करेंगे । हे राजन् ! यह गोप्य ॥ किसीको न बतलाइएगा ॥ १११-११५ ॥ श्रीशिवजी बोले—हे पार्वती ! इस प्रकार मुद्गलने रामका समस्त भावी चरित्र बतला दिया

११६ ॥ इन सब बातोंको सुन तथा प्रसन्न होकर राजा दशरथने फिर पूछा कि मैं कौन ॥ और मैंने कौनसे वृत्त किये थे कि जिससे साक्षान् भगवान् रामरूपमें मेरे पुत्र बने तथा साक्षान् लक्ष्मी सीता होकर मेरी पुत्रवधू बनीं । हे ब्रह्मन् ! यह सब हाल मुझे कह सुनाइये ॥ ११७ ॥ ११८ ॥ यह सुनकर मुद्गल मुनि राजासे फिर कहने लगे । मुनि बोले—हे राजन् ! सहाद्रिपर करवीरपुरमें परम धर्मदत्त धर्मदत्त नामसे विख्यात एक ब्राह्मण

द्वादशाक्षरविद्यायां जपनिष्ठोऽतिथिप्रियः । कदाचिन्मार्तिके मासि हरिजागरणाय सः ॥१२१॥
 गन्ध्यां तुर्यां वशेषायां जगाम हरिमन्दिरम् । हरिपूजोपकरणान् प्रगृह्य व्रजतां वदा ॥१२२॥
 तेन दृष्टा ममायाता गच्छामीमीमनिःस्वना । वक्रदंष्ट्रा ललजिज्झा निनम्ना रक्तलोचना ॥१२३॥
 दिगम्बरा शुष्कमांसा लवोष्ठी घर्षस्वना । तां दृष्ट्वा भयसंव्रस्तः कपितावयवस्तदा ॥१२४॥
 पूजोपकरणैः सर्वैः पयोभिश्चाहनद्वलात् । संस्मृत्य यद्वरेणाम तुलसीयुक्तवारिणा ॥१२५॥
 योऽहनद्वारिणा तस्मात्तत्पापं लयमाननम् । अथ संस्मृत्य मा पूर्वजन्मकर्मविपाकजम् ॥१२६॥

स्वां दशामब्रवीत्तीव्रं दंडवच्च प्रणम्य सा ।

कलहोवाच

पूर्वकर्मविपाकेन दशमेतां गताऽस्म्यहम् ॥१२७॥

मन्कयं तु पुनर्विप्र याम्यहं गतिमुपमायम् ।

पुनरुक्त उवाच

तां दृष्ट्वा प्रणतामार्तां वदमानां स्वकर्म च ॥१२८॥

अतीव विस्मितो विप्रस्तदा वचनमब्रवीत् ।

धर्मदत्त उवाच

केन कर्मविपाकेन त्वं दशामीदृशीं गता ॥१२९॥

कृतः प्राप्ता च किंशीला तत्तर्था विस्तराद्दद ।

कलहोवाच

सौराष्ट्रनगरे ब्रह्मण भिक्षुनामाऽभवद्विजः ॥१३०॥

तस्याहं गृहिणी ब्रह्मण कलहाख्याऽतिनिष्ठुरा । न कदाचिन्मया भर्तुर्वचसाजपि शुभं कृतम् ॥१३१॥
 नापितं तस्य मिष्टान्नं भर्तुर्वचनभंगया । पाककाले मया नित्यं यद्यच्छान्नं मनोरमम् ॥१३२॥
 तत्तत्पूर्वं स्वयं भुक्त्वा पश्चाद्भर्त्रे निवेदितम् । एकदा म पतिमित्रं मम वृत्तं न्यवेदयत् ॥१३३॥
 नैव शृणोति मे पत्नीं यदाक्य किं करोम्यहम् । तेन भन्वा तु सकलं क्षणं संचित्य वै हृदि ॥१३४॥
 उवाच भन्यति किंचिद्युक्तिं तां ते शदाम्यहम् । निषेधोक्त्या वदस्व त्वं गृहिणी सा करिष्यति ॥१३५॥

रहता था । वह बिनापुके चत्तोंको करनेवाला, भली भीति विष्णुपूजामें रत, सदा वारह बक्षरके मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) के जपमें निष्ठा रखनेवाला तथा ब्रह्मापत्तोंका प्रेमी था । एक बार वह कार्तिक-में रात्रिजागरण करके चौथे पहर पूजाकी सामग्री लेकर हरिमन्दिरमें जा रहा था कि रास्तेमें सहसा उसने एक भयानक धगधर शब्द करती हुई, देडे दाँतोंवाली, जीभको हिलानी, नितान्त नग्न, साल नेत्रोंवाली, जिसके शरीरका सब भाँस मुख गया था—ऐसी लम्बे होठों और नग्न शरीरवाली एक राक्षसीको आते देखा । उसको देखकर बाह्यण भयसे काँप उठा । तब [] समस्त पूजाकी सामग्री तथा जल आदि फेंक-फेंककर उसको भारमें लया । वह नागायणका नाम लेता हुआ उसके ऊपर तुलसीपत्र तथा बल फेंकता जाता था । वस, इसीसे [] उस राक्षसीके सब पाप धुल गये और उसको पूर्वजन्मके कर्मोंका शमन हो आया ॥ १२६-१२८ ॥ तब वह बाह्यणको दंडवत् प्रणाम करके कहने लगी । कलहा बोली—हे विप्र । मैं पूर्वजन्मके कर्मोंके फलस्वरूप इस दशाको प्राप्त हुई हूँ । हे सहज ! सौराष्ट्रनगरमें भिक्षुनामका एक बाह्यण रहता था । [] उसकी कलहा नामकी बड़ी तिष्ठुर स्त्री थी । मैंने कभी वचनसे भी पतिकी भलाई नहीं की ॥ १२७-१३१ ॥ रसोईमें कभी [] मिष्ठान बनाती तो पतिले झूठा यहाँमा करके [] उसकी [] टाँसकर मिठाई नहीं देती थी । भोजनके समय प्रतिदिन जो जो अच्छी चीज बनायी, पहिले उसको मैं खा लेती थी तब पतिको देती थी । एक दिन मेरे [] बाँकर अपने एक मित्रसे कहा कि मेरी स्त्री मेरी बात नहीं मानती । [] क्या कहूँ ? उसके

नर वाक्येन कार्यादि यत्किञ्चित्तत्र वाञ्छितम् । तथेति मित्रवाक्येन गृहमेत्य पतिर्मम ॥१३६॥
 मामाह दयिते मा त्वं भोजनार्थं समाह्वय । मित्रं महद्दुष्टं तच्छ्रुत्वा स्वपतेर्वचः ॥१३७॥
 नदा भर्ता मयोक्तः स मित्रं ते साधुसम्मत्तम् । समाह्वयाम्यशनार्थमद्यैव ब्राह्मणोत्तमम् ॥१३८॥
 नतो मया समाहृतः स्वयं गत्वा पतेः सखा । तदारभ्य निषेधोक्त्या कार्यमाज्ञापयत्पतिः ॥१३९॥
 एकदा स पितुर्दृष्ट्वा क्षयाहः स्वपतिर्मम । मामाह दयिते भ्रातृं न करिष्याम्यहं पितुः ॥१४०॥
 नडाक्यं स्वपतेः श्रुत्वा मया विप्रा निमंत्रिताः । मया धिक् धिक् कृतो भर्ता कथं भ्रातृं करोषि न ॥१४१॥
 पुत्रधर्मं न जानामि का गतिस्ते भविष्यति । ततः पुनः स मामाह पक्वानमद्य मा ॥१४२॥
 द्विजं निमंत्रयस्वैकं मा विस्तारं कुरु प्रिये । तत्तस्य वचनं श्रुत्वा मयाऽष्टादश भूसुराः ॥१४३॥
 निमंत्रितास्तु भ्रातृार्थं पक्वानानि कृतानि हि । ततः पुनः स मामाह प्रिये शृणु वचो मम ॥१४४॥
 मया सहार्द्रा त्वं मिष्ट पाकं भुक्त्वा ततः परम् । स्वीयाच्छिष्टं त्वद्य विप्रान् परिवेषणमाचर ॥१४५॥
 नन्मया कथितं श्रुत्वा पतिर्धिक्कृतः पुनः । कथमाद्रा स्वयं भुक्त्वा पश्चाद्विप्रान्समर्पयेत् ॥१४६॥
 एव सर्वं निषेधोक्त्या भ्रातृं धार्गं चकार सः । पिण्डदानादिकं कृत्वा मामाह पतिः पुनः ॥१४७॥
 अहञ्जीवोपणं त्वद्य करिष्यामि न संशयः । तत्तस्य वचनं श्रुत्वा मिष्टान्नेन स भोजितः ॥१४८॥
 नतो देववशाद्भर्ता विस्मृत्य ग्राह मां पुनः । नीत्वा पिण्डान्क्षिपस्वाद्य सतीर्थे परमादरात् ॥१४९॥
 ततो मया शौचकूपे नीत्वा पिण्डा विसर्जिताः । ततः स्निग्धमना विप्रो हाहेत्युक्त्वा स्थिरोऽभवत् ॥१५०॥
 क्षणं विचिंत्य मामाह पिण्डान्मा त्वं बहिः कुरु । तदोत्तीर्णं शौचकूपे मया पिण्डा बहिः कृताः ॥१५१॥
 ततः पुनः स मामाह पिण्डान्तीर्थे क्षिपस्व मा । तदा तीर्थे विप्रास्ते पिण्डाः परमादरात् ॥१५२॥

मित्रने यह सुनकर मनमें विचार किया ॥ १३२-१३४ ॥ तदनन्तर उसने मेरे पतिसे जो कुछ कहा था, मां से कहती हूँ । उसने कहा—हे मित्र ! तुम अपना स्त्रोसे उल्टा बात कहा करो, वह तुम्हारे मना किये हुए कामका अवश्य करेगी और तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा । मित्रकी सुन तथा 'बहुत अच्छा' कहकर मेरा पति घरपर आया ॥ १३५ ॥ १३६ ॥ वह मुझसे कहने लगा—हे प्रिये ! मेरे मित्रको तुम कभी भोजनके लिये बुलाया करो । वह बड़ा दुष्ट है । पतिके इस वचनको सुनकर मैंने कहा कि तुम्हारा मित्र ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ तथा बड़ा है । आज ही भोजनके लिये बुलाता हूँ ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ मैं स्वयं जाकर पतिके मित्रको बुला लायी । तबसे मेरा पति विपरीत कथनसे ही लगे लगा ॥ १३९ ॥ एक दिन मेरा पति अपने पिताको मरणतिथि आनेपर कहने लगा—हे दयिते ! मैं आज पिताका भ्रातृ नहीं करूँगा ॥ १४० ॥ यह सुनकर मैंने उसके कहनेके प्रतिकूल ब्राह्मणोंको निमंत्रण दे दिया और पतिसे कहा कि तुमको धिक्कार है, जो अपने पिताका भ्रातृ भी नहीं करते ॥ १४१ ॥ तुम पुत्रके धर्मको नहीं जानते । इसलिये न जाने तुम्हारी क्या गति होगी । तब उसने कहा कि यदि करना है तो केवल एक ब्राह्मणको निमंत्रण दे देना, अधिक अन्नदा नहीं बढ़ाना । पकवान-मिठाई आदिमें व्यर्थ खर्च नहीं करना । यह सुनकर मैंने एक साथ अठारह ब्राह्मणोंको निमंत्रण दे दिया । भ्रातृके लिए अनेक प्रकारके पकवान बनाये । फिर पतिने मुझसे कहा कि आज तुम पहले मेरे साथ मिष्टान्न भोजन करके बादमें अपना जूठा भोजन ब्राह्मणोंको परोसना ॥ १४२-१४५ ॥ यह सुनकर मैंने पतिको धिक्कारा और कहा कि तुमको धिक्कार है । पहले स्वयं खाकर पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजन करानेके लिये कहते हो ? ॥ १४६ ॥ इस प्रकार विपरीत कथनसे पतिने मेरे द्वारा विचित्र भ्रातृ करवाया । पिण्डदान आदि करके फिर उन्होंने मुझसे कहा—॥ १४७ ॥ मैं कुछ भी न खाकर उपवास करूँगा । यह सुनकर मैंने उन्हें खूब मिष्टान्न खिलाया ॥ १४८ ॥ बादमें देववशात् भूलकर पतिने मुझसे कहा कि इन पिण्डोंको लेकर आकर प्रेमसे किसी पवित्र तीर्थके जलमें फेंक आओ ॥ १४९ ॥ यह सुनकर मैंने उन पिण्डोंको ले जाकर पासाने-न डाल दिया । यह देखा तो वह बिभ्र हाय-हाय करने लगा ॥ १५० ॥ क्षणभर सोचकर मुझसे कहा कि देखा, पासानेसे पिण्डोंको बाहर निकालना । तब शौचकूपमें उतरकर मैंने उन पिण्डोंको निकाल लिया

एवं मया कदा भर्तुर्वधनं न कृतं तदा । कलहप्रियया नित्यं मत्पुत्रिणमना यदा ॥१५३॥
परिणेतुं ततोऽन्यां वै मनश्चक्रे पतिर्मम । ततो गरं समादाय प्राणस्त्यक्तो मया द्विज ॥१५४॥
अथ वदन्वाच पद्ममाया भो नित्युर्यमकिंकरीः । यमश्च यो तदा दृष्टा चित्रगुप्तमप्युचत ॥१५५॥

यम उवाच

अनया किं कृतं कर्म फलं शुभमथाशुभम् । प्राप्नोत्येषा च तत्कर्म चित्रगुप्तालोक्य ॥१५६॥

कल्होवाच

चित्रगुप्तस्तदा वाक्यं भर्तृपन्माधुवाच ॥

चित्रगुप्त उवाच

अनया तु शुभं कर्म कृतं किञ्चिन्न विद्यते ॥१५७॥

मिथ्यान्नं भुज्यमानेन न भर्तारि तदर्पितम् । अतश्च वगुलीयोन्वा स्वविष्ठादाञ्च विष्टु ॥१५८॥
पतिं द्रष्टुं सदा त्वेषा नित्यं कलहकारिणी । विष्ठादा शूकरीयोन्वा तस्मात्तिष्ठत्वियं यम ॥१५९॥
पाकमांके तदा ब्रूते गुप्तं चैका यतस्तः । तस्मादोषाद्विडालाऽस्तु स्वजातास्त्वमधिणी ॥१६०॥
भर्तारमपि चोद्दिश्य आत्मघातः कृतोऽनया । तस्मात्प्रेतशरीरेऽपि तिष्ठत्वेकाऽतिनिन्दिता ॥१६१॥
अतर्षेण मरुदेशे प्रापितव्या हरेर्मर्तः । तत्र प्रेतशरीरस्था चिरं तिष्ठत्वियं तनः ॥१६२॥

उर्ध्वं योनित्रयं चैवा सुनक्त्यशुभकारिणी ।

कल्होवाच

ततो दूतैः प्राप्तिाऽहं मरुदेशं सुणाद्विज ॥१६३॥

दत्त्वा प्रेतशरीरं मां गतास्ते स्वस्थलं प्रति । साऽहं पंचदशाब्दानि प्रेतदेहे स्थिता किल ॥१६४॥
भुक्षद्भ्यां पीडिताऽस्पर्यदुःखिता स्वेन कर्मणा । ततः भुक्ष्तीदृता नित्यं शरीरं वणिजस्त्वहम् ॥१६५॥
प्रविश्य दक्षिणे प्राप्ता कृष्णावेण्यास्तु संगमे । तत्तीरं संश्रिता यावत्सावतस्य शरीरतः ॥१६६॥
विजिष्णुगणैर्दूरमपाकुप्ता बलादहम् । ततः सुखमया दृष्टो ग्रमस्तथा त्वं मया द्विज ॥१६७॥

॥ १५१ ॥ फिर पतिने कहा—देखो, कहीं इनको किसी तीर्थमें न डालना । तब मैंने ले जाकर उन पिंडोंका बड़े भावरपूर्वक तीर्थजलमें डाल दिया ॥ १५२ ॥ इस तरह मुझे कलहप्रियाने जब कभी भोः पतिका सीधा लीरपर कहा हुआ काम नहीं किया, तब दुःखित होकर उसने अपना दूसरा दवाह करना निश्चित किया । हे द्विज ! तब मैंने जहर [] अपने प्राण त्याग दिये ॥ १५३ ॥ १५४ ॥ तब यमदूत मुझे अधिकार यमराजके पास ले गये । यमराज मुझे देखकर चित्रगुप्तसे कहने लगे ॥ १५५ ॥ यमराजने कहा—विषगुप्त ! देखो, इसने अच्छा कर्म किया है या बुरा, जिससे इसको वैसा ही फल दिया जाय ॥ १५६ ॥ कल्हा कहने लगे—यह सुनकर चित्रगुप्त मुझे बयकात हुए कहने लगे कि इसने तो कोई अच्छा कर्म कभी किया नहीं । यह मिथ्या बनकर जाती थी परन्तु अपने पतिको नहीं देती थी । इसलिये यह वगुलीकी योनिमें जाकर अपना ही बिठा खानेवाली पक्षिणी बने प्रतिदिन सगढ़ा तथा पातसे द्वेष करनेके कारण यह विष्टा [] करनेवाली सुफरयोनिमें पंदा हो । हे यम ! इधर-उधर छिपकर भोजन बनानेके पात्रमें अकेली ही खानेवाली यह बिल्ली बने ॥ १५७-१६० ॥ पतिका उद्देश्यं इसने आत्मघात किया है । इस कारण यह अविनिन्दित प्रेतयोनिमें अकेली रहे ॥ १६१ ॥ हे यम ! कृतोके द्वारा मरुप्रदेशमें भेज देना चाहिये । वहाँ [] तथा प्रेत बनकर वह बहुत काल परंस्त निवास करे ॥ १६२ ॥ यह पाविनी उपर्युक्त सभी योनियोंको भोगे । कल्हा बोली—हे द्विज ! तब यमदूतोंने आज ही भरमें मुझे मरुदेश पहुँचा दिया ॥ १६३ ॥ वहाँ प्रेतयोनिमें डालकर वे अपने स्थानको चले गये । मैं पन्द्रह वर्ष तक प्रेतयोनि रही ॥ १६४ ॥ अपने किए हुये कर्मके अनुसार [] सदा भूख-प्याससे अत्यन्त दुःखिनी रहने लगी । इस [] नित्य भूखसे पीडित हो एक यनियेकी देहमें बैठकर मैं दक्षिणमें कृष्णा-वेण्याके संगमपर भायी । वहाँ आनन्द शिव तथा विष्णुके गणोंने मुझे बरबस उस वणिजके शरीरसे अलग करके दूर भगा दिया । तबतत्पर ही द्विज

स्वद्वस्तुलसीवारिसंस्पर्शाद्गतपातका । तत्कृपां कुरु विप्रेन्द्र कथं मुक्ता भवाम्यहम् ॥१६८॥

योनित्रयादग्रभावाद्दस्माच्च प्रेतभावतः । मामुद्धर मुनिश्रेष्ठ त्वामहं शरणं यता ॥१६९॥

इत्थं निश्म्य कलहावचनं द्विजश्च तन्पापकर्ममयविस्मयदुःखयुक्तः ।

तद्ग्लानिदर्शनकृपाचलचित्तवृत्तिर्यात्वा चिरं सुवचनं निजभाद दुःखात् ॥१७०॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे

वृन्दाशापकलहाख्यानं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

(धर्मदत्त द्वारा कलहाका उद्धार)

धर्मदत्त उवाच

विलयं याति पापानि तीर्थदानव्रतादिभिः । प्रेतदेहे स्थितायास्ते तेषु नैवाधिकारिता ॥१॥

स्वद्वस्तुलसीदर्शनादस्मात् स्निग्धं च मम भानसम् । नैव निर्वृतिमायाति त्वामनुद्धृत्य दुःखिताम् ॥२॥

पातकं च तवात्पुण्यं योनित्रयावपाकजम् । नैवान्पैः ध्यायते पुण्यैः प्रेतत्वं चातिगर्हितम् ॥३॥

तस्मादाजन्मजनितं यन्मया कार्तिकव्रतम् । तन्पुण्यस्यार्धभागेन सद्गतित्वमवाप्नुहि ॥४॥

कार्तिकव्रतपुण्येन न साम्यं याति सर्वथा । यज्ञदानानि तीर्थानि व्रतान्यपि ततो ध्रुवम् ॥५॥

मुद्गल उवाच

इत्थुक्त्वा धर्मदत्तोऽसौ यावन्नामम्यपेक्षयत् । तुलसीनिश्रतोवेन भावयन् द्वादशाक्षरम् । ६ ।

तावत्प्रेतत्वनिर्मुक्ता ज्वलद्ग्निसिखापमा । दिव्यरूपधरा जाता लावण्येन यथोर्वशी ॥७॥

ततः सा दंडयजूषी प्रणनाम यदा द्विजम् । उवाच सा तदा वाक्यं हवगद्गदभाषिणी ॥८॥

कलहोवाच

त्वत्प्रसादाद्द्विजश्रेष्ठ विमुक्ता निरपादहम् । पापान्धौ मज्जमानायास्त्वं नीभृतांसि मे ध्रुवम् ॥९॥

मूर्खों मरती एवं भ्रमण करती हुई मैंने यहाँ तुमको देखा ॥ १६५-१६७ ॥ यहाँ तुम्हारे हाथके जल तमो तुलसीसे मेरे पाप दूर हो गये हैं । कारण हे विप्रेन्द्र ! ऐसी कृपा करो कि जिससे भावी तीन योनियोंसे मेरी मुक्ति हो जाए । हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम्हारी शरणमें आया हूँ । तुम मेरा इस प्रेतयोनिसे भी उद्धार करो । ब्राह्मणने कलहाके वृन्दाश्वको मुना ता उसको पापकर्मसे भय विस्मय तथा दुःखसे इस और उसकी इस ग्लानिपूर्ण दशाको देखकर कृपासे चञ्चलचित्त हो और बहुत देरतक सोचकर दुःखसे इस प्रकार सुन्दर वचन कहना आरम्भ किया ॥ १६८-१७० ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकायां सारकाण्डे वृन्दाशापकलहाख्यानं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

धर्मदत्त बोले—तीर्थ, दान तथा व्रतके द्वारा पाप क्षीण होते हैं, परन्तु प्रेतशरीरमें रहनेसे तुम्हारा उनपर अधिकार नहीं है ॥ १ ॥ तुम्हारी इस दुर्दशाका देखकर मेरा मन बहुत दुःखों में रहा है । अबतक तुम्हारा इस दुःखसे उद्धार होगा, तबतक मुझको गान्ति नहीं मिलेगी ॥ २ ॥ यह नीध प्रेतत्व और तीन योनियोंको भोगनेवाला तुम्हारा भवान् पाप साधारण पुण्यसे क्षीण न होगा ॥ ३ ॥ इस कारण जन्मसे लेकर अबतक किये हुए अपने कार्तिकव्रतके पुण्यका आधा भाग मैं तुमको देता हूँ । उससे तुम सद्गतिको प्राप्त होओगी ॥ ४ ॥ कार्तिकव्रतके पुण्यके समान यज्ञ-दान-तीर्थ आदि कोई भी नहीं हो सकता । यह बात निश्चित है ॥ ५ ॥ मुनि मुद्गल कहने लगे—हे राजन् ! इतना कहकर धर्मदत्तने ज्यों ही उसके ऊपर तुलसीदल जल छिड़ककर द्वादश अक्षरोंका मंत्र सुनाया । त्यों ही प्रेतयोनिसे मुक्त होकर वह जलती हुई अग्निकी लपटके समान दिव्य रूप धारण करके उर्वशीके सदृश सुन्दर स्त्री बन गयी ॥ ६ ॥ ७ ॥ तब वह ब्राह्मणके शरणोंको दण्डवत् प्रणाम करके सहर्ष गद्गद वाणीसे कहने लगी ॥ ८ ॥ कलहा बोली—हे द्विजोमें श्रेष्ठ द्विज । आपकी कृपासे नरकमें जानेसे बच गयी । पापसमुद्रमें डुबती हुई मुझ पापिनीको बचाकर आपने

मुद्गल उवाच

इत्थं सा वदती विप्रं ददश्यात्तमवरात् विमानं सुन्दरं युक्तं विष्णुरूपचरमर्गणैः ॥१०॥
 अथ सा तद्विमानस्थैर्विमाने चाधिरोपिता । पुण्यशीलसुशीलार्धरसरोमणसेविता ॥११॥
 तद्विमानं तदाऽपश्यद्वर्मदत्तः सविस्मयः । पथान् ददवज्जूमौ दृष्ट्वा तौ पुण्यरूपिणौ ॥१२॥
 पुण्यशीलसुशीला च समुत्थाप्यानतं द्विजम् । समस्यनन्दयन् वाणीं प्रोचतुर्धर्मसंयुताम् ॥१३॥

गणावचतुः

साधु साधु द्विजश्रेष्ठ यस्त्वं विष्णुरत्नः मदा । दीनानुकम्पी धर्मज्ञो विष्णुव्रतपरायणः ॥१४॥
 आबालत्वान्वया सेतुघातकृतं कार्तिकव्रतम् । तत्र तत्स्यार्धदानेन पुण्यं द्विगुण्यमागतम् ॥१५॥
 त्वत्पुण्यस्यार्धभागेन यदस्याः पूर्वकर्मजम् । जन्मान्तरशतोज्ञातं पापं तद्विलयं गतम् ॥१६॥
 स्नानैरेव गतं पापं यदस्याः पूर्वकर्मजम् । हरिजागरणार्धेन विमानमिदमागतम् ॥१७॥
 वैकुण्ठं नीयते साधो नानाभोगयुता त्वियम् । दीपदानभवेः पुण्यैस्तजस्तं रूपमाश्रिता ॥१८॥
 तुलसीपूजनाद्यैश्च कार्तिकव्रतकैः शुभैः । विष्णुसाभिष्यगा जाता त्वया दत्तैः कृपानिधे ॥१९॥
 त्वमप्यस्य भवस्यान्ते भार्यया सह यास्यसि । वैकुण्ठं गच्छन् विष्णोः सान्निध्यं च सरूपताम् ॥२०॥
 ते धन्याः कृतपुण्यास्ते तेषां च सफलं भवः । धर्मवत्याऽऽराधितो विष्णुर्धर्मदत्त त्वया यथा ॥२१॥
 सम्यगाराधितो विष्णुः किं न यच्छति देहिनाम् । औत्तानपादिर्येनैव ध्रुवत्वे स्थापिता पुरा ॥२२॥
 यस्यामस्मरणादेव देहिनी याति सवृणतिम् । ग्राह्युद्गीतो नामेन्द्रो यन्नामस्मरणात्पुरा ॥२३॥
 विमुक्तः संनिधिं प्राप्नो जातोऽयं जयसेवकः । ग्राह्योऽयं विजयो नाम्ना भीविष्णोश्चितनादभूत् ।
 यतस्त्वयाऽर्चिता विष्णुस्तत्सान्निध्यं प्रायास्यसि । बहुन्यद्वसहस्राणि भार्याद्वययुतस्य ते ॥२४॥

नायका काम किया है ॥ ९ ॥ मुद्गल मुनि कहने लगे कि इस बातको कहने ही कहते उसने देखा कि आकाशमांगसे विष्णुरूपमारी गणोंसे युक्त एक सुन्दर विमान उतर रहा है ॥ १० ॥ बाइसे विमानमें बंठे हुए पुण्यशील तथा सुशील आदिने कलहाको विमानमें बंठा लिया और अप्सरायें उसको सेवा करने लगी ॥ ११ ॥ धर्मदत्तको वह विमान देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ और उसमें पुण्यतमा तथा पुण्यशील सुशीलको देखकर उनके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम किया ॥ १२ ॥ उन दोनोंने भी उस विनम्र द्विजको सब देख तथा अभिनन्दन करके धर्मयुक्त वाणीमें कहा ॥ १३ ॥ दोनों गण कहने लगे—हे द्विजश्रेष्ठ ! बाहू-बाहू, तुम धन्य हो । तुम दोनोंपर करते हो, धर्मको जानते हो और सदा विष्णुभक्तिमें रहते हुए विष्णुके व्रतमें तत्पर रहते हो ॥ १४ ॥ तुमने जो भक्षणसे ही कार्तिकमासका व्रत करके आज उस पुण्यका आधा दान दिया है, इससे तुम्हारा पुण्य दुगुना हो गया है ॥ १५ ॥ तुम्हारे आधे पुण्यसे इसके संकटों जन्मके पापकर्मोंका नाश हो गया ॥ १६ ॥ तुम्हारे कराये हुए तुलसीदलयुक्त जलके स्नानसे ही इसके पूर्वमें किये हुए सब पाप दूर हो गये थे । विष्णु-आराधनके पुण्यसे इसके लिए यह विमान आया है ॥ १७ ॥ हे साधो ! तुम्हारे दीपदानके पुण्यसे इस तंजस्वी रूप धारण करनेवालीको हम विविध सुख भोगनेके लिए वैकुण्ठ से जा रहे हैं ॥ १८ ॥ हे कृपानिधे ! तुम्हारे दिये हुए तुलसीपूजन तथा कार्तिकव्रतके पुण्यसे यह विष्णुभगवानके सान्निध्यको प्राप्त हुई है ॥ १९ ॥ तुम भी इस जन्मक अन्तमें स्वीकृति वैकुण्ठमें जाकर विष्णुके सान्निध्य तथा सरूपताको प्राप्त होओगे ॥ २० ॥ हे धर्मदत्त ! वे लोग धन्य हैं और बड़े धर्मात्मा तथा सफल जन्मवाले हैं, जिन्होंने कि तुम्हारी तरह विष्णुकी आराधना की ॥ २१ ॥ भली भक्ति पूजित विष्णुभगवान् मनुष्यको क्या नहीं देते ? जिन्होंने पूर्वकर्ममें राजा उत्तानपादके पुत्रको ध्रुवपदपर स्थापित किया ॥ २२ ॥ जिनके नामस्मरणमात्रसे ही मनुष्य सवृत्तिको हो जाता । प्राचीन समयमें भगवत्से पकड़ा गया गजेन्द्र जिनके नामका स्मरण करनेसे मुक्त होकर विष्णुके सान्निध्यको हुआ और अब नामका द्वारपाल बना । ग्राह्य भी विष्णुका चिन्तन करके विजय प्राप्त कर पाएगा ॥ २३ ॥ २४ ॥ इसी प्रकार तुमने भी विष्णुभगवान्का पूजन किया है ।

ततः पुण्ये क्षयं प्राप्ते यदा यास्यसि भूतलम् । सूर्यवशोऽङ्गवो राज्ञा विस्मयानस्त्वं भविष्यसि ॥२६॥
 नाम्ना दशरथस्तत्र भार्याद्वययुतः पुमान् । तृतीयेयं तदा भार्या पुण्यस्यैवार्धभागिनी ॥२७॥
 कलहा कैकेयी नाम्नी भविष्यति न संशयः । तत्रापि तव सामिष्यं विष्णुर्दास्यति भूतले ॥२८॥
 आत्मानं तव पुत्रत्वं प्रकल्प्यामरकार्यकृत् । रामनाम्ना रावणादीन् हन्त्वा राज्यं हरिष्यति ॥२९॥
 तवाजन्मव्रतादस्माद्विष्णुसंतुष्टिकारणात् । न यज्ञा न च दानानि न तीर्थान्यधिकानि वै ॥३०॥
 अतस्त्वग्रंऽपि धर्मज्ञ नित्यं विष्णुव्रते स्थितः । त्यक्तमात्सर्येर्दमोऽपि भवत्वं समदर्शनः ॥३१॥
 कार्तिके माघवे माघे चैत्रे मासवतुष्टये । प्रत्यब्दं त्वं धर्मदत्तं प्रातःस्नायी सदा भव ॥३२॥
 एकादशीव्रते तिष्ठ तुलसीवनपालकः । ब्राह्मणानपि गात्रापि वैष्णवाश्च सदा भव ॥३३॥
 मसूरिकाश्चरनालं वृन्ताकादीनि स्वादभा । एवं स्वमपि देहाते तद्विष्णोः परमं पदम् ॥३४॥
 प्राप्नोषि धर्मदत्तत्वं तद्भक्त्यैव यथा वयम् । पुण्यशीलमुशीलारूपौ जयश्च विजयस्तथा ॥३५॥

धन्योऽमि विप्राग्रथ यतस्त्रयैतद्व्रतं कृतं तुष्टिकरं जगद्गुरोः ।

यदर्धभागात्सफलान्भुरारेः प्रणीयतेऽस्माभिरियं सलोकताम् ॥३६॥

मुद्गल उवाच

इत्थं तौ धर्मदत्तं तमुपदिश्य विमानगौ । तथा कलहया सार्द्धं वैकुण्ठभुवनं गतौ ॥३७॥
 धर्मदत्तोऽप्यसौ राजन् प्रत्यब्दं तद्व्रते स्थितः । देहाते परमं स्थानं भार्याभ्यामन्वितोऽम्यगात् ॥३८॥
 बहून्यब्दसहस्राणि स्थित्वा वैकुण्ठमग्रनि । ततः पुण्यक्षये जाते जातोऽमि त्वं नृपो महान् ॥३९॥
 त्रिमिः क्षीभिर्दशरथ ते विष्णुः पुत्रतां गतः । रामोऽयं लक्ष्मणः शंभो भरतोऽज्जोऽरिश्मन्बुधा ॥४०॥
 एवं सर्वं मयाऽऽख्यातं यथा पृष्टं त्वया मम । धन्यस्त्वं यस्य तनयः साक्षान्नारायणोऽभवत् ॥४१॥

इसलिए तुम भी दोनों स्त्रियोंके साथ कई हजार वर्ष पयन्त उनके सान्निध्यको प्राप्त होओगे ॥ २५ ॥ तत्पश्चात् पुण्य क्षाण होनेपर अब तुम पुनः पृथ्वीपर आओगे, ■■■ सूर्यवंशमें बड़े प्रहरास राजा बनोगे ॥ २६ ॥ दोनों स्त्रियाँ तुम्हारे साथ रहेंगी और तुम श्रीमान् दशरथ नामके राजा बनोगे । उस समय यह आधे पुण्यकी भागिनी कलहा निःसन्देह कैकेयी नामकी तुम्हारी तीसरी स्त्री होगी । वहाँ पृथ्वीपर भी भगवान् सदा तुम्हारे सन्निकट रहेंगे ॥ २७ ॥ २८ ॥ वे प्रभु देवताओंका कार्य साधन करनेके लिए अपने आपको तुम्हारा पुत्र बनाएँगे तथा रामनाम धारण करके रावण आदिको मारकर राज्य करेंगे ॥ २९ ॥ विष्णुको प्रसन्न करनेवाले तुम्हारे जन्मसे लेकर किये हुए इस व्रतसे बढ़कर कोई ■■■, दान तथा ■■■ आदि नहीं है ॥ ३० ॥ इस कारण आगे भी तुम धर्मज्ञ, नित्य विष्णुके व्रतमें स्थित और मात्सर्य-रम्म आदिसे रहित होकर समदर्शी बनो ॥ ३१ ॥ हे धर्मदत्त ! प्रतिवर्ष कार्तिक, वंशाख, चैत्र तथा माघ इन चारों महीनोंमें प्रातःकाल स्नान करके तुम एकादशीका व्रत और तुलसीका पूजन करो । ब्राह्मण, गौ तथा विष्णुभक्तोंकी सेवामें तत्पर रहा करो ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ मसूर, सोबीर तथा वंगन आदिका खाना छोड़ दो । हे धर्मदत्त ! ऐसा करनेसे तुम भी जय-विजय तथा पुण्यशील-सुशील आदि हम लोगोंकी तरह विष्णुके उस परम पदको उनकी भक्ति मात्रसे ही प्राप्त होजाओगे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! तुम धन्य हो, क्योंकि तुमने जगद्गुरु विष्णुको सन्तुष्ट करनेवाला यह ■■■ किया है, जिसके अमोघ पुण्यभागके प्रभावसे हमलोग भी मुरारि भगवान्की सलोकताको (समानलोकको) प्राप्त हुए हैं ॥ ३६ ॥ मुद्गल बोले—इस प्रकार वे दोनों धर्मदत्तकी उपदेश दे तथा विमानमें बैठकर कहल्यके साथ वैकुण्ठधामको चले गये ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! वह धर्मदत्त भी प्रतिवर्ष उस व्रतको करके देहान्त होनेके बाद दोनों स्त्रियोंके साथ परमपदको प्राप्त हुआ ॥ ३८ ॥ बहुत वर्षों पयन्त वैकुण्ठ-धाममें रहकर पुण्यक्षय होनेके बाद यहाँ आकर वही तुम इतने बड़े राजा बने हो ॥ ३९ ॥ तुम अपनी तीनों स्त्रियोंके साथ यहाँ आये । विष्णुभगवान् तुम्हारे पुत्र राम बने, शेष लक्ष्मण बने, ब्रह्मा भरत बने तथा चक्र सङ्गुप्त बना ॥ ४० ॥ ओ तुमने पूछा था, वह ■■■ मैंने तुमको कह सुनाया । तुम धन्य हो । क्योंकि साक्षात् नारायण तुम्हारे पुत्र हुए हैं ॥ ४१ ॥ श्रीशिवजी

इत्युक्त्वा नृपतिं पूज्य विसमर्जं मुनिस्तदा । आलिंग्य रामं मौमित्रिं मेने च कृतकृत्यताम् ॥४२॥
 तदा राजा स्वमैन्त्रेण महाहर्षमभन्वितः । अयोध्यापुनर्महार्घा गोपुरादालम्बिताम् ॥४३॥
 नृपमागतमाज्ञाय मंत्रिणः पुरवासिनः । पताकातोष्णद्यौश्च दिव्यचन्दनसेवनैः ॥४४॥
 नगरीं भक्षयित्वा ते नृत्यवाद्यादिमंगलैः । निन्यः कदुम्बमङ्गितं राजानं नगरीं प्रति ॥४५॥
 राममागतमाज्ञाय गोपुरादालम्बिताम् । कट्यां निधाय बालांश्च स्त्रियः स्मित्वा निजैः कर्तुः ॥४६॥
 सुवर्णकुम्भाद्यैश्च वक्त्रैः पुष्पपुष्पिभिः । काञ्चिन्मागोपसि स्मित्वा कम्पदीपादिमंगलैः ॥४७॥
 अतिव्याद्यैश्च राजानं भगवं शान्तिकारकैः । पूजयन्ति स्म ताः सर्वा गजमार्यो पृथक् पृथक् ॥४८॥
 एवं नानामधुत्माहैर्नर्तनैर्वाग्योपिताम् । दम्भीनां निनादैश्च गायकानां च गावतैः ॥४९॥
 मीथोऽवगन्वाद्यैश्च स्त्रीमन्त्रपुष्पपुष्पिभिः । ययौ स्वमित्रिणं राजा वीज्यमानः सुचामरैः ॥५०॥
 नतस्तान जनकामन्यान् वक्त्रालंकारवादनैः । सत्कृत्य भोजनाद्यैश्च प्रेषयामास मौघिलम् ॥५१॥
 एवं मनेषुन्मयेषु जनको वर्यिकेषु मः । निनाय मिथिलां राममातृभिः पार्थिवेन च ॥५२॥
 उत्तरोत्तरमः पूज्य तोषयामास राघवम् । रामोऽपि रमयामास लीलाभिर्नृपतिं तदा ॥५३॥
 मासैः षड्विर्जनकञ्च लक्ष्मी श्रीगन्धवान्छुमा । लग्नात्पेकादसे वर्षे रजोयुक्ता यभूव ह ॥५४॥
 तद्वानर्त जनकः भृत्या पत्नीभिर्मन्त्रिभिः सह । अयोध्यामगमच्छीघ्रं राजा प्रसृज्जगाम तम् ॥५५॥
 परम्परं समालिंग्य माकेतमिथिलाधिपौ । नृत्यवाद्यमधुत्माहैरयोध्यां विविशुः सुखम् ॥५६॥
 सतो महामधुत्माहैर्नर्तनामण्डपतोर्णैः । कदलीस्तंभमालाभिरिन्दुदण्डैः सुचामरैः ॥५७॥
 घटद्वारमण्डपैश्च घंटाघोषैः सदर्पणैः । किंकिणीजालघोषैश्च विनानैर्दीवराजिभिः ॥५८॥

बोले कि ऐसा कहकर मुनिने राजाकी पूजा की और उन्हें विदा किया । राम-लक्ष्मणका आलिंगन करके उन्होंने अपनेको कृतकृत्य समझा ॥ ४२ ॥ तब राजा दशरथ अत्यन्त हर्षित अपनी सेनाके साथ पुरद्वार तथा अटारियोंसे युक्तो भ्रम रमणीक अयोध्यापुरीको गये ॥ ४३ ॥ राजाका आगमन सुनकर मन्त्रियों तथा पुरवासियोंने पताकाओं तथा तांगणोंसे नगरीको सजा तथा महकोंपर चन्दन छिड़कवाकर नृत्य और मांगलिक वाजे-गात्रोंके साथ गङ्गदुम्ब राजाको नगरमें ले आये ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ रामको आया जानकर स्त्रियें अपने बालकोंको कमण्डलु उठाकर पुरद्वार तथा अटारियोंकी पक्षियोंपर जाकर खड़ी हो गयीं और अपने हाथसे उनपर सुवर्ण-कुम्भोंकी वृष्टि करने लगीं । कुछ स्त्रियां पानीसे भरा मांगलिक कलश और कुछ मांगलिक दीप लेकर रास्तेमें सामने खड़ी हो गयीं और कुछ राजमार्गमें जगह-जगह शान्तिकारि आरती आदिसे रामके सहित राजाकी पूजा करने लगीं ॥ ४६-४८ ॥ इस प्रकार अनेक उत्सवोंसे युक्त वेष्टाओंके नृत्य तथा नगादोंके शब्दों एवं गात्रकोंके गानोंके साथ महलोंके झरोखोंसे मित्रियों द्वारा की गयीं पुष्पवृष्टिसे आच्छादित तथा सुन्दर चमरोंसे वीज्यमान होने हुए राजा दशरथ अपने मित्रिरथे गये ॥ ४९ ॥ ५० ॥ तदनन्तर वक्त्र, अलङ्कार, अश्व-गाजादि वाहन तथा भोजन आदिते राजा जनकके मन्त्रियोंका सत्कार करके उन्हें मिथिला भेज दिया ॥ ५१ ॥ इस प्रकार राजा जनक प्रत्येक वार्षिक उत्सवमें रामको उनकी माताओं तथा राजा दशरथको मिथिलापुरीमें बुलाते ॥ ५२ ॥ राजा रामको सदा संतुष्ट रखनेकी चेष्टा करते थे । राम भी अनेक लीलाओं द्वारा राजाको आनन्दित करते थे । सुन्दरी तथा शुभा जानकी रामसे छः महीना छंट्टी थी । विवाहके ग्यारहवें वर्षमें वे रजस्वला हुई ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ यह समाचार सुनकर राजा जनक अपनी स्त्रियों तथा मन्त्रियोंके साथ अयोध्या गये । राजा दशरथने भी उनकी अगवानी की ॥ ५५ ॥ अयोध्यापति तथा मिथिलाधिपति दोनों परस्पर जी भरकर गले मिले । तदनन्तर नृत्य वाद्य आदि उत्सवपूर्वक सुखसे अयोध्यामें प्रविष्ट हुए ॥ ५६ ॥ पश्चात् विविध मण्डपों, जोरों, केलेक स्तम्भों, पुष्पोंकी मालाओं, ईसके दण्डों, चावरों, चार दरवाजेवाले मण्डपों, घण्टा-घड़ियालके शब्दों, छोटी-छोटी घण्टियोंके समुदायके शब्दों, मीशों, चंदोवों तथा दीपपत्तियों द्वारा

वसिष्ठो मुनिभिः सार्द्धं गर्भाधानविधिं शुभम् । कारयामास रामेण सीतायाश्चातिहर्षितः ॥५९॥
 तदा वस्त्रैरलङ्कारैर्जनको नृपतिं मुदा । पूजयामास मल्लीकं स्नुषापुत्रसमन्वितम् ॥६०॥
 मासमेकमतिक्रम्य यया स्वनगरीं सुखम् । गमाऽपि सीतया सार्द्धं नानाभोगान्सुपुष्कलान् ॥६१॥
 पुष्पजै हेमरत्नादिनिमित्तेषु गृहेषु सः । रुक्ममण्डनयुक्ताभिर्दानीभिर्योजितः सुखम् ॥६२॥
 एवं तामां नृपसुतपत्नीनां च पृथक् पृथक् । यथाकाले निधानेषु गर्भाधानादिकेषु च ॥६३॥
 आगत्य जनकश्चक्रे नानोत्साहान्मुदान्वितः । अयाध्यानमरीमन्त्रे वाद्यघोषो गृहे गृहे ॥६४॥
 मंगलानि च सर्वत्र न कुत्राप्यस्यमंगलम् । न दरिद्रा शृणा नासीन्नाधिव्याधिप्रपीडितः ॥६५॥
 रामादिभिश्चतुर्भिस्तैर्वधुभिस्तदनन्तरम् । पृथग्गृहेषु भार्याभिर्गार्हस्थ्यमध्यनुष्ठितम् ॥६६॥
 रामः प्रातः समुन्वाप कृतशीचादिमत्क्रियः । आरुह्य शिविकां दिव्यां स्नानार्थं सरयू नदीम् ॥६७॥
 गत्वा कूले वाहनादि त्रिसृज्य रघुनन्दनः । गच्छंस्तस्याः पावनार्थं सरयवाः पुलिने मुदा ॥६८॥
 मंत्रिभिर्वेष्टितो गत्वा नत्वा तां सरयूनदाम् । स्नान्वा नित्यविधिं कृत्वा ब्राह्मणैः परिवारितः ॥६९॥
 दद्याद्दानान्यनेकानि गोभूधान्धरमादिभिः । संपूज्य सरयू पण्यां ब्राह्मणान् पूज्य सादरम् ॥७०॥
 यया रथं समारुह्य रुक्मचन्द्रनवधितम् । रुक्मतंतुरज्जुभिश्च सर्वतः परिवेष्टितम् ॥७१॥
 पद्मकूलादिवसनैर्वर्गच्छादितं शुभम् । वाजिवाहं मारुतिना सुस्नातेन प्रचोदितम् ॥७२॥
 किंकिणीवरमालाभिर्घण्टाभिरतिगञ्जितम् । रुक्मदंडधरैर्दूतैश्च दर्शितसत्पथम् ॥७३॥
 पथि नीराजितः स्त्रीभिर्वर्षितः पुष्पघ्ण्टाभिः । प्राप स्त्रीयं गृहं गमः सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥७४॥
 अवरुह्य रथाद्गमः पादयोर्धृत्य पादुके । शिवेश सीतासंदत्तपादाभ्यांचमनां गृहम् ॥७५॥
 गन् ॥ अग्निहोत्रशालायां संतप्यऽऽसनमस्थितः । अग्निहोत्रादार्चाधना दक्षिं कृत्या ततः परम् ॥७६॥
 महान् उत्सवके साय गृह वसिष्ठेन मुनियोक्तो साय लेकर रामका साताक साय आनन्दपूजक शुभ गर्भाधान-
 संस्कार किया ॥ ५७-५८ ॥ तदनन्तर राजा जनकने स्थितो, पुत्रों तथा पुत्रवधुओं सहित राजा दशरथकी वस्त्र-
 अलङ्कार आदिसे प्रसन्नतापूर्वक पूजा ॥ ६० ॥ इस प्रकार एक मास अयाध्यामे रहकर आनन्दसे वे अपने
 नगरका लौट गये । राम भा साताके साथ सुवर्ण-रत्नों आदिसे निमित्त भवनोंमें अनेक प्रकारके भोगोंको
 भागने लगे । उस समय सोनेके गहनोंसे मुश्याभन दासिने परवा प्रसन्नता थी ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ इसी प्रकार प्रत्येक
 राजपुत्रकी स्त्रीके गर्भाधानसंस्कारमें आकर राजा जनकने विविध उत्सव किए और अयोध्या नगरीमें
 घर-घर बाजे ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ सारी अयोध्या मङ्गलमयी हो गयी । कहीं भी अमङ्गलका नाम न ॥ ६५ ॥ उस
 नगरमें कोई दरिद्र, ऋणी, मानसिक तथा शारीरिक दुःखसे पीडित नहीं था ॥ ६६ ॥ पश्चात् राम आदि
 चारों भाई अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ अलग-अलग महलोंमें गृहस्वधर्मका पालन करने लगे ॥ ६६ ॥ राम
 प्रतिदिन प्रातः उठते तथा शौचादि कृत्यसे निवृत्त हो दिव्य पालकीपर सवार हुकर स्नान करनेके लिए
 सरयू नदीपर जाते थे । सशरी आदिको किनारे छोड़ आनन्दसे सरयूको पवित्र करनेके लिये बालुकापर
 हांते हुए वहाँ जाते ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ मन्त्रियोंके सहित जाकर वे सरयू नदीको नमस्कार करके स्नान तथा
 नित्यकर्म करते और ब्राह्मणोंको गो, भूमि, धान्य तथा भूदण आदिका दान देकर पवित्र सरयू और ब्राह्मणोंकी
 सादर पूजा करने थे ॥ ६९ ॥ ७० ॥ तदनन्तर सोनेके वस्त्रोंके बँधे हुए सुवर्णके नारकी रत्नियोंसे युक्त रेशम
 तथा मल्लमल्लके उत्तम वस्त्र द्वारा चारों ओरसे आच्छादित एक मुन्दर सान्नीसे प्रेरित अश्वोंवाले रथपर सवार
 होकर लौटते थे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ पुष्पककी मालाओं तथा घण्टियोंके शब्दसे गञ्जित उस रथके आगे सोनेकी
 छड़ियोंवाले छड़ीदार चौडकर मार्ग दिखलाते चलते थे ॥ ७३ ॥ रास्तेमें स्त्रियों द्वारा पूजित तथा पुष्पवृष्टिसे
 आच्छादित गम करेहों मूर्तोंके समान प्रभामय्यत्र अपने महलोंमें पधारने ॥७४॥ वहाँ रथमें उतरकर रामचन्द्र-
 जी खड़ाऊँ पहिनकर घरमें जाने । वहाँ सीताजी स्वयं उन्हें पाँव तथा हाथ-मूँह दोनोंका अल देती थीं ॥ ७५ ॥
 पश्चात् सीता समेत राम अग्निहोत्रशालामें जा तथा आसनपर बैठकर अग्निहोत्रकी विधिसे अग्निमें हवन

स्फटिकस्य च लिंगस्य कर्ममार्गं वधाविधिः । लोकानां शिक्षणार्थाय कृत्वा पूजनमुत्तमम् ॥७७॥
 जानकया दत्तपक्वान्ननैवेद्यादि सपर्य्य च । ब्राह्मणान्पूज्य दानाद्यैस्तोष्य लब्ध्वा तदाश्विनः ॥७८॥
 तुलसीं च गुरुं धेनुमश्वत्थं मुनिपादपम् । पूजयित्वा रविं देवं ब्रह्मयज्ञं त्रिधाप च ॥७९॥
 गुग्गुलुंश्चाप्य पीताम्बी कथां श्रुत्वा तु सीतया । गुरुं पुनः प्रपूज्याथ पद्भुभिः पवित्रेष्टितः ॥८०॥
 प्रार्थितश्च गुरुः पत्न्या ब्राह्मणैः परिवारितः । नारिकेलकपिथाम्रसुलभाजम्बुदाहिर्मैः ॥८१॥
 स्वर्जरिकापनमाद्यैः पक्वान्नेर्घृतपाचितैः । उपाहारं सुखं कृत्वा तांजुलं परिगृह्य च ॥८२॥
 दिव्यवस्त्राणि संगृह्य दृष्ट्वाऽऽश्चं निजं मुखम् । निरीक्षितश्च वैदेह्याऽऽरुह्य स्पन्दनमृत्तमम् ॥८३॥
 वेष्टिता मन्त्रिद्वन्द्वैस्तूर्वाध्वनिपुरःसरम् । मातृगेहं ततो गत्वा ताः प्रणम्यावनिं गतः ॥८४॥
 सख्या प्रदक्षिणां कृत्वा गत्वा गजगृहं प्रति । सिंहासनस्थं राजानं नत्वा स्थित्वा तदाजया ॥८५॥
 पौरकार्याण्यनेकानि कृत्वा राज्ञा विसर्जितः । ययौ स्पन्दनमास्थाय नृपं नत्वा पुनः पुनः ॥८६॥
 तूर्वागीतनिनादैश्च नर्तनैर्वार्योपिताम् । ययौ स्वीयं गृहं रामः स्पन्दनादवरुह्य च ॥८७॥
 भूमिजादत्तपादाचार्यावमनायासनादिकम् । मृहीत्वा तद्वदिगेत्वा कृतं तत्तां न्यवेदयन् ॥८८॥
 सर्वं वृत्तं कौतुकेन हास्यगीतादिमंगलैः । रमयित्वा भूमिकन्यां दिव्यवस्त्रादिभूषिताम् ॥८९॥
 ततो मध्याह्नपयमे सरस्वां वाश्य मघनि । स्नात्वा माध्याह्निकं कर्म चकार स्पन्दनः ॥९०॥
 नित्यं पत्राकरोत्स्नानं सरयुनिर्मले जले । तदास्थयाऽमवर्त्तीर्थं गमतीर्थमिति स्फुटम् ॥९१॥
 तद्विख्यातं त्रिभुवने चैत्रमामि त्रिशेखरः । माध्याह्निकं च सपाद्य ब्राह्मणमन्त्रिभिर्जनैः ॥९२॥
 इष्टैः सुवर्णपात्रेषु विपदासु घृतेषु च । परिष्कृतेषु जानकया सीतया गतिलाघवात् ॥९३॥
 कणकं कणमजीरकिकिणीन्पूरादिषु । नदत्तु मोजनं चक्रे गययो हर्षपूर्वितः ॥९४॥
 करशुद्धिं विधायाथ भुक्त्वा ताम्बूलमुत्तमम् । ततः शतपदं गत्वा निद्रां कृत्वा तु सीतया ॥९५॥

करते थे ॥७६॥ लोगोंकी कर्म करनेका यथाथं उपदेश देनेके लिए वे स्फटिकके शिवलिङ्गका पूजन करने और सीताके दिये हुए पक्वान्नका नैवेद्य भोग लगाने थे । तदनन्तर ब्राह्मणोंकी पूजाकर तथा उन्हें दान आदिके द्वारा संतुष्ट करने उनके अनेक माताश्रीद लेते थे ॥७७॥७८॥ तदनन्तर तुलसी, गुरु, गौ, पीपल, शमी, सूरदेवकी पूजा और ब्रह्मपूजाका विधान करके सीताके साथ गुरुमुखसे पूजाणोंकी क्या सुनते थे फिर मुहूर्तकी पूजा करके पत्नीसे प्रार्थना करनेपर ब्राह्मणों तथा वन्द्युओंके साथ नारियल, केला, आम, सुलभा (शालिपर्णी), जामुन, अनार, खजूर तथा कटहल आदि और धृतके पक्वान्न जानन्दसे खाकर पान खाते थे ॥७९-८२॥ तत्पश्चात् दिव्य वस्त्र धारण करके सीतेके मुख देख वैदेहीके समक्ष इतना रथपर तथा दूतों और मन्त्रियोंको साथ ले तुलसी आदि वाजोंके साथ सीताके महलमें जाते और भूमिपर लोटकर उन्हें प्रणाम करते थे ॥८३॥८४॥ फिर बाहिरकी ओरसे प्रदक्षिणा करके राजा सिंहासनके महलमें जाते और वहाँ सिंहासनपर बैठे हुए राजाको प्रणाम करके उनकी आज्ञाके चँड जाते थे ॥ ८५ ॥ तदनन्तर नगरतन्त्रन्धी अनेक कार्योंपर परामर्श करके राजा उनको छोटा दते थे । राम राजाकी प्रणाम करते और रथपर सवार हो माने-कजाने तथा नावनेके नौकोंको सुनते हुए महल जाते । वहाँ रथसे उतरकर घरमें जाते और सीताके हाथों प्राप्त जयके पाव-हाथ-मुँह आदि धोकर जो कुछ कार्य कर आते थे, वह सीताको कह सुनाते ॥ ८६-८८ ॥ पश्चात् दिव्य वस्त्रोंसे भूषित सीताको सुन्दर हास्य-गीत आदिके द्वारा प्रसन्न करते थे ॥ ८९ ॥ उसके बाद राम शेषहरेकी सरयू धर ही में स्नान करके मध्याह्निके कृत्य करते थे ॥ ९० ॥ जिस जगह वे नित्यप्रति स्नान करते थे, स्नानका नाम रामतीर्थ पड़ गया ॥ ९१ ॥ तीनों लोकोंने यह स्थान प्रतिष्ठ हो गया । विशेष करके चैत्रमासमें उसका बड़ा माहात्म्य है । मध्याह्निककृत्य करनेके बाद ब्राह्मणों, मन्त्रियों तथा मित्रजनोंके साथ तिपहरियोंपर रखे हुए सुन्दर परिष्कृत सुवर्णपात्रोंमें मन्दगतिवाली तथा जिनके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें कंकण, शांकर, नूपुर और करवनी आदि गहने बज रहे थे, ऐसी सीताके रघुपति राम हर्षपूर्वक भोजन करते थे ॥ ९२-९४ ॥ पश्चात् हाथ धो

पुनर्वस्त्राणि मंगुल्य लब्ध्वा शृङ्गाणि मादरम् । धनुषाणो करे धृत्वा रथे स्थित्वाऽथ बंधुभिः ॥९६॥
 पुष्पागमोद्यानकार्दान् दृष्ट्वा तु कौतुकेन च । वाद्यवापनननाद्यगत्वा स्वायं गृहं पुनः ॥९७॥
 मायंसंध्यादि मंषाद्य पुनर्हन्वा मावस्तरम् । शंभुं भक्त्या पुनः पूज्य कृत्वा चैवापहारकम् ॥९८॥
 रत्नकांचनमाणिक्यनिर्मितं मंचकं परं । दिव्यप्रामादनस्य स मातया रघुनायकः ॥९९॥
 हास्यमातत्रिनोदाद्यैर्निद्रां चक्रे ततः परम् । एव नानाभमुत्साहैर्निनायाकंसमाः सुखम् ॥१००॥
 एकदा राघवं राजा ज्ञात्वा मुद्गलवाक्यतः । वामपृष्ठाकयनश्चाप चारत्रेऽप्यमानुषः ॥१०१॥
 साक्षान्नारायणं त्रिष्णुं मन्याह्वय रहः स्थितः । पप्रच्छ इव नयेनैव हृदि भावं विधाय च ॥१०२॥
 राम नारायणस्य हि भूभारहरणाय च । मत्तो ज्ञानाऽसाति लोका वदन्त्यज्ञानबुद्धयः ॥१०३॥
 अतः पृच्छामि ते गम मायया माहितस्तत्र । किंचिज्ज्ञानोपदेशं नाश्रयाज्ञानजां मतिम् ॥१०४॥
 दासपत्यादिभेदेषु स्थिता नैवोपशाम्यति । तन्पितृवचनं श्रुत्वा राजानं राघवोऽब्रवीत् ॥१०५॥

श्रीराम उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि तव ज्ञानार्थमुत्तमम् । शृणोतु मम मातेयं कौसल्याऽपि तव प्रिया ॥१०६॥
 नश्यत् भामने चैतद्विभवं मायाद्भवं नृप । यथा शुर्का रौप्यभासः काचभूम्यां जलस्य ॥१०७॥
 यथा रज्जो मर्षभासो भ्रमतोये जलस्पृहा । तद्वदात्मनि भासोऽयं कल्प्यते नश्यतोऽबुधैः ॥१०८॥
 अज्ञानदृष्टिभिर्नित्यं मन्यते न तु पण्डितैः । आत्मा शुद्धो निर्वर्णलोकः सच्चिदानन्दलक्षणः ॥१०९॥
 यस्यांशांशेन विश्वेशा ब्रह्माद्याः सकला वयम् । स्थित्युत्पत्तिविनाशार्थं नानारूपाणि मायया ॥११०॥
 धार्यते नटवद्राजन् नैवामक्त एव सः । यथा पथं न स्पृशति जलं माया ॥१११॥
 आत्मा नित्यो न स्पृशति परमानन्दविग्रहः । देहागारमुत्सृज्य मामकंति च या मतिः ॥११२॥

तथा लाभूल साकर सोपग दहनमके बाद सीताके साथ आराम करत थे ॥ ९५ ॥ फिर वस्त्र पहिन तथा रानी हाथों धनुष-बाण लेकर कन्धुओंके साथ रथपर सवार होकर पुष्पित वाग-वगाचोंका देखते, आनन्दपूर्वक गायन सुनत तथा नाच देखते हुए अपने घर में सा-संध्यादि नित्य काम करत और पत्नी विधि दहन करके भक्तिसं शिवजीको पूजा करते थे । सायंकालका भाजन करके रत्नकांचन तथा माणिक्य मन्डार पलंगपर दिव्य महलमें सीताके साथ हास्य-गात तथा विनादपूर्वक गयन करत थे । इस प्रकार आनन्दमें सुखपूर्वक बारह वर्ष बीत गये ॥ ९६-१०० ॥ एक समय मुनि मुद्गल तथा गृह वासप्रक वाक्योक्त और रामके देवा चरित्रोंको देख राजा दशरथसे रामका साक्षात् नारायण समझकर एकान्तम बुद्ध्या और भाक्तिभाव तथा त्रिन्पुत्रक कहने लगे-॥ १०१ ॥ १०२ ॥ हे राम ! तुम साक्षात् नारायण हो । तुमने भूमिका भार हरण करनेके लिए मेरे घर अवतार लिया है । ऐसा अज्ञानयुक्त बुद्धिवाले लोग कहते हैं । इस कारण हे राम ! तुम्हारी मायासे मोहित मैं प्रार्थना करता हूँ कि तू म जानका उपदेश देकर मेरा अज्ञान दूर कर दो ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ स्त्री-पुरुष तथा गृह आदिमें अनुरक्त मेरी बुद्धि कभी शान्ति तथा सुखका अनुभव नहीं करती । पिताके इस वचनको सुनकर राम राजा दशरथसे बोले-॥ १०५ ॥ श्रीरामने कहा- हे राजन् । मैं आपको ज्ञानलाभके लिए उत्तम उपदेश देता हूँ । उसे आप तथा आपकी प्राणप्रिया और मेरी माता कौसल्या भी ध्यानसे सुनें ॥ १०६ ॥ हे नृप । मायासे उत्पन्न यह समस्त संसार आत्मामें उसी प्रकार झूठा भासित होता है जैसे कि सीपोंमें चाँदी, रेतोंमें जल, रस्सीमें सोप तथा भ्रममरोचिकामें सल्लि भासित होता है । अज्ञानी लोग इस आभासको भी नित्य तथा अनन्तर समझते हैं । परन्तु पण्डित लोग तो इससे विपरीत ही मानते हैं । उनके मतमें आत्मा शुद्ध, नित्य तथा सच्चिदानन्दस्वरूप है ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ उसके अंशमात्रसे समस्त विश्वके स्वामी ब्रह्मादि तथा हम सब प्राणी मानाके अज्ञान होकर जगत्की स्थिति उत्पत्ति तथा विनाशके लिये नटकी तरह विविध रूपोंको धारण करते हैं । किन्तु आत्मा स्वयं किसीमें आसक्त नहीं होता । जिस प्रकार कमल-पत्र जलका स्पर्श नहीं करता, उसी प्रकार अमल, नित्य और परम आनन्दस्वरूप आत्मा भी मायासे निर्लिप्त

उपसंहस्य बुद्ध्या संन्यस्य ब्रह्मणि चिह्ने । यद्यत्किञ्चिद्भ्रामतेऽथ तत्तन्नाशयणान्यकम् ॥११३॥
 पश्य त्वं सर्वभावेन मुच्यसे भवसंकटात् । मन्यं शौचे दया शान्तिः क्षमा चेन्द्रियनिग्रहः ॥११४॥
 अहिंसा भगवद्भक्तिर्वेदमार्गानुवर्तनम् । इत्याद्या ये शुणा राजन् तान् भजन्व निरंतरम् ॥११५॥
 धीर्यं दूतं विशदं च मान्मयं दंभमेव च । क्रौर्यं लोभं भयं क्रोधं शोकं निघप्रवर्तनम् ॥११६॥
 वेदविप्रवृत्तीनां च साधूनां मानभंजनम् । निदां पेशुन्यमानशं न्यज दूरं स्वतो नृप ॥११७॥
 पूरं त्वया तपस्तप्तं पुनश्च याचितं मम । तस्माज्जानोस्मि त्वयोऽहं कीमन्पायांनृपोत्तम ॥११८॥
 धन्यया कथितं चैतदज्ञानमलनाशनम् । गोपनीयं प्रयत्नेन कथनीयं न कुतचित् ॥११९॥
 तद्रामयजनं धृष्टा गन्धारायामलो नृपः ॥ सद्भावपरिपूर्णस्तु रोमांचितवपुर्धरः ॥१२०॥
 प्रणनाथ राघवस्य चरणौ दृढभाजतः । ततो गमः पुनः प्राह पितरं निर्मलाशयम् ॥१२१॥
 नन्दं योग्यं त्वया राजन् वंदनादि शिशुं प्रति । मायया नृग्वेषस्य मम उपहासकारणम् ॥१२२॥
 मनसोऽपि च मां नित्यं भज भावेन सादरम् । मज्जिनसो मद्भनप्राप्तो मयि भक्तिं दृढां कुरु ॥१२३॥
 इत्युक्त्वा पितरौ नत्वा गृहात्वाभ्यां तयोः प्रभुः । ययौ रथममारूढः श्रीरामः स्वनिकेतनम् ॥१२४॥
 कदा मातुर्गृहं गत्वा सौम्या भोजनं व्यवधात् । कदा भ्रातृगृहेऽप्येव कदा पत्नीं पितुः स्वयम् ॥१२५॥
 कदा दधस्थं तातं भोजनाय निजे गृहे । मायापुत्रादिभिर्पुत्रैः परैर्विप्रैः समन्वितम् ॥१२६॥
 मुदा रामः समाहूय भोजयामास सादरम् । श्रीरामदर्शनार्थं ते तपोवननिवासिनः ॥१२७॥
 अयोध्यानगरीमेत्य दार्षर्षिनिषेधिताः । शतशः प्रत्यहं गमं दृष्ट्वा स्तुत्या पुनः पुनः ॥१२८॥
 प्रतिध्वं रघुनाथस्य गृहान्वा तुष्टमानसाः । समपंचदिनान्येव स्थित्वा पुण्यकथादिभिः ॥१२९॥
 रमयित्वा रमानायं जगुः स्वं स्वं वमधमम् । यत्र यत्र हि रामस्य प्रीतिं जान्ता विशदहता ॥१३०॥

रहती है । देह-गृह-पुनः-पुनः आदिपरसे समता हटाकर अवतार मन्त्रात भावके द्वारा समस्त प्रायनाओंको छाड़-
 कर यह जो हृदयमान संसार है, उसको चिह्नन रहस्यसे अभिन्न नारायणन्यहने जान तथा उसी ईश्वरको सर्वत्र
 भाष्य देखकर आप इस भवसंसारसे मुक्त हो जायेंगे । हे राजन् ! पहले आप सत्यभाषण, विविता, दया,
 शान्ति, क्षमा, इन्द्रियनिग्रह, अहिंसा, भगवद्भक्ति तथा वेदोक्त मार्गके अनुवर्तन आदि गुणोंको निरन्तर चारण
 करें ॥ १०६-११५ ॥ हे नृप ! क्रौर्य, क्रुआ, ईर्ष्या, पाखण्ड, कृता, लोभ, भय, क्रोध, शोक, निन्दनीय काममें
 प्रवृत्त, वेदनवप्र-साधु-सन्मता आदिका मानभङ्ग, निन्दा और कुलखोरी आदिका अपने दिलमें दूर कर दें
 ॥ ११६ ॥ ११७ ॥ हे नृप ! आपने पूर्वकालमें तप करके मुक्तको पुण्यसे मोगा था । उसी कारण से आपके
 द्वारा कीसल्याके गर्भसे पुत्ररूपमें जायमान हुआ है ॥ ११८ ॥ यह जो मैंने आपको अज्ञानरूपी मन्त्र मष्ट करने-
 वाला उपदेश दिया है, उसे आप अपने मनमें ही रक्खिएगा—किसीसे कहिएगा नहीं ॥ ११९ ॥ रामके इस
 उपदेशका सुनते ही राजाके मनसे मायापुत्र मोह दूर हो गया और सद्भावसे परिपूर्ण तथा रोमांचित शरीर
 होकर दृढ़ भासभावसे राजा दशरथने रामके चरणोंको वन्दना की । इस प्रकार निर्मल हृदयवाले पितासे
 राम फिर कहने लगें— ॥ १२० ॥ १२१ ॥ हे राजन् ! पुत्रके कर्मा आपकी उचित नहीं है । मायासे
 मनुष्यदेहधारी मेरा इससे उपहास होगा । इस कारण आप सदा आदरभावेन मनमें ही मेरा भजन किया
 करें । मन तथा प्राणको मुझे अर्पण करके मेरी दृढ़ भक्ति करें ॥ १२२ ॥ ऐसा कह माता-पिताको
 आज्ञा लेकर श्रीरामने उनकी नमस्कार किया और रथपर सवार होकर अपने भवनको चले गये ॥ १२४ ॥
 वे सीताके साथ कभी माताके महलमें जाकर भोजन करते, कभी मातृघोके भवनमें और कभी पिताके साथ
 पत्तिमें बैठकर भोजन करते थे । कभी स्त्रियों पुत्रों ब्राह्मणों तथा नागरिकोंके साथ पिता दशरथको अपने भवगमें
 बुलाकर सादर हर्षपूर्वक भोजन कराते थे । प्रतिदिन सैकड़ोंकी सख्यामें नगवासी पुत्रिजन भी श्रीरामचन्द्रका
 दर्शन करनेके लिये भयोध्या आते रहते थे । वे बिना रोकटोक भीतर जाकर रामका दर्शन तथा स्तुति करते
 और रामके द्वारा किये हुए सत्कारको ग्रहण करके प्रसस्तापूर्वक रात्रि-सात दिन वहाँ रहकर अपने-अपने

तच्चञ्चकार सा साध्वी हास्यक्रीडाभनादिकम् । विवाहानन्तरं रामः समा द्वादश सीतया ॥१३१॥
 रमयामास साकेने महाक्रीडापुरःसरम् । सहस्रवर्षविज्ञेयं श्रेष्ठं वर्षं कृते युगे ॥१३२॥
 शतवर्षश्च त्रेतायां द्वापरे दशवर्षजम् । कलेमानेन बोद्धव्यं शून्यद्वयान्त्रिकमात्रम् ॥१३३॥
 एवं श्रीरामचन्द्रेण भोगा भुक्ताः सुगोपमाः । यस्मिन् श्रुती च यद्वद्व्यं फलपुष्पादिकं शुभम् ॥१३४॥
 तत्सर्वं सर्वदेवासाद्रामे साकेनमस्थितं । अनावृष्टिर्न वै कुत्र तस्कराणां भयं न हि ॥१३५॥
 हिंसार्दानां भयं नासीदयोध्याविषये प्रिये । युधाजिन्नाम कैकेयीभ्राता भरतमातुलः ॥१३६॥
 निनाय भरतं स्त्रीयराज्ये शत्रुघ्नमद्युतम् । कौतुकेन नृपं पृष्ट्वा कैकेयीं प्रणिपत्य च ॥१३७॥
 एवं रामस्य मांगल्यं बालन्वेडाप मुखावहम् । ये भृष्यन्ति नरा भक्त्या न तेषामन्यमंगलम् ॥१३८॥
 एवं यथा त्वया पृष्टं तथा सर्वं भयोदितम् । रामेणाचरितं यच्च नृणां मांगल्यदायकम् ॥ ३९॥
 एवं गिरीश्वजे प्रोक्तं बाललीलादिकौतुकम् । रामचन्द्रस्य संक्षेपाच्च प्रीत्य सुखावहम् ॥१४०॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितामृतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे
 रामदिनचर्यावर्णनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः

(रामका दण्डकवनमें प्रवेश)

श्रीशिव उवाच

एवं त्रेतायुगे रामं नगर्षां सीतया सुखम् । क्रीडन्तं नारदोऽर्केन्द्रे यथावाकाशवर्मना ॥१॥
 अथ रामो मुनिं पूज्य सीतया लक्ष्मणेन च । शुभाव चचनं तस्य सुरैर्विज्ञापितं च यत् ॥२॥
 निहत्य रावणं युद्धे ततो राज्यं कुरुष्व हि । अंगीकृत्य रघुश्रेष्ठस्तं मुनिं च व्यसर्जयत् ॥३॥
 अथ रामोऽभवत्सीता मम राज्याभिषेचनम् । कर्तुं कामोऽस्ति तत्राहं विघ्नमुत्पाद्य वन्दकम् ॥४॥

अश्रमको चले जाते थे । जो काम करनेसे राम प्रसन्न होते थे, पतिव्रता सीता उन-उन हस्त-क्रीडा तथा भासनादिका विधान करती थीं । विवाहके बाद रामने बारह वर्ष सीताके साथ अयोध्यामें आनन्द-पूर्वक विलास किया । कलियुगके हजार वर्षोंके सत्ययुगका एक वर्ष जानना चाहिये । कलियुगके सी वर्षोंके बराबर त्रेतायुगका एक वर्ष और कलियुगके बारह वर्षोंके बराबर द्वापरका एक वर्ष होता है ॥१२५-१३३॥ इस प्रकार श्रीरामचन्द्रेने बारह वर्ष देवताओंके योग्य भागोंको भोगा । रामचन्द्रजीके अयोध्यामें रहते समय जिस ऋतुमें जो पुष्प-फल आदि होता चाहिए, वह सब नियमसे उत्पन्न हुआ करते थे । कभी अनावृष्टि नहीं हुई और चारोंका भय नहीं रहा । हे प्रिये पार्वती ! उस राज्यमें कभी किसीको हिंसक पशुओंका भय नहीं हुआ । एक दिन युधाजित् नामके कैकेयीका भाई भरतका मामा वहाँ और राजासे पूछतथा कैकेयीको मनाकर शत्रुघ्नसहित भरतको अपने राज्यमें ले गया । ॥१३४-१३७॥ वाल्म्यवर्षामें ही मङ्गलस्वरूप तथा सुखदायक रामके चरित्रको जो मनुष्य भक्तिभावसे सुनता है, उसका कभी अमङ्गल नहीं होता ॥ १३८ ॥ इस प्रकार मनुष्यमात्रके लिए कल्याणकारी श्रीरामचन्द्रका चरित्र मैंने तुमको कह सुनाया ॥ १३९ ॥ १४० ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितामृतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये बालचरित्रे भाषाटीकायां सारकाण्डे रामदिनचर्यावर्णनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

श्रीशिवजी बोले—इस तरह अयोध्यानगरीमें सुखपूर्वक सीताके साथ क्रीडा करते हुए रामके बारहवें वर्षमें एक दिन आकाशमार्गसे नारद मुनि पधारे ॥ १ ॥ सीता तथा लक्ष्मणके रामने मुनिकी पूजा की और उनके मुखसे देवताओंका यह संदेश सुना कि आप पहले रावणको मारकर पश्चात् राज्य करें । रघुश्रेष्ठ रामने भी 'बहुत अच्छा' कहकर उन्हें विदा किया ॥ २ ॥ ३ ॥ तदनन्तर राम सीतासे कहने लगे—हे सीते !

गच्छामि शयनादानां वधार्थं लक्ष्मणतः च । अयोध्यायां वसाम् त्वं कौसल्यां पार्थिवं भज ॥५॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा प्रणिपत्य रघूत्तमम् । उवाच मधुरं वाक्यं वनं मां त्वं नय प्रभो ॥६॥
 काश्चान्यत्र वै त्रीणि भन्ति तानि वेदाम्यहम् । भवन्त्यत्र प्रयाणं मे दंडकं हि त्वया सह ॥७॥
 वनप्रयाणं मामाह भर्ता म सत्यवर्तिनः । बालत्वे करेस्तां मे दष्टा कथिबुद्धिजग्मणीः ॥८॥
 अन्यन्मर्यादोः पूर्वं सुगतपि मयोदितम् । यदा चापानिकं प्राप्तः सजितुं त्वं तर्मायण ॥९॥
 अतुर्दश क्षम्यमाण मुनिवृत्तनुवर्तिनी । विचिन्व्याम्यग्नयेऽहं धनुः मज्जं करोस्वयम् ॥१०॥
 तन्मत्स्यं कुरु भद्राक्यं प्रयाणादंडकं त्वया । अन्यच्छ्रुत्वा मया पूर्वं रामायणमनुसमम् ॥११॥
 तत्र सीतां विना रामो न गतोऽस्मि हि दंडकम् । तस्मात्त्वं मां गृध्रं दंडकं नेतुमर्हसि ॥१२॥
 तन्सीतावचनं श्रुत्वा तस्याग्निवति वचोऽवधीत् । विहस्य राघवः श्रयान् समालिख्य विदेहजाम् ॥१३॥
 अथ राजा दशरथः श्रीरामस्याभिषेचनम् । यौवराज्यपदे कर्तुमुद्युक्तः प्राह वै गुरुम् ॥१४॥
 यौवराज्यपदे राममभिषेक्तं न्वमर्हसि । तद्राजवचनं श्रुत्वा गुरुर्दशरथं नृपम् ॥१५॥
 कौसल्यागृह्णानीय बोधयामास वै सहः । राजन् भृशं त्वं कौसल्यामुपि शृणुतं त्विमे ॥१६॥
 राघवस्य वधार्थं हि रामः श्री दंडकं वनम् । यमिष्यति लक्ष्मणेन सीतया कैकयीवरत् ॥१७॥
 तस्माच्चमच्चवत्पुणो संभारानभिषेचिनुम् । काश्यप्यं सुमंत्रेण सभाहूय नृपादिकान् ॥१८॥
 श्रीरामविरहाद्राजन् नृक्षणस्यापि आपतः । अचिरादेव स्वर्लोकं त्वं गमिष्यसि पार्थिव ॥१९॥
 कौसल्यैव रामराज्योत्सवं पश्यतु वै पुनः । अंतरिक्षादिमानसस्थस्त्वं पश्यसि महोत्सवम् ॥२०॥
 दूर्लभ्या भाविनां रेखा अस्मादानीं नृपोत्तम । इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं तेन राजा सभां ययौ ॥२१॥
 रामराज्याभिषेकाय संभारानकरोन्मुदा । दूर्तगकारयामास नृपान् दशरथस्त्वदा ॥२२॥

पिताजी मेरा राज्याभिषेक करना चाहते हैं, परन्तु मैंने उसमें विघ्न डेढ़ा करके रावण आदिकों को मारनेके लिए लक्ष्मणके साथ दण्डकारण्य जानेकी तैयारी की है । तुम यही रहकर माता कौसल्याकी और महाराजकी सेवा करना ॥ ४ ॥ ५ ॥ रामका यह वचन सुनकर सीता रघूत्तम रामके चरणोंपर गिर पड़ी और यह मधुर वचन बोली—हे प्रभो ! मुझे भी अपने साथ वनको ले चलिए ॥ ६ ॥ इसमें तीन कारण हैं । उन्हें मैं बताती हूँ । एक तो यह कि बाल्यावस्थामें मेरे हाथकी रेखा देखकर एक ब्राह्मणभ्रष्टने कहा था कि तुम अपने पतिके साथ वनवास करोगी । सो आपके साथ वनमें जानेसे उस ब्राह्मणकी बात सत्य हो जायगी ॥ ७ ॥ ८ ॥ दूसरा कारण यह कि जब आप सभाके बीच स्वयम्बरके समय धनुष चढ़ाने चले थे । तब मैंने देवताओंसे प्रार्थना की थी—हे देवताओं ! यदि राम धनुष चढ़ावे तो मैं चौदह वर्ष तक मुनिवृत्ति धारण करके वनमें विचरण करूँगी ॥ ९ ॥ १० ॥ अतएव आप मुझे वनमें ले जाकर मेरी प्रतिज्ञाको भी सच्चा बनाएं । तीसरा कारण यह है कि मैंने सर्वोत्तम रामायण-महाकाव्यमें यह सुना है कि सीताके विना राम अकेले कभी वनमें नहीं गये । सो आपकी मुझे दण्डकारण्यमें साथ चलना चाहिये ॥ ११ ॥ १२ ॥ सीताके वचन सुनकर रामने उनका आन्विष्टुन करके "तयामतु" कहा ॥ १३ ॥ इधर राजा दशरथने रामको युवराज्यपदपर अभिषेक करनेका निश्चय करके गुरु वसिष्ठसे कहा कि आप श्रीरामका युव राजपदपर अभिषेक करें । इस बातको सुनकर वे राजा दशरथको कौसल्याके भवनमें ले आये और एकान्तमें कहने लगे—॥ १४-१६ ॥ हे राजन् ! आप तथा वे कौसल्या और सुमित्रा मेरे कथनको सुनें । राम कैकेयीके वरसे सीता तथा लक्ष्मणको साथ लेकर रावणको मारनेके लिए ही दण्डकवन चले जायेंगे ॥ १७ ॥ इसलिये अन्तःजानकी तरह आप चुपचाप रामका अभिषेक करनेके लिए सुमन्त्रको कहकर साथी मंगवाइए और समस्त राजाओंको निमन्त्रित करिए ॥ १८ ॥ हे पार्थिव ! श्रीरामके विरह तथा बाह्यणके गापसे आप सीधे स्वयं सिधारेंगे ॥ १९ ॥ बादमें कौसल्या रामके राज्योत्सवकी देखेगी और स्वर्गीय विमानमें बैठकर आप अन्तरिक्षसे वह उत्सव देखेंगे ॥ २० ॥ हे नृपोत्तम ! भविष्यकी रेखा ब्रह्मादिकोंके लिए भी दुर्लभनीय होती है । गुरु वसिष्ठका यह वचन

ऋषीश्वराः समाजग्मुर्नानाश्रमनिवाaminः । नगरीं शोमायामासुर्दृताश्चित्रध्वजोत्तमैः ॥२३॥
 पताकाभिस्तोरणैश्च हेमकुम्भमैत्रोर्मैः । गुरुनाज्ञापयामास सुमंत्रं नृपमंत्रिणम् ॥२४॥
 श्वः प्रभाते मध्यक्षे कन्यकाः स्वर्णभूषिताः । तिष्ठन्तु षोडश गजाः स्वर्णगन्नादिभूषिताः ॥२५॥
 चतुर्दन्तः समायातु ऐरणतकुलोद्भवः । नानार्नाथोदकैः पूर्णाः स्वर्णकुम्भाः महस्त्रयः ॥२६॥
 स्थाप्यतां तत्र वैद्ययात्रचर्माणि त्राणि च नव । श्वेनचलत्रं रत्नदंडं मृत्कामणिविराजितम् ॥२७॥
 दिव्यमाल्यानि वस्त्राणिदिद्यान्याभरणानि च । धुनयः संस्कृतास्तत्र तिष्ठन्तु कुशपाणयः ॥२८॥
 नर्तक्यो चारदुरुयाश्च गायका वैदिकास्तथा । नानावादित्रकुशला वाद्यन्तु नृपांगणे ॥२९॥
 हस्त्यश्वरथपादाता वहिस्तिष्ठन्तु सायुधाः । नगरे यानि तिष्ठन्ति देवतायतनानि च ॥३०॥
 तेषु प्रवर्ततां पूजा नानावलिभिराटनाः । राजानः शीघ्रमायान्तु नानोपायनपाणयः ॥३१॥
 इत्यादिश्य वसिष्ठस्तु रथेन रघुनन्दनम् । गत्वा सम्मानितस्तेन सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् ॥३२॥
 निमित्तमात्रस्त्वं राम शो ममिष्यसि दंडकान् । चतुर्दश समास्तत्र स्थित्वा संहृत्य रावणम् ॥३३॥
 बंधुना सीमया सार्धं ततो राज्यं करिष्यामि । लौकिकीं वृत्तिमालम्ब्य स्त्रीकुरुष्व पितुर्वचः ॥३४॥
 अद्य त्वं सीतया मार्घमुपवामं यथाविधि । कुत्वा शुचिर्भूमिश्चायी भव राम जितेंद्रियः ॥३५॥
 इत्युक्त्वा रथमारुह्य दृष्ट्वा रामं सलक्ष्मणम् । जानकीं चापि स गुरुर्ययौ राजगृहं पुनः ॥३६॥
 कीसल्या च सुमित्रा च रामराज्याभिषेचनम् । मृषाऽपि श्रुत्वा श्रीगुरोरास्यान्स्नेहसमन्विते ॥३७॥
 चक्रतः पूजनं देव्यास्तद्विघ्नोपशमस्मृहे । बलिदानैः शान्तिपाठैर्मुनिवृद्धसमन्विते ॥३८॥
 अथापराद्धे सौधस्था दास्याः पुत्री तु मंधरा । शोभितां नगरीं दृष्ट्वा पृष्ट्वा वृद्धां पथि स्थिताम् ॥३९॥

सुनकर राजा दशरथ सभा में गये ॥ २३ ॥ वहाँ मन्त्रीसे रामके राज्याभिषेकके वास्ते सब सामग्री जुटवायी और प्रसन्नतापूर्वक दूतोंको भेजकर राजाओंको बुलवाया ॥ २४ ॥ उस समय आश्रमोंमें रहनेवाले अनेक ऋषीश्वर भी वहाँ आ पहुँचे । दूतोंसे चित्र-विचित्र ध्वजा, पताका और तोरणोंसे नगरीको सजाया । स्थान-स्थानपर उत्तम तथा मनोहर सुवर्णके कलश स्थापित किये गये । गुरु वसिष्ठने मन्त्री सुमन्त्रको आज्ञा दी कि कल संधेरे ही सुवर्णके अलङ्कारोंसे कन्याओं और चार-चार नौतोंवाले ऐरावत कुल्हों उत्पन्न सुवर्ण तथा रत्नों आदिसे अलंकृत सोलह हाथी मध्यक्षमे उपस्थित रहने चाहिये वहाँ अनेक तीर्थोंके जलसे परिपूर्ण स्वर्णकुम्भ ॥ २३-२६ ॥ तीन या नौ बाघम्बर, मोती और मणिगेंसे सुशोभित रत्नजटित दण्डवाने ध्वेत छत्र, धमर, सुन्दर मालाये, सुन्दर वस्त्र तथा दिव्य आभूषण भी तैयार रहें । स्नान आदि संस्कारोंसे संस्कृत पुनिजन हाथमें कुशा लिये हुए तैयार रहें ॥ २७ ॥ २८ ॥ नर्तकिये, केव्यार्ये, गायक, वैद्योय करनेवाले विप्र तथा नाना प्रकार बाजा बजानेमें कुशल जिल्ला मिलकर राजमहलके सामने गाना-बजाना प्रारम्भ कर दें ॥ २९ ॥ हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेना शस्त्र धारण करके बाहर खड़ी रहे । नगरमें जहाँ-जहाँ देवाल्य हैं, वहाँ-वहाँ अनेक सामग्रियोंसे प्रेमपूर्वक पूजा की जाय और सब राजे भेंट ले-लेकर उपस्थित हों ॥ ३० ॥ ३१ ॥ इतना कहकर वसिष्ठ रथपर सवार हुए और रघुनन्दन रामके पास गये । रामने उनको आदरपूर्वक दिया । मुनि ने उन्हें सब वृत्तान्त सुनाते हुए कहा— ॥ ३२ ॥ हे राम ! तुम निमित्तमात्र हो । कल तुम दण्डकवनके घले आओगे । वहाँ चौदह वर्ष रहकर रावणको मारोगे । उसके पञ्च भ्राई लक्ष्मण तथा सीताके साथ प्रसन्नतापूर्वक राज्य करोगे । अतएव लोकव्यवहार निभानेके लिए पिताके वचनको मान लो ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ आज तुम सीताके साथ पवित्रतापूर्वक विधिवत् ब्रह्मचर्यसे रहो और पृथ्वीपर शयन करो ॥ ३५ ॥ ऐसा कह और राम-लक्ष्मण तथा सीतासे मिलकर गुरुदेव रथपर सवार हुए और वहाँसे राजमहलको चल दिये ॥ ३६ ॥ तदनन्तर कीसल्या और सुमित्रा गुरुदेवके मुखसे रामके राज्याभिषेकको मूठा सुनकर भी स्नेहवश विध्वोंकी शक्तिकी इच्छासे मुनियोंकी साथ लेकर पूजाद्रव्यों तथा शान्तिपाठोंसे देवीका पूजन करने लगीं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ दोपहरके समय छतपर खड़ी दासीपुत्री मंधराने नगरको सुशोभित देखकर रास्तेकी एक बुढ़ियासे इसका

भुन्वा आरामगज्यार्थं ययां देगेन कैकयीम् । सर्वं वृत्तं निवेद्याथ तूष्णीमामीक्षदा सजम् ॥४०॥
 नच्छ्रुत्वा कैकयी चापि तस्य भूषणमर्पयत् । एतस्मिन्पतरे वाण्या देववाक्यात्सुमोहिता ॥४१॥
 नृपं दृष्ट्वा तु कैकेयी भर्म्मयन्त्याह तां पुनः । मृदे कथं न्वं नृपः ॥४२॥
 रामं गज्यपदं ग्रामे कौमल्यायाश्च कैकयि । दासी भविष्यसि न्वं हि अनो मद्वचनं कुरु ॥४३॥
 वरेण न्यामभूतेन गज्यं श्रीभरताय हि । नृपं प्रार्थय रामस्य द्वितीयेन वरेण च ॥४४॥
 दंडकारण्यगमनं चतुर्दश ममाः पदा । क्रोधागारं प्रविश्याथ कुरुष्व यन्मयेरितम् ॥४५॥
 नन्मथगेतं स्वहितं मत्त्रा मापि तथाऽकरोत् । मोहिता माऽविवेकेन श्रीराघवसुरेच्छया ॥४६॥
 ननो निशयां गता मा ज्ञाता क्रोधगुदस्थिता । गन्वा तत्र नृपः शीघ्रं ददर्श कैकयीं तदा ॥४७॥
 विस्मयमाणकेशां तां न्यक्ताऽलंकार्यमंडनाम् । भूमौ शयानां तां दृष्ट्वा ज्ञान्वा तस्या मनोगतम् ॥४८॥
 रामाय दंडकारण्यं कौमल्यायं मुनाय च । वराभ्यां पाचितं ज्ञात्वा हेतूकृत्वा भूच्छितोऽभवत् ॥४९॥
 प्रभाते तन्मुमंत्रेण वृत्तं श्रुत्वा नृपं दृष्ट्वा । कैकेयी संविष्टा पृष्ट्वा मुमंत्रं प्राह मा तदा ॥५०॥
 शत्रानयस्व श्रीरामं द्रष्टुं नं वाञ्छते नृपः । सोऽप्याह रामं नृपतिमपृष्ट्वा नानयाम्यहम् ॥५१॥
 तदा शनैर्नृपः प्राह शीघ्रमानय राघवम् । मुमंत्रोऽप्यानयामास राघवं पाथिवाज्ञया ॥५२॥
 ननो रामो नृपं गत्वा श्रुत्वा कैकेयजागिरा । आत्मानं दंडके वासं वरदानं पितुः पुरा ॥५३॥
 तथेव्यभीचकाराथ नृपं वचनमब्रवीत् । मा ते शोकोऽस्तु ॥ तात अहं गन्तव्यमिदं दंडकान् ॥५४॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा हाहेत्युक्त्वा नृपोऽब्रवीत् । मां विहाय कथं योऽविपिनं भन्तुमिच्छसि ॥५५॥
 तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सांत्वयामास राघवः । अहं प्रतिज्ञां निस्तीर्य शीघ्रं यास्यामि ते पुराम् ॥५६॥

४१॥ पूछा ॥ ३९ ॥ उसके मुखसे रामके राज्यभिषेककी बात सुनकर यह शोध कैकेयीके ॥ गयी और सब
 वृत्तान्त सुनाकर क्षण भर वृत्तांत स्वप्न रहा ॥ ४० ॥ ॥ वात सुनकर कैकेयीने उसको अपना एक आभू-
 ण्य दे दिया । इतनेमें देवताओंकी प्रेरणा तथा सरस्वतीसे मोहित मनरा कैकेयीका प्रसन्न देखकर उसे डराती
 हुई कहने लगी—अरे मूढ़ ! रामके राज्यभिषेकका समाचार सुनकर तू प्रसन्न क्यों हुई ? ऐसा ज्ञात होता है
 कि तेरा भाग्य तुझसे रुठ गया है । यदि रामको राज्य मिल गया तो ओ कैकेयी ! तुझे कौमल्याकी दासी
 बनना पड़ेगा । इस कारण जो मैं कहूँ, बंसा कर ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ अपने पति राजा दशरथके पास घराहूर रखने दो
 वरोंमेंसे एकके द्वारा तू भरतके लिये राज्य माँग और दूसरे वरके द्वारा चौदह वर्षके लिए रामका पंदल दण्डका-
 रण्यगमन माँग । तू अभी कौरववनमें चली जा ॥ ४३-४४ ॥ उसने भी श्रीरामचन्द्र तथा देवताओंकी इच्छासे
 और अविवेकके कारण मोहित मनराके उस कथनको अपना हितकारक समझकर वैसा ही किया ॥ ४५ ॥
 मायकालके समय ॥ राजाको ज्ञात हुआ कि कैकेयी कोपमचनमें है, तब ॥ उसके पास गये और देखा कि
 कैकेयी सिरके बाल झौले, भूषण तथा वस्त्रोंको फैककर घरती-र रहों हुई है । पश्चात् जब राजा दशरथने
 उसके अभिप्रायको जाना तो उसके कथनानुसार दो वरोंमेंसे एकके द्वारा रामको दण्डकारण्यवास और
 दूसरेके द्वारा भरतको यौवराज्य ॥ स्वाकार करके मूर्च्छित हो गये ॥ ४७-४९ ॥ प्रातःकाल मंत्री सुमंत्र
 इस वृत्तान्तको सुनकर राजाको पास गये । सुमंत्रके पूछनेपर कैकेयीने कहा— ॥ ५० ॥ राजा रामको देखना
 चाहते हैं । जाओ, उन्हें यहाँ बुला लाओ । सुमंत्रने कहा कि राजासे बिना दूखे मैं रामको यहाँ नहीं ले ॥
 ॥ ५१ ॥ तब राजाने धीरेसे कहा कि 'रामको शीघ्र ले आओ ।' सुमंत्र भी महाराजकी आज्ञासे शीघ्र
 रामको ले आये ॥ ५२ ॥ रामने राजाके पास ॥ कैकेयीकी वाणीसे अपने दण्डकारण्यवास तथा पिता ॥
 पूर्वकाष्ठमें वरदान देनेका हाल ॥ तो "तथास्तु" कहकर स्वाकार किया । उन्होंने राजासे कहा—हे ॥ !
 आप शोक न करें, मैं अभी दण्डकारण्य जाता हूँ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ रामका वचन सुनकर राजा दशरथ कहने लगे—
 हे राम ! पुत्रको छोड़कर तुम वनमें कैसे जाओगे ? ॥ ५५ ॥ पिताके इस करुण वचनको सुनकर राम उन्हें

इदानीं गंतुमिच्छामि ज्येष्ठे मातुश्च हृच्छयः । मातरं च समाश्वास्य ह्यनुनीय च जानकीम् ॥५७॥
 आगत्य पादौ वंदित्वा तव यास्ये सुखं वनम् इत्युक्त्वा तौ परिक्रम्य मातरं द्रष्टुमाययौ ॥५८॥
 नत्वा स्वमातरं रामः समाश्वास्य पुनः पुनः । नत्वा प्रदक्षिणाः कृत्वा तामामंत्र्य ययौ गृहम् ॥५९॥
 सर्वं वृत्तं तु सीतां स कथयामास राघवः । सीतया लक्ष्मणेनापि वने गंतुं पुनः पुनः ॥६०॥
 प्रार्थितश्च तथेत्युक्त्वा न्वयामास राघवः । सर्वम् ब्रह्मणान्दश्वा सीतयाऽग्निममन्वितः ॥६१॥
 पद्भ्यामेव शनैश्चा ययौ रामो नृपान्तिकम् । गच्छन् पथि श्रारामं पद्भ्यां दृष्ट्वा पुरीकयः ॥६२॥
 परस्परं ते धृष्टं श्रुत्वा व्याकुलमानसाः । धभृनुस्तान्दामदेवः कथयामास सादरात् ॥६३॥
 नागदागमनं रामप्रतिज्ञां रावणस्य च । वधादिकं सविस्तारं विष्णुं मनुजरूपिणम् ॥६४॥
 पौराः श्रुत्वा गतक्लेशा ह्यभूवन्पथि संस्थिताः । ततो नत्वा नृपं रामः कंकरीं वाक्यमब्रवीत् ॥६५॥
 अग्न्यागतोऽहं विपिनं गंतुमाज्ञां ददस्व माम् । ततः सा बल्कलादीनि दद्यां रामादिकास्तदा ॥६६॥
 रामस्तान् परिधायाथ स्वयं सीतामक्षिपत् । तद्दृष्ट्वा कंकरीं प्राह गुरुः क्रोधेन भर्त्सयन् ॥६७॥
 जडे पापिनि दुर्वृत्ते राम एव न्वया वृत्तः । वनवासाय दृष्टे त्वं सीतार्यं किं प्रदास्यसि ॥६८॥
 इत्युक्त्वा दिव्ययन्त्राणि सीतार्यं स गुरुर्ददौ । राजा दक्षयथोऽप्याह सुमंत्रं रथमानय ॥६९॥
 रथमारुह्य गच्छन्तु वने वनचरप्रियाः । रामः प्रदक्षिणं कृत्वा पितरौ रथमारुहत् ॥७०॥
 सीतया लक्ष्मणेनाथ चोदयामास मागधिम् । कौमन्यां च सुमित्रां च तातमाश्वास्य वै पुनः ॥७१॥
 समाश्वास्य जनान् रामस्तमसातीरमाययौ । माघमामे मिते पक्षे पंचम्यां परमेऽहनि ॥७२॥
 प्राप्ते क्षाष्टादशे वर्षे राघवाय महात्मने । आर्मानदनप्रयाणं हि स्वधुर्यास्तमसावटम् ॥७३॥

सांत्वना देते हुए बीने कि मैं आपकी प्रतिज्ञा पूरी करके शीघ्र पुरीमें लौट आऊंगा ॥ ५६ ॥ परन्तु इस समय तो मैं जाना ही चाहता हूँ । जिससे कि कंकरीके हृदयका शोक दूर हो सके । माताको आश्वासन दे तथा सीताको समझाकर मैं आ रहा हूँ । तब आपके चरणोंकी करके मुखमें वनकी प्रस्थान करूँगा । यह कहकर राम उन दोनोंकी परिक्रमा करके दक्षिण करनेके लिये माता कीसल्याके पास गये ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ माताको नमस्कार करनेके बाद वाग्म्वार समझा तथा प्रदक्षिणा करके उनकी आज्ञासे अपने महलमें गये ॥ ५९ ॥ वहाँ जाकर श्रीरामने सीताको समस्त धृतान्त कह सुनाया । जब सीता और लक्ष्मण बारम्बार अपने साथ वनमें ले चलनेकी प्रार्थना की, तब 'अच्छा' कह तथा शीघ्र ब्राह्मणोंकी सर्वस्व दान देकर सीता तथा अग्निको साथ लेकर भाई लक्ष्मणके पैदल हो राजाके पास आये । रास्तेमें पुरवासीजन रामको पैदल आते देख तथा एक दूसरेसे सब धृतान्त जानकर बड़े चिन्तातुर हुए । तब वामदेव मुनिने प्रेमसे उन लोगोंको नारदका आगमन, रामकी प्रतिज्ञा, रावणका वध तथा विष्णुका मनुष्यरूप धारण करना आदि धृतान्त विस्तारसे कह सुनाया ॥ ६०-६४ ॥ रास्तेमें लड़े पुरवासीजन उनकी यह बात सुनकर शान्त हो गये । रामने राजाके पास जा तथा उन्हें नमस्कार करके कंकरीसे कहा— ॥ ६५ ॥ हे अम्ह ! वन जानेके लिए तैयार हो गया हूँ । आप मुझे आज्ञा दें । तब उसने राम, सीता तथा लक्ष्मणको पहिनेके लिये बल्कल बसन दिये ॥ ६६ ॥ राम स्वयं उन्हें पहिनकर सीताको बल्कल पहिनना सिखलाने लगे । यह देखकर मुनि वसिष्ठ क्रुद्ध होकर कंकरीको घमकाते हुए कहने लगे— ॥ ६७ ॥ ओ जडे ! अरी पापिनि ! अयि दुर्वृत्ते ! तूने केवल रामके वनवासका वर माँगा है । सीताको पहिनेके लिये बल्कल क्यों देखी है ? ॥ ६८ ॥ यह कहकर सीताके लिए मुहने दिव्य वस्त्र दिये । राजा दक्षयथ बोले—हे सुमंत्र ! रथ ले आओ । उस रथपर सवार होकर वनचरोंके प्रिय ये तीनों वनकी जाएंगे । बादमें रामने माता-पिताकी प्रदक्षिणा की और सीता तथा लक्ष्मणको साथ लेकर रथपर सवार हुए । तब सारथीको रथ चलानेकी आज्ञा दी । कीसल्या, सुमित्रा, पिता तथा अन्य जनोंकी आश्वासन देकर राम बल पड़े और शीघ्र ही तमसा नदीके तीरपर जा पहुँचे । अठारहवें वर्षके माघ शुक्ल वसन्तपञ्चमीकी शुभ तिथिकी महात्मा रामने अपने नगरसे चलकर तमसाके किनारेकी ओर प्रयाण किया था

इंद्राद्या निर्वराश्चकुलदा तन्मार्गसत्क्रियाम् । आसन् शुभाश्व शकुना रामस्य व्रजतो वनम् ॥७४॥
 उपिल्बिकां निशां तत्र मृगवेरपुरं ययौ । गुहेन मानिसश्चापि तत्र रात्रिं निनाय सः ॥७५॥
 गुहान्तर्निर्वटक्षार्णवबंध राघवो व्रटाम् । प्रभाते सीनयाऽऽरुह्य नौकायां लक्ष्मणेन सः ॥७६॥
 प्रेषयामास मग्धं मुमंत्रं नगर्गं प्रति । गुहस्तां वाहयामास नौकां स्वह्मनिभिस्तदा ॥७७॥
 गंगामध्यगतां गंगां प्रार्थयामास जानकी । देवि गंगे नमस्तेऽस्तु निवृत्ता वनवामनः ॥७८॥
 रामेण सहिताऽहं त्वां लक्ष्मणेन च पूजये । सुरामांमोयहारश्च नानावलिमिसहता ॥७९॥
 इत्युक्त्वा परकुलं तु गत्वा रामो गुहं तदा । विगर्जेयिन्या तत्रैकां निशां नीत्वा शनैः शनैः ॥८०॥
 भस्मद्वाराश्रमं गत्वा तस्यां तेनानिमानितः । ततः प्रयागे यमुनां तान्त्वा गत्वा महावनम् ॥८१॥
 वाल्मीकेराश्रमं गत्वा तस्यां तेनानिपूजितः । चित्रकूटे लक्ष्मणेन पर्णशालां मनोरमाम् ॥८२॥
 कृत्वा मांसमृगांश्चूर्तवलिं दत्त्वा रघूत्तमः । तस्यां तस्यां सुख्य आवासीतथा स्वगृहं यथा ॥८३॥
 प्रयत्नामनपाकाग्निदेवार्दानां पृथक् पृथक् । तत्राग्न्यविधाः आलास्तकृन्निविगजिताः ॥८४॥
 कर्दमैर्बर्जनांश्चूर्तमृगमांसपलादिभिः । मनोश्चरणामानिभ्यं चकृन्ते स्वगृहं यथा ॥८५॥
 एकदा निद्रितं गमं सीतांकिं मन्त्रिर्गच्छ च । गेन्द्रः काकस्तदागम्य तन्वस्तुडेन चापकृत् ॥८६॥
 सीतांशुष्टं मृदु रक्तं चिददागमिपाश्रया । निद्राभंगमयाद्भुतः सीतया न निवारितः ॥८७॥
 सीतांशुष्टं तु काकेन भिन्नं दृष्ट्वा रघूत्तमः । अभिद्रवन् रक्ताश्रमीपिकास्तं मुमोच सः ॥८८॥
 केनाप्यरक्षितस्यास्रभयाद्भस्माङ्गोलके । स्वचरणमातनस्यास्य पुनर्नादवाक्यतः ॥८९॥
 ईपिकाश्रेण काकस्य विभेदं नयनं क्षणात् । एवं नानार्कौतुकानि कुर्वन्तस्यां मुमुं प्रभुः ॥९०॥

॥ ६९-७३ ॥ उम ममय इंद्रादि देवताओंने मार्गमें इनका सत्कार किया । वनमें जाते हुए रामको अनेक शुभ शकुल दीने ॥ ७४ ॥ वे वहाँ एक रात्रि निवास करके शृङ्गवेरपुर गये । वहाँ निषादराजके द्वारा सम्मानित होकर उस रातको वही विताया ॥ ७५ ॥ सवेरे रामने निषादके द्वारा लागे हुए वटवृक्षके दूधसे जटा बाँधी । तदनन्तर सीता तथा लक्ष्मणके साथ नौकापर सवार हुए ॥ ७६ ॥ वहाँसे रथसहित सुमन्त्रको अयोध्या लौटा दिया । तब निषादराजने स्वयं अपने जानिवालोंके साथ मिलकर नावको लेना आरम्भ किया ॥ ७७ ॥ जानकीने बीच धारमें जाकर गङ्गाओंकी प्रार्थना की और कहा—हे देवि गंगे ! आपको नमस्कार है । मैं राम तथा लक्ष्मणके साथ वनसे संवृण्ण लौटकर आकर तथा श्रद्धापूर्वक मांस-सदिरा आदिके उपहारोंने आपकी पूजा करूँगी ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ उस पार जा तथा वहाँ एक रात निवास करके गमने निषादको लौटा दिया और धीरे-धीरे चलकर भास्कराजके आश्रमपर जा पहुँचे । वहाँ उनका अत्यन्त आग्रह देखकर उठर गये । सवेरे प्रयागमें यमुनाको पार करके चले और महावन (चित्रकूट) में स्थित वाल्मीकिके आश्रममें जा पहुँचे । वहाँ उनसे पूजित होकर उठे । चित्रकूटमें रामने लक्ष्मणसे एक मनोहर पर्णकुटी बनावायी ॥ ८०-८२ ॥ मृगोंके मांसकी बलि देकर रघूत्तम राम सीता तथा भाईके साथ मुखपूर्वक धरकी तरह उसमें रहने लगे ॥ ८३ ॥ पावनका वैठनेका, खानेका, अग्निका तथा देवता आदिका स्थान विविध वेदों और लताओंसे निर्माण किया गया । वे स्थान अति रमणीक लगते थे ॥ ८४ ॥ वहाँ उत्पन्न होनेवाले कंद-मूल-फल तथा मृगमांस आदिके, जैसे अपने भवनमें मुनीश्वरोंका सत्कार करते थे, वैसे ही सत्कार करने लगे ॥ ८५ ॥ एक समय सीताकी गोदमें सिर रखकर रामको सोते देख इंद्रका पुत्र जयन्त कौआ बनकर वहाँ आया और अपने नाव चोचसे बारम्बार सीताके पाँदके लाल अंगूठेका मांस खानेकी इच्छासे उसे विदोषण करने लगा । सीताने पतिकी निद्रा भंग हो जानेके भयसे उसको नहीं हटाया ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ जागनेके रामने सीताके अंगूठेको कौएके द्वारा विदारित देखकर रक्त-रञ्जित मुखवाने प्रागत हुएकीएपर सौंका अस्त्र छोड़ा ॥ ८८ ॥ ब्रह्माण्ड भरमें उस अस्त्रके घमसे अब किसीने अवन्तकी रक्षा नहीं की, तब नारदके कहनेपर वह रामकी गरणमें आया । उस समय क्षणभरमें रामने सीताके अस्त्रसे अयन्तको केवल एक आँस फोड़कर उसे जीवमदान दे दिया । प्रकार सबके प्रभु राम विविध

सुमंत्रोऽपि पुरीं गत्वा नृपं वृत्तं न्यवेदयत् । सोऽपि राजा राघवेति जपन्स्वं जीवितं जहौ ॥९१॥
 नृपं मृतं गुरुर्ज्ञात्वा तैलद्रोण्यां निधाय नमः । युवाजिभ्रमराद्भूतेः कैकेय्यास्तनयाब्रुमौ ॥९२॥
 आनयामास भरतश्शत्रुघ्नी वेगतस्तदा । तावुभावपि वगेन स्नां पुरीं संनिवेशतुः ॥९३॥
 मात्रा संपादितं कृत्यं ज्ञात्वा धिक्कृत्य मातरम् । भरतः पितरं वह्निं ददौ सरयुसंकते ॥९४॥
 वीराणां मातरस्ताश्च जग्मुर्न स्वामिना दिवम् । पितुरुत्तरकार्यादि कर्म कृत्वा सविस्तरम् ॥९५॥
 मंथरां ताडयामास मातुरग्रे पुनः पुनः । प्रार्थितोऽप्यभिपेक्षार्थं राज्यमंगीचकार न ॥९६॥
 ततो मंत्रिजनः साकं मातृभिः पुरवासिभिः । परावर्तयितुं रामं ययौ स भरतस्तदा ॥९७॥
 गुहेन मानितश्चापि भारद्वाजाश्रमं ययौ । तपोवलेन भूस्वर्गं निर्माय भरतं मुनिः ॥९८॥
 ससैन्यं पूजयामास तं नत्वा भरतोऽपि यः । मुनिमंशितपथा चित्रकूटेऽग्रजं ययौ ॥९९॥
 दृष्ट्वा रामं तु शालायां सीतया चंधुना स्थितम् । नत्वा तेनालिङ्गितश्च सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् ॥१००॥
 रामः श्रुत्वा मृतं ततः गत्वा मन्दाकिनीं नदीम् । स्नात्वा तिलाञ्जलिं दत्त्वा शालां निजागिरीं १०१॥
 उत्तस्तं प्रार्थयामास भरतो गुरुणा सह । राज्यार्थं राघवश्चापि नेत्युवाच पुनः पुनः ॥१०२॥
 प्रार्थोपवेशनं तत्र दर्भेषु भरतस्तदा । चकार निग्रहं तस्य ज्ञात्वा गुरुमचोदयत् ॥१०३॥
 रामाक्षया गुरुशब्दं भरतं बोधयस्तदा । भूभारहरणार्थाय विष्णुः साक्षाद्रघूत्तमः ॥१०४॥
 अत्र जातोऽस्ति देवानां वचनाद्वावणादिकान् । हंतुं गच्छति रामोऽद्य मा त्वं निग्रहमाचर ॥१०५॥
 ततो ज्ञात्वा हरिं रामं भरतो राममब्रवात् । राज्यार्थं पादुके देहि नयोः सेवां करोम्यहम् ॥१०६॥
 जटावल्कलधारी च वसामि नगराद्बहिः । प्रतीक्षां तव राजेंद्र वर्षाणि चतुर्दश ॥१०७॥

शालायें करने लगे ॥८६॥९०॥ उपर सुमन्त्रने अवधपुरीमें जाकर राजा दशरथको सब वृत्तान्त सुनाया । राजाने भी 'हा राघव ! हा राघव !' करते-करते प्राण छोड़ दिये ॥ ९१ ॥ गुरु वसिष्ठने मृत राजाके शरीरको तलके शकेंमें रखवा दिया और युवाजित्के नगरमें टिके दोनों पुत्रों भरत-शत्रुघ्नको दूतोंके द्वारा तुरन्त बुलवाया । वे दोनों शीघ्र अपने नगरमें आये तथा माताके कुशुत्यको सुनकर उसे धिक्कारने लगे । भरतने पिताके शरीरको सरयू नदीकी घाटुकामें अग्निमंस्कार किया ॥ ९२-९४ ॥ और पुरुषोंकी माताई स्वामीके साथ स्वर्गलोकको नहीं गयीं । भरतने पिताकी उत्तरक्रियायें विस्तार सहित की ॥ ९५ ॥ तदनन्तर भरत-शत्रुघ्नने माताके सामने मंथराको बारम्बार पीटा और माताके बहुत कहनेपर भी भरतने राज्य नहीं स्वीकार किया ॥ ९६ ॥ पश्चात् वे मन्त्रियों, माताओं तथा पुरवासियोंके साथ रामको लौटा लानेके हेतु वनको गये ॥ ९७ ॥ रास्तेमें भरत निषादराज द्वारा सम्मानित होकर भारद्वाजके आश्रममें पधारे । मुनिने अपने सपावलसे पृथ्वीपर स्वर्गकी रचना करके सेना सहित भरतका सत्कार किया । तदनन्तर भरत उनकी प्रणाम करके उनके वतलायें हुए रास्तेसे चित्रकूटमें अपने बड़े भाई रामके पास गये ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ पणशालामें सीता तथा लक्ष्मण सहित रामको देखकर भरतने उन्हें प्रणाम किया । तदनन्तर रामसे आलिङ्गित होकर उन्होंने वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया ॥ १०० ॥ पिताकी मृत्यु सुनकर राम मन्दाकिनी नदीपर गये । वहाँ करके तिलाञ्जलि दी और पर्वतपर स्थित अपनी पणशालामें लोट आये ॥ १०१ ॥ गुरु वसिष्ठको साथ लेकर भरतने रामसे राज्य स्वीकार करनेके लिये बारम्बार प्रार्थना की । तिसपर भी राम उसको बार-बार अस्वीकार ही करते गये ॥ १०२ ॥ तब भरत कुशाके आसनपर बैठकर अनेशन (उपवास) करने लगे । उनकी हड़ता तथा असन्तोष देखकर रामने गुरु वसिष्ठसे भरतको समझानेके लिये कहा ॥ १०३ ॥ रामकी आज्ञासे गुरुने भरतको समझाते हुए कहा कि ये विष्णुस्वरूप रघूत्तम राम भूभार हरण करनेके लिये इस पृथ्वीपर अवतरे हैं । ये देवताओंके अनुरोधसे रावण आदिको मारने जा रहे हैं । इस कारण तुम हठ मत करो ॥ १०४ ॥ १०५ ॥ तब भरत रामको साक्षात् ईश्वर जानकर उनसे बोले-हे राम ! राज्यकार्य करनेके लिए आप अपना सड़ाऊँ दे दें । जटा-वल्कलधारी मैं उनकी निष्ठा सेवा पूजा हुआ नगरके बाहर रहूँगा । परन्तु हे राजेन्द्र ! यदि आप

कृत्वा चतुर्दशे वर्षे पूर्णे गुप्ते रवौ त्वहम् । प्रवेक्ष्याम्यनलं राम सत्यमेतद्वचो ॥१०८॥
 तच्चस्य वचने श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा रघूत्तमः । राज्ञ्यार्थं स्वीयपदयोः पादुके रत्नभूषिते ॥१०९॥
 ददौ रामस्तदा तस्मै ततस्तं ॥ व्यसर्जयत् । गृहीत्वा पादुके दिव्ये भरतो रत्नभूषिते ॥११०॥
 मस्तकोपरि ते षडूष्वा कृतकृत्यममन्यत । ततो नत्वा रघुश्रेष्ठं परिक्रम्य पुनः पुनः ॥१११॥
 सैन्येन मातुभिः क्षीघ्रं राममामन्त्र्य सो ययौ । संप्रार्थयन्कैकेयीं सा रामचन्द्रं पुनः पुनः ॥११२॥
 मयाऽपराधितं राम तत्क्षतव्यं रघूत्तम । तामाह रामचन्द्रोऽपि न त्वया मेऽपराधितम् ॥११३॥
 मच्छन्दान्मथरावाक्यान् वाप्या मोहितातदा । सुखं गच्छांस्वपुरीं न कोषोऽस्ति मम त्वयि ॥११४॥
 इत्युक्त्वा रामचन्द्रेण भरतेन न्यवर्तत । भरतः पूर्वमार्गेण ययौ स्वनगरीं मुदा ॥११५॥
 सर्वान् स्थाप्य नगर्यां तु नन्दिग्राममकल्पयत् । तस्यौ स भरतस्तत्र स्थाप्य सिंहासनोपरि ॥११६॥
 रामस्य पादुके दिव्ये फलमूलाशनः स्वयम् । राजकार्याणि सर्वाणि यावति पृथिवीपतेः ॥११७॥
 तानि पादुकयोः सम्पदनिवेदयति राघवः । गणयन्दिवसान्येव शमागमनकांक्षया ॥११८॥
 स्थितो रामार्पितमनाः साक्षाद्ब्रह्मनिर्णया । रामोऽपि चित्रकूटादौ वसन्मुनिमिरादृतः ॥११९॥
 धकार सीतया क्रीडां विपिने रम्पपर्वते । मनःशिलासुतिलकं सीताया भालकंऽकरोत् ॥१२०॥
 गन्धयोश्चित्रवल्लीः स चकार निजहस्ततः । वृक्षारुणदलेश्वित्रैः कोमलैः कुसुमादिभिः ॥१२१॥
 एवं क्रीडन्सुखं रामस्तस्यौ पत्न्याऽनुजेन च । नागरास्तं सदा जग्मू रामदर्शनलालसाः ॥१२२॥
 दृष्ट्वा सज्जनसंवाचं रामस्तत्याज तं गिरिम् । अन्वगात्सीतया आत्रा सत्रेराश्रममुत्तमम् ॥१२३॥
 नत्वाऽत्रिं नानितस्तेन तस्यौ तत्र दिनत्रयम् । गृहस्थामनुस्रया तां सीताऽत्रैर्वचनाचदा ॥१२४॥

निश्चित समयपर नहीं लौटेंगे तो ॥ चौदह वर्ष समाप्तके दिन सूर्यास्तके समय अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा । हे राम ! मेरी इस प्रतिज्ञाको आप सत्य समझें ॥ १०६-१०८ ॥ उनके इस वचनको सुनकर रघूत्तम रामने 'तथाऽस्तु' कहा और राज्यके लिए अपने पादुकी रत्नभूषित पादुकाएँ देकर उन्हें विदा किया । भरतने उन रत्नभूषित पादुकाओंको लेकर माथे चढ़ाया और ॥ आपका कृतकृत्य समझा । पश्चात् रघुश्रेष्ठ रामको क्षारम्भार प्रणाम करके परिक्रमा की और उनकी आज्ञा लेकर ॥ माता और सेनाके साथ तुरन्त अयोध्याकी ओर चल दिये । उस समय कैकेयी पुनः पुनः ॥ प्रार्थना करने लगी—॥ १०९-११२ ॥ हे राम ! हे पुरुषोत्तम ! मैंने जो ॥ किया है, उसे क्षमा कर दो । रामने कहा—माताजी ! तुम्हारा कोई अपराध नहीं है ॥ ११३ ॥ मेरी इच्छासे ही सरस्वतीने मेराके वाक्यसे तुमको मोहित कर दिया था । हे अम्ब ! अब तुम सुखपूर्वक अयोध्या जाओ । मुझे तुमपर ॥ भी क्रोध नहीं है ॥ ११४ ॥ ऐसा कहनेके ॥ कैकेयी रामके कथनानुसार भरतके साथ नगरको लौटी । भरत भी महर्षि जिस मार्गसे आये थे, उसी मार्गसे अपनी भगरीको लौट गये ॥ ११५ ॥ वहाँ ॥ तथा ॥ नगरमें पहुँचाकर उन्होंने नन्दिग्राम बसाया । वहाँ भरत सिंहासनपर रामकी दिव्य अड़ाऊँ रख ॥ फल-मूल लाकर रहने लगे । राज्यके जो-जो ॥ आते थे, उन सबको भरत-जी खड़ाऊँके सामने लाकर प्रतिदिन निवेदन ॥ दिया करते थे । ॥ प्रकार राममें ॥ लगाकर रात्रि-दिवसोंको गिनते हुए भरत साक्षात् ब्रह्ममुनिकी भक्ति समय व्यतीत करने लगे । ॥ राम भी मुनियोंसे ॥ प्राप्त करके सानन्द चित्रकूट पर्वतपर रहने लगे ॥ ११६-११९ ॥ पवित्र तथा मनोहर वनमें राम सीताके साथ क्रीड़ा करते थे । मनसिलकी सुन्दर शिलापर बन्दनादि घिसकर ॥ सीताके ॥ तिलककी रचना करते ॥ १२० ॥ अपने कोमल हाथोंसे सीताके कोमल गालोंपर चित्रावलीका निर्माण करते थे । क्योंकि कोमल-कोमल लाल पत्तों और अनेक प्रकारके फूलोंसे सीताको सजाते थे ॥ १२१ ॥ इस प्रकार क्रीड़ा करते हुए राम अपनी प्राणप्यारी पत्नी तथा अनुज लक्ष्मणके साथ सुखपूर्वक रहते थे । वहाँ अनेक नागरिक रामके दर्शनकी अभिलाषासे सदा उनके पास आते रहते थे ॥ १२२ ॥ इस ॥ लोगोंका आवागमन देखकर रामने उस पर्वतको छोड़ दिया और भाई लक्ष्मण ॥ सीताको लेकर अजिच्छविके उत्तम आश्रमकी ओर चल

नत्वा तथाऽऽलिङ्गिता सा तदंके समुपाविशत् । अनुसूया तदा सीतां पूजयामास सादरम् ॥१२५॥
 दिव्ये ददौ कुण्डले द्वे निर्मिते विश्वकर्मणा । दुहले द्वे ददौ तस्यै निर्मले मक्तिसंयुता ॥१२६॥
 अंगरागं च सीतार्यै ददावनेस्तु ■ प्रिया । न त्यक्ष्यतेऽङ्गशोभां त्वं कदापि जनकात्मजे ॥१२७॥
 पातिव्रत्यं पुरस्कृत्य राममन्वेहि जानकि । कुशली राघवो यातु त्वया आश्रा पुनर्गृहम् ॥१२८॥
 भोजयित्वा यथान्यायं रामं सीताममन्वितम् । अग्निर्विमर्जयामास रामो नत्वा ययौ वनम् ॥१२९॥
 एवं वर्षमतिक्रांतं, रामस्य गिरिवासिनः । यथासुखं लक्ष्मणेन जानक्या सहितस्य च ॥१३०॥
 एवं गिरिद्विजेऽयोध्यापुर्यां रामेण यत्कृतम् । चरित्रं तन्मया किञ्चिद्वदन्ने विनिवेदितम् ॥१३१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे

अयोध्याचरित्रे दण्डकवनप्रवेशो ■ षष्ठः सर्गः ■ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

(रामके द्वारा विराध और खर-दूषणका वध)

भागिव उवाच

अथ रामः सीतया ■ लक्ष्मणेन समन्वितः । ययौ स दण्डकारण्यं मज्जं कृत्वा मनदनुः ॥ १ ॥
 अग्रे ययौ स्वयं रामस्तत्पुष्टं जानकी ययौ । तस्याः पुष्टं स सोमित्रिर्ययौ धृतशरासनः ॥ २ ॥
 वने दृष्ट्वाऽथ कासारं स्नात्वा पीत्वा जलं सुखम् । ध्वत्स्वा फलानि पकानि तस्थुस्तत्र क्षणं त्रयः ॥ ३ ॥
 एतस्मिन्नंतरे तत्र विराध नाम राक्षसम् । तं तं ददृशुतायांतं महासत्त्वं भयानकम् ॥ ४ ॥
 करालदंष्ट्रावदनं भोषयंतं स्वर्गजित्तः । वामासन्यस्तशूलाग्रप्रधितानेकमानुषम् ॥ ५ ॥
 मक्षयंतं गजं व्याघ्रं महिषं वनगोचरम् । ज्यारोपितं धनुर्धृत्वा रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ ६ ॥

दिये ॥ १२३ ॥ अत्रि ऋषिको नमस्कार करनेके ■ उनसे सम्मानित होकर वे वहाँ तीन दिन ठहरे । अत्रिके कहनेसे सीता कुटीमें स्थित अनसूयाके पास गयी ॥ १२४ ॥ नमस्कार करनेपर उन्होंने सीताका आलिङ्गन किया और सीता उनकी गोदमें बैठ गयी । पश्चात् अनसूयाने ■ आदर-सत्कार करके पूजन किया ॥ १२५ ॥ तदनन्तर विश्वकर्माके ■ दो दिव्य कुण्डल और दो स्वच्छ सूक्ष्म वस्त्र प्रेम तथा भातिपूर्वक सीताको दिये ॥ १२६ ॥ अत्रिकी प्रिया अनसूयाने साताका महावर आदि रत्न भी अङ्गोमें लगानेके लिए दिये और कहा— हे जनकात्मजे । यह रत्न तुम्हारे अङ्गोपरसे कभी नहीं उतरेगा ॥ १२७ ॥ हे जानकी ! पातिव्रत धर्मको निभाती हुई तुम रामकी अनुगामिनी बनो । यथासमय राम तुम्हारे तथा भाई लक्ष्मणके साथ सकुशल घर लौट जायेंगे ॥ १२८ ॥ ■ अत्रिने सीता सहित रामको यथोचित भोजन कराकर विदा किया । राम भी नमस्कार करके चल दिये ॥ १२९ ॥ इस तरह रामको सीता ■ भाईके सहित सुखपूर्वक पर्वतोपर निवास करते हुए एक वर्ष बीत गया ॥ १३० ॥ हे गिरिन्दजे । अयोध्यापुरीमें रामने जो ■ किया था, वह ■ मैंने तुम्हारे सामने कह सुनाया ॥ १३१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे अयोध्याचरित्रे २० रामते गण्डेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकायां दण्डकवनप्रवेशो नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

भागिवी बोले—हे गिरिजे ! इसके बाद राम बड़े भारी सज्जीकृत धनुषको हाथमें लेकर सीता तथा लक्ष्मणके साथ दण्डकारण्यमें गये ॥ १ ॥ आगे आगे स्वयं राम, पीछे सीता और उनके पीछे हाथमें धनुष धारण करके लक्ष्मण चले ॥ २ ॥ वनमें एक सरोवर देखा तो सुखपूर्वक स्नान करके जल पिया और पके फलोंको खाकर अग्नभर तीनोने वहाँ विश्राम किया ॥ ३ ॥ इतनेहीमें उन्होंने अपनी ओर आते हुए बड़े भयानक विराध नामके राक्षसको देखा ॥ ४ ॥ वह अपने विकराल दाँतवाले मुखको फैला तथा भयानक गर्जन करता हुआ उन लोगोंको डराने लगा । उसने अपने भालेकी नोकमें दीधकर बहुतसे मनुष्योंको धारण कर रक्खा था । वह वनघर व्याघ्र, हाथी और महिष आदिको भी मार-मारकर ■ रक्खा था । ■ देखा राम

रक्ष त्वं जानकीमत्र मंहनिष्यामि राक्षसम् । स तु दृष्ट्वा रमानाथं लक्ष्मणं जानकीं तदा ॥७॥
 कौं पुरामिति तौ प्राह ततो रामस्तमब्रवीत् । नामकर्म निजं सर्वं कंकेत्याडपि च यत्कृतम् ॥८॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा विहस्य राक्षसोऽब्रवीत् । मां जानासि त्वं राम विराधं लोकविश्रुतम् ॥९॥
 मद्गुणान्मुनयः सर्वे त्यक्त्वा वनमितो गताः । यदि जीवितुमिच्छासि त्यक्त्वा सीतां निराधुर्धा १०॥
 पलायतां न चेच्छीघ्रं मक्ष्यामि युवामहम् । इत्युक्त्वा राक्षसः सीतामादातुमभिदुद्रुवे ॥११॥
 रामश्चिच्छेद् तद्वाह शरेण प्रहसन्निव । ततः क्रोधपरोडात्मा व्यादाय विकटं मुखम् ॥१२॥
 राममभ्यद्रवद्रामश्चिच्छेद् परिपातः । पदद्वयं तदा सर्वं हवास्येन ययो पुनः ॥१३॥
 ततोऽर्धचंद्राकारेण निहतो राघवेण सः । ततः सीता समालिख्य प्रशंस्य रघूत्तमम् ॥१४॥
 देवदुन्दुभयो नेदुर्दिवि देवगणैर्गिताः । ततो विराधकायात् पुरुषश्च त्रिनिर्गतः ॥१५॥
 नत्वा रामं निजं वृत्तं कथयामास सादरम् । दुर्वाससाऽहं शमस्तु पुरा विद्याधरः शुभः ॥१६॥
 इदानीं मोचितः शापान्धया कालान्तरादने । इत्युक्त्वा राघवं स्तुत्वा विमानेन यया दिवम् ॥१७॥
 विराधे स्वर्गते रामो लक्ष्मणेन च गीतया । जगाम शरभस्य वनं सर्वमुखावहम् ॥१८॥
 शरभग ततो नत्वा तेन मम्मनितो बहु । तस्थौ तत्र निशामेकां शरभगो भुर्नाम्बरः ॥१९॥
 तस्मै समर्प्य स्वं पुण्यमऋगोह चितिं तदा । स्तुत्वा तं स विमानेन वैकुण्ठं परमं ययौ ॥२०॥
 ततः शनैः सुतीक्ष्णस्य ययावाश्रममुत्तमम् । नत्वा तं पूजितस्तेन सुखं तस्थौ रघूदरः ॥२१॥
 एतस्मिन्नंतरे तत्र नानाश्रमनिशामिनः । मुनयो राघवं द्रष्टुं समाजग्मुः सइत्यशः ॥२२॥
 सर्वे तं राघवं नत्वा स्तुत्वा निन्युनिजं निजम् । आश्रमं सीतया भ्रात्रा चक्रुः पूजां सर्वस्वसम् ॥२३॥

धनुषपर डोरी चढ़ाकर लक्ष्मणसे बोले—॥ १ ॥ ६ ॥ हे लक्ष्मण ! तुम यहाँ जानकीको रक्षा करो । मैं इस दुष्ट राजसको मारूँगा । वह राक्षस रमापति राम, लक्ष्मण तथा जानकीको देखकर वाला—तुम कौन हो ? तब रामने अपना नाम, काम तथा कंकेयीका कृत्य कुछ कह सुनाया ॥ ७ ॥ ८ ॥ रामके वचनको सुनकर राजस हँसा और कहने लगा—हे राम ! क्या तू लोकविख्यात विराधको नहीं जानता ॥ ९ ॥ मेरे ही डरसे सब मुनि इस वनको छोड़कर भाग गये हैं । यदि तुम दोनों जीता चाहते हो तो सीता राक्षसको छोड़कर भाग जाओ । नहीं तो तुम दोनोंको मैं अभी खा जाऊँगा । इतना कहकर वह राक्षस सीताको पकड़ने दौड़ा ॥ १० ॥ ११ ॥ तब हँसते हुए रामने उसके दोनों हाथोंको अपने वाणसे काट दिया । तब विराध क्रुद्ध हो तथा विकट मुख फैलाकर रामकी ओर दौड़ा । तब रामने अति वेगसे दौड़कर उसके दोनों पाँवोंको भी काट डाला । फिर वह सर्पकी तरह मुखसे आँतेके लिये अषट्पा ॥ १२ ॥ १३ ॥ तब रामने अपने अर्धचन्द्राकार वाणसे उसके सिरको भी काट डाला और वह मर गया । यह देख सीता रामका आलिङ्गन करके उनकी प्रशंसा करने लगी ॥ १४ ॥ तभी आकाशमें देवताओंके नगाड़े बजने लगे । पद्मात् विराधके शरीरसे एक दिव्य पुरुष प्रकट हुआ ॥ १५ ॥ वह रामको प्रणाम करके वड़े आदरसे अपनी कहानी सुनाते हुए कहने लगा—पूर्व समयमें एक सुन्दर विद्याधर था, परन्तु दुर्वासा ऋषिने मुझको शाप देकर इस दशाको प्राप्त करा दिया ॥ १६ ॥ आज बहुत कालके बाद आपने मुझको उस जापसे मुक्त किया है । यह कह और रामका स्तुति करके वह विमानमें बैठकर स्वर्ग चला गया ॥ १७ ॥ विराधके चले जानेपर राम लक्ष्मण तथा सीताके साथ सर्वगुणदायक शरभग मुनिके वनमें पधारे ॥ १८ ॥ उनको नमस्कार करके तथा उनसे सम्मानित होकर वे एक रात्रि वहाँ ठहरे । पुनिश्चेष्ट शरभगने अपना सब गुण उनके चरणोंमें समर्पण करके रामके सामने ही चित्तमें प्रवेश किया और उनकी स्तुति करके विमानपर बैठकर दिव्य रूपसे वैकुण्ठ धामका चले गये ॥ १९ ॥ २० ॥ वहाँसे रामने सुतीक्ष्ण मुनिके सुन्दर आश्रमकी ओर प्रयाण किया । वहाँ पहुँचनेपर रामने मुनिकी नमस्कार किया । मुनिने उनका बहुत सत्कार करके अपने वहाँ ठहराया ॥ २१ ॥ वहाँ श्रीरामके दर्शनार्थ विविध आश्रमोंसे हजारों मुनि आते थे ॥ २२ ॥ सब सीता लक्ष्मणके सहित रामको नमस्कारकर और उनकी स्तुति करके उन्हें अपने-अपने आश्रमोंसे

एकरात्रं त्रिरात्रं वा पंच सप्त दिनानि वा । पक्षनात्रं तु मासं वा सार्धमासमथापि वा ॥२४॥
 त्रिमासान्पंचमासं वा षष्ठाष्टकादथाथवा । सात्रं संवत्सरं वापि स्वाश्रमेषु रघूत्तमम् ॥२५॥
 संस्थाप्य चक्रुरातिथ्यमधिकं चोत्तरोत्तरम् । पत्न्याऽनुज्ञेन श्रीराममेवं पूज्य विसर्जयन् ॥२६॥
 अमर्त्यं हि रामेण नव वर्षाणि दंडके । आश्रमेषु मुनीनां च ह्यतिक्रान्तानि च सुखम् ॥२७॥
 बहवो निहतास्तत्र राक्षसा अमता तदा । रायवेण मह भ्रात्रा क्रीडताऽवनिकन्यया ॥२८॥
 नानाश्रमारामपुष्पवनोपवनभूमिषु । नदीजलतटाकाटिशिखरादिस्थलेष्वपि ॥२९॥
 जंबवाग्रभद्राक्षादिनानावृक्षलतेषु हि । चकार नीतया क्रोडां रामो देव्या यथा शिवः ॥३०॥
 अथ रामो ययौ कुम्भसंभवस्यानुजाश्रमम् । सुमतिः पूजयामास राघवं सीतयान्वितम् ॥३१॥
 ततः सीतायुतो रामः श्वनेभ्रात्रा मृदान्वितः । अगस्त्येराश्रमं प्राप नानावृक्षविराजितम् ॥३२॥
 प्रस्युद्रम्य मुनिश्चापि मुनिभिर्वहुभिर्वृतः । राघवं तं समालिङ्ग्य स्वाश्रमं तेन सो ययौ ॥३३॥
 अथ तं पूजयामास राघवं कुम्भसंभवः । रामोऽपि मानितस्तेन तस्थौ तत्र कियद्दिनम् ॥३४॥
 ततः स्तुत्या रमानाथमगस्त्यो मुनिसत्तमः । ददौ चापं महेन्द्रेण रामार्थं स्थापितं पुरा ॥३५॥
 अक्षय्यौ वाणतूणीरौ खड्गं रत्नविभूषितम् । ततो रामो मुनेर्वाक्यार्द्रानम्या उत्तरे तटे ॥३६॥
 ययौ पंचवटीं तस्यां मार्गे दृष्ट्वाऽथ पश्चिमम् । जटापुषं नगाकारमरुणात्मजमुत्तमम् ॥३७॥
 सखापं स्वपितुश्चापि संभाष्याथ विवेश तम् । तत्र कृत्वा महाशालां यथा पूर्वं कृता गिरौ ॥३८॥
 भृगुमार्गैर्वालिं दृष्ट्वा तस्थौ रामो यथासुखम् । सीतां संश्रयामास जटापुः पक्षिराट् स्वयम् ॥३९॥
 राघवस्य पंचवटीयां सीतया क्रीडनः सुखम् । मार्गेत्रीणि वनमराणि ह्यतिक्रान्तानि पार्वति ॥४०॥
 वने शूर्पणखापुत्रं तपंतं सांघनामकम् । ब्रह्मा ददौ दिव्यखड्गं तं सांघो न ददर्श सः ॥४१॥
 तदुद्धृत्वा लक्ष्मणः खड्गं पृश्नान्वह्नीवभंज सः । वृश्नगुल्मे हतः सांघस्ततो राघवमब्रवीत् ॥४२॥
 जाते और विधिवत् पूजा करते थे ॥ २३ ॥ वे एक दो दिन, पांच-सात मास अथवा पूरे वर्ष भर अपने आश्रममें रखकर रघूत्तम रामका प्रतिदिन अधिकाधिक प्रेमसे आतिथ्य करते और अन्तमें पत्नी तथा माईके सहित रामका पूजन करके पिता लक्ष्मण के पास जाते थे ॥ २४-२६ ॥ इस तरह मुनियोंके आश्रमोंमें धूम-फिरकर रामने सुखमें नौ वर्ष बिता दिये ॥ २७ ॥ वहाँ भाई लक्ष्मणके साथ भ्रमण करते हुए रामने बहुतसे राक्षसों-को मार डाला ॥ २८ ॥ रामने अनेक आश्रमोंमें, वागोंमें, पुष्प भरे वनोंमें, नदीके जलमें, तालाबोंमें, पर्वतके गिह्वर आदि स्थलोंमें, जामुन, आम, केला, दास आदि अनेक वृक्षों तथा लताकुञ्जोंमें सीताके साथ शिव-पार्वतीकी तरह क्रीड़ा की ॥ २९ ॥ ३० ॥ तत्पश्चात् राम कुम्भज ऋषिके छोटे भाई मार्कण्डि मुनिके आश्रमपर गये । उन बुद्धिमान् मुनिने भी सीतासहित रामकी पूजा की ॥ ३१ ॥ वहाँसे चलकर सीता तथा भाईके साथ राम विविध वृक्षांसे मंडित अगस्त्य मुनिके आश्रमपर गये ॥ ३२ ॥ वहाँ मुनि अगस्त्य अल्प मुनियों और ब्रह्मचारियोंसे साथ आगे जाये और रामका आलिङ्गन करके आश्रममें ले गये ॥ ३३ ॥ उन्होंने रामकी विधिवत् पूजा की । उनसे पूजित होकर रामने वहाँ कुछ दिन निवास किया ॥ ३४ ॥ मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यने रामकी प्रशंसा की और इन्द्रके द्वारा प्रदत्त तथा उनके लिये पहिलेसे ही रक्खा हुआ धनुष रामको दिया ॥ ३५ ॥ अक्षय वाणवाले दो तूणीर (तरकस) तथा रत्नजटित तलवार दी । पश्चात् रामने मुनिके कथनानुसार गीतमी नदीके उत्तरी किनारेपर स्थित रमणोक पंचवटीकी ओर प्रस्थान किया । रास्तेमें उनको पर्वताकार अरुणपुत्र एवं उनके पिताका श्रेष्ठ मित्र जटापु नामका पक्षी मिला । उससे बातचीत करके वनमें आगे बढ़े । चित्रकूटकी तरह वहाँपर भी उन्होंने पर्णकुटी बनवायी ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ वहाँ भृगुके मांसकी बलि देकर राम बानन्दसे रहने लगे । पक्षिराज जटापु स्वयं सीताकी रक्षा करने लगा ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ हे पार्वती ! पंचवटीमें रामको सीताके साथ क्रीड़ा करते हुए साढ़े तीन वर्ष व्यतीत हो गये ॥ ४० ॥ उस वनमें शूर्पणखाका पुत्र साम्ब लप करता था । यह देखकर ब्रह्माने एक दिव्य खड्ग उसे दिया, पर इस बातका साम्बको पता नहीं लगा ॥ ४१ ॥ जब लक्ष्मणने

प्रायश्चित्तं ब्रह्महर्षं मां वद त्वं रघूत्तम । रामोऽप्याह हतः सावो राक्षसो न मुनिर्हतः ॥४३॥
 तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणस्तुष्टः सांनमात्राणि तच्छूनम् । तस्मिन् रती पुत्रदुःखं राक्षसी कामरूपिणी ॥४४॥
 विचचार सूर्पणखा नाम्नी च सर्वधातिनी । एकदा पंचवट्यां सा रामं दृष्ट्वाऽय राक्षसी ॥४५॥
 पुत्रदुःखसमाक्रांता धृत्वा रूपं मनोहरम् । कापट्यवृद्धया श्रीरामं सानुजं हंतुमुद्यता ॥४६॥
 उवाच मधुरं वाक्यं बभालंकारमंडिता । कौ युवां का त्वियं रम्या किमर्थमागता वनम् ॥४७॥
 कुतः समागतावत्र क्वाधुना गच्छतः पुरः । तत्तस्या वचनं श्रुत्वा रामः सर्वं न्यवेदयत् ॥४८॥
 ततः सा राघवं ग्राह भव भर्ता मम प्रभो । सोऽप्याह दयिमा मेऽस्ति बहिस्तिष्ठति लक्ष्मणः ॥४९॥
 प्रार्थयामास सीमित्रि सा तं सोऽप्युत्तरं ददौ । अहं दासोऽस्मि रामस्य त्वं तु दासी भविष्यसि ॥५०॥
 ततः क्रोधेन सा सीतां घर्तुं वेगेन द्रुदुवे । तदा तां राघवः ग्राह ममायं शर उत्तमः ॥५१॥
 चिह्नायं लक्ष्मणाय त्वं नीत्वा दर्शय वेगतः । भद्राणदंशनात्कार्यं सिद्धिं नेष्यति लक्ष्मणः ॥५२॥
 इत्युक्त्वा राघवो बाणं ददौ तस्यै सुरोपमम् । सत्यं मत्वा रामवाक्यं सा ययौ लक्ष्मणं पुनः ॥५३॥
 लक्ष्मणाय रामबाणं दर्शयामास राक्षसी । स मुदृष्ट्वा दहतं बंधोस्तं संघाय शरासने ॥५४॥
 सुमोष बाणं वेगेन रामनाम्नांकितं शुभम् । स शरो राक्षसीं गत्वा घ्राणकर्णौष्ठहृद्भवान् ॥५५॥
 संछित्वा रामतूणीरं विवेश क्षणमात्रतः । घ्राणकर्णौष्ठहृद्भजातरहिता साऽपि राक्षसी ॥५६॥
 हाहतास्मीति ज्वन्यंती ययौ बंधुन्सरादिकान् । दृष्ट्वा स्वसां तादृशीं ते त्रिशिरःस्तरदूषणाः ॥५७॥
 तन्मुखात्सकलं वृत्तं श्रुत्वा ते क्रोधसंयुताः । चतुर्दश महाघोरान् राक्षसान्प्रेषयंस्तदा ॥५८॥

उस खड्गको लेकर उस घने वनके सब वृक्षों और पत्ताओंको काट डाला । उस धूम्रपुंजके साथ साम्ब भी मारा गया । यह देखकर लक्ष्मण रामसे कहने लगे—॥ ४२ ॥ हे रघुराज ! आप मुझे ब्रह्महत्यानिवारक कोई प्रायश्चित्त बतायें । तब रामने कहा - तुमने तो साम्ब नामके राक्षसको मारा है, न कि मुनिको ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ यह सुनकर लक्ष्मण प्रसन्न हुए । उधर यथेच्छ रूप करनेवाली साम्बकी माता सूर्पणखा राक्षसीने जब यह सुना तो पुनर्मरणके दुःखसे दुःखित होकर बारम्बार पुत्रका स्मरण करती हुई क्रोधसे सबको मार डालनेकी इच्छासे इधर-उधर विचरने लगी । एक दिन पंचवटीमें रामको देखकर वह राक्षसी पुत्रदुःखसे व्याकुल हो उठी और मनोहर रूप धारण करके सीता-लक्ष्मण सहित रामको मारनेके लिए उद्यत हो गयी ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ वह वस्त्र तथा अलंकारसे सजकर उनके पास पहुँची और इस प्रकार मधुर कहने लगी-तुम दोनों तथा यह सुन्दरी स्त्री कौन है और यहाँ वनमें तुम सब किस लिए आये हो ? ॥ ४७ ॥ कहाँसे आ रहे हो और अब आगे कहाँ जानेका विचार ? उसके प्रश्न गूँथकर रामने सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ४८ ॥ तब वह बोली-हे प्रभो ! कृपा करके आप मेरे पति बनें । उत्तरमें रामने कहा कि मेरे पास तो मेरी प्रिय पत्नी विद्यमान है । इसलिए तुम बाहर खड़े मेरे छोटे भाई लक्ष्मणके पास जाओ ॥ ४९ ॥ रामके कथनानुसार सूर्पणखाने बाहर जाकर लक्ष्मणसे अपनी इच्छा प्रकट की । लक्ष्मणने कहा कि मैं तो रामका दास हूँ । तुम मेरी स्त्री क्या करोगी । मेरे साथ तुम्हें भी दासी पड़ेगी ॥ ५० ॥ सुनकर सूर्पणखा क्रोधसे लाल हो गयी और सीताको पकड़नेके लिए बढ़े वेगसे झपटी । रामने उसे रोककर कहा कि मेरा सुन्दर बाण पहचानके लिए जाकर लक्ष्मणको दिखाओ । मेरे बाणको देखते ही लक्ष्मण तुम्हारी पूरी करेगा ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ यह कहकर रामने छुरेके समान तीक्ष्ण एक बाण उसको दिया । रामकी बातको सत्य समझ वह राक्षसी लेकर फिर लक्ष्मणके पास गयी ॥ ५३ ॥ वहाँ जाकर उसने लक्ष्मणको रामका बाण दे दिया । लक्ष्मण बड़े भाईका अभिप्राय समझ गये और अनुपपन्न चढ़ाकर रामनामसे अंकित उस शुभ बाणको छोड़ दिया । वह बाण राक्षसोंके गया और उसके नाक, कान, ओंठ तथा स्तनोंको काटकर पुनः क्षण भरमें रामकी तरफसे लौट गया । कान, नाक, ओंठ तथा स्तनोंसे रहित वह राक्षसी ॥ ५४-५६ ॥ 'हाय मैं मारी गयी' इस प्रकार जिल्लाती हुई स्तर-दूषण आदि अपने भाइयोंके पहुँची । बहिनकी यह

तान् रामः क्षणमात्रेण चतुर्दशशरैर्यमम् । संग्रहस्य निजं लोकं प्रेषयामास लीलया ॥६९॥
 तान् राक्षसान् मृतान् भुत्वा खराद्यास्तो त्रयः क्रुधा । युद्धाय निर्ययुः सैन्यैः सहस्रैश्च चतुर्दश ॥६०॥
 रामोऽपि बंधुं सीतां च मुह्यार्यां स्थाप्य वेगतः । चकार राक्षसैर्युद्धं शस्त्रैस्त्रैर्मवावहम् ॥६१॥
 चतुर्दशसहस्राणि स्वीयरूपाणि राघवः । कृत्वा तेषां पुरतः शरैस्तान्मर्दयन्क्षणात् ॥६२॥
 हत्वा खरं दूषणं च तथा त्रिशिरमं शरैः । चतुर्दशसहस्रांस्तान्प्रेषयामास स्वं पदम् ॥६३॥
 मुहूर्तेन तु रामेण महन्नाणि चतुर्दश । मिता सेना खराद्येव निहता गौतमीतटे ॥६४॥
 खराद्याः कंटका यत्र स्थितास्तत्र त्रिकंटकम् । क्षेत्रं खयातं त्र्यम्बकाख्यं तदेव प्रोच्यते भुवि ॥६५॥
 जनस्थानं भूसुराणां ददौ वस्तुं रघूदहः । अथ सीता समालिख्य राघवं प्रशंस सा ॥६६॥
 अथ तां जानकीं प्राह रामो रघुमि मादरम् । सीते त्वं त्रिविधा भूत्वा रजोरूपा वसानले ॥६७॥
 कामांगे मे सख्यरूपा वस छाया तमोमयी । पञ्चवट्यां दशास्यस्य मोहनार्थं वसात्र वै ॥६८॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा तथा सीता चकार सा । ततः सूर्यपक्षा लंकां गत्वा रावणमब्रवीत् ॥६९॥
 धिकं त्वां राक्षसराजानं वृत्तं चारुर्न वेन्मि यः । चतुर्दशसहस्रा सा सेना स्वद्वन्द्वभूमिः सह ॥७०॥
 मानुषेणैव रामेण जनस्थाने निपातिता । तत्तस्या वचनं श्रुत्वा तां नृष्टा तादृशीं तदा ॥७१॥
 निहासनाच्चवालाथ पुनः पप्रच्छ तां स्वमाम् । किं कारणं युद्धे प्राह सा राक्षसेश्वरम् ॥७२॥
 स्मरन्तां जानकीं दृष्ट्वा मया चित्ते विचिन्तितम् । रावणार्थं विनेष्यामि धर्तुं तां तत्पुरोगता ॥७३॥
 तायद्वाणेन नीताऽहं दशमेतां रावण । सौमित्रिणा पञ्चवट्यामाज्ञया राघवस्य च ॥७४॥
 सांक्षोऽपि मे हतः पुत्रस्तप्यमानो निरर्षकम् । मत्तोषार्थं कृतं युद्धं बंधुभिस्ते निपातिताः ॥७५॥

दशा देखकर त्रिशिरा, खर और दूषणने उसके मुखसे समाचार सुनकर क्रोधयुक्त हो चौदह भयानक राक्षसोंको उसी समय रामसे लड़नेके लिये भेजा ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ रामने चौदह बाणोंसे क्षणमात्रमें लीला-पूर्वक उसको मारकर अपने लोक भेज दिया ॥ ६९ ॥ उनके मारे जानेका समाचार सुनकर खर आदि तीनों राक्षस क्रुद्ध होकर चौदह हजार सैनिकोंके युद्धके लिए निकल पड़े ॥ ६० ॥ राम भी सीता लक्ष्मणको एक गुफामें रखकर शीघ्र अस्त्र-शस्त्रोंसे प्रहार करते हुए राक्षसोंके साथ भयानक युद्ध करने लगे ॥ ६१ ॥ उस समय राम अपने चौदह हजार रूप बनाकर उनके सामने गये और समग्रभूमिमें उन सबका मद मर्दन कर डाला ॥ ६२ ॥ उन्होंने खर, दूषण, त्रिशिरा तथा चौदह हजार राक्षसोंको बाणोंसे मारकर अपने घाम भेज दिया ॥ ६३ ॥ इस प्रकार भूतर्तमात्रमें रामने चौदह हजार सैनिकों तथा खर आदिको गौतमी नदीके किनारे मार डाला ॥ ६४ ॥ जहाँ ये खर-दूषण-त्रिशिरा तीनों भाई कंटकरूपसे रहते थे । वह स्थान त्रिकंटक नामसे प्रसिद्ध था और उसीको लोग त्र्यम्बक भी कहते थे ॥ ६५ ॥ तदनन्तर रघुनन्दन रामने वह स्थान त्रिकंटक (त्र्यम्बक) ब्राह्मणोंको निवास करनेके लिए दे दिया । यह सब देखकर सीता रामका आलिंगन करके उनकी प्रशंसा करने लगी ॥ ६६ ॥ एक दिन राम एकान्तमें सीतासे सादर कहते लगे—हे सीते ! तुम तीन रूपोंको धारण करके रजोरूपसे अग्निमें, सख्यरूपसे छायाकी तरह मेरे बायें अंगमें और तमोमयी बनाकर रावणको मोहित करनेके लिये वहाँ पञ्चवटोमें निवास करो ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ रामके उस वचनकी सुनकर सीताने वसा ही किया । तभी सूर्यपक्षा लंकामें रावणसे बोली— ॥ ६९ ॥ हे राक्षसराज ! तुम्हारे जैसे राजाको धिक्कार है, जो दूतोंके द्वारा तुम्हें राज्यकी पता नहीं लगता । चौदह हजार सेना सहित तुम्हारे भाइयोंको अनुप्यरूपवारी राघवने दण्डकारण्यमें मारकर गिरा दिया । उसके इस वचनको सुन तथा उसकी यह दशा देख सिंहासनसे कुछ ऊँचे होकर वह अपनी बहिनसे पूछने लगा कि युद्ध होनेका क्या कारण है, सो बतलाओ । तब वह राक्षसेश्वर रावणसे बोली— ॥ ७०-७२ ॥ त्रिवर्गमें रत्न ज्ञानकोंको देखकर मैंने निश्चय किया था कि इसको रावणके लिये ले जाऊँगी । यह विचारकर उसको पकड़नेके लिये कामने रही ॥ ७३ ॥ हे रावण ! इतनेहीमें एक बाणने मेरी यह दशा कर दी । रामके

यद्यस्ति पौरुषं किञ्चित्तिहं सीतां समानय । नोषेदधोमुखस्तिष्ठ यथा स्त्री गतमर्तुका ॥७६॥
 तत्तस्या वचनं श्रुत्वा सात्वधामास तां स्वसाम् । तौ रामलक्ष्मणौ हत्वा तव शोकाश्रुमार्जनम् ॥७७॥
 करोम्यहं लोहितेन तयोः खेदं मज्जस्व मा । एवं नानाविधैर्वाक्यैः सात्वपित्वा स्वसां ब्रूहुः ॥७८॥
 स्वहितस्योपदेष्टारं मातुलं तपसि स्थितम् । ययौ रथेन मारीचं तरुमं वृत्तं न्यवेदयत् ॥७९॥
 सोऽथ तं शीषयामास माग्निनेयं मुहुर्मुहुः । विष्णामित्राध्वरे त्यक्तमात्मनः तं न्यवेदयत् ॥८०॥
 रामाख्यया रथं रत्नं रजतं रुक्मभूषितम् । श्रुत्वाऽथ रादि यत्किञ्चिद्रामं मत्वा विभेम्यहम् ॥८१॥
 केन ते शिक्षिता बुद्धिरियं लंकाविधातिनी । आप्तरूपोऽस्ति कः शत्रुर्वेनेयं शिक्षिता मतिः ॥८२॥
 कथां न कुरु रामस्य तं दृष्ट्वा त्वं मरिष्यसि । ततः क्रोधेन तं प्राह यदि नायासि राघवम् ॥८३॥
 मया तर्हि वधिष्यामि त्वामतः कुरु मद्रुचः । भूत्वा त्वं मृगरूपश्च गमस्त्वामनुयास्यति ॥८४॥
 त्वं घन्दं कुरु रामस्य लक्ष्मणस्तेन यास्यति । तवस्तां जानकीं वेगान्त्वङ्गां स्वामानयाम्यहम् ॥८५॥
 लंकायास्तव दास्यामि स्वीयराज्यादृमादरात् । इति तस्याग्रहं दृष्ट्वा मारीचो हृद्यचितयत् ॥८६॥
 रामहस्तान्मृतिः श्रेष्ठा माऽस्तु राघणहस्ततः । इति निश्चित्य मारीचस्तथेत्युक्त्वा ययौ तदा ॥८७॥
 रावणेन रथे स्थित्वा गत्वा पञ्चदशीं प्रति । भूत्वा हेममयश्चित्रो मोहयामास जानकीम् ॥८८॥
 सा छाया तामसी दृष्ट्वा मृगं राघवमन्नचोत् । कीदृशं मां मृगं चेमं धृत्वा देहि रघूत्तम ॥८९॥
 मृगश्रेष्ठाणमिच्छामिः करोमि कञ्चुकीं त्वयः । तत्तस्या वचनं श्रुत्वा ज्ञात्वा सर्वं रघूत्तमः ॥९०॥

कहनेसे लक्ष्मणने पंचवटीमें मेरी यह बातें भी हैं ॥ ७४ ॥ उन्होंने बिना किसी कारण तपस्या करते हुए मेरे प्राण-
 प्रिय पुत्र ताम्बको भी मार डाला । तब मुझे संतुष्ट करनेके लिए खर-नूतणादि भाइयोंने रामके साथ युद्ध किया ।
 किन्तु उसने उन्हें भी मार डाला ॥ ७५ ॥ यदि तैरेंमें कुछ भी बल हो तो सीताका हरण कर, नहीं तो पतिके मर
 जानेपर विधवा स्त्रीकी तरह नीचा मुँह करके बँठा रह ॥ ७६ ॥ उसके पथन सुनकर रावण अपनी भक्तिनको
 समझाने लगा और बोला कि मैं राम-लक्ष्मणको मारकर उनके खूनसे तुम्हारे शोकाश्रुका मार्जन करूँगा—तुम
 दुखी न होओ । इस प्रकार अनेक वाक्योंसे उसने मणिनीकी बार-बार समझाया ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ पश्चात् रथपर
 बैठकर वह हितका उपदेश करनेवाले तथा तपमें स्थित अपने मामा मारीचके पास गया और उसे सब हाल कह
 सुनाया ॥ ७९ ॥ तब मारीच अपने भाजे रावणको बार-बार डराता हुआ बोला कि रामने मुझे विश्वामित्रके
 यज्ञके समय बाणसे उड़कर समुद्रके किनारे फेंक दिया था ॥ ८० ॥ तभीसे मैं रथ, रत्न, रजत (चाँदी),
 रुक्म (सोना) तथा रमणी आदि नामोंके रकार अक्षर सुनने मात्रसे ही डर जाता हूँ (वर्षात् रामके
 भयसे मेने इन बातोंसे प्रेम करना भी छोड़ दिया है) ॥ ८१ ॥ लंकाका नाश करनेवाली यह भ्रंशना तुमको
 किसने दी है ? वह मित्ररूपमें दिया हुआ तुम्हारा शत्रु ही है, जिसने तुमको यह मति दी है ॥ ८२ ॥ उसके
 बात मन मनो, नहीं तो मारे जाओगे । वह सुना तो क्रुद्ध होकर रावण मारीचसे बोला—यदि तुम रामके
 पास नहीं जाओगे तो मैं तुम्हें मार डालूँगा । इसलिये मेरा कहा मान ली । तुम मृग बनकर जब रामके
 पास जाओगे तो राम तुम्हारे पीछे चल देंगे । वनमें दूर से जाकर तुम रामके जैसे स्वर बनाकर "हो लक्ष्मण"
 ऐसा चिल्लाओ । तब लक्ष्मण भी आश्रम छोड़कर तुम्हारी ओर चल देंगे । उस समय मैं भी सीताको अपनी
 लंकामें उठा लाऊँगा ॥ ८३-८५ ॥ यदि मेरा कार्य सिद्ध हो जायगा तो मैं तुमको लंकाका राज्य दे
 दूँगा । उसके आग्रहको सुनकर मारीचने मनमें विचार किया कि रावणके हाथसे मरनेकी अपेक्षा रामके हाथसे
 मरना अच्छा है । यह निश्चय करके मारीच 'बहुत अच्छा' कह तथा रथपर सवार होकर रावणके साथ पंच-
 वटीको उसी समय चल पड़ा । वहाँ जाकर उसने सुवर्णका मृग बनकर सीताको मोहित कर लिया ॥ ८६-८८ ॥
 तब समोगुणमयी आयारूपिणी सीता मृगको देखकर रामसे बोली—हे रघूत्तम राम । इस मृगको पकड़कर मुझे
 दे दो । मैं उसके साथ क्रीड़ा करूँगी ॥ ८९ ॥ और यदि बाणसे मारकर ला दो तो मैं उसके चमड़ेकी थोली
 बनाऊँगी । सीताके रथम सुन तब कुछ सोच-समझकर रघूत्तम राम सीताकी रक्षाके लिये भाई लक्ष्मणको

सीताया रक्षणे बंधु संस्थाप्यास्तु मृगं ययौ । ततः पलायनं चक्रे मृगो रामं विकल्पेण ॥९१॥
 रामबाणेन भिन्नांगः शब्दं दीर्घं चकार सः । हा सौमित्रे समागच्छ हा हनोऽस्म्यद्य कानने ॥९२॥
 इत्युक्त्वा रामवदाचा ममार रुधिरं वमन् । तं शब्दं जानकी श्रुत्वा चोदयामास लक्ष्मणम् ॥९३॥
 सोऽप्याह रामवचनं नेदं सीते भयं स्थज । ततः सा तं पुनः प्राह जानामि ॥९४॥
 भरतस्योपदेशेन मृतिं रामस्य वाञ्छसि । अथवा मेऽभिलाषोऽस्ति तर्हि प्राणास्त्यजाम्यहम् ॥९५॥
 तत्क्रवचनं नस्थाः श्रुत्वा शान्त्वा महद्भयम् । जानकी प्राह सौमित्रिर्मातः शृणु वचो मम ॥९६॥
 राघवाक्षां पुरस्कृत्य रक्षतस्त्वां मम त्वया । ताडिनं वाक्प्ररेणाद्य भोक्ष्यस्यस्याचिरात्कलम् ॥९७॥
 तथापि शृणु मद्राक्ष्यं यन्मयाऽब्रवीत्यते हितम् । मर्यता धनुषो रेखां कृतां त्वत्परितोऽधुना ॥९८॥
 न्वद्रक्षणार्थं दुष्टानां दुर्धिलंध्यां महचमाम् । मा स्वमुल्लंघयस्वमेवं प्राणैः कंठगतरपि ॥९९॥
 इत्युक्त्वा धनुषः कोट्या कृत्वा रेखां समंततः । बाह्यदेशे पंचवत्याः सौमित्रिः परिधोषमाम् ॥१००॥
 नत्वा सीतां ततस्तूर्ण्यं यया रामं त्वगान्वितः । एतस्मिन्तरे तत्र रावणो भिक्षुरुपधृक् ॥१०१॥
 गत्वा पंचवटीद्वारं रेखायाश्च वहिः स्थितः । नागयणेति वै चोक्त्वा तूर्ण्यं तस्थौ स रावणः ॥१०२॥
 नावच्छायामयी सीता भिक्षां तस्मै ममपितुम् । यया द्वारं दीर्घहस्ता गृह्णाप्सित्यप्रवीच तम् ॥१०३॥
 तदा भिक्षुः पुनः प्राह सीतां पंकजलोचनाम् । नागीकरोम्यन्तरेण भिक्षामेतां त्वयाऽर्पिताम् ॥१०४॥
 गार्हस्थ्यं चेद्राघवस्य रक्षितुं न्वं समिच्छसि । तर्हि रेखां समुल्लंघ्य मां भिक्षां दातुमर्हसि ॥१०५॥
 तद्विश्रुवचनं श्रुत्वाऽभर्मोऽभून्मेति शंकिता । रेखावहिः सव्यपादं दत्त्वा दीर्घलसत्करा ॥१०६॥
 गृह्णाप्सेमां वरां भिक्षामिति तं प्राह जानकी । ततो दशास्यस्तां धृत्वा भिक्षुरुपं विसृज्य च ॥१०७॥
 खरवाहे रथे सीता संस्थाप्याथ न्यवर्तत । यावद्रच्छति वेगेन तावदृष्टो जटाघुषा ॥१०८॥

नियुक्त करके जीध मृगक पाँखे चल दिये । हरिण भी रामके आगे दौड़ता हुआ उन्हें बहुत दूर जंगलमें दीड़ा ले गया ॥ ९० ॥ ९१ ॥ वहाँ बाणसे बाणल होकर वह जोरसे रामके स्वरमें विलयाने लगा—'हा लक्ष्मण! मैं वनमें मारा गया, शीघ्र आओ' ॥ ९२ ॥ इतना कहकर मारीच रक्त वमन करता हुआ मर गया । उस शब्दको सुनकर जानकीने लक्ष्मणको जानेके लिये कहा ॥ ९३ ॥ लक्ष्मण बोले—हे सीते ! यह रामका वचन नहीं है, मत डरो । सीता फिर कहने लगी कि मैं अब तुम्हारे अभिप्रायको जान गयी ॥ ९४ ॥ तुम भरतके कहनेके अनुसार रामका मरण अथवा रामके मर जानेपर मुझे भोगना चाहते हो । परन्तु यदि रक्तो, मैं तुम्हारी अभिलाषा पूरी नहीं होने दूँगी और अभी मर जाऊँगी ॥ ९५ ॥ सीताके इस वचनको सुनकर सुमित्रापुत्र लक्ष्मण जानकीसे बोले—हे माता ! मेरी बात सुनो ॥ ९६ ॥ रामकी आज्ञासे तुम्हारी रक्षामें तत्पर पुत्रको तुमने जो बाणोंस्यो बाणोंसे लाहित किया है, उसका फल तुम भीध पाओगी ॥ ९७ ॥ तो श्री मेरे कहे हुए इस हितकारी वचनको मत लो । मैं यन्मुखसे तुम्हारे पारों ओर यह रेखा लीख देता हूँ ॥ ९८ ॥ यह तुम्हारी रक्षाके लिए और दुष्टोंके लिये दुर्लभनीय तथा महान् भय उत्पन्न करनेवाली होगी । प्राणोंके कंठमें आ जानेपर भी तुम इस रेखाका उल्लंघन नहीं करता ॥ ९९ ॥ ऐसा कहकर यन्मुखकी ओरसे लक्ष्मणने पञ्चवटीके बाहर खड़ीकी भाँति सीताकी पारों ओर रेखा खींच दी ॥ १०० ॥ तदनन्तर सीताको प्रणाम करके चुपचाप शीघ्र रामकी ओर चल दिये । इसी समय रावण भिक्षुकका रुद्र धारण करके पंचवटीके द्वारपर जाकर रेखाके बाहर खड़ा हो गया और 'नागयणहरि' कहकर चुप हो रहा ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ तब छायामयी सीता उसको भिक्षा देनेके लिये बाहर आयी और हाथ बढ़ाकर भिक्षुसे 'भिक्षा लो' ऐसा कहा ॥ १०३ ॥ तब कमलके समान नेत्रोंवाली सीतासे भिक्षुने कहा कि मैं रेखाके भीतरसे वेंची हुई भीख नहीं लेता ॥ १०४ ॥ यदि तुम रामके गृहस्थाश्रमकी रक्षा करना चाहती होओ तो रेखाके बाहर आकर भिक्षा दो ॥ १०५ ॥ भिक्षुके इस वचनको सुनकर 'कहीं पाप न लगे' इस शंकासे बायें पावोंको रेखासे बाहर रख और लम्बा हाथ करके ॥ १०६ ॥ जानकी 'यह भिक्षा लो' ऐसा बोली । तभी रावणने उनको पकड़ लिया और भिक्षुका रूप ध्याग ॥ सीताको गर्भोंके रथपर बिठाकर पीछे

चकार तुमुलं युद्धं रावणेन स पक्षिगट् । निजपद्मया मुखेनाथ चूर्णीकृत्य रथोत्तमम् ॥१०९॥
 स्रवान्धो विनिष्पिष्य रभञ्ज तद्धनुर्महत् । मुकुटान् दश संछिद्य कृत्वा देहं तु जर्जरम् ॥११०॥
 मूर्च्छितं गवणं कृत्वा तां सीतां संन्यवर्तयत् । स्वस्थाभूतो दशास्योऽपि ताडयामास तं पदा ॥१११॥
 क्रोधेन महताविष्टः पक्षिणा जर्जरीकृतः । ततो जटायुः पतितो वमन् रक्तं मुखेन सः ॥११२॥
 ततो विहायसा सीतां निनाय रावणः पुनः । रामगमेति जल्पन्ती सीताऽभून्न्यस्तलोचना ॥११३॥
 उत्तरीये बन्धाध पथि स्वाभरणानि सा । दृष्ट्वाऽधः पर्वते प्रोचैः संस्थितान् पञ्च वानरान् ॥११४॥
 प्राक्षिपत्कपिमध्येऽथ सूचनार्थं गघूतमम् । ततो दशास्यस्तां नीत्वा सशोके संन्यवेशयत् ॥११५॥
 शर्यायामास तां सीतां नोत्तरं सा ददौ तदा । तस्याः संरक्षणार्थाय राक्षसीश्च सहस्रशः ॥११६॥
 आश्रययद्दशास्यः स स्वयं गेहं विवेश ह । तदेन्द्रो ब्रह्मवाक्येन पायसं वर्पेतुष्टिदम् ॥११७॥
 ददा रहसि सीतार्यं तेन तुष्टा बभूव सा । समर्प्य पायसं किञ्चिद्रामाय लक्ष्मणाय च ॥११८॥
 सुरानतिधये दत्त्वा दत्त्वा धेनुं च स्वेचरान् । दत्त्वाऽथ त्रिजटां किञ्चिद्भयामास जानकी ॥११९॥
 समञ्ज्य गवणेनापि राक्षसांश्चैव षोडश । प्रेषिता रामघातार्थं ते कबन्धेन भक्षिताः ॥१२०॥
 यत्र यत्र पञ्चवट्यां रामबाणभयान्मृतः । पञ्चार गौतमीतीरे सस्थानं तत्र तत्र हि ॥१२१॥
 स्थानसंज्ञान्पनेकानि आतानि च पुगणि हि । मृगस्य पतितं यत्र नूपुर परिधावता ॥१२२॥
 नूपुरारूपो महाग्रामः प्रोच्यते गौतमीतटे । रामबाणप्रहारेण षपलाशोऽवतद्भुवि ॥१२३॥
 मृगो यत्र महास्तत्र चापल्यग्राम इत्येते । गोदातटे ग्रन्थभूम्यां रामबाणहतो मृगः ॥१२४॥
 पतिसो यत्र तच्चिह्नं दृश्यतेऽद्यापि मानवैः । श्रमिन्नचापजा रेखा पञ्चवट्याः समन्ततः ॥१२५॥

लौटा । वह पाग जा रहा था, तभी जटायुने उसे देख लिया ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ तब पक्षिराज जटायुने रावणके साथ तुमुल युद्ध किया । अपने पाँवों और चोखते मार-मारकर उसके रथको घूर-घूर कर दिया ॥ १०९ ॥ बाँटों गदहोंको पीस डाला । उसका बड़ा भारी धनुष तोड़ दिया । मुकुटोंको काट डाला और उसके चरीरको जर्जरित कर दिया ॥ ११० ॥ इतना ही नहीं, रावणको मूर्च्छित करके वह सीताको लौटा लाने लगा । तभी रावण भी स्वस्थ होकर उसकी पाँवसे मारने लगा ॥ १११ ॥ बड़ा क्रोध करके रावणने पक्षीको और पक्षीने रावणको जर्जर कर दिया । अन्तमें जटायु घायल होकर घरतीपर गिर पड़ा ॥ ११२ ॥ रावण सीताको लेकर आकाशमार्गसे लछ्छाकी ओर चल पड़ा । बेचारी सीता भीची आँखोंसे 'हा राम-हा राम' चिल्लाये लगी ॥ ११३ ॥ उसी समय उन्होंने नीचे एक उन्नत पर्वतके शिखरपर बैठे हुए पाँच वानर सुग्रीव-हनुमान् आदिको देखा और अपनी माँझीको फाड़ तथा उसके टुकड़ोंमें अपने गहने बाँधकर वहीं गिरा दिये । उधर दक्ष-मुख रावणने सीताको ले जाकर लंकाकी अशोकवाटिकामें ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ प्रेम करनेके लिये उसने सीतासे बड़ी प्रार्थना की, परन्तु सीता किसी प्रकार सहमत नहीं हुई और न उसकी बातोंका कुछ उत्तर ही दिया । उनकी रक्षाके लिये रावणने वहाँ हजारों राक्षसोंमें नियुक्त कर दी ॥ ११६ ॥ उनकी रक्षा करनेकी आज्ञा देकर रावण अपने महलमें चला गया । इसी अवसरपर ब्रह्माके कहनेसे इन्द्रने वहाँ जाकर वर्ष भर तक धूलको फिटार कर सन्तुष्ट रखनेवाला पायस (खीर) एकान्तमें सीताको दिया । इससे सीता बड़ी प्रसन्न हुई । उन्होंने राम तथा लक्ष्मणके नाम उसमेंसे कुछ पायस निकाला ॥ ११७ ॥ ११८ ॥ कुछ देवताओंको दिया । कुछ गौओं तथा पक्षियोंको खिलाया और षोडश त्रिजटाको देकर बादमें बची हुई षोड़ीसी खीर जानकीने स्वयं ॥ ११९ ॥ तदनन्तर रावणने सलाह करके सोलह राक्षसोंको रामको मारनेके लिये भेजा, परन्तु वे रास्तेमें ही कबन्ध-के द्वारा दले गये ॥ १२० ॥ उस समय पञ्चवटोंमें रामके बाणके भयसे जहाँ-जहाँ मृगरूपी भारीच गया था, गौतमीके किनारे वहाँ सर्वत्र अनेक नामवाले स्थान स्थापित हुए । जिस जगह दोड़ते हुए मृगका नूपुर गिर रहा था, वहाँ नूपुरपुर नामकी भारी गाँव गया । रामके बाणसे ताड़ित होकर चपल नेत्रोंवाला मृग जहाँ घुम्मीपर गिर पा, वहाँ बड़ा भारी नामका गाँव अब भी मृगका वीरता । गोदावरीके किनारे

अद्यापि दृश्यते स्पष्टा नदीरूपा भयान्वहा । पापाणभूम्यां तत्रैव रावणस्य पदं महत् ॥१२६॥
 अद्यापि दृश्यते भीमं गर्तरूपं नरोचर्मैः । खराधैर्युद्धसमये पंचवट्या विदेहजा ॥१२७॥
 गुहायां गोपिता भर्त्रा साऽद्यापि तत्र दृश्यते । तथा रामो लक्ष्मणोऽपि पंचवट्या सदैव हि ॥१२८॥
 दृश्यतेऽद्यापि भो देवि तज्जनेर्जनदृष्टिभिः । अज्ञानदृष्टिभिस्ते तु दृश्यते ग्रावरूपिणः ॥१२९॥
 रामतीर्थं रामकुतं सीतालक्ष्मणसंस्कृते । तीर्थं तत्र तु गीतव्यां दृश्यतेऽद्यापि मानवैः ॥१३०॥
 रामेण सीतया यत्र शय्यायां पर्वतोपरि । कुतं पूर्वं तु शयनं रामशय्यागिरिः स्मृतः ॥१३१॥
 शय्यारूपाणि दृश्यन्तेऽद्यापि तत्र तृणानि हि । रामोऽपि लक्ष्मणं दृष्ट्वा श्रुत्वा सीतावचोऽश्रुमम् ॥१३२॥
 निवेदितं लक्ष्मणेन क्रोधाश्रुस्मयचेतसा । निमिषान्यतिघोराणि दृष्ट्वा चैव ॥१३३॥
 ययौ पंचवटीं व्यथस्तत्र सीता ददर्श ॥ ततो मानुषभावं तु दर्शयन् सकलाञ्जनान् ॥१३४॥
 विचिन्वन्सर्वतः सीतां गृध्रराजं ददर्श सः । ततः स पश्चिन्नक्षत्रा रावणेन हता प्रियाम् ॥१३५॥
 ज्ञात्वा तं योजयामास बह्विना जीवितक्षये । तत्पृथग्यं वन्यमांसं क्षिप्यवा स्नात्वा रघूत्तमः ॥१३६॥
 ययौ दक्षिणमार्गेण विचिन्वन्मूढवत्प्रभुः । पूर्ववदग्निहोत्रं स चकार कुशभार्यया ॥१३७॥
 एतस्मिन्नंतरे देवि त्वया प्रोक्तस्त्वहं पुरा । त्वया यस्य जपो नित्यं क्रियते राघवस्य हि ॥१३८॥
 सोऽयं स्त्रीविरहात्पश्य मूढवद्भ्रमते वने । तदेति वचनं श्रुत्वा तदा त्वामनुवं त्वहम् ॥१३९॥
 देवि साक्षान्महाविष्णुस्त्वयं रामो महाबले । शिष्यार्थं सकलालोकान् मूढवद्भ्रमते वने ॥१४०॥
 नारीसंगो नरस्याज्यः सर्वदाऽग्नेनि श्लिष्यन् । नारीविषयजं दुःखमीदृशं भ्रमकारकम् ॥१४१॥
 दर्शयन् सकलालोकानिति मांऽवाटते वने । इति मद्रचनं श्रुत्वा तत्परीक्षार्थमुद्यता ॥१४२॥

जहाँ पावभूमि (पयराली घरती) पर रामबाणसे निहत होकर मृग गिरा था ॥ १२१-१२५ ॥ उसका चिह्न वहाँ भी मनुष्योंको दिखाई देता है । सुमित्रापुत्र लक्ष्मणके मनुष्य द्वारा खींचा हुई रेखा पंचवटीके चारों ओर आज भी भयानक नदीके रूपको धारण हुए स्पष्ट दिखाई देती है । उस पापाणमयी भूमिमें रावणका भारी पदचिह्न एक बड़े भारी गढ़के रूपमें अब भी दिखाई दे रहा है । पहले सरके साथ युद्ध करनेके समय पंचवटीमें विदेहजा सीताको जिस गुफामें उनके पति रामने छिपाया था, भी विद्यमान है । हे देवि ! तज्जन तथा ज्ञाना महात्माओंको सदैव राम-लक्ष्मणका वहाँ दर्शन होता है और सीताके स्थापित तीर्थ इस समय भी दिखाई देते हैं ॥ १२६-१३० ॥ जिस पर्वतपर रामने शय्यानिर्माण करके सीताके साथ शयन किया था, वह रामशय्यागिरिके नामसे प्रसिद्ध है ॥ १३१ ॥ वहाँके तृण भी शय्याकार दिखाई देते हैं । इसपर रामने लक्ष्मणको आया देखा तथा उनके मुखसे सीताके कहें दुर्वचनको सुना ॥ १३२ ॥ यह हाल लक्ष्मणने क्रोधपूर्वक आसू बहाते हुए तथा विस्मयके साथ कहा था । राम चारों ओर अत्यन्त भयानक शकुनोंको देख तथा घबराकर भीघ्र ही पंचवटीमें गये तो वहाँ सीता नहीं दिखाई दी । पश्चात् मनुष्यभावसे समस्त वनके पशु-पक्षी तथा जड़ वृक्षों आदिसे सीताका पता पूछने और सीताको सर्वत्र ढूँढने लगे । इतनेमें गृध्रराज अटायु दिखायी दिया । उस पक्षीके मुँहसे सुना कि रावण प्रिया सीताका हरण कर ले गया ॥ १३३-१३५ ॥ मरणोपरान्त जटायुके कथनानुसार रामने उसका अग्निसंस्कार किया । उसकी शान्ति तथा सुष्टिके लिए रामने वन्य मृग आदिके मांससे पिण्डदान किया और स्नान आदि क्रिया की ॥ १३६ ॥ पश्चात् सर्वेश्वर राम मूढ़ पुरुषको तरह सीताको खोजते हुए दक्षिणकी ओर चले । रास्तेमें सीताके अभावमें कुशाको सीता बनाकर उसीके साथ रामने अग्निहोत्र किया ॥ १३७ ॥ इसी बीच हे देवि पार्वती ! तुमने मुझसे प्रश्न किया था—हे प्रभो ! आप नित्यप्रति जिन रामका नाम जपा करते हैं ॥ १३८ ॥ वही राम स्त्रीके विरहसे मूढ़की तरह वनमें मारे-मारे फिर रहे हैं । तुम्हारा यह वचन सुनकर मैंने तुमसे कहा— ॥ १३९ ॥ हे देवि ! यह साक्षात् विष्णु भगवात् राम वनकर पृथ्वीमण्डलके लोगोंकी शिक्षा देनेके लिए वनमें मूढ़का तरह भ्रमण कर रहे हैं ॥ १४० ॥ वे पक्षी यह उपदेश देते हैं कि मनुष्यको स्त्रीमें आसक्त नहीं होना चाहिए । स्त्रीविषयक आसक्ति ऐसे ही कुश

त्वं गताऽसि समीपं श्रीराघवस्य तदा वने । सीतारूपेण त्वं रामं त्वया प्रोक्तं शुभं वचः ॥१४३॥
 राम राजीवपत्राक्ष मामग्रे पश्य जानकीम् । क्रीडस्वात्र मया सार्धमेहि शीघ्रं सुखी भव ॥१४४॥
 त्वदुक्तं राघवः श्रुत्वा विहस्य त्वां वचोऽज्जवीत् । जानाम्यहं त्वं कार्मीति सीता त्वं नामि वेद्यमहम् ॥१४५॥
 त्वं किं सीतास्वरूपेण मोहयस्यत्र मां वने । एवं पुनः पुनः प्रोक्ता यदा त्वं राघवेण हि ॥१४६॥
 तदा त्वया तत्स्वरूपं ज्ञातं तस्य मयेरितम् । नतो नत्वा रामचंद्रं प्रार्थयित्वा पुनः पुनः ॥१४७॥
 आगताऽसि पुनर्मां त्वं कैलासशिखरेऽमले । त्वं का त्वं किमिति प्रोक्ता राघवेण पुनः पुनः ॥१४८॥
 या त्वं सा दंडके जाता त्वं का नाम्नांविक्ता वने । त्वं लजिताऽसि रामेण यत्र तत्र तव स्थले ॥१४९॥
 वल्लभापुरनाम्नाऽऽसीन्नगरं दंडके वने । तवस्तीं रामसौमित्रो जन्मतुर्दक्षिणां दिशम् ॥१५०॥
 बहवो निहता मार्गे राक्षसा घोररूपिणः । एतस्मिन्नंतरेऽरण्ये कर्षणेन धृतौ तदा ॥१५१॥
 श्रीरामलक्ष्मणौ मार्गे योजनायतवाहुता । दृष्ट्वा तं शिरसा हानं बाहु बिच्छेदतुस्तदा ॥१५२॥
 ततः स दिव्यरूपोऽभूत्वा रामं वचोऽज्जवीत् । पुरा गंधर्वराजोऽहं ब्रह्मणो वरदानतः ॥१५३॥
 केनाप्यवध्यस्त्वहसमष्टावक्रं मुनीश्वरम् । रेको भवेति श्रमोऽहं मुनिना प्राह मां पुनः ॥१५४॥
 व्रंतायुगे यदा रामलक्ष्मणौ योजनायतौ । छेत्स्यतस्ते महाबाहु तदा ज्ञापात्ममोक्षयसे ॥१५५॥
 ततो राक्षसदेहोऽहमिन्द्रमभ्यद्रवं कृपा । सोऽपि वज्रेण मां राम शिरादेशे क्षताडयत् ॥१५६॥
 तदा कुक्षौ शिरःपादयुगले च गतं क्षणात् । ब्रह्मदत्तवशान्मृत्युनाभून्मे वक्षताडनात् ॥१५७॥
 दुःखमावे कथं जीवेदयमित्यमराधिपः । तदा मां प्राह कृपया जठरे ते मुख भवेत् ॥१५८॥
 बाहु ते योजनायामावध शीघ्रं भविष्यतः । तदारभ्यात्र बाहुभ्या लब्धं तद्भक्षयाम्यहम् ॥१५९॥

समा भ्रमका कारण बनती है ॥ १४१ ॥ इन बातोंको बतलाने तथा लोगोंका शिक्षा देनेके लिए राम वनमें द्वापर-उधर प्रमण कर रहे हैं । मेरे [] उत्तरको सुनकर तुम उनकी परीक्षा लेनेको [] हुई ॥ १४२ ॥ उस समय तुम सीताका रूप बनाकर श्रीरामके पास गयीं और उनसे कहा—॥ १४३ ॥ हे कमलसदृश नेत्रोंवाले राम ! अपने सामने सही मुख जानकीको देखो । आओ, मेरे साथ इस वनमें कीड़ा करके सुख प्राप्त करो ॥ १४४ ॥ तुम्हारे कथनको सुनकर राम हँसे और कहा—मैं जानता [] कि तुम कौन हो ॥ १४५ ॥ अर्थात् सीताका [] धारण करके मुझे क्यों मोहित करती हो ? इस प्रकार [] रामने बारम्बार कहा ॥ १४६ ॥ [] तुमने मेरे कहनेके अनुसार रामका वास्तविक स्वरूप पहिचान और उनकी पुनः पुनः प्रार्थना करके क्षमा माँगी ॥ १४७ ॥ १४८ ॥ तदनन्तर तुम रमणीक कंठ्याक्ष पर्वतके शिखरपर मेरे पास लौट आयी । अर्थात् रामने तुमसे पूछा था कि तुम कौन हो ? यहाँ क्यों आयी हो और तुम्हारे नामकी अश्विका जो दण्डकारण्यमें रहती है । यह सुनकर तुम रुज्जित हुईं । जिससे वहाँपर लज्जापुर नामका एक नगर बस गया । तदनन्तर वे राम-लक्ष्मण दक्षिणकी ओर [] दिशे ॥ १४९ ॥ १५० ॥ उन्होंने मार्गमें बहुतसे घोर राक्षसोंको मारा । इसी जङ्गलमें कर्षकने उन दोनोंको पकड़ लिया ॥ १५१ ॥ उसके चार-चार कोसके लम्बे हाथ थे । उसे सिरसे रहित देखकर उसके दोनों हाथ राम-लक्ष्मणने काट डाले ॥ १५२ ॥ तब वह दिव्य रूप धारण करके वरदानपूर्वक रामसे कहने लगी—पहले मैं गन्धर्वोंका राजा था । ब्रह्मने मुझे वर दिया था कि तुमको कोई नहीं मार सकेगा । इस गर्वसे मैं एक दिन मुनीश्वर अष्टावक्रको कुरूप देखकर हँस पड़ा । इसपर उन्होंने क्रुद्ध होकर मुझको पाप दिया कि तू [] हो जायगा । मेरे प्रार्थना करनेपर फिर वे बोले— ॥ १५३ ॥ १५४ ॥ प्रेता युगमें जब राम-लक्ष्मण तेरी इन योजना पर विस्तारवाली भुजाओंको काटेंगे, तब तू चापसे मुक्त हो जायगा ॥ १५५ ॥ राक्षस होकर एक दिन मैंने इन्द्रके ऊपर धावा किया । उन्होंने कुपित होकर मेरे भस्मकपर वज्र मारा ॥ १५६ ॥ जिससे मेरा सिर और दोनों पाँव पेटमें धुँस गये । परन्तु ब्रह्माका वरदान प्राप्त रहनेसे मेरी मृत्यु नहीं हुई ॥ १५७ ॥ [] मैंने देवताओंके अधिपति इन्द्रसे प्रार्थना की कि मैं बिना दुःखके फिर प्रकट हो सकूँगा । तब उन्होंने कृपा करके कहा कि जा, तेरे पेटमें मुख हो जायगा ॥ १५८ ॥

तिष्ठन्त्यग्रे मतंगादिमुनीनां परिचारिकाः । श्वरीदर्शनार्थं त्वं तत्र याहि रघूत्तम ॥१६०॥
 कथयिष्यति सा सीताशुद्धिं ते रघुनन्दन । इत्युक्त्वा राघवं नत्वा स्तुत्वा स्वर्गं ययौ मुदा ॥१६१॥
 ततो रामो लक्ष्मणेन श्वरीसंनिधिं ययौ । साऽपि संपूज्य श्रीरामं विश्वैर्पर्वतसंभवैः ॥१६२॥
 चितामारोढुमुद्युक्ता राघवं प्राह हर्षिता । ऋष्यमूकगिरावग्रे सुग्रीवो मन्त्रिभिः सह ॥१६३॥
 वर्तते तस्य सख्येन सीताशुद्धिं लभिष्यसि । गच्छ राम इतस्त्वग्रं पंपानाम सरोवरम् ॥१६४॥
 तच्चटाके तु वृक्षाणां फलानि विविधानि च । भक्षस्व त्वं जलं पीत्वा याहि सुग्रीवसंनिधिम् ॥१६५॥
 इत्युक्त्वा श्वरी रामं नत्वा वह्निं विवेश सा । रामसंदर्शनान्मुक्तिं प्राप्ता वैकुण्ठमाययौ ॥१६६॥
 ततो रामः श्वरैर्भ्रात्रा ययौ पंपासरोवरम् । फलानि भक्षयामास पीत्वा तज्जलमुत्तमम् ॥१६७॥
 ततः श्वरैर्ययौ मार्गं ऋष्यमूकाचलं प्रति । पश्यन्वनानि सर्वत्र चितयामास जानकीम् ॥१६८॥
 एवं गिरीन्द्रजे प्रोक्तमारण्यं चरितं तव । श्रीरामस्य ससीतस्य लक्ष्मणेन युतस्य च ॥१६९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितसंग्रहे श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे

श्वरादिवधो नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

(राम-सुग्रीवसंघी और बालिवध)

श्रीशिव उवाच

अथ रामो लक्ष्मणेन ऋष्यमूकाचलं प्रति । ययौ घृतघनुर्बाणो नेत्रे सर्वत्र चालयन् ॥ १ ॥
 ऋष्यमूकगिरेः पार्श्वं गच्छन्तौ रामलक्ष्मणौ । सुग्रीवेषाथ तौ दृष्टौ ऋष्यमूकस्थितेन हि ॥ २ ॥
 सुग्रीवस्तौ तदा दृष्ट्वा चतुर्भिर्मन्त्रिभिर्युतः । संमन्य माकृतिं प्राह बालिना प्रेषितायुमौ ॥ ३ ॥

गीत ही तूरे हाथ भी गोजन-गोजन भर लम्बे हों जायेंगे । तबसे ■ जो कुछ इन हाथोंके बीच आ जाता है, ला लेता है ॥ १५६ ॥ यहाँसे आये मतङ्ग आदि मुनियोंकी परिचारिकायें रहती हैं । हे रघूत्तम ! ■ वहाँ जाकर श्वरीसे मिलें ॥ १६० ॥ हे रघुनन्दन ! ■ आपको सीताका ■ बतायेगी । इतना कहकर उसने रामकी स्तुति की और नमस्कार करके वह सानन्द स्वर्गको चला गया ॥ १६१ ॥ तदनन्तर राम लक्ष्मणको लेकर पावरीके पास गये । श्वरीने वनके अन्द्रे-अन्द्रे पुष्पों तथा फलोंसे ■ पूजन-सत्कार किया ॥ १६२ ॥ बादमें चितागोहण करते समय हर्षपूर्वक वह रामसे बोली कि आगे ऋष्यमूक पर्वतके शिखरपर मन्त्रियोंके ■ सुग्रीव रहता है ॥ १६३ ॥ उसको मित्रता प्राप्त करनेसे आपको सीताका पता मिल जायगा । हे राम ! आप यहाँसे चलकर पंपासरोवर जयें ॥ १६४ ॥ उसके किनारेपर लगे हुए वृक्षोंके विविध फल खा तथा जलपान करके आप सुग्रीवके पास जाइएगा ॥ १६५ ॥ इतना कहकर श्वरीने रामको प्रणाम किया और अग्निमें प्रवेश कर गयी । इस प्रकार रामके दर्शनमात्रसे मुक्त होकर ■ वैकुण्ठघाम सिधारी ॥ १६६ ॥ तदनन्तर राम भाई लक्ष्मणके साथ पम्पासरोवर गये । वहकि सुन्दर फल खाकर सरोवरका निर्मल जल दिया ॥ १६७ ॥ पश्चात् धीरे-धीरे ऋष्यमूक पर्वतकी ओर चले । रास्तेमें चारों ओर हरे-भरे वनोंकी शोभा देखकर राम बारम्बार जानकीका स्मरण करने लगे ॥ १६८ ॥ हे गिरीन्द्रजे ! यह मैंने तुमको सीता, लक्ष्मण तथा श्रीरामका किया हुआ चरित्र कह सुनाया ॥ १६९ ॥ इति शतकोटिरामचरितसंग्रहे श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे पं० रामतेजपाण्डेयकृत 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकायां सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

श्रीशिवजी बोले—हे प्रिये ! इस तरह राम हाथमें घनुष-बाण लिये और नेत्रोंसे चारों ओर देखते हुए लक्ष्मणके साथ ऋष्यमूक पर्वतके पास पहुँचे ॥ १ ॥ वहाँ शिखरपर बैठे सुग्रीवने पर्वतके पास आते हुए राम-लक्ष्मणको देख लिया । २ ॥ उन्हें देखकर सुग्रीवने अपने चारों मन्त्रियोंकी बुलवाया और उनसे मन्त्रणा

मां हंतुं घृतकोदंडौ सत्पुंगवौ जगद्वती । इतोऽस्माभिः प्रगंतव्यं भद्रं भृशु मयोच्यते ॥४॥
 गच्छ जानीहि भद्रं ते बहुभूत्वा द्विजाकृतिः । ताभ्यां संभाषणं कृत्वा जानीहि हृदयं तयोः ॥५॥
 यदि नो दृष्टदृष्टौ संज्ञां कुरु कराग्रतः । मायुन्वे स्मितवक्त्रोऽभूरेव जानीहि निश्चयम् ॥६॥
 तथेति बहुरूपेण गत्वा नम्रा रघुनमम् । कौ युवां पुरुषभ्याग्राविति पप्रच्छ मारुतिः ॥७॥
 सवर्त्म सक्षमणः प्राह पूर्ववृत्तं सविस्तरम् । शशरीवचनाद्रामः सख्यं कर्तुं समागतः ॥८॥
 सुप्रावेणाथ तच्छ्रुत्वा स्वरूपं मारुतिस्नदा । चकार नैजं प्रकटं स्वीयं वृत्तं न्यवेदयत् ॥९॥
 मन्त्रकंभमधिरुमाथ पर्वतं गंतुमर्हथः । तथेति मारुतेः स्कन्धे संस्थितौ तौ बभूवतुः ॥१०॥
 उत्पपात गिरेर्मूर्ध्नि सणादेव महाकपिः । वृश्चच्छायां समाश्रित्य तौ स्थितौ रामलक्ष्मणौ ॥११॥
 सुप्रायं मारुतिर्गच्छा रामवृत्तं न्यवेदयत् । ततः प्रज्वाल्य वह्निं स सुप्रीवो राक्षसेण हि ॥१२॥
 चकार सख्यं व्रगेन समालिख्य परस्परम् । वृक्षशालां स्वयं छित्त्वा विष्टरार्थं ददौ कपिः ॥१३॥
 दर्पेण महताविष्टाः सर्वे एवावतस्थिरे । लक्ष्मणस्त्वग्रवीत्सर्वं सुप्रीवं वृत्तमात्मनः ॥१४॥
 ननु त्वा सकलं वृत्तं सुप्रीवः स्वं न्यवेदयत् । सखे भृशु मे वृत्तं वालिना यत्कृतं पुरा ॥१५॥
 मयपुत्रो दुर्मदश्च किष्किंधामेकदा गतः । कृत्वा स दीर्घशब्दं तु वालिनं समुपाह्वयत् ॥१६॥
 न श्रुत्वा निर्वयौ वाली जघान दृढमुष्टिना । दुद्राव तेन संविप्रो जगाम स्वगुहां प्रति ॥१७॥
 अनुदुद्राव तं वाली वालिपुष्टे त्वहं गतः । वाली ममाह तिष्ठ त्वं बहिर्गच्छास्यहं गुहाम् ॥१८॥
 ह्युक्त्वाऽऽविश्य स गुहां मासमंकेन निर्वयौ । गुहाद्वारान्मया रक्तं निर्गतं सञ्चिरीक्ष्य च ॥१९॥

कपिके हनुमान्से कहा कि इन दोनोंको वालीने भेजा है, ऐसा ज्ञात होता है ॥ ३ ॥ ये दोनों नररूप धारण कर भाषा बाँध तथा घनुष लेकर मुझे मारने आ रहे हैं । इस कारण हम लोगोंको यहसि कहीं अन्यत्र भाग जाना चाहिये । अथवा तुम मेरी बात मानो और ब्राह्मणका क्य धारण करके ब्रह्मचारी बनकर उनके पास जाओ और उनके साथ बातचात करके उनके हृदयका अभिप्राय जान लो ॥ ४ ॥ यदि उनके हृदयका विचार द्रुपित हो तो पेड़की आड़में जाकर हाथकी अंगुलीसे संकेत करना और यदि भ्रूच्छा विचार रखते हों तो हँसकर मेरी ओर निहारना । यम यही संकेत निश्चित है, याद रखना ॥ ५ ॥ ६ ॥ तदनुसार हनुमान् 'बहुत अच्छा' कह और ब्रह्मचारीका रूप धारण करके रामके पास गये और नमस्कार करके कहा—'पुरुषोंमें सिहके समान बीर आद दोनों कौन हैं ?' ॥ ७ ॥ तब लक्ष्मणने उनको अपना संपूर्ण वृत्तांत कह सुनाया और कहा ■ शशरीके कहनेसे मैं राम सुप्रीवके साथ मित्रता करनेके लिये वहाँ आये है ॥ ८ ॥ यह सुनकर हनुमान्ने ■ असली स्वरूप प्रकट किया और अपना भी ■ हाल कह सुनाया ॥ ९ ॥ ■ ही यह भी कहा ■ दोनों मेरे कन्धेपर बैठकर पर्वतपर चले । 'तथास्तु' कहकर वे दोनों मारुतिके कन्धेपर ■ गये ॥ १० ॥ महाकपि हनुमान्जी कूदकर क्षणभरमें पर्वतके शिखरपर ■ गये । वहाँ राम-लक्ष्मण एक वृक्षकी छायामें ■ ॥ ११ ॥ हनुमान्ने आफर रामका सब समाचार सुप्रीवको कह सुनाया । पश्चात् सुप्रीवने अग्नि जलायी और उसे साक्षी बनाकर रामके साथ शीघ्र मित्रता कर ली और परस्पर वे दोनों गले मिले । ■ स्वयं सुप्रीवने अपने हाथोंसे वृक्षकी शाखा तोड़कर रामको बिछानेके लिए दे दी । तब सब लोग ■ हुए और बैठ गये । लक्ष्मणने अपना सब वृत्तांत सुप्रीवको सुनाया ॥ १२-१४ ॥ यह सुनकर सुप्रीवने भी अपना सब हाल बताते हुए कहा—हे सखे ! पहले वालिने मेरे साथ जो कुछ किया है, वह सब आप सुन लें ॥ १५ ॥ एक ■ पय दानवका पुत्र दुर्मद किष्किन्धा नगरीमें गया । वहाँ जाकर वह जोरसे चिल्लाया और वालिको मुठके लिये ललकारा ॥ १६ ॥ सो सुनकर वालि बाहर आया और दुर्मदको बहुत जोरसे एक मुक्का मारा । इससे धक्काकर वह अपनी गुफाकी ओर भागा ॥ १७ ॥ उसके पोछे वालि और वालिके पोछे मैं भी भागा । वहाँ जाकर वालिने मुझसे कहा कि तुम बाहर सड़े रहो, ■ गुफाके भीतर जाऊ है ॥ १८ ॥ यदि एक महीनेमें ■ बाहर न आऊँ तो मुझे मरा समझ लेना । ऐसा कहकर वह गुफामें चला गया । उसके कथनानुसार एक महीना बीत गया,

निश्चितं मनसा वाली दुर्मदेन हतस्त्रिणि । एतस्मिन्नंतरे श्रुत्वा किष्किष्मां रिपुवेष्टिताम् ॥२०॥
 गुहाद्वारि शिलामेकां निधाय दुर्मदस्य च । यत्नतो मार्गगोधार्थं किष्किष्मामागतः स्वयम् ॥२१॥
 मां दृष्ट्वा रिपवः सर्वे वेगाचक्रुः पलायनम् । अनिच्छन्तं मंत्रिणो मां तत्पदे मन्यवेशयन् ॥२२॥
 ततो हत्वा रिपुं वाली दृष्ट्वा मां स्वपदस्थितम् । संताप्य नगरान्मां स बहिन्यप्यायत्तदा ॥२३॥
 ततः स सर्वदेशेषु वादयामास दुन्दुमिम् । भूम्यां सुग्रीवपाता यः स वक्ष्यो भवेदिति ॥२४॥
 ततो लोकान्परिक्रम्य श्रुत्वा मूको मयाऽऽश्रितः । एकदा दुन्दुभिर्नाम दैत्यो महिषरूपधृक् ॥२५॥
 पुदाय वालिनं रात्रौ समाह्वयत भीषणः । ततो वाली समागत्य धृत्वा शृग करेण वः ॥२६॥
 हस्ताभ्यां तच्छिरसि हत्वा तोलयित्वाऽक्षिपद्भुवि । पपात तच्छिरो रात्रि मत्तंगाश्रममाश्रया ॥२७॥
 रक्तवृष्टिः पपातोऽर्चमनङ्गोऽप्यश्रुपन्कुधा । यथागतोऽसि मे वालिन् मिरिं शीघ्रं समापये ॥२८॥
 एवं शप्तस्तदारभ्य श्रुत्वा मूकं न यान्यमौ । प्रतिज्ञां ते कर्णेभ्यश्च सीता शीघ्रं समानये ॥२९॥
 यदा नीता रावणेन तदा दृष्ट्वा मयाऽत्र स्वे । बद्ध्वा चोत्तरीये क्षिप्तानि पश्य त्व भूषणानि हि ॥३०॥
 इत्युक्त्वा दर्शयामास सुग्रीवो भूषणानि हि । तानि दृष्ट्वाऽजरीवन्धु गमस्त्वं निश्चयं वद ॥३१॥
 श्रव्यादृष्टानि सीतायास्तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणोऽश्रवीनः । वेद्यथं समस्तानि वेद्यथं गुलिमवानि हि ॥३२॥
 वंदने यानि दृष्टानि मया निन्यं रघूदह । ततो गमोऽतिमंतुष्टो लब्ध्वा सीताममन्यत ॥३३॥
 सुग्रीववचनाद्गामः प्रत्ययार्थं तदा सणात् । पादांगुष्ठेनाक्षिपत्तदुदंभेः शिर उत्तमम् ॥३४॥

किन्तु वह बाहर नहीं आया । मैंने जब गुहामेंसे निकलता हुआ स्थिर देखा तो मनमें निश्चय कर लिया कि दुर्मद दानवने वालीको मार डाला । उसी समय यह सुनकर कि शत्रुओंने किष्किष्माको घेर लिया है, मैंने गुहाके द्वारकी एक बड़ी भारी शिलासे ठीक दिया और निश्चय कर लिया कि अब दुर्मदका मार्ग रुक गया है । वह यत्न करके भी बाहर नहीं निकल सकेगा । तब मैं अपनी किष्किष्मा नगरीको चला आया ॥ १६-२१ ॥ मुझे देखनेके साथ ही सब शत्रु भाग गये और मैंने डच्छा ॥ रहनेपर भी मन्त्रियोंने मुझे भाई वालीके पदपर बैठा दिया ॥ २२ ॥ पश्चात् वालि भी शत्रुको मारकर घर आया और मुझे अपने पदपर बैठा देखा तो मुझे मारपीटकर उसी समय नगरसे बाहर निकाल दिया ॥ २३ ॥ साथ ही सब देशोंमें उसने छिड़ोरा गिटवाकर कहला दिया कि "जो कोई सुग्रीवको कारण देकर क्षमा करेगा, वह मेरा अरराधी होगा और मार डाला जायगा" ॥ २४ ॥ तदनन्तर सब देशोंमें घूमकर मैंने इस श्रुत्वा मूक गिरिका आश्रय लिया । यहाँकी कथा ॥ है कि एक दिन दुन्दुभी नामक दैत्य भैंसेका ॥ घरकर रात्रिके समय वालिके यहाँ गया और उसका पुटके लिये लज्जकारा । वालिके आकर अपने हाथसे उसको सींग ॥ लो और खींचकर उसका सिर घड़से उखाड़ तथा धुपाकर दूर फेंक दिया । हे राम ! उसका वह सिर मतङ्ग श्रुतिके आश्रममें जा गिरा ॥ २५-२७ ॥ इससे मतङ्गश्रुतिके ऊपर भी स्थिर गिरा । ॥ उन्होंने कंध करके उसे शाप दिया कि 'अरे वालि ! यदि मेरे पर्वत तथा आश्रमके पास तू आयेगा तो तू ॥ मर जायगा' ॥ २८ ॥ इस शापसे डरकर वाली यहाँ कभी नहीं जाता । हे राम ! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि सीताको शीघ्र ही ले आऊँगा ॥ २९ ॥ जब रावण उनको ले जा रहा था, तब यही वंटे हुए मैंने आकाशमें देखा था । उस समय सीताने अपनी साड़ीमें बांधकर कुछ आभूषण नोचे फेंके थे । वे वहीं हैं, बाप उन्हें बनें ॥ ३० ॥ इतना कहकर सुग्रीवनं वे आभूषण दिखलाये । उन्हें देखकर रामने लक्ष्मणसे कहा—हे भाई ! तुम इन्हें देखकर ठीक-ठीक बतलाओ कि ये सीताके हैं या नहीं । क्योंकि तुमने तो सीताके आभूषण देखे ही हैं । यह सुनकर लक्ष्मणने कहा कि मैं सबको तो नहीं पहचानता, परन्तु पाँवकी अंगुलीके तूखुरके बारेमें बशर्य कह सकता हूँ कि ये सीताके ही हैं । कारण कि मैंने प्रणाम करते समय केवल उनके पाँव देखे हैं—अन्य कुछ नहीं देखे । यह सुनकर राम प्रसन्न हुए और 'अब सीता मिल गयी' ऐसा ॥ ३१-३३ ॥ तदनन्तर सुग्रीवको विश्वास दिलानेके लिए उसी समय रामने अपने पाँवके अंगुष्ठसे मारकर दुन्दुभीके बड़े विशाल सिरको

दशयोजनपर्यन्तं तथा वाणेन वै पुनः । चक्राकारान् सप्त तालान् दृष्ट्वा देहे द्यहेः प्रभुः ॥३५॥
 सर्वाणां गुणेन सौमित्रेः पदं किञ्चिद्विमर्शं च । श्वजुं कृत्वा पञ्चगं तं शेषांशेन स्थितं भुवि ॥३६॥
 सुग्रीवप्रणयार्थं हि सप्त तालान् विभेद सः ॥ गुहायामेकदा तालकलानि स्थापितानि त्रि ॥३७॥
 वालिना सप्त नीतानि तेन मर्षं ददर्श सः । तमशपञ्चयि शृङ्गाश्च भविष्यतीति वानरः ॥३८॥
 तर्पेऽप्याह्लाथ तान् छेत्ता यस्मै हन्ता न संशयः । तद् दृष्ट्वा गमसामर्थ्यं तस्मिन्प्रस्थयमाप सः ॥३९॥
 सुग्रीवस्तं पुनः प्राङ् राघवं तुष्टमानसः । वालिनं सुरताथेन पुरा दत्ताञ्जलि मालिका ॥४०॥
 यां दृष्ट्वा रिपवो युद्धं गन्धीयां भवन्ति हि । या पुरा कश्यपेनैव तपसा दुष्करेण च ॥४१॥
 श्रिवल्लब्धा पिता पुत्रमिन्द्रं तेनापि वालिने । प्रीन्यापिता मालिका सा चालां कटे दधात्यसौ ॥४२॥
 तस्यास्त्वं दर्शनाद्वाम सप्तमश्चो भविष्यसि । तत्रोपायं चिन्तयस्व येन तेऽद्य जयो भवेत् ॥४३॥
 तत्तस्य वचनं श्रुत्वा गमः मर्षं तमब्रवीत् । यः शायान्मोचिनः पूर्वं सप्त तालान्विमिश्र च ॥४४॥
 गच्छ त्वं मम वार्ष्णेन किञ्चिद्विधायां च वालिनम् । निशीथे निद्रितं दृष्ट्वा हर तन्मालिकां शुभाम् ॥४५॥
 तथेति गमवाक्येन किञ्चिद्विमर्शं पश्यतः । मन्त्रकस्यां जहास्य तं मालां वासवं ददा ॥४६॥
 ततो गमाज्ञया गन्वा ममाह्लाथ वालिनम् । युद्धं चकार सुग्रीवः श्रीगमोऽपि ददर्श तम् ॥४७॥
 समानरुपां तौ दृष्ट्वा मित्रघातविशङ्कया । न मुमोच तदा वाणं गमः सोऽपि न्यवर्तत ॥४८॥
 सुग्रीवो राघवं प्राह मां घातयसि वालिना । यदि मदनने बाळा त्वमेव जहि मां विभो ॥४९॥
 तस्यैव वचनं श्रुत्वा सुग्रीवस्य रघूत्तमः । बन्धयामास सुग्रीवकटे मालां तु बन्धुना ॥५०॥

दूर फेंक दिया ॥ ३४ ॥ वह दस बीजकी दूरीपर जा गिरा । गोल आकारमें सपने गरीरपर जमे हुए सात तालवृक्षोंको देखा तो रामने पृथ्वीपर शेषके अंशमें स्थित गमणके पाँवको अपने पाँवके अंगूठेसे दबाकर उस सर्पको सीधा किया और बाणसे उस सातों वृक्षोंको एक ही चारमें काट डाला ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ऐसा करके उन्होंने सुग्रीवको विश्वास दिलाया कि राम मेरी सहायता करने और वाल्मीकी मारनेमें सगर्भ हैं । एक समयकी है कि वाल्मीके अपनी गुफामें तापके कुछ कर रखे थे । उनमेंसे सात कर कोई उठा ले गया । वाल्मीके देखा तो उसे बहुत फलकी जगह मर्ष दिलायी दिया । तब वाल्मीके मर्षको शाप दे दिया कि जा, तेरे ऊपर तापवृक्ष उगेंगे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ तब मर्ष भी कहा कि जा पुरुष वृक्षोंको काटेगा, वहाँ तुझे मारेगा—इसमें गन्धर्व नहीं है । उमी सामर्थ्यकी आज रामसे देखकर सुग्रीवकी विश्वास हो गया ॥ ३९ ॥ तब प्रसन्न होकर सुग्रीवने कहा—पूर्वकालमें इन्द्रने वाल्मीकी एक मान्य दी थी । ४० ॥ जिने देखकर उसके जन्म मुहूर्तमें बन्धीन हो जाते हैं । पहिले बड़ी तप करकेपर वह माला कश्यपकी नियजीमें मिली थी । कश्यपने उसे लेकर अपने पुत्र इन्द्रकी दी और इन्द्रने वाल्मीकी अर्पण की । प्रीतिपूर्वक अर्पित की हुई उस मान्यकी वाल्मी सदा गलेमें पहिने रहता है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हे राम ! उसकी देखनेके साथ ही आप भी कर्द्धान हो जायेंगे । अतएव इस विषयमें कोई उपाय सोचिए । जिससे आपकी विजय हो ॥ ४३ ॥ सुग्रीवके इन वचनको सुनकर रामने, जिसका बाणके द्वारा सात तालवृक्षोंको काटकर शापसे मुक्त किया था उस शापसे कहा कि तूम मेरे कथनानुसार किञ्चिन्वा-
 षं जाकर रात्रिके समय जब कि वाल्मी सोता रहे, तब उसके गलेमेंसे उस मृन्दर मान्यको चुग लाओ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ 'तवागु' कहकर वह शाप रामकी आज्ञाके अनुसार किञ्चिन्वा नगरीमें गया और गन्धर्वसे उस मान्यको पुराकर इन्द्रको दे आया ॥ ४६ ॥ तदनन्तर रामका आज्ञासे सुग्रीवने वाल्मीके पास जाकर उसको युद्ध के लिये लज्जित और मुह्र किया । उस मुह्रको राम देल रहे थे, किन्तु उन दोनों भाइयोंकी समान स्पर्शान् देख घोरसे कहीं मित्र सुग्रीव ही न मारा जाय, आशङ्काके कारण रामने वाल्मीपर बाण नहीं छोड़ा । तब सुग्रीव रामके पास लौट आया और रामसे बोला कि मुझे आप वाल्मीके हाथों क्यों मरवाना चाहते ? यदि मुझे मारनेकी ही इच्छा हो तो हे विभो ! आप ही मार डालें ॥ ४७-४८ ॥ सुग्रीवके इस वचनको सुनकर

पुनस्तं प्रेषयामास सोऽपि शालिनमाह्वयन् । ततः श्रुत्वा ययौ वाली तं ताराऽग्रार्थयत्तदा ॥५१॥
 ध्रुवमगदवाक्येन यथा रामः समागतः । चकार मंत्री किं तेन मां कुरुष्वद्य संगरम् ॥५२॥
 गच्छ तत्त्वा रमानाथं बंधु मानय मादरन् । यौवराज्यपदं देहि तस्मै मे वचनं शृणु ॥५३॥
 तत्तारावचनं श्रुत्वा वाली तां वाक्यमब्रवीत् । जानाम्यहं राधयं तं नररूपधरं हरिम् ॥५४॥
 तस्य हस्तान्मृत्तिमंऽस्ति गच्छामि परमं पदम् । सुखं त्वं तिष्ठ तारेऽत्र सुग्रीवं भव सवदा ॥५५॥
 यदा त्वया स सुग्रीवः करिष्यति रतिं प्रिये । नदा तन्पन्निभागस्यानृण्यं गच्छामि भामिनि ॥५६॥
 अत एव मालिका मे गुप्ताऽभून्पश्य मन्त्रिये । अद्याहं रामबाणेन पतिष्यामि रणागणे ॥५७॥
 अद्य धन्योऽस्म्यहं तारे धन्यो तौ पितरौ मम । योग्यं श्रीगमहस्तेन मरिष्यामि रणागणे ॥५८॥
 एवमाश्वास्य तां तारं ययौ वाली न्वगन्वितः । दृष्ट्वा वाली महोन्पानान् सन्तोषं परमं ययौ ॥५९॥
 चकार बन्धुना युद्धं तदा बाणेन राधवः । वृक्षपण्डे तिरोभूत्वा पानयामास तं भुवि ॥६०॥
 ततस्तारा समागत्य शुशोच वालिनं प्रति । वाली दृष्ट्वा रमानाथ तदा प्राह स गद्गदः ॥६१॥
 वृक्षपण्डे तिरोभूत्या न्वयाऽहं ताडिनो हृदि । नवाय दयशा ज्ञातं मम जानो महोदयः ॥६२॥
 किं मयाऽवकृतं ते हि न्वया यस्मात्प्रियातिनः । रामः प्राह वालिनं न्यं रुमायां लम्पटः सदा ॥६३॥
 बन्धुभार्या गृहे स्थाप्य बन्धुं हन्तुं त्वमिच्छसि । दुर्वृत्तं त्वां नमालाक्य मया तस्मात्प्रियातिनः ॥६४॥
 यथा न्वया रुमा भुक्ता तथा तारं तव प्रियाम् । बोध्यन्त्यहं हि सुग्रीवा बचनान्मे कर्षाश्चर ॥६५॥
 यद्यपि न्वं दुराचारा निहताऽसि रणे मया । तथापि भिन्नरूपेण द्रावगन्तऽग्रिणं मम ॥६६॥
 भिरया प्रभासे बाणेन पूर्ववरेण यानर । ततो मदम्भमण्यस्यास्य कारणगौरवात् ॥६७॥
 मुक्तिं गच्छसि त्वं वालिन शुभो जन्मान्तरेण हि । ततः प्राह पुनर्वाली मेऽभविष्यद्दोरितम् ॥६८॥

ध्रुवम रामसे भाई लक्ष्मणके द्वारा सुग्रीवके लक्ष्मण पहिचानके लिये माना व्यवस्था ॥ ५० ॥ तदनन्तर पुनः
 उमकी युद्ध करनेके लिये भेजा । उसने आकर फिर वालिका को आगकार । मां मुनकर वालिन जानेको तैयारी की
 ता ताराने प्रार्थनापूर्वक कहा- ॥ ५१ ॥ हे तारे ! मेने अद्भुतके सुग्रीव भुना कि आजकल राम इस वनमें आये
 हुए है । इसलिये आप सुग्रीवके साथ मित्रता कर । और उद्भेका विचार होगा ॥ ५२ ॥ आप जाकर रामके
 चण्णोंकी वन्दना कर और मेरा कहना मानकर भाई सुग्रीवकी आदर युवराज्यपद प्रदान करें । ५३ ॥ ताराकी
 वल मुनकर वालिन कहा कि मे नररूपधरा नादान् नागरण रामकी जानता ह । ५४ ॥ उनके हाथों यदि
 मेरा मुलु हाथो तो परमपर प्राप्त करवा । हे तारे ! तुम यहां सुखपूर्वक रहकर सुग्रीवकी सेवा करना । हे प्रिये !
 सुग्रीव जय तुम्हारे साथ रति करण, तभी मे उसकी पत्नीके भरणमें उन्नत रहूंगा ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ और
 हे भामिनि ! देखो, आज मेरा माला मां लापता हो गया है । अतएव मे रणभूमिमें रामके बाणसे अवश्य
 नश होऊंगा ॥ ५७ ॥ हे तारे ! मे तारा मेरे मातापिता धन्य है कि आ आज श्रीरामके हाथों मेरा मुलु
 होगा ॥ ५८ ॥ इस प्रकार ताराका मनसाकर वाला दुरन्त वन पडा और कहान् जटाओंकी दबकर भी
 मन्तुष्ट हुआ ॥ ५९ ॥ वह अपने भाई सुग्रीवके साथ रहने लगा । उमा समय राम एक वृक्षकी आड़में खड़े हो गये
 और वालिका बाणसे मारकर पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ६० ॥ तब तारा आकर बाणोंके लिये अत्यन्त विलाप
 करने लगी । वाला अपने सामने रामकी देखकर गद्गद स्वरसे बोला- ॥ ६१ ॥ हे माय ! आपने जो आज
 मुझकी आड़में छिपकर मेरे हृदयमें बाण मारा है, इससे मेरे लिये तो वह महान् अनुरोधकी बात है, परन्तु इससे
 मेरका बड़ा भारी अपवज होगा ॥ ६२ ॥ दूसरी बात यह है कि मेने आपका कीन-सा अपराध किया था,
 जो अपने मुझे मारा ? रामने कहा- नु सदा सुग्रीवकी स्त्री रामामें लिप्त रहता था ॥ ६३ ॥ तु छोटे भाईकी
 चण्णों अपने घरमें रखकर भाईकी मार डालना चाहता था । यह दुराचार देखकर मेने तुझे मारा है, तो श्री
 रामके अन्तमें भील होकर तु पूर्ववर्तका स्मरण करके प्रभासक्षेत्रमें अपने बाणसे मेरे पाँवकी छेदेगा । तब मेने

सीतावृत्तं त्वया पूर्वं क्षणेन रावणेन हि । दत्ताऽभविष्यदानीय सीता तव मया तदा ॥६९॥
 अधुना प्रार्थयामि त्वामंगदं परिपालय । इत्युक्त्वा स तदा वाली जज्ञौ प्राणान् रणांगणे ॥७०॥
 अद्भूतेन तदा रामः कारयामास तत्क्रियाम् । अथ रामं स सुग्रीवो रान्यार्थं प्रार्थयत्तदा ॥७१॥
 रामस्तमेव राजानं चकार लक्ष्मणेन सः । अथ वार्षिकपासान् स वस्तुं रामोऽविचारयत् ॥७२॥
 प्रवर्षणगिरेः प्रोचन्निगरे स्फटिकोद्भवाम् । रम्यां दृष्ट्वा गुहां रामः पद्मपुष्पमन्विताम् ॥७३॥
 निनाय वार्षिकान् मासान् चतुरः श्रीरघूदहः । एकदा लक्ष्मणः स्नात्वा यावद्रामं समागतः ॥७४॥
 सात्त्विक्या सीतया युक्तस्तावद्रामो निरीक्षितः । सीमित्रिणा वन्दिता सा पदधुवामि लयं ययौ ॥७५॥
 एवं नासीत्तदा सीतावियोगो राघवस्य हि । सुग्रीवोऽथ पुरीमध्ये चकार राज्यमुत्तमम् ॥७६॥
 एकदा हनुमद्राज्यादानरान्नं समाह्वयत् । प्रवर्षणगिरावास्तां तीर्थं द्वे रामलक्ष्मणे ॥७७॥
 एतस्मिन्नन्तरे रामो दृष्ट्वा प्राप्तं शरदृतुम् । क्रोधेन प्रेषयामास सुग्रीवाय लक्ष्मण च सः ॥७८॥
 सोऽपि गत्वाऽथ किष्किंधां भीषयामास यातरान् । आगतं लक्ष्मणं श्रुत्वा सुग्रीवो भवविह्वलः ॥७९॥
 माहतिं प्रेषयामास सात्वतार्थं हि लक्ष्मणम् । स गत्वा तं सात्वयित्वा किष्किंधाभानयत्तदा ॥८०॥
 एतस्मिन्नन्तरे वारां प्रेषयामास वानरः । साऽपि गत्वा मध्यकंधां संस्थितं तं ददर्श ह ॥८१॥
 लक्ष्मणं प्रात्वयामास वचांमिर्मभूरर्निजः । समाहृतानि मन्यानि रामार्थं प्लवगेन हि ॥८२॥
 सुग्रीवे च त्वया कोपो मा कार्योऽथ हि देव । ततो लक्ष्मणहस्ते सा धृत्वा राजगृहं ययौ ॥८३॥
 दृष्ट्वा सुग्रीवराजस्तमासनात्स चञ्चल सः । सुग्रीवं लक्ष्मणः आह विस्मृतोऽसि रघूत्तमम् ॥८४॥
 वाली येन हतो वीरः स बाणस्त्वां प्रतीक्षते । न्यमद्य वालिनो मार्गं गमिष्यसि मया हतः ॥८५॥

हृद्यो मरुतेके गोरवसे जन्मान्तररहित शुभ गतिको प्राप्त होगा । वालीने फिर कहा—यदि आप मेरे पास आते तो मैं तुरन्त आपको सीताका पता बताता तथा रावणसे सीताको लाकर छीन लणभरमें आपको दे देता ॥ ६४-६६ ॥ अतः, अब प्रार्थना करता हूँ कि आप अद्भुतकी रक्षा करिएगा । इतना कहकर वालीने उसी समय रणाङ्गणमें प्राण छोड़ दिया ॥ ७० ॥ तदनन्तर रामने अद्भुतसे उसका क्रियाकर्म कराया । बादमें सुग्रीवने रामसे वह राज्य ग्रहण करनेके लिये प्रार्थना की ॥ ७१ ॥ रामने लक्ष्मणको भेजकर सुग्रीवको वहाँका राजा बना दिया । अब राम वरसातमें कहीं चातुर्मास निवास करनेका विचार करने लगे ॥ ७२ ॥ तदनुसार उन्होंने वहाँ प्रवर्षणगिरिके उस प्रिसरपर सुन्दर पत्तों-पुष्पोंकी लताओंसे वेष्टित एक रमणीक गुफा देखी ॥ ७३ ॥ वस, राम वहाँ रहकर चौमातेके चार गद्दीने बिताने लगे । एक दिन लक्ष्मण स्नान करके आये तो रामको सतीपुण्यमें सीतासे युक्त देखा । लक्ष्मणने उन्हें प्रणाम किया, तैसे ही सीता अपने पति रामके वामाङ्गमें विन्यस्त हो गयी ॥ ७४ ॥ इस तरह उस समय भी रामसे सीताका वियोग नहीं हुआ था । उपर सुग्रीव अपने पुरीमें उत्तम रीतिसे राज्य करने लगा ॥ ७६ ॥ एक बार हनुमान्के कहनेपर सुग्रीवने वानरोंको बुलवाया । उस समय राम-लक्ष्मण प्रवर्षणगिरिपर रहते थे ॥ ७७ ॥ तभी रामने शरदृतुको प्राप्त देखा तो क्रोधसे लक्ष्मणको सुग्रीवके पास सहायताका स्मरण दिलाने लिये भेजा । उन्होंने वहाँ जाकर किष्किंधाके वानरोंको डराना आरम्भ किया । लक्ष्मणको आया सुनकर सुग्रीव भी भयसे विह्वल हो उठा ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ उसने लक्ष्मणको शान्त करनेके लिये हनुमान्को भेजा । उन्होंने जाकर लक्ष्मणको समझाया और अपने साथ किष्किंधामें ले आये ॥ ८० ॥ उसी समय वानर सुग्रीवने ताराको भेजा । वह जाकर महलके बीचवाली दालानमें बैठ गयी । इतनेमें उसने लक्ष्मणको जाते देखा ॥ ८१ ॥ ताराने अपने भयुर वचनोंसे लक्ष्मणको शांत करते हुए कहा—हे देवराजी ! वानरोंके राजा सुग्रीवने रामके कामके लिये वानरोंको बुलवा भेजा है । आप कोप न करें । इतना कह तब लक्ष्मणका हाथ पकड़कर घरमें राजा सुग्रीवके पास ले गयी ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ उन्हें देख राजा सुग्रीव सिंहासनसे उठकर खड़े हो गये । लक्ष्मणने सुग्रीवसे कहा कि तुम रघुकुलमें उत्तम

एवमत्यन्तपरुषं वदन्तं लक्ष्मणं तदा । उवाच हनुमान् वीरः कथमेवं प्रभाषसे ॥८६॥
 रामकार्यार्थमनिशं जागर्ति न तु विस्मृतः । इत्युक्त्वा तं पूजयित्वा सुग्रीवेण स मारुतिः ॥८७॥
 नकार लक्ष्मणं शीतं सुग्रीवोऽप्यथ वानरैः । गन्वा तं राघवं नन्वा दशयामास वानरान् ॥८८॥
 राघवं स तदा प्राह सुग्रीवः प्लवगाधिपः । देव पश्य समायांतीं वानरणां महाधमूम् ॥८९॥
 अत्र गृथाधिपतयः पद्मान्यष्टादश स्मृताः । ततो रामाज्ञया सीताशुद्रघर्षतान् दिदेश सः ॥९०॥
 दिक्षु सर्वासु विविधान् वानरान् प्रेष्य मत्सरम् । याभ्यां दिक्षु जाम्बवन्तमङ्गदं वायुनन्दनम् ॥९१॥
 नलं सुषेणं शरभं मेदं मण्डोदकदा । मामादर्वाङ्निर्वर्तन् नोचेदध्या भविष्यथ ॥९२॥
 ततो रामो मुद्रिकां स्वां ददां मारुतिमन्करे । मन्त्राभाक्षरयुक्तेयं मीतार्यं दायतां रहः ॥९३॥
 ततो रामो निजं मन्त्रं ददां तस्मै हनुमने । तन्मन्त्रस्य लक्ष्मिर्ले कृत्वा तु जपलेखने ॥९४॥
 लब्ध्वा सामर्थ्यमतुलं लंकां गन्तुं स मारुतिः । भत्वा रामं परिक्रम्य जगाम कपिभिः सह ॥९५॥
 मदत्तं राघवः प्राहः चित्रकूटे पुरा कृतम् । मनःशिलायाम्भिलकं सीताभाले विनिर्मितम् ॥९६॥
 गण्डयोः पञ्चवल्ल्यादि मीतार्यं कथ्यतां रहः । ततस्ते प्रस्थिताः सर्वे पश्चिमादिषु दिक्षु च ॥९७॥
 प्रेषितास्ते समायाता न दृष्टा संति तं ब्रुवन् । तदागदाद्याः प्लवगाः मीतार्थं बभ्रुर्वने ॥९८॥
 मत्स्वाऽयं राघवश्चेति गक्षमाञ्छांशोऽर्पयन् । सार्द्रास्थान्छेवरान्दृष्ट्वा गुहाद्वागद्विनिर्मितान् ॥९९॥
 जलार्थं मंत्रविष्टस्ते गुहायां चानरोत्तमाः । तस्यां तान् सच्छतस्तूष्णीं दिनान्यष्टादशैव हि ॥१००॥
 अतिक्रांतानि तिमिरे बभ्रुमस्तु इतस्ततः । तत्र रत्नमये दिव्ये मेहे दृष्ट्वा त्रिषु शुभाम् ॥१०१॥

रामकी भूल गये हो ॥ ८४ ॥ जिस वानसे वीर वाला मारा गया था । वही वान तुम्हारा भी प्रतिक्षा कर रहा है । आज मैं तुम्हें मारकर जिस मार्गसे वाला गया है, उसी मार्गसे भेज दूंगा ॥ ८५ ॥ लक्ष्मण जब .स प्रकार अत्यन्त कठोर वचन कहने लगे । तब हनुमान्ने कहा कि आप ऐसे कठोर वचन सुनने क्यों निकाल रहे हैं ? ॥ ८६ ॥ रामके कार्योंके लिए नुगीव रत्न-निर्दिन सर्वेष्ट रहता है । इतना कहकर हनुमान्ने गुप्तावस लक्ष्मणकी पूजा करवायी और उनको ज्ञान्त करवाया । पश्चात् नुगीव वानराको लेकर रामके पास गये । वहाँ जा लया वानरोंको दिखलाकर प्लवगाधिप नुगीवसे कहा—हे देव ! देखिये, वानरोंका बड़ा भारी सेना भा रही ॥ ८७-८८ ॥ इसमें अठारह पक्ष सेनापति है । तदनन्तर रामको आज्ञासे सुग्रीव-पतिताको खोज करनेके लिये सब दिशाओंमें बहुतेरे वानरोंको वनां समय भेज दिया । उनमेंसे जाम्बवान्, प्रवद, हनुमान्, नल, नील, सुषेण तथा मेदको दक्षिण दिशामें भेजा और कह दिया कि एक मासके भितर .सको सुधि लेकर लौट आओ, नहीं तो तुम सबको मार छाया जायगा ॥ ८९-९० ॥ तब रामने .सका अज्ञा हनुमान्के द्वार्यमें भेजा और कहा कि यह मेरे नाममें अर्द्धिन अगूनी एतान्तमें सीताको देना ॥ ९१ ॥ बादमें अपना मंत्र हनुमान्को दिया । जिसको कि एक लाख बार जप गया लिखकर लड्डा जगाम अनुल सामर्थ्य प्राप्त करनेके पश्चात् हनुमान्ने रामको प्रणाम किया और परिक्रमा करके वानरोंके साथ चल दिये ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ चलते समय रामने चित्रकूटमें किया हुआ एक चरित्र हनुमान्को सुनाते हुए कहा कि एक समय मैंने सीताके उत्सवमें मैनशिलका तिलक तथा कपोलौपर पञ्चवल्लीको रचना की थी । इस बातको तुम सीतासे एकान्तमें कहना । जिसमें कि उनको तुम्हारा विश्वास हो जाय । इसके बाद .स सब विभिन्न दिशाओंको चल दिये ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ कुछ कालके बाद बहुतेरे वानरोंने आ-आकर सुग्रीवसे कहा कि .सको सीता नहीं दिखाई दी । उधर अङ्गुदादि वानर भी सीताको खोजते हुए वनमें इधर-उधर भ्रमण कर रहे थे । वहाँ उन्होंने गोली चौंचवाले बहुतेरे पक्षी देखे ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ यह इत्तरकर पासमें पीडित वानरोंमें उत्तम वे वानर जलकी अभिलाषासे उस गुफामें बसे । उसमें जाते-जाने उन्हें अठारह दिन बंस्त गये ॥ १०० ॥ वे उस अवकाशमें इधर-उधर मटकने लगे । अचानक वहाँ उन्हें रत्नमय दिव्य दो भवन तथा उनमें एक सुन्दरी स्त्री दिखायी

भ्रातृपता निजं वृत्तं नृद्वृत्तं भोतुमुद्यताः । ताम्पूज्य कथयामास चैनं वृत्तं तु योगिनी ॥१०२॥
 हेमानाम्ना सुता विश्वकर्माणः सा महेश्वरम् । नृत्येन वोषयामास ददौ तस्ये पुरं महत् ॥१०३॥
 अत्र स्थित्वा चिरं कालं यदा गतुं समुद्यता । सा मां प्राहात्र रामस्य प्रतीक्षां कुरु सत्राणि ॥१०४॥
 समागच्छस्य रामस्य कृत्वा पूजनमुत्तमम् । इत्युक्त्वा सा दिवं याता राघवं गम्यते मया ॥१०५॥
 स्वयंप्रभेति नाम्नाऽहं हेमायाः परिवारिका । अभुता नूत युष्माकं साहाय्यं किं करोम्यहम् ॥१०६॥
 तत्तस्या वचनं श्रुत्वा मत्वा स्त्रीपदिनव्ययम् । ताम्भुवुर्जनराः सर्वे नस्त्वं कुरु गृहाद्बहिः ॥१०७॥
 इत्युक्त्वा सा क्षणेनैव तैः सहैव ययौ बहिः । तद्विराच्छादितस्त्रीपनयनैर्वानरैस्तदा ॥१०८॥
 न हातं च तथा केन मार्गेण च बहिः कृतम् । साऽपि गत्वा पूज्य समं देहं त्यक्त्वा दिवं ययौ ॥१०९॥
 ततस्ते वानरा मत्वा गुहायां स्त्रिदिनव्ययम् । त्रिपण्णाः सागरं दृष्ट्वा तस्युः प्रायोगवेशने ॥११०॥
 जटायोः कीर्तनं चक्रुः रामकार्यं भृतं पुरा । तच्छ्रुत्वाऽथ स संपातिः तान्हंतुं यः समुद्यतः ॥१११॥
 तेभ्यः श्रुत्वा भृतिं वंदोर्दशतस्मै जलाञ्जलिम् । तेषां श्रुत्वा पूर्ववृत्तं सीतावृत्तं न्यवेद्यत् ॥११२॥
 जनयोजनमध्येऽब्धेरलकायां वर्ततेऽधुना । अशोकवनिकार्या तु तीर्त्वाऽब्धिं तां प्रपश्यथ ॥११३॥
 अहं पक्षविहानोऽस्मि मया गन्तुं न शक्यते । गृध्रत्वादुद्गच्छन्वाऽहं सीता मां दृश्यते गिरौ ॥११४॥
 भ्रात्रा जटायुषा पूर्वमुद्घोषाहं बलाद्रविम् । स्पष्टकामस्तदा तस्मातो बंधुर्मया सखे ॥११५॥
 पश्चाम्यौ भस्मसाज्जार्तो मे पक्षी पतिताबुधौ । जटायुः ॥ मरश्च गतो देशांतरं पुनः ॥११६॥
 अहं तदा पक्षहो नश्चन्द्रशर्माणमुत्तमम् । मुनिं नत्वा तदा तस्मै निजवृत्तं निवेदितम् ॥११७॥

दी ॥ १०१ ॥ उसके वृत्तान्तका सुननेकी अनिलापास वानरीने कहा—अपना वृत्तान्त सुनाओ, तुम कौन हो और तुम्हारा क्या नाम है ? वह योगिनी उन सबको सम्मान करके कहने लगी—॥ १०२ ॥ विश्वकर्माका हेमा-
 नामसे प्रसिद्ध एक कन्या थी । उसने जब महादेवजाको नृत्य-गान करके प्रसन्न किया । तब उन्होंने उसको यह बड़ा भारी नगर दिया ॥ १०३ ॥ यहाँ बहुत कालसक निवास करके जब वह जाने लगी । तब उसने मुसकों
 कहा कि यहाँ बहुत काज्जलक निवास करती हुई तुम रामके आगमनकी प्रतीक्षा करो ॥ १०४ ॥ उन
 रामका उत्तम प्रकारसे पूजन करनेके लिए तुम भी चली ॥ १०५ ॥ इसना कहकर वह चली गयी । इसी कारण
 मैं भी रामके पास जाना चाहती हूँ ॥ १०५ ॥ उसी हेमाका मे स्वयंप्रभा नामकी दासी हूँ । अब आप
 लोग यह कहें कि मैं आप लोगोंको कौन-सा सहायता करूँ ॥ १०६ ॥ उसकी बातको सुन तथा बहुत
 दिन व्यय व्यतीत हुआ देखकर वे सब उससे बोल कि हमका इस स्थानसे बाहर कर दो ॥ १०७ ॥ यह
 सुनकर उसने उन सबको अपना-अपना अस्ति मुँदनेके लिए कहा । ऐसा करनेपर वानरीको यह नहीं मालूम
 हुआ पाया कि उन्हें किसने और किस मार्गसे बाहर कर दिया । वह भी रामके पास चली गयी तथा उनकी
 पूजा करके स्वयं सिधारी ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ पश्चात् वे सब वानर अपनी अवधिके दिनोंको बंते देख उदास हो
 समुद्रके किनारे गये और उपवास करने लगे ॥ ११० ॥ वार्तालापके प्रसंगमें रामके लिए प्राणतक दे देनेवाले
 जटायुकी चर्चा चल पड़ी । वहाँ रहनेवाला संपाती जो उनको या जानेके लिये उद्यत था । वह उनके मुखसे
 रामके कार्यके लिये जटायुका मरण तथा प्रणसा सुनकर भाई जटायुको जलाञ्जलि देनेके लिए समुद्रतटपर गया ।
 पश्चात् उन वानरीका वृत्तान्त सुनकर उनको सीताका समाचार कह सुनाया और कहा—॥ १११ ॥ ११२ ॥
 यहाँसे समुद्रको पार करके सी योजनको दूरीपर तुम उन्हें देख सकत हो ॥ ११३ ॥ मैं पक्षीसे रहित हूँ ।
 इस कारण वहाँतक नहीं जा सकता । गृध्रकी दृष्टि तेज होती है । अतएव मैं सीताको पर्वतपर बैठा हुई
 लङ्कामें यहाँसे देख रहा हूँ ॥ ११४ ॥ मेरे पंख न होनेका कारण यह है कि मैं एक बार अपने बलके दर्पसे भाई
 जटायुके साथ उड़कर सूर्यका स्पर्श करनेके लिए आकाशमें उड़ा । राहमें सूर्यकी गर्मीसे जटायु जलने लगा ।
 सब मैने अपनी पंखोंसे ढाककर उसको रक्षा की । जिससे कि मेरी दोनों पंखें भस्म हो गयीं और
 तथा जटायु दोनों ऊपरसे गिर पड़े । जटायु तब भी स्रक्ष था । लुढ़कते लुढ़कते मैने चन्द्रशर्मा नामक मुनिके

तदा मां स मुनिः प्राह यदा त्वं वानरोत्तमान् । सीताशुद्धिं कथयामि तदा पक्षौ भविष्यतः ॥११८॥
 पश्यतां निर्गतौ पक्षौ कोमलौ मां क्षणादिह । यदा नीता रावणेन पुरा सीता विहायमा ॥११९॥
 मत्पुत्रेण तदा दृष्टा कथितं चापि मां तदा । भिक्कुनः समया क्रोधात्मा त्वया न विमोचिता ॥१२०॥
 तदारम्य गतः क्रोधादद्यापि न समागतः । इत्युक्त्वा ताव कर्षान् पृष्ट्वा स संपातिर्गतस्तदा ॥१२१॥
 अथ ते वानराः सर्वे प्रोचुः स्वं स्वं बलं तदा । न कोऽपि गमने शक्तः शतयोजनसागरे ॥१२२॥
 तदा स जायमान् वृद्धः स्तुत्वा तं मारुतिं वृद्धः । जन्मकर्मादि संश्राव्य लंकां गंतुं दिदेश तम् ॥१२३॥
 सोऽपि श्रुत्वा समुद्योगं चकारास्त्र पर्वतम् । निजभाराद्भूमिगतं कृत्वा सस्मार राघवम् ॥१२४॥
 एवं गिरिन्द्रजे प्रोक्तं किष्किन्वाचरित्रे कृतम् । चरितं गधवेणेन पुरा पापप्रणाशनम् ॥१२५॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे सारकाण्डे किष्किन्वाचरित्रेऽष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः

(हनुमान्का लंकामें जाकर सीताका पता लगाना और लंका जलाना)

श्रीशिव उवाच

अथ उद्गीय हनुमान् ययावाकाशवर्मना । तद्दृष्ट्वा नन्दलं ज्ञातुं मुग्धां नाममातरम् ॥ १ ॥
 प्रेषयामासुर्मगः सा शीघ्रं तत्पुत्रे यया । तदा सा मारुतिं प्राह विश न्यं वदन् मम ॥ २ ॥
 म प्राह रघुवीरस्य कार्यं कृत्वा विशाम्बहम् । दृष्ट्वा तस्यास्तु निर्वन्धं व्यवर्धन तदा कपिः ॥ ३ ॥
 विवर्धितं तयाऽप्यास्यं तदा सक्षमो बभूव ह । अगुष्टमावस्तस्याः स वक्त्रे गत्वा विनिर्गतः ॥ ४ ॥

पास जाकर प्रणाम किया और अपना वृत्तांत उन्हें सुनाया ॥ ११४-११७ ॥ तब मुनिने कहा कि जब तुम वानरोंकी सीताकी खबर सुनाओगे । उनी समय तुम्हारा पाँवें पुनः जन्म जायेंगी ॥ ११८॥ देखा, मेरे शरीर-में ये कोमल पाँवें क्षणभरमें निकल आयीं । उन समा अब रावण सीताको आकाशमार्गसे ले जा रहा था ॥ ११९ ॥ उसी समय मेरे पुत्रने उनको देखा तो आनन्द मुझमें बढ़ा । तब मैंने उसका बहुत बियकारा और बड़ा—अरे दुष्ट ! तूने सीताको छुड़ाया क्यों नहीं ? ॥ १२० ॥ तब वह क्रुधित होकर मेरे पाससे चला गया और आजतक वही रोता । इतना कह तया वानरोंने पूछकर सीताभी वहाँमें चला गया ॥ १२१ ॥ तब वानरोंने परस्पर एक दूसरेसे अपना-अपना बल पूछा तो पता लगा कि सीतांजन विस्तारवाले समुद्रको लाँघनेके लिये कोई समर्थ नहीं है ॥ १२२ ॥ वृद्ध जाम्बवान्ने हनुमान्को बारंबार प्रशंसा की । उनका जन्म तथा काम कह सुनाया और उन्हें लक्ष्मण जानेका आदेश दिया ॥ १२३ ॥ हनुमान्जाँ भी जाम्बवान्के बचन सुन तथा अपना पुरुषार्थ स्मरण करके परतपर चढ़कर कूदनेको उद्यत हुए । अपने भारमें उन्होंने परतको जमीनमें घँसा दिया और रामका स्मरण करने लगे ॥ १२४ ॥ हे गिरान्द्रज ! इस प्रकार पहिले किया हुआ रामका किष्किन्वाचरित्र मैंने तुमको सुना दिया । जो कि श्रवणमार्गसे आपोका नाश कर देता है ॥ १२५ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे सारकाण्डे किष्किन्वाचरित्रे भाषाटीकायाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

शिवजी बोले—तदनन्तर हनुमान् उड़कर आकाशमार्गसे लंकाको चले । वह देखकर उनके बलकी परीक्षा लेनेके लिये देवताओंने नागीकी माता मुन्साको रोसा । वह शीघ्र मार्गमें हनुमान्जीके सामने जाकर खड़ा हो गयी और मुक्त फाड़कर हनुमान्से कहने लगी कि तू आकर मेरे मुखमें प्रवेश कर । मैं तुझे खाऊँगी ॥ १ ॥ २ ॥ हनुमान्ने उत्तर दिया कि मैं श्रीरामका कार्य संपादन करनेके बाद आकर तुम्हारे मुखमें प्रवेश करूँगा । परन्तु उसका अधिक आग्रह देखकर कपिने अपना शरीर बढ़ाया ॥ ३ ॥ वह देखकर सुरस ने सपत्नी काया और अधिक बढ़ायी । तब हनुमान् अगुष्टमानका सूक्ष्म रूप धरके उसके मुखमें प्रविष्ट होकर

ज्ञात्वा साऽपि बलं तस्य स्तुत्वा तं प्रययौ दिवम् । अथाब्धिवचनान्मार्गे मैनाकः पर्वतो महान् ॥ ५ ॥
 जलमध्यात्प्रादुरभूद्विश्रांत्यर्थं हनूमतः । नानामणिमयैः नृकैस्तस्योपरि नगकृतिः ॥ ६ ॥
 भूत्वा यान्तं हनूमन्तं प्राह मैनाकपर्वतः । आगच्छामृतकल्पानि जग्वा पक्वफलानि च ॥ ७ ॥
 विश्रम्यान्न क्षणं पश्चाद्गमिष्यसि यथासुखम् । पुरा गिरीणामिद्रेण युद्धमासीत्सुदारुणम् ॥ ८ ॥
 तदा दशरथेनाहं मोचितोऽस्म्यत्र संस्थितः । अतस्तदुपकारं हि निस्तर्तुं निर्गतोऽस्म्यहम् ॥ ९ ॥
 गच्छतो रामकार्यार्थं विश्रांतिहेतवे । तदा तं हनुमानाह रामकार्यं न मे श्रमः ॥ १० ॥
 विश्रामः स्वामिकार्येऽत्र न करोम्यद्य भक्षणम् । मैनाकस्तं पुनः प्राह स्वस्पर्शान्वावयस्व माम् ॥ ११ ॥
 तथेति स्पृष्टश्चिखरः कराग्रेण ययौ कपिः । किञ्चिद्दूरं गतस्यास्य छाया छायाग्रहोऽग्रहीत् ॥ १२ ॥
 सिंहिकानाम सा धीरा जलमध्ये स्थिता सदा । आकाशगामिनां छायाभाक्क्रम्याकृष्य भक्षती ॥ १३ ॥
 तया गृहीतो हनुमार्थितयामास वार्यवान् । केनदं मे कृतं वंगरोधनं विघ्नकारिणा ॥ १४ ॥
 एवं विचिंत्य हनुमानधो दृष्टिं प्रसारयन् । तत्र दृष्ट्वा सिंहिकां तां तदास्ये न्यपतत्कपिः ॥ १५ ॥
 तस्यांत्रजालं निष्कास्य तां हत्वाऽग्रे ययौ पुनः । ततोऽग्नेर्दक्षिणे कूले लंकां कृत्वा तु पार्श्वतः ॥ १६ ॥
 परलंकार्या तत्र तां रावणस्वसाम् । कौचां हत्वा सिंहिकावल्लंकां रात्रौ विवेश सः ॥ १७ ॥
 तदा लङ्कापुरी नाम्नी राक्षसी तं व्यतर्जयत् । हनुमानपि तां वाममुष्टिनाज्वलपाशेनत् ॥ १८ ॥
 तदा स्मृत्वा ब्रह्मवाक्यं सा प्राहाश्रुमुखी पुरी । ब्रह्मणोक्ता पुरा चाहं यदा त्वां धर्षयेत्कपिः ॥ १९ ॥
 तदा रामो रावणस्य त्रयार्धमत्र यास्यति । ज्ञानं मया रावणस्य वधं रामः करिष्यति ॥ २० ॥
 जितं त्वया गच्छ लंकामशोके पश्य जानकीम् । ततो विवेश हनुमर्लंकां पश्यन्त्ययौ तदा ॥ २१ ॥

पीछे बाहर निकल आये ॥ ४ ॥ सुरता उनका बल जान और स्तुति करके स्वर्गको चली गयी । पश्चात् समुद्रके कहनेसे महान् मैनाक पर्वत जलके बीचमेंसे हनुमान्‌के विश्रामके लिये आश्रय देनेकी उठ खड़ा हुआ । नाना मणिमय शिखरोंके ऊपर मनुष्यका रूप धारण करके मैनाक पर्वत आते हुए हनुमान्‌से बोला कि आइए और मेरे अमृतनुल्य फलोंको खाइए ॥ १-७ ॥ तत्पश्चात् क्षणभर विश्राम करके सुखपूर्वक आगे आइयेगा । पूर्वसमय पर्वतोंका इन्द्रके साथ दारुण युद्ध हुआ था ॥ ८ ॥ उस राजा दशरथने मुझे बताया था । तबसे यहाँ आकर रहता हूँ । मैं उनके उपकारसे उक्त होनेके लिये ही आपके सामने उपस्थित हुआ हूँ ॥ ९ ॥ सो इसलिये कि रामकार्यके लिये जाते हुए आप मेरे ऊपर विश्राम करके जायें । तब उससे हनुमान्‌ने कहा कि क्या रामके कार्यसे मुझे होगा ? भरे, स्वामीके कार्यमें तो सदा विश्राम ही रहता है । इसलिये यहाँ ठहरकर भोजन आदि नहीं करता । तब फिर मैनाकने कहा—अच्छा, कमसे कम अपने हावसे स्पर्श करके तो मुझे पवित्र कर दे ॥ १० ॥ ११ ॥ 'तथास्तु' कह हनुमान् हाथसे उसके शिखरकी छूकर चले गये । जब कुछ दूर आगे बढ़े तो उनकी छायाको किसी छायाग्रहने पकड़ लिया ॥ १२ ॥ वह सिंहिका नामकी घोर राक्षसी थी । जो सदा जलमें रहा करती और आकाशमार्गमें उड़ते हुए पक्षियोंकी छाया पकड़कर खींच लेती और खा जाती थी ॥ १३ ॥ उसके पकड़नेपर बलवान् हनुमान् सोचने लगे कि किसने रामके काममें विघ्न डालनेके लिए मेरा वेग रोक दिया ॥ १४ ॥ यह विचारकर हनुमान्‌ने नीचे देखा तो सिंहिका राक्षसीको देखकर उसके मुखमें ही कूद पड़े ॥ १५ ॥ उन्होंने उसकी ओत निकाल ली और उसे डाला । वहाँसे जागे बढ़े तो समुद्रके दक्षिण किनारे स्थित लङ्काकी बगलमें स्थित परलङ्कामें जा पहुँचे । वहाँ रावणकी लड़की कौचाको सिंहिकाके ही मारकर रात्रिके लङ्कामें प्रवेश किया ॥ १६ ॥ १७ ॥ तब उन्हें लङ्का नामकी राक्षसी डराने लगी । हनुमान्‌ने उसकी भी अवज्ञासे बाएँ हाथका एक मुक्का मारा ॥ १८ ॥ उस समय ब्रह्माके वाक्यका स्मरण करके लंका आँखोंमें आँसू भरकर बोली कि पूर्वकालमें ब्रह्माने मुझसे कहा था कि कोई वातर तेरा अपमान करेगा ॥ १९ ॥ तब राम रावणका वध करनेके लिए यहाँ

ददर्श लङ्कां तां रम्यां गोपुराङ्गुलमण्डिताम् । हृष्टकीर्तीचतुष्काङ्क्षां विकृतशिखरस्थिताम् ॥२२॥
 पश्यन्समन्ततः सीतां प्रतिगेहं स मारुतिः । गुहायां निद्रितं कुम्भकर्णं दृष्ट्वा भयानकम् ॥२३॥
 दृष्ट्वा विभीषणं रामकीर्तने हृष्टमानसम् । दृष्ट्वा सुलोचनायुक्तं निद्रितं मेघनिःस्वनम् ॥२४॥
 ययौ राजगृहं रात्रौ रावणं सदसि स्थितम् । दृष्ट्वा स्वयं वायुरूपो दीपराजीर्व्यलोकयत् ॥२५॥
 अकरोद्वस्त्रहीनास्तान् रावणदीप्स मारुतिः । उत्सुकेनाकरोद्भस्म कूर्चं च रावणस्य च ॥२६॥
 सक्षसीः कोटिशो नम्राः कृत्वा तोयघटान्कपिः । वभञ्ज लीलया तूष्णीं द्वाभ्यपुच्छेन तर्जयन् ॥२७॥
 तदाऽतिविह्वलः सर्वं प्रोचुस्तेऽथ परस्परम् । क्रुद्धाऽथ जानकी सत्यं नः प्राणांतमुपगतम् ॥२८॥
 तच्छ्रुत्वा तुष्टचित्तः स ययौ रावणसद्वृहम् । अदृष्ट्वा जानकीं तत्र ययौ पुष्पकमुत्तमम् ॥२९॥
 रावणं निद्रितं दृष्ट्वा वेष्टितं स्त्रोकदम्बकैः । दृष्ट्वा मन्दोदरीं तत्र सीतेयमिति शंकितः ॥३०॥
 लक्ष्मणोक्तानि चिह्नानि पश्यंस्तस्यां ददर्श न । तथापि सीतामदृशीं दृष्ट्वा व्यग्रमनास्त्वभूत् ॥३१॥

पार्वत्युवाच

कथं मन्दोदरी सीतामदृशी राक्षसीरिता । सीतांशांशांशजाः सर्वाः स्त्रियथेति श्रुतं मया ॥३२॥

श्रीशिव उवाच

मृणुष्व कारणं देवि सीतेयं विष्णुना चिता । तेनैव विष्णुना पूर्वमियं मन्दोदरी चिता ॥३३॥
 एकदा कैकसी माता रावणं प्राह दुःखिता । श्रेयोन्मूढासेन तल्लिङ्गं गतं चाद्य रसानलम् ॥३४॥
 शिवादानोप मां देहि आत्मलिंगमनुत्तमम् । तन्मातृयचनं श्रुत्वा गायनाद्वरदोन्मुखम् ॥३५॥
 मामाह रावणो शक्यं द्वौ वरौ देहि मां प्रभो । आत्मलिंगं च मन्मात्रे पत्न्यर्थं पार्वती मम ॥३६॥

आगेने । सो अब मैंने जान लिया कि राम रावणको मारेगे ॥ २० ॥ तुमने लङ्काको जीत लिया । आश्री,
 लङ्कामें घुसकर अशोकवाटिकामें जानकीको देखा । तब हनुमान सीताको खोजते हुए लङ्कामें घुसे ॥ २१ ॥
 उन्होंने पुरन्दर तथा अटारिवीसे मण्डित रम्य लङ्कापुरीको देखा । वह विकृत पर्वतके शिखरपर स्थित बाजारों,
 सड़कों तथा घोरहोसे रमणीक लग रही थी ॥ २२ ॥ हनुमानसे सब ओर प्रत्येक घरमें सीताको देखकर गुस्सामें
 गांव हुए कुम्भकर्णको देखा ॥ २३ ॥ उन्होंने रामनामके कीर्तनसे प्रसन्नमन विभीषणको और सुलोचनाके
 माथ सोधे हुए मेघनाथको देखा ॥ २४ ॥ तदनन्तर राजभवनमें जाकर रात्रिके समय सभामें स्थित रावणकी
 देखा । यह देखकर वायुपुत्र हनुमानने दीपकोंको बुझा दिया ॥ २५ ॥ हनुमानजीने उन रावणादिको तन
 करके रावणको दाढ़ी-मुँह आदिको लुआठीसे जलकर भस्म कर दिया ॥ २६ ॥ करोड़ों राक्षसियोंको मर्त
 कर दिया । सेल-खेलमें जलके घड़ोंको फोड़ डाला और चुस्केसे बहुतरे सिपाहियोंको पूछने खूब पीटा ॥ २७ ॥
 अतिशय विह्वल होकर ॥ सब परस्पर कहने लगे कि सबमुच सीताजा हम लोगोंपर भुझ हुई हैं ।
 अब हम लोकींका प्राणान्तकाल निकट गया है ॥ २८ ॥ यह सुना तो संतुष्टचित्त होकर हनुमान रावणके
 मठमें गये । वहाँ भी जानकीको न देखकर पुष्पकविमानमें गये ॥ २९ ॥ वहाँ रावणको स्त्रियोंके
 झण्डसे बेहिन होकर सीता हुआ देखा । साब ही मन्दोदरीकी देखकर 'यही सीता है क्या ?' ऐसी आशंका
 करने लगे ॥ ३० ॥ परन्तु जब लक्ष्मणके कथनानुसार सीताकी भुक्काकृति मिलने लगे तो नहीं मिली । फिर
 भी उसको सीताके समान देखकर आश्चर्यचकित हुए ॥ ३१ ॥ पार्वतीजीने पूछा—हे महाशिव ! राक्षसी
 मन्दोदरी सीताके सदृश कैसे थी ? मैंने तो सुना है कि संसारकी सब स्त्रियें सीताके अंशांशसे उत्पन्न हुई हैं
 ॥ ३२ ॥ श्रीशिवजी कहने लगे—एक बार रावणकी माता कैकसीने दुःखित होकर रावणसे कहा कि गोपनामके
 उच्छ्वाससे मेरा निर्य पूजा करनेका शिवलिंग पातालमें चला गया है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ तो तुम एक उत्तम
 निङ्ग शिवजीसे माँगकर भुझे ला दो । माताके वचनको सुना तो अपने गायनसे वरदान देनेके लिए राजी करके
 भुक्षसे रावणने कहा—हे प्रभो ! भुक्षको दो बार दीजिए । एकसे मेरी माताके लिए आत्मलिङ्ग और दूसरेसे

तत्तस्य वचनं श्रुत्वा त्वं दक्षाऽसि गिरिद्रिजे । दक्षाऽऽत्मलिंगं संप्रोक्तो मया त्वं यदि रावण ॥३७॥
 मार्गे लिंगं भूमिसंस्थं करोषि तर्ह्यहं पुनः । नाग्रे गच्छामि तत्स्थानात्तत्रैव च वसाम्यहम् ॥३८॥
 तथेति रावणश्चोक्त्वा देव्या लिंगेन सो ययौ । तदा ॥३९॥ स्मृतो विष्णुस्तेनाङ्गचन्दनादिना ॥३९॥
 कृत्वा मन्दोदरी नारी मयहस्तेऽर्पिता शुभा । तां निनाय मयः शीघ्रं पाताले स्वीयसदृशम् ॥४०॥
 ततो द्विजस्वरूपेण विष्णुः प्राह दशाननम् । प्रतारितः शिवेन त्वं दक्षा दुर्गा तु कृत्रिमाम् ॥४१॥
 पाताले मयगेहे सा गोपिताऽस्ति शिवेन हि । विविच्यमि त्वं स्वर्लोकं भूलोकं चेति शंकया ॥४२॥
 स्वीयं मत्वा ॥ पातालं तत्र त्वं न गवेप्स्यसि । त्यजेमां कृत्रिमां दुर्गां पश्य तां मयसधनि ॥४३॥
 गिरिद्रिजां महारम्यां पत्नीं कृत्वा सुखं भज । तद्विप्रवचनं मत्स्यं मत्वा मामेत्य रं पुनः ॥४४॥
 विहस्य रावणः प्राह ज्ञातं तेऽन्तर्गतं मया । अर्पिता कृत्रिमा देवी मां तां गोप्य रसातले ॥४५॥
 तवैवास्त्वधुना चेयं त्वहं नेप्सामि गोपिताम् । इत्पूकत्वा त्वां विमृज्याय पातालं गन्तुमुद्यतः ॥४६॥
 तावन्मार्गे क्षण्यशंकाग्रस्तः प्राह द्विजं तदा । आत्मलिंगं क्षणं हस्ते गृह्णीष्व वचनान्मम ॥४७॥
 यात्रन्निवर्त्य शंकां स्वामहमेप्सामि वेगतः । द्विजवेषधरो विष्णुस्तदा प्राह दशाननम् ॥४८॥
 अतिक्रान्ते मुहूर्तेऽथ लिङ्गं स्थाप्य ब्रजाम्यहम् । तथेति रावणश्चोक्त्वा तत्करे लिंगमर्पयत् ॥४९॥
 ततो मूत्रस्य सा धाराऽखंडिताऽभूच्चिरं प्रिये । अतिक्रान्ते मुहूर्तेऽथ लिंगं सागररोधसि ॥५०॥
 पश्चिमे स्थाप्य भूम्यां स ययौ स्वीयस्वलं हरिः । ततः स रावणश्चापि मूत्रं कृत्वा यथाविधि ॥५१॥
 लिंगं दृष्ट्वा भूमिसंस्थं तच्छिरश्चालयत्तदा । तदा भूम्यां गतं लिङ्गं शिरः किंचिच्चाल न ॥५२॥
 अभूद्रर्ता कर्णरंध्रसदृशी तच्छिरःस्थले । गर्तायां तच्छिरश्चापि कर्णशंकूपमं कृशम् ॥५३॥

पत्नी बनानेके लिए मुझे पार्वतीको दे दीजिए ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ हे गिरिन्द्रज ! उसकी वरयाचना नुनकर मैंने तुमको उसे दे दिया और आत्मलिङ्ग भी देकर उससे कहा—हे रावण ! देव, यदि तूने ॥ लिङ्गको मार्गमें कहीं भी रख दिया तो मैं आगे ॥ जाकर वहीं रह जाऊँगा ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ 'बहुत अच्छा' कहकर रावण देवी पार्वती ॥ लिङ्गको लेकर चला गया । उस समय तुमने विष्णुभगवानका स्मरण किया । तब उन्होंने अपने अङ्गके चन्दन आदिसौ मन्दोदरीको सुन्दरी स्त्री बनाकर मय दानवको दिया । उसे लेकर मयदानव पातालके अपने मतोहर भवनको चला गया ॥ ३९ ॥ ४० ॥ विष्णुभगवान्ने ब्राह्मणका रूप धारण करके रास्तेमें रावणसे कहा—हे दशानन ! शिवजीने तुमको ठग लिया । उन्होंने यह नकली पार्वती तुमको दी है ॥ ४१ ॥ असलीको तो शिवजीने पातालमें मयदानवके घरमें छिपा रखा है । उन्होंने यह सोचा कि तुम स्वर्ग ॥ भूलोकमें ही खोजो ॥ ४२ ॥ अपना समझकर पातालमें न खोजो । इस कारण तुम इस कृत्रिम दुर्गाको तो छोड़ दो और मय-दानवके घर जाकर यथायं पार्वतीको ढूँढ़ निकालो ॥ ४३ ॥ उस अत्यन्त सुन्दरी पार्वतीको पत्नी बनाकर सुख भोगो । विप्रके उस वचनको ॥ मानकर पुनः रावण मेरे पास आया ॥ ४४ ॥ वह हँसकर बोला कि मैंने आपके हृदयगत अभिप्रायको ॥ लिया है । आपने असली पार्वतीको रसातलमें छिपाकर मुझे नकली पार्वती दे दी ॥ ४५ ॥ इसको अब अपने पास ही रखिए । ॥ तो उस छिपी हुई पार्वतीको ही ले जाऊँगा । ॥ कह तथा तुमको वहीं छोड़कर ॥ पातालमें जानेके लिए तैयत हुआ ॥ ४६ ॥ रास्तेमें लघुशङ्का करनेकी इच्छायण उसने ब्राह्मणसे कहा—हे द्विज ! मेरी प्रार्थना स्वीकार करके अगभरके लिए इस शिवलिङ्गको अपने हाथमें लिये रहो ॥ ४७ ॥ मैं अभी लघुशङ्का करके तुम्हारे पास ॥ रहा हूँ । द्विजवेष धारण करनेवाले विष्णुने कहा—हे दशानन ! यदि अधिक देर लगेगी तो ॥ लिङ्गको यहींपर रखकर चला जाऊँगा । अच्छी बात है, कहकर रावणने शिवलिङ्ग उनके हाथमें दे दिया ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ रावण जब लघुशङ्का करने लगा तो बहुत देर तक मूत्रकी अखण्ड धारा चलती रही । अधिक समय बीत जानेपर सागरके पश्चिम किनारे लिङ्गको रखकर विष्णुभगवान् अपने स्थानको धने गये । उसके पश्चात् रावण भी विधिवत् मूत्रत्याग करके वहीं आया ॥ ५० ॥ ५१ ॥ लिङ्गको जमीनपर रक्सा देखकर उसके सिरको हिलाया, परन्तु भूमिगत लिङ्गका सिर नहीं हिला

भुवः कर्णोपमं लिंगं गोकर्णं तद्वदन्ति हि । ततः खिन्नमनास्तूष्णीं पातालं रावणो ययौ ॥५४॥
 मयगेहे निरीक्ष्याथ देवीं मन्दोदरीं वराम् । मयं संप्रार्थयामास ददौ तां रावणाय सः ॥५५॥
 ततो विवाहं निर्वर्त्य पाण्डिहर् ददौ मयः । रावणाय दृढां शक्तिमभीषां शत्रुघातिनीम् ॥५६॥
 दृष्ट्वा मन्दोदरं तस्याः प्राह मन्दोदरीमिति । तां नाम्ना रावणस्तुष्टस्तया स्वीयस्थलं ययौ ॥५७॥
 ततो मात्रा धिकृतः स पुनस्तप्तुं स्वराज्यतः । गोकर्णं रावणो गत्वा तप्त्वा लब्ध्वा विधेर्वरान् ॥५८॥
 त्रैलोक्यं स्वयं कृत्वा लंकायां राज्यमाय सः । तस्मात्सीतासुमनेयं दृष्ट्वा मन्दोदरा प्रिये ॥५९॥
 लंकायां वायुपुत्रेण रावणाग्रे विनिद्रिता । मयोऽप्यासीन्म लंकायां गृहं कृत्वा यथासुखम् ॥६०॥
 मयवंधुर्यो नाम महान् वीरः प्रतापवान् । रात्रौ विनिद्रितो गेहे ब्रह्मदत्तवरात्सुधाः ॥६१॥
 दशास्त्रहस्तानन्मृत्युविधिर्नोक्तं विचिंत्य च । तस्य वस्त्रं भारुतिना हर्तुं सदसि वै पुरा ॥६२॥
 तत्क्षिपद्वं पपर्वङ्गं रावणस्य कपिस्तदा । विभीषणस्य पर्यंके वसनं रावणस्य च ॥६३॥
 क्षिप्त्वापश्यजानकीं स लंकायां च मुहुः कपिः । यथावशोकवनिकां वृक्षप्रासादमंडिताम् ॥६४॥
 ददर्श तत्र प्रांशुं च शिशुपानाम पादपम् । तन्मूले राक्षसीमध्ये ददर्शवनिकन्यकाम् ॥६५॥
 एकवेणीं कृशां दीनां मलिनांवरधारिणीम् । भूमीं क्षयानां शोचतां रामरामेति भाषिणीम् ॥६६॥
 कुनार्थोऽहमिति प्राह दृष्ट्वा सीतां स पारुतिः । शिशुपानमशास्त्रप्रपल्लवाभ्यंतरे स्थितः ॥६७॥
 पुरा दृष्टानलंकारान् तस्य देहे ददर्श न । ततः किलकिलाशब्दं पर्यंके तत्र दृष्टवाननः ॥६८॥
 ददर्श रावणः स्वप्ने कपिः कश्चित्समागतः । अशोकवनिकायां सा दृष्टा तेन विदेहजा ॥६९॥

॥५२॥ उसके शिराभागकी जगह कानके छेदकी तरह गड़हा हो गया । गड़हेसे सिर भी कर्णशंकुकी तरह
 कूश हो गया ॥ ५३ ॥ अतएव पृथ्वीके कर्णके सहज वह लिङ्ग गोकर्ण नामसे दिखाया हुआ । तब खिन्नमन
 होकर रावण चुपचाप पाताल चला गया ॥ ५४ ॥ मयके घरमें सुन्दरी मन्दोदरीको देखकर मयसे रावणने
 प्रार्थना की । तब मयने रावणको वह कन्या दे दी ॥ ५५ ॥ इस प्रकार मयने कन्याका विवाह करके रावणको
 रहेजमें बहुत-सा वस्त्र-आभूषण आदि दिया और शत्रुघातिनी, अमोघ हृद् शक्ति भी दी ॥ ५६ ॥ उस देवीका
 उदर मन्द अर्थात् मूढम दखकर रावणने उसका नाम मन्दोदरी रखा और उसके लाभसे सन्तुष्ट होकर
 रावण अपने स्थानको चला गया ॥ ५७ ॥ वहाँ माताके धिक्कारनेपर रावण फिर गोकर्णके पास जाकर
 नरने लगा । अतः अपनी तरफ्वाले कलसे रावणने ब्रह्मासे वर प्राप्त करके तीनों लोक वस्त्रमें भर लिया
 और लङ्कामें राज्य करने लगा । हे प्रिये नावती ! इसी कारण हनुमान्ने सीताके समान मन्दोदरीको रावणके
 पास लङ्कामें भेजे हुए देखा था । बादमें तो मय दानव भी लङ्कामें घर बनाकर सुखपूर्वक रहने लगा
 ॥ ५८-६० ॥ प्रतापी मयका भाई गय रात्रिके समय अपने भवनमें सो रहा था । विचारशील हनुमान्ने
 ब्रह्माके वरमें गवका रावणके हाथों मृत्यु करानेके विचारसे उसके वस्त्रोंको निकालकर सभागृहमें रावणके
 पलंगपर और बादमें रावणके वस्त्र से जाकर विभीषणके पलंगपर रख दिया ॥ ६१-६३ ॥ पुनः हनुमान्
 लङ्कामें जानकीजीको खोजने लगे । खोजते-खोजते वृक्षों तथा प्रासादोंसे सुशोभित अशोकवाटिकामें गये ॥ ६४ ॥
 वहाँ उन्हें एक अच्छा शिशुपा (शीशम) का वृक्ष दिखायी दिया । उसके नीचे राक्षसियोंके बीचों-बीच
 कन्या जानकीजीको विराजमान देखा ॥ ६५ ॥ उस समय शुष्क तथा दीन मुख होकर मलीन वस्त्र धारण
 करके हुए भूमिपर सोपी हुई सीता दुःखित मनसे रामका नाम जप रही थीं । उनके तिरके वालोंमें
 मृदु आदि भर जातिसे सैदुरी बँध गयी थी ॥ ६६ ॥ सीताके दर्शनसे अपनेको कृतार्थ समझते हुए हनुमान्जी
 इस शिशुपावृक्षकी एक शाखाके अग्रभागके पत्तोंमें छिपकर बैठ गये ॥ ६७ ॥ उस समय सीताके शरीरपर
 व अलङ्कार नहीं दिखायी दिये, जिनको कि हनुमान्ने पहिले सुग्रीवके पास देखा था । इतनेमें कुछ कोलाहलके
 साथ रावण वहाँ जा पहुँचा ॥ ६८ ॥ क्योंकि रावणको स्वप्नमें दिखायी दिया कि कोई वानर आया है और उसने

राघवस्तान्मृतिः शीघ्रं लब्धुं तां धर्पयाम्यहम् । कपिदंष्ट्रा राघवाय निवेदयतु मत्कुतम् ॥७०॥
 आगमिष्यति तच्छ्रुत्वा रामो मां निहमिष्यति । इति निश्चित्य स ययौ स्त्रीभिः सवेष्टितो मुदा ॥७१॥
 नूपुराणां ध्वनिं श्रुत्वा विह्वलाऽमीदृदिदेहजा । रावणो जानकीमाह मां दृष्ट्वा किं विलज्जसे ॥७२॥
 रामं वनचरं राज्यभ्रष्टं त्यक्तसुहृज्जनम् । पित्रा हीनं भोगहीनं सदा त्वय्यतिनिष्ठुरम् ॥७३॥
 एकांतवासिनं पिण्डजटावन्कलधारिणम् । तं त्यक्त्वा मां भजस्वाद्य त्रैलोक्येशं महाबलम् ॥७४॥
 अप्सरोधिः सेवितं मां भाग्ययुक्तं पदस्थितम् । स्त्रियो मन्दोदरीमुखप्रास्त्रा भजिष्यंस्त्वहर्निशम् ॥७५॥
 मया राज्यं त्वदधीनं कृतमस्ति भजस्व माम् । मया स्वर्जाकितं चापि त्वदधीनं कृतं महत् ॥७६॥
 इति नानाविधैर्वाक्यैः प्रार्थयामास रावणः । उवाचाधोमुखी सीता निधाय हृणप्रन्तरे ॥७७॥
 राघवादिभ्यस्ता नूनं भिक्षुरूपं घृतं त्वया । रहिते राघवाभ्यां त्वं शुनीव हविरध्वरे ॥७८॥
 हतवानसि मां नीच तत्फलं प्राप्स्यसेऽचिरात् । यदा रामशरायानविदारितवपुर्मवान् ॥

भविष्यन्मि रणे रामं जानीषे मानुषं तदा ॥७९॥

श्रुत्वा रक्षोऽधिपः क्रुद्धो जानक्याः पदपाक्षरम् । वाक्यं क्रोधममाविष्टः पुनर्वचनमब्रवीत् ॥८०॥

भवित्री लंकारां त्रिदशवदनमलानिराचिरात्स रामोऽपि स्याता न युधि पुरतो लक्ष्मणसखः ।

तथा यास्यत्युर्ध्वैर्विषदमनुजेनाथ जटिलो जयः श्रीरामे स्वाश्रय मम बहुतोपोऽत्र तु भवेत् ॥८१॥

तद्वाक्यवचः श्रुत्वा जानकी प्राह तं पुनः । पष्टाक्षरपरम्परे चतुर्षु चरणेष्वपि ॥८२॥

त्वमक्षराणि चत्वारि लोप्य श्लोकमर्मुं पठ । एवं तया त्रितो वाक्यमार्गणैः स दशाननः ॥८३॥

अशोकवनमें जाकर राजा विदेहकी पुत्री सीताको देख लिया ॥ ६९ ॥ "रामके हाथोंसे सीता मरनेके लिए मैं चत्कर सीताका तिरस्कार करनेवा तो मेरी करतूत देखकर वह वानर रामसे कहेंगा ॥ ७० ॥ सो मुनकर राम यही आर्थों और मुझे मारेंगे" । ऐसा निश्चय करके रावण रत्नको को साथ लेकर आनन्द उधर चल पड़ा ॥ ७१ ॥

नूपुरोंकी ध्वनि सुनते ही सीताजी धक्का मारी और उन्होंने मुख नीचे कर लिया । तब रावणने सीतासे कहा-

तू मुझसे लज्जाती क्यों ॥ ७२ ॥ वनमें भ्रमण करनेवाले, राज्यसे भ्रष्ट सुहृज्जनोंसे रहित, पितृहीन, भोगहीन, सदा तेरे लिए निन्द्य, ॥ ७३ ॥ एकांतसेकी, पीला जटा और वन्कल (भोजपत्र आदि वृक्षके छिद्रकोको) धारण करनेवाले राघवकी छोड़कर तू विलोकपति और महाबलवान् मुझ रावणका आश्रय ले और मेरी सेवा कर ॥ ७४ ॥ मैं अप्सराओंसे सेवित और भाग्यवान् होकर महान् परपर स्थित हूँ । मेरी सेवा करनेसे मेरी मन्दोदरी आदि स्त्रियों भी रात-दिन तेरी रासियां बनकर रहेंगी ॥ ७५ ॥ मैंने अपना राज्य तथा अपना जीवन तुझको दे दिया है । तू मेरी वनकर रह ॥ ७६ ॥ इस तरह अनेक प्रकारके वाक्योंसे रावण प्रार्थना करने लगा । तब बीचमें तिनकेका आह करके तथा नीचे मुख किये हुए सीताने कहा- ॥ ७७ ॥ अरे यार्थ ! क्यों डींग

हर्कता है । रामके डरसे तू भिक्षुका रूप धारण करके और राम-लक्ष्मणकी अनुपस्थितिमें यज्ञसे जैसे कुला हवि

अर्पित हवनकी सामग्री घृत-खीर आदि लेकर भागे, ज्यों प्रकार तू मुझे लेकर भाग आया है । अरे नीच !

चसका फल तुझको शीघ्र मिल जायगा । जब रामके वाणोंसे विदारितशरीर होकर निरंश, तब तुझे यह पता लग जायेगा कि राम मनुष्यहैं या और कोई । यह सुना ही राजसाधिप रावण क्रुपित होकर जानकीजीको

कठोर वचन कहता हुआ बोला- ॥ ७८-८० ॥ "इस लक्ष्मणमें जाकर देवताओंके भी मुख मलीन हो जायेंगे ।

लक्ष्मणसहित वह राम भी मेरे समक्ष युद्धमें नहीं लड़ रह सकेगा । यहाँ आया तो अनुजके सहित वह बड़ी भारी विपत्तिमें

पड़ जागा । यहाँ उस जटाधारी राघवकी जीत नहीं होगी और मुझे भी आनन्द न प्राप्त होगा" ॥ ८१ ॥ रावण-

की बातको मुनकर जानकीने कहा- चारों चरणोंमें छड़े अक्षर तथा आगेवाले चारों सप्तम भक्तोंका श्लेष

करके तुम इसी श्लोकको फिरसे पढ़ो । वही हाल तुम लोगोंका होगा । कहनेका तात्पर्य यह है कि ८२वें

श्लोकमेंसे चारों चरणोंके भी न वि और ये चार अक्षर निकल जानेसे यह अर्थ होगा कि लक्ष्मणमें दशवदन

रावणके ऊपर शीघ्र ही विपत्ति जायेगी अर्थात् वह हार जायगा । लक्ष्मणके राम युद्धमें का डटेंगे ।

दृष्ट्वा भीषयन्सीतां खड्गमुग्रम्य सत्वरः । धृत्वा करेण तत्पाणिं मन्दोदर्या निषेधितः ॥८४॥
 मादृश्यः सति बह्वयश्च त्यज्जनां कृष्णां कृशाम् । ततोऽब्रवीद्दशशोत्रो राक्षसाविकृताननाः ॥८५॥
 यथा मे वक्षसा सीता भविष्यति सकामना । तथा यतश्च त्वरितं तर्जनादरणादिभिः ॥८६॥
 यदि मासद्वयादूर्ध्वं मच्छव्यां नाभिनन्दति । तदा मे प्रातराशाय हत्वा कुरु मानुषोम् ॥८७॥
 तदा सीता पुनः प्राह वचनं तं दशाननम् । बाल्यत्वेऽहं समानीता पेटिकास्था त्वया पुरा ॥८८॥
 तदा मया वचः प्रोक्तं तत्त्वं किं विस्मृतोऽसि हि । अधुनाऽहं गमिष्यामि यास्यामि त्वरितं पुनः ॥८९॥
 त्वां वन्धुपुत्रसैन्याद्यनिर्हन्तुं च मयेरितम् । तत्स्वायं वचनं सत्यं कर्तुमश्रमागताऽस्म्यहम् ॥९०॥
 त्वां बन्धुपुत्रसैन्याद्यनिर्हृत्य रामहस्ततः । ततोऽयाप्यापुरीं गत्वा पुनर्यास्यामि त्वत्पुराम् ॥९१॥
 निकुम्भजं पौंड्रकं तं मातामहगृहे स्थितम् । शतशीर्षं रावण च द्वापांतरनिवासिनम् ॥९२॥
 माहाय्याहार्यं पौंड्रकेन लंकायामागतं पुनः । अहं तृतीयवेलायां सर्वाधिप्यामि तानुभा ॥९३॥
 ततः स्वीयस्थले गत्वा पुनर्यास्याम्यहं जवान् । कुम्भकर्णोद्भवं वीरं मूलकासुरनामकम् ॥९४॥
 अत्रैव तुर्यवेलायामागत्य पुष्पकेन हि । अहमेव हनिष्यामि शितवाणं रणांगण ॥९५॥
 अन्यथापि स्मरस्य त्वं पुरा योद्धाधिनोदितम् । यद्वाक्याच्च त्वया गत्वा कौसल्यानृपता हता ॥९६॥
 पेटिकास्थो पुनस्त्यक्तौ माकेते देवयोगतः । अतस्त्वं मर्तुकामोऽसि यतोऽहमाहता त्वया ॥९७॥
 गच्छ मेहे सुखं भुङ्क्ष्य रामः शीघ्रं हनिष्यति । इति सीतावाक्यवाणभिरनमसंस्थलोऽपि सः ॥९८॥
 वर्या तूष्णीं निजं मेहं लज्जितश्च दशाननः । एवं दशानने पाते राक्षस्यो रावणाश्रया ॥९९॥
 जानकीं तां स्वशब्देन तथा क्रूरोक्तिभिर्मुहुः । आस्थाविदारणैश्चकार्यभीषयन्त्यः करादिभिः ॥१००॥

अनुज सहित राम उच्च पदको प्राप्त करेग । जटाधारी रामको विजय होगी, तब मुझे बड़ा हर्ष होगा । इस प्रकार वाक्यवाक्य संशोधन करके सीताने दशाननको जीत लिया ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ■ रावण तलवार उठाकर सीताको डराते हुए, उनपर झगटा । उस समय मन्दोदराने उसका हाथ पकड़कर रोका और कहा कि तुम्हारे पास ऐसी बहुत-सी श्रिये है । तुम ■ श्वचारी कमजोर तथा गरीब मानुषी नारीका छोड़ दो । तब रावणने नयानक मुखवाली राक्षसियोंको आज्ञा ■ कि सीता जिस तरह कामभावसे मेरे वशम हा, वैसे तुमलोग डराकर अथवा समझाकर भीष्ट यत्न करो ॥ ८४-८६ ॥ यदि दो महानेक भातर वह मेरा शय्यापर न आये तो इस मानुषीको मारकर मेरे जलपानक लिए तैयार करना, ■ मैं इस खा जाऊंगा ॥ ८७ ॥ सीता फिर दशमुख रावणसे कहते लगे - जब तू वात्स्यावस्थाने मुझे पिटारी साहित यहाँ ल आया था ॥ ८८ ॥ उस समय जो बात मैंने कहा थी, क्या उसे भूल गया ? मैंने कहा था कि अभी मैं जाती हूँ, परन्तु फिर यहाँ शीघ्र ही आऊँगी ॥ ८९ ॥ और वह इसलिए कि मैं भाई, पुत्र तथा सेना सहित तुझे मार डालूँगी । अब ■ अपने वचन सत्य करने आयी हूँ ॥ ९० ॥ रामके हाथों तुझका और तरे वन्धुभा तथा सनाका मरवाकर अयोध्यापुरी जाऊँगी । पुनः मे तीसरी बार भी तेरी तगराम आऊँगा ॥ ९१ ॥ उस समय मातामह अर्थात् नानाके घरमें स्थित निकुम्भके पुत्र पौण्ड्रकको तथा द्वीपांतरमें रहनेवाले सी सिरवाले रावणको जा कि पौण्ड्रककी सहायताके लक्ष्मणमें आयोग, तीसरी बार आकर उन दोनोंका मारूँगा ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ पञ्चत् अपने न्यायको आकर फिर चौथी बार मैं शीघ्र आऊँगी और कुम्भकर्णके पुत्र वीर मूलकासुरका वध करूँगी ॥ ९४ ॥ पुष्पक विमानसे यहाँ आकर मैं उसे रणांगणमें मारूँगी ॥ ९५ ॥ पूर्वकालमें जा ब्रह्माजीने कहा था, वह भी स्मरण कर ले । जिनके कहनेसे तूने कौतल्या और राजा दशरथका हरण किया था ॥ ९६ ॥ देवयोगसे फिर तूने उन्हें अयोध्यामें छोड़वा दिया था । इससे पता लगता है कि तू मरना चाहता है । इसीलिए तूने मुझसे प्रेम करना चाहा है ॥ ९७ ॥ अब धर जा और तुझसे भोजन कर । राम तुझे छाछ मारेंगे । इस प्रकार सीताके वाक्यरूपी वाणोंसे विदोर्जहृदय हाकर दशानन लज्जासे चुपचाप अपने घर चला गया । दशाननके चले जानेपर उसकी आज्ञासे राक्षसियें अपने भयानक शब्दोंसे, क्रूर वाक्योंसे, मुँह फाड़कर, तलवार तथा

निवार्य त्रिजटानाम्नी विभीषणप्रियाऽनुगा । ताः सर्वा राक्षसीर्वेगाद्वाक्यमाहाय सादरम् ॥१०१॥
 न भीषयध्वं रुदती नमस्कुरुत जानकीम् । सुचिह्ने राघवा स्वप्ने मया दृष्टोऽद्य जानकीम् ॥१०२॥
 मोक्षयामास दग्धवेमां लंकां हत्वा । रावणम् । रावणो गोमयहवे तैलाभ्यक्तो दिगंबरः ॥१०३॥
 मयाऽद्य दृष्टः स्वप्ने हि तस्मादंतां न साहसम् । कार्यं सेव्या सदा चेयं शमादमयदायिनी ॥१०४॥
 युष्माभिर्दुःखिता चेदो भव्यं वातयिष्यति । इति तत्त्रिजटावाक्यं श्रुत्वा तत्पुर्मयाकुलः ॥१०५॥
 तूर्णमेव तदा सोता दुःखार्त्तिकचिदुवाच सा । इदानीमेव मरणं केनोपायेन मे भवेत् ॥१०६॥
 दीर्घा वैष्णी ममात्पर्यमुग्रन्धाय भविष्यति । यन्मया स्वीयवाग्वाणलक्ष्मणस्ताडितः पुरा । १०७॥
 तस्मादिमाः पीडयन्ति भोक्ष्यते स्वकृतं मया । मया विरगः सौमित्रिस्त्रासितो गौतमीतटे ॥१०८॥
 प्रायश्चित्तं करोम्यद्य तस्य त्यक्त्वा स्वजीवितम् । एवं निश्चितबुद्धिं तां मरणायाय जानकीम् ॥१०९॥
 दृष्ट्वा शनैर्वायुपुत्रो रामवृत्तं न्यवेदयत् । आसाकननिर्गमाच्च स्वसीतादर्शनावधि ॥११०॥
 सविस्तारं कमेणः सीतातोषार्थमदरात् । सीता क्रमेण तत्सर्वं श्रुत्वा साश्चर्यमानसा ॥१११॥
 किं मयेदं भुतं व्योम्नि स्थितो दृष्टोऽधवा निश्चि । येन मे कर्णपीयूषवचनं समुदीरितम् ॥११२॥
 स दृश्यतां महाभागः विषवादी ममाग्रतः । तच्छ्रुत्वा तत्पुरे गत्वा नत्वा तामवर्जितपुनः ॥११३॥
 रामदूतो ददी तस्यै राघवस्यागुलीपकम् । तां राममुद्रिकां दृष्ट्वा नत्वा तामवशीत्कपिम् ॥११४॥
 सर्वं कथय द्रवृत्तं यथा दृष्टं त्वयाऽत्र हि । तदा तां सांत्वयामास रामो मत्स्कंधसंस्थितः ॥११५॥
 वानरैर्द्वैः समागत्य हत्वा रावणमाहवं । त्वां नेष्यति भयं सीतेत्यज त्वं मम वाक्यतः ॥११६॥

अंगुलियोंके संकेतोंसे सीताको डराने लगी ॥ १०१-१०० ॥ उसी समय विभीषणकी प्रिया अनुगामिनी त्रिजटा राक्षसीने उन सबको ऐसा करनेसे रोका और उन सबको समझाकर कहा कि इस रीती हुई जानकीजीको तुम लोग डराओ नहीं, प्रबुत नमस्कार करो । मैंने आज स्वप्नमें रामको सुन्दर चिह्नोंसे युक्त देखा । और यह भी देखा है कि उन्होंने जानकीको छुड़ाकर लक्ष्मणको जलाया तथा रावणको मार डाला है । तेल लगाये हुए रावण गोबरके पत्रोंमें गिर गया है ॥ १०१-१०३ ॥ मैंने आज यह स्वप्न देखा है । कारण इन्हें सतानेका साहस नहीं करना चाहिए । रामसे भय दिलानेवाली इस जानकीकी मुझे सेवा करनी चाहिए ॥ १०४ ॥ यदि तुम लोग इसे दुःख दोगी तो यह अपने पति रामके द्वारा मुझे डालेगा । त्रिजटाके वाक्यको सुनकर सब राक्षसियें व्याकुल होकर चुप हो गयीं ॥ १०५ ॥ उन सबके सो जानेपर दुःखित होकर सीता धीरे-धीरे कहने लगी कि इसी समय मेरा मरण किस उपायसे हो सकता है ॥ १०६ ॥ हाँ, यह मेरे सिरके बालको लम्बी छट फाँसो लगानेके लिए बहुत अच्छी तरह काम आवेगा । उस समय जो मैंने वचनरूपों वाणोंसे लक्ष्मणको बोधा था ॥ १०७ ॥ उसीके फलस्वरूप ये राक्षसियें मुझे सता रही हैं । यह मैं अपने किये हुए कर्मोंका फल भोग रही हूँ । मैंने गोमती नदीके किनारे सुमित्राके निर्दोष पुत्र लक्ष्मणको जो धमकाया था ॥ १०८ ॥ उसका मैं आज प्राण देकर प्रायश्चित्त करूँगी । इस प्रकार मरनेका निश्चय किये हुए जानकीको देखकर वायुपुत्र हनुमान्ने धीरे धीरे रामका वृत्तान्त सुनाना प्रारम्भ किया । उन्होंने रामके अयोध्यासे चलनेके समयसे लेकर सीताको देखने तकका सारा वृत्तान्त विस्तारपूर्वक क्रमसे सीताके संशयके लिए सुना दिया । यह सब वृत्तान्त सुनकर सीता आश्चर्यचकित होकर सोचने लगी कि क्या यह मैं कोई आकाशवाणी सुन रही हूँ अथवा रात्रिके समयका स्वप्न देख रहा हूँ । जिसने मेरे जानोंके लिए अमृतके समान यह वचन सुनाया है ॥ १०९-११२ ॥ वह प्रियवादी मेरे सामने आकर दर्शन दे । यह सुना तो हनुमान् उनके सामने प्रकट हो गये और नमस्कार करके उन्हें रामका वृत्तान्त पुनः सुनाया ॥ ११३ ॥ फिर विश्वास दिलानेके लिए रामकी अंगूठी निकालकर सीताको दी । रामकी मुद्रिकाको देख तथा नमस्कार करके सीता बोलीं— ॥ ११४ ॥ हे कपि । जैसा कि तुमने देखा है, मेरा सब हाल जाकर रामसे कह देना । तब हनुमान् सीताको आश्वासन देकर कहने लगे कि राम मेरे कन्धेपर सवार हो वानरसेनापतियोंके साथ यहाँ आकर युद्धमें रावणको मारेंगे और आपकी

ततः सीताप्रत्ययार्थं रूपं स्वं दर्शयन् कपिः । ततः पुनः प्रत्ययार्थं मीनार्थं सद्योदितम् ॥११७॥
 मनःशिलायास्तिलकं चित्रकूटगिरौ कृतम् । कपिस्तत्कथयामास पूर्ववृत्तं सविस्तरम् ॥११८॥
 ततस्तुष्टां जानकीं तां मारुतिर्वाक्यमब्रवीत् । अनुज्ञां देहि मे मातस्त्वभिज्ञानं ददस्व माम् ॥११९॥
 सा तं बृहद्वर्णिं पित्रा दत्तं केशोत्तरस्थितम् । निष्कास्य तत्करे दत्त्वा पूर्वं काकेन यत्कृतम् ॥१२०॥
 चित्रकूटगिरौ वृत्तं कथयामास तत्कपिम् । ततो नन्वा रामपत्नीं चितयामास चेतसि ॥१२१॥
 स्वामिकार्यं कृतं चैतदन्यत्किञ्चित्करोम्यहम् । इति निश्चित्य मनसा जानकीं पुनरब्रवीत् ॥१२२॥
 मातर्मेऽतीव भुद्बोधस्त्वद्य विक्लवदो महान् । अस्मिन्वनेऽनिमधुरः फलसंघाऽतिदुर्लभः ॥१२३॥
 त्वाशयाऽद्य सीनेऽहं करिष्ये भक्षणं ध्रुवम् । इति तद्वचनं श्रुत्वा जानकी स्वीयकंकणम् ॥१२४॥
 निष्कास्य हस्तात् प्राह गृह्णीष्वेदं प्लवंगीम् । अनेन फलसंभारान् लंकाहृद्वाग्मगृह्य च ॥१२५॥
 भुक्त्वापीत्वाऽसुखं गच्छवनेऽस्मिन्त्रोटयस्व मा । तदा कपिः पुनः प्राह पशुस्त्वफलानि हि ॥१२६॥
 नाहं भुञ्जामि मीते मे व्रतमस्ति व्रजाम्यहम् । व्रजनं मारुतिं दृष्ट्वा सीता वचनमब्रवीत् ॥१२७॥
 भो बालक कपिश्रेष्ठ रावणोऽस्ति वनाधिपः । न शक्तिर्न च शक्यं ते कथं त्वं भक्षयिष्यमि ॥१२८॥
 तत्तस्या वचनं श्रुत्वा मारुतिः प्राह जानकीम् । श्रीगमेति परं मंत्रशक्तं मे हृदयांतरे ॥१२९॥
 तेन सर्वाणि रक्षामि तृणरूपाणि सांप्रतम् । तदा तं जानकी प्राह पतितान्यत्र वै भूवि ॥१३०॥
 भुङ्क्ष्वेतानि फलानि त्वं तूष्णीं मा ब्रोटयात्र वै । तथेति मारुतिश्चोक्त्वा वृक्षान्पुच्छेन चालयन् ॥१३१॥
 वृक्षांदोलनमात्रेण निपेतुश्च फलानि हि । भक्षयामास तान्येव मुफलयानि क्षणेन सः ॥१३२॥
 ततो वृक्षान्समृत्पात्य लांगूलेन स मारुतिः । क्षिप्त्वा तानन्यवृक्षेषु समस्तानि फलानि वै ॥१३३॥
 पतयामास भूम्यां तु भक्षयामास तानि सः । भक्षितानि समस्तानि फलानि वनजानि हि ॥१३४॥

दृष्ट्वा ने जायेंगे । हे सीते ! मेरे कहनेसे आप निर्भय रहें ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ तब हनुमान्ने सीताको विश्वास दिलानेके लिए अपना असली स्वरूप दिखाया । तदनन्तर और भी विश्वासके लिए सीताको रामका कहा और चित्रकूटपर किया मैनसिलके तिलक आदिका किम्मा भी सुना दिया । साथ ही और भी पहलेकी वृत्तान्त सीताको सुनाया ॥ ११७ ॥ ११८ ॥ तब भली-भांति संतुष्ट जानकीने हनुमान्ने कहा—हे माता ! मुझे रामकी आज्ञा है तथा अपना कोई चिह्न भी दे दें ॥ ११९ ॥ तब सीताने पितार्की दी हुई बृहद्वर्णि सिरके बालोंमें-से निकालकर उनके हाथोंमें दी और पूर्वमें चित्रकूटगिरिपर काक (जयन्त) का किया हुआ वृत्तान्त हनुमान्को सुनाया । तदनन्तर रामपत्नी सीताको नमस्कार करके हनुमान् गममें लौचने लगे—॥ १२० ॥ १२१ ॥ मैं स्वामीका कहा हुआ काम तो कर दिया, पर और आ कुछ करते चलना चाहिए । ऐसा निश्चय करके वे जानकीसे बोले—॥ १२२ ॥ हे माता ! आज बकावटके साथ बड़ी मूढ़ लगी हुई है । इस वनमें अतिशय दुर्लभ एवं अति मधुर फलोंका समूह लगा हुआ है ॥ १२३ ॥ सो आपकी आज्ञासे मैं इनको अवश्य खाऊंगा । अब सुना तो जानकीने हाथसे उतारकर अपना कंकण उनको दिया और कहा—हे प्लवङ्गम ! यह जो और नदुकी दुकानोंपरसे फलोंके ढेर खराद लो और उन्हें खाकर जाओ । परन्तु इस वनके फल तोड़ना । अब हनुमान्ने कहा कि दूसरोंके हाथसे तोड़े फल में नहीं खाता । हे सीते ! ऐसा मेरा व्रत है । अच्छी बात है नन्दे दी । मैं ऐसे ही जाता हूँ । जाते हुए मारुतिको देखकर सीताने कहा—॥ १२४-१२७ ॥ हे बालक ! हे कर्त्तव्यमें श्रेष्ठ कपि ! इस उपवनका अधिपति रावण है । तुम्हारेमें इतनी शक्ति नहीं है कि तुम उसको जीत द्यो नो फल कैसे खाओगे ? ॥ १२८ ॥ वह मुनकर मारुतिने जानकीसे कहा कि मेरे हृदयमें 'श्रीराम' नामकी अमोघ शक्ति विद्यमान है ॥ १२९ ॥ उसके बलपर मैं इन सब राजाओंको तृणवत् हूँ । तब जानकीने कहा कि जो फल पृष्ठोंपर गिर पड़े हों ॥ १३० ॥ उनको तुम चुपचाप खा लो, फेड़परसे न तोड़ना । 'अहम् अच्छा' कहकर हनुमान्ने अपनी पूँछसे बाँधकर वृक्षोंको हिलाया ॥ १३१ ॥ वृक्षोंको हिलानेसे सब फल गिर पड़े । उन्होंने उन सब सुन्दर फलोंको क्षणभरमें खा लिया ॥ १३२ ॥ फिर हनुमान्ने उन वृक्षोंको

दृष्ट्वा तं द्रुमुर्वर्तुं माहनि वनरक्षकाः । राक्षसानामतान् दृष्ट्वा वृक्षैस्तांस्तावत्कपिः ॥१३५॥
 उत्पाट्याशोकवनिकां निर्बृक्षामकरोत्क्षणत् । सीताशयनगं त्यक्त्वा वनं शुन्यं चकार सः ॥१३६॥
 नमज्जैत्यप्रासादं हत्वा तद्रक्षकान् क्षणात् । उतस्ता राक्षसीः सर्वा वनभयं निरीक्ष्य च ॥१३७॥
 पञ्चचूर्जनिकां सर्वाः कोटयं कस्य कुतस्त्वह । ताः सर्वा जानकां गलमाः कामरूपिणः ॥१३८॥
 विचरन्ति मुदा भूम्यां वेश्यहं भिक्षुरूपिणा । तदा हता पञ्चवज्रां रावणेन हि तद्वनात् ॥१३९॥
 तस्माज्ज्येष्ठस्तु युष्माभिः कोयं मां वृक्षलेयकिम् । इति तस्या वचः श्रुत्वा राक्षस्यो भयविह्वलाः ॥१४०॥
 दशाननं हि तद्वचं ययुः शीघ्रं निवेदितुम् । एतस्मिन्तरे प्रातर्मचके कटिर्धनम् ॥१४१॥
 निरीक्ष्य रावणश्चाथ गयस्य चकितस्तदा । भुक्ता मन्दोदरीं ज्ञात्वा तां हंतुं खड्गसादये ॥१४२॥
 तदा निवारितः स्त्रीभिः स्त्रीहन्तां मावरोन्विति । तदा क्रुद्धो दशग्रीवस्तूष्णीं गत्वा गयगृहम् ॥१४३॥
 अवधीनिद्रितं वीरं सज्जेन स्वगृहं ययौ । तदा विभीषणः प्रातर्बन्धोर्वधं स्वमचके ॥१४४॥
 दृष्ट्वा तां स रमां हंतुं द्रुमे वज्रितस्तदा । स्त्रीभिर्भुत्वा तस्य स्त्रीहत्या माहिता त्विति ॥१४५॥
 विभीषणस्तदारभ्य वधोन्नासममन्यत । एवमासीच्च लंकार्या कौतुकं रुषिता कृतम् ॥१४६॥
 अथ वेगेन राक्षस्यः सभासंस्थं दशाननम् । वृत्तं निवेदयामासुः स्थलद्वापया वनोद्भवम् ॥१४७॥
 उच्छ्रित्वा रावणः क्रोधात्कपिनोत्पाटितं वनम् । वनपालं समाहूय जम्बुमालिनमनवीत् ॥१४८॥
 राक्षसेनियुतैर्गच्छ्य क्षीणं पृथ्वा समानय । तथेति स ययौ वेशादशोकवनिकां प्रति ॥१४९॥
 दृष्ट्वा सैन्यं दीर्घनादं चकार कपिकुंजरः । वतस्ते गणसाः शस्त्रैर्निजश्रुत्वा नरोत्तमम् ॥१५०॥

पूछसे बाँव बाँवकर गिरा दिया । उनको गिराकर दूसरे वृक्षोंके फल लिये ॥ १३३ ॥ उन्हें भी गिराकर तीसरे वृक्षके समस्त फल ला लिये । ऐसा करके उन्होंने उस उपवनके सब फलोंको डाला ॥ १३४ ॥ यह देखकर वनके रक्षकाण उन्हें पकड़ने लगे । हनुमान्ने राक्षसोंको आते देखकर उन्हें वृक्षोंसे ही पीटना आरम्भ कर दिया ॥ १३५ ॥ इस प्रकार सगणमें उन्होंने तारे असोकवनको वृक्षोंसे रहित कर दिया । केवल सोताके आश्रयभूत एक वृक्षको छोड़ और सब उपवनको उजाड़ डाला ॥ १३६ ॥ आदमें उन्होंने वृक्षोंके बड़े-बड़े महुँलोंको गिरा दिया और उनके रक्षकोंको मार भगाया । उधर राक्षसोंने वनभङ्गको देखकर सोतासे पूछने लगी कि यह कौन है, किसका भूत और कहाँसे आया है । सीताने उन सबसे कहा कि बहुतसे यथेच्छ रूप धारण करनेवाले राक्षस पृथ्वीपर आनन्दसे घूमा करते हैं । उन्हींमेंसे कोई होगा । इस बातका पता मुझे सबसे लगा है, अब भिक्षुकी रूप धारण करके रावण मुझे पञ्चवटीमें वनसे दूर लया ॥ १३७-१३९ ॥ सो तुम्हीं लोग इसका पता लगाओ कि यह कौन है । मुझसे क्या पूछती हो ? उनके इस वचन को सुनकर राक्षसोंने भयसे विह्वल हो गयीं ॥ १४० ॥ वह हाल कहतेके लिए वे जोध दशाननके लगे दौड़ी । उधर प्रातःकालके समय रावण अपनी शय्यापर गयका कमरबन्द देखकर चकित हो गया । रावणने सोचा कि गयने यहाँ बाहर मन्दोदरीको भोगा है । यह शंका करके उसने मन्दोदरीको मारनेके लिये तलवार उठायी ॥ १४१ ॥ १४२ ॥ तब दूसरी स्त्रियोंने 'स्त्रीको हत्या नहीं करने चाहिए' यह कहकर उसे रोका । तब कुछ रावणने चुपकेसे गयके घर आकर सोये । ही वीर गयको तलवारसे काट डाला और अपने घर लौटा । उधर विभीषणने प्रातःकाल अपने अपने भाई रावणका वस्त्र अपने पलङ्गपर देखा ॥ १४३ ॥ १४४ ॥ यह देखकर वह अपनी स्त्री रमाको मारने लगे । तब अन्य स्त्रियोंने उसका हाथ पकड़कर रोक लिया और कहा कि स्त्री-हत्या करना बड़ा भारी निन्दित कर्म है ॥ १४५ ॥ तबार्थ विभीषण उस दिनसे अपने भाईसे दूरसे लगा । इस प्रकार लङ्कामें हनुमान्ने बड़े बड़े कौतुक किये ॥ १४६ ॥ उन राक्षसोंने भी दौड़ो-दौड़ी आकर सभामें स्थित रावणको घबराहटके कारण दूढ़े-दूढ़े शब्दोंमें अगोचरके विनाशका सब वृत्तान्त सुनाया ॥ १४७ ॥ कपिके द्वारा वनभङ्गका समाचार सुनकर कुछ रावणने उस वनके रक्षक जम्बुमालीको बुलाकर कहा— ॥ १४८ ॥ तुम बीस हजार राक्षसोंको लेकर जाओ और उस वनको पकड़ लाओ । 'तथास्तु' कहकर सीमा प्रशोकवनको

तत उत्प्लुत्य हनुमान् तोरणेन समन्ततः । निष्पिपेष क्षणादेव मञ्चकानिव युधपः ॥१५१॥
 हत्वा तान् राक्षसान् सर्वास्ततो वेगेन मारुतिः । तालवृक्षं समुत्पाट्य जघान जम्बुमालिनम् ॥१५२॥
 तान् सर्वान्निहताञ्छुत्वा पञ्चसेनापतीन्पुनः । रावणः प्रेषयामास हतास्ते तोरणेन च ॥१५३॥
 वायुपुत्रेण वेगेन लक्षराक्षससंयुताः । स तानपि मृताञ्छुत्वाऽभं पुत्रं प्रेषयन्तदा ॥१५४॥
 कपिना मारितः सोऽपि मर्सन्यो मृदुरेण च । ततः ॥ प्रेषयामास पुत्रमिद्वजितं पुनः ॥१५५॥
 ततः स रथमारुढः कोटिराक्षमवेष्टितः । पुष्टं चकार कपिना सखैरर्जः सुदुर्घरैः ॥१५६॥
 तदा पुच्छेन सैन्याय कृत्वा प्राकारमुत्तमम् । निष्पिपेष तोरणेन राक्षसान्मारुतिः क्षणात् ॥१५७॥
 ततो वृक्षं समुत्पाट्य मेघनादमताडयन् । वृक्षेण भिन्नमर्वागो मेघनादोऽविश्वदुग्धाम् ॥१५८॥
 एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा प्रार्थयामास मारुतिम् । ब्रह्मास्त्रं मानयन्मेऽद्य त्वं लङ्कां याहि रावणम् ॥१५९॥
 तथेत्यंगीचकारामो मेघनादं ययौ त्रिभिः । त्रिभिः प्राह मेघनादं क्व गतोऽद्य पराक्रमः ॥१६०॥
 गच्छ मेऽस्त्रेण तं वदुष्व पित्रुग्रं ममानय । स ब्रह्मवचनं श्रुत्वा मेघनादः पुनर्ययौ ॥१६१॥
 ब्रह्मास्त्रेणाथ वदुष्व तमानयामास रावणम् । ततो रावणवाक्येन प्रहस्तः प्राह मारुतिम् ॥१६२॥
 कस्त्वं कुतः समागतः प्रेषितः केन वा वद । ततः स रामवृत्तं हि कथयामास विस्तरात् ॥

ततस्तं बोधयामास रावणं वायुनन्दनः ॥१६३॥

विशुष्य मौल्याद्भुदि शत्रुभावनां भजस्व रामं शरणागतप्रियम् ।

सीतां पुरस्कृत्य मपुत्रवान्धवो रामं नमस्कृत्य विशुष्यसे भयात् ॥१६४॥

यावन्नगाभाः कपयो महाबला हरीन्द्रतुल्या नखदंष्ट्रयोधिनः ।

गया ॥ १५९ ॥ उसकी सेनाको देखकर कपियोंमें कुञ्जर (हार्थी)के समान वीर हनुमान्ने बहुत जोरसे गर्जन किया । तब राक्षसोंने बानरोत्तम हनुमान्को जश्नोसे मारना आरम्भ कर दिया ॥ १५० ॥ हनुमान् भी रणमें लूट पड़े और मच्छरोंकी तरह उन सेनापतियों तथा राक्षसोंको चारों ओरसे तोरणके द्वारा क्षणभरमें बीस डाला ॥ १५१ ॥ उन सबको मारनेके बाद मारुतिने वेगसे एक ताड़का वृक्ष उखाड़कर उससे जम्बुमालीको समाप्त कर दिया ॥ १५२ ॥ उत सबको मारे गये सुनकर रावणने पाँच और सेनापतियोंको भेजा । हनुमान्ने तोरण (पुन्दर) से उन्हें भी मार डाला ॥ १५३ ॥ वायुपुत्र हनुमान्ने लाखों राक्षसोंके साथ उन पाँच सेनापतियोंको भी मार डाला, यह सुनकर रावणने अपने अक्षयनामक पुत्रको भेजा ॥ १५४ ॥ तब हनुमान्ने उसको भी पुन्दरसे मार डाला । अब रावणने अपने इन्द्रजित् पुत्र मेघनादको भेजा ॥ १५५ ॥ वह एक करोड़ राक्षसोंसे वेष्टित हो तथा रथपर सवार होकर वहाँ आया । वह अपने दुर्धर्ष जस्त्रास्त्रीसे हनुमान्के साथ युद्ध करने लगा ॥ १५६ ॥ हनुमान्ने सेनाको रोकनेके लिए अपनी पूँछका ही गड़ बनाया और तोरणसे उन सबको क्षणभरमें मार डाला ॥ १५७ ॥ बादमें एक वृक्ष उखाड़कर उससे मेघनादको मारा । जिससे घायल होकर वह एक गुफामें जा चुका ॥ १५८ ॥ उस समय ब्रह्माने हनुमान्से प्रार्थना की कि तুম मेरे ब्रह्मास्त्र (ब्रह्मापाश) का मान लवों और उसमें बँधकर लंकामें रावणके पास जाओ ॥ १५९ ॥ उन्होंने 'नथास्तु' कहकर अङ्गीकार कर लिया । तब ब्रह्मा मेघनादके पास गये और कहा—हे मेघनाद ! तुम्हारा पराक्रम आज कहीं चला गया ? ॥ १६० ॥ अब मेरे पाशसे उन बानरको बाँधकर अपने पिताके पास ले जाओ । ब्रह्माके वचनको सुनकर मेघनाद चला वहाँ गया और हनुमान्को ब्रह्मापाशसे बाँधकर रावणके पास ले आया । तब रावणके कथनानुसार प्रहस्त उन्ने पूछने लगा—॥ १६१ ॥ १६२ ॥ बतला तू कौन है, कहाँसे आया है और तुझे किसने भेजा है ? तब विस्तारसे रामका वृत्तान्त सुनाकर हनुमान् रावणको समझाने लगे—॥ १६३ ॥ ओ रावण ! मूर्खतासे प्राप्त ब्रह्मापाशको तू हृदयसे निकाल दे और शरणागतोंके प्रिय रामका भजन कर । यदि सीताको आने करके पुत्र तथा बन्धुओंके जाकर रामको नमस्कार करेगा तो तू निर्भय हो जायगा ॥ १६४ ॥ सिंहके समान महाबलवान्

लंकां समाक्रम्य विनाशयन्ति ते शिवदूतं देहि रघूत्तमाय ताम् ॥१६५॥

जीवन् गमेण विमोक्ष्यसे त्वं पुनः सुरेन्द्ररपि शंकरेण ।

न देवराजाकगतो न मृत्योः पाताललोकानपि संप्रविष्टः ॥१६६॥

शुभं हितं पवित्रं च धाम्पुत्रवचः खलः । प्रतिजग्राह नैवामो प्रियमाण इवौषधिम् ॥१६७॥

इति तद्वचनं श्रुत्वा मारुति प्राह रावणः । विनिजिता येन देवास्तस्य मे वीर्यं त्वया ॥१६८॥

न दृष्टं बलासे व्यर्थं मृत्युं किञ्चिद्वदामि ते ! पञ्चाङ्गपाठकथायं पश्य ब्रह्मा कृतो मया ॥१६९॥

प्रतीहारस्त्वयं सूर्यः शशी चन्द्रधराः कुतः । वरुणोऽयं जलग्रही मार्जकः पवनस्त्वह ॥१७०॥

अग्निः कृतोऽयं रजको मालाकारः शचीपतिः । दंडपाणिर्वमश्वात्र दास्यश्वात्र सुरक्षियः ॥१७१॥

मार्तण्डो नापितथायं गणपः सगरश्चकः । नमलाद्या ग्रहाः मम मे मोषानाग्निनामने ॥१७२॥

शिशुसेवातत्परेण यष्टी देवी मया कृता । आंदोलितश्च कैलासः कुबेरोऽपि विनिजितः ॥१७३॥

कथं ममाग्रे विलपस्यभीनवत्प्लवंगमानामधमोऽसि दृष्टधीः ।

क ९४ राघः कृतमो वनेचरो निहन्मि मृगवधुतं नगधपम् ॥१७४॥

हृत्पुक्त्वा हंतुमुद्युक्तस्तं दशस्यः सभाम्भितः । उदा निवारयामास रावणं म विभीषणः ॥१७५॥

परदूतो न हन्तव्य इत्यादिवचनैस्तदा । नतः क्रोधसमाविष्टो रावणो लोकयावणः ॥१७६॥

दूतानाज्ञापयामास छेदनीयं तु लांगुलम् । तद्रावणवचः श्रुत्वा राक्षसास्ते महम्मथः ॥१७७॥

स्वायुधैश्छेदयामासुः कुठारककचादिभिः । आयुधान्येव अतश्चस्तरपुच्छाघातमन्ववः ॥१७८॥

बभूवुः पुनश्चूर्णानि तस्य रोम्णोऽपि न व्यथा । तन्निदय दशस्यः मारुतिं वाक्पथवर्षीत् ॥१७९॥

■ वीरा गोपयन्त्यत्र स्वीयं मृत्युमपि कश्चित् । अतस्त्वं वद पुच्छस्य येन घातोऽद्य ते भवेत् ॥१८०॥

और नहीं सया दाँतोसे स्छेदनेवाले वानर आकर लंकामें प्रवेश नहीं करते, उसके पड़ने ही से संताको ले जाकर रामको दे दे ॥ १६५ ॥ अब तुझे राम जीवित नहीं छोड़ेंगे । चाहे तेरी रक्षा सुरेन्द्र करे, चाहे शंकर करे, चाहे तू अपना प्राण बचानेके लिये देवराजकी शरणमें जा । चाहे यमलोक पाताललोकमें जाकर छिप, चाहे कुछ ले ॥ १६६ ॥ किन्तु दुष्ट रावणने हनुमानकी शुभ, हितकारी तथा पवित्र बातको नहीं मानी । उसे मुमूर्षु पुरुष औषधि नहीं होता ॥ १६७ ॥ रावणने हनुमानकी बात सुनकर कहा कि मेने सब देवताओंको जीत लिया है । मेरे पुरोधार्यको तू नहीं जानता । इसीलिये व्यर्थ ब्रबवास कर रहा है । सुन मैं तुझे कुछ सुनाता हूँ । देख, ब्रह्माको मैंने पञ्चाङ्गपाठक बना दिया ॥ १६८ ॥ १६९ ॥ नर्कको प्रतिहारी, वन्दमाको छत्रधारी, वरुणको जल भरनेवाला, पवनको झाड़ू लगानेवाला, अग्निको घोड़ी, शचीपति इन्द्रको भालो, दण्डधारी यमराजको द्वारपाल, देवताओंकी स्त्रियोंको दासिये, मार्तण्डको नाई, गणपतिको गर्घोका रक्षक सर्वेस और मंगल-वृक्ष आदि सातों ग्रहोंको मैंने अपने आसनकी तीड़ियें बना लिया । पशु देवी कारमायनीको मैंने वनकोंकी छेलानेवाली घाई बनाया है । कैलासको मैंने ही हिलाया था । कुबेरको भी मैंने जीत लिया ॥ १७०-१७३ ॥ हे प्लवङ्गमोमें अधम वानर ! तू मेरे आगे क्यों वृथा प्रलाप करता है ? बड़ा ही मूर्ख दाँवता है । अरे ! वनवासी राम मेरे सामने पीछा है । मनुष्योंमें तो रामको तो सुश्रेष्ठ सहित में मार ही डालूँगा ॥ १७४ ॥ इतना कहकर दशानन रावण बीच सभामें उनको मारने दीड़ा । विभीषणने उसको रोककर कहा कि दूसरेके दूतको मारना अन्याय है । पश्चात् लोगोंको छलानेवाले रावणने शोक करके सिपाहियोंको आज्ञा कि इस वानरकी पूँछ काट डालो । रावणकी आज्ञा पाकर हजारों राक्षस अपने-अपने कुल्हाड़ों और शकच (भारा) आदि हथियारोंसे उनको पूँछ काटने लगे । इसी समय हनुमानजीने तनिक अपनी पूँछ हिला दी । उसके हिलनेमात्रसे उन हथियारोंके सँकड़ों टुकड़े हो कर भिर पड़े ॥ १७५-१७८ ॥ वे चूर-चूर हो गये, परन्तु हनुमानजीका काल भी बाँका नहीं हुआ । यह देखकर दशानन मारुतिसँ कहने लगा - ॥ १७९ ॥ धीर पुरुष अपनी मृत्युके उपायको भी छिपाकर नहीं रखते । इसलिए साफ-साफ बता दे कि तेरी पूँछ किस उपायसे नष्ट होगी ॥ १८० ॥

तदाऽमरत्वं स्वं प्राह कपिस्तच्च मृषेति सः । मत्वा दशस्यस्तं प्राह पुनः सत्यं वदेति च ॥१८१॥
 तदा स मारुतिस्तूष्णीं क्षणं चित्ते व्यचिंतयत् । मत्पितुश्च सखा वह्निस्तस्मान्नास्ति भयं मम ॥१८२॥
 तस्मान्पुच्छं दीपयित्वा लंकां दग्धां करोम्यहम् । ततस्तं रावणं प्राह मारुतिः सदसि स्थितः ॥१८३॥
 पुच्छं मे वह्निना दग्धं भविष्यति न संशयः । तस्यैव वचनं श्रुत्वा गवणो निजकिंकरान् ॥१८४॥
 आज्ञापयामास पुच्छं दीपयित्वा प्रयत्नतः । लङ्कायां दर्शनीयोऽयं दृष्ट्वेनं मञ्जयं भवेत् ॥१८५॥
 सर्वेषां मद्रिपूणां च तथा चक्रस्त्वगन्विताः । तैलार्कैः क्षणपटुं च राक्षसा वसनैरपि ॥१८६॥
 पुच्छं संवेष्टयामासुस्तदा पुच्छं व्यवर्द्धत । ततो वसनदृष्टात्तु वस्त्रकोशान्विलुण्ठ्य च ॥१८७॥
 तत्पुच्छं वेष्टयामासुर्गृह्यस्त्रिनेकशः । ततः पुरुषनारीणां लंकास्थानां नृपाञ्चया ॥१८८॥
 बलादाच्छिद्य वस्त्राणि चक्रुः सर्वान्दिगम्यगन् । ततः शय्यामण्डपांश्च कंचुकीः कंचुकानपि ॥१८९॥
 पौराणां राजगोहाञ्च ते वस्त्राणि समानयन् । दृष्ट्वाऽपूतिं तु पुच्छस्य ममास्थानां नृपस्य च ॥१९०॥
 वस्त्रमात्रैः समस्तैश्च लांगूलं वेष्टयंस्तदा । ध्वजोष्णीपपताकाभिविंश्रणां वसनैरपि ॥१९१॥
 मन्दोदर्यादिवस्त्रैश्च भिक्षणां वसनादिभिः । वेष्टयन्कपिलांगूलं ततः सीतां ययुश्चराः ॥१९२॥
 तज्जहारवा मारुतिश्चापि पुच्छपूतिं प्रदर्शयत् । तदा कोलहलश्चापीदृश्वार्थं प्रतिमथनि ॥१९३॥
 तैलार्थं च घृतार्थं च स्नेहपाशं ममानयन् । नार्सीमिश्रायां दीपार्थं शिशूनामपि नो घृतम् ॥१९४॥
 आयन्स्त्रीपुरुषा नग्रा लज्जा नार्सीन्परस्परम् । ततस्तदीपयामासुर्वह्निना भस्त्रकंपनैः ॥१९५॥
 प्रदीप्तं नाभनस्पुच्छं ततो मारुतिरब्रवीन् । यदा स्वीयमुखेनायं लज्जमानोऽयं रावणः ॥१९६॥
 वह्निं प्रज्वालयेद्य तदा ज्वाला भविष्यति । तन्मारुतिवचः श्रुत्वा ययावप्रे दशाननः ॥१९७॥
 यावत्फुत्कारयामास तत्पुच्छानलमाननैः । तावत्तच्छिरजाः श्मश्रुकूर्चा दग्धा तदाऽभवन् ॥१९८॥

तिसपर जब हनुमान्ने अपनेको अमर बतलाया तो भी बातको सच न मानकर रावणने फिरसे कहा कि सब-सब बतला ॥ १८१ ॥ तब मारुति मनमें विचारने लगे कि अग्नि मेरे पिताके मित्र है । इसलिये मुझे डरनेकी कोई बात नहीं है ॥ १८२ ॥ इसलिए अपनी पूँछ जलवाकर मैं लङ्काको ही जला डालूँगा । यह विचारकर समामें स्थित रावणसे हनुमान्ने कहा- ॥ १८३ ॥ मेरी पूँछ अग्निसे जल सकती है, यह पक्की बात है । यह सुनकर रावणने अपने नौकरोंको बुलाकर आज्ञा दी कि प्रयत्नपूर्वक इसकी पूँछ जलाकर इसे नगरभरमें घुमाकर दिखला दो । जिससे कि समस्त मन्त्रियोंको मेरा डर लगने लगे । नौकरोंने भी वैसा ही किया और शीघ्र ही राक्षसोंने सन तथा वस्त्रोंको तेलमें भिगोकर पूँछपर लपेट दिया । वस्त्र जब कुछ कम पड़ गये, तब बाजारके गोदामोंसे कपड़े चुराकर घरके वस्त्र लाकर और रावणको आज्ञासे उन्हींसे लंकाके भग्नाश्रियोंके वस्त्र छीनकर हनुमान्को पूँछमें लपेटा । ऐसा करके उन्हीं सारे नगरके लोगोंको नंगा कर दिया । तथापि जब पूँछ नहीं ठँकी तो शय्याके मण्डप (मशहरी), कंचुकियोंके बाँगे, पुरवासियों तथा राजाके प्दोंके वस्त्र लाकर लपेट दिये । तिसपर भी जब पूरा नहीं पड़ा तो सभासदों तथा राजाके वस्त्र लाकर लपेट दिये गये । अजार्थ तथा पताकाएँ ला-लाकर लपेटो गयी । रानी मन्दोदरी, साधु-महारमाओं भिक्षुओंके वस्त्र उतार-उतारकर लपेट दिये और सीताकी भी उतारनेके लिए कुछ दूत दौड़े ॥ १८४-१८५ ॥ यह देखकर हनुमान्ने पूँछ बढ़ाना बन्द कर दिया । तब प्रत्येक घरमें तेल आदिके लिए कोलाहल होने लगा । वे देख्य सबके यहाँका घी तथा तेल उड़ा लाये । वहाँ तक कि किसी घरमें दीपकके लिए तेल और बत्तियोंके लिए भी घी नहीं बच पाया ॥ १८६ ॥ १८७ ॥ समस्त स्त्री-पुरुषोंको लज्जा छाड़कर नङ्गा होना पड़ा । अब वे हनुमान्की पूँछ घोंकनासे घोंककर अग्निके द्वारा जलाने लगे ॥ १८८ ॥ परन्तु अग्नि प्रदीप्त नहीं हुई । उस समय हनुमान्ने कहा कि यदि लज्जित रावण स्वयं अपने मुखसे फूँककर जलाये तो अग्नि बन सकती है । हनुमान्की बात सुनकर रावण तुरन्त आगे बढ़ा ॥ १८९ ॥ १९० ॥ ज्यों ही उसने अपने मुखसे अग्निको फूँकना प्रारम्भ किया, ज्यों ही उसके सिरोंके बाल तथा दाढ़ी-भूँछ जल गयी ॥ १९१ ॥ रावण जब अपने

तदा विशङ्कुर्जैः स्वीयमुखोपरि दक्षाननः । ताडयद्वह्निशान्यर्थं जहृ राक्षसास्तदा ॥१९९॥
 हास्य चकार हनुमास्तदा क्रुद्धः स रावणः । नीयतां मर्कटशायमिति दूतान्वचोऽब्रवीत् ॥२००॥
 ततो दूताः कपिं निन्युर्लङ्कायां ते समंततः । शृङ्खलाभिर्दृढं बद्ध्वा भ्रामयामासुरादरात् ॥२०१॥
 बाधघोषदीर्घशब्दैर्वेष्टितं शस्त्रधारिभिः । एवं दिवा सर्वलङ्कां दृष्टोद्गीय स मारुतिः ॥२०२॥
 घृत्वाऽतिसूक्ष्मरूपं तु दृढबंधविनिर्गतः । यथास्थानं ब्रह्मणोऽस्य तद्ययौ पूर्वमेव हि ॥२०३॥
 ततः पश्चिमदिक्प्रस्थं लंकाद्वारं समानयत् । निष्कास्य तोरणं द्वाजघान द्वाररक्षकान् ॥२०४॥
 इत्वा स्वरक्षकांश्चापि प्रासादेषु समंततः । ददावग्निं स्वपुच्छेन लङ्कां दग्धां चकार सः ॥२०५॥
 तदा कोलाहलशामील्लंकायाः प्रदिग्धवने ।

निद्रितानपि बालांश्च त्यक्त्वा नार्यो गृहाद्वहिः ॥२०६॥

दुद्रुवुः प्राणरक्षार्थं दग्धनक्षालकास्तदा । क्रमेण रावणादीनां प्रासादान् ज्वालयन् कविः ॥२०७॥
 तां रावणमयीं दग्ध्वा जनान् पुच्छेन ताडयत् । अभवन् राक्षसा दग्धा मुखवायानि चक्रिरे ॥२०८॥
 तदा स रावणः क्रुद्धो राक्षसैर्दक्षकोटिभिः । ययौ योद्धुं मारुतिना तान् सर्वान् तोरणेन सः ॥२०९॥
 घातयामास पुच्छेन बद्ध्वा चैकत्र कोटिभ्यः । तथैव लीलया पुच्छं रावणस्य च मस्तके ॥२१०॥
 मंतांश्च तपत्रचं दग्धामकरोन्मारुतिः क्षणान् । तत्पुच्छं रक्षिना दग्धो मूर्छितोऽभूदक्षाननः ॥२११॥
 कपिः श्रीरामकीर्त्यर्थं रावणं न जघान सः । पतिनं पितरं दृष्ट्वा दृष्ट्वा दग्धान्स्वराक्षमान् ॥२१२॥
 आत्मनः प्राणरक्षार्थमिन्द्रजिह्विवरं ययौ । कपिलक्ष्मणग्रीन्यर्थं मेघनादं जघान न ॥२१३॥
 एवं सर्वान्विनिजित्य गोपुराद्वालमंडिताम् । दग्ध्वा लङ्कां सविस्वागं ययौ मागमुत्तमम् ॥२१४॥

जैसे ही हाथोंसे आग बुझानेके लिए अपने मुखोंपर [] धपड़ मारने लगा । तब राक्षस जोरोंसे तिलतिललाकर हँस पड़े ॥ १९९ ॥ हनुमान भी हँसने लगे । यह देखकर रावण बड़ा क्रुद्ध हुआ और आज्ञा दी कि [] दुष्ट वानरको पकड़ ले आओ ॥ २०० ॥ दूत लोग हनुमान्‌को बड़ी मजबूत साँकलोसे बाँधकर ले गये और नगरमें धारों ओर घुमाया ॥ २०१ ॥ घुमाते समय उनके साथ बड़े बड़े दाजे वज रहे थे । बहुतसे बालक तथा गस्त्रधारी लोग उनको घेरे हुए थे । इस प्रकार दिनमें सारी लंका देखकर सायंकालके समय हनुमान् सूक्ष्म [] धारण करके [] बन्धनमेंसे निकल गये और कूदकर दरवाजेपर जा खड़े । उसके पूर्व ही ब्रह्मपाश भी अपने स्थानपर लौट गया ॥ २०२ ॥ २०३ ॥ वहाँसे चलकर [] पश्चिमी द्वारपर आये । वहाँ फाटकका खम्भा उखाड़कर उससे समस्त द्वारपालोंको मार डाला ॥ २०४ ॥ अनेक राक्षक राक्षसोंको भी मार गिराया और अपना पूँछकी अग्निसे सब महलोंमें आग लगाकर सारी लंकाको जला दिया ॥ २०५ ॥ उस समय लंकाके प्रत्येक घरमें बड़ा भारी कोलाहल होने लगा । स्त्रियों अपने बालकोंको सोते हुए छोड़कर ही घरोंसे बाहर निकल पड़ीं ॥ २०६ ॥ उनके वस्त्रों तथा बालोंमें आग लगी हुई थी और वे अपने प्राण बचानेके लिए इधर-उधर भागने लगीं । हनुमान्ने क्रमशः आगे जाकर रावणके महलोंमें भी आग लगा दी ॥ २०७ ॥ रावणकी सभाको जलाकर वहाँके राक्षसोंको अपनी पूँछसे खूब पीटा और सब राक्षस जलने लगे अनेक प्रकारके शब्द करके चिल्लाते लगे ॥ २०८ ॥ तब रावण क्रुद्ध हो दस करोड़ राक्षसोंको साथ लेकर हनुमान्‌से लड़नेके लिए गया । हनुमान्ने उन सबको उसी लोहेके खंभेसे मार डाला और करोड़ोंको एक साथ पूँछमें बाँधकर लीलापूर्वक रावणके सिरपर दे मारा ॥ २०९ ॥ २१० ॥ इस प्रकार मारनेसे उसकी चमड़ी क्षणभरमें अल उठी । उनकी पूँछकी अग्निसे जलकर दक्षानन मूर्छित हो गया ॥ २११ ॥ परन्तु हनुमान्ने यह सोचकर उसको जानसे नहीं मारा कि यदि रामके हाथसे मारा [] तो उनका यश बढ़ेगा । पिताको मिरा हुआ तथा अपने राक्षसोंको जलते देख इन्द्रजीत मेघनाद अपने प्राणोंकी रक्षाके लिए एक गुफामें घुस गया । हनुमान्ने लक्ष्मणकी प्रसन्नताके लिए उसको भी जीवित छोड़ दिया—मार नहीं ॥ २१२ ॥ २१३ ॥ इस तरह सबको धोखे [] पुरद्वार और अंतरियोंसे मंडित विशाल लंकाको जलाकर हनुमान् उत्तम

तटे पुच्छं स्थापयित्वा जलजान् रक्षयन् कपिः । तत्तरंगैः शीतलं स्वं कृत्वा लांगूलमुषमम् ॥२१५॥
 निजकण्ठाच्च धूम्रेण श्लेष्माणं सागरेऽक्षिपत् । ततः कपिः क्षणं तूष्णीं स्थित्वा साक्षां विचिन्त्य च ॥२१६॥
 दाहयामास हृदये मग्धा दग्धां विदेहजाम् । आत्मानं गर्हयामास स्थित्वा सागररोधसि ॥२१७॥
 धिग्धिङ्मां दानरं मूढं स्वामिपत्न्याश्च दाहकम् । निश्चयनं मया दग्धा जानकी रामलोषदा ॥२१८॥
 ■ विचारः कृतः पूर्वं लङ्कादाहेऽविवेकिना । आत्मघातं करोम्यद्य पुच्छवधेन चात्र वै ॥२१९॥
 किं रामलोपदं स्वान्यं दक्षयेऽद्य विगर्हितम् । रामस्तु श्रम्या मीनाया घृचं शीघ्रं मरिष्यति ॥२२०॥
 तदुदुःखेन स सौमित्रिर्मरिष्यति न संशयः । तयोदुःखेन सुग्रीवस्तदर्थं सा च वै रुमा ॥२२१॥
 तं श्रुत्वा सोऽङ्गदश्चापि मरिष्यत्यतिलालिनः । ताराऽपि पुत्रशोकेन नृपे नष्टेऽव वानराः ॥२२२॥
 प्राप्ते पंचदशे वर्षे भरतोऽपि मरिष्यति । रामदुःखेन कामन्या सुमित्रा पुत्रदुःखतः ॥२२३॥
 तथा सा कंकेयी दुष्टा सर्वानर्थकरी तु या । शत्रुघ्नो बभूव दुःखेन रामार्थं मुनयश्च ते ॥२२४॥
 राघवा रामनकाश्च मंत्रिणः सुहृदस्तथा । सीतापितुः कुलं सर्वे कामन्याः पितुः कुलम् ॥२२५॥
 सुमित्रायाश्च कंकेय्यास्तेषां संबन्धिनस्तथा । नष्टं राजकुले जाते प्रजा स्वेच्छानुवर्तिना ॥२२६॥
 मरिष्यति न संदेहस्ततः स्थावरजंगमम् । भूमिस्थाः प्राणिनः सर्वे यदा नष्टास्तदा दिवि ॥२२७॥
 हव्यकव्यविहीनास्ते देशा नाशं गता इव । अकाले प्रलयं दृष्ट्वा नष्टां सृष्टिं स्वनिविताः ॥२२८॥
 पश्चात्तापेन धाताऽपि मरिष्यति न संशयः । एवं क्रमेण ब्रह्माऽपि नश्यत्येव न संशयः ॥२२९॥
 एतद्वातनिमित्तोऽहं विधिना निर्मितः पुरा । इत्युक्तवनं सेदेन देहत्यागार्थमुद्यतम् ॥२३०॥
 दृष्ट्वा साऽऽकाशजा वाणी बभूव बहुहर्षदा । मा कुरुष्व कपे संदं ■ दग्धा जानकी शुभा ॥२३१॥

सागरके किनारे गये ॥ २१४ ॥ वहाँ लम्बी पूछके बड़े भागकी किनारेपर रखकर जलजन्तुओंको बचाते हुए
 हनुमान्ने समुद्रकी तरङ्गोंसे अपनी दीर्घ तथा उत्तम पूछको तोल लिया ॥ २१५ ॥ वहाँ उन्होंने कुछसे गलेमें
 उसे कफका भी त्याग किया । तदनन्तर वे क्षणभर शान्त रहे । बादमें वे सीताका सोच तथा उनको जल गयी
 समझकर ओर-ओरसे छाती पीटने लगे । समुद्रतटपर खड़े होकर उन्होंने अपनी निन्दा की ॥ २१६ ॥ २१७ ॥
 स्वामीकी स्त्री सीताको जलानेवाले मुझ सरीखे मूर्ख जानरको तारम्भार विवकार है । रामको संतोष देनेवाली
 जानकीको मैंने धोखेमें जला दिया ॥ २१८ ॥ अविवेकी मैंने लङ्का जलानेसे पहिले यह विचार नहीं किया ।
 ■ मैं गलेमें पूछ बांधकर आत्मघात कर लूँगा ॥ २१९ ॥ मैं अब अपने इस निन्दित मुखको कैसे दिखाऊँगा ।
 राम सीताका यह हाल सुनते ही प्राण त्याग देंगे ॥ २२० ॥ उनके दुःखसे दुःखित सुमित्रापुत्र लक्ष्मण भी अवश्य
 मर जायेंगे । उन दानोंके दुःखसे सुग्रीव और सुग्रीवके दुःखसे उनका स्त्री रुमा भी प्राण त्याग देगी ॥ २२१ ॥
 यह समाचार सुननेके साथ ही अत्यन्त प्यारसे पला हुआ अंगद भी प्राण खोद देगा । तब पुत्रशोकसे
 दुःख और राजाके वियोगसे सब वानर भी प्राण दे देंगे ॥ २२२ ॥ पन्द्रह वर्ष दौत जानेपर ■ भी मर
 जायेंगे । रामके वियोगसे कौसल्या, पुत्रवियोगसे सुमित्रा तथा भरतके वियोगसे यह अनर्थकारिणी ■ दुष्ट
 कंकेया भी मर जायगी । भाईके दुःखसे शत्रुघ्न, रामके दुःखसे मुनिलोग एवं रघुवंशी रामके भक्त मन्त्रिजन
 तथा मित्रवर्ग भी प्राण दे देंगे । सीताके पिता जनकका कुल, कौसल्याके पिताका कुल, सुमित्राके पिताका
 कुल, कंकेयीके पिताका कुल तथा उनके भी सगे-सम्बन्धी लोग प्राण त्याग देंगे । राजकुल नष्ट हो जानेपर ■
 स्वच्छाचारिणी हो जायगी ॥ २२३-२२६ ॥ तब वह निःसन्देह स्थावर-जङ्गम सभी प्राणियोंका नाश करने
 लगे । जब पृथ्वीपर सब प्राणी मार डाले जायेंगे । तब स्वर्गलोकवासी देवता और पितर भी हव्य-कव्यस
 होकर मृतक सरीखे हो जायेंगे । असमयका प्रलय तथा अपनी रची सृष्टिका विनाश देखकर पश्चात्तापसे
 निःसन्देह विधाता भी मर जायगा । ■ प्रकार क्रमशः समस्त ब्रह्माण्ड ही नष्ट हो जायगा । इसमें सन्देह
 नहीं है ॥ २२७-२२९ ॥ ब्रह्माजीने इनके विनाशका कारण मुझे ही बनाया । हनुमान् ऐसा सेवपूर्वक कहने
 लगे और मरनेके लिए उद्यत हो गये ॥ २३० ॥ उसी समय यह आनन्ददायिनी आकाशवाणी हुई ■

आम्मानं दर्शयित्वा तां शीघ्रं गच्छ रघूद्वहम् । तां वाणीं हनुमान्छुत्वा बभूव हर्षपूर्वितः ॥२३२॥
 द्रुतं तां जानकीं द्रष्टुमशोकवनितां गयी । तावद्दर्शं लंकायां सुवर्णवेष्टितां भुवम् ॥२३३॥
 तत्कारणं वदाम्यद्य तच्छृणुष्व गिरीन्द्रजे । आसीद्विरिवरो देवि त्रिकूट इति विश्रुतः ॥२३४॥
 क्षीरोदेनाश्रुतः श्रोमान्योजनायुतमुच्छ्रितः । तावता विस्तृतः पर्यङ्कं त्रिभिः शृंगैः पयोनिधिम् २३५
 दिशः खं रोचयन्मास्ते रौप्यायसहिरण्यवयवैः । तस्य द्रोण्यां भगवतो वरुणस्य महात्मनः ॥२३६॥
 उद्यानमृतमन्नाम आक्रीडं सुरयोपिताम् । तस्मिन्सरः सुविपुलं लसत्काचिनपंकजम् ॥२३७॥
 कुमुदोत्पलकङ्कहारधृतपत्रश्रियोजितम् । नैतत्कृतघ्नाः पश्यन्ति न वृष्टंसा न नास्तिकाः ॥२३८॥
 तस्मिन्सरसि दृष्टान्मा विरूपोऽन्तर्जलाश्रयः । आसीद्ग्राहो गजेन्द्राणां वराधर्षो महाबलः ॥२३९॥
 दंतोज्ज्वलमुखः कदाचिद्रजस्रयुग्मपः । आजगाम तृषाकातः करंशुपरिवारितः ॥२४०॥
 दूषितः पानकामोऽयमवतीर्णश्च तत् सरः । पिबतस्तस्य तत्तोयं ग्राहस्तमुपपद्यत ॥२४१॥
 सुलीनः पंकजपूते यूथमव्यगतः करी । गृहीतस्तेन सैद्रेण ग्राहणातिबलीयसा ॥

गजो आकर्षते तीरं ग्राह आकर्षते जलम् ॥२४२॥

पश्यन्तीनां करेणूनां कोशलीनां सुदारुणम् । नीपते पंकजवने ग्राहेणाव्यक्तमूर्तिनः ॥२४३॥

तथाऽऽतुरं पृथपतिं करंशुषो विकृष्यमाणं तरसा बलीयसा ।

विचुकुशुर्दानाधयोऽपरं गजः पार्थिवग्राहस्तारयितुं न चाक्षकम् ॥२४४॥

तयोर्पुंश्चमभूदोरं दिश्यवर्षसद्वसकम् । वारुणैः संयतः पार्श्वैर्निप्रयत्नगतिः कुतः ॥२४५॥

वेष्टयमानः सुषोरंस्तु पार्श्वैर्नागैर्दृष्टया । विस्फूर्जितमहाशक्तिर्विक्रान्तश्च महारवान् ॥२४६॥

कपिश्रेष्ठ ! वेद न करो । वस्याणकारिणीं आमकाजो नहीं जलो है ॥ २३१ ॥ उनसे मिलकर तुम शीघ्र रघूद्वह
 रामके आओ । उस गगनवाणीको सुनकर हनुमान् बहुत प्रसन्न हुए ॥ २३२ ॥ जानकीको देखनेके
 लिए शीघ्र अशोकवनमें गये । वहाँ जाकर हनुमान्ने कुछ सुवर्णवेष्टित घरती देखी ॥ २३३ ॥ हे गिरीन्द्रजे !
 कारण बताता हूँ, मुने-हे देवि । त्रिकूट नामसे प्रसिद्ध एक श्रेष्ठ गर्वत था ॥ २३४ ॥ वह चारों
 ओर क्षीरसागरसे घिरा हुआ सुन्दर शोभायुक्त तथा दस हजार योजन ऊँचा था । उतना ही गोलाईमें
 भी था । चाँदी, लोहे और सोनेके तौन शिखरोंसे दसों दिशाओं तथा आकाशको व्याप्त किये हुए था ।
 उसके एक भागमें महारामा भगवान् वरुणका वरुणान् नामके देवस्त्रियोंका श्रीकृष्णान एवं उद्यान था ।
 उसमें विशाल सुवर्णकमलोंसे सुशोभित एक तालाब था ॥ २३५-२३७ ॥ जो कि कुँइयाँ, लाल कमल, श्वेत
 कमल जैसे कमलोंसे अतीव सुन्दर प्रतीत होता था । उनको वृक्ष, कर और नास्तिक लोग
 नहीं देख सकते थे ॥ २३८ ॥ उसी जलाशयमें छिपा हुआ महाबलवान्, बड़ी कठिनाईसे पकड़ा जानेवाला
 तथा गजेन्द्रोंको भी यस लेनेवाला एक दुष्ट भगरसञ्चल रहता था ॥ २३९ ॥ किसी समय श्वेत दंत तथा
 श्वेत मुखवाला गजोंमें मुख्य एक गजराज प्याससे व्याकुल होकर हविनियोंसे घिरा हुआ वहाँ आया ॥ २४० ॥
 वह पानी पीनेकी इच्छासे ज्यों ही पानीमें उतरा और पानी पीने लगा, त्यों ही ग्राह उसके पास जा पहुँचा
 ॥ २४१ ॥ कमलवनसे डंके तथा हाथियोंके झुण्डके बीचमें स्थित उस हाथीको उस भयानक तथा अति बलवान्
 पाहुने पकड़ लिया ॥ २४२ ॥ अब वह हाथी ग्राहको तीरकी ओर खींचने लगा । उसके सावको हविनियों
 बेलती और दुःखसे चिल्लाती ही रह गई और जलमें छिपा हुआ ग्राह हाथीको कमलके वनमें दूर खींच गया
 ॥ २४३ ॥ पचराये हुए उस पृथपति गजको ग्राह बलपूर्वक वेगसे जलमें खींच रहा था, तब हविनियें
 भलीन मुखसे शब्दन करने लगीं और दूसरे तथा पीछे रहनेवाले हाथी सीन होकर चिल्लाने लगे, पर कोई उन्हें
 नहीं सका ॥ २४४ ॥ उस गज तथा ग्राह दोनोंसे देवताओंके हजार वर्ष तक घोर युद्ध होता रहा ।
 भयराज जैसे वरुणपाक तथा अति भयानक एवं दृढ़ नागपातमें बँधकर सर्वथा असमर्थ हो
 । तब वर्ष तथा महाशक्तितम्पत्र होता हुआ भी वह गजराज चिल्लाने तथा महान् शीतल

व्यधितः ॥ निरुत्साहो गृहीतो धोरकर्मणा । परामापदमाश्रनो मनमाडवितयद्वरिम् ॥२४७॥
 एकाग्रो निगृहीतात्मा विशुद्धेनांतरात्मना । प्रगृह्य पुष्कराग्रेण कांचनं कमलोत्तमम् ॥२४८॥
 नैवेद्यं मनसा ध्यात्वा पूजयित्वा जनार्दनम् । आपद्विभोक्षमन्त्रिच्छन्नाजः स्तोत्रमुदीरयत् ॥२४९॥
 तत्कृतेन स्तवैर्नैव सुप्रीतः परमेश्वरः । आरुह्य गरुडं विष्णुराजगाम सुरोत्तमः ॥२५०॥
 ग्राहग्रस्तं गजेन्द्रं च तं ग्राहं च जलाशयात् । उज्ज्वलपद्मेवात्मा तरसा मधुसूदनः ॥२५१॥
 जलस्थं दारयामास नर्तकचक्रेण माधवः । मोचयामास नागैर्दं पाशैर्मयः शरणागतम् ॥२५२॥
 आसीद्भजः पुरा पांडव इन्द्रद्युम्न इति श्रुतः । एकदा स तपोनिष्ठो बभूव ध्यानतत्परः ॥२५३॥
 यदुच्छ्रया ययौ तत्र कुम्भजन्मा नृपाधिकम् । ध्यानस्थः स नृपो नैव मुनिं वेद समागतम् ॥२५४॥
 ददौ शापं मुनिर्भूष दृष्ट्वात्मानं तु नोन्वितम् । तपोमदेनमभ्यासस्त्वयश्मान्नोत्थितोऽपि माम् ॥२५५॥
 अतो भव गजो भ्रातो मदेन विपिनेऽचिरात् । तं श्रुत्वा नृपतिः शापं तं प्रणम्य पुनः पुनः ॥२५६॥
 विशापं प्रार्थयामास मुनिः प्राह हरेः कृपया । भविष्यति त्रिमुक्तिम्ने यदा ग्राहो धरिष्यति ॥२५७॥
 पुरा तदैव गन्धर्वस्त्वप्सरोगणसेवितः । सरस्यस्मिजलक्रीडां कर्तुं हूहः समागतः ॥२५८॥
 सरस्यधर्मर्पणार्थं तं दृष्ट्वा स देवलं चिरम् । मंस्थितं च बहिः कर्तुं गन्धर्वः स उपस्थितयत् ॥२५९॥
 स्वयं भूत्वा जले लीनस्तत्पादौ स्वकरेण हि दृढं धृत्वा कपयंतं ज्ञात्वा तमश्रयन्मुनिः ॥२६०॥
 ग्राहवन्मे घूर्तो पादौ तस्माद्ग्राहो भवात्र वै । तेन मंत्रार्थितः प्राह हरिस्त्वामुदरिष्यति ॥२६१॥
 एवं तौ पूर्वशापेन पतितावतिसंकटे । हरिरुद्धृत्य तौ ताभ्यां ययौ स्वीयस्थलं पुनः ॥२६२॥

करने लगा ॥ २४५ ॥ २४६ ॥ उस धीर पराक्रमी ग्राहसे प्रभु होकर गजराज दुःखी और निरुत्साह हो गया ।
 उस समय ॥ प्रकारकी परम विपत्तिकी प्राप्त होकर वह श्रीहनुका चिन्तन करने लगा ॥ २४७ ॥ तदनन्तर
 इन्द्रियोंका निग्रह करके उसने एकाग्र मन ॥ जुद्ध अन्तःकरणसे मृदुर्णकें समान उत्तम एक कमलपुष्प
 तूँड़के अग्रभागसे पकड़कर शान्त भावसे मन ही मन जनार्दन भगवान्का आवाहन, पूजन, ध्यान तथा नैवेद्य
 अर्पण करके विपत्तिसे छुटकारा पानेके हेतु स्तोत्रपाठ किया ॥ २४८ ॥ २४९ ॥ उसकी स्तुतिसे प्रसन्न परमे-
 श्वर सुरोत्तम भगवान् विष्णु स्वयं गरुडपर सवार होकर वहाँ आये ॥ २५० ॥ उन अप्रमेय आत्मा मधुसूदन
 भगवान्ने उस ग्राह तथा गजेन्द्रका जलसे लीज ही बाहर निकाला ॥ २५१ ॥ उन्होंने जलमें रहनेवाले
 ग्राहको अपने चक्रसे मार डाला और शरणागत गजराजको पाशोंसे छुड़ा दिया ॥ २५२ ॥ वह हाथी पूर्व
 जन्ममें पांडववंशी इन्द्रद्युम्न नामका राजा था । एक बार उसने ध्यान करके ॥ करना आरम्भ किया
 ॥ २५३ ॥ जब वह ॥ कर रहा था, तभी उसके पास अगस्त्य मुनि एकाएक ॥ पहुँचे । ध्यानमें स्थित
 राजाको मुनिके आनेका कुछ पता ॥ था । २५४ ॥ मुनिने अपने आनेपर राजाको खड़े होते न देखकर
 शाप दे दिया कि तपके घमण्डसे मेरे आनेपर भी तुम खड़े नहीं हुए ॥ २५५ ॥ इसलिए भीषण ही तुम वनमें
 मंदोन्मत्त हाथी हो जाओ । यह सुनकर राजा इन्द्रद्युम्न बारम्बार मुनिको प्रणाम करके शापसे मुक्त
 करनेकी प्रार्थना करने लगा । तब मुनिने कहा कि तुमको ग्राह (मगरमच्छ) पकड़ेगा, तब प्रभुके हाथसे
 तुम्हारी मुक्ति होगी ॥ २५६ ॥ २५७ ॥ उन्हीं दिनों हूह नामक गन्धर्व विशिष्ट अप्सराओंको साथ लेकर ॥
 तालाबमें जलक्रीडा करनेके लिए आया ॥ २५८ ॥ उसने देखा कि ॥ सरोवरके जलमें खड़े होकर देवल
 मुनि बहुत देरसे अघमर्षण अर्थात् सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाले मन्त्रका अप कर रहे ॥ और अभी बाहर
 निकलना नहीं चाहते । तब वह उनको बाहर निकालनेका उपाय सोचने लगा ॥ २५९ ॥ तदनन्तर स्वयं
 जलमें डुबकी मारकर वह अपने हाथसे उनके पाँवोंको पकड़कर खींचने लगा । यह देखकर मुनि उसको
 पहिचान गये और शाप दिया-॥ २६० ॥ तूने ग्राहकी तरह मेरे पाँव पकड़े हैं, इसलिए तू यहाँपर मगर-
 मच्छ बनेगा । पुनः गन्धर्वके प्रार्थना करनेपर मुनिने कहा कि श्रीहरि तेरा इस शापसे उद्धार करेंगे ॥ २६१ ॥
 इस प्रकार पूर्व जन्ममें प्राप्त शापके कारण अस्थिर भीषण संकटमें पड़े हुए उन गव-ग्राहका भगवान्ने उद्धार

सुचितेनाथ ताक्ष्येण प्रायितः प्राह तं हरिः । गच्छ भयस्व पतिने गजपादकलेवरे ॥२६३॥
 ययौ ताक्ष्यः सरः पुण्यं तावद्भ्रमंगमधराट् । कलेवरांतिक प्राप्तस्तं निहत्य खगेश्वरः ॥२६॥
 पदेनैकेन भ्रमंगमपरेण कलेवरं । धृत्वा ताक्ष्यः शुद्धदेशं मधुगार्थमपश्यत् ॥२६५॥
 तावत्स्थीरार्णवे जायूनदधुधं समीक्ष्य सः । आयामविस्तरोच्चैस्तु सदस्ययोजनं शुभम् ॥२६६॥
 तच्छाखायां विज्ञातायां यावत्तस्थौ स पश्चिराट् । तावद्भ्रमंज तच्छाखा बालस्त्रिन्यैरधोमुखैः ॥२६७॥
 तपस्विः पश्चिसाहस्रंभिरकालं समाश्रिताः । तांश्चादृशान्विलोकयथ तच्छापमयशंकितः ॥२६८॥
 धृत्वा स्वचंचुना शाखां वभ्राम गमने पुनः । ततो दृष्ट्वा कश्यपं स्वतातं नत्वा व्यजिह्वत् ॥२६९॥
 वद शुद्धां धुधं मेऽद्य कुर्वेऽहं यत्र भोजनम् । तदा तं कश्यपः प्राह शतयोजनसागरे ॥२७०॥
 लंकानाम्नी शुद्धभूमिस्तत्र त्वं कुरु भोजनम् । तत्पितुर्वचनाल्लङ्घ्यां ययौ ताक्ष्यः क्षणेन सः ॥२७१॥
 प्रोक्षयोः पक्षयोः शाखां स्थाप्य तान्मक्षयन्मुदा । तस्यैकैर्गन्धिभिस्तत्र शृंगाणि श्रीणि चाभवन् ॥२७२॥
 त्रिकूट इति नाम्ना स लङ्कायां गिरिराडभूत् । तेषु शृंगेषु तां शाखां ताक्ष्यः संस्थाप्य संययौ ॥२७३॥
 बालस्त्रिन्यास्तपोऽन्ते ते ययुर्विष्णोः परं पदम् । आपोच्छाखाऽन्तराले सा लङ्कायां शृंगमूर्द्धसु ॥२७४॥
 प्रावभूर्ता शैवलेन न विदुस्तां तु राक्षसाः । लङ्काऽग्निना द्रवीभूता मर्दयन्ती क्षपाचरान् ॥ ७५॥
 पपात तद्रसेनासील्लङ्काभूमिर्हिग्नमयी । तां दृष्ट्वा चकितो वेगाद्वने सीतां ययौ कपिः ॥२७६॥
 दृष्ट्वाऽशोके पुनः सीतां तामाह कपिकुञ्जरः । मत्स्क्रन्धसंस्थिता राममद्य पश्यसि जानकि ॥२७७॥
 प्राह मोक्षितामन्यैर्मां रामो न सहिष्यति । नीत्वा पुनर्मुद्रिकां त्वं राक्षसाय समर्पय ॥२७८॥

किया और दोनोंको साथ लेकर अपने घाम पकारे ॥२६२॥ तदनन्तर भूखे गरुड़ने श्रीहरिसे आहारकी प्रार्थना की । श्रीहरिने कहा कि जाओ, सरोवरके तटपर पड़े हुए गज-प्राहके शरीरको खा लो ॥ २६३ ॥ गरुड़ वहाँ गये तो कलेवरके भ्रमङ्ग नामके एक गृध्रराजको देखा । देखते ही पक्षियोंके दृष्टा गरुड़ने उसे मार डाला ॥ २६४ ॥ तत्पश्चात् एक टांगसे भ्रमङ्गको तथा दूसरी टांगसे गज-प्राहके शरीरको पकड़कर उन्हें खानेके लिए कोई शुद्ध स्थान खोजने लगे ॥ २६५ ॥ इतनेमें गरुड़को क्षीरसागरमें एक आम्बूनद (सुवर्ण) का वृक्ष दिखायी दिया । वह लम्बाई-चौड़ाई ऊँचाईमें हजार योजन परिमाणवाला था और देखनेमें बड़ा ही सुन्दर लगता था ॥२६६॥ पक्षिराज गरुड़ आकर उगीं ही उसकी एक शाखापर बैठे, तब ही उसकी वह शाखा टूट पड़ी । उसके टूटनेसे उसपर बहुत कालसे रहनेवाले साठ हजार बालस्त्रिन्य ऋषि अधोमुख होकर गिरने लगे । उनकी यह दशा देखकर पक्षिराज गरुड़के मनमें ऋषियोंके शापकी शंका समा गयी ॥ २६७ ॥ २६८ ॥ अतएव उस शाखाको चोंचमें पकड़कर वे आकाशमें फिर भ्रमण करने लगे । तभी उन्हें अपने पिता कश्यप दिखायी पड़े । नमस्कार करके उनसे निवेदन किया-॥ २६९ ॥ आप कोई ऐसी पवित्र जगह बतलाएँ, जहाँ मैं भोजन कर सकूँ । कश्यपने कहा कि तो योजन विस्तृत लंका नामकी विशुद्ध भूमि है, वहाँ जाकर तुम भोजन कर सकते हो । अपने पिताका बात भङ्गोकार करके गरुड़ क्षणभरमें लङ्का जा पहुँचे ॥ २७० ॥ २७१ ॥ बालस्त्रिन्य ऋषियों सहित शाखाको अपनी ऊँची पंतीपर घरे हुए वे आनन्दसे उन मृत शरीरोंको खाने लगे, जिन्हें पंथोंसे पकड़ लाये थे । उन गज-प्राह गाँवके शरीरसे निकली हुई हड्डियोंसे वहाँ तीन बड़े घारी शिखर खड़े हो गये ॥ २७२ ॥ उन तीनोंका लङ्कामें पर्वतराज त्रिकूट नाम पड़ गया । गरुड़ने उन्हीं शिखरोंपर उस शाखाको रख दिया और चले गये ॥ २७३ ॥ वहींपर तपस्या पूरी करके वे बालस्त्रिन्य ऋषि विष्णुके परम पदको प्राप्त हो गये । लंकामें उन शिखरोंके मध्यमें स्थित शाखा पाषाणके समान हो गयी थी । इसी कारण राक्षस लोग उसे नहीं पहचान पाये थे । जब हनुमान्ने लङ्काको अग्निसे जलाया, वह इवित होकर राक्षसोंका मर्दन करती हुई गिर पड़ी । उसके रससे लंकाकी भूमि सुवर्णमयी हो गयी । यह सीता देखकर हनुमान् चकित हो गये और शीघ्र ही सीताके संयोग आये ॥ २७४-२७६ ॥ कङ्कोकवनमें सीताको पूर्ववत् स्थित देखकर कपिकुञ्जर हनुमान् सीतासे बोले-हे जानकी ! मेरे कन्धे-

इत्युक्त्वा तत्करे सीता ददौ श्रीराममुद्रिकाम् । ततस्तां मारुतिः पृष्ट्वा नत्वा शीघ्रं ययौ पुनः ॥२७९॥
 आरुरोह सुवेलाद्रिं चूर्णं तमकरोद्विरिम् । एतस्मिन्नतरे ब्रह्मा ददौ पत्रं सविस्तरम् ॥२८०॥
 यद्यत्कृतं मारुतिना लंकायां तस्य सूचकम् । तद्गृह्य मारुतिर्वैभान्नत्वा पृष्ट्वा विधिं पुनः ॥२८१॥
 तत उड्डीय वेगेन ययावाकाशवर्त्मना । कुर्वन् शब्दं महाघोरं कपीनामूर्ध्वतस्तदा ॥२८२॥
 उद्विश्यतरा किञ्चित्पपात भुवि मारुतिः । ततो दृष्ट्वा कर्पास्तत्र दृष्ट्वैकं मुनिसत्तमम् ॥२८३॥
 किञ्चिद्वर्षसमाविष्टस्तं मुनिं प्राह मारुतिः । मया श्रीरामकार्यं तु कुतमस्ति मुनीश्वर ॥२८४॥
 पानीयं पातुमिच्छामि दर्शयस्व जलाशयम् । तर्जनीया दर्शयामास मुनिस्तस्मै जलाशयम् ॥२८५॥
 ततः स मारुतिर्मुद्रां मणिं पत्रं मुनेः पुरः । संस्थाप्य नीरं पातुं वै ययौ कासारमुत्तमम् ॥२८६॥
 ततस्तत्र कपिः कश्चिन्मुद्रिकां मुनिसंनिधौ । कमण्डलौ प्राक्षिपत्स ययौ तावच्च मारुतिः ॥२८७॥
 गृहीत्वा तं मणिं पत्रं मुनिं पप्रच्छ मुद्रिकाम् । मुनिर्भ्रमं ज्ञया तस्मै कमण्डलुमदर्शयत् ॥२८८॥
 ततः कमण्डलौ तूष्णीं मुद्रिकामत्रलोकयत् । तावद्दर्शाब्जनेयस्तस्मिन् श्रीराममुद्रिकाः ॥२८९॥
 दृष्ट्वा सहस्रशस्तत्र चकितः प्राह तं मुनिम् । कुतस्त्विमा मुद्रिकाश्च वद का मम मुद्रिका ॥२९०॥
 एतासु त्वं मुनिश्रेष्ठ तदा तं मुनिरब्रवीत् । यदा यदा वायुपुत्रः सीतां तां राघवाहया ॥२९१॥
 लंकां गन्वा समानीता शुद्धिमुद्रास्तदा तदा । मदग्रे स्थापितास्ताश्च कपिभिश्च कमण्डली ॥२९२॥
 निक्षिप्तास्तास्त्विमाः सर्वा पश्यंतासु स्वमुद्रिकाम् । तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा गतगर्वस्तमब्रवीत् ॥२९३॥
 कियंतो राघवाध्यात्र समायाता मुनीश्वर । मुनिस्तं प्राह निष्कास्य गणयस्वाद्यमुद्रिकाम् ॥२९४॥

पर सवार हो जायें, तो मैं आपको ले चलकर आज ही रामका दर्शन करा दूँ ॥ २७७ ॥ जानकीने कहा—मुझे दूसरा कोई छुड़ाकर ले जाय, इस बातको राम सहन नहीं कर सकेगा। इसलिए तुम इस अंगूठीको ले जाकर रामको दे दो ॥ २७८ ॥ इतना कहकर साताजाने हनुमानके हाथोंसे वह मुद्रिका दे दी। तब हनुमानजी सीताको आशा ले तथा नमस्कार करके शीघ्र हो लौट पड़े ॥ २७९ ॥ उन्होंने समुद्रके किनारे-वाले पर्वतपर चढ़कर उसे चूर्ण कर डाला। उस समय ब्रह्माजाने विस्तरपूर्वक एक पत्र लिखकर उन्हें दिया ॥ २८० ॥ जिसमें यह लिखा था कि लंकामें जाकर मारुतिने क्या-क्या काम किया है। उसको लेकर ब्रह्माजी आशा ले तथा उन्हें नमस्कार करके हनुमान् पुनः वहाँसे उड़कर आकाशमार्गसे घोर तथा महान् वानरोंकी तरह शब्द करते हुए ओरोसे चल पड़े ॥ २८१ ॥ २८२ ॥ उत्तर दिशाकी ओर कुछ दूर आगे जाकर नीचे उतरे तो वहाँ उन्होंने एक मुनिको विराजमान देखा ॥ २८३ ॥ तब कुछ गवसे मारुतिने कहा—हे मुनीश्वर ! मैं श्रीरामका काम करके आ रहा हूँ ॥ २८४ ॥ यहाँ मैं पानी पीनेकी इच्छासे आया हूँ। मुझे कोई जलाशय बतलाइये। तब मुनिने उन्हें तर्जनी अंगुलीसे जलाशय बतला दिया ॥ २८५ ॥ तदनन्तर हनुमान् अंगूठी, चूड़ामणि तथा पत्र मुनिके पास रखकर उस उत्तम तालाबकी ओर जल पीने गये ॥ २८६ ॥ इतनेमें किसी बन्दरने आकर रामकी मुद्रिकाको मुनिके पास रखते कमण्डलुमें डाल दिया। उधरसे हनुमान्जी भी आ पहुँचे ॥ २८७ ॥ चूड़ामणि तथा पत्रके विषयमें उन्होंने मुनिसे पूछा कि मुद्रिका कहाँ गयी ? मुनिने भौंहोंके संकेतसे कमण्डलु दिखाया ॥ २८८ ॥ जब हनुमान्ने कमण्डलुमें देखा तो उसमें श्रीरामकी हजारों मुद्रिकाएँ दिखायी दीं। हनुमान्ने आश्चर्यचकित होकर मुनिसे पूछा कि इतनी अंगूठियाँ कहाँसे आयीं, सो बताइए ॥ २८९ ॥ २९० ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! आप यह भी कहिये कि इनमेंसे मेरी मुद्रिका कौन-सी है ? मुनिने उत्तर दिया कि जब-जब श्रीरामकी आशासे हनुमान्ने लंकामें जाकर सीताका पता लगाया है और अंगूठियाँ मेरे नामने रखी हैं, तब-तब बन्दरोंने उन्हें इस कमण्डलुमें डाल दी हैं। वे ही ये हैं। इनमेंसे तुम अपनी अंगूठी खोज लो। मुनिके इस वाक्यको सुनकर हनुमान्का गर्व खर्ब हो गया। तब उन्होंने मुनिसे कहा— ॥ २९१ ॥ २९२ ॥ हे भुवीश्वर ! यहाँ कियने राम आये हैं ? मुनिने कहा—कमण्डलुमेंसे अंगूठियाँ निकालकर

कमंडलोरंजलिमिस्तदास्थ मुद्रिका मुहुः । बहिः क्षिपन्मारुतिः स नातं तासां ददर्श सः ॥२९५॥
 पुनः कमंडलौ कृत्वा मुनिं नत्वा कपिः क्षणम् । चिंतयामास मनसि मादृशैः शतशः पुरा ॥२९६॥
 समानीतास्ति सीतायाः शुद्धिः का गणनाऽद्यमे । इति निश्चित्य मनसि गतगर्वस्तदा कपिः ॥२९७॥
 पुनर्दक्षिणमार्गेण ययौ यत्रांगदादयः । प्रायोपवेशनस्थास्ते तं दृष्ट्वा तुष्टमानताः ॥२९८॥
 बभूयुर्वानराः सर्वे समालिङ्ग्याथ तं मुहुः । ज्ञात्वा तन्मुखतः सीता दृष्ट्वाऽशोकवने त्विति ॥२९९॥
 ययुस्ते राघवं शीघ्रं मार्गे सुग्रीवपालितम् । दृष्ट्वा मधुवनं सर्वे दृष्ट्वा तं वालिनंदनम् ॥३००॥
 फलानि भक्षयामासुर्दधिवक्त्रो न्यवेधयत् । ततस्ते ताडयामासुर्दधिवक्त्रं कपीश्वरम् ॥३०१॥
 ज्ञात्वा तं मातुलमपि सुग्रीवस्यांगदादयः । स गत्वा सकलं वृत्तं सुग्रीवाय न्यवेदयत् ॥३०२॥
 सोऽपि श्रुत्वा जनकजा दृष्ट्वा तैरित्यमन्यत । नोचेन्मधुवनं रम्यं कथमऽनन्ति वानराः ॥३०३॥
 ततो विसर्जयामास दधिवक्त्रं कपीश्वरः । मा निषेधस्त्वया कार्यस्त्वं शीघ्रं प्रेषयस्व तान् ॥३०४॥
 मर्मांतिकं ततो गत्वा दधिवक्त्रस्तथाऽकरोत् । ततः सुग्रीववचनं श्रुत्वा तेन समीरितम् ॥३०५॥
 ययुस्ते वानराः सर्वे रामं नत्वा पुरःस्थिताः । ततो हर्षान्मारुतिः स ब्रह्मपत्रं न्यवेदयत् ॥३०६॥
 दत्त्वा चूडामणिं रामं काकवृत्तं न्यवेदयत् । तच्छ्रुत्वा सकलं वृत्तं ज्ञात्वा मारुतिना कृतम् ॥३०७॥
 लंकायां वायुपुत्रेण रामस्तुष्टो बभूव सः । समालिङ्ग्य हनुमंतं राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥३०८॥
 तवोपकारिणश्चाहं न पश्याम्यद्य मारुते । कर्तुं प्रत्युपकारं ते धन्योऽसि जगतीतले ॥३०९॥
 परिरंभो हि मे लोके दुर्लभः परमात्मनः । अतस्त्वं मम भक्तोऽसि प्रियोऽसि हरिपुङ्गव ॥३१०॥

यत्पादपद्मयुगलं तुलसीदलाग्रैः संपूज्य विष्णु पदवीमतुलां प्रयाति ।

गिन लो ॥ २९३ ॥ २९४ ॥ अब हनुमान् कमण्डलुसे अंजली भर-भरकर बारम्बार अंगूठियें बाहर निकालने लगे । पर कहीं उनकी नहीं हुआ ॥ २९५ ॥ तब फिरसे उन्हें कमण्डलुमें भर दिया और मुनिको नमस्कार करके क्षणभरके लिए वे मनमें विचार करने लगे कि ओह ! पहिले मेरे जैसे सैकड़ों हनुमान् जाकर सीताकी ले आये हैं तो मेरी कीन-सी गिनती है । यह निश्चय करके वीर मारुति घमण्डको त्याग-कर दक्षिणमार्गमें जहाँ अङ्गदादि वानर बंटे थे, वहाँ गये । उपवासी दशार्में बंटे हुए वे वानर हनुमानको देखकर बहुत प्रसन्न हुए ॥ २९६-२९८ ॥ वे सब उनकी बार-बार हृदयसे लगाने लगे और उनके मुखसे यह सुनकर कि मैं सीताको अशोकवाटिकामें देख आया हूँ ॥ २९९ ॥ तब सबके सब तुरन्त रामको ओर चल पड़े । रास्तेमें उन्हें सुग्रीवका सुरक्षित मधुवन दिखाई दिया । सब वानर वालिके पुत्र अङ्गदसे पूछकर ॥ ३०० ॥ उस वनके फल खाने लगे । अब उसके रक्षक दधिमुखने रोका तो वे उसको मारने लगे ॥ ३०१ ॥ यह जाननेपर भी कि यह सुग्रीवका मामा है, तथापि उसे पीटकर ही छोड़ा । तदनन्तर दधिमुखने जाकर सब हाल सुग्रीवको कह सुनाया । यह सुनकर सुग्रीवने सम्प्र लिया कि उन्होंने जनकतनयाका पता पा लिया है, नहीं तो वे लोग मधुवनके फल बर्षाकर खाते ॥ ३०२ ॥ ३०३ ॥ पञ्चान् कपीश्वर सुग्रीवने दधिमुखको समझा-बुझाकर लौटाया और कहा उन्हें रोको मत, वहाँ भेज दो ॥ ३०४ ॥ सुग्रीवकी बात मानकर उसने बैसा ही किया । पञ्चान् वे सब वानर दधिमुखसे सुग्रीवका आदेश सुनकर ॥ ३०५ ॥ रामके गये तथा नमस्कार करके उनके सामने छुट्टे हो गये । तब हनुमान्ने सहर्ष ब्रह्माका दिया हुआ पत्र रामको अर्पण किया और चूडामणि देकर जयन्त कीवका वृत्तान्त कह सुनाया । सो सुनकर राम लङ्कामें हनुमान्का किया हुआ सम्पन्न कार्य जान गये ॥ ३०६ ॥ ३०७ ॥ ब्रह्माके पत्रसे राम अतिशय सन्तुष्ट हुए । तदनन्तर राम हनुमान्का आलिङ्गन करके बोले— ॥ ३०८ ॥ हे मारुते ! तुमने मेरा बड़ा उपकार किया है । इस उपकारका प्रत्युपकार करनेके लिये मुझे कुछ नहीं सूझता । सचमुच तुम संसारमें धन्य हो ॥ ३०९ ॥ संसारमें साक्षात् परमात्मका (मेरा) परिरम्भ (आलिङ्गन) दुर्लभ है, वह तुमको प्राप्त हो गया । इस कारण हे हरि-पुङ्गव ! तुम प्रिय भक्त हो ॥ ३१० ॥ जिन विष्णुके दोनों चरणकमलोंका तुलसीपत्र तथा जल आदिसे पूजन

तेनैव किं पुनरसौ परित्यज्यमूर्तिं रामेण वायुतनयः कृतपुण्यपुंजः ॥३११॥

रामं ॥ मारुतिः प्राह भीतभीतोऽतिकंपितः । मयाऽपराधितमिति मुद्रावृत्तं मुनेर्वचः ॥३१२॥

तच्छ्रुत्वा रामचंद्रोऽपि बिहस्योवाच मारुतिम् । मयैव दर्शितं मार्गं कौतुकं मुनिरूपिणा ॥३१३॥

त्वद्दर्शपरिहारार्थं मुद्रिकां मत्करे त्विमाम् । कनिष्ठिकायां त्वं पश्य समानीता त्वयाद्य वै ॥३१४॥

तां राममुद्रिकां दृष्ट्वा श्रीरामस्य करांगुलौ । ननाम भववर्गः स रामं विष्णुममन्यत ॥३१५॥

मदप्यस्यैव कृपया पौरुषं चेत्यमन्यत । एवं गिरीद्रजे प्रोक्तं चरित्रं सुंदराभिधम् ॥३१६॥

रामार्थं वायुपुत्रेण कृतं सर्वार्थदायकम् ॥३१७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे
सुन्दरचरित्रे सीताशुद्धिर्नाम नवमः सर्गः ॥ ६ ॥

दशमः सर्गः

(राम-रावणसेनाका संघर्ष)

श्रीशिव उवाच

अथाह मारुति रामो मां वदस्व सविस्तरम् । लंकास्वरूपं ज्ञात्वा च प्रतीकारं करोम्यहम् ॥ १ ॥

तद्रामवचनं श्रुत्वा कथयामास मारुतिः । लंका दिव्यपुरी देव त्रिकूटशिखरे स्थिता ॥ २ ॥

स्वर्णप्राकारसहिता स्वर्णाट्टालकसंयुता । परिखामिः परिवृता पूर्णभिनिर्मलोदकैः ॥ ३ ॥

नानोपवनशोभाढ्या दिव्यवापीभिरावृता । गृहैर्विचित्रशोभाढ्यैर्मणिस्तंभमयैः शुभैः ॥ ४ ॥

पश्चिमद्वारमाप्राद्य मज्जबाहाः महस्रशः । उत्तरद्वारि विघ्नन्ति वाज्रिबाहाः सपत्नयः ॥ ५ ॥

दशकोटिमिता सेना विविधायुधमण्डिता । लंकायाः परितो व्याप्ता सतर्का रक्षते पुरीम् ॥ ६ ॥

करके मनुष्यमात्र विष्णुके अनुपम पदको प्राप्त करता है । उन्हीं साक्षात् रामके द्वारा आलङ्कित होकर वायुपुत्र हनुमान् यदि महान् पुण्यशाली बन जायें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ॥ ३११ ॥ तदनन्तर उसके भारे कापते हुए मारुतिने रामसे अपना गर्वहर्षी अपराध, मुद्रिकाका वृत्तान्त तथा मुनिका वचन कह सुनाया ॥ ३१२ ॥ यह सुना तां रामचन्द्रने हँसकर कहा कि यह कौतुक मेने ही मार्गमें मुनिहय चारण करके दिसलाया था ॥ ३१३ ॥ यह काम मैंने तुम्हारे गर्वको छुड़ानेके लिये ही किया था । यह देखो, जिस मुद्रिकाको तुम ले आये थे, वह तो मेरे हाथकी कनिष्ठिका अंगुलीमें विद्यमान है ॥ ३१४ ॥ रामके हाथमें रामकी अंगुठी देखो तां गर्व छोड़कर हनुमान्ने समस्कार किया और उन्हें साक्षात् विष्णु माना ॥ ३१५ ॥ और यह भी माना कि इन्हींकी कृपासे मुझमें भी पौरुष आ गया है । हे गिरीद्रजे ! रामके लिये वायुपुत्रके द्वारा किया हुआ सर्वार्थसाधक सुन्दर चरित्र मैंने तुमको इस प्रकार कह सुनाया ॥ ३१६ ॥ ३१७ ॥ इति शतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे भाषाटीकायां सुन्दरचरित्रे सीताशुद्धिर्नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

शिवजी बोले—हे पार्वती ! रामने मारुतिसे कहा—तुम हमको विस्तारसे लंकाका स्वरूप बताओ । लंकाका स्वरूप जानकर मैं प्रतीकारका उपाय सोचूँगा ॥ १ ॥ रामकी बात सुनकर मारुतिने कहा—हे देव ! त्रिकूट पर्वतके शिखरपर वह लङ्का नामकी दिव्य पुरी बसी हुई है ॥ २ ॥ उसके चारों ओर सोनेका गढ़ है जहाँ वह सोनेका अटारियोंवाले भवनोसे सुशोभित है । निर्मल जलसे परिपूर्ण खाईसे वह नगरी घिरी हुई है ॥ ३ ॥ अनेकानेक उपवनोंसे सुन्दर, दिव्य बावलिओंसे आवृत तथा विचित्र-विचित्र शोभावाले मणियोंके सज्जनोंवाले सुन्दर महलोंसे सजी हुई है ॥ ४ ॥ उसके पश्चिमी द्वारपर हजारों यजस्क तथा अश्वस्क मियाहों लड़े रहते हैं ॥ ५ ॥ दस करोड़ पैदल तथा सवार सैनिक विविध हस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित होकर लङ्काका

तिष्ठन्वर्बुदमंरुयाता गजाश्चरथपत्तयः । रक्षयन्ति मदा लकां नानास्रकुशलाः प्रमो ॥ ७ ॥
 संक्रमविंविधैर्लंका अतघ्नामिथ संयुता । एवं स्थितायां देवेश शृणु त्वदामचेष्टितम् ॥ ८ ॥
 दशाननत्रलौघस्य चतुर्थांशो मया हनः । दत्त्वा लंकापुरीं स्वर्णप्राकारा धर्षिता मया ॥ ९ ॥
 अतघ्न्यः संक्रमाश्चैव नाशिता मे रघूदह । देव त्वदर्शनादेव लंका मस्मीभवेत्पुनः ॥ १० ॥
 सुवेलाद्विश्वोत्तरेऽस्ति परलंकाऽस्ति पश्चिमे । निकुम्भिला दक्षिणेऽस्ति तत्रास्ते योगिनीवटः ॥ ११ ॥
 पूर्वे च लघुलंकाऽस्ति सा मध्ये कातिमहिता । त्रिकूटशिखरे रम्ये मत्पुच्छानलधर्षिता ॥ १२ ॥
 प्रस्थानं कुरु देवेश गच्छामो लवणार्णवम् । वनमारुतेर्वचः श्रुत्वा सुग्रीवं प्राह राघवः ॥ १३ ॥
 सुग्रीवसैनिकान् सर्वान्प्रस्थानायाभिनोदय । इदानीमेव विजयो गृहर्तस्त्वद्य वर्तते ॥ १४ ॥
 आश्विनी शुक्लदशमी श्रवणर्धसमन्विता । शुभाऽद्य वानरश्रेष्ठ गच्छामो लवणार्णवम् ॥ १५ ॥
 रथन्तु यूथवाः सेनामग्रे पृष्ठे च पार्श्वयोः । नलो भयत्वग्रसरः पृष्ठे नीलोऽथ रथतु ॥ १६ ॥
 सुपेणः सव्यपार्श्वे मे जांबवानितरे मम । गजो गवाक्षो गवरो मैदश्चतेऽद्य वानराः ॥ १७ ॥
 रक्षिणेगतिवायोश्च चतुर्दिक्षु समन्ततः । रथन्तु वानरीं सेनां द्विविदाद्यास्तथाऽपरे ॥ १८ ॥
 सर्वे गच्छन्तु सर्वत्र सेनायाः शस्त्रघातिनः । आरुह्य मारुतिं चाहं गच्छाम्यग्रेऽङ्गदं ततः ॥ १९ ॥
 आरुह्य लक्ष्मणो यातु सुग्रीवं त्वं मया सह । आगच्छस्वेति चाज्ञाप्य हरीन् रामः सुलक्ष्मणः ॥ २० ॥
 प्रसस्थं दक्षिणाशयां सेनामध्यगतो विभुः । तदा ते कपयश्चक्रुर्भुङ्कारान् भयानकान् ॥ २१ ॥
 वादयामासुर्वासानि पणवानकयोमुत्तः । वारणेद्रनिभाः सर्वे वानराः कामरूपिणः ॥ २२ ॥
 गतास्तदा दिवारात्रं कचिच्चस्थुर्न ते क्षणम् । अमवच्छङ्कन्तु लंकां गच्छतो राघवस्य हि ॥ २३ ॥
 ते सद्यः सप्ततिक्रम्य मलयं च तथा गिरिम् । आपयुश्चानुपूर्व्येण ते सर्वे दक्षिणार्णवम् ॥ २४ ॥

घागे ओरसे रक्षा कर रहे हैं ॥ ६ ॥ उनमें विविध सुरंगें लगी हैं और उसके गढ़पर अनेक तीर्थ भी रखी हुई हैं । हे देवेश ! इस दशममें भी आपके दासने वहाँ जाकर जो कुछ किया, सो मुनिये ॥ ७ ॥ ८ ॥ मैंने वहाँ जाकर रावणकी चौलाई सेना मार डाली है । लङ्कापुरीकी जलाकर स्वर्णप्राकार गिरा दिया है ॥ ९ ॥ हे रघूदह ! मैंने तीर्थें तथा नुरंगें तोड़ डाली हैं । हे देव ! अब आपके जानेमात्रसे ही लंका पुनः मस्म हो जायगी ॥ १० ॥ उस लंकाके उत्तर सुवेलादि है । पश्चिम परलंका है । दक्षिण निकुम्भिला है । जहाँपर योगिनीवट विद्यमान ॥ ११ ॥ पूर्वकी ओर लघु लंका है, जिसका मध्यभाग बड़ा ही रमणीक है । उस त्रिकूटके शिखरपर बसो हुई लंकाको मैंने अपनी पूँछकी आगसे जला दिया है ॥ १२ ॥ हे देवेश ! अब आप प्रस्थान करें । हम लोग आर सनुद्रकी ओर चलें । मारुतिको मुनकर रामने सुग्रीवसे कहा—॥ १३ ॥ हे सुग्रीव ! समस्त सैनिकोंको प्रस्थान करनेके लिए आज्ञा दे दो । आज इसी समय विजयप्राप्तिका शुभ मुहूर्त है ॥ १४ ॥ आज श्रवणनक्षत्रसे युक्त आश्विन शुक्ल दशमीकी शुभ तिथि है । हे वानरश्रेष्ठ ! हमलोग आज लवणसागरकी ओर अवश्य प्रस्थान कर दें ॥ १५ ॥ बड़े-बड़े यूथपति वानर सेनाकी आगे-पीछे और बगलसे रक्षा करें । आगे मल तथा पीछे नील रक्षा करें ॥ १६ ॥ सुपेण मेरी बाई ओर तथा जांबवान् मेरी दाहिनी बगलमें रहें । गज, गवाक्ष, गवय और मैद ये सब वानर अग्निकोण, नैऋत्यकोण, वायव्यकोण तथा ईशानकोणमें रहकर वानरी सेनाकी चौरफा रक्षा करें । शत्रुओंको मारनेमें निपुण द्विविध आदि वानर भी सेनाको सब ओरसे घेरकर चलें । मारुतिके कन्धपर सवार होकर मैं आगे चलता हूँ और चरे पीछे अंगदके कन्धपर सवार होकर लक्ष्मण चलें । हे सुग्रीव ! तुम भी मेरे साथ चलो । इसी प्रकार अन्य सब वानरोंकी 'चलो' ऐसा आज्ञा देकर लक्ष्मण सहित राम सेनाके बीच होकर दक्षिण दिशाकी ओर चल दिये । उस समय वे वानर भयानक भूभूकार करने लगे ॥ १७-२१ ॥ वे डोल, मृदंग तथा गीके सुख सहज बाजे बजाने लगे । ऋक्षरूप धारण करनेवाले तथा श्रेष्ठ हाथियोंके समान वीर सब वानर क्षणभर भी विश्राम न करके चलने लगे । लंकाके लिए प्रस्थित रामको अच्छे-अच्छे सकुन दीख पड़े ॥ २२ ॥ २३ ॥ वे सहायपर्वत तथा

कृतः सेनानिवामथ रावणेणाब्धिसैकते । चक्रुर्मन्त्रं सागरस्य तरणार्थं प्लवंगमाः ॥२५॥
 लंकायां वायुपुत्रेण कृतं दृष्ट्वा स रावणः । प्रहस्तादींस्तदा प्राह कथमग्रे भविष्यति ॥२६॥
 एकेन कपिनाऽस्माकं पुरतो ज्वालिता पुरी । दृष्ट्वा सीता वनं भग्नं राक्षसा निहता रणे ॥२७॥
 ममातिलालितः पुत्रः कनोयाभिहतो रणे । तदा ते मन्त्रिणः सर्वे ददुर्घैर्यं दशाननम् ॥२८॥
 राजन्नुपेक्षितोऽस्माभिर्मकटोऽयमिति स्फुटम् । वयं तवाज्ञया कुर्मो जगत् कृत्स्नमवानरम् ॥२९॥
 कुम्भकर्णस्तदा प्राह रावणं राक्षसेश्वरम् । त्वया योग्यं कृतं नैतद्यद्गत्वा जानकी हता ॥३०॥
 यद्यप्यनुचितं कर्म त्वया कृतमजानता । सर्वं समं करिष्यामि स्वस्थचित्तो भव प्रभो ॥३१॥
 देहि देव ममानुज्ञां हत्वा रामं सलक्ष्मणम् । सुग्रीवं वानरांश्चैवागमिष्यामि पुनः क्षणात् ॥३२॥
 कुम्भकर्णवचः श्रुत्वा तदा प्राह विभीषणः । महाभागवतः श्रीमान् रामभक्त्यैकतरपरः ॥३३॥

विलोक्य कुम्भश्चरणादिदैत्यान्मत्तप्रमत्तानतिविस्मयेन ।

विलोक्य कामातुरमप्रमत्तो दशाननं प्राह विशुद्धबुद्धिः ॥३४॥

न कुम्भकर्णेन्द्रांजली च राजंस्तथा महापार्श्वमहोदरा ती ।

निकुम्भकुम्भा च तथाऽतिक्रायः स्थातुं न शक्ता युधि राघवाग्रे ॥३५॥

सीता सत्कृत्य महाधनेन दत्त्वाऽभिरामाय सुखा भव त्वम् ।

नोपेक्ष रामेण विभीषणसे त्वं गुप्तः सुरेन्द्रैरपि संकरेण ॥३६॥

यं शुभं रावणः विभीषणवचो हितम् । आत्मनः प्रतिजग्राह नैवासी सौख्यकाण्डम् ॥३७॥
 कालेन नोदितो दैत्यो विभीषणमथाग्रहीत् । वीथुरूपेण शत्रुस्त्वं जातो नास्त्यत्र संशयः ॥३८॥
 योऽन्यस्त्वेवंविधं ब्रूयाद्वाक्यं हन्मि तदेव तम् । उत्तिष्ठ गच्छ दुर्बुद्धे धिक् त्वां रक्षःकुलाधम ॥३९॥
 रावणेनैवधुक्तः स परुषेण विभीषणः । चतुर्भिर्मन्त्रिभिर्युक्तो ययौ भीराववातिकम् ॥४०॥

मन्याचल होते हुए प्रमशः दक्षिण मनुष्यपर पहुँचे ॥ २४ ॥ रामने उस वानरो सेनाको समुद्रके किनारे
 बालूमें ठहरा दिया और सब वानर मिलकर समुद्रका पार करनेकी विचार करने लगे ॥ २५ ॥ उधर
 लक्ष्मण वायुपुत्र हनुमानके कृत्यको देखकर रावणने प्रहस्तादि मन्त्रियोंको बुलाकर पूछा कि अब आगे क्या
 होगा । २६ ॥ एक ही वानरने हमारी सम्पूर्ण लंका नगरी जला दी । उसने सीताको देख लिया, वनको उगाड़ा
 और राक्षसोंको मार डाला ॥ २७ ॥ मेरे अतिशय प्रिय भोटे पुत्रको भी रणमें उसने समाप्त कर दिया ।
 वे भव मन्त्री दशाननको घेर घेरते हुए कहने लगे— ॥ २८ ॥ हे राजन् ! यह तो हम लोगोंने वानर समस्त-
 कर इसकी उपाक्षा कर दी थी । अब यदि आप आज्ञा दें तो हम समस्त संसारकी धारण करने पर तैयार हैं ॥ २९ ॥
 कुम्भकर्णने राक्षसेश्वर रावणसे कहा—आपने यह उचित नहीं किया, जो जाकर जानकीको लाये ॥ ३० ॥
 जटपि आपने अनजानमें यह अनुचित काम किया है । तथापि मैं सब कुछ ठीक कर दूँगा । हे प्रभो !
 आप निश्चिन्त रहे ॥ ३१ ॥ आप मुझकी आज्ञा दें तो लक्ष्मणसहित राम, सुग्रीव और सब वानरोंको मारकर
 स्वर्गमें लौट जाऊँ ॥ ३२ ॥ कुम्भकर्णकी बात सुनकर भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ तथा श्रीमान् रामकी भक्तिमें लौलान
 विभीषणने प्रमत्त कुम्भकर्ण आदि दैत्योंकी ओर दृष्टि डालते हुए कामातुर दशाननसे विचारपूर्वक कहा—

३३ ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! कुम्भकर्ण, महापार्श्व, महोदर, निकुम्भ, कुम्भ और अतिक्राय भी युद्धमें
 आपके सामने नहीं ठहर सकते ॥ ३५ ॥ इसलिए आप रामका प्रचुर धनसे सत्कार करें और उन्हें सीता
 सम्पन्न करके सुखसे रहें । नहीं तो सुरेन्द्र तथा संकरका शरणमें जानेपर भी आपको जावित नहीं छोड़ेंगे
 ॥ ३६ ॥ इस प्रकार शुभ तथा हितभरे विभीषणके वाक्यको भी रावणने अपने प्रतिकूल ही समझा ॥ ३७ ॥
 कुम्भसे प्रेरित दैत्य रावणने विभीषणसे कहा—निसन्देह तू वीथुरूपमें मेरा शत्रु है ॥ ३८ ॥ यदि और कोई
 कुम्भसे ऐसा कहता तो मैं उसको उसी समय मार डालता । ओ दुर्बुद्ध ! मेरे राक्षसाधम ! तुझे धिक्कार

राघवश्चापि तं श्रुत्वा तेन सख्यं चकार सः । हनुमतोदधेस्तीरे लंकां च सिक्तोद्भवाम् ॥४१॥
 कारयित्वा रघुश्रेष्ठस्तत्र मित्रं विभीषणम् । लंकायार्थं वानरैरभ्यवेचयत् ॥४२॥
 तदा विभीषण प्राह रामचन्द्रो विहस्य च । न्यासभूता त्वयं लंका तान्स्काशी तवास्ति मे ॥४३॥
 यावता रावणं हत्वा तव दास्याम्यहं शुभाम् । हनुमतास्त्वय नाम्ना लङ्कां ख्यातं गमिष्यति ॥४४॥
 हनुमल्लङ्काञ्चोत्तरे वर्ततेऽद्याप पावति । विभीषणाद्वावणान्ते रामस्तर्हि मोचयिष्यति ॥४५॥
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र गगनस्थः शुकोऽब्रवीत् । प्रेषितो रावणेनैव सुग्रीवं प्राह वेगतः ॥४६॥
 त्वामाह रावणो राजा तव नास्त्यर्थावेप्लवः । अहं यद्यहरं भार्यां राजपुत्रस्य किं तव ॥४७॥
 किञ्चिन्मया याहि हरिभिस्त्वं वैरं कुरु मामया । तं धृत्वा वानराः स्त्रीषु बन्धुर्लोहबन्धनैः ॥४८॥
 शार्दूलश्चापि सेनां तां दृष्ट्वाऽधपमयाषत । तच्छ्रुत्वा रावणश्चापि दीर्घचितापरोऽभवत् ॥४९॥
 रामः संमंत्रयामास तर्दकान्ते स्थितः क्षणम् । विभीषणेन सुग्रीवमारुतिभ्यां समन्वितः ॥५०॥
 तीत्यार्थं जलधेर्गुल्मं संस्थितो बन्धुना युतः । सर्वेषां चचनं श्रोतुं राघवेणाथ सागरः ॥५१॥
 मेघवद्गर्जनां कुर्वन् वामहस्तेन धिक्कृतः । अद्यापि सागरस्तत्र तूर्णमेव स विद्यते ॥५२॥
 ततः संमन्य रामस्तु तदा सागररोधसि । प्रायोपवेशनं चक्रे दर्शनास्तीर्य वेगतः ॥५३॥
 दिनद्वयमतिक्रम्य तृतीयदिवसे तदा । उत्थाय दर्भक्षयनार्युनलक्ष्मणव्रवीत् ॥५४॥
 पश्य लक्ष्मण दुष्टोऽसौ वारिविर्माणागतम् । नाभिनन्दति दुष्टात्मा दशेनार्यं ममानघ ॥५५॥
 जानाति मातुषोऽयं सः किं करिष्यात वानरैः । पश्य महाबाहो शार्पायभ्यामि वारिविम् ॥५६॥
 पञ्चथामेवाद्य गच्छंतु वानरा विगतज्वराः । इत्युक्त्वा चापमाकुप्य सदधे वाणमुत्तमम् ॥५७॥

है । उठ, यहाँसे निकल जा ॥ ३६ ॥ रावणके इस प्रकार धिक्कारनेपर विभीषण अपने चार मन्त्रियोंको साथ लेकर श्रीरामके समीप चला गया ॥ ४० ॥ रामने पत्रिचय पूछकर उसके साथ मित्रता कर ली । तदनन्तर रामने हनुमानसे समुद्रके किनारे रेतकी लंका बनवाकर उसमें अपने मित्र विभीषणका लंकाराज्यके राजाके पदपर वानरो द्वारा अभिषेक करवा दिया ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ तब रामने हंसकर विभीषणसे कहा—मित्र ! यह लंका तुम्हारे पास [] घराहूरूपसे रहेगा ॥ ४३ ॥ [] राघणको मारकर तुम्हें लंका न दे दूँ, यह लंका हनुमानके नामसे प्रसिद्ध होगी ॥ ४४ ॥ हे पावती ! वह हनुमानको लंका अभी भी समुद्रके किनारे विद्यमान [] ; रावणका अन्त हो जानेपर राम उसे विभीषणसे छुड़ा लेंगे ॥ ४५ ॥ तदनन्तर आकाशमें स्थित शुक्र बोले—हे सुग्रीव ! मुझे बड़ा शीघ्रतासे रावणने तुम्हारे पास भेजा है ॥ ४६ ॥ राजा रावणने कहा है कि हमने तुम्हारा कोई हानि नहीं की है । यदि मैं राजपुत्र रामको लोका हरण कर लाया तो इससे तुम्हारी क्या हानि हुई ॥ ४७ ॥ उन्होंने कहा है कि तुम हमारे साथ शत्रुता न करके वंदरोको लेकर किञ्चिन्मया लौट जाओ । इतना कहना था कि वानरोंने उस रालसको पकड़कर लोहेकी जंजीरोसे जकड़ दिया ॥ ४८ ॥ उसके साथ गुप्तरूपसे आया हुआ दूसरा शार्दूल नामका राक्षस उस विशाल सेनाको देखकर रावणके पास गया और वानरी सेनाका पराक्रम कह सुनाया । सो सुनकर रावण दड़ी भारी चिन्तामें पड़ गया ॥ ४९ ॥ इधर रामचन्द्रजी भी एकान्तमें जाकर विभीषण, सुग्रीव तथा हनुमानके साथ मंत्रणा करने लगे ॥ ५० ॥ तदनन्तर वे समुद्रके जलमें कुछ दूर जाकर सबकी बात सुननेके लिये खड़े हो गये । बादमें रामने मेघकी तरह गर्जन करके वल्ये हाथसे सागरको धिक्कारा और कहा कि तू अभी तक चुप ही है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ मंत्रणा पूरा करके राम सागरके किनारेपर भावय और कुशा विछाकर अनशन करने लगे ॥ ५३ ॥ दो दिन बिताकर तीसरे दिन कुशासनसे उठ खड़े हुए और लक्ष्मणसे कहा— ॥ ५४ ॥ हे अनघ लक्ष्मण ! देखो, यह दुष्टात्मा वारिवि मुझे यहाँ आया जानकर भी मुझसे मिलने या मेरा दर्शन करने नहीं आया ॥ ५५ ॥ यह समझता है कि यह मनुष्यमात्र है । यह मेरा क्या कर लेगा और ये वानर भी क्या कर लेंगे । हे महाबाहो ! देखो, मैं आज इसको सोख लूँगा ॥ ५६ ॥ सब वानर बिना किसी काटिनाईके पीसे चलकर उस पार

तदा चचाल वसुधा दिशश्च तमसावृताः । चुल्लुमे सागरो वेलां मयाद्योजनमत्यमान् ॥५८॥
 तिमिमक्रझपा भीमाः प्रतप्ताः परितप्रसुः । एतस्मिन्नन्तरे साक्षात्सागरो दिव्यरूपघृक् ॥५९॥
 शनैरुवाच न रामं समर्प्य प्रणनाम सः । अथ तुष्टाव दीनात्मा प्रार्थयामास राघवम् ॥६०॥
 अमर्य देहि मे राम लंकाराणां ददामि ते । इति तद्वचनं श्रुत्वा राघवः प्राह सागरम् ॥६१॥
 अमोघोऽय महाबाणः कस्मिन्देहे निपात्यताम् । लक्ष्यं दर्शय मे शीघ्रं बाणस्यास्य पयोनिधे ॥६२॥

सागर उवाच

रामोत्तरप्रदेशेऽस्ति द्रुमकल्प इति श्रुतः । प्रदेशस्तत्र बहवः पापात्मानो दिवानिशम् ॥६३॥
 बाधन्ते मां रघुश्रेष्ठ तत्र ते पात्यतां शरः । रामेन मुक्तो बाणोऽसौ क्षणादाभीरमण्डलम् ॥६४॥
 इत्वा पुनः समागत्य तूणीरे पूर्वधन्विनः । ततोऽन्वर्षाद्रघुश्रेष्ठ सागरो विनयाश्रितः ॥६५॥
 मयि सेतुं कारयस्व नलेनोपलनिर्मितम् । विश्वकर्मसुतश्चायं वरो लब्धोऽस्त्यनेन हि ॥६६॥
 द्विजस्य जाह्नवीतोये शालिग्रामस्त्वनेन हि । त्यक्तस्तदा तेन शप्तः पापाणादि तरिष्यति ॥६७॥
 त्वद्वस्तादिति शापोऽयं वर एवायं स स्मृतः । इत्युक्त्वा राघवं नत्वा यथौ सिधुरदृश्यताम् ॥६८॥
 नलमाश्लेषयामास सेतुवर्ध रघुनन्दनः । सेतुमारममाणस्तु विघ्नेनां रथाप्य राघवः ॥६९॥
 नवग्रहाणां पूजार्थं पापाणाञ्च सादरम् । नलहस्तेन मस्थाप्य पूर्वं तत्र महोदधौ ॥७०॥
 ततः सागरसंयोगे स्वनाम्ना लिङ्गमुत्तमम् । स्थापयामीति निश्चित्य मारुतिं वाचयमब्रवीत् ॥७१॥
 काशीं गत्वा शिवाल्लिङ्गमाननीयमनुत्तमम् । मुहूर्तमप्ये नोचेन्मं मुहूर्तातिक्रमो भवेत् ॥७२॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा स मारुतिः । यथावाकाशमार्गेण क्षणाद्वाराणसीं यय ॥७३॥

जा सकेंगे । इतना कहकर रामने वनुषपर बाण चढ़ाकर डोरी लीची ॥ ५७ ॥ उस समय पृथ्वी कापि उठी, सब दिशाओंमें अँबेरा छा गया, समुद्र भयसे क्षुब्ध होकर अपने किनारेसे चार कोस आगे बढ़ गया ॥ ५८ ॥ मोने, तिमि ■■■ अथ नामकी मछलियें और मगरमच्छ आदि जलजन्तु सन्तप्त तथा व्याकुल हो गये । ■■■ समुद्र दिव्य रूप धारण करके प्रकटा और रामको रत्नोंकी मंड दे तथा नमस्कार करके दीनभावसे प्रार्थना करके कहने लगा—॥ ५९ ॥ ६० ॥ हे राम ! कृपा करके आप मुझे अभयदान दे । मैं आपको लड़का जानेंका रास्ता अभी देता हूँ । उसके वचनको सुनकर रामने कहा—॥ ६१ ॥ हे पयोनिधे ! यह मेरा महाबाण अमोघ है, धर्म नहीं आ सकता । बतलाओ, इसे कहाँपर गिराऊँ । इस बाणका कोई लक्ष्य बताओ ॥ ६२ ॥ सागरने कहा—हे राम ! उत्तर दिशामें द्रुमकल्प नामका देश है । वहाँ बहुतेरे पापी आभीर रहते हैं । वे पुत्रको रात-दिन सताते हैं । हे रघुश्रेष्ठ ! आप इस बाणको वहाँ ही गिराइए । तदनुसार रामने बाण उड़ा तो उसने जाकर क्षणभरमें समस्त आभीरमण्डलको मार डाला और पुनः वापस लौटकर रामके तरकसमें पूर्ववत् स्थित हो गया । बादमें सागरने विनयपूर्वक रघुश्रेष्ठ रामजीसे कहा—॥ ६३ - ६५ ॥ हे राघव ! आप मेरे लक्ष्य नलके द्वारा पत्थरोंका पुल बँधवाएँ । नल विश्वकर्माका पुत्र है । उसने जलपर पत्थर तैरानेका वर प्राप्त किया ॥ ६६ ॥ एक बार इसने एक ब्राह्मणका पूज्य शालिग्राम उठाकर गङ्गाजीके जलमें फेंक दिया था । तब उसने शाप दिया कि जा, तेरा फँका पत्थर बी पानीमें तैरेगा ॥ ६७ ॥ वह शाप भी वर माना जायगा । तबना कह तथा रामको नमस्कार करके समुद्र अदृश्य हो गया ॥ ६८ ॥ तदनन्तर रघुनन्दन रामने नलको पुन बाँधनेकी आज्ञा दी । सेतु बाँधते ■■■ पहिले गणेशजीकी स्थापना की गयी ॥ ६९ ॥ पश्चात् नवग्रहोंकी पूजाके लिए नलके हाथसे सादर नौ पाषाणोंकी समुद्रमें स्थापना करवाई गयी ॥ ७० ॥ इसके बाद 'अपने नाम-के मैं सागरके सङ्गमपर उसमें शिवलिंग स्थापित करूँगा' ऐसा निश्चय करके रामने मारुतिसे कहा—॥ ७१ ॥ हे इनुमाद ! तुम काशी जाकर जिवजीसे एक उत्तम लिंग मुहूर्तमात्रमें माँग ले आओ । नहीं तो मेरा यह मुम मुनं ■■■ पायगा ॥ ७२ ॥ रामकी ■■■ सुनकर इनुमानने 'तथास्तु' कहा और क्षणभरमें उड़कर

तत्रागत्याय मां नत्वा रामकार्यं न्यवेदयत् । तच्छ्रुत्वाऽथ मया देवि राघवाय हनूमते ॥७४॥
 द्वे लिङ्गे द्योतिते श्रेष्ठे ततोऽहं कपिमब्रुवम् । मयाऽपि दक्षिणे गतुं पूर्वमेव विनिश्चितम् ॥७५॥
 अगस्तिना विशेषेण यास्यामि राघवाञ्जया । एवं तद्वचनं श्रुत्वा मारुतिः प्राह मां पुनः ॥७६॥
 कदा विनिश्चितं पूर्वं त्वयाऽत्र कुम्भजन्मना । तत्सर्वं मां वदस्वाद्य कृपां कृत्वा ममोपरि ॥७७॥
 तन्मारुतिवचः श्रुत्वा ततोऽहमब्रुवं कपिम् । मारुते त्वं शृणुष्वद्य पूर्ववृत्तं वदामि ते ॥७८॥
 कदाचिन्मरुतः श्रीमान्स्नात्वा श्रीनर्मदांभसि । श्रीमदोङ्कारमभ्यर्च्य सर्वदं सर्वदेहिनाम् ॥७९॥
 व्रजन्विलोकयाचक्रे पुरो विष्य धराधरम् । संसारतापसंहारि रेवावारिपरिष्कृतम् ॥८०॥
 रूपद्वयेन कुर्वतं स्थावरं चरेण च । साभिरूपेन यथार्थारूपाशुर्चैर्वसुमतीमिमाम् ॥८१॥
 अथ तं नारदं दृष्ट्वा विन्ध्यः प्रत्युज्जगाम सः । गृहमानीय विधिवत्पूजयामास सादरम् ॥८२॥
 गतश्रममथालोक्य बभापेऽनतो गिरिः । अवसंघः परिहृतस्त्वदंघ्रिरजसा मम ॥८३॥
 त्वदंगसंगिमहसा सहस्राप्यांतरं तमः । सकलधिकरं चाद्य सुदिनं चाद्य मे मुने ॥८४॥
 प्राकृतैः सुकृतेरद्य फलितं मे चिरार्चितैः । धराधरत्वं कुलिषु मान्यं मेऽद्य भविष्यति ॥८५॥
 इति श्रुत्वा तदा किञ्चिदुच्छस्य स्थितवान्मुनिः । पुनरुच्ये कुलिवरः संभ्रमापन्नमानसः ॥८६॥
 उच्छ्वासकारणं ब्रह्मन् ब्रूहि सर्वार्थकोविद । तवाहं मार्जयाम्यद्य हृन्वेदं क्षणमाव्रतः ॥८७॥
 धराधरणासामर्थ्यं मेवादी पूर्वपूरुषः । वर्ण्यते समुदायात्तद्वमेको दधे धराम् ॥८८॥
 गौरीशुरुत्वादिमवानाधिपत्याद्य भूभृताम् । सम्बन्धित्वात्पशुपतेः स एको मानभृत्सत्ताम् ॥८९॥
 न मेरुः स्वर्णपूर्णत्वाद्भूतसानुतयाऽथवा । सुरसद्यतया वाऽपि कापि मान्यो मतो मम ॥९०॥

आकाशमागंसे (शिवकी) चाराणसी (काशी) नगरीमें आगये ॥ ७३ ॥ वहाँ आकर उन्होंने मुझको नमस्कार करके रामके कार्यके लिये निवेदन किया । हे देवि ! उस निवेदनको सुनकर मैंने रामके लिए हनुमान्को दो उत्तम लिङ्ग दिये और कहा कि हे कपि ! मैंने भी दक्षिण दिशामें जानेका बहुत दिनोंसे निश्चय कर रक्खा है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ यह निश्चय अगस्त्य मुनिके साथ हुआ था । पर बादमें सोचा कि विशेष-रूपसे रामको होगा, तभी जाऊँगा । मेरे मुखसे यह सुनकर मारुतिने मुझसे फिर किया—॥ ७६ ॥ आपने पहिले कब और कहाँपर कुम्भजन्म (अगस्त्य) के साथ यह निश्चय किया था । यह सब हाल कृपा करके कहें ॥ ७७ ॥ मारुतिकी बात सुनकर मैंने कहा—हे मारुते ! मैं तुमको पूर्ववृत्तान्त बताता हूँ, सुनो ॥ ७८ ॥ एक समय श्रीमान् नारदमुनि नर्मदा नदीके पवित्र जलमें स्नान करके देहधारी प्राणियोंको सब कुछ देनेवाले ओङ्कारेश्वर शिवकी पूजा करके जा रहे थे । रास्तेमें संसार भरके तापको दूर करने-वाला तथा रेवके जलसे परिप्लुत विष्यपर्वत सामने दिखाई दिया ॥ ७९ ॥ ८० ॥ वह स्थावर तथा जंगम इन दो रूपोंसे वसुमती पृथ्वीको यथार्थ नाम प्रदान कर रहा था ॥ ८१ ॥ नारदको देखकर वह पर्वत सामने आया तथा उन्हें अपने घरपर आकर सादर विधिवत् पूजन किया ॥ ८२ ॥ नारदजीका श्रम दूर हो जानेपर विन्ध्याचल विनम्र होकर कहने लगा कि आपके चरणरजसे मेरा पापपुञ्ज नष्ट हो गया ॥ ८३ ॥ हे महामुने ! आपके देहिक तेजके संसर्गसे अनेक मनोव्याघातों का करनेवाला मेरे हृदयका अन्धकार दूर हो गया । आज मेरे लिए बड़ा शुभ दिन है ॥ ८४ ॥ चिरकालसे उपाजित मेरे प्राकृत पुण्य आज सफल हो गये । आजसे पर्वतोंमें माननीय पर्वत माना जाऊँगा ॥ ८५ ॥ यह सुनकर मुनिने कुछ लम्बी साँस ली । यह देखा तो धबकाकर पर्वतने कहा—हे अर्थोंको जाननेवाले ब्रह्मन् ! इस उच्छ्वासका क्या कारण है ? आपके हृदयका स्तब्ध मैं क्षणभरमें भाजित कर दूँगा ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ पूर्वपूरुषोंने मेरु आदि पर्वतोंको मिलाकर पृथ्वीको धारण करनेमें समर्थ बतलाया है, पर मैं अकेला ही उसको धारण कर सकता हूँ ॥ ८८ ॥ अभी गौरीका पिता होनेसे, पर्वतोंका अधिपति होनेसे तथा पशुपति शिवका सम्बन्धी होनेके कारण केवल हिमालय ही सबजनोंके मानका पात्र है ॥ ८९ ॥ मेरी समझमें तो सोनेसे भरा हुआ तथा रत्नमय शिखरोंवाला

परं शतं ■ किं शैला इलाकलनकेलयः । इह संति सर्वा मान्या मान्वास्ते तु स्वभूमिषु ॥९१॥
 मंदेहदेहसंदोहा उदयंकयाश्रिताः । निषधश्रीषधिधरोऽप्यस्तोऽप्यस्तमितप्रभः ॥९२॥
 नीलश्च नीलनिलयो मंदरो मंदलोचनः । सर्पालयः स मलयो राघवं नावाप रैवतः ॥९३॥
 हेमकूटत्रिकूटाद्याः कूटोत्तरपदास्तु ते । किष्किंधर्कोषसहाया भारसहा न ते भुवः ॥९४॥
 इति विष्णवचः श्रुत्वा नारदो हृद्यचित्तयत् । अस्वर्गवर्गसंसर्गो ■ महश्चायं कल्पते ॥९५॥
 श्रीशैलमुख्याः किं शैला नेह सत्यमलश्रियः । येषां शिखरमात्रादिदर्शनं मुक्तये सताम् ॥९६॥
 अथास्य बलमालोच्यमिति ध्यात्वाऽब्रवीन्मुनिः । सत्त्वयुक्तं हि भवता गिरिवारं विष्णुवता ॥९७॥
 परः शैलेषु शैलेन्द्रो मेरुस्त्वामवमन्यते । मया निःश्वसितं चैनव्रज्यि चापि निवेदितम् ॥९८॥
 अथवा यदिधानां हि कैवं चिता महारमणाम् । स्वस्त्यस्तु तुभ्यमिन्युक्त्वा यया स व्योमवर्मना ९९॥
 गते मुनौ निनिद स्वमनायोद्विगमानसः । चित्ते विचारयामास मेरोः श्रेष्ठ्यं कथं त्विति ॥१००॥
 मेरुं प्रदक्षिणं कुर्यान्नित्यमेव दिवाकरः । सग्रहक्षेपणो नूनं मन्यमानो बलाधिकम् ॥१०१॥
 इति निश्चित्य विष्णादिर्वबुधे स मृधेक्षणः । निरुध्य ब्राध्नमध्वानं स्वस्थोऽभूद्भगनांगणे ॥१०२॥
 ततः प्रभाते सूर्योऽसौ दिशि याम्यां समुद्यतः । गंतुं रुद्धं स्वपंथानं दृष्ट्वाऽस्वस्थोऽभवच्चिरम् ॥१०३॥
 योजनानां सहस्रं द्वे द्वे शते द्वे ■ योजने । यः स्वस्थश्च निमेषादूर्ध्वागतिं नापि चिरं स्थितः ॥१०४॥
 गते बहुतिथे काले प्राच्योर्दीच्या भृशदिताः । चण्डरश्मिः करत्रातपातसंतापवापिताः ॥१०५॥
 पाश्चात्या दाक्षिणान्याश्च निद्राभुद्रितलोचनाः । श्रमिता एव दृश्यन्ते सतारग्रहमंवरम् ॥१०६॥
 श्वाहास्वधावपट्कारवर्जिते जगतीतले । पंचयज्ञक्रियालोपाच्चकम्पे भुवनत्रयम् ॥१०७॥

क्या देवताओंका निवासस्थान होनेपर भी मेरु विशेष माननीय नहीं है ॥ ९० ॥ क्या पृथ्वीको धारण करने-
 वाले अन्य सैकड़ों पर्वत इस संसारमें नहीं हैं ? क्या वे सभी पर्वत सज्जनोके मान्य हैं ? नहीं, यदि हैं भी तो
 केवल अपने-अपने स्वाधीनपर ॥ ९१ ॥ उदयाचल मन्द है । वह राक्षसोंको आधर देनेकी कृपा करनेमें ही समय
 है । निषधगिरि औषधिमात्र धारण करता है । अस्ताचल निस्तब्ध हो गया है ॥ ९२ ॥ नीलगिरि नीले
 रत्नरोका समूहमात्र है । मन्दराचल मन्ददृष्टि है । मलय पर्वत सर्पोंका घर है । रैवत निधन है ॥ ९३ ॥ हेमकूट
 तथा त्रिकूट आदि केवल कूट उत्तरपदवाले ही हैं । किष्किंधर, श्रीश और सहा पर्वत भी पृथ्वीके बोझको
 धारण करनेमें समय नहीं हैं ॥ ९४ ॥ विन्ध्याचलकी इस बातको सुनकर नारदने मनमें विचार किया कि
 श्रेष्ठ्या प्रणी महत्त्वके योग्य नहीं होता ॥ ९५ ॥ क्या इस संसारमें श्रीशैल आदि पर्वत निर्मल, कान्ति-
 सम्पन्न ■ यशस्वी नहीं हैं ? जिनके शिखरको देखनेमात्रसे शुद्ध अन्तःकरणवाले महान् पुरुषोंको मुक्ति मिल
 जाती है ॥ ९६ ॥ अतएव आज इसके बलकी परीक्षा करनी चाहिए । ऐसा विचार करके नारद मुनिने कहा—
 मुझे पर्वतोंका बल ठीक वर्णन किया है ॥ ९७ ॥ पर पर्वतोंमें श्रेष्ठ मेरुपर्वत तुम्हारा अपमान ■ है । वह
 मुझे भी अपनेको बढ़कर मानता है । वस, यही कारण ■ कि मैंने लम्बा श्वास लिया था और यह बात
 मुझे भी कह दी ॥ ९८ ॥ अथवा हम जैसे महात्माओंको इस बातकी क्या चिंता है । तुम्हारा कल्याण
 ही । इतना कहकर वे व्योममार्गसे चले गये ॥ ९९ ॥ नारद मुनिके चले जानेपर अतिशय चिन्ताकुल होकर
 विन्दरपर्वतने अपने आपका बड़ी निन्दा की और सोचने लगा कि मेरुकी इतनी बड़ी महिमा क्यों ■ ॥ १०० ॥
 इह तथा नक्षत्रों सहित सूर्यनारायण प्रलदिन उसको परिक्रमा करते हैं । सम्भवतः इत्सीसे उसको अपने
 कल्याण तथा महत्त्वका अभिमान है ॥ १०१ ॥ ऐसा निश्चय करके विन्ध्याचलने उसकी समृद्धि देखने-
 के इच्छासे अपना शरीर बहुत ऊपरको बढ़ाया और सूर्यके रास्तेकी रोककर आकाशरूपी आग्नमें खड़ा हो गया
 ॥ १०२ ॥ प्रातःकाल सूर्यने दक्षिण दिशाकी ओर जानेका प्रस्थान किया । तब रास्ता रुका देखकर वे वहीं
 रुक गये । जब बहुत दिन बीत गये, तब सूर्यके प्रचण्ड किरणमण्डूके तापसे पूर्व तथा उत्तर दिशाके लोच
 रुक गये ॥ १०३-१०५ ॥ पश्चिम तथा दक्षिण दिशाके लोचोंकी आँखें निद्रासे भुंदी रहीं । वे ■

सैकतं स्थापयामास लिङ्गं रामो विधानतः । तदा सस्मार मनसि कौस्तुभं रघुनन्दनः ॥१२४॥
 तावद्ययी मणिः शीघ्रं स्वात्कोटितपनोपमः । तं बबध मणिं कण्ठे कौस्तुभं रघुनन्दनः ॥१२५॥
 मण्डुर्ध्वैर्धनैर्वस्त्रैरभरणधेनुभिः । दिव्याद्यैः पायसार्घ्यैश्च पूजयामास तान् मुनीन् ॥१२६॥
 ततस्ते मुनयस्तुष्टा राघवेणातिपूजिताः । ययुः स्वीयाधमान् मार्गे तान्ददर्श स मारुतिः ॥१२७॥
 पप्रच्छ मारुतिर्विप्रान् पूयं केन प्रपूजिताः । तेऽप्युचुर्लिङ्गमाराध्य राघवेर्नव पूजिताः ॥१२८॥
 तत्तेषां वचनं श्रुत्वा क्रोधाविष्टोऽभ्यर्चितयत् । वृथाऽहं श्रमितस्तेन रामेणाद्य प्रतारितः ॥१२९॥
 इत्थं वदन्ययौ राम क्रोधात्स्वीयं पदद्वयम् । भुवि संताड्य पतितस्तदा भूम्यां पदद्वयम् ॥१३०॥
 गतं कपिस्तदा रामममवीत्किं न मे स्मृतः । सीताशुद्धिर्मया लंकां गत्वानीतेति साऽद्य हि ॥१३१॥
 मेऽधोऽपवासोऽग्र काशीं प्रेष्य स्वपा कुतः । किमर्थं श्रमितव्याहं यदीत्थं ते हृदि स्थितम् ॥१३२॥
 अमविष्यन्मया कृतं चेत्पूर्वं हृद्गतं तव । काशीमहं तर्हि गत्वा किमर्थं लिङ्गमागतये ॥१३३॥
 एकं त्वदर्शयामीतिमपरं लिङ्गमुत्तमम् । मयाऽऽत्मार्यं समानीतं तवाग्रे किं करोम्यहम् ॥१३४॥
 एवं क्रोधयुतं वाक्यं किञ्चिद्भवं समन्वितम् । रामः श्रुत्वा कपिं प्राह कपे त्वं सत्यवागसि ॥१३५॥
 यथैतत्स्थापितं लिङ्गं समुत्पाटय त्वं बलात् । स्थापयामि त्वयातीतं काश्या विष्वेश्वरामिधम् ॥१३६॥
 तथेत्युक्त्वा मारुतिः स सैकतस्येश्वरस्य च । संवेष्ट्य भस्तके पुच्छं बलेनान्दोलयन्मुहुः ॥१३७॥
 व्रुष्टितं तत्कपेः पुच्छं पपात भुवि भूछितः । जहसुर्वानराः सर्वे न चचालेश्वस्तदा ॥१३८॥
 स्वस्थो भूत्वा मारुतिः स गतगर्वस्तदाऽभवत् । ननाभ परया भक्त्या प्रार्थयामास तं मुहुः ॥१३९॥
 मायाऽपराधितं राम तस्थमस्व कृपानिधे । तदाह मारुतिं रामस्त्वं महिलगोचरे त्विदम् ॥१४०॥

वानरोंको बुलाकर रामने विधिवत् बालूके लिङ्गको स्थापित कर दिया । पश्चात् भगवान् रामने कौस्तुभ मणिको स्मरण किया ॥ १२२-१२४ ॥ स्मरण करते ही करोड़ों सूर्यके समान प्रभाशाली वह मणि आकाशमार्गसे आ गया । तब रघुनन्दन रामने उस मणिको कंठमें बाँध लिया ॥ १२५ ॥ उस मणिसे प्राप्त घन, वस्त्र, आभरण, भक्ष्य, धेनु, दिव्य पशुवान तथा पायस आदिसे रामने मुनियोंको पूजन-सस्कार किया ॥ १२६ ॥ श्रीरामसे पूजा करने के प्रसन्न वे मुनि अपने-अपने आश्रमोंको जा रहे थे, तभी रास्तेमें उन्हें मारुतिने देख लिया ॥ १२७ ॥ तब हनुमान्ने उनसे पूछा कि आपको पूजा किसने की है ? उन्होंने उत्तर दिया कि रामने शिवलिङ्गको आराधना तथा स्थापना करके हम लोगोंकी पूजा की है ॥ १२८ ॥ हनुमान्ने उनकी सुनी तो क्रुद्ध होकर विचारने लगे कि रामने आज मुझसे व्यर्थ इतना परिश्रम कराके ठगा है ॥ १२९ ॥ यह विचारते हुए वे क्रोधसे रामके पास गये और जोरसे उन्होंने अपने दोनों पाँवोंको जमीनपर पटक़ा । इससे उनके दोनों पाँव पृथ्वीमें धँस गये । बादमें हनुमान्ने रामसे कहा कि आपको मेरा स्मरण नहीं था ? जिस हनुमान्ने नकामे सीताकी खोज की थी और लौटकर आपको उनकी खबर दी थी ॥ १३० ॥ १३१ ॥ उसी हनुमान्को आज आपने काशी भेजकर ऐसा उपहास किया ? यदि आपके मनमें यही था तो फिर मुझे इस तरह धर्य क्यों सताया ? ॥ १३२ ॥ यदि मुझे आपका अभिप्राय ज्ञात हो जाता तो मैं कभी काशी जाकर मैं तो शिवलिंग लाता ॥ १३३ ॥ इनमेंसे एक आपके लिए और दूसरा उत्तम शिवलिंग अपने लिये ले जाया हूँ । अब मैं इस आपवाले शिवलिंगको क्या करूँ ? ॥ १३४ ॥ इस प्रकार कुछ क्रोध तथा गर्वयुक्त हनुमान्का वाक्य सुनकर रामने कहा कि कपे ! तुम्हारा कहना है ॥ १३५ ॥ अब तुम यदि इस मेरे स्थापित लिङ्गको पूछमें लपेटकर उल्लाड़ लो तो मैं तुम्हारे काशीसे लाये हुए विष्वेश्वरलिंगको यहाँ पुनः स्थापित कर दूँ ॥ १३६ ॥ 'बहुत अच्छा' कहकर हनुमान्ने उस बालूके लिङ्गके ऊपरी भागमें पूछ लपेटकर बारम्बार खूब जोरसे हिलाया ॥ १३७ ॥ जिससे सहसा उनकी पूछ टूट गयी । वे जमीनपर गिर पड़े और मूर्च्छित हो गये । परन्तु बालूका लिङ्ग तनिक भी नहीं हिला । यह देखकर सब वानर हँसने लगे ॥ १३८ ॥ पश्चात् मारुति ही तप्य गर्व छोड़कर भक्तिसे रामको नमस्कार करके प्रार्थना करने लगे— ॥ १३९ ॥

विश्वनाथ मिधं लिङ्गं स्वीयं संस्थापयामुना । तथेति मारुतिलिङ्गं स्थापयामास सादरम् ॥१४१॥
 मारुतेश्वरं लिङ्गाय ददौ रामो वरं तदा । असंपूज्य विश्वनाथं मारुते स्वप्रतिष्ठितम् ॥१४२॥
 ममादौ पूजयन्त्यत्र ये नरा लिङ्गमुत्तमम् । रामेश्वरामिधं सेतौ तेषां पूजा वृथा भवेत् ॥१४३॥
 इत्युक्त्वा तं पुनः प्राह रामो राजीवलोचनः । मदर्थं यत्समानीतं त्वया लिङ्गं महत्तमम् ॥१४४॥
 विश्वनाथस्य तत्तूष्णामस्तु देवालये चिरम् । अनर्चितमवन्त्या तदप्रतिष्ठितमद्यमम् ॥१४५॥
 अग्रे कालान्तरेणाहं तच्चापि स्थापयामि वै । तत्रैव वर्ततेऽद्यापि लिङ्गं विश्वेश्वरान्तिके ॥१४६॥
 अप्रतिष्ठापितं भूम्या न केनापि प्रपूजितम् । पुनः प्राह कपिं रामस्त्वमत्र छिन्नलांगुलः ॥१४७॥
 वस भूम्या गुप्तपादः स्मरन्स्वगर्वितं त्विदम् । ततः कपिः स्वीयमूर्तिं स्थापयामास स्वाश्रितः ॥१४८॥
 छिन्नपुच्छा गुप्तपादा सा तत्राद्यापि वर्तते । पतितो मूर्च्छितो यत्र मारुतिस्तत्र तद्वरम् ॥१४९॥
 बभूव मारुतेर्नाम्ना तीर्थं पापप्रणाशनम् । रामस्तत्राकरोत्पुण्यं स्वनाम्ना तीर्थमुत्तमम् ॥१५०॥
 स्वांशेन स्थापयामास मूर्तिं तत्र रघुद्वहः । सेतुमाधवनाम्नी सा वर्ततेऽद्यापि पार्वति ॥१५१॥
 स्वनाम्ना लक्ष्मणस्यापि चकार तीर्थमुत्तमम् । ततो रामः स्वहस्तेन स्पृष्ट्वा मारुतिलांगुलम् ॥१५२॥
 चकार पूर्ववद्रम्यं दृढसन्धिप्रसादितः । तत्पुच्छवेष्टनाजातः कुशो रामेशमस्तकः ॥१५३॥
 स तथैव कुशोऽद्यापि तत्रास्ति शिवमस्तकः । तदारम्य त्यक्तगर्वश्चाभूद्रामे स मारुतिः ॥१५४॥
 ततोऽहं संकताल्लिङ्गादाविर्भूय रघुद्वहम् । अत्रुवं देवि तत्सर्वं शृणुष्व ते वदाम्यम् ॥१५५॥
 राघवेन्द्र रघुश्रेष्ठ शृणु वृत्तं पुरातनम् । एकदाऽहं पुरा भूम्यां मलिनाम्बरसंयुतः ॥१५६॥
 मिथार्थं कौतुकाद्विप्ररूपेणाविचरं सुखम् । श्रुत्वाणामाश्रमाद्येषु द्यतदंतं मां विलोक्य च ॥१५७॥

हे राम । मेरा जो अपराध हुआ हो, उसे क्षमा करे । क्योंकि कृपातिथि है । तदनन्तर रामने कहा—
 हे मारुति ! तुम मेरे स्थापित लिङ्गसे उत्तरकी ओर इस विश्वनाथ नामके अपने लिङ्गको स्थापित करो ।
 'तथास्तु' कहकर मारुतिने सादर शिवलिङ्गकी स्थापना कर दी ॥१४०॥१४१॥ तब रामने मारुतिलिङ्गको
 वरदान देते हुए कहा—हे मारुते ! तुम्हारे द्वारा स्थापित विश्वनाथलिङ्गकी पूजा किये बिना जो सेतुबंधरामे-
 श्वरकी पूजा करेगा, उसकी पूजा व्यर्थ हो जायगी ॥ १४२॥ १४३॥ कहकर रामने फिर हनुमान्से कहा
 कि जो तुम मेरे लिए उत्तम लिङ्ग लाये हो ॥ १४४॥ वह विश्वनाथलिङ्ग यों ही देवालयमें पड़ा
 रहे । बहुत यह उत्तम लिङ्ग घरतीपर अपूजित हो पड़ा रहेगा ॥ १४५॥ आगे चलकर बहुत दिनों बाद
 उसकी भी मैं अवश्य स्थापना करूँगा । वह लिङ्ग अभी भी वहाँ विश्वेश्वरलिङ्गके पड़ा हुआ है ॥ १४६॥ न
 अभी उसकी प्रतिष्ठा हुई है और न कोई उसकी पूजा ॥ । रामने फिर हनुमान्से कहा कि तुम्हारी पूँछ
 यहींपर छिन्न हुई है । अतः तुम यहींपर भूमिमें छिन्नपुच्छ गुप्तपाद होकर अपने गर्वका स्मरण करते हुए
 पड़े रहो । तब हनुमान्ने अपने अंगसे वहाँ अपनी मूर्ति स्थापित की ॥ १४७॥ १४८॥ अभी भी वहाँ
 हनुमान्की छिन्नपुच्छ और गुप्त पाँवकी मूर्ति विद्यमान है । जहाँपर मारुति मूर्छित होकर गिरे थे, वह उत्तम
 स्थान मारुतिके नामसे पवित्र तथा पापोंको नष्ट करनेवाला तीर्थ प्रसिद्ध हुआ । वहाँ ही रामने भी अपने नामसे
 एक उत्तम तीर्थ बनाया ॥ १४९॥ १५०॥ रामने वहाँ अपने अंगकी एक मूर्ति भी स्थापित कर दी । सेतु-
 माधव नामकी वह मूर्ति अभी भी वहाँ प्रस्तुत है ॥ १५१॥ हे पार्वति ! लक्ष्मणने भी वहाँ अपने नामका उत्तम
 तीर्थ स्थापित किया । पश्चात् रामने अपने हाथसे ठूकर हनुमान्की पूँछको पूर्ववत् सुन्दर तथा दृढ़ सन्धियुक्त
 बनाकर हनुमान्को कर लिया । पूँछसे लपेटे जानेके कारण रामेश्वरका मस्तक कुछ गया
 था ॥ १५२॥ १५३॥ वह शिवमस्तक अभी भी वंसा ही चिपटा है । तबसे हनुमान् रामके समस्त सर्वथा
 गर्वरहित हो गये ॥ १५४॥ हे देवि ! उस समय बालूके लिङ्गमेंसे प्रकट होकर मैंने रघुद्वह रामसे जो कुछ
 कहा था, वह सब तुमको सुनाता हूँ । ध्यान देकर सुनो ॥ १५५॥ मैंने कहा—हे राघवेन्द्र ! हे रघुश्रेष्ठ !
 मुझे मैं एक प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ । एक समय कौतुकवश मैं पुराने कपड़े पहिन तथा ग्राह्यका

मद्रूपमोहिताः सर्वा ऋषिपत्न्यः सहस्रशः । सत्पृष्ठे ताः समाजमुभेर्तुभिर्वारिता अभि ॥१५८॥
 तदा ते चुचुभुः सर्वे मामहात्वा मुनीश्वराः । ददुः शार्प महाघोरं क्रोधसविग्रमानसाः ॥१५९॥
 रत्पथं मोहिता नार्यस्त्वया तस्माद्द्विजाधम । पतत्वद्य स्तेरंगं लिङ्गं भुवि ■ नो मिरा ॥१६०॥
 एवं द्विजैर्वेदा वसोऽपतलिङ्गं तदा भुवि । द्विजच्छत्रस्य मे राम गतोऽहं गुप्ततां तदा ॥१६१॥
 द्विजनायोऽप्यदृष्ट्वा मां जग्मुः स्वं स्वं गृहं प्रति । तलिङ्गं ववृधे भूम्यां गगनं ध्याप्य संस्थितम् ॥१६२॥
 तद्गृह्णा चकितो वेषास्तस्यांन द्रष्टुमुद्यतः । पश्यतस्तस्य कोट्यर्धनान्तमसीञ्च वेधसः ॥१६३॥
 तदा मामेत्य स विधिर्भयाद्भूतं न्यवेदयत् । अकाले प्रलयस्त्वद्य शम्भोऽनेन मविष्यति ॥१६४॥
 तदा मया पूर्ववृत्तं विधिं सभ्राज्य मादरम् । त्रिशूलो वेधसं दत्तस्तं छेतुं सोऽजनीञ्च माम् ॥१६५॥
 कथं तेऽहं दारयेऽहं त्वमेव छेत्सुमर्हसि । नतो मयार्कखंडानि कृतानि तस्य राघव ॥१६६॥
 त्रिशूलेनापि क्षिप्तानि भूम्यां निपतितानि हि । तज्जातान्यत्र लिङ्गानि ज्योतिःसंशानि द्वादश ॥१६७॥
 र्त्तकारः सोमनाथश्च ज्यम्बको मल्लिकार्जुनः । नागेशो वैद्यनाथश्च काशीविश्वेश्वरस्त्वहम् ॥१६८॥
 केदारेशो महाकालो भीमेशो घृम्णेश्वरः । एवमेकादश ज्ञेया ज्योतिलिङ्गमयाः शुभाः ॥१६९॥
 गन्धमादननाम्नेशो मेरोरीशानदिकस्थितः । आसीच्छिरं न कस्यापि मानवस्याक्षिणोचरः ॥१७०॥
 तदा ते मुनयः सर्वे शिषं बुद्ध्या तु लिङ्गतः । ददुर्वरं पुनर्लिङ्गं तवाम्बु गिरिजाप्रिय ॥१७१॥
 ततः प्रलयवतिन गन्धमादननामकम् । तन्मेरोरुत्तरे भृङ्गमेकदाऽप्रापत-भुवि ॥१७२॥
 तदिदं दान्धिर्संयोगे दक्षिणे सागसंभ्रमि । गन्धमादननाम्नेदं भृङ्गं पश्यत्र राघव ॥१७३॥
 गन्धमादननाम्नेशं लिङ्गं द्वादशमं त्रिदम् । त्वन्प्रतिष्ठितलिङ्गस्य हीशान्यामन्त्रिके स्थितम् ॥१७४॥

रूप धारकर आनन्दसे भिक्षाके लिए पृथिवीपर विचर रहा था । इस प्रकार ऋषियोंके आश्रममें घूमता हुआ मुझे देखकर संकटों ऋषिपत्नियों मेरे रूपपर मोहित हो गयीं । पत्नियोंके रोकनेपर भी वे नहीं रुकी और मेरे पाँधे पीछे घूमने लगी ॥ १५९-१५८ ॥ तब वे सब मुनीश्वर मुझे पहिचानकर बहुत चकराय और कुछ हाकर उन्होंने मुझे बड़ा भयानक शाप दे दिया ॥ १५९ ॥ उन्होंने कहा—अरे अधम ब्राह्मण ! तूने रति करनेक लिए हमारी स्त्रियोंको मोहित कर लिया है । इससे तेरे रतिका साधन अङ्ग अर्थात् लिङ्ग हमारे कहनेसे पटकर जमान-पर गिर पड़े ॥ १६० ॥ हे राम ! उनके शापसे द्विजवेज्यारो मेरा लिङ्ग पटकर तुरन्त जमानपर गिर पड़ा । नाशमे मे अन्तर्धान हो गया ॥ १६१ ॥ मुझे न देखकर वे द्विजोंको स्त्रियें भी अपन-अपन घर चली गयीं । तदनन्तर वह लिङ्ग इस प्रकार बड़ा कि आकाश तक व्याप्त हो गया ॥ १६२ ॥ यह देखकर ब्रह्मा बहुत चकित हुए और उसका अन्त देखनक लिए उद्यत हो गये । कराड़ों वष तक पता लगानेपर भी ब्रह्माभा जब मेरे लिङ्गका अन्त नहीं मिला ॥ १६३ ॥ तब मेरे पास आकर इरतं हुए उन्होंने कहा—हे शम्भु ! इससे तो धकालमे ही प्रलय होना चाहता है ॥ १६४ ॥ मैंने ब्रह्माको पूर्ववृत्तित पुनःकर सादर उनक हायमे लिङ्गको काटनेक लिए अपना त्रिशूल दे दिया । तब ब्रह्माते कहा— ॥ १६५ ॥ मे भला आपके अंगका कौन काट सकता है ! आप ही इस काटे । हे राघव ! तब मैंने उस लिङ्गके बारह टुकड़ कर डाले ॥ १६६ ॥ फिर त्रिशूलसे हा उठाकर उनका पुनःपर इधर-उधर फेंक दिया । वे हो बारहों टुकड़ बहोपर बारह उद्यार्तलिङ्ग नामसे विख्यात हुए ॥ १६७ ॥ अथास्नाय, सामनाथ, ज्यम्बकेश्वर, मल्लिकार्जुन, नागेश, वैद्यनाथ, काशीविश्वनाथ, केदारनाथ, केदारेश्वर, महाकाल, और घृत्कर्णेश्वर ये ग्यारह शुभ ज्योतीर्लिङ्ग हैं ॥ १६८ ॥ १६९ ॥ बारहवां लिङ्ग गन्धमादन पर्वतके इशान कायवाले जितरपर बहुत काल तक स्थित रहकर भी किसी मनुष्यका दृष्टिमे नहीं आया ॥ १७० ॥ तब मुनयोंने लिङ्गक दृष्टि शिदका पहिचानकर पुनः वर दिया—हे गिरिजाप्रिय ! तुम्हारे फिर लिङ्ग हा जाय ॥ १७१ ॥ तदनन्तर एक समय वह मेरुका गन्धमादन नामक उत्तरी शिखर प्रलयबाहुसे उड़कर यहाँ आ गिरा ॥ १७२ ॥ हे राघव ! यह गन्धमादन शिखरको तुम यहाँ दक्षिणी समुद्रके संगमपर अलने देख सकते हो ॥ १७३ ॥ बारहवां गन्धमादन

एतावत्कालपर्यन्तं नेह कैश्चिदलोकितम् । अथ त्वया वानराद्यैर्दृष्टं स्पष्टं विमोक्षदम् ॥१७५॥
 त्वत्प्रतिष्ठितलिंगस्य प्रसादादवनीतले । ख्यातिं गतं त्विदं लिंगं यस्मात्तस्माद्रघूत्तम ॥१७६॥
 अस्य लिंगस्य यज्ज्योतिर्भदीयं त्वत्प्रतिष्ठिते । यास्यस्यैव सैकतेऽत्र लिंगे सेतौ गिरा ॥१७७॥
 ज्योतिर्लिङ्गं द्वादशमं तव रामेश्वरामिधम् । वदत्यत्र जनाः सर्वे सद्यारम्य रघूत्तम ॥१७८॥
 पूजोत्सवादिकं कर्म यच्चैकचिद्गिरा मम । तत्रैव लिंगे तत्सर्वमस्तु रामेश्वरे सदा ॥१७९॥
 अहं चापि मुनेर्वाक्यादगस्तोत्सवगिराणि च । त्यक्त्वा काशीमागतोऽस्मि त्वच्छिक्तेऽस्मिन्वसाम्यहम् ॥
 प्रणमेत्सेतुबंधे यः पुमान् रामेश्वरं शिवम् । भग्नहत्यादिपापेभ्यो मुच्यते तदनुग्रहात् ॥१८१॥
 त्वं वदाथ रघुबन्धे वरं येन जनाः सदा । स्नानार्थमात्रमिच्छन्ति मणिकर्णजलं ॥१८२॥
 ममैव हवनं श्रुत्वा प्रसन्नो रघुनायकः । जगाद स्नात्वा सेतुबंधे रामेशं परिपश्यति ॥१८३॥
 संकल्प्य निपतो भूत्वा गृहीत्वा सेतुबालुकाम् । करं चिकामिर्वस्नेन गत्वा वाराणसीं शुभाह् ॥१८४॥

धिप्त्वा तां बालुकां त्यक्त्वा वेण्यां बालुकरं चिकाम् ।

आनीय गंगासलिलं रामेश्वरमभिषिच्य च ॥१८५॥

समुद्रे त्यक्तवद्भारो प्राप्नोत्यसंशयम् । संकल्पेन विना गंगा रामेशं नागमिष्यति ॥१८६॥
 आगता चेत्तदा ज्ञेयः संकल्पः पूर्वजन्मनि । कुतोऽस्तीत्यत्र मद्राक्याभात्र कार्या विचारणा ॥१८७॥
 एवं नानावरान्नामो यावच्छिगाय सोऽब्रवीत् । समायातः कुम्भजन्मा मुनीश्वरः ॥१८८॥
 ननाम शंकरो रामं रामोऽपि प्रणनाम तम् । तदा मुनिः प्राह रामं प्रसादात्तव राघव ॥१८९॥
 दर्शनं विश्वनाथस्य जातं मेऽद्यात्र वै चिरात् । अद्यात्र तुष्टिर्जाता मे लिंगमत्र करोम्यहम् ॥१९०॥
 इत्युक्त्वा स्थापयामास स्वनाम्ना लिंगमुत्तमम् । रामेश्वरान्निदिग्भागे कुम्भजन्मा मुदान्वितः ॥१९१॥

लिंग तुम्हारे प्रतिष्ठित लिंगकी ईशानदिशामें पास ही विद्यमान है ॥ १७४ ॥ इतने समय तक इसको किसीने नहीं देखा था । पर आज वानरसहित तुमने इस मोक्षप्रद लिंगको स्पष्ट देख लिया है ॥ १७५ ॥ तुम्हारे द्वारा स्थापित लिंगकी महिमासे ही पृथ्वीपर इसकी प्रसिद्धि हुई है । इस कारण हे रघूत्तम ! इस लिंगको जो ज्योति है, वह ज्योति तुम्हारे द्वारा स्थापित बालुकामय लिंगमें मेरे कहनेसे आज ही चली आयगी ॥ १७६ ॥ १७७ ॥ हे रघूत्तम ! आजसे बाग्द्वी ज्योतिर्लिङ्ग तुम्हारा स्थापित रामेश्वर ही दुनियाँके सब मनुष्योंमें प्रसिद्ध होगा ॥ १७८ ॥ मेरे वचनसे पूजा आदि सब उपचार सदा तुम्हारे रामेश्वर लिंगका ही होगा ॥ १७९ ॥ मैं भी अगस्त्य मुनिके तथा तुम्हारे कहनेसे कामो छोड़कर यहाँ आ गया हूँ और तुम्हारे इस लिंगमें निवास करूँगा ॥ १८० ॥ जो मनुष्य सेतुबन्ध रामेश्वरको प्रणाम करेगा, वह मेरी कृपासे बड़ाहत्या आदि भयानक पापोंसे भी मुक्त हो जायगा ॥ १८१ ॥ हे रघुबन्ध ! आप मुझे यह वर दें कि सब लोग मुझे स्नान करानेके लिए सदा काशीकी मणिकर्णिकाका जल लाकर बड़ाया करें ॥ १८२ ॥ हे पार्वती ! मेरे इस वचनको सुनकर धीराम हर्षित होकर बोले कि जो मनुष्य सेतुबंधमें स्नान करके रामेश्वर शिवका दर्शन करेंगे ॥ १८३ ॥ फिर हड़ संकल्पसे सेतुकी बालुकाको काँवरमें रखकर प्रेम यत्नसे काशीमें ले जाकर गंगाके प्रवाहमें डालेंगे और उस काँवरको वहीं छोड़कर दूसरी काँवरके द्वारा गंगाजल लाकर उससे रामेश्वरका अभिषेक करेंगे ॥ १८४ ॥ १८५ ॥ वहाँ उस काँवरको भी समुद्रमें फेंककर निःसंदिग्ध ब्रह्मपदको प्राप्त होंगे । हड़ संकल्प न होगा, सब एक रामेश्वर प्रणाम होगा ॥ १८६ ॥ कदाचित् कोई जाणयें यही जानना चाहिए कि उसके पूर्वजन्मका संकल्प था । मेरे कहनेसे आप इस बातमें लौकिक भी सहिष्णु न करें ॥ १८७ ॥ इस प्रकार राम जब-जब-जब वर दे रहे थे, तभी वही कुम्भजन्म मुनि आ पहुँचे ॥ १८८ ॥ उन्होंने वहाँ आकर शिव रामको किया । अब रामने भी मुनिको प्रणाम किया । मुनिने रामसे कहा— हे राघव ! आपके अनुग्रहसे मुझे बहुत दिनोंके बाद-विश्वनाथका दर्शन प्राप्त हुआ है । इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता रही है । इसलिये मैं भी वहाँ एक लिंग स्थापित करता हूँ ॥ १८९ ॥ १९० ॥ अतएव मुनिने अपने नामसे एक वस्तु

पूजयामास तल्लिङ्गमगस्तीश्वरनामकम् । नत्वा स्तुत्वा विश्वनाथं रामं रामेश्वरं तथा ॥१९२॥
 दृष्ट्वा पुरातनं लिङ्गं गंधमादननामकम् । ययौ स्वीयाश्रमं तुष्टः कुंभजन्मा मुनीश्वरः ॥१९३॥
 सेतौ रामेश्वरस्यैव देवि देवालये शुभे । दिश्याग्नेय्यामगस्तीश्वमीशान्यां गंधमादनम् ॥१९४॥
 वर्तेतेऽद्यापि द्वे लिङ्गे कश्चिज्जानाति वा न वा । प्रसिद्धोऽभूच्च रामेशः स्वर्गमृत्युरसातले ॥१९५॥
 ततो रामाक्षया सेतुं नलः कर्तुं मनो दधे । किञ्चिद्भ्रवसमाविष्टस्तज्ज्ञातं राघवेण हि ॥१९६॥
 यावदेकां शिलां त्यक्त्वा नलोऽन्यां प्राक्षिपच्छिलाम् ।

तावत्तरंगकल्लोलः सागरस्य इतस्ततः ॥१९७॥

गच्छन्तिस्म शिलाः सर्वास्ता दृष्ट्वा खिन्नमानसः । गतगर्वस्तदा रामं नलो वृत्तं न्यवेदयत् ॥१९८॥
 रामः श्रुत्वा नलं प्राह रामेति द्वेऽक्षरे ॥ दृष्ट्वा दोः संधिसिद्धयर्थं पृथग्विलिखतां द्वयोः ॥१९९॥
 सर्वश्रेष्ठं लिखित्वा हि दृढः संधिर्भविष्यति । तथेति रामवचनात्तथा चक्रे नलस्तदा ॥२००॥
 कृतः पंचदिनः सेतुः शतयोजनमुत्तमः । कृतानि प्रथमेनाह्वा योजनानि चतुर्दश ॥२०१॥
 द्वितीयेन तथा चाह्वा योजनानां च विंशतिः । तृतीयेन तथा चाह्वा योजनान्येकविंशतिः ॥२०२॥
 चतुर्थेन तथा चाह्वा द्वाविंशतिरिति श्रुतम् । पंचमेन त्रयोविंशद्योजनानां शतं त्विति ॥२०३॥
 विस्तृतो द्वादश प्रोक्तो योजनानि द्वाप्यन्यः । एवं बंधं सेतुं स नलो वानरसत्तमः ॥२०४॥
 ये मज्जन्ति निमज्जयति च परान् ते प्रस्तरा दुस्तरे बाधां येन तरन्ति वानरभटान् संतारयतेऽपि च ।
 नैते प्रावगुणा न वारिधिगुणा नो वानराणां गुणाः श्रीमदाक्षरधेः प्रतापमहिमा सोऽयं समुज्जृम्भते ॥२०५॥
 तेनैव जम्भुः कपयो योजनानां शतं द्रुतम् । आरुक्ष मावति रामो लक्ष्मणोऽप्यंगदं तथा ॥२०६॥
 जगाम वायुवल्लंकासंनिधिं सेनया वृनः । असंख्यताः सुबेलाद्रिं हरुहुः प्लवगोत्तमाः ॥२०७॥

लिङ्ग स्थापित किया । मुनिने आनन्दके साथ रामेश्वरके अग्निकोणमें उसकी स्थापना की ॥ १९१ ॥ प्रकार मुनिने अगस्तीश्वर नामक लिङ्गकी पूजा करके विश्वनाथ, रामेश्वर एवं श्रीरामकी स्तुति तथा प्रणाम करनेके अनन्तर पुरातन गंधमादन लिङ्गका दर्शन किया और प्रसन्न होकर अपने आश्रमको चले गये ॥ १९२ ॥ १९३ ॥ हे देवि ! सेतुबंध रामेश्वरके देवालयमें ही आग्नेयकोणमें अगस्तीश्वर तथा ईशानकोणमें गन्धमादनेश्वरका लिङ्ग अभी भी विद्यमान है । उन्हें कोई इन नामोंमें जानता है और कोई नहीं भी जानता । रामेश्वरका लिङ्ग स्वर्ग, पाताल तथा मृत्यु इन तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हो गया ॥ १९४ ॥ तदनन्तर रामकी आज्ञासे नलने कुछ गर्वयुक्त होकर पुल बांधना आरम्भ कर दिया । रामकी इस गर्वका पता लग गया ॥ १९५ ॥ १९६ ॥ इसके बाद नलने जलमें एक पत्थर डालकर दूसरा ज्यों ही डाला, त्यों समुद्रकी तरंगित लहरियोंसे सब शिलाएँ इधर-उधर छितराने लगीं । यह देखा तो खिन्नमन हो तथा गर्व त्यागकर नल रामके पास गये और सब वृत्तान्त निवेदन किया ॥ १९७ ॥ १९८ ॥ यह सुनकर रामने नलसे कहा कि मेरे नामके 'रा म' दो अक्षर पत्थरोंको एक साथ मिलानेके लिये दोनों शिलाओंकी बगलमें लिख दो ॥ १९९ ॥ ऐसा लिख देनेसे सब एक दूसरेके दृढ़तासे जुड़ जायेंगे और संधि (सौंस) न रहेगी । नलने भी 'तथास्तु' कहकर रामके कथनानुसार ही किया ॥ २०० ॥ ऐसा करनेपर पाँच दिनमें सौ योजन लम्बा, सुन्दर और दृढ़ सेतु बन गया । पहिले दिन बीसह योजन, दूसरे दिन बीस, तीसरे दिन इक्कीस, चौथे दिन बाईस और पाँचवें दिन तेईस योजन पुल बंधा । इस प्रकार सौ योजन पूरे हो गये ॥ २०१-२०३ ॥ उसमें भी बारह योजन एकमात्र पत्थरका ही पुल बनाया गया । इस तरह वानरोत्तम नलने सेतु बांधकर तैयार किया ॥ २०४ ॥ जो पत्थर स्वयं डूबते और दूसरोंको डूबाते हैं, वे ही दुस्तर समुद्रमें स्वयं तरने तथा दूसरोंको तारने लग गये । यह गुण न पत्थरका है, न समुद्रका और न वानरोंका । परन्तु यह गुण तो केवल दशरथसमय रामका ही है । जिनकी महिमा सर्वत्र व्याप्त हो रही है ॥ २०५ ॥ उस पुत्रके द्वारा वानरगण सौ योजन सागर शीघ्र ही पार कर गये । राम हनुमान्के कंधे तथा अश्वके कंधेपर चढ़कर वायुदेवसे सेनाके साथ लंकाके पास

ततः सैन्ययुतो रामः सुवेलार्द्रि ययौ मुदा । दिदृक्षु राघवो लंकामारोहाचलं शुभम् ॥२०८॥
 सुवेलार्द्रि महारम्यं तरुवह्निविराजितम् । ददर्श लंकां विस्तरां रामश्चित्रध्वजाकुलाम् ॥२०९॥
 चित्रप्रासादसंवाधां स्वर्णप्राकारतोरणाम् । परिस्त्राभिः शतघ्नीभिः संक्रमैश्च विराजिताम् ॥२१०॥
 प्रासादोपरि विस्तीर्णप्रदेशे दधकन्धरम् । पश्यन्तं कपिसैन्यं तं सन्ददर्श रघूद्वहः ॥२११॥
 ततो रामेण मुक्तः ॥ शुको गत्वा दशाननम् । कपिसैन्यं दर्शयन्तं बोधयामास रावणम् ॥२१२॥
 सीतां प्रयच्छ रामाय लंकारान्ये विभीषणम् । कृत्वा तं शरणं याहि नो वेदामास मोक्ष्यसे ॥२१३॥
 तच्छ्रुत्वा रावणः क्रोधाच्छोकं धिक्कृत्य वै मुहुः । दूर्तगंहाद्गहिः कृत्वा रामसेनां व्यलोकयत् ॥२१४॥
 शुकोऽपि प्राक्षणः पूर्वं वरिष्ठो ब्रह्मचित्तमः । अयजत् ऋतुभिर्देवान् विरोधो राक्षसैरभूत् ॥२१५॥
 वज्रदंष्ट्र इति कृपातस्तदैको राक्षसो महान् । मांसाक्षं याचितं रघ्वा मुनिना कुंभजन्मना ॥२१६॥
 शुकभार्यावपुर्धृत्वा नरमांसं समर्पयत् । तदा शप्तः शुकस्तेन त्वं रक्षो भव मा चिरम् ॥२१७॥
 गक्षःकृतं पुनर्ध्यानाज्ज्ञान्वा तत्प्राथितोऽजवीत् । रामस्य दर्शनं कृत्वा बोधयित्वा दशाननम् ॥२१८॥
 त्वं प्राप्स्यसि निजं रूपं तस्माज्जातः शुको द्विजः । सुवेलशिखरे संस्थः संमन्त्र्य कपिभिस्ततः ॥२१९॥
 ध्ववनार्थं रिपुं रामोऽङ्गदं लंकामचोदयत् । सोऽपि रामाशया गत्वा नानानीत्युत्तरैस्तदा ॥२२०॥
 रावणं बोधयामास सभायां लांगुलासने । संस्थितोऽमीतवद्वालितनयः स्वस्थमानसः ॥२२१॥
 शृणु रावण मद्राक्ष्यं हितं ते प्रवदाम्यहम् । सीतां सत्कृत्य सधनां प्रयच्छ राघवं जवात् ॥२२२॥
 रामं नारायणं विद्धि विद्वेषं त्यज राघवे । यत्पादपोतमाश्रित्य ज्ञानिनो भवसागरम् ॥२२३॥
 तरन्ति भक्तिपूतास्ते शतो रामो ॥ मानुषाः । मद्राक्ष्यं कुरु राजेन्द्र कुलकौशलहेतवे ॥२२४॥

जा पहुँचे । वानरीमें उत्तम असंख्य वानर सुवेल पर्वतपर जा चढ़े ॥ २०६ ॥ २०७ ॥ उनके पीछे राम भी अपनी सेनाके साथ सहर्ष सुवेलगिरिपर गये । वहाँ जाकर राम लंकाको देखनेके लिए उसके एक सुन्दर शिखरपर चढ़े ॥ २०८ ॥ वह पर्वत बड़े मनोहर वृक्षों तथा लताओंसे मंडित था । वहाँ रामने बड़ी विस्तृत, रंग-विरंगी ध्वजाओंसे व्याप्त, अनेक प्रकारके भवनोसे सघन, स्वर्णके गढ़ तथा तोरण युक्त खाई, सुरंगों तथा तोपोंसे विराजित लंकाको देखा ॥ २०९ ॥ २१० ॥ वहाँसे रामने एक प्रासाद (महल) के ऊपर विस्तीर्ण प्रदेशमें बैठकर कपिसेनाको देखते हुए दशकन्धर रावणको देखा ॥ २११ ॥ तदनन्तर रामने कैद किये हुए शुकको छुड़ा दिया । उसने जाकर रावणको वानरा सेना दिखायी और समझाया— ॥ २१२ ॥ तुम सीता रामको दे दो, लड्डूका राज्य विभीषणको दे दो और रामकी शरणमें चले जाओ । नहीं तो राम तुमको जोवित नहीं छोड़ेंगे ॥ २१३ ॥ यह सुनकर क्रोधसे पागल रावणने शुकको बार-बार धिक्कारा और दूतोंसे बाहुर निकलवाकर रामकी सेना देखने लगा ॥ २१४ ॥ शुक पहिले एक श्रेष्ठ ब्राह्मण था । उसने यश द्वारा देवताओंको प्रसन्न किया था । कारण राक्षसोंसे उसका विरोध ही ॥ २१५ ॥ तदनन्तर एक दिन यज्जदंष्ट्र नामक राक्षसने अगस्त्य मुनिको शुकसे कारण देखकर शुकको स्त्रीका रूप धारण करके मनुष्यका मांस पकाकर मुनिको परोस दिया । तब मुनिने क्रुद्ध होकर शुकको शाप दे दिया कि जा, शोध राक्षस हो जा ॥ २१६ ॥ २१७ ॥ पुनः शुकके प्रार्थना करनेपर मुनिने ध्यान धरके देखा तो मालूम हुआ कि यह तो एक राक्षसका कृत्य है । तब मुनिने कहा—हे शुक ! दशानं करके और रामणको समझाकर फिरसे अपने स्वरूपको प्राप्त जायगा । इसी कारण अब वह शुक पुनः ब्राह्मण हो गया । इसर रामने सुवेल पर्वतके शिखरपर बैठकर वानरोंको आमन्त्रित किया और शत्रुको सूचना देने के लिए अंगदको लंका भेजा । उसने जाकर रामकी आज्ञासे अनेक नोतिवाक्यों द्वारा रावणको ॥ २१८—२२० ॥ सभामें अपनी पूँछका मोड़ा बनाकर उसपर हुए अंगवने निर्भय होकर स्वस्थ मनसे रावणको समझाते हुए कहा— ॥ २२१ ॥ हे रावण ! मैं तुमको हितका उपदेश देता हूँ, मुनो ! जैसी ललाट मानो और मनसे छीताका सत्कार करके ऋषिष्ठ रामको ॥ २२२ ॥ राक्षसों ॥ २२३ ॥ समझो

एवं नानाविधैर्वाक्यैरंगदेनातिबोधितः । सोऽथ नीत्युत्तराण्यस्य नामृणोद्धानरस्य च ॥२२५॥
 उवाच क्रोधसंयुक्तो वानरं स दशाननः । भीषयसेऽद्य किं मां त्वं रावणं लोकरावणम् ॥२२६॥
 येन सर्वे जिता देवाः कैलासः कंपितो मया । तस्य मेऽग्रे मर्कटं त्वं कथ्यसे किं मुधाऽद्य हि ॥२२७॥
 क्षणेन राघवौ हत्वा हत्वा सुग्रीवमारुर्त्ता । हत्वा विभीषणं त्वां च वानरान् भक्षयाम्यहम् ॥२२८॥
 रावणस्य वचश्चेन्मया श्रुत्वा प्राहांगदश्च तम् । जानाम्यहं पीरुषं ते बलिपाशविचूर्णित ॥२२९॥
 शिवपादांगुष्ठं मारुतप्रकैलासपीडित ॥ सहस्रार्जुनवीरान्मसंभवक्रीडनमृग ॥२३०॥
 श्वेतद्वीपस्थप्रमदाकरताडितसन्मुख ॥ विष्णुपुत्रोऽद्य वै ब्रह्मा मरीचिस्तत्सुतः स्मृतः ॥२३१॥
 तत्सुतः कश्यपस्तस्य पुत्रोऽभृदिन्द्रनामकः । तेनैव युद्धकाले तु बद्ध्वा कागृहस्थित ॥२३२॥
 पर्यकोपरि संबद्धमन्मूत्रक्षालितानन ॥ इति तद्वाक्यश्रवणानन्तरं तज्जितः स दशाननः ॥२३३॥
 दूतानां तापयामास ताडनीयो मुखे त्वयम् । तथेत्युक्त्वा राक्षसास्ते शस्त्रहस्ताः सहस्रशः ॥२३४॥
 अंगदं दृष्ट्वा शीघ्रं तान् दृष्ट्वा वानरोत्तमः । मर्दयामास पुच्छेन तान्मर्वान् क्षणमात्रतः ॥२३५॥
 रावणास्येषु संताड्य स्वकराम्पां मुहुर्महदुः । तद्वस्तपादौ पुच्छेन पूर्वं बद्ध्वा सविस्तरम् ॥२३६॥
 ततश्चोद्धीय वेगेन ययौ प्रामादमस्तकः । मुवेलाद्रीं राघवेन्द्रं तारेयः स विहाय सा ॥२३७॥
 अंगदं राघवो दृष्ट्वा प्रामादान्वितमस्तकम् । उवाच किं कृतं बाल प्रासादोऽयं न्वया कथम् ॥२३८॥
 ममानीतोऽत्र लंकाया मित्रायेयं पुगी मया । अर्पिताऽस्ति तनो मित्रवस्तिवदं न स्पृशाम्यहम् ॥२३९॥
 तद्वाक्यवचः श्रुत्वा चकितः स तदांगदः । प्रासादं मस्तके दृष्ट्वा ध्वंक्षिम्यामाह राघवम् ॥२४०॥

और उनसे द्वेव करना छोड़ दो । जिनके चरणकमलरूपी अहाजका आश्रय लेकर जानी लोग भक्तिसे पवित्र
 मन होकर इस संसाररूपी समुद्रको अनायास पार कर जाते हैं, वे राम मनुष्यमात्र नहीं हैं । हे राजेन्द्र !
 यदि अपने कुलकी कुशलता चाहते होओ तो मेरा कहा करो ॥ २२३ ॥ २२४ ॥ प्रकार विविध वाक्योंसे
 अङ्गदने उसे बहुत समझाया, परन्तु उसने अङ्गदका एक भी नीतिपूर्ण वाक्य नहीं सुना ॥ २२५ ॥ प्रत्युत
 क्रुद्ध होकर रावणने अङ्गदसे कहा—अरे नीच ! तू आज लोकोन्तो हलानेवाले मुझ रावणको डराने आया
 है ? ॥ २२६ ॥ अरे ! मैंने संपूर्ण देवताओंको जीतकर कैलास तकको कँपा दिया है । ऐसे मुझ वीरके सामने
 अरे मर्कट ! तू क्यों व्यर्थका बकवास कर रहा है ॥ २२७ ॥ मैं क्षणभरमें राम, लक्ष्मण, सुग्रीव,
 इन्द्रमान्, विभीषण, तूझे और सब वानरोंको मारकर खा सकता हूँ ॥ २२८ ॥ इस प्रकार रावणका गर्वभरा
 वाक्य सुनकर अङ्गदने कहा—हे बलिपाशसे विचूर्णित ! हे शिवपादांगुष्ठसे आनम्र कैलाससे पीडित ! हे
 जोगालमा मार्तवीर्यके क्रीडामृग ! हे श्वेतद्वीपकी स्त्रियोंके हाथसे ताडित मुखवाले रावण ! मैं तेरे बलको जानता
 हूँ । यह भी मुझे भानूम ॥ कि विष्णुके पुत्र ब्रह्मा, ब्रह्माके पुत्र मरीचि, मरीचिके पुत्र कश्यप, कश्यपके पुत्र इन्द्र
 और इन्द्रके पुत्र वालिने तुमको युद्धके समय बाँधकर कारागारमें डाल रखता था । वहाँ तुम्हारा मुख चारपाईमें
 बँधे रहनेके कारण मेरे मल-मूत्रसे भर जाता था । अङ्गदके इन वाक्यरूपी वाणोंसे विद्ध होकर रावण
 जनेजित हो उठा ॥ २२९-२३३ ॥ उसने दूतोंको आज्ञा दी कि मार-मारकर इसका मुँह लाल कर दो । सब
 'तमास्तु' कहकर हजारों राक्षस हाथमें शस्त्र लेकर अङ्गदकी ओर झपटे । उन्हें देखकर वानरोत्तम अङ्गदने अपनी
 दुर्लकी मारसे उन सबको क्षणभरमें घराशावी कर दिया ॥ २३४ ॥ २३५ ॥ तदनन्तर पूँछसे रावणके हाथ पकड़
 ली-भौंति बाँधकर अंगदने उसके मुखोंपर खूब तमाचे लगाये ॥ २३६ ॥ तत्पश्चात् वहाँसे उड़कर
 अंगद आकाशमार्गसे सुवेल पर्वतपर रामके पास लौट गये । उड़ते समय रावणका
 नाम भी उनके सिरपर बँडकर चला आया ॥ २३७ ॥ रामने अंगदको मस्तकपर महल लिये आते देखकर
 कहा—हे वालिपुत्र ! तुम इस महलको क्यों उठा लाये ? ॥ २३८ ॥ मैंने लंकापुरी मित्र विभीषणको अर्पण
 कर दी है । इसलिए मैं तो मित्रकी इस वस्तुको छू भी नहीं सकता ॥ २३९ ॥ रामकी यह बात सुनकर
 अङ्गद चकित हो गये । अब अङ्गदने ऊपरकी ओर भाँसे कीं तो अपने सिरपर मकान देखकर रामसे

न ज्ञातोऽयं मया राम प्रासादो मस्तकेन मे । उत्पाटितश्च लंकायाः समानीतस्तवांतिकम् ॥२४१॥
 पुनर्नीत्वाऽयं लंकायामेनं संस्थापयाम्यहम् । इत्थुक्त्वा परिवृत्त्याथ राघवस्याज्ञयागदः ॥२४२॥
 प्रासादं पूर्ववत्स्थाप्य लंकायां स ययौ पुनः । सुवेलाद्रौ राघवेन्द्रं नत्वा वृत्तं न्यवेदयत् ॥२४३॥
 यद्यत्कृतं तु लंकायां संवादं रावणस्य च । रामोऽपि श्रुत्वा तत्सर्वं स्मित्वा तं परिष्वजे ॥२४४॥
 अथ श्रीरामचन्द्रोऽपि सुवेलाद्रौ स्थितस्तदा । लीलया चापमादाय युमोव शरमुत्तमम् ॥२४५॥
 तेन छत्रसहस्राणि किरीटदशकं तथा । लंकायां राक्षसेन्द्रस्य प्रासादे संस्थितस्य च ॥२४६॥
 विज्ज्वेद निमिषार्धेन कपीनां पश्यतां प्रभुः । एतस्मिन्तरे तत्र रामाग्रे संस्थितो महान् ॥२४७॥
 न दद्यां जानकीं श्रुत्वा रावणेनागदास्यतः । क्रोधेन महताविष्टः सुग्रीवः प्लवगाग्रणीः ॥२४८॥
 ययाजुहीय लङ्कायां दशास्यं राक्षसैर्युतम् । प्रासादसंस्थितं छत्रहीनं प्रव्यग्रमानमम् ॥२४९॥
 सुग्रीवो रावणं गत्वा जघान दृढमुष्टिना । पातयामास भूम्यां तं कर्तसिंहासनाच्छदा ॥२५०॥
 षक्रतुस्तौ बाहुयुद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् । उर्ध्वार्ध्रिकरहृदस्तैः कपीश्वराक्षसेश्वरौ ॥२५१॥
 तदासीज्जर्जरंगः स रावणः कपिधातवः । द्रुद्रुवे बाहुयुद्धं तन्यक्त्वा मेहं विलज्जितः ॥२५२॥
 तदाऽऽच्छिद्य तन्मुकुटं ययौ रामं कपीश्वरः । ननाम राघवं भक्त्या वृत्तं सर्वं न्यवेदयत् ॥२५३॥
 तं समालिख्य रामोऽपि सुग्रीवं प्राह सादरम् । भामपृष्टः कथं बन्धो यतस्तूष्णीं दशाननम् ॥२५४॥
 स्वजीवितं विषमं चेत्तर्हि किं सीतया भम । भविष्यति न सौख्यं हि मेरुसं साहसं ॥२५५॥
 ततो मेरीमृदंगाद्यैर्वाद्यैस्ते वानरोचमाः । लङ्कां संवेष्टयामासुश्चतुर्द्वारिषु संस्थिताः ॥२५६॥
 तदा तं मुकुटं रामोऽङ्गदाय रावणस्य च । ददौ तुष्टो दशेशाय लङ्कां रोढुं प्रचोदयत् ॥२५७॥

बोले—॥ २४० ॥ हे राम ! मुझे तो इस बातका ■■■ भी नहीं था कि मेरे मस्तकपर मकान है और लंकासे उलटकर यहाँ आपके पास तक चला आया है ॥ २४१ ॥ मैं इसको फिरसे जाकर लङ्कामें रक्त ■■■ हूँ । इतना कह और रामको आज्ञा पाकर अंगद तुरन्त लौटे ॥ २४२ ॥ वे उस प्रासादको पूर्ववत् लङ्कामें रक्तकर पुनः रामके पास आ गये और नमस्कार करके सब वृत्तान्त निवेदन किया ॥ २४३ ॥ लङ्कामें जाकर उन्होंने ओ कुछ किया था और रावणके ■■■ जो संवाद हुआ था, वह ■■■ रामसे कहा । सो सुनकर रामने उनको हृदयसे लगा लिया ॥ २४४ ॥ तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने सुवेलाद्रिपर खड़े होकर लीलापूर्वक एक उत्तम वाण धनुषपर चढ़ाकर छोड़ा ॥ २४५ ॥ उससे लंकाके महलपर स्थित राक्षसेश्वर रावणके दसों मुकुट तथा हजारों छत्र कटकर छणभरमें वानरोके समक्ष आ गिरे । इतनेमें रामके आगे खड़े सुग्रीवने जब अंगदके मुखसे यह सुना कि रावण सीताको देनेके लिये तैयार नहीं है । तब अतिव्याप कृपित होकर वानरोमें अपनी सुग्रीव उड़कर लंकामें वहाँ जा पहुँचे, जहाँ कि महलपर ■■■ तथा किरीटरहित अत्यन्त व्यथ भक्तसे रावण बैठा था ॥ २४६-२४६ ॥ वहाँ जाकर सुग्रीवने रावणको जोरसे एक मुक्का मारा । जिससे दशानन सिंहासनसे अमीनपर गिर पड़ा ॥ २४७ ॥ तदनन्तर कपीश सुग्रीव तथा राक्षसेश्वर रावणका आपसमें घोर मल्लयुद्ध होने लगा । वे एक दूसरेको उठा-वठाकर चित्त-पट करने लगे । जिससे कि उनके हाथ-पाँव तथा छाती द्वारा निर्मम प्रहारके कारण बड़ी चोट लगती ■■■ ॥ २४९ ॥ अन्तमें सुग्रीवकी मारसे रावणके ■■■ अंग अर्जस्त हो गये । तब रावण बाहुयुद्ध करके लज्जाके नारे धरमें भाग गया ॥ २५० ॥ उसी समय उसका मुकुट छीनकर कपीश्वर सुग्रीव रामके पास आ गये और भक्तिपूर्वक नमस्कार करके सब समाचार कहा ॥ २५१ ॥ रामने आदरके साथ सुग्रीवका आलिङ्गन किया और कहा—हे बन्धो ! तुम हमसे बिना कहे धुपकेसे रावणके साथ युद्ध करने क्या चले गये ? ॥ २५२ ॥ कहीं तुम्हारे प्राण संकटमें पड़ जाते तो हम सीताको पा करके भी कौन-सा सुख मोगडे । अबसे कर्मों ऐसा साहस नहीं करना ॥ २५३ ॥ बाहमें मगाड़ा मृदंग तथा तुम्हें आदि बाजे बजाते हुए सब वानरयोद्धाजीने लंकाको घेर लिया और चारों दरवाजोंको रोककर खड़े हो गये ॥ २५४ ॥ तत्पश्चात् रामने ■■■ रावणका मुकुट प्रसन्न होकर सेनापति अंगदको दे दिया और लंकाको घेरनेके लिये

अङ्गदं दक्षिणद्वारं वायुपुत्रं तु पश्चिमम् । नलं सैन्येन प्राग्द्वारं सुषेणं द्वारमौत्तरम् ॥२५८॥
ययुस्ते राघवं नत्वा लंकां स्वस्ववर्तयुताः । तां लंकां रुरुधुः सर्वे चतुर्द्वारेषु वानराः ॥२५९॥
दशास्योऽपि गृहं गत्वा सुग्रीववर्जनीकृतः । तस्यौ तूष्णीं स रहसि स्मरन्सुग्रीवपौरुषम् ॥२६०॥
माली सुमाली च तथा माल्यवान्धान्धवास्त्रयः । मातामहा रावणस्य ■ संमन्य परस्परम् ॥२६१॥
दशाननं बोधयितुं तेभ्यस्त्वेको ययौ जवान् । मान्यवानिति नाम्ना यो बुद्धिमान्स्नेहसंयुतः ॥२६२॥
प्राह तं राक्षसं वीरं प्रशान्तेनांतरात्मना । मृणु राजन् वधो मेऽद्य भूत्वा कुरु यथेप्सितम् ॥२६३॥
यदा प्रविष्टा नगरीं जानकी रामवल्लभा । तदादि पुर्यां दृश्यन्ते निमिच्चानि दशानन ॥२६४॥
घोराणि नाशहेतूनि तानि मे वदतः मृणु । खराः स्तनितनिर्धोषा मेषाः प्रतिभयंकराः ॥२६५॥
शोणितान्धभिर्वर्षन्ति लंकामुष्णेन सर्वदा । सीदन्ति देवलिङ्गानि स्विद्यन्ति प्रचलन्ति च ॥२६६॥
कालिका पांडुरेर्दंतः प्रहसन्तेऽग्रतः स्थिताः । खरा गोघु प्रजायन्ते मूषका नकुलैः सह ॥२६७॥
माजारेण तु पुष्पंते पद्मगा गरुडेन च । करालो विकटो मृगः पुरुषः कृष्णपिंगलः ॥२६८॥
कालो गृहाणि सर्वेषां काले काले त्ववेक्षते । एतान्यन्यानि दृष्टानि निमित्तान्युद्भवन्ति च ॥२६९॥
अतः कुलस्य रक्षार्थं शान्तिं कुरु दशानन । सीतां सत्कृत्य सधनां रामायास्तु प्रयच्छ भोः ॥२७०॥
मातामहवधश्चेत्थं भूत्वा तं रावणोऽब्रवीत् । रामेण प्रेषितो नूनं मापसे त्वमनर्गलम् ॥२७१॥
गच्छ वृद्धोऽसि बंधुस्त्वं सोढुं सर्वं त्वयोदितम् । इतो वा कर्णपदवीं दहत्येतद्वचस्तव ॥२७२॥
इत्युक्तः स रावणेन माल्यवान्स गृहं ययौ । रावणोपि समां गत्वा चोदयामास राक्षसान् ॥२७३॥
पूर्वद्वारं तु धूम्राक्षं वज्रदंष्ट्रं तु पश्चिमम् । नरान्तकं दक्षिणं तमुत्तरं च महोदरम् ॥२७४॥

भेजा ॥ २५७ ॥ अङ्गदको दक्षिणी दरवाजेपर, वायुपुत्र हनुमानको पश्चिम द्वारपर, नलको सेनाके साथ पूर्वद्वारपर और सुषेणको उत्तरी दरवाजेपर जानेको कहा ॥ २५८ ॥ ■ रामको नमस्कार करके अपनी-अपनी सेना लेकर यय और लंकाके चारों दरवाजोंका रोककर खड़े हो गये ॥ २५९ ॥ उधर रावण भी सुग्रीवके हाथसे मार खाकर भागल हो घर जाकर एकान्तमें मन मारके बैठ गया और सुग्रीवके पुरुषार्थका स्मरण करने लगा ॥ २६० ॥ तब रावणके ■ माली, सुमाली तथा माल्यवान् इन तीनों भाइयोंने आपसमें राय की और रावणको समझानेके लिए इन तीनोंमेंसे बुद्धिमान् ■ स्नेही माल्यवान् उसके पास गया ॥ २६१ ॥ ॥ २६२ ॥ वह शान्तिपूर्वक वीर राक्षसेश्वर रावणको समझाते हुए कहने लगा—हे राजन् ! मेरी बात सुन लें, फिर जैसी आपकी इच्छा हो वैसा करिएगा ॥ २६३ ॥ हे दशानन ! अबसे रामकी प्यारी सीता लंकामें आयी है, तबसे यहाँ बराबर अपशकुन हो देखनेमें आते हैं ॥ २६४ ॥ वे ■ भयानक और नाशके निमित्त हैं । उनका मैं कहता हूँ, आप सुनें । मेष तीव्र गर्जनके शब्द करते हुए लंकामें गरम खूनकी सतत वर्षा करते हैं । शिवालिक लिप्ट देखनेमें आते हैं । वे कभी पसीजते हैं और कभी काँपने लगते हैं ॥ २६५ ॥ ॥ २६६ ॥ आगे खड़ी कालीकी भूलिएं पीले-पीले दाँत निकालकर हैंसती हैं । गायोंके पेटसे गधे पैदा होते हैं । चूहे न्योलों तथा बिल्लियोंसे लड़ते हैं । साँप गरुडके ■ बुद्ध करते हैं । कभी-कभी कराल काल सिर मुड़ाए काले-पीले पुरुषका रूप धारण करके लोगोंको पकड़ता हुआ दीखता है । इनके अतिरिक्त और भी अनेक अशकुन प्रकट होते दाखल हैं ॥ २६७-२६९ ॥ इसलिए हे दशानन ! कुलकी रक्षाके लिये शान्ति धारण करो और सीताका आदर-सत्कार करके प्रचुर धनके सहित शीघ्र रामको सौंप आओ ॥ २७० ॥ यह सुनकर रावणने अपने नानासे कहा कि अवश्य तुम रामके द्वारा यहाँ इस प्रकार अनर्गल (उटपटांग) बातें करनेके लिये भेज गये हो । अस्तु, जो हुआ सो हुआ । ■ तुम वहाँसे निकल जाओ । वृद्ध तथा सगे नाना होनेके नाते इतनी बातें मैंने सह ली । तुम्हारा बातें हमारे कानोंको जलाये दे रही है ॥ २७१ ॥ ॥ २७२ ॥ रावणके ऐसा कहनेपर माल्यवान् अपने घर चला गया । रावणने भी समामें जाकर राक्षसोंको आज्ञा दी ॥ २७३ ॥ तदनन्तर लंकाके पूर्वद्वारपर धूम्राक्षको, पश्चिमी द्वारपर वज्रदंष्ट्रको, दक्षिणी द्वारपर नरान्तकको और उत्तरी

प्रेषयामास सैन्येन वस्त्रार्घ्यस्तोषितान् जवात् । चत्वारस्तेऽपि नत्वा तं रावणं संगरं ययुः ॥२७५॥
एवं रामरावणयोः सैन्यानि ■ परस्परम् । ययुस्तानि सम्मुखानि संगरार्थं महास्वनैः ॥२७६॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे
युद्धचरिते रामरावणसेनासंगोगो नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः

(श्रीरामके द्वारा रावणका वध)

श्रीशिव उवाच

अथ ते राक्षसाः सर्वे द्वारेभ्यः क्रोधमूर्च्छिताः । निर्गत्य मिदिपालैश्च खड्गैः शूलैः परस्परैः ॥ १ ॥
कुन्तैः शरैः क्षतघ्नीभिः संक्रमैः शक्तिभिर्ददम् । निजधनुर्वानरानीकं महाकाया महाबलाः ॥ २ ॥
राक्षसांश्च तदा जघ्नुर्वानस जितकाशिनः । वृक्षग्राविः पर्वतैश्च मृष्टिभिः कर्ताडनैः ॥ ३ ॥
ते हयैश्च गजैश्चैव रथैः काचनसन्निभैः । रथोन्वाघा ययुधिरे नादयन्तो दिशो दश ॥ ४ ॥
एवं परस्परं चक्रुर्युद्धं वानरराक्षसाः । नलो जघान धूम्राक्षं वज्रदंष्ट्रं स मारुतिः ॥ ५ ॥
नरात्तकं स तारेण सुषेणस्तं महोदरम् । चतुर्थांश्चावज्ञेयेण निहतं राक्षसं हलम् ॥ ६ ॥
सदागदाघातत्वारो महाबाधमहोत्सवैः । प्रणेमु राममागत्य जयघोषप्रपूरिताः ॥ ७ ॥
स्वसैन्यं निहतं दृष्ट्वा मेघनादो ययौ तदा । सर्पास्त्रिद्वयाकुलं रामं चकार बंधुवानरैः ॥ ८ ॥
रामः सस्मार ताक्ष्यं स ताक्ष्यः सापे न्यवारयत् । ततः स्वस्थो मल्लवरादंतर्धानं गतोऽसुरः ॥ ९ ॥
सर्वास्त्रकुण्डली व्योम्नि ब्रह्मास्त्रेण समन्ततः । वर्षं शरज्जालानि ब्रह्मास्त्रं मानयंस्तदा ॥१०॥
षणं तुष्णीमुवासाथ रामः स बंधुवानरैः । ततः स्वस्थो रघुश्रेष्ठो ददश पतितं चलम् ॥११॥
मूर्ध्निगतं ब्रह्मास्त्रंस्तदा लक्ष्मणमब्रवीत् । चापमानय सौमित्रे ब्रह्मास्त्रेणासुरान् क्षणात् ॥१२॥

हारपर महोदरको ब्रह्मादिके दानसे सन्तुष्ट करके शीघ्र हेताके ■ भेज दिया । वे लोग भी रावणको नमस्कार करके युद्धभूमिपर गये ॥ २७४ ॥ २७५ ॥ इस प्रकार राम-रावणकी सेनाएँ परस्पर युद्ध करनेके लिए पीछण मज्जन करती हुई एक दूसरेके सामने जा डटीं ॥ २७६ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकायां रामरावणसेनासंगोगो नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

शिवजी बोले—आदमें वे सब महाकाय तथा महाबली राक्षस बड़े क्रोधके साथ दरवाजोंसे निकल-निकल कर बछीं, तलवार, जिहूल, घाला, बाण, तीप तथा शक्तियें लेकर वानरी सेनाको दृढ़ताके ■ मारने लगे ॥ १ ॥ २ ॥ विजयी वानर भी वृक्ष, पत्थर, पर्वत, मुक्के तथा पत्थरोंसे राक्षसोंको पीटने लगे ॥ ३ ॥ उधर राक्षस भी दशों दिशाओंको गुरुजाले हुए घोड़े, हाथी ■ सुवर्णसदृश रथोंपर आसढ़ होकर युद्ध करने लगे ॥ ४ ॥ इस प्रकार वानर और राक्षस आपसमें लड़ने लगे । तलने धूम्राक्षकी और मारुतिने वज्रदंष्ट्रको मारा ॥ ५ ॥ तारासुत ब्रह्मदने महान्तकको मारा और सुषेणने महोदरको मार डाला । इस प्रकार राक्षसोंकी सेना चार भागोंमेंसे केवल एक ■ बाकी रही और सब मार दी गयी ॥ ६ ॥ तब अंगदादि चारों वीरोंने जयघ्वनि करते हुए सोत्साह वाजे-गाजेके साथ रामके पास जाकर प्रणाम किया ॥ ७ ॥ अपने सैन्यको निहत देखकर मेघनादने सर्पास्त्रसे बांधकर भाई ■ वानरों सहित रामको व्याकुल कर दिया ॥ ८ ॥ तब रामने गायुडास्त्रका स्मरण किया । उसने आकर उस सर्पास्त्रका निवारण किया । तब वह असुर मेघनाद ब्रह्माके वरके प्रतापसे अन्तर्धान हो ■ और सभी शस्त्रास्त्रोंको चलानेमें कुशल इन्द्रजित् अलक्षित होकर आकाशसे चारों तरफ ब्रह्मास्त्र द्वारा बाणोंकी वर्षा करने लगा । उस समय ब्रह्मास्त्रकी मर्यादा रक्षतेके लिये बन्धु तथा वानरों सहित राम क्षणभरके लिए चुप हो गये । तदनन्तर जब स्वस्थ होकर रामने निहारा तो अपनी सेनाको

भस्मीकरोमि तच्छ्रुत्वा लङ्कामिन्द्रजयो ययौ । विलपतो स्वसाक्षिष्ये यत्र वायुजराक्षमौ ॥१३॥
 वरदानाद्ब्रह्मणस्तौ दृष्ट्वा रामः स जीवितौ । तानुवाच रघुश्रेष्ठो युवाभ्यां चांबवान् रणे ॥१४॥
 गत्वाऽस्ति जीवितश्चेद्दि वाच्यस्तर्हि गिरा मम । उपायं चितयन्वाद्य वानराणां सुजीवने ॥१५॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा तौ विभीषणमारुतौ । निशेधे तौ विचिन्वन्तौ जांबवंतं प्रजग्मतुः ॥१६॥
 उल्मूकहस्तौ तं दृष्ट्वा प्रोचतु राघवेरितम् । जांबवानपि तां रामगिरं श्रुत्वाऽतिहर्षितः ॥१७॥
 निभीलिताक्षः प्रोवाच कौ युवां वायुजो रणे । चेदस्ति जीवितस्तर्हि जीवयिष्यति वानरान् ॥१८॥
 तदा विभीषणः प्राह त्वया त्यक्त्वांगदादिकान् । पृच्छयतेऽद्य कथं वायुपुत्रस्य परमादरात् ॥१९॥
 तदा विभीषणं प्राह जांबवानृधमत्तमः । रुद्रावतारः संजज्ञे वायुपुत्रः प्रतापवान् ॥२०॥
 न ज्ञेयः कपिरेवात्र तस्मात् त्वं विलोकय । तदाऽप्रवीज्जांबवंतं नन्वा वायुनन्दनः ॥२१॥
 यं त्वं पृच्छसि सोऽद्याहं जीवितोऽस्म्यद्य मारुतिः । विभीषणो द्विर्तापोऽयं यस्त्वया परिभाषते ॥२२॥
 तदा स जांबवांस्तुष्टो मारुतिं वाक्पमब्रवीत् । गत्वा क्षारनिधिं वेगाद्द्रोणाद्रिं त्वं समानय ॥२३॥
 तथेत्युक्त्वा त्वरन् गत्वा गन्धर्वगोपितं नगम् । कामधेन्वा स्योयधर्मनेत्रलेपात्प्रदर्शितम् ॥२४॥
 उत्पात्य पुष्पवद्भूत्वाऽऽनयामास कपिर्जवात् । पर्वतोद्भववल्लीनामयद्यायामृतापमम् ॥२५॥
 सुगन्धं जीवयिष्यति राक्षसाश्चेति शंकया । निहतान् राक्षसान्सर्वास्तदा तार्क्ष्यविभीषणौ ॥२६॥
 चिक्षिपतुः सागरे तान् राघवस्याज्ञया क्षणात् । तदानीं तं गिरिं दृष्ट्वा सुषेणः मिपम्बरः ॥२७॥
 पर्वतोद्भववल्लीमिर्जीवयामास नान् कर्षणम् । ततः श्लात्तामृगाः सर्वे समुत्तस्थुर्विजृम्भिताः ॥२८॥
 द्रोणाचलं यथास्थाने स्थापयामास मारुतिः । कुबेरार्चितदिव्यामः प्रमृज्य नयनयु च ॥२९॥
 ब्रह्मणागते मूर्छित होकर जमीनपर पड़ी देखा । सो देखकर उन्होंने लक्ष्मणसे कहा—हे लीमित्रे ! धनुष
 लाओ, मैं इन अंगुरोंको भस्म कर दूंगा । यह सुनकर मेघनाद लङ्काको भाग गया । उस समय रामने
 अपने पास ही विलाप करते हुए तथा ब्रह्मणसे जीवित वायुपुत्र और विभीषणको देखकर उन दोनोंसे
 कहा—तुम लोग रणांगणमें जाववान्के पास जाओ और यदि वे जीवित हों तो उन्हें मेरा सन्देश सुनाते हुए कहो
 कि वानरोंके जीवित होनेका कोई उपाय हो सके तो सांचे ॥ १३-१५ ॥ रामका आज्ञा सुनकर मारुति तथा
 विभीषण अर्धरात्रिके समय जाववान्को खोजने निकले ॥ १६ ॥ दोनोंने हाथोंमें मणाले ले लीं । खोजते-खोजते
 जब जम्बवान् मिले तो उन्हें रामका संदेश सुना दिया । जाववान् यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए ॥ १७ ॥
 आँखोंको निर्मीलित किये हुए ही वे बोले कि तुम दोनों कौन हो ? यदि वायुपुत्र हनुमान् इस रणक्षेत्रमें जीवित
 हो तो वे सब वानरोंको जिला लेंगे ॥ १८ ॥ विभीषणने कहा—हे जांबवान् ! तुमने अंगद आदि वीरोंको
 उठाकर बड़े आदरके साथ वायुपुत्रको ही क्यों पूजा ? ॥ १९ ॥ श्रेष्ठोंमें श्रेष्ठ जाववान्ने विभीषणको
 उत्तर दिया कि प्रतापी वायुपुत्र हनुमान् ताद्यात् रुद्रके अंशसे उत्पन्न हुए हैं ॥ २० ॥ उनको केवल कपि ही
 न समझो । अब तुम उनका पता लगाओ । हनुमान्ने नमस्कार करके जाववान्से कहा—॥ २१ ॥
 जिसको आप पूछ रहे हैं, वह मारुति जीवित खड़ा है । दूसरा जो आपसे बातें कर रहा है, वह विभीषण
 है ॥ २२ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होकर जाववान्ने मारुतिसे कहा—तुम क्षारसागर जाकर शीघ्र द्रोणाचलको ले
 जाओ ॥ २३ ॥ 'तथास्तु' कहकर हनुमान् शीघ्र चल दिये और गन्धर्वों द्वारा सुरक्षित तथा कामधेनुका
 चलीना लगे नेत्रोंसे दिखाई देते हुए उ पर्वतको उलाड़कर फूलकी तरह शीघ्र ले आये । इधर
 इस गङ्गासे कि पर्वतोत्पन्न वस्तुव्योंकी अमृतापम सुगन्धिते राक्षस भी जो आयेंगे, गरुड तथा विभीषणने
 उन्हें रामकी आज्ञासे उठा-उठाकर समुद्रमें फेंक दिया । अब वंशवर सुषेणने द्रोणगिरिको देखकर पर्वतोत्पन्न
 वृक्षोंसे उन मरे हुए वानरोंको जिलाना आरम्भ किया । सहसा वे सब वानर जंभाई लेकर खड़े होने
 लगे ॥ २४-२६ ॥ तदनन्तर मारुति पुनः द्रोणाचलको यथास्थान रख आये और कुबेरके दिये हुए दिव्य जलको
 बर्तनोंमें लगाकर वे रणमें राम आदि अन्तर्हितोंको देखने लगे । उसी समय रावणने भी अतिनाव, प्रहस्त,

अन्तर्हितानां गमाद्या दशैव प्राप्नुगहवे । ततः संप्रेषयामास रावणः स्वीयमंत्रिणः ॥३०॥
 अतिनादः प्रहस्तश्च महानाददरीमुखाः । देवशत्रुनिकुम्भश्च देवान्तरनरान्तर्का ॥३१॥
 सारणाद्या बलैरन्ध्रे युयुत्सानरैः सह । तान्मर्वानंगदाद्यास्ते हत्वा तस्फुर्विजिताः ॥३२॥
 तदा कुम्भनिकुम्भा द्वौ कुम्भकर्णमुनोत्तमौ । रावणः प्रेषयामास युद्धार्थं तौ प्रजग्मतुः ॥३३॥
 तदा कुम्भो जम्बवता निहतश्च रणाजिरे । अंगदेन निकुम्भश्च हतः श्रुत्वा दशाननः ॥३४॥
 अनिकायं स्वीयपुत्रं प्रेषयामास संगरम् । अनिकायेन सौमित्रिः कृत्वा मंगरमुल्लघनम् ॥३५॥
 क्षरेण पातयामास लङ्कायां तच्छिरो महत् । तदा ययौ रावणः स स्वयं युद्धाय वेगतः ॥३६॥
 मुहुन्मित्रजनर्पुको वेशितः पुरवामिभिः । रणे विभीषण दृष्ट्वा कीपाच्छक्तिं मुमोच सः ॥३७॥
 पृष्ठे विभीषण कृत्वा ययौ ययौ म लक्ष्मणः । हृदि मनाडितः अक्तया पपात भुवि लक्ष्मण ॥३८॥
 लक्ष्मण नगरीं नेतुं तं ययौ म दशाननः । न शचाल भुजस्तस्य सौमित्रेः शंकरुषिणः ॥३९॥
 तं नेतुकामं हनुमान हृदि मुष्ट्या व्यताडयत् । तेन मुष्टिप्रहारेण पपात रुधिरं वमन् ॥४०॥
 आनयामास सौमित्रिं मारुतिः कपिवाहिरात् । स्याद्ददौ रावणोऽपि विभीषण मारुतिं शरैः ॥४१॥
 ततः कुट्टन रामेण बाणेन हृदि ताडितः । माश्वध्वजं रथं सूतं राघवो धनुरोजसा ॥४२॥
 छत्रं पताकां सरसा चिच्छेद श्वितसायकैः । अर्धचन्द्राकरं चिच्छेद तत्किराटं रविप्रभम् ॥४३॥
 ततस्तं व्याकुलं दृष्ट्वा रामो रावणमब्रवीत् । गच्छाद्य लङ्कामाश्वत्थः शस्त्रं पश्य बलं मम ॥४४॥
 ततो लज्जानतशिरा ययौ लङ्कां दशाननः । रामोऽपिलक्ष्मण दृष्ट्वा मूर्च्छितः प्राह मारुतिम् ॥४५॥
 द्रोणाचलं समानीय जीवयेनं तथा कर्पान् । तथेति स ययौ जगाच्चञ्छात्वा स दशाननः ॥४६॥
 प्रार्थयित्वा कालनेमिं तद्विघ्नार्थमचोदयत् । स गत्वा हिमवत्पार्श्वं तपोवनमकल्पयत् ॥४७॥
 तत्र शिष्यैः परिभूतो मुनिवेषधरः स्थितः । मारुतिश्चाश्रयं दृष्ट्वा जलं पातुं विवेश तम् ॥४८॥

महानाद, दरीमुख, देवशत्रु, निकुम्भ, देवान्तरक तथा नरान्तक आदि मंत्रियोंको भेजा ॥ ३१-३२ ॥ सारणादि
 दैत्योंने भी बहुत-सी सेना लेकर वानरोंके साथ युद्ध किया । अङ्गद आदि वानर उन सबको मारकर गजेन करने
 लगे ॥ ३३ ॥ तब कुम्भकर्णके पुत्र कुम्भ तथा निकुम्भको रावणने युद्ध के लिए भेजा ॥ ३३ ॥ मुनिवापुत्र लक्ष्मणने
 उनके साथ धीरे युद्ध करके उनके सिरोंको बाणसे काटकर लङ्कामें फेंक दिया । रावण स्वयं लड़नेके लिए
 निकल पड़ा ॥ ३४-३६ ॥ उसके साथ मिय मुहुर तथा पुरवामी लाग भी गये । रावणने रणमें विभीषणको
 देखकर उभर कर जिकिया प्रहार किया ॥ ३७ ॥ यह देखकर लक्ष्मणने विभीषणको पीछे कर दिया और स्वयं
 आगे खड़े गये । जिससे वह शक्ति लक्ष्मणके हृदयमें लगी और घड़ामसे पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ३८ ॥ उन्हें
 नगरमें उठा ले जानेके लिये दशानन आगे और उनको उठाता बाहा, पर जेपावतारस्वरूप लक्ष्मणका एक
 हाथ भी रावणसे नहीं दिला ॥ ३९ ॥ उस अवसर देखकर हनुमान्ने रावणकी छातोंमें एक मुक्का
 मारा । उस मुष्टिप्रहारसे रावणके मुखसे रुधिर निकलने लगा और वह धरतीपर गिर पड़ा ॥ ४० ॥ तदनन्तर
 मारुति लक्ष्मणका कपिशेनामें डठा ले आया । तभी रावण रथपर सवार होकर मरुतिको बाणोंसे घेरने लगा
 ॥ ४१ ॥ यह देखकर क्रुद्ध रामने रावणके हृदयमें बाण मारा और अश्व तथा ध्वजा सहित रथको, सारथीको,
 धनुषको, छत्रको तथा पताकाको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे काट गिराया । अर्धचन्द्राकर बाणसे उन्होंने उसका सूर्यके
 समान तेजस्वी किरोट भी काट डाला ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ पश्चात् रावणको व्याकुल देखकर रामने कहा—जा,
 लङ्कामें भाग जा और आवस्त होकर कल फिर मेरा बल देखना ॥ ४४ ॥ तब रावण नीचा मुख किये लङ्कामें
 चला गया । रामने लक्ष्मणको मूर्च्छित देखकर मारुतिसे कहा—॥ ४५ ॥ पूर्ववत् द्रोणाचल लाकर लक्ष्मणको
 जिलाओ । 'तथास्तु' कहकर हनुमान् चले पड़े । इस बातका पता लगनेपर दशाननने कालनेमिसे प्रार्थना
 करके उसको हनुमान्के रास्तेमें विघ्न डालनेके लिए भेजा । उसने जाकर हिमवान् पर्वतके पास एक तपो-
 वनकी रचना की ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ वहाँ बहुतसे शिष्योंको साथ लेकर वह स्वयं मुनिवेष धारण करके बैठ गया ।

मुनिना मानितश्चापि जलकुम्भः प्रदर्शितः । मारुतिः प्राह सृष्टिर्मे नैः तेन भविष्यति ॥४९॥
 तं पुनः प्राह स मुनिस्तटाकं निकटस्थितम् । गच्छास्त्रिणी पिधाय त्वं जलं पिब यथासुखम् ॥५०॥
 आमन्त्राशु पुनश्चात्र सुखं तिष्ठ ममान्तिकम् । जानामि ज्ञानदृष्ट्याऽहं लक्ष्मणश्चोन्मिन्नस्त्रिणि ॥५१॥
 गृहाण मंत्रान् मत्तस्त्वं यैश्च परयसि तं गिरिम् । गोपितं त्वद्य गन्धर्वैः तं त्वं नेतुमिच्छसि ॥५२॥
 प्लवंगानां जीवनार्थं लङ्कायां वेगतः कपे । मत्तस्त्वं लब्धविद्यः मत् ददस्व गुरुदक्षिणाम् ॥५३॥
 तथेति मारुतिर्गत्वा कासारमपिबज्जलम् । पिधाय नेत्रे तावत्तमग्रमन्मकरी तदा ॥५४॥
 सोऽपि तां दास्यामाम धृत्वास्थे ■ ममार ह । ततोऽन्नरिक्षे सा प्राह दिव्यरूपा तु मारुतिम् ॥५५॥
 पुराऽहं मुनिना स्पृष्ट्या प्रार्थिता न रतिर्मया । दत्ता क्षमाऽस्मि त्वत्तो मे निष्कृतिस्तेन कान्तिता ॥५६॥
 धान्यमालीति विरुधाताऽप्सराः पूर्वं भवन्तरे । आश्रमे यस्त्वया दृष्टः कालनेमिर्महासुरः ॥५७॥
 रावणप्रेषितो मार्गे स्थितस्तं जहि वेगतः । तथेति मारुतिर्गत्वा मुनिं प्राह त्वरान्वितः ॥५८॥
 मुष्टिं चङ्क्षा दृढा घोरां गृहाण गुरुदक्षिणाम् । इत्युक्त्वा ताडयामास हृदि तं मुष्टिना तदा ॥५९॥
 पपात भुवि रक्तं स्रवमन् प्राणान् जहौ क्षणात् । ततः शीरनिधिं गत्वा जिन्वा मन्धर्वमत्तमान् ॥६०॥
 द्रोणाचलं गृहीत्वा स यावद्गच्छति मारुतिः । विहायसाऽतिवेगेन लङ्कां तावच्च वे पथि ॥६१॥
 भरतेन शरं भुक्त्वा पर्वतो भुवि पातितः । भरतं मारुतिर्दृष्ट्वा तमोऽथमिति विह्वलः ॥६२॥
 उवाच मधुरं वाक्यं कथमत्र समागतः । जितं किं रावणेन त्वं रणं त्यक्त्वा पलायितः ॥६३॥
 एवमुक्तोऽपि भरतः पुनस्तं मारुतिं वरम् । मत्वाऽयं राक्षसार्थेति संदधे निश्चितं शरम् ॥६४॥

मारुति रास्तेमें मुनिका आश्रम देखकर उसमें जल पीनेके लिए गये ॥ ४९ ॥ मुनिने मारुतिका सम्मान किया और जल पीनेके लिये उनको एक भरा घड़ा दिखाया । ■ हनुमान्ने कहा कि इतनेसे मेरी तृप्ति नहीं होगी ॥ ४९ ॥ तब मुनिने उन्हें एक तालाब दिखाया और कहा कि वहाँ जाकर तुम आँखोंको बन्द करके आनन्दपूर्वक जल पी लो ॥ ५० ॥ बादमें आकर वहाँ मेरे पास शान्तिसे बैठो । मुझे ज्ञानदृष्टिसे ■ सम गया । कि लक्ष्मण उठ खड़ा हुआ है । इसलिए अब चिन्ताकी कोई बात नहीं है ॥ ५१ ॥ दूसरी बात यह है कि मैं तुम्हें कुछ ऐसे मन्त्र बताऊँगा कि जिससे तुम्हें गन्धर्वों द्वारा रक्षित वह पर्वत दिखलाई दे जायगा, जिसको कि तुम ले जाना चाहते हो ॥ ५२ ॥ उसको लङ्कामे ले जाकर तुम बानरोंको शीघ्र जिला सकते हो । इस प्रकारकी विद्या मुझसे ग्रहण करनेके बाद तुम्हें मुझे गुरुदक्षिणा भी देनी होगी ॥ ५३ ॥ 'बहुत अच्छा' कहकर मारुतिने तालाबपर जाकर जल पिया, परन्तु मंत्र बन्द होनेके कारण उस समय एक मकरीमें आकर उन्हें पकड़ लिया ॥ ५४ ॥ तब मारुतिने उसका मुँह पकड़कर चोर डाला जिससे वह मकरी मर गयी । पश्चात् वह दिव्य रूप धारण करके आकाशमें जाकर मारुतिसे बोली—॥ ५५ ॥ पूर्वकालमें एक मुनिने मुझको दुराचार करनेके लिए कहा, परन्तु जब मैंने उन्हें रति नहीं दी । तब उन्होंने मुझे मकरी होनेका शपथ देकर कहा कि तेरा निस्तार मारुतिसे होगा ॥ ५६ ॥ पूर्वजन्ममें मैं धान्यमाली नामको विरुधात अप्सरा थी । यहाँ आश्रममें जो एक मुनि बैठा हुआ आपने देखा है, वह कालनेमि नामका महान् राक्षस है ॥ ५७ ॥ रावणने उसको आपके मार्गमें विघ्न डालनेके लिए भेजा है । आप शीघ्र जाकर उसको मार डालें । 'बच्छो बात है' कहकर मारुति तुरन्त वहाँ पहुँच ॥ ५८ ॥ उन्होंने दृढ़ मुक्का बाँधकर 'यह लो अपनी गुरुदक्षिणा' ऐसा कहते हुए उसको छातोंमें जोरसे मुक्का मारा ॥ ५९ ॥ उस प्रहारसे वह जमीनपर लुढ़क पड़ा । उसके मुँहसे रक्त बहने लगा और क्षणभरमें वह मर गया । तदनन्तर औरसागर जा तथा गन्धर्वोंको जेतकर द्रोणाचलको लिये हनुमान् आकाशमार्गसे जा रहे थे कि रास्तेमें भरतने बाण मारकर उनके हाथमें वह पर्वत गिरा दिया । हनुमान् भरतको देख उन्हें अस्वजन राम समझकर घबरा गये ॥ ६०-६२ ॥ उन्होंने मधुर वाणीमें कहा—हे गम ! आप यहाँ कहाँसे और क्यों आ गये ? क्या आपको रावणने जीत लिया ? अथवा रण छोड़कर आप यहाँ भाग आये ■ ॥ ६३ ॥ मारुतिके इतना कहनेपर भी भरतने उन्हें ■ समझकर मारनेके लिए एक

वाणहस्तं तमालोदय भुभुकारं विधाय सः । नैवायं राघवश्चेति मत्वा घ्यात्वा क्षणं हृदि ॥६५॥
 भरतं मारुतिः प्राह रामदूतोऽद्य मे बलम् । पश्यसि त्वं तद्विरं तां श्रुत्वा तं भरतोऽभवीत् ॥६६॥
 धेधुना मम रामेण कृतो यद् ममागमः । तत्र ज्ञातं मविस्तारं दंडकारण्यवासिना ॥६७॥
 ततस्तं मारुतिर्ब्रूतं मंत्राव्य राघवस्य तु ॥ भरतेनेषुणा दत्तं गिरिं धृत्वा ययौ पुनः ॥६८॥
 लङ्कां गत्वा स वल्लीभिर्जीयामास लक्ष्मणम् । वानरैश्च भरतस्य रामं वृत्तं न्यवेदत् ॥६९॥
 पुनर्नीत्वा यथास्थानं तं मंस्थाप्य मदाचलम् । लक्ष्मणो जीवितश्चेति संभ्राव्य भरतं पुनः ॥७०॥
 यथावाकाशमार्गेण लङ्कां गन्तुं मनो दधे । नृपानाकारयामास साकेतं भरतोऽपि सः ॥७१॥
 साहाय्यार्थं राघवस्य लंकां गन्तुं मनी दधे । ततः नभायामामीनो रावणः प्राह राक्षसान् ॥७२॥
 गच्छध्वं त्वरितं दूताः पाताले तौ महाबलौ । ऐरावणो महानुग्रस्तथा मेरावणो महान् ॥७३॥
 तयोर्मे कथनीयं हि युद्धवृत्तं वयस्थयोः । तथेति ते गता द्वास्तौ तद्वृत्तं न्यवेदयन् ॥७४॥
 तौ श्रुत्वा विह्वलात्मानौ लङ्कायां समवस्थितौ । रामं च लक्ष्मणं हंतुं निशायां तौ समागतौ ॥७५॥
 ददमंतुस्तौ पृच्छस्य पश्चि दि हनूमतः । कपीनां तत्र सेनायास्तदाकाशान्महाबलौ ॥७६॥
 निपेततुः कपानां तु सेनायां रामलक्ष्मणौ । किञ्चिद्विनिद्रितौ दृष्ट्वा शिलायां संगरश्रमात् ॥७७॥
 निन्यतुस्तौ शिलां शीघ्रं पातालं निजमन्दिरम् । एतस्मिन्नन्तरेऽदृष्ट्वा सेनायां रामलक्ष्मणौ ॥७८॥
 मारुतिः पादमार्गेण तयोः पातालमापयौ । एतस्मिन्नन्तरे मार्गे लङ्कादक्षिणदिक्कटे ॥७९॥
 निकुम्भिलायां स्वपतिं कपोती प्राह पुर्विणी । नाथाय नरमांसं मे भोक्तुं स्पृहयते मनः ॥८०॥
 स प्राहाय समानीतौ वर्तेते रामलक्ष्मणौ । रसातलं हि दैत्याणां देव्यग्रंतौ बधिष्यतः ॥८१॥
 अथ शस्तद्वेषे जाते मांसमानीय तेऽप्ये । तदाकथं मारुतिः श्रुत्वा किञ्चिदोषयुतो ययौ ॥८२॥

और तेज बाण घनुषपर चढ़ाया ॥ ६४ ॥ उनको हाथमें बाण लिये देख मासति भू-भू करके मनमें लोचकर कि ये राम नहीं है ॥ ६५ ॥ भरतसे बोले कि 'ये रामका दूत है । आज तुम देख लो ।' उनका यह वाक्य सुनकर भरतने कहा - ॥ ६६ ॥ दण्डकारण्यवासों मेरे भाई रामके साथ तुम्हारा समागम कहाँ हुआ ? लो विस्तारपूर्वक कहो । तब मारुति भरतको सब हाल सुनकर भरत द्वारा दिये हुए उस पर्वतको पुनः उठाकर चल पड़े ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ लङ्कामें जा तथा वल्लियोंमें लक्ष्मण तथा वानरोंको जीवित करके उन्होंने रामको भरतका समान्तर कह सुनाया ॥ ६९ ॥ फिर वहाँसे ले लकर द्रोणाचलको उसके स्थानपर रख आये और भरतको लक्ष्मणके जीवित हो उठनेका शुभ समाचार भी सुना दिया ॥ ७० ॥ इतना काम करके हनुमान् पुनः बड़ी तेजीके साथ लङ्कामें लौट आये । ऊपर भरतने अयोध्यामें सब राजाओंको एकत्र करके लङ्कामें जाकर रामको सहायता देनेका विचार किया । तभी समयमें बड़े रावणने भी राक्षसोंको बुलाकर कहा- ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ हे दूतों ! तुम लोग शीघ्र पातालमें जाकर वहाँ रहनेवाले महान् उग्र ऐरावण तथा महान् मेरावण दोनों मेरे मित्रोंको यहाँके युद्धका समाचार सुनाओ । 'तयागस्तु' कहकर वे दूत वहाँ गये और उन दोनोंको सब वृत्तान्त निवेदन कर दिया ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ वह सुनकर वे दोनों बड़ी आतुरताके साथ लङ्कामें पहुँचे और रात्रिके समय राम-लक्ष्मणका हरण करनेके लिये रामके शिविरमें गये ॥ ७५ ॥ वहाँ उन दोनोंने वानरोंकी सेनाके चारों ओर हनुमान्की पूँछका बना हुआ दुर्गम परिप देखी । तब महाबलान् उग्र दैत्योंने आकाश-मार्गसे कूदकर कपियोंकी सेनामें प्रवेश किया । वहाँ राम-लक्ष्मणको एक शिलापर युद्धभूमिसे बचकर सोते हुए देख उन दोनोंने उस शिला समेत राम-लक्ष्मणको उठा लिया और पातालमें ले गये । रास्तेमें लङ्काके दक्षिण किनारे निकुम्भिला गुफामें स्थित एक गर्भवती कपोतिका अपने पतिसे कह रही थी कि हे नाथ ! आज मुझे नरमांस खानेकी इच्छा हो रही ॥ ७६-८० ॥ पतिने कहा-आज दो दैत्य राम-लक्ष्मणको रसातलमें ले जाये हैं । वे दोनों देवीके सम्मुख मारे जायेंगे ॥ ८१ ॥ उनका वचन ही जानेपर मैं

तावद्दर्शं तद्द्वारि संस्थितं मकरध्वजम् । स धृत्वा तं हनुमन्तं पप्रच्छ मकरध्वजः ॥८३॥
 कस्त्वं कुतः समायातः स्ववृत्तं प्राह मारुतिः । रामदूतस्तु लङ्कायाश्चानीती रामलक्ष्मणौ ॥८४॥
 निद्रितौ निशि दैत्याभ्यामत्र पातालमथ हि । तयोः शोधार्थमायातश्चेत्त्वं वेत्सि वदस्व तौ ॥८५॥
 तन्मारुतिवचः श्रुत्वा तं प्राह मकरध्वजः । पिता मे वर्तते तत्र क्षेमर्णान्निसंभवः ॥८६॥
 तच्छ्रुत्वा चकितः प्राह हनुमान् मकरध्वजम् । हनुमतः कुतः पत्नी सोऽब्रवीन्मारुतिं पुनः ॥८७॥
 लङ्कादाहं पुरा कृत्वा सागरे शीतलं कृतम् । यदा पुच्छं मारुतिना तदा तद्रूपपरितात् ॥८८॥

कंठाच्छ्लेष्मा बहिस्त्यक्तः सागरे सोऽपतत्तदा ।

मकर्या भक्षितः सोऽपि तस्यां जातः सुतोऽस्म्यहम् ॥८९॥

तच्छ्रुत्वा मारुतिः प्राह सोऽयमेव न संशयः । तदा तनाम पितरं तथा वृत्तं न्यवेदयत् ॥९०॥
 कामाक्ष्याश्च बलिं कर्तुं निश्चितौ पूर्वमेव हि । ताजानेतुं यदोद्युक्तौ लङ्कां गत्वा सुरोत्तमौ ॥९१॥
 श्वः कामाक्ष्याः पुरः कर्तुं तयोर्दानं विनिश्चितम् । गच्छ देवालये गत्वा तत्र स्थित्वा हरस्व तौ ॥९२॥
 ननः स मारुतिर्गत्वा त्रसरेणुस्वरूपघृक् । देवालये प्रविश्याथ कपाटानि बन्ध सः ॥९३॥
 नावर्हस्यौ संप्रायातौ पूजार्थं द्वारि संस्थितौ । शनैर्देव्याः स्वरेणैव मारुतिस्तौ वचोऽब्रवीत् ॥९४॥
 पूजा कार्या गवाक्षेण सजीवी रामलक्ष्मणौ । वनोद्भवैः फलैः पुष्पादिभिः सम्बद्धं प्रपूजितौ ॥९५॥
 धनकोदण्डतूणीरी वन्यपुष्पैश्च शोभितौ । देवालयेऽथ किञ्चिद्दि द्वाग्मुद्राद्यै वै शनैः ॥९६॥
 मनुष्यार्थं प्रेषणीयायत्र मामद्य मानवी । येन केन प्रकारेण यो मामद्य प्रपश्यति ॥९७॥
 भविष्यति निश्चयेन सांऽन्धो नास्त्येयं संशयः । तद्देव्या वचनं श्रुत्वा तुष्टां शान्त्वाऽम्बिकां मुदा ॥९८॥

मेरे लिए नरमांस ला दूंगा । इस बातको सुनकर मारुति कुछ संतुष्ट होकर आगे बढ़े ॥ ८२ ॥ आगे जाकर उन्होंने उसके द्वारपर मकरध्वजको बँडे देखा । उस मकरध्वजने मारुतिको पकड़ लिया और पूछा—॥ ८३ ॥
 तुम कौन और कहाँसे आये हो ? मारुतिने अपना परिचय दिया कि मैं रामका दूत हूँ । सोते हुए राम-लक्ष्मणको लङ्कासे दो राक्षस उठाकर यहाँ पातालमें आज ही लाये हैं । मैं उन दोनोंकी खोज करने यहाँ आया हूँ । यदि तुमको उनका कुछ पता हो तो बताओ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ मारुतिके इस वचनको सुनकर मकरध्वजने पूछा कि मेरे पिता अञ्जनीकुमार हनुमान् वहाँ कुशल क्षेममें हैं ? ॥ ८६ ॥ यह सुना तो हनुमान्ने चकित होकर पूछा—अरे ! हनुमान्की स्त्री ही कौन सी थी कि जिससे तू पैदा हुआ ? उसने मारुतिको उत्तर दिया—॥ ८७ ॥ जब हनुमान्ने लङ्काको जलाकर अपनी पूछ समुद्रमें उछड़ी की थी । उस समय उन्होंने धुँसे जमा हुआ कंठा का कफ जलमें धुँक दिया था । उसे एक मछलीने लिया । बस, उसीसे उत्पन्न मैं उनका पुत्र हूँ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ यह सुनकर मारुतिने कहा कि यदि ऐसा है, तब तो मैं ही अञ्जनीपुत्र हूँ । यह बात सर्वथा सत्य है । तब मकरध्वजने अपने पिता हनुमान्को प्रणाम किया और सब समाचार भी कह गनाया ॥ ९० ॥ उसने कहा कि जब वे दोनों असुर यहाँसे राम-लक्ष्मणको बँदे के लिए लंका गये थे, उससे पूर्व ही उन दोनोंने राम-लक्ष्मणको कामाक्षी देवीके सामने बलिदान देनेका निश्चय कर लिया था । तदनुसार कल उन दोनोंका देवीके समुद्ध बलिदान देना निश्चित हो चुका है । जाओ, देवालयमें जाकर खड़े हो जाओ और वहाँसे उन दोनोंको उठा ले जाना ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ तत्पश्चात् हनुमान् त्रसरेणुके समान छोटा रूप धारण करके देवालयमें धुस गये तथा अन्दर जाकर चुपचाप खड़े हो गये । उसी समय मारुतिने भीतरसे देवीके जैसा स्वर बनाकर कहा—॥ ९३ ॥ ९४ ॥ आज तुम लोग स्वर्गक्षेत्रमेंसे ही मेरी पूजा कर लो और बादमें धनुष तथा तूणीरको धारण करनेवाले राम-लक्ष्मण नामके दोनों मनुष्योंको वनफूल तथा फलों और पुष्पमालाओंसे सुशोभित करके जीवित ही मेरी दसभक्ताके लिए तनिक-सी किवाड़ खोलकर धीरेसे भीतर कर दो । कोई मनुष्य यदि आज किसी प्रकार तनिक भी मुझको देखेगा तो वह अवश्य अन्धा हो जायगा । देवीके इस आदेशको

ततस्तौ पूजनं दैत्यौ गवाक्षेणैव चक्रतुः । पक्वाभपायसादीनां राक्षीस्तौ प्रमुमोचतुः ॥१९॥
 प्रक्षामृतघटाश्चापि कोटिशस्तौ मुमोचतुः । कोटिशः फलमारैश्च गवाक्षेण मुमोचतुः ॥१००॥
 तत्सर्वं भक्षयित्वा स मारुतिः प्राह तौ पुनः । किं दत्तं प्राप्तमात्रं मे भोजनं क्षुधिताऽस्म्यहम् ॥१०१॥
 तद्दृष्ट्वा वचनं श्रुत्वा तौ दैत्यावतिस्मितौ । दूतैर्विलुप्त्य हृद्वांश्च तथा स्वीयपुरीकसाम् ॥१०२॥
 भक्षणीयपदार्थास्तौ गिरीनिव मुमोचतुः । राजगृहादिषु स्वेषु यद्यद्वस्त्वस्ति संचितम् ॥१०३॥
 तथापि दूतैरानीय देव्यै शीघ्रं मुमोचतुः । तदा कोलाहलभासीत्प्रतिगेहे पुरीकसाम् ॥१०४॥
 नासीच्छेषं बालकानां भक्ष्यवस्त्वप्यपि कश्चित् । ततस्तौ वन्यपुष्पाद्यैर्भूषितौ रामलक्ष्मणौ ॥१०५॥
 घृतकोदंडतूणीरौ द्वारेणैवार्पितौ भ्रिये । तौ दृष्ट्वा मारुतिर्नत्वाऽऽलिङ्ग्य श्रीरामलक्ष्मणौ ॥१०६॥
 कपाटानि तदोद्घात्य दैत्ययोः स व्यतर्जयत् । ततो रामो लक्ष्मणेन बहिर्देवालयात्तदा ॥१०७॥
 निर्गत्य शरजालैस्तौ जघान क्षणमात्रतः । सेवकान् सुहृदादींश्च तयोर्बाणैर्जघान सः ॥१०८॥
 पुनस्तौ जीवितौ दैत्यौ पुनस्तेन निपातितौ । अतवारं हतावेवं नासीन्मृत्युस्तयोस्तदा ॥१०९॥
 ततोऽतिविस्मितो भूत्वा त्वरन्गत्वा मारुतिः । इतस्ततो भ्रमन्पुर्णं नारीं गृहसि संस्थिताम् ॥११०॥
 ऐरावणमोगपत्नीं पप्रच्छ मरणं तयोः । सा प्राह नागकन्याऽहं क्लेनानेन धर्षिता ॥१११॥
 मेरावणोऽपि मां नित्यं दुष्टदुष्टयाज्य पश्यति । उभाभ्यामपि च क्रोडां दातुं नास्ति बलं मयि ॥११२॥
 मित्रं त्वेको रिपुस्त्वेकस्त्विति दुःखं तयोर्मम । अतस्तयोर्वधे तुष्टिर्मम चापि भविष्यति ॥११३॥
 मारुते यदि रामो मां स्वस्त्रियं हि करिष्यति । तर्हिहं कथयाम्यद्य तयोर्मृत्युर्यतो भवेत् ॥११४॥
 तच्छ्रुत्वा मारुतिः प्राह यदि श्रीगममारतः । न भविष्यति भग्नस्ते मंचकस्तर्हि ते पतिः ॥११५॥

सुनकर दोनों दैत्योंने समझ लिया कि आज देवी भली भाँति हमपर प्रसन्न हुई हैं ॥ ६५-६८ ॥ बादमें दोनोंने गवाक्षभागसे ही देवीका पूजन किया । बटाखे, मिठाई, मालपूए [] खीर आदि भी शरीरसे भीतर डाल दिया ॥ ६९ ॥ करोड़ों पञ्चामृतके घड़े अन्दर उँडले और करोड़ों फलोंके ढेर वहीसे भीतर डाल दिये ॥ १०० ॥ वह [] खाकर मारुति पुनः उनसे कहने लगे—क्या तुमने फललमात्र भोजन दिया है । मैं तो अभी बहुत भूखी हूँ ॥ १०१ ॥ देवीके इस वचनको सुनकर वे दोनों दैत्य बड़े विस्मयमें पड़ गये और अपने दूतों द्वारा दूकानोंका माल तथा नगरवासियोंके [] पदार्थ लुटवाकर उसके पर्वतसदृश ढेरको भीतर डाल दिया । अपने राजगृहोंमें भी जो कुछ खाने-पीनेकी चीजें संचित कर रखी थीं, वे भी नीकरोसे भँगवाकर देवीको समर्पण कर दीं । इससे पुरवासियोंके प्रत्येक घरमें बड़ा भारी कोलाहल मच गया । बच्चोंको खानेके लिए भी कहीं कुछ नहीं था । तदनन्तर कोदण्ड (घनुष) तथा तूणीर (तरकस) चारण किये हुए राम-लक्ष्मणकी वन्य पुष्पोसे पूजा करके द्वारके रास्ते धीरेसे देवीको अर्पण कर दिया । उन्हें देखकर मारुतिने [] किया और उन दोनोंने हनुमान्को हृदयसे लगाया । तब हनुमान् किवाड़ खोलकर बाहर आये और उन दोनों दैत्योंको छलकारा । बादमें राम-लक्ष्मण भी देवालयसे बाहर निकल आये और उन्होंने शरसमुदायकी वर्षा करके उन दोनों राक्षसोंको क्षणभरमें मार डाला ॥ १०२-१०८ ॥ पर वे दोनों राक्षस फिर जी गये । रामने फिर उन्हें मारा तो फिर जी गये और फिर मारा । इस प्रकार उन दोनोंको उन्होने सौ बार मारे । परन्तु उनकी मृत्यु नहीं हुई ॥ १०९ ॥ तब चकित होकर मारुति उनकी मृत्युके उपायकी खोजमें इधर-उधर [] करने लगे तो नगरीके एक एकान्त स्थानमें स्थित ऐरावणकी भोगपत्नी (रत्नल) को देखा और उससे उन दोनोंके मरणका उपाय पूछा । उसने कहा कि मैं एक नागकन्या हूँ । मेरे साथ ऐरावणने बलात्कार किया है ॥ ११० ॥ १११ ॥ मेरावण भी मुझे कुदृष्टिसे देखता है । इन दोनोंको रसिदान देनेकी सामर्थ्य मेरेमें नहीं है ॥ ११२ ॥ एक मेरा मित्र [] और एक शत्रु है । पर उन दोनोंसे मुझे दुःख ही मिलता है । अतः इन दोनोंके मारे जानेपर मुझको तो आनन्द ही होगा ॥ ११३ ॥ किन्तु हे मारुते ! यदि राम मुझे अपनी स्त्री बनायें तो [] वह उपाय बतला सकती हूँ, जिससे कि वे दोनों मारे जा सकें ॥ ११४ ॥ यही

भविष्यति रामचन्द्रस्तथेन्द्रपुत्रा तमाह सा । भ्रमरगनेकदा पूर्वं बालैः कंटकरोपितान् ॥११६॥
 मोचयामासतुस्तौ हि तेन तुष्टाश्च पट्वराः । तावच्चुस्ते युवाभ्यां हि मरणाद्रक्षिता वयम् ॥११७॥
 यथा तथा युवा चापि रक्षामो मरणाद्वयम् । इन्द्रपुत्रास्ते स्थिताश्चात्र ते नीत्वाऽमृतमुत्तमम् ॥११८॥
 तद्रक्तविन्दून् स्पृष्ट्वा ते प्रकुर्यान्ति मन्त्रीवितौ । भ्रमरगस्ते तयोर्निद्रास्थाने संत्यधुना कपे ॥११९॥
 कोटिशस्तान्मर्दयस्व सोऽपि तान्मर्दयन्क्षणात् । तत्रैकं शरणं प्राप्ते भ्रमरं प्राह भारुतिः ॥१२०॥
 कुरु मंचकगर्भं त्वं मज्जुक्तकपित्थवत् । ऐरावणमोगपत्न्याः पट्वदोऽपि तथाऽकरोत् ॥१२१॥
 ततो निहत्य तौ दैत्यौ पुनर्वारं रघूद्वहः । अभिषिच्य तयोः स्थाने राज्ये तं मकरध्वजम् ॥१२२॥
 यावद्गंतुं मनश्चक्रे तावन्भारुतिनाऽर्धितः । नागकन्यागृहं गत्वा नानाचित्रविचित्रितम् ॥१२३॥
 दृष्ट्वा तां चारुवदनां वस्त्रालङ्कारभण्डिताम् । धृत्वा करेण तद्वस्त्रं किञ्चित्कृत्वा स्मिताननम् ॥१२४॥
 चकार मञ्चकं भग्नं स्वभारेण रघूत्तमः । ततस्तथा प्रार्थितः स रामस्तां पुनरब्रवीत् ॥१२५॥
 त्यक्त्वा देहं भुवं गत्वा भूत्वा ब्रह्माणकन्यका । नपम्यत्वा चिरं कालं तृतीये त्वं तु जन्मनि ॥१२६॥
 द्वापरे द्वारकायां हि पयः पत्नी भविष्यति । तद्रामवचनं श्रुत्वा रामाग्रेऽग्निं प्रविश्य सा ॥१२७॥
 कन्याकुमारी नामनामोद्दिजकन्याऽन्विगोधमि । भारुतेः स्कंधमस्थोऽभूत्तदा रामो मुदान्वितः ॥१२८॥
 राज्ये कृत्वा मन्त्रिणं स्वं लक्ष्मणं मकरध्वजः । अकरोत्तं स्कंधमस्थं शेषं ब्रह्माण्डधारकम् ॥१२९॥
 ततः क्षणाज्जगमतुस्तौ लंकां श्रीरामलक्ष्मणौ । श्रीरामलक्ष्मणौ दृष्ट्वा सुग्रीवाद्याश्च वानराः ॥१३०॥
 तावदालिङ्ग्य मुहुर्नत्वा बभूवुस्तोषपूरिताः । रामोऽपि सकलं वृत्तं सुग्रीवादीन्त्यवेदयत् ॥१३१॥

मुनकर भारुतिने कहा कि यदि श्रीरामके भारसे तुम्हारा पलंग नहीं टूटेगा तो राम तुम्हारे पति बनेगे ॥११५॥
 तब 'तथास्तु' कहकर उसने कहा कि पूर्व समयमें एक बार बालकोंके द्वारा कांटोंपर आरोपित भ्रमरोंको उन ऐरावण-मैरावणने छुड़ा दिया था । इससे सन्तुष्ट होकर उन भ्रमरोंने उन दोनोंमें कहा कि तुम दोनों-
 ने हम लोनोंको गरनेसे बचाया है ॥ ११६ ॥ ११७ ॥ इसलिए जैसे भो होगा, हम तुम दोनोंकी मृत्युसे रक्षा
 करेंगे । इतना कहकर सख भँवरों वही रहने लगे । वस, ये भँवरों ही इस समय उत्तम अमृत लाकर
 उसकी बिन्दुओंसे इन दोनोंके रक्तको स्पृशें करके बारम्बार सजीव कर दिया करते हैं । हे वय ! ये भँवरों अभी
 भी उन दोनोंके शयनगृहोंमें विद्यमान हैं ॥ ११८ ॥ ११९ ॥ वे कंगड़ोंकी संक्रामें हैं । तुम उन्हें मार डालो ।
 उनके कथनानुसार हनुमान्ने आकर क्षणभरमें उन भँवरोंको मार डाला । उनसे शरणमें आये हुए एक
 भँवरसे भारुतिने कहा- ॥ १२० ॥ तुम जाकर ऐरावणको भोगपत्नीके पलंगकी भीतरमें खाकर हाथीके द्वारा
 मारे हुए कंधेकी तरह अन्दर ही अन्दरसे खोखला कर दो । भँवरोंने वैसा ही किया । १२१ ॥ बादमें राम-
 चन्द्रने वाणसे उन दोनों राक्षसों को मार डाला और उनके स्थानमें राज्यासनपर मकरध्वजको अभिषिक्त कर
 दिया ॥ १२२ ॥ इतना करके उन्होंने ज्यों ही वहाँसे चलनेकी तैयारी की, त्यों ही भारुतिने रामसे प्रार्थना की कि
 आप नागकन्याके घर चलकर अनेक चित्र-विचित्र शोभा देखें ॥ १२३ ॥ वस्त्रों तथा अलङ्कारोंसे मण्डित सुन्दर
 युववाली उस कन्याका हाथ पकड़े तथा कुछ हँसकर उसके पलङ्गकर बैठकर अपने भारसे उसके पलङ्गको तोड़
 जाएँ । यह सब कर लेनेके बाद उस कन्यासे प्रार्थित रामने उनसे कहा- ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ तू इस देहको छोड़-
 कर पृथ्वीपर जा । वहाँ ब्रह्माणकन्याका शरीर धारण करके बहुत कालतक तप करनेके बाद तीसरे जन्म तथा
 द्वारके युगमें तू मेरी पत्नी बनेगी । रामके सुन्दर तथा मधुर वाक्यको सुनकर वह रामके सामने ही अग्निमें
 प्रवेश कर गयी ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ जन्मान्तरमें कन्याकुमारी नामकी द्विजकन्या होकर पृथ्वीपर उत्पन्न हुई ।
 तब राम भारुतिके कन्धेपर प्रसन्नतापूर्वक आसढ़ हुए ॥ १२८ ॥ भारुतितनय मकरध्वजने भी अपने राज्याका-
 ण मन्त्रीको सौंप दिया और ब्रह्माण्डको धारण करनेवाले शेषके अवतारस्वरूप लक्ष्मणको अपने कन्धेपर
 बिठा लिया ॥ १२९ ॥ इस प्रकार दोनों भाई राम-लक्ष्मण क्षणभरमें लड्डू आ पहुँचे । श्रीराम तथा लक्ष्मणको
 देखकर सुग्रीव आदि वानर बड़े प्रसन्न हुए और बारम्बार आलिङ्गन तथा प्रणाम करने लगे । रामने भी

दैत्यौ रामेण निहर्ता श्रुत्वा सदसि रावणः । राक्षसांश्चकितः प्राह पूर्ववृत्तं भयान्वितः ॥१३२॥
 मानुषेणैव मृत्युर्मे ह्यहं पूर्वं पितामहः । अतो नारायणः साक्षान्मानुषोऽभून्न संशयः ॥१३३॥
 रामो दाशरथिर्भूत्वा मां हंतुं समुपस्थितः । यदाऽनरण्यः पूर्वं हि हतो दीक्षितो मया ॥१३४॥
 शसत्वाहं तदा तेन क्षयचंशोद्धवेन हि । उत्पत्स्यते च मद्गणे परमात्मा सनातनः ॥१३५॥
 स एव त्वां पुत्रपौत्रैर्वर्धनैर्मिहनिप्यति । इत्युक्त्वा स ययौ नक्तं सोऽधुना ममयो मम ॥१३६॥
 समागतौ रावणो मां समरे स हनिष्यति । विबोधय कुम्भकर्णं तमानयध्व त्वरान्विताः ॥१३७॥
 सतस्ते तां मुह्यं गत्वा वच्छासेन विकर्षिताः । यातायाते प्रचक्रुस्ते कुम्भकर्णोदरे मुहुः ॥१३८॥
 तदैकत्र बाहुपार्श्वलं कृत्वाऽथ राक्षसाः । गत्वा तदतिकंभीम्या निजघ्नुस्तं दुमैः पदैः ॥१३९॥
 शिलाभिस्ताडयामासुश्चाश्चैरुष्ट्रैर्व्यचूर्णयन् । काष्ठभारैर्महादाहं देहे चक्रुर्नृपाह्वया ॥१४०॥
 तदा प्रमुद्धतोत्थाय सुकरान् महिषान् वरान् । कोटिभिः स्वमुत्से शिप्त्वा जलवापीर्निशोष्य सः ॥१४१॥
 गत्वा नत्वा राक्षसेन्द्रं शोधयामास रावणम् । एकदाऽहं वनं गत्वा दृष्ट्वा तं नारदं मुनिम् ॥१४२॥
 पृष्ट्वास्त्वं कुत्र यासि कुतश्चागमनं कृतम् । स मां प्राह देवल्लोकादयोध्यां प्रति गम्यते ॥१४३॥
 रावणादीन् रणे हंतुं विष्णुर्जातोऽत्र मानुषः । देववाक्पात्रवरयितुं गमं गच्छाम्यहं जवान् ॥१४४॥
 इत्युक्त्वा मां गतः सोऽथ प्रेषयामास रावणम् । इति श्रुतं मया पूर्वं त्वाम्रे तन्निवेदितम् ॥१४५॥
 अतोऽर्पयाद्य रामाय सीतां सख्यं कुरु प्रभो । इति तद्वचनं श्रुत्वा रावणस्तं वचोऽत्रवीत् ॥१४६॥
 निद्रान्यासेऽक्षिणी तेऽद्य गच्छ निद्रां सुखं कुरु । तद्वंधोः कूरवचनं श्रुत्वा नत्वाऽथ रावणम् ॥१४७॥

वहाँका सब समाचार सुनोव आधिको कह सुनाया ॥ १३० ॥ १३१ ॥ उपर भरत समामे रावणने जब ऐरावण
 तथा मँरावणकी भृत्युका समाचार सुना तो प्रवराकर भयभीत भावसे अपना पूर्ववृत्तान्त राक्षसीसे कहने
 लगा ॥ १३२ ॥ उसने कहा कि पितामह मह्याने मुझे पहले ही कह रक्ता है कि तेरा भरण भनुष्यके द्वारा
 होगा । इससे जात होता है ॥ ये राम साक्षान् नारायण ही भनुष्यरूप धारण करके आये हैं । इसमें संदेह
 नहीं है ॥ १३३ ॥ इन रामने मुझे मारनेके लिए हों दशरथपुत्र वनना स्वीकार किया है और यहाँ
 उपस्थित हुए हैं । जब ॥ पूर्वकालमें (दीक्षाको प्राप्त या सत्सङ्कल्पनिरत) अनरण्य नामके सूर्यवंशी
 राजाको मार डाला था ॥ १३४ ॥ उस समय राजाने मुझे शाप दिया ॥ कि मेरे वंशमें सनातन पुरुष
 परमात्मा उत्पन्न होंगे ॥ १३५ ॥ वे तुम्हें पुत्र-पौत्र तथा बान्धवों सहित मारेंगे । इतना कहकर राजा
 स्वर्ग चले गये । वस, अब वही समय गया है ॥ १३६ ॥ राम मुझे समरमें अवश्य मारेंगे । तुमलोग
 आकर शीघ्र कुम्भकर्णको जगाकर यहाँ ले आओ ॥ १३७ ॥ बादमें वे सब जब गुफामें गये, जहाँपर
 कुम्भकर्णका सोया था । तो उसके सम्ये तथा बलवान् स्वाससे आकर्षित होकर ॥ बार-बार उसके
 पेटमें आने-जाने लगे ॥ १३८ ॥ यह देखकर ॥ बड़े चकराये और एक मिल तथा बाहुबलका आश्रय
 लेकर किसी प्रकार उसके शरीरके पास पहुँचे । वहाँ आकर डरते हुए वे लातों तथा पेड़ोंसे पीटकर उसे
 जगाने लगे ॥ १३९ ॥ उसपर बहुतेरे पत्थर फेंके, घोड़ों तथा ऊँटोंसे कुचलवाया, पर उसकी नींद नहीं टूटी ।
 तब राजाकी आज्ञासे उसपर बहुतेरे लकड़ीके डेर डालकर जलाये गये ॥ १४० ॥ सब वह किसी प्रकार उठा
 और करोड़ों सूअर तथा मोटे-मोटे भैंसोंको साथ तथा ॥ करके उसने एक बावलीको नुखा दिया ॥ १४१ ॥
 तत्पश्चात् वह राक्षसेन्द्र रावणके पास गया और समझाकर कहने लगा कि एक ॥ वनमें गया था । मैंने
 वहाँ नारद मुनिको देखकर पूछा- ॥ १४२ ॥ हे महामुने ! कहाँसे आये और कहाँ जा रहें ? उन्होंने कहा
 कि मैं देवल्लोकसे अयोध्या जा रहा हूँ ॥ १४३ ॥ वहाँ रावणादिको मारनेके लिए साक्षान् नारायण अवतरे
 हैं । उन भगवान् रामको देवताओंके कथनानुसार जल्दी करनेका स्मरण करानेके लिए मैं वेगसे जा रहा
 हूँ ॥ १४४ ॥ इतना कहकर वे चले गये । उन्होंने ही रामको भेजा है । इस प्रकार जो मैंने सुना था, सो कह
 सुनाया ॥ १४५ ॥ इसलिए तुम सीता रामको समर्पण करके उनसे मित्रता कर लो । यह सुनकर

जवाक्षर्यो स पुद्गायोल्लङ्घ्य ग्रामाद्मुत्तमम् । कुम्भकर्णं ततो दृष्ट्वा कृपणा भयविह्वलाः ॥१४८॥
 चक्रुः पलायनं सर्वे रामपार्श्वमुवायताः । कुम्भकर्णं तत्र दृष्ट्वा प्रणनाम विभाषणः ॥१४९॥
 उवाच प्रणतो भूत्वा मया राज्ञाऽतिबोधितः । मांतां रामाय देहीति तेन धिग्धिक्कृतस्त्वहम् ॥१५०॥
 तच्छ्रुत्वाऽहं राघवस्य सेवां कर्तुमुवायताः । तच्छ्रुत्वा बंधुवचनं कुम्भकर्णस्तमन्नवात् ॥१५१॥
 सम्यक्कृतं त्वया वत्स नद्रे मां स्थिरं भव । युद्धे स्तायः परो वाऽत्र ज्ञायते न मयाऽद्य हि ॥१५२॥
 ततो बंधुं नमस्कृत्य रामपार्श्वमुवायता । कुम्भकर्णोऽपि हस्ताभ्यां पादाभ्यां पेययन्हरन् ॥१५३॥
 चचार वानरी सेनां तत्र दृष्ट्वा कशीश्रमम् । विशूलेनाथ तं भित्त्वाऽऽनयामास पुरीं तुलः ॥१५४॥
 मार्गे स्वस्थः स सुग्रीवः कर्णो घ्राण गिर्योर्नम्रः । छिन्वा ययौ राघवंद्रं सोऽपि पौर्यैर्विलज्जितः ॥१५५॥
 पुनर्ययौ रणभुवं तं दृष्ट्वा रघुनन्दनः । विव्याध निजिर्नवाणः सोऽपि रामं दुर्मेर्नमः ॥१५६॥
 ताडयामास तान् वार्ष्णेनिवार्य रघुनन्दनः । वायव्याश्रेण चिच्छेद तद्वर्णा मायुधो क्षणात् ॥१५७॥
 छिन्नं बहूमयायातं नदत राक्षस राघवः । द्वावद्वन्द्वौ निशितावादायास्य पदद्वयम् ॥१५८॥
 चिच्छेद् पतिनीं पार्दा लङ्काद्वारि महास्वनी । निकृत्तहस्तौ तौऽपि कुम्भकर्णोऽतिभाषणः ॥१५९॥
 बडवामुखवद्वचनं व्यादाय रघुनन्दनम् । अभिदुडाद्य विनदन् गह्वरन्दमम यथा ॥१६०॥
 अदूरयच्छिन्नार्थं साधकं नद्रघुतमः । शम्भूरितयस्त्रोऽर्थो चुकाशानिभयकरः ॥१६१॥
 अथ सूर्यप्रतीकाशमैत्रं शरमनुत्तमम् । मृगोच तेन चिच्छेद् कुम्भकर्णशिरो महत् ॥१६२॥
 तथा खे देववाद्यानि नेदुः कुसुमप्रतिभिः । त्वयोरमरा रामं तुष्टुर्विचिधेः स्तवैः ॥१६३॥
 पितृव्यं निहत श्रुत्वा पितरं चार्त्तामवहलम् । राशनिः सान्द्रयामास त्वं पश्याद्य वै धलम् ॥१६४॥

रावणने कहा—॥ १४९ ॥ अभी तुम्हारा आश्रित निदा भरी है, जाकर सो जाओ। मैं तुमका उपदेश देनेके लिये नहीं बुलाया हूँ। कम्बुका नाम का राजा वचन सुनकर उसने रावणका नमस्कार किया ॥ १४७ ॥ तदनन्तर वड्डे अपने बड़े मकानों तथा गह्वरों लांघकर लङ्काके लिए गया। उस भयानक कुम्भकर्णका देखते ही सब वानर डोड़कर रामके पास चले गये। विभाषणन कुम्भकर्णका आवा दसकर नमस्कार किया ॥ १४८ ॥ १४९ ॥ फिर कहा कि मैंने राजा राघवको बहुत तल्लतायक समझाया कि तुम साता रामका दाँ। इसपर उसने मुझे बहुत धिक्कारा। तब मैं उसके आश्रितमैं दुल्हा होकर यहाँ रामका मेवाभ चला आया। यह सुनकर कुम्भकर्ण ने कहा—॥ १५० ॥ १५१ ॥ हे वत्स! तुमने बहुत अच्छा किया, पर इस समय तुम मेरे सामनेसे हट जाओ। इस देश समय तुम्हें अपना घर जाना नहीं मुझे पता है ॥ १५२ ॥ तब विभाषण भादका नमस्कार करके रामके पास चले गये। कुम्भकर्ण भी हाया त ॥ १५३ ॥ वानरी सेनामें जयजय विचारने लगा। अन्तमें सुग्रीवर गृध्राक्षकी उल्लास ही उन्हें मिलुम पवित्र यह सत्य लका पुराका आर ल चला ॥ १५३ ॥ १५४ ॥ रास्तेमें वानरोंकी जय होणे आया तो लङ्का कुम्भकर्णके नाककान काटकर व राघवके रामके पास लौट आये। कुम्भकर्ण भी पुरासिधोने लोका हाके पुन, रणनन्दनमें लड़ने चला गया। उसे देखकर रघुनन्दन रामने अपने लाल बाणोंसे बीधना आरम्भ किया। उन्होंने हथियार समेत उसके हाथ काट गिराये ॥ १५५-१५७ ॥ रामने जब देखा कि भुजा कट जानेपर भी वह गहन करता हुआ मानने चला आ रहा है, तब उन्होंने दो अर्धवन्दाकार जनोंसे उसके दोनों पैर काट दिए। ये कटे पाद जाकर लङ्काके दरवाजेपर गिरे। हाथपाँवसे रहित होकर भी कुम्भकर्ण अति भाषण बड़गलके समान मुख काहुकर पार नाद करता हुआ चन्द्रमापर राहुके समान रामपर झपटा ॥ १५८-१५९ ॥ तब रामने तीक्ष्ण बाणोंसे उसका मुँह भर दिया। तुलमें बाण भर जानेसे वह और भी भयानक तथा क्रुद्ध हो उठा ॥ १६० ॥ तब रामने उसपर सूर्यके समान प्रदीप्त ऐन्द्र बाण फेंका। उसने कुम्भकर्णका महान् चिर कटकर चिर पड़ा ॥ १६१ ॥ उस समय आकाशमें देवताओंने दिव्य जय जय और पुष्पोंकी वर्षा करके रामकी विविध वीर्यसे श्रुति की ॥ १६२ ॥ चाँवा कुम्भकर्णका मारा गया तथा पिताको विह्वल सुनकर रावणपुत्र नेचनाद पिताको संतुलना देकर बोला—हे पिताजी! आप आज

इत्युक्त्वा त्वरितं गत्वा मेघनादो निकुम्भिलाम् । रक्तमान्यावरधरो हननापोषचक्रमे ॥१६५॥
 रक्षार्थं दिव्यस्त्रार्थं अपार्थमभिचारकैः । योगिनीवटाधोभूम्पां गुहायां संस्थितो रहः ॥१६६॥
 तोयानिलानलपाग्रसर्पराक्षसकण्टकैः । आत्मनः परितः कृत्वा परिधानं सप्त दुर्गमान् ॥१६७॥
 होमकुण्डाध्वतः सर्पं वद्ध्वा कृष्णमधोमुखम् । रक्तपुष्पांबरधरो रक्तचंदनलेपितः ॥१६८॥
 रक्तपुष्पाभता गुञ्जा सर्पपशुदनेच्छुभिः । खदिराप्रपलाशोदुम्बरमल्लतकास्थिभिः ॥१६९॥
 समिञ्जिर्माषमांसादिभस्मातकफलैरपि । अकनिचवाजपूरकृष्णधत्तुरोचनैः ॥१७०॥
 अपामार्गवदरिकानलदालकबंधुर्कैः । नरमुण्डः समांसश्च विभीतकफलादिभिः ॥१७१॥
 सर्पपण्डश्च मण्डूकैस्त्वग्दंतस्नायुलोमभिः । नानावनचराणां मांसैरपि समन्त्रकम् ॥१७२॥
 इत्थं चकार होमं स निमील्य नयने रहः । विमांषणोऽपि तं दृष्ट्वा होमभृशं भयावहम् ॥१७३॥
 प्राह रामाय सकलं होमारम् दुरात्मनः । समाप्यते चेद्वोमोऽयं मेघनादस्य दुर्मतेः ॥१७४॥
 स षाज्यो भवेद्राम मेघनादः सुरासुरैः । अतः श्वाशं लक्ष्मणेन घातयिष्यामि रावणिम् ॥१७५॥
 यस्तु द्वादश वर्षाणि निद्राहारविवर्जितः । तेनैव मृत्युनिर्दिष्टा ब्रह्मणाऽस्य दुरात्मनः ॥१७६॥
 लक्ष्मणोऽयं यदाऽपोष्पापुर्यास्त्वामनुनिर्गतः । तदादि निद्राहारादोष प्राप्तः स रघूचम ॥१७७॥
 सेवार्थं राजेन्द्र ज्ञातं सर्वमिदं मया । ततो रामाज्ञया गत्वा लक्ष्मणेन विमांषणः ॥१७८॥
 हनुमत्प्रमुखैर्वीरैर्ययैः सर्वतो वृतः । लक्ष्मणं दर्शयामास होमस्थानं निकुम्भिलाम् ॥१७९॥
 अङ्गदस्कंधमारुह्य बह्व्यस्त्रेणाथ कण्टकान् । ज्वालयामास सोमत्रिजधान राक्षसाञ्छरैः ॥१८०॥
 गारुडास्त्रेण सर्पांश्च पर्वतास्त्रेण दंष्ट्रिणः । अनलं ज्ञातमकरोत्पजन्यास्त्रेण लक्ष्मणः ॥१८१॥
 प्राशयामास हनुमाननिलं ध्वजमावृतः । जलं सञ्ज्ञायामास वायव्यास्त्रेण लक्ष्मणः ॥१८२॥

मेरा बल देखें ॥ १६४ ॥ इतना कहकर मेघनाद तुरन्त निकुम्भिला नामकी पश्चिमी गुफामें गया । वहाँ लाल फूलोंकी धाला तथा लाल वस्त्र धारण करके वह हुवनकी तैयारी करने लगा ॥ १६५ ॥ दिव्य रथ, दिव्य अस्त्र तथा अजलाशके लिए अभिचारक्रिया करनेका निश्चय करके वह गुफाके भीतर योगिनीवटके पास एकान्तमें जा बैठा ॥ १६६ ॥ उसने वहाँ अपना सुरसाके लिये अग्नि जल वायु सह राक्षस तथा काँटोंसे अपने चारों ओर सात दुर्ग बना लिये ॥ १६७ ॥ होमकुण्डक ऊवरी भागमें अधोमुख करके एक काला सर्प बाँध दिया । तदनन्तर रक्त पुष्प तथा रक्तांबर धारण करके रक्त चन्दन लगाया ॥ १६८ ॥ लाल फूल, अक्षत, गुजा, सरसों, चन्दन, ईश, बेर, आम, पलाश तथा भेलावेका लकड़ियें, समिया, उदं, मांस, भस्मातककी गुठली, आक, नाँम, बीजपूर, कृष्ण धतूरा, नावू, चिचिड़ा, बेर, चित्रक, दालक, बंधूक, नरमुण्ड, चरबों, विभीतकफल, सर्पलण्ड, मण्डूक, चमं, दांत, स्नायु, आत, मांस तथा नाना वनचरोंके मांस आदिसे उसने मन्त्राचवारपूर्वक एकान्तमें हुवन प्रारम्भ कर दिया । सहसा विभाषणने होमके भयानक धुएँको उठते देखा ॥ १६९-१७३ ॥ तब उन्होंने रामसे कहा-देखिये, उस दुरात्माने हाम आरम्भ कर दिया है । यदि उस दुर्बुद्धि मेघनादका होम निर्विघ्न समाप्त हो गया फिर है राम ! वह दैत्यों तथा देवताओंसे भी अजेय हो जायगा । इसलिए शीघ्र लक्ष्मणके द्वारा मैं उसको मरवा दूँगा ॥ १७४ ॥ १७५ ॥ जो मनुष्य बारह वर्षतक निद्रा तथा आहारसे रहित रक्षा हो, उसीसे ब्रह्माने मेघनादकी मृत्यु कहा है ॥ १७६ ॥ लक्ष्मण जब अयोध्यासे निकले है, तबसे निद्रा तथा आहार त्यागकर उन्होंने आपका सेवा की । यह मैं भलों भाँति जानता हूँ । पश्चात् रामकी आज्ञासे लक्ष्मण तथा हनुमान आदि वीर सेनापतियोंका साथ लेकर विभाषण वहाँ गये और लक्ष्मणको निकुम्भिलाका होमस्थान बताया ॥ १७७-१७९ ॥ वहाँ जाकर लक्ष्मणने अङ्गदके कंधेपर सवार होकर अग्निबाणसे काँटोंको जलाकर राक्षसोंको मार डाला ॥ १८० ॥ उन्होंने गारुडास्त्रसे सर्पों तथा पर्वतास्त्रसे दाँतवाले सिंह आदि जन्तुओंको समाप्त कर दिया । उन्होंने मेघास्त्रसे अग्निका शान्त किया । हनुमान्ने जगन्मरमें

परिषेध्वपि नष्टेषु तत्रादृष्टा रिपोः स्थलम् । ययावुत्पादितुं क्रोधाद्नुमान्योगिनीवटम् ॥१८३॥
 तदा तां दर्शयामास वटस्थां योगिनीगुहाम् । गुहापिघानपापाणं हनुमान्पादघट्टनैः ॥१८४॥
 चूर्णीकृत्य गुहासंस्थं मेघनादं व्यतर्जयत् । तदा स मेघनादोऽपि त्यक्त्वा होमं त्वरान्वितः ॥१८५॥
 क्रोधाविष्टो रथे स्थित्वा ययौ लक्ष्मणममुखम् । शस्त्रैस्त्रैः पर्वतार्धमर्मभिर्द्भिर्निजोक्तिभिः ॥१८६॥
 चकार लक्ष्मणेनैव युद्धं तत्तारकामयम् । सौमित्रिरपि बाणौघै रथमश्वान्धनुर्वजम् ॥१८७॥
 तद्दृष्टं कवचं सूतं विभेद स्रणमाव्रतः । ततः सोऽन्येन धनुषा मुक्त्वा बाणान्सदृशशः ॥१८८॥
 पद्भ्यामेवास्थितो भूम्या चिच्छेद कवचं रिपोः । तदा क्रुद्धः स सौमित्रिर्वाणेनैद्रजितश्च हि ॥१८९॥
 सशरं दक्षिणभुजं पातयामास तद्गृहे । तदा वामहस्तेन मेघनादोऽतिविह्वलः ॥१९०॥
 दुद्राव लक्ष्मणं हंतुं धृत्वा शूलमनुत्तमम् । तं चापि मार्मणेनैव सशूलं वामसत्करम् ॥१९१॥
 मेघनादस्य सौमित्रिश्छित्वा रावणमभिधौ । पातयामास लंकायां तदद्भुतमिवाभवत् ॥१९२॥
 तदा व्यादाय स्वमुखं रावणिलक्ष्मणं ययौ । लक्ष्मणोऽपि शरं दिव्यं गमनामंकितं शुभम् ॥१९३॥
 मुमोच रघुवीरस्य कृत्वा चित्तनमादरात् । स शरः मक्षिरस्त्राणं श्रीमज्ज्वलितकुण्डलम् ॥१९४॥
 प्रमथ्येद्रजितः कायात्पातयामास तच्छिरः । ततः प्रमुदिना देवाः सौमित्रिं परितुष्टवुः १९५ ।
 पुष्पाणि विकिरंतो वै चकुर्नीलगजनं मुहुः । गतभ्रमः स सौमित्रिः शंस्रमापूर्यद्रणे ॥१९६॥
 धृत्वा सीतां शंखनादं त्रिजटां प्रेप्य सादरम् । शुभाच मकलं वृत्तं तद्वाक्यान्प्रतुतोष सा ॥१९७॥
 ततस्तन्मेघनादस्य शिरः संगृह्य मारुतिः । राघवाय दर्शयितुं त्वरयामास लक्ष्मणम् ॥१९८॥
 तदा स वानरैर्वृत्तोऽङ्गदस्थः सविभीषणः । नानावाद्यनिनादंश्च सौमित्रि राघवं ययौ ॥१९९॥
 नत्वा तं दर्शयामास मेघनादस्य तच्छिरः । तद्दृष्ट्वाऽऽलिंग्य सौमित्रिं रामस्तुष्टोऽभवत्तदा ॥२००॥

वायु पी लिया और लक्ष्मणने वायव्यास्त्रसे जलको मुखा दिया ॥ १८१ ॥ १८२ ॥ उन सब घेरोके नष्ट हो जानेपर भी जब शत्रुका स्थान नहीं दिखायी दिया तो हनुमान थूढ़ होकर योगिनीवटकी ओर गये । वहाँ उन्हें योगिनीवटवाली गुफा दीख पड़ी, तुरन्त गुफाके द्वारपर लगे हुए पत्थरको हनुमानने सात मारकर चूर्ण कर डाला और भीतर जाकर मेघनादको मारकारा । तब मेघनादने भी तुरन्त होम छोड़ दिया ॥ १८३-१८५ ॥ तदनन्तर क्रोधके साथ रथपर सवार होकर वह लक्ष्मणके समक्ष गया और अस्त्र शस्त्र, पर्वत तथा भ्रमभेदी बाणयोसे उनको जीतनेकी इच्छासे मरानक युद्ध करने लगा । लक्ष्मणने भी अनवरत बाण छोड़कर उसके अश्व, रथ, धनुष, वज्रा, हत कवच तथा सारथीको स्रणभरमें छिन्न-भिन्न कर दिया । तब मेघनाद भी दूसरा धनुष ले तथा तीचे हो खड़े हो इजार्गे बाण छोड़कर शत्रुके कवचको काटने लगा । उस समय लक्ष्मणने क्रुद्ध होकर अपने बाणसे इन्द्रजिन्का बाणके सहित दाहिना हाथ काटकर उसीके घरमें गिराया । तब विह्वल होकर मेघनादने बायें हाथसे त्रिशूल सम्हाला ॥ १८६-१८७ ॥ वह उत्तम त्रिशूल लेकर लक्ष्मणको मारनेके लिए दौड़ा । मेघनादके त्रिशूल सहित बायें हाथको भी नृमिथापुत्र लक्ष्मणने बाणसे ही काटकर रावणके पास गिराया । यह देखकर लंकामें सबको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ १८९ ॥ १९० ॥ तब मेघनाद मुँह काड़कर लक्ष्मणकी ओर अपटा । तब लक्ष्मणने भी रामका ध्यान करके रामनामसे अंकित दिव्य बाण छोड़ा । उस बाणने जाकर पगड़ी सहित, शोभायुक्त तथा प्रदीप्त कुण्डलवाले मेघनादके शिरको घड़से अलग करके धरतीपर गिरा दिया । यह देखकर देवतागण अतीव प्रसन्न हुए और लक्ष्मणकी स्तुति करने लगे ॥ १९३-१९४ ॥ वे तत्पर कुसुमोंकी वृष्टि करके आरती उतारने लगे । तब लक्ष्मणने शान्त होकर विजयशंख बजाया ॥ १९६ ॥ वह शंखनाद सुनकर सीताने त्रिजटाको भेजा और उसके मुँहसे युद्धका समाचार सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुई ॥ १९७ ॥ इधर हनुमान्जीने मेघनादका शिर लेकर रामको दिखलानेके लिये लक्ष्मणसे शीघ्र चलनेको कहा ॥ १९८ ॥ तब लक्ष्मण विभीषण और वानरोंको साथ ले तथा अङ्गदके कंधेपर सवार होकर अनेक बाजे-गाजेके साथ रामके पास गये ॥ १९९ ॥ वहाँ जाकर लक्ष्मणने रामको प्रणाम किया और

रावणोऽपि भुजं दृष्ट्वा श्रुत्वा पुत्रवधं तथा । पशान पुत्रदुःखेन सभायां मूर्च्छितो भुवि ॥२०१॥
 क्रोधान्त खड्गमुद्यम्य ययौ हन्तुं विदेहनाम् । सुपाथो नाम मेधावी मंत्री तं संन्यवारयत् ॥२०२॥
 सख्यं तत्करं धृत्वा स्वहस्ते मन्त्रं त्वरान्वितः । उवाच नीतिसंयुक्तं वचनं रावणं तदा ॥२०३॥
 कथं नाम दशग्रीव कोषान्स्त्रीवधमिच्छसि । अस्माभिः सहितो युद्धे हत्वा गमं सलक्ष्मणम् ॥२०४॥
 प्राप्स्यसे जानकीं शीघ्रमिन्धुक्तः स न्यवर्तत । सुलोचनाऽपि कांतस्य भुजं केयूरभूषितम् ॥२०५॥
 दृष्ट्वा समार्षणं स्वीयपूरतः पतितं भुवि । तदा विलापमकरोत्स्मृत्वा तत्पीरुपाणि ॥२०६॥
 भुजोऽपि सात्वयन्तां स लेख्य भूम्यां शरेण हि । मूलोहिताश्रुरैः प्राह मा खेदं भज भामिनि ॥२०७॥
 साक्षाच्छेषशराघातैर्हतोऽहं मुक्तिमागतः । त्वं चापि गत्वा श्रीरामं नत्वा याचस्व मच्छिरः ॥२०८॥
 तस्यां दास्यति गमोऽपि तेनाग्रं विजय याहि माम् । सुलोचना पठित्वा सा लिखितान्पत्राणि हि ॥२०९॥
 तुष्टा पृष्ट्वा रावणाय मन्दोदर्यै विभूषिता । ययौ गमं शिबिकया तां दृष्ट्वा वानरोत्तमाः ॥२१०॥
 सीतेयं रावणेनाथ भयाद्रामं विसर्जिता । इति मत्वा दृष्टुयुक्ते सीताया दर्शनेच्छया ॥२११॥
 शिबिकां वेष्टयामासुर्ज्ञान्वा तां न सुलोचनाम् । शिबिकावाहकास्त्रेनाययुः श्रीराघवं पुनः ॥२१२॥
 सुलोचनाऽपि श्रीरामं ननाम शिरसा मृदुः । भर्तुः शिरः कांस्रमाणां तां रामो वाक्पमब्रवीत् ॥२१३॥
 कृपया तव भर्तारं करोम्यद्य सजीविनम् । मा विशस्वाद्यवद्वि त्वं रोचने चेददस्य माम् ॥२१४॥
 तदा सा प्राह श्रीरामं पुनः सौमित्रिहस्ततः । कुतो भवेत्तन्मरणं मोक्षदं जीवयस्व मा ॥२१५॥
 इत्पुष्पा राघवं दत्त्वा सन्मितं कपिवाक्यतः । कृत्वा शिरः पतेस्तत्र लब्ध्वा सा भर्तुमच्छिरः ॥२१६॥
 लङ्कायास्तौ समानीय भुजौ गत्वा निकुञ्जिलाम् । भर्तुर्देहेन सयोज्य विवेशाग्निं यथाविधि ॥२१७॥

मेघनादका कटा सिर दिखाया । उसे देखकर रामने लक्ष्मणको छातीसे लगा लिया और बहुत आनन्दित हुआ ॥ २०० ॥ रावणने पहले पुत्रका कटा हुआ हाथ देखा । पश्चात् उसको मृत्यु सुनी तो मूर्च्छित होकर सभामें ही अमीनपर गिर पड़ा ॥ २०१ ॥ बादमें वह श्रीघोषपूर्वक खड्ग लेकर सीताको मारनेके लिए चला । उस समय गुणपर्व नामके बुद्धिमान मंत्रोंने उसको रोका और उसका तलवारवाला हाथ अपने हाथसे पकड़कर नीतियुक्त उपदेश देते हुए कहा—॥ २०२ ॥ २०३ ॥ हे उग्रग्रीव ! घोषावेशमें आकर स्त्रियोंहत्या करना पाप है । हमारे साथ चलकर मुट्ट करो । रणमें राम-लक्ष्मणको मानकर जानकीको अपनी स्त्री बनाओ । इस तरह समझानेपर रावण शान्त हो । उधर सुलोचना अपने पति मेघनादका केयूरविभूषित तथा वाणयुक्त हाथ अपने सामने धृष्टीपर पड़ा देखकर उसके पुरुषार्थका स्मरण करके विस्मय करने लगी ॥ २०४ ॥ २०५ ॥ तब उस कटी भुजाने वाण द्वारा अपने खूनसे जमीनपर हे भामिनी । तुम दुःखिनी मत होओ ऐसा लिखकर सुलोचनाको आश्वासन दिया ॥ २०६ ॥ २०७ ॥ उसने यह भी निम्ना कि 'मैं साक्षात् शेषावतार लक्ष्मणके वाणसे मरकर मुक्तिको प्राप्त हुआ हूँ । अब तुन रामके पास जाकर मेरा सिर माँगो । वे तुमको अवश्य मेरा सिर दे देंगे । उस सिरको ले तथा अग्निमें प्रवेश करके मेरी अनुगामिनी बनो' । सुलोचना उन रक्तलिखित अक्षरोंको पढ़कर प्रसन्न हुई । तदनन्तर और मन्दोदरीसे आज्ञा ले तथा आभूषण धारण करके वह पालकीमें बैठकर श्रीरामके पास चली । वानरगणने उसको देखकर वह समझा कि रावणने उरकर सीता रामके पास भेज दी है । ऐसा समझकर वे उनके दर्शनको इच्छासे दौड़ पड़े ॥ २०८-२१६ ॥ पास जाकर पालकीको घेर लिया, पर जब पालकी होनेवालीसे पता लगा कि वह सुलोचना है तो वे सब बानर रामके पास दौड़ गये ॥ २१२ ॥ सुलोचना श्रीरामके पास पहुँची तो सिर नवाकर प्रणाम किया और पतिके सिरकी प्राप्तिके लिये प्रार्थना की । तब रामने कहा—॥ २१३ ॥ मैं तुमपर कृपा करके तुम्हारे पतिको जीवित कर देता हूँ । तुम अग्निमें प्रवेश करनेका विचार छोड़ दो । बोलो, यह पसन्द है ? ॥ २१४ ॥ उसने कहा—हे महाराज ! फिर ऐसे मोक्षप्रद लक्ष्मणके हाथसे मृत्यु इन्हें कहाँ प्राप्त होगी ? इसलिये अब आप इन्हें न जिलाएँ ॥ २१५ ॥ इतना कहकर उसने फिर रामको प्रणाम किया और कपिराज सुग्रीवके आज्ञानुसार पतिके सिरको पाकर हँसती हुई वह भतकि

सुलोचना दिव्यदेहा वैकुण्ठं पतिना ययौ । रावणोऽपि मुहूर्त्निर्गन्धः पुनर्योद्धुं ययौ रणम् ॥२१८॥
 ततो रामेण निहताः सर्वे ते गणसा युधि । लङ्कायां रावणः क्षिप्तः शरेण राघवेण सः ॥२१९॥
 ततः कृत्वा रामशिरः कुत्रिमं मयहस्ततः । ययौ मीतां दर्शयितुं रावणोऽशोककाननम् ॥२२०॥
 एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा बोधयामास जानकीम् । कुतमस्ति रावणेन कुत्रिमं राममच्छिरः ॥२२१॥
 तद्दृष्ट्वा मा भजस्वाद्य खेदं त्वमधुनाऽवले । इति स बोध्य तां मीतां ब्रह्माऽन्तर्धानमाययौ ॥२२२॥
 रावणोऽपि समागत्य दर्शयामास तच्छिरः । मीतां प्राह हतो रामस्त्वधुना त्वं भजस्व माम् ॥२२३॥
 तदा साऽधोमुखी प्राह तर्जवाहं शिरांसि हि । रामवर्णश्च पश्यामि पतितानि रणांगणे ॥२२४॥
 इति तद्वाक्शराघातताडितः स दशाननः । ययौ तूर्णान् स्वयं मेहं लङ्कायाऽवनतस्तदा ॥२२५॥
 अथ रामाश्रया सर्वे लङ्कां प्रासादमण्डिताम् । ईपिकाचूडहस्तास्ते वानराः कोटिशः क्षणात् ॥२२६॥
 ज्वालयामासुः सर्वत्र दग्धा वह्निं मुहुर्मुहुः । तदा कोलाहलधामालङ्कृताद्वाहे पुरा यथा ॥२२७॥
 दग्धां स्वनगरीं दृष्ट्वा स्वगृहाण्यपि रावणः । दृष्ट्वा दग्धानि कपिभिर्भयात्त्रं ससृजे जवात् ॥२२८॥
 तेनासीदनलः शांतस्तद्दृष्ट्वा कपयो ययुः । ततः स रावणः शुक्रवचनाद्रहसि स्थिताम् ॥२२९॥
 गुहां प्रविश्य चैकांते मीनां होमं प्रचक्रमे । लङ्काद्वारकपाटादि बद्ध्वा सर्वत्र यत्नतः ॥२३०॥
 होमद्रव्याणि संगृह्य यान्युक्तानि मया पुरा । रक्तावगाहितो मृण्डमाली प्रेतासनस्थितः ॥२३१॥
 परिस्तीर्याथ अस्त्राणि होमकुण्डसमंततः । आदशाहवालकानां शिरोभिर्मांसलोहितैः ॥२३२॥
 एवं ■ रिपुघातार्थं चकार हवनं रहः । उत्थितं धूम्रमालोक्य रामं प्राह विभीषणः ॥२३३॥
 यदि होमसमाप्तिः स्यात्तदाऽजेयो भवेदयम् । ततो रामो हरीन्सर्वान्प्रेषयामास सादरम् ॥२३४॥

गलेपर रत्नकर जोड़ दिया ॥ २१६ ॥ पश्चात् लंकामें पतिको देहसे उतें मिलाकर यथाविधि पतिके शरीरके
 ■ अग्निमें जलकर सती हो गयी ॥ २१७ ॥ तदनन्तर सुलोचना दिव्य देह धारण करके पतिके साथ
 वैकुण्ठ चली गयी । ऊपर रावण पुनः वन्धुओं तथा मित्रोंको साथ लेकर रणभूमिमें युद्ध करने गया ॥ २१८ ॥ वहाँ
 रामने सब राजसोंको मारकर रावणको बाणसे उठाकर लंकामें फेंक दिया ॥ २१९ ॥ तदनन्तर रावण
 मयदानवके हाथसे रामका नकली मरतक बनवाकर सीताको दिखलानेके लिए अशोकवनमें गया ॥ २२० ॥ वहाँ
 इसी बीच ब्रह्माने सीताको पहले ही बता दिया था कि ■ रामका नकली सिर तुम्हें दिखायेगा । यह
 कहकर वे अन्तर्धान हो गये । इसके बाद रावण उनके पास पहुँचा और रामका मस्तक दिखलाते हुए
 कहा—हे सीते ! देखा, मैंने रामको मार डाला है । अब तुम मेरी सेवा करनेके लिये तैयार हो जाओ
 ॥ २२१-२२३ ॥ यह सुनकर सीताने नीचे मुख करके कहा—मैं तो रामके बाणसे कटकर रणस्थलीमें गिरे हुए
 तेरा ही सिरोंकी देखना चाहती हूँ ॥ २२४ ॥ सीताके इस वाक्यरूपी बाणसे ताड़ित होकर दशानन लज्जित हो
 और मुँह नीचा करके चुपचाप अपने महलमें चला गया ॥ २२५ ॥ तभी रामकी आज्ञासे करोड़ों वानर
 हाथमें घासके पूले ले-लेकर प्रासादों [हवेलियों] से भूषित लंका नगरीमें घुस पड़े ॥ २२६ ॥ उन्होंने दक्षिणधरमें
 चारों ओरसे आग लगा दी । उस समय लंकामें प्रथम लंकादहनकी ■ तरह महान् कोलाहल तथा हाहाकार
 मचाने लगा ॥ २२७ ॥ रावणने नगर तथा अपने मकानोंको जलते देखकर मेघास्त्र छोड़ा ॥ २२८ ॥ उससे
 आगकी शान्त देखकर कपिसमूह भाग गया । पश्चात् रावण दैत्यगुरु शुक्राचार्यके कथनानुसार एकांशकी एक
 शुक्रामें गया और मौन धारण करके होम करने ■ । उसने चोतरफासे लंकाके दरवाजे अच्छी तरह बंद
 कर लिये ॥ २२९ ॥ २३० ॥ पहले मैंने जो-जो हवनके द्रव्य कहे हैं, वे सब इकट्ठे कर लिये । उसने अपने
 सब शरीरमें लोह छपेट लिया । गलेमें मुण्डोंकी माला पहिन ली । मृत पुरुषके शरीरको आसन बनाया ॥ २३१ ॥
 होमकुण्डके चारों ओर गस्त्र रख लिये और दस दिनसे प्रथम उत्पन्न बालकोंके सिर तथा भांस और खिर
 से एकांशमें शत्रुओंके नाकके लिये हवन बारम्बार कर दिया । ऊपर उठे होमके धुँएँको देखकर विभीषणने
 उससे कहा—॥ २३२ ॥ २३३ ॥ हे राम ! यदि होम निर्विघ्न समाप्त हो गया तो रावण सर्वथा भवेद्य हो

प्राकारं लङ्घयित्वा ते गत्वा रावणमन्दिरम् । इत्वा राक्षसवृन्दं तद्गुहारक्षणतन्परम् ॥२३६॥
 ■ दरशुर्गुहाद्वारं यत्र होमं चकार सः । ततश्च सरमानाम् प्रभाते करसंज्ञया ॥२३७॥
 विभीषणस्य भार्या तान् होमस्थानमवूचयत् । गुहापिधानपाषाणानंगदः पदघट्टनैः ॥२३८॥
 चूर्णयित्वा रावणञ्च ताडयामास मुष्टिना । वानरास्तेऽपि तं वृक्षैस्तडयामासुर्गदगत ॥२३९॥
 तद्वत्ते वानरा दृष्ट्वा तूष्णीमेव स्थितं रिपुम् । समानयन्केशपाशे घृत्वा मन्दोदरीं शुभाम् ॥२४०॥
 विलपन्तीं मुक्तनीवीं विह्वलां हतकंसुकीम् । दृष्ट्वा त्वक्त्वा तदा होममुदतिष्ठस्वगन्धितः ॥२४१॥
 ततस्ते वानराः सर्वे ययुः भीरावर्वातिकम् । ततो मन्दोदरी प्राह कुरु त्वं वचनं मम ॥२४२॥
 दस्त्वा सीतां गघवाय राज्ये कृत्वा विभीषणम् । तपश्चर्या मयारऽण्ये कर्तुमर्हसि वै सुखम् ॥२४३॥
 ततस्या वचनं श्रुत्वा तां स प्राह दशाननः । रामो विष्णुश्च मा सीता जानामि प्राणवल्लभे ॥२४४॥
 रामहस्ताद्वधं लब्धुं हता सीता पुरा मया । रामहस्ताप्यक्तदेहो गच्छामि परमं पदम् ॥२४५॥
 त्वया कार्या क्रिया मे हि प्रविशस्वानलं ततः । ततः सुखं मया मुक्ता गमिष्यमि परं पदम् ॥२४६॥
 इत्युक्त्वा प्रययौ योद्धुं रथे स्थित्वा त्वगन्धितः । राजद्वाराद्विनिर्गच्छन्मग्रे मुण्डी विलोकिनः ॥२४७॥
 मुकुटः पतितश्चित्रः संविप्रो रावणो हृदि । ततो ययौ रथभृवं वक्ष निशितः शरैः ॥२४८॥
 विधाय कृत्रिमां सीतां मयेन म दशाननः । पश्यतां वानराणां च स्वरथे तां अवान वै ॥२४९॥
 दिव्येन शितखड्गेन दृष्ट्वा ते तु प्लवंगमाः । हाहेत्युक्त्वा दुःखितास्ते ययु रामं निवेदितुम् ॥२५०॥
 तावद्वेधाः समागत्य रामादीन् प्राह सादरम् । कृत्रिमेयं हता सीता मा खेदं भजताय हि ॥२५१॥
 ततोऽन्तर्धानमगमाद्विधिस्तेऽपि प्लवंगमाः । रामाद्या ब्रह्मवाक्येन तुष्टा युद्धाय निर्ययुः ॥२५२॥

जायगा । तब रामने सब वानरोंको सादर बुलाकर मुद्धके लिये बेजा ॥ २३४ ॥ वे सब परकोटेको लीधकर रावणके मन्दिरमें घुस गये । उन्होंने वहाँ उस गुफाकी रक्षा करनेवाले राक्षसोंको मार डाला ॥ २३५ ॥ परन्तु जहाँ रावण हवन करता था, उस गुफाका दरवाजा किसीको नहीं मालूम था । तब प्रातःकालके समय विभीषणकी स्त्री सरमाने हाथके मंकेतसे उन सबको होमस्थानका दरवाजा खोल दिया । द्वारपर लगे हुए पाषाणको छत मारकर अंगदने तीड़ दिया और भीतर जाकर रावणको मुक्कोसे मारने लगे । अन्यान्य वानर भी उसे वृक्षोंसे पीटने लगे ॥ २३६-२३७ ॥ फिर भी रावणको चुपचाप बैठा देखकर वानर उसकी स्त्री मन्दोदरीको केश पकड़कर वहाँ खींच लाये ॥ २३९ ॥ अपनी सुन्दरी स्त्रीकी गोतां हई, मुक्तकच्छ, चोलीरहित तथा विह्वल देखकर रावण होमको अधूरा छोड़कर उठ खड़ा हुआ ॥ २४० ॥ इस प्रकार उसके होमको भङ्ग करके सब वानर रामके पास गये । मन्दोदरीने कहा—हे राम ! तुम मेरी मान लो ॥ २४१ ॥ सीता रामको देखकर विभीषणकी लकाका राज्य दे दो और मेरे चलकर वनमें करो । तुमको इर्ष्यामें मुक्त प्राप्त होगा । स्त्रीकी सुनकर दशाननने कहा—हे प्राणवल्लभे ! मैं जानता हूँ कि राम साक्षात् विष्णु तथा सीता साक्षात् लक्ष्मी है ॥ २४२ ॥ २४३ ॥ यह जानकर ही मैं रामके हाथसे मरनेके लिए सीताको यहाँ ले आया हूँ । रामके हाथसे मरकर मैं परम पद प्राप्त करूँगा ॥ २४४ ॥ वादमें तुम भी मेरी क्रिया करके तथा अग्निमें सती होकर सुखपूर्वक मेरे साथ परम धाम प्राप्त करोगी ॥ २४५ ॥ इतना कह तथा रथपर सवार होकर वह लड़ाईके लिए पड़ा । राजमहलसे निकलते ही उसको सिर मुड़ाये हुए मुण्डी दिखायी दिया ॥ २४६ ॥ उसका चित्र-विचित्र मुकुट भी गिर पड़ा । यह देखकर रावण मनमें घबराया । फिर भी उसने समरभूमिमें जाकर बहुत तेजोंसे बाणोंकी वर्षा की ॥ २४७ ॥ तदनन्तर मयदानवसे एक नकली सीता बनवाकर उसने वहाँ वानरोंके सामने अपने रथपर रखकर काट डाला ॥ २४८ ॥ तेज धारवाला तलवारसे सीताको कटती देख हाहाकार करते हुए सब वानर यह समाचार रामके निवेदन करने गये ॥ २४९ ॥ इतनेमें ब्रह्माने आकर राम आदिको बड़े आदरसे समझाकर कहा कि यह कृत्रिम सीता मारी गयी है । तुम लोग दुखी मत होना ॥ २५० ॥ इतना कहकर ब्रह्माकी अन्तर्धान हो गये और वे सब वानर और राम आदि वीर ब्रह्मवाक्य-

तदा स मातलिः शीघ्रं देवेन्द्रवचनाद्रथम् । शस्त्रास्त्रवाजिमहितमशनिष्वजशोभितम् ॥२५२॥
 वरच्छत्रसमायुक्तं रावणाय न्यवेदयत् । तमारुह्य तदा रामश्चकार कदनं महत् ॥२५३॥
 आग्नेयेन तदाग्नेयं देवं देवेन राघवः । अस्त्रं राक्षसराजस्य जघान परमास्त्रवित् ॥२५४॥
 ततस्तु ससृजे घोरं राघवः सार्षपमस्त्रवित् । रामः सर्पास्ततो दृष्ट्वा सौवर्णास्त्रं मुमोच सः ॥२५५॥
 अस्त्रैः प्रतिहते युद्धे रामेण दशकंधरः । शार्ङ्गान्यं ससृजे घोरं वायव्यास्त्रेण राघवः ॥२५६॥
 तदस्त्रं विनिवार्यासौ बहुशस्त्रं ससृजे पुनः । पर्जन्यास्त्रेण पौलस्त्यश्चकार विफलं तदा ॥२५७॥

नागानामयुतं तुरंगनियतुं मार्द्धं रथानां शतं पत्नीनां शतकोटिनाशसमये त्वेका कवचा नृतिः ।

एवं कोटिकवचनवर्तनविधात्रंका ध्वनिः किंकिणेविंशत्ताः प्रहरार्धतोरघुपतेः क्रोदद्वघटारणे ॥२५८॥
 तदा से कौतुकं द्रष्टुं समाजग्मुः सुरा मुदा । गधर्वाः किन्नरा यक्षा विमानशतसंस्थिताः ॥२५९॥
 तदाऽशनिष्वजं रम्यं चार्णश्चिच्छेद रावणः । तं दृष्ट्वा रामचंद्रोऽपि ध्वजहानं रथं निजम् ॥२६०॥
 मारुतिं प्राह वेगेन क्षणं तिष्ठ ध्वजोपरि । तथेत्युक्त्वा मारुतिः स तालमुत्पाद्य वेगतः ॥२६१॥
 गत्वा रामरथे दिव्ये तस्मिन्स्तस्थौ स्वयं मुदा । तं मारुतिष्वजं दृष्ट्वा रावणः समरांगणे ॥२६२॥
 तालं छत्रं मातलिनं तुरगान्वायुनन्दनम् । ऐन्द्रं धनुस्तच्चिच्छेद नवचारणस्वरान्वितः ॥२६३॥
 वातात्मजमातलिर्नो मूर्च्छितो पतितो भुवि । क्षणमात्रेण स्वस्थोऽभूत्तदा स वायुनन्दनः ॥२६४॥
 तदा रामो वायुपुत्रस्कन्धे स्थित्वा रणांगरे । चकार तुमुलं युद्धं रावणेन भयावहम् ॥२६५॥
 रावणः परिधेयव संताड्य मारुतिं हृदि । चकार मूर्च्छितवगात्पपात स पुनश्चाव ॥२६६॥
 तदा सस्मार रामोऽपि स्वरथं समरांगणे । तावद्रथः क्षणादेवायया स्वादग्रतः स्थितः ॥२६७॥

संस्तुष्ट होकर युद्ध करनेका निकल पड़े ॥ २५१ ॥ इसी समय इन्द्रके आज्ञानुसार उनका सारथी मातलि अस्त्र वाज्रासे भर तथा घाड़ोंसे जुते हुए रथको लेकर गमके पास आया और उनसे रथपर सवार होकर करनेके लिए कहा । रामने उस रथपर सवार होकर महान् युद्ध किया ॥ २५२ ॥ २५३ ॥ अस्त्रोंका जांच बालोंमें परमश्रेष्ठ रामने राक्षसोंके राजा रावणका आग्नेय अस्त्र अपने आग्नेय अस्त्रसे तथा देवाराज दवासे शान्त किया ॥ २५४ ॥ तब अस्त्रवित् रावणने घोर सर्पास्त्र छोड़ा । रामने सर्पोंको देखकर गारुडास्त्र छ ॥ २५५ ॥ इस प्रकार जब रामने युद्धको अपने अस्त्रोंसे प्रतिहत कर दिया, तब रावणने एक दूसरा भयावह अस्त्र फेंका । रामने उनका उत्तर वायुअस्त्रसे कर दिया ॥ २५६ ॥ उस अस्त्रका निवारण करके रामने उसपर आग्नेयास्त्र धलाया । तब रावणने वर्षा-अस्त्रसे विफल कर दिया ॥ २५७ ॥ दस हजार हाथी, दस लाख घोड़े, डेढ़ सौ रथ तथा एक करोड़ पंदल सैनिकोंके नष्ट होनेपर एक कवचका नृत्य होता है । इस प्रकारके करोड़ कवचधनुरा होनेपर एक किंकिणियां (घांटयो) की ध्वनि हासी है, परन्तु रघुपति रामके केवल आधे प्रहरतक धनुषका घंटारव करनेसे ही वासों किंकिणियोंकी ध्वनि हुई ॥ २५८ ॥ उस समय इस कौतुकको देखनेके लिए आकाशमें सरहो विमानावर आरुढ़ देवता, गन्धर्व, किन्नर तथा यक्षलाग इकट्ठे हो गये ॥ २५९ ॥ तभी रावणने अपने आणोंसे रामके वज्र तथा ध्वजाका काट दिया । रामचन्द्र अपने रथको ध्वजासे हीन देखकर मारुतिसे बोले कि तুম क्षणभरके लिय जल्दासे मेरे रथका ध्वजाके पास बैठ जाओ । 'तथास्तु' कहकर मारुति सट एक ताड़का वृक्ष उखाड़कर रामके दिव्य रथपर रख दिया और आनन्दसे उसीपर जा बैठे । मारुतिकी ध्वजाको देखकर रावणने रणांगणमें बड़ी फुरतीके साथ तालवृक्षको, छत्रको, मातलि सारथीको, अश्वोंको, वायुनन्दन हनुमान्को तथा ऐन्द्र धनुषको ती बाणोंसे काट डाला ॥ २६०-२६३ ॥ तब वातात्मज हनुमान् तथा मातलि मूर्छित होकर जमीनपर गिर पड़े । परन्तु क्षण ही भरमें वायुनन्दन सचेत हो गये ॥ २६४ ॥ तब राम हनुमान्के कंधेपर सवार होकर रावणके साथ रणांगणमें भयानक युद्ध करने लगे ॥ २६५ ॥ एकाएक रावणने मारुतिकी छातापर गदा मारकर मूर्छित कर दिया और हनुमान् उसी समय फिर पृथ्वीपर गिरपड़े ॥ २६६ ॥ तब भीरुरामने अपने रथका स्मरण किया । क्षणभरमें आकाशसे आकर वह रथ युद्धभूमिमें उनके सामने

दारुकः सारथिर्वत्र यत्र अस्त्राण्यनेकशः । गदा पद्मं तु यत्रास्ति सर्वदा गरुडो ध्वजे ॥२६८॥
 पस्मिञ्चैव्यश्च सुग्रीवस्तथा चैव बलाहकः । मेघपुष्पश्च चत्वारो वायुवेगा ह्योत्तमाः ॥२६९॥
 यत्र छत्रं वरं दिव्यं हेमदण्डं विराजते । खामरे द्वे शुभे यत्र शङ्खं स्वं भन्तुगददे ॥२७०॥
 ततो रामः शरैस्तीक्ष्णैर्दशस्यस्य रथं क्षणात् । चकार चूर्णं साश्वं तं रात्रिं चाप्यतर्जयत् ॥२७१॥
 तदाऽन्यरथमारूढो रावणो राघवं ययौ । ततो रामः शरैस्तीक्ष्णैर्दशाननशिरांसि सः ॥२७२॥
 चिच्छेद तानि गगने गत्वा तोषयुतानि हि । रामहस्तान्मृतिर्जाताऽस्माक चेति विचिंत्य च ॥२७३॥
 वन्दनं कर्तुकामानि गगनाच्च रणाजिरे । सस्मितानि पतन्ति ॥ राघवस्य पदोपरि ॥२७४॥
 रामःशिरांसि दृष्ट्वाऽथ विदीर्णास्यानि स्वात्पुनः । मां हन्तुं प्रदवंतीति ॥ भीत्या व्यताडयत् ॥२७५॥
 शरीरैः शतशः क्षीयं तदद्भुतमिवामवत् । शतमेकोत्तरं छिन्नं शिरसां चैकवर्चसाम् ॥२७६॥
 शतमूर्ध्नो रावणस्य चैकोत्तरसहस्रकम् । छिन्नं तत्कल्पभेदेन वदंतीत्यपि केचन ॥२७७॥
 दृष्ट्वा तु रावणस्यान्तं विभीषणमतेन सः । नाभिदेशेऽमृतं तस्य कुण्डलाकारसंस्थितम् ॥२७८॥
 पावकास्त्रेण तच्छीघ्रं शोषयामास राघवः । ततः शिरांसि बाहूश्चिच्छेद ॥ सः ॥२७९॥
 एकेन मुख्यशिरसा बाहुभ्यां रावणो बभौ । तयोर्युद्धमभूदोरं तुमुलं रोमहर्षणम् ॥२८०॥
 ततो दारुकवाक्येन मर्मदेशे व्यताडयत् । ब्रह्मास्त्रेण रघुश्रेष्ठः समरं दशकन्धरम् ॥२८१॥
 स शरो हृदयं भिक्षां हत्वा तं ॥ दशाननम् । रामतूष्णीरमाविश्य मेने स कृतकृत्यताम् ॥२८२॥
 रावणस्य च देहोत्थं ज्योतिरादित्यवत्स्फुरत् । प्रविवेश रघुश्रेष्ठं देवानां पश्यतां सताम् ॥२८३॥
 तदा देवास्तुष्टवुस्तं ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः । नेदूः खे देववाद्यानि ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥२८४॥
 तदा मंदोदरी भर्त्रा सह देहं विसृज्य ॥ ययौ वैकुण्ठमवनं रावणेन मुदान्विता ॥२८५॥

लड़ा हो गया ॥२६७॥ जिस रथका दारुक सारथी था, जिसपर अनेक शस्त्र थे, जिसपर गदा-पद्म तथा ध्वजापर गरुड़ विराजमान थे ॥ २६८ ॥ जिस रथमें उत्तम वायुवेगवाले शंख, सुग्रीव, बलाहक तथा मेघपुष्प ये चार घोड़े जुते थे ॥ २६९ ॥ जिसमें दिव्य तथा सुन्दर सुवर्णदण्डवाला छत्र विराजमान था । जिसमें दो मनोहर खमर तथा रमणीय शङ्ख नामका धनुष रक्ता हुआ था ॥ रघुनन्दन राम उस रथको देख तथा परि-
 क्रमा करके सानन्द उसपर ॥ हो गया और अपने शङ्ख धनुषको हाथमें ले लिया । राम अपने तीक्ष्ण बाणोंसे क्षणभरमें रात्रिके अन्ध सहित रथको चूर्ण करके रावणको ललकारने लगे । तब रावण दूसरे रथपर सवार होकर रामके सामने गया । रामने पुनः तीक्ष्ण बाणोंसे रावणके दसों सिरोंको ॥ दिया । ॥ सिर गगनमंडलमें जाकर 'हमारी मृत्यु रामके हाथोंसे हुई है' यह सोचकर हँसते हुए आकाशसे रणक्षेत्रमें रामके पाँवोंपर ॥ गिरे ॥ २७०-२७४ ॥ रामने आकाशसे मुख फाड़े हुए उन सिरोंको अपनी ओर आते देखकर यह समझा कि ये मुझे खा जानेको आ रहे हैं । इस ॥ रामने ॥ सँकड़ों बाण उनपर चला दिये । यह दृश्य बड़ा ही अद्भुत था । ॥ प्रकार एक सौ एक बार उसके सिरको रामने काटा ॥ २७५ ॥ २७६ ॥ कोई-कोई विद्वान् कल्पभेदसे यह भी कहते ॥ कि सौ सिरवाले रावणके सिर रामने एक हजार एक बार काटे थे ॥ २७७ ॥ परन्तु तिसपर भी ॥ रावणकी मृत्यु नहीं हुई, तब विभीषणके कहनेके अनुसार रामने उसके नाभिदेशमें स्थित अमृतकुण्डको अपने अग्निअस्त्रसे सुखा डाला और वायमें उन्होंने रावणके सिरों तथा बाहुओंको काटा ॥ २७८ ॥ २७९ ॥ ॥ प्रकार ॥ रावणके एक सिर तथा दो हाथ बाँकी रह गये, तब पुनः राम-रावणका रोमांचकारी तुमुल युद्ध हुआ ॥ २८० ॥ तदनन्तर रामने दारुक सारथीके कहनेपर ब्रह्मास्त्रसे समरमें दशकन्धरको नाभिमें मारा ॥ २८१ ॥ उस बाणने उसके हृदयको छेद तथा रामके तरकसमें जाकर अपने आपको कृतकृत्य समझा ॥ २८२ ॥ समय रावणके मृत शरीरसे सूर्यके समान प्रदीप्त तेज निकल-
 कर देवताओंके सामने ही रघुनन्दन रामके देहमें प्रवेष्ट कर गया ॥ २८३ ॥ ॥ देवताओंने स्तुति करके

ततो विभीषणेनैव रामो रावणसन्क्रियाम् । कारयित्वा लक्ष्मणेन लङ्कायां तं विभाषणम् ॥२८६॥
नीत्वाऽभिषेचयित्वाऽथ न्यामभूतां तदंतिके । वायुपुत्रकृतां लङ्कां मोक्षयामास राक्षसान् ॥२८७॥
विभाषणादिभिः शीघ्रमशोकं प्रेष्य भारुतिम् । सीतार्यं सकलं धृतं श्रावयामास राघवः ॥२८८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे
युद्धचरित्रे रावणवधो नामकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः

(रामका राज्याभिषेक)

श्रीशिव उवाच

अथ तां दिव्यवस्त्रैश्च धूपयित्वा विदेहजाम् । सुखातां शिविकासंस्थां वेष्टितां चित्रपाणिभिः ॥ १ ॥
निन्युः श्रीरामसाभिष्यं मुग्रीवाद्यास्त्वरान्विताः । नानावाद्यसमुरसहैर्नर्तनैर्वारयोपिताम् ॥ २ ॥
ततोऽवरुह्य यानात्सा पद्भ्यां गत्वा शर्नः पतिम् । नमाम सीता श्रीरामं लज्जिताऽऽसात्पतेः पुरः ॥ ३ ॥
रामोऽपि दृष्ट्वा तां सीतां शुद्धां ज्ञात्वापि तांपुनः । सर्वथा प्रत्ययार्थं हि तदा वचनमब्रवात् ॥ ४ ॥
यथेच्छं गच्छ वैदेहि त्रिपुरोहनिवासिना । न स्वामगाकरोम्यद्य मङ्गला प्रार्थिताऽप्यहम् ॥ ५ ॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा कारयित्वा चितां शुभाम् । लक्ष्मणनाथ सुस्नाता साता वचनमब्रवात् ॥ ६ ॥
रामादन्यं चेतसाऽपि नाहं जानामि पावक । यादद मे वचः सत्यं तर्हि त्वं शातला भव ॥ ७ ॥
इति सा श्रुपथं कृत्वा त्रिविधानलमुत्तमम् । ततः स देववाक्यं च तथा दधरवक्ष्य च ॥ ८ ॥
वचनाख्यानकीं शुद्धां ज्ञात्वा तामग्रहत्प्रभुः । सुभूषितां पावकेन स्वाकं संस्थापय शुभात् ॥ ९ ॥
पञ्चवट्यां स्वयं तत्र पुरा न्यस्तां च पावके । आलिंग्य जानकां रामा भज्याक सन्यवशयत् ॥ १० ॥

दुप्य वरसाये, गगनमण्डलमें दिव्य वाज, वजनं लग तया अप्सराएं नृत्य करने लगा ॥ २८४ ॥ उबर मन्दावरा
जानन्दसे पातके साथ अपना पाश्चभीतिक देह छोड़कर बेकुण्डलामका प्रस्थान कर गया ॥ २८५ ॥
नन्वात् रामने लक्ष्मणका भेजा और विभाषणस रावणका क्रिया करवाया और लङ्काम विभाषणका भीषक
करवाकर उसके पास वायुपुत्रका न्यास (वरहूर) रखता हुई लङ्काका राजसास छुड़वा दिया ॥ २८६ ॥ २८७ ॥
इतनन्तर रामने विभीषणादिके साथ हनुमान्को सीताके पास भेजकर सब समाचार कहलाया ॥ २८८ ॥
इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गत श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे युद्धचरित्रे 'ज्यास्ना' भाषाटिकायां
पवणवधो नामकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

श्रीशिवजी बोले—हे प्रिये । तदनन्तर सुग्रीव आदि क्षत्रिय सुमनोहर वस्त्रों ■■■ भूषणोंसे भूषित, स्नान कर-
के पालकीपर सवार, वेत हाथमें लिये हुए सपाहियोंसे घिरे हुए वैदेहिका अनेक राजाक सुन्दर शर्तोंके
कहेत तथा वेश्याओंके नृत्यके साथ शीघ्र रामके पास से आय ॥ १ ॥ २ ॥ सीता कुछ दूर हा सवारानरसे
उतरकर धीरे-धीरे अपने पति रामके पास गयी तया उन्हें प्रणाम करके कुछ लज्जित हाता हुई उनके सामने
कहो हो गयी ॥ ३ ॥ राम सीताको शुद्ध चरित्रवाली समझकर भा सर्वसाधारणका विश्वास दिलानेके लिए
कहे लगे— ॥ ४ ॥ हे शत्रुके घरमें निवास करनेवाली वैदेही ! तुम जहाँ चाहो, वहाँ चला जाओ । सीतात् ब्रह्मा
कह तो भी मैं तुम्हें अपने पास नहीं रख सका ॥ ५ ॥ रामका ऐसा वाक्य सुनकर सीताने स्नान किया और
लक्ष्मणसे सुन्दर चिता रचवाकर अग्निदेवकी प्रार्थना करता हुई बोली— ॥ ६ ॥ हे पावक ! यदि मैंने रामके
विचार अन्य पुरुषका चित्तसे भी चिन्तन न किया हो तो दू शातल हो जा ॥ ७ ॥ सीता ऐसा कहकर अग्निमें
जल कर गयी । ■■■ प्रभु रामने अग्निदेव तथा राजा दशरथके कहनेसे जानकीको पवित्र तथा पतितता
■■■■ स्वीकार कर लिया । यह बात सीता जानती थी, जिनको कि रामने पञ्चवटीमें स्वयं अग्निको सौँध

तामसी राजसी चैव सात्त्विकी या त्रिधा पुरा । जाता रावणघातार्थं सा जातैकया ॥११॥
 ततो देवैः स्तुतो रामश्चेन्द्रेण समरे मृतान् । वानरादान् सुधावृष्ट्या जीवयामास सादरम् ॥१२॥
 तत्रैकं वानरं रामोऽदृष्ट्वा पप्रच्छ मारुतिम् । राघवं मारुतिः प्राह कुम्भकर्णेन भक्षितः ॥१३॥
 यदि किञ्चित्तस्य कपेर्नखकेशस्थिलोहितम् । रणेऽभविष्यत्पतितं तर्क्षधामृतवृष्टितः ॥१४॥
 अभविष्यज्जीविनः स सत्यं विद्धि रघूत्तम । सुधावृष्ट्या राक्षसास्तो जीवयिष्यंति वै पुनः ॥१५॥
 इति भीत्या पुराऽस्माभिः सर्वे त्यक्ता महादर्शः । तन्मारुतेर्वचः श्रुत्वा यमराजं उपलोकयत् ॥१६॥
 यमोऽपि भीत्या रामाग्रेऽर्पयत् प्लवगात्तमम् । तं दृष्ट्वा राघवस्तुष्टस्तदाऽऽज्ञां नाकमुत्तमम् ॥१७॥
 गंतुं वदौ मातलिने तौऽपि नत्वा रघूत्तमम् । रथेन वाजियुक्तेन ययौ मघवतः पुरीम् ॥१८॥
 रामस्तु मंगलस्नानं कर्तुं संप्रार्थितोऽपि हि । विभीषणेन मरुतं स्मृत्वा नांगीचकार सः ॥१९॥
 ततः सर्वैर्वानरैश्च पुष्पकं चारुरोह सः । रथेन दारुकषापि गरुडो मकरध्वजः ॥२०॥
 विभीषणश्चारुरोह पुष्पकं राघवाश्रया । ततस्ते निर्जराः सर्वे राममाशंस्य ख ययुः ॥२१॥
 दृष्ट्वा रामं दशरथो विमानेन ययौ दिवम् । अथ तं राघवं प्राह पुष्पकस्थं विभीषणः ॥२२॥
 राम ते प्रष्टुमिच्छामि तत्त्वं मां वक्तुमर्हसि । ऐरावणगृहे यदा पातालमुत्तमम् ॥२३॥
 पुरा गतस्तदा तूष्णीं किमर्थं त्वं स्थितः प्रभो । कथं तौ हतौ दुष्टौ तदैव क्षणमाश्रितः ॥२४॥
 सत्तस्य वचनं श्रुत्वा विद्वस्य राघवोऽब्रवीत् । अमराणां वधः पूर्वं विधिना मारुतेः करात् ॥२५॥
 प्रोक्तस्तस्मान्मया तूष्णीं प्रताप्या मारुतेः कृता । अन्यच्चापि जगत्या हि मारुतेः पौरुषं जनाः ॥२६॥

दिया था । इस समय भगवान् रामचन्द्रने उन्हीं जानकीको आलिंगन करके अपनी गोदमें बैठा लिया ॥ ८-१० ॥ जिस सोताने पूर्वकालमें रावणवधके लिये तामसा, राजसी तथा सात्त्विकी ये तीन भूतियाँ धारण की थीं, वह उस समय पुनः एक हो गयी ॥ ११ ॥ पश्चात् सब देवताओंने मिलकर रामकी स्तुति की । रामने इन्द्रसे कहकर समरमें मरे हुए वानरोंका सुधावृष्टिसे जीवित करवाया ॥ १२ ॥ उनमें एक वानरको न देखकर रामने मारुतिसे पूछा । मारुतिने उत्तर दिया कि मामूम होता है, उसे कुम्भकर्ण खा गया ॥ १३ ॥ रघूत्तम ! यदि उस वानरका मस्त, केश अथवा लोहित आदि कुछ भी रणभूमिमें शेष होता तो वह अवश्य इस अमृतवर्षासे जादित हो जाता । यदि कहें कि अमृतवर्षासे राक्षस क्यों नहीं जा गये तो इसका उत्तर है कि उनका तो जीवित जानैक डरसे हम लोगोंने पहले ही समुद्रमें फेंक दिया था । मारुतिक सुनकर रामने यमराजका आर देखा । उनके देखनेसे ही यमराज डर गय और उस बन्दरका रामके आगे लाकर खड़ा कर दिया । यह देखकर राम प्रसन्न हो गये । बादमें रामने मातालका स्वर्ग जानकीका आजा दे दा । वह भी रामको प्रणामकर तथा अभ्युक्त रथ लेकर इन्द्रपुरीकी चला गया ॥ १४-१८ ॥ तदनन्तर विभीषणने रामका विघ्नशांतिकारक मङ्गलस्नान करनेके लिये कहा । जो किसी विघ्न, आपत्ति तथा राग आदिके बाद किया है । पर रामने भरतका स्मरण करके उसे अंगीकार नहीं किया ॥ १९ ॥ बादमें बन्दरोंके साथ रामजो पुष्पक विमानपर सवार हो गये । रथसहित दारुक, गरुड़ और मकरध्वज भी उसपर चढ़ गये ॥ २० ॥ रामका पाकर विभीषण भी विमानारुढ़ हो गये । सभी सब देवता रामका आदेश पाकर स्वर्गकी चले ॥ २१ ॥ राजा दशरथ । अ कि जनकनन्दिनीके अग्निप्रवेशके समय विमानपर बैठकर आपसे ॥ मा रामसे पूछकर स्वर्गकी चले दिये । इसके उपरान्त पुष्पक विमानपर स्थित विभीषणन रामसे कहा— ॥ २२ ॥ हे राम ! मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ । कृपा करके आप उसका उत्तर दें । हे राम ! जब आप पातालमें ऐरावणके यहाँ गये थे ॥ २३ ॥ उस समय हे प्रभो ! आप चुप क्यों हो गये थे । उसी क्षण आपने उन दुष्टोंका मार क्यों नहीं डाला ? ॥ २४ ॥ यह प्रश्न सुना तो राम कुछ मुस्कराकर बोले कि पूर्वकालमें किसी ब्रह्मने 'उन भैरवोंका वध हनुमान्के हाथसे होगा' ऐसा कह दिया था ॥ २५ ॥ इसी कारण मैंने चुप होकर वह काम मारुतिपर ही छोड़ दिया था और इसीलिये मैंने मारुतिक

वदंतु येन श्रीरामलक्ष्मणौ मोचितौ पुरा । असुगम्यां हि पाताले सोऽयं श्रीगमसेवकः ॥२७॥
 इति पौरुषबुद्धयर्थं मारुतेर्जगतीतले । मम दामस्य बलिनस्तथा तूष्णीं स्थितं मया ॥२८॥
 नोचेर्धुंकारमात्रेण पयि हंतुं न किं क्षमः । ईषिकास्त्रेण काकस्य येन नेत्रं विदारितम् ॥२९॥
 क्षतयोजनपर्यन्तं मारीचोऽर्धो पतत्रिणा । पुग येन मयान्यक्तः मोऽहं किं कुण्ठितस्तदा ॥३०॥
 तयोर्वधे तु पाताले न शस्त्रार्थं प्रतीक्षितम् । मारुतेः पौरुषार्थं हि सत्यं वेद विभीषण ॥३१॥
 इति रामवचः श्रुत्वा मारुतिः स विभीषणम् । तदा प्राह विहस्याथ किं न्वं नद्विस्मृतोऽसि हि ॥३२॥
 सेतुकाले राघवेण गवं दृष्ट्वा मयि स्थितम् । लांगूलं संहितं पूर्वं लिंगोत्पाटनहेतुना ॥३३॥
 तस्य मे राघवाग्रे हि किं बलं मन्यसेऽत्र हि । किं विलम्बो राघवाय तयोरसुरयोर्वधे ॥३४॥
 वधिता निजदासस्य कीर्तिरत्र विभीषण । इति तन्मामरुतेर्वाक्यं श्रुत्वा रामं विभीषणः ॥३५॥
 ननाम परया भक्त्या ततः सम्यगपूजयन् । अथ रामः पुष्पकस्थः मीनया प्राथितो मुहुः ॥३६॥
 तद्वाक्यगौरवात्तृप्तिजटायै वरान्ददौ । वस्त्रालङ्कारभूषामिः पूर्वं तुष्टां विधाय च ॥३७॥
 त्रिजटे वचनं भेदघ्नं शृणु मंगलदायकम् । कार्तिके माघे चैत्रे मासचतुष्टये ॥३८॥
 स्नात्वाग्रे त्रिदिनं स्नानं स्वर्प्राप्त्यर्थं नरोत्तमाः । करिष्यामि हि तेनैव कृतकृत्या भविष्यमि ॥३९॥
 यैर्नस्त्रिदिनं स्नानं न कृतं पूर्णिमोर्ध्वतः । तेषां मामकृतं पुण्यं हर त्वं वचनान्मम ॥४०॥
 अन्यच्चापि शृणुष्व त्वं दीयते यो वरो मया । अशुचीनि गृहाण्येव तथा श्राद्धद्वयोपि च ॥४१॥
 क्रोधाविष्टेन दत्तानि विविक्तकुठान्यपि । त्रिजटे तानि तुभ्यं हि शृण्वन्यस्त्वं मयोच्यते ॥४२॥
 पादशौचमनम्यंगं तिलहीनं च तर्पणम् । सर्वं तन्त्रिजटे तुभ्यं तथा श्राद्धमदक्षिणम् ॥४३॥

यहाँ प्रतीक्षा की। दूसरी इच्छा यह थी कि संसारमें लोग मारुतिके बलकी भी जान जायें कि मारुतिने पातालमें राजासौके हाथसे राम-लक्ष्मणको छुड़ाया था, वही यह रामका सेवक हनुमान् है ॥ २६ ॥ २७ ॥ इस प्रकार जगत्में अपने बलवान् सेवक हनुमान्के पुरुषार्थकी प्रसिद्धि करनेके लिए ही मैं वहाँ चुप हो गया था ॥ २८ ॥ नहीं तो क्या मैं उनको रास्तेमें ही हुंकारमात्रसे नष्ट नहीं कर सकता था ? जिसने सौके अश्वसे ही काक जयन्तका नेत्र फोड़ डाला ॥ २९ ॥ जिसने बाणसे मारीचको सौ योजनकी दूरीपर समुद्रमें केंक दिया । वह मैं तब ■■■ कुण्ठितशक्ति हो गया था, कभी नहीं । मैंने पातालमें उनको मारनेके लिये किसी शस्त्रकी राह नहीं देखी थी । हे विभीषण ! तुम सच मानो कि मैं उस समय केवल हनुमान्के बलकी रक्षाति करनेके लिए ही चुप हो गया था ॥ ३० ॥ ३१ ॥ रामका यह कथन सुनकर हैसते हुए मारुतिने विभीषणसे कहा—क्या तुम उस बातको भूल गये, जब सेतु बाँधनेके समय रामने मुझको कुछ गव्ययुक्त देखकर स्थापित शिवलिङ्ग उल्लाङ्घनेके बहाने मेरी पूँछ तोड़वा डाली थी ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ऐसे मुझ निर्वलका बल रामचन्द्रके सम्मुख किसी गिनतीमें नहीं है । रामचन्द्रको उन दोनों असुरोंको मारनेमें क्या देर लगती ? कदापि नहीं । हे विभीषण ! रामने केवल अपने दासकी । मेरी) कीर्ति बढ़ानेके लिए ही वैरा किया था । मारुतिकी बात सुनकर विभीषणने रामकी परम भक्तिसे प्रणाम करके प्रेमसे अच्छी तरह पूजन किया । पश्चात् रामने विमान-पर बंटी हुई सीताके कहनेसे उनके वाक्यका आदर करते हुए प्रसन्न होकर त्रिजटाको वरदान दिया । पहले उसको वस्त्र-अलंकार आदिसे संतुष्ट करके कहा—हे त्रिजटे ! तुम मेरी मङ्गलमयी वाणी सुनो । कार्तिक, वैशाख, माघ और चैत्र इन चार महीनोंमें पहलेके तीन दिन मभी नरघोष्ठ तुमको प्रसन्न करनेके लिए ही स्नान करेंगे । इससे तुम कृतकृत्य हो आओगी ॥ ३४-३९ ॥ जो मनुष्य इन चार महीनोंमें पूर्णिमासे लेकर तीन दिन स्नान न करे, उसका सारे महीनेका किया हुआ पुण्य मेरे कहनेसे तुम हरण कर लेना ॥ ४० ॥ और यह भी वर देता हूँ कि अपवित्र स्थानमें विविधपूर्वक किये हुए श्राद्ध तथा हवन आदि भी यदि क्रोधसे किये गये हों तो वे भी तुम्हारे ही होंगे । और भी सुनो, बिना तेल के पाँच घड़े तथा बिना तिलके तर्पण करनेके पुण्य भी तुम्हारे होंगे । हे त्रिजटे ! वक्षिणासे

इति दत्त्वा धगन् रामस्त्रिजटासरमान्वितः । स विभीषणमुग्रीवमकरष्वजवानरैः ॥४४॥
 ययौ विहायसा सीतां दर्शयन् कौतुकानि । पश्य सीते पुरीं लङ्कां तथा रणभुवं शुभाम् ॥४५॥
 पश्य सेतुं मया बद्धं शिलाभिर्लवणार्णवे । एतच्च दृश्यते तीर्थं सेतुबंधमिति स्मृतम् ॥४६॥
 हन्युक्त्वा रघुवीरस्तु राक्षसेन्द्रस्य वाक्यतः । पुष्पकाद्भुवि चोत्तीर्य धृत्वा कोदंडमुत्तमम् ॥४७॥
 धर्मज सेतुं तत्कोट्या धनुःकोटिरितीर्यते । अतएव हि तर्तीर्य स्नानान्तर्कैवल्यदायकम् ॥४८॥
 कोदंडपाणिर्नाम्नाऽऽसीद्राममूर्तिश्च तत्र हि । एतस्मिन्नंतरे तत्र संपातिः स ययौ तदा ॥४९॥
 तमालिङ्ग्य रामचंद्रमस्तं प्राह स्मितपूर्वकम् । वंधोर्नाम्नाऽत्र तीर्थं त्वं सेतौ महत्तमम् ॥५०॥
 नथेति रामवचनाद्भानुः मंतोपकाम्यया । तीर्थं चकार सम्पातिर्जटासुमिति विश्रुतम् ॥५१॥
 ततो रामोक्षया यानं संपातिश्चारुगेह सः । ततो यानेन तां सीतां दर्शयन् कौतुकानि हि ॥५२॥
 ययौ रामेश्वरं पूज्य तथा श्रीरघुनन्दनः । मतिऽत्र पश्य मंत्रार्थमेकांते मंस्थितं पुरा ॥५३॥
 अत्र दर्भेषु शयनं कृतं पश्य विदेहजे । नवग्रहाद्यैः प्रक्षिप्तान्पापाणान्पश्य सागरे ॥५४॥
 तूष्णीमेव स्थितं पश्य सागरं मम वाक्यतः । एवं तां दर्शयन् रामः किष्किधां प्रययौ भणात् ॥५५॥
 धानराणां स्त्रियः सर्वा विमाने स्वाप्य राधवः । ययौ तां दर्शयन् सीतां कौतुकानि समंततः ॥५६॥
 प्रवर्षणगिरिं पश्य ऋष्यमूकाक्षसं तथा । पंपासरोवरं पश्य कृष्णां भीमरथीं शुभाम् ॥५७॥
 पश्य पंचवटीं रम्पां गोदातीरविराजिताम् । जगस्तेराश्रमं पश्य सुतीक्ष्णस्याश्रमं तथा ॥५८॥
 पश्यान्नराश्रमं सीते चित्रकूटं समीपये । कालिंदीं जाह्नवीं पश्य भारद्वाजाश्रमं तथा ॥५९॥
 इत्थुक्त्वा जानकीं रामो भारद्वाजार्थितस्तदा । तस्यै तस्याश्रमे यानादवस्था यथासुखम् ॥६०॥

शून्य ॥ थाढ़ भी तुम्हींको प्राप्त होंगे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ इस तरह बहुतेरे वर देकर राम त्रिजटा, सरमा, विभीषण, मुग्रीव, मकरष्वज तथा गानरीके ॥४४॥ आनन्दरामायणे सीतागो मार्गके कौतुक दिखाते हुए ॥४५॥ दिये । राहमें राम बोले—हे सीते ! ॥४६॥ लंका नगरीको तथा इस सुन्दर रणभूमिको देखो ॥ ४३-४५ ॥ ॥४७॥ सारसमुद्रमें मेरा बाँधा हुआ शिलाओंका विशाल सेतु है । यह सामने सेतुबन्ध नामका प्रसिद्ध तीर्थ दिखाई दे रहा है ॥ ४६ ॥ इतना कहनेके ॥४७॥ रामचन्द्रजी राक्षसेन्द्र विभीषणके कथनानुसार विमानसे नीचे उतरे और अपना उत्तम धनुष लेकर उसकी नोकसे सेतुको तोड़ दिया । वहाँपर स्नान करनेसे मोक्षपद देनेवाला धनुषकोटि ॥४८॥ तीर्थ बन गया ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ दण्डपाणि नामकी रामकी मूर्ति भी वहाँ स्थापित हो गयी । इतनेमें वहाँ संपाती आ पहुँचा ॥ ४९ ॥ रामने उसका आलिङ्गन करके प्रसन्न मनसे कहा कि तुम यहाँ सेतुपर अपने भाईके नामका एक महान् तीर्थ स्थापित करो ॥ ५० ॥ 'संपास्तु' कहकर रामकी आज्ञाके अनुसार संपातीने अपने भाईकी आज्ञाको संतुष्ट करनेकी इच्छासे वहाँ 'जटायु' नामका प्रसिद्ध तीर्थ बनाया ॥ ५१ ॥ बादमें रामकी आज्ञासे संपातीको भी पुष्पक विमानपर ॥५२॥ लिया गया । श्रीरघुनन्दन राम सीताके साथ रामेश्वरकी पूजा करके विमानपर तवार होकर सीताको सब दृश्य दिखाते हुए बोले—देखो सीते ! इस एकान्त जगहपर ॥५३॥ मंत्रणा करनेके लिए बैठता था ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ हे विदेहजे ! इन कुशाओंपर मैं सोता था । देखो, ये नौ पापाण मैंने समुद्रमें नक्षत्रोंकी पूजाके लिए डाले थे ॥ ५४ ॥ देखो, मेरे कहनेसे ॥५५॥ समुद्र अब भी चुप है । इस प्रकार वर्णन करते ॥५६॥ रघुनन्दन राम क्षणभरमें किष्किवा आ पहुँचे ॥ ५५ ॥ वहाँसे मुग्रीव आदि वानरोंकी स्त्रियोंको विमानपर बैठाकर पुनः ॥५६॥ स्थल सीताको दिखाते हुए वे आगे बढ़े ॥ ५६ ॥ रामने सीतासे कहा—देखो यह प्रवर्षण गिरि है, यह ऋष्यमूक पर्वत है, यह पंपासरोवर है, यह पवित्र कृष्णा तथा भीमरथी नदी है ॥ ५७ ॥ गोदावरीके तटपर विराजमान यह रमणीक पंचवटी है । ऊपर जगस्त्य तथा सुतीक्ष्ण मुनिके आश्रमको देखो ॥ ५८ ॥ हे सीते ! अग्नि मुनिके इस आश्रमको तथा चित्रकूट पर्वतकी शोभाको देखो । यमुना, गंगा तथा भारद्वाज ऋषिके आश्रमको देखो ॥ ५९ ॥ जानकीसे यह कहकर राम विमानसे नीचे उतरे और भारद्वाज ऋषिके प्रार्थना करनेपर उनके आश्रममें सुखसे

माघशुक्लचतुर्थ्यां हि पूर्णे वर्षे चतुर्दशे । भारद्वाजोऽपि तपसा स्वर्गं निर्माय भूतले ॥६१॥
 पूजयामास श्रीरामं सीतावानरसंप्लुतम् । रामोऽपि हृदि संमन्य मारुतिं वाक्यमब्रवीत् ॥६२॥
 अयोध्यां गच्छ भरतं मद्भृतं कथयस्व तम् । सखायं शृङ्गवेरे मे वृत्तं कथय केवटम् ॥६३॥
 तथेति गुहकं गत्वा कपिवृत्तं न्यवेदयन् । गुहकोऽपि मुदा युक्तस्तदा रामांतिकं ययौ ॥६४॥
 ततोऽयोध्यां ययौ वेगान्मारुतिः स विहाय सा नंदिग्रामेऽपि भरतः पूर्णे वर्षे चतुर्दशे ॥६५॥
 नागते राघवे बहिं ममद्वोऽभूत्प्रवेशितुम् । शत्रुघ्नं भरतः प्राह रावणेन ग्णान्गणे ॥६६॥
 श्रीरामलक्ष्मणौ वीरौ हतौ मन्येऽद्य नागतौ । आकारिता मया सर्वे नृपा एते चर्त्तयुताः ॥६७॥
 लंकां गत्वा राघवस्य साहाय्यं कर्तुमिच्छता । सोऽहमग्निं त्रिशम्यद्य स्वावस्ताचलं गते ॥६८॥
 त्वं गच्छ पार्थिवलंकां हत्वा युद्धे दशाननम् । मोचयित्वा जनकजां ततो नः पारलौकिकम् ॥६९॥
 रामादीनां त्रिबंधनां कर्तुमर्हसि सादरम् । इति तद्वाक्यमाकर्ण्य पौरा जानपदा नृपाः ॥७०॥
 शत्रुघ्नो मातरः सर्वा उर्मिलाद्याः स्त्रियश्च ताः । मुमंत्राद्या मंत्रिणश्च पौरनार्यश्च सेवकाः ॥७१॥
 भरतं वेष्टयामासुः खेदाद्विह्वलमानसाः । भरतः सात्वयन् सर्वान्ययौ तां सरयुं नदीम् ॥७२॥
 चितां कृत्वा ततः स्नात्वा ददौ दानान्यनेकशः । यमप्रदक्षिणाः कृत्वा बहिं ध्यात्वा रघूत्तमम् ॥७३॥
 सीतां तां लक्ष्मणं वीरं नत्वा मातृगुरुं मुनीन् । आराध्यदेवतां ध्यान्वा ह्यसगमिमुखः स्थितः ॥७४॥
 रवी न्यस्तेक्षणः सायं प्रतीक्षन् संस्थितः क्षणम् । महान्कोलाहलभ्रामीतदा स्त्रीपुरुषैः कृतः ॥७५॥
 एतस्मिन्नंतरे खस्थस्त्वं दृष्ट्वा वायुनंदनः । प्रवेष्टुमुद्यतं वेगाद्भरतं गद्गदस्वनः ॥७६॥
 अत्रवीन्मधुरं वाक्यं मुधया सेषयन्निव । मा विशस्वानलं वीर राघवोऽद्य ममागतः ॥७७॥

उत्तर गये ॥ ६० ॥ उस रोज चौदहवें वर्षका माघ शुक्ल चतुर्दशा थी । भारद्वाजने अपने तपोबलसे पृथ्वीपर
 ॥ स्वर्गकी रचना कर दी ॥ ६१ ॥ समस्त स्वर्गोप पदावसे उन्हीने सीता तथा वानरों समेत श्रीरामका
 धर्मो भाति पूजन तथा सत्कार किया । तदनन्तर रामने विचार करके मारुतिसे कहा—॥ ६२ ॥ अयोध्या
 ज कर भरतको तथा शृंगवेरपुर जाकर मेरे प्रिय मित्र निषादराजको मेरा सभाचार सुना दो ॥ ६३ ॥
 बहुत अच्छा कहकर हनुमान्ने निषादराजके पास जाकर सब वृत्तान्त निवेदन कर दिया । वह प्रसन्न होकर
 रामके पास गया ॥ ६४ ॥ वहाँसे मारुति आराधनापूर्वक शोध अयोध्या गये । वहाँ जाकर देखा कि नंदीगाँव-
 में भरत चौदह वर्ष बात जानेपर भी रामके न लौटनेके कारण अग्नि जलाकर उसमें प्रवेश करनेका तैयारी
 करने शत्रुघ्नसे कह रहे थे—मेरी ऐमा आ है कि रावणने युद्धमें राम-लक्ष्मणको मार डाला है ।
 इसी कारण वे अदृष्टक नहीं लौटें । इसीलिए मैंने सब राजाओंको अपनी-अपनी सेनाके सहित बुलवा भेजा
 है कि वे सब लंका जाकर रामको सहायता करें । मैं आज सूर्यास्तके समय अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा ॥
 ६५-६६ ॥ परन्तु तुम राजाओंके साथ लंका जा तथा युद्धमें रावणको मारकर जनकनन्दिनीको छुड़ा
 लो । पश्चात् राम आदि हम तीनों भाइयोंका तुम आदरपूर्वक पारलौकिकी क्रिया करना । भरतको
 बहुत बात सुनकर देशके और नगरके लोग, राजालोग, शत्रुघ्न, सब भाताएँ, उर्मिला आदि समस्त स्त्रियाँ,
 नृप्य आदि मंत्रिगण, पुराणी स्त्रियें तथा सेवकवर्गने आकर चारों ओरसे भरतको घेर लिया और दुःखी होकर
 रदन करने लगे । तब भरत सबको समझा-बुझाकर सरयु नदीके किनारे गये ॥ ६६-७२ ॥ वहाँ जा तथा
 स्नान करके चिता रचवायी और अनेक दान दिये । पश्चात् अग्निकी सात प्रदक्षिणा करके उन्हीने रघूत्तम
 रामका ध्यान किया ॥ ७३ ॥ तदनन्तर सीता तथा वीर लक्ष्मणको नमस्कार करके माताओं, गुरुजनों तथा
 मुनियोंको प्रणाम किया और आराध्य देवताका स्मरण करके उत्तराभिमुख होकर खड़े हो गये ॥ ७४ ॥ भरत
 नन्तर दृष्टि गड़ाये हुए सूर्यास्तकी प्रतीक्षा करने लगे । उस समय सभी स्त्री-पुरुषोंमें महान् हाहाकार मच
 गया ॥ ७५ ॥ तभी वायुनन्दन हनुमान्ने आकर अग्निप्रवेश करनेको उद्युक्त भरतसे शांतिपूर्ण गद्गदस्वर होकर
 बहनेके तुल्य यह मधुर वचन कहा—हे वीर ! अग्निमें प्रवेश मत करिए । श्रीराम सीता तथा लक्ष्मणके साथ

सीतया लक्ष्मणेनापि भाग्डाज्जाधर्मं प्रति । वानरैः सहितं रामं धस्त्वं पश्यसि निश्चयात् ॥ ७८ ॥
 रामोऽल्पुत्कण्ठितस्त्वा हि द्रष्टुमस्ति जटाधर । इति तद्वाक्सुधावृष्टिसेषितो भरतो मुदा ॥ ७९ ॥
 वह्निं नत्वा पगवृत्य ननाम वायुनन्दनम् । मरुतं मारुतिश्चापि नत्वाऽऽलिङ्ग्य मविस्तरम् ॥ ८० ॥
 श्रावयामास श्रीरामश्रुतं संतोषकारकम् । तच्छ्रुत्वा भरतस्तुष्टः क्षोभयामास तं पुरीम् ॥ ८१ ॥
 अयोध्यां तोरणार्घ्यं च पौरैः प्रपुञ्जगाम तम् । मस्तके पादुके वदुष्व पुरस्कृत्याथ चारणम् ॥ ८२ ॥
 माघस्य सितपंचम्यां ग्रामे पंचदशेऽन्दके । प्रभाते भरतो याम्ये ददर्श पुष्पकं स्वगम् ॥ ८३ ॥
 ननाम राघवं दृष्ट्वा माष्टांगं भरतस्तदा । रामोऽप्यालिङ्ग्य भरतं कृत्वा रुपायनैकशः ॥ ८४ ॥
 एककाले जनान् सर्वान्पृथक् स परिषम्बजे । आर्द्रा पश्चात् रामेण कुतमालिङ्गन तदा ॥ ८५ ॥
 रामान् दृष्ट्वा ह्यमंगुधानान् जनाश्चासन्सुविम्बिताः । समाश्वासयाथ भरत राघवः साब्रलोचनः ॥ ८६ ॥
 ननाम गिरसा मातृवर्षमिष्टं चाप्यरुन्धर्नाम् । ततो वाद्यनर्तनाद्यैर्नन्दिग्रामं ययौ धनः ॥ ८७ ॥
 इमश्चुक्रमोद्वर्तने च तैलः स्यंगं च ध्रुभिः । नन्दिग्रामेऽकरोद्रामो नानामांगल्यवस्तुभिः ॥ ८८ ॥
 नववाद्यसुघोषाश्च नेदुः सर्वत्र सुस्वराः । नार्यो नीराजयामास रत्नदीपं रघूत्तमम् ॥ ८९ ॥
 ततः सीता नमस्कृत्य कौसल्याद्याश्च मातरः । वसिष्ठं ब्राह्मणान्बृहान्वन्दनीयान्यथाक्रमम् ॥ ९० ॥
 ततः सीता समालिङ्ग्य कौसल्याद्याश्च मातरः । स्नापयामासुर्मांगल्यद्रव्यैर्वर्षाक्षपूरःसरम् ॥ ९१ ॥
 वस्त्रालंकारभूषाभिः शुशुभे जानकी तदा । भरतः पादुके ते तु राघवस्य सुपूजिते ॥ ९२ ॥
 योजयामास रामस्य पादयोर्मन्त्रिमय्युतः । ततोऽतिविनयात्प्राह भरतो रघुनन्दनम् ॥ ९३ ॥
 राज्यमेतन्न्यासभूतं मया निर्मापितं तव । कोष्ठागारं बलं कोशं कृतं दशगुणं भया ॥ ९४ ॥

आज आ गये हैं । आप वानरों समेत उन्हें कल अवश्य देखेंगे ॥ ७८-७९ ॥ हे जटाधर ! राम भी आपको देखनेके लिए बड़े ही उत्कण्ठित हो रहे हैं । प्रकर हनुमान्को वाक्मरुपिणो सुधावृष्टिसे सिंचित होकर भरत सहस्रं अग्निके पाससे लौट आये और वायुनन्दनको प्रणाम किया । मारुतिने भी भरतको नमस्कार तथा आलिङ्गन करके श्रीरामका संतोषकारक सविस्तर सब समाचार सुना दिया । यह सुना तो भरतने प्रसन्न होकर अयोध्या नगरीको तोरण-पताका आदिसे सुसज्जितकर पुरवासियोंको नाच ने और हाथीको आगे करके रामकी लडाकेको मस्तकपर बांधकर रामकी अगवानी करने गये ॥ ७९-८२ ॥ पन्द्रहवें वर्षकी माघ शुक्ल पञ्चमीको प्रातःकाल बाह्य मुहूर्तमें भरतने पुष्पकविमानको आकाशमें देखा ॥ ८३ ॥ भरतने रामके दर्शन करनेके साथ ही उनको साष्टांग प्रणाम किया । रामने भरतको अस्त्रान करनेके बाद एक साथ अनेक रूप धारण करके एक ही समय सब लोगोंके साथ अलग-अलग गिसे । किसीके साथ आदिमान आगे या पीछे नहीं होने पाया ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ बहुतसे रामोंको देखकर लोगोंको बड़ा भारी विस्मय हुआ । रामने भरतको हाटस बँधाया और उनके नेत्रोंमें जल भर आया ॥ ८६ ॥ पश्चात् उन्होंने गाताओंको मस्तक झुकाकर प्रणाम करके गुरुपत्नी अरुन्धतीको प्रणाम किया । बादमें नाच-गाना वाजोंके धीरे-धीरे राम नन्दीग्राममें पधारे ॥ ८७ ॥ वहाँ आकर रामने क्षौर कराया और शरीरमें चन्दनादि मुगन्धित मल तथा तेल लगाकर अनेक मंगलकारी वस्तुओंमें सब वस्तुओंके साथ मंगलस्नान किया ॥ ८८ ॥ चारों तरफ नये-नये बाजोंके सुन्दर घोष होने लगे । म्रिये रत्नमय दीपकोंसे कौसल्यानन्दन रामकी आरती उतारने लगे ॥ ८९ ॥ सीताने भी अपनी सासोंको, अरुन्धतीको, वसिष्ठको, ब्राह्मणोंको तथा और-और वन्दनीय जनोंको प्रणाम किया ॥ ९० ॥ इसके अनन्तर कौसल्या आदिने सीताको छातीसे लगाकर भांगलिक दृष्टीसे स्नान कराया ॥ ९१ ॥ उस समय जनकनन्दिना नये-नये अलङ्कारोंसे सजकर बड़ी सुन्दर लगने लगीं । भरतने रामकी पादुकाका पूजन करके रामके पाँवोंमें भक्तिपूर्वक पहिना दी । तदनन्तर अति विनीत भावसे भरत रघुनाथजीसे कहने लगे-॥ ९२ ॥ ९३ ॥ हे प्रभो ! आपका बरोहरस्वरूप राज्य मैंने आजतक चलाया । हे जगन्नाथ ! आपके पुण्य-प्रतापसे मैंने यहाँके कोठार, कोश तथा सेनाको बढ़ाकर दशगुना कर दिया है । अब आप अपने इस नगरका, देशका तथा

त्वत्तेजसा जगन्नाथ पालयस्व पुरं स्वकम् । तथेति राववञ्चोक्त्वा भरतं सन्पवेक्षयत् ॥९५॥
 ततः स दिव्यवस्त्राणि परिधाय रघूत्तमः । सीतया रथमारुह्य वाद्यधोवैर्जनस्वनैः ॥९६॥
 वारांगनानृत्यगीतैर्ययौ निजपुरीं प्रति । पौरनार्यश्च सीधस्था वर्युः पुष्पवृष्टिभिः ॥९७॥
 चकुर्नीराजनं मार्गे नानाचलिपुरःसरम् । रामो रथात्तदोत्तीर्य सीतां संग्रेभ्य वै गृहम् ॥९८॥
 पुष्पकं ग्राह्य गच्छ त्वं कुबेरं बह्वं सर्वदा । तथेति रामवचनाज्जगाम पुष्पकं तु तत् ॥९९॥
 अथ रामः समामध्ये विवेश कविभिः सह । ददौ कविभ्यो गेहानि वस्तुं रम्याणि सादरम् ॥१००॥
 अथ रामस्य राजपार्थमभिषेकं गुरुस्तदा । चकार सुमुहूर्ते वै महामंगलपूर्वकम् ॥१०१॥
 हनुमत्प्रमुखाद्यैश्च चतुःमिधुजलं शुभम् । समानीय नृपैः सर्वैर्महावाद्यपुरःसरम् ॥१०२॥
 छत्रं च तस्य जग्राह पृष्ठसंस्थः स लक्ष्मणः । दधार सव्यपार्श्वस्थश्चामरं भरतस्तदा ॥१०३॥
 शत्रुघ्नो वामपार्श्वस्थो दधार व्यजनं शुभम् । हनुमान्पादुके दिव्ये दधार पुरतः स्थितः ॥१०४॥
 वायव्यादिचतुष्कोणसंस्थितास्ते महौजसः । सुग्रीवाद्यास्तदा चासंभ्रतारो राववेक्षणाः ॥१०५॥
 मुग्रीवो जलपात्रं च वरादर्थं विभीषणः । दधार हस्ते तांभूलपात्रं स कालिनन्दनः ॥१०६॥
 वस्त्रकोशं जांबवाश्च दधार वेगवत्तरः । तस्यौ सिंहासने रामः सपृष्ठांकोपवर्हणः ॥१०७॥
 सौमित्रिवामपार्श्वेऽथ संपातिः संस्थितोऽभवत् । वामपार्श्वे भरतस्य गृहकः संस्थितोऽभवत् ॥१०८॥
 शत्रुघ्नवामपार्श्वेऽथ संस्थितो मकरध्वजः । हनुमद्दामपार्श्वे च गरुडः संस्थितोऽभवत् ॥१०९॥
 सुग्रीवादिचतुर्णां ते वामपार्श्वेषु संस्थिताः । श्रीचित्ररथविजयसुमन्त्रदारुकास्तथा ॥११०॥
 नानाराजोपकरणधृतहस्ता महौजसः । ययुर्दवासुराः सर्वे यक्षगंधर्वाकिनराः ॥१११॥
 ओषध्यः पर्वता वृक्षाः सागराश्चाथ निम्नगाः । मालाश्च कांचनीं वायुर्ददौ वामवचोदितः ॥११२॥

राज्यका पालन स्वयं करें । यह सुन और 'तथास्तु' कहकर रामने भरतको अपने पास बैठा लिया ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ तदनन्तर राम और सीता दिव्य वस्त्र धारण करके रथपर सवार होकर जय-जयकार तथा बाजे गानेके वारांगनाओंका नाच-गान देखते-सुनते हुए अपनी प्रिय अयोध्यापुरीको चले । नगरमें प्रवेश करनेपर नगरकी नारियोने छतों तथा कोटोंपर चढ़कर अनेक प्रकारके पुष्पोंकी वर्षा की ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ वे रास्तेमें विविध पूजाकी सामग्रीसे रामकी आरती उतारने लगी । रामने विमानसे उतरकर सीताको महलमें भेज दिया और पुष्पक विमानसे कहा कि 'तुम कुबेरके पास जाकर सदा उन्हींकी सेवा करो ।' रामको आज्ञाको स्वीकार करके पुष्पक विमान कुबेरके पास चला गया ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ अब राम सब कवियोंको साथ लेकर सभाभवनमें गये । पश्चात् कवियोंको निवास करनेके लिए उत्तम-उत्तम मकान दिये गये ॥ १०० ॥ तदनन्तर गुरु वसिष्ठने शुभ मुहूर्तमें बड़े धूम-धामसे रामका राज्याभिषेक ठाना ॥ १०१ ॥ हनुमान् आदिकी भेजकर चारों सन्तोंका शुभ जल भेगवाया । देश-देशान्तरके राजे-महाराजे बुलाये गये । नाना प्रकारके वाजे बजे । लक्ष्मणने पीछे खड़े होकर रामके ऊपर छत्र लगाया । रामकी पादुका हाथमें लेकर हनुमान् उनके सामने खड़े हो गये । बायीं ओर सुन्दर पंखा लेकर शत्रुघ्न खड़े हुए और रामकी दाहिनी ओर चमर लेकर भरत खड़े हो गये ॥ १०२-१०४ ॥ रामके नेत्रसदृश प्रिय तथा ओजस्वी सुग्रीव आदि मित्र वायव्य आदि चार कोनोंमें विराजमान हो गये ॥ १०५ ॥ मुचीवने जलपात्र, विभीषणने सुन्दर दण्ड, कालिनन्दन अंगदने पानदान तथा वेगवान् जांबवान्ने अपने हाथमें श्रीरामके वस्त्रोंकी पिटारी ले ली । तब श्रीराम आकर गद्दी-तकिया लगे हुए बहुमूल्य सिंहासनपर विराजमान हो गये । लक्ष्मणके वामभागमें संपाती, भरतके वामभागमें निपादराज, शत्रुघ्नके वामभागमें मकरध्वज तथा हनुमान्के वामभागमें गरुड खड़े हुए । सुग्रीव आदि चारों मित्रोंके वामे चित्ररथ, विजय, सुमन्त्र तथा दारुक खड़े हुए ॥ १०६-११० ॥ बड़े-बड़े तेजस्वी राजे हाथोंमें अनेक प्रकारकी भेटें लेकर आये । सब देवता, असुर, यक्ष, गन्धर्व किन्नरगण वहाँ आकर उपस्थित हो

सर्वरत्नसमायुक्तं
प्रजगुर्देवगंधर्वा

मणिकांचनभूषितम् । ददौ हारं नरेन्द्राय स्वयं शक्रस्तु मन्त्रितः ॥११३॥
ननृतुर्वारयोषितः । देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात स्वात ॥११४॥
ततोऽकरवं स्तुतिमहं भरतेनाभिपूजितः ॥११५॥

श्रीशिव उवाच

सुग्रीवमित्रं परमं पवित्रं मीनाकलत्रं नवमेषगात्रम् ।
कारुण्यपात्रं शतपत्रनेत्रं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥११६॥
संसारसारं निगमप्रचारं धर्मावतारं हृतभूमिभारम् ।
सदाऽविकारं सुखसिंधुसारं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥११७॥
लक्ष्मीविलासं जगतां निवासं लकाविनाश भुवनप्रकाशम् ।
भूदेववासं शरदिन्दुहासं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥११८॥
मंदारमालं वचने रसालं गुणविशालं हनसप्ततालम् ।
कव्यादकालं मुरलोकपालं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥११९॥
वेदांतगानं सकर्तुः समानं हतारिमानं त्रिदशप्रधानम् ।
गजेन्द्रयानं विगतावसानं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥१२०॥
त्रयामाभिरामं नयनाभिरामं गुणाभिरामं वचनाभिरामम् ।
विश्वप्रणामं कृतभक्तकामं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥१२१॥
लीलाशरीरं रणरङ्गधरं विश्वैकसारं रघुवंशहारम् ।
गंभीरनादं जितमर्ववादं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥१२२॥
खले कृतांतं स्वजने विनीतं मामोपगीतं मनसा प्रतीतम् ।

गये । औषधि, पर्वत, वृक्ष, समुद्र तथा नदियाँ भी पढ़ेकी । इन्द्रके द्वारा भेजे हुए वायुने-आकर रामको एक सुन्दर कंचनकी माला पहनायी ॥ १११ ॥ ११२ ॥ पद्मात्, स्वयं इन्द्रने भी आकर रत्नोंसे युक्त तथा सोनेसे सुशोभित हार राजा रामको समर्पण किया ॥ ११३ ॥ देवता और मन्त्रवंत उनके गुण गाने लगे । सब अप्सरायें और वाराणनायें नाचने लगीं । देवताओंके नगाड़े बजने लगे और आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥ ११४ ॥ बादमें भरतके द्वारा पूजित होकर मैं (शिव) रामकी स्तुति करने लगा ॥ ११५ ॥ श्रीशिवजी बोले- सुग्रीवके मित्र, परमपावन, सीताके पति, मेघके समान शरीरवाले, कठ्णायके सिंधु और कमलके सहण नेत्रोंवाले श्रीरामचन्द्रको मैं निरन्तर नमस्कार करता हूँ ॥ ११६ ॥ संसारसागरसे मत्तोंको पार करनेवाले, वेदोंका प्रचार करनेवाले, धर्मके साक्षात् अवतार, भूभारको हृण करनेवाले, अद्विष्ट स्वरूपवाले और सुखके सर्वोत्तम सागर श्रीरामचन्द्रको सदा नमस्कार करता हूँ ॥ ११७ ॥ लक्ष्मीके साथ विलास करनेवाले, जगत्के निवासस्थान, लङ्काका विनाश करनेवाले, भुवनोंको प्रकाशित करनेवाले, ब्राह्मणोंको शरण देनेवाले और शारदीय चन्द्रमाके समान शुभ हस्त करनेवाले श्रीरामचन्द्रको मैं सतत नमस्कार करता हूँ ॥ ११८ ॥ मन्दारकी माला धारण करनेवाले, रसीले वचन बोलनेवाले, गुणोंमें महान्, लाल वृक्षोंका भेदन करनेवाले, राक्षसोंके काल तथा देवलोकके पालक रामचन्द्रको मैं सदा नमस्कार करता हूँ । वेदान्तके गेय, सबके साथ समान बर्ताव करनेवाले, शत्रुके मानका मर्दन करनेवाले, गजेन्द्रकी सवारी करनेवाले अन्तरहित श्रीरामचन्द्रको मैं सतत नमस्कार करता हूँ ॥ ११९ ॥ १२० ॥ त्रयामरूपसे मनोहर, नयनोंसे मनोहर, गुणोंसे मनोहर, हृदयप्राही बोलनेवाले, विश्ववन्दनोप और भक्तजनोंकी कामनाओंको पूरी करनेवाले श्रीरामचन्द्रको मैं निरन्तर प्रणाम करता हूँ ॥ १२१ ॥ लीलाभाक्के लिए शरीर धारण करनेवाले, रणस्थलीमें धीर, विश्वभरके एकमात्र सारभूत, रघुवंशमें श्रेष्ठ, गंभीर वाणी बोलनेवाले और समस्त वादोंको जीतनेवाले श्रीरामचन्द्रको मैं प्रतिक्षण प्रणाम करता हूँ ॥ १२२ ॥ दुष्टजनोंके लिए कठोर हृदयवाले, अपने भक्तोंके प्रति

रामेण गीतं वचनादतीतं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥१२३॥

श्रीरामचन्द्रस्य वराष्टकं त्वां मयेरितं देवि मनोहर ये ।

पठन्ति भृशवन्ति गृणन्ति मकन्या ते स्त्रीयकामान्प्रलभन्ति नित्यम् ॥१२४॥

इति स्तुत्वा रामचन्द्रं प्रभायां संस्थितस्त्वहम् । एतस्मिन्नन्तरे तत्र राजा दशरथो महान् ॥१२५॥

दृष्ट्वा रामं समीतं च विमानस्थोऽर्कसन्निभः । स्तुत्वा रामं परात्मान राज्यस्थं बंधुवेष्टितम् ॥१२६॥

उवाच रामं संतुष्टः सुरानीकविराजितः ।

दशरथ उवाच

धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं धन्यौ तौ पितरौ मम ॥१२७॥

धन्यो देशः कुलं धन्यं यस्त्वां राज्याभिषेचितम् । पश्याम्यद्य महाबाहो धन्या सा जननी तव ॥१२८॥

या कौसल्या समुत्साहं नेत्राभ्यां तेष्य पश्यति । इत्युक्तवन्तं राजानं नमाम स रघूत्तमः ॥१२९॥

कौसल्याया राजदाराः सर्वे ते पौरवासिनः । लक्ष्मणो भरतश्च शत्रुघ्नस्तेऽव मन्त्रिणः ॥१३०॥

नमस्काराभूषं चक्रुर्विमानस्थं मुदान्विताः । तान् राजाऽपि पृथक् पृष्ट्वा सर्वे देवगर्णयुतः ॥१३१॥

पूजितो रामचन्द्रेण मया सह न्यधर्तत । ययुः स्वं स्वं पदं सर्वं मया राज्ञा सुरास्तदा ॥१३२॥

रामेऽभिषिक्ते राजेन्द्र सर्वलोकमुत्तावहे । यमुधा सस्यसंपन्ना फलवतो महीरुहाः ॥१३३॥

गन्धहीनानि पुष्पाणि गन्धवन्ति चकाश्वरे । सहस्रं शतमश्वानां धेनूनां रघुनन्दनः ॥१३४॥

ददौ शतं वृषाणां च द्विजेभ्यो वसु कोटिशः । सूर्यकांतिसमप्रख्यं सर्वरत्नमयीं स्रजम् ॥१३५॥

सुग्रीवाय ददौ प्रीत्या राघवो हर्षसयुतः । अवतंसं ददौ भृष्ट राक्षसेन्द्राय राघवः ॥१३६॥

अंगदाय ददौ दिव्ये राघवो बाहुभूषणे । चंद्रकोटिप्रतीकाशं मणिरत्नविभूषितम् ॥१३७॥

सीतायै प्रददौ हारं प्रीत्या रघुकुलोत्तमः । सा तं हारं ददौ वायुपुत्राय सा मनस्विनी ॥१३८॥

विनम्रभाववाले, सामवेद विनका गुण-गान करता है, मनमात्रक विषय, प्रेमसे गान करने योग्य तथा दचनोसे प्रहण करने लायक श्रीरामचन्द्रको मैं सर्वदा नमस्कार करता हूँ ॥ १२३ ॥ हे देवि ! तुम्हारे प्रति कहें हुए श्रीरामके इस सुन्दर अष्टकका जो मनुष्य भक्तिसे पढ़ेगा अथवा सुने-सुनायेगा, वह अपनी अभिलषित कामनाओंको नित्य प्राप्त करेगा ॥ १२४ ॥ रामचन्द्रकी इतनी स्तुति करके ज्यों ही मैं उस सभामें बैठा, त्यों ही मुझीके समान तेजस्वी राजा दशरथ विमानपर सवार होकर मुरमपुरायके साथ वहाँ आकर संताके सहित बन्धुओंसे वेष्टित तथा राजगद्दीपर स्थित पुत्रस्वरूप राम परमात्माको देखकर स्तुति करने लगे ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ देवताओंके समूहसे परिवेष्टित दशरथ होकर बोले । उन्होंने कहा—मैं धन्य हूँ, मैं कृतकृत्य हूँ, मेरे माता-पिता धन्य हैं ॥ १२७ ॥ मेरा देश तथा कुल भी धन्य है कि जो मैं आज तुम्हें राजगद्दीपर अभिषिद्धित देख रहा हूँ । हे महाबाहो ! तुम्हारी माता कौसल्या भी हैं, जो तुम्हें उत्साहपूर्वक अपने नेत्रोंसे देख रही हैं । तदनन्तर रामने उन राजा दशरथको प्रणाम किया ॥ १२८ ॥ १२९ ॥ तब कौसल्या आदि राजाकी स्त्रियोंने, पुरवासियोंने, भृष्ट-शत्रुघ्नने तथा मन्त्रियोंने प्रमुदित होकर विमानमें स्थित राजा दशरथको प्रणाम किया । राजाने भी एक-एक करके उन सबसे कुशल पूछा । फिर देवताओं तथा मुझे साथ ले और रामचन्द्रसे पूजित होकर उन्होंने वहाँसे प्रस्थान कर दिया । मेरे तथा राजाके सहित वे सब देवता अपने-अपने घाम सिधारे ॥ १३०-१३२ ॥ लोगोंको सुख देनेवाले राजाओंमें श्रेष्ठ राजा रामका अभिषेक हो जानेपर पृथ्वी धन-धान्यपूर्ण गयी और नहीं फलनेवाले भी वृक्ष फलने लगे ॥ १३३ ॥ सुगन्धरहित पुष्प भी सुगन्धित होकर सुगन्धित होने लगे । रघुनन्दन रामने संकड़ों बेल, हजारों घोड़े तथा करोड़ों रत्न सहायणोंको दान दिये । उन रामने प्रसन्न होकर सूर्यके समान चमकनेवाली तथा अनेक प्रकारके रत्नोंसे निर्मित एक माला प्रीतिपूर्वक सुग्रीवको दी और एक सिरपेंच राक्षसेन्द्र विभीषणको दिया ॥ १३४-१३६ ॥ उन्होंने अंगदको दिव्य बाहुबन्ध दिये । रघुकुलमणि रामने सीताको करोड़ों चन्द्रमाके समान चमकीले मणियों

तेन हारेण शुशुभे मारुतिगौरवेण च । तदा दृष्ट्वा हनुमन्तं रामो वचनमब्रवीत् ॥१३९॥
 मारुते त्वां प्रसन्नोऽस्मि वर वर्य कांश्चित् । हनुमानपि तं प्राह नत्वा रामं प्रहृष्टधीः ॥१४०॥
 त्वन्नाम स्मरतो राम मनस्तृप्यति नो । अतस्त्वन्नाम सततं स्मरन्स्थास्यामि भूतले ॥१४१॥
 यावत्स्थास्यति ते नाम लोके तावन्कलेवरम् । मम तिष्ठतु राजेंद्र वरोऽयं मेऽभिकांक्षितः ॥१४२॥
 यत्र यत्र कथा लोके प्रचरिष्यति ते शुभा । तत्र तत्र गतिर्मेऽस्तु श्रवणार्थं सदैव हि ॥१४३॥
 देवालयान्नदीतीरासीर्थाद्यापि जलाशयात् । विनाऽन्यत्र स्थले तेस्तु कथा षड् षट्कौर्ध्वतः ॥१४४॥
 रामस्तथेति तं प्राह मुक्तस्तिष्ठ यथासुखम् । कन्यान्ते मम मायुज्यं प्राप्स्यसे नात्र संशयः ॥१४५॥
 समाह जानकी प्रीता यत्र कुत्रापि मारुते । स्थितं त्वामनुयास्यन्ति भोगाः सर्वे ममाक्षया ॥१४६॥
 ग्रामारामयत्तनेषु यजस्वेटकसत्रसु । वनदुर्गपर्वतेषु सर्वदेवालयेषु च ॥१४७॥
 नदीषु क्षेत्रतीर्थेषु जलाशयपुरेषु च । वाटिकोपवनाश्च वटवृन्दावनादिषु ॥१४८॥
 त्वन्मूर्तिं पूजयिष्यन्ति मायया विघ्नशान्तये । भूतप्रेतपिशाचाद्या नश्यन्ति स्मरणात्तव ॥१४९॥
 ये चान्ये वानराद्याश्च ह्ययोध्यां समुपागताः । अमूक्याभरणैर्वस्त्रैः पूजिता राघवेण ते ॥१५०॥
 सुग्रीवप्रमुखाः सर्वे वानराः सविभीषणाः ।

मकरध्वजसंपातिगुहकाः पार्थिवादयः । यथाहं पूजितास्तेन रामेण वचनादिभिः ॥१५१॥
 ततः सर्वभोजनार्थं राघवः संस्थितोऽभवत् । रामेण प्राणाहुतयो गृहीताश्चेति मारुतिः ॥१५२॥
 निरीक्ष्योर्द्ध्वं वेगेन रामाग्रे भोजनस्य च । त्रिपदायां स्थितं पात्रं हंसं पक्वान्नपूरितम् ॥१५३॥
 विनाय वामहस्तेन धृत्वा च विहसन्मुदा । स्वयं शुकत्वा रामश्रेष्ठं प्राक्षिपद्वातरानपि ॥१५४॥

रत्नोत्से विभूषित हार सप्रेम समर्पण किया । मनस्विनी सीताने भी रामका दिया हुआ वह हार वायुपुत्र हनुमानको दे दिया ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ उस हारके गौरवसे हनुमान् बड़े ही मुग्धोचित होने लगे । यह देखकर रामने हनुमान्से कहा - ॥ १३९ ॥ हे मारुते ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ । जो चाहो सो वर माँगो । तब प्रसन्न हनुमान्ने रामको नमस्कार करके कहा - ॥ १४० ॥ हे प्रभो ! आपके नामस्मरणसे मेरा मन अब भी तृप्त नहीं हुआ है । अतएव आपका नाम भूतलमें विद्यमान रहे, तबतक मैं आपका नामका स्मरण करता हुआ इस लोकमें जावित रहूँ । हे राजेन्द्र ! यही मेरा अभिलषित वर आप मुझे दे दें ॥ १४१ ॥ १४२ ॥ लोकमें जहाँ कहीं भी आपकी पवित्र कथा होती हो, वहाँ कथा सुननेके लिये जानेंगे मेरी अप्रतिहत गति हो ॥ १४३ ॥ देवालय, नदीतीर, तीर्थस्थान तथा वावली आदि जलाशयको छोड़कर अन्य स्थानोंमें छः घड़ोंके बाद निरय आपको कथा हुआ करे ॥ १४४ ॥ रामने कहा - अच्छा, तुम मुक्त होकर सुखसे भूमण्डलपर निवास करो । कल्पान्तके समय तुम मेरी सायुज्य मुक्तिकी प्राप्त होओगे, इसमें संदेह नहीं है ॥ १४५ ॥ इसके पश्चात् जानकीजी प्रसन्न होकर बोली - हे मारुते ! तुम जहाँ कहीं रहोगे, वहाँपर मेरे आशीर्वादसे तुमको सब भोग्य पदार्थ प्राप्त हो आया करेंगे ॥ १४६ ॥ ग्राम, बाग, नगर, गोशाला, रास्ता, छोटा गाँव, घर, वन, जिला, पर्वत, सब देवालय, नदी, तीर्थक्षेत्र, जलाशय, पुर, वाटिका, उपवन, पीपल, वट तथा वृन्दावन आदि स्थानोंमें मनुष्य अपने विघ्नोंको शान्त करनेके लिये तुम्हारी मूर्तिकी पूजा करेंगे । तुम्हारा नाम स्मरण करनेसे भूत-प्रेत तथा पिशाच आदि दूर भाग जायेंगे ॥ १४७-१४९ ॥ इसके रामने अगोध्यामें जो अन्य वानर आये थे, उन भी बहुमूल्य भूषण तथा वस्त्रोंसे सरकार किया ॥ १५० ॥ श्रीरामने दस्त्रादिसे सुग्रीव आदि वानरों, विभीषण, मकरध्वज, संपाती तथा निषादराज आदि राजाओंकी भी यथायोग्य पूजा की ॥ १५१ ॥ उसके पश्चात् सबको साथ लेकर रामचन्द्रजी भोजन करने बैठे । रामके पाँच पट्टण करके तृप्त हो जानेके साथ ही हनुमान् झट उठकर रामके पास पहुँच और उनके सामने फोड़ेपर खड़ा हुआ पक्वान्नोंसे परिपूर्ण सुवर्णका थाल बाएँ हाथसे उठाकर आकाशमें चले गये और रामके भोजनशेषका स्वयं आनन्दसे

तदा विभीषणाद्याश्च स्वीयपात्राणि वेगतः । विमृज्य मारुतिं स्तुत्वा त्वया मम्यक्कृतं त्विति ॥१५५॥
 तत्क्षिप्तं राघवोच्छिष्टं बुभुजुः संभ्रमन्विताः । महान् कोलाहलश्चामोद्रामोच्छिष्टार्थमादगत ॥१५६॥
 भीतारामौ तन्निरीक्ष्य मुदा जहमतुस्तदा । एवं नानाकौतुकानि कुर्वन्तौ राघवांतिके ॥१५७॥
 सुग्रीवाद्याः सुखं तस्युस्तोषयन्तः कियद्दिनम् । एतन्मिन्नन्तरे तत्र पुष्पकं चागमन्पुनः ॥१५८॥
 प्राह देव कुबेरेण प्रेषितं त्वामहं पुनः । मामाह यत्कुबेरस्तच्छृणुष्व त्वं गृह्यताम् ॥१५९॥
 जितस्त्वं रावणेनादौ पश्चाद्रामेण निर्जितः । अतस्त्वं राघवं नित्यं वह यावदसेद्भुवि ॥१६०॥
 यदा गच्छेद्रघुश्रेष्ठो वैकुण्ठं याहि मां तदा । तच्छ्रुत्वा राघवः प्राह सुग्रीवादीन्यथास्थले ॥१६१॥
 स्थाप्य शीघ्रमयोध्यायां राजद्वाराद्ग्रहिर्वस । तथेति रामवचनाद्भानराद्यान्यथास्थले ॥१६२॥
 स्थाप्य शीघ्रमयोध्यायां राजद्वाराद्ग्रहिः स्थितम् । चकार राज्यं धर्मेण लङ्कायां स विभीषणः ॥१६३॥
 शशास राज्यं पाताले धर्मेण मकरध्वजः । चकार तार्क्ष्यः संपाति यौवराज्यपदे निजे ॥१६४॥
 शशास राज्यं कपिभिः किष्किन्ध्यायां कपीश्वरः । शृङ्गवेरपुरे राज्यं मुहकथाकरोन्मुदा ॥१६५॥
 नत्वा रामं वायुपुत्रो ययौ तप्तुं हिमालयम् । सर्वे विभीषणाद्याश्च पंचमे सप्तमेऽहनि ॥१६६॥
 दर्शनार्थं राघवस्य साकेतं प्रययुः सदा । पञ्च सप्त दिनान्यत्र स्थित्वा धीराघवांतिकम् ॥१६७॥
 यातायातं सदा चक्रुः स्वस्वराजपादगृह्यताम् । रामोऽपि राज्यमखिलं शशासाखिलवत्सलः ॥१६८॥
 अनिच्छन्तं हि सौमित्रिं यौवराज्येऽभ्यषेचपत्न । लक्ष्मणः परया भक्त्या रामसेवापरोऽभवत् ॥१६९॥
 विश्वामित्राध्वरे पूर्वं रणयागस्य पूर्णता ।

न कृता या राघवेण सा कृता स्वपदे तदा । रणयागः सविस्ताराद्वर्ण्यते शृणु पार्वति ॥१७०॥

खाने तथा नीचे बानरोंके आगे फेंकने लगे ॥ १५२-१५४ ॥ यह देखकर विभीषण आदि भक्त भी भीष्ट अपने-अपने पालोंको छोड़कर हनुमान्की प्रशंसा करके कहने लगे कि तुमने बहुत काम किया ॥ १५५ ॥ यह कहकर वे स्वयं भी बड़े आदरसे मारुतिका फेंका हुआ रामका उच्छिष्ट प्रसाद पाने लगे । उस समय रामकी जूठनके लिये बड़ा भारी कोलाहल मच गया ॥ १५६ ॥ राम और सीताने यह देखा तो प्रसन्न होकर हँसने लगे । इस प्रकार विविध क्रीडायें करके सीता और रामको प्रसन्न करने हुए सुग्रीव आदि मित्र दिन वहाँ रहे । इतनेमें पुष्पक विमान पुनः वहाँ आया ॥ १५७ ॥ १५८ ॥ वह रामसे कहने लगा—हे देव । कुबेरने मुझको आपके पास वापस भेंट दिया है । हे रघुनन्दन ! कुबेरने जो कुछ मुझसे कहा है, वह सुनिये ॥ १५९ ॥ उन्होंने कहा है कि पहले तो रावणने तुमको मुझसे जीता और बादमें रामने तुमको रावणसे जीता है । इस कारण तुम आकर तबतक राम ही को सवारी देनेका करो, कि भूमण्डलमें रहें ॥ १६० ॥ जब रघुश्रेष्ठ राम वैकुण्ठ घूम चले जायें, तुम मेरे पास चले । यह मुनकर रामने विमानको दी कि सुग्रीव आदि मेरे मित्रोंको उनके स्थानपर पहुँचाकर शीघ्र ही अयोध्या लौट आओ और राजमहलके दरवाजेके बाहर खड़े रहो । तदनन्तर विभीषण आकर लङ्कामें धर्मपूर्वक राज्य करने लगे ॥ १६१-१६३ ॥ मकरध्वज पातालमें धर्मपूर्वक राज्य-शासन करने लगे । गरुडने युवराज्यपदपर शशातीका अभियेक किया ॥ १६४ ॥ किष्किन्ध्यामें कपीश्वर सुग्रीव राज्य करने लगे । शृङ्गवेरपुरमें निषादराज आनन्दसे राज्य करने लगा ॥ १६५ ॥ वायुपुत्र हनुमान् रामको नमस्कार करके तप करनेको हिमालय चले गये । फिर भी विभीषण-सुग्रीव आदि मित्र पाँचवें अथवा सातवें दिन अयोध्यामें श्रीरामका दर्शन करनेके लिए आया करते थे और वे श्रीरामके पास पाँच-सात दिन निवास करके चले जाते थे । इस प्रकार उन लोगोंका अपने-अपने राज्यसे श्रीरामके पास आना-जाना लगा रहता था । सभी लोगोंके प्रिय राम भी सम्पूर्ण राज्यका पालन करने लगे ॥ १६६-१६८ ॥ न चाहनेपर भी रामने लक्ष्मणका युवराजके पदपर अभियेक कर दिया और वे भी रामको सेवामें तत्पर हो गये ॥ १६९ ॥ रामने पूर्व समयमें विश्वामित्रके यज्ञके समय जिस युद्धरूपी यज्ञकी समाप्ति नहीं की थी, उस रणयज्ञकी इस समय अपने राज्यपदपर स्थित हो जानेपर पूर्णाहुति की । ॥ गर्वती !

रणांगणं यज्ञकुण्डं तत्र वै अपलायनम् । तच्च वेदविधानं हि ब्रह्ममस्त्वं प्रकीर्तितम् ॥१७१॥
 कर्मणश्च घटाटोपो ज्ञेयः शस्त्रस्त्रणस्त्रनः । संमार्जनं स्रक्स्त्रुयोज्ञेयं पाषाणघर्षणम् ॥१७२॥
 शस्त्राणां मलशोधार्थं क्रियते यद्रणांगणे । भूमौ शराणां विस्तारः परिस्तरणमुत्तमम् ॥१७३॥
 परिसमूहनं धैर्यं दहिकालानलो महान् । श्रुवेण घाणरूपेण मांसाहुतिममर्पणम् ॥१७४॥
 रक्तधारा वसोधारा हाहाकारो भयानकः । मं ओंकारचपटकारघोषो ज्ञेयो रणाञ्चरे ॥१७५॥
 अग्नेर्ज्वाला शस्त्रतेजोधूमः स्वेदस्रवो रणे । ज्वालानिषयशान्त्यर्थं पृथदाज्यस्य सेचनम् ॥१७६॥
 यत्तदत्र तु वीराणामस्त्रमोचनमुत्तमम् । ज्ञानेन सह जीवस्य बलिदीपबलिः स्मृतः ॥१७७॥
 ये देहलोभिनो जीवा बलिदीपहराः स्मृताः । रामहस्तान्मृत्तिन्यक्त्वा ये कुर्वन्ति पलायनम् ॥१७८॥
 देहपन्थाज मुक्तास्ते बलिमक्षणदोषतः । पूर्णाहुतिः शिरोमिहि ज्ञेयास्तत्र प्रदक्षिणाः ॥१७९॥
 उच्चाटनं हि सव्येन वीराणां जयहेतवे । नैजं पदप्रदानं च ज्ञेया मा दक्षिणाऽञ्चरे ॥१८०॥
 सुरैर्या पुष्पवृष्टिस्तज्ज्ञेयं विप्रामिषेचनम् । जयसम्पादनं युद्धे धैर्यसंपादनं हि तत् ॥१८१॥
 चराचराणामानन्दो ज्ञेयः स निजगोत्रिणाम् । भूतानां तर्पणं विप्रभोजनं सम्प्रकीर्तितम् ॥१८२॥
 एवं सुबाहुना युद्धे राघवस्य रणाञ्चरः । तथा गाधिजयज्ञेऽपि द्वौ तौ ज्ञेयौ सहैव हि ॥१८३॥
 कृतञ्चरसमाप्तिस्तु विश्वामित्रेण वै पुरा । विसर्जितो न रामेण दृष्ट्वाऽश्वं रणाञ्चरे ॥१८४॥
 कालानल पुनस्तन्यं तृप्त्यर्थं वाऽकरोन्मतिम् । कृत्वा भूमेर्महत्पात्रं विराघरुधिरेण हि ॥१८५॥
 पात्रस्य प्रोक्षणं कृत्वा चित्राहुत्यर्थमादरात् । रामः शूर्पणखायाश्च घ्राणं कर्णौ चिमेद यत् ॥१८६॥
 प्राणाहुतिभ्यो रामेण विश्विराः स्वरदूषणौ । मारीचश्च कबन्धश्च पंच ते निहताः क्षणात् ॥१८७॥

उस रणरूपी यज्ञका में विस्तारसे वर्णन करता है, सुनी ॥ १७० ॥ उस रणयागमें युद्ध कुण्ड था ; उसमेंसे न भागना ही वेदविहित ब्रह्मसत्त्व था ॥ १७१ ॥ शस्त्रोंकी लनकार ही कर्मकी सामग्री थी । रणांगणमें शस्त्रोंका मेल छुड़ानेके लिये उनपर जो पत्थर धिसे जाते थे, वही स्रक्-स्रुवका मजिना था । भूमिमें वाणोंकी फैला-फैलाकर रखना ही उत्तम कुण आदिका आस्तरण था । घोरता ही उनका परिसमूहन (बटोरना) था ॥ महान् कालरूपी अग्नि ही यज्ञकुण्डकी आग थी । उसमें वाणरूपी छुदासे मांसकी आहुतियें समर्पण की जाती थीं ॥ १७२-१७४ ॥ श्विरकी घारा ही वसुधारा थी । भयानक हाहाकार ही ओंकार तथा चपटकारका नाद था ॥ १७५ ॥ शस्त्रोंकी ॥ ॥ ही आगकी लपटें थी । पसोनेका बहना ही धुआं था । वीर पुरुषोंका उत्तम अस्त्रमोचन ही अधिक ज्वालाकी शांतिका पृथदाज्य सींचनाहवी उपाय था । ज्ञानपूर्वक जीवोंका शरीर-त्याग ही दीपदान था ॥ १७६ ॥ १७७ ॥ जो शरीरमें ममता रखनेवाले थे, ॥ ॥ हा पूजाकी ॥ ॥ तथा दीपकी ले भागनेवाले माने जाते थे । ओ रामके हाथसे न मरकर वहांसे भाग जाते थे, ॥ बलिभक्षण करनेके दांवसे देहरूपी बन्धनमें ही पड़े रह जाते थे-मुक्त नहीं होते थे ॥ उस युद्धरूपी यज्ञमें शिरोका बट ॥ ॥ गिरना ही तारिमलके द्वारा ही जानेवाली पूर्णाहुति थी । विजयलाभके लिये अपनी दाहिनी ओरसे वीरोंको दूर करना ही प्रदक्षिणा थी । उस यज्ञमें मृत पुरुषोंका विजयपद (ब्रह्मपदकी प्राप्ति) ही दक्षिणा थी ॥ १७८-१८० ॥ देवता- ॥ ॥ द्वारा जो पुष्पवृष्टि की जाती थी, वह बाह्यणोंका अभिषेचन था । युद्धमें विजय प्राप्त करना ही यज्ञका फल था ॥ १८१ ॥ चर-अचरका आनन्दलाभ ही अपने गोत्रवालोंका आनन्द समझा जाता था । पशु-पक्षी आदि जावोंकी तृप्ति ही विप्रभोजन कहा जाता था ॥ १८२ ॥ इस प्रकार रामका जो सुबाहुसे युद्धरूपी यज्ञ राक्ष-सोंके साथ आरम्भ हुआ, वह और गात्रिद्वय विश्वामित्रका यज्ञ दोनों साथ ही प्रारम्भ हुए ॥ १८३ ॥ उनमेंसे विश्वामित्रजीने तो अपना यज्ञ समाप्त कर लिया था, परन्तु रामने अपने यज्ञमें कालानलकी अतृप्त देखकर अपना युद्धयज्ञ समाप्त नहीं किया था । अतएव उसका तृप्त करनेकी इच्छा करके रामने विराघके रुधिर-से पृथ्वीरूपी पात्रका प्रोक्षण (शुद्धि) करके शूर्पणखाके नाक-कान काटकर प्रेमसे चित्र-विचित्र आहुतियें दीं ॥ १८४-१८६ ॥ रामने विश्विरा, स्वर, दूषण, मारीच तथा कबन्धको क्षणभरमें मारकर पंचश्राणा-

शिखाबंधविमोक्षार्थं शबरी भवबंधनात् । कृता मुक्ता तु रामेण जलस्पर्शनहेतवे ॥१८८॥
 नेत्रयोर्निहतो बाली दत्तं तद्रुधिरं तदा । कायिलंकापुरा दग्धा कुम्भकर्णस्तथैवदनः ॥१८९॥
 पक्वान्नमिन्द्रजिह्व ज्ञेयः शाकार्यं राक्षसा दत्ताः । वरान्नं सारणो ज्ञेयः प्रहस्तो वटकः स्मृतः ॥१९०॥
 निकुम्भः पर्पटो ज्ञेयः कुम्भस्तु लवणं स्मृतः । पायसाथं कालनेमिस्त्वतिकायः स शर्करः ॥१९१॥
 क्षीरमैरावणो ज्ञेयो घृतं मैरावणः स्मृतः । दध्योदनः समाप्तौ तु जाह्नवे च स रावणः ॥१९२॥
 हत्वा निवेदितः पात्रे तस्य कालानलस्य च । उच्छिष्टवर्तिसंत्यागः केशवकीकसादिनाम् ॥१९३॥
 संत्यागोऽत्र रणे ज्ञेयस्तदा वृत्तो बभूव सः । ततो रणाध्वरस्यात्र राघवेण विसर्जनम् ॥१९४॥
 अयोध्यायां प्रवेशो हि कृतस्तत्ते वदाम्यहम् । अध्वरावभृथस्नानं ज्ञेयं राज्याभिषेचनम् ॥१९५॥
 मंगलानि समस्तानि यज्ञांगविहितानि हि । शातव्यानीति रामेण रणयागो विसर्जितः ॥१९६॥
 एवं प्रोक्तो मया देवि रणयागः सविस्तरः । रामोऽथ परमात्मापि कार्याध्यक्षोऽतिनिर्मलः ॥१९७॥
 कर्तृत्वादिविहीनोऽपि निर्विकारोऽपि सर्वदा । स्वानन्देनापि संतुष्टो लोकानामुपदेशकृत् ॥१९८॥
 धकार विविधान् धर्मान् गार्हस्थ्यमनुलम्ब्य च । न पर्यदेवन् विधवा न च व्यालकृतं भयम् ॥१९९॥
 न व्याधिजं भयं चाक्षीद्रामे राज्यं प्रज्ञासति । औरसानिव रामोऽपि जुगोप पितृवत् ॥२००॥
 सीतया बन्धुभिः साहै साकेते सुखमाप सः । इदं युद्धचरित्रं ते प्रोक्तं देवि ॥२०१॥

इति शतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे

युद्धचरिते रामराज्याभिषेकवर्णनं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥



कृतिये दीं ॥ १८७ ॥ शिखाकी गॉठ खोलनेकी जगह रामने शबरीको संसारबन्धनसे छुड़ाकर मुक्त कर दिया । रामने बालीको मारकर उसके रुधिररूपी जलसे नेत्रोंमें स्पर्श किया । लंकाको जलाकर कालानलके लिये दाल तथा कड़ी बनायी । अर्थात् लंका दाल-कड़ोके स्थानमें गिनी गयी । कुम्भकर्णरूपी भात, मेघनादरूपी पक्वान और सब राक्षसोंका बना । उत्तम पदार्थोंके स्थानपर सारण मारा गया । प्रहस्त बड़ा, निकुम्भ पापड़, कुम्भ तमक, कालनेमि क्षीर, अतिकाय शर्कर, ऐरावणरूपी दूधमें मैरावणरूपी घी तथा दधिभक्तके स्थानपर रावणको मारकर रामने कालानलके थालमें परोस दिया । कालानलने इन सबका भोजन करके केश, चर्म अस्थियोंका जूठन रणमें छोड़ दिया । तब वह तृप्त हुआ । उसके पश्चात् रामका अयोध्यामें प्रवेश करना ही रणरूपी यज्ञको समाप्ति अर्थात् रणयज्ञका विसर्जन हुआ । वहाँ रामका राज्याभिषेक ही यज्ञके अन्तका अवभृथस्थान था ॥ १८८-१९५ ॥ अन्यान्य मांगलिक कार्य उस यज्ञके अंग थे । इस प्रकार रामने सांगोपांग रणयज्ञ पूरा किया ॥ १९६ ॥ हे देवि ! मैंने तुमको उपर्युक्त प्रकारसे समस्त रणयाग कह सुनाया । तदनंतर साक्षात् परमात्मा, कार्यसमुदायके अधिष्ठाता, कर्तृत्वादि अभिमानसे रहित, सदा निर्विकार स्वरूप, निज आनन्दसे ही संतुष्ट प्राणियोंको सद्गुपदेश देनेवाले गम भी गृहस्थधर्मका पालन करते हुए अनेक धर्मोंका आचरण करने लगे । उनके राज्यकालमें कोई भी स्त्री विधवा होकर रोती नहीं थी । किसीको साँप तथा व्याध आदिका नहीं और किसीको रोगका क्षी भय था । रामने भी समस्त प्रजाको, पिता जिस अपने सगे लहकोंका पालन करता है, उसी प्रकार किया । हे देवि ! यह मैंने तुमको रामका युद्धचरित्र कह सुनाया ॥ १९७-२०१ ॥ इति श्रीशत-कोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे युद्धचरिते रामराज्याभिषेकवर्णनं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः

(अगस्त्य-रामसंवाद)

श्रीशिव उवाच

एकदा राघवं द्रष्टुं मुनिभिः कुंभसंभवः । ययौ रामेण संमानमानितः स उपाविशत् ॥ १ ॥
 उपविष्टाः प्रहृष्टाश्च मुनयो रामपूजिताः । संपृष्टकुशलाः सर्वे रामं कुशलमब्रुवन् ॥ २ ॥
 कुशलं ते महाबाहो सर्वत्र रघुनन्दन । दिष्टयेदानीं प्रपश्यामो हतशत्रुपरिदम ॥ ३ ॥
 दिष्टया स्वया हताः सर्वे मेघनादादयोऽसुराः । हत्वा रक्षोगणान्सर्वान् कृतकृत्योऽद्य जीवसि ॥ ४ ॥
 इति तेषां वचः श्रुत्वा रामस्तान्प्राह सुस्मितः । किमर्थमादौ युष्माभिर्मेषनादोऽद्य कीर्तितः ॥ ५ ॥
 इति रामवचः श्रुत्वाऽगस्तिस्तैरवलोकितः । कुंभयोनिस्तदा रामं प्रीत्या वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥
 मृणु यथा वृत्तं मेघनादस्य चेष्टितम् । जन्मकर्मवरप्राप्तिं संक्षेपाद्ब्रूतौ ॥ ७ ॥
 पुरा कृतयुगे पुलस्त्यो सुतः । तृणविंदुसुतायां पुत्रं त्रैलोक्यविभ्रुतम् ॥ ८ ॥
 निर्ममे विश्रवा नामधेयं वेदनिधिं शुभम् । भरद्वाजसुतायां विश्रवा निर्ममे सुतम् ॥ ९ ॥
 श्रेष्ठं वैश्रवणं तस्मै प्रसन्नोऽभूद्विधिविरात् । विधिवैश्रवणायाश्च तुष्टस्तचपसा ददौ ॥ १० ॥
 मनोऽमिलपितं यानं धनेशत्वमखंडितम् । पुष्पकं चाप्येकदाऽसौ द्रष्टुं विश्रवसं ययौ ॥ ११ ॥
 पुष्पकेण धनाप्यध्वो ब्रह्मदत्तेन भास्वता । नत्वा तानं तदा प्राह न स्थानं मम ॥ १२ ॥
 दत्तं स्थेयं मया कुत्र तद्विचार्य वदस्व माम् । विश्रवा ह्यपि तं प्राह विश्वकर्मविनिर्मिता ॥ १३ ॥
 लंकानाम्नी पुरी श्रेष्ठा सागरेऽस्ति सुमंडिता । त्यक्त्वा विष्णुभयादृत्या विविशुस्तं रसातलम् ॥ १४ ॥
 सुखं त्वं वस तस्यां हि तथेत्युक्त्वा धनेश्वरः । गत्वा तस्यां चिरं कालमुवास पितृसंमतः ॥ १५ ॥

श्रीशिवजी बोले—हे प्रिये ! एकदिन बहुतसे मुनियोंके साथ अगस्त्यमुनि श्रीरामका दर्शन करने आये । रामसे सम्मानित होकर वे बैठे ॥ १ ॥ अन्यान्य मुनि भी रामसे पूजित होकर प्रसन्नतापूर्वक बैठ गये । रामके पूछनेपर सबने कुशल-क्षेम सुनाया ॥ २ ॥ और कहा—हे रघुनन्दन ! बड़े हर्षकी कि शत्रुको मारकर सकुशल आपको हम लोग राज्यसिंहासनपर विराजमान देख रहे हैं । हे अरिन्दम (शत्रुओं-को नीचा दिखलानेवाले) ! आपने बड़े भाग्यसे मेघनाद आदि असुरोंको मार गिराया है । उन्हें मार तथा कृतकार्य होकर आप विराजमान हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ उनका ऐसा सुनकर मुसकराते हुए बोले—आप लोगोंने सब राक्षसोंमेंसे मेघनादका नाम पहले क्यों लिया ? रामका सुनकर वे मुनि अगस्त्य मुनिका मुख देखने लगे । यह देखकर अगस्त्य बहुत प्रेमपूर्वक रामसे बोले—॥ ५ ॥ राम ! मैं आपसे मेघनादका धरित्र, जन्म, कर्म तथा वरप्राप्तिका वृत्तान्त संक्षेपमें कहता हूँ, सुनें ॥ ७ ॥ हे राम ! सत्ययुगमें पुलस्त्य नामके ब्रह्मपुत्रने तृणविन्दुकी पुत्रीसे तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध वेदवेत्ता विश्रवा नामका पुत्र उत्पन्न किया । विश्रवाने भारद्वाजकी पुत्रीसे वैश्रवण नामक श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न किया । कुछ दिनोंके बाद वैश्रवणकी तपस्यासे होकर ब्रह्माने उसको उसका मनोवांछित पुष्पक विमान, अखंड धनेश्वर तथा कुबेरकी पदवी प्रदान की । एक दिन ब्रह्माके दिये हुए उस सुन्दर पुष्पक विमानपर सवार होकर धनाधिप कुबेर अपने पिता विश्रवाका दर्शन करने गये । वहाँ जाकर कुबेरने पिताको नमस्कार करके कहा—हे पिताजी ! ब्रह्माने मुझे निवासके लिये कोई स्थान नहीं दिया है । अतः आप विचार करके कोई भेरे रहने योग्य स्थान बताइए । विश्रवाने कहा—विश्वकर्माकी बनायी हुई एक सुन्दर और श्रेष्ठ लंका नामकी नगरी समुद्रके बीचमें विद्यमान है । विष्णुके वरसे दैत्य लोग उसे छोड़कर पातालमें चले गये हैं ॥ ८-१४ ॥ तुम जाकर उसमें सुखपूर्वक निवास करो । 'तथास्तु' कहकर कुबेर पिताके कथनानुसार बहुत

कस्मिंश्चित्प्रथ काले हि सुमालीनाम राक्षसः । दुहित्रा व्यवचरद्भूमौ पुष्पकेतुं ददर्श सः ॥१६॥
 हिताय चिंतयामास राक्षसानां महामनाः । कैकसीं तनयामाह गच्छ विश्रवसं मुनिम् ॥१७॥
 वरयस्व मुनेस्तेजःप्रतापासे सुताः शुभाः । भविष्यन्ति घनाप्यक्षतुल्या नो हितकारिणः ॥१८॥
 सा संन्यायां ययौ शीघ्रं मुनेरग्रे व्यवस्थिता । लिखन्ती भुवि पादांगुष्ठेन चाधोमुखी स्थिता ॥१९॥
 तामपृच्छन्मुनिः का त्वं साऽऽह त्वं वेत्तुमर्हसि । ततो व्यात्वा मुनिः सर्वं ज्ञान्वा तां प्रत्यभाषत ॥२०॥
 ज्ञातं तवामिलपितं मतः पुत्रानर्भाप्समि । दारुणायां तु बेलायामागताऽसि सुमध्यमे ॥२१॥
 अतस्ते दारुणौ पुत्रौ राक्षसौ संभविष्यतः । साऽन्नवीन्मुनिशार्दूलं त्वत्तोऽप्येवंविधौ सुतौ ॥२२॥
 तामाहान्तिमजो यस्ते भविष्यन्ति महामनिः । ततः सा सुपुत्रे पुत्रान् यथाकाले सुमध्यमा ॥२३॥
 राक्षसं कुम्भकर्णं च क्रीचीं शूर्पणखां शुभाम् । कुम्भीनसीं कर्नायासं तृतीयं तं विभीषणम् ॥२४॥
 रावणः कुम्भकर्णश्च त्रयो दुहितरस्तथा । दुर्धृताः प्राणिमश्नाश्च यभृनुर्मुनिर्हिंसकाः ॥२५॥
 एकदा रावणो मात्रां लिङ्गार्थं प्रेषितः शिवम् । कर्तुं प्रसन्नमकरोत् कैलासं क्रमं दुष्करम् ॥२६॥
 किञ्चिरस्वीयं शिरश्छिन्ना वीणां पङ्कजस्वरैर्मुहुः । कृत्वा पीठं हि देहस्य तन्मूलं शिरसस्तथा ॥२७॥
 तदग्रं पादयोः कृत्वा शङ्कनंगुलिमिस्तथा । तंत्रीः कृत्वाऽन्त्रमालाभिः शतशोऽय सहस्रशः ॥२८॥
 एवं कृत्वा स्वदेहस्य वीणां पङ्कजस्वरैर्मुहुः । चकार स्वमुखेनैव गानध्वं गायनं शुभम् ॥२९॥
 तदा नदीश्वरं प्राह शंकरो लोकशंकरः । शिरः संधाय हस्तेन त्वया वाच्योऽय रावणः ॥३०॥
 आत्मलिङ्गं राक्षसं त्वां शंकरो न प्रदास्यति । हृद्गतं हि मया ज्ञातं शंभोस्त्वं याहि स्वस्थलम् ॥३१॥
 इत्सुक्त्वा प्रेषणीयः स रावणः स्वस्थलं त्यया । इति शंभोर्वचः श्रुत्वा ययौ नंदी स रावणम् ॥३२॥

तक वहाँ रहे ॥ १५ ॥ पश्चात् किसी समय मुमाली राक्षसने अपनी पुत्रीको साथ लेकर पृथ्वीपर भ्रमण करते समय पुष्पकेतुको देखा ॥ १६ ॥ तब महात्मा मुमालीने राक्षसोंका हित सोचकर अपनी लड़की कैकसीसे कहा कि तुम विश्रवा मुनिके पास जाकर मुनिके तेज-प्रतापसे सुन्दर पुत्रोंकी प्राप्तिके लिये वर माँगो । वे पुत्र कुबेरके प्रतापी तथा हमलोगोंके हितकारी होंगे ॥ १७ ॥ १८ ॥ तदनुसार सायंकालके समय मुनिके पास जाकर पाँवके अंगुष्ठोंत घरतीको कुरेदती हुई वह नीचा मुख करके खड़ी हो गयी ॥ १९ ॥ मुनिने उससे पूछा—तुम कौन हो ? उसने कहा कि आप स्वयं इस बातको सकते है । मुनिने ध्यान करके सब कुछ लिखा और उससे बोले—॥ २० ॥ मुझे मालूम हो गया कि मुझसे तू पुत्र पाना चाहती है, परन्तु हे सुमध्यमे ! तू इस भयानक समयमें यहाँ आयी है । इसलिये तुझसे दो राक्षस पुत्र उत्पन्न होंगे । तब वह मुनिशार्दूलसे बोली—हे महाराज ! क्या आपसे भी मुझे ऐसे ही पुत्र प्राप्त होंगे ? ॥ २१ ॥ २२ ॥ तब मुनि बोले—अच्छा जा, तेरा आखिरी पुत्र बड़ा बुद्धिमान् होगा । पश्चात् उस सुन्दर कमरवाली कैकसीने यथासमय तीन पुत्र उत्पन्न किये ॥ २३ ॥ रावण, कुम्भकर्ण, क्रीची, शूर्पणखा, कुम्भीनसी और सबसे छोटा सीसरा पुत्र विभीषण उससे हुआ ॥ २४ ॥ उनमेंसे रावण, कुम्भकर्ण और तीन लड़कियें बड़ी दुराचारिणी, जोषमश्रिणी तथा मुनिहिंसक हुई ॥ २५ ॥ एक दिन रावणकी माता कैकसीने रावणको शिवजीके पास लिङ्ग लेने भेजा । कैलासपर जाकर रावणने शिवजीको प्रसन्न करनेके लिये बड़ा दुष्कर काम किया ॥ २६ ॥ उसने अपने सिरका कुछ भाग काटकर वीणा बनायी । सिरसे वीणाका मूलभाग बनाकर अपनी देहसे उसका पृष्ठभाग तैयार किया । पाँवोंसे उस वीणाका अग्रभाग बनाया और अंगुलियोंसे वीणाकी छूटियें तैयार कीं । अपने पेटके भीतरकी अंतोसे सैकड़ों एवं हजारों तार बनाकर अपने शरीरसे ही वीणा रधी । पश्चात् पद्म आदि स्वरोसे रावणने अपने मुखसे ही गानध्वके समान सुन्दर गायन आरम्भ किया ॥ २७-२९ ॥ तब लोगोंका कल्याण करनेवाले भगवान् शंकर नन्दीश्वरसे बोले कि तुम अपने हाथसे रावणका सिर संबान करके उससे कहो कि शंकरजी तुम जैसे राक्षसको आत्मलिङ्ग कभी न दोगे । मैं शिवजीके हृदयकी बात जानता हूँ ।

शिरः संयोज्य हस्तेन शिवोक्तं तं न्यवेदयत् । तच्छ्रुत्वा रावणश्चापि सवतिक्रम्य तां निशाम् ॥३३॥
 चकार पूर्ववद्भानं द्वितीयदिवसे पुनः । नन्दिना शंकरश्चापि पूर्ववत् न्यवेदयत् ॥३४॥
 इत्थं दश दिनान्येव गतानि रावणस्य च । अथ तन्कर्मणा तुष्टः शंकरो गायनेन च ॥३५॥
 भूत्वा प्रसन्नस्तं प्राह वरं वरय चेति वै । दृष्ट्वा शंभुं गतणोऽपि शिवा तेन संधितः ॥३६॥
 वरयामास मन्मात्रे ह्यात्मलिंगं मम । पत्न्यर्थं पार्वतीं देहि तथैतद्युक्त्वा ददौ शिवः ॥३७॥
 गृहीत्वा गंतुकामं तं पुनः प्राह हस्तदा । मत्तोपार्थं त्वया वीर दशवारं निर्ज शिरः ॥३८॥
 खड्गेन छेदितं यस्मात्तस्मात्तेऽष्ट शिर्गसि हि । दश विशद्भुजाश्चापि भविष्यन्ति गिरा मम ॥३९॥
 ततः स रावणस्तुष्टो गिरिजालिंगमंपुतः । विशद्भुजो दशग्रीवः स्वस्थलं गन्तुमुद्यतः ॥४०॥
 कल्पभेदाच्छतशिराः सतवारं प्रावेदितः । स प्रोक्तः स्वशिरोमिहिं शतद्रवभुजः कञ्चित् ॥४१॥
 तस्मादि हतवान् विष्णुस्त्वं तं मार्गे प्रतार्य । तव शब्देस्तटे लिंगं गोकर्णं रावणाख्यया ॥४२॥
 गृहीत्वा स्थापितं पूर्वं रावणोऽपि गृहं ययौ । मंदोदरीं हरेर्वाक्याल्लब्ध्वा मयसुतां शुभाम् ॥४३॥
 मातुः कार्यमसंपाद्य तूष्णीमेवातिलज्जितः । मन्दोदर्याऽकरोत्स्वीयं विवाहं तोषपूरितः ॥४४॥
 दृष्ट्वा कदा धनाढ्यश्वं पुष्पकस्थं तु कैकसी । पुत्रान् भिकारयामास यूयं यदा मृतोपयाः ॥४५॥
 मापत्न्यबंधु ये दृष्ट्वा जायन्ते नात्र लज्जिताः । ते मातृवचनं श्रुत्वा ययुर्गोष्णमृतनमः ॥४६॥
 दशवर्षसहस्राणि कुम्भकर्णोऽकरोत्तपः । विभीषणोऽपि धर्मात्मा मत्पथमपरायणः ॥४७॥

इसलिए तुम अपने स्थानेको वापस चले जाओ' ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ऐसा कहकर उसको उसके स्थानपर भेज दो । मन्दोदर शिवका यह वचन सुनकर रावणके पास गये ॥ ३२ ॥ उन्होंने अपने हाथसे उसका सिर धड़से जोड़कर शिवका वचन उसको कह सुनाया । रावण सुनकर भी उस रातको वहीं रहा और दूसरे दिन फिर उसी विधिसे शिवजीका गुणगान करने लगा । शिवजीने उस दिन भी अपना संदेश नन्दोके द्वारा रावण को कहला भेजा ॥ परन्तु रावणने फिर भी अपना गायन उसी प्रकार दस दिनतक जारी रक्खा । तब शंकरजी उसके उस भयानक कर्म तथा मनोहर गायनसे प्रसन्न हो गये और उससे कहा—वर मांगो । ऐसा कहकर शिवजीने उसका वह सिर भी धड़से जोड़ दिया । तब उसने शंभुसे वर मांगा कि आप मेरी माताके लिए आरम-लिंग तथा पत्नी बनानेके लिए मुझे पार्वतीजीको दे दीजिये । 'तथाऽस्तु' कहकर शिवजीने उसको वे दोनों भीज दे दो ॥ ३३-३७ ॥ जब उनको लेकर चलने लगा, उस समय शिवजी कहने लगे—हे वीर ! तुमने भुक्तको प्रसन्न करनेके लिये अपना सिर बार-बारसे काटा है । इसलिये मेरे कथनानुसार तुम्हारे दस सिर तथा बीस भुजायें ही जायेंगी ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ तब रावण प्रसन्नतापूर्वक सिर और बीस हाथवाला बनकर पार्वती शिवलिंग लेकर अपने स्थानकी ओर चला ॥ ४० ॥ कहीं-कहीं कल्पभेदसे रावण बार-बार मस्तक काटनेसे सौ सिर दो हाथोंवाला भी कहा गया है ॥ ४१ ॥ बादमें रास्तेसे ही विष्णुभगवान् रावणके हाथसे तुमको (पार्वतीको) छोन ले गये । तुम (पार्वती) भी श्रीहरिको बोला देकर उनसे हो गयीं । विष्णुकी तरह तुमने रावणके हाथसे शिवलिंग भी छोन लिया और उस लिंगको समुद्रके किनारेपर ही गोकर्ण नामसे स्थापित कर दिया । तब रावण खाली हाथ लौट गया और विष्णुके कथनानुसार भय राक्षसकी सुन्दरी पुत्री मन्दोदरी उसको प्राप्त हुई ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ माताके कार्यका न कर सकनेके कारण वह बहुत लज्जित हुआ और कुछ भी नहीं कह सका । यत्रात् मन्दोदरीके साथ विवाह करके वह मनुष्ट हुआ ॥ ४४ ॥ एक समय उसकी माता कैकसी घनपति कुबेरको पुष्पक विमानपर बैठा देखकर अपने पुत्रोंको भिकार-कर कहने लगी कि तुम लोग नपुंसक तथा मृतक सरीखे हो ॥ ४५ ॥ अपने सौतेले भाईका उत्कर्ष देखकर तुम लोगोंकी लज्जा नहीं आती ? माताके यह वचनको सुनकर वे तीनों पुत्रभीस गोकर्ण महादेवके पास गये ॥ ४६ ॥ वहीं कुम्भकर्णने हजार वर्ष तपस्या की । समस्त विभीषणने भी सत्यकथनप्रमाण होकर

पंचवर्षसहस्राणि पादांगुष्ठेन तस्थिवान् । दिव्यवर्षमहस्रं तु धृमाहरो दक्षाननः ॥४८॥
 पूर्णं वर्षसहस्रं स्वं शीर्षमग्नी जुहाव मः । एवं वर्षसहस्राणि नव तस्यातिचक्रमुः ॥४९॥
 अथ वर्षसहस्रे तु दशमे दशमं शिरः । छेत्तुकामस्य धर्मात्मा प्रयत्नोऽभूत्प्रजापतिः ॥५०॥
 उवाच वचनं ब्रह्मा वरं वरस्य कांक्षितम् । तदोवाच दशास्यस्तमवश्यत्वं वृणोम्यहम् ॥५१॥
 सुपणनामयज्ञेभ्यो देवेभ्यश्चामुरैरपि । त्वत्तः शमोर्महाविष्णोर्मानुषा मे तृणोपमाः ॥५२॥
 तथेत्युक्त्वा विधिस्तस्मै दश शीर्षाणि मंददौ । निर्माणाय सद्बुद्धिममस्त्वं ददौ मुदा ॥५३॥
 विमोहितं सरस्वत्या देवेन्द्रपदकांक्षिणम् । कुंभकर्णं विधिः प्राह वरं वरस्य वांछितम् ॥५४॥
 सोऽपि तं वरयामास निद्रांमयाणसिकां शुभाम् । पाप्मासीये चैकदिनेऽशनं ब्रह्माऽपि दत्तवान् ॥५५॥
 ततोऽन्तर्द्धानमगमद्विधिस्तेऽपि गृहं ययुः । सुमाली वरलब्धांस्तान् ज्ञात्वा दौहित्रमत्तमान् ॥५६॥
 पातालान्निर्भयः प्रायान्प्रहस्तायैर्भुवं सुखम् । मन्त्रिवाक्याद्दशास्योऽपि निष्कास्य धनदं बलार्५७॥
 लंकापुर्षा राक्षसैस्तु लंकागज्यं धकार सः । धनदः पितरं पृष्ट्वा त्यक्त्वा लङ्कां महायशाः ॥५८॥
 गन्वा कलासशिखरं तपमाऽप्यप्यच्छिन्नम् । तेन सख्यमनुवाप्य तेनैव परित्तितः ॥५९॥
 अलंका नगरीं तत्र निर्ममं विश्वकर्मणा । दिक्पालत्वंमनुवाप्य शिवस्य वरदानतः ॥६०॥
 रात्रिणो विद्युज्जिह्वाय ददौ शूर्पणखां तदा । पारिवर्हं ददौ तस्मै दंडकारण्यमुत्तमम् ॥६१॥
 मातृत्वसुः सुतान् बंधूंश्चिशिरःखरदूपात् । माहाय्यार्थं ददौ तस्मै तन्कांते तु मृतेऽचिरात् ॥६२॥
 कुंभीनसीं ददौ हर्षान्मधुर्दन्पाय गवणः । ददौ मधुवनं तस्मै पारिवर्हमनुत्तमम् ॥६३॥
 खड्गजिह्वाय तां कौचीं ददौ प्रेम्णा दक्षाननः । परलङ्कां पारिवर्हं ददौ तस्यै मनोरमम् ॥६४॥

पार्वती अंगुष्ठपर पाँच हजार वर्षतक खड़ा रहकर तप किया और दस हजार वर्षतक केवल घूम पंकर दशाननने तपस्था की ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ हजार वर्ष पूरे हो जानेपर वह अपना एक तिर काटकर अग्निमें होम देता था, ऐसा करते-करते नौ हजार वर्ष बीत गये ॥ ४९ ॥ दस हजार वर्ष पूरे हुए और रावण अपना दसवाँ तिर काटकर आगमें हवन करनेके लिए तैयार हुआ, तब प्रजापति ब्रह्मा उसपर प्रसन्न हुए ॥ ५० ॥ ब्रह्माने कहा—हे ब्रह्मा ! तू अपना इच्छित वर माँग । तब रावणने कहा कि मैं गहड़मे, सर्पोंसे, यक्षोंसे, देवताओंसे, असुरोंसे, आप (ब्रह्मा) से, जम्भुसे तथा विष्णुसे भी अवच्छिन्नका वर माँगता हूँ और मनुष्य तो मेरे लिए तिनकेके बराबर ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ 'तथास्तु' कहकर ब्रह्माने रावणको सिर दिये और विभीषणको सुबुद्धि तथा अमरत्व दिया ॥ ५३ ॥ इन्द्रपदको रखनेवाले कुम्भकर्णसे ब्रह्माने कहा कि अपना अभिलषित वर माँगो ॥ ५४ ॥ तब सरस्वतीके द्वारा माँहमें पड़कर कुम्भकर्णने महोने तककी नंद माँगा । तदनन्तर ब्रह्माने उसको छः महोनेतक सेना और फिर भोजन करना तथा छः महोनेतक फिर शयन का वर दिया ॥ ५५ ॥ तदनन्तर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये और वे लोग भी अपने घर चले गये । सुमाली अपने दौहित्रोंको वर प्राप्त किये हुए जानकर प्रसन्न आदिके साथ वत्साल्यमे निकटकर निर्भय भावसे पृथ्वीपर विचरने लगा ॥ मन्त्रीके कथनानुसार रावणने लंकामें कुबेरको निकलवा दिया और वहाँ स्वयं राक्षसोंको लेकर लंकाका राज्य करने लगा । तब महान् यशस्वी कुबेरने अपने पिताने पूछकर लङ्काको छोड़ दिया और कैलासके शिखरपर जाकर तपश्चर्यासे शिवको प्रसन्न किया । उन्होने उनसे मित्रता जोड़ी और उन्हींके कहनेसे वहाँ विश्वकर्मा द्वारा अलंका पूरी बनवायी और शिवजीके वरदानसे दिक्पालकी पदवी प्राप्त की ॥ ५६-६० ॥ बादमें रावणने अपनी सूर्यपत्नी नामकी बहिन विद्युज्जिह्वको आह्वान की और उत्तम दहकारण उसको दहेजमें दे दिया ॥ ६१ ॥ योड़े ही दिनों बाद जब उसका पति मर गया । तब रावणने अपनी मौसीके लड़के त्रिशिरा-खरदूषण आदिको उसकी सहायताके लिए भेजा ॥ ६२ ॥ रावणने कुम्भोन्मत्ता नामकी बहिन मधु दैत्यको आह्वान किया और मधुवन उसको दहेजमें दिया ॥ ६३ ॥ दशाननने अपनी कौची नामकी बहिन खड्गजिह्व राक्षसकी

वैरोचनस्य दौहित्रीं वृत्रज्वालेति विश्रुताम् । स्वयंदत्तां सुदोवाह कुम्भकर्णाय रावणः ॥६५॥
 गन्धर्वराजस्य सुतां शैलपस्य महात्मनः । विभीषणस्य भार्यायै सरमां ॥ सुदाञ्जहत् ॥६६॥
 ततो मन्दीदरी पुत्रं मेघनादमजीजनत् । जानमात्रस्तु यो नादं मेघवत्प्रचकार ह ॥६७॥
 ततः सर्वेऽब्रुवन्मेघनादोऽयमिति वै जनाः । गुहायां कुम्भकर्णोऽपि निद्राव्याप्तो विनिद्रितः ॥६८॥
 ततः स रावणश्चापि देवगन्धर्वकिन्नरान् । हन्वा ऋषीश्वरान्नागान् स्त्रियस्तेषामपाहरत् ॥६९॥
 धर्मदोऽपि च तच्छ्रुत्वा रावणस्याक्रमं तदा । अधर्मं मा कुरुष्वेति दूतवाक्यैर्न्यवारयत् ॥७०॥
 ततः क्रुद्धो दशग्रीवो जगाम घनदालयम् । विनिजित्य धनाढ्यं जहार तस्य पुष्पकम् ॥७१॥
 अलकायां यदाऽऽसीन्म सेनया रावणस्तदा । निश्वायामेकदा आतुः कुबेरस्य सुतेन हि ॥७२॥
 प्रार्थिता सा पुरा रम्भा चकार नियतं दिनम् । अज्ञातपृष्ठा वेगेन यया स्वान्नूपुरस्वना ॥७३॥
 रावणोऽपि च तां दृष्ट्वा भलादेव प्रभुक्तवान् । चिगन्मुक्ताऽप्य वृत्तं सा कौबेरं संन्यवेदयत् ॥७४॥
 क्रुद्धः सोऽपि ददौ श्रापं रावणाय महान्मने । अद्यारभ्य दशास्यश्वेद्विरक्तां स्त्रियमुत्तमाम् ॥७५॥
 हठाद्भोक्ष्यति चेत्तर्हि क्षणमात्रान्मरिष्यति । इति श्रापं रावणोऽपि शुभ्राव चरवाक्यतः ॥७६॥
 तदारभ्य स्त्रियं काममनिच्छन्तीं न धर्ययन् । ततो यमं च वरुणं निजित्य ममरेऽसुरः ॥७७॥
 स्वर्गलोकमगात्पूजं देवराजजिघांसया । ततो रावणमभ्येत्य बन्धं त्रिदशेश्वरः ॥७८॥
 तच्छ्रुत्वा सहसाऽऽगत्य मेघनादः प्रतापवान् । कृत्वा युद्धं महावीरं जित्वा त्रिदशपुङ्गवम् ॥७९॥
 इन्द्रं घृत्वा दृढं बद्ध्वा मेघनादो महाबलः । मोचयित्वा स्वपित्रं गृहीत्वेन्द्रं ययौ पुरीम् ॥८०॥
 तं मोचयामास देवेन्द्रं मेघनादतः । दत्त्वा वरान्नाश्रुसाध ब्रह्मा स्वभवनं ययौ ॥८१॥

दी तथा उसको दहेजमें अतिशय मनोहर परलंका पुरी दे दी ॥ ६४ ॥ वैरोचनकी दौहित्री (नसिनी) प्रसिद्ध
 वृत्रज्वालाको उसके पिताने कुम्भकर्णके लिये रावणको दी ॥ ६५ ॥ महात्मा गन्धर्वराज शैलपकी सुता
 सरमाको रावण विभीषणके लिये ले आया ॥ ६६ ॥ तदनन्तर मन्दीदरीसे मेघनाद पुत्र उत्पन्न हुआ । जो
 कि पैदा होनेके साथ ही मेघकी तरह गर्जन करने लगा था ॥ ६७ ॥ इसीलिए सब लोग उसको मेघनाद
 कहने लगे । कुम्भकर्ण गुफामें जाकर सो गया ॥ ६८ ॥ उधर रावण देव, गन्धर्व, किन्नर, ऋषीश्वर और
 नागोंको मार-मारकर उनको स्त्रियोंका अपहरण करने लगा ॥ ६९ ॥ कुबेरने रावणका प्रकार
 दुराधार सुना, तब उन्होंने अपने दूतों द्वारा कहला भेजा कि हे रावण ! तू ऐसा अधर्म करना छूड़ दे
 ॥ ७० ॥ यह सुना तो रावण और भी क्रुद्ध होकर कुबेरके यहाँ गया तथा उनको ओतकर पुष्पक विमान
 छान लाया ॥ ७१ ॥ जब रावण अपनी सेनाके साथ अलकापुरीमें था । उसी समय रावणके भाई कुबेरके
 पुत्र नलकूबरकी प्रार्थना श्रोकार करके रम्भा अप्सरा युद्धके वातावरणको न जानतेके एकाएक
 नियत दिनपर आकाशसे वहाँ आ पहुँचा । उसके पीछेमें सुन्दर एवं मनोहर नूपुरकी ध्वनि हो रही था
 ॥ ७२ ॥ रावणने उसको सहसा देखकर उसके साथ हठात् भोग किया । बहुत देरके बाद उससे मुक्त हो
 रम्भाने जाकर वह सब हाल कुबेरके पुत्रको कह सुनाया ॥ ७३ ॥ तब क्रुद्ध नलकूबरने रावणको शाप देते
 हुए कहा--“हे दशास्य ! आजसे यदि तूम् किसी भी तूम्को न चाहनेवाली भली स्त्रीसे हठात् भोग करोगे
 तो उसी क्षण मर जाओगे ।” इस शापको दूतके मुखसे रावणने भी सुन लिया ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ तबसे
 रावणने अपनेसे विमुक्त स्त्रीका अपमान करना छोड़ दिया । तदनन्तर युद्धमें यमराज तथा वरुणको
 जीतकर देवराज इन्द्रको मारनेकी इच्छासे शीघ्र हो स्वर्ग गया । त्रिदशेश्वर इन्द्रने रावणके सामने
 जाकर उसको कैद कर लिया ॥ ७६-७८ ॥ पित्तको कैद किया हुआ सुनकर प्रतापी मेघनाद शीघ्र वहाँ
 जा पहुँचा तथा भयानक युद्ध करके इन्द्रको जीत लिया ॥ ७९ ॥ तब महाबलवान् मेघनादने अपने पित्त-
 को छुड़ा लिया और इन्द्रको पकड़ तथा बाँधकर अपने नगरमें ले लाया ॥ ८० ॥ पश्चात् ब्रह्मने इन्द्रको

इन्द्रजिह्वा तस्याभूत्तदारुणं रघूत्तम । रावणादपि यश्चासीद्बलिष्ठः समरप्रियः ॥८२॥
 मेघनादादयश्चेति तस्मात्प्रोक्तं तवाग्रतः । एतेर्ध्वनीश्वरैः पूर्वं तन्निमित्तं मयेरितम् ॥८३॥
 रावणो विजयी लोकान्सर्वान् जित्वा क्रमेण तु । जित्वा बह्विं निर्ऋतिं च वायुमीशं ययौ मुदा ॥८४॥
 कैलासं तोलयामास बाहुभिः परिषोपमैः । तदा भीता शिवं देवीं दोम्प्यौ सा परिष्वजे ॥८५॥
 शिवोऽपि वामपादाजुष्मेन कैलासमूर्दनि । भारं दत्त्वा गिरिं स्वयं चकाराथ शनैः शनैः ॥८६॥
 तदा तद्गिरिसम्भूतबल्लिमधिषु दोर्लताः । विश्रुत्वापि रावणस्य ता आमन्नर्हिता क्षणात् ॥८७॥
 स तेनाक्रन्दयामास स्तम्भसम्बद्धचोरधनुः । तदा नन्दीश्वरेणापि शमोऽयं रावणेश्वरः ॥८८॥
 चञ्चलं कर्म यस्मात्सं कपितुन्वमनोऽसुर । वानरगर्मानुपैथैव नारां गच्छामि कोपितैः ॥८९॥
 ततः कालान्तरेणायं शम्भुर्नैव विमोचितः । शमोऽप्यगणयन्वाक्यं ययौ हैहयपत्तनम् ॥९०॥
 सहिर्गतं नृपं श्रुत्वा सहस्राजुननामकम् । मध्याह्नं रावणश्चक्रे रेवायां शिवपूजनम् ॥९१॥
 अधस्तस्मात्तर्मदायां भुजपाशैश्च सेतुवत् । स्वम्भयामास नीर्गन्धं जलक्रीडां गतोऽर्जुनः ॥९२॥
 वेष्टितोऽयुतनारीभिस्ततोयं रावणं तदा । प्लावयामास ध्यानस्थं ज्ञानस्वकर्मणाऽर्जुनः ॥९३॥
 सुक्त्वा ध्यानादिकं सर्वं युद्धं चक्रेऽर्जुनेन सः । तेन बद्धो दशग्रीवः कण्ठे रन्तुं मुनाय तम् ॥९४॥
 ददौ दशाननं ग्रीव्या काष्ठनिर्मितहस्तिवत् । क्रियत्कालान्तरमेव पुलस्त्येन स मोचितः ॥९५॥
 ततोऽतिथलमासाथ जिघांसुर्हृदिपुङ्गवम् । सागरे ध्यानमासीनं पद्माद्रागे शनैर्ययौ ॥९६॥
 धृतस्तेनैव कक्षेण वालिना दशकन्धरः । भ्रामयित्वा तु चतुरः समुद्रान् रावणं हरिः ॥९७॥

मेघनादसे छुड़ाया और रोंक्षसोंको वर देकर ब्रह्मा अपने भवनको चले गये ॥ ८१ ॥ हे रघूत्तम ! तबसे मेघनाद-
 का इन्द्रजित् नाम पड़ा । जो कि रावणसे भी अधिक बलवान् तथा युद्धलंगुन था ॥ ८२ ॥ इसीलिए मैंने
 आपके सामने मेघनादका पहले लिखा । इन ऋषिपौत्रोंने इसका कारण पहले ही दिया था ॥ ८३ ॥
 विजयशील रावणने क्रमशः सब लोकोंको जीतकर बह्वि, निर्ऋति, वायु तथा ईशानको जीत लिया और बादमें
 अपनी अंगोंके समान भुजाओंसे कैलास पर्वतको उठाने लगा । उस समय डरकर पार्वती देवी शिवजीसे
 लिपट गयी ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ पश्चात् जिवने अपने बायें पाँके अंगुठेसे पर्वतको दबा दिया । जिससे
 कैलास धीरे-धीरे नीचे धँसने लगा ॥ ८६ ॥ उस समय पर्वतके नीचे आ जानेसे रावणकी बीसों भुजायें
 दब गयीं और वह खम्भेसे बँधे हुए चोरकी तरह चिल्लाने लगा । उस समय नन्दीश्वरने भी रावणको
 शाप देते हुए कहा— ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ हे असुर ! तुम्हारेमें वानरके समान चंचलता होनेके कारण क्रुद्धवानरों तथा
 मनुष्योंसे ही तुम्हारी मृत्यु होगी ॥ ८९ ॥ बहुत कालके बाद शिवजीने उसे छुड़ा दिया । छूटनेके साथ ही
 वह शापको भूल गया और शिवजीके वचनका तिरस्कार करके युद्ध करनेके लिए हैहयराजके नगर-
 को गया ॥ ९० ॥ वहाँ जाकर पूछा तो ज्ञात हुआ कि सहस्राजुन नामवाला वहाँका राजा वहाँ उपस्थित
 नहीं है । तब रावण नर्मदा नदीके किनारे जाकर उसके बीचमें एक टापूपर बैठकर मध्याह्न समयमें शिवजी-
 का पूजन करने लगा ॥ ९१ ॥ उससे नीचकी ओर राजा सहस्राजुन जलक्रीडा रहा था । उसने अपनी
 भुजारूपी सेतुसे खेल-खेलमें उस नदीके जलप्रवाहको रोक दिया । उस समय हजारों स्त्रियें उसे घेरकर
 जलक्रीडा कर रही थीं । परन्तु उस जलप्रवाहके रुक जानेसे शिवके ध्यानमें स्थित रावण जलमें बहने
 लगा । इस घटनाको देखकर उसने ज्ञान लिया कि यह काम सहस्राजुनका है । यह जानते ही वह तुरन्त
 ध्यान छोड़कर सहस्राजुनके पास गया और उसको युद्धके लिए ललकारने लगा । तब उसने रावणके गलेमें
 रुस्सी डालकर बाँध लिया और अपने पुत्रको खेलनेके लिए लकड़ोंके बने हुए हाथीकी तरह दे दिया । कुछ
 दिनोंके पुलस्त्य मुनिने जाकर उसको वहाँसे छुड़ाया ॥ ९२-९५ ॥ बादमें रावण बल संचय करके
 वानरश्रेष्ठ बालीको मारनेकी इच्छासे समुद्रके किनारे ध्यान धरकर बैठे हुए वानरराजके पास जाकर धीरेसे पीछे-

किष्किंश्वां स्वां ययौ वेगादग्रे दृष्ट्वांगदं त्रिशुम् । प्रीत्या तं चुंबनं दातुं दोर्म्यां कक्षां न्यवेशयत् ॥९८॥
 तदा बाहोश्चंचलत्वात्कक्षात्प पतितो भुवि । तं दृष्ट्वा स्वजनान् स्त्रीषु दर्शयामास वै मुदा ॥९९॥
 प्रेक्षस्योपरि पुत्रस्य वचन्धाधोमुखं विरम् । आसीत्सोऽङ्गदमूत्रस्य धारार्धोत्ताननोज्जुरः ॥१००॥
 स्वयमेव ततो वाली भद्रकाले गते सनि । ददावाज्ञां दशास्याय तेन सख्यं चकार सः ॥१०१॥
 रावणः स पुनः स्थित्वा पुष्पके व्यचरत्सुखम् । पश्यमानाविधान्वीरान् ययौ पातालमुत्तमम् ॥१०२॥
 तत्र दृष्ट्वा पुरं रम्यं बलेः कोटिरभिप्रभम् । तप्तजोहवतेजस्तपुष्पकं न चचाल वै ॥१०३॥
 ततः स्वयं ययौ तूष्णीमेक एव दशाननः । पुरं प्रतिपद्यतद्वारि त्वा ददर्श च वामनम् ॥१०४॥
 कोटिसूर्यप्रतीकाशं पीतकीशेयवाससम् । चतुर्भुजं सपत्नीकं द्वाररक्षणतत्परम् ॥१०५॥
 रथां प्राह स दशग्रीवः कोऽत्र राजाऽस्ति मां वद । तूष्णीं स्थितो वामनस्त्वमपि तं नोत्तरं रिपोः ॥१०६॥
 तदा त्वां बधिरं मन्वा स विवेश बलेर्गृहम् । तत्र दृष्ट्वा बलिं पत्न्या सारिक्रीडनतत्परम् ॥१०७॥
 तस्थौ तत्र क्षणं तूष्णीं बलेर्लक्ष्मीं न्यलोकयत् । तावद्दूरे बलेर्हस्तान्क्रीडापासोऽपतद्भुवि ॥१०८॥
 तमानेतुं रावणाय बलिराज्ञापयत्तदा । रावणोऽपि तमानेतुं ययौ पामांतिकं जयात् ॥१०९॥
 प्रोच्चचाल भुवः पासं करेण न चचाल सः । विंशहोमिः क्रमेणामी यावत्पासं प्रचालयत् ॥११०॥
 तावदंगुलयः सर्वाः पासभारेण पीडिताः । न निष्क्रमुः पासतलाच्चूर्णिता रुधिगान्मुताः ॥१११॥
 तदा चुक्रोश दीर्घं स विरकालं दशाननः । ततो विहस्य दास्या तं पासमानीय वै बलिः ॥११२॥
 विविधक् कृत्वा रावणं तं गृहान्निष्काशयद्बहिः । ततो धृतो राजदूर्तस्तदुच्छिष्टैस्तु पोषितः ॥११३॥

की और जा छड़ा हुआ ॥ ९९ ॥ तब वालीने उसको काँखमें उलटा दबाकर चारों समुद्रोंके चौतरफा घुमाया ॥ १०० ॥ पश्चात् अपनी किष्किंश्वा पुरीमें ले गया । वहाँ जाकर उसने अपने पुत्र अङ्गदको देखा । ज्यों ही वह अङ्गदको प्रेमसे चुम्बनेके लिये अपनी भुजाओंसे उसे कमरपर बैठाने लगा ॥ १०१ ॥ त्यों ही हाथोंके हिलनेसे रावण बाँससे नीचे जमीनपर गिर पड़ा । उसको देखकर त्रिपे प्रसन्नतापूर्वक स्वजनोको दिखलाने लगी ॥ १०२ ॥ उसके ऊपर पुत्र अङ्गदका पालना बाँधकर नीचे रावणका मुख करके उन्होंने बहुत दिनोंतक बाँधकर रक्खा । जिससे रावणका मुख अङ्गदकी मूत्रधारासे धुलता रहा ॥ १०३ ॥ तदनन्तर स्वयं वालीने ही रावणको जानेकी आज्ञा दे दी और उससे मित्रता कर ली ॥ १०४ ॥ रावण पुनः पुष्पक विमानपर सवार होकर आनन्दके साथ विचरने लगा । अनेक वीरोंको देखता हुआ वह पातालमें जा पहुँचा ॥ १०५ ॥ वहाँ कोटिसूर्यके सदृश प्रकाशमयी उस नगरीके तेजसे प्रतिहत होकर पुष्पक विमानकी गति रुक गयी ॥ १०६ ॥ उससे उतरकर दशानन चुपचाप अकेला ही पुरीकी ओर चल पड़ा । उसने पुरीमें प्रवेश करनेके बामनरूपधारी आशको देखा ॥ १०७ ॥ करोड़ों सूर्योंके तेजस्वी आपने पीताम्बर धारण कर रक्खा था । आप चतुर्भुज होकर लक्ष्मीके साथ वहाँ रहते हुए राजा बलिके द्वारकी रक्षा कर रहे थे ॥ १०८ ॥ उस दशग्रीवने आपसे पूछा कि इस नगरका राजा कौन है, बताओ । रावण कुछ देर चुपचाप खड़ा रहा, पर आपने उसे अपना समझकर कुछ उत्तर नहीं दिया ॥ १०९ ॥ तब आपको बहुत समझकर वह बलिके भवनमें घुसा । वहाँ उसने राजा बलिको अपनी स्त्रीके साथ चौसर खेलते देखा ॥ ११० ॥ वहाँ चुपकेसे खड़ा होकर वह बलिकी राज्यलक्ष्मीको देखता रहा । इतनेमें राजा बलिके हाथसे छटककर पाँसा दूर जा गिरा ॥ १११ ॥ उसी समय बलिने रावणको उस पाँसेको उठा लानेके लिए कहा । रावण भी उसे उठानेके लिये भीघ्र ही उसके पास आ पहुँचा ॥ ११२ ॥ वह उसे एक हाथसे उठाने लगा । पर वह पाँसा हिल नहीं । तब रावणने दो, तीन, चार करके बाँसों हाथोंसे उस पाँसेको उठानेकी चेष्टा की, परन्तु तो भी वह नहीं हिला ॥ ११३ ॥ प्रस्युत उसके सब हाथोंकी अंगुलिये पाँसेके दोमसे दब गयीं और कुचल जानेसे खून निकलने लगा, परन्तु निकली नहीं ॥ ११४ ॥ अतएव दशानन बहुत जोरसे चिल्लाने लगा ।

अश्वानां शकुतं नीत्वा प्राधिपत्यस्य हं बहिः । एकदा द्वापरे मत्वा प्रार्थयामास त्वां मुहुः ॥११४॥
 स्वया स्वपादलम्नः स्वपदांगुष्ठेन खेऽपितः । तदाऽतिमुदितो लंकां चिरकालेन रावणः ॥११५॥
 ययौ मेने निजं जन्म द्वितीयं जातमद्य वै । रावणः परमप्रीत एव लोकान्महाबलः ॥११६॥

कर्तुं तान्स्ववशाधित्यं बभ्राम पुष्पकस्थितः ।

इष्टकदाञ्च साकेते पूर्वजं तव दीक्षितम् ॥११७॥

अनरण्यं संगरेण चकार पतितं रणे ।

तदा श्रमोऽनरण्येन मदंशे रघुनन्दनः ॥११८॥

भूत्वा त्वां संगरेणैव सकुटुम्बं बधिष्यति । इत्युक्त्वा स गतो नाकं रावणोऽपि पुरीं ययौ ॥११९॥

सनत्कुमारमेकांते सन्निराक्ष्यैकदाऽश्वरः । नत्वा पप्रच्छ देवेषु को वरश्चेति सादरम् ॥१२०॥

मुनिः प्राह महाविष्णुं तच्छ्रुत्वा प्राह तं पुनः ।

विष्णुना ये हता युद्धे राक्षसाद्या लभन्ति काम् ॥१२१॥

मतिं चेति मुनिः प्राह ■ मुक्तिं यांति दुर्लभाम् ।

पुनः पप्रच्छ तं नत्वा केनोपायेन वै हरेः ॥१२२॥

मविष्यत्यत्र मे मृत्युस्तदा तं मुनिरब्रवीत् । त्रेतायां नगरूपेण रामो विष्णुर्भविष्यति ॥१२३॥

अयोध्यायां तदा तेन कृत्वा वैरं सुदारुणम् । तस्माद्द्वयं कुरुष्व न्वमात्मनः परमात्मनः ॥१२४॥

तेन गच्छसि मुक्तिं त्वं तच्छ्रुत्वा स दक्षाननः ।

विरोधार्थं जनकजामहरद्वौनमीतदात् ॥१२५॥

अश्लोके रक्षिता तेन मातृवत्स्वबधेच्छया ।

राजा बलिकी एक बासीने शीघ्र पसिको उठाकर राजाको दे दिया ॥ ११२ ॥ बलिके उसी समय रावणको बिस्कार-
 कर अपने महलसे निकाल दिया । बाहर राजा बलिके दूतोंने उसको फिर पकड़ लिया और अपने जूठनसे
 उसका पोषण करने लगे ॥ ११३ ॥ रावणको घोड़ोंकी लौद उठा-उठाकर बाहर फेंक जानेका काम सोंपा गया ।
 कुछ दिनों बाद एक दिन रावण द्वारपर स्थित आप विष्णुके पास आकर नगरके बाहर जाने देनेकी प्रार्थना
 करने लगा और आपके चरणोंपर गिर पड़ा । तब आपने अपने पाँवके अंगूठेसे उसको आकाशकी ओर
 उछाल दिया । जिससे रावण बहुत कालके बाद प्रसन्नतापूर्वक अपना लङ्कामें आ पहुँचा ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ वह
 आश मेरा दूसरा जन्म हुआ है, ऐसा मानने लगा । तब बली रावण पुनः प्रसन्न होकर पूर्ववत् सब लोकोंको
 अपने वशमें करनेकी इच्छासे पुष्पकपर चढ़कर निर्यप्रति इधर-उधर भ्रमण करने लगा । उसने एक दिन
 अयोध्यामें आपके पूर्वज दीक्षित (सोमयागकी दीक्षा लिये हुए) राजा अनरण्यको देखा । उनके साथ युद्ध
 करके रावणने रणमें उन्हें हरा दिया । तब अनरण्यने उसको शाप दिया कि मेरे वंशमें ■ लेकर रघुनन्दन
 राम सकुटुम्ब तुमको मारेंगे ॥ ११६-११८ ॥ इतना कहकर वे स्वर्ग सिधार गये तथा रावण अपने नगरको चला
 गया ॥ ११९ ॥ उस राक्षसने एक दिन सनत्कुमारको नमस्कार करके एकान्तमें पूछा—हे मुने ! कृपा करके मुझे
 यह बताइए कि देवताओंमें सबसे श्रेष्ठ देवता कौन है ? ॥ १२० ॥ मुनिने विष्णुको श्रेष्ठ बताया । यह सुनकर वह
 असुर रावण फिर बोला कि विष्णुने आजतक जिन राक्षसोंको मारा है, वे किस गतिको प्राप्त हुए हैं ? ॥ १२१ ॥
 मुनिने कहा—वे सब उत्तम तथा दुर्लभ मुक्तिको प्राप्त हुए हैं । उस राक्षसने फिर प्रश्न किया कि किस उपायसे
 मेरी मृत्यु श्रीहरिके हाथों हो सकती है ? मुनिने उसके प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा कि त्रेतायुगमें विष्णु
 अयोध्यामें मनुष्यका रूप धारण करेंगे ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ उस समय उनसे घोर वैर करके उन परमात्मा
 रामके हाथों तुम अपना वध करवा लेना ॥ १२४ ॥ उससे तुम मुक्तिपदको प्राप्त हो जाओगे । यह बात
 मनमें रक्कड़ रावणने रामके साथ विरोध करनेके लिए ही गौतमी नदीके तटसे जनकनन्दिनी सीताका

एकदा नारदं दृष्ट्वा नत्वा पप्रच्छ रावणः ॥१२६॥

भगवन् ब्रूहि मे योद्धुं कुत्र सन्ति महाबलाः ।

योद्धुमिच्छामि बलिभिस्त्वं जानासि जगत्त्रयम् ॥१२७॥

मुनिर्भ्यात्वा चिरात्प्राह श्वेतद्वीपनिवासिनः । महाबला महाकायास्तत्र याहि महामते ॥१२८॥
विष्णुपूजारता ये वै विष्णुना निहताश्च ये । त एव संजाता अजेयाश्च सुरासुरैः ॥१२९॥

तच्छ्रुत्वा रावणो वेगान्मग्निभिः पुष्पकेन तेः ।

योद्धुकामो ययौ गर्वाच्छ्वेतद्वीपातिकं मृदा ॥१३०॥

तत्प्रभाहततेजस्कं पुष्पकं नाचलन्पुरः ।

त्यक्त्वा विमानं प्रययौ स्वयमेव दशाननः ॥१३१॥

प्रविशन्नेव तद्द्वीपं घृतो हस्तेन योषिता ।

गच्छन्त्या कस्यचिद्वास्या पुष्पाण्यानयितुं वनम् ॥१३२॥

तथा पृष्टः कुतः कोऽसि प्रेषितः केन वा वद । इत्युक्त्वा लीलया स्त्रीभिर्हसन्तीभिर्मुहुर्मुहुः ॥१३३॥

मुखेषु ताडितो हस्तैर्भ्रामितोऽधोमुखं चिरम् । वृत्तैकं तत्पदं ताभिः क्षिप्तः कन्दुकवन्मुहुः ॥१३४॥

परस्परं हि क्रोडद्भिः कया त्यक्तस्तु लीलया । पपात परलंकायां कौचायाः शीचकूपके ॥१३५॥

कृच्छ्रादस्ताद्विनिर्मुक्तस्तासां स्त्रीणां दशाननः ।

आश्चर्यमनुलं लब्ध्वा चिन्तयामास दुर्मतिः ॥१३६॥

विष्णुना ये हता युद्धे तेषामेतादृशं बलम् । तर्क्षत्र निहतस्तेन श्वेतद्वीपं व्रजाम्यहम् ॥१३७॥

मयि विष्णुर्यथा कुप्येत्तथा कार्यं करोम्यहम् ।

इति निश्चित्य वैदेहीं जहार रावणो वनात् ॥१३८॥

हरण कर लिया था ॥ १२५ ॥ अपने वधकी इच्छासे ही उसने सीताको अशोकवनमें रखकर माताके समान की थी । एक बार रावणने नारद मुनिको देखकर नमस्कार किया और पूछा—॥ १२६ ॥ हे भगवन् ! आप कृपा करके यह बताइये कि मुझसे लड़नेवाले बलवान् लोग कहाँ हैं ? मैं बलवानोंसे युद्ध करना चाहता हूँ । आप तीनों लोकके लोगोंका जानते हैं ॥ १२७ ॥ मुनिने तनिक देर ध्यान घरके कहा कि श्वेतद्वीपके लोग बड़े भारी शरीरवाले होते हैं और वे नित्य भगवान्की पूजामें लगे रहते हैं। जो लोग विष्णुके हाथों मारे जाते हैं, ही सुरों असुरोंसे अजेय होकर वहाँ जन्म लेते हैं ॥ १२८ ॥ १२९ ॥ सुनकर प्रसन्न रावण अपने मन्त्रियोंके साथ पुष्पक विमानपर सवार होकर गर्व तथा वेगके उन लोगोसे युद्ध करनेकी इच्छासे श्वेतद्वीपकी ओर चल पड़ा ॥ १३० ॥ परन्तु उस द्वीपकी कान्तिसे चौंघियाकर उसका विमान रुक गया । रावण विमान छोड़कर पेंदल चलने लगा ॥ १३१ ॥ द्वीपमें घुसते ही एक स्त्रीने उसको एक हाथसे पकड़ लिया । वह किसीकी दासी थी और वनमें पुष्प लेने जा रही थी ॥ १३२ ॥ उस स्त्रीने रावणसे पूछा कि तू कौन है और तुझे यहाँ किसने भेजा है ? बता । इतना कहकर कुछ स्त्रियाँ बारम्बार हँसकर लीलापूर्वक उसके मुखपर तमाचे लगाने लगीं । बादमें उसका पाँव पकड़ तथा उसको औंघे सिर घुमाकर गेंदकी भाँति दूर फेंक दिया ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ आपसमें एक दूसरेके साथ खेलती हुई किसी एक स्त्रीने ही यह काम किया था । इस प्रकार फेंकनेपर रावण परलंकामें कौचाके शौचालयमें जा गिरा ॥ १३५ ॥ इस प्रकार रावण उन स्त्रियोंके हाथोंसे बड़ी कठिनाईसे छूटा और आश्चर्यचकित होकर बड़ दुष्ट विचारने लगा—॥ १३६ ॥ ओहो ! विष्णु जिनको मारते हैं, वे लोग कितने बलवान् हो जाते हैं । इसलिए भी उनसे मारा जाकर श्वेतद्वीपमें जाऊँगा ॥ १३७ ॥ अब वही काम करूँगा कि जिससे विष्णु मेरे ऊपर क्रुद्ध हों । यही सोचकर वनमें रावणने

जानन्नेवं महालक्ष्मीं स जहारावनीसुताम् ।

मातृवत्पालयामास स्वतः कांसन्वयं निजम् ॥१३९॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

बालिसुग्रीवयोर्जन्म भोतुमिच्छामि खन्मुखात् । स्वीद्रीं वानराकारौ जज्ञात इति तच्छ्रुतम् ॥१४०॥

अगस्त्य उवाच

मेरौ स्वर्णमये पूर्वं समायां ब्रह्मणः कदा । नेत्राभ्यां पतितं दिव्यमनंदाधुजलं तदा ॥१४१॥

तद्गृहीत्वा करे ■■■ भ्यात्वा किञ्चित्तदत्यजत् ।

भूमौ पतितमात्रेण तस्माज्जातो महाकपिः ॥१४२॥

तमाह द्रुहिणो वत्स त्वमत्र वस सर्वदा ।

एवं बहुतिथे काले गतेर्भविष्यति सुधीः ॥१४३॥

कदाचित्पर्यटन्मेरौ फलमूलार्थमुद्यतः । अपश्यदिव्यसलिलां शर्पीं मणिशिलाचिताम् ॥१४४॥

पानीयं कतुमगमत्तत्र छायायाम् कपिम् । दृष्ट्वा प्रतिकपिं मत्वा निपशात जलांतरे ॥१४५॥

तत्रादृष्ट्वा हरिं शीघ्रं बहिरुत्प्लुत्य संययौ । अपश्यत्सुन्दरीं नारीमात्मानं विस्मयं गतः ॥१४६॥

ततो ददर्श मधना सोऽस्यजदीर्यमुत्तमम् । तामप्राप्यैव तदीर्यं बालदेशेऽपतद्भुवि ॥१४७॥

बालो समभवत्तत्र शक्रतुल्यपराक्रमः ।

मानुरप्यागमत्तत्र तदानीमेव भाषिणीम् ॥१४८॥

दृष्ट्वा कामवशो भूत्वा ग्रीवादेशेऽसृजन्महत् । नाजं तस्यास्ततः सद्यो सुग्रीवो बलवानभूत् ॥१४९॥

ब्रह्म यं समादाय गत्वा सा निद्रिता कश्चित् । प्रभातेऽपश्यदात्मानं पूर्ववद्धानराकृतिम् ॥१५०॥

तद्भुत्तं तु विधिः श्रुत्वा किञ्चिदाराज्यमुत्तमम् ।

ददौ स वानसेन्द्राय पुत्राभ्यां तत्र संस्थितः ॥१५१॥

वैदेहीका हरण कर लिया ॥ १३८ ॥ उसने यह भी जान लिया था कि ये साक्षात् बबनिसुता लक्ष्मी हैं । इसीलिए उसने अपने बपकी इच्छा करके साताको माताके समान पाला था ॥ १३९ ॥ श्रीरामचन्द्र बोले—हे मुने ! मैं आपके मुखसे बालि और सुग्रीवके जन्मकी कथा सुनना चाहता हूँ । मैंने सुना है कि स्वयं सूर्य तथा इन्द्र वानराकार बालि-सुग्रीवके रूपमें उत्पन्न हुए थे ॥ १४० ॥ अगस्त्य मुनि बोले—मेरु पर्वतके स्वर्णशिलरूपर एक बार भरी सपनामें सहसा ब्रह्माके नेत्रसे दिव्य आनन्दाधु निकल पड़ा ॥ १४१ ॥ ब्रह्माजीने उसको हाथमें ले ■■■ कुछ भ्रान्त धरनेके पश्चात् जमीनपर डाल दिया । गिरनेके साथ ही उससे एक महान् कपि उत्पन्न हो गया ॥ १४२ ॥ तब ब्रह्माजीने उससे कहा—हे वत्स ! तুম सदा यहीं रहो । यहीं रहते हुए कुछ दिन दोतनेपर वह ऋक्षविरजा कपि किसी समय मेरु पर्वतपर घूमता-फिरता फल-मूल आदिके लिए एक वनमें जा पहुँचा । उसने वहाँ मणिकी शिलाओंमें बनी हुई त्वच्छ जलवासी एक शायली देखा ॥ १४३ ॥ १४४ ॥ जब वह पानी पीने लगा तो उसे अपना छाया दिखाई दी । उसे अपना प्रतिपक्षा समझकर वह जलमें कूद पड़ा ॥ १४५ ॥ किन्तु उसमें जब उसकी दूसरा वानर नहीं दिखाई पड़ा, ■■■ वह उल्टाकर बाहर निकल आया । बाहर निकलनेके साथ ही वह एक सुन्दरी स्त्रीके रूपमें परिणत हो गया । यह देखकर उसको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ १४६ ॥ बादमें जब पुनः उसको देखा तो कामवश उनका वीर्य निकलकर उस स्त्रीके बालों-पर जा गिरा ॥ १४७ ॥ उससे इन्द्रतुल्य पराक्रमी वानर बालि पैदा हुआ । उसी समय सूर्यदेव भी वहाँ आ पहुँचे ॥ १४८ ॥ उस सुन्दरी कासिनीको देखकर वे भी कामातुर हो उठे और उस स्त्रीकी गर्दनपर उनका महान् वीर्य गिर पड़ा । जिससे उसी समय बलवान् वानर सुग्रीव उत्पन्न हुआ ॥ १४९ ॥ ■■■ दोनों पुत्रोंको कहीं से जाकर वह स्त्री सी गयी । अतःकाल होनेपर उसने फिर अपने आपको वानररूपमें पाया ॥ १५० ॥

मृतेर्षविरजस्याधुङ्गाली पुर्यां कपीश्वरः । एवं ते कथितं राम यथा पृष्टं त्वया मम ॥१५२॥

श्रीरामचन्द्रः

यदाऽसौ बालिना बंधुः किष्किन्धाया बहिष्कृतः ।

तदा तस्यैव सचिवः श्रीमान्पवननन्दनः ॥१५३॥

न वेद किं बलं नैज बालितुल्यपराक्रमः । इति रामवचः श्रुत्वा पुनस्तं मुनिव्रवीत् ॥१५४॥

अगस्तिवचः

केसरीनाम विख्यातः कपिरञ्जनपर्वते ।

तस्यास्तां च शुभे पत्न्यौ बानर्षावेकदा गिरौ ॥१५५॥

लवंगस्याञ्जनीनाम्नी स्थिता तावच्च खातदा ।

पपात पायसमयः पिंडो गृध्रोमुखाद्भुवि ॥१५६॥

यदा नीतस्तु कैकेय्या कराद्गृध्रया शुभः पुरा । तं पिंडं मत्सयामास बानरी हामृनोपमम् ॥१५७॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र मार्जारास्या समागता । पतिना रहिते ते द्वे क्रीडत्यौ वसनं तयोः ॥१५८॥

अहरत्पवनो वेगाद्दृष्ट्वा वायुस्तद्वचः ।

अञ्जनीं प्रार्थयामास तथा भोगं चकार सः ॥१५९॥

तर्धैव प्रार्थयामास मार्जारास्यां न निर्गतिः । तयाऽकरोद्भक्तिं तत्र सोऽपि पर्वतमूर्धनि ॥१६०॥

तयोस्ताम्भ्यां समुत्पन्नो बानर्षा मारुतात्मजः ।

मार्जार्याः समभूद्वोरः पिशाचो घर्षस्वनः ॥१६१॥

चैत्रे माति सिते पक्षे हरिदिन्यां मघाऽमिषे । नक्षत्रे स समुत्पन्नो हनुमान् रिपुघ्नद्वजः ॥१६२॥

महाचैत्रीपूर्णिमायां समुत्पन्नोऽञ्जनीकुलः । वदन्ति कल्पभेदेन बुधा इत्यादि केचन ॥१६३॥

बालभावेऽपि यः पूर्वं दृष्टोऽयं विभावसुम् ।

मत्वा पक्वफलं चेति विघृष्टुर्लालयोत्प्लुतः ॥१६४॥

वह वृत्तान्त सुनकर ब्रह्माजीने वामदेन्द्र ऋषाविरजाको किष्किन्धा नगरीका उत्तम राज्य दे दिया । जहाँपर वह अपने दोनों पुत्रोंके साथ रहने लगा ॥ १५१ ॥ उस ऋषराजके मर जानेपर किष्किन्धापुरीका राजा कपीश्वर बाली हुआ । हे राम ! जो आपने पूछा, मैंने वह सब कह दिया ॥ १५२ ॥ श्रीरामचन्द्र बोले— जब सुग्रीवको बालीने किष्किन्धासे बाहर निकाल दिया था, उस समय इनके मन्त्री वायुनन्दन हनुमान् भी साथ थे ॥ १५३ ॥ पर इसको बालीके समान क्यों नहीं याद ? रामके इस वचनको सुनकर मुनि अगस्त्य फिर कहने लगे— ॥ १५४ ॥ अञ्जन पर्वतनिवासी केसरी नामसे विख्यात कपिको दो बानरी स्त्रियों थीं ॥ १५५ ॥ किसी समय कपिकी अञ्जनी नामकी स्त्री वहाँ बैठी थी । इतनेमें आकाशसे किसी गृध्रोंके मुँहसे छूटकर एक पिण्ड आ गिरा ॥ १५६ ॥ यह पिट्ट वहाँ जो कि पहले कैकेयीके हाथसे एक गृध्री छीन गयी थी । उस अमृततुल्य पिण्डको वामरीने खा लिया ॥ १५७ ॥ इतनेमें वहाँ दूसरी मार्जारास्या बानरी भी आ पहुँची । पतिकी अनुपस्थितिमें ये दोनों क्रीड़ा रही थीं । तभी उन दोनोंके वस्त्रोंको पवनने उड़ाकर ऊँचे उठाया तथा उनकी जाँघोंको देख लिया । पश्चात् अञ्जनीसे प्रार्थना करके उसके साथ वायुने भोग किया ॥ १५८ ॥ १५९ ॥ उसी प्रकार निर्गतिने मार्जारास्यासे प्रार्थना करके पर्वतके शिखरपर उसके साथ रति की ॥ १६० ॥ उन दोनोंसे उन दोनोंमें बानरीसे मास्तात्मज हनुमान् तथा मार्जारीसे घोर घर्षस्वन पिशाच हुआ ॥ १६१ ॥ चैत्र शुक्ल एकादशीके दिन मघानक्षत्रमें रिपुघ्नमन हनुमान्का जन्म हुआ था ॥ १६२ ॥ कुछ पण्डित कल्पभेदसे चैत्रकी पूर्णिमाके दिन हनुमान्का शुभ जन्म हुआ, ऐसा कहते हैं ॥ १६३ ॥ हनुमान् बाल्यकालमें ही सूर्यको देख उन्हें एका फल मग्नकर उसको भेनेकी

योजनानां पञ्चशतं वायुवेगेन मारुतिः । राहुस्तस्मिन्दिने ददर्श ययौ सूर्यं रघूत्तम ॥१६५॥
तावद्ब्रह्मा धर्तुकामं रवेरग्रे कपिं स्थितम् । तदा राहुर्मयादेव रविं ह्रस्वत्वेन्द्रमाययौ ॥१६६॥

राहुः प्राह श्रुत्वा नार्थं तव पीडां करोम्यहम् ।

दत्तः पूर्वं त्वया सूर्यः पीडां कर्तुं सुरेश्वर ॥१६७॥

■ विघ्नं समुत्पन्नं तत्त्वं शीघ्रं निवारय । तद्राहुवचनादिद्रः समारुह्य गजोपरि ॥१६८॥
देवैर्युतो ययौ वेगाद्दर्शं प्लवगं पुरः । तदा मुमोक्ष तं वज्रं मघवा मारुतिं प्रति ॥१६९॥

वज्रपातान्मारुतिः स्वात् पपात गिरिकन्दरे ।

तदा मग्ना हनुस्त्वस्य हनुमानिति वै यतः ॥१७०॥

ख्यातिं गतोऽयं सर्वत्र तदा वायुश्चक्रोप ह ।

सांत्वयित्वा हनूमन्तं स्वयं स्तब्धोऽभवत्तदा ॥१७१॥

वायुस्तस्माज्जनाः सर्वे निपेतुर्धरणीतले । त्रैलोक्यं श्रवणभावं हाहाकारोऽभवद्विवि ॥१७२॥
तदा धिक्कृत्य देवेन्द्रं वेधा वायुं ययौ ब्रवात् ।

प्रार्थयामास तं नत्वा पुनर्वायु वचोऽब्रवीत् ॥१७३॥

देवेन्द्रस्यापराधं त्वं क्षन्तुमर्हसि कंपन । तव पुत्राय दास्यामि वरानघ हनूमते ॥१७४॥
तदा तुष्टोऽभवद्वायुश्चाल पूर्ववत्पुनः । अभूत्संजीवितं सर्वं त्रैलोक्यं क्षणमात्रतः ॥१७५॥

तदा ददौ वरान् मग्ना मारुतिं पुरतः स्थितम् ।

मविष्यसि त्वममरो वज्रदेहो वरान्मम ॥१७६॥

ते कुण्ठिता गतिर्माञ्स्तु कुत्राप्यंजनिसंभव । मविष्यसि हरौ मक्तिस्तव नित्यमनुत्तमा ॥१७७॥
त्वं विष्णोरपि साहाय्यं करिष्यसि वरान्मम ।

इत्युक्त्वाञ्जितर्क्षे वेधा राहुः सूर्यं ययौ पुनः ॥१७८॥

इच्छासे लीलापूर्वक ऊपरको उछले ॥ १६४ ॥ उस समय मारुति वायुवेगसे पाँच सौ योजन ■ उठ गये थे । हे रघूत्तम । उसी दश (अभावस्था) ■ दिन राहु भी घसनेके लिए सूर्यके ■ गया, किन्तु उन्हें पकड़नेकी इच्छासे लड़े हनुमान्को देखा । तब राहु उरा और सूर्यको छोड़कर इन्द्रके पास ■ पहुँचा ॥१६५॥१६६॥ रावी-पति इन्द्रसे राहु बोला—अब मैं आपको ही सताऊँगा । क्योंकि पूर्वकालमें आपने मुझे सतानेके लिये सूर्यको दिया ■ ॥ १६७ ॥ परन्तु उसमें इस समय विघ्न उपस्थित हो गया है । अतः उसका आप निवारण करें, नहीं तो ■ आपहीको दुःख दूँगा । ■ प्रकार राहुके कथनानुसार इन्द्र गजपर सवार होकर देवताओंके ■ सूर्यके पास गये तो वहाँ उनके सामने हनुमान्को लड़ा देखा । तत्काल इन्द्रने उनके ऊपर वज्रप्रहार किया ■ ॥ १६८ ॥ १६९ ॥ वज्रके आघातसे हनुमान् नीचे गिरिकन्दरामें जा गिरे और उनको ठुड़ही टेढ़ी हो गयी । जिससे कि उनका हनुमान् नाम पड़ा ॥ १७० ॥ उनका यह नाम सर्वत्र प्रसिद्ध हो गया । यह देखकर उनके पिता वायुदेवने क्रुपित होकर अपनी गति बन्द कर दी ॥ १७१ ॥ वायुके बन्द हो जानेसे सब लोग मर-मरकर घरती-पर गिरने लगे । तीनों लोक मृतक जैसे हो गये और देवलोकमें भी हाहाकार मच गया ॥ १७२ ॥ ■ ब्रह्मा इन्द्रको धिक्कारकर शीघ्र वायुके पास गये और नमस्कार करके प्रार्थनापूर्वक कहा—॥ १७३ ॥ हे कंपन ! तुम देवेन्द्रके अपराधको क्षमा ■ दो । मैं तुम्हारे पुत्र हनुमान्को वर देता हूँ ॥ १७४ ॥ तब प्रसन्न होकर वायु पुनः पूर्ववत् बहने लगा । अतः क्षणमात्रमें तीनों लोक फिर जीवित हो गये ॥ १७५ ॥ पश्चात् ब्रह्मने सामने लड़े मारुतिको वर दिया कि तुम मेरे वचनसे वज्रदेह होकर अमर हो जाओगे ॥ १७६ ॥ हे अंजनीपुत्र ! तुम्हारी गति कहीं भी प्रतिहस्त न होगी और नित्य श्रीहरिमें तुम्हारी उत्तम भक्ति बनी रहेगी ॥१७७॥ मेरे वरदान-से तुम विष्णुकी सहायता करनेमें भी समर्थ होओगे । इतना कहकर ब्रह्मा अन्तर्धान ■ गये और राहु पुनः

धीराम उवाच

देवैरेण कथं दत्तो रविस्तस्मै स राहवे । तत्सर्वं विस्तरेणैव कथयस्व ममाग्रतः ॥१७९॥

अगस्तिरुवाच

सुषापानादयं राहुर्देव्योऽभूदमरः स्वयम् । ग्रहोऽष्टमोऽभवत्सोऽपि यदाऽवाञ्छदधं सुरान् ॥१८०॥

पीडां कर्तुं तदा देवाः क्षयं सोमं ददुस्तु वै । ज्ञात्वा धर्मैर्जनाः सर्वे निजकर्मादिहेतवे ॥१८१॥

भोषायिष्यन्ति राहोश्च शशिनं भास्करं प्रणि । यदा यदा भवत्यत्रोपरागो जगतीतले ॥१८२॥

तदा तदा जना धर्मनिजमत्पर्यमादरात् ।

तोषयित्वा सदा राहुं तौ तस्मान्मोचयंति हि ॥१८३॥

एतत्सर्वं मया प्रोक्तमुपरागस्य कारणम् । जन्म कर्म वरादानं माहतेष्वपि विस्तरात् ॥१८४॥

अतस्तद्बलमाहात्म्यं को वा शक्नोति वर्णितुम् । स एकदा मुनीनां हि चाश्रमेषु कुशादिकान् ॥१८५॥

चकारैतस्ततः सर्वान्धर्मयन्मुनिबालकान् । तस्य तत्कर्म मुनिभिर्दृष्ट्वा शसोऽञ्जनीसुतः ॥१८६॥

अद्यारमय कपिश्रेष्ठ न ज्ञास्यसि स्वयोरूपम् ।

यदाऽन्यस्य मृत्वात्स्वीयं बलं शोष्यसि विस्तरात् ॥१८७॥

मविष्यति तदा पूर्वस्मृतिस्ते पीरुपं पुनः । अतः सुग्रीवसामिध्ये विस्मृतः स्वपराक्रमः ॥१८८॥

यदा स्तुतो जायवता पुरा प्रायोपवेशने । तदा स्मृतिस्तस्य जाता स्वबलस्य हनुमतः ॥१८९॥

एतत्तं सर्वमाख्यातं स्वयां पृष्टं मया तव । यथा तथा सविस्तारं कपिरावणवर्णितम् ॥१९०॥

राम त्वं परमेश्वरोऽसि सकलं जानासि विज्ञानदृक्

भूतं भव्यमिदं त्रिकालकलनासाक्षां विकल्पोन्मिश्रितः ।

मक्तानामनुवर्षनाय सकलां कुर्वन् क्रियासंहतिं

चाभृण्वन् मनुजाकुतिर्मम वचो मासीश लोकाचितः ॥१९१॥

सूर्यके पास गया ॥ १७९ ॥ श्रीरामजीने पूछा कि देवेन्द्रने सूर्य राहुको क्यों दे दिया था ? हे मुनीन्द्र ! यह क्या आप विस्तारसे कहें ॥ १८० ॥ अगस्त्य ऋषि बोले—हे राम ! देव राहु पूर्वकालमें सुषापान करके अमरत्वको प्राप्त हो गया था । बादमें जब वह अष्टम हुआ गया, तब उसने देवताओंको दुःख देना चाहा । यह देखकर देवताओंने सूर्य चन्द्रमा राहुको दे दिया और यह सोचा कि संसारके लोग अपने कामके लिए धर्मके द्वारा राहुसे सूर्य तथा चन्द्रमाको छुड़ा लेंगे । उसीके अनुसार सूर्य-चन्द्रको जब-जब ग्रहण लगता है, तब-तब मनुष्य अपने कार्यसाधनके लिये आदरपूर्वक दान-धर्मसे राहुको संतुष्ट करके उससे सूर्य-चन्द्रको छुड़ा लेते हैं ॥ १८०-१८३ ॥ इस प्रकार मैंने ग्रहणका कारण तथा माहतिगत जन्म-कर्म आदि वृत्तान्त सविस्तार आपको कह सुनाया ॥ १८४ ॥ पूरी तरह हनुमान्‌के बल-प्रतापका वर्णन कौन कर सकता है । उन्होंने एक दिन मुनियोंके आश्रममें जाकर उनके बाळकोंको डराया-धमकाया और कुशा आदि सब सामग्री इधर-उधर बिखेर दी । उनके इस कापको देखकर मुनियोंने अञ्जनीसुत हनुमान्‌को शाप देते हुए कहा—॥ १८२ ॥ हे कपिश्रेष्ठ ! आजसे तुम अपने पुस्त्यार्थको भूल जाओगे और जब कभी दूसरेके मुखसे अपना बल विस्तारसे सुर्गोंगे ॥ १८६ ॥ १८७ ॥ तब स्मरण होगा । वे सुग्रीवके रहते समय इसी कारण अपना पुस्त्यार्थ भूल गये थे । बादमें समुद्रतटपर उपवासके समय जब आँधवान्‌ने उनकी स्तुति करके उनके बलका स्मरण दिलाया, हनुमान्‌को तुरन्त अपना बल याद आगया था ॥ १८८ ॥ १८९ ॥ यह मैंने आपके पूछनेके अनुसार सविस्तार कपि हनुमान्‌ तथा रावणको कार्यकलाप कह सुनाया ॥ १९० ॥ हे राम ! आप परमेश्वर हैं, ज्ञानदृष्टिसे सब कुछ देखते हैं, विकल्परहित आप मूल-भविष्य-वर्तमान तीनों कालको क्रियाके विज्ञ और सबके साक्षी हैं । भक्तोंके अनुरोधसे आप समस्त क्रियाकलाप करते हुए मनुष्य बनकर मेरे वचनको

श्रीशिव उवाच

स्तुत्वैव राघवं तेन पूजितः कुम्भसंभवः । स्वाश्रमं मुनिभिः सार्धं प्रययौ गुप्तविग्रहः ॥१९२॥
विन्ध्याचलं निजं रूपं स मुनिर्नैव दर्शयत् । पुनरुत्थास्यति गिरिश्वेति मत्वा तु तद्वपात् ॥१९३॥

रामस्तु सीतया सार्द्धं भ्रातृभिः सह मंत्रिभिः ।

संसारिव रमानाथो रममाणोऽवसद्वृद्धे ॥१९४॥

अनासक्तोऽपि विषयान् कुष्ठजे प्रियया सह । हनुमत्प्रमुखैः सद्भिर्बानरैः परिसेवितः ॥१९५॥
राघवे क्षासति भुवं लोकनाथे रमापतौ । वसुधा सस्यसंपन्ना फलवन्तश्च भूरुहाः ॥१९६॥
जनाः स्वधर्मनिरताः पतिभक्तिपराः स्त्रियः । नापश्यन्पुत्रमरणं कश्चिद्राजनि राघवे ॥१९७॥
समारुह्य विमानाग्रयं राघवः सीतया सह । बानरैर्भ्रातृभिः सार्द्धं संचचारावनिं प्रभुः ॥१९८॥
अमानुषाणि कर्माणि चकार बहुशो भुवि । लोकानामुपदेशार्थं परमात्मा रघूत्तमः ॥१९९॥
कोटिशः शिवलिंगानि स्थापयामास सर्वतः ।

अश्वमेधादिविविधान् यज्ञान् विपुलदक्षिणान् ॥२००॥

चकार परमानन्दो मानुषं वपुरास्थितः । सीतां तां रमयामास सर्वभोगैरमानुषैः ॥२०१॥
छासत रामो धर्मेण राज्यं परमधर्मवित् । कथाः संस्थापयामास सर्वलोकमलापहाः ॥२०२॥
एकादशसहस्राणि सैकादशसमानि च । त्रेतायुगभवान्येव वर्षाणि रघुनन्दनः ॥२०३॥
राज्यं धर्मेण लोकवन्द्यपदांजुजः । कलेर्मानेन सेवानि लक्ष्मण्येकादशैव हि ॥२०४॥
सैकादशशतान्यत्र रामो राज्यं चकार सः । एकपत्नीव्रतो रामो राजर्षिः सर्वदा शुचिः ॥२०५॥
यस्यैकमेव तच्चासीत् पत्नीवाक्यं श्रुतया । गृहमेधीयमखिलमाचरन् शिक्षितुं नरान् ॥२०६॥
सीतां प्रेम्णाऽनुवृत्त्या च प्रभयेण दमेन च । भर्तुर्मनोहरा साध्वी भावज्ञा सा द्विया मिया ॥२०७॥

सुनते हैं । हे ईश ! सब लोगोंसे पूजित होकर आप बड़ी ही शोभाको प्राप्त हो रहे हैं ॥ १९१ ॥ श्रीशिवजी बोले- इस प्रकार रामकी स्तुतिकर तथा उनसे पूजा-सत्कार प्राप्त करके गुप्तविग्रह मुनि सब मुनियोंको साथ लेकर अपने आश्रमको चले गये ॥ १९२ ॥ जाते समय मुनिने अपना रूप विन्ध्याचलको इस ढरसे नहीं दिखलाया कि वह कहीं फिर उठकर लड़ा जाय ॥ १९३ ॥ उधर रामचन्द्रजी सीता, मन्त्रिगण तथा भ्राताओंके साथ संसारी जीवोंके समान क्रीड़ा करते हुए अपने धर्ममें रहने लगे ॥ १९४ ॥ आसक्त न होते हुए भी अपनी प्रिया सीताके साथ ऐहिक विषयोंका आनन्द लेते रहे । हनुमान् आदि अच्छे बानर श्रीहरि-की सेवामें लग गये ॥ १९५ ॥ रमापति तथा लोकनाथ रामके शासनकालमें धरा धन-धान्यपूर्ण हो गयी, वृक्ष खूब फलने लगे ॥ १९६ ॥ मानवगण अपने-अपने धर्मपथपर चलने लगे और स्त्रियें पतिभक्तिपरायणा होकर रहने लगीं । रामके राज्यमें माता-पिताके जीते भी कहींपर पुत्रमरण नहीं होता था ॥ १९७ ॥ वे प्रभु राम-सीता, आदि भाइयों तथा बानरोंके विमानपर सवार होकर अपनीतलपर विचरते थे ॥ १९८ ॥ पृथ्वीपर उन्होंने अनेक लोकोत्तर कार्य किये । परमात्मा रामने लोगोंको उपदेश देनेके लिए सर्वत्र करेकों शिव-लिंग स्थापित किये । परमानन्दस्वरूप परमेश्वर रामने मनुष्यका रूप धारण करके बहुतेरी दक्षिणावाले विविध अश्वमेध यज्ञ किये । मनुष्योंको दुर्लभ अनेक भोगसाधनोंसे रामने सीताको सन्तुष्ट किया ॥ १९९ ॥ २०० ॥ परम धर्मज्ञ रामने व्यापपूर्वक राज्यका करके लोगोंके पापोंको दूर करनेवाली अनेक कथाएँ स्थापित कीं ॥ २०१ ॥ त्रेतायुगके ग्यारह हजार वर्ष पर्यन्त लोगों द्वारा वन्दनीय धरणाकमलवाले रघुनन्दनने धर्मपूर्वक राज्य किया । कलियुगके द्वादशसे रामने यद्वा-ग्यारह लाख ग्यारह वर्षतक राज्य किया । राजर्षि राम सर्वदा पवित्र रहकर एकपत्नीव्रतमें स्थिर रहे ॥ २०३-२०५ ॥ जिनके लिए पत्नीका वाक्य और बाण एक समान था । उन्होंने समस्त गृहस्थाश्रमका कार्य एकमात्र लोगोंको शिक्षा देनेके लिए किया था

युक्ता तं रंजयामास राजानं राघवं सुदा । एवं गिरिद्वजे प्रोक्तं रामराज्योत्थरोद्धवम् ॥२०८॥
चरितं रघुनाथस्य यथा पृष्टं त्वया भग्न । अवगात्सर्वपापघ्नं महामंगलकृत्कम् ॥२०९॥

सारकाण्डमिदं देवि ये शृण्वन्ति नरोत्तमाः ।

तेषां मनोरथाः सर्वे परिपूर्णा भवन्ति हि ॥ २१० ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितस्तोत्रं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे
अर्वास्तिरामचरितपार्वतीसंवादे त्रयोदशः सर्गः ॥ १० ॥

प्रथमसर्गे श्लोकाः ॥ १०९ ॥ द्वितीये ॥ ३१ ॥ तृतीये ॥ ३९४ ॥ चतुर्थे ॥ १७० ॥ पंचमे ॥ १४० ॥
षष्ठे ॥ १३० ॥ सप्तमे ॥ १६६ ॥ अष्टमे ॥ १२५ ॥ नवमे ॥ ३१० ॥ दशमे ॥ २७३ ॥ एकादशे
॥ २८८ ॥ द्वादशे ॥ २०२ ॥ त्रयोदशे ॥ २१० ॥ एवं सारकाण्डस्य पूर्णश्लोकसंख्या ॥ २५५८ ॥

■ २०६ ॥ सीता प्रेमके अनुकूल बर्तावसे, नम्रतासे, लज्जासे, डरसे, पालिशत धर्मसे, मनोहरभावसे तथा
पतिके मनोभावको जानकर उसके अनुसार व्यवहारसे राजा रामको प्रेमपूर्वक आनन्दित करने लगीं ।
हे गिरिद्वजे ! इस प्रकार मैंने तुमको रामके राज्यकालके ■■■■■ वृत्तान्त कह सुनाया, जैसा ■■■ तुमने
पूछा था । यह रामचरित अवगणनासे सब पापोंका नाशक तथा महामंगलकारी है ॥ २०७-२०८ ॥ हे
देवि ! जो लोग इस सारकाण्डको श्रद्धासे सुनते हैं, उन नरश्रेष्ठोंके ■■■ मनोरथ पूर्ण होते हैं । इसमें तनिक
भी सन्देह नहीं है ॥ २१० ॥ इति श्रीमच्छतकोटिरामचरितस्तोत्रं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे
अर्वास्तिरामचरितपार्वतीसंवादे पंच० रामचरितपाण्डेयकृत 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकायां त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

इस सारकाण्डके पहिले सर्गमें १०९ श्लोक, दूसरेमें ३१, तीसरेमें ३९४, चौथेमें १७०, पाँचवेंमें
१४०, छठेमें १३०, सातवेंमें १६६, आठवेंमें १२५, नवेंमें ३१०, दसवेंमें २७३, ग्यारहवेंमें २८८, बारहवेंमें
२०२ तथा तेरहवेंमें २१० श्लोक हैं । इस प्रकार ■■■ सारकाण्डमें कुल २५५८ श्लोक हैं ।

■ इति श्रीमदानन्दरामायणे सारकाण्डं समाप्तम् ■

श्रीरामचन्द्राय नमः



भीरामचन्द्रो विजयतेतराम्

श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं

आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ऽऽहया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

यात्राकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

(रामायणकी उत्पत्तिका वृत्तान्त)

श्री-पार्वत्युवाच

सारकाण्डं त्वया श्रुतं कीर्तितं बहुपुण्यदम् । मया श्रुतं तु पृच्छामि यत्तद्वक्तुं त्वमर्हसि ॥ १ ॥
कथं कृता वाजिमेधा राघवेण बलीयसा । रामादीनां चतुर्णां हि बन्धूनां सन्ततिं वद ॥ २ ॥
स्वपुत्रबन्धुपुत्राश्च कथं स्त्रोभिः सुयोजिताः । दशवर्षमहम्नाणि दशवर्षशतानि च ॥ ३ ॥
तथैकादश वर्षाणि त्रेतायुगभवानि हि । राज्यं कृतं त्वया प्रोक्तं विस्तारद्वयम् माम् ॥ ४ ॥
यानि यानि चरित्राणि राघवेण कृतानि हि । तानि तानि हि कुरुत्सनानि विस्तारद्वयमुर्महसि ॥ ५ ॥
इति देविवचः श्रुत्वा शृङ्खस्तां पुनरब्रवीत् ।

श्रीमहादेव उवाच

मम्यक् पूर्णं त्वया देवि राघवस्य कथानकम् ॥ ६ ॥

ममापि हर्षः संजातस्तद्वदामि त्वान्तिकम् । चरितं रघुनाथस्य श्रुतकोटिप्रविस्तरम् ॥ ७ ॥
एकैकमक्षरं तुंसां महापाठकनाश्रमम् । बाल्मीकिना कृतं पूर्वमेकदा तद्वदामि ते ॥ ८ ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीपार्वताजी बोली—हे शम्भो ! आपने अतिपुण्यदायक सारकाण्डकी जो कहो, सो सुनी । परन्तु अब मैं जो आपसे पृच्छती हूँ, वह क्या करके कहें ॥ १ ॥ बलवान् रामने अश्वमेधयज्ञ किस प्रकार किये ? राम आदि चारों भाइयोंकी कीन-कीन-सी सन्ततियां हुईं ॥ २ ॥ रामने अपने पुत्रों तथा भाइयोंके पुत्रोंका किस प्रकार और कीन-कीन सी स्त्रियोंके साथ विवाह किया ? आपने कहा कि रामने त्रेतायुगमें ग्यारह हजार ग्यारह वर्ष पर्यन्त राज्य किया था । अतएव ये बातें विस्तारपूर्वक कहें ॥ ३ ॥ ४ ॥ रामने जो जो चरित्र किये हों, वे आपके द्वारा संविस्तार कहनेके योग्य ॥ ५ ॥ देवीके इस वचनको सुनकर शम्भुने कहा । श्रमहादेवजी ! बोलें—हे देवि ! तुमने बहुत अच्छा किया कि जो रामकी कथा पृच्छी ॥ ६ ॥ इससे प्रसन्न होकर मैं तुमको रघुनाथजीका सौ करोड़ श्लोकोंमें कहा हुआ चरित्र सुनाता हूँ ॥ ७ ॥ जिसका कि एक-एक पुरुषोंके महान् पापोंको नष्ट करनेवाला है । बाल्मीकिने जो कार्य

वाल्मीकिस्त्वेकदा स्नातुं जगाम तमसां नदीम् । शिष्येण सहितो गन्वा भूमौ स्थाप्य कमंडलुम् ॥९॥
 आवश्यकं तु संपाद्य कृत्वा शौचविधिं ततः । यावद्ब्रूयति स्नानार्थं दर्भगाणि ॥ वै मुनिः ॥१०॥
 नावददर्श तमसार्तारे कौतुकमुत्तमम् । कौचपुग्मे हतः कौचो निषादेन पतन्निषा ॥११॥
 कौची शोकसमाविष्टा विललापातिदुःखिता । वियुक्ता पतिना तेन द्विजेन सहचारिणा ॥१२॥
 ताम्रशीर्षेण मत्तेन पत्निषा सा हतेन च । तथाविधं द्विज दृष्ट्वा निषादेन निषातितम् ॥१३॥
 ऋषेर्धर्मात्मनस्तस्य कारुण्यं समपद्यत । ततः करुणयाऽऽविष्टस्त्वधर्मोऽयमिति द्विजः ॥१४॥
 निशम्य रुदतीं कौचीमिदं वचनमब्रवीन् । या निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः आश्रयोः समाः ॥१५॥
 यत्कौचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् । तस्येत्थं ब्रूतश्चिन्ता बभूव हृदि वीभतः ॥१६॥
 शोकार्तनास्य शकुनेः किमिदं व्याहृतं मया । चितयन्त महाप्राज्ञश्चकार मनिमान् मतिम् ॥१७॥
 शिष्यं चैवाग्रवीद्वाक्यमिदं स मुनिपुंगवः । पादबद्धोऽश्रुसमस्तंत्रीलयसमन्विनः ॥१८॥
 शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा । शिष्यस्तु तस्य ब्रूवतो मुनेर्वाक्यमनुत्तमम् ॥१९॥
 प्रतिजग्राह संतुष्टस्तस्य तुष्टोऽयमबन्मुनिः । सोऽभिपेक्षं ततः कृत्वा तीर्थं तस्मिन्वधाविधि ॥२०॥
 तमेव चितयन्मर्थमुपावर्तत वै मुनिः । भारद्वाजस्ततः शिष्यो विनीतः श्रुतवान् गुरोः ॥२१॥
 कलशं पूर्णमादाय प्रहृष्टश्च जगाम ह । स प्रविश्याश्रमपदं शिष्येण सह धर्मवित् ॥२२॥
 उपविष्टः कथाश्रान्याश्चकार ध्यानमास्थितः । तत्राजगाम लोकानां कर्ता स्वयं प्रभुः ॥२३॥

पहिले एक समयमें किया था, सो तुम्हें सुनाता ॥ ८ ॥ एक समय वाल्मीकि मुनि अपने शिष्य भारद्वाजको साथ लेकर तमसा नदीपर स्नान करनेके लिए गये । वे रास्तेमें जमोन्पर कमंडलु रख तथा आवश्यक शौच आदि कर्मसे निवृत्त होकर ज्यों ही हाथमें कुशा ग्रहण करके स्नान करनेके लिए चले ॥ ९ ॥ १० ॥ त्यों ही उन्होंने तमसा नदीके तटपर एक उत्तम कौतुक देखा । वह यह कि एक निषादेन बाणसे कौच तथा कौचीके जोड़मेंसे कौच (वगुले) को मार डाला ॥ ११ ॥ अब कौचो शोकातुर होकर अतिदुःखसे विलाप करने लगी । यह बेचारी अपने सहचर, तामेके लाल मस्तकवाले, और बाणसे मारे गये अपने पति पक्षीसे विछुड़ गयी थी । निषादके द्वारा मारे गये उस पक्षीकी दशा देखकर धर्मात्मा वाल्मीकि ऋषिके मनमें बड़ी कष्टना उत्पन्न हुई । पश्चात् कौचीके दयाजनक रुदनको सुननेसे ही और 'यह बड़ा अधर्म हुआ' ऐसा विचारकर मुनि बोले-॥ १२-१४ ॥ अरे निषाद ! तूने एक कामासक्त जोड़ेके कौच पक्षीको मार डाला है । इसलिए तू अनेक वर्षोंतक प्रतिष्ठाको नहीं प्राप्त होगा अर्थात् बहुत काल पर्यन्त जोचित नहीं रहेगा ॥ १५ ॥ इस प्रकार अनुष्टुप्-छन्दोबद्ध वाणी सहसा अपने मुखसे निकल पड़नेके कारण आश्चर्यचकित तथा कौचके शोकसे पीड़ित उन ऋषिके मनमें 'ओह ! इस निषादको मैंने यह कह दिया । इससे तो मुझे बड़ा भारी पाप लग गया' ऐसी चिन्ता होने लगी ॥ १६ ॥ ओह ! यह तो मुझसे बड़ा भारी अपयश देनेवाला काम हो गया । ऐसी चिन्ता करते हुए मनमें निश्चय करके महामतिमान् मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिने अपने शिष्य भारद्वाजसे कहा-॥ १७ ॥ बत्स ! शोकवश होकर मैंने निषादको शाप दे दिया । यह हुआ तो अनुचित, तथापि शोकसे दुःखित होनेके कारण मेरे मुँहसे भाठ अक्षरोंवाले चार चरणोंयुक्त समान पदोंसे विशिष्ट ताल-रूपपर गाने योग्य यह अनुष्टुप् छन्द श्लोकरूपमें (यशस्वमें) ही प्रवृत्त हो अपयशस्वरूप न हो ॥ १८ ॥ पश्चात् मुनिके इन श्रेष्ठ वाक्यों सुनकर उनके प्रसन्नवदन शिष्य भारद्वाजने 'यह श्लोक आपके इच्छानुसार यशस्व ही होगा' ऐसा कहकर उनकी बातका समर्थन किया । इससे वाल्मीकि उनके ऊपर प्रसन्न हुए ॥ १९ ॥ तदनन्तर तमसा नदीके जलमें यथाविधि स्नान आदि कृत्य करके वे महर्षि 'मेरा अपयश कैसे यशस्वमें परिणत हो जाय' ऐसा विचार करते हुए अपने आश्रमकी ओर दिये ॥ २० ॥ उनके पीछे उनके विद्वान् और विनम्र शिष्य भारद्वाज भी अलम्का बड़ाभरकर चल पड़े ॥२१॥ आश्रममें पहुँचनेपर भी वे "निषादको दिया हुआ शाप यशस्वमें कैसे परिणत हो" इसी मनमें

चतुर्मुखः महातेजा द्रष्टुं तं मुनिपुंगवम् । वाल्मीकिरथं तु दृष्ट्वा सहस्रोत्थाय वाग्यतः ॥२४॥
 प्राञ्जलिः प्रयतो भूत्वा तस्यौ परमविस्मितः । पूजयामास तं देवं पाद्यार्घ्यासनवन्दनैः ॥२५॥
 प्रणम्य विधिवन्वैनं शृष्ट्वा चैव निराभयम् । अथोपविश्य भगवानासने परमार्चिते ॥२६॥
 महर्षये वाल्मीकये संदिदेशासनं तव । ब्रह्मणा समनुज्ञातः सोऽप्युपाविशदासने ॥२७॥
 उपविष्टे तदा तस्मिन् साक्षाल्लोकपितामहे । तद्भूतेनैव मनसा वाल्मीकिर्भ्यान्मास्थितः ॥२८॥
 पापात्मना कृतं कष्टं वैरग्रहणबुद्धिना । यस्तादृशं चाकुरुष्व कौचं हन्यादकारणम् ॥२९॥
 शोचमेवं पुनः कौचीमुपल्लोकमिदं जगौ । पुनरंतर्गतमना भूत्वा शोकपरायणः ॥३०॥
 तद्बुवाच ततो ब्रह्मन् प्रहसन् मुनिपुंगवम् । श्लोक एव स्वयां वदो नात्र कार्या विचारणा ॥३१॥
 मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन् प्रवृत्तये सरस्वती । रामस्य चरितं कृत्स्नं कुरु त्वमृषिसत्तम ॥३२॥

धर्मात्मनो गुणवतो लोके रामस्य धीमतः ॥३३॥

वृत्तं कथय धीरस्य यथा ते नारदाच्छ्रुतम् । रहस्यं च प्रकाशं च यद्वृत्तं तस्य धीमतः ॥३४॥
 रामस्य सह सौमित्रैः कीशानां रक्षसां तथा । वैदेहाश्चैव यद्वृत्तं प्रकाशं यदि वा रहः ॥३५॥
 तच्चाप्यविदितं सर्वं विदितं ते भविष्यति । न ते वागमृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति ॥३६॥
 कुरु रामकथां पुण्यां श्लोकबद्धां मनोरमाय । यावत्तथास्यंति गिरयः तरितश्च महीतले ॥३७॥
 यावद्द्रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति । यावद्द्रामायणकथा त्वत्कृता प्रचरिष्यति ॥३८॥

विचार करते हुए वे धर्मज्ञ मुनि शिष्यके साथ बैठकर अन्यान्य बातें करने लगे ॥ २२ ॥ इतनेमें वहाँ सम्स्त लोकोंके कर्ता चतुर्मुख ऋषि महादेवस्वी ब्रह्मा उन मुनिश्रेष्ठसे मिलनेके लिए आ पहुँचे ॥ २३ ॥ उनको अचानक आते देखकर वाल्मीकि मुनि विस्मयान्वित तथा भ्रष्ट हो गये । परन्तु वे तुरन्त हाथ जोड़कर नम्रतासे उनके सामने खड़े हो गये ॥ २४ ॥ पश्चात् धीरेसे मनको स्थिर करके मुनिने ब्रह्माजीसे कुशल-समाचार पूछा तथा पाद्य, अर्घ्य, आसन, स्तुति, आदिसे उनका सत्कार किया । ब्रह्माजीने भी उनके शिर आदिका कुशल पूछा और अपने लिए बिछाये हुए आसनपर स्वयं बैठकर वाल्मीकिजीको भी आसनपर बैठनेके लिए कहा । लोकोंके साक्षात् पितामह ब्रह्माजीके आसनपर बैठ आनेपर उनकी आज्ञासे वाल्मीकि ऋषि भी बैठ गये ॥ २५-२७ ॥ किन्तु उस समय भी उनका मन कौचपक्षोंके विषयमें ही सोच रहा था कि पापी अन्तःकरण तथा निर्दोष जीवोंपर मिथ्या वैरभाव रखनेवाले उस व्याधने यह बड़ा कष्टप्रद काम किया ॥ २८ ॥ जो कि सुन्दर बोली बोलनेवाले, निर्दोष तथा कामके बलीभूत उस पक्षीको बिना कारण ही मार और मने भी उस व्याधको शाप दे दिया, सो भी बड़ा खराब काम हुआ । ऐसे विचारमें भग्न और शोकमें डूबे हुए वाल्मीकि कौचका शोक करते हुए फिर वही बात मनमें सोचने लगे । बादमें उन्होंने व्याधको शाप देते समय जो श्लोक कहा था, उसीको उन्होंने ब्रह्माजीके सम्मुख कहा । उसको सुनकर ब्रह्माजी हँसकर मुनिसे कहने लगे ॥ २९ ॥ ३० ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम्हारा एकाएक कहा हुआ यह श्लोक यगके रूपमें परिणत हो जायगा । इसमें तुम तनिक भी संशय न करना । वह तो मेरी इच्छा तथा प्रेरणासे ही तुम्हारे मुखसे यह सरस्वती प्रवृत्त हुई है ॥ ३१ ॥ हे पुनीश्वर ! तुम मेरी आज्ञासे धर्मात्मा भगवान् अखिललोकके स्वामी परम बुद्धिमान् राजा रामका संपूर्ण चरित्र रचो ॥ ३२ ॥ धर्मशाली बुद्धिमान् रामका जो चरित्र तुमने नारदसे सुना है, वह तथा और जो गुप्त या प्रकट चरित्र हो, उसको तुम रचकर प्रकाशित करो ॥ ३३ ॥ सुमित्रासुत लक्ष्मण सहित रामचंद्रका, रामरीका, सब राजसोंका सीताका गुप्त अथवा प्रकट जो भी वृत्तांत तुम न जानते होंगे, वह भी मेरी कृपासे जान जाओगे और रामके चरित्रसे भरे हुए उस काव्यमें निहित तुम्हारी वाणी असत्य नहीं होगी ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ तुम ऐसे श्लोकोंमें ही मनको आनन्द देनेवाली पवित्र रामकथा लिखो । जबतक संसारमें मनी-यन्त रहेंगे, जबतक तुम्हारी रची हुई रामकथा भी लोगोंमें प्रचारित होती रहेगी । जबतक तुम्हारी रची हुई रामकथा पृथ्वीमण्डलपर स्थित रहेगी, तुम मेरे ऊपरके नीचेके सब स्वर्गोंमें

तावदूर्ध्वमधश्च त्वं मण्डलोकेषु निवत्स्यसि । इत्युक्त्वा भगवान् ब्रह्मा स्वयं रामस्य धीमतः ॥३९॥
चरित्रं श्रावयामास वेदवाक्यैः सुपुण्यदैः । ततस्तेनार्चितो ब्रह्मा तत्रैवांतरधीयत ॥४०॥
ततः सशिष्यो भगवान् मुनिर्विस्मयमाययौ । तस्य शिष्यास्ततः सर्वे जगुः श्लोकमिमं पुनः ॥४१॥
मुहुमुहुः प्रीयमाणाः प्राहुश्च भृशविस्मिताः । समासरंश्चतुर्भिर्यः पार्दशीतो महर्षिणा ॥

सोऽनुक्याहरणाद्भूयः शोकः श्लोकत्वमागतः । ४२॥

तस्य बुद्धिरियं जाता महर्षेर्भाषितात्मनः । कुस्मिन् रामायणं काव्यमीदृशैः करवाण्यहम् ॥४३॥

उदारवृत्तार्थपदैर्मनोर्मस्तदाऽस्य रामस्य चकार कीर्तिमान् ।

समाधुरैः श्लोकवरैर्यशस्विनो मुनिः ॥ काव्यं शतकोटिसंमितम् ॥४४॥

इति श्रीमत्तकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये याज्ञकाण्डे

श्लोकांस्त्वितिरामायणकथनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः

श्रीशिव उवाच

वाल्मीकिना कृतं देवि शतकोटिप्रविस्तरम् । रामायणं महाकाव्यं जगद्गुर्मुनयश्च ते ॥ १ ॥
आश्रमे तत्पठति स्म कथयन्ति स्म ते मुदा । तच्छ्रोतुममराः सर्वे विमानैश्च दिवि स्थिताः । २ ॥
भुत्वा सर्वं सविस्तारं वाल्मीकिं पुष्पवृष्टिभिः । ववर्पुर्जयश्रद्धस्ते प्रशंसन्सुर्धुनीधरम् ॥ ३ ॥
ततो देवाः सर्गधर्वा यक्षा नागाः सकिन्नराः । मुनीश्वरा गुह्यकाश्च पार्थिवाः पद्मभस्त्वहम् ॥ ४ ॥
परस्परं ते कलहं चक्रुः कार्प्यार्थमादरात् । ब्रह्माद्या निर्जराः सर्वे पन्नगान्दित्तिजान्नरान् ॥ ५ ॥
वयं काव्यं विनेष्यामो दिवं वाल्मीकिना कृतम् । दित्तिजाः पन्नगाः प्रोक्षुर्विनेष्यामो रसातलम् ॥ ६ ॥

सुखसे रहोगे । इतना कहकर स्वयं भगवान् ब्रह्माने पुष्पप्रद वेदवाक्यों द्वारा बुद्धिमान् रामका चरित्र उन्हें सुनाया । पश्चात् मुनिसे पूजित होकर ब्रह्मा वहीपर अन्तर्धान हो गये ॥३९-४०॥ शिष्यों सहित भगवान् वाल्मीकि मुनिको बड़ा भारी विस्मय हुआ और उनके शिष्य उस श्लोकको बारम्बार आनन्दसे गाने लगे ॥ ४१ ॥ महर्षिने समान अक्षरोंवाला तथा बार चरणों युक्त जिस श्लोकको गाया था, उसको ये शिष्य भी होकर आश्रयसे परस्पर कहने-सुनने लगे ॥ ४२ ॥ उस श्लोकको मुनि शोकवश बार-बार कहते थे । अन्तमें वही शोक श्लोक (यक्ष) स्वयं परिणत हो गया । पश्चात् उन गुह्यात्मा महर्षिकी यह इच्छा हुई कि मैं इसी प्रकारके श्लोकोंमें समस्त रामायणका निर्माण करूँ । ४३ ॥ अन्तमें कीर्तिमान् मुनिने मनको देनेवाला तथा जिससे उदार चरित्र भरे अर्थोंका हो, ऐसे पद और समान अक्षरोंवाले सौ करोड़ श्लोकोंवाला यशस्वी रामका () रचा ॥ ४४ ॥ इति श्रीमत्तकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये याज्ञकाण्डे याज्ञाटीकायां श्लोकांस्त्वितिरामायणकथनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीशिवजी बोले-हे देवि ! वाल्मीकि मुनिका बनाया हुआ सौ करोड़ श्लोकात्मक उस महाकाव्य रामायणको मुनियोंने और हर्षपूर्वक उसे अपने आश्रमोंमें पढ़ने सुनने लगे । उसको सुननेके लिए सब देवता विमानोंमें बैठकर आकाशमें गये ॥ १ ॥ २ ॥ उन लोगोंने विस्तारपूर्वक सम्पूर्ण रामायण सुना और मुनीश्वर वाल्मीकिकी स्तुति करके अवजयकार करते हुए उनपर पुष्पवृष्टि की ॥ ३ ॥ बादमें देवता, गंधर्व यक्ष, नाग, किन्नर, मुनिगण, गुह्यक, राजे-महाराजे, ब्रह्मा तथा मैं सब एक साथ उस रामायण महाकाव्यकी प्राप्तिके लिए परस्पर आदरपूर्वक झगड़ने लगे । ब्रह्मादि देवता पन्नगों, दैत्यों तथा मनुष्योंसे कहने लगे कि वाल्मीकीय काव्यको हमलोग स्वर्गमें ले जायेंगे । दैत्य तथा पन्नग कहने लगे कि हम

वयं काव्यं राघवस्य चरित्रं पावनं शुभम् । श्रुत्वा श्रुताः सभूपालाः प्रोचुः काव्यं हि भूतलान् ॥७॥
 नेतुं रसातलं स्वर्गं न दास्यामो वयं त्विदम् । काव्यार्थमिति ते चक्रुः कलहं रोमहर्षणम् ॥८॥
 ततो देवि जनान् सर्वान्निवार्य वचनैर्निर्जः । गत्वाऽहं तैस्तु क्षीरान्धौ शेषपर्यङ्कशायिनम् ॥९॥
 विष्णुं स्तुत्वा तु वेदोक्तैर्मन्त्रैर्नानाविधैरपि । नानापूजोपहारैश्च पूजयित्वा सविस्तरम् ॥१०॥
 कृतवान् गीतवाद्यादि तेन विष्णुर्वबुध्यत । पप्रच्छ मां तदा विष्णुः किमर्थं शोधितोऽस्म्यहम् ॥११॥
 पृथं सर्वं मया देवि कथितं तन्मविस्तरम् । काव्यार्थं कलहं श्रुत्वा प्रहस्य जगदीश्वरः ॥१२॥
 त्रिधा विभज्य काव्यं तत् क्षणेन भक्तवत्सलः । त्रयस्त्रिंशत्कोटिलक्षसहस्राणि पृथक् पृथक् ॥१३॥
 क्षतानि स्त्रीणि श्लोकाश्च त्रयस्त्रिंशच्छुभावहान् । दशाक्षरमितान्मन्त्रान्पञ्चमज्यत रमापतिः ॥१४॥
 द्वेऽक्षरे याचमानाय मन्त्रं शेषे ददौ हरिः । उपादिशाम्यहं काव्यां तेऽन्तकाले नृणां श्रुतौ ॥१५॥
 रामेति तारक मन्त्रं तमेव विद्धि पार्वति । लक्ष्मीगरुडशेषेभ्यो याचमानेभ्य आदरात् ॥१६॥
 मन्त्रत्रयं पृथक् विष्णुर्ददौ तेभ्योऽतिहर्षितः । शेषान् निनाय पातालं लक्ष्मीर्वैकुण्ठमादरात् ॥१७॥
 पृथिव्यामेव गरुडस्तं दधार महामनुम् । प्रापुः शेषान्पन्नगाद्याः सर्वे पातालवासिनः ॥१८॥
 स्वर्गं प्रापुर्महालक्ष्म्यास्तं मनुं निर्जरादयः । ताक्ष्यान्प्रापुर्महामन्त्रं सर्वं भूतलवासिनः ॥१९॥
 मन्त्रशास्त्रासत्स्वरूपं शेषं गुह्यं गिरिन्द्रजे । ततः पूर्वविभागान्म ददौ विष्णुः पृथक् पृथक् ॥२०॥
 एवं विभागं देवेभ्यो द्वितीयं पामश्वरः । मुनीश्वरेभ्यो नागेभ्यस्तृतीयं भागमुत्तमम् ॥२१॥
 ततो देवा निजं भागं स्वर्गं निन्युर्मुदान्विताः । पाताले पन्नगाद्याश्च निन्युर्भागं मुत निजम् ॥२२॥

लोग इस रसातलमें ले जायेंगे ॥ ४-८ ॥ क्योंकि इस वाक्यमें पवित्र तथा मन्त्र रामचरित्र वर्णित है । तब राजा-प्रजा और ऋषि लोगोंने कहा कि हम काव्यको भूतलपरमें न तो स्वर्गमें ले जाने देंगे और नहीं पातालमें । इस प्रकार ■ मंत्र रामायणके लिए परस्पर रोमहर्षण वागुज्ज करने लगे ॥ ७ ॥ ८ ॥
 ■ देवि ! पश्चात् मैंने उन सत्रको समझा-बुझाकर कलह करनेसे रोका और उन मंत्रको भाव लेकर मैं क्षीर-समुद्रमें शेषशय्यापर शयन करनेवाले विष्णुभगवान्के ■ गया और नाना प्रकारका पूजाकी वस्तुओंमें विस्तारपूर्वक पूजा करके अनेक वेदमंत्रोंसे उनको स्तुति की ॥ ९ ॥ १० ॥ तदनन्तर उनके सामने बाजे बजाकर गाना प्रारंभ किया । उससे विष्णु भगवान् आये और कहने लगे कि तुमने मुझको क्यों जगाया ? ॥ ११ ॥ हे देवि ! तब मैंने सब हाल साफ-साफ कह सुनाया । जगन्निवृत्ता विष्णुभगवान् रामायण महाकाव्यके लिए होने-वाले कलहको सुनकर हँस पड़े ॥ १२ ॥ उन भक्तवत्सल भगवान्ने क्षणधरमें उस काव्यके तीन भाग कर दिये । उनमेंसे प्रत्येक भाग तैंतीस करोड़ तैंतीस लाख, तैंतीस हजार तीन सौ तैंतीस प्लोकोंका बना । उन रमापतिने दस-दस अक्षरोंवाले मंत्रोंका भी विभाजन किया ॥ १३ ॥ १४ ॥ बाकी दो अक्षर श्रीहरिने दश हों अक्षरोंको भावना करनेवाले गुह्य (शिव) को दे दिया । ■ काशमें रहता हुआ अर्जकालमें उन्होंने दो अक्षरोंका मनुष्योंके कानमें उपदेश करता हूँ ॥ १५ ॥ हे पार्वती ! उन दो अक्षरोंको ही तुम 'राम' नामका तारक-मन्त्र समझो । अर्थात् वही दो अक्षरका 'राम' वह तारक मन्त्र है । पश्चात् बड़े आदरसे माँगने-पर विष्णु भगवान्ने अतिशय प्रसन्न होकर लक्ष्मी, गरुड और शेषनागको भी अलग-अलग तीन मन्त्र प्रदान किये । शेष भगवान् अपने मन्त्रको पातालमें, लक्ष्मी वैकुण्ठमें और गरुड उस महामन्त्रकी बड़ी चावसे पृथ्वीपथ ले गये ॥ १६ ॥ १७ ॥ शेषके द्वारा पातालमें गया हुआ मन्त्र पातालवासी नागोंको प्राप्त हो गया ॥ १८ ॥ स्वर्गमें लक्ष्मीके द्वारा वह मन्त्र सब देवताओंको मिला और भूतलवासी लोगोंको वह मन्त्र गरुडसे प्राप्त हुआ ॥ १९ ॥ हे गिरिन्द्रजे ! उन मंत्रोंका गुप्तस्वरूप मन्त्रशास्त्रोंसे जाना जा सकता है । तदनन्तर रामायणके किये हुए तीनों भागोंको विष्णुने अलग-अलग बाँट दिया ॥ २० ॥ उनमेंसे तैंतीस करोड़ तैंतीस ■ तैंतीस हजार तीन सौ तैंतीस ३३३३३३३३३३ मंत्रोंका एक भाग उन्होंने देवताओंको दिया । ३३३ : ३३३३३ का दूसरा भाग मुनीश्वरोंको पृथ्वीतलके लिए दिया और ३३३३३३३३३३ ■ तीसरा ■ नागोंको दिया ॥ २१ ॥

आर्याङ्गागो मुनीनां हि पृथिव्यां गिरिरामजे । तस्यापि विस्तर वक्ष्ये विभक्तो विष्णुना यथा ॥२३॥
 समद्रोपेषु सर्वेषु विभक्तः समधा पुनः ॥ तावद्वन्वारि लक्षणानि षट्सप्तानिमेवितानि हि ॥२४॥
 महस्त्राणि नर्थकानि विमुक्त्यैव तथा पुनः । समघट्टारिश्चन्मिताः श्लोकाश्चेति पृथक् पृथक् ॥२५॥
 विभक्तं समधा देवि समद्रोपेषु विष्णुना । त्रुःश्लोकाः शेषभूता याचमानाय वेषसे ॥२६॥
 इदं विष्णुस्तुष्टमना निजभक्त्याय भक्तितः । पुष्करद्रोपभागश्च वपयोद्विविधः कृतः ॥२७॥
 कोट्या द्वे षष्टिस्तुष्ट लक्षणानि हि तथा पुनः । महस्त्राणि नर्थकाय तथा पंचशतानि हि ॥२८॥

त्रयोविंशत्येव श्लोकाः षोडशाक्षरजो मनुः ।

एव द्विधा कृतो भागो विष्णुना वपयोस्त्वह ॥२९॥

शाकद्रोपादिद्रोपानां पंचानां च पृथक् पृथक् ।

ममस्वापि च वपेषु समं हरिणा यथा । तस्यद्वागा विभक्त्याश्च ताञ्छृणुष्व ब्रवीम्यहम् ॥३०॥
 अष्टपष्टि हि लक्षणानि महमे दे शनानि हि । समं च तथा श्लोका एकविंशच्छृणुमप्रदाः ॥३१॥
 विभज्य षट्सु द्रोपेषु हरिणैः यथाक्रमम् । जम्बूद्वीपगतो भानो नववर्षेषु सादरम् ॥३२॥
 विभक्तो विष्णुना देवि यथा त्वां च ब्रवीम्यहम् । द्विपंचशात् लक्षणानि तथा गिरिवरात्मजे ॥३३॥
 महस्त्राण्येकनवतिश्लोकाः पञ्च तथा पुनः । सप्ताक्षरमिता मंत्रास्त्वेव हि नवधा कृताः ॥३४॥
 शेषमेकमक्षरं श्रौतेति सर्वत्र विष्णुना । नववर्षेषु तत्पुत्रं तत्सर्वत्र न्योजयत् ॥३५॥
 नानानामसु मंत्रेषु न तस्य नियमः कृतः । विभज्येति महाविष्णुरदृश्यमगमत्तदा ॥३६॥
 अग्रे कालादरे देवि दक्षास्यो बुद्धिमत्तरः । निजबुद्धिबलादेव वेदानां च पृथक् पृथक् ॥३७॥
 शतशश्चैव खण्डानि करिष्यन्ति क्रज्जुनि च । ज्ञान्वा मंदधिगा त्रिषा भविष्यन्तीति वै कली ॥३८॥

देवता अपने भागको बड़ी प्रमत्तनासे देवलोकोमें ले गये । पत्रनगण अपने भागको सहर्ष पातालमें ले गये । हे गिरिन्दजे ! उसका तीसरा हिस्सा पृथ्वीपर रह गया । उस पृथ्वीतलके भागको भी जित प्रकार विष्णु-भगवान्ने बाँटा, सी हम तुमको विस्तारसे कह सुनाते हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥ पृथ्वीतलके भागको विष्णुने पृथ्वीके भात द्वीपोंमें बाँटा । उनमेंसे हर एक द्वीपका चार कराड़ छिहत्तर लाख उम्रोस हजार सेंतालाल (७७६१६०४) श्लोक दिये । उन भागोंमेंसे वच हुए चार श्लोक विष्णुने प्रसन्न होकर अपने भक्त ब्रह्माको भक्तिपूर्वक माँगनेपर दिये । उन भागोंमेंसे भा पुष्करद्रोपवाले भागके दो भाग किये ॥ २४-२७ ॥ पुष्कर-द्रोपके अन्तर्गत दो वर्षों (खंडों) का दो कराड़ अक्षोस लाख नौ हजार पाँच सौ तीस (२३८९५२३) बीसलाख सत्रह हजार श्लोक अलग-अलग करके दे दिए ॥ २८ ॥ २९ ॥ पञ्चान् विष्णुभगवान्ने शाकद्रोप, शौचद्रोप, गन्धद्रोप, अक्षद्रोप और कुण्डद्रोप इन पाँचो द्वीपोंका भी उसमेंसे हर एकके अन्तर्गत नौ-नौ देशोंमें बाँट दिया । उनको किनता-कितना मिला सा कहता हूँ ॥ ३० ॥ उनमेंसे हर एक वर्षको अक्षसठ लाख दो हजार सात सौ एककांश (६८०२७२१) सुन्दर श्लोक प्राप्त हुए ॥ ३१ ॥ इस प्रकार थीहरिने छः द्वीपोंके भागोंको विभक्त करनेके अनन्तर सातवें जम्बूद्वीपके भागको भी उसके अन्तर्गत भारत आदि नौ वर्षोंको बड़े प्रेमसे बाँट दिया ॥ ३२ ॥ हे देवि ! जैसा विष्णुने उसका विभाजन किया, वह तुमसे कहता हूँ । हे गिरि-वरात्मजे ! बावन लाख एवमानवें हजार पाँच (५२८१००५) सप्ताक्षरात्मक मंत्ररूप श्लोक उन्होंने बराबर-बराबर नौ भागोंमें बाँटकर नवों खण्डोंको दे दिये ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ शेष वच "थी" इस एक अक्षरको विष्णुने नवों खण्डोंके लिए छोड़ दिया । यह सब प्रकारके हन्वोंमें लगाया जा सकता है । इसका कोई नियम नहीं है । इस प्रकार विभाजन करनेके बाद विष्णुभगवान् बहृम्य हो गये ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ हे देवि ! आने चलकर कलियुगमें बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ दशवदन रावण कम बुद्धिवाले, व्याकुलचित्त तथा अल्पायु द्वाद्वाणोंको देखकर अपना बुद्धिके प्रभावसे वेदोंके संकटों अलग-अलग करके उन ब्राह्मणोंके

धीणापुपो व्यग्रचित्तास्तेषां योऽयानि रात्रयः । श्रीकृष्णोऽपि पुनर्देवि व्यामहपद्मो भुवि ॥३७॥
 मानवानां हितार्थाय काव्याद्भामायणात्पुनः । भागाद्भारतवर्षान्नरैर्नान्य विविधानि हि ॥३८॥
 पृथक् पृथक् समदश पुणानि करिष्यति । भारतं विनिर्हामं च महच्छ्रेष्ठं करिष्यति ॥३९॥
 भागाद्भारतवर्षान्नरैर्नान्य विवृणु च । स व्यासो भारतार्थं यदा शान्तिं न गच्छति ॥४०॥
 सरस्वत्यास्तटे व्यासो व्यग्रचित्तो भविष्यति । एतस्मिन्ननरे ब्रह्मा नारदाय महान्तरे ॥४१॥
 चतुःश्लोकैर्विष्णुदर्शनरूपदेशं करिष्यति । लब्ध्वा तान् नारदश्चापि सुवीणां रणयन्मुहुः ॥४२॥
 कीर्तयन् सुस्वरं गन्वा मुनिं मन्वन्तीमुनम् । ताञ्छ्लोकान् व्याममृन्मये य तदा व्यपदेश्यति ॥४३॥
 लब्ध्वा व्याममुनिः श्लोकांस्तान्माधव्ययंस्थितान् । शान्तिं लब्ध्वा तत्तरेषां विस्तारं च करिष्यति ॥
 तेषामेवार्थमादाय पुण्यं परमेदयम् । अष्टादशमहसं हि श्रीमद्भगवताभिधम् ॥४४॥
 करिष्यत्यष्टादशमं रम्यं वनमनोहरम् । भागवतस्यात एव वाणी भिन्ना भविष्यति ॥४५॥
 पुराणानां च सर्वेषां वान्मर्काकार्यैव गाः प्रिये । पृथक्पृथक् स्मृतो व्यासः श्रीमद्रामायणं शतम् ॥४६॥
 करिष्यति तथाप्यन्येऽपि पटुः सास्त्राणि सुवीण्वराः ॥४७॥
 भागाद्भारतसंख्यानं गताद्रामायणाद्भुवि । करिष्यति तथाप्येऽपि पटुः सास्त्राणि सुवीण्वराः ॥४८॥
 तस्माद्रामायणादेव सारमुद्धृत्य सादरान् । परिक्रिञ्चिद्विजिजे भूम्यां कीर्तयेत् यं कथानकम् ॥४९॥

रामायणांशजं विद्धि श्लोकमात्रमपीह यत् ।

पार्वत्युवाच

शभो ते प्रष्टुमिच्छामि व्यासाय नारदो मुनिः ॥ ५३ ॥

स्वयं श्रुत्वा विधिमुक्त्वाद्रम्यान्पातकनाश्रयान् । तान् रामचरितश्लोकांश्चतुरश्वोपदेश्यति ॥५४॥
 यैः करिष्यति स व्यासो मुनिर्भागवतं वरम् । ताञ्छ्लोकांश्चतुरस्रं मां कृपया वक्तुमर्हसि ॥५५॥

योग्य बनायेगा । हे देवि ! इसके अतिरिक्त स्वयं श्रीकृष्ण भी पृथ्वीपर व्यासका रूप धरकर अवतार लेंगे और मनुष्यों के कल्याण के लिए भारतवर्ष के भागवाले रामायण काव्यसे विविध प्रकार के पृथक् पृथक् सप्तह पुराण रचेंगे । ■ सर्वोत्तम तथा बड़ा भारी महाभारत नामका सुन्दर इतिहास भी लिखेंगे ॥ ३७-४१ ॥ जो भारतवर्षीय रामायण के भागका सारांश होगा । उन भारत आदि वीरोंका निर्माण करनेपर भी ■ व्यासजीको सन्तोष न होगा, तब वे व्यग्र होकर सरस्वती नदी के किनारे बैठेंगे । उसी अवसरपर ब्रह्माजी भी विष्णुप्रदत्त चार श्लोकोंका नारदको उपदेश करेंगे । नारदजी ■ श्लोकोंको प्राप्त करके अपनी सुन्दर वीणाको बारम्बार बजाते तथा सुन्दर स्वरसे गाते हुए मत्स्यवती के पुत्र व्यास मुनिके पास जाकर उनको उन श्लोकोंका उपदेश देंगे ॥ ४२-४५ ॥ व्यास मुनि उसी रामायणके चार श्लोकोंको प्राप्त करके बड़े भ्रान्त चित्तसे उनका विस्तार करेंगे । उनके अर्थका आश्रय लेकर परम उदार अर्थवाले, अठारह हजार श्लोकात्मक, रमणीय और मनुष्योंके मनको मोह लेनेवाले अठारहवें 'श्रीमद्भगवत' नामक महापुराणका निर्माण करेंगे । इसीलिए भागवतकी भाषा भी भिन्न प्रकारकी होगी अर्थात् अन्यान्य पुराणोंमें उनका लेख विलक्षण होगा ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ हे प्रिये ! सब पुराणोंकी भाषा वाल्मीकीयके समान ही है । तथापि शतरामायणके कर्ता व्यास अलग ही लिखे जायेंगे । वेदव्यास भूमिमें भारतवर्षीय रामायणके भागका सार ग्रहण करके और भी बहुतसे मनोहर उपपुराण बनायेंगे । इसी प्रकार उस रामायणका सारभाग लेकर अन्यान्य मुनीश्वर छः सास्त्रोंका निर्माण करेंगे । हे निरिजे ! पृथ्वीमण्डलपर और भी जो कुछ श्लोकात्मक तथा पद्यात्मक कदा मिले तो उसे भी तुम रामायणके अंशसे ही उत्पन्न समझो । पार्वतीजी बोलों—हे शंभो ! मैं आपके मुखारविन्दसे रामचरितके उन चार श्लोकोंको सुनना चाहती हूँ, जिन पापनाशक श्लोकोंको नारदने ब्रह्माके मुखसे सुनकर व्यासको सुनाया था ॥ ४८-५४ ॥ जिनके आशारपर व्यासमुनि अपूर्व भागवत ग्रंथको रचेंगे, उन चार श्लोकोंको कृपा करके

श्रीशिव उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया देवि सावधानमनाः शृणु । नारदोक्तांश्चतुःश्लोकांस्तवाग्रं प्रवदाम्यहम् ॥५६॥
नारदाद्यापि कथिता विधिना ये पुरा श्रुताः । ब्रह्मणे विष्णुना पूर्वं आगमचरितं यदा ॥५७॥
विमर्त्तं हि तदा दत्ताः शेषभूताः सुपुण्यदाः । तान् शृणुष्व चतुःश्लोकान् विष्णुनोक्तान्स्वयंश्रुवे ॥

श्रीभगवानुवाच

अहमेनाममेवाग्रं नान्यद्यन्मदसत्परम् । पश्चादहं यदेनञ्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥५९॥
श्रुतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चान्मनि । तद्विद्यादान्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः ॥६०॥
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु । प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ॥६१॥
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः । अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यन्स्यात्सर्वत्र सर्वदा ॥६२॥

श्रीशिव उवाच

एवं श्लोका भगवता चत्वारश्च प्रकीर्तिताः । वेधसे ये तवाग्रं ते कीर्तिता देवि वै मया ॥६३॥
एते पवित्राः पापघ्ना मर्त्यानां ज्ञानदायकाः । अज्ञाननाशनाः सद्यः कीर्तनीया नरोत्तमैः ॥६४॥
एवं देवि त्वया पृष्टं यथा तत्ते निवेदितम् । कथामागंभिता पूर्वमभुना शृणु वक्ष्याम्यहम् ॥६५॥
ततो रामायणं व्यासो विष्वस्तं मुनिभिः पुनः । कुर्वन्कत्र शेषभूतं समकांडमिदं शुभम् ॥६६॥
चतुर्विंशति माहसं रक्षिष्यति मुनिस्तदा । आदावन्ते तत्तत्तस्य श्लोकास्तत्र कियन्ति हि ॥६७॥
चतुर्विंशतिसाहसं व्यासस्य रचिता अपि । भविष्यन्ति गिरिजेऽग्रे मंगलाचरणादिषु ॥६८॥

आप अन्वय मुझसे कहें ॥ ५५ ॥ शिवजीने कहा—हे देवि ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । उन श्लोकोंको सावधान होकर सुनो । मैं उन नारदादि चार श्लोकोंको सुनाता हूँ ॥ ५६ ॥ उससे भी पहिले नारद-के समस्त श्रीरामके चरित्रस्वरूप वे ही चार श्लोक विष्णुने ब्रह्मासे कहे थे ॥ ५७ ॥ उन्हें विष्णुने ब्रह्मासे उस समय कहा था, जब कि उन्होंने रामायणका विभाजन किया था । उन बचे हुए पुष्पप्रद तथा विष्णुके द्वारा ब्रह्माको मिले हुए चार श्लोकोंको मन लगाकर श्रवण करो ॥ ५८ ॥ श्रीभगवान्ने कहा था - इस चराचर प्रपंचात्मक तथा पांचभौतिक संसारके उत्पन्न होनेके पूर्व न कोई सद्रस्तु थी और न असद्रस्तु । केवल सबका कारण तथा सृष्टिका बीजरूप मैं ही था । उसी प्रकार प्रलयके पश्चात् भी जो कुछ कार्यसमूहका अधिष्ठान-स्वरूप अवशिष्ट रहता है, मैं ही एकमात्र मैं हूँ ॥ ५९ ॥ जो वास्तविक वस्तु न होनेपर भी सद्दिचारके द्वारा वास्तविकरूपसे जान पड़ता है, परन्तु अब आत्म-अनात्मविषयक तत्त्वविचार किया जाता है, तब आत्माके अतिरिक्त जिसकी कोई सत्ता नहीं जान पड़ती, स्वभाववाली, भ्रान्तिवशान् आत्माको मायादित करनेवाली, आत्मसर्वस्वको मायाको मृगमरीचिकाके आभासकी तरह तथा आकाशकी तालिमाकी तरह सिम्या जानना चाहिये ॥ ६० ॥ जिस तरह पृथ्वी आदि पञ्चमहाभूत अग्न्यान्व भौतिक वस्तुसमूहमें अनुस्यूत होनेपर भी उनसे दिखाई देते हैं । उसी तरह मैं पञ्चमहाभूतोंमें व्याप्त होनेपर भी उनसे अर्थात् समस्त भौतिक संसारसे अलिप्त रहता ॥ ६१ ॥ वस, आत्मतत्त्वके जिज्ञासुओंको सदा और सब जगह अन्वय-व्यतिरेकसे उपर्युक्त बातोंका निश्चय करके आत्मतत्त्व तथा मायाको पृथक्-पृथक् विरुद्ध धर्मवाली जान लेना चाहिये । यही व्यापक नियम है ॥ ६२ ॥ शिवजी बोले—हे देवि ! भगवान् नारायणने जो चार श्लोक ब्रह्मासे कहे थे, मैंने तुम्हें कह सुनाये ॥ ६३ ॥ ये श्लोक पवित्र, पापनाशक, मृत्युलोक प्राणि-योंको उसमें ज्ञान देनेवाले तथा मोक्ष अज्ञानरूपी अन्धकारको दूर करनेवाले हैं । अतः समस्तदार मनुष्योंको निरन्तर इसका श्रवण, ध्यान और कीर्तन करते रहना चाहिये ॥ ६४ ॥ हे देवि ! जो तुमने पूर्वमें आरम्भिक कथा पढ़ी, सो मैंने तुमसे कही । आगे जो कहता हूँ, वह भी सुनो ॥ ६५ ॥ वार्ये मुनियोंके द्वारा इधर उधर बिखरे हुए रामायणकी व्यासमुनि फिरसे एकत्र करके सुन्दर सात कंडोंमें चौबीस हजार श्लोकयुक्त उसकी रक्षा करेंगे । इसी कारण चौबीस हजार श्लोकोंवाली रामायणके आदि तथा अन्तमें मंगलाचरण आदिके प्रकरणमें व्यासरचित और और भी कुछ श्लोक दृष्टिगोचर होंगे ॥ ६६-६८ ॥ देवि !

रामायणान्यनेकानि पृथगग्रे मुनीश्वराः । भागाद्भारतस्रष्टान्तर्गतात्कुमोदवादयः ॥६९॥
 करिष्यन्त्यत्र शतशस्तानि सर्वाणि पार्वति । वान्मर्माकीयाद्विना देवि न ज्ञेयानि मनीषिभिः ॥७०॥
 सारकाण्डं पुरा देवि यदुक्तं च मया तत्र । वान्मर्माकीयाश्च तच्चापि सारमुद्धृत्य वै मया ॥७१॥
 निवेदितं च क्षुधुना पृष्टं रामकथानकम् । सविस्तरं वदस्वेति त्वया तस्मान्मयोदितम् ॥७२॥
 मानं रामचरित्रस्य सतकोटिप्रविस्तरम् । पञ्चाननाञ्ज्यहं देवि दिव्यैर्वर्षावर्षदैरपि ॥७३॥
 रामायणं सविस्तरं व्याख्यातुं न क्षमस्तिवह । यन्निर्मितं च मुनिना स्वतपोभिरनुत्तमम् ॥७४॥
 अतः संक्षेपमात्रं हि स्मरं सारं विमृश च । कथयिष्यामि न्वत्प्रान्त्यै यात्राकाण्डं शुभावहम् ॥७५॥
 रामदासो यथाऽग्रे हि विष्णुदामं वदिष्यति । सतकोटिमितान् ज्ञानदृष्ट्या चाहं तव ॥७६॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतश्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे

रामायणविस्तारकथनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥२॥

तृतीयः सर्गः

(गंगा-सरयुसंगमपर आनेकी तैयागीके लिए दूतोंको रामकी आज्ञा)

पार्वत्युवाच

को रामदासः कुत्रस्थो विष्णुदामश्च कः स्मृतः । कथं वदिष्यति गुरुस्तन्मां कथय विस्तराद् ॥ १ ॥

श्रीशिव उवाच

भारते दण्डकारण्ये गोदानाभी धिराजिने । भेदेऽञ्जके नृमिहाण्यो मुनिरग्रे भविष्यति ॥ २ ॥
 रामनामा तु तत्पुत्रस्तच्छिष्यो विष्णुस्त्वपि । गुरुशिष्यौ गमसेशायनी नित्यं भविष्यतः ॥ ३ ॥
 दास्यत्वाञ्जानकीजानेस्तावुभी भूसुरोत्तमी । गमदामविष्णुदामाविति लोके पदं प्रथाम् ॥ ४ ॥
 गमिष्यतोऽग्रे भो देवि गौतम्या दक्षिणे तटे । गमदामः पितुः श्राद्धं गयायां मन्विधाय च ॥ ५ ॥
 पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि गत्वा यथाक्रमम् । अध्यापयिष्यति राज्ञान् गोदानाभी गृहाश्रमी ६ ॥

भारतवर्षमें प्रचलित रामायणके भागके आधारपर अगस्त्य आदि अन्यान्य मुनि भी मैकड़ों रामायण लिखेंगे । पर विचारशील पुरुषोंको उन्हें वात्समीकीय रामायणसे पृथक् न समझना चाहिये ॥ ६९ ॥ ७० ॥ हे पार्वती । पहले जो मैंने तुमको सारकाण्ड सुनाया, वह भी वात्समीकीय रामायणका सार ही था ॥ ७१ ॥ उसके बाद जो तुमने रामकी सविस्तर कथा पूछी और मैंने सुनायी, उसका एक अरब श्लोकोंमें विस्तार है । हे देवि ! पञ्चमुखसे मैं दिग्ग अरब वर्षोंमें भी सम्पूर्ण रामायणको व्याख्या करनेमें समर्थ नहीं हूँ । तब फिर औरोंका तो कहना ही क्या है । इसका रचना वात्समीकि ऋषिने अपने तपोव्रतसे की थी ॥ ७२-७४ ॥ इसलिये सारमात्र लेकर संक्षेपमें मैं तुम्हारी प्रसन्नताके हेतु मनोहारण यात्राकाण्ड सुनाऊँगा ॥ ७५ ॥ जिस सी करोड़ श्लोकोंकी रामायणको आगे चलकर रामदास विष्णुदासको सुनाएँगे, वही मैं ज्ञानदृष्टिसे देख कर तुमको सुनाता हूँ ॥ ७६ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतश्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे 'व्योत्सना' भाषाटीकायां रामायणविस्तारकथनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

पार्वतीजीने पूछा—हे महाराज ! रामदास कौन और कहकि हैं ? ये विष्णुदास कौन हैं ? रामदास विष्णुदासको क्यों विस्तारसे रामायण सुनायेंगे, यह भी कह सुनाइये ॥ १ ॥ शिवजीने उत्तर दिया कि भारतवर्षके दंडकारण्यमें गोदावरीके मध्यप्रदेशीय अन्धक क्षेत्रमें आगे चलकर नृसिंह नामके एक मुनि होंगे ॥ २ ॥ नृसिंहमुनिके पुत्र रामदास और रामदासके शिष्य विष्णुदास होंगे । ये दोनों गुरु-शिष्य निरन्तर रामकी भक्ति करनेवाले होंगे ॥ ३ ॥ सीतापति रामके दास होनेके कारण ही ये दोनों रामदास तथा विष्णुदास नामसे संसारमें परम प्रसिद्धि प्राप्त करेंगे । हे देवि ! आगे चलकर वे ही गौतमी नदीके दक्षिण तटपर गयामें पिताका श्राद्ध करके पृथ्वीके समस्त तीर्थोंका भ्रमण करनेके बाद गृहस्थाश्रम स्वीकार करके

एकदा विष्णुदासः स श्रुत्वा नानाविधाः कथाः । रामदासमृत्वात्सारकाण्डं रामायणोद्भवम् ॥ ७ ॥

श्रुत्वा किञ्चित्प्रष्टुमना रामदासं वदिष्यति ।

विष्णुदास उवाच

गुरो ते प्रष्टुमिच्छामि तत्त्वं वक्तुमिहार्हमि ॥ ८ ॥

सारकाण्डं भया त्वत्तः श्रुतं रामायणस्थितम् । न किञ्चित्सौख्यलेभोऽपि जानक्या राघवस्य च ॥ ९ ॥

श्रुतोऽत्र कापि राज्यस्य विस्तारोऽपि च न श्रुतः । कथं यागाः कृतास्तेन मन्ततिस्तस्य न श्रुता ॥ १० ॥

सुतानां बंधुपुत्राणां विवाहादिकमश्रुतम् । तत्सर्वं विस्तगन्तः श्रोतुमिच्छाऽस्ति मे गुरो ॥ ११ ॥

तत्त्वं वद महाभाग रघुर्वारस्य चेष्टितम् । रम्यं पवित्रमानन्ददायकं पातकापहम् ॥ १२ ॥

उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया वत्स रामचन्द्रकथानकम् । मंगलं रघुनाथस्य प्रोच्यते यत्सविस्तरम् ॥ १३ ॥

सायधानमनाम्बुं तच्छृणु पातकनाशनम् । श्रुतं मया पूर्वं तुष्ट्यर्थं न वदाम्यहम् ॥ १४ ॥

इन्द्रा दशाननं रामो राज्यं निहतकंटकम् । अयोध्यायां मृत्तिपुर्यां प्रशाम नानिमजमः ॥ १५ ॥

न दुर्मित्रं न चौर्यं च नापमृत्युर्न चेतयः । न द्राग्द्विगं भयं चिन्ता व्याधयश्च कदाचन ॥ १६ ॥

न भिक्षार्थी न दुर्दत्तो न पापात्मा न निष्ठुरः । न क्रोधा न कृतघ्नोऽपि गमे राज्यं प्रशामति ॥ १७ ॥

एकदा जानकी कान्तमेकान्ते प्राह लज्जिता । स्मितवपत्रा चारुनागा दिव्यालङ्कारमण्डिता ॥ १८ ॥

चामरव्यग्रहस्ता सा विनयावनतानना । राम राजावपत्राक्ष रावणारे मम प्रभो ॥ १९ ॥

किञ्चिद्विस्तुमिच्छामि यद्यनुतां करोपि हि । विशापयामि तर्हि त्वां धर्ममूलं महोदयम् ॥ २० ॥

मोदावरीके सदवर्ती गाँवमें छात्रोंको अनेक शास्त्रोंका कराण्णें ॥ ४-६ ॥ उभी अवसरपर किसी दिन विष्णुदास रामदासगे बहुतोरी कथा सुनते-सुनते रामायणका सारकाण्ड सुनकर कुछ प्रश्न करनेको इच्छासे कहेंगे—हे गुरो ! मे आपगे जो प्रश्न करनेकी इच्छा करता हूँ, उसका मुक्तिसंगत उत्तर देनेमें आप समर्थ हैं । हे गुरो ! मैंने आपमें रामायणका सारकाण्ड तो सुन लिया, परन्तु उममें मैंने कहीं भी महारानी जानकी अथवा राजा रामचन्द्रका कोई मुख्य मंवाद नहीं सुना और न उनके राज्यका विवरण हो सुन पाया । उन्होंने कैसे और किस प्रकार राज किये ? उनकी मंतरोंका विस्तार भी नहीं सुननेको मिला । राम तथा उनके भाइयोंके पुत्रोंके विवाह आदिका वर्णन भी मैं नहीं सुन सका । हे गुरो ! यह सब मैं आपसे श्रीमुखसे विस्तार-पूर्वक सुनना चाहता हूँ ॥ ७-११ ॥ इसलिए हे महाभाग । श्रीरामचन्द्रजीका वह मनोहर, पावन, मानन्ददायक तथा पापपुच्छहारी चरित्र आप मुझको सुनाएँ ॥ १२ ॥ रामदास बोले—हे वत्स ! तुममें रामचन्द्रका कथा-विषयक यह बड़ा हो उत्तम प्रश्न किया है । रघुनाथजीके उग्र मांगलिक चरित्रको मैं विस्तारसे वर्णन करता हूँ ॥ १३ ॥ उनकी कथा अवधभाषसे जन्म-जन्मान्तरके पापोंको नष्ट कर देती है । उसको मैंने जैसे सुना है, वैसा ही तुम्हारी प्रसन्नताके लिए कहता हूँ । अब सावधान होकर सुनो ॥ १४ ॥ रामचन्द्रजी दशानन रावणको मारकर मोक्षदायिनी अयोध्यानगरीमें रहते हुए नोतिपूर्वक निष्कंटक राज्य करने लगे ॥ १५ ॥ उनके राज्यमें कमी भी अकाल नहो पड़ा और चोरी नहो हुई । किसीका अकाल या कुस्मित मरण नहीं हुआ । अतिवृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डी तथा मूसोंसे खेतोंका नाश, पक्षियोंसे लेनाका विनाश और राजविद्रोहसे जायमान ईतिर्ये (विपत्तिये) भी उनके राज्यकालमें लोगोंपर नहीं आयी । उनके राज्यमें कोई दरिद्र, मयभीत, चिन्तातुर या रोगपीडित नहीं रहता था ॥ १६ ॥ उनके राज्यकालमें कोई भिक्षारी, दुराचारी, पापी, क्रूर, क्रोधी और कृतघ्न भी नहीं होता था ॥ १७ ॥ ऐसे सुख-शान्तिके समय एक दिन हास्ययुक्तमुख-वाली, सुन्दर नासिकायुक्त एवं देवियोंके योग्य अलंकारोंसे विभूषित जानकी कुछ लज्जापूर्वक एकान्तमें अपने प्रिय पति रामसे कहने लगीं । उस जानकीके हाथमें मनोहर चमर था । ऐसी दशामें वे विनयसे नीचा मुख किये हुए बोलों—हे कमलपत्रके समान नयनोंवाले, रावणके शत्रु तथा मेरे नाथ राम । यदि

तत्सीतावचनं श्रुत्वा जानकी प्राह राघवः । हे सीते कंजनयने मम प्राणसुखास्पदे ॥२१॥
 शीघ्रं वदस्व यत्तेऽस्ति चित्ते तत्कारवाण्यहम् । इति राघवसम्मानवचनैर्जनकात्मजा ॥२२॥
 नितरां तोषपूरौषपरिपूर्णाऽजकीर्त्यतिम् ।

श्रीसीतोवाच

यदा त्वं राघवश्रेष्ठ दण्डकं वचनात्पितुः ॥२३॥

मया सौमित्रिणा साकं पूर्वं स्यनगराद्गतः । मृगवेरपुरं गत्वा जाह्नव्यास्तरणे यदा ॥२४॥
 नौकार्या स्थितमस्माभिर्भार्गाभ्यां तदा पुरा । संकल्पितं मया किञ्चित्त्वां वक्ष्याम्यहं प्रभो ॥२५॥
 देवि गंगे नमस्तेऽस्तु निवृत्ता वनवासतः । रामेण सहिताऽहं त्वां लक्ष्मणेन च पूजये ॥२६॥
 सुराभांसोपहारैश्च नानाबलिभिरादृता । इत्युक्तं वचनं पूर्वं तज्ज्ञानं भवताऽपि ॥२७॥
 ततश्चतुर्दशे वर्षे विमानेन यदाऽऽगतम् । तदा भरतश्शत्रुघ्नकीसल्याविहातुरा ॥२८॥
 अहं तद्विस्मृता रामा स्मृतिर्जाताऽहं मे प्रभो । तन्मत्संकल्पपूर्त्यर्थं गंतुमर्हसि जाह्नवीम् ॥२९॥
 मया मातृबंधुभिस्त्वमिति ते प्रार्थयाम्यहम् । रोचते यदि ते चित्ते न त्वामाज्ञापयाम्यहम् ॥३०॥
 इति सीतावचः श्रुत्वा प्रहस्य रघुनन्दनः । सीतामालिङ्ग्य बाहुभ्यां हर्षयन् तामुवाच सः ॥३१॥
 एतद्वचनचातुर्यं कुतो जानासि मैथिलि । न तत्ते वचनं देवि गङ्गा प्रति मर्मैव तत् ॥३२॥
 वचनाच्च वैदेहि श्वो गङ्गा जाह्नवी प्रति । ते वाञ्छाऽस्ति दयिते गङ्गां गन्तुं वदस्व मे ॥३३॥
 तच्छ्रुत्वा तत्र धीं स्वातुं सेनायोग्यसमं मृदु । शत्रुं कर्तुं हि पन्थानं दूतानाज्ञापयाम्यहम् ॥३४॥
 ततः सीताऽज्जवीक्षाक्यं पुनः श्रीरामचोदिता । यत्र गङ्गा च सरयू संगताऽस्ति रघूदह ॥३५॥

आप मुझे आज्ञा दें तो मैं आपसे कुछ निवेदन करना चाहती हूँ । वह मेरा निवेदन धर्मसम्मत तथा अभ्यु-
 वयकारी होगा ॥ १८-२० ॥ राम सीताका मुनकर कहने लगे—हे कमलनयनी ! हे मम प्राणमुखावहे
 सीते ! तुम जो कहना चाहो, सो शीघ्र कहो । मैं उमे अभी पूरा करनेको तैयार हूँ । इस प्रकार रामके सम्मानभरे
 वचनोंसे जनकनन्दिनी संतोषको लहरोसे नितान्त लहरा उठी और पतिसे कहने लगी । श्रीसीताजी बोली—हे
 राघवश्रेष्ठ ! जब आप पिताके कहनेपर दंडकारण्य जानेके लिए मुझे तथा सुमित्रापुत्र लक्ष्मणको साथ लेकर
 जयोध्या नगरोसे चले थे और जब मृगवेरपुर जाकर जाह्नवी नदीमें नावपर हमलोग सवार हुए थे । उस
 समय भगवती भागोरयोको बीच धारामें मैने जो संकल्प किया था । हे प्रभो ! वह आज आपको सुनाती
 हूँ ॥ २१-२५ ॥ मैं गंगाको नमस्कार करके कहा था—हे देवि ! जब मैं राम तथा लक्ष्मणके साथ
 वनवाससे लौटूँगी, उस समय सुरासे, भांससे तथा अनेक प्रकारकी पूजासापणसे तुम्हारी पूजा करूँगी ।
 उस कहे हुए मेरे इस वचनको आपने भी सुना था ॥ २६ ॥ २७ ॥ पश्चात् चौदह वर्ष बाद जब हमलोग
 विमान द्वारा वमसे लौटे, तब भरत-शत्रुघ्न और माता कीमल्याके वियोगसे आतुर होनेके कारण मैं उस बातको
 भूल गयी । हे प्रभो ! आज मुझे उस बातका पुनः स्मरण आया है । अतएव मेरे उस संकल्पको पूरा करनेके लिए
 माताओं, भाइयों तथा मुझे लेकर आपको गंगाजीके तटपर चलना चाहिये । यही मेरी आपसे प्रार्थना है ।
 यदि आप उचित समझें तो चलें । मैं आपको इस बातका आज्ञा नहीं देती । क्योंकि स्त्रीका पतिको आज्ञा देना
 अधर्म है, परन्तु सविनय उचित परामर्श देना न्याय्य और धर्मसम्मत है ॥ २८-३० ॥ सीताके इस
 वाक्यको सुनकर राम बड़े प्रसन्न हुए और आलिङ्गन करके सीतासे सहृदय कहने लगे—॥ ३१ ॥ हे मैथिली !
 इस प्रकारका वचनचातुर्यं तुममें कहाँसे आ गया ? तुम्हारा वह वचन गंगाके प्रति नहीं, प्रत्युत मेरे ही प्रति
 था ॥ ३२ ॥ हे वैदेहि ! तुम्हारे कथनानुसार मैं कल ही गंगाजी चलनेके लिए तैयार हूँ । हे प्रिये !
 तुम्हारी जिस अगह और जिस तीर्थको चलनेकी इच्छा हो, वह कहो ॥ ३३ ॥ इस बातको जानकर
 मैं वहाँ सेनाको ठहरानेके लिए स्थान और मार्ग साफ-सुथरा करनेके लिए दूतोंको आज्ञा दे दूँ ॥ ३४ ॥ इस प्रकार
 रामके पूछनेपर सीताने कहा—हे रघुनन्दन ! जहाँ गंगा और सरयूजीका संगम हुआ है, वहाँपर गंगाजीके

तत्र गङ्गोत्तरे वेषे गंतुमिच्छति मे मनः । इति सीतावचः श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा रघूद्वहः ॥३६॥
 द्वारपालं समाहूय पटैराच्छाद्य जानकीम् । आशापयच्च तं रामः शीघ्रं गच्छ ममाह्वया ॥३७॥
 लक्ष्मणं वचनं मे एवं कथयस्व सविस्तरम् । ज्ञायक्यः शो ममोद्योगः सीतायार्थेन कौतुकात् ॥३८॥
 सरयूतटस्थे गङ्गापूजनार्थं तस्या सह । मातृभिर्मन्त्रिभिः सैन्यैः सुहृद्भिर्भरतेन च ॥३९॥
 शत्रुघ्नेन पुरिस्थैश्च जनेर्विभ्रपथासुखम् । सेनानिवेशस्थानानि योजमाद्वान्तराणि च ॥४०॥
 पूरिताम्रमत्तोयायैः कल्पनीयानि वै पृथक् । इति रामवचः श्रुत्वा तथेति त्वरान्वितः ॥४१॥
 आह्लाप्रमाणमित्युक्त्वा नत्वा रामं पुनः पुनः । कथयामास सौमित्रि रामवाक्यं सविस्तरम् ॥४२॥
 तद्वाक्यवचनं श्रुत्वा यौवराज्यपदस्थितः । सभायां मन्त्रिभिर्युक्तो लक्ष्मणो दूतमत्रवात् ॥४३॥
 अङ्गीकृतं रामवाक्यमिति रामं वदस्व तत् । तच्छ्रुत्वा त्वरितं दूतः कथयामास राघवम् ॥४४॥
 सभायां लक्ष्मणश्चापि दूतानां तापयत्तदा । लक्ष्मदण्डकरान् चित्रोष्णीषयुक्तान् पिभूषितान् ४५॥
 गच्छन् त्वरिता यूयं कथयध्वं जनान्पुरि । अपोध्यावां राघवस्य शो यात्रार्थं समुद्यमः ॥४६॥
 तथेत्युक्त्वा जवाद्गता राजमार्गेषु सर्वतः । दीर्घस्वरेण ते प्रोचुधोर्ध्वं कृत्वाऽऽत्मसत्करान् ॥४७॥
 हे जनाः शृणुत स्वस्थाः यः सीतारामयोर्मृदा । समुद्योगोऽस्ति पूजार्थं सरयवाः सङ्गमं प्रति ॥४८॥
 मागीरध्यां सुहृद्भिश्च सावरोर्ध्वर्लः मह । इति संश्राव्य सकलान् जनान् साकेतवासिनः ॥४९॥
 ते दूता राजमयने लक्ष्मणं तं पुनर्ययुः । संश्राव्य ते जनांश्च ज्ञा रामोद्योगं न्यवेदयन् ॥५०॥
 सभायां लक्ष्मणश्चापि समाहूयानुर्जर्जवात् । तप्तकानिष्ठिकाकारान्दृप्तकर्मसु नैष्ठिकान् ॥५१॥
 लोहकाशंश्मकान् मिथिकर्मादिनैष्ठिकान् । कथयिक्रयकृतंश्च काष्ठनिर्जावकारिणः ॥५२॥
 शमोपृहविदग्धाश्च महिर्पर्जलबाहिनः । नानाकर्मसु निष्णाता रज्जुकुशलधारिणः ॥५३॥

उत्तरो तटपर जानेकी मेरे मनमें इच्छा है । सीताकी इच्छाकी सुनकर रामने 'बहुत अच्छा' ऐसा कहा ॥ ३६ ॥ ३६ ॥ तदनंतर जानकीको महलके भीतर भेज तथा द्वारपालको बुलाकर रामने कहा—तुम मेरी आज्ञासे अभी लक्ष्मणके पास जाकर मेरा आदेश उनसे कह दो । उनसे कहना कि कल प्रातःकाल सीताकी इच्छासे तुम्हारे, माताओं, मन्त्रियों, सेनाओं, भरत-शत्रुघ्न, पुरवासो जनों तथा ब्राह्मणोंके साथ सरयूके संगम-पर गङ्गाजीका पूजन करनेके लिए धूम-धामसे मेरा जाना निश्चित हुआ है । इस लिये रास्तेमें दो-दो कोसपर भस्म-जलसे परिपूर्ण शिबिर तैयार कराओ । रामके इस वचनको सुनकर वह दूत 'बहुत अच्छा, जो आज्ञा' कह तथा रामको बारम्बार नमस्कार करके वहाँसे शीघ्र चल पड़ा । लक्ष्मणके पास जाकर उसने विस्तारसे रामकी सुना दी ॥ ३७-४२ ॥ युवराजपदपर स्थित तथा मन्त्रियोंके साथ सभामें विराजमान लक्ष्मणने रामके आदेशको दूतके मुखसे सुना तो उससे कहा—॥ ४३ ॥ तुम जाकर श्रीरामसे कहो कि आपकी आज्ञाके अनुसार सब कार्य ठीक हो जायगा । दूतने जाकर शीघ्र ही रामको यह सन्देश सुना दिया ॥ ४४ ॥ तब लक्ष्मणने सोनेके दण्ड धारण करनेवाले रंग-विरंगी पगड़ों सिरपर बांधे तथा सुन्दर पोशाक पहिने हुए बहुतसे सिपाहियोंको बुलाकर उन्हें यह बोली—॥ ४५ ॥ तुमलोग शीघ्र नगरभरमें घूमकर सब नगरवासियोंको रामचन्द्रजीके कल यात्राके लिए प्रस्थान करनेका समाचार सुना आओ ॥ ४६ ॥ 'सपास्तु' कहकर वे दूत नगरकी सड़कोंपर धूम-धूम तथा हाथ उठा-उठाकर ऊँचे स्वरसे सब लोगोंको सुनाने लगे—॥ ४७ ॥ 'हे नगरवासियों ! ध्यान देकर सुनो । राम और सीता कल अन्तःपुरवासिनी कियों, सगे-संबन्धियों और सेनाको साथ लेकर सरयूतटके संगमपर गङ्गाका पूजन करनेके लिए जायेंगे । अपोध्यावासी लोगोंको यह समाचार सुनाकर वे पुनः लक्ष्मणजीके पास आगये और बोले कि हमलोग नगरके सब लोगोंको रामजीका यात्राका समाचार सुना आये ॥ ४८-५० ॥ तदनंतर लक्ष्मणने नौकरोंके द्वारा बड़ई, ईंटें पायनेवाले कुम्हार, पत्थरके काममें कुशल संगतरास ॥ ५१ ॥ लोहार, चमार, भीत-मकान आदि बनानेमें शूर राजगौर, लोहा बेचने तथा खरीदनेवाले बनिये, लकड़हारे, कपड़ेके डेरा-चम्पूके

एतानाज्ञापयामास तोषणाद् यमनादिभिः । संधानितान्स सीमित्रिः कथयामास सादरम् ॥५४॥
 समुद्योगं राधवस्य सीतायाः शो बलः सह । ऋजुर्मागो विधातव्यः समः कर्कस्वजितः ॥५५॥
 निम्ना भूमिः समा कार्या उच्चा भूमिः समाऽपि च । छिद्यतां पार्वता वृक्षा भार्गव्या दुःखदायकाः ॥५६॥
 वाप्यः कूपास्तडागाश्च गोधनीयाः सहस्रशः । नवीनाश्चापि कर्तव्याः सतोया निर्जले वने ॥५७॥
 सेनानिवेशस्थानानि योजनादौ सविस्तरे । कम्पनीयानि पुष्पाभिः पूरितान्यश्ववारिभिः ॥५८॥
 चुल्लयो रम्या विधातव्याः पाकशालाः सभित्तयः । यस्मैर्गृहाणि कार्याणि वर्णश्चापि सहस्रशः ॥५९॥
 आरक्तस्वर्परं राच्छादितानि चित्रितानि हि । नानागृहाणि कार्याणि पूरितान्यश्ववारिभिः ॥६०॥
 पुष्पाणां वाटिकाः कार्याः शतशोऽप्य महस्रशः । मार्गं मार्गं कर्तुं कार्यं भित्ती चित्राण्यनेकशः ॥६१॥
 नरस्कंधगताश्चित्रवाटिकाश्च सहस्रशः । पुष्पाणां वाटिकाश्च कर्मृत्पात्रनिर्मिताः शुभाः ॥६२॥
 मार्गं मार्गं गायकानां स्थलान्यपि सहस्रशः । सेनानियासस्थानेषु हस्त्यश्वरथवाजिनाम् ॥६३॥
 सहस्रशो विधातव्याः शालाः पूर्णास्तृणादिभिः । सुगंधचंदनमार्गाः सेचनीयाः समंततः ॥६४॥
 नेमिरेखाऽपि सा मार्गं विचित्रवसनैर्गृहाः । पुष्पराच्छादनीयास्तो हृदाः सन्तु समंततः ॥६५॥
 मृगारं रतिचित्रं च हस्त्युष्ट्ररथवाजिनः । वस्त्रालङ्कारघण्टाभिः शोभनीयाः सहस्रशः ॥६६॥
 शकटेषु तथोष्ट्रेषु वारणेषु रथादिषु । शतज्यः परिधा वाणाः शक्तयः कार्मुकान्यपि ॥६७॥
 स्थापनीयानि शतशो विधातव्या स्वजा अपि । चतुर्ध्वपि विधातव्या ध्वजा रामरथेषु हि ॥६८॥
 हनुमत्कोविदारण्डजेशवाणांकिनाः शुभाः । चतुर्ध्वपि बंधनीयाः पताकाः स्पंदनेषु हि ॥६९॥
 हरितश्वेनपीतनालवर्णाः परमशोभनाः । गजपृष्ठे गण्डवार्धं हरिद्वर्णाङ्कितामनम् ॥७०॥

निर्माणमें निपुण दर्जी, भूमेक दाना जल डोनेवाले भिन्नता तथा अगान्य नाना कर्मोंमें कुशल, रस्ती बटने-
 वाले और वृद्धा चलावेवाले आदि-आदि मजूरीको मन्त्राये बुलाकर वस्त्र आदिसे सत्कार करके प्रसन्न किया
 और आद्यपूर्वक उनसे कहा— ५४-५८ ॥ राम-माता सेनाके साथ तोथंपात्राके लिए जानेवाले
 हैं । सो तुम लोग उनसे सम्पूर्ण रास्तेको संकट-पथपर जानकर गाफ-मुधरा कर दो ॥ ५५ ॥ रास्तेको ऊँची-
 नीची जमीन बराबर कर दो । मार्गके दुःखदायी पर्वताय वृक्षाको काट डालो ॥ ५६ ॥ रास्तेकी बाधकी,
 कूएँ तथा तालाबोंको शाफ कर दो और निर्जल वनमें नये सैकड़ों तालाब-कूएँ आदि खोद दो ॥ ५७ ॥
 बाधे-आधे योजनापर सेनाके लिए भिन्न-भिन्न बनाकर अन्न-जलसे परिपूर्ण कर दो ॥ ५८ ॥ सुन्दर दोंकारों
 लड़ी करके भोजनालय और चूल्हें तैयार करे । जगह-जगह वस्त्र तथा घासके अम्बार लगा दो ॥ ५९ ॥
 पके हुए लाल खण्डोंसे छाये हुए भिन्न-विभिन्न घरोंमें प्रचुरमात्रामें अन्न-जल भंडित करके रखवा दो
 ॥ ६० ॥ मार्गमें स्नान-स्थानपर सैकड़ों तथा हजारोंका संख्यामें आनन्द लेनेके लिए दोबारोंपर रंग-बिरंगे
 विभिन्न लीच दो तथा मनोविनोदके लिए वाद्य-वाद्यमें पुष्पवाटिकाएँ लगा दो ॥ ६१ ॥ नरपुतलियोंके
 कंधेपर रखे हुए फूलोंसे गमले अथवा जमानपर ही फूलोंके गमलोंको सजाकर स्नान-स्थानपर
 सैकड़ों-हजारों वाटिकाएँ तैयार कर दो ॥ ६२ ॥ पथ-पथपर गायकोंको गायनशालायें रच दो ।
 सेनाके हर एक सन्निवेशस्थानमें दाने तथा घाससे पूर्ण अनेक अन्नशालायें और हस्तिशालायें तैयार
 कर रखो । चन्दन तथा गुलाब आदिके गुग्गुनिधत जल ॥ रास्तेमें छिड़कवा दो तथा भिन्न-
 विभिन्न धारीवाले कपड़ोंके तम्बू बनाकर जगह-जगह गाड़ दो और उनपर विविध रंगकी पुष्पमालाएँ
 टांग दो । उनके चारों ओर बाजार लगा दो ॥ ६३-६५ ॥ तमाम हाथी-घोड़े, ऊँट तथा रथोंकी वस्त्र
 अलंकारसे अलंकृत करके तथा घण्टे आदि बाधकर सुसज्जित कर दो ॥ ६६ ॥ बैलगाड़ियोंमें, ऊँटोंपर और रथ
 आदिपर धनुष-बाण, सुदूर, शक्ति, तोप अथवा बन्दूकें रख दो ॥ ६७ ॥ रास्तेके चोतरफा और दरवाजे
 आदिपर ध्वजाएँ गाड़ तथा बीच दो । रामजीके चारों रथोंपर भी ध्वजाएँ बांध दो ॥ ६८ ॥ उन चारों
 स्तम्भनोंपर हनुमान, कोविदार, गरुड और बाणके चिह्नोंवाली पताकाएँ होनी चाहियें ॥ ६९ ॥ ॥ ध्वजाएँ हरे,

रुक्ममाणिक्यरचितं सितच्छत्रोपशोभितम् । स्थापनीयं महादिव्यं मुक्ताहारविराजितम् ॥७१॥
 सीतार्थं करिणीपृष्ठे नीलवर्णं महासनम् । रुक्मविद्रुमवद्भूषणस्तनमुक्ताविराजितम् ॥७२॥
 मुक्ताफलहेमतंतुगणैराच्छादितं वरम् । सिद्धं कार्यं महादिव्यं स्वर्णकुम्भविराजितम् ॥७३॥
 पुष्पमालास्तोरणानि बन्धनीयानि वै पथि । नृत्यंतु जगद्वेद्याश्च स्तुतिं कुर्वन्तु वन्दिनः ॥७४॥
 द्रव्यैर्वस्त्रैराभरणैः पूजाद्रव्यैश्च गौरसैः । पार्जनानाविर्धदिव्यैः पूर्णाया रथोत्तमाः ॥७५॥
 अन्यथापि मया नोक्तं पद्मद्योग्यं हि तत्पथि । सिद्धं कार्यं हि योगेन येन तुष्पति राघवः ॥७६॥
 इति सन्दिश्य मेधावी लक्ष्मणः सह मंत्रिभिः । सायं मन्ध्यादिकं कर्तुं जगाम निजमन्दिरम् ॥७७॥
 सौमित्रेराश्रया तेऽपि तथा चक्रुर्यथोदिताः । संतुष्टास्ते यथायोग्यं राममन्तोपहृतवे ॥७८॥
 रामोऽपि सीतया सादृष्टं मन्दिरे स्तननिर्मिते । मञ्चकं पुष्पश्रव्यायां सीतामालिङ्ग्य वै दृढम् ॥७९॥
 रुक्मनेपथ्ययुक्ताभिर्दासीभिश्च मुद्रमुद्गुः । वाजिनो बालव्यजननिधिं सुप्तः सुप्तं तदा ॥८०॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे दूताज्ञाकरणं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥



चतुर्थः सर्गः

(रामका सरयूके दो सण्ड करना)

रामदास उवाच

उषः प्रातः समुत्थाय श्रुत्वा वासध्वनिं तथा । गायनं वंदिमिगीतं सीतया सह राघवः ॥ १ ॥
 कृत्वा नित्यविधिं मयै दत्त्वा दानानि विस्तृतात् । ज्योतिर्विदं ममाङ्ग्यं गोपालाभिधमृगमम् ॥ २ ॥
 नमस्कृत्वाऽथ संपूज्य गणकं राघवोऽब्रवीत् । भो गोपाल महाबुद्धे न्यां पृच्छंऽहं द्विजां नमः ॥ ३ ॥

पीले, श्वेत और नीले रंगकी सुन्दर धनी हुईं। रामचन्द्रजीके लिए हाथीपर हरे रंगके मलमलकी गद्दा-तकिया लगाकर उसपर मुक्ताके हार टांग देने चाहिये और सोना तथा माणिक्यसे रचित, बहुमूल्य, दिव्य, गरम सुन्दर तथा श्वेत छत्र भी लगा देना चाहिये ॥ ७० ॥ ७१ ॥ एक दूसरी हथियांकी गोठपर सोनाके लिये मुवर्ण, विद्रुम (सूँगे), वेदूर्यमणि, रत्न, मोती तथा गजमुक्ता लगा हुआ हुना, जगेंदार एवं बहुमूल्य आभरन बिछाकर तैयार करो और उसके हीदेपर बहुतसे छोटे-छोटे मुवर्णके कलश भी लगा दो। जिससे कि वह अधिक सुन्दर प्रतीत होने लगे ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ रास्तेमें फूलोंकी मालाएं और तोरण बांध दो। वेद्याएँ नाचने तथा बंदागण स्तुतिपाठ करने लग जायें ॥ ७४ ॥ बहुतसे रथोंमें बल, आभूषण, द्रव्य, दहों, पूजाके द्रव्य तथा अच्छे-अच्छे वरतन आदि भर लिये जायें ॥ ७५ ॥ जो कछु मने न कहा हो, भी भी मय जल्दी सुविधाएँ सुलभ रहनी चाहियें। जिन्हें देखकर रामचन्द्रजी प्रसन्न हो जायें ७६ ॥ बुद्धिमान् लक्ष्मण ऐसे आज्ञा देकर सायंकालीन मंध्या-वन्दन करनेके लिए मंत्रियोंके साथ मन्त्राभवनसे बाहर आकर अपने महलमें चले गये ॥ ७७ ॥ लक्ष्मणकी आज्ञाके अनुसार कारीगर लोगोंने प्रसन्नतासे रामजीके मुखके लिये यथायोग्य सामान ठीक कर दिया ॥ ७८ ॥ ऊपर रामचन्द्रजी भी अपने रत्ननिर्मित भवनमें फूलोंकी श्रव्यापर सीताजीको दृढ़ आलिङ्गन करके रात्रिकी सुषपूर्वक सोये। सोनेकी जरोदार सादियोंकी पहिने वामिमें बार-बार उनपर बालव्यजन (पंखा) झुलाने लगे ॥ ७९ ॥ ८० ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे यात्राकाण्डे दूताज्ञाकरणं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

रामदास बोले—प्रातः कालके समय वन्दिनोंके गायन और वाजोंके मधुर शब्दको सुनकर सीतासहित राम जागे ॥ १ ॥ तब नित्यकर्मसे निवृत्त होकर उन्होंने अनेक तरहके दान दिये और गोपाल नामके ज्योतिषीको बुलवाकर रामने नमस्कार तथा पूजा करके कहा—हे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ और महाबुद्धिमान् गोपाल महाराज !

यात्रार्थं जाह्नवीतीरं गन्तुमिच्छामि सांप्रतम् । अतो मुहूर्तो दातव्यः सस्यशुद्धया विविच्य च ॥४॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा गोपालः प्राह गंधर्वम् । पञ्चाङ्गपट्टं विस्नार्य तत्र दृष्ट्वा बलाबलम् ॥५॥
रामः राजीवपत्राक्षः मुहूर्तस्त्वद्य वतने । पूर्वशमे मङ्गाङ्ग्रेष्ठः पुष्यनक्षत्रमंडितः ॥६॥
तस्य वक्ष्ये फलं राजन् सावधानमनाः शृणु । शृण्वन्तु मुनयः सर्वे शृणोतु ते पुरुर्महान् ॥७॥

न योगयोगं न च लग्नलग्नं ■ तारकाचंद्रबलं गुरोश्च ।

योगिन्य राहून् तर्दय काले सर्वाणि कार्याणि करोति पुष्यः ॥८॥

अस्मिन्नाम सुनक्षत्रे प्रस्थानं कुरु सीतया । दत्तो मया मुहूर्तोऽयं यात्रार्थं रघुनायक ॥९॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा लक्ष्मणं राघवोऽब्रवीत् । भेरीमृदंगपणवकाइलाऽऽनकगोमुखैः ॥१०॥
तालघर्घग्दुभिभिर्धधिश्व नवभिर्महान् । सेनायाः सूचनार्थं हि कर्तव्यः प्रथमो ध्वनिः ॥११॥
नथेति रामवचनाद्दूतानाज्ञापयत्तदा । नववाद्यध्वनिं तेषु चक्रुर्मञ्जुलसुस्वरम् ॥१२॥
ततो रामो द्विजयुक्तो वसिष्ठेन पुगेधसा । धृतेन प्रचुरं श्राद्धं गणेशादीन् प्रपूज्य च ॥१३॥
चकार प्रोक्तविधिना वसिष्ठं प्राह वै ततः । अग्निहोत्राणि मेऽग्रे त्वं स्थापितानि तु पुष्पके ॥१४॥
नेतुमर्हसि मे मातृवर्धुभिः पुरवासिनः । विमानं करिणाधृष्टा पुष्पमालागतिशोभिता ॥१५॥
सीतांगस्पर्शनी मार्गे मां स्पर्शतु गजस्थितम् । ततः पप्रच्छ वैदेहीं केन यानेन मथिलि ॥१६॥
गमिष्यसि वद त्वं मां तदेवाज्ञापयाम्यहम् । तद्रामवचनं श्रुत्वा सीता ध्यात्वा क्षणं हृदि ॥१७॥
सा प्राह मुदिता गमं कल्पिष्या गमनं मम । गेचने यदि नै चित्ते तर्हस्तु रघुनायक ॥१८॥
तत्तस्या वचनं श्रुत्वा यानमाज्ञाप्य लक्ष्मणम् । सीतार्थं दिव्यवस्त्राणि ददा मातृस्त्वयैव च ॥१९॥

मैं आपसे एक प्रश्न पूछता हूँ ॥२॥३॥ आज मैं तीर्थयात्रा करनेके लिए गंगाजीके तटपर जाना चाहता हूँ । अतः
एव सुव विचारकर कोई अच्छा मुहूर्त थालाइए ॥४॥ रामवन्द्रजीका प्रश्न सुनकर गोपाल पण्डितने पञ्चाङ्ग
देख तथा ग्रहोंके बलाबलका विचार करके रामसे कहा—॥५॥ हे कमलदलके समान सुन्दर नयनोंवाले राम !
आज प्रथम प्रहरमें पुष्यनक्षत्रसे युक्त बड़ा अच्छा मुहूर्त है ॥६॥ उसका फल मैं आपसे कहता हूँ । हे
राजन् । आप, सब मुनि लोग तथा आपके गुरु वसिष्ठजी भी उसको ध्यानसे सुनें ॥७॥ अच्छे योगसे युक्त
न रहनेपर भी, अच्छे लग्नसे संलग्न न होनेपर भी, तारा, चन्द्रमा और गुरुके बलसे शुभ्य होनेपर भी, शुभ
योगियोंके अभावमें भी तथा अनिष्टकारी राहूके सन्निकट रहनेपर भी केवल एक पुष्य नक्षत्रके रहनेवाले ही
यात्राके सब रष्ट कार्य सिद्ध हो जाते हैं ॥८॥ हे राम ! इस शुभ नक्षत्रमें जाग सीताके साथ प्रस्थान करे ।
हे रघुनायक ! यात्राके लिए मैंने यह अच्छा मुहूर्त बतलाया है ॥९॥ उनका यह वचन सुनकर रामजीने
लक्ष्मणसे कहा—हे लक्ष्मण ! तमस्त सेनाको सूचना देनेके लिए भेरी, मृदंग, पणव, नगाड़े, डोल, तुडुही,
माल, पंटा तथा दुन्दुर्भा ये भी प्रकारके बाजे जोरसे बजाये जायें ॥१०॥११॥ 'बहुत अच्छा' कहकर
रामकी आज्ञाके अनुसार लक्ष्मणने दूतोंको आज्ञा दी । उन्होंने मञ्जुर रीतिसँ नवों बाजे बजवाये ॥१२॥
उसके बाद रामने ब्राह्मणों तथा अपने पुरोहित वसिष्ठजीको साथ लेकर गणपतिपूजन किया और धीसे
विचित्र श्राद्ध करके वसिष्ठजीसे कहा कि भेरी वैदोक्त विधिसे स्थापित की हुई अग्निघोंको, माताओंको तथा
बन्धुहित पुरवासियोंको विमानपर चढ़ाकर भाग चले । पुष्पमालाओंमें अतिशय सुशोभित तथा सीतासे
अधिष्ठित गजपर सवार हमको मार्गमें मिलें । पश्चात् रामने सीतासे पूछा—हे मेथिलि ! तुम किस सवारीपर
चलेगी ? जो पसन्द हो, उस सवारीके लिए मैं आज्ञा दे दूँ । रामजीके इस वाक्यको सुनकर सीताजीने
लक्ष्मण मनमें विचार किया ॥१३-१७॥ फिर प्रसन्न होकर रामसे कहा—हे रघुनायक ! यदि आप कहें तो
मेरी इच्छा हथिनोपर चलनेकी है ॥१८॥ सीताकी इस इच्छाको जानकर रामजीने लक्ष्मणको सीताके
लिए हथिनो तैयार करवानेकी आज्ञा दी । पश्चात् रामने सीताको तथा अपनी माताओंको पहिनेके लिए

तथा दत्त्वा वंधुपत्नोर्दत्त्वा चापि तुभेः स्त्रियम् । ततो दत्त्वा वमिष्टं च विप्रान्दत्त्वा ततः परम् ॥२०॥
 दत्त्वा वस्त्राणि वंधुभ्यः स्वयं जग्राह राघवः । वद्ध्वा शस्त्राण्यनेकानि त्वरयित्वा त्रिदेहजाम् ॥२१॥
 नत्वा मातृशुल्लं चापि मंत्रिभिः परिश्रितः । आरुह्य शिपिकां गमः सभां प्रति समाययौ ॥२२॥
 ततः सिंहासनं स्थित्वा लक्ष्मणं ग्राह राघवः । द्वितीयः सूचनार्थं हि न दद्याद्यध्वनिः पुनः ॥२३॥
 आज्ञापनीयः सौमित्रे तच्छ्रुत्वा राघवेऽग्नितम् । आज्ञाप्रमाणमित्युक्त्वाऽऽज्ञापयद्भुध्वनिमुत्तमात् ॥२४॥
 कर्तुं दूतास्तेऽपि चक्रुर्ध्वनिं मेघध्वमां ततः । ततः प्राह राघुश्चतुः पुनः सौमित्रिमादगतु ॥२५॥
 सुमंत्रः स्थाप्यतां पुर्या रक्षणार्थं समाजया । गच्छत्यग्रे तु भग्ता पश्चादायातु शत्रुदा ॥२६॥
 भत्पृष्ठे त्वं समागच्छ ततः सन्ताऽनुगच्छतु । तस्याः पृष्ठे च त्वन्पन्नः क्षुमिला मानुगच्छतु ॥२७॥
 तन्पृष्ठे मांडवी रम्या दयिता भगवस्य सा । अनुगच्छतु तन्पृष्ठे धृतकीर्त्यनुगच्छतु ॥२८॥
 शत्रुघ्नस्य प्रिया भार्या विमानः पुरयोपतः । मानुमिस्ताः सभार्या तु पश्यन्त्यः कौतुकं मुदा ॥२९॥
 सीताद्याः करिणीष्वन्न स्थापयित्वा समान्तिवम् । आरुह्य न्यया शीघ्रं ततोऽहं गजमाश्रये ॥३०॥
 तवेति गमवचनात्तथा ताः करिणीषु सः । आरोहयित्वा श्रीगमं समागच्छत्यसन्वितः ॥३१॥
 समागतं लक्ष्मणं तं दृष्ट्वा रामा महामनाः । सुमंत्राय ददौ वस्त्रं तदधीनां पुर्यं व्यधान् ॥३२॥
 ततो मुहूर्तसमये धृत्या लक्ष्मणसत्करम् । सिंहासनात्समुत्तीर्य महानागान्तिकं ययौ ॥३३॥
 गजं प्रदक्षिणं कृत्वा शोषानेन स राघवः । गजदन्ताद्भवेनाक्रीड नागं सुखं शनैः ॥३४॥
 तदा दुन्दुभिनिर्घोषान् नववाद्यस्यगान् व्रजन् । वादयामासुर्गोभीशान् गजदन्ताः सहस्रशः ॥३५॥
 बभूवुर्गन्त्रशब्दाश्च ननुतुर्वार्योपितः । वादयति स्म वाद्यानि गजवाजिर्गोधोपरि ॥३६॥
 जयशब्दान् वेदयोपान् द्विजाश्चक्रुर्महास्वनैः । केऽपि पिच्छोद्भवं चित्रं गतदण्डविराजितम् ॥३७॥

दिव्य वस्त्र दिये ॥२१॥ अपने भाइयोंको, उनके शिपियोंको और गुरुवरुणोंको सुन्दर वस्त्र दिये । उनके बाद गुरु-
 वमिष्टको, अन्य ब्राह्मणोंको तथा अपने वंधुओंको नये कपड़े देकर स्वयं रामने भी नूतन वस्त्र पहना । अनेक
 प्रकारके ■■■ भी बांध लिये और नौकाको शोधना करनेके लिए कहा ॥ २० ॥ २१ ॥ तदनन्तर रामजी गुरु
 तथा माताओंको नमस्कारकर तथा मंत्रियोंको साथ में पालकीपर सवार होकर सभाभवन (कचहरी)
 गये ॥ २२ ॥ वहाँ सिंहासनपर आरुढ़ होकर रामने लक्ष्मणसे कहा कि दूसरी सूचना देनेके लिए पुनः नौ
 प्रकारके बाजे बजानेकी आज्ञा दे दो । लक्ष्मणने 'जो आज्ञा' कहकर दूतोंको उत्तम रीतिसे बाजे बजवानेकी
 आज्ञा दी । आदेश पाते ही उन दूतोंने मेघध्वनिके समान वाजोंका निनाद दिया । इसके उपरान्त रामने
 पुनः लक्ष्मणसे कहा— ॥२३-२५॥ हे भाई ! मेरी आज्ञाके अनुसार तुम यहाँ नगरकी रक्षा करनेके लिए
 सुमंत्रको छोड़ दो । आगे भरत और उनके पीछे शत्रुघ्न चले तथा मेरे पीछे तुम चलो । तुम्हारे पीछे सीता
 और सीताके पीछे तुम्हारी सौ क्षुमिला चले ॥ २६ ॥ २७ ॥ उनके पीछे भरतकी प्राणप्रिया सुन्दरी मांडवी
 और मांडवीके पीछे शत्रुघ्नकी प्रिया भार्या श्रुतकीर्ति चले ॥ २८ ॥ नगरकी स्त्रियोंके साथ मातार्ण विमान-
 पर सवार होकर आनन्दसे समारोह देखती हुई आये ॥ २९ ॥ तुम जाकर सीता आदि सब स्त्रियोंको हृषि-
 नियोंपर बसाओ । उसके बाद मैं गजपर सवार होऊँगा ॥३०॥ सौ सुनकर लक्ष्मण तुरन्त चल दिये और उन
 सबको हृषिनिर्घोषपर सवार कराकर शीघ्र ही रामके पास लौट आये ॥ ३१ ॥ लक्ष्मणके आ जानेपर मतिमान्
 रामने मन्त्री समन्त्रको विह्वस्वरूप वस्त्र दिये तथा रक्षाके लिये नगर सौंप दिया ॥ ३२ ॥ उसके बाद शुभ
 मुहूर्तमें लक्ष्मणके सुन्दर हाथको पकड़कर राम सिंहासनसे उठे और उत्तम हाथीके पास गये ॥ ३३ ॥ हाथीकी
 प्रदक्षिणा करके राम गजदन्तकी चोटी हुई सीढ़ीपर पाँच रखकर सुलपूर्वक धीरेसे उसपर सवार हो गये
 ॥३४॥ उस समय हजारों राजसेवक सुन्दर एवं गम्भीर शब्द करनेवाले दुन्दुभि आदि नवविध वाद्योंको बजाने
 लगे ॥ ३५ ॥ वहाँपर अनेक प्रकारके ■■■ होने लगे, बेध्याएँ माचने लगीं और हाथी ■■■ पीढ़ोंपर नाना
 प्रकारके बाजे बजाये जाने लगे ॥ ३६ ॥ विप्रयोग ■■■ स्वरसे जयजयकार और वेदध्वनि करने लगे । एक

धामरं वीजयामास विजयः पार्श्वसंस्थितः । अन्यस्तु बालव्यजनं वीजयामास पृष्ठतः ॥३८॥
 कलशैः शतसाहस्रैर्मुक्ताहारैस्तु शोभितम् । रत्नदण्डं सुविस्तीर्णं छत्रमन्यो दधार तत् ॥३९॥
 तत्पृष्ठे गजमारुह्य लक्ष्मणः शीघ्रमाययौ । सीताद्यास्ताः समाजग्मुः सौमित्रिगजपृष्ठतः ॥४०॥
 पश्यंत्यः कौतुकान्धेव जलरंघ्रैः समंततः । पुष्पकं चापि गगनमार्गेणैव शनैः शनैः ॥४१॥
 जगाम संस्थितास्तत्र पुरनार्यो रघूत्तमम् । पश्यंत्योऽथ कौतुकानि वचर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥४२॥
 ततस्ते तुरगावृद्धा गजावृद्धा रथे स्थिताः । नेमिरेखोपमाः सर्वे स्थितास्ते रामपार्श्वयोः ॥४३॥
 प्रणमामान् श्रीरामं संस्थिता हासबंधवत् । रामोऽपि कंजहस्ताभ्यां प्रणामानभ्यनंदयत् ॥४४॥
 एवं गच्छति राजेंद्रे रामचन्द्रे शनैः पथि । गजोपरि सवीणास्ते नटा गानं प्रचकिरे ॥४५॥
 एवं पश्यन् स रामोऽपि पुष्पारामादिकौतुकम् । दृष्ट्वा चित्राणि वेष्यानां नृत्यानि विविधानि च ॥४६॥
 सुस्वराण्यथ वाद्यानि शृण्वन् मार्गे शनैः शनैः । वेष्टितश्चतुरङ्गिण्या सेनया स समंततः ॥४७॥
 प्राप सेनानिवासाथ कल्पितां भुवमुचमाम् । अयोध्यामिव तां दृष्ट्वाऽक्षतरङ्गावबो गजात् ॥४८॥
 अभिनंद्य प्रणामांश्च पुनर्दीरकवान् मुहुः । लक्ष्मणस्य करं धृत्वा स्वकरेण रमापतिः ॥४९॥
 वस्त्रगेहं संश्रविश्य तस्यां सिंहासने पुनः । सीताद्यास्ताः स्त्रियः सर्वा विविशुर्वस्त्रसज्जनि ॥५०॥
 ततः श्रीरामचंद्रोऽपि लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् । सीमायाः कोशमात्रेऽथ शतदूतान् पृथक् पृथक् ॥५१॥
 एकैकस्यां दिशि त्वं मे वचनात्स्थापयस्व भोः । योजनोपरि सौमित्रे त्वष्टदिक्षु समंततः ॥५२॥
 नियोजयस्व शतशो राजिवाहान् ममाहया । तथेत्युक्त्वा लक्ष्मणोऽपि तथा सर्वं चकार सः ॥५३॥
 ततो विप्रैः सुहृद्भिश्च विविधान्नेर्मनोरमैः । धृतेन श्राद्धशेषेण भोजनं राधवो व्यधात् ॥५४॥

और सदा होकर विजय रत्नजटित डण्डेवाला तथा मयूरपंखसे निर्मित चमर लेकर रामके ऊपर दुलाने लगा । पीछेकी ओर दूसरा जयनामक सेवक पंखा झलने लगा ॥ ३८ ॥ तीसरा सेवक सुवर्णकलशसे मुशोभित, हजारों मुक्तामालाओंसे भण्डित तथा रत्नजटित डण्डेवाला सुनिशाल [] तानकर [] हो गया ॥ ३९ ॥ उनके पीछे हाथीपर सवार होकर लक्ष्मण शीघ्रतासे चल दिखे । लक्ष्मणके हाथीके पीछे सीता आदि स्त्रियें जालियोमेंसे चारों ओरके दृश्योंको देखती हुई चलीं । पुष्पकविमान भी धीरे-धीरे आकाशमार्गसे उड़ता हुआ चला ॥ ४० ॥ ४१ ॥ उसपर बैठी नगरनिवासिनी स्त्रियें कौतुक देखती हुई रामचन्द्रजीके ऊपर आनन्दसे पुष्पवृष्टि करने लगीं ॥ ४२ ॥ तदनन्तर घुड़सवार, गजसवार और रथसवार सैनिक रामके दोनों ओर पंक्तिबद्ध होकर खड़े हो गये ॥ ४३ ॥ हारकी तरह बटारबद्ध खड़े उन सैनिकोंने रामको प्रणाम किया । रामने भी अपने करकमलोंसे उनके प्रणामोंको स्वीकार किया ॥ ४४ ॥ जब इस प्रकार श्रीराम गजेन्द्रपर सवार होकर धीरे-धीरे चले, [] दूसरे भजोंपर बंटे हुए गायकगण अपनी-अपनी वीणा लेकर मधुर गान करने लगे ॥ ४५ ॥ रामचन्द्रजी रास्तेमें फूलोंके मुहावने वागोंको देखते, अनेक तरहके वाजारोंका अवलोकन करते, वेश्याओंके विविध नृत्योंके देखते, मनको हरण करनेवाले वाजोंको सुनते, अन्यान्य कौतुकोंको निहारते तथा चारों ओर चतुरंगिणी सेनासे घिरे हुए धीरे-धीरे सेनानिवासके लिए कल्पित उत्तम शिबिरमें जा पहुँचे । उस स्थानको दूसरी अयोध्याके समान सुरक्षित देखकर राम हाथीसे उतर पड़े ॥ ४६-४८ ॥ उक्त समय स्त्री-सैनिकोंके द्वारा बारम्बार किये हुए प्रणामोंको स्वीकार करके अपने हाथसे लक्ष्मणका हाथ पकड़कर रमापति राम तम्बूमें गये और वहाँ सिंहासनपर विराजमान हो गये । सीता आदि स्त्रियें भी अपनी-अपनी सवारियोंसे उतरकर तम्बूओंमें जा विराजीं ॥ ४९ ॥ ५० ॥ पश्चात् श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा कि तुम मेरे आज्ञानुसार सीमाकी सब दिशाओंमें एक-एक कोसकी दूरीपर सैकड़ों सिपाही अलग अलग खड़े कर दो और आठों दिशाओंमें एक-एक योजनकी दूरीपर सैकड़ों घुड़सवार नियुक्त कर दो । “जो आज्ञा” कहकर लक्ष्मणने [] वैसे ही प्रबन्ध कर दिया ॥ ५१-५३ ॥ पश्चात् ब्राह्मणों

ताम्बूलैर्दक्षिणां दत्त्वा नानाविधैश्च आदरात् । मुखशुद्धिं स्वयं कृत्वा तस्यौ सिंहासने पुनः ॥५५॥
 श्रुत्वा शास्त्रपुराणानि वेदान्तांश्चापि सादरम् । सार्यसंध्यादिकं कृत्वा हृत्वा होमं यथाविधि ॥५६॥
 सिंहासने समासीनो वेश्यानां नृत्यमुत्तमम् । पश्यन्मृण्वन् गायन् नीत्वा यामद्वयां निशाम् ५७
 ततः सुष्याप पर्यङ्गे सीतया राघवः । द्वितीये दिवसे तत्र स्थित्वा रामस्तु कौतुकैः ॥५८॥
 नीत्वा समग्रं सुदिनं तृतीये दिवसे पुनः । पूर्ववद्वाद्यघोषार्चैः शनैः स्थानांतरं ययौ ॥५९॥
 कचिदिनमतिक्रम्य कचिद्द्वे त्रीणि राघवः । स्थित्वा पश्यन्कौतुकानि जनकाश्मजाम् ॥६०॥
 शनैः शनैर्ययौ मार्गं मासेनैकेन राघवः । प्राप जीर्णं मुद्गलेन त्यक्तमाश्रममुत्तमम् ॥६१॥
 राममागतमाज्ञाय मुद्गलो नूतनाश्रमात् । भागीरथ्या दक्षिणतः प्राप रामान्तिकं तदा ॥६२॥
 तं दृष्ट्वा राघवश्चापि नत्वा सम्पूज्य सादरम् । वासोगेहे समासीनं पप्रच्छ विनयान्मुनिम् ॥६३॥
 स्वयाऽयमाश्रमस्त्यक्तः किमर्थं मुनिसत्तम । तत्त्वं वद महाभाग यथावच्च सविस्तरम् ॥६४॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा मुद्गलो वाक्यमब्रवीत् । धन्योऽस्म्यहं राम निवृत्तं वनवासतः ॥६५॥
 यत्त्वां पश्यामि नेशाभ्यां चिरकालेन राघव । भरतप्राणरक्षार्थं यदा नीता ममाश्रमात् ॥६६॥
 दिव्यौषध्यस्तदा जातं पूर्वं ते दर्शनं मम । मयाऽयमाश्रमस्त्यक्तः किमर्थं तद्वीमि ते ॥६७॥
 सान्निध्यं नात्र गङ्गायाः सरय्या अपि नात्र वै । इति मत्वा मया त्यक्तश्चाश्रमोऽयं महत्तमः ॥६८॥
 अत्र सिद्धिं गताः पूर्वं श्वतशोऽथ सहस्रशः । मुनीश्वरा मयाप्यत्र तपस्तप्तं कियद्दिनम् ॥६९॥
 इति राम समाख्यातमाश्रमस्य च मोचने । कारणं त्वया पृष्टं किमग्रे श्रोतुमिच्छसि ॥७०॥

तथा मित्रोंके साथ बैठकर रामने घृतमिश्रित नाना प्रकारके आद्वशेष पकवानोंका भोजन किया ॥ ५४ ॥
 आदरसे साह्याणोंको ताम्बूल तथा अनेक प्रकारकी दक्षिणाये देकर रामने मुखशुद्धिके लिए ताम्बूल साया
 और पुनः सिंहासनपर आ विराजे ॥ ५५ ॥ तदनन्तर वेदान्त आदि सत् शास्त्रों तथा पुराणोंकी कथाको
 प्रेम और श्रद्धासे शान्तिपूर्वक सुना । सायंकाल होनेपर पुनः यथाविधि संध्यावन्दन तथा हवन
 आदिसं निवृत्त होकर सिंहासनपर मुशोभित हुए । वहाँ रात्रिके दो पहर तक वेश्याओंका नृत्य-गान
 देखते-सुनते रहे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ तदनन्तर राम सीताके साथ पलंगपर शयन करनेको चले गये । दूसरा
 भी सारा दिन रामने आनन्दसे वही रहकर बिताया । तीसरे दिन आनन्द बाजे-गाजेके साथ धीरे-धीरे
 दूसरे पड़ावकी ओर बढ़े ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ इसी प्रकार कहीं दो दिन, कहीं दो और कहीं तीन दिन निवास
 करते हुए राम आनकीको प्रसन्न करते तथा विविध कौतुकोंको देखते रहे ॥ ६० ॥ इस प्रकार एक मास
 बीत जानेपर वे मुद्गल ऋषिके छोड़े हुए एक पुराने पवित्र आश्रममें जा पहुँचे ॥ ६१ ॥ रामको अपने
 पुराने आश्रमपर आये सुनकर मुद्गलऋषि भागीरथीके दक्षिण तटपर स्थित अपने नवीन आश्रमसे दर्शन
 करनेके लिए उनके पास आये ॥ ६२ ॥ राघवने उन्हें देखकर नमस्कार किया और उनकी विधिवत् पूजा की ।
 पश्चान् ताम्बूल देकर आदरपूर्वक आसनपर बैठाया और उनसे नम्रतापूर्वक कहा— ॥ ६३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ !
 आपने इस आश्रमको क्यों छोड़ दिया ? महाभाग ! इसका कारण विस्तारसे आप हमें कह सुनाइये
 ॥ ६४ ॥ यह सुनकर मुद्गलमुनि कहने लगे—हे राम ! मेरा धन्य भाग्य है कि ओ मै आज बहुत दिना
 वनवाससे लौटे हुए आपको अपनी आँखों देख रहा हूँ । पूर्वकालमें भरतके प्राणोंकी रक्षा करनेके लिए जब
 आप मेरे आश्रमसे दिव्य औषधि ले गये थे, मुझे दर्शन मिला था । अब मैंने इस आश्रमको
 क्यों छोड़ दिया, कारण आपसे कहता हूँ ॥ ६५-६७ ॥ हे प्रभो ! मैंने इस विराट् आश्रमको केवल
 इसलिए छोड़ दिया है कि यहाँपर गंगा अथवा सरयू इन दोनों पवित्र नदियोंमेंसे कोई भी नदी नहीं
 है ॥ ६८ ॥ इस आश्रममें निवास करके हजारों मुनीश्वरोंने सिद्धि प्राप्त की है और मैंने भी कुछ दिनों
 तक यहाँ रहकर तपस्या की है । परन्तु क्या करें, किसी तीर्थके न होनेसे इस स्थानपर बड़ा
 कष्ट है ॥ ६९ ॥ हे राम ! यह तो मैंने आपके पूछनेके अनुसार इस आश्रमको छोड़नेका कारण कह

तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा पुनस्तं प्राह राघवः । किं कृत्वा तेऽत्र वसतिर्भविष्यति मुने वद ॥७१॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा राघवं प्राह मुद्गलः । यद्यत्र मरुनद्याः संगमो हि भविष्यति ॥७२॥
 जाह्नव्या तर्हि चान्नं वन्स्ये राम यथामुत्तम । तस्य वचनं श्रुत्वा राघवः प्राह ॥ पुनः ॥७३॥
 किमर्थं सरयुः श्रेष्ठा कुतः प्राप्ता धरानलम् । तत्त्वं वद महाभाग सविस्तारं ममाग्रतः ॥७४॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा मुद्गलो वाक्यमब्रवीत् । त्वेव चरितं राम मन्मुखाच्छ्रोतुमिच्छसि ॥७५॥
 तर्हि ते संप्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व रघूत्तम । शंखासुरो महान्दंत्यो वेदान् पूर्वं जहार हि ॥७६॥
 क्लिप्त्वा तांश्च समुद्रे हि स्वयमासीन्महोदधी । तदर्थं च ॥ मात्स्यं वधुर्धत्वा महत्तरम् ॥७७॥
 हतः शंखासुरो वेदास्त्वया दत्तास्तु वेधसे । ततो हर्षेण महता पूर्वरूपं त्वया धृतम् ॥७८॥
 तदा हर्षेण नेशाप्ते पतिताश्चाश्रुविंदवः । हिमालये ततो जाता नदी पुण्या शुभोदका ॥७९॥
 साक्षान्नारायणस्यैव आनन्दाश्रुसमुद्भवा । शनैर्विन्दुसरः प्राप तस्माच्च मानसं ययौ ॥८०॥
 एतस्मिन्नन्तरे राम पूर्वजस्ते महत्तमः । वैवस्वतो मनुष्येषुमुक्तो गुरुमब्रवीत् ॥८१॥
 अनादिसिद्धाऽयोध्वेयं विशेषेणापि ॥ मया । रचिता निजवासार्थमत्र यज्ञं करोम्यहम् ॥८२॥
 यदि ते रोचते चित्ते तच्छ्रुत्वा गुरुरब्रवीत् । अत्र तीर्थं वरं नास्ति नास्ति श्रेष्ठा महानदी ॥८३॥
 यद्यत्रैवास्ति ते चित्तं यष्टुं नृपतिसत्तम । आनयस्व नदीं रम्यां मानसात्पातकापहाम् ॥८४॥
 तद्गुरोर्वचनाद्राजा मनुर्वैवस्वतो महान् । टण्णकुर्य महन्चार्यं सन्दधे शरमुत्तमम् ॥८५॥
 स शरो मानसं भिक्ष्वा तस्मात्किष्कास्य तां नदीम् । अयोध्यामानयामास पंथानं दर्शयन्निव ॥८६॥
 शरमार्गानुसारेणायोध्यायां प्राप वै नदी । महोदधौ पूर्वदेशे मिलिता रघुनन्दन ॥८७॥

सुनाया । आगे क्या पृष्ठना है, सो कहिये ॥ ७० ॥ मुनिके इस वाक्यको सुनकर रामने कहा—हे मुने आप यह बताइये कि क्या करनेसे ॥ फिर इस आश्रममें निवास कर सकते हैं ? ॥ ७१ ॥ रामके प्रेमपूर्ण प्रश्नको सुनकर मुद्गल ऋषिने कहा—यदि यहाँपर सरयू और गंगाका संगम हो जाय तो मैं ॥ सुखसे रह सकता हूँ । इस बातको सुनकर रामने पुनः उनसे प्रश्न किया— ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ हे महाभाग ! सरयू नदीका इतना श्रेष्ठ माहात्म्य क्यों ॥ और यह कहाँसे भगवत्परा आयी ? इन बातोंका विस्तारसे वर्णन करिए ॥ ७४ ॥ मुद्गलने कहा—हे प्रभो ! आप ॥ ही चरित्र यदि मेरे मुखसे सुनना चाहते हैं ॥ ७५ ॥ तो हे रघूत्तम ! मैं आपको सुनाता हूँ, सुनिए । पहिले कभी शंखामुर ॥ एक ॥ भारी राक्षस हुआ था । वह सब वेदोंकी हूर ले गया ॥ ७६ ॥ उसने उन्हें ने ॥ समुद्रमें डुबो दिया तथा स्वयं भी उसी महासागरमें छिप गया । उसको मारनेके लिए आपने वड़े भारी मात्स्यका रूप ॥ किया ॥ ७७ ॥ और उसको मारकर वेदोंकी रक्षा की । वेदोंको लाकर आपने सहायको दिया और प्रसन्नतापूर्वक पुनः अपना पूर्वरूप धारण कर लिया ॥ ७८ ॥ ॥ समय आपके नेत्रोंसे आनन्दाश्रुको बूँदें टपक पड़ीं । हिमालयपर गिरी हुई आप नारायणके उन हृषीकेशकी बूँदोंने एक पवित्र तथा निर्मल जलवाला नदीका रूप धारण कर लिया । आगे चलकर वे कासार और कासारसे मानसरोवरके रूपमें परिणत हो गयीं ॥ ७९ ॥ ८० ॥ हे राम ! उसी ॥ आपके पूर्वज महात्मा वैवस्वत मनुने यज्ञ करनेकी इच्छा करके अपने गुरुसे कहा— ॥ ८१ ॥ इस अयोध्यापुरीके अनादिकालसे स्थित रहनेपर भी मैंने अपने निवासके लिए इसको कुछ विनोयतापूर्वक रचना करवाई है । इस कारण यदि आप कहें तो मैं इस नगरीमें यज्ञ करूँ । तब गुरुने कहा कि देखिए, न तो यहाँ कोई पवित्र तीर्थ है और न कोई बड़ी नदी ही है ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ इसलिये यदि आपकी यहीं यज्ञ करनेकी इच्छा हो तो हे नृपतियोंमें श्रेष्ठ नृप ! मानसरोवरसे सुन्दर तथा पापोंको नष्ट करनेवाली एक नदीको यहाँ ले आइए ॥ ८४ ॥ गुरुके इस वचनको सुनकर महान् राजा वैवस्वत मनुने अपने विशाल धनुषको चढ़ा तथा टंकोर करके बाण चलाया ॥ ८५ ॥ वह बाण मानसरोवरकी भेदकर उसमेंसे निकली नदीके आगे-आगे चलकर रास्ता दिखाते हुए अयोध्या ले आया । बाणके मार्गका अनुसरण करती हुई वह नदी अयोध्या आयी तथा वहसि आगे जाकर पूर्वी महा-

आनीता सा शरैर्मव शरयुश्चेति कथ्यते । सरोवरत्समुद्भूता सरयुश्चेति केचन ॥८८॥
 ततो मगीर्येनेयं कपिलक्रोधवद्भिना । विनिर्दग्धान् पूर्वजान् वै सागरान् प्रेषितुं दिवम् ॥८९॥
 भार्गीर्या समानीता स्वत्पादाब्जतमुद्भवा । तपसा शंकरं तोष्य सरयुः मिलिताऽथ सा ॥९०॥
 वरदानाच्छली अभोर्गङ्गा ख्यातिं गमिष्यति । जग्रे सागरपर्यंतमेतां गङ्गां वदंति हि ॥९१॥
 तव पादसमुद्भूता या विश्वं पाति जाह्नवी । इयं तु नेत्रमभूता किमद्याग्रे वदाम्यहम् ॥९२॥
 कोटिवर्षसहस्रं कोटिवर्षप्रतैरपि । महिमा सरयुनद्याः कोऽपि वक्तुं न वै क्षमः ॥९३॥
 इति राम समारूपात् यथा पृष्टं त्वया मम । मुनेस्तद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणं प्राह ॥९४॥
 मरुपुमानयस्वात्र शरं मुक्त्वा ममाक्षया । तथेति रामवचनाद्भुत्वा चापं ॥९५॥
 शरं मुक्त्वा तटं भिक्षा सरपुमानयन्क्षणात् । सरयुः सा द्विधा भूत्वा मुद्गलाधममाययौ ॥९६॥
 जाह्नव्या मिलिता सापि तां दृष्ट्वा राघवोऽब्रवीत् । अत्र स्थित्वा लक्ष्मणेन दारितेयं महानदी ॥९७॥
 अनो दद्रीति नाम्नाऽत्र नगरी ख्यातिमेप्स्यति । दद्रीयं जगतीमप्ये वदर्याथ यवाधिका ॥९८॥
 भविष्यति न संदेहस्तव वासाद्विशेषतः । ततः सीतां समाहूय राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥९९॥
 मुद्गलस्याश्रमंऽग्रेव सा नीता सरयुर्नदी । पश्य सीमित्रिणा मुक्त्वा शरं मन्नामविहितव ॥१००॥
 नार्सीभिर्मातृभिः सीते पुष्पकेणातिमास्वता । वृद्धा मा सरयुर्वत्र संगताऽस्ति महानदी ॥१०१॥
 जाह्नव्या संगमं त्वं हि गच्छस्व गुरुणा द्विजैः । पूजयित्वा सविस्तारं यथोक्तं वचनं पुरा ॥१०२॥
 आगच्छस्व ततः शीघ्रमत्र त्वं मम सन्निधौ । विशेषान्मुद्गलस्यापि सन्निधावथ वै पुनः ॥१०३॥
 नवीनसरयुनद्या भार्गीर्ययास्तु संगमे । पूजनं त्वं मया साकं कर्तुमर्हसि मैथिलि ॥१०४॥

सागरमें मिल गयी ॥८६॥८७॥ शरके द्वारा लायी जानेसे लंग उसको 'सरयू' नदी कहने लगे । अथवा सरोवरसे निकलकर आनेके कारण उसका 'सरयू' नाम पड़ा, कुछ लोगोंका ऐसा कथन है ॥ ८८ ॥ उसके राजा भगीरथ कपिल मुनिकी क्रोधाग्निसे जलाये गये अपने पूर्वज सागर-पुत्रोंको स्वर्ग भेजनेकी इच्छासे आपके चरणारविन्दसे प्रादुर्भूत भार्गीर्यो गंगाको ले आये । बादमें शंकरजीको तपसे प्रसन्न करके नदीको सरयूसे ला मिलाया ॥ ८९ ॥ ९० ॥ शंकरभगवान्के वरदानसे गंगाकी बड़ी भारी प्रसिद्धि हुई तथा समुद्र उसको लंग गंगा कहने लगे ॥ ९१ ॥ हे प्रभो ! आपके चरणकमलोंसे निकला हुई गंगा समस्त विश्वको पवित्र करने लगी । वैसे ही आपके नेत्रजलसे उत्पन्न होकर यह सरयू भी लोगोंको करने लगी । हे भगवन् ! आगे क्या कहूँ ? ॥ ९२ ॥ करोड़ों वर्षोंमें भी इस सरयू नदीकी महिमाका वर्णन कोई नहीं कर ॥ ९३ ॥ हे राम ! आपने जो पूछा था, मैंने सुनाया । मुनिके वाचको सुनकर रघुपति रामचन्द्रजीने लक्ष्मणसे कहा— ॥ ९४ ॥ तुम छोड़ सरयूके भेदन करके उसे यहाँ ले आओ । लक्ष्मणने वैसा ही किया और वह सरयू दो भागोंमें विभक्त होकर क्षणभरमें मुद्गलश्रृङ्गिके प्राचीन आश्रममें आ पहुँची ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ उसको अकेली ही नहीं, किन्तु जाह्नवीके संगम सहित आयी हुई देखकर रामने कहा कि दारण (बीर) करके इस नदीको यहाँ ले आये ॥ ९७ ॥ इस लिए जगहपर दद्री नामकी प्रसिद्ध नगरी बसेगी । वह दद्री नगरी पृथ्वीतलमें धरतीनाथ धामसे भी जीभर बढ़कर पुनीत होगी ॥ ९८ ॥ इसमें संदेह नहीं है । विशेष करके आपके यहाँ निवास करनेसे इसको और भी अधिक ख्याति होगी । पश्चात् रामने सीताको बुलाकर कहा— ॥ ९९ ॥ सीते ! देखो, सुमित्रापुत्र लक्ष्मण मेरे नामसे भिक्षुत जाण छोड़कर सरयू नदीकी यहाँ मुद्गल मुनिके आश्रममें ले आये ॥ १०० ॥ तुम हमारी माताओं, अन्य स्त्रियों, गुरुजनों आह्वानोंको साथ ले तथा पुष्पक विमानपर सवार होकर जहाँ सरयू तथा गंगाका संगम है, वहाँ जाओ और अपनी प्रतिमाके अनुसार विधिवत् उनकी पूजा कर आओ ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ वहाँसे लौटकर शीघ्र ही मेरे इन मुद्गल मुनिके सम्मुख नवीन सरयू भगवती भार्गीर्योके संगमका

तथेति रामपथनमंगीकृत्य विदेहजा । पूजासंभारमादातुं विवेक्ष्य वसनगृहम् ॥ १०५ ॥
इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे सरयूद्विषाकरणं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

(कुम्भोदरोपाख्यान)

श्रीरामदास उवाच

ततो गृहोत्वा संभारान् पूजार्थं जानकी जवात् । कौसल्यादिष्वश्रुमिस्तु पुष्पकं चारुरोह सा ॥ १ ॥
उणेन सारयूर्यश्च सा गङ्गया शुभा । सङ्गताऽस्ति महाभेष्टा तत्र विदेहजा ॥ २ ॥
पतिं विनाऽग्निना नारी सीमाप्लुत्संध्य न व्रजेत् । स दोषोऽयं न विज्ञेयः सीतायाश्च विहायसा ॥ ३ ॥
उत्तीर्य सा विमानाग्रयान्नमस्कृत्वाऽथ सङ्गमम् । पुरोषसा चोदिता सा नारिकेलं सवायनम् ॥ ४ ॥
भागीरथ्यै समर्प्याथ स्नात्वा चैव यथाविधि । सगमं पूजयामास चोपस्कारैर्यथाविधि ॥ ५ ॥
सुरामांसोपहारैश्च पक्वान्निर्बलिमिस्तथा । पट्टकूलादिभिर्वस्त्रैर्गुल्फाहारैः सचन्दनैः ॥ ६ ॥
दिव्यैरामरुणैश्चित्रैर्वर्णनाद्यैः सविस्तरम् । सुवासिनीः पूज्य पूजयित्वा त्वरुंधतीम् ॥ ७ ॥
वसिष्ठं ब्राह्मणाद्यापि भोजयामास विस्तरैः । पट्टकूलादिभिर्वस्त्रैर्दिव्यैरामरुणादिभिः ॥ ८ ॥
सुवासिनीर्ब्राह्मणाश्च तोषयामास मैथिली । स्वयं कुत्वोपहारं न राघवार्थमुपोषिता ॥ ९ ॥
ययौ यानेन शीघ्रं सा राघवस्मान्तिकं मृदा । ततः श्रीरामचन्द्रोऽपि सीतया गुरुणा द्विजैः ॥ १० ॥
गङ्गायोः सङ्गमे शक्रे पूजनं यथाविधि । यथा कृतं च वैदेह्या तस्मान्चापि श्रुताधिकम् ॥ ११ ॥
ततः सहस्रशो विप्रान् भोजयामास सादरम् । दत्त्वा दानान्यनेकानि गोदस्तिरथवाजिनाम् ॥ १२ ॥
ततो मुक्त्वा स्वयं रामः सीतया बन्धुभिर्जनैः । सिंहासने समासीनो सौमित्रिभिर्दमव्रवीत् ॥ १३ ॥

मेरे साथ मिलकर पूजन करो ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ तब विदेहराजकी पुत्री सीता "ओ माझा" कहकर पूजाकी सामग्रियों लेनेको तबूमें गयी ॥ १०५ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे भाषाटोकायां सरयूद्विषाकरणं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीरामदासजीने कहा—बादमें जानकी पूजाका सब सामान लेकर कौसल्या आदि सासुखी तथा अन्य बहुओंके साथ शीघ्रतासे पुष्पक विमानपर बैठों ॥ १ ॥ सग भरमें विदेहराजकी पुत्री सीता उस पुराने सङ्गमपर जा पहुँची, जहाँपर कि सरयू पवित्र गङ्गा नदीसे मिली है ॥ २ ॥ पत्नीको पतिके बिना आगेकी सीमा नहीं लाँघनी चाहिये । यह दोष यहाँ सीताको नहीं लग सकता । क्योंकि सीताका रमन आकाशमार्गसे हुआ ॥ ३ ॥ वहाँ पहुँचनेपर सीता विमानसे नीचे उतरों और सङ्गमको नमस्कार किया । पश्चात् पुरोहितके कथनानुसार सीताने वायन (ऐपन) सहित नारियल भागीरथीको समर्पण करके उसमें विधिवत् स्नान किया । फिर सुरा मांस-पकवान आदिकी वलिसे, दुपट्टा आदि सुन्दर वस्त्रोंसे, दिव्य आभूषणोंसे, मुक्ताके हारसे, चन्दनसे आदि पूजाके उपकरणोंसे विधिवत् तथा विस्तारपूर्वक सीताने सङ्गमका पूजन किया । तदनन्तर पतिपुत्रवती सोद्भागिन स्त्रियोंको पूजा करके सीताने अरुन्धतीका पूजन किया ॥ ४-७ ॥ तब उनको तथा वसिष्ठ आदि सब ब्राह्मणोंको भोजन कराके सुवासिनी स्त्रियोंको दुपट्टों, वीतियों तथा दिव्य आभूषणोंसे सीताने संतुष्ट किया । स्वयं निराहार रहकर सीताने रामके कल्याणार्थ उपवास किया ॥ ८-९ ॥ तदनन्तर विमानपर सबार होकर आनन्दसे शीघ्रतापूर्वक रघुनन्दन रामके आ गयीं । रामने भी सीताको, गुरु वसिष्ठको विप्रोंको लेकर सीताकी की हुई पूजासे सौगुने धूम-धाम तथा विभिन्न गङ्गा-सरयूके सङ्गमकी पूजा की ॥ १० ॥ ११ ॥ वहाँ उन्होंने बड़े आबरमानसे हजारों विप्रोंको भोजन कराया । अनेक नाचें, हाथी, घोड़े तथा

ज्ञानव्यो मम वासोऽत्र रात्रीर्नव रघूत्तम । सीमाचारान् कुरुष्व न्वं शासनं यन्मयोच्यते ॥ १४ ॥
 प्रसन्नार्गी गृहस्थो वा वानप्रस्थाश्रमी यतिः । यः कश्चिद्वा समायाति पथिकः स ममाज्ञया ॥ १५ ॥
 मया संपूजितो नैव गन्तुं देयः समन्ततः । मयाऽद्भुतो गतः कश्चित्तादा यः शासनं मम ॥ १६ ॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा तथा चक्रे स लक्ष्मणः । ज्यवनो मुनिवर्षस्तु ज्ञात्वा रामं समागतम् ॥ १७ ॥
 दर्शनार्थं ययौ सीत्रं रामेणापि सुपूजितः । स्थित्वा मने वक्ष्यगेहे राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥ १८ ॥
 गम राज्ञिषपत्राक्ष गङ्गाया दक्षिणे तटे । आश्रमः कीकटे देशे ममास्ति परमः शुभः ॥ १९ ॥
 कंदमूलफलार्थं हि विघ्नं कुर्वन्ति मागधाः । ममाश्रमे गजदूतास्तेभ्यो रक्षा विधीयताम् ॥ २० ॥
 व्यवनस्य वचः श्रुत्वा टण्टकृत्य महद्भुजः । शार्णमुक्त्वाऽऽश्रमात्तस्य वरितः परितोपमाम् ॥ २१ ॥
 चकार रेखां शणेन दुष्टैर्गंतुं च दशमाम् । रामवाणकृता रेखा यत्र तत्र पुगी शुभा ॥ २२ ॥
 रामरेखेति नाम्नाऽऽसीनया चैव मता नदी । व्यवनश्च मतो हृष्टो राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥ २३ ॥
 निधः स कीकटो देशो वर्तते रघुनन्दन । तत्र वाक्याद्भविष्यन्ति तत्र पुण्यस्थलानि हि ॥ २४ ॥
 तर्हि त्वयाऽद्य वक्तव्यं वचनं मे सुखास्पदम् । तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा वाक्यं रामस्तमब्रवीत् ॥ २५ ॥
 कीकटेषु गया पुण्या नदी पुण्या तु पुनपुना । आश्रमस्ते महापुण्यः पुण्यं राजवनं परम् ॥ २६ ॥
 भविष्यति न मन्देहो मम वाक्यान्मुनीश्वर । व्यवनस्तेन मंतुष्टो गमं दृष्ट्वाऽऽश्रमं ययौ ॥ २७ ॥
 एतस्मिन्नन्तरं तस्य सत्रे गमं निमित्ते । प्रत्यहं कीटिप्रो विश्रा भुञ्जन्ति यतिभिः सह ॥ २८ ॥
 कुम्भोदरो मुनिः प्राणाल्सीमाचारतिक्रमं तदा । गङ्गायात्राप्रसंगेन गयां गन्तुं समुद्यतः ॥ २९ ॥
 समागतः प्रयागान्च दूतान्दृष्ट्वाऽब्रवीद्वचः । हे दूता उत्तरं देयं त्वयं कस्याज्ञया स्थिताः ॥ ३० ॥

रय उन्हें दानमें दिये ॥ १२ ॥ उनकी भोजन करानेके बाद भाई-बन्धुओं तथा अन्यान्य लोगोंके साथ सीता तथा स्वयं रामने भी भोजन किया । तत्पश्चात् सितामनपर बैठकर उन्होंने लक्ष्मणसे कहा—॥ १३ ॥ हे रघूत्तम ! मैं इस जगह नौ दिन तक निवास करूँगा । इसलिए मेरे कहनेसे तुम सीमापर खड़े दूतोंको आज्ञा दो कि कोई भी यात्री, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यासी बिना मेरी पूजा ग्रहण किये न जाने पाये । यदि कोई घटा गया और मुझे ज्ञात हुआ तो मैं दूतोंको दण्ड दूँगा ॥ १४-१६ ॥ रामके वचन सुनकर लक्ष्मणने वैसी ही आज्ञा दे दी । उसपर व्यवन मुनिने जब गुना कि यहाँ रामचन्द्र आये हुए ॥ तो वे रामके दर्शनार्थ वहाँ आये । रामने उनकी पूजा की । पश्चात् तम्बूमें सुन्दर आसनपर विराजमान होकर मुनिने रामसे कहा—॥ १७ ॥ १८ ॥ हे कमलपत्रके समान नेत्रोवाले राम ! मगध देशमें गङ्गाके दक्षिणी तटपर मेरा एक परम रमणीक आश्रम है ॥ १९ ॥ परन्तु मेरे उस आश्रममें मगध देशके दूत फल-मूल आदि लेनेमें बड़ा विघ्न डालते हैं । इसलिए आप उन विघ्नोंसे मेरी रक्षा करें ॥ २० ॥ व्यवनकी बात सुनकर रामने अनुपका टण्टा करके एक बाण छोड़ा । जिससे व्यवन-आश्रमके चारों ओर खाईके समान गहरा लकीर खिच गयी, जिसको लांघना उन दुष्टोंके लिए असंभव हो गया । जहाँ रामके बाणकी रेखा खिची थी, वहाँपर “राम-रेखा” नामकी सुन्दर नगरी बसी और रामरेखा नामकी नदी भी प्रवर्तित हो गयी । इसके बाद व्यवनऋषि प्रसन्न होकर रामचन्द्रजीसे बोले—॥ २१-२३ ॥ हे रघुनन्दन ! अभी कीकट देश निन्हा माना जाता है । आपके कहनेसे यह भी पुण्यस्थान अवश्य बन जायगा । इसीलिए आप पुझे सुख देनेवाला कोई वचन आज कहें । मुनिके इस वचनको सुनकर रामजीने सहर्ष कहा—॥ २४ ॥ २५ ॥ हे मुनीश्वर ! मेरे कहनेसे कीकट देशमें गया, पुनपुना नदी, आपका आश्रम तथा राजवन (राजगृह) पुण्यस्थल होंगे । इसमें आप कुछ भी संदेह न मानें । श्रीमगवान्के इस कथनसे मंतुष्ट होकर व्यवनऋषि रामजीसे आज्ञा लेकर अपने आश्रमको चले गये ॥ २६ ॥ २७ ॥ इसके बाद रामजीके द्वारा स्थापित अन्नक्षेत्रमें प्रतिदिन करीबों ब्राह्मण और यति भोजन करते रये ॥ २८ ॥ ऐसा होनेपर एक दिन गङ्गायात्राके प्रसङ्गमें कुम्भोदर नामके मुनि प्रयागसे रामजीकी भोजनशालाके लिए नियत की हुई सीमापर आये । वहाँ दूतोंको देखकर वे बोले—हे दूतो !

आकाशचुचिनिश्चित्रा इमेऽग्रे कस्य वै ध्वजाः । हनुमत्कोविदाराण्डजेशवाणाकिताः शुभाः ॥३१॥
 श्वेतनीलहरितपीतवर्णाः परमशोभनाः । दृश्यन्तेऽग्रे पताकाश्च भ्रूयते जयनिःस्वनः ॥३२॥
 तत्तस्य वचनं श्रुत्वा दूताः प्रोचुस्त्वरान्विताः । रामो राजीवपत्राक्षोऽयोध्यायाः पालकः प्रभुः ॥३३॥
 सोऽग्रे यात्रार्थमायातो वयं तस्याश्रया स्थिताः । सप्रमत्तस्य रामेण निर्मितं यात्रं वर्तते ॥३४॥
 क्षुधार्तस्त्वं सुखं गच्छ भुक्त्वा पीत्वा सुखं व्रज । तत्तेषां वचनं श्रुत्वा परिपुन्य मुनिः पुनः ॥३५॥
 आगतो येन मार्गेण तेन मार्गेण संययौ । गच्छन्तं तं मुनिं दृष्ट्वा रामदूतास्त्वरान्विताः ॥३६॥
 रुदृष्ट्वा मार्गं मुनेस्तस्य वचनं प्रोचुगदरात् । किमर्थं त्वं पठावृण्य मुने गच्छसि वै पुनः ॥३७॥
 आगतोऽसि पथा येन तेनैव त्वं वदस्व नः । इति तेषां वचः श्रुत्वा निबन्धान्मुनिरप्यसौ ॥३८॥
 तूर्णानि स्थित्वा क्षणं ध्यात्वा निश्चयं कृतवान् हृदि । इदानीं राघवोऽप्योष्यां यात्रां कृत्वा भविष्यति ॥३९॥
 नानादेशेषु सर्वत्र नृणां तद्दर्शनं कथम् । भविष्यति तथाऽन्यत्र रामतीर्थानि भूतले ॥४०॥
 भविष्यन्ति कथं नृणां महत्पापहराणि च । कथं रामेश्वरा भूम्यां भविष्यन्ति गतिप्रदाः ॥४१॥
 अतः किञ्चित्कतोऽप्यर्थं येन रामस्तु भूतले । यात्रोद्देशेन सर्वत्र सीतया सह यास्यति ॥४२॥
 अनेन लोकादिष्वपि भविष्यति न संशयः । इति निश्चित्य स मुनिः प्राह दूतान्स्मयन्निव ॥४३॥
 दूताः शृणुत मे वाक्यं हतो येन दशाननः । ब्रह्मपुत्रो मनुष्यपुत्रैर्न कृतं तीर्थसेवनम् ॥४४॥
 तथा यज्ञः कृतो नैव तस्यान्नं नाहमग्निषाम् । दीपनां मम मार्गो हि भवद्भिर्वचनं मम ॥४५॥
 कथनीयं राघवाय यात्रायत्तान् करिष्यति । इति तस्य वचः श्रुत्वा त्रिमस्याविष्टमानसाः ॥४६॥
 दत्त्वा मार्गं शापभीत्या दूता रामांतिकं ययुः । रामं नत्वा मुनेस्तस्य कर्णे वृत्तं न्यवेदयन् ॥४७॥
 राघवोऽपि मुनेस्तस्य श्रुत्वाऽभिप्रायमुत्तमम् । सर्वं वृत्तं सभामध्ये चकार सस्मितः स्फुटम् ॥४८॥

तुम लोग किसकी आज्ञासे यहाँ ठहरे हो ? ये सामने गगनस्पर्शी तथा चित्र-चिचित्र हनुमान्, कोविदार, परब्रह्म और वाणसे विह्वित श्वेत, नील, हरित एवं पीत रंगकी परम सुन्दर पताकायें किसकी फहरा रही हैं ? यह त्रयमन्द किसका सुनाई दे रहा है ? ॥ २६-३२ ॥ मुनिके वचन सुनकर दूत बोले—कमलनयन और अयोध्याके पालक प्रभु रामचन्द्रजी यात्राके लिए यहाँ आये हुए हैं। उनका आज्ञासे ही हम लोग यहाँ उपस्थित हैं। उन्हीं रामजीके द्वारा स्थापित अग्रक्षेत्र यहाँ है। यदि आप भूखे हों तो सुखसे वहाँ बलिए और भोजनादि करके खाइये। उनके वचन सुनकर मुनि लौट पड़े और जिस मार्गसे आये थे, उसी मार्गसे फिर जाने लगे। जाते हुए मुनिको देख शीघ्र दूत लोग उनका राह रोककर सादर बोले—हे मुने ! आप जिस मार्गसे आये थे, उसी मार्गसे फिर लौट क्यों जा रहे हैं ? आप जिस कार्यसे आये हों, उसे हम लोगोंकी बताइए। दूतोंके इस आग्रह पर वचनको सुना तो चुपचाप खड़े होकर यादों देर हृदयमें सोच करके मुनिने विचार किया कि यदि इस समय रामचन्द्रजी यात्रा करके अयोध्या चले जायेंगे ॥ ३३-३९ ॥ तब अन्त्यान्त्य देशोंके मनुष्योंको उनका दर्शन कैसे मिलेगा और दूसरे स्थानोंपर मनुष्योंके वृद्धों वड़े पापोंको नष्ट करनेवाला रामतीर्थ कैसे बनेगा ! अनेक मोक्षदायक रामेश्वर कैसे स्थापित होंगे ? इस लिए आज ■ कोई ऐसा उपाय करता हूँ कि जिससे रामचन्द्रजी संसारमें यह स्थानोंपर यात्राके उद्देश्यसे सीताजीके साथ जायें ॥ ४०-४२ ॥ इस यात्रामें लोगोंकी शिक्षा भी मिलेगी। इसमें संदेह नहीं है। ऐसा विचार करके कुछ हँसते हुए मुनिने दूतोंसे कहा—॥ ४३ ॥ हे दूतो ! मेरे वचन नूती। जिसने ब्राह्मणपुत्र दशानन रावणको मारा और माई एवं पुत्रोंके सहित न तीर्थसेवन किया और न यज्ञ ही किया, उस रामके अन्नको मैं नहीं खाऊँगा। आप छोड़ मुझे जाने दें। मेरी बात रामसे कहियेगा। ■ सुनकर ■ अवश्य तीर्थयात्रा ■ यज्ञ करेंगे। मुनिके ■ वचनको सुनकर ■ घबड़ाये हुए दूत शापके डरसे मुनिको मार्ग देकर रामचन्द्रजीके पास गये। वहाँ पहुँचकर रामजीको प्रणाम करके उनके कानमें उस मुनिकी बातको धीरेसे विवेदन कर दिया ॥ ४४-४७ ॥ श्रीरामने भी मुनिके उस उत्तम अभिप्रायकी जानकारी सब बाद

मंत्रिभिर्वन्धुभिश्चैव वसिष्ठेन पुरोचसा । मन्त्रयित्वा मुनेर्वाक्यं सत्त्वं मेने रमापतिः ॥४९॥
 ततो निश्चितवान् रामः समामध्ये पुरोचसा । अदौ कार्यं तीर्थयात्रा यज्ञाः कार्यास्ततः परम् ॥५०॥
 ततो रामाज्ञया दूता गत्वाऽपोष्वां पुरीं प्रति । तद्दृशं च सविस्तारं सुमंत्राय न्यवेदयन् ॥५१॥
 सुमंत्रोऽपि च तद्दृशं श्रुत्वा वस्त्रधनानि च । उष्ट्राश्वरथनागाद्यैः प्रेषयामास सादरम् ॥५२॥
 पुष्पकं च तदा प्राह रामः शक्तिस्तदास्ति हि । यद्यप्यद्य गिरा मे त्वं शीघ्रमेव यथाफलम् ॥५३॥
 उष्ट्राश्वरथनागाद्यैर्निवासं च ततोदरे । करिष्यति सविस्तारं तथा विस्तीर्णतां मज्ज ॥५४॥
 सर्वेषां मारवाद्यर्थं शक्तिरस्तु यथासुखम् । कस्मिन्काले सूक्ष्मरूपं महद्रूपं कदापि च ॥५५॥
 यथाकाया ॥ शक्तिस्तव दद्यां न संशयः । तच्छ्रुत्वा रामवचनं पुष्पकं दक्षयोजनम् ॥५६॥
 समंततस्तथोच्चं हि यथार्धत द्वियोजनम् । शतादृशेष सोपानैर्होमरत्नोद्भूतैश्चितम् ॥५७॥
 कोटिसूर्यप्रतीकाश्च नानाधातुविचित्रितम् । कलशैः शतसाहस्रैर्होमरत्नविषङ्गितैः ॥५८॥
 जालरश्मिगवाक्षैश्च मुक्ताहारैर्विभूषितम् । कपार्द्वैर्पणोद्भूतैर्जैस्त्र्यम्बकैर्वृतम् ॥५९॥
 पुष्पाणां वाटिकामिष नानापक्षिनिनादिनाम् । सर्वमस्तकज्ञा ॥ शतशोऽप्य सहस्रतः ॥६०॥
 निश्वासां भणयश्चित्राः ॥ विस्तारयन्ति हि । गोपुराणि च मातन्ते शतशोऽप्य ॥६१॥
 तत्र प्राथमिकार्या तु पक्ता श्रीराघवाज्ञया । उष्ट्राश्वरथनागादीन् दूताश्चारोहयन्स्तदा ॥६२॥
 द्वितीयायां काष्ठचयान् तुजोलूखलमूसलान् । तृतीयायां चान्धराशीन् पाकामत्राणि वै ॥६३॥
 पंचम्यां तु शतघ्नीष ततः शृङ्गायनेकशः । तत ऊर्ध्वं राजवाहानश्चोष्ट्रयवारजान् ॥६४॥
 अष्टमायां राजकोष्ठान् वस्त्रधान्यविनिर्मितान् । दहृशालास्ततः श्रेष्ठा दासीदासास्ततः परम् ॥६५॥
 नटादीनां ततः शाला वारखीणां ततः परम् । ततो वीरानघ्रिमांश्च तेभ्यः श्रेष्ठास्ततः परम् ॥६६॥
 गच्छन्ति तुरगैरे तान् पंचदशयपिता ततः । रथयोग्यास्ततोऽप्यूर्ध्वं गजैश्चैव ततः परम् ॥६७॥

सभामें मुक्तकाले हुए कही ॥ ४८ ॥ मंत्रियों, बन्धुओं तथा पुरोहित वसिष्ठजीके साथ परामर्श करके रमापति
 रामने कुम्भोदर मुनिके वाक्यको सत्यसंगत माना ॥ ४९ ॥ इसके ॥ सभामें पुरोहितके ॥ परामर्श करके
 रामचन्द्रजीने निश्चय किया कि पहले तीर्थयात्रा और उसके बाद यज्ञ करना चाहिए ॥ ५० ॥ ऐसा निर्णय
 हो जानेके बाद रामचन्द्रजीकी आज्ञासे दूतने अयोध्या जाकर मन्त्री सुमन्त्रसे सब हाल विस्तारपूर्वक कहा ।
 सुमन्त्रने भी उस समाचारको सुनकर सादर वस्त्र-धन आदि ऊँट, घोड़ा, रथ और हाथी आदिपर लदवा-
 कर रामजीके भेजा ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ तब रामने पुष्पकविमानसे कहा—तुम्हारेमें शक्ति है । मसएव
 तुम अपने बलके अनुसार विस्तृत बनी । क्योंकि तीर्थयात्राके समय ऊँट, घोड़ा, रथ और हाथी आदि भी
 तुम्हारे अन्दर ही निवास करेंगे ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ कामके अनुकूल अर्थात् जैसा कार्य हो, वैसा तुम्हारा बल भी हो
 जाय । ऐसी शक्ति तुम्हें मैंने दी है । इसमें संशय नहीं है । रामजीके इस वचनको सुनकर सो अट्टालिकाओं
 और सोने ॥ रत्न आदिकी सोड़ियोंवाला, करोड़ों सूर्योंकी कान्तिवाला, बनेक प्रकारकी धातुओंसे
 चित्रित, सुवर्ण तथा रत्नमय सहस्रतः कलशोंसे युक्त, मोतियोंके द्वारा विभूषित, शिङ्कियों तथा चिकोंसे
 युक्त, काचमड़े फाटकों तथा संकड़ों फम्बारीसे शोभित, भिन्न-भिन्न प्रकारके पक्षियों द्वारा कलरवित, पुष्पवाटि-
 कामोंसे भण्डित, जिनमें सैकड़ों-हजारोंको संख्यामें प्रधान द्वार भासित हो रहे थे, ॥ प्रकार ॥ पुष्पकविमान
 सर्वविध साधनोंसे सम्पन्न, दस योजन लम्बा तथा दो योजन ऊँचा ॥ गया ॥ ५१-६१ ॥ ऐसा हो जानेपर
 भगवान् रामचन्द्रकी आज्ञासे दूतने पहली पंक्तिकी अट्टालिकामें ऊँट, घोड़े, रथ तथा हाथी आदिको बड़ा दिया ।
 दूसरी पंक्तिकी अट्टालिकामें काष्ठका डेर तथा घास, ओखलो-मूसल आदि, तीसरी अट्टालिकामें अन्नसमूह,
 चौथीमें भोजनालयके पात्र, पाँचवींमें तोप आदि, छठीमें अन्य विविध प्रकारके शस्त्र, सातवीं अट्टालिकामें राज-
 घरानेके शङ्ख, आठवींमें राघवकोश, नवीं अट्टालिकामें वस्त्र-अन्न आदिसे युक्त श्रेष्ठ बाजार, दसवीं अट्टालिकामें

भारोदयस्ततो दत्तान् राज्ययोग्याधिकारिणः । सुहृन्पुत्रजनस्त्रीमित्रपान्मांडलिकास्ततः ॥६८॥
 ततोऽप्यूर्ध्वं राघवस्य सुहृदश्च पुरोक्तसः । ततो भोजनशालाश्च विशिष्यैव मनोभयाः ॥६९॥
 पाकशालास्ततः पंच स्त्रीणां भोक्तुं ततो दश । तत ऊर्ध्वं हि बन्धूनां मातॄणां च गृहाणि च ॥७०॥
 तत ऊर्ध्वं राघवस्य सभा सिंहासनान्विता । ततोऽप्यूर्ध्वं च सीताया मेहं नानातस्त्रोष्ट्रम् ॥७१॥
 ततोऽप्यूर्ध्वं राघवस्य क्रीडास्थानं तु सीतया । ततोऽप्यूर्ध्वं षष्टिमायां राज्ञां सुहृदां स्त्रियः । ७२॥
 ततः स्त्रीणां समार्षं हि सप्त शालाः शुभावहाः । चित्रशाला द्वादशाश्च त्रयसां पंच वै ततः ॥७३॥
 पुष्पारामदीकानां हि पंच शालास्ततः शुभाः । ततोऽप्यूर्ध्वं तु शालायां घटीयत्रादिकौतुकम् ॥७४॥
 व्याघ्रादीनां चतः शाला त्वेका रम्याऽतिविस्तृता । ततोऽप्यूर्ध्वमग्निहोत्रशाला श्रीगध्वस्य च ॥७५॥
 ततः शिवार्चनस्यैका शाला ज्ञेया शुभावहा । विघ्राणां च ततः शालाः शाला विद्यार्थिनां ततः ॥७६॥
 यतीनां च ततः शाला धाद्यशाला ततः परम् । जलशाला ततः श्रेष्ठा जलयन्त्रान्विता ततः ॥७७॥
 ततोऽप्यूर्ध्वमार्द्रवस्रशोषणार्धमनुत्तमाः । शतशालास्त्रिमाः पूर्वाश्चक्रुस्ते रामसेवकाः ॥७८॥
 रामोऽपि दृष्ट्वा ताः सर्वा आहरोह स्वयं तदा । ततो नदत्सु बाधेषु स्तुवत्सु यागघादिषु ॥७९॥
 नर्तन्सु वारनारीषु पताकासु चलत्सु च । प्रकाशपन् दश दिशो विमानं राघवान्नया ॥८०॥
 अगमत्सर्वदिग्भागान् प्रतीचीं तपनोपमम् । विहायसा वायुवेगं किंकिषीजालमण्डितम् ॥८१॥
 यया प्रयागामिमृशं श्रीरामश्चञ्चलचित्तम् ।

विष्णुदास उवाच

कथं रामस्य चन्द्यारो घ्यजाः प्रोक्ताः पुरा त्वया ॥८२॥

तत्सर्वं विस्तरेणाथ श्रोतुमिच्छामि त्वन्मुखात् ।

श्रीरामदास उवाच

जैश्रवे गघुनायस्तु स्वपितृस्यंदनस्थितः ॥८३॥

दास तथा दामिणीको, भारहवीमें नटादिकोंको, बारहवीमें वेश्याओंको, तेरहवीमें पहलवानोंको, चौदहवांमें पैदल चलनेवालोंको, पंद्रहवीमें बौद्ध पुंड्रसवारोंको, सोलहवीमें हाथियों तथा हाथीपर सवारों करनेवालोंको, सत्रहवींमें बन्दूक आदि छोड़नेवालोंको, अठारहवींमें राज्यके अधिकारी दूतोंको और उन्नीसवींमें रामचन्द्रके मित्र राजाओंमें अपने गुप्तों एवं स्त्रियों आदिके साथ स्थान पाया । बीसवीं कक्षामें नगरके मित्रोंको स्थान मिला । इनके बाद बीस भोजनशालाये बनीं । भोजनशालाओंके ऊपर पांच पाकगृहको स्थान मिला और उनके ऊपर स्त्रियोंके दस भोजनगृह बने । उसके ऊपर साइरी तथा माताओंके गृह, बादमें सिंहासनसे मलकृत राजसभा, राजसभाके ऊपर बहुत-सी सलियोंसे युक्त सीताजीका गृह बना और सीताजीके गृहके ऊपर सीता सहित रामका क्रीडा-ग्यार बनाया गया । क्रीडास्थानके ऊपर मित्रोंको स्त्रियोंको स्थान मिला । इसके बाद स्त्रियोंकी सभासे लिये मुखदायक सात अट्टालिकाय निर्मित की गयीं । स्त्रीसभास्थानके बाद बारह चित्रशालाये और पांच पक्षि-शालाये निर्मित की गयीं । पक्षिशालाके बाद सुन्दर पुष्प आदिके पांच बनाये गये । उसके ऊपर बौद्धमय सात घटीयन्त्र आदि रक्ते गये । बादमें अति विस्तृत एवं रम्य एक शाला व्याघ्रादि जन्तुओंके लिए निरत की गयी । उसके ऊपर अग्निहोत्रगृह और अग्निहोत्रगृहके ऊपर शिवजीके पूजनका स्थान, इसके बाद अन्यः चित्रशाला, विद्यार्थीशाला, संन्यासीशाला, पाद्यशाला, जलयन्त्रादि युक्त सुन्दर जलशाला और जलशालाके बाद गीले वस्त्रोंको सुखानेका उत्तम स्थान बना । इस प्रकार रामचन्द्रजीके सेवकोंने इन सौ शालाओंसे उन अट्टालिकाओंको पूर्ण किया ॥ ६२-७८ ॥ इस प्रकार सर्वथा पूर्ण देखकर रामचन्द्रजी स्वयं विमानपर बैठे । रामचन्द्रजीके बैठनेके बाद बाजे बजने और भादोंके द्वारा स्तुति करने एवं वेश्याओंके नाचनेपर दसों दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ सूर्यके समान तेजस्वी तथा पवनके वेगवाला रामचन्द्रजीकी ध्वजासे चिह्नित विमान रामके भाक्तानुसार पूर्वदिशासे पश्चिमकी ओर प्रयागके लिए ।

अतः सोऽप्यस्य रामस्य कोविदारध्वजः स्मृतः । बाणध्वजांकितरथमारुह्य ताटिकां बने ॥८४॥
 जघानैकेन बाणेन तस्माद्बाणध्वजः स्मृतः । छिन्नं वज्रध्वजं दृष्ट्वा रावणेन स राघवः ॥८५॥
 ध्वजेऽकरोद्वायुपुत्रं तस्मान्प्रोक्तः कपिध्वजः । रणे विमृष्टं दृष्ट्वा रामो मातलिनं तदा ॥८६॥
 स्थितः स्वीयरथे दिव्ये तस्माच्च गरुडध्वजः । शुक्लायां हि पताकायां कोविदारोऽस्ति वै शुभः ८७॥
 बाणः शुभोऽस्ति नीलायां हरितायां तु मारुतिः । पीतायां गरुडो संघः श्रीरामस्यदनोपरि ॥८८॥
 चतुर्णु स्यंदनेष्वेवं चत्वारः कीर्तिना ध्वजाः । कोविदारध्वजो रामः श्रीरामो मार्गेणध्वजः ॥८९॥
 कपिध्वजो राघवेन्द्रो भूपेशो गरुडध्वजः । एवं नामान्यनंतानि प्रोक्ष्यते राघवस्य हि । ९०॥
 तस्माद्रामध्वजाः प्रोक्ताश्चत्वारश्च मया तव । वज्रध्वजांकितरथे स्थित्वा रामेण संगतः ॥९१॥
 कुतस्तस्माद्वाघवेन्द्रं तं वदन्पशनिध्वजम् । अतो रामध्वजस्यैकमेव चिह्नं न विद्यते ॥९२॥
 तस्मान्छिष्य मया प्रोक्ताश्चत्वारो राघवप्रियाः । कोविदारांकितरथे सुमंत्रः सारथिः स्मृतः ॥९३॥
 बाणध्वजांकितरथे सूतश्चित्ररथः स्मृतः । वायुपुत्रांकितरथे सारथिर्विजयः स्मृतः ॥९४॥
 रामस्य दारुकः सूतः स्यंदने गरुडांकिते । एवं छिष्य त्वया पृष्टं श्रीरामध्वजकारणम् ॥९५॥

त्रया पूर्वं मया तच्च तवाग्रंज्य निवेदितम् ॥९६॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे कुम्भोदरोपाख्यानं नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः

(पूर्वदेशके तीर्थोंकी यात्रा)

श्रीरामदास उवाच

ततो रामो विमानेन गत्वा किञ्चित् पश्चिमाम् । दिशं ययौ प्रयागं च त्रिवेणो यत्र वर्धते ॥ १ ॥

विष्णुदासने कहा कि [] । रामदास) ने रामको चार ध्वजायें जो पहले कही थीं, उन्हें [] विस्तारसे कहें । श्रीरामदास बोले—बाल्यकालमें रघुनाथजी अपने पिताके रथपर बैठे ॥७९-८३॥ इसलिये वह रामका रथ कोविदारध्वज कहा जाता है । बाण-ध्वजासे चिह्नित रथपर बैठकर एक हों बाणसे वनमें ताड़काको मारनेके कारण [] बाणध्वज कहलाये । रावणके द्वारा वज्रध्वजा कटनेके बाद महावीर हनुमान्को ध्वजापर बैठानेसे वे कपिध्वज नामसे प्रसिद्ध हुए । रणमें मातलिको मूर्छित देखकर अपने रथपर गरुडको बैठानेसे गरुडध्वज हुए । किस ध्वजामें किसका चिह्न [] सो बताते हैं । श्वेत पताकामें कोविदार, नील पताकामें बाण, हरितमें मारुति, पीत पताकामें गरुड । इस प्रकार रामजीके रथपर स्थित चिह्नोंको [] चाहिए ॥ ८४-८८ ॥ इस तरह चारों रथोंपर चार ध्वजायें मैने कहीं । कोविदार ध्वजावाले राम, बाण ध्वजावाले श्रीराम ॥ ८९ ॥ कपिसे चिह्नित ध्वजावाले राघवेन्द्र और गरुडसे चिह्नित ध्वजावाले भूपेश । इस प्रकार रामचन्द्रके अनन्त नाम हैं ॥ ९० ॥ इसलिए मैने तुम (विष्णुदास) से रामको चार ही ध्वजायें कही हैं । वज्रसे अंकित ध्वजावाले रथपर बैठकर रामचन्द्रजीने [] किया था । राघवेन्द्र नामवाले रामको पशुनिध्वज कहते हैं । रामचन्द्रकी ध्वजाका एक ही चिह्न नहीं है ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ इसलिए मैने छोटकर रामकी अति प्रिय ध्वजाओंको ही कहा है । कोविदार ध्वजासे चिह्नित रथपर सुमन्त्र, बाणध्वजसे चिह्नित रथपर चित्ररथ और कपिध्वजसे अंकित रथपर विजय नामके सारथी कहे गये हैं । रामके गरुडांकित रथपर दारुक सारथी रहता है । इस प्रकार जो तुम (विष्णुदास) ने श्रीरामकी ध्वजाका कारण पूछा, सो मैने [] तुमसे कहा ॥ ९३-९६ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे यात्राकाण्डे कुम्भोदरोपाख्यानं नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

श्रीरामदासने कहा—बादमें श्रीराम विमान द्वारा कुछ पश्चिम दिशाकी ओर जाकर प्रयाग पहुँचे ।

कोशमात्रे विमानं तन्मुक्त्वा रामः ससीतया । पद्भ्यां शनैः शनैरेव त्रिवेणीसंगमं ययौ ॥ २ ॥
 नारिकेलं वायनेन समर्प्य रघुनन्दनः । चतुरंगुलमानं हि केशवन्धं सभूषणम् ॥ ३ ॥
 ददौ संछिद्य सीतायाः स्वयं शौरमथाकरोत् । लक्ष्मणार्धैर्वन्धुभिश्च वपनं रघुनन्दनः ॥ ४ ॥
 मातृभिः कारयामास कृत्वा चैकमुपोषणम् । द्वितीये दिवसे आते कृत्वा श्राद्धं सतर्पणम् ॥ ५ ॥
 मासमात्रं माघमासे वासं कृत्वा सविस्तरम् । अष्टतीर्थं ततो गत्वा दत्त्वा दानान्यनेकैः ॥ ६ ॥
 दृष्ट्वाऽक्षयवटं रम्यं निद्रास्थानं निजालये । किञ्चिद्दिहस्य श्रीरामः सीतया भ्रातृभिः सह ॥ ७ ॥
 पूजां कृत्वा त्रिवेण्याश्च वस्त्रैर्दिव्यैः सुभूषणैः । गंगाजलैः काचकुम्भान् शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ८ ॥
 पूरयित्वा विमानाग्रये स्थाप्य तीर्थं पुरोहितान् । पूजयित्वा सविस्तरं नत्वा चैव पुनः पुनः ॥ ९ ॥
 तान् पृष्ट्वा पुष्पकं स्थित्वा ययावाकाशवर्त्मना । विन्ध्याचलं समाश्रित्य यत्र दुर्गा तु वर्तते ॥ १० ॥
 तत्र स्नात्वा तीर्थविधिं पूर्ववच्च विधाय सः । तां विन्ध्यवासिनीं पूज्य वस्त्रैरामरणादिभिः ॥ ११ ॥
 कृत्वा दानान्यनेकानि तोष्य तीर्थपुरोहितान् । ययौ काशीं पुष्पकस्थः श्रीरामः सीतया सुखम् ॥ १२ ॥
 एतस्मिन्नन्तरे काश्यां काशिस्थाः पुष्पकं तु तन् । कोटिस्रयंप्रतीकांश्च दृष्ट्वा पश्चिमतो दिशम् ॥ १३ ॥
 यत् प्राचीं काश्याभिमुखमागच्छन्तं महोज्ज्वलम् । चक्रस्तर्कान्वितकर्णश्च शतशोऽङ्गुलसंस्थितः ॥ १४ ॥
 केचिद्बुधश्च दावाभिस्त्वयं पर्वतमस्तके । सूर्येण विस्मृतः पंथा भ्रमणाद्भ्रांतिमाप सः ॥ १५ ॥
 इति केचिज्जनाः प्रोचुः केचिद्बुधस्त्वयं मुनिः । नारदस्तु समायाति केचित्तत्र ब्रह्मापिरे ॥ १६ ॥
 पश्यत्यसौ रविः स्वर्गान् केचिद्द्रोणाचलान्वितः । वायुपुत्रोऽयमिति ते प्रोचुः काशीनिवासिनः ॥ १७ ॥
 केचिद्बुधः शशी स्वर्गान्मृगेण विनिपातितः । केचिद्बुधश्च विशेषं केचिद्बुधः सुदर्शनम् ॥ १८ ॥

जहाँपर कि. पतितपावनी त्रिवेणी विद्यमान है ॥ १ ॥ त्रिवेणीसे एक कोस दूर श्रीराम जानकीजीके साथ विमानसे उतर पड़े और धीरे-धीरे पैदल ही त्रिवेणीके संगमपर गये ॥ २ ॥ वहाँ जाकर रघुनन्दनने त्रिवेणीको नारियल समर्पण करके भूषणोंसे गुंथा हुआ जानकीका केशपाश (जुड़ा) चार अंगुल लंबा काटकर त्रिवेणीमें प्रवाहित कर दिया । पश्चात् स्वयं भी "प्रयागं मुण्डनं श्रेयः" के अनुसार और करवाया । रामने उसी प्रकार माताजी, भाइयों तथा अन्यान्य सगे-सम्बन्धियोंका भी और करवाया । तदनन्तर सबने उपवास करके दूसरे दिन तर्पण तथा श्राद्ध किया । पश्चात् यथाविधि माघ महीने-भर वहाँ कल्पवास किया । उसके उपरान्त प्रयागके प्रसिद्ध त्रिवेणी, वेणीमाधव, सोमनाथ, भारद्वाज, नाग-वासुकी, अक्षयवट, दशान्वमेध आदि माठ तीर्थों (अष्टतीर्थ) को यात्रा की और विप्रोंको अनेक प्रकारके दान दिये ॥ १-६ ॥ अपने प्रलयकालीन निद्रास्थान अक्षयवटको देखकर राम कुछ मुस्कुराये । पश्चात् सीता तथा भाइयोंके साथ मिलकर सुन्दर वस्त्रों तथा आभूषणोंसे त्रिवेणी महारानीकी पूजा की । उसके बाद हजारों काँचघट गङ्गाजलसे भरवाकर अपने विमानपर चढ़वा लिये । तीर्थके पुरोहितोंको विस्तरसे पूजा तथा सरकाव किया । तदनन्तर उनको नमस्कार किया और उनको आज्ञा लेकर राम विमानपर सवार हो गये । तत्पश्चात् आकाशमार्गसे विन्ध्याचल पधारे । वहाँ विन्ध्यवासिनी दुर्गाजीका दिव्य मन्दिर है ॥ ७-१० ॥ वहाँ रामने स्नान किया और पूर्ववत् वहाँपर भी तीर्थविधिका पालन किया । वस्त्र तथा आभरण आदि सामग्रीसे विन्ध्यवासिनी देवीकी पूजा की ॥ ११ ॥ अनेक दान देकर वहाँके पुरोहितोंको प्रसन्न किया । पश्चात् श्रीराम सीताके पुष्पकविमानपर सवार होकर सुखपूर्वक काशीको चले ॥ १२ ॥ उस समय काशीनिवासी जन उस करोड़ों सूर्यके समान प्रकाशवान् अतिउज्ज्वल विमानको पश्चिम दिशासे काशीकी ओर आते देखकर हजारोंकी संख्यामें महलोंकी छतोंपर चढ़ गये और उसके विषयमें तर्क-वितर्क करने लगे ॥ १३ ॥ १४ ॥ कोई कहने लगा कि यह पर्वतके ऊपर दवान्ति जल रही है । कोई कहता कि सूर्य रास्ता भूलकर इधर-उधर भटक रहा है ॥ १५ ॥ कोई कहता कि यह तो नारद मुनि नीचेको आ रहे हैं । किसीने कहा कि स्वर्गसे सूर्य नीचे गिर रहा है । कोई कहता कि यह द्रोणाचलको लिये हनुमानभी आ रहे हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥ कोई कहने

केचिदूचुः सुवर्णाद्रिं केचित्प्रोचुररुन्धतीम् । केचिन्पतविराजानं केचिच्च प्रलयानलम् ॥१९॥
 केचित्प्रोचुर्महाघोरं बहुयत्नं केन मोचितम् । केचित्प्रोचुः सहस्रास्यस्त्वयं मणिविराजितः ॥२०॥
 एवं वदंतस्ते यानं ददधुः पुष्पकं महत् । महाकोलाहलं चक्रुः प्रोचुस्त्वयं समामतः ॥२१॥
 रामोऽयोध्यापतिः भीमान् मानं कर्तुं सनातनः । विश्वनाथोऽपि तच्छ्रुत्वा पावत्या वृषभस्थितः ॥२२॥
 प्रत्युज्जगाम श्रीरामं काशीस्थैः परिवेष्टितः । उपायनं राघवस्य गृह्णात्वा बहुविस्तरम् ॥२३॥
 एतस्मिन्नंतरे रामस्तं देहलिविनायकम् । पूज्य विश्वेश्वरं दृष्ट्वा ननाम शिरसा तदा ॥२४॥
 आलिंगितः शिवेनाथ गृहीत्वोपायनं शिवात् । स्वयं वस्त्रैरामर्णः पूजयामास शंकरम् ॥२५॥
 शिवेश काशिनाथस्य घृत्वा हस्तेन सत्करम् । ताचुर्मा वाहनं भुक्त्वा अम्भतुर्भणिकर्णिकाम् ॥२६॥
 ततः सीतायुतो रामश्चक्रपुष्पकरिणीजले । समर्प्य श्रीफलं स्नात्वा सर्वल शौरपूर्वकम् ॥२७॥
 नित्ययात्रां विधायाम् कृत्वा चैकमुपोषणम् । तीर्थश्चाद्वादि संवाद्य पंचशीर्षीं विधाय च ॥२८॥
 अंतर्गृहीं महायात्रां मानसद्वयमेव च । द्विचत्वारिंश्लिङ्गानि द्वाष्टलिङ्गानि वै ततः ॥२९॥
 तटपश्चात्तच्छ्रुत्वा गणपांस्तथाऽष्टौ भैरवान् पुनः । योगिनीश्च चतुःषष्टीस्तथा दुर्गाश्च वै नव ॥३०॥
 तथाऽष्टदिक्पदीश्चापि तथा चैव नवग्रहान् । क्षेत्रप्रदक्षिणां पंचक्रोशीयात्रां रघूत्तमः ॥३१॥
 चतुर्दशेना यात्रास्तु कृत्वा चैव सविस्तरम् । रामेश्वरं महालिङ्गं वरुणायास्तटे शुभे ॥३२॥
 काश्या वायव्यदिग्भागे सीमायां स्थाप्य सूतमम् । रामतीर्थं स्वीयनाम्ना भागीरथ्या चकार सः ॥३३॥
 एतस्मिन्नंतरे तत्र वायुपुत्रः समागतः । वृत्तं भुक्त्वा राघवस्य यात्राः कर्तुं गतस्त्विति ॥३४॥
 सीतारामौ नमस्कृत्य स्नात्वा भागीरथे जले । स्वनाम्ना शंकरं तीर्थमकरोज्जाह्वीतटे ॥३५॥

लगा कि मृगने स्वर्गसे चन्द्रमाको नोचे गिरा दिया है । कोई उसको विष्णु, कोई सुमेरु पर्वत, कोई अरुन्धती तारा, कोई मरुट और कोई प्रलयाग्नि बताते लगा ॥१९॥ कोई कहने लगा कि किसोने महाघोर आग्नेयास्त्र छोड़ा है । कोई कहने लगा कि यह सहस्रमुख शेष है ॥२०॥ इस प्रकार वे सब एक वितर्क कर ही रहे थे कि पुष्पकविमान उनके पास आ पहुँचा । यह देखकर लोग कोलाहल करते हुए आग्रयणपूर्वक एक-दूसरेसे कहने लगे कि यह हो साक्षात् अयोध्याधिपति श्रीमान् राम नगरवासियोंके यहाँ यात्राके पधार है । यह सुनकर स्वयं काशीविश्वनाथजी बहुतेरी भेंट लेकर बेलपर सवार हुए और नगरवासियोंको साथ लेकर रामके समक्ष आ उपस्थित हुए ॥ २१-२३ ॥ इस बीच रामने देहलीविनायक तथा दुष्टिराजके दर्शन कर लिये । जब उन्होंने शिवजीको प्रत्यक्ष देखा तो सिर नवाकर प्रणाम किया ॥ २४ ॥ शिवजीने रामका आलिंगन किया । शिवजीको दो हुई भेंट स्वीकार करके स्वयं रामने भी दृष्टो तथा अलंकारोंसे शिवजीको पूजा की ॥ २५ ॥ तदनन्तर अपने हाथसे काशीनाथके सुन्दर हाथको पकड़कर रामने काशीमें प्रवेश किया । पश्चात् दोनों काहन छोड़कर मणिकर्णिका गये ॥ २६ ॥ वहाँ सीता सहित रामने शौर आदि करवाकर चक्रपुष्पकरिणी कुण्डमें श्रीफल समर्पण करके सहर्ष स्नान किया ॥ २७ ॥ नित्ययात्रा करके एक दिनका उपवास किया । तदुपरान्त तीर्थश्चाद्वादि कर्म करनेके बाद पञ्चशीर्षी की ॥ २८ ॥ बादमें अंतर्गृही, महायात्रा, दोनों मानसोंकी यात्रा बयालीस और आठ लिङ्गोंकी यात्रा की ॥ २९ ॥ छपन गणपालोंकी यात्रा, आठ भैरवोंकी यात्रा, चौसठ योगिनियोंकी यात्रा, नव दुर्गाओंकी यात्रा, आठ दिक्पालोंकी यात्रा और क्षेत्रकी प्रदक्षिणास्त्रिणो पंचक्रोशीकी यात्रा की ॥ ३१ ॥ इस प्रकार रामने उपर्युक्त चौदहों यात्राओंको विभिन्नत् पूर्ण किया । तदनन्तर काशीके वायव्यकोणकी सीमामें वरुणा नदीके तटपर श्रीरामने परम पवित्र तथा मनोहर रामेश्वर महालिङ्ग स्थापित करके अपने नामसे भगवती भागीरथीके तटपर रामतीर्थ अर्थात् रामघाट भी स्थापित किया ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ राम यात्रा करने निकले है, यह समाचार सुनकर वायुपुत्र हनुमान्जी भी वहाँ आ पहुँचे ॥ ३४ ॥ वहाँ उन्होंने सीता तथा रामको प्रणाम करके गंगामें स्नान किया । फिर जाह्नवीके किनारे उन्होंने

घट्टं वधं गंगायास्तटे रम्यं दृक्मयम् । काश्यामद्यापि तस्मान्ना घट्टोऽस्ति परमः शुभः ॥ ३६ ॥
 तथा चकार रामोऽपि घट्टबंधनमुत्तमम् । दृश्यते प्रत्यहं यत्र काश्यां रामः ससीतया ॥ ३७ ॥
 चकार पंचगंगायां कार्तिकस्नानमुत्तमम् । काशीवासं वर्षमेकं चकार धर्मतत्परः ॥ ३८ ॥
 तीर्थयासाधिपः सर्वान् सन्तर्प्य च पृथक् पृथक् । रत्नैर्हिरण्यैर्वासोभिरश्वाभरणधेनुभिः ॥ ३९ ॥
 विचित्रैश्च दशाऽपत्रैः स्वर्णरौप्यादिनिर्मितैः । अमृतस्वादुपकान्तैः पायसैश्च सशर्करैः ॥ ४० ॥
 सगोरसैस्नानदानैर्धान्यदानैरनेकधा । गन्धचन्दनकपूरैस्ताम्बूलैश्चारुधामरैः ॥ ४१ ॥
 सतूलैर्मृदुपयैर्कैर्दीपिकादर्पणासनैः । शिविकादासदासीभिर्वाहनैः पशुभिर्गृहैः ॥ ४२ ॥
 चित्रभञ्जपताकामिरुल्लोचैश्चंद्रचारुभिः । नानाव्रतमंहाभ्रैः सध्वजारापणादिभिः ॥ ४३ ॥
 वर्षाशनप्रदानैश्च गृहोपस्करसंयुतैः । उपानत्पादुकाभिश्च यत्नेश्चापि तपस्विनः ॥ ४४ ॥
 योग्यैः पट्टदुकूलैश्च मृदुलैश्चित्रकम्बलैः । दण्डैः कमण्डलुपुतराजैर्नृगसम्भरैः ॥ ४५ ॥
 कोपीनैरुच्चमंचैश्च परिचारककाञ्चनैः । मठविद्याधिनामन्नेरातथ्यर्थं महाधनैः ॥ ४६ ॥
 बहुधीपधदानैश्च भिषजां जावनादिभिः । महापुस्तकसभारलेखकानां च जीवनैः ॥ ४७ ॥
 रसापनैरमूल्यैश्च पत्रदानैरनेकशः । प्राप्नोत् प्रपाथद्रावणैर्हमन्तैऽन्नाष्टकेन्धनैः ॥ ४८ ॥
 छत्राच्छादनकार्यैर्वर्षाकालोचितैर्वहु । रात्रौ पाठप्रदापैश्च शदाम्पजनकादिभिः ॥ ४९ ॥
 पुराणपाठकार्थापि प्रतिदेवालयं धनैः । देवालये नृत्यगातकरणाद्यंरनेकशः ॥ ५० ॥
 देवालये सुधाकार्यैर्जीर्णोद्धारैरनेकशः । चित्रलेखनमूर्त्यैश्च रत्नशालादमण्डनैः ॥ ५१ ॥
 आरार्तिकैर्गुग्गुलैश्च दशांगदिसुधैर्कैः । कपूरवर्तिकाद्यैश्च दवाचार्यैरनेकशः ॥ ५२ ॥

एक कल्याणकारी तीर्थ बनाया ॥ ३५ ॥ गंगाजीके तटपर उन्होंने सुन्दर पत्थरोका एक घाट बनवाया, जो कि अभी ■ काशीमें हनुमानघाटके नामसे प्रसिद्ध है ॥ ३६ ॥ उसा प्रकार रामचन्द्रन भा उत्तम घाट बधवाया, जो कि आज विन भी काशीमें रामघाटके नामसे वर्तमान है । पश्चात् रामने साताक साथ पञ्चगङ्गाम स्नान किया । उस समय कार्तिकका उत्तम मास था । इस प्रकार रामने वर्षभर काश्याम धर्मतत्पर हाकर निवास किया ■ ३७ ॥ ३८ ॥ पश्चात् ■ तीर्थयासियोंको पृथक् पृथक् रत्न, सुवर्ण, वस्त्र, अश्व, वाहन, गाव, साना-चादिके विचित्र पात्र, अमृततुल्य पकवान तथा शर्करामिश्रित दुग्धदानसे प्रसन्न किया ॥ ३९ ॥ ४० ॥ गोरसपुत अन्नदान तथा धान्यदानसे भी उन्हें संतुष्ट किया । बहुतोंका सुगन्धित चन्दन, कपूर, ताम्बूल, मनाहूर चमर, कोमल हस्ति भरे हुए गद्दे-तकिए, दोबट, दपं, आसन, पालका, दास दासी, वाहन, पशु तथा भवन ■ प्रसन्न किया ■ ४१ ॥ ४२ ॥ बहुतोंको चित्र-विचित्र ध्वजा-रताका, चन्द्रमाकी चांदनाक समान निमल चांदना, शादि-याना, बड़े-बड़े श्रेष्ठ वन करके ध्वजारोपण, वर्षाशनदान ■ गृहस्थाका सामग्रा दकर प्रसन्न किया । विप्रोंको उपानह तथा संन्यासी यतियों और तपस्वीरोंको लड़ाऊ, उनके योग्य कामल रेशमा वस्त्र, कम्बल, दण्ड-कमण्डलु, विचित्र-विचित्र मृगधर्म, कोपीन, ऊँचे-ऊँचे खटोले, सेवक, मठ, उसको रत्नाके लिए तथा विद्यापी और अतिथि-सत्कारके लिए सुवर्ण तथा बहुत-सा धन देकर संतुष्ट किया ॥ ४३-४६ ॥ वैद्योंको ■ जादिकाके साधनभूत बहुतसे औषध दान देकर, लेखकोंका जीविकाके साधनभूत बहुतसे पुस्तकसमूह देकर, बहुतोंका बहुमूल्य रसायन दान देकर और बहुतोंके लिए अन्नक्षेत्र खोलकर संतुष्ट किया । बहुतोंका प्राप्नोत्तुम पीसरक वास्ते धन देकर तथा बहुतोंको हेमन्तके योग्य ■ आदिके वस्त्र द्रव्य देकर प्रसन्न किया ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ बहुतोंको वर्षाकालोचित छत्र तथा आच्छादन देकर आनन्दित किया । बहुतोंको रात्रिके समय पढ़नेके लिए दीपादिका ■ कर दिया । बहुतोंको शरीरमें व्यर्थ (मालिस) करनेके लिए तेल आदि सुगन्धित द्रव्योंका दान देकर राजी किया ॥ ४९ ॥ हर एक देवालयमें पुराणपाठ करनेवालोंको धन देकर संतुष्ट किया । देवाल्योंमें अनेक नृत्य-गीत करवाये । उनका जीर्णोद्धार करवाकर नूना पुतवा दिया । उनमें बहुतोरे चित्र बनवा दिये । उनमें केसर आदि रत्न तथा मासा आदिका प्रबन्ध करवा दिया ॥ ५० ॥ ५१ ॥ देवपूजाके

पञ्चामृतानां स्नपनैः सुगन्धस्नपनैरपि । देवार्थं मुखवासैश्च देवाद्यानैरनेकशः ॥५३॥
 महापूजार्थं मालापादिगुम्फनार्थं त्रिकालतः । शंखभेरीमृदंगादियाचनादैः शिवालये ॥५४॥
 घण्टागङ्गककुम्भादिस्नानोपस्करमाजर्जैः । श्वेतमार्जनवस्त्रैश्च सुगन्धैर्यत्कदर्भैः ॥५५॥
 जपहोमैः स्तोत्रपाठैः शिवनामोच्चारणैः । रामक्रीडादिसंयुक्तैश्चलनैः सप्रदक्षिणैः ॥५६॥
 एवमादिभिर्हृदयैः क्रियाकाण्डैरनेकशः । वर्षमेकमुपिन्वा तु कृत्वा तीर्थान्यनेकशः ॥५७॥
 दीनानाथार्थाश्च सन्तर्प्य नत्वा विश्वेश्वरं विभुम् । ब्रह्मचर्यादिनियमैर्गतेतुकालागमेन च ॥५८॥
 सत्यसम्भाषणेनावि तीर्थमेव प्रयागं च । नत्वा पुनर्विश्वनाथं कालगर्जं गणाधिपम् ॥५९॥
 अन्नपूर्णं दण्डपाणिं दृष्ट्वा स्तुत्वा प्रणम्य च । अनुज्ञातः शिवेनाथ विमानेन रघूत्तमः ॥६०॥
 यवाकाशमार्गेण गङ्गायां दक्षिणे तटे । कर्मनाशां नदीं दृष्ट्वा श्यवनस्याश्रमं ययौ ॥६१॥
 रामचन्द्रः पुष्पकस्थः स्नात्वा नत्वा मुनीश्वरम् । रामतीर्थं च रामेशं चकार तत्र राघवः ॥६२॥
 निजनाणकुतां रेखां दर्शयामास तान् जनान् । काश्या अप्पधिकान्यत्र दत्त्वा दानन्यनेकशः ॥६३॥
 ययौ यानेन दिव्येन स्वर्णभद्रस्य संगमम् । यानि यानि हि तीर्थानि राघवश्च गमिष्यति ॥६४॥
 उत्तरोत्तरस्तस्तेषु दानाधिक्यं कस्मिन्ति । यत्र यत्र रघुश्रेष्ठो गमिष्यति समीक्षया ॥६५॥
 तत्र तीर्थान्यनेकानि भविष्यन्ति महानि च । शेषोऽपि तेषां संख्यां हि वक्तुं नात्र क्षमो भवेत् ॥६६॥
 तेषु तीर्थानि श्रेष्ठानि षड् ज्ञेयानि मत्तापिभिः । बन्धूनां चैव चत्वारि सीतायाः पञ्चमं स्मृतम् ॥६७॥
 षष्ठमर्जनिपुत्रस्य सर्वत्रैवं विनिश्चयः । गमः स्नात्वा स्वर्णभद्रगमयोः संगमं मुदा ॥६८॥
 शिरात्रं समतिक्रम्य गण्डकीसंगमं ययौ । कस्मिंस्तोर्थे त्रिरात्रं च पञ्चरात्रमथ कञ्चित् ॥६९॥

लिए आरती, गुग्गुलु, दशांग, धूप, दीप, कपूर आदि अनेक वस्तुओं को दिलवायी ॥ ५३ ॥ देवताओं के लिए पंचामृत के स्नान का प्रबन्ध, सुगन्धित गुलाबजल आदि से स्नान का प्रबन्ध, मुखवासार्थ पान आदिका प्रबन्ध, तथा उनके लिए उद्यान आदिका प्रबन्ध भी करवा दिया ॥ ५३ ॥ सब शिवालयों में त्रिकाल पूजा के लिए माला गूँथने का प्रबन्ध, शंख, मृदंग, मृदंग आदि वाज्यों का प्रबन्ध एवं घड़ी घंटा कलश गेंदुवा तथा स्नान के सामान का प्रबन्ध कर दिया । मार्जन के लिए श्वेत वस्त्र तथा सुगन्धित द्रव्य चन्दन, बेसर, अगर, लार, बपूर आदिके लेपन का भी स्थायी प्रबन्ध करवा दिया । उसी प्रकार देवालयों में जप, होम, स्तोत्रपाठ, उच्च शिवनामोच्चारण, प्रदक्षिणा तथा चैवर लेकर रासक्रीड़ा आदि अन्यान्य क्रियाएँ करते हुए राम ने काशी में एक वर्ष बिताया । वहाँ के अनेक तीर्थ किये । उन्होंने दीनानाथ विश्वेश्वर भगवान् शिव को संतुष्ट किया । ऋतुकाल में भी ब्रह्मचर्य धारण कर तथा सत्यभाषण का अनुष्ठान करके तीर्थों के नियमों का पालन किया । अन्त में विश्वनाथ को, कालभैरव को, गणाधिप को, अन्नपूर्ण को तथा दण्डपाणि को बारंबार नमस्कार करके तथा उनकी स्तुति करके उनसे जानेकी आज्ञा माँगी । उनसे अनुज्ञात होकर रघूत्तम राम विमान पर सवार हुए ॥ ५४-६० ॥ और आकाशमार्ग से गङ्गानदी के दक्षिण तट की ओर चल दिये । रास्ते में उनको कर्मनाशा नदी मिली । बाद में श्यवन मुनिके आश्रम पर पहुँचे ॥ ६१ ॥ पुष्पक विमान से उतरकर रामचन्द्रजीने स्नान करके मुनिके दर्शन किये और वहाँ अपने नाम से रामेश्वर तथा रामतीर्थ स्थापित किया ॥ ६२ ॥ वहाँ अपने साथियों को अपनी बनायी हुई बाण की रेखा दिखलायी । अन्त में वहाँ पर काशी से भी अधिक दान-पुण्य करके दिव्य विमान के द्वारा शीघ्र भाग गया गङ्गा के संगम पर गये । उसी प्रकार आगे भी राम जिन-जिन तीर्थों में जायेंगे, वहाँ-वहाँ उत्तरोत्तर अधिक दान करेंगे । जहाँ-जहाँ राम सीता के साथ पधारेंगे, वहाँ-वहाँ अनेक बड़े-बड़े तीर्थ द्रव्यों । जिनको संख्या को सेवनाग भी नहीं बता सकते ॥ ६३-६६ ॥ परन्तु विचारशील लोगों को उनमें भी छः तीर्थों को मुख्य समझना चाहिये । चार चार भाइयों के, यौववीं सीता तथा छोटा हनुमान् का । इनके विषय में कभी भी संदेह नहीं करना चाहिये । श्रीराम शीघ्र तथा गङ्गा के संगम में स्नान करने के पश्चात् वहाँ तीन रात निवास करके प्रसन्न मन से

सप्तरात्रं कचिच्चापि पक्षमेकमथ कचिन् । अष्टादशैकविंशद्वा त्रिमासं च कचित्प्रभुः ॥७०॥
 चकार वासं तीर्थेषु धर्मान् कुर्वन् यथासुखम् । गङ्ङकीर्ण्यमे स्नान्वा नेपाले जगदीश्वरम् ॥७१॥
 दृष्ट्वा हरिहरक्षेत्रं ययौ भृकुण्डोद्वहः । एवं कुर्वन् स तीर्थानि सर्वाणि रघुनन्दनः ॥७२॥
 पुनः पुनः संगमं च ययौ जाह्नविदक्षिणे । वैकुण्ठनगरं गत्वा जरासंधपुरं ययौ ॥७३॥
 वैकुण्ठाया जले स्नात्वा ततो गमो ययौ गयाम् । फल्गुनद्याम्भटे पूर्वं गृह्णत्वा तद्यानमुद्यमम् ॥७४॥
 नत्वा त्रिष्णुपदं दिव्यं पुनर्यानान्तिकं ययौ । तां निशां समतिक्रम्य प्रभाते रघुनन्दनः ॥७५॥
 स्नातुं फल्गुनदीतोये ययौ तीर्थं द्विजैः सह । एतस्मिन्नन्तरे माता सखीभिः परिवेष्टिता ॥७६॥
 ययौ स्नातुं फल्गुनद्यां स्नात्वा पूज्य सुयामिनीः । सैकते सा क्षणं तस्यौ पूजनार्थं महेश्वरीम् ॥७७॥
 बालुकापचपिण्डैश्च दुर्गां कर्तुं समुद्यता । गृहीन्वा वामहस्तेन साद्रीं सा सिकतां तदा ॥७८॥
 सव्येन कृत्वा पिण्डं तु यावत्सा पाणिना भुवि । स्थापयामास तावत्तु ददर्श जगतीतलात् ॥७९॥
 विनिर्दिष्टं दशरथभगवत्पुत्रं कुरुं शुभम् । दक्षिणं निजदशान्नं गृहीन्वा पिण्डमुत्तमम् ॥८०॥
 गच्छन्तं भूतलं रम्यं तद्दृष्ट्वा कौतुकं पुनः । द्वितीयं स्थापयामास भुवि पिण्डं तु तैकतम् ॥८१॥
 सोऽपि नीतः पूर्ववच्च द्वारमष्टोत्तरं शतम् । दत्तां पिंडान् कौतुकेन ततः थान्ता विदेहजा ॥८२॥
 मनसा पूज्य दुर्गां वा ययौ यानं त्वरान्विता । तद्दृष्ट्वा न सखीभिस्तु ज्ञातं रामेण वाऽपि न ॥८३॥
 तथाऽपि कथितं नैव किं रामो मां वदिष्यति । इति भीत्या ततो रामः पंचतीर्थं विगाद्य च ॥८४॥
 प्रेतपर्वतमासाद्य पिण्डदानमथाकरोत् । कनिष्ठिकाया निष्कास्य निजनामांकितां शुभाम् ॥८५॥
 काचनीं मुद्रिकां रम्यां दक्षिणामिभूतस्तदा । अपहनेति मंत्रेण चकार भुवि राघवः ॥८६॥

गङ्ङकीके सङ्गमकी ओर सिधारे । श्रीराम प्रभुने विमो ग्यानपर तीन रात, कहीं पाँच रात, कहीं सात रात, कहीं एक पक्ष, कहीं अठारह दिन, कहीं इक्कीस दिन और कहीं तीन मास पर्यन्त मुखसे निवास किया । गङ्ङकीके सङ्गममें स्नान करके श्रीहरि नेपालमें पशुपतिनाथके दर्शनार्थ गये ॥ ६७-७० ॥ बादमें रघुकुलभूषण राम हरिहरकोत्र गये । इस प्रकार रघुनन्दन राम ॥७१॥ करने समय बीच बीचमें बार-बार गङ्गाके दक्षिण सङ्गमपर पधारते थे । बादमें वैकुण्ठ मगर होते हुए जरासन्धके राजगृह नगर गये ॥ ७२-७३ ॥ पश्चात् वैकुण्ठके जलमें स्नान करके गयाजी गये । फल्गु नदीके पूर्वी तटपर विमानको छोड़कर दिव्य विष्णुपदके दर्शनार्थ गये । दर्शन करनेके बाद पुनः यानके पास लौट आये और रात्रिको वही व्यतीत करके सबेरे ब्राह्मणोंके साथ फल्गुनदीके पवित्र तीर्थमें स्नान करने गये । इतनेमें सखियोंत घिरी हुई सीताजी फल्गुनदीपर स्नानार्थ पधारों । वहाँ उन्होंने स्नान करके सोहागिनि स्थियोंकी पूजा की । पश्चात् देवी महेश्वरीकी पूजा करनेके लिए सैकत-प्रदेशमें जाकर बालूके पाँच पिण्डोंसे दुर्गाजीकी प्रतिमा बनानेको उद्यत हुई । बायें हाथमें नीली बालुका लेकर उन्होंने दाहिने हाथसे पिण्ड बनाकर ज्यों ही पृथ्वीपर रखना चाहा, त्यों ही उन्हें पृथ्वीतलसे निकलता हुआ अपने समुद्र महाराज दशरथका सुन्दर हाथ दिखायी दिया । उनका दाहिना हाथ सीताके हाथसे उस उत्तम पिण्डकी लेकर पुनः धरतीमें प्रविष्ट हो गया । यह देखकर सीताके मनमें बड़ा कौतूहल हुआ । बादमें फिर सीताने पिण्ड बनाकर जमीनपर रक्खा, उसको भी पूर्ववत् वह हाथ ले गया । इस प्रकार सीताने एक-एक करके एक सौ आठ पिण्ड दुर्गाकी पूजाके लिये रक्खे और उन सबको समुद्रका हाथ ले गया । यह देखकर सीता हार गयी ॥ ७४-८२ ॥ अन्तमें उन्होंने दुर्गाको मन ही मन पूजा की और विमानके पास लौट आयीं । उस वृत्तान्तकी व ही सखियों जान सकी और न राम ही जान पाये ॥ ८३ ॥ सीताने भी राम हमको क्या कहेंगे, इस डरके मारे उस वृत्तान्तको छिपा रखा । बादमें रामने जब पञ्चतीर्थ करनेके बाद प्रेतशिलापर जाकर पिण्डदान दिया और उन्होंने अपने हाथका अनामिका अँगुलीसे रामनाम खुदी हुई सुन्दर सुवर्णकी अँगूठी निकालकर दक्षिणकी ओर मुखा करके 'अपहृता' इत्यादि मंत्रसे जमीनपर तीव्र रेखाएँ खींची, जो कि वहाँ अभी भी स्पष्ट

रेखाश्रयं नदद्यापि दृश्यते तत्र वै स्फुटम् । आस्तीर्य स कुशांस्त्रयं पिण्डान् सक्तुमयाञ्छुमान् ॥८७॥
 तिलाज्यमधुमंयुक्तान् दातुं रामः समुद्यतः । सन्धेन पाणिना पिण्डं गृहीत्वा रघुनन्दनः ॥८८॥
 यावत्पश्यति भूम्यां तु न ददर्श पितुः करम् । तदाश्रयेण विशास्ते राममूचुस्त्वरान्विताः ॥८९॥
 निष्कामस्यैव सर्वेषां पितॄणां दक्षिणाः कराः । न दृश्यते तव पितुः कारणं नात्र विद्यहे ॥९०॥
 रामोऽपि निस्मयाविष्टश्चकितः प्राह लक्ष्मणम् । जानीये कारणं किञ्चिदत्र त्वं बुद्धिमानसि ॥९१॥
 स प्राह राघवास्माभिर्वदा गोदावरीं यनम् । इन्दुदीफलपिण्याकपिण्डदाने तदा करः ॥९२॥
 अस्मानिः स्वपितुर्दृष्टः सोऽत्र नैव प्रदृश्यते । ममापि ज्ञातमाश्रये सीता त्वं प्रष्टुमर्हसि ॥९३॥
 तच्छ्रुत्वा जानकी शीघ्रं प्राह किञ्चिद्भयातुरा । मयाऽपराधितं किञ्चित्तत्त्वमस्व रघूत्तम ॥९४॥
 तत्तस्या वचनं श्रुत्वा राघवः प्राह तां पुनः । वद तर्ह्यं न मेतर्ह्यं कारणं किं ममातिकम् ॥९५॥
 यथा वृत्तं तथा सर्वं राघवाय निवेदितम् । तच्छ्रुत्वा राघवः प्राह कः साक्षी तव कर्मणि ॥९६॥
 सा प्राह चूतपुष्पोऽस्ति दृष्टः स नेत्युवाच ह । तदा शप्तः सीतया ॥ फलहीनः स कीदृशः ॥९७॥
 भव मे वचनाञ्चूत यतो मिथ्या त्वयेरितम् । पुनः ॥ राघवं प्राह फल्गुः साक्ष्यं प्रदास्यति ॥९८॥
 साऽपि रामेण पृष्टाऽय नेत्युवाच भयातुरा । साऽपि ज्ञप्ता रामश्चत्त्याऽधोमुखी मम वाक्यतः ॥९९॥
 ॥ यस्मान्मृषा चोक्तं स्वया सत्येपि कर्मणि । ततः सीता पुनः प्राह साक्ष्यं मेऽत्र निवासिनः ॥१००॥
 दास्यंति मे द्विजाः सर्वे तदा मन्निकटस्थिताः । तेऽपि पृष्टा राघवेण नेत्युचुर्भयविह्वलाः ॥१०१॥
 दद्याः साक्ष्यं तर्हि रामः श्रापं नस्तु प्रदास्यति । निवारिता कथं नेयं तदा सीतेति चिन्त्यते ॥१०२॥
 तांस्तदा जानकी श्रापं ददौ तीर्थनिवासिनः । युष्माकं नात्र संतुष्टिः कदा द्रव्यैर्मविष्यति ॥१०३॥

दिल्ली देती हैं । पश्चात् उन्होंने कुशा बिछाकर उसपर तिल धृत मधुआदिसे युक्त सक्तुका पिण्ड रखना प्रारम्भ किया । रामने ॥ दाहिने हाथमें पिण्ड लेकर अमानकी ओर देखा तो उन्हें अपने पिताका हाथ नहीं दीक्षा । वहकि ब्राह्मण भी आश्चर्यान्वित होकर रामसे कहने लगे—॥ ८४-८६ ॥ यहाँ ॥ लोगोंके पितरोंके दाहिने हाथ पिण्ड लेनेके लिये निकलते हैं, पर आपके पिताका हाथ क्यों नहीं निकला । ॥ कारण समझमें नहीं आता ॥ ८७ ॥ तब रामने विस्मित होकर लक्ष्मणसे पूछा—हे लक्ष्मण ! तुम बुद्धिमान् हो, क्या कुछ ॥ कारण जानते हो ? ॥ ९१ ॥ लक्ष्मणने कहा—हाँ भाई । ॥ हम लोग गोदावरी गये थे, तब तो इन्दुदीफलके पिसानका पिण्डदान देते समय अपने पिताका हाथ दिखाई दिया था, वह यहाँ नहीं दिखाई देता । इस बातका हमको भी आश्चर्य है । ॥ इसका कारण जानकीसे तो पूछें ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ यह सुनकर जानकीजी ॥ उठी और बोली—हे रघुराज । ॥ करें । मुझसे कुछ अपराध हो गया है ॥ ९४ ॥ यह सुनकर रामने कहा कि घबराने ॥ डरनेकी कोई बात नहीं है । जो हो, सो साफ-साफ कहो ॥ ९५ ॥ जानकीने जो घटना घटी थी, सो स्पष्ट कह सुनायी । ॥ सुनकर रामने पूछा—इस ॥ साक्षी कौन है कि हमारे पिताने तुम्हारे हाथसे पिण्डदान ग्रहण किया ॥ ? ॥ ९६ ॥ सीताने अपना गवाह पासके ब्राह्मणको बताया, परन्तु उससे पूछनेपर ॥ कर गया । तब सीताने उसको शाप दिया कि भरे कुछ ! तू झूठ बोला है, इसलिए मगधदेशमें तू फलशून्य होकर रहेगा । तब सीताने फल्गुनदीको अपना साक्षी ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ परन्तु रामके पूछनेपर वह भी भयसे इन्कार कर गयी । ॥ सीताने उसको भी ॥ दिया कि तू सत्य बातमें भी झूठ बोली है, इसलिए तू अधोमुखी (अन्तर्मुखी) होकर रहेगी । तब सीताने कहा कि मेरी साक्षी यहाँके रहनेवाले उस समय मेरे पास खड़े ब्राह्मण होंगे । उन्होंने भी विह्वल होकर रामके पूछनेपर ना कर दिया ॥ ९९-१०१ ॥ वे लोग विचारते लगे कि “यदि ऐसा था तो तुम लोगोंने सीताकी उस ॥ पिण्ड देनेसे रोका क्यों नहीं । ऐसा कहकर कहीं सत्य कहनेपर राम हमको शाप न ॥ १०२ ॥ सीताने उसको भी शाप दिया कि जाओ, तुमलोग इन्धसे कभी कुछ न होकर चारे-जारे मिलोगे । सब जानकीने

द्रव्यार्थं सकलान् देवान् प्रमत्तं दीनरूपिणः । ततः सा जानकी प्राह ओतुःसाक्ष्यं प्रदास्यति ॥१०४॥
 सोऽपि पृष्ठो नेत्युवाच रामं सीता श्लाघ ताम् । पृच्छायं स्वपुरः कृत्वा पदा मञ्जिकटोऽपि सन् ॥१०५॥
 सूपेरितं यतस्तस्मात्पृच्छे हस्तपृथ्वीं भव । ततः सा जानकी प्राह गौर्मे साक्ष्यं प्रदास्यति ॥१०६॥
 साऽपि पृष्टा नेत्युवाच रामं सीता श्लाघ ताम् । अपवित्रा भवास्ये त्वं मम वाक्येन घेतुके ॥१०७॥
 ततः सीताश्चत्थपृष्ठं साक्ष्यार्थं प्राह राघवम् । स पृष्ठो नेत्युवाचाथ तं सीताऽध्याहृतकुधा ॥१०८॥
 भवाचलदलस्त्वं हि मद्भिराऽभ्यत्यपादप । पुनः सीता पतिं प्राह मम साक्षी प्रभाकरः ॥१०९॥
 पृष्टः प्राह तथ्यं हि तुष्टिर्जाता पितुस्तव । एतस्मिन्नन्तरे तत्र विमानेनार्कवर्चसा ॥११०॥
 राजा दशरथो राममागत्यालिंग्य वै रदम् ॥

प्राह स्वया तारितोऽहं नरकादतिदुस्तराद् । मैथिन्याः पिण्डदानेन जाता मे तृप्तिरुत्तमा ॥१११॥
 तथापि लोकशिक्षार्थं गयाश्राद्धं त्वमाचर । पितरं प्राह रामोऽपि किमर्थं हि त्वयाऽत्र वै ॥११२॥
 त्वरया सिकतापिण्डः संगृहीतो वदस्व माम् । स प्राहात्र गयायां तु बहुविधानि राघव ॥११३॥
 भवंति श्राद्धसमये कृता तस्माच्चरा मया । इति रामं समाभाष्य गृहीत्वा राघवादिपि ॥११४॥
 किञ्चित्कन्यं विमानेन ययौ दशरथस्तदा । ततो रामः प्रेतगिरौ पिण्डदान विधाय च ॥११५॥
 गत्वा प्रेतशिलायां च दत्त्वा काकबलिं ततः । धर्मारण्यं ततो गत्वा कुत्सकोनपदेषु हि ॥११६॥
 सक्तुना च तिलाज्यैश्च पायसैश्च सशर्करैः । पृथक् पिण्डदानानि वटश्राद्धं विधाय च ॥११७॥
 अष्टतीर्थी ततः कृत्वा ततः संचयां स्थलत्रये । कृत्वा यथाविधानेन दत्त्वा दानान्यनेकशः ॥११८॥
 गदाधरं ततः पूज्य महाविभवपूर्वकम् । सेवयामास तोर्यश्च धृतवृधं सकीकटम् ॥११९॥

एको मुनिः कुम्भकुम्भग्रहस्तथूतस्य मूले सलिलं दधार ।

आम्रश्च मिक्तः पितरश्च तृप्ता एका क्रिया द्वयार्थकरी प्रसिद्धा ॥१२०॥

बिलारकी साक्षी देनेके लिए कहा । उसने भी पूछनेपर कह दिया । सीताने उसे भी शाप देते हुए कहा कि उस समय मेरे समक्ष पूछ किये सड़े रहनेपर भी तूने ना कर दिया है । इसलिए जा तेरी पूछ बहुत हो जायगी । जानकीजीने गौको साक्षी देनेके लिए कहा ॥ १०२-१०६ ॥ रामके पूछनेपर उसने भी ना कह दिया । सीताने कहा-हे धेनु ! मेरे शापसे तेरा मुख अपवित्र हो जायगा ॥ १०७ ॥ पश्चात् सीताने पीपलके वृक्षको साक्षी देनेके लिए रामके गन्मुख उपस्थित किया । जिसका नाम अश्वरथ था, परन्तु जब वह भी इन्कार कर गया तो सीताने क्रोध करके दिया कि तू आजसे अचलदल हो जायगा । अन्तमें सीताने कहा कि भूय मेरी साक्षी दोगे । रामके पूछनेपर सूर्यने कहा कि यह सत्य है । इस कार्यसे आपके पिता अवश्य सन्तुष्ट हुए हैं । इतनेमें सूर्यके कान्तिमान विमानपर सवार होकर स्वयं महाराज दशरथ वहाँ पहुँचे । रामकी हठ आलङ्घन करके वे वाले-हे राम ! तुमने यथार्थमें हमको तार दिया है । मैथिलीके पिण्डदानसे हमें वड़ी ही तृप्ति मिली है ॥ १०८-१११ ॥ तो भी लोकशिक्षाके लिए तुम गयाश्राद्ध अवश्य करो । रामने पितासे पूछा कि आपने यहाँ इतनी जल्दी बालुकापिण्ड क्यों ग्रहण किया ? इसका क्या कारण है ? दशरथने कहा-हे राम ! गयामें पिण्डदानके समय बड़े-बड़े विघ्न उपस्थित होते हैं । इसीलिए मैंने स्वरा को धी । इतना कहकर राजा दशरथ रामके हाथसे भी कुछ ग्रहण । पितृ-आम्र ग्रहण करके विमान द्वारा वहाँसे चले गये । पश्चात् रामने प्रेतपर्वतपर पिण्डदान दिया ॥ ११२-११५ ॥ वहाँसे वे प्रेतशिला गये । वहाँ काकबलि देनेके बाद धर्मवन गये । वहाँ एकोनपद स्थानमें तिल-पायस तथा शर्करासे युक्त सक्तुके पृथक्-पृथक् करके अनेक पिण्ड दिये और वटश्राद्ध भी सम्पादन किया ॥ ११६ ॥ ११७ ॥ तदनन्तर अष्टतीर्थी की । तीनों नियत स्थानोंमें सन्ध्यावन्दन करनेके बाद विधिवत् बहुतसे दान दिये ॥ ११८ ॥ अनेक विधियोंसे गदाधरकी पूजा और मगधदेशस्य आम्रवृक्षका जलसे सेवन किया ॥ ११९ ॥ कहा भी है-किसी

कृत्वा विष्णुपदे पूजां विमानारोपणादिभिः । मासत्रयमतिक्रम्य गयायां रघुनन्दनः ॥१२१॥
 विमानेन ययौ प्रार्ची दिशं संतोषयन् जनान् । फल्गुनद्यास्तटे पूर्वं विमानं यत्र सस्थितम् ॥१२२॥
 तत्र रामगयानाम्नी भूमिर्विप्रैर्हृदयते । रामेश्वरो रामतीर्थं वर्तते तत्र पावनम् ॥१२३॥
 रामोऽपि फल्गुनद्यां गङ्गायाः संगमं ययौ । गयावहिः फल्गुरेव ज्ञेया सा ॥ महानदी ॥१२४॥
 ततो ययौ मृदलस्य नूतनाश्रममुत्तमम् । यस्मिन्नुदम्बहा गङ्गा जाह्नवी पापनाशिनी ॥१२५॥
 ततोऽग्रे जानकी ज्ञान्वा भूमौ दिव्यं प्रदास्यति । तस्या दिव्यस्थले रामस्तीर्थमादौ चकार सः ॥१२६॥
 पशूनां च पृथक् तत्र सन्ति तीर्थानि सर्वतः । सीतया च कृतं तत्र स्नानाग्नौ तीर्थमुत्तमम् ॥१२७॥
 ज्ञात्वा भविष्यत्यग्रे मतीर्थं चेति सविस्तरम् । यदा भूमौ प्रदास्यामि दिव्यं तीर्थं तदाऽस्तु मे ॥१२८॥
 रामस्ततो विमानेन गतश्चोत्तरवाहिनीम् । नाम्ना पुरी तथा गङ्गा यत्रास्ति परमार्थदा ॥१२९॥
 पर्वतो यत्र गङ्गायामस्ति विश्वेश्वरोऽपि च । ततः श्रौर्वजनाथेशं नत्वा रावणनिर्मितम् ॥१३०॥
 ततः शूनैर्विमानेन पश्यन् नानास्थलानि सः । ययौ भागीरथीमप्याद्यत्र भिन्ना सिता पुनः ॥१३१॥
 प्रयागाद्योजनशतमाने देवे रघूद्वहः । ततो गङ्गाऽन्धिमयोगसहस्रं पुष्पकेन सः ॥१३२॥
 गत्वा स्नात्वा ततो यत्र कालिन्दीसंगताऽर्गवे । तत्र गत्वा रघुश्रेष्ठस्ततः पश्यन् स्थलानि सः ॥१३३॥
 नानापुण्यानि तीर्थानि दृष्ट्वा श्रौपुरुषोत्तमम् । पूर्वसागरतीरस्थं दत्त्वा दानान्पनेकशः ॥१३४॥
 ततः शूनैः पुष्पकेण दृष्ट्वा नानाविधान् सुरान् । दृष्ट्वा नाना नदीः सर्वा नानादेशान्विलम्ब्य च ॥१३५॥
 गोदातीरे स्नानाग्नौ तु कृत्वा गिरिमनुचमम् । सप्तगोदावरीमेदसंगमेषु महोदधौ ॥१३६॥

एक मुनिने कुशायुक्त हाथमें जलका घड़ा लेकर आश्रवृक्षके मूलमें अल दिया । उससे आश्रवृक्ष सिंच गया और पितर भी तृप्त हो गये । इसीके आधारपर "एका क्रिया द्वययंकरी" की कहावत प्रचलित हुई ॥ १२० ॥ इसी प्रकार प्रतिदिन विष्णुपदकी पूजा करते और विमानपर चढ़कर घूमते-फिरते हुए रामने गवामें एक वर्ष व्यतीत किया ॥ १२१ ॥ पश्चात् सब लोगोंको आश्वासन दे तथा विमानपर सवार होकर रघुनन्दन पूर्वकी ओर चल दिये । फल्गुनदीके किनारे जहाँ रामका विमान खड़ा हुआ था ॥ १२२ ॥ उस जगहकी वहाँके विप्र रामगया कहने लगे । पवित्र रामेश्वर नामका रामतीर्थ अभी भी वहाँ विद्यमान है ॥ १२३ ॥ राम वहाँसे चलकर फल्गु तथा गंगाके सङ्गमपर आये । गयाके बाहरी भागमें फल्गु नदी है । उसका विस्तार बहुत बड़ा है ॥ १२४ ॥ बादमें मुवल श्वरिके नवीन आश्रमकी ओर गये । जहाँपर पाप हरण करनेवाली गंगा उत्तरवाहिनी होकर बहती है ॥ १२५ ॥ आगे एक जगह जहाँ कि उन्हें विश्वास था ॥ यहाँ जानकी भूमिमें प्रवेश करके दिव्य धारण करेंगी, अपने एक उत्तम तीर्थ स्थापित किया ॥ १२६ ॥ उसके बाद लक्ष्मण आदि भाइयोंके नामसे भी अनेक तीर्थ स्थापित किये । सीताने भी वहाँ, यह विचारकर कि भविष्यमें मेरे यहाँ बड़ा भारी तीर्थ होगा, एक अपने नामका तीर्थ स्थापित किया । उन्होंने यह विचारा कि अब मैं दिव्य रूप धारण करूँगी, तब यहाँ दिव्य तीर्थ होगा ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ पश्चात् राम विमानमें बैठकर उस जगह गये, जहाँ कल्याणकारिणी उत्तरवाहिनी नामकी गंगा तथा एक नगरी विद्यमान थी ॥ १२९ ॥ और जहाँपर बीच गंगामें विश्वेश्वर नामका पर्वत खड़ा है । वहाँसे आगे चलकर श्रीरामने रावण द्वारा स्थापित वैद्यनाथजीका दर्शन किया ॥ १३० ॥ तदनन्तर विमानमें बैठकर अनेक वनोंकी शोभा देखते वहाँ गये, जहाँसे कि श्वेतजल युक्त गंगा बीचो-बीचसे दो भागोंमें बँट गयी है ॥ १३१ ॥ वह स्थान प्रयागसे सौ योजनकी दूरीपर था । पश्चात् राम विमानके द्वारा वहाँ पहुँचे, जहाँ कि गंगा सहस्रमुखी होकर समुद्रमें मिली है ॥ १३२ ॥ उस जगह गंगा-समुद्रसङ्गममें स्नान करनेके बाद कालिन्दी-समुद्रके सङ्गममें किया । वहाँपर रामने अनेक मनोहर पृष्पित वनोपवन देखे, अनेक तीर्थोंके दर्शन किये और साथ ही पूर्वी सागरके तटपर स्थित भगवान् परमपुरुषोत्तमके भी दर्शन किये तथा अनेक दान दिये ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ वहाँसे चलकर अनेक देवताओंके दर्शन करते हुए अनेक नदियोंको स्वीकृत गोदावरीके

स्नात्वा दक्षिणमार्गेण ततो रथो ययौ पुनः । पूर्वदेशे नृपतिमिमोनितः पूजितोऽपि च ॥१३७॥
 गृहीत्वा स्वकरं तेभ्यस्तैः सहैव सैनैः शनैः । विमानेन मुनेनैव तीर्थान्पन्थानि सेवितुम् ॥१३८॥
 श्रीरामो याम्बुदिग्जानि दक्षिणभिमुखो ययौ । एवं प्रोक्त्वा पूर्वदेशपात्रा गमेण या कृता ॥१३९॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे पूर्वदेशतीर्थयात्रावर्णनं नाम पष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

(श्रीरामके द्वारा दक्षिणभारतकी तीर्थयात्रा)

श्रीरामदास उवाच

ततो रामः समुल्लङ्घ्य मन्स्यतीर्थं मनोगमम् । तीर्त्वा महानदीं कृष्णां पश्यन् पुष्पस्थलानिमः ॥१॥
 ततो ययौ नारसिंहं रामः पानकनामकम् । कृष्णाऽन्वितसगमे स्नात्वा दत्त्वा दानानि विमर्शः ॥२॥
 पश्यन्नानास्थलान्येव ययौ श्रीशैलार्चनम् । स्नात्वा स नीलगङ्गायां दृष्ट्वा श्रीमल्लिकार्जुनम् ॥३॥
 तत्रैव कृष्णा सा तेषा नीलगङ्गायै नामतः । श्रीशैलानिखरं दृष्ट्वा पुनर्जन्मनिवारकम् ॥४॥
 शिखरेश्वरस्य शिखराद्भ्रमत्कण्डे विगच्छ च । भीमकुण्डे नतः स्नात्वा तथा निर्हृतिसंगमे ॥५॥
 तुंगभद्रासंगमेऽपि महानदीमगोवरे । विगच्छ भवनाशिन्यां ततो दृष्ट्वा सहीवलम् ॥६॥
 नारसिंहं ततो नत्वा कृत्वा स्वभद्रदक्षिणाः । गत्वा पुष्पगिरौ तत्र विनाकीमरगाक्ष च ॥७॥
 पश्यन् पुष्पस्थलानीशान् दृष्ट्वा पंचामगोवरम् । किष्किधापां ततो गत्वा सुग्रीवार्थः सुप्राञ्जतः ॥८॥
 सुग्रीवार्थवानरैश्च विमानेन विहाय सा । प्रवर्षणगिरौ स्वीयगुहां रम्यां प्रदर्शयन् ॥९॥
 वैदेहीं कौतुकाद्रामः किञ्चिच्छ्रुत्वा धिमाननम् । द्वितीये भीमकुण्डेऽथ स्नात्वा गत्वा पडाननम् ॥१०॥
 स्नात्वाऽगस्त्यकुण्डमध्ये पश्यन्तीर्थान्पनेकशः । कनकगिरिस्थं श्रुत्वा नत्वा संपूज्य राघवः ॥११॥

किनारे आये । वहाँ उन्होंने अपने नामका एक उत्तम पर्वत नियत किया। बादमें सागरके साथ गोदावरी-सङ्गममें स्नान किया । पश्चात् वे दक्षिणमार्गसे पूर्वकी ओर आ गये । वहाँ अन्य राजाओंसे पूजित तथा सम्मानित होकर और उनसे कर लेते हुए उनको भी साथ लेकर धीरे-धीरे विमानके द्वारा अन्धान्ध तीर्थोंकी देखनेकी इच्छासे दक्षिण भारतकी ओर चले । इस प्रकार रामकी पूर्वप्रदेशकी यात्रा समाप्त हुई ॥१३५-१३९॥
 इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे 'उपोत्सना' भाषाटीकाया पूर्वदेशयात्रावर्णनं नाम पष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीरामदासने कहा—वहाँसे राम मनोहर मन्स्यतीर्थ होते हुए महानदी तथा कृष्णाको पार करके अन्धान्ध पवित्र स्थानोंकी देखते हुए पानक नृसिंहतीर्थ गये । पश्चात् कृष्णा तथा समुद्रके सङ्गममें स्नान करके उन्होंने अनेक वान पुष्प किये ॥ १ ॥ २ ॥ वहाँसे विविध वनोंके सौन्दर्य देखते हुए राम श्रीशैल पर्वतपर पधारे । वहाँ नीलगङ्गामें स्नान करके श्रीमल्लिकार्जुनके दर्शन किये ॥ ३ ॥ वहाँपर कृष्णा नदीका ही नाम नीलगङ्गा पड़ गया है । पुनर्जन्मके निवारक श्रीशैलानिखरकी देखकर शिखरेश्वरके शिखरसे निकले हुए महाकुण्डमें स्नान किया । इसके अतिरिक्त भीमकुण्ड, निर्वृत्तिसङ्गम, तुङ्गभद्राके सङ्गम, महानदीके सरोवर और भवनाशिनीमें स्नान किया । वहाँ महाप्रतापी नरसिंहजीका दर्शन किया तथा स्तम्भकी प्रदर्शना की । वहाँसे आगे पुष्पगिरिवर आकर विनाकिनी नदीमें स्नान किया ॥ ४-७ ॥ बादमें अनेक आश्रमों तथा विविध पुष्पवनोंकी देखते हुए पंचासरोवर और वहाँसे किष्किन्धा गये । वहाँ सुग्रीव आदिने रामका विधिकत् पञ्चत-सत्कार किया ॥ ८ ॥ वहाँसे सुग्रीव आदि वानरोंकी साथ ले तथा विमानपर आरुढ़ होकर आकाश-मार्गसे प्रवर्षण गिरिपर पधारे । वहाँ जानकीकी अपना निवासगुहा दिखलाकर श्रीराम कुछ हँसे । फिर भीमकुण्डमें स्नान करके पडानन कातिकेय स्वामीका दर्शन करनेके लिए गये ॥ ९ ॥ १० ॥ अगस्त्यकुण्डमें

र्वाभट्टं नतो दृष्ट्वा नन्वाऽद्विवेकं भुवि । गेर्विद्राजं तं नत्वा तृप्तिपत्तनसंस्थितम् ॥१२॥
 स्नान्वा कपिलधारायां तीर्थश्चाद्र विधाय च । ततः शेषाचलं गत्वा स्नात्वा पुष्करिणीजले ॥१३॥
 वेङ्कटेशं पूजयित्वा पंचतीर्थी विनाश मः । सुरार्णमुखद्वीतीत्यस्थं श्रीकालहस्तिनम् ॥१४॥
 पूजयित्वा ययौ कांचीं रामः शिवहस्तिप्रियाम् । एकांशेश्वरं पूज्य सर्वतीर्थे विनाश च ॥१५॥
 कामाक्षीमयिकां नन्वा स्नात्वा वेगवतीजले । नन्वा वरदराजं च पक्षितोर्थं नतो ययौ ॥१६॥
 पृषादिधातुनामानो पक्षिणां पूज्य र्मानया । पुष्पकेन ततः शीघ्रं क्षीरनद्यां विनाश च ॥१७॥
 नन्वा त्रिविक्रमं नत्र ततोऽगादरुणाचलम् । मुक्तिपत्तनमरादेव नत्वा वनरुणाचलम् ॥१८॥
 मणिमुक्तानदीतीरे वृद्धाचलमगात्ततः । वृद्धाचलेशं संपूज्य वटपालं ततो ययौ ॥१९॥
 वटपालेश्वरं पूज्य ततः श्रीमुष्टिमन्थमान् । तत्र यज्ञवराहं च संपूज्य जगदीश्वरम् ॥२०॥
 चिदम्बरमथागच्छद्दर्शनादेव मुक्तिदम् । लिखिता यत्र शेषेण शिलायां ताण्डवाकृतिः ॥२१॥
 कांचीं च ततस्तीर्त्वा मिथसेत्रं ततो ययौ । नत्वा ब्रह्मपुरेशं च वैद्यनाथं प्रणम्य मः ॥२२॥
 श्वेतारण्यं ततो गत्वा शंखमुखां विनाश च । छायावनं नतो दृष्ट्वा ययौ गीरीमयूरकम् ॥२३॥
 वेदारण्यं ततो गत्वा नन्वा मध्यार्जुनं शिवम् । स्नान्वाऽथ वृद्धकावेरीं कुम्भकोणं विलोक्य च ॥२४॥
 श्रीनिवासं ततो दृष्ट्वा दृष्ट्वा वृन्दावनं शुभम् । सारनाथं ततो दृष्ट्वा श्रीवत्सं च ददर्श सः ॥२५॥
 प्रयागमाधवं नन्वा गत्वाऽऽम्रशिरसः स्थलम् । भिजावाकाशनीलाम् गत्वाऽथ कपलालयम् ॥२६॥
 त्यागेश्वरं समम्यर्च्य गयातीर्थे विनाश च । दक्षिणद्वारकायां च श्रीगोविन्दं प्रणम्य सः ॥२७॥
 जैपालाख्यं पुरं गत्वा गत्वा सारनाथदेश्वरम् । विष्णेश्वरं नमस्कृत्य पुरा संस्थापितं स्वयम् ॥२८॥
 स्नात्वा वै नवपाषाणे ययौ देव्याश्च वत्सनम् । स्नात्वा देतालतीर्थे वै तीर्त्वापि सागरस्य च ॥२९॥

स्नान करके अनेक तीर्थ देखे । कनकगिरिपर विराजमान शम्भुका दर्शन करके उत्तको पूजा की ॥ ११ ॥ बादमें वीरमद्रका दर्शन करके पृथ्वीपर प्रसिद्ध बर्हिदेष्टूटको किया । तदनन्तर तृप्तिपत्तन (त्रिपति नगर) में स्थित गोविन्दराजके दर्शन किये ॥ १२ ॥ वहाँ कपिलधारामें स्नान करके तीर्थश्चाद्र किया । वहसि शेषाचलपर जाकर पुष्करिणीके जलमें स्नान किया ॥ १३ ॥ वेङ्कटेश भगवावकी पूजा-अर्घा करनेके बाद पंचतीर्थीमें स्नान किया ॥ बादमें सुवर्णमुखद्वीके तीरपर विराजमान श्रीकालहस्तीश्वरका पूजन करके राम शिव तथा विष्णुकी प्रिय शिवकांची और विष्णुकांची गये । वहाँ एकांशेश्वरकी पूजा करके सभी तीर्थोंमें अवगाहन किया ॥ १४ ॥ कामाक्षी देवीको नमस्कार करके वेगवतीके पवित्र जलमें स्नान किया । वहाँसे आगे वरदराजका दर्शन करके पक्षितार्थ गये ॥ १५ ॥ १६ ॥ वहाँ पूषा तथा पृषाता नामके दो पक्षियोंकी पूजा करके सीताके विमानपर बैठकर गोध्र हो क्षीरनदीपर पधारे, वहाँ स्नान कर और त्रिविक्रमका दर्शन करके ब्रह्माचल गये । स्मरणमात्रसे मुक्ति देनेवाले वरुणाचलको नमस्कार करके मणिमुक्ता नदीके तटपर स्थित वृद्धाचलपर गये । वहाँ वृद्धाचलेश्वरकी पूजा करके वटपाल गये ॥ १७-१८ ॥ वहाँ वटपालेश्वरकी पूजा करके मुष्टितीर्थ गये । वहाँ यज्ञवराहकी पूजा करके दर्शनमात्रसे निर्वाण देनेवाले चिदम्बरेश्वरके दर्शनार्थ पधारे । वहाँपर शिलामें शेषनामकी लिखी हुई तांडवचित्रावली देखी ॥ २० ॥ २१ ॥ पश्चात् कावेरीको पार करके सिंहसेन गये । बादमें ब्रह्मपुरेश और वैद्यनाथको प्रणाम करके श्रीराम श्वेतारण्य पधारे वहाँ शङ्खमुखीमें स्नान किया । वहाँसे छायावन होकर गीरीमयूर गये । वहाँसे वेदारण्य जाकर मध्यार्जुन शिवका दर्शन किया । पश्चात् वृद्धकावेरीमें स्नान करके कुम्भकोणम् देखा ॥ २२-२४ ॥ वहाँसे आगे श्रीनिवासका दर्शन करके चिताकर्पक वृन्दावनकी ओर गये । तदनन्तर सारनाथका दर्शन करके श्रीवत्सके दर्शनार्थ आगे बढ़े ॥ २५ ॥ वहाँ प्रयागमें वेणीमाधवका दर्शन करके आम्रशिरस नामके स्थानपर गये । वहाँकी भीतमें आकाशके समान लीलाकमलालय देखा ॥ २६ ॥ बादमें त्यागेश्वरकी पूजा करके गयातीर्थमें स्नान किया और दक्षिण द्वारका और श्रीगोविन्दकी प्रणाम किया ॥ २७ ॥ वहाँसे जैपाल नामके नगरमें

स स्नात्वा भैरवे तीर्थे प्रापैकानस्थितं निजम् । अवरुह्य विमानाग्रयान्पद्भ्यां स्वैर्जनैः सह ॥३०॥
 गत्वा लक्ष्मणकुण्डेऽथ स्वकुण्डेऽपि विगच्छ च । अग्नितीर्थे नतः स्नात्वा धनुष्कोट्यां विगच्छ च ॥३१॥
 स्नात्वा जटापुतीर्थे हि गत्वा तं मधमादनम् । आशौ नत्वा विश्वनाथं पुराऽऽसीतं हनुमता ॥३२॥
 रामेश्वरं ततो नत्वा कृत्वा मंगाभिषेचनम् । काचकुभादिकं त्यक्त्वा धनुष्कोट्यां रधूतमः ॥३३॥
 कोटितीर्थं धनुष्कोट्यां चकार कूपमुत्तमम् । क्षेत्रपापप्रशान्त्यर्थं दृष्ट्वा श्रीसेतुमाधवम् ॥३४॥
 नानादानादिकं कृत्वा मासमेकं विलम्ब्य च । बाहनारुददेवानां महोत्साहान्विधाय च ॥३५॥
 क्षेत्रपापप्रशान्त्यर्थं कोटितीर्थं विगच्छ च । नत्वा द्वारस्थगणपं तीर्त्वा जलधेः पुनः ॥३६॥
 विहायसा विमानेन स दर्भशयनं ययौ । स्नात्वा निक्षेपिकातीर्थेऽस्नात्वा पर्वन्निधिसंगमे ॥३७॥
 गत्वा स्नात्वा रामचंद्रो ददौ दानान्पनेकशः । ततोऽध्वंस्तारमस्थं तं स्कन्दं संपूज्य राघवः ॥३८॥
 ताम्रपर्णीतटेनैव पश्यन्पुण्यस्थलानि सः । नवभेकटनार्थास्नात्वा तोताद्रिमाययौ ॥३९॥
 कन्याकुमारिकां दृष्ट्वा सिन्धुतीरनिवासिनीम् । प्रतीक्षन्तीं स्वीयमार्गं विभ्रतीं मालिकां करे ॥४०॥
 तामाह रघुवीरश्च वरं वरय सुव्रते । सा राघवं नत्वा चिग्मस्मि श्रतस्थिता ॥४१॥
 अहं मुनिसुता पित्रा सुरेद्राय विनिश्चिता । विवाहार्थं समानीतः सुरेद्रो योजने स्थितः ॥४२॥
 यात्रोद्यमं भुत्वा मया वित्ते विनिश्चितम् । आगमिष्यति रामोऽत्र वरपिष्याम्यहं तदा ॥४३॥
 पित्रा मन्निश्चये शास्त्रा सुरेद्रो विनिवर्तितः । मोऽपि मत्सुखेदचित्तस्तु योजनेऽद्यापि वर्तते ॥४४॥
 विवाहोपकरणादि मन्मात्रा यत्कृतं पूरा । पित्रा तत्सागरे क्षिप्तं क्रोधाविष्टेन राघव ॥४५॥

अभयवेश्वरका अर्चन किया । पश्चात् रामचन्द्रने पूर्वसमयमें अपने द्वारा स्थापित विष्णेश्वरका दर्शन किया ॥ ३० ॥ वहाँके नवपाषाणसरमें स्नान करके देवीनगर गये । फिर वेंतालतीर्थमें स्नान करके सागरके अथाह जल-प्रवाहको पार करके ॥ ३१ ॥ एकान्तमें स्थित भैरवतीर्थ गये । वहाँसे पैदल चलते हुए सबके साथ आगे बढ़े । आगे जाकर लक्ष्मणकुण्ड, रामकुण्ड, अग्नितीर्थ, धनुष्कोटितीर्थ और जटापुतीर्थमें स्नान किया । वहाँसे मधमादन पर्वतपर गये । वहाँ पूर्वसमयमें हनुमानजीके द्वारा लाये हुए विश्वनाथका दर्शन किया ॥ ३०-३२ ॥ पश्चात् रामेश्वरको करके उन्हें गङ्गाजलसे स्नान कराया । बादमें रामने खाली काँधके घड़ोंको धनुष्कोटि तीर्थमें फेंक दिया ॥ ३३ ॥ उस धनुष्कोटि तीर्थमें रामने कोटितीर्थ नामका एक कूप खुदवाया । बादमें क्षेत्रपापकी शांतिके लिए श्रीसेतुबंध माधवका दर्शन किया ॥ ३४ ॥ वहाँपर अनेक दानपुण्य करते हुए रामने एक मास निवास किया । अनेक बाहनारुद देवताओंका महोत्सव भी वहीं मनया ॥ ३५ ॥ पश्चात् पुनः क्षेत्रपापकी शांतिके लिए कोटितीर्थमें किया । द्वारपाल गणनाथको ममस्कार कर तथा विमानके द्वारा समुद्र पार करके दर्भशयन नामके तीर्थको पये । वहाँ निक्षेपिकाके जलमें और ताम्रपर्णी तथा सागरके संगममें स्नान किया ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ वहाँ भी अनेक दान दिये । पश्चात् रामने समुद्रके तटपर विराजमान कार्तिकेय स्थायीकी पूजा की ॥ ३८ ॥ बादमें ताम्रपर्णीके किनारे-किनारे राम अनेक पवित्र स्थानोंको देखते नवभेकटेश्वरोंकी पूजा करते हुए तोताद्रि गये ॥ ३९ ॥ पश्चात् सिन्धुतीर-निवासिनी कन्याकुमारोंके दर्शन किये, जो कि हाथमें माला लिये उन्हीं (राम) की राह देख रही थीं ॥ ४० ॥ रामजीने उससे कहा-हे सुव्रते ! वर माँगो । तब उसने रामको करके कहा-हे राघव ! मैं बहुत दिनोंसे व्रत धारण करके आपकी प्रतीक्षामें यहाँ खड़ी हूँ ॥ ४१ ॥ मैं एक मुनिकन्या हूँ । मेरे पिताने मुझे सुरेन्द्रको देना निश्चित किया और उनको विवाहके लिए बुलाया भी था । जो कि अब भी यहाँसे एक योजनकी दूरीपर विद्यमान है ॥ ४२ ॥ परन्तु मैंने आपकी तीर्थयात्राका समाचार सुना तो मनमें यह निश्चय कर लिया कि राम जब यहाँ यात्राके निमित्त आवेंगे, तब मैं उन्हींसे विवाह करूँगी ॥ ४३ ॥ पिताने मेरा यह हृदय निश्चय देखा तो सुरेन्द्रको लौटा दिया । वह मेरे लिए दुःखित होकर एक योजनपर भी खड़ा है ॥ ४४ ॥ हे राघव ! मेरी माताने विवाहके लिए जो सामग्री एकत्रित की थी, वह मेरे

अथापि दृश्यते पश्य तर्गनिर्गतं बहिः । अद्य न्वथा तारिताहं मां दासीं कर्तुमर्हसि ॥४६॥
 ज्ञान्वा तस्या ह्यभिप्रायं तामाह रघुनन्दनः । एकपत्नीयतं मेऽस्मिन्नन्मन्यसि कुमारिके ॥४७॥
 अग्रे कृष्णावतारं त्वं भज मां नात्र मशयः । तद्रामवचनादेव यमश्च नियमैरपि ॥४८॥
 यावद्रामः स्थितो भूम्या तावद्धन्वा कलेवरम् । तपोवलेन देहांते जांबवंती अनिप्यति ॥४९॥
 जांबवंतीति नास्ती मा कृष्णपत्नी भविष्यति । रामो ययी मुद्रं च पयोष्णीं संविगाद्य सः ॥५०॥
 आद्यनतं ततो गत्वा ताम्रपर्णीतटे स्थितम् । विनिद्रितं शेषपृष्ठे लक्ष्मीगरुडसेवितम् ॥५१॥
 ज्ञान्वा ताम्रपर्णीं मा न्वन्या पश्चिमवाहिनी । अनन्तगयनं गत्वा पद्मतीर्थे विगाद्य च ॥५२॥
 पद्मतीर्थे मत्स्यनद्यां विगाद्य सीतया प्रभुः । ततो गत्वा विमानेन धर्माधर्मसरोवरे ॥५३॥
 स्नान्वा जनार्दनं गत्वा पश्चिमे ह्यन्धिमोक्षसि । दर्शेद्य पौर्णिमायां च गंगाधाराब्धिमगम ॥५४॥
 स्नान्वा जनार्दनं पूज्य नारीगज्यं त्रिलोक्य च । अग्रे श्रीरामचन्द्रः स न ययी लोकशिक्षया ॥५५॥
 परिहृत्य ततो रामो घृतमालां विगाद्य च । कुतमालां ततः स्नान्वा सिन्धुनद्यां विगाद्य च ॥५६॥
 गत्वा गजेन्द्रमोक्षं च ताम्रपर्णीतटस्थितम् । ताम्रपर्ण्युद्रमे स्नान्वा गत्वा मेरालतीर्थकम् ॥५७॥
 गत्वा चन्द्रकुमारारुपं गिरिं श्रीरघुनन्दनः । ततो ययी विमानेन दृष्ट्वा दक्षिणकाशिकाम् ॥५८॥
 नन्वा काशोविश्वनाथं चंपकारण्यमाययी । चित्रगंगाजले स्नान्वा नन्वा हरिहरौ शुभौ ॥५९॥
 ततो रामो विमानेन मधुपुर्यां विवेश सः । वेगवत्या जले स्नान्वा नन्वा तं सौन्दरेश्वरम् ॥६०॥
 सीतार्क्षीमचिकां नन्वा वेंकटं द्वाविडे गिरौ । कावेरीमध्यनिलयं श्रीरगशयनं ययी ॥६१॥
 मातृभूतेश्वरं नन्वा नन्वा तं जंबुकेश्वरम् । रंगनाथं नमस्कृत्य ह्यदिनार्क्षां ततो ययी ॥६२॥

पितामं कृद्ध होकर समुद्रमें फेंकवा दी ॥ ४५ ॥ वह सामग्री आज भी तरंगोंके द्वारा न्हुरा-न्हुराकर बाहर आ रही है । हे प्रभो ! आज यहाँ आकर आपने मुझसे तार दिया है । अब आगे दिया करके मुझे अपनी दासी बना लें ॥ ४६ ॥ उसके अभिप्रायको जानकर रघुनन्दन गम्भीर कहने लगा—हे कुमारिके ! इस जन्ममें तो मैंने अविचल एकपत्नीयता धारण कर ली है ॥ ४७ ॥ आगे चलकर कृष्णावतारमें मैं तुझे अवश्य प्राप्त होऊँगा । इसमें संदेह नहीं है । रामचन्द्रके कथनानुसार तबतक राम पृथ्वीपर रहे, तबतक वह राम-नियमपालनपूर्वक जीती रही । तदनन्तर अपने तपोवल्से शरीर छोड़कर जांबवान्के वहाँ उन्मत्त होकर जांबवती नामकी कृष्ण-पर्णी बनी । वहाँसे राम मुरेंद्र गये तथा पयोष्णीं में स्नानकर ताम्रपर्णीके तटपर स्थित आद्यानन्ततीर्थपर पधारे, जहाँ भगवान् विष्णु लक्ष्मी तथा गरुडसे सेवित होकर जेधनामपर शयन कर रहे थे ॥ ४८-४९ ॥ उनके दर्शन करके पश्चिमवाहिनी ताम्रपर्णीके तटपर गये । वहाँ स्नान करके पद्मतीर्थपर अनन्तगयनके दर्शन-नाथ गये ॥ ५२ ॥ सीता सहित भगवान्ने जङ्गलार्थ जाकर मत्स्यतटमें स्नान किया और बादमें वहाँसे विमान-पर सवार होकर धर्माधर्मनामके सरोवरपर गये । वहाँ स्नान करके पश्चिम समुद्रतटपर विराजमान जनार्दन-के दर्शन किये । अमावस्या तथा पौर्णिमाको गंगा तथा समुद्रके मङ्गलपर स्नान करके उन्होंने जनार्दन भगवान्-को पूजा की । उसके आगे रत्नराज्य देखकर श्रीराम लोगोंको शिक्षा देनेके निमित्त आगे नहीं बढ़े ॥ ५३-५५ ॥ वहाँसे लौटकर रामने घृतमाला, कुतमाला तथा सिन्धुनदमें स्नान किया ॥ ५६ ॥ वहाँ ताम्रपर्णीके तटपर स्थित गजेन्द्रमोक्ष गये । जहाँसे ताम्रपर्णी निकली है, उस जगह स्नान किया । वहाँसे मेराल तीर्थ गये ॥ ५७ ॥ वहाँसे चन्द्रकुमार पर्वतपर गये । पञ्चान् विमानके द्वारा दक्षिणकाशी गये ॥ ५८ ॥ वहाँ विश्वनाथका दर्शन करके चम्पकारण्य पधारे । वहाँ चित्रगङ्गामें स्नान करके दर्शनभावसे कल्याण करनेवाले हरिहरका दर्शन किया ॥ ५९ ॥ बादमें रामने विमानपर बैठकर मधुपुरीमें प्रवेश किया । तदनन्तर वेगवतीके पवित्र जलमें अवगाहन करके जगद्विषयात् सौश्वरेश्वरके दर्शन किये ॥ ६० ॥ तदनन्तर सीतार्क्षी देवीके दर्शन किये । द्विद्विगिरिपर वेंकटेश्वरके दर्शन किये और कावेरीके मध्यमें निवास करनेवाले श्रीरगशयनका दर्शन किया ॥ ६१ ॥ पश्चात् मातृभूतेश्वरका दर्शन करके जंबुकेश्वरके दर्शनार्थ पधारे । वहाँसे रङ्गनाथ जाकर

श्रीरंगपत्तनं गत्वा स्नात्वा हैमवतीजले । शालिग्रामं नमस्कृत्य रामनाथपुरं ययौ ॥६३॥
 स्नत्वा कुमारधारायां सुब्रह्मण्यं प्रपूज्य च । उद्दृग्गारुडं ततः कृष्णं नत्वा भृंगोदरं ययौ ॥६४॥
 तुंगानदीनटे भृङ्गिगिरौ नत्वा त आरुद्राम् । कुम्भकाशीं ततः गत्वा गन्वा कोटेश्वरं शिवम् ॥६५॥
 नत्वा मूकांबिकां देवीं नत्वा मुण्डेश्वरं हरम् । गुणवनेश्वरं नत्वा नत्वा धारेश्वरं ततः ॥६६॥
 गौरीश्वरं नमस्कृत्य नत्वा सगेश्वरं शिवम् । गोकर्णं च ततो गत्वा तं प्रणम्य महाबलम् ॥६७॥
 हरीहरेश्वरं गत्वा पश्यंस्तीर्थान्यनेकजः । जामदग्न्यं महेन्द्राद्रौ नत्वा भीमेश्वरं ययौ ॥६८॥
 भीमं महाबलं नत्वा ययौ कोलपुरं ततः । करवीरपुरं गत्वा कृष्णात्रेण्योस्तु संगमं ॥६९॥
 स्नात्वा रामो विमानेन गदालक्ष्मीश्वरं ययौ । स्नात्वा घटप्रभायां तु पश्यन् पुण्यस्थलानि हि ॥७०॥
 महादेवं नमस्कृत्य नत्वा मल्लारिषीश्वरम् । कारानदीनटस्थं तं वक्रतुंडं विलोक्य च ॥७१॥
 नीरानदीजले स्नात्वा नारसिंहं प्रपूज्य च । पांडुरंगं नमस्कृत्य चंद्रभागां विगाद्य च ॥७२॥
 ययौ भीमासंगमं तु चंदलां च ततो ययौ । ततः प्रेमपुरं गत्वा नत्वा मार्तण्डमाश्वरम् ॥७३॥
 नीलदुर्गां विलोक्याथ नाना पश्यन्स्थलानि हि । तुलजापुरमंस्थां तां देवीं नत्वा ययौ ततः ॥७४॥
 माणिक्यामंबिकां दृष्ट्वा पश्यंस्तीर्थानि राघवः । योगेश्वरीं वराम्बां दृष्ट्वा अंबापुरस्थिताम् ॥७५॥
 वैद्यनाथं नमस्कृत्य वंजरासंगमं ययौ । नागेशं च विलोक्याथ विमानेन न राघवः ॥७६॥
 स्नात्वा पूर्णासंगमे तु गोदाया उत्तरे तटे । स्वनाम्नाऽथ पूर्णं कृत्वा मुद्रलाश्रममाययौ ॥७७॥
 बाणतीर्थे ततः स्नात्वा सिन्धुफेनामुसंगमे । गोदानाभावज्जकेऽथ स्नात्वा नत्वा त्रिविक्रमम् ॥७८॥
 कृत्वा परां स्वनाम्ना तु पूर्णं गोदावरीतटे । अंबिकां तु नमस्कृत्य चंडिकां परिपूज्य च ॥७९॥

उसकी पूजा की । बादमें अविनाशी तीर्थकी ओर गये ॥ ६२ ॥ श्रीरंगनगरको देखनेके बाद हैमवतीके पवित्र जलमें जाकर स्नान किया । पश्चात् शालिग्रामको नमस्कार करके रामनाथपुर पधारे ॥ ६३ ॥ वहाँ कुमारधारामें अदगाहन करनेके अनन्तर सुब्रह्मण्यदेवीका प्रीतिपूर्वक पूजा की । पश्चात् उद्दृग नामक कृष्णकी पूजा करके शृङ्गारुद्र आश्रमकी ओर चले ॥ ६४ ॥ वहाँ तुङ्गभद्रा नदीमें स्नान करके शृङ्गिगिरिपर विराजमान भारदादेवीके दर्शन किये । पश्चात् कुम्भकाशी होते हुए कोटेश्वर गये ॥ ६५ ॥ वहाँसे मूकांबिका देवीके दर्शन करते हुए मुण्डेश्वर शिवके दर्शनार्थ पधारे । पश्चात् गुणवनेश्वर और उसके उपरान्त धारेश्वरके दर्शन किये ॥ ६६ ॥ फिर गौरीश्वर तथा सगेश्वरके दर्शन किये । फिर गोकर्णेश्वर, जामदग्न्य तथा महेन्द्र पर्वतपर विराजमान भीमेश्वरके दर्शन किये ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ तदुपरान्त भीम और महाबलीका दर्शन करके श्रीराम कोलापुर पधारे । पश्चात् करवीरपुर जाकर कृष्णा और वेणके सङ्गममें स्नान किया ॥ ६९ ॥ तदनन्तर विमानारुद्र होकर राम गदालक्ष्मीश्वरके दर्शनार्थ पधारे । वहाँ घटप्रभामें स्नान करके वहाँके अन्यान्य पुण्यस्थल देखे ॥ ७० ॥ फिर महादेवको नमस्कार करके मल्लारीश्वरके दर्शनार्थ गये । बादमें कारानदीके तटपर विद्यमान जगद्विषयात वक्रतुंडके दर्शन किये ॥ ७१ ॥ बादमें नीरा नदीमें स्नानकर तथा नरसिंहका पूजन करके पांडुरङ्गका पूजन और चन्द्रभागामें स्नान किया ॥ ७२ ॥ तदनन्तर भीमानदीके सङ्गम तथा चंदलामें स्नान किया । फिर प्रेमपुरमें जाकर उन्होंने मार्तण्ड प्रभुका दर्शन किया ॥ ७३ ॥ वहाँ नीलदुर्गाका दर्शन करके बहुतसे स्थानोंका अवलोकन किया । पश्चात् तुलजानगरमें जाकर वहाँ देवीके शुभ दर्शन किये और बादमें आगे बढ़े ॥ ७४ ॥ आगे जाकर माणिक्य अंबाके दर्शन करके अन्यान्य पवित्र तीर्थोंमें श्रीरामने भ्रमण किया । पश्चात् अंबापुरमें विराजमान योगेश्वरी अम्बाका दर्शन किया ॥ ७५ ॥ बादमें वैद्यनाथको नमस्कार करके वंजरासंगमपर पधारे । वहाँसे विमान द्वारा नागेश्वरके दर्शनार्थ गये ॥ ७६ ॥ पूर्णके संगममें स्नान करके गोदावरीके उत्तरी किनारेपर अपने नामसे रामने एक पुरी बसायी । वहाँसे मुद्रल आश्रिके आश्रमपर होते हुए बाणतीर्थ गये । वहाँ स्नान करके सिन्धुफेनाके मनोहर संगमपर गये । तत्पश्चात् गोदावरी और अंबिका नदीमें स्नान करके त्रिविक्रमके दर्शन किये ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ वहाँपर भी गोदावरीके तटपर

आन्मतीर्थे ततः स्नात्वा नत्वा विज्ञानमीश्वरम् । महालक्ष्मीं विलोकयाथ बहवासंगमं ययौ ॥८०॥
 प्रतिष्ठानं विलोकयाथ स्नात्वा वृद्धलसंगमे । शिवनंदासंगमेऽथ नृसिंहं परिपूज्य सः ॥८१॥
 स्त्रीयनाम्ना रुपाततीर्थे प्रवरासंगमं ययौ । सिद्धेश्वरं नमस्कृत्य निवासाख्यं पुरं ययौ ॥८२॥
 नृद्वाराख्यं पुरं गत्वा पश्यन्मानास्थलानि सः । ययौ गोदातटेनैव पुण्यस्तंभं रघूद्वहः ॥८३॥
 गन्धा कदम्बसंगमे तु विनयासंगमं ययौ । जनस्थानं ततो गत्वा ययौ श्यंबकमीश्वरम् ॥८४॥
 दाक्षिणार्त्यनृपतिभिर्मानितः पूजितोऽपि च । गृहीत्वा करमारं स्वं तेभ्यस्तैः सहितो ययौ ॥८५॥
 एवं दक्षिणयात्रेण या कुना राघवेण वै । सा मया विस्तरेणैव कथिता व्यवकावधि ॥८६॥
 इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे दक्षिणतीर्थयात्रावर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

(राम द्वारा भारतवर्षके पश्चिमी प्रदेशकी तीर्थयात्रा)

विष्णुदास उवाच

गुरो जातोऽस्ति संदेहो मम चित्ते वदाम्यहम् । स त्वया छिद्यतां स्वामिन् साधवो हि कृपालवः ॥ १ ॥
 यानारूढा न कर्तव्या यात्रा चेति श्रुतं मया । कथं यानेन रामेण कृता त्वयेरिता ॥ २ ॥
 इति जातोऽस्ति संदेहो मम तं त्वं निवारय । इति छिद्यवचः श्रुत्वा गुरुः ग्राहाय तं पुनः ॥ ३ ॥

श्रीरामदास उवाच

पदा यात्रा न कर्तव्या छत्रधामरधारिणी । राज्ञा द्वीपाधिपत्येन कार्या मांडलिकेन तु ॥ ४ ॥
 पृथिवीश्वरस्य देवस्य लग्नोद्यत्तनरस्य च । तथा मठाधिपस्यापि गमनं न पदा स्मृतम् ॥ ५ ॥
 तस्मात्तावत् त्वया कार्यः संदेहो राघवं प्रति । प्राप्तया रामचंद्रस्य कृपाऽपि च तैर्जनैः ॥ ६ ॥

अपने नामकी पुरी बसायी । फिर अम्बिका तथा चंडिकाकी पूजा की ॥ ७९ ॥ पश्चात् आत्मतीर्थमें जाकर स्नान किया । बादमें विज्ञानेश्वरका दर्शन करके बहवासंगमपर स्नान किया ॥ ८० ॥ फिर प्रतिष्ठानपुरकी देखकर वृद्धलसंगममें स्नान किया । शिवनंदाके संगममें स्नान करके उन्होंने नृसिंहकी पुजा की ॥ ८१ ॥ तदनन्तर अपने नामके राभतीर्थको देखकर प्रवराके संगमपर गये । वहाँ सिद्धेश्वरको नमस्कार करके निवासाख्यपुर गये ॥ ८२ ॥ वहाँसे नूपुरमगर गये और भी बहुतसे देखे । गोदाबरीके तटपर होते हुए रघूद्वह राम पुण्यस्तंभ गये ॥ ८३ ॥ वहाँसे बड़के संगमपर गये । वहाँसे आगे विनयाके संगमपर गये । वहाँसे जनस्थान और वहाँसे श्यंबवेश्वर गये ॥ ८४ ॥ रास्तेमें दाक्षिणात्य राजाओंके सम्मानित और पूजित होते हुए राम उनसे अपना कर उगाहते और उनको सेते हुए आगे बढ़े ॥ ८५ ॥ प्रकार श्यंबकावधि की हुई रामकी दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा में तुमको कह सुनायी ॥ ८६ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे 'ज्योत्स्ना'भाषाटीकायां दक्षिणतीर्थयात्रावर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! मेरे हृदयमें एक संशय । मैं आपके सम्मुख कहता हूँ । आप उसको दूर करें । क्योंकि साधु-महात्मा स्वभावसे कृपालु होते हैं ॥ १ ॥ मैंने सुना है कि सवारोपर बैठकर यात्रा नहीं करनी चाहिये । फिर आपने जो कहा कि श्रीरामने विमानपर सवार होकर यात्रा की, सो क्यों ? ॥ २ ॥ यही मुझे संदेह है, इसे आप निवृत्त करें । शिष्यके वचनको सुनकर गुरुने कहा : ॥ ३ ॥ श्रीरामदास बोले—शास्त्रमें यह भी लिखा है कि ऐसे छत्रधामरक्षारी पुरुषको पैदल यात्रा नहीं करनी चाहिए, जो किसी द्वीपका अधिपति राजा हो । हाँ, मांडलिक अर्थात् किसी एक मंडलके राजाको तो पैदल ही यात्रा करना उचित है ॥ ४ ॥ बड़े पृथ्वीपतिको, देवताको, जिसका विवाह होना हो ऐसे घरको तथा मठाधीशको पैदल चलकर नहीं करनी चाहिए ॥ ५ ॥ अब तुमको श्रीरामकी विमान द्वारा यात्रामें किसी प्रकारका संदेह नहीं

अधिष्ठितं पुष्पकं तु को वेदेभ्यश्चेष्टितम् । इदानीं रामचन्द्रस्य शृणु तां शक्तनीं कथाम् ॥ ७ ॥
 त्र्यम्बकाद्रामचन्द्रस्तु पुरा यत्र तु निद्रितम् । सीतया पर्वते तत्र गत्वा स्थित्वा दिनप्रथमम् ॥ ८ ॥
 सप्तशृङ्गगिरौ गत्वा गत्वाऽगस्त्येस्तु आश्रमम् । सुतीक्ष्णस्याश्रमं गत्वा ययौ चैलपुरं ततः ॥ ९ ॥
 घृण्येश्वरं नमस्कृत्य शिवतीर्थे विगाढ च । दृष्ट्वा रम्य देवगिरिं विरजाक्षेत्रमाययौ ॥ १० ॥
 मातापुरस्थां देवीं तां नत्वा पश्यन्स्थलानि सः । देववाटे नारसिंहं नत्वा रामश्च सीतया ॥ ११ ॥
 चकार विधिवत्स्नानं पयोण्यां धधुभिर्जनैः । स्नात्वा ताप्युद्गमं रामः स्वनाम्ना पर्वतोत्तमम् ॥ १२ ॥
 गत्वा स्नात्वाऽथ रेवायामोकारं परिपूज्य च । पश्चिमाभिमुखः पश्यन्नानापुष्पस्थलानि हि ॥ १३ ॥
 ताम्याश्च संगमे स्नात्वा नर्मदायाश्च संगमे । महानदीजले स्नात्वा प्रभासं च ततो ययौ ॥ १४ ॥
 पञ्चसरस्वतीनां संगमेषु विगाढ च । सौगाष्टस्थं सोमनाथं दृष्ट्वा स भ्रमतीं नदीम् ॥ १५ ॥
 पश्यन्नानास्थलान्येवं संखोद्धारं ययौ ततः । गोमतीं विधिवत्स्नात्वा द्वारावत्यां विवेश सः ॥ १६ ॥
 अनादिसिद्धां सप्तसु पुगीषु प्रथितां शुभाम् । दृष्ट्वा कृत्वा तीर्थविधिं दत्त्वा दानान्यनेकजः ॥ १७ ॥
 पश्यन्सीर्थानि सर्वाणि पुण्यानि रघुनन्दनः । पाश्चिमान्यैर्नृपतिभिर्मोहितः पूजितोऽपि च ॥ १८ ॥
 श्रद्धां कृत्वा करभारं स्वं तेभ्यस्तैः सहितो ययौ । सरस्वत्यास्तटेनैव पश्यन्पुष्पस्थलानि सः ॥ १९ ॥
 पुष्पकस्थः जनैः सीतां दर्शयन् कौतुकानि च । ययौ पुष्करतीर्थं वै नृपः सर्वत्र संवृतः ॥ २० ॥
 विमाने प्रत्यहं रामः कोटिशो ब्राह्मणान् सदा । भोजयामास दिवशन्नैः पायमैः शर्करादिभिः ॥ २१ ॥
 विमाने स्थितः पूर्वमयोध्यापुरवासिनः । तथा ये पूर्वदेशीया दाक्षिणात्या नृपाश्च ये ॥ २२ ॥
 वाग्मिमास्था नृपा एव ते बलवर्हिनः सह । रामेणातिथिवत्सर्वं वस्त्रान्नाभरणानिभिः ॥ २३ ॥

करना चाहिए । उन्हीं रामचन्द्रकी आज्ञाके अनुसार और लोग भी विमानपर सवार हुए ॥ ६ ॥ ईश्वरकी चेष्टा-
 को जान सकता है ? अब तुम श्रीरामकी शचीन सुनो ॥ ७ ॥ त्र्यम्बक धामसे चलकर श्रीराम
 उन्नत पर्वतपर गये, जहाँ सीताके साथ उन्होंने प्रथम निद्रा ली थी । वहाँपर उन्होंने तीन रात्रि निवास किया
 ॥ ८ ॥ सप्तशृङ्ग पर्वतपर जाकर अनेक मनोहर स्थानोंमें भ्रमण किया । वहाँसे अगस्त्य मुनिके आश्रमको गये ।
 वहाँसे सुतीक्ष्ण मुनिके आश्रममें पधारे । पञ्चाक्ष चैलपुर गये ॥ ९ ॥ वहाँ घृण्येश्वरकी नमस्कार किया, शिवतीर्थमें
 स्नान किया, रमणीक देवगिरि देखा और वहाँसे विरजाक्षेत्रमें गये ॥ १० ॥ वहाँ मातापुरनिवासिनी देवीको
 नमस्कारकर अनेक स्थानोंको देखते हुए देववाटमें जाकर नारसिंहको प्रणाम किया । सीता सहित रामने
 वहाँसे जाकर पयोण्या नदीमें विधिवत् स्नान करके बन्धुसहित तापीके उद्गमस्थानमें स्नान किया । पञ्चाक्ष
 रमनाश्रमके पर्वतपर जाकर देवायें स्नान करके ओंकारेश्वरकी पूजा की और पश्चिमकी ओरके अनेक स्थान देखे,
 जो कि बड़े पवित्र थे ॥ ११-१३ ॥ तदनन्तर तापी नर्मदाके संगममें स्नान करके महानदीके जलमें स्नान
 किया और वहाँसे प्रभासक्षेत्र गये ॥ १४ ॥ वहाँ पञ्चसरस्वतीके संगममें स्नान करके सौराष्ट्र (गुजरात)
 क्षेत्रमें सोमनाथजीका दर्शन किया । वहाँसे भ्रमती नदी गये । रास्तेमें अनेक स्थलोंको देखते हुए संखोद्धार
 तीर्थ गये । वहाँ गोमतीमें विधिपूर्वक स्नान करके द्वारावती (हारिका) में प्रवेश किया ॥ १५ ॥ १६ ॥ जो कि
 राज्य पुरियोंमें अनादिसिद्ध, प्रसिद्ध और बड़ी ही सुन्दर पुरी है । वहाँ तीर्थविधि सम्पन्न करके अनेक दान दिये
 ॥ १७ ॥ इस प्रकार अनेक तीर्थोंको देखते तथा पश्चिमके राजा-महाराजाओंसे सम्मानित और पूजित
 हुए तथा उनसे अपना जेड़े और उनके पुष्प स्थानोंको देखते हुए राम सरस्वतीके किनारे-किनारे
 चलते रहे । पुष्पकपर स्थित राम महारानी सीताको रास्तेमें अनेक कौतुक दिखाते तथा राजाओंको साथ
 लिये हुए पुष्करराज पहुँचे ॥ १८-२० ॥ रामचन्द्रजी विमानपर जो प्रतिदिन करोड़ों ब्राह्मणोंको सुन्दर
 भोजन दिये माछपूजा आदि तथा मिश्रीयुक्त खीर भोजन कराते थे ॥ २१ ॥ इतना ही नहीं, बल्कि
 वहीमास्थापुरवासी लोग विमानपर पहलेसे ही गये हुए थे तथा श्री श्री दक्षिण देशके

पूजिता मानिता आसन् सादरं ते यथामुखम् । न कश्चिद्भिन्नपाकं हि चकार पुष्पके नरः ॥२४॥
 चिन्ता काष्ठवृणादीनां जलस्यापि न कस्यचित् । एका चिन्ता तु तत्रास्ति भुद्धो धो मे कथं भवेत् ॥२५॥
 वाञ्छन्ति सर्वे तत्रैकं भिक्षकं चूर्णं प्रदास्यति । निद्रायास्तत्र दारिद्र्यं वाद्यघोषैर्निरंतरम् ॥२६॥
 श्रासस्तत्र महानामीदृशाने वारयोपिताम् । गीर्तनेत्रकटाक्षश्च क्रीडामिर्वचनादिभिः ॥२७॥
 मणिदीपदिनं रात्रिं न जानाति स्म तत्र वै । मच्छद्दिने कदा यानं याति रात्रावपि क्वचित् ॥२८॥
 एतस्मिन्नन्तरे शिष्यः पुष्करस्यैर्जनेस्त्वदा । महानादः श्रुतो रम्यो मंजुलः श्रुतिविवेकः ॥२९॥
 वारस्त्रीनपुरोद्भूतः कवणकंकणजोऽपि च । करताडनगीनादिभृदंगपणवोद्भवः ॥३०॥
 नववाद्यममुद्भूतो धर्तीयत्रममुद्भवः । यानवटाकिकिणीनां पताकारवसंभवः ॥३१॥
 वारांगनाकटितटकिक्कणीसंभवोऽपि च । वारणाधायुधोद्गादिमयूरकपिसंभवः ॥३२॥
 वीरेभ्यो वेदघोषेभ्यः शिष्येभ्यश्च समुत्थितः । नटनाटकवदिभ्यो मागधेभ्यः समुत्थितः ॥३३॥
 गोदोहसंभवश्चापि बाजामहिषिदोहजः । दधिमंथनसंभूतः शिशूनां रोदनोद्भवः ॥३४॥
 शिशुमंचकसंबद्धमृगस्त्याभ्यः समुत्थितः । नानातूर्योद्भवश्चापि पिष्टचकसमुद्भवः ॥३५॥
 घृतपाचितपक्वान्नप्रकारकरणोद्भवः । नारदादिमुनिश्रेष्ठघृतवीणादिसंभवः ॥३६॥
 पुराणकथनोद्भूतो हरिकीर्तनसंभवः । गमनाममहन्नादिस्तोत्रपाठसमुद्भवः ॥३७॥
 नारीपूरणपेणकार्यं कंकणसंभवः । पादप्रक्षालनाद्यादिनानाकार्यसमुद्भवः ॥३८॥

राजा लोग, पूर्वदेशके राजा लोग तथा पश्चिम देशके राजागण थे । उन सबका भी सेनाजों और वाहनों सहित
 रामने विधिवत् अन्न-वस्त्र-आभरण आदिसे खूब सत्कार किया । उन्हें पूर्ण आदर और मुख दिया । पुष्पक-
 विमानपर कोई भी मनुष्य पृथक् भोजन नहीं बनाता था । सब रामहीके भोजनालयमें भोजन करते थे ।
 इसलिए ■ तो किसीको काष्ठ तथा वृणकी चिन्ता थी और न जलकी । यदि वहाँ किसीको कोई चिन्ता थी तो
 केवल यही कि अच्छी भूख कैसे लगे । जिससे कि खूब अच्छा-अच्छा भोजन करे ॥ २२-२५ ॥ वहाँ सब लोग
 वेद्यसे चूर्ण पानेकी इच्छा रखते थे । वहाँ दारिद्र्यता थी तो केवल निद्राकी । क्योंकि हर ■ नाना प्रकारके
 वाजोंकी ध्वनि हुआ करता था ॥ २६ ॥ वहाँ यदि कोई भय था तो केवल वारागनाओंका । विमानस्थ लोगों
 को वेश्याओंके गीत, नेत्रकटाक्ष, अनेक क्रीडायाँ, मधुर वचनों ■ मणिमय दीपोंके कारण रात-दिन एक-
 सा प्रतीत होता था । यान कभी दिनमें यात्रा करता था और कभी रातमें ॥ २७ ॥ २८ ॥ इतनेमें हे शिष्य ।
 पुष्करतीर्थके लोगोंको एक बड़ा कोमल, मनोहर और श्रवणसुखकारी ध्वनि सुनायी पड़ा ॥ २९ ॥ जिसमें
 वेश्याओंके मृगुर वज्रते थे, कवण वज्रते थे, तालियें वज्रती थीं, गीत हो रहा था, मृदङ्ग तथा नगाड़े आदि
 वाद्यसमूह ■ रहे थे, पट्टियें बज रही थीं, यानके घटे वज्र रहे थे और मंड़े फटफट रहे थे ॥ ३० ॥ ३१ ॥
 वारागनाओंकी कोमल कमरमें वेधी हुई सुवर्णटिकाएँ ■ रहीं थी और हाथी चिघाड़ रहे थे । घोड़े
 हिनहिना रहे थे । आयुध खनखना रहे थे । ऊँट गलगला रहे थे । मोर केका बाणी बोल रहे थे ॥ ३२ ॥
 घोड़ा लोग हाँकि लगा रहे थे । वेदघोष हो ■ था । छात्रगण अध्ययन कर रहे थे । नटोंका नाटक हो
 रहा था । वारण तथा भाट विष्टावली बखान रहे थे ॥ ३३ ॥ गौओंके दोहनका घंघर ■ हा रहा था ।
 बकरियों तथा भैसोंके दोहनका गन्ध भी सुनायी दे रहा था । छाछ बिलोनेका घरर-घरर निनाद हो रहा था ।
 शालक रो रहे थे । बालकोंके झूलोंकी सिकड़ियाँ ■ गन्ध हो रहा था । अनेक वाद्ये बज रहे थे । आटा पीसनेकी
 चक्कियोंका घरबराहट हो रही थी ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ घोंमें पकाये जाने तथा सले जाते पक्वानोंका छूँ छूँ शब्द हो
 रहा था । नारदादि मुनियोंकी वीणादिका मधुर शब्द हो रहा था ॥ ३६ ॥ पुराण बाँचे जा रहे थे ।
 हरिकीर्तनकी ध्वनि हो रही थी । विष्णुसहस्रनाम तथा शिवमहिम्नस्तोत्रादिके ■ घोष हो रहा था ।
 नारियोंके कोई वस्तु कूटने तथा मँहदा आदि पीसनेके समय कंकणका शब्द हो रहा था । उनके पाद-
 प्रक्षालनके समय श्रांशरका संकार, कड़ोंकी कणकणाहट, छत्रोंका छनछनाहट, विद्युओंकी छमछमा-

एवं नानाविधं श्रुत्वा पुष्करस्या जना ध्वनिम् । निश्चाते पश्चिमामाशां किमेतदिति विह्वलाः ॥३९॥
 केचिद्भुर्नन्दिघंटास्त्रोडयं भ्रूयते महान् । केचिद्भुविमानेन गच्छतींद्रो दिवं प्रति ॥४०॥
 केचिद्भुः समायाति रंभायप्सरसश्च खे । केचिन्मेषध्वनिं प्रोषुः केचिर्देरावतं त्विति ॥४१॥
 केचित्प्रोषुः समायाति सागरः किं लयं विना । केचित्प्रोषुस्त्विदं श्रेयं वायुपुत्रस्य शब्दितम् ॥४२॥
 केचित्पतत्रिराजस्य शब्दितं प्रोचुरुत्तमम् । केचित्प्रोषुश्च गधर्वा विमानस्था अटति खे ॥४३॥
 केचित्प्रोचुर्नागकन्याः कुर्वन्तीदं सुगायनम् । कुर्वन्तश्चेति तर्कश्च ददृशुः पुष्पकं महत् ॥४४॥
 रामभागवताज्ञाय तोषपूर्णं बभूविरे । उपायनानि संगृह्य प्रेमनिर्भरमानसाः ॥४५॥
 प्रस्युजग्मुस्तदा रामं दृष्ट्वा नत्वा रघूत्तमम् । मेनिरे जन्मसाफल्यं राघवेणातिमानिताः ॥४६॥
 राघवोऽपि विमानाग्रयादधरुष द्विजोत्तमान् । प्रणिपत्य समाभाष्य प्रतिपूज्य सविस्तरम् ॥४७॥
 तैस्तीर्थवासिमिर्युक्तो ययौ पुष्करमुत्तमम् । स्नात्वा सर्वैलं विविना तीर्थभ्रातृ विधाय ॥४८॥
 दृष्ट्वा दानान्यनेकानि काष्याः कोट्यधिकानि तु । द्रव्यालंकारवस्त्रार्णैस्तोषयामास भूसुरान् ॥४९॥
 ततस्त्वेरग्यनुद्धातो विमानेन ययौ पुनः । एवं पश्चिमयात्रा ते वर्णिता राघवस्य हि ॥५०॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे पञ्चमयात्रावर्णनं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८॥

नवमः सर्गः

(रामकी उत्तरभारतीय तीर्थयात्रा और वहाँसे लौटकर अयोध्या आगमन)

उवाच

उत्तराभिमुखो रामस्ततः पश्यन् स्थलानि सः । ययौ पर्वततीर्थं च ततो ज्वालामुखीं ययौ ॥ १ ॥

हुट तथा पापवेदका मनोहारी निनाद हो रहा था ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ प्रकार अनेक प्रकारके शब्दोंसे मिश्रित तथा धनीभूत ध्वनिको रात्रिके समयमें पश्चिमकी ओर सुनकर पुष्करनिवासी लोग अकित हो गये ॥ ३९ ॥ कोई कहने लगा कि नन्दीधरके घंटेका यह सन्ध सुनाई देता है । कोई कहने लगा कि इन्द्र विमानपर बैठकर स्वर्ग जा रहे हैं ॥ ४० ॥ कोई कहने ॥ रंभादि अप्सराएँ आकाशमें जा रही हैं । कोई मेघकी गर्जना बतलाने लगा । कोई ऐरावतकी चिघाह कहने लगा ॥ ४१ ॥ कोई कहने लगा कि विमान प्रलयकालके ही समुद्र उमड़ा जा रहा है । कोई कहने लगा कि वायुपुत्र हनुमान्का गर्जन हो रहा है ॥ ४२ ॥ कोई कहने लगा कि पक्षिराज गरुडका शब्द हो रहा है । कोई बोला कि ये तो गन्धर्व लोग विमानपर बैठकर आकाशमें घूम-फिर रहे हैं ॥ ४३ ॥ कोई कहने लगा कि नागकन्याएँ गान कर रही हैं । इस प्रकारके अनेक तर्क-वितर्क करते हुए वे लोग पुष्पकको देखने लगे ॥ ४४ ॥ बादमें जब रामचन्द्रजीको आते देखा तो सब लोग बड़े ही प्रसन्न हुए । रामको देखकर लोग हाथमें अनेक तरहकी भेंटें ले-लेकर प्रेमपूर्वक उनके सामने गये । श्रीरामको करके उन्होंने जन्म सफल माना । श्रीरामने भी उन सबका सत्कार किया ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ पश्चात् श्रीरामने विमानसे नीचे उतरकर द्विज लोगोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका नमस्कारपूर्वक पूजन किया और बादमें उन तार्पणवासियोंके साथ विस्तारसे वार्तालाप करते हुए उत्तम पुष्कर नगरमें प्रवेश किया । वहाँ सबस्नान करके विविधत् तोषभ्रातृ किया ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ वहाँपर रामने काशीसे कोटिगुणा अधिक दान-पुण्य किया । द्रव्य, अलंकार, वस्त्र वगैरहसे ब्राह्मणोंको संतुष्ट किया । बादमें उनसे आज्ञा लेकर वे विमान द्वारा आगे बढ़े । इस प्रकार है पावेंती ! मैंने रामकी पश्चिम भारतकी तीर्थयात्रा कह सुनायी ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे 'ज्योत्स्ना'भाषाटीकायां पञ्चमयात्रावर्णनं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीरामदासने कहा—बादमें श्रीराम अनेक स्थलों एवं उत्तरके पर्वतों तथा तीर्थोंको देखते हुए पहुँचि

पश्यन् स्थलानि संप्राप तर्मा भीमणिकर्णिकाम् । करतोयानदीतोये स्नात्वाऽग्रे न ययौ विभुः ॥ २ ॥
 तरणो दोषमाकर्ण्य पथवर्तत राघवः । कर्मनाशानदोस्पर्शस्करतोयाविलम्बनात् ॥ ३ ॥
 गङ्ङकीचाङ्गुतरणाद्धर्मः स्तलति कीर्चनात् । गन्त्रा देवप्रयागं चालकनंदासटेन वै ॥ ४ ॥
 नरनारायणो गत्वा दर्शनान्मुक्तिदौ नृणाम् । बदरिकाश्रमे रामः केदारेश लिलोक्य सः ॥ ५ ॥
 हिमाद्रौ देवगन्धर्वसेविते धातुमण्डले । महापथं ततो गत्वा ययौ तन्मानसं सरः ॥ ६ ॥
 यस्माद्विनिर्गता गंगा सरयुः पापनाशिनी । कञ्जानि यत्र हंसानि यत्र हंसाः सहस्रशः ॥ ७ ॥
 रक्तनेत्राधिवदना मुक्ताभक्षणतत्पराः । यत्रप्रदेशे चित्रभूम्या देवगन्धर्वकिन्नराः ॥ ८ ॥
 अप्सरोभिस्तथा स्त्रीभिः क्रीडां कुर्वन्त्यहनिंशम् । तत्र स्नात्वा मानसेऽथ गत्वा विन्दुसरोवरम् ॥ ९ ॥
 स्नात्वा दानादिकं कृत्वा हिमालपगिरिस्थिताम् । दृष्ट्वा ब्रह्मसभां दिव्यां मेरुस्थसदृशीं पराम् ॥ १० ॥
 राघवः सीतया सर्वैरवस्थाप्य पुष्पकात् । प्रणमन् सुरेन्द्रार्घ्यरालिङ्ग्य चतुराननम् ॥ ११ ॥
 ब्रह्मणा सहितान्देवान्पूजयामास विस्तरः । विधिस्तं पूजयामास कामधेनुं न्यवेदयत् ॥ १२ ॥
 विमानाग्रे कामधेनुं संस्थाप्य रघुनन्दनः । सुरब्रह्मादिभिः साकं कैलासमगमत्तदा ॥ १३ ॥
 राममागतमाज्ञाय कैलासे गिरिजापतिः । प्रत्युज्जगाम पार्वत्या रामचन्द्रं वृषस्थितः ॥ १४ ॥
 शङ्खमागतमाज्ञाय राघवः पुष्पकाज्जवात् । अवरुह्य नमस्कृत्य शिवेनालिङ्गितः स्थितः ॥ १५ ॥
 उमाऽपि सीतामालिङ्ग्य दिव्यालंकारचन्दनैः ।

पूजयामास ब्रह्मार्घ्यः सूर्यकोटिसमप्रभः । ताटके नूपुरे दिव्ये केयूरे चूडकदम्बम् ॥ १६ ॥
 किंकिणीरवसंयुक्तरत्ननां चन्द्रमास्करो । सीमन्तभूषणौ हारान्मणिमुक्ताविचित्रितान् ॥ १७ ॥

ज्वालामुखी गये ॥ १ ॥ वहाँसे आगे बढ़ते-रे स्थानोंको देखते हुए श्रीमणिकर्णिका तीर्थपर जा पहुँचे । वहाँ करतोया नदीमें स्नान किया, परन्तु उसको पार करके आगे नहीं गये ॥ २ ॥ श्रीराम करतोयाको पार करनेमें प्रायः श्रित सुनकर वहाँसे लौट पड़े । क्योंकि शास्त्रोंमें लिखा है—कर्मनाशा नदीके स्पर्शमात्रसे, करतोयाके लाँघनेसे, गङ्ङकीमें हाथोंद्वारा तेरनेसे तथा घर्मका अपने मुखसे बखान करनेसे प्राणीका किया हुआ घर्म नष्ट हो जाता है । वहाँसे वे देवप्रयाग गये । पश्चात् अलकनन्दाके किनारे-किनारे चलकर मनुष्योंको दर्शनमात्रसे मुक्ति देनेवाले नरनारायणका दर्शन किया । श्रीरामने बदरिकाश्रमके बाद केदारेश्वरका दर्शन किया ॥ ३-५ ॥ इसके अनन्तर राम अनेक घातुओंसे मंडित हिमाद्रिपर गये, जहाँ कि अनेक देवता तथा गन्धर्व निवास करते हैं । बादमें महापथ गये और वहाँसे उस सर्वसिद्ध मानसरोवरपर पधारे ॥ ६ ॥ जहति कि पापोंको नष्ट करनेवाला गंगा तथा सरयू निकली हैं । उस मानसरोवरमें अनेक सुवर्णकमल खिले हुए थे । वहाँ मोती चुगनेमें तत्पर, लाल मेघ, लाल तथा लाल मुखवाले हजारों राजहंस निवास करते थे । प्रदेशकी चित्र-विचित्र भूमिपर अप्सराओं तथा किन्नरोंके सहित अनेक देव-गन्धर्व और किन्नरोंके समूह ग्रीष्म कर रहे थे । उस मानसरोवरमें स्नान करके श्रीराम विन्दुसरोवर गये ॥ ७-९ ॥ वहाँपर स्नान करके तथा अनेक देवोंके सहित हिमालयपर गये । वहाँ मेरुपर्वतपर स्थित ब्रह्मसभाके एक दूसरी मनोहर ब्रह्मसभा ॥ १० ॥ वहाँ राम सीता तथा अन्य लोगोंके साथ विमानपरसे उतर पड़े और इन्डादिकोंको साथ लेकर करते हुए चतुर्मुख ब्रह्माका आलिङ्गन किया । ब्रह्मा सहित अन्य सब देवताओंकी रामने विस्तारसे पूजा की । पश्चात् ब्रह्माने भी श्रीरामका विधिपूर्वक पूजन किया और उन्हें सादर कामधेनु समर्पित की ॥ ११ ॥ १२ ॥ बादमें रघुनन्दन देवताओं सहित ब्रह्माको तथा उस कामधेनुको विमानपर बढ़ाकर कैलास पर्वतपर पधारे ॥ १३ ॥ कैलासपर श्रीरामको आये सुनकर गिरिजाके पति शिवजी पार्वतीके साथ नन्दीश्वरपर सवार होकर रामचन्द्रको लेने आये ॥ १४ ॥ राम शिवजीको आते देखकर पुष्पकपरसे नीचे उतर गये और शिवजीको प्रणाम किया । शिवजीने रामका आलिङ्गन किया । पार्वतीने भी सीताका आलिङ्गन करके दिव्य चन्दन आदिसे पूजा की । तदनन्तर प्रसन्न होकर उमादेवीने सीता महारानीको सूर्यके समान दीप्तिवाले अनेक आभूषण और वस्त्र दिये ।

ददी जनकनदिन्यै पार्वती तोषपूरिता । ततः शंभुस्तदा प्राह राघव पूज्य वैभवं ॥१८॥
 राम त्वकामिकमले मध्याऽयं चतुराननः । ततो जातो विधेयाहं रोदनाद्बुद्धसंज्ञकः ॥१९॥
 पौत्रस्तव रघुभ्येष्ट तवाङ्गापरिपालकः । संहारः क्रियते राम आज्ञया तव सादरात् ॥२०॥
 यदा मया तु प्रलये तदा पापं क्व ते गतम् । यद्दशास्यत्रधाङ्गीतस्तीर्थयात्रां करोषि हि ॥२१॥
 क्रीडेयं तव राजेन्द्र सुखं कोडस्व सीतया । क्रियते लोकशिक्षार्थं जानामि तव चेष्टितम् ॥२२॥
 एवं नानाविधैस्तस्य चारित्र्यरीढ्य राघवम् । ददां सिंहासनं उग्रं चामरे मधकोत्तमम् ॥२३॥
 पानपात्रं भोजनस्य पात्रं हंसं मनोरमम् । कंकणे कुण्डले बाहुभूषणे मुकुटोत्तमम् ॥२४॥
 रामं प्रस्थापयामास रद्भ्वा चिन्तामणिं हृदि । हृदि चिन्तामणिं दृष्ट्वा राघवस्य विदेहजा ॥२५॥
 प्राहातिलजिता रामं गौर्मे चिन्तामणिस्तव । तथेति राघवोऽप्युक्त्वा विमानेन जनैः सह ॥२६॥
 ययौ नत्वा शंकरं हि कृत्वा यज्ञार्थं ध्वनम् । आकारयित्वाऽथ विधिं मार्सकेनाश्वराय हि ॥२७॥
 भागीरथ्यास्तटेनैव हरिद्वारं ययौ जवात् । कुरुक्षेत्रं विगाद्याथ इन्द्रप्रस्थं ततो ययौ ॥२८॥
 दृष्ट्वा मधुवनं रम्यं ययौ वृन्दावनं ततः । गोकुलं वीक्ष्य रामस्तु गोवर्धनमगाच्छर्मैः ॥२९॥
 गत्वाऽष्टावतिकां पुण्यां त्रिप्रातीरविराजिताम् । महाकालं पुरस्कृत्य पश्यंस्तीर्थान्यनेकजः ॥३०॥
 दृष्ट्वा गजाद्वयं क्षेत्रं सागरं कूपमाक्ष्य च । ययौ स नैमिषारण्ये गोमत्यां स विगाद्य च ॥३१॥
 एतं पौराणिकं दृष्ट्वा शौनकादीन् प्रपूज्य च । स्नात्वा तद्भस्मैवर्तसरस्यथ रघूत्तमः ॥३२॥
 तमसां तां विगाद्याथ ददर्श नगरीं निजाम् । राममागतमाह्वय सुमंत्रो वेगचक्षरः ॥३३॥

दो कर्णफूल, दो सुन्दर चुड़ियाँ, छोटे-छोटे धुंधुहोंके सन्दसे युक्त करवनी, चन्द्रमाके समान कांति-
 वाले दो हीमन्तभूषण और मणि तथा मोतियोंके हार भी दिये । पश्चात् शिवजीने भी अनेक विभवोंसे
 रामका पूजन करके उनसे प्रण किया-॥ १४-१८ ॥ हे राम ! आपके नाभिकमलसे ■ चतुरानन ■ हुए ।
 इन ब्रह्मसे मैं पैदा हुआ और रोदन करनेके कारण मेरा नाम ■ पड़ा ॥ १९ ॥ ■ रघुभ्येष्ट ! इस प्रकार मैं आप-
 का पौत्र हुआ । हे राम ! आपकी आज्ञाका पालन करते हुए आपके आज्ञाके अनुसार मैं प्रलयकालमें तीनों
 लोकोंका संहार करता हूँ । तब क्या यह पाप आपको नहीं लगता, जो आज आप साक्षात्परायण होकर
 भी रावणवधसे बहुहत्यारूपी लोकापवादके भयसे तीर्थयात्रा करने निकले है ? ■ २० ॥ २१ ॥ अथवा ठीक ही
 है, मैं ■ गया । हे प्रभो ! आप यह सब लोकशिक्षाके लिये क्रोड़ामात्र कर रहे हैं । यदि ऐसा है तो आप मले
 ही सीताके सहित क्रीड़ा करें । लोकमर्यादाको स्थापित करनेके अतिरिक्त और कुछ भी आपकी क्रीड़ाका प्रयो-
 जन नहीं है ॥ २२ ॥ इस प्रकार अनेक रामचरित्रोंसे श्रीरामकी स्तुति करनेके बाद शिवजीने उन्हें सिंहासन,
 एक छत्र, दो चमर, एक उत्तम पलंग, पानका डिब्बा, भोजन करनेके लिए सुन्दर सानका पाल, कंकण, कुण्डल,
 कड़े और मुकुट दिये ॥ २३ ॥ २४ ॥ तदनन्तर रामके गलेमें चिन्तामणि बाँधकर उन्हें विदा किया । सीताने रामके
 हृदयपर चिन्तामणि रखकर उनसे कुछ लज्जापूर्वक कहा-अच्छा, यह चिन्तामणि आपका रही
 और यह कामधनु मेरी । श्रीराम भी 'बहुत अच्छा' कहकर वहाँसे ■ लोगोंके साथ विमानपर सवार हो शंकर
 भगवान्की नमस्कार करके चल दिये । चलते समय वे शंकर भगवान्की भावी यज्ञकी सूचना देते गये । ब्रह्माको
 भी एक मासके ■ होनेवाले यज्ञमें अयोध्या आनेके लिए कहा ॥ २५-२७ ॥ वहाँसे भागीरथीके किनारे-
 किनारे हरिद्वार गये । वहाँसे श्रीमद् भी कुरुक्षेत्रमें स्नान करके इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) गये ॥ २८ ॥ वहाँसे मनोहर
 मथुरापुरी देखकर वृन्दावन पधारे । गोकुल देखकर वे गोवर्धन पर्वतपर गये ॥ २९ ॥ बादमें जनैः सनेः
 परम पवित्र अवन्तिका (उज्जैन) नगरीको गये, जो कि क्षिप्रा नदीके किनारेवर विद्यमान है । वहाँ महा-
 कालेश्वरका दर्शन-पूजन करके अनेक शुभ तीर्थ देखते हुए गजाद्वय (हस्तिनापुर) क्षेत्र तथा सागरकूपको
 ॥ ३० ॥ पश्चात् नैमिषारण्य गये । वहाँ गोमतीमें स्नान किया ॥ ३० ॥ ३१ ॥ फिर पौराणिक सूतका दर्शन करने

अयोध्यां भूपयामास प्रोच्यैतानां विध्वंसजैः । तोरणैश्च पताकाभिः पुष्पहारैर्मनोरमैः ॥३४॥
 शोषयित्वा राजपार्श्वान् सेचयित्वा तु चन्दनं । विकीर्णकुसुमैर्दिव्यैर्बालिदीपैर्विराजितान् ॥३५॥
 वारणेन्द्रं पुरस्कृत्य सेनया परिवेष्टितः । प्रत्पुञ्जगाम राजेन्द्रं पुष्पकस्थं त्वरान्वितः ॥३६॥
 दंडवत्प्रमिषत्याथ दत्त्वा शोषयनानि तत् । आलिङ्गितो राघवेण घेने स कृतकृत्यताम् ॥३७॥
 ततो वाघनिनादैश्च नर्तनैर्वारयोषिताम् । वेदघोषैर्द्विजानां च रामतीर्थं ययौ श्रनः ॥३८॥
 स्नान्वा तत्सस्यूतोये यत्र तीर्थं सुपुण्यदम् । स्वयमेव कृतं पूर्वं नित्यकर्मदमादरात् ॥३९॥
 वसिष्ठोक्तविधानेन कृत्वा धौकमुपोषणम् । दधिभ्रातृ विधायाथ दत्त्वा दानान्वयेकशः ॥४०॥
 तृतीये दिवसे रामो विमानेन विहाय सा । पुर्यां विलम्ब्य प्राकरान् हेमरत्नविनिर्मितान् ॥४१॥
 अयोध्यां शोभितां रम्यां गोपुराड्डालमंडिताम् । वीर्यहृद्समायुक्तां चतुष्पथविराजिताम् ॥४२॥
 पश्यन् स्वीयं राजसभाद्वारं प्राप रघूत्तमः । यानं भूमंडलं प्राप्य सुखमासीत्स्थिरं तदा ॥४३॥
 ततः सुमंत्रपरनीभिर्दध्योदनविनिर्मिताः । बलयः कांस्यपात्रस्था जलतैलघटास्तथा ॥४४॥
 सीताराघवयोर्देहादुत्तार्य श्रुतश्रुतदा । नीत्वा त्यक्त्वा विदूरे तु स्नात्वा रामगृहं ययुः ॥४५॥
 ततो रामो विमानादवावकृत् स बंधुभिः । नागरैस्तैर्नृपतिभिः सभायां संविशेष्ट ह ॥४६॥
 तस्यै तिहासने रामश्चितामणिविराजितः । तत्पुनर्नृपाः सभायां श्रीराघवेणातिमानिताः ॥४७॥
 सीताऽपि निजगेहं सा विचित्ररत्ननिर्मितम् । कामधेनुं पुरस्कृत्य प्रविशेशासिद्विषिता ॥४८॥
 ततो रामः कामधेनुसंभूतैतपाधितैः । परमान्नैः षड्संश्च भोजयामास भूसुरान् ॥४९॥

शौनकादि ऋषियोंका पूजन और ब्रह्मवैवर्त नामके सरोवरमें स्नान किया ॥ ३२ ॥ तमसा नदीमें अवगाहन करके राम अपनी नगरीको चल पड़े । उधर श्रीरामकी आते सुनकर सुमंत्रने सटपट अनेक प्रकारकी बड़ी-बड़ी पताकाओं तथा ध्वजाओंसे अयोध्या नगरीको सजवा दिया । अनेक तोरण बँधवा दिये ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ राजपार्श्वोंको साफ कराकर चन्दनके जलसे छिड़काव करा दिया । उनपर लिप्य और नाना रंगके फूल बिछवा दिये । जगह-जगह चौराहोंपर दीपक तथा पूजाकी सामग्री रखवा दी ॥ ३५ ॥ पश्चात् सुसज्जित वारणेन्द्र (हाथी) को आगे करके सेवासहित स्वयं पुष्पकस्थित राजा रामकी अगवानों करने गये ॥ ३६ ॥ उन्होने उन्हें दण्डवत् प्रणाम करके अनेक उपहार दिये । बादमें मंत्री सुमंत्र रामसे आलिङ्गित होकर अपने आपको कृतकृत्य समझने लगे ॥ ३७ ॥ तदनन्तर बाजे-गाजे, वारांगताओंके नृत्य तथा ब्राह्मणोंके वेदघोषके साथ राम घीरे-घीरे रामतीर्थपर गये ॥ ३८ ॥ वहाँ आकर उन्होने सस्यूके जलमें स्नान किया । वह बड़ा पवित्र तथा उत्तम तीर्थ स्वयं रामके ही नित्यकर्मके लिये निर्मित हुआ था ॥ ३९ ॥ वहाँ उन्होने वसिष्ठजीके कथनानुसार विधिपूर्वक एक उपवास किया, दधिभ्रातृ किया तथा अनेक दान दिये ॥ ४० ॥ तीसरे दिन श्रीराम विमानके द्वारा आकाशपार्श्वसे नगरीके सुवर्णनिर्मित प्राकारोंको लाँघकर पुरद्वार तथा सुन्दर बटारियोंसे सुशोभित मनोहरिणी अयोध्यामें पधारे । ओ बलियों, सड़कों, बाजारों तथा चौराहोंसे भड़ी ही भली लग रही थी ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ बहुत दिनों बाद आज उन्हें अपनी राजसभाके द्वारका दर्शन प्राप्त हुआ । वहाँ आकर वे धानपरसे उतर पड़े । विमान भूतलपर उतरकर सुखपूर्वक खड़ा हो गया ॥ ४३ ॥ तब सुमंत्रकी स्त्रियें दधि-ओदन-से युक्त कसिके पात्रमें रखी हुई बलियाँ तथा जल-तेलसे पूर्ण सैंकड़ों घड़े सीता तथा रामके देहपरसे उतार तथा दूर ले आकर छोड़ आयीं और स्नान करके रामके भवनमें गयीं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ श्रीराम भी विमानपरसे उतरनेके बाद नागरिकों, अन्य राजाओंके साथ समाभवनमें पधारे ॥ ४६ ॥ चिन्तामणिसे सुशोभित हृदयवाले राम तिहाहनपर जा विराजे तथा उनसे सम्मानित होकर अन्य राजे भी यथास्थान बैठ गये ॥ ४७ ॥ महारानी सीता भी कामधेनुको लेकर प्रसन्नतापूर्वक चित्र-विचित्र रत्नोंसे निर्मित अपने महलमें ॥ ४८ ॥ पश्चात् श्रीरामने कामधेनुसे प्राप्त घृतसे निर्मित षड्रसमय उत्तम एकवातों द्वारा

अर्चाङ्गालांस्तर्पयित्वा स्वयं कृत्वाऽश्नन् तदा । निद्रार्थं नृपतीन् याने स्थलमाज्ञापयत्तदा ॥५०॥
 पञ्चरात्रं नृपान् ग्रीत्वा स्थापयित्वा स्वसन्निधौ । वस्त्रालंकारतुरगैस्तोषयित्वा तविस्तरम् ॥५१॥
 तान् प्रोवाच रमानाथः प्रबद्धकरसंपुटान् । भव यज्ञांगतुरगं दृष्ट्वा तत्पृष्ठगैः पुनः ॥५२॥
 आगन्तव्यं जानपदैः स्वसैन्यैर्नागरैः सह । इत्याज्ञां रघुवीरस्य ह्यङ्गीकृत्य नृपोत्तमाः ॥

ययुः स्वं स्वं पुरं देशं स्वमलैः परिवेष्टिताः ॥५३॥

सुग्रीवाद्यान्वानराश्च परिवारसमन्वितान् । आज्ञापयित्वा सन्मानि स्थापयामास स्वातिके ॥५४॥
 वाज्रमेधानन्तरं हि प्रेषयिष्याम्यहं त्विति । ततो दुन्दुभिनिर्घोषं स्वपुण्यां वोषयत्तदा ॥५५॥
 अचारम्य जनैः सर्वैरयोध्यानगरीस्थितैः । यैः कश्चिदत्र पथिकैर्भिन्नपार्कैर्न भुज्यताम् ॥५६॥
 यावत्करोम्यहं भूम्यां राज्यं सीतासमन्वितः । निजगार्हस्थ्यमालम्ब्य ये वर्तन्ते नरोत्तमाः ॥५७॥
 ते कूर्वन्तु सुखं पार्कं स्वस्वगेहेषु भक्तितः । निर्वन्धो मम न श्रेयो वर्तितव्यं यथासुखम् ॥५८॥
 इत्याज्ञाप्य जनान् रामः सुखं वस्थौ स सीतया । अयोध्यायां सर्वत्र वेदघोषो गृहे गृहे ॥५९॥
 मंगलानि समुत्साहा नर्तनं वारयोषिताम् । बभूवुश्च पुराणानि कीर्तनानि हरेः कथाः ॥६०॥
 एवमासीत्सुसंतुष्टा साकेतनगरी शुभा । एवं प्रोक्तं मया शिष्य यात्राकाण्डमनुत्तमम् ॥६१॥
 ये शृण्वन्ति नरा भक्त्या तेषां यात्राफलं भवेत् । यात्राघनार्जनोद्योगे यात्राकाण्डमिदं वरम् ॥६२॥
 पठित्वा ये तु गच्छन्ति सुखेनायाति ते गृहम् । ब्रह्महत्यादिपापानि कृतानि भानवैः सकृत् ॥६३॥
 यात्राकाण्डमिदं जप्त्वा शुद्धिस्तेभ्यो भविष्यति । सर्वतीर्थावगाहैश्च यत्फलं परिकीर्तितम् ॥६४॥
 यात्राकाण्डमिदं श्रुत्वा तत्फलं प्रतिपद्यते । धनार्थी धनमामोति कामी कामानवाप्नुयात् ॥६५॥

ब्राह्मणोंसे लेकर बाण्डाल तकको यथोचित भोजन कराके तृप्त किया । बादमें राजाओंके स्वयं भोजन करके राजाओंको शयनार्थ विमानमें तथा महलोंमें जानेकी आज्ञा दी ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इस प्रकार पाँच दिन तक लोगोंको बड़े ही प्रेम तथा सत्कारसे रामने अपने भवनमें रक्खा । बादमें वस्त्र, अलंकार तथा अश्व आदि दे और उन्हें भलीभाँति प्रसन्न करके अपने-अपने स्थानको जानेकी आज्ञा दी । जब वे हाथ जोड़कर जानेके लिए सम्मुख खड़े हुए, रमानाथ रामने फिरसे उन्हें यज्ञके मुखवस्त्रपर यज्ञके अंगभूत अश्वके पीछे-पीछे चलनेके लिए ससैन्य और प्रजा सहित आनेके लिये कहा । वे राजा इस आज्ञाको स्वीकार करके अपनी-अपनी सेनाके साथ अपने-अपने देश तथा नगरकी ओर चल दिये । परिवार सहित सुग्रीव आदि जानरोंको रखनेके वास्ते बहुतसे भवन देकर अपने यहाँ रक्खा और कहा कि अश्वमेध यज्ञके पश्चात् तुम लोगोंको विदा करेंगे । बादमें श्रीरामने अपने नगरमें विद्वोरा पिटवाकर कहला दिया कि आजसे लेकर मेरे नगरवासियों तथा अन्य यात्री लोगोंको अलग भोजन बनाकर नहीं खाना चाहिये । सब लोग तबतक हमारे भोजनाल्यमें भोजन करें, जब तक कि मैं भूमिपर राज्य करूँ । हाँ, जो गृहस्थाश्रमी हों, भले ही अपने-अपने घरोंमें भक्तिपूर्वक सुखसे भोजन बनाएँ । उनके लिये मेरा आग्रह नहीं है ॥ ५१-५२ ॥ यह आज्ञा देकर राम सीताके साथ सुखपूर्वक रहने लगे । तबसे अयोध्या नगरीमें घर-घर वेदध्वनि होने लगी ॥ ५९ ॥ मंगलगान होने लगे, सोत्साह वारांगनाओंका नृत्य होने लगा तथा पुराणपाठ और हरिकथाएँ होने लगीं ॥ ६० ॥ प्रकार बहु समस्त पुरी आनन्दित हो उठी । हे शिष्य ! मैंने तुमको भली भाँति उत्तम यात्राकाण्ड सुनाया ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य इस यात्राकाण्डको भक्तिपूर्वक श्रवण करेगा, उसे समस्त यात्रायें करनेका फल प्राप्त होगा । यदि मनुष्य यात्रामें जानेके समय अथवा घन कमानेके लिये जाते समय इसको सुनकर जाय तो वह सुखपूर्वक और कृतार्थ होकर लौटेगा । यदि मनुष्यने ब्रह्महत्यादि जैसे घोर पाप किये हों तो वे भी इसकी सुननेसे दूर हो जाते हैं और प्राणी शुद्ध हो है । तीर्थोंकी यात्रा करनेसे जो फल होता है, वह इस यात्राकाण्डको पढ़ने तथा सुननेसे प्राप्त हो जाता है । धनकी इच्छावालेको धन और कामकी इच्छावालेको काम मिलता है ॥ ६२-६५ ॥ इस

पापी पुनो भवेत्तद्यो यत्राकाण्डश्रवादिना । यः कश्चिन्प्रातर्कृत्याय कृतशीघ्रविधिर्नरः ॥६६॥
 तीर्थानां च नरं काण्डमिदं पुण्यं पठिष्यति । तस्य रामश्च संतुष्टः पूरयिष्यति वाञ्छितम् ॥६७॥
 सर्वतीर्थावगाहस्य फलं तस्य भवेद्भुवम् । यानि कानि ॥ पापानि जन्मांतरकृतानि च ॥६८॥
 तानि सर्वाणि नश्यन्ति यात्राकाण्डश्रवादिना ॥६९॥

इति श्रीमत्कोटिरामचरितांतर्गतश्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यात्राकाण्डे
 रामोत्तरयात्रा-नगरप्रवेशो नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

यात्राकाण्डे च सर्गा वै नव प्रोक्ता मनोविधिः ।

पंचविंशोत्तराः सप्तशतश्लोका भवापहाः ॥ १ ॥

काण्डको सुननेसे पापी पुनः भी पवित्र हो जाता ॥ १ ॥ जो प्राणी प्रातःकाल उठ तथा स्नानादि करके इस पवित्र यात्राकाण्डको पढ़ेगा तो श्रीरामकी अनुकम्पासे उसके सब मनोरथ पूरे होंगे ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ उसे ॥ तीर्थोंकी यात्राका फल मिलेगा । जन्म-जन्मान्तरके जो कुछ पाप होंगे, ॥ सब इस यात्राकाण्डको सुननेसे नष्ट ॥ हो जायेंगे ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ इति श्रीमत्कोटिरामचरितांतर्गतश्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यात्राकाण्डे पंच राम-तेजपांढेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकायां रामोत्तरयात्रा-नगरप्रवेशो नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

॥ यात्राकाण्डमें नौ सर्ग और नवमयको दूर करनेवाले ७३५ सात सौ पंतीस श्लोक कहे गये हैं ॥ १ ॥

* इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डं समाप्तम् ॥

श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु



श्रीरामचन्द्रो विजयतेराम्

श्रीबालमीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं

आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ऽऽहया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

यागकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

(अश्वमेध यज्ञके लिए सामग्री एकत्र करनेका निर्देश)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः समामन्त्रे एकदा गुरुमग्रवीत् । कुम्भोदरमुनेर्वाक्यात्तीर्थयात्रां मया कृता ॥ १ ॥
इदानीं तस्य वाक्येन वाजिमेषं करोम्यहम् । यज्ञोपकारणानि त्वं लक्ष्मणाय वदस्व हि ॥ २ ॥
सुमुहूर्ते शुभे लग्ने इयामकर्णाधिपुच्छकः । तुरङ्गो दिव्यवस्त्रार्चैर्भूषितत्वा विमुच्यताम् ॥ ३ ॥
पृथ्वीप्रदक्षिणार्थं हि तत्पृष्ठेऽयुतसंख्यया । सेनया सह शत्रुघ्नः सुमंत्रेण सदाचिरात् ॥ ४ ॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा वसिष्ठो मुनिसख्यमः । ज्योतिर्वित्सद्वितो दृष्ट्वा सुमुहूर्तं शुभोदयम् ॥ ५ ॥
आज्ञापयत्स सौमित्रिं सभायां राजसन्निधौ । सौमित्रेऽद्यदिनाज्ज्ञेयो मुहूर्तः सममेऽहनि ॥ ६ ॥
दीक्षार्थं रामचन्द्रस्य वाजिमेषाख्यकर्मणि । रामतीर्थे यज्ञभूमिः शोभनीया हलादिभिः ॥ ७ ॥
सुवर्णनिर्मितैर्दिव्यैर्माक्षणैः सह सत्वरम् । दशकोशमिताभ्योऽप्यावहिः सर्वत्र लक्ष्मण ॥ ८ ॥
समा कर्करहीना तु लिप्ता चन्दनजातिभिः । मण्डपश्च विधातव्यः सर्वत्रासृण्डितः शुभः ॥ ९ ॥

श्रीरामदासने कहा । इसके अनन्तर एक दिन सभामें रामचन्द्रजी गुरु वसिष्ठसे कहने लगे—हे गुने ! कुम्भोदर ऋषिके कथनानुसार मैंने तीर्थयात्रा की । अब उन्हींकी बातसे मैं अश्वमेध यज्ञ करना चाहता हूँ । यज्ञको जो-जो आवश्यक वस्तुएँ हों, कृपया आप लक्ष्मणको दीजिए ॥ १ ॥ २ ॥ किसी अच्छे मुहूर्त और शुभ लग्नमें स्वाम रङ्गवाले जिसके कान, पैर और पूँछ हों, ऐसे घोड़ेको सुन्दर वस्त्रों और आभूषणोंसे सुसज्जित करके पृथ्वीप्रदक्षिणाके लिए छोड़ा जाय ॥ ३ ॥ तदनन्तर यज्ञीय घोड़ेकी रक्षा करनेके लिए दस हजार सेनाके साथ सुमन्त और शत्रुघ्न प्रस्थान करें ॥ ४ ॥ रामचन्द्रजीको इन बातोंकी सुनकर वसिष्ठजीने ज्योतिषियोंके साथ अच्छे लग्न तथा अच्छे नक्षत्रसे संयुक्त एक वद्विष्यः मुहूर्त देखा और सभामें हूँ रामचन्द्रजीके सामने लक्ष्मणजीसे बोले—हे लक्ष्मण ! रामचन्द्रके यज्ञकी दोहा लेनेका शुभ मुहूर्त आजसे ठं क सातवें दिन ॥ ५ ॥ ६ ॥ सबसे पहला यह कि इस अश्वमेध यज्ञके लिए रामतीर्थका भूमि मुरजके बने हुए हलों द्वारा साहस्रणोंके साथ जोतकर शुद्ध की जाय । अयोध्याके चारों ओर दस कांस तककी जमीन परतालकर बराबर कर दी जाय और ऐसी साफ की जाय कि उसमें कहीं कुछ भी कङ्कड़-पत्थर न रहने

जम्बाम्रादिनगानां च आस्तामिः कुसुमैरपि । पल्लवैश्च विचित्रैश्च कदलीस्तम्भमण्डितः ॥१०॥
 समन्ततस्तोरणानि बन्धनीयानि यत्नतः । पुष्पहाराः फलादीनां मालाश्च विविधाः शुभाः ॥११॥
 वेद्यः सहस्रशः कार्याः सुघषा वेष्टकादिभिः । करणीयं महत्कुण्डं सत्साभिष्येन मृन्मयम् ॥१२॥
 कुंडोपरि महत् कार्यं गोमुखं च मनोरमम् । खदिरस्य विचित्रं हि वसोर्धारायमुत्तमम् ॥१३॥
 सितरक्तासितैश्च नीलपीतादिभिः शुभैः । नानादृषदूर्णैश्च पुष्पधातुविनिर्मितैः ॥१४॥
 ननावर्णैर्विलेख्यानि स्वस्तिकानि समन्ततः । कमलानि विचित्राणि तथा अष्टदलानि च ॥१५॥
 शङ्खचक्रगदापद्मवल्लभश्च सहस्रशः । कुसुमानि विकीर्याणि यशभूम्यां समन्ततः ॥१६॥
 चतुर्विंशच्छुभाः कार्या यज्ञस्तम्भा महोन्निवृत्ताः । विनिर्मिताः सुवर्णेन युक्ताहारविगुंफिताः ॥१७॥
 त्रितयं सर्वतोभद्रं कुण्डमध्येऽभ्यर्चयन् । लेखनीयं तथा कुंडं नानावर्णैर्विचित्रितम् ॥१८॥
 द्रुतं कार्याणि पात्राणि यशार्थं पश्यतः । हैमाः किलोपकरणा वरुणस्य यथाऽध्वरे ॥१९॥
 आसनानि श्रुपीणां च निद्रार्थं च सहस्रशः । वासोगेहानि कार्याणि तूर्णैः पर्वैश्च स्वर्परीः ॥२०॥
 पाकशाला विधातव्या कार्या शालाऽश्ननस्य च । ऋषिशाला विधातव्याः स्त्रीशालाश्च शुभावहाः ॥२१॥
 यज्ञोपकरणानां च शाला परमसुन्दरी । सभाः कार्या नृपाणां वरवस्त्रैर्विचित्रिताः ॥२२॥
 आसनार्थं महार्हाणि वस्त्राणि च समन्ततः । आस्तीर्याणि तथा राजपृष्ठभागाश्रयाणि च ॥२३॥
 पश्चिपिच्छैः सुकार्पासमेदैः सम्पूरितानि हि । कश्चिपूषर्हणानि विचित्राणि महान्ति च ॥२४॥
 स्थापनीयानि सदसि महार्हाणि तु लक्ष्मण । स्थापनीयानि यानार्थं पात्राणि विविधानि च ॥२५॥
 नानारसैः पूरितानि तथा पक्वफलादिभिः । नानासुगन्धद्रव्यैश्च तर्पणानाविधैरपि ॥२६॥

पायें । फिर केसर-चन्दनसे स्त्रीपकर वह भूमि पवित्र करनी होगी । भूमिपर ऐसे मण्डप बनाये जायें, जो सुन्दर हों और कहींसे कटे-फटे न हों ॥ ७-९ ॥ जामुन-आम आदि वृक्षोंकी शाखाओं तथा फूलों-पत्तोंसे खूब अच्छी तरह सजाकर केलेके क्षम्भोंके फाटक बनाये जायें और मण्डपके चारों ओर फूलों और फलोंकी मालाएँ लटकाई जायें ॥ १० ॥ ११ ॥ मण्डपके भीतर ईंट और धुनेकी पक्की जोड़ाई करके एक हजार वेदियाँ बनवायी जायें । वहाँ ही मिट्टीका एक बड़ा चारी कुण्ड बनाया । लेकिन वह अपने सामने बनवाऊँगा । कुण्डके ऊपर खैरकी लकड़ीका एक सुन्दर गोमुख बनाया जाय, जो वसोर्धाराके काममें आवेगा । सफेद, लाल, काले, नीले और पीले पत्थरोंका चूर्ण तथा उपधातु (गेरु-गंधक आदि) के चूर्णसे जगह-जगह रङ्ग-बिरङ्गे स्वस्तिक लिखे जायें और अष्टदल कमल बनाये जायें ॥ १२-१५ ॥ जहाँ-तहाँ शंख, चक्र, गदा, पद्म तथा फूल-पत्तियोंकी चित्रकारी की जाय ॥ १६ ॥ सोनेके धौवोष्ठ यज्ञस्तम्भ बनाये जायें, जो खूब ऊँचे हों और उनपर मोती-माणिक आदिका काम किया गया हो । कुण्डके पास अभ्यवेवताके निमित्त सर्वतोभद्र जाय और वेदीके चारों ओर अच्छे-अच्छे चित्र बनाये जायें । यज्ञके लिए जितने पात्रोंकी होगी, वे मेरे सामने बनाये जायेंगे । प्रायः वे सब पात्र सोनेके होंगे, जैसे वरुणदेवके यज्ञमें वे ॥ १७-१९ ॥ ऋषियोंको बैठने और सोनेके लिए पक्के, लपड़ोंके अथवा छप्परोंके हजार घर तैयार करने होंगे ॥ २० ॥ मण्डपकी एक ओर (रसोईघर) रहेगी, दूसरी ओर भक्षणशाला (भोजनभवन), तीसरी ओर ऋषिशाला (मुनियोंके ठहरनेकी जगह) और एक ओर सुन्दर स्त्रीशाला (स्त्रियोंके रहनेकी जगह) बनेगी ॥ २१ ॥ एक बड़ा-सा और सुन्दर मकान यज्ञकी सब सामग्रियों रखनेके लिए बनेगा । अच्छे-अच्छे कपड़ोंसे सजाकर राजाओंके लिए कई महफिलें बनायी जायेंगी । बैठनेके लिए वहियार-वहिया कालीन-गालीचे आवि मँगाकर बिछाये जायेंगे । पश्चिमोंके पख्तनी या रुईसे भरी कितनी ही सुन्दर तकियायें राजाओंको लगानेके लिए रक्खी जायेंगी । सबको जल पीनेके लिए विविध प्रकारके पात्र रक्खे जायेंगे ॥ २२-२४ ॥ सभाभवनमें जल पीनेके लिए सुन्दर तथा बहुमूल्य बर्तन रक्खे जायेंगे । कितने ही पके हुए फलोंके घरबतसे भरे

मद्यैर्विचित्रैर्मधुरैस्तथा मादकवस्तुभिः । नानासुगंधतैश्च काचकुम्भाः सहस्रशः ॥२७॥
 स्थापनीयाश्चन्दनैश्च सुगंधैरक्षतादिभिः । नानोपस्करयुक्तानां ताम्बूलानां सहस्रशः ॥२८॥
 स्थापनीयानि पात्राणि चामराणि सहस्रशः । व्यञ्जनानि विचित्राणि तथादर्शा विचित्रिताः ॥२९॥
 स्थापनीयाश्च क्रीडार्थं क्रीडोपकरणानि च । स्थापनीयानि सदसि नृपाणां चित्रितानि च ॥३०॥
 मृत्पात्रसम्भवाः कार्याः शतशः पुष्पवाटिकाः । जलयंत्राणि कार्याणि सर्वत्र विविधानि ॥३१॥
 नानाविचित्रवर्णानां वयतां पञ्चशः शुभाः । हेमरत्नमौक्तिकैश्च प्रवालैर्बभ्रुवैर्वरैः ॥३२॥
 कमनीयाश्च भूषामिस्त्रोयाश्चाद्यैः प्रपूरिताः । बंधनीया मंडपेषु नर्तितव्योऽप्सरोगणः ॥३३॥
 धूपयंतु सुधूपाश्च सुगायंतु हि गायकाः । वादनीयानि वाद्यानि बहूनि विविधानि च ॥३४॥
 पूजोपकरणाद्यैश्च पात्राणि पूरितानि हि । पृथक् पृथक् समास्वेव स्थापनीयानि लक्ष्मण ॥३५॥
 तथा ऋषिसभायां तु दर्भाश्च समिधस्तथा । दण्डाः कमण्डलुयुताः स्थापनीयाः सहस्रशः ॥३६॥
 बहिर्वासांश्च क्रीडीनान् वस्त्रकलान्यजिनानि च । पूजाद्रव्याणि हव्यानि जलकुम्भाः सहस्रशः ॥३७॥
 शौचार्थं मृत्तिकाः शुद्धा दंतकाष्ठानि पादुकाः । मरिका मुखशुद्ध्यर्थं नानावस्तूनि कल्पय ॥३८॥
 तथा नारीसभायां तु पूजापात्राण्यनेकशः । सौभाग्यद्रव्यपूर्णानि सुगंधैः पूरितान्यपि ॥३९॥
 वायनानि विचित्राणि स्थापनीयानि लक्ष्मण । कवर्पः कज्जलानां च पात्राणि कुंकुमानि ॥४०॥
 करंडस्थानिरम्याणि भूषणान्युज्ज्वलानि च । हरिद्रादीनि वस्तूनि कंचुकयो वसनानि च ॥४१॥
 स्थापनीयानि व्यञ्जनचामरादीनि सादरम् । सुहृदां लेखनीयादि पत्राणि ॥ समंततः ॥४२॥

हृदय-वड़े-वड़े कंडाल वहाँ उपस्थित रहें । अनेक प्रकारके दण्ड, गुलाबजल, केवड़ाजल, कस्तूरी और केहरका चन्दन सबको लगानेके लिए तैयार रखना चाहिए ॥ २४ ॥ २५ ॥ विचित्र प्रकारके स्वादिष्ट मद्य तथा अनेक मादक वस्तुएँ जुटाई जायें । बहुत किस्मके सुगन्धित तेलोंसे भरे हुए काँचके हजारों घड़े सदा तैयार रहें । बहुतसे वर्तनोंमें सुगन्धित चन्दन और अक्षत रखे रहें । विविध सामग्रियोंके हजारों तस्तूरियोंमें पानके बीड़े लगा-लगाकर रखे जायें ॥ २७ ॥ २८ ॥ हजारों चमर हाँकनेके लिए मँग लेने चाहियें । खानेके लिए तरह-तरहके पकवान सार्वदा तैयार रहें । भूँह देखनेके लिए अच्छे-अच्छे दर्पण मँगवा लिये जायें । खेलनेके लिए जितनी भी सामग्रियाँ हो सकें, मँगवाकर रख ली जायें । देश-विदेशके राजाओंके चित्र मँगवाकर सभाभवनमें चारों ओर टाँग दिये जायें ॥ २९ ॥ ३० ॥ बहुतसे फूलोंके गमले मँगवाकर वहाँ-रखे जायें । थोड़ी-थोड़ी दूधपर हजारों कोहारे बनाये जायें, जिनसे सदा जलकी धारा बहती रहे । लाल, पीले, हरे तथा बैंगनी आदि रङ्गोंवाले पक्षियोंके पिंजड़े लाकर मण्डपमें चारों ओर लटका दिये जायें और हीरा, मोती, पन्ना और धूँगा आदिके जड़ाऊ वस्त्रों द्वारा वे सजाये जायें ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ पिंजड़ोंमें उन पक्षियोंके भोजन करनेकी सब सामग्री भरी रहे । वहाँपर नाचनेके लिए सुन्दर-सुन्दर बेश्यायें बुलायो जायें । धूप देनेवाले लोग सुगन्धित धूप देनेके लिए नियुक्त किये जायें । गानेवाले गाना गायें और बजानेवाले विविध प्रकारके बाजे बजायें ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ सब राजसभाओंमें अलग-अलग पूजन करनेकी सामग्रियोंसे पूर्ण वर्तन रखे रहें । ऋषिसभाओंके लिए कुशा, दण्ड, कमण्डलु तथा इमिषाका विशेष प्रबन्ध रहे । ऊपर रहनेके लिये वस्त्र और नीचे पहननेके लिये क्रीडीन, वस्त्रकल वस्त्र, मृगचर्म, पूजनकी सब सामग्रियाँ, हवन करनेकी सब वस्तुएँ, जलसे भरे हुए हजारों घड़े आदि वहाँपर लाकर रखे जायें । हाथ पवित्र करनेके लिए शुद्ध मृत्तिका, दातीन, सड़ाऊ तथा मुखशुद्धिके लिये बहुतसे मंजन आदि वहाँपर रखे रहें ॥ ३५-३६ ॥ इसी तरह नारीसभामें भी पूजाके बहुतसे पात्र रहने चाहियें । सोहागके लिये शुभसूचक रोली-सैंदुर आदि सुगन्धित वस्तुयें रखी रहें । सुन्दर दर्पण लाकर रखे जायें । कागजके कुमकुमभरे वर्तन आदि भी वहाँ उपस्थित रहें ॥ ३९ ॥ ४० ॥ बहुत-सी वाँसकी बनी हुई सन्तूकोंमें सुन्दर और धमधमाते हुए शामूषण रखे रहें । हल्दी-रोली आदि बीजे और कंचुकी आदि वस्त्र लाकर रखे जायें । पंखे और धमरादिक

गममुद्राङ्कितान्यथ तथा दूता महाजयाः । जनकाय प्रेषणीयाः कैकेयनृपसन्निधौ ॥४३॥
 ॐ नमोऽस्तुः शुभेवायाः पितरौ प्रणि लक्ष्मण । श्यामाङ्घ्रिः श्यामकर्णश्च श्यामपुच्छः सितः शुभः ॥४४॥
 महाहर्षभर्षणैर्वर्चैर्दिव्ययोगमनेन च । शोभनीयश्चामर्गार्थमुक्ताहारमनोरमैः ॥४५॥
 हार्माभिः शृङ्खलाभिश्च वेणीबंधविभूषणैः । तस्य भाले हेमपत्रे लेखनोयं स्फुटाक्षरैः ॥४६॥
 कोमलेन्द्रस्य रामस्य यक्षागतुर्गो शयम् । ज्ञेयः सर्वैर्नृपैर्मुक्तः कर्तुं भूम्याः प्रदक्षिणाम् ॥४७॥
 यस्यास्ति मार्ग तेनाशो बंधनायोऽयमुत्तमः । नोचेन् कोक्षाश्च निजान्न पुरस्कृत्य बलैः सह ॥४८॥
 श्वकुटुम्भनागैश्च तथा जानपदैः सह । आगन्तव्यं नृपतिभिर्भक्षांशालुव्रतिभिः ॥४९॥
 यज्ञभूमिमयोध्यायां युद्धैर्जित्वा महोद्वान् । एवं यत्र बंधयित्वा मुक्तमणिविचित्रितैः ॥५०॥
 अवनमैः शोभयित्वा सिद्धः कार्यश्च मंडपे । सिद्धः कार्यः शत्रुघ्नः सैन्येन परिवेष्टितः ॥५१॥
 श्यामहोऽश्वगृह्यं सुमंत्रेण समन्वितः । नानागुण्यनदीनां च जलकुंभान् सहस्रशः ॥५२॥
 नातादद्यान्मुदश्चापि शत्रुघ्नेनानयन् हि । शोभनीयां पुरीं रम्यां पताकाध्वजतोरणैः ॥५३॥
 देवालयं गुहां देवा तथा प्रासादमस्तके । देवालयार्थतरेऽथ चित्रशाला मनोरमाः ॥५४॥
 लेखनीया विभानन्या रत्नदीपाः सर्वत्र हि । पूजोपकरणादीनि प्रतिदेवालयेष्वपि ॥५५॥
 श्यामस्य समस्तानि वाद्यान्याह्वयस्त्र भोः । राजमार्गाः शोधनीयाः सेचनीयाश्च चदनैः ॥५६॥
 सौधराजिषु सर्वत्र चित्राणि विविधानि च । लेखनीयानि रम्याणि मुक्ताहाराः समंततः ॥५७॥
 प्रवालमणिर्वैद्यैकऽमीरस्कटिकादिभिः । नानाविधाश्च कुसुमैर्हाराः पक्कफलादिभिः ॥५८॥
 बंधनीयाश्च सर्वत्र जालरश्मिर्विज्ञेयतः । एवं यद्यन्मया प्रोक्तं तत्कुरुष्वविचारतः ॥५९॥

न्याकर रक्ते जाय और अपने मित्रोंकी आयी हुई चिट्ठियां पढ़कर वहां रक्ता रहें ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ आज
 ही रामचन्द्रजीका नुहुर लगा हुआ पत्र लेकर दूत मिथिलेश जनक, जिसका तथा कैकेय आदि राजाओंके
 पास जायें । तदनन्तर श्याम पुच्छ तथा श्याम पैरवाले घोड़ेको ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ बहुमूल्य वस्त्रों और आभूषणोंसे
 राजाका जाय । उसे मोतेकी जंजीरें और वेणीबंध आदि पहने पहनाने जायें । एक मुखर्षपत्रपर ये बातें
 अधरगोम लिखकर बाँडेका माथेपर बाँध दिया जाय—॥ ४५ ॥ ४६ ॥ “कोसलेन्द्र महाराज रामचन्द्रका यह
 यज्ञान घोड़ा भूमिका प्रदक्षिणा करनेके लिए छोड़ा गया है । सब देश-देशान्तरके राजाओंको ज्ञात हो कि
 जिसमें बल हो, वह इस सुन्दर घोड़ेको बाँध ले । नहीं तो अपने देशवासियों, अपनी सेना तथा कुटुम्बियोंके
 साथ बाँडेके पीछे-पीछे चलता हुआ हमारी यज्ञभूमि अर्थात् अयोध्यामें आकर मुझसे मिले” ॥ ४७-४९ ॥
 इस आज्ञाका पत्र लटकाया जाय । रास्तेमें जो जो उट्टण्ड राज मिले, उनमें मुठ कर-करके उन्हें परास्त कि
 जाय । अनेक प्रकारके शाङ्कफलस आदिसे सजा करके एक सिद्धमंडप बनाया जाय । इसके अनन्तर
 अपनी पूरी सेनाके साथ शत्रुघ्नजी सुमन्त्रको साथ लिये हुए घोड़ेपर सवार होकर उस यज्ञोय घोड़ेकी रक्षा
 करनेके लिए प्रस्थान करें । उसके पश्चात् बहुत-सी पवित्र नदियोंकी मृत्तिका और हजारों घड़ोंमें जल
 भर-भरकर शत्रुघ्नजीके द्वारा मंगवाया जाय ॥ ५०-५२ ॥ अयोध्यामें जितने भी देवालय हों, उन सबको
 चुनेसे पुतवाया जाय । मकानोंकी भी सफाई की जाय । देवाल्योंके भीतर प्रकारको चित्रकारियां
 जायें । हर एक देवालयमें हर रोज पूजन करनेकी सामग्रियां भेजी जाय ॥ ५३-५५ ॥ हे लक्ष्मणजी ।
 आज ही आप सब प्रकारके बाजे मगाकर रखनेकी आज्ञा दे दीजिए । अयोध्याके राजमार्ग खूब अच्छी
 तरह साफ किये जायें और उनपर चन्दनका छिड़काव किया जाय । राजमार्गके सब बड़े-बड़े महलोंकी
 दावारोंपर विविध प्रकारके चित्र बनानेकी दे दी जाय । जगह-जगहपर भोतियोंकी मालायें लटकायी
 जाय ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ प्रवालमणि, वैदूर्यमणि, काश्मीर और स्कटिकादि मणियोंकी मालायें, फूलोंकी मालायें
 तथा पके फलोंकी मालायें हर एक मकानोंपर लटकाई जायें । इस प्रकार मैंने जो कुछ बतलाया है, उसे कर

तद्गुरोर्वचनं श्रुत्वा तथेन्पुक्त्वा म लक्ष्मणः । कारयामास नत्सर्वं गुणैर्वाक्याच्छताधिकम् । ६० ॥

इति श्रीमत्कोटिरामचरितान्तर्गतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यागकाण्डे

यागोपकरणनिवेदनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः

(यज्ञमें सावधानी रखनेके लिए रामका लक्ष्मणको आदेश)

श्रीरामदाम उवाच

अथ रामः ससीतस्तु मुहुर्न मममेऽहनि । नवनीतोद्धर्तनाद्यैः स्नात्वा कृत्वाजनादिकम् ॥ १ ॥
तूर्यनादैर्द्विजानां च वेदघोषैर्विशेषतः । पौरसीमां गायनेश्च पौराणां च जयस्वनैः ॥ २ ॥
आगत्य मंडपे रम्ये तस्थौ चित्रासनोपरि । ददौ कौशेयवस्त्राणि गुरुं रामस्त्वकन्धतोम् ॥ ३ ॥
पौरांश्च पौरपत्नींश्च मातृश्चाथ सुवामिनीः । श्वश्रूणांश्च द्विजान् सर्वान् जनकं मुहुदस्तथा ॥ ४ ॥
बंधूश्च बंधुपत्नींश्च वयस्यांश्च ततः परम् । मंत्रिगणश्चाथ वीरांश्च दामदामीजनान्स्तथा ॥ ५ ॥
नटनर्तकबंधादीन् वारस्त्रांश्च ततः परम् । आचांडालादिकान् दद्यात् ततः सीतां ददौ वरम् ॥ ६ ॥
हेमतन्तुसमुद्भूतं मुक्तामाणिक्यमुंफितम् । रत्नकाश्मिरनीलाद्यैर्मध्ये मध्ये विचित्रितम् ॥ ७ ॥
मुक्ताप्रवालघोषार्घर्मणिभिः सर्वतो वृतम् । आदर्शविम्बसदृशं विद्युत्तेजोयमं महत् ॥ ८ ॥
ततः स्वयं रामचन्द्रः पौनःकौशेयमुत्तमम् । हेमतत्त्वं कितं नानावल्लीपुष्पाविचित्रितम् ॥ ९ ॥
दधारान्यत्तत्तरीयं वासोऽलंकारमंडितः । व्यंजिताशेषमात्रश्रीर्मणिद्वयविराजितः ॥ १० ॥
केयूरकुण्डलैर्मृकाहारैश्च कटर्कयुतः । ततो वसिष्ठवर्यस्त मुक्तानां स्वस्तिकोपरि ॥ ११ ॥
निवेश्य राघवः सीतामाहूय बहुर्कनिर्ज्वः । निवेश्य रामदामागे मुनिभिः परिवेष्टितः ॥ १२ ॥
रामेण कारयामास विघ्नेश्वादिप्रपूजनम् । पुण्याहादित्रयं चापि ददौ दीक्षां ततस्तयोः ॥ १३ ॥

भावो । तुम उनके विषयमें कुछ मत सोचो-विचारो । ■ स्वयं सब सोच लिया है । इस प्रकार गुरुवरकी आज्ञा पाकर लक्ष्मणने सिर मुकाकर स्वीकार किया और सब काम उससे भी सौगुना बढ़-बढ़कर किया, जैसा कि गुरु वसिष्ठजीने कहा था ॥ ५८-६० ॥ इति श्रीमत्कोटिरामचरितांतर्गतं श्रीमदानन्दरामायणे यागकाण्डे भाषा-टीकायां यागोपकरणनिवेदनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीरामदासने कहा — इसके ■ सातवें दिन सीताजीके साथ-साथ रामचन्द्रने भक्तजन आदिका उबटन लगाकर स्नान किया, अंजन लगाया और तुड़ही आदि बाजों, वेदमंत्रों, नगरकी स्त्रियोंके गंताओं और पुरवासियोंकी जयछत्रिके साथ ॥ १ ॥ २ ॥ आकर उस सुन्दर मंडपमें एक चित्रासनपर बैठे । तब गुरु वसिष्ठ तथा अकन्धतीको उन्होंने सुन्दर-सुन्दर रेशमी वस्त्र दिये । इसके अनन्तर पुरवासियोंको, पुरवासिनी नारियोंको, भ्राता-ओंको, बंधुओंको, साधुओंको, नगरनिवासी सब विप्रोंको, मित्रोंको, बान्धवोंको, परिवारके लोगोंको, बान्धवोंकी, नारियोंको, समवयस्क मित्रोंको, मंत्रियोंको, सेनापतियोंको, सैनिकोंको, दास-दासियोंको, ॥ ३-५ ॥ नटों-नर्तकोंको, बन्दीजनोंको, वेश्याओंको और चाण्डालसे लेकर ऊँच जाति तकके प्रत्येक मनुष्यको अच्छे-अच्छे कपड़े देकर जिसमें सुनहले तारका ■ बना हुआ था, मोती-माणिक आदिके भुज्जे चारों ओर लटक रहे थे, ऐसे नीलम तथा पुस्तराज आदि मणियोंसे सुसज्जित एक सुन्दर वस्त्र सीताजीको दिया ॥ ६ ॥ ७ ॥ तब दर्पणकी तरह चमकती हुई एवं विजलोकी तरह जिसमें तेज था और सुवर्णके तारका जगह-जगह बेल-बूटा बना हुआ था, ऐसे एक वस्त्रको लेकर रामचन्द्रजीने स्वयं पहिना ॥ ८ ॥ ९ ॥ ऊपरसे एक उपरना धारण किया । तरह-तरहके आभूषण पहने । जब रामचन्द्रजीके कानोंमें कुण्डल झूलने लगे, मोतीकी मालाएँ गलेमें पड़ गयीं और हाथोंके सब गहने हाथोंमें पहन लिये गये । ■ वसिष्ठजीने मोतियोंके चौकके ऊपर रामचन्द्रजी ■

ध्वजारोपविधानेन स्थापयित्वा ध्वजारोपमान् । रामेण वरयामास गुरुः षोडश ऋत्विजः ॥१४॥
 वामपुस्तत्र सज्जतोऽध्वर्युः सकलकर्मावत् । ब्रह्माऽभूच्च स्वयं ब्रह्मा होता गाधिसुतो ह्यभूत् ॥१५॥
 उद्गाताऽभूच्छतानदो गुरुर्यो जनकस्य च । यमो बभूव शमिता कश्यपाद्या मुनीधराः ॥१६॥
 वृणीता राजिप्रेधं हि राघवेण महान्मना । ऋत्विजः षोडश शुभास्तथाऽन्ये सप्तकर्मसु ॥१७॥
 पृथक् पृथक् संवृणीताः शतशस्ते मुनीधराः । कुण्डेऽग्निस्थापनं कृत्वा पात्राण्यासाद्य विस्तारात् ॥१८॥
 इषामकर्णं अयित्वा मोचयाग्राम भूतले । मध्यं प्रदक्षिणां कर्तुं तस्य संरक्षणाय हि ॥१९॥
 स्थाकूर्धं मुमंत्रेण सैन्येनायुतसंख्यया । शत्रुघ्नं प्रेषयित्वाऽथ तूर्णीं तस्थौ दिर्जगुरुः ॥२०॥
 यज्ञवाटे मुनिगणापुरिते मरयूनटे । रामोऽपि सीतया तूर्णीं तस्थौ मृण्वन् कथाः शुभाः ॥
 कृष्णाजिनधरो दांतः कुशपाणिः कृतोचितः । कोटिद्युर्मप्रतीकाग्रस्तस्थौ स गुरुमजिधौ ॥२२॥
 तदाभायां प्रवृत्तायां भ्रातरः पुष्करस्रजः । स्नाताः सुवासनः सर्वे रेजिरे सुष्ठुवलंकृताः ॥२३॥
 तन्महिष्यश्च मुदिता निष्ककंठ्यः सुवाससः । दीप्ताशालामुपाजग्मुश्चालिता वस्तुपाणयः ॥२४॥
 गदा निनेदुवाधानि नवतुवार्योपितः । एतस्मिन्नन्तरे तत्र समायाता मुनीधराः ॥२५॥
 दिने दिनेऽश्वमेधस्य वार्तां श्रुत्वा महस्वशः । कश्यपोऽग्निभरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ गौतमः ॥२६॥
 मार्कण्डेयो मृकण्डश्च व्यवनो मुद्गलोऽसितः । जामदग्न्यो देवलश्च व्यासो नारायणः क्रतुः ॥२७॥
 विष्वाङ्को नारदश्च तुम्बुरुर्गालवो मुनिः । शिवदासो भानुदासो हरिदासो महातपाः ॥२८॥
 शिववर्मा रुद्रवर्मा शिवशर्मा मुनाधरः । एकभृंगश्चतुःशृङ्गः सप्तशृङ्गश्चिभृङ्गकः ॥२९॥
 तिलभांडा भृगुर्ध्रुव मार्गवो वाक्पतिस्तथा । धौम्यः कण्वश्चैकपादस्त्रिपादश्चोर्ध्वशार्ङ्गकः ॥३०॥

सोताजीको बिठलाया और अपने शिष्यों ऋषियोंके साथ-साथ सबसे पहले रामचन्द्रजीके द्वारा गणेश-
 गौंसे आदिका पूजन तथा पुष्पाहुवाचन कराया और सीता तथा रामचन्द्रजीका यज्ञकी दीक्षा दी । ध्वजारोपणकी
 जा विधि होता है, उसके अनुसार ध्वजारोपण और रामचन्द्रजीके द्वारा सोलह ऋत्विजोंका वरण कराया
 ॥ १०-१४ ॥ सम्पूर्ण कर्मोंके जाता वसिष्ठ स्वयं अध्वर्यु बने । स्वर सह्याजी प्रह्लाद बने और होता बने
 विश्वामित्रजी । सतानन्द उद्गाता बने, जो जनकजीके गुरु थे । इसके अनन्तर कश्यपादि मुनियोंको राम-
 चन्द्रजीने ऋत्विक् बनाकर किया ॥ १५-१७ ॥ इनके अतिरिक्त संकटों ऋषियोंका रामचन्द्रजीने
 बग्यान्व कायोंका करनेके लिए वरण किया । उन सबने यथासमय कुण्डमें अग्निरस्थापन करके यज्ञके वात्रोंको अपने-
 अपने स्थानपर रखवा, विधिपूर्वक इषामकर्ण धोड़ेका पूजन कराया और पृथ्वीकी दक्षिणावर्त परिक्रमा करनेके
 लिए उसे छाड़ दिया ॥ १८ ॥ १९ ॥ उसकी रक्षाके लिए मुमन्तके साथ शत्रुघ्नजी भेजकर भगवान् रामचन्द्रजी
 अपने गुरुजनोंके पास चुपचाप जा बैठे । उस यज्ञभूमिमें जहाँ हजारों ऋषि आकर बैठे हुए थे,
 रामचन्द्रजी भी सोताजीके साथ एक किनारे बैठकर शुभ कथायें सुनने लगे । उस समय रामचन्द्रजी केवल कासे
 मृगका चर्म धारण किये और हाथमें कुशा लिये हुए एक साधारण वेषमें थे । फिर भी उनमें करोड़ों सूर्य-
 तेज था और वे गुरु वसिष्ठके बैठे थे ॥ २०-२२ ॥ यज्ञकी दीक्षा हो जानेपर आता
 पुलको मालाये तथा अच्छे-अच्छे कपड़े पहने बहुत ही सुन्दर दीख पड़ते थे । उनकी स्त्रियां
 गलेमें सोनेके कण्ठे और शरीरमें सुन्दर वस्त्र पहने हंसती-खेलती अनेक वस्तुओंका उपहार दिये हुए उसी
 यज्ञशालामें आ पहुँचीं ॥ २३ ॥ २४ ॥ इसके अनन्तर बजे बजे और येषगारे नाचने लगीं । उसी समय
 बहुतसे ऋषिगण आ पहुँचे । अश्वमेध यज्ञकी खबर पाकर हजारों महर्षिगण आ-आकर एकत्रित होते आ
 रहे थे । जैसे—कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, मार्कण्डेय, मृकण्ड, व्यवन, मुद्गल, असित, जाम-
 दग्न्य, देवल, व्यास, नारायण, शत्रु, विष्वाङ्क, नारद, तुम्बुरु, गालव, शिवदास, भानुदास, महातपस्वी
 हरिदास, शिववर्मा, रुद्रवर्मा, मुनाधर शिवसर्मा, एकभृंग, त्रिशृङ्ग, चतुःशृङ्ग, सप्तशृङ्ग ॥ २५-२९ ॥ तिलभांड,

ऊर्ध्वपादोर्ध्वनेत्रोर्ध्वस्यस्त्रिशिरास्तथा । वृद्धगीतमनामाऽथ पर्णादश्चन्द्रसंशक्तः ॥३१॥
 ऋष्यशृंगो मतंगोऽथ जावालिः कुंभर्ममवः । दधीचिः शौनकः सूतः सुतीक्ष्णो लोमशस्तथा ॥३२॥
 वाल्मीकिश्चापि दुर्वासा मुनिर्वेदनिधिर्महान् । एते चान्ये च मुनयः स्त्राशिष्यतनयादिभिः ॥३३॥
 केचित्पर्णाशनाः केचिद्वायुभक्षास्तथाऽनरे । कुशाग्रजलपानाश्च केचित्पक्वाशनास्तथा ॥३४॥
 भिक्षाशनास्तथा केचित् परदसाशनाः परे । अयाश्चाग्रतिनः केचित्पक्वमंभाषणाः परे ॥३५॥
 केचिद्वल्कलसंवीताः केचित्कापायवस्त्रिणः । मृमचमंधराः केचित् केचिदाकाशवस्त्रिणः ॥३६॥
 वृक्षपल्लववस्त्राश्च केचित्पंचाग्निमाधकाः । धूम्रपानव्रताः केचित् केचित्पक्वपणाः परे ॥३७॥
 एवं नानावनारामगिरिदुर्गाश्रमादिषु । वासिनस्ते ममायाताः सदाश्च सवालकाः ॥३८॥
 सशिष्या रामचन्द्रस्य द्रष्टुं यज्ञोन्मत्तवग्म् । दशदिग्भ्यो मुनिश्रेष्ठाः कोटिशच दिने दिने ॥३९॥
 तान्सर्वान् समचंद्रोपि प्रत्युत्थानासनादिभिः । मधुपर्कादिपूजाभिस्तोषयामास सादरम् ॥४०॥
 यज्ञवाटे महारम्ये कामधेनुं रघूत्तमः । पूजयामास विधिवद्ब्रह्मसामरणेरपि ॥४१॥
 सुवर्णशृंगभूषाभिः किंकिणीन् पुगादिभिः । एवं तां शोभयित्वाऽथ प्रार्थयामास राघवः ॥४२॥
 धेनो सागरसंभूते त्वमग्नानि द्विजादिकान् । दातुमर्हस्यध्वरे मे प्रसीद जगदम्बिके ॥४३॥
 एवं संप्रार्थ्य तां कामधेनुं रामः प्रणम्य च । वचन् पाकशालायां पट्टकूलामनोपरि ॥४४॥
 अथ सा सुगमिस्तुष्टा पट्टमाग्नानि सादरात् । ददा जनकनन्दिन्य सा देवाध्वरकर्मणि ॥४५॥
 नाग्निकार्यं च तत्रासीत् पाकशालासु चैकदा । इच्छाशनैः सदा पुष्टा बभूवुर्मुनिसत्तमाः ॥४६॥

भृगु, भार्गव, बृहस्पति, षोडश, कण्व, एकपाद, त्रिपाद, ऊर्ध्वपाद, ऊर्ध्वनेत्र, ऊर्ध्वस्य, त्रिशिरा, वृद्धगीतम, पर्णाद, चन्द्रसंशक्त, ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ऋष्यशृंग, मतङ्ग, जावालि, अगस्त्य, दधीचि, शौनक, सूत, सुतीक्ष्ण, लोमश, वाल्मीकि, दुर्वासा, ये एवसे एक विद्वान् मुनिगण तथा और ■ कितने ही ऋषि अपने स्त्री-पुत्रों तथा शिष्योंके साथ आते जा रहे ■ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ उनमें बहुतसे ऐसे थे, जो केवल पत्तें खाकर रहते थे । कोई वायु पीकर रहते थे । कोई कुशाके अग्रभागमें जल लेकर पीते और उसीसे काल यापन कर रहे थे । कुछ ऐसे भी थे, जिन्होंने भोजनको त्याग ही दिया था ॥ ३४ ॥ कुछ ऋषि भिक्षाएँ खाते थे, कोई दूसरेके बताये भोजनको करते थे (अपने हाथसे ■ नहीं दूते थे) और कितने ही ऐसे थे, जो किसीसे माँगना पसन्द नहीं करते थे । कोई कोई तो किसीसे संभाषण ही नहीं करते थे ॥ ३५ ॥ कुछ मुनि बल्कल वस्त्र पहने हुए थे, कोई गेरुआ कपड़ा धारण किये थे, कोई मृमचमं पहने थे और कोई दिग्गम्बर (नंगे) ■ ॥ ३६ ॥ कुछ महर्षि वृक्षके पत्तोंसे शरीर ढँके हुए थे, कोई पञ्चाग्नि तापनेवाले थे, कोई धूम्रपान (गंजि और चरस) का द्रव लिये थे और कोई-कोई ऐसे थे, जिनकी सब प्रकारकी इच्छाएँ ममाप्त हो गयी थीं ॥ ३७ ॥ इसी प्रकार कितने ही जङ्गलों, बगीचों, पर्वतों, किलों और आश्रमोंके निवासी ऋषि अपनी स्त्री तथा वचबोकें साथ वहाँ आ पहुँचे थे ॥ ३८ ॥ रामचन्द्रके उस अभ्युदय व्रतको देखनेके लिए दसों दिशाओंसे करोड़ों ऋषि इसी तरह अपने शिष्यादिकोंके साथ वहाँ प्रतिदिन आ रहे थे । रामचन्द्र भी उनका प्रत्युत्थान, आसन, मधुपर्कादिकें पूजन तथा आदर करते थे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ उसी यज्ञभूमिमें रामचन्द्रजीने विविधपूर्वक अनेक वस्त्रों और आभूषणोंसे कामधेनुका पूजन किया । उसकी सींगें सोनेसे मढ़ाई तथा किंकिणी और नूपुर आदि पहनाये । इसी तरह उसको अलंकृत करके रामचन्द्रजीने प्रार्थना की— ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हे सौरसागरसे उत्पन्न होनेवाली कामधेनो ! तुम हमारे अतिथिरूपमें आये हुए साहज्योंको अन्नादिके दानसे तृप्त रखना । हे जगदम्बिके ! तुम मेरेपर प्रसन्न होओ ॥ ४३ ॥ इस प्रकार विनती करके एक गलीचा बिछाकर भोजनशाला (रसोईघर) में ले आकर कामधेनुको शोध दिया ॥ ४४ ॥ इसके पश्चात् उस सुरभीने प्रसन्न होकर आदरपूर्वक छहों रसके अन्न सीताको दिये । तबसे पाकशालामें न तो कोई मट्टी जलखी धी और न कोई पदार्थ बनाया जाता था । लेकिन

यान्यान्कामान् रामचन्द्रश्चिन्तयामास चेतसि । तांस्तानुभौ मणीं शीघ्रं कल्पयामासतुर्दुतम् ॥४७॥
 तथा सीताऽपि यान् कामाश्चिन्तयामास चेतसि । कामधेनुर्ददौ तांस्तान्छीघ्रं त्रैलोक्यदुर्लभान् ॥४८॥
 सर्वत्र यत्नवाटे हि द्विजार्थं समन्ततः । पंक्तिषु भूमिजार्दनां पन्विषणकर्मणि ॥४९॥
 स्त्रोणां कंकणनादश्च शुश्रूवे नृपुरध्वनिः । अध रामश्च सौमित्रिं समाहूयेदमन्वीत् ॥५०॥
 सीमाचारान्ममाह्वय मम वाक्याच्च मादरम् । आश्लेषयस्व शीघ्रं त्वं श्रासने यन्मपोच्यसे ॥५१॥
 ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थाश्रमी यतिः । यः कश्चिद्वा समायाति पथिकः स ममाज्ञया ॥५२॥
 निवाणीथो युष्माभिर्न कदाप्यध्वरे मम । ममाज्ञां न प्रतीक्ष्यं कोपः कार्यो न कस्यचित् ॥५३॥
 इति रामवचः श्रुत्वा तथेत्पुङ्गवा स लक्ष्मणः । सीमाचारान् समाह्वय राघवोक्तं न्यवेदयत् ॥५४॥
 ततो रामः पुनः प्राहः समाह्वयाथ लक्ष्मणम् । ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थाश्रमी यतिः ॥५५॥
 श्रुतीनां दयिता बालाः शिष्याः सम्बन्धिनस्तथा । पीरा जानपदस्थास्तु तेषां संचधिनः स्त्रियः ॥५६॥
 दामीदामजनाः सर्वे यद्यद्वाञ्छन्ति लक्ष्मण । मामपृष्ट्वा तु तत्तेषां दातव्यं ह्यविचारितम् ॥५७॥
 अन्यजावधि सर्वाह्नि तोषयध्वं निरन्तरम् । केषामभिलाषा च विफला हि विधीयताम् ॥५८॥
 अयोध्यां कामधेनुं च जानकीं कौस्तुभं मणिम् । चिन्तामणिं पुष्पकं च राज्यं कोशादिकं च मे ॥५९॥
 एतेष्वपि च यो यद् याचयिष्यति तत्त्वया । न दत्तं चेति वै श्रुत्वा ममानोपो भवेच्चयि ॥६०॥
 अतो ज्ञात्वा मयं मत्तो ददस्व ह्यविचारतः । याश्चामङ्गः कृतश्चेद्दि मच्छिरोहा भविष्यति ॥६१॥
 सदा स्मर गिरं मे त्वमिमां लक्ष्मण मादरम् । इति रामकृतां शिक्षामंगीकृत्य स लक्ष्मणः ॥६२॥

तथा चकार तत्सर्वं यथा रामेण शिक्षितम् ॥६३॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गतश्रीमदानन्दरामायणे पादकाण्डे

लक्ष्मणाज्ञाकरणं ॥ द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

वहाँपर जाये हुए सब ऋषि इच्छाभोजन कर-करके प्रसन्न हो रहे थे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ जिन-जिन वस्तुओंको राम-चन्द्रजीने अपने मनमें चाहा, उन सबको उनके दो मणियों (कौस्तुभमणि तथा चिन्तामणि) ने बातकी बातमें पूर्ण कर दिया ॥ ४७ ॥ इसी तरह साताजीने जो कुछ चाहा, सो कामधेनुने त्रैलोक्यकी दुर्लभ वस्तुओंको भी देकर उनको पूरी की । यज्ञभूमिके चारों ओर जब ब्राह्मणोंकी मण्डली भोजन करनेके लिए बैठी थी और स्त्रियाँ उनको भोजन परोसनेके लिए आती थीं, उनके भूषणोंका मंजुल ध्वनि सुनायी देती थी । इसके तदनन्तर रामचन्द्रजीने लक्ष्मणकी बुलाकर इस प्रकार समझाया— ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ हमारी यज्ञभूमिके आस-पास रहनेवाले निवासियोंको सादर बुलाकर हमारी तरफसे यह समझा दो कि आजसे लेकर जो कोई ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, सन्यासी, मुनियोंकी पत्नियाँ, उनके वध्वे, शिष्य, सम्बन्धी, पुरवासो, देशनिवासी और उनके सम्बन्धी, जो कोई यहाँ आ जाय, उसे कोई न रोके । उसका सत्कार करनेके लिए मेरी आज्ञाका प्रतीक्षा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है ॥ ५१—५३ ॥ रामचन्द्रजीकी आज्ञानुसार लक्ष्मणजीने सब आस-पासके निवासियोंको जाकर समझा दिया । कुछ देर बाद रामचन्द्रजीने फिर लक्ष्मणको बुलाकर कहा कि मुनियोंकी स्त्रियों तथा बच्चों आदिको अथवा दास-दासीगणको जिस किसी वस्तुकी आवश्यकता हो, बिना हमसे पूछे उनके इच्छानुसार देते जाओ ॥ ५४—५७ ॥ चाण्डालसे लेकर विप्रतक प्रत्येक प्राणीको सन्तुष्ट करो । किसीको किसी प्रकारका कष्ट न होने पाये । किसीकी कोई अभिलाषा विफल न हो । अयोध्या, कामधेनु, सीता, कौस्तुभमणि, पुष्पक विमान, राज्य तथा कोशादिक इन सब वस्तुओंको भी देनेसे यदि तुमने इनकार किया तो मैं तुम्हारे ऊपर बहुत नाराज होऊँगा । इसलिए मेरे क्रोधसे डरते हुए बिना किसी प्रकारका विचार किये सब अभ्यागतोंको उनकी अभिलषित वस्तुयें देते जाओ । तुम किसीकी माँग खाली करोगे तो मुझे मेरा सिर काटनेका पातक भोगेगा ॥ ५८—६१ ॥ हे लक्ष्मण ! सदा मेरी इन बातोंका कपाल

तृतीयः सर्गः

(रामके यक्षीय अश्वका मंत्र ओर घूमकर अयोध्या लौटना)

श्रीरामदास उवाच

अथ मुक्तस्तदा राज्ञी राघवेण महान्मना । यज्ञांगः श्यामकर्णः स पूर्वदेशं ययौ जवात् ॥१॥
 शत्रुघ्नेन च सैन्येन प्राप्तो भागीरथीतटम् । एतस्मिन्नन्तरे रामः स्वप्रतापं प्रदर्शयन् ॥२॥
 चकार कौतुकं तत्र शत्रुघ्नस्य पुगे महन । ब्रह्मावर्तं महादेशं त्यक्त्वा गङ्गातटं प्रति ॥३॥
 याचतप्राप्तः श्यामकर्णस्तावदासीद्वनैर्विना । गङ्गायां च महापूगे यत्र नौकाऽपि कुण्ठिता ॥४॥
 शत्रुघ्नेनापि तद्दृष्ट्वा कुण्ठितां गतिमीक्ष्य च । कालानिक्रममीत्या स निजचित्ते व्यचितयत् ॥५॥
 आदावेवापि मे विघ्नमुत्पन्नं गमने मडन् । प्राप्ते प्राथमिके यद्वन्मशिकापतनं तथा ॥६॥
 तर्हीदानीं रामचन्द्रप्रतापेनास्तु मे गतिः । निश्चिन्त्येत्थं स शत्रुघ्नो रथस्थो जाह्नवीतटे ॥७॥
 स्थित्वा प्रोवाच गङ्गां प्रतिपूज्य सविस्तरम् । नृपन्मु सर्वलोकेषु मुनिदेवगणेषु च ॥८॥
 देवि गङ्गे महापूण्ये यदि मन्यं गृह्यते । दीयतां तदि पंथा मे शीघ्रं सैन्ययुतस्य च ॥९॥
 इति शत्रुघ्नवचनं श्रुत्वा सा जाह्नवी तदा । स्ववेगं खंडयामास स्वोदरं चाप्रदर्शयत् ॥१०॥
 पङ्क्तिर्वाजी तदा शीघ्रं परं तीरं ययौ क्षणात् । तथा सैन्येन शत्रुघ्नः समुमंत्रः समाययौ ॥११॥
 मागधारण्यं महादेशं स एव कीकटः स्मृतः । पूर्ववन्न महापूगे जाह्नव्यां संवभूव ह ॥१२॥
 प्रतापं रामचन्द्रस्य सर्वैर्बुध्वा महाद्वृतम् । चक्रुस्ते जयशब्दांश्च सीतारामाख्यया मुहुः ॥१३॥
 श्यामकर्णस्ततः शीघ्रं ययौ पूर्वदिशं प्रति । मगधेशो नृपश्चाथ श्रुत्वा तुरगमागमम् ॥१४॥
 प्रत्युज्जगाम सैन्येन पुरस्कृत्याथ वारणम् । निनायाश्च पठित्वा तद्भालपत्रं पुरं निजम् ॥१५॥

रामना भूलना नहीं । रामचन्द्रजीको शिक्षाको अङ्गीकार करके लक्ष्मणजीने बंसा हो किया, जैसा रामने कहा था ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ इति श्रीमहाकाण्डिकाचरितगतं श्रीमदानन्दरामायणे १० रामनेजयाण्डेयदिरचितं 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासमन्वितं यागकाण्डे लक्ष्मणाज्ञाकरणं नाम तृतीयः सर्गः ॥ २ ॥

श्रीरामदासजी फिर मुझे लगे - रामचन्द्रजीके द्वारा छोड़ा हुआ वह अङ्गस्वस्व श्यामकर्ण घोड़ा अयोध्यासे बड़े वेगके साथ पूर्व दिशाकी ओर चला ॥ १ ॥ चलते-चलते शत्रुघ्न, सुमन्त तथा विशाल सेनाके साथ वह जाकर भागीरथी गंगाके तटपर पहुँचा । इधर रामचन्द्रजीने अपना महिमा दिखानेकी इच्छासे शत्रुघ्नजीके सामने एक विचित्र कौतुक उपस्थित किया । वह यह कि ब्रह्मावर्त देशको लाँधकर गङ्गातट पहुँचते-पहुँचते उनके पास जो कुछ भी धन था, वह सब समाप्त हो गया । गङ्गाकी बाढ़से एक स्थानपर उनकी नौका भी रुक गयी ॥ २-४ ॥ शत्रुघ्नने उस दाहण समयका देखा तो देर हो जानेके भयसे मन ही मन सोचने लगे—ओह ! पहलो ही यात्रामें इतना बड़ा विघ्न पहुँचा । यह वही कहावत चरितार्थ हुई कि 'पहले ही प्राप्तमें स्वर्णी आ गिरी' ॥ ५ ॥ ६ ॥ अब मुझे केवल रामचन्द्रजीके प्रतापका भरोसा है । उसीसे मेरा निस्तार होगा । इस प्रकार निश्चय करके शत्रुघ्नजी रथपर बैठे ही बैठे जाह्नवीके तटपर जाकर कहने लगे— ॥ ७ ॥ हे महापूण्यशालिनी गङ्गे ! हे देवि ! यदि भगवान् रामचन्द्रजी सन्त्वग्नि हों तो आप सेनासहित मुझे रास्ता दे दोजिए ॥ ८ ॥ ९ ॥ इस प्रकार शत्रुघ्नके वचनको सुनकर गङ्गाजीने वेगको मन्द करके अपने मध्य भागसे शत्रुघ्नको रास्ता दे दिया ॥ १० ॥ सगंधरमे धाँड़े और पैदल सैनिक चलकर गङ्गाके उस पार पहुँच गये । इस तरह ससैन्य शत्रुघ्न सुमन्तके महादेश मगधमें जा पहुँचे, जिस देशको कीकट भी कहते हैं । उन लोगोंके पार उतर जानेके बाद गङ्गाका प्रवाह पूर्ववत् वेगवान् हो गया ॥ ११ ॥ १२ ॥ मगधनिवासी लोग रामचन्द्रके अद्भुत प्रतापको समझकर सीतारामके नामका जयजयकार करने लगे ॥ १३ ॥ वहाँसे अश्वमेध यज्ञके लिए छोड़ा हुआ श्यामकर्ण घोड़ा पूर्व दिशाकी ओर चला । राजा मगधेश घोड़ेको आया हुआ सुनकर हाथीकी सवारीपर चढ़ तथा सेनाको लेकर जगवानीके लिए गये । घोड़ेके मस्तकमें बँधे हुए पत्रको पढ़कर उसको नगरमें ले गये

पूज्यादरात्सैन्यं तं शत्रुघ्नं विभवैर्निजैः । समस्तं निजकोशादि समर्प्य भगवाधिपः ॥१६॥
 पौरान् जानपदान्स्वामीः सुदृढनयमंत्रिणः । पौरपत्नीर्जानपदपत्नीर्विभ्रान् पुरोधसम् ॥१७॥
 प्रेषयामास साकेतो बाहूनैरध्वरं प्रति । स्वयं सैन्येन तुरगचरणाननुलक्ष्य च ॥१८॥
 शत्रुघ्नवाननुवर्ती बद्धहस्तपुटो ययौ । एवं सर्वेऽपि राजानो ज्ञातव्याःसर्वदिक्स्थिताः ॥१९॥
 न केनापि श्यामकर्णो बद्धो नृपतिना भुवि । इन्द्राद्यैर्निर्जरैर्नापि नासुराद्यैः कदाचन ॥२०॥
 ततो वाजी पूर्वदेशानंगवंगकलिगङ्गान् । तथा नानाविधान्देशान् विलंघ्य जलधेस्तटम् ॥२१॥
 दृष्ट्वा नृपकुलैर्धुक्तो दक्षिणाभिमुखो ययौ । गोदावरीं नदीं तीर्त्वा देशमाधं च द्वाविडम् ॥२२॥
 अतिक्रम्यारवाराख्यं देशं समतिक्रम्य च । काश्मीप्रदेशान्सकलान्पश्यन्नानाविधान्कुमान् ॥२३॥
 कावेरीं समतिक्रम्य चोलदेशं विलंघ्य च । सेतुबन्धं ततो दृष्ट्वा पश्चिमाभिमुखो ययौ ॥२४॥
 ताम्रपर्णीं विलंघ्याथ समतिक्रम्य केरलान् । द्विषट्प्रकारान् देशान् गोकर्णं च ततो ययौ ॥२५॥
 कृष्णातीरप्रदेशान् समतिक्रम्य घोटकः । कर्णाटकं महादेशं समतिक्रम्य सत्वरम् ॥२६॥
 कोंकणं समतिक्रम्य तत्तद्देशनृपैः सह । भीमान्देशान् स सकलान्श्यामकर्णः शुभावहः ॥२७॥
 पश्यन् ययौ महाराष्ट्रं गौतमीं तां विलंघ्य च । विदर्भं समतिक्रम्य ययावाभीरमण्डलम् ॥२८॥
 मालवं समतिक्रम्य तीर्त्वा पुण्यां महानदीम् । तीर्त्वा स भ्रमतीं पुण्यां समतिक्रम्य गुर्जरम् ॥२९॥
 प्रभासं च ततो गत्वा ययावान्तर्मुत्तमम् ।

सौवीरान् समतिक्रम्य ययौ वाजी स माथुरान् । सौराष्ट्रान्समतिक्रम्य मरुदेशं ययौ हयः ॥३०॥
 धन्वदेशमतिक्रम्य ययौ सारस्वतानथ । मत्स्यान् देशानतिक्रम्य ययौ वाजी स माठरान् ॥३१॥
 शूरसेनानतिक्रम्य पांचालास्तुरगो ययौ । कुरुक्षेत्रं ततो गत्वाऽतिक्रम्य कुरुजंगलान् ॥३२॥
 देशं कंकैयमुल्लंघ्य ययौ काश्मीरमुत्तमम् । भिल्लदेशं गौडदेशं शकदेशं ययौ हयः ॥३३॥
 यवनास्ताम्रदेशान् समतिक्रम्य वैगतः । पश्यन्नानाविधान् देशान् करतोयातटेन वै ॥३४॥

और बड़े आदरके साथ अपनी संपत्तिसे शत्रुघ्नको पूजा की । समस्त निज कोशादि शत्रुघ्नको अर्पण करके पुरवासियोंको, अपने कुटुम्बको, जनपदवासियोंको एवं अपने मित्र-बान्धवोंको बाहनोंके साथ अश्वमेध यज्ञमें अयोध्या भेज दिया । किन्तु स्वयं सेनाके साथ शत्रुघ्नके वसवर्ती होकर यजीय अश्वके धरणोंको लक्ष्य करके साथ-साथ चले । इसी तरह सब देशोंके लोग शत्रुघ्नके वसवर्ती होकर अश्वके पीछे-पीछे चले ॥ १४-१९ ॥ पृथ्वीपर किसी भी राजाने श्यामकर्ण छोड़ेको नहीं बोधा । न स्वर्गमें इन्द्रादि देवताओंने और न पाताललोकमें असुरोंने उसे बोधा ॥ २० ॥ उसके छोड़ा अङ्ग-बङ्ग-कलिगादि जनेक देशोंमें होता हुआ समुद्रतटपर पहुँचा ॥ २१ ॥ वहाँसे नृपसमूहके साथ दक्षिण दिशामें । फिर गोदावरी नदीको पार करके आंध्र, द्विड, कारवार देशोंका अतिक्रमण करके नाना प्रकारके मनोहर घूमता हुआ कावेरी नदीको पार करके चोलदेशमें पहुँचा । वहाँसे समुद्रतटपर सेतुबन्ध रामेश्वर होकर पश्चिम दिशामें गया ॥ २२-२४ ॥ वहाँसे छोड़ा ताम्रपर्णी नदीको लाँघ करल देशका अतिक्रमण करके गोकर्ण तीर्थमें आ पहुँचा ॥ २५ ॥ वहाँसे कृष्णा नदी उतरकर छोड़ा कर्णाटकमें पहुँचा ॥ २६ ॥ वहाँसे कोंकण देशको पार करके तत्तद्देशीय राजाओंके भीमा नदीको लाँघता हुआ महाराष्ट्रमें आ पहुँचा ॥ २७ ॥ वहाँपर गौतमी नदीको लाँघकर विदर्भ देशमें होता हुआ आभीरमण्डलमें पहुँचा ॥ २८ ॥ वहाँसे मालवा होता हुआ महानदी पुण्याका अतिक्रमण करके गुजरातमें पहुँचा ॥ २९ ॥ वहाँसे प्रभास तीर्थमें आकर आनसं देशकी गया । फिर सौवीर आदि देशोंको करके छोड़ा मथुरा प्रदेशमें गया । वहाँसे सौराष्ट्र देशको लाँघकर मरुदेश (मारवाड़) में पहुँचा ॥ ३० ॥ उसके धन्व नामक देशका अतिक्रमण करके सरस्वतीके तीरपर गया । वहाँसे मत्स्य देशमें घूमता हुआ देशमें गया ॥ ३१ ॥ उसके बाद वह श्यामकर्ण छोड़ा कुरुक्षेत्र, पंचाल, कुरुक्षेत्र, जांगल एवं कंकैय भ्रमण हुआ कश्मीर गया । वहाँसे भिल्लदेश,

ययौ वाजी वायुगत्या शीघ्रं ज्वालामुखीं प्रति । दोषमात्या करतोयां तीर्त्वा नैवाग्रतो गतः ॥३५॥
 कर्मनाशानदीस्पर्शात् करतोयाविलम्बनात् । गंडकीं बाहुतरणाद्धर्मः स्खलति कीर्तनात् ॥३६॥
 हरिद्वारं ययौ वाजी ततो गङ्गातटेन हि । हिमाद्रेः सन्निधौ देशान् समतिक्रम्य वेगतः ॥३७॥
 बद्रिकाश्रममालोक्य कलापग्रामवासिभिः । समानितस्तदा वाजी गत्वा तन्मानसं सरः ॥३८॥
 दृष्ट्वा हरिहरक्षेत्रं मिथिलां प्राप सेनया । नानादेशानतिक्रम्य हार्यावर्तं ययौ हयः ॥३९॥
 दृष्ट्वा काशीं त्रिवेणीं च ह्यंतर्वेदीं ययौ जवान् । शृङ्गवेरपुरं गत्वा समसां तां निलम्ब्य च ॥४०॥
 गत्वा स नैमिषारण्यं समुन्मल्लं गच्छ गोमतीम् । ब्रह्मावर्तं सरो गत्वा पश्यन् देशान् मनोरमान् ॥४१॥
 कोसलाख्यं महादेशं दृष्ट्वा वाजी मनोरमम् । ततः साकेतत्रिषये पञ्चमसैः प्राप चाध्वरम् ॥४२॥
 नानादेशनृपैः साधं शत्रुघ्नेनाभिरक्षितः । आगतं श्यामकर्णं तं ज्ञात्वा सीतापतिस्तदा ॥४३॥
 आह्लापयच्च सौमित्रिं सोऽपि प्रत्युज्जगाम तम् । वारणेशं पुरस्कृत्य मेरीदुन्दुभिनिःस्वनः ॥४४॥
 वारस्त्रीणां नृत्यगीतैर्बद्धोर्षद्विजोरतः । संपूज्याथ श्यामकर्णं नृपतीश्च सचिस्तरम् ॥४५॥
 जानयामास सौमित्रिः शनैरध्वरमंडपम् । महात्सवो महानामोत्सवास्तदा तुरगदर्शने ॥४६॥
 दशयोजनपर्यंतं सर्वत्र जगतीतलम् । व्याप्तं समं ततोऽयोध्यावहिर्नृपगणैस्तदा ॥४७॥
 तत्र सर्वत्र राजानः पूर्वसंगेपिताञ्जनान् । पौरान् जानपदान्स्त्रीश्च पश्यन्तां भ्रमरोपमाः ॥४८॥
 सन्येन वधशूः सर्वे स्वीयदर्शनलालसाः । न प्रापुर्दर्शनं तेषां जनौघेऽध्वरमंडपे ॥४९॥
 केचित्ते दर्शनं स्वानां प्रापुस्तत्र परेऽहनि । केचित्तृतीये दिवसे पंचमे सप्तमेऽथ वा ॥५०॥
 केचिदुदुम्बिषोषेण प्रागुः स्थानां प्रदर्शनम् । केचित् पञ्चानन्तरं हि मासेनानन्तरं जनाः ॥५१॥
 केषां त्रियोग एवापीच्छिरकालं तदाऽध्वरे । तज्ज्ञात्वा रामचंद्रोऽपि लक्ष्मणं प्राह सादरम् ॥५२॥

गोखंड, शकदेश, यवनको देश एवं सागुदेशसे निकलकर करतोया नदीके तटवर्ती नानाविध मनोहर दृश्योंको देखता हुआ बड़े वेगसे ज्वालामुखीके पार्वत्य प्रदेशमें ॥ ३२-३४ ॥ वहाँसे करतोया नदीको पार करके आगेके प्रदेशोंमें नहीं गया । ययौके कर्मनाशा स्थान करनेसे, करतोयाका उल्लंघन करनेसे, गण्डकी नदीको बाहुओं द्वारा तैरने और धार्मिक काम उसका वस्त्रान करनेसे धर्मका ध्य होता है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ वहाँसे वह गङ्गाके तट ही तट होकर हरिद्वार गया । वहाँसे हिमालयके प्रदेशमें जाकर बद्रिकाश्रम पहुँचा । वहाँसे कलापग्रामनिवासियोंका अतिक्रमण करके वह आर्यावर्त देशमें गया ॥ ३७-३९ ॥ वहाँसे काशी और गङ्गातटपर घूमता हुआ वेगपूर्वक अंतर्वेदीमें गया । फिर शृङ्गवेरपुरमें जाकर समसाको पार करके नैमिषारण्यमें गया । वहाँसे गोमती और ब्रह्मावर्त सरोवरको जाकर मनोहर दशोंको देखता हुआ कोसल देशमें पहुँचा । प्रकार छः नहानोंसे घूमता हुआ वह अन्ध फिर अयोध्याके निकटवर्ती अध्वमेधके यज्ञमंडपमें आ पहुँचा ॥ ४०-४२ ॥ अनेक देशके राजाओंके साथ शत्रुघ्नसे अभिरक्षित वजायें छोड़े हुए श्यामकर्ण घोड़ेको आया हुआ सुनकर सीतापति रामचन्द्रजीने उसको लानेके लिये लक्ष्मणको आज्ञा दी । लक्ष्मणजी हाथीपर चढ़कर बड़े उत्साहके साथ उसकी अगवानी करनेके लिए गये । वे विधिपूर्वक श्यामकर्ण घोड़ेको और राजाओंकी पूजा करके उसे धीरे-धीरे यज्ञमण्डपमें ले आये । उस समय घोड़ेको देखनेके लिए प्रजावर्गमें बड़ा उत्साह था ॥ ४३-४६ ॥ यज्ञोत्सवके समय अयोध्याके बाहर इस योजनतक सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल राजा-महाराजाओं तथा अमीर-उमरावोंसे भरा था ॥ ४७ ॥ यज्ञमें इतनी भीड़ थी कि श्यामकर्ण अश्वके घमण करके लीटे हुए राजा लोग पहिलेसे भेजे हुए अपने स्त्री-पुत्र-बान्धवोंको खोजते हुए उनको देखनेकी इच्छासे इधर-उधर घूमते रहे, पर उस यज्ञकालिक जनसमुदायमें उन लोगोंको प्राप्त नहीं कर सके ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ कोई खोजते-खोजते दूसरे दिन मित्र-बान्धवोंसे मिल सका । कोई तीसरे दिन, कोई पाँचवें रोज और कोई सातवें रोज मिला ॥ ५० ॥ किसीको मगाड़ेको ध्वनिसे स्वजनोंका पता लगा । किसीको एक पक्षवारेके बाद और किसीको एक मासके बाद पता लगा ॥ ५१ ॥ किसीको चिरकाल तक पता ही नहीं लगा । वह सुनकर भगवान रामचन्द्रजीने लक्ष्मणसे

परस्परं वियोगोऽत्र ममहेन तु लक्ष्मण ! जायते तत्र युक्तिं त्वं मत्तः श्रुत्वा कुरुष्व ताम् ॥५३॥
 तमसायास्तटे शालां कृत्वाऽद्य महतीं शुभाम् । घोषणीगश्च सर्वत्र महार्ददुर्भिनिःस्वनैः ॥५४॥
 येषां वियोगस्तर्गत्वा तमसातटशोभिताम् । शालां प्रवेशयन् हि स्वानां योगोऽस्तु तत्र हि ॥५५॥
 चतुष्पदादिवस्तूनि शान्त्या यस्य लघून्यपि । तत्रैव स्थापनीयानि स्वं स्वं गृह्णन्तु ते जनाः ॥५६॥
 इति रामवचः श्रुत्वा तथैत्युक्त्वा स लक्ष्मणः । तथा चकार तन्मयं येन योगः परस्परम् ॥५७॥
 सर्वे तत्र जनाः प्रापुः स्वानां स्त्रीबालमंत्रिणाम् । चतुष्पदादिवस्तूनां तत्र लाभो बभूव ह ॥५८॥
 यत्किंचिद्विस्मृतं येन तद्बुद्ध्याऽन्येन च तदा । शालायां स्थापितं वृष्टा स्वयं जग्राह तत्र सः ॥५९॥
 एवं धीरामयशो हि संमर्दः संबभूव ह । न तत्र शुभुवे शब्दः कर्णेऽप्युक्तो जनेस्तदा ॥६०॥

ततस्ते पार्थिवाः सर्वे तरुपुर्वमनसघ्नसु ॥६१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतश्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यागकाण्डे अष्टागमनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः

(रामका कुम्भोदर मुनिसे साक्षात्कार)

श्रीरामदास उवाच

अथ ते ऋत्विजः सर्वे मंगलविनिधयैः शुभैः । भूम्यक् प्रवर्तयामासुर्नजिमेषं यथाविधि ॥ १ ॥
 तत्रर्त्विजो वाजिमेषे रत्नकौशेयवाससः । ममदस्या विरेजुस्ते यथा वृषहणोऽध्वरे ॥ २ ॥
 एतस्मिन्नन्तरे सुरेशसहितैः सुरैः । स्वामिना विष्णुराजेन पार्श्वस्था वृषभस्थितः ॥ ३ ॥
 महेश्वरो यज्ञवाटं रामाहूतो यथां गणैः । शिवमागन्माज्ञाय प्रत्युद्गम्याथ लक्ष्मणः ॥ ४ ॥
 वारणेंद्रं पुरस्कृत्य पताकाध्वजतारणैः । नानावाद्यमुधोर्षश्च वारस्त्रिणां प्रनर्तनैः ॥ ५ ॥

कहा—॥ ५२ ॥ यहाँ भीड़के कारण परस्पर लोगोंका वियोग हो जाता है । अतएव मैं एक युक्ति बतलाता हूँ ।
 उसको करो ॥ ५३ ॥ तमसा नदीके तटपर एक बड़ी भारी शाला वनवाओ और डुगडुगी पिटवा दो कि भूले-
 भटकोंको खोजना हो तो तमसा नदीके तटपर जहाँ नयी शाला बनी हुई है, वहाँ जाओ । वहाँपर भूले-भटकों-
 को खोज पाओगे ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ लोगोंकी बड़ीसे लेकर छोटी-छोटी भी खोधी हुई वस्तुएँ खोज-खोजकर वहाँ
 रखी हैं । वहाँ जिस-जिसकी जो-जो वस्तु हो, वह अपनी-अपनी वस्तु ले ले । इस प्रकार रामजीके वचन सुनकर
 लक्ष्मणने कहा—अच्छा महाराज ! ऐसा ही करेगा । इसके बाद लक्ष्मणजीने ऐसी व्यवस्था की, जिससे सबका
 अपने विपुक्त बान्धवोंसे मिलना होने लगा ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ विपुक्त बन्धु वहाँ गये और सबको अपने-अपने स्त्री-पुत्र-
 मित्रादि और चतुष्पदादि पणु सभी खोई हुई चीजें मिल गयी । जहाँ-कहींपर जिससे जो वस्तु भूलसे छूट गई, उस
 वस्तुको राजानुधरोंने तथा जिसने देखी एवं जिसको मिली, उसीने वहाँ गालामें रखवा और जिसकी वह
 वस्तु थी, उसने वहाँ जाकर ले ली ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ प्रकार श्रीरामजीके वचनमें ऐसी भीड़ हुई कि जिसके
 कारण जानमें कहा हुआ भी शब्द मनुष्योंको नहीं सुनाई पड़ता था ॥ ६० ॥ यज्ञ भगवान्के दर्शन करके सब
 राजा लोग अपने-अपने स्त्री-पुत्र-मित्रादिकोंको लेकर अलग-अलग तम्बुकों (खेमों) में रहने लगे ॥ ६१ ॥ इति
 श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतश्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यागकाण्डे अष्टागमनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—इसके सब ऋत्विक् मंगलमय कृत्योंके साथ-साथ शास्त्रानुसार
 अश्वमेध यज्ञ करवाने लगे ॥ १ ॥ उस समय यज्ञमें रत्नमय आभरणों और वस्त्रोंको पहिने हुए ऋत्विक् ऐसे
 सुशोभित हो रहे थे, जैसे इन्द्रके यज्ञमें सुशोभित होते थे ॥ २ ॥ उसी समय वहाँ रामजीके बुलबुले बेलपर
 चढ़कर महादेव और पार्वतीजी आयीं । उनके संग इन्द्रादि देवता, स्वामिकांतिकेय, गणेशजी एवं प्रमथादि
 गण भी आये ॥ ३ ॥ महादेवजीका आगमन सुनकर सम्पूर्ण नगर ध्वजा-पताका आदिसे सजाया गया ।

संपूज्य शंकरं भक्त्या चानयामास मदपम् । रञ्ज नम्र एदान्यग्रे गन्धा गमोर्जाप शंकरम् ॥ ६ ॥
 नमस्कृत्य समालिख्य विश्वेशं गिरिजायुतम् । हेमानगे सन्निवश्य हेमपात्रे स्वहस्ततः ॥ ७ ॥
 पादप्रक्षालनं शंभोश्चकार सीताया प्रभुः । हेमनिर्मितहार्ज्या मणिरत्नादिचित्रया ॥ ८ ॥
 जलधारां यथायोग्यां मोचयामास जानकी । तनय्ये राघव सीतां दृष्ट्वा देवमणास्तदा ॥ ९ ॥
 अनिमेषाः कञ्जनेत्रकटाक्षाः सन्निराक्ष्य । ह । तपोविश्रोपमाः आसन्न न विदुः के वयं न्विन्त ॥ १० ॥
 तुष्टुवृस्तत्र केचित्सं सुराः श्रीगणेशं हृदा । जानकीं तुष्टुवुः केचित् प्रवद्वक्त्रमम्बुदाः ॥ ११ ॥
 एवं निर्जरसधानां संतोषस्तत्र वै क्षभुत् । अर्नापस्यं तथोदृष्ट्वा रूपं कोटिगविप्रभम् ॥ १२ ॥
 अथ रामः सीतया हि शंकरं गिरिजामपि । स्वयं संपूज्य सकलान् देवान् सौमित्रिणा ऋषीन् ॥ १३ ॥
 पूजयित्वाऽत्रर्वाद्वाक्यं शंकरं लोकशंकरम् । अथ धन्योऽस्म्यहं देव दर्शनाच्च सीतया ॥ १४ ॥
 अथ मे सूर्यवंशोऽस्मिन् जन्म साफल्यतां गतम् । इति रामस्य वचनं श्रुत्वा स शशिभूषणः ॥ १५ ॥
 विहस्य राघवं प्राह वेदि मायां हरे तव । न्यन्नाभिकमले ब्रह्मा जातस्तस्मान्मुनीश्वराः ॥ १६ ॥
 मरीच्याद्याः मन्थभूवुः पात्राः समाहतौजसाः । मरोचेः कश्यपः पुत्रः सृष्ट्युत्पत्तिवेधायकः ॥ १७ ॥
 कश्यपात्मयिता जज्ञे पीत्रर्षधन्वत्र प्रभो । रवेर्जातः सूर्यवंशस्तदंशं तव जन्म वै ॥ १८ ॥
 स्वद्वंशसंभवः सूर्यः किं मां मोहयसि प्रभो । देवानां कार्यमिदुधधमवर्तीणोऽमि मायया ॥ १९ ॥
 कुरु क्रीडां यथेच्छं त्वं यात्रायजादिकीर्तुकः । शिक्षां यरोपि लोकानां वेदम्यहं प्रैष्टितं तव ॥ २० ॥
 इति श्रुत्वा शंभुवाक्यं सीतागर्भा विहस्य च । यज्ञकुण्डगर्भापे तु तस्थतुर्गुहसन्निधौ ॥ २१ ॥
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र यथाजम्भुः महमशः । गन्धर्वाः किन्नराः सिद्धास्तथा चाप्यस्यो गणाः ॥ २२ ॥
 लोकपालाश्च दिक्पाला इमानलनियामिनः । नवग्रहाः षट्पतवः षष्टिसंवत्सरास्तथा ॥ २३ ॥

वेद्याओंक नाना प्रकारके नान और अनेक तरह बाजे-गाजे साथ हाथीपर चढ़कर लक्ष्मणजी उनकी अगयानीके लिए गये ॥ ४ ॥ ५ ॥ वे भक्तिपूर्वक शंकरभगवान्की यज्ञमण्डपमें ले आये । रामजीने भी उनकी आते देखा तो पाँच-सात आगे बढ़कर शंकरजीको प्रणाम किया । शिव-पार्वतीका मत्कार करके सूर्यवंशमें सिंहासनपर बैठाया । सीताका साथ स्वयं रामने अपने हाथमें स्तन-नर्चिह्न एक वस्त्र मुनीओंके पादमें दोनोंका पादप्रक्षालन किया । जानकीने शंकरभगवान्के सरपोपर विधिवत् जलधारा डाली । उपस्थित देवतागण निनिमेष नेत्रोंसे श्रीराम एवं सीताकी अनुपम आभा देखकर चित्रलिखित-से हो गये । उनकी यहाँतक जान नहीं रहा कि मैं कौन हूँ ॥ ६-१० ॥ उस समय देवगण मदद होकर श्रीगणेश और महागणों सीताकी स्तुति करने लगे ॥ ११ ॥ इस प्रकार सीता और रामका कोटि सूर्यकी कान्तिके समान प्रभाशाली अनुपम सौंदर्य देखकर देवताओंको अतीव प्रसन्नता हुई ॥ १२ ॥ इससे बाद सीता और लक्ष्मणके साथ स्वयं रामजीने शिव-पार्वती तथा सब देवताओंकी पूजा की ॥ १३ ॥ शंकरावधके कतरा कर्नेवाले शंकरकी पूजा करके रामजी कहने लगे-हे भगवन् ! आज मैं धन्य हो गया ॥ १४ ॥ अज आप लोगोंके दर्शनसे मेरा जन्म यज्ञ करना सफल हुआ । इस प्रकार रामजीके वचन सुनकर शशिभूषण गङ्गाजी हेमकर कहने लगे- ॥ १५ ॥ हे भगवन् ! आपकी मायाको मैं जानता हूँ । आपहीने नानिःमले ब्रह्मा तैः हृदा ज्ञेय उन जह्मसे सम्पूर्ण मुनीश्वर उत्पन्न हुए हैं ॥ १६ ॥ उन निष्पाप मरीचि प्रभृति सान मुनीश्वरीमल मरीचिक पुत्र कश्यप हुए । उन्होंने सृष्टिको विस्तृत किया ॥ १७ ॥ उन कश्यपके पुत्र सूर्य हुए । हे प्रभो ! इस प्रकार आपके पीत्रके पीत्र रविसे सूर्यवंश चला । उस सूर्यवंशमें आपका जन्म हुआ । वह सब आपकी माया ही है । क्यों आर मुझे अपने मायाजालमें फँसाते हैं ? आप अपनी मायासे देवताओंके कार्य सिद्ध करनेके लिए भूमिपर अवतरण हुए हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥ यात्रा-यज्ञादि कीर्तुकोसे आप यथेच्छ क्रीडा करिये । मैं आपका सब चेष्टाओंको समझता हूँ । आप संसारको शिक्षित करनेके लिए ही ऐसा करते हैं ॥ २० ॥ इस प्रकार शिवजीके कथनको सुनकर सीता और रामजी हँसे । तदनन्तर वे यज्ञकुण्डके समीप स्थित गुरु वसिष्ठके पास गये ॥ २१ ॥ इसी समय हजारों यक्ष, गन्धर्व, किन्नर,

ऋक्षाणि त्रिययो योगाः करणानि ॥ राक्षस्यः । पर्वतास्तरवः सर्वे सगराश्च नदा अपि ॥२४॥
 सरोवराणि नद्यश्च वाप्यः कूपास्तथाऽररे । घृत्वा जंगमरूपाणि ययुस्ते यज्ञमण्डपम् ॥२५॥
 समागतश्च संपातिर्गुह्यको मकरच्वजः । समाययौ स लङ्काया राक्षसैश्च विभीषणः ॥२६॥
 मानिता राघवेणापि सर्वे तस्थुः प्रपूजिताः । स्वान्तिके स्थापिताः पूर्वं तर्जवासन् प्लवंगमाः ॥२७॥
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र समायातो मुनीश्वरः । कुम्भोदरो महातेजाः सीमाचारैर्विलोकितः ॥२८॥
 तं दृष्ट्वा भयभीतास्ते सर्वे प्रोचुः परस्परम् । हा कष्टं पुनरगयातः सोऽयं कुम्भोदरो मुनिः ॥२९॥
 यात्राश्रमो राघवस्य यन्निमित्तो बभूव ह । यद्वाक्यादस्य मेघोजपि सर्वेषां संबभूव ह ॥३०॥
 महान् श्रमोऽश्वशृङ्गे तु भ्रमतां जगतीकले । अधुनाऽपि समायातः किमग्रे ॥ पुनस्त्वयम् ॥३१॥
 कारिण्यति न तद्विघ्नो राघवस्यापि निन्दकः । एवं नानानिधा वाचः सीमाचारगणैरिताः ॥३२॥
 शृण्वन् कुम्भोदरस्तुष्णीं ययौ यज्ञशुचिं प्रति । तदागमनपूर्वं स सीमाचारैर्निवेदितः ॥३३॥
 भाषन्निर्वेपमानैश्च स्थूलद्वाग्भिस्त्वरान्वितैः । राम राम महाबाहो हे लक्ष्मण शृणु प्रभो ॥३४॥
 पात्रायज्ञश्च यद्वाक्यात् समायातः ॥ वै पुनः । कुम्भोदरो मुनिश्रेष्ठो राम त्वय्यपि निष्ठुरः ॥३५॥
 तद्दुस्तवचनं ध्रुत्वा सर्वे तदर्शनोत्सुकाः । त्यक्त्वा स्त्रीयानिकर्माणि चोत्तस्थुस्तदिदृश्याः ॥३६॥
 ऋत्विजो राघवः सीता न भयं मेनिरे मुनेः । कुम्भोदरो यज्ञवाटं ययौ सर्वविलोकितः ॥३७॥
 अतिखर्वः स्थूलशिरः । श्यामकर्णः सपादुकः । स्थूलोदरः पिङ्गनेत्रः सक्रोपीनां जटाधरः ॥३८॥
 चीरवासाः खर्वधादः खर्वहस्तो महामुनिः । युवा किञ्चित् शमभ्रयुक्तो धृतदण्डकमण्डलुः ॥३९॥
 तं दृष्ट्वा सकला लोका मयं प्रापुः स्वचेतसि । पूजकं च सस्मृत्य सश्रुत्य च परस्परम् ॥४०॥
 एतास्मिन्नन्तरे रामः शीघ्रं प्रत्युजगाम तम् । साष्टांगं प्रणिपत्पाय करे घृत्वा तु मण्डपम् ॥४१॥

सिद्ध, चारण एवं अप्सराओंका गण ॥ २२ ॥ सम्पूर्ण लोकपाल, दिक्पाल तथा नागलोकवासी भी आये । नवों
 ग्रह, छहों ऋतुयें, सातों सम्यक्सर एवं तिथि नक्षत्र योग करण राशि पर्वत वृक्ष समुद्र नद नदी कूप तालाब तथा
 कृष्ण सूक्ष्म प्राणी सभी अपने जङ्गम रूप धारण करके रामके यज्ञमें आये ॥ २३-२५ ॥ गुह्यराज संपाति, निवादराज
 एवं मकरच्वज आये । तदनन्तर सभी राक्षसोंके लङ्कासे विभीषण ना आये ॥ २६ ॥ भगवान् रामने सबकी
 पूजा की और अपने समीप बंटाया । बन्दर पहलसे ही वहाँ टिके थे ॥ २७ ॥ इसी समय महातेजा
 कुम्भोदर मुनि आये । यज्ञ-भूमिकी सीमापर निवास करनेवालीने उन्हें आते हुए देखा ॥ २८ ॥ देखकर बड़े
 भयभीत हुए और बोले—आह ! बड़े कष्टकी बात है । यह तो फिर कुम्भादर मुनि आ गये ॥ २९ ॥ जिनके
 कारण भगवान् रामको यात्राका कष्ट था, जिनके कारण हम सबका अभ्यमघ हो गया ॥ ३० ॥ घोंड़ेके
 पीछे-पीछे संसारमें इधरसे उधर उधरसे इधर घूमते हुए कष्ट भोग । यह फिर आये है । अब
 जागे क्या करेंगे, सा हमलाग नहीं जा सकते । यह रामजाका बड़ा निन्दक है ॥ ३१ ॥ इस प्रकार सीमाचारी
 लोगोंकी वाणियोंकी सुनते हुए कुम्भोदर चुपचाप यज्ञभूमिमें आये ॥ ३२ ॥ आनेके पूर्व ही बड़े वेगसे
 भागते-कोपते हुए दूतोंन आकर रामसे निवेदन किया— ॥ ३३ ॥ हे राम ! हे महाबाहो लक्ष्मण ! हे ! आप
 लोग सुने । जिसके वाक्यसे आपन और यज्ञ कथा है, वही कुम्भादर मुनि फिर आये हैं । हे राम ! आपके
 ऊपर उनका बड़ा क्रोध भाव है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ इस तरह दूतके वाक्य सुनकर सब अपने-अपने कार्योंको
 छोड़कर उन्हें देखनेका उठे ॥ ३६ ॥ ऋत्विक् लोग, साता तथा रामजी मुनिसे भयभीत नहीं हुए । उनके देखते-
 देखते कुम्भादर मुनि यज्ञभूमिमें पहुँचे ॥ ३७ ॥ जा बड़े वाट थे । जिनका मस्तक बड़ा था । जिनकी नाकियाँ
 उमड़ी थीं । जिनके श्याम कर्ण ॥ जा सड़ाऊँ पहन हुए तथा स्थूल उदरवाले थे । पीले-पीले जिनके मग्न थे । वे
 कीपीन पहिने जटा धारण किये थे ॥ ३८ ॥ और पहिने हुए वे छोटे-छाटे हाथीवाले थे । युवा होनेसे
 जिनके मुँह ॥ रही थो और जो दण्ड-कमण्डलु किये हुए थे ॥ ३९ ॥ उनको देखकर सम्पूर्ण जनसमुदाय
 डचके रहितके कृत्योंकी सुन-सुन और स्मरण कर-करके मन ही मन भयभीत हुआ ॥ ४० ॥ उसी समय राम

आनयामास श्रीरामो ददौ हैमामनं वरम् । कुम्भोदरो मुनिः शीघ्रं भूमौ दण्डकमण्डलम् ॥४२॥
 स्थापयामास श्रीराणि ननाम रघुनायकम् । रामः शीघ्रं कराभ्यां तं प्रत्युत्थाप्य मुनीश्वरम् ॥४३॥
 ग्राह्मालिङ्ग्य बाहुभ्यां ततो मुनिमभाषत । नाहं योग्यो वन्दनार्थं त्वया रावणघातकः ॥४४॥
 इति रामवचोरूपैर्वाणैः संताडिनो हृदि । कुम्भोदरस्तदोवाच यज्ञशटे रघूत्तमम् ॥४५॥
 राम राम महाबाहो न कोपः कियतां मयि । अपराध्यस्म्यहं ते हि क्षमस्व रघुनायक ॥४६॥
 न मया स्वार्थसिद्धयर्थं दोषारोपः कृतस्त्वयि । कृतः परोपकारार्थं तथा कीर्त्यं तवापि च ॥४७॥
 शिक्षार्थं सकलान् लोकान् तज्ज्ञातं च स्वयापि हि । यथं ते मुनयः सर्वे तव सन्नेहनिर्मिते ॥४८॥
 शतशो भोजनं षकुस्तथा भुक्तं मयाऽपि च । तदा कुतो महत्कीर्तिस्तव मे रघुनन्दन ॥४९॥
 इति निश्चित्य हृदये मया पूर्वं हिताय हि । लोकानां च कुतो यत्नस्त्वपि दोषानुकीर्तनैः ॥५०॥
 नोचेधात्रासमुद्योगः कथं राम भवेत्तव । यत्र यत्र च देशेषु तीर्थेषूपवनेषु च ॥५१॥
 आश्रमारामग्रामेषु नदीवनगिरिष्वपि । ये ये जनाश्च सर्वत्र नानाकर्मसु तत्पराः ॥५२॥
 तव दर्शनलामस्तु तेषां जातः सुखप्रदः । तत्राहं कारणं मन्ये चात्मानं रघुनन्दन ॥५३॥
 भ्रमालमुपकारस्तु जनैः सर्वत्र कीर्त्यते । कुम्भोदरप्रसादेन नः सीतारामदर्शनम् ॥५४॥
 जातं विषयलुब्धानामिति मे कृतकृत्यता । जाता समन्ततः कीर्तिस्त्वपि दोषानुकीर्तनात् ॥५५॥
 तवापि कीर्तिः सर्वत्र जाताऽत्र रघुनन्दन । रामेश्वरश्च सर्वत्र रामतीर्थान्यनेकशः ॥५६॥
 यावद्भूम्यां प्रगीयेत तावत्कीर्तिस्तवापि च । अन्यच्च लोकशिक्षार्थं जाता मद्राज्यकारणात् ॥५७॥
 कुम्भोदरेण मुनिना राघवस्य महात्मनः । दोषारोपः कृतः पूर्वं कथं नो न भविष्यति ॥५८॥
 स्वदोषपरिहारार्थं राघवेण महात्मना । तीर्थयात्रा कृता पूर्वमस्माकं का कथा पुनः ॥५९॥
 इति स्मृत्वा भयं चित्ते सर्वत्र जगतीतले । करिष्यन्ति जना यात्रां स्वदोषश्चालनाय हि ॥६०॥

बड़ी शीघ्रतासे आये और कुम्भोदरको साष्टाङ्ग प्रणाम करके हाथमें हाथ मिलाये हुए यज्ञमण्डपमें ले आये और उन्हें सुवर्णनिर्मित आसन बैठनेके लिए दिया ॥ ४१ ॥ कुम्भोदरने भी कीर्घ्र ही भूमिपर दण्ड-कमण्डलु रखकर रघुनायक रामको प्रणाम किया ॥ ४२ ॥ रामने शीघ्र मुनिको हाथोंसे उठा लिया और बाहुओंसे हठालिङ्गन करके बोले-हे भगवन् ! रावणघातक ■ आपको वन्दना करने योग्य नहीं हूँ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ इस तरह रामके वाक्परायणसे हृदयमें विद्य कुम्भोदर रामसे कहने लगे-॥ ४५ ॥ हे राम ! हे महाबाहो ! आपको इस तरह मेरे ऊपर क्रोध नहीं करना चाहिए । मैं आपका अपराधी हूँ । मुझे क्षमा करें ॥ ४६ ॥ मैंने स्वार्थसिद्धिके लिए आपके ऊपर दोषारोपण नहीं किया था । किन्तु संसारका उपकार करनेके लिये, आपकी कीर्तिवृद्धिके लिए और संसारको शिक्षित करनेके लिए ही मैंने ऐसा किया था । सो आपने ■ ही लिया होगा ॥ ४७ ॥ ■ ४८ ॥ जैसे इन मुनियोंने आपके अग्रक्षेत्रमें संकड़ों बार भोजन किया है, वैसे ही मैंने ■ भोजन किया है । आपकी और मेरी कीर्ति कैसे हो, पहलेसे ही यह निश्चय करके संसारके हितके लिए मैंने आपकी निन्दा की थी ॥ ४९ ॥ ५० ॥ अन्यथा हे राम ! विभिन्न तीर्थों तथा देशोंके लिए आपकी यात्रा नहीं होती । विविध तीर्थ, नदा, वन, बगीचा तथा आश्रमोंमें जो मनुष्य नाना कर्मोंमें लिप्त हो रहे हैं, उनको जो आपका सुखप्रद दर्शन-लाभ हुआ । उसमें मैं अपनेको ही कारण मानता हूँ ॥ ५१-५३ ॥ सब मनुष्य सभी जगह मेरे इस उपकारका कीर्तन करते हैं । वे कहते हैं कि कुम्भोदरको कृपासे ही हम लोगोंको सीतारामके दर्शन मिल गये ॥ ५४ ॥ आपको ऊपर दोषारोपण कर देनेसे विषयी जनोंको भी आपका दर्शन प्राप्त हुआ । इसीसे मैं कृतकृत्य हो गया और चारों तरफ आपकी कीर्ति फैल गयी ॥ ५५ ॥ जबतक भूमण्डलपर विविध रामेश्वर महादेव और रामतीर्थ रहेंगे, तबतक आपकी कीर्ति संसारमें स्थिर रहेगी ॥ ५६ ॥ और फिर मेरे दुर्वाच्यके कारण ही यह लोकशिक्षा भी हो गयी कि कुम्भोदर मुनिने जब रामजीको दोष लमाया, तब हमलोगोंको कैसे न लगेगा ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ प्राचीन समयमें महात्मा रामचन्द्रने दोषोंको बह्द करनेके लिए तीर्थ किया ■ तो फिर हमलोगोंका तो कहना

स्वयि प्रलपि पूर्णे ■ दोषारोपः कथं भवेत् । पद्मपत्रं जलस्पर्शो न घटेत् यथा तथा ॥६१॥
 यस्य भ्रमंगमात्रेण ब्रह्मांडप्रलयो भवेत् । ब्रह्मांडांतगतान् जीवान् हरसि त्वं यदा मुहुः ॥६२॥
 तदा दोषानुरोपस्ते किं घटेन उनर्दन । सर्वेषां च अयं मृत्युर्विदधाति तवाङ्गया ॥६३॥
 तत्र संख्यात्रं का कार्या त्वया दोषः कृतम्विति । यथा चित्राणि कुड्ये हि लिखितानि सहस्रशः ॥६४॥
 संभाजितानि तेनैव तत्र दोषो भवेत्कथम् । तथा त्वमपि श्रीराम त्रिधा भूत्वा त्रिमिर्गुणः ॥६५॥
 सृष्टिं करोषि रजसा सत्त्वरूपेण पालनम् । तमोरूपेण संहारं विधिविष्णुशिवात्मकः ॥६६॥
 अस्माभिस्तत्र तोषार्थं तीर्थयात्रा विधीयते । तव तीर्थस्तु किं राम तीर्थोभूतगुणस्य च ॥६७॥
 सर्वतीर्थेषु मुख्या या कीर्त्यते स्वर्धुनी भुवि । तव दक्षिणपदम्यांगुष्ठाग्राजनिता तु सा ॥६८॥
 तत्रांगिरजसः स्पर्शान्पवित्रा कीर्तिता भुवि । तव पादरजोमिश्रा दृश्यन्तेऽद्यापि सा सिता ॥६९॥
 रजोऽप्यद्यापि दृश्यन्ते तव भागीरथीजले । इति नानादिर्धर्वाक्यस्तोषयामास राघवम् ॥७०॥
 अष्टोत्तरशतं यावत् श्रीमद्राममन्त्रेण च । स्तुत्वा रामं राघवेण पूजितः स्थितवान्मुनिः ॥७१॥
 रामोऽपि गुरुसान्निध्ये तर्थां सोताममन्वितः । निजामनेषु सर्वत्र तस्युक्ते सकला जनाः ॥७२॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गतश्रीमदानन्दरामायणे भागकाण्डे
 कुम्भोदरदर्शनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

(रामाष्टोत्तरशतनामस्तोत्र)

विष्णुदास उवाच

गुरो ते प्रष्टुमिच्छामि तन्न वद सविस्तरम् । कुम्भोदरेण मुनिना पन्तुस्तोत्रं समुदीरितम् ॥ १ ॥
 अष्टोत्तरशतं नाम्नां राघवस्य शुभप्रदम् । श्रवणे तस्य मे प्रीतिर्जाताऽस्ति कथयस्व तत् ॥ २ ॥

हो क्या है ॥ ५९ ॥ इस तरह पृथ्वीतन्मपर मनुष्यमात्र अपने चित्तमें भयकर अनुभव करके स्वदोषपरिहाराय तीर्थयात्रा करेंगे ॥ ६० ॥ जैसे कमलके पत्रेपर जलका स्पर्श नहीं हो सकता, वैसे ही पूर्ण ब्रह्ममें दोषारोप नहीं हो सकता ॥ ६१ ॥ जिसके भ्रमङ्गमात्रसे ब्रह्माण्डमें प्रलय हो जाता है। वही आप ब्रह्माण्डान्तर्गत सब जीवों-को अपनेमें विलीन करते हैं ॥ ६२ ॥ हे जनार्दन ! आपपर दोषारोप वैसे ही मरता है ? जब हो को आज्ञासे मृत्यु करता है ॥ ६३ ॥ तब आपने कितने दोष किये हैं ? इसकी गणना कोन कर सकता है ॥ ६४ ॥ जैसे किसीने भित्तिपर चित्र लिखा और फिर उसीने अपने हाथसे मिटा दिया । तब उसमें क्या दोष हो सकता है । उसी तरह आप भी तीनों गुणोंसे तीन तरहके अर्थात् ब्रह्मा-विष्णु-शिवरूपमें परिणत होकर रजोगुणसे सृष्टि, सत्त्वसे पालन और तमोगुणसे संहार करते हैं ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ हम लोग आपकी प्रसन्नताके लिए ही तीर्थयात्रा करते हैं । स्वतः तीर्थस्वरूप आपको तीर्थोंसे क्या प्रयोजन है ॥ ६७ ॥ जिस गङ्गाको लोग सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ मानते हैं, वह गङ्गा आपके दाहिने पैरके अंगूठेसे उत्पन्न हुई ॥ ६८ ॥ वह आपके चरण रजस्पर्शोंसे हो पवित्र माना गया है । इसी वारते आज तक श्वेत दिव्य पड़ती है ॥ ६९ ॥ आज भी गङ्गाजोमें आपको चरणरेणु डीक रही है । इस प्रकारके यावयोंसे कुम्भोदरमुनि भगवान् रामको प्रसन्न किया ॥ ७० ॥ इसके बाद रामाष्टोत्तरशतनामसे रामकी स्तुति करके और रामके द्वारा पूजित होकर वे यथास्थान बैठ गये ॥ ७१ ॥ रामजी भी गुरुके समीप सीताके साथ जा बैठे । अन्यान्य लोग भी अपने-अपने आसनोंपर विराजमान हो गये ॥ ७२ ॥ इति शतकोटिरामचरितांतर्गतश्रीमदानन्दरामायणे कुम्भोदरदर्शनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीविष्णुदास बोले—हे गुरु ! मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ । जो प्रश्न मैं पूछना चाहता हूँ, उसका आप विस्तृत उत्तर दीजिए ॥ १ ॥ कुम्भोदर मुनिने रामके जो अष्टोत्तरशत नामोंका शुभप्रद स्तोत्र कहा

श्रीरामदास उवाच

मृणु शिष्य महाबुद्धे सम्यक् पृष्टं त्वया मम । अष्टोत्तरशतं नाम्नां राघवस्य वदाम्यहम् ॥ ३ ॥
 सर्वेश्वरः सर्वमयः सर्वभूतोपकारकः । सर्वेषामुपकारार्थं यः साकारो निराकृतिः ॥ ४ ॥
 स भवत्येव लोकेऽस्मिन् संसारमयनाशनः । यदा यदा हि लोकानां भयमुत्पद्यते तदा ॥ ५ ॥
 अवतीर्याकरोन्द्धीमान् दुष्टदैत्यत्रिमर्दनम् । मत्स्यकूर्मवराहादिरूपेण परमार्थदृक् ॥ ६ ॥
 तत्कालेषु च सर्वेषु सर्वेषामुपकारकः । साधूनां समचित्तानां भक्तानां भक्तवत्सलः ॥ ७ ॥
 उपकर्तुं निराकारः सदाकारेण जायते । अज्ञास्यं जायतेऽनन्तो विश्रुतो भूतभावनः ॥ ८ ॥
 तदा तदाऽवतरति भक्तानामनुकम्पया । क्षीराब्धौ देवदेवेशो लक्ष्मीनारायणो विश्वः ॥ ९ ॥
 अशेषैः शंखचक्राभ्यां देवैर्ब्रह्मादिभिः सह । शेषोऽभूलक्ष्मणो लक्ष्मीर्जानकी शंखचक्रके ॥ १० ॥
 जातो भरतशत्रुघ्नौ देवाः सर्वेऽपि वानराः । आसन् पुरैव सर्वेऽपि देवानां भयशांतये ॥ ११ ॥
 तत्र नारायणो देवः श्रीराम इति विश्रुतः । सर्वलोकोपकाराय भूमौ स्वयमवातरत् ॥ १२ ॥
 ध्यानमात्रेण देवेशो महापातकनाशकः । कीर्तनश्रवणाभ्यां च हृत्पाकोटिनिवारणः ॥ १३ ॥
 कलौ स कीर्तनेनैव सर्वं पापं व्यपोहति । राम रामेति रामेति ये वदन्त्यतिपापिनः ॥ १४ ॥
 पापकोटिसहस्रेभ्यस्तानुद्धरति नान्यथा । अष्टोत्तरशतं नाम्नां तस्य स्तोत्रं वदाम्यहम् ॥ १५ ॥

ॐ अस्य श्रीरामचन्द्रनामाष्टोत्तरशतमंत्रस्य ॥ ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः । जानकीवल्लभः श्रीरामचन्द्रो देवता । ॐ बीजम् । नमः शक्तिः । श्रीरामचन्द्रः कीलकम् । श्रीरामचन्द्रप्रीत्यर्थं अपे विनियोगः । ॐ नमो भगवते राजाधिराजाय परमात्मने हृदयाय नमः । ॐ नमो भगवते विद्याधिराजाय हयग्रीवाय शिरसे स्वाहा । ॐ नमो भगवते जानकीवल्लभाय नमः शिखायै षषट् ।

हे, उसे सुननेकी मेरी प्रबल है । वह कहिए ॥ २ ॥ श्रीरामदास बोले—हे महाबुद्धे शिष्य ! सुनो । तुमने अच्छा प्रश्न पूछा है । मैं तुम्हें रामाष्टोत्तरशतनामस्तोत्र सुना रहा ॥ ३ ॥ राम सर्वेश्वर हैं, सर्वमय हैं और सब प्राणियोंका उपकार करनेवाले । वे निराकार होते हुए भी संसारके कल्याणार्थ साकार मनुष्यदेह धारण करते हैं ॥ ४ ॥ जब-जब प्रजाको होता है, तब-तब उस भयको नष्ट करनेके लिये वे इस लोकमें अवतीर्ण होते हैं ॥ ५ ॥ अवतीर्ण होकर वे मत्स्य-कूर्म-वराहादि रूपसे जनशत्रुओंका विनाश करते हैं । भगवान् जो करते हैं, वह परमार्थकी दृष्टिसे ही करते ॥ ६ ॥ वे भक्तवत्सल प्रभु समदर्शी हैं । साधुओं और भक्तोंके उपकारार्थ निराकार होते हुए भी अल्पकालमें ही साकार हो जाते हैं । वे भूतभावन प्रभु अनन्त एवं हैं और इन्हीं नामोंसे प्रसिद्ध हैं । वे समय-समयपर भक्तोंपर अनुकम्पा करके अवतीर्ण होते हैं । वे देवदेव इन्द्रके भी शासक हैं । क्षीरसागरमें ध्यान करते हैं और सर्वत्र व्यापक हैं ॥ ७-९ ॥ वे ही लक्ष्मीनारायण अलिल देवोंके साथ त्रैलोक्यके भयशान्त्यर्थ रामरूपसे संसारमें अवतीर्ण हुए । शेष लक्ष्मण बने । लक्ष्मी जानकी बनीं और भगवान्के पार्षद शंख-चक्र भरत-शत्रुघ्नके रूपमें उत्पन्न हुए और सब देवता वानर बने ॥ १० ॥ ११ ॥ जो श्रीराम इसी नामसे प्रसिद्ध हैं, वे साक्षात् नारायण हैं और लोकोपकारार्थ संसारमें स्वयं अवतरे हैं ॥ १२ ॥ उन भगवान् रामके ध्यानमात्रसे महापातक भी नष्ट हो जाते हैं । वे कीर्तन-श्रवण करनेसे कोटि हृत्पाओंके भी निवारण कर देते हैं ॥ १३ ॥ वे भगवान् कलमें नाम-कीर्तन करनेसे ही पापोंको नष्ट देते हैं । जो घोर पापी भी रामन्याम उच्चारण करते हैं तो राम उनका सहस्रकोटि पापोंसे उद्धार कर देते हैं । उन भगवान्के अष्टोत्तरशतनामस्तोत्रको कहता हूँ ॥ १४ ॥ १५ ॥ रामचन्द्रके अष्टोत्तर शतनाम मन्त्रके ब्रह्मा ऋषि हैं । अनुष्टुप् छन्द है । जानकीवल्लभ श्रीरामचन्द्रजो इसके देवता हैं । ॐ बीज है । नमः शक्ति है । श्रीरामचन्द्र कीलक हैं । श्रीरामप्रीत्यर्थ इसका विनियोग होता है । ॐ हृदयमें बैठे हुए राजाधिराज परमात्मास्वरूप भगवान्को बारम्बार नमस्कार है । मस्तकमें विराजमान विद्याधिराज हयग्रीव भगवान्को नमस्कार है । शिखामें विराजमान जानकीवल्लभ भगवान्को नमस्कार और

ॐ नमो भगवते रघुनन्दनायामिततेजसे कवचाय हुम् । ॐ नमो भगवते क्षीरान्धिमध्यस्थाय
नारायणाय नेत्रत्रयाय वीषट् । ॐ नमो भगवते सत्प्रकाशाय रामाय अस्त्राय फट् । इति षडंगन्यासः ।
एवं अंगुलिन्यासः कार्यः ।

■ ध्यानम्

मन्दारकृतिपुण्यघामविलसद्गङ्गाःस्थलं कोमलं क्षांतं कांतमहेन्द्रनीलचिराभासं सहस्राननम् ।
वदेऽहं रघुनन्दनं सुरपाते कोदण्डदीक्षागुरुं रामं सर्वजगत्सुखेदितपदं सीतामनोबल्लभम् ॥१६॥
सहस्रक्षीर्णो वै तुभ्यं सहस्राक्षाय ते नमः । नमः सहस्रहस्ताय सहस्रचरणाय च ॥१७॥
नमो जीमूतवर्णाय नमस्ते विश्वतोमुख । अच्युताय नमस्तुभ्यं नमस्ते शेषशायिने ॥१८॥
नमो हिरण्यगर्भाय पञ्चभूतात्मने नमः । नमो मूलप्रकृतये देवानां हितकारिणे ॥१९॥
नमस्ते सर्वलोकेश सर्वदुःखनिषूदन । शंखचक्रगदापद्मजटामुकुटधारिणे ॥२०॥
नमो गर्भाय तत्त्वाय ज्योतिषां ज्योतिषे नमः । ॐ नमो वासुदेवाय नमो दशरथात्मजे ॥२१॥
नमो नमस्ते राजेन्द्र सर्वसम्पत्प्रदाय च । नमः कारुण्यरूपाय कैकेयीप्रियकारिणे ॥२२॥
नमो दांताय शांताय विश्वामित्रप्रियाय ते । यज्ञेशाय नमस्तुभ्यं नमस्ते क्रतुपालके ॥२३॥
नमो नमः केशवाय नमो नाभाय क्षात्रिणे । नमस्ते रामचन्द्राय नमो नारायणाय च ॥२४॥
नमस्ते रामचन्द्राय माधवाय नमो नमः । गोविन्दाय नमस्तुभ्यं नमस्ते परमात्मने ॥२५॥
नमस्ते विष्णुरूपाय रघुनाथाय ते नमः । नमस्तेऽनादनाथाय नमस्ते मधुसूदन ॥२६॥
त्रिविक्रम नमस्तेऽस्तु सीतायाः पतये नमः । वामनाय नमस्तुभ्यं नमस्ते राघवाय च ॥२७॥
नमो नमः श्रीधराय जानकीवल्लभाय च । नमस्तेऽस्तु हृषीकेश कंदर्पाय नमो नमः ॥२८॥

षडङ्कार है । बाहुओंमें कवचरूपेण विद्यमान अमिततेजा उन रघुनन्दनको नमस्कार है, जिनके हुस्कारमानसे
■ शत्रु नष्ट हो जाते हैं । नेत्रोंमें वीषट् अर्थात् ज्योतिरूपेण विद्यमान तथा क्षीरसागरमें शयन करनेवाले
भगवान्को नमस्कार है । अस्वस्वरूप, फट्स्वरूप और सत्प्रकाश स्वरूप रामको नमस्कार है । ■ प्रकार भगवान्को
छहों अक्षोंमें न्यास अर्थात् विराजमान करे । इसी तरह अंगुलियोंमें न्यास करे । अब यहाँसे एक श्लोकमें रामका
ध्यान करके स्तोत्र आरंभ होता है । जिनकी मनोहर आकृति है । जो पुण्यघाम है । मालाओंसे जिनका वक्षःस्थल
सुशोभित हो रहा है । जो कोमल एवं शान्त हैं । जो सुन्दर महेन्द्रनीलमणिकी कान्तिके समान सुशोभित हैं । जो
धनुर्वेदकी शिक्षामें संसारके गुरु हैं । संसार जिनके चरणोंको पूजता है, उन सुरपति तथा सीताके प्राणवल्लभ
रामको ■ प्रणाम करता ॥१६॥ हे राम ! सहस्र मस्तकवाले आपको नमस्कार है । मेघके समान कान्तिवाले
आपको नमस्कार ■ । हे विश्वतोमुख ! आपको नमस्कार है । अच्युतको नमस्कार है । शेषशायीको प्रणाम है
॥ १७ ॥ १८ ॥ हिरण्यगर्भको प्रणाम है । पञ्चभूतात्मको प्रणाम है । मूलप्रकृतिको नमस्कार है ॥ १९ ॥ हे
सर्वलोकनाथ । सब दुःखोंको दूर करनेवाले । आपको प्रणाम है : हे ■ अक्र गदा पद्म ■ जटामुकुट धारण
करनेवाले राम ■ नमस्कार ॥२०॥ गर्भस्वरूप आपको ■ है । तत्त्वस्वरूपको प्रणाम है । ज्योतिषों-
की भी ज्योतिषको नमस्कार है । वासुदेवके पुत्रको प्रणाम है । दशरथपुत्र रामको प्रणाम है ॥ २१ ॥ हे राजेन्द्र !
सब संपत्ति देनेवाले आपको प्रणाम है : हे दयाके मूर्तस्वरूप तथा कैकेयीके प्रिय करनेवाले । आपको नमस्कार
है ॥ २२ ॥ दांत, शांत एवं विश्वामित्रके प्रियकर्ता आपको प्रणाम है । हे यज्ञेश ! ■ क्रतुपालक ! आपको
प्रणाम है ॥ २३ ॥ केशवको नमस्कार है । शास्त्रीको नमस्कार है । रामचन्द्रके लिए नमस्कार ■ । नारायणके
लिए नमस्कार है ॥ २४ ॥ हे रामचन्द्र ! आपको प्रणाम है । हे माधव ! आपको प्रणाम है । हे गोविन्द !
■ परमात्मन् । आपको नमस्कार है ॥ २५ ॥ हे विष्णुस्वरूप रघुनाथ ! ■ आपको नमस्कार करता हूँ ।
हे दीनोके नाथ मधुसूदन ! आपको प्रणाम है ॥ २६ ॥ हे त्रिविक्रम ! हे सीतापते ! ■ वामन ! ■ रामचन्द्र । ■

नमस्ते पद्मनाभाय कौसल्याहर्षकारिणे । नमो राजांश्च नमस्ते लक्ष्मणाय च ॥२९॥
 नमो नमस्ते काकुत्स्थ नमो दामोदराय च । विभीषणपरिव्रजार्जुनः संकल्पाय च ॥३०॥
 वासुदेव नमस्तेऽस्तु नमस्ते शंकरप्रिय । प्रद्युम्नाय नमस्तुभ्यमनिरुद्धाय ते नमः ॥३१॥
 सदसद्भक्तिरूपाय नमस्ते पुरुषोत्तम । अधोक्षज नमस्तेऽस्तु सप्ततालहराय च ॥३२॥
 सरद्वर्णसंहर्त्रे श्रीनृसिंहाय ते नमः । अच्युताय नमस्तुभ्यं नमस्ते सेतुबन्धक ॥३३॥
 जनार्दन नमस्तेऽस्तु नमो हनुमदाश्रय । उपेन्द्रचन्द्रवंध्याय मारीचमथनाय च ॥३४॥
 नमो बालिग्रहरण नमः सुग्रीवराज्यद । जामदग्न्यमहादर्पहराय हरये नमः ॥३५॥
 नमो नमस्ते कृष्णाय नमस्ते मरुताश्रय । नमस्ते पितृभक्ताय नमः शत्रुघ्नपूर्वज ॥३६॥
 अयोध्याधिपते तुभ्यं नमः शत्रुघ्नसेवित । नमो नित्याय सत्याय बुद्ध्यादिज्ञानरूपिणे ॥३७॥
 अद्वैतमकरूपाय ज्ञानगम्याय ते नमः । नमः पूर्णाय रम्याय माधवाय चिदात्मने ॥३८॥
 अयोध्याध्याय श्रेष्ठाय चिन्मात्राय परात्मने । नमोऽहस्योद्धारकाय नमस्ते चापमञ्जिने ॥३९॥
 सीतारामाय सेव्याय स्तुत्याय परमेष्ठिने । नमस्ते बाणहस्ताय नमः कोटण्डधारिणे ॥४०॥
 नमः कवचहन्त्रे च बालिहन्त्रे नमोऽस्तु ते । नमस्तेऽस्तु दशग्रीवप्राणसंहारकारिणे १०८ ॥४१॥
 अष्टोत्तरशतं नाम्ना रामचन्द्रस्य पावनम् । एतन्मोक्तं मया श्रेष्ठ सर्वपातकनाशनम् ॥४२॥
 प्रचरिष्यति तल्लोके प्राण्यष्टदशाब्दिज । तस्य कीर्तनमात्रेण जना यास्यन्ति सदाविम् ॥४३॥
 तावद्विजृम्भते पाव भ्रमहत्यापूरःसरम् । यावन्मापाष्टकशतं पुरुषो न हि कीर्तयेत् ॥४४॥
 तावत्कलैर्महोत्साहो निःशकं सप्रवर्तते । यावच्छ्रीरामचन्द्रस्य श्रुतनाम्ना न कीर्तनम् ॥४५॥
 तावद्यममटाः कूराः संचरिष्यन्ति निर्मयाः । यावच्छ्रीरामचन्द्रस्य श्रुतनाम्ना न कीर्तनम् ॥४६॥
 तावत्स्वरूपं रामस्य दुर्बोधं प्राणिनां स्फुटम् । यावन्न निष्ठुषा रामनाममाहात्म्यमुत्तमम् ॥४७॥

आपको बारम्बार प्रणाम करता हूँ ॥ २७ ॥ हे श्रीपर ! हे जानकावल्लभ ! हृयोकेश ! कन्दर्प ! मैं आपको
 बारम्बार प्रणाम करता हूँ ॥ २८ ॥ हे पद्मनाभ ! हे कौसल्याहर्षकारिन् ! कमलनयन ! लक्ष्मणायज ! मैं आपको
 पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ ॥ २९ ॥ हे काकुत्स्थ ! दामोदर ! संकल्प ! विभीषणसंरक्षक ! आपको मैं पुनः
 पुनः प्रणाम करता हूँ ॥ ३० ॥ हे वासुदेव ! शंकरप्रिय ! प्रद्युम्न ! अनिरुद्ध ! मैं आपको पुनः पुनः
 प्रणाम करता हूँ ॥ ३१ ॥ हे सदसद्भक्तिस्वरूप ! पुरुषोत्तम ! अधोक्षज ! सप्ततालहर ! आपको काटिशः प्रणाम
 है ॥ ३२ ॥ हे सरद्वर्णहन्ता ! श्रीनृसिंह ! अच्युत ! सेतुबन्धकारिन् राम ! आपको कोटिशः प्रणाम है ॥ ३३ ॥
 हे जनार्दन ! हनुमदाश्रय ! उपेन्द्रचन्द्रवन्ध्या ! मारीचमथनकारिन् ! आपको कोटिशः प्रणाम है ॥ ३४ ॥ हे
 बालिग्रहरण ! सुग्रीवराज्यदद ! जामदग्न्य ! महादुःखहर हरे ! आपको कोटिशः प्रणाम है ॥ ३५ ॥ हे कृष्ण !
 मरुताश्रय ! पितृभक्त ! शत्रुघ्नपूर्वज ! मैं आपका सहस्रों बार प्रणाम करता हूँ ॥ ३६ ॥ हे अयोध्याधिपते !
 शत्रुघ्नसेवित ! नित्यसत्य ! बुद्ध्यादिज्ञानकारिन् ॥ आपको प्रणाम है ॥ ३७ ॥ हे अद्वैत महारूप ! ज्ञानगम्य !
 माधव ! पूर्ण ! रम्य ! चिदात्मन् ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ३८ ॥ हे अयोध्याध्याय ! श्रेष्ठ ! चिन्मात्र !
 परमात्मन् ! अहस्योद्धारक ! धनुर्भञ्जिन् ! आपको प्रणाम है ॥ ३९ ॥ सीतासेव्य ! स्तुत्य ! परमेष्ठिन् !
 बाणहस्त ! शत्रुघ्नारिन् ! आपको अनेकशः प्रणाम है ॥ ४० ॥ हे कवचहन्तः ! पाण्डित्य ! दशग्रीवप्राणसंहार-
 कारिन् ! मैं आपको पुनः पुनः नमस्कार करता हूँ ॥ ४१ ॥ सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाला श्रेष्ठ एवं पावन
 रामचन्द्रका यह अष्टोत्तरशतनामस्तोत्र मैंने तुमसे कहा ॥ ४२ ॥ हे द्विज ! जो प्राणी अपने दुर्भाग्यवश इस लोकमें
 भ्रमण करते हैं । इस स्तोत्रके पठनमात्रसे वे सद्भक्तिको प्राप्त होगे ॥ ४३ ॥ महाहत्यादि पाप लक्षोत्क उपद्रव
 करते हैं, जब तक पुरुष इस स्तोत्रका पाठ नहीं करता ॥ ४४ ॥ प्राणीमें तभी तक कदिका प्रवेश रहता है, जब
 वह रामचन्द्रके इस स्तोत्रका मनन-पठन नहीं करता ॥ ४५ ॥ तभीतक भयंकर दमराजके योद्धा निभय
 निवारण करते हैं, जबतक प्राणी इस स्तोत्रका पाठ नहीं करता ॥ ४६ ॥ तभीतक रामका स्वरूप प्राणियोंकी

कालिनं पठितं चित्तं घृतं संस्मारितं मुदा । अन्यतः मृणुयाम्भन्यः सोऽपि मुच्येत पावकात् ॥ ४८ ॥
 त्रयहन्धादिपापानां निष्कृतिं यदि वाञ्छति । रावस्तोत्रं पातमेकं पठित्वा मुच्यते नरः ॥ ४९ ॥
 दुष्प्रतिग्रहदुर्भोज्यदुरालापादिष्वभवम् । पापं सकृत्कीर्तनेन रामस्तोत्रं विनाशयेत् ॥ ५० ॥
 धुनिस्मृतिपुराणैर्निहायागमशतानि च । अर्हति नात्पां श्रीरामरामकीर्तिकलापवि ॥ ५१ ॥
 अष्टोत्तरशतं नाम्नां सौतारामस्य पावनम् । अस्म्य संकीर्तनादेव स्तान् कामांलुभेभरः ॥ ५२ ॥
 पुत्रार्थी लभते पुत्रान् धनार्थी धनमाप्नुयात् । स्त्रियं प्राप्नोति पत्न्यर्थी स्तोत्रपाठश्चादिना ॥ ५३ ॥
 कुम्भोदरेण मुनिना येन स्तोत्रेण रामजः । स्तुतः पूर्वं यत्तदाटे तदेतत्त्वा मयोदितम् ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारतारामचरितोत्तराहर्षे श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यावकाण्डे

श्रीरामनामाष्टोत्तरशतस्तोत्रं पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

सर्गः

(रामकी दिनवर्षा)

श्रीरामदास उवाच

अथ कुम्भोदरे दिव्ये आत्मनोपरि संस्थिते । यज्ञस्तम्भे श्यामकर्णं बबन्धुस्ते हि श्रुतिजः ॥ १ ॥
 तस्याङ्गानि भगस्तानि पृथक् मन्त्रैर्यथाविधि । सम्पन्त्यापि शमिश्रा तं निहन्पुर्दिजपुङ्गवाः ॥ २ ॥
 तन्म/सखण्डैराजपाकैर्होमं चक्रुः सविस्तरम् । तथा नानाविधैर्द्रव्यैः सक्तुपायमगोघृतैः ॥ ३ ॥
 मध्वान्नतिलद्वार्यैः समिधामिध सादरम् । गोघृतेन वसोधारां बह्वी स्पूलामसम्भिताम् ॥ ४ ॥
 गोमुखेनोर्ध्ववद्देन दद्रुमंत्रैः सविस्तरम् । चिरकालं होमकुण्डे यावद्यज्ञसमापनम् ॥ ५ ॥
 तदा धूवर्ष्यैर्व्यासपाकाद्यं च भगवन्ततः । नाद्यादि रक्षयते शुभ्रं नालयणं प्रदृश्यते ॥ ६ ॥
 चैत्रमासे महापुण्ये वसन्तर्तौ सुखावहे । एवं प्रवर्तयामासुर्वाजिमेधं मुनीश्वराः ॥ ७ ॥

दुर्बोध्य रहता है, जबतक इस उत्तम स्तोत्रमें निद्रा नहीं होती ॥ ४७ ॥ जो इसको पढ़ता और कीर्तन करता है, जो इसे चित्तमें धारण करता है, प्रेमसे स्मरण करता है और जोरोसे सुनता है, वह भी पावकोंसे छूट जाता है ॥ ४८ ॥ जो बह्महत्यादि पापोंकी निष्कृति चाहता हो, पुण्य एक महीने इसका पाठ करे ॥ ४९ ॥ इसके एक बार कीर्तन करनेसे मनुष्य दुष्प्रतिग्रह, दुर्भोज्य तथा दुरालापादिबन्ध पापोंसे छूट जाता है ॥ ५० ॥ धृति-स्मृति पुराण-इतिहास-भागम (वेद) और स्मृति इसकी सोलहवीं कलाको भी नहीं पहुँचते ॥ ५१ ॥ श्रीश्रीतारामके इस पावन अष्टोत्तरशतनामका जो मनुष्य पाठ करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है । इसका पाठ एवं ध्यान करनेसे पुत्रार्थीको पुत्र, धनार्थीको धन और स्त्री चाहनेवालेको स्त्री मिलती है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ अगस्त्य मुनिने जिस स्तोत्रके द्वारा अश्वमेध यज्ञमें रामचन्द्रकी स्तुति की थी, वही स्तोत्र मैंने तुमसे कहा है ॥ ५४ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यावकाण्डे श्रीरामनामाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

श्रीरामदास बोले — इसके अनन्तर कुम्भोदर मुनि दिव्य आत्मनपर बैठ गये । उधर श्रुतिवक् लोगोंने यज्ञस्तम्भमें श्यामकर्ण अश्वको बाँध दिया ॥ १ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! उसके अंगोंको शास्त्रानुसार मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके ब्राह्मणोंने उसका किया ॥ २ ॥ तब घृतमें सने घोंड़ेके मांसखण्डों एवं सक्तु पायस गोघृत आदि नाना द्रव्योंसे श्रुतिवक् लोग हवन करने लगे ॥ ३ ॥ वे ही मधुमें सने हुए तिल, दूर्वा, समिधा तथा गोघृतकी अलंङ्कार एवं स्पूल वसोधाराकी अग्निमें छोंड़ने लगे ॥ ४ ॥ चिरकाल पर्यन्त जब तक समाप्त नहीं हुआ, तबतक ऊपर बैठे हुए गोमुखके द्वारा होमकुण्डमें समन्व आहुति देते रहे ॥ ५ ॥ इससे सम्पूर्ण आकाश-मंडल घूमसमूहसे व्याप्त हो गया । उसीके कारण आज भी आकाश श्वेत नहीं, नीला ही दीखता है । सुखानंद वसन्त ऋतु एवं पुनीत चैत्रमासमें तरह मुनीश्वर लोग वह अश्वमेध यज्ञ कर रहे थे ॥ ६ ॥ ७ ॥

ईदुस्ते यज्ञविधिना ह्यग्निहोत्रादिलक्षणः । शकृत्तैर्वैकुण्ठैर्जैर्द्रव्यज्ञानक्रियेश्वरम् ॥ ८ ॥
 प्रत्यहं प्रातरुत्थाय रामचन्द्रः मर्मातया । नन्वाशुं विधिं देवान्मुनींश्चापि पृथक् पृथक् ॥ ९ ॥
 कौसल्याद्याश्च मातृश्च कामधेनु हृदि स्थितम् । चिन्तामणिं कौमुभं कठे बद्ध मणिप्रमम् ॥ १० ॥
 पुष्पकं यज्ञवाटस्य देवतां यज्ञपूरुषम् । ततो गत्वा रामनीये स्नात्वा रामो यथाविधि ॥ ११ ॥
 कृत्वा नित्यविधिं सर्वं पूजयामास शंकरम् । उपहारान् समर्प्या च कामधेनुममुद्धृतम् ॥ १२ ॥
 समानीतान् रत्नपात्रैः सीतया रघुनन्दनः । ततः संपूज्य तां धेनुं विधिं पूज्य सविस्तरम् ॥ १३ ॥
 ऋत्विजं तु संपूज्य तस्यैव स गुरुमभिधी । प्रभाते ऋत्विजः सर्वे महतीं मुनिश्वराः ॥ १४ ॥
 स्नात्वा नित्यविधिं कृत्वा तस्थुषंस्तस्य मंडपे । रामाज्याऽथ सीमित्रिन्नादीनां प्रपूजनम् ॥ १५ ॥
 दिव्यैर्नानोपहाराद्यैः कामधेनुसमुद्धृतैः । ततश्चकार सीमित्रिर्नृपादीनां प्रपूजनम् ॥ १६ ॥

तथा सीताज्या सीमित्रिणा लक्ष्मणप्रिया ॥ १७ ॥

मांडवी भूतकीर्तिश्च सर्वाश्रकुः प्रपूजनम् । अथ ते ऋत्विजश्चक्रुः स्वाहाकारैर्यथाविधि ॥ १८ ॥
 होमं नानाविधैर्द्रव्यैः सुगन्धैश्चमंडपे । पुरोडाशान् वरान् दिव्यान्भक्षन् रामोऽपि सीतया ॥ १९ ॥
 वाजिमेधे राघवस्य साक्षाद्देवाः स्वयं मुदा । हवींषि भक्षयामासुस्त्यक्तमात्राणि पात्रके ॥ २० ॥
 अस्तु श्रीपदिति प्रोचुर्वाद्यधोऽसौ मेघवत् । भूयते यज्ञशालासु सर्वं ऋत्विजकीर्तितः ॥ २१ ॥
 मध्ये कुड महारम्य व्यासमृत्विग्जनैः शुभम् । ततो मुनीश्वराः सर्वे सतो देवाः समंततः ॥ २२ ॥
 ततः सर्वाः स्त्रियः श्रेष्ठास्तथा विद्याधराः स्थिताः । ततो यक्षाश्च गन्धर्वाः किन्नराः प्लवगोत्तमाः ॥ २३ ॥
 ततस्ते क्षत्रियाः सर्वे ततस्तेषां तु संवकाः । ततः स्थिता चारनार्यस्ततो मागधवंदिनः ॥ २४ ॥
 ददशुः संस्थिता यज्ञमंडपे यज्ञकौतुकम् । मग्नाह्वावधिं कृत्वा ते ऋत्विजश्च सविस्तरम् ॥ २५ ॥

द्रव्यज्ञान एवं क्रियाओंमें निपुण वैदिक अग्निहोत्रादिको प्राप्त एवं वैदिक विधियोंमें शास्त्रानुसार यज्ञ कर रहे थे ॥ ८ ॥ रामचन्द्रजी नित्य प्रातःकाल उठ तब ही चादि क्रियाओंसे निवृत्त होकर गंधु, बह्मा एवं अन्याद्य देवताओंको, मुनियोंको, कामधेनुका, हृदयस्थ चिन्तामणिको, कठबद्ध सूर्यके समान कौमुभमणि-को, पुष्पक विमानको, यज्ञके देवता तथा भगवान्को करते थे ॥ ९ ॥ १० ॥ उसके बाद यथाविधि रामतीर्थमें जाकर स्नान करते थे ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर सम्पूर्ण दैनिक कृत्य करते और कामधेनुसे प्राप्त उपहारोंको भेंट देते थे ॥ १२ ॥ सीताके द्वारा रत्नपात्रोंमें लाये गये संभारसे कामधेनुकी पूजा करनेके बाद विस्तारपूर्वक बह्माकी पूजा करते थे ॥ १३ ॥ तदनन्तर ऋत्विजोंकी पूजा करके आचार्यके पास बैठ जाते थे । ऋत्विक् होता एवं सब मुनीश्वर भी नित्यकर्मोंको समाप्त करके यज्ञमण्डपमें बैठ जाते थे । रामको आज्ञासे लक्ष्मणजी उनकी पूजा करते थे ॥ १४ ॥ १५ ॥ बादमें कामधेनुसे उत्पन्न नाना प्रकारके स्वर्गीय उपहारोंसे राजाओंकी पूजा करते थे ॥ १६ ॥ दिव्य वस्त्राभरणों तथा विविध पक्वान्नोंसे लक्ष्मणप्रिया जमिला एवं माण्डवी-श्रुतकाली प्रभृति स्त्रियां भी सीताके आज्ञानुसार सब स्त्रियोंका पूजन करता थीं ॥ १७ ॥ इस तरह प्रत्येक मनुष्यकी यथायोग्य पूजा हो चुकनेके बाद ऋत्विक् लोग स्वाहाकारों तथा विविध सुगन्धित द्रव्योंसे यज्ञमण्डपमें हुवन करते थे ॥ १८ ॥ सीता और राम इष्टियोंकी समाप्तिपर श्रेष्ठ एवं दिव्य पुरोडाशोंकी छांटे ॥ १९ ॥ रामचन्द्रजीके अश्वमेध यज्ञमें देवता प्रत्यक्ष प्रकट होकर बड़े आनन्दसे अग्निमें प्रक्षिप्त द्रव्योंकी छांटे थे ॥ २० ॥ ऋत्विक् लोग 'अस्तु श्रीपद' इस प्रकार बोलते थे और चाने बजाते थे । जिनका मेघध्वनिकी तरह गम्भीर शब्द यज्ञशालामें सुनायी पड़ता था ॥ २१ ॥ मध्यमें रमणीय एवं ऋत्विक्जनोंसे व्याप्त हुवनकुण्ड था । उसके पास मुनीश्वर बैठे । चारों तरफ देवता बैठे थे ॥ २२ ॥ इसके बाद सम्पूर्ण स्त्रियां थीं । उनके बाद विद्याधर बैठे थे । उनके बाद यक्ष, यक्षीके बाद गन्धर्व, गन्धर्वोंके बाद किन्नर, किन्नरोंके बाद बन्दर, उनके सत्रिय, उनके संवकवर्ग, उनके बाद वैश्यायें, उनके बाद मागध और वंशज बैठे थे ॥ २३ ॥ २४ ॥ इस तरह अपने-अपने स्थानोंपर बैठे हुए सब लोग यज्ञका कौतुक देख रहे थे ॥ २५ ॥

ततो माध्याह्निकं कर्तुं ययुस्तां सरयुं नदीम् । कृत्वा माध्याह्निकं कर्म मत्वा तु यज्ञमण्डपे ॥२६॥
 हेमावने तु सर्वत्र नेमिरेखायामे स्थितः । देवाश्चाप्यन्धारायास्ते तस्युर्दिष्यासनोपरि ॥२७॥
 लक्ष्मणस्तान् प्रपूज्याथ भरतेन स शत्रुदा । मस्थाप्य हेमपात्राणि सर्वेषां पुरतस्तदा ॥२८॥
 जानकीं त्वरयामास परिवेषणकर्मण । अथ सोतोर्मिला रम्या तथा सा माण्डवी शुभा ॥२९॥
 श्रुतकान्तिमन्त्रिषत्न्यः सुहृत्पत्न्यः सहस्रशः । परिवेषणकर्मणि चक्रस्ता यज्ञमण्डपे ॥३०॥
 नानाविधचराक्षेत्रं कामधेनुभक्षुर्धुवः । मुनीश्वरादकाः सर्वे तोषमापुस्तदाऽध्वरे ॥३१॥
 मातादीनां हि नारीणां तदा यज्ञस्य मण्डपे । नृपुगणां किंकिणीनां शुश्रुवे सर्वतो ध्वनिः ॥३२॥
 यथेच्छ भुजतां सर्वे पाष्यतां यद्वदि स्थितम् । सा शंका भोजने कार्या त्यक्तव्य यम रोचते ॥३३॥
 अथाचितानि देवानि पकाग्रानि यथार्हानि । असहिताज्यधाराऽथ कार्या राघवशासनात् ॥३४॥
 गृध्रानां किञ्चिदुच्यते नेति नेति द्विजाः पुनः । इति भोजनकाले वै शुश्रुवे सर्वतो ध्वनिः ॥३५॥
 किञ्चिदपेक्षितं स्वामिन्निति रामेण प्रार्थिताः । चक्रुस्ते भोजनं सर्वे वोजिता व्यजनादिभिः ॥३६॥
 जलरुष्णोदकधनुः करशुद्धिं मुनीश्वराः । ततो गृहीतानां चला मुनयस्ते निर्जराः ॥३७॥
 गृहीत्वा हेममुद्रां हि राघवेण पृथक् पृथक् । समर्पितां दक्षिणार्थं जग्मुर्वासस्थलानि हि ॥३८॥
 ततः पूर्वोपचाराद्यैः कथितैरेव पार्थिवाः । चक्रुस्ते भोजनं सर्वे चक्रुर्वैष्णवास्ततः परम् ॥३९॥
 क्षाणां भोजनशालासु पूर्वं भुक्त्वाऽमरस्त्रियः । साहसा मुनिपत्नीभिस्ततस्ताः क्षत्रियस्त्रियः ॥४०॥
 चक्रुर्वै भोजनं सर्वाः सीतया प्रार्थिता मृदुः । ततो वैष्णवास्तपश्चक्रुः पौरनार्यस्ततः परम् ॥४१॥
 ततः शूद्रास्तपश्चापि मृदा चक्रुश्च भोजनम् । शालासु पुरुषाणां ततो वानरराक्षसाः ॥४२॥
 ऋक्षाः पौरा आनपदाश्चक्रुर्भोजनमुत्तमम् । ततः शूद्रादयः सर्वे ततः पार्थिवसंयकाः ॥४३॥

अस्मिन् स्थाने मन्त्रालयस्य विस्तारपूर्वकं हवनं करके माध्याह्निकं कृत्यं करनेके लिए सरयूपर जाते थे ॥ २६ ॥ माध्याह्निकं कर्म करके वे यज्ञमण्डपमें निमिरेखायामे सुवर्णनिर्मित आसनपर बैठ जाते थे । इसी तरह अपना अपना कृत्य समाप्त करके देवता भी दिव्यासनपर विराजते थे ॥ २७ ॥ बादमें भरत, लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न उनका पूजा करके सुवर्णके भाजनपात्र उनके सामने रख देते थे ॥ २८ ॥ भगवान् रामचन्द्र भाजन परासनके लिए साक्षात् आज्ञा देते थे । तब साता, उर्मिला, माण्डवी, श्रुतकान्ति एवं हजारों मित्रपालियाँ परासता थीं ॥ २९ ॥ ३० ॥ नाना प्रकारका उन उत्कृष्ट भाजनसामग्रियोंमें मुनीश्वरादिक प्रसन्न होते ॥ ३१ ॥ जिस समय सीता प्रभुति स्त्रियों यज्ञमण्डपमें भाजन परासता थीं, उस समय नुपूरी एवं किंकिणियोंका मधुर ध्वनि सबत्र सुनाई पड़ता था ॥ ३२ ॥ सब लोग यथेष्ट भोजन करें, जाएसँ हूँ सा मणि, भाजनके विषयमें कोई किसी तरहका शंका न करे और जिसका जो पदार्थ न रुचें, उस छोड़ ॥ बिना मणि हूँ यथेष्ट पक्कापक दो और उनका थोलाथोम अलण्ड पृतधारा डालो । इस रामचन्द्र पारवपकका आज्ञा देते थे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ परासनेवाले कहते थे और लीजिये, ब्राह्मण कहते 'नही' । प्रकार भोजनकालमें सर्वत्र वही ध्वनि सुनाई पड़ता था ॥ ३५ ॥ भगवान् रामचन्द्रजा कहते थे-भगवन् ! क्या चाहिये ? इसके उत्तरमें ब्राह्मण 'सब पारपूण है' ऐसा कहते थे । इस प्रकार आनन्दक साथ पक्केका हुआ खाते हुए विप्रगण भोजन करते थे ॥ ३६ ॥ भोजनोत्तर ठण्डे एवं उष्णादिकसे हस्त-दन्त-शुद्धि करके वे तस्म्युक्त होते ॥ ३७ ॥ इसके बाद राम द्वारा दक्षिणार्थ समर्पित स्वर्णमुद्राको लेकर वे मुनीश्वर एवं देवता डेरपर जाते थे ॥ ३८ ॥ इसके बाद पूर्वोक्त उपचारोंसे राजालींग भोजन करते थे । तदुपरान्त वैष्णव भोजन करतो थी ॥ ३९ ॥ स्त्रियोंका भोजनशालामें पहले देवाङ्गनार्य, फिर मुनिपालियाँ और उनके बाद क्षत्रियपत्नियाँ भोजन करती थी । तदनन्तर सभी स्त्रियाँ साताकी प्रार्थना-पर भोजन करती थी । उसके बाद वणिक्-स्त्रियाँ, तदुपरान्त पुरनारियाँ एवं शूद्रवास्तव्या भोजन करती थी । पुरुषोंके भोजनशालामें वानर, राक्षस, ऋक्ष, पुरवासा, शूद्रादि एवं राजसंयक्त ये सब क्रमशः भोजन करते थे

न कश्चित् क्षुधितस्तत्र नासीत्कस्य निषेधनम् । ततो रामः सुहृन्मित्रैर्बन्धुभिः सचिवादिभिः ॥४४॥
 चकार भोजनं स्वस्थः सीतया प्राणितो मुहुः । यावन्तो भूमिकणिका यावन्तोयविंदवः ॥४५॥
 यावन्पुद्गलि गगने तावन्तो गघवाध्वरे । प्रन्यहं भोजनं चक्रुर्विप्राद्यास्तस्त्रियोऽपि च ॥४६॥
 सभूमिर्मन्त्रिपत्नीमिस्तथा देवपत्निभिः । चकार भोजनं सीता दिव्यान्नैः स्वस्थमानसा ॥४७॥
 ततश्चतुर्थप्रहरे सभां कृत्वा तु मंडपे । कथाभिः कीर्तनैर्मूर्तिः शास्त्रार्थैः सुपुण्यदैः ॥४८॥
 वारस्त्रीणां नृत्यमूर्तिर्निन्ये गमो दिनक्षयः । ततः मध्याह्नं कृत्वा पुनर्हृत्वा यथाविधि ॥४९॥
 पूर्वोक्तैस्तु कथार्थैश्च निशायाः प्रहरद्वयम् । सगभिकस्य निद्रार्थं सर्वानाज्ञापयत्तदा ॥५०॥
 गत्वा स्वस्वस्थस्तं सर्वे भिद्रां चक्रुर्गन्धमुखम् । पट्टकुलामने भूम्यां सीतया स जिनेन्द्रियः ॥५१॥
 चकार निद्रां श्रीरामो हृदि चिन्त्येष्टदेवताः । आज्ञाभगो नरेन्द्राणां विप्राणां मानसं डनम् ॥५२॥
 पृथक् शय्या च नारीणामश्लेष उच्यते । ततः स सीतया युक्तश्चकार शरणं प्रभुः ॥५३॥
 एवमासीत्प्रन्यहं वै दिनचर्याऽध्वरे प्रभोः ॥ ५४ ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यागकाण्डे
 यज्ञारम्भे रामदिनचर्यावर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

(अज्ञारोपणव्रतकी महिमा)

श्रीरामदास उवाच

सौत्येऽहन्यवनीपालो याजकान्सदसस्पतीन् । अज्ञयन्महाभागान् यथावत्सुसमाहितः ॥ १ ॥
 जय चैत्रे सिते पक्षे राजानः प्रतिपत्तिर्था । अज्ञानारोपयामासुर्विधिनाऽध्वरमंडपे ॥ २ ॥
 श्रीविष्णुदास उवाच

आरोपिता अज्ञाः प्रोक्ताः पाथिर्वैर्यममंडपे । गुरो तेषां विधानं मां सम्यग्बक्तुं त्वमर्हसि ॥ ३ ॥

॥ ४०-४३ ॥ किसीके लिए भोजनका निषेध नहीं था । वहाँपर कोई भूखा नहीं रहता था । सबके भोजन कर लेनेके बाद रामचन्द्रजी स्वयं सीताके चारोंद्वार प्रार्थना करनेपर अपने पुत्र, मित्र, बन्धु एवं सचिवोंके साथ भोजन करते थे ॥ ४४ ॥ पृथ्वीमें जितनी रेतुकायें हैं, जितने जलविन्दु हैं तथा आकाशमें जितने नक्षत्र हैं, उतनी संख्यामें ब्राह्मण प्रभृति पुरुष एवं स्त्रीवृन्द रामचन्द्रके यज्ञमें प्रतिदिन भोजन करते थे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ रामचन्द्रके भोजनोपरान्त श्रीसीताजी भी सास, मन्त्रिपत्नी तथा देवपत्नियोंके साथ दिव्यान्न खाती थीं ॥ ४७ ॥ पुनः चौथे पहर यज्ञमण्डपमें सभा करके कथा, हरिकीर्तन, पुण्यप्रद शास्त्रचर्चा तथा वेद्याओंके नृत्यगान द्वारा राम अवशिष्ट समय बिताते थे ॥ ४८ ॥ पुनः सायंकाल मन्त्र्या एवं हवनकुर्य पूर्ण करके कथादिके द्वारा राजाके दो प्रहर बिताकर सब लोगोंको शयन करनेको आज्ञा देत थे ॥ ४९ ॥ ५० ॥ तब सब लोग अपने-अपने स्थानोंपर सानन्द शयन करते थे । राम भी अपने इष्टदेवताका हृदयमें स्मरण करके भूमिपर पट्टकुलासन बिछा तथा जितेन्द्रिय होकर सीताके साथ सोते थे ॥ ५१ ॥ राजाओंकी आज्ञा तोड़ना, ब्राह्मणोंका मानमर्दन एवं स्त्रियोंकी पृथक् शय्या करना अशस्त्रवध कहलाता है । अतः भगवान् रामचन्द्र सीताके साथ ही सोते थे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ प्रकार यज्ञमें भगवान्का यह प्रतिदिनका काम ॥ ५४ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यागकाण्डे यज्ञारम्भे रामचर्यावर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—सौत्यपर्वके दिन राजा रामचन्द्रने सावधान होकर याजकों एवं सदस्योंकी यथावत् पूजा की ॥ १ ॥ चैत्र शुक्लपक्ष प्रतिपदाके दिन राजालोग विधिपूर्वक यज्ञमण्डपके ऊपर अज्ञाओंको कहलाने लगे ॥ २ ॥ विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! आपने कहा ॥ राजा लोग यज्ञमण्डपके ऊपर अज्ञा

श्रीरामदास उवाच

मम कद्रवः कृतः शिष्य भव्या लोकोपकारकः । सावधानमना भूत्वा शृणुष्व न्वं मयोच्यते ॥ ४ ॥
 नांश्चमरं व्रतं चेदं नृपदंष्ट्रा समागतम् । आरोपिता ध्वजाः सर्वपञ्चवाटे तदा मुदा ॥ ५ ॥
 नोचेद्विष्णुगृहं ध्वजोपणीया ध्वजा नृभिः । मधुशुक्लदशम्यां च पुण्यायां प्रतिपत्तिर्द्यौः ॥ ६ ॥
 अथवा रोपणीयास्ते श्रीरामनवमीदिने । मधुशुक्लदशम्यां वा दशम्यामाश्विने सिते ॥ ७ ॥
 अथोर्जप्रतिपदि शुक्लपक्षेऽपि भो द्विज । एते काला मया प्रोक्ता व्रतस्यास्य तवाग्रतः ॥ ८ ॥
 अधुना संप्रवक्ष्यामि ध्वजारोपणमुत्तमम् । व्रतं पापहरं पुण्यं राममंतोपकारकम् ॥ ९ ॥
 यः कुर्याद्विष्णुभक्त्यै ध्वजारोपणमंजितम् । मम्पूज्यते विरिंचार्द्यैः किमन्यैर्हनुमान्पितैः ॥ १० ॥
 देवभाग्यमहम् तु यो दद्याच्च वृद्धिभवे । तत्फलं समवाप्नोति ध्वजारोपणकर्मणः ॥ ११ ॥
 ध्वजारोपणतुल्यं मयान्न गंगास्नानमुत्तमम् । अथवा तुलसीसेवा शिवलिंगप्रपूजनम् ॥ १२ ॥
 अहोऽपर्वमहोऽपर्वमहोऽपर्वं महत्तमम् । सर्वपापहरं कर्म ध्वजारोपणसंश्रितम् ॥ १३ ॥

तानि पर्वानि वक्ष्यामि शृणु न्वं गदतो मम ॥ १४ ॥

अथ चैत्रे मिते पक्षे व्रतं हि प्रतिपत्तिर्द्यौः । मधुशुक्लदशम्यां वा नवम्यां राघवस्य वा ॥ १५ ॥
 कार्यं वाऽऽश्विनमासस्य दशम्यां शुक्लपक्षके । उर्जशुक्लप्रतिपदि दशम्यां वा विधीयताम् ॥ १६ ॥
 अवश्यं चैत्रमासे हि कार्यं चैत्रशुक्लतृतीयम् । अनिकानि चैत्रमासे कार्यं चैतरपर्वसु ॥ १७ ॥
 चैत्रशुक्लप्रतिपदि प्रभाते प्रयतो नरः । स्नानं कुर्यान्प्रयत्नेन दंतधावनपूर्वकम् ॥ १८ ॥
 ततः कुर्यान्नित्यकर्म पश्चाद्विष्णुं ममर्चयेत् । चतुर्भिर्भ्रातृणैः सार्द्धं कृत्वा च स्वस्तिवाचनम् ॥ १९ ॥
 नांदीश्राद्धं प्रकुर्वीत ध्वजारोपणकर्मणि । ध्वजस्तंभौ गायत्र्या प्रोक्षयेद्धस्त्रसंयुतौ ॥ २० ॥
 पनाकयोर्लेखनार्थं वैनतेयाज्जर्जामुता । सूर्यं चंद्रं मारुतिं च वैनतेयं प्रपूजयेत् ॥ २१ ॥
 धानारं च विधानारं पूजयेत्कुम्भकद्वये । हरिद्राऽक्षतद्वार्धैः शुक्लपुष्पैश्चोपतः ॥ २२ ॥

कद्रवने भग्ये । मो ध्वजारोपणका क्या विधान है । यह कृपा करके मुझे बताइए ॥ ॥ श्रीरामदासजीने उत्तर दिया—हे शिष्य । तुमने अच्छा प्रश्न किया है । यह प्रश्न लोकोपकारक है । तुम सावधान होकर सुनो । मैं कहता हूँ ॥ ४ ॥ ध्वजारोपणरूपी व्रतके समझकी प्राप्ति जानकर राजाओंने यज्ञमण्डपमें ध्वजाओंको आरोपित करना आरम्भ कर दिया ॥ ५ ॥ ध्वजका समय हो तो चैत्र शुक्लपक्षको प्रतिपद विष्णुमन्दिरके ऊपर ध्वजा आरोपित करें ॥ ६ ॥ अथवा रामनवमी दशमी तथा विजयादशमीको ध्वजारोपण करें ॥ ७ ॥ अथवा पश्चिमशुक्ल प्रतिपदाको ध्वजारोपण करें । ये ही तिथियाँ ध्वजारोपणके लिए उत्तम होती हैं, जो मैंने तुम्हें बतलायी हैं ॥ ८ ॥ मैं ध्वजारोपण व्रतका विधान बतलाता हूँ । यह व्रत रामकी अत्यन्त प्रिय और असीव पुण्योत्पादक ॥ ९ ॥ इस विषयमें अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं है । जो प्राणी विष्णुमन्दिरके ऊपर ध्वजारोपण करता है, उसकी सहायिक देवता भी पूजा करते हैं ॥ १० ॥ वृद्धि विप्रको हजार तोला सुवर्ण देनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल ध्वजारोपणका भी है ॥ ११ ॥ ध्वजारोपण कर्मके समान न गङ्गास्नान है, न तुलसीसेवा और न शिवपूजा ही है ॥ १२ ॥ यह कार्य इतना उत्तम है कि इसकी करनेसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ १३ ॥ इसका सब विधान मैं तुम्हें बतलाता हूँ—सुनो ॥ १४ ॥ इसकी करनेका चैत्रादि मास उपयुक्त समय है । यदि इनमेंसे पहला समय न मिले तो इतर पर्वमें ही ध्वजारोपण करें ॥ १५-१७ ॥ चैत्र शुक्ल प्रतिपदाको प्रातःकाल दन्तधावनपूर्वक स्नान करें ॥ १८ ॥ फिर नित्यकृत्यसे निवृत्त होकर विष्णुभगवान्की पूजा करें । तदनन्तर चार ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराके नान्दीश्राद्ध करें और वस्त्रावृत ध्वजाओंको गायत्रीमन्त्रसे प्रोक्षित करें ॥ १९ ॥ उन ध्वजाओंमें नरुह और हनुमानजीका चित्र बना रहे । फिर उसपर सूर्य-चन्द्र-मारुत एवं हनुमान्जीकी पूजा करें । तदनन्तर दो घड़ोंपर हरिद्रा, अक्षत, दूर्वा एवं विशेष करके श्वेत पुष्प-

ततो गोचर्ममात्रं तु स्थण्डिलं चोपलिख्य च । आधायाग्निं स्वगृहोक्त्या घनभागादिकं क्रमात् ॥२३॥
 जुहुयात्पायसेनैव घृतेनाष्टोत्तरं स्रुतम् । प्रथमं पौरुषं सूक्तं विष्णोर्नुकेन मंत्रतः ॥२४॥
 ततश्च वैनतेयाय स्वाहेत्यष्टाहुतीस्तदा । मारुतेरष्टाहुतीश्च कृत्वा स्वाहेति होमयेद् ॥२५॥
 सोमो धेनुं समुचार्य जुहुयात्प्रयत्नस्तदा । सौरान् मंत्रान् जपेत्तत्र श्रुतिसूक्तानि भक्तितः ॥२६॥
 रात्रौ जागरणं कुर्यादुपकण्ठं हरेः शुचिः । एवं नवदिनं कार्यं पूजनं परमोत्सवैः ॥२७॥
 नवरात्रं जागरणं कुर्यादभित्य सुर्कार्त्तनैः । ततो दशम्यामुषमि समुन्थाप व्रती शुचिः ॥२८॥
 प्रातः स्नात्वा नित्यकर्म समाप्याथ ततः परम् । गन्धपुष्पादिभिर्देवानर्चयेत्पूर्ववत्क्रमात् ॥२९॥
 ततो मंगलवाक्यैश्च शुक्लपाठैश्च शोभनैः । नृत्यैश्च स्तोत्रपठनेनैवेद्विष्णुमन्दिरं ध्वजम् ॥३०॥
 देवस्य द्वारदेशे ■■■ शिखरे वा मुदान्वितः । सुम्भिरं स्थापयेन्निष्ठप्य ध्वजस्तंभं सुशोभितम् ॥३१॥
 गन्धपुष्पाद्यर्तदोषैर्दिव्यधूपैर्मनोरमैः । अक्षयभोज्यादिसंयुक्तैर्नैवेद्यैश्च हरिं यजेत् ॥३२॥
 आप्रतिपदमारभ्य दशम्यवधिं सद्यनि । ध्वजयोः पूजनं कृत्वेकादश्यां हरिसद्यनि ॥३३॥
 आरोपणीयौ शिखरे पुरतो वा यथासुखम् । अथवा रोपणीयौ हि दशम्यां तौ ध्वजोत्तमौ ॥३४॥
 नवम्यां वा द्वितीयायां चतुर्थ्यामष्टमीदिने । षष्ठ्यां वा रोपणीयौ तौ पूर्वं पूज्य यथाविधि ॥३५॥
 व्रतस्य प्रतिपद्येव प्रारम्भो नेत्रे दिने । पूर्वोक्तेषु हरेः कार्या न मासेष्वितरेषु च ॥३६॥
 माघामितचतुर्दश्यामेवं शंभोर्गृहे ध्वजौ । नन्दीभृङ्ग्यकितौ कृत्वा रोपणीयौ यथाविधि ॥३७॥
 आश्विनस्य सिताष्टम्यां मधोर्वा गिरिजागृहे । नमस्परस्य चतुर्थ्यां हि प्रोक्तो गणपतवृद्धे ॥३८॥
 मार्गशीर्षे शुक्लपष्ठ्यामेवं मार्तण्डसङ्गृहे । एवं हि सर्वदेवानामुत्साहदिवसेष्वपि ॥३९॥

ले घाना और विधानाकी पूजा करे । तत्पश्चात् गोचर्ममात्र स्थण्डिलके ऊपर परिसमूहनादि पंचभूतस्कार करके स्वशास्त्रीय गृहोक्त विधानसे कुण्डमें अग्नि स्थापित करे ॥ २०-२३ ॥ पुनः क्रमशः पायस और घृतसे आधार-आज्यभाग नामकी अष्टोत्तरशत आहुति दे । अथवा आधारज्यभागकी आहुति देकर पुनः क्रमशः पायस और घृतकी अष्टोत्तरशत आहुति दे । प्रथम आहुतियाँ पुरुषसूक्तके मंत्रोंसे और दूसरी आहुतियाँ विष्णोर्नुक इस मन्त्रसे दे ॥ २४ ॥ फिर गरुड़के निमित्त आठ आहुतियाँ और मादतिके निमित्त ■■■ आहुतिसे हवन करे । 'गरुडाय स्वाहा' मंत्रसे पहली ■■■ आहुतियाँ एवं 'मारुते स्वाहा' इस मंत्रसे दूसरी आठ आहुतियाँ दे ॥ २५ ॥ पुनः 'सोमो धेनुः' मंत्रका उच्चारण करके संयमपूर्वक हवन करे । तदनन्तर सौर मन्त्रोंका जप और शान्तिसूक्तका पाठ करे ॥ २६ ॥ रात्रियोंमें श्रीहरिके समीप जागरण करे । फिर दशमी-को परमोत्सवके साथ भगवान्का पूजन करे ॥ २७ ॥ नित्य हरिकीर्तन करके नवरात्रि पर्यन्त जागरण करे । दशमं दिन प्रातः स्नान-संध्यादि नित्यकृत्योंसे निवृत्त होकर पूर्ववत् पूजनसम्भारसे भगवान्की पूजा करे ॥ २८ ॥ २९ ॥ इसके बाद मंगलमय वाजे-गाजेके ■■■ स्तोत्रपाठ करते हुए ध्वजाको विष्णुमन्दिरमें ले जाय ॥ ३० ॥ मन्दिरके द्वार तथा मन्दिरपर पुष्पमालासे सुशोभित ध्वजाका स्थापित करे । ३१ ॥ वहाँ गन्ध, पुष्प, अक्षत, घूप, दीप एवं भक्ष्य-भोज्यादि युक्त नैवेद्यसे श्रीहरिका पूजन करे । अथवा प्रतिपदासे लेकर दशमी तक घरमें ध्वजाओंकी पूजा करके एकादशीको विष्णुमन्दिरके शिखर या द्वारपर उन ध्वजाओं-को स्थापित करे । अथवा दशमीको ही स्थापित कर दे ॥ ३२-३४ ॥ ■■■ द्वितीया, चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी तथा नवमीको सुविधानुसार समर्थ देखकर उपर्युक्त विधानसे पूजा करके ध्वजा स्थापित करे ॥ ३५ ॥ किन्तु व्रतका प्रारम्भ प्रतिपदाको ही होता है । श्रीहरिके निमित्त ध्वजारोपण पूर्वोक्त मासोंमें ही करे, अन्य मासोंमें नहीं ॥ ३६ ॥ इसी प्रकार माघशुक्ल चतुर्दशीको सिवालयापर ध्वजारोपण करे । ■■■ ध्वजामें यथाविधि नन्दी और भृङ्गीको अंकित करे ॥ ३७ ॥ आश्विन शुक्ल अष्टमीको या चैत्रके नवरात्रमें पार्वतीके मन्दिरपर ध्वजा फहराये । भाद्रपद चतुर्थीको गणेशके मन्दिरपर ध्वजारोपण करे ॥ ३८ ॥ मार्गशीर्ष शुक्ल षष्ठाको सूर्यके मन्दिरपर ■■■ करे । इस प्रकार देवताओंके उत्सवदिवसमें ही यह कार्य सम्पन्न करे ॥ ३९ ॥

मधूर्वाश्विनमासेषु विना विष्णोर्न चेतरे । एवं देवालये ॥ ४० ॥
 संपूज्य विष्णुं विधिवत् विचक्षाट्यं विना ततः । प्रदक्षिणमनुव्रज्य स्तोत्रमेतदुदीरयेत् ॥ ४१ ॥
 नमस्ते पुंडरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन । नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुषपूर्वज ॥ ४२ ॥
 येनेदमलिलं जातं यस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम् । लयमेष्यति यत्रैतत् प्रपन्नोऽस्मि माधवम् ॥ ४३ ॥
 न जानन्ति वरं देवं सर्वे मन्त्रादयः सुराः । योगिनो यं प्रशंसन्ति तं वंदे शानरूपिणम् ॥ ४४ ॥
 अंतरिक्षं तु यन्नाभिर्धामिर्धा यस्य चैव हि । पादादभ्युच्च वै पृथ्वी ॥ वंदे विश्वरूपिणम् ॥ ४५ ॥
 यस्य ओत्रे दिशः सर्वा यच्चक्षुर्दिनकृच्छरी । श्रद्धामायजुषो येन तं वंदे मन्त्ररूपिणम् ॥ ४६ ॥
 यन्मुखाद्ब्राह्मणा जाता यद्वाङ्मोरमवन्नृपाः । वैश्या यस्वोक्तो जाताः पद्भ्यां बृहस्पतिरायत ॥ ४७ ॥
 मनमभ्रतमा जातो दिनेशश्चक्षुस्तथा । प्राणेभ्यः पवनो जातो ब्रह्मादग्निरजायत ॥ ४८ ॥
 पापमंदाहमात्रेण वदन्ति पुरुषं तु यम् । स्वमाहविमलं शुद्धं निर्विकारं निरञ्जनम् ॥ ४९ ॥
 क्षीगन्धिशायिनं देवमनंतमपराजितम् । सद्भक्तवत्सलं विष्णुं भक्तिगम्यं नमाम्यहम् ॥ ५० ॥
 पृथिव्यादीनि भूतानि तन्मात्राणीन्द्रियाणि च । सुष्ठुस्याणि ॥ येनायंस्तं वंदे सर्वतोमुखम् ॥ ५१ ॥
 यद्ब्रह्म परमं धाम सर्वलोकोत्तमम् । निर्गुणं परमं सूक्ष्मं प्रणतोऽस्मि पुनः पुनः ॥ ५२ ॥
 निर्विकारमजं शुद्धं सर्वतो वह्निमीश्वरम् । यमामनन्ति योगीन्द्राः सर्वकारणकारणम् ॥ ५३ ॥
 एको विष्णुर्महद्भूतं पृथग्भूतान्यनेकशः । त्रीँल्लोकाश्च व्याप्य भूतात्मा भुंक्ते विश्वभृगव्ययः ॥ ५४ ॥
 निर्गुणः परमानन्दः स मे विष्णुः प्रसीदतु । हृदयस्थोऽपि हृदस्थो मायया मोहितात्मनाम् ॥ ५५ ॥
 शान्तिना सर्वधर्मस्तु ॥ मे विष्णुः प्रसीदतु । चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पंचभिरेव च ॥ ५६ ॥
 हृयते च पुनर्द्वाभ्यां स मे विष्णुः प्रसीदतु । शान्तिना कर्मणां चैव तथा भक्तिमतां नृणाम् ॥ ५७ ॥

चैत्र आश्विन तथा कार्तिक इन तीन भासोंमें विष्णुके सिवाय ॥ देवताओंके लिए स्वरूपारोपण नहीं करना चाहिये ॥ ४० ॥ इस प्रकार वित्तशाठ्य त्यागकर देवालयपर स्वरूपारोपण करके विधिवत् विष्णुकी पूजा करे । तदनन्तर प्रदक्षिणा करके ॥ स्तोत्रका पाठ करे—॥ ४१ ॥ हे पुण्डरीकाक्ष ! हे हृषीकेश । हे महापुरुषपूर्वज । आपको अनेकशः प्रणाम है ॥ ४२ ॥ जिससे यह संसार उत्पन्न हुआ है, जिसके आधारपर टिका हुआ और जिसमें लय होगा, मैं उन माधव भगवान्को ॥ करता ॥ ४३ ॥ जिसको ब्रह्मादि देवता भी भली-भाँति नहीं जानते और योगी जिनकी प्रशंसा करते हैं, उन परब्रह्म परमात्माको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४४ ॥ अंतरिक्ष जिसकी नाभि है, आकाश जिसका मस्तक है और जिसके चरणसे भूमि उत्पन्न हुई है, मैं उस ब्रह्मको प्रणाम करता हूँ ॥ ४५ ॥ दिशाएँ जिसके कान हैं, सूर्य एवं चन्द्र जिसके नेत्र हैं, ऋक्-साम एवं यजुर्वेद जिससे जायमान हुए हैं, उस ब्रह्मको मैं ॥ करता ॥ ४६ ॥ जिसके मुखसे ब्राह्मण, बाहुसे क्षत्रिय, उरग्रहसे वैश्य और पैरोंसे शूद्र उत्पन्न हुए हैं, उस ईश्वरको मैं ॥ करता ॥ ४७ ॥ स्वभावतः निर्मल, निरञ्जन, निर्विकार एवं शुद्ध परमात्माके नामस्मरणमात्रसे ॥ पापसमूह नष्ट हो जाता है ॥ ४८ ॥ जिसके मनमें चन्द्रमा, चक्षुसे सूर्य, प्राणोंसे पवन एवं मुखसे अग्नि उत्पन्न हुआ है, उस परमात्माको मैं प्रणाम ॥ ४९ ॥ क्षीरसागरमें शयन करनेवाले, भक्तोंके प्रेमी, भक्तिगम्य, अपराजित और ॥ स्वस्थ विष्णुकी मैं ॥ करता हूँ ॥ ५० ॥ पृथिव्यादि पञ्चभूत, तन्मात्रा, एकादश इन्द्रियाँ और सूक्ष्म प्राणिसमूह जिनसे उत्पन्न हुए हैं, ॥ सर्वतोमुख भगवान्को मैं ॥ करता हूँ ॥ ५१ ॥ जो ब्रह्म है, सर्व-लोकोत्तमोत्तम है, निर्गुण है एवं परम सूक्ष्म है, उस परमात्माको मैं पुनः प्रणाम करता हूँ ॥ ५२ ॥ योगीन्द्रजन्म जिसकी निर्विकार, अज, शुद्ध, ईश्वर एवं संसारका आदि ॥ कहते हैं, ॥ परब्रह्मको मैं प्रणाम ॥ ५३ ॥ जो विश्वमोक्षा और ॥ है, जो एक होता हुआ भी अलग-अलग ॥ महाभूतों एवं तीनों लोकोंमें व्याप्त है, उस भूतात्माको मैं प्रणाम करता ॥ ५४ ॥ जो निर्गुण है, परमानन्दस्वरूप है और हृदयमें रहते हुए भी जिस प्राणीकी आत्मा मायासे मुख्य है, वह उससे दूर है ॥ ५५ ॥ जो शान्तिवर्षा सर्वत्र है । वह विष्णु

मतिदाता विश्वभुगः स मे विष्णुः प्रसीदतु । जगद्धितार्थं यो देहमदभ्राह्मीलया हविः ॥५८॥
 यमर्चयन्ति त्रिविधाः स मे विष्णुः प्रसीदतु । यमामर्चन्ति वै संतः सर्वदाऽऽनन्दविग्रहम् ॥५९॥
 निर्गुणं च गुणाधारं स मे विष्णुः प्रसीदतु । परेशः परमानन्दः परान्तरतः प्रभुः ॥६०॥
 चिद्रूपश्च परिज्ञेयः स मे विष्णुः प्रसीदतु । य इदं कीर्तयेन्नित्यं स्तोत्राणामुत्तमोत्तमम् ॥६१॥
 सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके मर्हायने । य इदं कीर्तयेद्विष्णुं ब्राह्मणांश्च प्रपूजयेत् ॥६२॥
 आचार्यं पूजयेत्पश्चादक्षिणाच्छादनादिभिः । ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्भक्तितः सत्यभाषणः ॥६३॥
 पुत्रमित्रकलत्रार्घवन्धुभिः सह वाच्यतः । कुर्वीत पारणां शिष्यं नारायणपरायणः ॥६४॥
 यस्त्वैतत्कर्म कुर्वीत, ध्वजारोपणमुत्तमम् । तस्य पुण्यफलं वक्ष्ये मृणुष्व सुसमाहितः ॥६५॥
 वक्षं ध्वजस्य संवत्सं यावच्चलति वायुना । तापस्त्वपापजालानि नश्यन्त्यत्र ■ संशयः ॥६६॥
 महापातकयुक्तो वा युक्तश्चेन्मर्त्यपातकः । ध्वजं विष्णुगृहे कृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥६७॥
 बावहिनानि वसति ध्वजो हरिगृहोपरि । तावद्युगमहत्काणि हरेः समीपमाप्नुयात् ॥६८॥
 आरोपितं ध्वजं दृष्ट्वा येऽभिवन्दन्ति धार्मिकाः । तेऽपि सद्यो विमुच्यन्ते ह्युपपातककोटिभिः ॥६९॥
 आरोपितं ध्वजं विष्णुगृहे धुन्वन्स्वकं पटम् । कर्तुः सराणि पापानि धुनोति निमिशार्धतः ॥७०॥
 एयं शिष्य मया प्रोक्तं यथा पृष्टं त्वया मम । ध्वजारोपणमाहात्म्यं मविधान मनोरमम् ॥७१॥
 समागतां प्रतिपद् ज्ञान्वा चैत्रमिनां नृपैः । आरोपिता ध्वजाः सर्वे द्वितीयार्था पृथक् पृथक् ॥७२॥
 ज्ञान्वा रामं महाविष्णुं तस्यैवाध्वरमण्डपे । कृत्वा चैकदिनं स्वस्ववासगोहेषु पूजनम् ॥७३॥
 ध्वजस्य पूजनं गेहे नवरात्रं समाचरेत् । यथाशक्त्यनुसारं वा चैकरात्रमपि वा ॥७४॥
 यशोऽमरदर्शनार्थं कृतमेकदिनं नृपैः । चकार राघवापि पूर्वमेव ध्वजोत्सवम् ॥७५॥
 माघमासे कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां शिवाग्रतः । तदा ध्वजर्महोर्ध्वस्तैः शुशुभे गगनांगणम् ॥७६॥

पुनरार प्रसन्न हों ॥ ५६ ॥ बार-बार ऋत्विक् जिनके प्रायश्चयं हुक्म करते हैं, कभी दो-दो और कभी पाँच-पाँच
 तथा फिर दो-दो ऋत्विक् हवन करते हैं, ■ विष्णु मेरे ■ प्रसन्न हों ॥ ५७ ॥ जो ज्ञानियों, कर्मों एवं
 भक्तोंकी गति हैं । जो विश्वभुक् है, वे विष्णु मेरे ऊपर ■ हों । जो संसारके हितके लिए गरीब धारण
 करते हैं ॥ ५८ ॥ जिनकी विद्वान् पूजा करते हैं । सन्त लोग जिनको सदा आनन्दविग्रह कहते हैं, वे
 विष्णु पुनरार प्रसन्न हों । जो निर्गुण हैं और सगुण भी हैं । जिनका सर्वेश, परमानन्द, परमात्मा एवं
 चिद्रूप इत्यादि नामोंसे परिचय मिलता है, वे विष्णु मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ५९ ॥ ६० ॥ जो पुरुष इस उत्तम
 स्तोत्रका पाठ करता है, वह समस्त पापोंसे विनिर्मुक्त होकर विष्णुलोकमें पूजित होता है । जो इसका
 कीर्तन करना चाहे, वह पुत्र-मित्र-कलत्रादिके ■ सत्यपरायण होकर इस स्तोत्रका कीर्तन करे । पश्चात्
 विष्णु, ब्रह्माण एवं आचार्योंकी पूजा करे । बादमें ब्राह्मणभोजन करावे ॥ ६१-६४ ॥ जो पुरुष ध्वजारोपण
 करता है, उसका पुण्यफल सावधान होकर सुनो ॥ ६५ ॥ आरोपित ध्वजाका वस्त्र वायुसे जैसे-जैसे हिलता
 है, तैसे-तैसे उस पुरुषका सब पाप नष्ट होता ■ है ॥ ६६ ॥ विष्णुमन्दिरके ऊपर ध्वजारोपण करनेसे
 एक महापातक क्या सभी पाप नष्ट हो जाते हैं । वह आरोपित ध्वजा जितने दिनों ■ हरिमन्दिरपर
 सुशोभित रहती है, उतने सहस्र युगपर्यन्त ध्वजारोपणकर्ता श्रीहरिके समीप रहता है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥
 जो प्रमिक्त पुरुष ध्वजाकी वन्दना ■ है, वे कोटि उपपातकोंसे मुक्त होते हैं ॥ ६९ ॥ वह आरोपित
 ध्वजा अपने वस्त्र कँपाती हुई निमिशार्धमें आरोपितके पापोंको नष्ट कर देती है । हे शिष्य ! तुमने
 जो मनोहर ध्वजारोपणमाहात्म्य पूछा, वह सब विधिपूर्वक मैंने कहा ॥ ७० ॥ इसीलिए चैत्रशुक्ल प्रतिपदाको
 आया हुआ जानकर राजाओंने द्वितीयाकी ध्वजाओंका आरोपण किया । यज्ञमण्डपमें स्थित राजाको महाविष्णु
 समक्ष ही वे राजे ध्वजाका अपने-अपने सन्धुओंने अलग-अलग पूजन करने लगे ॥ ७१-७३ ॥
 पूजा नवरात्र पर्यन्त अपना अपनी शक्तिके अनुसार करे । अथवा एक ही रात करे ॥ ७४ ॥ यशो-

इदं चरित्रं परमं मनोहरं श्रीमद्वज्रागेरविधानसंज्ञितम् ।

पटन्ति शृण्वन्ति नगाः सुपुण्ड्रं भवेच्च तेषां नियतं विचिन्तनम् ॥७७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितातमते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यागकाण्डे

ध्वजारोपणग्रन्थं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

(अवभृथस्नानोत्सवका वर्णन)

श्रीरामदास उवाच

अथ चैत्रसिते पक्षे नवम्यां रामजन्मनि । तदाऽवभृथस्नानार्थं वाजिमेषफलाप्तये ॥ १ ॥
चकार सूचनां राज्ञे राघवाय गुरुः स्वयम् । त्वरयामास तं रामं रविनाथभयान्मुनिः ॥ २ ॥
वसिष्ठवचनं श्रुत्वा रामो लक्ष्मणमब्रवीत् । अद्यावभृथस्नानार्थमुत्सवैर्गमनं मम ॥ ३ ॥
रामतीर्थं त्वया ज्ञात्वा करणीयं मयोच्यते । आह्वापनीया राजानो निजसैन्यैर्गजादिभिः ॥ ४ ॥
सञ्जीभूताः सावरोधास्तिष्ठन्मिति महषे । सिद्धं कार्यं निजं सैन्यं शिविकारथवारणम् ॥ ५ ॥
अश्वरथिसमायुक्तं तुरगोष्ट्रगर्जयुतम् । नवधाध्वनिः कार्या तूर्यादीनां स्वनोऽपि च ॥ ६ ॥
पताकाश्च ध्वजाश्चापि तोरणादि समंततः । मुक्ताप्रवालपुष्पाणि हाराश्चाध्वरमंडपात् ॥ ७ ॥
बन्धनीया रामतीर्थपर्यंतं मैकतेऽपि च । कदलीनां महास्तंभाश्चेक्षुदंडाः समंततः ॥ ८ ॥
पुष्पाणि वाटिकाश्चापि मृत्पात्रादिषु निर्मिताः । स्थापनीयाश्च सर्वत्र नृत्यंतु वारयोपिताः ॥ ९ ॥
सेचनीयो रामतीर्थभागश्चन्दनवासिभिः । पुष्पैराच्छादनीयो हि पट्टकुलादिभिस्तथा ॥ १० ॥
अन्यच्चापि यथायोग्यं यजोक्तं च मया तव । तत्कुरुष्वान्वितेन मामपृष्टाऽविचारितम् ॥ ११ ॥
तथैन्युक्त्या लक्ष्मणोऽपि तथा सर्वं चकार सः । अथ तं श्रुत्विजशङ्कुगमनोऽष्ट सविस्तराम् ॥ १२ ॥

तब देखनेके निमित्त राजाओं तथा रामजीने एक ही दिनमें सब कृत्य सम्पन्न कर लिया था ॥ ७७ ॥ इसी तरह माघकृष्ण चतुर्दशीको शिवजीके सम्मुख ध्वजारोपण किया । उस ऊँचा ध्वजासे गगनमण्डल अत्यन्त सुशोभित हुआ ॥ ७८ ॥ ध्वजारोपणविधानसंज्ञक इस परम मनोहर एवं पुण्यप्रद चरित्रको जो लोग पढ़ते और और सुनते हैं, विनितार्थ अवश्य पूर्ण होता ॥ ७९ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितातमते श्रीमदानन्दरामायणे यागकाण्डे 'ज्योत्स्ना' माघाष्टम्याया ध्वजारोपणग्रन्थं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

श्रीरामदास कहने लगे--चैत्रशुक्ल रामनवमीको अवधमेध यज्ञके फलप्राप्त्यर्थ अवभृथ-स्नानके लिये स्वयं गुरु वसिष्ठने रामको सूचना दी और सूर्यतापके भयसे जल्दी करनेके लिए कहने लगे ॥ १ ॥ २ ॥ वसिष्ठके वाक्य सुनकर रामने लक्ष्मणसे कहा--आज अवभृथ स्नानके लिए मैं उत्सवपूर्वक रामतीर्थको जाऊँगा । उस समयका जो कर्तव्य है, सो सुनो ॥ ३ ॥ राजाओंको आज्ञा दी कि अपने-अपनी सेना एवं हाथी-घोड़ोंके साथ अन्तःपुरकी स्त्रियोंको लेकर यज्ञमण्डपमें आईं ॥ ४ ॥ इसी तरह जब सब बाहरी लोग भी आ जायें, सब अपनी सेना, हाथी, घोड़े, शिविका एवं ऊँटोंको भी ले आओ । नवीन तथा प्राचीन वाद्योंकी ध्वनिके साथ सब लोग रामतीर्थ चलिं ॥ ५ ॥ ६ ॥ यज्ञमण्डपके चारों ओर पताका, ध्वजा, तोरण, मुक्तामाला, प्रवाल एवं पुष्पोंके हारोंसे सजावट कर दी जाय ॥ ७ ॥ रामतीर्थ पर्यन्त रेतोंसे प्रवेशमें भी हजारों पताकाएँ बाँध दी जायें और चारों ओर क्षुद्रदंड एवं कालोंके महान् स्तम्भ खड़े कर दिये जायें ॥ ८ ॥ गमलोंको फूलवारी सजा दी जाय और सर्वत्र बेरियाएँ नृत्य करें ॥ ९ ॥ रामतीर्थका मार्ग चन्दनके जलसे सिंचवाकर पुष्पों तथा पट्टकुलोंसे आच्छादित करा दिया जाय ॥ १० ॥ और भी जो कुछ करने बाध्य हो, किन्तु जिसकी मैंने नहीं कहा हो, वह सब बिना पूछे ही विचारपूर्वक सब व्यवस्था कर दो । इस प्रकार रामकी आज्ञा सुनकर लक्ष्मणने

बाजिवाहे रथे वह्निं पात्राणि स्थाप्य रावणम् । सीतां चाग्रेषु स गुरुवाहोद्विजः सह ॥१२॥
 मुनयो वेदघोषांश्च सर्वे चक्रुः समन्ततः । स मन्त्राद्बुधमारुहः मदश्च रुक्ममालिनम् ॥१३॥
 यमो जर्नः जनैर्मार्गे मुदा वन्दिजनैः स्तुतः । अग्रे गत्वाः पताकाभिर्जग्मुश्चास्तनः परम् ॥१४॥
 ततस्ते तूर्यघोषाणां कर्तारस्तुरगगमिताः । ततस्ते राजदूताश्च चित्रोष्णीपाः सुदंडिनः ॥१५॥
 ततो वंदितदंष्ट्राश्च दारस्त्रीणां ततो गणाः । ततो देवाः सगन्धर्वास्ततो रामः स सीतया ॥१६॥
 ऋषिर्जनैर्ययौ वह्निमंयुतः स्वन्दनस्थितः । ततो मुनीश्वराः सर्वे ऋषिपत्न्यस्ततो ययुः ॥१७॥
 ततः क्षत्रियपत्न्याद्याः स्त्रियः सर्वाः जनैर्ययुः । ततस्ते क्षत्रियाः सर्वे नानागणनसंस्थिताः ॥१८॥
 ततस्तेषां हि सैन्यानि ततोऽन्ते राजसंघकाः । नवबाणध्वनिनां च द्वाग्णाद्यास्ततः परम् ॥१९॥
 ततश्चोष्टास्तु बाणानां शकटाः शस्त्रपुरिताः । लोहकागस्तस्रकाश्च चर्मकागस्ततः परम् ॥२०॥
 भूमिमानप्रकर्तारो रज्जुकुटालहस्तकाः । ययुर्यथाक्रम सर्वे तदैव परमोत्सवैः ॥२१॥
 तदा निनेदुर्वाद्यानि ननृतुर्वाग्योपितः । मुनिपत्न्यिवपत्न्यस्तं ययुः पुष्पशृष्टिभिः ॥२२॥
 मार्गे वन्दिजनाद्याश्च तुष्टु रघुनन्दनम् । पद्मजादिस्वगन् गन्धर्वाः प्रजगुः पथि ते मुदा ॥२३॥
 चक्रुस्तो वेदघोषांश्च मुनयः स्वरस्रवकान् । एवं रामः जनैर्मार्गे कौतुकानि समन्ततः ॥२४॥
 पश्यन् जनकनन्दिन्या ययौ चामरवीजितः । तत्र रामस्य मार्गे हि सीताया मुम्बपङ्कजम् ॥२५॥
 द्रष्टुं कोलाहलं चक्रुः संमर्दान्मकला जनाः । ततस्तास्नाडयामासुः जनशो वेशपाणयः ॥२६॥
 विशेषेण तदासीत्स महान् कोलाहलो द्विज । तस्मै रावयो दृष्ट्वा भ्रुव्या च प्राह लक्ष्मणम् ॥२७॥
 एते सर्वे पुष्पकस्था जनाः सीतां च मां सुखम् । पश्यंतु कलहो माऽस्तु तथास्त्विति स लक्ष्मणः ॥२८॥
 सर्वानारोहयामास पुष्पके तान् जनान् मुदा । ततस्ते पुष्पकारुटा जना रामं मनोरमम् ॥२९॥

'जञ्छा महाराज' कहकर सम्पूर्ण व्यवस्था कर दो । इसके बाद ऋषिगण गविरथ गमनेहि कुत्तव करने लगे ॥ ११ ॥ १२ ॥ थोड़े बुने रथमें अग्नि रथ तथा पात्रोंको गणन्यायन प्रमाणर सीमा और रामको रथारुह करके गुरु वसिष्ठ भी रथमें बैठ गये ॥ १३ ॥ अब मन्त्राद् रामबन्ध सुवर्णनिमित्त रथपर चढ़े, तब ऋषिक् लोग वेदघोष करने लगे ॥ १४ ॥ वन्दितजनोमें स्तुतमान होने हुए राम जाने पार रामतःर्थको चले । आगे-माने पताकाओंसे युक्त हाथों, उसके बाद थोड़े, उनमें बाद थोड़ीतर चढ़े हुए धुडसवार, तब बाजा बजातेवाले और उनके बाद सुन्दर पगड़ी पहने हुए शङ्खधारी राजदूत चले ॥ १५ ॥ १६ ॥ उनके बाद वन्दजगत, उसके बाद वीर्यवृन्द, उसके बाद देवता तथा गन्धर्व चले ॥ १७ ॥ तदनन्तर स्वन्दनस्थ तथा वल्लिगंयुक ऋषिक् जनोसे परिकेष्टित राम और सीता चलीं । उसके बाद ऋषि और ऋषिपत्नियों चलीं ॥ १८ ॥ उसके बाद राजपत्नी-प्रभृति सम्पूर्ण स्त्रियां चलीं । उसके अनन्तर द्विविध वाहनोपर चढ़े हुए राजे चले ॥ १९ ॥ उसके बाद उनकी सेना तथा अन्य राजसंघक चले । उसके बाद बाणध्वजक चले ॥ २० ॥ उसके बाद बाणोंसे स्रटे ऊँट और शस्त्रोंसे भरे शकट चले । उसके बाद लोहकार, पुनः बड़ई, तब चर्मकार चलने लगे ॥ २१ ॥ उसके बाद भूमिकी नाप-जोड़ करनेवाली रस्सी एवं कुदाल हाथमें लिये मजदूर चलने लगे । तब भानन्दमग्न बहु सम्पूर्ण जनसमुदाय चलने लगा ॥ २२ ॥ उसी बाद बाजे बजने लगे और वेरपाएँ ताचने लगीं । मुनिपत्नियां और राजपत्नियां रामपर पुष्पशृष्टि करने लगीं ॥ २३ ॥ मार्गमें वन्दोजन स्तुति करने लगे, गन्धर्व गाने लगे और मुनिलोग उच्चस्वरसे वेदघोष करने लगे ॥ २४ ॥ इस प्रकार जनकनन्दिनी सीताके साथ विविध कौतुक देखते हुए राम चले ॥ २५ ॥ उस समय राम एवं सीताके दर्शनके लिए परस्पर झगड़ती हुई जनतामें कोलाहल मच गया । उसको शान्त करनेके लिए पुलिस इंडोमें जनताको ताड़ना देने लगी ॥ २६ ॥ २७ ॥ जब अधिक कोलाहल होने लगा, तब रामने देखा और कुछ सोचकर लक्ष्मणसे बोले - ॥ २८ ॥ तुम ऐसी व्यवस्था करो कि जिससे जनता हमारा दर्शन कर सके और कलह शान्त हो जाय । इन सबको पुष्पक विमानपर चढ़ा लो । लक्ष्मणने कहा 'बहुत जञ्छा' ॥ २९ ॥ इस प्रकार रामकी आज्ञासे सबको पुष्पकपर चढ़ा लिया गया । तब

जानकीसहित यान्तं ददृशुः पथि वै शनैः । केचिद्विचरन्त्ये घन्याः परिपूर्णमनोरथाः ॥३१॥
 अथ राम मसीतं च पश्यामोऽत्र महोत्सवे । केचिद्विचरन्त्ये तौ घन्याः पितरौ नः सुजन्मदौ ॥३२॥
 ययोः पुण्यचरैरयं नः साक्षरामदर्शनम् । एवं सञ्छले श्रोत्राये स्त्रियः सर्वाः परस्परम् ॥३३॥
 समं य पुष्पके स्थातुं प्रार्थयन्ति स्म जानकीम् । तदा सा जानकी प्राह लक्ष्मण पुरतः स्थितम् ॥३४॥
 स्त्रियः सर्वास्त्रया शीघ्रं नारीशालासु पुष्पके । आगेहर्णाया मे वाक्यात् प्रार्थयन्त्यत्र मां मुहुः ॥३५॥
 लक्ष्मणोऽपि तथेत्युक्त्वा ताः स्त्रोः सर्वाश्च पुष्पके । त्वरयाऽऽगेहयामास स्त्रीशालासु यथासुखम् ॥३६॥
 ततस्ताः पुष्पकारुढास्तृणजालपटान्तरैः । ददृशुः सीतया रामं वयर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥३७॥
 मृदङ्गशङ्खपङ्क्त्युद्युतैर्नक्तमोमुक्ताः । वादित्राणि विचित्राणि नेदुभावभृथोत्सवे ॥३८॥
 नर्तक्यो ननृतुर्हृष्टा गायका वृथशो जगुः । शीगावेणुनलोन्नादस्तेषां दिवमस्पृशत् ॥३९॥
 चित्रध्वजयताकाग्रैरिमेन्द्रस्यन्दनार्चभिः । स्वलंकृतैर्भटैर्मया निर्ययुः रुक्ममालिनः ॥४०॥
 यदुसृजयकाम्यो जकुलकैकयकोसलाः । कम्पयन्तो भुवं सैन्यैर्यजमानपुरःसराः ॥४१॥
 सदस्यस्त्रिगिहजश्रेष्ठा म्रदघोषेण भूयमा । देवपिणितुगन्धर्वस्तुष्टुवुः पुष्पवृष्टिभिः ॥४२॥
 स्वलंकृता नरा नार्यो गन्धमग्नभूषणाम्बरैः । विलिपन्त्योऽमिपि वन्त्यो विजड्विचित्रै रसैः ॥४३॥
 तैलगोरगन्धोदहरिद्रासान्द्रकुङ्कुमैः । पुंमिलिताः प्रलिपन्त्यो विजड्विचित्रोपितः ॥४४॥
 एवं नानाममुत्साहैः श्रीरामश्च मसीतया । पश्यन्नानाकौतुकानि स्यन्दनेन शनैः शनैः ॥४५॥
 अगमत्सर्यनीरे रामतीर्थं शुभावहम् । अवरुह्य रथाद्रामः सीतया सरयूजले ॥४६॥
 स चकार जलेष्टि तैर्जस्त्रिभिः परिवारितः । पत्नीसंयाजावभृथैश्चरित्वा ते समृत्विजः ॥४७॥
 सवे रामहृदे विद्या यजमानपुरःसराः । आचान्तं स्नापयाञ्चक्रुः सरयौ सह सीतया ॥४८॥

पुष्पकस्थ जनता रास्तेमे जाते हुए सीतारामको प्रेमसे देखने लगी ॥ ३० ॥ वे कहने लगे—हम घन्य और परिपूर्ण मनोरथ हैं, जो अपने नेत्रोंसे सीतारामको देख रहे हैं ॥ कोई बोला कि हमारे जन्मदाता माता-पिता धन्य हैं । जिनके पुण्यसे हमको सीतारामके दर्शन हो रहे है ॥ ३१ ॥ इस तरह कौतुक देखते हुए श्रीराम धन्य जा रहे थे, अन्यत्र स्त्रियाँ परस्पर विचार करके पुष्पकमें बैठानेके लिए जानकीसे प्रार्थना करने लगी ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ उनको प्रार्थना सुनकर सीताजीने रामने बैठे लक्ष्मणसे कहा—॥ ३४ ॥ ये स्त्रियाँ बारम्बार मुझसे प्रार्थना कर रही हैं । अतः मेरी आज्ञासे इनको भी पुष्पकविमानको स्त्रीशालामें बैठा दो ॥ ३५ ॥ लक्ष्मणजीने उत्तरमें 'बहुत अच्छा' कहकर उन स्त्रियोंको शीघ्र पुष्पकको नारीशालामें बैठा दिया ॥ ३६ ॥ उसपर आसठ होकर वे श्रोत्रोत्तरेसे सीताको देखने और पुष्पको रचा करने लगी ॥ ३७ ॥ उस अवभृथस्नानोत्सवके उपलक्ष्यमें लोग मृदङ्ग, शङ्ख, (ढोल), धुधुर्दानक (नगाड़े) एवं गोमुक्क (मेरी) प्रभृति विचित्र-विचित्र वाद्योंको बजाने लगे ॥ ३८ ॥ नर्तकियाँ प्रसन्न होकर नाचने लगीं । गायकसमूह गायन गाने लगे और शीगा-वेणु प्रभृति वाद्योंका शब्द आकाशको गुञ्जित करने लगा ॥ ३९ ॥ चित्र-विचित्र ध्वजा-यताकाओंसे सुशोभित हाथी-घोड़े तथा रथोंके द्वारा सजे हुए घोड़ाओंके सब राजे चल रहे थे ॥ ४० ॥ यदु, सृञ्जय, काम्बाज, कुरु, केकय एवं कोसलबन्धो राजाओंका वृन्द श्रीरामको आगे करके पृथ्वीमण्डलको कौराता हुआ रहा था ॥ ४१ ॥ सदस्य, ऋत्विक् एवं ब्राह्मणवृन्द ध्वजघोष करने लगा और देवता, ऋषि, पितृ एवं गन्धर्व पुष्पवृष्टि करने लगे ॥ ४२ ॥ गन्ध, माला, आभूषण एवं वस्त्रोंसे अलंकृत नारियाँ विविध रसोंको छिड़कती हुई पुष्पोंके साथ विहार करने लगीं ॥ ४३ ॥ वेष्मार्थ भी तैल, गोरक्ष, गन्धोदक, हरिद्रा गोला कुमकुम पुष्पोंपर उड़ेलती हुई उनके साथ खेलने लगीं ॥ ४४ ॥ इस तरह अनेक प्रकारके आनन्दमय कौतुक देखते हुए श्रीराम और सीता रथके द्वारा धीरे-धीरे सरयूके तीरस्थ शुभावह रामतीर्थपर पहुँचे और वहाँ उत्तर पड़े ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ऋत्विजोंसे परिवेष्टित श्रीराम सन्धूके अलमें जलेष्टि करने लगे । ऋत्विक् लोगोंने उनको पत्नीके साथ सयाज एवं अवभृथ स्नान करवाया ॥ ४७ ॥ ब्राह्मण लोग रामतीर्थके सरयूजलमें सीताके

शत्रुघ्नेन पुराऽग्नीतैर्नानातीर्थजलैस्तदा । राममिषेकं ते चक्रुर्मुदा मंत्रैर्मुनीश्वराः ॥४७॥
 देवदुन्दुभयो नेदुर्नरदुन्दुभिभिः समम् । मुमुक्षुः पुष्पः पाणि देवपिपिहमानवाः ॥४८॥
 सस्तुस्तत्र ततः सर्वे वर्णाश्रमधृता नगः । महापातकिनश्चापि स्नात्वा मुक्ताः स्वयानकात् ॥४९॥
 अथ रामोऽहते क्षीमे परिधाय स्वलङ्घनः । शुश्रुमे निवर्गं दिव्यकंकणाभ्यां सुमण्डितः ॥५०॥
 केयूराभ्यां कुण्डलाभ्यां मुक्तादार्यैर्विचित्रैः । नानागघूर्नैर्दार्यैश्च रत्नानां नूपुरादिभिः ॥५१॥
 हृदि चिन्तामणिपुतः कठे कीन्तुभ्रमण्डितः । चित्रमणिकोम्बुमयोः प्रमया दीपितोऽङ्गः ॥५२॥
 कोटिदूर्यप्रतीकाशः सिकतायां वरामदे । तत्राग्रे जनकनन्दिनश्च ऋषिभिः पन्निवेशितः ॥५३॥
 अथस्विः स्योऽददात्काले यथास्नायं स दक्षिणाः । स्वर्नकुनेभ्योऽलङ्कृत्य गोभृतुस्साराणाम् ॥५४॥
 कामधेनुमलङ्कृत्य गुरुं दानुं समुद्यतः । तज्जतांश्च चित्रयामास वसिष्ठः स म्भवेत्तमि ॥५५॥
 अस्ति मां नन्दिनी नाम्नी कामधेनुमुत्तमृता । नाम्नाः प्रयोजनं मेऽद्य ह्यत्रार्थं करोम्यहम् ॥५६॥
 अस्यैवास्तु कामधेनुरस्य योभ्यो गघूनमः । मां वज्रैर्विन्दा रामस्य कीन्वर्थं जगतीतले ॥५७॥
 याचां पर्यहं शुभां सीतां सालङ्कारां सदक्षिणाम् । आदार्यं गघूरस्याद्य दशैषिष्याम्यहं त्वनाम् ॥५८॥
 इति निश्चित्य स गुरुस्तदा प्रादु गघूनमा । तस्मिन्नि किं धेनुदानं तेन तृप्तिर्न मे भवेत् ॥५९॥
 यदि दास्यसि देवा मे सीतालङ्काराणां हि । तस्या तृप्तिर्भवन्मम नान्यैर्नारीश्वरवि ॥६०॥
 तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा वसिष्ठस्य जनास्तदा । हाहाकारं महच्चक्रुर्विषण्णा भयविह्वलाः ॥६१॥
 केचिदुत्तुर्वसिष्ठोऽयं किं भ्रातो जठगोऽयं हि । केचिदुत्तुर्विनोदोऽयं कृतोऽस्ति मुनिनाऽयं हि ॥६२॥
 केचिदू राघवस्य धैर्यं पश्यन्त्ययं मुनिः । केचिदू राघवोऽयं किं कम्प्यनि पश्यताम् ॥६३॥
 एतस्मिन्नन्तरे रामः श्रुत्वा तच्च गुरोर्वचः । प्रहस्य संज्ञया सीतामाहूय गुरुपत्निधी ॥६४॥

साथ श्रीरामको आचमन कराकर स्नान करवाने लगे ॥ ४७ ॥ मुनीश्वर लोगोंने पहले शत्रुघ्नके साथे हुए विविध सीधोंके जलसे उन्हें स्नान करवाया ॥ ४८ ॥ उस समय मनुष्योंके नगाहोंके साथसाथ देवताओंके नगाड़े भी बजने लगे और देवता, ऋषि, पितर एवं मनुष्य पुष्प बरसाने लगे ॥ ४९ ॥ सभी वर्णाश्रमी लोग रामतीर्थमें स्नान करने लगे । महापातकों भी बड़ी स्नान करके अपने पातकोंसे छूट गये ॥ ५० ॥ इसके बाद राम नवीन रेशमी वस्त्र पहिन तथा दिव्य कंकणोंसे सज्जित होकर अत्यन्त सुशोभित होने लगे ॥ ५१ ॥ दोनों बाजुओंमें केयूर, कानोंमें कुण्डल, गलेमें मुनामाला तथा पुष्पमाला और पैरोंमें रत्नजटित नूपुरोंको पहिने हुए सीताजी भी अत्यन्त सुशोभित होने लगीं ॥ ५२ ॥ भगवान् राम हृदयपर चिन्तामणि और कण्ठमें कीन्तुभ्रमणि पहिने हुए थे । उस चिन्तामणि और कीन्तुभ्रमणी कान्तिमें चमकते हुए कोटि सूर्यकी कान्तिके समान तेजस्वी श्रीरामचन्द्र ऋषिद्वक् लोगोंसे परिवेष्टित होकर सरयूकी रेतोंमें ही श्रेष्ठ आसनपर सीताके साथ बैठ गये ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ बाइनों अच्छी तरह अलङ्कृत ऋषिजीको और मा अलङ्कृत करके ॥ जाग्रामुमार गो, भूमि, घोड़े एवं हाथी दान देने लगे ॥ ५५ ॥ अब वे कामधेनुको भी अलङ्कृत करके गुरु वसिष्ठको देनेके लिए उद्यत हुए, तब वसिष्ठ विचार करने लगे—॥ ५६ ॥ मेरे पास इनकी कन्या नन्दिनी है ही, ॥ इससे मेरा वरग अर्थ सिद्ध होगा । मुझे इसका कोई प्रयोजन नहीं है । यह कामधेनु राम जी के पास रहे तो अच्छा ही । क्योंकि इसके योग्य राम ही हैं । इसको छोड़कर मैं रामकी कोटि बढ़ानेके लिए सालङ्कारा एवं सदक्षिणा सीताको मांगता हूँ । ऐसा करके मैं आज रघुसेठ रामराज्य अर्थात् आदार्य नरराजको दिलाऊंगा ॥ ५७-६० ॥ ऐसा निश्चय करके वसिष्ठजी बोले—क्या आप कामधेनु दान करने हैं ? इससे मेरी तृप्ति नहीं होगी ॥ ६१ ॥ यदि देना ही हो तो अलङ्कारोंसे सुशोभित सीताको दीजिये । उसीके दानसे मेरी तृप्ति हाथी । अन्य सैकड़ों स्त्रियोंसे भी मेरी तृप्ति न होगी ॥ ६२ ॥ इस प्रकार ऋषि वसिष्ठके वचन सुनकर विषण्ण एवं भयविह्वल जनता महान् हाहाकार करने लगी ॥ ६३ ॥ जनता कहने लगी—“मालूम पड़ता है कि बूढ़ा वसिष्ठ पागल हो गया है” “नहीं भाई” किसीने कहा “ऋषिने रामसे मजाक किया है” ॥ ६४ ॥ कोई कहने लगा—“ऋषि रामजीके धैर्यको खजना रहे हैं” । कोई कहने

सीतायाः स्वकरेणैव घृत्वा वामकरं मुदा । सभायां गधवः प्राह वमिष्टं तोषयन्मुदा ॥६७॥
 स्त्रीदानमन्त्रो वक्तव्यः सीतादानं करोमि ते । तथेति मुनिवृन्देषु वमिष्ठश्च यथाविधि ॥६८॥
 अङ्गीनकार स्त्रीदानं गधवेण समर्पितम् । चकितं च तदाऽभूद्देवं सर्वं स्यात्परजङ्गमम् ॥६९॥
 देहभानं न कस्यासीत्तदामीदृतिचित्रम् । तदा माता मुनिः प्राह मन्युने तिष्ठ बालिके ॥७०॥
 ममापिताऽसि रामेण त्वां मन्येऽहं सुतोषमाम् । नम्युनेवंचनं श्रुत्वा सीता सा खिन्नमानसा ॥७१॥
 रामन्यस्तेश्मणा माध्वी मुनेः पृष्ठे क्षुपाविशत् । बभूवाभ्रपूर्णनेत्रा सा रोमांचितविग्रहा ॥७२॥
 ततो रामः पुनः प्राह वमिष्टं विनयान्वितः । गृहाण मुग्धं चापि सीतायै क्षपिनां पुग ॥७३॥
 मया तोषेण कैलासे मन्युनेस्तोषदायिनी । मयाऽपि दातुमानीता तच्छ्रुत्वा गुरुमब्रवीत् ॥७४॥
 राम राम महाबाहो तर्वादार्यं च दर्शितम् । याचिता तव पत्नीयं मया तेऽस्तु पुनः शुभा ॥७५॥
 अस्याः कुरु तुलामय सुवर्णेन रघूत्तम । अष्टवारं प्रतुलितं सीतया रुक्ममुत्तमम् ॥७६॥
 मां दत्त्वेयं त्वया ब्राह्मा पुनः सपदि मद्विरा । अन्यत्किंचिच्छृणुन्व त्वं वचनं यन्मयोच्यते ॥७७॥
 धेनुं चिन्तामणिं सीतां कौस्तुभं पुष्पकं पुगीम् । स्वयं राज्य मयोध्ययां त्व चेत्कस्य प्रदास्यसि ॥७८॥
 अग्रे कदा तदाऽऽज्ञा मे त्वया क्षुभा भविष्यति । ममाज्ञाभङ्गदोषेण बहुकलेशा भविष्यसि ॥७९॥
 मदुक्तं ममभी राजन् विन । यद्यन्यमिच्छसि । तत्तद्दत्त्वा विप्रेभ्यो त्वं सुखं प्रविचारतः ॥८०॥
 तद्गुरोर्वचनं श्रुत्वा तथैत्युक्त्वा रघूत्तमः । सीतां तुलामयामरोप्य सुवर्णेनाष्टसंख्यया ॥८१॥
 तुलितं प्रतिजग्राह गुरोः माध्वीं स्मिताननाम् । दिव्यालंकारहीनां कंचुकीवस्त्रसंयुताम् ॥८२॥
 तदा निनेर्द्वाद्यानि वक्त्रपुः पुष्पवृष्टिभिः । सुगन्धयो विमानस्थाः सीतारामौ मुदान्विता ॥८३॥

लगा—“देने, अब रामजी वरग करते हैं” ॥ ६५ ॥ इस तरह गुप्त वचन सुना तो रामजीने हँसकर संकेतसे सीताको और गुरु वसिष्ठको बुझाया ॥ ६६ ॥ उन्हें बुझकर सभामें ही आनन्दपूर्वक अपने हाथसे सीताका बायां हाथ पकड़कर नगिनका प्रमत्त करते हुए बोले—॥ ६७ ॥ “गुरुदेव ! आप स्त्रीदानका मन्त्र बोलिये, मैं सीताको दान करता हूँ” । वसिष्ठजीने भी “तथास्तु” कहकर रामके द्वारा दिये हुए स्त्रीदानको यथाविधि स्वीकार कर लिया । उस समय सम्पूर्ण स्यावर-जङ्गम जगत् आश्चर्यसे चकित रह गया ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ उस समय सारा संसार चिदलिखित सा हो गया । किसीको अपनी देहकी भी सुवि नहीं रही । तब मुनि वसिष्ठ सीतासे बोले—सीते ! मेरे पीछे आकर बैठो ॥ ७० ॥ रामजीने मेरे लिये तुम्हें दान किया है । मैं तुमको पुत्रीका तरह मानता हूँ । इस तरह मुनिके वचन सुनकर दुःखिता साया सीता मुनिके पीछे जाकर बैठ गयी । उस समय उनके रोंगटे खड़े हो गये और ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ तदनन्तर विनयां रामजी वसिष्ठजीसे बोले—मैंने प्रसन्न होकर कैलास पर्वतपर सीताको मुरभी गाव दी थी । अतः इस मनस्तापदायिनी शुरभीको भी आग ले लें । क्योंकि आपका देनेके लिए मैं इसको मंगाया था । यह सुनकर गुरु वसिष्ठ बोले—॥ ७३ ॥ ७४ ॥ हे राम ! हे महाबाहो ! मैंने आपका उदारता देखनेके लिए ही सीताको मांगा था । अतएव अब मेरे द्वारा दी हुई यह सीता आपकी हो जाय ॥ ७५ ॥ हे रघूत्तम । सुवर्णके बराबर इसको तोलिये । आठ बार तोलनेपर जितना स्वर्ण हो, उसे मुझे देकर मेरी आज्ञासे आप पुनः सीताकी ले लें । और भी जो मैं कहता हूँ, उसे सुनें ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ भविष्यमें कामधेनु, चिन्तामणि, सीता, कौस्तुभ रत्न, पुष्पक विमान, अयोध्यापुरी एवं अरुणा राज्य यदि आप किसीको देंगे तो मेरे आज्ञाभंगजन्य दोषसे अत्यन्त दुःखी होंगे । क्योंकि आज्ञाभंग आपने कभी भी नहीं आज्ञा भङ्ग नहीं की है ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ अतः हे राजन् । मुनिनिर्दिष्ट रात वस्तुओंकी छोड़कर जो ॥ ८० ॥ हो, बिना विचारे बाह्याणोंकी देकर आप सुखी हों ॥ ८० ॥ इस तरह गुरुके वचन सुनकर रघूत्तम रामने कहा—“बहुत अच्छा गुरुदेव” और सीताको आठ बार सुवर्णसे तोलकर उनसे वापस ले लिया ॥ ८१ ॥ तब केवल कंचुकी वस्त्र पहने तथा दिव्यालंकारोंसे रहित भी सीता प्रसन्न हो गयी । इसके अनन्तर बाजे बजने लगे और विमानपर बैठी हुई देवांगनायें प्रसन्न होकर सीतारामके ऊपर पुष्पवृष्टि करने

पूर्वाधिकानलंकारान्स्वदेहे जानकीं दर्शयामास । जनाः सर्वे सुमंतुष्टास्तदाऽऽश्नुमुदिताननाः ॥८४॥
अथ सीतापतिं नत्वा तस्याश्च संस्थिताऽभवत् । स्मिताननाऽऽनंदमग्ना लज्जिता गमलोचना ॥८५॥
ततो रामोऽप्यनेकानि कृत्वा दानानि विस्तृताम् । ऋत्विक्मदम्यमुखादीनानर्थाभिरणावरैः ॥८६॥
स्वीयज्ञातीभूपान्मित्रमुद्ददोऽन्याश्च सर्वश्रः । अभीक्ष्णं पूजयामास वस्त्रालंकारभूषणैः ॥८७॥

सर्वे जनाः सुललितोन्मणिकुण्डलस्रगुष्णीपकंचुकदंकुलमदार्थिदायाः ।

नार्यश्च कुण्डलयुगालकपृष्ठजुष्टवक्त्रश्रियः कनकमेखलया विरेजुः ॥८८॥

इति श्रीमत्कोटिरामचरितात्मने श्रीमदानन्दरामायणे वान्मीकोत्थे यागकाण्डे

अवभृथोत्सववर्णनं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः

(अश्वमेध महायज्ञकी समाप्ति)

श्रीरामदाम उवाच

श्रीरामोऽवभृथस्नाते शंभुर्जघ्नादिभिः सुरैः । रामं वेदस्मरैः स्तुत्या प्रन्युवाच पुरः स्थितः ॥ १ ॥
अथ धन्या वयं सर्वे यन्त्रां स्नातं सुमंगलम् । पश्यामो राज्यवभृथे मातया बन्धुभिः सह ॥ २ ॥
अस्माकं हर्षकालोऽयं देवदेव दयानिधे । तस्मादयं सदा पुण्यः श्रेष्ठकालो भविष्यति ॥ ३ ॥
त्वं चाप्यंगीकुरुष्वद्य देहस्मं सुबह्वन्तरान् । अन्यथाय प्रत्यर्द्धयेन ते दर्शनं भवेत् ॥ ४ ॥
तथा कुरु रघुश्रेष्ठ तीर्थायास्मं वरान्वद । अन्यानि च त्वया पूर्वयानि भूम्पां कृतानि हि ॥ ५ ॥

यात्राकाले सुतीर्थानि लिंगान्यपि निजालस्यथा ।

तेषामपि वरानद्य वद त्वं मम वाक्यतः ॥ ६ ॥

पुरीषु श्रेष्ठाऽयोध्येयं त्वया वाच्याऽद्य राघव । नदीषु सरयूः श्रेष्ठा वरैः कार्याऽद्य सन्निरा ॥ ७ ॥
तच्छुभ्रवचनं श्रुत्वा प्रहस्य रघुनन्दनः । हर्षकालेऽनवीद्राक्यं यत्त्रैलोक्योपकारकम् ॥ ८ ॥

लगीं ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ अब जानकीजीने पहलेसे भी अधिक आभूषणोंको अपने शरीरमें पहना तो उससे जनता अत्यन्त सन्तुष्ट हुई ॥ ८४ ॥ इसके बाद पतिको प्रणाम करके हंसती हुई सीताजी आनन्दमग्न होकर लज्जापूर्वक रामके पास बैठ गयीं । तदनन्तर रामजीने खूब दान दिये एवं ऋत्विक्, सदम्य, राजे, मित्र, सहृद् तथा अपने भाई-बन्धुओंका वस्त्राभूषणोंसे भली भाँति सत्कार किया ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ उस समय रामजीके यज्ञमें सब पुरुष मनोहर मणियोंसे अटित कुण्डलों एवं मालाओंको पहिने तथा बहुमूल्य पगड़ी, बचुकी और दुबट्टोंमें सुशोभित हो रहे थे । इसी तरह कुण्डल, रत्नअटित आभूषण तथा सातकी मेखला (तागड़ी) से सुशोभित स्त्रियें भी बिराज रही थीं ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे यागकाण्डे पंच रामतेजपाण्डेयकृत-
'ज्योत्स्ना'भाषाटीकायामवभृथोत्सववर्णनं नाम अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीरामदासजी कहने लगे—श्रीरामने अब अवभृथ स्नान कर लिया, ब्रह्मादि देवोंके साथ महादेव रामजीकी स्तुति करके कहने लगे— ॥ १ ॥ आज हम लोग धन्य हैं, जो माता एवं बन्धुओंके सहित आपको यह अश्वमेधका अवभृथ स्नान किये हुए देख रहे हैं, जो अत्यन्त मंगलकारक है ॥ २ ॥ हे देवदेव ! हे कृपानिधे ! यह समय हम लोगोंके लिए बड़ा हर्षप्रद है । अतः यह सदा अत्यन्त श्रेष्ठ और पुण्यवर्द्धक होगा ॥ ३ ॥ आप भी इसको अच्छीकार करें और इसके लिए अच्छे एवं बहुतसे ऐसे वर दें कि जिससे हमलोगोंको प्रतिवर्ष आपका दर्शन मिलता रहे ॥ ४ ॥ हे रघुश्रेष्ठ ! आप इस तीर्थके लिए भी बहुतसे वरोंका दें । यात्रा करते समय पहले भी आपने जिन तीर्थों एवं लिंगोंको स्थापित किया है, उनको भी मेरे कहनेसे आप वरदान दें ॥ ५ ॥ ॥ ६ ॥ हे राघव ! आज मेरे कहनेसे आप ऐसा कह दीजिये कि सब नागरिकोंके लिए श्रेष्ठ यह अयोध्या नगरी है एवं

श्रीराम उवाच

यत्प्रार्थितं त्वया शंभो तदेव हृदि मे स्थितम् । मृणुष्व वचनं मेऽद्य यद्वर्णितप्रोच्यते शुभम् ॥ ९ ॥
सर्वेषामेव मासानां श्रेष्ठं श्रापं मधुर्भवेत् । वैशाखात् कार्तिकः श्रेष्ठः कार्तिकान्मास एव च ॥ १० ॥

माघमासाद्वैशाखं चैत्रमासो भविष्यति ।

चैत्रमासेऽभवजन्म मम यस्मात्तथा पुनः ॥ ११ ॥

वाजिमेघावभूषेषु स्नानेनापि विशेषतः । सर्वेषामधिकथास्तु नभुस्ते वाक्पगौरवात् ॥ १२ ॥

चैत्रमासे कृतं दत्तं कृतं स्नानं विचिहितम् । सर्वे कोटिगुण प्रोक्तमयोध्यायां विशेषतः ॥ १३ ॥

सर्वसु प्रथमा चेयं पुरीषु नगरी मम । अयोध्या मुक्तिदात्री तु भविष्यति विरा मम ॥ १४ ॥

अन्यत्र यत्कृतं पुण्यं पटिमंवत्सरैः शुभम् । तदत्र दिवसेकेन भविष्यति वृणां सदा ॥ १५ ॥

पुरीणां मपुरा ज्ञेया राजधानो शुभप्रदा ।

त्वयाऽस्यै वाचितो यस्माद्वरार्थमहमादरात् ॥ १६ ॥

तव वाक्याद्दीर्घेण तव कारयाः शताधिका । भविष्यति पुरी नेपमयोध्या मम वल्लभा ॥ १७ ॥

नदीषु सरयुश्चेयं श्रेष्ठाऽस्तु वचनान्मम । सरयुसदृशी नान्धा नदी भूता भविष्यति ॥ १८ ॥

अस्यामपि मया चेदं रामतीर्थं विनिर्मितम् । निजतेजःप्रतापेन तीर्थेषु मुकुटोत्तमम् ॥ १९ ॥

भविष्यति न संदेहः सर्वपातकनाशनम् ।

तथा यानि पृथिव्यां हि मया तीर्थानि वै पुरा ॥ २० ॥

लिप्तान्यपि स्वीयनाम्ना कृतानि तानि शंकर । स्नाने दर्शनार्चाद्यैर्मुक्तिदाऽन्यत्र संतु वै ॥ २१ ॥

रामतीर्थे चैत्रमासे प्रत्यब्दं भुवि मानवैः । स्नानं च विधिना सम्पन्नं नियममम वाक्यतः ॥ २२ ॥

यच्छ्लेषश्चाश्वमेधेन यद्गोमेधेन वै फलम् । यत्फलं सोमयागेन तत्त्वैश्वरेयावगाहनात् ॥ २३ ॥

सूर्यश्रद्धे कुरुक्षेत्रे यच्छ्लेषः स्नानदानतः ।

तच्छ्लेषः स्यान्मघौ स्नानादयोध्यायां सुरेश्वर ॥ २४ ॥

नदियोंमें उत्तम सरयू नदी । शिवजीका यह कथन सुनकर हंसते हुए राम सङ्घमें त्रिभुवनोपकारिणी वाणी बोले ॥ ७ ॥ ८ ॥ श्रीरामने कहा—हे शम्भो ! आप जो चाहते हैं, वही मेरे भी मनमें है । आप मेरी मुनिये । मैं हर्षपूर्वक यह कल्याणमय कहता हूँ ॥ ९ ॥ सम्पूर्ण मासोंमें श्रेष्ठ यह चैत्र मास होगा । वैशाखसे कार्तिक, कार्तिकसे माघ एवं माघ महीनेसे भी चैत्र श्रेष्ठ होगा । इसी मासमें मेरा जन्म हुआ है । इसलिए भी यह चैत्र मास श्रेष्ठ है ॥ १० ॥ ११ ॥ अश्वमेधीय अवभृथ स्नान होने तथा आपके वाक्पगौरवसे भी यह महीना सबसे श्रेष्ठ होगा ॥ १२ ॥ चैत्र मासमें यहाँ स्नान-दान आदिका कोटिगुण होगा । अयोध्यामें किया हुआ सुकर्म तो और अधिक पुण्यप्रद होगा ॥ १३ ॥ यह मेरी पुरी सब नगरियोंमें उत्तम है तथा मेरी वाणीसे यह मुक्तिदात्री अवश्य होगी ॥ १४ ॥ और अमह किया हुआ पुण्यकार्य ६० वर्षमें फलदायक होता है, किन्तु यहाँ किया हुआ पुण्य एक ही दिनमें फलदायक होगा ॥ १५ ॥ वैसे पुरियोंमें शुभप्रद पुरी मयुराको समझें क्योंकि आपने मुझसे वर माँगा है ॥ १६ ॥ अतएव आपके वाक्पगौरवसे यह मेरा प्रिय अयोध्यापुरी पुण्योंमें आपको काशीसे भी सौगुनी श्रेष्ठ होगा ॥ १७ ॥ मेरे वचनसे सरयू सब नदियोंमें श्रेष्ठ होगी । सरयू जैसी नदी न है और होगी ॥ १८ ॥ उसमें मेरा बनाया हुआ यह रामतीर्थ अपने प्रतापसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें मुकुट सटा होगा ॥ १९ ॥ हे शंकरजी ! मैंने अपने नामसे भूमिपर जितने भी तीर्थ एवं शिवलिंग स्थापित किये हैं, वे सब स्नान-दर्शन एवं पूजनसे मुक्ति देनेवाले तथा सर्वपापनाशक होंगे । इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ २० ॥ २१ ॥ मनुष्योंको प्रतिषेध चैत्र मासमें विधिपूर्वक, यम-नियमादिके साथ रामतीर्थमें स्नान करना चाहिये ॥ २२ ॥ अश्वमेध, गोमेध एवं सोमयाग करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल रामतीर्थपर स्नान करनेसे मिल जाता है ॥ २३ ॥ सूर्यवाहनके समय कुरुक्षेत्रमें स्नान-दान करनेसे जो फल होता है, वही फल चैत्रमें अयोध्यास्नान करनेसे

अयोध्यायां रामतीर्थे सरयुजलमण्डितः । चैत्रमासस्य प्रथमस्तन्ने नरा मोक्षभागिनः ॥२५॥

यथा माघे प्रयागे हि स्नातव्यं सुखमिच्छताः । कार्तिकेऽपि यथा काश्यां पंचमंगजले स्मृतः ॥२६॥

द्वारकायां यथा प्रोक्ता वैशाखे चक्रीयके ।

अयोध्यायां रामतीर्थे तथा चैत्रेऽवगाहनम् ॥२७॥

करणीयं नरैर्मक्त्या वचनान्मम सर्वदा । सर्वेष्वपि च मासेषु प्रथमः सकलैर्जनैः ॥२८॥

एतादृशकालपर्यन्तं मार्गशीर्षः प्रगायने । अवारभ्य मधुश्चाय प्रथमः स्यातिमेष्यति ॥२९॥

यथा देवेषु प्रथमस्त्वं महेशस्तथा मधुः ।

मासेषु प्रथमस्यास्तु तथाऽयोध्या पुरीष्वपि ॥३०॥

चैत्रे मासे तु संप्राप्ते सर्वे देवाः सत्रासवाः । बहिर्जलं समाश्रित्य तिष्ठन्वं हि ममाश्रया ॥३१॥

प्रत्यन्दं चैत्रमासेऽत्र यथेदानीं समागताः । आगतव्यं तथा सर्वैर्लोकपातरवासिभिः ॥३२॥

जरठैरातुरैः स्त्रीभिर्मेषां यन्मन्त्रिणां मम । रामतीर्थे प्रमत्तव्यं सर्वत्र भुवि शंकर ॥३३॥

चैत्रमासेऽवगाहार्थं वचनान्मम सर्वदा ।

इति रामवचनं श्रुत्वा गिरिजा प्राह जानकीम् ॥३४॥

सीते वरास्त्वगा देया इदानीं वचनान्मम । नारीणां च हितार्थं हि सर्वलोकोपकारकाः ॥३५॥

पार्वत्या वचनं श्रुत्वा जानकी प्राह सादरम् । पृथिव्यां मम तीर्थानि यानि सन्ति सहस्रशः ॥३६॥

अत्रापि च महच्छ्रेष्ठं यत्र स्नातं मयाऽधुना ।

तेषु चैत्रतृतीया यावद्वैशाखसंभवा ॥३७॥

मिता तृतीयाऽभ्यारूढ्या तावत्स्त्रीभिस्तु सादरम् । स्नातव्यं शीतलागौरीसङ्गं स्थानमुत्तमम् ॥३८॥

सीमाग्रदं मासमेकं पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनम् । सर्वत्र रामतीर्थस्य वामे तीर्थं ममास्ति हि ॥३९॥

इति दृष्ट्वा वगन्मीताऽऽसीत्स्त्री रामसन्निधौ ।

ततो रामं गुरुः प्राह गन्तव्यं यक्षमण्डपम् ॥४०॥

प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ जो अयोध्याके सरयुजलमण्डित रामतीर्थमें स्नान करते हैं, वे मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ २५ ॥ जो फल माघमासमें प्रयागरानका है, कार्तिकमें काशीकी पंचगङ्गामें स्नान करनेका है और द्वारकामें चक्रीयके पर वैशाखस्नानका जो फल है, वहां फल अयोध्याके रामतीर्थपर चैत्र मासमें स्नान करनेका है ॥ २६ ॥ २७ ॥ आजसे जनता मेरे कहतेसे चारह महीनोंमें चैत्रको पहला महीना समझे ॥ २८ ॥ आज तक मार्गशीर्ष । अग्रहन । सबसे प्रथम मास माना जाता था, पर आजसे चैत्र मास समझा जायगा ॥ २९ ॥ जैसे देवताओंमें पहले आप (शिव) हैं, इसी तरह मासोंमें प्रथम चैत्र और पृथिवीमें प्रथम अयोध्या समझी जायगी ॥ ३० ॥ जैसे इस समय आप लोग यहाँ आये हैं, उसी तरह प्रतिवर्ष चैत्र मासमें आये और मेरी आज्ञासे सरयु तटपर आश्रम बनाकर निवास करें ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ बूढ़े, धातुर (रोगी) एवं स्त्रियों भी जिसके पास जो कुछ हो, उसी वस्तुको श्रद्धा-भक्तिसे भेंट देने तथा चैत्रमासमें स्नानार्थ यहाँ आया करें ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इस प्रकार रामके वचन सुनकर पार्वतीजी सीतासे बोलीं—हे सीते ! आप भी इस समय मेरे कहतेसे सर्वलोकोपकारक एवं विशेष करके स्त्रियोंका हितकर वर प्रदान करें ॥ ३५ ॥ इस प्रकार पार्वतीके वचन सुनकर सीताजी बोलीं—पृथिवीपर जितने भी मेरे तीर्थ हैं और यहाँपर जो महाश्रेष्ठ तीर्थ है, जितने मैंने किया है, उन सब तीर्थोंमें चैत्रकी तृतीयासे लेकर वैशाखकी अष्टम तृतीया पर्यन्त स्त्रियोंको स्नान करना चाहिये । यह शीतलागौरी स्नान कहलायेगा । यह स्नान एक मास होता है । यह स्नान सीमाग्र देवकाला एवं पुत्रपौत्र वृद्धिदाला है । सभी स्त्रियोंमें रामतीर्थके वागमागमें मेरा तीर्थ है ॥ ३६-३९ ॥ इस प्रकार वर देकर सीताजी चुप हो गयीं । इसके बाद गुरु वशिष्ठ रामजीसे बोले

तद्गुरोर्दत्तं श्रुत्वा तथैत्युक्त्वा गृह्णतः । आरुगेहं यं शीघ्रं सीतयात्विग्जनैः सह ॥४१॥
ततो नेदुर्दुन्दुभयो मेरीणां निःस्वनास्ततः । मृदंगपणवादीनां महाधोपाः समस्ततः ॥४२॥

वेदधोपाश्च सर्वत्र जयशब्दा द्विलेरिताः ।

बभूधुर्मंत्रशब्दाश्च ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥४३॥

नानोत्सर्गैः पूर्ववच्च कौतुकानि ममन्ततः । पश्यन्त्ययौ रामचन्द्रः शनैरध्वरमंडपम् ॥४४॥
अवस्था रथाच्छीघ्रं नीत्वाऽग्निं प्राक्षिपत्पुनः । यज्ञकुण्डे रामचन्द्रः सीतयात्विग्जनैः सह ॥४५॥

पूर्णाहुतिं ततो दत्त्वा वस्त्रैरगमर्षणैः फलैः ।

कुत्वाऽग्रं पूजनं चापि यज्ञपात्राणि राघवः ॥४६॥

ततो विसर्जयामास यज्ञातिं दक्षिणां च । दातुं तानृन्विजः सर्वान् सीमित्रि राघवोऽब्रवीत् ॥४७॥
कोशागारं लक्ष्मणायाः सर्वमेव श्रुत्विजस्त्वया । नीत्वा दूताभिगच्छत्य तूर्णो स्थेय तवः परम् ॥४८॥

यद्येच्छयाऽग्निं येन गृहीतमुत्तमं वसु ।

तस्याश्रमे प्रापणीयं बाहनाद्यं तत्त्वया ॥४९॥

ततो मुनिजनान् सर्वान् देयं विपुलहस्ततः । तद्रामवचनं श्रुत्वा लक्ष्मणोऽपि तथाऽकरोत् ॥५०॥
ततो विसर्जयामास भोजयित्वा रघूत्तमः । ऋत्विग्जनान् संवृणोतान् राजिमेषाख्यकर्मणि ॥५१॥
ततो रामोऽमरान्सर्वान् शिवाद्यान्विविधैर्निजैः । पूजयामास विधिवद्दस्त्रालकारवाहिनैः ॥५२॥

ददां कोशान्सतुरगान् केषां च शिविकां ददी ।

केषां रथान्गजान्केषां ददी वस्त्राण्यपीश्वरः ॥५३॥

एवं पृथ्वीपतीषापि सादरोधान् ससेवकान् । वस्त्रैरगमर्षणैः पूजयामास भोजनैः ॥५४॥
ततो रामः स्वशरारे दिव्यवस्त्राणि सन्दधौ । तदा तं पूजयामासुर्बलिभिर्विबुधा नृपाः ॥५५॥

किं भव यज्ञमण्डपको कलना चाहिये ॥ ४० ॥ इस तरह गुरुजीके वचन सुने ही राम 'तथास्तु' कहकर शीघ्र सीता एवं ऋत्विक् लीगोंके साथ रथपर चढ़े ॥ ४१ ॥ उस समय गंगादे वज्रने लगे, भेरीके शब्द होने लगे और मृदंग-पणव प्रभृति वाद्योंके घोषसे सब दिशाएँ व्याप्त हो गयीं ॥ ४२ ॥ गान्धर्व वेदधोप तथा जयजय-कारके शब्द करने हुए वैदिक मन्त्रोंका उच्चारण करने लगे और वेरापें नाचने लगे ॥ ४३ ॥ पहलेकी तरह विविध उत्सवों एवं कौतुकोंको देखते हुए राम शनैः शनैः यज्ञमण्डपमें गये ॥ ४४ ॥ वहाँ उन्होंने शीघ्र रथसे उतरकर सायकी अग्निकी यज्ञकुंडमें छोड़ दिया । बादमें सीता एवं ऋत्विजोंके साथ पूर्णाहुति करने लगे । उन्होंने वस्त्र-आभूषण एवं फलोंसे अग्निकी पूजन करके यज्ञपात्रोंका विसर्जन कर दिया और यज्ञातिमें ऋत्विजोंको विपुल दक्षिणा देनेकी आज्ञा देते हुए रामने लक्ष्मणसे कहा— ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ हे लक्ष्मण ! इन सब ऋत्विजोंको कोशागारमें ले जाकर वहाँके पहरेदारोंको हटा दो और तुम घुपचाप अलग सड़े हो जाओ ॥ ४८ ॥ जिसको जितनी इच्छा हो, उसको बिना रोक-टोक उतना द्रव्य ले लेने दो । लिया हुआ द्रव्य वाहनोंके द्वारा इनके अश्वमपर पहुँचा दो ॥ ४९ ॥ फिर खुलेहाथ मुनियोंको दान दो । इस तरहका वचन सुनकर लक्ष्मणने भी रामजीके कथनानुसार ही दान दिया ॥ ५० ॥ तदनन्तर अश्वमेध यज्ञमें जिनका वरण हुआ था, उन ऋत्विजोंको भोजन कराके रामजीने विसर्जित किया ॥ ५१ ॥ इसी तरह समस्त देवताओंको भी विधिवत् वस्त्र-अर्चकारोंसे पूजित करके विसर्जित कर दिया ॥ ५२ ॥ उनमेंसे किसीको रामचन्द्र-जीने स्वजानेके साथ छोड़े दिये, किसीको अच्छं-अच्छो पालकी दी, किसीको हाथी, किसीको घोड़े और अच्छे-अच्छे कपड़ों तथा गहनोंका उपहार देकर सम्मानित किया ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ इसके अनन्तर रामचन्द्रजीने स्वयं कपड़े पहने । उस समय समस्त देवताओं तथा राजाओंने नाना प्रकारकी भेंट दे-देकर रामचन्द्रजीका

सरित्समुद्रा गिरयो नागा गावः स्वगा मृगाः ।

घौः सितिः सर्वभूतानि समाजहुरुषायनम् ॥५६॥

सीतया स महाराजः सुवासाः साध्वलंकृतः । बभूविः सेव्यमानः ॥ विरेजेऽग्निरिवापरः ॥५७॥

तस्मै जहार घनदो हंसं वीरवरामनम् । वरुणः सलिलस्त्रावि स्नातपत्रं शशिप्रभम् ॥५८॥

वायुश्च वाल्म्यजने धर्मः कीर्तिमयीं सजम् ।

इन्द्रः किरीटमुत्कृष्टं दण्डं संयमनं यमः ॥५९॥

प्रज्ञा प्रज्ञमयं धर्मं भारती हारमुत्तमम् । दक्षचन्द्रमसि रुद्रः सतचन्द्रमयाम्बिका ॥६०॥

सोमोऽमृतमयानन्धास्त्वष्टा रूपाश्रयं रथम् । अग्निराजगवं चापं सूर्यो रश्मिमयानिधुन् ॥६१॥

भूः पादुके योगमयी घौः पुष्पावलिमन्वहम् ।

नाख्यं सुगीतं नादित्रमन्तर्धानं च खेचराः ॥६२॥

ऋषयश्चाशिपुः सत्याः समुद्रः शंखमान्मजम् । सिन्धवः पर्वता नद्यो रथवीथीर्महात्मनः ॥६३॥

ततो ददुर्नृपाः सर्वे स्यन्दनास्तुरगान् गजान् । शिविकागोवृषान् खड्गान् दासीर्दासोष्ट्रखेरान् ॥६४॥

सीतायै नृपपत्न्यश्च देवपत्न्यः सहस्रशः ।

वस्त्रलंकारयानानि माङ्गल्यान्यथ कंचुकोः ॥६५॥

कीडोपकरणादीनि ददुस्ताः पक्षिपंजराः । ततस्तैः पूजितः सर्वैः सीतया रघुनायकः ॥६६॥

आरुरोह रथं दिव्यं वह्निना वन्दिभिः स्तुतः । स्वस्त्रीमिदं नृपपत्नीं विमानेन मुनीश्वराः ॥६७॥

विहायसा ययुः सर्वेऽयोध्यायां नृपतेर्गृहम् ।

ततो रामो रथेनैव पूर्वोक्तैरुत्तमैः शनैः ॥६८॥

विवेश नगरीं रामः स्तुतः घ्नतश्च भागधैः । छत्रं दधार सौमित्रिर्मुक्ताजालभिराजिनम् ॥६९॥

भरतस्तालप्यजनं शत्रुघ्नश्चामरद्वयम् । ताम्बूलपात्रं सुग्रीवस्तोषपात्रं तु वायुजः ॥७०॥

नलः पुंविनपात्रं च बालिजो मुकुरं वरम् ।

वासःकोशं राक्षसेन्द्रो धृषपात्रं हि जाम्बवान् ॥७१॥

पूजन किया । संसारकी नदियाँ, पर्वत, समुद्र, हाथी, घोड़े, मृग, पक्षी, आकाश और पृथ्वीपर रहनेवाले सब प्राणियोंने अपनी-अपनी सामर्थ्यानुसार भगवान्‌को भेंट दी । उस समय रामचन्द्रजी सीताजीके साथ सिंहासनपर बैठे हुए । चारों माई उनका संवामें तल्लीन थे । रामचन्द्र उस समय दूसरे अग्निके सदृश देशीप्यमान दीख रहे थे ॥ ५५-५७ ॥ भगवान्‌को कुबेरने एक सोनेका सिंहासन दिया । वरुणदेवने जलकी वर्षा करनेवाले और चन्द्रमाकी नाई उज्ज्वल दिया । वायुने धमर दिया । धर्मराजने माला दी । इन्द्रने एक बहुमूल्य किरीट दी । यमराजने दण्ड दिया । ब्रह्माने कवच दिया । सरस्वतीने हार दिया । उसी तरह रुद्रने दस धारवाली एक तलवार, पार्वतीने सतचन्द्र तलवार, चन्द्रमाने अमृतमरे घड़े, त्वष्टा (विश्वकर्मा) ने सुन्दर रथ, अग्नितने अग्निकी तरह चमकता हुआ आजगव एक धनुष, सूर्यने तेजोमय बाण, पृथ्वीने योगमयी पादुकाएँ, आकाशने फूँकोंके छेर, गन्धर्वोंने नाच-गाने-बाजे आदि, ऋषियोंने सत्य अशोर्बाद, समुद्रने शंख, नदियों तथा बड़े-बड़े नदों और पर्वतोंने भगवान्‌को रथके रास्ते दिये ॥ ५८-६३ ॥ इसके अनन्तर राजाओंने रथ, हाथी, घोड़े, पालकी, माय, बेल, सङ्गा, वास और ऊँट आदिके उपहार दिये । फिर राजाओंकी रानियों और देवताओंकी देवियोंने प्रकारके वस्त्र-आभूषण, पालकी आदि माङ्गलिक वस्तुयें, खेल्के सामान, बोलनेवाले सुन्दर पक्षियोंके पींजरे आदि सीताको दिये । इस तरह सीताके साथ रामचन्द्र सबसे पूजित होकर एक दिव्य रथपर सवार हुए और वन्दीजनोंने भगवान्‌की स्तुति आरम्भ । बहुतेरे मुनिजन अपनी स्त्रियों और राजाओंकी स्त्रियोंके विमानपर चढ़कर

नानाफलानां पात्राणि पूजापात्राण्यनेकशः । सुगन्धद्रव्यपात्राणि दधुस्ते मंत्रिसत्तमाः ॥७१॥
एवं सुगन्धवस्तूनि प्रक्षिपन् वारयोपिताम् । वृक्षेषु सीतया रामो विरेजे स्यन्दने स्थितः ॥७२॥

सुगन्धरागपूर्णैश्च जलपत्रैः करे धृतैः ।

वाराङ्गनानां वस्त्राणि नृपादीनां राघवः ॥७३॥

चित्रितान्यकरोद्भागैः किंशुकानिव माधवे । स्नेहैः सुगन्धैः रामोद्यैर्द्वन्द्वसंघे राघवः ॥७४॥
क्षिप्त्वा परिमलादीनि चित्रितान्यकरोत्पुनः । नर्तत्सु वारयोपित्सु वाद्येषु निनदत्सु च ॥७५॥

स्तुवत्सु वदिषुं देषु पुष्पवृष्टिविराजितः ।

ययौ राजगृहद्वारं रामो राजपथा शनैः ॥७६॥

भागैः कुम्भप्रदीपैश्च दध्योदनविनिर्मितैः । बलिदीपैः पूर्णकुम्भैः राजभागैः पुरस्त्रियः ॥७७॥
चक्रुर्नीराजनं रामं स्वस्त्यर्थं सीतया युवम् । अचरुत् रघोद्रामो सीतयाऽग्निं निजे गृहे ॥७८॥

स्थाप्य स्त्रीरमभां मत्वाऽऽहरोह स्वीयमासनम् ।

ततस्ते पार्थिवाः सर्वे प्रणेमु रघुनन्दनम् ॥८०॥

राज्ञा मुकुटरत्नौघप्रभाभिः पदपंकजे । विरेजत् राघवस्य तदा सिंहासनोपरि ॥८१॥
मुकुटस्यावतंसानां पराभिः पूजिते नृपैः । आपतुर्नितरां शोभां रक्तोत्पलनिभे परे ॥८२॥

सीमतस्थचन्द्रसूर्यरत्नमागिष्यदोत्तिभिः ।

सुरपार्थिवपत्नीनां सीतायाः पादपंकजे ॥८३॥

विरेजतुः परागैश्च केशवधप्रसूनजैः । सुरपार्थिवपत्नीभिः पूजिते कनकोज्ज्वले ॥८४॥
ततः सभायां श्रीरामं स्तुत्वा देवर्षिर्हृदयः । श्रीरामस्तत्पराजेन श्रीरामेणापि पूजितः ॥८५॥

आकाशमार्गसे अयोध्याकी ओर चलें । इधर रामचन्द्र पूर्वाञ्चल सरतकीके रथपर सवार होकर राज-महलकी ओर बढ़े । जब रामचन्द्र अयोध्यानगरीमें प्रविष्ट हुए, उस समय भगवान्‌की एक अनुठी शोभा थी । रामजी सीताजीके रथपर बैठे थे । तबमग्न अपने हाथोंमें छत्र, भरत, सत्रुघ्न चमर, सुग्रीव पानवान, हनुमान्‌जी जलकी लारों, नन्द उतालवान् अङ्गद आइना, विभीषण कपड़ोंकी पेटी और आम्बवान् घुपदाभी लिए हुये थे । इसी प्रकार अनेक फूलोंके पात्र, पूजाकी सामग्री और अनेक सुगन्धमय द्रव्यके पात्र वहाँके अच्छे-अच्छे मन्त्री ले-लेकर चले । रामजीके मन्त्री देवराओंके ऊपर गुलाब केवड़ा आदिके फूलोंकी वर्षा करते जा रहे थे । उस समय विविध प्रकारके सुगन्धित तथा रङ्गीन कौबारे छूट रहे थे, जिससे सबके कपड़े एक विचित्र रङ्गके दिखाई दे रहे थे । उन्हीं भीगे हुए और रङ्गीन कपड़ोंपर रह-रहकर रामचन्द्रजी स्वयं गुलालकी वर्षा करके उन्हें और भी विचित्र बना देते । इस तरह देवराओंके नृत्य, राज-वालोंके राजों, बन्धीजनोंकी स्तुतियों और देवताओंकी पुण्यवृष्टिके साथ राजे राजमार्गसे चलते हुए रामचन्द्रजीके महलकी ओर जा रहे थे ॥ ६४-७३॥ रास्तेमें स्थान स्थानपर जगसे भरे कलश और दही-मात आदिकी बलि दिखलायी पड़ती थी । सीतारामके कलशोंकी काष्ठासे अयोध्यावासिनों स्थिरा भगवान्‌की आरती उतार रही थीं । महलके फाटकपर पहुँचकर रामचन्द्रजी स्वयंसे उतर पड़े और सीताजीके साथ अपने यज्ञ-शयनमें गये । यज्ञाग्निको देवगृहमें स्थापित करके वे राजसभामें जा पहुँचे । सभाके सुन्दर सिंहासन-पर भगवान्‌ आसीन हुए । तब देश-देवान्‌गणसे आये हुए राजाजोंने उन्हें प्रणाम किया । जिस समय वे राजे अपना मस्तक झुकाकर अपने मुकुटको रामचन्द्रजीके चरणोंसे स्पर्श करा रहे थे, उस समय भगवान्‌की एक विचित्र भाँकी दिखायी देती थी । जब उन रामाओं, रानियों और देवियोंने सीतारामको प्रणाम तथा

प्राप्याक्षां रामचंद्रस्य सावरोधैः सुरादिभिः ।

प्रस्थानं स्वस्थलं गंतुं चकार वृषभस्थितः ॥८६॥

नृपस्त्रियोऽपि सीतायाः प्राप्याक्षां पूजितास्तथा । यानान्याहम्भुः सर्वास्त्वयोऽप्याया विनिर्घृणुः ॥८७॥

अथ ते पथिवायाश्च प्राप्याक्षां राघवस्य च । सावरोधाः ससैन्याश्च स्वीयराज्यानि वै ययुः ॥८८॥

ययौ स्त्रियोऽपि कैलाशं सत्यलोकं विधिर्ययौ ।

इन्द्राद्या निजंगः सर्वे स्वर्गलोकं ययुर्मुदा ॥८९॥

अथत्विजो महाशीलाः सदस्या ब्रह्मवादिनः । सर्वे मुनीश्वराश्च स्वधामानि ययुस्तदा ॥९०॥

ततो रामः पूर्ववच्च शशास जगर्तातलम् । रेमे जनकनंदिन्या चिरकालं यथासुखम् ॥९१॥

वर्षान्तरेण कालेन वाजिमेषाः पृथक् पृथक् ।

उत्तरोत्तरतः श्रेष्ठा विश्वदूषेः कृता दश ॥९२॥

इत्थं श्रीरामचंद्रेण दशमे तुरगाध्वरे । प्रतिपान्य गुणैर्वाक्यं सर्वस्वमपि भूसुरान् ॥९३॥

दत्तं किल महाराजा तथा दिक्चतुष्टयम् । ऋत्विग्भ्यो दक्षिणार्धे हि दत्तं चेति मया धृतम् ॥९४॥

ऋत्विग्भिस्तत्पुनर्दत्तं राघवायैव सादरम् ।

कृपालुभिः पालनार्थमिति शिष्यानुभूयते ॥९५॥

एवं शिष्य त्वया पृष्टं राचंद्रस्य भगलम् । चरितं तन्मया किञ्चित्तोक्तं यज्ञसंभवम् ॥९६॥

इदं यः प्रातुरुत्थाय यागकाण्डं मनोरमम् । पठिष्यति नरः पुण्यं सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥९७॥

पुत्रार्थी प्राप्नुयात्पुत्रं धनार्थी धनमाप्नुयात् ।

यागकाण्डमिदं श्रुत्वा वाजिमेषफलं लभेत् ॥९८॥

होमकाले धादकाले चातुर्मास्यादिकेष्वपि । जपध्यानार्चनारभे पूर्वं नित्यं पठेदिदम् ॥९९॥

पूजन कर लिया और जब देवताओं के साथ मन्दुरजीने रामस्वराजसे रामचन्द्रजी स्तुति और पूजा कर ली । तब रामचन्द्रजीसे आज्ञा ले लेकर सब लोग अपने-अपने घरोंको प्रस्थान करने लगे ॥ ७६-७६ ॥ राजाओंकी रानियाँ भी साँताजीकी आज्ञा पाकर अपने-अपने रथोंपर सवार हुई और व्योम्यासे अपने घरोंको जाने लगीं । इसी प्रकार राजे रामकी आज्ञा पाकर अपनी-अपनी राजधानीको लौटे । तब शिवजी अपने कैलासको, ब्रह्मा सत्यलोकको और इन्द्रादि देवता स्वर्गलोकको चले गये ॥ ८७-८९ ॥ इसके बाद भीष्टवान् ऋत्विक् और सदस्य आदि भी अपने-अपने आश्रमोंको विदा हुए । रामचन्द्रजीने फिर पूर्वोक्तिसे अपना राजकाज सँभाल लिया और चिरकाल तक साँताजीके साथ विहार करते रहे । प्रति दूसरे वर्ष इसी तरह अश्वमेध यज्ञ करते हुए रामचन्द्रजीने दोस्र वर्षमें दस अश्वमेध यज्ञ किये । दसवें अश्वमेधमें गुरु ऋषिष्ठके आज्ञानुसार भगवान्ने अपनी सारी सम्पत्ति ब्राह्मणोंको दान दे दी । मैंने तो यहाँतक सुना है कि रामने चारों दिशायेँ दक्षिणार्धमें ऋत्विजोंको दे डाला था ॥ ९०-९४ ॥ किन्तु उन दयालु ऋत्विजोंने फिर उसे बड़े आदरके साथ भगवान्को लौटा दिया और कहा—“हे प्रभो ! इसको रक्षा आप ही कर संकते हैं—हम नहीं । इस कारण यह सब आप अपने ही पास रखिए” । इस प्रकार हे शिष्य ! जैसे तुमने रामचन्द्रजीके मङ्गल-कार्यका प्रश्न किया, वैसे ही मैंने भी तुम्हें बतलाया और रामचन्द्रके यज्ञसम्बन्धी चरित्रोंको सुना दिया । जो कोई सबेरे उठकर इस सुन्दर यागकाण्डको सुनेगा, उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो आयेंगी । वह यदि पुत्रार्थी होगा तो उसे पुत्र मिलेगा और धनार्थी होगा तो धन प्राप्त होगा । इस यागकाण्डको सुननेसे अश्वमेध

रम्यं पवित्रं ऋषुनायकस्य श्रीमच्चरित्रं तुरगाश्वरोद्भवम् ।

पठन्ति मृण्वन्ति अनाः सुपुण्यदं लभन्ति नैजं सत्तु वाञ्छितं इदि ॥१००॥

इति श्रीमत्कोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे बालमोक्षोदये यागकाण्डे

रामोत्तरयात्रा-नगरप्रवेशो नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

यागकाण्डोद्भवाः सर्गा नवैव परिकीर्तिताः । सप्तादवट्कृतश्लोका रामदासेन वर्णिताः ॥ १ ॥

यज्ञका फल प्राप्त होता है । किसी प्रकारका हवन आदि करते समय, आट्कालमें, चातुर्मासमें, व्रतमें, जप, ध्यान और पूजनके पहले सदा इस यागकाण्डका पाठ करना चाहिए । इन रम्य तथा पवित्र अभ्युद्योग-यज्ञसम्बन्धी रामचरित्रको जो लोग पढ़ते और सुनते हैं, वे अपनी अभिलषित कामनाओंको पूर्ण कर लेते हैं ॥ ९५-१००

इति श्रीमत्कोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचिते 'ज्योत्स्ना'-

भाषाटीकासमन्विते यागकाण्डे यज्ञसमाप्तिर्नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

इस यागकाण्डमें कुल नौ सर्ग और ६२५ श्लोकोंका रामदासने वर्णन किया है ॥ १ ॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे यागकाण्डं समाप्तम् ।

श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु



श्रीसीतापूजे नमः

श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं—

आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ऽऽहया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

विलासकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

(शिवकृत रामस्तवराज)

विष्णुदास उवाच

गुरो ते प्रष्टुमिच्छामि तद्वदस्य सविस्तरम् । स्तुतो गमः शिवेनात्र येन रामस्तवेन हि ॥ १ ॥

तं रामस्तवराजं मे विस्तरेण प्रकाशय ।

श्रीशिव उवाच

इति शिष्यवचः श्रुत्वा रामदासोऽजवीद्वचः ॥ २ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् ■■■ स्वया वत्स भावधानमनाः शृणु । प्रोच्यते रामचन्द्रस्य स्तवराजो मयाऽधुना ॥ ३ ॥

परपरं यद्गुणाधारं यज्ज्योतिर्मल शिवम् । तदेव परमं तत्त्वं कैवल्यपददायकम् ॥ ४ ॥

श्रीरामेति परं ज्ञाप्य तारकं ब्रह्ममञ्जितम् । ब्रह्महत्यादिपापघ्नमिति वेदविदो विदुः ॥ ५ ॥

श्रीराम राम रामेति ये वदन्त्यपि सर्वदा । तेषां मुक्तिश्च मुक्तिश्च यदिष्यति न संशयः ॥ ६ ॥

स्तवराजः पुरा प्रोक्तः शिवेन परमान्मना । तमहं संप्रवक्ष्यामि हरिष्यानपुरःसरम् ॥ ■ ॥

तावत्रयागिनश्चमनं सर्वघौघनिकृन्तनम् । दारिद्र्यदुःखशमनं सर्वसंपत्प्रदायकम् ॥ ८ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! मैं यह जानना चाहता हूँ कि शिवजीने किस रामस्तवराजसे रामचन्द्रजीकी स्तुति का धो ॥ १ ॥ कृपा करके आप मुझे वह रामस्तवराज बतला दीजिये । इस तरह अपने शिष्यकी बात सुनकर श्रीरामदासने कहा—॥ २॥ हे वत्स । तुमने मुझसे बहुत अच्छी बात पूछी है । मैं तुम्हें वह स्तवराज बतलाया हूँ, सावधान होकर सुनो ॥ ३ ॥ जो संसारमें ■■■ खींच है, जो सब सद्गुणोंका आधार है, जो एक निर्मल एवं पवित्र ज्योति है, वह ही परम प्रधान तत्त्व है और कैवल्यपददायक है ॥ ४ ॥ बड़े-बड़े विद्वानोंका कहना है कि ‘श्रीराम’ यह सर्वोत्तम तारक मन्त्र है और ब्रह्महत्या प्रभृति महात् पापकोंका नाशक है ॥ ५ ॥ जो सज्जन सर्वदा ‘श्रीराम’ नामका वप करते ■, उन्हें अवतक जे वे संसारमें रहते हैं, तत्काल सांसारिक भोग मिलते हैं और शरीर त्याग करनेपर मुक्ति मिल जाती है ॥ ६ ॥ जो मैं तुमसे कहनेवाला हूँ, इस स्तवराजको शिवजीने स्वयं मुझसे कहा था । उसीको आज भगवान्का ध्यान करके मैं तुमसे कहूँगा ॥ ७ ॥ यह तीनों (वैदिक, दैविक और भौतिक) तापोंको नष्ट करनेवाला,

विज्ञानफलदं पुष्पं मोक्षफलदायकम् । नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि गमं कृष्णमनामयम् ॥ ९ ॥
 अयोध्यानगरे रम्ये रत्नमण्डपमध्यगे । ध्यायेत्कल्पतरुर्मूले रत्नसिंहासने शुभे ॥ १० ॥
 तन्मध्येऽष्टदलं पद्मं मानारत्नोपशोभितम् । स्मरेन्मध्ये दाशरथिं सहस्रादित्यतेजसम् ॥ ११ ॥
 पितुरासनमार्मिनिमिद्रीनीलसमभ्रम् । कोमलांगं विशालाक्षं विद्युद्गण्डिवराश्रितम् ॥ १२ ॥
 भानुकोटिप्रतीकाशं किरीटं विराजितम् । रत्नग्रैवेयकेयूरवरकुण्डलमण्डितम् ॥ १३ ॥
 रत्नकंकणमञ्जीरकटिमुखैरलंकृतम् । धीवत्सकौस्तुभोरष्कं मुक्ताहारोपशोभितम् ॥ १४ ॥
 चिन्तामणिमपायुक्तं रत्नमालाविराजितम् । दिव्यरत्नसमायुक्तं मुद्रिकाभिरलंकृतम् ॥ १५ ॥
 कर्पूरागरुक्षस्तूरीदिव्यगंधानुलेपनम् । तुलसीकुन्दमन्दारपुष्पमाल्यैरलंकृतम् ॥ १६ ॥
 रामवं द्विभुजं वीरं राममोषन्निमताननम् । योगशास्त्रं धरितं योगेश योगदायकम् ॥ १७ ॥
 सदा सौमित्रभरतशत्रुघ्नैरुपसेवितम् । विद्याधरसुराधीशमिदगधर्वकिशोरः ॥ १८ ॥
 योगीन्द्रैर्नारदाद्यैश्च स्तूयमानमहर्निशम् । विश्वामित्रवसिष्ठार्च्यैर्ऋषिभिः परिसेवितम् ॥ १९ ॥
 सनकादिमुनिश्रेष्ठैर्योगिहृन्दैः समावृतम् । रामं रघुवरं वीरं धनुर्वेदविशारदम् ॥ २० ॥
 मंगलायतनं देवं रामं राजीवलोचनम् । सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञमानन्दमतिसुन्दरम् ॥ २१ ॥
 कौसल्यातनयं रामं धनुर्वाणधरं हरिम् । एवं संवितयेद्विष्णुं यज्जपोतिज्योतिषां परम् ॥ २२ ॥
 प्रहृष्टमानसो भूत्वा समायां वृषमध्वजः । सर्वलोकहितार्थाय तुष्टाव रघुनन्दनम् ॥ २३ ॥
 कृताञ्जलिपुटो भूत्वा चिन्तयन्महत् हरिम् ।

श्रीशिव उवाच

यदेकं तत्परं नित्यं वदनन्तं विदात्मकम् ॥ २४ ॥

पापसमूहका नाशक, दारिद्र्य और दुःखका उभय करनेवाला तथा समस्त सम्पदाओंका दाता है ॥ ८ ॥
 यह विज्ञान (ईश्वरसम्बन्धी ज्ञान) का फल देनेवाला, पवित्र और साधक ॥ ९ ॥ ये श्यामस्वरूपधारी
 राम-कृष्णका ध्यान करके वह रत्नमण्डप मध्यगो वतला रहा है ॥ १० ॥ धोताको चाहिये कि वह अयोध्यानगरी-
 के रत्नोंसे सुसज्जित एक सुन्दर भवनमें कल्पवृक्षके नीचे ऐसे रत्नसिंहासन, जिसमें नाना प्रकारके मणियोंसे
 सुशोभित अष्टदल कमल है, उसपर बैठे हुए हजारों सूर्यकी भांति तेजोमय रामचन्द्रजीका ध्यान करे ॥ १०-११ ॥
 रामचन्द्रजी ॥ पिता (महाराज दशरथ) के आसनपर बैठे हैं, इन्द्रनील मणिकों भांति जिनकी श्याम मूर्ति है,
 जिनके कोमल अङ्ग हैं, वही-वही जानें हैं, किरीटकी तरह चमकता पीताम्बर पहिने हुए हैं, जिसमें करोड़ों सूर्योंके
 समान प्रकाश है, मरतकण्ट किरीट धारण किये हैं, उरःस्थलम श्रीवत्स तथा कौस्तुभ मणि है और गलेमें
 चिन्तामणि तथा कितने ही रत्नोंकी मालायें पहने हैं । उनकी उंगलियोंमें बहुमूल्य रत्नोंसे जड़ी अंगूठियाँ पहनी
 हैं ॥ १२-१५ ॥ कर्पूर, अमर और कस्तूरीमें मिश्रित नुआ चन्दन उनके सारे शरीरमें लगा हुआ है । तुलसी
 तथा कुन्द-मन्दार आदिके पुष्पोंमें जिनका शृङ्गार बिशा हुआ है, जिनके केश दो भुजायें हैं, होठोंपर मन्द
 मुस्कान है, जो योगशास्त्रके वातात्मामें मग्न हैं, लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न जिनकी सेवामें लगे हुए हैं, विद्याधर,
 वेदव्यास, सिद्ध, मन्धव और नारद आदि योगीन्द्र गुरुदेव जिनकी स्तुति किया करते हैं, विश्वामित्र-वसिष्ठादि
 ऋषि जिनकी परिचर्यामें लगे हुए हैं । सनक, सनन्दन, मंगलन, सनत्कुमार आदि मुनि वर्जनाय लगे हैं । जो रघुवंश-
 में सर्वप्रधान वीर तथा धनुर्वेदमें निपुण हैं । जो मंगलभवन हैं कमलके समान जिनके नेत्र हैं, जो सब शास्त्रोंके
 तत्त्वज्ञ, आनन्दमूर्ति, अतिशय सुन्दर कौसल्याके सुवन ॥ और वृष-आण धारण किये हैं, ऐसे भगवान्
 रामचन्द्रका ध्यान करे । जो सब ज्योतिषोंमें श्रेष्ठ हैं । ऐसे अद्भुत स्वरूपका ध्यान करके हृषीकेश गद्गद
 होकर शिवजीने संसारके कल्याणार्थ दोनों हाथ जोड़कर भगवान् रामचन्द्रकी स्तुति की ॥ १६-२३ ॥

यदेकं व्यापकं लोके तद्रूपं चिन्मयमहम् । सर्वत्रैलोक्यसौख्यार्थं रामभक्त्यतिवृद्धये ॥२५॥
 विज्ञानहेतुं विमलायताक्षं प्रज्ञानतन्त्रिदिव्यमुखैकरूपम् ।
 श्रीरामचन्द्रं हरिमादिदेवं विश्वेश्वरं राममहं भजामि ॥२६॥
 कविं पुराणं पुरुषं परमं सनातनं योगिनमीशितारम् ।
 अणोरणीयांसमनन्तवीर्यं प्राणेश्वरं राममहं भजामि ॥२७॥

नारायणं जगन्नाथमभिरामं जगत्पतिम् । कविं पुराणं वागीशं रामं दशरथात्मजम् ॥२८॥
 राजराजं रघुवरं कौसल्यानन्दवर्द्धनम् । भगं त्रेण्यं विश्वेशं रघुनाथं जगद्गुरुम् ॥२९॥
 सत्यं सत्यप्रियं श्रेष्ठं जानकीवल्लभं प्रभुम् । मीमिक्षिपूर्वजं शान्तं कामदं कमलेश्वरम् ॥३०॥
 आदित्यं रविमीशानं धृणिं सूर्यमनामयम् । आनन्दरूपिणं सौम्यं राघवं करुणाकरम् ॥३१॥
 जामदग्न्यं तपोमूर्तिं रामं परशुधारिणम् । वाक्पतिं वरदं वाक्यं श्रीपतिं पक्षिवाहनम् ॥३२॥
 श्रीशार्ङ्गधारिणं रामं चिन्मयानन्दविग्रहम् । हलधारिणमीशानं बलरामं कृपानिधिम् ॥३३॥
 श्रीवन्तमं कलानाथं जगन्मोहनमञ्जुनम् । मत्स्यकूर्मवराहादिरूपवाणिमठययम् ॥३४॥
 वासुदेवं जगद्योनिमनादिनेधनं हरिम् । गोविन्दं गोपतिं विष्णुं गोपीजनमनोहरम् ॥३५॥
 गोपालं गोपरीवारं गोपकम्पाममावृतम् । विद्युत्पुञ्जपतीकाशं रामं कृष्णं जगन्मयम् ॥३६॥
 गोगोपिकासमाकीर्णं शैलवादननन्परम् । कामरूपं कलावंतं कामिनां कामदं प्रभुम् ॥३७॥
 मन्मथं मधुरानाथं माधवं मकरध्वजम् । श्रीधरं श्रीकरं श्रीशं श्रीनिवासं परात्परम् ॥३८॥

शिवजीने कहा—जो एक है, जिससे बढ़कर संसारमें और कुछ ही नहीं । जो अनन्त, नित्य एवं अविनाशी है । जो जकेला रहता हुआ भी समस्त विश्वमें व्याप्त है, मैं भगवानके ऐसे स्वरूपका ध्यान करता हूँ ॥ २४ ॥ २५ ॥ जो विज्ञानके एकमात्र हेतु हैं, जिनकी निर्मल और विशाल भावें हैं, जो पूर्ण ज्ञानको अवस्थामें शक्तियोंको दिव्यरूप होकर दर्शन देते हैं ऐसे श्रीहरि, आदिदेव तथा विश्वेश्वर रामचन्द्रकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ २६ ॥ जो स्वयं कवि हैं, सबसे वृद्ध हैं, सबके स्वामी हैं, सनातन हैं तथा योगियोंके भी स्वामी हैं । जो मूढमते भी मूढम हैं, जिनमें अनन्त पराक्रम है, जो समस्त धराचर जीवोंके प्रभु हैं, ऐसे रामचन्द्रका मैं भजन करता हूँ ॥ २७ ॥ नारायणस्वरूप, जगत्के स्वामी, अतिशय सुन्दर, बागीसा तथा दशरथजीके तनय रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २८ ॥ जो राजाओंके भी राजा है, जो रघुवंशमें सर्वश्रेष्ठ हैं, जो कौसल्याका आनन्द बढ़ानेवाले हैं, जो तेजोमय हैं, जो संसारके नाशकर्ता हैं, जो संसारके गुरु हैं, जो सत्यस्वरूप हैं, जिनकी सत्य ही प्रिय है, जो सीताजीके पति हैं, जो लक्ष्मणके बड़े भ्राता हैं, जिनका शान्त स्वभाव है, जो अपने भक्तोंकी कामनाओंको पूर्ण करते हैं, कमल सरीखे जिनके नेत्र हैं, जो अदितिके पुत्र हैं, जो सूर्यरूप हैं, जो शिवरूप और भारोग्ग्यस्वरूप हैं, जो आनन्दके साक्षान् मूर्ति हैं, जो सौम्य प्रकृतिके हैं और जो करुणाके अणुर हैं ॥ २९-३१ ॥ जो जामदग्निके पुत्र (परशुराम) हैं, जो अमिलपित्त कामनाओंको पूर्ण करते हैं, जो लक्ष्मीपति हैं, जिनका पक्षी (गरुड) वाहन है, जो लक्ष्मी और शार्ङ्गनायक धनुष धारण करते हैं, जिनका नित्य आनन्दमय शरीर है, जो हृदको धारण करनेवाले वन्द्यरामस्वरूप हैं, जो लक्ष्मीके प्रिय हैं, जो सब कलाओंकी जानते हैं, जो संसारको मुख करनेमें समर्थ हैं, जिनका कभी विनाश नहीं होता, जो मत्स्य-कूर्म-वराह आदि रूप धारण करते हैं और जो अविनाशी हैं ॥ ३२-३४ ॥ जो वसुदेवके पुत्र, संसारके शत्रु, जन्म-मरणसे रहित, इन्द्रियोंकी प्रसन्न करनेवाले, इन्द्रियोंके पति, विष्णुनन्दन, गोपियोंनि मनको चुरानेवाले और गौओंके रक्षक हैं, ऐसे राम-कृष्ण तथा जगन्मय भगवान्को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ जो गौओं और गोपियोंसे घिरे रहते हैं, जो वंशी बजानेमें तरपन रहते हैं, जो जब जैसा चाहते वैसा अपना स्वरूप लना लेते हैं, जो समस्त कलाओंसे पूर्ण हैं, जो कामनावाले मनुष्योंकी कामनाओंको पूर्ण करते हैं और कामदेवरूपसे सबके

भूतेशं भूषति मद्रं भूतिदं भूरिभूषणम् । सर्वदुःखहरं वीरं दुष्टदानवमर्दनम् ॥३९॥
 श्रीनृसिंहं महाविष्णुं महांतं दीप्ततेजसम् । चिदानन्दमयं नित्यं प्रणवं ज्योतिरूपकम् ॥४०॥
 आदित्यमण्डलगतं निश्चितार्थस्वरूपिणम् । भक्तिप्रियं पद्मनेत्रं भक्तानामोप्सितप्रदम् ॥४१॥
 कौसल्येयं कलामूर्तिं काकुत्स्थं कमलाप्रियम् । सिंहासने समासीनं नित्यव्रतमकल्पमयम् ॥४२॥
 विश्वामित्रप्रियं दांतं स्वदासनियतव्रतम् । यज्ञेशं यज्ञपुरुषं यज्ञपालनतत्परम् ॥४३॥
 सत्यसंधं जितक्रोधं शरणागतवत्सलम् । सर्वक्लेशापहरणं विभीषणवरप्रदम् ॥४४॥
 दक्षप्रोचहरं रुद्रं केशवं केशिमर्दनम् । बालिप्रशमनं वीरं सुग्रीवेप्सितराज्यदम् ॥४५॥
 नरवानरदेवैश्च सेवितं हनुमत्प्रियम् । शुद्धं सूक्ष्मं परं शतं तारकमकरूपिणम् ॥४६॥
 सर्वभूतात्मभूतस्थं सर्वाधारं सनातनम् । सर्वकारणकर्तारं निशानं प्रकृतेः परम् ॥४७॥
 निरामयं निराभासं निरवयं निरञ्जनम् । नित्यानन्दं निराकारमद्वैतं तमसः परम् ॥४८॥
 परास्परतरं नित्यं सत्यानन्दचिदात्मकम् । सनसा शिरसा नित्यं प्रणमामि रघूत्तमम् ॥४९॥

भूतोद्भवं वेदविदां हरिष्टमादित्यचंद्रानिलसुप्रभावम् ।

सर्वात्मकं सर्वगतस्वरूपं नमामि रामं तमसः परस्तात् ॥५०॥

निरञ्जनं निष्प्रतिमं निरीहं निराश्रयं कारणमादिदेवम् ।

नित्यं ध्रुवं निविध्यस्वरूपं निरंतरं राममहं भजामि ॥५१॥

महान्धिपोतं भरताग्रजं तं भक्तिप्रियं भानुकुलप्रदीपम् ।

भूताधिनाथं भुवनधिपत्यं भजामि रामं भवरोगवैद्यम् ॥५२॥

सर्वाधिपत्यं स्मरंगधीरं सत्यं चिदानन्दसुखस्वरूपम् ।

सत्यं शिवं सत्त्वनहन्निवासं ध्येयं परानन्दमहं भजामि ॥५३॥

भनको उद्दिष्ट किया करते हैं। जो मयुराके स्वामी हैं, जो लक्ष्मीके भति हैं, जो मकरध्वज, श्रीधर, श्रीकर, श्रीश, श्रीनिवास, परात्पर, भूतेश, भूषति, मद्र (कल्याणमय), भूतिद (सर्वसम्पत्तियोंके दाता), भूरिभूषण, (बहुत से भूषणोंको धारण करनेवाले) । प्रकारके दुःखोंको हरनेवाले वीर और दुष्ट दानवोंका विनाश करनेवाले हैं, जो श्रीनृसिंह, महाविष्णु, महान् दीप्तिशाली, चिदानन्दमय, नित्य, प्रणव, ज्योतिरूप, आदित्यमण्डलमें विराजमान, निश्चितार्थस्वरूप, भक्तिप्रिय, कमललोचन, भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाले, कौसल्यके सुवन, कलामूर्ति, काकुत्स्थ, कमलाप्रिय, सिंहासनासीन, नित्यव्रती और पापरहित हैं। जो विश्वामित्रके प्रिय, दांत (जितन्द्रिय) और एकपत्नीव्रती हैं। जो यज्ञेश, यज्ञपुरुष, यज्ञको रक्षामें तत्पर, सत्यसंध, जितक्रोध, शरणागतवत्सल, क्लेशोंको हरनेवाले, विभीषणको शरदान देनेवाले, रावणका विनाश करनेवाले, रुद्र, केशव, केशिमर्दी, बालिविनाशक, वीर सुग्रीवको हृप्सित राज्य देनेवाले, नर-वानर और देवताओंसे सेवित, हनुमान्से सेवित, शुद्ध, सूक्ष्म, शान्त, सूक्ष्मरूप, सब प्राणियोंके हृदयमें रहनेवाले, सर्वाधार, सनातन, सब कुछ कर्ता-धर्ता, प्रकृतिके मूल कारण, निरामय, निराभास, निरवय, निरञ्जन, नित्यानन्द, निराकार, अद्वैत, तपोगुणसे परे, सर्वधेष्ट, नित्य, सत्य, आनन्द और चिन्मयस्वरूप हैं। उन श्रीरामचन्द्रजीको मस्तक झुकाकर प्रणाम करता है ॥ ३७-४९ ॥ जो संसारके जन्मदाता हैं, विद्वानोंमें ध्येय हैं, सूर्य-चन्द्रमा और अग्निमें जिनका प्रकाश है, जो सर्वात्मा, सर्वस्वरूप और तमोगुणसे परे हैं। ऐसे रामचन्द्रजीको प्रणाम करता ॥ ५० ॥ निरञ्जन, निष्प्रतिम, निरीह, निराश्रय, सर्वगण, आदिदेव, निरय, ध्रुव, दिव्य और स्वरूपसे परे रामचन्द्रजीको भी प्रणाम करता है ॥५१॥ जो संसारहयो महासागरके लिए जहाजके सदृश हैं, जो भरतके बड़े भ्राता, भक्तिप्रिय, भानुकुलके प्रदीप, भूताधिनाथ, भुवनरूपी जहाजके अधिपति और भवरूप रोगके वैद्य हैं, उन रामचन्द्रजीको भी प्रणाम करता ॥ ५२ ॥ जो सबके अधिपति, शुद्धविद्यामें कुशल, सत्यस्वरूप

कार्यक्रियाकारणप्रमेयं कविं पुराणं कमलायताक्षम् ।
 कुमारवेषं करुणामयं तं कल्पद्रुमं राममहं भजामि ॥५४॥
 त्रैलोक्यनाथं सत्सङ्गरुहाक्षं दयानिधिं इन्द्रविनाशहेतुम् ।
 महाबलं वेदनिधिं सुरेशं मनाननं राममहं भजामि ॥५५॥
 वेदान्तवेद्यं कविमोक्षिताग्मनादिमध्यान्तमचित्पमाद्यम् ।
 अगोचरं निमलमेकरूपं परात्परं राममहं भजामि ॥५६॥
 अशेषवेदान्तकामादिदेवमजं हविं राममनन्तमूर्तिम् ।
 अपारमन्त्रिन्सुखमकरूपं नमामि रामं तमसः परस्तात् ॥५७॥
 तत्त्वस्वरूपं पुरुषं पुगणं स्वनेज्जमां पृथिविषयेकम् ।
 राजाधिराजं रविमण्डलस्थं विश्वेश्वरं राममहं भजामि ॥५८॥
 योगोद्भवमैश्वर्यं मेघमानं नारायणं निमलमादिदेवम् ।
 नतोऽस्मि नित्यं जगदेकनाथं हविं चिदानन्दमयं मुकुन्दम् ॥५९॥
 अशेषविद्याधिपतिं नमामि रामं पुगणं तमसः परस्तात् ।
 विभूतिदं विद्यसृजं परेशं राजेन्द्रमार्शं रघुवशनाथम् ॥६०॥
 अचित्पमव्यक्तमननरूपं ज्योतिर्मयं राममहं भजामि ।
 अशेषसंसारविकारहानमानन्दसपूर्णसुखाभिगमम् ॥६१॥
 नारायणं विष्णुमहं भजामि समन्तगार्क्षिं तमसः परस्तात् ।
 मुनीन्द्रगुह्यं परिपूर्णमेकं कलानिधिं कल्मषनाशहेतुम् ॥
 परात्परं यत्पश्ये पवित्रं नमामि रामं महतां महान्तम् ॥६२॥

मत्मा विष्णुश्च रुद्रश्च देवेन्द्रो देवतारतथा । आदित्यादिग्रहार्थश्च त्वमेव रघुनन्दन ॥६३॥
 तापसा ऋषयः पित्राः साध्याश्च गुनधरतथा । विभ्रा वेदाश्च यज्ञाश्च पुगणं धर्मसहिताः ॥६४॥

सच्चिदानन्द मुण्डस्वरूप, सत्य, शिव, सञ्जनीक हृदयमें निवास करनेवाले और परमानन्दस्वरूप रामचन्द्र-
 जाको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५३ ॥ जो कर्मोंके कारण, अवभव, कवि, चरंशाली, पुराण पुरुष, कमलसरोजके
 विशाल नयनों मुक्त, नित्य कुमारवेषधारी, करुणामय तथा कल्पद्रुमके समान सचको अभिलाषा पूर्ण करनेवाले
 है, उन रामचन्द्रको मैं प्रणाम करता हूँ ॥५४॥ विलाकानाथ, सरसारुह (कमल) के समान नेत्रोंवाले, दयानिधि, इन्द्र
 विनाशके एकमात्र हेतु, महाबल, वेदोंके निधान, सुरेश और सनातनस्वरूप रामचन्द्रजाको मैं प्रणाम करता
 हूँ ॥ ५५ ॥ वेदान्तवेद्य, कवि, ईशिता, आदि-मध्य और अन्तसे रहित, अचित्पम, सबके आदिमें उत्पन्न
 होतेवाले, चक्षुरादि इन्द्रियोंसे अगोचर, निमल, एकरूप और तमोगुणसे परे रामचन्द्रजाको मैं प्रणाम करता
 हूँ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ तत्त्वस्वरूप, पुराण पुरुष, केवल अपने प्रकाशसे समस्त विश्वको प्रकाश देनेवाले, राजा-
 धिराज, रविमण्डलमें निवास करनेवाले और विश्वेश्वरस्वरूप रामचन्द्रजाको मैं प्रणाम करता हूँ । योगोद्भोंके
 समूहसे सेव्यमान, नारायण, निमल, आदिदेव, नित्य, अनन्त एकमात्र स्वामी, हारि, चिदानन्दमय और
 मुकुन्दस्वरूप रामचन्द्रको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ समस्त विद्याओंके भण्डार, तमसे परे, पुराणपुरुष,
 सम्पत्तियोंके देनेवाले, संसारके विकारोंसे पृथक् और सबको आनन्द देनेवाले रामचन्द्रजाको मैं प्रणाम
 करता हूँ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ नारायण, विष्णु, सर्वसाक्षी, तमसे परे, ऋषियोंके ध्यानमें भी कठिनाईसे आनेवाले,
 परिपूर्णरूप एक, कलानिधि, कल्मषके नाशक, परम पवित्र और वदोंसे भी बड़े रामचन्द्रजाको मैं प्रणाम करता
 हूँ ॥ ६२ ॥ हे रघुनन्दन ! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, देवेन्द्र, देवता तथा आदित्यादि ग्रह सब कुछ तुम्हीं हो । सपत्नी,

वर्णाश्रमास्तथा धर्मा वर्णधर्मास्तथैव च । नागा यक्षाश्च गन्धर्वा दिक्पाला दिग्भजा दिग्माः ॥६५॥
 वसुगोऽष्टौ त्रयः काला रुद्रा एकादश स्मृताः । तारका द्वादशादित्यास्त्वमेव रघुनायक ॥६६॥
 सप्त द्वीपाः समुद्राश्च नदा नद्यस्तथा द्रुमाः । स्थावरा जंगमाश्चैव त्वमेव रघुनन्दन ॥६७॥
 देवतिर्यङ्मनुष्याणां दानवानां दिर्वाक्याम् । माता पिता तथा भ्राता त्वमेव रघुनन्दन ॥६८॥
 सर्वेष्वस्त्वं परं त्वद्रूपं विश्वमेव च । त्वमक्षरं परं ज्योतिस्त्वमेव रघुपुंगव ॥६९॥
 शान्तं सर्वगतं सूक्ष्मं परं प्रज्ञा सनातनम् । राजीवलोचनं रामं प्रणमामि जगत्पतिम् ॥७०॥
 ततः प्रसन्नः भीरामः प्रोवाच शृणुमध्वजम् ।

श्रीराम उवाच

तुष्टोऽहं गिरिजाकांतं शृणुष्व वरसुखम् ॥७१॥

श्रीशिव उवाच

यदि तुष्टोऽसि देवेश श्रीराम करुणानिधे । तवाद्य दर्शनेनैव कृतार्थोऽहं न संशयः ॥७२॥
 धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं पुण्योऽहं पुरुषोत्तम । अद्य मे सफलं कर्म मे सफलं तपः ॥७३॥
 अद्य मे सफलं ज्ञानमद्य मे सफलं भुजम् । अद्य मे सफलं सर्वं त्वत्पदाभोजदर्शनात् ॥७४॥
 अद्वैतं विमलं ज्ञानं त्वमन्नामस्मरणं तथा । त्वत्पदाभोरुहद्वन्द्वे सद्भक्तिं देहि राघव ॥७५॥
 ततः परं सुसंप्रीतो रामः प्राह सदाशिवम् । गिरिजेश महाभाग पुनरिष्टं ददाम्यहम् ॥७६॥

श्रीशिव उवाच

वरं न याचे रघुनाथ युष्मत्पदाब्जभक्तिः सततं ममास्तु ।

इदं प्रियं नाथ वरं प्रयच्छ पुनः पुनस्त्वामिदमेव याचे ॥७७॥

श्रीरामदास उवाच

इत्येषमीदृशो रामः प्रादात्तस्मै वरांतरम् । तेनोक्तस्तदरात्राय ददौ नानावरान् बहून् ॥७८॥

ऋषि, सिद्ध, साध्व, मुनि, विप्र, वेद, यज्ञ, पुराण तथा धर्मोकी संहिता ये सब तुम्हें हो ॥ ६३ ॥ ६४ ॥
 हे रघुनायक । वर्ण, आश्रमधर्म, वर्णधर्म, नाग, यक्ष, गन्धर्व, दिक्पाल, दिग्भज, दिग्गर्ह, वसु, तीनों काल,
 एकादश रुद्र, ताराएँ और द्वादश आदित्य ये सब तुम्हीं हो ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ सातों द्वीप, समुद्र, नद, नदियाँ
 तथा वृक्ष आदि स्थावरजङ्गम समस्त वस्तु तुम्हीं हो । देव, तिर्यक्, मनुष्य, दानव, देवता, माता,
 पिता, भ्राता, ■ भी सब तुम्हीं हो ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ तुम्हीं सर्वज्ञ हो, स्वरस्वरूप सदा ही, यह संसार भी
 तुम्हारा ही रूप है, तुम अक्षर हो, परम प्रधान ज्योति हो । और मे कहाँ ■ बतलाऊँ, हे रघुपुङ्गव ! मेरे सब
 कुछ एकमात्र तुम्हीं हो ॥ ६९ ॥ शान्त, सर्वगत, सूक्ष्म, परमह्य, सनातन, जगत्पति और राजीवलोचन
 रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ । इस प्रकारको स्तुति सुनकर रामचन्द्रजीने शिवजीसे कहा—हे गिरिजाकांत ।
 मैं तुम्हारे ऊपर परम ■ हूँ । जो था चाहो, सो ■ वर माँग लो ॥ ७० ॥ ७१ ॥ श्रीशिवजीने कहा—हे
 राम ! हे करुणानिधे ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न है तो मैं आपको ■ प्रसन्न मूर्तिको ही देखकर कृतार्थ
 हो गया ॥ ७२ ॥ हे पुरुषोत्तम ! ■ धन्य ■ और अतिशय पवित्र हूँ । आज मेरे सब कार्य सफल हो गये ।
 मेरी तपस्वार्थ सफल हुई, मेरा ज्ञान ■ गया और शास्त्रोंका श्रवण करना भी सार्थक हो गया । आप-
 के इन चरणकमलोंके दर्शनसे ही मेरा ■ कुछ सफल ■ गया ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ हे कृपानाथ ! यदि आपको वर ही
 देना हो तो मुझे अपना अद्वैत तथा विमल ज्ञान दीजिए । मुझे अपने नामका कीर्तन करानेकी शक्ति और अपने
 इन चरणकमलोंको सद्भक्ति दीजिए ॥ ७५ ॥ इसके अनन्तर अतिशय प्रसन्न होकर रामचन्द्रजीने शिवजीसे
 कहा—हे गिरिजेश ! हे महाभाग ! मैं तुम्हारे अभिलषित वरोंको देनेके लिए प्रस्तुत हूँ, माँगो ॥ ७६ ॥ शिव-
 जीने कहा—हे रघुनाथ ! ■ कोई वरदान नहीं चाहता । मैं चाहता यही हूँ कि सदा आपके चरणोंमें मेरी भक्ति
 बसी रहे । हे नाथ ! मुझे यही वर प्रिय है और वही देनेके लिए मैं आपसे बारम्बार अनुरोध करूँगा

एवं शिवेन यः प्रोक्तः स्तवराजः शुभावहः । स एवाद्य त्वया पृष्ठस्त्वया कथितो मया ॥७९॥
 अयं श्रीरघुनाथस्य स्तवराजो ह्यनुत्तमः । सर्वसौभाग्यसंपत्तिदायको मुक्तिदः स्मृतः ॥८०॥
 कथितो गिरजेशेन तेनादौ सारसंग्रहः । गुह्याद्गुह्यतरो नित्यस्तव स्नेहात्प्रकीर्तितः ॥८१॥
 यः पठेच्छृणुयाद्वापि त्रिसन्ध्यं श्रद्धयान्वितः । ब्रह्महत्यादिपापानि तत्समानि बहूनि च ॥८२॥
 हेमस्तेयसुरापानगुरुतन्पापयुतानि च । गोवधाद्युपपापानि चिन्तनात्संभवानि च ॥८३॥
 सर्वैः प्रमुच्यते पापैः कल्पायुतशतोद्भवैः । मानसं वाचिकं पापं कर्मणा समुपार्जितम् ॥८४॥
 श्रीरामस्मरणेनैव व्यपोहति न संशयः । इदं सत्यमिदं सत्यं मर्त्य नैवान्यदुच्यते ॥८५॥
 रामः सत्यं परं रामात्किञ्चिन्न विद्यते । तस्माद्रामस्वरूपं हि रामः सर्वमिदं जगत् ॥८६॥

श्रीरामचन्द्र रघुपुङ्गव राजवर्यं राजेन्द्र राम रघुनायक राघवेश ।

राजाधिराज रघुनायक रामचन्द्र दामोद्विमल भवतः शरणागतोऽस्मि ॥८७॥

उत्फुल्लामलकोमलोत्पदलक्ष्यामाय रामाय चाकामाय प्रश्रमाय निर्मलगुणश्रामाय रामात्मजे ।
 ध्यानारूढमुनीन्द्रमानसमरोहसाय संसारविध्वंसाय स्फुरदोजसे रघुकुलोत्तमाय पुंसे नमः ॥८८॥
 एवं शिष्य मया प्रोक्तो यथा पृष्ठस्त्वया मम । स्तवराजो राघवस्य श्रवणात्पापनाशनः ॥८९॥

इति श्रीभक्तकोटिरामचरितावतारं श्रीमदानन्दरामायणे विलासकाण्डे बाल्मीकीये

शंकरकृतरामस्तवराजो नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः

(राम द्वारा सीताके सौन्दर्यका वर्णन)

विष्णुदास उवाच

गुरो ते प्रहृमिच्छामि तत्त्वं मां वक्तुमर्हसि । प्रयोध्यायां राघवेण सीतयाऽतिसुरूपया ॥ १ ॥

॥ ७७ ॥ श्रीरामदासने कहा—इस प्रकार स्तुति काग्रेपर रामचन्द्रजीने शिवजीके इच्छानुसार वर दिया और अपने मनसे भी उनको बहुतसे ऐसे वर दिये, जिनको शिवजीने ही नहीं था ॥ ७८ ॥ इस प्रकार शङ्करजीका कहा हुआ शुभदायक 'रामस्तवराज' मैंने तुम्हारे पृष्ठनेपर कह सुनाया ॥ ७९ ॥ यह रामचन्द्रजीका स्तवराज सब स्तोत्रोंमें श्रेष्ठ है । यह सब प्रकारके सौभाग्य, सम्पत्ति और मुक्तिको देनेवाला है ॥ ८० ॥ शिवजीने वेदोंका सारअंश निकालकर इसमें रख दिया है और यह अत्यन्त अलभ्य वस्तु है । किन्तु तुम्हारे सच्चे प्रेमके बशीभूत होकर मैंने तुमको बतलाया है ॥ ८१ ॥ ओ प्रणामुग्रह-शाम या तीनों कालमें इसका पाठ करता है, उसके ब्रह्महत्या जैसे महान पातक तथा सुवर्णका चुराना, मद्यपान, गुह्यके विछोनेपर सेटना, गोवध, किसी प्रकारके मानसिक पाप आदि जो सैकड़ों कल्पसे एकत्रित हो गये हों, वे सब श्रीरामस्तवराजके स्मरणमात्रसे नष्ट हो जाते हैं । यह बात बिल्कुल सच है । इसमें किसी प्रकारका धोखा न समझना चाहिए ॥ ८२-८५ ॥ रामचन्द्र सत्य परब्रह्म है । उनसे बढ़कर और कोई है ही नहीं । अतएव यह समस्त संसार रामका ही स्वरूप है ॥ ८६ ॥ हे रामचन्द्रजी ! हे रघुपुङ्गव ! हे राजाओंमें श्रेष्ठ ! हे रघुनायक ! हे राघवेश ! हे राजाधिराज ! हे रामचन्द्र ! मैं एक अकिञ्चन नाम आपकी शरणमें आ रहा हूँ ॥ ८७ ॥ नवविकसित निर्मल नील-कमल-न्दल सरीखे जिनका ध्याम स्वरूप है, जिनको किसी प्रकारकी कामना नहीं है, जो पूर्ण शान्तमूर्ति हैं, जो निर्मल गुणोंके राशिस्वरूप हैं, जो ध्यानारूढ मुनियोंके मनमानसके हंस हैं, जो अपने भूभङ्गमात्रसे संसारको विध्वंस करनेमें समर्थ हैं, ऐसे रघुवंशभूषण तथा परम पुरुष रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ८८ ॥ हे शिष्य । इस तरह मैंने तुम्हारे प्रश्नानुसार यह पापराशिनाशक स्तवराज तुम्हें सुना दिया ॥ ८९ ॥ इति श्रीभवानन्दरामायणे पं० रामतेजपांडेयकृत 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासमन्विते विलासकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! मैं आपसे यह पूछना चाहता हूँ कि अयोध्यामें परम रूपवती सीताके

कथं मुक्ता वरा भीमाः किं किमाचरितं शुभम् । चरितं तस्य सकलं वद मंगलदायकम् ॥ २ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पूर्णं त्वया वत्स साविधानमनाः शृणु । रणदीक्षां वाजिमेषदीक्षां च रघुनन्दनः ॥ ३ ॥

निर्वाप्य सीतया रमेऽपोऽप्यायां च धुभिः सुखम् । जानकीं रंजयामास नानाभोगैर्मनोहरैः ॥ ४ ॥

तत्किञ्चिन्मृणु मांगन्यं विलासचरितं शुभम् । सीतया कोकलेंद्रस्य श्रवणान्यङ्गलप्रदम् ॥ ५ ॥

कः कुरुन् चरितं वक्तुं तपोः कीडान्वितं श्रमः । अनः संक्षेपतः किञ्चिद्वक्ष्यामि तव सन्निधौ ॥ ६ ॥

अथ सीतापुत्रो रामः पार्वत्या शकरो यथा । कोडां चकार कैलासेऽप्यध्यायां स तथाऽकरोत् ॥ ७ ॥

हेमरत्नमये दिव्यगेहे वैकुण्ठसन्निभे । निद्रास्थानं राघवस्य मनोत्तं वाशिसन्निभम् ॥ ८ ॥

मित्रौ रत्नोपला यत्र हेमनः पङ्क्तोऽस्ति यत्र हि । यत्र स्तम्भाः श्फाटिकाश्च यत्र भारकतोन्नवाः ॥ ९ ॥

प्रतोन्यः शतशो रम्याः शेषं नीलादिभिश्चितम् । मुकुरैरुज्ज्वला यत्र भिन्नपश्चिप्रचित्रिताः ॥ १० ॥

यत्र हेममयी भूमिर्यत्र मुक्तामयं शुभम् । वितानं पुष्पहारैश्च मुक्तागुणैर्विराजितम् ॥ ११ ॥

हेमतंतुमयान्यत्र भित्तिवस्त्राण्यनेकशः । यत्राप्युत्पलपद्मैश्च संमर्दो नैव जायते ॥ १२ ॥

एवं तद्विस्तृतं रम्यं रत्नदीपैर्विराजितम् । हेमकुम्भा विराजन्ते प्रासादाग्रेषु चित्रिताः ॥ १३ ॥

यत्र चित्राण्यनेकानि मोहयन्ति भृगीदृशाम् । यत्र हेममया रम्याः पर्यङ्काश्चित्रचित्रिताः ॥ १४ ॥

हेमकोशेषसंभूततुण्डैर्विगुण्फिताः । महार्हवसनैः पुष्पजालैराञ्जलिताः शुभाः ॥ १५ ॥

चतुष्कोणे लम्बमानमुक्ताधोपैर्विराजिताः । येषु दिभ्याः कक्षिपवस्तयोऽवर्हणानि च ॥ १६ ॥

केकिपश्चमयान्येषु चामराणि सहाति च । गोपुच्छबालसर्जरीसंभरादीनि सति हि ॥ १७ ॥

ताप रहने हुए रामचन्द्रजीने किस प्रकारके भोगोंकी भोग और कौन-कौनसे गृह कार्य किये । इस प्रकार समस्त महलदायक रामचरित्र आप मुझको सुनाइए ॥ १ ॥ २ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे । तुमने बहुत उत्तम प्रश्न किया है । सावधान होकर सुनो । रामचन्द्रजीने जब रणदीक्षा और अश्वमेध यज्ञकी दीक्षा इन दोनों दीक्षाओंका पूरा कर दिया । तब सीता तथा अपने अन्तर्भोगोंके राम सुखपूर्वक रहने लगे । उन्होंने विविध प्रकारके भोगोंसे सीताको प्रसन्न किया ॥ ३ ॥ ४ ॥ उनमें विलासक कुछ अंश जो परम महलदायक है, मैं तुम्हें सुनाता हूँ । सीता-रामका यह चरित्र श्रवण करनेसे कल्याण होता है ॥ ५ ॥ सीता, तथा रामके समस्त चरित्र कहनेकी शक्ति तो हममें अथवा किसीमें भी नहीं है । अतएव मैं उनको संक्षिप्त रीतिसे तुम्हें सुनाऊँगा ॥ ६ ॥ अश्वमेधयज्ञके अनन्तर रामचन्द्रजी शङ्कर-पार्वतीके समान सीताजके साथ कैलास सहस्र व्योम्हमें रहकर विहार करने लगे ॥ ७ ॥ सुवर्ण तथा अनेक प्रकारके मणियोंसे रचित एवं वैकुण्ठके दिव्य भवनमें चन्द्रमा सहस्र स्वच्छ सुन्दर रामचन्द्रजीका शयनकक्ष था ॥ ८ ॥ जिसकी दीवारोंमें रत्नोंके सुवर्णके गारेसे जड़े गये थे । जिसमें चारों ओर स्फटिक और परकत मणिके स्तम्भ लगे हुए थे ॥ ९ ॥ जिसमें नीलम आदि मणियोंके छत्ते बने हुए थे । जिसमें चारों ओर दर्पणोंके लगे रहनेसे वह भवन विलुल स्वेतवर्णका दिखायी देता था । दीवारोंमें कितने ही चित्र लगे हुए थे ॥ १० ॥ उस भवनकी भूमि सोनेकी थी, जिसमें मोतियोंकी झालरसे ढँकी हुई चाँदनी लगी थी ॥ ११ ॥ जिसमें सोनेके तारसे बने हुए कपड़ोंकी चारों ओर जगह-जगह ढँकी हुई थी । वह भवन इतना विशाल था । उसमें दस हजार मनुष्योंकी भीड़ सहजमें सम आती थी ॥ १२ ॥ इस प्रकार वह भवन बड़ा विस्तृत तथा साक-सुगरा और उसमें रत्नोंके दीपक अल्प कहते थे । प्रासादके अग्रभागमें सोनेके कला चित्रित किये हुए थे ॥ १३ ॥ उसके हजारों चित्र स्त्रियोंको मुख देते थे और उन्हें देखकर स्त्रियोंको अपने तन-वदनकी भी सुधि नहीं रह जाती थी । वहाँ सुवर्णके पलंगोंपर अनेक विस्तर बिछे हुए थे ॥ १४ ॥ जिनपर सुवर्णके तार और रेशमकी बुनी हुई चादरें पड़ी थीं । जो भवन कीमती कपड़ों और फूलोंसे सजा हुआ था ॥ १५ ॥ जिसके चारों चारों कोनोंमें मोतियाँ बड़े-बड़े सुवर्णके लटके हुए थे, जिसमें महामलकी जड़ाऊ तकियायें लगी हुई थीं ॥ १६ ॥ कहीं ओरके पलंगोंके बड़े-बड़े

चतुष्कोणेषु सर्वेषां मंचकानां महोज्ज्वलाः । रत्नदीपाः प्रकाश्रन्ते सदैवाग्निशिखोपमाः ॥१८॥
 उशीरव्यजनादीनि चामरादीनि सन्ति हि । यत्र साम्बूलपात्राणि हेमरत्नोद्भवानि च ॥१९॥
 तथा मिष्टीवनार्थं हि पात्राणि राजतानि च । यत्र रंभोपमा दास्यः श्वतशो रत्नभूषिताः ॥२०॥
 चामरैर्वीजयंत्यथ सीतारामावहर्निशम् । यत्र हेममयाश्चित्रा बद्धास्ते पंजराः शुभाः ॥२१॥
 ये यागे नृपपत्नोभिः श्रीसीतायाः समर्पिताः । येषु वै केकिनो हंसाः सारसाः सारिकाः शुकाः ॥२२॥
 लावकाः कोकिलाद्याश्च नाना वेषस्य पतत्रिणः । नानाशब्दान्प्रकुर्वन्तः श्वतशस्तेषु संस्थिताः ॥२३॥
 तेषां स्रन्दस्य शिष्य त्वां किं प्राकथ्यं वदाम्यहम् । ये रामस्मरणेनैव जीवन्मुक्ता ■ संशयः ॥२४॥

पक्षिण ऋतुः

जयतु राघवो जानकीपुत्रो जयस्वलिलराजराजकेश्वरः ।
 दशरथात्मजो लक्ष्मणाग्रजो जयतु मापतिस्ताडिकांतकः ॥२५॥
 जयतु कौशिकस्याध्वरं गतो जयतु रक्षसां मारको महान् ।
 जयतु गौतमाहस्यया स्तुतो जयतु जानकीतातमानितः ॥२६॥
 जयतु नः पतिश्चापमहानो जनकजावरोन्मुक्तभालया ।
 नृपसभाशणे कौशिकानुशः परमशोभितधातिहर्षितः ॥२७॥
 जयतु भूमिजाग्रयोस्तदा मुदा मित्रकरोत्पले स्थाप्य राघवः ।
 कमलहस्तकेनाकरोन्नतिं स रघुनन्दनः पातु नः सुखम् ॥२८॥
 जयतु भूमिजालिंगितो महान् जनमनोहरधातिशोभनः ।
 परशुरामदं घृस्य वै धनुर्निजपितुस्तदाऽदर्शयन् बलम् ॥२९॥
 जयतु सीतया भोगकुक्षिरं जयतु कैकर्याप्रेरितो वनम् ।
 जयतु पर्वते वासकुक्षिरं जयति योऽग्निना पूजितो वने ॥३०॥

चमर रखे हुए हैं । कहीं सुरागायका चमर रखता है । कहीं तालके और कहीं खजूरके बहुतसे पंखे रखे हुए हैं ॥ १७ ॥ पलंगके चारों ओर अच्छे रोगनी देनेवाले अग्निशिखा मृदुल रत्नमय शीपक रखे हुए हैं ॥ १८ ॥ बहुतसे खस आदिके पंखे तथा चमर रखे हैं । प्रगवान्के उस विलासभवनके पानदान नुषर्णके हैं । उसमें जगह-जगह हीरा-मय्या आदि रत्न जड़े हुए हैं ॥ १९ ॥ जिसने उगालदान है, सब चीन्हीके हैं । वहाँ अनेक प्रकारके गहने पहने रंभा जैसी सैकड़ों मुन्दरी नारियाँ राम और सीताको पंखा हाका करती हैं । जिनमें मोनेके कितने ही पिंजरे बँधे हुए हैं ॥ २० ॥ उनको यज्ञमें बायी हुई रानियोंने सीताजीको उपहारमें दिया था । जिनमें मयूर, हंस, सारस, मैना, बटेर, कोयल आदि सैकड़ों प्रकारके पक्षी कितनी ही तरहकी चीन्ही बँधे रहे थे ॥ २१ ॥ २२ ॥ हे मित्र ! वे पक्षी क्या बोलते थे, यह मैं तुम्हें स्पष्ट करके बतलाता हूँ । मैंने कौन पन्द्रह नहीं कि वे पक्षी बारम्बार रामका ■ लेनेसे जीवन्मुक्त हो गये थे ॥ २३ ॥ २४ ॥ पक्षी कहते थे—सीतापति रामचन्द्रजीकी जय हो, बलिलराजराजेश्वरकी जय हो, दशरथात्मज रामचन्द्रजीकी जय हो । लक्ष्मणाग्रज रामकी जय हो । श्रीपति और ताड़काके नाशक रामचन्द्रजीकी जय हो ॥ २५ ॥ विश्वामित्रके यज्ञमें जानेवाले, राक्षसोंके विनाशकारी, गौतम-अहल्या तथा जनकजोसे सम्मानित रामचन्द्रजीकी जय हो ॥ २६ ॥ हमारे स्वामी, शंकरके धनुषको छण्डन करने तथा सीताजीके हाथोंकी जयमाला पहिनेवाले, परशुरामके दिये हुए धनुषको चढ़ाकर पिता दशरथको अपना पराक्रम दिखानेवाले ॥ २७-२८ ॥ सीताके साथ विलास करनेवाले, कैकेयीकी प्रेरणासे वनको जानेवाले, बिरकाल तक बिजकुटपर निवास

जयतु स विराटस्य घातकजयतु दूषणादिप्रमर्दनः ।

जयतु यो भृगं मोचयद्वाजयतु यः कबंधं क्षणाजहौ ॥३१॥

जयतु बालिहा सेतुकारको जयतु रावणादिमर्दकः ।

जयतु स्वं पदं प्राप सीतया मंगलस्नानकृन्धुदा ॥३२॥

जयतु वाक्यतो भृसुरस्य यः सकलभूतलं पर्यटन् चिरम् ।

जयतु यागकृल्लोकशिक्षया जयतु जानकी रंजयन् स्थितः ॥३३॥

श्रीरामदास उवाच

रघुवरस्य पत्न्यशिमिः कृतं भवकमुत्तमं यः पठिष्यति ।

तपननिर्गमे भक्तितत्परो निजमनोऽर्पितं संगमिष्यति ॥३४॥

एतादृशे रम्यगेहे ■■■ शिष्य प्रवर्जिते । सीतया स सुखं रेधे चैकपत्नीव्रतस्थितः ॥३५॥

■■■ जानकी देशी रंजयामास राघवम् । स्थितं मंचकवर्ये तं निजकीटादिकौतुकैः ॥३६॥

मंचकस्थश्च श्रीरामस्त्वेकदा सुखनिर्भरः । सीतासौंदर्यमालोक्य वर्णयामास तां मुदा ॥३७॥

हे सीते कंजनयने ■■■ त्वं कथं स्थिता । जानाम्यहं वितर्केण तेन त्वं निमिताऽसि न ॥३८॥

त्वद्रूपसदृशीं नान्यां पश्यामि जगतीतले । प्रतिपन्नचंद्रकलया स्पर्धयंति नखानि ते ॥३९॥

नखमेध्या रक्तवर्णाः शुभा दाहिमबीजवत् । अंगुष्ठी वर्तुलो रम्यौ शिथंगुष्ठोपमौ तव ॥४०॥

मृदुले ते पादतले कंजपत्रांतरोपमे । समे रेखाञ्जजघ्रुते स्वस्तिकादिसुचिह्निते ॥४१॥

सीते तेष्वधूर्ध्वभागी तौ निर्लोमौ मांसलो शुभौ । अक्षिरी मृदुलौ पीतौ नृपस्त्रीवदनोचितौ ॥४२॥

पादमूले दधिजेन स्पृष्टे ते रक्तवर्तुले । पादपृष्ठं समे पीने कोमले लोभवर्जिते ॥४३॥

करनेवाले, अग्नि आदि ऋषियोंसे पूजित रामचन्द्रजीकी जय हो ॥ ३० ॥ जिन्होंने विराटको मारा था और दूषणादि राक्षसोंका संहार किया था । जिन्होंने भृगरूपधारी मारीचको मुक्ति दी थी और अणमात्रमें कबंधका विनाश कर दिया था, ऐसे रामचन्द्रको जय हो ॥ ३१ ॥ बालिको मारनेवाले, समुद्रमें सेतु बांधनेवाले, रावणादिके नाशक, सीताको नंकासे ■■■ लाकर अपने राजसिंहासनपर सुगोभित और मंगल-■■■ करके पवित्र रामचन्द्रकी जय हो ॥ ३२ ॥ कुम्भोदर ब्राह्मणकी आज्ञासे चिरकालतक समस्त पृथ्वीका पर्यटन करनेवाले, लोकशिक्षाके निमित्त ब्रह्ममेघ ■■■ करनेवाले और साताजीको प्रसन्न करते हुए स्थित रामचन्द्रको जय ■■■ ॥ ३३ ॥ श्रीरामदासजी कहने लगे—यह पदियों द्वारा किये हुए, नौ श्लोकोंका (तीन वर्षाश्रुतुमें जो कोई पाठ करेगा, उसकी मनोऽभिलषित कामनाएँ पूर्ण होंगी । जैसा मैं ऊपर ■■■ आया हूँ, ऐसे सुन्दर भवनमें रामचन्द्रजी सीताके साथ सुखपूर्वक एकपत्नी व्रत धारण करके बिहार करते थे । उसी प्रकार सीताजी भी नाना प्रकारके कौतुक कर-करके रामचन्द्रजीको प्रसन्न करती थीं ॥ ३४-३६ ॥ एक दिन रामचन्द्रजी पलंगपर बैठे थे । सहसा वे सीताके सौन्दर्यको देखकर कहने लगे—हे कमलनयने सीते ! मैं अपने मनमें बार-बार यही सोचता रहता ■■■ कि तुम्हें ब्रह्माजीने कैसे बनाया होगा । मेरा तो जहाँतक ख्याल है कि तुम्हारी रचना ब्रह्माजीने नहीं ■■■ है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ बल्कि कोई दूसरा कारीगर तुम्हारी इस शोभाको बनानेके लिए नियुक्त किया गया होगा । क्योंकि तुम्हारे सहस्र रूपवती नारी मैने संसारमें कहीं देखी ही नहीं । तुम्हारे पैरोंके नाखून अपनी अनुपम ■■■ द्वारा चन्द्रकलासे बाजो मारनेके लिए उतावले हो रहे हैं ॥ ३९ ॥ नाखूनोंकी लाली अनारदानेकी तरह ■■■ रही है । तुम्हारे वर्तुलाकार और सुन्दर अंगूठे बच्चोंके अंगूठोंकी नाई कोमल दीखते हैं ॥ ४० ॥ तुम्हारे चरण कमलकी पंखुड़ियोंके सहस्र कोमल और सुन्दर हैं । उनमें ध्वजादिकी शुभ रेखाएँ खिंची हैं और मेहावर लगी हुई है । पाँवोंके ऊपरका भाग सुन्दर तथा सुसौल है । उनमें नखें नहीं दिखाई देती । इसीसे तो वे चरण बड़ी-बड़ी रानियोंके पूज्य हो रहे हैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ तुम्हारे पैरोंके बीचका हिस्सा मन्मथनकी तरह मुलायम है, दोनों गुल्फ लाल-लाल वर्तुलाकार और मोटे

तव गुण्यौ रक्तवर्णौ वर्तुलौ मांसलौ शुभौ । जंघे गोपृच्छमदृशे वर्तुले मांसले शुभे ॥४४॥
 निलोमे मृदुले पीने क्षशिरे सरले वरे । वर्तुलौ ते महाजान् मांसलौ बीजपूरवत् ॥४५॥
 रंभास्तंभोपमे चोरु मांसलौ त्वतिकोमलौ । पीनौ घनौ वर्तुलौ तौ विलोमौ मे मुखोचितौ ॥४६॥
 जघनं मांसलं रम्यं वर्तुलं गजकुंभवत् । पीनं विलोमं सुस्निग्धं चिर्चकमोहनम् ॥४७॥
 नाहं ते वर्णने शक्तो रतिस्थानस्य भामिनि । गंभीरा वर्तुला नाभिस्तव रम्या प्रदृश्यते ॥४८॥
 बलित्रयं तु जठरे दृश्यते तिसृशेणिषत् । मृगगजस्य कटिना तुल्यस्ते कटिरुत्तमा ॥४९॥
 रम्यं तदोदरं सूक्ष्मं मृदुलं मांसलं शुभम् । विलोमं पीतवर्णं च पुत्रोत्पत्तिविश्वचक्रम् ॥५०॥
 वक्षस्य शकलेनैव स्पन्दते मांसलः । पृष्ठस्तंभः कोमलश्च निम्नो लोमविवर्जितः ॥५१॥
 पार्श्वेऽतिमृदुले पीते मांसले लोमवर्जिते । कुक्षी पीने लोमहीने मांसले किञ्चिदुन्नते ॥५२॥
 हृदयं कोमलं रम्यं मांसलं पीनमुन्नतम् । त्रिस्तीर्णं लोमहीनं च सुस्निग्धं सौख्यदं मम ॥५३॥
 हेमकुंभसमानौ द्रौ कुचौ पीनौ घनौ शुभौ । गजशुद्धादंडतुन्धौ पीनौ ते कोमलौ भुजौ ॥५४॥
 कुशा रम्याः कोमलाश्च तेऽङ्गुल्यो जनकात्मजे । रक्ते पाणितले शंखध्वजमन्स्यादिचिह्निते ॥५५॥
 मांसले कोमले प्रोच्यैः सुरेखामण्डिते वरे । करपृष्ठे लोमहीने मांसले कोमले शुभे ॥५६॥
 पीनौ स्कंधौ वर्तुलौ ते जघुस्ते मांसपूरितः । कनुकंठोऽतिपीनश्च सवलित्रय उत्तमः ॥५७॥
 मध्ये निम्नं सुपीनं ते चिबुकं वर्तुलं मृदु । प्रवालविंशमदृशभारक्तः कोमलो घनः ॥५८॥
 सीते तेऽधोऽधरो भाति मधुरोऽमृतसन्निभः । कुंदपुष्पकलिकया स्पर्दन्ते दक्षनास्तव ॥५९॥
 सांक्षाः कुत्रिमवर्णैश्च कृष्णवर्णा मनोहराः । हेमपुष्पैर्हेमनतुल्यैश्चित्रविचित्रिताः ॥६०॥

हैं । जंघायें गौकी पूँछके समान गावदुम एवं मोटी-ताजी हैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ उनमें न तो कहीं एक भी रीम दिखाई देते हैं न करीरका नसे हो । दोनों वोजपूर (बिजौरे नोख) की तरह मोटे और वर्तुलाकर ॥ ४५ ॥ तुम्हारे दोनों ऊँह केनेके सम्भेकी नाई मोटे और कोमल हैं । उनका सुन्दर वर्ण और उनकी सुन्दर छाटा मुझे बहुत अच्छी लगती है ॥ ४६ ॥ अघनभाग मोटा, सुन्दर और हाथोंके मस्तककी तरह वर्तुल है । वह पीतवर्ण, लोमहीन, सुचिक्कण तथा घनोमोहक है ॥ ४७ ॥ हे मौते ! तुम्हारे रतिस्थानका वर्णन करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ । तुम्हारा नाभि भी गहरी श्रुतुलाकार और सुन्दर है ॥ ४८ ॥ तुम्हारे पेटमें तीन रेखाएँ तीन वेणीके समान दिखाई पड़ती हैं । तुम्हारी कमर मृगराज सिंह की तरह पतली है ॥ ४९ ॥ तुम्हारा उदर सूक्ष्म, मृदुल और मांसल है । उसमें कहीं भी लोम नहीं दिखाई पड़ता । वह तीन वर्णका है और उसको देखनेसे भावी पुत्रोत्पत्तिका सूचना मिलती है ॥ ५० ॥ वक्षस्त्रण्डकी तरह मोटी-ताजी तुम्हारी पीठकी रीढ़ है । दोनों पार्श्वभाग तो अतिकोमल होनेसे देखते ही बनते हैं । कांख भी पीतवर्ण, लोमहीन, कुछ ऊँची एवं मोटी-ताजी है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ हृदय कोमल, रम्य, मांसल, पीला और ऊँचा है । वह लोमहीन है और बहुत दूर तक फैला हुआ है । वह छूनेमें चिकना मान्य होता है । इसलिए मुझे वह बहुत सुन्दर जैचता है ॥ ५३ ॥ स्वर्णकलशकी नाई मोटे और कठोर तुम्हारे दोनों कुच हैं । तुम्हारी दोनों भुजाएँ हाथोंकी सूँडकी तरह मोटी, कोमल और सुन्दर हैं ॥ ५४ ॥ पतली, सुन्दर और कोमल तुम्हारे हाथोंकी उँगलियाँ हैं । शंख, ध्वज, मकर मत्स्यादि चिह्नों युक्त लाल-लाल तुम्हारी दोनों हथेलियाँ हैं ॥ ५५ ॥ उसी तरह उनका पृष्ठभाग भी लोमहीन, मांसल, कोमल और सुन्दर ॥ ५६ ॥ वर्तुलाकार, मोटे-ताजे, मांससे अच्छी तरह भरे हुए और शङ्खकी नाई तुम्हारे दोनों कन्धे हैं । पीवामें तीन सुन्दर रेखाएँ ॥ ५७ ॥ तुम्हारा मध्यभाग भी निम्न, पीन एवं कोमल है । प्रवाल और विंशफलकी तरह लाल, कोमल और रसभरा तुम्हारा चिबुक है ॥ ५८ ॥ हे सीते ! अमृतकी तरह मधुर तुम्हारा अधरोष्ठ है । कुंदकी कलियोंकी लज्जित करनेवाले तुम्हारे दाँत हैं ॥ ५९ ॥ उनमें बत्तीसी पड़ी हुई हैं । पान खाते खाते वे कांसे हो गये हैं । उनमें जहाँ-तहाँ सुवर्णके तारकी

ऊर्ध्वाधरः कोमलस्ते रक्तवर्णो विभात्ययम् । ऋजु घ्राणमुन्नसं ते दिव्यं भाति मनोहरम् ॥६१॥
 तव नेत्रे कञ्जपत्रतुल्ये दीर्घे मनोहरे । हरिणीनेत्रमदृष्टे कामवाणाविव प्रिये ॥६२॥
 तव कर्णौ धनौ पीनौ बहुमारमही वरौ । तव सीतेऽतिसुस्निग्धे प्रोञ्च्ये गण्डस्थले शुभे ॥६३॥
 कुशे भ्रूवौ चापतुल्ये कृष्णवर्णे सुकोमले । ललाटं तव विस्तीर्णं मांसलं हि समं मृदु ॥६४॥
 गङ्गाकुलोपमः सीते सीमन्तस्तव सुन्दरः । हेमन्तसमानास्ते केशाः स्निग्धाः सुकोमलाः ॥६५॥
 मस्तकस्तव सूक्ष्मश्च वर्तुलो मांसलः शुभः । वेणीवन्धो वरः सीते अघने पतितस्तव ॥६६॥
 चंपुष्पायमो वर्णः सौकुमार्यमपि प्रिये । सीते तवाननस्पृह्यौ अशांकः क्षयमाप सः ॥६७॥
 त्वन्नेत्रविजिता सीते मृगी धावति कानने । सीते त्वदभ्रुकुटिस्पर्द्धिं चापं मग्नं मया पुरा ॥६८॥
 तव नेत्रकटाक्षेण मृनीनां मदनोद्भवः । नेत्रयोस्तव चांचन्य मकरान् लज्जयत्यहो ॥६९॥
 तव घ्राणं शुको दृष्ट्वाऽऽत्मानं धिक्करोति हि । दृष्ट्वाष्टयोः श्रोणिमां ते सौकुमार्यमपि प्रिये ॥७०॥
 सहकारतरोश्चापि रक्तः कोमलपल्लवः । लज्जया हरितो भाति त्वक्त्वा स्वीयां सुरक्तताम् ॥७१॥
 सौकुमार्यं तथा त्यक्त्वा लज्जया ते घनोऽपि सः । एवं किं किं मया कान्ते सीदयं तव जानकि ॥७२॥
 वर्णनीयं महद्दिव्यं तत्र मल्लाजपि कुण्ठितः । हत्युक्त्वा राघवः सीतां प्रीत्या तां परिष्वजे ॥७३॥
 तच्छ्रुत्वा वर्णनं स्वीयं लज्जयाऽधः कुतानना । किञ्चित्स्मिताननं कृत्वा तस्यावके पतेश्च सा ॥७४॥

■ श्रीमत्कोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे विलासकाण्डे वाल्मीकीये
 सीतावर्णनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

चित्रकारी की हुई है । इससे ■ और भी सुन्दर मालूम होते हैं ॥ ६० ॥ तुम्हारा ऊपरी होंठ भी कोमल और रक्तवर्ण है । कोमल और ऊँचा तुम्हारा नासिका है, जो बड़ी सुन्दर दीखती है ॥ ६१ ॥ कमलकी पंखुड़ियोंकी भाँति सुन्दर तुम्हारा दोनों आँखें हैं । उन्हें चाहे हरिणीके नेत्रोंकी तरह कह लो या कामवाणकी भाँति चित्ताकर्षक कहो ॥ ६२ ॥ तुम्हारे दोनों ■ भी धन और पीन हैं । वे बहुतसे गहनोंका बोझ सह सकते हैं । तुम्हारे गण्डस्थल अति कोमल और ऊँच है ॥ ६३ ॥ पतली-बतली और काले रंगकी तुम्हारी दोनों भीहें धनुषाकार दोखती हैं । तुम्हारा ललाट सूत्र चौड़ा और बराबर है ॥ ६४ ॥ तुम्हारी माँग गंगाके तटकी तरह सुन्दर दोखती है । सोनेके तारकी भाँति सुन्दर, चिकने और कोमल तुम्हारे केशोंका कलाप है ॥ ६५ ॥ तुम्हारा मस्तक सूक्ष्म, वर्तुल, मांसल और सुन्दर है । तुम्हारे केशोंका वेणीवन्ध जाँघतक झूलता है ॥ ६६ ॥ चम्पाके फूलकी तरह तुम्हारा सुन्दर वर्ण है । उसी तरह उसमें कोमलता भी है । हे सीते ! तुम्हारे मुखसे होड़ करनेके कारण चन्द्रमाको क्षयरोग हो गया ■ ६७ ॥ तुम्हारी आँखोंमें द्वार मानकर मृगिमां धनौकी भाग गयीं और इधर-उधर दौड़ती फिरती हैं । हे अनकात्मजे ! सष पूछो तो उस समय धनुषयज्ञमें तुम्हारी ■ भीहोंसे स्पर्धा करनेके ही कारण मैंने धनुषको तोड़कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये थे ॥ ६८ ॥ मुझे पूरा विश्वास है कि तुम्हारे नेत्रोंके कटाक्षसे बड़े-बड़े तपस्वियोंके हृदयमें भी ■ वेग प्रादुर्भूत हो जायगा । तुम्हारे नेत्रोंकी चंचलता मछलियोंकी भी ■ कर रही है । तुम्हारी नाक देखकर तोते अपनेको बार-बार घिबकारते ■ । तुम्हारे होंठोंकी लालिमा और कोमलता देखकर आश्रवृक्षका लाल और नया पत्ता लज्जाके मारे हरा हो गया है । तुम्हारी लालिमाके आगे उसकी लालिमा नहीं ठहर सकी । हे कान्ते ! ■ तुम्हारी सुन्दरताका कहाँ तक वर्णन करूँ ॥ ६९-७२ ॥ इसके वर्णनमें चतुर्मुख ब्रह्मा भी द्वार मान लगे । ऐसा कहकर रामचन्द्रजीने सीताको अपने हृदयसे लगा लिया ॥ ७३ ॥ इस तरह अपनी बड़ाई सुनकर सीता भी लज्जासे नीचा मुँह करके बैठ गयीं । फिर थोड़ा मुसकाकर पतिदेवकी गोदमें जा बैठीं ॥ ७४ ॥ इति श्रीमत्कोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्द-
 रामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचिते ज्योत्स्नाभाषाटीकायां सीतावर्णनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः

(सीताकृत आध्यात्मिक प्रवचनके उत्तरमें रामका देहरामायण-वर्णन)

श्रीरामदास उवाच

■ ■ जानकी रामं विनयाह्वयिनाऽब्रवीत् । राम राजीववक्त्राश्च किञ्चिन्मष्टुं मम प्रभो ॥ १ ॥
 वांछाऽस्ति चेत्कमोपयाज्ञां तर्हि पृच्छाम्यहं मव । मन्मीनावचनं श्रुत्वा राघवः प्राह जानकीम् ॥ २ ॥
 पृच्छस्व सीते यत्तेऽस्ति प्रष्टव्य मां मुखेन तत् । मा शकां भज रम्भोरु गुह्यं चापि वदामि ते ॥ ३ ॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा नन्वा त प्राह जानकी । राम राम महाबाहो किञ्चिदुपदिशस्व माम् ॥ ४ ॥
 येन मां तत्र मञ्जानं भवेत्तत्र महोज्ज्वलम् । तन्मीनावचनं श्रुत्वा रामचन्द्रोऽब्रवीद्वचः ॥ ५ ॥
 सम्यक् पृष्टं त्वया सीते शृणुष्वकाग्रमानसा । मम ज्ञानाय ते वक्षि परं कौतूहलं शुभम् ॥ ६ ॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

सच्चिदानन्दरूपाख्यसागरस्य तदिच्छया । तन्मरूपयाऽऽर्मांशविन्दुः शुद्धो विनिर्गतः ॥ ७ ॥
 आत्मनामा मातृभूतबुद्धेर्जगत्संभरः । शुद्धमन्त्रांतःकरणं पिता चात्मन ईरितः ॥ ८ ॥
 तस्यात्मनश्च चन्वारो भेदाग्ने यंधवः स्मृताः । नृपायस्थस्तत्र वरस्ततो जाग्रदवस्थकः ॥ ९ ॥
 स्वप्नावस्थारत्नीयश्चावरः सुषुप्त्यवस्थकः । हृदयाकाशस्तत्स्थानं मनोवेगो बहिर्गमः ॥ १० ॥
 मनोदुर्बुद्धिभातश्च मनोवेगस्य खंडनम् । मायायोगस्ततस्तस्य पूर्वसंस्कारनिग्रहः ॥ ११ ॥
 ततः कुबुद्धिहेतोर्हि भवारण्येऽटनं चिरम् । दम्भस्य निग्रहस्तत्र पञ्चभूतात्मिका स्थिरा ॥ १२ ॥
 आत्मनः पर्णकुटिका विभान्तिस्थानमीरिता । कामक्रोधलोभत्रयस्तत्राशाकुन्तनं स्मृतम् ॥ १३ ॥
 मोहस्य निग्रहस्तत्र शुद्धमायाभयस्ततः । रजोरूपा तु या माया जठराग्नी तदा स्मृता ॥ १४ ॥

श्रीरामदास कहने लगे- कुछ देर बाद राजा और विनयसे सकुचाती हुई सीताजी रामचन्द्रसे बोलीं- हे प्रभो ! मैं आपसे कुछ पूछना चाहती हूँ ॥ १ ॥ यदि आप आज्ञा दें तो पूछूँ । सीताजी वाणी सुनकर रामचन्द्रजीने कहा- ॥ २ ॥ हे प्रिये ! जो कुछ भी तुम्हारी इच्छा हो, आनन्दपूर्वक पूछो । किसी प्रकारकी शक्ती भक्त करो । यदि कोई गुप्त होगा, वह भी मैं तुम्हें वतलाऊँगा ॥ ३ ॥ इस तरहकी बातें सुनकर सीताजीने कहा- हे महाबाहो राम ! मुझे आप कोई ऐसा उपदेश दें, जिससे मैं आपको अच्छी तरह समझ लूँ । इस बातको सुनकर रामने सीतासे कहा- ॥ ४ ॥ ५ ॥ हे देवि सीते ! तुमने बहुत ही अच्छी बात पूछी है । मैं अपने वास्तविक तत्त्वको तुम्हें अच्छी तरह समझाता हूँ, मन एकाग्र करके सुनो । आत्मज्ञान प्राप्तिके लिए मैं तुम्हें कौतूहलजनक बातें रहा हूँ ॥ ६ ॥ रामचन्द्रजी कहने लगे- सत्, चित् और आनन्दरूपी एक महान् सागर है । उसकी इच्छारूपी तरङ्गसे एक परम पवित्र आत्माशस्वरूप बिन्दु निकला । उसका नाम भक्ता 'आत्मा' । उसकी माता हुई बुद्धि । शुद्ध और सर्वमय अन्तःकरण उसका पिता हुआ ॥ ७ ॥ ८ ॥ उस आत्माके चार भेद हुए : वे ही आत्माके चार भाई कहलाये । उनमें सबसे श्रेष्ठ हुई तुरीयावस्था, उससे कुछ ग्यून जाग्रदवस्था, फिर स्वप्नावस्था और सबसे निम्न धूर्णीकी सुषुप्ति अवस्था हुई । इन सबका हृदयाकाश स्थान है और मनोवेगसे ये अवस्थाएँ कभी-कभी बाहर भी हो जाती हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ मनकी दुर्बुद्धिर्षोका खण्डन, मनके आवेगपर आघात और मायाके योगसे पूर्वसंस्कारका दमन करना होता है ॥ ११ ॥ यदि बुद्धि किसी तरह दूषित हुई तो इस संसाररूपी घोर जङ्गलमें बहुत दिनों तक आत्माकी भटकना पड़ता है । उस समय पञ्चभूतात्मक आत्माको स्थिर करके दम्भका निग्रह करनेकी आवश्यकता होती है ॥ १२ ॥ केवल आत्मा-रूपिणी ही एक ऐसी पर्णकुटी है, जहाँ कि शान्ति मिलती है । अन्यत्र सब जगद् स्तेश ही है । उस पर्णकुटीमें काम, क्रोध, लोभ, मोहादि शत्रु नहीं जाने पाते । अघाती भी वहाँ गति नहीं है । वहाँ मोहका भी निग्रह हो जाता है । वहाँ ही शुद्ध-सत्त्वकी मायाका आश्रय प्राप्त होता है । ■ ■ जब कि रजोगुणमयी

तामस्याश्चैव मायाया वियोगश्च तदा स्मृतः । सुखालाभो महान्कलेशः शोकभङ्गस्ततः परम् ॥१५॥
 विवेकस्याश्रयस्तत्र भक्त्युद्भूतसमागमः । अविवेकवधश्चापि स्रुत्साहेन समागमः ॥१६॥
 अज्ञानतरणोपायस्त्रिगुणाश्रयसञ्ज्ञि । लिंगाख्यनिग्रहस्तत्र मदस्य संप्रकीर्तितः ॥१७॥
 निग्रहो मत्सरस्यापि ततोऽहंकारनिग्रहः । वियोगो लिंगदेहस्य मायानामैक्यता ततः ॥१८॥
 हृदयाकाशगमनमानन्दैकमुखं ततः । मायात्यागस्ततश्चैव सात्त्विकया ग्रहणं स्मृतम् ॥१९॥
 सात्त्विकया मायया सार्धं हृदयाकाशमुत्तमम् । महाकाशे प्रणयनं सच्चिदानन्दसंज्ञके ॥२०॥
 प्रवेक्षणं सागरे हि मुक्तिर्ज्ञेयाऽऽत्मनः शुभा । सायुज्या सा परिश्रेया मुक्तिर्मुक्तिचतुष्टये ॥२१॥
 एवं मयेवं ते प्रीत्या स्मृते संज्ञानपेटिका । वेदपारंगूढार्थैरज्ञानमतिनाशकैः ॥२२॥
 मज्ज्ञानदः पञ्चदशश्लोकरत्नैः प्रपूरिता । समर्पिता गृहाण त्वमस्यां बुद्ध्याऽवलोकय ॥२३॥
 भविष्यति मम ज्ञानमस्याः सम्पत्तिचारयः । तद्रामवचनं श्रुत्वा सीता संज्ञानपेटिकाम् ॥२४॥
 निजहृन्मन्दिरे स्थाप्य बुद्धिदृष्ट्या मुहुर्मुहुः । सम्पद्गुदादय तूष्णीं सा मुहूर्तमवलोकयत् ॥२५॥
 तदा ज्ञानवाऽथ सकला निजकीर्त्या विदेहजा । विदस्य रघुवीरस्य सा ननमाधिपकजे ॥२६॥
 आनन्दनिर्मला जाया सान्द्राधुममन्विता । आनन्दैरकुल्लरोमाञ्चा नृणीमासीत्तदा क्षणम् ॥२७॥
 आनन्दनिर्भरा सीता दृष्ट्वा तां राघवोऽभवीत् । पेटिकायां त्वया सीते किं दृष्टं तोषकारकम् ॥२८॥
 कञ्चिद्रतं तवाज्ञानं कञ्चिच्छुब्धं मम त्वया । संज्ञानं वद मां सीते यथा ज्ञातं त्वया इदि ॥२९॥

माया जठराग्निमें रहती ॥ १३ ॥ १४ ॥ तब तमोगुणयो मायाका वियोग हो जाता है । इसमें सुखका भोग नहीं रहता और चारों ओर कराल दुःखकी घटाएँ घिरी दिखाई देती हैं । उसके आगे शोकभङ्गका दर्जा आता है ॥ १५ ॥ उसी समय हृदयमें विवेक उपजता है । साथ ही भक्तिका भी उठेव होता है । अज्ञान नष्ट हो चटता है । उत्साहसे स्नेह हो जाता है । तीन गुणवाले इस शरीरीका सबसे प्रधान वर्तव्य यह है कि जिस तरह भी हो सके, अज्ञानसे जोबको छुड़ानेकी चेष्टा करे । प्राणी मदका नियंत्रण कर लेता है, वह लिङ्गनिग्रह बहलाने लगता है ॥ १६ ॥ १७ ॥ मदका नियंत्रण करके मत्सरका और मात्सरके बाद अहंकारका नियंत्रण करना चाहिए । जिस समय संप्रक लिङ्गनिग्रही हो जाता है अर्थात् मदको वशमें कर लेता है । उसी समय मायाके परास्त होनेका समय आता है ॥ १८ ॥ वास्तवमें माया और हे ही क्या, इन्हीं काम-आदिदुष्टोंके संघसे मायाका निर्माण हुआ करता है । इसके परास्त हो जानेपर प्राणीको आनन्द ही आनन्द रहता है । मायाका त्याग हो जाता है, उस समय सात्त्विकी मायाका प्रादुर्भाव होता है । उस सात्त्विकी मायाके साथ प्राणी उत्तम हृदयाकाशका सुख अनुभव करने लगता है । उससे भी उत्कर्ष होनेपर महाकाशका निर्माण होता है । सत्, चित् और आनन्द ये तीनों वहाँ सरा विद्यमान रहते हैं ॥ १९ ॥ २० ॥ इसी महान् समुद्रमें बूढ़ जानेको आत्माकी बत्त्याणदामिनी मुक्ति कहते हैं । चार प्रकारकी कही हुई मुक्तियोंमेंसे उगीको सायुज्य मुक्ति कहते हैं । हे सीते ! तुम्हारे स्नेहवशा मैंने यह ज्ञानको पिटारी खोलकर रख दी । इसमें गूढ़ अर्थवाले, वेदके सारसे परिपूर्ण तथा अज्ञानबुद्धिको नष्ट करनेवाले पन्द्रह श्लोकरूपी रत्न भरे हुए हैं । इन्हींके द्वारा मेरा मुख्य तत्त्व जाना जा सकता है । यह पिटारी मैं तुम्हें अर्पण करता हूँ । इसे सम्हालो और ज्ञानदृष्टिसे देखो । बार-बार इन बातोंका मनन करो तो मुझे अच्छी तरह समझ लोगी ॥ २१-२४ ॥ इस प्रकार रामकी बातें सुनकर संताने उस ज्ञानकी पिटारीको अपने हृदयमें रख लिया । फिर उसे खोलकर बुद्धिदृष्टिसे कुछ देर देखती रही ॥ २५ ॥ तब सीताने अपनी सब कीड़ाओंका मेद जाना और हँसकर रामचन्द्रजीको प्रणाम किया ॥ २६ ॥ सीताको उस समय एक महान् आनन्दका अनुभव हुआ । उनकी काँखोंमें आसु आ गये, सरारके रोंगटे खड़े हो गये और छोड़ी देरके लिए सीताजी अपने आपको भी भूलकर धुप ही गयीं ॥ २७ ॥ इस प्रकार सीताको आनन्दित देखकर रामचन्द्रजीने पूछा—हे सीते ! तुमने उस पेटोंमें क्या क्या सुधिदायक चीजें देखीं ? जिससे तुम्हें ऐसी प्रसन्नता प्राप्त हुई ॥ २८ ॥ क्यों, अब तो तुम्हारा अज्ञान दूर

ज्ञातं त्वया वा न ज्ञातं वेधुमिच्छामि त्वन्मुखाद् ।

यदि किञ्चित्त्वया नास्यां ज्ञातं तद्बोधयाम्यहम् ॥ ३० ॥

इति रामवचः श्रुत्वा निमग्नोऽऽनन्दसागरे भञ्जकस्था रामचन्द्रं जानकी वाक्यमब्रवीत् ॥ ३१ ॥

श्रीसीतोवाच

राम रावणदर्पघ्न त्वदत्ता ज्ञानपेटिका । मयाऽनलोकिता बुद्ध्या लब्धं ज्ञानं तव प्रभो ॥ ३२ ॥

निर्गुणो निर्विकारस्त्वं क्रीडेयं सकला त्वया । मनसंग इक्षितः भूम्यां कृत्वा लोकहिताय हि ॥ ३३ ॥

पेटिकायां यथा ज्ञातं मया तत्प्रयदामि ते । त्वया पञ्चदशःश्लोकेर्युक्तं गुह्यमुत्तमम् ॥ ३४ ॥

प्रकटं तत्करोम्यद्य तवाग्रे रघुनन्दन । सर्वेषां मन्दबुद्धीनां हिताय ज्ञानसिद्धये ॥ ३५ ॥

जनानां सम्बोधयितुं चरित्रं भवताऽत्र यत् । कृतं तस्य विचारेण आत्मज्ञानं लभेभरः ॥ ३६ ॥

सन्निधानन्दरूपी यो विष्णुर्ज्ञेयः स सागरः । भूभाग्रहरणादीच्छा विष्णोर्यां जायते शुभा ॥ ३७ ॥

स वै ज्ञेयस्तरंगोऽत्र तथात्माञ्जलवः शुभः । बहिःकृतः सागरात्स आत्माख्यः कथ्यते ह्युचि ॥ ३८ ॥

बुद्धिस्तु जननी चैव कौसल्या साऽत्र कथ्यते । शुद्धमनसातःकरणं पिता तस्यात्मनः स्मृतः ॥ ३९ ॥

राजा दशरथो ज्ञेयः श्रीमान्सत्पराक्रमः । तस्यात्मनश्च चत्वारो भेदास्ते बन्धवः स्मृताः ॥ ४० ॥

रामसौमित्रिभरतशत्रुघ्ना एव चात्र हि । तुर्यावस्थस्तेषु वरः स एवं दशरथात्मजः ॥ ४१ ॥

ततो जाग्रदवस्थश्च लक्ष्मणः सोऽत्र कथ्ययते । स्वप्नावस्थास्त्वृतीयश्च भरतोऽपि निमग्नते ॥ ४२ ॥

अवरः सुषुप्त्यवस्थस्तु ज्ञेयः शत्रुघ्न एव सः । हृदयाकाशं तन्स्थानमयोध्याऽत्र स्मृता तु सा ॥ ४३ ॥

मनोवेगो बहिर्यात्रा विश्वामित्राध्वरे गमः । मनोदुर्वृत्तिघातश्च तारिकाया बधोऽत्र सः ॥ ४४ ॥

मनोवेगस्य यो भंगः स धनुर्भंग उच्यते । मायायोगस्तनस्तस्य मन्वाणिग्रहणं स्मृतम् ॥ ४५ ॥

पूर्वसंस्कारनिग्रहो जामदग्नेर्विनिग्रहः । ततः कुबुद्धिहन्तोर्हि कंकेत्या वरदानतः ॥ ४६ ॥

शुभा ? अच्छा, अब बताओ कि मैं कौन हूँ ? मुझे तुमने अपने मनमें क्या समझा ? मैं तुम्हारे मुँहसे सुनना चाहता हूँ । तुमने मुझे जाना नहीं ? यदि तुम्हें हमको जाननेमें अब भी कुछ कसर होगी तो मैं समझाऊँगा ॥ २९ ॥ ३० ॥ इस प्रकार रामचन्द्रजीकी बातें सुनकर सीताजी और भी आनन्दित हो गयीं और रामचन्द्रसे कहने लगीं ॥ ३१ ॥ सीताजी बोलीं—हे रघुनन्दन । हे रावणके गर्वको नष्ट करनेवाले राम ! आपने मुझे जो यह ज्ञानकी पिटरी दी है, उसे मैंने अपनी ज्ञानदृष्टिसे खूब गौर करके देखा और मुझे ज्ञानप्राप्त हो गया ॥ ३२ ॥ आप निर्गुण और निराकार हैं । फिर भी मेरे साथ संसारमें आपने जो-जो लीलाएँ की हैं, उनका उद्देश्य एकमात्र लोकहित है । मैंने इस पिटरीमें जो-जो देखा है, वह बतलाती है । आपने पन्द्रह श्लोकोंमें मुझे जो उत्तम ज्ञान दिया है, उसे मैं आपके सम्मुख प्रकट करती हूँ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ उससे संसारके अज्ञानियोंका उपकार होगा अर्थात् उन्हें भी ज्ञानकी प्राप्ति हो जायेगी ॥ ३५ ॥ मनुष्योंको समझानेके लिए आपने जगसीतलमें जो-जो चरित्र किये हैं, उनपर अच्छी तरह विचार करनेसे निःसन्देह आत्मज्ञानकी प्राप्ति हो सकती है ॥ ३६ ॥ सन्निधानन्दस्वरूप विष्णु भगवान् ही सागर हैं । भगवान् जो पृथ्वीका भार उतारनेकी इच्छा करते हैं, वही उस सागरकी तरंगें हैं । इसका ही एक बिन्दु आत्मांशरूप होकर बाहर आ जाता है । वही आत्मा कहलाता है । उसकी बुद्धिरूपा जननी कौसल्या हैं । शुद्ध और सत्संगुणमय अन्तःकरण उस आत्माका पिता होता है, सो साक्षान् श्रीदशरथजी हैं । उस आत्मके चार भेद आपने बतलाये हैं । वे चार भाई राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नरूप होकर विद्यमान हैं । उनमें तुर्यावस्थाको श्रेष्ठ कहा है । सो इन चारों भाइयोंमें बड़े भाई ही हैं ॥ ३७-४१ ॥ जाग्रदवस्थास्वरूप लक्ष्मणजी हैं, स्वप्नावस्थास्वरूप भरतजी तथा सुषुप्ति अवस्थास्वरूप शत्रुघ्नजी हैं । हृदयाकाश स्थान जो आपने बतलाया है, वह यही अयोध्या है ॥ ४२ ॥ मनोवेगका दूर होना जो आपने कहा, वही मानों विश्वामित्रके यज्ञमें आपकी यात्रा है । मनकी दुर्वृत्तियोंका घात ही तारिकाबध है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ मनोवेगका भंग ही धनुर्भंग है । मायायोगस्तनस्तस्य मन्वाणिग्रहण होना ही मायाका

भवारण्येष्टनं प्रोक्तमटनं दंडकेऽत्र ते । दंभस्य निग्रहस्तत्र विराघस्यात्र निग्रहः ॥४७॥
 आत्मनः पर्णकुटिका पञ्चमूलात्मकश्च सः । देहोऽयं पञ्चवटिका विश्रान्त्यर्थे तत्रात्र मा ॥४८॥
 कामस्य निग्रहः प्रोक्तः स्वस्यात्र विनिग्रहः । क्रोधस्य निग्रहश्चापि दूषणस्यात्र निग्रहः ॥४९॥
 लोभस्य भर्दनं तत्र विश्रितानिग्रहोऽत्र हि । तत्राशाकुंतलं प्रोक्तं प्राणेनात्र विरूपणम् ॥५०॥
 तस्याः सूर्पणखायाश्च मोहस्य निग्रहः स्मृतः । मृगमारीचयानोऽत्र शुद्धमायाभ्रपस्ततः ॥५१॥
 ममाश्रयस्ते वामाग्निं सात्त्विकया दंडके वने । रजोरूपा तु या माया जठराग्नौ स्मृता शुभा ॥५२॥
 मम रजःस्वरूपायाः प्रवेशश्चानलेऽत्र सः । तामस्याश्चैव मायाया वियोगश्च तदा स्मृतः ॥५३॥
 मम तमःस्वरूपाया हरणं रावणेन हि । सुखालामो महान्क्लेशस्त्वसौ मदिरहस्ततः ॥५४॥
 शोकवेगस्ततः प्रोक्तः कवचस्य वधोऽत्र सः । विवेकस्याभ्रपस्तत्र सुग्रीवस्याभ्रयोऽत्र सा ॥५५॥
 मक्तपुद्गेकलामश्च तत्र लामो हनूमतः । अत्रिवेकवधः प्रोक्तश्चात्र बालिवधस्तथा ॥५६॥
 उत्साहेन ततः संगः ॥ विभीषणमंत्रिकी । अज्ञानतरणोपायः सेतुबंधो महोदधौ ॥५७॥
 त्रिगुणाभ्रयमेहं वै लिङ्गदेहाङ्गये श्रमे । त्रिकूटाचलसंस्थायां लंकायां रघुनन्दन ॥५८॥
 मदस्य निग्रहस्तत्र कुम्भकर्णवधस्त्वया । निग्रहो मन्मत्स्यापि मेघनादवधोऽत्र सः ॥५९॥
 तत्राहंकारघातश्च रावणस्य वधस्त्वया । मायानामैक्यता चापि त्रिविधा या ममैक्यता ॥६०॥
 वियोगो लिङ्गदेहस्य लंकान्यामस्त्वयाऽत्र सः । इदयाकाशममगतमयोऽप्यागमनं पुनः ॥६१॥
 आनन्दैकसुखं तत्र राज्यभोगस्त्वया सोऽत्र हि । मायान्यामस्ततश्चैव बाल्मीकिताश्रमे ॥६२॥
 त्यागोऽत्र मावि श्रीराम त्वया सोऽत्र प्रकाशितः । सात्त्विक्या ग्रहणं यच्च पुनर्मै ग्रहणं स्मृतम् ॥६३॥
 सात्त्विक्या मायया सार्द्धं तवोद्योगो मया सह । तत्रश्च इदयाकाशं महाकाशे विलापयेत् ॥६४॥

योग है ॥ ४५ ॥ परशुरामका दर्पमञ्जन ही पूर्वसंस्कारका निग्रह है । इसके अनन्तर कुबुद्धिरूपिणी कैंकीकी वरदानसे आपका दण्डकारण्यमें धूमना ही भवारण्यमें घटकता है । दम्भका रोक लेना ही विराघवध है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ पञ्चमूलात्मक आत्मरूपिणी पर्णकुटी जो आपने बतलायी, वह यह शरीर ही है । जो आपके विद्वार करनेके लिए एक उपयुक्त स्थान है ॥ ४८ ॥ निग्रह करना ही दूषणका वध है ॥ ४९ ॥ लोभका निग्रह विश्रितका वध रहा गया है । आशाका विच्छेद जो आपने बतलाया, ही सूर्पणखाका विरूप करता है । मारीच मृगका करना ही मोहका निग्रह है । दण्डकवनमें आपने जो सात्त्वगुणमयी धुलकी अपने कामभागमें रहनेकी कहा था, वह शुद्ध मायाका आश्रय है । रजोगुणरूपसे मेरा अग्निमें प्रवेश करना ही तामसी मायाका वियोग है । तमोगुणरूपसे मेरा रावणके द्वारा हरण होना ही सुखाभाव है । तुम्हारा-हमारा वियोग होना ही महान्क्लेश है ॥ ५०-५४ ॥ इसके बाद कवचका वध करना ही शोकमङ्ग है । सुग्रीवकी मित्रता आश्रय है ॥ ५५ ॥ भक्तिके उद्रेकका लाभ आपको हनुमान्जीका मिलना है । बालिका करना ही अज्ञानका वध करना ॥ ५६ ॥ उसके बाद विभीषणके साथ मैत्री होना ही जटसाहका सङ्ग है । समुद्रमें सेतुबन्धन ही अज्ञानसे तरनेका है ॥ ५७ ॥ आपका त्रिकूट पर्वतपर देरा शासन ही लिङ्गात्मक देहमें त्रिगुणका आश्रय करना ॥ ५८ ॥ कुम्भकर्णका ही मदका निग्रह है । मेघनादका मन्मत्सरका निग्रह है ॥ ५९ ॥ आपने जो रावणका वध किया है, वह ही अहंकारका नाश है । मायाकी एकता जो आपने कही, वह हम तीनोंका एक्य हो जाना ॥ ६० ॥ लङ्काकी त्यागना ही लिङ्गदेहका वियोग है । फिर अयोध्याके लिए पयान करना हृदयाकाशका गमन है ॥ ६१ ॥ आपका राज्यभोग करना ही एकमात्र आनन्दका अनुभव करना है । फिर मायाका त्याग जो आपने बतलाया, सो भविष्यमें बाल्मीकिके आश्रममें मेरा त्याग देना ही होगा । सात्त्विकी मायाका ग्रहण जो आपने बतलाया, सो मेरा पुनर्ग्रहण कर लेना होगा ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ सात्त्विकी मायाके उद्योग जो आपने कहा, सो मेरे

अयोध्यानगरीमग्ने वैकुण्ठं प्रति नेष्यसि । प्रवेक्ष्यन्तं मन्तरे हि सच्चिदानन्दमंशुके ॥६५॥
 नरत्नं परित्यज्य विष्णुरूपदर्शनम् । नृणां त्वया सैव मुक्तिः सायुज्यात्मन ईरिता ॥६६॥
 एवं यद्यप्यस्या राम कृतं कर्म शुभं शुभम् । तन्मयं जनबोधाय सर्वेषां च हिताय हि ॥६७॥
 कर्तव्यमप्यकर्तव्यं कर्मावतारस्य किं तव । निर्गुणस्य न्यरूपस्य सच्चिदानन्दरूपिणः ॥६८॥
 इत्थं स्वयोपदिष्टा मे शुभा मञ्जानपेटिका । ग्रहं नप्या विचारेण जीवन्मुक्ता न संशयः ॥६९॥
 देहे रामायणं सर्वं यत्त्वया मेव दर्शितम् । पञ्चदशश्लोकस्तैः कण्ठे नन्दारवत्कुतम् ॥७०॥
 श्लोकरत्नमयं यो वै कण्ठे हारं विभक्तिं हि । जीवन्मुक्तः क्षणादेव भविष्यति नरोत्तमः ॥७१॥
 देहरामायणं नाम राम यत्कथितं त्वया । नेदृशं कथितं केन न कोऽप्यग्रे वदिष्यति ॥७२॥
 मम प्रीत्योपदिष्टं हि स्वयैतद्वधुनन्दन । इत्थं कोऽपि न जानाति ब्रह्मादीनामगोचरम् ॥७३॥
 गुणं रम्यं सुदुर्बोधं स्वल्पं ज्ञानप्रकाशितम् । देहरामायणं चैतच्छ्रवणान्पातकायहम् ॥७४॥
 इति सीतावचः श्रुत्वा प्रहस्य राघवोऽब्रवीत् । विदेहतनये माध्वि धन्याऽसि गजगामिनि ॥७५॥
 सम्यग्विचारिणा बुद्ध्या त्वया गज्ञानपेटिका । विचिन्त्यूनं त्वया नैव दृष्टमस्यां यथास्थितम् ॥७६॥
 बुद्ध्या ज्ञानं मम ज्ञानं मोहजालनिहतम् । कथनीयमिदं देहरामायणं कस्यचित् ॥७७॥
 गतदुःखस्तमं प्रोक्तं तव प्रीत्या विदेहजे । दांभिकाय न दान्त्यं नाभिरुक्त्य शठाय च ॥७८॥
 अभक्ताय द्वित्रिद्वेष्टे परदारवताय च । मलिनायातिक्रूराय निदकाय जडाय च ॥७९॥
 कर्त्ता चेतुर्वै गुणं भविष्यति न संशयः । महामेव नरः कश्चिन्नास्यत्येतन्न संशयः ॥८०॥
 सर्ववेदात्मनो हि मया ते समुद्दिष्टम् । देहरामायणं चैतद्धुक्तिमुक्तिप्रदं वरम् ॥८१॥

विहार करना है । उसके बाद आपने हृदयकाशको महाकाशमें मिला देनेको जो कहा है, वह ही आपका अर्थ-रहस्यको अपने साथ वैकुण्ठ लोकमें ले जाएगा । इस स्वरूपका परित्याग करके फिर अपने विष्णुरूपस्वरूपको पारण करना ही सच्चिदानन्दमंशुके सागरमें गोते लगाना होगा ॥६४॥६५॥ नरत्नको छोड़कर विष्णुरूप दिखाना ही आरमाकी सायुज्य मुक्ति है ॥ ६६ ॥ इस प्रकार हे रामचन्द्रजी ! आपने इस मन्तारमें जो ओ कर्म किये हैं, सब लोगोंको जानी बनाने और उनका कर्मकरण करनेके लिए ही हैं ॥ ६७ ॥ इसके सिवाय आप जो कुछ भी कर नालें, वह ही एक है । अकालंश्य भी आपके लिये नालेय ही है । क्योंकि आप कर्मसे अतीत हैं, निर्गुण हैं, सच्चिदानन्दमंशुके हैं ॥ ६८ ॥ इस प्रकार आपके द्वारा उद्दिष्ट यह ज्ञानकी पिटारी है । इसपर बार-बार विचार करनेसे मैं तो जीवन्मुक्त हों गयी । इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥ ६९ ॥ इस जगत्में आपने जो १५ श्लोकोंके रामायणका उपदेश दिया, उसे मैंने आजकी तरह अपने गलेमें डाल दिया है ॥ ७० ॥ इन श्लोकरूपी रत्नोंकी मालाको जो प्रणी अपने गलेमें डालेगा, वह पुरुषक्षेत्र क्षणमात्रमें जीवन्मुक्त हो जायगा ॥ ७१ ॥ हे राम ! आपने यह जैसा देहरामायण कहा है, वैसा न अब तक किसीने कहा है और न भविष्यमें कोई कहेगा ॥ ७२ ॥ हे वधुनन्दन ! इसे आपने केवल मेरे अनुरागसे प्रकट किया है । इस देहरामायणको कोई भी नहीं जानता । क्योंकि यह ग्रन्थादिक देवताओंकी भी अलम्ब्य है ॥ ७३ ॥ यह गूढ़, रम्य और दुर्बोध ज्ञान थोड़ेमें आपने मुझे बतलाया है । इस देहरामायणके श्रवणसे सब पातक नष्ट हो जाते हैं ॥ ७४ ॥ इस तरह सीताकी बात सुनकर रामचन्द्रजीने हँसकर कहा—हे विदेहतनये ! तुम साधरी हो, धन्य हो । तुमने मेरा ज्ञानकी पिटारीको पूरा देखा और इसका जो वास्तविक स्वरूप था, सो भी जान लिया । बुद्धिदृष्टिसे देखनेवालोंके लिये यह देहरामायण मोहका नाश करनेवाला है । यह रामायण जैसे तैसे मनुष्योंसे कहनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ ७५-७७ ॥ हे प्रिये सीते ! तुम्हारे अनुरागसे ही मैंने आज इसे तुम्हें बतलाया है । इसे मालवण्डी, नास्तिक तथा दृष्ट पुरुषोंसे मत कहना ॥ ७८ ॥ उन्हें भी न बतलाना, जो ब्राह्मणोंसे द्वेष करते हैं, दूसरेकी बहु-वेष्टियोंको पूरी दृष्टिसे देखते हैं, जो मलिन प्रकृतिके क्रूर, निन्दक एवं जड़ स्वभावके हैं ॥ ७९ ॥ कलियुगमें यह गुप्त रहेगा । हजारों प्राणियोंमें एक-आध मनुष्य ही इसे जान सकेंगे । इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ८० ॥ यह समस्त

इत्थुक्त्वा राघवः सीतां पर्यके रत्नमण्डिते । सुप्ताप सीतया रात्रौ दासीभिर्वोजितः सुखम् ॥८२॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीभट्टानन्दरामायणे वाल्मीकीये विलासकाण्डे

देहरामायणं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः

(सीताके विविध अलङ्कारोंका वर्णन)

श्रीरामदास उवाच

चतुर्नाड्यवशिष्टायां निशायां रघुनाथकम् । उद्घोषनाथं समाप्ता रतिशालावहिः स्थिताः ॥ १ ॥

वन्दिनो मागधाः सूता नर्तक्यश्च नटादयः । आद्यामासुर्वाद्यानि ननृतुश्चाप्सरोमणाः ॥ २ ॥

जगुर्भङ्गलगीतानि स्तोत्राणि विविधानि च । प्रभातिकीं स्तुतिं श्रोतुः कलकण्ठैर्मनोरमैः ॥ ३ ॥

विघ्नेश्वरः सकलविघ्नविनाशदक्षो दक्षात्मजा भगवती हि सरस्वती च ।

दत्ताष्टभैरवगणा नव दिव्यदुर्गा देव्यः सुगन्तु नृपते ॥ सुप्रभातम् ॥ ४ ॥

भानुः शशी कुजचुर्वा गुरुशुक्रमन्दा राहुः सकेतुरदिनिर्दितिरादितेयाः ।

अक्रादयः कमलभूः पुरुषोत्तमेन्द्रोः रुद्रः क्रोतु सतत तव सुप्रभातम् ॥ ५ ॥

पृथ्वी जलं ज्वलन्महारुतपुष्कराणि सप्तद्रव्योऽपि भुवनानि चतुर्दशैव ।

शैला वनानि सस्तिः पस्तिः पवित्रा गङ्गादयो विदधतां तव सुप्रभातम् ॥ ६ ॥

दिक्चक्रमेतदखिलं दिग्भिर्मा दिगीशा नागाः सुपर्णभुजगा नगवीरुधश्च ।

पुष्पाणि देवतदनानि विलानि दिव्यान्यव्याहनं विदधतां तव सुप्रभातम् ॥ ७ ॥

वेदाः षडङ्गमहिताः स्मृतयः पुराणं काव्यं सदागमपथो मुनयोऽपि दिव्याः ।

व्यासादयः परमकारुणिका ऋषीणां गोत्राणि वै विदधतां तव सुप्रभातम् ॥ ८ ॥

येदान्तका निचोड़ मैंने तुम्हें बतला दिया । वह देहरामायण भुक्ति तथा मुक्ति दोनोंका फल देनेवाला है ॥ ८१ ॥

इतना कहकर रागचन्द्रजी सीताके साथ रत्नजटित मलङ्कपर सो गये और दासियाँ पंखा झलने लगीं ॥ ८२ ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीभट्टानन्दरामायणे वाल्मीकीये पंच रामतेजपाण्ड्यविरचित'ज्योत्स्ना'-
भाषाटीकासमन्विते विलासकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

श्रीरामदासजी कहने लगे—जब चार घड़ी वाकी रह जाती थी, तभी भगवान्‌को जगानेके लिए बंदीजन, मागध, सूत, नाचनेवाली वैश्याएँ और नट आदि लोग रतिशालाके बाहर आकर बाजे बजाते थे और नर्तकियाँ नाचती थीं ॥ १ ॥ २ ॥ अन्य लोग जो मङ्गल-गायन, विविध प्रकारके स्तोत्र पढ़तया अपने कोमल कण्ठों प्रातःकालकी स्तुतियों किया करते थे । वे कहते थे—॥ ३ ॥ हे नृपते ! विघ्नसमूहको करनेमें निपुण विघ्नेश्वर (गणेशजी), दक्षकुमारों भगवती पार्वती, सरस्वती, अग्निमानकी मूर्ति अष्टभैरव-गण, नौ दिव्य दुर्गाएँ तथा अगणान्य देवतागण ॥ ४ ॥ सुप, चंद्रमा, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु, इति तथा अदितिके पुत्र इंद्रादि देवता, ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये सब आपका प्रभात-मङ्गलमय करें ॥ ५ ॥ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, तद्भाग, सप्त पर्वत, चतुर्दश भुवन, शैल, वन और मुथनविरुद्ध गङ्गा आदि नदियाँ आपका प्रभात मङ्गलमय करें ॥ ६ ॥ समस्त दिक्चक्र (दसों दिशाएँ), दिग्गज, दिक्पाल, नाग, सुपर्ण, पर्वतोंको लताएँ, पवित्र देवालय और गिरिकन्दराएँ ये सब सर्वदा आपका प्रभात मङ्गलमय करें ॥ ७ ॥ षडङ्ग सहित चारों वेद, स्मृति, पुराण, काव्य, अच्छे-अच्छे शतपथ ब्राह्मण आदि ग्रन्थ, व्यास आदि दिव्य मुनिगण तथा ऋषियोंके गोत्र आपका प्रभात मङ्गलमय करें ॥ ८ ॥

इति बंदिजनैः सूरतैः स्तोत्रैर्गीतादिभिः स्तुतः । नानापक्षिनवृद्धैश्च पूर्वोक्तैः पंजरस्थितैः ॥ ९ ॥
 स्तुतो वादित्रनिनर्दनववाद्यस्वनैरपि । सुप्रचुद्धो बभूवाय रामचन्द्रः समीतया ॥ १० ॥
 आदौ प्रचुद्धा सा सीता पश्चाच्चुद्धो रघूत्तमः । रामः मुरान्मुनीन्वानं मानसं स्मरन् गुरुम् ॥ ११ ॥
 चिन्तामणिं कामधेनुं चिन्तयामास चेतमि । ततः संताड्ये सा दुर्गा गङ्गां चालीं रघूत्तमम् ॥ १२ ॥
 चिन्तयामास कौसल्यां गुरुपत्नीं स्वमानरम् । ततो नत्वा रामचन्द्रं धिनयावनता स्थिता ॥ १३ ॥
 आवश्यकं तु संपाद्य कृत्वा शौचविधिं क्रमात् । देवमुद्धि चक्रामास रामचन्द्रः सविस्तरम् ॥ १४ ॥
 आवश्यकं तु संपाद्य कृत्वा शौचविधिं क्रमात् । हृत्वाऽग्निहोत्रविधिना कृत्वा देवार्चनं गृहे ॥ १५ ॥
 ददौ दानान्यनेकानि ब्राह्मणेभ्यो यथाक्रमम् । एतस्मिन्नन्तरे स्नान्वा सीता देवो प्रपूज्य च ॥ १६ ॥
 देवानग्नीन्विजासन्वा श्वधूर्नत्वा यथाक्रमम् । ततो नत्वा रामचन्द्रं तन्पाशे यत्नतः स्थिता ॥ १७ ॥
 अथ रामो वसिष्ठस्य मुखात्पौराणिकीं कथाम् । सीतया मातृभियुंक्तो बंधुभिश्च सुहृज्जनैः ॥ १८ ॥
 सम्यक् श्रुत्वाकचित्तेन पूजयामास तं गुरुम् । ततो नत्वा गुरुं रामो गुरुवन्मो च मानरम् ॥ १९ ॥
 सर्वा मातश्च विप्राश्च पंडितान् वैदिकान् मुनीन् । योगनिष्ठांस्तपोनिष्ठान् विप्रां ज्योतिर्विदस्तथा ॥ २० ॥
 सीमां सकौंस्तार्किकाश्च मंत्रशास्त्रविशारदान् । धर्मशास्त्रविदर्श्वं यद्यानन्यान् त्रयोधिकान् ॥ २१ ॥
 पूजयामास श्रीगमः सीतया प्रणनाम तान् । अथ सीता हेमपात्रे पूजोत्कृष्टाणि सा ॥ २२ ॥
 गृहीत्वा स्वसखीभिश्च नत्वा सुगमिर्मर्चयन् । नानोपनरैः सम्पूज्य चकान्ननरनिर्मितैः ॥ २३ ॥
 विचित्रैः पायमार्यैश्च सा तां धेनुमनोपशत् । ताः प्रदक्षिणां कृत्वा प्रार्थयामास जानकी ॥ २४ ॥
 कामधेनो नमस्तुभ्यं एकान्नादीनि वेगतः । दिव्यान्नानि भूसुरेभ्यो रामादिभ्यस्त्वमर्पय ॥ २५ ॥
 इति सा प्रार्थनां कृत्वा कामधेनोस्तु जानकी । तदधो रुक्मपात्राभि स्थापयामास कोटिभः ॥ २६ ॥

इस प्रकार बहुतसे बन्दीजन, मायब, गुप्त आदि पालतु पक्षिणोंके मृदु वचनों द्वारा जगाये जानेपर सीताके साथ-साथ रामचन्द्रजी सोकर उठ जाते थे ॥ ९ ॥ १० ॥ पहले सीताजी उठतीं, फिर रामचन्द्रजी जागते थे । सोकर उठनेपर रामचन्द्रजी देवताओंको, मुनियोंको, पिताको, माताको, सगुरु, गुरु (वसिष्ठ), चिन्तामणि और कामधेनुको मन ही मन स्मरण करने लगे । महागर्वा सीताजी भी दुर्गा, गङ्गा, सरस्वती, रघूत्तम (दशरथजी), अपनी माता, गुरुपत्नी अकृन्वता और अपनी राम कोसल्या आदिका सबेरे सो उठकर स्मरण किया करती थीं । इसके अनन्तर ममतापूर्वक रामचन्द्रजीका प्रणाम करके वे अपने नित्यकर्ममें लग जाती थीं ॥ ११-१३ ॥ उधर रामजी भी शौचादि कृत्यांसे निवृत्त होकर अच्छी तरह दातीन करते थे ॥ १४ ॥ तदनन्तर रामसीथपर जाकर स्नानादि निव्यतिनम करके घरपर गीट आते और अग्निहोत्रविधिके साथ देवताओंका पूजन करते थे ॥ १५ ॥ तब ब्राह्मणोंका राम देने थे । इसी बीच सीताजी भी स्नान करके देवपूजनसे निवृत्त होकर देवता, अग्नि, ब्राह्मणों और कोमलग आदि सामुग्रियोंको क्रमशः प्रणाम करनेके पश्चात् रामचन्द्रजीकी पदवन्दना करतीं और उनके पास जा बैठती थीं ॥ १६ ॥ १७ ॥ तदनन्तर रामचन्द्रजी गुरु वसिष्ठके मुखसे पुराणोंकी कथाएँ सुनने लगे । स्नान समय सब माताएँ, भाई तथा मित्रमण्डल रामचन्द्रजीके साथ ही रहता था । १८ ॥ खूब सावधानीके साथ कथा सुनकर राम गुरुवसिष्ठकी पूजा करते थे । फिर गुरु, गुरुपत्नी तथा अपनी माताओंको प्रणाम करके माताओं, ब्राह्मणों, पंडितों, वैदिकों, मुनियों, योगनिष्ठ तथा तप निष्ठ, ब्राह्मणों, ज्योतिषियों, सीमांसकों, तार्किकों, मंत्रशास्त्रमें निपुण विद्वानों और वयोवृद्ध धर्मशास्त्रियोंकी सीताके साथ-साथ रामचन्द्रजी दिविवन् पूजा करते थे । इसके पश्चात् सीताजी एक सुवर्णके पालमें पूजनकी सामग्रियाँ लेकर ॥ १९-२२ ॥ सन्तियोंके साथ सुगन्ध (कामधेनु) की पूजा करती थीं और अनेक पक्षवान तथा विचित्र रंगिते सँजार किये गये हविष्याग्रोंको खिलकर उसे प्रसन्न करती थीं । फिर अर्पणा करके इस प्रकार कामधेनुकी स्तुति करती हुई कहती थीं—॥ २३ ॥ २४ ॥ हे कामधेनो ! आपको

दिव्यान्मैः परिपूर्णानि चक्राः सुरभिस्त्वचि ।

ततः शीघ्रं हेमपात्रैर्गृह्णाणानि पृथग्जवान् ॥

परिवेषणार्थं सन्तुष्टा ययौ नूपुरमञ्जिता ॥२७॥

एतस्मिन्नन्तरे रामश्चोपाहारार्थमादगात् । विप्रानिष्टान्मन्त्रिणश्च समाहूय सङ्ख्यशः ॥२८॥
उपाविशद्भोजनस्य शालायां तैः भगवन्वितः । रुक्मपाठे तु सर्वे ते नेमिरेवोपमाः स्थिताः ॥२९॥
पीतकौशेयवस्त्राद्यैर्भूषिता रुक्ममण्डनैः । पूजिता राघवेणापि गन्धमालवादिभिर्गुदा ॥३०॥
स्त्रीभि रूक्मत्रिपदासु रुक्मपात्राणि च पृथक् । रंगावलादिचित्रायां धूमौ न्यस्तानि तत्पूरः ॥३१॥
हेमोद्भवानि पानीयपात्राण्यपि पृथक् पृथक् । सोमपात्राणि चित्राणि रत्नदीपयुतानि च ॥३२॥
स्थापयामासुः श्रीरामधनुषस्तन्यस्त्वरान्विताः । एतस्मिन्नन्तरे सर्वः श्रुतो मञ्जुलनिःस्वनः ॥३३॥
नूपुराणां किकिणीनां कंकणानां मनोरमः । रत्नमौक्तिकमालानां घर्षणादुत्थितो महान् ॥३४॥
तं मञ्जुलस्वने श्रुत्वा कुर्यायं श्रूयते स्वनः । इति संदिग्धचित्तास्ते व्यग्रनेत्रैरितस्वतः ॥३५॥
अपश्यन् ब्राह्मणाद्याश्च तावन्मीनां न्यलोकयन् । तद्विष्णुजोपमां दिव्यां अत्रकोटिरविममाम् ॥३६॥
यस्यांगुलिषु सर्वत्र पादयोर्विविधानि च । मत्स्यकच्छपनकादिचिह्नितान्युज्ज्वलानि च ॥३७॥
ददृशु रत्नचित्राणि हैमान्याभरणानि ने । तत्र ऊर्ध्वं किकिणीनां पादयोर्नूपुराणि च ॥३८॥
भृङ्गला विविधा रम्यास्तथा गुर्जरदेशज्याः । नानानूपुरमेवाश्च कंकणान्युज्ज्वलानि च ॥३९॥
रत्नकंकणगर्भाणि दिव्यरुक्कोद्भवानि च । मदृशुस्ते हि सीताया माणिक्यचित्रितानि च ॥४०॥
तस्याः कट्यां ददृशुस्ते पीतकौशेयमुज्ज्वलम् । मुक्ताजालरुक्मतंतुपुष्परजविराजितम् ॥४१॥
नवीनं गतिचांचल्यात्कृतमञ्जुलनिःस्वनम् । आदर्शविवर्मयुक्तं सुगन्धामोदमोदितम् ॥४२॥
बभ्रौपरि ददृशुस्ते रश्मनां रुक्मतन्तुजाम् । रत्नकङ्कणगर्भामिः किकिणीभिविराजिताम् ॥४३॥

नमस्कार है । कृपा करके आप साधु-साहस्रणोंके लिए बक्वाश दिया। दिव्यान्मका प्रवन्ध कर दें । जानकीजी इस प्रकार प्रार्थना करके करोड़ों सुवर्णक कामधेनुके भगवाकर रखवा देती थीं और कामधेनु उन सबको विविध प्रकारके पकवानोंसे भर दिया करती थीं । उन्हों हेमपात्रोंमेंसे सब पदार्थ ले-लेकर युवतिनां नूपुरके शब्दसे उस यज्ञमण्डपको गन्दायमान करती हुई अभ्यागतोंको परोसती थीं ॥ २५-२७ ॥ इसके अनन्तर रामचन्द्रजी अपने हजारों साहस्रों हित-मित्रोंको सादर बुलाकर पाकशालामें सुवर्णके पीढ़ोंपर बिठ-समय पीले कौशेय वस्त्र तथा सुवर्णसे विभूषित विप्रगण एवं मित्रमण्डलका रामचन्द्रजी अनेक उपचारोंसे पूजन करते थे ॥ २८-३० ॥ वहाँ सुवर्णकी सिपाइयोंपर घड़ोंमें जल भर-भरकर या । पास ही जल पीनेके लिए छोटे-छोटे बहुतसे सुवर्णके बर्तन रखे हुए थे । उनको झटपट उठा-उठाकर रामचन्द्रजीकी भ्रातृवधुओंने लाकर उनके सामने दिया । इतनेमें सबको एक मनोहर ध्वनि सुनाई दी । जो नूपुर, किकिणी और कंकणके संघर्षसे निकला हुआ शब्द मानूम पड़ता था ॥ ३१-३४ ॥ उस मञ्जुल शब्दको सुनकर कैसा सुनाई दे रहा है, इस तरह सोचते नेत्रोंसे लोग इधर-उधर देखने लगे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ कुछ देर बाद लोगोंने सीताजीको आते देखा । जो अनेक विभूषणोंसे एवं सैंकड़ों सूर्यकी भांति प्रकाशमयी थीं । जिनके पाँवोंकी अंगुलियोंमें मछली-कछुए आदिके आकारवाले देदीप्यमान आभूषण पड़े ॥ ३७ ॥ रत्नोंको चमकसे चित्र-विचित्र सुवर्णके आभूषण सुशोभित हो रहे थे । किकिणीके ऊपर दोनों पैरोंमें नूपुर थे । उसके ऊपर विविध प्रकारको सुन्दर मेललामें पड़ो थीं । अनेक तरहके नूपुर और नाना प्रकारके उज्ज्वल कंकण हाथोंमें पड़े हुए थे । सीताजीको कमरमें एक रेशमी वस्त्र था । जिसमें मोतियोंकी मालर लगी हुई थी और सुवर्णके तारोंसे फूल-पत्तीकी चित्रकारी बनी हुई थी ॥ ३८-४१ ॥ गतिकी चंचलतावश उसमेंसे एक मधुर ध्वनि निकल रही थी । उनकी साड़ीमें जगह-जगह मयूर, सिंह, वृष,

केकिमिहवृष्याघ्नमृगचित्रविचित्रिताम् । पीलरक्तहरिर्नीलकृष्णमाणिक्यमण्डिताम् ॥४४॥
 तत ऊर्ध्वं ददृशुस्ते पदकान्पुञ्ज्ज्वलानि हि । रंभाफलोपमान्येव हैनान्गमरणानि च ॥४५॥
 सकाचनशृङ्खलानि काचद्रवयुतानि च । नानारत्नविचित्राणि मुकुर्मण्डितान्यपि ॥४६॥
 नानामाणिक्यपुक्तानि दीप्तिमन्पुञ्ज्ज्वलानि हि तता ददृशुस्ते दिव्यान् रुक्महारान् विचित्रिताम् ॥४७॥
 नवरत्नयुतान्द्वारान्मुक्ताहारान् शृङ्खलाः । मूर्तिनाला रुक्मजाश्च यत्रमाला विचित्रिताः ॥४८॥
 पुष्पमालाः कांचनजाः सारिका रत्नमण्डिताः रुक्मपुञ्जान्विता माला हेमचात्रिकलान्विताः ॥४९॥
 प्रवालमणिमुक्तासस्मिन्निभश्चित्रविचित्रिताः । चंपूक्ष्मकलिका मृदशा हेममालिकाः ॥५०॥
 कण्ठे मंगलसूत्रं च पेटिका रत्नभूषिता । कांचनानां सुसूक्ष्माणां मणीनां विविधानि च ॥५१॥
 गुच्छैः कण्ठभूषणानि मुक्तागुच्छपुतान्यपि । ददृशुस्ते हि भीमायाः कण्ठे हेमवर्णनेत्रजः ॥५२॥
 रत्ननासतृडान्येव शीघ्रायां भूषणान्यपि । प्रवालमणिमाणिक्यवरचितान्पुञ्ज्ज्वलानि च ॥५३॥

मुक्तागुच्छान् काचगुच्छान् मणिगुच्छैर्विविचित्रितान् ।

प्रवालमणिगुच्छांश्च रत्नपुष्पविगुंफितान् ॥५४॥

ततो ददृशुस्ते सर्वे भूषितकृष्णकचुकीम् । हेमवन्तुभवां चित्रां मुक्तामाणिक्यगुंफिताम् ॥ ५५॥
 आदर्शवित्रसंयुक्तां पुष्परत्नविजिताम् । मयूरशुकवृक्षैश्च लवणैस्तन्तुनिर्मिताः ॥ ५६॥
 विचित्रां श्रमघर्मेणाद्रां संलग्नां दृढं तनी । ततो ददृशुर्भूषयोः केयूरे रत्नमण्डिते ॥५७॥
 वज्रकंकणसादृश्ये हेममाणिक्यनिर्मिते । रत्नविश्रविचित्राश्च भूषयोः पेटिकाः शुभाः ॥५८॥
 हेमवन्तुभर्वैलवमानगुच्छैः सुमण्डिताः । प्रवालमणिमुक्तानां नानागुच्छैर्गुंफिता अपि ॥५९॥
 तदधः करयोः सर्वे ददृशुर्भूषणानि ते । रत्नमाणिक्यमुक्ताभिश्चित्रितां हेमसम्भवां ॥६०॥
 करचूडौ दीप्तिमन्तौ हेमपुष्पादेचित्रिता । काचकंकणव्यस्थौ चन्द्रसूर्योपमां त्रिषा ॥६१॥

व्याघ्र और मृग आदिके चित्र बने थे । पीले, लाल, हरे, नीले और काले मणि स्थान-स्थानपर जड़े हुए थे ॥ ४१-४४ ॥ उसके ऊपर लोगोंने देखा कि भौति-मातिके आभूषण पड़े हैं । कहीं सोनेकी जंजीरें हैं, कहीं काँचका काम बना है और कहीं तरह-तरहके रत्नोंको सजावट है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ कई तरहके मणियोंके आभूषण देखाप्यमान हो रहे हैं । नौ रत्नोंमें जड़ा हुआ हार है । मोतियोंकी माला है । सोनेकी जंजीरें हैं । मोतीमाला, मुवर्ण एवं चबकी मालाएँ पड़ी हुई हैं ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ फूलोंकी माला, कण्ठकी माला, कन्धन और गुञ्जाकी मिश्रित माला, मुवर्णान्वित आँवलेकी माला, प्रवाल तथा अन्वाम्य मणियोंसे मिश्रित माला, चंपाकी कल्लोके समान बनी हुई मुवर्णकी माला, पेटिका मंगलसूत्र, रत्न-जटित पेटो, मुवर्ण तथा सूक्ष्म मणियोंके बने हुए गुच्छे और मोतियोंके मुवर्णोंको लोगोंने सोताके गलेमें लगा ॥ ४९-५२ ॥ ठीक करधनीके समान हो सुताकी चोरीके आभूषण भी बाल पड़ते थे । उनमें भी प्रवाल और मणि-माणिक्य आदि जड़े थे । मोतियोंके गुच्छे, काँचके गुच्छे और रत्नोंके गुच्छोंसे रंग-दिरंगे मालूम होते थे । इसके अनन्तर लोगोंने सीताजीकी चोली देखा । वह भी मुवर्णके तारासे बना, मुक्ता-मणि-माणिक्य आदिसे सजी और फूलोंसे गुंफित थी । जिसमें मयूर और तोताके चित्र बने थे, ऐसे वृक्षोंसे चित्रित एवं चन्द्रबिन्दुओंसे भीगी तथा अंगमें चिपटा हुई वह चोली थी । इसके बाद सीताके रत्नमण्डित बाजूबन्दपर लोगोंकी दृष्टि पड़ी ॥ ५३-५७ ॥ वह भी विविध प्रकारके रत्नोंसे जटित थी और उनको आभासे चित्र-विचित्र मालूम होती थी । फिर जिसमें जटीके काम किये हुए थे, सीताको उस कमरपेटिकापर लोगोंकी दृष्टि पड़ी ॥ ५८ ॥ उसमें भी मुवर्णके तारोंके बड़े-बड़े गुच्छे लटक रहे थे । जगह-जगहपर प्रवाल-मणि-मुक्ता आदिकोंके गुच्छे लटक रहे थे ॥ ५९ ॥ फिर दोनों हाथोंमें जो और आभूषण थे, उन्हें लोगोंने ॥ ६० ॥ वे भी रत्न-माणिक्य और मोती आदिसे चित्रित मुवर्णके बने थे ॥ ६० ॥ हाथोंके दोनों कंकण मुवर्णके पुष्पसे सजे हुए

तदूर्ध्वः कंकणानि हेमजानि घनानि च । रत्नमाणिक्यमुक्ताभिश्चित्रितान्युज्ज्वलानि च ॥६२॥
 प्रवालमणिमुक्तानां करद्वाराद्विचित्रितान् । करयोः सारिके दिव्ये ह्यूर्ध्वो रत्नमण्डिते ॥६३॥
 तदूर्ध्वं कंकणान्येव पुष्पवल्ग्वङ्कितानि हि । दंतराज्युषमादीनि रत्नहेमोद्भवानि च ॥६४॥
 अंगुलीषु ददृशुस्ते मुद्रिका रुक्मनिर्मिताः । रत्नमाणिक्यमुक्ताभिर्नीलमारकतैरपि ॥६५॥
 प्रवालचन्द्रकांतैश्च सूर्यकांतैर्विचित्रिताः । नानापुष्पोपमा दिव्याः प्रतिपर्वसमाश्रिताः ॥६६॥
 ततो ददृशुः सीताया रम्यं घ्राणेऽतिसौज्ज्वलम् । दिव्यं भगूरं चित्रं ■ वररुक्मविनिर्मितम् ॥६७॥
 मणिमाणिक्यमुक्ताभिर्वररत्नैः सुमण्डितम् । लंबितैर्भौक्तिकादीनां वरगुच्छैः सुवेष्टितम् ॥६८॥
 ततो ददृशुः सीतायाः कर्णयोर्मण्डपानि ते । मकरध्वजसादृश्ये वाटके रत्नचित्रिते ॥६९॥
 मणिमाणिक्यमुक्ताभिर्गुम्फिते सौज्ज्वले वरे । रत्नपुष्पादिमिश्रितैश्चित्रिते रविमास्वरे ॥७०॥
 ततो अमरिके दिव्ये रुक्मरत्नविचित्रिते । मुक्ताभिर्गुम्फिते रम्ये हेमपुष्पाणि च तथा ॥७१॥
 कर्णयोः भृशलाञ्छिता ददृशु रुक्मनिर्मिताः । मुक्तागुच्छैर्गुम्फिताश्च रत्नमाणिक्यमण्डिताः ॥७२॥
 आकर्णाम्यां च सीमन्तपर्यन्तं मालपार्श्वयोः । हारवद्रुक्मजालानि माणिक्यसहितानि हि ॥७३॥
 मुक्तागुच्छैर्गुम्फितानि वैदूर्यचित्रितान्यपि । ततस्तदूर्ध्वं सीताया ददृशुः शिरसि दिव्याः ॥७४॥
 सीमन्तरुशोभे याम्ये केशेषु शशिमास्करो । रुक्मज्जो रत्नवैदूर्यमणिमुक्ताविचित्रितौ ॥७५॥
 नीलकाशमीकांतैश्च चिद्रमैरतिशोभितौ । चन्द्रसूर्याभिव स्वीयभासा दीपयतो दिशः ॥७६॥
 निटिले तिलकं रत्नमणिमुक्ताविराजितम् । दैवं दिव्यमुज्ज्वलं च कोटिदूर्यसमप्रभम् ॥७७॥
 ततो ददृशुः सीमत मुक्ताहारैर्महोज्ज्वलम् । नानारत्नविचित्रं च सर्वेणितिलकावधि ॥७८॥
 चूडामणिं च ददृशुस्ते जनकेन समर्पितम् । नानारत्नविचित्रं च मुक्तागुच्छविराजितम् ॥७९॥

ये । काँचकी बनी हुई चूड़ियोंके मध्यमें ■ सूर्य और चन्द्रमाकी नाई मालूम पड़ते थे ॥ ६१ ॥ उनके ऊपर-
 नीचे सुवर्णके मोटे-मोटे कड़े पड़े थे । ■ भी नाना प्रकारके रत्नोंसे विचित्र दीप्ति कारण कर रहे ■ ॥ ६२ ॥
 उन्हींके ऊपर प्रवाल-मणि मुक्ता आदि रत्नोंसे एक-एक दिव्य सारिकाएँ बनी थीं ॥ ६३ ॥ उनके भी ऊपर
 रत्ननिर्मित फूलों और लताओंसे जटित कंकण पड़े थे ॥ ६४ ॥ उँगलियोंमें सुवर्णकी इनी रत्न, माणिक्य,
 नीलम, मरकत मणि आदिसे जटित अनेक अंगूठियाँ थीं । वे भी प्रवाल, चन्द्रकान्त और सूर्यकान्त आदि
 मणियोंसे विचित्र मालूम होती थीं ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ इसके अनन्तर सब लोगोंने सीताकी नासामणिको देखा,
 जिसमें एक दिव्य स्वर्णमयूर बना हुआ था । वह भी नाना प्रकारके मणियोंसे अलंकृत था ॥ ६७ ॥ उसमें भी
 मणि-माणिक और मोतियोंके गुच्छे लटक रहे थे ॥ ६८ ॥ इसके बाद लोगोंने सीताके कर्णभूषणोंको देखा । जिनमें
 मकरध्वजके सदृश विविध रत्नोंसे चित्रित झुमके थे । उनमें भी मणि-माणिक और मोतियोंके गुच्छे लटक
 रहे थे । रत्ननिर्मित पुष्पोंसे वे सूर्यके समान वैदूर्यमान हो रहे थे ॥ ६९ ॥ ■ ॥ फिर लोगोंने सीताके कानोंमें
 पड़ी दो अमरिकाओंको देखा । वे भी सुवर्णकी बनी तथा रत्नोंके जड़ावसे चित्र-विचित्र मालूम होती थीं
 ॥ ७१ ॥ फिर सबोंने सीताकी उस कणशृङ्खलाको देखा, जो सुवर्णकी बनी तथा रत्नजटित थी और उसमें
 भी मोतियोंके गुच्छे लटक रहे थे ॥ ७२ ॥ कानसे लेकर सीमन्त पर्यन्त ललाटके अगल-बगल स्वर्ण-माणिक्यके
 आभूषण हारके समान मालूम पड़ते थे ॥ ७३ ॥ इसके अनन्तर सबोंने सीताके मस्तककी ओर देखा, जहाँ केशमें
 सूर्य और चन्द्रमा दिखाई पड़ते थे । वे भी सुवर्ण-रत्न-वैदूर्य-मणि-मुक्तासे चित्रित थे ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ नीलम, कश्मीर
 कांतादिक मणियोंसे वे अतिशय शोभित हो रहे थे । वे अपनी अनुक्रम कान्तिसे दूसरे सूर्य-चन्द्रमाके समान दलों
 दिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे ■ ७६ ॥ ललाटमें रत्नों और मणि-मुक्ताओंसे बना हुआ तिलक था । वह भी
 सुवर्णका बना ■ और कोटि सूर्यके समान उसका प्रकाश था ॥ ७७ ॥ इसके अनन्तर उन्होंने सीताके सीमन्तमें
 अतिशय शोभमान् एक चूडामणि देखा, जो बेणीसे लेकर तिलक पर्यन्त अपनी छटा दिखा रहा था ॥ ७८ ॥

ततो ददृशुः शिरसि मुक्ताजालानि भूसुगः । हेमन्ततन्तुगुणितानि रत्नपुष्पयुतान्यपि ॥८०॥
मणिवैद्यकाश्मीरविद्रुमैश्चित्रितानि हि । तदृक् पृष्पजालानि सुगंधीनि व्यलोकयन् ॥८१॥
ततो वेण्यां भूषणानि ददृशुस्ते वराणि हि । नानापद्मपुष्पमान्येव माणिक्यचित्रितानि हि ॥८२॥
पल्लवांतरवर्तीन्यतिदीप्त्युज्ज्वलानि च । हेमतन्तुमयान् गुच्छान् मुक्ताहारविमिश्रितान् ॥८३॥
लम्बमानान् ददृशुस्ते मणिमाणिक्यसंयुतान् । वेण्यग्रेसंस्थितान् रम्यान् पृष्पापाडममन्वितान् ॥८४॥
एवं सीतां ददृशुस्ते श्रमन्यस्तविभूषणाम् । सर्वालङ्काररहितां तां द्रष्टुं कोऽपि न क्षमः ॥८५॥
दिव्यालङ्काररत्नानां प्रमथा इतलोचनाः । वामहस्तेन पात्रं दक्षिणसत्करे ॥८६॥
दधानां पद्मचरणां रत्नोत्पलकरां वराम् । पद्मास्यां पद्मपत्रसौ पद्मगर्भस्वरूपिणीम् ॥८७॥
दिव्यकर्पूरगंधैश्च चन्दनैरपि चर्चिताम् । स्फुरन्मञ्जीरचरणां दिव्यकंकणमण्डितान् ॥८८॥
स्वपदालक्तवर्णेन गतिं दर्शयतीं निजाम् । रत्नांगदधरां सीतां ददृशुस्ते द्विजादयः ॥८९॥
गजेन्द्रगमनां रम्यां दिव्यपुष्पैः सुशोभिताम् । दिव्यमंदारकुसुममालाभिश्च सुशोभिताम् ॥९०॥
कस्तूरीकृततिलकां कुंकुमेन सुशोभिताम् । हरिद्रया कज्जलाद्यर्धमण्डितां च स्मिताननाम् ॥९१॥
इति दृष्ट्वा जानकी तैः भूवन् विशोषमास्तदा । आत्मानं न विदुः सर्वे सीतासौंदर्यविस्मिताः ॥९२॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदायनन्दरामायणे वाल्मीकीये विलासकाण्डे

सीतालङ्कारवर्णनं चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥



इसके अनन्तर उन राजाओं ने तिरपट सुशोभित मोतियों को देखा, जो सुवर्ण के तार में गुंथे थे और उनके बीच-बीच में रत्ननिर्मित पुष्प पड़े हुए थे ॥ ७९ ॥ ८० ॥ वे भी मणि-वैद्यकाश्मीर-विद्रुम आदि से चित्रित थे । उसके बाद उनके ऊपर लगे हुए सुगंधित फूलों को देखा ॥ ८१ ॥ तदनन्तर वेणी में लगे हुए सुन्दर आभूषणों के ऊपर लोहों को दृष्टि पड़ी, जो विविध प्रकार के उन माणिक्य-चित्रित पक्षियों जैसे दीखते थे, जो पक्षों के भीतर बँडे हुए अतिशय दीप्तिमान् हैं । रहे हों सुवर्ण के तारों से बने गुच्छ मोतियों की हार से मिले तथा मणि-माणिक्यसंयुक्त थे । वे वेणी के अग्रभाग में लटके थे और उनमें नाना प्रकार के फूल गुंथे हुए थे ॥ ८२-८४ ॥ सीताने वीक्षके डर से बहुत से आभूषणों को निकाल दिया था । फिर भी सब प्रकार के अलङ्कारों को धारण किये हुए सदा दीखनेवाली सीता को लोगोंने देखा सही, किन्तु कोई भी अच्छी तरह नहीं देख ॥ ८५ ॥ क्योंकि उन अलङ्कारों का प्रभा के आगे लालों की दृष्टि ही नहीं ठहरती थी । सीता के बाएँ हाथ में एक पात्र था और दाहिने हाथ में कमल छेयां ॥ ८६ ॥ उनके चरण कमलसरीखे थे । रत्नों से बने हुए कमल की नाईं सीता के हाथ थे । कमल के समान मुख, पद्मपत्र के समान आँखें तथा कदली के तन्त्रों के भीतरी भाग के समान कोमल स्वरूप था । दिव्य कर्पूर तथा चन्दन से उनका सम्पन्न शरीर चर्चित था । समझ कर रहा हुआ मञ्जीर पाँवों में था और दिव्य कंकण सीता के पाँवों में पड़े थे ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ रत्नवर्ण के चरणों से वे अपनी मन्द गति दिखा रही थीं । रत्ननिर्मित विजायठ हाथ में पड़े थे । इस प्रकार की सीता को लोगोंने देखा ॥ ८९ ॥ गजेन्द्र के समान उसकी मन्द गति थी । दिव्य पुष्पों से सुशोभित तथा दिव्य मंशर विरचित मालाओं से अलंकृत होकर करतूरो का तिलक लगाये हुए थी, उनकी आँखों में काजल लगा था और वे मन्द-मन्द मसका रही थीं । इस प्रकार की सीता को देखकर देखनेवाले चित्रलिखित जैसे हो गये और उनके सौन्दर्य से विस्मित होकर वे सब अपने आपको भुन गये ॥ ९०-९२ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदायनन्दरामायणे 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासमन्विते विलासकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

(रामसीताका जलविहार)

श्रीरामदास

अथ सीता क्षणेनैव चकार परिषेपणम् । हेमवानेषु सर्वेषां पक्काभैर्विविधैर्मुदा ॥ १ ॥
 कामधेनुर्द्धवैश्चैत्र मण्डकान् पूर्णपूरितान् । वटकान् फेनिकांश्चापि पापमान्युज्ज्वलानि च ॥ २ ॥
 पर्पटकान् लङ्घुकांश्च कृष्णान्दवटकास्तथा । सुमृष्टतंदुलकृतान् दधिसीरं घृतं मधु ॥ ३ ॥
 पूयकांचनद्रोणेषु जानकी पर्यवेपयत् । शर्कराः श्वेतवर्णाश्च तथैव खंडशर्कराः ॥ ४ ॥
 मरिचाद्युपचारैश्च संस्कृतं तक्रमुत्तमम् । घृतपाचितभाकाश्च व्युपशक्ता रुचिप्रदाः ॥ ५ ॥
 तिलसम्मिश्रवटकानाद्रकं बीजपूरकम् । आम्रादीनां रसांश्चापि रसादीनि फलान्यपि ॥ ६ ॥
 एवमादीन्यनेकानि चोष्पनि विविधानि च । तथा लेहानि पेयानि जानकी पर्यवेपयत् ॥ ७ ॥
 ततो रामः सहृन्मित्रैः कथां कुर्वन् सुखेन सः । अकरोदुपहारं च करशुद्धिं विधाय सः ॥ ८ ॥
 सर्वेषां निजहस्तेन ददौ तांबूलमुत्तमम् । स्वयं भुक्त्वाऽथ तांबूलं वामांश्च परिधाय सः ॥ ९ ॥
 पदुष्या वस्त्राणि सर्वाणि दृष्ट्वादर्शं निजं मुखम् । आरुह्य शिविकां दिव्यां मुक्तापुच्छविराजिताम् ॥ १० ॥
 ह्रीं रत्नादिभिश्चित्रां ययौ निजगृहाद्वहिः । वन्द्युभिः सचिर्वर्गिष्टैस्तैस्तैः सर्वत्र देष्टितः ॥ ११ ॥
 स्तुतो वन्दिजनैः सर्वैर्ययौ स जानकीगृहम् । तत्र नत्वाऽथ कौपिन्यां तथा मानस्यथाक्रमम् ॥ १२ ॥
 आशीर्भिरोद्धितस्ताभिर्ययौ रामः समां वराम् । उन्नमिहासने स्थित्वा मंत्रिभिरुत्सृग्मणादिभिः ॥ १३ ॥
 राजकार्याणि सर्वाणि चकार नीतिमचरः । अज्ञास राज्यं धर्मेण बुद्धिमांश्चारुलोचनः ॥ १४ ॥
 आरिर्ह्यर्था स्थितिं सर्वां स्वराज्यस्य च सर्वया । अज्ञास राज्यं धर्मेण राघवो दीर्घलोचनः ॥ १५ ॥
 अथ सीतोपहारं स्वसखीभिश्चोर्मिलादिभिः । देवराणां कामिनीभिः स्वमृभिश्चाकरोन्मुखम् ॥ १६ ॥
 करशुद्धिं विधायैव भुक्त्वा तांबूलमुत्तमम् । परिधाय हविद्वस्त्रं तथा रक्तां कञ्चुकीम् ॥ १७ ॥

श्रीरामदासने कहा—हे मित्र ! इसके अनन्तर सीता ने ॥ १ ॥ घर में सबके आगे रक्ते हुए सुवर्णके पात्रोंमें विविध प्रकारके पकवान परोसे । वे पकवान कामधेनुके द्वारा उत्पन्न किये हुए थे । उनमें मण्डक, गुरनगूरी, वटक, फेन, दूधकी बनी सीर आदि, पापड़, लड्डू, कृम्हड़ायाग, चिटरा, दही, दूध, घी, गहूद आदिकोंको जानकीजीने अलग-अलग स्वर्णनिमित्त पात्रोंमें परोसा ॥ १-३ ॥ सफेद जवकर, लाल शक्कर, जीरा भिन्न आदि मसाला डालकर बना हुआ रायता, घीमें छींके हुए ॥ ४ ॥ प्रकारके शाक, चटनी, तिलकी बनी हुई टिकिया, सूखा याजपूरक, आमके रस, केले आदिके फल, इसी प्रकार घृतने लायक तरह-तरहके अनाज, चाटने लायक कितनी ही तरहकी घटनी और पीनेके लायक तस्मई आदि वस्तुओंको सीताजीने परोसा ॥ ४-७ ॥ इसके बाद रामचन्द्रजीने मित्रोंके ॥ ८ ॥ बातें करते हुए भोजन किया और हाथ धोकर सबको अपने हाथसे ॥ ९ ॥ दिया । फिर स्वयं भी पान खाया और कपड़े बदले ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ इसके बाद ॥ १० ॥ प्रकारके अस्त्र-शस्त्र बांधकर आइनेमें मुख देखा और मंत्रियोंके गुच्छोंसे सजाई हुई पालकीपर सवार होकर घरसे बाहर निकले । बान्धव, मन्त्री, मित्र तथा दूत, ये सब चारों ओरसे रामचन्द्रजीको घेरे हुए थे ॥ १० ॥ ११ ॥ बड़ीजन रास्तेमें भगवान्की स्तुति करते चलते थे । ॥ १२ ॥ तरह सबको अपने साथ लिये हुए वे माताके भवनमें जा पहुँचे, वहाँ ॥ १३ ॥ मौसल्य तथा अन्य भगताओंको प्राणम करके उनसे आशीर्वाद लिया और उन माताओंको भी साथ लिये हुए सभामवनमें पहुँचे । वहाँ मन्त्रियों तथा लक्ष्मणदिक आताओंके साथ सिंहासनपर बैठे ॥ १२ ॥ १३ ॥ वहाँपर राजसम्बन्धी समस्त कार्योंको खूब अच्छी तरह सोच-विचारकर किया । रामचन्द्रजी गुप्तचरों द्वारा अपने राज्यके सब समाचार मानूम करके धर्मपूर्वक शासन करते थे ॥ १४ ॥ ऊपर सीताजीने भी अपनी देवरानियों, बहिनों तथा ससियोंके साथ भोजन किया, हाथ धोया और साम्बूलका ॥ १५ ॥ बोझा खाया । हरे रंगकी साड़ी तथा लाल रङ्गकी चोली जिसमें सुवर्णके

हेमतन्तुसुपुष्पाढ्यां मुक्ताजालविगुम्फिताम् । गेहान्तर्वर्त्युपवनशालायां संस्थिताऽभवत् ॥१७॥
 सखीभिर्वेष्टिता रम्या घृताऽधोकोपवर्हणा । ततो दिव्यानलङ्काराभिजदेहे दधार सा ॥१८॥
 ये मया कथिता नैव पूर्वैन्यस्तान् श्रमेण नान् । कस्तेषां वर्णने सक्तो भवेदत्र नरोत्तमः ॥१९॥
 चतुरास्यः कुण्ठितोऽभूत्पञ्चास्यश्च पद्माननः । उच्चैःश्रवाश्च सप्तास्यः सहस्रास्योऽपि वर्णने ॥२०॥
 श्रुत्वा सीतामुपवने गतां ते जलयन्त्रिणः । जलयन्त्राणि सर्वाणि चक्रुर्मुक्तानि वेगतः ॥२१॥
 रत्नमञ्चकमस्था सा सीता चामरवीजिता । जलयन्त्रकांतुकानि ददर्श नगवीरुधः ॥२२॥
 एतस्मिन्नन्तरे रामो राजकार्याणि कुन्तनशः । कृत्वा ययौ सभायाः स निजगेहं तु बन्धुभिः ॥२३॥
 तदा दुन्दुभिनिर्घोषा नववाद्यस्वना अपि । शङ्खानां गोमृत्खानां च मेरीणां तुमुलस्वनाः ॥२४॥
 बभ्रुधुर्यश्च शब्दाश्च तूर्यादीनां स्वनाः शुभाः । ननृनुर्वारभार्यश्च तुष्टुवुर्मागधादयः ॥२५॥
 तं स्वनं जानकी चापि श्रुत्वा चोपवने स्थिता । सम्भ्रमेण समुनीर्य मञ्चकावो वरानना ॥२६॥
 वामहस्ते सञ्जरी तां च दक्षिण । धृत्वा करे सा वैदेही रामं प्रत्युज्जगाम वै ॥२७॥
 एतस्मिन्नन्तरे रामस्त्यक्त्वा तां शिचिकां वहिः । विमज्ज्य मकलांश्लोकान् विवेश बन्धुभिर्गृहे ॥२८॥
 एतस्मिन्नन्तरे दास्यः शतशो रुक्मभूषिताः । राघवाग्रे द्रुतुवुस्ताः स्वस्वकर्मसु तत्पराः ॥२९॥
 काचित्त्वं व्यजनेनैव वीजयामास वेगतः । दधार चामरे काचित्काचिदासनमुत्तमम् ॥३०॥
 काचित्तायलपात्रं सा काचिन्निर्घृषनस्य च । पात्रं दधार काचित् जलकुम्भं मनोरमम् ॥३१॥
 काचिदधार वस्त्राणां कोशं काचित् कार्मुकम् । काचिदधार तूणीरं काचित्सङ्ग दधार सा ॥३२॥
 एवमादीन्यनेकानि तदोपकरणानि ताः । जगृह गमचन्द्रं तं चेष्टयामासुरादरात् ॥३३॥
 ततो रामः शनैःपद्मणां ययौ जनकनन्दिनीम् । स्थितां तत्र प्रतीक्षन्तीं पतिं जलरुहेक्षणम् ॥३४॥

तारोंसे जगह-जगह बेल-बूटे में थे, उसे पहिना और सबके साथ भवनके भीतर ही बने हुए उपवनमें जाकर बैठीं ॥ १५-१७ ॥ यहाँ सखियोंने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया और सीताने विविध प्रकारके आभूषण पहने ॥ १८ ॥ जिन थोड़ेसे ढलकारोंको भी बड़े परिश्रमके साथ खोजकर पहले कह आया है, उन्हें यहाँ पूर्ण-रूपसे दर्शन करनेमें कीन थोड़ा पुरुष समर्थ होगा ॥ १९ ॥ सीताको उस अलौकिक आभाका वर्णन करनेमें चतुरानन सह्या, पञ्चवक्त्र शिव, पद्मानन स्वामिकातिकेय, मात मुखवाले उच्चैःश्रवा और हजार मुखवाले शेषनाग-का भी बुद्धि कुण्ठित हो गयी ॥ २० ॥ जलयन्त्रके अधिकारियोंने जब सुना कि सीताजी उपवनमें आ गयी हैं, तब उन्होंने सब फौजारोंको बड़े वेगके साथ छोड़ दिया ॥ २१ ॥ तदनन्तर मणिकी बनी हुई चौकीपर बैठकर सीता फौजारोंके कौतुक तथा वृत्तोंकी शोभा देखने लगी और दासियाँ सीताके ऊपर चक्कर डुलाने लगीं ॥ २२ ॥ इतनेमें रामचन्द्र भी राज्यसम्बन्धी सब काम करके भाट्योंके साथ अपने भवनमें आये ॥ २३ ॥ उस समय दुन्दुभोंके शब्द, नवीन वाजोंकी ध्वनि और शङ्ख, गोधुध, मेरी आदिका घनघोर शब्द होने लगा ॥ २४ ॥ विविध वाद्ययन्त्रोंके शब्द और तुड़ही आदिकी ध्वनि सुनाई देने लगी, बेश्यायें नाचने लगीं और बन्दाजन भगवान्को स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥ उन वाजोंके स्वर सुनकर सीता भी धक्काहटके साथ धोकोपरसे उतरकर बाँधे हाथमें सारी तथा एक उपपात्र लेकर रामकी ओर चलीं ॥ २६ ॥ २७ ॥ तबतक रामचन्द्रजी भी पालकीसे उतरे और सब लोगोंकी विदा करके आताओंके साथ घरके भीतर गये ॥ २८ ॥ इतनेमें विविध प्रकारके ढलङ्कारोंको पहने हुए सैकड़ों दासियाँ अपना-अपना काम करनेके लिये दीड़ रहीं ॥ २९ ॥ कोई भगवान्को पंखा झलने लगी । किसीने चमर ले लिया । कोई आसन बिछाने लगी । किसीने पानदान, किसीने उगालदान, किसीने मुन्दर जलपात्र और किसीने कपड़े रखनेकी पेटी सम्हाल ली । किसी दासीने रामजीका वनुष ले लिया । किसीने सरकस लिया और किसीने तलवार से ली ॥ ३०-३२ ॥ इस तरह रामकी सब वस्तुओंको सब दासियोंने चारों ओरसे घेरकर सम्हाल लिया ॥ ३३ ॥ इसके

गृहांगणाराममन्ये संस्थितां सस्मिताननाम् । दृष्ट्वात्मानं विलज्जन्तो सुतासां चारुलोचनाम् ॥३५॥
 कटाक्षैश्चारु पश्यन्तीं सखीभिः परिवेष्टिताम् । तां दृष्ट्वा राघवश्चापि किञ्चित् कृत्वा स्मिताननम् ॥३६॥
 चकाराचमनं सम्यक् सीतार्पितजलेन सः । ततः स्विष्ट्वाऽऽयने पीत्वा जलमग्रे ययौ पुनः ॥३७॥
 जलयन्त्रसमीपस्थां शालां सीतासमन्वितः । तस्यां सिंहासने स्थित्वा लक्ष्मणं प्राह राघवः ॥३८॥
 गच्छ भोजनशालां त्वं सर्वानाहूय वेगतः । ज्ञात्वाऽदोनुर्मिलादिनारीणां त्वरयस्व हि ॥३९॥
 सर्वं कृत्वा यथायोग्यं ततो मां कुरु पूचनाम् । तथेति राघवनाद्वस्तेन स शत्रुहा ॥४०॥
 लक्ष्मणस्त्वरितो गत्वा सर्वानाहूय वेगतः । वसिष्ठादिमुनीन्मित्रमन्त्रिणः सुहृदस्तथा ॥४१॥
 त्वरयामासोर्मिलां च मांडवीं भरतप्रियाम् । श्रुतकान्तिं च सीमित्रिः श्रीरामवचनात्तदा ॥४२॥
 एतस्मिन्नन्तरे रामः केशरादिविनिर्मितः । चित्ररार्गः पूरितानि जलयन्त्राण्यनेकशः ॥४३॥
 कारयित्वा तेषु सीतां चाद्रुपार्श्वेदं मुदा । धृत्वाऽक्षिपत्पृथग्दास्यादिषु पश्यत्सु वै सुखम् ॥४४॥
 ततः स्वयं पपातोन्चैर्जलयन्त्रेषु वै पृथक् । जलक्रीडां स मैथिल्या चकार रघुनन्दनः ॥४५॥
 भुजाभ्यां स समालिख्य तां मुहुः प्राक्षिपन्मुदा । रञ्जयामास वैदेहीं सुरागाञ्जलिसेवनैः ॥४६॥
 ततः सुगन्धर्वलानि तथा परिमलानि हि । नानासुगन्धद्रव्याणि माङ्गल्यधानि बहूनि च ॥४७॥
 दासीभिः शीघ्रमानीय तावुभौ हि परस्परम् । ववर्षतुः सुभायैश्च क्राडाद्रव्यैर्मनोरमैः ॥४८॥
 कलाभ्यां जलयन्त्राणि मिथस्तां मंभुमोचतुः । रामाक्षिसंज्ञया दास्यः सीतासख्योऽपि सचिताः ॥४९॥
 वस्त्रमितिबहिर्दूरं गत्वा तस्थुर्विलज्जिताः । काश्चिद्द्वारेषु तस्थुस्तास्तूष्णीं प्रमुदिताननाः ॥५०॥
 अदृष्ट्वाऽयं ततः सीतारामौ रहसि सादरम् । जलयन्त्रेषु तौ क्रीडां चक्रतुः सुचिरं मुदा ॥५१॥
 मुष्टिभ्यां जानकी रामं ताडयामास कौतुकान् । सोऽपि तां ताडयामास मुष्ट्या पुष्पसमानया ॥५२॥

रामजी धीरे-धीरे सीताजीकी ओर चले, जो पहले ही से खड़ी-खड़ी रामचन्द्रजीके आनेकी प्रतीक्षा कर रही थीं । जितका मस्तक रामको देखकर लज्जासे झुका हुआ था, वे सीता गृहांगणमें वने बगीचमें बैठी थीं । मुसकाता हुआ उनका मुख था । रामचन्द्रजीने देखा कि सुन्दर आँखों और सुडौल नासिकावाली सीता हमें देखकर लजा रही है । उनके चारों ओर सखियाँ घेरे खड़ी हैं और रह-रहकर सीता अपने कनिष्ठियोंसे हमको देखती जाती हैं । इस प्रकारकी सीताको देखकर रामचन्द्रजी मुसकाते हुए उनके पंहुँचे और सीताके हाथसे प्राप्त जलको लेकर आचमन किया । फिर आसनपर बैठे, जल पिवा और सीताके साथ उस बँगलेकी तरफ चले, जो कौवारोके बीचमें हुआ । वहाँ पहुँचकर राम एक दिव्य सिंहासनपर बैठे और लक्ष्मणसे कहने लगे— ३४-३७ ॥ हे लक्ष्मण ! तुम भोजनशाला जाओ और सब बाह्यणों उर्मिलादिक नारियोंसे कहो कि जल्दी भोजन तैयार करें । जैसा मैंने बतलाया है, वैसा करनेके । फिर हमें सूचना दो । 'बहुत अच्छा' कहकर लक्ष्मण शत्रुघ्न तथा भरतको साथ लेकर भोजनशालामें पहुँचे । वहाँ वसिष्ठादि मुनियों, मन्त्रियों तथा मित्रोंको बुलाकर शीघ्र तैयार होनेको कहा ॥ ३८-४१ ॥ तदनन्तर लक्ष्मणने मांडवी, श्रुतकान्ति, उर्मिला आदिको रामचन्द्रजीके आज्ञानुसार वह सन्देश दिया कि तुम शीघ्र भोजनकी तैयारी करो ॥ ४२ ॥ इसके अनन्तर रामचन्द्रजीने केशरादि विविध रत्नसे रञ्जित जलवाले एक थड़ेसे होजमें सीताजीको गद्दमें लेकर फेंक दिया । सखियाँ हँसती हुई देख रही थीं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर वे स्वयं भी उसमें कूद पड़े और सीताके साथ जलक्रीडा करने लगे ॥ ४५ ॥ वे बार-बार सीताको उठा-उठाकर जलमें फेंकते, फिर स्वयं कूदते और सीतापर जल छछलते थे । तदनन्तर दासियों गुगुन्धित तैल तथा विविध प्रकारके परिमल मँगाकर आपसमें एक दूसरेपर डालने लगे । हाथने पिचकारी लेकर एक दूसरेपर केशर आदि मिले हुए जलकी बर्षा करते थे ॥ ४६-४९ ॥ रामचन्द्रजीके संदेशसे सखियाँ लज्जाके मारे वहाँसे हट गयीं और दूसरी जगह जा बैठीं । उनमेंसे कुछ स्त्रियाँ प्रसन्नतापूर्वक तम्बूसे बने हुए घेरेके फाटकपर जा बैठीं । इस प्रकार एकान्तमें सीताके साथ रामचन्द्रजी बहुत देरतक क्रीडा करते रहे ॥ ५० ॥ ५१ ॥ कभी खेल-बेलमें सीताजी रामचन्द्रको मुक्का मार देती थीं,

चुचुम्ब तस्या विचोष्टं चूर्णयामा न तत्कुचौ । मुक्त्वा तत्कञ्चुकीबंधमालिख्य हृदयेन ताम् ॥५३॥
 मुनीष कच्छं श्रीरामः सीतायाः स्वकरेण सः । उड्डीर वज्र हस्तेन तद्रम्भोरु ददर्श सः ॥५४॥
 ततः करेण तन्नीवीं रामश्चाकपयन्मुदा । सीतायाकपयद्वंशाद्रामनीवीं स्मितानना ॥५५॥
 एवं परस्परं क्रीडां चकतुर्दम्पती मुदा । कः समर्थमन्योः क्रीडां न निस्तारो निवेदितुम् ॥५६॥
 एतस्मिन्नन्तरे रामं भोजनार्थं तु सूचयाम् । कर्तुं ययौ स गौमित्रिः समाहूय सुहृज्जनान् ॥५७॥
 निषेधितः स दासीभिर्वनद्वारादहिः स्थितः । ता ऊचुः समयो नायं रामं गन्तुं च न क्षणम् ॥५८॥
 स्थिरो भवाश्र सीमित्रे रामो रहसि सीतया । करोति जलयन्त्रेषु जलक्रीडां यथासुखम् ॥५९॥
 पुनस्ताः प्राह सीमित्रिर्युष्माभिवचनेन मे । निवेदनीयं रामाय सूचनार्थं हि लक्ष्मणः ॥६०॥
 समागतस्त्वामस्तीति ततो यास्याम्यहं गृहम् । ततस्तामु तदा त्वंका दामो गत्वा रघूत्तमम् ॥६१॥
 दक्षभिर्तेर्वहिः स्थित्वा मयर्भाताऽतिलजिता । कथयामास सीमिवेद्वारि द्वागमनं कुतः ॥६२॥
 तदासीवचनं श्रुत्वा जलयन्त्रात् जानकीम् । बहिःकृत्वा निर्गतश्च रामस्तुष्टमनाः स्वयम् ॥६३॥
 बलैरुष्णैः प्रभुः स्नात्वा देहमुद्धर्तनादिभिः । मुगधद्रव्यरामादीन् कृत्वा दूरं प्रियान्वितः ॥६४॥
 पीतकौशेयवासोऽसि परिधायथ दम्पती । ददतुश्चाद्रवस्त्राणि हेमतत्त्वकितानि च ॥६५॥
 दासीभ्यश्चाथ दासेभ्यो रामाद्यैश्चिप्रितानि हि । तां जग्मतुः पुष्पचित्तमार्गेणाप्यशनगृहम् ॥६६॥
 तत्र पूर्वोक्तवराधिकर्तानिपचारकैः । ऊर्मितादिभिरनं यत्कामधेनुसमुद्भवम् ॥६७॥
 दर्वाभिः स्वर्णजाभिश्च पात्रेषु परिवेषितम् । सुनीश्वरश्च गुरुणा सुहृन्मित्रममन्वितः ॥६८॥
 मन्त्रिभिर्वन्धुमित्रादि रामोऽश्नन्तोऽपमाप सः । तत्पात्रं धीजयामास जानकी चामरेण सा ॥६९॥
 सविनोदश्चादुशयै रञ्जयामास राघवम् । एवं कुम्वा भोजनं तु कृत्वा तांमूलचर्चणम् ॥७०॥

तब राम भी हँसते हुए फूलके समान कोमल मुककेसे सीताको भार देते थे ॥ ५३ ॥ सीताके विम्बसदृश लाल होठोंको रामचन्द्रजीने कई बार चूमा, उनसे चुचोंका मर्दन किया और चानीका बन्द खोलकर अपनी छातीसे छिपटाया ॥ ५४ ॥ रामने सीताजी कीठ खोलकर दस्त्रोंको हटा दिया, जिससे कदलीके खम्भेके समान उनकी कोमल अंघाई दिखाई पड़ने लगी ॥ ५४ ॥ तब सीताने भी दुबकाकर रामकी घोंती खोल डाली । इस तरह राम और सीतामें विविध प्रकारकी छेड़छाई होती रही । सीता और रामजी क्रीड़ाके सविस्तार वर्णन करनेकी सम्पर्क भला किससे है ? हे शिवा ! यह सुनकर लक्ष्मणने मेरे मुँहसे बचकाया है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ इसके अनन्तर भोजन तैयार होनेकी सूचना पहुँची । तब लक्ष्मणने रामचन्द्रके मित्रों आदिको भी बुलवा लिया ॥ ५७ ॥ लक्ष्मण रामकी वृन्तके लिए श्रीङ्गाभवनके फटकपर पहुँचे, तब ही सखियोंने उन्हें रोका और कहा कि अभी रामचन्द्रजीके पास आनेकी आज्ञा नहीं है । क्योंकि वे इस समय जलक्रीड़ा कर रहे ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ उनसे लक्ष्मणने दृढ़-अच्छा, तुम्हों जाकर रामसे कहो कि द्वारपर लक्ष्मण भोजनकी सूचना देनेके लिए खड़े है ॥ ६० ॥ तुम्हारे ऐसा कह देनेपर ॥ अन्दर बला आऊंगा । लक्ष्मणके आज्ञानुसार उनमेंसे एक दासी रामके समीप गयी और लजाती हुई परदेकी ओटसे धीरे-धीरे उनसे लक्ष्मणके आनेकी खबर सुनायी ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ दासीकी बात सुनकर रामने प्रसन्नमनसे सीताको जलयन्त्रके बाहर निकाला और स्वयं भी निकल आये ॥ ६३ ॥ तब परम जलसे ताँता और रामने तटोरेमें लगे हुए सुगन्धित उवटन आदिको घोंया ॥ ६४ ॥ उसके बाद रणभके पीले कपड़े पहने । उन बहुमूल्य वस्त्रों कपड़ोंकी दाह-दासियोंकी दे दिया । फिर पुष्पोंसे सुशोभित भागमें चलकर दोनों भोजनघाटामे जा पहुँचे ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ वहाँ पुर्दोक्त भोजन-सामग्रियोंसे भी अधिक कामधेनुसे उत्पन्न तथा उभिषा आदिके द्वारा सुवर्ण-पात्रोंमें सुवर्णके ही चमचोंसे परोसे हुए द्रव्यजनोंकी अनेक मुनियों, मिश्रों, मन्त्रियों एवं वन्धु-दास्योंके साथ खाते हुए रामचन्द्रजी बहुत प्रसन्न हुए । भोजन करते समय सीताजी पञ्चा बलती हुई बीच-बीचमें चित्त प्रसन्न करनेवाली कितनी

सीताममर्पितं रामस्तस्थौ मृण्वन् कथाः सुखम् । मन्त्रिभिर्वन्धुभिर्मित्रैर्गोदातः सदसि प्रभुः ॥७१॥
सीताऽपि भोजनं कृत्वा दिव्यालंकारमण्डिता । निद्राशालां समासीना सस्त्रीभिः परिवेष्टिता ॥७२॥
चकार सारिभिः क्रीडां दासीभिर्वीजिता मुदा । कुर्वन्ती रघुनाथस्य प्रतीक्षां द्वारलोचना ॥७३॥

इति श्रीमच्छतकोटिरामचरितामर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वात्सीकीये यागकाण्डे

बलक्रीडावर्णनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः

(राम तथा सीताकी दिनचर्या)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामो बन्धुभिश्च निद्राशालां ययौ मुदा । स्तुतो बंदिजनार्थं विवेकैकांतमन्दिरम् ॥ १ ॥
विसर्ज्य लक्ष्मणादींश्च दासीभिः परिवारितः । ददर्श जानकीं निद्राशालायां रघुनन्दनः ॥ २ ॥
साऽपि स्नात्वाऽऽगतं रामं सारिकीडां विहाय च । प्रत्युज्जगाम रामाय सस्त्रीभिर्नूपुरस्वना ॥ ३ ॥
नत्वा रामं करे धृत्वा मंचके संन्यवेशयत् । इत्था पातुं जलं तस्मै ददौ तांबूलमुत्तमम् ॥ ४ ॥
तदश्चकार श्रीरामो निद्रां सीतासमन्वितः । दासीभिर्वीजितश्चापि पर्यङ्के रत्नभूषिते ॥ ५ ॥
मुहूर्तयात्रादुत्थाय चूतार्घ्योकोपवर्हण । तस्थौ सीता मंचकाधस्ततो रामोऽप्यनुभूयत ॥ ६ ॥
दृष्ट्वा समुन्वितं रामं दध्वा पातुं जलं पुनः । ददौ सीताऽव तांबूलं राक्षसायातिद्वर्षिता ॥ ७ ॥
रामदास्यस्तथा रामं वीजयामासुरादरात् । केकिपक्षममुद्धर्तुं धामरं रुक्मभूषितं ॥ ८ ॥
सीतादास्यस्तथा सीतां वीजयामासुरादरात् । धेनुपुच्छोद्धर्तुं दिव्यैश्चामरैर्ममण्डितैः ॥ ९ ॥
ततः सीताकरं धृत्वा द्वाक्षावल्या सुमण्डपम् । ययौ रामोऽङ्गणोद्धृतं तस्थौ तदथ आसने ॥ १० ॥

हो बातें भी करती जाती थीं । इस प्रकार भोजन करके रामने सीताके हाथोंका दिया हुआ पान खाया ॥ ६७-७० ॥ तदनन्तर मन्त्रियों, वन्धुओं तथा मित्रादिकोंके साथ विविध प्रकारकी बातें कहते-सुनते हुए सभाभवनमें पधारे ॥ ७१ ॥ तदनन्तर सीताने भी भोजन किया, कपड़े बदले और नाना प्रकारके अलंकारोंको पहनकर अपने अवनगारमें जा बैठी । वहाँ सीताकी दासियाँ भी उन्हें चारों ओरसे घेरकर बैठ गयीं ॥ ७२ ॥ सीता वहाँ बैठी हुई सारिका (मैना) के साथ खेलतीं तथा इधर-उधरकी बातें करती हुई रामचन्द्रजीके आनेकी प्रतीक्षा कर रही थीं । यह करते हुए भी सीताकी आँखें रामको देखनेके लिए द्वारपर ही लगी हुई थीं ॥ ७३ ॥ इति श्रीमच्छतकोटिरामचरितामर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वात्सीकीये 'ज्योत्स्ना'भाषाटीकायां विलासकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

श्रीरामदासने कहा—सभाभवनमें कुछ देर बैठनेके अनन्तर राम अपने बन्धुओंके साथ प्रसन्नतापूर्वक शयनागारकी ओर अगे । बंदिजन भगवान्की स्तुति करने लगे । निद्राशालाके पास जाकर रामने लक्ष्मण आदिको विदा कर दिया । दासियोंके साथ वे भीतर गये और वहाँ बैठी हुई सीताकी देखा ॥ १ ॥ २ ॥ सीताने भी अब देखा कि रामजी आ गये हैं, तब अपनी मैनाके साथका खेल बन्द करके धीरे-धीरे उनकी ओर बढ़ीं । उन्हें प्रणाम किया और हाथ पकड़कर पलंगपर बैठा लिया । फिर पीनेके लिए दिया और उत्तम तांबूल खिलाया ॥ ३ ॥ ४ ॥ इसके बाद रामचन्द्रजी रत्नभूषित पलंगपर सो गये और दासियाँ पंखा चलाने लगीं ॥ ५ ॥ क्षण भरके बाद सीता पलंगसे नीचे उतरों, तब रामजी भी जाग गये ॥ ६ ॥ सीताने जब देखा कि वे भी उठे हैं, तब फिर पीनेके लिए जल और खानेका पान दिया ॥ ७ ॥ रामकी दासियाँ रामकी ओर सीताकी दासियाँ सीताकी पंखा मल रही थीं । उन दासियोंके हाथमें मोरके पंखोंका दिया पंखा था और उत्तम सुवर्णकी मुठ लगी हुई थी ॥ ८ ॥ कुछ देर बाद रामचन्द्रजी सीताका हाथ कपटे हाथमें पकड़े हुए एक अंगूरी लतालीके बने सुन्दर मण्डपमें पहुँचे और उसके आगिनमें एक आसनपर

उपवर्णसंस्पृष्टः सीतावामस्थितो मुदा । हस्त्यश्वोष्ट्रमंत्रिराजदूतैः कृत्रिमनिर्मितैः ॥११॥
 हेमरत्नहस्तिदन्तसंभूतैरतिचित्रितैः । क्रीडां बुद्धवलेनैव चकार सीतया सुखम् ॥१२॥
 ततः पश्चिक्कुलैः सर्वैः पञ्जरस्थैः ससौतया । क्रीडां चकार श्रोतामो दासीभिर्वीजितो मुहुः ॥१३॥
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र सीतयाऽऽकाशिताः पुरा । समाप्युर्वारनार्यो ननृतुः श्रुतश्रुतदा ॥१४॥
 चक्रुर्गीतं सुस्वरं ताः षड्जस्वरसमन्वितम् । ततस्ताम्यो हलङ्कारान् दद्या वस्त्राणि जानकी ॥१५॥
 विसर्जयामास ताः सर्वास्ततो राघवमब्रवीत् । स्थित्वा प्रासादवर्षेऽथ कौतुकं हङ्कुजं त्वया ॥१६॥
 द्रष्टुमिच्छाम्यहं राम शीघ्रमुत्तिष्ठ राघव । तत्सीतावचनाद्रामः प्रासादं प्रति सीतया ॥१७॥
 गत्वा दिव्यासने स्थित्वा गवाक्षं रुक्मभूषितैः । रत्नोद्भवकपाटैश्च मुक्ताजालविराजितैः ॥१८॥
 राजवीथ्यां हङ्कुजतं ददर्श जनकौतुकम् । सीतार्यं दर्शयामास कौतुकानि स राघवः ॥१९॥
 स्वीयदक्षिणहस्तस्य तर्जन्या मुदिताननः । एतस्मिन्नन्तरे हङ्कु द्विजपत्नी तु सीतया ॥२०॥
 दृष्ट्वाऽलङ्कारवस्त्राद्यैर्हीना कटिधृताऽभङ्का । गच्छन्ती राजमार्गेण कृशा भिक्षार्थमुद्यता ॥२१॥
 तां तादृशीं निरीक्ष्याथ दास्याह्य विदेहजा । पप्रच्छ भूषणाद्यैस्त्वं किमर्थं रहिता क्षसि ॥२२॥
 सा प्राह तीर्थयात्रार्थं न्यक्स्था मां तानलालिता । तानगेहे मनो भर्ता ततोऽपि जरठो मृतः ॥२३॥
 गुरुगेहेऽवतिकायां यत्नेन आतरो मम । न पोषकः कोऽपि मेहेऽधुना सोमेऽस्ति वै मम ॥२४॥
 तस्मान्न सन्त्यलङ्कारवासांसि जनकान्मजे । इति तस्या वचः श्रुत्वा रामस्त्वं सन्निरीक्ष्य सा ॥२५॥
 निजालङ्कारवासांसि ददौ तस्यं विदेहजा । ब्राह्मणी सा पुनः प्राह गच्छ त्वं लक्ष्मणं प्रति ॥२६॥
 हेममुद्रा लक्ष्मितास्त्वं गृहाण ममाज्ञया । तथेति जानकीं पृष्ट्वा ययौ लक्ष्मणं तदा ॥२७॥

॥ ६ ॥ १० ॥ रामकी पीठपर तकिया लगी । और सीता रामके वामभागमें बैठी थीं । वहाँ नकली हाथी, घोड़े, ऊँट, मंथी और राजदूत आदिके खिलौने रखे हुए थे । उनके राम सीताने अहो देरतक खेलवाड़ किया । उनमें बहुतसे खिलौने सुवर्ण, हाथीदाँत एवं रत्नोंके बने हुए थे और उनपर बड़िया रंगारंग की हुई थी ॥ ११ ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर पित्रङ्गमें बैठे हुए बहुतसे पश्रियोंके साथ रामने क्रीड़ा की । उस समय भी दासिर्ग पंखा झल रही थीं ॥ १३ ॥ इसके बाद सीता द्वारा बुलाई हुई बहुत-सी नर्तकियाँ आकर वहाँ नाचने-गाने लगीं ॥ १४ ॥ वे देण्यामें षड्जस्वरमें सुन्दर गीत गा-गाकर बहुत देर तक उन्हें भुनातीं रहीं । इसके बाद सीताने उनको बहुतसे वस्त्र-अलङ्कार आदि दे-देकर विदा किया ॥ १५ ॥ उनको विदा करके सीता रामसे कहने लगीं—आज हमारी यह इच्छा है कि आपके साथ छतपर बैठकर बाजारका कौतुक देखूँ ॥ १६ ॥ उठिए और जल्दी चलिए । तदनुसार राम सीताके साथ प्रासादपर गये ॥ १७ ॥ वहाँ एक दिव्य आसनपर बैठकर नुवर्णके बने हुए झरोखोंमें जिनमें विविध प्रकारके रत्नोंके दरवाजे लगे थे और मोतियोंकी झालरें लटकती हुई थीं ॥ १८ ॥ उनमेंसे ही राजमार्गके जनसमुदायका कौतुक देखने लगे और सीताको भी दाहिने हाथकी तर्जनी अंगुलीके संकेतसे दिखाने लगे ॥ १९ ॥ इसी बीच सीताने देखा कि एक ब्राह्मणकी पत्नी वस्त्र-अलङ्कारको त्यागे नङ्गी कली आ रही है । उसको कमरपर एक बच्चा है, उसकी दुबली-पतली देह और उसके आकारसे मालूम पड़ता है कि वह भिक्षा माँगनेके लिए बाजार आयी है ॥ २० ॥ २१ ॥ उसको यह दृष्टा देखकर सीताने दासी द्वारा उसे अपने पास बुलवाया और पूछा कि तুম इस तरह बिना वस्त्र और आभूषणके बाजारमें किसलिए घूम रही हो ? ॥ २२ ॥ उसने कहा कि मेरे पतिदेव घरमें मुझे अकेली छोड़कर तीर्थ-यात्राके लिए चले गये । मैं अपने पिताकी बड़ी दुलारी बेटो थी । इसलिए अपना घर छोड़कर पिताके पास गयी तो वहाँ पिताजी बुढ़ावस्याके कारण परलोक चले गये थे ॥ २३ ॥ अवन्तोपुरीमें मेरे पिताके कई छोटे-छोटे बच्चे अर्थात् मेरे भाई हैं, किन्तु मेरा तथा बच्चोंका पालन करनेवाला इस संसारमें कोई नहीं ॥ २४ ॥ इसी कारण जनकान्मजे ! मेरे पास वस्त्र और आभूषण नहीं हैं, जिनमें पहनूँ । इस प्रकार उसकी बातें सुनकर सीताने एक बार रामको खोर देखा और अपने सब वस्त्राभूषण उतारकर उस विप्रपत्नीको

पूर्वाधिकानलंकागन् स्वदेहे जानकी पुनः॥ दपार दिव्यवामांसि हेमततूङ्गवानि सा ॥२८॥
 लक्ष्मण आह्वणी गत्वा सीतावाक्यं न्यवेदयत् । ददौ तस्यै लक्ष्मणोऽपि हेममुद्रास्त्रयैव सः ॥२९॥
 सीतावक्त्रपाण्डुरमिता मृषा मेने न तद्वचः । कः समर्थो रामराज्ये मृषां वक्तुं भवेदिति ॥३०॥
 अथ सीताऽपि सीमित्रि स्वां दासीं प्रेष्य वै तदा । अयोध्यायां तथा राष्ट्रे घोषयामास इन्दुभिम् ॥३१॥
 सप्तद्वीपेषु सर्वत्र पृथग्दर्शेषु सादरम् । काचिन्नारी पुमान् वापि विना सद्रत्नभूषणैः ॥३२॥
 रघुभारैर्मया शक्तो यदंशे यत्पुरे कदा । तद्राक्षसास्तु ■ दण्डो रामस्यापि विश्लेषतः ॥३३॥
 इति मन्त्रिष्वितं ज्ञात्वा स्वकोशैः स्वायराष्टके । बस्त्रालङ्कारभूषामिर्भूषणैश्च द्विजादयः ॥३४॥
 सप्तद्वीपतृपतयश्चेत्थ सीतामुक्तिधितम् । गजदुन्दुभिघोषेण भुत्वा चक्रुस्तथैव च ॥३५॥
 तदारभ्य जगत्यां न कश्चिद्विगतभूषणः । नारी वा पुरुषो वाऽऽसीत् कुत्राप्यवनिजामयाद् ॥३६॥
 एवं नानाकौतुकानि भूष्या सीताऽकरोन्मुदा । अथ रामः सर्वां गत्वा पुनर्यामे चतुर्थके ॥३७॥
 चकार राजकर्माणि धर्मेणैव स्वचन्द्रमुनिः । नटनाटकवेद्यानां कौतुकानि महाति च ॥३८॥
 ददर्श ■ समाभ्ये स्तुतो मागवन्दिभिः । ततः सर्वान्विमृज्याथ ययौ सीतापहं प्रभुः ॥३९॥
 सायसंध्यादिकं कृत्वा हुत्वा होमं यथाविधि । ततो गन्धादिभिः पूज्य ब्राह्मणांश्चापि राघवः ॥४०॥
 नानोपहारनैवेद्यं दत्त्वा तैभ्यः स्वयं प्रभुः । कृत्वोपहारं श्रीरामः भुत्वा पौराणिकीं कथाम् ॥४१॥
 कीर्तनैर्हरिदासानां वेद्यानां नर्तनैरपि । पौरोदिताभिर्वाचाभिर्गायकानां च गायनैः ॥४२॥
 सार्धयामां निश्चा नीत्वा ययौ निद्रास्थलं शनैः । ततो रत्नप्रकाशैः स जगाम जानकीं प्रसि ॥४३॥

दे दिये और कहा कि तुम लक्ष्मणके पास चली जाओ और उनसे मेरे आज्ञानुसार एक लाख स्वर्णमुद्रा ले लो । 'बहुत अच्छा' कहकर वह ब्राह्मणी लक्ष्मणके पास गयी ॥ २५-२७ ॥ इसके अनन्तर सीताने फिर उससे हुने गहने पहन लिये और सुवर्णके तारोंसे बने हुए बहुतसे सुन्दर वस्त्रोंको भी धारण किया ॥ २८ ॥ उधर ब्राह्मणा लक्ष्मणके ■ गयी और सीताको आज्ञा सुनायी । लक्ष्मणने जानकीके कथनानुसार उसे एक लाख स्वर्णमुद्रायें दे दी ॥२९॥ ब्राह्मणीकी बातपर लक्ष्मणको कुछ भी संदेह नहीं हुआ । क्योंकि रामचन्द्रजीके राज्यमें किसीका झूठ बोलनेका साहस ही कैसे हो सकता था ॥ ३० ॥ इसके पश्चात् सीताने लक्ष्मणके पास एक दासी द्वारा यह कहला भेजा कि मेरा आज्ञासे अयोध्याके समस्त राज्यमें छिदारा बिटवा दो और सातों द्वीपों तथा भिन्न-भिन्न देशोंमें भी कहला दो कि कोई स्त्री और पुरुष ऐसा न दिखायी दे ■ जिसके शरीरपर बढ़िया वस्त्र और आभूषण न हों ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ मेरे गुप्तचर इस बातकी ढोढ़ लेनेकी सर्वत्र घूमते रहें । यदि कहां किसी देश ■ किसी राष्ट्रमें कोई वस्त्राभूषणविहीन देखा जायगा तो उस देशके राजाको मेरा तथा रामचन्द्रजीका आज्ञाके अनुसार घोर ■ भुगतना पड़ेगा ॥ ३३ ॥ मेरी यह आज्ञा सुनकर सब राजे अपने देशकी प्रजाको अपने खजानेके प्रथमसे उत्तम वस्त्राभूषण तैयार करवाकर बेटवा दें । समस्त ब्राह्मणादि द्विजातियोंको अच्छे-अच्छे वस्त्र-जलद्वारोंसे अलंकृत करायें ॥ ३४ ॥ तदनुसार सातों द्वीपोंके नृपातयोंने रामदुन्दुभि द्वारा घोषित सीताजीकी उस घोषणाको सुन-सुनकर विविधत् ■ पालन किया ॥ ३५ ॥ तबसे साताके भयसे जगतीतलमें कोई ऐसा मनुष्य नहीं दिखाई देता था, जो सुन्दर वस्त्राभूषण ■ पहने हो ॥ ३६ ॥ इस प्रकार सीताजीने पृथ्वीमण्डलमें न जाने कितने कौतुक किये । तदनन्तर चौथे प्रहर रामचन्द्र अपने भ्राताजीके ■ समाभवतमें गये ॥ ३७ ॥ वहीं घनपूर्वक राज्यके ■ कार्य सम्पन्न किये । फिर नटोंके नाटक और वेद्याओंके विविध प्रकारके नृत्य देखे, बग्गीजनोंकी स्तुतियां सुनीं और सबको विदा करके फिर सीताजीके भवनको लौट गये ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ शामकी संध्यादिक नित्यकृत्य करके विविधत् हुवन किया । गन्धादिक अनेक उपचासोंसे शिवजी तथा ब्राह्मणों-की पूजा की ॥ ४० ॥ उन सबको विविध पकवानोंका नैवेद्य देकर स्वयं भोजन किया । पुराणोंकी कथायें सुनीं । तदनन्तर भगवद्भक्तोंका कीर्तन सुना और वेद्याओंके नृत्य देखे । जनपदवासियोंके कुलस-ग्रन्थ पढ़े और

साऽपि श्रुत्पुञ्जगामाथ रत्नदीपैः सखीयुता । ततः स सीतया रामः पर्वणे रत्नचित्रिते ॥४४॥
 चकार सीतया क्रीडां रञ्जयामास जानकीम् । ततस्तौ दंपती निद्रां चक्रतुर्वीजितौ शुभः ॥४५॥
 दासीभिर्व्यजनैश्चित्रैश्चायैर्हैमभूषितैः । एवं रामेण सीता सुखमाप पतिव्रता ॥४६॥
 सीतया रामश्चापि सुखमाप विशेषतः । एवं नानाकौतुकानि प्रत्यहं रघुनन्दनः ॥४७॥
 चकार सीतया सार्धं परिपूर्णमनोरमः । कदा चन्द्रस्य ज्योत्स्नाशामंगणे सद्यः प्रभुः ॥४८॥
 चकार सीतया निद्रां कदा प्रासादमण्डके । कदा प्रासादान्तरे वाऽपि गराक्षपवनैः शुभैः ॥४९॥
 सुखमाप कदा रामः कदा रहसि मन्दिरे । कदा कनकशृङ्खलासवितानसमंचके ॥५०॥
 कदा द्वाधामण्डपाद्यो जलयंत्रसमीपतः । काचभूम्यां रुक्मभूम्यां मणिभूम्यां कदाऽपि वा ॥५१॥
 स्फटिकादिसुभूम्यां हि कदा सुष्वाप राघवः । कदा स पुष्पके वाऽपि रंगशालान्तरे कदा ॥५२॥
 कदा स चित्रशालायां कदोशीरमये गृहे । कदा पुष्पमये मेहे कदा रंभावने वरे ॥५३॥
 कदा पुष्पवाटिकायां कदा वृक्षोर्ध्वसञ्चरति । शृङ्खलावृक्षसंवद्दोलके रत्नचित्रिते ॥५४॥
 कदा काष्ठमये दिम्बे मंचके रत्नभूषिते । कदा चकार तुलसीवाटिकायां रघूत्तमः ॥५५॥
 निद्रां जनकनन्दिन्या समायामयवा कदा । कदा द्वारोर्ध्वशसादे कदैकस्तम्भसञ्चरति ॥५६॥
 कदा स्वगृहदेहण्यां कदा वृन्दावनेऽपि च । एवं स सीतया रेमेऽयोध्यायां रघुनन्दनः ॥५७॥

इति श्रीमत्तकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे विलासकाण्डे वाल्मीकीये

सीतारामयोदिनवर्षावर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

(रामके द्वारा वेदांगनाश्रौको वरदान)

श्रीरामदास उवाच

एकदा राघवं द्रष्टुं तया स्नातुं मधावपि । शिष्यैः समाययी व्यासो मुनिभिः परिवेष्टितः ॥ १ ॥

गायकोके गायन सुनते-सुनते बाघी रात बिताकर वे गायनाशारमं गायन करनेकी बने । हारे आदि रत्नों द्वारा प्रकाशित मार्गते चलते हुए राम सीताके पास पहुँचे ॥ ४१-४३ ॥ सीता भी रत्ननिर्मित दीपोंके प्रकाशमें अपनी अनेक सखियोंके साथ रामचन्द्रके पास गयीं और राम सीताके साथ एक रत्नजटित पलङ्कपर बैठ गये ॥ ४४ ॥ रामने कुछ देर सीताको प्रसन्न करनेके लिए कुछ खेल किया । फिर दोनों सो गये और दासियाँ भंडा झलने लगीं ॥ ४५ ॥ इस तरह रामके द्वारा सीता तथा सीताके द्वारा राम विविध प्रकारका आनन्द सुटते रहे । जिनकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो चुकी थीं, ऐसे भगवाद् रामचन्द्रजीको यह नित्यकी दिनचर्या थी । उनके यहाँ नित्य ऐसे-ऐसे कौतुक हुआ करते थे । कभी विशाल भवनके अंगनमें, कभी प्रासादपर और कभी स्निहसीदार वड़िया कमरेमें राम सोते थे ॥ ४६-४९ ॥ कभी जहाँ अनेक प्रकारके मणियोंकी शृङ्खलायें लटकती थीं, ऐसे चाँदनीवाले किसी एकांठ कमरेके सुन्दर मंचपर, कभी बंगूरकी छाड़ीके नीचे, कभी जलयंत्रके समीप, कभी काचभूमिपर और कभी स्फटिकादिसे निर्मित सुन्दर मणिभूमिपर रामचन्द्रजी शयन करते थे ॥ ५०-५१ ॥ कभी पुष्पक विमानपर, कभी रङ्गशालामें, कभी चित्रशालामें, कभी खसकी टट्टियों-वाले घरोंमें, कभी फूलोंके घरमें, कदलीवनमें, कभी पुष्पवाटिकामें, कभी वृक्षके ऊपर बनी हुई झोपड़ीमें, कभी वृक्षमें बँधी जंगीरोसे बने हुए झूलेपर, कभी काष्ठोंके बने हुए दिम्ब मंचपर और कभी तुलसीकी बनी हुई वाटिकामें रामचन्द्रजी शयन करते थे ॥ ५२-५५ ॥ कभी रामचन्द्रजी सीताके साथ समाभवनमें, कभी द्वारके किसी एक ऊँचे प्रासादपर, कभी केवल एक स्तम्भपर बने हुए मकानमें, कभी अपने घरकी देहलीपर और कभी वृन्दावनमें सीताके साथ शयन करते थे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ इति श्रीमत्तकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये च० रामदेवपाण्डेयविरचिते ज्योत्स्नाभावाटीकासमन्विते विलासकाण्डे ॥ ६ ॥

समागतं मुनिं भुत्वा तं प्रत्युद्गम्य राघवः । ननाम शिरसा भक्त्या निनाय निजमन्दिरम् ॥ २ ॥
 दृष्ट्वा वरासनं तस्मै द्विजेभ्यश्चापि वै पृथक् । दृष्ट्वाऽऽमृतानि दिव्यानि चकार पूजनं पृथक् ॥ ३ ॥
 कामधेनुं द्रुवं रत्नैर्मणिभ्यां संभवेग्वि । व्यासं तं भोजयामास मुनिमिर्जानकीपतिः ॥ ४ ॥
 तावूलं दक्षिणं दत्त्वा प्रचक्ररसम्पुटः । पप्रच्छ कुशलं तस्मै व्यासाय रघुनन्दनः ॥ ५ ॥
 सीता तं बोधयामास व्यासं सरयवतीसुतम् । एतस्मिन्नन्तरे व्यासो कुशलं निजम् ॥ ६ ॥
 निवेद्य पृष्ट्वा तन्क्षेमं तमाह कीर्तुकात्पुनः । राम राम महाबाहो यथा राज्यं त्वया श्रुति ॥ ७ ॥
 भुज्यते न तथाऽन्येन केनापि पृथिवीभृता । पुरा भुक्तं न कोऽप्यग्रे भोक्ष्यते पृथिवीपतिः ॥ ८ ॥
 अन्यत्तेऽत्र महद्द्वैपमेकपत्नीव्रतं प्रति । दृष्ट्वातिविस्मयश्चित्ते जायते मे रघूत्तम ॥ ९ ॥
 कः सहेसात्र तारुण्यकामदावानलं नृपः । पदस्ये यौवने चापि त्वमेवास्मिन्व्रते क्षमः ॥ १० ॥
 इति व्यासवचः श्रुत्वा रामो व्यासं वचोऽब्रवीत् । मया त्रयः कृताः संति नियमा मुनिसत्तम ॥ ११ ॥
 मुखाद्विनिर्गतं वाक्यमेकमेव विनिश्चितम् । न क्रियते मृषा नोक्ष्यते क्षपरं पुनः ॥ १२ ॥
 अन्यत्सीता विनाऽन्या स्त्री कोमलपासदृष्टी मम । न क्रियते परा पत्नी मनसाऽपि चित्तये ॥ १३ ॥
 तथा यं हन्तुमिच्छामि बाणेनैकेन कोपतः । निह्न्यते तर्दकेन नाभ्यं बाण सुजाम्पहम् ॥ १४ ॥
 इत्थं त्रयः कृताः पूर्वं नियमास्त्वत्र भो मुने । सत्या एव भवत्त्वग्रेऽखंडितास्तव वाक्यतः ॥ १५ ॥
 तथैवास्त्विति सोऽप्याह व्यासः श्रीराघवं तदा । पुनराह मुनिः श्रीमान् व्यासः श्रीराघवं प्रति ॥ १६ ॥
 एकपत्नीव्रतस्यास्य फलेनापरजन्मनि । त्वं कृष्णरूपेण बहोनीरोभोक्ष्यसि राघव ॥ १७ ॥
 तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा विहस्य राघवोऽब्रवीत् । बह्विधं कामिनीर्भोक्तुं कृष्णरूपधरोऽप्यहम् ॥ १८ ॥

श्रीरामदास बोले—एक वाद रामचन्द्रजीका दर्शन करने तथा चैत्र रामनवमीको स्नान करनेके लिए अपने शिष्योंके साथ व्यासजी अयोध्यामें आये । उनके साथ बहुतसे मुनि भी थे ॥ १ ॥ मुनिका आगमन सुनकर राम स्वयं अगवानी करनेके लिए गये । उनके पास पहुँचकर रामचन्द्रजीने बड़ी भक्तिके साथ प्रणाम किया और अपने भवनमें ले गये ॥ २ ॥ उन्होंने व्यासजीको एक उत्तम बिछाया । इसके पश्चात् अन्य ऋषियों एवं शिष्योंको भी सुन्दर आसनपर बैठाकर और विधिपूर्वक कामधेनु तथा रत्नों द्वारा उत्पन्न वस्तुओंसे उन मुनियोंकी अलग अलग पूजा की और मुनियोंके साथ व्यासजीको रामने भोजन कराया ॥ ३ ॥ ४ ॥ बादमें तावूल और दक्षिणा दी । तब रामने हाथ जोड़कर भगवान् व्याससे कुशल-मङ्गल पूछा ॥ ५ ॥ सीताजी उस समय व्यासजीको पंगवा झल रही थीं । इसके बाद व्यासजीने रामको अपना कुशल-मङ्गल सुनाया और कहने लगे—हे महाबाहो राम । जैसा राज्य इस पृथ्वीपर कर रहे हैं, वैसा किसी राजाने नहीं किया और भविष्यमें भी कोई नहीं करेगा ॥ ६-८ ॥ इसके अतिरिक्त आप जैसे महिपालका एक पत्नीव्रत पालन करना देखकर मेरे मनमें तो बड़ा आश्चर्य होता ॥ ९ ॥ इस जगत्में ऐसा कौन राजा है, जो तरुणार्थमें कामरूपी दावानलको सहनेमें समर्थ हो । ऐसे ऊँचे पदपर रहकर जवानीके उमङ्गमें एकपत्नीव्रतधारी केवल आप ही हैं ॥ १० ॥ इस प्रकार व्यासजीको सुनकर रामने कहा—हे मुनिसत्तम ! मैंने अपने लिए तीन नियम बना लिये हैं । एक यह कि—॥ ११ ॥ एक बार मेरे मुखसे जो निकल, ध्रुव होती है । प्राणसङ्कट आनेपर भी नहीं बदलेंगे । दूसरी यह कि—सीताकी छोड़कर संसारकी समस्त स्त्रियाँ मेरे लिये कोसलमाके समान माता हैं । दूसरी स्त्रीको अपने मनसे भी नहीं सोचता ॥ १२ ॥ १३ ॥ तीसरी बात यह कि—मैं जिस क्रोध करके मारना चाहता हूँ, उसपर केवल एक छोड़ता हूँ । उसीसे उसे मार डालता हूँ, दूसरा बाण नहीं उठाता ॥ १४ ॥ हे मुनिराज ! ऐसा मैंने नियम बना रक्खा है । आपके आशीर्वादसे मेरे ये नियम अखंडित भावसे चल रहे हैं । वेदव्यासनं कहा—हे राजन् ! जैसी आपको इच्छा है, वैसा ही होगा । और मुनिये, जो आप इन जन्ममें एकपत्नीव्रतका पालन कर रहे हैं, इसके फलसे दूसरे जन्ममें आप बहुत-सी स्त्रियाँ पायेंगे ॥ १५-१७ ॥ फिर व्यासजीको सुनकर रामने कहा—हे महामुने !

द्वारिकायां यदाग्रे हि द्वापरे मुनिमनम । वेन व्रतेन दानेन नियमेनाथवा मुने ॥१९॥
 बहुनारीनिश्चयेन प्राप्स्यामीति वदन्व मातु । इति रामवचः श्रुत्वा व्यासो राघवमब्रवीत् ॥२०॥
 सम्यक्पुष्टं त्वया राम दानं ते प्रददम्यहम् । एकपन्नोत्रतादेव यद्यपि त्वं च स्त्रीर्विदुः ॥२१॥
 लभिष्यसि तथाप्यथ दानं नव वदाम्यहम् । साताभागमुत्तरेण मूर्तिमेकां रघूनम ॥२२॥
 एवं षोडशमूर्तीश्च कारय त्वं पुण्यं पुण्यम् । देहि त्वं सरयूनद्यास्तीरे विप्रेभ्य आदरात् ॥२३॥
 वञ्चालङ्कारभूषाद्यैर्दक्षिणाभिश्च ताः शुभाः । अनेन बहुनागेस्त्वं लभिष्यस्यन्त्यजन्मनि ॥२४॥
 तथेति राघवश्चापि मूर्तीः कृत्वा मनोरमाः । ददौ ताः सरयूनद्यां ब्राह्मणेभ्यस्तु षोडश ॥२५॥
 ततस्ते आह्वयान्स्तुष्टा रामायाशीर्देदुर्मदा । दत्तमेकगुणं राजन् सहस्रगुणितं पुरा ॥२६॥
 अस्माकं वचनादानफलं तव भविष्यति । षोडशस्रोमहस्याणि त्वं लभिष्यसि निश्चयान् ॥२७॥
 तथास्तिवत्याह गमोऽपि ततो विप्रान्व्यसर्जयत् । प्रणम्य पूजितं व्यासं ददावातां रघूद्वजः ॥२८॥
 अथैकदा रामचन्द्रः सीतया सरयुतटे । मधुमासे वस्त्रमेहे स्थितः क्रीडां चकार मः ॥२९॥
 एतस्मिन्नन्तरेऽपोष्यां नानादेशनिवाaminः । रामतीर्थे मधौ स्नातुं समाजग्मुः सहस्रशः ॥३०॥
 सुरा यक्षाः किन्नराश्च गन्धर्वाः पन्नगा नगाः । वल्क्यश्च सरितः सर्वास्तीर्थानि पुनर्यो नृपाः ॥३१॥
 अप्सरसः पन्नगाश्च खगाः क्षेत्राणि चानराः । अथैका देवपत्न्यो शाल्वाऽस्पृष्ट्यां विदेहजाभू ॥३२॥
 परस्परं ताः समन्व निशीथे राघवं प्रति । समाजग्मुर्दिव्यवस्त्ररत्नाभरणभूषिताः ॥३३॥
 रामसौन्दर्यसंभ्रान्ताः कामबाणप्रपीडिताः । ता दृष्ट्वा रामदूतास्ते पप्रच्छ रक्षणस्थिताः ॥३४॥
 युवं किमर्थं संप्राप्ता निशीथेऽव भयावहे । कथयन्तं हि नः सर्वं मा शङ्कां कुरुताम हि ॥३५॥
 ता ऊचुः राघवं द्रष्टुं समायाता वयं स्त्रियः । अधुना चेद्वायवस्य दर्शनं न भविष्यति ॥३६॥

भाग द्वारिकमें कृष्णकृष्णसे मैं बहुत सी स्त्रियोंके साथ भोग करूँगा सही, लेकिन वह कौन-सा ऐसा । ■ अबया दान है, जिसको करनेसे मैं आगेके जन्ममें बहुत-सी नारिणोंको पा सकूँगा ॥ १८ ॥ १९ ॥ व्यासदेवने कहा— हे राम ! आपने बहुत डोक प्रश्न किया है । ■ आपको वह दान बतलाता हूँ । यद्यपि एक नारीश्रतके पुण्यसे ही आपको कितनी ही स्त्रियाँ मिलेंगी । तथापि वह दान बनाये देना है । मोताके समान भारके सुवर्णकी एक मूर्ति बनवाइये । फिर उसी तरह सोलह मूर्तियाँ तैयार करा ले और उन्हें विविध प्रकारके वस्त्रों-भूषणोंसे भूषित करके सरयू नदीके तटपर ब्राह्मणोंको दान दे दीजिये ॥ २०-२३ ॥ ऐसा करनेसे आप आगे जन्ममें बहुत-सी स्त्रियाँ पायेंगे ॥ २४ ॥ रामचन्द्रने उसे स्वीकार किया । तदनुसार उन्होंने सीताकी सोलह मूर्तियाँ बनवायीं और सरयू नदीके तटपर ब्राह्मणोंको दान दिया ॥ २५ ॥ उन ब्राह्मणोंने प्रसन्न होकर रामको यह आशीर्वाद किया कि आप इस समय जो कुछ हम लोगोंको दे रहे हैं, सो सहस्रगुणा होकर आपको प्राप्त हो ॥ २६ ॥ हम लोगोंके आशीर्वादसे आपको यह फल अवश्य प्राप्त होगा । इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आपको भविष्यमें सोलह हजार स्त्रियाँ मिलेंगी ॥ २७ ॥ रामजाने भी कहा कि ' ठीक है, ऐसा ही होगा ' और उन विप्रोंकी तथा व्यासजीकी भली-भाँति पूजा करके विदा किया ॥ २८ ॥ एक बार राम चैत्रमासमें सरयू-तटपर सीताजीके साथ पटगुह (तम्बू) में विहार कर रहे थे । तभी चैत्र रामनवमीपर सरयूस्नान करनेके लिये हजारों यात्री अयोध्या ■ पहुँचे ॥ २९ ॥ ३० ॥ बहुतसे देवता, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, पन्नग, पर्वत, नर्दियाँ, समस्त तीर्थ, मुनि, राजे, अप्सरायें, खग, क्षेत्र, चानर आदि वहाँ स्नान करनेके निमित्त आये । एक दिन देवताओंकी स्त्रियाँ, जब कि सीताजी मासिक धर्ममें थीं, तब आपसमें सलाह करके विविध प्रकारके वस्त्राभूषण पहनकर रामचन्द्रजीके पास गयीं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ वे सबको सब रामके सौन्दर्यको देखकर पगलो हो गयी थीं । उन्हें देखकर रसकोमि पूछा— ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ तुम लोग कौन हो ? आधी रातके समय यहाँ किस लिये आयी हो ? साफ-साफ बतला दो, धकड़ाओ नहीं ॥ ३५ ॥ उन्होंने कहा कि हम सब स्त्रियाँ रामचन्द्रको

जातो वधस्तदाऽस्माकं जीवितानि नदीजले । इति तामां वचः श्रुत्वा दूतास्ते राघवं जवात् ॥३७॥
 दास्या निवेदयामासुः स्त्रीवृत्तं तत्प्रविस्तरम् । श्रुत्वा दामीमुखाद्रामः सैकते मञ्चके स्थितः ॥३८॥
 समाहूय स्त्रियः सर्वा ददर्श रघुनायकः । ताश्चापि दृष्ट्वा श्रीरामं मेनिरे कृतकृत्यताम् ॥३९॥
 ततस्ता राघवं नन्वा लज्जयाऽभ्योमुस्ताः स्त्रियः । पीडिताः कामवाणैश्च तस्थुः श्रीरामसन्निधौ ॥४०॥
 ताः पप्रच्छ राघवोऽप्यागमनमप्यथ कारणम् । राघव तदा प्रोचुः सर्वं वेत्ति स्वमीश्वर ॥४१॥
 ज्ञात्वा तामां रामचन्द्रो हृद्रतं प्राह ताः पुनः । एकपत्नीव्रतं मेऽस्ति चैतज्जन्मनि मीः स्त्रियः ॥४२॥
 न श्रेयं मे मृषा वाक्यं गम्पतां स्वस्थलं जवात् । माऽभूदरमो मद्राज्ये राज्ञां वै निरयप्रदः ॥४३॥
 इति राघवथाग्वाणैर्भिन्नमर्मस्थलाः स्त्रियः । ययुर्मूर्छां क्षणादेव सिकतायां सहस्रशः ॥४४॥
 ता मूर्छाविह्वला दृष्ट्वा रामो विह्वलमानसः । नारीः मंगोषधन् प्राहं हे नार्यः श्रयतां मम ॥४५॥
 वाक्यं सेदापहं वोऽय द्वापरे कृष्णरूपभृक् । अहं व्रजे भविष्यामि नन्दगोपेशपालिते ॥४६॥
 तदा देवास्तु गोपाला भावि मद्वन्दानतः । भविष्यन्ति सुरेशश्च नन्दस्तत्र भविष्यति ॥४७॥
 भविष्यथ तदा युयं गोपिकाः सकला व्रजे । शुभाक पूरयिष्यामि यथेच्छं वाञ्छितं तदा ॥४८॥
 रामकीडां हि युष्माभिः करिष्यामि सशयः । वृन्दावने तु कालिन्दां सैकते निशि वै चिरम् ॥४९॥
 भवध्वं स्वस्थचित्ताश्च गच्छन् स्वस्थलं मुरा । इति रामवचोरूपसुधया जीविताः स्त्रियः ॥५०॥
 किञ्चित्तुहृदो रामं नत्वा जम्बुनिजं स्थलम् । एतस्मिन्तरे तत्र मधुस्तानार्थमादरात् ॥५१॥

मायापुर्याः समायाता रम्या गुणवती शुभा ।

श्रीरामचन्द्र उवाच

का सा प्रोक्ता गुणवती किञ्चिला कस्य कन्यका ॥५२॥

देखनेके लिए आयी हैं । यदि इगी समय हमको रामके दर्शन नहीं मिलेंगे तो हम सब इस सरयू नदीमें कूदकर अपने प्राण दे देंगे । ऐसी बात सुनकर दूतगण तुरन्त रामके पास दौड़े ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ वहाँ पहुँचकर उन्होंने दासियों द्वारा रामचन्द्रजीके पास सब समाचार कहलाया और स्त्रियोंके उस वृत्तान्तकी दासियोंने विस्तारपूर्वक रामको सुना दिया । दासियोंके मुखसे यह सुनकर रामने उन सब देवाङ्गनाओंको बुलवाया । पास पहुँचकर स्त्रियोंने भगवान्को देखा । देवाङ्गनाओंने उनकी उस सखीकी छबिको देखकर अपनेको कृत-कृत्य ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ उन्होंने लजित होकर भगवान्को किया और कामवाणसे पीडित होकर बहोपर बँठ गयीं ॥ ४० ॥ रामने उनके आगमनका पूछा । उन्होंने कहा—आप सबके ईश्वर हैं, क्या आपसे कौन बात छिपी रह सकती है । आप कुछ जानते हैं ॥ ४१ ॥ उनके मनकी जानकर रामने कहा—हे हे स्त्रियो ! मैं एकपत्नीव्रतधारी हूँ ॥ ४२ ॥ मैं जो कह रहा हूँ, उसे मिथ्या मत समझना । अच्छा, अब तुम लोग अपने-अपने धरेपर जाओ । ऐसा करो कि जिनसे मेरे द्वारा किसी प्रकारका अधर्म न हो । क्योंकि जिस राजाके राज्यमें अधर्म होता है, उसे नष्कगाम्य होना पड़ता ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ तरह रामकी बातें सुनकर कामवाणसे पीडित वे हजारों स्त्रियाँ क्षणभरमें मूर्छित हो गयीं ॥ ४४ ॥ उनको मूर्छित देखकर विह्वलमनस्क रामचन्द्रजी उनकी सन्तोष देते हुए कहने लगे—हे नारियों ! मेरी सुनो, इस तरह अधीर मत होओ ॥ ४५ ॥ जो मैं कहता हूँ, उसे सुनकर तुम्हारा सब चेहरा दूर हो जायेगा । द्वापरमें मैं कृष्णरूपसे गोपेश नन्द द्वारा पालित व्रजमें जन्म लूँगा । उस समय सम्स्त देवता मेरे आशीर्वादसे गोप होंगे, हृन् नन्दरूपसे जन्म लेंगे और तुम सब उन गोपालोंकी गोपियाँ होओगी । उस समय मैं तुम लोगोंकी सम्स्त कामनाएँ पूर्ण करूँगा ॥ ४६-४८ ॥ वृन्दावनमें यमुनाकी रेतीमें रात्रिके समय तुम लोगोंके मैं रासक्रीड़ा करूँगा ॥ ४९ ॥ अब तुम लोग स्वस्थ होकर अपने-अपने स्थानको जाओ । इस तरह रामके वचन-रूपी सुधासे जीवित और किञ्चित् सन्तुष्ट होकर अपने-अपने स्थानकी लौट गयीं । इसके माया-

तत्रदस्य सविस्तार कस्यासीत्प्रमदा पुरा । इति शिष्यवचः श्रुत्वा रामदासोऽग्रवीःपुनः ॥५३॥

इति श्री.सतकोटिरामचरितांतर्गने धीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विलासकाण्डे

देवपत्नीवरदानं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

(पिंगला वेम्बाके कारण रामपर सीताका कोप)

श्रीरामदास उवाच

आसीत्कृतयुगस्याते मायापुर्यां द्विजोत्तमः । आग्रयो देवशर्मणि वेदवेदांगपारगः ॥ १ ॥

आतिथेयोऽग्निशुश्रूषी सौरमतपगयणः । सूर्यमागधयन्निन्यं साक्षाभ्यर्च्य इवापरः ॥ २ ॥

तस्यातिवयसश्चापीन्ताम्ना गुणवती सुता । अपुत्रः स स्वशिष्याय चन्द्रनाम्ने ददौ सुताम् ॥ ३ ॥

तमेव पुत्रवन्मेने स च तं पितृवदधी । तौ कदाचिद्वनं यातौ कुशेध्महरणाय वै ॥ ४ ॥

हिमाद्रिपादे वेमेन चेरस्तुस्तायिनप्तिनः । तावतां राक्षसं घोरमपज्येतां पुनःस्थितम् ॥ ५ ॥

भयनिहलसर्वाङ्गावसमर्षा पलायितुम् । निहतौ राक्षसा तेन कृपांतमपरूपिणा ॥ ६ ॥

तौ तत्क्षेत्रप्रभावेण धर्मशीलतया पुनः । धेकुण्डभुवनं यातौ नीतां विष्णुगणैस्तदा ॥ ७ ॥

यावज्जीवं तु यथाभ्यां सूर्यपूजादिकं कृतम् । कर्मणा तेन मन्तृष्टो विष्णुस्त्राभ्यां बभूव ह ॥ ८ ॥

क्षैषाः सौराक्ष गाणेशा वैष्णवाः शक्तिपूजकाः । तमेव प्राप्नुवन्तीह वयःपः सागरं यथा ॥ ९ ॥

एकः स पचधा जनिः क्रियया नामभिः किल । देवदत्तो यथा कश्चित्पुत्राद्याह्वाननामाभिः ॥ १० ॥

तस्य तौ तद्भुवनाधिवसिनीं विमानयानौ रत्नचर्चवामुभा ।

नक्षत्ररूपौ हरिनन्निधानशी दिव्यांगनाचन्दनभोगभोगिनी ॥ ११ ॥

पुरोसे एक गुणवती नामकी भुवरी स्त्री वहाँ चंपनानाके निमित्त आयी । विष्णुप्रसन्न पूछा—हे गुरु ! वह गुणवती कौन थी, किसकी पुत्री थी और उसका शील-स्वभाव कैसा था ? वह पहले किसकी स्त्री थी ? तो कृपया विस्तारपूर्वक ज्ञाप मुझे बनलाइए । इस प्रकार विष्णुगणसकी बात सुनकर श्रीरामदासने फिर कहना आरम्भ किया ॥ ५०-५३ ॥ इति श्री.सतकोटिरामचरितांतर्गने धीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेज-पाण्डेयविरचित'उपोत्पन्ना'भाषाटीकासमन्विते विलासकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

श्रीरामदासने कहा—बहुत दिनों से बात है कि जब सत्ययुगके अन्तमें मायापुरीमें सब वेदवेदांगपारङ्गुल भगिरीशका देवशर्मा नामक एक ब्रह्मण रहता था ॥ १ ॥ वह अतिविपूजक, अग्निमेंदी, सूर्यकी आराधना करनेवाला तथा दूसरे सूर्यकी नाई तजस्वी था ॥ २ ॥ उसकी वृद्धावस्थामें एकमात्र गुणवती नामकी कन्या प्राप्त हुई थी, उसके कोई पुत्र नहीं था । सो उसने गुणवतीका विवाह चन्द्र नामके अपने एक शिष्यके साथ कर दिया ॥ ३ ॥ देवशर्मा चन्द्रकी पुत्रके समान मानता था । उसी तरह चन्द्र भा देवशर्माकी अपने पिता सहस्र समझता था । एक दिन वे दोनों कुशा तथा समिधा लानेके लिए जंगलमें गये ॥ ४ ॥ जाते-जाते वे दोनों हिमवान् पर्वतके समीप पहुँचे और इधर-उधर घूमने लगे । उसी समय उन्होंने अपने सामने एक बड़े भारी राक्षसकी देखा ॥ ५ ॥ उसे देखकर भयसे उनके अंग जितिल हो गये, जिससे नागनेकी सामर्थ्य नहीं रही और यमराजके समान उस विकराल राक्षसने उनको मार डाला ॥ ६ ॥ वे दोनों उस क्षेत्रके प्रभाव तथा अपनी धर्म-शीलतासे विष्णु लोक गये । विष्णुगण उन्हें वहाँ लीवा ले गये थे ॥ ७ ॥ उन्होंने जन्मभर मूर्खादि देवताओंका पूजन किया था । इस कारण उनपर विष्णुप्रसन्नान् बहुत प्रसन्न हुए ॥ ८ ॥ इस संसारमें शैव, सौर, गाणेश, वैष्णव तथा शक्तिपूजक ये सब भगवान्के रूपमें उसी तरह जाते हैं, जैसे सर्पोंका जल समुद्रमें जाता है ॥ ९ ॥ वह अकेला ईश्वरनाम और कर्मके प्रपातमें पाँच लोगोंमें विभक्त होता है । जैसे अकेला देवदत्त किसीका पुत्र, किसीका भाई, किसीका चचा कहलाता है । लेकिन वास्तवमें वह देवदत्त ही रहता है ॥ १० ॥ इसके अनन्तर

ततो गुणवती श्रुत्वा रक्षसा निहतानुमौ । पितृभर्तृजदुःस्वार्ता विललाप भृशतुरा ॥१२॥
 सा गृहोपस्करान्सर्वान्विक्रीय शुभकर्मकृत् । तयोश्चक्रे यथाशक्ति परलोकक्रियां तदा ॥१३॥
 तस्मिन्नेव पुरे चायं चक्रे प्रभृतिजीविनी । विष्णुभक्तिपथं शीघ्रा सत्यशीचा जितेन्द्रिया ॥१४॥
 प्रतापकं तथा सम्पदाजन्ममरणात्कृतम् । एकादशीव्रतं सम्पक्त्वे सेवनं कार्तिकरूपं च ॥१५॥
 माघे चैत्रे पाषाणेऽपि स्नानानि प्रतिवत्सरम् । संमार्जनं विष्णुगेहे स्वस्तिकादिनिवेशनम् ॥१६॥
 नित्यं विष्णोः पूजनं च मन्त्र्या तत्परमानसा । इत्थं प्रतापकं सम्पक्त्वे सा चकारातिभक्तितः ॥१७॥
 एकदा सा गुणवती पौराणिकमुखेन हि । श्रुत्वा महत्फलं शिष्य साकेते सरयूजले ॥१८॥
 चैत्रश्रनानरूपं कैवल्यदायकं जनसंयुता । ययौ श्रीरामनगरीं रामतीर्थेऽसञ्छुमा ॥१९॥
 सैकदा राघवं द्रष्टुं सरयूसैकतस्वितम् । वासोगेहे रहः पश्यन् ययौ बंधुममन्वितम् ॥२०॥
 पूजापात्राणि हस्ताभ्यां विभ्रती द्वारमस्थिता । प्रतीहारेण रामाय वेदिता सा विवेश ॥२१॥
 वासोगेहं ददर्शाथ सीतया रघुनायकम् । रत्नमंचकसलग्नं धृताधोकोपवर्हणम् ॥२२॥
 क्रीडन्तं सारिभिः पार्श्वैः सीतया लक्ष्मणेन च । कैकेयीतनयाम्भ्यां च सखीभिः परिवारितम् ॥२३॥
 मयूरविच्छसम्भूतचामरैः परिवीजितम् । रत्नचित्ररुक्ममये नूपरे पदयोर्वरे ॥२४॥
 विभ्रन्तं रक्षसां कक्षां रत्नरुक्मविभूषिताम् । रत्नरुक्ममये दिव्यकङ्कणे करयोर्वरे ॥२५॥
 विभ्रन्तं भुजयोर्दिव्यकेयूरे रत्नभूषिते । कण्ठदेशे कौस्तुभं च हृदि चिन्तामणिं शुभम् ॥२६॥
 विभ्रन्तं विविधान्द्वारान् रत्नमाणिव्यनिर्मितान् । तथाजलरुक्मज्जांश्च मुक्ताहारान् विचित्रितान् ॥२७॥

ये दोनों चैकुण्ठभुवनमें रहने लगे । उन्हें विमानकी सवारी मिली थी और सूर्यके समान उनका तेज था । विष्णुके समान उनका रूप था और उनके करीरमें दिव्य चन्दन लगा रहता था ॥ ११ ॥ इसके पश्चात् जब गुणवतीने सुना कि मेरे पिता और पति दोनों किसी राजस द्वारा मार डाले गये हैं । तब उसे अतिशय दुःख हुआ और वह विलाप करने लगी ॥ १२ ॥ फिर धरमें जो कुछ माल-मताह था, सब बेच डाला और अपनी भक्तिके अनुसार उनको पारलौकिकी क्रिया पूर्णकी । तबसे वह भोव भौंकर खाती हुई उसी नगरमें रहकर अपना जीवन बिताने लगी । गुणवती विष्णुकी भक्ति करती हुई सत्य-शौच-जितेन्द्रितादि गुणोंसे पूर्ण हो गयी ॥ १३ ॥ १४ ॥ उसने अपने जीवन भरमें केवल आठ ॥ क्रिये ये । वह एकादशी व्रत, कार्तिकका सेवन, मार्गशीर्ष, चैत्र ॥ माघमें प्रतिवर्ष स्नान किया करती थी । वह विष्णुके मन्दिरमें बुहारी देती तथा स्वस्तिकादि रचती थी ॥ १५ ॥ १६ ॥ भक्तिसे और सावधान हृदयसे वह नित्य विष्णुका पूजन करती थी । ॥ तरह इन जाहों प्रतीको श्रद्धासमेत करती रही । हे शिष्य ! एक दिन उसने एक पौराणिकसे सुना कि चैत्रमासमें अयोध्याके सरयूजलका बड़ा माहात्म्य है और चैत्रमासमें तो वहाँ स्नान करनेसे सहज ही में मुक्ति मिल जाती है । यह सुनकर बहुतसे आदमियोंको ॥ सगर गुणवती चैत्रस्नानके लिए अयोध्या आयी और उसी पावन नगरीमें ठिक गयी ॥ १७-१८ ॥ एक दिन गुणवती जहाँ सरयूकी रेतीमें रामचन्द्रजी डेरा डाले हुए थे, वहाँ ॥ पहुँची । उस समय रामचन्द्रजी पटगृहके ॥ एकान्त कमरेमें लक्ष्मण और सीताके साथ बैठे थे । फाटकपर पहुँचकर गुणवतीने प्रतीहारी द्वारा सन्देश भेजा और स्वयं पूजापात्र हाथमें लिये बाहर ही खड़ी रही । प्रतीहारीके लौटनेपर वह अन्दर गयी ॥ २० ॥ २१ ॥ वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि रामचन्द्र सीताके साथ रत्नजटित मन्चपर बैठे थे और तर्किया लगी थी ॥ २२ ॥ भगवान् राम सीता, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न सारिका और पक्षिके साथ खेल रहे थे । सखियाँ चारों ओरसे घेरकर खड़ी थी ॥ २३ ॥ मयूरके पल्लवोंके बने हुए पंखे चले रहे थे । उनके दोनों पाँवोंमें रत्नजटित नूपुर और कमरमें रत्नजटित मेखला पहनी थी । दोनों हाथोंमें जड़ाऊ कंकण पड़े थे ॥ २४ ॥ २५ ॥ हाथोंमें सुवर्णके रत्नभूषित दिव्य केयूर थे । कंठमें कौस्तुभमणि तथा हृदयमें चिन्तामणि था । राम विविध रत्नोंके जड़ाऊ हार पहने थे । सुनहले तथा चित्र-विचित्र मोतियोंके हार उनके गलेमें पड़े थे ॥ २६ ॥ २७ ॥

तुलसीकाष्ठहारांश्च पु पहराननेकशः । प्रवालमणिहारंश्च मृङ्खलाः काञ्चनोद्भवाः ॥२८॥
 पदकानि विचित्राणि रत्नमणिक्कयन्त्यपि । रंभाकलाञ्जनदृष्टानलंकारान्विविधितान् ॥२९॥
 रत्नमणिक्कयसंयुक्तान्मुकुटानिमंडितान् । लीटमणिकरैश्चित्राज्जामनामोक्तितान्पि ॥३०॥
 अंगुलीष्वपि विभ्रन्तं हस्तयोर्मृद्रिकाः शुभाः । रत्नमणिक्कयमुक्ताभिश्चित्रा स्वमयिनिर्मिताः ॥३१॥
 रामनामोक्ताश्चापि पवित्रा उज्ज्वला अपि । रत्नमुक्ताहेममये कण्ठ्याः कुक्षले वरे ॥३२॥
 विभ्रन्तं महिसाह्वयानलंकाराननेकशः । विभ्रन्तं रविसादृश्यं मुकुटं रत्नविधितम् ॥३३॥
 नानामणिसमायुक्तं कलशैरतिशोभितम् । मुक्ताप्रवालवैदूर्ययुक्तं हेममयं वरम् ॥३४॥
 एवं गुणवती राम कोटिसूर्यसमप्रभम् । हेमवर्णं महागम्प कंजवत्रायनेक्षणम् ॥३५॥
 सोमाननं कंजहस्तं दृष्ट्वा तं एणनम कांसां समुन्वापगद्रामस्वया नम्यक् प्रवृजिताः ॥३६॥
 तद्वत्तैरुपहाराद्यैः सुप्रीतस्तां तदाऽग्रवान् । वरं ददय मामद्य यत्ते मनसि वर्तते ॥३७॥
 इति रामवचः श्रुत्वा सा तुष्टा गमयवर्षान् । गम राजीवपत्राणि यथेवास्ते महस्वजाः ॥३८॥
 दास्यः संति तथा मां त्वमर्गाकर्तुमिहाहेमि । इति तद्वचनं श्रुत्वा राधवः प्राह मस्मिन्तः ॥३९॥
 कथं त्वं ब्राह्मणी चेत्थं वदस्यथ शुभत्रने । मन्मेतां कनुमिच्छाऽस्मि तत्र नहिं वदाम्यहम् ॥४०॥
 अणुष्व त्वं गुणवति कृष्णरूपधरो सहम् । द्वापरं द्वारकायां हि भविष्यास्पन्यजन्मनि ॥४१॥
 भविष्यसि तदा मां त्वं स्त्रीरूपेण न सशयः । मयाजिह्ववशर्मा ते भविष्यति पिता पुनः ॥४२॥
 यश्चन्द्रनामा सोऽकूरो भविष्यति मत्ता मम । मन्मनामेति नाम्ना त्वं भविष्यसि प्रिया मम ॥४३॥
 तदा कुरुष्व दास्यं मे यत्ते मनसि वर्तते । इति रामावः श्रुत्वा तुष्टा गुणवती मुहुः ॥४४॥
 नत्वा श्रीराधवं सीतां ययौ सा स्वस्थलं प्रति । चित्रम्नानानन्तरं सा हस्तिद्वारं ययां जनैः ॥४५॥

वे तुलसीके काठकी माला, तूरीकी माला, प्रवाल और मणिको बना माला पहने हुए थे । गलेमें विविध प्रकारके पदक पहने थे, जिनमें रत्न और मणिका काम किये हुआ था । रंभाकाट तथा कमलकी नाडी उनका आकार था । उनमें जगह-जगह रत्न और मणिके पड़ हुए छ-छोटे जोड़े लगे हुए थे । नाल मन्मकमणिस बहुत चित्र-विचित्र मालूम पड़ता था । उसमें जहाँ-तहाँ रामके नाम लिखे हुए ॥ २८-३० ॥ वे सीतां हाथोंकी उल्लियोंमें सुन्दर अंगुठियां पहने थे, वे भी रत्न-मुक्ता-मणिक आदिमें जोड़त एवं मानकी बना हुई थी ॥ ३१ ॥ उनमें भी रामका नाम लिखा था और वे अंगुठियों वड़ी पवित्र तथा उज्ज्वल थी । रत्न तथा मुक्तासे जड़ित कुण्डल उनके कानोंमें झूल रहे थे । वे तूरीके माला बहुतमें अर्धकार तथा गुर्रके समान नेत्ररखा हार धारण किये थे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ मुकुटमें विविध प्रकारके रत्नोंके कलश लगे रहनेसे वह और भी सुन्दर लग रहा था । उसमें भी जगह-जगह मुक्ता-प्रवाल-वैदूर्य आदिका मुन्दर लगे बना हुआ था ॥ ३४ ॥ इस तरह करोंहों सूर्यके समान तेजस्वी तथा सुवर्णकी भाँति जिनका वर्ण था, कमलपत्रके समान जिनके नेत्र थे, चन्द्रमाके समान जिनका मुख था और कमलकी भाँति हाथ थे, ऐसे रामकी गुणजाल देखी और प्रणाम किया । रामचन्द्रने उसे उठाया और उसने विविध प्रकारके उपचारोंसे रामकी पूजा की ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ और भेट दिये । जिससे राम अतिशय प्रसन्न होकर कहने लगे कि “तुम्हारी जो इच्छा हो सी वर माँग ला” ॥ ३७ ॥ इस प्रकार रामकी मुनकर वह बोली—हे राजीवपत्राक्ष राम ! जैम आगकी ये हजारों दासियाँ हैं, वैसे ही मुझे भी अपनी एक दासी बना लीजिए । उसकी ऐसी बात सुनकर नुपकमाने हुए राम कहने लगे— ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ तुम ब्राह्मणी होकर ऐसी अधुन बात क्यों कह रही हो ? यदि तुम्हें मेरी सेवा करनेकी इच्छा है, तो मैं वतलाता हूँ ॥ ४० ॥ हे गुणवती ! सुनो, द्वापरयुगमें मैं कृष्णरूप धारण करके अवतार लूँगा । तब द्वारिकामें तुम मेरी स्त्री होकर इच्छानुसार मेरी सेवा करोगी । इसमें कुछ भी संशय नहीं है । उस समय देवशर्मा यादवश्रेष्ठ सञ्जाजित् तुम्हारा पिता होगा, चन्द्र अकूरनामका मेरा मित्र होगा और तुम सत्यभाषा नामकी मेरी पटरानी होओगी

आयुःशेषं समाप्याथ गंगायाम् कृष्णं निजम् । सत्वरं स्नानसमये न्यक्त्या नार्कं चिरं गता ॥४६॥
 ततः कालान्तरेणासीत्सत्राजितनया भुवि । बभूव पत्नी कृष्णस्य द्वापरे द्वारकापुरि ॥४७॥
 एकदा विंगलानाम्नी वेश्या रात्री विनिद्रितम् । सीतया दिव्यपर्यंकं यया सा राघवं सहः ॥४८॥
 विहाय नूपुरादीनि स्वतरेति पदोः शनः । इतस्ततो निरीक्षन्ती दिव्यवस्त्रादिभूषिता ॥४९॥
 सीतामयात्प्रकपन्ती कामबाणप्रपीडिता । मण्डिता पुष्पमालाद्यैर्भूषणैरतिशोभिता ॥५०॥
 अज्ञाता द्वारपालः सा निद्रितैर्मन्त्रकं यया । स्वकरेण पदस्यञ्च कृत्वा रामं प्रबोधयत् ॥५१॥
 तदा प्रमुक्तः श्रारामस्तां ददर्श पुरःस्थिताम् । धृत्वा तत्पदे गाढं प्रार्थयामास राघवम् ॥५२॥
 राम राजीवपत्राक्ष मया तेऽद्यापराधितम् । त्वं क्षमस्व कृपां कृत्वा मयि चानुग्रहं कुरु ॥५३॥
 तत्तस्या वचनं श्रुत्वा शान्त्वा तां कामपीडिताम् । तां समाश्रयितुं प्राह राघवः कञ्जलोचनाम् ॥५४॥
 एकपत्नीपतं मेऽस्मिन्मवे त्वं वेन्मि विंगले । अतस्त्वंकामपूर्वथं वदामि तच्छृणुष्व हि ॥५५॥
 यदाऽहं मथुरामये प्रजान्छ्रीकृष्णरूपधृक् । यास्यामि मातुलं कंसं हत्वा स्थास्यामि तन्पुरीम् ॥५६॥
 तदा भजिष्यसि त्वं मां कुञ्जारूपेण विंगले । भच्छ दासस्वरूपेण निष्ठु त्वं कंसवेदमनि ॥५७॥
 आयुःश्रये त्विमं देहं विस्तृज्य बद्धुक्तकम् । इत्थुक्त्वा विंगलां गमो ददाशक्तं मयान्निस्त्रयाः ॥५८॥
 शिष्यामास द्वारस्थान्दासान्दामीर्विनिद्रिताः । ततः सीता प्रवाप्याथ वेश्यावृत्त न्यवेदयत् ॥५९॥
 तच्छ्रुत्वा जानकी कृष्टा व्यथन्वा पर्यङ्कमुत्तमम् । राघवं प्राह मकोधा कथं नहं प्रबोधिता ॥६०॥
 तदैवाथ मया ज्ञातमेकपत्नीवतं मृषा । भुत्वादी विंगलां तूष्णीं त्रयाऽह बोधिता ततः ॥६१॥

॥ ४१-४३ ॥ उस समय जैसी तुम्हारी इच्छा होगी, वैसा मेरा सेवा कर लेना । इस प्रकार रामकी बात सुनकर गुणवती बहुत प्रसन्न हुई ॥ ४४ ॥ वह रामचन्द्र सीताको प्रणाम करके अपने डेरेपर लौट गयी । इस प्रकार वह अगोचरामे चरन्तान करके अपने साथियोंके साथ हरिद्वार चली गयी । वहाँपर उसकी जितनी आयु शेष थी, उसे समाप्त करके एक दिन स्नान करनेको गंगाजा गयी और वहीं शरीर त्यागकर स्वर्गलोकको चली गयी ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ जन्मान्तरमे गुणवती सत्राजित्की पुत्री होकर जन्मी और कृष्णकी पत्नी बनकर द्वारकामे निवास करने लगी ॥ ४७ ॥ एक दिन विंगला नामकी एक वेश्या रात्रिके समय रामचन्द्रके पास पहुँची । उस राम साताके साथ एक दिव्य पलंगपर सो रहे थे । वह वहाँ गयी ॥ ४८ ॥ नूपुरादिक बोलनेवाले आभूषणोंको पैरोसे उतारकर वह सुन्दर कपड़े पहने भयवश धीरे-धीरे देतली जा रही थी । सीताके भयसे उसके अङ्ग-अङ्ग काँप रहे थे और वह कामके बाणसे पीड़ित थी । उसने मुगधित फूलोंकी माला तथा आभूषण पहन रखे या जिससे वह बड़ी सुन्दरी मालूम पड़ती थी ॥ ४९ ॥ ५० ॥ जिस समय द्वारपालगण निद्रित थे, तब चुपकेसे भीतर चली आयी और रामचन्द्रके मंचके पास पहुँची । उसने हाथसे रामके पैर छूकर उन्हें जगाया ॥ ५१ ॥ राम जाग गये और सामने उस विंगला वेश्याको देखा, तब वह ओरसे रामके पैरोंको पकड़कर प्रार्थना करने और कहने लगी—हे राम । राजीवपत्राक्ष ! आज मेने बड़ा भारी अपराध किया है । मेरे ऊपर कृपा करके उसे क्षमा कर दें और मेरेपर दया करें ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ उसकी यह बात सुनकर रामने समझ लिया कि यह कामपीडित है । तब उसे देनेके लिए कहने लगे— ॥ ५४ ॥ हे विंगले ! तुम जानती होगी कि इस जन्ममें मैं एकपत्नीवतधारी हूँ । अतएव तुम्हारी कामवासनाकी शान्तिका ओं उपाय बतलाता हूँ, उसे सावधान होकर सुनो ॥ ५५ ॥ जिस समय कृष्णरूपधारी राजसे मथुरा जाऊँगा और कंसको मारकर उस पुरीमें ठहरूँगा । तब हे विंगले ! तुम बुढ़ाके रूपसे मेरी सेवा करोगी । जाओ, मेरे आशीर्वादसे तुम शरीरकी शेष आयु बिताकर कंसके यहाँ दासी होओगी । स्त्री (सीता) के भयसे रामने केवल इतना कहकर उसे विदा कर दिया ॥ ५६-५८ ॥ तब उन्होंने द्वारपालों तथा दास-दासी आदिकोंको जगाकर डाँटा-फटकारा और सीताको जगाकर उस वेश्याका समस्त वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ५९ ॥ सो सुना तो क्रोधित होकर जानकी शय्या छोड़कर उठ खड़ी हुई और रामसे कहने लगी कि वह आयी थी, तब तुमने मुझे

तां विसृज्य चिरादद्य स्नातुं ते चरितं मया । मृषा स्वया प्रतिज्ञातं पुन वदाममुनेः पुरः ॥६२॥
 एकपत्नीघ्नत्वं मेऽस्ति कौसल्यासदृशी मम । अन्या स्त्रीति मृषा वाक्यं कथ्यसे त्वं पुनः पुनः ॥६३॥
 ■ गतं तद्वचस्तेऽद्य क्व गतं तद्भूतं तव । अद्यैव जीवितं स्वीयं त्यजामि सरयुजले ॥६४॥

वेश्यायाः पृष्ठसंलग्नां शय्यां नाद्य स्पृक्षाम्यहम् ।

वेश्यासक्तं स्वामिनं त्वां दृष्ट्वा द्वेषो भवेन्नयि ॥६५॥

मृतायां मयि स्पर्शाय वेश्यासक्तस्य ते भवेत् । वेश्यासक्तपाथिवस्य चिरं राज्यं न तिष्ठति । ६६॥
 इत्युक्त्वा राघवं नत्वा देहत्यागायमुद्यता । यया वेगे मरुत् वस्त्रोद्वाहचङ्चिभ्रमा ॥६७॥
 गरुछतीं गघनो दृष्ट्वा मुक्तकञ्चः प्रदुदुबे । मंभ्रमाज्जानकीं धृत्वा भुजाभ्यां सैकतेऽमले ॥६८॥
 अश्वरीन्मधुरं वाक्यं मा रूप त्वं विदेहजे । शृणुष्व वचनं मे त्वं दिव्यं ने प्रवदाम्यहम् ॥६९॥
 मयि ते अपभरद्य प्रत्ययो न भविष्यति । दुर्घटे यद्भर्तापि न्व तद्दिव्यं प्रवदाम्यहम् ॥७०॥
 वद क्षीयं जनकजे मा कोषं भज भामिनि । इति रामवचः श्रुत्वा जानकी प्राङ् राघवम् ॥७१॥

जानक्युवाच

राम भूपामहं किं ते येन दिव्यं ददामि ते । अनलम्बः सुतोद्भूतो नयनं शशिमाङ्करो ॥७२॥
 नासस्ते जलर्धो राम पृथ्वीयं विभृता न्वया । शेषस्तत्त्वमन्वयाय लक्षणस्तिष्ठते बहिः ॥७३॥
 शास्त्राणि त्वमस्त्वजानि सर्वाण्यश्व न संशयः । दद्यान्पश्यामि ममर्षं नय रूपं न संशयः ॥७४॥
 न दुर्घटं ते दिव्यार्थं किञ्चित्पश्यामि राघव । किं ब्रूयामधुना तेऽत्र येन मे प्रत्ययो भवेत् ॥७५॥
 एकमेवास्ति जानेऽहं तत्कुरुष्व रघून्मम । इदानीमेव स्वगुरुं ममाह्वय रघूद्वह ॥७६॥

ययों नहीं जगाया ? ॥ ६० ॥ आज तुम्हारा एकपत्नीघ्न मान्य हो गया । गिरला आधी, उसके साथ चुरकेसे भोग कर लिया और जब वह चली गयी, तब मुझे जगाया ॥ ६१ ॥ बहुत शिनों बाद आज तुम्हारी यह पील खुली है । उस दिन दशसुनिके सामने जा एकपत्नीघ्न धारण करनेकी कसम खायो थी, सो सब भोग था ॥ ६२ ॥ "नहीं नीति !" रामने नञ्जतायुं क कहा--"वास्तवमें मैं एकपत्नीघ्नकारी हूँ । तुम्हारे सिवाय संसारकी समस्त स्त्रियाँ मेरे लिए कामवासके समान हैं । तुम अर्घ्य मेरे ऊपर दष्ट हो रही हो" ॥ ६३ ॥ तब सीता और भी तपकर कहने लगी कि तुम्हारी यह प्रतिज्ञावाली बात कहाँ गयी ? वह यत कहाँ गया ? आज ही मैं सरयुके जलमें डूबकर अपना जीवन समाप्त कर दूंगी ॥ ६४ ॥ मैं ऐसी शय्यापर अब नहीं सोना चाहती, जिसपर कि एक वेश्याको पीठ लगा चुकी है । तुम्हारे अंसे वेश्यासक्त राजाकी जो दशा होनी होगी, सो होगी । लेकिन यह समस्त रक्षितेना कि वेश्यासक्त राजाका राज्य कदा दिन नहीं ठहरता ॥ ६५ ॥ इतना कहकर सीताने रामको प्रणाम किया और अपना देह त्याग करनेके लिए पटगृहसे बाहर होकर सरयुके तीरकी ओर चली ॥ ६६ ॥ सीताको जाती देखकर राम भी पीछेसे दौड़ पड़े और जलके पास पहुँचनेसे पहले ही उन्हें रेतोमें पकड़ लिया ॥ ६७ ॥ तब वे भीठा-भीठा बातोंमें कहने लगे-हे विदेहजे । परे ऊपर इतना नाराज मत होओ । मेरी बात सुनो-यदि मेरी बातपर विश्वास ॥ हो तो मैं शपथ खानेकी भी तैयार हूँ ॥ ६८ ॥ ७० ॥ हे सीते ! बोलो, क्या कहती हो ? हे भामिनि ! इस तरह ययों कांप करती हो ? इस प्रकार रामकी सुनकर सीताने कहा-मैं तुम्हें कुछ कहती तो हूँ नहीं । फिर तुम कसम किसलिए खानेकी तैयार हो ? ययों दिव्य परीक्षा कराना चाहते हो ? फिर यदि मैं दिव्य परीक्षा लेना भी चाहूँ, तो केने लूँ ? अग्नि तुम्हारे मुखसे निकला है, सूर्य-चन्द्रमा तुम्हारे दोनों नेत्र हैं, समुद्र तुम्हारा निवासस्थान है, दृष्टीको तुमने अपने ऊपर रख छोड़ा है, शेष तुम्हारी शय्या है, सो वे भी लक्ष्मणके रूपमें बाहर बैठे हुए हैं ॥ ७१-७३ ॥ इसमें कोई सन्देह नहीं है कि समस्त शास्त्र तुम्हारे मुखसे जायमान हुए हैं, मैं जिवर देखती हूँ, जो कुछ भी देखती हूँ, सब तुम्हारा ही रूप है ॥ ७४ ॥ मैं कोई भी दुर्घट दिव्य (कसम) नहीं देखती,

पदयोस्तस्य शपथं कृत्वा ते प्रस्थयो मम । भविष्यति न संदेहस्तं कुरुष्व रघूत्तम ॥७३॥
 इति सीतावचः श्रुत्वा प्रहस्य रघूनन्दनः । दास्या मौमित्रिमाहूय वसिष्ठं प्रैषयत्तदा ॥७४॥
 लक्ष्मणः शिविकारुद्धः पुरद्वागन्तिकं ययौ रामश्चक्रपाद्द्वारपाशनि द्वाग्मुद्वाटवत्तदा । ७५॥
 गत्वा पुष्पं लक्ष्मणः स गुरोर्द्वारि स्थितोऽभवत् । वसिष्ठद्वारयो दास्या वसिष्ठाय न्यवेदयत् ॥७६॥
 निशीथे लक्ष्मणं द्वारमागतं त्विति संभ्रमान् । अरुंधत्या वसिष्ठोऽपि तच्छ्रुत्वा बिह्वलोऽभवत् ॥७७॥
 निशीथे लक्ष्मणात्र किमर्थं मां समागतः । इति बिह्वलचित्तः स गमाहृषाथ लक्ष्मणम् ॥७८॥
 पप्रच्छ गमनस्याथ कारणं मुनिवचनम् । त नन्दा लक्ष्मणः प्राह रामेण स्मारितोऽसि हि ॥७९॥
 कारणं मात्र जानामि समुत्तिष्ठान्वयैव हि । शिविकाऽधिष्ठिता द्वाराद्वहिस्ते मुनिवचनम् ॥८०॥
 इति श्रुत्वा रामवाक्यमरुंधत्याऽतिप्रार्थितः । शिविकायामरुंधत्या स्थित्वा शीघ्रं ययौ गुरुः ॥८१॥
 तत्पृष्ठे शिविकामंस्थः सीमित्रिस्त्वगितो ययौ । रत्नदीपप्रकाशश्च वेष्टितो वेश्याणिभिः ॥८२॥
 समागतं गुरुं ज्ञत्वा प्रयुद्धम्य रघूत्तमः । दन्वासनं वसिष्ठाय सीतया प्रणनाम सः ॥८३॥
 कृत्वा पूजां सविस्तारं वर्मराभरणादिभिः । कथयामास सकलं पिगलावृत्तमादरात् ॥८४॥
 कथयामास सीतायाः क्रोधराक्षसान्धपि प्रभुः । दिव्यं दातुं न किञ्चित् दृष्ट्वाऽन्यत् सीतया मम ॥८५॥
 विनिश्चितं पदयोर्दिव्यं तत्ते वदाम्यहम् । मनसाऽपि न भुक्ता सा मया वंद्याऽथवा परा ॥८६॥
 इदं चेद्वचनं सत्यं स्पृशामि तर्हि त्वत्पदे । इत्युक्त्वा रामवः शीघ्रं वसिष्ठपदयोः करौ ॥८७॥
 स्वीयौ संस्थाप्य शिरसा प्रणनाम गुरुं पुनः । तद्दृष्ट्वा लज्जिता सीता ज्ञात्वा शुद्धं रघूत्तमम् ॥८८॥

जिससे मेरे मनमें विश्वास हो ॥ ७३ ॥ बहुत कुछ साव-विचारकर मैंने तो यही निश्चय किया है और
 भी वही करें । अभी अपने गुरु (वसिष्ठ) को बुलाकर यदि आप उनके पैरोंकी शपथ खा लें तो मुझे विश्वास
 हो जायगा । हे रघूत्तम । ऐसा करनेसे मेरे हृदयों किसी प्रकारका संशय नहीं रह सकेगा । अतएव आप यही
 करें ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ इस प्रकार सीताकर कथन सुनकर रामने तुरन्त दासी द्वारा लक्ष्मणको बुलवाया और
 वसिष्ठजीके पास भेजा ॥ ७६ ॥ पालकीपर चढ़कर लक्ष्मण राजद्वारपर पहुँचे । वहाँ पहरेदारोंसे फाटक
 लालवाकर तुरन्त गुरु वसिष्ठके दरवाजेपर जा पहुँचे । द्वाग्यालने दासी द्वारा लक्ष्मणके आनेका संदेश वसिष्ठ-
 के पास भेजवाया ॥ ७७ ॥ ८० ॥ आधी रातके लक्ष्मणको द्वारपर आना सुनकर वसिष्ठ तथा अरु-
 न्धती दोनों घबराहटसे बिह्वल हो गये ॥ ८१ ॥ वे सोचने लगे कि आधी रातको लक्ष्मण मेरे पास क्यों
 आये । इस प्रकार व्याकुलताके साथ उन्होंने लक्ष्मणको अपने पास बुलाया ॥ ८२ ॥ और आनेका कारण
 पूछा । वसिष्ठको प्रणाम करके लक्ष्मणने कहा कि आपको रामने स्मरण किया है ॥ ८३ ॥ आपको बुलाने-
 का कारण मैं भी नहीं जानता । हाँ, यह है कि आप अभी उठकर मेरे साथ चल दें । बाहर पालकी
 तैयार ॥ ८४ ॥ इस तरह लक्ष्मण द्वारा रामकी सुनकर अरुन्धतीके प्रार्थना करनेपर वसिष्ठ उन्हें भी
 अपने साथ लिये हुए झटपट दिये ॥ ८५ ॥ उनके पीछे-पीछे लक्ष्मणकी पालकी चली । जिस समय
 वसिष्ठ राजमयनमें पहुँचे, चारों ओर रत्नोंके दीपकोंका प्रकाश फैल रहा था । अनेक पहरेदार अपनी-
 अपनी नौकरीपर रहे हुए थे और बहुतसे वसिष्ठको घेरकर साथ चल रहे थे ॥ ८६ ॥ जब रामने सुना कि
 गुरुजी आ गये हैं तो उठ तथा थोड़ा दूर आगे जाकर मिले और सीताके साथ उनको प्रणाम किया ।
 फिर एक दिव्य आसनपर बिठाकर वस्त्राभूषणोंसे विजिवत् पूजन करनेके पश्चात् पिगला वेश्याका
 वृत्तान्त कह दिया ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ फिर वह बातें भी बतलायीं, जो क्रोधमें सीताने रामकी कही थीं । फिर
 कहने लगे कि सीताको विश्वभरके किसी भी शपथपर विश्वास नहीं है ॥ ८९ ॥ अन्तमें आपके घरणोंकी
 शपथ खिलानेपर राजी हुई हैं । मैंने कभी मनसे भी उस वेश्या तथा अन्य विसं स्त्रीके साथ वतभङ्ग नहीं
 किया है ॥ ९० ॥ यदि मेरी ये बातें सच हैं तो आपके पैर छूकर शपथ खाता हूँ । ऐसा कहकर झटपट रामने
 वसिष्ठजीके पैर पकड़ लिये ॥ ९१ ॥ फिर अपना मस्तक झुकाकर प्रणाम किया । यह देखकर सीता लज्जित हो

प्रणम्य मेघराघं तं क्षमस्वेति प्रसादयत् । ततः सीता गुरोः पत्न्यै ददौ चित्राणि भक्तितः ॥९३॥
 भूषणानि वराण्येव दिव्यवस्त्राणि सादरम् । रामेण पूजितमापि वसिष्ठः पूर्ववत्प्रिया ॥९४॥
 सखिभिः स्त्रियिकासंस्थस्तुष्टः स्वीयगृहं ययौ । ततः सीतां समालिङ्ग्य रामो निद्रां चकार सः ॥९५॥
 प्रभाते पिबलां दास्या समाहूयाञ्च जानकी । धिग्विचकृत्वा सखीभिस्तां ताडयामास बंधिताम् ॥९६॥
 सीतोवाच तदा वेश्यां यस्मान्मेघापरारिक्तम् । भविष्यसि त्रिवका त्वं मथुरायां हि कुत्सिता ॥९७॥

वैश्यया प्रार्थिता प्राह कृष्णस्त्वामुद्धरिष्यति ॥९८॥

श्रुत्वा तां बंधिता वेश्यां मोचयामास राघवः ।

एवं नानाकौतुकानि चकार रघुनन्दनः । सीतां संरञ्जयामास स्वचरित्रैर्मनोरमैः ॥९९॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विलासकाण्डे सीताऽलंकारवर्णनं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः

(सूर्यग्रहणपर रामकी कुरुक्षेत्रयात्रा)

श्रीरामदास

एकदा सीताया रामः कुरुक्षेत्रं स्वबंधुभिः । ययौ सूर्योपराने ॥ स्नातुं पुष्पकसंस्थितः ॥ १ ॥
 ॥ देवाः सगन्धर्वाः किन्नराः पन्नगा ययुः । नानाऽऽधमेभ्यो ध्वज्यः पार्थिवाश्च सहस्रशः ॥ २ ॥
 तत्र स्नात्वा एवौ प्रस्ते राघवः सीतया ॥ चकार नानादानानि हस्त्युष्ट्रधवाजिनाम् ॥ ३ ॥
 ततस्ते पार्थिवाः सर्वे नानोपायनपाणयः । ययुस्ते राघवं द्रष्टुं राजपत्न्यश्च जानकीश्च ॥ ४ ॥
 ॥ सीता राजपत्नीः समालिङ्ग्य वरासने । सखीभिर्मुनिदारैश्च सुखं चोपाविशन्नदा ॥ ५ ॥
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र सीतया पूजिता स्थिता । लोषामुद्राञ्जवीढाक्यं जानकीं रंजयन्मुदा ॥ ६ ॥
 हे सीते कञ्जनयने धन्याऽसि गजगामिनि । किञ्चिद्वर्णय रामस्य वीरवं धृतितोषदम् ॥ ७ ॥

गयीं और उन्हें विश्वास हो गया कि रामचन्द्रजी परम पवित्र हैं ॥ १२ ॥ तब सीताने प्रणाम करके रामसे प्रार्थना
 ॥ कि मेरी भूख थी, आप भुज्जे क्षमा करें । इसके अनन्तर सीताने गुरुपत्नी अरुन्धतीको विविध प्रकारके
 आभूषण वस्त्रादि दिये । रामचन्द्रजीने फिर वसिष्ठजीकी पूजा की । थोड़ी देर बाद गुरुपत्नीके साथ-साथ
 पालकीपर बैठकर वसिष्ठजी अपने घरको चले गये । तदनन्तर राम भी सीताका आलिंगन करके ॥ रहे
 ॥ १३-१५ ॥ सवेरे दासी द्वारा सीताने पिगला वेश्याको बुलवाया । उसे बार-बार चिस्कारा और बांधकर
 सखियोंके हाथों पिटाया ॥ १६ ॥ इसके पश्चात् उस वेश्यासे कहा कि तूने आज बड़ा भारी अपराध किया है ।
 इससे भविष्यमें जब तू जन्म लेगी, तब तेरे शरीरमें तीन कूबड़ होंगे और तुझसे सब घृणा करेंगे ॥ १७ ॥ तदनन्तर
 उस वेश्याने अनेक प्रकारसे सीताकी प्रार्थना की । तब सीताने कहा—'अच्छा, ॥ तेरा उद्धार कृष्णके हाथों
 होगा' । उसर अब रामने सुना कि पिगला बंधी पिट रही है, ॥ उसे छुड़ा दिया ॥ १८ ॥ इस तरह राम
 विविध प्रकारके कौतुक करके अपने मनोहर चरित्रोंसे सीताको प्रसन्न करते रहते थे ॥ १९ ॥ इति श्रीमदानन्द-
 रामायणे वाल्मीकीये १० रामतेजपायदेवविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासमन्विते विलासकाण्डे अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीरामदासने कहा—एक बार रामचन्द्रजी सीता ॥ अपने समस्त भ्राताओंके साथ पुष्पक
 विमानपर सवार होकर सूर्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्र गये ॥ १ ॥ वहाँ समस्त देवता, गन्धर्व, किन्नर, यक्ष
 तथा कितने ही आश्रमोंके मुनि और हजारों राजे जाये हुए थे ॥ २ ॥ जब सूर्यग्रहण लगा, उस समय सीताके
 साथ रामने ॥ किया तथा हाथी-घोड़े-ऊँट और रथ आदि दान दिया ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर वहाँ
 जाये हुए राजे अनेक प्रकारके उपहार ले-लेकर रामका दर्शन करने जाये और रानियाँ भी सीताको देखनेके
 लिए उनके साथ जायीं ॥ ४ ॥ ॥ रानियाँ सीताके ॥ पहुँचीं तो उन्होंने बड़े आदरके साथ उन्हें उनकी
 सखियों और मुनिपत्नियोंके साथ एक सुन्दर आसनपर बिठलाया ॥ ५ ॥ सीताके विविधत्त पूजन कर लेनेके
 बाद मुनिपत्नियोंमेंसे बामस्त्यपत्नी लोषामुद्रा सीताको प्रसन्न करती हुई कहने लगीं—॥ ६ ॥ हे कमलनेत्रे

तत्तस्या वचनं श्रुत्वा वर्णयामास जानकी । स्वपाणिग्रहणात्तरस्युः कुरुक्षेत्रावधिं कथाम् ॥ ८ ॥
 लोषामुद्राऽपि तच्छ्रुत्वा विहस्य प्राह जानकीम् । सर्वं योग्यं कृतं सीते राघवेण महात्मना ॥ ९ ॥
 एक एव वृथा क्लेशः कृतस्तेनेति वेदम्यहम् । महान् भ्रमः सेतुबंधे किमर्थं हि कृतः पुरा ॥ १० ॥
 कथं न कथितं कुम्भजन्मने राघवेण हि । भणार्थं चुलुके कृत्वा पीत्स्वेमं लवणार्णवम् ॥ ११ ॥
 शुष्कं कृत्वा कपीन्मार्गोऽभविष्यदत एव हि । वृथा ते भविताः सर्वे वानराः सेतुबंधने ॥ १२ ॥
 इति तस्या वचः श्रुत्वा सगर्वं जानकी तदा । लोषामुद्रां विहस्याह लोषामुद्रे पतिव्रते ॥ १३ ॥
 सम्यक्कृतं राघवेण यत्सेतोबंधनं वरम् । तत्कारणं वदाम्यद्य मृणु त्वं स्वस्थमानसा ॥ १४ ॥
 शृण्वन्निभाः ममायाता मद्राक्ष्यं वार्थिवस्त्रियः । बाणेन शोषणीयश्चेत्सामरो राघवेण हि ॥ १५ ॥
 भविष्यति तदा इत्या बहवश्चरन्ति शंकितम् । उन्मूलधनीयो जलधिश्चेद्रामेण विहायसा ॥ १६ ॥
 तदा रामं मनुष्यं च कदा शास्यति रावणः । इतुमन्पृष्टमारुह्य गन्तव्यं चेत्परे तटे ॥ १७ ॥
 लंकां प्रति तदा रामपीरुषं किं वदन्ति हि । यदि तीर्त्वा प्रगन्तव्यं वाङ्मन्यं राघवेण हि ॥ १८ ॥
 नोन्मूलधनीयं विप्रस्थं मूत्रं चेति विशंकितम् । चेन्मुनिः कुम्भजन्मा चै प्रार्थनीयः पतिस्तव ॥ १९ ॥
 रामेण चुलुकं कर्तुं तदा तन्लवणांशुधेः । मंत्रितं राघवेणापि तदा हृदि सविस्तरम् ॥ २० ॥
 पीतोऽयं जलधिः पूर्वं मृतं क्रोधादगस्तिना । मूत्रद्वाराद्बहिस्त्यक्तो यस्मात्सारत्वमागतः ॥ २१ ॥
 सर्वथा मूत्रवत्क्षारः स कथं पातुमर्हेति । स भविर्मम वाक्येन चुलुकं करिष्यति ॥ २२ ॥
 भविष्यति ममाकीर्तिः सर्वत्र जगतीतले । मूत्रपानं ब्राह्मणेन स्वकार्थार्थं निजोक्तिभिः ॥ २३ ॥
 कारितं येन रामेण सोऽयं चेतीति शंकितः । न मुनिं प्रार्थयायास राघवो धर्मतत्परः ॥ २४ ॥
 एवं संमंत्र्य रामेण स्वकीर्त्यै सेतुबंधनम् । कृतं केनापि न कृतं न कोऽप्यग्रे करिष्यति ॥ २५ ॥
 येन रामेण जलधौ शिलाः संतारिताः पुरा । सोऽयं दाशरथी रामश्चेति ख्यातिं गतो भुवि ॥ २६ ॥

सीते ! गजगामिनि ! तुम घब्र हो । हमारे कानोंको आनन्द देनेवाले रामजीके किसी पौरुषका तो वर्णन करो ॥ ७ ॥ लोषामुद्राके यह कहनेपर सीताने अपने विवाहसे लेकर कुरुक्षेत्रको यात्रा पर्यन्तका समस्त वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ८ ॥ लोषामुद्राने कथा सुनकर सीतासे कहा—हे सीते ! महात्मा रामचन्द्रने अवगत जो कुछ किया, वह बहुत ठीक किया । केवल एक बातमें चूक गये और उन्होंने इतना क्लेश उठाया : मैं नहीं पातो कि लङ्कापर चढ़ाई करते समय रामने समुद्रमें सेतु बनानेका कष्ट क्यों किया ॥ ९ ॥ १० ॥ उन्होंने अगस्त्यजीसे क्यों नहीं कह दिया । एक अंजलीमें भरकर क्षणभरमें उस क्षारे समुद्रको पी जाने ॥ ११ ॥ समुद्र मूत्र और कपियोंको लङ्का जानेके लिए मार्ग मिल जाता । नाहक सेतु बांधनेके लिए उन्होंने उन वानरोंको कष्ट दिया ॥ १२ ॥ इस प्रकार लोषामुद्राको सुनकर सगर्व सीताजी कहने लगीं—हे पतिव्रते लोषामुद्रे ! रामने जो सेतु बांधा, वह बहुत किया । कारण भी बतलातो हूँ, आप सावधान होकर सुनें ॥ १३ ॥ १४ ॥ यहाँ आयी हुई राजरानियाँ भी शान्तचित्तसे मेरी सुनें । यदि राम अपने बाणसे समुद्रको लुकाते तो बहुतसे प्राणियोंकी हत्या होनेकी आशङ्का थी । यदि राम आकाशमार्गसे समुद्रको लांघ जाते तो रावण और जानते कि राम मनुष्य है । यदि हनुमानजीको पीठपर बैठकर चले जाते ॥ १५-१६ ॥ तब रामका क्या पराक्रम देख पड़ता ? यदि हाथीमें तैरते हुए उस पार चले जाते ॥ १७ ॥ उन्हें यह ख्याल होता कि ब्राह्मणके मूत्रको कैसे लाधूँ । यदि आपके पति अगस्त्यसे उमे पीनेको प्रार्थना करनेकी सोचते तो यह विचार होता कि एक बार अगस्त्य इस समुद्रको पी चुके हैं और मूत्रमार्गसे बाहर निकाला है । इसीसे यह खारा है ॥ १८-२१ ॥ उसी मूत्रको समान क्षारे समुद्रको अगस्त्यजी कैसे पियेगे । मान लिया जाय कि रामके कहनेसे अगस्त्यजी समुद्रको पी जाते तो समारम्भ रामका बड़ा अपयश होता कि रामने अपना मतलब साधनेके लिए एक ब्राह्मणको भूत पिलाया । इन्हीं बातोंको सोचकर धर्मरत्ना रामने अगस्त्यसे समुद्र पीनेको नहीं कहा ॥ २२-२४ ॥ इन बातोंको खूब अच्छा तरह सोच-विचारकर हो रामचन्द्रजीने अपनी कीर्तिवृद्धिके लिए समुद्रपर सेतु

इति सीताचोभिः सा लोपामुद्रा जिना तदा । तृष्णीमाम क्षणं नारीसभायां लज्जिताऽभवत् ॥२७॥
 ततो विहस्य वैदेही लोपामुद्रां प्रपूजयत् । मुनिपत्नीश्च संपूज्य प्रार्थयामास तां मुहुः ॥२८॥
 मयाऽपराधितं तेऽद्य तत्क्षमस्व पतिव्रते । स्नेहात्प्रसंगतश्चोक्तं त्वदग्रे रामपौरुषम् ॥२९॥
 स्वद्भर्तुराशिषा रामे पौरुषं चेति वेदुष्यहम् । इति संप्रार्थ्य ताः सर्वा मुनिपत्नीर्व्यसर्जयत् ॥३०॥
 पूजिता नृपपत्नीभिर्ययौ सीता रघूचमम् । ततो रामोऽपि पृथ्वीर्ध्वः पूजितो गजवाजिभिः ॥३१॥
 ययौ स नगरीं तुष्टः सीतया गरुडे स्थितः । ये ■ समागतास्तत्र कुरुक्षेत्रे रविग्रहे ॥३२॥
 ते सर्वे स्वस्थलं जम्मु रामदर्शनहविताः । रामोऽपि नगरीमध्ये पुरस्त्रोभिर्भुङ्क्षुः पथि ॥३३॥
 नोराजितः कुम्भदीपैर्ययौ निजगृहं मुदा । रेमे जनकनन्दिन्या चिरकालं यथासुखम् ॥३४॥
 एवं रामेण साकेनपुण्यामवनिकन्यया । नानाक्रीडाकौतुकानि कृतान्यतिमहान्त्यपि ॥३५॥
 यथा कृता राघवेण सुखं क्रीडा च सीतया । तथैवोर्मिलया रेमे लक्ष्मणोऽपि यथासुखम् ॥३६॥
 मांडव्या भरतयापि रेमे रामो यथा स्त्रिया । तथैव श्रुतकीर्त्याऽपि शत्रुघ्नः क्रीडनं व्यधात् ॥३७॥
 एवं ते स्वीयपत्नीभिः पौराः क्रीडाः प्रचक्रिरे । तथैव विविधद्वीपाग्नानादेशनिवासिनः ॥३८॥
 रेमिरे तेऽपि पत्नीभिः स्वीयाभिर्मुदिताः सुखम् । सीतया राघवो रेमे यथा गीर्या स शंकरः ॥३९॥
 रामे प्रासितराज्येऽत्र न कोऽपि जगतीवले । परदारस्तो वेदयागामी मादकवस्तुभुक् ॥४०॥
 न दरिद्री नैव रोगी चिन्ताग्रस्तो न विह्वलः । न पापात्मा जडो नामीन चोरो नापि हिंसकः ॥४१॥
 एवं शिष्य मया प्रोक्तं विलासचरितं वरम् । सीतया रामचंद्रस्य साकेने सीतयदं नृणाम् ॥४२॥
 विलासकाण्डमेतद्वै यः पठिष्यति मानवः । प्रातः काले च मध्याह्ने निशायां राममभिधौ ॥४३॥

वैदेह्याया या । जिस कामका न तबतक किसीने किया था और न आगे कोई कर सकेगा, उसे उन्होंने कर दिखाया ॥ २५ ॥ अब सब कोई परस्पर कहते हैं कि जिन रामने समुद्रमें शिला तैरा दिया था, वे ही ये इण्डियके पुत्र राम हैं ॥ २६ ॥ इस प्रकार सीताकी बातोंसे लोपामुद्रा परास्त हो गयी । थोड़ा दूरके लिए उस नारीसभामें चुपचाप बैठे हुए वे कुछ लज्जित-सी हो गयीं ॥ २७ ॥ फिर हंसकर साताने लोपामुद्रा तथा अन्य मुनिपत्नियोंकी पूजा की और बारम्बार प्रार्थना करके कहा— ॥ २८ ॥ मैंने जो धृष्टना की है, उसे आप क्षमा करें । आपके स्नेह तथा प्रसंग ■ जानेपर मैंने इस प्रकार रामके पौरुषका वर्णन किया है ॥ २९ ॥ हमारे प्रतिदेव राममें जो कुछ पराजय है, वह सब आपके स्वामी अगस्त्यजीके हा आशं.वादिसे है । इस प्रकार विनती करके सीताने उन मुनिपत्नियोंको विदा किया ॥ ३० ॥ तदनन्तर राजरानियों द्वारा पूजित होकर सीता रामके पास चली गयी । राम भी उन देश-देशान्तरसे आये हुए राजाओंसे कितने ही हाथो-पादोंका उपहार लेकर पूजित हुए और प्रसन्नतापूर्वक सीताके साथ गरुड़पर सवार होकर अयोध्याको चल पड़े ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ सूर्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्रमें जो लोग स्नान करने आये थे, वे रामके दर्शनसे हर्षित हो-होकर अपने-अपने घरोंका वापस गये । राम भी अयोध्यामें पहुँचकर नागरिक स्त्रियोंके द्वारा नीराजित होते हुए अपने महलोंमें गये । इसके बाद फिर बहुत कालपर्यन्त रामचन्द्रजी सीताके साथ विहार करते रहे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इस तरह रामने सीताके साथ अयोध्यामें विविध प्रकारके क्रीडा-कौतुक किये ॥ ३५ ॥ जिस तरह राम सीताके साथ आनन्द करते थे, ठीक उसी तरह लक्ष्मण ■ उमिलाके साथ सुखपूर्वक विलास करते थे ॥ ३६ ॥ उसी तरह भरत मांडवीके साथ तथा शत्रुघ्न श्रुतकीर्तिके साथ क्रीडा करते थे ॥ ३७ ॥ पुरवासी-गण तथा विविध द्वीप और देशके निवासी भी अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक भोग-विलास करते थे । राम भी सीताके साथ उसी तरह आनन्द करते थे, जैसे कैलासपर पार्वतीके साथ गंकरजी स्वच्छंद विहार करते हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ रामके शासनकालमें कोई भी मनुष्य दूसरेकी स्त्रियोंपर आसक्त तथा वेश्यागामी नहीं था । न कोई किसी तरहकी मादक वस्तु ही खाता-पीता था ॥ ४० ॥ रामके राज्यमें कोई दरिद्र, रोगी, चिन्तातुर, विह्वल, पापी, मूर्ख, चोर अथवा हिंसक नहीं था ॥ ४१ ॥ हे शिष्य ! मैंने तुम्हें इस प्रकार रामका सुन्दर विलासकाण्ड कह सुनाया । जिसमें राम और सीताका सबके लिए सुखद चरित्र भरत हुआ है ॥ ४२ ॥

■ ज्ञेयो रापवः साक्षाद्भुवि मानवरूपधृक् । विलासकाण्डपठनादनार्थी घनमाप्नुयात् ॥४४॥
भोगानाप्नोति भोगार्थी पुत्रार्थी पुत्रमाप्नुयात् । विलासकाण्डमेतद्वै रामभक्त्येकमानसः ॥

यः शृणोति नरः कश्चित्स सुखं प्राप्नुयाद्भुवि ॥४५॥

विलासकाण्डश्रवणाक्षरः पापात्प्रमुच्यते । विलासकाण्डं परमं रम्यं जनमनोहरम् ॥४६॥
आनन्ददायकं चित्रं श्रुतिसौख्यप्रदं महत् । मे पठत्यथ शृण्वन्ति सर्वान्कामान् लभन्ति ते ॥४७॥
धर्मार्थी प्राप्नुयाद्धर्मान्धनार्थी प्राप्नुयाच्छ्रियम् । कामानाप्नोति कामार्थी मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात् ॥
निष्ठायां मंचके स्थित्वा निजपत्न्या पठेत्तु यः । विलासकाण्डं षण्मासं तस्य पुत्रो भविष्यति ॥४९॥
अथवा मंचके व्यासं सन्निवेश्याथ तत्पुत्रः । त्रितीये मंचके स्थित्वा स्वयं दयितया सह ॥५०॥
यः शृणोति निष्ठायां हि विलासकाण्डं मनोरमम् । एतत्काण्डं पवित्रं नवमासान् पुनः पुनः ॥५१॥
तस्यापुत्रस्य पुत्रः स्यान्नाथ कार्या विचारणा । पुत्रार्थमेव श्रोतव्यं मंचके ह्युपविश्य च ॥५२॥
श्रोतव्यं नान्यकामेषु मञ्चकस्थैर्नरैः कदा । विलासकाण्डमेतद्वै स्त्रीकामाद्यः पठेन्नरः ॥५३॥
स भार्या प्राप्नुयाद्भग्या नवमासैर्न संशयः । कुमारी शृणुयादेतत्पत्यर्थं काण्डमुत्तमम् ॥५४॥
पुनः पुनस्तु षण्मासं लभिष्यति वरं पतिम् । विलासकाण्डमेतद्वै याः शृण्वन्ति वराः स्त्रियः ॥५५॥
सौभाग्यलक्ष्म्या न कदा ता विहीना भवन्ति हि । मर्तुरायुष्यवृद्धयर्थं स्त्रीभिश्च स्नानपूर्वकम् ॥

श्रवणीयं विलासकाण्डमेतत्काण्डं मनोरमम् ॥५६॥

रम्यंविचित्रंमधुरं पवित्रं विलासकाण्डं हि यथेच्छुदंडम् । पाठादिना पापचयप्रदंडं धर्मैककुंडं भवरोगदंडम् ॥
इति श्रीशतश्लोकरामचरितंतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे विलासकाण्डे कुक्षीयथाश्रवणं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

जो मनुष्य इस विलासकाण्डका प्रातःकाल, मध्याह्न अथवा रात्रिके समय रामचन्द्रके समीप पाठ करता है, उसे मनुष्यरूप धारण किये हुए साक्षात् राम ही समझना चाहिये । घनको इच्छा रखनेवाला मनुष्य विलासकाण्डका पाठ करनेसे घन पाता है, भोगार्थी भोग पाता । पुत्रार्थी पुत्र पाता है और जो प्राणी इसको सुनता है, वह संसारमें सुखी रहता है ॥ ४३-४५ ॥ विलासकाण्डका श्रवण करनेसे पापी पापसे छूट जाता है । यह विलासकाण्ड बड़ा सुन्दर और मन्त्रोंके मनको चुरानेवाला काण्ड है ॥ ४६ ॥ यह आनन्ददायक एवं विचित्र कथाओंसे हुआ है । इसको सुननेसे कानोंको आनन्द मिलता है, जो लोग इसे सुनते अथवा पाठ करते हैं, उनकी सब कामनाएँ पूर्ण होतीं ॥ ४७ ॥ इससे धर्मार्थी धर्म पाता, धनार्थी पाता, कामार्थी काम पाता तथा मोक्षार्थी मोक्ष ॥ ४८ ॥ रात्रिके समय जो मनुष्य महीनेतक अपनी स्त्रीके साथ बैठकर इस विलासकाण्डका पाठ करेगा, उसको पुत्र मिलेगा ॥ ४९ ॥ एक मञ्चपर व्यासको बैठाकर उसके आगे स्वयं अपनी पत्नीके साथ दूसरे मंचपर बैठकर रात्रिके समय जो मनोरम विलासकाण्डको भी महीनेतक सुनता है, उस अपुत्रके भी पुत्र होता है । इसमें किसी तरहका सन्देह करनेकी आवश्यकता नहीं है । पुत्रकी कामनावालेको मंचपर बैठकर इसे सुनना चाहिए ॥ ५०-५२ ॥ किसी दूसरी कामनावालेको मंचपर बैठकर यह कथा सुननी चाहिए । जो इच्छासे करता है, उसको भी महीनेमें स्त्री अवश्य मिल जाती है । यदि कुमारी पतिको कामनासे काण्डको सुने तो उसे सुन्दर पति मिलता है । जो स्त्रियाँ इसको सुनेंगी कभी अपनी सौभाग्यलक्ष्मीसे विहीन न होंगी अर्थात् सौभाग्य अटल रहेगा । समस्त नारियोंको अपने पतिकी आयुष्य बढ़ानेके लिए स्नान करके यह विलासकाण्ड सुनना चाहिये ॥ ५३-५६ ॥ क्योंकि विलासकाण्ड ऊँसके दण्डकी तरह मीठा, विचित्र, मधुर पवित्र है । यह पाठादि करनेवालोंके पापोंको मार भगानेवाला और धर्मका एकमात्र कुण्ड तथा भवरोगके लिये दंडके समान है । इस काण्डमें नी सयंतया ६७८ श्लोक हैं ॥ ५७ ॥ इति श्रीशतश्लोकरामचरितंतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे विलासकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

■ इति श्रीमदानन्दरामायणे विलासकाण्डं समाप्तम् ■

श्रीसीतापतये नमः

श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं—

आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ऽऽहया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

जन्मकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

(रामका उपवनदर्शन)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः सीताया स साकेते बंधुभिश्चिरम् । कोटां चकार विविधां दुर्लभां त्रिदशैरपि ॥ १ ॥
एकदा रघुवीरस्तु सोऽन्तर्षत्नीं विदेहजाम् । ज्ञात्वा धात्रीमुत्सासुष्टो ददौ दानान्त्यनेकशः ॥ २ ॥
ब्राह्मणान् भोजयामास कोटिशः प्रत्यहं मुदा । चकार नानालंकाराभवीनान् रत्नानिर्मितान् ॥ ३ ॥
सांतायै दिव्यवाससि हेमतन्तूद्भवानि । हरितान्यथ पीतानि रक्तानि चित्रितान्याप ॥ ४ ॥
कारयित्वाऽथ कुशलैर्जनैः सूक्ष्माण रघवः । विस्तृतान्यतिदीर्घाणि पुष्पवस्तुलघून्यपि ॥ ५ ॥
महर्घाण्यतिरम्याणि ददौ पत्न्यै मुदान्वितः । अथ मासे द्वितीयेऽह्नि रामो द्विजवरैः सह ॥ ६ ॥
वसिष्ठेन पुंसवनसंस्कारं विधिपूर्वकम् । स चकारोत्सवैर्दिव्यैः सीतायाः परमादरात् ॥ ७ ॥
सुमेधा जनकं चापि समाहूय सविस्तरम् । जनकः परमसंतुष्टः सोऽन्तर्षत्नीं निजां सुताम् ॥ ८ ॥
दृष्ट्वा पुंसवनोत्साहे सीतारामौ प्रपूजयत् । नानालंकारवाससि हेमतन्तूद्भवानि च ॥ ९ ॥
हरितान्यथ पीतानि सूक्ष्माण्यथ लघूनि च । विस्तीर्णान्यथ दीर्घाणि सीतायै स ददौ मुदा ॥ १० ॥

श्रीरामदास कहने लगे—श्रीरामचन्द्रजी सीता भरतादिक भ्राताओंके चिरकाल तक देवताओंको भी दुर्लभ क्रीड़ाएँ करते रहे ॥ १ ॥ एक दिन रामचन्द्रजीने किसी घावके मुखसे सीताके गर्भिणी होनेका समाचार सुना तो विविध ब्राह्मणोंको दान दिया ॥ २ ॥ सबसे लेकर प्रतिदिन करोड़ों ब्राह्मणोंको हर्षपूर्वक रामचन्द्रजी भोजन कराते थे । अनेक प्रकारके रत्नोंसे जटिल नकोन अलंकार, सुवर्णके सारोंके कामदार दिव्य वस्त्र और हरे, लाल तथा छींटके कपड़े बनाकर रामने सीताजीको दिये, जो बड़े लम्बे चौड़े और फूले हल्के थे ॥ ३-५ ॥ वे बहुतमूल्य और सुन्दर थे । जब एक मास व्यतीत हो गया और दूसरे महीनेका दूसरा दिन आया, तब रामचन्द्रजीने गुरु वसिष्ठ तथा बहुतसे ब्राह्मणोंके साथ विधिपूर्वक और सोत्साह सीताका पुंसवनसंस्कार किया ॥ ६ ॥ ७ ॥ उस पुंसवनसंस्कारके उत्सवमें रामचन्द्रजीने सीताके पिता बुद्धिमान् जनकजी तथा सुमेधाको भी बुलाया । यह समाचार सुनकर जनकजी बहुत प्रसन्न और सीताको गर्भिणी देखकर पुंसवनसंस्कारके समय ही सीता तथा रामचन्द्रजीकी पूजा की, वाचा

हस्तपूरयतुरगान् दामीर्दासान्मनोरमान् । शिविकाश्चापि वासांसि ददौ रामाय सादरम् ॥११॥
 एवं संपूज्य श्रीरामं सीतां च जनकः स्थिराः । सम्मानितो राघवेण ययौ र्वा मिथिलां पुरीम् ॥१२॥
 अथ रामः सीतया स रेमे मन्तुष्टमानसः । गर्मातिभाराकांता सा सीता संन्यस्तभूषणा ॥१३॥
 पांडुरागर्भानना दीना कृशाऽपि नितरां बभौ । एकदा राघवं ध्यात्वा सूचयामास जानकी ॥१४॥
 ममेच्छाऽऽगममध्येऽद्य रंतुमस्ति त्वया सह । तपोपवनमध्येऽपि साकेतनगराग्रहिः ॥१५॥
 तद्वाच्याभ्यात्प्रियावाक्यं श्रुत्वा चाहूय लक्ष्मणम् । रामोऽप्रवीच्छुर्मा वाचं मधुरां स्मिन्नपूर्विकाम् ॥१६॥
 हे सौमित्रेऽद्य सीताया जाताऽऽगमस्यहास्ति हि । मया रंतुं ततस्त्वं हि सूचितोऽसि मयाऽधुना ॥१७॥
 तथेति रामवाक्यं मोऽप्युगीकृत्य लक्ष्मणः । गत्वा समायामाहूय स्वरयामास सेवकान् ॥१८॥
 शिव्रोष्णीषान्नेत्रपाणीन्प्राह वाक्यं स्मिताननः । कथनीयं हृदमध्ये क्षारामं यानि जानकी ॥१९॥
 राघवेण ततो यूय वणिजस्त्वरयन्विति । ततः सौमित्रिवचनाच्छ्रुत्वा ते वेत्रपाणयः ॥२०॥
 शिव्रोष्णीषा रुक्मदण्डा राजमार्गे चतुष्पथे । हृद्वीथ्यामूर्ध्वहस्तास्तदा प्रोचुर्महास्वरैः ॥२१॥
 पौराक्ष वणिजः सर्वे तथाऽन्ये व्यवसायिनः । शृण्वंतु हृष्टहृदयाः सीतोद्यानं प्रगच्छति ॥२२॥
 राघवेणानुज्ञातैर्मवनिर्गम्यतां पुरः । एवं सर्वास्त्रिवेद्याथ जगमुक्ते लक्ष्मण चराः ॥२३॥
 दूतानांज्ञापयामास पुनः सौमित्रिरादरात् । रामोमेहानि चित्राणि क्षारामेषु समंततः ॥२४॥
 कल्पनीयानि वेगेन शोभनीया भुवः शुभाः । जलयन्त्राणि सर्वाणि शोधनीयानि सादरम् ॥२५॥
 मानामांगस्यवस्तूनि सुगंधीनि महानि च । स्थापनीयानि च तत्र वस्त्राण्यनिलघूनि च ॥२६॥
 एवमादीन्यनेकानि कल्पनीयानि सादरम् । शृगावणीयाः प्रासादाः सर्वे क्षारामसंभवाः ॥२७॥
 दिव्यवस्त्रैस्तोरणैर्बहुकागुच्छैर्विराजिताः । तथेति दूताम्ये सर्वे तथा चक्रुस्त्वरान्विताः ॥२८॥

प्रकारके सुनहले गहने तथा कपड़े जो हरे, पीले, लाल, रंगसे रंगे हुए तथा फूलकी तरह हल्के थे । उन्हें प्रसन्नतापूर्वक सीताजीको दिया । साथ ही हाथी, घोड़े, रथ, ऊँट, सुन्दर दास-दासी तथा पालकी आदि रामचन्द्रजीको दिया ॥ ११-१२ ॥ इस प्रकार राम और सीताकी पूजा करके जनकजी अपनी स्त्रीके साथ मिथिलापुरीको लौट गये ॥ १२ ॥ उधर रामचन्द्रजी प्रसन्नतापूर्वक सीताके साथ विहार करते रहे । गर्भके भारसे लड़ी तथा समस्त भूषणोंको त्यागे पीले गुस्ती और दुर्बल अङ्गोवाली भी सीताजी बहुत ही सुन्दर दीखती थीं । एक दिन सीताने किसी घायके द्वारा रामचन्द्रजीके पास सन्देश कहला भेजा कि आपके साथ बाहरके बगीचेमें घूमनेकी मेरी इच्छा है ॥ १३-१४ ॥ उस घायके मुखसे यह संवाद सुनकर रामचन्द्रने लक्ष्मणकी बुलाया और मुस्कराते हुए कहने लगे-हे लक्ष्मण ! आज सीता मेरे साथ नगरके बाहरवाले बगीचेमें घूमने चाहती है, सो उसका सब प्रबंध ठीक कर देना । लक्ष्मणजी 'तपास्तु' कहकर सभामें गये और सेवकोंको बुलाकर जल्दी तैयारी करनेको बोले । रंग-विरंगी पगड़ी पहने हुए हाथमें धैर्यके दण्ड लिये सिपाहियोंसे लक्ष्मणने कहा कि आज रामचन्द्रजी सीताके बगीचे आयेगे । तुमलोग जाकर नगरके व्यापारियोंसे कह दो कि वे लोग जल्दीसे अपनी दुकान बड़ाकर मार्गें सजली कर दें । प्रकार लक्ष्मणकी बातें सुनकर ॥ १५-२० ॥ रंग-विरंगी पगड़ी पहने तथा नुलहरे डंडे लिये हुए सिपाही बीरास्ते, गली, बाजार और कूँचोंमें होय उठाकर जोर-जोरसे कहने लगे-हे पुरवासियों, व्यापारियों तथा व्यवसायियों ! आप लोग प्रसन्नतापूर्वक हमारी बात सुनते जायें । सीताजी बगीचेमें आयेगी । इसलिए आप सब पहले से वहाँ चले । इस प्रकार सबको सुनाकर वे दूत लोग फिर अपनी द्योड़ीपर बसति लक्ष्मणके पास लौट आये ॥ २१-२३ ॥ लक्ष्मणजीने फिर उनको आज्ञा दी कि बगीचेमें तुम लोग आओ और स्थान स्थानपर नामा प्रकारकी रहनेकी जगहें बनाओ और बगीचेके चारों ओरकी जमीन खूद अच्छी तरह सफ़्त करा दो । जलयंत्रोंकी भी परीक्षा करके उन्हें ठीक कर दो ॥ २४ ॥ २५ ॥ विविध प्रकारकी मांगलिक वस्तुयें और महीन कपड़े आदि लाकर वहाँ रखो । जो जो चीजें आवश्यक समझो जायें, वे सब प्रस्तुत रहें । बगीचेके

लक्ष्मणो राघवं गत्वा नत्वा तं प्राह सादरम् । उद्योगसमयोऽर्घ्यं वर्तते रघुनन्दन ॥२९॥
 कुर्यात् सिद्धं हि किं यानं सीतायास्तत्र वा विभो । तत्सौमित्रैर्वचः श्रुत्वा जानकी राघवोऽब्रवीत् ॥३०॥
 सीते यानं वदाथ त्वं यत्ते मनसि मेचते । तद्रामवचनं श्रुत्वा शिविका प्राह जानकी ॥३१॥
 रामोऽपि रोचयामास शिविकामेव वै तदा । तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणश्चापि शिविके रत्नभूषिते ॥३२॥
 हेमनन्तूङ्गवैर्वर्णैः सर्वत्र वेष्टिते शुभे । आनयामास दूतैः सन्मुक्ताजालविगजिते ॥३३॥
 आरुरोहाय श्रीरामः शिविकां परया मुदा । ततः सीता पांडुरांगो परिमेषविभूषिता ॥३४॥
 कृशांगयष्टिर्दामीभिर्दत्तहस्ता यया सनैः । शिविकामारुरोहाय पृष्ठलग्नोपवर्हणा ॥३५॥
 दामीभिर्वीजिता चापि घुनाथोऽङ्गुपवर्हणा । दधार शिविकामारुरोहाय पृष्ठलग्नोपवर्हणा ॥३६॥
 विगुफितं च मुक्ताभिः सीता स्वीयकरेण तम् । मुक्ताजालगदाक्षं पश्यन्ती सा मुहुर्महः ॥३७॥
 राजभारगणान्येव कौतुकानि समन्ततः । ददर्श नृत्यं वेश्यानां सखीभिः परितो बृता ॥३८॥
 ततस्ते बान्धवाः सर्वे बन्धुरत्न्यश्च मातरः । शिविकाम्रवसंविष्टा दिव्यासु च पृथक् पृथक् ॥३९॥
 अग्रे ते भ्रातरः सर्वे ततः सर्वाश्च मातरः । मातायाः बन्धुपरन्पथ सर्वेषां पुरतो गुरुः ॥४०॥
 एवं ते प्रययुः सर्वे पश्यन्तो राघवं मुहुः । बभूवुर्वारनार्यश्च नेदुर्वाचान्वनेकशः ॥४१॥
 तुष्टुवुरंदिनः सर्वे सीतां च रघुनायकम् । एव नानासमुन्मार्हरागमं स यया मुदा ॥४२॥
 राघवः सीतया युक्तः सैन्यैः सर्वत्र वेष्टितः । विवेश वासोगेहे स समीतो रघुनन्दनः ॥४३॥
 वासोगेहेषु सर्वे ते तस्युः पौराः समन्ततः । इष्टाः समन्ततश्चामनृतुवारयापितः ॥४४॥
 वासोगेहस्य सीताया भिक्षयो वस्त्रनिर्मिताः । पञ्चकोशमितायामाश्रामन् विस्तारतोऽपि च ॥४५॥
 पञ्चकोशवितारामे यत्र रेमे विरेहका । ददर्श जानकी सम्यगागम नृपसौख्यदम् ॥४६॥

■ भवन अच्छी तरह सजाये जायें । उनमें कपड़ेकी झालरें, तीरण और मोतियोंकी गुच्छे लटकाये जायें ।
 वहाँ पहुँचकर दूतोंने लक्ष्मणजीके आज्ञानुसार सब कुछ तुरन्त ठीक कर दिया । २९-२८ ॥ ■ लक्ष्मण राम-
 चन्द्रजीके पास गये और प्रणाम करके सादर कहने लगे—हे रघुनन्दन ! मेने आपकी आज्ञासे पूरी तैयारी
 कर दी है । अब क्या आप और भीताजीके लिए सवारी लानेकी भी आज्ञा दें गे ? ■ प्रकार लक्ष्मणकी वाणी
 सुनकर रामचन्द्रजीने सीतासे कहा—सीते ! बतलाओ, आज तुम्हें कौन-सी सवारी चाहिए ? सीताजीने
 रामजीकी बात सुनकर पालकी पसन्द की और रामजीने अपने लिए भी पालकी ही माँगी । रामचन्द्रजीकी
 आज्ञासे लक्ष्मणने रत्नोंसे विभूषित दो पालकियाँ भेजवायीं, जिनपर सुनहरे कामके ओहार पड़े थे और
 चारों ओर मोतियोंके गुच्छे लटक रहे थे ॥ २९-३३ ॥ तब प्रसन्नतापूर्वक रामचन्द्रजी पालकीपर सवार
 हुए और पीछेसे भूषणोंका पहने हुए संता भी दासियोंके हाथके सहारे गर्भः गर्भः जाकर पालकीपर
 बैठी । उसमें चारों ओर तस्वियाँ लगी हुई थीं । दासियाँ पंखे झलने लगीं । ओहार डाल दिया गया
 और पालकी चल पड़ी । रास्तेमें सीताजी पालकीके शरंखेसे उन दृश्योंको देखती जाती
 थीं, जो वहाँपर थे । उसके अनन्तर रामचन्द्रजीके और भाई भी तथा उनको स्त्रियें और मातायें
 अलग-अलग दिलय पालकीमेंपर बैठ-बैठकर चलीं । आगे-आगे भाइयोंकी, फिर माताओंकी, फिर सीतादिक
 पत्नियोंकी और सबसे आगे गुरु दत्तितृजाकी पालकी चली ॥ ३४-४० ॥ इस प्रकार सब लोग रामचन्द्रजीका
 दर्शन करते हुए चले जा रहे थे । वेध्यायें नाच रही थीं और नाना प्रकारके बाजे बज रहे थे । बन्दीगण
 सीता और रामजीकी बन्धना कर रहे थे । इस प्रकार कितने ही तरहके उत्साहके साथ वे सब जगोचरे पहुँचे ।
 रामचन्द्रजी सीताके साथ-साथ सीताओसे विरे हुए एक तम्बूमें उतरे ॥ ४१-४३ ॥ इसके बाद और लोग
 भी तम्बूओंमें ठिके । साथ ही समस्त नगरवासी लोग भी चारों ओर तम्बूओंमें ठहर गये । चारों ओर हाट लग
 गयी और वेध्यायें नाचने लगीं ॥ ४४ ॥ जिस स्थानपर रामचन्द्रजी अपने पुरवासी नागरिकोंके साथ ठहरे थे,

रसालयं रसालैस्तैरशोकैः शोकवारणम् । तालैस्तमालैर्हिन्तालैः शालैः सर्वत्र शालितम् ॥४७॥
 खपुरैः खपुगकारं शोफलैः श्रीफलं किल । गुरुश्रियं त्वगुरुभिः कपिपिगं कपित्थकैः ॥४८॥
 वनश्रियः कुचाकारैर्लकुषैश्च मनोरमम् । सुवाफलममारं भिरभाभिः परिभाषितम् ॥४९॥
 सुरगैश्चापि नारकै रङ्गमण्डपवञ्चिभ्यः । वानीरैश्चापि वम्बंगैर्वीजपूरैः प्रपूरितम् ॥५०॥
 मन्दान्दोलितकर्पूरकदलीदलसंज्ञया । विधामाय धमापमानाह्वयंतमिवाध्वगान् ॥५१॥
 पुष्पाग इव पुष्पागपल्लवैः करपल्लवैः । कलपन्नमिवालोत्तैर्मल्लिकास्तवकस्तनम् ॥५२॥
 त्रिदीर्घादादिमैः स्वातं दर्शयन्ननुरागवत् । माधवीधवरूपेण स्निह्यंतमिव कानने ॥५३॥
 उदुंबरैस्वरगैरनंतफलशालिभिः । ब्रह्मांडकोटिचिघ्नन्तमनंतमिव सर्वतः ॥५४॥
 पनमैर्वननासामैः शुकनासैः पलाशकैः । फलाशनाद्विरहिणा पत्रत्यक्तैरिवावृतम् ॥५५॥
 कदंबवादिनो नीपान्दष्टा कंटकिर्तैरिव । समंततो भ्राजमानं कदंबककदंबकैः ॥५६॥
 नमेरुमिथ मेरोश्च शिखरैरिव राजितम् । राजादनैश्च मदनैः सदनैरिव कामिनाम् ॥५७॥
 समंततः पटुवटैरुच्चैः पटकुटीकृतम् । कुटजस्तवकैर्भानमधिष्ठितवकैरिव ॥५८॥
 करमदैः करारैश्च करजैश्च कदंबकैः । सहस्रकम्बजातमधिप्रत्युद्गतैः करैः ॥५९॥
 नीराजिनमिवोद्दीपै रज्जचंपककोरकैः । सपुष्पशान्मलीभिश्च जितपद्माकरश्रियम् ॥६०॥
 कपिशलदलैरुच्चैः कचित्काञ्चनकेतकैः । कुतमालैर्नक्तमालैः शोभमानं कपिन् कचित् ॥६१॥
 कर्कन्धुवन्धुजीवैश्च पुत्रजीवैर्विराजितम् । सतिन्दुकैर्जुदीभिश्च करुणैः करुणालयम् ॥६२॥

विस्तार पाँच कोसका था । पाँच कोसके लम्बे-चौड़े बगीचेमें जहाँ रामचन्द्रजी ठहरे थे, सोताजी प्रसन्नतापूर्वक विहार करने और उस सुन्दर बगीचेको खूब अच्छी तरह देखने लगीं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ उसमें रसालके वृक्ष वास्तवमें रसके आलस्य और अशोकके वृक्ष शोकको दूर करनेवाले थे । ताल, तमाल, हिन्ताल और शालके वृक्ष चारों ओर सुशोभित हो रहे ॥ ४७ ॥ खपुरके वृक्षोंसे वह बगीचा खपुर (स्वर्ग) सदृश लग रहा ॥ और शोफलसे श्रीफलके सहज था । गुरुके वृक्षोंसे गम्भीर शोभावाला तथा कपेके वृक्षोंसे कपिल-वर्णका हो रहा था ॥ ४८ ॥ वनलक्ष्मीके वृक्षोंके लकुच (बहहर) के वृक्ष लगे हुए थे । अमृतफलकी नाई केलेसे वृक्ष लगे हुए थे ॥ ४९ ॥ सुन्दर रहस्यवाले नारकीके वृक्षोंसे रङ्गमण्डपकी शोभा हो रही थी । वानीर, जंबीर, बोजपूर आदिके वृक्ष भी उस बगीचेमें कुछ कम नहीं थे ॥ ५० ॥ घेरे-घेरे वायुके झोकसे झूमता हुआ केलेका मानों पके हुए पटोहियोंको हाथके संकेतसे विधाम करनेके लिए बुला रहा था ॥ ५१ ॥ पुष्पागकी तरह पुष्पागके पल्लव करपल्लवके समान थे और मल्लिकाके गुच्छे स्तनके दीखते थे ॥ ५२ ॥ अनारके फटे हुए फल मनों अपना हृदय फाड़कर हार्दिक प्रेम प्रदर्शित कर रहे थे । गूलरका खूब लम्बा-चौड़ा वृक्ष था, जिसमें असंख्य फल लगे हुए थे । वह करोड़ों सह्याश्वोंको धारण किये हुए साक्षात् अनन्त भगवान्‌के सदृश मालूम पड़ता था । उपवनकी नाकके समान कटहलके वृक्ष सोतेकी नाकके समान पलाशके वृक्ष लगे हुए थे । कण्ट-कित पुष्पवासे कदम्बके वृक्षोंको देखकर रोमांच हो जाता ॥ ५३-५६ ॥ नमेरुके वृक्षोंको देखकर सुमेरुशृङ्गकी याद आ जाती थी । राजादनके वृक्ष कामियोंकी मदनके भवन सदृश दीखते थे ॥ ५७ ॥ चारों ओर लगे हुए पटुवटके वृक्ष पटकुटीके सदृश दीखते थे । कुटजके गुच्छे बड़े हुए वगुनेके सदृश मालूम पड़ते थे ॥ ५८ ॥ जहाँ-जहाँ करोंदे, करौर, कजे, कदम्ब आदिके बड़ी-बड़ी शाखाओंवाले वृक्ष हजारों हाथ उठाये पाँचकोंके समान मालूम पड़ते थे ॥ ५९ ॥ राजचम्पक लम्बे कोरोंवाले वृक्ष मानो आरती बगीचेकी आरती उतार रहे थे । फूलोंसे लदे हुए सेमरके वृक्ष कमलवनकी शोभाकी भी पराजित कर रहे थे ॥ ६० ॥ कहीं फरफराते हुए पत्तोंवाले केलेके बड़े-बड़े वृक्षोंसे, कहीं सुनहली केतकीके छोटे-छोटे पौचोंसे, कहीं कुतमाल और नक्तमालके वृक्षोंसे वह बगीचा सुशोभित हो रहा ॥ ६१ ॥ बेर, बंधुजीव तथा पुत्रजीवके वृक्ष लगे थे । तेंदु, इक्की, कदण आदि वृक्षोंसे वह बगीचा करुणालय हो रहा था । टपकते हुए महुएके फूलोंको देखकर मालूम होता

गलन्मधुककुसुमैर्धरारूपधरं हरम् । स्वहस्तमुक्तमुक्ताभिरर्पयन्तमिवानिशम् ॥६३॥
 मर्जारुनाञ्जनैर्वाजैर्भ्यर्जनैर्वाज्यमानवत् । नारिकेलैः सखजूरैर्धृतच्छत्रमिवाचरैः ॥६४॥
 जमदैः पिचुमन्दैश्च मन्दारैः कोविदारकैः । पाटलातितिणीधौटाशाखोटैः करहाटकैः ॥६५॥
 उहडैश्चापि श्रेहुडैर्गुडपुष्पैर्विराजितम् । वकुलैस्तिलकैश्चैव तिलकांकितमस्तकम् ॥६६॥
 अश्वैः प्लव्गैः सल्लकीभिर्देवदारुहरिद्रुमैः । सदाफलसदापुष्पवृक्षवल्लिविराजितम् ॥६७॥
 एलालवंगमरिचकुलंजनवनादृतम् । जम्बूनाम्रातकमल्लातशेलुश्रीपर्णिवर्णितम् ॥६८॥
 शाकशंखवनं रम्यं चन्दनै रक्तचन्दनैः । हरीतकीकर्णिकारधात्रीवनविभूषितम् ॥६९॥
 द्राक्षावल्लीनागवल्लीकर्णवल्लीश्रुतादृतम् । मल्लिकायुषिकाकुन्दमदयन्तीसुगन्धितम् ॥७०॥
 तुलसीवृक्षपण्डैश्च शिवत्वगास्तिद्रुमैर्युतम् । भ्रमद्भ्रमरमालाभिर्मालतीभिरलंकृतम् ॥७१॥
 अलिच्छलागतं कुष्णं गोपी रतुमनेकशः । सुगन्धवातं सुखदं कामसञ्जनकं परम् ॥७२॥
 नानाभृगगणाकीर्णं नानापद्मिनिनादितम् । नानासरित्सरःस्रोतैः पल्लवैः परितो वृतम् ॥७३॥
 उत्सृजन्तमिवार्थं वै पतन्पुष्पैरितस्ततः । केकिकेकारवैर्द्राक्षकुर्वन्तं स्वागतं किल ॥७४॥
 एतादृशं उपवनं जानकी तद्दर्श ॥ । तदाऽभूद्दर्शनेनैव विचचार त्वितस्ततः ॥७५॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदाम्बेन्द्ररामायणे वाल्मीकीये

अन्नकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ १ ॥

या कि मानो शिवजी घरणोका रूप धारण किये हुए हैं और अपने ही हाथसे अपनेपर भोतियोंकी कर्पा कर रहे हैं ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ सर्ज, अंजुन, बीजपूर आदिके वृक्षोंसे ऐसा मालूम होता था कि वे सब बगीचेकी पंखा झल रहे हैं । नारियल तथा खजूरके वृक्ष :करतेवाले सेवक जैसे थे । जमद, पिचुमन्द, मन्दार, कोविदार, पाटल, तितिणी, धौटा, शाखोट, करहाटक, ऊँचे इन्हेवाले श्रेहुड और गुडहलके वृक्ष भी उस बगीचेमें यत्र-तत्र लगे हुए थे । वकुल और तिलकके वृक्ष उस बगीचेके मरतकपर तिलकके समान मालूम पड़ते ॥ ६४-६६ ॥ अश्व, प्लव्ग, सल्लकी, देवदारु, हरिद्रुम, सदाफल, सदापुष्प और वृक्षवल्ली आदिके वृक्ष भी उस बगीचेमें लगे हुए थे ॥ ६७ ॥ इलायची, लौंग, मरिच तथा कुलंजनके वृक्षोंसे वह समस्त बगीचा भरा हुआ था । आम्र, जाम्बू, मल्लातक, श्रीपर्णी आदि वृक्षोंसे उस बगीचेकी रंगीली शोभा देखते ही बनती थी ॥ ६८ ॥ शाक तथा शंखवनके वृक्षोंसे जमणोंक एवं चन्दन, हरीतकी, कर्णिकार, आंबला आदिके वृक्षोंसे वह विभूषित था ॥ ६९ ॥ जिनमें सैकड़ों अंगूरकी लताएँ तथा फानकी बेलें लगी हुई थीं । मल्लिका, जूही, कुन्द और मदयन्तीके वृक्षोंसे वह बगीचा सुगन्धित हो रहा था ॥ ७० ॥ उसमें कितने ही तुलसी, सहिजन तथा अमस्तके वृक्ष लगे हुए थे । जिनपर भौरोंकी श्रेणी चक्कर काट रहो थी, ऐसी मालतीके वृक्षोंसे वह अलंकृत था ॥ ७१ ॥ जिस मालतीके समीप भौरा आता था, देखनेवालेके हृदयमें यह उत्प्रेक्षा होती थी कि मानों श्रीकृष्ण गोपियोंके साथ विहार करनेके लिए आये हैं ॥ ७२ ॥ उस बगीचेमें बहुतसे वृक्ष शोकड़ियाँ भरा करते थे, विविध प्रकारके पक्षी बोलते रहते थे, कितनी नदियों, तालाबों, स्रोतों तथा गड्ढोंसे वह बगीचा घिरा हुआ था ॥ ७३ ॥ बगीचेके वृक्षोंसे गिरे हुए फूल किसी दानीकी धनराशिके समान लगते थे । मयूरोंकी आवाजसे ऐसा मालूम पड़ता था कि मानों वह बगीचा अपने यहाँ आनेवालोंका स्वागत कर रहा है ॥ ७४ ॥ इस प्रकारके उस सुन्दर उपवनको सीताने देखा । देखते ही उनका चित्त प्रसन्न हो गया और वे इधर-उधर घूमने लगीं ॥ ७५ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदाम्बेन्द्ररामायणे वाल्मीकीये अन्नकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः

(रामसीताका उपवनविहार)

श्रीरामदास उवाच

अथ सीता राघवेण रम्योपवनभूमिषु । क्रीडाश्चकार विविधास्त्रिदशैरपि संस्तुताः ॥ १ ॥
 कदा वनांतःप्रासादे कदा वनगृहेष्वपि । कदाऽऽम्रवृक्षच्छायायां कदा पुष्पवनेषु सा ॥ २ ॥
 कदा सा जलपत्राणां समीपस्थवगासने । कदा सरोवरतटे कदा नद्यास्तटेऽपि च ॥ ३ ॥
 नौकास्था सरयुतोये सा रामेणाकरोत्कदा । कदा रात्रौ जलक्रोडांसा दिवाऽपि कदा मुदा ॥ ४ ॥
 कदा तटाके नौकास्था कदा रंभावनेषु सा । कदा वृक्षोर्ध्वगेहेषु कदाक्षीरगृहेष्वपि ॥ ५ ॥
 कदा सा सरयुनद्यां निर्मितेषु गृहेषु वा । कदा कुत्रिमगेहेषु पुष्पगेहेषु सा कदा ॥ ६ ॥
 कदा सा चित्रशालायां पुष्पके वा कदा मुदा । कदा सा केतकीपण्डे कर्दकस्तम्भमग्ननि ॥ ७ ॥
 कदा नौकोर्ध्वगेहस्था मरुवाः सैकते कदा । एकस्तम्भोर्ध्वगेहेऽपि सखीभिः परिदेष्टिता ॥ ८ ॥
 कदा रामेण रघुमि कदा दोलकसंस्थिता । पर्वङ्गचक्रमध्यस्था कदा सा दाडिमीवने ॥ ९ ॥
 वृक्षसंरुद्धपर्यङ्कमस्थिता राघवेण हि । चकार सा कदा क्रीडां पांडुरांगी प्रचूदरी ॥ १० ॥
 द्रविडस्रयुताश्चक्रवर्चसक्या जानकी वर्मा । गोपयित्वा निज देहं सीता वृश्चदलैर्वनैः ॥ ११ ॥
 चकार न्याकुलं रामं विनोदेन स्मितमानना । शास्त्रारमानं राघवेण तुष्टां सम्पदिविचित्र्य च ॥ १२ ॥
 दूद्राव संभ्रमाद्रामं तत्कण्ठे दोलतेऽकरोत् । एवं सीताराघवयोः क्रीडनं परमाद्भुतम् ॥ १३ ॥
 विस्मारेपेह को वक्तुं समर्थः पृथिवीतले । एक एव समर्थोऽभूद्वाङ्मोकिर्मुनिसत्तमः ॥ १४ ॥
 शतकोटिमितं देन चरितं वर्णितं तयोः । मारं सारं मया यस्माद्विविच्य त्वां प्रवर्ष्यते ॥ १५ ॥
 वारसीणां कदा नृत्यं सीताऽऽरामे ददर्श सा । कदा शुभाव वाद्यानि मञ्जुलानि महीति च ॥ १६ ॥

श्रीरामदासजी कहने लगे—उमके बाद सीता रामचन्द्रजीके साथ उस रमणीक उपवनमें देवताओं द्वारा प्रशंसित विविध प्रकारकी क्रीड़ाएँ करने लगीं ॥ १ ॥ कभी उस बगीचेके बेंगलेमें, कभी तम्बूके भीतर, कभी आसवृक्षके छाशमें, कभी फूलोंकी झुग्गुटमें, कभी फीवारीके समीप बने हुए किसी एक सुन्दर घासनगर, कभी सरोवरके तटपर और कभी नदीके समीप जाकर विहार करती थीं ॥ २ ॥ ३ ॥ कभी वे नौकापर सवार होकर सरयूकी घाशमें रामके साथ विहार करती थीं । कभी रात्रिके समय और कभी दिनमें ही जल-क्रीड़ा करने लग जाती थीं ॥ ४ ॥ कभी सरोवरमें नौकापर, कभी कैलेके वनमें, कभी वृक्षके छप्पे बने हुए भवनमें, कभी गन्धके बने स्थानमें, कभी सरयूके भेवर बने हुए भवनोंमें, कभी बनावटों मकानोंमें, कभी फूलघरमें, कभी चित्रशालामें, कभी पुष्पक विमानपर, कभी पेतकीके समूह और कभी एक लम्बेके ऊपर बने भवनमें रामके साथ विहार करती थीं ॥ ५-७ ॥ कभी नौकाके ऊपर बने बेंगलेमें, कभी सरयूकी रेतोंमें, कभी अपनी सब सखियोंके साथ एक स्तम्भके ऊपर बनी हुई ऊँची अंटारीपर, कभी रामके साथ एकान्तमें, कभी झुलेपर बैंगकर, कभी चक्रवर्णदार पलङ्गपर, कभी अनारके बगीचेमें और कभी किसी वृक्षके समान पड़े हुए पलङ्गपर गोरे-गोरे अङ्गुवाली सीता रामके साथ-साथ क्रीड़ा करती थीं ॥ ८-१० ॥ वे कभी हरे रङ्गके कपड़े तथा लाल कंचुकी पहनकर रामके साथ क्रीड़ा करती हुई वृक्षोंके पत्तोंमें छिपकर रामको आकुल कर देतीं और स्वयं छिपी छिपी मुस्कताती रहती थीं । जब वे समझतीं कि रामने देख लिया है तो दौड़ती हुई आतीं और रामके गलेमें गलबेहियां डालकर उनके हृदयसे छिपट जाया करतीं । इस प्रकार सीता तथा रामका अद्भुत होनूक हुआ करता था ॥ ११-१३ ॥ उसे जिसतरापूर्वक कहनेकी सामर्थ्य मला किसीमें है ? हाँ, एकमात्र महर्षि वाल्मीकिजी समर्थ हुए थे । जिन्होंने ही करोड़ उल्लेखोंमें उनके चरित्रोंका वर्णन किया है । उनमेंसे सार भाग लेकर मैं तुमसे कह रहा हूँ ॥ १४ ॥ १५ ॥ कभी सीताजी ■■■ बगीचेमें वेष्मियोंके नृत्य देखती थीं ।

कदा चित्रकथा रम्याश्चन्द्रजालानि वा कदा । कदा वंशरोहणादिकौतुकानि ददर्श सा ॥१७॥
 कदा स्तम्भोज्ज्वलं दिव्यं ददर्श कौतुकं महत् । कदा कलानां कौशल्यं सूत्रबन्धैर्विनिर्मितम् ॥१८॥
 कदा कृत्रिमहस्त्यादिनानारूपाणि च पतेः । सीता ददर्श कुशलैर्धृतान्यात्मयुतान्यपि ॥१९॥
 एवं सीताऽऽराममन्त्रे मासमेकं निनाय सा । ययौ रामेण नगरो नृत्यगीतादिभिः शनैः ॥२०॥
 सौवस्थाभिः पुरस्त्रीभिर्वर्षिता कुसुमादिभिः । नीराजिता कुम्भदीपैर्दीपैर्दध्योदनोद्भवैः ॥२१॥
 माषतैलसर्षपाद्यैर्नानावलिभिरादरात् । ययौ निजगृहं सीता राघवेण समन्विता ॥२२॥
 एवं नानाकौतुकैश्च नानादोहदपूरणैः । रामस्तां रञ्जयामास साऽपि रामं स्वलीलया ॥२३॥
 षष्ठे मासे त्वथ प्राप्ते सीतया राघवो मुदा । सीमन्तोन्नयनं चैव वसिष्ठेन चकार सः ॥२४॥
 सुमेधा जनकं चापि समाहूयादरेण हि । ददौ दानान्यनेकानि ब्राह्मणेभ्यो रघूत्तमः ॥२५॥
 जनकः पूजयामास रामं सांबन्धुमप्युतम् । कौसल्यादींश्च साकेतवासिनो वसनादिभिः ॥२६॥
 पीराश्च सुहृदः सर्वे भोजनार्थं विदेहजाम् । स्वस्वगृहं पृथङ्निन्युः श्रीरामादिभिरुत्सवैः ॥२७॥
 नानावाद्यनिनादश्च वारस्त्रीनृत्यगायनैः । स्त्रीमुक्तपुष्पवर्षाभिर्नानाकौतुकदर्शनैः ॥२८॥
 नानादेशनिवासिन्यः कौटिशस्ता नृपस्त्रियः । समाजगमुरयोध्यायां सीतां द्रष्टुं मुदान्विताः ॥२९॥
 तासां सैन्यैश्च सर्वत्र वेष्टिता नगरी चभौ । ताः सर्वा नृपपत्न्यश्च सीतायाः परमान् वरान् ॥३०॥
 दोहदान् पूरयामासुर्दिव्यान्नादिभिरादरात् । ददुर्वस्त्राण्यलंकारान् दिव्याश्चित्रविचित्रितान् ॥३१॥
 स्वस्वदेशोद्भवैर्दिव्यैर्नानावस्तुभिरादरात् । जानकीं पूजयामासुस्ताः सर्वाः पार्थिवस्त्रियः ॥३२॥
 स्थित्वा ता मासमेकं तु जगमुर्दशं निजं निजम् । अर्धकदा तु श्रीरामः सुमेधां जनकं तथा ॥३३॥
 सीतायाः पुरतः ग्राह गुह्यं रहसि हस्तिचतम् । सीतामदृष्ट्वा साक्षिभ्यो विरहेण ताम् ॥३४॥

कभी मंजुल तथा घनघोर शब्दवासे बाजोंकी धुन सुनती थी । कभी विविध प्रकारके चित्र देखती थी, कभी बाजोगरी और वासपर चढ़कर नाचनेवालोंके अद्भुत खेल देख करती थी ॥ १६ ॥ १७ ॥ कभी स्तम्भके सुन्दर कौतुको तथा सूत्रबन्धसे बंधा कठपुतलोंके एवं कभी बनावटी हाथ आदिके विविध रूपोंको देखा करती थी ॥ १८ ॥ १९ ॥ इस तरह सीताने उस बगीचेमें एक महीना बिताया । फिर नृत्य-गीतादिक देखती-सुनती हुई रामचन्द्रके साथ अपनी नगरी अयोध्याको लौट आयी ॥ २० ॥ सीता और रामने नगरमें प्रवेश किया, उस समय नगरकी स्त्रियोंने अंठारीपर चढ़कर उन दोनोंपर फूलोंकी वर्षा की, आरती उतारी और वही, भात, उद, तेल तथा सरसों आदिके बर्तन दिये । राम सीताके साथ अपने महलको गये ॥ २१ ॥ २२ ॥ इस तरह विविध प्रकारकी कीड़ाओसे रामने सीताको तथा सीताने रामको आनन्दित किया ॥ २३ ॥ गर्भका छठी महीना आया, तब रामने अपने कुलगुरु वसिष्ठके द्वारा सीताका सीमन्तोन्नयन-संस्कार कराया ॥ २४ ॥ सुमेधा और जनकके पास निमंत्रण भेजकर उन्हें अपने जहाँ बुलवाया और ब्राह्मणोंको रामने विविध प्रकारके दान दिये ॥ २५ ॥ जनकने आकर सीता तथा अपने सब भाइयोंके बैठे हुए राम और कौसल्यादि माताओंका नाना प्रकारके वस्त्राभूषणों द्वारा सत्कार किया ॥ २६ ॥ अयोध्यावासी नागरिकों तथा मित्रोंने रामचन्द्र और सीताको अपने जहाँ भोजन करनेके लिए बुलाया ॥ २७ ॥ अनेक वाद्योंके शब्दोंके नृत्य-गायन हुए, स्त्रियोंके हाथसे फूलोंकी वर्षा हुई और कितने ही तरहके खेल-तमाशे हुए ॥ २८ ॥ २९ ॥ उस समय सीताको देखनेके लिए अनेक देशोंकी राजरानियाँ अयोध्या आयीं ॥ २९ ॥ उनके साथ आयी हुई सेनासे घिरकर वह अयोध्या नगरी और भी सुन्दर लगने लगी । उन रानियोंने अम्नादि दे-देकर सीताको इच्छा पूर्ण की और आनन्दपूर्वक बहुतसे वस्त्र-अलंकार तथा अपने देशोंका विशिष्ट वस्तुएं देकर सीताकी पूजा की ॥ ३०-३२ ॥ वे रानियाँ एक महीना अयोध्यामें रहकर अपने-अपने देशोंको लौट गयीं । एक दिन जब कि सुमेधा, जनक, सीता तथा रामचन्द्र एकान्तमें बैठे । तब रामने कहा — हे महाराज ! सीताको अपने पास न देख तथा अजगर भी उनसे विमुक्त होकर मैं नहीं रह पाता । जब सीताके पास पहुँच

मयाऽऽगत्य तन्मुखेन्दुमुधया स्वास्थ्यमाप्यते । आत्मानं विह्वलं दृष्ट्वा सीतासाभिष्यमाश्रये ॥३५॥
 अधुना जानकीं दृष्ट्वा कामो मेऽतीव बाधते । पञ्चमासोर्ध्वतः संगं गर्हयन्ति मुनीश्वरा ॥३६॥
 प्रसूत्यग्रे पञ्चमासैः स्त्री स्वास्थ्यं प्राप्यते पुनः । पञ्चमासैर्विना सङ्गाहं वन्योः क्षीणतेरिता ॥३७॥
 अत्र किं करणीयं हि यद् त्वं शशुराद्य माम् । चेत्प्रेषणीया सीतेयं मिथिलां प्रति वै मया ॥३८॥
 तर्हि तत्रापि मे गन्तुं भविष्यति समुद्यमः । किञ्चित्कालं तु सीताया वियोगो येन मे भवेत् ॥३९॥
 उवाच ॥ विधातुमश्रित्तोऽस्ति मयाऽपि च । लोकापवादभीन्याऽहं रजकोक्तच्छलादपि ॥४०॥
 गङ्गाया दक्षिणे तीरे वाल्मीकेराश्रमे शुभे । त्यजामि जानकीं शुद्धां किञ्चित्कालांतरात्पुनः ॥४१॥
 एनां समानयिष्यामि प्रत्ययं मां प्रदास्यति । ततोऽनया चिरं कालं नानामोगान् भजाम्यहम् ॥४२॥
 जनकाद्य त्वया तत्र निजपत्न्या सुमेधया । वाल्मीकेराश्रमे गत्वा स्थेयं वर्षाणि पञ्च वै ॥४३॥
 तथेत्थं गोचकाराद्य जनकोऽपि सुमेधया । सीताऽप्यंगोचकाराद्य विहस्य तद्वचः पतेः ॥४४॥
 अथ रामो ददावाचां सख्यं जनकं मुदा । स गत्वा मिथिलाराज्ये स्त्रीयं सस्थाप्य मंत्रिणम् ॥४५॥
 ययौ सुमेधया शाघ्रं वाल्मीकेराश्रमं मुदा । किञ्चिदासीदाससैन्यव्राजिवारणवेष्टितः ॥४६॥
 नानोपनाराजन्मीतार्यं संशुभं शुकटादिभिः । चकार मेहं विपुलं वाल्मीकेष्व सुस्नावहम् ॥४७॥
 सर्वसंवत्तिसंयुक्तं बहुगोमहिषीयुतम् । पूरितं धान्यसंवैश्व वस्त्रैराभरणादिभिः ॥४८॥
 कासारोपवनारामपुष्पवाटिशुभाकृतम् । गवाक्षैश्चन्द्रकान्तानां कपटैश्च समन्वितम् ॥४९॥
 कृष्णागुरुसकपूरोशीरमाल्यादिमोदितम् । कांचनीमृत्सलाबद्धरत्नपर्यङ्कमण्डितम् ॥५०॥
 हंसपारावतपिककेकीशुकनिनादितम् । मुक्तः शुच्छवितानाद्यैः शोभितं चित्रचित्रितम् ॥५१॥

जाता हूँ तो इनके मुखचन्द्रको सुधासे स्वस्थ हो । हूँ । जिस समय मुझमें कुछ भी खराब होती है, उस समय मैं सीताके ही समीप रहता हूँ ॥ ३३-३५ ॥ इस समय सीताको देखकर मुझे कामपोड़ा हो रहों है और मुनियोंको सलाह यह है कि गर्भावान हो जानेपर पाँच महीने स्त्रीप्रसङ्ग करना निन्दित ॥ ३६ ॥ प्रसव हो जानेपर पाँच महीने बाद ही स्त्री होती है । बिना पाँच महीने बीते प्रसङ्ग करनेसे दोनोंकी हानि हो हानि है । ऐसे असमझसके मुझे क्या करना चाहिये, सो बताइये । यदि मैं सीताको मिथिला भेज देता हूँ तो मुझे भी वहाँ जाना पड़ेगा । किन्तु मैं कुछ दिन तक सीतासे अलग रहना चाहता हूँ । जिस तरह मेरा इच्छा पूर्ण हो, वही समय करना चाहिए । मैंने तो यह सोच रखी है कि लोकापवादके डरसे अथवा उस घोषके ध्याजसे गङ्गाके दक्षिण तटपर वाल्मीकिके पवित्र आश्रममें कुछ समयके लिए परम शुद्ध जानकीको छोड़ दूँ । घोड़े दिन वापस आऊँगा : फिर मैं इनके चिरकालतक नाना प्रकारके भोगोंका भागूँगा ॥ ३७-४२ ॥ उस समय आपका अपना सुमेधाके साथ वाल्मीकिके आश्रमपर जाकर पाँच वर्ष पर्यन्त निवास करना होगा ॥ ४३ ॥ सुमेधा और जनकने रामकी सलाह स्वीकार और सीताने भी हँसकर पतिका कहना मान लिया ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर रामने जनकको अपने देश जानेकी आज्ञा दी । अपने गये और राज्यका भार मंत्रीपर छोड़कर अपना स्त्री सुमेधाके साथ वाल्मीकिके आश्रमको चल दिये । चलते अपने कुछ दास, दासी, सैनिक तथा हाथी-घोड़े भी ले लिये ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ सीताके लिए बहुत-सी सामग्रियाँ गाढ़ियोंपर लदवाकर साथ ले गये । महर्षि वाल्मीकिके आश्रमको जनकने सुखोका मण्डार बना दिया ॥ ४७ ॥ जनकजीके वहाँ पहुँचनेपर वह आश्रम सब सम्पत्तियों एवं बहुत-सी गोशों और भैंसोंसे भर गया । विविध प्रकारके अन्नों और भोजन-भोजनके वस्त्राभूषणोंसे वह पूर्ण हो गया ॥ ४८ ॥ आश्रमके पास तैकड़ों पौखरे, उपवन, बगीचे बगैलें तथा कुएँ तैयार हो गये । मणिके झरोखे तथा फाटकोंवाले भव्य भवन बने ॥ ४९ ॥ कृष्णागुरु, कपूर, सस तथा विविध प्रकारके सुगन्धित पुष्पोंसे वह आश्रम सुगन्धमय हो गया । जगह-जगह पर सीनेकी जंजीरोंसे सजे रत्नोंके पल्लव पड़े हुए थे ॥ ५० ॥ हंस, कबूतर, कायल, मयूर तोतेके शब्दोंसे

एवं मनोहरं गेहं सीतार्थं जनकोऽकरोत् । श्रीः साक्षाद्भंतुमुद्युक्ता यस्मिन्निवसितुं चिरम् ॥५२॥
किं दुर्लभं हि तत्रास्ति वर्णनीयं मयाऽद्य किम् । यस्या नेत्रकटाक्षेण शक्रादीनां विभूतयः ॥५३॥
वाल्मीकीये सर्ववृत्तं जनकोऽपि न्यवेदयत् । मुनिश्चाप्यतिसंतुष्टो मेने स्वतपसः फलम् ॥५४॥

इति धीशसकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये जन्मकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः

(राम द्वारा सीताका त्याग)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामं तु कौसल्याऽग्रवीद्ब्रह्मसि संस्थिता । सीतां सीमोल्लंघनार्थं क्षीघ्रं प्रेषय राघव ॥१॥
तन्मातुर्वचनं श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा सविस्तरात् । सलक्ष्मणो निजामवां प्राह यन्मन्त्रितं पुरा ॥२॥
वाल्मीकेराश्रमे सीतास्यामादि च सकारणम् । अथ मासेऽष्टमे ग्रामे रामो राजीवलोचनः ॥३॥
एकस्मिन् जनकीं प्राह वीजतो लक्ष्मणेन हि । कन्ययित्वा म्रिये देवि रजकाक्षं त्वदाश्रयम् ॥४॥
त्यजामि त्वां वने लोकवादाद्भ्रातृ इवापरः । प्रियमात्पंचमासाद्वा सप्त मासान्सुषुप्तेभिः ॥५॥
अन्तर्बत्नी न गम्येति शास्त्राद्वा रजकच्छलात् । त्वां त्यक्त्वा पालयिष्यामि निकटे वस्तुमक्षमः ॥६॥
त्वां दृष्ट्वा चंद्रवदनां कामो मंशतान् बाधते । त्वद्वियोगस्तु निर्वन्धाद्विना मंश्र कथं भवेत् ॥७॥
तस्मात्कुताऽयं निर्वन्धः सत्यं विद्धि मनोरमे । पञ्चवर्षान्तरेण पुनरागत्य मेऽन्तिकम् ॥८॥
लोकानां प्रत्ययार्थं त्वं श्रुपथं हि करिष्यसि । भूमं विवरमार्गेण स्थित्वा सिंहासनोपरि ॥९॥

वह आश्रम शब्दावधान हो रहा था । तत्र भोक्तियोंका सागरवाली चाँदनियाँ टंगा हुई थीं और बहुत-सी लसवीरें भी जहाँ-तहाँ टेंगी थी ॥ ५१ ॥ जनकजाने साताके लिए प्रकारका सुन्दर भवन बनाकर तैयार करवाया । यदि ऐसा दिव्य भवन साताजोके वारते बन गया तो इसमें आश्रय हो गया है । जहाँ निवास करनेके निमित्त साक्षात् लक्ष्मणजी जानेवाला हो, वहाँ कौन वस्तु दुर्लभ हो सकती है । जिसके कटाक्षमात्रसे इन्द्रादि देवताओंकी भी सम्पत्तियाँ घनतो-वर्गइता है । उसके विषयमें मैं कहाँ वर्णन करूँगा । जनकजाने महर्षि वाल्मीकिको भी वह सब दी, जिन्हें सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए और साताके उस भावी आगमनकी उन्होंने अपनी तपस्याका फल ॥ ५२-५४ ॥ इति धीशसकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे ५० रामतेजपाण्डेयविरचिते 'ज्यात्स्ना'भाषाटीकासमन्विते जन्मकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

श्रीरामदासने कहा—एक दिन एकान्तमें कौसल्याने रामसे कहा कि अब समय हो गया है । शीघ्र सीताको अपनी सोमासे कहो भेज दो । माताको बातका रामने स्वाकार किया और वह भा बतलाया, जिसका निर्णय बहुत दिनों पहले कर चुके थे ॥ १ ॥ २ ॥ फिर यह भी कहा कि मेरा इस समय सीताका त्याग करना उचित है । कुछ दिन बाद आठवाँ महाना लगनेपर रामने सीताका एकान्तमें बुलाकर समझाते हुए कहा—देवि । उस दिन एक घोषोंने तुम्हारे विषयमें बड़ी कुतूहल आलाचना की थी । उसीके बहाने तुम्हें कुछ दिनोंके लिए वनमें छोड़ दूँगा । इससे दुनिया समझेगी कि मैं लोकापवादसे बहुत डरता हूँ । दूसरी एक यह है कि गर्भसे तीसरे, पाँचवें अवस्था सातवें महानेमें त्वांका ससग नहीं करना चाहिए । यह शास्त्रोंकी आज्ञा है । इसलिए उस घोषाकी बातोंके व्याजसे तुम्हें दूर रखकर मैं शास्त्रीय आज्ञाका पालन करूँगा और पास रहनेमें यह न हो सकेगा कि मैं तुमसे न वालूँ ॥ ३-६ ॥ क्योंकि तुमको देखनेसे मुझे काम सताने लगता । तुम्हारा वियोग भी बिना किसी बहानेके नहीं हो सकता था । इसलिए मैंने ऐसा प्रवन्ध किया है और इस समय मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसे अक्षरशः सत्य समझो । पाँच वर्षके भीतर ही तुम फिर यहाँ आओगी और संसारको दिखानेके लिए तुम्हें मेनी होगी ॥ ७ ॥ ८ ॥ उस

यदा गच्छामि पातालं जगत्या पूजिता तदा । सुखं स्तुत्वा भीषयित्वा त्वामंके स्थापयाम्यहम् ॥१०॥
 पुत्राभ्यां च मया सीते ततो भोगानवाप्स्यसि । मतस्त्वेकः कुशो ज्येष्ठस्तत्र पुत्रो भविष्यति ॥११॥
 मृगस्तपःप्रभावेण भविष्यत्यपरो लवः । वाल्मीकेराश्रमे चैवं कुमारी द्वौ भविष्यतः ॥१२॥
 अग्रे गत्वा च स्वस्तित्रा त्वद्यौर्यं च गृहादिकम् । ससुमेधेन सकलं कृतमस्ति ममाश्रया ॥१३॥
 कुरुष्याद्य मया यत्त्वामुच्यते जनकात्मजे । सात्त्विकी त्वं यथापूर्वं दंडके गीतमीतटे ॥१४॥
 महाभागो स्थिता यद्वन्मे वामांगे वसाधुना । वाल्मीकेराश्रमे गन्तुं शुभद्वयविमिश्रिता ॥१५॥
 भूत्वा त्वमाश्रमे स्थित्वा मद्वियोगं प्रदर्शय । तत्रापि त्वां कुशोत्पत्तौ दास्यामि दर्शनं सहः ॥१६॥
 तथेति रामवचनाज्ञानकी सा सिधतानना । रजस्तमोमयी स्वीया छायां निर्माय सादरम् ॥१७॥
 श्रीराघवस्य वामांगे सत्त्वरूपा लयं ययौ । ततो रामः समां गत्वा रात्रौ शानैकविग्रहः ॥१८॥
 मंत्रिभिर्मंत्रतश्चैदं लघुलघुपर्वयोधिकः । समततो वेष्टितः संस्तस्थौ सिंहासनोपरि ॥१९॥
 तत्रोपविष्टं राजानं सुहृदः पयुंसासिरे । हास्यप्रायकथाभिश्च हासयन्तः स्थिताः प्रसुम् ॥२०॥
 कथाप्रसंगात्प्रच्छ रामो विजयनामकम् । पौरा ज्ञानपरा वा मे किं वदन्ति शुभाशुभम् ॥२१॥
 सीतां तां मातरं ■ मे भ्रातृन्वा कंकर्यामथ । न मेतदयं त्वया ब्रूहि क्षापितोऽसि ममापरि ॥२२॥
 इत्युक्तः प्राह विजयो देव सर्वे वदन्ति ते । कृतं सुदुष्करं कर्म रामेणाविदितात्मना ॥२३॥
 तथाप्येवं वदन्ति त्वां वनास्तत्रे वदाम्यहम् । किंतु हत्वा दशग्रीवं सीतामावृत्त्य राघवः ॥२४॥
 अमयं पृष्ठतः कृत्वा स्ववेष्टम प्रत्यपादयत् । कौटुम्भं हृदयं तस्य सीतासमागज सुखम् ॥२५॥

समय तुम जब एक दिव्य सिंहासनपर बैठकर भूमिके वितरमार्गसे पातालको जाने लगोगे । तब मैं भूमिकी प्रार्थना करके या धमकाके तुम्हें वापस ले लूंगा और अपनी गोदमें दिठाऊंगा ॥ ९ ॥ १० ॥ उस समय तुम अपने दो बेटोंको लिये हुए मेरे ■ रहकर विविध प्रकारके सुख भागोगे । मेरे द्वारा तुमसे एक पुत्र होगा, जिसका नाम पड़ेगा कुश और दूसरा बेटा ऋषि वाल्मीकिके प्रभावसे उत्पन्न होगा, जिसका नाम होगा लव । इस प्रकार वाल्मीकिके आश्रमपर तुम्हारे दो पुत्र होंगे ॥ ११ ॥ १२ ॥ तुम्हारी माताके साथ जनकजी पहले ही उस आश्रमपर जा चुके हैं और उन्होंने तुम्हारे आरामकी ■ सामगियाँ प्रस्तुत कर दी हैं ॥ १३ ॥ आज मैं तुमको जैसा कह रहा हूँ हे जनकात्मजे ! तुम्हें वहीं ■ पड़ेगा । जसा ■ समय गीतमीके तट-पर तुमने अपनी दो मूर्तियाँ बनायी थीं । उसी प्रकार इस समय भी अपना दो स्वरूप बनाओ और पहलेकी नाई इस समय भी तुम सात्त्विक रूपसे मेरे ■ अगम निवास करो ॥ १४ ॥ १५ ॥ और दूसरे स्वरूपसे वाल्मीकिके आश्रमपर रहकर संसारको मेरे वियोगका दुःख दिखलाओ । आश्रमपर भी जब कुशका जन्म होगा, उस समय आकर ■ तुम्हें एकान्तमें दर्शन दूंगा ॥ १६ ॥ रामकी बात सुनकर सीताने मन्द मुस्कराहटके साथ 'सयास्तु' कहा और रजोगुणमयी ■ तमोगुणमयी सीता अपनी ■ रामके दक्षिण भागमें ■ गयीं और सत्त्वरूपसे रामके वाम भागमें बिलान हो गयीं ॥ १७ ॥ इसके ■ रामचन्द्रजी सभाभवनमें गये । वहाँ मन्त्रणाकुल मन्त्रियों तथा कितने ही दरबारियोंसे वेष्टित होकर बैठे । मित्रोंने उस समय भगवान्को विविध प्रकारसे पूजा की । तत्पश्चात् तरह-तरहकी हँसी-दिल्लंगाँकी बातें कर-करके ■ परस्पर मनोविनोद करने लगे ॥ १८-२० ॥ प्रसंगवश रामने विजय नामक एक गुप्तचरसे पूछा कि ■ समय अयोध्यावासी लोग मुझे किस दृष्टिसे देखते हैं ? उनका दृष्टम मेरा शासन अच्छा है या खराब ? इसके उत्तरिक्त सीता, मेरा माताजी, भाइयों अथवा कंकर्याक प्रति लगोके हृदयम कसा भाव है ? किसी प्रकार करो मत, जो कुछ मालूम हो साफ-साफ बतला दो । तुम्हें मेरा ■ है । इस प्रकार रामके पूछनपर विजयने कहा—हे देव ! आपके किये महान् कार्योंकी सराहना करते हुए लोग प्रशंसा हाँ करते हैं ॥ २१-२३ ॥ फिर भी आपके विषयम कुछ लोगोंका जो दूसरा राय है । उसे भी बतलाता हूँ । वे कहतेहैं कि रामन रावणकी मारकर सीताको उससे छुड़ाया और बिना कुछ सोचे-विचारे अपने घरमें बिठाल लिया । हम नहीं समझते कि रामका

था हता विजने पूर्वं रावणेन बने तदा । अकस्मादपि दुष्कर्म योषित्स्वमर्षदं भवेत् ॥२६॥
 यादृग्भवति वै राजा तादृश्यो नियताः प्रजाः । इति नानाविधा वाचः प्रवदन्ति पुरौकसः ॥२७॥
 अन्यत्किंचित्प्रवक्ष्यामि सांभ्रतं रजकोदितम् । दुर्मार्गगां स्वरजकीं भार्यां क्रोधवशेन सा ॥२८॥
 रजकः प्राह भो रंडे सोऽहं रामो न मैथिलीम् । रावणस्य गृहे स्पष्टं स्थितामंगीचकार यः ॥२९॥
 यथेच्छं गच्छ रंडे त्वं नाहं रामवदाचरे । गच्छता च मया मार्गे रजकेन समीरितम् ॥३०॥
 इति राम श्रुतं पूर्वं त्वया पृष्टं निवेदितम् । यत्प्रवक्ष्यामि हितं चात्र तत्कुर्वन् रघूत्तम ॥३१॥
 श्रुत्वा तद्वचनं रामः स्वजनान्यर्यपृच्छत । तेऽपि नन्वाऽब्रुवन् गममेवमेतच्च संशयः ॥३२॥
 ततो विसृज्य सचिवान्विजयं सुहृदमथा । आहूय लक्ष्मणं रामो वचनं चेदमब्रवीत् ॥३३॥
 लोकापवादस्तु महान्सीतामाश्रित्य मेऽभवत् । सीतां प्रातः समानीय वाल्मीकेताश्रमांतिके ॥३४॥
 त्यक्त्वा शीघ्रं रथेन त्वं पुनरायाहि लक्ष्मण । वक्ष्यसे यदि वा किंचिदत्र मां हतवानमि ॥३५॥
 छित्वा सीताश्रुजं लोकप्रत्ययार्थं समानय । इत्युक्त्वा लक्ष्मणं रामः कैकेयीं द्रष्टुमाययौ ॥३६॥
 एतस्मिन्नन्तरे सीतां कैकेयी गृहसि स्थिता । पप्रच्छ कीतुकान्मार्गाने भित्तौ लेख्य दशाननम् ॥३७॥
 मामत्र दर्शयस्वाद्य तं प्राह जानकी तदा । मयाऽवलोकितो नैव कदाऽपि स दशाननः ॥३८॥
 यदा इत्तुं पंचवटीयां मां प्राप्तो गौतमीतटे । तदा दृष्टस्नदंगुष्ठो मया दक्षिणपादजः ॥३९॥
 तत्सीतावचनं श्रुत्वा कैकेयी प्राह तां पुनः । यथा दृष्टस्त्वयांगुष्ठस्तथा भित्तौ लिखस्व हि ॥४०॥
 तथेति जानकी लेख्य तदंगुष्ठं भयानकम् । कैकेर्य्यं दर्शयामास तामामंभ्य गृहं ययौ ॥४१॥

हृदय कोसा है, जो इतना अनर्थ होनेपर भी लौटी हुई सीताके साथ विहार करते हुए सुखी हो रहे हैं ॥२४॥२५॥ जो सीता उस दुष्टके द्वारा हरी गयी और कई वर्ष तक उसके घरमें रही, उसके लिए रामको कुछ सोचने-विचारनेकी आवश्यकता क्योंकर नहीं मालूम हुई । उनका क्या बिगड़ा, वे चाहे एक बार कोई दुष्कर्म भी कर लें तो कोई दृष्टि नहीं उठा सकता, लेकिन इसका कुप्रभाव तो प्रजाके ऊपर पड़ेगा । यह साधारण नियम है कि जिस देशका जैसा राजा होता है, प्रजा भी वैसी ही हुआ करती है । इस प्रकारकी बातें बहुतोंके मुँहसे सुनी गयी हैं । एक घोड़ीने भी एक आपके बारेमें कहो थी, सो भी कहता है । उसने श्रीधर्मजी अपनी व्यभिचारिणी स्त्रीको संवोधित करके कहा—अरी ओ रण्डे ! मैं वह राम नहीं हूँ, जिन्होंने क्यों रावणके घरमें रही हुई सीताको अङ्गीकार कर लिया है । तेरी जहाँ इच्छा हो जा, मैं रामकी तरह कभी नहीं करूँगा और मुझे नहीं रखूँगा ॥२६-३०॥ मैं रास्तेमें चला जा रहा था, तब घोड़ीकी बात सुनी थी । सो पृष्ठनेपर आपको बतला दी । अब आप जो अच्छा समझें, वह करें । विजयकी बातें सुनकर रामचन्द्रजीने अपने मित्रोंसे भी इन विषयमें पछ-ताछ की । उन लोगोंने भी वही कहा, जो विजयने बतलाया था । इसके बाद रामचन्द्रजीने मन्त्रियों तथा विजयको विदा कर दिया और लक्ष्मणको बुलाया । लक्ष्मणसे रामने कहा—हे लक्ष्मण ! सीताके कारण संसारमें लोग हमारी बुराई निन्दा कर रहे हैं । इससे भी बढ़कर अपवाद होनेकी आशंका है । इसलिए कल सवेरे तुम सीताको रथमें बिठाकर मुनि वाल्मीकिके आश्रमपर छोड़ आओ । इस बातके विपरीत यदि तुम कुछ कहोगे तो तुम्हें हमारी हत्या करनेका पाप लगेगा । हाँ, इतना और करना । वनसे लौटते समय सीताकी एक भुजा भी काटकर लेते आना, जिसे दिखाकर व्योघ्यावालोंको विश्वास दिला सकूँगा । इतना कहकर राम कैकेयीके चला दिये । इसी बीच कैकेयीने आँगनमें बँठी बातें करते-करते सीतासे कहा—सीते । इस दोवारपर रावणका चित्र लिखकर हमें दिखाओ कि वह कितना बड़ा था । इसके उत्तरमें सीताने कहा—मैंने रावणको कभी देखा ही नहीं ॥ ३१-३५॥ हाँ, जब वह पंचवटीमें मुझे हस्तके लिए गया था, तब मैंने उसके दाहिने पैरका अंगूठा देखा था । सीताका उत्तर सुनकर कैकेयीने कहा—अच्छा, उसका अंगूठा जैसा रहा हो, वही इस दोवारपर लिख दो । जानकीने कैकेयीके कपनानुसार दोवारपर उसके भयानक अंगूठेका चित्र लिखकर दिखा दिया और घोड़ी देर बाद अपने

अंगुष्ठोपरि कैकेय्या यथायोग्यो दशाननः । लिखितः स्वेन हस्तेन रामं द्रष्टुं कुबुद्धितः ॥४२॥
 तावद्रामं समायातं दृष्ट्वा सा संभ्रमान्विता । भिर्यंतिके राघवाय ददावासनमुचमम् ॥४३॥
 रामोऽपि नत्वा कैकेयीमासने संस्थितोऽभवत् । ददर्ज मिशौ लिखितं विचित्रं तं दशाननम् ॥४४॥
 रामः पप्रच्छ केनात्र लिखितोऽयं दशाननः । कैकेयी कथयामास सीतया लिखितस्त्विति ॥४५॥
 यत्र यत्र मनो लग्नं स्मर्यते हृदि तत्सदा । स्त्रियाधरित्रं को वेत्ति शिवाद्या मोहिताः स्त्रिया ॥४६॥
 कैकेयीवचनं चेत्थं श्रुत्वा रामो महामनाः । सीताश्रयं सभावृत्तं कैकेयीमाह विस्तरात् ॥४७॥
 लक्ष्मणेन त्यजाम्यम्ब श्वः सीतां ज्ञाह्वीवटे । सोताश्रुजं वने छित्त्वा समानयतु मद्विरा ॥४८॥

सौमित्रिस्त्वा ■ पौरान्दर्शयिष्यति निश्चयात् ।

सीतया लिखितो यस्मात्स्वभुजेन दशाननः ॥४९॥

स्त्रीहत्यामयमालस्य तद्वधे लक्ष्मणो मया । न चोदितश्च तां हिंसा मक्षयिष्यति नै क्षणात् ॥५०॥
 इति रामवचः श्रुत्वा कैकेयी मुदिताऽभवत् । सीताया विग्रहाद्रामो नेदं राज्यं प्रज्ञास्यति ॥५१॥
 सेवार्थं रामचन्द्रस्य लक्ष्मणोऽपि न ज्ञास्यति । तदा श्रीरामवाक्येन भरतो ■ प्रज्ञास्यति ॥५२॥
 इति संचिन्त्य हृदये कैकेयी मुदिताऽभवत् । रामोऽपि नत्वा कैकेयीं सुमित्रां स्वां च मातरम् ॥५३॥
 सभावृत्तं च कैकेयीगेहे यजातमादरात् । श्रावयामास सकलं वृत्तं सीताश्रयं प्रभुः ॥५४॥
 नत्वा सुमित्रां कौसल्यां रामः सीतामृहं ययौ । सीतया दत्तपाद्यार्घासनमंगीचकार ■ ॥५५॥
 सभावृत्तं च कैकेयीगेहे यददृष्टमादरात् । श्रावयामास तत्कृत्स्नं वृत्तं तं जानकी मुदा ॥५६॥
 तच्छ्रुत्वा जानकी प्राह कैकेय्या वचनान्मया । अंगुष्ठ एव लिखितस्तयोर्ध्वं लिखितो धिया ॥५७॥
 अंगुष्ठस्यानुरूपेण दक्षास्यो दुष्टबुद्धितः । सत्सीतावचनं श्रुत्वा जानकीमाह राघवः ॥५८॥

महलोंको चली गयीं । सीताके चली जानेपर द्वेषवश कैकेयीने रामको दिखानेके लिए उस अंगुठके अनुसार रावणके पूरे शरीरका चित्र अपने हाथसे बना दिया ॥ ३९-४२ ॥ इतनेमें कैकेयीने देखा कि राम इसी ओर धा रहे हैं । तब झटपट उसने उस दीवारके ■ ही रामजीको बैठनेके लिए आसन डाल दिया । रामने वहाँ पहुँचकर कैकेयीको प्रणाम किया । फिर आसनपर बैठ गये । थोड़ी देर बाद रामकी दृष्टि उस घने हुए रावणके चित्रपर पड़ी ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ रामने पूछा—यहाँपर रावणका चित्र किसने बनाया है ? उत्तरमें कैकेयीने कहा कि आपकी बहु सीताने यह चित्र लिखा है । जहाँ जिसका मन ■ रहता है, बार-बार उसीकी ■ आती रहती है । यह एक ■ नियम है । और फिर स्त्रियोंके चरित्रको कौन जान ■ है । शिवादिक देवता भी तो स्त्रीचरित्रका पार नहीं पा सके और ■ भी मोहित हो गये ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ कैकेयीकी बातें सुनकर मनस्वी रामचन्द्रजीने कैकेयीको वह बातें भी बतलायीं, जो सभामें विजयके मुँहसे सुनी थीं । इसी सिलासिलेमें उन्होंने यह भी कहा—मातः ! कल सवेरे लक्ष्मणके साथ मैं सीताको गंगाजीके तटपर भेज रहा हूँ । वह उसे वहाँ छोड़ देगा और आप तथा पुरवासियोंको दिखानेके लिए मेरे कहनेसे सीताका एक हाथ भी काट लायेगा । क्योंकि सीताने उसी हाथसे तो रावणका यह चित्र बनाया होगा । स्त्रीहत्याके भयसे मैं उसे मारनेकी ■ नहीं दूँगा । लेकिन जब उसके हाथ नहीं रहेंगे तो वह जियेगी कैसे ? वमके हिसक जीव ही उसको ला जायेंगे ॥ ४७-५० ॥ इस ■ रामके ■ सुनकर कैकेयी बहुत प्रसन्न हुई और मनही मन सोचने लगी कि सीताके विरहसे दुखी होकर राम राज्यका काम नहीं कर सकेंगे । लक्ष्मण भी रामकी सेवामें लगे रहनेके कारण राज्यका पार अपने ऊपर नहीं लेंगे । ■ दशामें विवश होकर राम मेरे बेटे भरतसे राज्यका काम करनेके लिए आप्रह करेंगे । यह सोचकर कैकेयी प्रसन्न हुई । रामजा भी कैकेयीको ■ करके अपने महलोंको चले गये । वहाँ अपनी भतीजा कौसल्या ■ सुमित्राको आदिसे अंततक सीतासन्तन्वी सब वृत्तान्त कह सुनाया । फिर कौसल्या और सुमित्राको ■ करके वे सीताके भवनमें जा पहुँचे । सीताने पाद-अर्घ्य-आचमनीयादिसे उनकी पूजा की और रामजी एक आसनपर बैठ गये । इसके

कौटिल्यबुद्धिं कैकेय्याः समयां वंश्यहं प्रिये । इत्युक्त्वा राघवः सीतामालिङ्ग्यास्यं चुचुव सः ॥५९॥
 सीतया हेमपर्यङ्के भुक्त्वा भोगान्सुषुप्तलान् । विनोदार्थं रघुपतिः प्राह रात्रौ विदेहजाम् ॥६०॥
 स्त्रीणां सीते समर्पणां वाञ्छिनं वाञ्छते मनः । काते वाञ्छावदस्व त्वं तत्ते दास्यामि निश्चितम् ॥६१॥
 इति रामवचः श्रुत्वा भाविकार्येण यन्त्रिणा । सा प्राह राघवं गमं नगास्तीरस्थितां स्तरून् ॥६२॥
 सुनीनामाश्रमांश्चापि ऋषिपरितोश्च तद्दनम् । वाञ्छते मे मनो द्रष्टुं शीघ्रं प्रेषय तत्र माम् ॥६३॥
 इति सीतावचः श्रुत्वा तथाऽस्त्विति रघूत्तमः । प्राह र्माने लक्ष्मणः श्वो नेष्यति त्वां ममाज्ञया ॥६४॥
 पुनः प्राह रघुश्रेष्ठः सीते ते क्रीडनादिभिः । जपध्यानादिकं सर्वं विस्मृतं तन्मया पुरा ॥६५॥
 तत्करोम्यधुना सीते गतायां स्वयि काननम् । इत्युक्त्वा जानकीं रामः सुखं सुखाप मंचके ॥६६॥
 सीताऽपि चित्तयामास यत्र माता पिता मम । किं मां न्यूनं हि तत्रास्ति किञ्चिद्वस्त्वादिकं सह ॥६७॥
 नाहंनेष्यामिश्चस्तृष्णीं सरय्या दास्या ममन्विता । लक्ष्मणेन रथे स्थित्वा गच्छामि मुदिता सुखम् ॥६८॥
 इति निश्चित्य सा रात्रौ सुखं सुखाप मंचके । अथ प्रयाते मोक्षाय स्नाता स्नातं रघूत्तमम् ॥६९॥
 पक्वान्नादानि सत्पात्रे पर्यवेपथुत्तमम् । उपहारे कृते भर्त्रा स्वयं कृत्योपहारकम् ॥७०॥
 पूष्टोर्मिलादिकाः स्त्रीश्च नतः श्वश्रूः प्रणम्य च । गङ्गातीरस्थितान् वृद्धान्मुनीन्द्रपुं समुद्यता ॥७१॥
 ताः पश्यन्त्युत्सर्गपुक्ता दास्या मस्मात् लक्ष्मणम् । ततोऽयं लक्ष्मणो भ्रात्रा चोदिनस्तां ययौ जवाह्व ॥७२॥
 दास्या मम्या तुलसीपथ र्मानां कृत्वा स्थस्थिताम् । ययौ दक्षिणमार्गेण वायुवेगान्त्स जाह्नवीम् ॥७३॥
 इन्द्राया निर्जगश्चक्रः सीतामन्मार्गमन्त्रिक्याम् । उल्लंघ्य नमसां पुण्यां गोमतीं जाह्नवीमपि ॥७४॥
 यमुनां तां महापुण्यां तथा मंदाकिनीं नदीम् । द्वितीयां तमसां पुण्यां समुल्लंघ्य स लक्ष्मणः ॥७५॥

बाद उन्होंने वह वृत्तान्त बतलाया, जो सभामें कैकेयिके भवनमें हुआ था । सीताने कहा कि माता कैकेयिके कहनेमें मैंने केवल रावणके पैरका अंगुठा बनाया था । बाकी उन्होंने अपनी कल्पनासे रावणका सारा शरीर बनाया होगा । इस तरह सीताके वचन सुनकर रामने कहा—प्रिये ! मैं कैकेयीको कुटिलताको भरी-भरि जानता हूँ । इतना कहकर रामने सीताको अपनी छातीसे गूँथ लिया और बड़ी देरतक उनका मुँह घूमे रहे । फिर विनोद करने करते वही लेट गये । थोड़ी देर बाद रामने सोनामें कहा—प्रिये ! मैं जहाँतक जानता हूँ, गर्भिणी शिशु को कितनी ही चाँजे चाहा करती है । तुम्हारी भी किसी बस्तुकी इच्छा है ? यदि हाँ तो बतलाओ, मैं अवश्य दूँगा ॥ ५९-६० ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर भारीवश सीताने गङ्गातटनिवासी ऋषियोंके आश्रमों और वनोंको देखनेकी इच्छा प्रकट की और कहा कि मुझे शीघ्र वहाँ भेज दीजिये । राम सीताकी माँग स्वीकार करके कहने लगे—सीते ! कल ही लक्ष्मण तुम्हें गङ्गातटपर ले जायेंगे । थोड़ी देर बाद फिर बोले—सीते ! बहुत दिनोंसे तुम्हारे माथे भाग-बिलासमें मैं इतना स्थित हो गया कि जप, तप, ध्यान, धारणा आदि सब कुछ भूल गया था । यदि तुम कुछ दिनोंके लिए वहाँ चली जाओगी तो मैं कुछ भजन-ध्यान कर दूँगा । इस प्रकार बातें करके राम सो गये । सीता भी अपने मनमें सोचने लगी कि जहाँपर मेरे पिता-माता आदि परिवारके सब लोग निवसित हैं, वहाँ किसी वस्तुकी न्यूनता तो हो नहीं सकती । अतः मैं साथ कुछ ले जाऊँगी ॥ ६२-६३ ॥ अब कलका दिन मैं वैसे नहीं वापस दूँगी, बल्कि अपनी सत्तियों वासियों और लक्ष्मणके साथ हँसो-धुनो बतकी अवश्य जाऊँगी । यह निश्चय करके सीता भी आनन्दपूर्वक सो गयी ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ सबेरे सीताने उठकर स्नान किया और भोजन बनाया । उधर रामने भी स्नान कर लिया और भोजन करने बैठे । सीताने बड़े प्रेमसे परेमकर उन्हें भोजन कराया । तदनन्तर स्वयं भोजन किया ॥ ७० ॥ फिर उमिली आदि बहनोंसे पूछकर माताओंको प्रणाम किया और गङ्गातटके वनोंमें रहनेवाले मुनियोंको देखनेके लिए जानेको तैयार हो गयी ॥ ७१ ॥ उन्होंने रथ सानेके लिए लक्ष्मणजीको बुलाया । रामचन्द्रके आज्ञानुसार लक्ष्मण शीघ्र रथ लेकर आ पहुँचे ॥ ७२ ॥ सीता अपनी सत्तियों, दासियों तथा तुलसीवृक्षके साथ रथमें बैठीं और लक्ष्मणने दक्षिण मार्गसे गङ्गातटकी ओर पवनवेगके समान रथको भगवा ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

चित्रकूटोपस्यकायां वाल्मीकेराश्रमांतिके । पिप्पलाधो मैथिलीं तां सरुया दास्या वरासने ॥७६॥

निवेद्य नरदा स ग्राह साश्रुनेत्रः सगद्गदः । लोकापवादभीत्या त्वां त्यक्तवान् राघवो वने ॥७७॥

दोषो न कथिन्मे मातर्गच्छाश्रमपदं मुनेः ।

इत्युक्त्वा ■ परिक्रम्य सरुया दास्याऽपि वीजिताम् ॥७८॥

ययौ रथेन सौमित्रिः पूर्वमार्गेण जाह्नवीम् । शिष्यैः श्रुत्वाऽथ बान्मोकिर्जनकेन सुमेधसा ॥७९॥

ययौ सौमित्रिर्जैर्युक्तः पूजयामास जानकीम् । शिविकायां सन्निवेश्य वीजितां चामरादिभिः ॥८०॥

नाभावाद्यनिनादैश्च वेषयानां नर्तनैर्वरैः । स्तननैर्मार्गघादीनां नटादीनां सुगायनैः ॥८१॥

निनाय जनकः सीतां वाल्मीकेराश्रमे मुदा । मुनिपत्न्यो वन्यपुष्पैर्वर्षुर्जानकीं मुदा ॥८२॥

जानकीशिविकाग्रे ते दृष्टुर्वेत्तपाणयः । एव विवेश ■ सीता वाल्मीकेराश्रमं घनैः ॥८३॥

चक्रुर्नराजनं दीपैर्मुनिपत्न्यश्च जानकीम् । जानकीं हेमपर्यंके धृताधोकोपवर्हणा ॥८४॥

सुखमाषाश्रमे तस्य बान्मोकेश्च तपस्विनः । जानकीं पूजयामासुर्मुनिपत्न्यः पृथक् पृथक् ॥८५॥

दिव्यान्वैर्धनसंभूतैर्वन्यपुष्पैर्निरन्तरम् । हात्वा परात्मनो लह्यो मुनिवाक्येन मन्त्रितः ॥८६॥

दोहदान् पूरयामासुः सीतयास्ता मुनिस्त्रियः । शिविकासंस्थिता सीता ददर्श वनकौतुकम् ॥८७॥

यथापूर्वं तु साकेते सुखमाप विदेहजा ।

तथा मुनेराश्रमेऽपि सुखमाप पतिव्रता ॥८८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये
अष्टमकाण्डे सीताया वाल्मीकेराश्रमगमनं ■ तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

जब वे परम पवित्र यमुना, मंदाकिनी तथा तमसा नदीको पार करके चित्रकूटकी तलहटीमें वाल्मीकिराश्रमके समीप पहुँचे, ■ लक्ष्मणने रथको रोका और एक पीपल वृक्षकी छायामें आसन बिछा दिया । सब सखियोंके साथ सीताजी उसपर जा बैठी ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ तब आँखोंमें आँसू भरकर गद्गद कण्ठसे लक्ष्मणजी कहने लगे-माता । लोकापवादके भयसे रामचन्द्रजीने आपको ■ वनमें छोड़नेके लिए मुझे आज्ञा दी है । इसमें मेरा कोई दोष नहीं है । अब आप यहाँसे ऋषि वाल्मीकिके आश्रमपर चली जायें । इतना कहकर लक्ष्मणने सीताकी परिक्रमा की और प्रणाम किया । उस समय दासी और सखियाँ सीतापर पक्का ■ रही थी ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ फिर वे अपने रथपर बैठकर उसी मार्गसे अयोध्याके लिए लौट पड़े, जिधरसे गये थे । उपर वाल्मीकिने कुछ शिष्योंसे यह वृत्तांत सुना तो जनकजी, सुमेधा ■ कितनी ही स्त्रियों और ब्राह्मणोंके ■ वहाँ पहुँचे, वहाँ सीता बैठी थी । वहाँ पहुँचकर उन्होंने सीताकी पूजा की । फिर उन्हें सुन्दर पालकीमें बिठाया और अपने आश्रमकी ओर चले । रास्तेमें अनेक प्रकारके बाजे बज रहे थे । वेश्यायें नाच रहीं थीं और घाट विश्वावली बजान रहे थे । मट-गायक आदि सुन्दर गायन-गा रहे थे ॥ ७९-८१ ॥ जब सीताजी आश्रमपर पहुँच गयीं, उस समय मुनिपत्नियोंने सहर्ष ■ विविध प्रकारके वनफूल भरसाये ॥ ८२ ॥ उन्होंने भारती उतारी और एक सुवर्णनिर्मित पलंगपर बिठाया ॥ ८३ ॥ वहाँ पहुँचनेपर सीताको बड़ा ■ मिला । आश्रमकी ऋषिपत्नियोंने अलग-अलग सीताकी पूजा की ॥ ८४ ॥ उस दिनसे कितने ही तरहके विषय अन्न, वनके सुखादु फल तथा फूल आदि दे-देकर सीताको ■ स्त्रियें ■ किये रहती थीं । क्योंकि उन लोगोंने वाल्मीकिसे सुन रक्खा था कि सीता कोई साधारण स्त्री नहीं, साक्षात् विष्णुभगवानकी भार्या लक्ष्मी हैं । ■ इच्छा होती, तब सीता पालकीपर सवार होकर वनोंको देखनेके लिये जाया करती थीं । सीताकी जो सुख अयोध्यामें मिलता था, वही वहाँपर भी मुलम था ॥ ८५-८८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये अष्टमकाण्डे पं० रामतेजपाण्डेयविरचितभाषाटीकायां तृतीयः सर्गः ■ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः

(वाल्मीकिके आश्रममें लव-कुशका जन्म)

श्रीरामदास उवाच

अथ गङ्गातटं गत्वा लक्ष्मणोऽचिन्तयद्धृदि । स्वेच्छया कौतुकात्सीतां मया शुद्धां स त्यक्तवान् ॥ १ ॥
 स्वीयकामप्रशान्त्यर्थं आस्त्राणां प्रतिपालयन् । एवं सति पुनस्तेन किं ममाज्ञापितं रहः ॥ २ ॥
 वनात्सीताभुजं छिन्ना नयस्वेत्यतिदुर्घटम् । मयापि अपथं भ्रुत्वा न पृष्टः ॥ विचिन्त्य च ॥ ३ ॥
 अधुना किं करोम्यत्र कथं रामं प्रगम्यते । सीताभुजं विना दृष्ट्वा रामो मां किं वदिष्यति ॥ ४ ॥
 छेतुं सीताभुजं शक्तो भविष्यामि कथं स्वहम् । ययाऽहं पुत्रवन्निर्यं पालितो लालितस्त्वसि ॥ ५ ॥
 अधुनाऽग्निं विश्राम्यत्र रामायास्यं न दर्शये । एवं निश्चित्य सौमित्रिभिरा कर्तुं मनो दधे ॥ ६ ॥
 एतस्मिन्मन्तरे तत्र विश्वकर्मा विधेमिरा । कुठारहस्तो विपिने बभ्राम तत्परुषधृक् ॥ ७ ॥
 तं दृष्ट्वा लक्ष्मणः प्राह त्वं मे साहाय्यमाचर । कुठारेण तस्मिन्निष्ठा चितार्थं देहि मां जवात् ॥ ८ ॥
 यथेच्छं वसु दास्यामि त्वामहं निश्चयेन हि । सोऽप्याह लक्ष्मणं वीर चिताहेतुं वदस्व माम् ॥ ९ ॥
 सौमित्रिः कथयामास पूर्ववृत्तं सविस्तरम् । तच्छ्रुत्वा सकलं तद्यः सौमित्रिं प्राह सस्मितः ॥ १० ॥
 जल्पार्थे स्वीयकुशं मा जुहाव स्वराहुज । अहं सीताभुजं कृत्वाऽधुना दास्यामि ते क्षणात् ॥ ११ ॥
 इत्थुकृत्वा लक्ष्मणं कृत्वा जानकीभुजमुत्तमम् । त्वदृमांसास्थिस्नायुरक्तपूरितं कंचुकोधृतम् ॥ १२ ॥
 सीतालङ्कारसहितं तस्याग्निहविषिहितम् । ददौ लक्ष्मणहस्ते तं स्वयमंतर्दधे क्षणात् ॥ १३ ॥
 सीताभुजं समादाय लक्ष्मणोऽपि पुरीं ययौ । गतश्चिपं निरुत्साहां वास्यातिधूलिधूसराम् ॥ १४ ॥
 ददर्श नगरीं स्वीयां मारीहीनगृहोपमाम् । विवेशाधोमुखः पुर्यं नत्वा सदसि राघवम् ॥ १५ ॥

श्रीरामदास बोले—उधर गङ्गातटके समीप पहुंचकर लक्ष्मणने अपने मनमें सोचा कि यद्यपि लक्ष्मणसे लौटनेपर मैने ही अग्निमें डालकर सीताको पवित्र किया था। फिर श्री रामचन्द्रजीने सीता माताका परित्याग कर दिया है ॥ १ ॥ इसमें दो कारण है। ॥ तो रामचन्द्रजीको अपनी कामवासना कम करनी है, दूसरे शास्त्रकी आज्ञाका पालन करना है। अस्तु, रामके आदेशानुसार मैने सीताका परित्याग तो कर दिया, किन्तु एक और आज्ञा थी कि "लौटते समय सीताको एक भुजा में काटकर लेते आना"। यह बहुत ही कठिन काम है। उस समय रामजीने कसम खा दिया था, इसलिए विशेष बातचीत भी नहीं कर ॥ २ ॥ ३ ॥ अब मे क्या करूँ? कैसे प्रभूके पास लौटकर जाऊँ? यदि वे बिना हाथ लिये मुझे लौटे देखेंगे तो क्या बहेंगे और फिर यदि हाथ काटना चाहें तो कैसे काटूँ। जिन्होंने अपने बच्चेके समान भेरा बुलार किया, उन सीताके ॥ वह कसाईका ॥ करनेके लिये ॥ बर्गकर आगे बढ़ सकूँगा ॥ ४ ॥ ५ ॥ इसलिए सबसे अच्छा उपाय यह है कि यहीं आगमें जलकर मर जाऊँ। रामकी मुंह ही न दिखाने तो अच्छा हो। इस प्रकार विचार करके लक्ष्मणने चिता बनानेका निश्चय किया ॥ ६ ॥ इसी बीचमें ब्रह्माके आज्ञानुसार विश्वकर्मा एक बड़का रूप धारण करके हाथमें कुल्हाड़ी लिये बनमें घूमते फिरते वहाँ आ पहुँचे ॥ ७ ॥ लक्ष्मणने विश्वकर्मासे कहा—कृपया आप अपनी कुल्हाड़ीसे थोड़ीसी लकड़ी काटकर मुझे चिता बनानेको दे दीजिये ॥ ८ ॥ आप जितना घन मँगेंगे, दूँगा। बड़ाने कहा—हे वीर! आप अपने लिये चिता बनानेका कारण ही हमें बताइये ॥ ९ ॥ लक्ष्मणने आदिसे अन्ततक सारा वृत्तान्त ॥ दिया। उसे सुनकर मुस्कराते हुए विश्वकर्माने कहा—॥ १० ॥ इतनी-सी बातके लिये आप अपने इस बहुमूल्य शरीरको आगमें मत जलाइये। मैं अभी क्षणभरमें सीताका हाथ बनाकर आपको देता हूँ ॥ ११ ॥ तदनुसार तनिक ही देरमें विश्वकर्माने सीताका ऐसा हाथ बना दिया, जिसमेंसे रुधिर बह रहा था, मांसके लोथड़े झूल रहे ॥ और कञ्चुकी पड़ी हुई थी ॥ १२ ॥ सीताके उस हाथमें सब चिह्न विद्यमान थे और अलङ्कार पड़े थे। उस हाथको लक्ष्मणने हाथमें लेकर विश्वकर्मा अन्तर्धान हो गये ॥ १३ ॥ तब लक्ष्मण वह मुजा लेकर अयोध्यापुरीकी

दर्शयामास नीताया भुजं कङ्कणमण्डितम् । तं निरीक्ष्य भुजं रामोऽधोमुखः प्राह लक्ष्मणम् ॥१६॥
कैकेयीं सुतदः पौरान् सर्वान् ज्ञानपदाक्षुषान् । सीताभुजो दर्शनीयस्त्वयाऽद्य ■ शासनात् ॥१७॥
तथेत्युक्त्वा लक्ष्मणोऽपि स चकार यथोदितः । भुजं संरक्षयामास पेटिकायां निधाय सः ॥

कैकेयी तं भुजं दृष्ट्वा तुतोष नितरां हृदि ॥१८॥

रामोऽपि सीतारहितः परात्मा विज्ञानवृक्षं वल आदिदेवः ।

संन्यज्य भोगानखिलान्विरक्तो मुनिव्रतोऽभून्मुनिसंविताग्निः ॥१९॥

अथ सीताऽपि वाल्मीकिमुनिपत्नीमिराश्रमे । प्रत्यहं पूजिता वन्यैः सुखं तस्यां मुदान्विता ॥२०॥
एवं मासद्वयं तत्र नीत्वा सीताऽऽश्रमे मुनेः । सुदिने सुषुप्ते रात्रौ पुत्ररत्नं रविप्रभम् ॥२१॥
एतस्मिन्नन्तरे रात्रौ तात्वा तं समयं प्रभुः । राघवः किकिणीमालाघंटां मृक्त्वाऽथ बंधुना ॥२२॥
पुष्पकस्य ततस्तस्मिन् स्थित्वाकाशपथा ययौ । वाल्मीकेराश्रमे वेगात्सबन्धुस्तं ननाम सः ॥२३॥
ततो वाल्मीकिना विप्रैर्मितैरेव रघूत्तमः । जातकर्मादिमस्कारांश्चकार विधिपूर्वकम् ॥२४॥
सीतायाः पुरतः पुत्राननमालोकयन्मुदा । ददौ दानान्पनेकानि सखस्त्राभरणान्यपि ॥२५॥
अकार विधिवच्छ्राद्धं पुत्रजन्ममहोत्सवे । देवदुन्दुमयो नेदुर्वचर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥२६॥
सूराः सीतां शिशुं रामं ननृतुः स्ते मुरक्षियः । नेदुर्जनकवाद्यानि ननृतुर्वांसोपितः ॥२७॥
तुष्टुनुर्मागधायाश्च सीतां रामं शिशु मुहुः । ऋषिपत्न्यः शिशुं सीतां रामं दीपैः सुभूषिताः ॥२८॥
पृथङ्नीराजनं कृत्वा जगुर्गीतं हि सुस्वरम् । बभूवुः पूजयामास ताः सर्वा रघुनन्दनः ॥२९॥
सीतारामौ विदेहोऽपि पूजयामास विस्तरात् । वाल्मीकिस्तु कुशं शान्तिं चकार विधिना शिशोः ॥३०॥

और चल पड़े । अयोध्यामें घुसते ही लक्ष्मणने देखा कि एक ही दिनमें अयोध्यापुरी सर्वथा धीहीन हो गयी है । जहाँ-तहाँ सबदर उठ रहे हैं और चागे धूल उड़ती दीखती ■ । यह ■ मिलकर उस दिन अयोध्यापुरी ऐसी लग रही थी, जैसे बिना स्त्रीका बिना घर । लक्ष्मण जाते-जाते महलोंमें पहुँचे और रामचन्द्रजीको सीताका हाथ दिलाया । उस कङ्कण-बिजण्डित सीताकी भुजाकी देखकर रामने अपना मस्तक झुका लिया और—॥१४-१६॥ इसे ■ जाकर माता कैकेयी, मेरे मित्रों, राजाओं एवं पुरवासियों-का दिखला दो, यह मेरी ■ है ॥ १७॥ 'तथास्तु' कहकर लक्ष्मणने भी ■ पालन किया और एक पेटाम सम्हालकर सीताकी भुजा रक्ष ली ॥ १८॥ कैकेयीने सीताकी भुजा देखी तो बहुत प्रसन्न हुई । ध्वर रामचन्द्रजीने सीताने विपुक्त होकर ■ सांसारिक भागोंको त्याग दिया और तपस्वियोंके समान अपना जीवन बिताने लगे ॥ १९॥ उधर सीताजी भी वाल्मीकिने आश्रमपर वहाँकी मुनिपत्नियोंसे पूजित होती हुई सानन्द जीवन बिताने लगीं ॥ २०॥ इस तरह दो महिना बीतनेपर सीताने भ्रम दिन और शुभ घड़ीमें एक पुत्ररत्नका जन्म दिया ॥ २१॥ उसी समय रामचन्द्रजी भी ■ समाचार मिल गया और राजाको अपने पुष्पक त्रिशूलपर चढ़कर लक्ष्मणजीके साथ मरकाशमार्गसे श्रीवाल्मीकिजीके आश्रमपर जा पहुँचे और लक्ष्मण तथा रामने मुनिकों प्रणाम किया ॥ २२॥ २३॥ इसके अनन्तर वाल्मीकिने आश्रममें उपस्थित घोड़ोंसे श्रावणोंके साथ बन्नेका विधिवत् जातकर्मादि संस्कार किया ॥ २४॥ सीताके समक्ष राम-चन्द्रने हर्षपूर्वक बैठका मुख देखा और अनेक प्रकारके वस्त्र-आभरण आदि दान करके श्रावणोंको दिये ॥ २५॥ उस पुत्र-जन्मकी प्रसन्नतामें रामने नान्दीमुख-आदि किया । देवताओंने प्रसन्न होकर दुन्दुभी बजायी और उनपर फूल बरसाये ॥ २६॥ सीता और सीताके पुत्रका मुख देखकर देवाङ्गनायें नाचने लगी । उधर जनकजीके द्वारा नियुक्त बाजेवाले बाजा बजाने लगे और बेशरायें नाचने लगीं ॥ २७॥ वन्दीजन सीता और रामकी स्तुति करने लगे । ऋषिपत्नियोंने सुन्दर घालमें घृतका दापक जलाकर राम, सीता तथा नवजात शिशुको आरती उतारी और विविध प्रकारके मङ्गलगायन गाये । रामने अनेक तरहके वस्त्र-भूषणोंसे उनका सत्कार किया ॥ २८॥ २९॥ महाराज जनकने भी राम और सीताका विधिवत् पूजन किया और वाल्मीकिने

शोत्यर्थं प्रोक्षितो यस्मान्कुशैश्चस्मान्कुशाह्वयः । शान्तीकिना राघवाग्रं निश्चितो बालकस्य हि ॥३१॥
 एवं नानामुत्साहेनोन्वा तत्र निशां सुखम् । तत्रस्थान् सकलानाह ममात्रागमनस्य हि ॥३२॥
 यस्माद्वाता बहिर्गच्छेदाधमादस्य वै मुनेः । म मे दण्ड्यो भवेद्व शत्रुदया न सशयः ॥३३॥
 इत्युक्त्वा सकलान्दृष्ट्वा मुनीन्मत्वा पुनः पुनः । सीतामामन्त्र्य श्रीरामो यान भ्रात्राऽऽरुगेह सः ॥३४॥
 विहायसा धुणान्प्राप साकेतं रघुनन्दनः । श्वरुहा विमानात्क्ष पृथ्विनिद्रिजो गृहे ॥३५॥
 अथ रामो वाजिमेधश्चतं कर्तुं मनो दधे । कुक्का स्वर्णमयीं सीतां वक्षालंकारभूषिताम् ॥३६॥
 पापिनीं मलिनां दुष्टां भर्तुर्निदापरायणाम् । भर्तुर्विद्वंपिणीं कुरां चौरकर्मणि तत्परां ॥३७॥
 भर्तारं धातुमिच्छन्तीं सदा कलहकारिणीम् । परभुक्तां पापरतां भर्तुर्विपविलोपनीम् ॥३८॥
 स्त्रीयेभ्यश्चार्तिनीं नष्टां मृतां नातां गतां स्त्रियम् । त्यक्त्वा कुशमयीं विप्रैः काया पत्न्या स्वकर्मसु ॥३९॥
 हंभी कार्या बाहुर्वैश्व वैश्यैः कार्या तु राज्ञी । शूद्रैः कार्या ताम्रमयी स्वस्वकर्मप्रसिद्धये ॥४०॥
 अथवा सर्ववर्णैश्च कार्या पत्नी तु कञ्चनी । रामोऽपि कृत्वा सौवर्णिमग्निहोत्रं चकार सः ॥४१॥
 रावणेन यदा नीता सीता सा दंडके तदा । हेम्नोऽभावात्कुशमयी कृता रामेण जानकी ॥४२॥
 अन्ये कुशमयीं पत्नीं विधाय गृहमेधिनः । अग्निहोत्रमुपासन्ते नित्यस्यागोऽतिगर्हितः ॥४३॥
 व्यभिचारवतीं पाषा भर्तुर्विद्वंपिणीं तथा । आधाने सा परित्याज्या न वा त्याज्या मतातराद् ॥४४॥
 पक्षे पक्षे नवम्यां हि स्नानं ह्यनभृथामिधम् । कर्तुं निश्चितवान् रामस्तदा विप्रैः पुरोधसा ॥४५॥
 भागीरथ्युत्तरे तीरे यत्तभूमिं चकार सः । आप्रयागान्मुद्गलस्याश्रमो यावच्च दक्षिणे ॥४६॥

विभिपूर्वक कुशासे अभिवेक करते हुए शान्ति-पाठ किया ॥ ३० ॥ शान्तिके निमित्त वास्तविकी कुशासे शान्ति की थी । इसीलिए उन्होंने रामके सामने हँ। उस वक्तेका नाम कुशा रक्षसः ॥ ३१ ॥ इस तरह नाना प्रकारके उत्सवोंमें वह रात वहाँ बितायी और पिछली रातको रामने आश्रमके लोगोंसे कहा कि जो कोई मनुज मेरे यह! आनेका समाचार किसीसे कहेगा, वह मेरा शत्रु होगा और मैं उसको दंड दिये बिना न रहूँगा ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ऐसा कहकर रामने अयोध्या वापस आनेके लिए लोगोंसे आज्ञा माँगी और मुनिवृत्तोंका प्रणाम किया । फिर सीतासे वृत्तकर रामचन्द्रजी लक्ष्मणके साथ विमानपर आरुढ़ हुए और थोड़ी दूरमें अयोध्या आकर निश्चकी तरह अपनी मर्यादा पर सो गये ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ कुछ दिन बातनेके बाद रामने सी अश्वमेध यज्ञ करनेका विचार किया । उस समय सीता तो थी नहीं । इसलिए रामने सुवर्णकी सीता बनाकर यज्ञ करना निश्चित किया । क्योंकि शास्त्रमें लिखा है कि पापिन, मेली-कुचेली, दुष्ट स्वभावकी, मित्रा करनेवाली, पतिसे छड़ाई करनेवाली, शूर प्रकृतिकी, खोद्दिन, स्वामीकी मारनेकी इच्छा रखनेवाली, सदा छड़ाई करनेवाली, कूट्टा, स्वामीकी आज्ञाके प्रतिकूल चलनेवाली और स्वेच्छाचारिणी स्त्री यदि स्त्री जाय, मर जाय ■ किसीके द्वारा भना ली जाय अथवा स्वयं भाग जाय तो उसको रवागकर ब्राह्मण कुशकी, क्षत्रिय सुवर्णकी, वैश्य चाँदीकी और शूद्र ताम्रकी स्त्री बनाकर यज्ञादि कर्म करे ॥ ३६-४० ॥ अथवा सामर्थ्य होनेपर ■ जातिके लोग सुवर्णकी भारी बनाकर अपना काम चलायें । इन्हीं शास्त्रीय आज्ञाओंसे रामने सुवर्णकी सीता बनाकर अपना ■ प्रारम्भ किया ॥ ४१ ॥ पहले जब दण्डक वनमें सीता हार ली गयी थी और रामको रामेश्वर-स्थापनाके समय सीताकी आवश्यकता पड़ी थी, तब उन्होंने सुवर्णके अभावमें कुशकी ही सीता बनाकर रामेश्वरकी स्थापना की थी ॥ ४२ ॥ कुछ मुद्स्थ नारीके अभावमें कुशकी स्त्री बनाकर अभिहोत्र करते हैं, वह भी ठीक है । कहनेका मतलब यह कि स्त्रीके अभावमें किसी प्रकारकी स्त्री अवश्य बना लेनी चाहिए । क्योंकि स्त्रीके बिना कोई भी वांछित कार्य सम्पन्न नहीं होता । कुछ आचार्योंका मत है कि—“व्यभिचारिणी, पापिनी तथा स्वामीसे दोह करनेवाली स्त्रीका सवाके लिए परित्याग कर देना चाहिए” कूटका यह मत है कि “परित्याग न भी करे तो कोई हानि नहीं ।” ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ रामने प्रत्येक वर्णको एक अश्वमेध यज्ञ पूर्ण करनेका निश्चय किया और भागीरथीके उत्तरी तटपर यज्ञशाला बनानेकी बात

अह्वृत्तस्तस्तावन्नकार स्वर्णलांगलैः । यस्याश्रमस्य सावित्र्ये मागीरभ्यस्त्युदम्बहा ॥४७॥
 रुक्ममन्द्याऽथ जानक्या यज्ञारंभं चकार सः । अज्ञानदग्ध्यो द्रष्टुं वै चकार स्वर्णनिर्मिताम् ॥४८॥
 वामांगस्थां गुप्तरूपां जानदग्ध्यस्य सावित्रीम् । विभ्रत्सुदैव श्रीरामो जानकीं लोकमातरम् ॥४९॥
 यज्ञान्ते स्पर्णजां सीतां ददौ स्वगुरवे प्रभुः । एवं यज्ञशतेष्वत्र गुरवे शतमूर्तयः ॥५०॥
 याः समर्पिता रामेण तासां दानफलेन हि । षोडशस्त्रीसहस्रंभ्यश्चोर्ध्वं स्त्रीणां शत पुनः ॥५१॥
 द्वारकायां कृष्णरूपो विवाहेनोद्बहिष्यति । प्रतियज्ञे श्यामकर्णमथं रामो ह्रुमोच ह ॥५२॥
 चतुर्दिनाच्चतुर्दिक्षु परिक्रम्य ययौ हयः । एवं सर्वेषु यागेषु ययौ वाजो पृथग्जवात् ॥५३॥
 पुष्पकस्थः स अश्रुधनो हयरक्षां चकार वै । एवं सदा यज्ञघाटे विरेजे दीक्षया विभुः ॥५४॥
 एवं च नवतिसंख्या रामेण नव वै कृताः । चरमस्यापि प्रारम्भं रामो यज्ञस्य सोऽकरोत् ॥५५॥
 गंगाया दक्षिणे तीरे मुद्गलस्याश्रमोऽस्ति हि । तत्र नस्यान्निके गर्भोदक्तीरे च उदग्गहे ॥५६॥
 दिनानि दश बाल्मीकिर्निशायां सध्ययोरपि । श्रीरामरक्षया चक्रे बालकस्याभिमंत्रणम् ॥५७॥
 कुशं नाम तदा चक्रे मुनिरेकादशे दिने । चकार सर्वसंस्कारान् मुनिः श्रीराघवाङ्गया ॥५८॥
 एवं स बालकस्तत्र ववृचे मातृलालितः । जनकश्च सुमेधा च नानावस्त्रैः सुशोभनैः ॥५९॥
 शोभयामास दौहित्रं नानाव्याघ्रनखादिभिः । बालोऽपि रञ्जयामास स्वकीडाभिर्विदेहजाम् ॥६०॥
 एकदा निद्रितं श्रेष्ठे दृष्ट्वा बालं मुनेः पुरः । अन्यकर्मणि व्यग्रा सखीं स्वीयां स्वमातरम् ॥६१॥
 जनकं चापि सा सीता दृष्ट्वा सर्वाः बहिर्गतान् । आश्विने रविवारे च नद्यां स्नातुं समुप्यता ॥६२॥
 मुनिं तं बालरक्षयां कृत्वाऽथ तमसां ययौ । दास्या मागेण गच्छन्ती ददर्श पथि वानरीम् ॥६३॥
 फटिस्कंधमस्तकेषु विभ्रतीं पंच बालकान् । तां दृष्ट्वा स्वशिशुं स्मृत्वाऽचितयजानकी हृदि ॥६४॥

टहरायी गयी । प्रयागसे लेकर मुद्गल मुनिके आश्रमपर्यन्त जितना स्थान था, वह सुवर्णके हलसे जोता गया । रामकी उस यज्ञशालाके गंगाजी ठीक उत्तरको ओर वह रहो थीं ॥ ४५-४७ ॥ इसके अनन्तर रामने सुवर्णमयी सीताके साथ यज्ञकार्य प्रारम्भ किया । वह सुवर्णकी सीता अज्ञानी लोगोंको देखनेके लिए रखी गयी थी, किन्तु अज्ञानियोंकी दृष्टिमें तो सावित्री जानकी सदा रामके वामभागमें निवास करती थीं ॥४८॥४९॥ प्रत्येक यज्ञके समाप्त हो जानेपर राम वह स्वर्णमयी सीता अपने पुत्र वसिष्ठको दान दे दिया करते थे । इस प्रकार प्रत्येक यज्ञकी पूर्णतापर स्वर्णमयी सीता देते-देते रामने सो साताओंका किया । उस दानके फल-स्वरूप आगे वृष्णावतारमें उनको सोलह हजार एक सौ स्त्रियाँ मिलीं । प्रत्येक यज्ञमें राम अपना श्यामकर्ण षोड़ा दिग्विजयके लिए छोड़ते थे । वह चार दिनमें चारों ओर घूमकर लौट आया करता था । तापमें शत्रुघ्न पुष्पक विमानपर बैठकर षोड़की रक्षाके लिए जाया करते थे और रामचन्द्रजी दीक्षा लेकर यज्ञशालामें बैठे रहते थे ॥ ५०-५४ ॥ प्रकार रामचन्द्रजीने निश्चानवे पूर्ण किया और अन्तिम सीता भी प्रारम्भ कर दिया ॥ ५५ ॥ गंगाके दक्षिण तटपर मुद्गल नामके एक ऋषिका आश्रम था और उत्तरवाहिनी गंगाके तटपर ही बाल्मीकि सन्ध्याके रामके पुत्र कुशका रामरक्षा-मंत्रसे अभिवेक कर रहे थे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ग्यारहवें दिन बाल्मीकिने बच्चेका नामकरण करके रामके आज्ञानुसार संस्कार किया ॥ ५८ ॥ बच्चा भी षड़े षोड़-द्वारके समय विलासा हुआ बढ़ने लगा । जनक और सुमेधा अनेक प्रकारके सुन्दर वस्त्रों और व्याघ्रनखा आदि तरह-तरहके अलंकारोंसे अलंकृत करके रखते थे । बच्चा अपने कौतूकीसे जानकीजीको किया करता था । एक दिन कुश बाल्मीकिके पास पालनेपर सो गया । सखियाँ अन्य कामोंमें व्यस्त थीं । सीताके माता-पिता कहीं घूमने चले गये थे । उस रोज आश्विन मासके रविवारका दिन था । इसलिए सीताने नदीमें स्नान करनेकी इच्छा की । सीताने बाल्मीकिजीसे बच्चेको देखने रहनेके लिए कह दिया और स्वयं एक दासीको साथ लेकर तमसाकी ओर चल पड़ीं । रास्तेमें सीताने देखा कि एक वानरी अपने पाँच बच्चोंको कमर-कन्धों और मस्तकपर बैठाये चली जा रही है । उसे

तिर्यग्योनौ जन्मवत्या वानर्या बालकानहो । स्नेहात्सहैव नीयन्ते धिङ्मा मानवदेहवाम् ॥६५॥
 एकं चापि निजं बालं त्यक्त्वा गेहेऽथ गम्यते । मया विमृष्टया स्नातुं भुज्यत्र क्षणिकं सुखम् ॥६६॥
 इति धिक्कुन्य चात्मानं परिचृत्याश्रमं ययौ । एतस्मिन्नन्तरे गेहे वाल्मीकिर्मुनिर्पुंगवः ॥६७॥
 गतः स लघुशंकार्यं कार्यार्थं बटवो गताः । गृहीत्वा सा कुशं प्रेखाद्ययौ सीता बहिः पुनः ॥६८॥
 दास्या सह नदीं गन्धोपसि स्नानं चकार वै । अदृष्ट्वाऽथ मुनिबालं दार्यं निःश्वस्य वै मुहुः ॥६९॥
 सीताशापभयाचक्रे लवबालं स पूर्ववत् । तपोबलेन तं प्रोक्ष्य जीवयामास वेगतः ॥७०॥
 ज्ञानदृष्ट्या तीव्रतया मुनिना नावलोकितम् । ततः सीताऽपि मुस्ताता दास्या गेहं जनैर्ययौ ॥७१॥
 कटौ गृहीत्वा तं बाल रुक्मनूपुरनिःस्वना । प्रेक्षेऽन्यं बालकं दृष्ट्वा मुनिं पप्रच्छ जानकी ॥७२॥
 प्रेक्षे कस्याः शिशुभायं सोऽपि दृष्ट्वा तदा कुशम् । कटिप्रदेशे जानक्या विस्मयं परमं गतः ॥७३॥
 नमस्कृत्य ततः सीतां सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् । अंके निधाय तं बालं सीताया दाम्रवीन्मुनिः ॥७४॥
 प्रसादान्मम वंदेहि द्वितीयोऽयं मुनस्तव । भवत्वद्य लवो नाम्ना लवैर्यस्माद्विनिर्मितः ॥७५॥
 वाल्मीकेर्वचनात्साऽपि शिशुं जग्राह जानकी । मुनिस्तयोर्नाम चक्रे कुशो ज्येष्ठोऽनुजो लवः ॥७६॥
 जातकर्मादिसंस्कारान् लवस्यापि चकार मः । तदा निनेदुर्वाधानि भूम्यां स्त्रेऽपि दिवौकसाम् ॥७७॥
 वर्षर्षुजानकीं बाली वाल्मीकिं कुसुमैः मुराः । चकार जनकश्चापि सुमेधा परमोत्सवान् ॥७८॥
 क्रमेण विद्यासंपन्नो सीतापुत्री विरेजतुः । धनुर्विद्यामस्त्रविद्यां शिक्षयामास तौ मुनिः ॥७९॥
 कुत्स्नं रामायणं स्वीयं कृतं तौ शिक्षयन्मुदा । यस्मिन्ननन्दरम्यं चरित्रं राघवस्य हि ॥८०॥
 कुमारौ स्वरसंपन्नौ सुन्दरावधिनाविव । तन्त्रीलयसमायुक्तौ गायंतौ चैरतुर्वने ॥८१॥
 तत्र तत्र मुनीनां तु समाजेषु मरुपिणौ । गायन्तावपि तौ दृष्ट्वा विस्मिता मुनयोऽमुवन् ॥८२॥

देखकर उन्होंने अपने मनमें सोचा कि तिर्यग्योनिकी स्त्री होकर भी यह वानरी कितने प्रेमसे बच्चोंको अपने साथ रखती है । मुझ मानवजातिकी भामिनीको धिक्कार है, जो अपने एक लड़केको आश्रमपर छोड़कर तमसा स्नान करने जा रही हैं ॥ ६९-६५ ॥ इस तरह अपनेको धिक्कारकर सीता वहाँसे फिर आश्रमको लौट पड़ी । इसी बीच वाल्मीकिजो लघुशङ्ख करनेके लिये बाहर चले गये थे । विद्यार्थी भी अपने-अपने कामसे पहले ही चले जा चुके थे । इतनेमें सीता पहुँची । उन्होंने कुशको उठा लिया और दासीके साथ तमसाकी ओर चले गयीं ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ उधर वाल्मीकि लौटकर आये तो उनको निगाह पालनेपर पड़ी । उसपर बच्चेको नहीं देखा । ऐसी अवस्थामें मुनिराजने एक लम्बी साँस ली और सीताके आपके भयसे अपने तपोबल द्वारा लवसे कुशके समान ही एक बालक और बना दिया ॥ ६८-७० ॥ घबराहटके कारण उन्होंने अपनी ज्ञानदृष्टिसे यह नहीं देखा कि सीता कुशको अपने साथ ले गयी है । कुछ देर बाद स्नान करके सीता भी दासीके साथ घीरे-घीरेसे कुटियामें आयीं ॥ ७१ ॥ वहाँ उन्होंने देखा कि कुशके समान ही अलंकारादिसे विभूषित एक बालक पालनेपर पड़ा सो रहा है । यह देखकर सीताने ऋषिसे पूछा कि यह किसका बच्चा है ? उधर ऋषिने देखा कि कुश तो सीताकी कमरपर है, तब उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ फिर उन्हें नमस्कार करके वाल्मीकिने वह वृत्तांत बतलाया, जिसके कारण उन्हें इसरा बच्चा बनाना पड़ा था । उसके पश्चात् मुनिने भूमिकारकर लवको सीताकी गोदमें दे दिया और कहा— ॥ ७४ ॥ देवि ! इसे भी सम्हालो । तब सीताने उस बच्चेको भी अंगीकार किया । मुनिने कहा—इन दोनोंमें ज्येष्ठ कुश होगा और कनिष्ठ (छोटा) लव ॥ ७५ ॥ इसके अनन्तर उन्होंने लवका भी जातकम आदि संस्कार किया । उस समय विविध प्रकारके दाजे वने । स्वर्गमें देवताओंने भी मंगलवाद्य बजाकर जानकी, शिशु तथा वाल्मीकिके ऊपर फूलोंकी वर्षा की । सुमेधा तथा जनकने विविध किये । क्रमशः दोनों पुत्र बड़े हुए । उन्होंने विद्याओंका अध्ययन किया और महर्षि वाल्मीकिने उनको धनुर्विद्या तथा अस्त्रविद्या भी सिखायी ॥ ७६-७८ ॥ फिर अपनी बनायी सम्पूर्ण रामायणकी भी उन्हें शिक्षा दी । जिसमें रामचन्द्रजीका आनन्ददायक चरित्र वर्णित था ॥ ८० ॥ अश्विनीकुमारकी भाँति सुन्दर वे दोनों बालक मधुर स्वरसे

गन्धर्वेष्विह किमरेषु भुवि वा देवेषु देवालये
पातालैष्वथ वा चतुर्मुखगृहे लोकेषु सवषु च ।
अस्माभिश्चिरजीविभिश्चिरतरं द्रष्टुं दिशः सर्वतो
नाशायीदृशगीतवाद्यगरिमा नादांसि नाश्रावि च ॥८३॥

एवं स्तुतञ्जिराखिलैर्मुनिभिः प्रतिवासरम् । आसते मुसुमेकांते वाल्मीकेराशये चिरम् ॥८४॥
रुक्मकंठगमज्जोरनूपुरैस्तौ विभूषितौ । केयूररत्ननादाकुण्डलैरतिशोभितौ ॥८५॥
निजक्रीडाकौतुकैश्च बालवाक्यैर्मनोहरैः । सीतां सुमेधां जनकं रञ्जयामासुर्मुनिम् ॥८६॥

इति श्रीकृतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदामन्दरामायणे वाल्मीकीये विलासकाण्डे

कुशलवज्रजन्मकथनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

(रामरक्षा-महामंत्र)

विष्णुदास उवाच

श्रीरामरक्षया प्रोक्तं कुशलस्य अभिमंत्रणम् । कृतं तेनैव मुनिना गुरो तौ मे प्रकाशय ॥ १ ॥
रामरक्षां वरं पुण्यां बालानां शान्तिकारिणीम् ।

श्रीशिव उवाच

इति शिष्यवचः श्रुत्वा रामदामोऽब्रवीद्वचः ॥ २ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्पक् पृष्टं त्वया शिष्य रामरक्षाधुनोच्यते । या प्रोक्ता शंभुना पूर्वं स्कंदार्थे गिरिजां प्रति ॥ ३ ॥
श्रीशिव उवाच

देव्यस्य स्कंदपुत्राय रामरक्षाभिमंत्रणम् । कुरु तारकघाताय समर्थोऽयं भविष्यति । ■ ॥
इत्पुक्त्वा कथयामास रामरक्षां शिवः स्त्रियै । नमस्कृत्य रामचन्द्रं शुचिर्मत्वा जितेन्द्रियः ॥ ५ ॥

वीणाकी स्तनकारके साथ वनमें रामचरित्र गाया करते थे ॥ ८१ ॥ जहाँ-तहाँ मुनियोंकी मण्डलीमें जब वे दोनों सुकुमार बालक रामचरित्रका गायन करते थे तो सबके मुँहसे सहसा यह वाक्य निकल पड़ता था कि हम लोगोंने अपनी लक्ष्मी आयुमें गंधर्वों, किन्नरों, मनुष्यों, देवताओं, पाताललोकवासियों, ब्रह्मलोकवासियों एवं सारे ब्रह्मण्डवासियोंकी अनक गायकोंके गायन सुने हैं, लेकिन उनमें कहीं न तो मैंने इस प्रकार वाद्यकलाकी निपुणता देखी और ■ गायनमें ऐसी मिठास ही पायी ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ■ तरह सब कृपियोंने प्रणसित होकर ■ दोनों एकान्तमें वाल्मीकिके आश्रमपर रहा करते थे । सुवर्णके कङ्कण, नूपुर, केयूर, करघनी, हार तथा कुण्डल पहननेसे वे और भी सुन्दर दीप्यते थे ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ प्रतिदिन उनकी मनोहर बाललीला देख-देखकर मुनि, सीता, सुमेधा और जनकजी मारे खुशीके फूलें नदों समाते थे ॥ ८६ ॥ इति श्रीकृतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदामन्दरामायणे वाल्मीकीये पंच रामतेजपाण्डेरक्तसायाटोकासमन्विते जन्मकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरुदेव ! जिस रामरक्षा-मंत्रसे वाल्मीकिने कुशका अभिमंत्रण किया था, उसे हमको बताइए ॥ १ ॥ क्योंकि मैंने सुना ■ कि ■ रामरक्षामंत्र बड़ा पवित्र सुन्दर और बालकोंको शान्ति प्रदान करनेवाला है । शिवजीने कहा—इस प्रकार शिष्यकी प्रार्थना सुनकर श्रीरामदास कहने लगे—हे प्रिय शिष्य ! तुमने बहुत ■ प्रण किया है । मैं तुम्हें वह रामरक्षामंत्र बतलाता हूँ, जिसे एक बार शिवजीने पार्वतीकी हजमिकांतिकेयकी रक्षाके लिए बतलाया था ॥ २ ॥ ३ ॥ श्रीशिवजी बोले—हे देवि ! आज एमानन्दके

■ ध्यानम्

वामे कोदण्डदंडं निजकरकमले दक्षिणे बाणमेकं

पथाङ्गाग्रे च नित्यं दधतमभिमतं सासितूणीरभारम् ।

वामेऽवामेव सङ्ख्यां सह मिलिततनुं जानकीलक्ष्मणाभ्यां

इयार्थं रामं भजेऽहं प्रणतजनमनःस्वेदविच्छेददक्षम् ॥ ६ ॥

अस्य भीरामरक्षास्तोत्रमंत्रस्य बुधकौशिककपिः श्रीरामचंद्रो देवता राम इति बीजम्

अनुष्टुप् छंदः श्रीरामप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ।

चरितं रघुनाथस्य सुतकोटिप्रविस्तरम् । एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम् । ७ ॥

ध्यात्वा नीलोत्पलश्यामं रामं राजीवलोचनम् । जानकीलक्ष्मणोपेतं अटामुकुटमंडितम् ॥ ८ ॥

सासितूणधनुर्बाणशार्णि नक्तंचरान्तकम् । स्वलीलया जगत्त्रातुमाविर्भूतमजं विभुम् ॥ ९ ॥

रामरक्षां पठेत्प्राज्ञः पापघ्नो सर्वकामदाम् । शिरो मे राघवः पातु भालं दक्षरथात्मजः ॥ १० ॥

कौसल्येयो दृशी पातु विश्वामित्रप्रियः श्रुतां । घ्राणं पातु मत्स्यत्राता मुखं सौमित्रिवत्सलः ॥ ११ ॥

जिह्वां विद्यानिधिः पातु कंठं भरतवन्दितः । स्कंधौ दिव्यायुधः पातु भुजौ भग्नेशकार्मुकः ॥ १२ ॥

करी सीतापतिः पातु हृदयं जामदग्न्यजित् । पार्श्वे रघुवरः पातु कुक्षौ इक्ष्वाकुनन्दनः ॥ १३ ॥

मध्यं पातु खरध्वंसी नाभिं जांबवदाश्रयः । सुग्रीवेशः कटिं पातु सक्थिनी हनुमत्प्रभुः ॥ १४ ॥

ऊरू रघूत्तमः पातु गुह्यं रक्षःकुलांतकृत् । जानुनी सेतुकृत्पातु जंघे दशमुखान्तकः ॥ १५ ॥

पादौ विभीषणश्रीदः पातु रामोऽखिलं वपुः ।

एतां रामवल्लोपेता रक्षां यः मुकुतां पठेत् । स चिरायुः सुखी पुत्री विजयी विनयी भवेत् ॥ १६ ॥

पातालभूतलव्योमचारिणश्छद्मचारिणः । न द्रष्टुमपि शक्तास्ते रक्षितं रामनामभिः ॥ १७ ॥

रामेति रामभद्रेति रामचन्द्रेति वा स्मरन् । नरो ■ लिप्यते पापैर्भुक्तिं मुक्तिं च विंदति ॥ १८ ॥

रक्षार्थं तुम्हें रामरक्षामंत्र यत्नसे पढ़ना है । अथ ध्यानम् । जिन रामचन्द्रजीके बायें हाथमें धनुष, दाहिने हाथमें एक बाण और पीठपर बाणोंसे भरा हुआ तरकस है । जिनकी बायी तथा दाहिनी ओर लक्ष्मण और सीता हैं । भक्तोंके मनकी पीड़ा नष्ट करनेमें निपुण श्रीरामचन्द्रजीका मैं ■ करता हूँ ॥ ४-६ ॥

विनियोगके अनन्तर—सो करोड़ श्लोकोंमें विस्तारसे वर्णित भगवान् रामके चरित्रका एक-एक ■ महान् पापोंका भी नाश करता है । नीलकमलकी नाई श्याम तथा राजीवलोचन, जिनके आस-पास लक्ष्मण तथा जानकीजी विराज रही हैं । जिनका मस्तक अटामुकुटसे अलंकृत है । तलवार, तरकस, धनुष और बाणकी लिये जो राक्षसोंको यमराज सहस्र भीषण दीखते हैं । जो जगत्की रक्षाके निमित्त अपने इच्छानुसार जगत्सीतलवर अवतीर्ण हुए हैं, ऐसे रामका ध्यान करके सब कामन्दाओंको पूर्ण करने तथा पापोंका नाश करनेवाले रामरक्षामंत्रका पाठ करे । राघव यह रामचन्द्रजीका नाम मेरे शिरकी रक्षा करे ॥ ७-१० ॥ दशरथात्मज ललाटकी रक्षा करे । कौसल्येय नेत्रोंकी, विश्वामित्रप्रिय कानोंकी, मत्स्यत्राता नाककी और सौमित्रवत्सल मुखकी रक्षा करे ॥ ११ ॥ विद्यानिधि जिह्वाकी, भरतवन्दित कंठकी, दिव्यायुध दोनों कन्धोंकी, भग्नेशकार्मुक भुजाओंकी, सीतापति हाथोंकी, जामदग्न्यजित् हृदयकी, रघुवर पार्श्वभागकी, इक्ष्वाकुनन्दन पेटकी, खरध्वंसी शरीरके मध्यभागकी, जांबवदाश्रय नाभिकी, सुग्रीवेश कमरकी, हनुमत्प्रभु हृष्टियोंकी, रघूत्तम दोनों घुटनोंकी, रक्षःकुलांतकृत् गुदाकी और दशमुखान्तक मेरी जाँघोंकी रक्षा करे ॥ १२-१५ ॥ विभीषणको राज देनेवाले पैरोंकी और राम सारे शरीरकी रक्षा करे । जो मनुष्य रामके बलसे परिपूर्ण इस रामरक्षामंत्रका पाठ करता है वह चिरायु, सुखी, पुत्रवान्, विजयी और विनयी होता है ॥ १६ ॥ पाताल-चारी, भूमिधारी, व्योमधारी और छद्मधारी कोई भी भूत-प्रेतादि बाधा रामरक्षामंत्रसे अभिमंत्रित जबपर दृष्टिपात नहीं कर सकते । जो मनुष्य राम, ■ ध्यावा रामचन्द्र इस नामका स्मरण करता है, वह पापसे

जगज्जैत्रैकमंत्रेण रामनाम्नाऽभिरक्षितम् । यः कंठे धारयेत्तस्य कस्तथाः सर्वसिद्धयः ॥१९॥
 वज्रपंजरनामेदं यो रामकवचं पठेत् । अग्न्याहतातः सर्वत्र लभते जयमंगलम् ॥२०॥
 आदिष्टवान् यथा स्वप्ने रामरक्षामिमां हरः । तथा लिखितवान् प्रातः प्रबुद्धो बुधकौशिकः ॥२१॥
 रामो दाशरथिः सूरौ लक्ष्मणानुचरो बली । काकुत्स्थः पुरुषः पूर्णः कौसल्यानन्दवर्धनः ॥२२॥
 वेदान्तवेद्यो यज्ञेशः पुराणपुरुषोत्तमः । जानकीवल्लभः श्रीमान्प्रमेयपराक्रमः ॥२३॥
 हृत्पेतानि जपेन्नित्यं मङ्गलकः भद्रयाऽन्वितः । अश्वमेधापुत्रं पुण्यं संप्राप्नोति न संशयः ॥२४॥
 सन्नद्धः कवची सङ्गी चापबाणधरो युवा । गच्छन् मनोरथोऽस्माकं रामः पातु सलक्ष्मणः ॥२५॥
 तरुणौ रूपसंपन्नौ सुकुमारौ महाबलौ । पुण्डरीकविशालाक्षौ वीरकृष्णाजिनांबरौ ॥२६॥
 फलमूलाशनौ दातौ तापसौ ब्रह्मचाग्निौ । पुत्रौ दशरथस्यैतौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥२७॥
 धन्विनौ वृद्धनिश्चिन्तौ काकपक्षधरी श्रुतौ । वीरौ मां पथि रक्षेतां तानुभौ रामलक्ष्मणौ ॥२८॥
 शरण्यौ सर्वसत्त्वानां श्रेष्ठौ सर्वधनुष्मताम् । रक्षःकुलनिहतारौ त्रायेतां नो रघूत्तमौ ॥२९॥

आत्तसज्जधनुषाविपुस्पृष्टावक्षयाशुगनिपंगमंगिनौ ।

रक्षणाय मम रामलक्ष्मणावग्रतः पथि सदैव गच्छताम् ॥३०॥

आरामः कल्पवृक्षाणां विरामः सकलापदाम् । अमिरामस्त्रिलोकानां रामः श्रीमान् स नः प्रभुः ॥३१॥

रामाय रामभद्राय रामचंद्राय वेधसे । रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥३२॥

श्रीराम राम रघुनन्दन राम राम श्रीराम राम राम भरताग्रज राम राम ।

श्रीराम राम रणकर्कश राम राम श्रीराम राम शरणं भव राम राम ॥३३॥

लोकाभिरामं रणरंगधीरं राजीवनेत्रं रघुवंशनाथम् । कारुण्यरूपं करुणाकरं तं श्रीरामचंद्रं शरणं प्रपद्ये ॥

दक्षिणे लक्ष्मणो यस्य वामे च जनकात्मजा । पुरतो माहुरित्यस्य तं वंदे रघुनन्दनम् ॥३५॥

विमुक्त होकर मुक्ति और भुक्ति का भागी होता है ॥ १७ ॥ १८ ॥ समस्त जगत्को जीतनेवाले इस रामरक्षा-
 मन्त्रको जो मनुष्य कण्ठस्थ कर लेता ॥ तो संसारकी सारी सिद्धियाँ उसके हाथमें आ जाती हैं ॥ १९ ॥
 जो प्राणी इस वज्रपंजर रामकवचका ॥ करता है, उसकी ॥ कहीं भी नहीं टलती और सर्वत्र उसकी
 विजय होती है ॥ २० ॥ स्वप्नमें यह रामरक्षामंत्र निवृत्तीने जैसा ॥ था, सबरे सोकर उठते ही विद्या-
 मित्रने उसी तरह लिख लिया ॥ २१ ॥ राम, दाशरथि, सूर, लक्ष्मणानुचर, बली, काकुत्स्थ, पुरुष, कौसल्या-
 नन्दवर्धन, वेदान्तवेद्य, यज्ञेश, पुराणपुरुषोत्तम, जानकीवल्लभ, श्रीमान् तथा अप्रमेय पराक्रम इन नामोंका थोड़ा-
 पूर्वक जप करनेवाला भक्त ॥ हजार अश्वमेध ॥ करनेका फल ॥ है । इसमें कोई संशय नहीं है
 ॥ २२-२४ ॥ सन्नद्धकवची, सङ्गी, चापबाणधर, युवा और लक्ष्मणके साथ जाते हुए श्रीरामचंद्र हमारे मनो-
 रथोंकी रक्षा करें ॥ २५ ॥ तरुण, रूपसंपन्न, सुकुमार, महाबली, कमलकी नाई बड़ी-बड़ी आँखोंवाले, पीतांबरधारी,
 फल-मूल खानेवाले, उदारप्रकृति, तपस्वी, ब्रह्मचारी, धन्वी, निश्चिन्तधारी तथा काकपक्षको धारण किये दशरथके
 दोनों पुत्र राम और लक्ष्मण रास्तेमें जाते ॥ हमारी रक्षा करें । संसारी जीवोंके आधार, धनुर्धारियों-
 में श्रेष्ठ, राक्षसकुलके विनाशक राम और लक्ष्मण भेरो रक्षा करें ॥ २६-२८ ॥ त्रिस्तुल तैयार धनुष जिसपर
 ॥ बड़ा है, उसे लिये और अजय बाणवाले सूजीरको कसे राम-लक्ष्मण सदा रास्तेमें हमारे आगे-आगे चलें
 ॥ ३० ॥ जो कल्पवृक्षके आराम (वगैरा), समस्त विपत्तियोंके विराम (समाप्ति) और तीनों लोकोंमें
 अभिराम (सुन्दर) है, ॥ श्रीमान् रामचन्द्रजी हमारे प्रभु ॥ ३१ ॥ राम, रामभद्र, सर्वश्रेष्ठ, रामचंद्र, रघुनाथ,
 तथा सीताके पति रामचन्द्रजीको ॥ प्रणाम करता है ॥ ३२ ॥ हे श्रीराम, हे रघुनन्दन राम, हे भरताग्रज
 राम, हे रणकर्कश श्रीराम, हे राम, हमको शरण दीजिए ॥ ३३ ॥ संसार भरमें अतिशय सुंदर, संग्राममें निपुण,
 कमल सरीसै नेत्रोंवाले, रघुवंशके स्वामी कृष्णकी मूर्ति और इयाके चण्डार श्रीरामचन्द्रकी ॥ शरणमें हैं ॥ ३४ ॥
 जितकी दाहिनी ओर लक्ष्मण, बाई ओर सीता और सामने हनुमानजी उपस्थित हैं, ऐसे रघुनन्दन रामकी-थे

गोष्पदीकृतवारीशं मशकीकृतराश्रसम् । रामायणमहामालारत्नं चन्देऽनिलात्मजम् ॥३६॥
अथौष तिष्ठ दूरे त्वं रोगास्तिष्ठंतु दूरातः । वरीवर्ति सदाऽस्माकं हृदि रामो धनुर्धरः ॥३७॥

मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।

ज्ञातात्मजं चानरयुधमुख्यं श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये ॥३८॥

राम राम तव पादपङ्कजं चिंतयामि भवबन्धमुक्तये ।

वन्दितं सुरनरैर्द्रुमीलिभिर्ध्यायितं मनसि योगिमिः सदा ॥३९॥

रामं लक्ष्मणपूर्वजं रघुवरं सीतापतिं सुन्दरं काकुत्स्थ करुणार्णवं गुणनिधिं विप्रप्रियं धार्मिकम् ।

राजेंद्रं सत्यसन्धं दशरथतनयं उपामलं शान्तिमूर्तिं चन्दे लोकाभिरामं रघुकुलनिलकं राघवं रावणारिम् ।

एतानि रामनामानि प्रातस्तथापि यः पठेत् । अपुत्रो लभते पुत्र धनार्थी लभते धनम् ॥४१॥

माता रामो मत्पिता रामचन्द्रः स्वामी रामो मत्सखा रामचन्द्रः ।

सर्वस्वं मे रामचन्द्रो दयालुर्नान्यं जाने नैव जाने न जाने ॥४२॥

श्रीरामनामामृतमन्त्रवीजसंजीवनी येन्मनसि प्रविष्टा ।

हालाहलं वा प्रलयालं वा मृत्योर्मुखं वा विश्वतां प्रविष्टा ॥४३॥

श्रीशब्दपूर्वं जपशब्दमध्यं जपद्वयेनापि पुनः प्रयुक्तम् ।

त्रिसप्तकृत्यो रघुनाथनाम जपमिहन्पादूद्विजकोटिहन्त्याः ॥४४॥

एव गिरीन्द्रजे प्रोक्ता रामरक्षा मया तव । मथोपदिष्टा या स्वास्त्यविश्वामित्राय वै पुरा ॥४५॥

श्रीरामदास उवाच

इति शिवेनोपदिष्टा भुन्वा देवी गिरीन्द्रजा । रामरक्षां पठित्वा सा स्कन्दं समभिमन्त्रयत् ॥४६॥

बन्धना करता हूँ ॥ ३५ ॥ जिन्होंने सनुदको गौके खुरभर अलवाला बनाया, राक्षसोंको मच्छड़ोंके समान नष्ट किया और जो रामायणह ॥ महामाल्यके मुख्य रत्न हैं, ऐसे पवनकुमार हनुमान्जोंको मैं प्रणाम करता हूँ ॥३६॥ हे पापोंके समूह ! तुम हमसे दूर रहो और हे रोगण ! तुम हमारे पाससे भाग जाओ ! क्योंकि हमारे हृदयमें धनुर्धरी रामचन्द्रजी बँडे हुए हैं ॥ ३७ ॥ मनके सदृश जिनकी मति है, वायुके सदृश जिनका वेग है, जिन्होंने इन्द्रियोंको वशमें कर लिया है, जो बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ हैं । ऐसे वायुके पुत्र, धानरी सेनाके सेनापति और श्रीरामचन्द्रजीके दूत हनुमानकी मैं शरणमें हूँ ॥३८॥ हे राम ! हे राम ! सार्वारिक बन्धनोंसे मुक्त होनेके लिए सुरनर इन्द्रादि तकके मस्तकोंसे पूजित आपके चरणोंका मैं सदा ध्यान करता हूँ । क्योंकि योगी लोग भी सदान्सर्वदा उन चरणोंके चिन्तनमें लगे रहते हैं ॥ ३९ ॥ लक्ष्मणके ज्येष्ठ भ्राता, रघुवंशमें श्रेष्ठ, सीताके पति, परमरूपवान्, ककुत्स्थके वंशज, करुणाके वारिधि, गुणोंके निधि, ब्राह्मणोंके प्रिय, धर्मके उत्सव, राजाओंके राजा, सत्यप्रतिष्ठ, दशरथके पुत्र, स्वामिरूप, शान्तिके मूर्तिस्वरूप, संसारके आनन्ददाता, रघुवंशके तिलक-स्वरूप, रघुवंशज एवं रावणके शत्रु रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४० ॥ जो प्राणी सबेरे उठकर इन नामोंका पाठ करता है, यदि अपुत्र हो तो उसे पुत्र मिलता है और धनकी इच्छा रखनेवाला हो तो धन मिलता है ॥ ४१ ॥ राम मेरे पिता हैं, राम ही माता हैं, वे ही मेरे स्वामी और सखा हैं । दयालु श्रीरामचन्द्रजी ही मेरे सर्वस्व हैं । उन्हें छोड़कर मैं और किसीको नहीं जानता—किसीको नहीं जानता ॥ ४२ ॥ जिसके हृदयमें रामनामामृतमन्त्ररूपिणी संजीवनी विद्यमान रहता है, वह हालाहल, प्रलयाल अपवा मृत्युके मुखमें भी क्यों न कुर जाय, उसको कहीं भी भय नहीं है ॥ ४३ ॥ पहले श्रीशब्द, बादमें रामनाम, फिर जय शब्द, फिर रामनाम, फिर दो बार जयशब्द जोड़कर (अर्थात् श्रीराम जय राम जय राम) इक्कीस बार जप करनेवाला प्राणी करोड़ों ब्रह्महत्याओं जैसे महान् पातकोंको भी नष्ट कर देता है ॥ ४४ ॥ हे पार्वती ! मैंने तुम्हें वह रामरक्षामन्त्र बतलाया है, जिसे एक बार स्वप्नमें मैंने महर्षि विश्वामित्रको बतलाया था । श्रीरामदासने कहा—इस प्रकार शिवजीके बतलाये हुए रामरक्षामन्त्रको सुनकर पार्वतीजीने स्वर्त्मिकार्थिकेयका उन्हीं

सस्यास्तेजोबलेनैव जघान तारकासुरम् । पडाननः क्षणादेव कुतकुत्सोऽभवत्पुनः ॥४७॥
 सैषेयं रामरक्षा ते मयाऽऽख्याताऽतिपुण्यदा । यस्याः भवणमात्रेण कस्यापि न भयं भवेत् ॥४८॥
 वाल्मीकिनाऽनया पूर्वं कुक्षाय ह्यभिषेचनम् । कृतं बालग्रहाणां शतैर्यथैव मयोदिता ॥४९॥
 बालानां ग्रहशतैर्यथैव जपनीया निरन्तरम् । रामरक्षा महाश्रेष्ठा महाधौधनिवारिणी ॥५०॥
 नास्याः परतरं स्तोत्रं नास्याः परमरो जपः । नास्याः परतरं किञ्चिन्सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥५१॥

इति श्रीभक्तकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये जन्मकाण्डे

रामरक्षाकथनं नाम पंचमः सर्गः ॥५॥

पष्ठः सर्गः

(लवका अयोध्यासे कमलपुष्प लाकर माता सीताको देना)

श्रीरामदास

एकदा जानकी प्राह वाल्मीकिं मुनिपुंगवम् । कथयस्व व्रतं येन रामयोगो भवेन्मम ॥ १ ॥
 तत्सीतायचनं श्रुत्वा वाल्मीकिस्तां वचोऽब्रवीत् । प्रतिपदिनमारभ्य यावन्मा नवमी सिता ॥ २ ॥
 तावन्नवदिनं सीते व्रतं कुरु मयोच्यते । प्रतिपदि रामचन्द्रपादुके धातुनिर्मिते ॥ ३ ॥
 कृत्वाऽर्च्य नवकमलैर्देहि मंत्राञ्जलिं शुभाम् । ततः पुत्राननाभ्यां त्वं जन्मकाण्डं शुभं शृणु ॥ ४ ॥
 अष्टादशकमलैश्च द्विर्नायायां शुभाञ्जलिम् । मंत्रैर्देहि पूजनान्ते पतिपादुकयोर्मुदा ॥ ५ ॥
 पतिं विना स्त्रिया नान्यत्पूजनीयं हि दैवतम् । जन्मकाण्डं द्विवारं तु शृणु भक्त्या शुचित्रिते ॥ ६ ॥
 एवं वृद्धिर्नवाब्जैश्च कार्या सीते दिने दिने । नवम्यामेकाशीत्यब्जैः पूज्यस्व भर्तृपादुके ॥ ७ ॥
 नववारं जन्मकाण्डं पुत्रास्याभ्यां सुखं शृणु । ततो दशम्यां सुस्नानैकाशीति द्विजदंष्टरीन् ॥ ८ ॥
 संपूज्य वस्त्राभरणैर्भोजयस्वात्र मैयिलि । दत्त्वा तेभ्यो दक्षिणास्त्वं विसर्जय प्रणम्य तान् ॥ ९ ॥

मंत्रोंसे अभिमन्त्रण किया ॥ ४५-४६ ॥ उसी मन्त्रके तेज और बलसे पडाननने तारकासुर जैसे महान् मनुष्यको मारकर अपना पूरा कर लिया ॥ ४७ ॥ वही रामरक्षामंत्र मैंने तुम्हें बतलाया है । जिसके एक बार कर लेनेसे संसारमें किसीका भय नहीं रह ॥ ४८ ॥ इसी रामरक्षा मंत्रसे वाल्मीकिने कुशका अभिषेक किया था । बालकोंका दुःख दूर करनेके लिए इसे तुम्हें बतलाया है ॥ ४९ ॥ बालकोंका ग्रह शाप करनेके लिए सदा इसका जप करना चाहिये । यह महान् मंत्र है । बड़े बड़े पापोंके समूहको नष्ट कर देता है । इससे बढ़कर कोई स्तोत्र ही नहीं । मैं तुमसे सच सच कहता कि इससे श्रेष्ठ और कोई मंत्र नहीं है ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इति श्रीभक्तकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये प० रामसेजपाण्डेय-विरचिते'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासमन्विते जन्मकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

श्रीरामदासने कहा—एक दिन सीताजी मुनियोंमें श्रेष्ठ वाल्मीकिसे कहने लगीं हमें कोई ऐसा बतलाइए, जिससे मैं फिर अपने पतिदेव (राम) को प्राप्त कर लूँ ॥ १ ॥ सीताकी उस प्रार्थनाको सुनकर वाल्मीकिने कहा कि प्रतिपदा तिथिसे लेकर नवमी पर्यन्त अर्धाङ्ग नौ दिनका मैं जो व्रत रहा हूँ, उसे करो । प्रतिपदाको धातुसे बनी रामको चरणपादुकाका पूजन करके नौ कमलके फूलोंसे मंत्राञ्जलि दो । इसके अनन्तर अपने पुत्रोंके मुखसे आनन्दरामायणके जन्मकाण्डकी कथा सुनो ॥ २-४ ॥ फिर द्वितीयाको पादुकाकी पूजा करके अठारह कमलोंकी पुष्पाञ्जलि दो । स्त्रीके लिए पतिके अतिरिक्त दूसरा कोई पूज्य देवता नहीं है । बादमें द्वितीयाको दो बार जन्मकाण्डकी कथा सुनो ॥ ५ ॥ ६ ॥ इस तरह प्रतिदिन कमलके फूलोंकी संख्या बढ़ाती हुई नवमीको ८१ फूलोंसे पतिकी चरणपादुकाको मंत्राञ्जलि दो और कथाकी भी संख्या बढ़ाती हुई दशमीको अपने पुत्रोंके मुखसे नौ बार जन्मकाण्डकी कथा सुनो । दशमीको स्नानादि नित्यकर्म करनेके

अनेन व्रतराजेन जन्मकाण्डश्रवादपि । अचिरात्पतिना योगं प्राप्स्यसि त्वं विदेहजे ॥१०॥
 संयोगीकरणं नाम व्रतं चेदं सुपुण्यदम् । ये कुर्वन्त्यत्र मनुजाः स्वीयैर्योगं लभन्ति ते ॥११॥
 तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा जानकी तं पुनः । बहून्यञ्जानि साकेते पुष्पारामजलाशये ॥१२॥
 सन्ति कस्तत्र वै गन्तुं समर्थस्त्विह वर्तते । रामाज्ञया रामदूतः क्रियते रक्षणं सदा ॥१३॥
 तरसीतायचनं ध्रुत्वा तत्पुरः संस्थितो लवः । अत्रवीन्मातरं वाक्यं पञ्चवर्षवयःस्थितः ॥१४॥
 अम्बारम्भं व्रतस्याद्य त्वं कुरुष्वचिरादिह । अञ्जान्यहं प्रदास्यामि समानीय निरन्तरम् ॥१५॥
 तल्लवस्य वचः श्रुत्वा विहस्यालिम्य शालकम् । जुनुम्ब तन्मुखं सीता लवं वचनमनवीत् ॥१६॥
 पङ्कजानि कथं वत्स त्वं समानीय दास्यसि । असंख्यार्तं रामदूतः क्रियते रक्षणं सदा ॥१७॥
 तन्मातृवचनं श्रुत्वा लवः प्राहाथ मातरम् । अम्ब त्वत्स्तन्यपानेन बालमीकेः शस्त्रविद्यया ॥१८॥
 तथाशीर्षिर्मुनेश्चापि रामस्यापि भयं न मे । पश्याम्व पारुष्यं मेऽद्य मामनुज्ञातुमर्हसि ॥१९॥
 इत्युक्त्वा मातरं नत्वा बालमीकिं प्रणिपरय । आशीर्षिरीडितस्ताम्या घृतनूणीरकार्मुकः ॥२०॥
 वस्त्रालंकारसंयुक्तस्त्वैकाकी रथमास्थितः । यया लवस्त्वयोध्याया श्रीविहीना जनेन सः ॥२१॥
 क्रोशोपरि रथं स्थाप्य पङ्कजामागममाययौ । तावन्मध्वाङ्गममये गता आरामरक्षकाः ॥२२॥
 भोजनार्थं स्वगेहानि लयोञ्जानि तदाऽहरत् । पुनः स्वस्यन्दने स्थित्वा गन्वाऽऽश्रमपदं मुनेः ॥२३॥
 नत्वा मुनिं मातरं स्वां पङ्कजान्यर्पयन्मुदा । मुदिता जानकी चापि व्रतारम्भमथाकरोत् ॥२४॥
 एवं सप्तदिनान्यञ्जान्यानयामाम बालकः । न विद् गमदूतास्ते नीयतेऽञ्जानि चेति हि ॥२५॥
 अथाष्टमीदिनेऽयोध्यां पूर्ववत्स लवो यया । आगमस्य बहिः स्थाप्य रथं पङ्कजं यया लवः ॥२६॥

पञ्चान् ८१ द्विजदम्पतीकी वस्त्राभूषण आदिसे गुजा करके उन्हें भोजन कराओ और दक्षिणा देकर विदा करो । इस व्रतराजके करने तथा जन्मकाण्डकी कथा सुननेमें शाय ॥ तुम्हारे पति तुम्हें मिल जायेंगे ॥७-१०॥
 ॥ व्रतका नाम ही संयोगीकरण ॥ है । जो कोई यह पुनोत व्रत करता है, उसे अपने प्रियजनकी प्राप्ति होती है ॥ ११ ॥ बालमीकि मुनिकी बात सुनकर सीताने कहा कि अयोध्याके बगीचेवाले सरदारमें बहुत कमल होता है, वहाँ ही इतने फूल मिल सकेंगे कि जिनसे मैं अपना व्रत पूर्ण कर सकूँ । लेकिन कहाँसे उन्हें लायेगा कौन ? रामचन्द्रजीकी आज्ञासे वहाँ बहुतदूरे रक्षक उन फूलोंका रखवाली करते हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥ साक्षात्की बात सुनकर पास खड़े लवने, जिसकी अवस्था पाँच वर्षकी हो चुकी थी, मातासे कहा—॥ १४ ॥ माँ ! तुम आजसे अपना व्रत प्रारम्भ कर दो, मैं नित्य कमलके फूल लाकर तुम्हें दूँगा ॥ १५ ॥ लवकी वीरतापूर्ण वाणी सुनकर सीता हँसी और छातीसे लगाकर उसका मुख चूमती हुई कहने लगी—॥ १६ ॥ बेटे ! तुम फूल कैसे लाओगे ? वहाँ रामके असंख्य सिपाही उनकी रक्षा करते हैं ॥ १७ ॥ सीताकी बात सुनकर लवने कहा—माता ! तुम्हारे पवित्र स्तनोके दुग्ध, महर्षि बालमीकिकी सिखायी हुई शस्त्रविद्या और उनके आशीर्वादके प्रभावसे मैं रामसे भी नहीं डरता । आप मुझे आज्ञा दे और मेरा पुरुषार्थ देखें ॥ १८ ॥ १९ ॥ इतना कहकर लवने ॥ तथा बालमीकिकी प्रणाम किया । फिर ॥ आश्वीर्वाद लेकर वनप्रयाण सहित एक रथपर जा बैठे और ॥ अयोध्याकी ओर बढ़े, जो बहुत दिनोंसे कान्तिहीन हो चुकी थी ॥ २० ॥ २१ ॥ बगीचेके एक कोस आगे ही लवने अपना रथ रोक दिया और पैदल ही बगीचेमें जा पहुँच । दोपहरका समय था । बगीचेके रक्षक भोजन करनेके लिए अपने-अपने घर जा चुके थे । इसलिए लवकी फूल लेनेमें कोई बाधा नहीं हुई, फूल लेकर लवने अपने रथपर रक्षा और आधमकी ओर खल दिये ॥ २२ ॥ २३ ॥ वहाँ पहुँचकर लवने माता और बालमीकिकी प्रणाम करके फूलको सामने रखा । जानकीने ॥ प्रसन्नताके साथ व्रत प्रारम्भ किया ॥ २४ ॥ इस प्रकार सात दिन तक लव बराबर फूल ले गये, लेकिन रामके दूतोंको कुछ भी पता नहीं लगा । आठवें दिन अष्टमी तिथिकी रोजकी तरह लव फिर वहाँ गये । रथको बाहर रोकता और सरोवरमें पहुँचकर निर्भीक-भावसे फूल तोड़कर लाने लगे । संयोगवश उस दिन सिपाही लोग भोजन करके बगीचेमें पहुँच

गत्वाऽऽरामस्य कामार गृहीत्वाऽञ्जानि निर्मयः। अर्नैर्यावद्वयं प्राप तावदारामपाऽऽययुः ॥२७॥
 ते त दृष्ट्वा लवं साञ्जं पप्रच्छुर्विस्मयान्विताः। न त्व दृष्टः कदाऽस्माभिः श्रीरामानुचरेषु हि ॥२८॥
 कदारम्प रामसेवा त्वया चार्त्ताकृता वद। यतस्त्वं निर्मयोऽञ्जानि गृहीत्वा गच्छसि प्रभुम् ॥२९॥
 रामपूतवचः श्रुत्वा विहस्याह लवोऽपि सः। वाल्मीक्यनुचरधाहं न रामदर्शनं मम ॥३०॥
 दासोऽहं मुनिराजस्य वाल्मीकेः शुद्धचेतसः। तदाह्वया वै नीयन्ते कमलानि मया मुदा ॥३१॥
 इति तद्वचनं श्रुत्वा वाल्मीकीय लवं तदा। ज्ञात्वा दूताः पारकीयं क्रोधाद्वचनमब्रुवन् ॥३२॥
 रामस्त्वया न दृष्टोऽत्र नः पृष्टस्त्वया पुनः। नाश्नापितोऽसि रामेण नीयन्तेऽञ्जानि प्रस्यदम् ॥३३॥
 न ज्ञातमेतदस्माभिस्त्विदानीं तिष्ठ मा व्रज। अपराध्यसि रामस्य स्थां नेष्यामो वयं प्रभुम् ॥३४॥
 इत्युक्त्वा तस्य पन्थानं कुरुषु रामसेवकाः। चतुर्दश शस्त्रहस्ता सञ्जता रामतो यदा ॥३५॥
 तान्दृष्ट्वा हयन्दनस्थः स लवोऽप्याह विहस्य च। युयं गच्छत श्रीरामं मद्गुप्तं भूतमादरात् ॥३६॥
 यद्यस्ति पौत्रं रामे तर्हि यापयति मां प्रति। तत्तस्य वचनं श्रुत्वा क्रोधाद्दूता वचोऽब्रुवन् ॥३७॥
 वत्स मर्त्यकायस्त्वभिरथ वल्गासे मुखा। बद्ध्वा त्वां वयमेवाद्य विनेष्यामो रघूचमम् ॥३८॥
 इत्युक्त्वा ते लवं धर्तुं ययुस्तस्य रथातिकम्। तान्दृष्ट्वा निकटं प्राप्तान् रामदूतान्लवोऽपि ॥३९॥
 दण्डकृत्य महच्छापं शरान्तंघाय वेगतः। अत्रवासान्पुनर्वाक्यं माऽऽमन्तव्यं ममान्तिकम् ॥४०॥
 मार्मणैरधुना पुष्पान् रथजामि राषवान्तिके। इत्युक्त्वा तान्पुनर्दृष्ट्वाऽऽत्मानं धर्तुं समुपगतान् ॥४१॥
 रामाग्रं प्राक्षिपद्गार्ज्जलीलयाऽध्वरमण्डपे। चतुर्दश रामदूता लवमार्गजताहिताः ॥४२॥
 निपेतुर्मूर्च्छिताः सर्वे रामाग्रे जाह्नवीतटे। श्वतशो रामदूतास्ते दृष्ट्वा चक्रुः पलायनम् ॥४३॥
 लवोऽपि विजयी शीघ्रं पूर्ववत्स्वाश्रमं पर्या। समर्प्याञ्जानि सीतायै सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् ॥४४॥

मये मे ॥ २५-२७ ॥ लवको फूल लिये देखकर विस्मयपूर्वक वे बोले—हमने तुम्हें कभी रामचन्द्रजीके सेवकोंमें नहीं देखा है ॥ २८ ॥ तुमने नौकरी की ? जो इस तरह निर्मय होकर कमलके फूल से ष्ठे हो ॥ २९ ॥ उन दूतोंकी सुनकर हँसते हुए लवने कहा—मैंने तो अभी तक रामको देखा भी नहीं है ॥ ३० ॥ रामका नहीं, महर्षि वाल्मीकिका सेवक हूँ। उन्हींके आज्ञानुसार मैं यहाँसे फूल ले आता हूँ। किन्तु तुमने हमको देखा है। इसके पहले कभी नहीं देख पाया ॥ ३१ ॥ इस तरह अपनेको वाल्मीकिका सेवक बतलानेपर दूतोंकी समझमें आया कि यह कोई अजनबी मनुष्य है। यह जानते हो ॥ मारे क्रोधके तमतमा उठे। उन्होंने कहा—॥ ३२ ॥ तुमने रामकी आज्ञा ली, हम लोगोंहीसे पूछा और रोज फूल आते हो ॥ ३३ ॥ यह बात हमको मालूम नहीं थी। वस्तु, ठहरो। तुम रामचन्द्रजीके अपराधी हो। हम तुम्हें उनके ले चलेंगे ॥ ३४ ॥ ऐसा कहकर उन लोगोंने वास्ता रोक लिया। अब एक सौ चौदह सगस्त्र सैनिकोंने लवको घेर लिया। लवने रथपर बैठे बैठे उनकी ओर देखा ॥ हँसकर कहा—तुम लोग रामके पास जाकर हमारा वृत्तान्त कहो ॥ ३५ ॥ यदि राममें कुछ सामर्थ्य होगी तो वे स्वयं मेरे सामने आवेंगे। एक पाँच वर्षके बच्चेकी ऐसी बातें सुनकर दूतोंने क्रोधपूर्वक कहा—॥ ३६ ॥ ३७ ॥ हे बच्चे ! तुम क्यों मरना चाहते हो, जो ऐसी बड़बड़कर बातें करते हो ? तुमको बांधकर हमीं लोग उनके पास अभी लिये चलते हैं ॥ ३८ ॥ ऐसा कहकर लवको पकड़नेके लिए कई दूत आगे बढ़े। उनको निकट देखकर लवने तुरन्त अपने घनुषका टंकोर करके एक बाण चढ़ाया और उनसे कहा—सावधान ! मेरे पास आना ॥ ३९ ॥ ४० ॥ नहीं मानोगे तो मैं इसी घनुष और बाणसे तुम लोगोंको उठाकर रामके पास फेंक दूँगा। ऐसा कहकर लवने देखा कि लोग फिर उन्हें पकड़नेका रहे हैं ॥ ४१ ॥ ऐसी दशामें लवने बाणोंसे दूतोंको उठाकर फेंका और वे गङ्गाके समीप रामकी यज्ञशालामें मूर्च्छित होकर गिरे। इस प्रकार लवका पराक्रम देखकर रामके ओ सेकड़ों सैनिक वहाँ बने दे, सब इपर-उपर आग मये ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ अब विजयी होकर वे अपने बाणमकी ओर बढ़े। वहाँ पहुँचकर लवने कमल

चतुर्दश रामदूताः स्वस्वचित्ताधिरेण ते । सर्वं वृत्तं रावणाय कथयामासुरादरात् ॥४५॥
 उच्छ्रान्त्वा रामचन्द्रोऽपि विस्मयाक्लिप्तमानसः । सहस्रदूतानारायणश्लकार्थं प्रबोदयत् ॥४६॥
 लवोऽप्यथ नवम्यां ॥ साकेतं पूर्ववद्ययौ । सहस्रं रामदूतास्ते लवं योद्धुं समुद्यताः ॥४७॥
 लवस्तानाह युष्माकं स्वामिना रावणेन हि । यदा सीता वने त्यक्ता जयश्रीश्च गता तदा । ४८॥
 युष्माकं रावणस्यापि गच्छन्तं राघवं पुनः । युष्माभिर्मा मया युद्धं कर्तव्यं मरणोन्मुखैः ॥४९॥
 सीतास्यागे तु युष्माकं स्वामिनः पौरुषं न माम् । इति ते लवशाम्बाणौर्मिन्नमर्मस्थलास्तदा ॥५०॥
 दूताः शङ्काणि मुमुक्षुर्लवोपरि महास्वनैः । लवोऽपि चापमाकुरुष्व रामदूतान्स्वमार्गजैः ॥५१॥
 प्राक्षिपत्पूर्ववद्वामं तच्छस्त्रौघं निवार्य च । आरामतो यदा दूताश्चक्रुः सर्वे पलायनम् ॥५२॥
 ययौ लवः स विजयी पूर्ववत्कमलान्वितः । आश्रमं मातरं नत्वा सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् ॥५३॥
 पुत्रस्य पौरुषं श्रुत्वा तुतोप जानकी तदा । वृत्तं निवेदयामासु रामदूता ॥५४॥
 मूर्च्छां लवशरैः प्राप्ता मिन्नदेहा मस्त्रागणे । राम राम महाबाहो शृणुष्वार्जुमादरात् ॥५५॥
 यत्रवर्षापवालेन क्यमथ पराजिताः । शङ्कीकेर्लब्धविद्यः स न जेयो लक्ष्मणादिभिः ॥५६॥
 तद्वधे मंत्रयस्वाद्य त्वमुपायं रघूत्तम । सीतात्यागादिवचनैर्नस्तवापि च बालकः ॥५७॥
 धकार निदां श्रीराम गतमीस्त्वेक एव यः । तच्चेपां वचनेर्दृष्टं कुत्सनमाकर्ण्य राघवः ॥५८॥
 संमंत्र्य सचिवैर्दूतं शङ्कीकिं प्रेषयज्जवात् । नत्वा मुनिं रामदूतो राघवाक्यं न्यवेदयत् ॥५९॥
 यस्ते शिष्यो महावीरः सोऽपराध्यस्ति वै मम । तं प्रेषयाधवा तेन त्वमागच्छस्व मन्मथम् ॥६०॥

सीताको दिया और उस दिनका सारा हाल कह सुनाया ॥४५॥ जो दूत रामकी यज्ञशालामें गिरे थे, वे बहुत देर तक मूर्छित पड़े रहे । जब चेतना आयी, सादर उन्होंने रामको लवका सब समाचार सुनाया ॥४५॥
 सो सुनकर रामचन्द्रजीको भी बड़ा आश्चर्य हुआ । उन्होंने फिरसे एक हजार दूतोंको बगीचेकी रखवालीके लिए नियुक्त कर दिया ॥ ४६ ॥ दूसरे दिन अर्थात् नवमीको लव फिर फूल लेनेके लिए बगीचेमें जा पहुँचे । लवने दूतोंको देखकर कहा कि जिस दिन तुम्हारे प्रभु रामने सीताको वनमें भेज दिया, उसी दिन उनकी बगभी भी बिदा हो गयी ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ तुम्हें चाहिए कि तुम रामके पास जाकर लड़ाई करनेसे इनकार कर दो । तुम मरणोन्मुख हो । अतएव मैं नहीं चाहता कि तुम्हारे साथ युद्ध करें ॥ ४९ ॥ सीताको रामनेवाले तुम्हारे प्रभु रामके साथ संघाम करना मुझे उचित नहीं जँवना । इस प्रकार लवके बचनरूपी बाणोंसे सैनिकोंके हृदय विदीर्ण हो गये ॥५०॥ तब उन्होंने लवपर बाणवर्षा आरंभ कर दी । उधर लवने भी अपने बाणोंसे सैनिकोंके प्रहार वचते हुए अपने बाणोंसे उनको उठा-उठाकर रामके पास फेंकना आरम्भ किया । योद्धा देरमें ही जब दूत बगीचा छोड़-छोड़कर भाग निकले । तब लव अपनेको विजयी मानते हुए रीजकी तरह फूल लेकर आश्रमको लौट गये । वहाँ पहुँचकर लवने सीता माताको प्रणाम किया और ॥ दिनका भी सारा हाल सुनाया ॥ ५१-५३ ॥ बेटेका पुष्ट्यार्थ सुनकर सीता परम प्रसन्न हुई । इधर रामचन्द्रके दूतोंने रामके पास जाकर सब अपनी भाषयोली कह सुनायी ॥ ५४ ॥ जिनको लवने अपने बाणसे उठाकर रामके पास फेंका था, वे लोग घायल होकर बहुत देर तक मूर्छित अवस्थामें ही पड़े रहे । जब होशमें आये तो कहने लगे-हे राम । हे महाबाहो । मैं जो कह रहा हूँ, उसे तनिक ध्यान देकर सुनिए । आज हम सब बाल्मीकिके एक शिष्यसे, जिनकी अवस्था अभी पाँच वर्षकी है, परास्त हो गये । मेरा तो यहाँतक विश्वास है कि आपके भ्राता लक्ष्मण आदि भी उसे नहीं हरा सकते ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ हे रघूत्तम ! उसे मारनेके लिए कोई उपाय सोचिए । सीतास्याम बादिकी बातें दुहराकर उस एकाकी बालकने हमारी और आपकी भी भरपूर निन्दा की है । उनकी बातें सुनीं तो मंत्रियोंसे परामर्श करके रामने तुरंत कई दूतोंको बाल्मीकिके आश्रमपर भेजा । वे दूत बाल्मीकिके पास पहुँचे और उन्हें प्रणाम करके रामका सन्देश इस तरह सुनाने लगे- ॥ ५७-५९ ॥ रामचन्द्रने कहा कि आपका महावीर शिष्य हमारा अपराधी है । उसे या तो हमारे

विस्मृत्या पूर्वमेव त्वं नाहूतोऽसि क्षमस्व तत् । तद्दूतवचनं श्रुत्वा रामीयं मुनिरब्रवीत् ॥६१॥
 शिष्याभ्याम्-यत् नाहूमेव यास्यामि त्वं । तथेति रामदूतोऽपि मुनिं नन्वा ययौ मखम् ॥६२॥
 जनन्नेव भावि दूतमादौ रामो मुनिं मखम् । नाहूयामास शिष्याभ्यां लौहिकी रीतिमाभितः ॥६३॥
 स्वीयव्रतसमाप्तिं साऽकरोत्सीताऽपि सादरम् ।

विष्णुदास उवाच

अथ कथं कथं कार्यं व्रतमेतद्वदस्व माम् ॥६४॥

श्रीरामदास उवाच

काचनस्याथवा रौप्यस्याथवा ताग्रनिर्मिते । कार्ये द्वे पादुके रम्ये राघवस्य यथासुखम् ॥६५॥
 अभावे कमलानां च पुष्पैरञ्जलिरीरिता । एकाशीतिदंष्ट्रीनां न शक्तिः पूजने तदा ॥६६॥
 पूजनीयानि पुष्पानि नव शक्त्याऽथवा सुखम् । स्वशक्त्या पूजनं कार्यं विचशोभ्यं परित्यजेत् ॥६७॥
 अनेकदूरगस्यापि संयोगश्च भवेज्जवान् । भाविकार्याणि वेगेन भविष्यन्ति न संशयः ॥६८॥

इति श्रीकलकोटिरामचरितात्मर्ते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये

जन्मकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

(राम-लक्ष्मण आदिका लव-कुशके साथ युद्ध)

श्रीरामचन्द्र उवाच

रामोऽपि धर्मात्मा चरमे तुरगाध्वरे । हयं मुमोच शत्रुघ्नस्तस्य पृष्ठे ययौ जवात् ॥१॥
 दक्षिणां पश्चिमामाशामुत्तरां तुरगोत्तमः । अतिक्रम्य सधा प्रार्ची यज्ञस्थानं न्यवर्तत ॥२॥
 नृपतिभ्यः समस्तेभ्यः शत्रुघ्नो वसु कोटिभ्यः । गृहीत्वा तैर्नृपैर्मुक्तस्तुगस्यानुगो ययौ ॥३॥

दूतोंके साथ भेज दीजिए अपनी आप स्वयं अपने साथ लेकर हमारे यज्ञमण्डपमें आइए ॥ ६० ॥ भूलसे मैंने आपको पहले निमन्त्रण नहीं दिया था, सो क्षमा कीजिएगा । इस प्रकार दूतोंके मुखसे रामका संदेश सुनकर महर्षि वाल्मीकिने कहा— ॥ ६१ ॥ हम अपने शिष्योंके साथ रथयं यज्ञमण्डपमें आयेगे, तुम लोग आओ । रामके दूतोंमें ऋषिराजके वचन सुनकर प्रणाम किया और वहाँसे प्रस्थान करके रामको यज्ञशालाको बल पड़े ॥ ६२ ॥ राम इस भावी घटनाको पहिलेसे ही जानते थे । इसीलिए लौकिक रीति निभाते हुए शिष्योंके साथ वाल्मीकि-जीको पहले यज्ञमें नहीं बुलाया था ॥ ६३ ॥ उधर सीताने भी नौ दिनवाला समाप्त कर लिया । विष्णुदासने पूछा—जो लोग सामर्थ्यहीन हैं, वे इस व्रतको कैसे करेंगे ? सो बताइए ॥ ६४ ॥ श्रीरामदासने उत्तर दिया—यदि सुवर्णको पादुका बनवा सके तो चाँदीको ले, वह भी हो सके तो तामेकी दो धरनपादुकाएँ बनवानी चाहिए ॥ ६५ ॥ यदि उतने कमरके फूल न मिल सकें तो साधारणतया किसी भी फूलकी अंजली । यदि इक्यासी द्विजदम्पतीकी पूजा करनेकी सामर्थ्य न हो तो नौ द्विजदम्पतीका ही पूजन करे । उसके भी अभ्यासमें अपनी शक्तिके अनुसार पूजा करे, लेकिन उनमें कंगूनी न होने पाये ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ इस व्रतको करनेसे चाहे कितनी ही दूरीपर रहनेवाले भी प्रियजनका मिलाप हो जाता है । इसके अतिरिक्त जिसने भी भविष्यके कार्य होंगे, वे सम्पन्न हो जावेंगे । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ६८ ॥ इति श्रीमदानन्द-रामायणे वाल्मीकीये प० रामतंजपाण्डेयवृत्त उपोत्सर्गाभाषाटीकासमन्विते जन्मकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीरामदास बोले—इस प्रकार रामचन्द्रने ९९ अश्वमेध यज्ञ पूर्ण कर लिये । अन्तिम सौवें यज्ञके लिए भी घोड़ा अभिषिक्त करके छोड़ा और शत्रुघ्न उसको रक्षा करनेके लिए उसके साथ गये ॥ १ ॥ दक्षिण, पश्चिम, पूर्व और उत्तर दिशाको प्रदर्शना करके घोड़ा रामचन्द्रजीके यज्ञमण्डपकी ओर लौट पड़ा ॥ २ ॥ रास्तेमें कितने ही राजाओंसे अनेक प्रकारकी भेंटें ले लेकर उन राजाओंको अपने लिये शत्रुघ्न अश्वसमेत

सेनया चतुरंगिण्या च दक्षसाहससंख्यया । तस्मिन्निधाने शययः सर्वे राजपथस्तथा ॥ ४ ॥
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः समाजम्भुः सहस्रशः । चरमाध्वरभवं द्रष्टुं रामस्योत्सवमागताः ॥ ५ ॥
 बाल्मीकिरपि संगृह्य गायत्री भूमिजान्मज्जी । जगाम यज्ञघाटस्य नदीप सीतया सुखम् ॥ ६ ॥
 मार्गे नृपसम्प्रेषु शिविकास्थां हि जनकीम् । न विदुः पार्थिवाः नर्वे जनास्तेऽपि यथेतरे ॥ ७ ॥
 सुमेधया जनकोऽपि ययौ रामाध्वरं प्रति । कोशद्वयान्तरे पूर्वं यज्ञघाटान्मुनीश्वरः ॥ ८ ॥
 कृत्वा पर्णकुटीं रम्पां ताभ्यां युक्तः स सीतया । बाल्मीकिर्गोपयामास पर्णकुल्यां विदेहजाम् ॥ ९ ॥
 नृपसेनानिवासेषु जनकश्च सुमेधया । स्वर्गन्येन ययौ तूष्णीं रामेणामौ निरीक्षितः ॥ १० ॥
 बाल्मीकिरपि तौ प्राह न्यस्नालंकारमण्डितौ । अटक्चोराजिनधर्मौ सीतापुत्रौ महाधिर्यौ ॥ ११ ॥
 यत्र तत्र च गायत्री पुरं योधिषु सर्वतः । रामस्यार्घ्यं प्रणयेतां सुश्रमपदि राघवः ॥ १२ ॥
 ब्राह्मणकाण्डान्काण्डानि न नेषान्वत्र बालकौ । यदा क्रमोन्नतं राज्ञां गायत्री सकल नदा ॥ १३ ॥
 न ग्राह्यं तद्यत्राभ्यां य यदि किञ्चिन्प्रदास्यति । इति यौ चादेतौ तत्र गायमानौ विचेरतुः ॥ १४ ॥
 तथोक्तं श्रुतिना पूर्वं तत्र तत्राध्यगायनाम् । तां तु सुश्राव काकुत्स्थः पूजयामास ततः ॥ १५ ॥
 अपूर्वपद्मवृत्तादिनैर्यश्च गमभिप्लुताम् । बालाभ्यां राघवः श्रुत्वा कान्तहन्मृपेधिवान् ॥ १६ ॥
 अभ्यर्चमान्तरे गमः सभाह्वय मुनीश्वरान् । राजर्षयः नरनाथ गण्डिनाथेन नेषमान् ॥ १७ ॥
 पौराणिकाञ्छन्दविदो गणकांश्च श्वित्स्मरान् । नानार्कशाल्यनिपुणान् तथा उद्र न् द्विजदिकान् ॥ १८ ॥
 यज्ञघाटे तु तान्पूज्य गायत्रीं संप्रवेशयन् । ते सर्वे दृष्टमनसो राजानो ब्राह्मणादयः ॥ १९ ॥
 रामं तौ दारकौ दृष्ट्वा विस्मिता निनिमेषकाः । अवोचन्मयं एवमे परम्परमथानयोः ॥ २० ॥
 इमौ रामस्य सदृशौ विचारिष्वमिषोदितौ । जटिला यदि न भ्यतां न वल्कलधारिणौ ॥ २१ ॥

अगोप्यार्क समीप आ पहुँचे ॥ ३ ॥ उस समय शयनके साथ इस प्रकार चतुरंगिणी सेना भी । इसके अतिरिक्त उस विमानमें कितने ही क्षत्रि, ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यगण दूर-दूरसे रामचन्द्रके उस अन्तिम यज्ञका देखने आये थे ॥ ४ ॥ ५ ॥ बाल्मीकि भी यज्ञ-कुण तथा सीताको अपने साथ लेकर रामके यज्ञमण्डपकी ओर चल पड़े ॥ ६ ॥ गायत्री सीतः पालकीमें बँधी थी । अतएव वहाँ राजाओं तथा और लोगोंने नहीं जाने पाया कि हममें कौन है ॥ ७ ॥ जनक और सुमेधा भी यज्ञमण्डपकी ओर गये थे । जब दो काम बाकी रह गया, वहीं बाल्मीकीजी सबसे साथ एक पर्णकुटीमें उठकर गये और उसी कुट्टिमें बाल्मीकि क्षत्रियने जानकीको श्रद्धा दिया ॥ ८ ॥ ९ ॥ जनक अपनी पत्नी समेधा तथा सेनाके साथ-साथ रामके यज्ञमण्डपमें जाकर ठहर गये । वहीं रामसे भेंट हुई ॥ १० ॥ बाल्मीकिने उन दोनों कुमारोंका राजसी धव्याभूषण उतार तथा जटा और अचला पहिनाकर कहा कि तुम लोग इधर-उधर गलियोंमें भरे सिलाये रामचन्द्रिको गानो । यदि रामचन्द्र स्वयं सुनना चाहें तो उनको भी मुक्त देना ॥ ११ ॥ १२ ॥ लेकिन रामके सम्मने पूर्व, रामावण तथा गाना, जब मैं कहूँ । तबसे प्रारम्भ लेकर सीताव्याग पर्यन्तकी कथा विस्तृत अभ्यस्त रखती । यदि राम तुम्हें कुछ देना चाहें तो लेनेसे इनकार कर देना । इस प्रकार बाल्मीकिजीके आज्ञा-नुसार वे दोनों बच्चे रामचन्द्रिके गाने हुए घूमने लगे ॥ १३ ॥ १४ ॥ जहाँ-जहाँ और जिस-जिस प्रकार गुरुजीने आकर गाने हो कहा था, वहाँ-वहाँ जाकर उन्होंने गाया । रामचन्द्रजीके पास भी यह खबर पहुँची और उन्होंने लोगोंसे उनके गायनकी प्रशंसा सुनी ॥ १५ ॥ छोटे-छोटे बच्चोंके मुखमें इस प्रकार रामचन्द्रिके गानकी बात सुनकर उनके हृदयमें बड़ा कौतूहल हुआ ॥ १६ ॥ वरमें जब रामचन्द्रने अपने यज्ञमण्डपकी कानोंसे अवकाश पाया । तब अनेक नृपियों, राजाओं, ब्राह्मणों, वैश्यों, पौराणिकों, वैश्याकरणों, उपातिपियों तथा अनेक प्रजायकी कानोंमें निपुण लोगोंको उसी यज्ञशालामें बुलवाया । वहाँ पहुँचनेपर राजने सबकी पूजा की और उन दोनों कुमारोंका बुलवाया । उन राजाओं और ब्राह्मणोंदिनों बच्चोंकी बड़े प्रेमसे देखा ॥ १७-१८ ॥ वहाँ लोगोंने एक बार रामकी ओर देखा, फिर बच्चोंकी तरफ़ निहारता तो उनके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा । उनकी आँखें निनिमेष हो गयीं

विशेषं नाधिगच्छामो राघवस्यानयोस्तदा । एवं मन्दतां तेषां विस्मितानां परस्परम् ॥२२॥
 तदाऽऽह रामदूतोऽपि लवबाणरुजं स्मरन् । रामचंद्रं यज्ञवाटस्थितं वै संभ्रमेण हि ॥२३॥
 लवमंगुलिना वीरं दर्शयंश्च मुहुर्मुहुः । राम महाबाहो तमेनं पश्य वै लवम् ॥२४॥
 येनास्माकं शरीरैश्च प्रक्षिप्य तत्र सन्निधौ । नीतानि कनकाब्जानि मुगंधीनि निरंतरम् ॥२५॥
 सीतात्यागनिमित्तेन येन तेनापि वा मुहुः । कृता निंदा गर्वितेन न्यदण्डैर्कार्थिना प्रभो ॥२६॥
 तत्र दण्डमयादेव पूर्ववैषं विलोपितः । रथवस्त्राभरणानि शस्त्राण्यपि विहाय च ॥२७॥
 धृतानि वल्कलादीनि दीनरूपोऽथ दृश्यते । त्वयाऽथ दण्डनीयोऽयं वंधुमारगतिगर्वितः ॥२८॥
 इति स्वदूतवाक्यानि शृण्वन्नपि रघूत्तमः । प्रेम्णाऽवलोकयामास सुधाक्षिभ्यां शिशू मुहुः ॥२९॥
 भालावपि समासंस्थाममस्कृत्य यथाक्रमम् । राघवं स्वपितृव्यांश्च वसिष्ठं प्रणिपत्य च ॥३०॥
 उपाचक्रमतुर्गातुं वीणे रणयतः शुभे । ततः प्रपुच्छं मधुरं गोधर्वं गीतमुत्तमम् ॥३१॥
 श्रुत्वा तन्मधुरं गीतं रामस्तोषमवाप ह । ताभ्यां श्रुतं स्वचरितं विलासवर्धनमुक्रमात् ॥३२॥
 यद्यदाचरितं पूर्वं सीतया सह मौल्यदम् । ततोऽपराद्धे श्रीरामः प्रसन्नवदनांजुजः ॥३३॥
 उवाच तौ समग्रं वै श्वो गेयं मम सन्निधौ । तथेति रामवचनं तावंगीचक्रतुस्तदा ॥३४॥
 ततो रामो लवं प्राह मे यद्यप्यपराधितम् । त्वया पूर्वं तथापि त्वां तुष्टोऽहं नात्र शिक्षये ॥३५॥
 त्वद्वीतिमच्चरित्रादि श्रवणादय मे मनः । परां विश्रान्तिमाप्नन्नं त्वत्कृतं क्षमिनं मया ॥३६॥
 अधुना मद्भयं त्यक्त्वा त्वं सुप्तं विचरात्र हि । उद्रामवचनं श्रुत्वा लवो राघवमब्रीत् ॥३७॥
 मयाऽपराधितं राजंस्तव दर्शनकाम्यया । मदपराधितं स्मृत्वाग्राहृतोऽहं यतस्त्वया ॥३८॥

और वे आपसमें कहने लगे—२० ॥ एक बिबसे निकले दूसरे प्रतिविचकी भाँति ये दोनों बालक विल्कुल रामचन्द्रके समान हैं । यदि इनके सरतकपर न रहे और बल्कल वस्त्र उतार दिये जायें तो इनमें तथा राममें कोई अन्तर ही नहीं रह जाता । जब सब लोग विस्मित होकर परस्पर इस प्रकार बातें कर रहे थे । तभी लवके बाणोंसे बर्गाचेवाली मारकी स्मरण करता हुआ रामका एक दूत प्रबड़ाकर बोला—॥ २१-२३ ॥ हे राम ! हे महाबाहो ! देखिए, यही स्व । जिसने अपने बाणोंसे उठाकर मुझे आपके पास फेंक दिया था और सुगन्धित कनककमलके फूलोंको हड़ाल तोड़कर ले जाया करता था ॥ २४ ॥ २५ ॥ आपके सीतात्यागविषयक बातको लेकर इसीने बड़े घमण्डके साथ आपकी निन्दा की थी ॥ २६ ॥ भात होता कि आपके दण्डसे डरकर इसने रथ वस्त्राभरण त्याग दिये हैं और बल्कलवसन आदि पहन तथा दीमल्य धारण करके है । किन्तु मेरा यह परामर्श कि इस अभिमानीको अवश्य वण्ड दीजिए ॥ २७ ॥ २८ ॥ इस प्रकार दूतकी बातें सुन करके भी रामचन्द्र अपनी अमृतभरी आँखोंसे उन बच्चोंको प्रेमपूर्वक देख रहे थे ॥ २९ ॥ तबकोने सभामें पहुँचकर वहाँ बैठे हुए लोगोंको करके रामकी, लक्ष्मण आदि अपने आवाओंको तथा वसिष्ठ आदि गुरुजनोंको प्रणाम किया और वीणा बजाते हुए रामचरित्र गाने लगे । उस समय सभामें जैसे गान्यर्व गायनका रस बरसने लगा ॥ ३० ॥ ३१ ॥ राम उनका मधुर गायन सुनकर बहुत प्रसन्न हुए । गायनमें रामके उस चरित्रका वर्णन था, जो जन्मसे लेकर विलासकाण्ड पर्यन्त सीताके साथ उन्होंने किया था ॥ ३२ ॥ गाते-गाते दोपहरका समय हो गया । तब रामचन्द्रने प्रसन्नतापूर्वक उन बच्चोंसे कहा—अच्छा, आज समय अधिक बीत चुका । इसलिये रहने दो । मेरे पास फिर आना और मुझे सारी रामायण सुनाता । रामकी बातको उन्होंने अङ्गीकार कर लिया ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इसके अनन्तर रामने लवसे कहा—यद्यपि तुम हमारे अपराधी हो, फिर भी मैं तुमपर प्रसन्न हूँ । तुम्हें कोई दण्ड देनेकी इच्छा ही नहीं होती । तुम्हारे गायनोंमें अपनी चरित्रावली सुनकर मेरा हृदय शान्त हो गया और तुमने जो अपराध किया था, उसे क्षमा करता हूँ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ तुम मुझसे डरो नहीं, निर्भय होकर जहाँ चाहो घूमो । प्रकार रामकी बातें सुनकर लवने उत्तर दिया—रावन् ! समय

अद्य ते दर्शनेनैव पौरुषं बुद्धिमानगतम् । कीर्तिर्मे भवती जाता तवाग्रे गायनादपि ॥३९॥
 इत्युक्त्वाऽऽसील्लवस्तूष्णीं बन्धुना गंतुमुद्यतः । सभायास्तौ गंतुकामौ स्थलं स्वीयं निरीक्ष्य च ॥४०॥
 रामोऽद्युतं वसु तयोर्भरतेन प्रदाययन् । दायमानं सुवर्णं तौ न तज्जगृहतुस्तदा ॥४१॥
 राजन् हेम्ना किमेतेन द्यावा वै वन्यभोजिनौ । कृपाश्लोकनेनैव पाहि त्वमावयोः सदा ॥४२॥
 इति संत्यज्य तद्वचं जग्मतुर्मुनिसन्निधिम् । आसीच्छ्रुत्वा स्वचरितं रामो हृद्यतिविस्मितः ॥४३॥
 कुशोऽपि सकलं वृत्तं वाल्मीकिं मातरं तथा । निवेद्य जाह्नवीं स्नातुं कौतुकेन पर्यौ सुखम् ॥४४॥
 लवो मुनीनां शिशुभिः शिशुकीडनमाचरत् । एतस्मिन्नंतरे यत्र लवः क्रीडां चकार ह ॥४५॥
 बालकैस्तत्र संप्राप्तास्तुरगाध्वरकारिणः । त्यक्त्वा क्रीडां लवः शीघ्रमर्धं धृत्वोदजातिके ॥४६॥
 वृक्षे बबध शिशुभिः पूर्ववत् क्रीडनं व्यधान् । ततः खे पुष्पकं प्राप्तं दृष्ट्वा चंद्रं तुरङ्गमम् ॥४७॥
 श्रुत्वा बालकृतं सर्वं शत्रुघ्नाद्या विदस्य ते । दूतानांशपयामासुर्मुच्यतां तुरगः सुखम् ॥४८॥
 लवस्तानागतान् दृष्ट्वा धायव्यासं व वृणम् । समन्वय तान् मुमांसाथ लीलया शिशुसंयुतः ॥४९॥
 सन्नायातैस्तदा यानं हस्त्यध्वर्यूपरितम् । शत्रुघ्नेनापि तर्द्धतः खेऽभूत्तद्भ्रमरोपमम् ॥५०॥
 तच्छ्रुत्वा रागचन्द्रोऽपि प्रेषयामास सादरम् । सुग्रीवमङ्गदं नीलं मेन्दं जाम्बवतं नलम् ॥५१॥
 सुमंत्रं भरतं वायुपुत्रं ताक्ष्यं विभीषणम् । सुषेणं पार्थिवान्सर्वान् स्वस्वामित्वलैर्युतान् ॥५२॥
 द्विविदं दधिवक्त्रं च वानरान्मकरध्वजम् । लवं दुद्रुवुर्गर्वाद्युद्धं चक्रुस्त्वरान्विताः ॥५३॥
 तानागतान् लवो दृष्ट्वा कस्यचित्पतितं भुवि । दूतस्याभ्युपगच्छनार्थमागतस्य शरासनम् ॥५४॥
 तूणीरं च स्वयं घृत्वा पर्यौ योद्धुं त्वरान्वितः । दणत्कृत्य महत्पापं चिंतयामास चेतसि ॥५५॥

मैंने जा अपराध किया था, उसका उद्देश्य ए— यही कि किसी आपसे मिलूँ। आपने भी मेरे अपराधका स्मरण करके भी मुझे क्षमाया, सो बड़ी कृपा की ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ आज आपके दर्शन करते ही मेरा पुरुषार्थ बढ़ गया और आपके सामने रामचरित्र गानसे मेरी कीर्ति भी बढ़ी ॥ ३९ ॥ इतना कहकर चुप हो गया और अपने भ्राताके साथ आधमकी जानेकी तैयारी करने लगे। उधर रामने उन वृक्षोंके लिए दस हजार स्वर्णमुद्रायेँ भरतसे दिलवायीं। किन्तु उन्होंने वह धन नहीं लिया। उन्होंने कहा—राजन् ! अरण्यमें फल-मूलपर जीवन बिस्तानेवाले हम धनवासी लोग आपको इस सुवर्णराशिको लेकर करेंगे। वस, आप अपनी कृपादृष्टिसे हमारी रक्षा करते रहिए ॥ ४०-४२ ॥ इस प्रकार उस दानद्रव्यका परिश्रम करके वे दोनों वाल्मीकिजीके पास चले गये। वृक्षोंके मुँहसे अपना चरित्र सुनकर रामचन्द्रजी बड़े विस्मित हुए ॥ ४३ ॥ उधर कुश आश्रमपर पहुँचे तो वहाँ वाल्मीकि तथा सीताको उस दिनका वृत्तान्त सुनाया और स्नान करनेके लिए गंगाजाको चले गये ॥ ४४ ॥ इधर लव कुछ मुनिकुमारोंके साथ खेलने लगा। इसी बीच जहाँ वे सब खेलते रहे, वसी तरफसे अश्वमेधका घोड़ा चारों ओर घूमकर रामकी यज्ञशालामें जा रहा था। उसे देखते ही कौतुकवश लड़कोंने घेर लिया। लवने आगे बढ़कर घोड़ेको पकड़ा और अपनी कुटियाके किनारे ले जाकर एक वृक्षमें बाँध दिया ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ लड़के फिर खेलने लगे। उसी समय आकाशमें पुष्पक विमानपर बड़े हुए शत्रुघ्नन देखा तो बहुत हँसे। उन्होंने सोचा कि यह वृक्षाने खेलवाड़ किया है। शत्रुघ्नने दूतोंसे कहा—जाओ और घोड़ेको वहाँसे छान ले आओ। दूत लवके पास पहुँचे। त्यों ही लवने एक तिनका और वायव्य मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके उनपर डाल दिया। उसके डाँखों ही बड़ी जोरसे आँधी चलने लगी और शत्रुघ्न तथा उनके सैनिक हाथी, घोड़े, रथ आदि आकाशमें भीरोंकी तरह उड़ने लगे ॥ ४७-५० ॥ यह समाचार सुनकर रामने अपने वहाँके सुग्रीव, अङ्गद, नील, जाम्बवान्, नल, सुमन्त्र, भरत, हनुमान्, गरुड, विभीषण, सुषेण तथा देश-देशान्तरसे आये हुए राजाओंको शत्रुघ्नकी सहायताके लिए भेजा। इनके अतिरिक्त द्विविद-दधिवक्त्र आदि वानर तथा मकरध्वज आदि वीर गर्वके साथ युद्धभूमिकी ओर दौड़ पड़े ॥ ५१-५३ ॥ इतनी बड़ी सेनाको सामने देखकर लवने एक साधारण घनुषकी, जो घोड़ा छड़ानेके लिए आये हुए किसी सैनिकका गिर पड़ा था,

पितृव्याद्याः स्थिता योद्धुं मयाऽपि पुनस्त्विह । कथमेभिश्च योद्धव्यं मया च ममरागणे ॥५६॥
 कथं तीक्ष्णानद्य शरानेनेषु प्रक्षिपाम्यहम् । स्त्रीवानां वधकर्तारं मां मातासुनिराववाः ॥५७॥
 सहिष्यन्ति कथं दृष्ट्वा कर्त्तव्यं किं मयाऽधुना । युद्धान्तराद्मुनीशं चेज्जन्वा गच्छामि तं मुनिम् ॥५८॥
 वान्मीकिशिक्षिता विद्या नहि मां पिफला भवेत् । अनः केनानपि वधं विना युद्धे कोऽप्यहम् ॥५९॥
 इति निश्चित्य मनसि मेघजन्मदाह तान् । आगम्यते किमर्थं मां युगाभिर्व्रज वेगतः ॥६०॥
 न सीतावत्सुलभोऽहं पीडनार्थमिहाद्य हि । मीनाक्लेशात्सह्यं मां मेघं वेत्स्य भो खलाः ॥६१॥

मीतोष्णोच्छ्रमितोग्रनिज्वालाभिर्गन्धि परुषम् ।

विदग्धं न स्फुट लोकाद्गन्तीयं ममापि च ॥ ६२ ॥

इति स्ववाकशरैर्मिह दद्यान्म लवः पुनः । मोहयामास मफलान् मोहनास्त्रं त्रिमृज्य च ॥६३॥
 ततो लवः स विजयां मुमन्त्रं भग्नं तथा । कृत्वा स्वकक्षयोः शीघ्रं कगभ्यां वायुनन्दनम् ॥६४॥
 सुग्रीवं च मुदा धृत्वा सीतार्य तान् प्रदर्शयन् । दृष्ट्वा सीतापि तान् वीरान् मोहनास्त्रेण मोहितान् ॥६५॥
 पुत्रात्तान् मोचयामास रक्षयामास तान् सहः । ताक्षानाश्रापवः श्रुत्वा लक्ष्मणं वाक्पमन्नवात् ॥६६॥
 ईदृश पीरुषं बंधो रावणेनापि नो कृतम् । गथा कृतं बालकेन परगीयं किमत्र वै ॥६७॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा लक्ष्मणः प्राह राक्षसम् । मा नितेय न्वया कारां धृत्वाहं तं क्षिप्तं धृणात् ॥६८॥
 स्वस्मिन्निधातयामि मिहो मृगशिशु यथा । शन्यक्त्वा भयं नन्वा ग्थाहृदो ययौ जवान् ॥६९॥
 सेनया सचिरेयुक्तो वान्मीकेनमतिस्थलम् । तमागतं विदुष्यात् लवाऽपि तत्पूरी ययौ ॥७०॥
 न दृष्ट्वा बालकं रम्यं कृपया लक्ष्मणोऽब्रवान् । मा शिशो त्वं कुरुवाद्य भाह्वं मन्पुरस्त्विह ॥७१॥

उसकी हाथसे लिया । पाठान्तरान्तरमें बांधी और कुछ वस्त्रोंके लिए घुसकर भगवान् स्त्रीके फरक मनमें साचने लगे—मेरे चाचा आदि कुछ करनेके लिए सामने लड़ रहे हैं । मैं समझती हूँ कि उनके ऊपर अपने तीक्ष्ण बाण फेंके चलाऊंगा । स्वर्जनीका वध करनेपर माता सीता तथा वान्मीकेके साथ मैं इस दुष्प्रार्थको मला कैसे सहेंगे । ऐसी अवस्थामें मैं क्या करूँ ? यदि युद्धमें मुझे मोहनास्त्र मुझ वान्मीकेके पास लौट जाऊँ तो महर्षिका सिलायी विद्या निष्फल हो आयगी । अतएव इस समय मेरी कुछ उपायों का होगा, जिसमें किसीका वध न हो ॥ ५४-५९॥
 एता निश्चय करके मेपकी तरफ़ गजने दृष्टि लपके पड़ा— हे मुदा ! तुमसब किसलिये मेरी ओर लौटें चले जा रहे हो ? ॥ ६० ॥ माता सीताका तरह में भोला-भोला नहो, जा रामकी दो हुई पीड़ाको चुर चाप सह लेंगा । दस लो, सीताकी कलशरूपी अग्निकी पुत्रावस्था । मैं मेघ हूँ । सीताका उष्ण उष्णवासकी उध ज्वालाके सामने आज तुम सचका पुष्टार्थ स्पष्टरूपमें समाके सामने उपस्थित होगा और दुनिया देखेगी । इस प्रकार पक्ष लवन अपन वचनलवा वान्मीके शत्रुकी हृदयपर प्रहार किया । तदनन्तर अपने मोहनास्त्रसे वही उपस्थित भाग्य मेनाको मूर्छित कर दिया ॥ ६१-६३ ॥ इस तरह विजय प्राप्त करके लवने सुमन्त्र और भग्नका अपना कोशमें रखा दिया । हाथोंमें हनुमान्जी तथा सुग्रीवकी पकड़कर प्रसन्नतापूर्वक माताके पास ले गये और सीताको दिखाया । उन वान्मीकेको मोहनास्त्रसे मोहित देखकर सीताने उन्हें लवके हाथोंमें छुड़ा दिया । तब जब रामने यह सुना कि लव मोहनास्त्रसे सैनिकोंकी मोहित करके मुग्रीवादिकों पकड़ ले गया है । तब एकान्तमें लक्ष्मणसे कहने लगे— हे लक्ष्मण ! इस प्रकारका दुष्प्रार्थ ना रावण भी नहीं दिसा सका था, जैसा कि यहाँ वह छोकरा दिखा रहा है । इस विषयमें क्या करना चाहिये, यह मैं कुछ भी नहीं सोच सका हूँ । इस प्रकार रामकी बात सुनकर लक्ष्मणने कहा— आप कुछ बिना न कर । मैं अभी जाता हूँ और क्षणमात्र में उस वचनेको बन्दी बनाकर आपके पास लाता हूँ ॥ ६४-६५ ॥ ऐसा कहकर लक्ष्मण रथपर बैठे और वेगके साथ चल दिये । एक बड़ी सेना और वान्मीके साथ लक्ष्मण बोड़ी हो देरमें आश्रमके पास जा पहुँचे । जब लवने सुना कि लक्ष्मण जाये हैं तो वे स्वयं उनके सामने गये । लक्ष्मणने जब उस सुन्दर और सुकुमार किन्तु धीरे

न समर्थोऽसि न स्यात्तु गच्छ नोचेन्मरिच्यसि । शेष राणाद्यं भ्रातुं स्वतोऽहं स्यां निहन्मि न ॥७२॥
 त्वयाऽपराधितं बाल राक्षस्य मुहुर्दृष्टुः । नन्यथाऽप्यहं भूमि नगां न्या निहन्मि न ॥७३॥
 नीतान् वीरान् समर्थाथ वाजिनः स्फुरन्धनम् । सति न शरण बाल यदास्ति जावितस्पृहा ॥७४॥
 तत्सौमित्रैर्वचः श्रुत्वा लवोऽर्मजन्मजत्रदीन । दोष न्या राघव चापि नोवात्यगामर्षोरुयम् ॥७५॥
 सीतायामेव युवयोः पौरुषं न लो मयि । नातादुःखापनोदार्थं मुनिना निमित्तस्त्वहम् ॥७६॥
 युवां जित्वाऽयं समरे सीतादुःखं प्रभाजये । मुखा युवाभ्यां सा मोता छालनापे पातव्रता ॥७७॥
 तस्या विनिष्कृतिं चाहं कर्तुमत्र समागतः । सीतादुःखाग्नना युगमर्षोरुप दग्धमस्ति तत् ॥७८॥
 न स्यात्तव्यं ममाग्रेऽत्र गच्छन् विधोपमाः । इति ते लवशम्भार्णोभेन्नममस्थलाश्च वै ॥७९॥
 लक्ष्मणाद्या ववर्षुस्तं शस्त्रश्लेखं क्रुधा । ततो लवश्च स्वैर्वर्णैः शस्त्रवृष्टिं निवार्य च ॥८०॥
 श्रीरामसचिवादींश्च प्राक्षिपद्यज्ञनण्डपे । ते सर्वे सांचयत्ताथ लवमार्गवताडिताः ॥८१॥
 भिन्नदेहा लोहिताक्ताः प्रोचू गगं मलिनद्रग । राम त्वं नो पश्यसि किं तूष्णामध्वरनण्डपे ॥८२॥
 उपायं चिंतयस्वान्यं वधे तस्य लवस्य च । शस्त्रैरस्त्रैर्मृतिं युद्धं न गच्छात लवः प्रभो ॥८३॥
 साहाय्यं कुरु सौमित्रैर्यदि वन्धु मंत्रीवितम् । स्वमिच्छां लवशरप्रहाराद्वन्धुवत्सल ॥८४॥
 इत्थुक्त्वा लवशक्यानि गधवं ते न्यवेदयन् । तानि श्रुत्वा गधवोऽपि तूष्णामासीत्तदा क्षणम् ॥८५॥
 लवोऽपि लक्ष्मणं घार्णविरूपाथ दशभिर्दृष्टुः । आपुस्तमग्नास्ते वाणाः शरीरं लक्ष्मणस्य च ॥८६॥
 ततः क्रोधपरतात्मा लक्ष्मणो वेगवत्तरः । लवदेहे स्वशस्त्राणि भवन्ति विफलानि हि ॥८७॥

बालकको सामने देखा तो वृणापूर्वक बहने लगे—देखा! वन्धु! अब मैं आया हूँ। मेरे सामने किसी तरहकी दुष्टता न करना। तुम मेरे सामने नहीं ठहर सकते। जाओ, चले जाओ, नहीं तो तुम नहीं बच सकोगे। अभी हमें तुम्हारे मुक्त बालों रामचन्द्रजी नुनना है। इसलिए नहीं मार रहा हूँ। ॥ ७९-७३ ॥
 तुमने कई बार रामका अपराध किया है। मैं सब जानता हूँ। फिर भी मैं तुमको नहीं मारूंगा ॥ ७९-७३ ॥
 यदि तुम्हें अपने प्राणोंका लाभ हो ॥ तुम्हें जिन लोगोंका एकट्ठ लिया है, उन्हें लाकर हमें दे दो और घोड़े-को लेकर मेरे साथ रामचन्द्रजीका जयगम करो ॥ ७४ ॥ इस तरह लक्ष्मणका बातें सुनकर लवने कहा—
 बेभारी सीताके ऊपर अपना चारता दिखलानेवाले तुमका और रामका मैं अच्छी तरह जानता हूँ। सीताके ऊपर तुम्हारा जो पुरुषार्थ चला था, वह लवने नहीं चल सकेगा। सीताके दुःखको दूर करनेके लिए ही महर्षि वाल्मीकिने मेरी रचना की है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ आज मैं तुम दोनोंका आतंक सीताका दुःख दूर करूँगा। तुमने भालो-भाली सीताके साथ कपटका व्यवहार किया है। उसका प्रतीकार करनेके लिए ही मैं यहाँ आया हूँ। सीताके दुःखरूपी अग्निमें तुमलोगोंका पुरुषार्थ जल चुका है ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ तुम लोगोंका चाहिए कि मेरे सामनेसे हट जाओ। इस प्रकार लवके वचनरूपी वाणीसे लक्ष्मणका हृदय विदारण हो गया ॥ ७९ ॥ ८० ॥
 अतः क्रुद्ध होकर सब एक साथ लवने वाणवर्षा करने लगे। लवने भी अस्त्रोंसे उनको शस्त्रोंका निवारण किया और लक्ष्मणके साथ आये हुए मन्त्रा-सैनिक आदिको अपने वाणीसे उठा-उठाकर रामके यज्ञमण्डपमें फेंक दिया। लवके वाणीसे आहत मन्त्री आदिकों नेहमें जहाँ-तहाँ ॥ ८० ॥ हो गये थे और उनसे दधिर बह रहा था। इसी दशामें वे सब रामके पास जाकर कहने लगे—हे राम! इस यज्ञमण्डपमें घुपघुप बड़े-बड़े आप बसा देख रहे हैं? ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ लवकी मारनेके लिए कोई दूसरा उपाय सोचिये। हे प्रभो! लव संप्राममे किसी तरहके अन्ध-शस्त्रसे नहीं मर रहा है। हे वन्धुवत्सल! यदि लक्ष्मणको जीवित देखना चाहते हो तो उनकी सहायता करिये। लवके कराल वाणीके प्रहारसे उन्हें बचाइए। इस तरह वहाँका समाचार सुनानेके बाद उन बातोंकी वतलाया, जो लवने रामके विषयमें कही थी। उनकी बातें सुनकर राम कुछ दस्तक चुप बँट रहे। ऊपर लवने दस वाणीसे लक्ष्मणका घायल कर दिया और वे दसों वाण लक्ष्मणके शरीरमें सिरसे लेकर पहुँचकर घुस गये थे ॥ ८३-८६ ॥ ऐसी अवस्थामें लक्ष्मण क्रोधसे भाग-

दृष्टुं विव्यग्रचित्तः सः क्षणं सञ्चिन्त्य वै हृदि । अस्त्रास्त्रेण लवं बद्ध्वा मासं रात्रौ न्यवेदयत् ॥८८॥
 प्रक्ष्मास्त्रं मानयस्तूर्णीं ययौ राम लवोऽपि सः । राघवस्तु समानीत दृष्ट्वा लक्ष्मणमब्रवीत् ॥८९॥
 जानन्नपि सुतं स्वीयं कौतुकं दर्शयन्ननान् । महत्कार्यं कृतं बन्धो त्वमेनं विद्धि बाहुजम् ॥९०॥
 द्विजहत्यामयं त्यक्त्वा घातयस्वैनमद्य हि । रामं प्रोवाच सौमित्रिर्नायं शस्त्रैर्मस्थिति ॥९१॥
 भरतार्थमेवा चापि नायं किं ताडितोऽसिभिः । अस्य देहे सतं चैकमपि किं दृश्यते त्वया ॥९२॥
 तच्छ्रुत्वा राघवः प्राह प्रहृष्टो बालकस्त्वया । केनोपायेन ते मृत्युर्भवदिति ममाग्रतः ॥९३॥
 गोपायन्ति निजं मृत्युं न शूरा बध्नन्कृपा । न बद्धन्यनृतं क्वापि स्वबलेनैव जीविताः ॥९४॥
 ततः पृष्टो लक्ष्मणेन लवः प्राहाय लक्ष्मणम् । अलस्य सेचनादृद्धिं स्वीयां ज्ञात्वा मुनेर्गिरा ॥९५॥
 कापट्यबुद्ध्या लोकान् हि दर्शयन् स्वपराक्रमम् । अलस्य सेचनेनाद्य मृत्युर्मे निश्चितो भवेत् ॥९६॥
 ततस्थ वचनं श्रुत्वा शिलायां तं निवेडय । सेवनं तोयकलशैः कारयामास लक्ष्मणः ॥

अयोध्यावासिभिर्नारीपुरुषैः परमादरात् ॥९७॥

चतुर्मुखैश्च षट्षुषानीतैश्च कोटिभिः । तथा कार्पाटैर्केश्यापि रघोर्द्वारणादिभिः ॥९८॥
 आनयित्वा जलं शीघ्रं सिषेच लवबालकम् । यथा यथा जलैस्तं हि सेचनं चक्रिरे जनाः ॥९९॥
 तथा तथा लवस्तत्र व्यवर्द्धत धनो यथा । सप्ततालप्रमाणोऽभूद्बुद्ध्या भीमपराक्रमः ॥१००॥
 ततस्तं लक्ष्मणः प्राह त्वया लव मृषेरितम् । नायं तुव बधोपायः स्वबुद्धयर्थं कृतः सख्यु ॥१०१॥
 लवोऽप्याहाय सौमित्रं कौटिल्येन प्रतारयन् । यथा तैलक्षते दीपो घृद्धिमते प्रगच्छति ॥१०२॥
 तथायुषः क्षये मेऽपि वृद्धिं पश्य क्षणं त्विमाम् । तद्वाक्यं मानयन्सत्यं सेचयत्तं स लक्ष्मणः ॥१०३॥
 जलैर्गर्गैः समानीतैः पूर्ववच्च पुनः पुनः । काष्ठसोपानमार्गेण सेचनं चक्रिरे जनाः ॥१०४॥

बहुले ही उठे । उन्होंने कई शस्त्र लवपर चलाये, लेकिन जब उन्हें बेकार होते देखा तो घबड़ा उठे । क्षण भर उन्होंने न जाने क्या सोचा और तब ब्रह्मास्त्रस लवको बाध लिया और धोड़को भी साथ लेकर अयोध्यामें रामके पास ले आये ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ब्रह्मास्त्रकी मर्मादा रखनेके लिए लव भी चुपचाप लक्ष्मणके साथ चले गये । रामने लवको देखा तो लक्ष्मणसे कहा—यद्यपि मैं जानता हूँ कि यह मेरा ही पुत्र है । फिर भी संसारको शिक्षा देनेके लिये आज्ञा देता हूँ कि द्विजहत्याके भयको दूर करके आज ही इस मास डालो । इसने बड़े अपराध किये हैं । लक्ष्मणने उत्तर दिया कि यह किसी शस्त्रास्त्रसे नहीं मरेगा ॥ ८९-९१ ॥ हमने तथा भरतजीने इसपर कितनी ही बार तलवारके प्रहार किये हैं, किन्तु देखिए न ! इसके शरीरमें कहीं कोई घाव दीखता है ? ॥ ९२ ॥ रामने कहा—इससे पूछो कि तू किस प्रकार मर सकेंगा । जो सच्चे शूरवीर होते हैं, वे अपनी मृत्युके उपायको भी नहीं छिपाते । सच्चे वीर कभी झूठ नहीं बोलते ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ इस प्रकार पूछनेपर लव कुछ सोचने लगे । एक बार महर्षि वाल्मीकिने लवसे कहा कि तुम्हारे ऊपर जितना जल डाला जायगा, तुम उतने ही बढ़ोगे । लवने लक्ष्मणसे कहा—जलसे सीचनेपर मेरी मृत्यु होगी ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ लवकी बात सुनकर लक्ष्मणने लवको ही एक पत्थरपर बिठाया और पानीके घड़ोंसे नहलाने लगे । अयोध्यावासियों बहुतसे नरनारी बड़े आदरके साथ लवपर जल डालने लगे । चार मुँहवाले बड़े-बड़े चमड़ेके मोट वेल, रथ, हाथी, घोड़े, और ऊँटपर लद-लदकर करोड़ोंको संख्यामें वहाँ आने लगे और वे सब लवके ऊपर जल दिये गये । जैसे-जैसे पानी पड़ता था, त्यों-त्यों लव मेघके समान बढ़ते जात थे । वह परम वीर बढ़ते-बढ़ते जब सात ताड़की ऊँचाई तक बढ़ा ॥ ९७-१०० ॥ लक्ष्मणने कहा—लव ! ज्ञात होता है कि तुम झूठ बोलें हो । तुमने मरनेके लिये नहीं, अपने बढ़नेका उपाय बताया था ॥ १०१ ॥ लवने भी लक्ष्मणका बड़काकर कहा—शपथ जब बुरसनेवाला होता है तो उसकी लौ कितनी बड़ जाया करती है । उसी तरह आयुके हानेसे मैं भी बड़ रहा हूँ । अबकी बार भी लक्ष्मणसे लवकी बात सच मानी और उसी तरह लवके ऊपर जलके कलश डालते रहे ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ गङ्गाजीसे

अस्त्रास्त्रेण विनिर्मुक्तः प्रचचाल लवस्तदा । भुजावास्फालयामास तथोरु बाललीलया ॥१०५॥
 तं दृष्ट्वा द्रुपुः सर्वे त्यक्त्वा तोयवटानपि । शकुन्मूत्रं प्रमुंचतो मुक्तकञ्छा लवेक्षणाः ॥१०६॥
 एतस्मिन्नन्तरे क्रीडन् गंगायां तान् जनान्कुशः । पप्रच्छाद्य मुहुर्नोरं किमर्थं नीयते जवान् ॥१०७॥
 जनाः प्रोचुर्लवं हंतुमस्माभिर्नोयते जलम् । विश्वस्तलवराकयेन तच्छ्रुत्वा न ययौ कुशः ॥१०८॥
 संगृह्य स्वाश्रमाचापं तूणीरं देगवत्तरः । लव मोचयितुं चापं टणत्कृत्वाऽध्वरस्थले ॥१०९॥
 कुशचापचर्चि श्रुत्वा तस्यौ तूणीं लवः क्षणम् । ततो दृष्ट्वा कुशं प्राप्तं ययौ योद्धुं स लक्ष्मणः ॥११०॥
 तं दृष्ट्वा स कुशः प्राह छलिर्नो जानकीलवौ । त्वया गमणं लोकेऽथ नयोः कर्तुं विनिष्कृतिम् ॥१११॥

अहं ग्रामोऽस्मि मां बाल लववत्त्वं न मानय ।

युवयोः पौरुषं नायौ शिञ्चावर्त्तीति वेदुष्यम् ॥११२॥

सीताक्लेशानलज्वालासंदग्धं युवयोर्वलम् । न ममाग्रे स्फुटं कार्यं युवाभ्यामुपहासकृत् ॥११३॥
 वाल्मीकिशिक्षितां विद्यां रामं त्वामद्य दर्शये । इत्युक्त्वा तुमुल युद्धं पितृव्येण चकार सः ॥११४॥
 आसन् वृथा जानकीये लक्ष्मणोत्सृष्टमार्गणाः । रामायणान्कुशो ज्ञात्वा शेष एवात्र लक्ष्मणः ॥११५॥
 जातोऽस्तीति वधे तस्य गारुडास्त्रं मुमोच सः । क्षात्रधर्मं पुरस्कृत्य न तद्विमानयं दधे ॥११६॥
 जानन् युद्धे पितुर्हरषा जाता चेन्न भयं न्विति । तद्दृष्ट्वा स्वगराजसं मौमित्रेः कुठिना मतिः ॥११७॥
 भयभीतः श्रुत्वा हि पपात लक्ष्मणो ग्थान् । व्युतं दृष्ट्वा भयं तत्र दीक्षायुक्तोऽपि वेगतः ॥११८॥
 धृत्वा चापं च तूणीरं यज्ञकुण्डाग्रतः स्थितः । चापं संधाप्य मन्त्राणं मौमित्रेर्जीविनाशया ॥११९॥

जल भर-भरकर आता जा रहा था और सीढ़ी लगाकर लवपर जलकी धार डाली जाती थी ॥ १०४ ॥ उसी समय सबके देहमें ही देखते लव गद्गास्त्रसे फूट गया और भुजाएँ तथा ताल ठोंबता हुआ दौड़ने लगा । उसको देखकर वहाँके सारे नर-नारी अपने-अपने कलसोंको छोड़-छोड़कर भाग गये । उसके विकराल स्पर्शकी देखकर बहुतोंकी मोलियाँ झूल गयीं । कई एकको तो मारे डरके पेशाब टट्टी तक हो गयी ॥ १०५ ॥ १०६ ॥
 उधर कुश बच्चोंकी तरह खेलता-कूदता गङ्गाजीके किनारे गया । वहाँ उसने देखा कि बहुतसे लोग पानी भर रहे हैं । उनसे पुणने पूछा—तुमलोग पानी क्यों भरे लिये रहे हो ? ॥ १०७ ॥ उन्होंने कहा—लवकी मारनेके लिए । यह सुनकर कुश अपने आश्रमपर गया और धनुष-बाण लेकर लवकी छुड़ानेके लिए रामकी यज्ञशालाके समीप जा पहुँचा और धनुषका भीषण टंकोर किया ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ कुशके धनुषकी टंकोर सुनकर लव कुछ डरके लिए शान्त सड़ा हो गया और कुशसे युद्ध करनेके लिए लक्ष्मणके सामने जा पहुँचे ॥ ११० ॥ लक्ष्मणको देखकर कुशने कहा—तुमने और रामने लव तथा सीताके साथ बड़ा छल किया है । उसीका बदला लेनेके लिए मैं आया हूँ । मुक्तकी लवकी तरह साधारण बालक न समझना । तुम लोगोंकी बीरता स्त्री और छोटे-छोटे बच्चोंपर ही चल सकती है, यह मैं जानता हूँ । सीताके वलेशरूपी घघकती अग्निमें तुम्हारा बल जल चुका है । अब अपना उपहास करानेके लिए मेरे सामने लड़नेको अर्थ आये हो । अच्छा, यदि तुम्हारा यही इच्छा है तो वाल्मीकिकी सिखायी विद्या आज मैं तुम्हें और रामको दिखाता हूँ । ऐसा कहकर कुशने लक्ष्मणके साथ तुमुल युद्ध प्रारम्भ कर दिया ॥ १११-११४ ॥ लक्ष्मणने कुशपर जितने बाण चलाये, वे सब व्यर्थ गये । रामायणकी भविष्यवाणीसे कुशको ज्ञात हो चुका था कि अब लक्ष्मणके सिवाय और कोई बीर बाकी बचा ही नहीं है कि जिसके साथ युद्ध करके मारनेकी आवश्यकता हो । यह सोचकर क्षात्रधर्मके अनुसार उसने चाचाको मारनेमें कोई अपराध न समझकर उन्हें मारनेके लिए गारुडास्त्रका प्रयोग किया ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ उस गारुडास्त्रको अपने ऊपर आते देखकर लक्ष्मण सितपिटा गये । उनको सारी चातुरी झूल गयी और मूर्छित होकर रथसे पृथ्वीपर गिर पड़े । लक्ष्मणको रथसे गिरते देखकर राम दक्षित होते हुए भी धनुष-बाण लेकर दौड़े और लक्ष्मणको बचानेके लिए उन्होंने कुशके छोड़े हुए गारुडास्त्रपर गद्गास्त्र छोड़ दिया । गद्गास्त्रके पहुँचनेपर गारुडास्त्र आकाशमें ही ठंका हो

मुपोच वणमाकाशे गरुडोपरि मादग्म् । तेन नच्छांतिममद्रक्षास्त्रेण तु गारुडम् ॥१२०॥
 ततः कुक्षः संदधे म सपांश्च राघवोपरि । श्वाच तदं गीतावन्मुलभञ्छलितं त्वया ॥१२१॥
 जनान् दर्शयितुं स्वीयं गौरुपं जानकीं वने । नरकात् त्वया वृथा पूर्वं अनिष्टं त्व चेष्टितम् ॥१२२॥
 वाल्मीकिविभिनानां विद्यां ममाद्य त्व विलोक्य । तेचेष्टं यादृि शरणं वाल्मीकिं जानकीमपि ॥१२३॥
 तदाकशरीरिन्ममर्मा रामः तां विलोक्य तत् । शोचन्तं समुजे वीर तेन नच्छांतिमाप वै ॥१२४॥
 सः नारमेयाश्च कुक्षेन राघव पुनः । रामोऽपि मयालास्त्रेण मारमेयं न्यवारयत् ॥१२५॥
 वक्ष्यन् समुजे धारं कुशोऽपि राघवं त्रवात् । न्यवारयन् च तद्रामो मेधास्त्रेण म लीलया ॥१२६॥
 वायव्यं समुजे रामं जानकाजटोद्भवः । न्यवारयन् च तद्रामः पर्वतास्त्रेण लीलया ॥१२७॥
 श्वास्त्रं समुजे राघवं मोतेयः सोऽतिसम्प्रपान् । दाम्पास्त्रेणाथ रामोऽपि वज्रास्त्रं तन्यवारयत् ॥१२८॥
 वज्रास्त्रं समुजे रामं मोतेयः परमादरान् । हाहाकारम्वदा चार्माद्राघवस्याध्वर्गंगणे ॥१२९॥
 न्यवारयन् वज्रास्त्रं वैष्णवं रघुत्तमः । ततो रामं कुक्षस्त्रीक्ष्णान्नाराच्याञ्छतशः पुनः ॥१३०॥
 मुपोच सगवधापि भार्गवाःश्छात्रः कुक्षम् । पृथ तन्मुलं युद्धं बभूव प्रहरं मयोः ॥१३१॥
 तदाऽऽस्मान्कातुकं गमकुशरोर्प्रेभ्यतीर्महम् । गमचापाविनिर्मुक्ता गता ये ये पतत्रिणः ॥१३२॥
 ते ते कुक्षमोत्तमांगोपरिष्ठाद्वर्णीवले । पतन्ति स्म तत्रा मे ये कुक्षचापविनिर्गताः ॥१३३॥
 अरास्ते रामश्चन्द्रस्य पतन्ति स्म पदांतिके । तद्दृष्ट्वा कौतुकं गमो विम्मगाविवृभारसः ॥१३४॥
 आज्ञापश्चन्वमन्त्रिणं गच्छ वाल्मीकिमन्त्रिभिः । पृच्छन् च तं नमस्कृत्य कीं ते शिष्याधिपौ बली ॥१३५॥
 ततो ज्ञान्वाप्तयोधाने कर्षिरामि मर्ति क्षणात् । तथेति रामवचनात् स मन्त्री रथमास्थितः ॥१३६॥
 कौशुद्रथानरेण च मन्त्र्यं कृत्वा कुशं तवम् । दृष्ट्वा तत्राऽयं वाल्मीकिं राघवाक्यं न्यवेदयत् ॥१३७॥
 मुनिः प्राह मन्त्रिणं न्वं वद रामाय न वचः । ममानुध्वे गायनस्य बालं शो विदितं तव ॥१३८॥

गया ॥ ११७—१२० ॥ इसके अनन्तर कुक्षने रामपर सर्वास्त्र छेदा और कहे—मे गीताको तरह सहजमे
 नहीं छेदा जा सकूँगा । संसारकी दृष्टिको लिए तुमने सीतापर अपना पुरुषार्थ दिखाया था । जब यदि
 सने साक्षा नारीके साथ तुमने जो विवाहधात किया है, उसे मे अच्छी तरह जानता हूँ । यदि
 सामर्थ्य हो तो मर्दों वाल्मीकिको ही तुमने जानलियाँ । नमस्कार देता । यदि ऐसा न कर सका तो हाथ
 धीवर, वाल्मीकि के तथा गीताकी शरणम करके नमस्कार को भगत मानी ॥ १२१—१२३ ॥ कुशको उन
 नोरत्नीक भती बानोंमे सुवार राखने कुशके गर्वमन्त्रिणों को समझा प्रयोग किया । जिससे वह शान्त
 हो गया । फिर कुक्षने रामपर नारमेयास्त्र चलाया और राघवे मोक्षदास्त्र चलाकर उसका निवारण किया ।
 कुक्षने रामपर वज्रास्त्र चलाया तो रामने वैष्णव चक्रकर उसकी शान्त किया । तब गीताके सुकुमार बेटे
 कुक्षने रामपर वायव्यस्त्र चलाया । तब रामने पर्वतास्त्र चलाकर उसका निवारण किया ॥ १२४—१२७ ॥ तब
 कुक्षने वज्रास्त्र चलाया और रामने दाम्पास्त्र चलाकर उसको शान्त किया ॥ १२८ ॥ जब कुक्षने रामके ऊपर
 वज्रास्त्र चलाया, उस समय अज्ञानधर्मो हाहाकार मच गया । किन्तु रामने अपने वैष्णव, उससे उसको ध्वं कर
 दिया । इसके बाद कुक्षने रामके ऊपर और भी सैद्धी बाण चलाये ॥ १२९ ॥ १३० ॥ रामने भी उनके प्रती-
 कारके रूपमें सैद्धी बाण चलाये । इस प्रकार एक प्रहर राम और कुक्षमे तुल्य युद्ध होता रहा ॥ १३१॥
 उस समय चाप-बेटेके युद्धमे यह बड़ा कौतुक था कि जो बाण रामके हाथसे छूटने, वे कुक्षके मस्तकपर
 गिरते थे तथा कुश द्वारा छूटे बाण रामके पैरोंपर गिरा करते थे । यह कौतुक देखकर विस्मित रामने अपने
 मन्त्रीको बुलाया और उससे कहा कि वाल्मीकिके पास जाकर पूछो कि आपके ये महाबलवान् शिष्य कौन
 हैं ॥ १३२—१३५ ॥ यह जानकर मे इनकी मारनेका शीघ्र कोई उपाय करूँगा । रामके आज्ञानुसार मन्त्री
 रथपर सवार हुआ और दो घोस चलाकर वाल्मीकिके पास जा पहुँचा । वाल्मीकिको देखकर मन्त्रीने
 प्रणाम किया और रामका सन्देश सुनाया ॥ १३६ ॥ १३७ ॥ मुनि वाल्मीकिने कहा—उससे कह दो कि मल

भविष्यति समस्तं हि वृत्तं बालकयोः शुभम् । ततो मन्त्री मुनेर्वाक्यं राघवाय न्यवेदयत् ॥१३९॥
कुशं लवं समाहूय वाल्मीकिरपि तौ मुदा । समालिख्य कथाभिस्तां जिनाय रजनीं सुखम् ॥१४०॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये जन्मकाण्डे

कुशलवयोः पराक्रमवर्णनं सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

(रामका सीताको पुनः स्वीकार करना)

श्रीरामदास उवाच

अथ प्रभाते रामेण समाहूताबुधौ शिशू । नत्वा मुनिं मातरञ्च सभायां जग्मतुर्मुदा ॥ १ ॥
वाल्मीकेराज्ञया बालौ जटाकुण्डाजिनांबरौ । जन्मकाण्डं त्वेकमेव जगतुस्तौ पितुः पुरः ॥ २ ॥
जनैः श्रुत्वा स्वचरितं रामोऽभूदतिविस्मितः ॥ ३ ॥

आसन् जनाश्चापि सर्वे विस्मयाविष्टमानसाः । ज्ञान्वा सीताकुमारौ तौ सन्तोषं परमं ययुः ॥ ४ ॥
एतस्मिन्नन्तरे सर्वे लववायुश्चपीडिताः । शत्रुघ्नाद्या ययुस्तत्र यानस्थाश्चास्रजीविताः ॥ ५ ॥
अंगदाद्याः पार्थिवश्च मोहनास्त्रैकजीविताः । ययुः मयानराः सर्वे लक्ष्मणोऽपि ययावरुक् ॥ ६ ॥
सर्वे नत्वा रामचन्द्रं तस्थुस्तस्यांतिके मुदा । अथ संमंथ्य रामोऽपि तौ विमृज्यादरेण हि ॥ ७ ॥
राक्षसेन्द्रं लक्ष्मणं च शत्रुघ्नं मकरध्वजम् । सगराजं मुपेयं जाविवन्तं धनोऽभवीत् ॥ ८ ॥
आनयध्वं मुनिवरं ससीतं देवसंमितम् । अद्यास्तु पर्वदा मध्ये प्रत्ययो वै सभागणे ॥ ९ ॥
गंगाया दक्षिणे तीरे सभा कार्पाऽऽपसा शुभा । करोतु अपथं सीता ममाग्रे जाह्नवीतटे ॥१०॥
मुनीधरायाः सर्वे तौ जानन्तु गतकल्मषाम् । तथा ममापि वाल्मीके शुद्धिं जानंतु वेगतः ॥११॥

■ सभामें ये दोनों रामायण गाने पहुँचेंगे, उस ■ सारा वृत्तान्त ■ हो जायगा ॥ १३९ ॥ तदनुसार मन्त्री लौट आया और वाल्मीकिने जो कुछ कहा था, सो रामको बतला दिया । उधर वाल्मीकिने लव और कुशको पास बुलाकर हृदयसे लगाया और अनेक प्रकारकी कहानियाँ कहते हुए रात बितायी ॥ १३९ ॥ १४० ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयकृत- 'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते जन्मकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

श्रीरामदास बोले—दूसरे दिन सबरे रामने उन दोनों बालकोंको बुलवाया और वे अपनी माता तथा मुनि वाल्मीकिको प्रणाम करके रामको सभामें गये ॥ १ ॥ जटा एवं बल्कल वस्त्र धारण किये हुए उन बच्चोंने उस दिन वाल्मीकिके आज्ञानुसार केवल जन्मकाण्डका गान किया ॥ २ ॥ रामने जब अपना चरित्र सुना तो बड़े विस्मित हुए । सभामें बैठे हुए लोगोंको भी बड़ा आश्चर्य हुआ और जब यह जाना कि ये सीताके बेटे हैं तो बहुत ही ■ हुए ॥ ३ ॥ ४ ॥ उसी समय लवके बाणोंसे पीड़ित लक्ष्मण-शत्रुघ्न आदि भी वहाँ आ पहुँचे । उनके साथ अङ्गद-हनुमान् आदि जो लवके मोहनास्त्रसे मूर्छित हो गये थे, वे भी आये । यहाँपर सबोंने रामको प्रणाम किया और उनके समीप जाकर बैठ गये । तब रामने अपने मंत्रियोंसे सलाह करके लव कुशकी विदा कर दिया ॥ ५-७ ॥ तदनन्तर विभीषण, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, मकरध्वज ■ अङ्गदको सम्बंधित करके राम बोले—सुभ सब जाकर वाल्मीकिके साथ सीताको वहाँ ले आओ । आज इस सभामें यह निश्चय किया जायगा कि सीता- ■ क्या अपराध है । इसी पुनीत जाह्नवीके तटपर सीता अपथ छावगी । यहाँपर आये हुए समस्त ऋषिगण जिससे यह ■ जायें कि सीता सर्वथा निष्कलंक तथा पापोंसे रहित है । साथ ही हमारी ओरसे वाल्मीकिभी भी परीक्षा होगी । इस प्रकार रामके आज्ञानुसार लक्ष्मणादि वाल्मीकिके पास गये और उन्होंने

इति तद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणाद्या महीं गताः । ऊचुर्यथोक्तं रामेण वाल्मीकिं लक्ष्मणादिकाः ॥१२॥
 रामस्य हृदयं सर्वं ज्ञात्वा वाल्मीकिरब्रवीत् । समचित्तान् सुमंत्राद्यान् लक्ष्मणाय समर्प्य च ॥१३॥
 पुष्पाभिः कवनीयं यद्वाक्यं धीराय वं प्रति । श्रः करिष्यति वै सीता शपथं जनमंसदि ॥१४॥
 योषितां परमो देवः पतिरेको न चापरः । पतिं विना गतिः काञ्च्या नार्याश्चास्ति जगत्त्रये ॥१५॥
 लक्ष्मणाद्यास्ततः सर्वे राममागत्य ते पुनः । सुमंत्रादींश्चतुर्वीराञ्चाधवाय समर्प्य च ॥१६॥
 वाल्मीकेर्वचनं हर्षानुसृतं रघुनायकम् । वाल्मीकेवचनं श्रुत्वा तुनोष राघवोऽपि च ॥१७॥
 सुमंत्रं भरतं धायुपुत्रं वानरनायकः । समाहितश्च चतुर्भ्यः स पुनर्जितानमन्यत ॥१८॥
 सीतया पालिताः सर्वे चर्य लवजितास्त्विति । कथयामासुः श्रारामं सुमंत्राद्याः पविस्तरम् ॥१९॥
 द्वितीये दिवसे कृत्वा सर्वां श्रेष्ठां मनोरमाम् । सर्वास्तिरस्यां समाहूय रामो वाक्पथमब्रवीत् ॥२०॥
 ध्रुवयः पार्थिवाः सर्वे मृणुत स्वस्थमानताः । सीतायाः शपथं लोका विजानन्त्वशुभं ध्रुवम् ॥२१॥
 इत्युक्त्वा राघवेणाथ लोकाः सीतादिदृशवः । ब्रह्मणाः क्षत्रेणा वैश्याः शूद्राश्चैव सहस्रशः ॥२२॥
 सवानराः समाजगमुस्तद्विष्यं द्रष्टुमुद्यताः । ततो मुनिवरस्तूर्णं ब्रवीतः । गतुपागतः ॥२३॥
 अग्रतस्तं मुनिं कृत्वा यांती किञ्चिदवाङ्मुखा । कर्ताञ्जलिर्मुदा सीता जनयन्त्रं विरेज नम् ॥२४॥
 दृष्ट्वा लक्ष्मीमिवायांती श्रीविष्णोरनुयायिनीम् । वाल्मीकेः पृथुतः सीतां जयश्रीपं प्रचक्रिरे ॥२५॥
 तदा मध्ये जनीषस्य प्रविश्य मुनिपुङ्गवः । सोऽसहायो वाल्मीकिस्तदा राघवमब्रवीत् ॥२६॥
 इयं दाक्षरये सीता सुनृचा धर्मचारिणी । त्वया पापान्पुरा त्यक्त्वा ममाश्रमसमीपतः ॥२७॥
 लोकापवादमीत्तेन यमुनादधिणे तटे । प्रत्ययं दास्यते साऽद्य तदनुज्ञातुमर्हसि ॥२८॥
 इमौ तु सीतावनयौ कुञ्जस्थितौ लवो मया । लवैर्विनिर्मितः सीताभयात्प्रत्यग्रचेतसा ॥२९॥

जो कुछ कहा था, सो कह सुनाया ॥ ८-११ ॥ रामके मनकी बात जानकर वाल्मीकिने कहा—आज तुम लोग जाओ और रामसे कह दो कि कल सभामें जाकर सीता लोगोके सामने शपथ खाएगी ॥ १२-१४ ॥ स्त्रियोंके लिए पतिके सिवाय और कोई देवता नहीं होता । ऐसी अवस्थामें सीता और नर ही क्या तकली है । पतिके बिना स्त्रीके लिए लोकमें और कोई गति भी नहीं है ॥ १५ ॥ तब लक्ष्मण आदि वहाँसे लौट आये । रामने उनके मुखसे वाल्मीकिका सन्देश सुना तो परम प्रसन्न हुए । वे लोग वहाँसे लौटते समय सुमन्य आदि चारों वीरोंको, जिनको कि लवने बन्दी था, या, अपने साथ लुटा लाये थे । राम उन सबको अपनी छातीसे लगाकर मिले और यह कि इन लोगोंका पुनर्जन्म हुआ है ॥ १६-१८ ॥ उन सबोंने अपना हाल बतलाते हुए कहा कि यद्यपि अपने हम लोगोंको कैद कर लिया था, किन्तु सीताने पूर्णरूपसे हमारे की ॥ १९ ॥ दूसरे दिन एक विशाल आयोजित की गयी । उसमें सब लोगोंको सम्बोधित करके रामने कहा—हे देवविदेशसे आये हुए अधियों । आज इस सभामें आप लोगोंके समक्ष सीता खायगी । इससे आप लोगोंको उसके मुकुट तथा दुष्कृतका पता लग जावेगा । इस प्रकार रामके वचन सुने तो लोग सीताको देखनेके लिए उतावले हो उठे । नगरमें भी यह समाचार पहुँच गया । अतएव इस दिव्य शपथको देखनेकी लालसासे कितने ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वहाँ आ पहुँचे ॥ २०-२२ ॥ थोड़ी देर बाद सीताके साथ वाल्मीकि भी सभामें पधारे । आगे-आगे वाल्मीकि और उनके पीछे नीचा खिर किये सीता मन्दगतिसे सभामें आयीं । उस समय सीता और वाल्मीकिको देखकर ऐसा था कि मानों विष्णुके पीछे-पीछे लक्ष्मी चली आ रही हैं । सीताको देखते ही लोगोंने जयजयकार किया और वाल्मीकिजी सभाके बीचमें पहुँचकर रामसे कहने लगे—॥ २३-२६ ॥ हे राम ! कुछ दिन हुए, आपने लोकापवादके भयसे सीताको मेरे आश्रमके समीप छोड़वा दिया था । आज वह ही सीता आपके सामने खायगी, आप इसके लिए आज्ञा दें । सीताके इन दोनों पुत्रोंमें कुश आपका तथा लव (वाल्मीकी बेटे) बनाया हुआ मेरा बेटा है । उसे मैंने सहसा सीताके घरसे बनाया था । ये दोनों बेटे

सुताविमौ तु दुर्धर्षौ तथ्यमेतद्वर्णामि ते । प्रचेतसोऽहं दक्षयः पुत्रो रघुकुलोद्भवः ॥३०॥
 अनृतं न स्मराम्युक्तं यथेभौ तव पुत्रकौ । बह्वर्पणान् सम्यक् तपश्चर्या मया कृता ॥३१॥
 नोपशनीयां फलं तस्या दृष्टेयं यदि मैथिली । इत्युक्त्वा राववस्यांके दक्षिणे स्थाप्य वै कुशम् ॥३२॥
 लवं विन्ध्यस्य वामांके तस्या तस्याग्रतो मुनिः । रामोऽपि तौ समालिङ्ग्य गूह्यवर्धनाय सादरम् ॥३३॥
 लवस्य मस्तके हस्तं संस्थाप्य जगदीश्वरः । अतिह्रस्वतरं बालं पूर्ववत्सोऽकरोच्च तम् ॥३४॥
 ततो रामोऽपि तौ सीतां दृष्ट्वा बाहुद्वयान्विताम् । अज्ञात इव संप्राह लक्ष्मणं पुरतः स्थितम् ॥३५॥
 स्वयः भुजः समार्नातः सीताया मां प्रदर्शितुम् । पुरा तमानयस्वाद्य चेदस्ति रक्षितस्त्वया ॥३६॥
 तथेत्पुक्त्वा लक्ष्मणोऽपि पेटिकानिहितं भुजम् । सीतायाः पुरतो रामं दर्शयामास सादरम् ॥३७॥
 सीताभुजोपमं दृष्ट्वा भुज मांसादिभिर्युतम् । पञ्चवर्षान्तरे काले सासन् सर्वेऽतिविस्मिताः ॥३८॥
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र पश्यन्तु मकलेश्वरिणि । भुजः स शुभतां प्राप्तो विश्वकर्माद्भवः कणात् ॥३९॥
 तद्दृष्ट्वा कीर्तुकं लोका अभूवन्नतिविस्मिताः । रामोऽपि विस्मितः प्राह वाल्मीकिं प्रणिपत्य च ॥४०॥
 एवमेव महाप्राज्ञ यदुक्तं मां त्वयाऽपुनः । पन्थयो जनितो मया तव वाक्यैरकिल्बिषैः ॥४१॥
 लकायामपि दृष्टो मे वैदेहाः प्रत्ययो महान् । देवानां पुरतस्तेन मन्दिरं संप्रवेशिता ॥४२॥
 सर्वे लोकपालास्तत्पदपायाऽपि मया पुरा । शोभा मया ररित्यक्ता तद्भवान् खन्तुमर्हति ॥४३॥
 मत्तः जातोऽस्ति जानामि कुतोऽयं स लवस्त्वया । लवं प्रीत्या कुतो वेदि सीताशायमयान्मुने ॥४४॥
 तथापि लाक्षान्भक्तान्द्रष्टुं माताऽयं प्रव्रजयन् । करोतु शपथं चापि मयायां तव सन्निधौ ॥४५॥
 शुद्धायां जगद्गन्धे साधामर्गाद्गोम्यदम् । तदा तच्छपथं द्रष्टुमासन्नलोकाः समुत्सुकाः ॥४६॥
 समया जानकीं चाथ तदा कीर्त्तयन्वापिना । उदङ्मुखो सधोदष्टिः प्राजलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥४७॥

असाधारण चोर । कांड भा योद्धा इसके नहीं टिक सका । विधाताका मैं दसवां पुत्र हूँ । आज तक मैं कभी इस नहीं वाला । अनेक वर्षों तक मैंने चोर तपस्या की है । यदि सीता किसी तरह भी पापाचारिणी होती तो मैं उसके हाथों-का न ग्रहण करता । इतना कहकर वाल्मीकिने कुशको रामके दाहिनी बगल तथा लवकी बायीं ओर बिठला दिया और स्वयं उसके सामने एक ऊँचे आसनपर बैठे । रामने बड़े स्नेहसे उन बच्चोंका आलिंगन किया, लव और लवके मस्तकपर अपना दाहिना हाथ रखकर कुशके समान ही अवस्थाका उनको भी बना दिया ॥ २७-३४ ॥ इसके रामने सीताकी ओर देखा तो सीताकी दोनों भुजायें ज्योंही रंगों टाक देतीं । उन्होंने अज्ञातभावसे लक्ष्मणको दी कि उस समय जो सीताकी भुजा काटकर बहून्से गुम दिखाने लाये थे, यदि वह सुरक्षित रीतिसे रखी हो तो महीं ले जाओ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ लक्ष्मणने "बहुत अच्छा" कहकर पेटोमें रखी भुजा लाकर रामके सामने दी ॥ ३७ ॥ इतने दिन बीतनेपर भी ठीक सीताकी भुजाओंके समान लटकते मांसके लोपड़े तथा रुधिरसंयुत भुजाओंको देखकर सभामें जितने लोग बैठे थे, वे बड़े विस्मित हुए ॥ ३८ ॥ इसी बीच लोगोंके देखते ही देखते वह विश्वकर्माकी बनायी भुजा गायब हो गयी । यह मौनुक देखकर लोगोंको और भी आश्चर्य हुआ । रामने विस्मित होकर वाल्मीकिसे कहा—हे महाप्राज्ञ ! मुझे तो आपको बातोंसे ही विश्वास हो गया था कि सीता परम पवित्र है ॥ ३९-४१ ॥ लक्ष्मणमें भी मैंने सीताकी शपथ देखी थी । उस देवताओंके समक्ष शपथ लेनेपर ही मैंने इसे अङ्गीकार किया था ॥ ४२ ॥ तबपि लोकपवादके भयसे पवित्र भी मैंने सीताका परित्याग किया । आध मेरे इस अररायको क्षमा करें ॥ ४३ ॥ यह भी मैं जानता हूँ कि कुश मेरा पुत्र है और लवको आपने सीताके शापभयसे बनाया था ॥ ४४ ॥ यह सब होते हुए भी इन संसारवालोंको बिगड़ास दिलानेके लिए सीता इस सभामें शपथ ले ॥ ४५ ॥ यदि इस जनसमाजमें और इस संसारमें सीता शुद्ध सिद्ध हो गयी तो मैं इसको फिरसे अङ्गीकार कर लूँगा । उस समय सीताकी शपथको देखनेके लिए बहाँ बैठे हुए सब लोग उत्सुक हो रहे थे ॥ ४६ ॥ तदनन्तर सभामें रेसमी कपड़े पहने सीता खड़ी हो गयीं और हाथ

रामादन्यमहं चेद्दि मनसाऽपि न चिन्तये । तर्हि मे धरणी देवि विवरं दातुमर्हसि ॥४८॥
 एवं शपन्त्याः सीतायाः प्रादुरासीन्महाद्भुतम् । भूतलादिव्यमत्यर्थं सिंहासनमनुत्तमम् ॥४९॥
 भुजा विवरमार्गेण समानीतं मनोरमम् । नागेन्द्रं त्रियमाणं तदिव्यदेहं रविप्रभम् ॥५०॥
 भूदेवा जानकीं दोभ्यां भूत्वा दृढितरं निजाम् । स्वागतासीति तामुपस्थाऽऽमने सा संन्यवेशयत् ॥५१॥
 वस्त्रालङ्कारस्रग्धसुगन्धैः पूज्य मैथिलीम् । सवालिंग्याथ भूदेवो वीजयामास सादरम् ॥५२॥
 तदा शनैः शनैर्भूभ्यां गुप्तं मिश्रामनं त्वमन् । सिंहासनस्थां वंदेहीं प्रविशन्तीं रसातलम् ॥५३॥
 दृष्ट्वाऽऽकाशस्थिता देवस्त्रियः सर्वास्तु सम्भ्रमन् । निरन्तराभिर्वंदेहीं ववपुः पुष्पवृष्टिभिः ॥५४॥
 साधुवादश्च सुमहान्वभूव सुरकीर्तितः । अन्तरिक्षे च भूमी च मर्व स्थावरजङ्गमम् ॥५५॥
 तदा यभूव चकितः सीताश्रयदर्शनात् । ऊचुस्ते इसुधा वाचो वानराश्च नरादिकाः ॥५६॥
 केचिच्चिन्तापराः केचिदासन्ध्यानपरायणाः । केचिद्रामं निरीक्षन्तः केचित्सीतामचेतसाः ॥५७॥
 मुहूर्तमात्रं तत्सर्वं तूष्णींभूतमचेतनम् । प्रविशन्तीं भुवं सीतां दृष्ट्वा संमोहितं जगन् ॥५८॥
 एतस्मिन्नन्तरे रामः प्रविशन्तीं हि भूतले । विदेह्यां तदा स्पृष्ट्वा वामहस्तेन संभ्रमात् ॥५९॥
 यां दधार करेणादौ धृत्वा हस्तेन च भुवम् । ततस्तां प्रार्थयामास भुवं स रघुनन्दनः ॥६०॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

देवि त्वं सर्वलोकानां निवासस्थानमुत्तमम् । असि लोकेकमाता त्वं महानीरोर्ध्वतः सदा ॥६१॥
 वर्तसे पुष्परूपा त्वं वसुदा सकलान् जनान् । स्वव्रतगदांश्च धीस्त्वं करोषि विश्ववृत्तिदाः ॥६२॥
 त्वं दुर्गा त्वं स्वरा लक्ष्मीर्मम विष्णोः प्रिया शुभा । त्वमेशाद्यात्र मे शक्तिर्निमिताऽसि मयैव हि ॥६३॥
 निजोदराद्दासि त्वं धातुर्नरत्प्या जनान्सदा । भ्रमायुक्ता त्वमेवासि सूक्तायुक्तादिकर्मसु ॥६४॥

जोड़कर नीची निगाह तथा ऊपर मुँह करके बोली—॥ ४७ ॥ हे पृथ्वी माता ! यदि रामके सिवाय अन्य किसीको मैंने अपने हृदयसे भी न सोचा हो तो प्राण मुझ ऐसी जगह दाजिए कि जिससे मैं आपमें समा जाऊँ ॥ ४८ ॥ इस प्रकार सीताके प्रार्थना करनेपर तुरन्त एक दिव्य सिंहासन पृथ्वीके भीतरसे निकला । उसको बड़े-बड़े नाग अपने सिरपर उठाये हुए थे । सूर्यके समान देदीप्यमान उन नागोंका प्रकाश था ॥ ४९ ॥ ५० ॥ हस्तमें साक्षात् पृथ्वी देवीने अपनी दोनों भुजाओंसे सीताका स्वागत किया । फिर छातीसे लगा तथा गोदमें लेकर उन्हें उस सिंहासनपर बिठाकर दिया । इसके अनन्तर वस्त्र-अलंकार-माला-कल आदिसे सीताकी पूजा की और छातीसे लगाकर पंखा चलने लगी ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ इसके घीरे-घीरे वह सिंहासन पृथ्वीके भीतर घुसने लगा । सिंहासनपर बंसी हुई सीताको पातालमें देखकर आकाशमें स्थित सारी देवगणानां उनपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगी ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ और पृथ्वीमें देवताओं और मनुष्योंने साधुवाद किया । सीताकी उस वपयको देखकर समस्त स्थावर-जंगम प्राणी चकित हो गये और अपनी सुधि-बुधि भूलकर परस्पर बातें करने लगे ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ उनमें कुछ लोग चिन्तित और कुछ ध्यानमग्न । कुछ लोग रामको देख रहे थे । कुछ लोग अपनी सुधि-बुधि भूलकर सीताकी धाँद निहार रहे ॥ ५७ ॥ मुहूर्तभरके लिए बहुत सारा समाज सन्न हो गया । सीताको पृथ्वीके भीतर समाती देखकर समस्त संसार मुग्ध हो गया ॥ ५८ ॥ राम सीताको पृथ्वीमें घँसती देखकर अपने सिंहासनसे कूद पड़े और पृथ्वीके पास आ पहुँचे । वे उनका हाथ अपने हाथसे पकड़कर इस प्रकार पृथ्वीसे प्रार्थना करने लगे ॥ ५९ ॥ ६० ॥ श्रीरामचन्द्र बोले—हे देवि । सारे संसारकी निवासभूमि है । समस्त जगत्की होकर महानीरके ऊपर स्थित है ॥ ६१ ॥ पुष्परूपा है । समस्त जनोंको हर प्रकारकी सम्पत्तियाँ देनेकी सामर्थ्य रखती है । आप अपने उदरसे अनेक प्रकारकी ओषधियाँ उत्पन्न करके सबकी रक्षा करती हैं । आप दुर्गा, स्वरा और विष्णुकी प्रिया लक्ष्मी हैं । आप आदिशक्ति हैं और ही आपको बताया है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ अपने उदरसे शक्ति-शक्तिके धातु विकालकर

जानकी तव कन्धेयं शश्रूस्त्वं मेऽधुना त्विह । कन्यादानं कुरु मुदा त्वया पूर्वं कृतं न हि ॥६५॥

प्रसीद देवि नोचेन्मे त्वयि क्रोधा भविष्यति ।

श्रीरामदास उवाच

इति संप्रार्थिता चापि राघवेण महान्मना ॥६६॥

नारी काठिन्यभावात्सा नाशृणोद्राघवेरितम् । शूनैः शूनैरघः सातासहिता सा जगाम ह ॥६७॥

तां गच्छन्ती पुनर्दृष्ट्वा भुवं रामो धृतामपि । बभूव कोपताम्राश्रस्तदा लक्ष्मणमब्रवीत् ॥६८॥

चापमानय सौमित्रं शिक्षयेऽहं भुवं त्विमाम् । मन्त्रुरोपमवाणेन वसुधेयं विदेहजासु ॥६९॥

मामद्य दास्यति क्षिप्रमस्य घातं न रोचये । ततोऽसी लक्ष्मणानीतं करे कोदण्डमुत्तमम् ॥७०॥

धृत्वा ज्यातोषणं कृत्वा शरसंधानमातनोत् । तदा ब्रवी महान्वायुश्रुधुमे लवणार्णवः ॥७१॥

तारा निपेतुर्घरणीं बभूवुः सरजा दिशः । चकम्पे धरणीं सापि आहीति वदती मुहुः ॥७२॥

कराभ्यां जानकीं धृत्वा रामस्यांके न्यवेशयत् । श्रीरामपदयोः पृथ्वी शिरसा नमनं व्यधात् ॥७३॥

तदा स्वे देववाद्यानि नेदुः कुसुमवृष्टिभिः । बभूवुर्जानकीं राम देवसंघा मुशान्विताः ॥७४॥

ततो रामोऽपि तां दृष्ट्वा पदयोर्नमतीं भुवम् । स्वक्रोधं शान्तमकरोत्कराभ्यां चापमार्गजौ ॥७५॥

विसृज्योत्थापयामास स्वकरेणावनिं प्रभुः । ततः सा राघवं नत्वा प्रसाद्य च पुनः पुनः ॥७६॥

दत्त्वा विदेहकन्यार्यं तं सिंहासनमुत्तमम् । सीतां स्तुत्वाऽथ तां पृष्ट्वा तथा संपूजिताऽपि च ॥७७॥

आमन्त्र्य राघवं पृथ्वी क्षणादंतहिताऽभवन् । तदा सीतां जनाः सर्वे पुनर्जातां तु मेनिरे ॥७८॥

जयशब्दैः प्रणमुस्तां चक्रुः पूजां पृथक् पृथक् । ददा दानान्यनेकानि तदा रामो मुदान्वितः ॥७९॥

नववायनिनादाश्च सम्बभूवुः समन्ततः । ननुतुर्वारनार्यश्च तुष्टबुवेन्दिमागधाः ॥८०॥

संसारि लोगोंको प्रतिपूर्वक प्रदान करता है। सूक्त और असूक्त जितने भी कर्म हैं, उनमें आप समाख्या हैं ॥ ६४ ॥ यह सीता आपको कन्या ॥ इस नाते मेरी सास हैं। आपने विवाहके समय कन्यादान नहीं किया था, सो अब कर दीजिए ॥ ६५ ॥ हे देवि ! आप मेरेपर प्रसाद हो जायें। नहीं तो आपके ऊपर गुट जाऊंगा। श्रीरामदासन कहा—रामके इस तरह प्रार्थना करनेपर भी पृथ्वीने उनको एक न सुना। क्योंकि हा नारियोंका हृदय कठिन हुआ करता है। सीता धीरे-धीरे पृथ्वीतलम समाती जा रही थी ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ विनय करनेपर भी रामने देखा कि पृथ्वी मेरी बातोंपर कुछ ध्यान नहीं दे रहा है तो मारे क्रोधके उनको आँखें लाल हो गयीं और लक्ष्मणसे बोले—॥ ६८ ॥ लक्ष्मण ! मेरा धनुष तो लाओ, मैं पृथ्वीको उसके दुराग्रहका दण्ड दे दूँ। मेरे छुरे सहज तोरण बाणसे डरकर यह सीताको लौटा देगा। इस में मारना नहीं चाहता, चाहता हूँ केवल सीताको इसके हाथोंसे लौटना। तदनुसार तुरन्त लक्ष्मण धनुष उठा लाये। रामने उसे लेकर रोदा डोक किया और बाण चढ़ाया। उस समय जोरोसे बाँधी चलने लगी, समुद्रमें प्रलयकालकी लहरें उठने लगीं, तारे टूट-टूटकर गिरने लगे और चारों दिशाएँ घुलसे आन्ठादित हो गयीं। ऐसी अवस्थामें "नाहि-नाहि" करती हुई पृथ्वी काँपने लगी और उसने अपने हाथों सीताको उठाकर रामकी गोदमें बिठा दिया। इसके बाद पृथ्वीने सिर झुकाकर रामके चरणोंको वन्दना की ॥ ६९-७३ ॥ उस समय स्वर्गमें देवताओंने देववाद्य बजाये और राम तथा सीतापर फूलोंकी वर्षा की ॥ ७४ ॥ इसके जब रामने देखा कि पृथ्वी मेरे चरणमें झुकी हुई विनती कर रही है तो अपना कोप कर लिया तथा धनुष-बाणका परित्याग करके अपने दानों-हाथोंसे पृथ्वीको उठाया। इसके अनन्तर पृथ्वीने फिर भगवान्‌को बार-बार नमस्कार किया, प्रार्थना की और सीता बहुत सुवर्णमय सिंहासन रामको समर्पण कर दिया। फिर सीताकी स्तुति की। साताने भी पृथ्वीकी विधिवत् पूजा की। तत्पश्चात् रामकी आज्ञा लेकर क्षण भरके भीतर ही पृथ्वी अस्तर्धान हो गयी। समय सुषामें बैठे हुए लोगोंने सीताका पुनर्जन्म समझा ॥ ७५-७८ ॥ सब लोगोंने सीताकी विधिवत् पूजा की और जय-जयकार करके प्रणाम किया। तब रामने अनेक प्रकारके दान दिये ॥ ७९ ॥ प्रति-भातिके यकीन बाजे बजे,

सीतायाः क्षपथो यत्र जाह्नव्या दक्षिणे तटे । सीताकुण्डमिति ख्यातं तत्र तीर्थं बभूव ह ॥८१॥
 पातालस्थं जलं पुण्यं सन्तप्तमनलोपमम् । वर्ततेऽद्यापि तत्तीर्थं सीतोष्णश्वासकारणात् ॥८२॥
 तदत्र जानकीकुण्डं स्मरणाद्भयनाशनम् । पत्युरायुष्यवृद्धयर्थं स्त्रीभिः सेव्यं तदा भुवि ॥८३॥
 सीतायुतो रामः पुत्राभ्यां सहितो मुदा । वस्त्रालङ्कारयुक्ताभ्यां स्नानं श्रवभृशं हृषन् ॥८४॥
 चकार कथितोत्साहैः पूर्ववच्च सविस्तरम् । अथ यज्ञशतं पूर्णमेवं कृत्वा रघूत्तमः ॥८५॥
 जातकर्मादिसंस्कारान् लवस्य विधिनाऽकरोत् । चकार नानादानानि देवान् संपूज्य भक्तितः ॥८६॥
 ततो भुनीश्वरान् पूज्य पूजयामास पार्थिवान् । जनकं च सुमेधां च पूजयामास राघवः ॥८७॥
 विससर्ज ऋषीन्सर्वान् ऋत्विजो ये समागताः । द्विजाद्यास्तान् घनाघैश्च तोषयामासुरादरात् ॥८८॥
 ततो विसृज्य विप्रांश्च पार्थिवैः सह राघवः । कुमारभ्यां सीतया च बन्धुभिश्चाममत्पुरीम् ॥८९॥
 नीराजितः पुरस्त्रीभिर्वारिणस्थो रघूत्तमः । सीतया तनयाभ्यां च ययौ निजगृहं प्रति ॥९०॥
 तदा महोत्सवश्चासीदयोध्यायां समन्वितः । विरकालेन वैदेह्या दर्शनं च अनेः कृतम् ॥९१॥
 ततो नृपादिकान् पूज्य विससर्ज रघूद्वजः । जनकं च सुमेधां च ददावाज्ञां निजां पुरीम् ॥९२॥
 ततः सीतायुतो रामः पुत्राभ्यां बन्धुभिः सह । पूर्ववत्स सुखं रेमे विरकालं रघूद्वजः ॥९३॥
 रामेण सीतया सार्धं सहस्राणि त्रयोदश । वर्षाण्यत्र कृतं राज्यं कस्मिन्कल्पे द्विजोत्तम ॥९४॥
 एकादश सहस्राणि वत्सराणि महान्ति च । तथैकादश वर्षाणि माया एकादशैव तु ॥९५॥
 दिनान्पेकादर्शवात्र रामेण सीतया सह । अयोध्यायां कृतं राज्यं कस्मिन्कल्पे द्विजोत्तम ॥९६॥
 एकादश सहस्राणि चैकादश दिनानि । सप्तर्षीपर्वतोपासी रामोऽभूत् कल्पभेदतः ॥९७॥
 दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च । रामेण सीतया राज्यं कस्मिन्कल्पे कृतं द्विज ॥९८॥

इति श्रीमत्कोटिरामचरितोत्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये

अष्टमकाण्डे जानकीग्रहणं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

वैश्याश्रोत्रे नृत्य किया और बन्दीजनों माग्योंने विविध प्रकारसे स्तुति की ॥ ८० ॥ जाह्नवीके दक्षिणी तटपर जहाँ सीताने क्षपथ ली थी, वह सीताकुण्डके नामसे एक विख्यात तीर्थ बन गया ॥ ८१ ॥ सीताके उष्ण उच्छ्वास निकलनेके कारण वहाँ अग्निके सदृश तपता हुआ पवित्र जल निकलता रहता है ॥ ८२ ॥ इस जानकीकुण्डके स्मरणमात्रसे सब भय नष्ट हो जाते हैं । अपने पतिकी आयुवृद्धिके लिए स्त्रियोंकी इसमें स्नान करना चाहिये ॥ ८३ ॥ इसके बाद सीता तथा अपने पुत्रोंके साथ रामने यज्ञान्तका अवश्रुय स्नान किया । यह अवश्रुय स्नान भा पूर्वकथित स्नानके सदृश ही उससाहके साथ हुआ । इस प्रकार रामने सौ पूर्ण करके विभिपूर्वक लवका जातकर्मादि संस्कार किया । अनेक प्रकारके दान दिये और देवताओंका विधिवत् पूजन किया । इसके अनन्तर यज्ञमें आये हुए समस्त ऋषियों तथा राजाओंकी पूजा की और जनक तथा सुमेधाका भी पूजन किया । इसके बाद ऋषियों तथा ऋत्विजोंकी घनादिसे सन्तुष्ट करके विदा किया ॥ ८४-८८ ॥ साथ ही ब्राह्मणों तथा राजाओंको भी विदा किया और सीता, पुत्रों बन्धु-वाग्विजोंके साथ राम अपनी अयोध्यापुरीका गये ॥ ८९ ॥ अयोध्यामें ज्यों ही राम हाथोंपर सवार होकर पहुँचे, त्यों ही नगरकी स्त्रियोंने उनकी आरती उतारो और लाग अपने महलोंमें गये । उस समय अयोध्यामें चारों ओर महान् उत्सव हो रहा था । बहुत दिनोंसे विमुक्त सोताका लोगोंने दर्शन पाया ॥ ९० ॥ ९१ ॥ कई दिनों बाद रामने जनक, सुमेधा तथा अन्य राजाओंका अपने-अपने नगर आनेको दी ॥ ९२ ॥ इसके अनन्तर फिर पहलेके समान रामचन्द्रजी सीता तथा पुत्रोंके साथ आनन्दपूर्वक अयोध्यामें रहने लगे ॥ ९३ ॥ किसी कल्पमें रामने सीताके साथ तेरह हजार वर्ष तक राज्य किया, किसी कल्पमें ग्यारह हजार वर्ष तथा किसी कल्पमें ग्यारह हजार वर्ष ग्यारह हजार वर्ष और ग्यारह दिनतक राज्य किया ॥ ९४-९७ ॥ किसी कल्पमें रामने दस हजार दस सौ वर्ष तक राज्य किया है ॥ ९८ ॥ इति श्रीमत्कोटिरामचरितोत्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे ८० रामसेजपाण्डेय-कृत 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते जन्मकाण्डे अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः

(रामादिके बाल्लोका उपनयन-संस्कार)

श्रीरामदास उवाच

अथोर्मिला माण्डवी च श्रुतकीर्तिः सर्वत्र ताः । बभूवुस्तान्निचिदन्तर्वत्स्यो महोदराः ॥ १ ॥
 तासां चकार सीता सा कौतुकानि च आदरम् । तामां पुंसवनादीनि विविधानि रघूत्तमः ॥ २ ॥
 आहूय पत्न्या जनकं कारवाम स बन्धुभिः । दोहदान् पूज्यान्मुखासां पौरसुहृन्निग्रयः ॥ ३ ॥
 ताभ्यां सर्वान् समुत्साहान्नेवं कृत्वा रघूत्तमः । ब्रह्मलकारभूषाभिस्तोषयामास ताः सुखम् ॥ ४ ॥
 अथोर्मिला सा तनयं सुपुत्रं परमोदयम् । ततः सा माण्डवी पुत्रं सुपुत्रं परमे दिने ॥ ५ ॥
 ततः सा श्रुतकीर्तिश्च सुपुत्रं यमलौ कृताः । कालांतरेणोर्मिलाया द्वितीयस्तनयोऽभवत् ॥ ६ ॥
 तथाऽपरस्तु माण्डव्याः पुत्रः कालांतरादभूत् । जातकर्मदिग्भक्तान् कृत्वा रामः पृथक् पृथक् ॥ ७ ॥
 चकार गृह्णा विप्रैर्मतेन्मार्हैर्यथाचितम् । लक्ष्मणस्यांगदो ज्येष्ठश्चिकेतुः कनिष्ठकः ॥ ८ ॥
 माण्डव्याः पुत्रो ज्येष्ठः चिकेतुस्तथापि । श्रुतकीर्त्याः सुबाहुश्च युपकेतुः परः स्मृतः ॥ ९ ॥
 एतं कृतानि समासे मुख्या विधिवत् । पश्चादन्तरेण संजाताः काले काले क्रमेण च ॥ १० ॥
 तेऽग्रेऽत्र मया प्रोक्ताः संक्षेपेणान् वदन्तुः । तेषां जन्मकालेषु सुराः सर्वे सुदान्विताः ॥ ११ ॥
 वादयामासुर्वाद्यानि चरपुः पुण्ड्रिणिभिः । मातृभिः पितृभिर्पुत्रान् बालकान् दृश्यसन्निमान् ॥ १२ ॥
 राजद्वारि महानागीदुर्मवश्च नृपाक्षया । निनेदुर्नवराद्यानि ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ १३ ॥
 वादयन्ति स्म तूर्पाणि तुष्टुवृन्देन्दिमाम्बाः । नगरीं शोभयामासुः पताकाञ्चजतोरणैः ॥ १४ ॥
 सुहृदः पार्थिवाः सर्वे रामादीनां च पूजनम् । वस्त्राभरणार्थं च क्रिरे ते पृथक् पृथक् ॥ १५ ॥
 ददुर्दानानि विप्रेभ्यो रामाद्या चंभवश्च ते । ब्राह्मणान् भोजयामासुः श्राद्धानि चक्रुरादरात् ॥ १६ ॥

श्रीरामदास बोले—कुछ काल बाद उर्मिला, माण्डवी तथा श्रुतकीर्तिने साथ साथ गर्भधारण किया ॥ १ ॥ सीताने इस समयपर बड़ा मुन्हावाला की ओर रामने विधिपूर्वक पुंसवनादि संस्कार किये ॥ २ ॥ इस संस्कारके समय जनक तथा मुन्हावाकी भी रामने पुत्रवा लिया और उन्हीके द्वारा यह कार्य सन्वत्त हुआ । पुरवातिनी स्त्रियोंने उर्मिलादिनी की-जो इच्छा हुई, सो पूर्ण किया ॥ ३ ॥ रामने इस प्रकार उत्सव करके अनेक तरहके धन्य और आभूषण दिए ॥ ४ ॥ इसके बाद समय पूरा होनेपर उर्मिलाने एक परम तेजस्वी पुत्र उत्पन्न किया और दूसरे दिन माण्डवीके भी एक पुत्रत्न उत्पन्न हुआ ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर श्रुतकीर्तिके एक साथ दो पुत्र उत्पन्न हुए । कुछ दिनों बाद उर्मिलाने एक दूसरा पुत्र और उत्पन्न किया ॥ ६ ॥ इसी प्रकार कालांतरमें माण्डवीके भी एक और पुत्र हुआ । रामने अपने कुलगुरु वसिष्ठके साथ उन पुत्रोंका जातककर्मादि संस्कार किया । लक्ष्मणके ज्येष्ठ पुत्रका नाम अक्षद और दूसरे बेटेका नाम चित्रकेतु पड़ा ॥ ७ ॥ ८ ॥ माण्डवीके ज्येष्ठ पुत्रका नाम पुष्कर तथा कनिष्ठका नाम पड़ा । इसी तरह श्रुतकीर्तिके ज्येष्ठ पुत्रका नाम सुबाहु तथा कनिष्ठ बेटेका नाम युपकेतु पड़ा ॥ ९ ॥ १० ॥ गुरु वसिष्ठने विधिपूर्वक सबका नामकरणदि संस्कार किया । हे शिष्य ! यहाँपर मैंने तुम्हें संक्षेपमें एक ही एक पुत्रका नाम बतलाया है । इनके सिवाय भी बहुतसे पुत्र हुए । प्रत्येक पुत्रके जन्मसमयपर देवतागण हर्षपूर्वक अपने बाजे वजाते और उनपर तथा उनके माता-पितापर पुष्पोंकी वृष्टि किया करते ॥ ११ ॥ रामचन्द्रजीके आज्ञानुसार राजद्वारपर बड़े-बड़े उत्सव रचाये जाते, नये-नये बाजे बजते और बेरियाएँ नृत्य करती थीं । बन्दीजन तथा सूत-मागव आ-आकर विविध प्रकारकी स्तुतिर्वा किया करते थे । पताका-ञ्चजा तथा तोरणादिकोंसे अयोध्या नगरीका शृङ्गार किया जाता था । रामके मित्र समस्त राजे अनेक प्रकारके वस्त्राभूषणोंको देखकर उनका पूजन करते थे ॥ ११-१५ ॥ राम-लक्ष्मण आदि चारों ब्राह्मणों को दान देते, उन्हें भोजन कराते एवं नान्दीभावादि हस्तोंको

एवमष्टौ कुमारास्ते रामादीनां मनोरमाः । वष्टुभुवचंद्रवदना मातृभिलालिताः सुखम् ॥१७॥
 मृत्खलाचद्रुक्मादिनिर्मितेषु वरेषु च । प्रसेषु हि कुमारास्ते विरेज् रुक्मभूषिताः ॥१८॥
 माले स्वर्णमयाश्चत्थपर्णान्यनिमद्धान्ति ॥ । मुक्ताफलाग्रलंबीनि शोभयन्ति स्म बालकान् ॥१९॥
 कंठे रत्नमणिजातमध्यद्वीपिनस्तां चिताः । कर्णयोः स्वर्णसंपन्नरत्नार्जुनसुतालकाः ॥२०॥
 सिंजानमणिमंजीरकटिमुत्रागर्दधृताः । स्मितवक्त्रात्पदश्रवणा इंद्रनीलमणिप्रभाः ॥२१॥
 अंगणे रिंगमाणाश्च संस्कारैः संस्कृताः शुभाः । ते पितॄन् रञ्जयामासुर्मातृश्चापि विज्ञेयताः ॥२२॥
 नानाशिशुक्रोडनर्केश्वैष्टितैर्मृत्सन्तुवर्नैः । बालकृत्रिमयुद्धय गमनैर्मधुरैरितैः ॥२३॥
 ततस्ते बालकाः सर्वे यस्त्रालंकारभूषिताः । सभायां राघवं नत्वा तस्युः सिंहासनोपरि ॥२४॥
 एकदा राघवः ग्राह वसिष्ठं मदसि स्थितम् । अवलोक्य बालानां न्वं चिह्नानि यथाक्रमम् ॥२५॥
 तच्छ्रुत्वा रामवचनं वसिष्ठो भूसुरैः सह । आदौ कुञ्चं समाहूय दृष्ट्वा रामं वचोऽब्रवीत् ॥२६॥

वसिष्ठ उवाच

पंचसूक्ष्मः पंचदीर्घः समरक्ताः पटुश्रवतः । त्रिपृथुलैर्षुगंभीरो द्वात्रिंशलक्षणस्त्वयम् ॥२७॥
 पंच दीर्घाणि शस्तानि यथा दीर्घायुषोऽत्र ॥ । भुजौ नेत्रे हनुर्जान् नासा च तनयस्य ते ॥२८॥
 ग्रीवाजंघामेहनैश्च त्रिभिर्ह्रस्वोऽयमीडितः । स्वरेण सच्चनाभिभ्यां त्रिगंभीरः शिशुः शुभः ॥२९॥
 त्वक्केशागुलिदशनाः पवाण्यङ्गुलिजान्यपि । तथाऽस्य पंच सूक्ष्माणि सूचयन्ति पत्रं श्रियम् ॥३०॥
 पाण्यप्रिसलनेश्रुते तालुजिह्वाधरोष्ठकम् । सप्ताक्षं च मनसमस्मिन् राज्यसुखप्रदम् ॥३१॥
 वक्षः कुक्ष्यालिकश्चक्रवर्त्तकं बहुन्नतम् । तथाऽत्र दृश्यन्ते बाले महदैश्वर्यभोगभाक् ॥३२॥

किया करते थे । तरह रामादि चारों भ्राताओंके भाँठी कुमार-जिनका चन्द्रमाके समान मुखमण्डल था—
 माताओंसे लालित होकर बढ़ते जाते थे । सोनेके जंजीरोंसे बंधे हुए एवं तरह-तरहके रत्नोंसे सुसज्जित बालकों-
 पर ये आनन्दकी विलाकारियाँ भरा करते थे ॥ १६ ॥ उन बच्चोंको कितने प्रकारके स्वर्णमय आभूषण पहनाये
 जाते और माथेपर पीपलके पत्तेकी नाई सुवर्णका पत्ता बनाकर लगाया था । जिसमें छोटे-छोटे मोतियोंके
 गुच्छे लटकते हुए बड़े माले लगते थे ॥ १७ ॥ १८ ॥ गलेमें रत्न और मणियोंके समूहके बीचमें व्याघ्रका नख
 शोभायमान हो रहा था । कानोंमें सुवर्णके कुण्डल झूलते रहते थे और उनमें लगा हुआ होरा प्रकाशित
 हो रहा था ॥ १९ ॥ २० ॥ सनभुन करती हुई मणियोंको करबनी पड़ी । हाथोंमें कङ्कण तथा
 विप्रायुक्त असाधारण निखार दिखा रहा था । जिस समय वे बच्चे तनिका मुस्करा देते इन्द्रनील-
 मणिके समान उनके छोटे-छोटे दाँत दीखने लगते थे । हाथ और पैरके सहारे आँगनमें रेंगते हुए वे बालक
 नाना प्रकारके बालविनोद, तरह-तरहकी चालें, मुखचुम्बन, बालकोंमें कृत्रिम और भीठी-भीठी बोलोंसे
 अपने-अपने माता-पिताको आनन्दित करते रहते थे । कुछ दिनों बाद वे अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषण पहिनकर
 राजसभामें जाते और वहाँ नियमतः रामचन्द्रको करके अपने आसनपर बैठ जाते थे ॥ २१-२४ ॥
 एक दिन राजसभामें बैठे हुए वसिष्ठजीसे रामने कहा—आप कृपया इन बालकोंका शुभाशुभ लक्षण
 देखकर हमें बतलाइए । यह बात सुनकर वसिष्ठने सबसे पहले कुत्तको अपने सामने बुलाया और
 रामसे कहने लगे—॥ २५ ॥ २६ ॥ पाँच प्रकारके लक्षण सुधम, पाँच ही तरहके दीर्घ, साठ रक्त, छः
 उन्नत, तीन विस्तृत, तीन ही तीन लघु तथा तीन गंभीर सब मिलाकर ३२ प्रकारके लक्षण
 होते हैं ॥ २७ ॥ जैसे कि इस चिरंजीवी कुत्तेके हाथ, नेत्र, बाहु, घुटने, ये पाँच दीर्घ हैं । अतएव
 ये बहुत अच्छे हैं । ग्रीवा, जंघा और लिंग इन तीनोंके छोटे होनेसे इसके तीन ह्रस्व हैं । ये भी अच्छे हैं ।
 शब्द, बल तथा नाभि ये तीन गंभीर । इसकी स्वभा, केश, उँगलियाँ, दाँत, शरीरकी संधियाँ तथा
 वक्ष ये पाँच सूक्ष्म इसकी श्रीकी सूचना दे रहे हैं । हाथ, पैर, तल्वे, नेत्रके आस-पासवाले भाग तालु,
 जिह्वा, जवरौत और कस ये रक्तवर्णके होनेसे राज्यसुख देनेवाले हैं ॥ २८-३१ ॥ छाती, पेट, कंधा,

ललाटकटिवक्षोभिस्त्रिविस्तीर्णो यथा ह्यमौ । सर्वदेजो महेश्वर्यं तथा प्राप्स्यति नान्यथा ॥३३॥
 अस्त्रिंशं तर्जनीं प्राप्य तथा रेखाऽस्य दृश्यते । कनिष्ठामूलनिर्वाता दीर्घायुष्यं यथा भवेत् ॥३४॥
 कमठपृष्ठकठिनावकर्मकरणौ करौ । सज्यदेन शिशोरस्य पादौ चाध्वनि कोमलौ ॥३५॥
 पादौ समासलौ रक्तौ समौ स्रक्षौ सुशोभनौ । ममगुल्फौ स्वदेहेन स्निग्धावर्श्यसूचकौ ॥३६॥
 स्वप्पाभिः कररेखाभिश्चारकाभिः सदा सुखा । लिङ्गेन कुशद्वयेन राजराजो भविष्यति ॥३७॥
 उत्कटासनगुल्फस्फिङ्गनाभिरस्यापि चतुर्ला । दाक्षिण्यवर्तमरुण महेश्वर्यसूचकम् ॥३८॥
 धारैका मूत्रके यस्य दक्षिणावर्तिनी यदि । गन्धश्च मीनमधुनोर्यदि शीर्यं तदा नृपः ॥३९॥
 विस्तीर्णो मांसलो स्निग्धो भुजावस्य सुखोचितौ । वामावर्तो सप्रलंबौ भुजौ भूरक्षणोचितौ ॥४०॥
 भीवत्सवज्जचकान्जमतस्यकोदंडदंडभृत् । तथाऽस्य करगा रेखा यथा स्यात्त्रिविद्विस्पतिः ॥४१॥
 द्वात्रिंशदशनधायं वरकंबुशिरोवरः । क्रींचदुदुभिर्दंमाभ्रस्वरः सर्वेश्वराधिकः ॥४२॥
 मधुर्विगलनेत्रोऽसौ नैनं श्रीस्त्यजति कचिन् । पंचरेखाललाटस्तु तथा सिंदोदरः शुभः ॥४३॥
 ऊर्ध्वरेखांकितपदो निःश्वसन्प्रगन्धवान् । आंच्छद्रपाणिः सुनमो महालक्षणवानयम् ॥४४॥
 एवं कुशं निरीक्ष्याथ सर्वान् रघुः क्रमेण सः । लवार्दानां सुविज्ञानि पूर्ववत्प्राह राघवम् ॥४५॥
 ततः प्रीतमना रामः पूजयामास तं गुरुम् । चर्मैर्गमर्णभवं ययौ हर्षचितो गृहम् ॥४६॥
 एतस्मिन्तरे सीता भूमिदत्तवगमने । मन्दिना चामरैर्दिव्यैर्दात्रीभिः परिबीजिता ॥४७॥
 सखीभिः सेविता रम्या धृताधोकोपचर्हणा । मृदुरे स्वं निराभर्ता मुखं चन्द्रनिभं वरम् ॥४८॥

हाथ, पसलियाँ और मुँह में छः उग्रत दीर्घांग है, जो महान् ऐश्वर्यको देता है ॥३२॥ मस्तक, कमर और छाती ये तीन विस्तीर्ण हैं, जो सब लक्षणोंको देनेवाले हैं : इनमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ३३ ॥ हाथकी एक रेखा ठीक तर्जनी पर्यन्त चली गयी है, वह दीर्घायुसूचक है ॥ ३४ ॥ कनिष्ठीकी पीठके समान कड़े-कड़े इसके हाथ राज्यप्राप्तिकी सूचना दे रहे हैं । इसके बायल, बराबर, माल, पतले, सुन्दर और बराबर एंडीवाले पैर भी इसके राज्यप्राप्तिकी सूचना दे रहे हैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ जोड़ी और माल रङ्गकी रेखाएँ यह बतलाती हैं कि यह सब गृही रहेगा । इसका लिंग पतला और छोटा है । इससे यह जाना है कि यह बच्चा भविष्यमें राजाओंका भी राजा होगा । इसका नितम्ब तथा घटन मजबूत है और नाभि गहरी तथा सस्त्रिणावर्त होकर लाल रङ्गकी है । ये भी महान् ऐश्वर्यकी सूचना दे रहे हैं । लक्षणशास्त्रोंमें कहा गया है कि मूत्रत्यागके समय जिसके लिङ्गसे मूत्रकी केवल एक बार दक्षिणावर्त बर्त और उसके बीचसे नछली तथा शहदेके समान गन्ध निकले तो वह मनुष्य होता है ॥ ३७-३९ ॥ इसकी खड़ी मांटी और चिकनी भुजाएँ सुख भोगने लायक हैं । लम्बे और बागावर्त बाहुदण्ड गुर्वीकी रक्षा करनेवाला है ॥ ४० ॥ धौलत्स, वज्र, चक्र, कमल, मत्स्य, धनुष तथा दण्ड आदिके आकारकी ऐसी रेखाएँ इनके हाथोंमें पड़ी हैं, जिससे ज्ञात होता है कि यह देव-राजोंका भी राजा होगा ॥ ४१ ॥ इसके मुखमें पूरे वल्लभ होना है । शङ्खके समान सुन्दर इसकी ग्रीवा है । क्रीच पक्षी, नगाड़ा, हंस तथा मेघके समान गम्भीर इसका स्वर है । इससे जान पड़ता है कि यह संसारके समस्त राजाओंसे बढ़कर होगा ॥ ४२ ॥ मधु । मदह । के समान विगल वर्ण इसकी आँखें हैं, इसके ललाटमें पाँच रेखाएँ हैं, सिंहके समान उबर है, इसके पैरोंकी रेखाएँ ऊपरकी गयी हैं, इसके श्वाससे कमलकी गन्ध आती है और सुन्दर-सी नासिका है, इन सब लक्षणोंसे ज्ञात होता है कि यह असाधारण लक्षणसम्पन्न बालक है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ इस प्रकार कुशके लक्षणोंको बतलाकर वसिष्ठने बाकी लव आदि बालकोंके भी लक्षण बतलाये । एतन्नाथ रामने अनेक प्रकारके बस्त्रों और आभूषणोंसे वसिष्ठकी पूजा की और उनकी आज्ञा लेकर रामचन्द्रजी अपने महलमें चले गये ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ वहाँ सीताजी पूरुषीके दिये हुए सुन्दर सिंहासनपर बैठी थीं । कितनी ही दासियाँ चँवर-पट्टे आदि झल रही थीं । बहुत-सी सखियाँ तरह-तरहका सेवामें लगी थीं । उस समय सीताजी पीछे, तर्किया लगाकर बैठी हुई दर्पणमें अपना मुख देख रही थीं । अब उन्होंने सुना

रामस्यागमनं श्रुत्वा संचञ्चालासनाज्जघात् । ततो ददर्श श्रीरामं बालकैः परिवेष्टितम् ॥४९॥
 स्वकट्यां यूपकेतुं च दधानमवरं शिशुम् । तथैव दक्षिणे हस्ते दधानं चांगदं शुभम् ॥५०॥
 कुशं लवं पुरस्कृत्य सभायां ■ शूनैः शूनैः । तत्पृष्ठे सा ददर्शार्थं लक्ष्मणं बालकान्वितम् ॥५१॥
 तप्तं कट्यां पुष्करं च दधानं दक्षिणे करे । तत्पृष्ठे भरतं सीता ददर्श हृदितानना ॥५२॥
 चित्रकेतुं शिशुं कट्यां दधानं रुक्ममण्डितम् । तथैव दक्षिणे हस्ते सुबाहुं पंकजेषणम् ॥५३॥
 तत्पृष्ठे ■ ददर्शार्थं शत्रुघ्नं जनकात्मजा । रामस्तस्यापि विभ्रंतं सभायांतं शूनैः शूनैः ॥५४॥
 एवं सा राघवं दृष्ट्वा सीता प्रत्युज्जगाम तम् । शिञ्जन्मञ्जीररञ्जना पीतकौशेयधारिणी ॥५५॥
 कराभ्यां पुरतो पातं लवं धृत्वा चुचुब ■ । निधाय तं लवं कट्यां धृत्वा हस्तेन तं कुशम् ॥५६॥
 ययौ शूनैः सः रामेण वदती स्वस्थलं पुनः । सखोभिर्वेष्टिता सीता रञ्जयामास राघवम् ॥५७॥
 अथ रामोऽपि सीतायाः स्थित्वा सिंहासनोपरि । अंकुरोः पुरतश्चापि बालकान्संस्थितां च सः ॥५८॥
 सीतायै दर्शयन् प्रीत्या लालयामास सादरम् । सीतायै राघवः प्राह सभायां गुरुणा पुरा ॥५९॥
 धान्युक्तानि सुषिद्धानि शिशूनां तानि विस्तरात् । श्रुत्वा राममुवाचानि सीता तोषं परं ययौ ॥६०॥
 राघवः प्राह वैदेहीधूमिलापरिवोजिताम् । सीनेऽङ्गदं चित्रकेतुं लक्ष्मणांके निवेशय ॥६१॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा सीता शीघ्रं शिशू ययौ । तावदुत्थाय सौमित्रिर्लज्जया गंतुमुद्यतः ॥६२॥
 तं गन्तुकामं रामोऽपि दृष्ट्वा तां मांडवीं ■ । श्रुतकीर्तिं कञ्जनेत्रसंज्ञयाऽचोदयच्चदा ॥६३॥
 ताभ्यां घृतोऽथ सौमित्रिः स्मितस्माभ्यामुपाविशत् । तावत्तदंकुरोः सीता तत्पुत्रौ सन्न्यवेशयत् ॥६४॥
 तद्वच्च भरतस्यांके निवेशय तच्चपुष्करी । शत्रुघ्नांके सुबाहुं च यूपकेतुं न्यवेशयत् ॥६५॥
 ततः सीता पुनः प्राह स्मितास्यः स रघूद्वहः । रोजयंतूर्मिलाद्या च स्वं स्व स्वामिनमादरात् ॥६६॥

■ आ रहे हैं तो आसनसे उठ खड़ी हुई । तबसे राम भी बालकोंके साथ सीताके समक्ष आगये ॥ ४९-४९॥
 उस ■ वे अपनी बायीं गोदमें यूपकेतु तथा दाहिनी गोदमें अंगदको लिये हुए थे और लव-कुश मागे-भागें चल रहे थे । उनके पीछे बालकोंको लिये लक्ष्मणको भी आते हुए सीताने देखा ॥ ५० ॥ ५१ ॥ लक्ष्मण तबको गोदमें लिये थे और पुष्करको अपने दाहिने हाथकी उँगली पकड़ाये चले आ रहे थे । उनके बाद सीताने भरतको आते देखा ॥ ५२ ॥ ■ भी चित्रकेतु नामक बच्चको बायीं गोदमें लिये और दाहिनी गोदमें कमलको नाई बाँझोवाले सुबाहु नामक बेटेको लिये हुए थे ॥ ५३ ॥ उनके पीछे सीताने शत्रुघ्नको देखा । वे रामजीके शस्त्रोंको लिये धीरे-धीरे महलोंकी ओर आ रहे ॥ ५४ ॥ ■ प्रकार उन्हें आते देखकर सीता रामकी ओर बढ़ीं । कमरकी करवनी और क्षुद्रघटिका अपनी रुक्मजुनकी ध्वनि कर रही ■ और मरीरमें रेशमो पीताम्बर सुशोभित हो रहा था ॥ ५५ ॥ उन्होंने रामके पास पहुँचते ■ लवका मुखा चूमा । फिर गोदमें ■ लिया और कुशको दाहिने हाथकी उँगली पकड़ाकर रामसे बातें करती हुई चलीं । उस समय भी चारों ओरसे कितनी ■ सखियाँ घेरकर सीता ■ रामकी प्रसन्न करती हुई गल रही थीं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ इसके अनन्तर रागचन्द्रजी सीताके सिंहासनपर बैठ गये और बच्चोंको गोदमें लेकर खेलाने लगे । ■ देर बाद रामचन्द्रजीने सीताको वासिष्ठसे सुने हुए बालकोंके शुभ लक्षण कह सुनाये । जिन्हें सुनकर सीता बहुत प्रसन्न हुई ॥ ५८-६० ॥ उमिली सीताके ऊपर पंखा झल रही थीं । इसी ■ रामने सीतासे कहा कि अङ्गद और चित्रकेतुको ले आकर लक्ष्मणकी गोदमें बिठा दो ॥ ६१ ॥ रामकी यह बात सुनकर सीता सटपट बच्चोंके पास पहुँची और उन्हें लक्ष्मणकी गोदमें बिठलाना ही चाहती थीं कि लक्ष्मण रज्जाके मारे चलनेको तैयार हो गये ॥ ६२ ॥ लक्ष्मणको आते देखकर रामने ■ संकेत कर दिया, जिससे श्रुतिकीर्ति और माण्डवीने लक्ष्मणको पकड़ लिया । तभी सीताने उन दोनों बच्चोंको लक्ष्मणकी गोदमें बिठा दिया ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ उसी प्रकार भरतकी गोदमें तप्त और पुष्कर तथा शत्रुघ्नकी गोदमें ■ और यूपकेतुको बिठलामाया ॥ ६५ ॥ इसके ■ मुस्कराते हुए रामचन्द्रने

ततस्ता द्रुद्रुः सर्वाः सखीभिर्लज्जिता धृताः । व्यजनैर्वाञ्जयामासुः स्वं स्वं कांतं सुलज्जिताः ॥६७॥
 एवं नानार्कौतुकानि भोजनासनकर्मसु । कारयामास वैदेहा वञ्चादीनां रघूत्तमः ॥६८॥
 अथ रामो वसिष्ठं स एकदा वाक्यमब्रवीत् । कुशस्याथ लवस्यापि व्रतबन्धो विधीयताम् ॥६९॥
 तथेति गुरुणा प्रोक्तस्ततो रामः शुभे दिने । गणकान् स समाहूय मंत्रयामास सादरम् ॥७०॥
 कुशाय पञ्चमं वर्षं किञ्चिन्न्यूनं लवाय च । ज्ञात्वा ते गणकाः सर्वे गुरुशुक्रादिकं बलम् ॥७१॥
 दृष्ट्वा पञ्चांगपट्टेषु राघवं वाक्यमब्रवीत् । ब्राह्मणस्याष्टमे प्रोक्तो द्वादशे क्षत्रियस्य च ॥७२॥
 वैश्यस्य षोडशे वर्षे व्रतबन्धो मुनीश्वरैः । जन्मात् पष्ठे तथा गर्भात्सप्तमेऽब्दे रघुस्य च ॥७३॥
 व्रतबन्धो त्रिधातव्यो यत्नतश्च पलायिनः । ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यो विप्रस्य पञ्चमे ॥७४॥
 राज्ञो बलार्थिनः पष्ठे वैश्यस्यार्थार्थिनोऽष्टमे । विद्वद्भिश्चोपनयनमेवं क्षात्रेषु निर्णयः ॥७५॥
 अतो गर्भाच्च पष्ठेऽब्दे पुत्रयोस्त्वं रघूत्तम । सुखं कुरुपनयनं मुहूर्तं मृणु सादरम् ॥७६॥
 अष्टारम्य पञ्चदशदिने दशं कुशाय हि । पश्चात्तरेण तं श्रुत्वा मुहूर्तं रघुनन्दन ॥७७॥
 गणकान् धनयस्त्रायैः पूज्य लक्ष्मणमब्रवीत् । आकारणीया राजाना मुहदध मुनीश्वराः ॥७८॥
 सातःपुराः सर्वोराध स्वस्त्रजानपदैः सह । मृङ्गारणीयाऽशोष्येयं परित्राः ॥ सादरम् ॥७९॥
 शोभनीयास्तथा साधसमूहेषु सुधाः शुभाः । दशा चित्राणि लेख्यानि प्रासादेषु समंततः ॥८०॥
 देवालयेषु सर्वेषु सुधा देवा मनोरमा । लेखनीयानि चित्राणि स्थाप्यन्ता बलयः पूषक् ॥८१॥
 बधनीयाः पताकाश्च रोणीयाश्च भ्रात्रा भवि । समंततस्तोरणानि बधनीयानि लक्ष्मण ॥८२॥

सीतासे कहा—अब उमिला, अतकोति । माण्डवी अपने-अपने पतियोंको पंजा मिलें ॥ ६६ ॥ इस बातको सुनकर वे स्त्रियाँ नडाके मारे बहामें भाग लड़ी हुई । किन्तु सखियाँ दौड़कर उन्हें पकड़ लायीं और अन्तमें उन्हें रामके आज्ञानुसार अपने-अपने पतियोंपर पंजे सलने पड़े ॥ ६७ ॥ इस तरह भोजन, आसन तथा शयनके समय रामचन्द्रजी सीता तथा भ्राताओंके विविध प्रकारके कौतुक किया करते थे ॥ ६८ ॥ कुछ दिन बीतनेपर एक दिन वसिष्ठसे रामने कहा—अब कुश और व्रतबन्ध (यज्ञोपवीत-संस्कार) कर डालना चाहिए ॥ ६९ ॥ वसिष्ठने कहा—अच्छी है । एक पवित्र दिवसको रामने बहुतसे ज्योतिषियोंको बुलाकर सलाह की ॥ ७० ॥ जब ज्योतिषियोंको बात मासूम हुई कि कुशका पाँचवाँ वर्ष चल रहा है और कुछ बच है । तब उन्होंने गुरु-शुक्रादिका बलाबल देखा ॥ ७१ ॥ पञ्चांगमें सब देख-सुनकर उन्होंने रामसे कहा—ब्राह्मणका उपनयन आठवें वर्षमें, क्षत्रियका बारहवें वर्षमें और वैश्यका सोलहवें वर्षमें यज्ञोपवीत-संस्कार होना चाहिए ॥ यह बड़े-बड़े ज्योतिषोंने कहा । अपना वर्षस्व बढ़ानेकी इच्छा रखनेवाले विप्रको गर्भसे पाँचवें वर्षमें, बलवृद्धिकी कामनावाले राजाको छठें वर्षमें एवं वनवृद्धिकी रखनेवाले वैश्यको आठवें वर्षमें ही उपमग्न-संस्कार करना उचित है । यह कःस्त्रोंका निर्णय है ॥ ७२-७५ ॥ अतएव हे रघूत्तम ! आपके बच्चोंका गर्भसे लेकर यह वर्ष चल रहा है । इसलिए इस समय इनका व्रतबन्ध करना अतिशय श्रेयस्कर है । बच्चोंके व्रतबन्धके लिए सुन्दर मुहूर्त बतलाता है, सो सुनिए ॥ ७६ ॥ आजसे पन्द्रहवें दिन कुशके यज्ञोपवीतका पवित्र मुहूर्त मिलता है । इस प्रकार एक पक्षके बाद यज्ञोपवीतका मुहूर्त सुनकर राम-चन्द्रजीने अनेक प्रकारके धन-वस्त्रसे उन पक्षकोंकी पूजा की और लक्ष्मणसे कहा कि समस्त राजाओं, मित्रों तथा मुनियोंके पास निमन्त्रण भेजकर कहला दो कि सब लोग अपना स्त्रियों, पुरवासियों देशवासियोंके साथ इस उपवनसंस्कारके उत्सवमें मेरे यहाँ पधारें । इस अयोध्या नगरीको अच्छी तरह सजवाओ । इसके आस-पसकी सातों खाड़ियोंको साफ करवा दो ॥ ७७-७९ ॥ महलोंको चूनेसे पुतवा दो । अटारियों और दीवारोंपर नाना प्रकारके चित्र बनवाओ । अयोध्याके समस्त देवाल्योंको चूनेसे पुतवाकर उनमें नाना प्रकारकी चित्रकारियाँ करवाओ और तरह-तरहके पूजनका प्रबन्ध कर दो ॥ ८० ॥ ८१ ॥ पारों ओर

वेद्यः कार्या रुक्ममरुयो बन्धनीयाश्च मंहपाः । भृशरणाश्च दक्षपथशिविकाश्च सहस्रशः ॥८३॥
 अन्यत्वापि यथायोग्यं यद्यजानासि लक्ष्मणः । तत्र कुशस्य वक्राक्तं मया तत्र रघूत्तम ॥८४॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा स लक्ष्मणः । तथा चकार तत्सर्वं यथा रामेण शिशितः ॥८५॥
 ततो मुहूर्ते भीरामः स्नानमभ्यंगपूवकम् । कृत्वा कुमारैर्वेदेणा बंधुस्त्रीभिश्च बंधुभिः ॥८६॥
 नानासंस्कारवस्त्राणि परिधायाय तैः सह । पुण्याहवाचनं चक्रे गुरुं पूज्य ऋषीश्वरान् ॥८७॥
 नांदीश्राद्धादिकं कृत्वा प्रतिष्ठां देवतस्य च । चकार मंगलैस्तूर्यनादः सीतासमन्वितः ॥८८॥
 ततो ययुः कोटिशस्ते पार्थिवाश्च मुनीश्वराः । ममस्त्रीपातरस्याश्च सावरोषाः सवाहनाः ॥८९॥
 तैः साज्योप्य। तदा व्यासा विरेजे नितरां तदा । ततो मुहूर्तदिवसे वसिष्ठो ब्राह्मणयुतः ॥९०॥
 रामस्याथ कुशस्याथ मध्ये धृत्वा वरं वटम् । उवाच मंगलान्येव सुस्वरैर्मधुराश्रितैः ॥९१॥

प्यात्वा श्रीगणनाथक त्रिधिसुतां श्रद्धं विधि माधवं

लक्ष्मीं शैलसुतां विधेस्तु दयितामिदं सुरांस्तान् ब्रह्मान् ।

पुण्यान्स्वावरनिम्नमाश्च सुमुनीन् स्त्रीयां कुलस्यांबिकां

तातं मानरमादरेण वटवे भूपान्सदा मंगलम् ॥९२॥

तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव ।

विद्याबलं देवबलं तदेव सीतापतेर्यत्स्मरणं विधेयम् ॥९३॥

इति नानामंगलवायैस्तूर्यधोषैर्मनोहरैः । अंकारधोषैः स गुरुर्मुमोचांतःपटं तदा ॥९४॥
 ततस्तं राधवस्पाङ्गे निवेश्य हवनादिकम् । विधिं कृत्वाऽथ कौपीनं दण्डं चाथ कमण्डलुम् ॥९५॥
 बद्ध्वादी रुक्मजां मौजो बबन्धैणाजिनं तदा । ततः कुशाथ स गुरुर्गायत्रीमुपदिष्टवान् ॥९६॥
 ब्रह्मचर्यव्रतादीनि स कुशापोपदिष्टवान् । कुत्वोक्तविधिना शीघ्रं कुर्यादाचमनं तथा ॥९७॥

रामबाबो और जगह-जगहपर ध्वजा आरोपित करो । तुर्यर्णकी वेदियां बनवायी जायें ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ इनके सिवाय भी जो-जो बातें तुम्हें मालूम हो और मेने न बतलायी हों, उन्हें भी छीक कर देना ॥ ८४ ॥ इस रामकी बात सुनी तो 'जो आज्ञा' ऐसा कहकर लक्ष्मण चले गये और रामने जैसा बतलाया था, वह सब प्रबन्ध कर दिया ॥ ८५ ॥ जिस दिन मुहूर्त था, उस रोज उबटन लगाकर उन कुमारों सीता और भाइयोंके साथ रामने स्नान किया । नाना प्रकारके वस्त्र-अलंकारादि पहने । वसिष्ठ निमन्त्रणमें आये हुए ऋषियोंका पूजन करके पुण्याहवाचन, नांदीश्राद्ध, देवताओंकी स्थापना आदि कार्य तुम्हरी और नगाड़ेके मंगलमय निनादके साथ राम सीताने सम्पादित किये ॥ ८६-८८ ॥ इसके बाद सातों स्त्रीपोंके करोड़ों राजे तथा ऋषि अपने-अपने परिचार एवं वाहनोके वहाँ आ पहुँचे । उन लोगोंसे सारी ज्योष्या भरकर बड़ी सुन्दर मानूम पहने लगे । यज्ञोपवीत-मुहूर्तके अवसरपर बहुतसे ब्राह्मणोंके साथ वसिष्ठजी राम और कुशके मध्यमें एक सुन्दर कपड़ेका पर्दा बाँधकर मोडे स्पष्ट स्वरमें मङ्गलपाठ करने लगे ॥ ८९-९१ ॥ उन मङ्गलमय श्लोकोंका अर्थ प्रकार है-गणेश, सरस्वती, शिव, ब्रह्मा, विष्णु, लक्ष्मी, पार्वती, ब्रह्माणी, इन्द्र, समस्त देवता, सम्पूर्ण ग्रह, पवित्र पर्वत नदियाँ, अश्वि-अश्वि ऋषि, अपनी कुलदेवी तथा माता-पिता इन सबको प्रणाम करके आपलोग प्रार्थना करें कि जिस वन्धेका यज्ञोपवीत संस्कार होनेवाला है, उसका कल्याण हो ॥ ९२ ॥ वही लग्न लग्न है, वही दिन दिन है, वही विद्याबल तथा देवबल है, जिसमें सीतापति रामचन्द्रका स्मरण किया जाय ॥ ९३ ॥ इस तरह विविध प्रकारके मङ्गलमय मन्त्रोंका पाठ करके गुरु वसिष्ठने अंकार शब्दके साथ पर्दा खोल दिया । तदनन्तर वसिष्ठने लव-कुशको रामकी गोदमें बिठाकर हवनादि विधियोंको सम्पन्न किया । इसके अनन्तर कुशको सुवर्णके तारोसे घनी करघनी पहनायी, मृगचर्म बाँधा और कौपीन पहनायी । फिर दण्ड-कमण्डलु देकर वसिष्ठजीने कुशको गायत्री-मंत्रका उपदेश दिया ॥ ९४-९६ ॥ फिर ब्रह्मचर्यव्रतके नियम आदि बतलाते हुए कहने लगे कि शास्त्रोंमें जो नियम बतलाये

दन्तान् जिह्वां विष्ठोष्पाथ कृत्वा मलविशोधनम् । स्नात्वाऽम्बुदैवतैर्मन्त्रैः प्राणानायम्य यत्नतः ॥१८॥
 उपस्थानं रवेः कृत्वा संध्योरुभयोरपि । अग्निकार्यं ततः कृत्वा नाक्षगानभिवादयेत् ॥१९॥
 मुखममुकगोत्रोऽहमभिवादय इत्यपि । पारयन्मेखलां दण्डोपवीताजिनमेव च ॥२०॥
 अनिघेषु चरेद्भैक्ष्यं माक्षणेष्वात्मवृत्तये । वाग्यतो गुर्वनुज्ञातो भुञ्जीताभमकुन्तयन् ॥२०१॥
 एकान्नं च समश्नीयाच्छ्रद्धेऽश्नीयात्तथाऽऽपदि । द्विवारं नैव भुञ्जीत दिवा कापि द्विभोजनम् ॥२०२॥
 सायंप्रातर्द्विभोजोऽश्नीयादग्निहोत्रविधानवित् । मधु मांस प्राणिहिंसा मास्करालोकनं अले ॥२०३॥
 स्त्रियं पयुं पिनोच्छिद्ये पवित्रादं विवर्जयेत् । यथेष्टचेष्टो न भवेद्गुरोर्नयनगोचरे ॥२०४॥
 न नाम परिगृह्णीयात्परोक्षेऽप्यविशेषणम् । गुरुनिंदा भवेद्यत्र पारवादस्तु यत्र च ॥२०५॥

श्रुती पिधाय स्थातव्यं यातव्यं ततोऽन्यतः ।

न मात्रा न पितुः स्वस्मा न स्वर्संकान्तशीलता ॥२०६॥

बलनर्तीन्द्रियाण्यथ मोहयन्त्यतिकोविदान् । एवमादान्यनेकानि ब्रह्मचारिव्रतानि हि ॥२०७॥
 तस्मै गुरुश्रोत्रदिश्य ददौ दानान्यनेकशः । भोजयामास तं मात्रा सह नानोत्सवैस्तदा ॥२०८॥
 कारयित्वाऽथ पालाशपूजनं विधिपूर्वकम् । तेनापि कुम्भवालेन देवकस्य विसर्जनम् ॥२०९॥
 चकार राघवेणैव सीतया स गुरुस्तदा । ततो रामो नृपतिभिर्जनकेनापि पूजितः ॥२१०॥
 चकार धनवस्त्राद्यैस्तुष्टान् विभान् नृपादिकान् । आचांछालांस्तदा रामस्तोषयामास सादरम् ॥२११॥
 एवं नानासमुत्साहैर्मासमेकं निनाय सः । रामो विसर्जयामास ततस्तन्पार्थिवादिकान् ॥२१२॥
 एवं कालांतराद्रामो व्रतबंधं लवस्य च । चकार पूर्ववदपार्त्समाहूय नृपादिकान् ॥२१३॥

गये हैं, उनके अनुसार शीघ्रसे निवृत्त होकर दांत तथा जीभ साफ कर लेनेके बाद वरुण देवता से सम्बन्ध रखनेवाले मन्त्रोंका पाठ करता हुआ स्नान करे। फिर आचमन-प्राणायामादि करके दोनों शामको सूर्यका उपस्थान करना चाहिये। इसके पश्चात् हवन करके ब्राह्मणोंको प्रणाम करे ॥ १८-१९ ॥ प्रणाम करते समय यह भी कहता जाय कि अमुक गोत्रका अमुक व्यक्ति मैं आपको प्रणाम करता हूँ। उन्ध आँतके लोगों अथवा अर्हताक हो सके, सुपात्र ब्राह्मणोंके यहाँसे भिक्षा माँगकर अपनी जीविका चलाये। किसीकी निन्दा करे तथा मोनव्रतका पालन करे और जब गुरुकी अनुमति मिल जाय, तभी भोजन करे ॥ १०० ॥ १०१ ॥ सदा केवल एक भक्षक भोजन करे। आद्यादि तथा किसी आपत्तिमय कार्यके आ जानेपर भी दिनमें दो बार भोजन न करे। ब्राह्मणको चाहिये कि केवल सुबह-शाम भोजन करे। मधु तथा मांसका आहार, प्राणिहिंसा, जलमें सूर्यके प्रतिबिम्बका दर्शन, स्त्रीप्रसंग, वासी और जूठा भोजन दूसरोंकी निन्दा इन कामोंको छोड़ दे। गुरुके सामने अपने इच्छानुसार जो चाहें, सो न कर डाले ॥ १०२-१०४ ॥ परोक्षमें भी बिना विशेषण लगाये गुरुका नाम न ले। जहाँपर गुरुकी निन्दा हो रही हो अथवा उनको ठठोली की जाती हो, वहाँ काम डीककर बैठे या बहसि जाय। अपनी माता, बुआ अथवा बहिनके भी एकान्तमें न ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ क्योंकि इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल होती हैं। वे बड़े-बड़े पण्डितोंको भी बातकी बातमें विचलित कर देती हैं। इस प्रकार गुरुने बहुतसे ब्रह्मचर्य व्रतसम्बन्धी नियम बतलाये ॥ १०७ ॥ इसके अनन्तर अनेक तरहके दिये गये। कुम्भको माताके साथ भोजन कराया गया ॥ १०८ ॥ विधिपूर्वक पलाशका पूजन कराया। फिर कुम्भ, सीता तथा रामके द्वारा आहूत देवताओंका पूजन कराया ॥ १०९ ॥ इसके बहुतसे राजाओं तथा जनकजीने रामका पूजन किया। रामने बहुतसे धन-वस्त्रों द्वारा आये राजाओं को करके अयोध्यानिवासों चाण्डालसे लेकर ऊँचसे ऊँच कुल तकके लोगोंको सादर प्रसन्न किया ॥ ११० ॥ १११ ॥ इस तरह माना प्रकारके उत्सवोंके साथ एक महोत्सव समझ बित्ताकर मेहुमानीमें आये हुए राजाओं और श्रमियोंको बिदा किया ॥ ११२ ॥ कुछ बीतनेके बाद उसी तरह उत्सवोंके

ततस्तौ बालकौ रम्यौ वेदाध्ययनमुत्तमम् । चक्रतुर्गुरुमाभिध्ये विधिवद्भुद्विसत्तमौ ॥११४॥
 एवं तेषां तु बालानां सर्वेषां रघुनन्दनः । अतर्धविधानानि यथाकाले महोत्सवैः ॥११५॥
 अकार गुरुणा विप्रैः समाहूय नृपादिकान् । विशेषेर्निजपुत्राभ्यां अकार स महोत्सवैः ॥११६॥
 अकरोदधिकं किञ्चिन्न न्यूनमकरोद्विभुः । ततस्ते बालकाः सर्वे नक्षत्रपर्यवृते स्थिताः ॥११७॥
 अकस्ते गुरुमान्निध्ये वेदाध्ययनमुत्तमम् । अथ रामोऽपि वेदेष्टा बालकैः परिवारितः ॥११८॥
 विरेजे स्कन्दगणपादिभिर्देव्या यथा शिवः । अथ ते बालकाः सर्वे कृत्वाऽध्ययनमुत्तमम् ॥११९॥
 वेदादीनां गुरुमुखास्तन्वा ज्ञानं गुरोस्त्वयः । जम्बुद्वीपानि वै कर्तुं सेनया गुरुमंत्रिभिः ॥१२०॥
 पृथिव्यां मरते सखे यानि तीर्थानि तानि तं । कृत्वा सपापयुः पञ्च मार्गैः स्वां नगरीं जनैः ॥१२१॥

बालान्समागतान् भुत्वा क्षोभयित्वा नित्रां पुरीम् ।

प्रयुज्जगाम सौमित्रिः पुरस्कृत्याथ वारणम् ॥१२२॥

ते वृष्ट्वा लक्ष्मणं नेमुस्तेनालिगिता अपि । नानोत्सवपर्यवृत्ता अयोध्याया गृहं प्रति ॥१२३॥
 मार्गे मार्गे पुरस्त्राभिः सौधस्थाभिस्तु वपिताः । वृष्टिभिः कुसुमादीनां दीपैर्नीराजिता अपि ॥१२४॥
 ततस्ते बालकाः सर्वे समाया रघुनन्दनम् । नेमुस्तेनालिगिताश्च ययुः सीतागृहं ततः ॥१२५॥
 एतस्मिन्नन्तरे सीतोर्मिला सा माण्डवी यथा । भुतकोनिश्च वेगेन चक्रुर्नाराजनं पृथक् ॥१२६॥
 दृष्योदनमवर्द्धोपैः पकान्नेर्स्तलवाचितैः । सर्पपैलवर्णैर्मार्गैस्तोयकुम्भैश्च सादरम् ॥१२७॥

ततस्ते बालकाः सर्वे नेमुः सीतां पृथक् पृथक् ।

ततो नेमुः स्वमातुश्च पूर्वं नत्वा पितामहीः ॥१२८॥

ततस्ते बालकाः सर्वे ददुर्दानान्यनेकशः ।

प्राक्षणां मोक्षयामासुः कोटिस्तस्ते पृथक् पृथक् ॥१२९॥

■ सब लोगोंको बुलाकर लवका यज्ञोपवीतसंस्कार किया ॥ ११३ ॥ फिर वे दोनों बालक गुरु अश्विष्ठके पास विधिपूर्वक वेदाध्ययन करने लगे । इसी रीतिसे रामचन्द्रने समय-समयपर लक्ष्मण-भरत आदिके बच्चों-का भी अतर्ध-संस्कार कराया और अपने लड़कोंसे बड़कर उत्सव-यानादि किये । उसमें किसी प्रकारकी ग्यूनता नहीं होने दी । ■ बच्चे भी संकृत होकर विधिपूर्वक ब्रह्मचर्यके नियमोंका पालन करते हुए गुरुके पास वेदाध्ययन करने लगे । यह सब हो जानेके बाद सीता तथा पुत्रोंके ■ वंडे हुए रामचन्द्रजी पार्वती, गणेश तथा स्वामिकांतिकेयके साथ बंडे शिवजीके सदन सुन्दर लगते थे । इसके बाद जब उन बालकोंने अच्छी तरह विद्याध्ययन कर लिया तो एक विशाल सेना, गुरु तथा कितने ही मन्त्रियोंको साथ लेकर तीर्थयात्रा करनेको निकले ॥ ११४-१२० ॥ पृथ्वीके भरतखंडमें कितने तीर्थ हैं, उन्हें करके पाँच महीनेमें वे सब बालक अयोध्या वापस ■ गये ॥ १२१ ॥ लक्ष्मणने जब सुना कि लड़के तीर्थयात्रासे अयोध्या लौट आये हैं तो बहुतसे गाँजे-बाँजे तथा हाथी-घोड़े साथ लेकर भगतानी करने गये ॥ १२२ ॥ ■ उन्होंने लक्ष्मणको देखा तो मस्तक झुका-झुकाकर प्रणाम किया और लक्ष्मणने उनको अपनी छातीसे लगा-लगाकर आलिंगन किया । फिर अनेक प्रकारके उत्सवोंके ■ उनको महलोंमें ले चले । रास्तेमें अयोध्याकी नारियाँ अटारियोंपर चढ़-चढ़कर ऊपर फूलोंकी वर्षा करतीं और आरती उतारती थीं । इसके बाद बालकोंने राजदरबारमें जाकर रामको प्रणाम किया और वहाँसे सीताके महलोंको गये । वहाँ पहुँचनेपर सीता, उर्मिला, माण्डवी तथा भुतकीतिने अलग-अलग ■ बालकोंकी आरती उतारी । पकवान, दही, घास, तेलके बने पकवान, सरसों, भजन, उड़द तथा पानी भरे कलश आदि डरकाकर बलि दी गयी । इसके बाद उन सबोंने कौसल्या आदि तथा पिता और माइयोंको प्रणाम करके सीता आदि माताओंको प्रणाम किया ॥ १२३-१२८ ॥ इसके बाद उन बालकोंने भक्ति-भक्तिके दान दिये और अलग-अलग करोड़ों ब्राह्मणोंको भोजन कराया ।

एवं नानोत्सवास्तत्र बभूवुः रामसन्निधि । अथ ते बालकाः सर्वे स्यदनादिषु संस्थिताः ॥१३०॥
 दिव्यवस्त्राणि चित्राणि परिधाय समन्ततः । अयोध्याराजमार्गेषु दृष्टेषु च चतुष्पथे ॥१३१॥
 आरामोपवनारण्यशटिकासु नदीतटे । गमनागमने चक्रुः सेनया मंत्रिबालकैः ॥१३२॥
 एवं साकेतनगरे बालकैः सीतया सुस्रम् । रेमे स बंधुभिर्युक्तश्चिरं राजा रघुदहः ॥१३३॥
 एवं शिष्य मया प्रोक्तं जन्मकाण्डमिदं तव । कुशादीनां च जन्मानि वर्णितान्यत्र विस्तरात् ॥१३४॥
 रम्यं पवित्रमानंददायकं च मनोहरम् । पुत्रपौत्रप्रदं जन्मकाण्डमेतत्सुखावहम् ॥१३५॥

जन्मकाण्डमिदं पुण्यं ये शृण्वन्ति नरोत्तमाः ।

तेषां पुत्रैश्च पौत्रैश्च वियोगो न भविष्यति ॥१३६॥

जन्मकाण्डमिदं ये भक्त्या शृण्वन्ति मानवाः ।

तेषां स्त्रीणां वियोगो हि ■ कदाप्यत्र जायते ॥१३७॥

जन्मकाण्डमिदं पुण्यं याः शृण्वन्त्यत्र वै स्त्रियः । स्वभर्तृभिरविशेषं मा न गच्छन्ति यथा रमा ॥१३८॥

ग्रामं वैद्यान्तरं तीर्थं ये गताश्च चिरं नराः । तेषामगमनार्थं हि जन्मकाण्डं पठेदिदम् ॥१३९॥

तेषां भावीनि कार्याणि लब्धुं त्वरयते मनः ।

तैर्नरैः पठनीयं वै जन्मकाण्डं दिने दिने ॥१४०॥

पूर्वं दिने चैकारं द्विवारं चापरे दिने ।

एवं नवदिनं वृद्धिस्तथैकेन क्षयोऽपि हि ॥१४१॥

कार्यो नरैः स्वस्थचित्तस्तेषां कार्यं भविष्यति ।

दर्शमेकं पठेद्वचनपुत्रोऽपि लभेन्मृतम् ॥१४२॥

पुत्रार्थं प्राप्नुयान्पुत्रं धनार्थं धनमाप्नुयात् ।

इष्टान् कामांश्च कामार्थं जन्मकाण्डं भवाम्लभेत् ॥१४३॥

इस तरह रामचन्द्रजीके भवनमें अनेक प्रकारके उत्सव हुए । वे सब रथ, हाथी, घोड़े आदि सवारियोंपर सवार हो-होकर बगीचे, उपवन, बन तथा नदीतट आदिपर अयोध्याके चौराहों तथा बाजारमें अनेक प्रकारके वस्त्र-आभूषण पहनकर मन्त्रियोंके लड़कोंके साथ आते-जाते लगे ॥ १३६-१३९ ॥ इस तरह उस साकेतपुरीमें उन बालकों तथा सीताके साथ आनन्दपूर्वक रामचन्द्रजी रहने लगे । हे शिष्य ! यह जन्मकाण्ड मैंने तुम्हें सुनाया । जिसमें कुश आदि बालकोंकी विस्तृत जीवनी वर्णित है ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ यह जन्मकाण्ड परम रम्य, आनन्ददायक, मनोहर, पुत्र-सौभाग्यकी देनेवाला और पुत्र-पौत्रादिका दाता ■ । जो लोग जन्मकाण्डको सुनते हैं, उनको कभी अपने पुत्रपौत्रादिके वियोगका दुःख नहीं उठाना पड़ता । जो लोग भक्तिपूर्वक इस जन्मकाण्डका ध्यान करते हैं, उनको अपनी स्त्रीका ■ वियोग कभी नहीं होता । यदि स्त्रियाँ इसे सुनती हैं तो उन्हें अपने स्वामीसे कभी विपुक्त नहीं होना पड़ता । बलिक लड़कोंके समान वे जन्मभर आनन्दसे अपना जीवन बिताती हैं ॥ १३५ ॥ १३६ ॥ यदि किसीके परिवारका कोई मनुष्य किसी तीर्थ या परदेशको चला गया हो तो उसे लौटानेके लिए इस जन्मकाण्डका पाठ करना चाहिए । जिसको अपना कोई भावी कार्य सिद्ध करना हो, उसको चाहिए कि पहले दिन एक बार, दूसरे दिन दो बार, तीसरे दिन तीन बार, इस क्रमसे बढ़ाते-बढ़ाते नवें दिन नौ बार जन्मकाण्डका ■ करे । नवें दिनसे एक-एक पाठ घटाता हुआ फिर नवें दिन केवल एक पाठ करे । इस तरह यदि स्वस्थचित्तसे इसका पाठ किया जाय तो प्रत्येक कार्यकी सिद्धि हो सकती है । यदि इस विधिसे एक वर्ष पर्यन्त जन्मकाण्डका पाठ किया जाय तो पुत्रहीन व्यक्ति भी पुत्र प्राप्त कर सकता है ॥ १३७-१४२ ॥ कहनेका

आनन्दरामायणमध्यसंस्पर्शं श्रीजन्मकाण्डं तनयप्रदं च ।

पारायणं संश्रवणं तथा वा करोति यो ना स लभेत्सुपुत्रम् ॥१४४॥

इति श्रीमच्छतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये जन्मकाण्डे

कुशलवादीनां जन्मकथनप्रसवविस्तारो नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

जन्मकाण्डे सर्ग आनन्दरामायणे नवम आख्यः । अनुवृत्तराष्टसप्तश्लोका विष्णुदास रामदासभाष्यामुपदिष्टाः ॥ १ ॥

उपवनदर्शनम् ॥ १ ॥ उपवनक्रीडा ॥ २ ॥ सीतात्यागः ॥ ३ ॥ कुशलवोत्पत्तिः ॥ ४ ॥ रामरक्षा ॥ ५ ॥

कमलहृरणम् ॥ ६ ॥ पुत्रक्यां संग्रामः ॥ ७ ॥ सीताग्रहणम् ॥ ८ ॥ बालानामुपनयनम् ॥ ९ ॥

यत्तत्त्वम् यद् किं जन्मकाण्डका पाठ करनेसे पृथार्थी पुत्र, धनार्थी धन तथा किसी भी प्रकारकी कामनावालेकी कामना पूर्ण हो सकती है । इस आनन्दरामायणके मध्यमें स्थित जन्मकाण्ड सन्तानदायक है । जो मनुष्य इसका पारायण करता या सुनता है, उसे सुपुत्रकी प्राप्ति होती है ॥ १४३ ॥ १४४ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते जन्मकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

इस जन्मकाण्डमें कुल नौ सर्ग तथा आठ सौ चार श्लोकों द्वारा श्रीरामवासने विष्णुदासको उपदेश दिया है । ॥ १ ॥ उन नवों सर्गोंमें ये कथार्ये वर्णित हैं—(१) उपवनदर्शन, (२) उपवनक्रीडा, (३) सीतात्याग, (४) कुशलवकी उत्पत्ति, (५) रामरक्षा, (६) लव द्वारा कमलहृरण, (७) पुत्रोंके साथ रामका संग्राम, (८) सीताका पुनर्ग्रहण और (९) बालकोंका उपनयनसंस्कार ।

इति श्रीमदानन्दरामायणे जन्मकाण्डं समाप्तम् ।

श्रीरामचन्द्राय नमः

श्रीसीतापतये नमः

श्रीबाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गत—

आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

विवाहकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

(स्वयंवरके प्रसंगमें रामका राजा भूरिकीर्ति की पुरी को प्रस्थान)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः समामध्ये मन्त्रिभिः परिवेष्टितः । तर्था मिकामने रम्ये वरच्छत्रोपशोभितः ॥ १ ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र कश्चिद्भूतः समाययौ । नत्वा सभायां श्रीरामं स्वाभिपूज्य न्यवेदयत् ॥ २ ॥
पूर्वदेशाधिपतिना राज्ञा श्रीभूरिकीर्तिना । प्रेषितोऽस्मि महाराज द्रष्टुं स्वत्पादपंकजे ॥ ३ ॥
पत्रं पठित्वा श्रीराम कार्या मत्स्वाभिने कृपा । हस्त्युक्त्वा रामदूतस्य करे पत्रं समर्पयत् ॥ ४ ॥
रामदूतोऽपि सौमित्रैः पुस्तकैश्चमादरात् । स्थापयामास वेगेन गन्वा तर्था निजस्थलीम् ॥ ५ ॥
ततः स लक्ष्मणः पत्रं परबन्धनवेष्टितम् । समुत्ताड्य राघवाग्रं पथात् मञ्जुलम्बनः ॥ ६ ॥
हंसकृत्रिभृशपुष्पाद्यैरङ्कितं कुंकुमान्वितम् । दर्शनादेव मांगल्यमूचकं तोषकारकम् ॥ ७ ॥
उवाच पत्रलिखितरसरत्नलक्ष्मणः शनैः । स्थितः श्रीरामपुरतो वरसिंहासनातिके ॥ ८ ॥

श्रीमान् श्रीराघवेन्द्रो जयतु दशशिरस्तेजोऽर्धं जगत्प्रा

कीसन्ध्यायां नृपेन्द्रो दक्षस्यसनवर्धेति नाम्नाऽवतीर्णः ।

तस्याहं भूरिकीर्तिः पदजलकहयोर्मन्त्रमाप्रातुकामः

कृत्वा नैज शिरस्तु भ्रमरवदनिशं प्रार्थनां प्रार्थयामि ॥ ९ ॥

श्रीरामदास बोले—एक दिन रामचन्द्र सभामें अपने राजसिंहासनपर बैठे थे । उनके ऊपर सुन्दर छत्र लगा हुआ था और उनके चारों ओर कितने ही मंत्री बैठे हुए थे । इसी समय एक दूत आया और वह अपने दभका सन्देश सुनाने लगा । उसने कहा—पूर्व देशके अधिपति महाराज भूरिकीर्तिने आपके चरणोंके दर्शन करनेके लिए मुझे भेजा है । आप मेरे स्वामीपर कृपा करके यह पत्र पढ़ लीजिए । इतना कहकर उसने वह पत्र रामके दूतको दे दिया । उस दूतने लक्ष्मणके हाथमें दिया और प्रणाम करके मुखाप धँड गया ॥ १-५ ॥ लक्ष्मणने सुन्दर कपड़ेमें लपेटे हुए उस पत्रको लोभा और मञ्जुल स्वरूपमें बाँधकर रामको सुनाने लगे । पत्रपर सुन्दर फूल बने हुए थे और कुमकुमके छोटें पत्रें थे । जिसे देवनागरीमें बहुत मांगल्यमूचक तथा आनन्ददायक प्रसीत होता था ॥ ६ ॥ ७ ॥ पत्रमें जो लिखा था, उसे रामके पास जाकर धीरे-धीरे लक्ष्मण कुराने लगे—॥ ८ ॥ रघुवंशमें उत्पन्न श्रीरामचन्द्रकीकी जय हो, ओ राम रावणको मारनेके लिए दत्तारथके पुत्र

मम पीत्र्यावुमे राम चंपिका सुमतीति च । तयोः स्वयंवराय छायाताश्च बहवो नृपाः ॥१०॥
 बंधुपुत्रैर्वंधुमिस्त्वं स्वसुताभ्यां मंत्रिमिः । सुहजनेस्तथा पौरैः सावरोधः स्वसेनया ॥११॥
 आगच्छस्व पुरं भयि कृत्वा महत्कृपां । विफला प्रार्थना मे त्वं मा कुरुष्व त्विमां प्रभो ॥१२॥
 इति पत्रार्यमाकर्ण्य स्वस्थचित्तो रघूतमः । स्वयंवरं ततो गन्तुं गुरुणा निश्चयं व्यधात् ॥१३॥
 ततोऽमकीर्त्त सौमित्रिमथ सेनां प्रचोदय । शोऽहं गच्छामि पुत्राभ्यां त्वया मंत्रिजनैः सह ॥१४॥
 भरतेनापि युष्माकं पुत्रैः शत्रुघ्नसंयुतः । स्वयंवरं सावरोधः पौरैर्जीनपदैः सह ॥१५॥
 विजयो नगरी राज्यं पालितुं स्थापितो मया । अद्य वै वस्त्रगेहानि वहिर्नैयानि लक्ष्मण ॥१६॥
 पंधानं शोधयस्वद्य नानाद्रुतास्त्वरान्विताः । गच्छन्तु सकला नार्यः पुष्पकेण विहायसा ॥१७॥
 तथेति लक्ष्मणश्चोक्त्वा चकार स यशोदितम् । राघवेण समामध्ये प्रवद्वकरसंपुटः ॥१८॥
 ततो द्वितीयदियसे प्रभाते रघुनन्दनः । स्नात्वा निर्यत्रिंशि कृत्वा जिनायाग्नीन् स पुष्पके ॥१९॥
 स्थापयामास कुण्डेषु भुक्त्वा सह सुहजनेः । ततः सीतां समाहूय स्वरयामास राघवः ॥२०॥
 ततः स्त्रियस्तदा सर्वाः सीताया स्वमभूषिताः । वानमारुरुहुः शीघ्रं दिव्यवस्त्रादिमण्डिताः ॥२१॥
 ततो रामो गजारूढो वरच्छत्रोपशोभितः । यथावग्रे चामराद्यैर्वीजितश्च मुहुर्मुहुः ॥२२॥
 रामाग्रे वारजारूढो ययौ ग्रीष्मं गुरुस्तदा । राघवस्य पृष्ठभागे कस्त्रिथो लक्ष्मणो ययौ ॥२३॥
 ततः कुशावास्ते शष्टौ बाला अम्बुर्गजस्थिताः । ततो मरतशक्रुधनौ जम्भतुर्गजसंस्थितौ ॥२४॥
 ततः सर्वे मंत्रिणश्च पौरा जानपदादयः । नानाबाहनसंस्थास्ते ययुः सर्वे त्वरान्विताः ॥२५॥
 धनुर्दन्ते शुक्लवर्णे वारणैर्गवतोद्भवे । संस्थितो राघवो रेजे मुक्ताजालविराजिते ॥२६॥
 एवं रामः क्षुनैर्मणिं वंदिमागधसंस्तुतः । मृण्वन् वाद्यनिनादाश्च ययौ पूर्वदिशं शनैः ॥२७॥

होकर कोसल्याकी कोखसे जन्मे हैं । ■ धूरिकीति भयंकरकी नाई उनके चरणकमलोंको सुंघनेकी कामनासे रात-दिन प्रार्थना करता रहता हूँ ॥ ६ ॥ ■ राम । मेरी चम्पिका ■ सुमति नामकी दो पीत्रियाँ हैं । उनके स्वयंवरमें बहुतसे राजे आये हुए हैं । अतएव आपसे ■ प्रार्थना है कि अपने भ्राताओं, पुत्रों, भ्राताओंके पुत्रों, भयियों, मित्रों, घरकी नारियों, पुरवासियों तथा सेनाके ■ मेरे यहाँ पधारें । हे प्रभो ! मेरी इस प्रार्थनाको विफल मत कीजिएगा ॥ १०-१२ ॥ इस प्रकार उस पत्रको बातोंको दृढस्थचित्त होकर रामचन्द्रजी-ने सुना और स्वयंवरमें आनेके लिए गुरु वसिष्ठसे निश्चय किया । इसके बाद रामने लक्ष्मणसे कहा कि आज सेना भेज दो । ■ हम, तुम, लव, कुश, मंत्रियों, भरत तथा तुम लोगोंके पुत्रों, स्त्रियों तथा पुरवासियोंको साथ लेकर स्वयंवरमें चलेंगे । विजयको अयोध्या नगरी तथा देशकी रक्षाके लिए नियुक्त कर दिया जाय । हे लक्ष्मण ! तुम आज अभी तम्बू-कनाठ आदि भेज दो ॥ १३-१६ ॥ ■ कुछ दूतोंको राहता साफ करनेके लिए आगे भेज दो । घरकी सारी स्त्रियोंको पुष्पक विमान द्वारा पहले ही भेज दो ॥ १७ ॥ लक्ष्मणने रामकी सब बातें मान लीं और जैसा उन्होंने ■ या, सो सब ठीक कर दिया ॥ १८ ॥ दूसरे दिन रामने पहले उठकर ■ और निर्यक्रम करनेके अनन्तर सब भ्राताओंके ■ बैठकर भोजन किया । अग्निहोत्रकी अग्नि मंगवाकर पुष्पक विमानपर रखी ॥ १९ ॥ इसके बाद सीताको बुलाया और बल्ही तैयार होनेके लिये कहा ॥ २० ॥ सीता आदि नारियोंने सुनहुते वस्त्र तथा आभूषण पहने और पुष्पक विमान-पर ना बैठीं ॥ २१ ॥ इसके ■ राम एक सुन्दर हाथीपर बैठकर बसे । उस ■ उनके ऊपर बैठ ■ लगा हुआ था और संधक उनपर चेंबर डूला रहे थे ॥ २२ ॥ समसे आगे गुद वसिष्ठका हाथी था, उनके पीछे राम और रामके पीछे लक्ष्मणका हाथी था ॥ २३ ॥ उनके पीछे कुश आदि आठों बंधों और भरत-शत्रुघ्नका हाथी थल रहा ॥ २४ ॥ ■ सबके पीछे मन्त्री तथा पुरवासी अनेक प्रकारकी सवारियोंपर सवार होकर सीधे-सीधे ■ जा रहे थे ॥ २५ ॥ रामचन्द्रजी ऐरावतके कुलमें उत्पन्न चार वातवासे तथा मोतियोंके मुण्डोंके सुशोभित हाथीपर बैठे हुए बड़े सुन्दर लग रहे थे ॥ २६ ॥ इस तरह भन्दीषद-भागव आदिकोंके हाथ

लवार्पितेक्षणां बालां सुनन्दा वाक्यमब्रवीत् । पश्यैनं बालिके बालं लवं श्रीराघवान्मजम् ॥३२॥
 सीकामं स्वल्पवयसं सीतालालिनमूनमम् । वान्मीकिकृपया लब्धविद्यं रम्यं कुशानुजम् ॥३३॥
 वृणोष्वैनं सुखेनैव कण्ठेऽस्य मालिकां कुरु । कुशांके चपिकेयं ते स्वप्ना यद्वत्स्थिताऽद्य हि ॥३४॥
 तथा त्वमपि भो मुग्धे लवांके संस्थिता भव । इति तस्या वचः श्रुत्वा सुनन्दायाः स्मितानना ॥३५॥
 लवस्य कण्ठे हर्षेण लज्जयाऽवनतानना । सुमतिर्निजबाहुभ्यामर्पयामास मालिकाम् ॥३६॥
 तदा निनेदुर्वाधानि जगुस्ते गायकास्तदा । ननुतुर्वारिणार्यश्च तुष्टुर्बन्दिमागधाः ॥३७॥
 भूरिकीर्तिर्नृपस्तुष्टो लवांके सुमतिं तदा । शीघ्रं निवेशयामास परिपूर्णमनोरथः ॥३८॥
 तोषमाप रघुश्रेष्ठः सीतां प्राप्तादसंस्थिता । जालरंघ्रः सयत्नाकं लवं दृष्ट्वा तुतोष सा ॥३९॥
 ततः सर्वाभूषान् पूज्य भूरिकीर्तिर्नृपोत्तमः । प्रार्थयामास विनयवचनैस्तन्पुरतः स्थितः ॥४०॥
 विवाहकीर्तुकं दृष्ट्वा भवन्निर्मम्यतामिति । तथेति ते नृपाः प्रोचुर्यपुर्वामस्थलानि हि ॥४१॥
 रामाग्रं संगरं कर्तुमसमर्था गतश्रियः । म्लानानना गतोन्माहाः कामबाणप्रपीडिताः ॥४२॥
 रामोऽपि बन्धुभिर्वालैर्ययौ वासस्थल मुदा । अधोपरं दिने गान भूरिकीर्तिः समाययौ ॥४३॥
 पुरोधसोपविष्टः सन्नत्वा रामं वचोऽब्रवीत् । द्रष्टव्यो लग्नदिवसः सुमुहूर्तः सुखावहः ॥४४॥
 मामंगीकुरु रामाय त्वत्पादाश्रयकामुकम् । उमथोन्मथ मण्डपयोः कायोऽप्यज्ञापय प्रभो ॥४५॥
 तथेति राघवश्चोक्त्वा वसिष्ठं चोदयत्तदा । सोऽपि रामाश्रया जपोनिःशास्त्रज्ञः परिवेष्टितः ॥४६॥
 मुहूर्तं कथयामास पञ्चमंऽहनि राघवम् । ततस्तुष्टो भूरिकीर्तिगणेशं लग्नपत्रिकाम् ॥४७॥

सुनन्दाको आगे चलनेका संकेत किया ॥ ३० ॥ इसी प्रकार सुबाहु, पृष्कर, तल, चित्रकेतु तथा अंगदको छोड़ती हुई वह लवके पास पहुँची ॥ ३१ ॥ सुमति लवकी ओर देखने लगा तब सुनन्दा बोली—हे बाले ! इस बालकको देख, यह रामका पुत्र है । यह अपना विवाह करना चाहता है । इसकी थोड़ी उमर है । सीताको द्वारा इसका पालन-पोषण हुआ है । वान्मीकिको कृपासे इसे उत्तम विद्या प्राप्त हुई है और यह कुशका छोटा भाई है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ तू सानन्द इसे अपना पति बनाकर इसके गलेमें धरमाला डाल दे, जिस तरह तुम्हारी बहिन चम्पिका कुशकी गोदमें बैठी है, उसी तरह ओं तुझे ! श्री लवकी गोदमें बैठ जा । इस प्रकार सुनन्दाकी बात सुनकर वह मुस्कराते और लज्जावश मस्तक झुकाकर उसने अपने हाथोंसे लवके गलेमें धरमाला डाल दी ॥ ३४-३६ ॥ उस समय अनेक प्रकारके वाजे बजे, गायकोंने गाने गाये, वेश्यायें नाचने लगीं और बन्दीजन स्तुति करने लगे ॥ ३७ ॥ महाराज भूरिकीर्तिने प्रसन्न होकर सुमतिको लवकी गोदमें बिठा दिया ॥ ३८ ॥ यह देखकर रामचन्द्रजी तथा अटारोपर बैठी सीता दोनों प्रसन्न हुए । जब सरोखोंमें सीताने लवकी गोदमें सुमतिको बैठा देखा तो उनकी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं रहा ॥ ३९ ॥ इसके अनन्तर राजा भूरिकीर्तिने वहाँ आये हुए सब राजाओंको पूजा करके विनयपूर्वक प्रार्थना की—॥ ४० ॥ आप लोग विवाहका भी उत्सव देखकर जाइएगा । राजाओंने भी उनकी बात स्वीकार कर ली और अपने-अपने डेरेपर चले गये ॥ ४१ ॥ वे सब राजे रामसे मुद्ध करनेमें असमर्थ थे । अतएव उनकी श्री नष्ट हो गयी थी, मुल्ल कूट्टला गया था, उत्साह भंग हो गया था और बेचारे कामके बाणोंसे पीड़ित हो रहे थे ॥ ४२ ॥ राम भी अपने भाइयों और बन्धुओंके साथ प्रसन्नतापूर्वक डेरेपर गये । इसके बाद दूसरे दिन राजा भूरिकीर्ति रामके पास पहुँचे ॥ ४३ ॥ पुरोहित उनके साथ था । वे रामके समक्ष बैठे और कहा कि कोई अच्छा लग्न-दिवस तथा सुखदायक मुहूर्त विचारिए । फिर कहा—हे राम ! अपने चरणोंके भक्त मुल्ल वासकी प्रार्थनाको मन्त्रीकाद करके दोनों मण्डपोंके लिए जो कार्य करने हों, उनके लिए आज्ञा दीजिए ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ “अच्छा” कहकर रामने वसिष्ठकी ओर संकेत किया । वसिष्ठने रामकी आज्ञासे ज्योतिषशास्त्रको जाननेवाले किशने ही पंडितोंके साथ विचार करके उसके पाँचवें दिन विवाहका शुभ मुहूर्त बतलाया । इसके अनन्तर प्रसन्न सबसे भूरिकीर्तिने गणेशजी, लग्नपत्रिका, गणकों, पण्डितों, वैदिक आदिकों तथा रामके साथवाले बन्धुवनों और

काचिन्शक्त्वा भोजनं तु काचिन्पाकस्य सत्क्रियाम् ।

काचिन्सकचरीदृष्ट्वा मुक्तकेशा ययौ जघातु ॥४६॥

पातेनालिगिता काचिन्निष्कास्य श्वपतेः कर्म । ययौ व्रगेन ललना चरमापादमस्तकम् ॥४७॥
 धालयन्ती एतेः पादावेक प्रसालय कामिनी । यावज्जगद् माऽप्यं तु तावच्छ्रुत्वा समागतम् ॥४८॥
 मीतया समचन्द्रं हि शीघ्रं दृष्ट्वा तदा । काचिद्भर्ता नृग्वमाना दूरं कृत्वा एतेर्मुखम् ॥४९॥
 दृष्ट्वा राघवं द्रष्टुं प्रासादे सस्तपल्लवा । काचिद्भिनिद्रिता भर्ता त्यक्त्वा निद्रां त्वराञ्जिता ॥५०॥
 विस्तीर्णकजला मन्दनेत्रा निद्राभराञ्जिता । नेत्राभ्यां कुंचितान् केशान् वात्स्यंती जवाग्रयौ ॥५१॥
 त्यक्त्वाऽभ्यंगं हि काचित्पा कुर्वन्तं करसन्निधिम् । ययौ व्रगेन प्रासादं श्रुत्वा राघवमागतम् ॥५२॥
 काचिद्भजे कचुकीं सा कुर्वकं चापरे भुजे । कर्तुकामा ययौ शीघ्रं तथैव प्रमदोत्तमा ॥५३॥
 काचिदेके पदे कृत्वा नूपुरादीनि मामिनी । अपरे कर्तुकामा मा तथैवाद्भुतमाययौ ॥५४॥
 कथयती शुभां वार्तां स्वपन्धुः पुरतः स्थिता । श्रुत्वा रामं समागन्तं दृष्ट्वा गजगामिनी ॥५५॥
 काचिन्निजपतिं पात्रे कुर्वन्ता परिवेषणम् । भूर्मा त्यक्त्वाऽभ्यंगं सा ययौ रामं निरीक्षितुम् ॥५६॥
 काचिस्सत्त्वा दिव्यवस्त्रा कुर्वती मा प्रदक्षिणाः । तुलसीं च महादेवं श्रुत्वा राम ययौ जघातु ॥५७॥
 काचिद्भज्जुषटं कूपे कृत्वा तोयार्थमुद्यता । त्यक्त्वा रज्जुधनं कूपे दृष्ट्वा चैदुनिमानता ॥५८॥
 काचित्स्वशालकं स्नन्य गङ्गा पययती वधूः । कुषपोर्वालकं धृत्वा तथैव सा ययौ जघातु ॥५९॥
 काचिन्सा परिधायाय वस्त्रं कच्छं करेण मा । कर्तुकामा ययौ वेतात्तथैवाद्भुतमस्तकम् ॥६०॥
 एवं कर्माण्यनेकानि कुर्वत्यस्ताः पुनस्त्रियः । विहाय नानि सर्वाणि ययौ रामं निरीक्षितुम् ॥६१॥
 दृष्ट्वा रामं गजस्थं ता वरपुः पुनरुद्दिष्टिभिः । ऊचुः परस्परं नार्यः श्रुतशोऽद्भुतसंस्थिताः ॥६२॥
 धन्या सा रामजननी कामत्या या रघूत्तमम् । सुपुत्रं गजराजानं परिपूर्णनोरथा ॥६३॥

भोजन करती थी और कोई भोजन बना रही थी । तो उसको ज्योंका त्यों छोड़कर भागी । कोई बालोंकी सेंबार रही थी, वह केशोंको हाथमें धाँधे ही ढीढ़ पड़ी । किसीका पति आलिगन कर रहा था । इतनेमें रामका आगमन सुना तो स्वामीका हाथ ज़िड़ककर ढीढ़ आयी । कोई अपने पतिके पैर धो रही थी, उसने एक पैर धोकर दूसरा पकड़ा ही था कि उसे सबर लगा कि सीताके सहित राम आ रहे हैं, तुरन्त ढीढ़कर प्रासादपर चढ़ गयी । कोई पतिके साथ शय्यापर सोयी थी ॥४४-५०॥ इससे उसकी आँखोंका काजल मुँहभरमें पुड़ गया, वह भी यह समाचार पाते ही आँखोंके सामनेवाले बालोंको हटाती हुई ढीढ़ी ॥५१॥ कोई उबदार लम्बा रही थी, वह एक हाथसे साड़ी सम्हालती हुई ढीढ़ पड़ी । किसीका पति कामोत्तम होकर आलिगन करना चाहता था । वह भी एक हाथसे साड़ी सम्हालती हुई बली आयी ॥५१॥ ५३ ॥ कोई कामिनी नूपुर पहन रही थी । वह केवल एक ही पैरमें उसे पहनकर अपनी भँटारोपर ढीढ़ पड़ी ॥५४॥ कोई पतिसे बातें कर रही थी । जहाँतक कर चुकी थी, वहाँ हाँ छोड़कर ढीढ़ आयी ॥५५॥ कोई पतिके लिए भोजन बना रही थी, वह भी पात्रको ज्योंका त्यों छोड़कर रामको देखने लिए ढीढ़ पड़ी ॥५६॥ कोई स्नान करके तुलसी तथा महादेवकी प्रदक्षिणा कर रही थी, वह भी रामका आगमन सुनकर उसे अघूरा ही छोड़कर भाग चली ॥५७॥ कोई चन्द्रमुखी रमणी कुर्सेपर पामी भरने गयी थी, वह रस्सी और घड़ा कुर्से ही फेंककर चले पड़ी ॥५८॥ कोई एकान्तमें बच्चोंको दूध पिला रही थी, वह बालकको लिये हुए ही ढीढ़ आयी ॥५९॥ कोई भोजन आदि कामसे निवटकर भँटारोपर जाना चाहती थी, वह आधे कपड़े पहने हुए ही बली आयी ॥६०॥ इस प्रकार अनेक तरहके कामोंकी काली हुई स्त्रियाँ अपना अपना काम छोड़कर रामके दर्शनके लिए छज्जों और छतोंपर आ खड़ी हुई ॥६१॥ हाथीपर बैठे हुए रामको देखकर स्त्रियाँ उनपर फूलोंकी वर्षा करती हुई आपसमें इस प्रकार बातें करती थीं—॥६२॥ रामकी माता कौसल्या बन्ध

काश्चिद्वृक्ष सा धन्या सीता जनकनन्दिनी । यस्या विवाधराममुखरीकुरुतेऽत्र सा ॥६४॥
 काश्चिद्वृक्षस्तथा तप्तं जानकया दुष्करं तथा । पूर्वजन्मनि यन्पुण्याद्राजगजप्रियाऽभवत् ॥६५॥
 काश्चिद्वृक्षं मन्दमागन्तु जगतीतले । मातादास्यो न जाताः स्य रामसेवकनृपाः ॥६६॥
 इति नानाविधा वाचस्तासां मृण्वन् रघुनमः । ययौ स राजमागग नृकल्पिरामन्दिरम् ॥६७॥
 तत्रावहत् नागेन्द्राद्विवेश वरमन्दिरम् । तस्यौ सुखेन जानकया बंधुभिर्बालकैः प्रभुः ॥६८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितात्मने श्रीमदानन्दरामायणे वात्समीकाये विवाहकाण्डे
 स्वयंवरार्थं भूरिकीर्तिः पुरं प्रति श्रीरामगमनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः

(राजा भूरिकीर्तिका पुत्री चम्पिकाका स्वयंवर)

श्रीरामदास उवाच

अथापरदिने रामं भूरिकीर्तिः ममाययौ । नन्दा प्राह रघुश्रेष्ठ ममामागन्तुमर्हसि ॥ १ ॥
 तथेति राघवश्चोक्त्वा बालकं रुक्मभूपतिः । रुक्मरत्नसूक्तवश्रेष्ठं कंचुकाणापमण्डितः ॥ २ ॥
 ऊरु पित्राय त्रिमुखः कटिवन्धोत्तरायकः । भूपतिरष्टभिः शोच्य शिविकार्थः ममाययौ ॥ ३ ॥
 ममाययौ ये नृपाः पूर्वमावनेषु च संस्थिताः । श्रुत्वा रामं ममायांत मभ्रमात्तपुरो ययौ ॥ ४ ॥
 चक्रुः सर्वे राघवाय प्रणामान्शशिरोलभाः । तेषां नामानि रामाय शीघ्रं वदः पृथक् पृथक् ॥ ५ ॥
 विशोष्णीषा रामदूताः प्रोचुर्बे वेत्रपागयः । बल्लालकरभूषाभिभूषिता मुदिताननाः ॥ ६ ॥
 राजराज नृपशाय कर्णाटविषये स्थितः । विजयस्ते प्रणामांश्च करोति त्वं विलोक्य ॥ ७ ॥
 गजवेन्द्र नृपशाय श्रीमान् द्रविडदेशजः । कंचुकण्ठो प्रणामांश्च करोति त्वं विलोक्य ॥ ८ ॥
 दीनानाथ नृपशाय विदर्भविषये स्थितः । अगनाथः प्रणामांश्च करोति त्वं विलोक्य ॥ ९ ॥

॥ जिन्होंने राजाधिराज राम नेमे पुत्रको जन्म दिया ॥ ६३ ॥ कोई कहने लगी कि जनकनन्दिनी सीता
 प्रसन्न है कि रामचन्द्रजी जिनके अथरत्नका भान करने ह ॥ ६४ ॥ कोई बाय-जात होता है कि सातमे
 पूर्वजन्ममें दुष्कर सपत्नी की थी, जिसके प्रभावसे वे आज राजराज रामचन्द्रका विवा बंधू बनने हैं ॥ ६५ ॥
 कुल म्रियो कहने लगी कि हम लोग बड़ा अभागिना है, जो सातवीं दासा हाकर भी रामका सेवा नहीं कर
 सकी ॥ ६६ ॥ इस तरह नाना प्रकारका बोले सुनते हुए रामचन्द्रजी राजमागसे चलकर हाथीसे उतरे और
 राजा भूरिकीर्ति द्वारा सजाये हुए भवनमें गये और साता, भ्राताओं तथा बालकोंके साथ टिके ॥ ६७ ॥ ६८ ॥
 इति श्रीशतकोटिरामचरितात्मने श्रीमदानन्दरामायणे विवाहकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीरामदास बोले-इसके बाद दूसरे दिन राजा भूरिकीर्ति स्वयं रामके पास पहुँचे और प्रणाम करके
 गले लगे—हे रघुश्रेष्ठ ! अब सभामें चलिए । “अच्छा” कहकर रामने भी सुवर्णके अनेक आभूषण पहने,
 नृपोंके सूयसे बने अच्छे-अच्छे वस्त्र धारण किये, परतलेसे सज्जित कमरबन्द कसा और शिविकापर बैठकर
 बड़ी बालकोंके साथ सभाभवनको ओर चले ॥ १-३ ॥ जो राजे पहले हा से सभामें आकर बैठे हुए थे, वे
 रामका आगमन सुनकर अकचका उठे और रामके सामने जा पहुँचे ॥ ४ ॥ उन्होंने भगवानको प्रणाम
 किया । रङ्ग-बिरङ्गे पगड़ियाँ बांधे और हाथमें बेंत लिये हुए रामके दूत जार-जारसे बोलकर इस प्रकार उनका
 कान बतलाने लगे—हे राजाओंके भ्राता राजा राम ! देखिए, कर्णाटक देशका रहनेवाला यह विजय नामका राजा
 आपको प्रणाम कर रहा है ॥ ५ ॥ ६ ॥ इधर देखिए, हे राघवेन्द्र ! यह द्रविड देशका निवासी कंचुकण्ठ नामका राजा
 आपको प्रणाम कर रहा है । हे दीनाथ ! वह विदर्भ देशका अधिपति अगनाथ नामका राजा आपको

महाराज नृपशायं मागधे विषये स्थितः । परतपः प्रणामांस्ते करोति त्वं विलोकय ॥१०॥
सीताकान्त नृपशायमवतिष्ठः प्रतापवान् । उग्रचक्षुः प्रणामांस्ते करोति त्वं विलोकय ॥११॥
रघुवीर नृपशायं स्थितो हैहयपत्तने । प्रतापस्ते प्रणामांश्च करोति त्वं विलोकय ॥१२॥
हे राम नृपतिशायं गुरसेन स्थितो महान् । सुपेणस्ते प्रणामांश्च करोति त्वं विलोकय ॥१३॥
कोसलेन्द्र नृपशायं हरिद्वारस्थितो महान् । नीपान्नये यज्ञकीर्तिः करोति नमनं तव ॥१४॥
अयोध्येऽथ नृपशायं कलिंगविषये स्थितः । हेमांगदस्तेऽप्येव करोति नमनं तव ॥१५॥
रावणारे नृपशायं नामवचनमस्थितः ॥ पाण्ड्येऽप्यं मतिमान् शूराः करोति नमनं तव ॥१६॥
एवं तेषां प्रणामांश्च मानयन् स्वेधणादिभिः । विवेश वंधुभिर्बालैः सभायां मन्त्रिभिः प्रभुः ॥१७॥
तत्र सिंहासने दिव्ये पश्चिमायां ततो हरिः । उपाविशन्म पूर्वास्यश्च प्रचामरमण्डितः ॥१८॥
रामस्य सव्ये सीमित्रिककेयननयाः स्थिताः । तस्थुस्तथा रामवामे कुशाद्या मंत्रिपालकाः ॥१९॥
शत्रुघ्नसव्ये संनस्थुः सुमन्त्राद्याः सुमन्त्रिणः । सभायामुत्तरे याम्ये पंक्ती सर्वे नृपादिकाः ॥२०॥
नेमिरेस्तोपमास्तस्थुः स्वमुह्युवमन्त्रिभिः । पश्चिमाभिमुखः सर्वा ननृतुर्वार्योपितः ॥२१॥
प्रद्वालसस्था विप्राद्या ददृशुः कान्तुकं महत् । ततो नदत्सु बाधेषु धृपेषु प्रद्वलत्सु च ॥२२॥
नतत्सु चारनाराणु गायत्सु मागधादिषु । स्तुवत्सु वैदिवृन्दे सभायां नृपपीत्रिके ॥२३॥
शिविकस्थे दिव्यवस्त्रदिव्यतलंकारमण्डिते । नवरत्नमहामालाघूतरम्यकरोत्पले ॥२४॥
ते समाज्जग्मतु रम्ये सभाग्रस्थे विरेजतुः । तयोर्नेत्रकटाक्षैश्च भिन्नमर्मस्थला नृपाः ॥२५॥
बभूवुर्विकलाः सर्वे कामदार्णविक्षेपतः । न तदा लेभिरे शर्म शुष्ककण्ठाघृतालुकाः ॥२६॥
सर्मा तां चपिकानाम्नां बह्विकोणादिवेश ह । ईशकोणाच्च मुमतिः सर्मा तां सविवेश ह ॥२७॥

प्रणाम करता है, इसे देखिए ॥ ८ ॥ ९ ॥ हे महाशय ! देखिये, मागध देशका रहनेवाला यह परन्तप नामक राजा आपको प्रणाम करता है ॥ १० ॥ हे सीताकान्त ! अग्रनिदेशका निवासी और महाप्रतापशाली यह उग्रचक्षु नामक राजा आपको प्रणाम कर रहा है ॥ ११ ॥ हे रघुवीर ! यह हैहयनगरका रहनेवाला प्रतीम नामक राजा आपको प्रणाम करता है ॥ १२ ॥ हे राम ! गुरसेन नगरका रहनेवाला यह सुपेण नामक राजा आपको प्रणाम करता है । हे कोसलेन्द्र ! यह हरिद्वारका रहनेवाला नीपवंशज यज्ञकीर्ति नामक राजा आपको प्रणाम कर रहा है ॥ १३ ॥ हे अयोध्ये ! समुद्रतटस्थ कलिंग देशमें रहनेवाला यह हेमांगद नामका राजा आपको प्रणाम करता है । हे रावणारे ! नामवचनका रहनेवाला बुद्धिमान् तथा अति पराक्रमी पाण्ड्य नामक राजा आपको प्रणाम कर रहा है ॥ १४ ॥ १५ ॥ रामचन्द्रजी सबको ओर निहार तथा संकत आदिसे लोगों-के प्रणाम स्वीकार करके अपने भ्राताओं और बालकोंके साथ सभाभवनमें पवारे । वहाँ पश्चिमकी तरफ रखे हुए एक दिव्य सिंहासनपर पूर्वकी ओर मुख करके बैठे । उस समय भी उनके ऊपर छत्र लगा था और घमर चल रहे थे ॥ १७ ॥ १८ ॥ रामकी दाहिनी ओर लक्ष्मण भरत आदि भ्राता बैठे । बायीं ओर कुश आदि सब लड़के तथा मंत्रिपुत्र बैठे । शत्रुघ्नकी दाहिनी ओर सुमन्त्रादि मन्त्री बैठे । सभाको उत्तर ओर दक्षिणी पंक्तिमें गोलाकार बनाकर सब राजे नृप-पुत्र तथा मन्त्रियोंके साथ बैठे थे और पश्चिमकी ओर मुख करके वेष्टार्ये नाच रही थीं ॥ १९-२१ ॥ अटारियोंपर बैठे हुए ब्राह्मण आदि नगरनिवासी वहाँका कान्तुक देख रहे थे । इसके अनन्तर जब बाजे बजने लगे, चारों ओरसे धूपकी सुगन्धि उड़ने लगी, वेष्टार्ये नाचने लगीं, मागध-नट आदि विविध प्रकारके गायन गाने करने और बन्दोजन तरह-तरहकी स्तुति करने लगे । उसी समय शिविकापर चढ़कर दिव्य वस्त्र तथा अलंकार पहिने, नवरत्नोंकी बनी एक बड़ी-सी माला हाथोंमें लिये वे दोनों सुन्दरी कन्यायें सभामें आ पहुँचीं । उनके नेत्रकटाक्षसे धायल तथा कामके बाणोंसे विदीर्णहृदय होकर कितने ही राजे विकल हो गये । उनके होंठ और तानु सूख गये । उस समय कुछ भी नहीं लग रहा था । उक्त सभामें अग्निकोणसे चम्बिका तथा ईशानकोणसे सुमति नामवाली कन्या प्रविष्ट हुईं

अथोपमाता वृद्धा सा धृतहस्ताग्रयणिका । सभायां चंपिका नाम्ने दक्षिणस्थान् पृथक् पृथक् ॥ २८ ॥
क्रमेण वर्णयामास तदा नृपतिसत्तमान् । तथाऽन्या च सभायाश्च धृतहस्ताग्रयणिका ॥ २९ ॥
सुनन्दाख्याऽतिजरठा सुमत्यै नृपतीन्क्रमात् । वर्णयामासोत्तरस्थानुपमाता पृथक् पृथक् ॥ ३० ॥
अथ सा चम्पिकां प्राह नीत्वा तां नृपतेः पुरः । शिविकाम्नां चापमाता नन्दा चामर्गवीजिता ॥ ३१ ॥
राजकन्ये चंपिकेऽत्र मृणुष्व वचनं मम । एनं नृप वर्णयामि पश्य त्वं मदनीयम् ॥ ३२ ॥
पाण्ड्योऽयं मतिमात्राग्ना नामपत्तनसंस्थितः । शूरो रथा नृपश्रेष्ठः प्रजापालनतत्परः ॥ ३३ ॥
यदि ते रोचते चित्ते वरयैनमनुनमम् । अस्य त्वं महिषी भूत्वा नामपत्तनसंस्थिता ॥ ३४ ॥
क्रीडस्व मुदिताग्नेन वरशामादराजिषु । नन्दोक्तं चंपिका श्रुत्वा द्रव्यं वाक्यमनुत्तमम् ॥ ३५ ॥
न वरन्ध मनस्तस्मिन्नृपती मतिमत्तम । चोदयामास नन्दां तामग्रे गन्तुं नृपान्तरम् ॥ ३६ ॥
तदाऽन्यं नृपतिं नन्दा नीत्वा तां शिविकाम्पिता । चंपिकां प्राह वेगेन पश्यन् बालिके नृपम् ॥ ३७ ॥
कलिङ्गविषयस्थोऽयं नाम्ना हेमाङ्गदो महान् । कोटिगो धरजंटाणां यस्य गण्डस्थलादिषु ॥ ३८ ॥
मुक्ताजालानिगुच्छाश्च राजन्ने कमलानने । यत् त्वं महिषी भूत्वा गवाक्षः सागरस्य च ॥ ३९ ॥
पश्यन्ती कौतुकं बाले करोषि क्रीडनादिकम् । अथ स्त्रीवृन्दमप्ये त्वं भर मुग्धराऽत्र रुन्धके ॥ ४० ॥
इत्युक्ताऽपि तथा तनूी नन्दया चंपिका नृपे । तस्मिन् भरो न वरन्धन्यं गन्तुं तामस्योदयम् ॥ ४१ ॥
सपत्नीभयमालस्य सपत्नीकस्यजिप्यति । अमहानिति वाक्ये नन्दया मुचिताऽपि सा ॥ ४२ ॥
ततोऽन्यं नृपतिं गत्वा नन्दा प्रोवाच चंपिकाम् । पश्येनं नृपतिं मृग्ये हरिद्वारनिवासिनम् ॥ ४३ ॥
नीषान्वयसमुद्भूतं ह्यन्धाचिव निशाकरम् । यत्तानां नृपनेभ्यः कान्यो जगति मण्डले ॥ ४४ ॥
यज्ञकीर्तिरिति ख्यातः पृथ्वीश्वः प्रमदाप्रियः । वरयन् नृपं पुत्रि रुक्मभूषणभूषितम् ॥ ४५ ॥

॥ २२-२७ ॥ चम्पिकाके साथ एक उपमाता । धाई । सुनन्दा भी, जो राधामें एक छोटी-सी छड़ी लिये थी । वह दक्षिणकी तरफ बैठे राजाओंका सम्मेलन करने लगी ॥ २८-३० ॥ सुनन्दा चम्पिकाको एक राजाके सामने लायी । उस समय भी चम्पिका पालकीपर बैठी थी और दूसरे-समर चर रहे थे ॥ ३१ ॥ सुनन्दा चम्पिकाका सम्बोधन करके कहने लगी—हे राजकन्ये चम्पिके ! मेरा बात सुनो—देखो, यह कामदेवके समान सुंदर अति बुद्धिमान् पाण्ड्य नामक राजा नामपत्तनका रहनेवाला, बड़ा पराक्रमी, रथी, सब राजाओंमें श्रेष्ठ और प्रजापालनमें तत्पर है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ यदि तुम्हें अच्छा लगे तो इसीको पसन्द कर लो । तुम इसकी राजरानी बनकर नामपत्तनमें आनन्दके साथ अच्छे-बुरे महलोंमें क्रीडाएँ करोगी । सुनन्दाकी ये बातें उसे दुर्धर्क तथा स्पर्ध-मो जान पड़ी । उस राजापर उसको तबोयत नहीं उठी और दूसरे राजाके पास चम्पिका संकेत किया ॥ ३४-३६ ॥ फिर सुनन्दा शिविकामें बैठा चम्पिकाको दूसरे राजाके सामने ले जाकर कहने लगी ॥ ३७ ॥ हे बालिके ! इसे देखो, यह महान् कान्य देवका रहनेवाला हेमाङ्गद नामका राजा है । इसके गण्डस्थलपर हाथियोंका गजमुक्ताओंमें बने मुच्छे मटकने रहते हैं । इसकी रानी बनकर तुम महलोंकी लिङ्कियोंसे समुद्रकी लहरोंके कौतुक देखना हुई विहार करोगी । वय, अब इसे पसन्द करके तुम इसकी समस्त स्त्रियोंकी प्रशंसा कर जाओ ॥ ३८-४० ॥ इतना कहते-नननेपर भी उसका मन उस राजापर नहीं जमा और आगे बढ़नेका संकेत किया ॥ ४१ ॥ क्योंकि चम्पिकाका यह स्वप्न हुआ कि इसके यहाँ सपत्नी सीत । का डर है । दूसरे "अमहान्" शब्दका प्रयोग करके नन्दाने भी बोझा-सा संकेत कर दिया था ॥ ४२ ॥ इसके अनन्तर दूसरे राजाके पास पहुँचकर नन्दा कहने लगी—हे मृग्ये ! इस राजाको देखो, यह हरिद्वारका निवासी है ॥ ४३ ॥ जैसे समुद्रसे चन्द्रमाकी उत्पत्ति हुई है, उसी प्रकार यह पवित्र नीप राजाके वंशमें उत्पन्न हुआ है । अनेक यज्ञोंको करनेसे जगत् भरमें इसकी काति फैल चुकी है ॥ ४४ ॥ इसीलिए लोग इसे यज्ञकीर्ति कहते हैं । सुवर्णके आभूषणोंसे भण्डित इस राजाको तुम वर लो । यह विस्तृत भूभागका मालिक है ॥

अस्थाद्य महिषी भूत्वा गङ्गावीचिपम्पराः । नौकास्था पश्यसि त्वं हि वरयैनं नृपोत्तमम् ॥४६॥
 अस्य पत्नी वरिष्ठा त्वं भव माऽग्रे व्रजयन्ते । इत्युक्ताऽपि तया तस्मिन् वचन्ध निजं मनः ॥४७॥
 त्वं वरिष्ठा मा भवेति नन्दयाऽग्रे व्रजेतिता । चोदयामास मा नन्दामग्रे गन्तुं नृपांतरम् ॥४८॥
 मन्दाऽप्यन्यं नृपं नीत्वा चपिकां प्राह वेगतः । पश्यैनं नृपतिं सुधे शूरसेनाह्वये वरे ॥४९॥
 देशं करोति र्वं राज्यं सुवेणोऽथमनुत्तमः । तुरगा वायुवेणाश्च यस्य पत्न्यो मृगीदृशः ॥५०॥
 यस्यांगणे वारनारीनृत्यघोषस्वरनिशम् । वरयैनं चपिकेऽथ तत्राननवदाननम् ॥५१॥
 अस्य त्वं महिषी भूत्वा जन्मसाफल्यतां कुरु । वासंलपट भूत्वा तथा वाक्कमनुत्तमम् ॥५२॥
 न वचन्ध मनस्तस्मिन्नुपतां तां प्रचोदयन् । अथ सा चोदिता नन्दा तयाऽन्यं नृपतिं क्षणात् ॥५३॥
 निनाय शिबिकास्थां तां चपिकामाह मादगम् । पश्यैनं नृपतिं बलं स्थितं दृढवपसने ॥५४॥
 सहस्रार्जुनवंशस्य भूषणं कमलोपमम् । प्रतोष इति नाम्नाऽयं स्थातः शूरो महारथी ॥५५॥
 वरयैनं नृपं माऽन्यं गच्छ हेमावरुपिणि । अस्य त्वं महिषी भूत्वा रेवायां पतिना सह ॥५६॥
 करिष्यसि जलकीडां चपिके शृणु मद्वचः । इत्युक्ताऽपि तया तन्वी न वचन्ध मनो नृपे ॥५७॥
 वरयैनं नृपं मेति नन्दाम्यादमहारथी । नृपोऽयं चेति तस्ये द्वे श्रुत्वा द्वयर्थवेदुत्तमा ॥५८॥
 एवं नानानृशणां सा वर्णनानि पृथक् पृथक् । स्तुतिरूपनिषेधात् शुश्रूषतां नृपान्मत्रा ॥५९॥
 जगाम शिबिकासंस्था सतन्दा भरतानुजम् । सुमन्त्रादीनातिक्रम्य श्रुत्वा श्रीगाममन्त्रिणा ॥६०॥
 ततः प्रोवाच सा नन्दा पश्यैनं भरतानुजम् । कोमलेन्द्रस्य रामस्य गन्धर्मेकोदरोपमम् ॥६१॥
 अयोध्यावासिनं रामराजवाक्यानुवर्तिनम् । वरयैनं चम्पिकेऽथ श्रुतकीर्त्याः स्वसा भव ॥६२॥
 इत्युक्तापि तया तन्वी शत्रुघ्ने निजमानमम् । न वचन्ध भूत्वा संज्ञामग्रे यतुं चकार ताम् ॥६३॥

स्त्रियोसं बड़ा प्रेम करता है । आज यदि तुम इसके साथ बगहू कर लोगो तो नावपर बैठकर गङ्गाजोकी अपूर्व
 लहरियोंको देखोगी । मेरी बात मान लो और इसे अपना पति स्वीकार करोगी। अब आगे मत बहो । ऐसा
 कहनेपर भी [] मन उस राजापर नहीं रमा और आगे चलनेका संकेत किया ॥ ४४-४५ ॥ सूनन्दा भी
 दूसरे राजाके सम्मुख पहुँचकर कहने लगी—हे मुग्धे ' इस राजाकी ओर देखो । यह शूरसेना नामक वंशमें
 रहता हुआ राज करता है । इसका सुषेण नाम है । वायुके समान वेगवागे बहुतसे घोड़े इसके पास हैं ।
 कितनी ही मृगीकी तरह नेत्रोंवाली स्त्रियाँ भी इसके यहाँ हैं । इसके आँगनमें सदा वेश्यायें नाचती रहती हैं ।
 हे चम्पिके ! तू इसे पसन्द कर ले । देख, तेरे ही मुखके समान इसका भी मुँह है । राजमहिषी बनकर तू
 [] जीवन सुफल कर ले । उस राजाकी बेगवालयपट जानकर चम्पिकाका मन उस राजापर भी नहीं रमा और
 तन्वाकी आगे चलनेके लिए संकेत किया । उसके संकेतसे नन्दा चम्पिकाकी साथ लिये क्षण भरमें एका दूसरे
 राजाके पास पहुँचकर बोली—हे बाले ! इस राजाकी देखा, यह दृढ़वपसनका रहनेवाला, कमलके सदृश
 कोमल तथा सहस्रार्जुनका वंशज है । यह बड़ा मोटा एवं महारथी है और 'प्रतोष' इस नामसे दिखता है ।
 ॥ ४६-४७ ॥ इसकी वरकर तू अपने योग्य सम्मान्य पदपर पहुँचोगी । इसकी महिषी बनकर तू पतिके
 साथ नर्मदातटीमें सानन्द विहार करोगी ॥ ४८ ॥ इतना कहनेपर भी वह चम्पिकाकी अच्छा नहीं लगा ।
 क्योंकि नन्दाने भी कहा था— 'तुम नृप मा वर' यानी 'इसे मत पसन्द कर' दूसरे 'अमहारथी' शब्दसे भी
 तिरस्कार ही किया था । इसलिए वह भी [] नहीं लगा । नन्दाके द्वयर्थक वाक्यको वह खूब समझती
 थी ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इस [] अनेक राजाओंके पृथक् पृथक् वर्णन तथा स्तुतिके अन्तर्गत निषेधवाक्योंकी
 सुनती हुई पालकोपर बंटा हुआ चम्पिका रामके मन्त्री सुमन्त्रादिकोंकी लाँघकर शत्रुघ्नके [] पहुँची
 ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ नन्दाने कहा— 'ये भरतके छोटे भाई हैं, किन्तु रामके सगे भाई जैसे मादूम पड़ते हैं'
 ॥ ५३ ॥ ये अयोध्यामें रहते हैं और राजा रामकी आज्ञाओंका पालन करते हैं । चम्पिके ! तू इन्हींके
 साथ विवाह करके श्रुतकीर्तीकी बहिन बन जा ॥ ५४ ॥ इतना कहनेपर भी शत्रुघ्नमें उसका मन नहीं

ततः सा भरतं नीत्वा नन्दा तामाह मंजुलम् । शत्रुघ्नस्याग्रं चैनं कैकेय्या जठरोद्भवम् ॥६४॥
 रामसेवारतं शतं सुधानं दयिताप्रियम् । वर्यैनं बालिकेऽद्य मांढर्या सरयुजले ॥६५॥
 करिष्यसि जलक्रीडां नौकास्था भरतेन हि । ततस्तत्संज्ञया नन्दा लक्ष्मणं चंपिकां जवात् ॥६६॥
 नीत्वा सौमित्रिकीति तां वर्णयामास सादरम् । पर्यैनं लक्ष्मणं बाले सुमित्राजठरोद्भवम् ॥६७॥
 अयोध्यावासिनं रामसेवासक्तं मनोहरम् । वर्यैनं चंपिकेऽद्य मेघनादप्रमर्दनम् ॥

शेषांशसंभवं चोर्मिलाया वीरस्वभा मव ॥६८॥

सर्वान् श्रुत्वा रामसेवासक्तान् पत्नीयुतानपि । छत्रचामरहीनांश्च रोचयामास ताम् सा ॥६९॥
 ततस्तत्संज्ञया नन्दा श्रीशमाश्रे स्वयंवरम् । नीत्वा तामाह मधुरं स्तोतुं तं रघुनन्दनम् ॥७०॥
 महत्ते चंपिके दैवं येन पश्यसि राघवम् । धन्योऽहमपि या रामं दृष्ट्वा स्तोतुं पुरः स्थिता ॥७१॥
 काहं मंदमतिनारी क रामो गुणसागरः । नाहं तत्स्नवने शक्ता वाग्मीकिर्यत्र कुण्ठितः ॥७२॥
 शतकोटिमितः श्लोकैश्चरित्रं राघवस्य च । श्रुतिना वर्णितं तच्च शतकोट्यांशवर्णितम् ॥७३॥
 तस्याहं वर्णनं किञ्चित्करोमि यच्छृणुष्व तत् । सूर्यवंशभूषणं श्रीदशरथनृपात्मजम् ॥७४॥
 कौसल्यातनयं गमं साक्षात्सागयणं विभुम् । ताटिकान्तकरं वीरं नाधिजाध्वरपालकम् ॥७५॥
 अहन्मोद्गारिणं श्रेष्ठं शिवनायकखण्डनम् । जानकीवल्लभं रम्यं जामदग्न्यदवानलम् ॥

नृपवृन्दैकजेनारं भरतप्राणदायिनम् ॥७६॥

ताताज्ञापालकं भ्रात्रा सीतयाऽऽप्यवासिनम् । विगधमर्दनं श्यामं खरदूषणमर्दनम् ॥७७॥
 त्रिशिरामृगमारीचकबन्धबालिमर्दनम् । समुद्रबंधनं लंकाराक्षसान्तकरं प्रहृष्टम् ॥७८॥
 रावणांतप्रकर्तारं सीतया राज्यकारिणम् । तीर्थयज्ञप्रकर्तारं सीताक्रीडनतत्परम् ॥७९॥

रुगा और आगे चम्पिकासंकेत किया ॥ ६३ ॥ इसके बाद नन्दा चम्पिकाको लिये हुए भरतके सामने पहुँचकर कहने लगी—ये शत्रुघ्नके बड़े भाई भरत कैकेयीके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं ॥ ६४ ॥ ये भी रामकी सेवा करते हैं । इन भाल्ल, मुखा एवं दयिताप्रिय भरतको वर ले तो तू मांढरी तथा भरतके सरयूके जलमें बिहार करेगी । ये भी ठीक नहीं जँचे तो चम्पिकाका संकेत पाकर नन्दा लक्ष्मणके सामने पहुँची ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ वह चम्पिकासे कहने लगी—ये सुमित्राके गर्भसे उत्पन्न लक्ष्मण हैं । ये अयोध्यामें रहते हुए रामकी सेवा करते हैं । तू इन सुन्दर, मेघनादका नाश करनेवाले और श्रेष्ठ भगवान्के अंगमें उत्पन्न लक्ष्मणके साथ ब्याह करके उर्मिलाकी बहिन बन जा ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ सब भाइयोंको रामके सेवक, छत्रचमरविहीन तथा वशाहे सुनकर उसने तीनों भाइयोंमेंसे किसीको भी नहीं पसन्द किया ॥ ६९ ॥ इसके बाद चात्रोंके संकेत करनेपर वह आगे बढ़ती हुई रामचन्द्रजीके सामने जा पहुँची । तब धात्री रामकी स्तुति करती हुई इस तरह बोली—॥ ७० ॥ हे चम्पिके ! तुम्हारा अहोभाग्य है, जो तुम रामचन्द्रजीको देख रही हो और मैं भी धन्य हूँ, जो रामकी स्तुति करनेके लिए इनके सामने उपस्थित हुई हूँ ॥ ७१ ॥ कहाँ मैं एक मन्दनति नारी और कहाँ गुणोंके सागर रामचन्द्र । मैं इसकी स्तुति करनेमें कैसे समर्थ हो सकती हूँ, कि वाग्मीकि जैसे महान् कवि भी पूरी तोरसे वर्णन नहीं कर सके ॥ ७२ ॥ उन्होंने सी करोड़ श्लोकोंमें भी वर्णन किया है, सो केवल उनके सी करोड़ अंशोंकी स्तुति हुई है ॥ ७३ ॥ मैं अपनी बुद्धिके अनुसार योड़ा-सी स्तुति कर रही हूँ, सो सुन । ये सूर्यवंशके भूषण, महाराज दशरथके पुत्र, कौसल्याके तनय और सर्वव्यापक साक्षात् नारायण हैं । इन्होंने दुष्ट ताड़काका वध करके विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा की है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ इन्होंने बहल्याको शापसे मुक्त किया और शिवधनुष तोड़ा है । ये सीताके बल्लभ, परशुरामके कोषरूपी वनके दवानल, राजाओंके समूहको जीतनेवाले तथा भरतके जीवनदाता हैं ॥ ७६ ॥ ये पिताको आज्ञाकार पालन करनेवाले, भाई तथा सीताके वनोंमें रहनेवाले, विराधके नाशक, श्यामरूपधारी और खर-दूषणके नाशक हैं ॥ ७७ ॥ त्रिशिरा तथा मृगरूप धारण करनेवाले भाँसीचके वधकर्ता, तथा बालिकों मारनेवाले, समुद्रमें सेतु बाँधनेवाले और लंका निवासी राक्षसोंके विना-

जानकीत्यागकर्तारं भीताग्रहणतन्परम् । कुशलवात्मब्राह्म्या च वाज्यर्थं पुष्टकारिणम् ॥८०॥
 एकपत्नीयतं शान्तं सन्ध्यापणतन्परम् । एकवाजमसंख्यातनामानं भारुनिभ्वजम् ॥८१॥
 कोविदारध्वजं वाणध्वजं वज्रध्वजं शुभम् । तार्क्ष्यध्वजं पुष्पकस्थं तार्क्ष्यवायुजवाहनम् ॥८२॥
 नानाराजावर्तमस्थसूक्तादीप्यंघ्रिशोभितम् । वरपिहामनामीनं छत्रचामरमण्डितम् ॥८३॥
 परर्यनं चंपिकेऽथ सीतया यज्ज गन्धरम् । नवर्षश्चाम्नायं समर्द्धीपत्रिपोऽपि च ॥८४॥
 बाणः पद्मीनयो यस्य नान्यं मा खेदयन्तर । नवरत्नमालिकामस्य ग्रीवायां कुरु ॥८५॥
 इत्युक्ता नन्दया बाला न्वर्षपुण्या विधेर्बभूव । न चरन्ध्र मतो गमे सीतां संस्मृत्य चंपिका ॥८६॥
 एकपत्नीयतं रामं सीतया यमजेति च ।

खेदं मा चर तन्कण्ठे मालां मा कुरु चोदिता ॥८७॥

ततस्तत्संज्ञया नन्दा तां निनाय कुशं प्रति । प्रोवाच मधुरं वाक्यं कुशवर्णनहृदिता ॥८८॥
 एनं पश्यात्पवयसं श्रीरामतनयं कुशम् । जानकीजटौद्धृतं ज्येष्ठं भार्याभिनं शुभम् ॥८९॥
 लज्जाग्रजं धनुर्वेदनिपुणं विनयान्वितम् । पित्रा संग्रामकर्तारं वाल्मीकिमुनिशिक्षितम् ॥९०॥
 एनं वृणीष्व बाले त्वं सुरमानवसंस्तुतम् । नवरत्नमयीं मालामस्य कण्ठे सुखं कुरु ॥९१॥
 इति नन्दावचः श्रुत्वा चंपिका स्मितानना ।

मुमोच मालिकां कण्ठे स्वकराभ्यां कुशस्य हि ॥९२॥

तदा निनेदुर्वाद्यानि तुष्टुर्वृन्दिमागधाः । लज्जावाग्धोमुखो रेजे सभायां कुशचालकः ॥९३॥
 तदा तुष्टो भूरिकीर्तिः कुशके चम्पिकां शुभाम् । स्थापयामास वेगेन पश्यत्सु नृपतीषु च ॥९४॥

शक महाप्रभु है ॥ ७८ ॥ रावणको मारनेवाले, सीताके साथ राज्य करनेवाले, तीर्थ-यज्ञकर्ता एवं सीताके साथ विहारकारी हैं ॥ ७९ ॥ इन्होंने सीताका त्याग किया और फिर वृन्दा लिया । इन्होंने अपना यज्ञ पूर्ण करनेके लिए अपने बेटों लव-कुशके साथ भी पुष्ट किया था ॥ ८० ॥ ये एकपत्नीयसी, शान्त, सन्ध्याभासी, एक बाण तथा असंख्यनामधारी हैं । ये कोविदारध्वज, वाणध्वज, वज्रध्वज तथा गरुडध्वज हैं । पुष्पक, गरुड तथा हनुमान्जी इनके वाहन हैं ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ये बहुतसे राजाओंके मुकुटमणि हैं और मांतिपोंके प्रकाशसे इनका सुशोभित रहता है । ये एक अच्छे सिंहासनपर बैठते हैं और उसपर सुन्दर छत्र-चमर शोभित रहता है ॥ ८३ ॥ हे चम्पिके । तू इन्हें वर ले और सीताके साथ रहती हुई इनकी सेवा कर । ये नवों लण्डों एवं सासों दीपोंके अधिपति हैं ॥ ८४ ॥ ये किसी अन्य स्त्रीविषयक बातोंको बाणकी नाई समझते हैं । अब तू किसी प्रकारका सोच-विचार न करके यह नवरत्नोंकी इनके गलेमें डाल दे ॥ ८५ ॥ इस प्रकार नन्दाके समझाने-पर भी भाग्यवश तथा सीताका स्मरण करके राम भी उसे पसन्द नहीं आये ॥ ८६ ॥ दूसरे नन्दाने भी अपने वर्णनमें कहा था कि एकपत्नीयता है, इसलिए "सीतया यज्ज" (सीताके साथ रहना पसन्द न कर) ॥ ८७ ॥ तत्पश्चात् चम्पिकाके संकेतसे नन्दा उसे कुशके सामने ले गया और इस तरह कुशका भी वर्णन करती हुई कहने लगी- ॥ ८८ ॥ इनकी देखो, इनकी अभी थोड़ी उमर है । ये रामके तनय सीताके पुत्र हैं । इनका नाम कुश है । ये लवके बड़े भाई हैं । अभी इनका विवाह नहीं हुआ है । इसलिए ये भार्याहीन हैं । ये धनुर्वेदनिपुण, विनीत स्वभाव, पिताके साथ संग्राम करनेवाले और महामुनि वाल्मीकिके शिष्य हैं ॥ ८९ ॥ ९० ॥ अतएव मनुष्यों और देवताओंसे संस्तुत इन कुशको पसन्द करके तू इनके कंठमें यह नवरत्नमयी माला डाल दे ॥ ९१ ॥ इस प्रकार नन्दाकी सुनी तो हैसकर उसने अपने हाथोंसे कुशके गलेमें वरमाला डाल दी ॥ ९२ ॥ उस समय विविध प्रकारके बाजे वज उठे और बन्दीजन तथा भाटोंने स्तुति की । सभामें लज्जासे नीचा नुन किये बैठे हुआ बालक कुश ही सुन्दर लग रहा था ॥ ९३ ॥ उस समय प्रसन्न होकर राजा भूरिकीर्तिने सब राजाओंके सामने ही चम्पिकाकी कुशकी गोदमें बिठा

ददशं जालरं प्रैस्त प्राप्तादस्वा विदेहता । मुमोद नितरां स्त्रीभिर्मुमोद राघवोऽपि सः ॥९५॥

इति श्रीमत्कोटिरामचरितमते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विवाहकाण्डे
धम्मिकास्वयंवरो नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः

(द्वितीय राजकन्या सुमतिके स्वयंवरका वर्णन)

श्रीरामदास उवाच

अथान्यां सा सभाग्रच्छ सुमतिश्चोत्तरस्थितान् । नृपानोशानदिभिरागात्सुनंदा धृतपाटिका ॥ १ ॥
कमेण वर्णवाधाम क्षिरिकास्थां सुलोचनाम् । बाले मृणुष्व मे शक्यं पश्येनं त्वं नृपोत्तमम् ॥ २ ॥
अवन्तिस्थं चोन्नवाहुनामानं च सनुत्तमम् । नानेन सदृशः कश्चित्पृथिव्यां वर्तते नृपः ॥ ३ ॥
वरयैनं नृपं माऽग्रे गच्छ त्वं गजगामिनि । अस्य त्वं महिषी भूत्वा क्षिप्रानयाथ संकते ॥ ४ ॥
वसुगेहस्थिताऽनेन सुखं क्रीडस्व मामिनि । अनुत्तमं चेति वाक्यं द्वयर्थं सा सुमतिः पुरा ॥ ५ ॥
श्रुत्वा मेनं वरयेति सुनंदाया वचाः पुनः । श्रुत्वा तां चोदयामास सा तां नोत्वा नृपांतरम् ॥ ६ ॥
सुनन्दा सुमतिं प्राह पश्यैनं त्वं नृपं परम् । अंगनाभाह्वयं श्रेष्ठं विदर्भविषयस्थितम् ॥ ७ ॥
पूववस्वज मा बाले वृणीष्वैनं नृपोत्तमम् । स्त्रीक्षामं स्वल्पवयसं भुजकेयूराजितम् ॥ ८ ॥
अस्य त्वं महिषी भूत्वा पयोष्णीजलचोचिषु । सुखं कुरु जलक्रीडां नृपेणानेन मामिनि ॥ ९ ॥
एनं वृणीष्व मा चेति क्षुपमात्रा मुचोदिता । अग्रे गन्तुं सुनन्दां सा चोदयामास मत्तया ॥ १० ॥
ततोऽप्यं नृपतिं नान्दा सुनंदा तां चोदयामास । पश्येनं नृपतिं बाले देशे मागधसंस्रके ॥ ११ ॥
राज्यं करोत्ययं श्रीमान्नाम्ना ख्यातः परंतपः । वरयैनं नृपं माऽग्रे गच्छान्यं पार्थिवोत्तमम् ॥ १२ ॥
अस्य त्वं महिषी भूत्वा तप्तनाभ्यपूरिते । ब्रह्मार्थं सदा क्रीडां हेमन्ते भज मामिनि ॥ १३ ॥

विधा ॥ ९४ ॥ अटारीके जराखास मोताने यह मङ्गलमय कायं दत्ता सा बहुत प्रसन्न हुई और राघवचन्द्रजी भी अत्यधिक प्रसन्न हुए ॥ ९५ ॥ इति ध्यातकोटिरामचरितमते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पंचमोऽध्यायः समाप्तः ॥ २ ॥

श्रीरामदास कीर्तन—तदनन्तर सुनन्दा दूसरी कन्या सुमतिको उत्तरकी ओर बैठे राजाओंके सामने ले जाकर ईशान कोणसे क्रमशः एक-एक राजाको दिखाकर इस प्रकार वर्णन करती हुई बोली—हे बाले! मेरी बात सुनो, राजाओंमें श्रेष्ठ इस राजाको देखो ॥ १ ॥ २ ॥ यह अवन्ति देशका रहनेवाला है। उग्रबाहु इसका नाम है। पृथ्वीतलपर इसके समान कोई राजा नहीं है ॥ ३ ॥ हे गजगामिनि! तू आगे मत बढ़, इसीको वर ले। इसका रानो बनकर तू क्षिप्रा नदीके तटपर बने हुए डेरोमें आनन्दपूर्वक विहार करेगी। सुनन्दा ने “अनुत्तमम्” तथा “एनं मा वरय” इन दो वाक्योंका दो अर्थोंमें प्रयोग किया था। उसमें एकसे प्रशंसा और दूसरेसे निन्दा होती थी। इसी कारण सुमतिको यह राजा पसन्द नहीं आया और उसने आगे बढ़नेका संकेत किया ॥ ४-६ ॥ सुनन्दा उसे दूसरे राजाके सम्मुख लाकर कहने लगी—यह विदर्भ देशका निवासी अङ्गनाभ नामका राजा है ॥ ७ ॥ तू इसे मत । इसको अपना पति बना ले। यह स्त्रीको इच्छा रखता है। इसकी थोड़ी उमर है और बाहुओंमें केतुर पड़ा हुआ है ॥ ८ ॥ इसकी पति बनाकर तू पयोष्णी नदीके तटस्थलोंमें इसके साथ आनन्द जलविहार कर ॥ ९ ॥ यही भी धार्मीके “एनं मा वृणीष्व (इसे मत वर)” यह वाक्य सुनकर उसने आगे बढ़नेका संकेत किया ॥ १० ॥ तदनन्तर सुनन्दा उसे दूसरे राजाके सामने ले जाकर बोली—हे बाले! इस राजाको देख, यह नरपति मगध देशमें राज करता है। यह बड़ा श्रीमान् है। इसे लोग परशुप कहते हैं। वस, तू इसी श्रेष्ठ राजाको अपना पति बना ले—और किसीके पास मत जा ॥ ११ ॥ १२ ॥ इसको अपना पति बनाकर जाड़ेके दिनोंमें तू सदा ब्रह्मार्थके गरम जलमें क्रीडा किया करेगी।

मैनं नृपं वरयेति शिषिता सा सुनन्दया । चोदयामास तां वृद्धां सा तां निन्ये नृपांतरम् ॥१४॥
 सुनन्दा बालिकामाह शृणुष्व मृगलोचने । पश्यैनं नृपतिं रम्यं द्रविडं विषये स्थितम् ॥१५॥
 कम्बुकण्ठाह्वय श्रेष्ठं कांतिपुरीं निवासिनम् । एनं नृपं वृणीष्वान्न मा व्रजान्यं नृपोत्तमम् ॥१६॥
 काञ्चिपुर्यामनेन त्वं सर्वतीर्थमनोगमे । कीर्त्ता भवस्व विस्तीर्णे हेमकञ्जविराजिते ॥१७॥
 विष्णुं वरदराजार्थं शिवमेकाम्बराह्वयम् । पूजयस्व सदाऽनेन कम्बुग्रीवनृपेण च ॥१८॥
 वृणीष्वैनं नृपं माऽद्य सामान्यनृपवन्धज । इति वृद्धावचः श्रुत्वाऽग्रे तां गन्तुं प्रचोदयत् ॥१९॥
 सुनन्दाऽन्यं नृपं नीत्वा सुमतिं वाक्यमब्रवीत् । पश्यैनं नृपतिं मृगधे मत्तमातङ्गगामिनि ॥२०॥
 कर्णाटविषयस्थं त्वं विजयं पार्थिवोत्तमम् । कमलास्यं कञ्जहस्तं कमलाघ्रिणमुज्ज्वलम् ॥२१॥
 स्मितास्यं कंजनपनं विजयारुणपुरस्थितम् । शृणुष्व वचनं मेऽद्य वृणीष्वैनं नृपोत्तमम् ॥२२॥
 अस्य त्वं महिषी भूत्वा वने कृष्णानदीजले । सुखं नृपेण व्रीडस्व मद्वाक्यं शृणु ॥२३॥
 मद्वाक्यं शृणु मेत्युक्ता श्रुत्वा वाक्यमनुत्तमम् । व्रजेति सूचिता बाला चोदयामास तां पुनः ॥२४॥
 एवं नानानृपाणां च वर्णनानि पृथक् पृथक् । स्तुतिरूपनिषेधीनि श्रुत्वा द्वयर्थानि बालिका ॥२५॥
 न बन्ध मनः कस्मिन्नृपती तेषु सा तदा । ततस्तां शिविकासंस्थां सुनन्दा च शनैः क्रमात् ॥२६॥
 अतिक्रम्य राममंत्रिचालकानपि पूर्ववत् । युपकेतुं शिशुं नीत्वा बालिकां वाक्यमब्रवीत् ॥२७॥
 शृणुष्वनतनयं बालं युपकेतुं मनोहरम् । पितृव्यं रामतनयद्वयवाक्यानुवर्तिनम् ॥२८॥
 एनं पश्य बालिके त्वं ॥ भव । वरयैनं युपकेतुं माऽग्रे गच्छ नृपात्मजे ॥२९॥
 मैनं वरय मन्त्राग्रे वृद्धया सेति चोदिता । सुनन्दा चोदयामासाग्रे गन्तुं सुमतिः पुनः ॥३०॥
 सुबाहुं पुष्करं तच्चमेवं सा सुमतिः शनैः । चित्रकेतुमङ्गदं च त्यक्त्वा सा त त्वं ययौ ॥३१॥

॥ १३ ॥ यहाँ भी सुनन्दा ने "एनं नृपं मा वरय (इस राजाको मत वर)" यह द्वयर्थक वाक्य कहा था । जिससे सुमति ने आगे चलनेका संकेत किया । तब वह उसे दूसरे राजाके सामने ले गयी ॥ १४ ॥ और कहने लगी—हे मृगलोचने ! इस सुन्दर राजाको देख, यह द्रविडदेशका निवासी है ॥ १५ ॥ इसका कम्बुकण्ठ नाम है । कांतिपुरीमें रहता है । तू इसे वर ले । अब किसी अन्य राजाको देखनेको इच्छा मत कर ॥ १६ ॥ कांतिपुरीमें तू अतिशय विशाल सुवर्णममलसे युक्त मनोरम सर्वतीर्थमें इसके सामन्द विहार करेगी और इसके साथ वरदराज नामका विष्णु भगवान् तथा एकादश नामक शिवका पूजन करेगी । साधारण राजाओंको तरह इसे भी न छोड़, इसको वर ले । इस वृद्धा सुनन्दाकी बात सुनकर सुमति ने उसे आगे चलनेका संकेत किया ॥ १७-१९ ॥ तब सुनन्दा उसे दूसरे राजाके पास ले जाकर कहने लगी—हे मृगधे ! हे मत्तमातङ्गगामिनि ! तू इस राजाको देख ॥ २० ॥ यह कर्णाटक देशका रहनेवाला विजय नामक राजा है । कमलके समान इसका मुख और कमलके ही समान इसके हाथ-पैर भी हैं ॥ २१ ॥ इसका मुख सदा मुस्कुराता रहता है । कमलकी कलियोंकी नाई इसकी आँखें हैं । यह विजयपुरका निवासी है । मेरी मानकर इसे अपना पति बना ले ॥ २२ ॥ इसकी राजमहिषी बनकर तू वनों तथा कृष्णा नदीके जलमें सामन्द विहार करेगी । मेरी बात मानकर तू और आगे मत बढ़ ॥ २३ ॥ "मद्वाक्यं मा शृणु (मेरी बात सुन)" यह बात सुनकर उसने सुनन्दाको आगे चलनेका संकेत किया ॥ २४ ॥ इस प्रकार अनेक राजाओंके वर्णन जो वास्तवमें नियोज्य थे, किन्तु ऊपरसे स्तुतिवाच्य मालूम पड़ते थे । ऐसे द्वयर्थक वाक्योंको सुन-सुनकर बालिकाने उन राजाओंमेंसे किसीको भी नहीं पसन्द किया । तब सुनन्दा शिविकामें बैठी हुई सुमतिकी लेकर धीरे-धीरे रामके मन्त्रिपुत्रोंकी छाँटकर युपकेतुके सामने गयी और कहने लगी—॥ २५-२७ ॥ शत्रुघ्नके सुन्दर पुत्र युपकेतु है । ये पितृव्य (ताऊ) रामके दोनों बेटे कुलस्वके अनुगामी हैं ॥ २८ ॥ हे बालिके ! तू अब अपना मन सावधान करके इन्हें देख । हे नृपात्मजे ! अब आगे जाकर तू इन्हींको अपना पति बना ले ॥ २९ ॥ "मा एनं वरय अग्रे गच्छ (इसे न वर, आगे चल)" यह संकेत पाकर सुमति ने

लवार्पितेक्षणां बालां सुनन्दा वाक्यमब्रवीन् । पश्येन्नं बालिकं बालं लवं श्रीराघवात्मजम् ॥३२॥
 श्रीकामं स्वल्पवयसं सीतालालिनमुत्तमम् । वाक्मीक्रिकृपया लब्धविद्यं रम्यं कुशालुजम् ॥३३॥
 धृणोर्ध्वनं सुसैनैव कण्ठेऽस्य मालिकां कुरु । कुशांके चपिकेय ते स्वसा यद्वत्स्थिताऽद्य हि ॥३४॥
 तथा स्वमपि भो मृगधे लवांके संस्थिता भव । इति तस्या वचः श्रुत्वा सुनन्दायाः स्मितानना ॥३५॥
 लवस्य कण्ठे हर्षेण लज्जयाऽवनतानना । सुमतिर्निजबाहुभ्यामर्पयामास मालिकाम् ॥३६॥
 तदा निनेदुर्वाधानि जगुस्ते गायकास्तदा । ननृतुर्वारनार्यश्च तुष्टुर्वुन्दिमागधाः ॥३७॥
 भूरिकीर्तिर्नृपस्तुष्टो लवांके सुमतिं तदा । शीघ्रं निवेशयामास परिपूर्णमनोरथः ॥३८॥
 सोपमाप रघुश्रेष्ठः सीता प्रासादसंस्थिता । जालरंघ्रैः सवर्त्तीकं लवं दृष्ट्वा तुतोष सा ॥३९॥
 ततः सर्वाभूषान् पूज्य भूरिकीर्तिर्नृपोत्तमः । प्रार्थयामास विनयवचनैस्तनपुरतः स्थितः ॥४०॥
 विवाहकौतुकं वृष्ट्वा भवद्विगम्यतामिति । तथेति ते नृपाः प्रोचुर्यपूर्वामस्थलानि हि ॥४१॥
 रामाग्रे संगरं कर्तुमसमर्था गतश्रियः । म्लानानना गतोन्माहाः कामबाणप्रपीडिताः ॥४२॥
 रामोऽपि बन्धुभिर्वालैर्ययी वासस्थल मुदा । अथापरं दिने राम भूरिकीर्तिः समाययौ ॥४३॥
 पुरोधसोपविष्टः सञ्जत्वा रामं वचोऽब्रवीत् । द्रष्टव्यो लग्नदिवसः सुमुहूर्तः सुखावहः ॥४४॥
 मामंगीकुरु रामाय त्वन्वादाश्रयकामुकम् । उभयोस्त्व मण्डपयोः कायांघ्राज्ञापय प्रभो ॥४५॥
 तथेति राघवश्चोक्त्वा वसिष्ठं चोदयत्तदा । सोऽपि रामाश्च या ज्योतिःशास्त्रतः परिवेष्टितः ॥४६॥
 मुहूर्तं कथयामास पञ्चमेऽहनि राघवम् । ततस्तुष्टो भूरिकीर्तिगणेशं लग्नपत्रिकाम् ॥४७॥

सुनन्दाको आगे चलनेका संकेत किया ॥ ३० ॥ इसी प्रकार सुबाहु, पुष्कर, तक्ष, चित्रकेतु तथा अंगवकी
 छाँकती हुई वह लवके पास पहुँची ॥ ३१ ॥ जब सुमति लवकी ओर देखन लगा तब सुनन्दा बोली—हे बाले !
 इस बालकको देख, यह रामका पुत्र है । यह अपना विवाह करना चाहता है । हमकी योड़ी उमर है । सीताके
 द्वारा इसका पालन-पोषण हुआ है । वाक्मीक्रिकी कृपासे इसे उत्तम शिक्षा प्राप्त हुई और यह कुशका छोटा
 भाई है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ तू मानन्द इसे पति बनाकर हमके गलेमें वरमाला डाल दे, जिस तरह
 तुम्हारी बहिन अम्पिका कुशकी गोदमें बैठे हैं, उसी तरह ओ नृग्ये ! तू भी लवकी गोदमें बैठ जा । इस
 प्रकार सुनन्दाकी बात सुनकर वह मुस्कराये और लज्जावश भस्तरक मुकाकर उसने अपने हाथोंसे लवके
 गलेमें वरमाला डाल दी ॥ ३४-३६ ॥ उस गगन अनेक प्रकारके वाजे वजे, गायकोंने गाने गाये, वेश्यायें
 नाचने लगी और बन्दीजन स्तुति करने लगे ॥ ३७ ॥ महाराज भूरिकीर्तिने प्रसन्न होकर सुमतिको लवकी
 गोदमें बिठा दिया ॥ ३८ ॥ यह देखकर रामचन्द्रजी तथा अटारोंपर बैठे सीता दोनों हुए । जब
 मारीखीसे सीताने लवकी गोदमें सुमतिको बैठा देखा तो उनकी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं रहा ॥ ३९ ॥
 इसके अनन्तर राजा भूरिकीर्तिने वहाँ आये हुए सब राजाओंको पूजा करके विनयपूर्वक प्रार्थना की—॥ ४० ॥
 आप लोग विवाहका भी उत्सव देखकर आइएगा । राजाओंने भी उनकी बात स्वीकार कर ली और
 अपने-अपने डेरेपर चले गये ॥ ४१ ॥ वे राजे रामसे मुद्ध करनेमें असमर्थ थे । अतएव उनकी श्री नष्ट हो
 गयी थी, मुख कुम्हला गया था, उत्साह भंग हो गया था और बेचार कामके बाणोंसे पीडित हो रहे थे ॥ ४२ ॥
 राम भी अपने भाइयों और बन्धुओंके साथ प्रसन्नतापूर्वक डेरेपर गये । इसके बाद दूसरे दिन राजा भूरिकीर्ति
 रामके पास पहुँचे ॥ ४३ ॥ पुरोहित उनके साथ था । वे रामके समक्ष बैठे और कहा कि कोई अच्छा लग्न-
 दिवस तथा सुखदायक मुहूर्त विचारिए । फिर कहा—हे राम ! अपने चरणोंके मुख दासकी प्रार्थनाको
 अङ्गीकार करके दोनों मण्डपोंके लिए जो कार्य करने हों, उनके लिए आज्ञा दीजिए ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ “अच्छा”
 कहकर रामने वसिष्ठकी ओर संकेत किया । वसिष्ठने रामकी आज्ञासे ज्योतिषशास्त्रको जाननेवाले कितने
 पंडितोंके साथ विचार करके उसके पाँचवें दिन विवाहका शुभ मुहूर्त बतलाया । इसके अनन्तर प्रसन्न मनसे
 भूरिकीर्तिने गणेशजी, लग्नपत्रिका, गणकों, पण्डितों, वैदिक आदिकों तथा रामके हाथवाले बन्धुवनों और

सम्पूज्य गणकान्सर्वान्विण्डितान्यैदिकादिकान् । वधूपुत्रादिभिः सर्वैः श्यामं पूजयत्तदा ॥४८॥
 नत्वा रामं गृहं गत्वा चकार मण्डपादिकम् । रामाश्रया लक्ष्मणोऽपि चकार मण्डपादिकम् ॥४९॥
 तदा वटपुत्री रम्या पाताकाच्चजतोर्मणः । पुरुषोत्तमराजधानी रेजे सागररोधसि ॥५०॥
 ततो मुहूर्तसमये वधुच्छिष्टां निशां कुशम् । नवं च लिप्य नैलातं भीताद्या मातरस्तदा ॥५१॥
 करकुम्भाभितुङ्क्तु जलपूर्णान्सदीपकान् । सन्ध्याय स्नायामासुर्मेहावायपुरःसरम् ॥५२॥
 तैलाम्यंगं निक्षायुक्तं सोतयाः स्वीयबालकैः । सर्वे च चक्रुरानन्दपूरिता लक्ष्मणपिताः ॥५३॥
 अभ्यंगपूर्वकं सस्तुस्ते रामाद्यास्तदा मुदा । समाहूय ततः सीतां मुक्तानां म्वस्तिकोपरि ॥५४॥
 वसिष्ठो मुनिभिर्पुक्तः शिशुभ्यां राघवेण हि । गणपार्श्वं कारयित्वा पुष्पाहादिभ्यः क्रमात् ॥५५॥
 देशाचारान्कुलाचारानिष्टदेवीं प्रपूज्य च । करयामास विधिवन्वसिष्टां देवकस्य च ॥५६॥
 तदा जनकनन्दिन्या रत्ननीकुन्दमान्जये । विरेजतुः स्मरन्मन्दरिथितायाः पदपंकजे ॥५७॥
 सीतायास्ततः स्त्रियः सर्वा हरिर्दीपाकर्णवर्गः । हेमनन्दयतिर्देवीविरेजुर्गण्डपाद्वणे ॥५८॥
 ततः समापयुः सर्वे मुदा तत्र मुनीश्वराः । स्वयंवरोन्मये पूर्व नागता ये सहस्रजः ॥५९॥
 भुव्योमाह विवाहस्य कुशस्य च लक्ष्मणे । तान्पुत्रान् रामचन्द्रोऽपि वस्त्राभरणधेनुभिः ॥६०॥
 पूजयामास विधिवन् सीतया लक्ष्मणादिभिः । भूमिकान्तिर्पैर्पुङ्क्तो महावाद्यपुरःसरम् ॥६१॥
 स्वयं कुशलर्वा गेहं नेतुकामः गमाययौ । मण्डपे पूजयामास वीरो राज्ञः सुतस्तदा ॥६२॥
 कुशं तथा लवं चापि कर्तव्यान् भारकीर्तिनः । हेमनन्दैर्वैदिव्यैस्संगभरणादिभिः ॥६३॥
 तदा विरेजतुर्बाली तथा नेऽप्यगदादयः । तनस्तौ वारणन्दस्थौ दिव्यचामरवीजितौ ॥६४॥
 पश्यन्ती नर्तनान्यग्रे वारस्त्राणां स्मिन्नान्तौ । शृण्वन्तौ वाद्ययोषांश्च वर्णितौ मागधादिभिः ॥६५॥

पुत्रोंके साथ रामकी पूजा की ॥ ४८-४९ ॥ फिर रामकी प्रणाम करने पर गये और वहाँ मण्डपादिकी तैयारी करने लगे । रामकी आज्ञानुसार लक्ष्मण भी आना मण्डप आदि बनवाने लगे ॥ ४९ ॥ उस समय समुद्रके लट्गार स्थित पुरुषोत्तमकी राजधानी पर ५०००० पुरुषों, अर्थात् राजा तोरणोंसे सुशोभित होकर बड़ी की सुन्दर दीर्घां लगे ॥ ५० ॥ इसके बाद मुहूर्तानुसार तब राम पुत्रोंसालुपूजनवाली रातकी कुश और लवकी सीतादिक माताओंसे उबटन लगाये, तेल लगाया और माण्डपके चर्चों और करकुम्भ (करवा) रखवा और उनपर दीपक जलाये । फिर माताओंके साथ उन दोनों बरोंकी स्नान कराया ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ उन बालकोंके साथ ही सीतादिक माताओंसे भी अलङ्कित मनसे तेल लगाया ॥ ५३ ॥ फिर उबटन लगाकर उन सबके साथ रामने भी स्नान किया । इसके अनन्तर राम सीताकी बुलाकर मोतियोंसे बने हुए स्नस्तिक चौकेके ऊपर बैठे और बहुतसे ऋषियोंके साथ आकर वसिष्ठने दोनों बालकोंके साथ रामके द्वारा गणेशकी पूजा करवाया और क्रमशः तीन प्रकारके पुष्पाहुवाचन करवाये ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ तत्पश्चात् देशाचार तथा कुलाचारके अनुसार इष्टदेवकी पूजा करके विधिवन् देवताकी स्थापना की ॥ ५६ ॥ उस रात्रिके समय पुष्पकुम्भ रजित वस्त्र पहने हुए वे दोनों बालक बहुत ही सुन्दर लग रहे थे ॥ ५७ ॥ इनके सिवाय हरे, पीले, लाल और सुनहरे कपड़े पहने रियी बहुर भली लग रही थी ॥ ५८ ॥ इसी समय वे हजारों ऋषि प्रसन्नतापूर्वक वहाँ आ पहुँचे जो स्वयंवरके उत्सवमें नहीं आये थे ॥ ५९ ॥ वे भी कुश-लवका विवाहोत्सव सुनकर गये । रामचन्द्रजीने भी सीता तथा बन्धुओंके साथ अनेक तरहके वस्त्र-आभूषण गोवं देकर उनकी पूजा की ॥ ६० ॥ ६१ ॥ इसके बाद बहुतसे राजाओंके साथ कुश-लवकी लेनेके लिए महाराज भूरिकीर्ति आये । वहाँ पहुँचकर भूरिकीर्तिके छोटे घेर घुमने सुवर्णके तारोंके क्रमदार बहुतसे धर्म और आभरण देकर कुश-लवकी पूजा की ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ उस समय वे दोनों बालक तथा अङ्गद आदि घोर बच्चे बहुत सुन्दर दीख रहे थे । इसके अनन्तर कुश और लव हाथीपर बैठकर चले । उनपर दिव्य चमर चलने लगे ॥ ६४ ॥ वे दोनों बालक वेश्याओंका नृत्य देखते और विविध प्रकारके वाद्योंकी मीठी ध्वनि

सीतादिभिर्बारीषु संस्थिताभिस्तथा पथि । आसादोपरि संस्थाभिर्बारीभिः पुष्पवृष्टिभिः ॥६६॥
हरिद्रापीतधान्यैश्च माग्न्यैर्भौक्तिकैरपि । लाजाभिर्हैमपुष्पैश्च वर्षिणावीक्षितौ मृदुः ॥६७॥
जम्भतुर्बालकावेवं पश्यन्तौ कौतुकानि हि । ददर्शतुर्बाटिकाश्च पुष्पैर्वृष्टिविनिर्मिताः ॥६८॥
तथा कृत्रिमवृथाश्च पताकाश्च ध्वजास्तथा । तथोपधिभवान्वृष्टान् वह्निस्पर्शविदीपितान् ॥६९॥

शकटस्थानोपधीभिः पूरितान्कृत्रिमान् जनान् ।

नथा व्याघ्रादिकान्हिमनोपधीभिः प्रपूरितान् ॥७०॥

तडिन्ममनान् गगने प्राक्तागनोपधीभवान् ।

केकिचक्रोपमार्दीश्च चन्द्रज्योत्स्नास्तु कृत्रिमाः ॥७१॥

एवं ददर्शतुर्नानाकौतुकानि नृपान्मज्जी । ततस्ती भूरिकीर्तेश्च गत्वा मण्डपद्वारमम् ॥७२॥
नानाभहोन्मयैर्बालैश्चामग्न्यलक्ष्मण्डिनौ । अरुह्य गजेन्द्राभ्यां तस्थतुर्मण्डपागणे ॥७३॥
मधुपर्कविधानानि विहरन्तीनि वै क्रमात् । शोभुर्युक् चक्रतुर्नो ब्राह्मणैः परिवेष्टितौ ॥७४॥
ततो वध्वाः पूजनं च सांगया रघुनन्दनः । चक्रा गुरुणा युक्तस्तदा स मण्डपागणे ॥७५॥
ततो लग्नमुहूर्तं तं कुशं चम्पिकाया गुहः । तथा लवं सुमन्यापि पृथग्वेदिकयोस्तदा ॥७६॥
कृत्वा सुमस्थितौ चोनी दंपत्योरन्तरे पटौ । पुन्योमयोः पृथक् चित्रौ नूतनौ हेमततुजौ ॥७७॥
नानामंगलपोषाश्च मुनिभिश्चक्रतुर्मुहूर्तः । आगन्मर्वे जनास्तूर्णौ शृण्वतो मंगलस्वनान् ॥७८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये
विवाहकाण्डे त्रयोविंशत्यध्यायस्य त्रयोविंशोऽध्यायः समाप्तः ॥ ३ ॥

एवं बन्दीजर्मोंकी स्तुतिरां गूढते २९ राजा भूरिकीर्तिके महलीकी ओर चले जा रहे थे ॥ ६६ ॥ सीतादिक माताएं हविर्निर्वाण पर्यं थीं । ब्रह्मर्षियोंपर देहां दुई नगरवामिनी नारियां उनपर फूल बरसा रही थीं । वाक्-बोधमें हृदीसे रंगे मोले रंगे अन्न, माग्न्य भौक्तिक, धानके लावे और मृवर्णके बने फूल भी बरसते जा रहे थे । वे नारियां कुश लक्ष्मी प्रेमधरी दृष्टिमें निहार रही थीं । इस तरहके कौतुक देखते हुए वे दोनों बालक चले जा रहे थे । गगनेसे हृद्योंकी उपां हो मे बनी बाटिकाएँ, कृत्रिम वृक्ष, पताका, ध्वजा, सतालिके बने ऐसे वृक्ष जो आगकी चिनगारी पाकर जलने लगने थे ॥ ६६-६९ ॥ उन्हें और गाड़ीपर बैठे हुए औपधिपूर्ण बनाजटा मनुष्यों, मन्त्रान्तेसे भरे हुए व्याघ्र आदि हिंस्र जन्तुओं, औषधिके संयोगसे बिजलीकी नाई चमकने हुए भगलपशीं भवनों तथा मयूर आदिके छूटने हुए चक्रोंको वे राजे कौतूहल भरी आँखोंसे देखते जा रहे थे ॥ ७० ॥ ७१ ॥ इस प्रकार मार्गमें अनेक कौतुकोंको देखते हुए वे राजा भूरिकीर्तिके उत्तम मंडपमें पहुँचे । उस समय लोगोंमें महान् उत्साह दिखायी पड़ता था । उन बच्चोंपर छत्र लगे थे और दिव्य चमक चल रहे थे । वहाँ पट्टचक्र वे हाथोंसे उतारे और मण्डपाङ्गणमें पहुँचे ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ उनके मुखजनीने ब्राह्मणोंके साथ मधुपर्क विष्ट आदि विधि सम्पन्न किये ॥ ७४ ॥ इसके अनन्तर रामने सीता तथा मुखजनीके साथ उस मण्डपमें उन दोनों बहूओंकी पूजा की ॥ ७५ ॥ तदनन्तर लग्नका मुहूर्त आनेपर गुरु वसिष्ठने कुशको चम्पिकाके साथ एवं लक्ष्मी नुमतिके साथ अलग-अलग वेदीपर बिठाया ॥ ७६ ॥ इस तरह दोनों धर-वधूओंकी अच्छी तरह बिठलाकर उनके बीचमें एक-एक पर्दा डाल दिया और लोग चुन्चाप गुरु वसिष्ठके मुखसे उच्चरित नाना प्रकारके मांगनिक मंत्रोंको नूतने लगे ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयविरचिते 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते विवाहकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः

(लव-कुशके विवाहका वर्णन)

श्रीरामदास उवाच

श्रीसीता रघुनायकश्च गिरिजा शंभुगणेशस्तथा

नन्दीपण्डुगलरुमणौ च भरतः कञ्जोद्भवः शत्रुहा ।

सर्वे ते मुनयः सुराश्च दितिजास्नीधादिनद्यो नदाः

दिक्पालाः शशिमास्कर्ग च हनुमान् कुर्वन्तु वो मंगलम् ॥ १ ॥

तदेव लघं सुदिनं तदेव तारावलं चंद्रवलं तदेव । विद्यावलं देववलं तदेव सीतापतेर्यस्मरणं विधेयम् ॥

एवं मंगलधोपैश्च नानावाद्यपुरःसरम् । ततस्त्वंतःपटौ मुक्त्वाऽभ्युष्ण्याहमिति स्मरन् ॥ ३ ॥

तयोस्ते पाणिग्रहणविधानं विधिपूर्वकम् । लाजाहोमादिकं सर्वं चक्रमंगलपूर्वकम् ॥ ४ ॥

तदा महावाद्यधोपा निनेदुर्मंडपांगणे । ननृतुर्वारनायश्च तदा मागधवन्दिनः ॥ ५ ॥

जगुर्मंगलमीतानि तुष्टुवुस्ते महाध्वनः । तदा दानान्यनेकानि चक्रतुस्तौ नृपोत्तमौ ॥ ६ ॥

भूरिकीर्तिरामचंद्रौ महातोषप्रचूर्ति । अथ तौ बालकौ वध्वौ निजकटगोर्निवेश्य वै ॥ ७ ॥

सीतोर्मिलादिभिः स्त्रीभिर्जगत्तुभोजनगृहम् । तत्र गौरोदरी पूज्य चक्रतुश्चाग्रसिचनम् ॥ ८ ॥

ततः कुशश्चंपकिया सुमत्या स लवोऽपि च । चक्रतुर्भोजनं चोभौ स्त्रीभिः सर्वत्र वेष्टितौ ॥ ९ ॥

मात्रा सहोपनयने विवाहे भार्यया सह । अन्येन नैव भोक्तव्यं भुक्तं चेन्पतितः स्मृतः ॥ १० ॥

रामोऽपि यन्धुभिः पौरैः सुहृद्भिः पार्ष्णीचर्मैः । चकार भोजनं भूरिकीर्तेः सज्जनि वै मुदा ॥ ११ ॥

एवं सीताऽपि नारीभिश्चकार भोजनं तदा । भूरिकीर्तेः स्नुषाभिः सा प्रायिता वंदिता मुहुः ॥ १२ ॥

ततो नानासमुत्साहान् भूरिकीर्तिश्चकार सः । अथ तौ बालकौ रम्यौ स्त्रोवाक्यैर्मतुसम्बिधौ ॥ १३ ॥

स्वश्चभूषाभिधौ चापि स्त्रीभिः सर्वत्र वेष्टितौ । स्वस्वयत्न्याः पदयोः शिरोभ्यां नमनं मुहुः ॥ १४ ॥

श्रीरामदास कहते हैं—सीता, राम, गिरिजा, शिव, गणेश, नन्दी, स्वामिकांतिकेय, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, ब्रह्मा, ममस्ता कृषि, देवता, दैत्य, सारे तोर्य, नदी, दिक्पाल, चन्द्रमा, सूर्य एवं हनुमान्जी । सय आप लोगोंका कहनाय करे ॥ १ ॥ वही लगन है, वही मदिन है और तारावल तथा चन्द्रवल भी वही है, जिसमें कि सीतापति रामचन्द्रजीका स्मरण किया जाय ॥ २ ॥ अनेक प्रकारके वाजोंके साथ तरह मंगल-धोष करनेके अनन्तर “अभ्युष्ण्याहम्” ऐसा उच्चारण करते हुए वसिष्ठजीने अन्तःपटको दूर कर दिया ॥ ३ ॥ विधिपूर्वक ध्वनादि कृत्यके साथ-साथ दोनों वर-वधुओंके पाणिग्रहण-संस्कार किये ॥ ४ ॥ उस समय मण्डपमें महावाद्यधोष हुए, वेण्याएँ नाचों, मागध और नन्दीजनको स्तुतिपाठ हुए और गाने गाये गये । उस समय दोनों राजाओं । राम और भूरिकीर्ति) ने अनेक प्रकारके दान दिये ॥ ५ ॥ ६ ॥ दोनों सम्बन्धी उस समय बड़े आनन्दित थे । तदनन्तर दोनों अपनी-अपनी स्त्रीको कमरपर बिठलाकर सीता-सीतलादिकोंके साथ भोजनहाला गये । वहाँ उन्होंने शिव-पार्वतीकी पूजा और अग्रसिचन-विधि सम्पन्न की ॥ ७ ॥ ८ ॥ तब सब स्त्रियोंसे वेष्टित चम्पिकाके साथ बैठकर कुशने और सुमतिके साथ लवने भोजन किया ॥ ९ ॥ क्योंकि शास्त्रका कहना कि उपनयनसंस्कारमें माताके एवं विवाहमें अपनी स्त्रीके साथ बैठकर वर भोजन करे और किसीके सह नहों । यदि किसी औरके साथ भोजन करे तो तद् वसित कहा जाता है ॥ १० ॥ उधर राम भी अपने भाइयों, पुरवासियों, सम्बन्धियों और राजाओंके साथ महाराज भूरिकीर्तिके भवनमें गये और वहाँ भोजन किया ॥ ११ ॥ उसी तरह सीताने भी स्त्रियोंके साथ भूरिकीर्तिकी वधुओंके प्रार्थना करनेपर वहाँ भोजन किया ॥ १२ ॥ इसके पश्चात् राजा भूरिकीर्तिने विविध प्रकारके

चक्रतुस्तोषसंपूर्णौ ते तवापि स्मितानन । बभूवराश्च ते सर्वे निशापीता विरेजिरे ॥१५॥
 कुंकुमांकितपादौ ते ददतुर्वल्लभाङ्गयोः । एवं नानासमुत्साहैर्गतिकांतं दिनप्रथमम् ॥१६॥
 चतुर्थे दिक्से रात्रौ वंशपात्रविराजितैः । दार्पणीगजिनौ चोभौ बालकौ तौ विरेजतुः ॥१७॥
 ततस्तौ बालकौ पत्न्यौ स्वस्वपृष्ठे निवेद्य च । चक्रतुम्नाडवं नृत्यं कुशलौ मण्डपांगणे ॥१८॥
 मातृश्वभ्रादिकास्तु पश्यत्सु च समादभ्यम् । पारिवर्ह भूरिकीर्तिः कुशाय च लवाय च ॥१९॥
 ददौ तुष्टमनाः शीघ्रं रामसम्बन्धहर्षितः । नियुतान्वारणेन्द्रांश्च शिषिकाश्चापि तन्मिताः ॥२०॥
 तुरंगान्यश्चनियुतं नियुतान्यन्दनानन्ददौ । द्वाभ्यां पृथक् पृथक् पौत्रीधवाभ्यां द्रव्यपूरितान् ॥२१॥
 नानालङ्कारवासांसि मा दासीः सेवकांस्तथा । ददौ नाभ्यां भूरिकीर्तियेषां संख्या न विद्यते ॥२२॥
 एवं सम्मानितस्तेन श्रीरामो भूरिकीर्तिना । सपत्नीकाम्यां पुत्राभ्यां गजस्थाभ्यां समन्वितः ॥२३॥
 सीतया बंधुभिः पौरैः सुहृद्भिर्भ्रातृभिर्नृपैः । पूर्ववदनुसवाद्यैश्च स ययौ स्वीयमण्डपम् ॥२४॥
 बटपुर्यां ततो रामो मासमेकं निनाय सः । चकार सीतया क्रीडां नौकासंस्थौ महोदधौ ॥२५॥
 ततः स्नुषाभ्यां श्रीरामो ययौ निजपुरीं सुखम् । अयोध्यायां विजयोऽपि श्रुत्वा रामं समागतम् ॥२६॥
 यः पुर्यां रक्षणार्थं हि रामेणाज्ञापितः पुरा । स पुरीं लोभयामास पताकाध्वजतोरणौ ॥२७॥
 वारणेन्द्रं पुरस्कृत्य नृपेनृत्यपुरःसरम् । विजयो राममाचिवो रामं प्रन्वुद्ययौ जवात् ॥२८॥
 अथो नदत्तु वाद्येषु रामो बालैः सुहृज्जनैः । स्नुषाभ्यां सीतया बंधुपत्नीभिर्भ्रातृभिः पुरीम् ॥२९॥
 विधेश सेनया पौरैः पश्यन्मृग्यादिकं शयि । तदा घेद्यः ननृतुस्तुष्टुर्वर्चस्विमागधाः ॥३०॥
 स्वस्वपत्नीपुतौ बालौ वरवाग्मयोः स्थितौ । तदा विरेजतुर्मगिं स्त्रीभिः पुष्पैः स्रवर्षितौ ॥३१॥

किये । उन दोनों बालकोंने निजघोके कहतेसे माताके पास बैठ तथा अपनी सास आदिसे वैष्ट होकर अपनी-अपनी स्थितियोंकी वन्दना की ॥ १५ ॥ १४ ॥ उस समय वे वर-वधू अतिशय होकर मन्द-मन्द मुसका रहे थे । रातके गीले प्रकाशमें वे बड़े सुन्दर दीखते थे ॥ १५ ॥ इसके बाद उन दोनों बहुओंने कुमकुम-के रंगे हुए अपने चरण पतिके गोदमें रख दिये । इस तरह नाना प्रकारके उत्सवोंके साथ तान दिन बीते ॥ १६ ॥ सोथे दिन रात्रिके समय दांतके बने पात्रोंमें दीपक रखकर लव कुशकी आरती की गयी । उस समय भी उनकी सुन्दरता देखने ही योग्य थी ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर वे दोनों बालक अपनी-अपनी स्त्रीको पीठ-पर बिठाकर ताण्डव नृत्य करने लगे ॥ १८ ॥ माता-ताम आदि शिष्ये मण्डपमें बैठी यह कौतुक देख रही थीं । नजारज भूरिकीर्तिने ॥१९॥ दोनों जामाताओंको खूब दहेज आदि भी दिये ॥ १९ ॥ रामके सम्बन्धसे श्रुत होकर उन्होंने उन्हें एक लाख रुपये, दत्तनी ही पालकियाँ, पाँच लाख घोड़े, एक लाख रथ, अस्त्र-जन्तु इतनी ही संख्याकी चीजे द्रव्यसे भरकर दोनों वर-वधूओंको दी ॥ २० ॥ २१ ॥ इनके सिवाय विविध प्रकारके अलंकार, वस्त्र, गाने, दासी, दास आदि तो इतने दिये कि जिनकी गिनती सम्भव नहीं थी ॥ २२ ॥ भूरिकीर्तिसे ॥ प्रकार सम्मानित होकर श्रीरामचन्द्र स्त्री समेत दोनों पुत्रोंके साथ हाथीपर सवार होकर रक्षा, भ्राताओं, पुरवासियों, नातेदारों तथा राजाओंको साथ लिये हुए पूर्ववत् उत्साहके साथ अपने मण्डप-में आये ॥ २३ ॥ २४ ॥ इसके अनन्तर रामने उस बटपुरीमें एक मास बिताया । वहाँ वे कभी कभी नौकापर बेजबर संताके साथ समुद्रकी सैर करते थे ॥ २५ ॥ इसके बाद उन्होंने दोनों पतोहुओंके साथ आनन्दपूर्वक कानन पुरीकी प्रस्थान किया । उधर अयोध्यामें जब विजयने, जिसकी राम नगरीकी रक्षाके लिए छोड़ आये थे, उनके आगमनकी बात सुनी तो उसने ध्वजा-पताका-तोरण आदिसे नगरीको खूब सजाया ॥ २६ ॥ २७ ॥ वह बैठ हाथीको आगे करके रामका मन्त्री विजय रामकी अगवानां करने जा पहुँचा ॥ २८ ॥ इसके अनन्तर जब कि विविध प्रकारके वाजे बज रहे थे तब राम अपने पुत्रों, सुहृज्जनों, पतोहुओं, सेना, पुरवासियों तथा राजाओंके साथ पुरीमें प्रविष्ट हुए ॥ २९ ॥ उस समय वैश्यामें नाच रही थीं और भागध तथा बन्दीजन झुले कर रहे थे ॥ ३० ॥ अपनी-अपनी पत्नीके साथ दोनों बालक (कुश और लव) हाथीपर बैठे हुए

एवं रामो गृहं गत्वा बालाभ्यां स्वीयमग्रानि । कारयित्वा स्मार्च्य स ददौ दानान्यनेकशः ॥३२॥
 तदाऽलंकारवस्त्राद्यैः संपूज्य रघुनन्दनः । मुहदः सकलान्पौगानिष्ठान् जानपदाश्रुपान् ॥३३॥
 आचोडालादिकान्सर्वान् संतुष्टान्करोन्मुदा । ततः त भूरिकीर्तेस्तान् मंत्रिणः सैन्यमंपुतान् ॥३४॥
 सम्पूज्य प्रेषयामास स्वदेशं रघुनन्दनः । ततः सर्वान् जानपदान् मुहदश्च प्लवंगमान् ॥३५॥
 विभीषणादिकोश्चातां संतुं स्वस्वस्थलं ददौ । ततः सर्वे राघवं ते वस्त्राभरणवाहनैः ॥३६॥
 स्वस्वकीशैश्च संपूज्य नन्या गमं ययुर्मुदा । स्वं स्वं देश निजैः सैन्यैः आगमेणातिपानिताः ॥३७॥
 अथ रामास्तुपाभ्यां च पुत्राभ्यां वन्धुभिःस्त्रिया । गुप्तं चकार राज्यं स धर्मेणाप्रतिभं चिरम् ॥३८॥
 ततः श्रावणमासस्य दर्शमासस्य शोडशः । प्राप्तान्यस्यै यानि पानि समुत्साहदिनानि हि ॥३९॥
 तेषु सर्वेषु तं रामं मातंगेभ्य मवालकम् । स्वपुर्णं भूरिकीर्तिः स निनाय परमादगम् ॥४०॥
 पूजयामास विधिवदस्त्रालंकारवाहनैः । कियद्दिनानि संख्याप्य ददाधार्ता पुनः पुनः ॥४१॥
 संवत्सरसमुत्साहदिनानि शोडशाधुना । विष्णुदास मया तेऽग्रे कथ्यन्ते तानि त्रै मृणु ॥४२॥
 श्रावणस्याथ मासस्य कृद्ः श्रेष्ठा प्रकीर्तिता । भाद्रपदशुक्लचतुर्थी तु विजया दशमी तथा पुनः ॥४३॥
 दीपायनस्याश्च चत्वारि दिनान्यतिमहानि च । मार्गशीर्षे पंचमा च मिता पक्षी तथा पुनः ॥४४॥
 संक्रान्तिर्मकराख्या तु तथा च रथसप्तमी । हुताश्वी चैश्वर्यलपटिचवर्षे पुण्यदा ॥४५॥
 अश्वयुजाख्या तृतीया च तथा वै ज्येष्ठपौर्णिमा । पंचमी श्रावणे शुक्ला पौडशैव स्मृतानि हि ॥४६॥
 संवत्सरसमुत्साहदिनान्यतिमहानि च । एतेषु भूरिकीर्तिः स रामं नीत्वा प्रपूजयत् ॥४७॥
 एवं कुक्षस्य च तथा लवस्यापि सविस्तारम् । विवाहो रणिर्नो शिष्य यथा पृथे श्रुतौ मया ॥४८॥
 यदा श्रीगमचन्द्रस्य वैकुण्ठरोहणं शुभम् । भविष्यति तदाऽशोभ्यापुर्वं त्रै सरयुजले ॥४९॥

सुशोभित हो रहे थे और मार्गषे नगरकी महिमासे उसपर फूल बरसा रहा था ॥ ३१ ॥ इस तरह बड़े उत्साहके साथ वे अपने राजभवनमें पहुँच । वहाँ उन्होंने दोनों चर्चोकि हाथों लक्ष्मीका पूजन कराया और अनेक तरहके दान दिये ॥ ३२ ॥ उस समय रामने अपने सम्बन्धियों, समस्त पुरवासियों, मित्रों, जन-पदवासियों और राजाओंसे लेकर साधारण धोनीवाले चाण्डालों तकका नाना प्रकारके वस्त्रों और आभूषणोंसे सम्कार करके सबको प्रसन्न किया । इसके पश्चात् महाराज भूरिकीर्तिके मंत्रियों तथा सेनाकी पूजा करके उन्हें विदा किया । इसके बाद जनपदवासियों, सम्बन्धियों, वानरों तथा विभीषण आदि मित्रोंका वस्त्र, सूपण, वाहनदिके दानसे सम्मानित करके अपने-अपने नगरको जानेकी आज्ञा दी ॥ ३३-३६ ॥ इस प्रकार रामके आदेश-सम्कारका स्वाकार करके उन लोगोंने भी अपने-अपने रामकी पूजा की और अपने-अपने देशको लीटे ॥ ३७ ॥ इसके बाद राम सीता पुत्रों एवं पुत्रवधुओंके साथ रहते हुए बहुत दिनों तक धर्मानु-कूल राज्य करते रहे ॥ ३८ ॥ तदनन्तर श्रावणकी अमावास्यासे लेकर वर्षमें सोलह बड़े-बड़े त्योहारों और उत्साहके दिनोंसे महाराज भूरिकीर्ति अलग-अलग समेत रामकी अपने यहाँ सादर बुलाते थे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ वहाँ पहुँचनेपर वे अस्त्र-अलंकारादि समर्पण करके रामकी पूजा करते थे । कुछ दिन राम वहाँ रहकर फिर अयोध्या गये आते और बुलावा आनेपर फिर पहुँच जाया करते थे ॥ ४१ ॥ हे शिष्यगुदास ! मैं तुम्हें वर्षके उन सोलह दिनोंकी बतलाता हूँ जिनकी पचास अभों की हैं, उन्हें तुम लो ॥ ४२ ॥ श्रावण मासकी अमावस्या, भाद्रपद शुक्लपक्षकी चतुर्थी, कुवारकी विजया दशमी ॥ ४३ ॥ और दीपायनके आगे-पीछेवाले चार दिन बड़े महत्त्वके होते हैं ॥ ४४ ॥ मार्गशीर्षके शुक्लपक्षकी पंचमी तथा पक्षा, मकरकी संक्रान्ति, रथसप्तमी और चैत्र शुक्लकी हुताश्वी प्रतिपदा भी वहाँ पवित्र तिथि होती है ॥ ४५ ॥ अथवा तृतीया, ज्येष्ठकी पूर्णिमा और श्रावणके शुक्लपक्षकी मागपंचमी ये वर्षके सोलह दिन उत्तम हैं ॥ ४६ ॥ ये ही संवत्सरके बड़े-बड़े उत्साहदिवस माने गये हैं । इन्हीं दिनों भूरिकीर्ति सपरिवार रामकी अपने यहाँ बुलाकर पूजन करते थे ॥ ४७ ॥ हे शिष्य ! जैसा कि मैंने आजके बहुत दिनों पहले कुक्ष तथा लवका विवाह-वृत्तान्त सुना था, उसी तरह वर्णन किया ॥ ४८ ॥ इसके

कुशः स्त्रिया चंपिकया जलक्रीडां करिष्यति । तस्य दक्षिणहस्तस्य कंकणं रुक्मनिर्मितम् ॥५०॥
 सरयुजलमध्ये तु पतिष्यति महोज्ज्वलम् । तत्र तोये कुमुदस्य वषगस्य कुमुदती ॥५१॥
 स्वसा दृष्ट्वा कंकणं तनूगृहीत्वा सन्नयास्यति । कुशोऽपि कंकणार्थं हि वाणं सन्धारयिष्यति ॥५२॥
 सरयुशोषणार्थं हि संनद्धश्च भविष्यति । ततः सा कुमुदं गत्वा सरयुः प्रार्थयिष्यति ॥५३॥
 सोऽपि दृष्ट्वा कुशं कुदं स्वसम्पादाय सादरम् । कुशमागत्य तं नत्वा स्वमां तस्मै प्रदास्यति ॥५४॥
 रत्नानि कंकणं दत्त्वा तेन सरयुं करिष्यति । एवं कुमुदतीभार्याऽग्रे तस्यान्या भविष्यति ॥५५॥
 तस्यां कुशात्सुतनयोऽतिथिर्नाम्ना भविष्यति । चंपिकायां दूहितरः संभविष्यन्ति नो सुताः ॥५६॥
 जतियेः सूर्यवंशोऽग्रे चिरं विस्तारयेष्यति । एवं कुशस्य द्वे पत्न्यौ वर्णिते शिष्य वै मया ॥५७॥
 अथ स्त्रीयगृहे पत्न्याऽकरोत्क्रीडां कुशः सुखम् । तथा स्त्रीयगृहे पत्न्याऽकरोत्क्रीडां लज्जोऽपि च ॥५८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विवाहकाण्डे
 कुशलमयोविवाहवर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

(रामका गन्धर्वकन्याओं और नागकन्याओंको जलदेवीके वंजसे छुड़ाना)

श्रीरामदास उवाच

एकदा रघुवीरः स सीतया बालबधुभिः । पौर्मन्त्रिजनैरिष्टैः पुष्पकस्यो ययौ वनम् ॥ १ ॥
 पश्यमानाकौतुकानि रंजयन् जानकीं मुदा । ययौ स दंडकारण्यमगस्तेराश्रमान्तिकम् ॥ २ ॥
 रामभाजनमाकर्ष्य कुम्भजन्मा मुनीश्वरः । प्रत्युद्गम्य रघुश्रेष्ठं निनाय स्वाश्रमं प्रति ॥ ३ ॥
 ततः स मुनिवर्यस्तु स्नात्वा रहति संस्थितः । अन्नपूर्णं महालक्ष्मीं चितयामास चेतयि ॥ ४ ॥

भागो जब कि रामचन्द्रजाका वैकुण्ठारोहण हो जायगा । तब एक समय अयोध्यापुरीके सरयुजलमें कुश अपनी स्त्री चम्पिकाके साथ जलक्रीडा करते रहेंगे । उसी समय कुशके दाहिने हाथका सुवर्णकंकण जलमें गिर पड़ेगा । उस जगमें कुमुद नामक सर्परी बहिन कुमुदती उस कंकणको लेकर घर चली जायगी और कुश अपने कंकणके लिए बहुतपर डाग बहायगे ॥ ४९-५२ ॥ इस प्रकार क्रुद्ध कुश सूर्यको सुखा देना चाहेंगे । इसपर सरयु कुमुदके पास जाकर प्रार्थना करेगी ॥ ५३ ॥ कुमुद भी सरयुके कथनानुसार कुशकी क्रुपित देखकर उनके पास आवेगा और उन्हें प्रणाम करके अपनी दाहिने कुमुदती कुशको दे देगा और बहुतसे रत्न तथा वह सोया हुआ कंकण देकर कुशसे मित्रता कर लेगा । इस तरह कुछ समय बाद कुशकी कुमुदती नामकी एक दूसरी भार्या भी होगी ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ उससे कुशका सुन्दर पुत्र अतिथि होगा । चम्पिकासे कन्याएँ ही होगी, पुत्र नहीं होंगे ॥ ५६ ॥ भागे चम्पिकर उसी अतिथिसे सूर्यवंशका विस्तार होगा । हे शिष्य ! इस प्रकार मैंने कुशकी दोनों पत्नियोंकी कथा कह सुनायी ॥ ५७ ॥ यह सब हो जानेपर कुश अपनी स्त्री चम्पिका तथा लज्ज सुमतिके साथ आनन्दपूर्वक जीवनयापन करेंगे ॥ ५८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पञ्चमोऽयमगस्त्यजगत्प्रवृत्तिर्भाषाटीकासहिते विवाहकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीरामदास बोले—एक बार रामचन्द्रजी बालबधुओं, पुरवासियों, मन्त्रियों तथा इन्द्रजनोंके साथ पुनर्वविमामथर बैठकर अनेक प्रकारके कौतुक देखते और सीताको प्रसन्न करते हुए वनमें गये । वहाँ दण्डकारण्यमें अगस्त्य ऋषिके आश्रमपर जा पहुँचे ॥ १ ॥ २ ॥ जब कि अगस्त्यजीको रामके जानेका समाचार मिला तो अगस्त्यजीके लिए स्वयं गये और उन्हें आदरपूर्वक अपने आश्रममें ले आये ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर स्नान करके अगस्त्यजी एकान्तमें बैठ पीर मन हो मन महालक्ष्मी अन्नपूर्णका ध्यान किया ॥ ४ ॥

तदा तत्पथमा तुष्टाऽऽविर्बभूव सुरेश्वरी । ददी तस्मै पापसेन पूरितं पात्रमुत्तमम् ॥ ५ ॥
 अन्नपूर्णा मुनिं प्राह स्थाल्यास्तु विविधानि हि । पद्याब्जानि यथेष्टानि निष्कारय तव भामिनी ॥ ६ ॥
 सर्वेषामग्रतः शीघ्रं करोतु परिवेषणम् । इत्युक्त्वा साऽन्नपूर्णा तं मुनिमन्तर्दधे तदा ॥ ७ ॥
 लोणमुद्रा मुनेः पत्नी स्थाल्या निष्कारय वेगतः । दिव्यान्जानि विचित्राणि सर्वेषां पुरतस्तदा ॥ ८ ॥
 समर्चितानां विप्राणां चकार परिवेषणम् । अथ तुष्टं रघुश्रेष्ठ फंकणे रत्ननिर्मिते ॥ ९ ॥
 ददी मुदा कुम्भजन्मा सीतायै दिव्यकुडले । एवं संपूजितस्तेन मुनिना रघुनन्दनः ॥ १० ॥
 सहितोऽगस्तिना स्थिव्या पुष्पके पूर्ववत्पुनः । पश्यन्ती दण्डकारण्ये कीतुकानि ममंतवः ॥ ११ ॥
 विचकार रघुश्रेष्ठो दर्शयाभास मैथिलीम् । नानावृक्षान्पर्वताश्च नदीः पश्चिकुलान्मृगान् ॥ १२ ॥
 पञ्चाप्सरसरो नाम ददर्शामो भ्रमन् सरः । तप्तटे राघवो राज्ञौ निवासमकरोन्मुदा ॥ १३ ॥
 एतस्मिन्नंतरे रात्री नृत्यमप्सरसां शुभम् । शुश्राव मधुरं गीतं सीतया मंचके प्रभुः ॥ १४ ॥
 तेषां सर्वे शुश्रूवुस्तन्मृत्यं गीतं च सुस्वरम् । अद्भुताऽप्सरसस्तत्र तदा स रघुनन्दनः ॥ १५ ॥
 पप्रच्छ कुम्भजन्मानं गीतं नृत्यं कुतस्त्विदम् । श्रूयते मुनिगार्हूल वदस्व त्वं तद्विस्तरम् ॥ १६ ॥
 इति राघवचः श्रुत्वा तमर्गास्तर्वचोऽब्रवीत् । राम राज्ञोवपश्चाद्य किं त्वं वेत्सि न वै त्विदम् ॥ १७ ॥
 सर्वानेतान्मन्मृतेन धृतं आवयितुं मुदा । चेन्मां पृच्छसि तर्ह्यद्य तवाग्रे प्रवदाम्यहम् ॥ १८ ॥
 भुग गन्धर्वराजस्य पुत्र्यः पंच मनोरमाः । आजस्का मुदा कीडां चकार सरोवरे ॥ १९ ॥
 एतस्मिन्नंतरे राम नागकन्याः सरोवरात् । कीडार्थं निर्ययुः सम वहिरग्रभयौवनाः ॥ २० ॥
 तासां परस्परं मैत्री बभूव रघुनन्दन । तत्र ता नागकन्याश्च तथा गन्धर्वकन्यकाः ॥ २१ ॥
 यातायातं सदा चक्रुः कीडार्थं मग्नस्तटे । तपसा मुनिना तत्र मृदुर्वाक्यैर्निवारिताः ॥ २२ ॥

उसी उन्की तपस्यासे प्रसन्न होकर देवताओंकी भी अविष्टाकी देवी अन्नपूर्णा प्रकट हो गयीं । उन्होंने अगस्त्यजीको श्रीरक्षे भरा एक पात्र दिया ॥ ५ ॥ और कहा कि इस बटलोईमेंसे विविध प्रकारके एकद्वान निकाल-
 निकालकर तुम्हारी स्त्री सबके आगे परोस दे । इतना कहकर अन्नपूर्णा अन्तर्धान हो गयीं ॥ ६ ॥ ७ ॥ इसके अनन्तर जब कि अगस्त्यजीने साधियों तथा विग्रहों समेत रामकी पूजा कर ली, तब अगस्त्यजीकी पत्नी लोणामुद्राने उसी पात्रमेंसे एकद्वान निकाल-निकालकर सबके आगे परोस दिया । भोजनोपरान्त प्रगल्भ मनवासे रामको अगस्त्यने एक जोड़ी कुङ्कुण और सीताको कुण्डल दिये ॥ ८-१० ॥ इस प्रकार अगस्त्यसे सत्कृत होकर राम अगस्त्यको अपने साथ लिये सबके साथ पृथक् विमानपर जा बैठे और दण्डकारण्यमें चारों ओर विविध प्रकारके कीतुक देखते हुए इबर-उपर घूमने लगे ॥ ११ ॥ १२ ॥ रास्तेमें नाना प्रकारके वृक्ष, पर्वत, नदी, पत्नी आदि सीताका दिखाते हुए वे पंचाप्सर नामक सरोवरपर पहुँच और वहाँपर रामने रात्रिभर निवास किया ॥ १३ ॥ रात्रिके अन्त में जब कि राम सीताके साथ अपनी शय्यापर सोये थे, तब उन्हें मोठे-मोठे शीत और नृत्यकी ध्वनि सुन पड़ी ॥ १४ ॥ उनके सिवाय रामके साथवालोंने भी वह सुस्वर ध्वनि सुनी, किन्तु अप्सरायें नहीं दीख पड़ीं । तब रामने अगस्त्यसे पूछा-हे मुनिश्रेष्ठ ! आप मुझे यह बतलाइए कि नृत्य-गानकी ध्वनि कहाँसे जाती सुनायी दे रही है, सो विस्तरपूर्वक हमें बतलाइए ॥ १५ ॥ १६ ॥ रामकी बात सुनकर महर्षि अगस्त्यने कहा-हे राजीवलोचन राम ! क्या आप यह वृत्तान्त नहीं जानते ? ॥ १७ ॥ अच्छा, यदि हमीसे कहलाना चाहते हैं तो मैं आपको सुना रहा हूँ ॥ १८ ॥ आजसे बहुत दिनों पहले गन्धर्वराजकी पाँच सुन्दरी कन्यायें, जिनका कि रजोघर्म भी नहीं हुआ था, आनन्दपूर्वक इस सरोवरमें जलक्रीड़ा किया करती थीं ॥ १९ ॥ हे राम ! उसी समय एक बार उस सरोवरसे सात नाग-कन्यायें भी जलक्रीड़ा करनेकी निकलीं । उनको भी वात्स्यावस्था थी और यौवनका रंग अभी नहीं बढ़ा था ॥ २० ॥ तदनन्तर उन गन्धर्वकन्याओं और नागकन्याओंमें परस्पर प्रियता हो गयी और वे नित्य उस सरो-
 वरमें जलक्रीड़ा करनेकी आने-जाने लगीं । उसी सरोवरपर तपस्या करते हुए एक तपस्वीने उनको कई बार

माऽऽगच्छध्वं मन्त्रिकटे चेति वा बालभावनः । अना-यन्वस्तद्वाक्यं समाजग्मुनिरन्तरम् ॥२३॥
 इन्द्रेण बोधिताश्चापि तच्चपोष्यसमं प्रति । मुनिश्चापि तपोनाशं दृष्ट्वा आशादिना तदा ॥२४॥
 विना क्षापेन तासां स दण्डं मम्मन्त्रचद्वृद्धि । भान्मन्त्रवर्गोऽख्येण जलदेवीः प्रचोदयत् ॥२५॥
 तद्वाक्याजलदेव्यस्ता मध्याह्ने स्वीयमन्दिरम् । निन्वुधुन्वा बलादेव यत्र केषां गतिर्न हि ॥२६॥
 गंधर्वाः पन्नगा यत्र गतुं शक्ता न चामवन् । तयोऽन्ते न मुनिः स्वर्गं गतस्ता ह्यत्र सस्थिताः ॥२७॥
 ताः सर्वा जलदेवीनां मेहे सन्वधुना प्रभो । हृदं वृत्तमाधुनिकं विद्धि राम स्मयप्रदम् ॥२८॥
 ता ह्यत्र जलदेवीनां जलांनमनसवनि । कुर्वन्ति नृत्यगीतानि तासां संश्रूयते ध्वनिः ॥२९॥
 एवं राम यथा पृष्टं त्वया सर्वं मया तथा । वृत्तं त्वग्रे कथितं कुरु येन गतं भवेत् ॥३०॥
 सर्वासां नागकन्यानां गान्धर्वीणां तथा विभो । मुनिना चोदितध्वन्यं तदा सीतापतिर्मुदा ॥३१॥
 लक्ष्मणं प्राह मे चापमानयाद्य क्षणादिह । मुक्त्वा शरणं मोक्षयामि दग्ध्या देवीजलस्थिताः ॥३२॥
 कन्यकाः पन्नगानां च तथा गंधर्वकन्यकाः । इति तद्वाक्यं श्रुत्वा सीमित्रिरादरात् ॥३३॥
 शीघ्रं चापं सत्तूणीरं ददौ आरायचं प्रति । ततः कोदण्डमुग्रस्य टणत्कृत्य रघूद्वहः ॥३४॥
 शरं जग्राह तूणीरं निजशामाहितं शितम् । तदा चंचाल धरणा चुचुभुः सप्त सागराः ॥३५॥
 ववी घोरतरो वायु रजोव्यासा दिशोऽभवन् । तारा निपेतुर्धरणी द्रुतवुर्बनचारिणः ॥३६॥
 पर्वताः कापता आसन् यवपुलांहितं घनाः । तज्जान्वा जलदेव्यस्ताः श्रुत्वा चापध्वनिं महत् ॥३७॥
 भयभीताः समाजग्मुस्ताभिः सर्वाभिरादरात् । प्रणमस्तास्तदा रामं बालिकास्तास्तु द्वादश ॥३८॥
 राघवायापयामासुर्दिव्यभूषणभूषिताः । राघवं जलदेव्यस्ताः प्राथयामासुरादरात् ॥३९॥
 राम राम महाबाहोऽस्माभिरुदपराधितम् । तत्समस्व रघुश्रेष्ठ मा मुञ्च स्वपतत्रिणम् ॥४०॥

शोककर कहा-॥ २१ ॥ २२ ॥ यही मेरे पास । तुम लोग मत छोड़ करो । किन्तु बालभावसे मुग्ध वे कन्याएँ श्रमिली बात न मानती । दृढ़ निराशा के साथ रही । इन्द्रेण भावपिका तपोभंग करमेके लिए कन्याओंको उभाड़ दिया था । अब श्रमिले अपने मनमें विचार किया कि जाफादि देकर इन्हें दण्ड देनेसे अपनी तपस्या क्षीण होगी । इसी लिए ऐसा मार्ग निकाला । बाहिए का मतसे इन्हें विना शापके दण्ड मिल जाय । जलदेवियों उन कन्याओंको पकड़कर हृदय जलित कर ली गयी । जहाँ कि गन्धर्वों तथा पन्नगोंकी भी गति नहीं थी । श्रमणों तपस्या पूर्ण करके श्रमिली । स्वर्गकी चले गये, किन्तु वे कन्याएँ इस सरोवरमें जलदेवियोंके पास अब भी विद्यमान हैं ॥ २३-२४ ॥ हे राम ! यह एक आश्चर्यमयी घटना घट गयी थी । वे ही गंधर्वों और पन्नगोंकी कन्याएँ जलदेवियोंके घरमें नाच रही हैं, उन्हींके गानकी धुर ध्वनि सुनायी देती है ॥ २५ ॥ २६ ॥ हे राम ! आपने जैसा पूछा, मैंने कह चुका था । अब आप ऐसा करिए कि जिससे उन कन्याओंका कल्याण हो । इस प्रकार जलदेवियोंकी प्रेरणामें रामने लक्ष्मणसे कहा-हे लक्ष्मण ! मेरा धनुष तो ले आलो । लक्ष्मण ने उन गंधर्वों और नार्गोंकी कन्याओंको जलदेवियोंके पंजेसे छुड़ा देगा । इस तरह रामकी बात सुनकर लक्ष्मणने तुरन्त आरतपूजके तूणीर तथा धनुष लाकर रामकी दे दिया । इसके अनंतर रामने धनुष उठाकर टंकीर किया ॥ ३०-३४ ॥ तुरन्ततर उन्हींने राक्षसमें प्रतिरोधन काण निकाला, जिसपर रामका नाम लिखा हुआ था । इससे पृथ्वी जगमगाने लगी और सातों समुद्रोंमें प्रलयह्वर लहरें उठने लगी ॥ ३५ ॥ ज़ोरोंसे वायु चलने लगी, इसी दिशासे धूलसे भर गयी, तारे टूट-टूटकर गिरने लगे, वनसे जोर वन छोड़कर भागने लगे, संसारका पर्वत-वृन्द काँपने लगा और मेघमण्डल हविर्मयी वर्षा करने लगा । उस सरोवरकी जलदेवियाँ धनुषका घनघोर टंकीर सुनकर भयभीत हो गयी । वे तुरन्त उन बारहों कन्याओंको अपने साथ लिये बाहर आयीं और प्रणाम करके दिव्य अलंकारोंसे विभूषित उन कन्याओंको उन्हींने रामकी सौच दिया ॥ ३६-३९ ॥ अब प्रकार स्तुति करने लगी । उन्हींने कहा-हे महाबाहो राम ! हमने जो अपराध किया है, सो आप क्षमा

न कश्चित्स्वयं शोभूत्स्त्रीषु शस्त्रप्रहारकः । तस्याऽपि रक्षिता पूर्वं स्त्रीत्वाद्भूर्जाह्वीतटे ॥४१॥
 यदाऽनया तु क्षपयः कुतो मैथिलकन्यया । तादृकादिराश्वसोऽपु यत्कृतं बाणमोचनम् ॥४२॥
 मल्लघ्नीषु त्वया पूर्वं तत्सर्वेषां दिनाय च । इति तासां वचः श्रुत्वा विहस्य रघुनन्दनः ॥४३॥
 स्थापयामास नृणीरे पूर्ववत् स्वमार्गणम् । तनस्तामिः पूजितः ॥ तदा दृष्टो रघूत्तमः ॥४४॥
 जलदेवीर्ददावाहां स्वस्थलं गम्यतामिति । एतस्मिन्नन्तरे तत्र गंधर्वाश्चाथ पन्नगाः ॥४५॥
 भिवित्वा सकल रामकृतं रामांतिकं ययुः । नत्वा रामं ममोत्तं च तथा तं कुम्भसंभवम् ॥४६॥
 उपायनान्यनेकानि समर्थं रघुनन्दनम् । ऊचुस्ते मञ्जुल वाक्यं प्रषट्ठकरसंपुटाः ॥४७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विवाहकाण्डे

जलदेवीजोवदानं बालिकामोचनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः

(गन्धर्वों तथा नागोंकी वारह कन्याओंका लक्ष्मणादिके पुत्रोंके साथ विवाह होनेका निश्चय)

गन्धर्वपन्नगा ऊचुः

राम कंजानन स्वामिन्मोचिता बालिकास्त्वया । विवाहानरजस्कानां पुत्रैस्त्वं कर्तुमर्हसि ॥ १ ॥
 अथ ॥ १ ॥ वयं सर्वे ॥ कुलं पावनं कृतम् । त्वया राम महाबाहो तारिताः स्मो वयं प्रभो ॥ २ ॥
 सप्तजन्मसु यत्पुण्यं कृतमस्ति रघूदह । अस्माभिस्तेन सम्बन्धस्त्वयाऽद्य भवतु प्रभो ॥ ३ ॥

श्रीरामदास उवाच

इति तेषां वचः श्रुत्वा सीतया स रघूदहः । अङ्गीकृत्य वचस्तेषामगस्तिमत्रलोकयत् ॥ ४ ॥
 तदा प्राह कुम्भजन्मा राघवं वचनं मुनिः । रामान्याग्रे कुमुदस्य स्वया नाम्ना कुमुदती ॥ ५ ॥
 त्वयि प्राप्ते हि वैकुण्ठं कुशपत्नी भविष्यति । चण्डिकायां न तनयो भविष्यति रघूदह ॥ ६ ॥

कर दें । हमपर इन नागोंकी ॥ १ ॥ छोड़िये ॥४०॥ अब तक आपके पूर्वजन्ममें त्रिद्यौवर शस्त्रका प्रहार करने-
 वाला कोई भी नहीं हुआ है । आपने भा उस समय गङ्गाजीके किनारे सीताको लिये जाती हुई पृथ्वीकी इसी
 लिले रक्षा की थी कि ॥ १ ॥ स्त्री थी । इसके सिवाय आपने जो ताड़कापर शस्त्र छोड़ा, उसका कारण यह था कि
 ॥ २ ॥ मल्लघातिनी थी । उसे तो आपने ग्राह्याणोंके कल्याणार्थ मरवाया । उनका ऐसा विनीत बात सुनी तो
 मुस्कुराकर रामने अपने बाणको फिर तरकसमें रख लिया । इसके बाद उन जलदेवियोंसे पूजित रामने
 प्रसन्न होकर उनसे कहा कि अब तुम लोग अपने स्वामीकी जाओ । इसके अनन्तर उन गन्धर्वों और
 पन्नगोंने (जिनकी कन्यायें जलदेवियोंके कन्येमें थीं) अब यह समाचार सुना तो रामके पास आये और
 सीता, राम तथा अगस्त्यकी प्रणाम करके उन्होंने रामकी विविध प्रकारकी भेंटें दीं । तदनन्तर हृष जोड़कर
 इस प्रकार कहने लगे—॥ ४१-४७ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये
 पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

गन्धर्व तथा पन्नगगण कहने लगे—हे कमल सरोज नेत्रवाले राम ! आपने हमारी पुत्रियोंको उन
 अलकन्याओंके हाथसे जैसे छुड़ाया है, उसी तरह अब इनका विवाह भी अपने पुत्रोंके साथ कर लीजिए
 ॥ १ ॥ आज हम अपनेको अन्य समझते हैं । आज हमारा कुल पवित्र हो गया । हे प्रभो ! आपने हमारा
 उद्धार कर दिया ॥ २ ॥ हमने अपने मातृजन्ममें जो पुण्य किया है, उसके प्रतापसे आज हमारा और
 आपका सम्बन्ध हो जाय ॥ ३ ॥ श्रीरामदासने कहा—इस प्रकारकी बातें सुनकर महाराभी सीता और रामने
 उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और अगस्त्यकी ओर निहारने लगे ॥ ४ ॥ अगस्त्यने कहा—हे राम ! जब
 आप वैकुण्ठधामकी चले जायेंगे, कुमुदती कुशकी पत्नी होगी । हे रघूदह ! कुशकी वर्तमान स्त्री चण्डिकाके

कुशात्पुत्रः कुमुदस्यामविधिस्तु भविष्यति । राज्यकर्ता वंशकर्ता स एवाग्रे भविष्यति ॥ ७ ॥
 अतस्त्वमधुना राम नागकन्याः कुशं विना । मम स्वसमपुत्रेभ्यः प्रयच्छ विधिना द्विजैः ॥ ८ ॥
 पञ्चगन्धर्वकन्याश्च यूपकेतुं कुशं लवम् । विना स्वपञ्चपुत्रेभ्यः प्रयच्छ रघुनन्दन ॥ ९ ॥
 राक्षसेन विवाहेन यूपकेतुः शिशुस्ततः । अग्रे पत्नी महानेप कल्पित्यपरां शुभाम् ॥ १० ॥
 एवं रामसुताः सर्वे स्वस्वस्त्रीभ्यां यथामुखम् । क्रोडयिष्यन्ति पौत्रास्तान् भविष्यति प्रपौत्रकाः ॥ ११ ॥
 प्रपौत्रस्य प्रपौत्रं त्वं दृष्ट्वा सीताममन्वितः । मुखं यास्यसि वैकुण्ठं बन्धुभिर्नगरीस्थितैः ॥ १२ ॥
 एवं श्रुत्वा मुनेर्वाक्यमभीकृत्य रघूदहः । नामां नामानि पश्यन् गन्धर्वान्पद्मगानपि ॥ १३ ॥
 तदाऽनवीत्स गन्धर्वः स्वपुत्रीणां सविस्तरात् । नामां नामानि रामाग्रे पञ्चानां सरसस्तटे ॥ १४ ॥
 चन्द्रिका चन्द्रवदना चञ्चला चपला चला । एवं नामानि पञ्चानां क्रमेण रघुनन्दनः ॥ १५ ॥
 श्रुत्वाऽवलोकयामास पद्मगान्तेऽपि चान्नवन् । कञ्जानना कञ्जनेत्रा कञ्जोष्ठी च कलावती ॥ १६ ॥
 कलिका कमला चैव मालती सप्त कोनिताः । एवं नामानि पञ्चानां क्रमेण रघुनन्दनः ॥ १७ ॥
 श्रुत्वा ताः पुष्पके स्थाप्य नैर्निद्रामरुगेन्निशि । अथ प्रभाते श्रीरामः पृत्वा स्नात्वा यथाविधि ॥ १८ ॥
 गन्धर्वपन्नगाश्चैव तदा वचनमब्रवीन् । अभिर्जनेभ्यो माकं विवाहार्थं रसातलम् ॥ १९ ॥
 नैव योऽयं समागन्तुं मन्वलोकनिवासिना । तस्माच्छृणुष्व मद्राक्ष्यं सुहृदः सकलाः शुभम् ॥ २० ॥
 यूयं गत्वा निजस्थानं स्वस्तीभिश्च सुहृज्जनेः । आगत्य विवाहार्थमपोष्यां मे यथासुखम् ॥ २१ ॥
 अधुनाऽहं तु गच्छामि पुनीमग्रे क्षमेन हि । विदायमा विमानेन पताकाञ्चजमालिना ॥ २२ ॥
 तथेति रामवचनात्तं गताः स्वययज्ञानि हि । रामोऽपि धृतिना नाभिर्चालिकाभिः सुतैः स्त्रिया ॥ २३ ॥
 विदायसा पुष्पकस्थो ययौ पश्यन्वचनानि सः । अयोध्यां प्रहरणैव मुदा प्राप रघूदहः ॥ २४ ॥

कोई पुत्र नहीं होगा ॥ ५ ॥ ६ ॥ हां, कुमुदतीसे मुझके अतिथि नामका पुत्र उत्पन्न होगा और वही पुत्र राज्यकर्ता एवं वंशका बहानेवाला होगा । इससे हे राम ! कुशको छोड़कर बाकी सब कुमारोंका विवाह इस कन्याओंके साथ कर दीजिए । इनसे पाँच गन्धर्वकन्याओंकी यूपकेतु तथा कुश-लवके अतिरिक्त पाँच पुत्रोंको दे दीजिए ॥ ७-९ ॥ आगे चलकर पुत्रेणु राक्षसविवाहके प्रसंगसे एक अच्छी स्त्रीके विवाह करेगा ॥ १० ॥ हे राम ! ऐसा करनेसे मय बेटे अपने-अपनी स्त्रियोंके साथ सुखपूर्वक विहार करेंगे । उनके पौत्र-प्रपौत्र आदि भी होंगे ॥ ११ ॥ प्रकार आप अपने प्रपौत्रके प्रपौत्रोंका देखकर सोता अपने बन्धुओं और पुरवाशियोंके साथ वैकुण्ठधामको जायेंगे । इन प्रकार अमरवर्जियोंकी सुनी तो उन्होंने अच्छीकार कर लिया और उन गन्धर्वो-पद्मगानि तथा कन्याओंके नाम पूछने लगे ॥ १२ ॥ १३ ॥ गन्धर्वराज अपनी पाँच कन्याओंका नाम बतलाते हुए बोले—चन्द्रिका, चन्द्रवदना, चञ्चला, चपला और चला ये इनके हैं ॥ १४ ॥ कन्याओंका नाम गूँनकर राम उनकी ओर देखने लगे । फिर पद्मग इस प्रकार अपनी सात कन्याओंके नाम बतलाने लगे—कञ्जानना, कञ्जनेत्रा, कञ्जोष्ठी, कलावती, कलिका, कमला और मालती ये सात नाम हैं । इस रीतिसे सबका नाम सुनकर रामने उन कन्याओंकी पुष्पक विमानपर चढ़ा लिया और सब सावियोंके साथ सोगये । इसके अनन्तर प्रातःकालके समय राम उठे और विधिपूर्वक स्नान-हृषत आदि किया ॥ १५-१८ ॥ फिर वे उन गन्धर्वों तथा पद्मगोंकी बुलाकर कहने लगे—हे गन्धर्व तथा पद्मगण ! मे मरत्यलोकका निवासी मनुष्य हूँ । इस कारण मैं अपने बन्धुवर्गके साथ न तो पद्मगोंके यहाँ पाताललोकको जा सकूँगा और न गन्धर्वोंके यहाँ स्वर्गलोकको ही अपने बन्धुओंका विवाह करने जा सकूँगा । इससे आप सुहृदम मेरी बात सुनें ॥ १९ ॥ २० ॥ आपलोग अपने-अपने घर जायें और इनका विवाह करनेके लिए वहाँसे स्त्रियों तथा बन्धु-चाँचवोंके साथ आनन्दपूर्वक व्योष्या पधारें ॥ २१ ॥ कुछ देर बाद मैं अपने विमान द्वारा आकाशमार्गसे अपनी नगरीको चला आऊँगा ॥ २२ ॥ “बहुत अच्छा” कहकर वे गन्धर्व तथा पद्मग अपने-अपने स्थानको चले गये । इसर रामचन्द्रजी भी

नीराजितः पुरस्त्रीभिर्विशेष निजमन्दिरम् । वसिष्ठोनेहे ताः सर्वाः श्रेयामास राधवः ॥२५॥
 अथ रामः सभामध्ये सीभिर्निमिदमब्रवीत् । आकारणीया राजानः सुहृदश्च मुनीश्वराः ॥२६॥
 सातःपुराः सर्गाश्च स्वस्वज्ञानपदैः मह । भूक्तारणीयाऽयोध्येयं परित्राः सप्त सादरम् ॥२७॥
 बोधनीयास्तथा सौधमधुर्देव सुधा शुभा । देया चित्राणि लेख्यानि प्राप्तादेषु समस्ततः ॥२८॥
 देवालयेषु सर्वेषु सुधा देया मनोरमा । लेखनीयानि चित्राणि शलयः स्थाप्यतां पृथक् ॥२९॥
 बंधनीयाः पटाकाश्च रोपणीया चित्रा अपि । समस्तमनोरणानि बंधनीयानि लक्ष्मण ॥३०॥
 वेद्याः कार्याः क्वममन्यो बधनीयाश्च पण्डयाः । शृंगारणीया हस्त्यश्वादिदिकाश्च सहस्रशः ॥३१॥
 गंधर्वेभ्यः पद्मेभ्यो वस्तु गंहानि वै पृथक् । कुक्ष्य नूतनान्यभयस्वार्यः पूरितानि च ॥३२॥
 अन्येषां यथायोग्यं ययज्ञानासि लक्ष्मण । दत्तकुक्ष्य यत्रोक्तं मया तव रघूदह ॥३३॥
 तद्रामचञ्चने श्रुत्वा तथेभ्युक्त्वा स लक्ष्मणः । तथा चकार तन्मयं यथा रामेण शिक्षितः ॥३४॥
 अथ गन्धर्वराजस्तु तथा वै सप्त पन्नगाः । सुहृद्भिः सावरोधाम्ते ययुः शीघ्रं मुदान्विताः ॥३५॥
 सर्वा मानवरूपेण हस्त्यश्वरयसस्थिताः । गन्धर्वाश्चापि सैन्यस्ते साकेतोपवनं ययुः ॥३६॥
 ततस्तानामगतान् श्रुत्वा प्रत्युद्गम्य रघूदहः । नानावाद्यानि नादैश्च नृत्यैरुत्तरतां पुरीम् ॥३७॥
 नीत्वा संस्थापयामास विस्तीर्णेषु गृहेषु सः । अथ तैरेकदा रामः समाया संस्थितः सुखम् ॥३८॥
 ज्योतिर्विदः समाहूय वसिष्ठं तत्पुण्यधमः । पृथग्विवादान्कर्तुं स मुहूर्तानतिमंगलान् ॥३९॥
 सम्पन्निवारयामास वर्षमण्ये सविस्तरम् । ज्योतिर्विदस्तदा प्रोचुर्मुहूर्तानतिसौख्यदान् ॥४०॥
 पश्चात्तरेण वैशाखे द्वौ मुहूर्तौ शुभावहौ । तथा ददुर्मुहूर्तौ द्वौ ज्येष्ठे पक्षांतरेण ते ॥४१॥
 द्वावेव मार्गशीर्षेऽपि त्रीन माघे फाल्गुनेऽपि च । एवं द्वादशमासेणां चक्रुर्लग्नविनिश्चयम् ॥४२॥

उन बालिकाओं, अपने पुत्रों तथा स्त्रियोंके साथ पुण्य विमानपर बैठकर आकाशमार्गे रास्तेके बनोको देखते हुए वहाँसे चल दिये और एक पहरमें अयोध्या आ गये ॥ २३ ॥ २४ ॥ वहाँ पहुँचनेपर पुरवासिनी स्त्रियोंने उनकी आरती जतारी और उन बन्दाजीकी वसिष्ठोके वहाँ भोज दिया ॥ २५ ॥ तदनन्तर रामने सभामें लक्ष्मणसे कहा—सब राजाओं, सम्बन्धिओ और मुनियोंके माँ निमन्त्रण भेज दो कि सब लोग अपनी स्त्रियों तथा पुरवासियोंके साथ अयोध्या पधारें । मातों परित्याजी नमस्त अयोध्या नगरीका शृङ्गार करो ॥ २६ ॥ अयोध्याके सब मकान कुनेसे पुतकाये जायँ और उनपर चारों ओर विविध प्रकारके चित्र बनाये जायँ ॥ २७ ॥ सप्तस्त देवालयेमें अच्छी तरह पुताई की जाए और उनपर भी सुन्दर चित्र बनाकर पूजनका मुद्रबन्ध किया जाय ॥ २८ ॥ २९ ॥ पटाकाएँ बाँधी जायँ, ध्वजारोपण किया जाय और मंदिरोंके चारों ओर तोरण बांधे जायँ । जहाँ जहाँ सुवर्णमयी वेदियाँ बनवायी जायँ । हजारों हथी, घोड़े तथा पालकियोंका शृङ्गार किया जाय । गन्धर्वोंगणोंके रहनेको नयेनये मकान बनवाकर उनमें अच्छी तरह अन्न-दूध आदिका प्रबन्ध कर दो ॥ ३०-३२ ॥ हे लक्ष्मण ! जो मैं कह चुका हूँ, वह और जो नहीं भी दत्तजया ॥ और तुम जानते होओ सो भी ठीक कट लो ॥ ३३ ॥ रामकी बात सुनकर लक्ष्मणने जैसा उन्होंने कहा था, तदनुसार सब प्रबंध कर दिया ॥ ३४ ॥ इसके अनन्तर गंधर्वराज और सातों पन्नग अपने सम्बन्धियों तथा स्त्रियोंके साथ हर्षपूर्वक अयोध्याको आ दिये ॥ ३५ ॥ उस समय समस्त सर्व मानव रूप धारण किये हाथी, घोड़े तथा रथपर सवार होकर अयोध्या आये । गंधर्व भी अपनी विशाल सेनाके साथ साकेतपुर आ पहुँचे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ इसके बाद जब रामपन्द्रजीने सुना कि वे लोग अयोध्या आ गये हैं तो विविध प्रकारके बाजों और नाचके साथ नगरीमें से आये और सब लम्बे-चोड़े भवनमें उनको ठहराया । इसके अनन्तर एक समय राम सब लोगोंके साथ सभामें बैठे तो वसिष्ठ तथा अनेक ज्योतिषियोंको बुलाया और त्रिवाहके लिए अन्न-अलग मुहूर्तका अच्छी तरह विचार करनेको कहा । ज्योतिषियोंने रामके आज्ञानुसार अलिशय सुखदायी मुहूर्त विचारकर कहा कि एक वर्ष बीतनेपर वैशाख मासमें दो मुहूर्त हैं । एक पक्षके अनन्तर ज्येष्ठ मासमें भी दो ही मुहूर्त ॥ ३८-४१ ॥ दो

लवस्याथांगदस्यापि विवाहौ तैर्विनिश्चितौ । ज्योतिर्विद्भिर्वसिष्ठेन वैशाखे राघवाग्रतः ॥४३॥
 चित्रकेतोः पुष्करस्य विवाहौ तैर्विनिश्चितौ । ज्येष्ठे मासि क्रमेणैवं पक्षे पक्षे पृथक् पृथक् ॥४४॥
 तक्षस्याथ सुबाहोश्च विवाहौ मार्गशीर्षके । पश्चादरेण रामाग्रे ज्योतिर्विद्भिर्विनिश्चितौ ॥४५॥
 यूपकेतोरंगदस्य चित्रकेतोर्विनिश्चिताः । माघमासे विवाहाश्च ज्योतिःशास्त्रविशारदः ॥४६॥
 पुष्करस्याथ तक्षस्य सुबाहोः फाल्गुने शुभे । विवाहा निश्चिताः शिष्य रामाग्रे गणकस्तदा ॥४७॥
 एवं विनिश्चिताः सर्वे विवाहा द्वादश क्रमान् । ज्योतिर्विद्भिर्निश्चिताश्च श्रुत्वा तानर्चयद्भिष्टुः ॥४८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितस्तोत्रे श्रीमदानन्दरामायणे बालमीकोपे विवाहकाण्डे

द्वादशविवाहविनिश्चयो नाम पष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

(नागों तथा गंधर्वराजकी कन्याओंका विवाह)

श्रीरामदास उवाच

अथ ते गणकाः सर्वे वसिष्ठमन्त्रपुगेधसः । कुमारीणां विभागांश्च चक्रुः श्रीराघवाग्रतः ॥ १ ॥
 कञ्जाननां लवस्याथ कञ्जामीमंगदाय च । गणका निश्चयं चक्रुः कञ्जार्घीं चित्रकेतवे ॥ २ ॥
 कलावतीं पुष्कराय तथा तक्षाय कालिकाम् । सुबाहवे च कमलां मालतीं यूपकेतवे ॥ ३ ॥
 गणकैः सप्त ता एवं नागकन्या विनिश्चिताः । चन्द्रिकामंगदायाय चन्द्रास्यां चित्रकेतवे ॥ ४ ॥
 चञ्चलाख्यां पुष्कराय तक्षाय चपलां तथा । सुबाहवे तु अचलां प्रोचुस्ते गणकादयः ॥ ५ ॥
 एवं गंधर्वकन्यास्ताः पञ्च विप्रैर्विनिश्चिताः । एवं हि निश्चयं कृत्वा गणकादीन् रघूत्तमः ॥ ६ ॥
 विसृज्य मैथिलीं गरवा मर्वं वृत्तं ग्यवेदयन् । ततो ययुः कोटिशस्ते पार्थिवाश्च मुनीश्वराः ॥ ७ ॥
 सप्तद्वीपांतरस्थाश्च सावरोधाः मयालकाः । नामावाहनसंस्थाश्च पौरैर्जनिपदनिर्जैः ॥ ८ ॥

मुहूर्त मार्गशीर्षमें, तीन मुहूर्त माघमें और तीन ही मुहूर्त फाल्गुनमें बतल । इस तरह उन बारहों कन्याओंके विवाहकी लग्न — गया । तदनंतर वसिष्ठके साथ-साथ उन ज्योतिषियोंने वैशाखवाली लग्नमें लव और अङ्गदके विवाहका मुहूर्त निश्चित किया । चित्रकेतु और पुष्करका विवाह ज्येष्ठमासकी लग्नमें निश्चित हुआ । तक्ष और सुबाहुका विवाह एक पक्ष बाद मार्गशीर्षके शुक्ल पक्षमें निश्चित किया ॥ ४२-४५ ॥ यूपकेतु, अङ्गद तथा चित्रकेतुका विवाह माघ मासमें निश्चित हुआ ॥ ४६ ॥ पुष्कर, तक्ष तथा सुबाहुका विवाह रामके समक्ष बैठे हुए ज्योतिषियोंने फाल्गुन मासकी शुभ लग्नमें निश्चित किया ॥ ४७ ॥ इस तरह क्रमशः बारहों विवाहोंके निश्चित हो जानेपर रामने ज्योतिषियोंकी विविध पूजा की ॥ ४८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितस्तोत्रे श्रीमदानन्दरामायणे पठे रामनेत्रपान्देवविरचितभगवद्कान्तहिने विवाहकाण्डे पष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीरामदास कहते लगे—ययुक्त प्रकारसे विवाह निश्चित हो जानेपर रामके सामने ही वसिष्ठ तथा ज्योतिषियोंने उन कन्याओंका विवाह ते कनके गढ़ में किया कि कौन-सी कन्या किसको दी जाय ॥ १ ॥ कञ्जानना नामकी कन्या लवके लिए, कञ्जार्घी अङ्गदके लिए, कञ्जार्घी चित्रकेतुके लिए, कलावती पुष्करके लिए, कालिका तक्षके लिए, कमला सुबाहुके लिए और मालती यूपकेतुके लिए देना निश्चित हुआ ॥ २ ॥ ३ ॥ इस प्रकार ज्योतिषियोंने उन सब कन्याओंको देनेका निश्चय कर दिया । चन्द्रिका अङ्गदके लिए, चन्द्रास्या चित्रकेतुके लिए, चञ्चला पुष्करके लिए, चपला तक्षके लिए और अचला सुबाहुके लिए देनेके लिए उन ज्योतिषियोंने निश्चित किया । इस तरह उन पाँचों गन्धर्वकन्याओंके दायोंका निश्चय हो जानेपर रामने आदरपूर्वक ज्योतिषियोंको विशा किया और स्वयं सीताके पास जा पहुँचे । जो कुछ सभामें निश्चित हुआ था, सो उन्हें कह सुनाया । इसके बाद सातों द्वीपोंमें रहनेवाले करोड़ों मुनीश्वर तथा राजा अपने परिवार और प्रजा समेत बाना प्रकारकी सवारियोंपर सवार होकर अयोध्या आये ॥ ४-८ ॥ उस समय उन लोगोंसे सारी अयोध्या भर

तैः साऽयोध्यापुरी व्याप्ता विरेजे नितरां तदा । यद्यी विभीषणश्चाथ सुग्रीवोऽपि प्लवंगमैः ॥ ९ ॥
 ययौ ■ भूरिकीर्तिश्च पुत्राभ्यां सीघ्रमादरात् । ययौ ■ जनकश्चापि युधाजिन्स ययौ तदा ॥ १० ॥
 कौसल्यायाः सुमित्राया च धिवाद्याः समावयुः । अथ गमस्तु वैशाखशुक्ले द्विजवरैः सह ॥ ११ ॥
 पुरोधसा सुहृद्भिश्च स्नानमभ्यंगपूर्वकम् । कृत्वा लवाय मांगल्यस्नानार्थं स्त्रीः प्रचोदयत् ॥ १२ ॥
 ततो मुहूर्तसमये वधूच्छिष्टां निशां लवम् । सम्यग् लिप्प मुर्तलाद्रौ मीताद्या मातरस्तदा ॥ १३ ॥
 स्वयं सस्तुर्मुदा सर्वास्तूर्यनादः सञ्चलकाः । अथ रामो देवकस्य प्रतिष्ठां आत्मणैः सह ॥ १४ ॥
 आदौ कृत्वा गणपतेः पूजां सम्यग्यथाविधि । पुण्याहादित्रयं चापि कृत्वा पूर्वं सविस्तरम् ॥ १५ ॥
 चकार विधिवत्तुष्टः पूजयामास वै मुनीन् । ततो मुहूर्तसमये गत्वा पद्मगमदिरम् ॥ १६ ॥
 लवस्य कञ्जनयनाधिवाहं विनिवर्तयत् । चतुर्थे दिवसे वंशापात्रस्यै रत्नदीपकैः ॥ १७ ॥
 नीराजितस्तदा रामो विरेजे मण्डपे स्त्रिया । ततो निजगृहं गत्वा पूर्वोक्तैरुत्सवादिभिः ॥ १८ ॥
 लवेन कारयामास लक्ष्मीपूजनमुत्तमम् । ततो दानान्यनेकानि ददौ स रघुनन्दनः ॥ १९ ॥
 ततस्ते पार्थिवाः सर्वे तथा ते पद्मगा अपि । सुहृदश्चाथ गंधर्वाः पौरा जानपदादयः ॥ २० ॥
 पूजयामासुः श्रीरामं वस्त्रैराभरणादिभिः । तथा तान् लक्ष्मणादीश्च कुशाद्यांश्चापि बालकान् ॥ २१ ॥
 ततस्ता नृपपत्न्यश्च सुहृत्पत्न्यः पृथक्पृथक् । नागरत्न्यश्च गंधर्वापत्न्यश्चान्यास्तथा स्त्रियः ॥ २२ ॥
 सीतायाः पूजयामासुर्वस्त्रैराभरणादिभिः । सीताऽपि ताः सुहृत्पत्नीस्तथा पार्थिवकामिनीः ॥ २३ ॥
 पूजयामास विधिवद्वस्त्रैराभरणादिभिः । रामोऽपि सुहृदः पौरान् गन्धर्वान्पन्नगाकृपान् ॥ २४ ॥
 वस्त्रैराभरणैर्यनैः पूजयामास सादरम् । एवं वैशाखाभासे तु सिते पक्षे लवस्य च ॥ २५ ॥
 कृत्वा विवाहं रामः स कृष्णपक्षे तु माघवे । पूर्वद्वर्वाधिवाहं द्वांगदस्य च ॥ २६ ॥
 चित्रकेतोः पुष्करस्य विवाहो रघुनन्दनः । ज्येष्ठभासे शुक्लकृष्णपक्षयोरकरोन्मुदा ॥ २७ ॥

गयी और वह बहुत ही सुन्दर दीकते लगी । बहुतसे बानवोंकी लिये हुए सुग्रीव, अपने दोनों बेटोंके राजा भूरिकीर्ति, इनके सिवाय विभीषण, जनक, युधाजित, कौसल्या तथा सुमित्राके वधु-बान्धव आदि भी अयोध्यामें आ पहुँचे । इसके बाद वैशाखके शुक्लपक्षमें पुरोहितों तथा विप्रोंके साथ रामने अभ्यङ्ग-पूर्वक स्नान किया और लवकी मञ्जलस्नान करानेके लिए स्त्रियोंसे कहा ॥ ९-१२ ॥ सीतादिक माताओंने जब मुहूर्त आया, तब वधूके जठे हल्दी-लेप तथा लवके शरीरमें लगाया और तुहही तथा नगाड़े आदि वाजोंके साथ बालकोंके लिये स्नान भी कराया किया । अथ रामने बाह्यार्थके साथ कुलदेवताकी स्थापना की ॥ १३ ॥ १४ ॥ स्थापनाके पूर्व यथाविधि गणपतिकी पूजा की और विस्तारमें तीन प्रकारका पुण्याहवाचन किया । इसके अनन्तर मेहुमानोंमें आये हुए मुनियोंकी पूजा करके उन्हें सन्तुष्ट किया । शुभ मुहूर्तमें पद्मगोंके पहाँ गये और वहाँ कञ्जनयनाके साथ लवका विधिवत् विवाह सम्पन्न किया । चौथे दिन बालकी छिटनीमें रखे हुए रत्न-दीपकोंसे रामकी आरती उतारी गयी । उस समय राम सीताके साथ बहुत ही सुन्दर दीक रहे थे । इसके अनन्तर पूर्वोक्त उत्सवोंके साथ राम अपने घर गये । वहाँ लवके हाथोंसे अच्छी तरह लक्ष्मीपूजन कराया और अनेक प्रकारके दान दिये ॥ १५-१६ ॥ इसके उन देश-देशान्तरसे आये हुए राजाओं, पद्मगों, सम्बन्धियों, पुरवासियों और जनपदवासियोंने विविध प्रकारके वस्त्रों और आभूषणोंसे राम-लक्ष्मण तथा सब बालकोंकी पूजा की । इसके पश्चात् रात्रियों, सम्बन्धियोंकी स्त्रियों, नागरपत्नियों तथा गंधर्व आदिकी स्त्रियोंको सोता आदि स्त्रियोंने वस्त्र और आभूषण दे-देकर विधिवत् सज्जित किया । रामने भी सम्बन्धियों, पुरवासियों, मन्त्रवों और पद्मगोंको वस्त्राभूषणसे भली भाँति पूजा की । इस तरह वैशाख मासके शुक्लपक्षमें लवका विवाह सम्पन्न किया और कृष्णपक्षमें पूर्ववत् उत्साह समेत अङ्गदका विवाह किया ॥ २०-२६ ॥ उसी प्रकार ज्येष्ठके शुक्ल और कृष्ण-

ततः सर्वान्नुपादींश्च ददावाङ्गां सुव्रितान् । ततः पुनस्तानाहुय पूर्ववन्मार्गशीर्षके ॥२८॥
 तक्षस्याथ सुवाहोश्च विवाहानकरोत्प्रभुः । ततः सर्वान्नुपान् रामो ददावाङ्गां सुहृज्जनान् ॥२९॥
 ततः पुनस्तानाहुय माघमासे सुहृन्नुपान् । वृषकेतोरंगदस्य चित्रकेतोर्महोत्सवैः ॥३०॥
 विवाहानकरोद्रामः पार्थिवान्न व्यसर्जयत् । पुष्करस्याथ तक्षस्य सुवाहोश्च महोत्सवैः ॥३१॥
 चकार काण्डगुणे मासि विवाहान् जानकीधरः । एवं कृत्वा विवाहांश्च रामो द्वादश सादरम् ॥३२॥
 नृपैः संपूजितः सर्वान्पूज्याङ्गां नृपतान् ददौ । पूजयित्वा मुनींश्चापि विसर्ज्य रघूद्वहः ॥३३॥
 गन्धर्वपन्नगाः सप्त ते साकेतेऽत्र सारिधताः । रामं मुञ्चन्वा न ते नैजं स्थलं जग्मुर्मुदान्विताः ॥३४॥
 मन्त्रिणः प्रेषयामासुः स्वस्वराज्येषु ते पृथक् । यदा रामः स वैकुण्ठमग्रे गच्छति कालतः ॥३५॥
 तदा सांतानिकौल्लोकांस्ते गच्छन्ति न संशयः । अथ रामः पन्नगानां गन्धर्वाणां च सप्तसु ॥३६॥
 वार्षिकेष्टसवेष्ट्वत्र सावरोधः सुहृज्जनैः । पौरैः स्वार्थैर्भोजनादि गत्वा हंगीकरोत्सदा ॥३७॥
 सदा महोत्सवाश्वासन्नयोऽप्यायां गृहे गृहे । आनन्दः सकलानासीमासीत्कुत्राप्यमंगलम् ॥३८॥
 अथ तेषां राघवेण पुत्राणां पृथक् पृथक् । अष्ट कृत्वा तु गेहानि पृथक्कृत्वा च शान्तयः ॥३९॥
 तेषु ते स्थापिताः सर्वे स्वस्वस्त्रीभ्यां पृथक् सुखम् । तथा ते लक्ष्मणाद्याश्च पृथग्गेहेषु बांधवाः ॥४०॥
 पर्वमेव स्थापिताश्च स्वस्वपत्न्या मुदान्विताः । सुमित्रायाः स सीमित्रिः स्वीपगेहेऽवसत्सुखम् ॥४१॥
 कैकेयी भरतस्याथ गेहे मासमुवाच सा । तस्यां शत्रुघ्नगेहेऽपि मासमेकं यथासुखम् ॥४२॥
 एवं सा पुत्रयोगेहेऽकरोद्वास मुदान्विता । कामन्या सा रामगेहे तस्यां सीतातिसेविता ॥४३॥
 ते सर्वे बांधवाः पुत्रा निजपार्श्वे सेवकैः । स्वदासीगोधनार्थं च सुखमापुः पृथक् पृथक् ॥४४॥
 अथ ते लक्ष्मणाद्याश्च कुशाद्या बालका अपि । स्वस्वगेहेषु र्व प्रातः स्नात्वा होमान् शिवार्चनम् ॥४५॥

पक्षमें चित्रकेतु और पुष्करका विवाह सम्पन्न किया ॥ २७ ॥ इसके सब राजाओं और मुनियोंको अपने-अपने घर जानेकी आज्ञा दी । फिर मार्गशीर्षमें सबका बुलाकर और सुवाहका विवाह किया । बादमें तक्षको अपने देश जांकी अनुमति देकर माघ मासमें कुलाया और वृषकेतुका विवाह सम्पन्न किया ॥ २८-३० ॥ माघमें आये मेहमानोंको विशा न करके रामने काण्डगुन मासमें पुष्कर, तक्ष तथा सुवाहका विवाह किया । इस तरह बारहो विवाहोंको करके रामने सब मेहमानोंका स्वयं पूजा की और उनका पूजन स्वीकार किया । सबको अपनी-अपनी राजधानियोंको जानेकी अनुमति दी । तरह उन मुनियोंका भी विधिवत् पूजन करके अपने-अपने आश्रमोंको जानेकी आज्ञा दी ॥ ३१-३३ ॥ किन्तु गन्धर्व और पक्षगण अयोध्यामें ही रहे । वे अपने-अपने मन्त्रियोंको राजधानी भेजकर रामके पास रहने लगे । वे तब तक अयोध्यामें रहेंगे, जब तक राम अपने वैकुण्ठलोकको नहीं चले जायेंगे । रामके चले जानेपर वे भी सांतानिक लोकको चले जायेंगे । इसके अतिरिक्त वार्षिक उत्सवों और त्योहारोंपर राम अपने घरकी स्त्रियों, मित्रों तथा सम्बन्धियोंके साथ पन्नगों और गन्धर्वराजके यहाँ जाकर भोजन आदि करते थे ॥ ३४-३७ ॥ उन दिनों अयोध्यामें घर-घर उत्सव मनाये जाते थे । उस समय सर्वत्र आनंद था । कहीं भी किसी अमंगल नहीं दिखलाई पड़ता था ॥ ३८ ॥ इसके पश्चात् रामने उन बारहों पुत्रोंके लिए अलग-अलग घर बनवाये और विधिवत् शान्तिपाठ कराके उनको अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ उन घरोंमें बसा दिया । उसी तरह लक्ष्मण आदि भ्राता पहले हीसे अलग-अलग महलोंमें अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ सुखपूर्वक रह रहे थे । सुमित्राके पुत्र लक्ष्मण अपने महलमें आनन्दपूर्वक रहते थे ॥ ३९-४१ ॥ कैकेयी एक महीना भरतके यहाँ और एक महीना शत्रुघ्नके यहाँ रहा करती थी । इस तरह अपने दोनों पुत्रोंके साथ रहती हुई वह सुखसे समय बिता रही थी । कौसल्या सीताका सेवा ग्रहण करती हुई रामके महलोंमें रहती थीं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ वे सब भ्राता और उनके पुत्र अलग-अलग अपनी सवारी, सेवक, दासी, गोधन आदि अपार सम्पत्तियाँ रखकर आनंद ले रहे थे ॥ ४४ ॥ यह सदाका नियम था कि लक्ष्मण आदि सब भ्राता और कुश आदि

गोद्विजार्चादि संपाद्य ततस्ते राघवं ययुः । नत्वा रामं जानकीं ते तस्थुर्दिव्यामनोपरि ॥४६॥
 तेषां सर्वाः स्त्रियथापि स्नात्वा दुर्गां प्रमज्ज्य च । गत्वा सीतां प्रणमुस्तास्तस्थुः सीताश्रयाऽऽसने ॥४७॥
 ततस्ते लक्ष्मणाद्याः कुशाद्याः स्वगुरोर्भूत्वात् । कथां पीताणिकीं श्रुत्वा जग्मुः स्वं स्वं गृहं प्रति ॥४८॥
 ततः सर्वे रामगेहे समाहूता मुदान्विताः । उपाहारान् पृथक् चक्रुर्मभ्याङ्गे भोजनान्यपि ॥४९॥
 एवं तेषां स्त्रियथापि समाहूतास्तु सीतया । उपाहारान् भोजनानि चक्रुः सीतागृहे सदा ॥५०॥
 कदा मुदा स्वीयगेहे राघवेणाथ सीतया । उपाहारान् भोजनानि चक्रुस्ते आत्मणादिभिः ॥५१॥
 एवं तर्पण्युभिर्बालैः प्रापतुर्नितरां सुखम् । सीतारामौ कदा नायोन्कलङः क्वापि कस्य हि ॥५२॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विवाहकाण्डे

द्वादशविंशतुवर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

(शत्रुघ्नतनय पूषकेतु द्वारा मदनसुन्दरीका हरण)

श्रीरामदास उवाच

अथैकदा दक्षिणे हि शिवकात्यां महापुरि । कंबुकंठो नृपः श्रीमात्रिजकन्यास्वयंवरम् ॥ १ ॥
 कर्तुंकामो नृपान्सर्वानाह्वयामास सादरम् । तदा ते पार्थिवाः सर्वे पत्राणि हि पृथक् पृथक् ॥ २ ॥
 पूर्वैरमनुस्मृत्य कुक्षस्यापि लवस्य च । स्वयंवरे स्वीयमानभगेनोद्धतदुर्निश्चितम् ॥ ३ ॥
 प्रेषयामासुर्नृपतिं न ययुश्च स्वयंवरम् । तेषां पत्राणि सर्वाणि कंबुकंठो ददर्श सः ॥ ४ ॥
 सर्वेषु लिखितस्त्वेक एवार्थस्तं वदाम्यहम् । यदि नायांति रामस्य बालकास्ते स्वयंवरे ॥ ५ ॥
 वयं सर्वे तर्हि यामो जंबुद्वीपान्तरस्थिताः । तेषामेवमभिप्रायं श्रुत्वा स नृपतिस्तदा ॥ ६ ॥
 न समाहूय श्रीराममाह्वयामास पार्थिवान् । स्वयं चापि स्मरन्वरं तदेवं रामपुत्रयोः ॥ ७ ॥

बालक सभरे स्नान करके हवन, शिवाचन एव गौ-वाहणोंकी पूजा करते थे । तब रामके पास जाते और वही सीता तथा रामको प्रणाम करके दिव्य आसनपर बैठते थे ॥ ४६॥ ४७ ॥ उसी तरह उनकी स्त्रियां भी सभरे स्नान और दुर्गापूजनसे निवृत्त होकर सीताके पास जातीं, उन्हें करती और आज्ञा पाकर दिव्य आसनोंपर बैठती थीं ॥ ४७ ॥ इसके बाद ॥ ४८ ॥ लोग गुरु वसिष्ठके मुखसे पुराणोंकी कथा सुन-सुनकर अपने भयनोंको जाया करते थे । दोपहरको रामके बुलानेपर साथ-साथ जलपान ॥ ४९ ॥ भोजन करते थे । उसी तरह उनकी स्त्रियां भी सीताके बुलानेपर सीताके यहाँ ही आकर जलपान ॥ ५० ॥ भोजन करती थीं ॥ ४९-५० ॥ कभी-कभी ॥ लोग राम और बहुतेसे वाहणोंको अपने यहाँ बुलाकर भोजन कराते थे ॥ ५१ ॥ इस तरह उन बन्धुओं और बालकोंके ॥ सीता ॥ राम वड़े सुखसे जीवन व्यतीत कर रहे थे । किसीके साथ कभी किसी तरहका झगड़ा नहीं होता था ॥ ५२॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये ८० रामतंजपाण्ड्यविरचित-भाषाटीकासहिते विवाहकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—एक समय दक्षिणकी शिवकांतपुरीमें वहाँके राजा कम्बुकण्ठने अपनी कन्याका स्वयम्बर करनेके विचारसे ॥ राजाओंके यहाँ निमन्त्रणपत्र भेजकर बुलवाया । किन्तु कुश-लवके कारण वे महाराज कम्बुकण्ठके यहाँ नहीं आये और एक-एक पत्र लिखकर भेज दिया । कम्बुकण्ठने एक-एक करके सब राजाओंका पत्र देखा ॥ १-४ ॥ उन सब पत्रोंमें एक ही चर्चा थी । वह यह कि यदि रामचन्द्रके लड़के तुम्हारे स्वयंवर न आयें तो हम ॥ जम्बूद्वीपके राजे तुम्हारे यहाँ आयेंगे—बन्धुया तर्ही । राजा कम्बुकण्ठने उनके अभिप्राय समझकर रामचन्द्रजोके पास निमन्त्रण न भेजकर वहाँकी सब राजाओंको बुलाया । कम्बुकण्ठको स्वयं भी वह बात याद आ गयी कि रामके पुत्रोंने चम्पिका और सुमतिके स्वयंवरमें

चंपिकासुमतिपाणिग्रहणीयं पुरातनम् । ततस्ते पार्थिवाः सर्वे श्रुत्वा रापं हि नागतम् ॥ ८ ॥
 सप्तद्वीपांतरस्थाश्च ययुः कांतिपुरीं प्रति । अथ तां कंबुकठस्य कन्यां मदनसुन्दरीम् ॥ ९ ॥
 प्रासादसंस्थितां दृष्ट्वा नारदः स्वात्ममाययौ । सखीभिः सा मुनिं पूज्य विनयान्पुरतः स्थिता ॥ १० ॥
 पप्रच्छ नारदं भक्त्या विनयादनतां शूनैः । कुतः समागतः स्वामिन् गम्यते काधुना वद ॥ ११ ॥
 भवतां दर्शनेनाद्य पावित्र्यं परमं गता । इति तस्या वचः श्रुत्वा किञ्चित् स्मित्वा मुनिस्तदा ॥ १२ ॥
 तामाह बाले स्वर्लोकादागतोऽस्म्यधुना त्वहम् । अयोध्यायां राघवस्य पुत्राणां तु पृथक् पृथक् ॥ १३ ॥
 गेहे संभोक्तुकामोऽद्य निर्गतोऽस्मि विहायसा । एतस्मिन्नन्तरे कांतिपुर्याः सैन्यानि वै बहिः ॥ १४ ॥
 दृष्ट्वा केषां हि सैन्यानि संतीति हृदि चिंतितम् । ततः पांथमुत्ताञ्जन्तुन्वा तव चात्र स्वयंवरम् ॥ १५ ॥
 तदा विनिश्चितं चित्ते मया रामः स्वयंवरे । अत्रैवास्ति ह्यागतश्चेत्तं पश्यामि सवालकम् ॥ १६ ॥
 नैवास्ति ह्यागतश्चेद्दं तर्हि यास्याम्यतः परम् । स्वयंवरो विना रामं न भविष्यति सात्मजम् ॥ १७ ॥
 पश्याम्यत्रैव तं रामं वृथाऽग्रे गमनं मम । निश्चित्येत्थं समायातस्ततोऽदृष्ट्वा रघूत्तमम् ॥ १८ ॥
 कथं रामो नागतोऽत्र चेति पृष्ट्वा नृपा मया । नृपाभिप्रायमाकर्ण्य तदा खिन्नं मनो मम ॥ १९ ॥
 सप्तद्वीपपतिं रामं वंभुवालकसंपुतम् । स्वयंवरमनाहूय त्वत्पित्रा निश्चितं नृपैः ॥ २० ॥
 अधुनाऽहं प्रगच्छामि साकेतस्थं रघूत्तमम् । मन्दभाग्याऽसि बाले त्वं स्तुषा राघवसत्पतेः ॥ २१ ॥
 यतो जाताऽसि नैवात्र विचित्रा कर्मणो गतिः । इत्युक्त्वा बालिकां पृष्ट्वा नारदो गन्तुमुद्यतः ॥ २२ ॥
 ततः संप्राप्येयामास नारदं बालिकां मुहुः । खिन्नचित्ताऽभ्रुपूर्णांश्ची म्लानास्या स्फुरिताधरा ॥ २३ ॥
 रोमाञ्चिततनुर्मुग्धा गतार्थागद्गदस्वरा । येनाहं मुनिवर्यांश्च स्तुषा श्रीराघवस्य च ॥ २४ ॥
 भविष्यामि तथा कार्यं त्वया त्वां शरणं गता । इत्युक्त्वा मुनिवर्यस्य पादयोः स्थाप्य साशिरा ॥ २५ ॥
 चकार कर्णं बाला तदा तां मुनिरभवीत् । मा चिन्तां कुरु रंभोरु समुत्तिष्ठस्व बालिके ॥ २६ ॥

समसे वीर कर लिया ॥ ५-७ ॥ इसके अनन्तर जब सब राजाओंने यह सुन लिया कि राम नहीं आयेंगे, सब ने कम्बुकण्ठके यही पहुँचे । उधर कम्बुकण्ठकी कन्या मदनसुन्दरीकी अटारीपर देसकर नारदजी आकाश-मार्गसे उतर आये । मदनसुन्दरीने सखियोंके साथ अकर नारदकी पूजा की और उन मुनिके सामने ॥ ८ ॥ फिर प्रतिपूर्वक नारदसे पूछने लगी—स्वामिन् ! इस समय कहाँसे आ रहे हैं और अब कहाँ जायेंगे, सो बताइए ॥ ११ ॥ आपके दर्शनसे मैं आज परम पवित्र हो गयी । इस प्रकार उसकी बात सुनी तो थोड़ा मुसक्याकर नारद कहने लगे—हैं बाले ! इस समय मैं स्वर्गलोकसे आ रहा ॥ और रामको सब पुत्रोंके यही अलग-अलग भोजन करनेके लिए अर्वाञ्चल जा रहा है । आते समय मैंने कांतिपुरी नगरीके बाहर सेना देखी । उसे देखकर मुझे ॥ कोतूहल हुआ ॥ रास्तेमें एक पथिकसे पूछनेपर ज्ञात हुआ कि यहां तुम्हारा स्वयंवर ॥ तो यह सोचा कि जहाँ तक है, रामचन्द्रजा अपने बालकों समेत यहां अवश्य आये होंगे । चलो, यहाँ ही दर्शन कर लें । यह निश्चय करके मैं यहाँ आया, किंतु रामचन्द्रजीको नहीं देखा तो राजाओंसे पूछा कि राम क्यों नहीं आये ? उन लोगोंने जो कारण बतलाया, उससे मेरा मन बहुत खिन्न हुआ ॥ १२-१९ ॥ सप्तद्वीपके अविपति राम तथा उनके लड़कोंको न बुलानेका निश्चय करके ही तुम्हारे पिताने और-और राजाओंको बुलाया है ॥ २० ॥ अच्छा, अब मैं अयोध्यामें रामचन्द्रजाके पास जा रहा हूँ । हे बाले ! तुम अभाग्यो हो, जो रामचन्द्रजी जैसे राजराजकी पतोह नहीं बन रही हो । कर्मकी भी बड़ी विविध गति होती है । ऐसा कह और कन्यासे पूछकर नारदजी जाने लगे । ॥ वह कन्या मदनसुन्दरी सिद्ध मन, बानू भरी आँखों, म्लानमुख, काँपते हुए अक्षरों तथा रोमाञ्चित शरीर होकर गद्गद वाणीसे इस प्रकार विनय करती हुई कहने लगी—आप कोई ऐसी युक्ति करिए कि जिससे मैं रामकी ही पतोह बनूँ । मैं आपकी शरणमें हूँ । ऐसा कहकर उसने अपना मस्तक मुनिराजके चरणोंमें रख दिया और रोने लगी । सब नारद मुनिने कहा—

भविष्यति त्वं रामस्य स्तुषा मत्तं करोम्यहम् । इत्युक्त्वा तां समाश्वास्य स्वमार्गेण मुनिर्ययौ ॥२७॥
 एतस्मिन्नन्तरेऽप्योष्यापुयाः स्वन्दनसंस्थितः । धूपकेतुर्वनं पश्यंस्तमसार्तीरमाययौ ॥२८॥
 किञ्चित्सैन्ययुतो बालस्तमसायां विगाह्य सः । यावन्तस्यादिकं कर्तुमुपविष्टस्तदा मुनिम् ॥२९॥
 ददर्श नारदं नत्वा पूजयामास मादरम् । ततः पप्रच्छ मुनये धूपकेतुः पुरःस्थितः ॥३०॥
 कुतः समागतं चेति तच्छ्रुत्वा नारदो मुनिः । सर्वं वृत्तं सविस्तारं कथयामास बालकम् ॥३१॥
 तच्छ्रुत्वा सकलं पृथं नत्वा तं नारदं मुनिम् । अश्ववीक्षालको वाक्यं सक्रोधः संभ्रमान्वितः ॥३२॥
 मुने नृपाणां सर्वेषां द्वेषमुद्धिष्य राघवे । या आता साऽद्य सर्वेषां श्रेयाऽनर्थकरी जवात् ॥३३॥
 कशुकंठादिभूपानां सारं पश्याम्यहं रणे । रणे त्वन्कुपया सर्वान् जित्वा तामानयाम्यहम् ॥३४॥
 इत्युक्त्वा स पथौ कांतिं पञ्चमेऽहनि सैनया । नारदोऽपि ययौ रामं द्रष्टुं प्रीतमनास्तदा ॥३५॥
 रामेण पजितः प्रेम्णा भोजनार्थं निमंत्रितः । अथ भोजनवलायां धूपकेतुं रघूसमः ॥३६॥
 अदृष्ट्वा लक्ष्मणं प्राह धूपकेतुर्न दृश्यते । शलेषु तं भोजनार्थं लक्ष्मणात्र समाह्वय ॥३७॥
 तदा स मालतीं गत्वा प्रपच्छ लक्ष्मणो जवात् । सा प्राह वनमध्येऽद्य किञ्चित्सैन्ययुतो गतः ॥३८॥
 वृत्तमेतद्यथावत्स गत्वा रामं जग्राद ह । अथ रामो भोजनादि संपाद्य मुनिना मुदा ॥३९॥
 ययौ सभायामासीनस्तं मुनिं वाक्यमब्रवीत् । पञ्चमसदिनान्यत्र स्थेयं मद्रघनात्त्वया ॥४०॥
 तथेति नारदः प्राह सभायां संस्थितः सुखम् । अथ रात्रौ धूपकेतुमदृष्ट्वा रघुनन्दनः ॥४१॥
 उपाहारं कर्तुकामः पुनर्लक्ष्मणमब्रवीत् । आकारय धूपकेतुं नायं दृष्टो मया शिशुः ॥४२॥
 तथेति रामवचनात्पुनर्गत्वा तु मालतीम् । पप्रच्छ धूपकेतुं स सा प्राह नागतस्त्विति ॥४३॥
 ततः स विह्वलो भूत्वा रामं वृत्तं न्यवेदयत् । रामोऽपि नागतं भूत्वा बंधुम्यां विह्वलोऽभवत् ॥४४॥

हे रम्भोद ! हे बालिके । तुम किसी प्रकारकी चिन्ता न करो, उठो ॥ २१-२६ ॥ तुम अवश्य रामकी पताहू बनोगी । मैं इसके लिए उद्योग करूँगा । ऐसा कह और उसे इतने बँधाकर नारदजी आकाशमार्गसे खल दिये ॥ २७ ॥ इसी समय धूपकेतू रथपर बैठकर अयोध्यामें निकले और रास्तेके मनोकों देखते हुए तमसा नदीके किनारे पहुँचे ॥ २८ ॥ उस समय योद्धी-सी सेना उनके साथ थी । उसके साथ धूपकेतुने तमसामें स्नान किया और सन्ध्यावन्दन करनेकी वंटे ही थे कि नारदजीको देखा । उनको प्रणाम करके सादर पूजन किया । इसके बाद नारद मुनिने विस्तारपूर्वक उस कन्या मदनसुंदरीका सारा वृत्तांत कहा । उसे सुनकर क्रोध और खबराहटसे पूर्ण होकर धूपकेतुने कहा—॥ २९-३२ ॥ हे मुने ! इस समय जो सब राजे रामसे द्वेषमुद्धि राखते हैं, उनके लिए अनर्थकारिणी सिद्ध होगी ॥ ३३ ॥ कम्बुकण्ठ आदि राजाओंका बल मैं संग्रामभूमिमें पहुँचकर देखता हूँ । हे मुनिराज । आपकी कृपासे उन सबको जीतकर मदनसुंदरीको लिये हूँ ॥ ३४ ॥ ऐसा कहकर धूपकेतु अपना सेनाके साथ पाँचवें दिन कान्तिपुरीमें पहुँचे और नारदजी प्रसन्नतापूर्वक रामका दर्शन करनेके लिए अयोध्या चले गये ॥ ३५ ॥ वहाँ पहुँचनेपर रामने प्रेमसे नारदजीका पूजन करके भोजनका निमंत्रण दिया । जब भोजनका हुआ, तब धूपकेतुको न देखकर रामने लक्ष्मणसे कहा कि इस समय धूपकेतु नहीं दिखायी देता । हे लक्ष्मण ! और-और बालकोंके साथ उसे भी भोजन करनेके लिए बुलाओ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ रामके आज्ञानुसार लक्ष्मण मालतीके पास पहुँचे और धूपकेतुको पूछा । उसने कहा कि वे अपने साथ योद्धी-सी सेना लेकर वनको गये हैं ॥ ३८ ॥ यह वृत्तान्त लक्ष्मणने जाकर रामको सुना दिया । तत्पश्चात् मुनिके साथ राम भोजन आदि करके अपने सभाभवनमें गये और वहाँ बैठकर नारद मुनिसे कहने लगे । आप मेरे कहनेसे पाँच-सात दिन यहाँ ही ठहर जाइये । 'तथास्तु' कहकर नारदजी भी ठहर गये । तदनन्तर भोजनके समय रात्रिमें भी धूपकेतुको न देखकर रामने लक्ष्मणसे कहा—धूपकेतुको बुलाओ । आज मैंने दिनभर उस बच्चेको नहीं देखा पाया है ॥ ३९-४२ ॥ 'बहुत अच्छा' कहकर फिर मालतीके पास गये और धूपकेतुको पूछा । उसने कहा कि अभी तक

ततः सा जानकी श्रुत्वा विह्वला खिन्नमानसा । दृष्ट्वा राघवाग्रे सा सर्वे तूष्णीं कथं स्थिताः ॥४५॥
 इति तान् प्राह वैदेही तदा सर्वेऽनिविह्वलाः । न्यक्त्रोपाहागन् वेगेन तच्छोधार्थं समुद्यताः ॥४६॥
 तदा तान्विह्वलान्दृष्ट्वा नारदः प्राह राघवम् । कानि वृत्तं यूपकेतोः प्रयाणादिभ्यः ॥४७॥
 तत्सर्वं राघवः श्रुत्वा किञ्चित्पुष्पमस्तदा । लक्ष्मणं प्राह वेगेन शत्रुघ्नोऽद्यैव गच्छतु ॥४८॥
 सेनया चतुरंगिण्या जयान्कांतिं कुशादिभिः । तथेति लक्ष्मणभोक्तव्या चोपाहारान्विधाय सः ॥४९॥
 सेनया बालकैवगाच्छत्रुघ्नं प्रेषयन्निशि । रामं नन्वाश्रय शत्रुघ्नः शीघ्रं स्वन्दनसंस्थितः ॥५०॥
 ययौ कांतिसमीपं स पष्ठेऽहनि मुदान्वितः । एतस्मिन्नन्तरे कानिपुर्वा तत्र स्वयंवरे ॥५१॥
 सभायां राजशार्दूलः संस्थितास्ते मुदान्विताः । अथ सा शिविकारुढाऽऽययौ मदनसुन्दरी ॥५२॥
 किञ्चिन्म्लानशुक्ली दुःखात्स्मरन्ती नारद्विरितम् । वृद्धोपमाना तां सर्वान् दर्शयामास पार्थिवान् ॥५३॥
 यूपकेतुस्तदा वेगाद्गत्वा तूष्णीं सभां गतम् । मोहनास्त्रं विमृज्याथ मोहयामास तां सभाम् ॥५४॥
 मोहितमोहनास्त्रेण न्यस्तां तद्वाहकैर्भुवि । रथेन शिविकां गत्वा धृत्वा मदनसुन्दरीम् ॥५५॥
 निजाभिधानं संश्राव्य तां तुष्टामकरोत्तदा । अथ वग्यामाम वीरं मदनसुन्दरी ॥५६॥
 ह्रमोष मालां तत्कण्ठे नवरत्नमयीं शुभाम् । नतः स यूपकेतुर्दि रथे मदनसुन्दरीम् ॥५७॥
 निवेश्य कानिपुर्वाः स बहिर्गत्वा स्थिरोऽभवत् । तामाह दयितां वीरस्त्वदानीं त्वं भयं त्यज ॥५८॥
 जित्वा सर्वान्मृपागथ स्वया गच्छाम्यहं पुरीम् । तत्तस्य वचनं श्रुत्वा सा प्राह वचनं तदा ॥५९॥
 बहवः सन्ति राजानस्त्वमेकः स्वल्पसेनया । असंख्यातानि सैन्यानि तेषां पश्य समन्वतः ॥६०॥
 कथं युद्धं भवेदत्र मां कुरुष्वथ संगम् । शीघ्रं मां नय माकैतं ततो रामेण सेनया ॥६१॥

नहीं लौटे ॥ ४३ ॥ यह सुना तो विह्वल होकर लक्ष्मणन रामसे कहा । जब रामने यह सुना तो भ्राताओंके साथ-साथ वे भी विह्वल हो उठे ॥ ४४ ॥ जानकीने सुना तो वह भी विह्वल तथा खिन्न होकर दौड़ती हुई रामके पास पहुँची और कहा कि आप लोग यूपकेतुकी भूस्थित देखकर भी चुपचाप बैठे हैं ? ॥ ४५ ॥ यह सुनकर सब लोग घबड़ा उठे और भोजन रवानाकर उसे वृद्धके तंगारी कर दिये ॥ ४६ ॥ इस प्रकार सबकी व्याकुल देखकर नारदजीने रामसे कांतिपुरीका वृत्तांत बतलाया और यूपकेतुके प्रस्थानको भी बात कह सुनायी ॥ ४७ ॥ यह हाल सुना तो रामको याँझा मन्तोप हुआ और गुरंत लक्ष्मणको आज्ञा दी कि मेरी चतुरंगिणी सेना लेकर शत्रुघ्न अभी कांतिपुरी जायें । "बहुत अच्छा" कहकर लक्ष्मणने भोजन आदि कराके रातमें ही सेना और कुश आदि वीर बालकोंके साथ शत्रुघ्नको कांतिपुरी भेजा । रामको प्रणाम करके शत्रुघ्न रथपर सवार हुए और प्रसन्नतापूर्वक प्रस्थान दिये ॥ ४८-५० ॥ इस तरह अयोध्यासे चलकर ठीक छठे दिन शत्रुघ्न कांतिपुरीके पास पहुँच गये । उधर कांतिपुरीमें स्वयंवर हो रहा था ॥ ५१ ॥ सभामण्डपमें बहुतसे राज हर्षपूर्वक बैठे हुए थे । इतनेमें मदनसुन्दरी पालकीमें बैठी हुई सभामें आयी ॥ ५२ ॥ उस समय वह दुःखसे नारदको बातोंका स्मरण कर रही थी । इस कारण उसका मुख दुम्हलाया हुआ था । सभामें पहुँचकर वृद्धाचार्योंने सब राजाओंको दिखलाया ॥ ५३ ॥ उसी समय वेगके साथ यूपकेतु सभाभवनमें पहुँचे और मोहनास्त्रका प्रयोग करके उन्होंने सारी सभाको नृछित कर दिया ॥ ५४ ॥ मोहनास्त्रसे मोहित होकर शिविकावाहकोंने भी शिविका जमीनपर रख दी । इतनेमें रथपर बैठे हुए यूपकेतु शिविकाके पास पहुँचे और मदनसुन्दरीका हाथ पकड़कर नाम बताया, जिससे वह बहुत प्रसन्न हुई और वीर यूपकेतुकी वरकर उसने उनके गलेमें वह नवरत्नमयी वरमाला डाल दी । तब प्रसन्न होकर यूपकेतुने मदनसुन्दरीको रथमें बिठा लिया ॥ ५५-५७ ॥ तब कांतिपुरीसे बाहर निकलकर वे एक स्थानपर रुक गये । वहाँपर उन्होंने मदनसुन्दरीसे कहा कि अब तुम किसी प्रकारका भय न करो ॥ ५८ ॥ मैं सब राजाओंको जीतकर तुम्हारे साथ अयोध्यापुरी चलूँगा । यूपकेतुकी बात सुनकर उसने कहा— ॥ ५९ ॥ वे राजे बहुतसे हैं और तुम अकेले हो, तुम्हारे साथ सेना भी थोड़ी-सी है और देखो न, उनकी असंख्य सेना चारों ओर पड़ी हुई है ॥ ६० ॥

युद्धं कुरु नृपैर्घोरं मृणु मदचनं प्रभो ! मा साहसं कुरुष्वान्नाथ्ये त्वा मुहुर्मुहुः ॥६२॥
 इति तस्या वचः श्रुत्वा तामाश्वास्य पुनः पुनः । उपसंहारयामास मोहनाञ्च स लीलया ॥६३॥
 तदा ॥ पार्थिवाः सर्वे श्रुत्वा नोत्ता वधं बलात् । अनुष्णतनयेनेति स्त्रीवाक्यैः स्यन्दने स्थिताः ॥६४॥
 निर्ययुः कोटिशो योद्धुं स्वस्वसेनाधृता जवात् । चंपिकायाः सुमत्याश्च पूर्ववैरेण दर्पिताः ॥६५॥
 द्रुपदुर्नेमिमागेण ददृशुस्तं रथस्थितम् । युक्तं मदनसुन्दर्या विश्रंतं मालिका इदि ॥६६॥
 ततस्तां मृग्युः सर्वे नानाशस्त्राणि सैनिकाः । युपकेतुस्तदा वेगादृणत्कृत्य महद्भुः ॥६७॥
 वायव्यास्त्रेण तान्सर्वानुद्धय दशदिक्षु सः । प्राक्षिपःपार्थिवान् सैन्यैर्नानावाहनसंस्थितान् ॥६८॥
 तदा स कम्बुकण्ठोऽपि पूर्ववैरमनुस्मान् । चंपिकायाः सुमत्याश्च स्वयंवरसमृद्धवम् ॥६९॥
 निमेषान्निजकन्याया वैरतो हरणं बलात् । महाक्रोधान्निर्ययी स स्वसैन्येन परिवेष्टितः ॥७०॥
 कुर्वन् दुन्दुभिधीपांश्च युद्धार्थं युपकेतुना । युपकेतुरपि श्रुत्वा दुन्दुभीनां महत्स्वनम् ॥७१॥
 कातिपुर्युचरद्वारपुरतः संस्थितो गभी । टणत्कृत्य महच्छापं सन्दधे शरमुत्तमम् ॥७२॥
 ये ये वीराः पुरद्वारान्निर्गताश्च बहिः अनैः । नान् जघान शृणादेव प्रेतर्द्धीं क्रोध सः ॥७३॥
 तं दृष्ट्वा युपकेतोश्च कम्बुकण्ठः पराक्रमम् । ययौ स्वयं स्यन्दनेन प्रेतसंघं विदार्य ॥७४॥
 शेषसैन्येन संयुक्तो युपकेतुं क्रुधा जवात् । तदाऽऽह युपकेतुं स मया त्वं सज्जरं कुरु ॥७५॥
 किमेतान्मशकान् हत्वा पौरुष मन्यसे जड । इत्युक्त्वा सप्तभिर्वाणैर्युपकेतुं जघान सः ॥७६॥
 तान्बाणानागतान् दृष्ट्वा युपकेतुर्निजैः शरैः । तांश्छित्वा नवबाणैस्तच्छापं सारथिर्न ध्वजम् ॥७७॥
 कवचं मुकुटं छित्वा जघान तुरगानपि । पद्भ्यां तदा कम्बुकण्ठो गदामादाथ द्रुपदे ॥७८॥

ऐसी अवस्थामें युद्ध कैसे करोगे ? आज तुम संग्राम न करो। मुझे जोय अयोध्या पहुँचा दो और वहाँसे राम-चन्द्रजीकी विशाल सेना लेकर आओ, युद्ध करो। हे प्रभो ! ऐसे समय माहस करना ठीक नहीं है। मैं बार-बार यही विनती करती हूँ ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ इस प्रकार मदनसुन्दरीकी बात सुनकर उन्होंने उसे आश्वासन दिया और मोहनास्त्रका संवरण कर लिया ॥ ६३ ॥ अब उन राजाजीने स्थियोंके मुखसे सुना कि शत्रुधन-के पुत्र युपकेतुने मदनसुन्दरीका हरण किया है तो अपने-अपने रथोंपर सवार हो-होकर बड़ी-बड़ी सेना लिये वेगके साथ वे लड़नेको निकल पड़े। ॥ ६४ ॥ तब नृपति और चम्पिकाके वरलका ॥ ६५ ॥ उन लोगोंके मनमें था, दूसरे ॥ मदनसुन्दरीके हरणसे उनके हृदयमां और भी डेस लगी ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ फिर क्या था, शत्रुके रथके पहियोंका रास्ता देखते हुए ये चले और घोड़ों ही दूर जाकर उन्होंने देखा कि युपकेतु मदन-सुन्दरीके साथ बैठा ॥ और उसके गलेमें करमाला पहनी हुई है ॥ ६६ ॥ देखते ही सब राजाओंने एक साथ उस वीर बालकपर कितने ॥ शरोंका प्रहार ॥ दिया। युपकेतुने भी वेगके ॥ अपने धनुषका टङ्कौर किया ॥ ६७ ॥ और वायव्य अस्त्रका प्रयोग करके उन सब राजाओंको रथ, वाहन तथा सेना समेत उड़ाकर दूर फेंक दिया ॥ ६८ ॥ महाराज कम्बुकण्ठ भी पूर्ववैरका स्मरण करके विनियकर इस समय वैरवश अपनी कन्याका हरण देखकर अपनी सेनाके ॥ युपकेतुसे युद्ध करनेके लिए द्रुपदोंका आग्रह करते ॥ निकल पड़े। युपकेतुने भी ॥ द्रुपदोंकी गर्जना सुनी तो कातिपुराके उत्तरी द्वारपर पहुँच और अपने धनुषका टङ्कौर करके उसपर एक ॥ शरका संधान किया ॥ ६९-७० ॥ उस पुरद्वारसे जा-जा योद्धा निकलते, उनको अपने बाणोंसे युपकेतु बराबर मारते आते थे। इससे योद्धा ही देरमें वह द्वार मृतकोंसे भर गया ॥ ७१ ॥ इस तरह युपकेतुका पराक्रम देखकर राजा कम्बुकण्ठ स्वयं अपने रथपर सवार होकर ॥ शरोंको रेंदते हुए बची हुई सेनाके साथ युपकेतुके सामने जा पहुँच और क्रोधमें भरकर उन्होंने कहा-अब तू मेरे साथ संग्राम कर ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ अरे जड़ ! इन मच्छाओंका मारकर क्या तू अपने पौरुषको पौरुष मानता ॥ ७६ ॥ ऐसा कहकर कम्बुकण्ठने तीन बाणोंसे युपकेतुपर प्रहार किया ॥ ७६ ॥ उन बाणोंको अपनी ओर आते देखकर युपकेतुने अपने ती बाणोंसे कम्बुकण्ठके बाणों, धनुष, सारथी, ध्वजा, कवच और मुकुटको ॥ डाला और घोड़ोंको ॥ मार दिया ॥ तब

तामत्सहस्रधा बाणैर्यूपकेतुश्चकार ताम् । ततो वद्व्वा दृडां मुष्टिं कम्बुकण्ठस्त्वरान्वितः ॥७९॥
 हृदये यूपकेतोस्तां जघानाचलसन्निभाम् । तदा स यूपकेतुस्तं श्वशुरं स्यदनोपरि ॥८०॥
 ध्वजे बन्ध वेगेन खड्गं जग्राह सम्भ्रमान् । कम्बुकण्ठश्चिरच्छेदं कर्तुं तं समुपस्थितम् ॥८१॥
 दृष्ट्वा धृत्वा करे तस्य सखड्गं सम्भ्रमान्विता । तमाह नन्वा माध्वक्षी तदा मदनसुन्दरी ॥८२॥
 विह्वला विगतोरसाहा वेपथी क्षथलोचना । नानं कम्बुकण्ठमेनं हंसि कथं प्रभो ॥८३॥
 भक्षिकापदनं पूर्वं ग्रासे यदुपस्थिता कृतम् । सुखारम्भे पूर्वमेव दुःखकर्मावलम्बितम् ॥८४॥
 मद्भाक्यार्भेन हन्तव्यस्तस्माच्चा प्रार्थयाम्यहम् । एवं मदनसुन्दर्या वधः श्रुत्वा विहस्य सः ॥८५॥
 करादिसृज्य तं खड्गं स्वसूतं चोदयन्मुदा । सेनया स ययौ यावत्पथाऽयोध्यां पुरीं प्रति ॥८६॥
 तावद्दुन्दुभिनिर्घोषानग्रे शुभाव सेनया । पुनश्चापं दृढीकृत्य यूपकेतुस्तदा पथि ॥८७॥
 कस्याग्रे वाहिनी चेति चितयामास चेतमि । ततः शरं सुमोर्चकं निजनामांकितं बलात् ॥८८॥
 योजनांतरसेनायां शरः शत्रुघ्नसन्निधौ । पपात तत्पदाग्रे तं दृष्ट्वा चकितस्तदा ॥८९॥
 शरपुच्छे यूपकेतोर्नाम दृष्ट्वाथ शत्रुहा । निश्चितवान्यूपकेतुर्मार्गोऽग्रे वर्तते ध्रुवम् ॥९०॥
 ततश्चापे स शत्रुघ्नः स्वनामांकितमुत्तमम् । शरं संधाय विमृशं यूपकेतुं सुमोक्ष ह ॥९१॥
 स शरो यूपकेतोश्च मस्तकादूर्ध्वतस्तदा । अपतत्पृष्ठभागे स तं ददर्श पितुः शरम् ॥९२॥
 तदा दृष्टो यूपकेतुः दुन्दुभीनि स्वनाम् । गत्वा वेगेन शत्रुघ्नं दृष्टोत्प्लुत्य रथादधः ॥९३॥
 ननाम पितरं पत्न्या कम्बुकण्ठं प्रदर्शयन् । तदा तं सुहृदं शास्वा मोक्षयामास शत्रुहा ॥९४॥
 कम्बुकण्ठमुखान्छ्रित्वा सर्वं वृत्तं सविस्तरम् । शत्रुघ्नः प्रापितस्तेन सुहृदा तन्पुरीं ययौ ॥९५॥

कम्बुकण्ठ पैदल ही गदा लेकर दौड़ पड़े ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ यूपकेतुने अपने बाणोंसे उनकी गदाके भी हजार टुकड़े कर दिए । उसके बाद कम्बुकण्ठने यूपकेतुकी दातीपर कठोर घूँसा मारा । तब यूपकेतुने अपने ससुख कम्बुकण्ठकी रथकी ध्वजामें बाण जिता और गिर काटनेके लिए वेगके साथ तलवार उठायी ॥ ७९-८१ ॥ इस तरह सिर काटनेकी उद्यत एवं हाथमें खड्ग लिये यूपकेतुका देखकर मदनसुन्दरीने प्रणाम किया और आँखोंमें आँसू भरकर कहा - ॥ ८२ ॥ हे प्रभो ! मेरे पिता कम्बुकण्ठको आप क्यों मारना चाहते हैं ? पहले ही पासमें मवक्षी गिर पड़नेके समान आपमें मुझके स्थानमें इस दुन्दुभीका कर्मकी क्यों अपनाया है ? ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ आप मेरी बात मानकर इन्हें मत मारिए । मैं आपसे यही प्रार्थना करती हूँ । यह कहती हुई मदनसुन्दरी विकल हो गयी । उसका उत्साह नष्ट हो गया था, वह काँप रही थी और नेत्रोंमें आँसूकी धाराएँ बहाती जा रही थी । इस प्रकार मदनसुन्दरीकी बात सुनकर यूपकेतु मुस्कराये और खड्ग फेंककर अपने सारथीको रथ चलानेका संकेत किया । वे अपनी सेनाके साथ अयोध्यापुरीकी ओर चले ही थे ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ इतनेमें आगेसे दुन्दुभीका घोष सुनायी पड़ा । अब कम्बुकण्ठ वन्य सहाजकर सोचने लगे कि आगेसे यह किसकी सेना आ रही है । यह सोचकर उन्होंने अपने नामसे अंकित एक बाण वेगपूर्वक छोड़ा ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ वह बाण उड़ता हुआ एक योजन तक गया और जहाँ सेना पड़ी हुई थी, वहाँ पहुँचकर शत्रुघ्नके चरणोंके आगे गिरा । उस बाणकी देखकर शत्रुघ्न चकित हो गये ॥ ८९ ॥ फिर बाणकी पूँछमें यूपकेतुका नाम देखकर शत्रुघ्नने निश्चय किया कि यूपकेतु आगे रास्तेमें हैं ॥ ९० ॥ तदनन्तर शत्रुघ्नने भी अपने नामसे अंकित एक बाण उठाकर यूपकेतुकी ओर छोड़ा ॥ ९१ ॥ वह बाण यूपकेतुके ऊपरसे होता हुआ पीछे जा गिरा । यूपकेतुने अपने पिताका बाण देखा ॥ ९२ ॥ तब प्रसन्न होकर दुन्दुभी जैसा गर्जन करते हुए वेगके साथ शत्रुघ्नके पास पहुँचे । वहाँ पिताको देखते ही वे रथसे कूद पड़े और अपनी स्त्री मदनसुन्दरीके साथ जाकर शत्रुघ्नको प्रणाम किया और ध्वजामें बँधे हुए कम्बुकण्ठकी दिखाया । शत्रुघ्नने उन्हें अपना सम्भववी सम्भ्रमकर छोड़ा दिया ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ फिर शत्रुघ्नने कम्बुकण्ठके मुखसे ही विस्तरसे साथ वृत्तान्त सुना । इसके बाद कम्बुकण्ठके

कांतिपुर्या बहिः स्थित्वा कंबुकंठमतेन सः । आकारणार्थं लप्ताय रामं दूतान्प्रचोदयत् ॥९६॥
 तदा ॥ कंबुकंठस्य शत्रुघ्नस्यापि वेषतः । आकारणार्थं श्रीरामं ययुर्दूता मुदान्विताः ॥९७॥
 इति श्रीसत्कीटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे विवाहकाण्डे मदनसुन्दरीहरणं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः

(रामका वंशविस्तार)

श्रीरामदास उवाच

गत्वाऽयोध्यापुरीं दूता रामं वृत्तं न्यवेदयन् । रामोऽपि श्रुत्वा तद्वृत्तं सीतायै संन्यवेदयत् ॥ १ ॥
 ततो मुहूर्ते श्रीरामः सावरोधानुजैः सह । पौरैर्ज्ञानपदैः सर्वैः सुहृद्भिः सेनया सह ॥ २ ॥
 नारदेन ययौ कांतिमाद्यां मुक्तिपुरीं प्रति । ततः ध्रुव्या कंबुकंठः शीघ्रं राघवमागतम् ॥ ३ ॥
 स प्रस्पृह्य विनयाज्जत्वा संपूजयन्मुदा । यूपकेतुं ततः पूज्य वारणस्थं पुरीं शनैः ॥ ४ ॥
 वारक्षीनृत्यगीतैश्च तूर्यधोषैर्निनाय ॥ ततः कांतिपुरीन्यास्ताः स्त्रियः प्रासादसंस्थिताः ॥ ५ ॥
 दृष्ट्वा रामं यूपकेतुं ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः । ततो रामः शनैर्वस्तुं कल्पितं गृहमुत्तमम् ॥ ६ ॥
 मरवा दृष्ट्वा मुहूर्ते तु पूर्वोक्तकौतुकैः सुखम् । यूपकेनोर्विवाहं ॥ चकार परमोत्सवैः ॥ ७ ॥
 ततो विवाहं निर्वृत्य कंबुकंठेन पूजिताः । हस्त्यश्वरथपादालदासदासीजनादिभिः ॥ ८ ॥
 ययौ मदनसुन्दरं रामोऽयोध्यापुरीं विजाम् । ततो विवेश नागार्गं नेदुर्वाणानि वै तदा ॥ ९ ॥
 मन्त्रतुर्गारुण्यश्च तुष्टुवुर्भागधादयः । प्रासादस्थाः स्त्रियो रामं ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥ १० ॥
 मार्गे नीराजितः स्त्रीभिविवेश निजमन्दिरम् । कारयित्वा रमापूजां ददौ दानान्यनेकशः ॥ ११ ॥
 पूजयामास राघवो वसनादिभिः । ततो विमर्जयामास सर्वान्स्वस्वस्थान् प्रति ॥ १२ ॥

वार्थमा करनेपर उनके साथ ही कांतिपुरी गये ॥ ९५ ॥ वहाँ कम्बुकण्ठकी सलाहसे शत्रुघ्न नगरके बाहर ॥
 ठहरे और रामको बुलानेके लिए दूतोंको भेजा ॥ ९६ ॥ उसी समय शत्रुघ्न तथा कम्बुकण्ठके दूत श्रीरामको
 बुलानेके लिए प्रसन्नतापूर्वक चल पड़े ॥ ९७ ॥ इति श्रीसत्कीटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे
 पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते विवाहकाण्डे अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—वे दूत अयोध्यापुरीमें पहुँचे और रामको कांतिपुरीका सब हाल कह सुनाया ।
 सो सुनकर रामने सीतासे कहा ॥ १ ॥ इसके पश्चात् अन्धे मुहूर्तमें राम अपने अंतःपुरकी नारियों, पुरवासियों,
 बनपदवासियों, समस्त सम्बन्धिनीं, नारद तथा सेनाके साथ आदिमुक्तिपुरी अर्थात् कांतिपुरीको ॥
 पड़े । जब कम्बुकण्ठने सुना कि रामचन्द्र पुरीके निकट आ पहुँचे हैं, तब आदरपूर्वक स्वागत करने गये ।
 वहाँ पहुँचकर सविनय ॥ किया । इसके अनंतर राम ॥ यूपकेतुका पूजन करके हाथीपर बिठाकर
 धीरे-धीरे पुरीको चले ॥ २-४ ॥ रास्तेमें वेश्यायें नाचतों-गातों यों और नुह्नी आदि विविध प्रकारके बाजे ॥
 रहे ये । ॥ जब नगरकी स्त्रियोंने आते देखा तो राम और यूपकेतुपर पुष्पवृष्टि करने लगीं ।
 उत्पन्नात् राम अन्यासेमें पहुँचे ॥ ५ ॥ ६ ॥ वहाँ ॥ मुहूर्त देखकर पूर्वोक्त कौतुकोंके ॥ वड़े उत्साहसे
 यूपकेतुका विवाह किया ॥ ७ ॥ विवाहकी ॥ रीतियाँ पूरी हो जानेपर कम्बुकण्ठसे पूजित होकर कितने ही
 हाथों, घोड़े, रथ, पैदल सेना, दास-शसो आदिके साथ मदनसुन्दरीको लेकर अपनी अयोध्यापुरीको चल
 दिये । अयोध्याके पास पहुँचकर वे अपनी नगरीमें धुसे तो विविध प्रकारके बाजे बजने लगे ॥ ८ ॥ ९ ॥
 वेश्यायें नाचने लगीं और मागध-बन्दीबन स्तुति करने लगे । नगरवासिनीं महिलाएँ अंटारिणोंपर चढ़-चढ़कर
 रामपर फूल बरसाने लगीं और कुछ स्त्रियाँ मार्गमें आरती उतारने लगीं । इस उत्साहसे राम अपने महल गये ।
 वहाँ उन्होंने लक्ष्मीकी पूजा की और अनेक प्रकारके दान दिये ॥ १० ॥ ११ ॥ इसके अनंतर निर्मज्जमें जाये हुए

अथ सप्त कुमाराश्च लज्जयाः स्वस्ववेद्यमनि । चक्रुः कोऽहं पृथक् स्त्रीभ्यां कुशभंपिकयाऽकरोत् ॥१३॥
 चंपिकायां दूहितरः कुशाज्जाताः शुभा नव । कुशव्याघ्रे कृमुदन्त्यां भविष्यत्यष्ट स्रुवः ॥१४॥
 भविष्यति तथा कन्या त्वेका चंपकमालिनी । ज्येष्ठः पुत्रोऽतिथिरिति नाम्ना राज्यं करिष्यति ॥१५॥
 चतुर्दश सुमत्याद्याः स्त्रियः सर्वाः क्रमेण हि । सुपुत्रस्तनयानष्ट कन्यैकाऽपि पृथक् पृथक् ॥१६॥
 स डादशशतं पौत्रान्पौत्रार्थं मनोरमाः । त्रयोविंशद्रामचन्द्रो लालयायास्त सीतया ॥१७॥
 कुमुदतीभाविपुत्रवहिताः शिशवः शुभाः । विशच्छत्रमामंस्ते तथा पौत्र्यस्तडित्प्रयाः ॥१८॥
 चतुर्विंशन्मिताधामनः सर्वाभोद्रादिता नृपैः । तथा ध्रोगमपौत्रैश्च नृपकन्या दानेकशः ॥१९॥
 काशिरस्वयंवरेण च काशिराक्षमयोगतः । काशिराक्षवर्जयोगेन काशिराक्षहकर्मणा ॥२०॥
 परिणीताः पौरुषेण तामां संख्या न विद्यते । तामां हि संततिं वक्तुं कः समर्थो भवेदिह ॥२१॥
 एवं स युपकेतोश्च विवाहध्वजः शुभः । संपाद्य नारदः श्रीमान्सभायां रघुनन्दनम् ॥२२॥
 रामनामसहस्रेण स्तोत्रैर्नातिभक्तिनः । स्तुत्वा श्रीरामं पृष्ट्वा यथावाकाशवर्त्मना ॥२३॥

श्रीरामदास उवाच

एवं रामेण साकेतपुर्यां भोगाभिरं सुखम् । भुक्तास्तेषां वर्णनेऽत्र कः समर्थो भवेन्नरः ॥२४॥
 एक एव समर्थोऽभूद्राक्षोकिस्त्वपसां निधिः । शतकोटिमितं येन नानाकीडादिसंयुतम् ॥२५॥
 वर्णितं रामचरितं महामंगलकारकम् । यत्स्मृत्वापि मया किञ्चित्त्वदग्रे परिचर्णितम् ॥२६॥
 एवं रामस्त्वयोध्यायां पुत्रैः पौत्रैः समन्वितः । प्रपौत्रैः पौत्रपौत्रैश्च रंजयामास जातकीम् ॥२७॥
 एवं विवाहकाण्डं च शिष्य त्वो परिचर्णितम् । नवसर्गैः पवित्रं च श्रवणान्मंगलप्रदम् ॥२८॥
 विवाहकाण्डं परमं ये शृण्वन्त्यपि मानवाः । ते स्त्रीभिः पुत्रपौत्रैश्च वियोगं नाप्नुवति हि ॥२९॥

सम्बन्धियोंकी साथ आदि दे-देकर पूजा की और सबकी अपने घर जानेकी अनुमति दी ॥ १२ ॥ इसके बाद लक्ष्मी साहि कुमार अपने-अपना स्त्रियोंके साथ अपने-अपने महलोंमें विहार करने लगे और कुछ अपनी स्त्री चम्पिकाके साथ केलि करने लगे ॥ १३ ॥ इस तरह कुछ दिनों बाद कुशने चम्पिकासे नौ कन्यायें उत्पन्न कीं । कुमुदतीसे आठ पुत्र और चम्पकमालिनी नामकी एक पुत्री भा वारसे उत्पन्न होगी । कुशाका सबसे बड़ा पुत्र अतिथि अयोध्यापुरीका राज करेगा ॥ १४ ॥ १५ ॥ इनके सिवाय सुमति आदि चौदह स्त्रियोंने क्रमशः आठ-आठ पुत्र और एक-एक कन्यायें उत्पन्न की ॥ १६ ॥ इस तरह राम सीताके साथ बारह सौ पौत्रों तथा तीस सौ सुन्दर पौत्रियोंका लालन-पालन करते थे ॥ १७ ॥ इसी प्रकार कुमुदतीके भावी पुत्री-पौत्रोंको भी मिलाकर बीस सौ पौत्र और चौबीस पौत्रियाँ हुई ॥ १८ ॥ जिनका रामने अच्छे-अच्छे राजाओंके साथ विवाह कर दिया और रामके पौत्रोंका विवाह अनेक राजकुमारियोंके साथ हुआ ॥ १९ ॥ उनमेंसे कुछ कुमारियाँ स्वयंवरसे आयीं, कुछ राक्षसविवाहसे आयीं, कुछ गधर्वविवाहके योगसे आयी और कुछका शुभ विवाहमन्त्रान्ध हुआ ॥ २० ॥ इनके सिवाय पौरुषके पुरुषार्थसे इतनी राजकुमारियाँ रामके महलोंमें आयीं, जिनकी कोई संख्या ही नहीं है । ऐसी स्थितिमें उनको संगतानोंकी कौन दिन सकता है ? ॥ २१ ॥ इस प्रकार युपकेतुका अन्तिम शुभ विवाह सम्पन्न हो जानेपर नारदने तमाम सृष्टिके कहे हुए रामसहस्रनामसे अति भाक्तिपूर्वक रामकी स्तुति करके जानेकी आज्ञा माँग ली और आकाशमार्गसे चले गये ॥ २२ ॥ २३ ॥ श्रीरामदासने कहा—इस तरह रामने बहुत-कुछ सुख भोगा । उसका वर्णन करनेमें कोई भी प्राणी समर्थ नहीं हो सकता ॥ २४ ॥ इस, एकमात्र तपस्वी बाल्मीकिजी उनके वर्णनमें समर्थ हुए थे । जिन्होंने ही करोड़ श्लोकोंमें नाना प्रकारकी गोड़ाओं सहित रामचरितका वर्णन किया । यह रामचरित परम मङ्गलकारक है । इसका स्मरण करके ही तुम्हारे समस्त कुछ कहनेमें समर्थ हुआ है ॥ २५ ॥ २६ ॥ इस प्रकार राम अपनी अयोध्यापुरीमें पुत्र, पौत्र, त्रपौत्र एवं प्रपौत्रोंके पुत्रोंके साथ रहते हुए सीताको आह्लादित करते रहे ॥ २७ ॥ हे शिष्य ! इस तरह मैंने ही संगठित पवित्र विवाहकाण्डका वर्णन किया, जो सुननेमें सर्वथा मङ्गलदायक है ॥ २८ ॥

धर्मार्थी प्राप्नुयाद्धर्मं धनार्थी धनमाप्नुयात् । कामान्ताप्नोति कामार्थी मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात् ॥ ३० ॥
 स्त्रीकामुकैर्नरैरेतत्पठनीयं निरंतरम् । विवाहकाण्डं परमं प्राप्नुवंत्यत्र ते वधूः ॥ ३१ ॥
 पतिकामाकुमारी चेत्स्नात्वा श्रोष्यति भक्तितः । विवाहकाण्डमेतद्वै मनोज्ञं पतिमाप्नुयात् ॥ ३२ ॥
 सभार्यश्चेत्पठेदेतच्छृणुयाद्वाऽत्र भक्तितः । इह स्त्रिया सुखं भुक्त्वाऽप्सरोगिदिवि भोदते ॥ ३३ ॥
 सधवा शृणुयादेतथा नारी कांडमुत्तमम् । विवाहाख्यं कदा भर्त्रा वियोगं नाप्नुयात् ॥ ३४ ॥
 सप्तदशदिनैरस्य कार्यं स्त्रीकामुकैर्मुहुः । अनुष्ठानं वर्षमेकं मूर्खाऽपि स्त्रियमाप्नुयात् ॥ ३५ ॥
 प्रथमे दिवसे सर्गं पठेद्द्वितीयां च परेऽहनि । नवमे दिवसे मर्मान्क्रमेण संपठेच्च ॥ ३६ ॥
 दशमे दिवसेऽष्टौ ध्वजस्त्वैकेन वै क्रमात् । एवं सप्तदशदिनैरनुष्ठानं स्मृतं बुधैः ॥ ३७ ॥
 अथवा सकलं कांडं प्रथमे दिवसे पठेत् । परेऽहनि द्विगारं हि नवमे दिवसे क्रमात् ॥ ३८ ॥
 नववारं पठेत्पेदं दशमे दिवसे ततः । अष्टवारं पठेत्कांडं ध्वजस्त्वेवं क्रमात्स्मृतः ॥ ३९ ॥
 एवं नरो वर्षमेकमनुष्ठानात्स्त्रियं लभेत् । स्मितवक्त्रां चारुनासां दिव्यरूपां मनोहराम् ॥ ४० ॥

विवाहकाण्डं परमं पवित्रमानन्ददं मङ्गलकारकं च ।

स्त्रीदं मनोज्ञं भुक्तिसौख्यदं वै नरैः सदा संश्रवणीयमेतत् ॥ ४१ ॥

आनन्दरामायणमध्यमंस्थं विवाहकांडं परमं हि पद्यम् ।

शृण्वन्ति भक्त्या ध्रुवि मानवा ये लभन्ति कामानखिलान्मनोज्ञान् ॥ ४२ ॥

इति श्रीमत्कोटिरामचरितातर्गते श्रीमदानन्दरामायणे विवाहकांडे रामवर्णविस्तारकथनं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

विवाहकांडे सर्ग आनन्दरामायणे नवमः ज्ञातव्याः । पञ्चशताब्द श्लोकाः पञ्चाशीत्युपरिष्ठाः ॥ १ ॥

जो मनुष्य विवाहकाण्डका श्रवण करते है, वे अपनी स्त्री तथा पुत्र-पौत्रोंसे कभी भी विमुक्त नहीं होते ॥ २९ ॥ इसको सुननेसे धर्मार्थी धर्मको, धनार्थी धनको, कामी कामको और मोक्षार्थी मोक्षको पा लेता है ॥ ३० ॥ जो लोग स्त्रीकी इच्छा रखते हों, उन्हें चाहिये कि निरन्तर इस विवाहकाण्डका पाठ किया करे । इससे उन्हें स्त्री अवश्य प्राप्त होगी ॥ ३१ ॥ अच्छे पतिको पानेकी इच्छा रखनेवाली कुमारी यदि भक्तिपूर्वक इस कांडको सुने तो सुन्दर पति पायेगी ॥ ३२ ॥ जो सखीक मनुष्य इस काण्डको पढ़ता या सुनता है तो वह इस जन्ममें स्त्रीके साथ सुख भोगकर स्वर्गमें अप्सराओंके विहार करता है । जो सधवा नारी इस काण्डको सुनती है, वह कभी पतिवियोगका दुःख नहीं पाती । जो लोग स्त्री चाहते हों, वे सत्रह दिनमें एक आवृत्तिके क्रमसे एक वर्ष पर्यन्त अनुष्ठान करे । ऐसा करनेसे मूर्ख मानव भी स्त्री प्राप्त कर सकता है ॥ ३३-३५ ॥ उसका क्रम इस तरह है - पहले दिन एक सर्ग, दूसरे दिन दो सर्ग, तीसरे दिन तीन सर्ग इस क्रमसे नवें दिन नौ सर्गोंका पाठ करे । फिर दसवें दिन आठ सर्ग और ग्यारहवें दिन सात सर्ग ऐसे एक-एक घटाता हुआ सत्रह दिनमें पूरा करे । विद्वानोंने यही अनुष्ठानकी विधि बखलायी है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ अथवा पढ़ें तो पहले रोज विवाहकांडका एक बार पाठ कर जाय, दूसरे रोज दो बार, तीसरे रोज तीन बार, इस रीतिसे बढ़ाता हुआ दसवें दिन नौ बार इस कांडका पठ करे और ग्यारहवें रोज आठ बार, बारहवें दिन सात ॥ इस विधानसे घटाता हुआ सत्रहवें दिन केवल एक बार पाठ करे ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ तरह एक वर्ष तक अनुष्ठान करनेसे वह मुस्कराते मुखड़े, अच्छी नासिका और दिव्य रूपवाली मनोहर स्त्री पाता ॥ ४० ॥ लोगोंको चाहिए कि परम पवित्र, श्रोत्रायक, भुक्तिसुखदायी आनन्द देनेवाले विवाहकांडका निरन्तर करें ॥ ४१ ॥ आनन्दरामायणके अन्तर्गत इस छठे विवाहकांडको जो मनुष्य भक्तिपूर्वक सुनते है, वे अपनी सब कामनाओंको प्राप्त कर लेते हैं ॥ ४२ ॥ इति श्रीमत्कोटिरामचरितातर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पंच रामतेजसाण्डेयविरचरित'ज्योत्स्ना'भाषाटीका-सहिते विवाहकांडे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥ ।

इस विवाहकांडमें कुल नौ सर्ग हैं और उनमें पाँच सौ पचासी श्लोक कहे गये हैं ॥ १ ॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे विवाहकाण्डं समाप्तम् ।

श्रीमन्नामः नमः

श्रीबाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गत—

आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

राज्यकाण्डम् (पूर्वार्द्धम्)

प्रथमः सर्गः

(रामसहस्रनाम)

विष्णुदान उवाच

रामदास गुरो प्रोक्तं त्वया पूर्वं ममांतिके । विवाहकाण्डचरमसर्गेऽत्र पातकावहे ॥ १ ॥
रामनामसहस्रं नारदेन महान्मना । सुतास्तेन सभायां स रामचन्द्रः स्तुतस्त्विति ॥ २ ॥
तत्कीदृशं रामनामसहस्रं मां प्रकाशय । कथं सूतेन कथितं मुनीनामग्रतः पुरा ॥ ३ ॥

ध्यामदास उवाच

सम्पक्वपुष्टं त्वया शिष्य सावधानमनाः शृणु । रामनामसहस्रं च सूतोक्तं प्रवदामि ते ॥ ४ ॥
यथा त्वया कृतः प्रश्नः शौनकेन तथा कृतः । पूतः प्रह तदाकर्ण्य शौनकं नैमिषे वने ॥ ५ ॥

ध्यामदास उवाच

एकदा सुखमार्मिनी पार्वतीपरमेश्वरी । अत्योन्मादस्त्रिष्टयद्राह लोकरक्षतन्परी ॥ ६ ॥
इन्द्रादिलोकपालैश्च संवितो च पातयरी । पार्वती परिपचष्ट तदा धर्माननुक्रमात् ॥ ७ ॥

पार्वत्युवाच

ममाद्य जगतां नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर । स्वप्नमादान्मया शत धर्मशास्त्रपनुत्तमम् ॥ ८ ॥
प्रायश्चित्तं तु पापानां श्रुतं सर्वमनुपतः । ब्रह्महत्यादिपापानां निष्कृतिं वक्तुमर्हसि ॥ ९ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो रामदास ! अभी-अभी आप मुझसे कह चुके हैं कि पातकोंको नष्ट करने-
वाले विवाहकांडमें नारदने सुतोक्त रामसहस्रनामने सभामें रामचन्द्रजीको स्तुति की थी ॥ १ ॥ २ ॥
वह रामसहस्रनाम कैसा है और किस प्रकार ध्यामदाजीने मुनियोंके समक्ष उसे प्रकट किया था । सो आप
मुझसे कहें ॥ ३ ॥ ध्यामदासने कहा—हे शिष्य ! तुमने बहुत उत्तम प्रश्न किया है, सावधान चित्त होकर
सुनो । मैं तुम्हें सूतका [] दूँगा । रामसहस्रनाम सुनता हूँ । आज जिस तरह तुम मुझसे पूछ रहे हो, उसी
तरह शौनकने सुतजीसे पूछा था । उनका प्रश्न सुनकर नैमिषारण्यमें सुतजीने शौनकसे कहा—एक समय
लोकरक्षामें तत्पर शिव और [] मलयहिमां डाले हुए आनन्दपूर्वक बैठे थे ॥ ४-६ ॥ सर्वश्रेष्ठ देवता शिव
और पार्वतीकी सेवामें इन्द्रादि लोकपाल उपस्थित थे । उस समय शिव-पार्वतीमें कोई धार्मिक चर्चा []
होई थी । [] पाकर पार्वतीने शिवजीसे कहा—हे हमारे प्रभु जगत्के प्रभु, सर्वज्ञ एवं परमेश्वर ! आपकी
रूपसे मैंने समस्त धर्मशास्त्र जान लिया । पापोंका प्रायश्चित्त किस तरह हो सकता [] सो भी सुन मुनी ।

श्रीमहादेव उवाच

मृणु देवि प्रवक्ष्यामि गुप्ताङ्गुष्ठतरं महत् । सनत्कुमारविघ्नेशसंवादं पापनाशनम् ॥१०॥
उपविष्टं गणाध्यक्षवेकान्ते प्रणिपत्य च । सनत्कुमारः प्रपद्य सर्वधर्मविदां वरम् ॥११॥

सनत्कुमार उवाच

भगवन् सर्वधर्मज्ञ सर्वविघ्नविनाशन । द्विजहस्ताहरं धर्मं वक्तुमर्हसि मे प्रभो ॥१२॥
विना भवन्तं धर्मस्य यत्ना नास्ति जगत्त्रये ।

श्रीगणेश उवाच

साधु एष्टं त्वया ब्रह्मन्सर्वलोकोपकारकम् ॥१३॥

मया चिरं कृतं कर्म स्मारितं भवताऽनघ । पुराऽहं गजरूपेण जातः पर्वतसन्निभः ॥१४॥
वतो वृक्षान्समुत्पाद्य मुनिर्हिंसां समारभम् । तदा मया मुनिगणा निहता बहवो बलात् ॥१५॥
हाहाकारा महानासोर्वृक्षगणानां समन्ततः । तदा हृत्पामदम्भेण वेष्टितः पतितोऽस्म्यहम् ॥१६॥
निःसंभं मृततुल्यं मां पतितं वीक्ष्य मे पिता । आराध्य जगतामीशं रामं सर्वहृदि स्थितम् ॥१७॥
प्रत्यक्षमकरोद्देव मद्भेतो रघुनन्दनम् । तदा प्रोवाच भगवान् भीरामः पितरं मम ॥१८॥

श्रीराम उवाच

वसन्तोऽस्मि महादेव किं मां प्रार्थयसे प्रभो । दास्यामि यदमीष्टं ते त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥१९॥

श्रीमहादेव उवाच

द्विजहस्तासमाविष्टं मम पुत्रमिमं प्रभो । निष्पापं गुरु देवेश यद्यस्ति मयि ते दया ॥२०॥

श्रीगणेश उवाच

तवेत्युचत्वा तदा तेन कृपयाऽहं निरीक्षितः । तत्क्षणाह्णध्वजं चो निर्मलज्ञानवर्धितः ॥२१॥
बहुभिर्गणपद्यैश्च स्तुत्वा तं प्रणतोऽभवम् ।

■ आप मुझपर कृपा करके ब्रह्महत्यादि महापापोंका निष्कृति का कोई उपाय बतलाइए । श्रीशिवजी बोले—
हे देवि ! मैं तुम्हें अतिशय गुड़ तथा पापनाशक सनत्कुमार और गणपति का सम्वाद सुनाता हूँ ॥ ७-१० ॥ एक
समय ■ कि गणेशजी एकान्तमें बैठे हुए थे, तब सनत्कुमारने जाकर उन्हें प्रणाम किया और कहा—हे
भगवन् ! समस्त धर्मोंको जाननेवाले ■ विघ्नके विनाशक ■ प्रभो ! गुप्ते ऋद्धहृत्पाका विनाश करनेवाला
कोई धर्म बतलाइये ॥ ११ ॥ १२ ॥ आपके सिवाय तीनों लोकमें कोई भी धमका बला मुझे नहीं दीक्षाता ।
गणपतिने कहा—हे ब्रह्मन् । तुमने मुझसे बहुत डाँक ■ किया है । इससे सारे ससारका उपकार होगा ॥ १३ ॥
तुमने एक ही बातसे पूर्वमें किये हुए मेरे सब कर्मोंका स्मरण दिला दिया है । पूर्वकालमें ■ गजस्यसे संसारमें
जन्मा ■ और पर्वतको भीति लम्बा-चोड़ा मेरा डोल डोल था ॥ १४ ॥ उस समय मैने पहले तो बहुतसे वृक्ष
उखाड़े । फिर मुनियोंकी हिंसा आरम्भ कर दी । मैने अपने अपरिमेय बलसे कितने ही मुनियोंका यक्ष कर
पापी बन बैठा ॥ १५ ॥ १६ ॥ मेरे होश-हवास ठिकाने न रहे तथा एक मृतककी नाई मेरी आकृति हो गयी ।
मेरी ■ देखकर मेरे पिताने संसारके महाप्रभु रामकी आराधना की । इससे प्रसन्न होकर रामचन्द्रजी मेरे पिता-
■ समुल्ल भाये और कहने लगे । रामचन्द्रजी बाल—हे महादेव ! मैं तुम्हारे ऊपर अति प्रसन्न हूँ । बतलाओ,
■ किसलिये ■ प्रकार मेरी प्रार्थना ■ रहे हों ? तुम्हारा कामना यदि तीन लोकमें दुर्लभ होगा तो भी मैं
उसे पूर्ण करूँगा ॥ १७-१९ ॥ श्रीशिवजीने कहा—हे प्रभा ! मेरे पुत्र गणेशको ब्रह्महत्या लग गयी है । हे देवेश ।
यदि आपकी मुसपर दया हो तो उसे निष्पाप कर दीजिये ॥२०॥ श्रीगणेशजी सनत्कुमारसे कहने लगे—इस प्रकार मेरे
■ बाँसे सुनकर रामचन्द्रने अपनी कृपाधरी दृष्टिसे एक बार मेरी ओर देखा । उनके देखते ■ मैं वैतन्य हूँ
■ । येरेमें एक निर्मल ■ सज्जन संचार हो गया ॥ २१ ॥ तब बहुतसे गद्य-पद्यों द्वारा मैने भगवान्की

श्रीरामचन्द्र उवाच

द्विजहत्यासहस्रस्य प्रायश्चित्तं वदामि ते ॥ २२ ॥

अथ नामसहस्रं मे हत्याकोटिविनाशकम् । इति गुह्यं ददौ रामस्तत्त्वं नामसहस्रकम् ॥ २३ ॥

तस्य तद्ग्रहणादेव निष्पापोऽहं तदाऽभवम् । तदाभ्यास्मि देवानां पूज्योऽहं मुनिसत्तम ॥ २४ ॥

त्वमप्येतदधीयानो राघवस्य महात्मना । नाम्नां सहस्रं लोकेषु प्रख्यापय महामते ॥ २५ ॥

सनत्कुमार उवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि गणाधिप । न्वन्मसादान्मयाऽधीतं रामनामसहस्रकम् ॥ २६ ॥

श्रीमहादेव उवाच

इति विज्ञाप्य देवेशं परिक्रम्य प्रणम्य च । तदादि भूतत जप्त्वा स्तोत्रमेतद्वरानने ॥ २७ ॥

अथाप परमां सिद्धिं पुण्यपापविवर्जितः ।

श्रीपार्वत्युवाच

श्रोतुमिच्छामि देवेश तदहं सर्वकामदम् ॥ २८ ॥

नाम्नां सहस्रं मां ब्रूहि परमि मयि ते दया ।

श्रीमहादेव उवाच

अथ वक्ष्यामि भो देवि रामनामसहस्रकम् । शृणुस्वैकपनाः स्तोत्रं गुह्याद्गुह्यतरं महत् ॥ २९ ॥

ऋषिर्विनायकवधास्य हनुमुदुच्छन्द उच्यते । परमस्यात्मको रामो देवता शुभदर्शने ॥ ३० ॥

ॐ अस्य श्रीरामसहस्रनाममालामंत्रस्य विनायक ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीरामो देवता महाविष्णुरिति बीजं गुणभूमिगुणो महानिति शक्तिः मन्त्रिदानन्दविग्रह इति कीलकं श्रीराम-
प्रीत्यर्थं जपे विनियोगःॐ श्रीरामचन्द्राय अंगुष्ठाम्बाय नमः । सीतापतये तर्जनीम्बाय नमः । रघुनाथाय मध्यमाम्बाय नमः ।
भरताग्रजाय अनामिकाय नमः । दशरथात्मजाय कनिष्ठिकाय नमः । हनुमत्प्रभवे करतलकर-
पृष्ठाय नमः । श्रीरामचन्द्राय हृदयाय नमः । सीतापतये शिरसे स्वाहा । रघुनाथाय शिखायै वषट् ।
भरताग्रजाय कवचाय हुम् । दशरथात्मजाय नेत्रत्रयाय वीँष्ट । हनुमत्प्रभवे अस्त्राय फट् ।स्तुति की और उनके चरणोंमें लोट गया । फिर रामचन्द्रजी कहने लगे—हजारों द्विजहत्याके पापसे उद्धार पाकेका
अपराध मैं मुझें बतलाता हूँ ॥ २२ ॥ मेरे 'रामसहस्रनाम' का जप करनेसे ब्रह्महत्याकोईका पाप भी ■■■■■ नष्ट होता है ।
ऐसा कहकर रामचन्द्रजीने अपना गुप्त सहस्रनाम मुझे बताया और उसके ग्रहणमात्रसे मेरे पाप नष्ट हो
गये । तभीसे है मुनिसत्तम ! मैं देवताओंका भी पूज्य हो गया हूँ ॥ २३ ॥ २४ ॥ तुम भी इसी रामसहस्रनामका
पाठ करते हुए संसारमें इसका प्रचार करो । सनत्कुमारने कहा—मैं धन्य हूँ । मुझपर आपकी बड़ी कृपा है ।
आपहीकी दयासे मैंने रामसहस्रनाम पा लिया । मैं कृतार्थ हो गया । श्रीशिवजीने कहा—इस तरह उस सहस्र-
नामको जानकर सनत्कुमारने गणेशजीकी परिक्रमा की, प्रणाम किया और तभीसे नित्य इसका जप करके पुण्य-
पापसे विवर्जित होकर वे परम सिद्धिमें प्राप्त हुए । पार्वतीजी बोली—हे देवेश ! ■■■■■ कामनाओंको पूर्ण करनेवाले
रामसहस्रनामको मैं भी जानना चाहती हूँ । यदि आपकी मुझपर दया रहती हो तो मुझे बताइए । शिवजी कहने
लगे—हे देवि ! मैं मुझें वह पुनीत सहस्रनाम बतलाता हूँ । तुम भी सावधान मन होकर उस गुह्यगुह्य
स्तोत्रकी सुनो ॥ २५—२९ ॥ इस रामसहस्रनाम मंत्रमय स्तोत्रके ऋषि विनायक हैं और साक्षात् परब्रह्म ■■■■■
इसके देवता हैं ॥ ३० ॥ 'ॐ अस्य श्रीराम' इस मंत्रसे विनियोग करके 'श्रीरामचन्द्राय' कहकर अंगुष्ठ, 'सीता-
पतये' कहकर तर्जनी, 'रघुनाथाय' कहकर मध्यकी अंगुली, 'भरताग्रजाय' कहकर अनामिका, 'दशरथात्मजाय'
कहकर कनिष्ठिका, 'हनुमत्प्रभवे' कहकर दोनों करपृष्ठोंका न्यास करे । फिर 'रामचन्द्राय' कहकर हृदय,
'सीतापतये' कहकर शिर, 'रघुनाथाय' कहकर शिखा, 'भरताग्रजाय' से दोनों बाहुमूल, 'दशरथात्मजाय'

अथ ध्यानम्

ध्यायेदाजाधुमाहुं धृतघराधनुषं धत्तपद्मासनस्थं
 पीतं वासो वसानं नवकमलस्पर्धि नेत्रं प्रसन्नम् ।
 वामाङ्कारुटसीतामुस्तकमलमिललोचनं नीरदामं
 नानालङ्कारदीप्तं दधत्तमृदुजटामण्डलं रामचन्द्रम् ॥३१॥
 वैदेहीसहितं सुरद्रुमतले हेमे महामण्डपे
 ग्रन्थे पुष्पमहासने मणिमये वीगमने संस्थितम् ।
 अग्रे वाचयति प्रभञ्जनसुते तत्त्वं मुनिभ्यः परं

व्याख्यातं भरतादिभिः परिवृतं रामं भवेच्छ्रयामलम् ॥३२॥

सौवर्णमण्डपे दिव्ये पुष्पके सुविगजिते । मूले कल्पतरोः स्वर्णपाटे सिंहाटसंयुते ॥३३॥
 मृदुश्लक्ष्णातिरे तत्र जानकया सह संस्थितम् । रामं नीलोत्पलउपामं द्विभुजं पीतवाससम् ॥३४॥
 स्मितवक्त्रं सुखासीनं पद्मपद्मनिषेक्षणम् । किरीटहारकंयूरकुण्डलैः कटकादिभिः ॥३५॥
 आश्रयमानं ज्ञानमुद्राधरं वीरासनस्थितम् । स्पृष्टान्तं स्तनधोरग्रं जानक्याः सव्यपाणिना ॥३६॥
 वसिष्ठवामदेवाद्यैः सेवितं लक्ष्मणादिभिः । अयोध्यानगरे रम्ये अभिषिक्तं रघूद्वहम् ॥३७॥
 एवं ध्यात्वा जपेन्नित्यं रामनाममहत्प्रकम् । इत्याक्रोष्टियुतो वाऽपि मुच्यते नात्र मंश्रयः ॥३८॥
 अंशमः भीमान्महाविष्णुर्जिष्णुर्देवहिताशुः । तत्त्वात्मा तारक प्रह्लादाश्वतः सर्वसिद्धिदः ॥३९॥
 राजीवलोचनः भीमाश्चूरापी रघुवंशवः । रामभद्रः सदाचारो राजेंद्रो जानकीपतिः ॥४०॥
 अग्रगण्यो वरेण्यश्च वरदः परमेश्वरः । जनार्दनो जितामित्रः परार्थकप्रयोजनः ॥४१॥

ये दोनों नेत्र छुए तथा 'हनुमत्प्रभवे' कहकर मुटकी बजावे । अथ ध्यानम् । जिनका आभारु बाहु है, जो धनुष-
 धारण किये हैं, पद्मासन भारकर बंटे हैं, पीत वस्त्र पहने हैं, गुतन कमलदलसे होठ करनेवाली जिनकी
 दोनों आँखें हैं, जिनके वामांगमें सीताजी बैठी हैं, सीता तथा राम दोनों आपसमें एक दूसरेके मूँछकी गोभा
 देखानेमें संलग्न हैं, नवीन मेघके सदृश जिनकी मुख है, ऐसे विविध प्रकारके अलङ्कारोंमें भलकृत तथा लम्बी-
 लम्बी जटा धारण करनेवाले रामचन्द्रका ध्यान करे ॥ ३१ ॥ कल्पवृक्षके नीचे सीताजीके साथ एक सुन्दर सुवर्णके
 मण्डपमें पुष्पनिर्मित महासन, जिसमें अनेक प्रकारकी मणिवाँ जड़ी हैं, उसपर श्रीराम वीरासनसे बंटे हुए हैं ।
 उनके सामने बंटे हनुमान्जी मुनियोंकी परम सत्सङ्गी ध्यान ग सुना रहे हैं । भरतादि दोनों भ्राता जिनकी
 अगल-बगल खड़े हैं । ऐसे ध्यामस्वरूप रामका भजन करे ॥ ३२ ॥ सुवर्णनिर्मित दिव्य पुष्पक विमान कल्पतरोके
 नीचे रक्खा है । जिसमें आठ सिंह सगे हैं । जो कोमल और चिकनी हैं, ऐसी गद्दीपर सीताके साथ बैठी हुए
 हैं, नीलकमल सरीखे जिनके नेत्र हैं, दो भुजाएँ हैं, पीत वस्त्र हैं, पुष्कुराता हुआ मुँह और वे आनन्दसे
 बंटे हैं । किरीट, हार, कंयूर, कुण्डल और कटकादिक सुशोभित हो रहे हैं । वे एक ओर जानपूजा धारण
 किये हैं । दूसरी तरफ बायें हाथसे सीताके स्तनोंकी सहला रहे हैं ॥ ३३-३६ ॥ वसिष्ठ, वामदेव तथा
 लक्ष्मणादिक जिनकी सेवामें तत्पर हैं । अयोध्या नगरमें जिनका राज्याभिषेक हो चुका है । ऐसे रघूद्वह
 रामचन्द्रजीका ध्यान करके सर्वदा इस रामसहस्रनामका पाठ करना चाहिए । ऐसा करनेसे यदि किसीकी
 करौड़ों हत्यामें भी लगी हों तो दूर हो जाती हैं । इसमें किसी प्रकारका संशय नहीं करना चाहिए ॥ ३७ ॥ ३८ ॥
 अब सहस्रनाम कहते हैं—राम, भीमान्, महाविष्णु, जिष्णु (सबको जीतनेवाले), देवहितावह
 (देवताओंका कल्याण करनेवाले), तत्त्वात्मस्वरूप, तारकब्रह्म, रामभक्त, सर्वसिद्धिद । प्रकारकी सिद्धियों-
 को देनेवाले ॥ ३९ ॥ कमल सरीखे भेषवाले, श्रीराम, रघुवंशमें प्रेष्ट, रामभद्र, सदाचार (पुनीत
 आचारवाले) राजेंद्र, जानकीके पति ॥ ४० ॥ सबके अग्रेसर, वरेण्य (सर्वश्रेष्ठ), वरद (वरदायक)

विश्वामित्रप्रियो दाता शत्रुजिच्छत्रुतापनः । सर्वज्ञः सर्ववेदादिः शरण्यो वालिमर्दनः ॥४२॥
 ज्ञानभव्योऽपरिच्छेद्यो वाग्मी सत्यव्रतः शुचिः । ज्ञानगम्यो दृढप्रज्ञः खरध्वंसो प्रतापवान् ॥४३॥
 धृतिमानात्मवान् धीरो जितक्रोधोऽरिमर्दनः । विश्वरूपो विशालाक्षः प्रभुः परिवृद्धो दृढः ॥४४॥
 ईशः खड्गधरः भीमान् कौसल्येयोऽनसूयकः । विपुलांसो महोरस्कः परमेष्ठी परायणः ॥४५॥
 सत्यव्रतः सत्यसंधो गुरुः परमधार्मिकः । लोकेशो लोकवंद्यश्च लोकात्मा लोककृद्भिभुः ॥४६॥
 अनादिर्भगवान् सेव्यो जितमायो रघूद्वहः । रामो दयाकरो दक्षः सर्वज्ञः सर्वपावनः ॥४७॥
 ब्रह्मण्यो नीतिमान् गोप्ता सर्वदेवमयो हरिः । सुन्दरः पीतवासाश्च सूत्रकारः पुरातनः ॥४८॥
 सौम्यो महर्षिः कोदण्डः सर्वज्ञः सर्वकोविदः । कविः सुग्रीववरदः सर्वपुण्याधिकप्रदः ॥४९॥
 भव्यो जितारिषड्वर्गो महोदारोऽधनाशनः । सुकीर्तिरादिपुरुषः कान्तः पुण्यकृतागमः ॥५०॥
 अकल्मषश्चतुर्बाहुः सर्वावासो दुरासदः १०० । स्मितभाषी निवृत्तात्मा स्मृतिमान् वीर्यवान् प्रभुः ॥५१॥
 धीरो दांतो घनश्यामः सर्वायुधविशारदः । अध्यात्मयोगनिलयः सुमना लक्ष्मणाग्रजः ॥५२॥
 सर्वतीर्थमयः पूरः सर्वयज्ञफलप्रदः । यज्ञस्वरूपो यज्ञेशो जलामरणवर्जितः ॥५३॥

परमेश्वर, जनार्दन, जितामित्र (शत्रुओंको परास्त करनेवाले), परार्थकप्रयोजन (परोपकार करना ही जिनका एकमात्र प्रयोजन) , विश्वामित्रके प्रिय, आता, शत्रुओंको जीतनेवाले, शत्रुतापन (शत्रुको तपानेवाले), सर्वज्ञ, सर्ववेदादि (समस्त वेदोंके आदि कारण), शरण्य, वालिमर्दन (वालिको परास्त करनेवाले), ज्ञानभव्य, परिच्छेद्य, वाग्मी (कुशल वक्ता), सत्यव्रत, शुचि (पवित्र), ज्ञानगम्य (ज्ञानद्वारा जानने योग्य), दृढतम (स्थिर बुद्धिवाले), खरध्वंसी, प्रतापवान्, आत्मवान्, धीर, जितक्रोध (जिन्होंने क्रोधको जीत लिया) , अरिमर्दन (शत्रुको नीचा दिलानेवाले), विश्वस्वरूप । संसार ही जिनका स्वरूप है), विशालाक्ष (बड़ी-बड़ी आँखोंवाले), प्रभु (समस्त जगत्के ईश्वर । परिवृद्ध । सत्कर्त) ॥ ४१-४४ ॥ ईश (सब संसारके स्वामी), खड्गधर (तलवार धारण करनेवाले), भीमान्, कौसल्येय (कौसल्याके पुत्र), अनसूयक । किसीसे ईर्ष्या न करनेवाले), विपुलांस । जिनके खूब चौड़े कंधे हैं), महोरस्क (जिनकी विशाल छाती) , परमेष्ठी (जो ब्रह्मास्वरूप हैं), सत्यव्रतपरायण (सत्यव्रती), सत्यसंध (सत्यप्रतिज्ञ), गुरु (सर्वप्रेष्ठ), परम धार्मिक, लोकेश (सब लोकोंके आता), लोकवंद्य (सब लोकोंसे वन्दनीय), लोकात्मा (सब लोकोंके आत्मा), लोककृत (लोकोंके रचयिता), बिभु (सर्वव्यापी) ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ अनादि (जिनका आदि नहीं है), भगवान् (सर्वसम्पत्तिशाली), सेव्य । सेवा योग्य), जितमाय (मायाको जीतनेवाले), रघूद्वह । रघुवंशके उच्चा-ग्रकर्ता), राम, दयाकर (दयाके सागिस्वरूप), (■■■ कार्योंमें निपुण), सर्वज्ञ, सर्वपावन (सबको पुनर्जात करनेवाले), ब्रह्मण्य (ब्रह्मणमूल); नीतिमान्, गोप्ता । संरक्षक), सर्वदेवमय, हरि, सुन्दर, पीतवासा (पीले वस्त्र धारण करनेवाले), पुरातन सूत्रकार । सर्वप्राचीन सूत्रकार अर्थात् सूत्ररूपमें ग्रंथोंके रचयिता), पुरातन (सबसे प्राचीन) ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ सौम्य (जिनका सरल स्वभाव है), महर्षि, कोदण्ड (घनुचोर), सर्वज्ञ, सर्वकोविद (सब विषयोंके पूर्ण पण्डित), कवि, सुग्रीववरद (सुग्रीवको अभयवर देनेवाले), सर्व-पुण्याधिकप्रद (सब पुण्योंसे जो अधिक फल देनेवाले) ॥ ४९ ॥ भव्य, जितारिषड्वर्ग (जिन्होंने अपने वलसे शत्रुके मंत्र-उत्साहादि छः वर्गोंको जीत लिया है), महोदार (जो सबसे उदार हैं), अधनाशन (पापका ■■■ करनेवाले, सुकीर्ति । जिनकी सुन्दर कीर्ति है), आदिपुरुष (जो सबके आदि पुरुष हैं), कान्त । सर्वप्रिय), पुण्यकृतागम (पवित्रविचारसम्पन्न), अकल्मष (पापरहित), चतुर्बाहु (चतुर्भुज), सर्ववास (सबके निवासस्थान), दुरासद (बड़ी कठिनाईसे प्राप्त १००) स्मितभाषी । मुस्कुराते हुए बातें करने-वाले), निवृत्तात्मा (जिनकी आत्मा स्वतन्त्र है), जो स्मृतिमान्, वीर्यवान् और सबके प्रभु हैं । धीर, दान्त (उदारप्रकृति), घनश्याम (मेघकी नाई श्यामस्वरूप), सर्वायुधविशारद (सब शस्त्रास्त्रोंमें निपुण), अध्यात्मयोगनिलय (अध्यात्मयोगके निवास), सुमना (सुन्दर चित्तवाले), लक्ष्मणाग्रज (लक्ष्मणके बड़े भ्राता), ॥ ५०-५२ ॥ तीर्थमय, पूर (जलाधारण सोड़ा), सर्वयज्ञफलप्रद (सब यज्ञोंके फलदाता) यज्ञस्वरूप

वर्णाश्रमगुरुर्वर्णी शत्रुजिन्पुरुषोत्तमः । शिवलिङ्गप्रतिष्ठाता परमात्मा परात्परः ॥५४॥
 प्रमाद्यभूतो दुर्ज्ञेयः पूर्णः परपुरुषजयः । अनन्तदृष्टिरनन्दो धनुर्वेदो धनुर्वरः ॥५५॥
 गुणाकरो गुणश्रेष्ठः सच्चिदानन्दविग्रहः । अभिवाद्यो महाकायो विश्वकर्मा विशाखदः ॥५६॥
 विनीतात्मा वीतरागस्त्वपस्वीशो जनेश्वरः । कल्याणः प्रहृतिः कल्पः सर्वेशः सर्वकामदः ॥५७॥
 अक्षयः पुरुषः साक्षी केशवः पुरुषोत्तमः । लोकाध्यक्षो महाकार्यो विभीषणवरप्रदः ॥५८॥
 आनन्दविग्रहो ज्योतिर्हनुमत्प्रभुरव्ययः । आजिष्णुः सहनो भोक्ता सत्यवादी बहुश्रुतः ॥५९॥
 सुखदः कारणं कर्ता भवबन्धविमोचनः । देवचूडामणिनेता ब्रह्मर्षो ब्रह्मवर्धनः ॥६०॥
 संसारसारको रामः सर्वदुःखविमोक्षकृत् । विद्वत्तमो विश्वकर्ता विश्वकृद्विश्वकर्म च ॥६१॥
 नित्यो नियतकल्याणः सीताशोकविनाशकृत् । काकुत्स्थः पुण्डरीकाक्षो विश्वामित्रमयापदः ॥६२॥
 मारीचमथनो रामो विराधवधपण्डितः । दुःस्वप्ननाशनो रम्यः किरीटी त्रिदशाधिपः ॥६३॥
 महाधनुर्महाकायो भीमो भीमपराक्रमः । तत्त्वस्वरूपस्तत्त्वज्ञस्तत्त्ववादी सुविक्रमः ॥६४॥
 भूतात्मा भूतकृत्स्वामी कालहन्ता महावपुः । अतिविष्णो गुणधामो निष्कलंकः कलंकहा ॥६५॥
 स्वभायप्रदः शत्रुघ्नः केशवः स्थाणुरीधरः । भूतादिः शंभुरादित्यः स्थविः शाश्वतो ध्रुवः ॥६६॥
 कवची कुण्डली चक्री खड्गी भक्तजनप्रियः । अमृत्युर्जन्मरहितः सर्वजित्सर्वगोचरः ॥६७॥
 अनुत्तमोऽग्रमेधात्मा सर्वान्मा गुणसागरः २०० । समः समात्मा समगो जटामुकुटमण्डितः ॥६८॥
 अजेयः सर्वभूतात्मा विश्वक्सेनो महानथाः । लोकाध्यक्षो महाबाहूरमृतो वेदवित्तमः ॥६९॥

(यज्ञके मूर्त रूप), यज्ञेश (यज्ञोके स्वामी), जरामरणवजित (बुढ़ापा और मृत्यु दोनोंसे रहित),
 वर्णाश्रमगुरु (वर्ण और आश्रमके गुरु), शत्रुजित् । शत्रुओंको जीतनेवाले) पुरुषोत्तम ([५४] पुरुषोंमें श्रेष्ठ),
 शिवलिङ्गप्रतिष्ठाता (विविध शिवलिङ्गोंके संस्थापक), परमात्मा, परात्पर, प्रमाणभूत । विश्वके प्रमाणस्वरूप),
 दुर्ज्ञेय (बड़ी कठिनाईसे जानने योग्य), पूर्ण, परपुरुषजय (शत्रुनगरोंके विजेता), अनन्तदृष्टि (अपारदृष्टि),
 आनन्द, धनुर्वेदके गाता, धनुर्वीर, गुणाकर (गुणोंके भण्डार), गुणश्रेष्ठ ([५६] गुणोंमें श्रेष्ठ), सच्चिदानन्दविग्रह
 (सत् चिद् आनन्द इन तीनोंसे जितना शरीर बना है), अभिवाद्य (सबके बन्दनार्थ), महाकाय,
 विश्वकर्मा, विशाखद ॥ ५३-५६ ॥ विनीत आत्मावाले, वीतराग (रागद्वेषभूम्य), तपस्वीश (तपस्वियोंके
 स्वामी), जनेश्वर, कल्याण (कल्याणस्वरूप), प्रहृति (सदा प्रसन्न), कल्प (स्थिति तथा प्रलयकालके
 अधिपति), सर्वेश, सर्वकामद, अक्षय, पुरुष, साक्षी, केशव, पुरुषोत्तम, लोकाध्यक्ष, महाकार्य,
 विभीषणवरप्रद ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ आनन्दविग्रह (आनन्दके मूर्त रूप), ज्योतिस्वरूप, हनुमान्के स्वामी,
 मविनाशी, आजिष्णु (दान्तिसम्पन्न), सहनशील, भोक्ता, सत्यवादी बहुश्रुत ॥ ५९ ॥ सुखदायी,
 कारणस्वरूप, कर्ता, भवबन्धनसे छुड़ानेवाले, देवताओंके मूर्धन्य, ब्राह्मणभक्त, ब्राह्मणोंके उन्नयक
 ॥ ६० ॥ संसारसागरसे तारनेवाले, [६१] दुःखोंसे छुड़ानेवाले, अतिशय विद्वान्, विश्वरक्षयिता,
 विश्वकर्ता, विश्वके कर्ताव्य कर्मस्वरूप ॥ ६१ ॥ नित्य, कल्याणतत्त्व, सीताशोकनाशक, कानुस्स्य,
 कमलनयन, विश्वामित्रमयाहारी ॥ ६२ ॥ मारीचघाती, राम, विराधवधमें निपुण, दुःस्वप्ननिवारक, रमणीक,
 किरीटधारी, देवाधिपति ॥ ६३ ॥ विशाल धनुष धारण करनेवाले, विशालकाय, भयानक, भयानक पराक्रम-
 सम्पन्न, तत्त्वोंके मूर्तरूप, तत्त्वोंके गाता, तत्त्वविषयके वक्ता, असमधारण पराक्रमी ॥ ६४ ॥ प्रज्ञाधायके
 स्रष्टा, सबके स्वामी, समर्थके पारखी, विशालशरीरधारी, सदा प्रसन्न, गुणधाम, निष्कलंक, कलंकनाशक
 ॥ ६५ ॥ स्वभावतः कल्याणकारी, शत्रुनाशक, केशव, चिरस्थायी, ईश्वर, प्राणिमोके आवि, शम्भु, अद्वि-
 तनय, स्थायी, नित्य, अटल ॥ ६६ ॥ कवचधारी, कुण्डलधारी, चक्रधारी, खड्गधारी, भक्तजनोंके प्रिय, अमर,
 अजन्मा, सबके विजेता, सर्वेश ॥ ६७ ॥ सर्वोत्तम, अग्रमेधात्मा, सर्वान्मा, गुणसागर २०० । सदा सम,
 प्रकृति, समात्मा, समशामी, जटामुकुटविमण्डित ॥ ६८ ॥ अजेय, सर्वभूतारमा, विश्वक्सेन, नहुतथा,

सहिष्णुः सद्गतिः शास्त्राविधयोनिर्महाद्युतिः । अनीन्द्र ऊर्जिनः प्रांशुरूपेन्द्रो वामनो बलिः ॥७०॥
 धनुर्वेदो विधाता च भद्रा विष्णुश्च शक्रः । हंसो भरोचिर्मोहिन्दो रत्नगर्भो महद्भुतिः ॥७१॥
 व्यासो वाचस्पतिः भवेदपिन्तासुगन्धनः । जानकावल्लभः श्रीमान् प्रकटः प्रीतिवर्धनः ॥७२॥
 समोऽर्त्ताद्रियो वेद्यो निर्देशो जाम्बवान्प्रभुः । मदनो मन्मथो व्यापी विश्वरूपो निरञ्जनः ॥७३॥
 नारायणोऽग्रणी साधुर्जटापुत्रीतिवर्धनः । नैकरूपो जगन्नाथः सुरकार्यहितः प्रभुः ॥७४॥
 जितक्रोधो जितरातिः प्लवगाधिवराज्यदः । वसुदः सुभुजो नैकमायो भव्यः प्रमोदनः ॥७५॥
 चण्डांशुः सिद्धिदः कल्पः शरणागतवत्सलः । भगदो रोगहर्ता च मन्त्रतो मन्त्रभावनः ॥७६॥
 सौमित्रिवत्सलो धुर्यो व्यक्ताव्यक्तरूपधृक् । वसिष्ठो ग्रामर्षीः श्रीमाननुकूलः प्रियवदः ॥७७॥
 अतुलः सात्त्विको धीरः शरासनविशारदः । ज्येष्ठः सर्वगुणोपेतः शक्तिमांस्ताडकांतकः ॥७८॥
 वैकुण्ठः प्राणिनां प्राणः कमलः कमलाधिपः । गोवर्धनधरो मत्स्यरूपः कारुण्यसागरः ॥७९॥
 कुम्भकर्णप्रभेता च गोपीगोपालसंवृतः ३०० । मायावी व्यापको व्यापी रेणुकेयचलापहः ॥८०॥
 पिनाकमयनो वंशः समर्थो गरुडध्वजः । लाकवपाश्रयो लोकभरितो भरताग्रजः ॥८१॥
 श्रीधरः संगतिलोकसाक्षा नारायणो विभुः । मनोरूपो मनोवेगो पूर्णः पुरुषपुंगवः ॥८२॥
 यदुभेष्टो यदुपतिर्भूतावासः सुविक्रमः । तेजाधरो घराधरश्चतुर्भुजमहानिधिः ॥८३॥
 चाणूरमयनो वंशः शान्तो भरतवन्दितः । शब्दार्तिगो गर्भारात्मा कोमलांगः प्रजागरः ॥८४॥
 लोकोर्ध्वगः शेषशायी क्षीराब्धिनिलयोऽमलः । आत्मज्योतिरदानात्मा सहस्रार्चिः सहस्रपाद् ॥८५॥
 अमृतांशुर्महोगर्तो निवृत्तविषयस्पृहः । विकालज्ञो मुनिः सार्धो विहायसर्गातिः कृता ॥८६॥
 पर्जन्यः कुमुदो भूतावासः कमललोचनः । धावन्मवक्षाः श्रीवासा वारहा लक्ष्मणाग्रजः ॥८७॥
 लोकाभिरामो लोकारमर्दनः सेवकप्रियः । सनातनतमा मधुश्यामलो राक्षसांतकः ॥८८॥

लोकोर्ध्वगः स्वामी, महाबाहु, अमृत, वेदज्ञोऽपि धेनु ॥ ६६ ॥ सहिष्णुः सद्गतिः, शासकः, विश्व्यानि, परमकान्ति-
 मन्त्रप्र, अनीन्द्र (इन्द्रसे धेनु), अज्ञासम्पत्ता, सर्वोच्च, उनेन्द्र, वामन, बलिः ॥ ७० ॥ धनुर्वेदविधाता, भद्रा,
 विष्णु, शंकर, हंस, भरोचि, गोविन्द, रत्नगर्भ, महातेजस्वी ॥ ७१ ॥ व्यास, बृहस्पति, सभी अभिमानी
 असुरोके शासक, जानकावल्लभ, श्रीमान्, प्रकट, प्रीतिवर्धन ॥ ७२ ॥ समन्व, असोन्द्रिय, वेद्य, निर्देश,
 जाम्बवान्के स्वामी, मदन, मन्मथ, सर्वव्यापी, विश्वरूप, निरञ्जन ॥ ७३ ॥ नारायण, अग्रणी, साधु, जटापुर्के
 प्रीतिवर्धक, अनैकरूप, जगन्नाथ, देवकार्यसाधक, प्रभु ॥ ७४ ॥ जितक्रोध, शत्रुविजेता, सुप्रीवराज्यदायक,
 वसुदाता, सुभुज, विविधमायाधारी, भव्य, प्रमोदन ॥ ७५ ॥ चण्डांशु, सिद्धिदायक, कल्प, शरणागत-
 वत्सल, भगद, रोगहर्ता, मन्त्रज्ञ, मन्त्रभावन ॥ ७६ ॥ लक्ष्मणप्रिय, धुर्य, व्यक्त-अव्यक्तरूपधारी, वसिष्ठ, ग्रामीण,
 धीमान्, अनुकूल, प्रियवर्दी ॥ ७७ ॥ अनुद्धर्मीय, सात्त्विक, धीर, वसुविशामे निपुण, श्रेष्ठ, सर्वगुणसम्पन्न,
 शक्तिमान्, ताडकांके धातकः ॥ ७८ ॥ वैकुण्ठ, प्राणिनां प्राण, कर्मठ, कमलापति, गोवर्धनधारी, मत्स्य-
 रूपधारी, कल्याणसागर ॥ ७९ ॥ कुम्भकर्णके नासक, गोपीगोपालसंवृत ३००, मायावी, व्यापक,
 ध्यापी, रेणुकेय (परशुरामके बलनाशक) ॥ ८० ॥ धनुषध्वज, वंश, समर्थ, गरुडध्वज, तीर्ता लोकोके आश्रय,
 लोकभरित, भरतके बडे धाता ॥ ८१ ॥ श्रीधर, सङ्गति, लोकसाक्षा, नारायण, विभु, मनोरूपी, मनो-
 वेगो, पूर्ण, पुरुष-पुंगव ॥ ८२ ॥ यदुभेष्ट, यदुपति, भूतावास, सुविक्रम, तेजावर, घराधर, चतुर्भुज,
 महानिधि ॥ ८३ ॥ चाणूरमयन, वंश, शान्त, भरतवन्दित, शब्दार्तिग, गर्भारात्मा, कोमलांग, प्रजागर
 ॥ ८४ ॥ लोकोर्ध्वगामी, शेषशायी, क्षीराब्धिनिलय, अमल, आत्मज्योति, अदीनात्मा, सहस्रार्चि, सहस्रवरण
 ॥ ८५ ॥ अमृतांशु, महोगर्त, विषयकां स्पृहासे रहित, त्रिलोकज्ञ, मुनि, सार्धो, विहायसर्गाति, कृता ॥ ८६ ॥
 पर्जन्य, कुमुद, भूतावास, कमललोचन, धावन्मवक्षा, धावासा, वारहा, लक्ष्मणाग्रज ॥ ८७ ॥ लोकाभिराम, लोका-

दिव्यायुधधरः श्रीमानप्रमेयो जितेन्द्रियः । भूदेववन्द्यो जनकप्रियकृत्प्रपितामहः ॥८९॥
 उत्तमः सात्त्विकः सत्यः सत्यसन्धस्त्रिविक्रमः । सुवृत्तः सुगमः सूक्ष्मः सुधोषः सुखदः सुहृत् ॥९०॥
 दामोदरोऽच्युतः शार्ङ्गो वामनो मथुराधिपः । देवकीनन्दनः शौरि शूरः कैटभमर्दनः ॥९१॥
 सप्ततालप्रभेत्ता च मित्रवंशप्रवर्धनः । कालस्वरूपी कालात्मा कालः कल्याणदः ४०० कलिः ॥९२॥
 संवत्सरो ऋतुः पक्षो अयनं दिवसो युगः । स्तव्यो विविक्तो निर्लेपः सर्वव्यापी निराकुलः ॥९३॥
 अनादिनिधनः सर्वलोकपूज्यो निरामयः । रसो रसज्ञः सारज्ञो लोकसारो रसात्मकः ॥९४॥
 सर्वदुःखातिगो विद्याराशिः परमगोचरः । ज्ञेयो विज्ञेयो विगतकल्मसो रघुपुङ्गवः ॥९५॥
 वर्णश्रेष्ठो वर्णभान्वो वर्णो वर्णगुणोज्ज्वलः । कर्मसाक्षी गुणश्रेष्ठो देवः सुखप्रदः ॥९६॥
 देवाधिदेवो देवविदेवासुरनमस्कृतः । सर्वदेवमयश्चक्रो शार्ङ्गपाणी रघूत्तमः ॥९७॥
 मनोगुप्तिरहंकारः प्रकृतिः पुरुषोऽव्ययः । न्यायो न्यायी नयी श्रीमान् नयो नगधरो ध्रुवः ॥९८॥
 लक्ष्मीविश्वम्भरो भर्ता देवेन्द्रो बलिमर्दनः । बाणारिमर्दनो यज्वानुत्तमो मुनिसेवितः ॥९९॥
 देवाग्रणीः शिवध्यानतत्परः परमः परः । सामगेयः प्रियः शूरः पूर्णकीर्तिः सुलोचनः ॥१००॥
 अव्यक्तलक्षणो व्यक्तो दशास्यद्विपकेसरी । कलानिधिः कलानाथः कमलानन्दवर्धनः ॥१०१॥
 पुण्यः पुण्याधिकः पूर्णः पूर्वः पूरयिता रविः । जटिलः कल्मषध्वान्तप्रभजनविभावसुः ॥१०२॥
 जयी जितारिः सर्वादिः शमनो भवभञ्जनः । अलकरिष्णुचलो रोचिष्णुविक्रमोत्तमः ॥१०३॥
 आशुः शब्दपतिः शब्दागोचरो रंजनो लघुः । निःशब्दपुरुषो मायो स्थूलः सूक्ष्मो ५०० विलक्षणः ॥
 आरमयोनिरयोनिश्च सप्तजिह्वः सहस्रपात् । सनातनतमः स्रग्वी पेशलो विजिताम्बरः ॥१०५॥
 शक्तिमान् शस्त्रभृन्नाथो गदाधरस्यांगभृत् । निरीहो निर्विकल्पश्च चिद्रूपो वीतसाम्भवसः ॥१०६॥
 सनातनः सहस्राक्षः शतमूर्तिर्धनप्रभः । हृत्पुण्डरीकशयनः कठिनो द्रव एव च ॥१०७॥
 सूर्यो ग्रहपतिः श्रीमान् समर्थोऽनर्थनाशनः । अधर्मशत्रु रजोघ्नः पुरुहूतः पुरस्तुतः ॥१०८॥

रिमर्दन, सेवकप्रिय, सनातनतम, मेघश्यामल, राजसान्तक ॥ ८८ ॥ दिव्यायुधधर, श्रीमान्, अप्रमेय, जितेन्द्रिय, विप्रबन्ध, पिताके प्रियकर्ता, प्रपितामह ॥ ८९ ॥ उत्तम, सात्त्विक, सत्य, सत्यसन्ध, त्रिविक्रम, सुवृत्त, सुगम, सूक्ष्म, सुधोष, सुखद, सुहृत् ॥ ९० ॥ दामोदर, अच्युत, शार्ङ्गो, वामन, मथुराधिपति, देवकीनन्दन, वासुदेव, शूर, कैटभमर्दन ॥ ९१ ॥ सप्ततालप्रभेत्ता, मित्रवंशवर्धन, कालस्वरूपी, कालात्मा, काल, कल्याणद ४०० कलि, ॥ ९२ ॥ संवत्सर, ऋतु, पक्ष, अयन, युग, स्तव्य, विविक्त, निर्लेप, सर्वव्यापी, निराकुल ॥ ९३ ॥ अनादिनिधन, सर्वलोकपूज्य, निरामय, रस, रसज्ञ, सारज्ञ, लोकसार, रसात्मक ॥ ९४ ॥ सर्वदुःखातिग, विद्याराशि, परमगोचर, ज्ञेय, विज्ञेय, विगतकल्मस, रघुपुङ्गव, ॥ ९५ ॥ वर्णश्रेष्ठ, वर्णभान्व, वर्ण, वर्णगुणोज्ज्वल, कर्मसाक्षी, गुणश्रेष्ठ, देव, सुखप्रद ॥ ९६ ॥ देवाधिदेव, देववि, देवासुरनमस्कृत, सर्वदेवमय, चक्रो, शार्ङ्गपाणि, रघूत्तम, ॥ ९७ ॥ मन-बुद्धि-अहंकार, प्रकृति, पुरुष, अव्यय, न्याय, न्यायी, नयी, श्रीमान्, नय, नगधर, ध्रुव, ॥ ९८ ॥ लक्ष्मी-विश्वम्भर, भर्ता, देवेन्द्र, बलिमर्दन, बाणारिमर्दन, यज्वा, उत्तम, मुनिसेवित ॥ ९९ ॥ देवाग्रणी, शिवध्यानतत्पर, परम, पर, सामगेय, प्रिय, शूर, पूर्णकीर्ति, सुलोचन ॥ १०० ॥ अव्यक्तलक्षण, व्यक्त, दशास्यद्विपकेसरी, कलानिधि, कलानाथ, कमलानन्दवर्धन ॥ १०१ ॥ पुण्याधिक, पूर्ण, पूरयिता, रवि, जटिल, कल्मषोको ध्वस्त करनेवाले, अग्नि ॥ १०२ ॥ जयी, जितारि, सर्वादि, शमन, भवभञ्जन, अलकरिष्णु, अचल, रोचिष्णु, विक्रमोत्तम ॥ १०३ ॥ आशु, शब्दपति, शब्दागोचर, रंजन, लघु, निःशब्द, पुरुष, मायो, स्थूल, सूक्ष्म ५००, विलक्षण ॥ १०४ ॥ आरमयोनि, अयोनि, सप्तजिह्व, सहस्रपात्, सनातनतम, स्रग्वी, पेशल, विजिताम्बर ॥ १०५ ॥ शक्तिमान्, शस्त्रभृत्, नाथ, गदाधर, रयांगभृत्, निरीह, निर्विकल्प, चिद्रूप, वीतसाम्भवस ॥ १०६ ॥ सनातन,

सहस्रगर्भो बृहद्गर्भो धर्मधेनुर्धनागमः । हिरण्यगर्भो ज्योतिष्मान् सुललाट सुविक्रमः ॥१०९॥
 शिवपूजारतः श्रीमान् भवानीप्रियकृद्दृशी । नरो नारायण उग्रामः कपर्दी नीललोहितः ॥११०॥
 रुद्रः पशुपतिः स्वाणुर्विश्वामित्रो द्विजेश्वरः । मातामहो मातरिखा विरिषिविष्टरश्चरः ॥१११॥
 अक्षोभ्यः सर्वभूतानां चण्डः सत्यपराक्रमः । बालस्त्रियो महाकन्दः कल्पवृक्षः कलाधरः ॥११२॥
 निदाघस्तपनो मेघः शुक्रः परबलापहृद् । वसुधवाः कल्पवाहः प्रतप्तो विश्वभोजनः ॥११३॥
 रामो नीलोत्पलश्यामो ज्ञानस्कन्दो महाश्रुतिः । कवन्धमयनो दिव्यः कम्बुग्रीवः शिवप्रेयः ॥११४॥
 सुखो नीलः सुनिष्पन्नः सुलभः शिशिरात्मकः । असंमृष्टोऽतिथिः शूरः प्रमाथी पापनाशकृत् ॥११५॥
 पवित्रपादः पापारिर्मणिपूरः नभोगतिः । उत्तारणो दुष्कृतिहा दुर्धर्षो दुःमहो बलः ६०० ॥११६॥
 अमृतेशोऽमृतवपुर्धर्मा धर्मः कृपाकरः । भगो विश्वानादित्यो योगाचार्य दिवस्थितिः ॥११७॥
 उदारकीर्तिरुद्योगो वाङ्मयः सदसन्मयः । नक्षत्रमानी नाकेशः स्वाधिष्ठानः पडाश्रयः ॥११८॥
 चतुर्वर्गफलं वर्णशक्तित्रयफलं निधिः । निधानगर्भो निर्व्याजो निर्गुणो व्यालमर्दनः ॥११९॥
 श्रीवल्लभः शिवारम्भः शांतो भद्रः समञ्जसः । भूशायी भूतकृद्भूतिर्भण्णो भूतवाहनः ॥१२०॥
 अकायो भक्तकायस्थः कालहानी महापटुः । परार्थवृत्तिरचलो विविक्तः श्रुतिसागरः ॥१२१॥
 स्वभावभद्रो मन्वस्यः संसारभयनाशनः । वैद्यो वैद्यो विप्रद्रोता सर्वामरमुनीश्वरः ॥१२२॥
 सुरेन्द्रः कारणं कर्मकरः कर्माद्यधोभजः । धैर्योऽग्रधुर्यो धार्मीश्वरः संकल्पः शर्वरीपतिः ॥१२३॥
 परमार्थगुरुर्दृष्टिः सुचिराश्रितवत्सलः । विष्णुर्जिष्णुर्विभुर्यज्ञो यज्ञेशो यज्ञरालकः ॥१२४॥
 प्रभुविष्णुर्मणिष्णश्च लोकात्मा लोकपालकः । केशवः केशिहा काव्यः कविः कारणकारणम् ॥१२५॥
 कालकर्ता कालशेषो वासुदेवः पुरुष्टुतः । आदिकर्ता वराहश्च वामनो मधुसूदनः ॥१२६॥
 नारायणो नरो हंसो विष्णुवर्सेनो जनार्दनः । विश्वकर्ता महायज्ञो ज्योतिष्मान्पुरुषोत्तमः ७०० ॥१२७॥

सहस्रगर्भः, शतमूर्तिः, घनप्रदः, हृत्पुण्डरोक्शयनः, कठिनः, द्रव ॥ १०९ ॥ सूर्यः, ग्रहपतिः, श्रीमान्, समर्थः, अनर्थ-
 नाशनः, अधर्मशत्रुः, रक्षोघ्नः, पुरुहूतः, पुरुष्टुतः ॥ ११० ॥ सहस्रगर्भः, बृहद्गर्भः, धर्मधेनुः, धनागमः, हिरण्यगर्भः,
 ज्योतिष्मान्, सुललाटः, सुविक्रमः ॥ १११ ॥ शिवपूजारतः, श्रीमान्, भवानीप्रियकृत्, वशी, नरः, नारायणः, उग्रामः,
 कपर्दी, नीललोहितः ॥ ११२ ॥ रुद्रः, पशुपतिः, स्वाणः, विश्वामित्रः, द्विजेश्वरः, मातामहः, मातरिखा, विरिष्वः,
 विष्टरश्चरः ॥ ११३ ॥ अक्षोभ्यः, चण्डः, सत्यपराक्रमः, बालस्त्रियः, महाकन्दः, कल्पवृक्षः, कलाधरः ॥ ११४ ॥
 निदाघः, तपनः, मेघः, शुक्रः, परबलापहारी, वसुधवाः, कल्पवाहः, प्रतप्तः, विश्वभोजनः ॥ ११५ ॥ रामः, नीलो-
 त्पलश्यामः, ज्ञानस्कन्दः, महाश्रुतिः, कवन्धमयनः, दिव्यः, कम्बुग्रीवः, शिवप्रेयः ॥ ११६ ॥ सुखी, नीलः, सुनिष्पन्नः,
 सुलभः, शिशिरात्मकः, असंमृष्टः, अतिथिः, शूरः, प्रमाथी, पापनाशकारी ॥ ११७ ॥ पवित्रपादः, पापारिः, मणि-
 पूरः, नभोगतिः, उत्तारणः, दुर्धर्षः, दुःमहः, बलः ६०० ॥ ११८ ॥ अमृतेशः, अमृतवपुः, धर्माः, कृपाकरः, भगः,
 विश्वान्, आदित्यः, योगाचार्यः, दिवस्थितिः ॥ ११९ ॥ उदारकीर्तिः, उद्योगी, वाङ्मयः, सदसन्मयः, नक्षत्र-
 मानी, नाकेशः, स्वाधिष्ठानः, पडाश्रयः ॥ १२० ॥ चतुर्वर्गफलः, वर्णशक्तित्रयफलः, निधिः, निधानगर्भः, निर्व्याजः,
 निर्गुणः, व्यालमर्दनः ॥ १२१ ॥ श्रीवल्लभः, शिवारम्भः, शान्तः, भद्रः, समञ्जसः, भूशायी, भूतिः, भूतवाहनः ॥ १२२ ॥
 अकायः, भक्तकायस्थः, कालहानी, महापटुः, परार्थवृत्तिः, अचलः, विविक्तः, श्रुतिसागरः ॥ १२३ ॥ स्वभावभद्रः,
 मन्वस्यः, संसारभयनाशनः, वैद्यः, वैद्यः, विप्रद्रोता, सर्वामरमुनीश्वरः ॥ १२४ ॥ सुरेन्द्रः, कारणः, कर्मकरः,
 कर्माः, अधोभजः, धैर्यः, उग्रधुर्यः, धार्मीश्वरः, संकल्पः, शर्वरीपतिः ॥ १२५ ॥ परमार्थगुरुः, दृष्टिः, सुचिराश्रितवत्सलः,
 विष्णुः, जिष्णुः, विभुः, यज्ञेशः, यज्ञरालकः ॥ १२६ ॥ प्रभुः, विष्णुः, पतिष्णुः, लोकात्मा, लोकपालकः, केशवः,
 केशिहा, काव्यः, कविः, कारणकारणः ॥ १२७ ॥ कालकर्ता, कालशेषः, वासुदेवः, पुरुष्टुतः, आदिकर्ता, वराहः,
 वामनः, मधुसूदनः ॥ १२८ ॥ नारायणः, नरः, हंसः, विष्णुवर्सेनः, जनार्दनः, विश्वकर्ता, महायज्ञः, ज्योतिष्मान्,

वैकुण्ठः पुण्डरीकाक्षः कृष्णः सूर्यः सुगन्धितः । नारसिंहो महाभीमो वज्रदंष्ट्रो नखायुधः ॥१२८॥
 आदिदेवो जगत्कर्ता योगीशो गरुडध्वजः । गोविन्दो गोपतिर्गोप्ता भूपतिर्भुवनेश्वरः ॥१२९॥
 पद्मनाभो हृषीकेशो धाता दामोदरः प्रभुः । त्रिविक्रमस्त्रिलोकेशो ब्रह्मेशः प्रीतिवर्धनः ॥१३०॥
 संन्यासी शास्त्रवक्त्रो मन्दिरं गिरिशो नतः । वामनो दुष्टदमनो गोविन्दो गोपवल्लभः ॥१३१॥
 भक्तप्रियोऽम्बुतः सत्यः सत्यकीर्तिर्धृतिः स्मृतिः । कारुण्यः करुणो व्यासः पापहा ज्ञानिवर्द्धनः ॥१३२॥
 बदरीनिलयः शान्तस्तपस्वी वैद्युतः प्रभुः । भूतावासो महावासा श्रीनिवासा श्रियः पतिः ॥१३३॥
 तपोवासो मुदावासः सत्यवासः सनातनः । पुष्करः पुण्ड्रः पुण्यः पुष्कराक्षो महेश्वरः ॥१३४॥
 पूर्णमूर्तिः पुराणज्ञः पुण्यदः प्रीतिवर्धनः । पूर्णरूपः कालचक्रप्रवर्तनसमाहितः ॥१३५॥
 नारायणः परं ज्योतिः परमात्मा सदाशिवः । शंखी चक्री गदी शार्ङ्गी लांगूली भुसली हली ॥१३६॥
 किरीटी कुण्डली हारी मेखली कवची ध्वजी । योधा जेता महावीर्यः शत्रुघ्नः शत्रुतापनः ॥१३७॥
 शास्ता शास्त्रकरः शास्त्रं शंकरः शंकरस्तुतः । सारथी सात्त्विकः स्वामी सामवेदप्रियः समः ८०० ॥
 पवनः संहितः शक्तिः सम्पूर्णाङ्गः समृद्धिमान् । स्वर्गदः कामदः श्रीदः कीर्तिदः कीर्तिदायकः ॥१३९॥
 मोक्षदः पुण्डरीकाक्षः सारान्विकृतकेतनः । सर्वात्मा सर्वलोकेशः प्रेरकः पापनाशनः ॥१४०॥
 वैकुण्ठः पुण्डरीकाक्षः सर्वदेवनमस्कृतः । सर्वव्यापी जगन्नाथः सर्वलोकमहेश्वरः ॥१४१॥
 सर्गस्थित्यन्तकृद्देवः सर्वलोकसुखावहः । अक्षयः शास्त्रनोज्ज्वलः सयद्विद्विर्वर्जितः ॥१४२॥
 निर्लेपो निर्गुणः सूक्ष्मो निर्विकारो निरञ्जनः । सर्वोपाधिविनिर्मुक्तः सत्तामात्रव्यवस्थितः ॥१४३॥
 अविकारी विभुर्नित्यः परमात्मा सनातनः । अचलो निश्चलो व्यापी नित्यतृप्तो निराश्रयः ॥१४४॥
 श्यामो युवा लोहिताक्षो दीप्त्या शोभितभाषणः । आज्ञानुवाहुः सुमुख सिंहस्कन्धो महाभुजः ॥१४५॥
 सत्त्ववान् गुणसम्पन्नो दीप्पमानः स्वतेजसा । कालात्मा भगवान् कालः कालचक्रप्रवर्तकः ॥१४६॥

पुरुषोत्तम ७०० ॥ १२० ॥ वैकुण्ठ, पुण्डरीकाक्ष, कृष्ण, सूर्य, सुगन्धित, नारसिंह, महाभीम, वज्रदंष्ट्र, नखायुध ॥ १२८ ॥ आदिदेव, जगत्कर्ता, योगीश, गरुडध्वज, गोविन्द, गोपति, गोप्ता, भूपति, भुवनेश्वर ॥ १२९ ॥ पद्मनाभ, हृषीकेश, धाता, दामोदर, प्रभु, त्रिविक्रम, त्रिलोकेश, ब्रह्मेश, प्रीतिवर्धन ॥ १३० ॥ संन्यासी, शास्त्रवक्त्र, मन्दिर, गिरिश, नत, वामन, दुष्टदमन, गोविन्द, गोपवल्लभ, ॥ १३१ ॥ भक्तिप्रिय, अम्बुत, सत्य, सत्यकीर्ति, धृति, स्मृति, कारुण्य, करुण, व्यास, पापहा, ज्ञानिवर्द्धन ॥ १३२ ॥ बदरीनिलय, शान्ति, तपस्वी, वैद्युत, प्रभु, भूतावास, महावास, श्रीनिवास, श्रीपति ॥ १३३ ॥ तपोवास, मुदावास, सत्यवास, सनातन, पुष्कर, पुण्ड्र, पुष्कराक्ष, महेश्वर ॥ १३४ ॥ पूर्णमूर्ति, पुराणज्ञ, पुण्यज्ञ, प्रीतिवर्द्धन, पूर्णरूप, कालचक्रप्रवर्तन, समाहित ॥ १३५ ॥ नारायण, परंज्योति, परमात्मा, सदाशिव, शंखी, चक्री, गदी, शार्ङ्गी, लांगूली, भुसली, हली ॥ १३६ ॥ किरीटी, कुण्डली, हारी, मेखली, कवची, ध्वजी, योधा, जेता, महावीर्य, शत्रुघ्न, शत्रुतापन ॥ १३७ ॥ शास्ता, शास्त्रकर, शास्त्र, शंकर, शंकरस्तुत, सारथी, सात्त्विक, स्वामी, सामवेदप्रिय, ॥ १३८ ॥ पवन, संहित, शक्ति, सम्पूर्णाङ्ग, समृद्धिमान्, स्वर्गद, कामद, श्रीद, कीर्तिद, कीर्तिदायक ॥ १३९ ॥ मोक्षद, पुण्डरीकाक्ष, सारान्विकृतकेतन, सर्वात्मा, सर्वलोकेश, प्रेरक, पापनाशन ॥ १४० ॥ वैकुण्ठ, पुण्डरीकाक्ष, सर्वदेवनमस्कृत, सर्वव्यापी, जगन्नाथ, सर्वलोकमहेश्वर ॥ १४१ ॥ सर्ग-स्थितिअन्तकृद्, देव, सर्वलोकसुखावह, अक्षय, शास्त्रवत्, अजन्त सयद्विद्विर्वर्जित ॥ १४२ ॥ निर्लेप, निर्गुण, सूक्ष्म, निर्विकार, निरञ्जन, सर्वोपाधिविनिर्मुक्त, सत्तामात्रव्यवस्थित ॥ १४३ ॥ अविकारी, विभु, नित्य, परमात्मा, सनातन, अचल, निश्चल, व्यापी, नित्यतृप्त, निराश्रय ॥ १४४ ॥ श्याम, युवा, लोहिताक्ष, शोभितभाषण, आज्ञानुवाहु, सुमुख, सिंहस्कन्ध, महाभुज ॥ १४५ ॥ सत्त्ववान्, गुणसम्पन्न, अपने तेजसे दीप्पमान, कालात्मा, भगवान्, काल,

नारायणः परं ज्योतिः परमात्मा सनातनः । विश्वकृद्विश्वभोक्ता च विश्वगोप्ता च शाश्वतः ॥ १४७ ॥
 विश्वेश्वरो विश्वमूर्तिविश्वात्मा विश्वभावनः । सर्वभूतसुहृच्छातः सर्वभूतानुकम्पनः ॥ १४८ ॥
 सर्वेश्वरः सर्वशर्वः सर्वदाऽऽश्रितवन्मलः । सर्वगः सर्वभूतेशः सर्वभूताश्रयस्थितः ॥ १४९ ॥
 अभ्यन्तरस्थस्तमसश्छेत्ता नारायणः परः । अनादिनिधनः स्रष्टा प्रजापतिपतिर्हरिः ॥ १५० ॥
 नरसिंहो हृषीकेशः सर्वात्मा सर्वदृग्दर्शी । जगतन्मन्थुषधैव प्रभुर्नेता सनातनः ९०० ॥ १५१ ॥
 कर्ता धाता विधाता च सर्वेषां पतिर्राश्वरः । सहस्रमूर्धा विश्वात्मा विष्णुर्विश्वदृग्गन्धर्वः ॥ १५२ ॥
 पुराणपुरुषः श्रेष्ठः सहस्राक्षः सहस्रपात् । तत्त्वं नागयणो विष्णुर्वासुदेवः सनातनः ॥ १५३ ॥
 परमात्मा परं ब्रह्म सच्चिदानन्दविग्रहः । परं ज्योतिः परं धाम पराकाशः परात्परः ॥ १५४ ॥
 अच्युतः पुरुषः कृष्णः शाश्वतः शिव ईश्वरः । निम्नः सर्वगतः स्थाणु रदः माक्षी प्रजापतिः ॥ १५५ ॥
 द्विरूप्यगर्भः सविता लोककृद्भोक्तृविभुः । उक्तावाच्यो भगवान् श्रीभूलीलापतिः प्रभुः ॥ १५६ ॥
 सर्वलोकेश्वरः श्रीमान् सर्वज्ञः सर्वतोमुखः । स्वामी मुशीलः सुलभः सर्वगः सर्वशक्तिमान् ॥ १५७ ॥
 नित्यः संपूर्णकामश्च नैमग्निकसुहृन्मुखः । कृपार्पायुषजलधिः शरण्यः सर्वशक्तिमान् ॥ १५८ ॥
 श्रीमान्नारायणः स्वामी जगतां प्रभुरीश्वरः । मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहोऽथ वामनः ॥ १५९ ॥
 रामो रामश्च कृष्णश्च बौद्धः कल्की परात्परः । अयोध्येशो नृपश्रेष्ठः कुशबालः परंतपः ॥ १६० ॥
 लवबालः कजनेत्रः कंजाग्रिः पंकजाननः । सीताकांतः सौम्यरूपः शिशुजीवनतत्परः ॥ १६१ ॥
 सेतुकृच्छिन्नकूटस्थः शर्वरीसस्तुतः प्रभुः । योगिष्येयः शिवध्वेयः शान्ता रावणदर्पहा ॥ १६२ ॥
 श्रीशः शरण्यो भूतानां संश्रितार्भीष्टदायकः । अनन्तः श्रीपती रामो गुणभृन्निर्गुणो महान् १००० ॥
 एवमादीनि नामानि क्षमंरुयान्यपराणि च । एकैकं नाम रामस्य सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १६४ ॥
 सहस्रनामफलदं सर्वैश्वर्यप्रदायकम् । सर्वसिद्धिकरं पुण्यं मुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ १६५ ॥

कालचक्रप्रवर्तक ॥ १४६ ॥ नारायण, परं ज्योति, परमात्मा, सनातन, विश्वकृत्, विश्वभोक्ता, विश्वगोप्ता, शाश्वत ॥ १४७ ॥ विश्वेश्वर, विश्वमूर्ति, विश्वात्मा, विश्वभावन, सर्वभूतसुहृत्, सान्त, सर्वभूतानुकम्पन ॥ १४८ ॥ सर्वेश्वर, सर्वशर्व, सर्वदा आश्रितवन्मल, सर्वग, सर्वभूतेश, सर्वभूताश्रयस्थित ॥ १४९ ॥ अभ्यन्तरस्थ, अन्धकारनाशक, नारायण, पर, अनादिनिधन, स्रष्टा, प्रजापति, हरि ॥ १५० ॥ नरसिंह, हृषीकेश, सर्वात्मा, सर्वदृक्, बशी, स्थावर तथा जगत् विश्वके प्रभु, नेता, सनातन ६०० ॥ १५१ ॥ कर्ता, धाता, विधाता, सर्वके पति, ईश्वर, सहस्रमूर्धा, विश्वात्मा, विष्णु, विश्वदृक्, अश्वय ॥ १५२ ॥ पुराणपुरुष, श्रेष्ठ, सहस्राक्ष, सहस्रपात्, तत्त्वं, विष्णु, नारायण, वासुदेव, सनातन ॥ १५३ ॥ परमात्मा, परब्रह्म, सच्चिदानन्दविग्रह, परं ज्योति, परंधाम, पराकाश, परात्पर ॥ १५४ ॥ अच्युत, कृष्ण, शाश्वत, शिव, ईश्वर, निम्न, सर्वगत, स्थाणु, रद, साक्षी, प्रजापति ॥ १५५ ॥ द्विरूप्यगर्भ, सविता, लोककृत्, विभु, उक्तावाच्य, भगवान्, श्रीभूलीलापति, प्रभु ॥ १५६ ॥ सर्वलोकेश्वर, श्रीमान्, सर्वज्ञ, सर्वतोमुख, स्वामी, मुशील, सर्वग, सर्व-सर्वशक्तिमान्, प्रभु ॥ १५७ ॥ संपूर्णकाम, नैमग्निकसुहृत्, मुखी, कृपार्पायुषजलधि, सर्वके शरण्य ॥ १५८ ॥ श्रीमान्, नारायण, स्वामी, सर्व भूतोंके प्रभु, ईश्वर, मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन ॥ १५९ ॥ राम, कृष्ण, बौद्ध, कल्की, परात्पर, अयोध्येश, नृपश्रेष्ठ, कुशके पिता, परंतप ॥ १६० ॥ लवके पिता, सेतुकृत्, चिन्नकूटस्थ, कमलनयन, कमलचरण, कमलमुख, सीताकांत सौम्यरूप, शिशुजीवनतत्पर ॥ १६१ ॥ शर्वरीसस्तुत, प्रभु, योगिष्येय, शिवध्वेय, शान्ता, रावणदर्पहा ॥ १६२ ॥ श्रीश, शरण्य, आश्रितोंके अभीष्टदायक, अनन्त, श्रीपति, राम, गुणभृत्, निर्गुण, महान् १००० ॥ १६३ ॥ यहाँ रामसहस्रनाम पूर्ण हुआ । इसी तरह और भी मगशान्के बहुतसे नाम हैं, जिनकी गणना ही नहीं की जा सकती । रामका एक-एक नाम सब प्रकारके पापोंको हरने तथा सहस्रनामका फल देनेवाला ॥ । यह रामनाम सब प्रकारकी समृद्धियों एवं

मन्त्रात्मकमिदं सर्वं व्याख्यातं सर्वमंगलम् । उक्तानि तव पुत्रेण विघ्नराजेन धीमता ॥१६६॥
 सनत्कुमाराय पुरा तान्पुक्तानि मया तव । यः पठेच्छृणुयाद्वापि स तु ब्रह्मपदं लभेत् ॥१६७॥
 तावदेव बलं तेषां महापातकदंतिनाम् । यावन्न श्रूयते रामनामध्वाननध्वनिः ॥१६८॥
 ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतन्त्रयः । शरणागतघाती च मित्रविश्रामघातकः ॥१६९॥
 मातृहा पित्रहा चैव भ्रूणहा वीरहा तथा । क्रोटिकोटिमहसाणि ह्युपपापानि यान्यपि ॥१७०॥
 संवत्सरं कमाजपवा प्रत्यहं गमसन्निधी । निष्कण्टकं सुखं भुक्त्वः ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥१७१॥

सूत उवाच

एवं शौनक पार्वत्यै रामनामसहस्रकम् । यथा शिवेन कथितं मया तेऽद्य निवेदितम् ॥१७२॥

श्रीरामदास उवाच

यथा शिष्य त्वया पृष्टं रामनामसहस्रकम् । तत्सूतोक्तं मयि स्मरं मया तेऽद्य निवेदितम् ॥१७३॥

अनेन रामं सदसि नारदः स्तुतवान्मुनिः । रामनामसहस्रेण भुक्तिसुक्तिप्रदेन च ॥१७४॥

श्रीरामनाम्नां परमं महत्कृतं पापापहं मौल्यविवृद्धिकारकम् ।

मनापहं भक्तजनैकपालकं स्त्रीपुत्रपौत्रप्रदमृद्धिदायकम् ॥१७५॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे

पूर्वार्धे रामसहस्रनामकथनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः

(कल्पवृक्ष और पारिजातके पृथ्वीपर आनेका कारण)

विष्णुदास उवाच

गुरो त्वया रामनामसहस्रं राघवस्य च । ध्यानं कल्पतरोर्मूले कथितं स्वर्णपीठके ॥ १ ॥

सिद्धियोंका करनेवाला और भुक्ति-भुक्तिका दाता है । हे पार्वति ! मैंने अभी जो सहस्रनाम तुम्हें बतलाया है, यह मन्त्रात्मक और सर्वमंगलकारक है । इसे तुम्हारे पुत्र मणेशर्जने स्वयं सनत्कुमारको बतलाया था । उसे मैंने आज तुमसे कहा । जो कोई इस सहस्रनामको पढ़ता और सुनता है, उसे ब्रह्मपद प्राप्त होता है ॥ १६४-१६७ ॥ महापातकरूपी मतवाले हाथियोंका बल तभी तक रहता है, जब रामनामरूपी पशुपानन (सिंह) की गर्जना नहीं सुनायी देती । १६८ । जो मनुष्य ब्रह्महत्या, मद्यप, गुरुकी शय्यापर शयन करनेवाला तथा चोर हो । जो शरणागतको मारनेवाला, मित्रके साथ विश्रामघात करनेवाला, माता, पिता, भ्रूण (गर्भस्थ संतान) तथा वीर मनुष्यकी हत्या करनेवाला । जिसने संसारमें करोड़ों पाप किये हों, वह भी यदि श्रीरामके पास बैठकर एक संवत्सर पर्यन्त प्रतिदिन इस स्तोत्रका पाठ करे तो संसारमें निष्कण्टक सुख भोगकर अन्तमें मोक्ष पाता है ॥ १६९ ॥ १७० ॥ सूतजी बोले—हे शौनक ! शिवजीने पार्वतीको जिस प्रकार रामका सहस्रनाम सुनाया था, वही मैंने आज तुम्हें बतलाया है ॥ १७१ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य ! जैसे तुमने हमसे रामका सहस्रनाम पूछा, वैसे मैंने तुम्हें बतलाया । इसी सहस्रनामसे नारदने सभामें रामजीकी स्तुति की थी । क्योंकि यह रतोज भुक्ति-भुक्ति कुछ देनेवाला है ॥ १७२-१७४ ॥ यह रामका सहस्रनाम पापोंका नाशक, सौन्दर्यवर्द्धक, सांसारिक पापोंका नाशक, भक्तजनोंका पालक और स्त्री-पुत्र-पौत्र तथा सम्पत्तिका देनेवाला है ॥ १७५ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पंचमोऽध्यायः ।

श्रीविष्णुदासने कहा—हे गुरो ! आपने रामका सहस्रनाम बताते समय कहा था कि कल्पवृक्षके नीचे

संदेहस्तेन मे जातः कल्पवृक्षः कथं भुवि । अयोध्यायां रामगेहे स्वर्गलोकात्समागतः ॥ २ ॥

अमुं मे संशयं छिधि कृपां कृत्वा ममोपरि ।

सम्यक् पृष्टं विष्णुदास सावधानमनाः शृणु ॥ ३ ॥

एकदा राघवं द्रष्टुं दुर्वासा मुनिरभ्यगात् । शिष्यैः पष्टिसहस्रैश्च वेष्टितोऽर्चितयत्पथि ॥ ४ ॥
विष्णुर्मेनुजरूपेण रामो जातोऽत्र वेत्रग्रहम् । तथापि लोकान् रामस्य दर्शयिष्यामि पौरुषम् ॥ ५ ॥
एवं निश्चित्य साकेते मुनिः शिष्यैर्विवेक ह । विलम्ब्य सोऽष्ट कक्षांस्तः सीतागेहं ययौ मुनिः ॥ ६ ॥
सीतागेहे महद्द्वारसंस्थितं मुनिसत्तमम् । दुर्वासांश्च शिष्यपुत्रं दृष्ट्वा वै वेत्रपाणयः ॥ ७ ॥
शीघ्रं निवेदयामासुर्दास्या रामं रहः स्थितम् । रामोऽपि श्रुत्वा संप्राप्तं मुनिं प्रत्युज्जगाम सः ॥ ८ ॥
नत्वा तानानयामास सच्च द्वाभ्यनमर्पयत् । एतस्मिन्नन्तरे रामं तिष्ठन्स मुनिसत्तमः ॥ ९ ॥
अत्रवीन्मधुरं वाक्यं शिष्यैः सर्वत्र वेष्टितः । अद्य वर्षसहस्राणामुपवाससमापनम् ॥ १० ॥
अतो भोजनमिच्छामि मणिषेन्वनलैर्विना । सिद्धमन्नं मुहूर्तेन मक्षिष्याय ममर्पय ॥ ११ ॥
मद्यं मनोऽभिलषितं नानावक्त्रान्संयुतम् । तथा मां पूजनार्थं हि शंभोः पुष्पाणि मानवैः ॥ १२ ॥
अदृष्टान्यानयस्वाद्य गार्हस्थ्यं चैवप्रश्रमि । नोचेन्नाहं ममर्थोऽस्मिन्पुक्त्वा मां त्वं विसर्जय ॥ १३ ॥
तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा विहस्य रघुनन्दनः । मर्ममङ्गीकृतं चेति विनयेनाब्रवीन्मुनिम् ॥ १४ ॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा तुष्टस्तं मुनिरब्रवीत् । स्नात्वा सरस्वां शीघ्रं त्वामागच्छामि त्वरां कुरु ॥ १५ ॥
मनुक्तं सकलं कर्तुं सिद्धं वध्यं जानकी । तथैत्युक्त्वा मुनिं रामः स्नानार्थं च व्यसर्जयत् ॥ १६ ॥
तदा ते लक्ष्मणाद्याश्च ईश्वरो जानकी तथा । कुशाया बालकाः सर्वे तेऽभूवन् भयविह्वलाः ॥ १७ ॥

स्वर्णनिर्मित चौकीपर बैठे हुए भगवानका स्नान करे ॥ १ ॥ सो मुनकर मुझे यह संदेह हो रहा कि कल्प-
वृक्ष स्वर्गलोकसे रामचन्द्रजीके भवनमें कैसे आया । मुझपर कृपा करके आप इस संशयका निवारण
कीजिये । श्रीरामवासजीने कहा—हे विष्णुदास ! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी है । सावधान होकर सुनो
॥ २ ॥ ३ ॥ एक बार रामचन्द्रजीका दर्शन करनेके लिये साठ हजार शिष्योंमें परिदेष्टित दुर्वासा मुनि
अयोध्याको जा रहे थे । रास्तेमें जाते-जाते दुर्वासाने सोचा कि स्वयं विष्णुभगवान् मनुष्यका रूप धारण करके
मंसारमें आये हैं, यह मैं जानता हूँ । फिर भी आज मंसारके साधारण मनुष्योंको मैं उनका पौरुष दिख-
लाऊँगा ॥ ४ ॥ ५ ॥ ऐसा निश्चय करके वे अपने शिष्योंके साथ अयोध्या नगरीमें प्रविष्ट हुए और सबको साथ
लिये हुए बाठ चौक लाँचकर सीताके भवनमें जा पहुँचे ॥ ६ ॥ सीताजीके विशाल द्वारपर शिष्यों समेत
आये हुए दुर्वासाको देखकर छड़ीदारोंने तुरन्त रामचन्द्रजीको खबर दी । यह समाचार सुनते ही भगवान्
दुर्वासा मुनिके पास आ पहुँचे । उन्हें प्रणाम किया और सबको बड़े आदर समेत भवनके भीतर ले गये । वहाँ
बैठनेके लिये उन्हें सुन्दर आसन दिया । आसनपर बैठे हुए दुर्वासाने बड़ी मधुर वाणीमें रामचन्द्रजीसे कहा—
महाराज ! आज एक हजार वर्षका मेरा उपवासव्रत पूरा हुआ है । इस कारण मेरे शिष्योंके साथ मुझे भोजन
चाहिए । इसके लिये आपकी केवल एक मुहूर्तका समय मिलेगा और वह भोजन मणि, कामधेनु तथा अग्निकी सहा-
यतासे न तैयार किया जाय । बस, एक मुहूर्तमें मुझे मेरी इच्छाके अनुकूल भोजन मिले ! जिसमें विविध प्रकार-
के पकवान सम्मिलित रहें । यदि तुम अपना नाहंस्थ रह रहे रहना चाहते होओ तो शिवजीकी पूजाके निमित्त
मुझे ऐसे फूल मँगवा दो, जिन्हें अवतक किसीने देखा हो ! यदि ऐसा न कर सकते हो तो साफ-साफ कह दो
कि मैं ऐसा करनेमें असमर्थ हूँ । यह कहकर मुझे बिदा कर दो ॥ ७-१३ ॥ मुनिकी बातोंको सुनकर मुझकाते हुए
राम नम्रतापूर्वक बोले—“मुझे सब कुछ अंगीकार है” ॥ १४ ॥ रामकी बातसे प्रसन्न होकर दुर्वासाने कहा कि
मैं शीघ्र सरयूमें स्नान करके हूँ ॥ १५ ॥ हमारे कथनानुसार सब चौकीकी तैयारीके लिए अपने भ्राताओं
तथा सीताकी भी शीघ्रताके लिए कह देना । ‘अच्छा’ कहकर रामचन्द्रजीने दुर्वासाको स्नान करनेके लिये

ऊचुः परस्परं सर्वे रामन्यस्तैश्चणाः शनैः । किं याचितं हि मुनिना किं रामोऽग्रे करिष्यति ॥१८॥
 विना गोवह्निमणिभिः कथमन्नं प्रदास्यति । ततो मते मुनौ रामः पत्रं सौमित्रिणा तदा ॥१९॥
 विलेख्य चटुध्वा बाणे तन्मुमोच शरमुत्तमम् । स शरो वायुवगेन शीघ्रं गत्वाऽमरावतीम् ॥२०॥
 सुधर्मायां सूर्ययुक्तस्येन्द्रस्याग्रे पपात ह । तं शरं मधवा दृष्ट्वा चकितो भयविह्वलः ॥२१॥
 कस्यायमिति चोक्त्वा तद्रामनाम व्यलोकयत् । सुवर्णरचितं बाणपुच्छस्य पापदाहकम् ॥२२॥
 ततो ज्ञात्वा राघवस्य शरोऽयमिति देवराट् । तस्मिन्बन्धं विमुञ्च्यार्सौ पत्रं नन्वा पपाठ च ॥२३॥
 एतास्मिन्नन्तरे शणः पुनः श्रीराघवं ययौ । दिदेश रामतूणीरे पूर्वैस्संस्थितोऽभवत् ॥२४॥
 मधवाऽपि सुधर्मायां आवधामास निर्जरान् । राममुद्रांकितं पत्रं भयविस्मयसंयुतः ॥२५॥
 मधवंस्त्वं सुखं तिष्ठ स्वर्गोऽहं त्वां मदा रमरे । मन्त्रियोगं मृणुध्वाद्य याचितोऽस्म्यधुना त्वहम् ॥२६॥
 विना गोवह्निमणिभिश्चान्नं शिष्यैर्युतेन च । वरैः दृष्टिसहस्रैश्च तथाऽन्यैर्मुनिमत्तमैः ॥२७॥
 सहस्राब्दमुधितेन क्रोधिनाऽतिनुपस्विना । दुर्वाससा मुहूर्तात्तु मयाऽप्यंगीकृतं हि तत् ॥२८॥
 याचितान्यपि पुष्पाणि तेनादृष्टानि मानवैः । मयांगीकृत्य सकलं स्नानार्थं ते विसर्जिताः ॥२९॥
 अतः शीघ्रं कल्पवृक्षपारिजातौ समुद्रजौ । प्रेषयस्व क्षणान्मां त्वमदिलभ्येन सादरात् ॥३०॥
 मा रावणाक्षिरज्जेषुः प्रतीक्षां त्वामिषोः कुरु । एवं संश्राव्य नन्दनं सुराभिद्रः सुरैः सह ॥३१॥
 संमंज्याथ कल्पवृक्षपारिजातौ विगृह्य मः । विमानेन सूर्ययुक्तः श्रीरामनगरीं ययौ ॥३२॥
 इन्द्रमागतमाज्ञाय तं प्रत्युद्गम्य लक्ष्मणः । अयोध्यायां तिनयेन्द्रं समास्थं रघुनन्दनम् ॥३३॥
 कल्पवृक्षपारिजातौ मधवा रघुनन्दनम् । समर्प्य नन्वा श्रीरामं स उपाविशदासने ॥३४॥
 एतस्मिन्नन्तरे शिष्यं दुर्वासः मुनिरब्रवीत् । गन्वा त्वं पश्य रामं तु किं करीष्यधुना गृहे ॥३५॥

भेष विना ॥ १५ ॥ इधर लक्ष्मणादिक भाता, जानकी और वृष आदि चाणक सबके सब भासे विह्वल हो गये और वे रामकी ओर निनिमेष दृष्टिसे देखते हुए अपने मनमें कहने लगे कि मुनिने यही अद्भुत वस्तुएँ माँगी हैं । देखें, राम अब क्या करते हैं । विना गो, मणि तथा अग्निके किस प्रकार भोजन तैयार करके देते हैं ॥१७॥१८॥ मुनिके चले जानेपर रामचन्द्रजीने लक्ष्मणसे एक पत्र लिखाया । उसे अपने बाणमें बाँधकर धनुषपर बड़ाया और छोड़ दिया । वह बाण वायुके समान वेगसे अमरावतीपुरीमें जाकर सुधर्मा नामकी देवसभामें इन्द्रके सामने गिरा । उस बाणका इन्द्रने देखा तो भयभीत होकर कहा— ॥ १९-२१ ॥ “यह किसका है ?” यह कहकर उसपर लिखे रामके नामको देखा और पत्र खोलकर पढ़ा । पत्र से जाने-वाला वह सिर्फ़ फिर रामजीके तूणीरमें लौट आया ॥ २२-२४ ॥ भय और विस्मय युक्त इन्द्रने वह पत्र सभामें पढ़े हुए देवताओंको सुनाया ॥ २५ ॥ उस पत्रपर लिखा था—“हे इन्द्र ! तुम स्वर्गमें सुखी रहो । मैं सदा तुम्हारा स्मरण किया करता हूँ । हाँ, समय तुम्हें मैं एक आज्ञा दे रहा हूँ । आज एक हजार वर्षके भूके एवं तय त्रोषी दुर्वास मुनि अपने साठ हजार अच्छे शिष्योंके साथ मेरे यह आये हुए हैं । वे ऐसा भोजन चाहते हैं कि जो गो, मणि अथवा अग्निके द्वारा न बना हो । साथ ही उन्होंने शिवपूजनके लिए ऐसे फूल माँगे हैं, जिन्हें अबतक मनुष्योंने न देखा हो । मैंने उनकी माँग स्वीकार कर ली है । इस समय मैंने उन्हें स्नान करनेको भेज दिया है ॥ २६-२८ ॥ इससे तुम झटपट कल्पवृक्ष और पारिजात, जो कि सीरसागरसे निकले हैं, क्षणभरमें आदरपूर्वक मेरे पास भेज दो ॥ ३० ॥ देखो, कहीं रावणका विनाश करनेवाले मेरे बाणकी प्रतीक्षा न करने लगना ।” इस प्रकार वह पत्र देवताओंको सुनाकर इन्द्रदेव तुरन्त सबके साथ मंत्रणा करके कल्पवृक्ष और पारिजात ले तथा देवताओं समेत विमानपर चढ़कर अयोध्यापुरीमें जा पहुँचे ॥ ३१ ॥ ॥ ३२ ॥ लक्ष्मणने यह जाना कि देवराज इन्द्र आ गये हैं तो उनके पास गये और आदरपूर्वक अयोध्यामें रामके पास ले आये ॥ ३३ ॥ इन्द्रने पारिजात कल्पवृक्ष रामको अर्पण करके प्रणाम किया । फिर एक

अस्माकं कल्पितं किञ्चिदन्नमस्त्यथवा न वा ।

चिन्तायुक्तोऽस्ति वा नृष्णी संस्थितोऽस्त्यत्र किं कृतम् ॥३६॥

बहिः संपादितं सर्वं मया यद्यन्नं याचितम् । रहः स्थितः अनेर्दृष्ट्वा शीघ्रं त्वं याहि मां पुनः ॥३७॥
तथेत्युक्त्वा मुनिं शिष्यः ॥ ययौ रामसङ्गृहम् । तत्र दृष्ट्वा कल्पवृक्षपारिजातौ सनिर्जरौ ॥३८॥
सनिर्जरेशं रामं च मुदितं सीतयाऽन्विनम् । ततस्तर्णं ययौ शिष्यः परावृत्त्य मुनिं प्रति ॥३९॥
कथयामास सकलं यथावृत्तं निरीक्षितम् । तच्छ्रुत्वा शिष्यवचनं दुर्वासो विस्मयान्वितः ॥४०॥
ययौ शिष्यैः परिवृतो विवेश नृपतेर्गृहम् । तं मुनिं रापत्रो दृष्ट्वा प्रस्थुद्रम्य पुनः सुरैः ॥४१॥
नमस्कृत्य मुहुर्वेगाद्दावासनमुत्तमम् । ततो मुनेः पूजनं ॥ सशिष्यस्य रघूत्तमः ॥४२॥
षकार सीतया सार्द्धं लक्ष्मणादिभिरन्वितः । पारिजातप्रसूनानि नेक्षितान्यत्र मानवैः ॥४३॥
ददौ शंभोः पूजनार्थं रामो दुर्वाससे तदा । तानि दृष्ट्वा मुनिस्तृष्णीं तैश्चकारेश्वरार्चनम् ॥४४॥
ततः सर्वान्पुराणपूज्य परिवेषणकर्मणि । चोदयामास श्रीरामो जानकीं लक्ष्मणेन सः ॥४५॥
ततः सा जानकी वेगादिष्यालंकारमण्डिता । कल्पवृक्षपारिजातौ सम्पूज्य नूपुरस्वना ॥४६॥
पात्राणि कल्पवृक्षाः स्थापयामास कोटिशः । सीता तं प्रार्थयामास कल्पवृक्षं नगोत्तमम् ॥४७॥
क्षीरसागरसंभूत देवानां चितितप्रद । दुर्वाससे कल्पवृक्ष सन्निध्यायाद्य तोषय ॥४८॥
तत्सीतावचनं श्रुत्वा हेमपात्राणि कोटिशः । विशर्मानैः पूरयामास क्षणात्कल्पतरुस्तदा ॥४९॥
तैरन्नेर्हेमपात्रेषु जानकी परिवेषणम् । क्षणाच्चकार सतुष्टा सुमिलाचंपिकादिभिः ॥५०॥
ततस्तुष्टो मुनिर्देवः शिष्यैरशनमादरात् । षकार रघुवीरेण प्रार्थितः स मुहुर्मुहुः ॥५१॥
ततः कृत्वा भोजनं हि करमुद्धि विधाय सः । तांबूलं दक्षिणां चापि जग्राह रघुनायकात् ॥५२॥

आसनपर जा बैठे ॥ ३४ ॥ ऊपर सरपूके चिनारेसे दुर्वासाने अपना एक शिष्य भेजा और उससे कहा—
“तुम जाकर देखो कि राम इस समय क्या कर रहे हैं ॥ ३५ ॥ मैंने जो-जो बतलाया था, उसमें कुछ अन्न लंपाट है या नहीं । अब क्या अभी तक चिन्ता करते हुए यूँ ही नुपचाप बँडे है ॥ ३६ ॥ यदि मेरे भाजानुसार काम कर रहे हैं तो अबतक क्या-क्या किया है । मैंने जैसा कहा था, वे सब चीजें उन्होंने इकट्ठी कर लीं या नहीं । कहीं छिरकर नुपचाप यह सब देखो और जल्द मेरे पास लौट आओ” ॥ ३७ ॥ “अच्छा” कहकर शिष्य राम-चन्द्रजीके भवनमें जा पहुँचा । वहाँ कल्पवृक्ष, पारिजात, इन्द्र, देवताओंकी मण्डली एवं प्रसन्न राम तथा सीताको देखकर फिर दुर्वास मुनिके पास लौट गया और जंगल देखा था, सब समाचार कह सुनाया । शिष्यकी बात सुनकर दुर्वासको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ३८-४० ॥ स्नानके बाद शिष्योंको साथ लेकर वे रामचन्द्रजीके सुन्दर भवनमें पहुँचे । मुनि दुर्वासका देस देवताओंके साथ उठकर रामचन्द्रजीने बड़े आदरके ॥ समस्त शिष्यों समेत मुनिकी प्रणाम किया और बँडनेके लिये उत्तम आसन देकर सीता तथा लक्ष्मणादिके साथ उनकी पूजा की । मनुष्योंने पारिजातके फूल नहीं देखे थे ॥ ४१-४३ ॥ सो उन फूलोंकी शिवपूजनके निमित्त मुनिके सामने रखी । दुर्वासाने उन्हें एक बार निश्चित नेत्रोंसे देखा और नुपचाप शिव तथा ॥ देवताओंका पूजन किया ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर रामचन्द्रजीने लक्ष्मण और जानकीको भोजन परोसनेकी आज्ञा दी ॥ ४५ ॥ तब दिग्पा-कधूतारोंको धारण किये सीताने कल्पवृक्ष और पारिजातका पूजन करके करोड़ों बतन लाकर उनके नीचे रख दिया और इस प्रकार प्रार्थना करने लगी—॥ ४६-४७ ॥ “हे क्षीरसागरसे जायमान तथा देवताओंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्ष ! आज शिष्यों समेत दुर्वासको आप सन्तुष्ट कर दाजिए” ॥ ४८ ॥ सीताकी प्रार्थना सुनकर अणभरमें कल्पवृक्षने करोड़ों पात्रोंको विविध प्रकारकी भोजनसामग्रियोंसे भर दिया । उन अन्नोंकी उमिलादि-के ॥ सीताने सुवर्णके पात्रोंमें परोसा और महर्षि दुर्वासाने प्रसन्न होकर अपने समस्त शिष्योंके साथ रामचन्द्रजीके द्वारा प्रार्थित होनेपर भोजन करना आरम्भ किया ॥ ४९-५१ ॥ भोजन करनेके बाद उन्होंने

ततः सुराणां पुरतो वेदवाक्यैः सविस्तरम् । दुर्वासा राघवं स्तुत्वा तमाहानंदनिर्भरम् ॥५३॥
 राम राजीवपत्राक्षं त्वं साक्षात्प्रमदीश्वरः । अत्र रावणघातार्थमवतीर्णोऽसि वेदम्यहम् ॥५४॥
 जनास्त्वत्पीठं श्रातुं मयैतद्याचितं तव । विना गोवह्निमणिभिर्दिग्गमान्नं रघुनन्दन ॥५५॥
 भ्रूणान्प्यदृष्टानि मानवैर्जगतीतले । किं राम दुर्घटं तव यस्य भ्रूमङ्गमात्रतः ॥५६॥
 लयो ब्रह्मादिकानां च जायते संभवोऽपि च । मन्दरं मञ्जमानं दृष्ट्वा त्वं क्षीरसागरे ॥५७॥
 कूर्मरूपेण जातोऽसि धर्तुं तु मन्दराचलम् । निष्कामितानि रत्नानि तदा देवैश्चतुर्दश ॥५८॥
 तव साहाय्यमाश्रेण सर्वं जानाम्यहं प्रमो । लक्ष्मीः सोमः कामधेनुः कौस्तुभश्च सुधा विष्णुः ॥५९॥
 ऐरावतश्चाप्सरसः कल्पवृक्षो भिषग्वरः । उच्चैःश्रवाः पारिजातो सुरा ज्येष्ठेति राघवः ॥६०॥
 चतुर्दश सुरत्नानि विभक्तानि पुरा स्वया । देवैर्मयो यानि तान्येते मोक्षयन्ति कृपया तव ॥६१॥
 त्वदाज्ञापालिनः सर्वे शङ्कराद्याश्च निर्जराः । सर्वेषां जीवोपायास्त्वया सर्वे पृथक् पृथक् ॥६२॥
 कल्पिता येन रामेण तत्र किं दुर्घटं तव । ममाभिलषितं भोज्यं दातुं त्वत्कौतुकं मया ॥६३॥
 अद्यावलोकितं राम जनानपि प्रदर्शितम् । त्वं पात्रा सर्वलोकानां जनकश्चापि पातकद ॥६४॥
 अस्माकं गतिदाता त्वं मे धमस्वापराधितम् । एवं नानाविधं स्तुत्वा तं प्रणम्य पुनः पुनः ॥६५॥
 राममामंज्य दुर्वासा ययौ शिष्यैः स्वमाश्रमम् । अथ तान्निर्जरान्प्राह रामः कनकलोचनः ॥६६॥
 कल्पवृक्षपारिजातो गृहीत्वा गम्पतां दिवम् । तद्रामवचनं श्रुत्वा राघवपतिः प्राह राघवम् ॥६७॥
 यावत्कालं तिष्ठसि त्वं भूम्यां तावन्नगोचरी । अयोध्यायां तिष्ठतस्ती कल्पवृक्षसुरद्रुमौ ॥६८॥
 त्वांयं वैकुण्ठमायाते दिवं तौ यास्यतो भुवः । तथेति तत्सुसुरोः प्रतिनन्द वचः प्रभुः ॥६९॥

हाथ घोंया और रामसे ताम्बूल-वर्षिणा लो ॥ ५२ ॥ फिर उन देवताओंके सामने वेदवाक्यों द्वारा विस्तारपूर्वक रामचन्द्रजीकी स्तुति की और आनन्दसे गद्गद होकर कहने लगे— ॥ ५३ ॥ हे राम ! हे कमलवल सरोखे नेत्रोंवाले भगवन् ! मैं जानता हूँ कि तुम साक्षात् जगदीश्वर हो और रावणका विनाश करनेके लिये इस घरातलपर आये हो ॥ ५४ ॥ ससारी जनोंकी तुम्हारा पीठ दिखलानेके लिए ही मैंने गो-वह्नि और मणिलो न सिद्ध हुआ अत्र तथा मनुष्योंसे अदृष्ट फूल पूजनेके निमित्त मांगे थे । हे राम ! तुम्हारे लिए यह कुछ दुर्घट कार्य नहीं है ; तुम्हारे भ्रूमंगमात्रसे ब्रह्मादिक देवताओंका भी विनाश एवं उद्भव होता है । जिस समय मन्दराचलकी क्षीरसागरमें तुमने डूबते देखा ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ तब कूर्मरूप धरकर उसे अपनी पीठपर उठा लिया था । उस समय एकमात्र तुम्हारी सहायतासे ही देवताओंने क्षीरसागरसे ये चोदह रत्न निकाले थे ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ जिनके नाम हैं—लक्ष्मी, सोम, कामधेनु, कौस्तुभ, सुधा, विष्णु, ऐरावत, अप्सराएँ, कल्पवृक्ष, भिषग्वर, उच्चैःश्रवा, पारिजात, सुरा और अमृत ॥ ५९ ॥ ६० ॥ उन चौदहों रत्नोंकी तुमने चोदह देवताओंको बाँट दिया और तुम्हारी ही कृपासे वे सब आनन्दपूर्वक उनका उपयोग कर रहे हैं ॥ ६१ ॥ शंकरादिक समस्त देवता तुम्हारी ही आज्ञाका पालन करते हैं । इस जगत्में स्थित सब प्राणियोंके जीवनका उपाय तुम्हीं करते हो ॥ ६२ ॥ तब यदि तुमने हमारे इच्छानुसार भोजनकी सामग्रियों जुटा दीं तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । यह तो मुझ साधारण भ्रूणोंके मनुष्योंकी तुम्हारा कौतुक दिखाना था, सो दिखा दिया ॥ ६३ ॥ राम ! तुम्हीं समस्त लोकोंके रक्षक, स्रष्टा तथा संसारके नाशक हो ॥ ६४ ॥ तुम्हीं हमारे गतिदाता हो । मुझसे जो कुछ बूटि हुई हो, सो क्षमा कर दो । इस तरह नाना प्रकारके वाक्यों द्वारा स्तुति करके दुर्वासाने बारम्बार प्रणाम किया और रामचन्द्रजीकी आज्ञा लेकर शिष्योंकी लिये हुए अपने आश्रमकी चाल दिये । इसके अनन्तर रामचन्द्रजीने उन देवताओंसे कहा—कल्पवृक्ष और पारिजातकी लेकर अह आप लोग भी अपने लोकको जाते जायें । इस प्रकार रामकी बात सुनकर देवगुरु बृहस्पति कहने लगे— ॥ ६५-६७ ॥ "जबतक आप भूमण्डलमें रहेंगे, तबतक कल्पवृक्ष तथा पारिजात ये दोनों भी इस अयोध्यामें ही रहेंगे ॥ ६८ ॥ जब आए अपने वैकुण्ठ लोककी जाने लगेंगे, तब ये भी आपके साथ पके

पुष्पके स्थापयाभास कल्पवृक्षसुरद्रुमौ । ततस्ते राघवं नत्वा यपुरिद्रादिकाः सुराः ॥७०॥
 स्वर्गलोकं सुसंतुष्टा राघवेणातिपूजिताः । एवं प्रार्त्ता कल्पवृक्षपारिजाती भुवं दिवः ॥७१॥
 तयोरेतत्कारणं ते प्रोक्तं पृष्टं यथा त्वया । तदारभ्य सुरतरु पुष्पकस्थौ विरेजतुः ॥७२॥
 साकेते सीतया रामस्याभ्यां सुखमवाप सः । कल्पवृक्षतले दिव्यपर्यङ्गे सीतया सह ॥७३॥
 नात्ताभोगात्राधकन्द्रः स भुमोज विरं सुखम् । अतः पूर्वं मया रामभ्यानं कल्पतरोः स्थले ॥७४॥
 सहस्रनामसंकेते प्रोक्तं शिष्य तवाग्रतः । तदारभ्य पारिजातवृक्षांश्चाः शतशो भुवि ॥७५॥
 पारिजातनगा जाता वर्तन्तेऽद्यापि तेऽत्र हि । नानेन सदृशं पुष्पं वर्तते रामशोभदम् ॥७६॥
 कल्पवृक्षांश्चरूपाश्च शतव्यास्तत्र - मानवैः । अश्वत्थाः सेवनामैश्च सर्ववाञ्छितदायकाः ॥७७॥
 पुण्याधिक्येन सेवन्ते नोपैक्षते युगत्रये । पाप्माधिक्येनापि सेवां नरा वाञ्छति नो कली ॥७८॥

इति श्रीमत्कोटिरामचरितामृतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विंशतिकाण्डे

चम्पिकास्वयंवरो नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः

(रामोपासक तथा कृष्णोपासकका परस्पर मधुर विवाद)

विष्णुदास उवाच

रामदास गुरो भूषां रामकृष्णौ वरौ भुमी । मया दशावतारेषु स्वताशुमौ पुरा ॥ १ ॥
 तयोरेपि च कः श्रेष्ठस्तत्त्वं वद ममाग्रतः । यं श्रुत्वा सर्वदा तस्य श्रोष्येऽहं चरितं शुभम् ॥ २ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं विष्णुदास सावधानमनाः मृणु । रामावतारः श्रेष्ठोऽत्र दिज्ञेयः सर्वदा नरैः ॥ ३ ॥
 अस्मिन्नर्थे पूर्ववृत्तां कृपां मृणु मनोहराम् । द्विजाभ्यां वादरूपेण कीर्तिता पुण्यदायिकाम् ॥ ४ ॥

आदिने । रामने सुरपुत्र बृहस्पतिकी बात स्वीकार कर ली ॥ ६९ ॥ देवताओंने उन दोनोंको पुष्पक विमानमें रखकर भगवान्को प्रणाम किया और राम द्वारा पूजित होकर सब अपने अपने लोकको चल गये ॥ ७० ॥ प्रकार कल्पवृक्ष और पारिजात स्वर्गसे मृत्युलोकमें आये । उनके आनेका जो कारण था, वह तुम्हारे प्रश्नानुसार देने कह सुनाया । सभीसे दोनों सुरतरु पुष्पकमें विराजमान रहे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ जगोष्वासें सीताके साथ कामचन्द्रजी उन्हीं वृक्षोंके नीचे दिव्य पर्यङ्गके ऊपर विहार करते हुए विविध प्रकारके सुखोंको भोगते थे ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ इसीलिए मैंने रामसहस्रनामका कथन करते समय कल्पवृक्षके नीचे रामका ध्यान करनेको कहा था । सभीसे पारिजातके संकड़ों अंश पृथ्वीतलमें उत्पन्न हुए और ॥ आज भी इस परस्तीतलमें विद्यमान हैं । इसके समान रामचन्द्रजीका प्रसन्न करनेवाला कोई दूसरा फूल नहीं ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ कल्पवृक्षके अंशसे पीपल वृक्षकी भी उत्पत्ति हुई है । उसकी आराधना करनेसे सब प्रकारको कामना पूर्ण होती है ॥ ७७ ॥ अन्य गुर्गोंमें पुण्य अधिक था । इस कारण लोग पीपलके वृक्षकी आराधना करते थे । किन्तु कलियुगमें पापकी अधिकता होनेके कारण लोग उसका पूजन नहीं करना चाहते ॥ ७८ ॥ इति श्रीमत्कोटिरामचरितामृतं श्रीमदानन्दरामायणे प० रामसेनपाण्डेयविरचिते 'अप्रोक्ष्वा'भाषाटीकासमन्विते राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! भगवान्के दस अवतारोंमें राम-कृष्ण दो अवतार श्रेष्ठ माने जाते हैं । वह मैंने पहले कई बार सुना ॥ १ ॥ अब आज हमको यह बतलाए कि इन दोनों अर्थात् राम और कृष्णमें कौन बड़ा है । जिसको आप श्रेष्ठ बतलावेंगे, ॥ सर्वदा उसीका चरित्र सुना करूँगा ॥ २ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे विष्णुदास ! तुमने ठीक प्रश्न किया है । सावधान मन होकर सुनो । इन दोनों अवतारोंमें मनुष्यको सनका सबका ही श्रेष्ठ समझना चाहिए ॥ ३ ॥ इसके लिए एक मनोहर कथा आपसमें दो ब्राह्मणोंके

अयोध्याविषये कश्चिद्विजो रामाह्वयस्त्वभूत् । द्वारकायां तथा विप्रः कृष्णारूपोऽभूत्परः सुधीः ॥ ५ ॥
चक्रतुः सेवन् चोभौ सर्वदा रामकृष्णयोः । तावेकदा माघमासे प्रयागे मिलितौ द्विजौ ॥ ६ ॥
तसौ स्नात्वा त्रिवेण्यां हि माघयं परिपूज्य च । कथां पौराणिकमुवाचोत्तुं तत्पुत्राः स्थितौ ॥ ७ ॥
शुश्रूवतुः कथास्तत्र प्रसंगाद्वाधवस्य च । रामारूपो रामवक्तुः स भूत्वा राधवमन्त्रकथाम् ॥ ८ ॥
तुष्टस्तं पूजयामास मुदा पौराणिकं तदा । कृष्णारूपः क्रोधसंयुक्तस्तदा वचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥

किं क्लेशिनोऽयं रामस्य कथां श्रन्वाऽतिहर्षितः ।

पूजिनोऽपि वृथा व्यासस्त्वं मुढोऽगोति वेषयहम् ॥ १० ॥

नान्यदचरित्रं कस्यापि पावनं भूतितोषदम् । यथा कृष्णस्य मे रम्यं नानाक्रीडापुरःसरम् ॥ ११ ॥
तत्कृष्णवचनं श्रुत्वा रामारूपः प्राह सस्मितः ।

रामोपासक उवाच

रामः क्लेशो कथं प्रोक्तस्त्वया कृष्णः कथं सुधी ॥ १२ ॥

कथं कृष्णस्य ते रम्यं चरितं दुरितापहम् । कथं रामस्य मे रम्यं चरितं नेरितं त्वया ॥ १३ ॥
यदायं विस्तरेणैव शृण्वन्वेते सभासदः ।

कृष्णोपासक उवाच

तस्यैव पृष्ठं स्वयां राम सावधानमनाः शृणु ॥ १४ ॥

कदापि राधवश्चाथ कृष्णस्य चरितं त्वहम् । क्लेशदं तोषदं नृणां शृण्वन्वेते सभासदः ॥ १५ ॥
तत्र रामस्य जन्मादौ जातः श्रापः पितुः पुरा । शःपस्यादावपि पुंन तद्धेतो रात्रयेन हि ॥ १६ ॥
लंकां तत्पितरौ नीतौ प्रारभे दुःस्वर्मादशम् । मम कृष्णस्य जन्मादौ तरिपत्रोः सौरूपदायकैः ॥ १७ ॥
विवाहमंगलं कंसः पूजयामास सादरम् ।

विद्यावरूपमें कहीं गयी थी । वह कथा गरम पुण्यदायिनी है, उसे सुनो ॥ ५ ॥ एक समय अयं देशमें राम नामका एक ब्राह्मण रहा करता था । उसी तरह द्वारकापुरीमें कृष्ण नामका विद्वान् विप्र रहता था ॥ ६ ॥ वे दोनों सदा राम और कृष्णका उपासना किया करते थे । एक समय माघ महानेमें त्रिवेणीके तटपर उन दोनोंकी भेंट हुई ॥ ६ ॥ उन्होंने त्रिवेणीमें स्नान किया और वेणीमाधवकी पूजा करके हिंसी करके एक पौराणिकके पास कथा सुननेकी इच्छासे जा बैठे ॥ ७ ॥ दोनों कथा सुन रहे थे । उनमें कहीं रामका प्रसंग आ गया । उसे सुनकर वह राम नामवाला ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुआ और हर्षपूर्वक पौराणिकको भला भूति पूजा की । इससे कृष्ण नामवाला ब्राह्मण मारे क्रोधके लाल हो गया और कहने लगा—जगत्को कष्ट देनेवाले रामकी कथा सुननेसे तुम्हें क्या लाभ हुआ, जो तुम इतने प्रसन्न हो और तुमने व्यासकी ऐसी पूजा की । मेरी समझमें तो यही आता कि तुम बड़े भूखे हो ॥ ८-१० ॥ मुझे तो और किसीका चरित्र इतना सुन्दर नहीं लगता, जितना श्रीकृष्णका । क्योंकि उस चरित्रमें विविध प्रकारकी लीलाएँ भरी हुई हैं ॥ ११ ॥ कृष्ण नामका ब्राह्मणकी यह बात सुनकर रामोपासक मुसकाता हुआ कहने लगा कि तुमने रामचन्द्रको कैसे दुःखी बतलाया और कृष्णकी सुनी ॥ १२ ॥ तुमने कृष्णचरित्रको कैसे पापनाशक बतलाया और रामचन्द्रजीका नाम लेना भी पसन्द नहीं किया । तुम इसे विस्तारपूर्वक कहो । जिससे ये सभासद भी सुनें । कृष्णोपासकने कहा—हे राम ! तुमने बहुत लोक प्रशन्न किया है । अब सावधान होकर सुनो ॥ १३ ॥ १४ ॥ मैं रामचन्द्र तथा कृष्णचन्द्र इन दोनोंका चरित्र सुनाता हूँ । उनमें रामचरित्र कंसा क्लेशप्रद और कृष्णचरित्र कितना सुखकर है, सो सब सभासद सुनते जायें ॥ १५ ॥ तुम्हारे रामके जन्मके पहले ही उनके पिताको भ्रूणके शिक्काका श्राप मिल चुका था । उसके भी पहले उनके माता-पिताको रावण अपनी लंकामें ले गया था । इस प्रकार रामके जन्मके पहले उनके माता-पिताको

रामोपासक उवाच

रे रे मृणु त्वं दुर्वृद्धे न स शृणो वरोऽर्पितः ॥१८॥

यत्प्रसादादपुत्रस्य नृपस्य तनयस्त्वभूत् । तथा मद्राममीत्या तौ नीतावपि विसर्जितौ ॥१९॥
 दशास्थेन तत्पितरौ जन्मादौ पौरुषं निवदम् । तव कृष्णस्य जन्मादौ पित्रोः कारागृहस्थितिः ॥२०॥
 राजभोगनिषेधार्थं शपो यदुकुलाय च । जन्मापि वदिशालायां वियोगश्च तयोरपि ॥२१॥
 सहोदरवधश्चापि उद्धेतोर्मातुलेन हि । न बाहुज्यं वैश्यस्य यस्य ताताबुधौ स्मृतौ ॥२२॥
 गोरक्षकस्य तनयः प्रवासः शैशवेऽपि च ।

परेण पोषितश्चापि कनीयान् बलमद्वतः । एवं नानाविधं दुःखं तव कृष्णस्य नो सुखम् ॥२३॥

कृष्णोपासक उवाच

आत्मार्थं तव रामेण ताटिका स्त्री विदारिता । नार्थं विमोचितो पित्रोः खेदो वियोगतः ॥२४॥

रामोपासक उवाच

द्विजघ्ना निहता दुष्टा मम रामेण ताटिका । मुनिपुत्राक्षणार्थं मुदा राशाऽर्पितौ शिशू ॥२५॥
 तव कृष्णेन रक्षार्थमात्मनः पूतना हना । तथाऽऽत्मार्थं प्राणिहिता बहु तेन कृता व्रजे ॥२६॥
 गोपैश्च सङ्गमिस्तस्य तथैव गोपरक्षणम् । गोवधः सर्पघातश्च स्वगवाजिघ्रस्तथा ॥२७॥
 रासभयपघातश्च चौर्यं घातं वनेऽटनम् । कंबलावरणं श्रोतपर्जन्योष्णप्रपीडनम् ॥२८॥
 सुसूक्ष्मा पीडनं नित्यं गोपालोच्छिष्टसेवनम् । आत्मार्थं याचितं चाग्रं द्विजस्त्रीभ्यो वने मुदुः ॥२९॥
 इन्द्रध्वजपूजनादिवृद्धाचारप्रलोपनम् । परस्त्रीयमनं ज्येष्ठनारीभिः क्रोडनं चिरम् ॥३०॥

कितना क्लेश हुआ । इसके विपरीत हमारे कृष्णके जन्मके पहले कंसमें उनके माता-पिताको वैवाहिक तथा मङ्गलमयी सामग्रियोंसे पूजा की थी । रामोपासकने कहा—अरे दुर्वृद्धे ! वह रामचन्द्रके पिताको शाप नहीं, बल्कि भरदान मिला था । जिसके प्रसादस्वरूप निपुत्र महाराज दशरथके घरमें रामचन्द्रादि चारों भाइयोंका जन्म हुआ और हमारे रामचन्द्रजीके दशसे ही रावण उनके माता-पिताको ले जाकर श्री धर्मोष्णामें लौटा गया था ॥ १६-१९ ॥ जन्मके पहले ही मेरे रामचन्द्रजीमें इतना पोरुष था । तुम्हारे कृष्णके जन्मके प्रथम ही उनके माता-पिता कारागारमें बन्द थे । दूसरे मदुकुलको राजभोगनिषेधके निमित्त पहले ही शाप प्राप्त हो चुका था । उनका जन्म श्री हुआ तो जेलखानेमें और वहाँ थोड़ी ही देरमें माता-पितासे वियोग हो गया । कृष्णके कितने ही सगे भाई मामाके द्वारा पहले ही मार डाले गये । उनको जो कृत्रिम माता-पिता मिले भी, वे न तो क्षत्रिय ■ और न वैश्य ॥ २०-२२ ॥ तुम्हारे कृष्ण एक भालेके लड़के बने । इस प्रकार ■ गंशावास्थामें ही प्रवासी हो गये । औरतें उनकी रक्षा की और तुम्हारे कृष्ण बलरामसे छोटे थे । इसीलिए कृष्णको बनेक प्रकारका दुःख मिला, सब कुछ भी नहीं ॥ २३ ॥ कृष्णोपासक बोला—अपनी रक्षा करनेके लिए तुम्हारे रामन ताडुका नामवाली एक स्त्रीका वध किया और रामके वियोगसे उनके माता-पिताको महान् क्लेश हुआ ॥२४॥ रामोपासकने कहा—हमारे रामन ब्राह्मणोंको हत्या करनेवाली स्त्री ताडुकाको मारा था और द्विजस्त्रीयोंकी वधरक्षाके लिए उन्हें पिता दशरथने प्रसन्नतापूर्वक मुनिके साथ भेजा था ॥२५॥ किन्तु तुम्हारे कृष्णने अथवा लिए पूतनाको मारा था । इसी प्रकार उन्होंने आत्मरक्षाके लिए व्रजमें और श्री बहुष-सी प्राणिहिताएँ की थी ॥२६॥ गोप-गवालोंका साथ था और वे गोपोंकी ही रक्षा करते थे । उन्होंने गो (धेनुकासुर), पक्षी (दकासुर), बाजि (केओ), रासभ तथा कृष आदिको मारा, चोरी की, जुड़ा खेले और वनोंमें इधर-उधर घूमते रहे । शीत, वर्षा तथा आतपसे बचनेके लिए अपने ऊपर केवल एक कम्बल डाले रहते ■ ॥ २६-२८ ॥ भूख-प्याससे दुखी होकर ग्वालोंका जूठन खाते थे । अपने लिए उन्होंने वनमें ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंसे बार-बार ■ माँगा ॥ २९ ॥ इन्द्रध्वज-पूजन आदि बृद्धोंकी कुलपरम्परासे चलनेवाली प्रथाका उन्होंने लोप किया । वे परस्त्रियोंके साथ घूमते

नम्रस्त्रीदर्शनं बहिष्प्राप्तं दामवन्धनम् । उन्मूलनं च यमयोर्मृत्युर्धुपितसेवनम् ॥३१॥
 रोदनं नवनीतार्थं मुहुर्मात्रा प्रताडनम् । गोगोपिकासु चास्नेहः पूर्वस्थलविसर्जनम् ॥३२॥
 कृता रजकहत्या ॥ युद्धं सप्रियवत् कृतम् । गजहत्या मल्लहत्या युद्धं मातुलमर्दनम् ॥३३॥
 नैष्ठुर्यमाप्तवर्गेषु राज्यप्राप्तिस्तथैव च । नृपाज्ञावर्तनं चापि क्रीडा दास्या कुरूपया ॥३४॥
 मुद्रास्तरात्रयश्चापि रिपवे पृष्ठदर्शनम् । गिरी दग्धः परैर्ज्ञातः स्वोयस्थलविमोचनम् ॥३५॥
 अग्निस्तारनिवासश्च वलात्स्त्रीहरणं कृतम् । भौमासुरपरद्रव्यहरणं परब्रजुतः ॥३६॥
 स्वीयगोत्रवधार्थं हि पांडुजायोपदेशितम् । क्षत्रैः स्तेयावरोपाश्च वधार्थं सङ्गरः सुरैः ॥३७॥

कृष्णोपासक उवाच

किं त्वं जल्पसि मृण्वद्य तव रामस्य कामिनः । कस्य सा दुहिता प्रूहि कृतः स वर्णसङ्करः ॥३८॥
 शिवचापस्य भंगेन शिवस्याप्यपराधितम् । जामदग्न्यमानभङ्गकरणं मुद्रलस्य ॥३९॥
 आज्ञां विना लक्ष्मणेन तद्वन्धस्रोदिताः शुभाः । सदारण्यचरः स्वार्थं पशुहिंसापरायणः ॥४०॥
 वनाश्रमी वन्यजीवी मांसाहारी धनुर्धरः । व्याधकर्मरतः शीतपर्जन्योष्णप्रपीडितः ॥४१॥
 पादगाभी चर्मवासा जटावल्कलवाश्रयी । श्मश्रुधारी तरुच्छायाश्रयी पात्रविवर्जितः ॥४२॥
 राक्षसेन हता पत्नी तव रामस्य कानने । पत्न्यर्थं हि कृतः शोकस्तथा दास्या प्रयुजितः ॥४३॥

रामोपासक उवाच

रामेण मोचिता पत्नी कृता छायामयी पुरा । न सा दासी तु श्वरी मुनिसेवनतत्परा ॥४४॥

और अपनेसे बड़ी स्त्रियोंके साथ खेल्ते फिरते थे । वे नङ्गी नारियोंकी देखते थे । उन्होंने मिट्टी खायी और कितने ही बार तो लोगोंके जूठन तक खाये थे । रस्सीसे बाँधे गये तो यमल-अर्जुन नामक दो वृक्षोंको उखाड़ डाला ॥ ३० ॥ ३१ ॥ पोटोंसे भाखनके लिए रोने लगते थे और माता यज्ञादाके द्वारा बार बार पीटे भी गये । अन्तमें अपनेसे अतिप्रिय प्रेम रखनेवालों गोपिकाओंके प्रति निडुराई करके उस पवित्र वृजधामको छोड़ दिया ॥ ३२ ॥ मथुरामें रजककी हत्या की और (खाले होकर) क्षत्रियोंके समान युद्ध किया ॥ उन्होंने गजहत्या और मल्लहत्या करके मामाकी भी हत्या की ॥ ३३ ॥ अपनेको साथ निडुराई करके उन्होंने राज पाया । फिर भी एक दूसरे राजाकी आज्ञामें बंधकर रहे । बादमें एक कुहव दासीके साथ क्रीड़ा की ॥ ३४ ॥ युद्ध हुआ तो उसमें पराजित होकर शत्रुको पीठ दिखायी और पर्वतपर जाकर छिपे । शत्रुओंने अपनी समझसे उन्हें जला ही दिया था । फिर अपने स्थान मथुराको छोड़कर समुद्रके किनारे जाकर रहने लगे । वहाँ भी बरबस बहुतेरी स्त्रियोंका हरण किया । भौमासुरके द्रव्योंको उन्होंने चुराया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ अपने भाइयों तथा वृद्धम्बियोंको मारनेके लिए पाण्डवोंको उपदेश दिया । लोगोंने उन्हें स्वयन्तक भणिकी चोरी लगायी । एक वृक्षके लिए उन्होंने देवताओंके साथ संघाम किया ॥ ३७ ॥ कृष्णोपासक बोला—व्या ध्यर्थ बकवास करते हो, सुनो । आज मैं तुम्हारे कामी रामकी करनी तुम्हें सुनाता हूँ । बताओ, जिसको उन्होंने अपनी मार्या बनायी थी, वह वर्णसंकर कस्या थी या नहीं ? ॥ ३८ ॥ शिवजीका धनुष तोड़ करके शिवका अपराध किया । परशुरामका मान भङ्ग किया । मुद्रलकी आज्ञाके बिना ही लक्ष्मण द्वारा उन्होंने लछाये तोड़ मंगवाई । जङ्गलमें इधर-उधर भूमते हुए पेट भरनेके लिए पशुहिंसा करते थे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ बहुत दिनों तक वनमें आश्रय बनाकर रहे । वनके फल-मूल ॥ मांस खाते और धनुष ॥ किये वहेलियोंका काम करते रहे । सर्वदा बेधारे शीत-आतप ॥ मेहुके सताये रहते थे ॥ ४१ ॥ पेंदल चलते, चमड़ा पहिनते, बड़े-बड़े नख तथा जटा-वल्कल धारण किये रहते थे । बड़ी-बड़ी दाढ़ी-मूँछ रखाये पेड़ोंकी छायामें रहकर समय बिताते थे । उनके पास एक पान भी नहीं रहता था कि जिसमें सा-पी सकें ॥ ४२ ॥ वनमें उनकी स्त्रीको एक रासस चुरा ले गया । उसके लिए बिलिख ॥ बिलख करते रहे और उनकी पूजा एक दासी श्वरीने की ॥ ४३ ॥ रामोपासकने

जीवन्मुक्तः सत्कृपया मोक्षमायुः शुचिब्रता । तव कृष्णस्य ताः पत्नीर्मोक्ष्यन्त्यधापि क्षत्रवः ॥४५॥
जित्वाऽर्जुनं वलादेव हताः पूर्वं सहस्रशः । स्त्रीजित्वा स्त्रिया दत्तः क्रयक्रीतश्च नारदात् ॥४६॥
सर्वास्तां कामपूर्यर्थं निशि निद्राविवाजितः । बंधुर्म्हा गोपिका भुक्ता मातृसुहृन्माययोधिकाः ॥४७॥

कृष्णोपासक उवाच

बंधुना तव रामस्य पशुसीत्या न निद्रितः । बंधुपान्थपिता तारा सुप्रोवाय यथासुखम् ॥४८॥
वानरैश्च कृता मैत्री स्पर्शितं दुन्दुभेः श्वरम् । निरर्थकं हतो वाली साहाय्यं वानरैः कृतम् ॥४९॥
वानरो यस्य वै यानं धृष्टा ताला विदारिताः । सागरो रोचितो येन लङ्का सा ज्वालिता बरा ॥५०॥

रामोपासक उवाच

इतिद्रेण सुदाम्ना ते कृष्णेन मैत्रिकी कृता । न ज्ञेया वानरास्तोऽपि सर्वे देवांस्रूपिणः ॥५१॥
कापटधेन हतो येन जरासंधो निरर्थकः । साहाय्यं सर्वदा यस्य कृतं गोपैर्व्रजे वने ॥५२॥
गोपालस्य कृतं यानं क्रीडनं सर्वदा वने । ज्वालिता येन सा काशी सहद्रुक्मी विरूपितः ॥५३॥
शिवभक्तेन समरः कृतो बाणेन सादरम् । शिवेनापि कृतं युद्धं चैद्येन निदितो मुहुः ॥५४॥
शरैः पौत्रो जितो यस्य येन स्त्रीणां परस्परम् । कृता विषमता चात्र पारिजातार्पणादिभिः ॥५५॥

कृष्णोपासक उवाच

तवापि रामपुत्रेण सुहृद्ब्रह्मो रणे जितः । शिवभक्तदशास्येन रामेण समरः कृतः ॥५६॥
द्विजहत्या कृता येन मुनिना निदितोऽपि यः । तथा मित्रं जितो यस्य बंधुजेन विभीषणः ॥५७॥
परगेहस्थिता पत्नी पुनर्येनाभिता सुखम् । कैटूर्यं च कृतं पत्न्यां स्त्रीणां कामा न पूरिताः ॥५८॥

कहा—हमारे रामने अपनी छायामयी पत्नीको राक्षसके हाथसे छुड़ाया था । जिसको तुम दासी कह रहे हो, वह दासी नहीं, बल्कि मुनियोंकी सेवामें उत्पर श्वरी थी ॥ ४४ ॥ रामचन्द्रजीकी कृपासे वह जीवन्मुक्त हो गयी और उसे मोक्ष मिल गया । किन्तु तुम्हारे कृष्णकी परित्योंको आज भी उनके शत्रुपण भोग रहे हैं ॥ ४५ ॥ कृष्णकी हजारेों स्त्रियोंकी भजुनसे द्रव्युल्लेख छीन ले गये थे । कृष्ण पूरे स्वर्ण थे । उनकी एक स्त्रीने तो उन्हें दान दे दिया था और बादमें उसी सत्यभामानि नारदसे उन्हें सरीदा ॥ ४६ ॥ सब स्त्रियोंकी कामपूरितिके लिए उन्हें सात-रात भर जगता पड़ा था । दोनों भाइयोंने उन वही स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा की थी, जो माताके समान थीं ॥ ४७ ॥ कृष्णोपासकने कहा—तुम्हारे राम पशुओंके भयसे रात रात भर जागा करते थे । बड़े भारकी रही ताराकी रामने बड़ी हँसी-छुकीके साथ सुप्रोवाको दे दी थी । वानरोंके साथ उन्होंने मैत्री की और दुन्दुभी नामक राक्षसके शवका स्पर्श किया । वालि बेचारेको बिना किसी अपराधके मार डाला । वानरोंने उनकी सहायता की ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ वानर ही उनकी सवारीका काम देते थे । बिना किसी प्रयोजनके उन्होंने सात साल मृशोंको काटकर पिरा दिया । सागरमें पुन बनाया और सोनेकी सुन्दर लङ्कापुरी जलवा दी ॥ ५० ॥ रामोपासक बोला—तुम्हारे कृष्णने एक दरिद्र ब्राह्मण सुदामाके साथ मित्रता की थी । जिन्हें तुम वानर कह रहे हो, वानर नहीं, बल्कि दानवका शरीर धारण करके सब देवता रामकी सेवाको आपे थे ॥ ५१ ॥ तुम्हारे कृष्णने कपट करके श्वर्य जरासंघका धध करवाया था । वनमें सदा गोपगण उनकी सहायता करते रहते थे ॥ ५२ ॥ उन्होंने गोपोंको अपनी सवारी बनायी और सदा वनमें इधर-उधर खेलते रहे । उन्होंने काशी नगरीकी जलवा डाला और अपने सगे साले रुक्मीको कुरूप कर दिया ॥ ५३ ॥ शिवभक्त बाणासुरके साथ उन्होंने युद्ध किया और स्वर्ण शिवकी भी उनके साथ युद्ध करना पड़ा । शिशुपालने उनकी खूब निन्दा की ॥ ५४ ॥ शत्रुओंने उनके पौत्रको जीतकर अपने वशमें कर लिया और पारिजातादिको देते समय अपनी स्त्रियोंमें भी उन्होंने भेदभाव किया ॥ ५५ ॥ कृष्णोपासकने कहा—तुम्हारे रामके बेटेने भी तो अपने ससुराले बाँध लिया और धमने शिवभक्त राजाके साथ किया था ॥ ५६ ॥ उन्होंने सहायता तक कर डाली और मुनि भगवत्सने उनकी अच्छी तरह निन्दा की । अपना काम बनानेके लिए रामने राजाके भाई विभीषणकी कोढ़कर मित्र

यानारूढा कृता यात्रा वेश्याः स्पृष्टास्तथा रहः । पतिव्रतायां सीतायां दोषारोपः कृतोऽपि च ॥६९॥
पुत्रं हंतुं कृता वाक्का शूद्रसिंहवधौ कृतौ । पत्नीसत्काऽऽश्रिता मेन यस्याज्ञा पालिता नृपैः ॥७०॥

रामोपासक उवाच

अंते कृष्णस्य ते श्लाघाऽसञ्छेदो सम्भूद्विज । अन्धिना लोपिता यस्य नगरो द्वारका शुभा ॥६१॥
स्वगोश्रस्य वधस्त्वन्ते मद्यपानादि यत्कुले । दर्शनं शर्जुनायान्ते येन मित्राय नार्पितम् ॥६२॥
स्वस्थानं गमनं येन कृतमेकाकिना तथा । स सतोऽपि कृतस्त्वन्ते व्याघेनान्येन पत्रिणा ॥६३॥

कृष्णोपासक उवाच

तव रामेण समरः पुत्रेणापि कृतो महान् । सीता मया त्यक्ता चेति लोकं प्रतार्य च ॥६४॥
बाल्मीकेराधमं गत्वा दृष्टौ सीतासुतौ रहः । पिण्याक्रेन तथेक्षुद्या पिण्डदानादिकं कृतम् ॥६५॥
दंडके तव रामेण स्वपित्रे भ्रमताऽर्पितम् । तपैरावणभृक्तापाः स्पृष्टः स मञ्चका स्थले ॥६६॥
तथाऽश्वत्यञ्छेदनार्थं महान् यज्ञः कृतो मुहुः । स्वमंत्रिणश्च शेषायुःपूर्त्यर्थं सङ्गरोऽपि च ॥६७॥
कारिणो यमराजेन पूर्वजेन लवादिभिः । पुष्पास्वादनमात्रादिपत्न्याः सिद्धा तथा कृता ॥६८॥
मम कृष्णेन बालस्वे लीलया पूतना हता । हतास्तृणासुराद्याश्च धृतोऽकुस्या गिरिस्थया ॥६९॥

रामोपासक

मम रामेण बालस्वे लीलया ताटिका हता । मारीचाया हताश्चापि पर्वतास्तारिता जले ॥७०॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णस्वरूपेण गोपिका मोहिता भजे । मोहिता राधिका श्रेष्ठा भदनस्यापि मोहिनी ॥७१॥

रागोपासक

मम रामेण देवाना मोहिताः स्वीयरूपतः । देवपत्न्यो रहो रात्रौ मातृतुल्या विचिचिताः ॥७२॥

बनाया ॥ ५७ ॥ दूसरेके घरमें रहो हुई स्त्रीको लाकर घरमें रख लिया । फिर उसी स्त्रीके साथ निठुराई की । बहुत-सी स्त्रियाँ कामयाब्याके लिये पहुँचीं, किन्तु उनकी कामना उन्होंने पूर्ण नहीं की ॥ ५८ ॥ सवारोपर बलकर तीर्थयात्रा की । एकान्तमें वेश्यागमन करके पतिव्रता सीतापर झूठमूठका दोषारोप किया ॥ ५९ ॥ उन्होंने अपने पुत्र सब तकको मारनेकी दे दी और शम्भुक शूद्र तथा सिंहका वध किया ॥ ६० ॥ रामोपासकने कहा—हे द्विज ! अन्तमें तुम्हारे कृष्णका ब्राह्मणके शापसे वंश नष्ट हुआ था । उनकी द्वारिका-पुरीको समुद्रने लय कर लिया ॥ ६१ ॥ उन्होंने करवाकर अपने कुटुम्बियोंका किया । अग्निम समममें अपने अतिप्रिय मित्र अर्जुनको दर्शन नहीं दिया ॥ ६२ ॥ उन्होंने अकेले ही यहसि गोलोककी यात्रा की । एक बड़ेलियेके साधरण बाण द्वारा उन्होंने अपना अन्त किया ॥ ६३ ॥ कृष्णोपासक बोला—तुम्हारे रामने अपने पुत्रके महान् संग्राम किया था । “मेने सीताका परित्याग कर दिया है” ऐसा संसारको दिसलाते हुए भी बाल्मीकिके आश्रमपर जाकर चुपकेसे सीताको और अपने बेटेको देख आये । पिण्याक और इंगुदीके फलसे अपने पिताको पिण्डदान दिया ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ अब दण्डकारण्यमें इधर-उधर घूम रहे थे, सब भी इन्हीं फलसे पिताका आढ़ किया था । ऐरावत द्वारा भोगे हुए मंचको उठाकर पृथ्वीतलमें ले आये ॥ ६६ ॥ अश्वत्य काटनेके अपराधपर रामने एक महायज्ञ किया । मन्त्रियोंको शेष आयुकी पूर्तिके निमित्त अपने बड़े बेटेको यमराजसे लड़ा दिया और केवल फूल सूँघ लेनेसे स्त्रियोंकी भी उन्होंने दण्ड दिया ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ हमारे कृष्णने बाल्यकालमें खेल-खेलमें ही पूतनाकी भार डाला । तृणासुर आदि दैत्योंको मारकर गोवर्धन गिरिको उँगलियोंपर उठा लिया ॥ ६९ ॥ रामोपासकने कहा—हमारे रामने बाल्यकालके समय खेल-खेलमें ताड़का तथा भारीचादि किसने ही राक्षसोंको मार डाला और पानीमें पत्थर तैराया ॥ ७० ॥ कृष्णोपासक बोला—हमारे प्रभु कृष्णने अपने सुन्दर रूपसे

ताः कृतार्याः स्ववराद्यतो जातास्तु गोपिकाः । तांश्लोच्छिष्टस्वरसं दासी रामस्य भक्तिः ॥७३॥
धीत्वा यस्यैव वरतो ब्रजे सा राधिका बभूव । अतो मे राघवो घन्यो यस्यैका दयिताऽत्र हि ॥७४॥

कृष्णोपासक उवाच

■ कृष्णेन वत्स्यश्च सहस्राणि हि बोटस । साष्टोचरस्तान्यत्रोद्गाहिताश्च विधानतः ॥७५॥

रामोपासक उवाच

मम रामस्वरूपेण सर्वास्ता मोहिताः स्त्रियः । माद्वन्मोहितास्तेन वीरेण पुरुषार्थिना ॥७६॥

कृष्णेन रतिकामेन मोहिता गोपिकाः स्त्रियः ।

• कृष्णोपासक उवाच

गजेन्द्रो मम कृष्णेन लीलया निहतो द्विज ॥७७॥

रामोपासक उवाच

मम रामेण नागेंद्रस्त्रिपुरघापदो हतः ।

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णप्रतापेन यमुना खंडिता त्वभूत् ॥७८॥

रामोपासक उवाच

मम रामप्रतापेन खंडिता आह्वयी त्वभूत् ।

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन वै स्वर्गादानीतः सुरपादपः ॥७९॥

रामोपासक

मम रामेण स्वर्गादानीतो सुरपादपः ।

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन स्वगुरोर्मतुश्चापि सुता मृताः ॥८०॥

सुजीविताः समानीताः सप्त राभ्यां निवेदिताः ।

राजको समस्त गोपियोंको मोहित कर लिया और राधानामवाली उस सुन्दरीको मुग्ध कर लिया था, जो अपने असाधारण सौन्दर्यसे कामदेवको भी लज्जाती थी ॥ ७३ ॥ रामोपासकने कहा—हमारे रामने अपने सौन्दर्यसे देववत्त्रियोंको मोहित किया था । मे सब रात्रिके समय एकांतमें रामके पास पहुँचीं । किन्तु उन्हें रामने अपनी माताके समान माना और वरदान देकर कृतार्थ किया । वे ही जन्मान्तरमें गोपिकायें हुई । उस समय रामचन्द्रके मुखसे साग्वूलके निकाले हुए पीपलके पीनेवाली दासी दूसरे जन्ममें राधा हुई । इससे मेरे रामचन्द्र घन्य हैं । क्योंकि ■ एकपत्नीव्रतधारी हैं ॥ ७२-७४ ॥ कृष्णोपासकने कहा—हमारे कृष्णचन्द्रजीने सोलह हजार एक सौ ■ स्त्रियोंके साथ विविध विवाह किया था ॥ ७५ ॥ रामोपासकने उत्तर दिया कि हमारे रामचन्द्रजीने अपनी सुन्दरतासे संसारकी ■ नारियोंको मोह लिया था, किन्तु स्त्रीके भावसे नहीं—अपितु माताके भावसे । क्योंकि हमारे राम बीर और पुरुषार्थी थे ॥ ७६ ॥ कृष्णने गोपोंकी नारियोंपर मोहिनी डाली थी अपनी कामवासनाकी पूर्तिके लिए । कृष्णोपासकने कहा—हे द्विज ! हमारे कृष्णने खेल खेलमें कुबल्यापीड हाथीको मार डाला था ॥ ७७ ॥ रामोपासक बोला—मेरे रामने अष्टापद नामक राक्षसको खेल-खेलमें मार डाला था । कृष्णोपासकने कहा—मेरे कृष्णने अपने प्रतापसे यमुनाकी चारा खण्डित कर दी थी ॥ ७८ ॥ रामोपासकने कहा—मेरे रामके प्रतापसे गंगा खण्डित हो गयी थी । कृष्णोपासकने कहा—हमारे कृष्ण अपने वराक्रमसे कल्पवृक्ष ले आये ॥ ७९ ॥ रामोपासकने कहा—हमारे

रामोपासक उवाच

मम रामेण साकेते सप्त मर्त्याः सुजीविताः ॥८१॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन पौरुष्याद्विप्रस्य जीविताः सुताः ।

रामोपासक उवाच

मम रामेण सचित्रः सुमंथो जीवितः पुनः ॥८२॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन द्रौपद्याः संधितं हि फलं तरो ।

रामोपासक उवाच

मम रामेण वैदेयाः संधितं तुलसीदलम् ॥८३॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णप्रतापश्च जनान्संदर्शितः पुरा । दुर्वाससाऽन्नयाञ्चा सा गोपिकानां कृता वृजे ॥८४॥

रामोपासक उवाच

मम रामप्रतापश्च जनान् सन्दर्शितः पुरा । दुर्वाससाऽन्नयाञ्चा सा कृता रामस्य तत्पुरि ॥८५॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन रूपाणि बहून्पुत्रं कृतानि हि ।

रामोपासक उवाच

बहूनि राघवेणापि स्वरूपाणि कृतानि हि ॥८६॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन मित्राय दत्तं स्वर्णमयं पुरम् ।

रामोपासक उवाच

मम रामेण मित्राय दत्ता स्वर्णमयी पुरी ॥८७॥

कृष्णोपासक उवाच

धर्म्यग्रहे कुरुक्षेत्रे स्नानं कृष्णेन मे कृतम् ।

रामचन्द्रजीने अयोध्यामें बैठे-बैठे स्वर्णसे कल्पवृक्ष तथा पारिजातको भेगा लिया था । कृष्णोपासक बोला—
हमारे कृष्णजी अपने गुरुजीके मरे हुए सात पुत्रोंको यमपुरीसे लाये और उन्हें जीवित करके अपने गुरुजीको
दे दिया था । रामोपासकने कहा—हमारे रामचन्द्रजीने अयोध्यामें मरे हुए सात मनुष्योंको जीवित कर दिया
था ॥ ८० ॥ ८१ ॥ कृष्णोपासकने कहा—हमारे कृष्णने द्रौपदीके कथनानुसार विना फलवाले वृक्षमें भी फल
उगा दिया था । रामोपासक बोला—हमारे रामने भी सीताके कहनेपर तुलसीदलके दो टुकड़ोंको जोड़ दिया
था ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ कृष्णोपासक कहने लगा—हमारे श्रीकृष्णजीने जंगलमें दुर्वासाके अश्र माँगनेपर उनकी माँग
पूरी की थी ॥ ८४ ॥ रामोपासक बोला—हमारे रामने भी अयोध्यामें दुर्वासाके अश्र माँगनेपर उनकी इच्छा पूर्ण
की थी । इससे हमारे रामका प्रताप सभार देश चुका है ॥ ८५ ॥ कृष्णोपासक बोला—हमारे कृष्णने
अनेक-अनेक किये थे । रामोपासकने कहा—हमारे राम भी लंकासे लौटकर अयोध्या आनेपर अनेक रूप
प्रदर्शन करके सबहें एक साथ मिले थे । कृष्णोपासक बोला—श्रीकृष्णने अपने मित्र सुदामाको सुवर्णकी
नगरी दे डाली थी । रामोपासकने कहा कि हमारे रामने भी अपने मित्र विभीषणको सोनेकी लंका दे दी थी
॥ ८६ ॥ ८७ ॥ कृष्णोपासक बोला—हमारे कृष्णने सूर्यग्रहणपर कुरुक्षेत्रमें जाकर स्नान किया था । रामो-

राज्यपासक उवाच

सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे राघेणाप्यवगाहितम् ॥८८॥

मे रामस्य वचनैकं सत्यमेव च नान्यथा । ते कृष्णस्य हनेकानि वचनान्यनृणानि हि ॥८९॥
 रामस्य मे शरस्त्वेकः शत्रुनिर्दलनक्षमः । विफलस्तत्र कृष्णस्य बहवोऽरिषु मार्गणाः ॥९०॥
 एका स्त्री मम रामस्य ते कृष्णस्य बहुस्त्रियः । पत्न्याः शय्यां विना नान्या शय्या रामस्य वै ममा ॥९१॥
 स्त्रीणां शय्यां विना बह्वीः शय्याः कृष्णस्य ते द्विव । रामस्थितिर्मध्यदेशे साकेते सरयुतटे ॥९२॥
 अन्धेस्तटे पश्चिमे ते स्थितिः कृष्णस्य वै तत्र । येषुत्रयं मे रामस्य कृष्णस्यैकोऽयजस्तत्र ॥९३॥
 गौमणिः पुष्पकं वृक्षी कटके मुनिनाऽर्पिते । ऐरावतकुलोद्भूतचतुर्दन्तौ गजोऽपि च ॥९४॥
 एतानि मम रामस्य नव रत्नानि सन्ति हि । मणिद्वयं पारिजातस्त्रिवि रत्नत्रयं तत्र ॥९५॥
 कृष्णस्य सन्ति मे विप्र त्वं तं स्त्रीपिकथं वृथा । समद्वीपेश्वरो रामो मम पृथ्वीशब्ददितः ॥९६॥
 ईशत्वं जगदीशत्वं सममेव द्वयं स्मृतम् । अतो न मम रामेण तुल्यं कृष्णं विचितय ॥९७॥
 यस्य चापं हि कोदण्डं यस्याक्षय्याः पतत्रिणः । विप्रैरुपूरणं यस्य वतं नित्यं द्विजोत्तम ॥९८॥
 यस्य सिंहासुन छत्रं व्यजनं चामरद्वयम् । यस्य यानं पुष्पकं तन्सुपुत्रौ तौ पितुः सभौ ॥९९॥
 अद्यापि पालयते यस्य दत्तं दानं द्विजोत्तमान् । रामनाथपुस्त्यैत्र राज्यं रामस्य मे नृपेः ॥१००॥
 तव कृष्णेन किं दत्तं वद यद्वर्ततेऽधुना । करोत्यहर्निशं शंभुश्चापि मे रामचितनम् ॥१०१॥
 तारकं मे रामनाम काश्यां शंभुर्वनान्सदा । मृत्युन्मुखांस्तारणार्थं द्विजोऽदिशति स्वयम् ॥१०२॥
 अतएव जनान्वापि सर्वत्र मरणोन्मुक्तान् । स्वीयान्मुहुः शिसयन्ति ज्येष्ठो रामोऽधुना त्विति ॥१०३॥
 प्रागिविभोभार्थं सदा तच्छ्रवणाहकैः । राजरामेति रामेति नाम भूम्यामुदीर्यते ॥१०४॥
 यन्नाममहिमा वीक्तं तं स्तौम्यधुना मुहुः । वाल्मीकिनाऽप्यत एव पूर्वं तन्वचरितं कृतम् ॥१०५॥

पासकने कहा कि हमारे रामने भी तो कुरुक्षेत्रमें स्नान किया था ॥ ८८ ॥ मेरे राम सदा सत्य वचन बोलते थे, किन्तु तुम्हारे कृष्णकी बहुत-सी बातें झूठी हो गयी थीं ॥ ८९ ॥ मेरे रामका एक बाण शत्रुको मारनेके लिए पर्याप्त होता है, किन्तु तुम्हारे कृष्णके न जाने कितने बाण विफल हो चुके हैं ॥ ९० ॥ हमारे रामकी केवल एक स्त्री सोता है और तुम्हारे कृष्णकी बहुत सी स्त्रियाँ हैं । पत्नीको शय्याके अतिरिक्त हमारे रामकी कोई और शय्या नहीं है, लेकिन तुम्हारे कृष्णकी बहुत-सी ऐसी शय्याएँ हैं, जो दिना स्त्रीके हैं । हमारे राम सरयूके तटपर अयोध्यामें रहते हैं ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ इसके विपरीत तुम्हारे कृष्ण पश्चिमी समुद्रके किनारे रहते हैं । मेरे रामके तीन भाई हैं और तुम्हारे कृष्णके केवल एक भाई है ॥ ९३ ॥ हमारे रामके पास कामधेनु, गौ, मणि, पुष्पक, कल्पवृक्ष, पारिजात, मुनि अगस्त्य द्वारा दिये हुए दो कङ्कण, ऐरावत वंशमें उत्पन्न चतुर्दन्त हाथी ये नौ रत्न सदा दियमान रहते हैं । हे विप्र ! तुम्हारे कृष्णके पास दो मणि तथा पारिजात वन ये ही तीन रत्न हैं ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ तब नाहक ऐसे कृष्णकी बगो अर्थ स्तुति करते ही ? रामचन्द्रजी सात द्वारोंके स्वामी एवं राजाओंसे भी वन्दित हैं ॥ ९६ ॥ राम ईश भी हैं और जगदाश भी, उनमें दोनों विशेषताएँ हैं । तब मेरे रामके बदखर कृष्णको मानो । उनके पास धनुष है और अक्षय सायक हैं । वे ब्राह्मणोंकी इच्छा पूर्ण करनेको सदा तत्पर रहते हैं ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ जिनके पास सिंहासन है, दो चमर एवं है, जिनके पुष्पक विमानकी सवारो है और पिताके सदृश पुण्यशाली बेटे हैं । जिनका दान दिया हुआ रामनाथपुर भी विद्यमान है । तुम्हीं बताओ कि तुम्हारे कृष्णने क्या चीज दानमें दी है, जो आजतक विद्यमान है । साक्षात् शिवजी भी सदा मेरे रामका पूजन करते हैं ॥ ९९-१०० ॥ काशीमें मरणोन्मुख प्राणियोंको शिवजी घूम-घूमकर रामतारक मंत्र सुनाया करते हैं । इसीलिए संसारके लोग मरते समय कहते हैं—'रामका ध्यान करो भैया, रामका पूजन करो' ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ मृत प्राणोंकी मोक्षप्राप्तिके निमित्त ही नावको उठानेवाले लोग भी रामनामका उच्चारण करते चले हैं ॥ १०३ ॥ जिनके नामकी ऐसी महिमा है, वे उन रामकी स्तुति करता हैं । इसीलिए

अतकोटिमितं श्रेष्ठं यस्मिन् रामायणे द्विज । कृष्णादीनां चरित्राणि सन्ति ह्यनर्गटानि हि ॥१०६॥
श्रीरामराम उवाच

एवं तयोर्विदतोद्विजयोश्च परस्परम् । बभूवाकाशजा वाणी तां तौ सर्वे च सुश्रुतुः ॥१०७॥
रामस्याग्रं स्तुतिः केषामपि कर्तुं घटेन न । इति तां स्वेवर्गं वाणीं श्रुत्वा सर्वे सभासदः ॥१०८॥
चक्रुर्जयस्वनान्दत्तैर्वादिषन्ति स्म तालिकाः । तं रामोपासकं सर्वे यवर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥१०९॥
निर्जरा अपि ते सर्वे विमानस्थः सुदान्विताः । तं रामोपासकं ध्रान्या यवर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥११०॥
तदा कृष्णोपासकः स लज्जया नतमस्तकः । तं रामोपासकं नत्वा प्रार्थयामास वै मुहुः ॥१११॥
तदा रामोपासकोऽपि तं नत्वाऽऽलिङ्ग्य वै दृढम् । उवाच मभुवं वाक्यं शृणु कृष्ण द्विजोत्तम ॥११२॥

न नन्दयूनोः पृथगस्ति रामो न रामतोऽन्यो वसुदेवमनुः ।

तथाऽप्ययोभ्यामुरपालवाले सन्नक्षणे धावति मे मर्त्या ॥११३॥

अतः स्तुतो मया रामः कृष्णस्य निन्दनं कृतम् । तवेष्ट्येयं द्विजश्रेष्ठ वेद्यि तौ द्वौ ममाविति ॥११४॥

राम एवात्र कृष्णश्च कृष्ण एवात्र गणवः । उभयोर्नान्तरं विप्र कीर्तकान्च मयेरितम् ॥११५॥

मानवत्पन्तरं यो ना तयोः श्रीरामकृष्णयोः ।

परस्परं स निरये पतिष्यति न मंजयः । त्वद्व्येष्टिगार्थं स्वेचर्या राघवः स्तुतः ॥११६॥

इत्युक्त्वा मांस्त्वयित्वा तं रामः कृष्णाह्वयं द्विजम् । तूर्णान्तरं सभामध्ये समागच्छिः सुपूजितः ११७॥

ततस्ती माघमासोत्ते स्वं स्वं देशं प्रजग्मतुः । तस्माच्छिष्यावतारेषु न राममदृशः परः ॥११८॥

अतस्तं भज भावेन तस्यैव चरितं शृणु । यदन्यद्वर्णयाम्यग्रं महामंगलकारकम् ॥११९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे राज्यकाण्डे पूर्वोद्धे

श्रीरामकृष्णोपासकयोर्विवादो नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

बहुत दिन पहले वाल्मीकिने रामायण बनाया था ॥ १०४ ॥ जिसकी ज्योत्स्नसंख्या भी करोड़ है और तुम्हारा समस्त कृष्णचरित्र उसमें समा जाता है ॥ १०५ ॥ श्रीरामदासने कहा--जिस समय वे दोनों इस प्रकार परस्पर विवाद कर रहे थे, तभी आकाशवाणी हुई--"रामके आगे स्तुति करनेका सामर्थ्य किसीमें नहीं है" । उसे उन दोनों तथा अन्य लोगोंने सुना । इस प्रकारकी आकाशवाणी गूँजकर नहीं बँडे हुए समस्त सभासद रामकी जय-जयकार करते हुए तालियाँ बजाने लगे और उस रामोपासकपर पुष्पवृष्टि की ॥ १०७-१०९ ॥ इतना ही नहीं, देवतागण भी विमानोंपर आ-आकर हूपसे रामोपासकपर दूध बरसाने लगे । तब लज्जामें कृष्णोपासकने रामोपासकको करके वाट-द्वार दिवली की ॥ ११० ॥ १११ ॥ रामोपासकने भी उसे प्रणाम करके छातीसे लगा लिया और कहा--॥ ११२ ॥ हे द्विजोत्तम ! न कृष्णमें पृथक् राम है, न राममें पृथक् कृष्ण है । फिर भी अयोध्या नगरीके राज्यमें प्रथमगण्यवत् वाल्मीक्यादि रामकी ही भजनेकी मेरी इच्छा होती है ॥ ११३ ॥ इसी कारण अभी मैंने रामकी स्तुति की और कृष्णकी निन्दा । यह केवल तुम्हारी ईर्ष्यासे कहा-सुनी हुई । नहीं तो वास्तवमें मैं दोनोंको समान समझता हूँ ॥ ११४ ॥ राम ही कृष्ण हैं और कृष्ण ही राम हैं । इन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है । अभी मैंने जो कुछ कहा, वह सब कीर्तकमात्र था ॥ ११५ ॥ जो मनुष्य राम और कृष्णमें अन्तर मानता है, उसे नरकगामी होता पड़ेगा । इसमें कोई संशय नहीं है । केवल तुम्हारा भवें दूर करनेके लिए अभी आकाशवाणीने भी रामकी स्तुति की थी ॥ ११६ ॥ ऐसा कह तथा कृष्णनामक द्विजकी सान्त्वना देकर सभासदोंसे पूजित होता हुआ राम विप्र सभामें चुरचाप बँड गया ॥ ११७ ॥ माघमास व्यतीत हो जानेपर वे दोनों अपने-अपने देशको लौट गये । इसीलिये मैं कहता हूँ-हे मिथ्य ! समस्त अवतारोंमें रामावतारके सदृश कोई भी नहीं है ॥ ११८ ॥ अतएव तुम उन रामकी भजन करो और उनकी वह सुनी, जो आगे चलकर मैं सुनाऊँगा ॥ ११९ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे १० रामनेत्रपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासमन्विते राज्यकाण्डे पूर्वोद्धे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः

(रामका सौ स्त्रियोंको वरदान एवं मूलकासुरोपाख्यान)

श्रीरामदास उवाच

एकदा राघवः सिन्धु सभासंस्थो जनैर्दृतः । ददर्श द्राक्षावल्लीनां मंडपे काकमुत्तमम् ॥ १ ॥
 उभयोर्नेत्रयोरेकनेत्रमृत्तिसमन्वितम् । अतिदीनं कृशं व्यग्रदृष्टिं दीर्घस्वरं चलन् ॥ २ ॥
 मुहुर्मुहुश्च पश्यन्तमात्मानं शब्दपूर्णकम् । तं दृष्ट्वा तत्कृपाविष्टः स्मृत्वा क्रोधं पुरा कृतम् ॥ ३ ॥
 उवाच काकं श्रीरामः सुखपागच्छ मेऽन्तिकम् । तद्रामवचनं श्रुत्वा द्राक्षावल्गुयाश्च मंडपात् ॥ ४ ॥
 क्षीग्रमुद्गीय काकस्तु रामाग्रे सदसि स्थितः । रामं पश्यन्दीर्घरवं स चकार मुहुर्मुहुः ॥ ५ ॥
 तदा तं राघवः प्राह तत्कृपाविष्टमानसः । नेत्रं त्रिना वरानन्यान् काकं याचस्व मां प्रति ॥ ६ ॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा काकः प्राहावनीपतिम् । कृपावलोकनं रामं यत्पश्यतु तव सर्वदा ॥ ७ ॥
 किं वरेणितरेव्यर्थं सिद्धे सुखदायके । तत्काकवचनं श्रुत्वा रामस्तं वाक्यमब्रवीत् ॥ ८ ॥
 द्वीपान्तरेषु यद्भूतं भविष्यं भूतमेव च । सर्वमानं च भक्तं त्वन्नेत्रविषयेऽस्तु तत् ॥ ९ ॥
 भाविकायाणि सर्वाणि काक त्वं वेत्ति नदमत् । तनाः पश्यंतु ते मन्याः शकुनाश्च निगतरम् ॥ १० ॥
 स्थिरत्वे स्थिरकायाणि गते त्वय्यस्तिनन्दराज । भविष्यन्ति हि कार्याणि मृगणां शकुनं त्विति ॥ ११ ॥
 पश्यंतु सकला भूर्मा जनाः कार्येऽपिदये । ग्रामे गृहप्रदेशे ते वाग्ममाणे न चेद्भविः ॥ १२ ॥
 गमने दक्षिणे भागे यदि ते जमनं तदा । लोकानामस्तु शकुनं महाभंगलकारकम् ॥ १३ ॥
 प्रेतदशाहपिंडाय यदि स्पर्शो भवेन्न ते । याऽस्तु वहि गतिस्तेषां प्रेतानां मम वाक्यतः ॥ १४ ॥
 अन्तर्काले मानवस्य संछितं नैव पूरितम् । प्रेतदशाहपिंडस्यास्पर्शाज्जानंतु तन्नराः ॥ १५ ॥
 प्रेतस्य वंशजः कविद्यद्यनोत्स्य संछिनत् । तत्तं स्पर्शाद्विदित्वा तु मम यदा पूरयिष्यति ॥ १६ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—हे सिन्धु । एक दिन बहुतेरे मनुष्योंसे घिरे हुए रामचन्द्रजी सभामें बैठे थे । तभी अंगूरका रसताश्रीन घंट एक कोएका देखा । यह एक ही नमसे दानों नेत्रोंका काम ले रहा है । कोआ अपनी भावुतिमें अतिदीन, व्यग्रदृष्टि, अने स्वरवाला और चञ्चल दीखता है ॥ १ ॥ २ ॥ रामचन्द्रजीने देखा कि यह बार-बार मेरी ओर देख रहा है और काँव-काँव करके दोलता भी जाता है । उसकी यह दशा देखकर रामक हृदयमें दया आयी और अपन पहले शिष्य हुए कोएका स्मरण करके कोएसे बोले—हे ॥ ३ ॥
 मुझे मेरे ॥ आभा । यह सुनकर कोआ उस द्राक्षावल्गुसे उड़ा और रामके आगे आकर बैठ गया । सभा- में वह रामका देखता हुआ बार-बारसे बिलबिले लगा ॥ ४-५ ॥ रामने कोएसे कहा—तू अपने नेत्रोंके सिवाय जो कुछ भी वर माँगना चाहे, माँग ले ॥ ६ ॥ इस प्रकारकी बातें सुनकर पृथ्वीपति रामसे कोआ कहने लगा—हे राम ! मेरे ऊपर इसी तरह सदा आपकी कृपादृष्टि बनी रहे ॥ ७ ॥ कबल इस लोकमें सुख देनेवाले अन्य वरदानोंको लेकर मैं क्या करूँगा ॥ ८ ॥ कोएको बात सुनकर रामचन्द्रजीने कहा—किसी द्वीपान्तरमें भा हानवाला भूत, भविष्य और वर्तमानकी सब बातें तुम्हारा आँसोंके सामने रहेंगी ॥ ९ ॥
 होनेवाले अथवा भविष्यके सब कार्योंका तुम मेरे वरदानसे जान लोगे । मनुष्य कहीं जाते समय सदा तुम्हारा शकुन देखा करेंगे ॥ १० ॥ जब तुम बैठे रहोगे, तब देखनेवाले पक्षिका का मरक जायगा और तुम चलते रहोगे तो उसका कार्य शीघ्र पूर्ण हो जायगा । इस प्रकारलोग तुम्हारा शकुन देखेंगे ॥ ११ ॥
 ग्रामप्रवेश या गृहप्रवेशके समय तुम जिसकी राहिनी ओरसे निकल जाओगे, वह परम मङ्गलकारक शकुन होगा ॥ १२ ॥ १३ ॥ प्रेतके दशाहपिंडको अब तक तुम नहीं छू लो, ॥ तक उस प्रेतकी स्पर्शक करसि नहीं होगी ॥ १४ ॥ यदि प्रेतके दशाहपिंडको नहीं छुओगे तो उसके घरवाले लोग समझेंगे कि अभी प्रेतकी इच्छा पूरी नहीं हुई है । प्रेतका कोई वंशज, तुम जिन-जिन चीजोंको वहीं छुओगे,

तदा पिंडं स्पृशन् त्वं नोचेन्वा स्पृश सर्वथा । अल्पमेकं वरं दधि लिपिमात्रे तु पुस्तके ॥१७॥
 यत् किमिच्छेत्सर्वथा विस्मृतं तत्र मद्वरात् । कुर्वन्तु पदचिह्नं ते सर्वत्र जगतीवले ॥१८॥
 नन्मदं पुस्तके दृष्ट्वा जन्तुं जानन्तु विस्मृतम् ॥ लिखितं पार्श्वभागेषु लेखकैः पुस्तकस्य यत् ॥१९॥
 इति दत्ता वरान् रामस्तुष्णीमायीन्स्मितजाननः । काकोऽपि तुष्टः श्रीरामं नन्दोद्गीय मतस्तदा ॥२०॥
 एवं जानाचरित्राणि चकार रघुनन्दनः । एकदा रात्रौ रात्रौ पारिजातकोरधः ॥२१॥
 निद्रितो हंसवयंके जानकयाऽस्पृश्यया विना । एतस्मिन्नन्तरे तस्यां रात्रौ ते समरधकाः ॥२२॥
 इतरथाभापि दास्यथ दासाद्याः सकलान्तदा । पयुर्दं कीर्त्तनं श्रोतुं कापि रामस्य भक्तितः ॥२३॥
 दृष्ट्वा तं समयं वेगात्कामवाणप्रपीडितः । पौरुषां शतनार्यस्ता वस्त्रालंकारभूषिताः ॥२४॥
 मारुप्यपदसंभ्रांता हंसकुम्भपयोधराः । चंद्राननाः शुकघ्राणाः कमलाग्रयो मृगीदृष्टः ॥२५॥

पातकीशेयवसना रुक्मनुपूरतिःस्वताः ।

परस्परं ताः संमन्य प्रथमे वयमि स्थिताः । ययुः मयीः पुष्पके श्रीरामवं रहसि स्थितम् ॥२६॥
 काचित्तं वीजयामास श्रीरामं व्यजनेन हि । काचिद्धत्त रामः स्वकरे पुष्पमालिकाम् ॥२७॥
 काचित्तांशूलशत्रं ॥ काचिन्दंभं जलस्य सा । पाशं निष्ठेयवन्थान्या सा दधार विलसिनी ॥२८॥
 दधार चन्दनं काचित्कानिर्दिष्टान्तपूतम् । काचित्पकान्तनैवेद्यं काचिद्रंभाफलादिकम् ॥२९॥
 एतस्मिन्नन्तरे काचिन्पादपद्मानं रुनैः । रामस्य कर्तुमुद्यक्ता तत्पदं पाणिनाऽस्पृशत् ॥३०॥
 तेन रामः प्रवृद्धोऽभून्मृन्मृन्वाऽपृश्यां विदेहजाप् । केन मे स्पर्शितः पादश्चकितश्चैन्पुत्राविशन् ॥३१॥
 तारदृश्यं धीमताः शतशश्च पुरः स्थिताः । पौरुषां प्रमदाः सर्वा रुक्मालङ्कारमंडिताः ॥३२॥
 रामं सभुन्धितं दृष्ट्वा प्रणेमुन्नास्तदा भुवि । स्वशिरसि निधापय तुष्टुर्विविशोक्तिभिः ॥३३॥

उनकी अपूर्वी समझकर जब पूर्ण करेगा, तब जरूर उस प्रेतको सदासि प्राप्त होगी । मुम भी उसके वशाहृषिपत्रको तभी पढ़ना, जब उनका प्रत्येक अंग पूर्ण हो जाय । तुम्हें दूसरा वधान यह भी देता है कि जो लेखक लिखते समय कुछ भूल जायें, वे वहाँपर तुम्हारे पैरका चिह्न बना दिया करेंगे ॥ १५-१८ ॥ पुस्तकके पार्श्वभागों वृद्धारे पैरका चिह्न देखाए लोभ समस्त जायेंगे कि वहाँपर कुछ भूल है ॥ १९ ॥ इस प्रकार उस बीएकी परदान देकर रामचन्द्रजी मुन्काते हुए चुप हो गये । कोजा भी भगवान्‌की प्रणाम करके वहाँसे उड़ गया ॥ २० ॥ इस तरह रामचन्द्रजी विविध प्रकारकी लीलाएँ किया करता थे । एक दिन रात्रिके समय पारिजात वृक्षके नीचे रहकर सत्ताके बिना राम प्रवेशे मुवर्णके पलंगपर सो रहे थे । उसी रात्रिके जितने भी द्वापान्त-रात्रा आँद थे, वे सब भक्तिवश कहीं रामकीर्तन सुननेके लिए चले गये थे ॥ २१-२३ ॥ उसी समय मौला पाकर सो नाचिकों विविध प्रकारके वस्त्राभूषण धारण किये कामके घणसे पीडित होकर रामचन्द्रजीके पास जा पहुँची ॥ २४ ॥ वे सब तस्याईके मरसे भरती थी, मुवर्णवृन्धके समान उनके स्तन थे, चन्द्रमाकी भाँति उनका मुख था, सोतेकी ठोकरके समान उनकी नासिका थी, कमलकी नाई उनके पाँव थे और गृगियोंके समान उनके नेत्र थे ॥ २५ ॥ वे सब पीले वस्त्र धारण किये थीं । सोनेके नूपुर धनमुद्र करके बोल रहे थे । उनकी उमर भी बहुत बड़ी थी । वे सब पुन्धकः समीप एकान्तमें सोये हुए रामचन्द्रजीके पास जा पहुँची ॥ २६ ॥ वहाँ जाकर कोई रागाँ देना दासने लगी और कोई अपने हाथमें फूलोंकी माला लेकर उनके उठनेकी प्रतीक्षा करने लगी । किसोंने पानदान लिया और किसीने जलसे मरी झारी ली । किसीने पीगदान उठाया, किसी दूसरी विलासिनीने चन्दन लिया, किसीने दिव्य पद्मदान और कोई नाना प्रकारके फल लेकर रामचन्द्रजीके जागनेकी प्रतीक्षा करने लगी ॥ २७-२९ ॥ इसी बीचमें एक स्थान रामचन्द्रजीका पैर दबानेकी इच्छासे पोरि-पोरे उनका पैर उठाया ॥ ३० ॥ इससे वे चौक पड़े और सोचने लगे कि मीठा तो इस समय अपूर्य है, तब यह कौन पैर उठा रहा है । यह विचार करते-करते चकित भावसे वे रूठ बँडे ॥ ३१ ॥ तब अपने सामने उपस्थित उन सौ पारिवीप, उनकी दृष्टि पड़ी । तब रामने

राः सर्वा राघवः प्राह किमर्थमिह पुष्पके । रात्रौ समगताः सर्वास्तथ्यं मां कथ्यतां स्त्रियः ॥३४॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा विलज्जन्त्यः पुनस्त्रियः । अवाङ्मुखाः सस्वितस्तास्तूर्णामिव समंततः ॥३५॥
 तासु काचिच्चदा रामं गजलज्जाऽत्रवीडयः । सर्वं जर्जलि प्रभवो यदर्थमागता वयम् ॥३६॥
 उपेक्षणीया नो राम वयं सर्वाः स्त्रियस्तथा । इति तावामभिप्रायं श्रुत्वा स रघुनन्दनः ॥३७॥
 अश्वोन्मथुरं वाक्यं मृणुष्वं प्रपदोक्तमाः । एकपत्नीव्रतं मेऽस्ति मातृतुल्याः स्त्रियो मम ॥३८॥
 इतराः सकलाः सीतारहिताश्चेह अन्मनि । गच्छन्ति निजगोदानि मा माऽघर्मोऽस्तु मयि नृपे ॥३९॥
 राज्यं क्षासति मो नार्यः क्षमितं चोऽपराधितम् । इति तां रामशाम्बाणैः कामवाणप्रपीडिताः ॥४०॥
 तादृिताश्च विशेषेण निषेतुर्मूर्छिता भुवि । पतितास्ता निरीक्ष्यथ सर्वा रामोऽतिविह्वलः ॥४१॥
 ता उवाच पुनः शीघ्रं सुष्ठुवाक्यैः कृपान्वितः । मृणुष्वं मे श्वो नार्यः सकृद्रत्या मया सह ॥४२॥
 युष्माकं न भवेत्तद्विर्वतमहोऽपि मे भवेत् । अतः मृणुत मे वाक्यं पागे पूर्वं मयाऽर्पितः ॥४३॥
 गुरवे रुक्मजाश्चैव सीतायाः शतमूर्तयः । तां फलेन युष्माभिर्द्विपरे कण्डनं चिरम् ॥४४॥
 करिष्यामि न संदेहः कृष्णरूपेण वै सुखम् । नानानृपाणां युष्माभिर्भवध्वं योषितस्तदा ॥४५॥
 भौमासुरश्च युष्माकं संहरिष्यति वै यदा । तदा सर्वा मोचयामि हत्वा तं बग्नोत्तुतम् ॥४६॥
 करिष्यामि विशाहाश्च युष्माभिर्द्वारकापुरि । स्त्रीषोऽग्रगण्यसंख्यामूर्ध्वतोऽन्याः शनं त्वहम् ॥४७॥
 इति रामवचः श्रुत्वा तुष्टास्ताः पुरयोषिताः । भत्वा रामं ययुः सर्वास्तूर्णीं स्वं स्वं गृहं गति ॥४८॥
 ततः स्त्रीस्ता विसर्ज्यासौरामो दासीः समाह्वयत् । दृष्ट्वा कामपि नो दासीं रामो दासांस्तदाह्वयत् ॥४९॥
 तेष्वप्येकं न दृष्ट्वा स द्वारपालान्समाह्वयत् । तानप्यदृष्ट्वा रामस्तु रक्षकांश्च समाह्वयत् ॥५०॥

देखा कि वे सब पुरवासिनी स्त्रियां सुवर्णके अलङ्कार पहने हैं । भगवान रामको उठा हुआ देखकर उन्होंने प्रणाम किया और अपना मस्तक पृथ्वीपर रखकर विविध प्रकारसे भगवानकी स्तुति करने लगी ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ उनमें रामने पूछा कि तुम सब यहाँ इतना राधिम किस लिए आयी हो ? मुझे सब-सब बतला दो ॥ ३४ ॥ रामकी बात सुनकर वे पुरवासिनी स्त्रियां लज्जित होती हुई भाया नोचे करके चुपचाप खड़ी रह गयीं ॥ ३५ ॥ किन्तु उनमेंसे एकने विलज्ज होकर कहा—हे प्रभो ! आप सब जानते हुए भी हमसे आनेका कारण पूछ रहे हैं ? हम जिस लिए आयी हैं, आप वह सब जानते हैं ॥ ३६ ॥ हे राम ! अब आप हमारी उपेक्षा न कीजिये । इस प्रकारकी बातोंसे राम उनका अभिप्राय समझ गये और मोठी बातोंमें समझाते हुए कहने लगे—हे सुन्दरियो ! मैं एकपत्नीव्रतधारी हूँ । मेरे लिए इस जन्ममें सीताके सिवाय संसारकी सब नारियां माताके समान हैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ तुम सब अपने-अपने घरोंको जाती जाव । मैं राजा हूँ । मेरे ऊपर तुम पाप न लादो ॥ ३९ ॥ अब तक मैं प्रजाका शासक हूँ, तबतक ऐसा अनर्थ नहीं हो सकता । आओ, मैंने तुम्हारा अपराध क्षमा किया । यह सुना तो कामवाणसे पीडित वे स्त्रियां रामके वाक्प्ररूपी वाणीसे विड और मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ीं । उनको इस प्रकार गिरा देखकर रामचन्द्रजी बहुत विह्वल हो गये ॥ ४० ॥ ४१ ॥ वे कृपापूर्वक उनसे कहने लगे—हे नारियों ! मैं तुम्हारा मनोभाव जानता हूँ, किन्तु केवल एक द्वारकी रतिसे तुम लोगोंकी इच्छा नहीं भरेगी और मेरा व्रत भी भंग हो जायगा । इसलिए मेरी बात सुनो—आजके बहुत दिनों पहले यज्ञमें मैंने सीताकी सी सुवर्णमयी मूर्तियां दान दी हैं । उन्हींके फलसे द्वारमें कृष्ण होकर बहुत दिनोंतः तुम सबोंके साथ क्रीड़ा करूंगा ॥ ४२-४५ ॥ तुम सब उस समय अनेक राजाओंको पुत्रिणां होकर जन्म लोगी । जब भौनासुर तुम सबको चुरा ले जायगा, तब मैं वहाँ पहुँचकर उसे मारूंगा और तुम्हें उससे छुड़ाऊंगा । तुम सबका विवाह द्वारका-पुरमें होगा । उस समय तुम्हारी संख्या सोलह हजारसे भी ऊपर रहेगी और मैं में ही रहूँगा ॥ ४६-४७ ॥ इस प्रकार रामकी सुनकर प्रसन्नतापूर्वक उन्होंने भगवाणको प्रणाम किया और चुपचाप अपने-अपने घरोंको लौट गयीं । उन स्त्रियोंकी विदा करके रामचन्द्रजीने दासियोंको बुलाया, किन्तु

तेष्वप्येकं न दृष्ट्वा स राघवश्चातिविस्मितः । विमानाद्वालमारुह्य सौमित्रि वै समाह्वयत् ॥५१॥
 उर्मिला रामवाक्यं तच्छ्रुत्वा तं चालयत्पतिम् । उर्मिलाचालनाच्छोघं प्रबुद्धोऽभूत्स लक्ष्मणः ॥५२॥
 रामवाक्यं सोऽपि श्रुत्वा रतिशालावहिर्ययौ । दत्त्वा प्रत्युत्तरं राम ययौ वेगेन लक्ष्मणः ॥५३॥
 एतस्मिन्नंतरे रामो रोदनं नगराद्वहिः । शुभ्राव स्रोकृतं घोरं किमिदं चेति विस्मितः ॥५४॥
 ततो दृष्ट्वा स सौमित्रि मयं वृत्तं न्यवेदयत् । लक्ष्मणो रामवाक्यं तच्छ्रुत्वा दूताभिजांस्तदा ॥५५॥
 प्रेष्य दूतान्कीर्तनस्थानादाह्वयामास वेगतः । रामदूतास्तदोचुःश्रुत्वा कथं धारामकीर्तनम् ॥५६॥
 अवमास त्रिहायाय गन्तव्यं स्वामिनं प्रति । तेष्वेव केचिदुचुस्ते पालनीया तु सेवकैः ॥५७॥
 प्रमोसत्राऽयं चास्माभिर्नो चेन्नः पातकं स्पृशेत् । केचिदुचुरिदं तस्य कीर्तनं मङ्गलप्रदम् ॥५८॥
 स्वाम्याश्चामगदोषघ्नं कथं त्यक्त्वा प्रगम्यताम् । केचिदुचुः कीर्तनस्थानं श्रुत्वाऽस्मान्स सुखी भवेत् ५९
 इति संदिग्धचित्तास्ते न तदा राघवं ययुः । ततो लक्ष्मणदूतास्ते रामं वृत्तं न्यवेदयन् ॥६०॥
 ततः किञ्चिन्क्रोधयुक्तः सौमित्रि प्राह राघवः । मस्कीर्तनसमाप्तकाशाहं दण्डयितुं क्षमः ॥६१॥
 तथाप्येतन्न योग्यं हि किञ्चिच्छिधां करोम्यहम् । इत्युक्त्वा तां तु रुदतीं पुनः श्रुत्वा बहिः प्रभुः ॥६२॥
 विमानं प्राह गच्छाद्य बहिः पुर्याः स्त्रियं प्रति । तथेति रामवाक्येन ययौ तन्नगराद्वहिः ॥६३॥
 पथं साऽतिविलापं स्त्री करोति सरयुतटे । तामंजननिभां नारीं रुदतीं राघवोऽब्रवीत् ॥६४॥

राम उवाच

किं ते दुःखं वदस्वाद्य का त्वं रोदिषि वै कथम् । इति रामवचः श्रुत्वा सा रामं वाक्यमब्रवीत् ॥६५॥
 धिरकालं करोम्यत्र रोदनं रघुकन्दन । अद्य श्रुतं त्वया राम किञ्चित्पुण्यचयान्मुनेः ॥६६॥

वहाँ कोई दासी नहीं दिखायी दी । तब सेवकोंको बुलाया । उनमेंसे भी कोई नहीं बोला । तब पहरेदारोंको पुकारा, किंतु उनमेंसे भी कोई नहीं बोला । जिससे रामचन्द्रजीको बड़ा विस्मय हुआ और विमानके ऊपरवाली शेटारीसे लक्ष्मणको पुकारा । रामचन्द्रकी आवाज उर्मिलाको सुनायी दी और उसने तुरन्त लक्ष्मणको जगाया । जागनेपर लक्ष्मणने भी रामकी आवाज सुनी और तत्काल उनकी बातका प्रत्युत्तर देकर तुरन्त रतिशालाके बाहर आकर वेगसे रामचन्द्रजीकी ओर चले ॥ ४८-४३ ॥ इधर रामचन्द्रजीने नगरके बाहर किसी स्त्रीका रोदन सुना । "हे, यह क्या है !" यह कहकर ॥ वहे विस्मित हुए ॥ ४४ ॥ तब तक लक्ष्मण भी आ पहुँचे और रामने उन्हें ॥ वृत्तान्त सुनाया । लक्ष्मणने तुरन्त अपने दूतोंको उस स्थानपर जानेकी आज्ञा दी, जहाँपर कीर्तन हो रहा था । लक्ष्मणके दूतोंने वहाँ पहुँचकर रामके दूतोंसे कहा—चलो, रामचन्द्रजी कहते तुम सबको बुला रहे हैं । उन सबने जवाब दिया कि बिना रामकीर्तन समाप्त हुए अधूरा छोड़कर हम सब कैसे आये । उनमेंसे कितोने कहा ॥ सेवकोंका धर्म है, स्वामीकी आज्ञाका पालन करना ॥ ४५-४७ ॥ यदि उनकी आज्ञा ॥ मानेंगे तो हमको पाउक लगेगा । उनमेंसे कोई बोल उठा कि यह रामकीर्तन तो विविध प्रकारके पातकोंको नष्ट करनेवाला है । अब इसको छोड़कर वहाँ जायेंगे ॥ ४८ ॥ कुछ लोगोंने कहा कि ॥ हमको कीर्तनमें आया सुनें तो प्रसन्न होंगे ॥ ४९ ॥ इस प्रकार असमञ्जसमें पड़कर वे लोग रामके पास नहीं आये । इधर लक्ष्मणके दूतोंने रामके पास आकर उसका हाल सुनाया ॥ ५० ॥ किञ्चित् क्रोधयुक्त रामने लक्ष्मणसे कहा कि यद्यपि मैं कीर्तन सुननेमें मन्त्र सेवकोंको दण्ड नहीं ॥ सकता ॥ ५१ ॥ किन्तु यह भी उचित नहीं है कि मैं उन सबको कुछ शिक्षा भी न दूँ । इतना कहकर रामने फिर वह नगरके बाहरवाला रोदन सुना ॥ ५२ ॥ तब उन्होंने विमानको आज्ञा दी कि नगरके बाहर कोई स्त्री रो रही है, तुम उसके पास चलो । 'बहुत अच्छा' कहकर विमान चल पड़ा और सरयूके तटपर आ पहुँचा, जहाँपर वह स्त्री विलाप कर रही थी । अञ्जनके समान ॥ काली-कलूटी स्त्रीको देखकर रामने पूछा—॥ ५३ ॥ ५४ ॥ तुम्हें क्या ॥ है ? तुम कोच हो और क्यों इस प्रकार रो रही हो ? रामकी बात सुनकर उस नारोंने कहा—॥ ५५ ॥

निर्मिता विधिना पूर्वं निद्रानाम्नी त्वहं प्रभो । दत्तं तेन मम स्थानं कुम्भकर्णे चिरं सुखम् ॥६७॥
 यावत्कालं स्थिता राम स त्वया निहतो रणे । ततो नष्टनिवासाऽहं गता शीघ्रं विधिं प्रति ॥६८॥
 तेन त्वां प्रेषिता राम ततः प्राप्ता त्विमां पुरीम् । सीमाचारभयादस्यां नगर्यां न गतिर्मम ॥६९॥
 अत्रैव सस्थिता राम शोचन्ती सरयुतटे । मे स्थानं वद रामाय यत्र स्थास्याम्यहं सुखम् ॥७०॥
 तत्तस्या वचनं श्रुत्वा गणधो वाक्यमब्रवीत् । स्मृत्वा तत्कृतं पूर्वं तदा क्रोधेन चोदितः ॥७१॥
 निद्रे मृणु वचो मेऽद्य ते स्थानं कीर्तयाम्यहम् । पापात्मानो नरा भूम्यां ये मृण्वन्ति हि कीर्तनम् ॥७२॥
 पुराणश्रवणं वेदपठनं पूजनं जपम् । तपो स्थानं च होमादि यद्यत् कुर्वन्ति पापिनः ॥७३॥
 तेषु त्वं तिष्ठ मद्राकपार्श्वानदेवनरेण्यपि । अडे बालेऽप्य गुर्विण्याग्रपवासोत्तरोऽश्विने ॥७४॥
 तथा विद्यार्थिनि श्रांते वांते आगरकायुके । एतेषु ते स्थलं दत्तमेतान्मोहय महारात् ॥७५॥
 तत्रामवचनं श्रुत्वा सा तुष्टा प्रणनाम तम् । ययौ रामः स्वनगरीं सुखं निद्रां चकार वै ॥७६॥
 तदारभ्य पुरोक्तेषु वासं निद्राऽकरोत्सुखम् । पापात्मनामतो निद्रा वाचते पुण्यकर्मसु ॥७७॥
 तदारभ्य सेवकेषु नरेष्वप्यवनीतले । निद्राग्रस्तेषु पुण्यात्मा सहस्रेभ्यः कश्चन ॥७८॥
 शुश्राव तत्कीर्तनादि चकार पूजनादिकम् ।

श्रीरामदास उवाच

अयान्त्यां संवदस्यामि कथां सीतायश्चकरीम् ॥७९॥

कुम्भकर्णस्य पुत्रस्य निकुम्भस्य च गुर्विणी । प्रभूत्यर्थं पितुर्गेहं गता दीपांतरं प्रिया ॥८०॥
 रावणादिवधे जाते तस्यां जातस्तु पौंड्रकः । मायापूर्यां शतधिराः शतद्वयकरः पुरा ॥८१॥

हे प्रभो ! यह बहुत समयकी बात है कि जब ब्रह्मर्षि मुझे बनाया था । मेरा नाम निद्रा है और ब्रह्मर्षि मुझपर दया करके कुम्भकर्णकी देहमें रहनेका स्थान दिया । तब मैं वहाँ आनन्दसे उसमें रहने लगी ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ लेकिन आपने उसे भी मार डाला । मेरे रहनेका एक आपड़ा था, उसे भी आपने उजाड़ दिया । ऐसी अवस्थामें रोटी-कल्पती हुई मैं ब्रह्मर्षि के पास गयी और उन्हें अपनी गाथा सुनायी । उन्होंने मुझे आपके भैया और मैं इस जगह आ पहुँची । सींगारकर्णके भयसे इस नगरीमें घुसनेका साहस नहीं हुआ । इसलिए इसा सरयूके किनारे नेड़ी-बेंड़ी बिलाम किया करती हूँ । हे राम ! आप कृपा करके मेरे रहनेके लिए कोई स्थान बतला दीजिए, जहाँ मैं रह सकूँ ॥ ६८-७० ॥ इस प्रकार उसकी बात सुनकर रामचन्द्रको पहले दूतकी बातें सोचकर कुछ गुस्सा आ गया और निद्रासे बोले—॥ ७१ ॥ हे निद्रा ! सुनो, मैं तुम्हें तुम्हारे रहनेके लिए स्थान बतलाता हूँ । जो पापी मनुष्य मेरा कीर्तन सुनने जायें और वे पुराणश्रवण, वेदपाठ, पूजन, जप, ध्यान आदि जो कुछ भी करते हों, उनमें तुम अपना उरा जमाओ । जो लोग हीन प्रकृतिके हों, वे चाहें देवता हों या मनुष्य, बालक, गर्मिणी स्त्री, पतौसर भोजन करनेवाले, विद्याधी और दके हुए मनुष्योंमें तुम रहो । जो लोग ज्यादा जागृत हों, उन लोगोंमें मैं तुम्हें रहनेके लिए स्थान देता हूँ । मेरे बरदानसे तुम इन्हींपर अपना मोहजाल फैलाओ ॥ ७२-७४ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर वह प्रसन्न हुई और उसने भगवान्-को बताया कि आप उधर रामचन्द्र भी अपनी नगरीमें लौट आये और रातभर खूब अच्छी तरह सोये ॥ ७५ ॥ तभीसे ऊपर कहे हुए लोगोंमें निद्रा निवास करने लगी । इसीलिए यदि पापी मनुष्य कोई पुण्यकर्म करने लगता है, उसे निद्रा सताती है ॥ ७७ ॥ शचीसे पृथ्वीमण्डलमें निद्रासे सेवकोंपर अपना मोहजाल फैलाया । सद्गुणों निद्रालु मनुष्योंमें कहीं एक मनुष्य भी मुश्किलसे ऐसा मिलेगा, जो श्रवण-कीर्तन आदि शुभ कर्म करनेवाला पुण्यात्मा हो ॥ ७८ ॥ श्रीरामदास कहने लगे—अब मैं सीताके यज्ञसे भरी एक दूसरी कथा सुना रहा हूँ ॥ ७९ ॥ कुम्भकर्णके बेटे निकुम्भकी गर्मिणी स्त्री बच्चा पैदा करनेके लिए किसी दूसरे द्वीपमें जानेवाले अपने पित्तके घर गयी थी ॥ ८० ॥ रामके साथ युद्ध करके रावण बँस समेत हो

श्रीगानदीतटे चासीद्रावणः क्षीरमाशरे । सहायार्थौडुकस्तस्योद्वेजयित्वा विभीषणम् ॥८१॥
 श्वाननेन ॥ सार्धं लंकाराज्यं यकार स । ततो विभीषणो भासं गत्वा सर्वं व्यवेदयत् ॥८२॥
 सीताविभीषणाम्भ्यां वै रामो लंकां ययौ द्रुतम् । निहत्य रावणं सीता युद्धे रामे जितेऽथ तम् ॥८३॥
 विभीषणाय तां लंकां हत्वा तं पौण्ड्रकं ददौ । अर्धकदा यमामंघ्रं राघवं स विभीषणः ॥८४॥
 ययौ विषणः सचिवैश्चतुर्भिः ससुतः स्त्रिया । नत्वा रामे साश्रुनेत्रधोच्छ्वसन् कपिताधरः ॥८५॥
 उवाच सकलं वृत्तं लंकायाः प्रस्खलद्गिरा । राम राजीवपत्राक्ष ब्राहि मां शरणागतम् ॥८६॥
 मूलध्वं कुम्भकर्णेन जातः पुत्रः पुग वने । दूतैस्त्यक्तो वृक्षमूले बालकस्तत्र वधितः ॥८८॥
 मधिकाभिः स्वरमनजलस्य विदुर्भिर्मुहुः । सीधुना तरुणः श्रुत्वा त्वत्कृतं वक्कुलश्रयम् ॥८९॥
 तपसा तोष्य ब्रह्माण नदरेणानिगदितः । पातालस्थै राक्षसैश्च लंकायां सपुत्रागतः ॥९०॥
 मया तेन तु पण्मासं कृतं युद्धं महत्तमम् । मां जित्वा स पुरीं यानस्तदाश्च सचिवैः स्त्रिया ॥९१॥
 सपुत्रो गुप्तमार्गेण भूमिजेन पलायितः । शर्नविवरमार्गेण लंकायां योजनोपरि ॥९२॥
 रात्रौ बहिविनिर्गन्ध विवारारुचां समागतः । मूलध्वं यः समुत्पन्नस्तुरुमूले विवर्द्धितः ॥९३॥
 मूलकासुरनाम्नाऽनः परां लवलिं गतोऽधुना । संगरे नेन मातृक्तमार्दा त्वां तु विभीषणम् ॥९४॥
 इत्वा लंकापुरीं प्राप्य ततो गच्छामि राघवम् । भविता निहतो येन निहत सकलं कुलम् ॥९५॥
 तं राम संसरे इत्वाऽऽनृष्यं गच्छाम्यहं पितुः । आगमिष्यति सोऽत्रापि त्वां योद्धुं रघुनन्दन ॥९६॥
 इदानीं यद्वितं धाम तत्कुरुष्व रघूत्तम । तत्तस्य सकलं वृत्तं श्रुत्वा रामोऽतिविस्मितः ॥९७॥
 लक्ष्मणं ब्रूह वेगेन पार्थिवान् जगतातले । स्वस्वराज्यस्थितान्मर्दान्दूर्तराकारधाधुना ॥९८॥

गया ता उस गर्भसे पौण्ड्रक नामका पुत्र जायमान हुआ ॥ ८१ ॥ श्रीगानदीके तटपर मायापुरी नामकी नगरी-
 में एक सौ सिरवाला रावण रहता था । उसके २०० भूजायें थीं । पौण्ड्रकने उस रावणकी सहायतासे विभीषण-
 को परास्त कर दिया और श्वाननेन रावणके भाव लंकाका राज्य स्वयं करने लगा । उस समय विभीषण
 रामके पास गये और उन्होंने अपना सब वृत्तान्त सुनाया ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ जिसकी उस दुःखभरी कहानीको
 सुनकर राम सीता और विभीषणके लंकाको चले दिये । वहाँ पहुँचकर उन्होंने उस सौ मुँहवाले रावण
 तथा पौण्ड्रकको मारा और फिर विभीषणको लंकाके सिंहासनपर बिठाकर ब्रह्मोष्म लौट आये । इसके बाद
 एक दिन राम अपनी सभामें बैठे थे । तब अपनी स्त्री, पुत्र तथा मंत्रियोंके साथ विषण्ण भावसे बैठे हुए विभी-
 षणने कहा—हे राम । हे राजीवपत्राक्ष । आगकी शरणमें हूँ, मेरी रक्षा कीजिए ॥ ८४-८७ ॥ बहुत दिनों-
 की है, जब मूल नक्षत्रमें कुम्भकर्णके एक पुत्र हुआ था । कुम्भकर्णने दूतों द्वारा उस लड़केको जलमें
 छोड़वा दिया । वहाँ मधुमन्त्रियोंने उसके मुँहमें मधुकी एक-एक बूंद टपकाकर उसकी रक्षा की । वह इस समय
 बड़ा हुआ है । अब उसने लोगोंके मुँहसे यह सुना कि रामने मेरे पिता तथा कुटुम्बियोंका नाश किया ॥
 ८८ ॥ ८९ ॥ तब उसे तपस्या द्वारा उसने ब्रह्माको संतुष्ट करके वर प्राप्त कर लिया । वरके प्रभावसे गर्वित
 होकर पातालनिवासी राक्षसोंको सहायतासे उसने लङ्कापर चढ़ाई कर दी । लंका महीने तक उसके साथ
 प्रभासान युद्ध किया । अन्तमें उसने हमें परास्त करके लङ्कापर अधिकार कर लिया । ऐसी अवस्थामें
 बाधी रातको अपने पुत्र, स्त्री एवं मंत्रियोंके साथ एक सुरङ्गके रास्तेसे भागा ॥ ९०-९२ ॥ एक योजन दूर
 भाग जानेपर ठहर गया, रात्रि व्यतीत हो गयी । आगे बढ़ा और आपके लङ्का जा पहुँचा । वह मूल
 नक्षत्रमें पैदा हुआ तथा वृक्षोंके नीचे उसका पावन-पीषण हुआ है । इसीलिए लोग उसे मूलकासुर कहते हैं ।
 युद्ध करते-करते एक उसने मुझसे कहा था कि हम रणभूमिमें पहले तुझको मारकर लङ्कापर अधिकार कर लेने-
 के मैं उस रामके पास जाऊँगा, जिसने मेरे पिता तथा मेरे कुलका संहार किया है ॥ ९३-९४ ॥ संग्रामभूमिमें
 रामको मारकर मैं अपने पितृश्रेष्ठसे उन्मत्त हो जाऊँगा । हे रघुनन्दन ! मैं जहाँतक जानता हूँ, शीघ्र ही वह माय-
 से भी युद्ध करनेके लिए आयेगा ॥ ९५ ॥ ऐसी अवस्थामें आप जो उचित समझें सो करें । विभीषणका हाल

तथेति रामवचनाद्वाताज्ञापयत्तदा । लक्ष्मणस्तेऽपि वेगेन गत्वा दूताः समागताः ॥१९॥
 प्रोचुः सभायां श्रीरामं नृपाणां वचनानि ते । केचिन्नृपाः पालयन्ति तवाज्ञां रघुनन्दन ॥१००॥
 केचिन्नृपाः पालयन्त्याज्ञां तव तत्कारणं शृणु । चंपिकायाः सुमन्याश्च स्वयंवरसमुद्भवम् ॥१०१॥
 दुःखं हृदयसंस्थं यत्तदद्यापि गतं न हि । युष्मत्पुत्रराघातमिदममस्वलाः पुनः ॥१०२॥
 स्मृत्वा मदनसुन्दर्या दुःखं कांश्चिद्भवं नृपाः । आज्ञां न पालयन्त्यथ तव राघव सत्प्रभो ॥१०३॥
 पालिता येस्ववाज्ञा ते सुग्रीवाद्या नृपोत्तमाः । स्वस्वकोटिबलैर्बुक्ताः समायाताः सहस्रशः ॥१०४॥
 तद्दूतवचनं श्रुत्वा रामो राजीवलोचनः । ब्रूह माणघातांस्ते स्पृहयन्ति नृपाधमाः ॥१०५॥
 आदौ हत्वा कौमर्कणि तान्माच्छामि ततस्त्वहम् । इन्धुक्त्वा मुदिने रामः सेनया बंधुभिर्जवात् ॥१०६॥
 मूलकासुरघातार्थमादौ पुष्पां बहिषेर्षी । किञ्चित्सैन्ययुतं पुष्पां युष्मकेषु न्यवेशयत् ॥१०७॥
 कुशाद्याः सप्त बालास्ते रामेण सह निर्ययुः । विमाने लक्ष्मां सेनां स्थापयामास राघवः ॥१०८॥
 तावत्ते पार्थिवाः सर्वे नानाबाहुनमस्त्रिताः । वेष्टिताः स्वस्वसैन्यैश्च नत्वा रामं पुरः स्थिताः ॥१०९॥
 तान्शमः स्थापयामास विमाने सैन्यसयुतान् । अष्टादशपद्ममितैः कपिभिः कपिराब् ययौ ॥११०॥
 आकरोह विमानाग्रं कपिभी राघवाङ्गवा । ततः सीतां विना रामः स्वयं स्थित्वा तु पुष्पके ॥१११॥
 पश्यन्मनाविधान् देशान्ययौ लङ्कां विहायसा । यात्राकाले यथा यानरचताऽसीतवा पुनः ॥११२॥
 ततो रामं समायातं श्रुत्वा स मूलकासुरः । ययौ लङ्कामहिर्योर्ध्वं राघवेण वलीयसा ॥११३॥
 दशकोटिभित्तां सेनां विभ्रन् स वरदर्पितः । ततस्ते राक्षसाः पद्भिर्निहन्युः प्लवगान् मुहुः ॥११४॥
 वानरा राक्षसाश्चापि निहन्युस्तान्द्रुपक्षमः । एवं बभूव तपुदं तुमुलं दिनसमकम् ॥११५॥

सुसकर राम बड़े विस्मित हुए ॥ १७ ॥ कुरन्त लक्ष्मणसे उन्होंने कहा कि संसारमें जितने राजे हैं, उनके पास दूत भेजकर शीघ्र बुलवा लो ॥ १८ ॥ लक्ष्मणने रामके आज्ञानुसार दूत भेजे । दूतोंने शीघ्र लौटकर रामसे कहा— हम लोग सब राजाओंके पास हो आये । उनमें कुछ राजे तो आपकी आज्ञाका पालन कर रहे हैं और कुछ नहीं ॥ १९ ॥ १०० ॥ इसका कारण यह है कि चंपिका और सुभतिके स्वयंवरके समय उनके हृदयमें जो क्षीण उपजा था, वह अब उष्यो का रयो बना है । फिर युष्मकेषुकी मारसे उनका हृदय अलग विदीर्ण हो चुका है ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ जब वे मदनसुन्दरीकी उस अनोखी गोभाकी याद करते हैं तो उनका कलेजा टुकड़े-टुकड़े हो जाता है । इन्हीं कारणोंसे वे आपको आज्ञाका पालन नहीं करना चाहते ॥ १०३ ॥ जिन सुग्रीव आदि नृपतिवन्ति आपको आज्ञाका पालन किया है, वे अपने दलबल समेत जयोध्या आ रहे हैं ॥ १०४ ॥ दूतकी बात सुनकर रामचन्द्रने कहा—वे नीच राजे अबतक हमारे साथ ईर्ष्याभाव रखते हैं ? अस्तु, पहले कुम्भकर्णके भेटे मूलकासुरको मारकर उन लोगोंपर भी थोड़ाई करूँगा । प्रकार विभ्रय करके रामने कुछ दिन और मुहूर्तमें अपनी विशाल सेना तथा लक्ष्मण-भरत आदि आताओंके साथ मूलकासुरको मारनेके लिए जयोध्यासे प्रस्थान कर दिया ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ पुरोंके बाहर आकर उन्होंने कुछ सेनाके साथ युष्मकेषुकी जयोध्याकी रक्षाके लिए छोड़ दिया और बाकी कुश आदि सात लड़कोंकी अपने साथ ले गये । रामने यात्राके समय सारी सेनाको पुष्पक विमानपर विभ्र लिया ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ रास्तेमें रामके अनुगामी राजे भी अपनी अपनी सेनाके साथ रामसे मिल गये ॥ १०९ ॥ उन लोगोंकी भी रामने विमानमें बिठा लिया । इस यात्रामें सुग्रीव मठारह पद्म बन्दरोंके आये थे ॥ ११० ॥ उनको भी रामने पुष्पकपर बिठाल लिया । इसके अनन्तर सीताकी छोड़कर राम विमानपर बैठे । जाकाशमार्गसे अनेक देशोंकी देखते हुए वे लङ्काकी ओर बढ़े और अल्प समयमें ही निदिष्ट स्थानपर पहुँच गये । उधर जब मूलकासुरने यह समाचार सुना तो रामचन्द्रके साथ युद्ध करनेके लिए दस करोड़ सेना लेकर लङ्काके बाहरवाले मैदानमें उठा ॥ १११-११३ ॥ उस समय ब्रह्माके वरदानसे वह बड़े घमण्डमें था । फिर क्या कहना था, राक्षसगण वानरोंकी लातोंसे मारने लगे । बाहरयूपने पहाड़के बड़े-बड़े टुकड़ों को धूँसि

तत्र ये मे मृता युद्धे वानरास्तान्स माकृतिः । द्रोणाचलं समानीय जीवयामास पूर्ववत् ॥११६॥
 ततः सा राक्षसी सेना चतुर्धाशिवशेषिता । तान्चष्टान् राक्षसेन्द्रः स दृष्ट्वा क्रोधयुतस्तदा ॥११७॥
 मन्त्रिणश्चोदयामास तथा सेनापतीन् बलैः । तानागतान् रणभुवं रामवीराः सहस्रशः ॥११८॥
 सुमन्त्रीभिर्हस्तयन्त्रैर्भिन्दिशालसुगुण्डिभिः । परिधैः पट्टिभैः शूलैः कुतैः खड्गैर्विमर्दयन् ॥११९॥
 तेष्वपि तालैस्तमालैश्च हितालैश्च दृषन्नगैः । शालैः झिलाभिः श्रीरामवीरान् सपदंयन् रणे ॥१२०॥
 पुनर्युद्धं महिमासीत्तुमुलं रोमहर्षणम् । ततस्तान् मन्त्रिणः सर्वास्तथा सेनापतीनपि ॥१२१॥
 रामवीराः क्षणेनैव चक्रुः संयमनागतान् । तान् सर्वाग्निहतान् श्रुत्वा क्रोधेन मूलकासुरः ॥१२२॥
 स्वयं दिव्यरथे स्थित्वा किञ्चिन्मूर्च्छन्प्रयतो ययौ । नमोऽगन् नृपा दृष्ट्वा ययुर्मोदं सहस्रशः ॥१२३॥
 बभूवुः श्वरजालैश्च चक्रुर्दुन्दुभिनिःश्वरान् । तान्सर्वान् राक्षसेन्द्रः स च हारं भुवि मूर्च्छितान् ॥१२४॥
 तान् मूर्च्छितान्पुनर्दृष्ट्वा योद्धुं तेन पुनर्ययुः । सुमन्त्राणां मन्त्रिणश्च राघवस्याज्ञया बलैः ॥१२५॥
 तान्सर्वान्मूर्च्छितान् बाणैश्चकार मूलकासुरः । मूर्च्छितान्मन्त्रिणो दृष्ट्वा कुशाद्या बालका ययुः ॥१२६॥
 ततो बभूव तुमुलं युद्धं तल्लोमहर्षणम् । ततः कुशः स्वबाणैर्घलैश्चकार मूलकासुरम् ॥१२७॥
 प्राक्षेपद्भुजमये स पपात पुनरस्थितः । ततोऽभिचारिकं होमं स्वशस्त्रार्थमुत्तमम् ॥१२८॥
 कर्तुं विवेष स गुहां बहुधा द्वाराव्यनेकशः । ततो विभीषणः प्राह होमधूमं निरीक्ष्य च ॥१२९॥
 राघवं कल्पवृक्षाधः संस्थितं मधुवेहितम् । होमं करोत्ययं दुष्टः प्रेषयस्व कपीन्पुनः ॥१३०॥
 होमे समाप्तोऽजेयः ■ भविष्यति महासुरः । एतस्मिन्नगरे ■ ययौ रामं सुर्ययुतः ॥१३१॥
 नत्वा तं राघवस्यापि पूजयामास सादरम् । तदाऽऽह राघवं ब्रह्मा वरस्त्वस्मै मयाऽपितः ॥१३२॥

प्रहार करना आरम्भ दिया । इस तरह पात दिन तक उन दोनों सेनाओंमें समासात युद्ध होता रहा ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ उस संप्रामेमें जो जो वानर मरते थे तो हनुमान्जी द्रोणाचल पर्वतवाली ओपधि लेकर उन्हें जोषित कर दिया करते थे ॥ ११६ ॥ आठवें रोज राक्षसोंकी एक चौकाई सेना रह गयी, जेय सब मार डाले गये । मूलकासुरने जब देखा कि अब योद्धेस राक्षस बचे रह गये हैं तो युद्ध होकर अपने मन्त्रियों, सेनापतियों और सेनाको भेजकर उसने बड़ा वीरताके साथ लड़नेकी ललकाय । उधर जब राघवसके वीरोंने देखा कि राक्षसोंकी और भी सेना आ गयी ■ और ■ अपना ताँपो, तलवारों, बन्दूकों आदिसे मेरी सेनाको मारकर डेर किये दे रहे ■ तब वे भी ताल, तमाल, हिताल आदि वृक्षों तथा पर्वतकी बड़ी-बड़ी चट्टानोंका लेकर फिर तुमुल युद्ध करने लगे और योही ही डेरमें मन्त्रोंके मन्त्री, सेनापति तथा सेनाको समपुर पहुँचा दिया ॥ ११७-१२१ ॥ अब मूलकासुरने सुना कि वह सेना भी साफ हो गयी तो मारे क्रोधके तमसमा उठा और स्वयं एक दिव्य रथपर सवार हो तथा घोड़ी-सी तेज साय लेकर लड़नेको चल पड़ा । रामके पारश्वर्षी राजाओंने जब उसे लड़नेको तैयार देखा तो वे हजारों राजे भी परिकर बाँध-बाँधकर मैदानमें आ गये ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ उन लोगोंने दुन्दुभीकी घनघोर गर्जनके साथ उस राक्षसपर बाणवर्षा प्रारम्भ कर दी, लेकिन मूलकासुरने अणधरमें उन लोगोंको मूर्च्छित कर दिया ॥ १२४ ॥ जब राजाओंका मूर्च्छित देखा तो रामचन्द्रको आज्ञासे सुमन्त्र आदि मन्त्री अपना-अपनी सेनाके साथ लड़नेके लिए जा उठे । मन्त्री भी वेहोण हो गये तो कुश आदि बालक जाकर लड़ने लगे ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ कुश आदिके पहुँचनेपर वहाँ भीषण युद्ध हुआ । कुछ देर बाद कुशने अपने बाणोंसे मूलकासुरको उठाकर फेंक दिया और वह लड़काकी बाजारमें जा गिरा । किन्तु तुरन्त उठ खड़ा हुआ और उत्तम शस्त्र तथा रथ प्राप्त करनेकी इच्छासे एक बान्दरामें धुस गया, द्वार बन्द कर लिया और वहाँ अभिचारिकी क्रियाके अनुसार हुवन आदि करने लगा ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ जब विभीषणने हुवनके धुँएकी देखा तो आइयोंकी मण्डलीमें कल्पवृक्षके नीचे बीडे हुए रामचन्द्रके पास जाकर इस प्रकार कहने लगे—हे राम ! वह दुष्ट बान्दरामें बड़ा हुवन कर रहा है । अतएव फिर वानरोंको भेजिए । यदि कहीं हुवन सम्पन्न हो गया ■ फिर वह किसीसे भी नहीं जीता जा सकेगा । इसी वीषमें बहुतसे देवताओंके साथ

यदा वीराम मे मृत्युर्भवत्विति पुरा मम । अनेन याचितं राम तपोन्तेऽङ्गीकृतं मया ॥१३३॥
 अतोऽस्य पुरुषान्मृत्युर्न भविष्यति राघव । स्त्रीहस्तान्मरणं चास्य विद्धि त्वं रघुनन्दन ॥१३४॥
 अन्यत् किञ्चित् प्रवक्ष्यामि कारणं मरणेऽस्य हि । एकदा शोकयुक्तेन पुराऽनेन द्विजाग्रतः ॥१३५॥
 सीताचंडीनिमित्तेन जानो मे हि कुलश्रयः । इति यन्निष्ठुरं वाक्यमुक्तं तन्मुनिभिः श्रुतम् ॥१३६॥
 तेष्वेकस्मिन् मुनिः क्रोधाद्ददौ शापं हि राक्षसम् । या चंडीति त्वयोक्ता माऽद्यैव त्वां मारयिष्यति ॥१३७॥
 तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा तं जघान स राक्षसः । तद्गीत्या मुनयः सर्वे तृष्णीभूताः स्थिता पुरा ॥१३८॥
 तस्मात्तन्मुनिवाक्येन ममापि वरदानतः । सीताहस्तान्मृतिश्चास्य भविष्यति न संशयः ॥१३९॥
 अतः सीतां समानीय तयैव जहि राक्षसम् । इत्युक्त्वा राममामंश्यं ययौ वेधा निजं पदम् ॥१४०॥
 रामोऽपि ब्रह्मवचनं श्रुत्वा प्राह विभीषणम् । मूलकासुरहोमाय न कार्यं विघ्नमस्य हि ॥१४१॥
 सीतायामत्र यातायां विघ्नं कार्यं प्लवंगमैः । हन्युक्त्वा गरुडं प्राह रामः पुष्पकमस्थितः ॥१४२॥
 अयोध्यां गच्छ शीघ्रं त्वं वायुपुत्रेण मदगिरा । तामप्राप्त्य च देही स्वपृष्ठे तां निवेक्ष्य च ॥१४३॥

समंततस्तां दृष्ट्व्यः पथि रथतु मारुतिः ।

तथेति रामवचनमुरगीकृत्य सादरम् । तावुभौ राघवं नत्वाऽयोध्यां शीघ्रं प्रजग्मतुः ॥१४४॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे

सप्तनारीवरप्रदामं मूलकासुराख्यां नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

(राम-सीताविरह)

श्रीरामदास उवाच

अथ भूमिसुताऽयोध्यापुर्यां सा हृदि गधवम् । स्मरन्त्यासीत्तद्विरहाद्व्याकुला नाप शं क्षणम् ॥ १ ॥

ब्रह्माजी वहाँ आ गये ॥ १२९-१३१ ॥ रामने उनको प्रणाम करके विधिबद्ध पूजन किया । थोड़ी देर बाद ब्रह्माने रामसे कहा-हे रघुनन्दन । बहुत दिनोंको बात है, मूलकासूर घोर तपस्या कर रहा था । अन्तमें माँगनेपर मैंने उसे यह वरदान दिया था कि तुम किसी बोरके मारनेसे नहीं मरोगे ॥१३२॥॥१३३॥ अतएव पुरुषके हाथसे इसकी मृत्यु न होगी । यह किसी स्त्रीके हाथों मारा जा सकेगा ॥ १३४ ॥ एक कारण यह भी कि एक बार शोकाकुल होकर मूलकासुरने एक ब्राह्मणमंडलीके समक्ष कहा था कि चंडी सीताके कारण ही मेरे कुलका नाश हुआ है । इस निष्ठुर बातको सुनकर एक ऋषिने उसको शाप दे दिया कि जिस सती-साध्वी सीताके लिए ऐसे अपमानजनक शब्दोंका प्रयोग कर रहा है, वही सीता तुझे भी बौध ही मारेगी ॥ १३५-१३७ ॥ मुनिका शाप सुनकर मूलकासुरने उसे तुरन्त मार डाला । फिर उसके डरसे जेय ऋषि चुनचाप बँडे रह गये । मेरे कहनेका मतलब यह कि उस ऋषिके शाप तथा मेरे वरदानसे सीताके हाथों ही इस अपमकी मृत्यु होगी । इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ १३८-१४० ॥ रामने ब्रह्माकी बातें सुनकर विभीषणसे कहा कि आज मूलकासुरके यज्ञमें विघ्न डालनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । जब सीता यहाँ आ जायें, तब वानरोंको उसके यज्ञमें विघ्न डालनेकी दी जायगी । फिर राम गरुडसे कहने लगे—तुम जाओ और सीताको अपनी पीठपर बिठाकर यहाँ से जाओ ॥ १४१-१४३ ॥ चलते रास्तेमें हनुमानजी दुष्टोंसे उनकी रक्षा करते रहेंगे । रामचन्द्रको आज्ञाको सादर स्वीकार करके वे दोनों वहाँसे अयोध्याके लिए चल पड़े ॥ १४४ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पंचमः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीरामदासने कहा—उधर रामचन्द्रजीके चले जानेपर सीता अयोध्यामें श्रीरामका स्मरण करती हुई उनके विषयसे व्याकुल रहा करती थीं । क्षण भरके लिए भी उनके हृदयको चन नहीं मिलती थीं ॥ १ ॥

प्रासादे सा कदा तस्मै कदा प्रासादमूर्धनि । कदा द्वाधामण्डपाधः कदा संन्यस्तभूषणा ॥ २ ॥
 कारलीणां नृत्यं ददर्श जनकात्मजा । कदा जयार्थं रामस्य कार्तवीर्यमपूजयत् ॥ ३ ॥
 कदाऽऽकरोच्च तुलसीशिवाश्वत्थान् प्रदक्षिणाः । मन्युसूक्तानि विप्रैश्च पाठयामास जानकी ॥ ४ ॥
 गोमयेनाजनेयं सा कृष्णं कृत्वाऽर्घ्यं जानकी । अकरोत्प्रत्यहं पुच्छवृद्धिं स्वांगुलिमात्रतः ॥ ५ ॥
 शतश्रीयसूक्तस्य जयार्थं राघवस्य सा । दुर्गायाः पूजनं नित्यं चकार नियतव्रता ॥ ६ ॥
 गणेशं मारुतिं शम्भुं स्थण्डिले स्थाप्य प्रेमनः । चकार वदूष्वा द्वाराणि गशर्धैः सेवयञ्जलम् ॥ ७ ॥
 कार्तवीर्यस्य यंत्राणि स्थापयामास जानकी । मंचके राघवेन्द्रस्य पूजयामास सवदा ॥ ८ ॥
 कदा सखीमण्यगा सा त्यक्तालंकारमण्डना । जलयंत्रांतिके निद्रां नाप तद्विरहाग्निना ॥ ९ ॥
 कदा निरीक्ष्य प्रासादे काकमाह विदेहजा । यदि शीघ्रं राघवस्य दर्शनं मे भविष्यति ॥ १० ॥
 तर्हि त्वं गच्छ वेगेन नो वेदत्र स्थिरो भव । नत्सीनाश्चनं श्रुत्वा काकस्तूह्येय वेगतः ॥ ११ ॥
 तेन किञ्चित्समाशस्ता पवनं प्राह जानकी । स्पृष्ट्वा त्वं राघवांगानि मां स्पृशं कर्तुमर्हसि ॥ १२ ॥
 कदा चंद्रं निशि प्राह त्वं स्पृष्ट्वा शीतलैः करैः । श्रीरामं मां स्पृशस्वाद्य स्वकरैः सुखकारकैः ॥ १३ ॥
 शुक्लपक्षे द्वितीयायां सीताऽलंकारमण्डिता । स्नात्वा प्रासादशिखरान्मूर्त्तीभिः परिवेष्टिता ॥ १४ ॥
 अपश्यच्छास्त्रिनं हर्षादेनं रामोऽद्य पश्यति । अन्तरेणाद्य रामस्य संयोगो मां भवेदिति ॥ १५ ॥
 रामे गते कदा सीता हरिद्राकजलादिकैः । नान्मानं भूषयामास ह्यत्रिपत्न्यपितं विना ॥ १६ ॥
 चंदनं पुष्पमालाश्च पुष्पशय्यां विदेहजा । नांश्रीचकार श्रीरामविरहानलपीडिता ॥ १७ ॥
 शकुनान् सा ददर्शाद्य श्रीगमदर्शनेच्छया । तुष्टाऽभूच्छकुनैः श्रुत्वा शीघ्रं रामसमागमः ॥ १८ ॥

वे कभी अटारीपर, कभी छतपर और कभी अंगूरोंकी साड़ीमें अपने वस्त्राभूषण उतारकर बैठी रहती थीं ॥ २ ॥ कभी देव्याओंके नृत्य देखकर जी बहलाना चाहतीं और कभी रामचन्द्रको विजयकामनासे कार्तवीर्य भागवान्का पूजन करती थीं ॥ ३ ॥ तुलसी-गोपल आदिके वृक्षोंकी प्रदक्षिणा करती थीं । ब्राह्मणों द्वारा मन्यु-सूक्तका पाठ करवाती थीं । कभी पृथ्वीपर गोबरसे हनुमान्जीको प्रतिमा बनकर पूजन करतीं और हर रोज एक अंगुल उनकी पूँछ बहाया करती थीं ॥ ४ ॥ ५ ॥ रामचन्द्रकी अयके लिए ब्राह्मणों द्वारा सौ-सौ स्त्रीका पाठ करवातीं और दुर्गाजीकी पूजा करती थीं ॥ ६ ॥ गणेश, मारुति तथा शिव, इनको अलमें बिठाकर दरवाजे बन्द कर लेतीं । फिर छिड़कीसे उनपर जलधारा डाला करती थीं ॥ ७ ॥ रामचन्द्रजीके मंचपर कार्तवीर्यके यंत्र स्थापित करके सदा-सर्वदा उनका पूजन करती थीं ॥ ८ ॥ कभी सहेलियोंमें बैठी बैठी अपने अलंकारोंकी फेंक देतीं और सखियाँ उन्हें फोवारेके पास ले आकर सुलानेकी चेष्टा करतीं, फिर भी निद्रा नहीं आती थी ॥ ९ ॥ कभी अटारीपर बैठे हुए कोएकी देखकर सीता कहने लगतीं—“यदि मुझे शीघ्र रामचन्द्रके दर्शन होनेवाले हों तो ऐ कोए ! तू यहंसि उड़ जा, नहीं तो बैठ” सीताकी बात सुनकर कोआ उड़ जाता । उससे सीताके हृदयको बहुत कुछ राहत बँच जाता करता था ॥ १० ॥ ११ ॥ इसके बाद सीता पवनसे कहतीं—“हे पवन ! तुम पहले रामचन्द्रजीका स्पर्श करके मुझे स्वप्न करो तो बड़ा उपकार हो” ॥ १२ ॥ रात्रिके समय कभी-कभी चन्द्रमासे विलय करतीं—हे चन्द्रदेव ! तुम अपनी ठंडी किरणोंसे रामचन्द्रके शरीरका स्पर्श करके उन सुखदायिनी किरणोंको मेरेपर डालो ॥ १३ ॥ शुक्लपक्षकी द्वितीयाकी सीता विविध प्रकारके और आभूषणोंकी पहनकर सखियोंके प्रासादके ऊपर जातीं और इस भावनासे चन्द्रदेवका दर्शन करतीं कि राम आज जहाँ कहीं भी होंगे, दर्शन अवश्य करेंगे । ईश्वर चाहेंगे सीधे हमारा और उनका मिलन होगा ॥ १४ ॥ १५ ॥ जबसे रामचन्द्रजी गये थे, तबसे उन्होंने अपने शरीरमें त हल्दी लगायी, न आँखोंमें दिया और न किसी प्रकारके वस्त्राभूषण पहने ॥ १६ ॥ श्रीरामचन्द्रके विरहानलसे पीड़ित सोलाने चन्दन, पुष्प, फूलकी मालाएँ, फूलकी गय्या आदि कुछ भी नहीं बर्झीकार किया ॥ १७ ॥ रामके दर्शनोंकी इच्छासे वे सदा शकुन करती थीं । यदि

मवेदिति सखीयुक्ता ददौ सर्वान्नुशङ्कराः । कदा परमृहं सीता न पर्यौ राघवं विना ॥१९॥
 नैका तस्थौ कापि सीता स्वाम्यगोद्वर्तनं जहौ । न मिष्टान्नं न ताम्बूलं न गीतं केशवंधनम् ॥२०॥
 अंगीचकार श्रीरामत्रिरहानन्ददीपिता । सभाषणं स नान्येन गुरुपेणाकरोत्कदा ॥२१॥
 नाकरोत्सम्मितं वक्ष्यं नोर्ध्वस्यऽङ्गरं ददर्श सा । अन्याश्रिमोचरः प्राधूनं संतुष्टाऽभवत्कदा ॥२२॥
 पर्यङ्के शयनं सीता नाकरोद्वाघवं दिना । सुकुरे न ददर्शेत्थं सुखं विगृह्णाद्भृशम् ॥२३॥
 न दधौ वसनं चित्रं न चित्रां कंचुकीं दधौ । न तस्थौ द्वाग्देशं मा देहल्यङ्गणभूमिषु ॥२४॥
 न ययौ सरव् स्नातुं पर्यौ नोपनवं वनम् । आशमं न ययौ सीता न तथा पुष्पवाटिकाम् ॥२५॥
 न चकार स्वतो दूरं मांगल्यानि विदेहजा । वस्तूनि द्विजपन्नास्तैस्नोपयामास जानकी ॥२६॥
 नियमानकरोन्नानां देवीनां च पृथक् पृथक् । निर्मथं व्रतस्तर्था स्नयं नित्यं विदेहजा ॥२७॥
 घटकानां महामालामर्पयामि हनूमते । सोदकान् भणगजस्य दास्यामि पूर्यान्विवान् ॥२८॥
 मिष्टान्नेनापि नैवेद्यं ते दास्यामि गणाधिप । दुग्धं त्वां बलिदानं च करिष्यामि प्रसीद मे ॥२९॥
 चण्डिके त्वां प्रदास्यामि रक्तं जिह्वोज्ज्वलं त्वहम् । सुष्ठुक्लान्तं मापमयुक्तं बलिदीपसमन्वितम् ॥३०॥
 शीघ्रं रामो ज्ञयं प्राप्स्य शिशुभिर्यातु र्वं पुरीम् । मंदवारं करिष्यामि पंच चोपोषणान्वहम् ॥३१॥
 नोपभोक्ष्यामि यधुरं नोपभोक्ष्याम्यहं घृतम् । मासमेकं करिष्यामि व्रतान्येवं सविस्तरात् ॥३२॥
 कृष्णपक्षे तृतीयायां चतुर्थ्यां च महेश्वरि । किञ्चिन्किञ्चिन्मासि मासि तिलवृद्धिं विधाय च ॥३३॥
 गुडेनाहं तिलान्भोक्ष्ये यावच्छ्रीरामदर्शनम् । भविष्यति कुशाग्रैश्च लक्ष्मणाग्रैश्च बंधुभिः ॥३४॥
 सत्वरं नवरात्रं च सखीभिश्च करोम्यहम् । एकस्मिन्नेव दिवसे नवभिः प्रसूदर्शने ॥३५॥

शकुन अच्छा उठ जाता तो बड़ा हर्ष होता था । वे समझतीं कि शीघ्र ही रामचन्द्रजीका दर्शन होगा । इसी खुशीमें सखियोंको वे मिठाईयां बाँटती थीं । जबसे राघव परदेश गये, तबसे वे किसीके घर नहीं गयीं ॥ १९ ॥ २० ॥ तभीसे सीता कभी अकेली नहीं बैठती, परोरमें उबटन नहीं लगाती, मिठाई नहीं खाती, ताम्बूल नहीं चवाती और अपने केशोंको भी नहीं सँवारती थीं । जबसे राम गये, तबसे उन्होंने किसी पुरुषके साथ संभाषण नहीं किया ॥ २० ॥ २१ ॥ कभी किसीसे मुखुराकर नहीं बोलीं, ऊपर मुँह उठाकर किसीको ओर नहीं निहारा, कभी किसी पुरुषने उन्हें नहीं देख पाया और कभी भी उनकी आत्माको वन नहीं मिली ॥ २२ ॥ रामके विरामे पीड़ित सीताने कभी शय्यापर शयन नहीं किया और विरहसे पीले पड़े हुए अपने मुखमण्डलको शौंशेन नहीं देखा । न उन्होंने कभी रङ्ग-बिरङ्गे कपड़े पहने और न रङ्ग-बिरङ्गी चोली ही धारण की । तबसे वे कभी दरवाजेके चौखटपर नहीं खड़ी हुई ॥ २३ ॥ २४ ॥ सरयू-स्नान करनेको नहीं गयीं और किसी वन या उपवनमें सँवर करने नहीं गयीं । किसी बगीचे तथा पुष्पवाटिकामें भी नहीं गयीं ॥ २५ ॥ तबसे उन्होंने को॥ मांगलिक कार्य नहीं किया । अनेक प्रकारकी श्रुतों दे-देकर उन्होंने ब्राह्मणियोंको प्रसन्न किया और कितने ही तरहके व्रत करके अनेक देवियोंकी पूजा की । इस तरह बहुतसे व्रतोंको करके वे अपने उन नीरह दिनोंको बिताती रहीं ॥ २६ ॥ २७ ॥ सदा इन तरह मनीषी मानती थीं—हे देवियों और देवताओं ! यदि रामचन्द्रजी विजयी होकर अपने भाइयों और पुत्रों समेत शीघ्र अयोध्या वापस आयें तो हे हनुमान्जी ! मैं बड़ा भारी माला बनवाकर आपको पहनाऊँगी । हे गणेशजी ! आपको मुरी और मण्डूका भाग लगाऊँगी । अनेक प्रकारके पकवान बनवाकर आपको समर्पण करूँगी । हे पुत्रों ! मेरे ऊपर प्रसन्न होओ । यदि राम लौट आएँ तो आपके लिए बलिदान करूँगी । हे चण्डिके ! आपको विविध प्रकारके श्राद्ध अन्न तथा बलिदीपके साथ अपनी जीभका रक्त चढ़ाऊँगी । मैं चण्डालवारका व्रत करूँगी । एक महीने तक मिठाई और घां न खाऊँगी ॥ २८-३२ ॥ हे महेश्वरी ! कृष्णपक्षकी तृतीया तथा चतुर्थीको षोडश-योडे गुड़के साथ तिल खाऊँगी । यह सब तक चल्ता रहेगा, जब तक मुझे लक्ष्मणादि भ्राताओंके साथ श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन नहीं मिलेंगे ॥ ३३ ॥ हे चण्डिके ! यदि मुझे

रविवारे करिष्यामि रवेऽहं पूजनं तव । इत्थं दिने दिने सीता नियमानकरोत्तदा ॥३६॥
 ब्राह्मणैर्हर्षदानं च कारयामास जानकी । न सा सुप्वाप रात्रौ तु दिवा ॥ वरचर्जिनी ॥३७॥
 एवं दिने दिने सीता श्रीरामविरहातुरा । न शमाप क्वापि वेशे श्रीरामार्पितमानसा ॥३८॥
 एवं सा उर्मिलायाश्च चंपिकाद्यापि वै स्त्रियः । स्वस्वस्वामिवियोगाग्निज्वलिता व्याकुलाः क्षणम् ३९॥
 न सुखं क्वापि वै प्रापुः स्वकांतापितमानसाः । सर्वास्मा लुलुडुर्नार्यो मणिभूमौ मृगीदृशः ॥४०॥
 काचिभर्तयति क्रीडामयूरं न मुदा तदा । शुक्रं न पाठयन्त्यन्या पञ्जरस्थं कुतूहलात् ॥४१॥
 लालयेन्नकुलं नान्या नालापयति सारिकाम् । अपराऽतीव संतप्ता नैव खेलति सारसैः ॥४२॥
 मेजिरे न विलासं ॥ रेमिरे नैव मंदिरे । सखीभिरुचिरे नासं वीणावाद्यं न शुभ्रुः ॥४३॥
 कल्पद्रुमप्रसूतं यद्रवत्तत्सुधोपमम् । मंदारकुसुमामोदं न पुष्पमधुरं मधु ॥४४॥
 योगिन्य इव ॥ मूर्धा नासाग्रन्यस्तलोचनाः । अलक्ष्यध्यानसंधानाः स्वनाथापितमानसाः ॥४५॥
 चंद्रकांतमणिच्छन्ने स्रवदारिद्र्यद्रवैः । क्षणं वातायने स्थित्वा जलयन्नेक्षणं कश्चित् ॥४६॥
 रक्षयंति क्षणं क्षया दीर्घिका भोजिनीदलैः । वीज्यमानाः सखीभिस्ताः शीतलैः कदलीदलैः ॥४७॥
 इत्थं पुनसमा रात्रिं दिनं ता मेनिरे सदा । कथञ्चिद्भारणां कृत्वा विह्वलाः सज्वराः स्थिताः ॥४८॥
 एतस्मिन्नंतरे सीता नियमैश्च व्रतादिभिः । समानीतावाञ्छनेऽगुरुडावीयतुः पुरीम् ॥४९॥
 प्राश्नुरन्व भुजो वामः सीताया नयनं तथा । सुचिह्नं मन्यमाना सा किंचित्तुष्टाऽमवसदा ॥५०॥
 अथ तौ कंपनोद्भूतगरुडौ सदसि स्थितम् । अयोध्यायां यूपकेतुं वृत्तं कथयतो जवात् ॥५१॥
 तच्छ्रुत्वा यूपकेतुः स इत्थं सीता न्यवेदयत् । सा ॥ तुष्टमनाः सीता तस्मिन्नेव दिने शुभे ॥५२॥

बीध मेरे प्रभुका दर्शन मिल जाय तो ॥ अपनी सहेलियोंके ॥ मंदारवृक्षका ॥ कल्लेगो ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ हे सूर्य भगवान् ! प्रत्येक रविवारको मैं आपका विधिवत् पूजन करूँगी । ॥ प्रकार रामके वियोगवाले दिनोंमें सीता प्रतिदिन अनेक प्रकारकी मनोली ॥ करती ॥ ॥ ३६ ॥ वे ब्राह्मणोंसे अर्घ्यदान कराती रहती थीं । रात-दिन कभी नहीं सोती थीं । ॥ तरह रामके वियोगसे दुःखिनी सीता कहीं भी सुख नहीं पाती थीं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ इसी तरह उर्मिला और चम्पिकादिक स्त्रियाँ भी अपने-अपने स्वामियोंके वियोगरूपी अग्निसे दग्ध होकर व्याकुल रहती थीं । वे ॥ स्त्रियाँ अपने महलोंकी मणिमयी भूमियोंपर लोट-लोटकर दिन काटती थीं । उन्हें संसारके किसी भी प्रदेशमें आनन्द नहीं मिलता था ॥ ३९ ॥ ४० ॥ उनमेंसे न कोई क्रीडामयूर नचाती, न पिंजरेमें बँडे हुए तोतेको पढ़ाती, न पाले हुए नेबलेको प्यार करती, न मीना पढ़ाती और न कोई स्त्री सारसोंके साथ खेलवाड़ ही करती थी ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ उन्होंने किसी सुखका उपभोग नहीं किया । महलोंमें उन्होंने ॥ नहीं लिया । वे न अपनी सहेलियोंके साथ हँसी-दिल्लगी करती थीं, न वीणा बजातीं और न सुनती थीं ॥ ४३ ॥ कल्पवृक्षके पुष्पसे उत्पन्न कुसुमकी अमृतसरोस्त्री सुगन्धिका भी उपयोग नहीं करती थीं ॥ ४४ ॥ वे नारियाँ योगियोंसे समान अपनी दृष्टि नासाग्रभागमें रोककर रात-दिन अपने-अपने पतियोंका ध्यान किया करती थीं । उन्होंने अपना-अपना मन अपने-अपने पतियोंको अर्पण कर दिया था ॥ ४५ ॥ ॥ झरोखेमें रगे हुए चन्द्रकान्त मणिके समीप, जिसमें सदा रातके समय जलकी धारा बहा करती थी, वहाँ बैठकर कुछ देर उसीको निहारा करती थीं ॥ ४६ ॥ कभी कमलके पत्तोंकी मय्यापर सोतीं और सस्त्रियोंसे केलेके पत्तोंका पंखा झलवाती ॥ ४७ ॥ इस प्रकार एक-एक रात्रिको पुनः ॥ मानकर बड़े सन्तापसे विह्वल होकर समय बिताती थीं । जब सीता इतनी कठिन यंत्रणा भोग रही थी, उसी समय गरुड़ और हनुमान्जी वहाँ आ पहुँचे । सहसा सीताकी बायीं आँख तथा भुजा फड़कने लगीं । इसे शुभ शङ्कन मानकर वे अपने मनमें कुछ प्रसन्न हुईं ॥ ४८-५० ॥ थोड़ी देर बाद गरुड़ और हनुमान्जी राजसभामें बैठे हुए यूपकेतुके पास पहुँचे और उन्होंने रामका सन्देश सुनाया ॥ ५१ ॥ उसे सुनकर यूपकेतुने सीताको बतलाया और रामके आज्ञानुसार सीता उसी दिन कुछ ब्राह्मणों, पुरोहितों

रामवाक्यादाकरोह गुरुं वेगवत्तरम् । अग्निहोत्रं पुरस्कृत्य ऋत्विग्भिश्च पुणोपसा ॥५३॥
 पतिं विनाऽग्निना नाग्री सीमासुल्लङ्घ्य न व्रजेत् । म दंषोऽत्र न विज्ञेयः सीतोद्योगो विहायसा ॥५४॥
 मये प्राप्ते प्रवासोऽपि स्त्रीणामुक्तोऽग्निभिः सह । पतिना रहितानां च न दोषः कथ्यतेऽत्र हि ॥५५॥
 भूमिर्गैर्जाह्नवाद्यैश्च न देवचरितं चरेत् । ततः स रक्षयाभास मारुतिस्तां समंततः ॥५६॥
 पश्यंती विविधान् देशान् सीता लंकां ययौ मुदा । ददर्श कल्पवृक्षाधः पुष्पकस्थं रघूत्तमम् ॥५७॥
 ननाम शिरसा भक्त्या साऽत्ररुक् स्वगाधिपान् । तां दृष्ट्वा राघवः प्राह सीते तेऽयं मुखं कथम् ॥५८॥
 विवर्णमंगयद्विस्ते कृशाऽयं परिलक्ष्यते । तद्रामवचनं श्रुत्वा जानकी सस्मितानना ॥५९॥
 विलज्जंती विनोदेन राघवं प्राह सादरम् । स्वामिस्त्वद्विरहादेतत्सर्वं त्वं विद्धि राघव ॥६०॥
 न निद्रामि ■ जागमि नाश्नामि न पिबाम्यहम् । प्यायाम्यहं केवलं त्वां योगिनीव त्रियोगिनी ॥६१॥
 निद्रादरिद्रनयना स्वप्नेऽपि न तवाननम् । आनंदि सर्वथा यन्मे मंदभाग्या विलोक्ये ॥६२॥
 त्वदाननप्रतिनिधिविंधुर्विधुरया मया । उदितोऽपि न चालोकि तापं वै स्वक्तुकामया ॥६३॥
 त्वदालापसमालापं कलयन् किल फाकलीम् । कोकिलोऽपि मयाऽऽकर्णं नालकाकीर्णकर्णया ॥६४॥
 नन्दंरत्नंमन्त्रापुरो ध्यायन्विजयन् मया । जानन्दोऽपि मयाऽऽर्णं कवचिन्नित्यभिनयन् भ्रष्टम् ॥६५॥
 नाना यमाश्च नियमा जयाश्चैव राघव । कुर्वत्या मम नैवाभूत्सुखं त्वद्विरहाग्निना ॥६६॥
 ततो विहस्य श्रीरामस्यामलिभ्य पुनः पुनः । कराम्यां तस्तनौ स्पृष्ट्वा पपी विनाधरामृतम् ॥६७॥
 अथापरदिने रामः स्नात्वा स्नातां विदेहजाम् । अस्त्रविद्यां सखावधामस्त्राह्वानविसर्जने ॥६८॥

तथा अग्निको साथ लेकर गरुड़पर जा बैठें ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ यह एक नियम है कि स्त्री बिना अग्निके अपने गाँवकी सीमाको लाँघकर कहीं नहीं जाती । अग्निको साथ ले लेनेसे वह दोष नहीं रहता ॥ ५४ ॥ दूसरे एक जगह शास्त्र यह भी जाना देता है कि यदि किसी प्रकारके खतरेका अवसर आ जाय तो अग्निको साथ लेकर वह प्रवास भी कर सकती है । यदि उस समय वह पतिसे वियुक्त हो तो उसको ऐसा करमेपर कोई दोष नहीं लगता ॥ ५५ ॥ मरत्यलोकनिवासियों तथा ग्राह्मणोंको चाहिए कि वे देवताओंका अनुकरण न करें । अस्तु, सीता गरुड़पर सवार हुई । इनमानुषी सीताकी रक्षा करने लगे और सीता रास्तेके अनेक देशोंको देखती हुई लङ्काकी तरफ चली । ■ प्रकार बहुत शीघ्र लङ्कामें पहुँचकर उन्होंने देखा कि रामचन्द्रजी वहाँ कल्पवृक्षके नीचे बैठे हुए हैं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ वहाँ पहुँचों तो उतरकर उन्होंने रामचन्द्रको प्रणाम किया । रामने कहा—साते । मैं देखता हूँ कि तुम्हारा मुँह कुम्हलाया हुआ है और शरीर दुर्बल हो गया है । रामकी बात सुनकर मुस्कराती हुई सीता लज्जाके साथ कहने लगी—हे स्वामिन् । यह सब आपके विरहका प्रभाव है ॥ ५८—६० ॥ मुझे न नोद आती है, न जाग ही पाता हूँ और न खाती-पीती हूँ । आपसे वियुक्त होकर योगिनीके समान सदा आपका ध्यान किया करती हूँ ॥ ६१ ॥ निद्राकी दरिद्र मेरी आँखें स्वप्नमें आपके ही मुखको देता करती हैं । उसीमें इनको आनन्द मिलता है ॥ ६२ ॥ आपके मुखका प्रतिनिधिस्वरूप चन्द्रमा भी उदित होता है तो मुझे अच्छा नहीं लगता । सन्तापको दूर करनेकी कामनासे भी उसकी ओर निहारनेकी मन नहीं करता ॥ ६३ ॥ यद्यपि तुम्हारी ही बोलोंकी तरह कोकिलकी बोल होती है, किन्तु वह भी सुननेकी इच्छा नहीं होती । उसकी बोल कानोंको शूलके समान लगती है ॥ ६४ ॥ यद्यपि तुम्हारे अङ्गोंके स्पर्शके समान ही भगुर घूँसे सुगंधसे धिली वायु भी है, किन्तु उसका भी मैंने कभी आलिंगन नहीं किया ॥ ६५ ॥ आपकी विजयके लिए मैं विविध प्रकारके प्रती और उपवासोंको करता रहा । आपकी विरहाग्निसे तंतस्त होनेके कारण कभी मुझे सुख नहीं मिला ॥ ६६ ॥ इसके अनन्तर हँसकर रामने बार-बार सीताको अपनी छातीसे लगाया, स्तनस्पर्श किया और होठोंको चुमा ॥ ६७ ॥ इसके बाद दूसरे दिन रामने स्नान किया, सीताको भी स्नान करवाया और सब अस्त्रविद्या, शस्त्रविद्या एवं उनके आवाहन ■ विसर्जनकी रीति सिखलायी । कहनेका तात्पर्य यह कि उन्होंने बोड़े ही समयमें सीताको समस्त धनुर्वेदकी शिक्षा दे दी । रामकी आज्ञासे लक्ष्मणने रथ तैयार

श्लिषयामास सकलां धनुर्विद्यां सविस्तराम् । रामाक्षया लक्ष्मणोऽपि रथं सिद्धं चकार सः ॥६९॥
 दारुकः सारथिर्यस्मिन् शस्त्राण्यस्त्राण्यनेकशः । गदापशं तु यत्रास्ति यत्रास्ति गरुडो ध्वजे ॥७०॥
 यस्मिन् शैव्यश्च सुग्रीवस्तथा चैव बलाहकः । मेघपुष्पश्च चत्वारो वायुगास्तुरगोत्तमाः ॥७१॥
 यत्र छत्रं वरं दिव्यं हेमदंडं विराजते । यस्मिन् शुक्ले चामरे द्वे यस्मिन्कीलादिरुक्मजम् ७२ ।
 तं रथं राघवो दृष्ट्वा जानकीं वाक्यममवीन् । सीते स्थित्वा स्यंदनेऽस्मिन् जहत् त्वं मूलकासुरम् ७३ ।
 तथेति रामवाक्याच्छायां सीता प्रचोदयत् । तामसी साऽपि तं नत्वा परिक्रम्य पुनः पुनः ॥७४॥
 आरुरोह रथं वेगाद्युघोरा घर्घरनिःस्वना । एतस्मिन्नन्तरे रामप्रेरिता ज्ञानरोचमाः ॥७५॥
 लंकां गत्वा पूर्ववच्च हवनाच्च प्रचालयन् । ततस्ते वानराः सर्वे ययुः श्रीराघवं पुनः ॥७६॥
 ययौ स्थित्वा रथे योद्धुं कोचेन मूलकासुरः । मार्गे भुवि पपातास्य मुकुटः स्खलितो भुवि ॥७७॥
 अमिवर्त्यासुरो गर्वाघयो रणभुवं जवात् । सीताछायाऽपि सैन्येन ययौ मालक्ष्मणादिभिः ॥७८॥
 इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे राज्यकांडे पूर्वार्धे सीताविरहो पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः

(रामके द्वारा राज्यका विभाजन)

श्रीरामदास

अथ छाया टणत्कुत्य शार्ङ्गं तच्छ महद्भनुः । ययौ रणभुवं वेगात्तां ददर्शासुरोऽपि सः ॥ १ ॥
 करालदंष्ट्रानयनां विद्युत्पिगशिरोरुहाम् । तालजंघां भूर्धपादां दस्त्रिक्त्रां घनप्रभाम् ॥ २ ॥
 लोमशां प्रललज्जिह्वां विदीर्णास्यां महच्छिराम् । तां दृष्ट्वा कौभकर्णिः स भीतः प्राह स्खलद्विरा ॥ ३ ॥
 का त्वं समागताऽस्पृश किमर्थं योद्धुमिच्छसि । मम सर्वं वदस्व त्वं मदग्रे मा स्थिरा भव ॥ ४ ॥

किया ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ रथका दारुक सारथी था, विविध प्रकारके अस्त्र-शस्त्र एवं गदा-पश उसमें रखे थे और रथके ऊपर गरुड़से अंकित फहरा रही थी ॥ उसमें शैव्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नामवाले चार घोड़े जुते हुए थे ॥ ७१ ॥ उसपर बढ़िया लमा और सुवर्णके टण्ड लगे दो सफेद चमर रखे थे । उस रथमें जगह-जगह सुवर्णकी कोलें लगी हुई थीं ॥ ७२ ॥ इस प्रकार उस सुसज्जित रथको देखकर रामने सीतासे कहा—संत ! तुम रथपर बैठकर मूलकासुरको मारो ॥ ७३ ॥ सीताने रामकी बात अङ्गीकार की और अपनी तामसा छायाका प्रेरित किया । उस तामसी छायाकृषिणी साताने बार-बार रामकी प्रदक्षिणा की और घर्घर शब्द करते हुए रथपर जा बैठी । उसी समय रामके द्वारा प्रेरित वानर लङ्कामें पहुँचे और उन्होंने मूलकासुरको हयनकर्मसे विचलित कर दिया । फिर लौटकर वानर रामके पास पहुँचे और सब समाचार सुनाया । ऊपर मूलकासुर कुपित होकर रथपर जा बैठा और संग्रामके लिए चल पड़ा । जात-जाते रास्तेमें एक जगह उसका मुकुट माथेसे खिसककर जमीनपर गिरा और वह स्वयं भी किसलकर गिर पड़ा ॥ ७४-७७ ॥ फिर भी वह लौटा नहीं, उसी गवँके साथ रणभूमिमें पहुँचा । इधर सीता भी रथपर बैठी और अपने लक्ष्मणादि वीर सैनिकों साथ रणभूमिमें और चल पड़ी ॥ ७८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पंच रामतेजपादेवकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासमन्विते राज्यकांडे पूर्वार्धे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

श्रीरामदासने कहा—इसके अनन्तर उस छायामयी सीताने अपने धनुषका विकराल टंकोर किया और संग्रामभूमिमें उठी । तब मूलकासुरने भी उन्हें देखा ॥ १ ॥ उस समय सीताके बड़े-बड़े दाँत, बराबनी आँखें, विजलीके समान पीतवर्णके केशपाश, तालकी नाई लम्बी-चौड़ी जाँघें, सूपकी तरह थोड़े पैर, कन्दराके समान भयावना तथा मेघके समान काला मुँह, लपलपाती जंघ और बड़ा भारी माथा था । उन्हें देखकर कुभकर्णके बैठने बहराकर कहा— २ ॥ ३ ॥ तुम कौन हो ? यहाँ मुँह करनेके लिये क्यों आयी हो ? इन बातोंका

यदि जीवितुमिच्छाऽस्ति न मे स्त्रीष्वस्ति दीरुषः । अत्र सा रजनीत्याम्ना विमानान्मुहुरीक्षिता ॥ ५ ॥
 तमुवाच तदा छाया गिरा निर्दस्ती गिरिम् । मूलकासुरतां रीतां चंडां मां गिद्धे चडिकाम् ॥ ६ ॥
 यन्निमित्तात्कुलं नष्टं तव लका प्रप्रपिता । मत्प्रक्षपातिनं मित्रं पूर्वं त्वं हतवानसि ॥ ७ ॥
 तस्यानृण्यं गमिष्यामि त्वां हन्वाऽथ ग्णाजिरे । हन्पुत्र्या चापमानस्य पंचबाणैर्जघान तम् ॥ ८ ॥
 ततः सोऽपि धनुर्धृत्वा छायां बाणान्मुमोच ॥ तद्युद्धं पार्थिवानास्ते जीविता मे हनूमता ॥ ९ ॥
 ददृशुर्बानराः सर्वे पुष्पकादालमास्थिताः । सीनया रघुवीरस्तु कल्पवृक्षतले स्थितः ॥ १० ॥
 रुक्ममाणिक्यपर्यंके दासीभिः परिवर्जितः । लघ्वर्हणयुष्टः स धृताधोकोपवर्हणः ॥ ११ ॥
 युद्धं ददर्श तच्छाया मूलकासुरो मेहम् । मूलकासुरमन्यकात् बाणांश्छाया समागतान् ॥ १२ ॥
 छित्त्वा स्वबाणजालैस्तानन्पुनर्बाणान्मुमोच सा । चतुर्भिस्तुरगान् हत्वा मुकुट कवचं धनुः ॥ १३ ॥
 सा विभेद त्रिभिर्बाणैस्तदा पद्भ्यां महामुरः । मत्वाऽन्यं रथमारुह्य छायां योद्धुं पुनर्ययौ ॥ १४ ॥
 उतश्छायां मुमोचार्सा बह्वयस्त्रं मूलकासुरः । छाया मुमोच मेघास्त्रं तद्वह्वयस्त्रं न्यवर्तयत् ॥ १५ ॥
 पर्वतास्त्रं कौम्भकर्णैस्तनश्छायां मुमोच सः । न्यथारथच्छाया सा पवनास्त्रेण पार्वतम् ॥ १६ ॥
 पुनर्मुमोच वेगेन सर्पास्त्रं मूलकासुरः । गारुडास्त्रेण तच्छाया चकार विकलं भणात् ॥ १७ ॥
 एवं तत्तुमुलं युद्धं बभूव दिनमसकम् । तदा छाया महार्सांश्च चडिकाऽस्त्रेण सं रिपुम् ॥ १८ ॥
 हंतुकाया महार्सं तन्मुमोच मूलकासुरम् । तदा चचाल जगतां सर्पादामन्वयस्तदा ॥ १९ ॥
 संधयामास रजमा व्यासाश्चामस्तदा दिशः । चण्डिकास्त्रं तु विच्छेद मूलकासुरतच्छिरः ॥ २० ॥
 पपात कापो लंकायां राजद्वारि महच्छिरः । हाहाकारो महानासील्लंकायां रघुर्सा तदा ॥ २१ ॥

उत्तर दो और यदि तुम्हें अपने प्राण प्रिय हैं । मेरे आगे ही दूट जाओ । शिवयोसे लड़नेके लिए युद्धमें पुण्यार्थ नहीं है । थोड़ी ही देर बाद भी आकाशमें रामक साथ विमानपर बैठो हुई विस्वायी पड़ो ॥ ५ ॥ ५ ॥
 वहाँ हीसे अपनी घनघोर बाणोंमें पर्वतोंको भी कोपाता हुई सीता कहने लगा—हूँ मूलकासुर ! समय उग्र रूप धारण किये मे चण्डिका सीता हूँ । जिसके कारण तुम्हारा सारा कुल नष्ट हो गया था और लंका ध्वस्त हो गयी थी, वही सीता मैं हूँ । मुझने मेरे पक्षपाता एक बाणोंको मार डाला है ॥ ६ ॥ ७ ॥ उसके बदले आज तुम्हें मारकर मे उसके अंगस मुक्त हो जाऊँगी । इतना कहकर सीताने अपना धनुष उठाया और तदातक पाँच बाणोंसे मूलकासुरपर प्रहार किया ॥ ८ ॥ इसके उस दस्युने भी अपना धनुष सम्हालकर सीताके ऊपर कई बाण चलाये । उन दोनोंके उस तुमुल युद्धको देखनेके लिए बहुतसे राज तथा बानर पुष्पक विमानपर बैठे थे, जिनको हनुमानजाने सजावनी कूटोंसे जीवित कर दिया था ॥ ९ ॥ थोड़ा देर बाद बानरोंने देखा कि राम सीताके साथ कल्पवृक्षको छायामें स्वर्णवटित आसनपर बैठे हैं ॥ १० ॥ दासियों रही हैं और उनके आगे-पोंछे तकिया लगी हुई है ॥ ११ ॥ रामचन्द्रजी वहीसे वट-वट छायामें सीता तथा मूलकासुरका युद्ध रहे । सीता मूलकासुरको ओरसे भाये बाणोंको शीघ्रताके साथ काट-काटकर अपने बाणोंको उसके ऊपर छाड़ती जाती थी । चार बाणोंसे सीताने मूलकासुरके रथमें जुते घोड़े और सीनसे उसके माथेका मुकुट, धनुष तथा कवच काट डाला ॥ १२ ॥ १३ ॥ ऐसी अवस्थामें वह पैदल दौड़ता हुआ गया और एक दूसरे रथपर सवार होकर फिर सीतासे युद्ध करनेके लिए आ डटा ॥ १४ ॥ वहाँ पहुँचते ही उसने सीतापर बह्वयस्त्र छोड़ा । सीताने मेघास्त्रका प्रयोग करके उसके बह्वयस्त्रका शान्त कर दिया ॥ १५ ॥ फिर उसने सीतापर पर्वतास्त्र छोड़ा । सीताने पवनास्त्र छोड़कर उ निवारण किया । इसके अनन्तर वेगके साथ उसने सर्पास्त्र चलाया । सीताने गारुडास्त्र छोड़कर उसे व्यर्थ कर दिया ॥ १६ ॥ १७ ॥ इस प्रकार सीता और मूलकासुरमें दिन पर्यन्त महान् युद्ध होता रहा । तदनन्तर क्रुपित होकर सीताने मूलकासुरका नाश करनेके लिए अपना एक महान् अस्त्र चलाया । जिससे पृथ्वी दगमगाने लगी और समुद्र अपनी भव्यताको लीककर बड़ी-बड़ी लहरें उछालने लगा ॥ १८ ॥ १९ ॥ दसों दिशाएँ घूमते व्याप्त हो गयी और उन चण्डोरुपधारिणी

निनेदुर्देववाद्यानि देवाश्चाकाशमस्थिताः । वचपुः कुसुमैश्छायां रामं सीतां मुहुर्मुहुः ॥२२॥
 ततो निवर्त्य सा छाया ययी सीतान्तिकं पुनः । नखा गम च सीतां च सीतादहे लयं ययी ॥२३॥
 तदा निनेदुर्वाद्यानि नवतुश्चाप्सरोगणाः । तुष्टुबुर्गवाद्याश्च जगुर्गीतं नटादयः ॥२४॥
 ततः सुरगणैः सर्वैर्वेधाः श्रावयन् ययी । नखा गम च सीतां च तुष्टाव जानकीं मुदा ॥२५॥

इत्यावाच

जनकजान्मजे गवत्रप्रिये कनकभामुरे भक्तपालिके ।
 दक्षस्थानजप्राणवह्नुभे तव पदांबुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥२६॥
 मूलकानुरप्राणधानके रामरक्षिणे रामसेविने ।
 राममोहिनि स्वन्दनस्थिते त्वत्पदांबुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥२७॥
 राममञ्जुकाधिष्ठिते रामे गनर्वाजिते गमलालिते ।
 राममंस्तुते रामरञ्जिते त्वत्पदाम्बुजादिः शिरोऽस्तु मे ॥२८॥
 लोकपावनि श्रारजे वरे भूमिकन्दके लोकपालिके ।
 पद्मलोचने धरात्मजे परे त्वत्पदांबुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥२९॥
 कंजलोचने नागगामिनि स्वीयसरसुग्धे रम्यरूपिणि ।
 रुक्मभूषिते मौक्तिकांकिते त्वत्पदांबुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥३०॥
 जलरुहानने चित्रवासिनि त्वमवमि सर्वदा स्वीयसेवकान् ।
 मुनिरिषून् सदा दुःखदायिके त्वत्पदांबुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥३१॥

सीताके उस महान् अस्त्रने बातकी बातमें मूलकानुरके मुण्डको शरीरमें अलग कर दिया ॥ २० ॥ ~~उस~~ वह लंबाके राजद्वारपर जा गिरा । इस घटनेमें लङ्कानारीके देवीमें डहडका मच गया ॥ २१ ॥ उधर देवताओंने प्रसन्न होकर अपनी दुन्दुभी बजायी, अपने-अपने विमानोंपर बैठकर वे आकाशमें आये और राम तथा सीतापर उन्होंने पुष्पवृष्टि की ॥ २२ ॥ इसके बाद ~~उन्होंने~~ छाया रणायणसे लोटकर रामके समीप पहुँची । वहाँ वह राम तथा सात्विकी सीताको प्रणाम करके उन्हींके चरणोंमें लय हो गयी ॥ २३ ॥ उस समय फिर देवताओंने अपने मंगलवाद्य बजाये और अप्सराएँ नाचने लगीं । गानव-वन्दीजनदिकोंने सीताकी स्तुति की और नटोंने उनका यशोगान किया ॥ २४ ॥ थोड़ा देर बाद वह्नुजी ममरत देवताओंके साथ रामचन्द्रके पास पहुँचे और उनकी तथा सीताकी प्रणाम करके इस प्रकार स्तुति करने लगे । कह्याने कहा-हे जनकात्मजे ! हे सुवर्णहृष इमकनेवाली मधुमूर्तिधारिणी सीते ! हे गवत्रप्रिये ! हे भक्तोंका पालन करनेवाली माँ ! हे रामचन्द्रकी प्रेयसी ! हमें ऐसा आशीर्वाद दो कि हमारा मस्तक सदा तुम्हारे चरणकमलका भौरा बना रहे ॥ २५ ॥ २६ ॥ हे मूलकानुरधातिनि ! हे रामरक्षिते ! हे रामसेविते ! हे रामकी मुग्ध करनेवाली ! हे रथपर आरुढ़ होकर दुष्टोंका वध दूर करनेवाली सीते ! हमें आशीर्वाद दो कि हमारा मस्तक सर्वदा तुम्हारे चरणकमलका भ्रमर बना रहे ॥ २७ ॥ हे रामके साथ दिव्य सिंहासनपर बैठनेवाली ! हे लक्ष्मी ! हे रामजीविते ! हे रामलालिते ! हे राममंस्तुते ! हे रामरञ्जिते सीते ! हमें आशीर्वाद दो कि हमारा मस्तक सदा तुम्हारे चरणकमलका भ्रमर बना रहे ॥ २८ ॥ हे लोकपावनि ! हे ध्यो ! हे अजे ! हे वरे ! हे भूमिकन्दके ! हे लोकपालिके ! हे पद्मलोचने ! हे धरात्मजे सीते ! हमें आशीर्वाद दो कि हमारा मस्तक सर्वदा तुम्हारे चरणकमलका मधुकर बना रहे ॥ २९ ॥ हे कंजलोचने ! हे गजगामिनि ! हे स्वीयसरसुग्धे ! हे रम्यरूपिणि ! हे रुक्मभूषिते ! हे मौक्तिकांकिते सीते ! हमें आशीर्वाद दो कि हमारा मस्तक सर्वदा तुम्हारे चरणोंका भौरा बना रहे ॥ ३० ॥ हे कमल सरोखे मुखवाली सीते ! हे चित्रवसने ! तुम सदा अपने भक्तोंकी रक्षा करती हो । ऋषियोंको दुःख देनेवाले राक्षसोंको दुःख देनेवाली हे सीते ! तुम ऐसा कुछ करो कि जिससे हमारा मस्तक सर्वदा तुम्हारे चरणकमलका भृङ्ग बना रहे ॥ ३१ ॥

त्वन्मुखेक्षणप्राप्तमां पतिः प्राप संशयं रामसत्प्रिये ।
 त्वद्दृग्गोक्षणाह्वज्जिता मृगी त्वत्पदांबुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥३२॥
 कुशलवाचिके जलरुहानने जलरुहेक्षणे पापदाहिके ।
 मधुरसुखने नृपुण्डने त्वत्पदांबुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥३३॥
 प्राणमुत्तमं ते विमतानने तेऽधरः शुभो विद्यमन्निभः ।
 अथ वै त्वया मूलकामुगे मारितो रणे ताग्निं वयम् ॥३४॥
 बह्वेति नवकमुत्तमं मान्करोदये पठसि यः पुमान् ।
 सर्ववांछितं लभति सोऽत्र नाप्राप्तुपान्मुखां राममभिधिम् ॥३५॥

इति स्तुत्याऽमरत्रेष्णा यस्त्रालंकारमण्डनैः । सीतां रामं च संरुज्य राघवेणापि पूजितः ॥३६॥
 प्रययौ राममामंज्य सन्यलंकं यतोऽरमम् । ततो विभीषणः प्राह लंकायां न त्वया पुरा ॥३७॥
 समामतमिदानीं त्वं मां कृतार्थं कुरु प्रभो । तथेति प्रतिनंदाथ तदाकथं रघुवन्दनः ॥३८॥
 विमानेन ययौ लंकामध्ये मितपूजं प्रति । ततो विभीषणं राज्ये लंकायां त्वय्यपेक्षयत् ॥३९॥
 तदा महोत्सवश्चापील्लंकायां यथाज्ञः । ततो विभीषणो रामं सीतां तच्छिष्यमणादिकान् ॥४०॥
 वस्त्रैरामार्घ्यं रत्नैः पूजयामास यादवः । अर्पयामास सर्वेषु स्त्रायं रामाय राक्षसः ॥४१॥
 तदा कपिलवाराहमूर्तिं राघवपूजिताम् । रामस्तां रोचयामास नोऽपि रामाय तां ददौ ॥४२॥
 मनसा कपिलेनैव पुरा मूर्तिर्विनिर्मिता । विशालं तमाराम्य लब्ध्वा ययवता तु या ॥४३॥

हे रामसत्प्रिये ! तुम्हें देखते हैं मन्त्रमोक्ष राजा मूलकामुर नष्ट हो गया । तुम्हारी आँखोंकी लोभा देखकर मृगी लज्जित हो जाती है । इस प्रकार तुम्हारे स्वरुहकी ही सीने ! हमें यही आशावाँद दो कि हमारा मस्तक सदा तुम्हारे चरणकमलका भ्रमर बना रहे ॥ ३२ ॥ हे कुशल-वचकी माना ! हे कमलके समान मुखवाली ! हे कमलके समान आँखवाली ! हे वापोंकी नष्ट करनेवाली ! हे भीटे स्वरवाली ! हे नूपुर सदृश मधुर स्वरवाली भीटे ! हमें आशावाँद दो कि हमारा मस्तक सदा तुम्हारे चरणकमलका भ्रमर बना रहे ॥ ३३ ॥ हे मुकुटाहट भरे मुखवाली सीते ! तुम्हारी नाभिका बहुत सुन्दर है । विश्वकलके समान तुम्हारे लाल ओष्ठ है । आज तुमने सशमभूमिमें मूलका तुम्हो मार डाला । इससे मन्त्रमोक्षका उद्धार हो गया ॥ ३४ ॥ श्रीरामदासने कहा—जी आतःकालके समय ब्रह्माजीके द्वारा स्तुति किने गये इन नौ श्रौतीका पाठ करता है, उसकी सम्पत्ति कामनाएँ पूर्ण हो जाती है और अन्त समयमें उसे रामचन्द्रजीके समीप स्वयं मिलता है ॥ ३५ ॥ इस तरह ब्रह्माने स्तुति करके विविध प्रकारके वस्त्राभूषणोंसे राम और सीताका पूजा की । रामने भी ब्रह्माजीका विधि-वत् पूजन किया ॥ ३६ ॥ तदनन्तर रामने आज्ञा लेकर समस्त देवताओंके साथ ब्रह्मा अपने लोकको लौट गये । तब विभीषणने भगवान्से प्रार्थना की कि पहले जब आप रावणको मारनेके लिए लंकामें आये थे तो पिताकी आज्ञा न होनेके कारण आरुने नगरीमें प्रवेश नहीं किया था ॥ ३७ ॥ किन्तु अबकी बार आप मेरे घर पधारकर मुझे कृतार्थ कीजिए । रामने बहु प्रार्थना स्वीकार की और अपने पुण्यक विमानपर बैठकर लंकामें अपने मित्र विभीषणके भवतमं पधारें । वहाँ पहुँचकर रामने विभीषणका अभिप्रेक करके लंकाके राजसिंहासनपर बिठाया । उस समय लंकामें बड़ा उत्सव मनाया गया । इसके बाद विभीषणने राम, सीता तथा लक्ष्मणादिका विविध रत्नों और वस्त्राभूषणोंसे सत्कार किया । तत्पश्चात् उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति रामको अर्पण कर दी ॥ ४०-४१ ॥ उस समय विभीषणकी सारी सम्पत्तिमेंसे रामकी कपिलवाराहकी मूर्ति अच्छी लगी । जिसकी पूजा रावण स्वयं करता था । विभीषणने रामको वह मूर्ति दी ॥ ४२ ॥ उस मूर्तिके विषयमें ऐसा सुना जाता है कि कपिल भगवान्ने अपनी मनःप्रकृतिसे उस मूर्तिकी रचना की थी । बहुत दिनों तक कपिल मुनिने स्वयं उसकी पूजा की । उसके बाद वह रत्नके हाथ लग गयी ।

तं जित्वा रावणेनैव समानीता निजं पुर्णम् । यां तदा पूजयामास लंकायां रावणश्चिरम् ॥४४॥
 विभीषणेन सा दत्ता राघवाय दूतमयी । तां मूर्तिं स्थापयामास विमाने रघुनन्दनः ॥४५॥
 ततः सीताऽथ रामेण देवस्यार्थलक्ष्मणा । अशोकानिकां गत्वा शिशवाधृष्यमुत्तमम् ॥४६॥
 दर्शयामास रामाय यत्र पूर्वं स्थिता स्वयम् । ततो वामकरेणैव रामस्य हि कनिष्ठिकाम् ॥४७॥
 धृत्वा दक्षिणहस्तस्य सीतां यन्नाम तद्वनम् । स्नानासनान्दिकं पूर्वं यत्र यत्र कृतं वने ॥४८॥
 रामं नीत्वा तत्र तत्र दर्शयामास जानकी । ततस्तां त्रिजटां सीतां चत्वरभरणादिभिः ॥४९॥
 कृत्वाऽतिहृष्टां रामाग्रे सम्भां चक्षुषमन्वीत् । अनया रक्षिता पूर्वं राक्षसीग्रहसीतितः ॥५०॥
 मत्तुन्या माननीयेयं सर्वदा वरमे स्वया । इत्युक्त्वा सरमाहस्ते त्रिजटाकरमर्पयत् ॥५१॥
 ततो वायस्वलयसीता ययां रामेण सा धनैः । एवं निकुम्भिलादीनि दृष्ट्वा नानास्थलानि हि ॥५२॥
 पुष्पकस्थो ययां रामो विभीषणमनिरतः । विभीषणस्य तच्चित्रं लंकायां संमवेशयत् ॥५३॥
 रामः करे धनुर्धृत्वा लंकायाः परितस्तदा । प्रदक्षिणोपमं येमाद्भुमयामास सादरम् ॥५४॥
 ततो विभीषणं प्राह वचनं रघुनन्दनः । राक्षसेन्द्र मया चापं रक्षार्थं भ्रामितं तव ॥५५॥
 ततो रामो विमानेन ययां शीघ्रं विहायसा । विभीषणञ्च रक्षार्थं तस्यैवानुमतेन च ॥५६॥
 मन्वापरेखाऽप्यन्येषां दुःखोसीर्वा भविष्यति । अशुं वाणं मया दत्तं त्वं गृहाण विभीषण ॥५७॥
 मन नाभ्नाकितं तीक्ष्णं तव प्राणस्य गुरुकम् । चापरेखा वाणहन्तं देयं त्वां भर्पयिष्यति ॥५८॥
 मद्वाणहस्तं त्वां कश्चिन्न रिपुर्भयिष्यति । इत्युक्त्वा तं वदी वाणं विभीषणकरे प्रभुः ॥५९॥
 प्रणनाम मुदा रामं वाणहस्तो विभीषणः । ततो रामो विमानेन पश्यन् देशान् मनोरमान् ॥६०॥

जब रावणने इन्द्रसे संग्राम करके उन्हें पराजित किया । तब राम मूर्तिकी इन्द्रसे छोन लाया और बहुत समय तक उसका पूजन करना रहा ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ आज उसे ही विभीषणने रामको अर्पण कर दिया । रामने वड़े प्रेमसे उसे अपने पुष्पक विमानपर रखवा ॥ ४५ ॥ इसके पश्चात् अपने पति राम और लक्ष्मणादि देवों तथा कृष्ण आदि वच्चोंके साथ सीता उस जिज्ञाया वृक्षके नीचे पहुँचीं, जहाँ रावणके हर जानेपर बहुत दिनों तक रह चुका थी । वहाँ पहुँचकर सीताने वनलाया कि यह वही स्थान है, जहाँ आपसे विमुक्त होकर मैं बहुत दिन तक रही । उसको अनन्तर रामके दाहिने हाथकी उँगली पकड़कर सीता अशोकवाटिकामें डबर-डबर घूमती हुई उन स्थानोंको दिसलाने लगीं, जहाँ स्नानादि कृत्य करती थीं । घमती-धूनती सीता त्रिजटाके स्नानपर पहुँची और विविध प्रकारके वस्त्राभूषणोंसे त्रिजटाका सत्कार किया ॥ ४६-४९ ॥ जब त्रिजटा प्रसन्न हो गयी तो विभीषणकी स्त्री सरमासे सीताने कहा—जिस समय राजसिंया अपना भयानक मुँह दिग्वाकर मुझे डराती-बसगती थी, तब यह त्रिजटा ही मेरी रक्षा करती थी । सरमे ! मैं तुमसे विनम्रपूर्वक कहती हूँ कि सर्वथा तुम मेरी ही तरह इसका सम्मान करना । इतना कहकर सीताने त्रिजटाका हाथ सरमाके हाथोंमें घुमा दिया ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इस तरह घुम-फिरकर राम सीताके साथ डेरेपर पहुँचे और लंकामें मन्त्रीको राज्यकी देख-भाल करनेके लिए छोड़कर विभीषणको अपने साथ लिये हुए ही अयोध्याकी प्रस्थान कर दिया । अपने भक्त विभीषणके प्रार्थना करनेपर रामने उसकी रक्षाके लिए धनुष उठाकर बड़े वेणके साथ लंकाके चारों ओर घुमाया और इस प्रकार कहते लगे—हे राजसेन्द्र ! तुम्हारी रक्षाके लिये यह धनुष घुमाया है । मेरे धनुषकी यह रेखा वायुके लिए दुस्तर होगी । तुम्हें यह वाण भी दे रहा । इसे ग्रहण करो ॥ ५२-५७ ॥ इसमें मेरा नाम लिखा हुआ है । यह मश तुम्हारे प्राणोंका रक्षक होगा । एक बात और भी है । यह यह कि तुम इस वाणकी लिये हुए मेरे धनुषकी इस रेखाकी लक्ष्योगे तो तुम्हें यह कोई कष्ट नहीं पहुँचायेगी ॥ ५८ ॥ मेरा वाण जब लिये रहोगे, उस समय कोई धनु भी तुम्हारे ऊपर आक्रमण नहीं करेगा । इतना कहकर रामने अपना वाण विभीषणको दे दिया ॥ ५९ ॥ वाणको हाथोंमें लेकर विभीषणने रामको प्रणाम किया । इसके अनन्तर राम पुष्पक विमानपर

पूजितो दानमानैश्च नृपैः स्वनगरीं ययौ । तदा निनेदुर्वाधानि ननुतुश्चाप्सरोगणाः ॥६१॥
 प्रत्युज्जगाम श्रीरामं यूपकेतुः सनागरः । प्रासादशिखरारूढाः पौरनार्यः सहस्रशः ॥६२॥
 सीतां रामं निरीक्ष्याथ चक्षुः पुष्पवृष्टिमिः । तदा विवेश श्रीरामः सभां तां पार्थिवैः सह ॥६३॥
 विवेश स्वीयमेहं सा जानकी तुष्टमानसा । मेहे कपिलवाराहमूर्तिं रामो न्यवेशयत् ॥६४॥
 एकदा राघवस्तुष्टः शत्रुघ्नाय हि तां ददौ । मोताऽपि सा पुनः पान्थान्वयमाँश्च नियमादिकान् ॥६५॥
 सङ्कल्पयामास सर्वास्तांश्चकार यथाविधि । उद्यापनान्यनेकानि मयेषां साऽकरोन्मुदा ॥६६॥
 एकदा मुनयः सर्वे यमुनानीगवासिनः । आजगमु राघवं द्रष्टुं भयाल्लवणरक्षमः ॥६७॥
 कृत्वाऽग्रे तु मुनिश्रेष्ठं भार्गवं चक्षुर्न द्विजाः । अमङ्गयताः सजिप्यास्ते रामादभयकांक्षिणः ॥६८॥
 तान् पूजयित्वा परया भक्त्या रघुकुलोद्बहः । उवाच मधुरं वाक्यं हर्षयन् मुनिमडलम् ॥६९॥
 करवाणि मुनिश्रेष्ठाः किमागमनकारणम् । धन्याऽस्मि यदि दृष्टं मां श्रान्त्या द्रष्टुमिहागताः ॥७०॥
 सुदुष्करं वा यत्कार्यं भवतां तत्करोम्यहम् । आज्ञायन्तु मां भृत्यं ब्राह्मणा देवतं हि मे ॥७१॥
 तच्छ्रुत्वा सहसा हृष्टश्च्यवनो वाक्यमब्रवीत् । मधुनामा महार्दन्यः पुनः राम कृते युगे ॥७२॥
 आर्षादनीच धर्मात्मा देवब्राह्मणपूजकः । तस्मै तुष्टो महादेवो दत्तो शूलमनुत्तमम् ॥७३॥
 तं प्राहानेन यं हंसि स तु मर्माभविष्यति । रावणस्यानुजा तस्य भार्या कुम्भीनसी स्मृता ॥७४॥
 तस्यां तु लवणो नाम राक्षसो भीमविक्रमः । आनीदुर्गन्मा दुर्धरो देवब्राह्मणहंसकः ॥७५॥
 मधुः स तव हस्तेन मृतः पूर्वं यतस्तदा । मधुसूदननामाऽभ्यन्तबुधात्ताद्रघुनाम ॥७६॥
 पीडिता लवणेनाद्य वयं त्वां शरणं गताः । तच्छ्रुत्वा राघवोऽप्याह मा भीरुं मुनिपुङ्गवाः ॥७७॥

बैठे और अनेक देशोंको देखने हुए अयोध्याको चले पड़े ॥ ६० ॥ रामने अनेक राजाओंको धर्मोंको स्वीकार करते हुए वे अपनी नगरोंमें पहुँचे । रामके वहाँ पहुँचनेपर नाना प्रकारके वाज वने और अप्सराएँ नाचीं ॥ ६१ ॥ यूपकेतु बहुतसे लोगोंको साथ लिये हुए रामकी अगवाजी करने पहुँचे । अयोध्यानिवासिनी नारियोंने कोठेपर चढ़कर सीता और रामका दर्शन कर-करके उत्तर पर पुष्पांकी वृष्टि की । उसके बाद राम अनेक गहिपालोंके साथ अपने सभाभवनमें गये । सीता अपने महलोंमें चली गयी । बादमें रामचन्द्रजीने वहाँ कपिलवाराह मूर्तिकी स्थापना की ॥६२-६४॥ एक दिन रामचन्द्रजीने प्रसन्न होकर वह मूर्ति शत्रुघ्नको दे दी । सीताने रामके वियोगकालमें जिन सती और नियमोंकी मनोता मानी थी, उनका वड़े विधि-विधान समेत करके उनका उद्यापन भी यत्नके साथ किया ॥६५॥६६॥ एक दिन उमुना तटपर रहनेवाले मधु ऋषि लवणामुर नामक राजसभमें भयभीत होकर रामके पास आये ॥ ६७ ॥ उन लोगोंने भार्गव ऋष्यन् ऋषिको अपना अगुवा बनाया और हजारोंसे अधिक संख्यामें एकत्रित होकर रामके पास आ पहुँचे ॥ ६८ ॥ रामने उन लोगोंका विचित्र पूजन किया और उनको प्रसन्न करते हुए इस प्रकार कहने लगे—हे श्रेष्ठ मुनिगण ! लोग किस कार्यसे मेरे पास आये हैं ? आपकी जो आज्ञा हो, उसे पूर्ण करनेके लिये मैं तैयार हूँ । मैं अयोध्या राज्य सम्पन्न हूँ जो आप सब मुझे देखनेके लिए मेरे यहाँ पधारे ॥ ६९ ॥ ७० ॥ यदि कोई अत्यन्त दुष्कर कार्य होगा जो मैं उसे भी करनेके लिए बराबर प्रस्तुत हूँ । क्योंकि ब्राह्मण मेरे लिए देवता सदृश हैं । आपलोग जिना किसी अङ्गवतके मुझ सेवकको आज्ञा दीजिए ॥ ७१ ॥ इस प्रकार रामकी आज्ञा सुनकर उनमेंसे च्यवन ऋषि गद्गद होकर कहने लगे—हे राम ! बहुत दिन हुए, मधु नामका एक मन्त्रिद्वेष हुआ था । वह ब्राह्मणोंका पूजक एवं बड़ा धर्मिया था । उसकी इस सहृदयतासे प्रसन्न होकर शिवजीने उसे एक विशूल दिया और कहा— ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ तुम इस विशूलसे जिसे मारोगे, वह भस्म हो जायगा । रावणके छोटे भाई कुम्भकर्णकी कुम्भीनसी नामकी भार्या थी । उससे लवण नामके एक राक्षसकी उत्पत्ति हुई । जो बड़ा भारी दुष्टत्मा, दुर्धरो तथा देवताओं और ब्राह्मणोंके लिए दुस्वार्थी है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ रावणद्वारा अपने मधुनामके राक्षसको मारा था । इसीलिए आपका मधुसूदन नाम पड़ा था । मधुके समान ही आज लवणामुरसे अनुसृत कर हम आपकी शरणमें आये

लवणं नाशयिष्यामि गच्छतु विगतज्वराः । इत्युक्त्वा प्राह रामोऽपि शत्रुघ्नं सदसि स्थितम् ॥७८॥
 त्वामभिषेक्षामि मथुराराज्यकारणात् । तद्रामवचनं श्रुत्वा शत्रुघ्नो वाक्यमब्रवीत् ॥७९॥
 नाङ्गीकरोम्यहं राज्यं त्वं मा निजपदात्प्रभो । न दूरं कुरु राजेन्द्र प्रार्थयामीति ते मुहुः ॥८०॥
 ततस्तस्य वचनं श्रुत्वा शत्रुघ्नस्य रघूत्तमः । तथैव भरतं प्राह न सोऽप्यङ्गीचकार तत् ॥८१॥
 ततो रामः सुबाहुं यूपकेतुं द्विर्जैर्नृपैः । अमिषिष्याम्वीद्वाक्यं शत्रुघ्नं पुरतः स्थितम् ॥८२॥
 इत्वा तस्मै शरं दिव्यं निजनामाङ्कितं शुभम् । अनेनैव हि बाणेन लवणं लोककंटकम् ॥८३॥
 हनिष्यसि क्षणादेव ह्यत्र देवपतिर्यथा । स संपूज्य त शूलं गेहे गच्छति काननम् ॥८४॥
 मधुनायै हि जंतूनां घातं कर्तुं समुद्यतः । स नायाति मदनं यावद्भनचरो भवेत् ॥८५॥
 तावदेव पुरदारि तिष्ठ त्वं घृतकार्मुकः । योत्स्यते त्वया क्रुद्धस्तदा बाणेन घातय ॥८६॥
 अनेनैकेन बाणेन क्षणादेव मरिष्यति । तं हत्वा लवणं करं तदनेन मधुसंश्रिते ॥८७॥
 निर्माय मथुरानाम्नी नगरीं यमुनातटे । तस्यां स्थाप्य सुबाहुं च पत्नीभ्यां बालकैः सह ॥८८॥
 यूपकेतुं च विदिशानगरे शत्रुनिषूदन । संस्थाप्य दयिताभ्यां च सैन्येन बालकैः सह ॥८९॥
 ततो भ्रमान्तिकं याहि शीघ्रं शत्रुनिषूदन । अश्वानां पञ्चमाहसं रथानां च तदर्धकम् ॥९०॥
 गजानां षट्शतान्येव पत्नीनामपूतत्रयम् । आगमिष्यन्ति त्वत्पश्चादग्रे राक्षसम् ॥९१॥
 आगते त्वयि पश्चाद्वि नृपान् जेतुं पुनस्त्वहम् । गंतुमिच्छामि तस्मात्तव शीघ्रमागच्छ मां प्रति ॥९२॥
 इत्युक्त्वा मृध्न्यवप्राप्य शत्रुघ्नं रघुनन्दनः । प्रेषयासास तैर्विप्रेराशीमिरभिनन्दितः ॥९३॥
 शत्रुघ्नोऽपि नमस्कृत्य रामं मधुवनं ययौ । निनाय पूजनार्थं तां मूर्तिं सोऽप्यश्रुतमनः प्रियाम् ॥९४॥
 अग्रे संप्रेष्य शत्रुघ्नं ततः श्रीरघुनन्दनः । सुबाहुयूपकेतुं तौ स्वस्वस्त्रीभ्यां च बालकैः ॥९५॥

है । मुनिश्रेष्ठ भयवनकी सुनकर रामने कहा—हे ऋषियों ! लोग मत डरें ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ आप सब अपने-अपने आश्रमकी जाते जायें । मैं उस दुष्ट लवणासुरको मारूँगा । उनसे इतना कहकर राम शत्रुघ्नसे बोले—शत्रुघ्न ! आज मैं तुम्हारा अभिषेक करके तुम्हें मथुरा राज्यको भेजूँगा । उत्तरमें शत्रुघ्नने कहा—हे राजेन्द्र ! मुझे राज्य नहीं चाहिए । मेरे ऊपर करने मुझे अपने चरणोंसे दूर न कीजिए । इसके बाद रामने वही बात भरतसे कही और उन्होंने भी अस्वीकार दिया ॥ ७८-८१ ॥ रामने सुबाहु और यूपकेतुको तैयार करके अनेक ग्राह्यणोंके उनका अभिषेक किया और सामने बैठे हुए शत्रुघ्नको अपने नामसे अङ्कित देते हुए कहा कि लोगोंके लिए कंटकस्वरूप लवणासुरको तुम इसी बाणसे क्षण भरमें उसी तरह मार डालोगे, जैसे इन्द्रने वृत्रासुरको मारा था । वह लवणासुर सदा घरमें उस त्रिशूलका पूजन करके जङ्गलमें पशुओंको मारनेके लिए चला करता है । सो तुम ऐसे ही समय उसके घर पहुँचो, जब वह बनकी चला गया हो । उसके द्वारपर तबतक बैठे रहो, जबतक वनसे न लौट आये । जब वह आये तो उसे भीतर जानेका अवसर दो, द्वारपर ही छेड़-छाड़ करके मार कर दो । भी तुरन्त कोघातुर होकर लड़ने लौगा । तुम इसी बाणसे उसे क्षणभरमें मार डालोगे । उस दुष्ट लवणासुरको मारकर मधुवनमें ॥८२-८३॥ यमुना नदीके तटपर मथुरा नामकी नगरी तथा उसमें स्त्री-वच्चों समेत सुबाहुको बिठाकर विदिका नगरीमें वच्चों तथा सेनाके साथ यूपकेतुको राजपट्टीपर बिठा देना । यह करके हे शत्रुनिषूदन । तुम फिर मेरे पास लौट आओ । तुम आगे-आगे जाओ, तुम्हारे पीछे पाँच हजार घोड़े, चाई हजार रथ, छः हाथियाँ और तीस हजार पैदल सैनिक तुम्हारी सहायताके लिए भेजता हूँ । जब तुम वहाँसे लौट आओगे, मैं एकबार फिर राजाओंको जोतनेके लिये यात्रा करूँगा ॥ ८८-९२ ॥ इतना कहकर रामने शत्रुघ्नका भावा सौधा और अनेकशः आशीर्वाद देकर दन ग्राह्यणोंके भेज दिया ॥ ९३ ॥ शत्रुघ्न रामको करके मधुवनकी ओर चल पड़े । साथमें रामकी दो हुई वह कपिलवाराहकी मूर्ति भी लेते गये । रामने विप्रोंके साथ

प्रेषयामास सैन्यैश्च दासीदासेश्च गोधनैः । शत्रुघ्नोऽपि तथा चक्रे यथा रामेण सिद्धितः ॥९६॥
 हत्वा तं लवणं वेगान्मथुरामकरोत्पुरीम् । स्फोटान् जनपदांश्चक्रे माधुरान्दानमानतः ॥९७॥
 मथुरायां सुबाहुं तं स्थाप्य स्त्रीभ्यां सुतादिभिः । स्त्रीभ्यां पुत्रैर्वृषकेतुं विदिशानगरे तथा ॥९८॥
 संस्थाप्य सैन्यैः शत्रुघ्नो मथुरायां कियद्दिनम् । स्थित्वा सुबाहुं मूर्तिं तदा तुष्टो ददौ सुखम् ॥९९॥
 अद्यापि मथुरायां सा मूर्तिस्तत्रैव वर्तते । शत्रुघ्नोऽपि ततः सैन्यैः शीघ्रं रामांतिकं ययौ ॥१००॥
 सर्वं वृत्तं राघवाय कथयामास सादरम् । अर्धकदा म भरतः कैकेयीनन्दनो महान् ॥१०१॥
 पुष्पाजिता मातुलेन स्नाहोऽगान्तसैनिकः । रामाज्ञया गतस्तत्र हत्वा गंधर्वनायकान् ॥१०२॥
 तिस्रः कोटीः पुरे द्वे तु निषेधे रघुनन्दनः । पुष्करं पुष्करावन्यां पूर्वमेवाभिषेचितम् ॥१०३॥
 अयोध्यायां राघवेण स्थापयामास सेनया । स्त्रीभ्यां पुत्रैर्दासदासाज्जगार्धैः परिवेष्टितम् ॥१०४॥
 ततो ब्रूहर्ते भरतस्त्वथ तक्षशिलाङ्गये । नगरे स्थापयामास राघवेणाभिषेचितम् ॥१०५॥
 अयोध्यायां पूर्वमेव महामङ्गलपूर्वकम् । स्त्रीभ्यां पुत्रादिभिस्तक्षस्तस्थी तक्षशिलाङ्गये ॥१०६॥
 उमौ कुमारी सौमित्रे गृहीत्वा पश्चिमां दिशम् । गत्वा मल्लान्विनिर्जित्य दुष्टान्सर्वापकारिणः ॥१०७॥
 पुनरागत्य भरतो रामसेवापरोऽभवत् । ततः प्रीतो रघुश्रेष्ठो लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ॥१०८॥
 द्वावङ्गदचित्रकेतू महामन्त्रपराक्रमौ । मयाभिषेचिता वीरा स्त्रीभ्यां पुत्रवल्लर्पुत्रौ ॥१०९॥
 द्वयोर्द्वे नगरे कृत्वा गजाश्वधनरत्नके । स्थापयित्वा तयोः पुत्रौ शीघ्रमागच्छ मां पुनः ॥११०॥
 रामाङ्गौ स पुरस्कृत्य गजाश्वधनवाहनैः । गन्त्वा हत्वा रिपून् सर्वान् गजाश्वऽङ्गदनामकः ॥१११॥
 धनरत्ने चित्रकेतू स्थापयामास देहज्ञौ । स्वस्वस्त्रीभ्यां बालकैश्च दासीदासेर्बलान्वितौ ॥११२॥
 सौमित्रिः पुनरागत्य रामसेवापरोऽभवत् । अथ रामः समाहूय गणकान् परिपूज्य च ॥११३॥

आगे-आगे शत्रुघ्नको और पीछे त्रिवर्ग-बालकों समेत सुबाहु एवं वृषकेतुको उपयुक्त-संरक्षक सेनाके साथ भेज दिया । वहाँ पहुँचकर शत्रुघ्ने ठीक वैसा ही किया, जैसा रामने कहा था । इस प्रकार शीघ्र ही उन्होंने लवणाशुरको मारकर मथुरा नगरी बसायी । मथुरावासियोंको अनेक प्रकारका दान-भान देकर मथुराका कुछ दिनोंमें ही उन्होंने एक सुन्दर नगरी बना दी । शत्रुघ्ने एक विशाल सेनाके साथ सुबाहुको वहाँकी गद्दीपर बिठाया और स्त्री-पुत्रों समेत वृषकेतुको अपने साथ लेकर विदिशा नगरीको प्रस्थान कर दिया ॥ ९४-९८ ॥ वहाँ पहुँचकर वृषकेतुको गद्दीपर बिठाया । इसके बाद फिर मथुरा लौट आये और कुछ दिन वहाँ रहे । एक रोज प्रसन्न होकर शत्रुघ्ने वह कपिलवाराहकी मूर्ति सुबाहुको दे दी । आज भी मथुरामें वह मूर्ति विद्यमान है । इसके अनन्तर शत्रुघ्न सेनाके साथ रामके पास अयोध्या आये और वहाँ पहुँचकर उन्होंने रामको मथुराका सब समाचार सुनाया ॥ १०१ ॥ १०० ॥ एक सन्ध्या कैकेयीनन्दन भरत अपने माभा पुष्पाजित्के बुलावेपर रामकी आज्ञासे बहुतेरे सैनिकोंके साथ ननिहाल गये । वहाँ गन्धर्वोंकी मारा और तीन करोड़ नागरिकोंको विभक्त करके दो पुरी बसायी । वहाँपर पूर्वसे हों अभिषिक्त पुष्करको राजगद्दीपर बिठाया । तदनन्तर कितने ही दासी-दास तथा स्त्री-पुत्रोंको साथ लेकर पुष्कर वहाँ रहने लगे ॥ १०१-१०४ ॥ इसके बाद भरतने तक्षको तक्षशिला नामकी नगरमें अभिषिक्त करके बिठाया । यह सब काम करके भरत अयोध्या लौट आये और फिर पहलेकी तरह रामचन्द्रजीकी सेवा करने लगे । इसके बाद एक दिन प्रसन्न होकर रामने लक्ष्मणसे कहा—लक्ष्मण । तुम अपने दोनों पुत्रोंको साथ लेकर पश्चिम दिशाकी ओर जाओ । वहाँ सब लोगोंका अपकार करनेवाले दुष्ट मल्लोंको जातकर अङ्गद तथा चित्रकेतु इन दोनों बेटोंकी, जिनका अभिषेक मैं पहले ही कर चुका हूँ, वहाँकी गद्दीपर बिठाया दो । वहाँ दो पुरी बसाकर गज-वाजि तथा धनसे परिपूर्ण करके मेरे पास लौट आओ ॥ १०५-११० ॥ रामकी आज्ञा स्वीकार करके लक्ष्मण दोनों पुत्रोंको साथ लेकर बहुतेरी सेनाके साथ वहाँ पहुँच और बातको बातमें

अवनीं जेतुमुद्युक्तो मुहूर्तं तानपृच्छत । ततस्तर्गणकंदर्पो मुहूर्तः परमः शुभः ॥११४॥

तं श्रुत्वा तान पुनः पूज्य गर्वान् रामो व्यसर्जयत् ।

ततो गमोऽब्रवीद्वाक्यं लक्ष्मणं पुरतः स्थितम् ॥११५॥

अवनिस्थाश्रुवान् जेतुं सोऽहं गच्छामि पाथिवैः । विमानेनैव गच्छामि सेनां चोदय सत्वरम् ॥११६॥

नानाशस्त्राणि यंत्राणि वाहनानि समंततः । स्थापरस्व विमानेऽद्य शतधन्यः शतशो वराः ॥११७॥

घनधान्यतृणादीनां संग्रहं कुरु पुष्पके । पुरीं गोप्तुं सुमंत्रोऽस्तु सैन्येन परिवेष्टितः ॥११८॥

एवमाज्ञाप्य सौमित्रिं श्रीरामो जानकीं गृहम् । पर्यां चकार सौमित्रिर्यथा रामेण शिशितः ॥११९॥

इति श्रीमत्कोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे बालमोक्षीये राज्यकाण्डे

पूर्वादि राज्यविभागो नाम ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

(रामकी भारतवर्षपर विजय)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामो रहः सीतां स्वोद्योगमवदच्छनैः । अवनिस्थाश्रुवान् जेतुं पुत्राभ्यां बन्धुभिर्नृपैः ॥ १ ॥

तद्गमवचनं श्रुत्वा जानकी प्राह लज्जिताः । नाहं स्वद्विरहं सोढुं समर्था रघुनन्दन ॥ २ ॥

त्वयाऽहमवनीं द्रष्टुं यास्यामि जगतां प्रभो । तथेन्युक्त्वा रघुश्रेष्ठो लालयामास जानकीम् ॥ ३ ॥

एतस्मिन्नन्तरे सर्वा उर्मिलाद्याः स्त्रियश्च ततः । कुशस्य च लवस्यापि पत्न्यः श्रुत्वाऽवनेर्जयम् ॥ ४ ॥

कर्तुं रामसमुद्योगं पुत्राभ्यां बन्धुभिर्नृपैः । जानकीं प्राश्नयामासुर्यास्यामोऽद्य त्वया सह ॥ ५ ॥

स्वस्वकांतवियोगं च सोढुं नैव श्रमा वयम् । सीता तानां वचः श्रुत्वा राघवं श्राव्य तद्वचः ॥ ६ ॥

राजकुमारोंको परामर्श करके राजाश्वपुरमें अङ्गदका तथा धनरत्नपुरमें चित्रकेतुको बिठाल दिया और वहाँसे लौटकर लक्ष्मण फिर रामकी सेनामें लग गये । इसके अनन्तर रामने ज्योतिषियोंको बुलाकर उनकी पूजा की और पृथ्वीविजय करनेके लिए शुभ मुहूर्त पूछा । उन गणकोंने भी रामको बहुत ही बढ़िया मुहूर्त बताया ॥ १११-११४ ॥ मुहूर्त सुनकर रामने फिर उनकी पूजा की और विदा कर दिया । फिर रामने लक्ष्मणसे कहा—मैं पृथ्वीपर रहनेवाले समस्त राजाओंको जीतनेके लिए विमानसे यात्रा करूँगा । तुम जाकर सेनाको तैयार करके भेजो । विविध प्रकारके अस्त्र-शस्त्र और सैन्धवोंकी संख्यामें अच्छी-अच्छी तोपें लेकर मेरे विमानमें रखवाओ । खर्चके लिए घन धान्य तथा घास आदिका डीकसे प्रवन्ध करके पुण्य विमानमें रखवा दो । अयोध्यापुरीकी रक्षाके लिए कुछ सेनाके लोग नुमन्य वहाँपर ही छोड़ दिये जायेंगे ॥ ११५ ॥ ॥ ११६ ॥ इस प्रकार आज्ञा देकर राम अपने रत्नवासमें चले गये और लक्ष्मण रामने आज्ञानुसार सेना आदिकी तैयारीमें लग गये ॥ ११७-११९ ॥ इति श्रीमत्कोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पंचमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ६ ॥

श्रीरामदास फिर कहने लगे—इसके पश्चात् राम एकान्तमें सीतासे बोले कि मैं अपने पुत्रों तथा बान्धवोंको साथ लेकर पृथ्वीके राजाओंको जीतनेके लिए जाऊँगा । इस प्रकारकी सुनी तो लज्जित होकर सीताने रामसे कहा—हे रघुनन्दन ! मैं आपका विरह नहीं सहन कर सकूँगी । मैं भी इस पृथ्वीतलको देखनेके लिए आपके साथ-साथ चलूँगी । रामने सीताको माँग स्वीकार कर ली ॥ १-३ ॥ यह खबर धीरे-धीरे उर्मिलादिक स्त्रियों तथा कुश-लव आदिकी पत्नियोंके पास पहुँची और उन्होंने सीतासे प्रार्थना की कि आप हमको भी अपने साथ ले चले । हम भी अपने-अपने पतियोंका वियोग सहन करनेमें असमर्थ हैं । सीताने उनकी बातें सुनीं तो रामसे

रामाज्ञया तदा मर्वास्तोषयन्ती वचोऽब्रवीत् । आर्गतव्यं मया माकं शुभाभिनिश्चयेन हि ॥ ७ ॥
 गच्छच्च स्वीयगेहानि सर्वास्तुष्टा गतज्जगः । एवं सीतायचः श्रुत्वा तदा ताः कञ्जलोचनः ॥ ८ ॥
 सीतां नत्वा ययुः सर्वाः मनुष्टा मुदिताननाः । स्वस्वगेहानि वेगेन रुक्मपुङ्गविः स्वनाः ॥ ९ ॥
 अथ रामस्तु तां रात्रिं निनाय मोनसा सुखम् । आह्ने मुहुर्ने श्रुत्वा स वन्दिमातं मनोममम् ॥ १० ॥
 रामः प्रबुद्धस्तु जवात्कृतशोचादिसन्निक्रयः । स्नान्वा निन्यात्रिधिं कृत्वा कृन्वा शंभोः प्रपूजनम् ॥ ११ ॥
 कथां पौराणिकीं श्रुत्वा दत्त्वा दानान्यनेकशः । कृत्वोद्योगविधानं च संपूज्य गणनायकम् ॥ १२ ॥
 कृत्वाऽऽम्बुदयिकं श्राद्धं घृतश्राद्धं मविष्मरम् । कामधेनुं कल्पवृक्षं पुष्पकं च सुगृहम् ॥ १३ ॥
 मणिद्वयं पृथक् पूज्य सर्वैः कृन्वा तु भोजनम् । घृत्वा वस्त्राणि अस्त्राणि वधूष्वा मातः प्रणम्य च ॥ १४ ॥
 यथा स शिषिकारूढः पुष्पकं बन्धुभिर्नृपैः । पुत्राभ्यां सचिर्वैः सैन्यैः सेवकैर्वाहनादिभिः ॥ १५ ॥

यानमारुह्यः सर्वाः सीताद्यास्ताः स्त्रियः शुभाः ॥ १६ ॥

कौसल्याया मातरश्च तन्धुर्यानि यथामुखम् । यात्राकाण्डे यथा शिष्य विमानरचना पुरा ॥ १७ ॥
 ते वर्णिता मया तद्वदधुनाऽऽर्माच्छुभा पुनः । तदा निनेदुर्वाद्यानि तदधुर्मागधादयः ॥ १८ ॥
 ननुतुर्वारनार्यश्च नटा गानं प्रचकिरे । अथ गमोऽवशीघ्रानं गच्छ पूर्वदिश प्रति ॥ १९ ॥
 तथेत्पुक्न्वा पुष्पकं तद्ययाशकाशवर्मना । नत्वा रामं सुमंत्रोऽपि तस्यो पुर्या यथामुखम् ॥ २० ॥
 पूर्वदेशे नृपाः सर्वे श्रुत्वा रामं समागतम् । प्रत्युञ्जन् गघचं प्रवदकरमंपुटाः ॥ २१ ॥
 प्रणेमुस्ते रमानार्थं नानोपायनपाणयः । पूजयामास भीरुमं नीन्वा राज्यं निजं निजम् ॥ २२ ॥
 रामाज्ञया मसैन्याश्च तन्धुर्यानि नृपेक्षमाः । स्वकांक्षादानि रामाय समर्प्य स्थिरमानसाः ॥ २३ ॥
 मागधान् समतिक्रम्य विमानेन रघुतमः । पश्यन्मानाविधानं देशान् भूरिर्कीर्तः पुरं ययौ ॥ २४ ॥

सलाह की । फिर रामके आज्ञानुसार सीता सबको प्रसन्न करती । कहने लगी—तुम लोग भी मेरे साथ चलो । अब कोई चिन्ता । करो और अपने-अपने महलोंमें जाकर हमारे साथ चलनेकी तैयारी करो । इस तरह सीताकी बात सुनकर कमल सरीखे नेषोंवाली उन स्त्रियोंने सीताको प्रणाम किया और प्रसन्नतापूर्वक सुनहुले नृपुंरोंका हंकार करती हुई अपने महलोंको चली गयी ॥ ७-९ ॥ तदनन्तर रामने सीताके साथ यह रात्रि सुखपूर्वक बितायी । बाह्य मुहुर्तमें उन्होंने बन्दीजनोंके मुखसे नीत सुन । तब गीध शोवादि क्रियायें की और स्नानादि तिर्यकर्म करनेके पश्चात् शिवजीका स्तुतिपूजन किया ॥ १० ॥ ११ ॥ बादमें पौराणिकी कथाएँ सुनीं, अनेक प्रकारके दान दिये और अनेक उपचारोंमें गणपतिर्क पूजा की ॥ १२ ॥ तब आम्बुदयिक श्राद्ध तथा घृतश्राद्ध करके कामधेनु, कल्पवृक्ष, पुष्पक पारिजात वृक्ष तथा शोभो मणियोंका पूजन किया । इसके अपने समस्त माताओंका प्रणाम करके रुपड़े पहने, अनेक प्रकारके गन्ध वीजे और बन्धुओं तथा कितने ही राजाओंके साथ पालकोंमें सवार होकर पुष्पक विमानके पास आ पहुँचे ॥ १३-१५ ॥ वहाँ अपने पुत्रों, मन्त्रियों, सेनाओं, सेवकों तथा चाहनों समेत विमानपर पहले सीतादि स्त्रियों और कौमल्यादि माताएँ सवार हुईं । रामदासने कहा—हे शिष्य ! यात्राकाण्डमें मैं जिस प्रकार यानकी रचना कह आया हूँ ॥ १६ ॥ १७ ॥ ठीक उसी तरह इस यानका भी रचना थी । उनकी यात्राके समय अनेक प्रकारके वाजे बजे और मागध तथा बन्दीजनोंने स्तुति की, वेश्यायें नाचीं और गादकोंने गाने गाये । इसके अनन्तर रामने विमानको पूर्व दिशाकी ओर चलनेकी आज्ञा दी ॥ १८ ॥ १९ ॥ तब पुनरुक्त रामके आज्ञानुसार आकाशमार्गसे उड़ता हुआ चला । रामको प्रणाम करके सुमन्त्र अयोध्यापुरीमें आनन्दपूर्वक रहने लगे ॥ २० ॥ जब पूर्व देशके लोगोंने सुना कि राम आये हैं तो वहाँके बड़े-बड़े राजे हाथ जोड़कर उनके पास गये ॥ २१ ॥ सामने पहुँचकर उन्होंने भगवान्‌को प्रणाम किया और अनेक प्रकारको भेंटें उनकी सेनामें उपस्थित कीं और विजिवत् पूजन किया ॥ २२ ॥ इसके बाद उन्होंने अपना समस्त काश आदि रामको अर्पण कर दिया और उनकी आज्ञासे

तेनाभिपूजितो रामः जनैर्यानेन दक्षिणाम् । यथावच्छिन्नतर्जनेन द्राविडं देशमुत्तमम् ॥२५॥
 कृष्णातोरप्रदेशांस्तान् पश्यन् रामः शर्नः जनैः । कांतिं ययौ विधानेन कंबुकण्ठोऽपि राघवम् ॥२६॥
 पूजयामास विधिवन्कोत्तमैः सुहृद् निजम् । आरवारं महादेशं तथा तच्चोलमण्डलम् ॥२७॥
 समतिक्रम्य श्रीरामस्तप्रस्थैः पूजितो नृपैः । ययौ स कैरलान् देशानां च कर्णाटकं ययौ ॥२८॥
 पूजितो विजयेनापि विजयापुरवासिना । कोंकणस्थान् नृपान् जित्वा महाराष्ट्रं ययौ प्रभुः ॥२९॥
 दुर्गं देवगिरिं नाम चकार स्ववशं क्षणान् । तथान्यान्यपि दुर्गाणि स्वाधीनान्यकरोद्विभुः ॥३०॥
 कृत्वा विराटदेशं च देशान् विध्याचलाश्रितान् । पश्यन् ययौ स रेवापास्तीरेणोकारमीश्वरम् ॥३१॥
 मालवस्थान् नृपान् जित्वा ययौ रामः स उज्जयाम् । उज्जवाहुं रणे जित्वा ययौ हैहयपवनम् ॥३२॥
 जित्वा प्रतीपं श्रीरामः स ययौ हस्तिनापुरम् । एतस्मिन्नन्तरे सोमवंशजास्ते प्रयो नृपाः ॥३३॥
 पुरुरवास्तथाऽगच्छन्वाप्यन्येन वै पुरात् । रामेण संग्रहं कर्तुं नानाचाहनसंस्थितः ॥३४॥
 ययुर्वैवपुः शस्त्राणि पुष्पकस्थं रघूत्तमम् । युद्धं बभूव तैः साकं त्रिदिनं रोमहर्षणम् ॥३५॥
 तदासीद्रक्तपूर्णा सा जाह्नवी पापनाशिनी । चतुर्थे दिवसे रामस्तान् जित्वा तत्पुरं ययौ ॥३६॥
 सुपेणं वानराणां च वैद्यं वानरसेनया । गजाह्वये पुरे स्थाप्य तांस्त्रीन् सोमान्वयोद्भवान् ७॥
 कारागृहस्थितान् कृत्वा सुग्रीवाय रघूत्तमः । ययौ स मथुरां द्रष्टुं सुबाहुपरिपालिताम् ॥३८॥
 दृष्ट्वा सुबाहुं राज्यस्थं विदिशानगरं ययौ । युष्केतुं तत्र दृष्ट्वा राज्यस्थं तेन वन्दितः ॥३९॥
 कुरुक्षेत्रं पुष्करं च दृष्ट्वा रामो विहाय सा । मरुं च समतिक्रम्य ययौ गुर्जरमुत्तमम् ॥४०॥
 प्रभासं च ततो गत्वा मल्लदेशं ययौ तत्र । गजाश्वनगरे दृष्ट्वा गदं राज्यपदस्थितम् ॥४१॥
 धनरत्नेश्चित्रकेतुं दृष्ट्वा राज्यपदस्थितम् । आनतं स ययौ रामस्तप्रस्थैः परिपूजितः ॥४२॥

अपनी सेनाके पुष्पक विमानपर सवार होकर रामके साथ-साथ चले ॥ २३ ॥ मगध देशका लोचकर राम रास्तेके अनेक देशोंको देखते हुए भूरिकीर्ति नामके राजाकी राजधानीमें पहुँचे ॥ २४ ॥ उनसे पूजित होकर विमान द्वारा धीरे-धीरे दक्षिण दिशाको चले और समुद्रतटसे चलकर द्रविड देशमें जा पहुँचे ॥ २५ ॥ कृष्णा नदीके आस-पासवाले देशोंको देखते हुए राम कांतिदेशमें पहुँचे । वहाँ कम्बुकण्ठ नामके राजाने उनका आदर-सत्कार किया और फिर वहाँसे आरवार महादेश और चोलदेशको लोचकर ॥ २६ ॥ २७ ॥ वहाँके राजाओंसे पूजित होते हुए कैरल देशको गये । वहाँ विजयपुरमें रहनेवाले विजय नामके राजासे पूजित होकर कोंकणदेशमें रहनेवाले राजाओंको परास्त करके महाराष्ट्रमें पहुँचे ॥ २८ ॥ २९ ॥ वहाँ देवगिरि नामके किलेका क्षणभरमें अपने अधीन करके और भी बहुतसे बिलोंको अपने कब्जेमें कर लिया ॥ ३० ॥ इसके अनन्तर विराट देशमें जाकर विध्याचलके आस-पासवाले देशोंको देखते हुए रेवातटसे ओंकारेश्वर पहुँचे । वहाँ मालव देशके राजाओंको जीतकर उज्जयिनी गये । वहाँपर राजा उज्जवाहुका जीतकर हैहयनगरमें गये ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ उसके समीपवर्ती राजाओंको जीतकर श्रीरामचन्द्र हस्तिनापुरी पहुँचे । सभी सोमवंशी तीन राजे तथा पुरुरवा नामक राजा धोड़ासा गंगा लेकर रामचन्द्रसे युद्ध करनेके लिए ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ वहाँ पहुँचते ही पुष्पक विमानपर बैठे हुए रामके ऊपर उन लोगोंने शस्त्रोंकी वर्षा आरम्भ कर दी । तब उनके साथ रामने तीन दिन तक रोमहर्षण युद्ध किया । उस समय जाह्नवी रक्तसे पूर्ण हो गई थी । चौथे दिन रामने उनको परास्त करके उनकी पुरीपर अधिकार कर लिया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ हस्तिनापुरीमें वासरोके वैद्य सुपेणको गद्दीपर बिठाकर सोमवंशी राजाओंको जलमें डूब दिया और वहाँसे सुबाहु-परिपालित मथुरा पुरीको देखतेके लिए गये ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ सुबाहुको राज्यगद्दीपर आसीन देखकर विदिशा नगरीको गये । वहाँ युष्केतुने रामका विधिवत् आदर सत्कार किया । वहाँसे कुरुक्षेत्र-पुष्कर आदि तीर्थोंको देखकर आकाशमार्गसे रामचन्द्रजी मल्लदेशको लाँघते हुए गुजरात गये ॥ ३९ ॥ ४० ॥ फिर प्रभासक्षेत्र जाकर मल्लदेश गये । वहाँ गजाश्वपुरमें अङ्गदकी राज्यासनपर देखकर धनरत्न नामक नगरके राज्यासनपर बैठे हुए चित्रकेतुको देखा ।

प्रययौ पुष्करं द्रष्टुं राज्यस्थं पुष्करावतीम् । ततो रामो विमानेन ययौ तक्षशिलाह्वये ॥४३॥
 तत्रं दृष्ट्वा पदस्थं तं ययौ भरतमातुलम् । युवाजिना पूजितः स रामो राजीवलोचनः ॥४४॥
 ययौ विहायता शीघ्रं शकदेशं मनोरमम् । जित्वा यवनदेशस्थाश्रुपान् मर्वान् रघुत्तमः ॥४५॥
 पश्यमानाविधान् देशास्ताम्रदेशं ययौ ततः । ततो भायापुरीं गन्वा कलायग्राममाययौ ॥४६॥
 नरनारायणौ दृष्ट्वा शोपास्यौ रघुनन्दनः । उपामकं नारदं च वर्षं भारतसंज्ञके ॥४७॥
 साक्षत्वाऽर्च्यं रघुश्रेष्ठस्तत्रस्थः परिपूजितः । भारनेशं रणे हत्वा नन्पदे स्थाप्य स्वानुगम् ॥४८॥
 भारतं पृष्ठतः कृत्वा पुण्यदेशं मनोरमम् । योजनानां सहस्रं च नवभिः परिविस्तृतम् ॥४९॥
 अग्रे ददर्श श्रीरामो हिमालयमद्वाचलम् । योजनानां सहस्राभ्यां गम्यं विपुलमुत्तमम् ॥५०॥
 त्रिसप्ततिसहस्रैश्च दीर्घैः प्रोक्तस्तु योजनैः । तत्र नानाकांतुकानि ददर्श रघुनन्दनः ॥

दर्शयामास वैदेहीं विमानस्थो मुदान्वितः ॥५१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितातर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वादि
 भारतवर्षजयो नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

(रामद्वारा जम्बूद्वीप-विजय)

श्रीरामदास उवाच

■ ह स किंपुरुषं नाम वर्षं नवसहस्रयोजनविस्तीर्णं स्वीयानादिसिद्धराममूर्तिदेवतोपास्य-
 विराजमानपवनसुतोपासकमधिष्ठितमुपजगाम ॥ १ ॥ तत्र इ वाच दर्शितनाकौतुकस्तद्वर्षनृप-
 समूहपरिवेष्टितः पुष्पकसमधिष्ठितो नववाद्यस्वनपुरःसरः पुरतोऽनुममार ॥ २ ॥ अथ हेमकूट नाम
 पर्वतमतिकमनीयं द्विसहस्रयोजनविपुलमेकाशीतिसहस्रयोजनदीर्घं नानाधातुविराजितं समुन्नत-

इसके बाद आनतं देशको गये । वहाँवालोंने रामका अच्छी तरह सत्कार किया ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ वहाँसे पुष्करावती-
 के राज्यासनपर बैठे हुए पुष्करको देखने गये । फिर तक्षशिलाकी राजधानीमें सिंहासनपर बैठे हुए तक्षको देख-
 कर भरतके ननिहाल गये । वहाँ पहुँचनेपर राजा युवाजित्ने रामका पूजन किया ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ इसके
 बाद आकाशमार्गसे सुन्दर शकदेशको गये । वहाँ यवनदेशमें रहनेवाले राजाओंको जीतकर अनेक प्रकारके
 वेशोंको देखते हुए ताम्रदेशको गये । फिर भायापुरी हँति हुए कलायग्रामको गये ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ वहाँ सबके
 उपास्य नर-नारायणका दर्शन करके नारदका दर्शन किया । फिर भारतसंज्ञक देशमें गये । वहाँ संग्राम
 करके भारतनरेशको मार डाला और अपने किसी सेवकको वहाँका राजा बनाकर नौ हजार योजन विस्तृत
 पुण्यदेश (पूना) को गये ॥ ४७-४९ ॥ इसके अनन्तर महापर्वत हिमालयके पास गये, जो एक हजार
 योजन है । वहाँ रामने अनेक प्रकारके कौतुक देखे । फिर विमानपरसे ही सीताको भी वहाँका कौतुक
 दिखाया ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितातर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेय-
 विरचित"ज्योत्स्ना"भाषाटीकासमन्विते राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—इसके अनन्तर राम नौ हजार योजन विस्तृत किम्पुरुष नामक देशको गये ।
 जहाँ बहुतसे देवताओं तथा हनुमान्जीकी मूर्तिके साथ रामकी अनादि मूर्ति स्थापित थी ॥ १ ॥ उस
 देशमें अनेक प्रकारके कौतुक देखते हुए वहाँके राजाओंसे परिवेष्टित होकर पुष्पक विमानपर बैठे बैठे आगे
 बढ़े ॥ २ ॥ जाते-जाते अतिशय कमनीय हेमकूट पर्वतपर पहुँचे, जो दो हजार योजन विस्तृत

क्षिस्वरविराजमानं पुष्पकममधिष्ठितो रघुनाथ उपजगाम ॥ ३ ॥ अथ तृतीयं वर्षं नाम नवसहस्र-
योजनपरिमितं नृसिंहोपास्यप्रह्लादोपासकविराजमानमतिकमनीयं दशरथनयः समनुययौ ॥ ४ ॥
तद्वर्षवामिनृपवत्तृन्दतुमुलसंग्राममम्पादितजयश्रीरिपूकोशादिपूजितनृपदयिताराऽर्तिकनीराजितजनक-
जादशितमानकौतुकध्वजपताकातोरणघंटाकिंकिणीविराजमानपुष्पकममधिष्ठितः श्रीरघुनन्दन उपज-
गाम ॥ ५ ॥ अथ निषधं नाम पर्वतं द्विसहस्रयोजनविपुलं नवतिसहस्रयोजनदीर्घमतिकमनीयं स
रघुनन्दनो नयनगोचरं चकार ॥ ६ ॥ अथ सुवर्णाद्रिसमंततश्चतुर्दिक्षु समानमानमिलावृतं नाम
चतुर्थं वर्षं चतुस्त्रिंशत्सहस्रयोजनपरिमितं स रघुनाथक उपजगाम ॥ ७ ॥ तत्र ह मेरोराश्रय-
भूते मेरोर्दक्षिणदिक्स्थिते मेरुमदापर्वतेऽतिविराजमाने समुन्नतजंबूवृक्षमतिविशालं जंबूद्वीपाख्यवृक्षं
सफलमपूर्वमतिकमनीयं स रामचंद्रोऽवनिदुहित्रे दर्शयामास ॥ ८ ॥

ततो मेरुपश्चिमतो मेरोराश्रयभूते सुपार्श्वपर्वते विराजमानकदंबवृक्षमतिसमुन्नतमतिविपुल-
मतिकमनीयं पुष्परंजितं स रघुनाथको नेत्रविषयं चकार ॥ ९ ॥ अथ मेरोरुत्तरतस्तस्याश्रयभूते
कुमुदनाम्नि पर्वते विराजमानमनिसमुन्नतं वटवृक्षमतिविशालमतिस्थूलं स कौसल्यानन्दनो नृपसमूह-
विराजितो जनकजायं दर्शयामास ॥ १० ॥ अथ मेरुपूर्वतस्तस्याश्रयभूते मंदरपर्वते विराजमानमति-
विशालमतिसमुन्नतमतिस्थूलं सहकारवृक्षमतिकमनीयं पुष्पकमधुरघटतुल्यफलमारविनम्रं पश्यन्स
रघुवंशभूषणो जनकजाजानिः ॥ ११ ॥ तत्रैलावृते विराजमानसंकर्षणोपास्यरुद्रोपासकं स रघुनाथको
दयितासहायः शिरसा प्रणनाम ॥ १२ ॥ तद्वर्षवासिनृपप्रवद्धकरकमलशिरोवदितपदजलरुहद्वंद्वः स
रघुनाथकः पूर्वदिशमतुजगाम ॥ १३ ॥ अथ स गन्धमादनपर्वतं द्विसहस्रयोजनविपुलं चतुस्त्रिंशत्स-
हस्रयोजनदीर्घं नयनगोचरं चकार ॥ १४ ॥ अथ भद्राश्वं नाम पंचमं वर्षमैकत्रिंशत्सहस्रयोजनदीर्घं
हयग्रीवोपास्यभद्राश्वोपासकसमधिष्ठितं रघुनाथक उपजगाम ॥ १५ ॥ तत्र कचित्संग्रामस्तद्वर्ष-
विराजमाननृपसमूहेभ्यः कचिच्छरणागतप्रवद्धकरयुगलावनिपतिभ्यः स्वकरभारान्त्वभमानः स

तथा इत्यासी हजार योजन लम्बा था, जिसपर अनेक प्रकारकी घातुरें विद्यमान थीं । जिसके ऊँचे-ऊँचे शिखर
आकाशसे बातें कर रहे थे ॥ ३ ॥ उसके आगे तीसरे देशमें गये, जो नृसिंह भगवान्के प्रह्लादका वधाया
हुआ था ॥ ४ ॥ उस देशके राजाओंसे तुमुल संग्राम करके राम जिन्हींसे लाभ करते हुए शत्रुओंकी सम्पत्ति
अपने अधीन करके सीताको मार्गमें विविध प्रकारके कौतुक दिलाया हुआ कितने ही ध्वजा, पताका, तोरण,
घंटा और किंकिणीसे सुशोभित पुष्पकसिमानपर चढ़े हुए आगे बढ़े ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर दो हजार
योजन विस्तृत तथा ती हजार योजन लम्बे अति सुन्दर निषध पर्वतपर पहुँचे ॥ ६ ॥ उसके आगे चारों
ओर सुवर्ण पर्वतोंसे परिवेष्टित इलावृत नामक चतुर्थ देशमें गये । जो चौगालिस हजार योजन लम्बा-
चौड़ा था ॥ ७ ॥ वहाँ सीताको सुमेरु पर्वतके दक्षिण ओर खूब ऊँचे और अतिशय विशाल जम्बू-
द्वीपको सूचित करनेवाले एक बड़े भारी जामुनके वृक्षको दिखाया ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर पश्चिमकी ओर
सुपार्श्व पर्वतपर बड़े भारी कदम्ब वृक्षको देखा, जो बहुत ऊँचा और फूलोंसे लदा हुआ था ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर
मेरुके उत्तर ओर कुमुद नामक पर्वतपर अतिशय विशाल सर्वशूल एक वटवृक्ष सीताको दिखाया ॥ १० ॥
मेरुके उत्तर ओर उसके पासवाले मंदर पर्वतपर स्थित खूब लम्बे चौड़े, खूब पके तथा घड़के बराबर फलोंसे
लदे एक आन्नवृक्षको देखा ॥ ११ ॥ उस इलावृतमें बलरामजीके पूज्य रुद्रभगवान्को सीताके साथ रामने
प्रणाम किया ॥ १२ ॥ उस देशके निवासी राजाओंने हाथ जोड़कर रामको प्रणाम किया और राम वहाँसे
आगे पूर्व दिशाकी ओर बढ़े ॥ १३ ॥ तदनन्तर वे गन्धमादन पर्वतपर पहुँचे, जो दो हजार योजन
चौड़ा तथा चौतीस हजार योजन लम्बा था ॥ १४ ॥ तदनन्तर भद्राश्व नामक पाँचवें देशमें पहुँचे, जो एक-
औंस हजार योजन लम्बा था और वहाँ हयग्रीवके उपास्य भद्राश्व भगवान् रहते थे ॥ १५ ॥ उस देशके बहुतसे

जनकजाजानिरुपमयीं परिदृश्य पश्चिमाभिमुखः ॥ १६ ॥ अथ मेरोः पश्चिमदिक्स्थितं माल्यवंतं पर्वतं द्विसहस्रयोजनविस्तीर्णं चतुस्त्रिंशत्सहस्रयोजनदीर्घमतिक्रमनीयं स जनकजारजनो नयनगोचरं चकार ॥ १७ ॥ तत्पश्चिमतः केतुमालं नाम षष्ठं वर्षं एकत्रिंशत्सहस्रयोजनविस्तीर्णं चतुस्त्रिंशत्सहस्रयोजनदीर्घं कामदेवोपास्यलक्ष्म्युपासिकासमधिष्ठितमनोहरं स रामचन्द्रोऽनुजगाम ॥ १८ ॥ तद्वर्षनृपसमूहमुकुटावतंसपरागपूजितधरणाविंदयुगलः स रघुकुलदीपकः सीतया पुष्पकस्थोऽसिमुदमवाप ॥ १९ ॥ अथ मेरोरुत्तरतः स नीलपर्वतं द्विसहस्रयोजनविस्तीर्णं नवतिसहस्रयोजनदीर्घं रघुकुलतिलको नयनविषयं चकार ॥ २० ॥ अथ रम्यकं नाम सप्तमं वर्षं नवसहस्रयोजनपरिमितं मत्स्योपास्यमनूपासकविमानमधिष्ठितः स रघुनन्दन उपजगाम ॥ २१ ॥ तत्रस्थैरवनिपालैः स्वकोशादिपूजितः स रघुनायकः सतीतं गच्छन् पुरतोऽनुससार ॥ २२ ॥ तस्योत्तरतः श्वेतपर्वतं द्विसहस्रयोजनविस्तीर्णमेकांशतिसहस्रयोजनदीर्घमतिक्रमनीयं स स्वलोचनविषयं चकार ॥ २३ ॥ अथ हिरण्यं नामाष्टमं वर्षं नवसहस्रयोजनपरिमितं कूर्मोपास्यार्थमोपासकमधिष्ठितमतिक्रमनीयं स समनुययौ ॥ २४ ॥ तद्वर्षवासिनृपदयिताशिरोभूषणमणितेजोदापितजानकीचरणारविंदयुगलमीक्षमाणः स रघुनन्दनो मुदमवाप ॥ २५ ॥ तस्योत्तरतः शृङ्गवन्तं पर्वतं द्विसहस्रयोजनविस्तीर्णं त्रिसप्ततिसहस्रयोजनदीर्घं स रघुनन्दनो ददर्श ॥ २६ ॥ अथोत्तकुरुवर्षं नवमं नवसहस्रयोजनपरिमितं वाराहोपास्यभृम्पृथमिकासमधिष्ठितमनोहरं स रामचद्रस्तमनुययौ ॥ २७ ॥ तद्वर्षचारिरणस्कंपितावयवनृपमहावतंसमणिमुक्ताविराजिनपदजलरुहद्वन्द्वः स रघुनायको मुदमवाप ॥ २८ ॥ अथ रामो लवं जम्बूद्वीपसिं करिष्यामीति निश्चित्य किण्दिनं तदधिकारे विजयं नाम स्वमन्त्रिणं स्थापयामास ॥ २९ ॥ एतेषां जम्बूद्वीपांतर्गतवर्षाणां तथा सर्वद्वीपांतर्गतवर्षाणां यानि यानि नामानि

राजाओंके साथ रामने संग्राम किया और बहुतांको सरणमें आ जानेपर लम्बा प्रदात किया । तदनन्तर सबसे ऊपर सेते हुए वहाँसे लौटकर पश्चिम दिशाकी ओर बढ़े ॥ १६ ॥ इसके बाद मेरु पर्वतके पश्चिम माल्यवान् पर्वतपर पहुँचे, जो दो हजार योजन विस्तृत तथा चौतीस हजार योजन लम्बा था ॥ १७ ॥ इसके आगे केतुमाल नामक छठे देशमें पहुँचे, जो इकतीस हजार योजन विस्तृत एवं चौतीस हजार योजन लम्बा था और वहाँ कामदेवकी उपासिकाएँ रहती थीं ॥ १८ ॥ अब देशके राजाओंने अपना मुकुटविभूषित मस्तक रामचन्द्रजीके चरणोंपर रख दिया तो सीता तथा रामको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ १९ ॥ फिर मेरु पर्वतके उत्तर ओर विराजमान नील पर्वतको देखा, जो दो हजार योजन विस्तृत तथा नव्य हजार योजन लम्बा था ॥ २० ॥ इसके रमणक नामके सातवें देशमें पहुँचे, जो नौ हजार योजन विस्तृत था । वहाँ मत्स्यभगवान्के बहुतसे उपासक लोग रहा करते थे ॥ २१ ॥ वहाँके राजाओंने अपना कोश आदि देकर रामकी पूजा की और रघुनाथजी सीताको प्रसन्न करते हुए आगे बढ़े ॥ २२ ॥ उसके उत्तर ओर रामने श्वेत पर्वतको देखा, जो दो हजार योजन विस्तृत तथा द्वादसी हजार योजन लम्बा ॥ २३ ॥ इसके बाद हिरण्य नामके आठवें देशमें पहुँच, जहाँ अधिकांश कूर्म भगवान् तथा सूर्य नारायणके उपासक लोग रहा करते थे ॥ २४ ॥ उस देशके राजाओंकी स्त्रियोंने जब जानकीके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया तो रामचन्द्रजाको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ २५ ॥ उसके उत्तर दो हजार योजन विस्तृत तथा त्रिद्वत्तर हजार योजन लम्बे शृङ्गवान् नामक पर्वतको देखा ॥ २६ ॥ इसके अनन्तर नवें देश उत्तर कुरुमें पहुँचे, जो हजार योजन लम्बा-चौड़ा ॥ वहाँ विशेष करके वाराह भगवान्के उपासक तथा भूमिकी उपासिका स्त्रियाँ रहा करती थीं ॥ २७ ॥ अब उस देशके राजे संग्रामभूमिमें भयसे काँपकर रामके चरणोंमें लोट गये, तब रामको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ २८ ॥ इसके बाद रामने जम्बूद्वीपके राजाको डाला और मनमें यह निश्चय किया कि यहाँसे लौटकर अयोध्या पहुँचनेपर लवको जम्बूद्वीपका अधिपति बनाऊँगा । तबतक कुछ दिनोंके लिए अपने विजय नामके मन्त्रीको वहाँकी देख-भाल करनेके लिए छोड़ दिया ॥ २९ ॥ जम्बूद्वीपके अन्तर्गत जितने राज्य, वे प्रियव्रत नामक राजाके वीरोंके नामसे प्रसिद्ध

तानि प्रियव्रतनृपपौत्रनामसूचितानि सन्ति । तेषु ये ॥ नृपा जायन्ते ते तद्वर्षनामसूचिता एव भवन्त्यतः सर्वेषां पृथक् नामानि मयाऽत्र नोच्यन्ते ॥ ३० ॥ एवं जम्बूद्वीपमायामविस्ताराम्यां लक्षयोजनपरिमितमतिक्रमनीयं समवर्तुलं पुष्करपत्रोपमं नववर्षमण्डितं स रघुनायकः स्ववशं चकार ॥ ३१ ॥ मेरुपर्वताग्रेऽष्टपुर्योऽष्टदिवपालानां संति । तत्पालकाः सुरार्धाशवह्नियमनि श्रुतिवर्णवापु-
कुबेरेऽस्ते सर्वे ममाज्ञां परिपालयन्त्विति निश्चित्य स रघुनायकस्तान् प्रति ॥ ३२ ॥ ता अष्टपुर्यः पृथक् पृथक् सार्धद्विसहस्रयोजनपरिमाणेनायामविस्तारतो ज्ञातव्याः ॥ ३३ ॥ मेरुलक्षयोजनमूढतो भूमिं द्वात्रिंशत्सहस्रयोजनविततो मूले षोडशसहस्रयोजनविततश्चाधः षोडश-
सहस्रयोजनमितो भूम्यां त्रिंशत्तुरशीतिसहस्रयोजनमितो भूम्या बहिर्धत्तूरपुष्पवद्दृश्यते ॥ ३४ ॥ ॥ मेरुपर्वताग्रेऽष्टदिवपालपुरीणां मध्ये ब्रह्मपुरी दशसहस्रयोजनायामविस्तारतो ज्ञातव्या ॥ ३५ ॥ सर्वे वर्षमर्यादीभूताष्टपर्वता दशसहस्रयोजनममृजता ज्ञातव्याः ॥ ३६ ॥ ययदीर्यता पर्वतसमाना ज्ञातव्या ॥ ३७ ॥ जम्बूद्वीपस्योपद्वीपानष्टौ द्वेक उपदिशन्ति ॥ ३८ ॥ समरात्मजरघान्वेषण इमां महीं परितो निखनद्विरुपकन्पितान् ॥ ३९ ॥ तद्यथा स्वर्णग्रस्थः चन्द्रशुक्र आवर्तनो रमणकः भंदरहरिणः पाञ्चजन्य सिंहलो लङ्का चेति ॥ ४० ॥ तेषु लंकां विना सप्तसु यदा यद्यस्सभीषं तदा ॥ तत्र गत्वा तत्रस्थानुपद्वीपपालकान् श्रीरामचन्द्रः स्ववशांश्चकार ॥ ४१ ॥ भारतेला-
पुतवर्षाम्यां विना सप्तसु वर्षेष्वसंख्याता नष्टो गिरयश्च संति । तेषां विस्तारं को वक्तुं ॥ ४२ ॥ अथेलावृतसंस्थिता मुख्यनद्य एवोच्यन्ते ॥ ४३ ॥ अरुणोदाजकुनदीपयोदधिघृतमधुगुहान्नां चर-
शय्यासनाभरणसंज्ञा नदास्तदा पञ्च मधुधारानयस्तथा सीताऽलकनंदाचक्षुर्भद्रेति मेरोरवश्चतुर्दिशु पतिता जाह्नवीभेदाश्चत्वार एवमिलावृतनद्यः ॥ ४४ ॥ तासु सीता पूर्वसमुद्रं चक्षुर्भद्रा पश्चिमसमुद्रं मद्रोचरसमुद्रमलकनंदा दक्षिणस्था दिशि भारते वर्षे जलनिधिं प्रविशति ॥ ४५ ॥ भारतेऽस्मिन्

ये । जहाँका जो राजा था, उसीके नामसे वह राज्य विख्यात था । इसीलिये सबका अलग-अलग नाम मैं नहीं बतला रहा हूँ ॥ ३० ॥ ॥ प्रकार एक लाख योजन लम्बे-चौड़े, अतिशय सुन्दर एवं वर्तुलाकार कमल-
पत्रके समान विराजमान जम्बूद्वीपको उन्होंने जीत लिया ॥ ३१ ॥ मेरुपर्वतके आगे ॥ लोकपालोंको आठ
पुरियाँ हैं । ॥ सब भी मेरी ॥ गलन करें । इसी विचारसे रामचन्द्रजी आगे बढ़े ॥ ३२ ॥ ये आठों
पुरियाँ अलग-अलग अढ़ाई-अढ़ाई हजार योजन लम्बी-चौड़ी हैं । मेरु पर्वत एक लाख योजन ऊँचा ॥ जोर
उसकी चोटीपर ॥ हजार योजन लम्बा-चौड़ा मैदान है । नीचे सोलह हजार योजन विस्तार है और सोलह
हों हजार योजन ॥ पृथ्वीके भीतर सभाया हुआ ॥ । और सोलह हजार योजनकी लम्बाई-चौड़ाईवाला यह
पर्वत धसूरको फूलकी तरह दीखता ॥ ॥ ३३ ॥ ॥ ३४ ॥ मेरु पर्वतके आगे पूर्वोक्त आठ पुरियोंमें ब्रह्मपुरीकी लंबाई-
चौड़ाई विस्तारमें ठीक दस हजार योजन है ॥ ३५ ॥ जिन-जिन पर्वतोंपर ॥ आठों पुरियाँ हैं, ॥ प्रत्येक
पर्वत दस-दस हजार योजन ॥ है ॥ ३६ ॥ प्रत्येक पुरीका विस्तार पर्वतके विस्तारकी तरह ही समझना चाहिए
॥ ३७ ॥ जम्बूद्वीपके भी आठ उपद्वीप ॥ ॥ ३८ ॥ जिस ॥ महाराज सगरके साठ हजार पुत्र समुद्रकी खोज रहे थे,
तब उन्होंने ही इन द्वीपोंकी रचना की ॥ ॥ ३९ ॥ ॥ आठों द्वीपोंके ॥ इस प्रकार हैं—स्वर्णग्रस्थ, चंद्रशुक्र,
आवर्त, रमणक, मन्दरहरिण, पांचजन्य, सिंहल और लङ्का ॥ ४० ॥ इनमेंसे लङ्काको छोड़कर जेप ॥ द्वीपोंमें
जाकर वहाँके राजाओंको रामने अपने वशमें कर लिया ॥ ४१ ॥ ॥ और इलावर्तको छोड़कर सातों देशोंमें
असंख्य पर्वत और नदियाँ हैं, जिनका विस्तार बतलानेमें कोई समय नहीं है ॥ ४२ ॥ इलावृत द्वीपमें जो
मुख्य-मुख्य नदियाँ हैं, उन्हें ही हम बतलाते हैं । ॥ हैं—॥ ४३ ॥ अरुणोदा, जंबूनदी, दूध, घी, मधु, गुड़, अज, वस्त्र, शय्या, आसन और आभरणसंज्ञक नदियाँ हैं । इनमें पाँच नदियाँ तो ऐसी हैं, जिनमें सदा मधुकी
बहती रहती है । मेरु पर्वतसे सीता, अलकनन्दा, चक्षु, भद्रा तथा जाह्नवी ये पाँच नदियाँ निकली ॥

वर्षे सरिच्छैलाः सन्ति बहवः ॥ ४६ ॥ तद्यथा मलयो मंगलप्रस्थो मैनाकसिकूटः ऋषभः कुटकः
सहो देवगिरिऋष्यमूकः श्रीशैलो वैकटो महेंद्रो वारिधरो विन्ध्यः अक्तिमानृक्षगिरिः पारियात्रो
द्रोणश्चित्रकूटो गोवर्धनो रैवतकः ककुभो नीलो गोकामुख इन्द्रकीलः कामगिरिश्चेत्यन्ये ■
शतसहस्रशः शैलास्तेषां नित्यप्रभवा नदा नद्यश्च संत्यसंख्याताः ॥ ४७ ॥ चद्रवशा ताम्रपर्णी
अवटोदा कुतमाला वैहायसी कावेरी वेणी पयस्विनी शर्करावती तुंगभद्रा कृष्णा वेणा भीमरथी
निर्विन्ध्या पयोध्नी तापी मही सुरसा नर्मदा चर्मण्वती सिंधुः शोणश्च नदी महानदी वेदस्मृतिः
ऋषिकुल्या त्रिसामा कौशिकी मन्दाकिनी यमुना सरस्वती दुषद्वती गोमती सरयू रोघस्वती सप्तवती
सुषोमा शतद्रुचन्द्रभागा मरुधन्वा वितस्ता असिकनी विश्वेति महानद्यः ॥ ४८ ॥ एवं शिष्य
रघुनाथको नायकः सोषद्वीपं जम्बुद्वीपं स्ववशं कृत्वा लक्षयोजनविस्तीर्णं जंबूद्वीपपरिखोपमं
समुल्लांघ्य पुष्पकस्थः प्लक्षं नाम द्वितीयं द्वीपं ददर्श ॥ ४९ ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे

पूर्वाह्ने जंबूद्वीपजयो नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः

(राम द्वारा प्लक्षादि छः द्वीपोंकी विजय)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामो ययौ श्रीमान् प्लक्षद्वीपं मनोरमम् । द्विलक्षयोजनमितं सप्तवर्षसमन्वितम् ॥ १ ॥
उपास्यो यत्र वै सूर्यो माक्षणाश्च द्रुपासकाः । द्वीपारण्याकुञ्च यत्रास्ति प्लक्षवृक्षो हिरण्यपः ॥ २ ॥
यथाऽऽग्रामाद्बहिर्द्वेपाः परिखाश्च समन्ततः । जंबूद्वीपान्च क्षारोदाद्बहिर्द्वीपस्तथा त्वयम् ॥ ३ ॥

॥ ४४ ॥ उनमेंसे सीता पूर्व समुद्रमें, धनुर्भद्रा पश्चिम समुद्रमें और अरुणनन्दा दक्षिण समुद्रमें जाकर मिलती ■
॥ ४५ ॥ भारतवर्षमें भी बहुत-सी नदियाँ और पर्वत ■ ॥ ४६ ॥ मलय, मंगलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ,
कुटक, सह्य, देवगिरि, ऋष्यमूक, श्रीशैल, वैकट, महेंद्र, वारिधर, विन्ध्य, अक्तिमान्, ऋक्षगिरि, पारियात्र,
द्रोण, चित्रकूट, गोवर्धन, रैवतक, ककुभ, नील, गोकामुख, इन्द्रकील और कामगिरि ■ पर्वत हैं। इनके
अतिरिक्त और भी बहुत-से पर्वत हैं, जिनकी तलहटीसे बहुतसे नद और नदियाँ निकली हैं। जैसे—॥ ४७ ॥
चन्द्रवशा, ताम्रपर्णी, अवटोदा, कुतमाला, वैहायसी, कावेरी, वेणी, पयस्विनी, शर्करावती, तुंगभद्रा, कृष्णा,
वेणा, भीमरथी, गोदावरी, निर्विन्ध्या, तापी, मही, सुरसा, नर्मदा, चर्मण्वती। सिंधु और शोण ये दोनों
महामद हैं। वेदस्मृति, ऋषिकुल्या, त्रिसामा, कौशिकी, मन्दाकिनी, यमुना, सरस्वती, दुषद्वती, गोमती, सरयू,
रोघस्वती, सप्तवती, सुषोमा, शतद्रु, चन्द्रभागा, मरुधन्वा, वितस्ता, असिकनी और विश्वा ये महानदियाँ हैं
॥ ४८ ॥ हे शिष्य ! इस प्रकार उपद्वीपों समेत जम्बुद्वीपको अपने वशमें करके राम एक लाख योजन विस्तृत
लवणसमुद्र, जो कि जम्बुद्वीपको साईके समान था, उसे पार करके पुष्पक विमान द्वारा प्लक्ष नामके एक
दूसरे द्वीपमें जा पहुँचे ॥ ४९ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपादेयविर-
चित्त'व्योत्सना'भाषाटीकासमन्विते आनन्दरामायणे राज्यकाण्डे पूर्वाह्ने अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीरामदासने कहा—इसके बाद श्रीमान् रामचन्द्र अतिशय मनोरम प्लक्षद्वीपको गये, ■ दो लाख
योजन विस्तृत था और उसमें ■ देश थे ॥ १ ॥ वहाँ सबके आराध्य देवता सूर्य और देवाराधक माक्षणा
थे। वहाँ सुवर्णका एक बड़ा-सा प्लक्ष (पाकड़) का वृक्ष था और उस प्लक्षके ही कारण उसका प्लक्षद्वीप नाम
पड़ा था ॥ २ ॥ जिस तरह किसी बगीचेके चारों ओर साई बना दी जाय, ठीक उसी तरह उसको चारों ओरसे

मेरोः पूर्वदिशायां वै तत्र वर्षं त्रिवाङ्मयम् । आदी ययौ रामचन्द्रः क्षणादेव विहायसा ॥ ४ ॥
 नदी यत्रारुणा नाम्नी सर्वपापघ्नाश्नी । तस्यां रघुश्रेष्ठः शीघ्रं तद्वर्षं ययौ ॥ ५ ॥
 तेन वर्षाधिपेनैव युद्धमार्मात्मुदारुणम् । तं जित्वा पञ्चमासैश्च तैश्च पार्थिवमस्तमैः ॥ ६ ॥
 पूजितो रघुनाथस्तु वज्रकूटाचलं ययौ । वज्रकूटं महाभ्रेष्ठं द्वयोः सागरयोः स्थितम् ॥ ७ ॥
 परस्परं वर्षयोश्च सीमाभूतं ददर्श नः । तं गिरिं पृष्ठतः कृत्वा वर्षं यवयसं ययौ ॥ ८ ॥
 नृम्णानदीजले स्नात्वा ययौ यावयसेधरम् । तेन संपूजितो रामस्ततस्तद्वर्षपार्थिवैः ॥ ९ ॥
 सहितः पुष्पकेनैवमुपेन्द्रसेनपर्वतम् । दृष्ट्वा कृत्वा पृष्ठतस्तं सुमद्रं वर्षमाययौ ॥ १० ॥
 आंगिरसीनदीतोये स्नात्वा स रघुनाथकः । वर्षाधिपेन कोशैः संपूजितः पार्थिवैः सह ॥ ११ ॥
 ज्योतिष्मान् गिरिं गत्वा तं कृत्वा पृष्ठतः क्षणात् । शान्तिवर्षेऽथ सावित्रीनदीतोये विगाढा च ॥ १२ ॥
 तद्वर्षेण नृपं जित्वा तथा तद्वर्षसंस्थितान् । नृपान् जित्वा क्षणादेव सुवर्णपर्वतं ययौ ॥ १३ ॥
 ततो गत्वा क्षेमवर्षं सुप्रभातानदीजले । स्नात्वा रामः क्षेमपेन स्वकोशैः परिपूजितः ॥ १४ ॥
 हिरण्यध्नीवनामानं गिरिं रम्यं विलम्ब्य च । वर्षेऽमृते तन्नृपेण पार्थिवैः परिपूजितः ॥ १५ ॥
 श्रुतं मरानदीतोये चकार स्नानमादरात् । मेघमालं गिरिं त्यक्त्वा पृष्ठतः पुष्पकेण हि ॥ १६ ॥
 वर्षेऽमये तन्नृपतिं क्षणाजित्वा रणे प्रभुः । मन्थंभरानदीतोये स्नात्वा स रघुसत्तमः ॥ १७ ॥
 सुचन्द्राल्यं नृपं प्लक्ष्मदीपेशं तीक्ष्णसंगरः । कृत्वा वै स्वपदाक्रान्तं तेन तद्दीपपार्थिवैः ॥ १८ ॥
 मणिकूटं गिरिवरं समतिक्रम्य वै क्षणात् । इक्षुरसादनामानं द्रिलक्षयोजनं वरम् ॥ १९ ॥
 तीर्त्वा तं सागरं भीमं प्लक्षस्य परिसौपमम् । तथा च शाल्मलीदीपं चतुर्लक्षमितं ययौ ॥ २० ॥
 द्वीपारूपाकृच्च यत्रास्ति शाल्मली द्वीपपादपः । यत्रोपास्यश्चसोमोऽस्ति तत्रस्थास्तदुपासकाः ॥ २१ ॥
 विस्तारद्वीपमानानि दीर्घतायाः स्मृतानि च । तत्र क्रमेण वर्षाणि कथ्यन्ते पूर्ववन्मया ॥ २२ ॥

लवण-समुद्र घेरे हुए था ॥ ३ ॥ मेरुपर्वतकी पूर्व ओर प्लक्ष्मद्वीपमें शिवजीके नामका एक देश था । रामचन्द्रजी क्षणमात्रमें आकाशमागसे वहाँ पहुँचे ॥ ४ ॥ वहाँपर पापोंका नाश करनेवाली नदी बहती थी । जिसमें उन्होंने स्नान किया और उस देशके राजाके पास गये ॥ ५ ॥ राजाके साथ रामका भयङ्कर युद्ध छिड़ गया । पाँच महीनेतक घमासान युद्ध होनेके पश्चात् वहाँका राजा रामके वशमें गया और उसने उनकी पूजा की ॥ ६ ॥ फिर वहाँसे वज्रकूटाचलपर गये । वह पर्वत दो सागरोंके बीचमें स्थित होकर दोनों देशोंकी सीमा-काय कर रहा था । उसको लीधकर नामक देशको गये ॥ ७ ॥ वहाँ उन्होंने नृम्णा नदीमें स्नान किया और देशवाले राजाके पास गये । उसने रामकी पूजा की । इसके बाद रामने यहकि श्री बहुतसे राजाओंको अपने पुष्पक विमानपर बिठा लिया और आगे उपेन्द्रसेन नामक पर्वतपर पहुँचे । उसे देखकर सुभद्र देशको गये ॥ ९ ॥ १० ॥ वहाँ आंगिरसी नदीमें स्नान करनेके पश्चात् वहाँके राजासे मिले । उसने बहुतसे धनका करके रामचन्द्र तथा उनके साथवाले राजाओंका सत्कार किया ॥ ११ ॥ फिर ज्योतिष्मान् नामक पर्वतको लीधकर शान्तिदेशको गये । वहाँ सावित्री नदीमें स्नान करके उस देशके राजाको किया और उसके आगे सुवर्ण पर्वतपर गये । वहाँसे क्षेमदेशमें पहुँचे । वहाँ रामने सुप्रभाता नामकी नदीमें स्नान किया और क्षेमदेशके राजाने रामका विधिवत् पूजन किया ॥ १२-१५ ॥ इसके अनन्तर श्रुतंभरा नदीमें स्नान करके मेघमाल नामके पर्वतको लीधते हुए राम देशमें पहुँचे । वहाँके राजाको क्षणमात्रमें जीतकर सत्यंभरा नदीमें स्नान किया । फिर सुचन्द्र नामक राजा, जो प्लक्षद्वीपका शासक था, उसे भयानक युद्धमें हराकर वहाँके बहुतसे राजाओंको अपने लेकर इक्षुरसाद नामके भयंकर समुद्रको पार किया । वह प्लक्षद्वीपकी साईके समान दो लाख योजन विस्तृत था । वहाँसे चलकर शाल्मली द्वीपमें पहुँचे, जो चार लाख योजन विस्तृत था ॥ १६-२० ॥ वहाँ एक विशालका शाल्मली (सेमर)

मेरोः पूर्वदिगारभ्य सर्वत्र क्रम उच्यते । सुरोचनं सीमनस्य तथा गमगकं शुभम् ॥२३॥
 देववर्षं पारिभद्रनाम्प्यायनमनुचमम् । अविज्ञातं सप्तमं च नम्र वर्षाणि वै क्रमात् ॥२४॥
 अनुमती सिनीवाली तथैव च मग्स्वती । कुहूश्च रजनी नन्दार्द्रा राका नद्यः प्रकीर्तिताः ॥२५॥
 शतशृङ्गो वामदेवो कुन्दश्च कुमुदस्तथा । पुष्पवर्षः पञ्चमश्च सहस्रश्रुतिरुत्तमः ॥२६॥
 स्वरसः पर्वताः सप्त ज्ञेयाः सीमासु वै क्रमात् । एतेषु समवर्षेषु वर्षपालान् विजित्य सः ॥२७॥
 जित्वा द्वीपेश्वरं रामः सुबाहुं मुदमाययी । सुरोद च चतुर्लक्षमित्रं तीर्त्वा पयोनिधिम् ॥२८॥
 कुशद्वीपमष्टलक्षमितं रामो ययौ क्षणात् । तत्रोपास्यो जानकेदाः सर्वेषां द्वीपवासिनाम् ॥२९॥
 द्वीपाख्याकुच यत्रास्ति कुशस्तत्रः सुरैः कृतः । तत्र क्रमेण वर्षाणि कीर्त्यते सप्त वै मया ३०॥
 वसुं च वसुदानं च तथा दृढरुचिं शुभम् । नाभिगुप्तं तथा सत्यव्रतं विविक्तहृत्तमम् ॥३१॥
 वामदेवं सप्तमं च वर्षं ज्ञेयं क्रमेण हि । रसकुल्या मधुकुल्या मित्रविंदा नदी शुभा ॥३२॥
 श्रुतिविंदा देवगर्भा तथा चैव धृतच्युता । मन्त्रमाला क्रमेणैव नद्यः सप्तसु वै क्रमात् ॥३३॥
 चतुःशृङ्गश्च कपिलश्चित्रकूटो मनोरमः । देवानीक ऊर्ध्वरोमा द्रविणश्चक ईरितः ॥३४॥
 एते सीमासु वर्षाणां गिरयः सप्त वै क्रमात् । एतेषु समवर्षेषु संस्थितान्पार्थिवोत्तमान् ॥३५॥
 राधवः संगरे जित्वा लब्ध्वा चानुत्तमं यशः । कुशद्वीपपतिं जिन्वा महासेनं तुतोष सः ॥३६॥
 अष्टलक्षमितं तीर्त्वा धृतोदं सागरोत्तमम् । कौचद्वीपं ययौ रामः पुष्पकेणातिभास्वता ॥३७॥
 कुशद्वीपाच्च स ज्ञेयो द्विगुणो द्वीप उत्तमः । द्वीपाख्याकुच यत्रास्ति कौशनामा गिरिर्महान् ॥३८॥
 यत्रोपास्योऽस्मयो देवो हरिस्तद्द्वीपवासिनाम् । तत्रापि सप्त वर्षाणि कथ्यन्तेऽत्र क्रमेण हि ॥३९॥
 आमं मधुरुहं मेघपृष्ठं चैव मनोहरम् । सुधामानं च आजिष्ठं लोहितार्ण्यं वनस्पतिम् ॥४०॥

वृक्ष था । इसीलिए वह देश शास्मलो द्वीपके नामसे विख्यात था । वहाँ चन्द्रदेव सबके आराध्य
 देवता हैं और वहाँके निवासी चन्द्रमाकी ही उपासना करते हैं । पीछे जिन द्वीपोंका जो विस्तार
 कहा जाये है, उन्हींके अनुसार वह भी विस्तृत था । वहकि जो देश हैं, अब उनको बतलाता हूँ
 ॥ २१ ॥ २२ ॥ मेरुके पूर्व ओरसे लेकर क्रमशः देशोंका नाम कहूँगा । जैसे—सुरोचन, सीमनस्य, रस-
 गक, देववर्ष, पारिभद्र, आप्यायन और अविज्ञात ये देश उस द्वीपमें हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥ वहाँपर अनुमती,
 सिनीवाली, सरस्वती, कुहू, रजनी, नन्दा और राका ये नदियाँ हैं ॥ २५ ॥ शतशृङ्ग, वामदेव, कुन्द, कुमुद,
 पुष्पवर्ष, सहस्रश्रुति और स्वरस ये देशके सात पर्वत हैं, जो उसकी सीमाका काम कर रहे हैं ।
 सातों देशोंके राजाओंको रामने जीत लिया ॥ २६ ॥ २७ ॥ इसके उस द्वीपके अधीश्वरको जीतकर
 आठ लाख योजनके लगभग लम्बे-चौड़े मुरासमुद्रको लाँघकर वे सुबाहुके पहुँचे ॥ २८ ॥ फिर क्षणमात्रमें
 राम आठ लाख योजन विस्तृत समुद्रको लाँघकर कुशद्वीप गये । उस द्वीपके समस्त निवासी अग्निके
 उपासक हैं ॥ २९ ॥ द्वीपके नामको स्पष्ट करनेके लिए वहाँपर एक कुशका जंगल देवताओं द्वारा लगाया हुआ
 है । अब वहाँके जो सात देश हैं, उनको बतलाते हैं— ॥ ३० ॥ वसु, वसुदान, दृढरुचि, नाभिगुप्त, सत्यव्रत,
 विविक्त और सातवाँ वामदेव नामक देश है । उन सातों देशोंमें रसकुल्या, मधुकुल्या, मित्रविंदा, श्रुतिविंदा,
 देवगर्भा, धृतच्युता तथा मन्त्रमाला ये सात नदियाँ हैं । चतुःशृङ्ग, कपिल, चित्रकूट, देवानीक, ऊर्ध्वरोमा,
 द्रविण और चक्र ये सात पर्वत उस द्वीपमें हैं ॥ ३१-३४ ॥ इन सातों देशोंके राजाओंको रामने जीतकर
 कुशद्वीपके अधिपति महासेन नामक राजाको भी उन्होंने जीत लिया । इससे रामको प्रसन्नता हुई ॥ ३५ ॥ ३६ ॥
 फिर लाख योजन विज्ञात धृतोद नामके सागरको पार करके वे अपने देदीप्यमान पुष्पक विमान द्वारा
 कौचद्वीप गये ॥ ३७ ॥ कुशद्वीपकी अपेक्षा यह द्वीप दुगुना लम्बा-चौड़ा है । वहाँ उस द्वीपका नाम सार्वक
 करनेके लिये एक विशाल क्रौञ्च पर्वत है ॥ ३८ ॥ वहाँके समस्त निवासी वरुणके उपासक हैं और विष्णुभगवान्

एतानि सप्त वर्षाणि शतव्यान्पुनरिति हि । वर्द्धमानो भोजनश्च तथोन्वर्द्धणो महान् ॥४१॥
 नन्दश्च नन्दनश्रेष्ठः सर्वतोभद्र एव च । शुक्ला सप्ताचलाः श्लोका सीमासु परमाः शुभाः ४२॥
 अमृता अमृतौघा च तथा चैश्वर्यम् । शुभाः तत्र तैर्यवर्ता रम्या वृत्तिरूपवर्ता तथा ॥४३॥
 पवित्रवतो सुपुण्या वै शुक्लेति सप्त कीर्तिताः । समवर्षेषु नद्यश्च स्नानात्पातकनाशनाः ॥४४॥
 एतेषु समवर्षेषु पार्थिवेभ्यो निजं प्रभुः । कर्मभारं पृथग्लब्ध्वा तैः सर्वैः परिपूजितः ॥४५॥
 कौचद्वीपपतिं युद्धे जित्वा तं कङ्कलोचनम् । हस्त्युत्तरधतुरगं कोशाद्यैस्तेन पूजितः ॥४६॥
 स्तुतो मागधयैश्च नितरां मुदमाप सः । नतस्तीन्वां तु क्षीरोदं कौचद्वीपममं मुदा ॥४७॥
 शाकद्वीपं ययौ रामो द्वात्रिंशल्लक्षसंमितम् । द्वीपारम्याकुञ्च यत्रास्ति शकृद्भोजनिरञ्जनः ॥४८॥
 यत्रोपास्यो वायुरूपो हरिस्तद्वीपवासिनाम् । तत्रापि सप्त वर्षाणि कथ्यन्ते पूर्वधन्मया ॥४९॥
 पुरोजवं नाम वर्षं तथा तस्य मनोजवम् । पवमानं महच्छ्रेष्ठं भूआनीकं मनो मय् ॥५०॥
 बहुरूपं चित्ररूपं विशाधार तथा स्मृतम् । एवं ममसु वर्षेषु नद्यश्चापि ब्रवीम्यहम् ॥५१॥
 अमघा च तथाऽऽयुर्दा चोभयसृष्टिरिव च । तथाऽपराजिता पुण्या शुभा पञ्चपदी स्मृता ॥५२॥
 सहस्रश्रुतिरन्या सा श्लोका निजश्रुतिस्तथा । एवं सप्तसु वर्षेषु सप्त नद्यः शुभावहाः ॥५३॥
 उरुशृङ्गो बलभद्रस्तथान्यः शतकेसरः । सहस्रस्रोतोऽन्यः प्रोक्तो देवपालो महानमः ॥५४॥
 ईशानाः पर्वताः सप्त सीमास्वेते प्रकीर्तिताः । एवं सप्तसु वर्षेषु तत्र तत्र नृपोत्तमैः ॥५५॥
 पूजितो रघुनाथः स शाकद्वीपपतिं रणे । सुन्दराख्यं नृपं युद्धे सप्ताहोर्भिर्महाबलम् ॥५६॥
 जित्वा संपूजिनस्तेन वादयामास दुन्दुभीम् । तीन्वां तं दधिमण्डोदं द्वात्रिंशल्लक्षसंमितम् ॥५७॥
 चतुःषष्टिलक्षमितं पुष्करद्वीपमात्रयी । मेखलावत्तस्य मध्ये पर्वतं कंकणोपमम् ॥५८॥
 मानसोत्तराचलाख्यं तं ददर्श गृध्रद्वयः । द्वे वर्षे तत्र वै प्रोक्ते पूर्वं रमणकं शुभम् ॥५९॥

वहकि देवता हैं । ■ द्वीपमें भी बड़े-बड़े सात देश हैं । उन्हें बतलाते हैं—॥ ३९ ॥ आम, मधुबहु, मेघपुष्प, सुषामा, धाजिष्ठ, लोहितार्ण और वनस्पति ॥ ४० ॥ ■ हो कौचद्वीपके ■ देश हैं । वर्धमान, भोजन, उपवर्द्धन, नन्द, नन्दन, सर्वतोभद्र और शुक्ल ये सात विद्याय पर्यंत चारों ओरसे उस द्वीपको घेरे हुए हैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ अमृता, अमृतौघा, आपका, तैर्यवर्ता, वृत्तिरूपवर्ता, पवित्रवर्ता और पुण्या ये पवित्र नदियाँ उन सातों देशोंमें बहती हैं । जिनमें स्नान करनेमें समस्त पातक नष्ट हो जाते हैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ इन सातों देशोंके राजाओंसे रामने शलग-अलग का लिया और उन राजाओंने रामकी पूजा की ॥ ४५ ॥ तदनन्तर रामने कौचद्वीपके अधीश्वरको संप्रामर्शमें पराजित किया और उसने बड़े-बड़े हाथी, घोड़े, रथ, ऊट आदिका उपहार पाकर पूजित हुए ॥ ४६ ॥ वहीपर तर्क करनेमें रामकी श्रुति की, जिसमें रामचन्द्रजी परम प्रसन्न हुए । इसके बाद क्षीरोदनामक समुद्रको पार करके कौचद्वीपके ■ ही घातेमें मात्र भोजनक लगभग विस्तृत शाकद्वीपमें गये । जहाँपर द्वीपके नामकी चरिताध करनेवाला एक ■ भाग शाकद्वीप है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ वहीपर वायुरूप धारण करनेवाले विष्णुधनवान्के उपासक रहते हैं । वहाँ भी सात देश हैं, जिन्हें कह रहा हूँ—॥ ४९ ॥ पुरोजव, मनोजव, पवमान, भूआनीक, चित्ररूप, बहुरूप और विशाधार ये ही सात देश हैं । अमघा, आयुर्दा, उभयसृष्टि, अपराजिता, पञ्चपदी सहस्रश्रुति तथा निजश्रुति ये नदियाँ उन सातों देशोंमें बहती हैं । उरुशृङ्ग, बलभद्र, शतकेसर, सहस्रस्रोत, देवपाल, महानम और ईशान ये सात पर्यंत उन देशोंको सीमापर स्थित हैं । उन सातों देशोंके राजाओंने रामकी पूजा की और सुन्दराख्य शाकद्वीपके अधीश्वरको उन्होंने सात दिन पर्यंत युद्ध करके हरा दिया ॥ ५०-५६ ॥ इसके बाद उसने भी रामकी पूजा की । रामके इस सुकृत्यसे प्रसन्न होकर देवताओंने दुन्दुभी वजायी । लगभग राम की पूजा पात दोलन विस्तृत दधिमण्डोद नामक समुद्रको पार करके चौसठ लाख भोजन विस्तृत पुष्करद्वीपमें पहुँचे । जिसके मध्यमें मेखलाके समान मानसाचल

अपरं तद्वातकीत्याख्यातं ते कंकणोपमम् । तद्वर्षपी नृपौ जित्वा ततो द्वीपेश्वरं नृपम् ॥ ६० ॥
 उत्तरांगाङ्ग्यं रामः परां मुदमवाप सः । ददर्श पुष्करं तत्र द्वीपाख्याकारकं वरम् ॥ ६१ ॥
 कमलामनस्य यज्ज्ञेयं ब्रह्मणः परमात्मनम् । नत्र कर्ममयं लिङ्गं ब्रह्मलिङ्गं जनोऽर्चयत् ॥ ६२ ॥
 वर्षयोर्वहुला नद्यः पापनिष्कृन्तनक्षमाः । दशमदशमानेन प्राशुर्ज्ञेयः स पर्वतः ॥ ६३ ॥
 तस्मिन् गिरौ पूर्वभागे पुरी मधवतः शुभा । देवधानीति नाम्ना सा मनोज्ञा ज्वलनप्रभा ॥ ६४ ॥
 गिरौ तस्मिन् दक्षिणस्यां दिशि संयमनी पुरी । यमराजस्य सा ज्ञेया मनोज्ञा ज्वलनप्रभा ॥ ६५ ॥
 पश्चिमे वरुणस्याथ पुरी निम्लोचनी स्मृता । उत्तरस्यां तु कौवेरी पुरी ख्याता विभावरी ॥ ६६ ॥
 मिथ्याः पुष्पस्त्रिभा ज्ञेया मेरुस्थाम्यः शुभावहाः । यथा नृपस्य स्थानानि क्षेनेकानि तथा त्विमाः ॥
 सर्वे सीमापर्वतास्ते विस्तीर्णाश्च पृथक् स्मृताः । द्विदशमयोजनैश्च प्रोच्यतां ते वदाम्यहम् ॥ ६८ ॥
 सर्वेषां दशमदशमयोजनैः प्रोच्यतेरेता । उत्तर्स्तान्वा तु शुद्धोदं पुष्करद्वीपममितम् ॥ ६९ ॥
 सीतायाः कौतुकार्थं हि म जगाम नृपुनमः । उद्गमार्थं स्यावलोकितवस्थानां नृणामपि ॥ ७० ॥

ततोऽग्रे भूमिं सार्धमसलक्षोत्तरमार्द्रकोटि ॥ १५७५००-०) परिमितां कचिन् प्राणिसहितां
 रघुनन्दनो ददर्श ॥ ७१ ॥ तैः सर्वभूमिनिवासिभिः संपूजितो रघुनन्दनो मैथिलीरंजनार्धमग्रे जगाम
 ॥ ७२ ॥ सैकचत्वारिंशत्सहस्रमसलक्षोत्तरं मार्द्रकोटि (१५७४०००) योजनपरिमितं मेरुमान-
 सोत्तराचलपौरतगले मानं ज्ञातव्यम् ॥ ७३ ॥ ततोऽग्रे आदर्शलोपमां कांचनीं भूमिं देवैर्गधिष्ठितां
 चैकोनचत्वारिंशल्लक्षोत्तरकोट्यष्ट (८३९०००००) परिमितां दृष्ट्वा देवैः संपूजितः श्रीरामचन्द्रो
 मुदमवाप ॥ ७४ ॥ ततोऽग्रे लोकालोकपर्वतं मार्द्रद्वदशकोटि (१२५००००००) परिमितं विस्ती-
 र्णोद्यतया भूमिप्राकारोपमं केनाप्यविलम्ब्य स रघुनन्दनो ददर्श ॥ ७५ ॥ यस्मिन्नष्टदिक्षु द्विरदप-
 तयः श्रवणः पुंडरीकः पुष्करचूडः कुमुदो वामनः पुष्पदन्तोऽपराजितः सुप्रतीक इत्यष्टौ दिग्गजाः

पर्वत विद्यमान है, उसे रामने देखा । उस द्वीपमें दो प्रधान देश हैं — पहला रामणक देश और दूसरा वातकी ।
 ये दोनों देश उस द्वीपके कट्टणके समान हैं । रामने उन देशोंके राजाओं तथा पुष्करद्वीपके स्वामी
 उत्तरांगको जीत लिया, जिसमें उन्हें बड़े प्रसन्न हुए । इसके अनन्तर उस द्वीपके नामका सार्वक करनेवाले
 पुष्कर सरोवरको देखा ॥ ६०-६१ ॥ वरुणकी ब्रह्मका एक विजय आसन है । यहाँपर ब्रह्माकी
 मूर्तिका लोग पूजते हैं ॥ ६२ ॥ उन देशों के नामों की नष्ट करनेमें समर्थ बहुत-सी नदियाँ बहती हैं ।
 बहुत पर्वत दस हजार योजनके उममग ऊँचे हैं । उनपर पुरी और इन्द्रकी देवधानीपुरी हैं । पश्चिम और
 वरुणकी निम्लोचनी नामकी पुरी है । उत्तर और पुष्करकी अलकापुरी है ॥ ६३-६६ ॥ मेरु पर्वतपर
 देवताओंकी जो पुरियाँ हैं, उनके आसपास उन्हें समझना चाहिए । जैसे राजाके एक नहीं, अनेक स्थान
 होते हैं, उसी तरह इनके विषयमें भी जानना चाहिए ॥ ६७ ॥ उसके आस-पास जितने सीमापर्वत हैं ।
 वे सब अलग-अलग दो-दो हजार योजन ऊँचे हैं । इस तरह सब मिलाकर दस हजार योजन उनकी ऊँचाई है ।
 इसके बाद रामचन्द्रजी शुद्धोद नामका सरोवरको पार करके सीताके कौतुक था यह कहिये कि उस द्वीपके
 निवासियोंको अपने दर्शनेमें इतना करनेके लिये काम बड़े ॥ ६८-७० ॥ डेढ़ करोड़ साढ़े सात लाख योजन
 विस्तृत भूभाग जहाँ कहीं-कहीं भक्तियोंकी आवादी थी, उस देशको देखा ॥ ७१ ॥ वहाँके निवासियोंने सीतारामकी
 पूजा की और ये लोग आगे बढ़े ॥ ७२ ॥ मेरु और मानसांतराचलके बीचमें डेढ़ करोड़ साढ़े सात लाख
 एकतालीस हजार योजन परिमित अंतराल है । इसके अनन्तर रामने शाश्वते के समान चमकती कांचनमयी
 भूमि देखी, जहाँ कि देवतायोग रहते हैं । जिसका विस्तार आठ करोड़ उनतालीस लाख योजन है । वहाँके
 भी निवासियोंने रामकी पूजा की और वे प्रसन्न हुए । इसके अनन्तर साढ़े बारह करोड़ योजन परिमित विस्तीर्ण
 तथा ऊँचे लोकालोक नामक पर्वतको देखा, जिसे कि आवश्यक कोई नहीं लाँच सका है ॥ ७३-७५ ॥ जहाँको

सकललाकास्थानहेतवः ॥ ७६ ॥ तस्मिन्नेव गिरिवरं भगवान् परममहापुरुषो महाविभूतिपतिः
सकललोकहिताय आस्ते ॥ ७७ ॥ ततः परस्ताद्योगेश्वरमतिं विशुद्धामुदाहरन्ति ॥ ७८ ॥ एवं पञ्चा-
शत्कोटिगुणिता भूमौलको ज्ञेयः ॥ ७९ ॥ एवं पञ्चविंशतिकोटीमितां भूमिं लोकालोकमच्यवर्तिनीं
स रघुनन्दनः स्ववशां कृत्वाऽऽकाशवया परिवर्त्य सर्वान् द्वीपान् पूर्ववत्पश्यन् जम्बुद्वीपं भारत-
वर्षमध्यगतां स्वां राजधानीमयोध्यां सप्तद्वीपनृपपरिवेष्टितोऽनुययौ ॥ ८० ॥ ततो रामोऽयोध्या-
निकटं गत्वा दूतैः स्वागमनं सुमंत्रं सूचयामास ॥ ८१ ॥

समायातं रामचन्द्रं भ्रुव्वा स मंत्रिमनमः । अयोध्यां भूपयामास पताकाध्वजसोरजैः ॥ ८२ ॥
वारणेन्द्रं पुष्कृत्य पौरैर्जानपदैः सह । प्रपृष्टम्य रामचन्द्रं भत्वाऽयोध्यां निनाय सः ॥ ८३ ॥
तदा निनेदुर्वाधानि ननृतुश्चाप्सरोगणाः । तुष्टुवुर्मागधाद्याश्च नटा गानं प्रचक्रिरे ॥ ८४ ॥
रामागमनमाकर्ण्य पौरनार्यः सुभूषिताः । प्रामादश्चिस्तरारूढा ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥ ८५ ॥
राजद्वारं विमानेन शनैः स रघुनन्दनः । गृह्णन् पौरोपायनानि स्त्रीभिर्नोगजितः पथि ॥ ८६ ॥
ययौ यानादवरुह्य सभायां निज आभवे । तस्थी समन्ततः सर्वैर्नृपैश्च परिवेष्टितः ॥ ८७ ॥
ततः स्थलानि सर्वेषां वस्तुमाज्ञाप्य लक्ष्मणम् । दधिभ्राद्वादि सम्पाद्य कृतकार्यममन्यत ॥ ८८ ॥
आत्मानं सकलान्पृथ्वीस्थितान् जित्वा समुद्रतान् । ततस्तः सप्तद्वीपस्थैः पार्थिवैः परिपूजितः ॥ ८९ ॥
रामः स्वभ्रातरं विप्रैर्मगतं मागताधिपम् । चकार पार्थिवैर्पुक्तो लक्ष्मणानुमतेन ॥ ९० ॥
आदावेव वसिष्ठेन कृतं भरतनाम तद् । विचिंत्येदं भावि वृत्तं जातकर्मणि निश्चितम् ॥ ९१ ॥
पूर्वमाज्ञापितं स्वोयसेवकं भरतस्य च । रक्षणे तं रामचन्द्रः कार्यान्तरमकल्पयत् ॥ ९२ ॥

आगेँ दिशाओमें ऋषभ, पुण्डरीक, पुष्करचूड, कुमुद, वामन, पुष्पदन्त, अपराजित और सुप्रतीक ये सभी लोकोंको अपने सिरपर धारण करनेवाले दिग्गज विद्यमान हैं ॥ ७६ ॥ उसी पर्वतके ऊपर परममहा-
पुरुष और महाविभूतिपति भगवान् रामस्त संसारके हितकी कामनासे रहा करते हैं ॥ ७७ ॥ इसके आगे
विशुद्ध योगेश्वरोंकी ही गति है, ऐसा लोग कहते हैं ॥ ७८ ॥ इस प्रकार सब भिलाकर करोड़गुना
विस्तृत भूमौल है । उनमेंसे पंचामको अपने वशमें करके राम आकाशमार्गसे लौटकर भारतके विविध द्वीपों-
को देखते हुए जम्बुद्वीपके भारतवर्षस्य अयोध्या नामकी अपनी राजधानीमें सातों द्वीपोंके राजाओंके साथ
आगे ॥ ७९ ॥ अयोध्याके समीप पहुँचकर रामने एक दूत द्वारा सुमन्त्रको अपने आगमनकी सूचना दी ।
सुमन्त्रने रामका आगमन सुना तो पताका, ध्वजा तथा तोरणदिकसे अयोध्याको सुसज्जित करवाया ॥ ८२ ॥
फिर एक बड़े भारी हार्पोंको आगे करके पुरवासी जनोंके साथ रामके समक्ष पहुँचे और उन्हें प्रणाम करके
अयोध्या लाये ॥ ८३ ॥ उस समय अनेक प्रकारके नजे बाजे, अप्सराएँ नाचीं, गायकीने गाने गाये और
बन्दीजनोंने स्तुति की ॥ ८४ ॥ रामका आगमन सुनकर अयोध्याकी स्त्रियाँ भीति-भीतिके वस्त्राभूषण पहनकर
अपने कोठोंपर चढ़ गयीं और वहाँसे फूलोंकी वर्षा करने लगी ॥ ८५ ॥ रामचन्द्रजी पीरे-बीरे पुरवासियोंकी
भेंटें स्वीकार करते हुए पुष्पक विमान द्वारा अपने राजद्वारपर पहुँचे । रास्तेमें स्त्रियोंने रामकी आरती
उतारी ॥ ८६ ॥ राजद्वारपर पहुँचे तो पुष्पक विमानसे उतरकर सभाभवनमें गये और अपने सिंहासनपर
बैठे । उनके साथ जो राजे आये थे, वे भी सिंहासनके चारों ओर बैठ गये ॥ ८७ ॥ इसके अनन्तर
सब मेहमानोंको ठहरनेके लिए खान वसलानेके निमित्त लक्ष्मणसे कहकर राम दधिभ्राद्वादि साथीमें
लगा गये । इस प्रकार पृथ्वीपर रहनेवाले उद्भूत राजाओंको परास्त करके रामने अपनेको कृतकृत्य समझा ।
इसके अनन्तर उन सातों द्वीपोंके राजाओंने फिरसे रामकी पूजा की ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ लक्ष्मणसे
सलाह लेकर रामने भरतको भारतवर्षका अधिपति बना दिया ॥ ९० ॥ इस भावी बातको सोचकर ही
वसिष्ठने नाम भरत रक्खा था ॥ ९१ ॥ पहले जिस सेवकको रामचन्द्रजीने भारत देखकी रक्षाके

जंबूद्वीपतिं रामश्चकार स्वसुतं लवम् । लवोऽपि विजयं स्वीयसचिवं चाकरोन्मुदा ॥९३॥
 नवस्वपि च वर्षेषु यातायातं पुनः पुनः । चकार विजयेनैव पुनः कार्यार्थमादरात् ॥९४॥
 शत्रुघ्नो यौवराज्ये स्वे मरतेनाभिषेचितः । यौवराज्यपदे स्वीये कृत्वा रामः कुशं सुतम् ॥९५॥
 चकार लक्ष्मणं मुख्यं सचिवेषु सुमन्त्रिणम् । समद्वीपपतिः श्रीमान्स्वयमासीद्रघुसमः ॥९६॥
 स्वस्वकार्येषु सर्वे ते शासन् तत्परमानताः । ततः सर्वाङ्गपान्पूज्य ददावाङ्गां रघूद्वहः ॥९७॥
 ततस्ते राघवं दत्त्वा ययुः स्वं स्वं स्थलं मुदा । ततो भारतवर्षस्य परामर्शं मुदा ॥९८॥
 चकार भरतः श्रीमान् भरताधिपतिः प्रभुः । जंबूद्वीपपरामर्शं स चकार लवस्तथा ॥९९॥
 समद्वीपपरामर्शं रामचन्द्रः कुशेन च । लक्ष्मणेन सर्वेषां स्वयमेवाकरोत्प्रभुः ॥१००॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे
 कुशादिजंबूद्वीपविजयदर्शनं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः

(रामका संन्यासी, शूद्र तथा गृध्रको दण्डदान)

श्रीरामदास उवाच

एकदा राघवः सारमेयदीर्घरवं मुहुः । राजद्वाराद्वहिः श्रुत्वा समास्थो दूतमब्रवीत् ॥१॥
 कथं दीर्घस्वरेणैव श्लाघ्यं क्रोशति पश्यताम् । तथेति रामदूतोऽपि गत्वा राजसभाद्वहिः ॥२॥
 न्यवारयत्सारमेयं राजद्वारात्स्वधर्षणैः । रामं नत्वाऽब्रवाद्वाक्यं तूष्णीं श्लाघ्यं क्रोशति प्रभो ॥३॥
 मया निवारतो दूरं गतः गवणांतक । ततो द्वितीयदिवसे तच्छब्दान् राघवोऽभृणोत् ॥४॥
 दूतेन पूर्ववच्चापि सारमेयो निवारितः । ततस्त्वर्णीये दिवसे तद्राषानभृणोत्प्रभुः ॥५॥
 तदातिचकितः प्राह लक्ष्मणं पुरतः स्थितम् । श्लाघ्यं दिनत्रयं बन्धो कथं क्रोशति संततम् ॥६॥

लिए नियुक्त किया था, उसे दूसरे काममें लगा दिया ॥ ९२ ॥ इसके अनन्तर अपने लव नामक बेटेको जंबू-
 द्वीपका अधिपति बनाया । लवने विजय नामके उस सेवकको मंत्री बना लिया, जिसे कि रामचन्द्रजीने कुछ
 दिन ■■■ भरतखण्डकी देखभाल करनेके लिए नियुक्त किया ■■■ ॥ ९३ ॥ लव विजयके साथ कार्यवाही सर्वों
 द्वीपोंमें बराबर आया-जाया करते थे ॥ ९४ ॥ भरतने अपनी जगह शत्रुघ्नका युवराजपदपर जमिंदार कर
 दिया । रामने कुशको युवराजके पदपर अभिषिक्त करके लक्ष्मणकी अपना सर्वश्रेष्ठ मंत्री बनाया । किन्तु
 सातों द्वीपोंके अधिपति राम स्वयं थे ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ वे ■■■ लोग अपने कार्योंकी बड़ी तत्परताके साथ निभाते थे ।
 इसके अनन्तर रामने साथ आये हुए राजाओंकी अपने देश जानेकी आज्ञा दी और वे रामचन्द्रजीको प्रणाम
 करके अपने-अपने देशको चले गये ॥ ९७ ॥ भारतवर्षका शासन भरतजी प्रसन्नतापूर्वक करते थे । जंबूद्वीपका
 शासन लव करते थे और भरत, कुश तथा लक्ष्मणसे सलाह लेकर रामचन्द्रजी सातों द्वीपोंका शासन कर रहे
 थे ॥ ९८-१०० ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित-
 'व्योत्सना'भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—एक समय रामचन्द्रजी सभामें बंटे थे । सहसा कई बार एक कुत्तेके रोनेकी
 आवाज सुनी तो दूतसे बोले—॥ १ ॥ देखो तो इतने ऊँच स्वरमें कुत्ता क्यों चिल्ला रहा है । रामके आज्ञानुसार
 दूत कुत्तेके पास गया । उसे धमकाकर वहाँसे हटा दिया और राममें जाकर बड़ा—हे रावणान्तक ! उसे
 मैंने दूर भगा दिया है, अब वह नहीं चिल्लायेगा । दूसरे दिन फिर रामने उसी प्रकार उस कुत्तेका रोदन
 सुना तो दूतसे भगवाया ॥ २-५ ॥ तीसरे दिन फिर उसका रुदन सुनकर रामने लक्ष्मणसे कहा—आज तीन दिनसे

किं दुःखं सारमेयाय प्रष्टव्यं मत्पुरस्त्वया । तथेति लक्ष्मणो दूतानव्रीत्संभ्रमान्वितः ॥७॥
 समामाकारणीयः आ युष्माभिस्त्वद्य सादरम् । तथेति रामदूतास्ते सारमेयं वचोऽब्रुवन् ॥८॥
 आकारितोऽसि रामेण त्वमेहि राघवातिक्रम । त्वदेवं कलितं चाद्य पूर्वपुण्योदयेन हि ॥९॥
 रामदूतवचः श्रुत्वा तुष्टः आ तान्वचोऽब्रवीन् । देवगृहे यत्तवाटहोमशालासु ॥१०॥
 वृन्दावने समायां च मठे पार्थिवसङ्गृहे । गोष्ठे पुण्यस्थले पुण्ये तीर्थे देवालयेऽपि च ॥११॥
 पाकस्थाने रतिस्थाने स्नानसंन्यास्थलादिषु । गन्तुं नार्हा वयं पापयोनिस्था वाक्यतां प्रभुः ॥१२॥
 ततस्तौ विस्मयाविष्टास्तद्वाक्यं राममब्रुवन् । राघवस्तद्वचः श्रुत्वा विहस्य सम्भ्रमेण च ॥१३॥
 आनीयतां पादुके मे त्विति दूतान् वचोऽब्रवीत् । ततस्तेरपिते दिव्ये पादुके कृत्य पादयोः ॥१४॥
 रत्नदण्डं करे धृत्वा शूनैः सर्वैः समन्वितः । मुद्रिकारत्नद्वारेण मणिद्वयविराजितः ॥१५॥
 मुकुटेनावतसेन केपूराभ्यां समन्वितः । नूपुराभ्यां कंकणभ्यां कुण्डलाभ्यां सुशोभितः ॥१६॥
 पदकैः भृङ्खलाभिश्च वरचर्चविराजितः । राजद्वाराद्वहिर्देशे सारमेयातिकं ययौ ॥१७॥
 कृत्वा दण्डं स्वकक्षेऽथ किञ्चिद्वक्त्रस्थितः प्रभुः । कृत्वा वामजान्त्रघो स्वां जंघां रामः स दक्षिणाम् ॥१८॥
 अब्रवीत्सारमेयं तं किञ्चित्कृत्वा स्मिताननम् । मदग्रे वद किं दुःखं सारमेय तवास्ति यत् ॥१९॥
 मद्राज्ये सहसा माऽस्तु दुःखं केषां कदापि च । इति रामगिरं श्रुत्वा सारमेयः पुनः पुनः ॥२०॥
 नमस्कृत्वा राघवेन्द्रं छिन्नपादोऽब्रवीन्मुदा । मदयं श्रमिनोऽस्यत्र चिरं जीव दयानिधे ॥२१॥
 निरपराधो यतिना ग्रान्णाऽत्राहं प्रसाहितः । छिन्नपादोऽस्मि राजेन्द्र त्वामद्य शरणं गतः ॥२२॥
 तद्वाक्यं राघवः श्रुत्वाऽऽकारयामास दण्डिनम् । रामाश्रया यतिश्चापि विह्वलो राघवं ययौ ॥२३॥
 दृष्ट्वा यतिं तं श्रीरामस्तदा वचनमब्रवीत् । स्वामिन् किमर्थं युष्माभिश्छिन्नः पादोऽस्य वै शुनः ॥२४॥

यह कुत्ता क्यों राजदरबारके समक्ष आकर रोता है। मेरे सामने बुलाकर पूछो उसे किस कष्ट है। लक्ष्मणने भी धवड़ाकर दूतोंको आज्ञा दी कि जाओ और आदरपूर्वक उस कुत्तेको सामने से आओ। "बहुत अच्छा" कहकर दूत कुत्तेके पास पहुँचे और उससे कहने लगे—॥ ९-८ ॥ आज पूर्वसंघित पुण्योत्से तुम्हारा भाम्योदय हुआ है। चलो, श्रीरामचन्द्रजी तुम्हें बुला रहे हैं ॥ ९ ॥ दूतोंकी बात सुनी तो प्रसन्न होकर कुत्ता कहने लगा—देवालय, यज्ञशाला, हवनगृह, तुलसीका बगीचा, समा, मठ, राज-भवन, गोशाला, पवित्र तीर्थ, रसोईघर, रतिस्थान तथा स्नान-संन्यादि करनेके स्थानोंपर जानेके अवस्य हैं। क्योंकि मेरा पापयोनिमें हुआ है। मुम आकर रामसे कह दो ॥ १० ॥ ११ ॥ इतना सुनकर दूत बड़े विस्मित हुए और जैसा उसने या, जाकर रामको सुना दिया। राम उसकी बात सुनकर हँस पड़े और दूतोंसे कहा कि हमारा सहाज ले आओ! दूतोंने आज्ञाका किया। रामने सहाज पहिना। एक रत्नजटित छड़ी हाथमें ली और लोगोंके साथ उस कुत्तेकी ओर चले। उस रामचन्द्रके हाथोंमें अंगूठियाँ थीं, रत्ननिर्मित हार गलेमें था, मस्तकपर मुकुट कानोंमें कुण्डल झूल रहे थे, मुद्राओंमें विजायठ और कङ्कण था। गलेमें हार तथा सिकड़ियाँ शोभित हो रही थीं। इनके सिवाय और भी कई प्रकारके आभूषण और सुन्दर वस्त्र लुभोभित हो रहे थे। इस तरह सज-सजकर राम कुत्तेके पास जा पहुँचे ॥ १२-१७ ॥ वहाँ पहुँचे छड़ी वगलमें ली और बाएँ धुटनेकी तमिक मोड़कर कुछ तिरछे खड़े हो गये ॥ १८ ॥ पुश्कारकर राम कुत्तेसे बोले—हे सारमेय! तुम्हें जो कुछ हो, वह मुझे बताओ ॥ १९ ॥ क्योंकि चाहता हूँ कि मेरे राज्यमें किसीको किसी प्रकारका न हो। तरह प्रभुकी सुनकर कुत्तेने रामको अनेकशः प्रणाम किया और हर्षित होकर कहने लगा—हे दयानिधि। आपने मेरे लिए बड़ा कष्ट किया, जो यहां पधारे। महाराज! मैंने कोई अपराध नहीं किया था। फिर भी एक संन्यासीने पत्थरसे मुझे ऐसा भारा कि जिससे मेरा पैर टूट गया। इसीसे दुःखी होकर मैं आप की शरणमें आया हूँ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ उसकी सुनकर रामने उस संन्यासीको बुलवाया।

तद्रामवचनं श्रुत्वा यतिः प्राह रघूत्तमम् । भिक्षार्थं भ्रमतो मार्गे भिक्षाशं स्पर्शितं ॥२५॥
 शुनाऽनेन राघवेन्द्र मध्याह्ने क्षुधितस्य च । मयाऽतः क्रोधचित्तेन शुनेऽस्मै ह्यपराधिने ॥२६॥
 धर्षितुं चोपलः क्षिप्तस्तेन भिन्नं पदं शुनः । तद्यतेर्वचनं श्रुत्वा पुनस्तं प्राह राघवः ॥२७॥
 ज्ञानहीनः पशुश्चायं भक्ष्यं स्वीयं निर्गन्धं च । स्पर्शितस्त्वा तस्य दोषो नैवायं वेद्ययहं पते ॥२८॥
 स्वमेवास्यापराधी तदण्डं सोढुमर्हसि । इत्युक्त्वा सारमेयं तं राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥२९॥
 यतिश्चायं तेऽपराधी तत्र हस्तेऽर्पितो मया । यं स्वमिच्छसि वै कर्तुं तस्मै दण्डं सुखं कुरु ॥३०॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा सारमेयोऽब्रवीत् प्रभुम् । शिवालयधिपत्ये च स्थापनीयो यतिः प्रभो ॥३१॥
 तथेति रामचन्द्रोऽपि शिविकायां निवेष्ट्य तम् । सख्यसख्यचन्दनार्घ्यं सम्पूज्याथ यतिं मुदा ॥३२॥
 वाद्यघोषैर्नर्तनार्घ्यैरुत्सवैश्च शिवालयम् । नीत्वा शिवालयस्थाधिपत्ये संस्थापयत्प्रभुः ॥३३॥
 तदाऽज्ञानाद्यतिर्देवं कलितं चेत्यमन्यत । ततो रामो जनैर्युक्तः स्वां सभां संविदेश ह ॥३४॥
 तत्सर्वं कौतुकं दृष्ट्वा पीराः प्रोचू रघूत्तमम् । कथं शुनाऽथ यतये शिषेदृक्साधिता प्रभो ॥३५॥
 अन्नार्थं भ्रमतस्तस्य यतेर्दत्तं पदं महत् । तेनातिमौख्यं सञ्जातं यतये शिक्षितं न तत् ॥३६॥
 तत्पौरवचनं श्रुत्वा राघवस्तान् वचोऽब्रवीत् । प्रष्टव्यः श्वा तु यूष्मामिदं सन्देहं हरिष्यति ॥३७॥
 तथेति सारमेयं तं पप्रच्छुर्नागराश्च तत् । तान्प्रोवाच सारमेयः मृणुजं यन्मयोच्यते ॥३८॥
 कृपिसञ्जातधान्यपीषखलसम्मनकाणिः । शिवालयमठारामदानग्रामाधिकारिणः ॥३९॥
 अनाथस्त्रीवालविचहारिणः क्रूरनिःस्वनाः । गोविप्रशिवचित्तस्य द्वारिणोऽन्यायकारिणः ॥४०॥

रामके आज्ञानुसार यह संन्यासी भो विह्वल भावसे [] पास आया ॥ २३ ॥ रामने उसको प्रणाम किया और कहने लगे—कहिए स्वामीजी ! आपने किस अपराधसे [] कुत्तेका पैर तोड़ डाला ? ॥ २४ ॥ उसने उत्तर दिया कि मैं भिक्षा लिये रास्तेसे जा रहा था । तभी इसने मेरा भिक्षात्र [] दिया । यह मध्याह्नका समय था । मैं भूखा था । इसके उस अपराधसे मुझे क्रोध आ गया और इसको धमकानेकी इच्छासे मैंने एक पत्थर फेंककर मारा । यह इसके पैरमें लगा, जिससे इसका पैर टूट गया । यतिकी बात सुनकर राम उससे कहने लगे— ॥ २५-२७ ॥ यह एक ज्ञानविहीन पशु है । यदि इसने अपना भक्ष्य पदार्थ देवकर आपको छू दिया तो मैं इसमें इसका कोई दोष नहीं समझता । यह तो इसकी स्वामाविक प्रकृति है । इसलिए आप ही इसके अपराधी हैं । यतिके प्रति इतना कहकर कुत्तेसे कहने लगे—यह संन्यासी तुम्हारा अपराधी है । मैं इसे तुम्हें सौंपता हूँ । तुम जो दण्ड चाहो, इसे दे सकते हो ॥ २८-३० ॥ रामकी बात सुनकर कुत्तेने कहा—इसे किसी शिवालय-का महन्थ बना दिया जाय ॥ ३१ ॥ रामने उसकी बात स्वीकार कर ली और सुन्दर वस्त्र, चन्दन तथा माला आदिसे यतिको सुशोभित करके एक पालकीमें बिठाया और विविध प्रकारके वाजे बजाते हुए उत्सवके साथ एक शिवालयमें ले गये और उसे वहाँका महन्थ [] दिया ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ उस समय अज्ञानतावश यतिने अपना भाग्योदय समझा । कुछ देर बाद रामचन्द्रजी अपने साथियों समेत राजसभामें लौट आये ॥ ३४ ॥ इस प्रकारका कौतुक देखकर कितने ही उत्सुक नागरिकोंने रामसे कहा—हे प्रभो ! इस कुत्तेने यतिको इस प्रकारका दण्ड क्यों दिया ? यतिने तो पत्थरसे उसकी टांग तोड़ दी और जब आपने कुत्तेको उसके कियेका दण्ड देनेके लिए कहा तो उसने दण्डके स्थानपर यतिको महन्थ [] दिया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इस [] नागरिकोंकी [] सुनकर रामने कहा कि [] लोग उस कुत्तेसे ही पूछ लें कि उसने ऐसा क्यों किया । यह आप लोगोंकी शङ्काका भली भाँति समाधान कर देगा ॥ ३७ ॥ रामके आज्ञानुसार उन लोगोंने कुत्तेसे पूछा तो उसने कहा—मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे साबवान होकर आप लोग सुनें ॥ ३८ ॥ छेतमें उत्पन्न अन्न रखानेवाले, शिवालय, मठ, वगीचा, दानग्राम इन स्थानोंके अधिपति, अनाथ स्त्री तथा बालकोंके धनका अपहरण करनेवाले, गाली-गलौज करनेवाले, गो-विप्र तथा शिवके लिए अर्पित धनका अपहरण करनेवाले, धन्याय करनेवाले, राजाके धरपर पहुँचे हुए वाचकको भगानेवाले, दूसरेका धन हड़पनेवाले, प्रायश्चित्तके

नृपगैहे प्रविष्टानां याचकानां निवारिणः । परद्रव्यापहरिणः प्रायश्चित्ताधिकारिणः ॥४१॥
 विप्रभोजनद्रव्यस्य होमद्रव्यस्य हारिणः । बहुद्रव्यापहर्तारश्चैते सर्वेऽन्यजन्यनि ॥४२॥
 गच्छन्ति वै शुनो योनिं मत्पद्मेनद्रव्यो मम । मया मठाधिपत्याञ्च लब्धा योनिः शुनः स्वयम् ॥४३॥
 अतो मयाऽद्य यतये शिशितुं पदमर्पितम् । इति तद्वाक्यमाकर्ण्य नागराश्छिन्नमंशयाः ॥४४॥
 ते ययुः स्वीयगैहानि वयौ श्वाऽपि निजस्थलम् । देहांते स यतिर्जातः शुनो योनौ स्वकिञ्चिपात् ॥४५॥
 आप स श्वा शुभां मुक्तिं मुक्तवादौ स्वीयकिञ्चिपम् । न श्रेयोऽयं यतिः शिष्य साकेतेऽत्र मृतस्त्विति ॥४६॥
 स्थलान्तरे मृतश्चायं यतः कार्यार्थमात्मनः । अयोध्यायां मृतानां पुनर्जन्म विधत्ते ॥४७॥
 क यतिः सारमेयत्वं क स श्वा गतिश्च सा । गहना कर्मणश्चात्र गतिर्हेया महात्मभिः ॥४८॥
 यतिः सारमेयः क न्यायश्चेत्वं रमापतेः । आसीत्सत्यः सदैवात्र नान्यायस्तन्मुखेक्षणात् ॥४९॥
 अयैकदा साकेतवासिनो भूसुरस्य च । पञ्चत्वं पञ्चवर्षीयः पुत्रः प्राप्तः शिशुः प्रियः ॥५०॥
 तदा विप्रः सपत्नीकस्तत्प्रसूतमरुणोदये । राजद्वारं समानीय रुरोदोर्ध्वैः स्वरैर्गुह्य ॥५१॥
 अत्रवीत् पुत्रशोकेन व्यथितः क्रोधसंयुतः । सीतामालिङ्ग्य राजेन्द्र कथं स्वं निद्रितोऽसि हि ॥५२॥
 त्वद्राज्येऽधर्मतः कस्य मृतो मे बालकः प्रियः । त्वत्तोऽधर्मोऽयवान्याञ्च जातोऽधर्मो न वेद्यद्वम् ॥५३॥
 नृपे पापिनि श्रियन्ते नरा क्षन्पापुषः श्रुतम् । यस्य राज्ये जनैः सर्वेऽधर्मः क्रियते भुवि ॥५४॥
 सोऽपि श्रेयो नृपस्यैव यतस्तेषां न शिद्धितम् । अतस्तेऽधर्मिणो राज्ञो राज्ये मंज्यं शिशुर्मृतः ॥५५॥
 उपायं चितयस्वास्य जीवनेऽद्य जवान् नृप । नोचेदावां चितिं चारोहावस्तनयेन हि ॥५६॥
 स्मर वृषं भ्रवणस्य हेतोर्यज्जनकाय ते । जातं शापादिकं पूर्वं तद्वदत्रापि ते भवेत् ॥५७॥

लिए दिये धनको ग्रहण करनेवाले, ब्राह्मणभोजनके लिए जुटाई सामग्रियोंसे चोरी करनेवाले और बेईमानी करके अधिक धन इकट्ठा करनेवाले लोग मरकर दूसरे जन्ममें कुत्तेकी योनिमें जन्म पाते हैं ॥ ३६-४२ ॥ इस प्रसङ्गमें मैंने जो बातें कहीं हैं, वे सब सत्य हैं। मैंने स्वयं मठाधिपत्यके कारण ही कुत्तेकी योनि पायी है ॥ ४३ ॥ उस संन्यासीको उसकी करनीका फल देने हो के लिए, मैंने उसे यह पद दिलाया है। इस प्रकार उसकी बात सुनकर सारे पुरवासियोंका सन्देह निवृत्त हो गया और सब लोग अपने-अपने घरोंको चले गये। कुत्ता भी अपने स्थानको चला गया। उस संन्यासीने मठाधिपत्यके मदमें आकर जो पाप किये, उनसे जन्मान्तरमें उसे कुत्तेकी योनि मिली ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ वह कुत्ता जिसने कि रामचन्द्रजीके यहाँ दावा किया था, उसे कुछ दिनों शुभ गति मिली। किन्तु वह यति जो अपने पापोंसे कुत्ता हुआ था, अयोध्यामें मरकर किसी दूसरे स्थानपर मरा। इस लिए उसे मुक्ति नहीं मिली। जो लोग अयोध्यामें शरीर त्याग करते हैं, जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं। कर्मकी गति बड़ी विचित्र होती है। कहीं वह कुत्ता होकर भी मुक्त हो गया और वह यति होकर भी कुत्ता हो गया ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ कहीं कुत्ता और कहीं संन्यासी। रामने वन दोनोंका किञ्चना अच्छा न्याय किया। सब तो यह है कि रामके राज्यमें किसीका मुँह देखकर न्याय नहीं किया जाता था। बल्कि जो बात होती, वही होती थी ॥ ४९ ॥ एक समय अयोध्यामें एक ब्राह्मणके पञ्चवर्षीय बालककी मृत्यु हो गयी ॥ ५० ॥ सवेरा होता ही ब्राह्मणदम्पती बच्चेके शवको लेकर राजद्वारपर आये और बड़े और-जोरसे रोने लगे ॥ ५१ ॥ पुनश्चोकरे कुपित होकर उस ब्राह्मणने कहा हे राम। सीताको गोदमें लेकर तुम अब भी आनन्दके पड़े सो रहे हो ॥ ५२ ॥ तुम्हारे राज्यमें किसीके अचर्मसे मेरे बच्चेकी मृत्यु हुई है। इसमें तुम्हारा कोई अघर्म अथवा किसी दूसरेका। यह मैं नहीं ॥ ५३ ॥ मैंने ऐसा सुना कि राजाके अघर्म होनेसे ही उसके राज्यमें अकाल मृत्यु होती है। जिस राजाके राज्यमें अघर्म होता है, उसका भी कारण राजा ही होता है। क्योंकि वह अपनी प्रजाको अच्छी तरह शिखा नहीं देता। इससे यह निश्चित है कि तुम अघर्म हो। इसी लिए मेरे बालककी मृत्यु हुई है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ अतएव हे राजन्! इसके लिए शीघ्र कोई उपाय करो, नहीं तो हम दोनों (स्त्री-पुरुष)

ततो विप्रप्रिया प्राह संतां प्रोच्यस्वरेण हि । कथं त्वं पतिमालिङ्ग्य निद्रिताऽसि सुप्तं शुभे ॥५८॥
 त्वमप्यसि पुत्रवती मे दुःखं चात्मनः कुरु । उपायं कारयस्वाद्य भर्ताऽस्य जीवने शिशोः ॥५९॥
 इति तदपतीवक्यं श्रुत्वा सर्वे पुरीक्षयः । आसन्नव्यग्रचित्तास्ते श्रंतमाचार्यं सस्थिताः ॥६०॥
 सीतारामावपि तयोर्वाक्यं श्रुत्वाऽतिविह्वला । त्रिनिर्गन्तौ रतिशालावहिस्रद्दुःखदुःखिनी ॥६१॥
 निवार्य बन्दिगीतानि राजद्वारं तयोः पुरः । वेगेन जम्भतुः पङ्क्तिः सीतासमी गतश्रियौ ॥६२॥
 दृष्ट्वा सीतां च रामं च तौ शोकं चक्रतुष्टुदुः । तत्राश्वास्य रामचन्द्रस्तदाऽऽह गद्गदाक्षरः ॥६३॥
 मा शोकं कुरुतश्चोर्मा मदिरं मृणुतस्त्रिति । कुत्रोपायं हि युवयोः पुत्रं संजीवयाम्यहम् ॥६४॥
 न जीवितश्चेद्युवयोः पुत्रस्तर्ह्यर्पये कुशम् । गिरं मत्प्राप्तिमां चोर्मा पश्यतस्त्वह मेऽद्य हि ॥६५॥
 ततः सीता विप्रपत्नीमाश्वासयत् प्राह गिरं शुभाम् । रामेण ते प्रतिज्ञातं कुशदानेन भामिनि ॥६६॥
 अहमप्यद्य ते रक्षिष्ये तव दुःखस्य शान्ते । न जीवितश्चेद्रामेण मयाऽयं त्वच्छिशुः प्रियः ॥६७॥
 तर्हि त्वद्दुःखशान्त्यर्थमर्पयेऽहं त्वं प्रियम् । ताम्यां कुशलवास्यां त्वं पुत्रदूतं न्यजिष्यसि ॥६८॥
 भजिष्यसि त्वं मत्सौख्यमतः शोकं कुरुष्व मा । ततः प्राह द्विजं रामस्त्वं पत्न्याऽत्र स्थितो भव ॥६९॥
 मा कुरुष्व सुदुःखेन त्वत्पुत्रं जीवयाम्यहम् । इत्युक्त्वा लक्ष्मणेनैव तलद्रोण्यां शवं शिशोः ॥७०॥
 निधाय कुमिदुर्गन्धदुष्कुणप्रशान्तये । स्वयं स्नात्वा निन्यग्रिधिं चाकरोत्स्थिन्नमानसः ॥७१॥
 ततः सभासंस्थितः सन् वसिष्ठं प्राह राघवः । राज्यं श्रामति धर्मेण तत्राप्यं वै शिशुः कथम् ॥७२॥

अपने प्रिय पुत्रके साथ चित्तमें जलकर [] हो जायेंगे ॥ ५६ ॥ यवणके वृत्तान्तका स्मरण करो । जिस प्रकार तुम्हारे पिता द्वारा अपने पुत्रवधक दुःखसं दुखों होकर उसके मां-बापन दशरथका अप देकर अपने प्राण त्याग दिये थे, वही दशा हमारी भी होगी ॥ ५७ ॥ इसके अनन्तर ब्राह्मणाने आरोक साथ साताका संबोधित करके कहा—हे शुभे । तुम क्यों पतिका आलिंगन करके आनन्दके साथ सा रहा हा ? तुम भी पुत्रवती हो । इस कारण मेरे दुःखको और ध्यान देकर मेरे बन्धका जिलानेके लिए अपन पात द्वारा साध कोई उपाय करवाओ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ इस प्रकार उस विप्रवर्ष्ताक वाक्य सुनकर वहाँक सब पुरवासी व्याकुल हो उठे और [] शवको चारों ओरसे घेरकर सड़े हा गये ॥ ६० ॥ उधर राम तथा साता दाना ब्राह्मणका बासीसे विह्वल होकर रतिशालामे बाहर निकल आये । नीचे आकर रामने बन्दाजनाका स्तुति तथा गान-बजानवालोंक गाने-बाजे रोक दिये और वेगके साथ दौड़त हुए उन दोनोंक पास पहुँच । उस समय उस दुःखसे सीता तथा रामका मुख कुम्हला गया था ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ महाराज राम तथा साताका बलकर वे दोनों और भी जोर-जोरसे चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगे । उनका आश्वासन देते हुए गद्गद कण्ठसे रामने कहा कि आप लोग इतने व्याकुल न हो, मैं जो कुछ कह रहा हूँ उसे सुनें । मैं कोई उपाय करके तुम्हारे पुत्रको जीवित करूँगा ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ यदि तुम्हारे बेटेको जीवित न कर सकूँगा हा मैं अपना पुत्र कुश आपको दे दूँगा । मेरी बातको सत्य समझकर आप विश्वास कर ॥ ६५ ॥ इसके अनन्तर साताने विप्रपत्नीके पास जाकर कहा—हे भामिनी ! तुम सुन रहा हा कि रामने क्या प्रतिज्ञा की है ? तुम्हारे संतोषके लिए मैं भा प्रतिज्ञा करती हूँ कि यदि रामचन्द्रजी आपके बन्धे को जीवित न कर सकें तो मैं अपने छोटे पुत्र लवका दे डालूँगी । उन दाना पुत्रोंके पानसे तुम्हारा पुत्रताक दूर हो जायगा ॥ ६६-६८ ॥ अब शोक मत करो । तुम्हारा पुत्र न जिया तो अभी जा सुख मैं भाग रही हूँ, [] तुमको प्राप्त होगा । इसके अनन्तर रामने ब्राह्मणसे कहा कि आप अपना पत्नीक साथ यहाँ बैठे और किसी प्रकारका खेद न करें । मैं आपके बेटेको जीवित करूँगा । इनका कहकर रामने लक्ष्मणसे कहकर एक तेलसे भरी हुई मौका भेगायी । जिससे शव सड़-गले नहीं, उससे दुर्गन्ध न निकले या कीड़े न पड़े । इस विचारसे उस शवको उसमें रखवा दिया और स्वयं लिश होकर सम्भारि नित्यकृत्य करनेको चले गये । इसके अनन्तर सभामें बैठकर रामने अपने कुलगुरु वसिष्ठसे कहा कि जब मैं धर्मपूर्वक राज्यशासन कर रहा हूँ तब

बाल्यत्वे पञ्चतां प्राप्तमन्त्रोपायं विचिन्त्यनाम् । इति यावद्गुरुं रामः प्रोवाच तावदम्बरात् ॥७३॥
 नारदः प्रययौ वाणां रणयन् तत्सभां जवात् । प्रत्युद्गम्याथ तं रामः परिपूज्य यथाविधि ॥७४॥
 संश्राव्य सकलं वृत्तं पुनः पप्रच्छ तं मुनिम् । त्वयोपायोऽत्र वक्तव्यः शिशोश्चास्य प्रजीवने ॥७५॥
 पुत्राभ्यां हि प्रतिज्ञातं द्विजाय सीतया मया । किमर्थं मम राज्येऽधो मृतस्त्वीदृङ् वेषमहम् ॥७६॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा राघवं प्राह नारदः । राम त्वद्विषयेऽधर्मं न कोऽप्याचरते जनः ॥७७॥
 भूम्यां सर्वत्र द्रष्टव्यं त्वया मत्वाऽद्य मद्विरा । यद्यप्यहं विज्ञानामि भूम्यां वृत्तं च जानतः ॥७८॥
 तथापि जनशिक्षार्थं त्वामेव प्रेषयाम्यहम् । त्वं दृष्ट्वाऽधर्मनिरतं जनं शिक्षय सादरम् ॥७९॥
 अधर्मोऽच्छेदनेनायं जीवयिष्यति वै शिशुः । तथेति राघवश्रोक्त्वा विसर्ज्य नारदं मुनिम् ॥८०॥
 सीतया नगरैः सर्वैर्भ्रातृभिर्गुरुणा सह । पुत्राभ्यां मन्त्रिभिर्गुक्तः पुष्पकं चारोह सः ॥८१॥
 एतस्मिन्नन्तरेऽग्रंऽभून्महान्कोलाहलस्तदा । तं श्रुत्वा चकितो रामः ददर्श समन्ततः ॥८२॥
 तावद्दर्शं पुरतः पारैः मवेष्टिनां स्त्रियम् । अवमप्यपरं मृग्वेरतश्च समागतम् ॥८३॥
 रामं दृष्ट्वा पुष्पकस्थं रुदती ब्राह्मणी पुरः । दीर्घस्वरेण प्रोवाच हस्ताभ्यां हृदि ताड्य सा ॥८४॥
 राम राम महाबाहो ते राज्यं गतमर्तुकाः । अहं जताऽस्मि त्वदोषान्मां दृष्ट्वा त्वं न लज्जसे ॥८५॥
 मद्भर्तारं जीवर्यनं नोचेच्छासं ददामि ते । इति तस्या वचः श्रुत्वा राघवः खिन्नमानसः ॥८६॥
 अजनीन्मधुरं वाक्यं ब्राह्मणीं तोषयन्मुहुः । क्रोधं शमय रम्भोरु ते भर्तारं प्रजीवये ॥८७॥
 अस्मैव हेतोर्गच्छामि त्वं मद्गृहे सुखं वस । इत्युक्त्वाऽऽस्थास्य तां रामस्तच्छ्रवंचापिपूर्ववत् ॥८८॥
 तैलद्रोण्यां स्थापयित्वा सुमंत्रं वाक्यमब्रवीत् । आगमिष्याम्यहं यावत्तावत्कस्यापि नो श्वम् ॥८९॥

इस ब्राह्मणके बच्चेको अकाल मृत्यु क्यों हुई ॥ ६९-७२ ॥ इसके लिये कोई उपाय सोचना चाहिये । इस प्रकार रामने गुरु वसिष्ठसे प्रश्न किया ही था कि इतनेमें आकाशमार्गसे वीणा बजात हुए नारदजी उस सभाभवतमें पहुँचे । रामचन्द्रजीने नारदकी पूजा की ओर वृत्तान्त कह सुनाया । इसके पश्चात् वे बोले— हे मुनिराज ! आप ही इस विप्रपुत्रके जीवनका कोई उपाय बतलाइये । हमने तया सीताने यह प्रतिज्ञा की है कि यदि इस बालकको मैं जीवित न कर सका तो अपने दोनों पुत्र कुश तथा लव उस विप्रको अर्पण कर दूँगा । मेरे राज्यमें इस प्रकार मृत्यु कैसे हुई, यह मुझे मालूम नहीं हो रहा है ॥ ७३-७६ ॥ रामके वचन सुनकर नारदने कहा—हे राम ! तुम्हारे राज्यमें कोई भी मनुष्य किसी प्रकारका अधर्म नहीं करता । फिर भी मेरे कयलानुसार आपको यह उचित है कि अपने राज्यभरमें घूमकर देखें । यदि कहीं कोई किसीतरहका अधर्माचरण करता हुआ दाँखे तो उसे आप दण्ड दें । इस प्रकार अधर्मका मूलोच्छेद करनेपर यह ब्राह्मणबालक जीवित हो जायगा । रामने भी नारदकी सलाह मान ली । नारद मुनिको सादर विदा करके राम सीता, कुछ नगरवासी जनों, अपने भ्राताओं, गुरु वसिष्ठ, दोनों पुत्रों तथा मन्त्रियोंको साथ लेकर पुष्पक विमानपर आरुढ़ हुए ॥ ७७-८१ ॥ उसी समय आगेका ओरसे ओरोंका कोलाहल सुनाई पड़ा । उसे सुनकर राम ओर मो विस्मय हुए और चारों ओर निहारने लगे । उन्होंने देखा कि एक स्त्रीको चारों ओरसे बहुतसे पुरवासी घेरे हुए हैं । उनके आगे मृगवेरपुरकी तरफसे एक और शव लडा हुआ आ रहा है । स्त्रीने जब रामको पुष्पक विमानपर अडे देखा तो अपने हाथोंसे छाती पेटकर कहने लगी—हे राम ! हे राम !! तुम्हारे राज्यकालमें विषवा होकर मैं यहाँ आयी हूँ । मुझे इस दशामें देखकर तुम्हें लाज नहीं आती ? मेरे पतिको मृत्यु तुम्हारे ही अधर्मसे हुई है । इस कारण जैसे वने, तैसे मेरे पतिको जिलाओ । नहीं तो मैं क्षाप दे दूँगी । इस प्रकार उस स्त्रीकी सुनकर रामने खिन्न होकर मोठी वाणीसे आश्वासन देते हुए उत्तर दिया—हे रम्भो ! तुम क्रोधका परित्याग करके शान्त होओ । मैं तुम्हारे पतिको जिला दूँगा । मैं भी इसी कामके लिए आ रहा हूँ । तुम आनन्दके साथ मेरे भवनमें चलकर रहो । इस तरह उसे बुलाकर रामने उस शवको भी पहलेके समान तेलकी लौकामें रखवाया और सुमन्त्रको संबोधित कर दिया कि

त्वया बह्वौ ज्वालनीयं रक्षणीयं प्रयत्नतः । सर्वानपि त्वया भूम्यां श्राव्यं दंढुभिनिःस्वनैः ॥९०॥
 त कस्यापि श्वं दग्धं कापि कार्यं जनैस्त्विति । तथेति राघवं चोक्त्वा दूतः संश्राव्य तद्वचः ॥९१॥
 सुमंत्रः सकलान् भूस्थान् साकेते न्यवसन्सुखम् । रामोऽपि पुष्पकेर्णैव पश्चिमां चोत्तरां दिशम् ॥९२॥
 पूर्वामपि जनैः पश्यन् दक्षिणामिमृशो यया । एतस्मिन्नन्तरेऽयोध्यापुर्यां पञ्च शवानि हि ॥९३॥
 समानीतानि तैलस्य द्रोण्यां तान्यपि पूर्ववन् । सुमंत्रः स्थापयामास श्रीरामस्याज्ञपाऽऽदरात् ॥९४॥
 तेषु पञ्चशवेष्वेव चैकं मधुपुरि स्थितम् । क्षत्रियस्य च तज्ज्ञेयं सजानीतं सुहृज्जनैः ॥९५॥
 प्रयागस्थं द्वितीयं च श्वं वैश्यस्य तत्स्मृतम् । पूर्वं ययसि पञ्चान्वान्समानीतं हि तज्जनैः ॥९६॥
 हस्तिनापुरसंस्थं तत्तृतीयं अयमीरितम् । तैलकास्य तज्ज्ञेयं समानीतं हि तज्जनैः ॥९७॥
 चतुर्थं तज्ज्ञेयं हरिद्वारस्थितं द्विज । लोहकारस्तुपायाश्च समानीतं हि तज्जनैः ॥९८॥
 उज्जयिनीस्थं पञ्चमं च श्वं ज्ञेयं महामते । चर्मकारदुहितायाः समानीतं हि तज्जनैः ॥९९॥
 एवं पञ्च शवान्यासन् पूर्वं द्वे ब्राह्मणस्थ च । समायोध्यापुरीमध्यं शवान्येवं स्थितानि हि ॥१००॥
 रामोऽपि दंडकं पश्यन् स बभ्रास समंततः । यया विंश्याचलं धीमान् रेवावारिपरिप्लुतम् ॥१०१॥
 तत्र वृक्षे लम्बमानं धूमं पातुमधोमुखम् । शूद्रं निरीक्ष्य स्वर्गेच्छं तं हंतुं समुपस्थितः ॥१०२॥
 तदा ॥ राघवः प्राह भो शूद्र भृशं मद्वचः । ब्राह्मणादिभिर्भिर्वर्णैस्तपः कार्यं न चेतरैः ॥१०३॥
 शूद्रैश्च द्विःशुश्रूषा मदा कार्याऽनिभक्तितः । द्विःशुकृत्यं त्वया यात्र कृतं पापान्मना जड ॥१०४॥
 इदानीं त्वां हनिष्यामि जीवयिष्यामि तान्मृतान् । तुष्टोऽहं त्वां नृपपता वरं वरय चांछितम् ॥१०५॥
 इति रामवचः श्रुत्वाऽधोमुखो रामपादजः । उवाच मयभीतः सन्नत्वा रामं सुहृर्मुहुः ॥१०६॥
 राम रावणदर्पघ्न यदि तुष्टोऽसि मां प्रभो । तर्हि ते वरयाम्यद्य येन शूद्रगतिर्भवेत् ॥१०७॥

जबतक मैं लौट ॥ आऊँ तबतक तू म किसी भी शवका अग्निसंस्कार न करने देना ॥ ८२-८९ ॥ साथ ही मेरे राज्यमें यह दुर्गी पिटवा दो कि जबतक ॥ लौट ॥ आऊँ, तबतक कोई भी ॥ न जलाया ॥ । सुमन्त्रने रामकी आज्ञा स्वीकार करके दूतों द्वारा हिंदौरा पिटवाकर रामकी वह आज्ञा सब लोगोंको ॥ दी और आनन्दपूर्वक राज-काज देखते हुए रहने लगे । उधर रामचन्द्रजी पुष्पक विमानपर बैठकर पश्चिम तथा उत्तरकी दिशाओंकी धीरे-धीरे अच्छी तरह देखते हुए दक्षिण दिशाकी ओर ॥ गये । इसी बीच अयोध्यामें पाँच शव और आकर एकत्र हो गये । उन्हें भी सुमन्त्रने पूर्ववत् तैलकी नौकामें ॥ लवा दिया ॥ ९०-९४ ॥ उन पाँचोंमेंसे एक शव मधुपुर गाँवमें रहनेवाले एक क्षत्रियका था । जिसे उसके सुहृज्जन रामके दरबारमें ले जाये थे । दूसरा शव प्रयागनिवासी एक वैश्यका था । ॥ उसे ही अयोध्यामें उसकी मृत्यु हो गयी थी । इसी लिए उसके घरवाले रामके पास ॥ आये । तीसरा शव हस्तिनापुरनिवासी एक तैलीका था । उसे भी उसके घरवाले रामके पास ले आये थे । चौथा शव हरिद्वारनिवासी एक लोहारकी पुत्रवधूका था । पाँचवाँ शव उज्जयिनीनिवासी एक चमारकी लड़कीका था और उसके घरवाले उसे अयोध्या ले आये थे । इस प्रकार ये पाँच शव तथा पूर्वके दो ब्राह्मणके सब मिलाकर अयोध्यामें ॥ सब एकत्र हो गये ॥ ९५-१०० ॥ राम-चन्द्रजी भी दण्डकारण्यमें अच्छी तरह घूमकर रेवानदीसे परिप्लुत विन्ध्यपर्वतको ओर बढ़े । वहाँ उन्होंने देखा कि एक शूद्र उलटा टंगा है और नीचे आगकी धूनी बचक रही है । वह शूद्र चुआ पीता हुआ मुँह बाये लटका हुआ ॥ । इस प्रकारकी उग्र तपस्या करके स्वर्ग चाहनेवाले उस शूद्रको राम मारनेके लिए तैयार ही गये और उसके पास जाकर कहने लगे-हे शूद्र । ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य इन तीनों वर्णोंके लिए ही तपस्या करनेका विधान है, शूद्रोंके लिए नहीं । उन्हें तो सर्वदा इन तीनों वर्णोंकी सेवा करनी चाहिए । अरे जड़ ! तुझ पापीने अपने धर्मका उल्लंघन करके द्विजोंके समान कर्म किया है ॥ १०१-१०४ ॥ इस समय मैं तुझे मारकर उन लोगोंको जीवित करूँगा, जो तेरे धर्मविरुद्ध आचरणसे अकालमृत्युके श्रास बने हैं । मैं तेरी इस तपस्यासे प्रसन्न हूँ । ॥ बोल, तेरी क्या कामना है ? इस प्रकार रामकी वाणी सुनकर मयभीत हो

ममापि येन कीर्तिः स्यात्तं वरं दातुमर्हसि । इति शूद्रवचः श्रुत्वा रामस्तुष्टोऽब्रवीद्वचः ॥१०८॥
 मम रामेति यन्नाम तच्छूद्रैः सर्वदैव हि । जपनोयं कीर्तनीयं चिंतनीयं मुहुर्मुहुः ॥१०९॥
 भविष्यति गतिस्तेषामनेन मत्परो भव । तवानेनोपकारेण कीर्तिः शूद्रेषु वै भवेत् ॥११०॥
 इति रामवरं श्रुत्वा पुनः शूद्रोऽब्रवीद्वचः । शूद्राः कलौ मंदधियो भविष्यन्ति रघूत्तम ॥१११॥
 व्यग्रचित्ता भविष्यन्ति कृषिकर्मादिभिः प्रभो । तदा तेषां कुतो बुद्धिर्जपादिषु भविष्यति ॥११२॥
 अतस्तदनुरूपोऽयं वरो देवो विचार्य च । तत्तस्य वचनं श्रुत्वा रामस्तुष्टोऽब्रवीत् पुनः ॥११३॥
 परवन्दनकालेषु रामरामेति सर्वदा । शूद्रा वदन्तु सर्वत्र तेन तेषां गतिर्भवेत् ॥११४॥
 तवापीयं कथाकीर्तिः स्मरिष्यन्ति मंदघ्रिजाः । त्वं मया निदितस्त्वद्य वैकुण्ठं प्रति यास्यसि ॥११५॥
 पुनर्ययाचे श्रीरामं वरमन्यं स्वकारणात् । अस्मिन् शले सदा तिष्ठ सीतालक्ष्मणसंयुतः ॥११६॥
 अंशतस्ते पूर्वमेव दर्शनं मम ये नराः । करिष्यन्ति ततः पश्चाद्ये नरास्तत्र दर्शनम् ॥११७॥
 कुर्यन्ति सहितं मक्त्वा मोक्षमेव व्रजन्ति ते । मदर्शनं विना मर्त्यास्त्वा पश्यन्त्यविचारतः ॥११८॥
 तेषामुद्धरणं राम कुरु मद्वचनात् प्रभो । तथोवाच तदा रामः भक्तिं तस्मै ददा हरिः ॥११९॥
 इति कृत्वा सुसंतुष्टं हत्वा शूद्रं रघूत्तमः । जीवयामास विप्रादीन्सप्त साकेतसंस्थितान् ॥१२०॥
 तदारम्यात्र शूद्रेस्तु विष्णुदासावनीतले । परवन्दनकालेषु रामरामेति कीर्त्यते ॥१२१॥
 तं हत्वा रघुवीरः स पश्चिन्त्यं मुदान्वितः । सीतां नानाकौतुकानि दर्शयन्स्वपूरीं ययौ ॥१२२॥
 एतस्मिन्नंतरे मार्गे शूद्रोलूकी निरोक्षितौ । विवदमानौ रामेण चात्मानं द्रष्टुमागतौ ॥१२३॥
 तावुवाच रघुश्रेष्ठः किमर्थं हि युवामुमौ । विवदमानौ संप्राप्तौ मां ब्रूतस्त्वद्य विस्तरात् ॥१२४॥

और नीचा मस्तक किये हुए बार-बार करके उस शूद्रने कहा—हे नावणके अभिमानको दूर करनेवाले राम ! यदि वास्तवमें आप मेरे प्रसन्न हैं तो मुझे वह वरदान दोजिये कि जिससे शूद्रजातिको भी सद्गति प्राप्त हो, साथ ही मेरा भी उद्धार हो जाय । इस तरह शूद्रकी दोनतापूर्ण सुनकर रामचन्द्रजी बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे— ॥ १०५-१०८ ॥ “राम” पवित्र नामका जो शूद्र सदा जप, कीर्तन तथा चिन्तन करते रहेंगे, उन लोगोंको सद्गति प्राप्त होगी और तुम भी इस तपस्याको छोड़कर मेरा चिन्तन करो । तुम्हारे उपकारसे शूद्रोंमें तुम्हारी कीर्ति होगी । इस प्रकार रामचन्द्रजीके द्वारा वर पाकर शूद्रने कहा— हे रघुसत्तम ! आगे महाप्रचण्ड कलियुग आनेवाला है । उसमें शूद्रजातिके लोग बड़े मूर्ख होंगे । सर्वथा अपनी खेती-बारीके काममें व्यस्त रहेंगे । ऐसी अवस्थामें उन्हें जप तथा कीर्तन करनेका अवसर ही कहाँ मिलेगा । इन शुभ कर्मोंकी ओर उनकी बुद्धि कैसे जायगी । अतएव उनके अनुरूप कोई वरदान दीजिए । उसकी यह सुनी तो प्रसन्न होकर रामने कि लोग एक-दूसरेको प्रणाम-आशीषके समय “राम-राम” ऐसा कहेंगे, इसीसे उनका उद्धार जाया करेगा ॥ १०९-११४ ॥ उस शूद्रसमाजमें तुम्हारी यही कीर्ति होगी । आज तुम हमारे हाथों मरकर धनुष्ठाणको प्राप्त होओगे । इसके अनन्तर उसने रामसे यह वर माँगा कि आप सीता तथा लक्ष्मणके साथ सर्वदा इस पर्वतपर निवास करें ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ जो लोग यहाँ आकर पहले मेरा दर्शन करनेके पश्चात् आपका दर्शन करें, उनको मोक्षपद प्राप्त हुआ करे । इसके सिवाय जो लोग भ्रमवश बिना मेरा दर्शन किये दर्शन कर लें, उनका भी उद्धार हो जाय । रामने ‘तथास्तु’ कहकर भक्तिका वर दिया और उसे मारकर उन भक्तकाल मृत्युसे मरे हुए लोगोंकी जीवित किया, जो ब्राह्मण-क्षत्रियादि सत्त प्राणी अमोक्षामें मरे पड़े थे ॥ ११७-१२० ॥ हे विष्णुदास ! तभीसे इस पृथ्वीतलमें शूद्रलोग आपसमें प्रणाम-आशीषके अवसरपर “राम-राम” कहा करते हैं । शूद्रको मारकर शृंगपर्वक रामचन्द्रजी सीताको रास्तेके अनेक मनोहर दृश्योंको दिखाते हुए अयोध्याके लिए लौट पड़े । उसी बीच एक गुध और उलूक परस्पर विवाद करते हुए रामके दर्शनोंके लिए उनके सम्मुख आये । रामने उन्हें देखकर

तद्रामवचनं श्रुत्वा तदोलूकोऽब्रवीत् प्रभुम् । मया पूर्वं कृतं राम नगोपरि गृहं वने ॥१२५॥
 तत्कालेन मया त्यक्तं तत्र गृध्रोऽस्ति संस्थितः । नानेन दीयते ॥ ॥ गेहं रघूत्तम ॥१२६॥
 तदुलूकवचः श्रुत्वा गृध्रमाह रघूद्वहः । किमर्थं दीयते नास्य त्वया गृध्र गृहं वद ॥१२७॥
 तदा गृध्रोऽब्रवीद्वाक्यं राघवं दीर्घनिःस्वनः । मया पूर्वं कृतं राम नगोपरि गृहं वने ॥१२८॥
 तत्कालेन मया त्यक्तं तदोलूकः किरद्दिनम् । स्थितस्तेनापि तत्राहं संस्थितः पुनः ॥१२९॥
 वृथाऽयं स्पर्द्धते राम मत्वा गेहं ममेति च । माऽधर्मं कुरु राजेन्द्र त्वद्वंशेऽभूत् पातकी ॥१३०॥
 तावुवाच रघुश्रेष्ठो पुत्राभ्यां हि यदा गृहम् । कृतं तस्यात्र कः साक्षी तदा तौ नेति चोचतुः ॥१३१॥
 विमानस्थास्तदा सर्वात्राघवः प्राह मस्मिनः । इदमप्यद्य सम्प्राप्तं दुर्घटं मां पुरस्त्वह ॥१३२॥
 कथं न्यायोऽत्र वै कार्यः कस्मै गेहं प्रदायताम् । तद्रामवचनं श्रुत्वाऽऽयन्मर्षेऽतिविस्मिताः ॥१३३॥
 तदोलूकं विभुः प्राह कृतं गेहं त्वया कदा । उलूकः प्राह भूधेयं यदा जाता तदा कृतम् ॥१३४॥
 तदुलूकवचः श्रुत्वा गृध्रं रामोऽवलोकयत् । गृध्रः प्राह यदा चेय महानारेऽबनिस्तदा ॥१३५॥
 शूतश्रेष्ठे कृतं विद्धि पुरा गेहं मया विभो । तद्गृध्रवचनं श्रुत्वा तदा तं प्राह राघवः ॥१३६॥
 कथं विनाऽऽश्रयेणासीन्महानीरे नगस्तदा । नोक्तोऽश्रयवटः सोऽपि चूतशूतस्त्वया स्मृतः ॥१३७॥

तस्माद्वृथा त्वया गृध्र स्पृध्वतेऽनेन निश्चितम् ।

मयाऽद्य तत्र वाक्येन धिक् त्वां दूष्टपतत्रिणम् ॥१३८॥

इत्युक्त्वा राघवो दूतैस्तं गृध्रं पर्वतोपरि । त्रिशूलाग्रेषु चारोप्य प्रेषयामास स्वं पदम् ॥१३९॥
 धन्यः स गृध्रो विज्ञेयो रामाग्रं यस्य वै मृतिः । अभूत्तदर्शनमाप यस्य देवविसर्जने ॥१४०॥

कहा कि तुम लोग क्यों लड़ रहे हो ? मुझे विस्तारपूर्वक ॥ १२१-१२४ ॥ रामकी ॥ सुनकर उलूकने कहा कि मैंने एक वृक्षपर रहनेके लिए एक घोंसला ॥ ॥ बना । कार्यवशा उसी समय उसे छोड़कर मुझे स्वामान्तरको चला जाना पड़ा और यह गृध्र उसमें रहने लगा । अब मेरे माँगनेपर वह गुप्तो मेरा घोंसला नहीं दे रहा है । इस प्रकार उलूककी ॥ सुनकर रामने गृध्रसे कहा कि तुम इसका घोंसला इसे क्यों नहीं देते ? गृध्रने तड़पकर कहा—हे राम ! पहले मैंने उस वृक्षपर वह घोंसला बनाया ॥ । कुछ दिनोंके लिए मैं बाहर चला गया तो यह उलूक उसमें रहने लगा । फिर ॥ जब उसे छोड़कर कहीं चला गया तो ॥ जाकर अपने घरमें रहने लगा । यह अर्थ हमसे लड़ाई कर रहा है । हे राम ! इसकी बातोंमें ॥ कहीं आप अधर्म न कीजियेगा । क्योंकि आपके वंशमें कभी कोई पातकी नहीं हुआ है ॥ १२५-१३० ॥ उन दोनोंसे रामने कहा कि तुमने उस घोंसलेको बनाया था, ॥ कोई साक्षी दे सकते हो ? इस प्रकारके प्रश्न होनेपर ॥ दोनों चुप हो गये । क्योंकि उन दोनोंके पास कोई गवाह नहीं था । ऐसी दशामें मुस्कराते हुए रामने विमानपर बँडे हुए लोगोंसे कहा कि यह चिकट समस्या आगे आ गयी है । इस अगढ़का कैसे प्याव हो ? किसको वह घोंसला दिया जाय ? इस तरह रामकी बात सुनकर सब लोग भौंचकसे रह गये । किसीको कोई युक्ति नहीं सूझी ॥ १३१-१३३ ॥ फिर रामने उलूकसे कहा कि तुमने कब अपना घोंसला बनाया था । उसने उत्तर दिया कि मैंने अपना निवासस्थान उस ॥ ॥ था, ॥ इस पृथ्वीकी रचना हुई थी । इस प्रकार उलूककी बात सुनकर रामने गृध्रको ओर देखा । गृध्रने उत्तर दिया कि मैंने ॥ घोंसलेको आमके वृक्षपर उसी समय बना लिया था, जब पृथ्वी जलमग्न थी—उसका उद्धार ही नहीं हुआ था । गृध्रसे रामने कहा कि ॥ पृथ्वीकी उत्पत्ति ही नहीं हुई थी, ॥ वह आमका वृक्ष किसके सहारे खड़ा था । वृक्षोंमें तुमने अक्षयवट भी नहीं बताया, जो किसी तरह रह भी जाता है । इसलिए मालूम पड़ता है कि तुम्हारी बात झूठ है । तुम उलूकको व्यर्थ सता रहे हो । तुम जैसे दूष्ट पक्षीको धिक्कार है ॥ १३४-१३८ ॥ इसना कहकर रामने दूतों द्वारा गृध्रको शूलपर चढ़वाकर उसे अपना परम पद दे दिया । वह गृध्र धन्य था, जिसकी मृत्यु रामके सम्मुख हुई और रामका दर्शन करते हुए उसने अपने प्राणोंका परित्याग किया । ॥ प्रकार उसे

दम्भा गेहमुल्लूकाय ययौ रामो निर्जा पुरीम् । विवेश नगरीं नृत्यवाद्यगीतपुरःसरम् ॥१४१॥
 शिशुं विप्रं सन्निर्य च वैश्यं चापि चतुर्थकम् । तल्लकारं पञ्चमं च लोहकारस्तुषा तथा ॥१४२॥
 धर्मकारदुहितरं सप्तैतान् हि सुजीवितान् । द्रष्टुं रामः समायातानात्मानं द्रष्टुमादरात् ॥१४३॥
 तुतोप नितरां पत्न्या तैः सर्वैः संस्तुतो मुहुः । ततः संपूज्यः तान् सर्वान् विसृज्य रघूद्वहः ॥१४४॥
 तदा महोत्सवश्चासीदयोध्यायां समन्ततः । एवं नानाचरित्राणि चकार रघुनन्दनः ॥१४५॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वार्धे
 यत्तिशृङ्गगुह्यसिद्धोपकरणं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः

(चार विप्रकन्याओंको रामका वरदान)

श्रीरामदास उवाच

अथैकदा रामचन्द्रो मृगयार्थं वनं ययौ । सीतया बन्धुभिः सैन्यैर्हस्त्यश्वरथपत्तिभिः ॥१॥
 पश्यन् वनानि सर्वाणि मृगयारसिको भृशम् । कौतूहलसमाविष्ट आस्तेटन्मूहसंभृतः ॥२॥
 तपानवगूढपादश्च नीलोष्णीवी हरिच्छदः । नीलगोधांगुलित्राणो धनुष्पाणिः शरी नृपः ॥३॥
 अश्वारूढः खड्गचर्मधारी भूषैः पदान्तिभिः । वेष्टितः कवची रामो विवेश गहनं वनम् ॥४॥
 सीतया जालरंघ्रैश्च चारं चारं निरीक्षितः । स रामो बन्धुवर्गेश्च पुत्राभ्यां नृपसत्तमैः ॥५॥
 क्रीडां तदाऽकरोच्चत्र कुंजेषु मृगयन्मृगान् । हन्यतां हन्यतामेवो मृगो वेगात्पलायते ॥६॥
 इति जल्पन् स्वभृत्वेपु स्वयमुत्पत्य हन्ति च । गांधारेषु च रम्येषु वनेषु विपुलेषु च ॥७॥
 उल्लङ्घितमहास्रोता युवा पञ्चास्यविक्रमः । इतस्ततः पुनर्याति कश्चित्पश्यन् वनस्थलीम् ॥८॥

दण्ड देकर घोंसला उलूकको दे दिया और वहाँसे अपनी अयोध्या नगरीकी ओर चल पड़े। अयोध्यामें पहुँचि तो क्या देखा कि वहाँ नाच-गान हो रहे हैं। ब्राह्मणका लहका, मधुरपुरवाला ब्राह्मण, सन्निय, वैश्य, तेली एवं लोहारकी पतोहू तथा चमारकी लड़की ये सब जीवित होकर रामके दर्शनोंको खड़े हैं। उनको जीवित देखकर सीता समेत राम अत्यन्त प्रसन्न हुए। वहाँ पहुँचि तो लोगोंने रामकी स्तुति की और रामने भी उनका सत्कार करके उनके ग्रामोंको भेज दिया। उस अयोध्या भरमें चारों ओर उत्सव ही उत्सव दीखता था। इस तरह राम अनेक प्रकारका लीलाये करते रहते थे ॥ १३६-१४५ ॥ इति श्रीशतकोटिराम-चरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे १० रामोत्सवपाण्डेयविरचिते 'उयोत्सवा'भाषाटीकासमन्विते राज्यकाण्डे पूर्वार्धे दशमः सर्गः ॥ १० ॥

श्रीरामदास कहते लगे—इसके बहुत दिनों बाद रामचन्द्रजी एक समय शिकार खेलनेके लिए सीता तथा भ्राताओं और बहुतसे हाथी-घोड़े आदिको साथ लेकर वनमें गये। मृगयाके आनन्दसे आनन्दित होकर बहुतसे वनोंको इधर-उधर घूम रहे थे। उस उनके साथ शिकार खेलनेवाले भीलोंका एक बहुत बड़ा दल था। रामचन्द्रजी जूता पहने थे, नीले रङ्गकी पगड़ी मस्तकपर थी, हरे कपड़े पहने हुए थे और नीले ही रङ्गकी गोधांगुली उँगलियोंमें बँधी थी। हाथमें धनुष-बाण धारण किये थे ॥ १-३ ॥ वे घोड़ेपर सवार थे, तलवार और दाल धगलमें झूल रही थी। बहुतसे पैदल चलनेवाले राजे उनके साथ थे और उनके शरीर पर कवच पहना था। इस प्रकारका वेश धारण किये गहन वनमें जा पहुँचे। उस समय सीता पालकीकी खिड़कियोंसे रामकी ओर निहार रही थीं और रामचन्द्रजी अपने भ्राताओं और मित्रोंके साथ कुञ्जोंमें भृगोंको दूँछते हुए हर्षपूर्वक मृगया कर रहे थे। कभी-कभी 'मारो-मारो, यह मृग वेगसे भागा जा रहा है' इस प्रकार चिल्ला पड़ते। यदि कोई उसे मारनेको नहीं पहुँच पाता तो वे उसे स्वयं मार दिया करते थे। एक

विटपोद्गीनसंप्रस्तलीनकेकिङ्कलाङ्कलाम् । हरिणीगणसंप्रस्ता भावच्छापददिङ्मुलाम् ॥ ९ ॥
 कचिरंकरवृत्कारमिलाराविर्भीषिताम् । सङ्गमर्थः कचिह्रस्मी दधानामिध दंतिनाम् ॥ १० ॥
 क्वचित्कोटरसंविष्टशुकां नादविनादिनीम् । मृगागिपदमुदाभिर्मुद्रितां च क्वचित् क्वचित् ॥ ११ ॥
 शार्दूलनखनिभिन्नरोहिद्रक्तारुणां क्वचिन् । पीवरस्तनभारातंसुस्निग्धमहिषांगणैः ॥ १२ ॥
 अवरोधांजरक्षोणिं सूचयन्तीमिव क्वचित् । क्वचिद्वृक्षघनच्छायां वनपुष्पसुगंधिनीम् ॥ १३ ॥
 कचिल्लतागृहद्वारभूमंडलसतोरणाम् । अर्धनिःसृतनिर्मोकनागभीममहद्विलाम् ॥ १४ ॥
 वृत्तास्याजगरं व्याप्तां क्वचिन्निर्मुक्तमर्षिणीम् । क्वचिदावानलज्वालाशिसाव्याप्तमहीरुहाम् ॥ १५ ॥
 ज्वलन्निर्ज्वलनिर्गच्छद्गुह्यघ्नसङ्क्राताम् । व्यसृचंस्तु शुनां गृध्रं शशकेषु कचित् कचित् ॥ १६ ॥
 पञ्चलेषु ॥ विश्रांतः पुनर्याति वनांतरम् । ततो मध्याह्नसमये निवासं सरसस्तटे ॥ १७ ॥
 कारयामास सेनायाः सीतायाश्च रघूत्तमः । स्वयं मुदाऽकरोत्कीडाभासेट्युदसंवृतः ॥ १८ ॥
 दुद्राव मृगपृष्ठेषु युक्त्वा याणं जवानं तान् । एवं खेलति राजेन्द्रे व्याघ्रवर्गे च वै द्विज ॥ १९ ॥
 तत्र कोलाहलत्रस्तः पंचास्यो निर्गतो वनात् । स केमरी महावेगस्तीक्ष्णदंष्ट्रो भयावहः ॥ २० ॥
 स्फुरद्वंगसमाकांतदुर्गमार्गमहीतलः । कदाचिद्गगनारूढः कदाचिद्भूमिगमलः ॥ २१ ॥
 न रयाह्रश्यतां याति घन्विनां पृष्ठगामिनाम् । कचिद्दृष्टिपथं याति दर्शनागोचरः कचित् ॥ २२ ॥
 वक्रघ्नोऽतिगभीरं कंटकीद्रुमसंकुलम् । धुकव्याघ्रसमाकीर्णं पर्वतेश्च भयकरम् ॥ २३ ॥
 प्रविष्टो विषमारण्यं रामस्तस्य पदानुगः । दुर्गाद्दूरं ततो गत्वा देशादेशं च निर्जनम् ॥ २४ ॥

साड़ीको छोड़कर दूसरीमें और दूसरीको छोड़कर तीसरीमें, इस तरह बार बार इधर-उधर वनस्थलीमें दौड़ रहे थे ॥ ४-८ ॥ उस समय वहाँ वृक्षोंपर रहनेवाले मयूरके परिवार मारे डरके वृक्षोंके सोढ़रोमें छिप जाते, हरिणीयां चकित नेत्रोंसे इधर-उधर निहारता हुई भाग जाती, वनमें जीव कोलाहलसे प्रस्त होकर अपनी भाँदसे निकल पड़ते, कहीं अपने बिलसे निकल संपंखण फुफकार मारते थे और कहीं ज़ीगुरोंकी भीषण झनकार सुनाई देती थी । वहाँ गैडोंके समान गोभाको धारण किये हुए हाथी भाग रहे थे, कहीं कोटरमें बैठे हुए तोते ॥ प्रकारकी बोलियाँ बोल रहे थे, कहीं मोरोंके पैरोंके निशान दिखाई देते थे और कहीं किसी सिंहके द्वारा मारे गये हरिणके कधिरसे पृथ्वी रक्तवर्ण हो गयी थी । कहींकी भूमि बड़े-बड़े स्तनोंवाली भेसोसे अन्तःपुरके आग्निसदृश मानूम पड़ती थी और कहींकी पृथ्वी घने वृक्षोंकी छायासे छायामयी हो गयी थी । कहीं वनपुष्पकी सुगन्धिसे वह स्थली सुगन्धमयी हो रही थी और कहीं प्राकृतिक रीतिसे लक्ष्मण्डप बन गया था । उसपर जो भीरे मंडरा रहे थे, वे उसके तोरण सदृश जान पड़ते थे । कहीं साँपके शरीरसे आघो केंचुली छूटकर बिलके मुखपर लगी थी । इस प्रकार बड़े-बड़े सर्पोंकी बिलें दिखाई पड़ती थीं ॥ ९-१४ ॥ कहीं मुँह बाये हुए बड़े-बड़े अजगर सर्प बैठे थे । कहीं साँपोंकी केंचुलियाँ दिखायी देती थीं । कहींपर दावानल लगनेके कारण जलते हुए निकुञ्जोंमेंसे व्याघ्र-वृक आदि बड़े-बड़े जन्तु निकल निकलकर भाग रहे थे । रामके आगे हुए शिकारी खरणोंपर कुत्ते दौड़ा रहे ॥ कोई तलैया मिल जानेपर ॥ लोग वहाँ कुछ देर विश्राम करके आगे दूसरे वनमें चले जाते थे और मध्याह्नके समय किसी बड़े सरोवरपर सीता आदिके साथ आराम करते थे ॥ १५-१७ ॥ तीसरे पहर उठकर फिर शिकारमें लग जाते थे । रामचन्द्रजी किसी भी मृगकी देखकर उसके पीछे दौड़ ॥ और उसे याणोंसे मार डालते थे । इस प्रकार रामचन्द्रजी मृगया कर ही रहे थे, सभी दूसरी ओरसे 'सिंह आया-सिंह आया' यह कोलाहल होने लगा । सिंह इससे ऊबकर और भी वेगसे चला । उसके बड़े-बड़े दाँत थे । देखनेमें वह भयावना मानूम पड़ता था । वह बड़े वेगसे दुर्गम मार्गको तें करता हुआ इन लोगोंकी ओर बढ़ता आ रहा था । वह कभी छलांग मारकर आकाशमार्गसे चलता और कभी पृथ्वी-पर दौड़ता चलता था ॥ १८-२१ ॥ अतिशय वेगसे भागनेके कारण उसका पीछा करनेवाले लोग कभी उसे देख पाते थे—कभी नहीं । इस तरह भागता हुआ वह एक ऐसे दुर्गम स्थानपर पहुँच गया, जहाँ एक ठोका-

एकाकी हयमारूढो विवेश गिरिगह्वरम् । सर्वे व्याधाय दूनाश्च लक्ष्मणाद्याश्च बन्धवः ॥२५॥
 रामादर्शनसंभ्राता वञ्चमुक्त इतस्ततः । अथ रामः कैसरिणं ज्ञानान् श्रितपत्रिणा ॥२६॥
 ततः स दिव्यरूपेण भूत्वा प्राह ग्धूतमम् । पुरा विद्याधरश्चाहं मया भुक्ता पतिव्रता ॥२७॥
 मुनिपत्नी हठेनैव तथा शप्तस्त्वहं क्रुधा । सिंहवन्निग्रहो यस्मात्प्रवया मयि कुतोऽद्य हि ॥२८॥
 अतस्त्वं मद्विरा सिंहो भवार्थं महाबले । तदा मया प्रार्थिता सा पुनर्मांमाह रावण ॥२९॥
 धिराद्रामशरस्पर्शाच्छापान्मुक्तिर्भवेत्तव । अतोऽद्य त्वच्छरस्पर्शाच्छापान्मुक्तधिरादहम् ॥३०॥
 इत्युक्त्वा राममामन्त्र्य स्वर्गं प्रयया ॥ ततः स रामचन्द्रोऽपि तुरगस्थो मुदान्वितः ॥३१॥
 तस्थौ क्षणं यावच्चान्तरिगिरिगह्वरे । गुहाद्वारे शिलामेकां ददर्श योजनायताम् ॥३२॥
 महतीं तां शिलां दृष्ट्वा रामो विस्मितमानसः । धनुःकोट्याऽक्षिपद्दूरं गुहायां संविवेश ह ॥३३॥
 क्षिपद्दूरं ततो गत्वाऽग्रे प्रकाशं ददर्श ॥ तत्र द्रोण्यां पर्वतस्य तपस्यन्त्यः स्त्रियः प्रभुः ॥३४॥
 वदर्श रामश्चत्वारः किञ्चिदन्तरसंस्थिताः । अस्थिचर्मावशिष्टश्च देहैर्दृग्गोचरीकृताः ॥३५॥
 शरीरैः संजीविताश्चेति शतवांस्ता रघूत्तमः ॥३६॥

निजरूपाणि चत्वारि कृत्वादी तत्पुरः स्थितः । अन्वर्त्तन्मधुरं वाक्यं भिन्नरूपेण ताः पृथक् ॥३७॥
 वरयध्वं वरान्नार्यः प्रसन्नोऽहं रघूत्तमः । ततस्ता रामसंस्पर्शान्मांसरक्तादिधातुभिः ॥३८॥
 पूरितानि शरीराणि ददृशुर्नयननिर्जैः । श्रुत्वा तद्रामवाक्यं तास्तदा स्वपुरतोऽक्षिभिः ॥३९॥

मेढ़ा नाला बह रहा था । बहुतसे कंटोले वृक्षोंकी आड़ियाँ उसके आस-पास उगी थीं । चारों ओरसे पर्वत-की दीवारें खड़ी थीं और भेड़िये व्याघ्र आदि हिंसक जीव उसमें भरे पड़े थे । ऐसी अवस्थामें भी राम उसके पीछे-पीछे दौड़ते चले जा रहे थे । उस समय रामचन्द्रजी अपने साधियोंसे विछुड़कर बहुत दूर निर्जन वनमें उसके साथ निकल गये । अन्तमें वह सिंह पर्वतकी एक विशाल कन्दरामें घुस गया और रामचन्द्रजी भी थोड़ेपर चढ़े हुए उसके कन्दरामें घुस गये । इधर रामके लक्ष्मणादि भ्राता, उनके दूत तथा शिकार खेलानेवाले वहेलिये धवराकर रामको इधर-उधर खोजने लगे । उसी समय रामने सिंहको एक विकराल बाणसे मारा ॥ २२-२६ ॥ एक दिव्य पुष्पके रूपमें परिणत हो और उनको प्रणाम करके कहने लगा—हे राम ! पहले विद्याधर था । मैंने एक बार एक पतिव्रता मुनिपत्नीके साथ हुआ भोग किया । जिससे कुपित होकर उसने मुझे शाप दे दिया कि तूने सिंहके समान वरदम मेरी आबरू उतारी है, इसलिए मेरी बाणोंसे अभी सिंह हो जा । जानेपर मैंने उससे विनती की तो उसने कहा कि आजसे बहुत दिनों बाद रामचन्द्रजी तुझे अपने बाणसे मारेंगे, तू शरस्पर्श होने ही भापसे मुक्त हो जायगा । सो बहुत समय आपकी दयासे मैं आज उस शापसे मुक्त हो गया । इस तरह अपना पूर्ववृत्तांत सुनानेके उसने रामसे माँगा और अपने लोकको गया । रामचन्द्रजी अपने थोड़े-पर बैठे ही बैठे थोड़ी देर वहीं ठहरे ताँ उन्होंने क्या देखा उस गुहाद्वारपर मोजनों लम्बो-चौड़ी एक शिला लगी हुई है । इतनी बड़ी शिला देखकर राम विस्मित हुए और अपने धनुषकी कोरसे उसे दूर हटा दिया । वे उसके भीतर घुसे । दूर आगे आनेपर उन्हें कुछ प्रकाश-सा दिखायी पड़ा । और आगे बढ़े तो उन्होंने क्या देखा कि चार स्त्रियाँ करती हुई बैठी हैं । उनके शरीरमें सुडो और चमड़ेके सिवाय मांसका नाम भी नहीं था । उनका बवास चल रहा था । इससे उनको ज्ञात हुआ कि वे स्त्रियाँ अभी मरों नहीं, प्रत्युत जीवित हैं । ऐसी अवस्थामें रामने चार शरीर बनाया और सबके सम्मुख आकर कहने लगे—“हे नारियों ! तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वर माँग लो । मैं राम तुम लोगोंकी तपस्या-से प्रसन्न हूँ ।” इसके अनन्तर रामने अपने हाथों उनके शरीरका स्पर्श किया । जिससे उनकी सूखी देहमें रक्त-मांसादिका संचार हो गया ॥ २७-३८ ॥ शरीर भर जानेपर उन सबोंने अपने नेत्रोंसे रामको देखा । समय प्रत्येक स्त्रीके सामनेवाले राम कीटि सूर्यकी दीप्तिके समान देदीप्यमान

नार्यो विलोकयामासुः सर्वाः श्रेष्ठनायकान् । काश्यपस्यैतान्काश्यापयामसिधारिणः ॥४०॥
 इयारुहान्नुद्वेपेण सर्वासां पुरतः स्थितम् । चतुर्भुजैश्चक्रेऽन्ता दृष्ट्वा कञ्जलोचनाः ॥४१॥
 अतिविस्मयमापन्नास्तदोचुस्तान् पृथक् पृथक् । के यन् वञ्चिमन्वाहे कुतः सर्वे ममागताः ॥४२॥
 यूयं देवा दानवा वा गम्यते क्वाधुना पुरः । शम्भोऽहं दध्यतां सर्वे शिष्यं भाषिता वपम् ॥४३॥
 अस्माकं दुःशरीराणि कमनीयानि वै कथम् । जानान्यश्चमहादेव्या दुदुभिः सोडास्त वा मृतः ॥४४॥
 इति तासां वचः श्रुत्वा रावणस्तत्र चोऽज्वलत् । अष्टं चतुर्भुजैश्च रामस्त्वका न मशयः ॥४५॥
 सप्तर्षिपतिः श्रीमान् सूर्यवंशममुद्भवः । मृगयार्थं समायातः कैमरो निहतो वने ॥४६॥
 धनुष्कोट्या शिलां त्यक्त्वा युष्मदन्तिश्चमागतः । स्वस्वरस्पर्शमात्रेण शरीराणि शुभानि हि ॥४७॥
 मया कृतानि युष्माकं बालिना दुदुभिहतः । म मया निहतो बाली रावणस्यान्तकारिणः ॥४८॥
 संभाषिता वरान् दानुं यूयं सर्वा मयाऽद्य हि । नाग्रंऽस्ति नन कार्यं हि पारवर्त्य पुरीं व्रजे ॥४९॥
 यत्पृष्टं तन्मया चोक्तं का यूयं कथ्यतां मम । किमर्थं दुदुभिः पृष्टः का वाञ्छा श्रियतां वरान् ॥५०॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा दुन्दुभिर्निहनन्निवति । शिलां निष्कामता चापि भर्वास्तुष्टपरा ययुः ॥५१॥
 ऊचुः सर्वास्तदा राममानन्दोत्फुल्ललोचनाः । वयं माक्षणेपुत्रश्च चत्वारस्त्वथ पादस्र ॥५२॥
 सहस्राणि नृपाणां च वैश्यानां कन्यकाः पुरः । समानीता बलादेव तेन दुन्दुभिना प्रभो ॥५३॥
 लक्ष्मीभिर्विवादांश्च सर्वानेकदिने त्वहम् । करामीति मन्यमानः स्त्रीरत्नानि जहार सः ॥५४॥
 यानि यानि जहार स्त्रीरत्नानि रघुनन्दन । अस्यां द्रोण्यां स्थाप्य तानि दत्त्वा द्वारं शिला वरास्र ॥५५॥
 अबलां त्वद्विनान्यथ स्त्रीः समानेतुमादरात् । पुनाथर गतो दत्त्वा वयमत्रैव संस्थिताः ॥५६॥

हो रहे थे और धनुष-बाण तथा तलवार लिये हुए थे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ वे मनुष्यका वेश धारण करके घोड़ेपर सवार होकर एक-एक स्वरूपसे उन चारोंके सम्मुख खड़े थे और उन सब स्त्रियोंका भी समान स्वरूप था और एक ही तरहकी वेष-भूषा थी । ऐसे रामको देखकर उन स्त्रियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ और ॥ कहने लगीं—“आप लोग कौन हैं ? घोड़ेपर सवार होकर कहाँसे आप आ रहे हैं ? आप सब देवता हैं या दानव ? आप कहाँ जायेंगे ? कृपया हमें यह भी बतलाइये कि आप हमसे क्यों बात करना चाहते हैं ? हम लोगोंका यह जीवन-शार्ण शरीर इस प्रकार सुन्दर कैसे हो गया ? वह दुष्ट दुन्दुभी जीवित है ॥ मर गया ?” ॥ ४१-४४ ॥ इस प्रकार उनकी बातें सुनकर रामने उन सबसे कहा—“सूर्यवंशसे उत्पन्न और सातों द्रौणीका अधिपति राम नामका मैं एक राजा हूँ । इस समय अपने एक ही रूपको चार भागोंमें विभक्त करके तुम सबके सम्मुख उपस्थित हुआ हूँ । मैं यहाँ जङ्गलमें शिकार खेलने आया था और इसी कन्दरामें मैंने एक सिंहको मारा है । फिर तुम्हारे गुफा द्वारपर एक लम्बी-चौड़ी शिला देखी । उसे अपने धनुषकी कोरसे दूर हटाकर तुम्हारे समीप आया और अपने हाथके स्पर्शसे तुम्हारे शरीरको पवित्र तथा सुन्दर बना दिया है । दुन्दुभी राक्षसको बालिने मार डाला । रावणका विनाश करनेवाले भुक्त रामने उस बालीको भी मार डाला है ॥ ४५-४८ ॥ केवल तुम्हें वरदान देनेकी इच्छासे मैंने तुमसे संभाषण किया है । ॥ यहाँसे आगे जानेका हमारा कोई कार्यक्रम नहीं है । इससे अपनी अयोध्या नगरीकी लौट जाऊँगा । तुमने हमसे कुछ पूछा, मैंने उसका उत्तर दे दिया । अब यह बताओ कि तुम कौन हो ? दुन्दुभीको तुमने क्यों पूछा ? तुम्हारा क्या कामना है ? इच्छित वर भुक्तसे माँग लो ।” जब उन सबोंने रामके मुखसे यह सुना कि दुन्दुभी मार डाला गया और हमारे द्वारपर लगी हुई शिला भी हट गयी है तो वे बहुत प्रसन्न हुईं और आनन्दसे प्रफुल्लित होकर उन्होंने कहा—हे राम ! बहुत दिन हुए, वह दुन्दुभी राक्षस हम चार सहायकी पुत्रियों तथा सोलह हजार सन्त्रियों तथा वैश्योंकी कन्याओंको हर लाया था । उसकी यह हार्दिक इच्छा थी कि मैं एक ही दिन एक लाख स्त्रियोंके साथ विवाह करूँगा । इसी विचारसे वह अच्छे-अच्छी कन्याओंका अपहरण किया करता था ॥ ४९-५४ ॥ हे रघुनन्दन ! वह जिन सुन्दरियोंको लाता था, उन्हें इसी कन्दरामें डालकर दरवाजेपर एक इतनी बड़ी शिला लगा दिया करता

वर्तन्तेऽग्रे नृपाणां च वैश्यानां बालिकाः प्रभो । वायुपर्णाशनाः सर्वाः श्रीविष्णुर्षितमानसाः ॥५७॥
 तत्तासां वचनं श्रुत्वा भिन्नरूपैः पुनः प्रभुः । ता उवाच स्त्रियः सोऽहं विष्णुरेव न संशयः ॥५८॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा पुनस्ता राममब्रुवन् । दर्शयस्व निजं विष्णुरूपं चेत्सत्यवागसि ॥५९॥
 ततस्ता दर्शयामास विष्णुरूपं निजं प्रभुः । तानि चत्वारि रूपाणि परावर्त्य रघूत्तमः ॥६०॥
 ततस्ताः पुरतो विष्णुं द्रष्टुं नेष्टुः स्वमस्तकैः । ततो विष्णुः ॥ ताः प्राह वः संदेहो गतो न वा ॥६१॥
 ता ऊचुर्दर्शनाच्चेऽयं भवकलेशा गता हि नः । कृपांस्तु तत्र सन्देहस्त्वज्ञानजनितः प्रभो ॥६२॥
 ततः पुनः भगवाद्गमो रूपं ता दर्शयन्मुदा । एकमेव हि सर्वासां मध्ये जनकजापतिः ॥६३॥
 ततो रामोऽबधीताः स वरं वरयतामिति । ता ऊचुः कामवाणेन पीडिता राघवं मुदा ॥६४॥

भव भर्ता त्वमेवायं मां धर्तुं विधिना दने ।

अस्मान्निस्त्वं कुरुष्वान्न सुखं क्रीडां चिरं प्रभो ॥६५॥

ततो नय पुरीं स्वीयां नस्त्वं माञ्जवद्विधितय । तत्तासां वचनं श्रुत्वा राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥६६॥
 एकपत्नीव्रतं मेऽस्ति ॥ वाक्यं मम वै मृषा । ततस्ता विह्वला भूत्वा निपेतुर्जगतीतले ॥६७॥
 पुनस्ताः प्राह रामः स शृणुष्व वचनं मम । द्वापरं कृष्णरूपेण यूपं क्रीडां भजिष्यथ ॥६८॥
 मित्रविंदा नाग्रजिती भद्राञ्ज्या लक्ष्मणाङ्गया । एवं नामानि युष्माकं भविष्यति तदा मया ॥६९॥
 भविष्यति विवाहाश्च सर्वासां नात्र संशयः । तदा नानाविधान् भोगान् भजिष्व वै मया सह ॥७०॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा किञ्चित्तुष्टमनाः स्त्रियः । रामं प्रोचुः पुनर्वाक्यं त्वमग्रे गन्तुमर्हसि ॥७१॥
 तामिः शनैस्ततो रामो ययौ तुरगसंस्थितः । योजनोपरि ताः सर्वाः सहस्रं षोडशाः शुभाः ॥७२॥

या कि जिसे आपके सिवाय किसी अन्य व्यक्ति में हटानका सामर्थ्य नहीं था । वह हम लोगोंकी इस कन्दरामें डालकर कहीं चला गया है । तबसे हम ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्याओंकी कन्याएँ यहाँ पड़ी हुई हैं । वायु वृक्षाका पतितियाँ हमारा भोजन ॥ और श्रीविष्णुभगवान्के चरणोंमें हमने अपने मन लगा दिये हैं । ॥ प्रकार उनकी ॥ सुनकर सबके ॥ एक-एक स्वरूपसे लड़े श्रीरामचन्द्रजोने कहा कि जिस विष्णुमें तुमने अपना ॥ लगा रखा है, वह मैं ही हूँ । रामकी बात सुनकर उन स्त्रियोंने कहा कि यदि तुम यह सच कह रहे हो तो अपना विष्णुरूप हमें दिखाओ । इसके अनन्तर भगवान्ने अपने उन चारों स्वरूपोंको अपनेमें समेट लिया और विष्णुरूपसे सबको दर्शन दिया । जब उन्होंने विष्णुभगवान्को अपने सम्मुख देखा तो मस्तक झुकाकर प्रणाम किया । विष्णुभगवान्ने उनसे पूछा कि अब तो तुम्हारा सन्देह निवृत्त हुआ ? उन्होंने कहा कि आपके इन पुनर्जित दर्शनोंसे मेरा सब क्लेश दूर हो गया तो फिर अज्ञानसे जाग्रमान सन्देहके विषयमें क्या कहना है ॥ ५५-६२ ॥ क्षणभरके बाद ॥ फिर रामके स्वरूपसे उनके सम्मुख लड़े दिखाई दिये और उनसे बोले कि तुम लोगोंकी जो इच्छा हो, वह वर माँगो । ॥ कामवाणसे पीडित होकर उन स्त्रियोंने कहा कि यदि आप हमारे ऊपर ॥ ॥ तो हम लोगोंके साथ गान्धर्व विवाह करके हमारे पति बनिये और अधिक समयतक आनन्दपूर्वक इस कन्दरामें हम लोगोंके साथ विहार कीजिए । उनका यह प्रार्थना सुनकर रामने कहा कि ऐसा तो नहीं हो सकता । क्योंकि मैं एकपत्नीव्रतधारी हूँ । मैं कभी झूठ नहीं बोलता, तुमसे सच कह रहा हूँ । ॥ वह बात सुनते ही वे स्त्रियाँ मूर्छित होकर पृथीव्य गिर पड़ीं ॥ ६३-६७ ॥ ऐसी दशामें राम उनका समझाते हुए कहने लगे—इस प्रकार अधीर न होकर मेरी ॥ सुनो । अभी तो नहीं द्वापर युगमें कृष्णरूपसे मैं तुम लोगोंके साथ विहार करूँगा । मित्रविंदा, नाग्रजिती, भद्रा ॥ लक्ष्मणा इस प्रकार तुम लोगोंका नाम पड़ेगा और उस समय तुम सबका विवाह मेरे ॥ होगा । इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ । उस समय तुम सब मेरे साथ नाना प्रकारके सुख भोगोगी । रामकी बातोंको सुनकर उनका मन कुछ सन्तुष्ट हुआ और कहा कि अब ॥ चाहें तो जा सकते हैं । राम उन चारों कन्याओंके साथ धीरे-धीरे आगे बढ़े । एक योजन आगे जाकर गण्डको नदीके किनारे एक झाड़ोंमें

ददर्श गण्डकीतीरे वृक्षपण्डे रघूदहः । निर्मलितदृशः शुष्कास्तपसा दग्धयौवनाः ॥७३॥

इति श्रीमत्तकोटिरामचरितामर्गति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वाधे
विजयकन्याचतुष्टयवरदानं नामैकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः

(सोलह हजार ललनाओं तथा कालिन्दी आदि चार स्त्रियोंको रामका वरदान)

श्रीरामदास उवाच

■ रामः शनैः सर्वाः स्पृष्ट्वा निजकरेण ताः । कृत्वा तारुण्यपूरोधपूरिताः प्राह सादरम् ॥ १ ॥
पूर्ववत्सकलं वृत्तं सर्वाः मंत्रान्य विस्तरात् । वरं वरयतां शीघ्रमिन्त्युक्त्वा च रघूत्तमः ॥ २ ॥
हसं तं दुन्दुभिं श्रुत्वा हर्षोत्फुल्लाननाः स्त्रियः । पूर्ववद्विष्णुरूपाणि सङ्ख्याणि हि बोद्धुः ॥ ३ ॥
सन्दर्शितानि रामेण तार्वति च स्थितानि हि । रामरूपाणि ता दृष्ट्वा शान्त्वा विष्णुं परात्परम् ॥ ४ ॥
■ वरान्वरयामासुस्त्वन्नो भर्ता भव प्रभो । ततो राममुक्त्वाच्छ्रुत्वा चैकपत्नीव्रतस्थितम् ॥ ५ ॥
परस्परं ताः सम्मन्य प्रोचुः सर्वा मृगोदृशः । मया वृतम्भवया चायं त्वया वृतस्तथा मया ॥ ६ ॥
एवं तासु च सर्वासु वदन्तीषु रघूत्तमः । श्रुत्वा तद्वचनं शिष्य तदा चित्तेऽविचारयत् ॥ ७ ॥
इमा वदन्ति किं सर्वा मां श्रुत्वाऽपि व्रतस्थितम् । बलात्कारेण मां भोक्तुं मन्त्रयन्ति परस्परम् ॥ ८ ॥

ब्रह्मरुद्रमधवादयः सुरा ये च सिद्धमुनयः पुरातनाः ।

तेऽपि योगबलिनो विमोहिता लीलया तदबलाभिरन्नृतम् ॥ ९ ॥

योपिता नयनतीक्ष्णसायकैर्भूलतामुद्वेच्यनिर्गतेः ।

धन्विना मकरकेतुना हतः कस्य नो पतितो मनोमृगः ॥ १० ॥

तावदेव दृढचित्तता नृणां तावदेव गणना कुलस्य ■ ।

तावदेव तपसः प्रगल्भता तावदेव नियमव्रतादयः ॥ ११ ॥

■ सोलह हजार स्त्रियोंको देखा । वे ■ आँखें मूँदे थीं, तपस्यासे उनका शरीर सूख गया था और यौवन नष्ट हो चला था ॥ ६८-७३ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामलेजपाध्येविरचित'ज्योत्स्ना'
भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

श्रीरामदास बोले—इसके अनन्तर रामने अपने हाथके स्पर्शसे उन सबको यौवनपरिपूर्ण कर दिया तो वे भी पहलेवाली चारों स्त्रियोंके समान अपना वृत्तान्त बता गयीं । रामने उनसे कहा कि तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वरदान मुझसे माँग लो । उन्होंने भी जब दुन्दुभीके मरनेका समाचार सुना तो बहुत दुई । इसके अनन्तर रामने उन्हें भी अपना विष्णुरूप दिखा तथा सोलह हजार रामरूप धरकर प्रत्येक स्त्रीको अलग-अलग दर्शन दिया । स्त्रियोंने ■ प्रकार रामरूपको देखकर उन्हें सर्वश्रेष्ठ विष्णुभगवान् जाना ॥ १-४ ॥ उन्होंने भी पहलेवालियोंकी तरह रामसे प्रार्थना की कि आप मेरे पति बनें । जब उनको रामने अपनेको एक-पत्नीव्रती बतलाया तो वे आपसमें सलाह करके कहने लगीं कि जैसे मैंने इनको पसन्द किया है, उसी तरह तुमने भी तो किया है । ■ आओ, हम सब मिलकर कोई ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे हमारी कामना पूर्ण हो जाय । इस प्रकार जब रामने उनकी सलाह सुनी तो अपने हृदयमें विचार करने लगे कि एकपत्नीव्रतमें स्थित देखकर भी ये स्त्रियाँ वरबस मेरे साथ संभोग करना चाहती हैं ॥ ५-८ ॥ ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्रादिक देवता एवं जितने पुरातन सिद्ध-मुनि हो गये हैं, वे ■ योगी होकर भी कामिनियोंकी अद्भुत लीलासे मुग्ध हो गये थे ॥ ९ ॥ स्त्रियोंके नेत्ररूपी सायकको वनुर्घाटी कामदेव जिसके ऊपर छोड़ता है तो किसका मनरूपी

यावदेव वनितोत्सवासर्वने माद्यति द्रुतमदेन पूरुषः ।
 मोहयन्तु मदयन्तु मग्निं योषितः स्वचरिर्तर्मनोहरः ॥१२॥
 मोहयन्ति मदयन्ति मामिमा घर्भरक्षणपरं हि कैर्गुणैः ।
 मांसरक्तमलमूत्रपूरितं योषितां येषुपि निर्गुणेषु शुची ॥१३॥
 कामिनस्तु परिकल्प्य चाकृतामारभन्ति सुविभूद्वेदसः ।
 दारुणः परिपीडिताऽङ्गनामन्निधिविमलबुद्धिवातिभिः ॥१४॥
 यावदेव ■ समीपमागतास्तावदेव हि ब्रजाम्यदुष्यताम् ।
 तर्हि मे व्रतमिदं सुनिर्मलं नान्यथा कथमहं करोम्यहम् ॥१५॥

अथवा किं करिष्यन्ति मामेकदधिताप्रियम् । इति निश्चिन्य श्रीरामस्तत्र तूष्णीं स्थितोऽभवत् ॥१६॥
 एतस्मिन्नन्तरे सर्वास्तास्तं प्राचुर्नृपोत्तमम् । शून्यं नूनमस्माभिर्नात्र कार्या विचारणा ॥१७॥
 एकपत्नीव्रतं किं ते पार्थिवस्य रघूत्तम । अस्ति तेनृणां प्राप्तं यत्फलं भोक्तुमर्हसि ॥१८॥
 इत्युक्त्वा तास्तदा सर्वा गत्वा तन्मनिधिं जवात् । सव्यापमयबन्धेन भुजपाशान् प्रचक्रिरे ॥१९॥
 नन्ददृष्ट्वा राघवः प्राह शृणुध्वं वचनं मम । युष्माभिरुच्यते मद्रमनुकूलं प्रियं वचः ॥२०॥
 प्रतिनस्तन्न योर्यं मे मा म्वेदं गन्तुमर्हथ । आरुण्यं रामवाक्यानि तमूचुस्ताः समन्ततः ॥२१॥
 मकामध्वनिनोत्कण्ठाः कोकिला इव माधवे ।

योऽशसहस्रस्त्रिय ऊचुः

धर्मादर्थोऽर्थतः कामः कामाद्भर्मफलोदयः ॥२२॥

इत्येव निश्चयं द्यास्ते वर्णयन्ति विपश्चितः । स कामो व्रतबाहुल्यात्पुरस्ते समुपस्थितः ॥२३॥
 सेव्यतां विविधभोगैः स्वर्गभूमिरियं ततः । श्रुत्वा तद्वचनं तामां रामस्ताः प्राह सस्मितः ॥२४॥

मृग उस बाणसे घायल नहीं हो जाता ॥ १० ॥ मनुष्यका चित्त तभी तक दृढ़ रहता है, तभी तक कुलकी मर्यादा रहती है, तभी तक तपस्यामें मग्न रहता है, तभी तक नियम-व्रत आदि होते हैं, जबतक स्त्रियोंके पञ्चल कटाक्षोंसे पुरुषका मन भतवाला नहीं हो जाता और जबतक स्त्रियाँ उनपर मोहितनी डालकर अपने मनोहारी हाव-भावोंसे पागल नहीं बना देतीं ॥ ११ ॥ १२ ॥ य तुलें अपनी घर्भरक्षण तत्पर जानकर भी अपने गुणोंसे मुग्ध करना चाहती है । मांस, रक्त और मल-मूत्रसे परिपूर्ण स्त्रियोंको अपवित्र देहपर कामी पुरुष सौन्दर्यकी कल्पना करके आनन्द सूटते हैं । मेरी समझसे तो वे लोग पूरे पावले हैं । क्योंकि विमल बुद्धिवाले लोगोंका कहना तो यह है कि स्त्रियोंका लिंग बड़ा ही दारुण गरिणामकारी होता है । ■■■■■, जबतक ये मेरे समीप नहीं आ जातीं । इसी बीच में यदि ■■■■■ हूँ तो अच्छा हो, मेरा व्रत निर्मल रह जाय । इसके सिवाय और कोई उपाय भी तो नहीं देखता ॥ १३-१४ ॥ अच्छा, यह भी देख लूँ कि ये मेरे साथ क्या करती हैं । वह निश्चय करके रामचन्द्रजी चुपचाप बैठ गये ॥ १५ ॥ उसी समय उन सब स्त्रियोंने एक स्वरसे कहा कि हम लोगोंने आपको अपना पति मान लिया है । अब आइए । क्या प्रकारका विचार मत करिये ॥ १६ ॥ हे राम ! क्या आपने एकपत्नीव्रत पालन किया है ? वह यदि सत्य है तो अब ■■■■■ प्राप्त फलका उपभोग कीजिए ॥ १७ ॥ ऐसा कहकर ■■■■■ सब उनका पास पहुँचीं और दाहिनी-बायीं दोनों भुजाओंसे रामको अपने भुजपाशमें भर लेनेकी चेष्टा करने लगीं ॥ १८ ॥ ऐसी अवस्थामें रामने उनसे कहा कि आप सब जो कुछ कह रही हैं, वह ठीक ही है । किन्तु हमारे जैसे व्रती मनुष्योंके लिये यह उचित नहीं है । इस लिये तुम सब किसी प्रकारका खेद न करके ऐसी दुष्टेष्टसे अलग हो जाओ । इस तरह रामकी वाणी सुनकर चारों ओरसे वे सब कहने लगीं । उस समय कामवश उनके कण्ठकी ध्वनि बसन्त श्रुतुके कोकिलके समान मधुर सुनाई देती थी ॥ २० ॥ २१ ॥ सोलह हजार स्त्रियाँ वालीं—धर्मसे अर्थकी प्राप्ति होती है, अर्थसे काम प्राप्त होता है और कामसे धर्मफल मिलता है । विद्वान् लोग शास्त्रोंका पढ़ी निर्णय बतलाते हैं । वही काम आपके

श्रीरामदास उवाच

वरात् दास्यामि युष्माकं नान्यं श्रोष्यामि किञ्चन । इत्युक्ताः पुनरुचुस्ताः किं त्वं वदसि राघव ॥२५॥

ता ऊचुः

रिप्यौषधं ब्रह्मचर्यो रसायनं सिद्धिर्निधिः साधुकुला वरांगनाः ।

मन्त्रस्तथा ब्रह्मजले च धर्मतो मेमे निषेध्याः सुधिया समागताः ॥२६॥

कार्यं ■ देवाद्यदि सिद्धिमागतं तस्मिन्नुपेक्षां न च याति नीतिगाः ।

यस्मादुपेक्षा न पुनः फलप्रदा तस्मान्न दीर्घीकरणं प्रशस्यते ॥२७॥

सांज्ञानुरागाः कुलजन्मनिर्मलाः स्नेहार्द्रचित्ताः सुगिरः स्वयम्बराः ।

कन्थाः सुरुपाः परिपूर्णयौवना धन्या लभन्तेऽत्र नरास्तु नेतरे ॥२८॥

■ वयं भूरिसौंदर्यः क्वैकपत्नीव्रतं सव । तस्मादस्मानिदानीं त्वं मा निराकर्तुमर्हसि ॥२९॥

माधवेण विवाहेन नान्यथा नोऽस्तु जीवितम् । श्रुत्वा वान्यं तु तत्तामो राघवः ब्रूह ताः पुनः ॥३०॥

मो मृगाक्ष्यः कथं त्पाज्यो धर्मो धर्मविचक्षणैः । धर्मश्चार्थश्च कामश्च मोक्षश्चैतत्तुष्टयम् ॥३१॥

कथोक्तं सफलं श्रेयं विपरीतं तु निष्फलम् । तस्मान्मयोक्तं यद् पूर्वमेकपत्नीव्रतं निजम् ॥३२॥

अस्मिन् जन्मनि तन्नाहं त्यक्तुमिच्छामि मोः स्त्रियः ।

एवं श्रुत्वाऽऽश्चयं तस्य ताः समीप्य परस्परम् ॥३३॥

करात्किरान् प्रमुच्यस्य जगृहुरग्निं तदाऽवलाः । अन्योन्यमग्निं रामस्य भुञ्जी ■ जगृह्य ताः ॥३४॥

एवं तामिवेहमानमात्मानं वीक्ष्य राघवः । अन्तर्धानमगाधश्च तासां मध्ये धणात् प्रभुः ॥३५॥

किं कुर्यात् त्विमाः सर्वा अन्तर्धानं मते मयि । एवं तासां कौतुकं हि गुप्तरूपो ददर्श सः ॥३६॥

छतकी प्रबलतासे स्वयं प्राप्त हुआ ॥ २२ ॥ २३ ॥ विविध प्रकारके भोगोंका उपयोग करेंगे तो हस्तमें लम्बे नहीं
■ कि यह मर्त्यलोक ही आपके लिये स्वर्ग ■ जायगा । उनकी बात सुनकर चकाराये हुए रामचन्द्रजी कहने
कये कि सिवाय वर माँगनेके मैं तुम्हारे एक बात भी नहीं सुनूँगा । रामके ऐसा कहनेपर उन स्त्रियोंने कहा—
■ राघव । आप कह क्या रहे हैं ? ॥ २४ ॥ २५ ॥ दिव्य औषधि, ब्रह्मको जाननेसे सम्बन्ध रखनेवाली बातें, रसायन,
सिद्धिके सजाने, निधियाँ, अच्छी कलायें, अच्छी स्त्रियाँ और ब्रह्म-जल पाकर सज्जनजन कभी नहीं छोड़ते ॥ २६ ॥
जो कोई काम देवात् सिद्ध हो सकता है तो नीतिज्ञ जन उसकी कभी उपेक्षा नहीं करते । फिर उसकी उपेक्षा
करनेसे कोई लाभ नहीं हो तो उसकी उपेक्षा ही क्यों की जाय । धर्मका आहम्बर बढ़ानेका क्या आवश्यकता ■
॥ २७ ॥ गाढ़े प्रेमयुक्त, अच्छे कुलमें उत्पन्न, जितका चित्त स्नेहसे भाँड़ हो गया हो, जो अच्छी-बच्छी
बातें करती हों, जो वरके पास स्वयं ■ पहुँचो हों, जिनका सुन्दर स्वरूप हो और जिनका धीवन ■ पूरी तरह
उमड़ ■ हो । ऐसी स्त्रियोंको जो लोग पाते हैं, वे कथ्य हैं । सामान्य श्रेणीके लोग ऐसी स्त्रियोंको नहीं
पाते ॥ २८ ॥ कहाँ हम जैसी सुन्दरी स्त्रियाँ और कहाँ आपका एकपत्नीव्रत । इस कारण ■ फिर भी
कहती ■ कि आप हमारा निरादर न कीजिए ॥ २९ ॥ बिना आपके साथ गान्धर्व विवाह किसे हम लोग नहीं
खी हकींगी । उनकी बात सुनकर रामने कहा । श्रीराम बोले—हे मृगके समान नेत्रोंवाली स्त्रियों ! तुम-
कंधे यह कह रही हो कि कामको प्राप्त देखकर धर्मका परित्याग कर दो । धर्म, धर्म, काम और मोक्ष ये
चार पदार्थ हैं । यदि एकके ■ एकका अच्छी तरह साधन किया जाता ■ तो वह सफल होती है । ■
तिष्कल हो जाता है अथवा विपरीत फल सामने आता है । अतः जो मैंने अपने एकपत्नीव्रतका कारण बतलाया
है, उसका परित्याग नहीं कर सकता । इस प्रकार रामका आशय जानकर वे आपसमें एक दूसरेका ■
विचारने लगीं ॥ ३०-३३ ॥ तदनन्तर हाथ जोड़कर स्त्रियोंने रामका पैर पकड़ लिया, किन्तु ■ स्त्रियोंने हस्त
भी पकड़े रखा ॥ ३४ ॥ ■ उपरु ■ लोगोंसे अपनेको घिरा हुआ देखकर राम कहाँ ही अंतर्धान हो गये ।

अदृष्ट्वा राघवं सर्वास्ताः क्षणान्ममदोचमाः । दृष्ट्वा तदद्भुतं कर्म विन्मयाविष्टमानसाः ॥३७॥
 विप्रस्तहृदयाः सर्वाः कुरंग्य इव कातराः । संभ्रान्तनयना दीना इत्युचुस्ताः परस्परम् ॥३८॥
 व्याप्तं च हृदयं तासां तदैव विरहाग्निना । ज्वलज्ज्वालानलेनैव सुस्निग्धं सार्द्रकाननम् ॥३९॥
 स्यर्जेत्रजालिकां मायां क्रांतं दर्शय सत्वरम् । स्वात्मानं नर्मणा पुक्तं प्राग्ग्रासे मक्षिकाऽपतत् ॥४०॥

स्निग्धं कुरु:

■ कष्टं दर्शितः कस्माद्वात्रा किं रचितं त्विदम् ।
 ज्ञातं महत्तमं तप्यं दातुं नस्त्वं समागतः ॥४१॥
 कच्चित्तं निर्दयं चेत्तः कच्चिदस्मान् परीक्षसि ।
 कच्चिद्रुष्टोऽसि हे क्रांतं कच्चिन्मुष्णासि नो मनः ॥४२॥
 कच्चिन्नो प्रत्ययोऽस्मात्सु कच्चिदस्मात्सु नो रतिः ।
 कच्चिद्विनोदयसि नः कच्चिन्मायाविशारदः ॥४३॥

कच्चिच्चित्ते प्रवेष्टुं त्वं चेत्सि विज्ञानलाघवम् । कच्चिद्विनापराधं हि त्वमस्मात्सु प्रकुप्यसि ॥४४॥
 कच्चिद्दुःखं न जानामि परेषां विप्रलम्भजम् । त्वदर्शनं विना नूनं हृदयेभ्यः संप्रतम् ॥४५॥
 न जीवामोऽथ जीवामः पुनस्त्वदर्शनाशया । अस्मांस्तत्र नय त्वं हि यत्र नाथ गतो ह्यसि ॥४६॥
 सर्वथा दर्शनं देहि कारुण्यं भज सर्वथा । पर्यन्तं न हि पश्यति कस्यचित्सज्जना जनाः ॥४७॥

इत्थं विलप्य ताः सर्वाः प्रतीक्ष्य च बहुक्षणम् ।
 रामं द्रष्टुं वने सर्वा बभ्रमुस्ता इतस्ततः ॥४८॥
 वृक्षान् वनेचरान् रामो दृष्टोऽस्माकं पतिर्न ■ ।
 एवं सर्वास्तु पप्रच्छु रामविश्लेषमज्वराः ॥४९॥

रे रे विष्वल वृक्षाणामधिपस्त्वं त्रवीहि नः । रामो दृष्टोऽथ वा नैव त्वयं त्वां शरणं गताः ॥५०॥

फिर भी रे ■ करती हैं, यह देखनेके लिए राम गुप्तरूपसे वहाँ खड़े-खड़े देख रहे थे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ क्षणभरमें रामको अलक्षित देखकर वे बहुत चकरायीं । फिर व्यग्रकुल होकर हरिणियोंको नाई चञ्चल नेत्रोंसे इधर-उधर देखती हुई आपसमें कहने लगीं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ उस समय उनका हृदय विरहाग्निसे पूर्ण हो गया था । उनकी उस विरहाग्निकी ज्वालासे ■ अञ्जलमें ■ थोड़ी देरके लिए वृक्षाको घारा बहने लगी ॥ ३९ ॥ ■ बोली—हे क्रांत ! इस ऐन्द्रजाल (ठगहारी) परित्याग करके हमें शोध दर्शन दीजिए । हमने आपसे हँसी की और पहले ही प्राप्तमें मवली गिरनेके समान इतना बड़ा विघ्न आकर उपस्थित हो गया ॥ ४० ॥ कितने दुःखकी बात है । हे विधातः ! तुम्हारी क्या इच्छा है ? ■ चित्तचोर ! जान पड़ता है कि तुम हम सबको सन्ताप देनेके लिए ही यहाँ आये थे ॥ ४१ ॥ तुम्हारा हृदय ही निष्ठुर ■ या हम लोगोंको परीक्षा ले रहे हो । हमसे नाराज ■ या हमारा चित्त चुरा रहे हो ? ॥ ४२ ॥ क्या हमारे ऊपर तुम्हारा विश्वास नहीं है ? क्या हमसे प्रेम नहीं करते हो ? हम लोगोंके साथ ठठेली तो नहीं कर रहे हो ? क्योंकि तुम मायाजाल फैलानेमें भी बड़े निपुण हो ॥ ४३ ॥ तुम किसीके चित्तमें धुसनेका कोई वैज्ञानिक एवं सूक्ष्म साधन जानते हो । बिना किसी अपराधके हमसे इतने क्यों रुठ गये हो ? ॥ ४४ ॥ दूसरेको धोखा देनेमें जो दुःख होता है, क्या तुम उसे नहीं जानते ? बिना तुम्हारा दर्शन पाये हम लोग नहीं जी सकेंगी और यदि जीयेंगी भी तो तुम्हारे दर्शनोंकी ही इच्छासे, अन्यथा नहीं । हे नाथ ! हमें भी वहाँ ■ ले चलिये, जहाँ आप गये हों ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ क्या करके हमें दर्शन दीजिए । सज्जनजन कभी किसीका दुःख नहीं देख सकते ॥ ४७ ॥ ■ तरह बहुत देरतक विलाप करके उन्होंने उनके आनेकी प्रतिज्ञा की । तब भी जब वे नहीं आये, ■ वे उनको हूँढ़नेके लिए वनमें इधर-उधर घूमने लगीं ॥ ४८ ॥ रास्तेके प्रत्येक वृक्ष और वनेने पशुओंसे वे रामविरहिणिया यह

भो भो तुलसि नो नाथस्त्वयामो निरीक्षितः । वद शम्भुस्त्वम् त्वं नो वने रामो निरीक्षितः ॥५१॥

त्वं कोकिल सदा शब्दान् करोषि परमान् शुमान् ।

वदाद्य जानकीकान्तस्त्वयाऽरभ्ये निरीक्षितः ॥५२॥

भो कदम्ब-वदस्व त्वं तव पृच्छामहे वयम् । दीनानाथो रमानाथः सीतानाथस्त्वयेक्षितः ॥५३॥

पिक त्वमुचरं देहि सदा शब्दान् करोषि हि । पतिर्नः श्रीपतिः सीतापतिर्दृष्टोऽथवा न वा ॥५४॥

भो वारण मदोन्मत्त नृवारणसमः प्रभुः ।

सप्तद्वीपपतिः श्रीमान् रामोऽरभ्ये निरीक्षितः ॥५५॥

शुक नः कथयाद्य त्वं प्रभुर्दृष्टोऽथ वा न वा ।

वद पुण्ये सतिच्छेष्टे किं तूष्णीं संस्थिताऽधुना ॥५६॥

नः प्रभुः सप्तद्वीपानां प्रभुरत्र निरीक्षितः ।

भो वायो कथयाद्य त्वं सीतारामो निरीक्षितः ॥५७॥

श्रीरामदास उवाच

एवं ता रामनिश्लेषसंभ्रांताः शुशुचुर्वने । ततस्ता गंडकीतीरं गत्वा गीतं प्रचक्रिरे ॥५८॥

त्रिप्रभ ऊचुः

किं प्रभो त्वया जानकी यदा तेन रक्षसाऽरप्यमप्यतः ।

स्वस्पर्शं दृष्ट्वा गौतमीतटात्तत्कृते त्वया नैव शोचितम् ॥५९॥१॥

स्वद्वियोगतस्तप्तमानसाः सर्वतो वने शोकमागताः ।

एकदा प्रभो देहि दर्शनं देहि नो वरान् माऽस्तु । रतिः ॥६०॥२॥

नो वाञ्छामो राघव त्वचो रतिमद्य यद्गहनं भूसुरजाम्यो वरदानम् ।

तद्वशस्त्वं पूरय कामान्वरदानैर्वाञ्छामस्ते सेवनमग्रये जननेऽपि ॥६१॥३॥

पूछती जाती थी कि तुमने हमारे पति रामको तो इधर कहीं नहीं देखा ? ॥ ५९ ॥ ये कहती थीं कि हे वृक्षोंके राजा पिप्पलदेव ! हमें बताओ कि तुमने रामको तो नहीं देखा है ? हम आपका अरण्यमें हैं ॥ ५९ ॥ हे तुलसी देवी ! तुमने तो रामको नहीं देखा है ? हे वानरगण ! इस वनमें तुमने कहीं रामको तो नहीं देखा है ? ॥ ५९ ॥ हे कोकिल ! तू बड़ी मोठी वाणी बोलता है, अब उसी वाणीमें हमें यह बता दे कि तूने वनमें कहीं रामचन्द्रको तो नहीं देखा है ? ॥ ५९ ॥ हे कदम्ब ! तुझसे हम सब स्त्रियाँ यही पूछना चाहती हैं कि तूने सीतापति रामको तो कहीं नहीं देखा ? ॥ ५९ ॥ अरे पिक ! तू सदा 'पोकहा-पोकहा' बोलता रहता है । अब हमें यह बता कि तूने कहीं जानकीवल्लभ रामको देखा है ? देखा हो तो बतला दे ॥ ५९ ॥ हे मतवाली गजराज ! मनुष्योंमें हाथोंके समान श्रेष्ठ रामचन्द्रजीको तो तूने नहीं देखा है ? ॥ ५९ ॥ हे शुक ! तूही बता दे कि इस वनमें कहीं रामको देखा है ? हे पवित्र नदी ! तू क्यों चुप है ? सप्तद्वीपके अर्वाक्षर और हम लोगोंके प्रभु रामचन्द्रजीको तो तूने नहीं देखा है ? यदि देखा हो तो बता दे । हे वायो ! कहो, तुमने इस वनमें कहीं सीतापति रामको देखा है ? ॥ ५९ ॥ ५९ ॥ श्रीरामदास कहने लगे—इस प्रकार रामके कियोगसे पगली-सी होकर ये स्त्रियाँ विलाप करती हुई चलती-चलती गण्डका नदीके किनारे जाकर इस तरह प्रार्थनाभरे गायन गाने लगी— ॥ ५९ ॥ हे प्रभो ! जब रावण वनमेंसे सीताका हरण करके अपनी राजधानी लङ्काको ले गया था, तब क्या उनके लिए आपने कोई आन नही किया था ? ॥ ५९ ॥ १ ॥ हे नाथ ! आपके कियोगसे हमारा हृदय जला जा रहा है । शोकसे बसकुल होकर हम सब इस वनमें आ पहुँची हैं । हे प्रभो ! हमें एक बार अपना दर्शन दे दे और कोई वरदान भी दे दें । यदि आप हमसे प्रेम नहीं करना चाहते तो न करिए ॥ ६० ॥ २ ॥ हे राघव ! जबतक हम सब कामचलायामय रहेंगे तब तक हमें उसकी इच्छा भी नहीं रह गयी । जिस प्रकार अपने ब्राह्मणों के कामचलायामय होनेसे हमें उसकी इच्छा भी नहीं रह गयी । जिस प्रकार अपने ब्राह्मणों के कामचलायामय होनेसे हमें उसकी इच्छा भी नहीं रह गयी । जिस प्रकार अपने ब्राह्मणों के कामचलायामय होनेसे हमें उसकी इच्छा भी नहीं रह गयी ।

अस्माभिर्यत्नचलभावादपराद्धं तत्त्वं त्वं मा स्मर पूर्वं कृष्णातः ।
 नः प्राणास्ते दर्शनहेतोस्तनुमध्ये तिष्ठन्ति त्वां पदपल्लवपाब्जा क्रियतेऽद्य ॥६२॥४॥
 भो भो राघव मा रुष्ट त्वं क्रोधं मा मज दासीष्यथ ।
 पर्यंतं न हि पश्यतीत्यं वाञ्छामो न हि त्वत्तः कामम् ॥६३॥५॥
 देहि त्वं निजदर्शनलभं जन्माग्रयेऽर्पय नो वरदानम् ।
 पाहि त्वं शरणं श्रुपयानाः सर्वास्वारय नः प्रणमामः ॥६४॥६॥
 राम त्वं किं निर्दयहृदयस्त्वसि नः किं नायात्यय स्त्रीजनकरुणा हृदये ते ।
 इत्थं क्रोधं त्यज्यदपुगले पतितासु कर्तुं विष्णो नाहंसि वरदो भव नोऽद्य ॥६५॥७॥
 बाले दीने स्त्रीजनविमले ननये स्वे नो कूर्वेन्तीत्यं बहुविमला प्रतिमंतः ।
 कर्ं क्रोधं त्वं त्यज वरदो भव नोऽद्य वारं वारं करकमलैस्त्वा प्रणमामः ॥६६॥८॥
 हे ॥ राघव श्मेश्वर रावणारे स्त्रीतापते रिपुनिषूदन कञ्जनेत्र ।
 त्वं देहि राम निजदर्शनमद्य विष्णो दुःस्वार्णवात्पगतं नय काभिनीर्नः ॥६७॥९॥
 त्वत्पादपद्मवरसेवनमर्थयामो जन्मान्तरे कुरु दया करुणाममुद्र ।
 नोषेत्तवाद्य विरहाभिजजां वितानि त्यक्ष्याम एव नियतं सहसाऽद्य नयाम् ॥६८॥१०॥

श्रीरामदास उवाच

नारीगीतं राघवश्चापि श्रुत्वा प्रत्यङ्गोऽभूः कामिनीनामवाग्ने ।
 दृष्ट्वा रामं ताः स्त्रियश्चातितुष्टाः श्रोत्पुल्लास्यास्तं प्रणमुः शिरोभिः ॥६९॥११॥
 नारीगीतं मानवश्चापि श्रुत्वा सर्वान् कामान्प्राप्नुयान्निश्चयेन ।
 तस्मादेतत्सर्वदा कीर्तनीयं श्लाकाकार्यं प्रापदं छन्दचित्रम् ॥७०॥१२॥

तत्पु वरदान देकर हमारी भो कामना पूर्ण करें । हम किसी अगले जन्ममें ही आपकी सेवा करना चाहती हैं ॥६१॥३॥ हमने कृष्णावश अथवा चंचलतासे कोई अपराध किया हो तो उसे ॥ भूल जायें । मेरे प्राण आपके दर्शनार्थं व्याकुल हैं । इस समय ॥ आपके दर्शनोंको ॥ भोल माँग रही हैं ॥ ६२ ॥ ४ ॥ ॥ ॥ । ॥ माराज न हों और दासियोंपर क्रोध न दिखलायें । हम सब आपसे कामवासनाको पूति नहीं चाहती ॥ ६३ ॥ ५ ॥ इस समय आप हमें अपना दर्शन और दूसरे जन्मके लिये वरदान दें । हम सब आपको शरणमें हैं । ॥ हमारी रक्षा करके हमारा निस्तार करिए । हम आपको प्रणाम करती हैं ॥ ६४ ॥ ६ ॥ । राम । क्या ॥ अपने निर्दयी ॥ कि जो हम स्त्रियोंको इस प्रकार दुस्ती देखकर भी आपके हृदयमें दया नहीं जाती ? हे विष्णो ! आपके पैरोंमें पड़ी हुई हम अबलाओंपर आपको इस प्रकार काष नहीं करना चाहिए । हमपर दया करके हमें वरदान दीजिए ॥ ६५ ॥ ७ ॥ बुद्धिमान् लोग बच्चोंपर, गरीब स्त्रियोंपर तथा अपनी सन्तानपर इस प्रकार कोप नहीं किया करते । इस कारण अपने क्रूर कोपका प्रत्याहार कीजिए । हम सब हाथ जोड़कर प्रणाम करती हैं, हमें वरदान दीजिए ॥ ६६ ॥ ८ ॥ हे माय ! हे राघव ! हे रमेश्वर ! हे रावणारे ! हे शोभाणते ! हे रिपुनिषूदन ! हे कञ्जनेत्र ! हे विष्णो ! हे राम ! अपना दर्शन देकर ॥ हम कामिनीजोंको दुःस्वार्णवासे पार कीजिए ॥ ६७ ॥ ९ ॥ हे करुणाके समुद्र ! अब दया कीजिए । हम दूसरे जन्ममें आपको सेवा ॥ ॥ ॥ । हम आपसे यही मित्रा माँगती ॥ । यदि ऐसा नहीं करेंगे तो आपके विरहदुःखसे दुःखित हम सब स्त्रियाँ इसी गण्डकी नदीमें कूदकर अपने प्राण त्याग देंगी ॥ ६८ ॥ १० ॥ रामदासने कहा—इस प्रकार नन कामिनीयोंका विधाप सुनकर रामचन्द्रजी उनके सामने प्रकट हो गये । रामको प्रायज देखकर ॥ स्त्रियाँ बहुत प्रसन्न हुईं और विकसित वदन होकर बार-बार प्रणाम करने लगीं ॥ ६९ ॥ ११ ॥ प्रत्येक मनुष्य इस नारीगीतको सुनकर अपनी अभिलषित कामनाएँ पूर्ण कर सकता है । इसलिए लोगोंको चाहिए कि सदा इस नारीगीत-

अथ रामो वदौ ताभ्यो वरोस्तास्तोषयन् प्रभुः । यूयं मृगुष्वंभो नार्यः पुरा कथावाग्रजो मया ॥७१॥

बहुस्त्रीहेतुना रुक्ममूर्तयः षोडशार्पिताः ।

तासां दानेन संतुष्टास्ते विप्रा मां तदाऽभ्रुवन् ॥७२॥

फलं सहस्रगुणितं तवास्तु रघुनन्दन । अतस्तत्कलनश्चाहं द्वापरे कृष्णरूपधृक् ॥७३॥

करोमि पाणिग्रहणं युष्माकं द्वारकापुरि ।

यूयं नानानृपाणां च भवध्वं बालिकास्तदा ॥७४॥

भौमासुरस्तदाऽयं वै दुन्दुमिस्तु भविष्यति । भौमासुरश्च युष्माकं पूर्ववत्स हरिष्यति ॥७५॥

तदा सर्वा मोक्षयामि हत्वा तं अगतीसुतम् ।

ततो मया सुखेनैव कीडघ्नं हि यथारुचि ॥७६॥

एवं ता रामावाक्यं तच्छ्रुत्वा प्रभुदिताननाः ।

आनन्दोत्फुल्लनयनाः सुखमापुर्वराङ्गनाः ॥७७॥

एतस्मिन्नवरे रामं पश्यन्तो लक्ष्मणादयः । सर्वस्तत्राययुस्तत्र पदांकितपथा प्रभुम् ॥७८॥

षोडशसौसहस्राणां मध्ये दृष्ट्वा रघूत्तमम् । परं विस्मयमावुस्ते प्रणमुर्जगदीश्वरम् ॥७९॥

श्रुत्वा राममुक्तात्मवं पथावृत्तं सांवेष्टरम् । सर्वं सन्तुष्टमनसस्तस्युः भाराववाग्रतः ॥८०॥

ततो रामाञ्जसा दूताः शतशोऽथ सहस्रशः ।

बाहनान्यानयामासुः सेनारायस्थलान्मुदा ॥८१॥

तेषु ताः स्त्राः सुसंस्थाप्य बाहनेषु रघूत्तमः ।

श्वनेः सेनानिवासे स ययौ सीतांतके प्रभुः ॥८२॥

■ जानकी नेत्रुः सीतां वृत्त रघूत्तमः । यथा वृत्त तथा ■ कथयामास कौतुकात् ॥८३॥

ततस्ताः पूजयामास वस्त्राभरणैरसौ । ततो रामः स कासारं सेनायासरथलांतिके ॥८४॥

के श्लोकोंका पाठ किया करें ॥ ७० ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर उनको वरदान देते हुए रामचन्द्रजी कहने लगे—हे स्त्रियों ! बहुत दिनोंकी ■ है कि मैंने एक समय बहुत-सी स्त्रियोंको पानेका इच्छासे व्यासजीके सम्मुख सुषर्णकी सोलह स्त्रियां बनवाकर बाह्मणोंको दान दिया था । इससे प्रसन्न होकर उन विप्रोंने हमसे कहा—हे रघूत्तम ! तुम्हें इस दानका सहस्रगुना ■ होगा अर्थात् सोलहके बदले सोलह हजार स्त्रियां प्राप्त होंगी । अतएव उनके आशीर्वादानुसार द्वापरमें कृष्णका रूप धारण करके ॥ ७१-७३ ॥ मैं तुम सबोंका द्वारकापुरीमें पाणिग्रहण करूँगा । उस जन्ममें तुम अनेक राजाओंकी कन्याएँ होओगी । दुन्दुभी राक्षस जिसको कि बालिने मार डाला है, उस जन्ममें भौमासुर होगा और इस जन्मके समान ही तुम्हारा हरण करेगा ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ उस समय मैं भौमासुरको मारकर तुम सबोंको छुड़ाऊँगा और सबसे तुम ■ हमारे साथ विहार करोगी ॥ ७६ ॥ इस प्रकार रामके वाक्य सुनकर उनका चेहरा खिल उठा और ■ अत्यन्त आनन्दित हुई ॥ ७७ ॥ इसी समय रामको खोजते हुए उनके पैरोंके निशान देखते-देखते लक्ष्मणादि साथी भी वहीं आ पहुँचे । अब उन्होंने सोलह हजार स्त्रियोंके बीचमें रामको देखा तो बड़े विस्मित हुए और अगदीश्वर रामको उन लोगोंने प्रणाम किया ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ अब रामने उन स्त्रियोंका वास्तविक वृत्तान्त बतलाया तो वे बहुत प्रसन्न हुए और रामके आगे बैठ गये ॥ ८० ॥ इसके अनन्तर रामकी आज्ञासे हजारों बाहन आये । जिनपर उन स्त्रियोंको बिठाकर रामचन्द्रजी शिविरकी ओर चले, वहाँ कि सीताजी बैठी थी ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ वहाँ पहुँचकर उन सब स्त्रियोंने सीताको प्रणाम किया ■ रामने ■ को सच्चा-सच्चा हाल था, सो कह सुनाया ॥ ८३ ॥ इसके बाद सीताने अनेक वस्त्रों-आभरणोंसे उसकी ■ किया । बोधी देर बाद रामने अपने शिविरके पास ही एक उत्तम सरोवर देखा, जो अपनी

ददर्श सुमहच्छेष्टं स्वर्द्ययंतमपां पतिम् । धनपादपमध्यस्थं सुतीर्थसलिलं शुभम् ॥८५॥
 विशालं विकषांभोजमधुमत्तमधुव्रतम् । पथिर्नापत्रसंयुक्तं छन्नं मरुतैरिव ॥८६॥
 स्वच्छंदमुच्छलन्मत्स्यं स्वच्छ साधुमनो यथा । चलञ्जलचरोद्भिन्नवीचिराजिविराजितम् ॥८७॥
 अन्तर्माद्विगणकूरं खलानामिव मानसम् । कचिच्छैवालदुर्गम्यं कृपणस्येव मंदिरम् ॥८८॥
 नानाविहङ्गसर्वातिं क्षमयतं दिवानिशम् । उदारमिव सर्वस्वैरापन्नातिहरं मदत् ॥८९॥
 तपयतं हिमाम्भोभिः श्वापदान्स्वपितनिव । हरतं सर्वमतापं हिमांशुमिव चाद्विकम् ॥९०॥

तं दृष्ट्वाभूत्सुसंतुष्टः सीतया रघुनन्दनः ।

तत्र स्नात्वा सुखं रामः कृतमाध्याह्निकक्रियः ॥९१॥

शुक्त्वा बन्धुजनैः सर्वैरासेदगणसंघृतः । उवास सरसस्तीरे रम्याः संकथयन्कथाः ॥९२॥

ततः शरासने चाणं कृत्वा रात्रौ स्थितास्तरौ ।

व्याधाः संधानमास्थाय कुरुः ककुभां पदः ॥९३॥

एवं स्थितेषु वीरेषु वने विस्तार्य वागुराः । निशार्धे निर्गतं यूथं शूकराणां सरस्यटे ॥९४॥

चरित्वा सारसीकंदान् पपाद व्याधसंकुले । रात्रा विद्रास्तदाक्रोडा व्याधैश्च बहवो हताः ॥९५॥

क्षणेनैव वरहास्ते विद्राः पेतुर्महीतले ।

तान्दत्वा तुमुलं नादं चक्रुर्व्याधाः सुदर्शिताः ॥९६॥

धावन्तीरपि मुदा तत्र मिलिता यत्र भूपतिः । तानादाप भटैर्मयः सेनावासं ययौ ध्रुवः ॥९७॥

एवं सप्तदिनान्यव स्थित्वा रामो वने सुखम् ।

शुक्त्वा नानाविधान् भोगान् सीतया स्वपुरीं ययौ ॥९८॥

गहराईसे समुद्रकी सात फर रहा था । उसके आस-पास घनी वृक्षावली लगी हुई थी, स्थान-स्थानपर घाट वने हुए थे और पवित्र मरा था ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ उसके समुद्राई चौड़ाई भी थी। नहीं थी, लिले हुए कमलके फूलोंपर मीरे गुञ्जार रहे थे, फले हुए पुरइतक बड़े-बड़े पत्ते मरकता समान सुन्दर लग रहे थे ॥ ८६ ॥ सज्जन प्राणिक मनकी तरह स्वच्छन्दतापूर्वक मछलियों उछल रहा थी । जलचर प्राणियोंके इतर-उपर चलनेके कारण बार-बार उसमें लहरें उठ रही थी ॥ ८७ ॥ जल मनुष्यके हृदयक समान उसमें कितने ही घड़ियाल भरे थे । कहीं-कहीं कंजूस प्राणिक धरती तरह सेवार भरे थे, इतने उसमें अविष्ट होना दूबर लगता था ॥ ८८ ॥ दिनरात कितने ही पदा आश्रय लेकर अपनी थकावट दूर कर रहे थे । इससे बहु सरावर किसी ऐसे सज्जनके समान मानुस पड़ता था, जो अपना सर्वस्व लुटाकर गराबों तथा शरणगत जनोंकी रक्षामें तत्पर हो ॥ ८९ ॥ अपने ठंडे जलसे वह उसी तरह बनेले जीवोंको प्यास बुझा रहा था, जैसे चन्द्रमा दिन भरके परिश्रमसे दुःखी जनोंकी समस्त पीड़ा रातमें हरमे लिया करता है ॥ ९० ॥ उस सरावरको देखकर सीता तथा रामचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए । उसमें स्नान किया, मध्याह्न कालको भिर्यक्रियायें की और भोजन किया । फिर सारे शिकारियोंको साथ लेकर उसी तड़ागके समीप डेरा डाल दिया और अनेक तरहकी कहानियाँ कहते-कहते समय काटने लगे ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ जब रात्रिका समय हुआ तो बहेलियोंमें अनेक सामान लेकर चारों ओरसे उस तड़ागकी घेर लिया और रामचन्द्रजी अपना धनुष-बाण ठीक करके एक वृक्षके ऊपर जा बैठे ॥ ९३ ॥ जब कि व्याधे जाल बिछाकर तत्परताके साथ सरोवरके चारों तरफ घेरे और एक बाघी रातका समय हुआ, बनेले शूकरोंका एक यूथ आ पहुँचा ॥ ९४ ॥ तालाबमें उत्पन्न कन्द खाकर वह शूकरयूथ बहेलियोंके ऊपर दूढ़ पड़ा । उस समय बहुतसे शूकरोंको रामचन्द्रजीने मार डाला और बहुतोंको बहेलियोंमें समाप्त कर दिया ॥ ९५ ॥ अणभरमें वे सारे शूकर मार डाले गये । उनको मारनेके अनन्तर व्याधोंने प्रसन्नताका कोनाहूक मचाया ॥ ९६ ॥ बहेलिये मारे शूकोके रोते हुए उस स्थानपर पहुँचे, जहाँ रामचन्द्रजी बैठे थे । राम उन सबोंको

ततो विप्रान्नुपान् वैश्यान् ममाहूय स्थूतमः ।

■ यस्य दृहिता नारी या यस्य पुत्रपुत्रिका ॥९९॥

तस्मै तस्मै ददौ तां नामेवं सर्वा व्यसर्जयन् ।

वस्त्रालंकारभूषाद्यैः शोभयित्वा पृथक् पृथक् ॥१००॥

ते विप्राद्याः पुनर्जाता मेनिरे निजबालिकाः ।

ततः स्वं स्वं पुरं नीत्वा नृथा वैश्याः प्रभोर्गिरा ॥१०१॥

नृपुत्रैर्वैश्वपुत्रैस्तासां वक्रुः सुमंगलम् । रामप्रसादात्ताः प्रापुः पतिसंगमुखं स्त्रियः ॥१०२॥

ताश्चापि द्विजपुत्र्यस्तु पितृणामेव सस्रसु ।

निन्युः स्त्रीपायुषं तत्र व्रतचर्चादिभिः सुखम् ॥१०३॥

त्रिवाहकालातिक्रमणाञ्च ता उद्वाहिना द्विजैः ।

जन्मान्तरेण ताः सर्वाः कृष्णः पत्नीः करिष्यन्ति ॥१०४॥

अथ रामः सुवाहोश्च पुत्रस्त्र मधुरां पुरीम् । विवाहार्थं मीनया ■ पारैर्जानदर्ययौ ॥१०५॥

तत्र वैवाहिकं कर्म मपाद्य रघुनन्दनः । तस्यै तत्र कियन्कालं मधुरायां यथामुखम् ॥१०६॥

एकदा जानकीवाक्यारकालिद्याः मरुते शुभे । निशायां हेमरयंके मुखं सुप्राप राघवः ॥१०७॥

एतस्मिन्नन्तरे दासीर्दामान् दृष्ट्वा विनिद्रितान् ।

स्त्रीरूपेणाय कालिदी रमांश्चि मस्मृशच्छनैः ॥१०८॥

ततो रामः प्रनुद्धोऽभूददर्श पुरतः स्थिताम् ।

मूर्धस्य तनयां पुण्यां कालिदीं कञ्जलोचनाम् ॥१०९॥

दिग्दालंकारवस्त्राढ्या दिव्यन् पुरगजिताम् । नीलोत्पलदलश्यामां हेमकुम्भपयोधराम् ॥११०॥

स्मिताननां सुरभोरु किंकिणाजालमालिकाम् ।

कैशूरकुंडलाढ्यां तां प्रोत्सृज्जघनां वराम् ॥१११॥

सैनिकोंको साथ लेकर अपने निजिरको लौट आये । उस प्रकार ■ दिन वनमें रहते हुए अनेक तरहके सुल्लोंका उपयोग करके राम अपनी अयोध्यापुरीको लौट पड़े ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ इसके अनन्तर दुम्दुमी द्वारा हरण की हुई उन कन्याओंको जो जिसकी पुत्री थी, उन-उन राजाओं, ब्राह्मणों तथा वैश्योंको बुलाकर वे ही और उन बालिकाओंको वस्त्राभूषणादिसे अलंकृत करके बिदा कर दिया ॥ ९९ ॥ १०० ॥ वे ब्राह्मणादिक अपनी कन्याओंका पुनर्जन्म मानकर रामके आज्ञानुसार अपने-अपने घरोंको ले गये और नूतने ■ वैश्योंने अच्छे घरोंके साथ उनका विवाह कर दिया । रामचन्द्रजीको कृपासे उन सबको पतिके साथ विहार करनेका सुख प्राप्त हुआ ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ उनमेंसे जो ब्राह्मणका बालिकाएँ थीं, वे विवाहकाल व्यतीत हो जानेके कारण विवाहन करके यूँही पिताके घरपर व्रत-उपवासादि करके अपना जीवन यापन करने लगीं । क्योंकि उनको यह विश्वास हो गया था कि दूसरे जन्ममें स्वयं श्रीकृष्णचन्द्रजी मेरे पति होंगे ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ कुछ दिनों ■ सुवाहका विवाह करनेके लिये रामचन्द्रजी सीताके ■ मधुरापुरी गये ॥ १०५ ॥ वहाँपर विवाहका सारा कार्य सम्पादन करके कुछ दिन मधुरामें ही रहे ॥ १०६ ॥ एक दिन सीताके कहनेसे रामचन्द्रजी यमुनाके तटपर सोये । उस ■ वहाँके ■ दासों और दासियोंको निद्रित देखकर एक स्त्रीका रूप धारण किये यमुना स्वयं रामके पास गयी और धीरेसे उनका पैर पकड़ा ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ उसके ऐसा करनेपर रामचन्द्रजी जाग गये और सामने सूर्यकी पुत्री तथा कमलके समान नेत्रोंवाली कालिन्दीको देखा ॥ १०९ ॥ ■ समय उसके शरीरमें दिव्य वस्त्राभूषण पड़े थे । पैरोंमें सुन्दर नूपुर ■ रहे थे । भील कमलकी पंखुड़ियोंके समान उसका रङ्ग था और सुवर्णकलशके समान उसके ■ थे ॥ ११० ॥ मुत्करात्ता हुआ मुख

तां तादृशीं प्रभुदृष्ट्वा क्षणं तूष्णीं व्यचिन्तयत् । घन्यो विधाता येनेयं कालिंदी रचिता पुरा ॥११२॥
इत्याश्चर्यमना भूत्वा तासौदयं व्यलोकयत् । अथ रामः स तां प्राह वदागमनकारणम् ॥११३॥
सा प्राह तं विलज्जंती सर्वं त्वं वेत्सि राघव । ततो रामोऽब्रवीद्वाक्यं चैकपरनीमर्तं मम ॥११४॥

इह जन्मनि कालिदि त्वं याहि स्वस्थलं जवात् ।

याचसीता प्रभुदा न जायेत तावदेव हि ॥११५॥

■ रामवाक्येनैव भिक्षुमर्मस्थला भुवि । भृच्छामवापतत्रैव तां दृष्ट्वा सोऽब्रवीत् पुनः ॥११६॥

उचिष्ठोत्तिष्ठ कालिदि मृणु त्वं वचनं मम । द्वापरे कृष्णरूपेण त्वा करिष्याम्यहं स्त्रियम् ॥११७॥

विवाहेनैव गरुडाद्य तदा भोक्ष्यसि मत्सुखम् ।

इति श्रुत्वा रामवाक्यं किंचित्तुष्टमना नदी ॥११८॥

नग्वा रामं ययौ तूष्णीं रामप्यानपराऽभवत् ।

ततो रामोऽपि सैन्येन सांतया स्वपुरीं ययौ ॥११९॥

एवं साकेतनगरे रामः स्त्रीचंपुदेहनैः ।

चरितान्यवरोन्नाना पापघ्नानि श्रवादिना ॥१२०॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे

षोडशसहस्राधिककालिद्यादिपञ्चरत्नीवरदानं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

या, केलेके खम्भेकी नाई उसकी जंघाएँ थीं । बिजली, केयूर, कुण्डल आदि आभूषण अपनी छटा दिखा रहे थे ॥ १११ ॥ इस प्रकारकी एक अपरिचित नारीको अपने सामने देखकर राम थोड़ी देर तक यह सोचते रहे ■ विधाता घन्य है, जिसने कालिन्दी जैसी नारोंकी रचना की है ॥ ११२ ॥ इस प्रकार विचार करते हुए वे उसका सौन्दर्य देखते रहे । इसके अनन्तर उससे कहने लगे—तुम अपने आनेका कारण बतलाओ ■ ११३ ॥ रामकी ■ सुनकर सकुचाती हुई कालिन्दीने कहा—हे राघव ! तू सब कुछ जानते हो । फिर रामने कहा कि हे कालिन्दी ! ■ जन्ममें मैंने एकपत्नीव्रत धारण कर रक्खा है । इसलिये सीता जाग आय, इसके पहले ही तुम यहाँसे चली जाओ ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ रामके ये वाक्य वाणके समान उसके हृदयमें लगे, जिससे ■ कहींपर भूँझित होकर गिर पड़ी । फिर रामने कहा—कालिन्दी ! उठो-उठो, मेरी बात तो सुनो । ■ पाप-युग्ममें मैं कृष्ण होकर तुम्हें अपनी स्त्री बनाऊँगा, आज तुम लौट जाओ । जन्मान्तरमें तुम मेरे ■ विहार करके सुखी होओगी । इस प्रकारकी ■ सुनकर यमुनाको कुछ सन्तोष हुआ ॥ ११६-११७ ॥ तदनन्तर रामको प्रणाम करके उसका ■ करती हुई वह लौट गयी । उधर राम ■ अपनी सेना ■ सीताके साथ अयोध्या चले गये ॥ ११८ ॥ इस तरह रामचन्द्रजी साकेतपुरीमें अपने पुत्रों ■ सोताके साथ अनेक सीकार्ये किया करते थे, जिनका श्रवण करनेसे समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ १२० ॥ इति शतकोटि-रामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपादेयविरचित'ज्योत्स्ना'वाधाटीकसमन्विते राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

॥ इति राज्यकाण्डं पूर्वार्द्धं समाप्तम् ॥

श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ।

श्रीसीतापतये नमः

श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गत—

आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

राज्यकाण्डम् (उत्तरार्द्धम्)

त्रयोदशः सर्गः

(राम द्वारा राज्यभरमें हास्यपर प्रतिबन्ध)

श्रीरामदास उवाच

अथैकदा रमाजानिः सुहृद्भिः सद्मि स्थितः । वीजितघामरेणैव लक्ष्मणेनातिशोभितः ॥ १ ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र पौरः कश्चित्समास्थितः । वाराङ्गनानां नृणां दि दृष्ट्वा हास्यं चकार सः ॥ २ ॥
तद्भास्यं राघवः श्रुत्वा सस्मार पूर्वचेष्टितम् । लंकायां पुद्गलमये रावणस्य शिरांसि खात् ॥ ३ ॥
रामबाणान्मूर्तिं लब्ध्वाऽस्माभिश्चेति विहस्य च । श्रीरामं वन्दनं कर्तुं पतन्ति स्म प्रभुं पुनः ॥ ४ ॥
तेषां विकालतां दृष्ट्वा दंतादीनां रघूत्तमः । भयभुं हि पुनर्यान्ति शिरांस्येतानि खादिति ॥ ५ ॥
रामो भीत्या पुनस्तानि खे शिरांस्यक्षिपच्छरैः । एकोत्तरशतान्येव वारं वारं स्वरान्वितः ॥ ६ ॥
तद्भुतं राघवः स्मृत्वा किं दशास्पस्य वै शिरः । समागतं मभामध्येऽग्रेति पार्श्वेऽप्यलोकयत् ॥ ७ ॥
भाषाविनो राक्षसाश्च संत्यजेति विचिरे च । एवं यदा यदा हास्यं स शुश्राव रघूत्तमः ॥ ८ ॥

श्रीरामदासजी बोले—एक दिन रामचन्द्रजी अपने मित्रोंके सभामें बैठे थे। उस रामपर चँबर बल रहे थे और लक्ष्मण रामके पास बैठे हुए थे। इसलिए रामकी सोचा कईगुना अधिक दिखायी दे रही थी ॥ १ ॥ इसी समय कोई नागरिक वेराशाओंका नृत्य देखकर जोरोंके साथ हँस पड़ा ॥ २ ॥ उस हारयको सुना तो रामको उस समयको एक बात याद आ गयी, जब वे लंकामें रावणके मस्तकोंको अपने बाणोंसे काटकर आकाशमें उड़ा देते तो वे मस्तक यह समझकर कि रामके बाणोंसे मेरी बुद्धि ठिकाने आयी है। इस भावसे हँसते हुए ऊपरसे फिर नीचे आकर रामके चरणोंमें लोटते हुए वन्दना करने लगते थे ॥ ३ ॥ ४ ॥ उनके दाँतों आदिकी विकरान्ता देखकर रामको यह क्याल होता था कि ये मस्तक मुझे खाने रहे हैं। इस लिए उन्हें फिर बाणों द्वारा आकाशमें उड़ा दिया करते थे। यह उवाच रामको एक दो बार नहीं - पूरे एक सौ एक बार करने पड़े थे ॥ ५ ॥ ६ ॥ उसी बातको स्मरण करके रामने सोचा कि कहीं रावणके मस्तक ही तो इस सभामें आकर ठहराका नहीं मार रहे हैं। भावसे उन्होंने अपने आस-पास विस्मयभरे नेत्रोंसे देखा ॥ ७ ॥ क्योंकि उनका क्याल था कि राक्षस भाषावी होते हैं, शायद यहाँ भी जायें तो क्या आश्चर्य । इस तरह राम जब कभी किसीका हास्य सुनते

तदा तदा पूर्ववत् स्मृत्वा पार्श्वे व्यलोकयत् । ततो रामः क्षणं चित्ते चिंतयामास सादरम् ॥ ९ ॥
 यदा यदा श्रूयतेऽत्र हास्यं केनापि यत्कृतम् । तदा तदा हृत्तास्यस्य शिराहास्यं स्मराम्यहम् ॥ १० ॥
 मायाविनो राक्षसास्ते मां विस्मर्य पुनश्चिरात् । मामनुमन्त यास्यन्ति त्विति भन्वा स्वचेतसि ॥ ११ ॥
 अन्यथा निन्दितं हास्यं नोतिशास्त्रेषु सर्वदा । अतो हास्यं वर्जयामि सर्वेषां भूनिवासिनाम् ॥ १२ ॥
 इति निश्चित्य हृदये लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् । दुन्दुभिं घोषयस्वाद्य पुर्यां राष्ट्रेऽवनीतले ॥ १३ ॥
 स्मिताननो नरः कश्चिन्मारी वाऽथ सुहृन्च वा । सीता वा तनयो बंधुः स मे दंष्ट्र्यो भवेदिति ॥ १४ ॥
 तथेति रामवाक्यात्स घोषयामास दुन्दुभिम् । पौरा जनपदाः सर्वे श्रुत्वा शिखाध्वनिं प्रभोः ॥ १५ ॥
 रामदण्डमयात् मर्ये च चक्रुस्ते स्मिताननम् । वारागनानुन्धगीते नटगीतप्रवर्तने ॥ १६ ॥
 स्त्रोभिः सुहृद्भिर्मित्रैश्च विनोदानुत्सवान् वरान् । मांगल्यानि च कर्माणि हास्यकारीणि नाचरन् ॥ १७ ॥
 वंशस्तम्भकलाभिश्च कौतुकानि हि यानि । तूर्यघोषादिमाङ्गल्यकर्माणि विविधाः कथाः ॥ १८ ॥
 सायन्मगेत्सवान् सर्वान् यात्रायशोत्सवान् शुभान् । कौतुकानुत्सवांश्च विवाहादिषु कर्मसु ॥ १९ ॥
 वासीश्चित्रकथाश्चापि न चक्रुश्च कदा जनाः । ययी नायक्यकात्कार्याद्विना सदसि कः प्रभुम् ॥ २० ॥
 पुराणानीतिहासाश्च न पठन्ति स्म केचन । गर्भाधाने पुत्रजन्मनामकर्मादिपूजितान् ॥ २१ ॥
 पौरा जानपदाः सर्वे सप्तद्वीपनिवासिनः । एतानि हास्यकारोणि नानाकर्माणि भूतले ॥ २२ ॥
 रहस्यपि न चक्रुस्ते रामदण्डमयात् कदा । एवमासीद्वर्षमेकं तदा भूम्यां कदापि हि ॥ २३ ॥
 स्मिताननं कस्य नामीन्न चकुर्मंडनादिकम् । तदोत्साहदेवताश्च नानाकर्माङ्गदेवताः ॥ २४ ॥
 इन्द्राय कथयामासुस्तद्वृत्तं जगतीमदम् । इंद्रादीनां सुरार्णा च कर्माणि पूजनादि हि ॥ २५ ॥
 नासीद्यदा जगत्यां हि तर्द्रेऽकथयद्विधिम् । तदा सुरान्विधिः प्राह न रामाग्रे वलं हि नः ॥ २६ ॥

तो उनका ध्यान उसी ओर आकृष्ट हो आधा करता था और अपने अगल-अगल निहारने लगते थे ।
 समय रामने उस हास्यको सुनकर सगभर विचार किया और लोगोंसे कहने लगे—॥ ८ ॥ ९ ॥ जब कभी मैं किसीका हास्य सुनता हूँ तो मुझे रावणकी हैसी स्मरण आया करता है और यह ख्याल होता है कि वे बाधावी राक्षस जिनको कि मैंने मार डाला है, घोखा देकर मुझे खानेके लिए लिए तो नहीं आ गये हैं ॥ १० ॥
 ॥ ११ ॥ दूसरे नीतिशास्त्रमें भी हास्यकी निन्दा की गयी है । इसीलिए आजसे मैं भूतलपर रहनेवालोंको हँसनेकी मनाही हूँ । इसके लक्ष्मणसे बोले कि मेरे राष्ट्र तथा पृथ्वीतल भरमें दुग्गी पिटवाकर कहला दो कि कोई स्त्री, पुरुष, मेरा मित्र, स्वयं सोता तथा मेरे या भाई भी न हँसे । जो इस आज्ञाके विपरीत चलेगा, उसे दण्ड भुगतना पड़ेगा ॥ ११-१४ ॥ लक्ष्मणने रामके आज्ञानुसार चारों ओर दुग्गी बजवाकर रामकी यह आज्ञा घोषित दी । जितने पुरवासी अथवा देशवासी थे, उन्होंने प्रभुकी इस सिसाध्वनि को सुनकर दण्डोभयसे हमेशाके लिये हँसना छोड़ दिया । वेश्याओंके गाने, नाटक, स्त्रियों या मित्रोंके साथ हँसी-दिल्लीगी आदि ऐसे सब कार्य बन्द कर दिये गये, जिनमें हँसी आनेका अन्देश रहता था ॥ १५-१७ ॥ उस समय वाँसपर चढ़कर नाचने आदिको कला, तुड़ही-नागाड़े आदिके बाजे, यात्रा, वंश, सांवसरिक उत्सव, विवाह आदि मङ्गल कार्योंमें भी हँसी लानेवाले सेल-कूर और गण-शप आदि बातोंको बन्द कर दिया और बिना किसी विशेष कामके कोई रामकी सभामें भी नहीं आया ॥ १८-२० ॥ लोगोंसे पुराण-इतिहास आदिका भी पढ़ना छोड़ दिया । गर्भाधान, पुत्रजन्म, नामकर्म आदि उत्सवोंमें हँसी न आने देनेका पूरा-पूरा ध्यान रखता जाने लगा । मतलब यह कि सारे पुरवासी एवं देशवासी हास्योत्पादक कामोंको नहीं करते थे । रामके दण्डभयसे कोई एकान्तमें भी नहीं हँसता । यह व्यवस्था एक वर्ष तक चलतीरही । इस बीचमें भूतलनिवासियोंमेंसे किसीका भी मुसमण्डल मुस्कराता हुआ नहीं देखा और किसीने भी अपना शृङ्गार आदि नहीं किया । ऐसी अवस्थामें किसीने ही कर्माङ्गदेवता और बहुलसे उत्साहदेवता एकजित होकर इन्द्रके पास गये ॥ २१-२४ ॥ उन्होंने पृथ्वीतलके उस समाचारका कह सुनाया । अब इन्द्रने सुना कि हम देवताओं-

नैवोपदेष्टुं योग्यः स ममापि जनकस्तु यः । पुत्र्या कार्यं साधयामि येन वोऽद्य हितं भवेत् ॥२७॥
 इत्याशास्य सुरान् सर्वान्विधिर्भूमण्डलं ययौ । अयोध्यायाश्च सोमायां दृष्ट्वा वैधाः सुपिप्पलम् ॥२८॥
 स्वयं विषेयं तन्मध्ये दृष्ट्वा पांथान् जहास सः । एतस्मिन्नंतरे कश्चित्काष्ठमारुहः पुमान् ॥२९॥
 भुत्वा पिप्पलहास्यं उच्येन दीर्घं जहास सः । ततः स भारवाहश्च ययौ हङ्गे प्रभोः पुरीम् ॥३०॥
 काष्ठमारुहिक्यार्थं तत्र स्मृत्वा स्मितं हृदि । चलपत्रस्य सोऽन्युर्ध्वैर्न समर्थो निरोधितुम् ॥३१॥
 भारवाहस्य हास्यं तद्वाजदूतोऽयं शुश्रुषे । राजदूतो जहासोर्ध्वैर्न समर्थो निरोधितुम् ॥३२॥
 राजदूतः समां गत्वा भारवाहस्य यत् स्मितम् । हृदि स्मृत्वा जहासोर्ध्वैर्न च्छुत्वा ते समासदः ॥३३॥
 सभायां जहसुः सर्वे तच्छ्रुत्वा राघवोऽपि सः । उर्ध्वैर्जहास सदसि वरसिंहासने स्थितः ॥३४॥
 रामो विचारयामास किमर्थं हसितं मया । यन्मिमिषं सदा दण्डं पौरान् जानपदाभिजान् ॥३५॥
 अहं करोमि सोऽग्रहं सभायां हसितः कथम् । दण्डयिष्यति मां कोऽद्य किं मां पौरा वदन्ति हि ॥३६॥
 अस्माकमेव शिष्टाऽस्ति सर्वदा राघवस्य सा । न कथं हसितमाद्य सर्वेषां पुनः स्फुटम् ॥३७॥
 शिष्टां करिष्यति विभोः कोऽस्य त्विति वदति । मानयिष्यति नातस्ते ममाग्रे शिशितं भुवि ॥३८॥
 मर्मतन्नं व्रतं योग्यमिति रामस्त्वमन्यत । पुनर्जहास श्रीरामस्त्वन्निरोद्धुं न स क्षमः ॥३९॥
 ततो रामोऽभवीत्पौरान् समास्थान्स स्मिताननः । किमर्थं हसिता पुन येभ्यो हास्यं ममापि हि ॥४०॥
 प्रमाणतं सभामध्ये पौराः प्रोचुर्नृपोचमम् । दृष्ट्वा स्वदूतहास्यं हि तेनास्माकं समागतम् ॥४१॥
 तत् पौरवचनं श्रुत्वा दूतमाह रघूचमः । त्वया किमर्थं हसितं सोऽभवीत्प्रचुनन्दनम् ॥४२॥

के कर्मज्ञ पूजनादि सत्कार्यं क्षुप्त होते जा रहे हैं तो ब्रह्माके पास जाकर यह बात बतायी । ब्रह्माने कहा कि रामचन्द्रजीके आगे हम लोगोंमें कुछ भी शक्ति नहीं है ॥ २५ ॥ २६ ॥ मैं उन्हें उपदेश नहीं दे सकता । क्योंकि वे मेरे पिता हैं । इसलिए मैं किसी युक्तिसे ————— कार्यसाधन करूँगा कि जिससे आप लोगोंका कहलाए हो ॥ २७ ॥ इस प्रकार उन्हें आपवासन देकर ब्रह्माजी भूमण्डलकी ओर चल पड़े । अयोध्याकी सीमापर एक विशाल पिप्पल वृक्षकी देखकर वे स्वयं उसके भीतर प्रविष्ट हो गये और उस रास्तेसे आने-जानेवाले लोगोंकी देख-देखकर जोरसे हँसने लगे । उसी समय एक लकड़हारा लकड़ीका बोझ माथेपर रखे हुए वहाँ पहुँचा । उसे भी देखकर पीपलके भीतर बैठे हुए ब्रह्माजी हँसे ॥ २८ ॥ २९ ॥ पीपलका हँसी सुनकर लकड़हारा दूने जोरसे हँसा और लकड़ीका बोझ लिये हुए अयोध्या नगरीमें जा पहुँचा । रास्तेमें उसे पीपलकी हँसीवाली बात याद आ गयी और ठहाका ————— हँस पड़ा । लेकिन क्षण भर बाद उसे रामकी मनाहीका स्मरण हो आया, जिससे चेष्टा रुकित हो उठा ॥ ३० ॥ ३१ ॥ लकड़हारेको हँसते देखकर चौराहे-पर अड़ा सिपाही भी मगनी हँसी नहीं रोक सका ॥ ३२ ॥ सिपाही सभामें गया तो उसे वहाँ लकड़हारेकी हँसी याद ————— गयी, जिससे वह हँस पड़ा । सिपाहीको हँसते देखा तो सभामें बैठे हुए लोग भी अपनी हँसी नहीं रोक सके और वे भी हँसने लगे ॥ ३३ ॥ तमाम सभाके लोगोंको हँसते देखकर रामचन्द्रजी भी हँसने लगे ॥ ३४ ॥ तब रामचन्द्रजी तुरन्त हँसी रोककर सोचने लगे—और लोग हँसे तो हँसे, मैं क्यों हँसा ? जब ————— सारे भूतलवासियोंको इस कामसे रोक रखा है और दण्ड देता हूँ । तब मैं क्यों हँसा ? मुझे कीत दण्ड देगा ? और ये पुरवासी ————— कहेंगे ? यही ————— कि राम दूसरोंकी ही निंदा देते हैं, प्रजाके वास्ते ही दण्डविधान करते हैं और स्वयं जो मनमें आता है, सो कर डालते हैं । सब लोगोंके लिए तो हँसनेकी मनाही कर दी है, किन्तु स्वयं हजारों मनुष्योंके सामने ठठाकर हँसते हैं ॥ ३५-३७ ॥ इसका परिणाम यह होगा कि वे भविष्यमें मेरी बात नहीं मानेंगे । यह सब विचारकर रामने यह ठहराया कि मैंने बड़ी भारी मूल की है । लेकिन क्षणभर बाद ही रामको फिर हँसी आ गयी । पूरी चेष्टा करके भी वे हँसनेसे नहीं रुक सके ॥ ३८ ॥ तब रामचन्द्रजी सभाके लोगोंसे कहने लगे—आपलोग किस बातपर हँसे ? आप लोगोंको हँसते देखकर मैं भी हँस नडा । सभामें बैठे हुए पुरवास्तिवोंने उत्तर दिया कि आपके सिपाहीको हँसते देखकर हमें

भारवाहस्य हास्यं तत् स्मृत्वा प्रहसितं मया । तद्दूतवचनं श्रुत्वा भारवाहं तदा प्रभुः ॥४३॥
 दूर्तरानीय सदसि तमाह रघुनन्दनः । मा भीतिं भज मत्तस्त्वं सत्यं ब्रूहि ममाग्रतः ॥४४॥
 हङ्गे किमर्थं हसितं त्वयाऽद्य कथयस्व माम् । स भारवाहश्चकितः शुष्ककंटोष्ठतालुकः ॥४५॥
 वेपथानः स्खलद्वाचा राघवं वाक्यमब्रवीत् । अयोध्यायाश्च सीमायाश्चान्यस्य मयाऽद्य हि ॥४६॥
 दृष्ट्वा प्रहसितं राजन् हङ्गे हास्यं तथा कृतम् । तदपूर्वं तद्विरं स प्रभुः श्रुत्वा मुविस्मितः ॥४७॥
 दूतानुवाच श्रीरामस्त्वनेन सह वेगतः । युयं गत्वाऽद्य द्रष्टव्यं किं सत्यं कथ्यते न वा ॥४८॥
 अनेन भारवाहेन ते तथेति त्वरान्विताः । गन्त्याऽश्चत्यमर्षापं हि ददृशुस्ते स्मितं मुहुः ॥४९॥
 तदाश्चर्याच्च ते दूताः प्रहसन्तोऽतिवेगतः । अश्चन्यमद्रितं गमं गन्वा सर्वे न्यवेदयन् ॥५०॥
 तद्दूतवचनं श्रुत्वा राघवश्चातिविस्मितः । राज्ये ममैतद्दुःखिहं मे शिक्षां लोप्सुमश्चनम् ॥५१॥
 इति निश्चिन्त्य मनसि दूर्तोऽप्यपयत्तदा । छिद्यतां चलपत्रः स ममाज्ञाभगकारकः ॥५२॥
 तद्रामवचनार्थं शतशोऽथ महस्रशः । कुठारपाणयः श्रीघ्नमश्चत्थं दृष्टुवन्तदा ॥५३॥
 हास्यमानं नमं दृष्ट्वा ते सर्वेऽतीव विस्मिताः । कुठारस्तं तदा छेत्तुमुद्यता राघवाज्ञया ॥५४॥
 तांछेत्तुकामान् सकलान् प्राप्तान् स्वनिकटं विधिः । दूतान्मन्ताऽयामासोऽर्लक्ष्यत्यनिर्गतीः ॥५५॥
 उपलक्षित्वा निन्नांगास्ते दूता लोडिताङ्किनाः । कोलाहलं प्रकुर्वन्तो रामं वृक्षं न्यवेदयन् ॥५६॥
 नतोऽतिविस्मितो रामः पुनर्दूतान् सहस्रशः । प्रेषयामास तं छेत्तुं धनुर्वाणासिधारिणः ॥५७॥
 तेऽपि गत्वा नमं तेन ताडिता उपलब्धम् । छिन्नाङ्गा राघवं वंगास्तर्षं वृक्षं न्यवेदयन् ॥५८॥
 ततो रामोऽतिसंकुदः सुमत्र सेनया युतम् । प्रेषयामास तं वृक्षं छेत्तुं बुद्धिपूरःसरम् ॥५९॥

हंसी आ गयी ॥ ४९-५१ ॥ पुरवासियोंकी बात सुनकर रामने सिपाहोसे पूछा कि तुम क्यों हंसे ? उसने कहा कि एक लकड़हारेको हमने देखकर मुझे हंसा आ गयी । दूतको सुनकर रामने दूतों द्वारा लकड़हारेको पकड़वा भेगाया और उससे कहा कि किसा प्रकारका । करके मुझे यह बतलाओ कि तुम बाजारमें क्यों हंसे थे ? ॥ ४२-४४ ॥ लकड़हारा रामकी बात सुनकर चौकन्ना हो गया । उसके ऊठ, ओष्ठ और तालु सुख गये, शरीर कांपने लगा और भर्ग्य हुए स्वरसे उसने उत्तर दिया कि अयोध्याके समीप ही एक पीपलका वृक्ष है । मैंने बाजार आते समय उस वृक्षकी हंसी सुनी और हंस पड़ा । नगरमें आया तो यहाँ भी एकाएक वह बात याद आ गयी और चेष्टा करके भी मैं हंसीको नहीं रोक । उसकी यह सुनकर मुस्कराते हुए रामचन्द्रजीने दूतोंको आज्ञा दी कि तुम लोग इसके साथ जाकर देखो कि यह जो कह रहा है, वह ठीक है नहीं ॥ ४५-४८ ॥ उस भारवाहोके साथ-साथ चले, पीपलके समीप गये और उसकी हंसी सुनी तो स्वयं खूब हंसे और ओटकर रामको वहाँका सच्चा वृक्षांत सुना दिया ॥ ४९ ॥ ५० ॥ दूतोंकी बात सुनकर राम बहुत विस्मित हुए और सोचने लगे कि हमारे राज्यमें यह एक बड़ा दुःखिह्व होकर मेरे शासनको ही लुप्त कर देना चाहता है । इस प्रकार विचार करके रामने दूतोंको आज्ञा दी कि उस पीपलके वृक्षको काट डालो । क्योंकि वह मेरी आज्ञा भङ्ग कर रहा है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ रामके आज्ञानुसार सैकड़ों हजारों व्यक्ति कुठार ले-लेकर उस वृक्षकी ओर चल पड़े । उस समय भी वृक्षको हंसते देखकर वे सब उसे काटनेकी उद्यत हो गये । उनको देखकर ब्रह्मा उस वृक्षपरसे ही पत्थरके टुकड़े फेंक-फेंककर मारने लगे । इस उत्पातसे कितने ही लोगोंको गहरी चोट आयी । रुबिरसे उनका शरीर भीषण गया और चिल्लाते हुए उन्होंने रामके पास पहुँचकर वहाँका हाल बतलाया ॥ ५३-५६ ॥ सो सुनकर रामकी ओर की आश्चर्य हुआ और फिर हजारों दूतोंको वह वृक्ष काटनेके लिए भेजा । धनुष बाण एवं तलवार धारण किये हुए ये दूत जब वृक्षके पास पहुँचे तो फिर ब्रह्माने पत्थर फेंक-फेंककर मारा, जिससे भिन्नमस्तक हो उन सबने लोटकर रामको वह समाचार सुनाया ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ तब रामने कुपित होकर बहुत-सी सेनाके

सुमन्त्रो राघवं नत्वा सेनया तं नगं ययौ । तावद्वन्धपापाणैरग्रे गन्तुं न स क्षमः ॥६०॥
 ततो राघवभीत्या स भुनैः सैन्येन तनुरः । ययौ नावन्मगोद्धतः पापाणैस्ताडितोऽपरात् ॥६१॥
 सुमन्त्रं पतितं दृष्ट्वा हाहाकारो महानभूत् । जयोध्यायां च तत्रैव तदङ्गनमिवाभवत् ॥६२॥
 सुमन्त्रं पतितं श्रुत्वा पुत्राभ्यां रघुनन्दनः । सैन्येन प्रेषयामास मनुष्यं तं नगं पुनः ॥६३॥
 ततस्तस्कोतुकं श्रुत्वा पौरनार्यः सहस्रशः । प्रामादक्षिस्तरुदा ऊर्ध्वास्यसं व्यलोकयन् ॥६४॥
 सर्जन्या दर्शयामासुः सोऽप्यत्यथेति ता मियः । वानहस्तं भ्रूरोः स्वाप्य रत्रिदीप्तान्व्यवारयन् ॥६५॥
 कुशितानलकान्नेषपतितान् करपल्लवैः । स्त्रियो निवार्यं प्रामादगोपुरकुलसंस्थिताः ॥६६॥
 निद्रासंभ्रान्तनयमाश्रान्योन्यं दर्शयन्तगम् । एवं तन्नगरं सर्वं चरितं चामवत्तदा ॥६७॥
 क्षत्रुघ्नोऽथ पुराधातृसैन्येन निर्गतो बहिः । तावत्तद्रथवाहाथ संस्थिता एव ते पथि ॥६८॥
 ताडिता अपि सूनेन नोत्तस्थस्तुरगोत्तमाः । कुशस्याथ लवस्यापि रथवाहास्तथैव च ॥६९॥
 ताडिता रुक्मदंष्ट्रैश्च नोत्तस्थुः पथि संस्थिताः । आश्रयेणश्च तद्वृत्तं राघवाय न्यवेदयन् ॥७०॥
 रामोऽपि श्रुत्वा चकितस्तदा चित्तंऽविचारयत् । विचारः कर्णवीणांश्च हविषारोऽथ नोचितः ॥७१॥
 अस्त्यत्र कारणं किञ्चिन्प्रष्टव्योऽथ पुरोहितः । जानन्नपि रमानाथः स्वयं सर्वं तथापि सः ॥७२॥
 मानुषं भावमाश्रित्य पुरोहितमथाब्रवीत् । सोऽपि रामाक्षया श्रुत्वा तां मभां प्रययौ गुरुः ॥७३॥
 प्रत्युद्गम्य गुरुं रामो ददानामनमुत्तमम् । ततः सम्पूज्य विधिरत् मन्त्रं वृत्तं न्यवेदयत् ॥७४॥
 तच्छ्रुत्वा राघवं प्राह वमिशो मुनिमशमः । वाल्मीकिस्त्वद्य प्रष्टव्यो येन ते चरितं कृतम् ॥७५॥
 तद्गुरोर्वचनं श्रुत्वा वाल्मीकिं स ममाब्रवीत् । सोऽपि गमाक्षया श्लोघं ययौ श्रीराघव प्रति ॥७६॥

सुमन्तको वृक्ष काटनेके लिए भेजा । सुमन्त रामको [] करके अवलोक्य और बोले । किन्तु वृक्षसे थोड़ी दूरपर ही थे । इतनेमें परधरोंकी धर्मा होने लगी । जिससे उस वृक्षके पासतक नहीं पहुंच सके ॥ ५६ ॥ ६० ॥ लेकिन रामके भयसे सुमन्त पीछे न लौटकर आगे ही बढ़ते गये और उधरसे बराबर परधरोंकी वृष्टि होती रही । जिससे वे घामल होकर गिर पड़े ॥ ६१ ॥ सुमन्तको मिरा देखा तो सेनामें घेर कोलाहल होने लगा । सारे अयोध्यावासियोंको वह एक अनहोनी-सी बात मासूम पड़ी ॥ ६२ ॥ सुमन्तको धावण सुना तो रामने अपने दोनों पुत्रोंके साथ एक बड़ी सेना भेजी ॥ ६३ ॥ इस कावृत्तको सुना तो नगरकी बहुत-सी स्त्रियाँ अपनी-अपनी अटारियोंपर चढ़कर मस्तक लटायें हुए उस वृक्षकी देखने लगीं और सूर्यके प्रकाशका निवारण करनेके लिए अपना बायाँ हाथ भीड़ोंपर रख-रखकर एक दूसरीको परापर उँगलियोंसे वह वृक्ष दिखाने लगीं ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ नेत्रके सामने आये हुए केशोंको हटाती हुई वे स्त्रियाँ मकानकी छतों, कंगुरों और अटारियोंपर अधिक-से-अधिक संख्यामें एकत्र हो गयीं ॥ ६६ ॥ कितनोंकी आँखें उस वृक्षको निहारते-निहारते नींदकी बोझसे बोजिल हो गयीं । इस तरह उस समय सारा नगर विस्मित हो रह्य था ॥ ६७ ॥ उधर शत्रुघ्न अपनी सेना लेकर चले । नगरमें बाहर निकले ही थे कि उनके रथवाले घोड़े रास्तेमें बैठ गये और कोखवातके बार-बार मारनेपर भी नहीं उठे । वही दशा कुश और लवके भी रथको हुई । उनके घोड़े भी रास्तेमें बैठ गये और कितने ही उठे खानेपर भी नहीं उठे तो वे सब लौटकर आश्रयके साथ रामके पास पहुँचे और यह हाल बताया ॥ ६८-७० ॥ यह सुना तो वे मनमें विचारते लगे कि इस विषयमें पूर्णतया विचार करके काम करनेकी आवश्यकता है । आज अविचारितासे काम नहीं चलनेका ॥ ७१ ॥ इसमें अवश्य कोई कारण है । अतः पहले पुरोहितको बुलाकर पूछ लेना जरूरी है । यद्यपि रामचन्द्रजी सब कुछ जानते थे, फिर भी मनुष्यभावसे उन्होंने पुरोहितको बुलवाया । रामके आज्ञानुसार तुरन्त गुरुजी राजसभामें जा पहुँचे । सब राम गुरुके आगे गये और एक उत्तम आसनपर बिठाकर पूजन करनेके अनन्तर सारा वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ७२-७४ ॥ यह सब सुनकर गुरु वसिष्ठने कहा कि [] विषयमें आप वाल्मीकिजीसे पूछ-साछ करें तो [] होगा । क्योंकि उन्होंने ही आपके चरित्रको बनाया है ॥ ७५ ॥ गुरुके आज्ञानुसार रामने वाल्मीकि

प्रत्युद्गम्य मुनिं रामो ददावासनमुत्तमम् । नत्वा सम्पूज्य विधिवन् सर्ववृत्तं न्यवेदयत् ॥७७॥
 ततो निहस्य वाल्मीकिः श्लोकाश्च रघुनन्दनम् । सर्वं वेत्ति भवान् राम किमर्थं मां तु पृच्छसि ॥७८॥
 त्वं चेत्पृच्छसि रामात्र मानुषं भावमाश्रितः । तर्हि ते कथयाम्यद्य शृणुष्व रघुनन्दन ॥७९॥
 त्वयाऽत्र वर्जितं हास्यं त्वद्भिया सकलैर्जनैः । हास्यकारीणि कर्माणि संत्यक्तान्यवनीतले ॥८०॥
 विवाहादिसमुत्साहाः कथावार्तादिकांतुकम् । मङ्गलोत्साहगीतानि नृत्यं यज्ञादिसन्क्रियाः ॥८१॥
 यात्राः संवत्सरोत्साहास्त्यक्ता एवावनीतले । यद्यत् कर्म तोषकारि हास्यकारि च तन्मरैः ॥८२॥
 एकमम्बरसरं नात्र कियते रघुनन्दन । उन्माददेवताः सर्वास्तथा कर्माङ्गदेवताः ॥८३॥
 इन्द्रादिलोकपालाश्च दृष्ट्वा स्वीयं प्रपूजनम् । लुप्तं भूम्यां ततो राम तद्वृत्तं कथयन्विधिम् ॥८४॥
 ततो विधिश्च तच्छ्रुत्वाऽसमर्थस्त्वां निवेदितुम् । त्वयि कुट्टिनसामर्थ्यैः सोऽद्यन्धे संप्रवेशितः ॥८५॥
 हितायै निर्जराणां च सोऽद्य तिष्ठति पिप्पले । प्रक्षिपत्पुष्पलान् राम छेतुकामान् समागतान् ॥८६॥
 तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा राघवः क्रोधमाययौ । अहमेवाद्य गच्छामि मारं पश्यामि ॥८७॥
 कथं नाम रघुश्रेष्ठः स्वशिखां परिवर्तयेत् । इत्पुक्त्वाज्ञापयामास स्वीयां सेनां तदा प्रभुः ॥८८॥

ततस्तं बोधयामास वाल्मीकिर्मुनिमत्तमः ।

क्रोधं त्यज रघुश्रेष्ठ शृणुष्व वचनं मम । सच्चिदानन्दरामस्त्वमानन्दचरितं तव ॥८९॥
 मयाऽस्ति वर्णितं रामतत् किञ्चित्पुत्रयोर्मुखात् । त्वयाऽपि यज्ञपमघे श्रुतं गङ्गातटे पुरा ॥९०॥
 यस्य संश्रवणाद्देवानन्दरूपो भवेन्नरः । हास्यं वर्जयति त्वं चेत्तर्हि ते चरितं त्विदम् ॥९१॥
 न जनाः कीर्तयिष्यन्ति सुखरूपं स्मितं बिना । अन्यत् किञ्चित् प्रवक्ष्यामि प्रभो वृत्तं तवाग्रतः ॥९२॥
 छतकोटिमितं तेऽत्र चरितं यन्मया कृतम् । पुरा त्वया विविक्तं यत् सर्वत्र रघुनन्दन ॥९३॥

को बुलवाया । यह सन्देश पाते ही वाल्मीकि रामसे मिलनेका चल पड़े ॥ ७६ ॥ वहाँ पहुँचनेपर रामने उठकर जनको जगवानो की ओर एक मुन्दर आसनपर बिठाकर पूजन किया । फिर जो कुछ वृत्तान्त बताना था, सो बताना ॥ ७७ ॥ यह सब सुना तो हंसकर वाल्मीकिने कहा—हे राम । आपसे कुछ छिपा नहीं है, सब जानते हैं । फिर हमसे क्यों पूछते हैं ? ॥ ७८ ॥ हाँ यदि मानवभावका आश्रय लेकर आप हमसे पूछते हैं तो मैं, मुनि ॥ ७९ ॥ आपने अपने राज्यमें हंसनेको मनाश कर दी है । सब लोगोंने ऐसे शुभ कार्योंका करना बन्द कर दिया है, जो हँसी-खुशीसे सम्पन्न हो सकते हैं ॥ ८० ॥ विवाह, कथावार्ता, खेल-तामशे, नाच-गान, यज्ञादि सत्क्रियाएँ, यात्रा और संवत्सरिक उत्सव आदि कर्म लोग नहीं कर रहे हैं । कहनेका मतलब यह कि जितने कार्य हृदयको आनन्दित करनेवाले हैं, वे सब एक वर्गमें बन्द हैं । इससे व्याकुल होकर समस्त जन्माहुदेवता, कर्माङ्गदेवता तथा इन्द्रादि लोकपाल घूमण्डलपर अपनी पूजाको लुप्त होते देख ब्रह्माके पास गये और उन्हें दुःख सुनाया ॥ ८१-८४ ॥ इसके बाद ब्रह्माजो आपसे कुछ कहने-सुननेमें होकर उस पीपल वृक्षमें गुप्तस्थानसे प्रविष्ट हो गये हैं । देवताओं की कल्याणकामनासे वे आज भी उसमें बैठे हुए हैं । जो कोई उस वृक्षको काटनेके लिये आता है, उसपर पत्थर बरसाते हैं ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ मुनिराज वाल्मीकिने पुनः यह हाल सुनकर रामको क्रोध आ गया और उन्होंने कह कि आज स्वयं आकर ब्रह्माका पराक्रम देखता हूँ । रघुवंशका एक श्रेष्ठ शत्रिय अपने आदेशमें किसी प्रकार का उलट-फेर नहीं करेगा । इतना कहकर रामने अपनी सेना तैयार करनेकी आज्ञा दी ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ तब वाल्मीकि समझामे लगे—हे रघुश्रेष्ठ ! इस प्रकार क्रोध न करके मेरी सुनिये । आप साक्षात् सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्मा और आपका चरित्र लोगोंकी आनन्दित करनेवाला है । उसे मैंने ही बनाकर आपके पुत्रोंके मुखसे यज्ञशालामें सुनवाया था, उसे आपने भी सुना है । फिर जिसके मुनेने मात्रसे मनुष्य आनन्दमग्न हो जाता है, ऐसे पुनीत चरित्रको लोग—यदि आप न हंसनेका नियम रखेंगे—तो नहीं सुन सकेंगे । क्योंकि कथा सुनकर आनन्दको प्राप्त लोग इसे बिना नहीं रह सकेंगे । इसके सिवाय हे प्रभो ! मुझे आपसे कुछ और भी कहना

भागान्भारतवर्षातिर्गताद्रामायणात् प्रमो । सारं सारं प्रगृह्णाथ यद्यद्रम्यं मनोरमम् ॥ ९४ ॥
 कथानकं तेन तेन व्यासेन मुनिनाऽत्र हि । अष्टादश पुराणानि तथोपपुराणानि च ॥ ९५ ॥
 कृतान्यन्येऽपि मुनयः षट्शास्त्रादीन्यनेकशः । अग्रे सर्वे करिष्यन्ति सारं रम्यं प्रगृह्य च ॥ ९६ ॥
 ततोऽग्रे शोकरूपं च यच्चया दंडके बने । चतुर्दशवत्सरैश्च कंकेपीदुष्टभावतः ॥ ९७ ॥
 कृतं चरित्रं सीताया विरहादि च राघव । किञ्चिच्छेषभूतं हि चतुर्विंशत्सहस्रकम् ॥ ९८ ॥
 तावन्मात्रं वदिष्यन्ति यद्वाचमीकेः कृतं त्विति । तत्सर्वं सकलं ज्ञात्वा भावि वृत्तं रघूत्तम ॥ ९९ ॥
 शोकस्तदुपयोगश्च पूर्वमेव मयेरितः । युद्धं प्रमाते श्रोतव्यं शोकश्चैवापराद्धके ॥ १०० ॥
 रतिनिंशायां श्रोतव्याऽऽनन्दरामायणं मदा । युद्धं ज्ञेयं भारतं हि रतिर्भागवतं स्मृतम् ॥ १०१ ॥
 शेषभूतं चतुर्विंशत्सहस्रं शोक उच्यते । तव भाविवरेणैतदानन्दचरितं तव ॥ १०२ ॥
 शतकोटिमितं पूर्वं यन्मयैव विनिर्मितम् । नवकाण्डमितं रम्यं यद्वाद्वादशसहस्रकम् ॥ १०३ ॥
 नवोत्तरशतं सर्वं कश्चिन् स्थास्यति भूतले । तव भाविवराद्राम न कोऽप्येतां मनोरमाम् ॥ १०४ ॥
 अष्टोत्तरशतः सर्गेर्निर्मिता मेरुणान्विताम् । तव कीर्तनमालां नो खंडयिष्यति भूतले ॥ १०५ ॥
 नवकाण्डपूतं रम्यं दृष्ट्वा स्वच्छष्टिहेतवे । एतद्धि रक्षयिष्यन्ति यावच्चन्द्रदिवाकरो ॥ १०६ ॥
 यदा तत् खंडितं पूर्वं व्यासेन मुनिना तव । शतकोटिमितं रामचरितं यन्मया कृतम् ॥ १०७ ॥
 तदा किञ्चिद्धितं दृष्ट्वाऽहं तूष्णीमेव संस्थितः । भविष्यन्ति कलौ मन्दमत्तयोऽम्बायुषो नराः ॥ १०८ ॥
 न समर्था मम ग्रन्थं त्विम श्रोतुं कदापि हि । अतो व्यासेन मुनिना मत्काव्यं यन्पृथक् कृतम् १०९
 तत्सम्पत्तिरहं मत्वा परां तुष्टिं गतः प्रमो । अतस्त्वां प्रार्थयाम्यथ नवकाण्डमितं त्विदम् ॥ ११० ॥
 आनन्दरामचरितं न विरूपय राघव । वर्जयिष्यमि चेद्वाक्यं तदा दुःखमयं प्रमो ॥ १११ ॥

हे । मैने जो सौ करोड़ श्लोकोंमें आपके चरित्रका वर्णन किया है, उसे हे रघुनन्दन ! आप कुछ समय पहले कई भागोंमें बाँट चुके हैं ॥ ८९-९३ ॥ उनमेंसे जो भाग भारतवर्षके लिये बना था, उसके सार आपको मेकव ओ कथानक अच्छे से, मुननेमात्रसे समझमें आ जाते ॥ कानोंको प्रिय लगते थे, उन्हींके आधारपर व्यास-देवने अष्टादश पुराणों तथा उपपुराणोंको बना दिया है । इनके अतिरिक्त भी बहुतसे ऋषि उन्हींकी सहायतासे षट्शास्त्र आदि कितने ही शास्त्र बनायेंगे ॥ ९४-९६ ॥ कुछ ही समय बीतनेके बाद कंकेयीकी दृष्टासे आपकी श्रीदह वर्ष वर्षन्त जो दुःख झेलने पड़े थे, सीताके विरह आदिका दुःख जो चौबीस हजार श्लोकोंसे कुछ कम है, उसने ही चरित्रको लोग भुझ वात्सल्यका बनाया हुआ मानेंगे । इस भावी स्थितिको समझकर ही मैने आपके उसने शोकमय चरित्रको विशेष उत्साहके साथ लिखा है । सब लोगोंको बाहिये कि सबेरे युद्ध-चरित्र तथा दोगहरके बाद शोक-चरित्रका श्रवण करें । युद्धचरित्रका मतलब महाभारत, रति-चरित्रका श्रीमद्भागवत तथा बाकी चौबीस हजार श्लोकोंका मतलब शोकचरित्र माना गया है । आपके भावी वरदातके प्रभावसे आपका यह आनन्दरामायण, सौ करोड़ श्लोकोंवाला मेरा बनाया रामचरित्र, नौ काण्डोंवाला द्वादश सहस्रात्मक रामचरित्र एवं एक सौ नौ श्लोकोंवाली रामायण ये सब पृष्ठीतलमें कहीं न कहीं रहेंगे ही । आपके भावी वरदानसे एक सुन्दर कीर्तनमाला, जिसमें १०८ सर्ग हैं, सुमेरुकी मत्कासदृश अलगसे लगी है, इसका कोई भी खण्डन नहीं ॥ सकेगा । इस नौ काण्डोंवाले चरित्रको लोग आपकी प्रसन्नताके लिए तबतक सम्हालेंगे, ॥ तक कि संसारमें सूर्य-चन्द्र विद्यमान रहेंगे ॥ ९७-१०६ ॥ मेरे बनाये सौ करोड़ श्लोकोंवाले रामचरित्रका खण्डन करके ॥ व्यासजीने १८ पुराण बनाये थे, तब उससे किसी प्रकारका कल्याण देखकर ही ॥ चुप रह गया था । उस समय मेरे विचारमें ॥ ॥ बाग चलकर कलियुगमें लोग मन्दबुद्धि तथा अल्पायु होंगे । ॥ ॥ मेरे इतने बड़े ग्रन्थको कभी नहीं सुन सकेंगे । व्यासजीने मेरे काव्यसे कषायें अलग करके जो पुराणोंको बनाया, सो ॥ बख्त किया । उसमें

भविष्यति शेषवद्भि चैतच्चापि मनोहरम् । अतस्ते कथयाम्यद्य येन ते शिक्षितं भुवि ॥११२॥
 भविष्यति मृषा नैव येन तुष्टास्तु देवताः । भविष्यति जनाभापि मर्या मन्त्रविता भवेत् ॥११३॥
 जना हसन्तु सर्वत्र दन्तानां दन्तने दिना । आर्यमाच्छाद्य वस्त्रेण कदा कौतुकदर्शनात् ॥११४॥
 हाम्यं लक्ष्मीसूचकं हि हस्मिन् शौक्यदायकम् । मांगल्यं श्रुति चैतद्वास्याच्छ्रेष्ठं न किञ्चन ॥११५॥
 नारी स्मिन्मानना यस्मिन् मेदे तन्मन्दिरं स्मृतम् । लक्ष्म्याऽपि स्वीयते तत्र निवसं रघुनन्दन ॥११६॥
 एव पुरुषो धन्यो यस्य म्याञ्च स्मिन्दाननम् । स एव पुरुषो निन्द्यो यस्यास्यं क्रोधसंयुतम् ॥११७॥
 प्रमदा निदिता सापि यस्याः क्रोधयुतं भुक्तम् । गर्हयन्पनिहास्यं हि यत्नदा ते भुनीश्वराः ॥११८॥
 अतस्त्वां प्रार्थयाम्येतन्मात्रं त्वं वचो मम । न करोमि विधिर्गर्वं न्वा तातं वेत्ति राघव ॥११९॥
 आनविष्यामि शरणं तवाहं चतुराननम् । एवं वाल्मीकिरचनमंशीकृत्य रघूचमः ॥१२०॥
 एवमस्त्विति तं प्राह भुनि नडाकपगोश्वात् । तद्रामवचनं श्रुत्वा वाल्मीकिस्तुष्टमानसः ॥१२१॥
 शिष्यं संप्रेष्य ब्राह्मणमानयामास पिप्पलात् । अथाः सर्वं समुत्तमधुर्यपुस्तं नगरीं प्रति ॥१२२॥
 पर्या सैन्येन शत्रुधनो रामपार्श्वे स्थितोऽभवत् । रामपुत्रो समयातो पितुरग्रे निषेदतुः ॥१२३॥
 रामाक्षया भारवाहस्ततो दूर्तविमजितः । कुतरेण सुधावृष्टिः सुमन्त्राद्याः सुजीविताः ॥१२४॥
 सुमन्त्राद्या रामदूतास्तन्क्षणं राघवं ययुः । नत्वा रामं सुमन्त्रः स रामपार्श्वे स्थितोऽभवत् ॥१२५॥
 वसः सुरैर्यथाविद्रः श्रोतामं प्रणमाम सः । रामं नन्वाऽजवीद्व्रज्ज्वा मया यदपराधितम् ॥१२६॥
 तत्क्षमस्व रघुश्रेष्ठ त्वन्पाल्वाः सर्वदा वयम् । पुराऽस्माकं हितार्थं हि स्वया रामावनीतले ॥१२७॥

मुझे बड़ी प्रसन्नता है । अतएव आज आपसे मैं प्रार्थना करता हूँ कि इस नी काण्डवाले आनन्दरामायणकी शोभा न बिगाड़िए । यदि आप सदाके लिए लोगोंका हंसना रोक देंगे तो बड़ा अनर्थ होगा । मेरी रामायण किसी कामकी नहीं रह जायगी । इसीलिये मैं आपसे कहता हूँ कि कोई ऐसा उपाय कीजिए, जिससे आपके आदेशमें भी किसी प्रकारका अन्तर न पड़े और देवता तथा मनुष्य भी प्रसन्न रहें और मेरी कविता भी सत्य हो जाय ॥ १०७-११३ ॥ लोग हमें सहो, किन्तु उनके दाँत न दिखायी दें । किसी कौतुकको देखकर यदि लोगोंकी हँसी आ जाय तो कण्ठसे मुँह टूँककर हँसे ॥ ११४ ॥ क्योंकि हँसी लक्ष्मीसूचक है, हँसी सबको सुख देनेवाली वस्तु है और हँसी भगवन्मयी मानी गयी है । कहनेका भाव यह कि हँसीसे बढ़कर कोई चीज नहीं ॥ ११५ ॥ जिस घरमें भुस्काता हुई नारी रहती है, वह घर देवमन्दिरके समान पवित्र होता है और लक्ष्मी वहाँपर ही निवास करती है । हे रघुनन्दन ! इसमें किसी प्रकारका संशय नहीं है ॥ ११६ ॥ वही पुरुष धन्य है, जिसका मुखमण्डल सदा हंसता हुआ दीप्ते और वही पुरुष अघम है, जिसका मुख सदा क्रोधसे युक्त रहे ॥ ११७ ॥ वह स्त्री भी निन्द्य है, जो सदा क्रोधयुक्त मुँह बनाये रहती है । बड़े-बड़े भुनिगण आदि हास्यकी सदासे निन्दा करते आये हैं ॥ ११८ ॥ अतएव मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि मेरी यह बात मान लीजिए । ब्रह्मा किसी तरह अभिमान करके आपको अपने पिताके समान मानते हैं ॥ ११९ ॥ मैं स्वयं जाकर ब्रह्माको आपकी शरणमें लाऊँगा—वे आपसे क्षमा माँगेंगे । रामने वाल्मीकिके वाक्यगोश्वको सम्मनकर उनकी बात मान ली और कहा कि जैसा आप कहते हैं, वैसा ही होगा । रामकी स्वीकृति सुनकर वाल्मीकि परम प्रसन्न हुए और अपना एक शिष्य भेजकर उस पीपलपरसे ब्रह्माजीको बुलाया । यह हो जानेपर शत्रुघ्न तथा लक्ष्मणके जो घोड़े अबतक रास्तेमें बँडे थे, वे लड़के हुए और अयोध्याको वापस चल दिये । शत्रुघ्न और लक्ष्मण भी अपनी सेना लिये हुए आये और रामके पास जाकर बैठ गये ॥ १२०-१२१ ॥ रामकी आज्ञासे दूतोंने लक्ष्मणहारेको छोड़ दिया । दन्तने आकर अफुसमि वर्षा की । जिससे सुमन्त्रादि जो गोठों मूँछित पड़े थे, वे सचेत हुए ॥ १२४ ॥ इसके अनन्तर भुक्तको फाटनेके लिए गये हुए लोग रामके पास आये । सुमन्त्र रामके पास जाकर बैठ गये । घोड़ी देर बाद देवताओंके साथ-साथ इन्द्र और ब्रह्मा भी रामकी सम्मामें आये और बैठ गये । रामकी प्रणाम

अवताराथ बहवो धृता नो रिषवो हताः । शंखासुरो वेदहर्ता मत्स्यरूपेण कारितः ॥१२८॥
 तथाऽस्माकं सुधा दातुं मञ्जवं मंदराचलम् । द्यू। स कूर्मरूपेण स्वया दृष्टे धृतो मितिः ॥१२९॥
 मत्पृथ्वीति स्पर्द्धमानं हिरण्याक्षं निहत्य च । त्वया वाराहरूपेण जलात्पृथ्वी समुद्धृता ॥१३०॥
 प्रह्लादवचनास्तस्मिन्भावाविर्भूय स्वया पुरा । नरसिंहरूपेण हिरण्यकशिपुहंतः ॥१३१॥
 तथा राज्यं हतं द्यू। पुरा तु मषवंस्त्वया । बलिर्बामनरूपेण पातले त्रिनिवेशितः ॥१३२॥
 नृपैरधर्मनिरर्तैर्द्यू। व्याप्ता ह्रवं पुरा । त्वयैकविंशद्वारं हि जामदग्न्यस्वरूपिणा ॥१३३॥
 पितृवैरं पुरस्कृत्य निःश्वरी पृथिवी कृता । दशास्यकुम्भकर्णो ती रामरूपेण राक्षसौ ॥१३४॥
 पत्नीवैरं पुरस्कृत्य त्वया द्यू। हताविह । उद्धारितो तौ स्वर्गणौ द्विवारं देवघातनः ॥१३५॥
 एकवारं पुनस्तत्रो त्वं तावेषोद्धरिष्यसि । तद्वत्प्रवचनं भुत्वा दसिष्ठो मुनिमत्तमः ॥१३६॥
 सर्वं जानन्नपि जनान्धातुं पप्रच्छ तं विधिम् ॥१३७॥

इति श्रीकतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे
 उत्तरार्धे रामहास्यप्रतिरोधो नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः

(वाल्मीकिजी जन्मभाषा तथा बहुतेरे मंत्रोंका निरूपण)

श्रीरामदास

कौ गणै देवघातौ ती कथमुद्धारितौ वद । पुरा द्विवारं रामेणाग्रे कथं चोद्धरिष्यसि ॥१॥
 तद्वसिष्ठवचः भुत्वा विधिः प्राह विहस्य तम् । सर्वं वेत्ति भवान् लोकान् ज्ञापितुं वा हि पृच्छसि ॥२॥
 तदा वदाम्यहं सर्वं गणयोः श्रावकारणम् । एकदाऽयं महाविष्णुर्वैकुण्ठे रामवा रहः ॥३॥
 संस्थितश्च तदा द्वारि विष्णुं द्रष्टुं सुरोत्तमौ । तादृशिनीकुमारी हि समाजगमतुरादरात् ॥४॥

करनेके पश्चात् ब्रह्माने कहा—मैंने जो कुछ अपराध किया है, सो क्षमा करें । हे रघुश्रेष्ठ ! आपका कर्तव्य कि आप हमारी रक्षा करें । पहले आपने हमारी रक्षा करनेके लिए पृथ्वीतलपर कितने ही अवतार भेकर हमारे शत्रुओंको मारा है । वेदको चुरानेवाले शंखासुरको आपने मत्स्यका रूप धारण करके मारा था ॥१२४-१२८॥ हम सबोंको अमृत पिलानेकी इच्छासे, समुद्रमन्थनके समय जब मन्दराचल टूटा जा रहा था, कूर्मरूप धारण करके उसे अपनी पीठपर रखता । “यह पृथ्वी मेरी है” इस प्रकार कहकर डींग मारनेवाले हिरण्याक्षको मारकर आपने वाराहरूप धारण करके जलमें डूबी हुई पृथ्वीका उद्धार किया ॥ १२९ ॥ १३० ॥ प्रह्लादके वचनसे आप अग्नेसे प्रकट हुए और हिरण्यकशिपुका संहार किया । जब दैत्योंने इन्द्रसे राज्य छीन लिया था, तब आपने बामनरूप धारण करके भीस भाँगी और बलिको पाताल लोक भेक दिया ॥१३१॥१३२॥ इस पृथ्वीमण्डलमें पापी राजाओंका अत्याचार देखा तो परशुरामका रूप धारण करके पितृवैरके आग्रहसे पृथ्वीको अविधिविहीन कर दिया । रावण और कुम्भकर्णको आपने पत्नीवैरके ब्रह्माने यमपुर पहुँचाया । दो आपने देवताओंके शापसे अपने गणोंकी रक्षा की है और अविध्यमें फिर एक बार उनका उद्धार करेंगे । ब्रह्माकी बातको धुनकर सब कुछ जानते हुए भी दसिष्ठने ब्रह्माजीसे पूछा—॥ १३३-१३७ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पंच रामतेजपाण्येवनिर्दिष्टं श्रीस्तना भाषाटीकासमन्विते राज्यकाण्डे उत्तरार्धे त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

दसिष्ठजी कहने लगी—वे दोनों कीनसे पच ये, जिनकी देवताओंका आपका और रामने उनका उद्धार किया था और फिर भी उद्धार करेंगे, सो कहिए ॥ १ ॥ इस प्रकार दसिष्ठकी बातधुनकर ब्रह्माने हुँसकर कहा—आप सब कुछ जानते हैं, किन्तु मुझे ज्ञान प्राप्त करानेके लिए मुझसे पूछ रहे हैं तो मैं भी उन गणोंके शापका कारण बतलाता हूँ । एक समय महाविष्णु एकान्तमें

समागतौ देववैद्यौ तौ दृष्ट्वा द्वारस्थकौ । जयविजयनामानौ तयोरग्रे प्रजग्मतुः ॥ ५ ॥
 ताम्बा वैश्री तदा प्रोक्तौ विष्णुस्तिष्ठति वैरहः । नायं कालो दर्शनस्य तच्छ्रुत्वा प्रोचतुः सुरौ ॥ ६ ॥
 अधुना द्रष्टुमिच्छाको विष्णुं कथयतां गणौ । द्वार्यावयोरगमनं युवां मृणुत केरितम् ॥ ७ ॥
 तत्तयोर्वचनं श्रुत्वा तौ पुनः प्रोचतुर्गणौ । न गच्छावो महाविष्णुमावां लप्स्या रहः स्थितम् ॥ ८ ॥
 एवं त्रिवारं ताम्बा तौ प्रोक्तौ नेत्युचतुर्गणौ । तदाऽश्विनीकुमारौ तौ प्रोचतुः क्रोधमूर्च्छितौ ॥ ९ ॥
 आवयोर्वचनं नैव युवाभ्यां हि श्रुतं गणौ । यत्स्त्रिवारं तस्माद्दि युवां जन्मत्रयं भुवि ॥ १० ॥
 न संदेहस्तच्छ्रुत्वा वचनं तयोः । गणावपि तयोः श्रापं ददतुर्देववैद्ययोः ॥ ११ ॥
 विनापराधतः श्रापे यस्माद्वत्स्तु चावयोः । एकवारं युवां चापि जन्मातश्चस्तु वै भुवि ॥ १२ ॥
 एवं परस्परं श्रापं लब्ध्वा हाहेति युक्तुः । तदा कोलाहलध्वासीदाह्रवाभास तान् हरिः ॥ १३ ॥
 ततस्तत्सकलं वृत्तं प्रोचुस्ते जगदीश्वरम् । चत्वारस्ते महाविष्णुं प्रार्थयामासुरादरात् ॥ १४ ॥
 येन शीघ्रं विमुक्तिः स्यात्तन्नो वद महेश्वर । प्रोवाच तान् विष्णुर्भुक्तिः शीघ्रं शुभाऽत्र हि ॥ १५ ॥
 यपि भक्त्या विरोधिन्या ज्ञायते नात्र संशयः । सप्तजन्मातरेणैव भद्रकृत्वा ज्ञायते गतिः ॥ १६ ॥
 पुष्पाकं रोचते या भक्तिः कार्याऽवनीतले । तद्विष्णोर्वचनं श्रुत्वा ते प्रोचुर्जगदीश्वरम् ॥ १७ ॥
 नोऽस्तु भक्त्या विरोधिन्या शीघ्रं ते दर्शनं पुनः । तथेत्युक्त्वा रमानाथस्तान् सर्वान् स व्यसर्जयत् १८ ॥
 ते जन्मानि ततः प्रापुर्जन्मत्यां भुनिसन्म । जपो जातो हिरण्याक्षो हिरण्यकशिपुस्तथा ॥ १९ ॥
 आतोऽत्र विजयः पूर्वं तौ हतौ विष्णुना पुरा । बाराहरूपिणाऽनेन हिरण्याक्षो विदारितः ॥ २० ॥
 नरसिंहस्वरूपेण हिरण्यकशिपुर्हवः । ततः पुनर्जन्म तौ हि द्वितीयं प्रप्नुर्भुवि ॥ २१ ॥

लक्ष्मीके ■ बीटे थे । इसी समय उनके दासनाथ अश्विनीकुमार वहाँ पहुँचे ॥ २-४ ॥ उन देववैद्योंको देखकर जय-विजय नामक दोनों द्वारपाल उनके सामने पहुँचि और कहने लगे—इस समय भगवान् एकान्तमें हैं । अतएव आप लोग दर्शन नहीं कर सकेंगे । यह सुनकर वे दोनों देवता बोले—विष्णुभगवान्से जाकर कह दो कि हम अभी इसी समय आपका दर्शन चाहते हैं । देवताओंकी बात सुनकर जय-विजयने कहा कि हम अभी उनके पास नहीं जायेंगे । वे लक्ष्मीके साथ एकान्तमें हैं ॥ ५-८ ॥ इस तरह तीन बार अश्विनीकुमारोंके कहनेपर भी जब जय-विजयने उनकी नहीं मानी तो क्रुद्ध होकर उन्होंने आप देते हुए कहा कि तीन बार तुम लोगोंने मेरी बातका उल्लंघन किया है, इसलिए तुम्हें तीन बार पृथ्वीलोकमें जन्म लेना पड़ेगा । उनके इस भाषको सुनकर जय-विजयने भी अश्विनीकुमारोंको शाप देते हुए कहा कि विना अपराध तुमने हमको शाप दिया है । अतएव तुम दोनोंको भी एक बार पृथ्वीलोकपर जन्म लेना पड़ेगा ॥ ९-१२ ॥ इस प्रकार आपसमें पाकर चारों हाहाकार करके पछछाने लगे और वैकुण्ठधरमें कोलाहल मच गया । तब विष्णुभगवान्ने उनको अपने बुलाया ॥ १३ ॥ भगवान्ने उनका वृत्तान्त सुना । इसके अनन्तर आदर्शपूर्वक चारोंने भगवान्से प्रार्थना की—॥ १४ ॥ हे महेश्वर ! जिससे हमलोग शीघ्र इस शापसे मुक्त हो जायें, हमें आप धर्ती उपाय बतलायें । विष्णुभगवान्ने उन्हें समझाते हुए कहा ■ घबड़ाओ नहीं, शीघ्र ही तुम लोग शापसे मुक्त हो जाओगे । किन्तु उपाय दो है । एक यह कि तुमलोग हमारी भक्तिसे विरोधभाव रखो । दूसरे उपायसे हमारी भक्ति करके मुक्ति पानेकी चेष्टा करो । यदि मेरी भक्तिके विरुद्ध रहोगे तो शीघ्र मुक्ति मिल जायगी और भक्तिके साथ चाहोगे तो सात बार जन्म लेना पड़ेगा । दोनोंमेंसे जो उपाय अच्छा लगे, उसे चुन लो । इस प्रकार विष्णुकी बात सुनकर लोगोंने उत्तर दिया कि हम आपको भक्तिके विरुद्ध रखेंगे, जिससे शीघ्र मुक्त हो जायें । भगवान्ने भी “अच्छी बात है” यह कहकर उन लोगोंको बिदा कर दिया ॥ १५-१८ ॥ तदनन्तर लोग पृथ्वीलोकमें आकर जन्मे । उनमें जय हिरण्याक्ष नामका तथा विजय हिरण्यकशिपु नामका होकर जन्मा । इसके अनन्तर बाराहरूप धारण करके विष्णुभगवान्ने हिरण्याक्षको मार और नरसिंह-स्वरूप धरकर हिरण्यकशिपुका संहार किया ॥ १९ ॥ २० ॥ दूसरे जन्ममें

जयो जातो रावणोऽत्र कुम्भकर्णस्तथाऽपरः । जातो विजयनामा हि रामेणानेन तौ हतौ ॥२२॥
 तावद्विनोक्तुमारी हि एक ऐरावणः स्मृतः । मैरावणश्च त्वपरं एवं तौ जनितावधः ॥२३॥
 पाताले वरदानाच्च रामहस्तान्मृतिं गता । अग्रे जयः शिशुपालो भविष्यति न संशयः ॥२४॥
 विजयो दंतवक्त्रश्च भविष्यत्यवनीतले । द्वापरं कृष्णरूपेण शिशुपालं हरिः स्वयम् ॥२५॥
 भविष्यति दंतवक्त्रं तथैव मुनिमतम् । एवं जन्मत्रयं ज्ञापान्मुक्त्वा तौ भगवद्गणौ ॥२६॥
 जयविजयनामानौ पूर्ववत् स्थास्यतः शुभौ । द्वारदेशेऽस्य वै विष्णोर्विकुण्ठे दुःखवर्जिते ॥२७॥
 तावद्विनो देववन्द्यौ पूर्ववद्वि तौ स्थितौ । एवं मुने त्वया पृष्टं तन्मया परिवर्णितम् ॥२८॥
 भगवद्गणयोः ज्ञापकारणं च पुरातनम् । एवं राघव चाग्रे त्वं द्वापरे परमे शुभे ॥२९॥
 जरासंधादिवीर्यं कंसार्थरपि भूतलम् । त्विदं दृष्ट्वाऽग्रावतीर्य कृष्णरूपेण लीलया ॥३०॥
 सर्वान्हत्वा तोषयुक्तं करिष्यसि महीदलम् । तान् बौद्धान्बुद्धरूपेण कलावग्रे विजेष्यसि ॥३१॥
 वर्णसंकरमालङ्घ्य कलेरते रघूत्तम । कल्प्तिरूपेण सकलान्संहरिष्यसि लीलया ॥३२॥
 एवं दक्षावताराश्च तपान्येऽपि सहस्रशः । त्वया हितार्थमस्माकं धृतावाग्रे भरिष्यसि ॥३३॥

श्रीरामदास उवाच

एवं स्तुवन्तं ब्रह्माणं समालिख्य स्पृष्टमः । संनिवेश्यासने प्राह त्वदर्थं च मुनेर्गिरा ॥३४॥
 हास्यभाजापितं किञ्चिज्जनाः कुर्वन्तु ते सुखम् । यथा वाल्मीकिना प्रोक्तं तथा मा विस्तरोस्तु च ॥३५॥
 तद्गामवचनं श्रुत्वा तदा दुष्टाः सुरादयः । प्रपञ्चं च वाल्मीकिं समायां रघुनन्दनः ॥३६॥
 भगवत्तारतः पूर्वं त्वया मन्त्ररितं कृतम् । कथं ज्ञातं त्वया पर्व केन त्वामुपदेशितम् ॥३७॥
 पूर्वजन्मनि कस्त्वं हि किं पुण्यं हि त्वया कृतम् । तत्सर्वं विस्तरेणैव कथयस्वाद्य मां प्रति ॥३८॥

वे दोनों रावण और कुम्भकर्ण होकर जन्मे और भगवानने रामका रूप धारण करके उन्हें मारा ॥ २१ ॥ २२ ॥
 दोनों अश्विनोक्तुमारीसे एक ऐरावण एवं दूसरा मैरावणके रूपसे घरीपर आया और पाताललोकमें रामके
 हाथों उन दोनोंकी मृत्यु हुई । अगले जन्ममें जब शिशुपाल तथा विजय दन्तवक्त्रके नामसे जन्मेगा । द्वापरमें
 भगवान् कृष्णरूपसे उन दोनोंका संहार करेंगे । इस तरह आपसके ज्ञाप-शार्पसे ये लोग तीन जन्ममें अपनी
 करनीका फल भोगकर फिर पहलेकी तरह जय-विजयके नामसे भगवान्के दारपाल हो जायेंगे, उन्हें
 फिर कोई भेष नहीं होगा ॥ २३-२७ ॥ सबसे अश्विनीकुमार भी आनन्दके साथ स्वर्गलोकमें निवास
 करेंगे । हे मुनिराज ! आपने हमसे जो कुछ पूछा, वह मैंने बतलाया । इसका सारांश यह निकला । उन
 दोनों भगवद्गणोंके लिए एक प्राचीन ज्ञाप कारण था । उसमें कोई नयी बात नहीं थी । हे राघव ! आगे
 द्वापर युगमें भी पृथ्वी जब कंस तथा जरासंध आदि दुष्टोंके अत्याचारोंसे घबड़ा जायगी, तब आप कृष्ण अवतार
 लेकर दुष्टोंका संहार करने हुए पृथ्वीका भार उतारेंगे । उसी प्रकार कलियुगमें बुद्धका रूप धारण करके
 बौद्धोंको पराजित करेंगे ॥ २८-३१ ॥ हे रघूत्तम ! कलियुगके अन्तमें सबसंसार वर्णसंकर हो
 जायगा, तब आप कल्किरूप धारण करके सबका संहार करेंगे । इस तरह दस क्या, हजारों अवतार आपने
 हम लोगोंके कल्याणार्थ लिया है और भविष्यमें भी लेंगे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ श्रीरामदास बोले—इस तरह स्तुति
 करते हुए महाका रामने हृदयसे ज्ञात लिया और अपनी बगलमें बिठाकर कहा कि वाल्मीकिने कथनानुसार
 ■ आज्ञा देता हूँ कि तुम्हारे सुखके लिये लोग हैंगे या जो कुछ करें, मुझे कोई आपत्ति नहीं है । वाल्मीकिने
 जो कहा है, उसके अनुसार मेरी आज्ञाके लोग काम करेंगे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ रामकी इस बातको सुनकर जिसने देखा
 थे, वे सब प्रसन्न हो गये । इसके पश्चात् रामने वाल्मीकिसे कहा कि मेरे अवतारसे पहले ही आपने मेरा चरित्र
 रामायण बना डाला है । सो भविष्यकी बातें आपको कैसे मालूम हुई ? उन्हें किसने बताया थी ? ॥ ३६ ॥ ३७ ॥
 पूर्वजन्ममें आप कौन थे और आपने कौनसे पुण्यकार्य किये थे, सो मुझसे कहिए । इस प्रकार रामके प्रश्न

तत्रामनचनं श्रुत्वा वाग्भीकिर्मुनिपुङ्गवः । सभायां राघवं सर्वं वक्तुं समुपचक्रमे ॥३९॥

वाल्मीकिरुवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया राम सावधानमनाः शृणु । राम त्वन्नाममहिमा वर्ण्यते केन वा कथम् ॥४०॥

यत्प्रभावादहं राम ब्रह्मर्षित्वमवाप्तवान् । शृणु राघव मत्सम्बन्धं कथा मे पूर्वजन्मनः ॥४१॥

पंचाक्षरीरे द्विजः कश्चिच्छंखो नाम महायज्ञाः । गुरोः सिद्धिं गतश्चागाधदीं गोदावरीं प्रति ॥४२॥

तीर्त्वा भीमरथीं पुण्यां कांतारे कंटकाविले । निर्जले विजने घोरे वैशाखे तापकर्षितः ॥४३॥

वनं चोपविशेशसौ मध्याह्नसमये द्विजः । तदा कश्चिद्वृक्षाचारी व्याधश्चापधरः पठ ॥४४॥

निर्भृषः सर्वभूतेषु कालांतक इवापरः । तं कुण्डलधरं विप्रं दीक्षितं भास्करोपमम् ॥४५॥

सङ्गेन भीषविष्ठा तु जग्राह कुंडलादिकम् । उपानहो तच्छत्रं च वस्त्राणि च कमण्डलुम् ॥

पश्चादित्वाऽथ तं विप्रं गच्छेत्स्याह स मूढधीः ॥४६॥

■ ■ गच्छन्पथि शर्कराविले सूर्याश्रुतमे वनवर्जिते खरे ।

संतप्तपादस्त्रुणगोपिते स्थले क्वचिच्च वस्त्रोपरि संस्थितोऽभवत् ॥४७॥

स वै द्रुतं तापतप्तोऽपि विष्टुन्दाहेति वादी प्रजगाम विप्रः ।

दृष्ट्वा धूमिं तं बहुस्तिम्भमानस मध्यं गते पूर्णि यदाऽतितीव्रे ॥४८॥

व्याधस्य जाता मत्तिरीदृशी वै तस्मै ददामीति च पादरसे ।

ध्वीयेन धर्मेण तु तस्करेण वने गृहीतं सकलं च तन्मे ॥४९॥

धीर्येण च स्वधर्मेण यद्गृहीतं वनान्तरे । तदीयमेव तत्सर्वं व्याधानां धर्मनिर्णयः ॥५०॥

तस्मादुपानहो दास्ये मुहुर्दुःखापनुचये । तेन ज्ञेयो भवेद्यच्च तद्भवेन्मम पापिनः ॥५१॥

जीर्णो चोपानहावेतौ तस्वौ स्तम्भ पदोर्मम । न चाभ्यामस्ति मे कार्यं तस्मात्तस्मै ददाम्यहम् ॥५२॥

करनेपर वाल्मीकिजीने बतलाता प्रारम्भ किया। उन्होंने कहा—आपने बहुत ■■■ प्रश्न किया है, सावधान धित होकर सुनिये। हे राम ! आपके नामकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है, जिसके प्रभावसे आज मैं ब्रह्मर्षिपदपर बैठा हूँ। अच्छा, पहले अपने पूर्वजन्मका वृत्तांत ही बतलाता हूँ। ■■■ सरोवरके पास कोई एक ■■■ यशस्वी शङ्ख नामका बाह्यण रहता था। उसने गुरुके पाससे सिद्धि प्राप्त की और कुछ दिनों बाद गोदावरी नदीपर गया। उसे पार करके भीमरथी नदी पार किया और एक ऐसे निर्जन वनमें पहुँचा, जहाँ जलतक मिलना कठिन था। वह वैशाखका महीना था। मारे तमीके ■■■ जी बेचैन था। दोपहरके समय थककर वह उसी वनमें बैठ गया। उसी समय धनुष-बाण लिये एक दुष्ट ■■■ उसके पास आ पहुँचा ॥ ३८-४४ ॥ ■■■ दूसरे यमराजके समान ध्यानक और निर्दयी था। उसने उस सूर्यके समान तेजस्वी बाह्यणको तलवारसे भयभीत करके उसके वृण्डलादि आभूषण, जूते, छतरी, वस्त्र ■■■ कमण्डलु आदि छीन लिये। इसके बाद उसने "जामो" कहकर छोड़ दिया ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ बेचारा बाह्यण कङ्कड़-पत्थर तथा सूर्यके तापसे जलती हुई बालुकाध्यात मार्गसे चलने लगा। जब उसके पैर ज्यादा जलने लगते तो किसी नृण आदिपर पैर ठंडा करके आगे बढ़ता था। चलते-चलते जब पैर बहुत जलने लगे तो वह ■■■ बिछाकर एक स्थानपर बैठ गया ॥ ४७ ॥ थोड़ी देर बाद उठकर उस कड़ाकेकी धूपमें पैरके जलनेसे हाहाकार करता हुआ वह फिर आगे बढ़ा। उस बाह्यणको जलती धूपहरीमें ■■■ तरह दुःखित देखकर व्याधके मनमें आया कि मैंने इसकी सारी वस्तुयें तो छीन ली हैं। न ही, इसे इसके जूते लौटा दूँ। इसकी सब चीजें छीनकर मैंने अपने धर्मका पालन किया ही है। हे राम ! वनमें आने-जानेवाले पथिकोंके सामान छीन लेना, उन चोरोंके धनमें सम्मिलित है। उस चोरने सोचा कि इसके जूते इसे दे डालूँ तो इसका क्लेश दूर हो जायगा और उससे जो पुण्य होगा, सो ■■■

इति निश्चित्य मनसि तूर्णं गत्वा ददौ च त्री । शक्रेणैव तपःश्रद्धां द्विजार्थाय सीदते ॥५३॥
 उपानहौ गृहीत्वाऽसौ निर्वृतिं च ददौ ययौ । सुखा नयेति तं प्राह कृष्णं पुनरब्रवीत् ॥५४॥
 पूर्वपुण्येन ते जाता शुभा बुद्धिर्वनेश्वर । यथा बुद्ध्याऽप्य देशाख्ये तस्या दत्तामुपागमौ ॥५५॥
 इति तद्वचनं श्रुत्वा दत्तं व्याधोऽब्रवीद्ब्रुवः । किं मयाऽऽचरितं पूर्वं तत्सर्वं वक्तुमर्हमि ॥५६॥

गणेश उवाच

आतपो बाधते घोरो नात्र छाया न वै जलम् । तन्मानस्थलान्तरं गन्वा यत्र छायां च वर्तते ॥५७॥
 तत्र गत्वा जलं पीत्वा सुच्छायां च समाश्रितः । तस्मिन् सुकृतं पूर्वं मविस्तारं वदाम्यहम् ॥५८॥
 श्वपुच्छो मुनिना तेन व्याधः प्राह कृतांजलिः । इतोऽविदुरे सलिलं वर्तते च सरोवरे ॥५९॥
 कपित्थास्तत्र वै संति फलमारेण पाहिताः । मच्छावस्तत्र संतुष्टिर्भाविता नात्र संशयः ॥६०॥
 व्याधेनैव समादिष्टेन साकं ययौ मुनिः । किमबूद्धं ततो गन्वा ददर्शादप्यं सरोवरम् ॥६१॥
 स्नात्वा मय्याहवेलायां तस्मिन्मन्त्रसि निर्मले । शान्तमी परिधायाय कृत्वा माध्याह्निकीः क्रियाः ॥६२॥
 देवपूजां तथा कृत्वा फलमूलमतद्रितः । व्याधोपनीतं सुस्वादु कपित्थं श्रमहारि च ॥६३॥
 भुक्त्वा सुखं जलं पीत्वा सुच्छायां च समाश्रितः । सुखोपविष्टस्तं प्राह पूर्वपुण्यं वदामि ते ॥६४॥
 शाकले नगरे पूर्वं द्विजस्त्वं वेदपरगमः । स्तम्भो नाम महापापी तथा श्रीवत्सगोत्रजः ॥६५॥
 तवैषा गणिका काचिददाऽऽसीत्संगदोषतः । त्यक्तनिर्वाक्रियो नित्यं शूद्रवन्मूर्खमार्गगः ॥६६॥
 शून्याचारस्य मूढस्य पारित्यक्तक्रियस्य च । ब्राह्मणी ते तदाऽन्यासीद्भायां कांतमयी यथा ॥६७॥
 सा त्वां पर्यचरत्सुभ्रूः सवेष्ट्यं ब्राह्मणाघमम् । उभयोः क्षालयन्ती च पादौ न्वत्प्रियकाम्यया ॥६८॥
 उभयोरप्यधः शीतं उभयोर्वचने रता । वेदयथा वार्यमाणाऽपि हितकार्ये द्वयोः स्थिता ॥६९॥

पापीके पादमें अच्छा ही होगा ॥ ५८-५९ ॥ वे जूत भी पुराने और छोटे हैं । इसलिए मेरे पैरमें जायेंगे । तब इसे ही डालूँ । प्रकार निश्चय करके खीड़ता हुआ वह उस घुँघुँ तथा कंकड़ियोंके पड़नेसे दुखी ब्राह्मणके पास पहुँचा और उसे उल्टे जूत दे दिये ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ जूत मिलनेपर उसे बड़ा आनन्द मिला और ब्राह्मणने कहा—तुम सुखी होओ । हे वनेश्वर ! पूर्वजन्मके विसां पुण्यसे तुम्हारी ऐसी बुद्धि हुई है । जिससे तुमने वर्षाक्ष महीनेमें इस जूतका दान दिया है ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ इस प्रकार ब्राह्मणकी बात सुनकर व्याधने कहा कि पूर्वजन्ममें मैंने कौनसा पुण्य किया था । सो आप वित्तापूर्वक मुझे बताइये ॥ ५६ ॥ ब्राह्मणने कहा कि इस समय मुझे घाम ज्यादा लग रहा है । इस जगहपर न सो पानी है, न छाया ही है । इसलिए किसी एक स्थानपर चलो, जहाँ कि छाया और पानी मिल सके । बहोप ही मैं तुम्हें तुम्हारे पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनाऊँगा ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ इस प्रकार ब्राह्मणकी बात सुनी तो हाय जोड़कर व्याधने कहा कि पास ही सरोवरमें पानी और उसके आस-पास बहुतसे कंधेके वृक्ष फलसे सहे हुए विद्यमान हैं । वहाँपर चलेसे आप सन्तुष्ट हो जायेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ५९ ॥ ६० ॥ व्याधके ऐसा कहनेपर ब्राह्मण उसके साथ चलकर उस सरोवरके पास पहुँचा । दोपहरके समय उसने स्नान किया, कपड़े पहने और मध्याह्नकाणकी क्रियाएँ पूरी कीं । फिर देवताका पूजन करके व्याधके साथ हुए कंधेके फल खाये, सरोवरका मीठा पानी पिटा और छायामें सुकसे बैठकर विप्र बोला—अब मैं तुम्हारे पूर्वजन्मके पुण्य बतलाता हूँ ॥ ६१-६४ ॥ पूर्वजन्ममें शाकल नामकी नगरीमें तुम वेदपरगमो स्तम्भ नामके ब्राह्मण थे । ओवरस गाँवमें तुम्हारा जन्म हुआ था, किन्तु तुम बड़े भारी पापी थे । दुःसङ्गके दोषवश तुम एक वेदपापर मूर्ख हो गये । तुमने अपनी सारी नित्य-क्रियाएँ छोड़ दीं और शूद्रके समान मूर्खोंके मार्गपर चलने लगे । तुम जैसे मूर्ख तथा आचार विहीन ब्राह्मणके घरमें एक अति रूपवती व्याही भर्त्ता भी थी । वह उस वेश्याकी तथा तुम्हारी खूब सेवा करती थी । तुम्हें प्रसन्न रखनेकी इच्छासे वह तुम दोनोंके पैर धोती थी ॥ ६५-६८ ॥ तुम दोनोंकी अपेक्षा नौवीं शताब्द

एवं शुभ्रपयस्या हि भर्तारं वेश्याया सह । जगाम सुमहान्कालो दुःखिताया गृहीतले ॥७०॥
 अपरस्मिन्दिने भर्ता माहिष्यं मूलकान्वितम् । अभक्षयन्तुद्रकर्षा निष्पानांस्तिलमिश्रितान् ॥७१॥
 तमपध्वमशित्वा तु वमन्त्रैव व्यरंचयत् । अपध्वाहारुणो रोगो व्यजायत भगंदरः ॥७२॥
 स दहमानो रोगेण दिवागत्रं तु भूरिभ्रः । यावदास्ते गृहे विचं तावद्वेश्या च संस्थिता ॥७३॥
 गृहीत्वा सकलं विसं पश्चात्प्रोवासा मन्दिरे । ॥७४॥ पारवंमासाद्य तस्यौ घोराऽतिनिर्घृणा ॥७४॥
 ततः स दीनवदनो व्याधिवाधामुर्पाडितः । उक्तवान्सुरुदन्मार्गं रुजा व्याकुलमानसः ॥७५॥
 परिपालय मां देवि वेश्यामक्तं सुनिष्ठरम् । न मयोपकृतं किञ्चित्तव सुन्दरि पावनि ॥७६॥
 यो मार्यां प्रणता पापो नातुष्येत् सृष्ट्योः । स पटो भवतीत्यत्र दश जन्मानि सप्त च ॥७७॥
 दिवारात्रं महामागे निन्दितः साधुभिर्जनैः । पापयोनिमहास्यामि त्वां साध्वीमवमन्य वै ॥७८॥
 अहं क्रोधेन दग्धोऽस्मि सदा निष्ठुरभाषणः । एवं ब्रुवाणं भर्तारं कृताञ्जलिपुटोऽब्रवीत् ॥७९॥
 न दैन्यं भवता कार्यं न क्रोडा कानं मां प्रति । न चापि त्वयि मे क्रोधो वर्तते सुमनागपि ॥८०॥
 पुरा कृतानि पापानि दुःखानि भवन्ति हि । तानि यः क्षमते साध्वीपुरुषो वा ॥ उत्तमः ॥८१॥
 यन्मया पापया पापं कृतं वै पूर्वजन्मनि । तद्भुञ्जन्त्या मे दुःखं विपादः कथंचन ॥८२॥
 इत्येवमुक्त्वा भर्तारं सा सुभ्रग्वपालयत् । आनीय जनकाद्विचं वन्धुभ्यो वरवर्णिनी ॥८३॥
 क्षीरोदवासिनं विष्णु भर्तुर्देहे व्यचिन्तयत् । शोषयन्ती दिवारात्री पुरीषं मूत्रमेव च ॥८४॥
 नखेन कर्षती भर्तुः कुमीन्देहाच्छनैः शनैः । न सा स्वपिति रात्रौ तु दिवा वा वरवर्णिनी ॥८५॥
 भर्तुर्दुःखेन संतप्ता दुःखितेदमथाब्रवीत् । देवाश्च पातु भर्तारं पितरो ये च विश्रुताः ॥८६॥
 कुर्वतु रोगहीनं मे भर्तारं हृतकल्मषम् । चण्डिकार्यं प्रदास्यामि रक्तं मांसं मुखोद्भवम् ॥८७॥

सोती और दोनोंकी आज्ञाका पालन करती रहती थी । यद्यपि वेश्या उसे अपनी सेवा करनेसे रोकती, फिर भी वह न मानती और तुम दोनोंकी परिचर्यामें रात-दिन लगी रहती थी । ॥७०॥ तरह सेवा करते-करते उस दुःखियाके बहुत दिन बीत गये । एक दिन रत्नमने तिलमिश्रित कुछ ऐसी चीजें खा लीं, जिसमें कै दस्त होने लगा और कुछ दिनों ॥७१॥ उसने अतिदारुण भगन्दर रोगका रूप धारण कर लिया ॥ ६९-७२ ॥ उस रोगसे ॥७२॥ रात-दिन गलने लगा । जब तक घरमें सम्पत्ति थी, तब तक वेश्या रही । बादमें घरकी रही-सही पूंजी खुराकर निकल भागी और किसी दूसरेके घर जा बंठी । ऐसी अवस्थामें रोता हुआ स्नान अपनी स्त्री- ॥७३॥ कहने लगा—॥ ७३-७५ ॥ हे देवि ! मुझ वेश्यागामो तथा निष्ठुर पुरुषकी रक्षा करो । हे सुन्दरि ! हे पावनि ! मैंने जीवनभरमें तुम्हारा कोई उपकार नहीं किया है । शास्त्र कहता है कि जो पापी शीलवती भार्या- ॥७४॥ निरादर करता है, वह सत्रह जन्म तक नपुंसक होकर ॥७५॥ लेता है । अच्छे पुरुष ऐसे मनुष्योंकी रात-दिन निन्दा करते हैं । तुम जैसी सती साध्वी नारीका अपमान करके मुझे किसी नीच योनिमें जाना पड़ेगा ॥ ७६-७८ ॥ क्योंकि ॥ सदा तुम्हारे ऊपर नृपित रहला और रुखी बातें बोला करता था । ॥ प्रकार दीनभावसे प्रार्थना करते हुए पतिसे स्त्रीने हाथ जोड़कर कहा— हे कान्त ! ॥ किसी प्रकार दुखी न हों और उन बीती बातोंके लिए पश्चात्ताप न करें । मुझे तुम्हारेपर उनके लिए कोई चिन्ता या शोक नहीं ॥ ७९ ॥ ८० ॥ अपने पूर्वजन्मके किये हुए पाप ही दुःखरूपसे प्राप्त होते हैं । जो स्त्री या पुरुष उन दुःखोंकी सह सेवा है, ॥ उत्तम हैं । मुझ पतिनीने पूर्वजन्ममें जो ॥८१॥ किये थे, उनको भोगते हुए मुझे किसी तरह का दुःख या विपाद नहीं है ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ इतना कहकर उसने अपने पतिको दाढ़स बंधाया और पिता ॥ आताओके पाससे घन भाग ॥ सेवा करने लगी । ॥ उस रोगी पतिके शरीरमें सारसागरनिवासी विष्णुभगवान्का निवास मानती हुई रात-दिन मल-मूत्र उठाकर सेवा करती रही ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ पतिके शरीरमें पड़े हुए कीड़ोंको नाखूनसे निकालती रहती थी । इस प्रकार सेवा करनेसे रात-दिन कभी उसे सोनेतक की छुट्टी नहीं मिलती थी । स्वामीके दुःखसे दुःखित होकर वह देवताओंको मनाती, पितरोंसे विनती करती

सुधुन्नं माद्विषोपेतं भर्तुरागेभ्यहेतवे । मोदकानपि दास्यामि विघ्नेशाय महात्मने ॥८८॥
 मन्दवारं करिष्यामि सदैवाहमुपोषणम् । नोपभोक्ष्यामि मधुरं नोपभोक्ष्यामि वै घृतम् ॥८९॥
 तैलाभ्यङ्गविहीनाऽहं सदा स्थास्यामि भूतले । जीवन्वयं रोगहीनो भर्ता मे शरदां शतम् ॥९०॥
 एवं सा व्याहरद्देवी वासरे वासरे गते । तदा चागाम्मुनिः कश्चिन्महात्मा देवलाङ्गुलः ॥९१॥
 वैशाखमासे धर्मार्तः स ययौ तस्य वै गृहे । तदा ते भार्यया चोक्तं वैद्योऽयं गृहमागतः ॥९२॥
 तेन ते रोगहानिः स्पात्तस्यातिथ्यं करोम्यहम् । यदाज्ञापयसि त्वं मां नोचेन्नैव करोम्यहम् ॥९३॥
 ज्ञात्वा त्वां धर्मविमुखं भिषगव्याजेन वंचितम् । तस्यातिथ्यं तु वै कर्तुं दत्ताऽऽज्ञा वै पुनस्तथा ॥९४॥
 तस्य परन्ती तदा तुष्टा पूजयामास सा मुनिम् । पादावनेजनं कृत्वा तज्जलं मूर्ध्नि तेऽग्रहत् ॥९५॥
 पातुं तुभ्यं ददौ तीर्थं त्वामुक्त्वा मेपजं त्विति । पानकं च ददौ तस्मै धर्मातीत्य महात्मने ॥९६॥
 दिव्यान्नैर्भोजयामास सुगन्धव्यज्जने ददौ । श्रव्याऽनुमोदिता मायं धर्मतापं न्यवारयत् ॥९७॥
 स प्रातर्कविते सूर्ये मुनिर्ग्रामांतरं ययौ । अथ चाल्पेन कालेन सन्निपातोऽभवच्च ॥९८॥
 त्रिकटुं मुख आधात्सा भर्ताऽङ्गुलिमखण्डयत् । कफेन दन्तपङ्क्तिभ्यां मीलिताम्भ्यां दृढ तदा ॥९९॥
 ते वक्त्रेऽङ्गुलिखण्डं तत्स्थितमेवातिकोमलम् । खंडयित्वांगुलिं तस्याः पञ्चान्वत्त्वं गतः पुरा ॥१००॥
 स्रव्यायां सुमनोज्ञायां स्मरंस्तां पुञ्चलीं हृदि । मृतं विज्ञाय भर्तारं भार्या कातिमयो तव ॥१०१॥
 विक्रीत्वा बलमे स्वे त्वां गृहीत्वा चंदनं बहु । चक्रे चिन्ति तेन माध्वी मध्ये कृत्वा पतिं तदा ॥१०२॥
 समालिख्य भुजाभ्यां ते पादौ चाश्लिष्य पादयोः । मुखे मुखं निजं कृत्वा हृदये हृदयं ॥१०३॥
 गुह्ये कृत्वा तु गुह्यं स्वमेवं सा राममानसा । दाहयामास कन्धाणी भर्तुरेहं सजान्वितम् ॥

आत्मना सह तन्वङ्गी ज्वलिते जातवेदसि ॥१०४॥

एवं वरा सा ललना पतिव्रता दंदममाने सुषमिद्वह्वी ।

विमुच्य देहं सहसा जगाम पतिं नमस्कृत्य सुरारिलोकम् ॥१०५॥

और चण्डिकाके समीप यह प्रार्थना करती-हे देवि ! यदि मेरे पतिदेव शीघ्र अच्छे हो जायें तो मैं महिषके रक्त और मांससे मिला हुआ अन्न आपको समर्पण करूँगी । पतिदेव यदि अच्छे हो जायें तो मैं गणेशजीको लड्डू खड़ाऊँगी और प्रत्येक शनिवारका यत्न करूँगी । मैं मिठाई खाना छोड़ दूँगी, भी भी नहीं खाऊँगी, शरीरमें तेल और उबटन लगाना त्याग दूँगी और सर्वदा जमीनपर सोऊँगी । लेकिन मेरे पतिदेव रोगमुक्त हो जायें और संकटों वषों जीवित रहें ॥९५-९७॥ इस तरह वह निरपमानता माना करती थी । इसी बीच एक दिन महात्मा देवल ऋषि सहसा उसके घर पहुँचे । वह वैशाखका महीना था । स्तम्भकी स्त्री पतिके पास जाकर कहने लगी कि एक कोई वैद्य एकाएक मेरे घर आ गया है । वह अवश्य किसी उपायसे आपका रोग नष्ट देगा । आप यदि आज्ञा दें तो मैं उसकी सेवा करूँ, नहीं तो नहीं ॥ ९१-९३ ॥ स्तम्भ (तुम) ने सेवा करनेकी आज्ञा दे दी । स्त्रीने प्रसन्न मनसे देवलकी पूजा की । उनके धरण धोकर उस जलको माथे चढ़ाया और थोड़ा-सा दवाके व्याजसे स्तम्भ (तुम) को भी पिला दिया । फिर उन देवल ऋषिको उसने पानी पिलाया । अच्छे-अच्छे पकवान बनाकर भोजन कराया और तुम्हारे कहनेसे उनको पंखा भी चलकर उनका सन्ताप दूर किया ॥ ९४-९७ ॥ रातभर देवल ऋषि उनके घर रहे और मचरे दूसरे गाँवकी चले गये । थोड़े दिन बाद स्तम्भको (तुमको) सन्निपात हो गया । स्त्रीने त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल) का काढ़ा बनाकर स्तम्भके (तुम्हारे) मुखमें दिया, इतनेमें कफके प्रकोपसे दाँत जकड़ गये और तुमने स्त्रीको एक उँगली ली । तुम्हारे मुखमें वह कोमल उँगली पड़ी हो रही और तुम्हारी मृत्यु हो गयी ॥ ९८-१०० ॥ मरणकालमें श्रव्यापर पड़े हुए उसी पुञ्चली वेश्याका स्मरण करते-करते तुमने प्राण त्याग दिया । उस सतीने जाना कि तुम्हारी मृत्यु हो गयी है तो अपने दोनों कंठन बेचकर बहुत-सी चन्दनकी लकड़ी खरीदी और उसको भिता बनायी । फिर दोनों भुजाओंसे भुजाएँ, पैरसे पैर, मुखसे मुख तथा हृदयसे

स्वप्नान्ताहले गणिकेच्छया हि देहं त्यक्त्वा त्यक्तकर्मा दुरात्मा ।
 व्याधजन्म प्रापितं घोरधर्मे हिंसासक्तः सर्वदोषेणकारी ॥१०६॥
 दक्षा त्वया पानकमपितुं वै मांसंऽनुज्ञा माधवे सद्ब्रह्मजाय ।
 मिथग्व्याजात्तेन जाता सुदुर्दिर्घमं कर्तुं पादरक्षेऽपि ते ये ॥१०७॥
 घृतं मूष्नीं पादशौचावदेपं जलं मृनेः सर्वपापपहारि ।
 तेनैव ते सङ्गनिर्मे बनेऽस्मिन् जाना श्रोतुं रक्षोपुण्यं भविष्य ॥१०८॥

दृष्टे कृत्वांगुलिं यस्यान्मृतः पूर्वभवोत्तरे । तस्मादथ बने मांताहासस्तेऽभूदनेश्वर ॥१०९॥
 वेदया सा भिल्लिनी जाता भार्या या तव वर्तते । शय्यायां मरणासेऽथ खननं भुवि सर्वदा ॥११०॥
 इति ते सर्वमारुषातं पूर्वजन्मनि यत्कृतम् । तत्कर्म पुण्यं पापं च दृष्टं दिव्येन चक्षुषा ॥१११॥
 अतः परं भावि वृक्षं मृणु तेऽहं वदामि वै । कृणुनाम धुनिस्त्वग्रं कस्मिंश्चिच्च सरोवरे ॥११२॥
 करिष्यति तपस्तीव्रं शान्नाप्यापार्याजितः । पश्चात्तपोविरामांते तस्मैवाभ्यां बहिः सुतम् । ११३॥
 वीर्यं दृष्ट्वोग्गी काचित्स्वयं स्थालिनमजसा । ग्रहीष्यति श्वनोः काले तस्मात्तत्पुण्यतस्तदा ॥११४॥
 किराताः पालयिष्यति किरातस्त्वं भविष्यसि । उपानहावपिनेऽथ यस्मात्तत्पुण्यतस्तदा ॥११५॥
 भविष्यति सङ्गविस्ते बने सप्तशुनीश्वरः । तेषां प्रसादाद्वाल्मीकिर्धुनिस्त्वं हि भविष्यसि ॥११६॥
 यस्त्वं रामकथां दिव्यां सुप्रबन्धः करिष्यसि ।

वाल्मीकिरवाच

इति व्याधं सप्तादिव्य धर्मान्वेशास्त्रजानपि ॥११७॥

उपदिष्य सविस्तारं प्रवक्ष्ये गीतमी तदा । स शंभुः कुण्डलाद्यैश्च तदन्तैस्तुष्टमानसः ॥११८॥
 क्यावोऽपि शङ्खवचनात्तस्मिन्नेव बने चिरम् । धर्म्यैश्चास्त्रमासीयान्धर्मोन्नीत्याऽकरोच्छ्रुमान् ११९॥

हृदयका आलिंगन करके तुम्हारे साथ धन्यवत्ता चित्तमें शरीरकी त्यागकर वह राममें रमी पतिव्रता स्त्री सती
 हुंकर वैकुण्ठलोकको चली गयी ॥ १०९-१०५ ॥ ■■■ जने काहाणोचित कार्योंको त्यागे हुए तुमने अन्तसमय-
 में वेदयाका चिन्तन करते हुए प्राण त्यागे थे । इससे प्रवृत्ता उद्वेगकारी तथा हिंसामें आसक्त इस घोरकर्ममय
 व्याधेकी दोनिमें उत्पन्न हुए हो । उस समय धैर्यात् रहनेमें आये हुए देवल ऋषिकी पूजाके लिए तुमने अपनी
 स्त्रीको ■■■ दे ■■■ दी, उसी पुण्यसे तुम्हारे हृदयमें धर्मबुद्धि उत्पन्न हुई है । इसीसे इस समय तुमने मेरे जुते
 वापस दे दिये हैं । तुम्हारी स्त्रीने दवाके दवागते आह्वानका चरण-जल तुम्हारे भाँधे पड़ाया था, उसी पुण्यसे
 आज हमारी भेंट हुई है और तुम अपने पूर्वजन्मका कृतांत सुन रहे हो ॥ १०६-१०८ ॥ तुमने पूर्वजन्ममें
 अपनी स्त्रीकी उँगनी काट ली थी । इसलिए हे वनेश्वर ! इस समय तुम मांसाहारो हो । वह वेदया इस समय
 भिल्लिनी है । मरते समय तुम शय्यापर हो पड़े रहे, इस कारण इस जन्ममें तुम्हें सर्वदा भूमिपर शयन करना
 पड़ता है । मैंने अपनी योगदृष्टिसे तुम्हारे पूर्वजन्मके पाप-पुण्य देखकर तुम्हें बतलाया है ॥ १०६-१११ ॥
 इसके अनन्तर ध्व में तुम्हें तुम्हारे भावों जोदनका हाल बतलाता हूँ, सुनो । कृणुनामके कोई तपस्वी जन्म
 त्यागकर एक सरोवरके निकट तपस्या करने रहेंगे । तपस्याके अन्तमें उनकी आँखोंसे वीर्य निकलेगा । उसे
 देखकर कोई सपिणो खा जायगी । उसीके उदरमें तुम किरातके रूपमें उत्पन्न होओगे ॥ ११२-११४ ॥
 किरात लोग तुम्हारी रक्षा करेंगे और तुम उन्हींके साथ रहोगे । जो तुम इस समय भुजो मेरा जूता वापस ■■■ रहे
 हो, इसी पुण्यसे एक बार तुम्हारी सप्त ऋषियोंसे भेंट होगी और उनकी दवासे तुम वाल्मीकि नामक ऋषि
 होओगे ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ अपनी अच्छी रचनासे तुम रामकथाका निर्माण करोगे । वाल्मीकिजी कहते हैं
 कि ■■■ प्रकार वंशाव मासका धर्म तथा विविध उपदेश देकर व्याधसे कुण्डल आदि पत्कर प्रसन्न मन शङ्ख
 गीतमी नदीकी ओर चले गये । व्याधने भी शंखके उपदेशसे बर्नसे फलभूल द्वारा ही वंशाव मासके धर्मोंकी

व्याधजन्मात्यये जाते कृणः पुत्रस्त्वहं ततः । पद्मर्गाजठरोद्भूतस्वरण्ये रघुनन्दन ॥१२०॥
 अहं पुरा किरातेषु किरातैः सह वर्द्धितः । जन्ममात्रं द्विजन्वं मे शूद्राचारतः सदा ॥१२१॥
 शूद्रायां बहवः पुत्राश्चोत्पन्ना मेऽजितात्मनः । ततश्चौरैश्च संगत्य चौरोऽहमभवं पुनः ॥१२२॥
 धनुर्बाणधरो नित्यं जीवानामंतकोपमः । एकदा मुनयः मम दृष्ट्वा महति कानने ॥१२३॥
 स्वतेजसा प्रकाशतो ज्वलनार्कममप्रभाः । तानन्वधात्रं लोभेन तेषां सर्वपच्छिदान् ॥१२४॥
 गृहीतुकामस्तथाहं तिष्ठतां तिष्ठतामिति । अत्रव मुनयोऽपृच्छन् किमायामि द्विजाधम ॥१२५॥
 अहं तानम्रवं किञ्चिदादातुं मुनिमतमाः । पुत्रदागदयः संति बहवो मे वृधुक्षिताः ॥१२६॥
 तेषां संरक्षणार्थाय चरामि गिरिकानने । ततो मामृचुम्ब्यग्राः पृच्छ गन्वा कुटुम्बकम् ॥१२७॥
 यो यो मया प्रतिदिनं क्रियते पापसंचयः । युयुतझाग्निनः किं वा नेति नेति पृथक् पृथक् ॥१२८॥
 वयं स्थास्यामहे यावदागमिष्यसि निश्चयान् । यत्पाप ब्रह्महत्यायां यत्पापं मद्यपानतः ॥१२९॥
 तेन पापेन लिप्तामो यदि गच्छामहे वयम् । यत्पापं हेमचौर्येण गुरुदागमाच्च यत् ॥१३०॥
 तेन पापेन लिप्तामो त्वामपृष्ट्वा वनेचर । चेद्वज्रायां वयं मर्वे इतस्ते पृष्ठतो बहिः ॥१३१॥
 संसर्गजनितं पापं ब्रह्मस्त्रहरणाच्च यत् । तेन पापेन लिप्तामो यदि गच्छामहे वयम् ॥१३२॥
 एवं तच्छपथैर्नानाविधैः प्रत्ययमागमः । तथेन्यृक्त्वा गृहं गन्वा मुनिभिर्यदुदीरितम् ॥१३३॥
 अपृच्छं पुत्रदारादीर्स्तरुक्तोऽहं रघूत्तम । पानं नर्षय तन्मर्वं ययं तु फलभागिनः ॥१३४॥
 तच्छ्रुत्वा जातनिर्वेदो विचार्य पुनरागतः । मुनयो यत्र निष्ठानि करुणार्णमानयाः ॥१३५॥
 मुनीनां दर्शनादेव शूद्रातःकरणोऽभवम् । धनुगादि परिन्वज्य दंडवन्वर्तितोऽस्म्यहम् ॥१३६॥

निभाया । व्याधेका जीवन वित्तानेके पश्चात् मे पद्मर्गाकी मोतिसे पुण्ड्रका पुत्र होकर जन्मा । मैं उस समय किरातों हो में बड़ा और उन्हींके साथ रहने लगा । केवल वन्य मरग ब्राह्मणके वीर्यमे हुआ था । किन्तु कर्म मेरा सर्वथा शूद्रोचित था ॥ १२०-१२१ ॥ एक शूद्रासे मेरा विवाह हुआ और उससे कई पुत्र उत्पन्न हुए । कुछ दिनों बाद मैं चोरोसे आ मिला और धनुष-बाण धारण करके संसारी जीवोंके लिए यमराज सदृश भयानक धोर हो गया । एक बार मैंने एक बिकराल जङ्गलमें सप्त ऋषियोंकी देखा ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ अलती हुई अग्नि तथा सूर्यके समान उनका प्रकाश था । उन्हें देखते ही उनके कपड़े-लत्ते धोनेके लिए ॥ जोरोसे दौड़ पड़ा और "ठहरो-ठहरो" कहकर विलम्बमे लगा । तब ऋषिगणें कहा -अरे द्विजाधम ! क्यों दौड़ा आ रहा है ? ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ मैंने उत्तर दिया कि आपसे मुझे लेनेके लिये । क्योंकि मेरे परिवारसे सब लोग भूखे बैठे हैं । उन्हींका पालन-पोषण करनेके लिए मैं वन-वन घूम रहा हूँ । ॥ सप्तर्षियोने हमसे कहा-अपने कुटुम्बियोंसे जाकर पूछो कि ॥ जो नित्य यह पापकी कमाई कर रहा हूँ । तुम लोग अल्ला-भलग बतलाओ कि ॥ पापका फल भी भोगोगे ॥ नहीं ? ॥ १२६-१२७ ॥ यह विश्वास रखो कि जबतक तुम लौटकर नहीं आओगे, तब तक मैं यहाँ हो रहूँगा । जो ॥ ब्रह्महत्या करनेमें और जो पाप मद्य पीनेमें लगते हैं, हमलोग उन्हीं पापोंके भागी हों, जो बिना तुम्हारे आवे यहाँसे जायँ । जो पाप मोना चुराने या गुरुपत्नीके साथ व्यभिचार करनेमें होता है, हमलोग उन पापोंके भागी हों, यदि तुमसे बिना पूछे यहाँसे जायँ ॥ १२८-१३१ ॥ संसर्गजनित अथवा ब्राह्मणका घन हृदय लेनेसे जो पातक लगता हो, हम सब उस पापके भागी हों, यदि यहाँसे पीठ पीछे हटें ॥ १३२ ॥ इस तरह उनके विविध प्रकारकी कसमें खानेपर मुझे विश्वास हुआ और अपने घर गया । वहाँ जैसा उन ऋषियोने कहा था, उसी तरह घरके लोगोंको इकट्ठा करके मैंने पुत्र-स्त्री आदिसे पूछा । उन्होंने उत्तर दिया कि तुम जो पाप कर रहे हो, उससे हमें कोई मतलब नहीं । हम तो केवल फल चाहते हैं ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ उनकी बात सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ और मैं लौटकर फिर वहीं आया, जहाँ दयासे परिपूर्ण हृदयवाले वे सप्तर्षि बैठे मेरा रास्ता देख रहे थे ॥ १३५ ॥ उन मुनियोंके दर्शन ही से मेरा हृदय पवित्र हो गया । तुरन्त धनुष-बाण आदि सस्त्रास्त्र फेंककर मैं उनके घरोंमें दण्डवत् लोट गया ॥ १३६ ॥

रक्षोघ्नं मां मुनिश्रेष्ठाः पतितं नरकाणवे । इत्यग्रे पतितं दृष्ट्वा मामृचुर्मुनिसत्तमाः ॥१३७॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ■ सफलः सन्तमागमः । उपदेक्ष्यामहे तुभ्यं किञ्चित्तेनैव मोक्षपसे ॥१३८॥
परस्परं समालोक्य द्रुवृत्तोऽयं द्विजाधमः । उपदेश्य एव सदृशस्तथापि शरणं गतः ॥१३९॥
रक्षणीयः प्रयत्नेन मोक्षमार्गोपदेशतः । इत्युक्त्वा राम ते नाम व्यस्यस्ताक्षरपूर्वकम् ॥१४०॥
मुनयो मामुपदिदिशुर्मन्त्रकृपापूर्णमानसाः । एकाग्रमनसाऽर्च्य मरेति अप सर्वदा ॥१४१॥
आगच्छामः पुनर्यावत्तावदुक्तं सदा जप । इत्युक्त्वा प्रययुः सर्वे मुनयो दिव्यदर्शनाः ॥१४२॥
अहं यथोपदिष्टस्तथाऽकरचमंजसा । जपन्नेकाग्रमनसा त्राहं विस्मृतवानहम् ॥१४३॥
साक्ष्यार्थं तपसस्तत्र दंडोऽग्रे स्थापितो मया । एवं बहुतिथे काले गते निश्चलरूपिणः ॥१४४॥
सर्वसङ्गविहीनस्थ बल्मीकोऽधूममोपरि । दण्डोऽग्रे म नमो रम्यो बभूव मत्तपोबलात् ॥१४५॥
ततो युगमहस्ताते ऋषयः पुनरागमन् । मामृचुर्निर्गमस्वेति तच्छ्रुत्वा तूर्णमुत्थितः ॥१४६॥
बल्मीकाभिर्गतथाहं नीहारादिव मास्करः । मामप्यहमुर्निगणा बाल्मीकिस्त्वं मुनीश्वरः ॥१४७॥
बल्मीकात्संभवो यस्माद्द्वितीयं जन्म तेऽभवत् । इत्युक्त्वा ते ययुर्दिग्वा गतिं रघुकुलोत्तम ॥१४८॥
अहं ते रामनाम्नश्च प्रभावादीदृशोऽभवम् । एकदा सम्भ्रुवचसाऽयं विधिः श्रुतवास्तव ॥१४९॥
परितं वेदवाक्यैश्च कलासे परमे शुभे । अनेन विधिना तच्च कथितं नारदाय हि ॥१५०॥
नारदः कथयामास वेदवाक्यैर्ममात्र तत् । ततः कौचं द्रुतं दृष्ट्वा व्याधेन तमसातटे ॥१५१॥
शोचन्तीं सांस्वयन्कौचीं ममास्यान्तिर्गतस्तदा । द्वात्रिंशदक्षरैः प्रोक्तः श्लोकः श्लोकस्त्वमागतः ॥१५२॥

और कहने लगा—हे मुनिश्रेष्ठ । मैं नरकके महासमुद्रमें गिर गया हूँ, मेरी रक्षा करिए ॥ १३७ ॥ इस तरह मुझे आगे पड़ा देखकर उन्होंने कहा—“उठो ! उठो !! आज हम लोगोंका समागम तुम्हारे लिये बड़ा ही कल्याणकारी हुआ । हम तुम्हें कोई ऐसा उपदेश देंगे, जिससे तुम सब पापोंसे छूट जाओगे ।” इसके बाद उन लोगोंने परस्पर मंत्रणा करके कहा—नियम तो यह है कि सदाचारो मनुष्यको ही उपदेश देना चाहिये । यह साहाणाधम एक असाधारण दुराचारी है । फिर भी हमलोगोंकी शरण प्राण है । इसलिये इसे कोई उपदेश देकर इसभी रक्षा करनी चाहिये । इस प्रकार निश्चय करके हे राम ! उन्होंने आपके उलटे अक्षरोंके नाम (मरा) का उपदेश दिया और हमसे कहा कि तुम एकाग्र मनसे ‘मरा’ नामका जप करते रहो । जब तक हमलोग उधरसे लौटकर न आयें, तब तक तुम बराबर इस नामका जप करते रहना । ऐसा कहकर वे दिव्यदृष्टि ऋषिगण वहाँसे चले गये ॥ १३८-१४२ ॥ जंसा उन्होंने बतलाया था, ठीक उसी तरह मैं एकाग्र मनसे जप करने लगा । मेरा मन उस जपमें इतना रम कि मुझे अपने शरीरकी भी सुधि नहीं रही ॥ १४३ ॥ साक्षीके लिए मैंने अपने सामने एक दण्ड गाढ़ दिया था । ■ तरह निश्चल भावसे मजन करते-करते बहुत दिन बीत गये और बल्मीकों (दीमकों) ने मेरे शरीरपर मिट्टीका ढेर लगा दिया । मेरे तपोबलसे यह सामनेका गड़ा ■ दण्ड एक सुन्दर वृक्ष बन गया ॥ १४४ ॥ १४५ ॥ एक हजार युग बीतनेके बाद ■ सप्तऋषिगण फिर लौटे और मेरे बिमोटके समीप खड़े होकर उन्होंने प्रकारा और कहा कि “निकलो” । उसे सुनकर मैं तुरन्त उठ खड़ा हुआ । जिस समय बिमोटके सांतरसे मैं निकला, उस समय मेरी शोभा वैसी ही थी, जैसी ■ कुहरके भीतरसे निकले हुए मुर्यनारायणकी होती है । तब मुझसे मुनियोंने कहा कि बल्मीक (बिमोट) से तुम्हारा पुनर्जन्म हुआ है । इसलिये तुम मुनीश्वर बाल्मीकि हो गये हो ॥ १४६-१४८ ॥ इतना कहकर वे ऋषि दिव्य (आकाश) मार्गसे चले गये । आपके रामनामके प्रभावसे मैं ऐसा ऋषि हो गया । एक बार श्रीशिवजीके मुखसे इन ब्रह्मजीने वेदसे मयकर निकाले हुए आपके चरित्रको सुना था । १४९ ॥ तब इन्हीं (ब्रह्मा) ने उसे अपने बेटे नारदको बताया और उन्होंने वह सारा चरित्र हमें सुनाया । कुछ समय बाद एक व्याधे द्वारा मारे गये कौचके दुःखसे दुःखिता कौचोको देखकर मुझे जो शोक हुआ, वही शोक बत्तीस अक्षरोंवाले श्लोकके रूपमें मेरे मुखसे निकल पड़ा (श्लोक यह है—मा निषाद प्रतिष्ठा स्वभगमा

ततोऽपि विधिनाऽनेन चरितं ते प्रवर्णितम् । सनागत्य तु संक्षेपादपिता मे वरा अपि ॥१५३॥
 ततोऽस्य ब्रह्मणो वाक्यात्कृतवाञ्छरितं तव । आनन्ददायकं रम्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥१५४॥
 एवं त्वया यथा पृष्टं तथा सर्वं निवेदितम् । एवं वाङ्मोक्षिवाक्यं सर्वं जानन्नपि प्रभुः ॥१५५॥
 पृष्ट्वा श्रोतुं जनान्सर्वान् श्रावयामास राघवः । एतास्मिन्नन्तरे रामं शक्यतिः प्राह सादरम् ॥१५६॥
 राम किं चरितं मेयं त्वानन्दस्वरूपिणः । यस्य नामाद्यवर्णेश्च शब्दमात्रोऽत्र गीयते ॥१५७॥
 लौकिका वैदिका वापि अकाराद्यास्तु षोडश । स्वरास्तथैव वर्णाश्च चतुस्त्रिंशच्छ्रुमानवाः ॥१५८॥
 ककाराद्याः क्षकारांता मन्त्ररूपाः शुभावहाः । एवं वर्णाश्च पञ्चाशद्यो कीर्त्यन्ते नरैर्भुवि ॥१५९॥
 ते त्वं आयायवर्णाश्च सर्वं ज्ञेया रघूत्तम । तव नामाद्यवर्णेश्च व्याप्तं सर्वं चराचरम् ॥१६०॥
 चराचराणां सर्वेषां यानि नामानि तानि मे । तेषु वर्णपरत्वेन नामान्यद्य वदामि ते ॥१६१॥

संक्षेपाच्चरं पञ्चाशच्चानि शृण्वन्तु सज्जनाः ।
 ओमनन्ता १ नन्दमय २ श्रेष्ठापूर्तफलप्रदः ३ ॥१६२॥
 ईश्वरश्च ४ तथोत्कृष्ट ५ आर्ष्वरेता ६ अतंभरः ७ ।
 ऋणुक्तश्च ८ लृणुक्त्थ ९ लृपक १० अक ११ एव च ॥१६३॥
 ऐश्वर्यद १२ भोजदश्च १३ तथैवादार्यचंचुरः १४ ।
 अंतरात्मा १५ चार्द्धगर्भ १६ स्तथैव करुणाकरः १७ ॥१६४॥
 सङ्गी च १८ गतिदश्च १९ घनश्याम २० स्तथैव च ।
 उष्ण २१ अमिताशेषदुष्कृतश्च २२ तथैव हि ॥१६५॥
 छत्री २३ जगन्मय २४ शैव क्षयरूपी २५ जटेश्वरः २६ ।
 टणत्कारिधनु २७ धानवन्धो २८ डमरुसत्करः २९ ॥१६६॥
 दुणुल्लुनिनपापश्च ३० णकर्णश्च ३१ तथैव हि ।
 तपोरूप ३२ स्थव ३३ शैव दक्षो ३४ धन्वी ३५ तथैव च ॥१६७॥

आश्रुतः समाः ॥ यत्कौञ्चमिधुनादेकमन्त्रीः काममोहितम् ॥ ॥ १५०-१५२ ॥ इसके अनन्तर इन ब्रह्माजीने
 आकर मुझे संक्षेपरूपसे आपका चरित्र सुनाया और वरदान भी दिया । तब इन्हींके कहनेसे मैंने सौ
 करोड़ श्लोकोंमें आपका चरित्र रचा ॥ १५३ ॥ १५४॥ आपने जैसे पूछा, वह सब वृत्तान्त मैंने कह सुनाया ।
 वद्यपि रामचन्द्रजी इन सब बातोंको जानते थे, किन्तु संसारके लोगोंको सुनानेके लिये उन्होंने वाङ्मोक्षिजीसे
 इस प्रकारके प्रश्न किये थे । इसके बाद ब्रह्माजी बोले—॥ १५५ ॥ १५६ ॥ हे राम ! आप जैसे आनन्दस्वरूप-
 के चरित्रका कोई कहीं तक गान करेगा । जिसके नामके पहले ही अक्षरमें संसारके सारे शब्द जाते हैं ।
 लौकिक तथा वैदिक अकारादि सोलह स्वर और ककारसे लेकर क्षकार पर्यन्त चौतिस वर्ण ये पचास अक्षर,
 जिन्हें कि संसारी लोग जानते हैं । वे सब आपके नामके पहले ही अक्षरमें आ जाते हैं, आपके नामके पहले
 अक्षरसे सारा विश्व व्याप्त है ॥ १५७-१६० ॥ इस चराचर संसारमें जितने नाम लिये जाते हैं । उन्हें वर्णक्रमसे
 आपको बतला रहा हूँ । संक्षेपमें ये पचास नाम हैं । उनको सज्जन लोग सुनते जायें—अकारसे 'अनन्त' ।
 आकारसे 'आनन्दमय' । इकारसे 'इष्टापूर्तफलप्रद' । ईकारसे 'ईश्वर' । उकारसे 'उत्कृष्ट' । ऊकारसे 'ऊर्ध्वरेता' ।
 ऋकारसे 'ऋतंभर' । ॠकारसे 'ऋणुक्त' । लृसे 'लृण' । लृसे 'लृपक' । एसे 'एक' । ऐसे 'ऐश्वर्यद' । औसे
 'ओजद' । औसे 'औदार्यचंचुर' । असे 'अंतरात्मा' । असे 'अर्द्धगर्भ' तथा कसे 'करुणाकर' ॥ १६१-१६४ ॥
 खसे 'खत्री' । गसे 'गतिद' । घसे 'घनश्याम' । ङसे 'ङ्गण' । चसे 'चमिताशेषदुष्कृत' । छसे 'छत्री' । जसे
 'जगन्मय' । झसे 'झयरूपी' । ञसे 'जटेश्वर' । टसे 'टणत्कारिधनु' । डसे 'डानवन्ध' । डसे 'डमरुसत्कर' ॥ १६५ ॥
 ॥ १६६ ॥ डसे 'दुणुल्लुनिनपाप' । णसे 'णकर्ण' । तसे 'तपोरूप' । थसे 'थव' । दसे 'दक्ष' । धसे 'धन्वी' ॥१६७॥

नष्टोद्धरणधीरश्च ३६ तथैव परमेश्वरः ३७ ।
 तथा फलप्रदश्चैव ३८ बलिवरप्रदः ३९ ॥१६८॥
 भगवान् ४० मधुघाती च ४१ तथा यज्ञफलप्रदः ४२ ॥
 रघुनाथश्च ४३ लक्ष्मीशो ४४ वसिष्ठश्च ४५ तथैव हि ॥१६९॥
 शरण्यः ४६ बहुगुणेश्वर्यसंपन्नश्च ४७ तथैव हि ।
 सर्वेश्वरो ४८ हयग्रीवः ४९ क्षमी ५० नामानि ते त्विति ॥१७०॥

पंचाशद्वर्णचिह्नानि चैभिर्वर्णैर्जगत्त्रयम् । व्याप्तं श्रीराम सर्वत्र घवर्णेन घटः स्मृतः ॥१७१॥
 घवर्णेन घटो ज्ञेयस्त्वेवं वर्णात्मकं जगत् । एकैकस्य च वर्णस्य भेदनामानि ते श्रुतम् ॥१७२॥
 नाहं समर्थो व्याख्यातुं पञ्चास्योऽपि न च क्षमः । यत्र शेषः सहस्रास्यो वर्णने कुण्ठितस्त्वभूत् ॥१७३॥
 एवं ते तद्विद्या राम कीदृशं वर्णयितुं क्षमः । तथापि धन्यो वाल्मीकिर्येन ते चरितं कृतम् ॥१७४॥

शतकोटिमितं राम त्वैव कृपया प्रभो ।

श्रीरामदास उवाच

इत्युक्त्वा स गुरुर्देवं रामवेणापि पूजितः ॥१७५॥

पृष्ट्वा रामं ययौ स्वर्गं सत्यलोकं ययौ विधिः । वाल्मीकिश्चापि प्रययां चित्रकूटं निजाश्रमम् ॥१७६॥
 तदारभ्य जनाः सर्वे चक्रुर्हास्यं मुदं च ते । मांगल्यकर्माण्युत्साहकर्माणि जगतीतले ॥१७७॥
 चक्रुः सर्वे पूर्ववच्च नातिहास्यं प्रचक्रिरे । स्त्रामिर्नराः सुसन्तुष्टाः काडाहास्यादि चक्रिरे ॥१७८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे उत्तरार्धे
 वाल्मीकिजन्मतत्तन्मन्त्रयणनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

नष्टे 'नष्टोद्धरणधीर' । पक्षे 'परमेश्वर' । पक्षे 'फलप्रद' । वक्षे 'बलिवरप्रद' । पक्षे 'भगवान्' । मक्षे 'मधुघाती' ।
 यक्षे 'यज्ञफलप्रद' । रक्षे 'रघुनाथ' । लक्षे 'लक्ष्मीश' । वक्षे 'वसिष्ठ' । पक्षे 'शरण्य' । यक्षे 'बहुगुणेश्वर्यसंपन्न' ।
 सक्षे 'सर्वेश्वर' । हक्षे 'हयग्रीव' । क्षसे 'क्षमी' ॥ १६८-१७० ॥ ये ही पञ्चास नाम पचासों बक्षरीके
 आधार हैं और इन्हींसे आकाश, पाताल, मृत्यु ये तीनों लोक व्याप्त हो रहे हैं । घवर्णसे घटका बोध
 होता है और घवर्णसे घट जाना जाना है । घट और पट इन दोनों शब्दोंके ही अन्तर्गत समस्त जगत् है ।
 एक-एक वर्णके भेदसे सम्पूर्ण नामोंका वर्णन करनेकी सामर्थ्य मुझमें नहीं है ॥ १७१ ॥ १७२ ॥ मैं ही नहीं,
 यदि पंचास्य अर्थात् शिवजीको बतलाना पड़े तो ॥ भी असमर्थ हो रहूँगे । जिसको महिमाका वर्णन करनेमें
 एक सहस्र मुखवाले गणजी भी असमर्थ हो गये, उसका वर्णन कौन कर सकेगा । फिर श्री वाल्मीकिजी
 धन्य हैं, जिन्होंने सौ करीब श्लोकोंसे आपके चरित्रका वर्णन किया है ॥ १७३ ॥ १७४ ॥ हे प्रभो ! जो कुछ
 वाल्मीकिजीने किया है, सो सब आपकी कृपा है । श्रीरामदास कहते हैं कि इतना कहकर समस्त देव-
 ताओंके साथ देवगुरु बृहस्पति स्वर्गलोकको चले गये और ब्रह्माजी भी रामसे पूछकर अपने सत्यलोकको लौट
 गये । वाल्मीकिजी अपने आश्रम चित्रकूटको चले दिये ॥ १७५ ॥ १७६ ॥ उसी समय सब लोग आनन्दके
 साथ हँसने-खेलने और संसारमें पहलेकी तरह मंगलमय तथा उत्साहमय सारे कार्य करने लगे । तबसे लोग
 प्रसन्नताके साथ परस्पर हँसी-दिल्लीगी करने लगे । फिर भी अतिहास्य कोई नहीं करता था ॥ १७७ ॥ १७८ ॥
 इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पंच राजतेजपाब्देयविरचिते 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते
 राज्यकाण्डे उत्तरार्धे चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पञ्चदशः सर्गः

(राम और रामराज्यकी विशेषतायें)

श्रीरामदास उवाच

रामराज्ये सदानन्दः सर्वानामीजनान्भुवि । नार्मान्कुत्रापि कलहश्चोयं निदामय तदा ॥ १ ॥
 राज्यमासीदमापन्नं समृद्धचलवाहनम् । ऋषिभिर्हृष्टपुष्टैश्च रम्यं हाटकभूषणैः ॥ २ ॥
 संजुष्टमिष्टापूर्तानां धर्माणां नित्यकर्तृभिः । मदा संपन्नशस्यं च सुचिरं क्षेत्रसंकुलम् ॥ ३ ॥
 सुदेशं सुप्रजं सुस्थं सुतृणं बहुगोधनम् । देवताननानां च गजिभिः परिगजितम् ॥ ४ ॥
 सुयूपा यत्र वै ग्रामाः सुतन्त्रिचंद्रिगजिताः । सुपुष्पकृत्त्रिमोचानाः सुमदाकलपादवाः ॥ ५ ॥
 सुपद्मानीककासारा राजन्ते यत्र भूमयः । सदा भा निम्नगाराजियेव सन्ति न मानवाः ॥ ६ ॥
 कुलान्येव कुलीनानि न चान्यायधनानि च । विभ्रमो यत्र नारीषु न पिङ्गसु च कश्चित् ॥ ७ ॥
 नद्यः कुटिलगामिन्यो न यत्र विषये प्रजाः । तमोयुक्ताः सदा यत्र बहुलेषु मानवाः ॥ ८ ॥
 रजोयुजः स्त्रियो यत्र न धर्मवद्गुला नराः । धर्मरत्नन्धो यत्रास्ति जना नैव च भोजनात् ॥ ९ ॥
 अनयस्यास्पदं यत्र न च वै राजपूठयः । दण्डः पञ्चकुटालवालज्यजनराजिषु ॥ १० ॥
 आतपत्रेषु नान्यत्र कश्चित् क्रोधोऽपराधजः । अन्यत्राश्विकदृन्देभ्यः क्षत्रियैः परिदेवनम् ॥ ११ ॥
 आभिका एव दृश्यन्ते यत्र पार्श्वकपाणयः । जल्यवतां जलेष्वेव स्नापय्या एव दूर्वलाः ॥ १२ ॥

श्रीरामदास बोले—हे सिध्द ! रामचन्द्रजीके राज्यमें संसारके सब लोगोको सदा आनन्द है, आनन्द रहता था । उस [] न कहीं चारा होता, [] लड़ाई लगदा होता, न कोई किसीकी निन्दा, पारता और न कोई किसीसे डरता [] ॥ १ ॥ राज्य था उस समय मनुष्योंसे रहित और विविध प्रकारके वाहन तथा सेनासे परिपूर्ण था । रामराज्यमें ऋषिगण हृष्ट-पुष्ट थे और राज्यके रहनेवाले लोग सोने-चांदीके गहनोंसे लदे रहते थे । इष्ट-आपूर्त आदि धार्मिक कृत्य हात रहते थे और सारे खेत धान्यसे परिपूर्ण रहा करते थे ॥ २ ॥ ३ ॥ भाव यह है कि उस समय समस्त देश सुखी था, प्रजा प्रसन्न थी और रहन-सहन उत्तम था । गौओंके चरनेको सुन्दर [] उपजती थी । गोधनका अधिकता थी । सारा देश देवालयोंसे भरा पड़ा था ॥ ४ ॥ उस राज्यके सब गांवोंमें यज्ञके सुन्दर यूप गड़े हुए थे । प्रजाके सब लोग धन-धान्यसे परिपूर्ण रहते थे और अच्छे-बख्खे फूलों तथा सदा फल देनेवाले वृक्षोंसे सारा राज्य भरा रहता था ॥ ५ ॥ सदा बहुनेवालों कितनों ही नदियां राज्यकी भूमिपर बह रही थीं । ऐसे ही कुछ स्थान बचे थे, जहाँ कि मनुष्योंका निवास नहीं था । बाकी सारी पृथ्वी मनुष्योंसे भरी थी ॥ ६ ॥ उस समयके सभी मनुष्य कुलीन थे, अन्याय नहीं होता था और धनकी कमी नहीं रहती थी । उस समय स्त्रियोंमें विभ्रम [लज्जा] दीखता था, किन्तु पण्डितोंमें विभ्रम [बड़ी भूल] नहीं रहता था ॥ ७ ॥ उस समय देशमें कुटिल [टेंढ़ी-बेंड़ी] बहुनेवाली नदियां थी, किन्तु प्रजा कुटिलता [दुष्टता] से सर्वथा बची हुई थी । कृष्णपक्षकी रात्रिमें केवल तम [अंधकार] था, मनुष्योंमें तम [तामस गुण] नहीं दीखता था यानी सारे मनुष्य [] समय सात्त्विक थे ॥ ८ ॥ स्त्रियां रजोयुक्त [रजस्वला] होती थीं, पुंष्य रजोयुक्त [राजस गुणयुक्त] नहीं थे । उस समय राज्यके लोग पैसेसे [अन्ध] अन्धे नहीं थे, किन्तु अन्ध [अज्ञ] में कोई अनन्ध नहीं था । अर्थात् [] लोग खाने-पीनेमें सुखी दीखते थे । उस समय राजपुरुषों [अधिकारियों] में अन्याय नहीं दीखता था । दण्ड केवल कुल्हाड़ी, कुदाल तथा पंखों ही में दीखता था । प्रजापर राजाको दण्डप्रयोगकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी ॥ ९ ॥ १० ॥ सन्ताप [धाम] केवल छतरियोंपर रहता था । रामराज्यकी प्रजामें सन्ताप [मानसिक दुःख] नहीं रहता था । केवल रथ हाकिमनेवाले सारथियोंके हाथमें पाश [छोड़े या बेलकी रास] रहता था, किन्तु प्रजाके किसी मनुष्यको पाश [फाँसीका दण्ड] मिलता नहीं देखा गया । जड़ता [ठंडक] की बात केवल जलमें रहती थी ।

कठोरहृदयः यत्र सोमलिन्यो न मानवाः । औषधेष्वेव यत्रास्ति कुष्ठयोगो न मानवे ॥१३॥
 वैद्योऽभ्यस्तः सु रत्नेषु शले मूर्तिरेषु वै । कंठः सान्त्विकभाषोऽथो न भयात्कवापि कस्यचित् ॥१४॥
 संज्वरः कापजो यत्र दाम्निद्र्यं कलूषस्य च । दुर्लभत्वं पातकस्य मुकुतं न च वस्तुनः ॥१५॥
 इमा एव प्रमत्ता वै युद्धे वीर्याजैलाग्रये । दानहानिर्गजेष्वेव द्रुमेष्वेव हि कण्टकाः ॥१६॥
 जनेष्वेव यद्वाग वै न कस्यचिद्गुःस्थला । बाणेषु गुणविश्लेषो बन्धोक्तिः पुस्तके दृढा ॥१७॥
 दण्डन्यासः सर्वदास्ति यत्र शशुपते जने । दण्डवाना सदा यत्र कुनसंन्यासकर्मणाम् ॥१८॥
 मार्गणाश्रापकेष्वेव मिश्रुका अन्नधारिणः । यत्र अपणका एव दृश्यन्ते मलधारिणः ॥१९॥
 प्राप्ता मनुव्रता एव यत्र च नलवृत्तयः । इत्यादिपुणवर्द्धये रामा राज्यं शशास सः ॥२०॥
 धर्मेण राजा धर्मज्ञः सीतायामः प्रतापकाव । नक्षत्रं राज्यं नन्देन्द्रमयोध्यायां सुनिश्चलम् ॥२१॥
 विधाय राजधानीं तां विस्तृतां परित्वान्वितम् । पालयके महाबुद्धः प्रजा धर्मेण पालयन् ॥२२॥
 तनाय सूर्य इत स दुर्दृष्टो हृदि नेत्रयोः । सोमस्तुहृदाशर्मान्मानसेषु स्वकेष्वपि ॥२३॥
 अखण्डमाखण्डलवन् कोदण्डं कलयन्ने । पलायमानं गलांकि शत्रुसैन्यबलाहकः ॥२४॥
 स धर्मराजः द्रुपदो धर्माधर्मविवेचकः । यदण्ड्योऽदण्डयन्त्रानो दण्ड्याश्च परिदण्डयन् ॥२५॥
 पाशीव पाशयाचके वैरिचकं विदूषयः । सोऽभून्पुण्यव्रतार्धाशो रिपुराक्षसवर्द्धनः ॥२६॥
 जगन्प्राणवमानश्च जगन्प्राणनतत्परः । राजराजः स एवाभूत्सर्वेषां धनदः सताम् ॥२७॥

किसी मनुष्यमें जड़ता । मूर्खता) नहीं थी । केवल मित्रोंको कमरमें दुर्बलता रहती थी, मनुष्योंके हृदयमें नहीं ॥ ११ ॥ १२ ॥ कठारना शिवोंके नगरमें रहती थी, पुण्योंके नगरमें नहीं । केवल औषधोंमें कुप्र (कूट औषधिविशेष) का पाग दाखता था, किसी मनुष्यमें कुष्ठरोग नहीं था ॥ १३ ॥ वय (छिद्र) केवल रत्नोंमें रहता था । शूल (छानी) केवल मूर्ति बनानेवाले कारागरोंके हाथमें रहता था । केवल सात्त्विक भावके उदय होनेपर लोगोंको कम्प होता था—भयसे नहीं । दुर्लभता पादकका था और सुन्दरता कोई वस्तु अलभ्य नहीं थी ॥ १४ ॥ १५ ॥ मत्तवाले हाथा होते थे, मनुष्य नहीं । बुद्ध जनकों लहनेमें ही बना जाता था । दानहानि (मदके प्रवाहका रुक जाना) केवल हाथियोंमें थी । वृक्षांश ही काष्ठक (काटि) रहते थे ॥ १६ ॥ मनुष्योंमें विहार होता था, किन्तु किसीकी उरस्थला (छाता) ऐसा नहीं देखा गया, जो विहार हाथमें रहता ही । केवल बाणोंमें गुणविश्लेष (प्रत्यक्षाका विभाग) था, दृढ़वन्ध्याकि (कठिन बन्धनका बाण) । तम्र पुस्तकोंके लिए था ॥ १७ ॥ शिवभक्तोंके लिए केवल दण्डत्याग किया जाता था । याना उनसे दण्ड नहीं लिया जाता था । केवल संन्यासियोंमें दण्डचार्ता (दण्डग्रहण-सम्बन्धा वातचार्ता) हाता था ॥ १८ ॥ मार्गण (वारण) केवल मनुष्यपर रहते थे, प्रजामें कोई मार्गण (भिक्षारी) नहीं था । केवल अन्नचार्ता भिक्षुक था । केवल क्षत्रणक (संन्यासी) लक्षण मल (चाँवर वस्त्र) धारी थे ॥ १९ ॥ प्रायः भौरीमें चंचलता दाखता थी । इस प्रकारके गुणवान् देवोंमें रामचन्द्रजी राज्य करते थे ॥ २० ॥ धर्मका तत्त्व जाननेवाले प्रतापशाली रामचन्द्रजी बहुत दिना तक तिहुन्द्रभावसे राज्य किया । उन्होंने अनेक प्रकारकी साद्योंसे सुसज्जित करके अयोध्याकी अपनी राजधानी बनायी और धर्मपूर्वक प्रजापालन करते हुए प्रजाकी भलाभाति उन्नति की ॥ २१ ॥ २२ ॥ शत्रुओंके हृदयमें सदा भूयंका भाँति तपते थे और मित्रोंके हृदयमें अन्नमाकी तरह ठंढक पहुँचाते थे । इन्द्रके समान समरागणमें अपना धनुष चमकाते हुए सशस्त्ररूपी मेघोंका भण देते थे । ऐसा बराबर देखा गया है । महाराज रामचन्द्रजी धर्मराजकी तरह भलीभाँति धर्म-अधर्मकी विवेचना करके करते थे । जो दण्डके योग्य नहीं होता था, उसे दण्ड नहीं देते थे और जो दण्डके योग्य होता, उसे अवश्य दण्ड देते थे । शत्रुओंके समूहको धर्मराजकी तरह उन्होंने दायि [] था । रिपुरूपी राक्षसोंका भी उपकार करके रामचन्द्रजी संसारके मध्य महात्माओंमें ऊँचे पदपर पहुँच चुके थे ॥ २३-२६ ॥ अंगदकी रक्षामें तत्पर रामचन्द्रजी जगन्के प्राण समान थे । अच्छे मनुष्योंको घनकी सहायता देकर वे स्वयं रामराज (कुबेर) हो रहे थे । शत्रुओंको भय दिखाकर रुद्र बन गये थे । यही कारण था कि जिससे

स एव रुद्रमूर्तिश्च प्रैक्षिष्ट रिपुभीषणे । विश्वेदेवास्तनस्त्रं तु स्तुयन्ति च भजन्ति च ॥२८॥
 असाध्यः स हि साध्यानां वसुम्यो वसुनाधिकः । ब्रह्मणा विश्वधरो दत्तनोऽजस्वरूपधृक् ॥२९॥
 मरुद्गणानगणयस्तुषितास्तोषयन् गुणैः । सर्वविद्याधरो यस्तु नर्वविद्याधरेऽपि ॥३०॥
 अगर्वानेव गन्धर्वान्यश्चक्रे निजर्गतिभिः । रत्नयुग्मश्लासि तद्दुर्गं स्वर्गमोदरम् ॥३१॥
 नागा नागास्तिरश्चक्रुस्तस्य राज्ये बलायसः । दनुजा मनुजाकारं कृत्वा तं तु मिपेदिरे ॥३२॥
 आसा गुह्यचरा यस्य गुह्यकाः परितो नृपु । संसेविष्यामहे राजन् सुगम्वा स्वस्ववैभवेः ॥३३॥
 वयं ततस्त्वद्विषये सुरवासोऽपि दुर्लभः । इत्युक्त्वा गमचन्द्रं ते मधवाद्याः मिपेदिरे ॥३४॥
 अशिक्षयत्क्षितिपतेरिह यस्य तुरङ्गमान् । अशुगश्चाशुगामिन्तं पावमाने पथि स्थितः ॥३५॥
 अगजान्यस्य तु गजाश्चगवर्षमु वर्षणः । अजस्रदानिनो दृष्टुऽभवचान्येऽपि दानिनः ॥३६॥
 सदोऽजिरे च वोढारो योद्धारश्च रणाजिरे । न शस्त्रैर्न जनः कश्चिन्न शस्त्रैः केनचिरकचित् ॥३७॥
 न नेत्रविषये जाता विषये यस्य भूभृतः । सदा नष्टपदा दृष्ट्यास्तथा नष्टापदः प्रजाः ॥३८॥
 कलवानेक एवास्ति त्रिदिवेऽपि दिवाकमाम् । तस्य क्षीर्णाभृतः क्षीण्यां जनाः सर्वे कलालयाः ॥३९॥
 एक एव हि कामोऽस्ति ध्वगं मोऽप्यङ्गवान्तः । माङ्गोपाङ्गश्च सर्वेषां सर्वे कामा हि नङ्गयि ॥४०॥
 तस्योपवर्तनेऽप्येको भूतो गोत्रभिन्कचित् । स्वर्गं स्वर्गमधर्मास्तं गोत्रभिन्परिकीर्तितः ॥४१॥
 क्षमी च तस्य विषये कोऽप्याकर्ण न केनचिन् । त्रिविष्टपे क्षपणाथः पक्षे पक्षे क्षयिष्यते ॥४२॥
 नाके नवग्रहाः सन्ति देशास्तस्यानवग्रहाः । हिरण्यगर्भाः स्वर्लोकैर्वक्त्र एव प्रकाशते ॥४३॥
 हिरण्यगर्भाः सर्वेषां तत्पौराणामिहालयाः । सप्ताश्च एकः स्वर्लोके नितरां भासतेऽणुमान् ॥४४॥

सब विश्वेदेव उनकी स्तुति और भजन करते थे । वे साध्य (दानज देवताविशेष) के लिए भी असाध्य थे । वसु (धन) की अधिकतासे वे अप्रयस्यश्रोम भी श्रेष्ठ थे । नवग्रहोंके साक्षान् स्वल्प थे और अश्विनीकुमारके समान सदा सुन्दर रूप धारण किये रहते थे ॥ २३-२६ ॥ वे अपने अमाधारण पराक्रमसे मरुद्गणोंसे भी श्रेष्ठ थे । कितने ही सद्गुणोंसे उल्लास नृपितोषो प्रसन्न कर गये थे । वे सम्स्त विश्वधरोके शिरोमणि थे और अपने गीतके माकुर्यसे उन्होंने गन्धर्वोंका भी गव सर्व कर दिया था । मयसारभरके यक्ष-राक्षस स्वर्गके समान कमनीय रामके किलेकी रक्षा करते थे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ स्वर्गलोकके हाथी रामके हरितसमूहसे पराजित हो गये ॥ । सारी दुनियाके दानव मनुष्यका वेप बना-बनाकर राक्षसी सेवा कर रहे थे ॥ ३२ ॥ उनके गुह्यचर राज्यके मनुष्योंमें घुसकर अपना मतलब सिद्ध करनेके लिए हुत्तको (गणिभट्टादिकों) से भी वाजी मार चुके थे । इन्द्रादि देवता रामके समीप जाकर कहते थे—'राजन् ! हमारे पास जो कुछ वैभवं है, वह सब लगाकर हम आपकी सेवा-गुह्यवा करनेको प्रयत्न है' ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इस संसारात्म जिसके छोड़े वायु देवताको भी जल्दी चलना सिलाते थे, जिसके पर्यंतके समान ऊँचे बड़े-बड़े हाथियोंकी अजस्रदानिता (सस्त मदप्रवाह अथवा दानशोलता) देखकर संसारके कृपण मनुष्य भी दानां बन गये थे । जिसकी राजसभाके बुद्धिमान पण्डित और सेनाके बड़े-बड़े योद्धा शास्त्र तथा शस्त्रसे कभी पराजित नहीं हुए थे ॥ ३५-३७ ॥ इन रामके राज्यमें जैसे शत्रु कहीं नहीं दीखता था, वैसे ही प्रजामें कभी किसी प्रकारकी विपत्ति भी नहीं दिखायी देती थी ॥ ३८ ॥ देवताओंके स्वर्ग वैसे राज्यमें केवल एक कलवान् चन्द्रमा था, किन्तु रामके राज्यमें सब मनुष्य कलाके भण्डार थे । स्वर्गमें केवल एक कामदेव था, सो भी अनङ्ग ॥ अर्थात् बिना शरीरका) । किन्तु रामराज्यके सारे मनुष्य सांगोपांग कामदेव (जैसे सुन्दर) थे । रामके राज्यभरमें खोजनेपर भी कोई गोत्रभिन् (जातिसे बहिष्कृत) मनुष्य नहीं मिला था, किन्तु स्वर्गमें देवताओंके राजा स्वयं गोत्रभिन् (इन्द्र) थे ॥ ३६-४१ ॥ राम-राज्यमें कोई क्षयी (क्षयरोगी) नहीं सुना गया, किन्तु स्वर्गमें चन्द्रमा पक्ष-पक्षमें क्षय होते पाते ॥ ४२ ॥ स्वर्गमें सर्वदा नौ ग्रह रहते हैं, किन्तु रामका राज्य अनवग्रह (यानी अपसी

सदंशुकाः प्रतिगृहं बहुखास्तन्पुरौकमः । सदप्सरा यथा स्वर्भूस्तत्पुत्र्यपि सदप्सराः ॥४५॥
 एतैश्च पद्मा वैकुण्ठे गीयते विष्णुबलभा । तत्पौगणां गृहेष्वामञ्छतपद्मा पृथक् पृथक् ॥४६॥
 अनीतयथलद्धामा न राजपुरुषाः कश्चिद् । गृहे गृहेऽत्र धनदा नाक एकोऽलकापतिः ॥४७॥
 एवं रामो महान् श्रेष्ठः श्रौटीर्यगुणशोभनः । सौभाग्यशोभी रूपाक्षः द्यौर्यौदार्यगुणान्वितः ॥४८॥
 विजितानेकधरः श्रामर्षापि न मार्गणः । सीतारंजितवामांग उग्रः परपुरंजयः ॥४९॥
 अनेकगुणसंपूर्णः पूर्णचंद्रनिभद्युतिः । सत्तावभृथस्त्रिभुवर्षजः श्रितिपर्वभः ॥५०॥
 प्रजापालनसपथः कोशप्रीणीतभूसुरः । पार्वतीकांतचरणयुगलध्यानतत्परः ॥५१॥
 विश्वेश्वरकयालापपरिक्षिप्तदिनक्षयः । सीतासंक्षालितपदस्तन्क्रीडापरितोषितः ॥५२॥
 अक्षास राज्यं धर्मेण बन्धुपुत्रसमन्वितः । रामे शासति साकेतपुर्यां राज्यं सुखेन वै ॥५३॥
 हृष्टाः पुष्टाः प्रजाः सर्वाः फलवंतोऽभवन्नशाः । आसन्नसदा सुकुसुमैर्विनम्राः सौख्यदा नृणाम् ॥५४॥
 एकपत्नीवताः सर्वे पुमांसस्तस्य मण्डले । नारीषु काचिन्नैवासीदपनिव्रतघर्मिणी ॥५५॥
 अनधीतो न विप्रोऽभून्न शूरो नैव बाहुजः । वैश्योऽनमिद्धो नैवासीदर्थोपार्जनकर्मसु ॥५६॥
 अनन्यवृत्तयः शूद्रा द्विजशुभ्रपणं प्रति । तस्य राष्ट्रं समभवन्सीतारामस्य भूपतेः ॥५७॥
 अविप्लुतमद्ययथास्तद्राष्ट्रे मक्षचारिणः । नित्यं गुरुकुलाधीना वेदग्रहणतत्पराः ॥५८॥

लड़ाई-संगर्भसे रहित : या । स्वर्गमें केवल एक हिरण्यगर्भ (विष्णुभगवान् । रहते हैं; किन्तु रामराज्यके अत्येक घर हिरण्यगर्भ थे अर्थात् उनमें सुवर्ण भरे हुए थे । स्वर्गमें केवल एक सप्ताम्भ अंशुमान् (सूर्य । हैं, किन्तु रामके राज्यमें अत्येक व्यक्ति अंशुमान् । अच्छे कपड़े पहननेवाले) और सातको कौन कहे, कितने घोड़े दौघनेवाले लोग विद्यमान थे । जिस तरह स्वर्गमें अच्छी-अच्छी अप्सराएँ हैं, उसी तरह रामके राज्यमें बहुत-सी अच्छी-अच्छी अप्सराएँ रहती थीं ॥ ४३-४५ ॥ ऐसा कहा जाता कि स्वर्गमें केवल एक विष्णुकी प्रिया पद्मा (लक्ष्मी) है, किन्तु रामके राज्यमें संकटोत्ते भी अधिक पद्मपति (पद्मसंख्यक स्वयं रत्ननेवाले) लोग थे । रामके राज्यमें कभी किसी प्रकारका अकाल नहीं पड़ा और ऐसे राजपुरुष नहीं थे, जो कान्तिविहीन रहे हों । स्वर्गमें केवल कुम्भेर धनद (लेन-देनके व्यवहारी ! हैं, किन्तु रामके राज्यमें असंख्य थे ॥ ४६ । ४७ ॥ इस तरह रामचन्द्र अनेक सद्गुणोंसे युक्त और सर्वश्रेष्ठ थे । रामचन्द्र सौभाग्य, रूप, शौर्य और औदार्य आदि गुणोंसे युक्त थे । अनेक युद्धोंमें उन्होंने विजय पायी थी और संसारको वरिद्धताको उन्होंने लक्ष्मीके हाथों सौंप दिया था । उनके वामभागमें सीताजी बंठी रहती थीं । इस कारण उनकी शोभा और भी बढ़ गयी थी । वे सबसे उग्र तथा शत्रुओंके नगरको विजय करनेमें सिद्धहस्त थे । अनेक गुणोंके एकत्रित होनेसे वे पूर्ण हो चुके थे और पूर्ण चन्द्रमाके समान उनकी कान्ति थी । सर्वदा अवभृथ (स्नान करनेसे उनके केश भीगे रहते थे और सब राजाओंमें श्रेष्ठ माने जा चुके थे ॥ ४८-५० ॥ प्रजाका पालन करनेमें वे धर्मात्मा इतचित्त रहते थे और खजानेके धनसे ब्राह्मणोंको रखते थे । वे शिवके ध्यानमें तत्पर रहते थे । वे सर्वदा शिवजीकी कथाएँ कहते-सुनते दिन-रात बिताते थे । सीता उनके पंर घोषा करती थी । उनके साथ विविध प्रकारकी क्रोडाएँ करनेसे राम रहते थे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ उन्होंने भाइयों और पुत्रोंके साथ रहकर अच्छी तरह राज किया । रामके शासनकालमें प्रजा सुखी तथा हृष्ट-पुष्ट रहती और वृक्ष फल-फूलसे लदे रहनेके कारण झुके रहते और मनुष्योंको सुखी रखते ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ उनके राज्यमें सब पुरुष एकपत्नीव्रता थे और स्त्रियोंमें भी कोई ऐसी नहीं थी, जो अपने पतिव्रतधर्मका पालन न करती हो ॥ ५५ ॥ उस समय कोई ऐसा ब्राह्मण नहीं था, जो बिना पढ़ा हो और कोई क्षत्रिय भी ऐसा नहीं था, जो योद्धा न रहा हो । कोई ऐसा वैश्य नहीं था, जो कमानेकी से अनभिज्ञ हो । राजा रामके शासनकालमें राज्य घरके शूद्र और किसी प्रकारकी धृति न करके एकमात्र द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों) की सेवामें लगे रहते थे । उनके राज्यमें बहुधर्मकी रक्षा करते हुए

अन्येऽनुलोमजन्मानः प्रतिलोममवा अपि । स्वपारम्पर्यतो द्रष्टुं मनाश्चर्म्म न तत्पुत्रः ॥५९॥
 अनपश्यो न तद्वाष्टं धनहीनस्तु कोऽपि न विरुद्धसेवा नो कश्चिदकालमृतिमाङ् च ॥६०॥
 न झठा नैव वाचाटा वञ्चका नो न हिंसकाः । न पाखंडा नैव भंडा न रंडा नैव शंडिकाः ॥६१॥
 भ्रूतिघोषो हि सर्वत्र शास्त्रवादः पदे पदे । सर्वत्र सुमगलापा मुदा मगलगीतयः ॥६२॥
 वीणावेषुप्रवादाश्च मृदंगधुरस्वनाः । सोमपानं विनाऽन्यत्र पानगोष्ठा न कर्णया ॥६३॥
 मांसाशिनः पुरोडाश नैवान्यत्र कथंचन । न दुरोदरिणो यत्राघर्मिणो न च तस्कराः ॥६४॥
 पुत्रस्य पित्रोः पदयोः पूजन देवपूजनम् । उपवासो व्रत तीर्थं देवताराधनं परम् ॥६५॥
 नारीणां मर्हपदयोः स्वर्चन तद्वचःश्रुतिः । समर्चयति सततं निजमग्रजमादरात् ॥६६॥
 समर्चयति मुदिता भृत्याः स्वामिरदाम्बुजम् । होनर्षेऽग्रवर्णो वर्ण्यते गुणगौरवैः ॥६७॥
 धरिवर्षति भूयोऽपि त्रिकाल भूमिदेवताः । सर्वत्र सर्वे विद्वांसः समर्चन्ते मनोरथैः ॥६८॥
 विद्वद्भिश्च तपोनिष्ठास्तपोनिष्ठैर्जितेन्द्रियाः । जितेन्द्रियैर्ज्ञाननिष्ठा ज्ञानिभिः शिवलिङ्गिनः ॥६९॥
 भंत्रपूतं महार्घं च विधियुक्तं सुसंस्कृतम् । चाढवानां मस्तार्ग्नी च हूयतेऽहनिष्ठं हविः ॥७०॥
 वापीकूपतडागानामारामाणां पदे पदे । शुचिभिर्द्रव्यसंभारैः कर्तारो यत्र भूरिशः ॥७१॥
 तद्वाष्टं दृष्टपुष्टाश्च दृश्यन्ते सर्वजातयः । अनिन्द्यसेवासंपन्ना विना मृगयुसैनिकान् ॥७२॥
 यस्य राज्ये पलाकासु चंचला भीर्न राष्ट्रके । ऐरावतस्त्वेक एव शुभ्रः स्वर्गो गजो महान् ॥७३॥
 चतुर्दन्तो रामराज्ये तद्वन्नागाः सहस्रशः । इन्दुसूर्यानुभावेव शोभेते गगनांगणे ॥७४॥
 रामराज्येऽत्र नारीणां सीमंतस्था अनेकशः । वृषोऽस्त्येकः कलासे गीयते परमः सितः ॥७५॥

पुरुकुलमें रहकर वेदाध्ययन करते थे ॥ ५९-६० ॥ अनुलोम जातिमें उत्पन्न लोगोंने यह कभी नहीं चाहा कि मैं अपने दर्जेसे ऊंचे पद रहूँ । रामके राजमें कोई सन्तानविहीन तथा निर्धन नहीं था और कोई ऐसा भी नहीं था, जो अपनी मर्यादाके विरुद्ध आचरण करनेवाला हो । उनके राजमें कोई अकाल मृत्युका प्रास नहीं बन सका । उस समय न कोई झठ, न बकवादी, न बंचक, न हिंसक, न पाखण्डी, न भौंड, न स्त्रीविहीन और न घृत्त ही था ॥ ५९-६१ ॥ पद-पदपर वेदव्यनि तथा भारप्रसम्बन्धी वाद-विवाद मुनायी देता था । पारों ओर अच्छी-अच्छी बातें, हँसो-खुशीके मंगलगीत, वीणा-वज्रो मृदंगका मीठा स्वर मुनायी पड़ता था । सोमपानके सिवाय और किसी मादक वस्तुके खाने-पीनेकी बात नहीं मुनायी देती थी । यज्ञके अतिरिक्त दूसरे समयपर मांस खानेवाले मनुष्य, जुझाड़ों, अचर्मी और चोर कहीं भी नहीं ॥ ६२-६४ ॥ पुत्रके लिए माता-पिताके पदपूजन हो देवपूजन, उपवास, व्रत, देवताराधन और तीर्थ था । नारीके लिए अपने पतिके धरण-पूजन और उनकी बातें वेदवाक्य सदृश मानना ही सबसे श्रेष्ठ धर्म माना जाता था । सदा छोटा भाई बड़े भाईकी पूजा करता था । सेवक प्रसन्न मनसे अपने मालिककी सेवा करते थे । नीच जातिका मनुष्य अपनेसे ऊंचे वर्णवालेका गुण-गौरव बखानता ॥ ६५-६७ ॥ सब लोग ब्राह्मणोंकी पूजा करते और विद्वानोंके मनोरथ पूर्णकरनेकी उद्यत रहते थे । विद्वान्से तपस्वी, तपस्वीसे जितेन्द्रिय तथा जितेन्द्रियसे भी ज्ञानी मनुष्य श्रेष्ठ माना जाता ॥ और ज्ञानीसे भी संन्यासी उच्च पदपर माने जाते थे ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ सदा मंत्रसे पवित्र किया हुआ हवि विप्रोंके सुखाग्निमें पड़ता रहता था ॥ ७० ॥ बावली, कूप, तडाग तथा पद-पदपर बगीचा लगवानेवाले और पवित्र द्रव्योंको एकत्र करके यज्ञादि शुभ कर्म करनेवाले कितने ॥ धर्मात्मा कहा करते ॥ ७१ ॥ रामके राजमें सब जातिके मनुष्य दृष्ट-पुष्ट दिखायी पड़ते थे । सिकारी तथा सैनिकोंके सिवाय सब लोग सराहनीय कामोंमें लगे हुए थे । उनके राज्यमें लक्ष्मीकी चंचलता केवल पलाकामें रहती थी, राष्ट्रमें नहीं । स्वर्गमें केवल एक ऐरावत हाथी बड़ा, चतुर्दन्त और श्वेत वर्णका है । किन्तु रामके राज्यमें हजारों हाथी चार दांतवाले तथा श्वेत वर्णके थे । स्वर्गमें केवल सूर्य और चन्द्रमा प्रकाश करते हैं, किन्तु रामराज्यकी स्त्रियोंके केष्ठोंमें (मणिके) बैसे-बैसे अनेक चन्द्रमा-सूर्य चमकते दिखाई देते थे ॥ ७२-७४ ॥ सुना

तद्द्रष्टुं रामराज्ये कृषिकर्मणि योजिताः । एषोऽस्त्येकचंद्रलोके कृष्णवर्णो मनोरमः ॥७६॥
 तद्द्रष्टुं शिशूनां हि क्रीडायां सत्पनेकशः । अप्सरःसु वरा स्वर्गे गीयते ॥ तिलोत्तमा ॥७७॥
 मेहे मेहे संति नार्यः सर्वास्त्वत्र तिलोत्तमाः । रुक्मभूषणभूषाद्या गतिन् पुरनिःस्वनाः ॥७८॥
 सहस्राक्षोऽस्त्येक एव महान्स्वर्गे प्रगीयते । रामराज्ये चामराणि सहस्राक्षीभ्यनेकशः ॥७९॥
 सुधापानं त्वेकमेव स्वर्गेऽस्ति परमं वरम् । तद्भन्तानारसानां च पानमत्र गृहे गृहे ॥८०॥
 सुधापानेन सहृष्टा यथा स्वर्गसुरोत्तमाः । दयिताऽधरपानेन तद्यात्र सुखिनो जनाः ॥८१॥
 सागरेभ्येव सा दृष्टा मर्यादा सर्वदा नरैः । रामराज्येऽत्र बालेषु मर्यादा सर्वदेक्ष्यते ॥८२॥
 विचरंति गजावृद्धाः भ्रूयंते पार्ष्णिवाः पुरा । पौरा जानपदाः सर्वे विचरंत्यत्र ॥ गजैः ॥८३॥
 एवं भुतं शिशूनां हि सुवनं दिवसे ॥ । रामराज्येऽनिशं नारीचुवनानि सुदुर्मुहुः ॥८४॥
 क्रीडा परिमलद्रुण्यैः फाल्गुने ॥ ध्रुता पुरा । क्रीडा परिमलद्रुण्यैः पौराश्चक्रः सदात्र ते ॥८५॥
 एवं तद्रामराज्यं हि महामंगलसंयुतम् । आसीदनुपमेयं च भवणान्मंगलप्रदम् ॥८६॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे

उत्तरार्धे रामराज्यवर्णनं नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः

(रावका लव-कुश तथा भ्राताभौको राजनीतिक उपदेश)

श्रीरामदास उवाच

एकदा रावकः भीमान्समाहूय कृत्वा लवम् । लक्ष्मणं भरतं चापि अनुचनं रहसि स्थितः ॥ ॥ ॥

■ कि कैलासपर एक ऐसा बेल है, जो अतिशय घबल वर्णका है । किन्तु रामराज्यमें वैसे-वैसे कितने ■ बेल हल जीतनेका काम करते थे । चन्द्रलोकमें एक ऐसा मृग है, जो बड़ा सुन्दर और कृष्ण वर्णका है । किन्तु रामराज्यमें लड़कोंको खेलनेके लिए वैसे-वैसे कितने ही मृग रखा करते थे । सुनते ■ कि स्वर्गलोकमें कोई तिलोत्तमा नामकी बड़ी सुन्दरी अप्सरा है ॥ ७५-७७ ॥ किन्तु रामराज्यमें घर-घरका स्त्रियाँ तिलोत्तमाके ■ सुन्दरी ■ सुवर्णके भूषणोंसे भूषित होकर चलते ■ नूपुरका रुनरुन गूँगुनी चलाती थीं ॥ ७८ ॥ सुनते ■ कि स्वर्गमें केवल एक सहस्राक्ष (इन्द्र) है, किन्तु रामके यहाँ अनेकों सहस्राक्ष चमर चलते थे । स्वर्गमें केवल अमृत ■ करनेकी वस्तु ■ और रामराज्यमें घर-घर विविध प्रकारकी रसमयी पेय वस्तुयें विद्यमान रहा करती थीं ॥ ७९ ॥ ८० ॥ जिस तरह अमृतको पीकर देवता स्वर्गमें प्रसन्न रहते हैं, उसी प्रकार स्त्रीके अधरोष्ठका पान करके ब्रह्मदेवके सब मनुष्य ■ रहते थे ॥ ८१ ॥ ■ संसारी मनुष्योंने केवल समुद्रकी मर्यादा देखी थी (यानी वह अपनी सोमाके बाहर जाता नहीं देखा गया), किन्तु रामके राज्यमें छोटे-छोटे बच्चोंमें भी मर्यादा दिखायी देती थी ॥ ८२ ॥ सुनते ■ कि पहले राजा ही लोग हाथियोंपर चढ़कर इधर-उधर घूमते-फिरते थे, किन्तु रामके राजमें सारे पुरवासी और देशवासी हाथियोंपर सवार होकर घूमते-फिरते दिखायी देते थे ॥ ८३ ॥ सुनते हैं कि पहले लोग बच्चोंको ही बार-बार चूमते थे, किन्तु रामके राजमें स्त्रियोंको भी लोग बड़े आनन्दके साथ दिन-रातमें अनेकों बार चूमते थे ॥ ८४ ॥ सुना जाता है कि पहले फाल्गुनके महीनेमें ही रङ्ग तथा समन्वित वस्तुएँ एक-दूसरेपर छाँड़ते हुए लोग फाग खेलते थे, किन्तु रामके राजमें लोग सर्वदा वैसे खेल खेला करते थे ॥ ८५ ॥ इस प्रकार रामका राज्य महामङ्गलमय अनुपमेय और नाममात्र सुननेसे ही कल्पानदायक हो रहा था ॥ ८६ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पंच रामतेजपाब्देयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्धे पंचदशः सर्गः ॥१५॥

श्रीरामदासने कहा कि एक बार भीमान् रामने एकान्तमें लव, कुश, लक्ष्मण, ■ अनुचनको

राजनीतिं विस्तरेण श्रितयामास सादरम् । शृणु वत्स कुशाय त्वं यूयं सर्वे लत्रादिकाः ॥ २ ॥
 शृणुताञ्च स्वस्वेष्वपि राजनीतिं वदाम्यहम् । कुश त्वं पृथिवीशालो भविष्यसि गते मयि ॥ ३ ॥
 वैकुण्ठं शृणु तस्मात्त्वं सावधानमना भव । अनृतं नैव वक्तव्यं नृपेणा चिरजीविना ॥ ४ ॥
 नातिकामी न वै क्रोधी राजा । सुखमर्हति । परदाररतिरुपजाय । सर्वथा पार्थिवेन हि ॥ ५ ॥
 सत्यं शौचं दया क्षातिरर्जुनं मधुरं वचः । द्विजगोयनिसङ्गतिः समैते शुभदा गुणाः ॥ ६ ॥
 निद्रालस्यं मद्यपानं घृतं वारंगनारतिः । अतिक्रीडाऽतिमृगया सप्त दोषा नृपस्य च ॥ ७ ॥
 पुत्रवरपालनीयाश्च प्रजा नृपतिना भुवि । पष्टांशः कर्मभारश्च राज्ञा ग्राह्यः सदैव हि ॥ ८ ॥
 श्रेयं चारैः सदा कृतं पृथिव्याः पार्थिवेन वै । परराष्ट्रे सदा दूता नानावेषविरूपिताः ॥ ९ ॥
 पञ्च पञ्चाधवा द्वौ द्वौ प्रेषणीया नृपेण हि । न विश्वसेत्पारकीयजने दूते नृपोत्तमः ॥ १० ॥
 दण्डो मेदस्तथा साम दानं कालोचितं चरेत् । स्वकार्यं साधयेद्युक्त्या काले प्राप्तं नृपोत्तमः ॥ ११ ॥
 मनसा चिन्तितं कार्यं कथनीयं न कथयितुम् । कृत्वा कार्यं दर्शनीयं जनान्मन्त्रिजनानपि ॥ १२ ॥
 मासे मासे स्वकोशस्य परामर्शो नृपोत्तमैः । गृहणीयः सर्वदैव विश्वसेत्सेवकेषु ॥ १३ ॥
 वर्षे वर्षे नगर्याश्च प्राकारस्य नृपोत्तमैः । परिखानां परामर्शः कार्यो मन्त्रिजनैः सह ॥ १४ ॥
 चतुर्मासेषु शस्त्राणां मार्गाणां पार्थिवोत्तमः । परामर्शः मदा कोष्ठागारादीनां प्रकार्येत् ॥ १५ ॥
 पक्ष पक्षे वारणानां तुरंगाणां तथाऽश्विभिः । दिवसैर्माममात्रेण वस्त्राणां पार्थिवोत्तमैः ॥ १६ ॥
 परामर्शः सदा कार्यः पिशादीनां त्रिभिर्दिनैः । सीमाचारजनानां च षण्मासैश्च नृपोत्तमैः ॥ १७ ॥
 परामर्शः सदा कार्यस्तथा ज्ञानपदस्य च । मासे मासे स्वसेन्यस्य वापीनामयनेन हि ॥ १८ ॥

बुलाया ॥ ॥ ॥ उन्हें विस्तारपूर्वक राजनीतिकी शिक्षा देते हुए कहने लगे—हे कुश तथा भरतादिक भ्राताओं ! तुम लोग स्वस्ववित्त होकर मृतो । मैं तुम्हें राजनीतिकी शिक्षा दे रहा हूँ । हे कुश ! मेरे वैकुण्ठ जैसे जानेपर तुम राजा होओगे । इसलिये तुम विशेष रीतिसे मेरी शिक्षाको सुन रखो । जिस राजाको चिरकाल तक इस संसारमें जीवित रहना हो, उसे चाहिये कि वह झूठ कभी न बोले ॥ २-४ ॥ जो राजा कामो और क्रोधी नहीं होता, वही सुखसे रह सकता है । राजाको चाहिये कि वह दूसरेको स्त्रीसे प्रेम न करे ॥ ५ ॥ सत्य, शौच (पवित्रता), दया, क्षमा, स्वभावमें कोमलता, मोटी बातें, ब्राह्मण-गौ सन्त तथा सज्जनोंपर श्रद्धा, ये सात गुण राजाके लिए परम कल्याणकारी हैं ॥ ६ ॥ निद्रा, भालस्य, मद्यपान, घृत (जुआ), भेष्याप्रोक्ष प्रेम, उगादा खेल-कूद और अधिक शिकार खेलना, ये राजाके सात दोष हैं ॥ ७ ॥ राजाको चाहिए कि वह राज्यकी प्रजाका पुत्रके समान पालन करे और उससे आयका पछाँच कर सर्वदा लेता जाय ॥ ८ ॥ राजाका यह कर्तव्य है कि वह गुप्तचरों द्वारा राज्य भरका समाचार मालूम करता रहे । दूसरे राजाके राज्यकी भी गति-विधि देखनेके लिए वेध बदलकर पाँच-पाँच या दो-दो दूत नियुक्त कर दे । अपने दूतोंके सिवाय किसी और व्यक्तिपर विश्वास न करे ॥ ९ ॥ १० ॥ समय-समयपर जैसा उचित समझे, साम-दान आदि नीतियोंका प्रयोग करता रहे । समय पाकर युक्तिके साथ अपना कार्य साधन करे ॥ ११ ॥ जो कार्य अपने मनमें सोच, वह किसीसे न कहे । स्वयं चुपचाप करता रहे । नौकरोंके विश्वासपर राज-काज न छोड़ दे ॥ १२ ॥ महीने-महीने अपने खजानेकी देख-भाल स्वयं करे । नौकरोंके ही विश्वासपर न छोड़ दे ॥ १३ ॥ साल-सालभर बाद अपने मंत्रियोंके साथ नगरकी जाई आदिकी भी जाँच करे ॥ १४ ॥ चार-चार महीनेमें अपने मन्त्रों, मार्गों तथा कोठार आदिका निरीक्षण करता रहे ॥ १५ ॥ एक पक्षमें या आठवें रोज हाथो-पोंड़े आदि देखे । महीने-महीने कपड़ोंको देख-रेख करे ॥ १६ ॥ प्रति तीसरे दिन अपने वहाँ पाले हुए सुगंध-कोयल आदि चिड़ियोंको देखे और हर छठवें महीने अपने सौभाग्यपर नियुक्त अधिकारियोंकी निगरानी करे । सर्वदा अपने राज्यमें रहनेवाले मनुष्योंपर ध्यान रखे । महीने महीने सेनाकी देख-भाल करे और छठवें महीने राज्यके कुएँ-बावली आदि

कार्यः पुष्पवाटिकानां मासे मासे नृपोत्तमैः । परामर्शः स्वयं गत्वाऽथ वा मन्त्रिजनोत्तमैः ॥१९॥
 वर्षे वर्षे समुद्योगः षण्मासैरथवा त्रिभिः । मासेनृपेण स्वे राष्ट्रे कार्यः सैन्येन यत्नतः ॥२०॥
 देवानां ब्राह्मणानां च गुरुणा यतिना तथा । असतोषो नैव कार्यः पार्थिवेन कदाऽपि हि ॥२१॥
 द्रव्यादाय सदा पश्येत्स्वव्ययं निरीक्षयेत् । आदायस्य चतुर्धाऽर्ह्ययः कार्यो नृपोत्तमैः ॥२२॥
 तृतीयांशेन वा कार्यस्त्वर्धांशेन कदापि । इहाः कार्या मन्त्रिणश्च नातिकोपं समाचरेत् ॥२३॥
 नातिमान्या मन्त्रिणश्च वर्धनीयाः कदापि न । न विरोध्याः कदा राजा दुर्गपालास्तथैव च ॥२४॥
 आकुराणां पट्टणानां दुर्गाणां गिरिवासिनाम् । अरण्यवासिनां सिंहातुपद्मोपनिवासिनाम् ॥२५॥
 सिन्धुतीरस्थितानां च नानादेशनिवासिनाम् । वर्षान्तरस्थितानां च द्वीपांतरनिवासिनाम् ॥२६॥
 द्वीपे द्वीपे पृथग्वर्षवासिनां पार्थिवोत्तमैः । परामर्शः सदा कार्यभारैः पश्चात्तरेण हि ॥२७॥
 परराष्ट्रादुद्यमरूपैः काषायांश्चरभारिभिः । अवधूतादिवेषश्च कार्पाटिकोपमैः ॥२८॥
 वणिग्पुषधरैर्दूर्तैर्दृष्टं वेद्यं नृपोत्तमैः । अत्र तत्राधिषाः सर्वेऽन्देऽन्दे कार्यास्तु नूतनाः ॥२९॥
 एव चिरं राजान स्याप्यः सेवकः कवित् । परमैन्यानि वेद्यानि द्रष्टव्यं स्वबलं सदा ॥३०॥
 परराष्ट्रागतो दूतः स्वीयराष्ट्रे विलोकयेत् । पृष्टश्चेज्जव दण्ड्यः स परदूतं न क्षिप्तयेत् ॥३१॥
 परदूतो मोचनीयः सम्मानेन नृपोत्तमैः । स्वसीमारक्षिणो दूताः क्षिप्तणीया मुहुमुहुः ॥३२॥
 परदूतः मुक्तः स्वीयराष्ट्रे पुरेऽथवा । अचारम्य सूक्ष्मदृष्ट्या द्रष्टव्यं चेति पार्थिवैः ॥३३॥
 अश्वमेधं पार्श्वगौ च पश्चाद्भागस्य रक्षकम् । सेनापति मन्त्रिणं च स्वीयं प्रतिनिधिं तथा ॥३४॥
 सूतं चामरहस्तं दूतं निष्कटवर्जिनम् । दानमानैस्तोषयेच्च सदा राजा सुषुद्धिना ॥३५॥
 देशं कालं बलं क्रोधं निजोत्साहं नृपोत्तमैः । आदौ बुद्ध्या निरीक्ष्याथ रिपोश्चापि परीक्षयेत् ॥३६॥

देखे ॥ १७ ॥ १८ ॥ महीने-महीने बगीचोंमें स्वयं जाकर देखभाल करे या मन्त्रियोंको भेजे ॥ १९ ॥
 साल-साल भर बाद, छठे तीसरे महीने सेनाके साथ-साथ राजा अपने राज्यमें दौग करे । इस बातका सदा ध्यान रखे कि देवताओं, ब्राह्मणों, यतियों तथा गुरुजनोंमें किसी असंतोष न फैलने पाये ॥ २० ॥ २१ ॥ आय-व्यय देखे और आयका चतुर्धा मात्र व्यय करे । किसी विकट समस्याके आ जानेपर आयका तृतीयांश खर्च करे, किन्तु खर्च कभी भी न होने पाये मन्त्रियोंको सदा रखे । न विषेय क्रोध करे और न किसीसे विशेष प्रेम रखे । दुर्गकी रक्षा करनेवालोंके साथ कभी विरोध न करे ॥ २२-२४ ॥ खानोंके पास रहनेवाले, राजधानीसे दूर किसी नगरमें रहनेवाले, दुर्ग तथा पर्वतनिवासी, जंगलमें रहनेवाले, समुद्रके टापुओंमें निवास करनेवाले, समुद्र-तटपर रहनेवाले, विदेशोंमें रहनेवाले, द्वीपान्तरके निवासियों तथा किसी देशके रहनेवाले लोगोंकी प्रत्येक पक्षमें राजा देख-भाल करता रहे ॥ २५-२७ ॥ गुप्तरूपधारी, संन्यासीवेषधारी, अवधूत, वणिक् तथा नगाका वेष बनाकर दूसरेके राज्यमें घूमनेवाले गुप्तचरोंसे अन्य राष्ट्रका समाचार मालूम करता रहे । उन दूसरे-दूसरे देशोंमें प्रति वर्ष नये-नये अधिकारी बदलता ॥ २८ ॥ २९ ॥ राजाको यह उचित है कि किसी प्रदेशका अधिकारी बनाकर किसी नौकरको जगहा दिनों तक उस प्रदेशमें न रहने दे । दूसरे राजाओंकी सेना तथा अपना सैन्यबल बराबर देखता रहे ॥ ३० ॥ यदि किसी दूसरे राष्ट्रका गुप्तचर अपने राष्ट्रमें दिखायी दे जाय तो उसे किसी प्रकारका दे । दूसरे राज्यके दूतको दण्ड न देना नोतिशास्त्रका नियम है । यदि दूसरे देशका दूत मिल जाय तो राजाको चाहिए कि उसे सम्मानपूर्वक छोड़ दे । अपने सीमाप्रांतमें रहनेवाले निजी दूतोंको बराबर शिक्षा देता रहे । यदि दूसरे राष्ट्रका दूत मिल जाय तो राजाको चाहिए कि सूक्ष्मदृष्टिसे इस बातपर विचार करे कि देशके राजाने किस लिए मेरे राष्ट्रमें दूत भेजा ॥ ३१-३३ ॥ जो अपने आगे चलनेवाले हों या पीछे चलते हों, उनकी सेनापति, मंत्री, अपने प्रतिनिधि, सारथी, चमर जुलानेवाले तथा पास रहनेवाले लोगोंको दान-मानसे प्रसन्न रखे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ देश, काल,

निजमित्रा नृपाः सर्वे तथा स्वसुहृदो नृपाः । सुहृदां सुहृदश्चापि मित्रमित्रान्नरोक्षयेत् ॥३७॥
 निजमित्रबलं दृष्ट्वा मित्रमित्रबलं तथा । बलं स्वसुहृदां चापि स्वसुहृत्सुहृदो बलम् ॥३८॥
 आदौ नृपैः परीक्षया रिपोश्चैव निरीक्षयेत् । के स्वीयाः पार्थिवा राष्ट्रे पारकाया नृपाश्च के ॥३९॥
 सुहृदः स्वनृपाणां च बलं तेषां निरीक्षयेत् । द्रष्टव्यं रिपवः स्वीया रिपूणां रिपवस्तथा ॥४०॥
 दृष्ट्वा रिपूणां रिपुभिः कार्या राज्ञा हि मैत्रिकी । परस्य शत्रुः पान्यो न पान्यश्चेत् पराक्षयेत् ॥४१॥
 पान्यं शत्रुबलं दृष्ट्वा शत्रुमित्रबलं तथा । पान्यं शत्रुसुहृत्सैन्यं दृष्ट्वा पाल्यं सुरक्षयेत् ॥४२॥
 परराष्ट्रे पारमेष्ठिर्नृपो दुर्गाणि पर्वताः । प्ररण्यानि दुर्गमार्गाश्चरमाणां जलाश्रयाः ॥४३॥
 शालव्याः स्वपुरे पूर्वमुद्योगश्च तत्तथरेत् । परराष्ट्रेऽपि युद्धया हि गन्तव्यं पार्थिवैः सुखम् ॥४४॥
 यत्राग्रे गमनं स्वीयं केषां वाच्यं न तत्कदा । पूर्वं गन्तुं निजेच्छा चेन्निक्षिपेदुत्तरे ध्वजम् ॥४५॥
 उत्तराभिमुखः कार्यः सेनावासो नृपेण हि । अग्रेसरं चोत्तरं हि नृपेणः शान्त्य सादरम् ॥४६॥
 क्रोडाद्गन्तै गतं दृष्ट्वा गच्छेत्पूर्वं स्वयं नृपः । एवं ध्वजः कदा याम्ये पश्चिमे वा पराग्निदिशि ॥४७॥
 परराष्ट्रे रोपणीयश्चरकुत्तं तु वेदयेत् । स्वराष्ट्रे गमनं यस्यां दिशि तस्या नृपोत्तमैः ॥४८॥
 रोपणीयो ध्वजः प्रोच्यैः सेनावासस्तथाचरेत् । यन्त्राणां पशुधानां च वाहनानां बलस्य च ॥४९॥
 राज्ञा वृद्धिः सदा कार्या कार्यो धान्यादिमंग्रहाः । राष्ट्रे दुर्गे पुरे स्त्रीये पक्ष्मने निर्वले वने ॥५०॥
 जलाश्रयाः शुभाः कार्याः कृत्वा कोशव्ययं बहु । प्राक्कागर्थेऽथ दुर्गार्थेऽथ जलार्थे यो व्ययः कृतः ॥५१॥
 न श्रेयः स व्ययो राज्ञा श्रेयं रक्षणमात्मनः । धर्मार्थे यो व्ययो जातः सोऽग्रे तेऽस्तु संग्रहः ॥५२॥
 आपदर्थे धनं रक्षेद्दाराजसेद्धनैरपि । आत्मानं सततं रक्षेद्दरैरपि धनैरपि ॥५३॥
 पादमुद्रामिदं द्रव्यं राज्ञा दायो निरीक्षयेत् । नावलोक्यं यथाकालं व्यये तत्क्रोडितसंमितम् ॥५४॥

बल, कोश और अपना उत्साह देखकर अच्छी तरह विचारे और शत्रुके भी बल आदिका निरीक्षण-परीक्षण करे । फिर अपना बल, मित्रबल, मित्रके मित्रका बल और अपने सुहृदके सुहृदोंका बल देखकर राजकां चाहिये कि अपने शत्रुका बलबल देखे । ■ इस वासपर विचार करे कि कौन राजे अपना साथ देनेवाले हैं और कौन शत्रुका ॥ ३६-४० ॥ इसके बाद उसे चाहिये कि शत्रुओंके शत्रुसे मित्रता करे । दूसरेके शत्रुकी पहचान तो रक्षा ही न करे और यदि रक्षा करे भी तो खूब अच्छी तरह देख-भालकर ॥ ४१ ॥ यदि शत्रुकी सेना किसी प्रकार अपने पास आ ही जाय तो उसकी रक्षा करे । शत्रुके मित्रकी सेना एवं शत्रुके सुहृदका सेनाकी भी रक्षा करे ॥ ४२ ॥ दूसरेके राष्ट्रेमें गुप्तचरोंकी नियुक्त करके वहाँके पर्वतों, नदियों, वनों, दुष्टोंके रास्तों, गुप्तचरोंके रास्तों तथा जलाशय आदिकर दृष्टि रखकर अच्छी तरह ■ ले । पहले अपने राज्यकी रक्षाका पूर्ण प्रबन्ध करके ■ किसी दूसरेके राज्यपर बढ़ाई करे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ जहाँ अपनेको जाना हो, वह सन्धी बात कभी किसीको भी न बताये । यदि पूर्वकी ओर यात्रा करना हो तो उत्तरकी तरफ सण्डा भेजे और सेनाके ठहरनेका शिविर आदि भी उत्तरकी ओर ही बनवाये । सेना भी उत्तरकी ओर ही चले, किन्तु आधा कोश आगे जाकर पूर्वकी ओर मुड़कर राजाको जहाँ जाना हो, वहाँ जाय । इसी तरह कभी शत्रुके दक्षिणकी ओर तथा कभी पश्चिम दिशाकी ओर भेजे ॥ ४५-४७ ॥ किसी दूसरे राजाके राष्ट्रेमें अपनेको गाड़कर गुप्तचरों द्वारा वहाँका हाल-बाल जानूस करे । अपने राज्यमें उसी ओर सण्डा गाड़े, जिस ओर अपनेको जाना हो ॥ ४८ ॥ शिविर आदि भी उसी तरफ बनवाये । राजाको चाहिये कि अपने यहाँ तोप-बन्दूक आदि यन्त्र तथा अन्य आयुध, वाहन और सेनाको सदा बढ़ाता हुआ धन-धान्य आदिका भी पली-संग्रह करता रहे । अपने राष्ट्र, किलाओं, बाजारों, अपनी लास राजधानी तथा निजल वनोंमें प्रचुर धन खर्च करके बड़े-बड़े जलाशय बनवा दे । जो धन आस-पासको खाई, किले, जलाशय आदिमें खर्च हो, उसे खर्च न समझे । उसे तो अपनी रक्षाका साधन माने । धर्मकार्यमें जो व्यय हो, उसे भाग्यके लिए संग्रह माने ॥ ४९-५२ ॥ आपत्तिसँ बचनेके लिए धनकी रक्षा करे, धनसे भी श्रेष्ठ समझकर स्त्रीकी ■

न सेनारहितं राज्ञा गंतव्यं स्वपुगाद्वहिः । नैकाकी विचरेद्ग्रामे नैकाकी क्वापि संविशेत् ॥५५॥
 नैकाकी क्वापि वै स्थेयं न पद्मगां विचरेद्दहिः । न गच्छेत्परगेहेषु वारं वारं नृपोत्तमः ॥५६॥
 ■ विष्वसेष्वद्वारपालं जलदं रजकं तथा ॥ भीतवस्त्राणि बुद्ध्या हि नृपः सम्यक् परीक्षयेत् ॥५७॥
 तच्चूलवीटिका प्राद्यांतरा दृष्ट्वा परापिता । परदत्तं जलं प्राक्ष्यं राज्ञाऽक्षिभ्यां विलोक्य च ॥५८॥
 फलानि परदत्तानि परीक्षेत्पार्थिवोत्तमः । दूरस्थितैर्नृपैर्भाष्यं न तेषां निरुद्धे चरेत् ॥५९॥
 समां राज्ञा गंतव्यं द्विवारं स्वैकदाऽप्यवा । अध्यामं समामध्ये स्थेयं राज्ञा न वै चिरम् ॥६०॥
 स्वद्रेष्टा नगराद्राद्याद्वहिः कार्यो नृपोत्तमैः । पादां प्रसार्य न स्थेयं समार्या नृपसत्तमैः ॥६१॥
 न बाहुबन्धनं ज्ञान्वोः कृत्वा स्थेयं नृपोत्तमैः । नातिस्मितं कदा कार्यं समार्या पार्थिवोत्तमैः ॥६२॥
 समार्यां समलैर्वस्त्रैर्न गन्तव्यं कदा नृपैः । गणिका गणका वैद्या गायका बन्दिनो नटाः ॥६३॥
 पण्डिता धर्मशास्त्रज्ञास्तार्किका वैदिका द्विजाः । सदा पाल्या नृपेणैते दानमानैरहर्निशम् ॥६४॥
 ■ विष्वसेष्वपिठाय तोषयेत् धनादिभिः । प्रजानां गौरवं कार्यं दण्डयेच्च वृषा प्रजाः ॥६५॥
 षष्ठेषुक्ताः प्रजाः सर्वा नैव कार्याः कदाचन । राज्यद्वारस्थितैर्दूतैः सर्वैः पार्थिवोत्तमाः ॥६६॥
 हुक्कचकुक्कबन्धाश्च विमुक्तकटिवन्धनाः । सम्यग्दृष्ट्वा न्यस्तश्चस्त्राः प्रेषणीया नृपोत्तमम् ॥६७॥
 राजाज्ञया नृपं नत्वाऽऽसने चोपविशेत्क्रमात् । नृपैर्माण्डलिकैः सर्वैः स्थातव्यं पुरतोऽप्यवा ॥६८॥
 संभार्य हस्ती पादौ च राजन्यस्तत्रिलोचनैः । न हसेद्वाज्रदुरतो न जृम्भेच्च सुवेन्दुदुः ॥६९॥
 ■ ■ धीवनं कार्यं सर्वैर्माण्डलिकैर्नृपैः । आगमे गमने सर्वैर्वन्दनीयो नृपो मूढः ॥७०॥
 नास्युच्चैः संवदेद्वाजसामिध्ये पार्थिवेतरैः । कंचुकेन विना राजा सवार्या नोपसविशेत् ॥७१॥

करे और स्त्री ■ धनसे भी बहुतकर अपनी रक्षा करनी चाहिए ॥ ५३ ॥ अपनी आयमेंसे एक बवसां भी किसीसे पाना हो तो लेकर छोड़े । किन्तु समय पड़नेपर यदि करोड़ोंके खर्चकी पड़ जाय तो खर्च कर दे, कपयका मुंह ■ देखे । अपने नगरके बाहर बिना सेनाके कहीं न जाय । अपने ग्राममें भी लकेला न घूमे-फिरे और न कहीं अकेला बैठे ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ कहीं अकेला न ठहरे, न पैरल बसे और बार बार किसीके घर न जाय । द्वारपाल, पानी देनेवाले सेवक और सांवा इनरर कभी भी विश्वास न करे । कपड़ा गुलकर जाये तो राजाको चाहिए कि अपनी बुद्धिसे खूब अच्छा तरह उसकी परीक्षा करके ही पहने । पानका बीड़ा खानेको जाये तो पहले उसे किसी दूसरेको खिलाकर स्वयं दूसरा बीड़ा खाय । पानी पानेको जाये तो अच्छी तरह उसकी परीक्षा करके अपना आखां देखकर पिये ॥ ५६-५८ ॥ दूसरेके दिये फलोंकी भी भली परीक्षा कर ले । जो राजे मिलने आयें, उनसे दूरसे बातचीत करे । न स्वयं उनके पास जाय और न उन्हें अपने पास आने दे । प्रतिदिन एक या दो बार सभामें जाय और आधे पहरसे अधिक वहाँ न ठहरे । अपनेसे द्वेष करनेवालोंको नगरसे बाहर कर दे । सभामें कभी घेर फेंकाकर न बैठे और न घुटनोंको सिकोड़कर हा बंटा करे । राजाको चाहिये कि सभामें कभी ज्यादा न हंसे ॥ ५९-६२ ॥ सभामें कभी मंसे कण्डे पहिनाकर ■ जाय । गणिका, गणक (उग्रोत्तिथी), वैद्य, गायक, बन्दीजन, गट, पंडित, धर्मशास्त्री, सैनिक, वैदिक तथा ब्राह्मण इनका दान-मान आदिसे सदा सम्मान करता रहे ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ नाईपर कभी विश्वास न करे । उसे हमेशा रुपये-पैसे देकर प्रसन्न रखे । सब लोगोंका सम्मान करता हुआ प्रजाको अर्थ बंध न दे ॥ ६५ ॥ इस बातका ध्यान रखते कि प्रजाके लोगोंको किसी प्रकारका क्लेश होने पाये । राजद्वार-पर रहनेवाले दूतोंको चाहिये जो राजे मिलने आयें, उनके लबादे उतरवाकर परतले खुलवा दे । जो कुछ अस्त्र-शस्त्र उनके पास हों, उन्हें अलग रखवा दे । फिर अच्छा तरह देख-भालकर राजासे मिलनेकी भीतर जाने दे ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ जो कोई राजासे मिलने जाय, वह राजाको प्रणाम करके संकेतित आसनपर बैठे । जो माण्डलिक राजे हों, उनके लिये राजाके सामने कुर्सी डाली जाय । वे राजाके सामने हाथ-पैर समेटकर राजाकी ओर निहारते हुए बैठे । राजाके सामने न हंसे, न जम्हाई ले और न बार-बार लीके ॥ ६८ ॥ न बाद-बार

मृगयायां वारणेन्द्रो नैव हन्यो नृपोत्तमैः । नातर्वत्नी मृगी राज्ञा हन्तव्या विपिने कदा ॥७२॥
 ■ निद्रितश्च हन्तव्यः पित्रधीरं वनेचरः । तथा स्वशरणं प्राप्तो विश्वस्तो वा कदाचन ॥७३॥
 क्रीडासक्तो वने प्राणी नैव हन्यो नृपोत्तमैः । भीमाचारानष्टदिक्षु संस्थाप्य मृगयां चरेत् ॥७४॥
 रात्रौ मित्रेण सहितस्तूर्णीमेव नृपोत्तमः । आत्मानं कवलेनैव सनाच्छाय बहिश्चरेत् ॥७५॥
 पुरद्वारस्थितानां च अर्गलादि निरीक्षयेत् । जनानां मापितं सर्वं श्रोतव्यं हि शुभाशुभम् ॥७६॥
 एवं स्वयं प्रगतव्यमथवा प्रेषयेद्वितम् । रात्रौ रात्रौ पुरे बुद्ध्या श्रोतव्यं सकलेरितम् ॥७७॥
 न कार्यः कलहो गेहे गृहकुल्यं सभास्थितः । न वाच्यमणुमात्रं हि न तूर्णीं ग्रीवनं चरेत् ॥७८॥
 न कङ्क्षेच्च शिरो राजा सभायां स्वकरेण वै । ध्रुवा रिणाशुत्कर्षं न त्यजेद्वैर्यमात्मनः ॥७९॥
 पलायनं न संग्रामाद्राज्ञा कार्यं कदाचन । न रिपूणां निजा पृष्टिर्दर्शनीया कदाचन ॥८०॥
 नोदुपेन तरेद्राजा नदीं मुख्याम् कदापि हि । सेतुं विना नदी राज्ञा नोत्तीर्णा हि कदाचन ॥८१॥
 नोत्तीर्णा नौकया राज्ञा नदी कापि सुतादिभिः । कार्या नैव जलक्रीडा मोक्षाय स्वसुतैः सह ॥८२॥
 ■ स्थेयं इष्टमध्ये हि तथा चैव चतुःपथे । न ताडयेन्निजां पत्नीं तथा पुत्रं न ताडयेत् ॥८३॥
 स्वमुद्राङ्कितपत्रेण विना केषां पुराद्वहिः । न निर्गमः प्रकर्तव्यस्तथैवागमनं नृणाम् ॥८४॥
 कर्तुमाज्ञापनीयं न मुद्रापत्राङ्कितं विना । नाग्नये लृण्डनं चौरैः पथि कार्यं नृपोत्तमैः ॥८५॥
 न कार्यं मुण्डनं राज्ञा विना तीर्थे कदाचन । पर्यंकाले गृहे नैव स्नातव्यं पार्थिवोत्तमैः ॥८६॥
 न पादेन स्पृशेच्चापं न पादेन शरं स्पृशेत् । नातिक्रीडेन्मारिकाभिर्द्विजैर्बादं न वै चरेत् ॥८७॥
 ■ तिष्ठेद्वृद्धारदेशे वै न स्थातव्यं नृपैर्भुवि । राज्ञा मार्गे न वै स्थेयं न खेदं नृपतिर्भजेत् ॥८८॥
 तोयानयनमार्गे हि स्त्रीणां स्तेयं नृपेण ■ । धान्यं समर्थं कर्तुं वै दण्डयेद्व्यवसायिनः ॥८९॥

पुके । जब राजाके सामने जाय और लौटे, तब बराबर राजाको प्रणाम करे ॥ ६९ ॥ ७० ॥ राजाके सामने जोर-जोरसे बात न करे । राजाको चाहिए कि सभामें कबच धारण किये विना ■ बैठे । जब शिकार खेलने जाय तो वहाँ हाथी तथा गमिणी मृगोंका शिकार कभी न करे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ जो जीव पानी पी रहा हो, जो सोया हो और जो भाग करके आन्तो प्रण आया हो, ऐसे जीवोंका शिकार कभी न करे । शिकार खेलने जाय, तब आठों दिशाओंमें कुछ लोगोंको नियुक्त करके शिकार खेलें । रात्रिके समय अपने किसी मित्रके साथ कम्बल ओढ़कर महलमें बाहर निकले ॥ ७३-७५ ॥ पुरद्वारके फाटकोंमें लगे हुए अर्गला-दण्ड आदि देखे । रात्रिमें लोग जो अटपटी बातें कर रहे हों, उन्हें सावधान मनसे सुने । इस प्रकार प्रत्येक रात्रिको स्वयं जाय या अपने विश्वासपात्र मित्रको भेज दिया करे, जो हर रात्रिमें लोगोंकी बातें सुनता रहे । घरमें लड़ाई-झगड़ा न करे । सभामें कोई घरेलू काम-काज न करे । घरसे ■ रखनेवाली कोई बात भी न करे । सभामें चुपचाप बैठे और धुके नहीं । सभामें मिर न खुजलावे । शत्रुका उत्कर्ष सुनकर धैर्य न छोड़े । राजाको चाहिए कि कभी संग्रामभूमिमें भागे नहीं और शत्रुकी कभी अपनी पीठ न दिखाये ॥ ७६-८० ॥ राजाको चाहिए कि कभी अपने बालवच्चोंके साथ नौकापर चढ़कर नदी न पार करे । अपने लड़कोंके साथ नौकापर बैठकर जलक्रीडा न करे ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ बाजारमें या किसी चौराहेपर ■ बैठे । अपनी स्त्री और पुत्रको न धमकाये । राजका मुद्र लगा पत्र देकर लोगोंको अपने नगरसे बाहर जाने दे । यही नियम नगरके भीतर आनेवालोंके लिए भी रखे । वनों तथा रास्तोंमें चोरी करनेवालोंको ऐसा मौका न मिलने पाये, जिससे वे चोरी कर सकें ॥ ८३-८५ ॥ तीर्थके सिवाय किसी दूसरी जगह राजा मुण्डन ■ करायें । कोई पर्यंकाल आ पहुँचे तो घरमें स्नान न करे, बल्कि किसी तीर्थको चला जाय । धनुष और बाणको धरसे न छुए । चौपड़-पचीसी आदि न खेलें । ब्राह्मणोंके साथ ज्यादा वाद-विवाद न करे । अपने द्वारपर तथा खाली जमोनपर न बैठे । रास्तेमें भी कभी न बैठे और किसी तरहका खेद न करे ॥ ८६-८८ ॥ जिस रास्तेसे स्त्रियाँ पानी भरने जाती-आती हों, वहाँ कभी न बैठे । अन्नको सस्ते भावसे

दृष्ट्वा किञ्चिन्महर्षे ■ स्वीयराष्ट्रे हि भूमृता । न्यूनः कार्यः करमारः किञ्चिद्देशसुखाय च ॥९०॥
 नातिशायं कदा कार्यमौदार्यं दर्शयेज्जनान् । द्रव्यं गृहीत्वा गङ्गा हि मोचनीया न तस्कराः ॥९१॥
 सुखं दृष्ट्वा ■ वै कार्यो राज्ञा न्यायः कदापि हि । न न्यायश्च परैः कार्यः स्वयमेव प्रकारयेत् ॥९२॥
 अर्तानां सकलं शुचं श्रोतव्यं सादरं नृपैः । आर्त आकारणीयो हि निकटे कृपया नृपैः ॥९३॥
 आत्मानं मानयेद्यैश्च वैद्यं ■ गणकं नटम् । पण्डितं वैदिकं वीरं गायकं कुतश्चर्मिणम् ॥९४॥
 यज्ञो दानं जपो होमः सन्ध्या ध्यानं शिवार्चनम् । स्नानं पुराणश्रवणं मक्त्या कार्यं नृपोत्तमैः ॥९५॥
 न मादकं वस्तु सेव्यं न कृच्छ्रादिकमाचरेत् । न यात्रा स्वपदा कार्यं सप्तद्वीपाधिपेन हि ॥९६॥
 फलाहारश्च कर्तव्यो राज्ञा एकादशीदिने । निर्जलशोषवासश्च न कार्यः पृथिवीभृता ॥९७॥
 येन यद्याचितं राज्ञे भूसुरेणार्पयेच्च तत् । तस्मै विप्राय राज्ञा हि नृपा भूसुरदेवताः ॥९८॥
 उत्साहे बन्धनान्मोक्ष्या ये ये क्रोधान्सुरक्षिणाः । निजान्नाभंगतां दृष्ट्वा सेवं स्वीयं हृतं शिरः ॥९९॥
 स्वीयदूतापमानो यः स स्वीयश्चितयेन्नृपः । स्वीयदूतस्य सम्मानो राज्ञा ज्ञेयः ■ आत्मनः ॥१००॥
 एवं कुशं मया प्रोक्ता राजनीतिः सविस्तरा । दिनचर्या मया यद्वक्तव्यते त्वं तथा कुरु ॥१०१॥

इति श्रीमत्कोटिरामचरितामृतं श्रीमदानन्दरामायणे राजकाण्डे राजनीतिशिक्षणं

नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः

(कुशकी पुत्री हेमाका स्वयंवर)

श्रीरामदास उवाच

एकदा कुशकन्याया हेमायाश्च स्वयंवरम् । अपोष्पायां चकाराथ रामश्चातिमहोत्सवैः ॥ १ ॥
 समाहूता नृपाः सर्वे नानाद्वीपात्स्थिताः । समाजग्धुः सुवेषाश्च समायां तश्चुरासने ॥ २ ॥

मित्रकान्तेके लिए बनियोंकी दण्ड देता रहे । यदि अपने राष्ट्रमें मैहमी बढ़ जाय तो राजाको चाहिये कि देशको सुखी रखनेके लिए करमार कुछ हल्का ■ ॥ ८६ ॥ ९० ॥ कभी अतिशयता न करे और रुपये लेकर चोरोंकी न छोड़े । राजाको यह उचित है कि मुंहदेखा न्याय न करे । न्याय करनेका भार दूसरोंके ऊपर न डालकर स्वयं करे । यदि कोई दुखी राजाके पास अपना दुःख सुनाने पहुंचे तो राजाको चाहिये ■ दुखियोंके सारे दुःख आदरपूर्वक सुने । दुखिया मनुष्यसे किसी प्रकारकी घृणा न करके उसे अपने पास बुलाये और उसकी दुःखमयी कहानी सुने । किसी तरहका घमण्ड न करे । वंछ, उगीतिषी, नट, पण्डित, वैदिक, वीर, गायक और धर्मात्मा इनका आदर करे । यज्ञ, दान, जप, हंम, सन्ध्या, शिवार्चन, स्नान और पुराणश्रवण आदि शुभ कार्य मक्तिपूर्वक करता रहे ॥ ९१-९५ ॥ राजाको चाहिये कि प्रत्येक एकादशीको केवल फलाहार करके रहे और कभी भी निर्जल उपवास न करे । राजाके समीप पहुंचकर ब्राह्मण जो मारे, सो दे । क्योंकि ब्राह्मण देवताके समान होता है । श्रोत्रवश जिन-जिन लोगोंको जेलमें डाल दिया गया हो, कोई प्रस्तावका समय आनेपर उन्हें छोड़ दे । यदि किसीके द्वारा आज्ञा भंग हो रहा हो तो ■ सिर कट गया समझे । अपने दूतका अपमान अपना अपमान और अपने दूतका सम्मान ■ सम्मान जाने । हे कुश ! ■ प्रकार मैंने तुम्हें सारी राजनीति बतला दी । रह गयी दिनचर्याकी बात, सो ■ जैसा करता हूँ वैसे ही तुम भी करते चलो ॥ ९६-१०१ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पंच रामदेवपाण्डेयविरचिते ज्योत्स्नाभाषाटीकासमन्विते राजकाण्डे षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—रामने एक समय कुशकी पुत्री हेमाका स्वयंवर बड़े धूमधामके साथ ठाना । उसमें द्वीप-द्वीपाभ्यन्तरके अनेक राजे अपने-अपने वस्त्राभूषणसे सुसज्जित होकर आये और सुन्दर-सुन्दर

ययुर्देवाः सगन्धर्वा मुनयोऽपि समाययुः ॥ ३ ॥

तदा समायामानीता हेमालङ्कारभूषिता । आरुह्य शिबिकायां रुक्ममय्यां धरानना ॥ ४ ॥
नवरत्नमयीं मालां धिभ्रती सा स्वयम्बरा । ददर्श नृपतीन्सर्वाभ्युपगान्सविस्तरम् ॥ ५ ॥
तद्भूषापविनिर्मुक्तैस्तत्कटाक्षपतत्रिभिः । संभिन्नास्ते नृपाः सर्वे के वयं न विदुस्तदा ॥ ६ ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्रावन्तिनाथसुतो महान् । चित्रांगदो सभायाश्च तां जहार कुशात्मजा ॥ ७ ॥
दृष्ट्वा कार्यान्तरव्यग्रान्नामादीन्वेगवत्तरः । मोहनास्त्रेण सकलान्वीरान् कृत्वातिमोहितान् ॥ ८ ॥
रथे निवेश्य तां हेमां हेमामां वेगवत्तरः । चित्रांगदो बहिर्गत्वा क्रोशमात्रे स्थितोऽभरत् ॥ ९ ॥
किं तृष्णीं चौरवन्नेया मयेयं कुशत्रालिका । इति निश्चित्य मेधावी तस्यौ चित्रांगदो महान् ॥ १० ॥
एतस्मिन्नन्तरे पुर्यां हाहाकारो महानभूत् । नीता हेमा चोग्रबाहोः पुत्रेणातिबलीयसा ॥ ११ ॥
नृपाः सर्वे समुत्स्थुः सभायां स्तिन्नमानसाः । उपसंहारिते तेन मोहनास्त्रेऽतिसम्भ्रमात् ॥ १२ ॥
चित्रांगदेन योद्धुं ते स्वसैन्यैर्भिर्ययुर्नृपाः । बहिः साकेतनगरात् क्रोधादारक्तलोचनाः ॥ १३ ॥
तृष्णीमेवोग्रबाहुः स ददर्श पुत्रकौतुकम् । एतस्मिन्नन्तरे सर्वे तद्रथं पार्थिवोत्तमाः ॥ १४ ॥
सन्वेष्ट्य कोटिभ्यः स्रस्त्रैर्वर्षुश्चोग्रबाहुजम् । तदा चित्रांगदो वीरो वायव्यास्त्रेण पार्थिवान् ॥ १५ ॥
भगने भ्रामयामास बाहनायैः समन्वितान् । ततो रामाज्ञया सप्त लबाद्या निर्ययुः पुरात् ॥ १६ ॥
उत्सवार्थं सभायास्ताः स्वस्वराज्यात् बालकाः । अङ्गदाद्या निजैः सैन्यैः सलबाः सन्नरं ययुः ॥ १७ ॥
तदा बभूव तुमुलं युद्धं तल्लोमहर्षणम् । चित्रांगदं वर्षुस्ते नानाशस्त्राणि राघवाः ॥ १८ ॥
चित्रांगदः स्वषाणौर्ध्वभिष्वा शस्त्राणि तानि हि । निजवर्णैर्युष्पकेतुं चकार विरथं क्षणात् ॥ १९ ॥
तथा चकार विरथं सुबाहुं पृष्करं तथा । तथैकं चित्रकेतुं च सङ्गदं बलवत्तरः ॥ २० ॥

आसनोपर बैठे । यह बात राजाओं हो ॥ नहीं थी, बल्कि देवता, गन्धर्व, ऋषि-मुनि, विद्याधर, नाग, किन्नर ॥ आ-आकर उस उत्सवमें सम्मिलित हुए थे । इन सबके आ जानेपर एक सुवर्णकी पालकीमें बैठी सुधुली सुन्दरी हेमा हाथोंमें नवरत्नोंसे बनी माला लिये आ पहुँचा । समाके प्राङ्गणमें पहुँचकर उसने वहाँपर बैठे हुए समस्त राजाओं तथा राजपुत्रोंकी ओर ध्यानसे देखा ॥ १-५ ॥ हेमाकी मोहकपी धनुषसे छूटे हुए कटाक्ष-रूपी बाणोंसे घायल होकर सबके सब राजे अपने आपको भूल गये । उनको यह भी ॥ न रहा कि हम कौन हैं । उसी समय अत्रन्तिदेशके राजा अग्रबाहुका पुत्र चित्रांगद कुशकी पुत्रीका हरण करके ले भागा । उसने देखा कि राम आदि बड़े-बड़े अपने कर्मोंमें व्यस्त हैं । वस, उसने एक मोहनास्त्र छोड़ा । जिससे वहाँ निमग्नतामें आये हुए राजे मोहित हो गये । तब वह सुवर्णके ॥ तेजस्विनी हेमाको रथपर बिठाकर भगा ले गया और वहाँसे एक कोसकी दूरीपर जाकर रुका । उसने अपने मनमें सोचा कि चौरोंकी तरह हेमाकी लेकर भाग जाना ठीक नहीं है । इसलिए वहाँ वह ठहर गया ॥ ६-१० ॥ उधर सारी पुरीमें यह हाहाकार मच गया कि राजा अग्रबाहुका पुत्र चित्रांगद हेमाका हरण ॥ ले गया ॥ ११ ॥ चित्रांगदके द्वारा मोहनास्त्रका संवरण हो जानेपर ॥ राजे होशमें आकर उठे और अपनी-अपनी सेना लेकर क्रोधसे लाल-लाल आँखें किये अयोध्यासे बाहर निकले ॥ १२ ॥ १३ ॥ वहाँपर ही बैठा हुआ राजा अग्रबाहु अपने पुत्रका कौतुक देख रहा था । उसी समय ॥ राजे चित्रांगदके पास पहुँचे और उसका रथ चारों ओरसे घेरकर शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे । तब चित्रांगदने वायव्य अस्त्र चलाया । जिससे सब राजे अपनी सेना तथा बाहुनके साथ बाकायशमण्डलमें उड़ने लगे । इसके अनन्तर रामकी आज्ञासे लव आदि सातों बेटे नगरसे निकल पड़े । उनके अतिरिक्त उत्सव-में आये हुए राजकुमार भी अपनी-अपनी सेना लेकर लड़नेको बल दिये । ॥ समय चित्रांगदके साथ रौंगड़े सजे कर देनेवाला तुमुल युद्ध होने लगा । रघुर्वंशके ॥ बालक चित्रांगदपर विविध प्रकारके अस्त्र-शस्त्र चलाने लगे ॥ १४-१५ ॥ अपने बाणोंसे प्रहार बचाते हुए चित्रांगदने अपने शस्त्रोंसे क्षणभरमें धूपकेतुका रथ ॥ कर डाला । उस वीर बालकने थोड़ी ही देरमें सुबाहु, पृष्कर, सप्त, चित्रकेतु तथा अंगदको भी विरथ कर

तद्दृष्ट्वा कौतुकं तस्य ज्ञात्वा तत्रापसः फलम् । लवश्चिच्छेद बाणौघैस्तदनुर्दिव्यश्रमम् ॥२१॥
 ततो लवः स्वबाणौघैरुग्रबाहुसुतं मुदा । चकार व्याकुलं शीघ्रं तद्दृष्ट्वा लवचेष्टितम् ॥२२॥
 उग्रबाहुर्ययौ योद्धुं लवेन वेगवचरः । लवस्तमपि बाणौघैश्चकार विरथं क्षणात् ॥२३॥
 उग्रबाहुस्तदा वीरोऽन्ये रये चाकरोह सः । ववर्ष निशितैर्बाणैर्मूर्छयामास तं लवम् ॥२४॥
 लवं विमूर्छितं दृष्ट्वा हाहाकारो महानभूत् । तदा ययौ कुशो योद्धुमुग्रबाहुनृपेण ॥२५॥
 कुशमागतमाज्ञाय खड्गदाद्यास्तदा पुनः । रथस्था युयुधुस्तेन उग्रबाहुनृपेण वै ॥२६॥
 पुनस्तानखड्गदादींश्च चकार विरथान्नुपः । तदा कुशः स्वबाणौघैरुग्रबाहुं नृपं क्षणात् ॥२७॥
 चकार विरथं वीरश्चिच्छेद तस्य कर्मुकम् । उग्रबाहुस्तदा व्यग्रो बभूव चकितस्तदा ॥२८॥
 तं घृत्वा स कुशस्तोषाद्वादयामास दुन्दुभीम् । अथोग्रबाहुं समुतं निन्ये श्रीरामसन्निधिम् ॥२९॥
 रामस्तं मोक्षयामास मत्वा तं सुहृदं वरम् । तदा रामो विजयिने कङ्कणं मुनिनाऽर्पितम् ॥३०॥
 ददौ कुशाय प्रीत्या पुनः कुम्भजन्मनः । कुशस्तदाऽतिशुश्रुभे वरकंकणमण्डितः ॥३१॥
 तदा कुशो मुनिं नत्वा तं कुम्भसम्भवम् । त्वया लब्धं कुतश्चेदं कङ्कणं वद मां मुने ॥३२॥
 वचनं श्रुत्वाऽगस्तिः प्राह कुशं मुदा । पुरेन्द्ररिपवो वत्स बहवः सागरेण हि ॥३३॥
 कृताः स्वातर्निवासाश्च तदाऽहं नाकपार्थितः । कृत्वा स्वचुलुकेऽन्धि तं पीतवाँल्लीलयैव हि ॥३४॥
 ततो मुतां द्वीपयोर्हि मर्यादां मध्यवर्तिनीम् । दृष्ट्वा पुनर्नाकपेन प्रार्थितो हतशत्रुणा ॥३५॥
 मूत्रवत्सागरं भीमं सजीवं मृत्तवानहम् । तदाऽन्धिनाऽर्पितं मयां कुश तत्कङ्कणं वरम् ॥३६॥
 नानारत्नविचित्रं च रचितेजोविराजितम् । तद्रामायार्पितं पूर्वं मया तेन तवार्पितम् ॥३७॥

दिया । इस कौतुकको देखकर लवने [] लिया कि यह [] चमत्कार उसकी तपस्याका है । यह विचार-
 कर लवने अपनी बाणवर्षासे चित्रांगदके [] उत्तम धनुषको काट डाला और इतनी शीघ्रतासे बाणवर्षा की
 कि चित्रांगद व्याकुल हो गया ॥ १६-२२ ॥ ऐसी अवस्थामें उग्रबाहु । चित्रांगदका पिता) स्वयं लवके साथ
 युद्ध करनेके लिये रणमें उतर पड़ा, किन्तु लवने थोड़ी ही देरमें उसका भी रथ [] दिया । [] उग्रबाहु
 पुरन्त एक दूसरे रथपर बैठकर युद्ध करने लगा और अपने तीनों बाणोंको मारसे लवकी मूर्छित कर दिया ।
 उसे मूर्छित देखकर संप्रामभूमिमें हाहाकार मच गया । तभी उग्रबाहुसे युद्ध करनेके लिए [] दूसरा पुत्र कुश
 भी आ पहुंचा । कुशको आया देखकर वे अङ्गद आदि रघुवंशो राजकुमार रथोंपर बैठ बैठकर उत्साहपूर्वक
 उग्रबाहुसे युद्ध करने लगे । किन्तु उग्रबाहुने अपने युद्धकीगलसे थोड़ी ही देरमें अङ्गद आदि सभी राजकुमारोंके
 रथोंको नष्ट कर डाला । उधर अपने आत्माओंपर प्रहार करते देखकर कुशने उग्रबाहुको क्षणभरमें विरथ
 कर दिया और उसका धनुष काट डाला । उग्रबाहु [] समय आश्रयके साथ अग्र हो उठा ॥ २३-२७ ॥
 तब कुशने सटपट उन बाप-बेटोंकी बन्दी [] लिया और अपनी विजयदुन्दुभी वजवा दी । चित्रांगद तथा
 उग्रबाहुको अपने साथ लेकर कुश रामचन्द्रजीके सामने गये । वहाँ पहुँचनेपर उग्रबाहुको अपना मित्र समझ-
 कर रामने छुड़ा दिया और विजयी कुशको अगस्त्य ऋषिके समक्ष अगस्त्यका ही दिया हुआ कङ्कण दिया । उस
 कङ्कणके पहिनेसे कुशकी मोमा और भी बढ़ गयी ॥ २८-३१ ॥ इसके बाद कुशने अगस्त्यऋषिसे कहा—
 हे मुने ! आपने यह कङ्कण कहाँ पाया था ? मैं हमसे कहिए ॥ ३२ ॥ कुशकी बात सुनकर अगस्त्यने कहा—
 हे वत्स ! आजके बहुत [] पहले इन्द्रके बहुतेरे शत्रु समुद्रके भँतर घर बनाकर रहा करते थे । इन्द्रके
 प्रार्थना करनेपर मैंने समुद्रको बुल्लूम भरकर पो लिया । जब इन्द्रने अपने सारे शत्रुओंको मार डाला, तब दो
 द्वीपोंके मध्यकी सोमाकी नष्ट देखकर इन्द्रने मुझसे समुद्रको फिर पूर्ववत् बना देनेकी प्रार्थना की ॥ ३३-३५ ॥ तब
 मैंने पूत्रके मागसे फिर समुद्रको सजीव करके बहा दिया । उसी समय समुद्रने मुझे उपहारके रूपमें यह कङ्कण
 दिया था ॥ ३६ ॥ अनेक प्रकारके रत्नोंसे जटित तथा सूर्यके तेजकी नाई तेजोमय यह कङ्कण मैंने रामको []

तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा कुशस्तं प्राह वै पुनः । लवस्य जीवनोपायं वद मामद्य नो मुने ॥३८॥
 कुशस्य वचनं श्रुत्वाऽगस्तिस्तं प्राह सादरम् । विमृञ्छितो यदा पूर्वं भरतः पथि पार्धिवैः ॥३९॥
 मूर्छितः पतितश्चास्ति रणे विपुशरैर्हृतः । मुद्गलाश्रमतो बल्ल्यस्तदाऽऽनीताः शुभाश्रवाः ॥४०॥
 सौमित्रिणा तदाऽद्य त्वं मुद्गलाश्रमतः पुनः । महौषधी समानीय जीवयैनं लवं जवान् ॥४१॥
 अथवा त्वं हन्मन्तं प्रेययस्वाश्रमं मुनेः । एवं यावच्च ■ मुनिः कथयामास तं कुशम् ॥४२॥
 तावच्चद्रवचनं श्रुत्वा मुनेर्मरुतिना क्षणात् । समानीयाश्रमाद्गच्छीर्मुद्गलस्य तपोनिधेः ॥४३॥
 तामिस्तं जीवयामास लवं सैन्यसमन्वितम् ।

विष्णुदास उवाच

गुरो तस्यैव च मुनेर्मुद्गलस्याश्रमे कथम् ॥४४॥

मृतसंजीवनीवज्यादिका बल्ल्योऽत्र निर्गताः । कथं ता हि समीपस्था विस्मृत्य द्रोणपर्वतम् ॥४५॥
 प्रेषितोऽज्ञानिपुत्रः स तेन आम्बवता पुरा । अमुं मत्संशयं छिन्धि कृपां कृत्वा मुनीश्वर ॥४६॥

श्रीरामदास उवाच

यदा मातुर्विमोक्षार्थममृतस्य खगाधिपः । कलशं स्वमुखे धृत्वा नाकलोकात्समानयत् ॥४७॥
 तदा तत्कलशाद्देगाद्विदुस्तत्रापतत्पुरा । तदंतोर्मुद्गलस्यापि मुनेस्तपःप्रभावतः ॥४८॥
 आसन् बल्ल्यश्च तस्यैव आश्रमे हि द्विजोत्तम । नेता वेद शुभा कल्लीजीवयान्त वनेचरः ॥४९॥
 द्रोणाचलं त्वतस्तेन प्रेषितो वायुनन्दनः । इति त्वया यथा पृष्टं तथा ते विनिवेदितम् ॥५०॥
 इदानीं शृणु शिष्य त्वं शुभां तां प्राक्तनीं कथाम् । ततो लवादिकाः सर्वे यपूस्ते स्वपुरीं मुदा ॥५१॥
 नत्वा मुनिं च रामार्दीस्तत्पुः श्रीराघवाग्रजः । तत्रा महोत्सवश्चास्तीत्युर्था तल्लवदर्शनात् ॥५२॥
 सतो दृष्ट्वा लवं रामो जीवितं वायुजेन हि । समालिख्य दृढ प्रेम्णा परं तोषयन्नाप सः ॥५३॥

दिया और रामने इसे आज तुम्हें दिया है ॥ ३७ ॥ मुनिकी बात सुनकर कुशने कहा—अब हमें कोई ऐसा उपाय बतलाइए, जिससे ■ जीवित हो जाय ॥ ३८ ॥ वह इस समय शत्रुओंके अस्त्रोंसे घायल होकर रणभूमिमें पड़ा हुआ है । कुशकी प्रार्थना सुनकर अगस्त्यने कहा—उस ■ जब कि जनकपुरके मार्गमें राजाओंने भरतकी भूर्छित कर दिया था, तब मुद्गल ऋषिके आश्रमसे कल्याणदायिनी लताएँ लक्ष्मण द्वारा आयी थीं । उसी प्रकार आज तुम मुद्गलके आश्रमसे वह लता लाकर ■ भी जीवित कर सों ॥ ३९-४१ ॥ अथवा हनुमान्जीको भेज दो । ■ हो वह लता ले आयेगे । मुनिकी बात सुनते ही हनुमान्जी फल पड़ और थोड़ी ही देरमें मुद्गल-ऋषिके आश्रमसे वह लता लाकर रस दो ओर उन्हीं लताओंसे कुशने क्षणमात्रमें सेना समेत लवको जीवित ■ लिया । इतनी कथा सुनकर विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! वे मृतसंजीवनी लताएँ मुद्गल ऋषिके आश्रमपर आकर कैसे उग गयीं । फिर जब ■ इतनी समीप थीं, ■ लक्ष्मणकी मूर्छाके समय जाम्बवान्ने हनुमान्जीको द्रोणाचलपर क्यों भेजा—हे मुनीश्वर ! मेरे ऊपर कृपा करके मेरी इस जकाका समाधान कीजिये ॥ ४२-४६ ॥ श्रीरामदासने कहा—जिस समय अपनी माताको छुड़ानेके लिए गहड़ स्वर्गसे घोंचमें अमृतकलश लेकर चले तो मुद्गल ऋषिके आश्रमपर जाते ही कलशमेंसे अमृतकी एक बूंद यहाँ गिर पड़ी । इसीलिए और ऋषिके तपोबलसे उसी स्थानपर वे मृतसंजीवनी बल्लरियाँ उग गयीं । वनचर जाम्बवान् इस स्थानकी लताओंको जानते ही नहीं थे । इसी कारण हनुमान्जीको द्रोणाचलपर भेजा था ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ जैसा तुमने प्रश्न किया, मैंने उसका उत्तर दे दिया । अच्छा, अब अपनी पुरानी कथापर आ जाओ—उसे सावधान मनसे सुनो । उस औषधिसे जीवित ■ आदि वीर लौटकर सह्यं अपनी अयोध्यापुरीमें आ गये ॥ ४९-५१ ॥ रामकी समीपमें पहुँचकर लव आदिने वसिष्ठजीको प्रणाम किया और रामके सामने बैठ गये । लवकी देखनेसे उस रोज पुरीभरमें बड़ा उत्साह था । अब रामने देखा कि हनुमान्जीके पुरुषार्थसे लव जीवित होकर

ततो रामो वायुजाय कंकणे रत्नमण्डिते । ददौ परमसंतुष्टस्ताभ्यां स शुश्रुमे कपिः ॥५४॥
 ततो लक्ष्म्य श्रीरामस्त्वपरं कंकण वरम् । ददावगस्तिना दत्तं पूर्वं यद्रत्नमण्डितम् ॥५५॥
 लवस्तेनातिशुभे वरकंकणमण्डितः । लवस्तदा मुनिं प्राह नत्वा तं कुम्भसम्भवम् ॥५६॥
 त्वया लब्धं कुतश्चेदं कंकणं वद मां मुने । तवस्तद्वचनं श्रुत्वाऽगस्तिः प्राह लवं मुदा ॥५७॥
 एकदा दंडकारण्येऽहं स्नातुं हि गतः सरः । तस्मिन्स्नात्वा नित्यविधिं कृत्वा तत्र स्थितः सप्तमृ५८
 एतमिन्नंतरे तत्र खात्स्वर्गी मयुषागतः । दिव्यं विमानमारुढः श्वेतस्त्रीपरिवेष्टितः ॥५९॥
 दिव्यमान्धावरधरो दिव्यगन्धादिचर्चितः । स स्वर्गी खात्स्वर्गमायातो यावत्तावत्सरोवरात् ॥६०॥
 शवं विनिर्गतं श्रेष्ठं स्फुरितं हि भयंकरम् । दुर्गन्धसहितं दुष्टं प्राप्तं तत्सरमस्तदम् ॥६१॥
 अवस्था विमानमधस्त स्वर्गी तच्छवं ययौ । छित्वा तच्छवमांसं वै भक्षयामास सादरम् ॥६२॥
 ततः पीत्वा जलं स्वर्गी विमानं चारुसोह सः । निमग्नं तच्छवं चापि पुनस्तमिन्सरोवरे ॥६३॥
 स्वर्गिणं गतुकामं तं दृष्ट्वाहं चातिविस्मितः । अमुवं मधुरं वाक्यं रे रे दिव्यस्वरूपयुक् ॥६४॥
 क्षणं तिष्ठोत्तरं देहि कीर्तुकं ते मयेश्वरम् । ईदृशस्ते श्वाहारः कथं स्वर्गनिवासिनो ॥६५॥
 इति मद्वचनं श्रुत्वा स्वर्गी प्राह मां तदा । सम्पदं पृष्टं त्वया ममन् मृणु सर्वं मयोच्यते ॥६६॥
 सुदेवाख्यो हि वैदर्भी नृपतिश्चामवत्पुता । तत्पुत्री श्वेतसुरथी श्वेतोऽहं पार्थिवोऽभवम् ॥६७॥
 नैव दानं मया तस्मिन् जन्मन्यत्र कृतं कदा । स्वीयगजपमरोद्भातः पापकर्मरतः सदा ॥६८॥
 ततोऽपुत्री त्वहं राज्ये कृत्वा तं सुरषानुजम् । वार्थके तु वनं प्राप्तपस्तीवं समाचरम् ॥६९॥
 एकदा स्नातुमुद्युक्तो निमग्नोऽहं सरोवरे । ततो मृतो दिवं प्राप्तस्त्वहं स्वीयतपोवलात् ॥७०॥

सामने बैठे । तो प्रेमपूर्वक माधविको छातीसे लगा लिया और बड़े प्रसन्न हुए ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ इसके बाद रामने हनुमान्जीको रत्नोंसे सजित दो कंकण दिये । जिनमें पहलनेसे हनुमान्जी बहुत सुन्दर दीखने लगे । फिर रामजीने एक दूसरा कंकण जिसे अगस्त्यजीने दिया था, वह लवको दे दिया । उस बहुमूल्य कंकणको पहि-
 ननेसे लव भी अतिशय सुशोभित हुए । तब लवने अगस्त्यजीको प्रणाम करके कहा— ॥ ५४—५६ ॥ हे मुनिराज ! यह कंकण आपको कहाँ मिला था ? सो हमें बतलाइए । इस प्रकार लवका सुनकर अगस्त्य परम प्रसन्नतापूर्वक कहने लगे— ॥ ५७ ॥ एक बार मैं दण्डकारण्यमें एक सरोवरपर करने गया । वहाँ स्नान-नित्यकर्म आदि लेनपर मोड़ी देरके लिए बैठ गया ॥ ५८ ॥ इसी बीच आकाशमार्गसे एक स्वर्गीय प्राणी संकड़ों स्त्रियोंसे घिरा हुआ दिव्य विमानपर आरुढ़ होकर वहाँ ॥ ५९ ॥ दिव्य माल्य आदि धारण किये हुए दिव्य गन्धसे अर्चित था । उस स्वर्गीके आते ही सरोवरसे एक भयानक दूषित तथा दुर्गन्धपूर्ण शव निकलकर सटपर आ लगा ॥ ६० ॥ ६१ ॥ इसके अनन्तर वह स्वर्गीय प्राणी अपने विमानसे उतरकर उस लवके पास पहुँचा और उसके मांसको उसके बड़े प्रेमसे खाया । फिर जल पिया और अपने विमानपर आ बैठा । ऊपर फिर दृढ़ गया । गमनोन्मुख स्वर्गीके पास पहुँचकर मैंने उससे कहा— हे दिव्यस्वरूपधारिन् ! थोड़ी देरके लिए रुककर मेरी बातोंका उत्तर देते आओ । तुम्हारे इस कार्यको देखकर मुझे बड़ा कौतूहल हुआ है । अच्छा, हमें यह बतलाओ कि इस प्रकार स्वर्गीय प्राणी होकर भी तुम मुर्दा क्यों खाते हो ? ॥ ६२—६५ ॥ मेरी बात सुनकर उसने उत्तर दिया— हे महान् ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । सुनो, मैं सब बतलाता हूँ पूर्वसमयमें विदर्भ देशके अधिवसि सुदेव नामके एक राजा थे । उनके श्वेत और सुरष नामके दो पुत्र थे । जिनमें श्वेत मैं था और राजा भी मेरे ही हाथोंमें था ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ उस कल्पमें राज्यमदसे मत्त होकर मैंने कोई दान नहीं किया । हमेशा पापकर्ममें रत रहा ॥ ६८ ॥ मेरे कोई चन्तति नहीं थी । इसलिए वृद्धावस्थामें अपने छोटे भाई सुरषको मैंने राज्यासनपर बिठा दिया और अंगलमें जाकर कठोर तपस्या करने लगा । एक बार स्नान करनेके लिए एक सरोवरमें डुबकी लगायी तो वहीं डूबकर मर गया । मरनेके अपनी तपस्याके प्रभावसे मैं स्वर्गलोकमें पहुँचा । तपस्याके नहीं

तपसश्च फलैस्तत्र ममासन्तर्जमपदः । अष्टा भक्षितुं किञ्चिन्मया पृष्टः सुराधिपः ॥७१॥
 वर्तन्ते विविधास्तत्र मम भोगाः सुदुर्लभाः । कथं नासीद्भक्षणार्थं कथं मेऽत्र सुखं भवेत् ॥७२॥
 इति मद्रचनं श्रुत्वा मामिन्द्रः प्राह सस्मितः । नैव दानं त्वया भूर्मा कृतं राज्यमदन हि ॥७३॥
 अदत्तं लभ्यते नैव नृप पुण्यैः क्रदेतरैः । अतस्त्वं प्रत्यहं गत्वा विमानेन सरोवरम् ॥७४॥
 मध्वयस्व श्वं पुष्टं मिष्टान्नैः पोषितं च यत् । चिरकालं भवेत्तत्तं क्षयं यास्यति नैव तद् ॥७५॥
 इतीन्द्रवचनं श्रुत्वा ■ पृष्टश्च पुनर्मया । दिव्यान्नानि कथंचाहं प्राप्नुयां तद्वदस्व माम् ॥७६॥
 इति मद्रचनं श्रुत्वा तदेन्द्रः प्राह मां पुनः । अधुना दण्डकारण्यं वर्तते हानमानुषम् ॥७७॥
 विंध्यवृद्धिनिषेधार्थमगस्तिः सुरयाचितः । यदा यास्यति पत्न्या वै मुक्त्या काशीं हि दण्डकम् ॥७८॥
 सरस्यस्मिस्तदा स्नात्वा स्थितं पश्यसि तं मुनिम् । तदा तस्मै कंकणं स्वं देहि तोयः परिप्लुतम् ॥७९॥
 तेन कंकणदानेन दिव्यान्नाः प्राप्स्यसे नृप । इतीन्द्रवचनं श्रुत्वा तदारभ्य चिरं मुने ॥८०॥
 अत्रागत्य शवाहारः क्रियते वै सदा मया । एतावत्कालवर्षतं नात्र कश्चिन्मयेक्षितः ॥८१॥
 मया दृष्टस्त्वमेवात्र वेष्टि त्वां कुम्भसंभवम् । अद्य त्वया तारितोऽहं दानं स्वीकृतं मे त्विदम् ॥८२॥

इत्थं स्वर्गीय मासुखत्वा ददौ कंकणमुज्ज्वलम् । मयां सार्द्रं ततः स्वर्गं ययौ स्वर्गी मुदा पुनः ॥८३॥
 तदारभ्य श्वं तोयात्तद्वदिस्तत्र ययौ कदा । दिव्यान्नानि तु संप्राप नाकलाके यथासुखम् ॥८४॥
 इति यत्कंकणं लब्धं मया लव पुरा वने । अपितं राघवायेदं तेन तथापि तैर्जपितम् ॥८५॥

श्रीरामदास उवाच

इत्यगस्त्यवचः श्रुत्वा लवः पप्रच्छ तं पुनः । किमयं दण्डकारण्यं तद्वभूव विजनं वद ॥८६॥

अगस्त्य उवाच

इत्थाह्वयसंभूतोऽभून्नृपो विंध्यदक्षिणे । नाम्ना दण्डकेति स्यात्तः पापकर्मरतः सदा ॥८७॥

सब चीजें तो विद्यमान थीं, लेकिन खानेक लिए कुछ नहीं था । तब मैंने इन्द्रसे कहा—हे देवेन्द्र । यहाँ मेरे भोगनेके लिए तो और सब कुछ है, किन्तु खानेक लिए कुछ भी नहीं मिलता । बताइए, इस तरह मैं क्योंकर सुखी रह सकूँगा ॥ ६९-७२ ॥ मेरी बातको सुनकर मुस्कराते हुए इन्द्र कहने लगे—तुमने राज्यमद वल पृथ्वीपर कोई दान नहीं किया था । बिना दिये कुछ नहीं मिलता । इसलिए तुम प्रतिदिन विमानसे जाकर उस मिष्टान्तसे परिपुष्ट अपने शरीरको खा आया करो । बहुत बहुत दिनों नष्ट न होकर उद्योका ल्यों रहेगा ॥ ७३-७५ ॥ इस प्रकार इन्द्रकी बात सुनकर मैंने कहा—यह बतलाइये कि मुझे स्वर्गीय अन्न किस तरह प्राप्त होगा ? मेरी बात सुनकर इन्द्रने उत्तर दिया कि अद्य तो दण्डकारण्य मनुष्यविहीन है । जब विंध्य पर्वतकी वृद्धि रोकनेके लिए अगस्त्यजी देवताओंके प्रार्थना करनेपर काशी छोड़कर दण्डकारण्यको जायें, तब तुम उसी सरोवरमें स्नान करके अपना कंकण उन ऋषिको दे देना ॥ ७६-७९ ॥ उस कंकणके दानसे तुम्हें स्वर्गीय अन्न मिलने लगेगा । अतएव इन्द्रके आज्ञानुसार मैं बहुत दिनोंसे आकर यह सब खाया करता हूँ । इतने दिन बीत गये, किन्तु यहाँ मुझे कोई नहीं दिखाया पड़ा ॥ ८० ॥ ८१ ॥ आज तुम्हों दीख रहे हैं । इससे जात होता कि तुम अगस्त्य ऋषि ही हो । आज तुमने मेरा उद्धार कर दिया । अब कृपा करके मेरे दानको स्वीकार करो ॥ ८२ ॥ अगस्त्यने कहा कि इस तरह कहकर उस स्वर्गीय प्राणीने अपने कंकण उतारकर हमें दे दिये और प्रसन्न मनसे विमानपर सवार होकर स्वर्गलोकको चला गया । तबसे वह उस सरोवरमें कभी नहीं उतराया और वह स्वर्गी स्वर्गलोकमें दिव्य अन्नोंको पाने लगा । हे लव ! मैंने जिस कङ्कणको उस दण्डकारण्यमें पाया था, उसे रामको दिया और रामने आज आपको ■ है । श्रीरामदासने कहा—तब लवने अगस्त्यसे पूछा कि उस वनका दण्डक यह क्यों पड़ा ? कहने

एकदा स धनं यातो मृगयार्थं स्वसेनया । ततो दृष्ट्वा मृगं राजा मृगपृष्ठे प्रदुद्भुवे ॥८८॥
 एकाकी हयमारुढो देशादेशान्तरं ययौ । एवं हि गच्छतस्मस्य मृगोऽदृश्योऽभवत्सदा ॥८९॥
 ततः सोऽतिहृषाकांतः प्रययौ वै जलाशयम् । तत्र पीत्वा जलं स्वच्छं ॥ राजा सरसस्तटे ॥९०॥
 अज्ञात्वा स्वगुणेश्वरं भृगोराश्रममाययौ । तत्र तातविद्वानां तामरजस्कां भृगोः सुताम् ॥९१॥
 दृष्ट्वा चन्द्राननां राजा सोऽभूत्कामविमोहितः । ततस्तां प्रार्थयामास रत्यर्थं साऽब्रवीन्नृपम् ॥९२॥
 स्ववक्षा नृप नैवाहं ताकाधानाऽस्मि सांप्रतम् । वहिर्भृगुस्तव गुरुगतस्त्वां वेद्म्यहं नृपम् ॥९३॥
 यदि मामिच्छसि एवं हि तर्हि तं स्वगुरुं भृगुम् । प्रार्थयित्वा भज मुखं मां पत्नीं त्वं विधाय ॥९४॥
 इत्पुक्तोऽपि तथा राजा दंडस्तां कामपीडितः । भुक्त्वा सुखं बलादेव जगाम नगरीं निजाम् ॥९५॥
 ततोऽरजस्का सा बाला दृष्ट्वा तातं समागतम् । ओचन्ती सकलं वृत्तं श्रावयामास विह्वला ॥९६॥
 तद्भुत्तं स मुनिः भुत्वाऽञ्जलीं कृत्वा जलं क्रुधा । अभवीत्स्वसुतां बालां सांस्वयन् रक्तलोचनः ॥९७॥
 दंडेन सह दंडस्य राज्यं वै शस्योजनम् । भवत्वद्य क्षणादगधं मद्राक्षपाञ्च समंततः ॥९८॥
 हीनोदकं तथा चास्तु ॥ नष्टचराचरम् । इति तच्छापमाकर्ण्य ॥ सम्प्रार्थ्य बालिका ॥९९॥
 प्रार्थयामास शायस्य सषाजिं विनयान्विता । ततो भृगुः सुतामाह यदा यास्यति कुंभजः ॥१००॥
 मुनिः काश्यास्त्वहं देशं तदाऽयं सजलो भवेत् । देशस्तथाऽत्र वासं हि करिष्यन्ति मुनीश्वराः ॥१०१॥
 अरण्यं दंडहंतीहि जातं तस्मात्सदा नराः । अमुं देशं वदिष्यन्ति दंडकारण्यमिव हि ॥१०२॥
 यदा भविष्यत्यग्रेऽत्र रामागमनमुत्तमम् । भविष्यन्ति तदाऽत्र नानाक्षेत्राणि दण्डके ॥१०३॥
 रामप्रसादात् क्षेत्राणि भविष्यन्ति ततो जनाः । रामक्षेत्रमिति सदा वदिष्यन्ति हि दण्डकम् ॥१०४॥
 मुनिरामप्रसादाच्च देशोऽयं पूर्ववत्पुनः । भविष्यत्युत्तमः पुण्यः सौरुधदश्च मनोरमः ॥१०५॥

लगे—इत्वाकुर्वन्शमं उत्पन्न दण्डक नामका एक बड़ा पानी राजा था । वह सदा पापकर्मम रत रहा करता था ॥ ८८-८९ ॥ एक बार वह शिकार खेलनेके लिए अपनी सेनाके ॥ वनमें गया । वहाँ एक मृगके पीछे राजाने अपना घोड़ा दौड़ाया । वह अकेला ॥ उस मृगके पीछे पीछे भागता हुआ देशान्तरमें जा पहुँचा और वहाँ वह मृग गायब हो गया । इसके बाद बहुत ॥ वह राजा एक जलाशयके तटपर गया । वहाँ जल पीया, किन्तु उसे यह नहीं ॥ हुआ कि मैं अपने गुरु भृगुके आश्रमपर पहुँच गया हूँ । वहाँ भृगुकी कन्या थी । जिसको ॥ अभी रजावमें नहीं हुआ था । उस चन्द्रमाके सदृश मुखवाली (चन्द्रानना) कन्याको देखकर राजा काममोहित हो ॥ और उसके समीप जाकर रतिके लिए प्रार्थना की । कन्याने उत्तर दिया कि ॥ राजन् । मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ । ॥ समय मेरे ऊपर पितृका अधिकार ॥ और भृगु (मेरे पिता) इस समय कहीं बाहर गये हुए हैं । मैं आपको जानती हूँ ॥ ८८-९३ ॥ यदि ॥ मुझे चाहते हो तो अपने गुरु (भृगु) से जाकर कहें और मुझे अपनी पत्नी बनाकर आनन्दके ॥ भाग करें । उसरु ऐसा कहनेपर भी राजाने एक न सुनी और हठात् उसके ॥ भाग करके अपनी नगरीको लौट गया । इसके ॥ जब उसके पिता भृगु घर आये तो बिलाप करती हुई ॥ अरजस्का कन्याने सारा समाचार ॥ सुनाया । ॥ वृत्तान्तको सुनत ही भृगु मारे क्रोधके लाल हो गये और अञ्जलीमें जल भरकर कन्याको सान्त्वना देते हुए उन्होंने शपथ दिया कि दण्डकके साथ-साथ उसका ही योजन राज्य चारों ओरसे जलकर भस्म हो जाय ॥ ९४-९८ ॥ उसनो जगहपर जल भी न रहे और न कोई जीव ही निवास करे । इस प्रकार शपथ सुनकर कन्याने विनयपूर्वक प्रार्थना की कि अपने इस मापकी अवधि ॥ नियत कर दीजिये । कन्याके प्रार्थना करनेपर भृगुने कहा कि ॥ अगस्त्य ऋषि काशी छोड़कर त्रिन्त्रिके ॥ पार चले जायेंगे । उस समय वह स्थान सजल हो जायगा और वहाँ बड़े-बड़े ऋषि निवास करेंगे । राजा दंडकके दुराचरसे ॥ देशको ऐसी दशा हुई है । इसीलिए लोग उसे दण्डकारण्य कहा करेंगे ॥ ९९-१०२ ॥ आगे चलकर ॥ रामचन्द्रजी उस देशमें जायेंगे तो उसमें कितने ही क्षेत्र ॥ जायेंगे और तबसे लोग उसो दंडकारण्यकी रामक्षेत्रके नामसे पुकारेंगे ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ अगस्त्य

देष्टेभ्यः सकलेभ्यश्च सुपुण्यं दण्डकं भवेत् । दण्डकेन समो देशो न भूतो न भविष्यति ॥१०६॥
इति तां बालिकामुक्त्वा भृगुस्तप्तं हिमालयम् । यथौ तां मुनये दत्त्वा विधिना मुनिसंवृतः ॥१०७॥
भृगोः शापाच्च दण्डेन दर्शं तद्राज्यमुत्तमम् । जनयोजनमानं तदभवद्दि समंततः ॥१०८॥
मद्रामागमनाभ्यां ■ ततः स्वस्थं बभूव तत् । पूर्ववदंडकारण्यं चराचरासमाकुलम् ॥१०९॥
इति स्वया यथा दृष्टे तथा लव भयोदिते । कंकणस्य दण्डकस्य विधित्रे त्वां कथानके ॥११०॥

श्रीरामदास उवाच

इत्यगस्तिमुखाच्छ्रुत्वा लवस्तुष्टोऽभवच्चदा । नत्वा मुनिं च श्रीरामसेवायां तत्परोऽभवत् ॥१११॥
अथ रामश्चोत्सवेन तस्मै चित्रांगदाय ताम् । हेमां ददौ विवाहेन महाभंगलपूर्वकम् ॥११२॥
पारिवर्हं ददौ कोटिसंमितं वारणादिकम् । महान्महोत्सवश्चासीदयोध्यायां प्रभोगृहे ॥११३॥
ततो विसर्जयामास चोग्रवाहुं नृपं प्रभुः । मुनयः पाथिवाश्चापि स्युः स्वं स्वं स्थलं प्रति ॥११४॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे बाल्मीकीये राज्यकाण्डे उत्तरार्धे

हेमास्वयंवरा नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः

(राम द्वारा जाग्रणोंको रामनाथपुर राज्यका दान)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामस्त्वयोध्यायां रंजयामास जानकीम् । जुगोप मेदिनीं कृत्स्नां सप्तसागरमेखलाम् ॥ १ ॥
राममुद्रां विना कस्य साकेते अस्त्रधारिणः । नैवासीन्सुप्रबंधश्च रामराज्ये कदाचन ॥ २ ॥
नैवासीन्निर्गमश्चापि विना मुद्रां कदा बहिः । राममुद्रांकितं पत्रं गृह्णात्वा ते नृपोद्यमाः ॥ ३ ॥
यमनागमने चक्रुर्भूम्यां कुत्राप्यकुण्ठिताः । राममुद्रास्वरूपं च ते वदामि शृणुष्व तत् ॥ ■ ॥

मुनि तथा रामचन्द्रकी कृपासे वह देश फिर ज्योंका त्यों हो जायगा और वहाँके लोग सुखी हो जायेंगे । फिर वहाँ सुन्दरता दिखायी देने लगेगी । वह पृथ्वीके समस्त देशोंसे पवित्र देश माना जाने लगेगा ॥ १०५ ॥ उस बालिकासे भृगुने कहा—भविष्यमें लोग कहेंगे कि दण्डकारण्यके समान न कोई देश हुआ ■ और न होगा ॥१०६॥ ऐसा कहकर भृगुने उसे एक मुनिको सौर दिया और स्वयं बहुतसे ऋषियोंके ■ तदस्मा करनेको हिमालय-पर्वतपर चले गये । इस प्रकार भृगुके शापसे दण्डकका सो योजन राज्य जल-भुनकर राख हो गया ॥ १०७ ॥ ॥ १०८ ॥ हमारे और रामके आगमनसे वह फिर पूर्ववत् हो गया और उसमें विविध प्रकारके जीव-जन्तु आकर निवास करने लगे । इस प्रकार हे लव ! तुमने हमसे जो प्रश्न किये, सो दण्डकारण्य तथा इस कंकण-विषयक कथानक कह सुनाया ॥ १०९ ॥ ११० ॥ श्रीरामदासने कहा—इस तरह अगस्त्यकी ■ सुनकर लव परम प्रसन्न हुए और अगस्त्यजीको प्रणाम करके श्रीरामचन्द्रकी सेवामें लग गये ॥ १११ ॥ इसके अनन्तर रामने उत्सवके साथ ■ हेमा कन्याका विधिवत् सप्तमारीह विवाह करके चित्राङ्गदको दे दिया । उन्होंने कन्याके विवाहमें दहेजस्वरूप बहुतसे हाथ-घोड़े आदि करोड़ोंकी सम्पत्तिका दान दिया । इसके बाद महाराज उग्रवाहुको विदा किया और निमंत्रणमें आये हुए राजे तथा ऋषिगण अपने अपने स्थानको लौट गये ॥ ११२-११४ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेर्विरचिते'ज्योत्स्ना'-भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्धे सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

श्रीरामदास बोले—इसके बाद रामचन्द्र सीताको प्रसन्न करते हुए सप्तसागर मेखालावाली पृथ्वीको रक्षा करते रहे । रामके राज्यमें कोई भी शस्त्रधारी मनुष्य विना राममुद्रा-अंकित पत्र लिये नहीं आता ■ और बिना मुद्राके कोई बाहर भी नहीं जाते पाता था । राममुद्रासे चिह्नित पत्र लेकर संसार भरके राजे जहाँ चाहते

तिर्यगूर्ध्वं पञ्चदश रेखाः प्रकल्पयेत् । पीता प्रथमिका पंक्तिश्चतुर्दिक्षु प्रसारयेत् ॥ ५ ॥
 पंक्तिर्द्वितीया शुभ्रैश्च सातव्या च तथाऽष्टमी । ततश्चैश्वर्यदिगारभ्य दृतीयायां प्रकल्पयेत् ॥ ६ ॥
 वक्ष्यमाणपदान्तेव कृष्णानि हि समाचरेत् । आरंभोत्तरस्थां हि समाभिर्दक्षिणे स्मृता ॥ ७ ॥
 पश्चिमाभिमुखं रथाप्या मुदा तत्रात्मसम्भुता । पूर्वास्थेन सदा स्थेयं तदा कर्त्रा विनिश्चयात् ॥ ८ ॥
 प्रथमं हि द्वितीयं च चतुर्थं षष्ठसप्तमे । अष्टमं नवमं चैव तथैकादशमुच्यते ॥ ९ ॥
 तमश्चतुर्थ्यां पंक्तौ हि चतुर्थं षष्ठसप्तमे । तथैकादशमं ज्ञेयं पञ्चमायाः क्रमोऽधुना ॥ १० ॥
 प्रथमं हि द्वितीयं च चतुर्थं षष्ठसप्तमे । नवमैकादशे चापि षष्ठायाश्च क्रमोऽधुना ॥ ११ ॥
 प्रथमं हि द्वितीयं च चतुर्थं षष्ठमुत्तमम् । नवमैकादशे चापि सप्तमी सकलाऽसिद्धा ॥ १२ ॥
 नवम्याः प्रथमं कृष्णं द्वितीयं हि चतुर्थकम् । षष्ठं हि सप्तमं चापि नवमं दशमं स्मृतम् ॥ १३ ॥
 तथैव द्वादशं चापि दशम्याश्च क्रमोऽधुना । चतुर्थं च तथा षष्ठं सप्तमार्कं तथाऽसिते ॥ १४ ॥
 एकादश्याश्च प्रथमं द्वितीयं हि चतुर्थकम् । षष्ठः सप्तमश्चैव दशमार्कं तथाऽसिते ॥ १५ ॥
 द्वादश्याः प्रथमं कृष्णं द्वितीयं हि चतुर्थकम् । षष्ठं च सप्तमं चापि सप्तमं नवमं तथा ॥ १६ ॥
 दशमार्कं तथा प्रोक्ता कृष्णा कृत्स्ना त्रयोदशी । एवं बुद्ध्या एरयित्वा राजा रामेति वै स्फुटम् ॥ १७ ॥
 सितवर्णं रामनाममुद्रायां हि निरीक्षयेत् । एवं राममुद्रिकायाः स्वरूपं ते मयोदितम् ॥ १८ ॥
 एवं मुद्राकितां रामः शिलां विप्रैश्च आदरान् । ददौ साधापि भूम्यां हि रामनाथपुरेऽस्ति हि ॥ १९ ॥

विष्णुदास उवाच

किमर्थं भूसुरेभ्यश्च राघवेण समविता । रामनाथपुरे पूर्वं स्वीयमुद्राकिता शिला ॥ २० ॥
 तत्सर्वं विस्तरेणैव कथयस्वाद्य मां गुणे । आश्चर्यं च त्वया प्रोक्तं श्रोतुमिच्छामि त्वन्मुखात् ॥ २१ ॥

श्रीरामदास उवाच

एकदा राघवं ध्रुवा विप्रा अङ्घ्रिददायिनम् । हर्षाद्ब्रह्मपुरस्थास्ते दाक्षिणात्वा द्वित्रोत्तमाः ॥ २२ ॥

जाते-जाते, कहीं भी उनके रोक नहीं थी। अब ॥ तुम्हें राममुद्राका स्वरूप बताता हूँ, सो सुनो ॥ १-४ ॥
 काल रंगकी लक्ष्मी-येही पन्द्रह रेखाएँ सोचें। उसमें चारों ओरकी पहली पंक्ति पीले रङ्गसे रंगे ॥ ५ ॥ दूसरी
 और आठवीं पंक्ति सफेद ही रहने दें। इसके बाद ईशानकोणसे लेकर तीसरी रेखातक आगे कहो जानेवाली
 पंक्तियाँ काले रंगसे लिखें। लिखावट उत्तरको तरफसे प्रारम्भ करके दक्षिणमें समाप्त करने चाहिए ॥ ६-७ ॥
 मुद्राका मुख सदा सामने अर्थात् पश्चिमाभिमुख बनाये और स्थयं पूर्वको ओर मुख करके बैठे ॥ ८ ॥ पहली,
 दूसरी, चौथी, छठवीं, सातवीं, आठवीं, नवीं, ग्यारहवीं और पान्चवीं रेखाओं चौकीयाँ तथा पहली, दूसरी, चौथी,
 छठवीं, नवीं, ग्यारहवीं तथा सातवीं चौकी यह सब काले रङ्गकी रहेंगी। फिर नवीं रेखाकी पहली, दूसरी,
 चौथी, छठी और सातवीं चौकी भी काले रङ्गकी रहेंगी ॥ ९-११ ॥ फिर ग्यारहवीं रेखाकी पहली, दूसरी, चौथी,
 छठी, आठवीं, नवीं तथा दशवीं चौकी भी काले रङ्गकी रहेंगी। बारहवीं रेखाकी पहली, तीसरी, दूसरी, चौथी,
 छठी, सातवीं, आठवीं, नवीं, दसवीं, बारहवीं तथा तेरहवीं चौकी भी काले रङ्गकी रहेंगी। इस प्रकार अपनी
 बुद्धिमें उपयुक्त कोष्ठकोंको पूर्ण करनेसे "रामा राम" यह शब्द साफ साफ संकेद यनोंमें लिख जायगा
 ॥ १२-१७ ॥ इस तरह मैंने तुम्हें राममुद्राका स्वरूप बतलाया। इस प्रकारकी मुद्रासे बह्मिनि शिला रामने
 शाहजनोंकी दानस्वरूप दी थी, जो आज भी रामनाथपुरमें रहनेवाले ब्राह्मणोंके पास विद्यमान है ॥ १८-१९ ॥
 विष्णुदासने पूछा कि रामने रामनाथपुरवाले उन ब्राह्मणोंको यह अपनी मुद्रासे अङ्कित शिला किस लिये दी
 थी? यह सब कथा विस्तारपूर्वक हूँ बतलाइये। आपने यह आश्चर्यमयी बात कह दी। इसका पूरा विवरण
 मैं आपके ही मुखसे सुनना चाहता हूँ ॥ २० ॥ २१ ॥ श्रीरामदास कहने लगे कि एक समय रामचन्द्रकी यह

ययुस्ते राघवं द्रष्टुमयोष्यायां मुदान्विताः ॥ २३ ॥

गन्धर्वराजगेहे ■ भोजनं कर्तुमुद्यतः । स्नात्वा तत्र सुहृद्गेहे सीतया बन्धुभिः सुखम् ॥ २४ ॥
पुत्राभ्यां भोजनं कर्तुमासने संस्थितोऽभवत् । गन्धर्वराजः श्रीरामं पूजयामास सादरम् ॥ २५ ॥
परिवेपितानि पात्राणि सुहृत्स्त्रीभिस्तदा जवान् । दिव्यान्नैर्मधुरैश्चित्रैः पक्वान्नैर्विविधैरपि ॥ २६ ॥
एतस्मिन्नन्तरे विप्रा रामनाथपुरस्थिताः । सुहृद्गेहे गतं रामं श्रुत्वा तत्र ययुर्मुदा ॥ २७ ॥
गन्धर्वराजद्वारस्थैर्दूतैः श्रीराघवाय हि । भूसुराणामागमनं तदा शीघ्रं निवेदितम् ॥ २८ ॥
तदूतवचनं श्रुत्वा राघवश्चातिसम्भ्रमात् । प्रत्युद्गम्य स्वयं विप्रान्ननाम शिरसा ग्रह्णः ॥ २९ ॥
गन्धर्वराजगेहे ताप्तीत्वा दद्यादयनानि हि । स्नातुमाज्ञापयन्सर्वान् भोजनार्थं रघूत्तमः ॥ ३० ॥
तदा ते मन्त्रयामासुर्विप्राः सर्वे परस्परम् । भोजनान्पूर्वमेवैनं पाषणीयं स्वर्वाञ्छितम् ॥ ३१ ॥
केचिदुचुस्तदा विप्रा निर्वधं च रघूत्तमे । नोपेक्षाऽस्ति सदैवायं ददाति द्विजवाञ्छितम् ॥ ३२ ॥
व्रतमेवास्य रामस्य द्विजवाञ्छितपूरणम् । एवं तान्मन्त्रयमाणांश्च रामो दृष्ट्वाऽब्रवीद्वचः ॥ ३३ ॥
ज्ञातं मयाऽभिलषितं पुष्पाकं मुनिपुङ्गवाः । राज्येच्छया समायाताः किमर्थं श्रमिता द्विजाः ॥ ३४ ॥
कथं न प्रेषितः शिष्यस्तद्वाक्येनैव वै मया । वाञ्छाऽभविष्यद्युष्माकं पूरिता क्षणमात्रतः ॥ ३५ ॥
एवं तान्ब्राह्मणानुक्त्वा लक्ष्मणं प्राह राघवः । मया ब्रह्मपुरस्याथ विप्रेभ्यो राज्यमर्पितम् ॥ ३६ ॥
शिलायां लिख मन्नाम दानं दक्षमिदं न्विति । तथेति रामवाक्येन लक्ष्मणश्चातिसम्भ्रमात् ॥ ३७ ॥
दण्डकारान्समाहूय शिलामानोपनामिति । शीघ्रमाज्ञापयामास ते जग्मूर्वैभवताराः ॥ ३८ ॥
एतस्मिन्नन्तरे विप्राः प्रोचुस्ते राघव मुदा । कृत्वाऽन्नं लेखनीया शिला पश्चाद्रघूत्तम ॥ ३९ ॥
किमर्थं क्रियते राम स्वरा लेखनकर्मणि । परिवेपितानि पात्राणि वयं चापि क्षुभार्दिताः ॥ ४० ॥

प्रसंसा सुनकर कि वे ब्राह्मणोंको कामना पूर्ण करते हैं । दक्षिण देशके रहनेवाले बहुतसे ब्राह्मण हजारोंकी संख्यामें एकत्रित होकर रामसे मिलने गये । उधर राम प्रसन्न मनसे गन्धर्वराजके भवनमें भोजन करने गये हुए थे । सीता तथा भ्राताओंके साथ उन्होंने वहाँ ही स्नान किया था और अपने दोनों बेटोंके साथ चौकीपर भोजन करने बैठे थे । गन्धर्वराजने सादर रामका पूजन किया ॥ २२-२५ ॥ गन्धर्वराजके घरकी स्त्रियों तथा मित्रोंने शीघ्रतासे दिव्यान्न तथा विविध प्रकारके पकवान आदि परोसना प्रारम्भ किया ॥ २६ ॥ इसी समय रामनाथपुरके निवासी विप्रगण रामके द्वारपर आये तो उन्हें ज्ञान हुआ कि राम अपने सम्बन्धीके घर गये हैं । वस, वे लोग भी गन्धर्वराजके यहाँ जा पहुँचे और द्वारपालोंने रामको यह खबर दी कि रामनाथपुरके ब्राह्मण आये हैं । दूतकी बात सुनकर स्वयं राम तुरन्त उठे और उन लोगोंके पास जाकर प्रणाम किया और उन्हें गन्धर्वराजके घरमें ले गये । आसनपर बिठाकर उनसे स्नान-भोजन करनेके लिये कहा ॥ २७-३० ॥ उस समय ■ सबोंने मन्त्रणा करके निश्चय किया कि भोजन करनेके पहले ही हम लोग अपनी माँग उपस्थित कर दें । उनमेंसे कुछने कहा कि इतनी जल्दी क्या है, राम कभी याचकोंको उपेक्षा नहीं करते । अल्कि ■ सदा ब्राह्मणोंकी याचका पूरी करनेकी तैयार रहने हैं । इन रामका यही व्रत है कि ब्राह्मणोंकी माँगें पूर्ण किया करें । इस ■ परस्पर सलाह करते हुए ब्राह्मणोंको देखकर रामने कहा कि हम आप लोगोंकी इच्छाको जान गये हैं । ■ लोग राज्यकी इच्छासे मेरे पास आये हैं । सो इसके लिए आपने इतना परिश्रम क्यों किया ? ॥ ३१-३४ ॥ आप अपने किसी शिष्यको ही भेज दिये होते तो मैं क्षणभरमें आपको इच्छा पूर्ण कर देता ॥ ३५ ॥ इस तरह उन ब्राह्मणोंसे कहकर रामने लक्ष्मणसे कहा कि आज मैंने ब्रह्मपुरका राज्य ब्राह्मणोंको दान दे डाला है । एक शिखर मेरा नाम लिखाओ और उसमें यह भी लिखवा दो कि मैंने ब्राह्मणोंको ब्रह्मपुरका राज्य ■ दे दिया है । “बहुत अच्छा” कहकर लक्ष्मणने तुरन्त पत्थर खोदनेवाले सन्तरासोंको बुलवाया और एक बड़ी जिला मँगवायी । दूत लक्ष्मणके आज्ञानुसार तुरन्त चल पड़े ॥ ३६-३८ ॥ तब उन विप्रीने रामसे

तत्तेषां वचनं श्रुत्वा फलभारान्विचित्रितान् । पुरस्तात्स्थापयामास विप्राणां वरमादरात् ॥४१॥
 उवाच सधुरं वाक्यं राघवः स्मितपूर्वकम् । फलानीमानि भो विप्रा भक्षयध्वं यथासुखम् ॥४२॥
 लेखयित्वा शिलायां हि यदा मुदां करोम्यहम् । तदाऽश्नादिकं कर्म सर्वमन्यत्करोम्यहम् ॥४३॥
 क्षणं विस्रं क्षणं चित्तं क्षणिकं च स्वजीवितम् । यमोऽतिनिर्घृणः सोऽस्ति धर्मं शीघ्रमथधरेत् ॥४४॥
 अतं विहाय भोक्तव्यं सहस्रं स्नानमाचरेत् । लब्धं त्यक्त्वा तु दातव्यं कीटिं त्यक्त्वा शिवं भजेत् ४५
 कीटिविघ्नानि गीतायां दशकोटीनि जाह्नवीम् । अतकोटीनि जायन्ते दाने विघ्नानि भूसुराः ॥४६॥
 अतः कार्या त्वरा दाने सर्वदा तु नरोत्तमैः । निद्रायाः पूर्वकाले तु निद्रायाः परतस्तथा ॥४७॥
 भोजनात्पूर्वकाले तु भोजनात्परतस्तथा । क्षणे क्षणे मतिर्मिमा जायतेऽत्र द्विजोत्तमाः ॥४८॥
 तस्मात्कार्या त्वरा दाने मतिर्या प्रथमे क्षणे । कृता क्षणेनापरे साऽस्त्येतदेव मतं मम ॥४९॥
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र दृष्टकारैः शिला धरा । ममान्नीता गण्डकीजा नवहस्ता समन्ततः ॥५०॥
 तस्यान्ते लेखयामासुर्दण्डकाराः स्फुटाक्षरैः । सूर्यवंशोद्भवेनाथ सप्तद्वीपेश्वरेण हि ॥५१॥
 श्रेतायां दाशरथिना रामराज्ञा द्विजोत्तमान् । मया ब्रह्मपुरस्यैव राज्यदानं कृतं मुदा ॥५२॥
 यावत्तपति स्ते मातुर्यावदस्त्यत्र मे कथा । यावत्प्रवर्तते वायुस्तावदानं ममास्तित्वम् ॥५३॥

सम्मान्योऽयं धर्मसेतुर्द्विजानां काले काले पालनीयो भवद्भिः ।

तवनेतान् मायिनः पार्थिवेद्रान् भूयो भूयो याचते रामचन्द्रः ॥ ५४ ॥

एवं विलेख्य भीरामः शिलायां निजमुद्रिकाम् । रामनामांकितां वायुपुत्रेणार्षर्षयस्तदा ॥५५॥

आजनेयस्य भारेण शिला जाता तदङ्किता । राजारामेति तस्यान्ते ददृशुश्च स्फुटाक्षरम् ॥५६॥

कहा कि ॥ पहले भोजन कर लीजिये, तब शिलालेख लिखवाइयेगा । ॥ राम ! आप लिखनेकी इतनी जल्दी क्यों कर रहे हैं ? पात्रोंमें सामग्रियां परोंसी जा चुकी ॥ और ॥ लोग भी भूखे हैं ॥ ३९ ॥ ४० ॥ उनकी बात सुनी तो रामने बोझके बोझ विविध प्रकारके फल संग्रहकर उनके सामने रखवा दिये और कहा-हे विप्रगण ! आप लोग सुखसे यह फल खाइए । हम तो शिला लिखवाकर और उसपर अपनी मुहर अंकित कर ॥ ॥ ही भोजन करेंगे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ॥ क्षणभ्यामी है, चित्तवृत्ति क्षणिक है, अपना जीवन भी क्षणभंगुर ॥ और यमराज क्या निर्दयी है । इसलिये जितने शीघ्र हो सकें, धार्मिक ॥ पूर्ण कर डालें ॥ ४४ ॥ सौ काम सामने हों तो उन्हें त्यागकर पहले भोजन करना चाहिए, ॥ कामोंको त्यागकर पहले स्नान करना चाहिए, ॥ कामोंको त्याग करके पहले दान ॥ चाहिए एवं करोड़ों कामोंको छोड़कर पहले शिवका भजन करना चाहिए ॥ ४५ ॥ हे विप्रों ! गीताका पाठ करते समय करोड़ विघ्न, गंगास्नानमें दस करोड़ विघ्न और दान-कर्ममें सौ करोड़ विघ्न आकर उपस्थित होते हैं ॥ ४६ ॥ इसलिये सज्जनोंको चाहिए कि दानमें सर्वदा शीघ्रता करें । निद्राके पूर्वकालमें, निद्रासे उठनेके बाद, भोजनके पहले और भोजनके बाद क्षण क्षणमें बुद्धि बदल करती है । इसीलिए प्रथम क्षणमें जैसी अपनी बुद्धि हो गयी हो, उसके अनुसार दानकर्म शीघ्र कर डालना चाहिये । यह मेरा निजी ॥ ॥ ४७-४८ ॥ उसी समय संतरासीने नौ हाथकी लम्बी-चौड़ी गण्डकी नदीकी एक अच्छी-सी शिला लाकर रामके सामने रख दी ॥ ५० ॥ इसके ॥ सन्तरासीने साफ-साफ अक्षरोंमें उस शिलापर खोदकर लिखा ॥ "सूर्यवंशमें उत्पन्न और सप्तद्वीपके अधीश्वर महाराज दशरथका पुत्र मैं राजा राम प्रसन्नतापूर्वक ब्रह्मपुरका राज्य दान करके ब्राह्मणोंको दे रहा हूँ ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ॥ तक कि आकाशमें सूर्य देवता तपते रहें, जब तक संसारमें मेरा ॥ रहे और जब तक कि पवन चलता रहे, तब तक मेरा यह दान दान ॥ जाय ॥ ५३ ॥ मेरे आगे जो राजे होनेवाले हैं, उनसे मैं राम बार-बार यही आज्ञा मांगता हूँ कि "ब्राह्मणोंके इस धर्मसेतुकी आप लोग सदा रक्षा करते रहिएगा" ॥ ५४ ॥ इस प्रकार लिखवाकर रामने हनुमानजोके द्वारा उसपर अपनी रामनामांकित मुहर लगावा दी ॥ ५५ ॥ हनुमानजोके भारसे शिलापर रामकी मुहर खुद गयी और उसमें "रावा राम" यह शब्द साफ-

रामनाथेन यद्वत् पुरदानं द्विजोत्तमान् । रामनाथपुरं चेति तदारभ्य प्रधां गतम् ॥५७॥
 तस्य ब्रह्मपुरमिति नाम प्राथमिकं स्मृतम् । रामनाथपुरं चेति तस्यैवाख्याऽपरा स्मृता ॥५८॥
 शिलामारमितं द्रव्यं दक्षिणार्धं निधाय सः । तां शिलां पूज्य विप्रेभ्यः श्रीरामः सीतया ददौ ॥५९॥
 ततोऽमवीक्ष्यपुष्पं भोजनानन्तरं त्वया । विमानेन शिला नेया रामनाथपुरं द्विजैः ॥६०॥
 कम्बुकण्ठं ततः पत्रं लेखयामास राघवः । माक्षणां त्वया कार्यं साहाय्यं सर्वदेति वै ॥६१॥
 ततस्तुष्टा द्विजाः सर्वे ददुराशीः सहस्रशः । चकार भोजनं रामस्ततस्तैः परिवेष्टितः ॥६२॥
 ततः सर्वे विमानेन यमुविप्राः पुरं प्रति । तान्पृष्ट्वा मारुतिश्चापि विमानेन ययौ पुनः ॥६३॥
 एवं चकार दानानि सप्तद्वीपांतरेषु हि । सहस्रशो रामचन्द्रस्तेषां संख्या ॥ विद्यते ॥६४॥
 रामनाथपुरस्थास्ते विप्राः कालांतरेण वै । दुष्टराज्यमयादग्रे तां शिलां भयविह्वलाः ॥६५॥
 तदाके प्रक्षिपिष्यन्ति ततः कष्टं भजन्ति ते । मर्तुकान् द्विजान्दृष्ट्वा तदाकान्मारुतिः पुनः ॥६६॥
 बहिर्निष्कास्यति शिलामग्रे कालान्तरेण हि ।

विष्णुदास उवाच

■ कष्टं भूसुरानग्रे भविष्यति स्वजीविते ॥६७॥

यतस्ते त्यक्तकामाश्च भविष्यन्ति वदस्व तत् ।

श्रीरामदास उवाच

अग्रे कश्चिद्दुष्टराजा भविष्यत्यवनीतले ॥६८॥

■ तान्निष्य विप्राश्च तद्राज्यहरणेच्छया । वदिष्यति कलौ राजा युष्माकं दानमर्पितम् ॥६९॥
 यदि रामेन तदानपत्रं मे दृष्टिगोचरम् । करणीयं न चेच्छीघ्रं यावरकालं पुरोद्भवम् ॥७०॥
 युष्माभिर्वसु यद्भुक्तं तत्सर्वं दीयतां मम । नोद्येत्सर्वान्वधिष्यामि भूसुराणां यमस्त्वहम् ॥७१॥
 ततस्ते माक्षणाः सर्वे भुस्वेदं नृपतेर्वचः । मयभीता मंत्रयित्वा नृपं प्रोक्षुस्त्वरान्विताः ॥७२॥

साक दिखायी देने लगा ॥ ५६ ॥ रामने ब्राह्मणोंको वह पुर दान दिया था, इसीसे उसका रामनाथपुर नाम पड़ गया ॥ ५७ ॥ पहले उसका ब्रह्मपुर नाम था । अबसे रामने उसको दान दे दिया, तभीसे रामनाथपुर उसकी संज्ञा हुई ॥ ५८ ॥ उस शिजाके तोल भर द्रव्य दक्षिणाके निमित्त रखकर सीताके साथ रामने उन विप्रोंकी पूजा की और वह शिला उनको दी ॥ ५९ ॥ इसके बाद रामने हनुमान्जीसे कहा कि भोजन कर लेनेके बाद इन ब्राह्मणोंके साथ जाकर यह शिला रामनाथपुरमें पहुँचा आना ॥ ६० ॥ इसके बाद रामने कम्बुकण्ठको एक पत्र लिखवाकर उन ब्राह्मणोंको दिया । जिसमें लिखा था कि आप सदा इन ब्राह्मणोंकी सहायता करते रहें ॥ ६१ ॥ तदनन्तर प्रसन्न मनसे विप्रोंने आशीर्वाद दिया और रामने उन सबके साथ बैठकर भोजन किया ॥ ६२ ॥ इसके अनन्तर वे सब विप्र पुष्पक विमानपर बैठकर अपने आश्रमको चले और रामसे पूछकर हनुमान्जी भी विमानपर बैठकर उनके साथ-साथ गये ॥ ६३ ॥ इस तरह सातों दिनोंमें रामने हजारों दान किये । ठीक तरहसे जिनकी सही संख्या नहीं आनी जा सकती ॥ ६४ ॥ रामनाथपुरमें रहनेवाले वे विप्र भविष्यमें दुष्ट राजाओंके भयसे उस शिलाको तान्त्रिकमें फेंक देंगे, जिससे उनको बड़ा कष्ट प्राप्त होगा । जब वे भरनेपर उसारु हो जायेंगे तो हनुमान्जी उस शिलाको फिर निकालेंगे ॥ ६५ ॥ विष्णुदासने पूछा कि ब्राह्मणोंको जागे चलकर अपने जीवनमें कौन-सा कष्ट उठाना पड़ेगा ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ जिसके लिये उन्हें वह शिला त्यागनी पड़ेगी, सो कहिये । श्रीरामदासने कहा कि पृथ्वीतलमें आगे चलकर एक कोई दुष्ट राजा होगा ॥ ६८ ॥ वह कलियुगी राजा उन ब्राह्मणोंको मारकर उनका राज्य छीननेकी इच्छासे कहेगा कि यदि रामने तुमको यह राज्य दान करके दिया है तो वह दानपत्र दिखाओ । नहीं तो इतने दिनों तक इस राज्यकी जितनी आय तुम लोगोंने ली है, वह सब लाकर दे दो । नहीं तो मैं सबको मार डालूँगा । क्योंकि ब्राह्मणोंके लिए मैं

मासेनैकेन पत्रं ते दर्शयिष्यामहे वयम् । ततो मृगोच तान् राजा तेऽपि तूष्णीं पुरं ययुः ॥७३॥
 तटाकस्य तटं भित्त्वा प्रवाहाः श्रुतश्रुततः । मोचयामासुः सर्वत्र नातं तस्य जलस्य ते ॥७४॥
 ददृशुः सकला विप्रास्ततस्ते प्राणसंकटम् । ज्ञात्वा तत्र निराहारा निपेदुः सरसस्वटे ॥७५॥
 राघवं परमात्मानं चितयामासुरादरात् । एवं मासे न्वतिक्रान्ते वर्षे ज्ञात्वात्मनो नृपत ॥७६॥
 भयात्प्राणास्त्यक्तुक्कामाद्यासंस्तस्मिन् जलाशये । तदा तेषां स्त्रियः पुत्राश्चक्रुः कोलाहलं भृशम् ॥७७॥
 तान्सर्वान्सात्वयामासुर्नानानीत्युत्तरैर्द्विजाः । स्वयं स्नात्वा द्विजाः सर्वे ददुर्दानान्यनेकशः ॥७८॥
 चक्रुः प्रदक्षिणाः सप्त तटाकायोचराननाः । ऊचुर्दीर्घस्वरेणैव प्रवदुकरसंपुटाः ॥७९॥
 हे राम जानकीकांठ त्वदानादीदृशी गतिः । जाताऽस्माकं मृतामस्त्वं सर्वान्यश्य रघूत्तम ॥८०॥
 पुरोद्भवं तु यदुद्भव्यं पूर्वजैर्भुक्तमेव तत् । एतावत्कालपर्यन्तमस्माभिश्चाधुना कुतः ॥८१॥
 तत्रैव देयमसंख्यातमतस्त्यस्याम जीवितम् । इत्युक्त्वा ब्राह्मणाः सर्वे निमील्य नयनानि ते ॥८२॥
 चितयामासुः स्वीयेष्टां देवतां मरणोत्सुकाः । एतस्मिन्तरे तत्र देवागारे हनूपतः ॥८३॥
 पापाणभूर्तेः प्रकटः संवभृवाञ्जनीसुतः । दीर्घस्वरं तान् ग्राह भूसुरान्स्रजमाद्दरिः ॥८४॥
 पूयं मा जीवितान्यद्य त्यजन् न ब्रह्मणोत्तमाः । आगतो राघवस्याह दासोऽञ्जनिमधुद्भवः ॥८५॥
 इति तद्वचनं श्रुत्वा द्विजास्ते विस्मयान्विताः । उन्मील्य नयनान्यग्रे ददृशुर्वायुनन्दनम् ॥८६॥
 दीर्घबाहुं महाधोरं विंगकेशविराजितम् । जरठ पर्वताकारं रामनामप्रमाणिणम् ॥८७॥
 तं दृष्ट्वा ते द्विजाः सर्वे प्रणेमुर्दृष्टमानसाः । कथयामासुस्तं सर्वं स्वीयं सविस्तरम् ॥८८॥
 ततः मारुतिर्वेगात्सरसस्तां शिलां बहिः । निष्कास्य विप्रवर्यैस्तैः शिलां धृत्वा स्वयं कपिः ॥८९॥

धमराज है ॥ ६९-७१ ॥ राजाकी ऐसी सुनकर ब्राह्मण भयभीत हो तथा परस्पर सलाह करके उससे बोले कि एक महीनेमें मैं आपको वह दानपत्र खोजकर दिखाऊँगा । यह सुनकर राजाने ब्राह्मणोंको छोड़ दिया और वे भुपचाप लौटकर अपने-अपने घर चले गये ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ वहाँ पहुँचकर उन्होंने उस तालाबका बाँध तोड़ दिया । जिससे सैकड़ों सोते वह निकले और चारों ओर फैलकर बहनेपर भी तड़ागका जल नहीं चुका । अब ब्राह्मणोंने देखा कि अब प्राण संकटमें आ गया तो सबके सब उसीके एक ऊँचे कमरदार उपवास करते हुए बैठ गये और परमात्मा रामचन्द्रजीका ध्यान करने लगे । इस एक महीना बात जानेपर अब उन विप्रोंने सोचा अब वह दुष्ट राजा हमको मार डालेगा तो भयसे अपने प्राण त्यागनेके लिए तैयार हो गये । उस उनके घरकी स्त्रियाँ तथा बच्चे अत्यधिक दुःखित होनेके कारण सबके सब बिल्ला-चिल्लाकर रोने लगे ॥ ७४-७७ ॥ तब उन्होंने स्त्रियों-बच्चोंको अनेक प्रकारकी नोतिमजी बातें सुनाकर सान्त्वना दी । स्वयं उन विप्रोंने स्नान करके नाना प्रकारके दान दिये । फिर उन्होंने तालाबकी सारा परिश्रमा की और उत्तरकी ओर मुख करके खड़े हो गये । हाथ जोड़कर ऊँचे स्वरसे वे कहने लगे—हे राम ! हे जानकीकान्त ॥ तुम्हारे दिये हुए दानसे आज हमारी यह दुर्दशा रही है । हे रघूत्तम । तुम हम लोगोंको मरा हुआ समझो ॥ ७८-८० ॥ पूर्वकालमें हमारे पूर्वजोंने जो राजसे पाया, वह सब उन्होंने लोभसे ले चुरा दिया । अब हम कहींसे असंख्य धन लाकर राजाको दें । उतना जुटाना हमारी शक्तिके बाहर है । अतएव हम अपने शरीरको त्याग देंगे । इतना कहकर उन मरणोन्मुख विप्रोंने नेत्र मूँद लिये और अपन इष्टदेवका ध्यान करने लगे । उसी समय पासके देवालयमें पापाणभया मूर्तिसे हनुमानजी प्रकट हुए और जोर-जोरसे चिल्लाकर कहने लगे — ॥ ८१-८४ ॥ हे ब्राह्मणों । तुम लोग अपने प्राण मत त्यागो । रामचन्द्रजीका सेवक अञ्जनीपुत्र हनुमान् । इस प्रकार उनकी बात सुनकर विस्मित भावसे उन सबोंने नेत्र खोलकर हनुमान्जीको देखा ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ उस समय उन हनुमान्जीका लम्बा तथा भयानक हाथ था, पीले-पीले केश थे, बूढ़ी थी, पर्वताकार शरीर था और वे निरन्तर रामनामका उच्चारण करते जाते थे ॥ ८७ ॥ उनको देखा तो प्रसन्न चित्तसे उन ब्राह्मणोंने प्रणाम किया और विस्तारपूर्वक अपने

जगाम हुष्टराजानं दर्शयामास तां शिलाम् । रश्मिपुङ्खकतां द्यूतं लिपिं राजाऽन्तर्निस्मिदः ॥९०॥
तं तदा रोषयाभासं शूलाग्रं दायुजो नृपम् । दस्मिन्नेव कटाके हृन्मत्र विप्राः स्थिताः पुरा ॥९१॥
नृपं मोक्षयितुं ये ये राजसूताः समावधुः । तान्तवागम्यानां दुष्कृतेनैव म माहतिः ॥९२॥
द्विजहृत्पापशमनाद्धृत्तापशमनं ततः । द्यूतं नाम्ना तत्पुण्यं तत्र श्रौतयुस्तनुता ॥९३॥
राज्यदानेन रामस्योदार्यं लोकान्प्रदक्षिणुम् । उदारराविजयाख्यः सम्भूः सस्थापितः शुभः ॥९४॥
उदारराविजयेति नाम्ना मूर्तिः श्रविष्ठिता ।

स्नानदिना उत्तरसि नृणां तापत्रय न हि ।९३।

ततः प्राह पुनर्विप्राहन्मांस्तुष्टमनः । भूम्नां कृत्वा गुहां श्रेष्ठां तत्रैष स्थापयतां द्विला ॥९६॥
न मयं षोऽस्तु भो विप्रा गुष्माकसां प्रमत्तहृत् । सर्वदाऽऽत्मनो मेऽप्येव स्मरध्वं रघुनन्दनम् ॥९७॥
इत्युक्त्वा गुष्टरूपोऽभूत्सोऽयमूर्ध्नां द्विजः प्रभः ।

तां शिलां स्थापयामासुर्भूयःमेरात्रियस्नतः ॥९८॥

ततस्तुष्टा विजाः सर्वे जग्मुः स्वं स्वं गृहं प्रति । तदाऽऽरभ्य न केनापि तेषां राज्यं हृतं कदा ॥९९॥
एवं शिष्य मया प्रोक्ता कथा भावा तवाग्रतः । पूर्वमेव जानदृष्ट्या कर्तुंकार्थं सचिस्तरा ॥१००॥
अद्यापि तत्र तैर्विप्रैस्तद्राज्यं भुज्यते तदा ।

ये यं जाता नृपा भूण्यां रामाङ्गं मानयन्ति ते ॥१०१॥

एवं नाना कौतुकानि रात्रयेण कृतानि हि । पुत्राभ्यां शोचयाऽरात्र्यापूर्या च भुजतैः सह ॥१०२॥

इति श्रीकृतकान्ठसाम्बाराजतन्त्रे कामदन्तप्रदायके पादमेकादशस्कन्धे

शमशादपुरराजप्रधानं नामाष्टदत्तः स्वयं ॥ १८ ॥

सारा बुझान्त कह सुनाया ॥ ८८ ॥ इसके अनन्तर हनुमान्जी ने यह जिला उस राजावसे निकालकर उनके आगे रख दी और ब्राह्मणोंने उसे उस दुष्ट राजाके पास ले जाकर दिखाया । रामगुहाके अद्वैत भिक्षित उस शिलाको देखकर राजा बहुत चकराया ॥ ८९ ॥ ९० ॥ उभा हनुमान्जी उस राजाको पकड़कर उसी सरोवरके तटपर ले गये और गुहापर चढ़ा दिया । राजाजी दुष्टके लिये जो सिपाही उनके पास आये, हनुमान्जीने अपनी लम्बा पूछके प्रहारसे हरा उन सबका मार डाला ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ब्राह्मणोंका संस्थाप हनुमान्जीने उसी सरोवरपर हरण किया था, इसलिए उस गुहाके 'हृत्पद्ममन' नाम पड़ गया ॥ ९३ ॥ राज्यदानसे रामकी उदारता संसारका दिखानेके लिए उसी स्थानपर हनुमान्जीने उदारराघवेश नामक शिवलिंगकी स्थापना की ॥ ९४ ॥ उस सरोवरमें स्नान करनेसे मनुष्योंके दोहक, दोषक और मानसिक ये तीनों ताप दूर हो जाते हैं ॥ ९५ ॥ इसके बाद हनुमान्जीने उन असमाचित विप्रास कहा—पृथ्वी एक गुफा बनाकर उसीमें यह शिला रख दी ॥ ९६ ॥ हे विप्रा ! तुमका किसी प्रकारका अब नहीं है । मैं सदा तुम्हारे पास रहूँगा । तुम सब सर्वदा भगवान् रामका स्मरण करत रहो । इतना कहकर सबके समक्ष हनुमान्जी अपनी उसी पाषाणमयी प्रतिमामें लीन हो गये । जैसा कि हनुमान्जीने बतलाया था, विप्राोंने गुफा खादकर बड़े यत्नसे वह शिला उसीके अन्तर रख दी ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ इसके अनन्तर प्रसन्न मनसे वे ब्राह्मण लौटकर अपने-अपने घरोंको चले गये । तबसे किसी राजाने उनके राज्यका हरण नहीं किया । श्रीरामदास कहते हैं—हे शिष्य ! मैंने भाषी वृत्तान्त तुम्हें कह सुनाया । आज भावे ह । ब्राह्मण उस राज्यका उपभोग कर रहे हैं । पृथ्वीतलपर जितने राजे हुए, वे बराबर रामका आज्ञाका मानते आते हैं । इस प्रकार अवोध्यामें राम अपने पुत्रों, सीता तथा भाइयोंके नाना प्रकारके कौतुक करत रहे ॥ ९९-१०० ॥ इति श्रीशतकीटिराम-परितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचिते ज्योत्स्नीभाष्याटीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्धे अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशः सर्गः

(रामकी दिनचर्या)

श्रीरामदास उवाच

मृणु शिष्य वदाम्यद्य रामराजः शुभावहा । दिनचर्यां राज्यकाले कृता लोकान् हि शिष्यितुम् ॥ १ ॥
 प्रभाते गायकैर्गीतैर्बोधितो रघुनन्दनः । नववाद्यनिनादांश्च सुखं शुभाव सीतया ॥ २ ॥
 ततो ध्यात्वा शिवं देवीं गुरुं दशरथं सुरान् । पुण्यतीर्थानि मातश्च देवतापत्नानि च ॥ ३ ॥
 नानाक्षेत्राण्यरण्यानि पर्वतान्सागरांस्तथा । नदाश्चैव नदोः पुण्यास्ततः सीतां ददर्श सः ॥ ४ ॥
 प्रणमन्तीं समुत्थाप्य धृत्वा सीताकरं प्रभुः । मञ्जुकादवतीर्याथ दामोभिः परिवेष्टितः ॥ ५ ॥
 बहिः कक्षां शूनैर्गत्वा सम्पाद्यावश्यकं प्रभुः । ययौ पुनः स दासीभिः क्रीडाशालां रघूत्तमः ॥ ६ ॥
 कृत्वा शौचविधिं रामो दन्तशुद्धिं चकार सः । ततः स्नानं कदा गेहे सरयू वाञ्छकरोत् प्रभुः ॥ ७ ॥
 शिषिकायां स भूसुरैर्यानि संस्थितैः । वेष्टितः सरयुं गत्वा पानं युक्त्वा तटे प्रभुः ॥ ८ ॥
 पङ्कथामेव शूनैर्गत्वा सरयुं प्रणिपन्त्य च । सरयुः पुरतः स्थाप्य नारिकेलं सदक्षिणम् ॥ ९ ॥
 सताम्बलं पुनर्नत्वा स्तुत्वा सम्यक् प्रसाद्य । स्नात्वा यथाविधानेन ब्रह्मघोषपुरःसरम् ॥ १० ॥
 प्रातः सन्ध्यां ततः कृत्वा ब्रह्मयज्ञं विधाय च । दत्त्वा दानान्यनेकानि ययौ गेहं रथेन हि ॥ ११ ॥
 रुक्मधन्वैर्वेष्टितेन सौन्दर्यरत्नमयेन च । सुस्नातस्ततस्तुरगपुङ्गेन च्वनितेन च ॥ १२ ॥
 हुत्वा होमं विधानेन शिवं सम्पूज्य सादरम् । कौसल्यां च सुमित्रां च कैकेयीं च समर्चयत् ॥ १३ ॥
 कामधेनुं कल्पवृक्षं पारिजातं तु पुष्करम् । चिंतामणिं कौस्तुभं च पूज्य मीनायुतो हरिः ॥ १४ ॥
 मुनिवृक्षं वटं बिल्वममृत्युं तुलसीं तथा । शमीं पलाशं दुर्वां च राजवृक्षमर्जयत् ॥ १५ ॥
 भानुं सम्पूज्य तं नत्वा सम्पूज्य द्वारदेवताम् । गोवृषाश्चवारणांश्च रथं शस्त्राणि भूसुरान् ॥ १६ ॥
 कोहगाराणि कोष्ठांश्च पाकशालामर्जयत् । सिंहासनं च्छत्रं चाभरे च्छजने तथा ॥ १७ ॥

श्रीरामदास बोले—हे शिष्य ! मुनो, अब रामचन्द्रजीकी दिनचर्या बताता हूँ । जिसे वे सबको शिक्षा देनेके लिए किया करते थे । राम प्रतिदिन गायकोंके गीत तथा बाजोंके मोठे स्वर सुनकर सीताके साथ जागते थे । इसके शिव, देवी, गुरु, देवताओं, दशरथ, पवित्र तीर्थों, माताओं, देव-मन्दिरों, अनेक प्रकारके क्षेत्रों, अरण्यों, पर्वतों, सरोवरों, नदों और नदियोंका स्मरण करके सीताको देखते थे ॥ १-४ ॥ प्रणाम करती हुई सीताको टठाकर राम उनका हाथ पकड़े हुए मंचसे उतरते थे । फिर बहुत-सी दासियों-धिये जाते और कार्योंका संपादन करते थे । इसके बाद दासियोंके साथ-साथ क्रीडाशालाको जाते और वहाँ शौचविधि करनेके पश्चात् दन्तशुद्धि करते थे । इसके अनन्तर कभी घरपर और कभी सरयूमें जाकर स्नान करते थे ॥ ५-७ ॥ सरयूस्नानको जाते तो पालकीपर सवार हो तथा बहुतसे ब्राह्मणोंसे परि-वेष्टित होकर जाते और तटपर पहुँचते पालकीसे उतर जाते एवं पैदल चलकर सरयूके आगे पानदक्षिणा-युक्त नारियल रखकर प्रणाम और प्रार्थना करते थे । फिर ब्राह्मणोंके वेदघोषके स्नान करते थे । इसके बाद प्रातःकालीन सन्ध्या तथा ब्रह्मयज्ञ करके ब्राह्मणोंको विविध प्रकारके दान देते और रथपर सवार होकर महलोंको लौटते थे ॥ ८-११ ॥ उस रथमें स्नान-स्नानपर सुवर्णसूत्रके लगे रहते और स्वैतवर्णके वस्त्र लटकते रहते थे । सरयूमें सारथी तथा घोड़े नहाये रहते थे और उस रथमेंसे एक प्रकारकी छानि निकलती रहती थी ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर विधानपूर्वक हवन करके राम सादर शिवजीका पूजन करते और कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयीकी पूजा करते थे ॥ १३ ॥ फिर कामधेनु, कल्पवृक्ष, पारिजात, पुष्पकविमान, चिंतामणि, कौस्तुभ आदिकी सीताके साथ-साथ पूजा करते थे । पश्चात् अगस्त्य, वट, बिल्व, पीपल, तुलसी, शमी, पलाश, दुर्वा, राजवृक्ष सूर्यभगवान्की पूजा करके द्वारदेवताको नमस्कार और पूजन करते थे । तदनन्तर

संपूज्य मुकुटं रामः पूजयामास पञ्चकम् । दीपिकां दर्पणं पूज्य पुस्तकादीनपूजयत् ॥१८॥
 पुनः संपूज्य स्वगुरुं पूर्वं विघ्नेषु पूजितम् । उत्थापनस्थितं नत्वा कथां शुश्राव तन्मुखात् ॥१९॥
 पुत्राभ्यां चन्धुभिः पत्न्या पण्डितैः परिवेष्टितः । ततः सप्रार्थितो रामः सीताया ॥ मुहुर्मुहुः ॥२०॥
 विप्रादिभिश्चोपाहारं चकार स्वस्थमानसः । कामधेनुद्रवैधान्नैः कल्पवृक्षसमुद्भवैः ॥२१॥
 मणिद्वयनिर्मितं च बहुौ संताकृतेरपि । ततो भुक्त्वा हि तांबूलं विश्रद्धासांसि राघवः ॥२२॥
 बद्ध्वा कटिं दिव्यवस्त्रैः शशाङ्कपि दधार सः । एतस्मिन्नन्तरे पूर्वं समाहूतो ययौ भिषक् ॥२३॥
 गणकोऽपि राघवेण प्रत्युद्गम्यातिमानिना । निषेदत् राघवाग्रे पूजयामास तौ प्रभुः ॥२४॥
 ततो भिषक् सुखं स्थित्वा राघवाग्रे तदाज्ञया । ददर्श दक्षिणकरे नाडीं रामस्य सादरम् ॥२५॥
 रत्नमुद्राकंकणाद्यैः शोभितस्योज्ज्वलस्य च । कस्यांगुष्ठमूले या धमनी जीवसाक्षिणी ॥२६॥
 तच्चेष्टया सुखं दुःखं ज्ञास्यते च भिषग्वरैः । अतस्मां वैद्यार्यैः स मूर्ध्निबुद्ध्या व्यलोकयत् ॥२७॥
 रामकर्णे विहस्याह राज्ञावाचरितः श्रमः । तद्वैद्यवचनं श्रुत्वाऽक्रोधाग्निः स्मिताननम् ॥२८॥
 ततो वैद्याप तांबूलं ददौ रामः सदक्षिणम् । ततः स गणकः प्राह विद्वन्ार्य सुस्फुटाक्षरम् ॥

पञ्चाङ्गपत्रं चित्रं च राघवाग्रे स्थितः सुधीः ॥२९॥

विघ्नेश्वरो ब्रह्महरीश्वराः सुरा भानुः शशी भूमिसुतो बुधः शुभः ।

शुक्रश्च शुकः शनिराहुर्केतवः सर्वे ग्रहा मंगलदा भवन्तु ते ॥३०॥

लक्ष्मीः स्यादचला तिथिभ्रवणतो वातात्तथाऽऽपुश्चिरं नक्षत्रं कृतपापसंचयहरं योगो वियोगापहः ।

सर्वाभीष्टकरं तथैव कर्णं पंचांगमेतन्स्फुटं श्रोतव्यं प्रतिवासरे द्विजमुन्नाच्छ्लेषस्करं संग्रहम् ॥३१॥

स्वस्ति श्रीराघवाद्यास्ति तिथिश्च दक्षमी मिता । भानुवारः सुनक्षत्रं पुण्याख्यं त्वद्य वर्तते ॥३२॥

बुध, अश्व, हाथी, रथ, आस्त्र, ब्राह्मण, कोठार, कोण, पाककाला, सिंहासन, छत्र, चमर, व्यतान, मुकुट, पञ्च, दीपिका और दर्पणकी पूजा करके पुस्तकादिकोंका पूजन करते थे ॥ १४-१८ ॥ फिर ऊँचे आसनपर बैठे अपने गुरुकी पूजा और नमस्कार करके उनके मुखसे कथा सुनते थे ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर अपने भ्राताओं, पुत्रों और पण्डितोंके साथ बार-बार संताके प्रार्थना करनेपर ब्राह्मणोंके स्वस्थ मनसे कामधेनु, कल्प-वृक्ष और दोनों मणियोंसे उत्पन्न तथा अग्निपर बनाये अन्नका भोजन करके पान खाते थे । तदनन्तर सुन्दर कपड़े पहिन तथा दिव्य वस्त्रसे कपड़ कत्ते पीति-भर्तिके अस्त्र शस्त्र धारण करते थे । इसके बाद पहलेसे ही बुलाये हुए वैद्य तथा ज्योतिषी आते । उनको आते देखकर राम उठ खड़े होते और दो पग आगे बढ़कर स्वागत करके ऊँहें लाते एवं अतिशय सम्मान करते थे । वे आकर सामने बैठ जाते और राम उनकी पूजा करते थे ॥ २०-२४ ॥ इसके बाद वैद्य आनन्दपूर्वक बैठकर रामके आज्ञानुसार रत्न, मुद्रा तथा कंकण आदिसे सुशोभित उनके दाहिने हाथकी नाड़ी देखता था । हाथके अंगुठेकी नीचेवाली जो जीवसाक्षिणी नामकी नाड़ी है, उसे देखकर वैद्यगण प्राणीके सुख दुःख जान लिया करते हैं । इसलिए वैद्य अपने सूक्ष्म बुद्धिसे देखता और कानमें कहता कि 'रातको ज्यादा मेहनत किये हैं न ?' वैद्यकी सुनकर नाम मुस्करा देते थे ॥ २५-२८ ॥ इसके बाद राम दक्षिणाके साथ वैद्यजीको पान देते थे । तदनन्तर ज्योतिषीभी स्वच्छ वस्त्रों और विघ्नोंसे सुसज्जित पञ्चांग फँलाकर रामके सामने वेंडते और इस प्रकार भङ्गलाचरण तथा पञ्चांग-अवणका माहात्म्य सुनाते थे । विघ्नेश्वर (गणेशजी), ब्रह्मा, महेश, सप्तस्त देवता, सूर्य, शनि, चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, राहु, केतु आदि सारे ग्रह आपके मंगलदाता हैं ॥ २९ ॥ ३० ॥ तिथिके सुननेसे लक्ष्मी अचल होती है, बारके अवणसे आयु बढ़ती है, नक्षत्रश्रवण पुराकृत पापोंके समूहको नष्ट करता है, योग अपने प्रियजनके वियोगसे दखाता तथा करण सब प्रकारकी मनःकामना पूर्ण करता है । अतएव ब्राह्मणके मुखसे प्रतिदिन इनका श्रवण करना चाहिए । क्योंकि यह प्राणियोंका सब प्रकारसे कल्याण करता है ॥ ३१ ॥ स्वस्तिश्री रामचन्द्रजी । आज शुक्लपक्षकी दक्षमी तिथि है, रविवार है, पुण्यनामक सुनक्षत्र है,

ऐन्द्रयोगो महान्द्य ववाक्यं करणं शुभम् । कर्कस्थितोऽद्य चन्द्रोऽस्ति द्वितीयस्ते रवृत्तम् ॥३३॥
 मासोऽयं चैत्रमासोऽस्ति वसन्ताख्यः श्रुतस्त्वयम् । सप्तं वृहत्तं राज्यं त्वं चिरं निष्ठावनीतले ॥३४॥
 सर्वेऽपि सुखिनः सन्त सर्वे सन्त निगमयाः । सर्वे सद्राणि वदन्तु मां दक्षिदुःखमाप्नुयात् ॥३५॥
 एवं ज्योतिर्विदा गीतं पञ्चाङ्गं रघुनन्दनः । श्रुत्वा तं दक्षिणां दत्त्वा सतांशुर्लाभनाम सः ॥३६॥
 ततो रामं ययौ वेगान्मालाकारो मनोहरान् । रमाग्रं वंशपात्रस्थान्पुष्पहागान्पवेदयत् ॥३७॥
 रामस्तान्सकलेभ्यश्च दत्त्वाऽविभक्तवयं तनः । पुत्राभ्यामवर्तमानं नरयाऽविभक्तवयं करे ॥ ८॥
 एतस्मिन्नन्तरे रामं नापिनः प्रययौ जवान् । मुहुर्न दर्शयामास रुक्मवन्वनरं व्रितम् ॥३९॥
 नम्रादर्शं ददर्शाय स्मृत्वा रघुनन्दनः । चन्द्रोऽयं मुनिपुत्रं च संजलोचनशोभितम् ॥४०॥
 कञ्जुनामं मांसलं च शम्भुपुत्रं सुवर्तुलम् । कन्दुन्दलसुकान्तं रज्जुपञ्चऽतिमासुरम् ॥४१॥
 भोजनगृहस्थं सुभ्रुं त्रिवलीं लम्बिद्विधम् । रूपमस्तनसमुद्भूतमुकुटेनातिशोभितम् ॥४२॥
 एवं मुखं निरीक्ष्याथ तुनोप जिह्वां प्रभुः । ततो ययौ भूषणनिर्भूतं स्थाप्य प्रभोः पुरः ॥४३॥
 नत्वा रामं दूतमध्ये तस्थिवाज्यापनाग्रजः । ततो रामः शिविकायां स्थित्वा मेढाद्वहिर्बधौ ॥४४॥
 ददर्श मागधारींश्च बहिःकक्षस्थितान् प्रभुः । ततस्ते मागधा रामं नत्वा दीर्घस्वरेण वै ॥४५॥
 अर्थवंशमवान्सर्वान्निषण्णान्सर्वण्यंस्तदा । ततस्ते वन्दिनः सर्वे तुष्टुर्न रघुनन्दनम् ॥४६॥
 नानातत्कृतचारित्र्यै रावणादिवधादिभिः । ततस्ते चारणा गानं प्रचक्रुर्मदिगाननाः ॥४७॥
 नटा वेण्याश्च नर्ततुर्नानावाद्यपुरःसरम् । अन्वे चक्रुर्विनोदाश्च यैः सन्तुष्येत्स राघवः ॥४८॥
 यतो निनेदुर्वाद्यानि नववाद्यस्वना अपि । ततस्तृतीयकक्षायां ददर्श नृपनन्दनः ॥४९॥
 वारणोद्गाथं तुरगान् शिविकाश्च रथास्तथा । नानालंकारयुक्ताश्च वरवच्चैः समन्वितान् ॥५०॥

ऐन्द्रयोग है और कर्क राशिमें चंडा चन्द्रमा आगकी राशिसे दूसरे स्थानपर है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ यह चैत्रका
 महीना है, वसन्त ऋतु है, काण आनन्दपूर्वक राज्य करे और बहुत दिनोंतक इस पृथ्वीतलपर रहें । ॥ सुखी
 हों, ॥ नीयोग हों, सब लोग मङ्गलमय दिन देखें और कोई किसी प्रकारका दुःख न देखे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ इस
 प्रकार ज्योतिषोंके यह वक्तव्यको सुन और उसे तात्काल-दक्षिण देकर विदा कहते थे ॥ ३६ ॥ इसके बाद
 वेगके साथ माली बाँसकी टोकरीमें फूलोंकी मालाएँ लगाकर रामको नजद करता था ॥ ३७ ॥ उन मालाओंको
 वहाँ उपस्थित सब लोगोंमें बाँटकर राम स्वयं भी पहनते थे ॥ ३८ ॥ इसके अनन्तर नाई आता । वह सुवर्णके
 चौलहेसे सुसज्जित शृणंग रामको दिखता था ॥ ३९ ॥ सोनेमें राम चन्द्रमाके समान सुन्दर, मुस्कंराहट युक्त
 और कमलके समान नेत्रोंवाला अपना मुख देखते थे ॥ ४० ॥ वह मुख छोटी-सी नासिकासे युक्त, भरा हुआ,
 गोलाकार, अच्छे अच्छे फुण्डलों तथा मोतियोंके गुच्छोंके अतिशय शोभायमान एवं तेजोमय था ॥ ४१ ॥ दोनों
 कपोल ऊँते थे, सुन्दर-सी त्रिवली अर्पित तीन लक्ष्मणोंके माथेमें पड़ी थीं । ॥ सुवर्ण और रत्नोंसे सुशोभित मुकुट
 मस्तकपर धारण किये थे ॥ ४२ ॥ इस प्रकार अपना मुखमण्डल देखकर राम बहुत प्रसन्न होते थे । इसके पश्चात्
 एक सेवक हाता, जिसके हाथोंमें सुलगती हुई धूप रहती थी । वह धूपदानी रामके सामने रख तथा नमस्कार
 करके दूतोंके बीचमें प्रभुके सामने बैठ जाता करता था । इसके अनन्तर शिविकामें बैठकर राम घरसे बाहर
 निकलते थे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ बाहरके आँगनमें वन्यजीव लड़े रहते थे, उन्हें राम देखते थे और जब राम-
 को वे देखते तो प्रणाम करके लक्ष्मणसे रामके पूर्वपुत्रोंका वंश गाने लगते और फिर रामकी स्तुति करते थे
 ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ वे उनके किये रावणवध आदि चरित्रोंका विजय वर्णन करते थे । तदनन्तर चारणगण प्रसन्नमुख
 होकर गाना गाते और नट तथा वेण्यामें नाना प्रकारके वाजोंके साथपर नाचने लगती थी । कितने ही लोग
 विनोद करने लगते, जिससे कि राम प्रसन्न हों ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ इसके बाद कितने ही प्रकारके वाजे बजने
 लगते थे । तब राम दूसरे आँगनमें तीसरेमें पहुँचते थे ॥ ४९ ॥ वहाँ बहुतसे हाथी, घोड़े, पालकियाँ और

■ रथकक्षायां नृपान्वोरान्सुहृज्जनान् । समामनान्दर्शनार्थं ददर्श रघुनन्दनः ॥५१॥
 ततः पञ्चमकक्षायां पुष्पक पुष्पवाटिकाः । दूतान्ददर्श श्रीरामः शुक्लहस्तान्सहस्रशः ॥५२॥
 ■ स षष्ठकक्षायां पापश्वाकृष्टान्सहस्रशः । वीरान्ददर्श श्रीरामः प्रवद्धकरसम्पुटान् ॥५३॥
 ■ सप्तमकक्षायां ययौ रामः सर्वां प्रति । शिविकायाश्चावतीर्य धनैः सिंहासनं ययौ ॥५४॥
 तस्य कृत्वा नमस्कृत्य शोषानैः स धनैः प्रभुः । सिंहासनमास्रोह वरछत्रसुशोभितम् ॥५५॥
 दधार छत्रं सौमित्रिश्चामरं भरतस्तदा । सत्रघ्नो व्यजनं रम्यं पादुके वायुनन्दनः ॥५६॥
 सुग्रीवो जलपात्रं च वगदशं विभीषणः । दधार हस्ते ताम्बूलपात्रं बालिनन्दनः ॥५७॥
 वक्त्रकोशं जांबवाश्च दधार वेगवत्तरः । तस्यो सिंहासने रामः स पृष्ठांकोपवर्धनः ॥५८॥
 तस्यो पृष्ठे लक्ष्मणश्च भरतः सम्पपार्श्वके । सत्रघ्नोऽसौ वामपार्श्वे पुरतो वायुनन्दनः ॥५९॥
 वायव्यकोणे रामस्य सुग्रीवः सरिथतोऽभवत् । ईशान्यां राक्षसेन्द्रः स आग्नेय्यामङ्गदः स्थितः ॥६०॥
 नैऋत्यां जांबवाश्चापि वीराः सर्वे समन्ततः । राघवाग्रे नृपाः सर्वे स्थिताः सम्बद्धपाणयः ॥६१॥
 पार्श्वयोस्ते राघवस्य प्रोच्चस्थाने मुनीश्वराः । जुगतो ननृतुः सर्वा वारवेडयाः सहस्रशः ॥६२॥
 जगतो वीरास्ततो दूताः सभायां संस्थिताः क्रमात् । निषेदुर्मुनयः सर्वे रामपुत्री निषेदतुः ॥६३॥
 राममित्रा निषेदुस्ते तथा रामाक्षया नृपाः । ये ये मुख्या निषेदुस्ते तथा वीराः सुहृज्जनाः ॥६४॥
 एभ्योऽन्ये ते स्थिता एव न निषेदुः प्रभोः पुराः । तेषां मध्ये रामचन्द्रः शुशुमेऽनुपमस्तदा ॥६५॥
 सेवकाद्या न निषेदुः सुमन्त्र एव तस्थिवात् । एवं स्थित्वा समार्या स कृत्वा कार्पाण्यनेकशः ॥६६॥
 नानाकार्येषु बन्धूषु पुत्रावाजाप्य राघवः । दृष्ट्वा नानाकौतुकानि पूर्ववद्गृहमापयौ ॥६७॥
 तदा निषेदुर्बाधानि गोमुखादीन्यनेकशः । भुत्वा वाद्यनिनादाश्च जानकी सम्भ्रमात्पूरः ॥६८॥

रथ सड़े रहते थे । जिनमें अनेक प्रकारके अलङ्कार लगे रहते और अच्छे कमलोंका ओहार पड़ा रहता था । ॥ ५० ॥ इसके बाद उस जागनमें बाहरसे आये हुए उन राजाओं, पुरवासियों और मित्रोंको देखते थे, जो वहाँ रामकी प्रतीक्षामें पहुँचे ही से उपस्थित रहा करते ॥ ५१ ॥ फिर पश्चिमी चौकमें पुष्पकविमान, पुष्पवाटिका तथा गस्त्र धारण किये हुए हज़ारों सिपाहियोंको देखते ॥ ५२ ॥ फिर छठी चौकमें आकर हाथ जोड़े हुए हज़ारों घोड़सवार वीरोंको देखते थे ॥ ५३ ॥ इसके बाद सातवीं चौकमें पहुँचकर अपनी राजसभामें जाते थे । वहाँ पालकीसे उतरकर सिंहासनके पास जाते थे ॥ ५४ ॥ दाहिनी ओर सिंहासनको प्रणाम करके धनैः धनैः सौदियोंसे चढ़कर सिंहासनपर बैठते थे । वह सिंहासन छत्रसे सुशोभित रहता था ॥ ५५ ॥ रामके बैठ जाने-पर लक्ष्मण छत्र लेते, भरत चमर लेते, पंखा सत्रघ्नजी लेकर सड़े होते और हनुमान्जी रामकी चरणपादुका लिये रहते थे । इनके सिवाय सुग्रीव जलकी झारा, विभीषण एक सुन्दर-सा दर्पण, अङ्गद ताम्बूलका पात्र और वक्त्रकी सन्दूक जांबवान् लिये रहते थे । राम पीठपर तर्किया लगाकर सिंहासनपर बैठते और उनके पीछे लक्ष्मण, दाहिनी ओर भरत, बायीं ओर सत्रघ्न, सामने पवनकुमार, वायव्य कोणमें सुग्रीव, ईशान कोणमें विभीषण और आग्नेय कोणमें अङ्गद सड़े होते थे ॥ ५६-६० ॥ नैऋत्य कोणमें जांबवान् रहते और बहुतसे पुरवासी चारों ओर सड़े रहते थे । रामचन्द्रजीके आगे सब राजे हाथ जोड़-जोड़कर सड़े रहा करते थे ॥ ६१ ॥ रामके दाहिने बायें दोनों ओर एक ऊँचे आसनपर मुनिगण बैठते थे । सामने हज़ारों वेण्यायें माँवती थीं ॥ ६२ ॥ इसके बाद वीरगण और फिर दूतगण सड़े रहा करते थे । समस्त ऋषीश्वर तथा दोनों राजकुमार भी आकर अपने-अपने आसनपर बैठ जाते थे ॥ ६३ ॥ रामके मित्र तथा राजे रामके आज्ञा-नुसार बैठते थे । जो नगरके मुख्य निवासी थे, वे तथा मित्रगण भी बैठते थे ॥ ६४ ॥ इनके सिवाय और लोग रामके सामने नहीं बैठते थे, उन्हें सड़े ही रहना पड़ता था । उन सबोंके बीचमें रामकी एक अनुपम शोभा होती थी ॥ ६५ ॥ सेवक आदिमेंसे कोई भी नहीं बैठता था । उनमेंसे केवल सुमन्त्र बैठते थे । इस प्रकार सभामें बैठ और नाना प्रकारके राजकार्य करके भाइयों और बेटोंको कितने ही काम सौकर विविध प्रकार-

प्रत्युद्गम्य तोयहस्ता तत्प्रतीक्षां चकार भा । रामोऽपि पूर्वलोकान्सप्तकशास्त्रनुकमात् ॥६९॥
 प्रविशन्सकलानां ददौ तांस्तान्स्वतोपयत् । ततोऽग्रे बन्धुभिर्गोहं पुत्राभ्यां संविवेश सः ॥७०॥
 ददर्श जानकीं रामः पीतकौशेयधारिणीम् । साऽपि रामं ययौ सीता व्रज्याऽवनतानना ॥७१॥
 वस्त्रनेत्रकटाक्षैश्च मोहयन्ती रघूत्तमम् । नानालङ्कारमपुक्ता वरनूपुरनिःस्वना ॥७२॥
 भक्तो रामो जलं स्पृष्ट्वा धृत्वा सीताकरं मुदा । लक्ष्मणादीन्मंत्रितकुर्य सीतागोहं विवेश सः ॥७३॥
 बहिर्दृष्टं श्रुतं वाऽपि यद्यत्कौतुकमुत्तमम् । तत्सर्वं जानकीं प्राह तोषयामास तां मुहुः ॥७४॥
 ततः सर्वान् समाहूय मोक्षनार्थं समुद्यतः । स्नानं कृत्वा स मध्याह्नं कर्म चक्रे रघूत्तमः ॥७५॥
 तर्पयित्वा पितृंश्चापि नैवेद्यान् धम्मवे ददौ । वैश्वदेवं ततः कृत्वा बलिदानं विधाय सः ॥७६॥
 दत्त्वा भूतबलिं चापि पितृंश्चापि स्वधेति च । बहिस्त्यक्त्वा काकबलिं त्वनिषीन्पूज्य सादरम् ॥७७॥
 यतींश्च ब्राह्मणान्पूज्य हेमश्रेष्ठेषु राघवः । परिवेष्टितेषु जानक्या त्रिपदासु धृतेषु च ॥७८॥
 तैः सर्वैर्मोजनं चक्रे स्तुतभिर्बोजितो मुदा । करशुद्धिं ततः कृत्वा भुक्त्वा तांबूलमुत्तमम् ॥७९॥
 ददौ तेभ्यो दक्षिणांश्च विप्रेभ्यो रघुनायका । गत्वा शतपदं रामो निद्राशालां ययौ क्षुनैः ॥८०॥
 एतस्मिन्तरे सीता भुक्त्वा रामान्तिकं ययौ । बीजयामास भीरामं मञ्जुकस्यं पुरःस्थिता ॥८१॥
 निद्रां भीरामो मञ्जुके सीतया । ता दास्यो बीजयामासुर्दिन्यालङ्कारभूषिताः ॥८२॥
 ततः प्रमुदा सा सीता प्रमुदोऽभूद्रमापतिः । सारिभिः सीतया क्रीडां तथा बुद्धिबलेन हि ॥८३॥
 नानाकृत्रिमसैन्यैश्चाकरोदन्यैरपि प्रभुः । ततो द्राघामण्डपाधो जलयन्त्रादिकौतुकम् ॥८४॥
 च्छ्वा पशितुलान्सर्वान्पञ्जरस्थान्दर्शय सः । गत्वा सोपानमार्गेण प्रासादाग्रे पुरीं निजाम् ॥८५॥

के कौतुक देखनेके बाद पहिलेकी तरह अपने घरको लौट आते थे ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ उस समय गोपुलापि बाजे बजने लगते थे । उस बाजोंको सुनकर पचड़ायी हुई सीता हाथमें जलकी सारी लेकर रामके आनेकी प्रतीक्षा करने लगती थीं । राम भी पहलेकी तरह सातों बौक लायकर ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ चलते हुए सब लोगोंको प्रसन्न करते जाते । फिर भाई तथा पुत्रोंके साथ आगे बढ़ते हुए अपने भवनमें जाते थे ॥ ७० ॥ वहाँ पीछे रत्नके रेशमी कपड़े पहने सीताको देखते और सीता भी लज्जाके मारे सिर झुकाये अपने तिरछे नेत्रकटाक्षोंसे रामको मुग्ध करती सामने जाती थीं । उस समय सीताके अलङ्कारों और नूपुरोंकी अनेक प्रकारकी सनकार सुनायी पड़ती थी ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ इसके बाद राम जल लेकर हाथ-पैर धोते, कुल्ला करते और सीताका हाथ अपने हाथसे पकड़कर उठते थे । लक्ष्मण आदिको विदा करके सीताके महलोंमें जाते थे ॥ ७३ ॥ वहाँपर बाहर जो कुछ कौतुक रहते, सब एक-एक करके सीताको सुनाते हुए उन्हें प्रसन्न करते थे ॥ ७४ ॥ इसके लोगोंको भोजनका बुलावा भेजते और स्वयं स्नान करके मध्याह्नकालीन कर्म करते थे ॥ ७५ ॥ पितरोंका तर्पण करके शिवजीके लिये नैवेद्य अर्पण करते थे । फिर बलिवैश्वदेव करते और काकबलि आदि देते थे ॥ ७६ ॥ तदनन्तर भूतबलि देकर पितरोंकी 'स्वधा' उद्धारण करके तृप्त करते, काकबलि बाहर निकाल देते और उसके बाद आदरपूर्वक अतिथियोंका सत्कार करते थे ॥ ७७ ॥ ब्राह्मणों और यतियोंका पूजन कर लेनेके पश्चात् सायं तीपाईपर रखे सुवर्णके पाशोंमें जानकीके हाथों परसे अनेक प्रकारके पकवानोंको सब लोगोंके साथ खाते थे । उस समय सब पुत्रवधुर्ये उन लोगोंका पंखा झला करती थीं । भोजन करनेके पश्चात् हाथ धोते और उत्तम ताम्बूल खाकर ब्राह्मणोंको दक्षिणा देते थे । फिर सीता पग चलाकर अपनी निद्राशालामें पहुँच जाते थे ॥ ७८-८० ॥ इसी बीच सीता भी भोजन करके रामके पास पहुँच जातीं और वहाँ मन्त्रके ऊपर बैठे हुए रामके पास बैठकर पंखा झलने लगती थीं ॥ ८१ ॥ बादमें राम सीताके मध्यपर शयन करते थे, दासियाँ उनपर पंखा झलने लगती थीं ॥ ८२ ॥ कुछ देर शयन करनेके बाद सीता उठ जातीं और राम भी जाते थे । राम सीताके साथ बुद्धिबलसे कुछ देरतक चौसर आदिके खेल खेलते थे । फिर जंगूरकी साड़ीके नीचे बने

वनारामान्विता दृष्ट्वा हृद्वीथ्याऽतिरञ्जिताम् । शनैर्ययौ प्रभृगोष्ठं नानघेनूददर्श सः ॥८६॥
 तां सम्प्रेष्य गृहं सीता स्वदासीपरिवेष्टिताम् । द्वारांतिकं ययौ रामस्तत्र ते लक्ष्मणादयः ॥८७॥
 चक्रुः प्रणामं श्रीरामं तैः सहैव शनैः शनैः । वाजिशालां ययौ रामो दृष्ट्वा तत्र स वाजिनः ॥८८॥
 गजशालामृगशालां दृष्ट्वा रामः शनैः शनैः । ददर्श अस्त्रशालां च व्याघ्रशालां प्रभृर्ययौ ॥८९॥
 दृष्ट्वाऽथ शिबिकाशालां माहिषेयौ विलोक्य च । महिषाश्वशालां ■ रथशालां ददर्श सः ॥९०॥
 आरुह्य स्यंदने रामः शनैः सर्वैर्बहिर्ययौ । सप्तकक्षाः समुल्लंघ्य तत्रस्थः पूर्ववज्जनैः ॥९१॥
 सर्वैर्युक्तबाह्यां तां श्रेष्ठां कक्षां ददर्श सः । तत्र यन्त्राणि श्रेष्ठानि शतघ्नीः शकटस्थिताः ॥९२॥
 तृणकाष्ठादिसत्त्वानि दूतस्थानान्यपश्यत् । ततो नवमकक्षायां ददर्श रघुनन्दनः ॥९३॥
 अस्त्रपाणीन्धारणस्थानं तुरगस्थाननेकशः । रक्षयन्ति हि ये सर्वे स्वीयं गेहं त्वहर्निशम् ॥९४॥
 एवं ■ नवकक्षां समुल्लंघ्य रघूत्तमः । बहिः स सप्तमो दृष्ट्वा परिखाः सज्जला नव ॥९५॥
 शनैः पश्यन्मयोध्यां तां राजमार्गो मुदान्वितः । शीघ्रं ययौ पुरद्वारं ददर्श द्वाररक्षकान् ॥९६॥
 नवकक्षास्त्वयोध्यायाः समुल्लंघ्य शनैः प्रभुः । परिखां नवापश्यसोयबहुधादिपूरिताः ॥९७॥
 ततो नानावनारामकौतुकानि रघूसमः । पश्यन्स बन्धुपुत्रैश्च सरय्वासीरमाययौ ॥९८॥
 तत्र स्थित्वा सुनीकायां क्रीडां कृत्वा कियत्क्षणम् । नद्यास्तटे समायां स तस्थौ सैन्यपुतः प्रभुः ॥९९॥
 तत्रापि वारवंश्यानां पश्यन्तृप्यानि राघवः । कियत्कालमतिक्रम्य ययौ शीघ्रं ततः पुरीम् ॥१००॥
 ततः शनैः सर्वां गत्वा पूर्वोक्तैश्चोपचारकैः । लक्ष्मणाद्यैः सेवितश्च तस्थौ सिंहासनोपरि ॥१०१॥
 ततः कृत्वा घनेकानि नानाकार्याणि राघवः । आह्वाप्य बन्धुपुत्रांश्च पूर्ववत्स गृहं ययौ ॥१०२॥

कोवारे आदि देखते थे ■ ८३ ॥ ८४ ॥ फिर बीजरोमें पाले हुए पक्षियोंको देखते थे । तत्पश्चात् सीढ़ीके मार्गसे सर्वोष्ण प्रासादपर चढ़ जाते और वहाँसे वनों और घाटीकोसे अलंकृत, बाजारों तथा गलियोंसे अतिरञ्जित अपनी अयोध्यापुरीको देखते थे । फिर घाँरे-घाँरे गोशालामें जाते और वहाँकी गौओंको देखा करते थे ■ ८५ ॥
 ॥ ८६ ॥ इसके अनन्तर दासियों समेत सीताको ■ भेज देते और स्वयं कोहारेकी ओर आते थे । वहाँ लक्ष्मण आदि भ्राता रामको सविनय प्रणाम करते थे ॥ ८७ ॥ फिर उनको साथ लेकर राम घोड़े-धीरे अश्वशालाको जाते । वहाँ घोड़ोंको देखकर ॥ ८८ ॥ ■ और उष्ट्रशालाको देखते हुए अस्त्रशाला तथा व्याघ्रशालाका अवलोकन करते थे ॥ ८९ ॥ फिर शिबिकाशाला और महिषीशालामें जाकर शिबिकाओं ■ भैंसोंको देखनेके बाद रथशाला देखते थे ॥ ९० ॥ तत्पश्चात् एक रथपर सवार होकर जाने : जाने : बाहरकी तरफ जाया करते थे । बाइमें महलके सातों चौकोंको लांघते एवं पहलेकी तरह उपस्थित सब लोगों देखते हुए आठवें फाटकवाले आँगनमें पहुँचते थे । वहाँपर लड़ाइयोंमें काम आनेवाले कितने ही यन्त्र तथा बहुत-धी तोपें रखी रहती थीं ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ उन्हें देखकर दूतोंके निवाससंस्थान तथा तृण-काष्ठादिके संग्रहभवनकी देखनेके अनन्तर नवें आँगनमें पहुँचते थे ॥ ९३ ॥ वहाँ यह देखते थे कि हाथमें शस्त्र लिये घाँवें और हाथीपर सवार होकर सिपाही रात-दिन अपने-अपने स्थानोंकी रक्षा ■ रहे हैं ॥ ९४ ॥ इस प्रकार नवों कक्षाओंको लांघकर कोटके चारों ओर जलसे भरी बाहरकी नौ खाइयोंको देखते थे ॥ ९५ ॥ इसके बाद राजमार्गसे चलकर अयोध्याको देखते हुए शीघ्र पुरद्वारपर पहुँचते और वहाँपर रहनेवाले द्वाररक्षकोंकी देख-रेख करते थे ॥ ९६ ॥ फिर अयोध्याकी नौ कक्षाओंको लांघकर जल और अग्निसे परिपूर्ण नौ परिखाएँ और अनेक बाग-बगीचेके कौतुक देखते हुए अपने भाइयों और पुत्रोंके साथ सरयूके तीर पहुँचते थे ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ वहाँ एक अच्छी नौकापर बैठ ■ कुछ देरतक संन्यस्त करके सेनाके शिबिरमें जाते और सैनिकोंके ■ सभामें बैठते थे ॥ ९९ ॥ वहाँ कुछ समय तक वेश्याओंके नृत्य देखकर पुरीमें लौट आया करते थे ॥ १०० ॥ तदनन्तर सभामें जाते और पूर्वमें जो कह आये हैं, उन सबके साथ लक्ष्मणादि भ्राताओंसे सेवित होकर सिंहासनपर बैठते थे ॥ १०१ ॥ वहाँ अनेक कार्योंको करनेके पश्चात् भाइयों और पुत्रोंको अपने-अपने घर जाने-

सायंकाले ततः संध्यां कृत्वा हुत्वा यथाविधि । गंधाद्यैरुपचार्य शिवं सम्पूज्य भक्तितः ॥१०३॥
 कृत्वोपहारं विप्रैश्च पुत्राभ्यां चन्द्रभुभिः सह । शिविकायां पुनः स्थित्वा देवभयतनेषु च ॥१०४॥
 साकेतस्थेषु श्रीरामो गत्वा नस्त्रा शिवादिकान् । नानाविधान् देवसंघान् फलैः पुष्पैरपूजयत् ॥१०५॥
 देवालयेषु सर्वेषु सुराणां तेषु राघवः । शृण्वन्मानाकीर्तनानि चारुत्तनर्चनान्यपि ॥१०६॥
 पश्यन्ननानाकीर्तुकानि परां मृदमवाप सः । बाह्यनारुद्धदेवानामपश्यत्कीर्तुकानि ॥१०७॥
 ततो ययौ ब्राह्मणेन इष्टमार्गेण राघवः । रत्नदीपप्रकाशैश्च विवेश विजयमंदिरम् ॥१०८॥
 ततो नानाकथाभिश्च वार्ताभिः पुत्रबन्धुभिः । सार्धयामां मित्रां नीत्वा रतिमिहे विवेश सः ॥१०९॥
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र सीताऽग्रे रतिमन्दिरे । पुष्पशय्यादि सम्पद्य तत्प्रतीक्षां चकार सा ॥११०॥
 शायदायांतमालोक्य सहस्रोत्थाय जानकी । धृत्वा हस्ते राघवेन्द्र रतिशालां निनाय ॥१११॥
 सर्वाविसर्ज्य दासीश्च मुक्ताजालान्यनेकशः । समंततो विमुच्यथ तस्यौ रामः स मंचके ॥११२॥
 ततस्तां मैथिलीं धृत्वा मंचके संन्यवेशयत् । कोटां विधायाथ तस्यौ रामः मंचके ॥११३॥
 ततस्तुष्टं रमानाथं जानकी लज्जिताञ्जवीत् । राम राजावपत्राक्ष किंचित्पृच्छामि मे वद ॥११४॥
 कुक्षजन्मानन्तरं हि कथं गर्भो न वै । धार्यते कारणं त्वस्य किमस्ति तद्वदस्व माम् ॥११५॥
 तत्सीतावचनं श्रुत्वा सस्मित प्राह राघवः । हे सीते कञ्जनयने सम्यक् पृष्टं त्वया मम ॥११६॥
 तत्सर्वं ते वदाम्यथ तच्छृणुष्व सुमर्षमे । किमर्थं न बहुन् पुत्रास्त्वथ त्वं वाञ्छसि प्रिये ॥११७॥
 सद्गते बहवः पुत्रा न योग्यास्त्वत्र वै भुवि । कर्दकस्य दुराचारात्कुलस्य लाञ्छनं भवेत् ॥११८॥
 अतएव ममेच्छा न बहुपुत्रेषु मैथिलि । यदिच्छया त्वया गर्भो धार्यते न कदाचन ॥११९॥
 पुत्रस्त्वेकः प्रतीक्ष्यो हि यः कुलं भूषयेद्गुणैः । किं जाता बहवः पुत्रा दृष्टास्ते कृमयो यथा ॥१२०॥

श्री आश्वी देकर स्वयं भी अपने घर चले आते थे ॥ १०२ ॥ सायंकालके समय विधिपूर्वक संध्या और हवन करके धूप-दीप-गन्धादि उपचारोंसे भक्तिपूर्वक शिवजीको पूजा करते थे ॥ १०३ ॥ फिर भोजन करके पुत्रों तथा शौचवर्गोंके साथ पालकोंमें बैठकर देवताओंके मन्दिरोंको जाते थे ॥ १०४ ॥ साकेतपुरी (अयोध्या) के सब मन्दिरोंमें जाकर शिवादिक देवताओंको नमस्कार करके फूल-फूलसे पूजन करते थे ॥ १०५ ॥ उन्हीं देवालयांमें घोड़ी देर तक हरिकीर्तन सुनते तथा गणिकाओंका नृत्य देखते थे ॥ १०६ ॥ इस प्रकार विविध कीर्तुकोंको देखकर राम बहुत प्रसन्न होते थे । तदनन्तर देवताओंकी सवारीको कौतुक देखते थे ॥ १०७ ॥ इसके सवारीपर चढ़कर रत्नके बने दीपकोंके प्रकाशमें चलते राजमार्गमें अपने जाते थे ॥ १०८ ॥ फिर पुत्रों तथा भ्राताओंके कुछ बेरतक इधर-उधरकी बातें करते और टेढ़े-पहरे रात बीतनेके रतिशालांमें प्रविष्ट होते ॥ १०९ ॥ उधर सीता अपने रतिशालांमें फूलोंको गय्या बिछाकर रामके आनेकी प्रतीक्षा करती रहती थीं ॥ ११० ॥ वे रामको आते देखतीं तो तुरन्त आगे बढ़तीं और उनका हाथ पकड़कर रतिशालाके भीतर ले आती थीं ॥ १११ ॥ वहाँ सीताको सेवामें उपस्थित दासियोंको बिदा करके रामचन्द्र कमरेकी सारी लिङ्गिकां खोलकर शय्यापर ॥ ११२ ॥ इसके बाद सीताका हाथ पकड़कर उन्हें भी बैठाते और विविध क्रीड़ा करके सीताको प्रसन्न करने ला आते थे ॥ ११३ ॥ प्रकार प्रसन्न रामको देखकर एक दिन सीताने लज्जित भावसे कहा—हे राजावपत्राक्ष राम ! मैं आपसे यह पूछना चाहती हूँ कि कृष्णके जन्म लेनेके बाद फिर मेरे गर्भ क्यों नहीं रहता ? ॥ ११४-११५ ॥ इस प्रकार सीताका प्रश्न सुनकर मुस्कराते हुए राम कहने लगे—हे कमलनयनी सीते ! तुमने बहुत प्रसन्न किया है । मैं सब कारण बतलाता हूँ ॥ ११६ ॥ हे सुमर्षमे ! तुम शायमान होकर सुनो । प्रिये ! पहले मुझे बतलाओ कि तुम अधिक पुत्र क्यों चाहती हो ? ॥ ११७ ॥ इस संसारके अच्छे कुलमें अधिक पुत्र होना ठीक नहीं है । बहुतेरे पुत्रोंमें यदि एक पुत्र भी दुराचारी निकल गया तो सारे कुलपर लाञ्छन लग जाता है ॥ ११८ ॥ इसलिये हे मैथिलि ! मुझे अधिक पुत्रोंकी इच्छा नहीं है । मेरी इच्छा न रहनेके कारण ही तुम्हें गर्भ नहीं रहता ॥ ११९ ॥

द्वावेवास्ता कदाचिन्न यथा नेत्रे भुजौ यथा । यथा तौ शत्रिभूयो च यथाऽहं लक्ष्मणस्यथा ॥१२१॥
 तथापि जातौ द्वौ पुत्रौ माञ्जुऽनुसन्तानिस्त्वतः । ततः प्राह पुनः भीता न जाता दुहिता मत्त ॥१२२॥
 एकाऽपि कारणं तत्र किमस्ति तद्वदस्य मातुः । नृत्याभावचनं श्रुत्वा जानकी प्राह राघवः ॥१२३॥
 त्वत्कन्या च मया कर्म देयाऽज्जगतीन्तले । मन्त्रमात्रो नृपः कंऽन्त मन्त्रीवर्पातमहान् ॥१२४॥
 यस्य पत्न्यै त्वया कार्यं शिरसा नमनं तदा । को रौऽन्त जगन्नाहि नृपस्य तनयो ममान् ॥१२५॥
 प्रक्षालनीयौ चरणौ विवाहे यस्य वै मया । अतएव ममेच्छाऽनृत्कन्यायामपि नो प्रिये ॥१२६॥
 कुशादीनां तु याः कन्यास्तास्ते किं नैव बालिकाः । किं र्यावन्मदान्मोने मोहं प्राप्ताऽस्ति भूतले ॥१२७॥
 आरमानं विस्मृताऽस्यद्य त्रैलोक्यजननीमिति । यदत्र विद्वे स्वरूपं दृश्यते तत्तवांशजम् ॥१२८॥
 पौरुषं दृश्यते यच्च तच्च सर्वं ममांशजम् । अत्र स्त्रीपुरुषा ये ते पुत्रदुहितास्तव ॥१२९॥
 एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् । इति यद्वचनं सीते सामान्यं विद्व नो वरम् ॥१३०॥
 एकः स तनयो धन्यः कुलं यस्तारयेन्नजन् । कुभितुष्याश्च ते पुत्राः शतशो दुष्टमार्गगाः ॥१३१॥
 इति यद्वचनं सीते वरिष्ठं तन्मृतं युधिः । अन्यत्ते कारणं वन्मि यस्मात्त बहवः सुताः ॥१३२॥
 मया नैवापितास्त्वत्र तच्छृणुष्व शुचिस्मिते । विनोदार्थं वदाम्यद्य माऽन्यथा कुरु मद्रवः ॥१३३॥
 बहुपुत्रैश्च नारीणां मारुष्यं स्थास्यते न हि । मन्वेति तत्र मारुष्यच्छेदिनी बहुमन्त्रतिः ॥१३४॥
 न मयाऽप्रापिता सीते शुभं विद्मोति मे प्रिये । यदीच्छाऽस्ति बहूनां ते तनयानां विद्महे ॥१३५॥
 तर्हि ते द्वापरे कृष्णरूपेण द्वारकापुरि । दश पुत्रान् प्रदास्यामि वदा तेषां सुखं भव ॥१३६॥

केवल एक ऐसे पुत्रकी इच्छा करना चाहिए कि जो अपने अलौकिक गुणोंसे कुलको विभूषित कर सके । कोइ-
 की तरह व्यर्थ जन्म लेनेवाले बहुतरे दुष्ट पुत्रोंसे क्या लाभ ॥ १२० ॥ वस, ये दोनों चिरञ्जीवी रहें । ये मेरे
 दो नेत्र, दो भुजा, चन्द्र-सूर्य और हमारे तथा लक्ष्मणके हैं । तुम्हारे दो बेटे तो हो ही गये हैं, अब भीच
 सम्पत्ति हो यही ठीक है । फिर सोचने कहा-लेकिन हमारा कोई कन्या क्यों नहीं हुई ? ॥ १२१ ॥ १२२ ॥
 इसका क्या कारण ? सा हमसे कहिये । साताका यह प्रश्न नुनकर रामने कहा कि यदि तुम्हारे कन्या हाता
 तो मैं किसको देता ? संसारमें कौन ऐसा है, जो मेरा आभाता बन सक ? हमारे वरवर कौन राजा है, जो
 सातों द्वीपोंका अधीश्वर है ॥ १२३ ॥ १२४ ॥ जिसको स्वामी तुम मरतक भुक्तकर प्रणाम कर सका । संसारमें
 कौन ऐसा वर मिल सकता है कि विवाहमें जिसके पैर में अपने हाथोंसे घंटा । इसा कारण मैंने पुत्रोंकी इच्छा
 नहीं की ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ फिर कुश आदिके जो कन्याएँ उत्पन्न हुई है, वे क्या तुम्हारी नहीं है ? हे सीते ! यौवन-
 के मद्दसे तुम पागल तो नहीं हो गयी हो ? ॥ १२७ ॥ जोताना लोकोंकी मता हाकर भी ऐसी कटवटोंग
 बात कर रही हो । इस संसारमें जितना स्वरूप दीखता है, वह सब तुम्हारे ही अंशसे जायमान हुआ है ॥ १२८ ॥
 संसारमें जितना भी पुरुषरूप है, वह मेरे अंशसे उत्पन्न हुआ है । यहाँ जितने पुरुष-स्त्री हैं, वे सब तुम्हारे
 लड़के और लड़कियाँ हैं ॥ १२९ ॥ शास्त्रोंमें जो यह बात कही गयी कि "एक ही नहीं, मनुष्यको कई पुत्र
 उत्पन्न करनेकी इच्छा रखनी चाहिए । सम्भव है कि उनमेंसे कोई ऐसा सपूत निकल आय, जा गयामें
 धात करके कुलका उद्धार करे ।" यह सामारण बात है । यह कोई श्रेष्ठ उक्ति नहीं कही जा सकती
 ॥ १३० ॥ मेरी रायमें ही अपने कुलका विस्तार करनेवाला केवल एक पुत्र हो । द्वितीय मागं पर चलनेवाले
 कोइकी तरह उत्पन्न संकटों बेटोंसे कोई लाभ नहीं ॥ १३१ ॥ मैं जिस बातका कह रहा हूँ, बहुतसे विद्वानों-
 ने उसे श्रेष्ठ माना है । दूसरा कारण भी बतलाता हूँ कि मैंने तुमसे कई पुत्र क्यों नहीं उत्पन्न किये ।
 हे शुचिस्मिते ! मैं विनोदवश इस बातको कह रहा हूँ । इसे व्यर्थ मत जाने देना, ठीकसे समझना
 ॥ १३२ ॥ बहुत पुत्रोंके होनेसे स्त्रीकी तरफाई नहीं रह जाती । बहुत सन्तान होनेसे तुम्हारे यौवनका
 नाश हो जाता ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ यहाँ सोचकर मैंने अविक सम्पत्ति नहीं उत्पन्न का । यह गुप्त रहस्य
 जानना । हे विदेहज ! फिर भी बहुत सन्तान पानेकी हो तुम्हारी इच्छा हो तो द्वापरमें कृष्णरूपसे मैं तुम्हें

कन्यामपि तदैकां तेऽहं दास्यामि न संशयः । तदा ॥ बहुपूर्वश्च तारुण्यं स्थास्यते ॥ हि ॥ १३७ ॥
 अतः स्त्रीणां महत्ताणि धोडशैकशतं पुनः । तथा मुख्यास्त्वष्ट नार्यस्त्वया सह करोम्यहम् ॥ ३८ ॥
 तदा बहूनां पुत्राणां स्नुषाणां त्वं सुखं भज । अहं चापि बहुस्त्रियां तदा सौख्यं भजामि वै ॥ १३९ ॥
 इति रामवचः श्रुत्वा तदा सीता स्मितानना । राधवं हर्षिता प्राह चाकचातुर्यं कुतः प्रभो ॥ १४० ॥
 एतल्लब्धं त्वया राम येन रञ्जयमीह माम् । एवं प्रोक्ता मया शिष्य दिनचर्या रमापतेः ॥ १४१ ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे

उत्तराखण्डे रामदिनचर्यावर्णनं नामकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशः सर्गः

(भगवानके विविध अवतार)

श्रीरामदास उवाच

अयैकदा वसिष्ठ हि प्रभाते चात्रबोलुवः । किंचित् प्रष्टुमिच्छामि तत्त्वं वद मुनीश्वर ॥ १ ॥
 सर्वं यद्यपि जानामि वाल्मीकेश प्रसादतः । तथापि लोकान्सकलान् ज्ञातुं पृच्छामि तेऽद्य हि ॥ २ ॥
 यदाऽस्मामिनिश्चायां हि सर्वनिद्रा विधीयते । तदा संभ्रूयते कर्णे भक्तवत्कस्य वै ध्वनिः ॥ ३ ॥
 अमुं मत्संभ्रमं छिधि पर कौतूहलं गुरो । लवस्येति वचः श्रुत्वा वसिष्ठस्तमथात्रवीत् ॥ ४ ॥
 बहुयथ ब्रह्महत्याश्च रावणेन कृताः पुरा । येन देहेन सोऽद्यापि लंकायां ज्वलते लव ॥ ५ ॥
 रावणो रामहस्तेन बधान्मुक्तिं गतः क्षणात् । रामचित्तनपुण्येन वैरबुद्ध्या कृतेन च ॥ ६ ॥
 आत्मनः सकलं पापं तेन दग्धं पुरैव हि । देहेन न कृतं तस्य देवानां नमनं पुरा ॥ ७ ॥
 सम्मार्जनादिकं कर्म देवागारेऽपि नो कृतम् । न कृता तीर्थयात्रा हि तेन देहेन भक्तितः ॥ ८ ॥

वस षेठे दूंगा । उस ॥ तुम बहुत सन्तानका भी सुख भोग लेना ॥ १३५ ॥ १३६ ॥ उस समय मैं तुम्हें एक कन्या भी दूंगा । इसमें कोई संशय नहीं है । किन्तु इतना अवश्य होगा कि अधिक सन्तान होनेसे तुम्हारा यौवन हल जायगा ॥ १३७ ॥ इसी कारण मुझे सोलह हजार एक सौ स्त्रियोंके ॥ विवाह करना पड़ेगा और तुम्हारे ॥ आठ मेरी मुख्य स्त्रियाँ भी होंगी ॥ १३८ ॥ उस समय तुम बहुतसे पुत्रों और बहुओंका सुख भोगोगे और मैं भी बहुतसी स्त्रियोंका सुख भोग दूंगा ॥ १३९ ॥ इस प्रकार रामको बात सुनकर सात्ताने मुमकाकर कहा—हे प्रभो ! तुमने बातबात करनेका इतना चतुराई कहाँसे सीखा ? जिससे इस तरह मेरा मनोरंजन ॥ रहे हो । इस तरह रामने बहुत देर तक आपसमें ॥ की और दोनों एक दूसरेका आलिंगन करके आधी रातके समय सो गये । ॥ शिष्य ! मैंने ॥ प्रकार तुम्हें रामचन्द्रकी दिनचर्या सुनायी ॥ १४० ॥ १४१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे राज्यकाण्डे उत्तराखण्डे एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—एक दिन सबेरे लवने वसिष्ठसे कहा कि हे मुनीश्वर ! मैं आपसे ॥ पूछना चाहता हूँ, उसे आप बताइए ॥ १ ॥ यद्यपि वाल्मीकिजीकी कृपासे मैं सब कुछ जानता हूँ । फिर भी संसारी लोगोंको ज्ञान ॥ करानेके लिए आज आपसे पूछ रहा ॥ २ ॥ जब कि रात्रिमें हम लोग सोते हैं, तब कानमें धौंकनीकी तरह किसकी ध्वनि सुनायी देती है ॥ ३ ॥ मेरे इस संशयका निवारण करिए । इसका मुझे बड़ा कौतूहल है । लवकी ॥ सुनकर वसिष्ठने कहा—॥ ४ ॥ रावणने जिस देहसे बहुत-सी ब्रह्महत्याएँ की थीं, हे लव । वह देह ॥ भी लंकामें जल रही है ॥ ५ ॥ रामके हाथों वध होने, रामका स्मरण करने और उनके साथ वैरबुद्धि रखनेसे रावण क्षण भरमें मुक्त हो गया । आत्माके सारे पापोंको वह पहले ही जला

■ देहेन न निष्कारं तपश्चर्याव्रतं कुतश्च । न देहः श्रमिनस्तस्य शीतोष्णसहनादिभिः ॥ ९ ॥
 एतादृशस्तस्य देहो बहुब्राह्मणहिंसकः । लङ्कायां ज्वलनेऽद्यापि निशायां श्रूयतेऽत्र सः ॥ १० ॥
 ज्वालानां मलवच्छब्दो यः पृष्टो मां त्वया लव । जनशब्दादिने नैव श्रूयतेऽत्र जनैः सदा ॥ ११ ॥
 चितायां यस्य चाद्यापि वायुपुत्रेण प्रणह्यम् । काष्ठभागवतं नीत्वा लङ्कायां क्षिप्यते गृहः ॥ १२ ॥
 यदा तत्पापशान्तिः स्यात्तदा मम्मीभरिष्यति । अन्यत्वे कारणं वक्ष्ये तच्छृणुष्व शिष्यो लव ॥ १३ ॥
 देहान्ते रावणेनापि रामाय याचितो वरः । वरेण येन लोकानां स्मरणं मे भविष्यति ॥ १४ ॥
 स त्वया मे वरो देयस्तच्छ्रुत्वा राघवोऽब्रवीत् । त्वद्देहज्वलनि ज्वालाशब्दः सर्वे जना भुवि ॥ १५ ॥
 श्रोष्यन्ति समग्रीपेषु तेन ते स्मरणं सदा । भविष्यति हि सर्वेषां ब्रह्मांडांतनिवासिनाम् ॥ १६ ॥
 एवं श्रुत्वा दक्षास्यः स वरं रामे लयं ययौ । एवं यच्च त्वया पृष्टं तत्प्रभवं कथितं मया ॥ १७ ॥
 गुरोरिति वचः श्रुत्वा तं नत्वा स लवोऽपि च । स्वगेहं गतमंदेहः प्रययौ शिविकारिणतः ॥ १८ ॥
 एकदा बन्धुभिर्गोहे पुत्राभ्यां सीतया सह । मुनिभिर्गुरुणा रामः संस्थितः ■ हर्षितः ॥ १९ ॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

मृण्वंतु मुनयः सर्वे सर्वे मृण्वंतु बन्धवः । पुत्रौ सीता मन्त्रिणश्च सर्वाः मृण्वन्तु मातरः ॥ २० ॥
 यथा यथाऽवतारेऽस्मिन् सुखं भुक्तं हि सीतया । न तथाऽन्येषु सर्वेषु अवतारेषु वै कदा ॥ २१ ॥
 अवतारास्तु बहवः शतशोऽत्र मया धृताः । नानाकार्याणि वै कर्तुं तेषां संख्या न विद्यते ॥ २२ ॥
 सप्तावतारास्तेष्वेव श्रेष्ठास्त्वत्र मया धृताः । ईदृशं न सुखं तेषु कदा भुक्तं मया भुवि ॥ २३ ॥
 शंखासुरो महादैत्यः पूर्वं आतो महोदधौ । येन वेदा हुताः सर्वे सत्यलोकाद् कृते युगे ॥ २४ ॥
 तदर्थं मत्स्वरूपेण .अवतारो मया धृतः । तं हत्वा क्षणमात्रेण विष्णुरूपं मया धृतम् ॥ २५ ॥

बुका था, किन्तु शरीरसे उसने कभी देवताओंको नमस्कार भी नहीं किया ॥ ६ ॥ ७ ॥ न कभी देवमन्दिरकी सफाई की, न ■ शरीरसे तोययात्रा की, न अपने शरीरसे कोई निष्काम तपश्चर्या की और न शीत-उष्णको ही सहन करके शरीरसे परिश्रम किया । ब्राह्मणोंकी हत्या करनेवाली उसकी देह आज भी लङ्कामें ■ रही है । उसोका शब्द प्रत्येक मनुष्यको सुनाई देता है । ज्वालाकी बकबकाहटका निनाव घोंकनीकी तरह सुनाई पड़ता ■ ॥ ८-१० ॥ दिनके समय मनुष्योंके कोलाहलसे वह शब्द नहीं सुन पड़ता । आज भी हनु-मान्जीको रोज सौ भार लकड़ों उसकी चितामें डालनी पड़ती है ॥ ११ ॥ १२ ॥ ■ उसके पाप तट होयें, तब कहीं उसका शरीर जलेगा । हे बच्चे लव । मैं एक दूसरा कारण भी बतलाता हूँ. सी सुनो ॥ १३ ॥ अपने देहान्तके समय रावणने रामसे यह वरदान मांगा था कि आप हमें कोई ऐसा वर दीजिए, जिससे संसारके लोग मेरा भी स्मरण किया करें ॥ १४ ॥ रामने कहा कि तुम्हारी देह जलनेवाली आगका धक्-धक् शब्द सातों द्वीपोंके दूर एक व्यक्तिको सुनाई पड़ता रहेगा ॥ इसीसे सबको तुम्हारी याद आती रहेगी ॥ १५ ॥ १६ ॥ इस प्रकारका वरदान पाकर वह रामके शरीरमें लीन हो गया । इस तरह तुमने हमसे जैसा ■ किया, सी सब कह सुनाया ॥ १७ ॥ गुरुकी बात सुनकर लवका सन्देह निवृत्त हो गया और ■ पालकीमें बैठकर अपने घर चले गये ॥ १८ ॥ एक दिन सब भाइयों, पुत्रों, सीता तथा गुरुके साथ रामचन्द्रजी बैठे थे । प्रसङ्गवश हर्षित होकर राम कहने लगे— ॥ १९ ॥ ■ ऋषि, मेरे सब भाई, दोनों बेटे, सीता, समस्त मन्त्री और माताएँ ■ लोग मेरी बात सुनें ॥ २० ॥ मैंने इस अवतारमें सीताके साथ जितना सुख भोगा है, उतना किसी भी अवतारमें नहीं भोगा ॥ २१ ॥ विविध प्रकारके कार्यसाधन करनेके लिए मैंने इसमें अवतार लिये, जिनकी कोई संख्या नहीं है ॥ २२ ॥ फिर भी मेरे ■ अवतार मुख्य हैं, लेकिन उन सातोंमें भी मैंने इतना आनन्द नहीं पाया ॥ २३ ॥ आजसे बहुत दिनों पहले महोदधिमैं एक शङ्खासुर नामका दैत्य हुआ था, जो सत्यलोकसे चारों वेदोंको चुरा ले ■ था । उसके लिये मैंने मत्स्वरूप धारण किया और उसे मारकर फिर विष्णुरूपधारी बच गया ॥ २४ ॥ २५ ॥ उस मत्स्य ■ दिव्य (वराह) योनिमें कोई विशेष सुख नहीं था ।

किं सुखं ज्ञपन्नान्यां हि निर्योग्योऽपि गहिता । अनस्तमिषावनतारे न स्थितं हि चिरं मया ॥२६॥
 ततः समुद्रमधने मज्जन्तं मन्दराचलम् । दृष्ट्वा धृत्वा कर्मरूपं स्वपृष्ठे पर्वतो धृतः ॥२७॥
 तच्चापि गहिर्न क्वं मया नैव चिरं धृतम् । किं तस्मिन्मज्जन्तां हि सुखं तत्र मवेज्जले ॥२८॥
 ततो दृष्ट्वा मागने हि भञ्जन्तीं पृथिवीं मया । क्रोडरूपं महद्भृत्वा दंष्ट्रायामवनिर्धृता ॥२९॥
 मम पृथ्वीनि सम्पर्धां हिरण्यक्षो मया हतः । किं सुखं पशुगोन्यां हि गहितायां मवेज्जले ॥३०॥
 अनस्तमिषावनतारे ॥ लब्धं हि सुखं मया । प्रह्लादवचनान्स्नग्भाभारनिहस्वरूपधृक् ॥३१॥
 अवतीर्णस्त्वहं भूम्यां तिरण्यकशिपुः श्वनात् । मया तदा हतः क्रोधात्तद्रूपमतिमास्वरम् ॥३२॥
 यद्भयान्निकटं क्रोडपि प्रह्लादाक्ष विनाऽपरः । न मानवः स्थितो भूम्यां तत्र धार्ता सुखस्य का ॥३३॥
 तदाऽतिक्रोधरूपेण सिंहगोन्यां तु किं सुखम् । मयाऽणुभूतं विपुलं सुखेच्छावृत्तिमाप न ॥३४॥
 ततो बलेमोहिनार्थं स्वरूपं तु वामनम् । घृताकृत्वा त्रिपद्याश्च भूमिः पातालमः कुतः ॥३५॥
 तत्र किं मुनिदेहेन वने भौक्ष्यं मरेन्मम । न यत्रास्ति यद्यायोग्यं देहमप्यनिसुन्दरम् ॥३६॥
 तत्र का सुखवार्ताऽस्ति भूम्यां मे त्र्यम्बकगिरिणः । अनस्तदैव महमा नाकलोकं गतं मया ॥३७॥
 पुनर्दिप्रोद्भवेनैव जामदग्न्यम्बरुपिणा । एकविंशतिवारं हि निःश्वसा पृथिवीं कृता ॥३८॥
 सहस्रार्जुननामा स महावीरो हतस्तदा । तच्चापि क्रोधमपृक्तं मुनिरूपं मया धृतम् ॥३९॥
 सुखवार्ता मुनीनां हि का तत्र वनचाणिणाम् । ज्ञान्वन्म जन्मना तेन तपश्चर्या मया कृता ॥४०॥
 किं सुखं तपस्तत्र वने मे जलमुत्तनम् । एवं पङ्क्तिं धृताः पूर्वमवतारा मया भूवि ॥४१॥
 न जाता सुखवार्ताऽपि तत्र कापि मुनीश्वराः । द्वापरेऽग्रे कृष्णरूपं गोकुलेऽत्र करोम्यहम् ॥४२॥

इसीलिये उस अवतारमें उस रूपसे ॥ जादा दिनोतक नहीं रहा ॥ २६ ॥ इसके बाद समुद्रमन्थनके समय जब मैंने मन्दराचल पर्वतको डूबते देखा, तब क्रुम (कलुर) रूप धारण करके उस पर्वतको अपनी पीठपर धारण किया ॥ २७ ॥ उस स्वरूपको भी अच्छा न समझकर मैं अधिक दिनोतक उस रूपमें नहीं रहा । भला जलधर जाति तथा जलमें रहकर मैं सुखी कैसे हो सकता था ? ॥ २८ ॥ तदनन्तर पृथ्वीको समुद्रमें डूबती देखकर मैंने क्रोड (झुकर) रूप धारण करके पृथ्वीको अपने दाँतीपर रखकर उठाया ॥ २९ ॥ इस पृथ्वीपर मेरा राज्य है । अतएव यह पृथ्वी मेरी है । इस प्रकार डींग मारनेवाले हिरण्यक्ष नामक असुरका मैंने संहार किया । पशुयोनिमें रहकर भी हमें कोई विशेष सुख नहीं मिला । इसलिए उस रूपको भी जलही हो त्याग दिया । फिर प्रह्लादके कथनानुसार नृसिंहरूप धारण करके तबसे निकलना पड़ा ॥ ३० ॥ ३१ ॥ उस समय अवतार लेकर मैंने क्षणमात्रमें हिरण्यकशिपुको समाप्त कर दिया । मेरा वह रूप बड़ा तेजस्वी था ॥ ३२ ॥ उसके भरोसे प्रह्लादके सिवाय मेरे कब जानेकी सामर्थ्य किसीमें नहीं थी । वलाभी, ऐसी योनिमें मैं सुखी कैसे रह सकता था । उस समय मेरा क्रोधपूर्ण रूप था, दूसरे सिंहकी योनि थी । उस योनिको मैंने अनुभव कर लिया । इच्छा यो कि रूपमें मैं कुछ आनन्द पाऊँ, लेकिन नहीं पा सका ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ तत्पश्चात् बलिको नीचा दिखानेके लिए मैंने बहुत ही छोटा वामनका रूप धारण किया और तीन पैरोंमें सारी त्रिलोकी नागपर बलिको पाताल लोकमें भेज दिया ॥ ३५ ॥ उस समय भी एक तो मुनिका वेध, दूसरे वनोंमें रहना, तीसरे शरीर भी जितना चाहिए उतना सुन्दर नहीं था ॥ ३६ ॥ वनचरकी दशामें पृथ्वीपर रहकर सुख कहाँ था ? इसी लिए उस रूपको भी भीष्ट त्यागकर मैं स्वर्गलोकको छोड़ गया ॥ ३७ ॥ फिर मैंने ब्राह्मणरूपसे परशुरामका अवतार लेकर इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियभूय कर डाला । उसी समय महावीर सहस्रार्जुनका वध किया । उस समय भी एक क्रोधी मुनिका रूप धारण करना पड़ा था ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ वनमें रहनेवाले मुनिवोंको भला कब सुख मिल सकता था । यह समझकर मैंने उस जन्ममें भी तपस्वी ही की ॥ ४० ॥ उस तपस्वी जीवनमें वनोंमें रहकर मुझे क्या सुख मिला होगा, इसका आप लोग भी अनुमान कर सकते हैं । इस तरह मैंने छः

नेदृशं ॥ मोक्ष्यामि सुखं मृणुत विस्तरात् । कारागृहस्थितिः पित्रोर्जन्मादावेव मे भवेत् ॥४३॥
 मातृपितृविहीनश्च तदा स्वास्यामि शैशवे । पारकीये नन्दगेहे वृद्धिं गच्छामि गोकुले ॥४४॥
 गोपवेषस्य किं सौख्यं गोपृष्ठे भ्रमतो मम । स्त्रीगोनागाश्वपक्षादि बहूस्तत्र निहन्यहम् ॥४५॥
 देवपत्नीवराकुर्यां परस्त्रीगमनादिकम् । नानाचौर्यादि दुष्कर्म कृत्वाऽहं गोकुले ततः ॥४६॥
 मधुरायां हनिष्यामि सगजं कंसमातुलम् । तत्र दास्या रतिं कुर्यां नैष्ठुर्यं गोपिकादिषु ॥४७॥
 यद्भुक्ता गोपिकाः सर्वा रामो बन्धुर्मज्जिष्यति । अन्यञ्च कालयवनभयान्मे हि पराभवः ॥४८॥
 न पराभवतो दुःखं किञ्चिदस्ति जगत्त्रये । ततोऽहं स्वस्थलं त्यक्त्वा तटाके सागरस्य च ॥४९॥
 स्वास्यामि स्वल्पकालं हि चिरकालं न मे स्थितिः । न स्थलं मध्यदेशे हि न राज्यं ॥ भविष्यति ॥५०॥
 विना राज्येन किं सौख्यं पराङ्मावशचर्तिनः । छत्रादिराज्यभोगाश्च तस्मिन् जन्मनि मे न हि ॥५१॥
 बहुस्त्रीणामेकदेहस्तदाऽयं मे भविष्यति । तदा कासां सुखं देयं दुःखं कासां तदा मया ॥५२॥
 एवं सदा व्यग्रचित्तस्तासां रंजनकमेणि । तत्र का सुखवार्त्ताऽस्ति निशायां भ्रमतो मम ॥५३॥
 घटिकायां च षट्त्रिंशत्पञ्चशतगृहाणि हि । पर्यटन्त्यष्टविंशत्स्त्रीगेहानि तदा मम ॥५४॥
 शेषाणि गंतुं नैवास्ति कालो भानुरुदेष्यति । त्रिंशद्वटीमयी रात्रिस्त्वेवं मे सा गमिष्यति ॥५५॥
 तदा मे भ्रमतो रात्रौ कुतो निद्रा कुतः सुखम् । यदा भवेन्निद्रावृद्धिः किञ्चिन्निद्रा तदाऽऽप्नुयाम् ॥५६॥
 यस्येच्छाऽस्म्यत्र दुःखं हि भोक्तुं तेन नरेण हि । कर्तव्या बहुधाः पत्न्यो द्रष्टव्यं तत्फलं ततः ॥५७॥
 एवं भवेन्न मे सौख्यं द्वापरे कृष्णजन्मनि । भविष्यत्यवतारस्य समाप्तिर्विप्रशापतः ॥५८॥

अवतार लिये ॥ ४१ ॥ लेकिन उन छहोंमें मुझे सुखका भी नहीं मिला । आगे हापर युगमें इस पृथ्वीपर गोकुलमें कृष्णरुसे मैं अवतार लूँगा ॥ ४२ ॥ लेकिन ऐसा सुख उस अवतारमें भी नहीं पा सकूँगा । सुनिष्ट, उस अवतारका विवरण विस्तारपूर्वक ॥ लोगोंको बतलाता हूँ । जन्मके पहले ही मेरे माता-पिता कारागारमें रहेंगे ॥ ४३ ॥ बौधव कालमें ही माता-पितासे वियुक्त होकर एक व्यक्ति (नन्द) के घर गोकुलमें रहकर पलूँगा । उस गोपवेषसे गौओंके पीछे-पीछे घूमनेमें मुझे क्या सुख मिलेगा ? फिर गो (बरसासुद), स्त्री (पूतना), नाग (कालिया), अश्व (केशी) तथा पक्षी (वकासर) को मारूँगा ॥ ४४ ॥ देवस्त्रियोंके वरदानसे परस्त्रीगमन आदि (पाप) करूँगा । फिर गोकुलमें चोरी आदि दुष्कर्म लेनेके बाद मयुरा जाकर हाथी कुबलयापीठके मामा कंसको मारूँगा । वहाँ मुझे गोपियोंके साथ निकुराई करके दासी (कुबड़ी) साथ विलास भी करना पड़ेगा ॥ ४५ ॥ ४७ ॥ जिन गोपियोंको मैंने भोगा होगा, भविष्यमें बलरामजी उन्हें भोगेंगे । फिर कालयवनके भयसे मुझे परास्त भी होना पड़ेगा ॥ ४८ ॥ पराजयसे बढ़कर संसारमें और कोई दुःख नहीं हो ॥ ४९ ॥ फिर समुद्रके किनारे अपना निवासस्थान बनाकर कुछ दिनों वहाँ ही रहूँगा । यह निश्चित है कि उस अवतारमें भी मैं अधिक दिनतक संसारमें न रहूँगा । मध्य देशमें निवासस्थान न रहनेके कारण मेरे पास कोई राज्य भी नहीं रहेगा ॥ ४९ ॥ ५० ॥ राज्यरहित होकर दूसरेकी आशामें रहनेसे भला क्या सुख मिल सकता है ? उस जन्ममें राजाओंकी उपभोग्य वस्तुयें छत्र-चमर आदि भी मेरे पास नहीं रहेंगे ॥ ५१ ॥ बहुत-सी स्त्रियोंके बीच मेरा अकेला शरीर रहेगा । उस रात-दिन यही चिन्ता रहा करेगी कि इनमेंसे किसे सुख दूँ और किसे दुःख । तदा मुझे उनका मनुहार करना पड़ेगा । भला रातभर एक घरसे दूसरे घरकी दौड़ मारनेमें मुझे क्या सुख मिल सकता है ? ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ उस समय एक घड़ीमें पाँच सौ छत्तीस घंटोंका धक्कर लगातेपर भी अट्ठाईस घर छूट जायेंगे और यही सोचना पड़ेगा कि सूर्योदयका समय हो रहा है, अब किसीके यहाँ आनेका नहीं है । इस तरह सोस घड़ीको रातें बीतेंगी ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ उस समय रातभर घूमनेमें निद्रा तथा सुख कबोंकर मिल सकेगा ? हाँ, रात कुछ बड़ी होगी तो चाहे घड़ी आधी घड़ी सोनेके लिये समय मिल जाय ॥ ५६ ॥ जिस मनुष्यको संसारमें दुःख भोगनेकी इच्छा हो, वह कई स्त्रियोंको रख ले और फिर देखे उसका फल ॥ ५७ ॥ भाव यह है कि मुझे उस अवतारमें भी कुछ सुख

ततो दैत्यान्यशकर्मसक्तान्दृष्ट्वा पुनस्त्वहम् । कलावग्रे बुद्धरूपं धरिष्याम्यतिमोहनम् ॥५९॥
 निजवाक्यैर्मतिस्तेषां दैत्यानां यशकर्मतः । परिवर्त्य कियत्कालं स्थास्यामि जगतीतले ॥६०॥
 तदाऽहं मौनमाश्रित्य नलिनः केशतुञ्जकः । युगादिजीवधारी च सर्वेषामुपदेशकृत् ॥६१॥
 अहिमनघ्रतं सर्वान् दर्शयिष्याम्यहं जनान् । तज्जन्मन्यतिदुःखं मे केशयूकामलादिना ॥६२॥
 ततोऽग्रेऽहं धरिष्यामि कल्किरूपं महत्कलेः । अतो दृष्ट्वा जनानां च सर्वत्र वर्णसंकरम् ॥६३॥
 भूत्वाऽथ विप्रदेहेन खड्गधारी हयस्थिनः । संहारं क्षणमात्रेण दुष्टानां हि करोम्यहम् ॥६४॥
 सोऽवतारो नातिधिरं मम स्थास्यति भूतले । न तत्र सुखलेशोऽपि मे भविष्यति भूसुराः ॥६५॥
 प्रवर्तयिष्यति पुनस्ततोऽग्रं तद् कृतं युगम् । पूर्ववच्च पुनस्तत्र ऽवतारान्करोम्यहम् ॥६६॥
 एवं नवावतारेषु ■ भुक्तं हि सुखं मया । अतस्त्वस्मिन्नावतारे सुखं भुक्तं यथेच्छया ॥६७॥
 नानेन सदृशः कश्चिदवतारोऽरनीतले । पूर्वं भूतो ममाग्रेऽपि ■ भविष्यति वै कदा ॥६८॥
 सप्तलोकाधिपत्यं च नारी सीता च वर्तते । यत्रैमी बालकौ पुत्री महावीरौ धनुर्धरौ ॥६९॥
 यत्र त्वेते बंधवश्च त्रैलोक्यजयिनः शुभाः । कामधेन्वादिरत्नानि सप्त यत्र ममान्तिके ॥७०॥
 साक्षादयं वेदरूपो वसिष्ठस्त्वस्ति मे गुरुः । आर्यावर्ते पुण्यदेशेऽयोध्यायां वसतिर्मम ॥७१॥
 राज्यभोगादिभोगानां भोक्ताऽहं त्वत्र नोऽपरः । यत्र सत्यव्रतं मेऽस्ति यत्रैकदयिताव्रतम् ॥७२॥
 यत्रैकैव वाणेन मया बाल्यादिका हताः । यत्रैकैव हि सीताया मम शय्या न चापरा ॥७३॥
 यत्राप्रतिहताज्ञा मे त्रैलोक्ये हि मुनीश्वराः । यत्र यानं पुष्पकं तु यत्र दूतोऽञ्जनीसुतः ॥७४॥
 सुग्रीवराक्षसेन्द्रौ च यत्र मित्रे ममांतिके । कोदण्डसदृशं चापं यत्र मेऽरिनिपूदनम् ॥७५॥
 सूर्यवंशे यत्र जन्म ततो दक्षरथो वरः । कौसल्या यत्र जननी यत्राहं स्ववशः सदा ॥७६॥

नहीं मिलेगा । अन्तमें ब्राह्मणके शापसे मेरे उस अवतारकी समाप्ति होगी ॥ ५८ ॥ इसके ■■■ कलिमें दैत्यों को यज्ञकर्म करते देखकर मैं अतिशय मनोमोहक बौद्ध अवतार लूंगा ॥ ५९ ॥ अपनी बातोंसे उन दुष्टोंकी मति यज्ञकी ओरसे फेरकर कुछ दिनों तक ■ संसारमें रहूंगा ॥ ६० ॥ उस समय ■ मौनघट धारण करके मंले-कूचंले कपड़े पहने और कितने हो जूँ आदि जीवोंको शरीरमें पाले हुए सारे संसारके लोगोंको उपदेश दूँगा । सबको अहिंसाव्रतका अभिनय दिखाऊँगा । उस जन्ममें बालोंमें पड़े हुए जूँ, कपड़ोंके पीलर तथा खटमल आदिसे महान् दुःख उठाना पड़ेगा ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ फिर कलियुगके अन्तमें सब लोगोंको वर्णसंकर होते देखकर मैं कल्कि अवतार लूँगा ॥ ६३ ॥ ■ जन्ममें एक विप्रके यहाँ उत्पन्न हो और घोड़ेपर सवार होकर क्षणमात्रमें दुष्टोंका संहार ■ डालूँगा ॥ ६४ ॥ ■ ब्राह्मणों । वह अवतार भी चिरस्थायी नहीं होगा । अतएव जगत् में ■ मे ■ सुख नहीं भोग सकूँगा ॥ ६५ ॥ उसके ■ फिर सत्ययुग आ जायगा और मैं पहलेकी तरह फिर अवतार लेता रहूँगा ॥ ६६ ॥ इस तरह नौ अवतारोंमें कुछ सुख नहीं मिलेगा । किन्तु इस अवतारमें मैंने अपने इच्छानुसार सुख भोग लिया है ॥ ६७ ॥ ■ अवतारके समान कोई ■ जगतीतलमें न हुआ है, न होगा ॥ ६८ ॥ जिसमें सातों द्वीपोंका प्रभुत्व, सीता जैसी स्त्री, कुश-लव जैसे महावीर और धनुर्धारी पुत्र, तीनों लोकोंको जीतनेवाले भ्राता और कामधेनु आदि सात रत्न विद्यमान ■ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ जहाँ वेदके साक्षात् स्वरूप वसिष्ठ जैसे गुरु हैं, आर्यावर्त जैसे पवित्र देशमें निवासस्थान है, राज्यभोगकः प्रतिद्वन्द्विता करनेवाला और कोई नहीं है, जहाँ ■ है, जहाँ अटल एकपत्नीव्रत है ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ जहाँ केवल एक वाणसे शत्रुको मारनेकी सामर्थ्य है, जहाँ सीताकी और हमारी एक शय्या है ॥ ७३ ॥ जहाँ मुनिगण बेरोक-टोक जहाँ चाहें, तहाँ आ जा सकते हैं । जहाँ कि पुष्पकविमान जैसी सवारी है ॥ ७४ ॥ सुग्रीव और विमोषण जैसे मित्र हैं, शत्रुओंका नाश करनेवाला कोदण्ड जैसा धनुष है ॥ ७५ ॥ सूर्यवंशमें जन्म हुआ है, ■ जैसे पिता और कौसल्या जैसी

सुमेधासदृशो यत्र मे श्वश्रुः स्नेहवर्धिनी । विदेहः श्वशुरो यत्र विद्यादो यत्र गाधिजः ॥७७॥
 लक्ष्मणो यत्र मे मन्त्री सरपुर्वत्र मे नदी । पार्श्वगा शङ्कराद्याश्च चतुर्दन्तो गजो महान् ॥७८॥
 द्विजेच्छापूर्णं यत्र व्रतं मेऽकुण्ठितं सदा । इदं वैकुण्ठवद्गुहं गृहं यत्रातिभासुरम् ॥७९॥
 चिन्तामणिरलंकारो हृदये यत्र वर्तते । एकादश सहस्राणि वर्षाण्यायुश्चिरं मम ॥८०॥
 अनस्रं मे शिरश्चेद् केषामप्यवनीभूताम् । एवं मया सुखं श्रुत्वाभिह जन्मनि भूसुराः ॥८१॥
 नात्था वाप्युर्वरिताऽस्ति सुस्तेज्ज्वा मम भूतले । अतएवावतारोऽयं पूर्णरूपान्मया धृतः ॥८२॥
 भूतभाष्यावतारा ये तैऽशादेव मया धृताः । यद्गतं तु वने पूर्वं सीतया वन्धुना मया ॥८३॥
 तच्च लोकोपदेशार्थं भूभारहरणाय च । जनोपदेशः कीदृक् स कुतस्तं प्रवदाम्यहम् ॥८४॥
 पितुर्वचो माननीयं यद्यप्यतिश्रमप्रदम् । पुत्रैरित्युपदेशार्थं मया वाक्यं पितुः कुतम् ॥८५॥
 न तदा किं मृषा कर्तुं पितुर्वाक्यं बलं मयि । तथापि लोकशिक्षार्थं तद्वाक्यं पालितं मया ॥८६॥
 न हतव्या मया कोभान्दुष्टा किं कैकेयी तदा । तथा मा नथरा चापि मे राज्ये विघ्नकारिणी ॥८७॥
 किं तदा कुठिता शक्तिः कैकेयीमथरावधे । स्त्रीहत्या नैव कर्तव्या चेति सर्वान्सुशिक्षितम् ॥८८॥
 सापत्नमातृवाक्यं तु पालनीयं स्वमातृवत् । स्वसुखार्थं यथोऽन्यस्य न कर्तव्यो जनैरिति ॥८९॥
 उपदेष्टुं मया नैव कैकेयीमथरे इते । न वन्धुहिंसा कर्तव्या परराज्यं न काक्षयेत् ॥९०॥
 अहमुपदिशन्निष्ठं जनान्बन्धुर्हतो न मं । मृते पितर्यपि हनं न तद्राज्यं बलान्मया ॥९१॥
 राज्यासक्ता नरा भूम्यां भोगासक्ता भवन्तु न । उपदेष्टुं जनानिन्दनम् पूर्वं वनं गतः ॥९२॥
 मातृपितृसुहृत्पुत्रस्नेहासक्तिं न कारयेत् । इत्थं मयोपदिशन् न्यक्तः स्नेहस्तदा द्विजाः ॥९३॥

माता है, जहाँ कि मैं सदा स्वाधीन रहता हूँ ॥ ७६ ॥ स्नेहकी बढ़ानेवाली गुंथवा जैसी सास है, विदेह जैसे समुद्र है, विद्यामित्र जैसे विद्यादाता गुरु है ॥ ७७ ॥ लक्ष्मण जैसे मंत्री है, सरपू जैसे नदी है, शङ्करादि वीर सङ्करसक है, बड़ा भारी चतुर्दन्त हाथी है ॥ ७८ ॥ ब्राह्मणों की इच्छा पूर्ण करना जैसा अकुण्ठित व्रत है, वैकुण्ठके समान सुन्दर ॥ ७९ ॥ चिन्तामणि जैसा अलङ्कार सदा हृदयपर रहता है, जहाँ गारुड हजार वर्षोंकी लम्बा आयु है ॥ ८० ॥ किसी भी राजाके शासने न लुकनेवाला यह ॥ ८१ ॥ यहाँ जो सुख है, सो तब अन्यत्र मिल सकता है ? हे त्रिभो ! इस समागम मेने दिन गुप्तोंका भोग किया है, सो बतला दिया ॥ ८२ ॥ अब मेरे हृदयमें किसी प्रकारका भी मुख्यभाग करनेकी कागना शेष नहीं रह गयी है । इसीलिए मैंने पूर्णरूपसे इस अवतारका धारण किया था । भूत तथा गणित्यके अवतारोंमें जो अंगे बाकी रह गये थे, उनके समेत यह अवतार लिया है । जो बाल्यकालमें संता तथा भारीके साथ बनकी यात्रा की थी, वह दुःख भोगनेके लिए नहीं । बल्कि दुनियाके लोगोंको उपदेश देनेके लिए की थी । उससे मैंने संसारो जनोंको कौन-सा उपदेश दिया है, सो भी बतला रहा ॥ ८२-८४ ॥ वहाँ अतिशय परिश्रमसाध्य हो, फिर भी पिताकी ॥ माननी चाहिए । यह उपदेश देनेके लिए मैंने उस समय पिताको आज्ञाका पालन किया था ॥ ८५ ॥ क्या पिताकी बात टालनेकी सामर्थ्य मुझमें नहीं थी ? थी, पर लोकशिक्षाके लिये उनकी बात मान ली थी ॥ ८६ ॥ क्या उस समय दुष्टा कैकेयी तथा राजशक्तिकमें विघ्न डालनेवाली गविनी मन्थराके वध करनेका पराक्रम मुझमें नहीं था ? था, पर उनकी दण्ड न देकर मैंने संसारको यह शिक्षा दी कि स्त्रीका वध कभी भी न करना चाहिए और अपनी सोतेली माँको आज्ञाका भी उसी तरह पालन करना चाहिए, जैसे लोग अपनी सगी माताका करते हैं । दूसरे मुझे लोगोंको यह भी उपदेश देना था कि अपने सुखके लिए परायेका वध न करना चाहिए । इसीसे कैकेयी और मन्थराको नहीं मारा ॥ ८७-८९ ॥ अपने भाईकी हिसा न करे और दूसरेका राज्य न हड़पना चाहे । यह उपदेश देनेहुँके लिये मैंने भरतपर आज्ञा नहीं उठायी, उन्हें नहीं मारना चाहा । पिताके स्वर्गवासी हो जानेपर भी मैंने उस राज्यको नहीं स्वीकार किया ॥ ९० ॥ ९१ ॥ राज्यमें आसक्त लोग सर्वथा बिलासी न हो जायें, यह उपदेश देनेके लिए हो मैं वनको गया था ॥ ९२ ॥ माता, पिता, मित्र,

सुखं दुःखं समं ज्ञेयं सुखं हर्षो न मानयेत् । शोकः कार्यो विपत्तौ न चेति लोकान् प्रदर्शितम् ॥९४॥
 राज्यसौख्यं मया त्यक्त्वा भुक्ताः क्लेशास्तदा वने । कामादीनां रिपूणां च दुष्टानां हि बन्धो भुवि ॥९५॥
 जनैः कार्यं सदा चेति व्यपदेशं मया वने । बहवो निहतास्तत्र राक्षसा मुनिर्हिसकाः ॥९६॥
 स्त्रीसंगः सर्वदा त्याजस्वेकाकी च तपश्चरेत् । नामकं निजचित्तं हि स्त्रीषु कार्यं नरैः कदा ॥९७॥
 इत्थं मयोपदिशता सीतायाश्च तदा वने । विद्योगो दक्षितो लोकान् भक्तो भिषा न जानकी ॥९८॥
 कदापि जायते विषाः सत्यं चेदं ब्रवीम्यहम् । आर्तस्य रक्षणं कार्यं कार्यो दुष्टस्य निग्रहः ॥९९॥
 मयोपदिशता चेत्थं जनान्सुग्रीवराक्षसी । राक्षसो निहती शालिरावणावितरे हताः ॥१००॥
 कीर्तिः कार्या जनेष्वत्र मयोपदिशता त्विति । पापणस्तारिता नीरे किमाकाशमतिर्न मे ॥१०१॥
 यद्यपि शूद्रे स्वे चित्ते विरुद्धं च जनेषु यत् । त्यक्तव्यं तत्प्रियं चापि मयोपदिशता त्विति ॥१०२॥
 जनानपापान् शास्त्राऽपि लंकायां दिव्यदानतः । लोकापवादमीत्या मा पुरा त्यक्त्वाऽत्र जानकी ॥१०३॥
 स्वयमेवात्र यत्पुण्यं शूद्रं ज्ञात्वा हि तत्पुनः । अंगोऽकार्यं जनैर्बुद्ध्या मयोपदिशता त्विति ॥१०४॥
 जनानङ्गीकृता सीता पुरा त्यक्त्वा मया शुभा । एकपत्नीव्रतादीनि राजकर्माण्यनेकशः ॥१०५॥
 अश्वमेधादियज्ञश्च सदाचारो जपस्ततः । स्नानसंख्याधिकं यद्यन्मयाऽत्र क्रियते सदा ॥१०६॥
 तत्सर्वं जनशिक्षार्थं मुक्तसगस्थ किं मम । कर्मातीतस्य भो विषाः सदानन्दस्वरूपिणः ॥१०७॥
 अहं सदाऽऽनन्दमयः सुखात्मा सुखदो नृणाम् । अवतारपरत्वेन सुखं दुःखं मयाऽकथि ॥१०८॥
 यदत्र भवतामग्रे कीतुकार्थं न संशयः । उपासकानां तेषामवतारः स्वयं मया ॥१०९॥

पुत्र आदिके स्नेहमें अधिक आसक्त न हो जाना चाहिए । यह उपदेश देते हुए मैंने स्नेहका परित्याग कर दिया था ॥ ९३ ॥ सुख-दुःख दोनोंको समान समझना चाहिए । सुखमें न विशेष हर्षित हो, न दुःखमें घबड़ाये । यह उपदेश देनेके लिए ही मैंने राज्यसुखको छोकर गारकर वनके जंगलोंको अपनाया था । काम-क्रोध आदि दुष्ट शत्रुओंको मारना चाहिए ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ यह उपदेश देनेके लिए ही मैंने वनमें रहकर बहुतसे मुनिर्हिसक राक्षसोंको मारा था ॥ ९६ ॥ स्त्रियोंमें अधिक आसक्त होना ठीक नहीं, बल्कि उनका सङ्ग त्यागकर दूर रहता हुआ तपस्या करे ॥ ९७ ॥ यह उपदेश देनेके लिए मैंने वनमें सीताको भेजकर उनसे वियोग दर्शाया था । वास्तवमें सीता हमसे पृथक् कभी नहीं हो सकती ॥ ९८ ॥ हे ब्राह्मणों ! यह सब बातें मैंने सर्वथा सत्य कही हैं । मनुष्यमात्रको चाहिए कि वह दुष्टा जनको रक्षा करे और दुष्टोंको दण्ड दे ॥ ९९ ॥ सुग्रीव और विभीषणको रक्षा करके दुष्ट बालि और रावणको मारकर ससारको मैंने यही उपदेश दिया है ॥ १०० ॥ इस संसारमें मनुष्यको चाहिए कि वह अपनी कीर्तिका विस्तार करे । इसीलिए मैंने शत्रुओंके पानीमें पत्थर तैराये थे । वैसे मैं चाहता तो क्या आज्ञाशून्यसे चलकर लङ्का नहीं पहुँच सकता था ? ॥ १०१ ॥ यदि कोई वस्तु अपनेको प्रिय हो, किन्तु दुनियाँवालोंके विषय हो तो उस प्रिय वस्तुका भा परित्याग कर देना चाहिए । यह उपदेश देनेके लिए ही मैंने लङ्कामें अग्निको साक्षात् दे तथा पवित्र जानकर भी लोकापवादके भयवश सीताका परित्याग कर दिया था ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ भ्रमवश यदि किसी पवित्र वस्तुको त्याग और बादमें मान्य हो कि वह शुद्ध है उसको फिरसे बर्द्धीकार कर लेना चाहिये । यह उपदेश देनेके लिए ही मैंने पहले रावणो दुई भां सीताको फिर स्वीकार कर लिया । उसी प्रकार एकपत्नीव्रत, अनेक तरहके राजकार्य, अश्वमेधादि यज्ञ, सदाचार, जप, तप, स्नान, संघा आदि जिसना भी काम हम करते हैं, सो सब लोगोंको उपदेश देनेके लिए ही कर रहे हैं ॥ १०४-१०६ ॥ वैसे तो संसारी भायाजाससे भलग, सदा आनन्दस्वरूप, कर्मसे परे, सदा आनन्दमय, सुखात्मा और समस्त मनुष्योंके सुखदाता मुझ रामके लिए इन सब बातोंसे क्या मतलब ? ये सुख दुःख जो बताये, वे अवतारके आवाहपर आप लोगोंके कीतुकके लिए कहे हैं, इसमें कोई संशय नहीं है । अपने भक्तोंके सन्तोषार्थ विशेष-गुणसम्पन्न ये अवतार गिनाये, वास्तवमें मेरे लिए अवतार बराबर है । किन्तु अपनी बुद्धिसे भली भाँति

विशेषगुणवानुक्तः सन्ति सर्वे समा मम । मम्यन्बुद्ध्या विचारञ्च वरिष्ठः सकलेश्वरम् ॥११॥
 द्वावतारौ जलचरौ तथा वनचरौ च द्वौ । द्वौ तौ च वनकलधरौ एको वैश्यश्च गोपकः ॥१११॥
 एकस्तु मलिनश्चापि परश्च क्षणिकमनया । एवं भूता भविष्याश्चावतारास्तोषदा न मे ॥११२॥
 अयं सर्वविशिष्टोऽत्र ह्युपासकजनप्रियः । अवतारस्त्वहं वेशि सेवनान्मंगलप्रदः ॥११३॥
 चरित्राण्यतिरम्याणि पानकधनानि वै मया । कृण्वन्स्मिन्नवतारे श्रवणान्मुक्तिदानि हि ॥११४॥
 सदा जना मज्जन्त्यत्र ह्यवतारमयं मम । भक्ता मेऽस्यावतारस्य ने मेऽतीव प्रियाः सदा ॥११५॥
 एवं सर्वमिदं विप्रा आनन्देन मयोदितम् । दोषमारोपयन्त्यस्मिन्नवतारेऽप ये जनाः ॥११६॥
 ते मद्दृष्ट्या नरकेषु पतन्ति सह पूर्वजैः ।

श्रीरामदास उवाच

एवमुक्त्वा रामचन्द्रः सम्पूज्य हि मुनीधरान् ॥११७॥

विशुज्य सकलान्सीतां रंजयामास राघवः । एवं शिष्य मया प्रोक्तमवतारप्रवणनम् ॥११८॥

इति भीमशक्तोदिरामचरितामर्तगते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे उत्तराध्याये

अवतारवर्णनं नाम विंशः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशः सर्गः

(रामका अपने दासको वरदान देते हुए दो रूप धारण करना)

श्रीरामदास उवाच

एकदा जानकी द्रष्टुं सप्तद्वीपांतरस्त्रियः । मुनीनां पार्थिवानां च सुहृदीं व्यवसायिनाम् ॥ १ ॥

सामान्यक्षत्रियाणां च वैश्यानां च सहस्रशः । चैत्रस्थानमिषेर्णव दयुर्वाहनमस्थिताः ॥ २ ॥

दृष्ट्वा समागतास्तथ जानकी गजगामिना । प्रपुद्गदम्पानयामास स्वाशालामतिमदरात् ॥ ३ ॥

विचार करके मैं इस निम्नोपर पहुँचा हूँ कि समस्त अवतारोंमें यह रामवतार सर्वश्रेष्ठ है ॥ १०७-११० ॥

दो अवतार जलचर रूपके, दो वनचर, दो वनधारा, एक वैश्यवर्णका गावहण, एक मलिनवेश-
 वाला और एक क्षणिक पे भूल तथा भविष्यके सारे अवतार मेरे मनक नहीं है—इनसे मैं प्रसन्न नहीं हूँ ॥१११॥

॥ ११२ ॥ मैं जहाँतक जानता हूँ, समस्त अवतारोंमें उपासक जनोका प्रिय तथा सेवनसे मङ्गलप्रद यही
 रामावतार है ॥ ११३ ॥ इस अवतारमें मैंने जितने काम किये हैं वे सब अतिप्रिय रम्य, पातकोको नष्ट करनेवाले

तथा सुगन्धसे मुक्ति देनेवाले हैं ॥ ११४ ॥ भक्तोंको चाहिये कि मेरे इस अवतारका भजन करें । जो लोग इसको
 उपासना करते हैं, वे मुझे सदासे अत्यन्त प्रिय हैं ॥ ११५ ॥ हे विप्रा ! यह मैंने देखा मैंने आनन्दके साथ आप

लोगोंको सुनाया । जो लोग मेरे इस अवतारमें भी दायाँप करत है, वे मेरे शत्रु होकर अपने पूर्वजोंके साथ
 नरकमें गिरते हैं ॥ ११६ ॥ श्रीरामदास कहते हैं—इस प्रकारका बात करके रामने उन मुनियोंका पूजन किया

और सबको विदाई दी ॥ ११७ ॥ तत्पश्चात् सीताका प्रसन्न करनेवाला बात करने लगे । हे शिष्य । मैंने इस
 तरह तुम्हारे समक्ष सभी अवतारोंका वर्णन किया ॥ ११८ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये २० रामतेज-

पाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तराध्याये अवतारवर्णनं नाम विंशः सर्गः ॥ २० ॥

श्रीरामदास कहने लगे—एक बार सीताको देखनेके लिये सातों द्वीपोंका त्रिविध जिनमें मुनियोंको, राजाओं-
 की, मित्रोंकी, व्यवसायियोंकी ॥ १ ॥ साधारण श्रेणाके क्षत्रियोंकी तथा वैश्योंको हजारोंका संख्यामें तारियाँ
 चैत्रस्थानके श्याजसे प्रकारके बाहनोंपर सवार हो-हाकर अयोध्या आयीं ॥ २ ॥ उन्हें मार्ग देखकर गजके
 प्रमान मन्दगतिसे चलनेवाली सीता सीमा उनके आगे पहुँची और आदरके साथ अपनी स्त्रीशालामें ले गयी ॥३॥

पूजयामास ताः सर्वा नानालंकारभूषणैः । ताः सर्वा पूजयामासुः सीतां सिंहासनस्थिताम् ॥ ४ ॥
 दिग्पालकारवस्त्रार्चनानादेशोद्भवैर्वरैः । परिवार्य ततः सीतां तस्थुः सर्वाः स्त्रियश्च ताः ॥ ५ ॥
 भुत्वा सीतामृत्पादामचरित्राणि सहस्रशः । तास्तुष्टाः श्रोतुमुद्युक्तास्तत्पाणिग्रहणं शुभम् ॥ ६ ॥
 स्मितास्यास्ताः स्त्रियः सर्वास्तदा प्रोचुर्बिदेहजाः । स्वत्पाणिग्रहणोत्साहं श्रोतुं वाछामहे वयम् ॥ ७ ॥
 तत्सर्वं विस्तरेणाद्य इक्षुमर्हसि जानकि । इति तासां वचः श्रुत्वा लज्जया जानकी तदा ॥ ८ ॥
 सर्वा सर्वा नोदयामास तुलसी रुक्मभूषिताम् ।

तुलस्युवाच

शृणुष्व सकला नार्यः पाणिग्रहणमुत्तमम् ॥ ९ ॥

जानक्याः कथयाम्यद्य महामगलदायकम् । वस्तुतया हि संक्षेपान्छ्रवणात्पुण्यवर्द्धनम् ॥ १० ॥
 साकेताद्रधुनंदनेन मुनिर्भ्रात्रा युतेनाश्रमं स्वम् । विनिहत्य राक्षसबलं तेनैव यज्ञं निजम् ।
 संपाद्याशु रथस्थितश्च मिथिलामार्गं हरेरंघ्रिणः संस्पर्शद्वितकन्मयां समकरोद्भार्या मुनेर्गाधिजः ॥ ११ ॥
 गत्वा गाधिजसंयुतश्च मिथिलां भ्रात्रा समासंस्थितश्चापाधः पतितं निरीक्ष्य च रिपुं स्वोपं मुनेराक्षया ।
 तं नत्वा गिरिजेश्वरस्य च धनुः कृत्वा त्रिसंढं क्षणात्सोताहस्तविसर्जितां निजगले मालां दध्नां राघवाः ॥ १२ ॥
 बन्धुना च निजं विधाय मिथिलापुर्यां विवाहान् शुमान् पितृभ्याम् । भार्यया रघुपती राज्ञाऽतिसंपूजितः
 त्यक्त्वा तां मिथिलां ययौ निजपुरीं मार्गं क्रुधा निष्ठतो दुर्दर्पं जमदग्निजस्य धनुषा शोपाहरल्लोलया ॥ १३ ॥
 एवं नार्यश्च सीताया विवाहः कथितो मया । युष्माभिः कौतुकात्पृष्टो यः सर्वमगलप्रदः ॥ १४ ॥

श्रीरामदास उवाच

एवं स्त्रियश्च ताः श्रुत्वा परमां मुदमाप्नुयुः । ततस्ताः पूजयामासुः पुनः सीतां मुदान्विताः ॥ १५ ॥

सीताने अनेक तरहके भूषणोंसे उनकी पूजा की और उन स्त्रियों ने भी सिंहासनपर बैठलाकर दिव्य अलङ्कारोंसे सीताका पूजन किया । इसके अनन्तर वे सब सीताको चारों ओरसे घेरकर बैठ गयीं ॥ ४ ॥ ५ ॥ सीताके मुखसे रामके सहस्रों चरित्र सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुई और उन्होंने सीताके मुखसे ही सीताका विवाहसम्बन्धी वृत्तान्त सुननेकी प्रकट की ॥ ६ ॥ वे मुत्कुराती हुई सीतासे कहने लगीं कि हम आपके विवाहसमारोहका वृत्तान्त सुनना चाहती है ॥ ७ ॥ हे सात ! वह हाल विस्तारपूर्वक हमको सुनाइए । इस प्रकार उनका प्रश्न सुनकर सीता लज्जावश कुछ नहीं बोली और अपनी सहेली तुलसीको, जो कि सुवर्णमय आभूषण पहने बैठी थी, संकेत किया और तुलसी कहने लगी—आप लोग सीताके मङ्गलमय विवाहका वृत्तान्त सुनें ॥ ८ ॥ ९ ॥ आप लोगोंको प्रसन्न करनेके लिए महामङ्गलदायी और सुननेसे पुण्य बढ़ानेवाले विवाहका संक्षेपमें वर्णन करती हूँ ॥ १० ॥ अयोध्यापुरीसे विश्वामित्र राम और लक्ष्मणको साथ लिये हुए अपने आश्रम पहुंचे । वहाँ राम-लक्ष्मणने राक्षसोंको संहार किया और मुनि विश्वामित्रके कर लेनेके बाद रथपर बैठकर पुनिके साथ दोनों भाई मिथिलाकी ओर चले । रास्तेमें विश्वामित्रने रामके चरणोंका स्पर्श कराकर गौतम ऋषिकी पत्नी अहल्याको शापसे मुक्त कराया ॥ ११ ॥ फिर मुनिके साथ जनकपुर पहुंचे । स्वयंस्वरके समय रामने सभामें मुनि विश्वामित्रका आज्ञासे शिवके धनुषको प्रणाम किया और भरमें उसे तोड़कर तीन टुकड़े कर डाले । फिर सीताके हाथोंको करमालाको रामने अपने गलेमें धारण किया ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर रामने मिथिलापुरीमें ही अपना और अपने भाइयोंका विवाह किया । फिर पत्नी, पिता, माता आदिके जनकसे पूजित होकर राम मिथिलासे अयोध्याको चले । रास्तेमें क्रीषी परशुराम मिले और उनके वंशधर धनुषको चढ़ाकर रामने उनके दुर्दर्पको दूर कर दिया ॥ १३ ॥ हे नारियों ! तुमने कौतुक वश सीताके जिस सर्वमङ्गलप्रद विवाहवृत्तान्तको पूछा था, सो कह सुनाया ॥ १४ ॥ श्रीरामदास कहते हैं कि इस प्रकार सीताके विवाहका वर्णन सुनकर स्त्रियां बहुत

सीतया पूजिताः सर्वास्तां नत्वामञ्ज्य जानकीम् । चैत्रस्नानं समाप्याथ जग्मुः स्व स्वं स्थलं प्रति ॥१६॥
 अथैकदा गुरोरास्याद्रामाग्रे संस्थितो लवः । शृण्वन्पुराणं पप्रच्छ श्रोतुं सर्वान् जनान्गुरुम् ॥१७॥
 गुरो ते प्रष्टुमिच्छामि तत्त्वं वद मुनीश्वर । पुस्तकेषु च सर्वत्र पत्रे पत्रे पृथक् पृथक् ॥१८॥
 एकत्र लिख्यते श्रीति रामेत्येकत्र लिख्यते । किमर्थं मानवैस्तत्र तत्सर्वं कथयस्व मातु ॥१९॥

इति तद्वचनं श्रुत्वा गुरुस्तं वाक्यमब्रवीत् ।

वसिष्ठ उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया वत्स लोकसन्देहहृत्परम् ॥२०॥

श्रीरामचरितं पूर्वं व्यासेन मुनिना पृथक् । अष्टादश पुराणानि तथोपपुराणानि च ॥२१॥
 कृतान्यन्यैश्च मुनिभिः षट्शतादीन्यनेकशः । श्रीरामचरितादेव श्लोकमात्रमपीह यत् ॥२२॥
 सर्वमस्तीति तद्वोद्बुधमादावेकत्र श्रीति च । विलिख्येकत्र रामेति तन्मध्ये परिलिख्यते ॥२३॥
 अनया संज्ञया सर्वे शास्यंत्वग्रे जना भुवि । श्रीराम मध्ये लिखितं श्रीरामचरितादिदम् ॥२४॥
 कृतमस्ति पृथक् मिश्रं पुरा व्यासादिमिस्तिवति । एतस्मात्कारणाद्बाल सूचनार्थं विलिख्यते ॥२५॥
 श्रीरामेति पृथक् पत्रे सर्वत्र जगतीतले । अन्यत्र कारणं वच्मि तच्छृणुष्व शिषो लव ॥२६॥
 अशुद्धं लिखितं यच्चाज्ञानतो भ्रातितोऽपि हि । पत्रं तच्चातिशुद्धं हि भवत्विति मनीषया ॥२७॥
 श्रीरामेति च सर्वत्र पत्रे पत्रे विलिख्यते । यदकितं श्रीरामेति नाम्ना पत्रं लेखकैः ॥२८॥
 ज्ञेयं तच्चातिशुद्धं हि गतदोषस्तु लेखकः । भवत्यत्र जगत्प्रा हि सत्यं लव वदाम्यहम् ॥२९॥
 इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं वसिष्ठं प्रणिपत्य च । लवः स गतसन्देहस्तूष्णीमासीन्मुदान्वितः ॥३०॥
 एकदा रघुनाथस्तु मन्चकोपरि संस्थितः । मुखान्तांबूलस्य रसं प्रथमं दोषकारकम् ॥३१॥
 त्यक्कुक्कामो ददर्श पात्रं निष्ठीवनस्य सः । तस्मांतिके स्थिता दासी नाम्ना वै सुगुणेति च ॥३२॥

प्रसन्न हुई और उन्होंने फिरसे सीताका पूजन किया ॥ १५ ॥ सीताने जो फिर उनका पूजन किया और वे सीताकी प्रणाम करके और उनसे लेकर चैत्रस्नान समाप्त हो जानेपर अपने-अपने घर चली गयीं ॥ १६ ॥ इसके बाद एक दिन गुरु वसिष्ठ बैठे पुराणोंकी कथा सुना रहे थे । रामचन्द्रजी और लव भी बैठे हुए थे । कथा सुनते-सुनते लवने लोगोंको प्राप्त करानेके लिए वसिष्ठसे कहा—॥१७॥ हे गुरो ! मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ, सो बताइए । प्रायः ऐसा देखा जाता है कि पुस्तकोंके पन्ने-पन्नेमें एक ओर 'श्री' और दूसरी ओर 'राम' ऐसा लिखा जाता है । लोग ऐसा क्यों करते हैं ? यह कृपया हमें दीजिये ॥ १८ ॥ १९ ॥ इस प्रकार लवका प्रश्न सुनकर वसिष्ठने कहा—हे वत्स ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । इससे बहुतोंका सन्देह दूर हो जायगा ॥ २० ॥ पहले व्यास मुनिने श्रीरामचन्द्रके चरित्रात्मक अष्टादश पुराण और अष्टादश ही उपपुराण बनाये ॥ २१ ॥ उसी तरह और-और ऋषियोंने षट्शत आदि बनाकर तैयार किये । सब ग्रंथोंके सभी श्लोक श्रीरामचरित्रसे बने हैं । इसी बातको बतलानेके लिए प्रत्येक पन्नेमें 'श्री' लिखकर 'राम' लिखा जाता है ॥ २२ ॥ २३ ॥ इस संकेतसे संसारके मनुष्य पुस्तक देखकर यह समझेंगे कि सब ग्रंथ श्रीरामचरित्रके अन्तर्गत हैं । हे वत्स ! श्रीराम लिखनेका एक कारण यह है, जो चुका । दूसरा भी बतलाते हैं—हे । सो भी सुन लो ॥ २४-२६ ॥ अज्ञानतासे या भ्रमवश पन्नेमें जो कोई शब्द अशुद्ध लिख गया हो, वह पत्रा अत्यन्त शुद्ध हो जाय । इस विचारसे भी पन्नेमें लेखकगण श्रीराम लिखते हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥ ऐसा करनेसे अशुद्ध भी शुद्ध हो जाता और लेखकको कोई दोष नहीं लगता । हे ! मैं तुमको यह सच्ची बातें बतला रहा हूँ ॥ २९ ॥ इस प्रकार समाधान सुनकर लवका सन्देह निवृत्त हो और वे धूपचाप बैठ गये ॥ ३० ॥ एक बार राम मन्चपर बैठे थे । मुखमें ताम्बूल था । ताम्बूलका प्रथम रस दोषकारक होता है, ख्यालसे उन्होंने पूछना चाहा । किन्तु निष्ठीवनपाव (ओमालदान) नहीं दिखायी पड़ा । रामके पास ही खड़ी सुगुणा नामकी दासी रामकी इच्छा

तादृशं राममालोक्यं पात्रं दूरं विलोक्य च । कृत्वा पात्रं स्वहस्ताभ्यामञ्जलावेव तद्रसम् ॥३१॥
 रामेण मुक्तमास्याञ्च जग्राह वेगवत्सगः । ततः सा प्राञ्जनं रामोच्छिष्टं दासी चकार तत् ॥३४॥
 महाप्रसादं तं मत्वा देवाल्लुब्धः त्रिवित्य च । तदाऽतितुष्टः श्रीरामस्तस्यै तत्कर्मणाऽभवीत् ॥३५॥
 वरयस्व वरं दासि यत्ते मनसि वर्तते । तद्रामवचनं श्रुत्वा दासी प्राह रघूनामम् ॥३६॥
 एकपत्नीव्रतं तेऽस्ति सांप्रतं त्विह जन्मनि । जमांतरे त्वया संगं बांछामि रघुनायक ॥३७॥
 तत्तस्या वचनं श्रुत्वा राघवो वाक्यमब्रवीत् । यदाऽग्रे कृष्णरूपेण गोकुलेऽवतराम्यहम् ॥३८॥
 तदा राधेति नाम्नी त्वं गोपिकासु भविष्यसि । तदा मया चिरं क्रीडा त्वं भोक्ष्यसि न संशयः ॥३९॥
 तदा ममानिप्रीता त्वं गोपिकासु भविष्यसि । इति दासी रामचन्द्राद्वरं लब्ध्वा तुतोष सा ॥४०॥
 अन्यच्छृणु विष्णुदास रामचन्द्रकथानकम् । यन्प्रोच्यते मया तेऽग्रे महत्कौतुककारकम् ॥४१॥
 एकदा राघवः श्रीमान्महायामासनोपरि । संस्थितो बन्धुभिः पुत्रैर्मन्त्रिभिः पुत्रवासिभिः ॥४२॥
 एतस्मिन्मन्तरे कश्चिद्ब्रह्मचारी समाययौ । युवा दण्डधरः श्रेष्ठः कमण्डलुकरः शुचिः ॥४३॥
 ऐगकुण्ठाजितधरः काषायवसनो व्रजा । तं दृष्ट्वा राघवः श्रामानवशीर्य वरासनात् ॥४४॥
 प्रस्युद्रम्पाय तं मत्वाऽऽसने समुपवेश्य च । पूजयामास विधिना धेनुमग्रे निवेद्य च ॥४५॥
 ततः सम्पूजितं विप्रं राघवो वाक्यमब्रवीत् । अद्य धन्याऽऽस्म्यहं विप्र यतस्ते दर्शनं मम ॥४६॥
 कार्यमाज्ञाप्यतां किञ्चिद्यदर्थं मवनाऽऽगतम् । तद्राघववचः श्रुत्वा ब्रह्मचारी वचोऽब्रवीत् ॥४७॥
 बान्मीकिना प्रेषितोऽहं यस्मात्तच्छृणु राघव । यष्टुकाग्रो महायज्ञं स बाल्मीकिर्महाशुनिः ॥४८॥
 स्वामाकारयितुं मां त्वच्चिकटं वगश्चरम् । प्रेषितवानतस्त्वं हि सीतया बन्धुभिः सह ॥४९॥
 प्रस्थानं कुरु राजेन्द्र मुहूर्तस्त्वद्य वर्तते । एवं वदति श्रीरामं भूसुरे सदसि स्थिते ॥५०॥

समझ गयी, किन्तु पात्र दूर था । इसनिष् रत्नको बृकनेके लिए उसने अपनी अञ्जली फैला दी ॥ ३१—३३ ॥ रामने भी वह प्रथम रस उसके हाथमें थूक दिया । दासी उसको लेकर तुरन्त खाट गयी । उसने मनमें सोचा कि यह महाप्रसाद है और भाग्यवश आज मुझे मिल गया है । उसके इस व्यवहारसे राम बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा— ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ अरी दासी ! तेरा इच्छा हो, वह वर माँग ले । रामकी मुनकर उसने कहा—इस जन्ममें आज एकपत्नीव्रती हूँ । इसलिए हे रघुनायक ! मैं दूसरे जन्ममें आपके साथ एकान्त-सहवास चाहती हूँ । ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ उसकी यह बात सुनकर रामने कहा कि अगले जन्ममें मे कृष्णरूपसे गोकुलमें अवतार लूँगा, तुम राधा नामसे विलगल एक गोपपत्नी होओगी । समय बहुत दिनों तक तुम मेरे साथ क्रीडाका सुख भोगोगी, इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ वृत्तका सारी गोपियोंमें तुम मुझे सबसे प्रिय होओगी । दासी तरह रामचन्द्रजीसे वरदान पाकर प्रसन्न हो गयी ॥ ४० ॥ हे विष्णुदास ! रामचन्द्रजीका एक दूसरी कथा भी तुम्हारे आगे कह रहा हूँ । यह बड़ा कौतुकजनक है ॥ ४१ ॥ एक समय राम मथामें सिंहासनपर पुत्रों तथा मंत्रियोंके साथ बैठे थे ॥ ४२ ॥ उसी समय एक युवा ब्रह्मचारी दण्ड धारण किये और हाथमें कमण्डलु तथा पश्चिम मृगचर्मा लिये और काषाय वस्त्र धारण किये वहाँ आ पहुँचा । उसे देखते ही श्रीमान् रामचन्द्रजी आसनसे उठ खड़े हुए । थोड़ा आगे बढ़कर उसे प्रणाम किया और एक भण्डे बिठलाया । फिर गोदान देकर उन्होंने उसको पूजा की ॥ ४३—४५ ॥ पूजन कर लेनेके पश्चात् रामने कहा—हे विप्र ! आज आपके दर्शनसे अपनेको धन्य समझता हूँ ॥ ४६ ॥ अच्छा, आप मुझे वह दीजिए कि जिसके लिए आप यहाँ आये हों । रामकी यह बात सुनकर ब्रह्मचारी कहने लगा— ॥ ४७ ॥ श्रीबाल्मीकिजीने मुझे आपके पास भेजा है । वे एक महायज्ञ करना चाहते हैं । इसीलिए आपको बुलानेके लिए हमें भेजा है । हे राजेन्द्र ! आज बड़ा अन्त्य मुहूर्त है । अतएव सीता तथा अपने भ्राताओंके साथ आप शीघ्र प्रस्थान कर दीजिए । इस प्रकार वह

समाययौ ब्रह्मचारी द्वितीयो गाधिजाश्रमान् । तं दृष्ट्वा पूर्ववद्रामः प्रत्युद्गम्य द्विजोत्तमम् ॥५१॥
 आसनेऽन्ये चोपवेश्य पूजयामास सादरम् । ततस्तत्पुस्तः स्थित्वा तं प्रपच्छ रघूत्तमः ॥५२॥
 यदर्थं श्रमेतोऽसि त्वं तन्नसाज्ञाप्यतां मृतं । तद्रामवचनं श्रुत्वा ब्रह्मचारी बचोऽब्रवीत् ॥५३॥
 राम त्वां गाधिजेनाहं श्रेयिताऽस्मि जनेन हि । यद्दुःकाधो महायज्ञं विश्वामित्रोऽस्ति राघव ॥५४॥
 त्वं तेनाकारितश्चासि प्रस्थानं कुरु मन्त्रम् । ब्रह्मचारिणोस्तद्वाक्यमुभयोः स रघूत्तमः ॥५५॥
 श्रुत्वा विदस्य प्रोवाच द्विजार्ण्या वै तथेति च । तदाश्चर्यं जनाः प्रापुः प्रोचुस्ते तु परस्परम् ॥५६॥
 कथमद्योभयोः साकं रामो गच्छति तन्मत्सो । केचिद्च राघवाय किमशक्यं तथाऽत्र हि ॥५७॥
 यथा स्त्रीणां वने पूर्वं यथाऽस्माकं हि दर्शनम् । यथा गतोऽस्ति लंकायाः पुग भरतदर्शने ॥५८॥
 भिक्षुरूपेण रामेण सर्वेषामपितं पृथक् । तद्वदत्रापि द्विविधा भूत्वा गत्वा च तन्मत्सो ॥५९॥
 किमाश्चर्यमिदं चाद्य किमशक्यं परात्मनि । एवं वदन्तु पौरैश्च लक्ष्मणं प्राह राघवः ॥६०॥
 अद्यैवाहं गमिष्यामि भोजनानन्तरं वहिः । वासोगेहानि नयानि वहिः सेनां प्रचोदय ॥६१॥
 आज्ञापनीयं वाद्यानां ध्वनिं कर्तुं हि सेवकान् । तद्रामवचनं श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा स लक्ष्मणः ॥६२॥
 कारयामास वाद्यानां ध्वनिं दूर्तश्च मभ्रमान् । सैन्यं प्रचोदयामास वहिर्वासोगृहाणपि ॥६३॥
 नेतुमाज्ञापयामासुर्द्वारास्ते निन्युरादगात् । ततो रामोऽपि विश्राम्या गृहं गत्वा विदेहजाम् ॥६४॥
 सर्वं कृतं निवेद्याथ कृत्वा विप्रैर्हि भोजनम् । सीतां च करिणीपृष्ठे बंधुनाऽऽगेहयत् प्रभुः ॥६५॥
 पुष्पके पौरनारीश्च करिणीपुर्मिलादिकाः । समारोहयन्कूर्मवामः स्वयं तस्थौ गजोपरि ॥६६॥
 लक्ष्मणाद्या गजेष्वेव ते समारुहस्तदा । निनेदुष्याथ वाद्यानि ननृतुर्वारियोपिताः ॥६७॥

बाह्याण कह ही रहा था कि इतनेमें एक दूसरा ब्रह्मचारी विश्वामित्रके आश्रमसे पहुँचा । पहलेकी तरह रामने उसका भी स्वागत किया ॥ ५८-५९ ॥ उसे एक दूसरे आसनपर बिठाकर उन्होंने उसकी भी उसी तरह पूजा की । इसके अनन्तर उसके भी आगे बैठकर उन्होंने कहा कि जिस कार्यके लिए आपने कष्ट किया हो, मुझे आज्ञा दीजिए । रामकी बात सुनकर ब्रह्मचारीने कहा—॥ ५२ ॥ ५३ ॥ हे राम ! मुझे विश्वामित्र-जीने आपके भेजा है । वे एक भूयाज करना चाहते हैं । उसमें उन्होंने आपको बुलाया है । इसलिए आप शीघ्र प्रस्थान कीजिए । रघूत्तम राम उन दोनों ब्रह्मचारियोंके सन्देश सुनकर मुसकराए ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ उन दोनोंसे कहा—“अच्छा चलेंगे” । इस बातकी सुनकर, सभाके लोगोंको बड़ा विस्मय हुआ । वे परस्पर कहने लगे—॥ ५६ ॥ राम इन दोनोंके साथ जाकर कैसे उन दोनों यज्ञमें सम्मिलित हो सकेंगे । किसीने कहा कि रामके लिए अशक्य कौन-सा काम है, वे क्या नहीं कर सकते ? ॥ ५७ ॥ जैसे वनमें उन्होंने उन हजारों स्त्रियोंकी हजारों रूपोंसे दर्शन दिया था । जिस प्रकार लंकासे लौटकर आनेपर भरत-मिलानके समय प्रत्येक मनुष्यसे मिले थे ॥ ५८ ॥ उसी तरह इस समय भी राम अपना दो रूप बनाकर दोनों जगह चले जायेंगे ॥ ५९ ॥ इसमें आश्चर्य करनेकी बात ही कौन-सी है । जिसकी आत्मा इतने ऊँचे दर्जेपर पहुँच गयी है और जो साक्षात् परमात्मा है, उसके लिए अशक्य कोई काम नहीं है । इस तरह लोग आपसमें बातकही कर रहे थे, सभी रामने लक्ष्मणसे कहा—॥ ६० ॥ लक्ष्मण ! आज ही भोजन करनेके पश्चात् हमलोग बाहर चलेंगे । तम्बू कनास आदि भेजवा दो और सेना भी तैयार करवाओ ॥ ६१ ॥ बाद्य बजानेके लिए सेवकोंको आज्ञा दे दो । रामकी आज्ञा सुनकर लक्ष्मणने “तथास्तु” कहा ॥ ६२ ॥ तत्काल उन्होंने दूतोंको बुझी बजानेकी आज्ञा दी । लक्ष्मणके आज्ञानुसार सेवक सब सामान ठीक करने लगे । इसके अनन्तर राम उन दोनों ब्रह्मचारियोंके साथ सीताके महलोंमें गये ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ जानकीजीकी भी निमन्त्रणका समाचार सुनाया और दोनों ब्रह्मचारियोंके साथ भोजन किया । फिर बन्धुओंके साथ सीताको हाथीपर सवार कराया । बाकी पुरवासिनी नारियोंको पुष्पक त्रिमानपर एवं उर्मिलादिको हाथीपर बिठलाया । उन सबको सवारियोंपर बिठाकर स्वयं भी एक हाथीपर सवार हुए और लक्ष्मणादि भी हाथीपर बैठे । समय विविध प्रकारके बाजे बजने लगे और

तुष्टुर्मागधाद्याश्च प्रजगुः सुम्बरं नटाः । एवं मयाययौ रामस्तदा वामोर्गृहाणि सः ॥६८॥
तां रात्रिं समनिक्रम्य प्रभाने रघुनन्दनः । स्नात्वा निन्यानिधिं कृत्वा गजारूढोऽभवत्पुनः ॥६९॥
क्रोशद्वयं ततो गन्वाऽग्रे द्वौ मार्गौ निरीक्ष्य च । ससैन्ये द्वे भिजे देहे चकार रघुनन्दनः ॥७०॥
तदा द्वयोर्मार्गयोश्च ससैन्यौ सीतया पुनः । पुत्राभ्यां बन्धुभिर्युक्ता द्वौ मार्गौ सकला ॥७१॥
दक्षुः पुष्पके द्वे च द्वौ ज्ञातौ ब्रह्मचारिणौ । वाल्मीकीयो ब्रह्मचारी त्वेकः स स्वं गुरुं ययौ ॥७२॥
विश्वामित्राध्वरं चान्यः श्रीरामेण मुदा गतः । माध्विजे गो ब्रह्मचारी त्वेकः स स्वं गुरुं ययौ ॥७३॥
वाल्मीकेरध्वरं चान्यः श्रीरामेण यथा मुदा । एवं ते माध्वेयाणां सर्वदेहद्रव्यानि हि ॥७४॥
निजानि ददृशुस्तत्र विस्मयाविष्टमानसाः । एवं तौ रघुर्ययौ हि तयोर्गुण्योस्तदाश्रमे ॥७५॥
ससैन्यौ सीतया युक्ता बन्धुपुत्रसमन्वितौ । जन्मतुर्वै ह्यनेभ्यां हि प्रत्यद्रम्यातिपूजितौ ॥७६॥
तयोर्मार्गौ विधायाथ परिपूर्णौ पुनः पुनः । समाजगमतुः श्रीरामौ ससैन्यौ पूर्ववन्मुदा ॥७७॥
यत्र द्वे निजदेहे वै कृते तत्र रघुसमी । समागत्य पुनश्चकं निजदेहं चकार सः ॥७८॥
वाल्मीकीयो ब्रह्मचारी विश्वामित्रद्विजभ्राता । भिन्नदेहे त्वेकरूपं भजतस्मौ तदा द्विजौ ॥७९॥
ससैन्यं पुष्पकं चापि बभूवकं तु पूर्ववत् । ततः श्रीरामबन्धुः स विवेश नगरं निजाम् ॥८०॥
तदा निनेदुर्वाद्यानि ननुत्तुर्वारियोपितः । पौरभाग्यो विमानस्था धवपुः पुष्पवृष्टिभिः ॥८१॥
तुष्टुर्मागधाद्याश्च प्रजगुस्ते नटादयः । एवं नानाकौतुकानि पश्यन्मार्गे शनैः शनैः ॥८२॥
ययौ निजगृहं रामः समार्यां संविवेश ह । सीताऽपि निजगेहं सा संविवेशोमिलादिभिः ॥८३॥
एवं भूसुर रामेण कौतुकानि महान्ति च । अमानुषाणि यान्यत्र कृतानि ॥ सहस्रशः ॥८४॥
वाल्मीकिना विस्तरेण वर्णितानि हि कुत्सनशः । सारं सारं मया तेभ्यः संगृह्याथ कथानकम् ॥८५॥

वैश्यायें भाषने श्रुतिं ॥ ६५-६७ ॥ बन्दीजन रामको बिरुदायली सुनाने तथा नटगण मोठे मोठे स्वरोमें गाने लगे । ॥ ६८ ॥ अपने राजभवनसे प्रस्थान करके राम रास्तेमें बने हुए डेरेपर पहुँचे ॥ ६९ ॥ रात्रि रामने वहाँ बितायी । सबरे उठे तो स्नानादि निर्यक्रिया की ओर फिर हाथीपर बैठकर ॥ ७० ॥ दो कोस आगे जानेपर जहाँसे विश्वामित्र तथा वाल्मीकिके आश्रमोंके रास्ते मलग होते थे, वहाँसे उन्होंने सेना समेत अपना दो स्तरुप बना लिया ॥ ७१ ॥ उस समय दोनों रास्तेमें राम सेना, सीता तथा पुत्रबन्धु आदिसे युक्त होकर चले । उस समय जितने भी मनुष्य साथ थे, वे सब एकके दो दिखायी दिये ॥ ७२ ॥ पुष्पक विमान भी दो हो गया और दोनों ब्रह्मचारियोंमेंसे एक रामको विश्वामित्रके आश्रमकी ओर ले चला, दूसरा वाल्मीकिके आश्रमको ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ उस समय मनुष्यसे लेकर साथके कुत्ते ॥ दो हो-होकर दिखायी दे रहे थे । वे लोग अपने दो शरीरोंको देख-देखकर बड़े विस्मित हुए ॥ ७५ ॥ इस प्रकार ॥ दोनों राम अपनी-अपनी सेना, सीता और बन्धुओंके साथ दोनों आश्रमोंको चले । जब कि आश्रमपर पहुँचे तो दोनों श्रद्धियोंने अगवाही करके उनकी पूजा की ॥ ७६ ॥ इस प्रकार पहुँच-पहुँचकर उन दोनोंका यज्ञ समाप्त हो जाने-पर फिर वे दोनों राम पहलेंकी तरह अगोष्ठाको लौटे ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ जाते समय जिस स्थानपर रामने अपना दो रूप बनाया था, वहाँ पहुँचनेपर फिर एक हो गये । विश्वामित्रका ब्रह्मचारी तथा वाल्मीकिका ब्राह्मण ये दोनों भी एक ही एक हो गये ॥ ७९ ॥ ८० ॥ इसी तरह पुष्पकविमान और सेना भी एक हो गयी । इस प्रकार श्रीरामबन्धुजी आनन्दपूर्वक अपनी अयोध्या नगरीमें प्रविष्ट हुए ॥ ८१ ॥ उस समय भी नाना प्रकारके बाजे बजे और वैश्यायें नाचीं । पुरसत्तिका नारियोंने पुष्पक विमानसे रामपर फूलोंकी वर्षा की, बन्दीजनोंने स्तुति की और गानेवालोंने अच्छे-अच्छे गायन गाये । इस प्रकार रास्तेमें तरह-तरहके कोतुक देखते हुए धीरे-धीरे ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ वे ॥ ८४ ॥ भवनमें गये और यहाँ पहुँचकर राजसिंहासनपर बैठे । सीता उमिला आदिके साथ महलके भीतर गयीं ॥ ८५ ॥ हे मित्र ! रामने हजारों प्रकारके जिन महान् और अलौकिक कामों-की किया था, उनका वाल्मीकिके विस्तृत वर्णन किया है और मैंने ही उसमेंसे सारभागमात्र लेकर सब कथा सुनायी

तवाग्रे कथ्यते शिष्य संक्षेपेणाज्ञया प्रभोः । त्वं वन्द्योऽसि यदर्थं च रामेणाज्ञापितस्त्वरम् ॥८६॥
 वक्तुं स्वचरितं पुण्यं रम्यमानन्ददायकम् । वाञ्छनीतिश्चानि अन्यः न भानि संवादमात्रयोः ॥८७॥
 यः पूर्वं विरचितवान् स्वीयकालेऽत्र भूतवत् । यथा रामस्य चरितं पूर्वं रामाश्रितारतः ॥८८॥
 एवं संवर्णितं कृत्स्नं गोप्यं यच्च कृतं रहः । न वाञ्छमीदृशमः कश्चिन्वाविर्भूतो भविष्यति ॥८९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितातमनि श्रीमदानन्दरत्नाजये वात्सीकीये राज्यकाण्डे त्वतराधे

दासोवरदानं तथा गमादीनां देहद्वयकरणं नार्थकविश्वः सूर्यः ॥ २१ ॥

द्वाविंशः सर्गः

(सीना हाग दृश तुलसीपत्र पुनः डालमें ओढ़ना)

श्रीरामदास उवाच

इदानीं रामचन्द्रस्य लीलाकीर्तनमुत्तमम् । अभ्यद्रुष्यं दर्शयते हि मया तच्छृणु सादरम् ॥ १॥
 एकदा राघवस्तस्थौ मध्यायासवतोदरि । वन्धुभिर्भक्तिवर्जैश्च दीर्घजानपदैः सह ॥ २ ॥
 पुत्राभ्यां च सहृद्विश्च मित्रमन्त्रिजनेः सह । एतन्मित्रजने भूरिगीतिषा मुहुराचरैः ॥ ३ ॥
 द्राक्षाकलादिभिः पूजास्तथा पुष्पैः सुपूजाभिः । ऊर्मिडिक्काः प्रेषिनाश्च राघवाय सत्सज्जः ॥ ४ ॥
 ताः सर्वा राघवो दृष्ट्वा प्रेषयामास जगत्पते । युक्ताः मार्गभिः सीतां वा प्रीडापलास्थिता मुदा ॥ ५ ॥
 दृष्ट्वा कर्ण्डिकाः सर्वान्वेत्तापुनर्यत्नदाः । तस्यां रामायान्तेन दृष्ट्वा रम्याणि जानकी ॥ ६ ॥
 करेणादाय पथं च राघवायार्पणं विना । नातन्मुमन्त्रं जगद् वागवात् मुदान्विता ॥ ७ ॥
 कर्ण्डिकां पूर्ववच्च समाच्छाद्य विद्वजः । कदाप्यामास मेहेषु सर्वस्वश्च कर्ण्डिकाः ॥ ८ ॥
 तद्वृत्तं रामचन्द्रोऽपि सर्वज्ञात्वा सन्निवृत्तः । चित्ते निरत्ययमास कदाचित् मुदान्वितः ॥ ९ ॥
 सातयेदं कृतं कर्म योग्यं भुवि स्मृतं न हि । यन्मया जगत्पतेन कृतं त्वया स्मृतं तया ॥ १० ॥

हे ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ वसोति प्रभुमे पुनः पुनः ॥ रामका प्रजा संशयः ॥ सुखमयः ॥ विष्णुः विष्णु भगवान्मे
स्वयं मुक्षी कथा सुननेको अज्ञाती ॥ ८६ ॥ वे रामादि रामादि वन है, जिन्हेने राम हीरामुमको सुनने-
सुनानेके लिए भूतकायकी तरह भविष्यका सागर रामादि वन का लक्षण के लिये है ॥ ८७ ॥ ८८ ॥
बहु वर्णन भी इतना नववा किया कि रामने जो भी सुना ॥ ८९ ॥ रामादि वन का लक्षण है, वह सब लिख दिया।
वाल्मीकिने रामानुज कोई कवि हुआ है ॥ ९० ॥ ९१ ॥ रामादि वन का लक्षण है, वह सब लिख दिया।
यणै वाल्मीकीने पं० रामने जवाब है ॥ ९२ ॥ रामादि वन का लक्षण है, वह सब लिख दिया।
॥ ९३ ॥ ९४ ॥ रामादि वन का लक्षण है, वह सब लिख दिया। ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ रामादि वन का लक्षण है, वह सब लिख दिया। ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ रामादि वन का लक्षण है, वह सब लिख दिया। ॥ ९९ ॥ १०० ॥ रामादि वन का लक्षण है, वह सब लिख दिया।

श्रीरामदासने कहा - अब मैं तुम्हें रामका एक कृपा काण्ड और उत्तर भाग सुनाता हूँ। उसे आदरपूर्वक सुनो ॥ १ ॥ एक समय रामचन्द्रजी पिताजनका बैठे हुए थे। उनके सामने उनके सनस्त भ्राता, मन्त्री, पुरवासी, दोनों पुत्र, सम्बन्धी तथा मित्र आदि भी उपस्थित थे। उसी समय उनके सुहृद् राजा भूशिकीतिने दूतों द्वारा अंगूर आदि विविध प्रकारके फलोंसे भरी हुई बहुत सी पिटारियाँ भेजीं ॥ २-४ ॥ उनको देखकर रामने उसे भीतर सीताके पास भेजवा दिया। उस समय सीता अपनी सज्जियोंके साथ कीड़ाभवनमें थीं ॥ ५ ॥ उन पिटारियोंको देखा तो वही उसकृतके साथ खोज-बोझकर कुछ पिटारियाँ देखीं, किन्तु उनके भीतर कमलका फूल भरा दोष पड़ा ॥ ६ ॥ तब प्रसन्न मनसे सत्तने उत्तमसे एक कमलका फूल निकाला और रामको अर्पण किये बिना ही सूँघ लिया ॥ ७ ॥ तदनन्तर पिटारियोंको पहलेंको तरह ठीक करके घरमें रखवा दिया ॥ ८ ॥ सभामें बैठे बैठे ही रामको यह बात मालूम हो गयी। उन्होंने बार-बार इसपर विचार किया ॥ ९ ॥ उन्होंने सोचा कि सीताने यह ठीक नहीं किया, जो मेरे सूँघे बिना ही कमल सूँघ

अग्रेऽप्येवं स्त्रियः सर्वाः करिष्यन्त्यथ वै भुवि । सीतादक्षिणमार्गेण तस्मान्निष्ठां करोम्यहम् ॥११॥
 एवं मनसि निश्चित्य ततः स रघुवन्दनः । नृष्णीमेव गृहं गत्वा पूर्ववज्जानकीं मुदा ॥१२॥
 रञ्जयामास विविधैर्नानाक्रोडादिकौतुकैः । सीताऽपि पेटिकाः सर्वा गणवाग्रे सहस्रशः ॥१३॥
 आनीय दर्शयामास फल्गुष्पादिभूरिताः । रामोऽपि दृष्ट्वा ताः सर्वाः समुद्रश्च पृथक् पृथक् ॥१४॥
 प्रेषयामास बन्धूनां मेहेषु दश पञ्च च । फलादीनां पेटिकाश्च नानाचित्रविचित्रिताः ॥१५॥
 मातृणां मकलानां च गृहेष्वपि तथा पुनः । पुत्रयोः सुहृदां चापि भ्रात्रिणां च गुरोस्तथा ॥१६॥
 पार्श्वीणां चापि मेहेषु सेवकानां गृहेष्वपि । दासीभ्यश्च शुभा दद्या पेटिकाः सप्त पञ्च च ॥१७॥
 सीतार्यं शतशो दत्त्वा मुदा ताम्यो गृह्यतमः । फलानि दश पञ्चाष्ट स्वयं भुक्त्वा ततः परम् ॥१८॥
 पद्मादीनि सुपुष्पाणि त्रिमज्ज्य पूर्ववत्पुनः । सीतार्यं शतशो दत्त्वा स्वयंभङ्गीचकार सः ॥१९॥
 अज्ञात इव तद्वृत्तं गोपयामास चेनमि । अर्धकदा जनकजः हरिदिन्याम्रपेषणम् ॥२०॥
 कृत्वाऽपरे दिने स्नात्वा ययौ वृन्दावनसिकम् । तुलसीं पूजयित्वा तं सा चकार प्रदक्षिणाः ॥२१॥
 एतस्मिन्नन्तरे सीता निराहारा श्रमान्विता । त्यक्त्वा प्रदक्षिणापार्श्वं किञ्चिदेव चञ्चल सा ॥२२॥
 चलितायाश्च सीतायाः पल्लवेन हि वामयः । पद्ममेकं तुलस्याश्च पपात भुवि वै तदा ॥२३॥
 तत्पत्रं जानकी दृष्ट्वा द्वादशीं वृद्धितं शुभम् । ज्ञात्वाऽधर्मैः कृतश्चेति मयभीताऽमवसदा ॥२४॥
 ततः सा तत्करणेन गृहीत्वा पद्ममुनयम् । नत्वा वृन्दावने सीता चिक्षेप परमादरात् ॥२५॥
 ततः प्रदक्षिणाः कृत्वा प्रार्थयित्वा मुहुर्मुहुः । तुलसीं सा ययौ गेहं रञ्जयामास राधयम् ॥२६॥
 एतस्मिन्नन्तरे सत्र नारदश्च समाययौ । वीणावाद्यस्वमेनैव कूर्चन्कीर्तनमुत्तमम् ॥२७॥
 पालय मां दीनमिति राघवेति पुनः पुनः । पालय मां दीनमिति मनु पञ्चदशाक्षरम् ॥२८॥

स्त्रिया ॥ १० ॥ यदि मैं इस समय चुप रह जाता हूँ तो सीताके दिखाने इस मार्गपर चलकर सब स्त्रियाँ ऐसा हो करने लगेंगी । इसलिए सीताको इसकी सजा देता हूँ ॥ ११ ॥ ऐसा निश्चय करके राम धुपचाप सीताके पर पहुँचे ॥ १२ ॥ वहाँ सदाकी तरह विविध प्रकारके क्रीड़ा-कौतुक करके उन्होंने सीताको प्रसन्न किया । सीताने भी वह सब पिटारियाँ मँगवाकर रामके जागे राख दीं । वे सब नाना प्रकारके फलों फूलोंसे भरी थीं । रामने भी उन्हें अलग-अलग खोलकर देखा ॥ १३ ॥ १४ ॥ उनमेंसे पन्द्रह पिटारियाँ भाइयोंके यहाँ भिजवा दीं । इसके बाद सब माताओंके पास भेजीं । उसी तरह दोनों भुवों, सम्बन्धियों, मन्त्रियों, गुरुजनों, पुरवासियों, सेवकों तथा दासियोंके पर भी पाँच-पाँच सात-आठ पिटारियाँ भिजवायीं । इसके अनन्तर सैन्यों पिटारियाँ सीताको दी और उनमेंसे स्वयं भी दस-पाँच फल निकालकर खाये ॥ १५-१८ ॥ इसके बाद कमल आदि अन्धे-अन्धे फूलोंको पूर्ववत् विभक्त करके मकड़ी फूल सीताको दिये और स्वयं भी लिये ॥ १६ ॥ किन्तु सीताने रामका अर्पण किंचित्ना ही जो फूल सूँघ लिया था, उस बातको जानते हुए भी राम अनजान जैसे बने रहे । इसके अनन्तर एक दिन सीताने एकादशीका व्रत किया ॥ २० ॥ दूसरे दिन वे वृन्दावन ! तुलसीको बगीची में गयी । वहाँ तुलसीकी पूजा करके प्रदक्षिणा करने लगीं ॥ २१ ॥ उस समय एकादशीका व्रत करनेसे उन्हें थकावट-सी लगी थी । जिससे प्रदक्षिणाका मार्ग छोड़कर वे दूसरी ओर चलने लगी ॥ २२ ॥ चलते-चलते सीताके कपड़ोंका पल्ला लगनेसे तुलसीका एक पत्र टूटकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २३ ॥ द्वादशीके दिन उस गिरे पत्रको देखकर सीताने सोचा—“ओह ! मैंने बड़ा भारी अधर्म कर डाला” वह सोचकर वे कुछ भयभीत-सी हो गयीं ॥ २४ ॥ इसके पश्चात् सीताने वह पत्र उठा लिया और प्रणाम करके आदरसे उसी वृन्दावनमें फेंक दिया ॥ २५ ॥ ऐसा करनेके बाद प्रदक्षिणा करके बारम्बार प्रार्थना की । फिर महलमें जाकर रामचन्द्रजीका मनोरञ्जन करने लगीं ॥ २६ ॥ इसी समय वीणा बजाते और हरिकीर्तन करते हुए नारदजी वहाँ जा पहुँचे ॥ २७ ॥ वे आते ही “भुक्त दीन-

कीर्तयामास स मुनिवारं चारं मुदान्वितः । दलकंठस्वरेणैव महापातकनाशनम् ॥२९॥
॥ पालय मां दीनं राघव पालय मां दीनम् ॥ इति मेवः ।

तं मुनिं राघवो दृष्ट्वा प्रणम्यद्रव्याथ भक्तितः । नन्दाऽऽसने मनिषेण दत्तवामास सादरम् ॥३०॥
ततः प्रक्षालय तन्पादौ सीतया न्युनन्दनः । धेनु निवेद्य संवर्धः पूज्य तं मुनिपुंगवम् ॥३१॥
हेमपात्रं भोजनार्थं हुनेरग्रे निवेद्य च । परिषेपार्थं श्रीरामस्तस्यानाम जानकीम् ॥३२॥
सीताऽपि कामधेनुत्थराक्षानि दिगृह्य मा । हेमपात्रे यस्यां वेदान्तार्थेषु परिषेपणम् ॥३३॥
कतुं कंकणमञ्जोरकिंकिणीन् पुराञ्जना । तां दृष्ट्वा नारदः सीतां ग्राह्य श्रीराघवं तदा ॥३४॥
रामं राज्ञीवपद्माक्षं नाहं सीताममर्षितः । दिव्यार्त्तनयनं चाद्य कश्चिद्वामि रघूत्तम ॥३५॥
तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा सीताऽऽसीनवकिता तदा । अज्ञानं च रामोऽपि यश्रमेण मुनिं तदा ॥३६॥
पप्रच्छ कारणं व्यग्रः सर्वकर्ता स्वयं प्रभुः । किं कारणं वद मुने किमर्थमनयाऽर्पितः ॥३७॥
अर्चस्त्वं भोजनं नाद्य करोपि मुनिपुङ्गव । इति रामवचः श्रुत्वा नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥३८॥

नारद उवाच

सीतयाऽद्य कृतं पापं किं त्वं वेत्सि न वै प्रभो । यदि त्वं नैव जानासि तर्हि शृणु वदामि ते ॥३९॥
द्वादश्यां तुलसीपत्रमनयाऽद्य निकृतिवत् । यद्यसत्यं तर्हि पश्य मन्दा वृन्दावने प्रभो ॥४०॥
संक्रमेषु चतुर्दश्योद्वादश्योः पातपरसु । तुलसीं हरेस्तस्योर्भृङ्गगारापराङ्मुखे ॥४१॥
नष्टे सूर्येन्दुग्रहणे प्रसूतिमरणे तथा । तुलसीं ये निकृतिं ते छिदति हरेः शिरः ॥४२॥
द्वादश्यां तुलसीपत्रं धात्रीपत्रं तु कार्तिके । लुनाति यो नरो मच्छेन्निरयानतिगर्हितान् ॥४३॥
अकाले तुलसीपत्रं छेदयत्यः स्त्रियः पुमान् । पत्रमेकं ब्रह्महत्यासममाधुर्मनीषिणः ॥४४॥
एवं तु वचनं सर्वैर्मुनिभिर्हि प्रकाटयते । पुरुषाणामयं दीपस्तत्र स्त्रीणां कथाऽत्र का ॥४५॥

की रक्षा करो, हे राघव ! मेरा पालन करो" इस महापातकनाशक पञ्चदशाक्षर मन्त्रका सहर्ष उच्चारण करने लगे ॥ २८ ॥ २९ ॥ "पालय मां दीनम्, राघव पालय मां दीनम् ।" यह पञ्चदशाक्षर मन्त्रका स्वरूप है । राम नारदको वक्षते ही उठ खड़े हुए । उन्होंने आगे बढ़कर प्रणाम किया और आसनपर बिठाया । तब सादर पूजन किया ॥ ३० ॥ सीताके साथ रामने मुनिके पैर धोये और गोदान दिया । इसके पश्चात् उनके सामने मुनिके पात्र रखे और शीघ्र परोक्षनेके लिये संतासे कहा ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ सीता भी कामधेनुसे उत्पन्न अष्टोन्नयन सामान परोक्षनेके लिये कङ्कुप, मञ्जोर तथा तूपूरका ध्वनि करती हुई चली । सीताको चलती देखकर नारदने रामसे कहा—हे राम ! हे रामोवपद्माक्ष ! मैं आज सीताके हाथों परोंसे हुए दिव्यान्न नहीं खाऊँगा ॥ ३३-३४ ॥ मुनिकी बात सुनकर सीता चकरा गयी और सबकुछ करनेवाले स्वयं प्रभु रामने भी अज्ञान बनकर विस्मित हो व्यग्रभावसे पूछा—यों मुनिराज ! आज आप सीताके हाथका अन्न क्यों नहीं ग्रहण करेंगे ? इस प्रकार रामकी बात सुनकर नारदने कहा—॥ ३५-३६ ॥ आज इन्होंने एक बड़ा पाप किया है । सो क्या आपको नहीं मालूम है ? अच्छा ॥ हां मुनाता है ॥ ३९ ॥ आज द्वादश्याका इन्होंने तुलसीपत्र तोड़ डाला है । यदि आप मेरी बात सच न मानते हो तो स्वयं चक्रकर देख लीजिये ॥ ४० ॥ संक्रान्ति, चतुर्दशी, द्वादशी, प्रतिदिन सवेरे-सांझके समय, शुक्ल और मङ्गलके दिन तथा दीपहरके बाद, सूर्य-चन्द्रग्रहणके समय, चरमें सन्तति होनेपर या किसीका देहान्त होनेपर जो लोग तुलसीका तोड़ते हैं, वे मनों तुलसीका पत्र न तोड़कर भगवान्‌का सिर काटते हैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ जो द्वादश्याको तुलसीपत्र तोड़ता या कार्तिकमासमें आँवलेकी पत्तियां तोचता है, वह अतिशय निन्दित नरकमें जाता है ॥ ४३ ॥ जो लोग असमयमें तुलसीका एक भी पत्र तोड़ते हैं । विद्वान् लोग ऐसीको ब्रह्महत्याका कहते हैं ॥ ४४ ॥ इस प्रकारका वचन समस्त मुनियोभि कहा है । फिर जब पुरुषोंके लिये ऐसा नियम बना हुआ तो स्त्रियोंके लिये क्या

एतन्निमित्तं श्रीराम सीतया परिवेषितः । वरान्नैर्भोजनं नाद्य करिष्यामि घ्नतस्थितः ॥४६॥
 तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा राघवः प्राह तं पुनः । मुने त्वमेव सीतां मे पूतां कर्तुमिहार्हसि ॥४७॥
 वरदानं घ्नतं वाऽपि येन पूता भवेत्क्षणान् । त्वामहं प्रार्थयाम्यद्य स्वीयं पल्लवमुत्तमम् ॥४८॥
 इत्यर्थं शिरसा चापि नमस्कृत्य पुनः पुनः । तद्रामवचनं श्रुत्वा नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥४९॥
 ब्रह्महत्यादिपापानां निष्कृत्यर्थं मुनीश्वरः । प्रायश्चित्तानि चोक्तानि संति नानाविधानि च ॥५०॥
 द्वादश्यां तुलसीपत्रच्छेदनाद्यप्रशांतये । प्रायश्चित्तं मया नैव दृष्टं राघवसत्तम ॥५१॥
 उपायस्त्वेक एवात्र वर्तते रघुनन्दन । पातिघ्नतबलात्सीता एव तत्तुलसी पुनः ॥५२॥
 योजयिष्यति मेऽग्रेऽद्य तर्हि पूता भविष्यति । क्षणादेव न सन्देहः सत्यमेव वचो मम ॥५३॥
 तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा रामः सीतां व्यलोकयत् । तदा सीताऽब्रवीद्वाक्यं शृणु ब्रह्मसुतोत्तम ॥५४॥
 अद्याहं योजयिष्यामि एव तत्तुलसीं पुनः । पातिघ्नतवलेनैव तवाग्रे पश्य कौतुकम् ॥५५॥
 इत्युक्त्वा जानकीं देवीं तस्याग्रमन्नपूरितम् । पाकस्थाने पुनर्नीत्वा स्थापयामास वेगतः ॥५६॥
 ततो वृन्दावनं सीता ययौ नूपुरनिःस्वना । नारदो रामचन्द्राद्या ययुर्वृन्दावनं प्रति ॥५७॥
 तदा ता उर्मिलाद्याश्च चंपिकाद्याः स्त्रियो ययुः । लक्ष्मणाद्या बंधवश्च कुशश्चाथ लवस्तथा ॥५८॥
 तेषां मध्यगता सीता तदा वृन्दावनस्थिता । नत्वा तां तुलसीं भक्त्या प्राह वाक्यं सखीयुता ॥५९॥
 भो भो तुलसि ब्रह्मकथं शृणुष्वद्य सुशोभने । पातिघ्नतवले पूर्णं मयि यद्यस्ति यावनम् ॥६०॥
 तर्ह्यस्य तव पत्रस्य त्वयि सन्धिर्भविष्यति । एवमुक्त्वा जानकी सा यावन्पश्यति वै पुरः ॥६१॥
 तावत्पत्रं तुलस्यां तत्सधिं नैव गतं तदा । तदा विषण्णा सा सीता बभूव चकिताऽपि च ॥६२॥
 तदा देवाः सगंधर्वा यक्षा नागाः सकिन्नराः । गुह्यज्ञा ऋषयः सर्वे तद्द्रष्टुं कौतुकं ययुः ॥६३॥
 ततः सीतां विषण्णां तां दृष्ट्वा स नारदो मुनिः । एकांते जानकीं नीत्वा बोधयामास सादरम् ॥६४॥

कहना ॥ ४५ ॥ इसी कारण आज घ्नतका पारण करनेके समय मैं सीताका परोसा अन्न नहीं खाऊँगा ॥ ४६ ॥
 इस प्रकार नारदकी बात सुनकर रामने कहा—हे मुने । तुम्हीं सीताको पवित्र कर दो ॥ ४७ ॥ यह वरदान
 तथा ॥ जिस उपायसे पवित्र हो सके, वंसा करो । एतदर्थ मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ और मस्तक
 झुकाकर पुनः पुनः नमस्कार करता हूँ । रामका वित्त सुनकर आनन्दने कहा— ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ब्रह्महत्यादि
 पापोंसे छुटकारा पानेके लिये तो मुनीश्वरोंने अनेक प्रकारके प्रायश्चित्त बतलाये हैं ॥ ५० ॥ किन्तु द्वादशीको
 तुलसीपत्र तोड़नेसे जो पातक होता है । उसका प्रायश्चित्त तो मैंने कहीं देखा ही नहीं ॥ ५१ ॥ हे रघुनन्दन ।
 ॥ यिष्यमें केवल एक उपाय ॥ । वह यह कि सीता अपने पातिघ्नतके बलसे ॥ पत्र फिर वृक्षमें जोड़ दे तो
 ये जलमात्रमें पवित्र हो सकती है । इसमें कोई सन्देह नहीं है । मैं जो कह रहा हूँ, सो सत्य है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥
 नारदके ऐसा कहनेपर रामने सीताकी ओर देखा । सीताने कहा—हे ब्रह्मके पुत्रोंमें श्रेष्ठ पुत्र नारद ॥ ५४ ॥
 अभी मैं आपके सामने ही अपने पातिघ्नतके बलसे उस तुलसीपत्रको जलमें जोड़ दूँगी, आप यह कौतुक देखें
 ॥ ५५ ॥ ऐसा कहकर सीता वह अन्नपात्र वेगके साथ लौटा ले गयीं और रख दिया ॥ ५६ ॥ इसके अनन्तर वे वृन्दा-
 वनमें गयीं । नारद और राम भी वहाँ पहुँचे ॥ ५७ ॥ उर्मिलादिक स्त्रियां तथा लक्ष्मणादि बन्धु एवं लव-कुश
 आदि पुत्र ॥ वृन्दावनमें पहुँचे ॥ ५८ ॥ उन सबके बीचमें सीताने उस तुलसीके वृक्षको प्रणाम किया और
 भक्तिपूर्वक कहने लगीं— ॥ ५९ ॥ हे सुशोभने तुलसि ! मेरी बात सुनो । यदि मुझमें पातिघ्नतका बल ही तो
 ॥ दूटा हुआ पत्र फिर तुम्हारे अन्नमें जुड़ जाय । ऐसा कहकर सीताने सामने ॥ देखा ॥ वह जुटा नहीं,
 यों ही पड़ा था । उस समय आश्रयके साथ-साथ सीताको बड़ा विषाद भी हुआ ॥ ६०-६२ ॥ समस्त देवता,
 गन्धर्व, यक्ष, नाग, किन्नर, गुह्यक तथा ऋषिगण वह कौतुक देखनेको एकत्रित हो गये थे ॥ ६३ ॥ जब सीताको
 इस प्रकार पुनित देखा तो ॥ मुनि उन्हें एकान्तमें ले गये और आदरपूर्वक समझाया । नारदने

मृण्वत्र कारणं सीते सर्वं त्वां प्रवदाम्यहम् । पतिव्रतामिनीभिर्दिना स्वपतिना मुदा ॥६५॥
 पुष्पादीनां सुगन्धोऽपि नावग्राह्यः कदाचन । मोऽवग्राहितः पूर्वं मुदा तामरमस्य च ॥६६॥
 तद्वद्बुद्ध्वा रामचन्द्रेण मायेयं रचिताऽद्य हि । तदिच्छया तुलस्याश्च तत्पत्र पतितं भुवि ॥६७॥
 त्वद्वस्त्रपरलवाग्रेण शिक्षां कर्तुं तवाद्य हि । रामस्यान्तरगतं ज्ञान्वा दोषारोपः कृतस्त्वयि ॥६८॥
 मया सीते क्षमस्वाद्य माक्रोधं भज मां प्रति । नारीणामुपकारार्थं तेन न्वामय शिषितम् ॥६९॥
 नोचेत्तद्विहितवधा स्त्रियः सर्वाः पतिं विना । एवमेवाचरिष्यन्ति नानाभोगान्मुदान्विताः ॥७०॥
 इदानीं मृणु मद्भाष्यं येन श्रीराघवाग्रतः । पत्रस्य च तुलस्याश्च दृढा सन्धिर्भविष्यति ॥७१॥
 मृन्दावने पुनर्गत्वा त्वं ब्रूहि यन्मयोच्यते । विना पत्रसुगन्धस्वावग्राणाद्यदि रक्षितम् ॥७२॥
 पातिव्रत्यं समास्त्यत्र तर्ह्यंतुलसीदलम् । तुलस्यां संधिमाप्नोतु नोचेन्नाप्नोतु वै स्त्रियम् ॥७३॥
 अनेन वचनेनाद्य तत्पत्रं सन्धिमाप्नुयात् । तुलस्याः क्षणमात्रेण पूर्ववच्च भविष्यति ॥७४॥
 अतस्त्वं याहि तुलसीं विषादं भज मां रमे । इत्युक्त्वा सीतया शीघ्रं तुलसीं नारदो ययौ ॥७५॥
 सीताऽपि तुलसीं नत्वा मृण्वन्सु सकलेष्वपि । समुहेषु मूर्तीनां च देवादीनां वचोऽब्रवीत् ॥७६॥
 विना पत्रसुगन्धस्वावग्राणाद्यदि रक्षितम् । पातिव्रत्यं मयाऽस्त्यत्र तर्ह्यंतुलसीदलम् ॥७७॥
 तुलस्याः संधिमाप्नोतु नोचेन्नाप्नोतु वै स्त्रियम् । एवं वदति जानकया वाक्ये पत्र क्षणेन तत् ॥७८॥
 प्राप्तं सन्धिं पूर्ववच्च पश्यन्सु सकलेष्वपि । तदा निनेर्द्वाद्यानि देवानां राघवस्य च ॥७९॥
 देवनार्यो विमानाग्रे संस्थिताः पुष्पवृष्टिभिः । वरपुर्जानक्षीं रामं विशा ऊचुर्जयस्वनान् ॥८०॥
 तदा सीतां समालिख्य राघवो मुदितावनान् । आह तुष्टमनाः भीष्टान् वसनाहारभूषिताः ॥८१॥
 हे सीते कञ्जनयने मूर्तीनामपि मोहिनि । नेदं मया शिषितं ते सर्वस्वीणां सुशिषितम् ॥८२॥
 धर्मसंस्थापनार्थाय साधूनां पालनाय च । दृष्टानां च विनाशाय मयेदं रूपमाश्रितम् ॥८३॥

कहा—हे सीते ! इस पत्रके न जुटनेमें जो कारण है, वह मैं बतलाता हूँ । पतिव्रता स्त्रियोंको चाहिए कि यदि उनके पतिमें हर्षपूर्वक सुगन्ध न लिया हो तो स्वरं भी पुष्पादिकका सुगन्ध न ले । आपने उस रोज रामके सूँघे बिना ही कमल फूल सूँघ लिया था ॥ ६४-६६ ॥ रामको यह बात मालूम हो गयी थी । इसीसे उन्होंने यह माया रची है । तुलसीका पत्र भी उन्हींकी इच्छासे टूट गया था ॥ ६७ ॥ आपको शिक्षा देने ही के लिए उन्हींने ऐसा किया है । रामकी इच्छा देखकर ही मैं आपपर दोषारोप किया है । सो समा करें । मेरे ऊपर कुपित न हों । नारीजातिको शिक्षा देने के लिए उन्होंने यह कौतुक रचकर आपको उपदेश दिया है ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ वे यदि ऐसा न करेंगे तो आपके बताये मार्गके अनुसार संसारकी समस्त स्त्रियाँ अपने-अपने पतिको अलग करके स्वयं विविध प्रकारके भोगोंका उपभोग करने लगेंगी ॥ ७० ॥ सुनिए, अब मैं बतलाता हूँ कि किस तरह वह पत्र वृक्षमें जुड़ेगा ॥ ७१ ॥ आप फिर मृन्दावनमें जाकर कहें कि उस कमलका फूल सूँघनेके सिवाय यदि मेरा पातिव्रत सुरक्षित हो तो यह पत्र जुड़ जाय और यदि मैं अपने धर्मको सुरक्षित न रख सकी होऊँ तो जुड़े ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ आपके इस वचनसे तत्काल वह जुड़कर पहिलेकी तरह हरा-भरा हो आवेगा ॥ ७४ ॥ हे लक्ष्मीस्वरूपिणी सीते ! अब चले, किसी प्रकारका विषाद न करें । ऐसा कहकर नारदजी सीताके माघसाय उस वृक्षके पास गये ॥ ७५ ॥ सीता जब समस्त परिवारके सभी लोग तथा सारे देवता एकत्र होकर सुन रहे थे, उन्होंने कहा— ॥ ७६ ॥ यदि उस कमलका सुगन्ध लेनेके अतिरिक्त मेरा पातिव्रत धर्म सुरक्षित हो तो यह तुलसीदल अपने स्वानपर जुड़ जाय, अन्यथा नहीं जुड़े । सीताके ऐसा कहते ही क्षणमात्रमें वह पत्र पहलेकी तरह वृक्षमें जुड़ गया । सब लोग खड़े यह कौतुक देख रहे थे । पत्रके जुड़ते ही देवताओंने बाजे-वजाये और देवनारियोंने पुष्पवृष्टि की एवं वाद्यणोंने एक स्वरसे जयजयकार किया ॥ ७७-८० ॥ इसके रामने सीताको हृदयसे लगा लिया और प्रसन्न मनसे कहा कि हे मुनियोंके भा मनको मोहनेवाली सीते ! यह मैंने तुम्हींको नहीं, समस्त नारीजातिको शिक्षा दी है । धर्मकी

पानिग्रन्थं सदा स्त्रीभिः पालनीयं धियेति च । मया ते श्रिसितं सोते मा विषादं भव प्रिये ॥८४॥
 इत्याध्याम्य मुहुः सीतां कन्धं तामनिहृषिणाम् । त्रिमूर्तेभिन्ना श्रीगमः सुगदीन्समपूजयत् ॥८५॥
 ततः सर्वान्नारदादीन् जानकी परिधेयम् । वेगाच्चकार मृदिता स्वेदविद्रुकिताभना ॥८६॥
 ततः सर्वं नारदाद्यश्वक्रुर्भोजनमुत्तमम् । ततो ह्रस्वाऽथ तांबूलं रामं तुष्टाव नारदः ॥८७॥

श्रीनारद उवाच

श्रीरामं मुनिविश्रामं जनमद्वयं हृदयामयं सीताञ्जनमन्यसनाननराजारामं घनश्यामम् ।
 नारीमस्तुतकान्दिदीनतनिद्राप्रार्थितभूपालं रामं त्वां शिरसा सततं प्रणमामिच्छेदितसत्तालम् ॥८८॥
 नानाराक्षसहन्तारं शरधन्तारं जनताधारं बालीमर्दनमागरबन्धननानाकौतुककर्तारम् ।
 पीगमन्ददनारीतोषकस्तूरायुधमञ्जालं रामं त्वां शिरसा सततं प्रणमामि च्छेदितसत्तालम् ॥८९॥
 श्रीकान्तं जगतीकान्तं स्तुतमद्भुतं बहुमद्भुतं मद्भुतहृदयेप्सितपूरकप्राप्तं नृपजाकान्तम् ।
 पृथ्वीजापतिविश्वामित्रसुविद्यादोषेणसञ्छीलं रामं त्वां शिरसा सततं प्रणमामि च्छेदितसत्तालम् ॥९०॥
 सीतारंजितविशेषं धातृवीर्यं मुरलोकेशं शत्रोद्धारणसवणमर्दनतद्भ्रातृकुतलकेशम् ।
 किष्किधाकृतमुग्रीनं प्लवगवृन्दाधिपमन्पालं रामं त्वां शिरसा सततं प्रणमामि च्छेदितसत्तालम् ॥९१॥
 श्रीनाथं जगतीनाथं जगतीनाथं नृपतीनाथं भूदेवामुरनिर्जरपन्नगगन्धर्वादिकसन्नाथम् ।
 कोदण्डधृततूणीरान्वितमग्रमे कृतभूपालं रामं त्वां शिरसा सततं प्रणमामि च्छेदितसत्तालम् ॥९२॥
 रामेशं जगतामंशं जम्बुद्वीपेशं नवलोकेशं बाल्मीकिभक्तसत्त्वहर्षितसीतालालितवागीशम् ।
 पृथ्वीशं हनूभूमार नतयोगीन्द्रं जगतीपालं रामं त्वां शिरसा सततं प्रणमामि च्छेदितसत्तालम् ॥९३॥

स्थापना करने, सज्जनोका रक्षा तथा दुष्टोंका विनाश करनेके लिये ही मैंने यह अवतार लिया है ।
 स्त्रियोंको अपनी कुट्टिसे पानिग्रन्थ धर्मही रक्षा करने चाहिए । यह मैंने तुम्हें उपदेश दिया है । इससे कहीं
 कुपित न हो जाना ॥ ८१-८४ ॥ इस प्रकार बारम्बार सीताको आशवासन देकर रामने उन्हें फिर हर्षित कर
 दिया और उन आये हुए देवताओंका पूजन किया ॥ ८५ ॥ फिर नारदादि मुनियोंको साथ लेकर महलमें गये ।
 वहाँ जल्दीसे सीताके भोजन परोसा ॥ ८६ ॥ इसके अनन्तर सबोंने भोजन किया । फिर तांबूल खाकर
 नारद रामकी स्तुति करने लगे ॥ ८७ ॥ नारदने कहा - मैं उन रामको मरतक शुककर प्रणाम करता हूँ, जो
 मुनियोंके विश्रामस्थान है, निजजन्मके मुन्दर धान है, हृदयको आनन्द देनेवाले, सीताको प्रसन्न रखनेवाले,
 सत्य, सनातन, राजा राम, मेघकी तरह उग्रम स्वरूपधारी, यमुना आदिसे वन्दित, निद्रासे प्रार्थित
 उन भूपाल रामकी, जिन्होंने बड़े भारी सात लाखों दुष्टोंको एक बाणसे मिरा दिया था, प्रणाम करता ॥
 ८८ ॥ अनेक राक्षसोंके प्राण लेनेवाले, वन्युधधारी, जनताके आधार, बालिके नाशक, समुद्रमें सेतु बांधने
 और अनेक प्रकारके कौतुक करनेवाले, पुरवासियोंके आनन्ददाता, नारिणोंके प्रसन्नकर्ता और माथेमें
 कस्तूरीका तिलक लगानेवाले आप रामकी मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ८९ ॥ लक्ष्मीके पति, जगत्पति, अच्छे अच्छे
 भक्तोंसे वन्दित, जिनके बहुतसे भक्त हैं, जो मानसिक कामना पूर्ण करनेवाले तथा पृथ्वीकी पुत्री सीताके
 पति हैं, विश्रामिकी सुविद्यासे जिनका शीघ्र उत्तम हो गया है, ऐसे महान् सात तालके वृक्षोंको काटने-
 वाले आप रामकी मैं मरतक नवाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ९० ॥ सीताको प्रसन्न करनेवाले, समस्त विश्वके
 ईश, पृथ्वीके ईश, देववृन्दके अधिपति, (जहूँवाकरी) पत्थरका उद्धार करनेवाले, रावणके विनाशकारी,
 रावणके भ्राता विभीषणको लंका बनानेवाले, सुग्रीवको किष्किन्वाका अधिपति बनानेवाले, बानरोंके
 अधिपति सुग्रीवकी भन्ती-भांति रक्षा करनेवाले और महान् तालके वृक्षोंको काटनेवाले रामकी मैं प्रणाम
 करता हूँ ॥ ९१ ॥ लक्ष्मीके नाथ, जगतीके नाथ, जम्बुके नाथ, राजाओंके राजा, विप्र, असुर, देवता, पन्नग
 तथा गन्धर्वोंके नायक, वन्य और तरकस लेकर संग्राममें लड़नेवाले राजा राम जिन्होंने महान् तालवृक्षोंको
 काट मिराया था, मैं उनकी प्रणाम करता ॥ ९२ ॥ ईश, जगत्के ईश, जम्बुद्वीपके ईश, समस्त लोकपालोंके

चिद्रूपं जितसङ्गं नतसदिकं नतसङ्गं समद्वीपजवर्षजकामिनिसंजीराजितपृथ्वीपम् ।
 नानापार्थिवनानोपायनसम्पत्कोषितसङ्गं रामं त्वां शिरसा सततं प्रणमामि च्छेदितसत्तालम् ॥९४॥
 संसेव्य मुनिभिर्गेय कविभिः स्तव्यं हृदि संघार्य नानापण्डिततर्कपुराणत्रयक्यादिकृतसत्काव्यम् ।
 साकेतस्थितकौसल्यासुतगन्धार्धकिनमद्भालं रामं त्वां शिरसा सततं प्रणमामि च्छेदितसत्तालम् ॥९५॥
 भूपालं धनसन्नीलं नृपसद्भालं कलिसद्भालं सीताज्ञानिवरोत्पललोचनमन्त्रीमोषिततत्कालम् ।
 भीसीताकुतपभास्वादनसम्पत्क्षिप्रिततत्कालं रामं त्वां शिरसा सततं प्रणमामि च्छेदितसत्तालम् ॥९६॥
 हे राजन् नवभिः श्लोकेर्भुवि पापघ्नं नवकं रम्यं मे बुद्ध्या कृतमुत्तमनूतनमेतद्राघव मर्त्यानाम् ।
 श्रीपौत्रान्नादिकक्षेमप्रदमस्मत्सद्वरदधालं रामं त्वां शिरसा सततं प्रणमामि च्छेदितसत्तालम् ॥९७॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

एवं स्तुत्वा रमानार्यं राघवं भक्तवत्सलम् । प्रणम्याज्ञां प्रभोः प्राप्य प्रययौ नारदो मुदा ॥९८॥
 जमरा मुनयः सर्वे जग्मुस्ते स्वस्थलानि वै । एवं आरामचन्द्रेण नररूपधरेण च ॥९९॥
 कौतुकानि विचित्राणि कृतानि जगतीतले । कस्तान्यत्र क्षमो वक्तुं विस्तरेण द्विजोत्तम ॥१००॥
 तेषु यद्यद्यप्येव स्मरितं स्थिदं वै मम । तत्तत्प्रकथ्यते शिष्यं तवाग्रे राघवाक्षया ॥१०१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे

उत्तरार्द्धे सीतया तुलसीपयसन्धिर्नाम द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

प्रभु बालमोक्षिते नमस्कृत, प्रसन्न सीताके द्वारा ललित, वागीश, पृथ्वीश, भूधारहारी, योगीन्द्रोसे नमस्कृत, अगतीके पालक और विशाल तालवृक्षको काट गिरानेवाले रामको मैं भक्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ९३ ॥ चिद्रूप, अच्छे-अच्छे राजाओंको भी परास्त करनेवाले, अच्छे-अच्छे दिक्पालोंसे नमस्कृत, बड़े-बड़े राजाओंसे नमस्कृत, सप्तद्वीप देशमें उत्पन्न नारियोसे नीराजित, पृथ्वीके पालक, अनेक राजाओंके द्वारा अनेक प्रकारके उपहार देकर प्रसन्न किये गये राजा राम जिन्होंने विशाल तालके वृक्षोंको काट गिराया था, उन रामको मैं भक्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ९४ ॥ जो मुनियोंके सेव्य, मंत्रियोंसे गौरव, हृदयमें धारण करने योग्य, अनेक पंडितों द्वारा विविध प्रकारके तर्क-पुराण तथा काव्योंसे सत्कृत एवं साकेत-निवासिनी कौसल्याके पुत्र हैं और गन्धादि द्रव्योंसे जिनका भक्तक अलंकृत है, सात तालके वृक्षोंको काट गिरानेवाले आप रामको मैं झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ९५ ॥ भूपाल, मेघके समान श्यामस्वरूप, महाराज दशरथके अच्छे पुत्र, पापोंके लिये कालस्वरूप, सीतापति, सुन्दर, कमलकी नाई आखीवाले, प्रबल कालके गालसे अपने मन्त्रीको तत्काल छुड़ानेवाले, पतिको विना अर्पण किये कमलका फूल मूँघ लेनेपर सीताको पत्नीर्भाति शिखाके दाता, विशाल तालके वृक्षोंको काट गिरानेवाले उन रामको मैं भक्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ९६ ॥ हे राजन् । संसारके प्राणियोंका पाप नष्ट करनेवाले इन नौ श्लोकोंसे मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार आपकी स्तुति की । मेरे वरदानसे यह स्तुति स्त्री-पुत्र आदि सब वस्तुओंको देनेवाली होगी । विशाल तालके वृक्षोंका भेदन करनेवाले रामको मैं भक्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ९७ ॥ श्रीरामदासने कहा—इस प्रकार भक्तवत्सल, रमानाथ, राघव, रामचंद्रकी स्तुति करके और उनसे आज्ञा लेकर नारदजी प्रसन्नतापूर्वक वहाँसे विदा हुए ॥ ९८ ॥ सब सब देवता तथा मुनिगण भी अपने-अपने स्थान-को चले गये । नररूपधारी रामचंद्रने ऐसे-ऐसे कितने ही कौतुक किये हैं । हे द्विजोत्तम ! विस्तारपूर्वक उनका वर्णन करनेके लिए संसारमें कौन समर्थ हो है ? ॥ ९९ ॥ १०० ॥ उन चरित्रोंमेंसे स्वयं रामचंद्रजीने जो जो चरित्र हमें स्मरण कराया है, वह-वह उन्हींकी आज्ञासे मैंने तुम्हारे आगे कहा ॥ १०१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पंचमोऽध्यायः समाप्तः । टीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्द्धे द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशः सर्गः

(आनन्दरामायणकी महिमा)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः स वैदेह्या बन्धुमिस्तनयादिभिः । चकार राज्यं धर्मेण लोकबन्धवदायुजः ॥ १ ॥
 एतस्मिन्नन्तरेऽयोध्यापुर्यां श्रीरघुनायकम् । नर्त्तकदाऽग्रवीर्यदूतो हे राम कञ्जलोचन ॥ २ ॥
 करोमि तव सेवां न तपश्चर्यां करोम्यहम् । ददस्वाहा मम त्वं हि गच्छामि निजमन्दिरम् ॥ ३ ॥
 तथेति राघवेणोक्तः स ययौ निजमन्दिरम् । तत्र गत्वा शुचिर्मत्वाऽऽनन्दरामायणं शुभम् ॥ ४ ॥
 पठित्वा नवरात्रं तु ततस्तूर्णं बहिर्ययौ । एतस्मिन्नन्तरे एकदेशे पौरा मृतं नृपम् ॥ ५ ॥
 दृष्ट्वा तस्य सुतं बालं ज्ञात्वा कर्तुं हि मन्त्रिणम् । चक्रुस्ते निश्चयं तत्र केचिदचुर्यं शुभः ॥ ६ ॥
 केचिदचुर्यं नैव कार्यो मन्त्री खलस्त्वयम् । एवं विवदमानास्ते चक्रुर्ध्वं निश्चयं तदा ॥ ७ ॥
 करिणी निजशुण्डाप्रमालया यं वरिष्यति । सोऽस्तु मन्त्री निश्चयेन ततस्तां करिणीं वरः ॥ ८ ॥
 वसलङ्कारभूषाणः शोभयामासुरादरात् । तच्छुण्डार्या रत्नमालां दत्त्वा तां मुमुचुस्तदा ॥ ९ ॥
 ततस्ते नववाद्यानि वादयामासुरादरात् । तदा ॥ करिणी ग्रामाद्बहिस्तूर्णं ययौ जनैः ॥ १० ॥
 अयोध्यायाः पथाऽयोध्यां ययौ देशान् विलम्ब्य ॥ तत्पृष्ठे सकलाः पौरा नानाबाहनसंस्थिताः ॥ ११ ॥
 ययुस्तूर्णं कौतुकेन कोटिशो मुदिताननाः । ततः सा करिणी गत्वाऽयोध्यां हृष्टस्थितं तदा ॥ १२ ॥
 तं दत्तं वरयामास येन पारायणं कृतम् । आनन्दरामचरितस्याहो तत्कौतुकं महत् ॥ १३ ॥
 बभूव सकलान् लोकान् ततस्तं मालयांकितम् । करिण्या मन्त्रिणं चक्रुस्ते पौरा ये समागताः ॥ १४ ॥
 तं निस्पृः करिणीसंस्थं पत्नीपुत्रसमन्वितम् । स्वदेशे मन्त्रिणं चक्रुस्तदद्भुतमिवामकत् ॥ १५ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—इसके अनन्तर संसारसे बन्धित राम जब सोचा, पुत्रों और भ्राताओंके धर्मपूर्वक राज्य रहे थे ॥ १ ॥ उसी समय एक दूतने अयोध्यापुरीमें रामके पास जाकर कहा कि हे कमललोचन राम ! अब आपकी सेवा न करके मैं तपस्या करना चाहता ॥ मैं आज्ञा दीजिए तो अपने घर जाऊँ ॥ २ ॥ ३ ॥ रामने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और वह अपने घर चला गया । वहाँ पवित्र मनसे उसने नौ रात्रि तक इस कल्याणदायक आनन्दरामायणका पाठ किया और बादमें घरसे बाहर निकला । उसी समय एक देशका राजा मर गया था ॥ ४ ॥ ५ ॥ उसका पुत्र बालक था । सो उसके लिये किसीको मंत्री बनानेकी आवश्यकता पड़ी । पुरवासियोंमें मंत्रणा होने लगी कि किसको मंत्री बनाया । किसीको कहता कि वमुक्त मनुष्य अच्छा है, उसे मंत्री दिया जाय । किन्तु उसकी बात काटकर दूसरा कहता कि नहीं, वह बड़ा दुष्ट है । उसे मंत्री नहीं बनाया जा सकता । इस तरह परस्पर झगड़ा करते-करते यह निश्चय हुआ कि ॥ ६ ॥ ७ ॥ राजाकी हथिनी अपनी सूँड़में लेकर जिसके गलेमें दे, वही व्यक्ति राजकुमारका मंत्री बनाया जाय । तदनुसार अच्छे-अच्छे वस्त्र-आभूषण आदि पहिनाकर हथिनीको सुसज्जित किया गया और उसकी सूँड़में एक माला देकर छोड़ दिया ॥ ८ ॥ ९ ॥ इसके वे लोग हर्षसे बाजे बजाने लगे । वह हथिनी धीरे-धीरे नगरसे बाहर निकली ॥ १० ॥ वहाँसे चलकर अयोध्या पहुँची । उसके पीछे अनेक प्रकारके बाहनोंपर सवार होकर नागरिक लोग भी कौतुकवश बड़े वेगके साथ प्रसन्न मनसे अयोध्या तक चले आये । उस हथिनीने बाजारमें लड़े उस मनुष्यके गलेमें माला दी जिसने नौ रात्रि तक आनन्दरामायणका पाठ किया । उन लोगोंके लिये यह एक असाधारण कौतुककी बात हुई ॥ ११-१३ ॥ तब माला पहिने हुए उस दूतको लोगोंने राजकुमारका मंत्री चुन लिया । उसी हथिनीपर बिठाकर पत्नी-पुत्र समेत उसे अपने देश ले गये और राजकुमारके

ततः परस्परं श्रुत्वा राजदूताः सहस्रशः । नानादेशेषु सर्वत्र साकेतेऽपि तदा मुदा ॥१६॥
 राजसेवां परित्यज्य जग्मुस्ते स्वगृहाणि हि । ततः सर्वे स्वगृहेष्वानन्दरामायणस्य च ॥१७॥
 केचित्पारायणं चक्रुः केचित्तच्छ्रवणं मुदा । केचित्तत्पठनं वाऽपि केचित्चक्रुश्च कीर्तनम् ॥१८॥
 केचित्चक्रुश्च व्याख्यानमेव तन्निष्ठमानसाः । प्रभूनुः सकला दूताः कोटशो जगतीतले ॥१९॥
 तदा केन घनं लब्धं केन लब्धं महदनम् । केन राजपदं लब्धं केन लब्धं गृहं वरम् ॥२०॥
 केन ग्रामाधिकारश्च केन लब्धः कुर्विरा । केन वृत्तिः शुभा लब्धा केन स्वर्गो मनोरमः ॥२१॥
 केन लब्धं तु पातालं कैलोकं विविधाः शुभाः । लब्धं केचित्सूर्यपदं लब्धं स्वर्गं मनोहरम् ॥२२॥
 केचिदिन्द्रपदं प्रप्तुः केचिदग्निपुरं गताः । केचित्ते धर्मराजस्य लोके वा निर्धृतेरपि ॥२३॥
 वरुणस्याथ वायोश्च कुर्वरस्येश्वरस्य च । लोकान् जग्मुस्तदा दूतास्तदद्भुतमिवामरत् ॥२४॥
 केचिज्जगत्सुखलोकं केचिद्भुवपदं गताः । केचित्ते ब्रह्मलोकं च वैकुण्ठं केचन ॥२५॥
 एवं यथा यस्य पुण्यं दूतस्यान्यजनस्य च । आनन्दरामचरितपाठश्रवणसमयम् ॥२६॥
 तथा तस्य गतिर्जाता सद्य एवावनातले । तदा कोऽपि न कस्यासौ दूतां देशान्तरेष्वपि ॥२७॥
 त्यक्त्वा सेवां समस्ताश्च राघवस्यापि ते गताः । रामं पृष्ट्वा गताः, केचिदपृष्ट्वैव गताः, परे ॥२८॥
 एवं सर्वत्र देशेषु दूताभावोऽभवत्तदा । एकदा सचक्षुं द्रष्टुं गन्तुं सर्वे नृपाचमाः ॥२९॥
 सैन्यान्त्याकारयामासुः स्त्रीयानि तु पृथक्पृथक् । तदा कुत्रापि सैन्यानि ददृशुर्न नृपाचमाः ॥३०॥
 आः किमेतदिति प्रोक्त्वा स्वसुहृद्भिः सुतादिभिः । यद्गुस्ते राघवं द्रष्टुं विस्मयाविष्टमानसाः ॥३१॥
 तानागतान् नृपान् ज्ञात्वा सान्पुरो गन्तुमादरात् । आकारयत्स्यसैन्यानि न तदा प्राप लक्ष्मणः ॥३२॥

मन्दि-मदपर बिठा दिया । यह घटना एक अद्भुत प्रकारसे घट गयी ॥ १४ ॥ १५ ॥ फिर क्या था, जब रामके दूतोंको यह खबर मिली ■ अयोध्यापुरीके तथा अन्यत्र देशोंके हजारों दूत प्रसन्नतापूर्वक अपना-अपनी नौकरी छोड़कर घर चले गये । घरपर कुछन आनन्दरामायणका पाठ करना प्रारम्भ किया ॥ १६ ॥ १७ ॥ कुछ इसे दूसरेके मुखसे सुनने लगे, कुछ इसका पारायण करने लगे और कुछ त्याग इसका कौतुहल लगे ॥ १८ ॥ कुछ लोग इसकी व्याख्या करने लगे और कुछने चारों ओरसे अपना चित्तवृत्ति हटाकर इसी आनन्दरामायणमें लगा दी । इस तरह राजसेवा छोड़कर आनन्दरामायणका आराधन करनेवालोंकी संख्या संसारमें करोड़ोंके लगभग हो गयी ॥ १९ ॥ ऐसा करनेसे कुछको घन मिला, कुछका बहुत अधिक सम्पदा मिली, किसीको राज्यपद हुआ और किसीको अच्छा-न्ता घर मिला ॥ २० ॥ कुछका ग्रामका अधिकार मिला, किसीको अच्छी खेती मिली, किसीका सुन्दर जाँविका मिली और किसीका मनोरम स्वर्गलोक प्राप्त हुआ ॥ २१ ॥ किसीको पाताललोक मिला और कुछ लोगोंका विविध प्रकारके अच्छे-अच्छे लोक प्राप्त हुए और कुछ लोगोंको सूर्यलोक मिला ॥ २२ ॥ कुछ लोगोंको इन्द्रपद प्राप्त हुआ, कुछ अग्निनाभको गये, कुछ धर्मराजके लोक तथा कितने ही लोग निर्धृतिलोकका चल गये ॥ २३ ॥ कुछ अरुणलोकको, कुछ कुर्वरलोकको, कुछ चन्द्रलोकको, कुछ भुवलोकको, कुछ ब्रह्मलोकको तथा कुछ लोग वैकुण्ठलोकमें जा पहुँच ॥ २४ ॥ २५ ॥ इस तरह आनन्दरामायणके पाठसे उन दूतों तथा ■ लोगोंको भी वे ही लोक प्राप्त हुए, जिनका जसा पुण्य था । इस प्रकार पृथ्वीलोकमें सबका शुभ गति प्राप्त हुई । उस समय अयोध्या तथा देशान्तरमें भी कोई सिपाही नहीं रहा ॥ २६ ॥ २७ ॥ सब रामका भी सेवा त्याग-त्यागकर चले गये थे । उनमेंसे कुछ लोग तो रामसे पूछकर गये थे, कुछ बिना पूछे-जाँच ही चले गये ॥ २८ ॥ इस तरह ■ समय सारा देश दूतविहान हो रहा था । एक बार संसारके जितने अच्छे-अच्छे राजे थे, वे सब रामचन्द्रजीसे मिलने आनेके लिये तैयार हुए । उन्होंने जब साथ चलनेके लिए सेना बुलायी तो पता चला कि सेना है ही नहीं ॥ २९ ॥ ३० ॥ यह खबर पाकर राजाओंने कहा-आह ! यह क्या हुआ ? विस्मितभावसे वे अपने-अपने मित्रों और पुत्रोंको साथ लेकर अयोध्या आये ॥ ३१ ॥ जब अयोध्यामें लक्ष्मणतो यह सम्वाद मिला तो

ततो निवेदयामास तद्भूतं राघवाय सः । तच्छ्रुत्वा राघवोऽप्यासीदस्मयाविष्टमानसः ॥३३॥
 सुहृज्जनैर्धृतं बन्धुं लक्ष्मणं प्रेष्य पार्थिवान् । स्वपुरीमानयामास ते नेमू रघुनायकम् ॥३४॥
 ततस्ते तस्थुः सदसि सेनादृष्टं न्यवेदयन् । रामोऽपि कथयामास स्वसेनादृष्टमादरात् ॥३५॥
 तदा विहस्य श्रीरामः समाहूय निजं गुरुम् । पृष्टवान्मम सैन्यानि नृपाणां चापि वै गुरो ॥३६॥
 किं जातानि क्व वै सन्ति तद्ददस्व सविस्तरम् । तद्रामवचनं श्रुत्वा कृत्वा ध्यानं क्षणं गुरुः ॥३७॥
 तदा प्राह सभामध्ये विहस्य रघुनन्दनम् । राम राम महाबाहो सर्वं वेत्ति त्वमेव हि ॥३८॥
 यदि पृच्छसि मां राम तर्हि सर्वं वदाम्यहम् । शतकोटिमितं रामचरितं तव पावनम् ॥३९॥
 बाण्मीकिना कृतं पूर्वं तन्मध्ये रघुनन्दन । आनन्दरामचरितं नवकाण्डसमन्वितम् ॥४०॥
 तस्य श्रवणपाठार्थः सर्वसैन्येषु नराः । गतास्त्वत्पदं केचित्केचित्लोकांतरादिषु ॥४१॥
 न संति भुवि सैन्यानि तस्य राम वचो । नवकाण्डमितं तच्च रम्यमानन्ददायकम् ॥४२॥
 तस्यैवच्छ्रवणाद्विद्धि फलं रघुकुलोद्भव । येन ते हीनजातिस्था दूताश्च मुक्तिगामिनः ॥४३॥
 सारकाण्डभवादेव संसारान्मुच्यते नरः । यात्राकाण्डेन यात्राणां लभ्यते मानवैः फलम् ॥४४॥
 यागकाण्डेन यज्ञानां लभ्यते फलमुत्तमम् । विलासकाण्डश्रवणादप्सरोभिविभोदते ॥४५॥
 जन्मकाण्डेन चाप्नोति नरः पुत्रादिसन्ततिम् । विवाहकाण्डश्रवणाद्भुवि रम्यां स्त्रियं लभेत् ॥४६॥
 राज्यकाण्डेन राज्यं हि मानवैर्भुवि लभ्यते । काण्डं मनोहरं श्रुत्वा लभ्यते मानसं प्सितम् ॥४७॥
 पूर्णकाण्डभवादेव पूर्णं तस्य पदं लभेत् । सर्वं तन्मानवैः श्रुत्वाऽऽनन्दरामायणं भुवि ॥४८॥
 सच्चिदानन्दरूपे ते लीनो भवति मानवः । एवं राम त्वया पृष्टं तत्सर्वं कथितं मया ॥४९॥
 यदग्रेऽत्र चिकीर्षां ते तत्कुरुष्व रघूचम । इति रामं वसिष्ठस्तु यावत्प्राह नृपाग्रतः ॥५०॥

उन्होंने राजाओंकी अगवानों करनेके लिए सेना बुलवायी तो उन्हें भी सेना नहीं मिली ॥ ३२ ॥
 लक्ष्मणने रामको यह वृत्तान्त सुनाया तो राम भी चौंक-से रह गये ॥ ३३ ॥ अन्तमें रामने भी
 अपने परिवारके लोगोंको भेजकर राजाओंकी अगवानों करायी । राजाओंने अपनी-अपनी सेनाका
 समाचार सुनाया । सो सुनकर रामने आदरपूर्वक ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ तदनन्तर
 रामने अपने कुलगुरु वसिष्ठको बुलवाया और हँसकर उनसे कहा—हे गुरो ! हमारा तथा इन
 राजाओंकी सेना कहाँ चली गयी है, सो विस्तारपूर्वक बतलाइए । रामकी ॥ सुनकर वसिष्ठने
 कहा—हे राम । महाबाहो ! स्वयं ॥ बातोंको जानते हैं ॥ ३६-३८ ॥ फिर भी यदि हमसे
 पूछ रहे हैं तो बतलाता हूँ । बहुत दिनों पहले महर्षि आत्मोकिने सी करोड़ श्लोकोंमें आपके पावन चरित्रका
 वर्णन किया था । उसके मध्यमें नौ काण्डोंका आनन्दरामायण है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ उसका ॥ तथा पाठ
 करनेसे आपको सेनाके सारे सैनिकोंमेंसे कुछ तो आपके परमपद (वैकुण्ठ) और कुछ अन्यथा
 श्लोकोंको चले गये हैं ॥ ४१ ॥ हे राम । आप मेरी इस बातको मानिए । इस समय संसारमें कोई भी
 सेना नहीं है । नौ काण्डोंवाला आनन्ददायक एवं रमणीक ॥ ४२ ॥ उसका श्रवण
 करनेसे नाभ जातिवाले लोग भी मुक्तिपद प्राप्त ॥ ४३ ॥ सारकाण्डके श्रवणसे प्राणी संसारसे मुक्त
 हो जाता है । यात्राकाण्डके श्रवणसे तीर्थोंकी यात्राका पुण्य प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥ यागकाण्डसे यज्ञोंका शुभ
 फल प्राप्त होता है । विलासकाण्डके श्रवणसे प्राणी स्वर्गकी अप्सराओंके ॥ ४५ ॥ जन्म-
 काण्डके श्रवणसे पुत्रादि सन्तति पाता है । विवाहकाण्डको सुननेसे मनुष्य संसारमें सुन्दरी स्त्री पाता ॥ ४६ ॥
 राज्यकाण्डके सुननेसे प्राणी ॥ है और मनोहरकाण्डके सुननेसे अपनी अमिलावाके अनुसार ॥
 वस्तुयें पा जाता है ॥ ४७ ॥ पूर्णकाण्डके श्रवणसे पूर्णपद प्राप्त होता ॥ और समस्त आनन्दरामायण श्रवण
 करके मनुष्य सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा में लीन हो जाता ॥ ४९ ॥ हे राम । आपने मुझसे जो पूछा, सो सब मैंने

रावभूम्यां हि किं जातं तच्छृणुष्व सविस्तरम् । गतिं श्रुत्वा ॥ दूतानां नानादेशेषु ये नराः ॥५१॥
 तेऽपि सर्वे तदानन्दरामायणश्रवादिभिः । नानाविमानसंस्थास्ते ययुः स्वर्गलोकमुत्तमम् ॥५२॥
 शून्यं दृष्ट्वा निजं लोकं यमो विधिसमन्वितः । कैलासे शकरं गत्वा सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् ॥५३॥
 शिवः श्रुत्वा विहस्याथ यमेन केन दुर्गया । ययौ स वृषभारूढः साकेतं वेष्टितोऽमरः ॥५४॥
 शिवमागतपाशाय प्रत्युद्गम्य रघूद्वहः । सिंहासने शिवं देव्या निवेश्य पूजनं व्यधात् ॥५५॥
 ससीतो मङ्गणधादि सुराणां च यमस्य च । एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा राघवं प्राह ॥५६॥
 राम राजीवपत्राक्ष यमं पश्य निरुद्यमम् । शून्या संयमनी जाताऽऽनन्दरामायणभवात् ॥५७॥
 शून्योऽजातोऽस्तिभूलोकः सेऽवकाशो न दृश्यते । सर्वेषां तत्र ॥ वस्तुमयं किञ्चिद्विचारय ॥५८॥
 इति तस्य वचः श्रुत्वा समाहूय रघूत्तमः । शत्रुघ्नं प्रेष्य वाल्मीकिं तस्मै ॥ वचं न्यवेदयत् ॥५९॥
 सोऽपि श्रुत्वा विहस्याथ राघवं वाक्यमब्रवीत् । येन मत्कवितानाशो ॥ भविष्यति वै श्रुति ॥६०॥
 तथा सुखं च सर्वेषां तेन तत्कुरु राघव । तथेति राघवश्चाकृत्वा तदा वचनमब्रवीत् ॥६१॥
 सप्तजन्माजितं पुण्यं ममार्चनसमुद्भवम् । यस्य स्वात्तस्य आनन्दरामायणकथारुचिः ॥६२॥
 भविष्यति न सर्वेषां भवत्वत्र कदाचन । इति रामवचः श्रुत्वा सर्वे सन्तुष्टमानसाः ॥६३॥
 ययुः स्वं स्वं पदं देवाः स्वं स्वं देशं नृपा ययुः । तदारम्य विष्णुदाम अतकोटिमिते शुभे ॥६४॥
 रामायणे शिवेनोक्तमानन्दाख्यमिदं शुभम् । रामायण कचित्कुत्र कांश्चिद्वेत्स्यति मानवः ॥६५॥
 न भूम्यां सकला लोका वेत्स्यन्ति द्वापरे कलौ । सप्तजन्माजितं पुण्यं येषां वेत्स्यन्ति ते नराः ॥६६॥

कह सुनाया ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ भविष्यमे ॥ जो कुछ करना चाहते हों, सो करत चलिए । इस प्रकार कसिष्ठ
 रामसे कह ही रहे थे, ॥ तक पृथ्वीमण्डलमें क्या हुआ सो कहते है । उन दूतोंकी गति सुनकर संसारमें जितने
 मनुष्य थे ॥ ५० ॥ वे अब आनन्दरामायणके पठन और श्रवणसे अनेक प्रकारके विमानोंपर चढ़-चढ़कर उसम
 स्वर्गलोकको चले गये ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ अपने लोकका शून्य देख यमराज ब्रह्माको साथ लेकर परंकरमाके पास
 पहुँचे और प्रणाम करके उन्हें सारा वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ५३ ॥ शिवजी यह समाचार सुनकर ब्रह्मा, पार्वती
 और यमराजको ॥ ले तथा बहुतसे देवताओंसे वेष्टित होकर अयोध्यामें रामके पास गये ॥ ५४ ॥ ॥
 रामको यह समाचार मिला कि शिवजी आये है तो प्रेसपूर्वक अगवानो करके पार्वतीके साथ शिवजीको एक
 दिव्य सिंहासनपर बिठाकर उनकी पूजा की ॥ ५५ ॥ इसके अनन्तर ब्रह्मा तथा यमादि देवताओंकी भी
 पूजा की । थोड़ी देर बाद ब्रह्माने रामसे कहा— ॥ ५६ ॥ हे राजीवपत्राक्ष राम ! सर्वथा निरुद्यम इन
 यमराजकी ओर निहारिए । आनन्दरामायणके श्रवणसे इनकी संयमनी पूरी मूनी हो गयी है ॥ ५७ ॥
 भूलोक खाली हो चुका ॥ और स्वर्गमें उन सबके रहनेके लिए कुछ जगह ही नहीं रह गयी है । अब उनको
 रहनेके लिए कोई और स्थान सोचिये ॥ ५८ ॥ इस प्रकार शिवजीकी बात सुनकर रामने शत्रुघ्नको बुलाया
 और उनको यह समाचार सुनानेके लिये वाल्मीकिके पास भेजा ॥ ५९ ॥ शत्रुघ्न गये और वाल्मीकिको बुला
 लाये । रामके मुखसे यह वृत्तान्त सुना तो वाल्मीकि हैसकर कहने लगे—जिस तरह संसारमें मेरी कविताका
 नाम न हो ॥ ६० ॥ और सब लोग प्रसन्न ॥ रहें, ऐसा कोई उचित उपाय सोचकर करिये । रामने उनकी
 बात मान ॥ और बोले— ॥ ६१ ॥ मेरा पूजन करते-करते जिनके ॥ तब अन्मोका पुण्य एकत्रित होगा,
 उनको ही शिव आनन्दरामायण सुननेकी होगी ॥ ६२ ॥ भविष्यमें साधारण लोगोंकी रुचि ही इस ओर नहीं
 होगी । इस प्रकार रामको वाणी सुनकर ॥ मन प्रसन्न हो गया ॥ ६३ ॥ तब देवतागण अपने-अपने लोकोंको
 ॥ राजा लोग अपने-अपने देशोंको छोड़ गये । तभीसे हे विष्णुदास ! अतकोटिरामचरितान्तर्गत इस
 आनन्दरामायणके विषयमें ऐसा हो गया कि कहीं-कहीं कोई ही कोई मनुष्य आनन्दरामायणको जानने लगा
 ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ द्वापर और कलियुगे ॥ बहुत ही कम लोग इसे जाननेवाले होंगे । क्योंकि उस समयसे यह
 विषय भन गया है कि रामचन्द्रके ॥ सप्त जन्मोंके पुण्य अब एकत्रित होंगे, ॥ आनन्दरामायणमें

तद्रामवचनाङ्गुल्यां बभूव पूर्ववत्तदा । नाभूत्कस्य कदा मेधाऽऽनन्दरामायणं प्रति ॥६७॥
सहस्रेषु नरः कश्चित्सप्तजन्मसु पुण्यवान् । आनन्दरामचरितं वेद स्तोत्रं न चापरः ॥६८॥

इति श्रीमत्कर्णाटारामचरितान्तर्गतं श्रीमदानन्दरामायणे वात्सीकीये राज्यकाण्डे
उत्तराद्ध आनन्दरामायणमहिमावर्णनं नाम त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुविंशः सर्गः

(रामका यमकी तपदेश, सुमन्त्रका वैकुण्ठगमन और प्रजाको रामकी शिक्षा)

श्रीरामदास उवाच

एकदा संस्थितं रामं सभायां सेवकोऽनवीत् । सज्जराज महाराज रविवंशैकमण्डन ॥ १ ॥
सुमंशस्तेऽतिबुद्धः स मन्त्रां नाकं गठः प्रसी । तत्पत्न्यस्तेन गन्तु त्वामाज्ञां पृच्छन्ति राघव ॥ २ ॥
तद्बुद्धवचनं श्रुत्वा चाकतः स्तिरुमानसः । शीघ्रं सुमन्त्रगणे स ययौ यानेन राघवः ॥ ३ ॥
सुमन्त्रजन्मपटुं तस्यायुःसंख्यां ददर्श सः । जन्मकालात्सहस्राणि नव त्वक्षतानि च ॥ ४ ॥
नवेनवतिवर्षाणि मासास्त्वकादशैव हि । एकविंशदिनाश्चागतकांताः शेषा दिना नव ॥ ५ ॥
आवेत्तं रामचन्द्रः स तदा प्राह शुभं प्राप्तं । कृतं युगं तु लक्षायुः सहस्रं द्वापरे स्मृतम् ॥ ६ ॥
सततं कलौ प्रोक्तं सहस्राणि दशैव च । त्रतायां कायतं चायुस्तन्मद्राज्ये मृषा कृतम् ॥ ७ ॥
यमेन मामवज्ञाय महण्डं लब्धुमिच्छता । दिनानां नव शेषाणि सति मे मन्त्रिणः कथम् ॥ ८ ॥
यमेन नीतस्त्वद्येव यमं बद्ध्वा नयाम्यहम् । सुमन्त्रं जीवयाम्यद्य पश्य मे त्वं पराक्रमम् ॥ ९ ॥
हस्त्युक्त्वा गह्वरारूढः कीदण्डं कलयन् करं । वेगेन रघुनाथः स ययौ संयमनीं पुरीम् ॥ १० ॥
रावन्मार्गे सुमन्त्रं तं पाशवदं यमाजुगः । गच्छन्तं राघवो दृष्ट्वा तान्सर्वास्ताडयन्मुहुः ॥ ११ ॥
सुमन्त्रं मोक्षयामास लिङ्गरूपधरं प्रभुः । तदा तं राघवं प्रोत्तुवापराद्धं तवाद्य किम् ॥ १२ ॥

लोगोंकी रुचि होगी और तभी लोग इसे जानेंगे । तबसे रामके कथनानुसार किसीका बुद्धि आनन्दरामायणकी ओर लगी गयी ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ क्योंकि हजारोंमें कहीं एक-आध मनुष्य ही पाते जन्मोका पुण्यवान् होगा और वही आनन्दरामायणको जान पायेगा ॥ ६८ ॥ इति भावतर्काटारामचरितान्तर्गत श्रीमदानन्दरामायणे वात्सीकीये पंच रामतेजपाण्डेयविरचित-‘ज्योत्स्ना’भाषाटीकासहित राज्यकाण्डे उत्तराद्ध त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—एक बार राम अपनी सभामें बैठे थे । तभी एक सेवकने आकर कहा—हे राज-
■ ! हे सूर्यवंशके अष्टाङ्गारस्वरूप महाराज । आपके बड़े मन्त्रां सुमन्त्र स्वर्ग चले गये । उनकी स्त्रियां सती होकर
पश्चिमा अनुसरण करनेके लिये आपका आश्रय चाहती हैं ॥ १ ॥ २ ॥ इस प्रकारका संवेष्टा सुनकर राम एक
रथपर सवार होकर सुमन्त्रके घर गये ॥ ३ ॥ वहाँ उन्होंने उनकी जन्मकुण्डली मेंगाकर देखा, जिससे ज्ञात हुआ
कि ९९९९ वर्ष प्यारह महाना सुमन्त्रकी आयु थी । जिसमें ■ तो बीत गये, केवल नौ दिन बाकी रह गये थे
॥ ४ ॥ ५ ॥ ऐसा जानकर रामने गुरु बसिठका बुलवाकर उनसे कहा कि सत्ययुगमें मनुष्यकी आयु
लक्ष वर्षोंकी, द्वापरमें हजारकी, कलियुगमें सौ वर्षोंकी तथा त्रेतायुगमें दस हजार वर्षोंकी कही गयी है ।
आ यमराजने मेरे राज्यमें मेरा अपमान करके उस नियमका उल्लंघन किया है ॥ ६ ॥ ७ ॥ ऐसा ज्ञात होता
■ कि वह मेरे द्वारा ■ पाया चाहता ■ । मेरे मन्त्रोंकी आयुमें अभी नौ दिन बाकी ■ तो
यम उसे यहाँसे ध्यो ले गया । मैं ■ यमकी बर्षिकर लाता हूँ और सुमन्त्रकी जिलाता हूँ । मेरा पराक्रम
देखिए ॥ ८ ॥ ९ ॥ ऐसा कहकर राम गह्वर पर बैठे और चतुष्पदा टङ्कुर करते हुए यमकी संयमनी
पुरीकी चल दिये । तब तक रास्ते ही मैं उन्होंने पाशवद सुमन्त्रकी ले जाते हुए कुछ यमदूतोंको देखा ।
देकते ही रामने यमदूतोंको मारकर लिङ्गरूपधारी सुमन्त्रकी मुक्ति लीया । तब यमदूतोंने विनयपूर्वक

अस्माभिरेव दंष्ट्रो यतोऽस्माकं कृतस्त्वया । तदा तान्नाथः ॥ दिनान्यान्पुनर्वाप्य हि ॥१३॥
 वर्तन्ते शेषभूतानि कथमद्यैव नीयते । भविष्यन्ति दिनान्यथे यदा नव यमानुगाः ॥१४॥
 तदाऽऽनेयः सुखेनायं न निषेधं करोम्यहम् । इति रामवचः श्रुत्वा तमृचुस्ते यमानुगाः ॥१५॥
 अपूर्वमभवज्जन्म सुमन्त्रस्यास्य राघव । मातुर्योन्या बहिष्वास्य मृतं हस्तौ विनिर्गतौ ॥१६॥
 पूर्वं ततोऽस्य दशमे दिवसे दैवयोगतः । उदरादीन्यधोऽङ्गानि पदाङ्गानि शनैः शनैः ॥१७॥
 विनिर्गतानि श्रीराम सुमन्त्रै रक्षितो बुधैः । यस्माज्जन्मन्ययं तस्मान्मुमन्त्राख्याऽस्य सार्विता ॥१८॥
 अतः पूर्वदिनारभ्य संख्ययाऽऽयुः प्रपूर्तिम् । अस्य तं तदिनारभ्य संख्यया दिवसा ॥१९॥
 शेषभूताश्च ॥ कीर्त्यन्ते ये रघुनमाः । अतोऽस्माकं नापराधः संदिग्धं जन्म चास्य हि ॥२०॥
 वृथाऽयं नीयते राम ॥ शिधाऽपि ॥ कृता । इति तेषां वचः श्रुत्वा रामः प्राह यमानुगान् ॥२१॥
 अस्य सौत्यदिनो ज्येष्ठोऽप्रथमो हि यमानुगाः । यस्मिन् दिने सुप्रसन्निरभवत्तस्य मातृका ॥२२॥
 उत्साहदिवसो ज्येष्ठः स एव जानकं तथा । तस्मिन्नेव दिनेऽस्यात्र कृतं पित्रा द्विजोत्तमैः ॥२३॥
 ज्योतिर्विदा जन्मपत्रे स एव लिखितो दिनः । अतः शेषदिनाः मृत्यं ज्ञायास्तस्यापुत्रो नव ॥२४॥
 अतो पुष्पाभिर्गन्तव्यं नेयोऽयं दशमे दिने । पुनरागत्य सान्निष्यान्मे निषेधं करोमि न ॥२५॥
 इति रामवचः श्रुत्वा तूष्णीमेव यमानुगाः । माश्रुनेत्राश्च छिन्नाङ्गा यमराजं शनैर्ययुः ॥२६॥
 रामोऽपि परिवर्त्याथ ययौ स्वनगरीं प्रति । शोभिर्नोगजितो मार्गं विवेश मन्त्रिणो गृहम् ॥२७॥
 सापस्तर्बान्प्रमुदितान्सुमन्त्रेण ममन्विताम् । ददर्श रामचन्द्रः स तावद्दृष्ट्वा रघुत्तमम् ॥२८॥
 प्रणनाम सुमन्त्रः स पूजयामास राघवम् । ततो रामो ययौ गेहं सर्वे प्रमुदिताननाः ॥२९॥
 दिनानि नव शेषावृत्त्वा दानादिकं सुधीः । नकार प्रत्यहं भक्त्या सुमन्त्रो राघवाश्रयाः ॥३०॥

कहा—हमने आपका क्या अपराध किया था, जिसके लिए आपने हमें ऐसा दण्ड दिया ? रामने कहा कि अभी इसके जीवनके नौ दिन बाकी हैं ॥ १०-१३ ॥ तब तुम आज ही हमें क्यों लिये जा रहे हो ? ॥ इसके दिन पूरे हो जायें, तब आकर आनन्दपूर्वक ले जाना । ॥ मैं भी कुछ नहीं बोलूंगा । इस प्रकार रामकी वाणी सुनकर यमके अनुचर कहने लगे—॥ १४ ॥ १५ ॥ हे राघव ! ॥ जन्म भी एक अपूर्व प्रकारसे हुआ था । पहिले दिन माताको धोनिसे इसके दोनों हाथ तथा मुख बाहर निकल आया था । तदनन्तर दसवें दिन धीरे-धीरे इसके और अङ्ग निकले थे ॥ १६ ॥ १७ ॥ अन्धे मंत्रोमें पण्डितोंने इसकी रक्षा कर ली थी । अतएव इसका सुमन्त्र नाम पड़ा था ॥ १८ ॥ इसके पूर्व दिनमें अर्थात् जिस दिन ॥ १९ ॥ तथा मस्तक बाहर आया, उस दिनसे लेकर आज तकमें इसकी आयु समाप्त हो गयी । आप जो इसके नौ दिन बाकी बतलाते हैं, वे संदिग्ध हैं । इसलिए हे राम ! हमारा कुछ दोष नहीं है ॥ १९ ॥ २० ॥ आप अर्घ्य इसे छीने लिये जाते हैं, हमको व्यर्थ आपने मारा भी है । उनकी बात नृनकर यमदूतोंमें रामने कहा—॥ २१ ॥ हे यमानुचर ! वह अन्तका दिन अर्थात् जिस दिन माताके गर्भसे इसका अच्छी तरह जन्म हुआ है, वही जन्मका दिन माना जायगा ॥ २२ ॥ जिस दिन इसके जन्मका ॥ २३ ॥ मनाया गया है, वास्तवमें वही जन्मदिन है । उसी रोज इसके पिता तथा ज्योतिर्विदोंने इसका जन्म लिखा है । इसलिए अभी इसके नौ दिन बाकी हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥ तुम लोग जाओ और दसवें दिन आकर इसे ले जाना । तब मैं तुम लोगोंको नहीं रोकूंगा ॥ २५ ॥ रामकी बात सुन और छिन्न अङ्ग होकर अश्वोंमें आसू भरे हुए वे दूत यम-लोकको लौट गये ॥ २६ ॥ राम भी लौटकर अयोध्या चले आये । वहाँ स्थितोंने उनकी आरती उतारी और राम सुमन्त्रके घर गये ॥ २७ ॥ वहाँ सब लोगोंको सुमन्त्रके साथ प्रसन्न देखा । सुमन्त्रने रामको देखते ही प्रणाम किया और उनकी पूजा की । इसके बाद राम अपने ॥ २८ ॥ गये । तबसे सब लोग परम प्रसन्न रहे ॥ २९ ॥ ३० ॥ सुमन्त्रने अपने जीवनके केवल नौ दिन बाकी जानकर रामके आज्ञानुसार बूढ़ दान-पुण्य

ते यमदूताश्च साधुनेत्राः समागताः । उष्णीषाणि करैः क्रोधादास्फास्य भुवि बाधुवन् ॥३१॥
 करोम्यधिकारं तवाज्ञाकारिणां त्विमांश्च । दृष्ट्वाऽवस्थां न लज्जा ते जायते हृदये यम ॥३२॥
 तावदास्माकं राघवेण सुमन्त्रो मोचितः पथि । दिनानि शेषायुः पूर्वार्धमधुना वयम् ॥३३॥
 वैरस्यागं जले कुर्मो न जीविष्याम भी यम । तद्वद्वचनं श्रुत्वा प्रज्ज्वाल यमस्तदा ॥३४॥
 इतानघ रामं वदुष्व दण्डं करोम्यहम् । चोदनीयानि सैन्यानि देवेन्द्रं सूचयाम्यहम् ॥३५॥
 इत्युक्त्वा स्वरितो गत्वा वृत्तमिदं न्यवेदयत् । पुनरिदं यमः श्राद्द साहाय्यं कियतां मम ॥३६॥
 वचनं श्रुत्वा देवेन्द्रो यममब्रवीत् । किं भ्रान्तोऽसि यमाद्यन्वं विष्णुना योद्धुमिच्छसि ३७॥
 तूष्णीं संयमनीं रामस्य किं करिष्यसि । तस्मिन्ना हि पुरा दत्तो मया नौ सुरपादयो ॥३८॥
 एवं तद्वचनं श्रुत्वा वह्निलोकं गयो यमः । अग्निना भाषितस्त्वेवं निर्कृतिं वरुणं तथा ॥३९॥
 वायुं कुबेरमीशानं रविं चन्द्रं बुधं गुरुम् । शुक्रं शनैश्चरं राहुं केतुं भूमिसुतं ध्रुवम् ॥४०॥
 प्रार्थयामास युद्धाय साहाय्यं कियतामिति । उत्तमणीन्द्रवन्सर्वे ददुर्भन्ति यमं हि ते ॥४१॥
 वतो गत्वा विधिं चापि पातालार्तावसामिभिः । सप्तद्वीपवासिनश्च यमः संप्रार्थयन्नुपान् ॥४२॥
 तैऽप्युचुर्न करिष्यामः साहाय्यं राघवाग्रतः । ततः क्रोधसमाविष्टः स्वसैन्येन समन्वितः ॥४३॥
 रामेण सङ्गरं कर्तुमयोध्यां स यमो गयो । स्वगणैः सह वेगेन भद्रामहिषसंस्थितः ॥४४॥
 अयोध्यां देहयामास नवद्वारविराजिताम् । नवप्राकारसङ्घितां शतघ्नीयन्त्रसंयुताम् ॥४५॥
 नवभिः परित्वाभिश्च सधन्ताल्पविरोहिताम् । दृढरत्नकपाटाढ्यां रत्नभिषिविराजिताम् ॥४६॥
 सरयुवेदितां रम्यां रविकोटिसमप्रभाम् । नानाप्रासादवृन्दैश्च पताकाध्वजशोभिताम् ॥४७॥

बारम्भ कर दिया ॥ ३० ॥ उधर वे यमदूत यमके आगे पहुँचे और अपनी पगड़ी जमीनमें फेंक कर कहने लगे—
 ॥ ३१ ॥ हे यमराज । तुम कैसे अपने अधिकारकी रक्षा करते हो ? अपने आज्ञाकारी हम सेवकोंकी वशा
 देकर तुम्हें लाज नहीं आती ? ॥ ३२ ॥ रास्तेमें रामने मारकर सुमन्त्रको छुड़ा लिया । क्योंकि उसके
 जीवनेके नौ दिन बाकी थे । राम वह नौ दिन पूरा कर लेनेपर सुमन्त्रको आने देंगे ॥ ३३ ॥
 हम लोग जलमें डूबकर अपने प्राण दे देंगे । इस प्रकार दूतोंकी बात सुनकर यमराज मारे क्रोधके लाल हो
 गये ॥ ३४ ॥ उन्होंने दूतोंसे कहा—घबड़ाओ मत, आज ही रामको बांधकर मैं उनकी धृष्टताका दण्ड
 दूँगा । तुम जाकर सेना तैयार करो । तबतक इन्द्रको सूचित करता आऊँ ॥ ३५ ॥ ऐसा कहकर यमराज
 तुरंत इन्द्रके पास गये । उन्हें सारा हाल सुनाया और सहायता करनेकी प्रार्थना की ॥ ३६ ॥ यमराजकी बात
 सुनकर इन्द्रने कहा—यमराज । क्या तुम पागल हो गये हो, जो विष्णुभगवान्‌के युद्ध करना चाहते हो ?
 ॥ ३७ ॥ चुपचाप अपनी संयमनी नगरीको लौट जाओ । रामका तुम क्या कर लोगे ? उनसे डरकर मैंने अपने
 हाथोंसे परिजित और कल्पवृक्ष इन दोनों देवदूतोंको उठाकर दे आया था ॥ ३८ ॥ ऐसा वचन सुनकर यम
 भग्निलोक गये, उनसे सहायता माँगी तो अग्निने भी वैसा ही उत्तर दिया । इसके अनन्तर निर्कृति, वरुण,
 ॥ ३९ ॥ वायु, कुबेर, ईशान, रवि, चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु तथा भङ्गल्लोक गये ॥ ४० ॥
 सर्वत्र उन्होंने सहायताकी प्रार्थना की, किन्तु मतवाले यमराजको सबने इन्द्रके समान ही शुष्क उत्तर
 दिया ॥ ४१ ॥ यमराज लौटकर बह्मके पास गये । पातालमें रहनेवाले राजाओं तथा सप्तद्वीपके राजाओंसे
 भी सहायताकी प्रार्थना की ॥ ४२ ॥ किन्तु उन्होंने भी कहा कि रामके विरुद्ध मैं तुम्हारी सहायता नहीं
 करूँगा । इसके क्रोधाविष्ट होकर यमराज अपनी ही सेना लेकर रामके साथ युद्ध करने अयोध्या चले ।
 उस समय उनके समस्त गण साथ थे और यमराज एक बड़े भारी बैसिपर सवार थे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ वहाँ पहुँच-
 कर उन्होंने चारों ओरसे उस अयोध्या नगरीको घेर लिया । जिसमें नौ बड़े-बड़े फाटक और नौ ही
 लाइयां खुदी थीं । कितनी ही बन्दूकें और तोपें रखी थीं । जिनमें रत्नजटित कपाट होने थे और रत्न
 पीवार लगी थी ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ जिनके चत्तर सरयू बह रही थी और करोड़ों सूर्यके प्रकाशकी भाई जिसका

यमेन' वेष्टितां दृष्ट्वा पुरीं रामो महामनाः । लवमाज्ञापयामास गच्छ योद्धुं यमेन हि ॥४८॥

लवस्तदा रथारूढो दुन्दुभीनां महास्वनेः ।

अयोध्याया बहिर्गत्वा चकार सङ्गरं महत् ॥४९॥

तदा लवसराचातङ्गिन्नदेहा यमानुगाः । निपेतुः क्षणमात्रेण कोटिस्तो रणभूमिषु ॥५०॥

तान्सर्वान्निहतान् दृष्ट्वा यमो महिषसंस्थितः । चकार तुमुलं युद्धं लवने क्रोधभासुरः ॥५१॥

स्वबाणौघैर्ममः शीघ्रं रथं सृतं चलं धनुः ।

कवचं मुकुटं चापि विच्छेद म लवस्य च ॥५२॥

तदा लवधातिकुदः स्वसैन्येन स्थित पुनः । चकार सङ्गरं घोरं यमेनातिभयंकरम् ॥५३॥

तदाऽपरा विमानस्था ददृशुर्बुद्धकौतुकम् । ततो लवः स्वबाणौघैर्महिषं मूर्छितं हवि ॥५४॥

कृत्वा तं ताडयामास श्वतबाणैर्ममं जवात् ।

ततो यमोऽप्यतिकुदो यमदण्डं मुमोच नम् ॥५५॥

तं दण्डं मोचितं दृष्ट्वा ब्रह्मास्त्रं सन्दधे लवः । ब्रह्मास्त्रमागतं दृष्ट्वा यमदण्डो न्यवर्तत ॥५६॥

तदा यमोऽपि विकलः पलायनपरोऽभवत् । ब्रह्मास्त्रं तस्य पृष्ठं तथर्या कालानलप्रमम् ॥५७॥

तदा दृष्ट्वा रविः शीघ्रं स्वीर्या भिन्नां प्रकल्प ॥

रथे मूर्तिं यर्या वेगात् प्रार्थयामास तं लवम् ॥५८॥

रे रे ॥ यमं श्रद्धिं चोपसंहारयाद्य हि । त्वयोत्सृष्टं ब्रह्मास्त्रं त्वमेवास्त्रविदा वरः ॥५९॥

त्वं मे वंशसमुद्भूतस्त्वयं मे तनयो यमः । कथं स्वपूर्वजं त्वद्य त्वं यमं हन्तुमिच्छसि ॥६०॥

चेदेको मूर्खतां यातः सर्वे मूर्खा भवन्ति न ।

शत्रुं रणात्परिभ्रष्टं वीरास्त्रं रक्षयन्ति हि ॥६१॥

प्रकाश था । उसमें नाना प्रकारके महल बने ॥ और वह पुरी बहुत-सी पताकाओं तथा अजामोसे अलंकृत थी ॥ ४७ ॥ यमराजसे घिरी अयोध्याको देखकर रामने लवसे कहा—तुम यमराजसे युद्ध करनेके लिए जाओ ॥ ४८ ॥ तब दुन्दुभीके विकराल निनादके साथ लव रथपर आरूढ़ होकर अयोध्याके बाहर आये और यमराजके साथ भयङ्कर युद्ध किया ॥ ४९ ॥ उस समय लवके बाणोंसे निहल होकर यमके करोड़ों अनुयायी क्षणमात्रमें घराकायी हो गये ॥ ५० ॥ उन सबोंको मरा देखकर क्रोधसे तमतमाये हुए यमराजने स्वर्ण लवके साथ तुमुल युद्ध प्रारम्भ कर दिया ॥ ५१ ॥ यमराजने अपने विकराल बाणोंकी वर्षासे शीघ्र लवके रथ, सारथी, धनुष, कवच तथा मुकुटको काट डाला ॥ ५२ ॥ तब अत्यन्त कुपित लवने एक दूसरे रथपर आरूढ़ होकर यमराजके साथ भयामयंकर युद्ध प्रारम्भ कर दिया ॥ ५३ ॥ उस समय समस्त देवता अपने विमानोंपर आरूढ़ होकर समरक्षेत्रमें आये और वह युद्ध देखने लगे । इसके अनन्तर लवने अपने बाणोंकी वर्षासे यमराजके भैंसको मूर्छित कर पृथ्वीपर लौटा दिया और वेगके साथ बाण चलाते हुए सौ बाणोंकी वर्षासे यमराजपर प्रहार किया । तब यमराजने अतिभयंकर दण्ड होकर लवपर यमदण्ड छोड़ा ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ यमदण्डको देखकर लवने ब्रह्मास्त्र चला दिया, जिससे यमदण्ड लौट पड़ा । तब यम विकल होकर भाग निकले और कालानलके समान ब्रह्मास्त्र उनके पीछे-पीछे चला ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ उस ब्रह्मास्त्रको देखकर सूर्यने समझा कि इससे यम नहीं बच सकता । मेरा बेटा अवश्य मारा जायगा । तब सूर्यदेव स्वयं रथपर आरूढ़ होकर लवके ॥ आये और प्रार्थना करने लगे ॥ ५८ ॥ सूर्यने कहा—अरे अरे हे बच्चे । इस अस्त्रको लौटाकर यमको बचाओ । तुम्हीं इसे चलाया है और तुम्हीं इसका निवारण भी कर सकते हो । तुम अस्त्रविद्या जाननेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ हो ॥ ५९ ॥ तुम हमारे वंशमें उत्पन्न हुए हो और ॥ भी मेरा ही पुत्र है । क्या अपने पूर्वज यमको ही तुम मार डालना चाहते हो ? ॥ ६० ॥ यदि एक लड़का मूर्ख हो गया तो क्या उसके साथ सब मूर्ख हो

इत्यादिनानावचनैः प्रार्थितो रविणा यदा ।

तदा लघोऽपि मंहारं चकारात्मस्य ब्रह्मणः ॥६२॥

ततो लवं पुरस्कृत्य यमेन तपनः पुरीम् । विवेश रघुनाथस्य दर्शनार्थं मुदान्वितः ॥६३॥

तदा के देववाद्यानि नेदुः कुसुमशृष्टिभिः । लवं ववर्षुरमरा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥६४॥

पौरनार्यो लवं मार्गे ववर्षुः पुष्पशृष्टिभिः । गोपुराकूलमंस्थाश्च ददशुस्त मुहुर्मुहुः ॥६५॥

नेदुर्नानासुवाद्यानि ननृतुर्वार्योषितः । तुष्टुनुर्मागधाद्याश्च जगुर्गंधर्वकिन्नराः ॥६६॥

एवं नानासमुन्साहैः स्त्रीभिर्नीराजितः पथि ।

ययौ स विजयी बालः प्रणनाम रघूत्तमम् ॥६७॥

रविमागतमाज्ञाय प्रत्युद्गम्य रघूत्तमः । नन्वा रविं करं धृत्वा समायां संविवेश ह ॥६८॥

ततः सिंहासने भानुं निवेश्य स्वीयपूर्वजम् । पूजयामास भीरवः षोडशैकाधारकैः ॥६९॥

तदाऽज्वीद्विं रामः समायां पुरतः स्थितः ।

पूर्वजस्त्वं क्षमस्वाद्य यन्लवेनापराधिनम् ॥७०॥

तद्ग्राभवचनं श्रुत्वा रामं प्राह रविस्तदा । त्वन्नाभिकमलावृज्ज्वा समुद्भूतो रघूत्तम ॥७१॥

मरीच्याद्या विधेः पुत्रा मरीचिः कश्यपः सुतः ।

कश्यपाच्च ममोत्पत्तिः पौत्रपौत्रस्त्वह तव ॥७२॥

क्षमस्व मम पुत्रेण यद्यभेनापराधितम् । एवं संप्राप्य श्रीरामं चासने संन्यवेशयत् ॥७३॥

यमेन कारयामास रघुनाथाय वन्दनम् । तदा समायमुर्ध्वा नेष्टुः सर्वे रघूत्तमम् ॥७४॥

रामोऽपि सकलान्देवान्पूजयामास सादरम् ।

ततो रामाश्रया चेन्द्रः सुधावृष्ट्या रणे मृतान् ॥७५॥

श्रीप्रभुस्थापयामास सर्वान्वीरान्सवाहनैः । ततो रामो यमं प्राह यावद्रान्धं करोम्यहम् ॥७६॥

चार्यगे । भीर लोग संग्रामभूमिसे भागे हुए मनुकी भी रक्षा ही करते हैं ॥ ६१ ॥ इस किन्ती बातोंसे सूर्यके प्रार्थना करनेपर लवने सह्यास्त्रका सम्बरण कर लिया ॥ ६२ ॥ इसके अनन्तर लवकी आगे करके यमराजके साथ-साथ सूर्य रामचन्द्रका दर्शन करनेके लिए हृष्यपूर्वक अयोध्या नगरीमें गये ॥ ६३ ॥ उस देवताओंने अपने बाजे बजाये, लवपर फूलोंकी वर्षा की और अप्सरायें नाचने लगीं ॥ ६४ ॥ पुरवासिनी स्त्रियें भी रास्तेमें कोठेपरसे फूल बरसाती हुई बार-बार लवको निहार रही थी ॥ ६५ ॥ उस समय विविध प्रकारके बाजे बजे, गणिकायें नाचने लगीं और मागध, गन्धर्व तथा किन्नरगण स्तुति करने लगे ॥ ६६ ॥ इस तरह अनेक उत्सवोंके साथ रास्तेमें आरती उतरवाता हुआ विजयी लव रामके पास पहुंचा और प्रणाम किया ॥ ६७ ॥ रामने भूर्वभगवानका आगमन सुनकर उनको अगवाजी की, प्रणाम किया और हाथ पकड़कर सभाभवनमें ले गये ॥ ६८ ॥ इसके अनन्तर अपने पूर्वज सूर्यको रामने सिंहासनपर बिठलाया और षोडशोपचारसे उनकी पूजा की ॥ ६९ ॥ फिर रामने भूर्वभगवानसे कहा—आप हमारे पूर्वज हैं । अतएव लवने जो कुछ अपराध किया हो, सो क्षमा कीजिये ॥ ७० ॥ रामकी ऐसी बात सुनकर सूर्यने भगवानसे कहा—हे रघूत्तम ! आपही के नाभिकमलसे बह्माजी हुए और उनसे मरीचि आदि उत्पन्न हुए । मरीचिसे कश्यप हुए और कश्यपसे मैं उत्पन्न हुआ हूँ । अतएव मैं आपके पौत्रका पौत्र हूँ ॥ ७१ ॥ ॥ ७२ ॥ हमारे पुत्र यमने जो अपराध किया हो, सो करिये । इस प्रकार विनय करके सूर्यने रामको आसनपर बिठलाया और यमसे प्रणाम करवाया । इसके बाद समस्त देवतावृन्द वहाँ आ पहुंचे और उन्होंने रामचन्द्रजीकी वन्दना की ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ रामने भी सादर सब देवताओंकी पूजा की । इसके बाद रामकी आज्ञासे इन्द्रने संग्राममें मरे हुए लोगोंपर अमृतकी वर्षा की और वाहनसमेत समस्त बीरोंको उठा-

तावत्प्रया ■ पूर्णाग्रिनेरो नेयो न चेतः ।

तद्रामवचनं श्रुत्वा तथेत्याह यमस्तदा ॥७७॥

ततः प्राप्ते सुदृष्टमे दिवे श्रीसिर्विगाथा सः । सुमन्त्रो राघवं नत्वा तदग्रे जीवितं जहौ ॥७८॥

ततः स दिव्यदेहाग्निः स्वस्तीमिर्दिव्यदेहधृक् ॥७९॥

सुमन्त्रः पूजितः सर्वैर्विमाने संस्थितो बभौ । रामाग्रे मरणादेव सुरैः सर्वत्र चैष्टितः ॥८०॥

ततः दृष्ट्वा रवी रामं यमेन स्वस्थलं ययौ ।

ययौ सुमन्त्रः स्वस्तीमिर्वैकुण्ठं निर्जरा दिवम् ॥८१॥

रामः सुमन्त्रपुत्रेण तत्क्रियादि सुमन्तुना । कारयित्वा यथाशास्त्रं तत्पदे तं न्यवेशयत् ॥८२॥

ततो रामो लक्ष्मणेन पृथिव्यां घोषयन्मुहुः ।

गजन्त्यस्तां दुन्दुभिं स्वां वताक्ताम्बजशोभिताम् ॥८३॥

एवेति लक्ष्मणभाषि दूतानां प्रापयत्तदा । दूतास्तेऽथ गजाकूटाः सप्तद्वीपान्तरेषु हि ॥८४॥

रामाज्ञां धात्रयामासुर्जनान्दुन्दुभितिःस्वनैः । अर्पूर्णाग्रिर्मृतः कश्चिज्जेतव्यो राघवं प्रवि ॥८५॥

पौगणिकाः स्थापनीया मेहे शमे पृथक् पृथक् ।

नित्यनैमित्तिकं कर्म न त्याज्यं ■ कदाचन ॥८६॥

भावमान्या भूसुराश्च द्वेषः कार्यो न कस्यचित् । हव्यं कव्यं सदा देयं दण्डनीयाश्च तत्कराः ॥८७॥

शासनीया दुराचारात्परा ये जना भुवि । वन्दनीया सदा माता वन्दनीयः सदा पिता ॥८८॥

पूजनीयाः सदा देवाः कार्यो धर्मो निरन्तरम् ।

चैत्रस्नानं सदा कार्यमयोध्यायामथापि वा ॥८९॥

रामतीर्थेषु सर्वत्र कार्या धर्मा विशेषतः ।

द्वारकां सदा गत्वा कार्यं वैशाखमञ्जनम् ॥९०॥

ऊर्ध्वे काश्यां पञ्चनपदे स्नातव्यं विधिपूर्वकम् । गत्वा प्रयागं प्रत्यहं कर्तव्यं माघमञ्जनम् ॥९१॥

कर लड़ा किया । तदनन्तर रामने यमराजसे कहा कि जबतक मैं पृथ्वीपर शासन करता रहूँ, तबतक तुम उम्हीं मनुष्योंको अपने लोकमें ले जाओ, जिनकी आयु पूर्ण हो गयी हो और किसीकी नहीं । रामकी बात सुनकर यमराजने कहा कि "ऐसा ही होगा" ॥ ७४-७७ ॥ इसके पश्चात् इसवें दिन स्त्रियोंको साव लेकर सुमन्त्रने रामको प्रणाम करके उनके सामने ही प्राण त्याग किया ॥ ७८ ॥ सुमन्त्रकी स्त्रियोंने भी उसी समय प्राण त्याग दिया और उन स्त्रियोंके साथ दिव्यरूप धारण करके सुमन्त्र सब लोगोंसे पूजित होते हुए विमानपर बैठकर अतिशय शोभित हुए । रामके समक्ष मरनेसे वे समस्त देवताओंके साथ दिव्यलोकको गये ॥ ७९ ॥ ॥ ८० ॥ इसके पश्चात् सूर्य भी रामसे आज्ञा लेकर यमके साथ लौट पड़े । रामने सुमन्त्रके पुत्र सुमन्तुके हाथों सुमन्त्रकी क्रिया करवायी और पिताके आसनपर उसी मुद्राकी बिछाला ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ तदनन्तर रामने लक्ष्मणको पृथ्वीतलमें ■ बातकी घोषणा करनेकी आज्ञा दी ॥ ८३ ॥ लक्ष्मणने भी "बहुत अच्छा" कहकर दुन्दुभी बसानेवालोंको आज्ञा दे दी । वे हाथीपर सवार हो तथा सातों द्वीपोंमें जा-जाकर नपाड़े बजाते हुए रामकी आज्ञा सुनाने लगे । उन्होंने कहा—राजा रामचन्द्रका आदेश है कि यदि मेरे राज्यमें कोई मनुष्य बिना आयु पूर्ण हुए ही मरे तो उसे मेरे पास ले आया जाय ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ पर-पर तथा गाँव-गाँवमें पुराणोंको जाननेवाले पौराणिक रखे जायें । कोई मनुष्य अपने नित्य-नैमित्तिक कर्मोंको न छोड़े ॥ ८६ ॥ ब्राह्मणोंका कोई अपमान न करे, कोई किसीके साथ द्वेषभाव न रखे, कोई किसीके द्रव्यको न ले और औरोंको दण्ड दे ॥ ८७ ॥ जो लोग दुराचारी हों, उनपर कड़ा शासन किया जाय । धर्म-कर्म सदा होता रहे । अयोध्यामें अबका किसी अन्य रामतीर्थमें जाकर लोह चैत्रस्नान किया करें ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ विशेषतः

चातुर्मास्यव्रतादीनि कर्तव्यानि व्रतानि हि । प्रस्यंगणेषु तुलसी पूजनीया हि सर्वदा ॥९२॥

न निराकरणीयोऽत्र त्वत्तिथिश्च कदाचन ।

न विप्रयाश्चा कर्तव्या मृषा क्वपि कदाचन ॥९३॥

यदीच्छेत्स ततो देयं सर्वस्वं ब्राह्मणाय वै । ग्रामे गृहे कचिन्नैव कलहं तु समाचरेत् ॥९४॥

सदा शुर्वन्दनीयः कर्तव्यं श्रवणं सदा । प्रातःस्नानं सदा कार्यं होतव्या विचिनाऽप्यः ॥९५॥

कार्यो जपः शंकरस्य श्रेयो नित्यं महेश्वरः । एकांते हि तपः कार्यं द्वाभ्यामप्ययनं तथा । ९६॥

त्रिभिर्गीतानि कार्याणि चतुर्भिर्विचरेत्पथि ।

परदाररतिस्त्वाज्या नावलोक्याऽन्यकापिनी ॥९७॥

परलक्ष्म्याः स्पृहा कार्या न नरैश्च कदाचन । तीर्थं विना पुण्यकाले न स्नातव्यं गृहेऽपि ॥९८॥

न द्वेष्या गणका वैद्यास्ते पोष्याश्च पुरे पुरे । वेद्यागमनं कार्यं न दासी स्पृहयेद्बुद्धि ॥९९॥

नित्यकर्म यथाकाले कर्तव्यं सर्वदा नरैः ।

नावमान्या हि गुरवः परनिदा न कारयेत् ॥१००॥

जलाशया वने कार्या रोपणीया नगाः पथि । धर्मशाला पृथकार्या न नद्या वीक्षयेद्बधूम् ॥१०१॥

अन्नसशानि कार्याणि पुरे ग्रामे वने तथा । प्रकुर्वन्तु वने रक्षा मार्गस्थानां वनेचराः ॥१०२॥

मयं भाऽस्तु वने कापि निशया मार्गगामिनाम् ।

वैश्येष्वप्यस्तु करो ब्राह्मो नेतरेषां कदाचन ॥१०३॥

पादयोः पादुके घृत्वा तीर्थं देवं गुरुं प्रवि । गोष्ठं वृन्दावनं होमशालां पच्छेत्स सर्वदा ॥१०४॥

पारायणानि ग्रंथानां वेदानां च सदा नरैः ।

कर्तव्यानि तु निष्कामं मासकार्याणि कारयेत् ॥१०५॥

लोग धर्म-कर्म करते रहें । द्वारकापुरीमें जाकर लोग वैशाखस्नान करें ॥ ९० ॥ कार्तिक मासमें काशीकी पञ्चमङ्गलमें और प्रतिवर्ष माघमासमें प्रयाग जाकर स्नान करें ॥ ९१ ॥ चातुर्मास आदिका व्रत करते रहें । हर एक घरके आँगनमें तुलसीकी पूजा होती रहनी चाहिए ॥ ९२ ॥ मेरे राज्यमें कभी कोई आये हुए अतिथि-का अनादर न करे । कभी कोई किसी ब्राह्मणकी माँग व्यर्थ न करे ॥ ९३ ॥ यदि वह चाहता हो तो ब्राह्मणके लिये अपना सर्वस्व दे डाले । किसी पर या गाँवमें कोई लड़ाई-झगड़ा न करे ॥ ९४ ॥ सदा गुरुकी वन्दना करे, उनसे सर्वदा धर्मग्रंथ सुनता रहे, निरा प्रातःस्नान करे और विधिपूर्वक अग्निहोत्र करता रहे ॥ ९५ ॥ नित्य शिवजीका ध्यान और जप करता हुआ एकांतमें तपस्या करे । दो व्यक्ति साथ बैठकर अध्ययन करें, तीन मनुष्य साथ बैठकर गार्थ-जगाये और चार मनुष्य साथ होकर टहलने निकलें । दूसरोंकी स्त्रीसे प्रेम न करे, दूसरेकी स्त्रीको देखे भी नहीं ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ दूसरेकी लक्ष्मीको पानेकी इच्छा न करे, किसी पर्वकालके समय घरमें स्नान न करे, बल्कि किसी तीर्थस्नानपर चला जाय ॥ ९८ ॥ ज्योतिषी तथा वैद्यके साथ कोई बिगाड़ न करे । यदि किसी दूसरे गाँवमें भी रहते हों तो उनका पालन करे । न कोई वेद्यागमन करे और न दासीसे प्रेम करे ॥ ९९ ॥ ठीक समयपर लोग अपने नित्यकर्म करते रहें । गुरुजनोंका अपमान कभी न करे और न दूसरोंकी निन्दा न करे । वनोंमें जलाशय बनवाये । अलग-अलग धर्मशास्त्रोंमें धनवाये । कभी नङ्गी स्त्रीको न देखे ॥ १०० ॥ १०१ ॥ पुर, ग्राम और वनोंमें जहाँ-तहाँ अन्नक्षेत्र सोसे । वनचर मनुष्य वनमें पहुँचे हुए पथिकोंकी रक्षा करें ॥ १०२ ॥ रात्रिके समय भी चलनेवालोंको वनमें किसी प्रकारका भय न रहे । केवल वैश्योंसे कर लिया जाय और लोगोंसे नहीं ॥ १०३ ॥ गाँवमें जूता पहिनकर किसी तीर्थस्थान देवता तथा गुरुके पास न जाय । गोशाला तथा तुलसीकी बगोचीमें भी जूता पहिनकर ॥ १०४ ॥ धर्मग्रंथों और वेदोंका पारायण सर्वदा लोग निष्कामभावसे करते रहें ॥ १०५ ॥

यतयो वन्दनीयाश्च भोजनीया गृहे गृहे । यतये कमण्डलवः कौपीनं पादुका तथा ॥१०६॥

वंशदण्डाः सदा देयाः सदा तोष्याः सुमापणैः ।

न खेदयेद्भूम्नीयां दिने निद्रां न कारयेत् ॥१०७॥

हरिदिन्यां न भोक्तव्यमुपोष्या च चतुर्दशी ।

कृष्णपक्षमथा वस्यां रात्रौ कार्यं शिवाचनम् ॥१०८॥

नानामहोत्सवाद्यैश्च यथाविधिपुरःसरम् । अष्टमी कृष्णपक्षस्य सदोपोष्या शुभमतिथिः ॥१०९॥

देवालयेषु कर्तव्या वलयो भक्तिपूर्वकाः । नानावक्त्रासनैरेष्टाऽद्देव्यश्च समर्पयेत् ॥११०॥

धेनुदानं वाजिदानं गजदानं प्रकारयेत् । भूतुरेभ्यः प्रदेयानि गृहदानानि सादरम् ॥१११॥

गेहे गेहे सदा कार्यं धेनुचिप्रपूजनम् ।

वसन्ते चन्दनं देयं छात्राणि व्यजनानि च ॥११२॥

पानकं जलकुंभाश्च कार्यं पादावनेजनम् । दधि तर्कं हि जकीरं देयं विप्रैश्च आदरात् ॥११३॥

कार्तिके दीपदानानि रात्रौ जागरणानि च । तुलसीसेवनं धात्रीछायामाश्रित्य भोजनम् ॥११४॥

गीतनृत्तादिकरणं विष्णोरग्रे निरन्तरम् ।

त्रिपुरारेः समीपे हि पूजिमायां हि कार्तिके ॥११५॥

करणौघो महादाहो घृताक्षवर्तिकादिभिः । माघं देयानि काष्ठानि कवलाञ्जलिस्तथा ॥११६॥

चैत्रे ताम्बूलदानं च तथा गन्धाफलानि च । उर्वारुकानि देयानि चन्दनं दधितक्रकम् ॥११७॥

आदर्शदानं कस्तूरीदानं आर्तीफलस्य च । हलाकपूर्वदानानि मधुमासि प्रकाशयेत् ॥११८॥

पदाऽग्रजं ■ स्पृशेच्च न पादं वर्षयेत्पदा । द्वाभ्यां कराभ्यां कट्टति मस्तकस्य न कारयेत् ॥११९॥

दातव्यः करभारो हि विना विप्रैर्नृपाय हि ।

नोपेक्षणीयो राजश्च जनैर्देण्डः कदाचन ॥१२०॥

माननीयाश्च धनुराः पोष्याः पान्याः सदैव हि । सुहृदस्तोषणीयाश्च मित्रे कोपं न कारयेत् ॥१२१॥

यहारमात्रोंकी वन्दना को जाय और घर-घर भोजन कराया जाय । उन्हें कमण्डलु, कौपीन, चरणपादुका आदि दान दिया जाय ॥ १०६ ॥ उन्हें वीसको छोड़ी भी दे और मीठा-मीठा बातोंसे प्रसन्न करे । कभी कोई आपनी स्त्रीको दुःखित न करे और दिनमें शयन न करे । एकादमीको अन्नका आहार न करे और कृष्णपक्षकी चतुर्दशीका भी व्रत किया करे । उस रात्रिमें लोग उत्साहसे शिवजीका पूजन करें ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ कृष्णपक्षकी अष्टमीका भी व्रत सब लोग किया करें । क्योंकि यह बड़ी शुभ तिथि है ॥ १०९ ॥ देवाल्योंमें पच्छिपूर्वक पूजन करके विविध प्रकारके नन्देय देवताओंको समर्पित किये जायें ॥ ११० ॥ लोग समय-समयपर धेनुदान, वाजिदान, गजदान आदि दान आदरपूर्वक ब्राह्मणोंको दिया करे ॥ १११ ॥ घर-घरमें सदा गौओं तथा विप्रोंका पूजन होता रहना चाहिये । वसन्त ऋतुमें चन्दन, छात्र तथा फलेका दान करें ॥ ११२ ॥ पानी पीनेके लिये लोटा, जल भरनेके लिए बड़ा, पैर धोनेके लिए झारी, दही, मट्ठा और नीबूका दान ब्राह्मणोंको दे ॥ ११३ ॥ कार्तिक मासमें दीपदान, रात्रिकी जागरण, तुलसीकी सेवा और आँचलेकी छायामें भोजन करे ॥ ११४ ॥ निरन्तर विष्णुप्रसवाङ्कके सामने नाचे-गाये । कार्तिकको पूजिमाकी शिवजीके सामने भीमें भोगी बत्ती आदिका महादान करे । माघ मासमें लकड़ियों तथा रक्त-विरञ्जे कमलका ■ करे ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ चैत्रमें ताम्बूल तथा केलेके फल दान करके अगर, चन्दन, दही और मट्ठा आदि दे ॥ ११७ ॥ वैशाखके महीनेमें शीशा, कस्तूरी, जायफल, हलायची तथा कपूरका दान करे ॥ ११८ ॥ पैरसे बड़े जाईको न छूए, पैरसे पैर न रगड़े, दोनों हाथोंसे सिर न खुजलाये ॥ ११९ ॥ ब्राह्मणके अतिरिक्त सब लोथ नजाको सम्पर्क न करे । राजाके विदे बग्नकी उपेक्षा न करे ॥ १२० ॥ अपने-अपने प्रधानकी इज्जत करे

न कर्तव्यो विष्णुर्ना च विश्वामित्र कदाचन ।

कार्त्तव्यं नैव कर्त्तव्यं दानकर्मसु सर्वदा ॥१२२॥

न द्यूतेन क्वा कार्या क्रीडा दाम्नित्रयमूचिनी ।

न श्रोतव्या कदा वार्ता मथानां च नरोत्तमैः ॥१२३॥

तीर्थयात्रा सदा कार्या कृच्छ्रकादि समाचरेत् । कायं लिंगार्चनं निन्यं कोटिलिंगानि श्रावणे ॥१२४॥

कर्त्तव्यानि नरोर्भक्त्या सर्वदा च कारयेत् । लघुहृद्ग्रन्थमहास्त्रानतिरुद्ग्रन्थमाचरेत् ॥१२५॥

दानानि पुस्तकानां च कर्त्तव्यानि निरन्तरम् ।

कीर्त्तनानि च कार्याणि देवागारेषु वा गृहे ॥१२६॥

साधूनां पूजनं कार्यं नमस्कार्यः सदा रविः । ग्रामे ग्रामे वायुपुत्रप्रतिमाः सर्वदा पूषक् ॥१२७॥

सिंदूराकाश तैलाक्ताः पूजनीया निरन्तरम् । चतुर्थ्यां गणराजस्य पूजनानि प्रकारयेत् ॥१२८॥

अर्धवेदगणराजाय मोदकान्पूजयित्वा ।

पञ्च साधानि सिंदूरदूर्वादीन्यर्पयेत्सदा ॥१२९॥

सदाऽऽजमवर्षा कर्त्तव्या स्तोत्रपाठान्प्रकारयेत् ।

गीतायाः पठनं वदानध्यापयेत्सदा ॥१३०॥

सदैव शान्तिसूक्तानि पुण्यसूक्तान्यनेकशः । पुण्यं पुरुषसूक्तं च श्रीसूक्तादीनि वै पठेत् ॥१३१॥

सदा धर्मं मतिः कार्या कार्या धर्मस्य संग्रहः । दुष्टबुद्धिः सदा त्याज्या पातकं परिमाज्येत् । ३२ ।

ज्ञातव्यं चपल वायुः कूरा ज्ञयो यमो महान् ।

दारुणा नारको पीडा स्मर्त्तव्या इति सर्वदा ॥१३३॥

गतस्त्वातो मृता माता गतश्च प्रपितामहः । पितामहो गतश्च गमनं स्वं निरीक्षयेत् ॥१३४॥

गतं यथाऽत्र बालत्वं तारुण्यं गतं यथा ।

यथा गच्छति बालकं स्मरणं यमशान्तम् ॥१३५॥

और भीकरोका सदा बालन करता रहे । अपने नातेदारोंको प्रसन्न रखे । मित्रपर कोप न करे ॥ १२१ ॥ कभी भी सन्तुपर विश्वास न करे और दानादि कर्ममें बन्ध कृपणता न करे । कभी जुवा खेलें । क्योंकि बहुत दमिद्रताको पास घुसानेवाला रोग । अच्छे लोग कभी भांगराकी बात भी न सुने ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ सदा तीर्थोंको यात्रा करे और कभी-कभी कृच्छ्रबान्द्रायण आदि रत किया करे । प्रतिदिन शिवलिंगका पूजन करे और श्रावणमासमें एक करोड़ शिवलिंग बनाकर उनकी पूजा करे ॥ १२४ ॥ पड़े तो सदा ऐसा करे । लघुहृद्, महाहृद् एवं अतिहृद् इन तीनों यज्ञोंको बराबर करता जाय ॥ १२५ ॥ निरन्तर पुस्तकदान करे । घरमें अथवा बैवालयमें जाकर प्रतिदिन कांतन करे ॥ १२६ ॥ सब काम साधुओंका पूजन और प्रतिदिन सूर्यको नमस्कार करे । शिव-नाचमें हनुमन्तुजीको मूर्तिर्षी रखता जाय ॥ १२७ ॥ तैलसे मिला सिंदूर लगाकर नित्य उनकी पूजा की जाय । प्रत्येक चतुर्थी तिथिकी गणेशजीका पूजन किया जाय ॥ १२८ ॥ मादक तथा परनपरी आदि पकवान बनाकर गणेशजीको अर्पण करे और सिंदूर-दूर्वा आदि भी चढ़ाये ॥ १२९ ॥ प्रतिदिन आत्मज्ञान-सम्बन्धी चर्चा, स्तोत्रपाठ, गीताका अध्ययन तथा वेदोंका अध्यापन-प्रवचन करता रहे ॥ १३० ॥ नित्य शान्तिसूक्त श्रीसूक्त आदिका पाठ किया करे ॥ १३१ ॥ सदा अपनी बुद्धि धर्ममें स्थित रखे और धर्मका संग्रह करता चले । दुष्ट बुद्धिका परित्याग करे और किये हुए पापोंसे छूटनेका उपाय करता रहे ॥ १३२ ॥ वायुको चंचल तथा यमराजको महाक्रूर समझे । नरककी दाखल पीडाओंका सदा स्मरण करता रहे ॥ १३३ ॥ यह संचिन्ता रहे कि पिताजः चले गये, माता मर गयी, पितामह और प्रपितामह भी चल बसे, हमारी बारी है । जिस तरह बालकाल गुजर गया, तथैही बीत गयी, उसी तरह यह दुःख-

मत्ता दंता मते नेत्रे श्लथा ॥ नृगत्र हि । कुष्णकेशाः सिता जटा मृत्युर्ज्वरः पुरःस्थितः ॥१३६॥
दाने विलसो नो कार्यः कार्यं वित्तं सुनिर्मलम् । तुपश्च धनं देयं मा कार्पण्यात्प्ररक्षयेत् ॥१३७॥

एवं श्रीरामदूतास्ते सप्तद्वीपांतरस्थितान् ।

भावयित्वा रावदाज्ञां महादुन्दुभिनिःस्वनैः ॥१३८॥

अयोध्यां स्वां ययुः सर्वे रामं वृत्तं व्यवेदयन् ।

संभाविता तवास्माभिश्चाज्ञा सर्वान् जनान्मुहुः ॥१३९॥

सप्तद्वीपेषु सर्वत्र दुन्दुभीनां महास्वनैः । तत्तेषां वचनं श्रुत्वा रामस्तुष्टोऽभरत्तदा ॥१४०॥

एव रामेण भूम्यां हि चरित्राणि महांति च । आचरितान्गनेकानि कस्तान्यत्र वदिष्यति ॥१४१॥

एवं शिष्य मया प्रोक्तं राज्यकाण्डं मनोरमम् ।

चतुर्विम्बसुभर्गेषु

महामङ्गलकारकम् ॥१४२॥

राज्यकाण्डं नृपा यत्र पठन्ति भक्तितत्पराः । न ते राज्यात्परिश्रष्टा भवन्ति हि कदाचन ॥१४३॥

राज्यकाण्डं महापुण्यं महामांगल्यदायकम् । ये शृण्वन्ति नरा भूम्यां ते मांगल्यं भजन्ति हि ॥१४४॥

एकैकवर्चितः सर्गैरेकैकेन ध्येन च । सप्तचत्वारिंशदिनैर्गुप्तानं सुसिद्धिदम् ॥१४५॥

आधिपत्यं नराः प्राप्य राज्यकाण्डं पठन्ति ये ।

आधिपत्यान्परिश्रष्टा न भवन्ति कदाचन ॥१४६॥

राज्यकाण्डं पठित्वा ॥ रणे वादे जयो भवेत् । शरणं शत्रवः शीघ्रं यास्यत्येतच्छ्रुवादिना ॥१४७॥

आनन्दरामायणमध्यसम्भं ये राज्यकाण्डं मनुजाः पठन्ति ।

राज्याच्च्युता राज्यपदं लभन्ते भवन्ति अष्टा न तु ते पदस्थाः ॥१४८॥

आनन्दरामायणमेतदुत्तमं तत्रापि काण्डेषु विधित्रमुत्तमम् ।

श्रीराज्यकाण्डं परमं सुसौख्यदं सदाऽतिभक्त्या श्रवणीपमादरात् ॥१४९॥

श्री भली आयोगी, ॥ सोचकर यमके कठोर शासनका स्मरण करे ॥ १३४ ॥ १३५ ॥ दाँत टूट गये, आँखोंसे कम सुसने लगा, शरीरके चमड़े दाँसे पड़ गये और काले-काले बाग्न श्वेत हो गये । ॥ यह समझे कि ॥ मृत्यु सामने आकर खड़ा है ॥ १३६ ॥ दानमें विलम्ब न करे और अपना वित्त निर्मल रखे । भूलीकी तरह समझकर धनका दान करे । कंजूस बनकर उसकी रक्षा न करे ॥ १३७ ॥ इस तरह सातों द्वीपोंमें रहनेवालोंको रामकी आज्ञा सुनाकर वे दूत रामके पास लौट गये और उनको सब समाचार सुनाते हुए कहने लगे—हे राघव ! हमने सप्तद्वीपके निवासियोंको दुन्दुभीकी गर्जनाके साथ आपकी आज्ञा सुना दी । उनकी सुनकर राम ॥ १३८-१४० ॥ इस प्रकार रामने इस पृथ्वीतलपर कितने ही बड़े-बड़े काम किये । उन सबको पूरी तरह बतसानेवाला कौन है ? ॥ १४१ ॥ ॥ शिष्य । इस रीतिसे मैंने तुम्हें चौबीस सर्गोंमें महा मङ्गलकारक मनोहारी राज्यकाण्ड सुनाया ॥ १४२ ॥ भक्तितरार होकर राजा लोग यदि इस राज्यकाण्ड, पढ़ेंगे-सुनेंगे तो वे कभी भी अपने-अपने राज्यसे व्युत्त न होंगे ॥ १४३ ॥ यह राज्यकाण्ड ॥ पवित्र और महामङ्गलदायक है । जो मनुष्य पृथ्वीतलपर इसे सुनगें, उनका सदा कल्याण होगा ॥ १४४ ॥ प्रतिदिन एक एक सर्ग बढ़ाता हुआ और पुरा होनेपर एक-एक कम करता हुआ यदि इसका अनुष्ठान करे तो यह सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्रदान करता है ॥ १४५ ॥ कहींका आधिपत्य पाकर जो इसका पाठ करते हैं, वे अपने आधिपत्यसे कभी भी भ्रष्ट नहीं होते ॥ १४६ ॥ राज्यकाण्डका पाठ-पूजन आदि करनेसे शत्रु शोध अपनी शरणमें आ जाते हैं ॥ १४७ ॥ आनन्दरामायणके अन्तर्गत इस राज्यकाण्डको जो लोग पढ़ते हैं, वे यदि राज्यसे भ्रष्ट हो गये हों तो फिर राज्यधिकारी हो जाते हैं । फिर कभी ॥ उसमें भ्रष्ट नहीं होते ॥ १४८ ॥ पढ़ने लो आनन्दरामायण ही उत्तम है, फिर इसके सब काण्डोंमें यह राज्यकाण्ड ॥ है । यह हर तरह सुखदायक

राज्यस्थितैर्वा व्यवसायतत्परैः सदैव चैवच्छ्रुणीयमादरात् ।
 उन्मादकाले शनवन्धमङ्गले विवाहकाले पठनीयमुत्तमम् ॥१५०॥
 श्रीगण्डकाण्डे धृतिमोक्षदायकं पुण्येषु कालेषु पठन्ति ये नराः ।
 लभन्ति मोक्षयान्प्रतिमङ्गलानि ते गच्छन्ति विष्णोर्वरयानगाः पदम् ॥१५१॥
 पुण्यं पवित्रं शम्भं विचित्रं श्रीरामचन्द्रक्य कथानकं सदा ।
 भक्त्या मुनीनामपि मङ्गलप्रदं श्रोतव्यमेतन्पठनीयमादरात् ॥१५२॥

इति श्रीभक्तकोटिनाम चरितान्तः श्रीमदानन्दरामायणे वार्ष्णेयादि राज्यकाण्डे उत्तराष्ट्रे उमासहेश्वरसंवादे तथा
 रामदाससहितपुण्यपुस्तकसंग्रहे अन्तिमोऽध्यायस्य मूर्त्ययंकुण्डलीकृतस्य पुण्यपदेशवर्णनं नाम चतुर्विंशः सर्गः ॥२४॥

हे । इसलिये हमको सादर आग्रह करना चाहिए ॥ १४९ ॥ कोई राजा या या चाणक्यमें समा हो, उसे यह
 काण्ड सुनकर राजा या राजा विवाहकाले जब कोई विवाह-प्रसन्न और उत्साहका समय हो, [] इसे अवश्य
 सुने ॥ १५० ॥ पुण्यमें सुनने वाले इस काण्डकी जो किसी शक्तिव समयमें पढ़ें या सुनते हैं, वे अंत
 समयमें विमानों, उड़कर विष्णुलोकको जाते हैं ॥ १५१ ॥ राम पवित्र और अति विचित्र श्रीरामचन्द्रका
 यह कथानक मुनीगणों को श्रोतव्य होता है । अतएव सादर इसका पठन और श्रवण करना चाहिए ॥ १५२ ॥
 इति श्रीभक्तकोटिनामचरितान्तः श्रीमदानन्दरामायणे पंच रामतजपापदेवविरचिते 'उपोरुता' भाषाटीकासहिते
 राज्यकाण्डे उत्तराष्ट्रे चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

॥ इति राज्यकाण्डे उत्तराष्ट्रे समाप्तम् ॥

श्रीरामचन्द्रार्पणम्



श्रीसीतापतये नमः

श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं-

आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

मनोहरकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

(लघुरामायण)

विष्णुदास उवाच

गुरो ते प्रष्टुमिच्छामि यत्तत्त्वं वक्तुमर्हसि । वेदवाक्यैः पुरा प्रोक्तं नारदेन महात्मना ॥ १ ॥
रामायणं वाल्मीक्ये संक्षेपाच्चेति तेऽकथि । तावदेवार्थमादाय श्लोकरूपं वदस्व माम् ॥ २ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया वत्स सावधानमनाः शृणु । यत्पृष्टं च त्वया सर्वं तद्वदामि ववाग्रतः ॥ ३ ॥
नारदाद्वेदवाक्येषु यथा वाल्मीकिना श्रुतम् । तावदेवार्थमादाय तेन वाल्मीकिना पुरा ॥ ४ ॥
शतश्लोकमितं रामचरितं पापनाशनम् । शतकोटिमितायां स्वकवितायां मनोरमम् ॥ ५ ॥
आदावेवोक्तमेवास्मि तत्तवाग्रे वदाम्यहम् । शतकोटिमितं रूपं लघुरामायणाद्वयम् ॥ ६ ॥
कूञ्जन्तं राम रामेति मधुरं मधुराश्रयम् । आरुख कविताशास्त्रां वंदे वाल्मीकिकोकिलम् ॥ ७ ॥
वाल्मीकेर्मुनिसिंहस्य कवितावनधारिणः । शृण्वन् रामकथानादं को न याति परां गतिम् ॥ ८ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! मैं आपसे यह पूछना चाहता हूँ कि वेदवाक्योंका सारांश लेकर संक्षेपमें नारदजीने यहूँचि वाल्मीकिसे कौन सी रामायण कही थी ? उसी सार वस्तुको श्लोकरूपमें बनाकर वाल्मीकिने आपको सुनाया था, वह हमसे भी कहिए ॥ १ ॥ २ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे । तुमसे अच्छा प्रश्न किया है । जब सावधान होकर सुनो । तुमने जो प्रश्न किया है, उसका उत्तर तुम्हारे आगे कह रहा हूँ ॥ ३ ॥ जब वाल्मीकिजीने नारदके मुखसे वेदवाक्योंसे संकलित रामचरित्र सुन लिया, तब उसी कथकी लेकर उन्होंने सी श्लोकोंमें पापनाशक लघुरामायणकी रचना की और अपने रामायणके आदिमें उन्होंने उसी लघुरामायणको स्थान दिया । वही सी श्लोकोंवाला लघुरामायण आज मैं तुम्हारे आगे कह रहा हूँ ॥ ४-६ ॥ कवितारूपिणी शास्त्रापर बैठकर मीठे मीठे अक्षरोंमें रामनामका गान करनेवाले वाल्मीकिरुपी कोकिलको वन्दना करता हूँ ॥ ७ ॥ कवितारुपी वनमें विहार करनेवाले तथा मुनियोंमें सिद्ध-सहस्र वाल्मीकिकी रामकथारूपिणी वननाको सुनकर संसारमें कौन ऐसा प्राणी है, जो उत्तम गतिको न

यः पिवन्मृतं रामचरितामृतसागरम् । अतस्तं मुनिं वन्दे प्राचेतसमकल्मषम् ॥ ९ ॥
 गोष्पदीकृतवारीशं मशकीकृतराक्षसम् । रामायणमहामालारत्नं वन्देऽनिलात्मजम् ॥ १० ॥
 अञ्जनीनन्दनं वीरं जानकीशोकनाशनम् । कर्पीशमक्षहन्तारं वन्दे लङ्काभयङ्करम् ॥ ११ ॥

उल्लंघ्य मिथोः सलिलं सलीलं यः शोकवह्निं जनकान्मञ्जयाः ।

आदाय तेनैव ददाह लंकां नमामि तं प्राञ्जलिरांजनेश्वरम् ॥ १२ ॥

भनोजयं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।

वातात्मजं वानरगुधमुख्यं श्रीरामदूतं मनसा स्मरामि ॥ १३ ॥

रामाय भद्राय रामचन्द्राय वेधसे । रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥ १४ ॥

जितं भगवता तेन हरिणा लोकधारिणा । अनेन विश्वरूपेण निर्गुणेन गुणात्मना ॥ १५ ॥

इति मंगलाचरणम् ॥

तपःस्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदां वरम् । नारदं पण्डितप्रच्छं वाल्मीकिर्मुनिपुंगवम् ॥ १ ॥

को न्यस्मिन्साप्रतं लोके गुणवान्कश्च वीर्यवान् । धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः ॥ २ ॥

वाग्भिरेण ॥ को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः । विद्वान्कः कः समर्थश्च कर्षकः प्रियदर्शनः ॥ ३ ॥

आत्मवान्को जितकीर्णो धृतिमान्कोऽनमूयकः । कस्य विश्वपतिं देवाश्च जातरोषस्य संशुभो ॥ ४ ॥

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कीर्तुहलं हि मे । महर्षे त्वं समर्थोऽसि ज्ञातुमेवंविधं नरम् ॥ ५ ॥

श्रुत्वा चैतन्त्रिलोकज्ञो वाल्मीकेनारदो वचः । श्रूयतामित्युपामंश्च प्रहृष्टो वाक्यमब्रवीत् ॥ ६ ॥

बहवो दुर्लभाश्चैते ये त्वया कीर्तिता गुणाः । मुने वक्ष्याम्यहं भुवश्चा तर्प्यकः श्रूयतां नराः ॥ ७ ॥

प्राप्त होता हो ? कोई नहीं ॥ ६ ॥ जो निरन्तर रामचरितरूपी अमृतसागरका पान करते हुए भी कभी नहीं तृप्त होने आते, ऐसे कल्मषरहित श्रीवाल्मीकि मुनिको ॥ करता हूँ । विशाल समुद्रको जिन्होंने गौंके धूर नूतने योग्य बनाया, राक्षसोंको भच्छुद्ध समझा और जो इस रामायणरूपी महामालाके रत्न हैं, उन हनुमान्जीको मैं प्रणाम ॥ ९ ॥ १० ॥ अञ्जनीके सुपुत्र, जानकीके शोकनाशक, वानरोंके प्रभु, भयङ्करकुमारके संहारकारी तथा लंकाके लिए भयावने वीर मारुतिकों में वन्दना ॥ ११ ॥ जो खेल खेलमें समुद्रकी जलराशिको लाँघकर लङ्का पहुँचे, वहाँ सीताके शांकरूपी अग्निको लेकर जिन्होंने उसीसे सारी लंकाको भस्म कर दिया, उन अञ्जनीनन्दनको मैं हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ ॥ १२ ॥ जिनमें मनके समान वेग है, वायुके सदृश स्वर है, जिन्होंने इन्द्रियाँ जीत ली हैं, जो बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ हैं, ऐसे वायुके पुत्र, वानरसंघके मुखिया और श्रीरामके दूत हनुमान्जीको मैं मनसे स्मरण ॥ १३ ॥ राम, रामभद्र, रामचन्द्र, विष्वात्मास्वरूप, रघुवंशके नाथ, जगन्नाथ और सीतापति रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १४ ॥ भगवान्, संसारके पालक, अज, और विश्वरूप उन रामने निर्गुण होकर भी सगुणरूपसे सारे संसारको अपने वल्लभों में कर लिया है ॥ १५ ॥

इति मङ्गलाचरणम् ।

विद्वानोंमें श्रेष्ठ, तपस्या और स्वाध्यायमें संलग्न मुनिश्रेष्ठ नारदसे तपस्वी वाल्मीकिने पूछा— ॥ १ ॥ इस संसारमें इस ॥ गुणवान्, पराक्रमशाली, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवक्ता और अपने व्रतपर दृढ़ कौन है ? ॥ २ ॥ कौन ऐसा है, जो सच्चरित्रयुक्त है ? कौन ॥ प्राणिमंडले के हितमें लगा हुआ ॥ और कीर्तन ऐसा है जो विद्वान्, समर्थ ॥ देखनेमें सुन्दर है ॥ ३ ॥ कौनसा ऐसा पुरुष ॥ जो आत्मज्ञानी, कौशिकी वल्लभों किये हुए तथा तेजस्वी है और दूसरेसे ईर्ष्या नहीं करता ? संग्रामभूमिमें जिसके कुपित होनेपर देवता भी भयभीत होजायें, ऐसा कौन है ? ॥ ४ ॥ यह मैं सुनना चाहता हूँ । उसे जाननेके लिए मुझे बड़ा कीर्तुहल है । हे महर्षि । आप उक्त प्रकारके पुरुषको जान सकते हैं ॥ ५ ॥ त्रिलोकीके ज्ञाता नारद वाल्मीकिको बात सुनकर बोले—अच्छा, सुनो । इस तरह संशोधन करके महर्षि नारद कहने लगे— ॥ ६ ॥ मुने ॥ आपने जिन गुणोंका वर्णन किया है, वे बहुत ही दुर्लभ हैं । फिर भी मैं अच्छी तरह विचार करके

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः । नियतात्मा महावीर्यो धृतिमान्धृतिमान्वशी ॥ ८ ॥
 बुद्धिमान्मतिमान्वाग्मी श्रीमान् शत्रुनिवर्धनः । विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाइन्दुः ॥ ९ ॥
 महोरस्को महेश्वासी गूढजन्तुररिदमः । आजानुबाहुः सुशिवाः सुललाटः सुविक्रमः ॥ १० ॥
 समः समविभक्तांगः स्निग्धवर्णः प्रतापवान् । पीनवक्त्रा विशालाक्षो लक्ष्मीवान् शुभलक्षणः ॥ ११ ॥
 धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च प्रजानां च हिते रतः । यशस्वी ज्ञानसंपन्नः शुचिचेदयः समाधिमान् ॥ १२ ॥
 प्रजापतिसमः श्रीमान् धाता रिपुनिपुटनः । रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता ॥ १३ ॥
 रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता । वेदवेदांगतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः ॥ १४ ॥
 सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान् प्रतिमानवान् । सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विश्वक्षणः ॥ १५ ॥
 सर्वदाऽभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः । आर्यः सर्वसमर्थश्च सर्वत्र प्रियदर्शनः ॥ १६ ॥
 स च सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दवर्धनः । समुद्र इव सांसीपे धैर्येण हिमवानिव ॥ १७ ॥
 विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः । कालाग्निमदृक् क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः ॥ १८ ॥
 धनदेन समस्त्यागे मर्त्ये धर्म इवापरः । तमेवगुणमभ्यन्तं रामं सन्ध्यापराक्रमम् ॥ १९ ॥
 ज्येष्ठ ज्येष्ठगुणयुक्तं प्रियं दशरथः सुतम् । प्रकृतीनां हिते युक्तं प्रकृतिप्रियकाम्यया ॥ २० ॥
 यौवराज्येन मयोक्तुर्मन्त्रोत्प्रीत्या मदीयते । तस्याभिपेक्षमंभरान्दृष्ट्वा भार्या च कैकयी ॥ २१ ॥
 एवं दत्तवरा देवी वरमेनमवाचत । शिवामन च रामस्य भरतस्याभिपेक्षनम् ॥ २२ ॥
 स सत्यवचनाद्वाजा धर्मपाशेन मंगतः । निर्गमयामास मुनं रामं दशरथः प्रियम् ॥ २३ ॥

उम गुणासं युक्त मनुष्यको बतन्नाता है ॥ ७ ॥ जिसके विषयमें मैं आपसे कुछ कहना चाहता हूँ, उन्हें लोग राम कहते हैं । वे आरामजानी, महाबल, तेजस्वी, धर्मजील और जितेन्द्रिय ॥ ८ ॥ वे बुद्धिमान्, नीतिज्ञ, वक्ता, श्रीमान् और शत्रुओंके विनाशक हैं । उनका खूब लम्बा-चोड़ा कम्बा है । लम्बी-लम्बी भुजायें हैं । शंखकी तरह उनकी घोषा है और विजाल गुट्टे हैं ॥ ९ ॥ उनकी विशाल छाता है । वे हाथोंमें विशाल घनुष धारण किंम रहते हैं । उनकी पसलियाँ ज़िरो रहती हैं । वे शत्रुओंका दमन करनेकी प्रबल शक्ति रखते हैं, जानु (पुटनों) तक पहुँचनेवाले उनके हाथ हैं, मन्दर गाथा है, वदिया ललाट है, सराहनीय पराक्रम है, बराबर और मुजौल उनके अंग हैं, मनोहारिणा छवि है और उनका प्रताप भी साधारण नहीं है । उनको समुद्र छाती है, बड़ी-बड़ी आँखें हैं, वे सक्ष्मीगम्य हैं और उनमें सभी गुण लक्षण विद्यमान हैं ॥ १० ॥ ११ ॥ वे धर्मज्ञ और सत्यसंध (अपनी प्रतिज्ञाको निमानेवाले) हैं । वे सदा प्रजाके हितमें रत रहते हैं । वे यशस्वी, ज्ञानसंपन्न, पवित्र, वर्णी और समाधिमान् हैं ॥ १२ ॥ वे राम प्रजापतिके समान श्रीमान्, जगत्के पालक एवं शत्रुओंके विनाशक हैं । वे समस्त संसारकी तथा धर्मकी सर्वथा रक्षा करते हैं ॥ १३ ॥ धर्मके रक्षक हैं और निज जनोकी रक्षा करते हैं । वे वेद-वेदाङ्गके सारे तत्त्वोंको जानते हैं और धनुर्वेदमें एक असाधारण प्रतिभा रखते हैं ॥ १४ ॥ वे संपूर्ण शास्त्रोंके अर्थ तथा तत्त्वको जाननेवाले, समृद्धिमान्, प्रतिभाशाली, सबको प्रिय, साधु, अदीनात्मा और पण्डित हैं ॥ १५ ॥ जैसे समुद्र नदियोंसे मिलता है, वैसे ही वे सदा राजतनोंसे मिलते हैं और उनका दर्शन सबको सुखदायी होता है ॥ १६ ॥ वे राम सर्वगुणसंपन्न, कौसल्याका आनन्द बढ़ानेवाले, समुद्रके सुल्य गम्भीर तथा हिमालयके समान धैर्यशाली हैं ॥ १७ ॥ वे वीर्य एवं बलमें विष्णुके सदृश हैं । चन्द्रमाके सदृश सबको उनका दर्शन प्रिय है । वे क्रोधमें कालाग्निके समान और क्षमामें पृथ्वीके समान हैं ॥ १८ ॥ त्यागमें कुबेरके सदृश, सत्यमें दूसरे धर्मराजके समान तथा सब गुणोंसे युक्त हैं । पुत्रोंमें बड़े, प्रजाके हितमें संलग्न एवं प्रजाप्रिय उन सत्यपराक्रम रामकी राजा दशरथने प्रजाके हितके लिए युवराज बनानेका निश्चय किया । श्रीरामके अभिषेककी तैयारी देखकर पूर्वकालमें वरप्राप्त दशरथकी प्यारी रानी कैकेयीने उसी समय अपने पतिसे रामके निर्वासन तथा भरतके राज्यअभिषेकका वर माँगा ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ तदनुसार

स जगाम वनं वीरः प्रतिज्ञामनुपालयन् । पितुर्वचननिर्देशात्कैकेय्याः प्रियकारणात् ॥२४॥
 तं व्रजतं प्रियो भ्राता लक्ष्मणोऽनुजगाम ह । स्नेहादिनयसंपन्नः सुमित्रानन्दवर्द्धनः ॥२५॥
 भ्रातरं दयितो भ्रातुः सौभ्रात्रमनुदर्शयन् । रामस्य दयिता भार्या नित्यं प्राणममा हिता ॥२६॥
 जनकस्य कुले जाता देवमायायैव निर्मिता । सर्वलक्षणसपत्ना नारीणामुत्तमा मधुः ॥२७॥
 सीताऽप्यनुमता रामं शशिनं रोहिणी यथा । वीरैरनुगतो दूरं पित्रा दक्षरथेन च ॥२८॥
 शृङ्गवेरपुरे सृतं गङ्गाकुले व्यमर्जयत् । गुहमासाद्य धर्मात्मा निपादाधिपतिं प्रियम् ॥२९॥
 गुहेन सहितो रामो लक्ष्मणेन च सीतया । ते वनेन वनं गत्वा नदीस्तीर्त्वा बहुदकाः ॥३०॥
 चित्रकूटमनुग्राप्य भरद्वाजस्य आश्रयान् । गम्यमावसथं कृत्वा रममाणौ वने प्रयः ॥३१॥
 देवगंधर्वसंकाशास्तत्र ते न्यवसन्सुखम् । चित्रकूटं गते रामे पुत्रशोकात्तुरसादा ॥३२॥
 राजा दक्षरथः स्वर्गं जगाम विलपन्सुतम् । गते तु तस्मिन् मरतो वसिष्ठप्रमुखैर्द्विजैः ॥३३॥
 नियुज्यमानो राज्याय नैच्छद्राज्यं महाबलः । स जगाम वनं वीरो रामपादप्रपादकः ॥३४॥
 गत्वा तु सुमहात्मानं रामं सत्यपराक्रमम् । अयाचद्भ्रातरं राममार्यभावपुरस्कृतः ॥३५॥
 त्वमेव राजा धर्मज्ञ इति रामं वचोऽभवीत् । रामोऽपि परमोदारः सुमुखः सुमहायशाः ॥३६॥
 न चच्छत्पितुरादेशाद्वाज्यं रामो महाबलः । पादुके चास्य राज्याय न्यासं दत्त्वा पुनःपुनः ॥३७॥
 निवर्तयामास ततो भरतं भरताग्रजः । स काममनवाप्यैव रामपादावुत्सृशन् ॥३८॥
 नन्दिग्रामेऽकरोद्राज्यं रामागमनकांक्षया । गते तु भरते श्रीमान्सत्यसन्धो जितेन्द्रियः ॥३९॥
 रामस्तु पुनरालक्ष्य नागरस्य जनस्य च । तत्रागमनमेकाग्रो दण्डकान्प्रविवेश ह ॥४०॥

सत्यवचनरूपी धर्मके वनवनमें बंधे हुए राजा दक्षरथने अपने प्रिय पुत्र रामको निर्वासित कर दिया ॥ २३ ॥
 वीर राम माता कैकेयीको भलाई और पिताको प्रतिज्ञाका पालन करनेके निमित्त उनकी आज्ञा मानकर
 वनको चल दिये ॥ २४ ॥ सुमित्राका आनन्द बढ़ानेवाले स्नेह और दिनय-संग्रह प्रिय भ्राता लक्ष्मणने
 भाईको वन जाते देखा तो उन्होंने भी स्नेहवश उनका साथ दिया ॥ २५ ॥ सुमित्रानन्दन लक्ष्मण भली
 भाँति भ्रातृत्व निभाते थे और रामकी भार्या सीता सदैव रामको प्राणके प्रिय समझती हुई उनके
 हितमें संलग्न रहती थीं । वह जनकके कुलमें उत्पन्न, देवमायासे निमित्त, सभी शुभ लक्षणोंसे युक्त एवं
 नारियोंमें एक उत्तम नारी थीं ॥ २६ ॥ २७ ॥ जिस तरह रोहिणी चन्द्रमाका अनुगमन करती है, सीताने
 भी रामका उसी प्रकार अनुगमन किया । उस समय पुरवासी तथा पिता दक्षरथ भी थोड़ी दूरतक रामके
 साथ गये ॥ २८ ॥ गंगाके किनारे शृंगवेरपुरमें पहुँचकर रामने सारथी (सुमन्त्र) को बिदा किया और
 निपादोंके राजा धर्मात्मा एवं प्रिय मित्र निपादराजसे भेंट की ॥ २९ ॥ निपाद, लक्ष्मण और सीताके साथ-साथ
 राम एक वनके दूसरे वन बड़ी-बड़ी नदियोंको पार करके भन्द गयी आज्ञासे चित्रकूट वनमें
 एक सुन्दर आश्रम बनाकर रहने लगे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ देवताओं तथा गन्धर्वों आदिके समान तीनों वहाँ
 आनन्द रह रहे थे । रामके वन जाते ही पुत्रवियोगने शोकात्तुर राजा दक्षरथ पुत्र रामके लिए विलाप करते करते
 अपने प्राण त्याग दिये । उनके देहावसानके अनन्तर वसिष्ठादि पुत्र्य मुख ब्राह्मणोंने राज्य ग्रहण करनेके लिए
 भरतसे बहुत कहा, किन्तु और भरत राज्यके प्रति अनिच्छा प्रकट करके रामको मनानेके लिए वनको चल दिये
 ॥ ३२-३४ ॥ भरतने पराक्रमी रामचन्द्रजीसे प्रार्थना करते हुए कहा—हे धर्मज्ञ ! आप ही अयोध्याके राजा
 बनें । परमोदार, सुमुख और कोटिशाली रामचन्द्रने पिताकी आज्ञाका पालन अपना धर्म समझकर राज्यसे
 अनिच्छा प्रकट की और भरतको समझाकर राज्यके लिये अपनी पादुका से और लौटनेका बार-बार अनुरोध
 किया ॥ ३५-३७ ॥ इस प्रकार रामने भरतको लौटाया और अपनी कामना सफल होते न देख भरत भी
 रामके चरणोंका स्पर्श करके अयोध्या लौट आये ॥ ३८ ॥ तदनन्तर रामके आगमनको प्रतीक्षा करते हुए
 भरत नन्दिग्राममें रहकर करने लगे । भरतके चले जानेपर सत्यसंध, श्रीमान् एवं जितेन्द्रिय

प्रविश्य तु महारण्यं रामो राजीवलोचनः । विरोधं गच्छसं हत्वा अश्वमेधं ददर्श सः ॥ ४१ ॥
 सुतीक्ष्णं चाप्यगस्त्यं च ह्यगस्त्यभ्रान्तं तथा । अगस्त्यवचनाच्चैव जग्राहेद् शराग्रम् ॥ ४२ ॥
 खड्गं च परमप्रीतस्तूणी चाक्षयसायकौ । वनस्तस्य रामस्य वने वनचरैः सह । ३ ॥
 अण्डपोऽभ्यागमन्मर्वे वधायामुग्धनाम् । न तेषां प्रतिशुभ्रान् राक्षसानां वधाय च ॥ ४४ ॥
 प्रतिहातश्च रामेण वधः संयति रजाम् । कर्षमाणमग्निकृशानां दण्डकारण्यवामिनाम् ॥ ४५ ॥
 तेन तत्रैव वसता जनस्थाननिवासिनी । शिथिलिता शूर्पणखा गच्छसी कामरूपिणी ॥ ४६ ॥
 ततः शूर्पणखायाकषादुद्युक्तान् सर्वराक्षसान् । तत्र विप्रश्यं चैव दूषणं चैव राक्षसम् ॥ ४७ ॥
 निजघान गणं रामस्तेषां चैव पदानुगान् । वने तस्मिन्निवसतां जनस्थाननिवासिनाम् ॥ ४८ ॥
 राक्षसां निहतान्यासन्महाम्राणि चतुर्दशः । ततो जगन्निवधं श्रुत्वा रावणः क्रोधमूर्छितः ॥ ४९ ॥
 सहायं वरयामास मारीचं नाम राक्षसम् । राक्षमाणः मुग्धशो मारीचेन स रावणः ॥ ५० ॥
 न विरोधो बलवता क्षमो रावण तेन ते । अनादृत्य तु तद्वाक्यं रावणः कालचोदितः ॥ ५१ ॥
 जगाम सहमारीचस्तस्याश्रमदं तदा । तेन मायाविना दृग्मपवाह्यं नृपात्मजौ ॥ ५२ ॥
 जहार भार्यां रामस्य हत्वा गृध्रं जटायुम् । गृध्रं च निहतं दृष्ट्वा हतां श्रुत्वा च मैथिलीम् ॥ ५३ ॥
 राघवः शोकसंतप्तो विललापाकुलोद्विगः । ततस्तेनैव शोकेन गृध्रं दग्ध्वा जटायुम् ॥ ५४ ॥
 मार्षमाणो वने सीतां राक्षसं स ददर्श ह । कवचं नारमरुपेण विकृतं चोद्दर्शनम् ॥ ५५ ॥
 तं निहत्वा महाबाहुर्देहाहं स्वयंतश्च मः । स चाप्य रुधयामास शबरीं धर्मचारिणाम् ॥ ५६ ॥
 श्रमणां धर्मनिपुणामभिगच्छति राघव । सोऽश्मच्छन्महातेजाः शबरीं शत्रुघ्नवनः ॥ ५७ ॥
 श्वर्यां पूजितः सस्यग्रामो दशरथात्मजः । पंथातीरे हनुमता सहितो वानरण ह ॥ ५८ ॥

राम वहाँ निध्न नगरवासियोंका भाइ [५८] देवदत्त दण्डकारण्यका चल पड़े ॥ ३९ ॥ ४० ॥ कमलके सहस्र नेत्रोंवाले रामने उस महापर्वमें जाकर विनाश राक्षसोंका मारा और शत्रुघ्न अपिसे मिले ॥ ४१ ॥ उस वनमें सुते धन, अगस्त्य तथा अश्वत्थके भार्य इत्यादिसे मिले । वहाँ ही अगस्त्यके दिने हुए इन्द्रधनुष, तलवार, तरकस तथा बाण ग्रहण किये और वनचरोंके साथ निजान करने लगे ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ एक दिन वहाँके सब अपि राक्षसोंके वधका अनुरोध करनेके लिए रामके पास आये । तदनन्तर रामने दण्डकारण्यनिवासी उन अग्निके समान तेजस्वी कृष्णोंके समस्त पृथ्वीके सारे राक्षसोंका वध करनेका प्रतिज्ञा की ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ वहाँ ही रामने जनस्थाननिवासिनी तथा कामरूपिणी राक्षसी शूर्पणखाको नाकवान काटकर कुरूप किया ॥ ४६ ॥ तदनन्तर रामने शूर्पणखा डाग भेजे हुए मेला नहिंत्त पुर, शिथिला तथा दुषणादि राक्षसोंका मारा और जनस्थाननिवासी चौदह हजार राक्षसोंको हातका नाकमें पड़वा दिया । इस प्रकार अपनी जातिका सहार होते भुनकर रावण क्रोधसे मूर्छित हो गया और अपने सहायताके लिए मारीच नामके राक्षसको बुलाया । मारीचने अनेक प्रकारसे समझात हुए कहा — हे रावण ! वधवानके साथ विरोध करना ठीक नहीं है, किन्तु कालचैरित रावणने उसका एक भी वात्त नहीं मारी और उसके साथ रामके आश्रमपर पहुँचा । वहाँ वह मायावी मारीच मृग बनकर राजा दशरथके पुत्र राम और लक्ष्मणको दूर भगा ले गया ॥ ४७-५२ ॥ इसी बीचमें रावण जटायु नामके गिड़की मारकर रामको सीताको हरा ले गया । गिड़की मरा हुआ देख एवं सीताका हरण सुनकर राम शोकसे संतप्त होकर विलाप करने लगे और उसी शोकावस्थामें जटायुको अपने हाथोंसे जलाकर परम पद पहुँचाया ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ वनमें सीताको ढूँढ़ने-ढूँढ़ते रामने एक महाभयङ्कर तथा विचित्र रूपवाले कवच नामके राक्षसको देखा ॥ ५५ ॥ महाबाहु रामने उसे मारकर जला दिया । जब वह स्वर्गको जाने लगा तो उसीने धर्मचारिणी शबरीका स्तन वचाया ॥ ५६ ॥ और कहा—हे राघव ! वह धर्मनिपुणा श्रमणा नामकी शबरी है, आप उसके पास जाइए । तदनुसार महातेजस्वी एवं शत्रुविनाशकारी रामचन्द्रजी शबरीके पास गये ॥ ५७ ॥ शबरीने रामका बड़ा आदर किया । वहाँसे पन्थासरपर जाकर राम हनुमान्जीसे मिले ॥ ५८ ॥

हनुमद्वचनाच्चैव सुग्रीवेण समागतः । सुग्रीवाय ■ तत्सर्वं शंसद्रामो महाबलः ॥५९॥
 आदितस्तद्यथावृत्तं सीतायाश्च विशेषतः । सुग्रीवश्चापि तत्सर्वं श्रुत्वा रामस्य वानरः ॥६०॥
 चकार मरुथं रामेण प्रार्थयत्पुनःस्वितेन च । प्रतिज्ञातं च रामेण तदा वालिवश्च प्रति ॥६१॥
 रामायावेदितं सर्वं प्रणयाद्दुःखितेन च । प्रतिज्ञातं च रामेण तदा वालिवश्च प्रति ॥६२॥
 वालिनश्च यत्नं तत्र कथयामास वानरः । सुग्रीवः शङ्कितश्चासीन्नित्यं वीर्येण राघवे ॥६३॥
 राघवप्रत्ययार्थं तु दुन्दुभेः कायमुत्तमम् । दर्शयामास सुग्रीवो महापर्वतसन्निभम् ॥६४॥
 उत्समयित्वा महाबाहुः प्रेक्ष्य चास्थि महाबलः । पादोगुष्ठेन चिक्षेप संपूर्णं दशयोजनम् ॥६५॥
 विभेदं च पुनस्तालान्सप्तैकेन महेषुणा । गिरिं रत्नातलं चैव जनयन्प्रत्ययं तदा ॥६६॥
 ततः प्रीतमनास्तेन विधस्तः ■ महीपतिम् । किष्किन्धां रामसहितो जगाम च गुहां प्रति ॥६७॥
 ततोऽगर्जद्गरिवरः सुग्रीवो हेषपिंगलः । तेन नादेन महता निर्जगाम हरीश्वरः ॥६८॥
 अनुमान्य तदा तारां सुग्रीवेण समागतः । निजघातं च तत्रैनं शूरेणैकेन राघवः ॥६९॥
 ततः सुग्रीववचनाद्वा वालिनमाहवे । सुग्रीवमेव तद्राज्ये राघवः प्रत्यपादयत् ॥७०॥
 स च सर्वान्समानीय वानरान्वानरर्षभः । दिशः प्रस्थापयामास दिदृक्षुर्जनकात्मजाम् ॥७१॥
 ततो गृध्रस्य वचनान्संपातेर्दनुमान्वली । जनयोजनविस्तीर्णं पुप्लुवे लवणार्णवम् ॥७२॥
 तत्र लङ्कां समासाद्य पुरीं रावणपालिताम् । ददर्श सीतां ध्यावन्नीमशोकवनितां गताम् ॥७३॥
 निवेदयित्वाऽभिज्ञानं प्रशुचिं च निवेद्य च । समासाद्य च वैदेहीं मर्दयामास तोरणम् ॥७४॥
 पञ्च सेनाग्रगान्धवा सप्त मन्त्रिसुतानपि । शूयभक्षं विनिष्पिष्य ग्रहणं समुपागमत् ॥७५॥

हनुमान्जीके कहनेपर राम सुग्रीवसे मिले और महाबली रामचन्द्रजीने उसे ■ सारा हाल कह सुनाया ॥ ५९ ॥ रामने भी सुग्रीवसे अपना सब वृत्तान्त कहा और सीताहरणका हाल विशेषरूपसे वर्णन किया । सो सुनकर सुग्रीवने प्रसन्नचित्तसे अग्निको साक्षी देकर रामसे मित्रता की और वानरराज सुग्रीवने भी वालिके साथ अपने बैरका हाल बतलाया ॥ ६० ॥ ६१ ॥ दुःखित सुग्रीवने बड़ी नम्रता ■ प्रेमपूर्वक रामसे अपना ■ हाल कहा । यह सुनकर रामने वालिको मारनेका प्रण किया ॥ ६२ ॥ तब सुग्रीवने वालिके बलका वर्णन किया । क्योंकि उसे सन्देह था कि ■ वालिको मार सकेंगे या नहीं ॥ ६३ ॥ तत्पश्चात् सुग्रीवने रामकी परोक्षा देनेके लिए पर्वतके ■ लम्बा चौड़ा दुन्दुभि राजसका कट्वाल दिखाया ॥ ६४ ॥ महाबाहु रामने मुक्कराकर उसे देखा और उस राजसकी ठठरीको ■ अंगूठेसे उठाकर उस वोजन दूर फेंक दिया ॥ ६५ ॥ फिर साठ तालके वृक्षोंको एक ही बाणसे काट तथा पर्वत और रसातलको भेदकर सुग्रीवके हृदयमें यह दृढ़ विश्वास उत्पन्न कर दिया कि हम वालिको मारनेमें समर्थ हैं ॥ ६६ ॥ रामके पराक्रमको देखा तो विश्वास करके सुग्रीव बड़ी प्रसन्नतापूर्वक रामके साथ किष्किन्धा नामके पर्वतकी गुफाके द्वारपर पहुँचा ॥ ६७ ॥ वहाँ पहुँचकर सुवर्णके समान पोतवर्ण वानरश्रेष्ठ सुग्रीवने घोर गजंजा की । उस मयङ्कुर गजंजाकी सुनते ही बन्दरोंका राजा वालि किष्किन्धाके बाहर निकल ■ ॥ ६८ ॥ उस ■ ताराकी ■ मानते हुए और उसका अनादर करके वालि सुग्रीवके साथ युद्ध करनेके लिए आया और एक ही बाणसे उसे रामने यमपुर पहुँचा दिया ॥ ६९ ॥ सुग्रीवसे की हुई प्रतिज्ञाके अनुसार वचनबद्ध होनेके कारण रामने वालिकी मृत्युके पश्चात् किष्किन्धाका राज्य सुग्रीवको दे दिया ॥ ७० ॥ इसके अनन्तर कपिराज सुग्रीवने सीताका पता लगानेके लिए दसों दिशाओंमें बतसे बन्दरोंको भेजा ॥ ७१ ॥ सम्पाती गिद्ध द्वारा सीताका पता पाकर महाबली हनुमान्ने सो योजन विरहून सारसपुद्गको लाँघकर पार किया ॥ ७२ ॥ रावणसे सुरक्षित लङ्कामें आकर हनुमान्ने अशोक वनमें बंटी तथा रामका वयन करती हुई सीताको देखा ॥ ७३ ॥ तब हनुमान्जीने सीतासे रामका सारा समाचार एवं सन्देश कहा । सीताको आश्वासन देकर रणमें पाँच सेनापतियों, साठ मन्त्रिपुत्रों और परमवीर भक्त्यकुमारको मारकर स्वयं ब्रह्मपाशमें बंध गये

अस्त्रेणोन्मुक्तमात्मानं ज्ञात्वा पैतामहाद्वरात् । मर्दयन्राक्षसाम्भीरो मंत्रिणस्तान्पटञ्जया ॥७६॥
 ततो दग्ध्वा पुरीं लङ्कां क्रते सीतां च मैथिलीम् । रामाय प्रियमाख्यातुं पुनरायान्महाकपिः ॥७७॥
 सोऽभिगम्य महात्मानं कृत्वा रामं प्रदक्षिणम् । न्यवेदयद्मंथारमा दृष्ट्वा सीतेति तत्त्वतः ॥७८॥
 ततः सुग्रीवसहितो गत्वा तीरं महोदधेः । समुद्रं क्षोभयामास शरैरादित्यसन्निभैः ॥७९॥
 दर्शयामास चात्मानं समुद्रः तरितां पतिः । समुद्रवचनाच्चैव नलं सेतुमकारयत् ॥८०॥
 तेन गत्वा पुरीं लङ्कां हत्वा राक्षसाहवे । रामः सीतामनुप्राप्य परां ब्रह्मायुषागमत् ॥८१॥
 तानुवाच ततो रामः पुरुषं जनसंसदि । अमृष्यमणा सा सीता विवेष्व ज्वलनं प्रति ॥८२॥
 ततोऽग्निवचनात्सीतां ज्ञात्वा विगतकन्मणा । कर्मणा तेन महता त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥८३॥
 सदेवपिंगणं तुष्टं राघवस्य महात्मनः । वधौ रामः सुमंतुष्टः पूजितः सर्वदेवतैः ॥८४॥
 अभिषिच्य तु लंकायां राक्षसेन्द्रं विभीषणम् । कृतकृत्यस्तदा रामो विज्वरः प्रमुमोद ह ॥८५॥
 देवताभ्यो वरं प्राप्य समुत्थाप्य च वानरान् । अयोध्यां प्रविश्य रामः पुष्पकेन सहवृत्तः ॥८६॥
 भरद्वाजाश्रमं गत्वा रामः सत्यपराक्रमः । भरतस्यानिके रामो हनुमन्तं वषमर्जयत् ॥८७॥
 पुनराख्यायिकां जल्पन्सुग्रीवसहितस्तदा । पुष्पकं तन्ममारुह्य नन्दिग्रामं ययौ तदा ॥८८॥
 नन्दिग्रामे जटां हित्वा भ्रातृभिः सहितोऽनघः । रामः सीतामनुप्राप्य राज्यं पुनरवाप्तवान् ॥८९॥
 न पुत्रमरणं केचिद्द्रक्ष्यन्ति पुरुषाः कश्चित् । नार्यश्चाविधवा नित्यं भविष्यन्ति पतिव्रताः ॥९०॥
 ग्रहष्टमुदितो लोकस्तुष्टः पुष्टः सुधार्मिकः । निरामयो क्षरोगश्च दुर्मिश्रमयवर्जितः ॥९१॥
 नाग्निजं भयं किञ्चिन्नाप्सु मज्जन्ति जन्तवः । न वातजं भयं किञ्चिन्नापि ज्वरकृतं तथा ॥९२॥
 ■ चापि क्षुद्रयं तत्र न तस्करभयं तथा । नगराणि ■ राष्ट्राणि धनधान्ययुतानि च ॥९३॥

॥ ७४ ॥ ७५ ॥ इसके बाद ब्रह्माके वरदानसे उस ब्रह्मावतने अनेको मुक्त देवकर हनुमान्ने रावणके मन्त्रियों तथा बड़े बड़े राक्षसोंको मारा । ■नन्तर सीताके निवासस्थानको छोड़ सारी लङ्का जलाकर रामको सीताका वृत्तान्त सुनानेके लिये लौट आये ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ यही हनुमान्ने महारामा रामचन्द्रजीके पास जाकर उनकी प्रदक्षिणा की और लङ्काका सारा वृत्तान्त सुना दिया ॥ ७८ ॥ तदनन्तर राम सुग्रीवके साथ समुद्रतटपर गये और सूर्यके समान अपने तेजस्वी दावोंसे समुद्रकी अभिषन् किया ॥ ७९ ॥ तब नदियोंका पति समुद्र हाथ जोड़कर रामके समक्ष आया और उसकी सलाहसे रामने नल द्वारा सेतु तैयार करवाया ॥ ८० ॥ उस सेतुसे लङ्कामें पहुँचकर रामने रावणको मारा । फिर सीताको पाकर अत्यन्त लज्जित हुए ॥ ८१ ॥ उस समय रामने धरी सभामें सीताको कुछ बहुत वचन कहे । जिनमें सङ्गमें असमर्थ होकर परम सती सीता अग्निमें प्रविष्ट हो गयी ॥ ८२ ॥ तदनन्तर अग्निके कथनानुसार रामने सीताको निष्प्राप्य समक्षा । रामके इस कर्मसे सचराचर त्रिलोकी, देवता तथा ऋषि सब लोग प्रसन्न हुए । प्रसन्न हृदय राम देवताओंसे पूजित होकर बहुत शोभित हुए ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ तदनन्तर लङ्कामें राक्षसश्रेष्ठ विभीषणको राजतिलक देकर राम सन्तापसे मुक्त, कृतकृत्य एवं आनन्दित हुए ॥ ८५ ॥ वहाँ देवताओंसे वर पाकर वानरों तथा प्रियजनोंके साथ पुष्पक विमानसे अयोध्याको लौट पड़े ॥ ८६ ॥ भरद्वाजके आश्रम प्रयागमें पहुँचकर सत्यपराक्रम रामने हनुमान्को भरतके पास भेजा ॥ ८७ ॥ फिर परस्पर बातचीत करते हुए सुग्रीवके साथ पुष्पकविमानपर बैठे राम नन्दिग्रामको चले ॥ ८८ ॥ वहाँ पहुँच तो भाइयोंके साथ ■ त्यागकर निष्प्राप्य रामने सीताको पाकर पुनः राज्य प्राप्त किया ॥ ८९ ॥ रामके राज्यमें लोग हृष्ट, पुष्ट, सन्तुष्ट, सुखी, धार्मिक, निरोग तथा दुर्मिश्र-आदिके भयसे रहित रहते थे । उस समय रिजके सामने किसीके पुत्रको मृत्यु नहीं होती थी । उस राज्यकी स्त्रियाँ सौभाग्यवती एवं पतिव्रता होती थीं ॥ ९० ॥ ९१ ॥ उस समय अग्निका भय, जलमें डूबनेका भय, वायुसंवेगी भय, ज्वरआदिके भय, पेटकी चिन्ता तथा चोर आदिके भय नहीं रहता था । सारे नगर और सारे राष्ट्र धन-धान्यपूर्ण थे ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ उस राज्यमें सत्ययुगकी भाँति सब लोग सर्व सुखी रहते थे । सी

नित्यप्रमुदिताः सर्वे यथा कृतयुगे तथा । अश्वमेधशतैरिष्टा तथा बहुसुवर्णकैः ॥९४॥
 भर्वा कोट्यायुतं दत्त्वा ब्रह्मलोकं गमिष्यति । असंख्येयं धनं दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यो महायज्ञाः ॥९५॥
 राजवंश्यान् शतगुणान्स्थापयिष्यति राघवः । चातुर्वर्ण्यं च लोकेऽस्मिन्स्वस्वे लोके नियोक्ष्यति ॥९६॥
 दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च । रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति ॥९७॥
 इदं पवित्रं पापघ्नं पुण्यं वेदैश्च संमितम् । यः पठेद्रामचरितं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥९८॥
 एतदाख्यानमायुष्यं पठन् रामायणं नरः । सुपुत्रपीत्रः नमजः प्रेक्ष्य स्वर्गं महीयते ॥९९॥

पठन् द्विजो वागृषभत्वमीयात्स्पात्सत्रियो भूमिपतिस्त्वमीयान् ।

वणिग्जनः पण्यपतिस्त्वमीयाज्जनश्च शूद्रोऽपि महत्त्वमीयात् ॥१००॥

एवं श्लिष्य नारदेन मुनिना यच्च धीमता । वाल्मीक्ये वेदवाक्यैर्याचिन्मात्रं विवेदितम् ॥१०१॥
 तावदेवार्थमादाय श्लोकबद्धं मनोरमम् । वाल्मीकिना कृतं पूर्वं लघुरामायणमभिधम् ॥१०२॥
 शतश्लोकमितं स्वीयकवितायां च तन्मया । तत्राग्रे कथितं सर्वं श्रवणान्पुण्यवर्द्धनम् ॥१०३॥
 ममदक्षवरेणैव सर्वं ज्ञात्वा सर्वं मुनिः । शतकोटिमितां रामक्रीडां श्लोकेर्वचन्ध इ ॥१०४॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे मनोहरकाण्डे लघुरामायण नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः

(कौसल्यादि माताभोक्ता वैकुण्ठवास)

श्रीनारद उवाच

अथैकदा समामप्ये पौरा ज्ञानपदादयः । ज्ञात्वा रामं परात्मानं पप्रच्छुर्विनयान्विताः ॥ १ ॥
 राम राम महाराज किञ्चिदुपदिशस्व नः । विषयसक्तचित्तानां ज्ञानं येन भविष्यति ॥ २ ॥
 इति तेषां वचः श्रुत्वा राघवः सम्मितोऽब्रवीत् । निरन्तरं हृषदेशी वृष्णाभिः अपते न किम् ॥ ३ ॥
 प्रहरे प्रहरे रात्री मदूर्तः क्रियते सदा । अस्तु तच्च तव पूर्वदिदानीं सकलैर्जनैः ॥ ४ ॥

अश्वमेध यज्ञ करके सुवर्णयुक्त अनेक कोटि गोएँ विविधपूर्वक विद्वान् ब्राह्मणोंको देकर राम हजारों राजाओंके वंशकी स्थापना करके चारों वर्णोंको अपनेअपने धर्मपर नियुक्त करने ॥ ९४-९६॥ ग्यारह हजार वर्ष तक राज्य करके राम अपने ब्रह्मलोककी चले जायेंगे ॥ ९७॥ पवित्र, पापनाशक, पुण्यकारी तथा वेदसंमत इस रामचरितको जो प्राणी पढ़ेगा, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जायगा ॥ ९८ ॥ यह रामायणकी कथा आयु-मखिनी है । इसको पढ़नेसे मनुष्य पुनः पीरोसे शोभित होकर मरनेके बाद स्वर्गलोकमें पूजित होता है ॥ ९९॥ इस लघु रामायणको पढ़नेसे ब्राह्मण विद्वान् होता है, क्षत्रिय भूमिका स्वाभी होता है, वैश्य ध्यापरमें सफल होता है और शूद्र महत्त्व पाता है ॥ १००॥ ॥कार है शिष्य । बुद्धिमान् नारदने वेदवाक्योंके आधारपर वाल्मीकि-जीसे जितना रामचरित्र कहा था ॥ १०१ ॥ उसका ही अर्थ लेकर वाल्मीकिने पहले १०० श्लोकोंसे श्लोकबद्ध करके अपनी कवितामें इस लघुरामायणकी रचना की । सो मैंने तुम्हारे आगे कहा । इसे सुननेसे पुण्यकी वृद्धि होती है ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ मुनिराज वाल्मीकिने ब्रह्माजीके दिये हुए वरदानके प्रभावसे सब कुछ जानकर ही करोड़ श्लोकोंमें रामचरितका वर्णन किया ॥ १०४ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयकृत उद्देशनाभाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीरामदासने कहा—एक दिन हमारे गुरुवासियो तथा जनपदवासियोने रामको परमात्मा समझकर विनयपूर्वक कहा—॥ १ ॥ हे राम ! हे महाराज ! हम लोगोंकी कुछ उपदेश दोजिए । जिससे हम विषयसक्त मनवालोंको भी ज्ञान प्राप्त हो जाय ॥ २ ॥ उनको बात सुनकर नुसकाते हुए रामने कहा—क्या नित्य आप लोग हमारे उपदेशोंकी नहीं सुनते ? ॥ ३ ॥ रात्रिके समय पहर-पहरपर मेरे दूत उपदेश देते

अद्य तद्बचनं निशायां बुद्धिर्बलम् । युष्मा विचार्य पञ्चान्मां प्रष्टव्यं यच्च रोचते ॥ ५ ॥
 तथेति रामवचनात्सर्वे गत्वा निजं निजम् । गेहं ते स्वस्थचिन्ताश्च स्वस्त्रीभिर्मन्त्रकादिषु ॥ ६ ॥
 दूतवाक्ये दत्तकर्णा राज्ञौ तन्धुरनिद्रिताः । तावत्ते गमदूताश्च सार्द्धयामे सदीपकाः ॥ ७ ॥
 धृनशस्त्रा दण्डहस्ता नानाबाहनमस्थिताः । गजेषु दुन्दुभीन्धृत्वा तथा बाघान्यनेकशः ॥ ८ ॥
 धृत्वा पृथक् पृथङ्नानायानेषु मञ्जुलानि हि । राजमार्गेषु सर्वत्र दीर्घशब्दानुदीरयन् ॥ ९ ॥
 हे जनाः श्रूयतां सर्वे किं मोहेन विनिद्रिताः । नेयं निद्रा समीचीना कदाऽनर्था भविष्यति ॥ १० ॥
 स्वस्थचिन्तास्वयं सर्वे भूत्वा नः श्रूयतां वचः । नवद्वाराण्ययोष्यायामेकं तु लघु वर्तते ॥ ११ ॥
 रामराज्ये भयं नेति कारणाद्द्वाररक्षकैः । दीयन्ते वा ■ दीयन्ते कवाटादीनि वै तदा ॥ १२ ॥
 नार्गला भृंस्तलादीनि भन्ति द्वारेषु भो जनाः । कृष्णवर्णो महाशूरो याम्प्याशायां स्थितस्त्विति ॥ १३ ॥
 श्रूयते न कदा दृष्टः केनापि ध्रुवि साग्रतम् । एवं मन्यपि नोपेक्षा रोगशान्त्यै प्रकायते ॥ १४ ॥
 गुप्तरूपास्तस्य दूताः साकेतै विचरन्ति हि । न ज्ञायते कदाऽस्माभिर्नागरा इव संस्थिताः ॥ १५ ॥
 आगतध्वन्परो दूनस्त्वेके दुर्गे तदा क्षणात् । भेदं कृत्वा तु सर्वत्र दुर्गपालो निहन्यते ॥ १६ ॥
 इत्थं श्रुतं मदाऽस्माभिस्ततस्स्वस्थां महाम्भशः । वर्तन्ते परदूताश्च नानावेषधरा जनाः ॥ १७ ॥
 जीवत्स्वयं चिरं राजा एवं मन्यपि नो भयम् । अयोध्यायां जायते हि तच्छलं को वदिष्यति ॥ १८ ॥
 एभिर्दूतैस्तस्मात् राज्ञ आत्मागमस्य चात्र हि । करणीयं प्रभोः किं हि सच्चिदानन्दरूपिणः ॥ १९ ॥
 तेषां भयं तु युष्माकं दुर्बलानां सदाऽस्ति हि । अजापुत्रो दुर्बलोऽयं स्वयं दीयते जनैः ॥ २० ॥
 दत्तो बलिस्तु सिंहस्य कदा केन भूतोऽयं न । अतो यूयं हीनबलाः किं निशायां विनिद्रिताः ॥ २१ ॥

रहते हैं, सो क्या आप नहीं जानते ? अस्तु, जो समय ■ सो गया । आज सब लोग रातको घ्यानसे मेरे दूतोंकी बातें सुनें और उनपर विचार करें । ■ बाद ■ आप लोगोंकी इच्छा हो सो पूछिएगा ॥ ४ ॥ ५ ॥
 "तथास्तु" कहकर ■ सब अपने-अपने घर गये और अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ पलंगपर पड़े-पड़े जागते हुए रामके दूतोंके गहरा कान लगाये रहे । उद्द पहर रात बातनेपर हाथोंमें दीपक लिये, दण्ड तथा अनेक प्रकारके शस्त्र धारण किये, एक हाथीपर दुन्दुभी तथा विविध प्रकारके बाजे बजाते हुए गलियों तथा राजमार्गोंपर घूमते और उन बाजोंका घोर निनाद करते हुए वे दूत आये और कहने लगे—॥ ६-९ ॥
 हे गुरुवासिन्धो ! क्या तुम मोहनिद्रामें पड़े सो रहे हो ? यह नींद अच्छी नहीं है । इससे कभी बड़ा भारी अनर्थ हो जायगा । आज तुम लोग स्वस्थ चिन्तासे मेरी बात सुना । इस अयोध्यामें कुल नौ द्वार हैं और एक छोटा सा दसवां द्वार भी है ॥ १० ॥ ११ ॥ रामके राज्यमें कोई भय नहीं ■ । इस स्थानसे द्वारपाल कभी द्वार बन्द करते हैं, कभी नहीं भी बन्द करते ॥ १२ ॥ ■ द्वारोंमें न कोई अर्गलादण्ड हैं और न जंजीरें ही लगी है । सुनते हैं कि नगरकी दक्षिण ओर कोई एक ■ घोर रहता है, किन्तु इस नगरमें आज तक उसे किसीने नहीं देखा । वह होने हुए भी रोगशान्तिके विषयमें उपेक्षा न करना चाहिए ॥ १३ ॥ १४ ॥ उसके दूत गुप्तरूपमें अर्धरात्रिमें घूमते रहते हैं । यदि हम लोग असावधान रहे और उसका एक भी दूत किलेमें घुस आया तो वह शत्रुभक्तके भीतर हमारा भेद लेकर सब दुर्गपालोंको मार डालेगा ॥ १५ ॥ १६ ॥ हमने यह भी सुना है कि उस चारके हजारों दूत नाना प्रकारके वेश धारण करके घूमते हैं ॥ १७ ॥ हमारे राजा राम विचित्रजाकी हैं । जिनके प्रतापसे उन शत्रुओंके इतना करनेपर भी कोई भय नहीं है । उन रामके बलका वर्णन कौन कर सकता है ॥ १८ ॥ शत्रुके दूत इन आत्ममाराम और सच्चिदानन्दस्वरूप रामका बग कर सकते हैं ■ । १९ ॥ हाँ, उन दूतों ■ यदि कुछ भय है तो वह तुम्हारे जैसे दुर्बलोंका है । ससारी लोग दुबले जीव बकरेका ही बलिदान करते हैं ॥ २० ॥ आज तक कहीं यह नहीं सुना गया किसीने सिंहकी बलि दी हो । इस प्रकार निर्वल होकर भी तुम लोग रातको सोते हो ? ॥ २१ ॥

कदा कृत्वाऽथ ते मेदं चोरमत्रानयति हि । स कालो जायते नैव तस्माभिद्रा शुभा न हि ॥२२॥
 स्वस्थचित्तास्त्यक्तनिद्रास्त्वस्यांपुर्यामइनिशम् । युषं भूत्वा सदा खड्गः शितो धार्यः स्वसन्निधौ ॥२३॥
 कवचानि शरीरेषु सदा धार्याणि भो जनाः । धैर्यं धृत्वा न मेघव्यं यो जागर्ति निरन्तरम् ॥२४॥
 अयोध्यायां न तस्यास्ति चांगदपि कदा भयम् । नैतद्विस्मरणीयं हि सदाऽस्माकं वचः शुभम् ॥२५॥
 सावधानाः सावधानाः सावधानाः सदा जनाः । भवध्वं चात्र साकेतपुरि स्वाहि निरन्तरम् ॥२६॥
 इत्युक्त्वा ते राजदूताः कृत्वा दृन्दुभिनिःस्वनान् । वादयामासुर्वाद्यानि भञ्जुलानि महान्ति च ॥२७॥
 एवं सर्वत्र पुर्यां ते विचेरु रामसेवकाः । एवं निशायां तैर्दूतैस्त्रिवारं किञ्चिदंतरात् ॥२८॥
 पौराद्या बोधिताः प्रापुर्ज्ञानं तस्य विचारतः । ततः प्रभाते ते सर्वे पौरा जानपदादयः ॥२९॥
 सभायां राघवं नत्वा तुष्टाः प्रोचुः पुरः स्थिताः । राम राजीवपत्राक्ष त्वद्दूतवचनानि हि ॥३०॥
 भूयन्तेऽत्र सदाऽस्माभिर्न विचारस्तदा कुतः । अद्यास्माभिर्निशायां हि त्वद्दूतवचनं शुभम् ॥३१॥
 भुत्वा कुतो विचारो हि इदि बुद्ध्या तवाज्ञया । लब्धं ज्ञानं प्रभोऽस्माभिस्त्वज्ञानं तद्रत्नं हि नः ॥३२॥
 नेदानीमुपदेशं हि त्वभ्यो वाञ्छाम राघव । इति तेषां वचः श्रुत्वा तान् रामः प्राह सस्मितः ॥३३॥
 कथं लब्धं हि तज्ज्ञानं किं भूतं किं विचितितम् । तन्मेऽग्रं कथनीयं हि विस्तरेण यथाक्रमम् ॥३४॥
 इति रामवचः श्रुत्वा जनाः प्रोचुर्मुदान्विताः । शृणु राम महाबाहो यत्तुल्यं ज्ञानमुच्यते ॥३५॥
 मोह एव निशा ज्ञेया निद्रा भ्रांतिस्तु कथ्यते । ज्ञेयं भ्रांतिः भर्माचानाऽनर्थो मृत्युर्ग्रसिष्यति ॥३६॥
 अयोध्येयं स्वीयदेहस्तत्र छिद्राणि वै नव । लघु तन्मस्तके ज्ञेयं दंताद्या द्वाररक्षकाः ॥३७॥
 पश्मौहादीनि द्वारेषु कपाटानीरितानि च । प्राणाश्च ते राजदूताः पुर्यां नित्यमटन्ति हि ॥३८॥

न जाने ■■■ वे तुम्हारा भेद लेकर उस चोरको यहाँ बुला लायें । उस समयको कोई जान नहीं सकता । इसलिए इस ■■■ सोना ठीक नहीं है ॥ २२ ॥ तुम सब निद्रा त्यागकर रात-दिन इस पुरीमें जागते रहो और अपने पास एक तीक्ष्ण खड्ग रखो ॥ २३ ॥ शरीरपर कवच ■■■ करो, हृदयमें धैर्य रखो, किसीसे डरो नहीं । जो ■■■ तरह जागता है ॥ २४ ॥ उसे इस अयोध्यामें उस चोरसे कोई डर नहीं है । हमारे हम हितकर वचनोंको कभी भूलना मत ॥ २५ ॥ हे अयोध्यावासियो ! फिर भो तुमसे कहता हूँ सावधान । सावधान ॥ इस पुरीमें सदा ■■■ होकर रहना ॥ २६ ॥ इतना कहकर वे दूत दुन्दुभी तथा अन्याभ्य मङ्गलमय वाद्य बजाने लगे ॥ २७ ॥ इस रीतिसे दूत रातभर सारी अयोध्यामें धूम-धूमकर थोड़े-थोड़ी देरमें तीन-तीन बार लोगोंको वही बात सुना-सुनाकर ■■■ करते रहे ॥ २८ ॥ दूतोंकी बतायी बातोंपर विचार कर-करके वे ■■■ नगरनिवासी जानो हो गये । सब नागरिक और जनपदवासी सभामें रामके पास पहुँचे और प्रणाम करके कहने लगे-हे राजीवपत्राक्ष राम ! वैसे तो हम नित्य आपके दूतोंकी बातें सुनते थे । किन्तु अभीतक उसपर विचार नहीं किया था । आज रात्रिमें उनकी बातें सुनकर हमने ■■■ आपके आज्ञानुसार विचार भी किया है । हे प्रभो ! अब हमारा ■■■ नष्ट हो गया और ज्ञान प्राप्त हो गया ॥ २९-३२ ॥ हे राघव ! अब मैं आपसे उपदेश नहीं सुनना चाहता । इस तरह उनकी बात सुनकर मुस्कराते हुए ■■■ कहने लगे-॥ ३३ ॥ अच्छा, हमें यह तो बताओ कि ■■■ ज्ञान तुम्हें कैसे प्राप्त हुआ और तुम लोगोंने उसपर किस प्रकार विचार किया है । तो विस्तारसे कह सुनाओ ॥ ३४ ॥ रामका प्रश्न सुनकर ■■■ लक्ष्म प्रसन्नतासे कहने लगे- ■■■ राम ! जो ज्ञान प्राप्त हुआ है, तो हमलोग कहते हैं । सुनिये ॥ ३५ ॥ मोह रात्रि है और भ्रान्ति निद्रा है । यह भ्रान्ति कभी अच्छी नहीं माना जा सकती । इसके फेरमें पड़नेसे अनर्थ यह होगा कि एक न एक दिन मृत्यु घर दवावेगी ॥ ३६ ॥ अयोध्या अपना शरीर है । इसमें मुँह-कान आदि नौ द्वार ■■■ और दसवां द्वार मस्तकमें है । जिसे लोग छद्धारक्ष कहते हैं और दाँत आदि इन द्वारोंके रक्षक हैं ॥ ३७ ॥ आँखकी पलकें और और ओष्ठ आदि इनके दरवाजे हैं । प्राण ही राजदूत हैं । जो सदा इस पुरीमें चक्कर लगाते

आत्मा ज्ञेयस्त्वत्र राजा जीवधेन्द्रियदेवता । ज्ञेयाश्च देहनगरे पौरास्तत्र रघूसम ॥३९॥
 कालो ज्ञेयो महावीरः त्रिदोषाद्या गदाश्च ये । कालस्य सेवका ज्ञेया नागरा इव संस्थिताः ॥४०॥
 दुर्बलास्तेऽत्र जीवाद्यास्तेषामेवास्ति मद्भयम् । किं मोहे पतिता आंताः कालमश्रानयन्ति ते ॥४१॥
 न ज्ञायते मृत्युकालस्तस्माद्भ्रान्तिः शुभाऽत्र न । ज्ञानमेव महासङ्को वैराग्यं तीक्ष्णता त्वसेः ॥४२॥
 सच्छीलं कवचं ज्ञेयं धैर्यं भक्तिर्हृदा न्वयि । आत्मज्ञानेन जायति न तस्यास्ति भयं कदा ॥४३॥
 सावधानं ज्ञाननिष्ठं भवितव्यं सदाऽत्र हि । वाद्यानि वचनान्येव साधनं बोधदानि वै ॥४४॥
 सदा धृतानि हृदये तानि बुद्ध्याऽवलोकयेत् । मोहक्षयः प्रभानोऽयमिदानीं त्वत्पुनः स्थितः ॥४५॥
 त्वमेवात्मा समेयं ते निवामस्यानमीरितम् । तवाग्रे ये स्थिताः सर्वे वयं त्वां मुक्तिमागताः ॥४६॥
 किमिदानीं ते प्रष्टव्यं बोधदेव्यं त्वयाऽद्य किम् । तव कीर्तनमात्रेण नरा मुक्तिं लभन्ति हि ॥४७॥
 वयं त्वदन्तिकाः सर्वे मुक्ता एव न संशयः । इति तेषां वचः श्रुत्वा सस्मितः प्राह तान्ब्रह्मः ॥४८॥
 सम्यग्बुद्ध्या परिज्ञातं मुखे स्थेयं सदा जनाः ।

नान्यथा स्वमतिः कार्याऽऽत्मनो रामं पृथक् स्थितम् ॥४९॥

इत्युक्त्वा सकलान् रामो ययौ सीतागृहं मुदा । पौराद्या गतमोहास्ते चात्मानं मेनिरे परम् ॥५०॥
 एव रामेण भोः शिष्य दूतवाक्यैः सुबोधिताः । पौराः सर्वे यथा तच्च मया ते विनिवेदितम् ॥५१॥
 एकदा कैकयी राममागत्य प्रणिपत्य सा । अमघीन्मधुरं वाक्यं विनयान्पुरतः स्थिता ॥५२॥
 राम राजीवपत्राक्ष मया यदपराधितम् । पुराऽज्ञानाच्चया तच्च सन्तव्यं वै कृपालुना ॥५३॥
 अहं ते शरणं प्राप्ता मामुद्धर जगत्पते । किञ्चिदुपदिशस्व त्वं येनाज्ञानं विनश्यति ॥५४॥

रहते हैं ॥ ३९ ॥ इनमें आत्मा राजा और जीव तथा इन्द्रिया इस नगरके निवासी हैं ॥ ३९ ॥ काल महामु-
 चोर है और वात, पित्त, आदि उसके सेवक छुपे वेगमें नागरिकोंकी तरह रहते हैं ॥ ४० ॥ इस नगरमें
 जीव आदि नागरिक दुर्बल हैं । अतएव उन्हींको चोरका विजेष भय रहता है । यदि वे नागरिक मोहग्रस्त
 होकर भ्रममें पड़ जायें तो अवसर पाकर चोरके सेवक अवश्य अपने स्वामी कालको बुला लायेंगे ॥ ४१ ॥
 मृत्युका किसीको मालूम नहीं है । इस कारण गाफिल रहना ठीक नहीं है । इसके लिए ज्ञान साधन है
 और वैराग्यको उसकी तीखी धार समझनी चाहिए ॥ ४२ ॥ सदाचार और आपमें हृद भक्तिका होना
 ही धैर्य है । जो मनुष्य आत्मज्ञानपूर्वक नित्य रहता है, उसे कभी किसी प्रकारका भय नहीं रहता ॥ ४३ ॥
 सदा सब लोगोंको ज्ञाननिष्ठ होना चाहिए, यही सावधान रहनेका मतलब है । साधुओंके ज्ञानदायक बातोंको
 समान उन दूसोंके बाजे ॥ ४४ ॥ सब लोगोंको चाहिए कि इन बातोंको हृदयमें रखावे और अपनी
 बुद्धिदृष्टिसे देखे । इस प्रकार है राम ! आज हमारे मोहनाशका प्रभाव आपके सामने उपस्थित है ॥ ४५ ॥
 आप ही आत्मा हैं और यह सभा आपका निवासस्वान है । आपके सामने हम जितने लोग उपस्थित हैं,
 मुक्त हो गये हैं ॥ ४६ ॥ और आपसे क्या पूछना और न ग हमारे लिए आपको उपदेश देना है ? हमारा
 तो यह विश्वास है कि आपके नामकीर्तनमात्रसे प्राणी मुक्त हो जाते हैं ॥ ४७ ॥ आपके समीप पहुँचे हुए हम
 लोग मुक्त हैं । इसमें कोई सन्देह नहीं है । इस तरह उनको बात सुनकर मुसकाते हुए राम बोले— ॥ ४८ ॥
 तुम लोगोंने अपनी बुद्धिसे सब कुछ समझ लिया है । अब आनन्दपूर्वक रहो । कभी अपनी बुद्धिमें यह बात
 न आने देना कि राम मुझसे अलग हैं ॥ ४९ ॥ ऐसा कहकर राम प्रसन्नतापूर्वक सीताके महलमें चले गये ।
 जिन पुरवासियोंमें किसी प्रकारका अज्ञान था, अब वह नष्ट हो गया और वे आत्मज्ञानी बन गये ॥ ५० ॥
 हे शिष्य ! जिस तरह रामके दूतोंसे उनको प्रज्ञा जागृत हुई, वह सारी कथा मैंने कह सुनायी ॥ ५१ ॥ एक
 समय कैकयी रामको पाल गयी और प्रणाम करके भीड़-भीड़ बातोंमें कहने लगी— ॥ ५२ ॥ हे कमलपत्रके
 समान नेत्रोंवाले राम ! मैंने उस समय अज्ञानवश जो अपराध किया था, उसे क्षमा कर दो । क्योंकि तुम
 कृपालु हो ॥ ५३ ॥ मैं जगत्पते ! हे तुम्हारी मरुपमें आयी हूँ । मेरा उद्धार करो और मुझे कोई ऐसा उपदेश

तत्तस्या वचन श्रुत्वा रामो राजीवलोचनः । उवाच कैकेयीं वाक्यं मधुरं प्रहसन्निव ॥५६॥
 न त्वया मेऽपराधं हि मञ्जुन्दाञ्च सरस्वती । स्थित्वा तवास्ये ॥ ग्राह वरणाश्चादि यत्पुरा ॥५६॥
 त्वं च कैकेयि शुद्धाऽमि न्वपि क्रोधो न मेऽस्ति वै । अस्त्वां नीत्वोपदेशं हि कारयिष्यति लक्ष्मणः ॥५७॥
 इत्युक्त्वा तां विमर्षाय लक्ष्मणं राघवोऽब्रवीत् । शिविकास्था हि कैकेयी श्वः प्रभाते गिरा मम ॥५८॥
 त्वया नेया यहिः पुष्याः सरग्वाश्च तटं प्रति । अविमृहसंस्थानं वर्तते यत्र तत्र हि ॥५९॥
 अविमृन्दांतिकं नीत्वा कैकेयीं शिविकास्थिताम् । अविवाक्यानि आख्यानि मुहुर्तं मम वाक्यतः । ६०॥
 आनेतव्या ततश्चैयं कैकेयी मम सन्निधौ । इति तद्रामवचनं श्रुत्वा म लक्ष्मणोऽपि च ॥६१॥
 तथेत्युक्त्वा तदा रामं तूष्णीं तस्थौ तदग्रतः । अयं प्रभाते सौमित्रिर्गत्वा भरतमन्दिरे ॥६२॥
 शिविकायां स कैकेयीं समाकृष्ट मुदान्विताम् । दासीभिः सेवकैश्चैव वेष्टितां वेत्रपाणिभिः ॥६३॥
 तां निनाय वहिः पुष्याः सरग्वाश्च तटे वरे । अविमृन्दांतिकं यानं स्थापयामास लक्ष्मणः ॥६४॥
 सुस्नार्ता कैकेयीं विप्रास्ते शान्त्वा दक्षिणेच्छया । द्रुवुः शिविकापृष्ठे लक्ष्मणस्तान्पवारयत् ॥६५॥
 अतिमूर्खाश्च पंग्वाश्च ये ॥ ज्ञेया द्विजादयः । दानार्हाः पण्डिता न ते श्रोत्रिया न प्रतिष्ठिताः ॥६६॥
 ततो दूतान्निराकृत्य मुक्ताजालानि लक्ष्मणः । ऊर्ध्वं कृत्वा स्वहस्ताभ्यां कैकेयीं वाक्यमब्रवीत् ॥६७॥
 पश्य कैकेयि मातरस्त्वमविग्रुथं पुरःस्थितम् । रामेण प्रेषिताऽसि त्वमुपदेशार्थमादरात् ॥६८॥
 तत्सौमित्रिवचः श्रुत्वाऽऽश्चर्यमुक्ताऽथ कैकेयी । प्रतारिताऽहं रामेण किमत्र प्रेक्ष्य मादरम् ॥६९॥
 इति तर्कान्कुर्वती सा तस्थौ तूष्णीं श्रुणुं तदा । तावच्छुभाव सा मे मे त्वविवाक्यानि वै मुहुः ॥७०॥
 तानि श्रुत्वाऽथ कैकेयी तदा चित्तेऽविचारयत् । मे मे त्विति मुहुश्चात्र किमर्थं वचनानि हि ॥७१॥
 अव्ययः सर्वा वदन्त्यत्र गूढोऽर्थस्त्वत्र वर्तते । ततो निमील्य कैकेयी नेत्रं प्यान्वा क्षणं हृदि । ७२॥

दो, जिससे मेरा अज्ञान हो जाय ॥ ५४ ॥ इस प्रकार कैकेयीकी बात सुनकर भीष्मों हँसते हुए राम कहने लगे—॥ ५५ ॥ हे माता ! तुमने हमारा कोई अपराध नहीं किया है । उस समय हमारी ही इच्छासे सरस्वतीने तुम्हारे मुखमें बैठकर कर भोगवाया था ॥ ५६ ॥ हे कैकेयी ! तुम गुप्त हो, तुम्हारे ऊपर मेरे हृदयमें कुछ भी काँच नहीं है । कल लक्ष्मण तुम्हें कहेंगे जाकर उपदेश दिला देंगे ॥ ५७ ॥ ऐसा कहकर उसे विदा कर दिया और लक्ष्मणसे कहा कि हमारे कथनानुसार कल कैकेयीको नगरके बाहर सरयूतटपर जहाँ कि भेड़ रहती हैं, वहाँ ले जाओ और उन भेड़ोंके मुखसे ही थोड़ेसे उपदेशमय वाक्य सुनवाकर कैकेयीको यहाँ मेरे पास ले आओ । इस प्रकार रामकी आज्ञा सुनकर लक्ष्मणने वैसा करना स्वीकार कर लिया और चुपचाप रामके सम्मुख बैठे रहे । इसके अनन्तर सबेरे लक्ष्मणजी भरतके भवनमें पहुँचे ॥ ५८-६२ ॥ वहाँसे कैकेयीको पालकीमें बिठाकर दाम-दासी तथा छद्दीदार आदिके साथ उसे अयोध्यापुरीके बाहर सरयूतटपर जहाँ कि भेड़ रहती थी, ले गये । वहाँ पहुँचकर उन्होंने रथ रोक दिया ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ अब कि सरयूतटसे लक्ष्मण पालकीके साथ जा रहे थे, तब घाटके ब्राह्मणोंने समझा कि कैकेयी स्नान करने लौट रही हैं । फिर क्या था, झुण्डके झुण्ड ब्राह्मण दक्षिणा लेनेके लिये दौड़ पड़े । लक्ष्मणने उन्हें रोका । क्योंकि वे सब ब्राह्मण महामूर्ख, पंगु और अन्य आदि थे । उनमेंसे कोई भी ब्राह्मण ऐसा न था, जो प्रतिष्ठित श्रोत्रिय रहा हो ॥ ६३-६६ ॥ जब लक्ष्मणके मना करनेपर भी उन लोगोंने पीछा नहीं छोड़ा, तब विवश होकर उन्होंने सेवकों द्वारा उन्हें हटवाया और मोतियोंकी लड़के बने पदोंकी अपने हाथसे उठाकर कैकेयीसे कहा—॥ ६७ ॥ हे माँ कैकेयी ! सामने भेड़ोंकी झुण्डकी ओर देखो । रामचन्द्रजीने आदरपूर्वक तुम्हें इन्हींसे उपदेश लेनेके लिये भेजा है ॥ ६८ ॥ लक्ष्मणकी सुनकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ और वह अपने मनमें सोचने लगी—“रामने यहाँ भेजकर मुझे बोला तो नहीं दिया है ।” इस प्रकार सरह-सरहके तर्क-वितर्क करती हुई कैकेयी क्षणभर चुपचाप बैठी रही । तभी उसने कई बार भेड़ोंके मुखमें ‘मे-मे’ की इयनि सुनी ॥ ६९ ॥ ७० ॥ सो सुनकर कैकेयीने अपने मनमें सोचा कि भेड़ बार-बार ‘मे-मे’ क्यों करती हैं । इसमें कोई न कोई गूढ़ भाव छुपा हुआ

सर्वं ज्ञात्वा मताज्ञाना सुतोष निनगां तदा । ततः स्मितानना प्राह लक्ष्मणं पुरतः स्थितम् ॥७३॥
 लब्धं ज्ञानं मया बाल नय मां राघवं प्रति । इति नमसा वचः श्रुत्वा मुक्तजान्त्रान्त्रिमुख्य मः ॥७४॥
 इतान्दूरगतास्वेगादाह्वय नगरीं प्रति । कैकेयीमानयापाम मातागेहं विवेश मा ॥७५॥
 तत्र दृष्ट्वा समासीनं मीतया श्पुनंदत्तम् । चद्रघपानं स्वशिगमि चित्रोष्णीपं करेण हि ॥७६॥
 सीताकरघृतादर्शं पश्यन्तं स्यमुज्ज्वलम् । तं नत्वा परया भक्त्या कैकेयी वाक् रमन्वतीन् ॥७७॥
 राम ते कृपया लब्धमस्मिन्नाकविशमः । गृहज्ञानं मे गतो मंहधेदानीं न प्रयोजनम् ॥७८॥
 उपदेशेन ते राम मदा मुक्ताऽस्मि राघव । तत्त्वस्यावचने श्रुत्वा मन्विनः प्राह तां विभुः ॥७९॥
 कथं ज्ञातं त्वया ज्ञानं विचारश्च कथं कृत । तन्मयं विस्तरेणैव ममग्रे वद कर्तव्ये ॥८०॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा कैकेयी प्राह राघवम् । शृणु राम यथा लब्धं ज्ञानं तव वदाम्यहम् ॥८१॥
 मयाऽविवचनान्येव तत्राविशुबसिभिर्भा । श्रुत्वा मे मे निवर्ति मया हृदये मन्त्रितं क्षणम् ॥८२॥
 मे मे त्विति ममैताश्च श्रावयन्ति मुहुर्मुहुः । श्रुत्वा मे मे निवर्ति मया चेद्वाच्यं तर्हि वै मया ॥८३॥
 मे मे प्रकथ्यते नित्यं पशुपुत्रगृहादिषु । अतो वक्तुं नोपदेशोऽयं मामेताभिरुच्यते ॥८४॥
 तर्ह्ययं नोपदेशोऽयं निषेधं मा प्रकीर्त्यते । अतोऽहं न कदा मे मे प्रवदामीत्यतः परम् ॥८५॥
 मे माता मे सुतश्चायं मे यंधुर्मे गृहं वरम् । मे राघवं मे मरुतायं मे सापत्न्यसुतस्त्ययम् ॥८६॥
 मे शरीरमिदं कांतं मे दिव्याभरणं वरम् । मे मंधरा प्रिया दासी पुत्रादीत्यशुभा मतिः ॥८७॥
 याऽस्ति मे म त्विति सा त्यक्तव्येति मापता । शीघ्रयामासुर्वचनैः स्वीधैः स्पष्टं श्रुत्तव ॥८८॥
 अन्यद्राम नरान्सर्वास्ताश्चाव्यो बोधयति हि । ममेशुद्धया सदाऽस्माभिः पूर्वजन्मनि वक्षितम् ॥८९॥
 देहस्त्वतो अक्षेलेन्धो युष्माभिमं मलिस्तु मा । सर्वतः साऽत्र त्यक्तव्या नारीकार्श कदाचन ॥९०॥

हे । इसके बाद उसने अस्मि वन्द कर ली और थोड़ी देर तक गौर करके सोचने लगी ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ उसका सारा भेद ज्ञात हो जानेपर वह बहुत प्रसन्न हुई और मुस्कुराकर लक्ष्मणसे कहा—वरस ! मुझे ज्ञान प्राप्त हो गया । अब रामके पास से चलो । उसकी बात मुनकर लक्ष्मणने बालकीपर परया डाल दिया ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ दूरपर बैठे हुए दूतोंको ओरसे बुलाया और नगरीको लौट आये । कैकेयीको सीताके महलोंमें पहुँचा दिया और वह भीतर चली गया ॥ ७५ ॥ वहाँ पहुँचकर कैकेयाने ज्ञाप कि नान सीताके पास बैठे हुए तिररर एक विचित्र प्रकारकी पगड़ी बाँध रहे हैं ॥ ७६ ॥ सीता हाथोंसे शोभा दिते दिखाने लगी है और राम अपना मुखकमल देखते जा रहे हैं । कैकेयीने पहुँचते ही रामको प्रणाम किया और कहने लगी—॥ ७७ ॥ हे राम ! आपका कृपासे मैंने भेड़ोंके बाक्यों द्वारा सद्ज्ञान प्राप्त कर लिया । मेरा मन नष्ट हो गया । अब मुझे आपके उपदेशोंकी आवश्यकता नहीं रही । हे राघव ! मैं सदाके लिए मुक्त हो गयी । इस प्रकार कैकेयीकी बात सुनकर मुस्कुराते हुए राम बोले— ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ तुम्हें ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ ? तब विस्तारपूर्वक मुझे बतलाओ ॥ ८० ॥ रामके इस प्रश्नको सुनकर कैकेयीने कहा—हे राम ! मुनी, मुनि जिग प्रकार ज्ञान प्राप्त हुआ है, सो सुनाती हूँ ॥ ८१ ॥ उस भेड़के समूहके पास पहुँचकर मैंने उनके मुँहसे निकले हुए “मे-मे” का शब्द सुना । फिर बाँकी देर तक हृदयमें विचार किया । तब मैंने स्थिर किया कि भेड़े “मे-मे” करके मुझे यह सुनाती ॥ कि संसारके लोग जो सर्वदा अपने बाल्यवर्षों, घरदार, पशु आदिमें “यह मेरा-यह मेरा है” ऐसी बुद्धिके आश्रय लेकर अपना सर्वस्व नष्ट कर जाते हैं । यह ठीक है । इसलिए हे राम ! सबसे धी इस ममताके बन्धनमें कभी भी नहीं पड़ूँगी ॥ ८२-८५ ॥ अभी तक तो मैं—यह भेड़ा है, यह भाई है, यह मेरा सुन्दर घर है, यह मेरा राज्य है, यह मेरी सोत है, यह सीतेला लड़का है, यह मुझसे प्रिय है, ये विध्व मेरे भस्मकार हैं, यह मेरी प्रिय दासी मंधरा है, ये मेरे बच्चे हैं आदि ममताके अज्जालमें फँसी थी । इसके लिए उन भेड़ोंने मुझे स्पष्ट उपदेश दिया है कि ममता त्याग दो ॥ ८६-८८ ॥ नरे अतिरिक्त संसारके अज्ञान्य लोगोंकी भी ये यही उपदेश देती रहती है कि पूर्वजन्मकी ममतानुजिन ही मुझे इस दशाको पहुँचाया है और यह भेड़का शरीर मिला है । अतएव तुम

मेमेमत्या गतिर्जाता याऽस्माकं सकला जनाः । मेमेबुद्ध्या हि युष्माकं गतिः सैव भविष्यति ॥९१॥
 एवं ता बोधयन्त्यत्र जनान्स्ववचनैः सदा । न तद्वाक्यं जनेषु बुद्ध्या कया चित्ते विचार्यते ॥९२॥
 तासां वाक्योपदेशेन प्रमादात्तत्र राघव । मेमेबुद्धिगता मत्तस्त्वतो मुक्ताऽस्म्यहं त्विह ॥९३॥
 मं देहस्त्विति या बुद्धिर्विषयक्त मयाऽत्र हि । तदा किं रूपमन्यत्र संसारे दुःखदायके ॥९४॥
 अस्त्वयं वा त्वय यातु देहं वागितरङ्गस्य । कः पुत्रः कस्य को भ्राता सर्वं न संशयः ॥९५॥
 अहमेव परं ब्रह्म मत्तो ब्रह्म परं न हि । सर्वं यदुद्भवते चेदं मायेयं तत्र राघव ॥९६॥
 नश्वरं बुद्बुदाकारं जातं चेदं मया प्रभो । इति तस्या वचः श्रुत्वा श्रीरामः प्राह मस्मितः ॥९७॥
 सम्बन्धं विचारितं बुद्ध्या स्वयान्वितममुत्तमम् । गच्छेदानीं ह्येषं तदष्टं जन्मुक्ताऽसि कैकेयि ॥९८॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा कैकेयी तोषपुरिता । देहाभिमानहाना सा नन्वा सीतां रघूत्तमम् ॥९९॥
 ययौ भरतगेहं हि नामक्ता क्वापि सा त्वभूत् । एवं त्रिष्य मया प्रोक्तमविचार्योपदेशतः ॥१००॥
 यथा ज्ञानं हि कैकेय्यै जातं तत्कथितं तव । इदानीं शृणु यच्चान्यत्ते वदामि कुतूहलम् ॥१०१॥
 सुमित्रा त्वेकदा रामं सीतया रहसि स्थितम् । निरीक्ष्य नन्वा तं प्राह राम राजीवलोचन ॥१०२॥
 किञ्चित्ते प्रार्थयाम्यद्य किञ्चिदुपदिशस्व माम् । नत्तस्या वचनं श्रुत्वा तामाह रघुनन्दनः ॥१०३॥
 का त्वं चेति वदामी मां पश्चादुपदिशामि ते । गच्छ मेहं स्वस्थबुद्ध्या हृदि सम्यग्विचार्य च ॥१०४॥
 इतो मामन्त्य मम प्रहसन्स्योत्तरं ददहि वै तवः । अहमुपदेक्षाम्यम्य येन तुष्टा भविष्यसि ॥१०५॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा सुमित्रा विस्मयानना । तूष्णोमेव ययौ गहं रामवाक्यं व्यधिन्यतः ॥१०६॥
 काऽहं राघवेण किं वा देवं मयोत्तरम् । काऽहं देवी चासुरी वा मानवी राक्षसी तथा ॥१०७॥
 मानुषी चैत्यहं मत्वा यदि रामं वदामि वै । तर्हि नानाशरीराणि भ्रियन्ते नटवन्मया ॥१०८॥

लोगोंको चाहिए कि इस ममताका परित्याग कर दें, इसको अंगीकार कभी न करें ॥ ८६ ॥ ९० ॥ 'यह मेरा है' इस बुद्धिसे भेड़ोंनि प्राप्ति-रूपिणी जो गति हमारी हुई है, वही गति तुम्हारी भी होगी ॥ ९१ ॥ अपने वचनोंसे सब लोगोंको उपदेश देती रहती है । किन्तु संसारो लोग उनकी बातोंपर विचार नहीं करते ॥ ९२ ॥ हे राघव ! आपकी वया और उन भेड़ोंके गवदसे मेरी ममताबुद्धि नष्ट हो गयी है । इसलिए अब मैं मुक्त हो गयी ॥ ९३ ॥ "यह देह मेरा है" इस विचारमें मैं आसक्त थी । वह दुःखदायिनी आसक्ति नष्ट हो गयी, और रह ही क्या गया है । यहाँ सोन किसका बेटा है, सोन किसकी माता ? तब सच्चिदानन्दमय ब्रह्मका रूप है । इसमें कोई तंगव नहीं है ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ मैं ही परब्रह्म हूँ । मुझसे परे कुछ ही नहीं । हे राघव ! संसारमें जो कुछ दिखायी पड़ रहा है, वह सब तुम्हारी माया है ॥ ९६ ॥ मैंने इस अवम शरीरको पानीके घुलबुलनेकी तरह नश्वर समझ लिया है । इस प्रकार कैकेयीकी बात सुनकर मुस्कराते हुए राम बोले— ॥ ९७ ॥ ठीक है, तुमने भेड़ोंकी बातपर बहुत अच्छा विचार किया है । अब जाओ और सुनते अपने घरमें बैठो । हे कैकेयि ! अब तुम जोबन्मुक्त हो गयी ॥ ९८ ॥ रामकी बात सुनकर प्रसन्न मन कैकेयी देहाभिमानसे रहित होकर सीता तथा रामको प्रणाम करके अपने बेटे भरतके भवनमें चली गयी और सबसे वह किसी वस्तुमें नहीं हुई । इस प्रकार भेड़ोंकी बातसे कैकेयीको किस तरह ज्ञान प्राप्त हुआ था, सो वृत्तांत कह सुनाया । मैं तुम्हें एक और कुतूहल भरा वृत्तांत सुनाता हूँ ॥ ९९-१०१ ॥ एक दिन राम सीताके साथ किसी एकान्त स्थानमें बैठे थे । तब तक सुमित्रा वहाँ आ पहुँची और कहने लगी—हे राजीवलोचन राम ! मैं तुमसे विषय करती हूँ कि मुझे भी कुछ उपदेश दे दो । उसकी बात सुनकर रामने कहा—पहले मुझे यह बतलाओ कि तुम कौन हो ? अपने घर जाओ और स्वस्थबुद्धिसे विचार करके काल मेरे पास आकर बताओ । उस समय मैं तुम्हें ऐसा उपदेश दूँगा, जिससे तुम बहुत प्रसन्न होगी ॥ १०२-१०३ ॥ इस तरह रामका आदेश सुनकर वह आश्चर्य भरे मनसे उसी बातको सोचती हुई चुपचाप चली गयी ॥ १०४ ॥ वह सोचने लगी कि

तदा केदं मानुषीन्वमन्दजाभ्यां घटेच्च मे । तदाहं मानुषी नैव न चैवान्या कदाचन ॥१०९॥
 मानुषी राक्षसी चेतीमानि नामानि तानि न । देहस्यैवात्र बध्यन्ते देहस्तु नश्वरः स्मृतः ॥११०॥
 देहाङ्गिमास्मि काप्यन्या याऽहं रूपेण्यनेकशः । धर्माणि सर्वदा भूम्यां सा काऽहं चेति वेशिन ॥१११॥
 इदानीं तु मया ज्ञातं यथा विष्णुस्तथा त्वहम् । नानारूपाणि सोऽप्यत्र मन्स्यादीनि दधाति हि ॥११२॥
 तथा नानास्वरूपाणि धार्यन्तेऽपि वै मया । एवमेव हि वक्तव्यं तर्हि मे तस्य चांतरम् ॥११३॥
 स्ववक्षोऽस्ति महाविष्णुस्तदहं विष्णुवक्ता सदा । अतो विष्णोः कला चाहं सत्यमेव मंशयः ॥११४॥
 विष्णोर्मे नैव भेदोऽस्ति यथा गङ्गा स्थले घटे । एकेवाक्यत्र तद्वच्च विष्णुरेवाहमस्मि हि ॥११५॥
 अहमेव यदा विष्णुस्तदा किं चावशेषितम् । उन्मथ्यं तु रामाय जीवन्मुक्ताऽहमस्मि वै ॥११६॥
 एवं सुमित्रा संचित्य गताज्ञाना मुदान्विता । अनिकम्प्य निशां तां सा प्रभाते राघवं ययौ ॥११७॥
 गत्वाराम तदा प्राह मया रात्री विवर्तितम् । का त्वं पृष्टा न्याया पूर्व तर्कहं ब्रह्म राघव ॥११८॥
 त्वतो नान्यत्र प्रष्टव्यं न्वङ्गिमाऽहं कदापि न । इत्युक्त्वा मा यथा गेहे निशि स्वे हृदि मंत्रितम् ॥११९॥
 तत्सर्वं श्रावयित्वा तं जीवन्मुक्ताऽभवत्तदा । सुमित्रां गच्छोऽप्याह सन्यासद्वया विचिंतितम् ॥१२०॥
 जावन्मुक्ताऽपि चाम्बन्वं गच्छ मेहं मुक्त्वं वस । जनः सुमित्रा मंतुष्टा गन्मोहा गृह्णतमम् ॥१२१॥
 सीतां चापि पृथक् नीत्वा ययौ लक्ष्मणमपि च । एवं शिष्य मया प्रोक्तं काऽहं चेति विचारतः ॥१२२॥
 जीवन्मुक्ता सुमित्रा सा बभूव सुखनिर्भरा । अन्यच्च ते वदाम्यद्य तच्छृणुष्व द्विजोत्तम ॥१२३॥

रामने हमसे यही पूछा है न कि ■ कौन हूँ ? सो इसका क्या उत्तर दें । आखिर ■ देवी हूँ, बानवी हूँ, राक्षसी हूँ या मानुषी हूँ, ■ हूँ ? यदि रामसे जाकर कह दूँ कि मैं मानुषी हूँ, तो भी नहीं बनता । क्योंकि ऐसा कहनेसे हमें माटकके पात्रकी तरह अनेक रूप धारण करने पड़ने हैं । इससे निश्चय हुआ कि मैं न मानुषी हूँ, न और ही कुछ । पूर्वकथित मानुषी-राक्षसी आदि सारी संज्ञाएँ हम देवकी हैं और यह देह नाशवान् बदार्थ है । इसमें यह मालूम होता है कि उन जगत्में पृथक् ही मैं कोई हूँ और पृथ्वीपर तरह-तरहके रूप धारण करती हूँ । लेकिन यह जो मैं हूँ, क्या है ? यह नहीं ■ ॥ १०८-१११ ॥ हाँ, अब यह ज्ञात हुआ । जिस तरह भगवान् अनेक रूप धारण करके हम पृथ्वीमण्डलमें आते हैं, टीका उन्हींकी तरह मैं भी हूँ । वे भी मत्स्य-कूर्म आदि कितने अवतार धारण करके आने-जाने हैं । वैसे ही समय-समयपर विविध प्रकारके रूप धारण करके जगत्में मैं भी आती-जाती हूँ । फिर हममें और विष्णुभगवान्में अंतर ही क्या है ? ॥११२॥११३॥ अन्तः यही है कि विष्णु स्वाधीन हैं और मैं विष्णुभगवान्के अधीन हूँ । अतएव यह निश्चय हुआ कि मैं विष्णुभगवान्की एक कला हूँ ॥ ११४ ॥ अब यह भी निश्चित हो गया कि हममें और भगवान्में कोई भेद नहीं है । जिस तरह गङ्गाका जल गङ्गाके प्रवाहमें रहता हुआ गङ्गाजल रहता है, उसी तरह घड़ेमें आकर भी गङ्गाजल ही रहता है । ■ सार यह निकला कि हममें और भगवान्में कोई भेद नहीं है । हम और भगवान् एक ही हैं । ■ मैं स्वयं विष्णुभगवान् हूँ तो बाकी क्या रहा, जो जाकर रामसे पूछूँ । ■ तो जीवन्मुक्त हूँ ॥११५॥११६॥ इस प्रकार विचार करनेसे उनका अज्ञान नष्ट हो गया । वह रात्रि बिताकर सबेरे प्रसन्नतापूर्वक रामके पास पहुँची ॥ ११७ ॥ वहाँ रामको प्रणाम करके सुमित्रा कहने लगी-कल आपने मुझसे जो पूछा था कि मैं कौन हूँ ? सो विचार करनेपर मुझे मालूम हुआ कि मैं साक्षात् ब्रह्म हूँ ॥ ११८ ॥ अब मुझे आपसे कुछ भी नहीं पूछना है । क्योंकि मैं आपसे पृथक् हूँ ही नहीं । ऐसा कहकर रात्रिको उन्होंने अपने हृदयमें जैसा विचार किया था सो कह सुनाया । वह सब सुनकर वह वास्तवमें जीवन्मुक्त हो गयी । यह सोचकर रामने कहा- हे माता ! तुमने बहुत ठीक विचार किया है ॥ ११९ ॥ १२० ॥ ■ तुम जीवन्मुक्त हो गयीं । जाकर आनन्दसे अपने घरमें निवास करो । इससे सुमित्राका मोह नष्ट हो गया और वे राम तथा सीता दोनोंको अलग-अलग प्रणाम करके लक्ष्मणके महाँ चली गयीं । हे शिष्य ! इस विचारसे कि मैं कौन हूँ, सुमित्रा जीवन्मुक्त हो गयीं और उनके आनन्दका ठिकाना नहीं रहा । हे द्विजोत्तम । मैं तुम्हें एक और वृत्तान्त अवलगा हूँ, सो सुनो

एकदा राघवं दृष्ट्वा कौसल्या जतनी रहः । आसने चित्रशालायाम् सीतया सह संस्थितम् ॥१२४॥
 पप्रच्छ नत्वा श्रीरामं ज्ञात्वा विष्णु पालयम् । राम राम महाबाहो किञ्चिदुपदिशस्व माय ॥१२५॥
 तन्मातृवचनं श्रुत्वा तां विहस्य ह राघवः । सः प्रमाने समुत्थाय गन्ध्या गोष्ठं कियत्क्षणम् ॥१२६॥
 श्रुत्वा गोवन्मवाक्यानि लभ्यक्तानि विचिंतय । ममोत्तिकं ततो याहि त्वमस्य वचनान्मम ॥१२७॥
 उपदेशं कथिष्यामि तयोऽहं न्यां न संशयः । तद्रामवचनं श्रुत्वा कौसल्या विस्मिता तदा ॥१२८॥
 नत्वा रामं सतीतं च तूर्णमपि गृहं ययौ । ततो निशामतिक्रम्य कौसल्या साऽरुणोदये ॥१२९॥
 गोष्ठं गत्वा क्षणं स्थित्वा धेनुवत्सवचांमि मा । अहं मा त्विति शुभ्राय सुभ्राता वै मुहुर्मुहुः ॥१३०॥
 तानि वाक्यानि कत्मानां श्रुत्वा चित्तेऽपि चरयत् । अहं मा त्विति यत्माश्च किं वदन्ति मुहुर्मुहुः ॥१३१॥
 इमानि किं बोधयन्ति मां यत्माश्च मुहुर्मुहुः । इत्युक्त्या सा क्षणं ध्यात्वा हृदि सम्यग्विचार्य च ॥१३२॥
 वत्सवाक्यं च कौसल्या गताज्ञानाऽभक्त्यगाम् । ततस्तुष्टा ययौ राम नन्वा नं प्राह हर्षिता ॥१३३॥
 राम विष्णो रमानाथ वत्सवाक्यैः सुधीरिणा । स्वयैवाहं रामचन्द्र गताज्ञानाऽस्मि राघव ॥१३४॥
 ततोपदेशवांछा मे न किञ्चिदल्पतः परम् । लब्ध्वा ज्ञानं मया राम त्वतो भिन्ना कदास्मि न ॥१३५॥
 तन्मातृवचनं श्रुत्वा कौसल्या राघवोऽब्रवीत् । वत्सवाक्यैः कथं लब्धं त्वया ज्ञानं वदस्व माम् ॥१३६॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा कौसल्या प्राह गधवन् । अहं मा त्विति वाक्यानि तेषां श्रुत्वा गघूनम ॥१३७॥
 इमानि किं बोधयन्ति मां यत्माः क्तानि वै मुहुः । एवं विचारितं ध्यात्वा क्षणं स्मद्दये मया ॥१३८॥
 वाक्यार्थश्च मया ज्ञातस्त्वहं मा कथयतां जनाः । यत्नाम्मेवं बोधयन्ति न ज्ञायेन जनेस्तु यत् ॥१३९॥
 अहशब्दो देहपदो यदा त्यक्तो मयाऽयं हि । अहं देहि त्वहं माता चेति वृद्धिर्गता मम ॥१४०॥

॥ १२१-१२३ ॥ एक दिन सीताके साथ रामको चित्रशालामें देखकर उनकी माता कौसल्या उस एकान्त स्थानमें रामके पास पहुँची । उधरे विष्णुस्वरूपान समझकर प्रणाम किया और कहने लगी—हे महाबाहो राम ! मुझे भी कुछ उपदेश दे दो । तुम्हारे उपदेशसे मुझे प्रुप्त भगवत्की प्राप्ति हो जायगी ॥१२४॥१२५॥ माता-की ऐसी बात सुनी तो उन्होंने मुस्कराकर कहा कि सर्वदे आप गोशालामें जाइए और वहाँपर कुछ देर तक बछड़ोंकी आवाज सुनकर उसार अच्छी तरह विचार काजिए, फिर मेरे पास आइए । उस समय इसमें कोई संदेह नहीं है कि मैं मुझे उपदेश दूँगा । रामकी उस बातका सुनकर कौसल्या विस्मित भानसे सीता और रामको प्रणाम करके अपने गहरीमें चोट आयी । तदनंतर रात्रि बीततेपर सर्वदे अरुणादयके समर कौसल्या गोशालामें पहुँची, वहाँ थोड़ी देर तक उन्होंने बछड़ोंकी आवाज सुनी । बछड़े “अहं मा-अहं मा” की आवाज लगा रहे थे और कौसल्या जगन्त चित्तो उनें सुन रही थी ॥ १२६-१२८ ॥ बछड़ोंके उन शब्दोंकी सुनकर उन्होंने अपने मनमें विचार किया कि बछड़े बार-बार “अहं मा-अहं मा” को जो आवाज लगा रहे हैं, इसका क्या मतलब है । ये बछड़े बार-बार आवाज लगाकर किस बातका ज्ञान करा रहे हैं । ऐसा सोचकर कौसल्या-ने थोड़ी देर तक ध्यानपूर्वक इस बातपर विचार किया, जिससे क्षणभरमें उसका अज्ञान नष्ट हो गया और प्रसन्न मनसे रामके पास पहुँची । वहाँ रामको प्रणाम करके कहने लगी—॥ १३१-१३३ ॥ हे रमानाथ ! हे राम ! हे विष्णो ! आपके कण्ठाकसार मेंने बछड़ोंकी बोली सुनी । जिससे मेरा अज्ञान नष्ट हो गया । इससे अब हमें आपका उपदेश सुननेकी इच्छा नहीं है । इस बात का ज्ञान होनेपर मैं तुममें और अपनेमें कोई भेद नहीं देखती ॥ १३४॥ १३५ ॥ इस तरह कौसल्याकी बात सुनकर रामने उनसे कहा कि उन बछड़ोंके शब्दसे तुम्हें ज्ञात किस प्रकार प्राप्त हुआ, सो मुझे बताओ ॥ १३६ ॥ रामका बात सुनकर कौसल्याने कहा कि उनके “अहं मा-अहं मा” शब्दसे मुझे विज्ञाना हुआ कि ये बछड़े अपने वाक्पोंसे किस बातका बोध करा रहे हैं । ऐसा क्षणभर तक अपने मनमें विचार किया ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ अब मुझे उसका अर्थ हो गया । जिसका तात्पर्य यह था कि ‘हे संसारीजनों ! ‘अहं मा वद’ ‘मैं हूँ, ऐसा अहंकार मत करो ।’ ये बछड़े सदा लोगोंको यह पुनीत उपदेश देते रहते हैं । फिर भी लोग नहीं समझ पाते ॥ १३९ ॥ मैंने

देहबुद्धिर्यदा नष्टा तदा किं शेषमस्ति हि । सुखं दुःखं तु देहाय न मे किञ्चिद्रघूतम् ॥१४१॥
 तिष्ठत्वयं वा पततु देहो भोगाश्रयः प्रभो । अहं स्वदंश एवात्र पृथगुपाधितः स्मृता ॥१४२॥
 यथा कुम्भे रविभिर्मो दृश्यतेऽत्र ह्युपाधितः । त्वचोऽहं न कदा भिन्ना ब्रह्मैवास्म्यहमेव वै ॥१४३॥
 इति तन्मातृवचनं श्रुत्वा रामः स्मिताननः । कौमल्यापहं मातृत्वं मुक्ताऽऽप्य न संशयः ॥१४४॥
 सम्यग्विचारितं विसे वत्सवाक्यं सविस्तरम् । गच्छ तिष्ठ सुखं मेहे त्विमां बुद्धिं दृढां कुरु ॥१४५॥
 किमर्थं न मया पूर्वं युष्मान्स्ववचनेन हि । उपदेशः दूतस्त्वस्य तन्मत्रं त्वं निरोधय ॥१४६॥
 उपदेष्टा गुरुर्ज्ञेयो युष्माकं तनयस्त्वहम् । कथं युष्माकं मातृत्वं चोपदिशामि वै ॥१४७॥
 स्त्रीणां पतिर्गुरुर्ज्ञेयः स्त्रीभिर्नान्यो गुरुः कदा । कार्यस्तस्मान्मया नैव युष्मान् स्वास्योपदेशिनम् ॥१४८॥
 पौराणां च गुरुस्तातस्तथा स्त्रीयपुरोहितः । अतस्तेषामपि नया दूतवाक्योपदेशिनम् ॥१४९॥
 परास्यैरेव युष्माकमुपदेशः कृतो मया । गच्छ मेहे सुखं तिष्ठ सदा मां परिहितम् ॥१५०॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा कौमल्या तुष्टमानसा । रामं नन्वा यया मेहं मंतुष्टा संस्थिता मुखम् ॥१५१॥
 एवं ता राघवन्द्रेण बोधिता मातरः शुभाः । स्वस्वाधुगः भये गर्वाः स्वदेशान्मुमुक्षुः मुखम् ॥१५२॥
 रामसाभिष्यमात्रेण विमानचरमंस्थिताः । त्रभ्युः गर्वास्तु वैकुण्ठं राघवेणैव सत्कृताः ॥१५३॥
 शिष्य तासां सहस्रायं यासां रामादिभिस्त्रिभिः । परलोक्यादि सः कर्म स्वहर्षैर्यिनिर्गतिम् ॥१५४॥
 एवं शिष्य मया प्रोक्ता तासामूर्ध्वगतिस्तथा । उपदेशस्तथा तासां प्रोक्ताश्चाप्यश्रुते भया ॥१५५॥
 इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे मनोहरकाण्डे मातृवैकुण्ठारोहणं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

- १५६ -

अब तो यह समझ लिया है कि यह 'अहं' शब्द देहमे सम्बन्ध रखता है—आत्मासे नहीं। तबसे मैंने इसका परित्याग कर दिया है। ऐसा करनेसे मेरी यह देहबुद्धि भी मर ही गयी है कि ॥ देहवती हूँ ॥१४०॥ जब कि देह-बुद्धि नष्ट हो गयी, तब फिर बाकी ही रह गई गयी है। हे रघुनन्दन ! मैंने समझा कि सांसारिक भुल दुःख इस देहके लिए हैं, मेरे (आत्मा) के लिए नहीं ॥१४१॥ भोगोंको आश्रयस्वर्णिनी यह काया रहे या नष्ट हो जाय। हे प्रभो ! वास्तवमें तो मैं आपका एक अंग हूँ। मातासह तो केवल उपाधिमात्र है ॥१४२॥ उसी तरह जैसे कि घाघमें पट रत्न केनेपर उसमें एक मूर्त और शिवाजी देने लगता है। आपसे अलग होकर मैं अभी रह ही नहीं सकती। मैं ही सब हूँ ॥१४३॥ इस प्रकार माताकी बात सुनकर मुस्कगति हुए राम अपने मन-हे जाता। तुम आज मुक्त हो गयीं। इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥१४४॥ तुमने जब बछड़ाको बालीपर बहुत डीक विचार किया है। अब जाओ, आनन्दमें नरपर रहो और अपनी इस बुद्धिसे दृढ़ बनाये रखत ॥१४५॥ हे माताओं ! जब आप लोगोंने मुझसे उपदेश सुनना चाहा था और मैंने कुछ न कहा था। एक-एक ब्राजने उपदेश दिया, उसका भी कारण सुनो ॥१४६॥ इसमें यह भेद कि उपदेश देनेवाला मुक्त होता है, किन्तु मैं आत्मा पुत्र हूँ। ऐसी दशामें उपदेश किस तरह दूँ ? ॥१४७॥ शत्रु भी कहता है कि सर्वज्ञा गुरु एकमात्र पति होता है, उसका उपदेश और कोई हो ही नहीं सकता। मित्रोंको चाहिए भी यह कि पतिके सिवाय और किसीको अपना गुरु न बनायें। इसी लिए मैंने आपको अपने मुँहसे कुछ भी उपदेश नहीं दिया ॥१४८॥ १४९॥ चरित्त दूसरों ही के मुखसे उपदेश दिलाया। जाओ, परम आनन्दपूर्वक बैठें और नया मेरा ध्यान करती रहो ॥१५०॥ रामकी बात सुनकर कौमल्या प्रसन्न मनसे अपने महलोंमें चली गयीं और तुममें रहने लगीं ॥१५१॥ इस तरह रामचन्द्रजीके द्वारा उपदेश पाकर वे माताएँ बहुत दिनों तक आनन्दमें रहों और आयु समाप्त हो जानेपर उन्होंने शरीर त्याग दिया ॥१५२॥ रामके पास रहनेके कारण अच्छे-अच्छे विमानोंपर बैठकर वे सब वैकुण्ठगाम गयीं ॥१५३॥ हे शिष्य ! उन माताओंका बड़ा भय था, जिनकी पारलौकिक क्रियाओंने राम-लक्ष्मण आदिने स्वयं सम्पन्न किया ॥१५४॥ इस प्रकार हे शिष्य ! मैंने उन माताओंको ऊर्ध्वगतिसे संबन्ध रखनेवाली बातें तथा उपदेश आदि कह सुनाया ॥१५५॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पंचमोऽध्यायः समाप्तः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः

(रामपूजाका विस्तार)

विष्णुदास उवाच

कथं श्रीराघवस्यात्र रामोपासकमानवैः । कार्या वै मानसी पूजा बहिःपूजा ॥ १ ॥
 कथं चोपासना ग्राह्या गुरो श्रीराघवस्य च । का श्रेष्ठोपासना चात्र कः श्रेष्ठोऽत्र गुरुस्तथा ॥ २ ॥
 के के मंत्रा राघवस्य भक्तानां सिद्धिदायकाः । निधिस्तोपदा तस्य किं किं ततोपवर्द्धनम् ॥ ३ ॥
 कः श्रेष्ठोऽत्र वरो देवो यस्य ग्राह्या उपासना । नरसर्वे विस्तरेणैव गुरो त्वं वक्तुमर्हसि ॥ ४ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वय्य शिष्य सावधानमनाः मृणु । सर्वे तद्विस्तरेणाद्य त्वदग्रे कथ्यन्ते मया ॥ ५ ॥
 आदौ गुरुं परोक्षया तच्चिह्नैश्च द्विजोत्तम । उपदेशस्तनस्तस्माद्ग्राह्यस्तीर्थे विधानतः ॥ ६ ॥
 गुरोर्ध्वयात्र चिह्नानि तवादी प्रवदाम्यम् । क्रोधी कुप्टी महारोगी मलिनो निर्धूणो जडः ॥ ७ ॥
 अपण्डितो निंदकश्च लोलुपो विषयातुरः । दांभिको गर्वसंयुक्तः पाशात्मा दुष्टवंशजः ॥ ८ ॥
 धात्री परद्रोहकर्ता परद्रव्यापहारकः । अजितात्मा वेदवाद्यः परदाररतः सदा ॥ ९ ॥
 परदोषारोपकश्च कृपणश्चाजितेन्द्रियः । वेददेवद्विजातीनां यतितीर्थगवाधपि ॥ १० ॥
 तुलसीवह्निस्पर्शां द्रष्टा योग्यो गुरुर्न हि । चेत्ता सकलधर्माणां शास्त्रेषु परिनिष्ठितः ॥ ११ ॥
 सत्यवाङ् मितभुगज्ञानी कलावान्द्विजवंशजः । सत्कर्मनिष्ठो धर्माणामुपदेशा सुबुद्धिदः ॥ १२ ॥
 योगाभ्यासकलाभिज्ञो योगवान्समदर्शनः । कृतकर्मा तीर्थसेवी धर्माधर्मविवेचकः ॥ १३ ॥
 ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थाश्रमी यतिः । स्वाश्रमाचारसन्निष्ठो बुद्धिमान्विजितेन्द्रियः ॥ १४ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! इस संसारमें रामकी उपासना करनेवालोंको रामकी मानसी पूजा किस प्रकार करनी चाहिए ? ॥ १ ॥ और फिर गुरुके पाससे उपासना किस प्रकार ग्रहण करनी चाहिए ? समस्त उपासनाओंमें सर्वश्रेष्ठ उपासना कौन-सी है, और श्रेष्ठ गुरु कौन होता है, सो भी बतला दीजिए ॥ २ ॥ साथ ही यह भी बतलाइए कि रामके कौन-कौनसे ऐसे मन्त्र हैं, जिनसे भक्तोंको आनन्द प्राप्त होता है । कौन-कौन-सी तिथियाँ ऐसी हैं, जिनसे भक्तोंका मन सन्तुष्ट होता है ॥ ३ ॥ इस संसारमें कौन श्रेष्ठ देखता है, जिसकी उपासना की जाय । हे गुरो ! यह सब आप हमें विस्तारपूर्वक बतलाइये ॥ ४ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य । तुमने बहुत अच्छी बात पूछी है । मैं तुम्हारे प्रश्नके अनुसार सारी बातें विस्तारपूर्वक कहता हूँ । सावधान होकर सुनो ॥ ५ ॥ लोगोंको चाहिये कि पहले गुरुकी परोक्षा करके उनके चिह्न समझें । इसके किन्हीं पवित्र तीर्थमें उनसे विधिवत् उपदेश ग्रहण करें ॥ ६ ॥ प्रसङ्गवत् पहले मैं तुम्हें गुरुके लक्षण बतलाता हूँ । जो क्रोधी, कुप्टी, महारोगका रोगी, जिसको भूत-बैताल आदि लगते हों, मला-कुर्वला, निंदयी, जड ॥ ७ ॥ अपण्डित (अच्छा-बुरा न जानेवाला), निन्दक, लोलुप, विषयी, पाशण्डी, अभिमानी, पापी, दूषित कुलमें उत्पन्न ॥ ८ ॥ विश्वासघाती, दूसरेसे द्रोह करनेवाला, दूसरेका छल अपहरण करनेवाला, अजितात्मा (जिसने अपनी आत्माको नहीं जीता है), वेदसे वहिष्कृत (नारितक), दूसरेकी स्त्रीसे प्रेम करनेवाला ॥ ९ ॥ दूसरेपर दोषारोप करनेवाला, कृपण (कंजूस) तथा वेद, देवता, ब्राह्मण, सन्त, तीर्थ, गौ, तुलसी, अग्नि और सूर्य इनसे द्वेष रखनेवाला हो । ऐसीको भूलकर भी गुरु नहीं बनाना चाहिए । जो सब धर्मोंका ज्ञाता, शास्त्रोंपर विश्वास करनेवाला ॥ १० ॥ ११ ॥ सभ्य बोलनेवाला, मिताहारी, ज्ञानी, कलाविद् ब्राह्मणके वंशमें उत्पन्न, अच्छे कामोंमें लगा हुआ, धर्मका उपदेश, अच्छी बुद्धि देनेवाला ॥ १२ ॥ योगाभ्यासकी कलाओंका ज्ञाता, योगी, सबको समान दृष्टिसे देखनेवाला, केवल उपदेश न देकर स्वयं कर्म करनेवाला, तीर्थसेवी, धर्म-अधर्मकी विवेचना करनेमें निपुण ॥ १३ ॥ ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थाश्रमी, योगी,

क्षमी कृपालुर्मृदुवाक् सुमुखः सौम्यदर्शनः । अनिद्रश्च समुद्योगी शान्तात्मा परतोषकृत् ॥१५॥
 औदार्यवान् ज्ञाननिष्ठः शुचिस्त्यक्तपरिश्रमः । इत्यादिगुणयुक्तो यः स गुरुः परमोत्तमः ॥१६॥
 तस्य सेवां चिरं कृत्वा सेवया तं प्रसाद्य च । तस्मादुपासना ग्राह्या सुतीर्थे विधिपूर्विका ॥१७॥
 उपासनास्त्रयः सन्ति सात्त्विकी राजसी तथा । तामसी च तृतीया सा महिताऽत्र निगद्यते ॥१८॥
 भूतवेतालकूर्माडपिशाचानामुपासना । ज्ञेया तामसी घोरं देवानां सात्त्विकी स्मृता १९॥
 यक्षाणां राक्षसानां च या ज्ञेया तु राजसी । शैवा सीराश्च गणेशाः शाक्ताश्च वैष्णवास्तथा ॥२०॥
 अवतारास्त्वसंख्याताः पञ्चानां सन्ति भूतले । तेषामुपासना ग्राह्या गुरोरास्याद्भिजातिभिः ॥२१॥
 पञ्चानामवतारेषु विष्णोरेव ब्रह्मण्यहम् । चतुश्चत्वारिंशन्मितानवतारान्महत्तमान् ॥२२॥
 पुरुषोत्तमो विधिश्चैव रुद्रो नारायणस्तथा । हंसोऽथ दत्तात्रेयश्च कुमारो ऋषभस्तथा ॥२३॥
 हयग्रीवस्तथा मत्स्यः कूर्मो वराह एव च । नारसिंहो वामनश्च जामदग्न्यस्तथैव च ॥२४॥
 रामः कृष्णस्तथा बौद्धः कल्किर्यज्ञो हरिस्तथा । बालस्त्रिभुवोद्धारकश्च पृथुर्वन्वतरिस्तथा ॥२५॥
 मोहिनी नारदो व्यासः कपिलः केशवस्तथा । माधवश्चाथ गोविन्दो मधुसूदन एव च ॥२६॥
 त्रिविक्रमः श्रीधरश्च पद्मनाभस्तथा स्मृतः । दामोदरस्तथा संकर्षणः प्रद्युम्न एव च ॥२७॥
 अनिरुद्धोऽक्षयश्च अच्युतश्च जनार्दनः । उपेन्द्रश्च हृषीकेशस्त्वैते ज्ञेया महत्तमाः ॥२८॥
 मत्स्याद्या अवताराश्च दर्शयेत्पि चोत्तमा । दशावतारमन्त्रेऽपि रामकृष्णौ महत्तमौ ॥२९॥
 ताम्रामपि वरः पूर्वः सत्यसंधो रघूत्तमः । एकपत्नीव्रतो वीरस्त्वेकवाणो नृपोत्तमः ॥३०॥
 सप्तद्वीपपतिः श्रीमच्छत्रचामरमंडितः । एवं शतव्योपासनाऽत्र ग्राह्या श्रीगणेशस्य ॥३१॥
 गुरूपदिष्टविधिना सुमुहूर्ते शुभस्थले । अथवा तत्तद्देवानां ग्राह्या तज्जन्मसत्तिथौ ॥३२॥

जिस आश्रममें हो उनके नियमोंका पालन करनेवाला, बुद्धिमान्, इन्द्रियोंको व्रतमें रखनेवाला, ॥ १४ ॥
 क्षमाशील, कृपालु, मधुरभाषी, अच्छे मुखवाला, सौम्यदर्शी, कम सोनेवाला, सदा उद्योगमें लगा हुआ,
 शान्तात्मा, दूसरोंको प्रसन्न करनेमें तत्पर, ॥ १५ ॥ उदार, ज्ञाननिष्ठ, पवित्र और दान आदि ग्रहण करनेसे
 पराङ्मुख, इन गुणोंसे विभूषित पुरुष ही उत्तम गुरु होता है ॥ १६ ॥ ऐसे गुरुका बहुत दिनोंतक सेवा
 करके उसे प्रसन्न करे । तब किसी अच्छे तीर्थमें उससे विधिपूर्वक उपासनाका उपदेश ग्रहण करे ॥ १७ ॥
 उपासना भी तीन प्रकारकी होती है । सात्त्विकी, राजसी और तामसी । इनमेंसे तामसी उपासना निन्दित
 मानी गयी है ॥ १८ ॥ भूत, वेताल, कूर्माण्ड और पिशाच आदिनी घोर उपासना तामसी कहो गयी है ।
 देवताओंकी उपासना सात्त्विकी कहो जाती है ॥ १९ ॥ यहाँ और राक्षसोंकी उपासना राजसी उपासना
 कहलाती है । शिव, सूर्य, गणेश, शक्ति तथा विष्णु इन पाँचों देवोंके असंख्य अवतार हैं । लोगोंकी चाहिये कि
 गुरुके मुखसे इन्हों पाँच देवोंमेंसे किसी एककी उपासना ग्रहण करें ॥ २० ॥ २१ ॥ ऊपर कहे गये देवताओंमेंसे
 यहाँ विष्णु भगवान्के बड़े-बड़े बीसालस अवतार बतला रहा है ॥ २२ ॥ पुरुषोत्तम, गण्ड, नारायण, हंस,
 दत्तात्रेय, कुमार, ऋषभ, हयग्रीव, मत्स्य, कूर्म, वराह, नसिह, वामन, परशुराम, ॥ २३ ॥ २४ ॥ राम, कृष्ण,
 बौद्ध, कल्कि, यज्ञ, हरि, बालस्त्रिभुवोद्धारक, पृथु, धन्वतरि, मोहिनी, नारद, व्यास, कपिल, केशव, माधव,
 गोविन्द, मधुसूदन, ॥ २५ ॥ २६ ॥ त्रिविक्रम, श्रीधर, पद्मनाभ, दामोदर, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, अघो-
 रज, अच्युत, जनार्दन, उपेन्द्र और हृषीकेश ये श्रेष्ठ अवतार माने गये हैं । इन अवतारोंमें भी मत्स्य-कूर्मादि
 दस अवतार श्रेष्ठ माने जाते हैं और इन दसोंमें भी राम और कृष्ण श्रेष्ठ माने गये हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥
 ॥ दोनोंमें भी सत्यप्रतिज्ञ रामचन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं । क्योंकि ये एकपत्नीव्रती, वीर, एक वाणधारी और सब
 राजाओंमें श्रेष्ठ हैं ॥ ३० ॥ ये सातों द्वीपोंके अधिपति, श्रीमान्, छत्र और चमरसे सुशोभित हैं । ऐसा समझ-
 कर भक्तोंको चाहिए कि गुरुके द्वारा उपदिष्ट विधिके अनुसार अच्छे मुहूर्त तथा पवित्र स्थानमें
 श्रीरामचन्द्रजीकी उपासनाका मन्त्र लें । अबवा ऊपर गिनाये देवताओंमेंसे जिसपर जिसकी रुचि हो, उसीको

चैत्रे मासि दिने पक्षे नवम्यां रामजन्मनि । उपासनानन्तरं हि रामं भक्त्या प्रपूजयेत् ॥३३॥
 एवं यस्यावतारस्य गृहीतोपासना नरैः । तैस्तस्य जन्मदिवसे कार्यं पूजा महोत्सवैः ॥३४॥
 अतो दक्षावताराणां सिध्यन् जन्मदिनानि ते । प्रोच्यन्तेऽत्र भृशं त्वं येषु तान्पूजयेन्नरः ॥३५॥
 चैत्रे तु शुक्लपञ्चम्यां भगवान्मीनरूपधृक् । ज्येष्ठे तु शुक्लद्वादश्यां कूर्मरूपधरो हरिः ॥३६॥
 चैत्रकृष्णनवम्यां ■ हरिर्वागह रूपधृक् । वैशाखेऽभ्युदयशुक्लपक्षे नृकेसरीः ३७ ।
 मासि भाद्रपदे शुक्ले द्वादश्यां वामनस्त्वभूत् । वैशाखे जामदग्न्यस्तु तृतीयायां सिते त्वभूत् ॥३८॥
 चैत्रशुक्लनवम्यां ■ मध्याह्ने राघवस्त्वभूत् । कृष्णाष्टम्यां भारणे हि कृष्णोऽभून्मथुरापुरि ॥३९॥
 पौषशुक्ला सप्तमी या बुद्धजन्मतिथिस्तु सा । माघशुक्लतृतीया तु कल्किनः सा तिथिः स्मृता ॥४०॥

अहो मध्ये वामनो रामरामौ मत्स्यः क्रोडधापगहो विभागं ।

कूर्मः सिंहो बुद्धकल्की च सायं कृष्णो रात्रौ कालसाम्ये च पूर्वे ॥४१॥

एवं तज्जन्मकालश्च ज्ञात्वा तेषामुपासकैः । उत्सवः परमः कार्यस्तत्तदेवप्रपूजने ॥४२॥
 नित्यपूजा प्रकर्तव्या भक्त्या तेषामुपासकैः । विशेषाज्जन्मदिवसे कार्यं तत्पूजनं मुदा ॥४३॥
 गुरोर्गृहीतो यो मन्त्रस्तं नित्यं हृदये जपेत् । राममन्त्रास्त्वनेकाश्च शतवर्णत्मिको मनुः ॥४४॥
 पञ्चाशद्वर्णकश्चापि द्विचत्वारिंशदक्षरः । द्वात्रिंशदक्षरश्चाथ सप्तविंशाक्षरस्तथा ॥४५॥
 पञ्चविंशद्वर्णकश्च चतुर्विंशाक्षरस्तथा । एकविंशद्वर्णकश्च त्रिंशद्वर्णकस्तथा ॥४६॥
 अष्टादशवर्णकश्च षोडशाक्षर एव च । पञ्चदशवर्णकश्च चतुर्दशाक्षरस्तथा ॥४७॥
 त्रयोदशाक्षरश्चापि द्वादशाक्षर एव च । एकादशाक्षरश्चापि तथा मन्त्रो दशाक्षरः ॥४८॥
 नवाक्षरोऽष्टवर्णत्मा सप्ताक्षरमनुस्तथा । षडक्षरो राममन्त्रस्तथा पञ्चाक्षरो मनुः ॥४९॥

जन्मतिथिपर उसकी उपासना ग्रहण करें ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ रामकी उपासना ग्रहण करनेवालोंको चाहिए कि चैत्रमासके शुक्लपक्षमें नवमी (रामजन्म) के दिन उपासना ग्रहण करें । उसके बाद भक्तिपूर्वक रामका पूजन करें ॥ ३३ ॥ इस तरह जिस अवतारकी उपासना ग्रहण करनी हो, उसके जन्मदिवसपर महान् उत्सवके साथ पूजा करनी चाहिए ॥ ३४ ॥ हे सिध्द ! ■ मैं तुम्हें दसों अवतारोंके जन्मदिवस बतलाता हूँ । जिनमें लोगोंको अपने उपास्य देवताका पूजन करना चाहिए ॥ ३५ ॥ चैत्र शुक्ल पञ्चमीको भगवान्ने मत्स्यावतार लिया था । ज्येष्ठ शुक्लपक्षकी द्वादशीको भगवान्ने कूर्मरूप धारण किया ■ । चैत्र कृष्ण नवमीको भगवान्ने वाराहरूप धारण किया था । वैशाख शुक्ल चतुर्दशीको नृसिंहरूप धारण किया था ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ भाद्रपद शुक्ल द्वादशीको वामनरूप धारण किया था । वैशाख शुक्ल तृतीयाको ये परशुराम बने थे ॥ ३८ ॥ चैत्र शुक्ल नवमीको मध्याह्नकालमें भगवान्ने रामका ■ लिया था । भाद्रपद कृष्णपक्षकी अष्टमीको भगवान्ने मथुरामें कृष्णरूपसे अवतार लिया था ॥ ३९ ॥ पौष शुक्ल सप्तमीको बुद्धकी जन्मतिथि होती है । माघ शुक्ल तृतीयाको कल्कि भगवान्की जन्मतिथि होती है ॥ ४० ॥ दोपहरके ■ वामन, राम और कल्कीका जन्मा हुआ था । मत्स्य-वाराह इन दोनोंका जन्म दिनके तीसरे पहर हुआ था । कूर्म, नृसिंह, बुद्ध और कल्कीका अवतार सन्ध्याके समय हुआ था और श्रीकृष्णचन्द्रजीका जन्म रात्री रातको हुआ था ॥ ४१ ॥ इस प्रकार अपने-अपने उपास्य देवोंका जन्मकाल जानकर उस समय महान् उत्सव मनाते हुए उनकी पूजा करनी चाहिए ॥ ४२ ॥ उपासकोंको उचित है कि नित्य अपने आराध्य देवकी पूजा करें । विशेषकर उनके जन्मदिवसको उत्सव और पूजन अवश्य करना चाहिये ॥ ४३ ॥ गुह्ये जो मन्त्र मिले, हृदयमें सर्वदा उसका जप करता रहे । राममन्त्र भी अनेक प्रकारके हैं । उनमेंसे एक ही अक्षरोंका, एक पचास अक्षरोंका, एक ब्यालिस अक्षरोंका, एक बत्तीस अक्षरोंका, एक सत्ताइस अक्षरोंका, एक चौबीस अक्षरोंका, एक द्वाकीस अक्षरोंका, एक बीस अक्षरोंका, ॥ ४४-४६ ॥ एक अठारह अक्षरोंका, एक सोलह अक्षरोंका, एक पन्द्रह अक्षरोंका, एक चौदह अक्षरोंका, एक तेरह अक्षरोंका, एक बारह अक्षरोंका, एक ग्यारह अक्षरोंका, एक ■

चतुर्वर्णात्मकश्चापि तथा वर्णत्रयात्मकः । इधश्चो राघवमन्त्रश्च मनुस्त्वैकाधरोऽपि च ॥५०॥
 एवं नानाविधा मन्त्राः श्रुतश्रोत्र्य महस्रजः । गुरोस्त्वैको गृहीत्याऽव जपेच्छ्रीरामसन्निधौ ॥५१॥
 उपासनाविधानं च समोपासकमानयैः । यथा मन्त्रस्य रूपं हि विज्ञेयं मन्त्रशास्त्रतः ॥५२॥
 अधुना मानसी पूजाविधानं च मयोच्यते । यदण्डके सुतीक्ष्णाय कथितं कुम्भजन्मना ॥५३॥
 सुतीक्ष्णस्त्वैकदाऽयस्य दृष्ट्वा रहसि संस्थितम् । प्रणम्य परया भक्त्या प्रोवाच विनयान्वितः ॥५४॥

सुतीक्ष्ण उवाच

हृदये मानसी पूजा कीदृशी च वद प्रभो । उपचारैः कतिविधैः पूज्यते रघुनन्दनः ॥५५॥

अगस्त्य उवाच

रामं पद्मविशालाक्षं कालाम्बुदसमप्रभम् । स्मितरश्मिं सुखापीनं चिन्तयेच्चित्तपुष्करे ॥५६॥
 रागादिकलुपं चित्तं वैराग्येण मुनिर्नलम् । कृत्वा ध्यायेत्तदा रामं भवबन्धविमुक्तये ॥५७॥
 प्रातः शुद्धवपुर्भूत्वा शौचादिभिरुद्विजितः । विविक्तदेशवाश्रित्य ध्यानं पूजां समारमेत् ॥५८॥
 नाभिःकुण्डलसमुद्भूतं कदलीकुसुमोपमम् । श्रवणं स्निग्धवर्णं ध्यायेद्बुधदयंकवम् ॥५९॥
 तत्पद्मं रामनाम्नैव कुण्डलं कृत्वाऽथ मध्यमे । मायेत्यूर्ध्वसोमाग्निमण्डलानुत्तरात्तरम् ॥६०॥
 तस्योपरि न्यसेद्विष्यं पीठं रत्नमयोज्ज्वलम् । तन्मध्ये राघवं ध्यायेत्सुवर्णोदसमप्रभम् ॥६१॥
 इंदीवरनिभं शांतं विशालाक्षं सुवक्षसम् । उदयोदितमद्भास्वत्कुण्डलाभ्यां विराजितम् ॥६२॥
 सुनासं सुकिरीटं च सुकपोलं शुचिस्मितम् । विज्ञानमुद्रं त्रिभुजं कंबुग्रीवं सुकुन्तलम् ॥६३॥
 नानारत्नमयैर्दिव्यहारैर्भूषितमग्नयम् । विद्युन्मुञ्जप्रतीकाशं वल्लपुष्पधरं हरिम् ॥६४॥

अक्षरोंका, एक नौ अक्षरोंका, एक आठ अक्षरोंका, एक सात अक्षरोंका, एक छ अक्षरोंका, एक पाँच अक्षरोंका, एक चार वर्णोंका, एक तीन अक्षरोंका, एक दो अक्षरोंका और एक एक अक्षरका राममंत्र है ॥ ५०-५० ॥ एक तरह अनेक प्रकारके राममंत्र है । उपासकको चाहिये कि उनमेंसे किसी भी एक मंत्रको गुरुसे ग्रहण करे और श्रीरामचन्द्रजीके पास बैठकर उसका जप करे ॥ ५१ ॥ रामकी उपासना करनेवालोंको चाहिए कि उपासनाको पिघि और मन्त्रका स्वरूप मन्त्रशास्त्रसे समझ ले ॥ ५२ ॥ अब मैं यहाँ रामकी मानसी पूजाका विधान बतला रहा हूँ । जिसे कि दण्डक वनमें अगस्त्यजीन सुतीक्ष्ण ऋषिको बतलाया था ॥ ५३ ॥ एक दिन अगस्त्यजी एकान्तमें बैठे थे । उसी समय सुतीक्ष्ण जाकर परम भाक्तस अगस्त्यको प्रणाम किया और विनयपूर्वक कहने लगे ॥ ५४ ॥ सुतीक्ष्णने कहा—हे प्रभो ! उपासकोंको मानसी पूजा कैसे करनी चाहिये । इस पूजामें किन-किन उपचारोंसे रामका पूजन किया जाता है, सां आप बतलाइए ॥ ५५ ॥ अगस्त्यने कहा कि उपासकको चाहिए कि पहले वह अपने हृदयरूपी कमलपर बैठे हुए रामका इस प्रकार ध्यान करे—जिनके कमलको तरह विशाल नेत्र है । ■■■■ मेंथके समान नील वर्ण है । मुस्कराता हुआ मुक्त है और वे आनन्दपूर्वक बैठे हैं ■ ५६ ॥ उपासकका यह भी कतव्य है कि राग-द्वेष आदिसे कलुषित चित्तको वैराग्यसे निर्मल कर से । तब भवपाशसे मुक्त होनेके लिए रामका ध्यान करे ॥ ५७ ॥ सबसे शरीरको पवित्र करके शम्भाजी सर्वथा छोड़कर किसी एकान्त स्थानमें ध्यान और पूजन करे ॥ ५८ ॥ नाभि-कुण्डसे निकले हुए कदलीपुष्पके समान आठ दलोंवाले और चिकने हृदयरूपी कमलका ध्यान करे ॥ ५९ ॥ उस कमलको रामनामसे विकसित करके बीचमें सूर्य, सोम एवं अग्निमण्डलसे भी अधिक प्रकाशमान तेजका ध्यान करे ॥ ६० ॥ उसपर रत्नमय उज्ज्वल चौको रखनेकी भावना करके उसके बीचोबीच कराड़ों सूर्यके समान प्रकाशमान रामका ध्यान करे ॥ ६१ ॥ कमलको नाई जिनको विशाल आँखें हैं । दमकती हुई दीप्तिसे प्रकाशित कुण्डल जिनके कानोंमें पड़े हैं ॥ ६२ ॥ जिनकी सुन्दर नासिका है, जो सुन्दर किरीट धारण किये हैं, जिनका सुन्दर कपोल है, मीठे मुसकान है, वे विज्ञानमुद्रा धारण किये हैं, उनकी दो भुजाएँ हैं, शंखके समान शोभा है, उनके काँधों और कमरके हुए केतुपाश हैं, जो अनेक रत्नोंसे युक्ती दिव्य माला पहने हैं, जिनका कभी भी

वीरासनस्थं संतानतरुमूलनिवासिनम् । महासुगन्धलिप्ताङ्गं वनमालाविराजिनम् ॥६५॥
 चामपाश्वे स्थितां सीतां चामीकरमप्रभाम् । लीलापद्मधरां देवीं चारुशलां शुभाननान् ॥६६॥
 पश्यतीं स्निग्धया दृष्ट्या दिव्यां कल्पविराजिताम् । छत्रचामरहस्तेन लक्ष्मणेन सुसेवितम् ॥६७॥
 हनुमत्प्रभुत्वेनित्यं वानरैः परिवारितम् । स्तूयमानं ऋषिगणैः सेवितं भरतादिभिः ॥६८॥
 सनन्दनादिभिश्चान्यैर्योगिभ्यः स्तुतं सदा । तवैश्वर्यकृशलां योगज्ञं योगसिद्धिदम् ॥६९॥
 एवं ध्यात्वा रामचन्द्रं मणिद्वयसुशोभितम् । शुद्धेन मनसा रामं पूजयेत्सर्वतः हृदि ॥७०॥
 इति ध्यानम् ।

आवाहयामि विश्वेशं जानकीवल्लभं त्रिभुम् । कौमल्यातनयं विष्णुं श्रीरामं प्रकृतेः परम् ॥७१॥
 राजाधिराज राजेन्द्र रामचन्द्र महीपते । रत्नसिंहासनं तुभ्यं दास्यामि स्वीकुरु प्रभो ॥७२॥
 श्रीरामागच्छ भगवन् रघुवीर रघूत्तम । जानक्या सह राजेन्द्र सुस्थिरो भव सर्वदा ॥७३॥
 रामचन्द्र महेष्वास रावणात्क राघव । यावत्पूजा समाप्येऽहं तावत्त्वं सन्निधी भव ॥७४॥
 रघुनन्दन राजर्षे राम राजीवलोचन । रघुवंशज मे देव श्रीरामाभिमुखो भव ॥७५॥
 प्रसीद जानकीनाथ सुप्रसिद्ध सुरेश्वर । प्रसन्नो भव मे राजन् सर्वेश मधुसूदन ॥७६॥
 शरणं मे जगन्नाथ शरणं भक्तवत्सल । वरदो भव मे राजन् शरणं मे रघूत्तम ॥७७॥
 त्रैलोक्यपावनान्त नमस्ते रघुनाथक । पादं गृहाण राजर्षे नमो राजीवलोचन ॥७८॥
 परिपूर्ण परानन्द नमो रामाय वेधसे । गृहाणाभ्यं मया दत्तं कृष्ण विष्णो जनार्दन ॥७९॥
 अन्नमो वासुदेवाय तत्त्वज्ञानस्वरूपिणे । मधुपर्कं गृहाणं मे राजाराजाय ते नमः ॥८०॥

मिनाश महीं होता, जो विद्युत्पुत्रके समान दमकते हुए वस्त्रोंके जोड़े पहने हैं, वीरासनसे बंटे हैं, कल्पवृक्षके नीचे निवास करते हैं, उत्तम सुगन्ध जिनके शरीरभरमे भरा हुई और वरमाला धारण किये हुए हैं ॥६५-६५॥ जिनके बायें बगलमें सीताजी बंठी हैं, उनका भी सुवर्ण सरासा तज है, वे हाथोंमें लीलापद्म लिये हैं, मुखपर मन्द मुस्कराहट है, सुन्दर चेहरा है और प्रेमभरा हृत्स रामका निहारता हुई कल्पवृक्षके नीचे बंटी है । हाथमें और चमर लेकर लक्ष्मणजी रामकी सेवा कर रहे हैं ॥ ६६ ॥ ६७॥ हनुमान आदि वानरोंसे वे नित्य घिरे रहते हैं । कितने ही ऋषि स्तुति करते हैं और भरत आदि आता उनका सेवा कर रहे हैं । सनन्दन आदि कितने योगी उनका स्तुति कर रहे हैं । व राम समस्त शास्त्रोंके अर्थ जाननेमें कुशल है । योगकिराको भी वे जानते और योगसिद्धके दाता हैं ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ कौस्तुभ तथा चिन्तामाण इन दोनों मणिमोस सुशोभित रामचन्द्रका ध्यान करके शुद्ध मनस तांबे लता विधिके अनुसार सदा हृदयमें उनका पूजन करे ॥ ७० ॥ संसारके ईश, जानकीके वत्सल, कौस्तुभाक पुत्र, प्रकृतसे पर और विष्णुरूपधारी श्रीरामका मैं आवाहन करता हूँ ॥ ७१ ॥ राजाआक राजा रामचन्द्र ! हे महापते ! मैं आपका रत्नमय सिंहासन हूँ, उसे स्वीकार करें ॥ ७२ ॥ हे श्रीराम ! हे भगवन् ! हे रघुवीर ! हे रघूत्तम ! राजेन्द्र । जानकीजीके साथ आइये और इस हृदयासनपर बैठिए ॥ ७३ ॥ हे रामचन्द्र ! हे महान् धनुष धारण करनेवाले । हे रावणान्तक ! हे राघव ! जब तक मैं पूजन समाप्त न कर लूँ, तब तक आप मेरे पास रहिए ॥ ७४ ॥ हे रघुनन्दन ! हे राजर्षे ! हे राजीवलोचन राम ! हे रघुवंशज ! हे देव ! हे श्रीराम ! आप मेरे सम्मुख प्रकट हों ॥ ७५ ॥ हे जानकीनाथ ! हे सुप्रसिद्ध सुरेश्वर ! आप भरपर प्रसन्न हो । हे राजन् ! हे सर्वेश ! हे मधुसूदन ! आप मेरेपर प्रसन्न हों ॥ ७६ ॥ हे जगन्नाथ ! मैं आपकी शरणमें हूँ । भक्तवत्सल । आप मेरे वरदाता हों । रघूत्तम ! मैं आपकी शरणमें ॥ ७७ ॥ हे अनन्त ! हे त्रैलोक्यपावन । हे रघुनाथक ! आपको प्रणाम है । हे राजर्षे ! इस पद्मकी ग्रहण करिए । हे राजावलोचन राम ! आपको ॥ ७८ ॥ परिपूर्ण परमानन्द गृहस्थधारी रामकी प्रणाम है । हे कृष्ण ! हे विष्णो ! हे जनार्दन ! मेरे दिये हुए अर्घ्यको आप ग्रहण करें ॥ ७९ ॥ तत्त्वज्ञानके साक्षात् स्वरूप वासुदेवकी प्रणाम है । हे राजराज ! आपको प्रणाम है । आप मेरे

नमः सत्याय शुद्धाय बुध्न्याय ज्ञानरूपिणे । गृहाणाचमनं देव सर्वलोकैकनायक ॥८१॥
 ब्रह्मांडोदरमध्यस्थैस्तीर्थैश्च रघुनन्दन । स्नापयिष्याम्यहं भक्त्या त्वं गृहाण जनार्दन ॥८२॥
 संतप्तकाचनप्रख्यं पीताम्बरमिमं हरे । मंगृहाण जगन्नाथ रामचन्द्र नमोऽस्तु ते ॥८३॥
 श्रीरामाच्युत यज्ञेश श्रीधरानन्द राघव । मलयग्रं सोत्तरीयं गृहाण रघुनायक ॥८४॥
 किरीटहारकेयूररत्नकुण्डलमेखलाः । ग्रैवेयकौस्तुभं हारं रत्नकंकणनूपुरान् ॥८५॥
 एवमादीनि सर्वाणि भूषणानि रघूत्तम । अहं दास्यामि ते भक्त्या संगृहाण जनार्दन ॥८६॥
 कुंकुमागरुकस्तूरीकपूगेन्मिश्रचन्दनम् । तुभ्यं दास्यामि विश्वेश श्रीराम स्वीकुरु प्रभो ॥८७॥
 तुलसीकुन्दमन्दारजातिपुष्पागच्छम्पकैः । कदम्बकरवीरैश्च कुसुमैः शतपत्रकैः ॥८८॥
 नीलांबुजविन्दवल्लैः पुष्पमाल्यैश्च राघव । पूजयिष्याम्यहं भक्त्या संगृहाण नमोऽस्तु ते ॥८९॥
 वनस्पतिसैदिव्यैर्गन्धाढ्यैः सुमनोहरैः । रामचन्द्र महीपाल भूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥९०॥
 ज्योतिषां पतये तुभ्यं नमो रामाय वेधसे । गृहाण दीपकं राजसैलोकपतिमिरापहम् ॥९१॥
 इदं दिव्याम्बममृतं रसैः पट्टमिविराजितम् । श्रीराम राजराजेन्द्र नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥९२॥
 नामवल्लीदलैर्धुतं पूर्णफलसमन्वितम् । तांबूलं गृह्यतां राम कर्पूरादिसमन्वितम् ॥९३॥
 मङ्गलार्थं महोपाल नीराजनमिदं हरे । मंगृहाण जगन्नाथ रामचन्द्र नमोऽस्तु ते ॥९४॥

अथ नमस्काराष्टकमन्त्राः

ॐ नमो भगवते श्रीरामाय परमात्मने । सर्वभूतान्तरस्थाय ससीताय नमो नमः ॥९५॥
 ॐ नमो भगवते श्रीराम रामचन्द्राय वेधसे । सर्ववेदान्तवेद्याय ससीताय नमो नमः ॥९६॥
 ॐ नमो भगवते श्रीविष्णवे परमात्मने । परात्पराय रामाय ससीताय नमो नमः ॥९७॥

किये हुए इस पूजनको ग्रहण करिए ॥ ८० ॥ सत्य, शुद्ध, बुद्ध्य और ज्ञानस्वरूप भगवान्‌को प्रणाम है । हे देव ! हे सर्वलोकैकनायक ! मेरे दिये हुए इस आचमनको ग्रहण करें ॥ ८१ ॥ ब्रह्माण्डमें जितने तीर्थ हैं, उनके जलसे मैं आपको स्नान कराऊंगा । सो आप स्वीकार करें ॥ ८२ ॥ हे हरे ! अच्छी तरह तपामे हुए सुवर्णके इस पीताम्बरको आप ग्रहण कीजिए । हे जगन्नाथ ! हे रामचन्द्र ! आपको प्रणाम है ॥ ८३ ॥ हे श्रीराम ! हे अच्युत ! यज्ञेश ! हे श्रीधरानन्द ! हे राघव ! रघुनायक ! उत्तरीय वस्त्रके साथ दिये हुए मेरे इस यज्ञोपवीतको आप ग्रहण करें ॥ ८४ ॥ किरीट, हार, केयूर, रत्नश्रृङ्खल कुण्डल, मेखला, माला, कौस्तुभका हार, रत्नजटित कंकण, नूपुर, इस प्रकार तरहके आभूषण मैं आपको भक्तिपूर्वक दूंगा । सो आप ग्रहण करिए ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ कुमकुम, अगुरु, कस्तूरी तथा कपूरसे मिश्रित चन्दन हे विश्वेश । हे श्रीराम ! हे प्रभो ! मैं आपको दूंगा । सो आप स्वीकार करें ॥ ८७ ॥ तुलसी, कुन्द, मन्दार, जूही, पुन्नाग, चम्पक, कदम्ब, करवीर तथा शतपत्रके फूल, नीलकण्ठ, चित्त्वपत्र और पुष्पमाल्योंसे मैं आपका पूजन करूँगा । उसे आप ग्रहण करें । आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ वनस्पतिके दिव्य रसों और सुगन्धसे मिश्रित दिव्य धूप आपको आश्रापन कराऊँगा । हे रामचन्द्र ! हे महोपाल ! आप इसे ग्रहण करें ॥ ९० ॥ संसारके सारे ज्योतिर्मय पदार्थोंके पति हे राम ! हे वेध ! आपको नमस्कार है । हे राजन् ! तीनों लोकका अधिकार नष्ट करनेवाले दीपकको आप ग्रहण करिए । छः रसोंसे युक्त तथा अमृतके समान सुस्वादु यह दिव्यान्न तैयार है । हे श्रीराम ! हे राजराजेन्द्र ! आप इस नैवेद्यको ग्रहण करिए ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ पानके पत्तोंसे बाँड़े हुए, सुपारी तथा कर्पूरादि मसालोंसे युक्त इस ताम्बूलको आप ग्रहण करें ॥ ९३ ॥ हे महोपाल ! हे हरे ! मङ्गलके निमित्त दिये हुए मेरे इस नीराजनको आप ग्रहण करें । हे जगन्नाथ ! हे रामचन्द्र ! आपको प्रणाम है ॥ ९४ ॥ आठ नमस्कार बतलाते हैं । भगवान्, श्रीराम, परमात्मा, सब प्राणियोंके भीतर रहनेवाले, सीताके साथ रामचन्द्रजी-को प्रणाम है ॥ ९५ ॥ भगवान् श्रीरामचन्द्र, देवा और सब वेदान्त ज्ञाननेवाले सीताके पति रामको प्रणाम है ॥ ९६ ॥ भगवान् विष्णु, परमात्मा, परात्पर एवं सीताके साथ विराजमान रामको प्रणाम है ॥ ९७ ॥

ॐ नमो भगवते श्रीरघुनाथाय शाङ्गिणे । चिन्मयानन्दरूपाय सतीताय नमो नमः ॥९८॥
 ॐ नमो भगवते श्रीराम श्रीकृष्णाय चक्रिणे । विशुद्धज्ञानदेहाय सतीताय नमो नमः ॥९९॥
 ॐ नमो भगवते श्रीवासुदेवाय श्रीविष्णवे । पूर्णानन्दैकरूपाय सतीताय नमो नमः ॥१००॥
 ॐ नमो भगवते श्रीराम रामभद्राय वेधसे । सर्वलोकशरणाय सतीताय नमो नमः ॥१०१॥
 ॐ नमो भगवते श्रीरामायामिनतेजसे । ब्रह्मानन्दैकरूपाय सतीताय नमो नमः ॥१०२॥

इति नमस्काराष्टकमन्त्राः ।

नृत्यगीतादिवाद्यादिपुराणपठनादिभिः । राजोपचारैरक्षितैः सन्तुष्टो भव राघव ॥१०३॥
 विशुद्धज्ञानदेहाय रघुनाथाय विश्वमे । अन्तःकरणसंशुद्धिं देहि मे रघुनन्दन ॥१०४॥
 नमो नारायणानंत श्रीराम करुणानिधे । मामुद्धर जगन्नाथ घोरसंसारसागरात् ॥१०५॥
 रामचन्द्र महेश्वर शरणागततत्पर । त्राहि मां सर्वलोकेश तापत्रयमहानलात् ॥१०६॥
 श्रीकृष्ण श्रीकर श्रीश श्रीराम श्रीनिधे हरे । श्रीनाथ श्रीमहाविष्णो श्रीनृसिंह कृपानिधे ॥१०७॥
 गर्भजन्मजराव्याधिघोरसंसारसागरात् । मामुद्धर जगन्नाथ कृष्ण विष्णो जनार्दन ॥१०८॥

श्रीराम गोविन्द मुकुन्द कृष्ण श्रीनाथ विष्णो भगवन् नमस्ते ।

प्रौढारिषड्वर्गपद्मभयेभ्यो मां त्राहि नारायण विश्वमूर्ते ॥१०९॥

श्रीरामाच्युत यज्ञेश श्रीधरानन्द राघव । श्रीगोविन्द हरे विष्णो नमस्ते जानकीपते ॥११०॥
 ब्रह्मानन्दैकविज्ञानं त्वन्नामस्मरणं नृणाम् । त्वत्पदांबुजसङ्गतिं देहि मे रघुवल्लभ ॥१११॥

नमोऽस्तु नारायण विश्वमूर्ते नमोऽस्तु ते शाश्वत विश्वयोने ।

त्वमेव विश्वं सचराचरं च त्वामेव सर्वं प्रवदन्ति सन्तः ॥११२॥

नमोऽस्तु ते कारणकारणाय नमोऽस्तु कैवल्यफलप्रदाय ।

नमो नमस्तेऽस्तु जगन्मयाय वेदान्तवेद्याय नमो नमस्ते ॥११३॥

भगवान्, श्रीरघुनाथ, शाङ्गी, चिन्मयानन्दस्वरूप और सीतापति रामको प्रणाम है ॥ ९८ ॥ भगवान्, श्रीरामकृष्ण, चक्रो, विशुद्ध ज्ञानदेहधारो, सीताके साथ रामको प्रणाम है ॥ ९९ ॥ भगवान्, श्रीवासुदेव-स्वरूप, विष्णु, पूर्णानन्दस्वरूप सीताके साथ रामको प्रणाम है ॥ १०० ॥ भगवान्, श्रीरामभद्र, वेध (ब्रह्मा) और सब लोगोंके शरणदाता सीताके साथ रामको प्रणाम है ॥ १०१ ॥ जो अनन्त तेजधारी भगवान् रामचन्द्रजी हैं । उन ब्रह्मानन्दके एकमात्र रूपधारी सीताके साथ रामको प्रणाम है ॥ १०२ ॥ हे राघव ! मेरे नृत्य, गीत, पुराण-पठन आदि राजोचित उपचारोंसे आप प्रसन्न हों ॥ १०३ ॥ विशुद्ध ज्ञानरूप देह धारण करनेवाले श्रीरघुनाथजीको प्रणाम है । हे रघुनन्दन ! हमें अन्तःकरणकी शुद्धि प्रदान करिए ॥ १०४ ॥ हे नारायण ! हे अनन्त ! हे श्रीराम ! हे करुणानिधे ! आपको जगन्नाथ ! हमारा घोर संसारसागरसे उद्धार करे ॥ १०५ ॥ हे रामचन्द्र ! हे महेश्वर ! हे शरणागत-तत्पर ! हे सर्वलोकेश ! हमें तापत्रयरूपी महानलसे बचाइए ॥ १०६ ॥ हे कृष्ण ! हे श्रीश ! हे श्रीराम ! हे श्रीनिधे ! हे श्रीनाथ ! हे महाविष्णो ! हे श्रीनृसिंह ! हे कृपानिधे ! गर्भ, जन्म, जरा तथा व्याधिरूप घोर संसारसागरसे मुझे उबारिए । हे जगन्नाथ ! हे कृष्ण ! हे विष्णो ! हे जनार्दन ! ॥ १०७, १०८ ॥ हे श्रीराम ! हे गोविन्द ! हे मुकुन्द ! हे कृष्ण ! हे श्रीनाथ ! हे विष्णो ! हे भगवान् ! आपको नमस्कार है । हे नारायण ! विश्वमूर्ति ! प्रौढ़ अरिषड्वर्गके महाभयसे मेरी त्राहि करिए ॥ १०९ ॥ हे श्रीराम ! अच्युत ! यज्ञेश ! हे धाधरानन्द राघव ! हे गोविन्द ! हे हरे ! विष्णो ! हे जानकीपते ! आपको नमस्कार है ॥ ११० ॥ हे रघु-वल्लभ ! आपका नामस्मरण ब्रह्मानन्दके विज्ञानको उत्पन्न करता है । आप हमें अपने चरणकमलकी सङ्गति प्रदान करिए ॥ १११ ॥ हे कारणोंके भी कारण ! आपको नमस्कार है । हे कैवल्य फल प्रदान करनेवाले प्रभो ! आपको प्रणाम है । हे जगन्मयाय ! हे वेदान्तवेद्याय ! आपको नमस्कार है ॥ ११२ ॥ हे भरतके अग्रज !

नमो नमस्ते भरताग्रजाय नमोऽस्तु यज्ञप्रतिपालनाय ।

अनंत यज्ञेश हरे मुकुन्द गोविन्द विष्णो भगवन्मुरारे ॥११४॥

श्रीवल्लभानन्त जगन्निवास श्रीराम राजेन्द्र नमो नमस्ते ।

श्रीजानकीकांत विशालनेत्र राजाधिराज त्वयि मेऽस्तु भक्तिः ॥११५॥

तप्तजाम्बूनदेनैव निर्मितं रत्नभूषितम् । स्वर्णपुष्पं रघुश्रेष्ठं दास्यामि स्वीकुरु प्रभो ॥११६॥

हृत्पद्मकर्णिकामध्ये सीतया सह राघव । निवस त्वं रघुश्रेष्ठ सर्वैरावरणैः सह ॥११७॥

मनोवाक्यजनितं कर्म यद्वा शुभाशुभम् । तत्सर्वं प्रीतये भूयान्नमो रामाय क्षात्रिणे ॥११८॥

अपराधसहस्राणि क्रियंतेऽहर्निशं मया । दासोऽयमिति मां मत्वा क्षमस्व रघुपुंगव ॥११९॥

नमस्ते जानकीनाथ रामचन्द्र महीपते । पूर्णानन्दैकरूप त्वं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥१२०॥

एवं यः कुरुते पूजां बहिर्वा हृदयेऽपि च । सकृत्पूजनमात्रेण राम एव भवेन्नरः ॥१२१॥

किं पुनः सततं ब्रह्मण्येवं पूज्य स्थितो हि सः । सर्वान्कामानवाप्नोति चेह लोके परत्र च ॥१२२॥

एवं सुतीक्ष्ण ते प्रोक्तं यथा पृष्ठं त्वया मम । हृदये मानसीपूजाविधानं राघवस्य च ॥१२३॥

श्रीरामदास उवाच

एवं शिष्य सुतीक्ष्णाय मुनयेऽगस्तितना पुरा । यत्प्रोक्तं तन्मया सर्वं तव प्रोक्तं सविस्तरात् ॥१२४॥

शिष्याधुना बहिःपूजाविधानं च मयोज्यते । नरः प्रातः समुत्थाय कृत्वा शौचादिकाः क्रियाः ॥१२५॥

स्नानाश्वा संख्यादिकं कृत्वा देवपूजां समारभेत् । तीर्थे देवालये वाऽपि गोष्ठे पुण्यस्थलेषु च ॥१२६॥

नद्यास्तटे देवगेहे तुलसीसन्निधौ तथा । लिप्त्वा भूमिं गोमयेन ततो पद्यानि लेखयेत् ॥१२७॥

सितरक्तहरितीक्ष्णनीलकृष्णादिसंभवं । नानावर्णं चित्रितानि तत्र पूजां समारभेत् ॥१२८॥

हे यज्ञका प्रतिपालन करनेवाले ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है । ॥ अनन्त ! हे यज्ञेश । हे हरे ! ॥ मुकुन्द ! हे विष्णु ! हे मुरारे ! हे श्रीवल्लभ ! ॥ अनन्त ! हे जगन्निवास ! श्रीराम ! हे राजेन्द्र ! आपको नमस्कार है । हे श्रीजानकीकांत ! ॥ विशालनेत्र ! हे राजाधिराज ! आपमें मेरी भक्ति हो ॥ ११३-११५ ॥ तपाये हुए सुवर्णसे निर्मित और रत्नोंसे विभूषित यह सुवर्णपुष्प मैं आपको अर्पण करता हूँ । हे प्रभो ! इसे आप स्वीकार करें ॥ ११६ ॥ हृदयरूपी कमलके बीचोंबीच सीता तथा ॥ ॥ आवरणोंके ॥ उसपर बैठिए ॥ ११७ ॥ मन, ॥ ॥ अथवा शरीरसे मैने जो शुभ या अशुभ कर्म किया हो, वह सब आपकी ॥ ॥ कारण बने । हे अनुधारी राम ! ॥ आपको प्रणाम ॥ ॥ हूँ ॥ ११८ ॥ हे रघुपुंगव ! रात-दिन मैं हजारों प्रकारके पातक करता हूँ । मुझे अपना दास समझकर आप क्षमा कर दें ॥ ११९ ॥ ॥ जानकीनाथ ! हे महीपते ! हे रामचन्द्र ! आपको नमस्कार है । हे पूर्णानन्दनस्वरूप ! मैं आपको अर्घ्य देता हूँ, इसे आप ग्रहण करें ॥ १२० ॥ इस रीतिसे जो मनुष्य हृदयके भीतर ॥ बाहर पूजन ॥ है, वह केवल एक बारके पूजनसे साक्षात् राम हो जाता है ॥ १२१ ॥ फिर उसके लिए क्या कहना, जो रात-दिन उसीमें लीन रहता हो । वह प्राणी इहलोक और परलोक, दोनोंकी अभीष्ट कामनाएँ प्राप्त कर लेता है । हे सुतीक्ष्ण ! तुमने हमसे जैसे पूजा, उस प्रकार मैंने मानसी पूजाका सारा विधान कह सुनाया ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ श्रीरामदासने कहा - हे शिष्य ! इस तरह सुतीक्ष्ण मुनिके लिए भगवत्पूजा ऋषिने उस समय जो विधान बतलाया था, सो मैंने विस्तारपूर्वक तुम्हें ॥ दिया ॥ १२४ ॥ हे शिष्य ! अब ॥ बाह्यपूजाका विधान बतला रहा हूँ । उपासकको चाहिये कि प्रातःकाल उठे और शौचादिसे निवृत्त होकर स्नान-संख्या आदि करे । फिर किसी तीर्थ, देवालये, गोसाला या पवित्र स्थानमें देवपूजा प्रारम्भ करे ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ ऊपर बताये स्थानोंके सिवाय किसी नदीपट्टपर, देवमन्दिर तथा तुलसीके पास गोबरसे लीपकर सफेद, लाल, हरे, पीले, नीले, काले, इस तरह नाना प्रकारके रंगोंसे चित्र-विचित्र ॥ बनाकर पूजन प्रारम्भ करे ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ एक आसन एक हजार आठ श्रीरामनामका ॥ है । एक आसन आठ

अष्टोत्तरसहस्रश्रीरामलिङ्गात्मकासनम् । वाष्टोत्तरशतं श्रीमद्रामलिङ्गात्मकासनम् ॥१२९॥
 अष्टोत्तरसहस्रश्रीरामभद्रासनं हि वा । वाष्टोत्तरशतं श्रीमद्रामभद्रासनं शुभम् ॥१३०॥
 बहून्यन्यानि शतशः संति लब्धासनानि हि । तेषां मध्यादेकमेवासनं संस्थाप्य चित्रितम् ॥१३१॥
 पीठोपरि कृतं चक्रं पद्मादिष्वपि वा कृतम् । आसनोपरि जानक्या राघवादीन्निवेशयेत् ॥१३२॥
 आसने सर्वतोभद्रमध्ये पद्मोपरि न्यसेत् । सीतया राघवं रम्यं वरसिंहासने स्थितम् ॥१३३॥
 रामस्य पृष्ठभागे च लक्ष्मणं स्थापयेत्ततः । रामस्य दक्षिणे पार्श्वे भरतं विन्यसेच्छुभम् ॥१३४॥
 रामस्य वामपार्श्वे हि शत्रुघ्नं विन्यसेच्छुभम् । पुरतो रामचन्द्रस्य वायुपुत्रं तु विन्यसेत् ॥१३५॥
 रामस्य वायुदिग्भागे सुग्रीवं स्थापयेत्ततः । ईशान्यां रामचन्द्रस्य विन्यस्य विभीषणम् ॥१३६॥
 रामस्य बहिर्दिग्भागे विन्यसेदं मदं । नैऋत्यां रामचन्द्रस्य जायवतं विन्यसेत् ॥१३७॥
 पूज्यपूजकयोर्मध्ये प्राग्दिग्भ्यामर्चने त्विह । सर्वशास्त्रेष्वेवमेव निर्णयः कथ्यते मुधैः ॥१३८॥
 लक्ष्मणस्य करे देयं छत्रं मुक्ताविराजितम् । भरतस्य करे देयं चामरं रुक्ममण्डितम् ॥१३९॥
 शत्रुघ्नस्य करे देयं व्यजनं चित्रितं शुभम् । हनुमतः करे देयं रामस्य पादुकाद्वयम् ॥१४०॥
 सुग्रीवस्य करे देयं जलपात्रं मनोहरम् । करे विभीषणस्यापि देयं मुकुटमुत्तमम् ॥१४१॥
 देयं ताम्बूलपात्रं च वालिनन्दनसत्करे । जायवतः करे देयो वस्त्रकोशो महत्तमः ॥१४२॥
 नवायतनमेवं हि स्थापयेद्राघवस्य च । अथवा पञ्चायतनं स्थापयेदासनोपरि ॥१४३॥
 सीतया रामचन्द्रं च मध्ये पृष्ठे तु लक्ष्मणम् । भरतं सव्यपार्श्वे च शत्रुघ्नं वामपार्श्वके ॥१४४॥
 पुरतो वायुपुत्रं च पूर्वोक्तैरुपचारकैः । एवं संस्थापयेद्भक्त्या रामं भद्रासनोपरि ॥१४५॥
 अथवा सीतया रामं मध्ये स्थाप्य ततः परम् । रामस्य पृष्ठे सीमित्रिं रामाग्रं वायुनन्दनम् ॥१४६॥
 स्थाप्यैवं पूजयेद्भक्त्या रामं घृतशरासनम् । अथवा सीतया रामं लक्ष्मणं परिपूजयेत् ॥१४७॥

सी रामके नामसे अङ्कित करके बनाया जाता है । एक हजार आठ नामोंसे अङ्कित करके एक श्रीराम-भद्रासन है । दूसरा एक सी आठ नामोंसे अङ्कित करके श्रीरामभद्रासन बनता ॥ १२९ ॥ १३० ॥ इसी तरह बहुतसे और भी छोटे-छोटे आसन बनते हैं । उनमेंसे रंगकर कोई एक आसन बनाये ॥ १३१ ॥ इस आसनकी रचना वस्त्र बिछाकर पीठेपर करे । उसके ऊपर जानकी तथा राम आदिको बैठाये ॥ १३२ ॥ सर्वतोभद्रके मध्यमें बने लक्ष्मणके ऊपर पहले एक सुन्दर सिंहासनपर राम सीताको बिठाये ॥ १३३ ॥ रामके पीछे लक्ष्मणको स्थापित करे । रामके दाहिने बगल भरतको स्थापित करे और रामके पार्श्वमें शत्रुघ्नको बिठाये । रामचन्द्रजीके आगे हनुमानजीकी स्थापना करे ॥ १३४ ॥ १३५ ॥ रामके वायव्य कोणमें सुग्रीवकी स्थापना करे । ईशानकोणमें विभीषणको स्थापित करके अग्निकोणमें अङ्गदको तथा नैऋत्यकोणमें जाम्बवान्की स्थापना करे ॥ १३६ ॥ १३७ ॥ पूज्य और पूजक इन दोनोंके लिए प्राची दिशा ही पूजन करनेमें श्रेष्ठ है । पण्डितोंका कहना कि शास्त्रोंमें इसी प्रकारका निर्णय किया गया है ॥ १३८ ॥ लक्ष्मणके हाथमें मोतियोंसे सुसज्जित दे । भरतके हाथमें सुवर्णसे मण्डित चमर दे ॥ १३९ ॥ शत्रुघ्नके हाथमें चित्रित व्यजन (पंखा) दे और हनुमान्जीके हाथमें रामकी दोनों पादुकाएँ दे ॥ १४० ॥ सुग्रीवके हाथमें मनोहर जलपात्र और विभीषणके हाथमें उत्तम शीशा दे ॥ १४१ ॥ अङ्गदके हाथमें सुन्दर ताम्बूलपात्र दे, जाम्बवान्के हाथमें कपड़ोंकी पेट्टी दे । इस तरह श्रीरामचन्द्रजीके नवायतनकी स्थापना करे ॥ १४२ ॥ १४३ ॥ मध्यभागमें सीताके साथ रामचन्द्रजीको बिठाये, पीछे लक्ष्मणको, दाहिने बगल भरतको, बायें बगल शत्रुघ्नको तथा सामने हनुमान्जीको पूर्वोक्त उपचारोंके साथ बिठाये । इस तरह सुन्दर आसनपर रामकी स्थापना करे । इसे ही रामपञ्चायतन कहते हैं ॥ १४४ ॥ १४५ ॥ अथवा सीताके साथ-साथ रामको मध्यमें बिठाकर रामके पीछे लक्ष्मण और आगे हनुमान्जीकी स्थापना करके घनुर्वारी रामका पूजन करे । अथवा सीताके साथ राम और लक्ष्मणकी पूजा

सीतानुजौ विना पूजा रामस्यैकस्य नाचरेत् । कृता चेद्विघ्नकृत्री सा भवदत्र न संशयः ॥१४८॥
 नवायतनपूजा सा भेष्टा श्रेया शुभप्रदा । या पञ्चायतनी पूजा श्रेया सा मध्यमाऽत्र हि ॥१४९॥
 त्रिदैवत्या तु या पूजा कनिष्ठा सा निगद्यते । अतिकनिष्ठा पूजा सा द्विदैवत्या स्मृता हि सा ॥१५०॥
 कोदण्डं वामहस्ते च तूणीरं वामपार्श्वके । निजनामाङ्कितं बाणं दधानं दक्षिणे करे ॥१५१॥
 एवं श्रीराघवं स्थाप्य ततः पूजां समारभेत् । आत्मनो वामभागे च जलकुम्भं निधाय हि ॥१५२॥
 आत्मनो दक्षिणे भागे पूजापात्रं निवेशयेत् । आत्मनः पुरतः पात्रं स्थापयेद्विस्तृतं वरम् ॥१५३॥
 प्राङ्मुखः सुखमासीनो धृतपद्मासनः शुचिः । मौनी धृताक्षतुलसीमालो निश्चलमानसः ॥१५४॥
 बद्धग्रन्थिश्चिखः शुद्धवस्त्रो धृतपवित्रकः । शुद्धद्वारावतीमृत्कुचिलको मुद्रिकाङ्कितः ॥१५५॥

नस्वादी गणराजं च तिथिवारादि कीर्तयेत् ।

भूमिगुद्धिं भूतशुद्धिं न्यासौ कृत्वा यथाक्रमम् । प्रोक्षणीपात्रमेकं तु जलपूर्णं प्रकारमेत् ॥१५६॥
 दुर्वागन्धाक्षतपुष्पैस्तत्पात्रं परिपूरयेत् । प्रोक्षयेत्तेन नीरेण पूजाद्रव्यं सहात्मना ॥१५७॥
 पाद्यार्घ्याचमनार्थं तु त्रीणि पात्राणि विन्यसेत् । गणराजं पूजयित्वा सम्पूज्य वरुणं ततः ॥१५८॥
 पांचजन्यं पूजयित्वा प्रोक्षयेच्चज्जलैरपि । पूजाद्रव्यं पूर्ववच्च स्वात्मानं च भुवं तथा ॥१५९॥
 धेनुशङ्खचक्रपश्चिराजमुद्राः प्रदर्शयेत् । शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकरी ॥१६०॥
 मनोमयी मणिमयी प्रतिमाऽष्टविधा स्मृता । अथ ध्यायेद् रामचन्द्रं ससीतं पुरतः स्थितम् ॥१६१॥
 द्विभुजं धृततूणीरं चापबाणधृतायुधम् । दिव्यालङ्कारसंपुक्तं पीतकीशेषवामसम् ॥१६२॥
 सलक्ष्मणं सशशुष्कं भरतेन समन्वितम् । हनुमत्सेवितपदं विहासनविराजितम् ॥१६३॥
 सितछत्रसमायुक्तं दिव्यचामरवीजितम् । विभीषणसमायुक्तं सुग्रीवपरिवंदितम् ॥१६४॥

करे ॥ १४६ ॥ १४७ ॥ सीता और लक्ष्मणके बिना अकेले रामकी पूजा कभी न करे । यदि ऐसी पूजा की जाती है तो वह प्रायः विघ्न करनेवाली ही हुआ करती है । इसमें कोई मंगल नहीं ॥ १४८ ॥ नवायतनपूजा सर्वश्रेष्ठ और पञ्चायतन पूजा मध्यम होती है ॥ १४९ ॥ त्रिदैवकी पूजा कनिष्ठ कहाँ गयी है । वह पूजा तो अत्यन्त कनिष्ठ होती है, जिसमें केवल दो देवताओंकी पूजा की जाती है ॥ १५० ॥ जिनके बायें हाथमें धनुष और बायें बगल में है, अपने नामसे अङ्कित बाण दाहिने हाथमें ॥ १५१ ॥ इस तरहके रामचन्द्रकी स्थापना करके पूजा आरम्भ करे । पूजा करते समय वामभागमें एक कलश भी अलग रख लेना चाहिए ॥ १५२ ॥ अपने दाहिने बगल पूजापात्र रखना चाहिए और आगे भी विस्तृत रखना उचित है ॥ १५३ ॥ उपासकको चाहिए कि आनन्दपूर्वक पूर्वकी और मूल करके पद्मासनसे बैठे और निश्चल मन करके तुलसीकी माला लिये, शिखा में ग्रन्थि दिये, हाथोंमें पवित्री तथा शरीरमें पवित्र वस्त्र धारण किये, द्वारकाकी शुद्ध मृत्तिकाका तिलक लगाकर ॥ १५४ ॥ १५५ ॥ पहले गणेशजीको प्रणाम करे । फिर क्रमशः तिथि-वार आदिका उच्चारण करके भूमिगुद्धि, भूतशुद्धि तथा अग्न्यास-करन्यास करके प्रोक्षणीपात्रमें जल भरे । दुर्वा, गन्धाक्षत, पुष्प आदि उसमें डाले और प्रोक्षणीपात्रके जलसे पास रखी हुई पूजनसामग्रीका प्रोक्षण करे । पाद्य, अर्घ्य एवं आचमनके लिये सामने तीन रखे । फिर गणेशजी, वरुण तथा पाञ्चायन्य मालका पूजन करके उसके जलसे अपना, पूजन-सामग्री पृथ्वीका प्रोक्षण करे ॥ १५६-१५८ ॥ इसके अनन्तर सुरभी, शंख, चक्र, गरुड एवं राममुद्राका प्रदर्शन करे । पर्यरकी, काष्ठकी, घुना-ईंटकी, रङ्गसे बनी, चित्रकारी की हुई, बालुकामयी, मानसी और मणिमयी ये प्रकारकी प्रतिमाएँ होती हैं । ऊपर बतलायी क्रियायें कर लेनेके बाद उपासकको चाहिए कि सीताके साथ बैठे हुए इस प्रकारके रामका ध्यान करे-जिनके दो भुजाएँ हैं, जो तूणीर तथा धनुष-बाण आदि विविध प्रकारके शस्त्र धारण किये हैं, उनके शरीरमें दिव्य अलङ्कार पड़े हैं और वे पीला कीशेय वस्त्र धारण किये हैं ॥ १६०-१६२ ॥ लक्ष्मण, भरत एवं शशुष्क उनके हैं, हनुमान्जी उनके चरणकी सेवा कर रहे हैं और राम उत्तम सिंहासनपर बैठे हैं ॥ १६३ ॥ ऊपर सफेद लगा है, दिव्य चमर धर रहे हैं, विभीषण और सुग्रीव

आम्बवता समापुक्तमङ्गदेन परिहृतम् । अयोध्यावासिनं राममेवं हृदि विचिंतयेत् ॥१६५॥
 सीताराम समागच्छ मदग्रे त्वं स्थिरो भव । गृहाण पूजां मदस्तां कृतमावाहनं तव ॥१६६॥
 हिरण्यं रत्नयुक्तं नानाचित्रविचित्रितम् । सिंहासनं सर्वस्य च क्षासनार्थं ददामि ॥१६७॥
 चन्दनागुरुसंयुक्तैर्जलैस्तीर्थसमुद्भवैः । पाद्यं गृहाण श्रीराम मया दत्तं प्रसीद मे ॥१६८॥
 पुष्करादिषु तीर्थेषु गङ्गादिषु सरित्सु च । यद्योयं तन्मयाऽऽनीतं दत्तमर्घ्यं गृहाण भोः ॥१६९॥
 सुगन्धवासितं तोयं बहुतीर्थसमुद्भवम् । आचमनार्थं मामीतं गृहाण त्वं सुरेश्वर ॥१७०॥
 हरिद्राकुङ्कुमैर्धुक्तं सुगन्धद्रव्यमिश्रितम् । सुगन्धस्नेहसंमिश्रमुद्भूतममघास्तु ते ॥१७१॥
 कामधेनुद्वयं क्षीरं नन्दिन्या दधि सुन्दरम् । कपिलाया घृतं श्रेष्ठं मधु विष्ण्याद्रिसंभवम् ॥१७२॥
 सितोषलसमानाम् सितायुक्तं मनोहरम् । पञ्चामृतं मयाऽऽनीतं स्नानार्थं त्वं गृहाण भोः ॥१७३॥
 गङ्गा च यमुना चैव गोदावरी सरस्वती । नर्मदा सिन्धुकावेरी सरयू गण्डकी तथा ॥१७४॥
 ताम्रपर्णी भीमरथी कृष्णा वेणी महानदी । गोमती सागराः पयोष्णी भवनाशिनी ॥१७५॥
 पूर्णा तापी तुङ्गभद्रा क्षिप्रा वेगवती तथा । पिनाकी प्रवरा सिन्धुफेणा सार्द्धं त्रयो नदाः ॥१७६॥
 धृतमाला कृतमाला मही निक्षेपिका तथा । पयोष्णी प्रेमगङ्गा च चित्रगङ्गा करानदी ॥१७७॥
 नीरा चर्मण्वती वृद्धा वज्ररा च पुनः पुनः । सिन्धुक्षीरा वैकुण्ठाऽलकनन्दा च वारणा ॥१७८॥
 इत्यादिसर्वतीर्थेषु यद्योयं वर्तते शुभम् । तन्मयाऽऽनीतममघात्र स्नानं रघूत्तम ॥१७९॥
 पुनराचमनं रम्यं सर्वतीर्थसमुद्भवम् । गृहाण रघुनाथ त्वं दीयते यन्मया तव ॥१८०॥
 सुवर्णतन्तुमिश्रितं पीतकौशेयसंभवम् । वस्त्रयुग्मं प्रदास्यामि गृहाण रघुनाथक ॥१८१॥
 शृङ्गं हेममयं रम्यं नवतन्तुसमुद्भवम् । मङ्गग्रन्थिसमायुक्तं त्रयसूत्रं प्रगृह्यताम् ॥१८२॥

आगे खड़े बन्दना कर रहे हैं ॥ १६४ ॥ आम्बवान्के साथ-साथ बङ्गदजी खड़े स्तुति कर रहे हैं । इस प्रकार
 अयोध्यावासी रामका मनमें ध्यान करे ॥ १६५ ॥ और कहे—हे सीताराम । आप मेरे सामने आकर बैठिए ।
 मैं आपका पूजन करूँगा । मैं आपका आवाहन करता हूँ । आप आइए और मेरी पूजा स्वीकार करिए ॥ १६६ ॥
 सुवर्णका बना हुआ तथा रत्नसज्जित होनेसे चित्र-विविध मालूम पड़नेवाला और सुन्दर वस्त्रसे वेष्टित सिंहासन मैं
 आपको बैठनेके लिए देता हूँ ॥ १६७ ॥ और पुष्पसे मिले हुए तीर्थोंके जलका पाद्य बनाकर आपको
 देता हूँ । इसे स्वीकार करें और मेरे प्रसन्न हों ॥ १६८ ॥ पुष्कर आदि तीर्थों तथा गङ्गा आदि नदियों-
 से लाये जलका अर्घ्य बनाकर मैं आपको देता हूँ, इसे स्वीकार करिए ॥ १६९ ॥ सुगन्धसे वासित एवं कितने
 ही तीर्थोंसे लाया हुआ जल मैं आपको आचमनके लिए देता हूँ । हे सुरेश्वर ! इसे आप ग्रहण कीजिए ॥ १७० ॥
 हरी-शुभकुम और बहुतसे सुगन्धद्रव्योंसे मिश्रित तथा सुगन्धमय तेल आदिसे मिला हुआ जल मैं आपको
 स्नान करनेके लिये देता हूँ ॥ १७१ ॥ कामधेनुका दूध, नन्दिनी गीका दही, कपिला गीका घृत, विष्णु-
 पर्वतसे उत्पन्न मधु, ॥ १७२ ॥ सफेद पत्थरके समान चमकती हुई चीनीसे मिला पंचामृत मैं
 आपको स्नान करनेके लिये देता हूँ । इसे ग्रहण करिए ॥ १७३ ॥ गङ्गा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती,
 नर्मदा, सिन्धु, कामेरी, सरयू, गण्डकी, ताम्रपर्णी, भीमरथी, कृष्णा, वेणी, महानदी, गोमती, सातों
 सागर, भवनाशिनी, पयोष्णी, पूर्णा, तापी, तुङ्गभद्रा, क्षिप्रा, वेगवती, पिनाकी, प्रवरा, सिन्धुफेणा, सारे तीन
 नद, धृतमाला, कृतमाला, मही, निक्षेपिका, पयोष्णी, प्रेमगङ्गा, चित्रगङ्गा, करानदी, नीरा, चर्मण्वती, वृद्धा,
 वज्ररा, सिन्धुक्षीरा, वैकुण्ठा, अलकनन्दा, वारणा इत्यादि ॥ १७४-१७८ ॥ नदियोंमें जो पवित्र जल विद्यमान
 है, वह आज यहाँ ले आया हूँ । हे रघूत्तम ! आप इसीसे स्नान कीजिए ॥ १७९ ॥ सब तीर्थोंका पवित्र जल
 मैं आपको पुनराचमनके लिये दे रहा हूँ । इसे आप ग्रहण कीजिए ॥ १८० ॥ सुवर्णके सूत्रोंसे बना तथा चित्र-विविध
 दीखनेवाला पीत कौशेय वस्त्र मैं आपको दे रहा हूँ, इसे स्वीकार करिये ॥ १८१ ॥ शृङ्ग, सुवर्णमय,

मुकुटं कुण्डले रम्ये मुद्रिकाः कङ्कणे तथा । नूपुरे रत्नमालाः केयूरे रत्नमण्डिते ॥१८३॥
 इत्यादीन्परमान् दिव्यान्स्वर्णमाणिक्यनिर्मितान् । त्वदर्थं च मयानीतामलंकारान् गृहाण भोः ॥१८४॥
 छत्रं सव्यजनं रम्यं चामरद्वयसंयुतम् । त्वदर्थं च मयाऽऽनीत गृहीष्व रिपुसूदन ॥१८५॥
 सुगंधं चंदनं दिव्यं कुङ्गागुरुविमिश्रितम् । रक्तचंदनसंयुक्तं गृहीष्व त्वं मयाऽर्पितम् ॥१८६॥
 अक्षतांश्च वरान् दिव्यान्मुक्ताफलनिर्मितान् । कस्तूरी कुङ्कुमेनाक्तान् गृहाण परमेश्वर ॥१८७॥
 माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो । मयाऽऽहूतानि पूजार्थं गृहाण रघुनायक ॥१८८॥
 वनस्पतिरसोद्भूतं गन्धाद्यं गन्धमुत्तमम् । आग्रांयं सर्वदेवानां धूपं गृहीष्व राघव ॥१८९॥
 साज्यं त्रिवर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया । दीपं गृहाण भो राम त्रैलोक्यविमलापह ॥१९०॥
 मधुमक्तेन संयुक्तं सपायसघृतान्वितम् । शर्करामधुसंयुक्तं नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥१९१॥
 आग्रादीनि पुष्पकानि फलानि विविधानि च । समर्पितानि ते राम गृहीष्व रघुनन्दन ॥१९२॥
 पूगीफलसमायुक्तं चागवल्लीदलैर्युतम् । जातीचतुष्टययुतं तांबूलं स्वीकुरु प्रभो ॥१९३॥
 क्षिरण्यं मधुसंभूतं वह्नितेजःसमुद्भयम् । दीयते दक्षिणार्धं ते गृहीष्व रघुनन्दन ॥१९४॥

एवं मया षोडशकोपचाराः सविस्तरं ते कथिताः शिशोऽत्र ।

आवाहनाद्याश्च हि दक्षिणार्ताः शेषां च पूजां सकलां हि वक्ष्ये ॥१९५॥

त्रैवर्तिसमायुक्तं कपिलाऽऽज्यविमिश्रितम् । वह्निना योजितं रम्यं गृहीष्व त्वं निराजनम् ॥१९६॥
 जाती चंपकमन्दारी केतकी तुलसी तथा । दमनो मुनिकुन्दे च अनंतं त्विति वै नव ॥१९७॥
 एभिर्नैवेद्यैः पुष्पैर्मन्त्रपुष्पाणि राघव । मयाऽर्पितानि गृहीष्व प्रसीद परमेश्वर ॥१९८॥
 यानि कानि पापानि जन्मान्तरकृतानि च । तानि सर्वाणि नश्यतु प्रदक्षिणं पदे पदे ॥१९९॥

रम्य, नवीन सूत्रसे बना तथा ब्रह्मसूत्रसंयुक्त ब्रह्मसूत्र में आपको देता हूँ । इसे आप स्वीकार करिये ॥ १८३ ॥
 मुकुट, रम्य कुण्डल, मुद्रिका, कङ्कण, नूपुर, स्वर्णनिर्मित जंजीरकी माला, रत्नमण्डित केयूर हार्यादि परम रम्य,
 दिव्य, स्वर्ण और माणिक्यसे बने अलंकार मैं आपके लिए लाया हूँ । इन्हें आप ग्रहण करिए ॥ १८३ ॥ १८४ ॥
 व्यजन और चमर संयुक्त छत्र मैं आपके लिए लाया हूँ । हे रिपुसूदन ! इसे आप स्वीकार करिए ॥ १८५ ॥
 सुन्दर, गन्धयुक्त, दिव्य, कुङ्गा अगुरुमिश्रित तथा लाल चन्दन मिला चन्दन मैं आपके लिए लाया हूँ, तो
 आप ग्रहण कीजिए ॥ १८६ ॥ मोतीके द्रुकढोले बनाया हुआ कस्तूरी और कुमकुममिश्रित अक्षत मैं आपको
 समर्पण करता हूँ, इसे आप ग्रहण करें ॥ १८७ ॥ मालती आदि सुगन्धित फूलोंसे बनी माला मैं आपको
 पूजाके निमित्त लाया हूँ, हे रघुनायक । इसे आप ग्रहण कीजिए ॥ १८८ ॥ वनस्पतिके रससे उत्पन्न, गन्ध-
 युक्त, उत्तम सुगन्धवाला और सब देवताओंके सूँघने योग्य धूप आपके लिए लाया हूँ, इसे ग्रहण कीजिए
 ॥ १८९ ॥ घीसे भीरी तीन बतियोंवाले दीपकको लाया हूँ । हे तीनों लोकोंका अन्धकार दूर करनेवाले
 राम ! इसे आप ग्रहण करिए ॥ १९० ॥ खाने योग्य अन्न, दूध, घी, चीनी तथा मधुमिश्रित नैवेद्य मैं
 आपको अर्पण करता हूँ, इसे ग्रहण करिए ॥ १९१ ॥ मास्र आदि खूब पके अच्छे-भरखे फल मैं आपको
 अर्पण करता हूँ, इसे ग्रहण करें ॥ १९२ ॥ सुवाही युक्त पापके पत्तोंसे जोड़ा हुआ और अनेक मसालोंसे
 युक्त ताम्बूल मैं ग्रहण करें ॥ १९३ ॥ हे रघुनन्दन ! ब्रह्मसे उत्पन्न तथा अग्निके तेजसे जायमान सुवर्ण
 ■ दक्षिणाके लिए आपको देता हूँ, उसे ■ स्वीकार करें ॥ १९४ ॥ हे वत्स ! इस तरह मैंने विस्तारपूर्वक
 आवाहनसे दक्षिणा तकके षोडश उपचारोंको कह सुनाया । शेष पूजाविधि आगे बतलाता हूँ ॥ १९५ ॥
 पाँच बतियोंसे युक्त, कपिला कीके घृतसे मिश्रित एवं अग्निसे संयोजित रम्य नीराजन मैं आपको अर्पण
 करता हूँ, तो स्वीकार करिए ॥ १९६ ॥ जुँही, चम्पा, मन्दार, केतकी, तुलसी, दमनक, अनन्त और दो
 प्रकारके मुनिकुन्द इन नौ फूलोंका मन्त्रपुष्प मैं आपको देता हूँ । हे परमेश्वर ! इसे स्वीकार करिए और मेरेपक्ष
 प्रसन्न होए ॥ १९७ ॥ १९८ ॥ जन्मान्तरमें जो मैंने जिस किन्हीं पापोंको किया हो, वे नष्ट हो जायें ।

उरसा शिरसा दृष्ट्या मनसा वचसा तथा । पद्मार्थां कराभ्यां जानुभ्यां साष्टांगञ्च नमोस्तुते ॥ २०० ॥
 आवाहनं ■ जानामि ■ जानामि विसर्जनम् । पञ्चा चैव न जानामि क्षम्यतां परमेश्वर ॥ २०१ ॥
 मंत्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं रघूत्तम । यत्पूजितं ■ देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥ २०२ ॥
 एवं श्रीरामचन्द्रस्य भक्त्या कार्यं प्रपूजनम् । निरन्तरं तथा कार्यं नवम्यां च विशेषतः ॥ २०३ ॥

विष्णुदास उवाच

गुरो नवविधैः पुष्पैस्त्वया पुष्पाञ्जलिः कथम् । निवेदिनोऽत्र रामस्य पूजने तद्गदस्व माम् ॥ २०४ ॥
 त्वत्तो नानाविधाः पूजाः सुराणां च मया भुक्ताः । पूर्वं तामु श्रुतो नैव नवपुष्पाञ्जलिः कदा ॥ २०५ ॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

सम्यक् पूष्टं त्वया शिष्य मावधानमनाः शृणु । आसीत्पुरः द्विजवरः कावेर्यां तटपरे तटे ॥ २०६ ॥
 रामनाथपुरे कश्चिन्सुन्दराख्योऽतिभक्तिमान् । तस्यासन्न पुत्राश्च रामचित्तनतपरा ॥ २०७ ॥
 चन्द्रोऽतिचन्द्रश्चन्द्रामचन्द्रास्यश्चन्द्रशेखरः । चन्द्रांशुजितचन्द्रश्च चन्द्रचूडोऽष्टमः स्मृतः ॥ २०८ ॥
 रामचन्द्रश्चाति नव गृहाभाश्च नव स्मृताः । एकदा ते त्वयोप्यायां रामं भक्तकृपाकरम् ॥ २०९ ॥
 प्रष्टुं ययुश्चैत्रमासे तस्मिन्सुते सरयुतटे । तावत्तत्र समायाता नानादेशांतरस्थिताः ॥ २१० ॥
 जनौघानां कोटयश्च नानावाहनसंस्थिताः । सरय्यां रामतीर्थे हि चैत्रस्नानमादरात् ॥ २११ ॥
 तेषां समागतानां हि संमर्दस्तत्र वै दृश्यते । संमर्दाद्रामचन्द्रस्य तेषां नाभूच्च दर्शनम् ॥ २१२ ॥
 तदा ते मंत्रयामासुर्नैव विप्राः परस्परम् । कथं श्रीराववस्थात्र संमर्दे दर्शनं भवेत् ॥ २१३ ॥
 चेज्जातं त्वत्प्रियत्वेन तर्हि तत्किं न दर्शनम् । यावत्स्वस्थेन मनसा राधको न निरोधितः ॥ २१४ ॥
 तावच्चदर्शनं नैव तुष्टिं नो जनयिष्यति । तदा चन्द्रोऽब्रवीज्ज्येष्ठस्त्वत्रैव रामदर्शनम् ॥ २१५ ॥

एक-एक पग चलकर मैं आपकी प्रशिक्षणा करता हूँ ॥ १९६ ॥ हृदयसे, मस्तकसे, दृष्टिसे, मनसे, वचनसे, हाथोंसे, पैरोंसे और घुटनोंसे मैं साष्टांग प्रमाण करता हूँ ॥ २०० ॥ हे परमेश्वर ! न मैं आवाहन करना जानता हूँ, न विसर्जन करना आता है । पूजन करना भी मैं नहीं जानता । यदि कुछ भ्रम हुआ हो तो आप क्षमा कर ॥ २०१ ॥ हे रघूत्तम ! मंत्रसे, क्रियासे और भक्तिसे हीन मैंने जो कुछ पूजा की है, ■ देव ! वह ■ परिपूर्ण हो जाय ॥ २०२ ॥ इस तरह निरन्तर भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिए और नवमीको विशेष करके ऐसा करना उचित है ॥ २०३ ॥ विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! इस पूजनके प्रसङ्गमें आपने नौ प्रकारके फूलोंसे पुष्पाञ्जलि देनेका विधि क्यों बतलायी है ? तो ■ हमसे कहिये ॥ २०४ ॥ अबतक आपने मुझे बहुतसे देवताओंका विविध पूजन बताया, किन्तु उनमें नवपुष्पाञ्जलि आपने कहीं नहीं बतलायी ॥ २०५ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य ! तुमने बहुत अच्छा ■ किया है, ■ ■ ■ होकर सुनो । बहुत दिनों- ■ है, कावेरी नदीके उत्तर तटपर रामनाथपुरमें अति भक्तिमान् सुन्दर नामका एक ब्राह्मण रहता था । वह रामका ध्यान करता था । रामका ध्यान करनेवाले उस भक्तके नौ बेटे थे ॥ २०६ ॥ २०७ ॥ चन्द्र, भक्ति-चन्द्र, चन्द्राभ, चन्द्रास्य, चन्द्रशेखर, चन्द्रांशु, जितचन्द्र, चन्द्रचूड़ और गृहाभ ■ ये उन लड़कोंके नाम थे । ■ बार चैत्रके महानेम वे नवों लड़के भगवान् रामचन्द्रका दर्शन करनेके लिये अयोध्या गये । वहाँ पहुँचकर वे सरयूके तटपर पहुँचे । तब तक अनेक देशोंके रहनेवाले करोड़ों मनुष्य चैत्रमास-स्नानके लिये अनेक प्रकारकी सवारियोंपर चढ़कर वहाँ आ पहुँचे ॥ २०८-२११ ॥ उन आये हुए लोगोंकी भारी भीड़के कारण वे नवों ब्राह्मणकुमार रामचन्द्रजीका दर्शन नहीं पा सके ॥ २१२ ॥ उस ■ उन्होंने परस्पर भ्रमणा की कि इस प्रकारका भाड़में रामचन्द्रजीका दर्शन कैसे हो ॥ २१३ ॥ बहुत प्रयत्न करनेपर यदि थोड़ा-सा दर्शन हो भी जाय तो जबतक अच्छी तरह उन्हें न देख सकूँ तो दर्शनसे लाभ हों क्या ? ॥ २१४ ॥ उस क्षणिक दर्शनसे हमें संतोष नहीं होगा । उनमेंसे ज्येष्ठ भ्राता चन्द्र बोला कि हमलोग तीव्र तपस्या करके यहाँ ही रामचन्द्रजीका

वयं लोकेषु तपसा प्राप्स्यामस्तप्यतां तपः । तच्चन्द्रचनं श्रुत्वा पुनः प्रोत्तुर्द्विजोत्तमाः ॥२१६॥
 एककाले तु सर्वेषां तपतामन्तरेण हि । कस्यादां रामचन्द्रस्य दास्यत्यत्र प्रदर्शनम् ॥२१७॥
 कस्य दास्यति पश्चाच्च विदितं तद्भविष्यति । कस्यास्मात्तु दृष्टा भक्तिर्विदिता सा भविष्यति ॥२१८॥
 एवं परस्परं चोक्त्वा ते सर्वे द्विजसूनुवः । त्यक्त्वाहारा वायुभक्षार्थकान्ते तत्परेण हि ॥२१९॥
 गत्वाऽतिदूरं संमर्दक्षिणः सर्वे तपो महत् । तत्सर्वं राघवो ज्ञात्वा सर्वसाक्षी जगत्प्रभुः ॥२२०॥
 तेषां स्वदर्शनं दातुं नवमे दिवसे मुदा । संयायामास श्रीरामः क्षणं चित्तं समास्थितः ॥२२१॥
 एककाले तु सर्वेषां यदि दास्यामि दर्शनम् । तर्ह्येव तुष्टिः सर्वेषां भविष्यति न चेन्न हि ॥२२२॥
 अतोऽद्याहं करिष्यामि नव रूपाणि निश्चयान् । एवं ममन्त्र्य श्रीरामो लक्ष्मणं प्राह सादरम् ॥२२३॥
 शिविकामानयस्वाद्य वहिर्गच्छाम्यहं मुदा । तथेति रामवाक्येन शिविकां लक्ष्मणस्तथा ॥२२४॥
 आनयामास दूतैः स राघवाय न्यवेदयत् । तदा सिंहासनाद्गामथोत्तीर्य शिविकास्थितः ॥२२५॥
 बन्धुमित्रैश्चैव सह सुहृन्मित्रादिभिर्युतः । वहिः सन्नैरगोध्याया यथा रामो मुदान्वितः ॥२२६॥
 ततस्तं जनसंमर्दं समतिक्रम्य राघवः । चकार नव रूपाणि सात्मनः परमेश्वरः ॥२२७॥
 शिविकाः सुहृदो भ्रातृन्पुत्रान्मित्रान्सखाहनान् । चकार नवधा रामस्तदा स क्षणमाव्रतः ॥२२८॥
 निरोक्षितुं समायातां नात्मानं तान् जनानपि । चकार नवधा रामस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥२२९॥
 ततस्तैस्तैर्जनैर्मित्रैर्दूतैर्वन्धुजनैः सह । नवानां भूसुराणां हि ययानग्रे रघूतमः ॥२३०॥
 ततस्ते भूसुराः सर्वे तदैकसमये प्रभुम् । आत्मनः पुरतो रामं ददृशुस्तं पृथक् पृथक् ॥२३१॥
 तत्पुष्टमनसः सर्वे प्रणेभू रघुनन्दनम् । शिविकाभ्यस्ततो रामस्त्वक्षुष्टा पृथक् पृथक् ॥२३२॥
 नवरूपधराः सर्वान्विप्रानालिख्य सादरम् । ऊचुर्मधुरया वाचा प्रसन्नमुखपङ्कजाः ॥२३३॥

दर्शन या लेंगे । चन्द्रको इस राघवको सुनकर वे सब सोल उठे कि यदि हम सब भाई एक साथ तपस्या करने लग जायें तो रामचन्द्रजी किसकी पहले दर्शन देंगे ॥ २१५-२१७ ॥ और किसकी सबसे पीछे ? इससे यह भी जात हो जायगी कि हममेंसे किसकी भक्ति दृढ़ है ॥ २१८ ॥ इस तरह परस्पर बातचीत करके वे सब ब्राह्मणबालक उस भौड़से दूर आ बैठे और भोजन त्यागकर केवल जल पीते हुए एकाग्र मनसे तपस्या करने लगे । सारे संसारके साक्षी तथा निखिल जगत्के प्रभु रामचन्द्रसे यह बात छिपी नहीं रही ॥ २१६ ॥ २२० ॥
 दिन उन्होंने अपनी-अपनी उनकी दर्शन देनेके विषयमें मन्त्रणा की ॥ २२१ ॥ इसके बाद अण भर अपने मनमें विचार किया कि यदि उनको एक ही समयमें दर्शन न होगा तो वे सन्तुष्ट नहीं होंगे ॥ २२२ ॥ इस कारण आज मैं नौ रूप धारण करूँगा । ऐसा निश्चय करके उन्होंने लक्ष्मणसे आदरपूर्वक कहा— ॥ २२३ ॥ हे लक्ष्मण ! पालकी भंगवाओ । आज मैं बाहर घूमने जाऊँगा । बहुत अच्छा कह तथा दूतों द्वारा लक्ष्मणने पालकी भंगवाकर रामचन्द्रजीकी इसकी खबर दी । सब सिंहासनसे उतरकर राम पालकीमें बैठे और भाईयों, मित्रियों, सम्प्रस्थियों तथा मित्रोंके साथ धीरे-धीरे अयोध्यासे बाहर निकले ॥ २२४-२२६ ॥ उस विशाल भौड़को पार करके रामचन्द्रने नौ रूप धारण किया ॥ २२७ ॥ अण भरके भीतर रामने पालकी, सम्प्रस्थी, सब भाई, दूत तथा बाहन समेत सब मित्रोंको नौ रूपमें परिणत कर दिया ॥ २२८ ॥ केवल अपने तथा अपने साथियों ही की उन्होंने नौ संख्या नहीं बनायी, बल्कि जो लोग वहाँ दर्शन करने आये थे, उनको भी उन्होंने नौ संख्यामें विभक्त कर दिया । यह एक विचित्र बात हुई ॥ २२९ ॥ इसके अनन्तर उन मनुष्यों, मित्रों, दूतों, बन्धुजनों तथा ब्राह्मणोंके आगे-आगे रामचन्द्रजी चलने लगे ॥ २३० ॥ फिर क्या था, उन तर्को ब्राह्मणोंने एक ही समयमें प्रभुको अपने-अपने आगे खड़े देखा ॥ २३१ ॥ इससे प्रसन्न होकर उन्होंने रामको प्रणाम किया । इसके बाद नवों राम अपनी-अपनी पालकियोंसे उतरे और उन ब्राह्मणोंको गलेसे लगाया । फिर भीठी-भीठी बाणोंमें उनसे बोले ॥ २३२ ॥ २३३ ॥ उन्होंने कहा—हे ब्राह्मणों ! आप लोगोंने बड़ा कह किया है ।

भो विप्राः अमितायुयं युष्माकं कृतनिश्चयम् । बुद्ध्वा वयं पृथक् रूपैर्जाताः स्मो नवधाऽयं हि ॥२३४॥
 एकाकालेऽत्र तपतां सर्वेषां दर्शनं निजम् । कस्य देयं तु पूर्वं हि पश्चात्कस्य प्रदीयताम् ॥२३५॥
 इति सम्मन्त्र्य हृदयेन त्वर्घकममयेन हि । युष्माकं दर्शनं दत्तं वरयध्वं वरानितः ॥२३६॥
 रामाणां वचनं श्रुत्वा ते प्रोचुर्भूसुरोत्तमाः । येनास्माकं भवेत्कीर्तिः स वरो दीयतां तु नः ॥२३७॥
 तत्सर्वं वचनं श्रुत्वा रामाः प्रोचुर्द्विजान्पुनः । युष्माकं दर्शनार्थं हि नवरूपधरा वयम् ॥२३८॥
 अद्य जाता यतस्मद्गुप्ताकं नामभिः सदा । नव रामाः परा रूपानि गमिष्यन्त्यवनीतले ॥२३९॥
 अस्माकं नव यत्किञ्चित्प्रियं हि भविष्यति । ते तेषां तु रामाणां वाक्यं श्रुत्वा द्विजोत्तमाः ॥२४०॥
 सन्तुष्टस्ते नता नेमुः स्वं स्वं रामं मुहुर्मुहुः । तदा सर्वे जना रामान् लक्ष्मणान् भरतादिकान् ॥२४१॥
 आत्मानं नवधा जातान्दृष्ट्वा विस्मयमागताः । ततो रामाः शिविकालु स्थित्वा पृष्ट्वा द्विजोत्तमान् ॥२४२॥
 पशुत्य ययुः सर्वे मार्गं त्वेकोऽभवत्पुनः । सर्वे जातास्त्वेकरूपास्तथा ते विस्मयं ययुः ॥२४३॥
 ततो रामो बन्धुमिश्रं पूर्ववन्नगरीं ययौ । गत्वा गेहे तु सीतार्यं सर्वं घृतं न्यवेदयत् ॥२४४॥
 अवस्ते नव विप्राणां नामभिर्जगतीतले । रूपानि रामा ययुस्तत्र नव तत्प्रियम् ॥२४५॥
 यथार्का द्वादश प्रोक्ता एकविंशद्गणाधिपाः । रुद्रा एकादश प्रोक्ता यथाष्ट भैरवाः स्मृताः ॥२४६॥
 नव दुर्गा यथा त्वत्र तथा रामा नव स्मृताः । प्रियं द्वादश सूर्याय एकादश शिवप्रियम् ॥२४७॥
 एकविंशत्प्रियं यद्वद्गणेशाय महात्मने । प्रियमष्ट भैरवाय दुर्गायै तु नव प्रियम् ॥२४८॥
 यथा यथाऽत्र समाप्य नव शिष्य प्रियं सदा । तस्माच्चतुर्विधैः पुष्पैरञ्जलिस्तत्प्रियो भतः ॥२४९॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे मनोहरकाण्डे रामपूजाद्वयविस्तारो नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

आपके कष्टको देखकर ही मैं अलग-अलग रूप धारण करके एक ही समयमें सबके आया हूँ ॥ २३४ ॥
 मैंने अपने मनमें सोचा कि ये सब भाई एक साथ एक ही समयमें तपस्या करने बैठे हैं। ऐसी अवस्थामें मैं
 किसे पहले दर्शन दूँ और किसे पछे ॥ २३५ ॥ विचारकर मैंने आज एक ही समय तुम लोगोंको दर्शन
 दिया है। अपने इच्छानुसार वर भी माँग ॥ २३६ ॥ उनकी वाणी सुनकर ब्राह्मणोंने कहा—हे प्रभो !
 जिससे संसारमें हमारी कीर्ति हो, हमें आप वही वरदान दीजिये ॥ २३७ ॥ तरह उनकी बात सुनकर रामने
 उन ब्राह्मणोंसे कहा कि आप लोगोंको दर्शन देनेके लिये मैंने नौ धारण किया है। अतएव आप लोगोंके
 नामसे ही नौ रामके नामसे विख्यात होऊँगा ॥ २३८ ॥ २३९ ॥ जो कोई भी नौ चीजें मुझे देगा, वे हमें
 अतिशय प्रिय होंगी। इस तरह उनकी बात सुनकर प्रसन्न मनसे उन ब्राह्मणोंने बार-बार रामको प्रणाम किया।
 उधर रामके साथवाले लक्ष्मण आदि लोग अपनेको नौ संख्यामें देखकर बड़े चकराये। सदनन्तर राम
 दासियोंमें बैठे और उन ब्राह्मणोंसे पूछकर अयोध्याके लिये होट पड़े ॥ २४०-२४२ ॥ रास्तेमें रामने
 सबों रामोंका रूप समेट लिया और फिर ज्योंके त्यों एक राम हो गये। यह घटना देखकर भी लोगोंको
 बड़ा विस्मय हुआ ॥ २४३ ॥ तरह राम अपने बान्धवोंके साथ नगरीको गये। घर पहुँचकर उन्होंने
 सीताको उस दिनका सारा समाचार कह सुनाया ॥ २४४ ॥ हे शिष्य ! इसी कारण राम उन नौ नामोंसे विख्यात
 हुए और जो-जो चीजें नौ संख्याकी दी जाती हैं, वे उन्हें विशेष प्रिय हुआ करता है ॥ २४५ ॥ जैसे बारह
 आदित्य माने गये हैं, इक्कीस गणेशजी, बारह रुद्र, आठ भैरव तथा नौ दुर्गायें मानी गयी हैं, उसी तरह राम
 भी नौ माने जाते हैं ॥ २४६ ॥ बारह संख्याकी चीजें सूर्यको, एकादशसंख्याक रुद्रको, इक्कीस गणेशजीको, आठ
 भैरवको और नौ वस्तुयें दुर्गाको प्रिय होती हैं ॥ २४७ ॥ २४८ ॥ इसी तरह जो चीजें नौ होंगी, रामको अत्यंत
 प्रिय हुआ करेंगे। इसीलिये नौ प्रकारके फूलोंसे अञ्जलीदानका विधान मैंने बतलाया है ॥ २४९ ॥ इति श्रीकृत-
 कोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे ज्योत्स्नाभाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः

(लघुरामतोमद्रका विस्तार)

श्रीविष्णुदास उवाच

स्वामिस्तथा रामनाम्नामष्टोत्तरसहस्रकम् । मद्रमुक्तं तथा चाष्टोत्तरशतमनुचमम् ॥ १ ॥
 रामनाम्नां मद्रमुक्तं रामचन्द्रप्रपूजने । तत्कीदृशे ते तु भद्रे लेखनीये मनोरमे ॥ २ ॥
 मां विस्तरतो ग्रहि यथाऽहं वेमि तत्त्वतः । तयोरे ये विशेषाश्च मद्रयोस्तेऽपि मां वद ॥ ३ ॥

श्रीरामदास उवाच

मृणु शिष्य प्रवक्ष्यामि भद्राणां रचनाः शुभाः । यथा पृष्टा त्वया महां रामनाम्नां मनोरमाः ॥ ४ ॥
 अष्टोत्तरशतं रामलिंगतोमद्रमुत्तमम् । आदौ मया विस्तरेण कथ्यते तभिश्चामय ॥ ५ ॥
 अत्रोपास्या राममुद्रा रुद्रओपासकः स्मृतः । श्रीरामलिंगतोमद्रमत एवोन्यसे शुचैः ॥ ६ ॥
 तिर्यगूर्ध्वं तदा रेखा द्वे शते रेखयाऽधिके । तत्रादौ कृष्णपरिविस्तृतो रक्तः सितस्तवः ॥ ७ ॥
 ततः पीतश्च परिधिः कोणेन्दुस्त्रिपदा स्मृतः । चन्द्राग्रे मृत्खला कृष्णा स्मृता द्वादशपादिका ॥ ८ ॥
 हरिता च ततो वल्ली त्रयोविंशत्पदान्मिका । ततः पीता मृत्खला च स्मृता द्वादशपादिका ॥ ९ ॥
 विंशत्पादमधं भद्रं रक्तं वापी सिता ततः । त्रयोदशपदा श्रेया लिंगं षड्विंशपादजम् ॥ १० ॥
 कृष्णश्चतुष्पदो मूर्धा नाभिर्युग्मपदः स्मृतः । मूलस्कंधौ षट्पदजौ पार्श्वे तुर्यपदात्मके ॥ ११ ॥
 ततो रक्तश्च परिधिर्मर्यादाख्योऽर्कपादजः । ततो मुद्रा तुर्यतुर्यभूमिपादमिता स्मृता ॥ १२ ॥
 ततो मर्यादापरिधिर्लिङ्गमुद्राः पुनः पुनः । एवं हरानव श्रेया मुद्राश्चाष्टौ प्रकीर्त्तिताः ॥ १३ ॥
 परिधयः षोडशैव शान्ते लिंगोर्ध्वराश्वके । तिर्यग भद्रं नवपदं पीतं वा हरितं कश्चित् ॥ १४ ॥
 रक्तमद्रोर्ध्वतः शेषपादानि यानि संति हि । यथेच्छं चित्ररणैश्च मृत्खलार्थे नियोजयेत् ॥ १५ ॥

विष्णुदासने कहा—हे स्वामिन् । आपने हमें रामनामका अष्टोत्तर सहस्रका (भासन) और अष्टोत्तरशत नामका भद्र रामचन्द्रकी पूजाके प्रसङ्गमें बतलाया है । उन भद्रोंको किस प्रकार बनाना चाहिए, यह हमें विस्तारपूर्वक बतलाइए । जिससे कि मैं ठीक तरहसे सके । उनको जो विशेषतायें हों, सी भी हमें बतला दोजिए ॥ १-३ ॥ श्रीरामदास बोले—हे शिष्य ! उन भद्रोंकी रचनाका प्रकार जिस तरह तुमने पूछा है, सो मैं पहले अष्टोत्तरशत रामलिंगतोमद्रका रचनाप्रकार विस्तारपूर्वक बतला रहा हूँ, सुनो ॥ ४ ॥ ५ ॥ इसमें राममुद्रा उपास्य है और रुद्र उपासक हैं । इसी कारण लोग इसे रामलिंगतोमद्र कहते हैं ॥ ६ ॥ यह भद्र बनानेवालेको चाहिए कि सीधी और बेहो दो सी रेखाएँ खींचे । उसमें पहलेकी परिधि काली, फिर लाल, फिर सफेद रखे ॥ ७ ॥ इसके बादकी परिधि पीली और फिर कोणमें विषद भद्रका आकार बनाये । चन्द्रमाके आगे काले रङ्गकी ऐसी मृत्खला बनाये, जिसमें द्वादश पाद (कोष्ठक) विद्यमान हों । फिर हरे रङ्गकी तेईस पादकी वल्ली बनाये । फिर द्वादश पादकी पीली मृत्खला रखे ॥ ८ ॥ ९ ॥ फिर सीस पादका भद्र बनाये । तदनन्तर सफेद रङ्गकी वापीका निर्माण करे । जिसके तेईस पाद बने हों । फिर छब्बीस पादका लिंग बनाये । फिर चार पाद (कोष्ठक) का काले रङ्गसे मस्तक बनाये, फिर दो पादकी नाभि बनाये । उसके दो मूल स्कन्ध छःछः पादोंके बनाये और चार पार्श्वभाग बनाये । फिर बारह पादकी मर्यादा बनाये, जो लाल रङ्गसे रङ्गी हो । फिर चार-चार पादोंकी मुद्रा बनाये । फिर मर्यादाकी परिधि एवं लिङ्गमुद्रा बनाये । इसी तरह नौ शिव एवं आठ मुद्रायें बनाये ॥ १०-१३ ॥ फिर लिंगके ऊपर और बगलमें सोलह परिधियोंकी रचना करे । फिर नौ पादोंसे कहीं पीले और कहीं हरे रङ्गके भद्र बनावे ॥ १४ ॥ रक्त भद्रके ऊपर जिसने भी चरण हों, उनकी मृत्खलाके लिए निव-

मध्यलिङ्गस्कंधयोश्च सिते नेत्रे स्मृते शुभे । पीते लिङ्गस्कंधयोश्च मृत्खले त्रिभिर्पादजे ॥१६॥
 अधोमुखं हरोर्ध्वं च रक्तं भद्रं द्विपट्पदम् । तिर्यग्भद्रे तु हरिते स्मृतेऽष्टादशपादजे ॥१७॥
 पंक्तेरूर्ध्वभागे हरितः परिधिः स्मृतः । तत ऊर्ध्वं पीतवर्णः प्रोक्तश्च परिधिः शुभः ॥१८॥
 एवं प्रोक्ता प्रथमेयं पंक्तिः सर्वत्र कारयेत् । द्वितीयाया विशेषः ॥ वक्ष्यामि न पुरेरितम् ॥१९॥
 सप्त मुद्रा हरा छटौ परिधयश्चतुर्दश । भद्रं रक्तं षट्पदं ॥ शेषं सर्वं तु पूर्ववत् ॥२०॥
 तृतीयार्धाततः पंक्तौ मुद्राः ॥ शिवा रसाः । परिधयो दश श्रेया भद्रं त्रिचक्षुषदात्मकम् ॥२१॥
 ततः पंक्तौ चतुर्धर्मा तु प्रीक्षा मुद्राचतुष्टयम् । परिधयोऽष्ट विज्ञेया भद्रं च नव वेदजम् ॥२२॥
 हरिपीतयोर्मध्ये हि लोहितः परिधिः स्मृतः । पञ्चमायां ततः पंक्तौ मुद्रैका शङ्करद्वयम् ॥२३॥
 परिधयश्च चत्वारि भद्रं नवतिपादजम् । हरिद्ररक्तपीतवर्णा परिधयश्च पूर्वतः ॥२४॥
 षष्ठायां ॥ ततः पंक्तौ मुद्रैका परिधिद्वयम् । नव वेदमयं भद्रं तिस्रः परिधयोऽपि च ॥२५॥
 मध्येऽपि सर्वतोभद्रं वेदनेत्राग्निपादजम् । त्रिपदेदुः मृत्खलाश्च कुप्पाः पञ्चपदा मताः ॥२६॥
 एकादशपदा वल्ली भद्रं नवपदात्मकम् । चतुर्विचक्षुषदा यापी पीतश्च परिधिः स्मृतः ॥२७॥
 पदेषु षोडशेष्वेव मध्ये पञ्च यथारुचि । कर्णिका पीतवर्णा ॥ शेषं शुद्धया नियोजयेत् ॥२८॥
 एतदष्टोत्तरशतं रामलिङ्गात्मकं स्मृतम् । तत्र मुद्रास्वरूपं च वेदवेदेदुभिः स्मृतम् ॥२९॥
 राज्यकाण्डे उत्तरार्धस्य सर्गेऽष्टादशमे पुरा । उक्तं मुद्रास्वरूपं ॥ तथाप्यत्र ॥ कथ्यते ॥३०॥
 पंक्तयोर्ज्ज्वलितास्तत्र सर्वा द्वादशपादजाः । तासु पूर्वदिगारभ्य क्रमेणैव प्रपूरयेत् ॥३१॥
 प्रथमा सप्तमी चोमे पंक्तौ कुप्पे प्रपूरयेत् । ऊर्ध्वाधः पञ्च पञ्चैव पंक्तयस्तत्क्रमं ब्रुवे ॥३२॥
 पञ्चपंक्तिषु चोर्ध्वं हि प्रथमायाः प्रपूरयेत् । प्रथमं चेश्चदिग्जं च कुप्पवर्णं न चापस्मृ ॥३३॥

विचित्र वर्णोंका बनाये ॥ १५ ॥ मध्यलिङ्गके दोनों कंधोंपर सफेद रङ्गके दो नेत्र रहें । लिङ्गके स्कन्धमें पीले रङ्गकी तीन-तीन पादोंवाली दो शृङ्खलाएँ रहें ॥ १६ ॥ शिवके अधोमुखके ढंगपर पाद (कोष्ठक) से छाल रङ्गका भाग रहेगा । तिरछा भद्र हरे रङ्गसे बनेगा ॥ १७ ॥ पंक्तिके ऊर्ध्वभागमें हरे रङ्गकी परिधि रहेगी । उसके ऊपर पीले वर्णकी परिधि रहेगी ॥ १८ ॥ उक्त रीतिसे पंक्ति बनायी जायगी । दूसरी पंक्तिकी विशेषताएँ बतलाता हूँ, जो पहले नहीं बतलायी थीं ॥ १९ ॥ दूसरी पंक्तिमें सात मुद्रा, आठ शिव एवं चौदह परिधियाँ रहेंगी । यह भद्र छ पैरोंवाला एवं छाल रङ्गका रहेगा बीस तीस पादका बनेगा ॥ २० ॥ २१ ॥ चौथी पंक्तिमें तीन शिव, चार मुद्रा, परिधियाँ और चार पादका बनेगा ॥ २२ ॥ हरे-पीलेके मध्यमें छाल परिधि रहेगी । पाँचवीं पंक्तिमें एक मुद्रा रहेगी और दो शिव रहेंगे ॥ २३ ॥ चार परिधि रहेंगी और नव भद्र बनेगा । बाकी हरे-छाल-पीले वर्णकी परिधियाँ पूर्ववत् रहेंगी ॥ २४ ॥ छठवीं पंक्तिमें एक मुद्रा, दो परिधि, चार पादकी नौ और तीन परिधियाँ रहेंगी ॥ २५ ॥ मध्यमें तीन सौ चौबीस सर्वतोभद्र रहेगा, तीन चन्द्राकार शृङ्खला रहेगी और पाँच पादकी बलियाँ रहेंगी ॥ २६ ॥ इसमें एकादश पादकी बली रहेगी और नौ पादका रहेगा । चौबीस पादकी बापी रहेगी और बह पीले रङ्गकी रहेगी ॥ २७ ॥ सोलह पादोंके बीचमें अपनी पसन्दके माफिक कमल रहेगा । उसकी कर्णिकाएँ पीले रङ्गकी होंगी ! बाकी सब अवयव अपनी रुचिके अनुसार होंगे ॥ २८ ॥ यह मैंने अष्टोत्तरशत रामलिङ्गतोभद्र बतलाया है । इसमें मुद्राका स्वरूप १४४ रहेगा ॥ २९ ॥ मद्यपि राज्यकाण्डके उत्तरार्ध भागके अष्टादशवें सर्गमें कह आये हैं । फिर भी मुद्राका स्वरूप यहाँ रहे है ॥ ३० ॥ इसमें कुल बारह पंक्तियाँ होती हैं और हर पंक्तियोंमें बारह (कोठे) हैं । पूर्व दिशासे आरम्भ करके उन्हें पूर्ण करना चाहिए ॥ ३१ ॥ पहली और सातवीं पंक्ति काले रङ्गसे रंगी रहनी चाहिए । ऊपर-नीचे पाँच-पाँच पंक्तियाँ रहेंगी । उनका क्रम बतलाते हैं ॥ ३२ ॥ ऊपरकी पाँच

तदर्धञ्च द्वितीयायाः प्रथमं च द्वितीयकम् । चतुर्थं सप्तमं षष्ठं द्वादशमं नवमं तथा ॥३४॥
 तथैकादशमं चापि कृष्णवर्णानि पूरयेत् । तदधश्च तृतीयायाश्चतुर्थं षष्ठसप्तमे ॥३५॥
 तथैकादशमं चापि कृष्णवर्णानि पूरयेत् । चतुर्थ्याम्पञ्चमायाश्च प्रथमं च द्वितीयकम् ॥३६॥
 चतुर्थं सप्तमं षष्ठं नवमं रुद्रमपितृ । तदधः पञ्चमायाश्च प्रथमं च द्वितीयकम् ॥३७॥
 चतुर्थं च तथा षष्ठं नवमैकादशे तथा । रामेति द्वेऽक्षरे शुक्ले द्रष्टव्ये पञ्चपङ्क्तिषु ॥३८॥
 पञ्चपङ्क्तिष्वधश्चाथ प्रथमायाश्च पूरयेत् । तदधश्च द्वितीयायाः प्रथमं च द्वितीयकम् ॥३९॥
 चतुर्थं सप्तमं षष्ठं नवमं दशमं ततः । तथा चैव द्वादशमं कृष्णवर्णानि पूरयेत् ॥४०॥
 तृतीयायाश्चतुर्थं च षष्ठमकं च सप्तमम् । चतुर्थ्याः प्रथमं षष्ठं द्वितीयं च चतुर्थकम् ॥४१॥
 षष्ठमं नवमं चाकं दशमं चापि पूरयेत् । पञ्चमायाः प्रथमं च द्वितीयं च चतुर्थकम् ॥४२॥
 षष्ठमर्काष्टमं चापि सप्तमं दशमं तथा । नवमं कृष्णवर्णानि रामेति द्वेऽक्षरलोकयेत् ॥४३॥
 राजा रामेति चत्वारि द्वादशाणि निरीक्षयेत् । तदधश्च तृतीयायाश्चतुर्थं नवमं ॥४४॥
 अथवा राम रामेति तृतीयं नाम कारयेत् । विशेषेण तत्र वक्ष्यामि ह्यधः पञ्चसु पङ्क्तिषु ॥४५॥
 पङ्क्तेश्चतुर्थ्याः प्रथमं षष्ठं कृष्णेन कारयेत् । नाकारस्तत्र द्रष्टव्यो गमनाभावलोकयेत् ॥४६॥
 अथवा राम रामेति विशेषपञ्चोष्पङ्क्तिषु । प्रथमाः पूर्ववज्ज्ञेया द्वितीयायास्ततः षष्ठम् ॥४७॥
 प्रथमं च द्वितीयं च तृतीयं पञ्चमं तथा । षष्ठमं नवमं षष्ठं तथैकादशमं नवमि ॥४८॥
 तृतीयायाश्च प्रथमं रुद्रं षष्ठं च पञ्चमम् । चतुर्थ्याः प्रथमं चैव द्वितीयं च तृतीयकम् ॥४९॥
 पञ्चमं सप्तमं चापि द्वादशं नवमं तथा । तथैकादशमं चापि कृष्णवर्णानि पूरयेत् ॥५०॥
 पञ्चमायाः प्रथमं च द्वितीयं च तृतीयकम् । पञ्चमं नवमं षष्ठं द्वादशं नवमं तथा ॥५१॥
 तथैकादशमं चापि रामेति द्वेऽक्षरे मिते । नामान्येतानि चत्वारि चतुष्पादेषु योजयेत् ॥५२॥

पङ्क्तिर्धो भरे और पहली तथा द्वादशपङ्क्तिः पङ्क्तिर्धो काले रङ्गसे रङ्गकर बाधना मान्य होइवे ॥ ३३ ॥
 उसके नीचे दूसरी पङ्क्तिः पहली, दूसरी, चौथी, छठी, सातवीं, नवीं तथा द्वादश पङ्क्तिः काले रङ्गसे
 भरे । उसके नीचे तीसरी, चौथी, छठी, सातवीं और द्वादशवीं कोटि काले रङ्गसे भरे । तबसे पङ्क्तिः पहली
 दूसरी, चौथी, सातवीं, छठी, नवीं और द्वादशवीं कोटि काले रङ्गसे भरे । उसके नीचे पाचवीं पङ्क्तिः पहली,
 दूसरी, चौथी, छठी, नवीं और द्वादशवीं कोटि काले रङ्गसे भरे । तबसे पङ्क्तिः पहली, दूसरी, चौथी, छठी, नवीं और द्वादशवीं कोटि काले रङ्गसे भरे ।
 पाँचवीं पङ्क्तिर्धोमें "राजा" ये दो अक्षर सफेद रङ्गके रङ्गसे भरे ॥ ३४-३८ ॥ प्रथम पङ्क्तिः पञ्चपङ्क्तिः पाँच
 कोटिर्को पूर्ववत् रखे । उनके नीचे दूसरी पङ्क्तिः पहली, दूसरी, चौथी, सातवीं तथा द्वादशवीं कोटि
 काले रङ्गसे भरे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ तीसरी पङ्क्तिः चौथी, छठी, द्वादशवीं तथा सातवीं कोटि पूर्ववत् रखे ।
 चौथी पङ्क्तिः प्रथम, दूसरी, चौथी, छठी, द्वादशवीं, सातवीं, नवीं और नवीं कोटि काले रङ्गसे
 भरे । जिसमें "राम" यह दो अक्षर सफेद रङ्गसे भरे ॥ ४१-४३ ॥ यह सब हो जानेपर उसके "राजाराम" ये
 चार अक्षर दिखलाई देने लगने । अपनी बुद्धिसे उसको "राजाराम" भरे भरे रखने हैं । अथवा
 राम राम राम इन तीनों नामोंको बतला करे । पाँचवीं पङ्क्तिर्धोमें जो विहित हो है, वह भी बतलाऊना
 ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ चौथी पङ्क्तिः पहली कोटि काले रङ्गसे भरे । इसमें उस पङ्क्तिः अक्षर नहीं दीखता
 और "राम" यह सफेद-सफेद नामूम पड़ने लगने ॥ ४६ ॥ अथवा "राम नाम" यह बतला करे । इसकी
 पहली पङ्क्ति पूर्ववत् रहेगी । इसके बाद दूसरी पङ्क्तिः पहली, दूसरी, तीसरी, चौथी, छठी, नवीं, छठी
 तथा द्वादशवीं कोटि, तीसरी पङ्क्तिः पहली, द्वादशवीं, छठी, पाँचवीं, चौथी पङ्क्तिः पहली, दूसरी, तीसरी,
 चौथी, सातवीं, छठी, नवीं तथा द्वादशवीं कोटि कृष्णवर्णसे भरे ॥ ४७-५० ॥ पञ्चम पङ्क्तिः पहली,
 दूसरी, तीसरी, पाँचवीं, छठी, सातवीं, नवीं तथा द्वादशवीं कोटि भी काले रङ्गसे भरे । ऐसा करनेमें

लघुमुद्रान्वितं रामलिङ्गाख्यं भद्रमुच्यते । मया शिष्याधुना तत्रं शृणुष्व स्वस्थमानसः ॥५३॥
 निर्यगूर्ध्वमेकपञ्चाशद्रेखास्तत्पदेषु च । मम सप्तपदा ने द्वौ परिधी पीतवर्णके ॥५४॥
 कार्यौ तत्र कोणदेशेऽपिन्दुद्विपदशुक्लकः । शृङ्खलतुपदा कृष्णा त्रयोदशपदा लला ॥५५॥
 हरितेश्चो वसुपदः कृष्णवर्णः प्रकारयेत् । त्रिपदं लोहितं श्रेयं भद्रं बल्लयन्निकस्यितम् ॥५६॥
 पण्डितादात्मिका मुदा तत्रेन्द्रियदिविस्थता । न्यक्त्वा पञ्चिकोणकोष्ठं मिथुमिथुमितस्तथा ॥५७॥
 मिथ्वतुङ्गकी च सप्तमायाः पङ्क्तेः पदं त्वधा । मणिषा पूरयेत्तत्र भाति रामेति सप्तपदम् ॥५८॥
 तत्रादावग्निमुद्रा स्यात्सीमापरिधयस्तथा । रक्तलिङ्गद्वयं भद्रं तथा लिङ्गोपरि स्थितम् ॥५९॥
 पदद्वयं पीतवर्णं वीथीवल्लया निधोजयेत् । द्वितीये त्वेकमुद्रा द्वौ परिधी द्वौ शिबो मर्तो ॥६०॥
 भद्रं नवपदं लिङ्गवल्लयोर्मध्ये रमात्मकम् । भद्रं पातं लिङ्गोपरि रक्तं तुर्यपदात्मकम् ॥६१॥
 लिङ्गस्कन्धपदे द्वे द्वे हरिते वीथिकाऽपि । मद्राणि त्रीणि ज्ञेयानि पातं द्वे लोहितेऽत्र द्वि ॥६२॥
 ततोऽञ्जः सर्वतोभद्रं कार्यं तत्र नु वापिका । चतुर्विंशत्पदं भद्रमककोष्ठं लते सिते ॥६३॥
 त्रिपदोऽञ्जः पञ्चपदा शृङ्खला परिधिस्ततः । मध्ये पञ्च रक्तवर्णं स्वयेष्टा विचित्रितम् ॥६४॥
 पीतशुक्लरक्तकृष्णाश्चाति परिधयो मताः । एतत्पोड्यमुद्रामी रामलिङ्गाख्यभद्रकम् ॥६५॥
 मदानन्दमयं रामं चिज्जपोतिपथनामयम् । सर्वविभामकं निन्यं स्वान्मानं समुपास्महे ॥६६॥
 चन्द्रकलं रामलिङ्गतोभद्रं यद्विकल्पितम् । निविकारं नास्ति तस्मिन्निवेकाऽविविच्यते ॥६७॥
 कल्पितः स नरो राजा रामलिङ्गयुतः स्मृतः । रमणाद्राम इत्युक्तो योगिमन्यः परं महः ॥६८॥
 लीयन्ते यत्र भूतानि निर्गच्छन्ति यतः पुनः । तेन लिङ्गं परं व्योमेत्युक्तं भक्तविदुर्महः ॥६९॥

“राम” य दो अक्षर सफेद दोलने लगेंगे । इन चारों नामोंको चारों ओर रख ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ हे शिष्य ! अब लघुमुद्रान्वित रामलिङ्गतोभद्र बतलाता है । सो तुम स्वस्थचित्त होकर सुनो ॥ ५३ ॥ खड़ी और बड़ो ५१ रेखाएं लोचि । उनके सात सात खानोंमें पीले रंगकी दो परिधियां बनाये ॥ ५४ ॥ कोणभागमें तीन कोष्ठकोंमें सफेद रंगके दो इन्दु बनावे । छ कोष्ठकोंकी एक शृङ्खला और तेरह कोष्ठकोंकी लला बनावे ॥ ५५ ॥ साठ पादका हरे रंगका शिव बनावे । लाल रङ्गसे बल्लोके पास ही तीन पादका भद्र बनावे ॥ ५६ ॥ साठ पादकी मुद्रा और चन्द्रमा याम्य कोणमें रहेगा । प्रायक कोण और छठे कोष्ठको छोड़कर ऊपर बतलायी गयी मुद्रा रखनी चाहिए । इसके अनन्तर सातवीं पङ्क्तिमें नीचेके कोष्ठकोंकी काली स्याहीसे भर दे तो “राम” ऐसा स्पष्ट दिखायी देने लगेंगा ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ उसके आदिमें अग्निमुद्रा और उसकी बाकी परिधियां लाल रङ्गसे रंगे । दोनों लिङ्गोंके भद्र तथा लिङ्गके ऊपर स्थित दोनो पाद पीतवर्णसे रंगने चाहिये । इसमें कई चीथा तथा बल्लियां बनानी चाहियें । दूसरीमें एक मुद्रा, दो पण्डि, दो शिव, नौ पादोंका भद्र, लिङ्ग और बल्लोके मध्यमें छ बनावे । लिङ्गके ऊपरवाला भद्र पीले रङ्गका और चार कोष्ठोंकी लाल रङ्गसे रंगना चाहिये ॥ ५९-६१ ॥ लिङ्गके स्कन्धत्वाममें दो-दो हरे रक्त भद्र रहेंगे और वीथियां हरे ही रङ्गकी रहेंगी । यहाँपर तीन रहेंगे, एक पीला और दो लाल । इसके मध्यभागमें सर्वतोभद्र बनेगा । जिसमें चौबीस कोष्ठ रहेंगे, नौ कोष्ठोंकी लला बनेगी और शिव भी बनेगे ॥ ६२ ॥ तीन पादका अञ्ज (कमल) और पाँच पादकी शृङ्खला और परिधि रहेंगी । मध्यमें रक्तवर्ण या कई रक्तके कमल बनावे ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ इसके अन्तमें पीले, सफेद, लाल और काले रक्तकी परिधि रहेंगी । इन षोडश मुद्राओंसे रामलिङ्गतोभद्र बनता है ॥ ६५ ॥ सदा आनन्दमय, चित्, ज्योतिर्मय, व्याधिरहित और सबके अवभासक, ऐसे अपने आरमारूप रामकी उपासना करता हूँ ॥ ६६ ॥ सोलह कलाओंका यह रामलिङ्गतोभद्र जो मैंने बतलाया है, वह विचार-विहीन नहीं है । उसमें जो विचार है, अब उसको विवेचना करते हैं ॥ ६७ ॥ राजाराम इस चिह्नका निर्माण करने-वाला मनुष्य घन्य है । सब लोगोंको आनन्द देनेके कारण रामका “राम” यह नाम पड़ा है । योगीजनोंकी ही गति जनक है । उनका सर्वोत्कृष्ट तेज ॥ ६८ ॥ उन्हींमें संसारके प्राणी लीन होते हैं और फिर

लिंग्यते चित्यते येन भावेन भगवान् शिवः । लिंगरूपो स रामेति लिंगं चेति द्विनामकः ॥७०॥
 बहूनि सन्ति नामानि रामेशस्य महात्मनः । रजसि गणयेत्कोऽपि भूमेर्नैवास्त्रिलेशितुः ॥७१॥
 तस्मिन्पुत्रसर्वतोमद्रं हृदयं तत्प्रकीर्तितम् । सत्र पञ्चमष्टपत्रं सकेशरामकर्णिकम् ॥७२॥
 तत्स्थानं रामलिंगस्य ध्यानार्थं परिकल्पितम् । अन्यथा सर्वशस्यास्य कथं देशादिभेदता ॥७३॥
 दिश्यीतिः परमान्मार्गं स्वमायावशनां मनः । धर्मार्थकाममोक्षार्थं सृष्टयुगादि प्रविष्टवान् ॥७४॥
 तस्य चैतन्यचन्द्रस्य घोडशेमाः कलाः पराः । विड्यामाश्च द्वाग्भूता यदादीन्विषयानिह ॥७५॥
 प्रकाशयन्ति गृह्णन्ति त्यजन्ति चम्यभारतः । बुद्धिरेकाऽस्वप्नमिना सप्तिकृष्टा शिवान्मनः ॥७६॥
 अतो ज्ञानप्रधाना सा तज्ज्ञातं चक्षुर्गदिषु । प्रभूतं रूपशब्दादीन् जानाति सुखशेषतः ॥७७॥
 चतुर्धा वृत्तिभेदेन प्रोक्ता तत्त्वार्थदर्शिभिः । प्रयोजनं न तेनात्र प्रकृतं तादृविच्यते ॥७८॥
 क्रियाप्रधानः प्राणश्च पञ्चधाऽसौ स्ववृत्तितः । प्राणायानौ तथा व्यानः समानोदानकाविति ॥७९॥
 वागादिकर्मेन्द्रियेषु क्रिया प्राणाश्चया मत्रा । श्रवणं नयनं घ्राणं त्वग्रसनेन्द्रियं तथा ॥८०॥
 पञ्चेषानि चेन्द्रियाणि ज्ञानद्वाराणि वै विदुः । वाक्पाणिपादपायूपस्थाश्च कर्मेन्द्रियाणि च ॥८१॥
 एवं षोडशसंख्यानं कलानामुच्यते बुधैः । तामु सवासु चैतन्यं रामनामेति विश्रुत् ॥८२॥
 प्रविष्टं दीप्यते शरीरं तेन विश्वं विचेष्टते । अनादिसंसारतरुः कर्ममूलफलात्मकः ॥८३॥
 देहाभिमानिनो जीवाः फलभोगाय पक्षिणः । यथाकर्म सुखं दुःखं खादन्ति स्वश्वरापितम् ॥८४॥
 कश्चिज्जन्मसहस्रेषु ज्ञानवान् जायते यदा । तदात्मस्थं रामरूपं ज्ञात्वा मोक्षो भवत्यलम् ॥८५॥

उन्हीमेंसे आविर्भूत होते हैं । इसी कारण प्रह्लादको जाननेवाले भेद लोगोंमें इस परम ध्याम कहा है ॥ ६९ ॥
 जिस भावसे भगवान् शिवकी पूजा की जाती है । ॥ ७० ॥ हा राम लिंग और राम इन दो नामोंसे पुकारे जाते हैं
 ॥ ७० ॥ उन महात्मा रामके बहुतसे नाम हैं । संसारका कोई प्राणी पृथ्वीके रजकणोंको मले ही गिन सके ।
 किन्तु भगवान्के नामोंकी गणना कोई भी नहीं कर सकता ॥७१॥ उसमें जो सर्वतोमद्र है, वही हृदय जानना
 चाहिये । उसमें आठ गत्रोंका केंसर और पचुड़ियों युक्त जो कमल है, वह रामके लिङ्गका ध्यान करनेके
 लिए ही बताया जाता है । नहीं तो सर्वव्यापी भगवान्की देशादिभेदता किस प्रकार मानी जाती
 ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ विज्ज्योतिर्मय वे परमान्मा अपनी मायाके वर्णाभूत होकर घर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस
 चतुर्वर्गका साधन करनेके लिए ही संसारमें आये थे ॥ ७४ ॥ उस चैतन्य चन्द्रको षोडश कलाएँ सर्वश्रेष्ठ मानी
 गयी हैं । वे संसारको सब वस्तुओंमें विद्यमान रहता है ॥ ७५ ॥ वे स्वभावसे ही सबको प्रकाशित करतीं,
 समय पहनेपर फिर छोड़ देती और कभी-कभी फिर अपनेमें समेट लिया करता है । पवित्र ब्रह्मावालोके
 लिए बुद्धिमान् कला है और वह सबके पास रहती है ॥ ७६ ॥ इसीसे वह चक्षु आदिसे रहती हुई ज्ञानप्रधान
 मानी जाती है । वह मद्रूप्यादि संसारमें कहे हुए पदार्थोंकी अच्छी तरह जानता है ॥ ७७ ॥ वह वृत्तिभेदसे
 चार प्रकारकी मानी गयी है । यही उसके विषयमें विशेष विवेचनकी कोई आवश्यकता नहीं आत पड़ती ।
 अतएव ॥ विषयमें वास्तविक विवेचना करते हैं ॥ ७८ ॥ अपनी वृत्तिके अनुसार प्राणक्रिया प्रधान मानी
 जाती है और इसके पाँच भेद हैं—प्राण, अपान, ध्यान, समान तथा उदान ॥ ७९ ॥ वाक्, आदि कर्मेन्द्रियों-
 की सारी क्रियाएँ प्राणाश्रयी हुआ करती हैं । श्रवण, नयन, घ्राण, नाक, त्वचा और जीभ ॥ ८० ॥ ये
 ही पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ मानी गयी हैं । वाक्, पाणि (हाथ), पाद, पायु (गुदा), उपस्थ (लिङ्ग), ये पाँच
 कर्मेन्द्रियाँ हैं ॥ ८१ ॥ इसीलिए कलाओंकी सोलह संख्या कही गयी है । उन सबोंमें उन रमानाथकी चेतना
 शक्ति विद्यमान रहती है ॥ ८२ ॥ उन्हीके प्रवेशसे यह संसार देखीव्यमान होता है और उन्हींकी चेष्टासे सबेष्ट
 रहा करता है । ॥ अनादि संसाररूपी वृक्ष है और सबको कर्मनुसार फल ॥ ८३ ॥ देहका अभिमान
 करनेवासे जीव पक्षियोंकी तरह अपने प्रभुके दिये हुए सुख-दुःखरूपी कर्मोंको भोगते हैं ॥ ८४ ॥ हजारों
 बार जन्म लेनेके बाद कहीं कोई ज्ञानवान् होता है और अपनी आत्मामें स्थित रामका रूप जानकर मोक्षपद-

इन्द्रियाणि पराण्यान् तेभ्यो बुद्धिः परा मता । तत्परः परमात्मा च सर्वसाक्षी विनिश्चितः ॥८६॥
 दो सुषण्वेकवृत्तं समाश्रित्य स्थितौ तयोः । एकः सारफलं स्याद् खाद्यत्यन्यो विषक्षते ॥८७॥

त्रिषु धामसु यज्ञोभ्यं भोक्ता भोग्यश्च यज्ञवत् ।

तेभ्यो विलक्षणः साक्षीत्याह चाध्वंजी श्रुतिः ॥८८॥

यच्चास्तीह यत्स्फुरति यच्चाजन्दयति स्वयम् । यस्मिंश्च महसि प्रख्ये सर्वे वेदाः समन्विताः ॥८९॥
 विषयादि श्रीपर्यन्तं जडं सर्वमनात्मकम् । यस्यार्थे च प्रियं चैतन्महामात्मा महाप्रियः ॥९०॥
 सर्वेषां प्राणिनां आत्मा परमेश्वरस्यो मनुः । स तु सर्वत्रैक एव नेह नानास्ति गच्छति ॥९१॥
 चिद्रामं हृदयं ज्ञान्वा योऽसौ सोऽहमितीरया । आचार्यदत्तया यम्पक् परोपासन गतः ॥९२॥
 आशुशिरसकून्यायात्कलाभूते परात्मनि । बाधदालो पुनस्तस्य न कार्यं विद्यते भवे ॥९३॥
 सर्वेऽप्युपायाः शास्त्रेषु यज्ज्ञानार्थं प्रयोजिताः । स चेदभिरुचन्देन हृद्याविः किं परं ततः ॥९४॥
 दृष्टेऽस्मिन्नचित्ते भद्रं यद्यत्र प्रविचार्यते । तदा चित्ते परा प्राप्तिर्जायते विदुषां सताम् ॥९५॥
 नमो रामाय शान्ताय लिङ्गरूपधराय च । शम्भवे विष्णवे तुभ्यं शङ्कराय शिवात्मने ॥९६॥
 भगवाऽऽद्ये स्थले भद्रं कार्यं नवपदात्मकम् । त्रिषु भद्र पदपदजं रक्तपातेऽत्र ते स्मृते ॥९७॥
 द्विदिपादात्मके कार्ये शेषे सर्वे हि पूर्ववत् । रामनोभद्रमेतच्च केवलं रामतुष्टिदम् ॥९८॥
 स्थले द्वितीयभद्रं हि रक्तं विंशत्पदात्मकम् । त्रिषु भद्र नवपदैः पातं चित्रे तु शृङ्खले ॥९९॥

नखेशानं राममानन्दकन्दं मायातीतं निर्विकारं निरीहम् ।

विद्याधीशं षड्गुणैकाग्र्यं च नश्ये भद्रं रामनामांकितं तत् ॥१००॥

को प्राप्त होता ॥ ८५ ॥ पहले तो इन्द्रियाँ प्रधान हैं, उनसे बुद्धि श्रेष्ठ और उससे भी श्रेष्ठ सर्वसाक्षी परमात्मा है ॥ ८६ ॥ दो पक्षों एक वृक्षपर बैठे हैं। उनमेंसे एक तो मोठे-मोठे फल खा रहा है, दूसरा डकुर-डकुर साकता है ॥ ८७ ॥ तीनों घामों में जो भाव वस्तु, भोक्ता तथा भोग्य पदार्थ हैं। उन सबसे साक्षी परमात्मा विलक्षण है। यह अर्थ वेद कहता है ॥ ८८ ॥ इस साराराम चलायमान रहता है और जिसके तेजसे आनन्दको होता है। उसके विषयमें सब वेद एकमत होकर कहते हैं कि विषयसे लेकर बुद्धिपर्यन्त सब वस्तुएँ जड़ और आत्मविहीन हैं। जिसके लिए ये सब प्रिय मान्य होते हैं, वे परमात्मा राम सर्वप्रिय हैं ॥ ८९ ॥ ९० ॥ सत्कारके सब प्राणियोंकी अपनी आत्मा सबसे बढ़कर प्रिय होती है। यद्यपि वह एक है, फिर भी अनेक रूपोंसे विद्यमान दीखता है ॥ ९१ ॥ जो प्राणी 'सांझ' इस भावनासे चिन्मय रामको अपने हृदयमें सदा वर्तमान रामभक्त आचार्य द्वारा वा हुई दंडास रामका उपासना करता है, वह परमात्माको दो हुई पढ़ाके कलाभूत होनेपर अनेकों बार इस सत्कारमें अभ्यसित होता है, किन्तु ज्ञानके दृढ़ हो जानेपर फिर सत्कारमें उसे कुछ करना बाकी नहीं रह जाता अर्थात् उसका मुक्ति हो जाता है ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ शास्त्रोंमें जितने भी उपाय बतलाये गये हैं, उनका एकमात्र प्रयोजन ज्ञान प्राप्त करना है। यदि वह सासारिक उपायोंसे प्राप्त हो सके तो फिर क्या कहता ॥ ९४ ॥ यदि प्रकारसे बनाये हुए भद्रका ध्यानसे देखकर उसपर विचार किया जाय तो विद्वानोंके हृदयमें ईश्वरके प्रति महाप्रीतिका उत्पत्ति होता है ॥ ९५ ॥ शान्त, लिङ्गरूपधारा, शम्भु, विष्णु, शङ्कर तथा शिवात्मा रामका प्रणाम है ॥ ९६ ॥ यदि उक्त प्रकारका भद्र अपनेको न सचेता नो पादका बनावे। इस तिरछे भद्रमें छः पाद (काठक) होंगे और दो भद्र लाल और पीले रहेंगे ॥ ९७ ॥ फिर दूसरा लाल भद्र बीस पादका होगा। तिरछा भद्र नौ पादका होगा। पाला रङ्ग रहेगा और कई रङ्गाक बलसे इसमें दोन्दो पावोंकी दो शृंखलाएँ बनायी जायेंगी ॥ ९८ ॥ बाकी सब पूर्ववत् रहेगा। इस भद्रका नाम रामनोभद्र है और यह केवल रामचन्द्रको प्रसन्न करनेवाला है ॥ ९९ ॥ आनन्दकन्द, मायाशीत, निर्विकार, निरीह, विद्याके स्वामी और षड्गुणोंके एकमात्र आश्रय शिवको यह भद्र नहीं प्रसन्न कर सकता। इसलिए ये

प्रागुचरा दिशतमंकनवाधिका २०५ । रेखाः सप्ताः सुपरिकल्प्य एतेषु तासां ।

कोणांतगाऽत्र उपरीदुशकुंतमंश्याः २१ पीताश्च ते परिधयः परिकल्पनीयाः ॥१०१॥

कोणाब्जशृंगललाः सितकृष्णनीला भद्राणि भिन्नचनान्यरुणानि तानि ।

मुद्राश्च तत्पग्निधयश्च सिताश्च रक्ताः संपग्निताश्च जनयन्ति रतिं भुनीनाम् ॥१०२॥

मुद्रा तु षष्टिपदसंरलिता च तत्र पंक्ती त्रिहाय यमवापयदिकनस्थे ।

प्रत्येककोणकपदानि चतुष्टयादि पंक्तिद्वयं रसतुर्गायकमञ्जनाभम् ॥१०३॥

कृत्वा पदक्रमधनस्त्वथ मप्रमादाभ्येनातिसुन्दरतां पश्मिति मारम् ।

रामेति द्वयसंमुखेशजपं निधानं प्राणप्रायाणममये जपतां महीदयम् ॥१०४॥

रचयेदादितः सम्यग्वाचद्विशस्थलावधि । सर्वत्र राममुद्रासु पध्येषु परिधिद्वयम् ॥१०५॥

आदौ तत्त्वमिता मुद्रासुषेविशन्मिताश्चनः । द्वाविंशैकविंशविंशपटमप्रदशमापराः ॥१०६॥

षष्टचतुर्दशत्रयोदशदशदशकः । नवःष्टमत्रपटुर्गोत्रह्येकाश्चाप्यनुक्रमात् ॥१०७॥

भद्रं षोडशपादं च विंशत्रिंशत्पट्टप्रिकम् ।

षट्कलं तत्त्वमिति त्रिंशत्त्रिंशत्प्रिकम् ॥१०८॥

तत्त्वपटाग्रिनेत्रावुनिधिर्विश्वभोऽप्रिकम् ।

पट्विश्वत्पोडशपादं तत्त्वे त्रिंशद्द्विप्रिकम् ॥१०९॥

विंशत्कोष्ठं क्रमादेवं भवेत्पार्श्वचतुष्टये । एकविंशत्पदे भद्रमेककोष्ठं च दापिका ॥११०॥

चतुर्विंशपदा कार्या परिध्यन्तोऽरुणावुक्ता । भद्रोपरि यत्र यत्र पदान्पूर्वरितानि च ॥१११॥

तिर्यक् भद्रमृत्सलार्थं यथेच्छं पर्येद्विषा । सर्वत्र भृङ्गत्वाः पञ्चपदजकादशी लता ॥११२॥

त्रिपदश्च गर्शा ज्ञेयः परिधयो वहिः क्रमात् । कृष्णरक्तशुक्लपीताश्चतुर्दिक्षु समंततः ॥११३॥

एतदष्टोत्तरदशशतं १०८८ ज्ञेयं रामस्य भद्रकम् ।

अथवा मनु १४ रेखानां दृष्टिं कृत्वा प्रकल्प्य च ॥११४॥

एक दूसरा भद्र बतला रहा है ॥ १०० ॥ पहले उत्तरकी ओरसे २९२ रेखा खींचे । उसमें २१ कोष्ठकोसे पीले रंगकी परिधिगी बनावे ॥ १०१ ॥ कोणमें कमल बनाकर सफेद, काले और नीले रंगकी शृङ्खला और लताएँ बनावे । उनमें बने सब कोष्ठक भिन्न-भिन्न प्रकारके लाल रङ्गके रहेंगे । उसमें बनी सफेद और लाल रङ्गकी मुद्रायें मुनियोंके हृदयमें भी अमृताग उत्पन्न किये बिना नहीं रहती ॥ १०२ ॥ इसमें साठ कोष्ठकोसी मुद्रा बनायी जाती है, किन्तु दक्षिण-पूर्व तथा दक्षिण कोणकी पंक्तियों सादी छोड़ दी जाती है । प्रत्येक कोणके चार पाद, दो पक्षित तथा छठी और चौथी पक्षित काले रङ्गकी रहेंगी ॥ १०३ ॥ इसके अतिरिक्त सातवीं पक्षिके नीचे एक पाद काले रङ्गका बनावे तो वह भद्रके सारकी तरह बहुत ही सुन्दर लगेगा । राम यह दो अक्षर सिद्धजीके जपपुञ्जका एक बड़ा लज्जाना है । यदि प्राण निकलते समय इसका जप किया जाय तो बड़ा कल्याण हो ॥ १०४ ॥ आदिसे लेकर बाईसवें कोष्ठक पर्यन्त भद्रकी रचना करता जाय । हर एक राम-मुद्राके बीचमें दो परिधियां रहेंगी ॥ १०५ ॥ पहले पञ्चोस मुद्रायें रहेंगी । इसके बाद बाईस, दसकीस, बीस, अठारह, दस, नौ, सोलह, चौदह, तेरह, बारह, ग्यारह, नौ, आठ, सात, छ, चार, तीन, दो, एक ये मुद्रायें रहेंगी, ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ इस भद्रमें बीस, तीस, छत्तीस, सोलह, पञ्चोस, तीस, दसकीस, बीस, पञ्चोस, छत्तीस, दसकीस, ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ इस प्रकार बीस-बीस कोठे चारों ओर रहेंगे । दसकीस कोष्ठकका भद्र रहेंगा और नौ कोष्ठकोसी चारों ओर रहेंगी ॥ ११० ॥ चौबीस कोष्ठकोसे परिधिके पास कमल बनेगा । जो पाद बाकी बचे हों, उन्हें अपनी बुद्धिसे भरे । इसमें पाँच पादोंकी शृङ्खलाएँ रहेंगी और ग्यारह पादकी लताएँ बनायी जायेंगी ॥ १११ ॥ ११२ ॥ तीस पादका चन्द्रमा बनेगा और उसके आस-पास चारों ओर काली, लाल, सफेद तथा

परिधिस्तत्र लिङ्गानामेर्विज्ञाधिकं अतम् । वाप्यो भद्राणि चंद्रादिचतुःपार्श्वेषु योजयेत् ॥११५॥
 चतुर्विंशपदं लिङ्गं वाप्यष्टशतपादिका । द्वे भद्रे नव नव पदे षष्ट षष्ट पदानि षट् ॥११६॥
 त्रिंशद्विंशानि वाप्यस्तु सप्तविंशन्मिता मताः । एकस्मिन् पार्श्वके लिङ्गाधिक्ये भद्रे प्रकल्पयेत् ॥११७॥
 षष्ट्यष्टपदे शेषाण्यंकोष्ठानि योजयेत् । लिङ्गं कृष्णं सिता वाप्यः शेषं सर्वं पुरोदितम् ॥११८॥
 पदानि शेषभूतानि यत्र यत्रेह तानि च । भद्रभृङ्गलयोग्यानि तदर्थे विनियोजयेत् ॥११९॥
 कृष्णरक्तशुक्लपीठा अन्ते परिधयो मताः । एवं लिङ्गयुतं रामतोभद्रं परिकीर्तितम् ॥१२०॥
 अनेन देवौ सुप्रीतौ रामेशौ भवतस्त्विह । रामस्य पूजनार्थं हि त्विदं प्रोक्तं वरासनम् ॥१२१॥
 आचार्यान् ज्ञानसंपन्नान् तेषां प्रसादतः । वक्ष्येऽहं रामतोभद्राकृतिं च शृणुमंयुताम् ॥१२२॥
 प्रकृतिं रामतोभद्रं विकृतिं लिङ्गमंयुतम् । अन्ये विकाराः संज्ञेया एव कृतिस्त्रिषोच्यते ॥१२३॥
 तिर्यगूर्ध्वमन्यधिकाः शतरेखाः प्रकल्पयेत् । तत्पदेषु परिधयः षट्पडन्ते पडेव तु ॥१२४॥
 पीठाः कोणेषु त्रिपदः शुक्लेन्दुः भृङ्गलाङ्गिता । पञ्चपदैकादशिका वल्लरी भद्रसंक्रमात् ॥१२५॥

सिन्धुषोडशमूर्त्यर्तुपुगषोडशकोष्ठकम् ।

कल्पयेत् षष्टकोष्ठेषु राममुद्रां हि पूर्ववत् ॥१२६॥

अष्टौ पद्म च पञ्चसिन्धुवह्निचन्द्रमिताः शुभाः ।

तासां सीमापरिधयस्त्वेकास्तु लोहिताः ॥१२७॥

रजनीशनेत्रमिधुर्पक्षिषु मध्यमाश्रयः । मर्यादाख्याः परिधयो भवन्ति द्विगुणीकृताः ॥१२८॥
 अन्तिमं तु परिध्वन्ते सर्वतोभद्रकं लिखेत् । विंशपस्तत्र वापी तु चतुर्विंशपदात्मिका ॥१२९॥
 मद्रं नवपदं पञ्च परिध्वन्तः सुलोहितम् । पीठा तत्कर्णिका कार्या अन्ते परिधयोऽपि च ॥१३०॥

पीलीं परिधियां रहेंगी ॥ ११३ ॥ यह एक हजार आठ नामोंका भद्र है । चौदह रेखाओंकी बत्पना करके उनकी वृद्धि करे । उसमें एक मो इक्कीस कोष्ठोंकी परिधि बनेगी । वापी-भद्र आदि पहलेकी तरह रखे ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ चौबीस कोष्ठोंका लिङ्ग बनेगा और अठारह पादकी वापी बनायी जायगी । दो भद्र मो-मो पादके रहेंगे और दस-दस पादोंके छः भद्र बनावे जायेंगे ॥ ११६ ॥ उनमें तीस तथा बीस पादोंके लिङ्ग रहेंगे और सत्ताइस पादोंकी वापी बनायी जायेगी । जो कुछ बाकी पाद बचें, उनमें दस-दस पादोंसे दो भद्रोंकी रचना करे ॥ ११७ ॥ बाकी नौ कोष्ठोंको यथास्थान रखे । इसमें लिङ्ग और वापी सफेद रहेंगी । बाकी सब पहलेके भद्रोंकी तरह ज्योंके त्यों रहेंगे ॥ ११८ ॥ बाकी जितने पाद हैं, वे सब और शृङ्खलाके काममें आ जायेंगे ॥ ११९ ॥ काले, लाल, सफेद और पीले रङ्गकी इसकी परिधियां रहेंगी । इस प्रकारके लिङ्गसे रामतोभद्रकी रचना बतलायी गयी ॥ १२० ॥ इस भद्रसे राम तथा शिवजी दोनों होते हैं । यही रामका पूजन करनेके लिये वरासन गया ॥ १२१ ॥ ज्ञानसम्पन्न आचार्योंकी प्रणाम करके उनकी कृपासे सम्पुसंयुक्त रामतोभद्रकी रचनाका प्रकार बताऊंगा ॥ १२२ ॥ इसमें रामतोभद्रकी प्रकृति विकृत रहती है । और भी कई तरहकी विकृतियां इसमें होती हैं ॥ १२३ ॥ सही और बड़ी कुछ एक सौ तीन रेखाएँ लीचे । इसमें भी छ-छ पादोंकी परिधियां रहेंगी ॥ १२४ ॥ कोनोंमें सीत-तीन पाद बीसे रङ्गके रहेंगे । चन्द्रमा उज्ज्वल रहेगा और शृङ्खला काले रङ्गकी रहेगी । सोलह पादकी वल्लरी बनायी जायगी ॥ १२५ ॥ चार, सोलह, बारह, छ, चार, सोलह पादके क्रमसे कोष्ठोंमें पूर्ववत् राममुद्राकी रचना करे ॥ १२६ ॥ आठ, छ, पाँच, चार, तीन, एक, इस पादक्रमसे इसकी परिधियां बनेंगी और एक परिधि काल रङ्गकी रहेगी ॥ १२७ ॥ एक, दो, चार और दस इनकी द्विगुणित क्रमसे मर्यादाख्या परिधियां होती हैं ॥ १२८ ॥ अन्तिम परिधिके बीचमें सर्वतोभद्र बनाना चाहिये । यहाँ यह विशेषता है कि इसमें चौदस चौबीस कोष्ठोंकी वापी बनायी जायगी ॥ १२९ ॥ नौ कोष्ठोंका भद्र बनेगा और परिधिके भीतर लाल

पीतशुक्लरक्तकुष्मवर्णा यत्र पदानि च । भद्रोर्ध्वं श्लेषभूतानि तानि युक्त्या प्रचुरयेत् ॥१३१॥
तिर्यग्भद्रमृगलाघैः पीतचित्रे च ते स्मृते । एतदष्टोत्तरशतं रामतोभद्रमीरितम् ॥१३२॥

एकं संसारशून्यं सकलसुखनिधिं सच्चिदानन्दकन्दं

मायायोगेन विश्वान्मकमिदममलं ब्रह्मविष्णुशैलसंज्ञम् ।

सृष्टिस्थित्यन्तदेतुं निगमकविनुदं मन्वेभूतात्मभूतं

सर्वज्ञं सर्वशक्तिं रणहरममृतं तन्महो भावयेऽहम् ॥१३३॥

नत्वा श्रीदेशिकेन्द्रस्य पादाब्जममप्रदम् । वक्ष्ये चाध्यात्मिकीं मुक्तिं सतां चित्तचमत्कृतिम् ॥१३४॥
पशूनां नखरोमादि सर्वमर्थाय कल्पते । मृतस्य नरदेहस्य सृष्टिर्दोषावहोदिता ॥१३५॥
एकमेवामुना साध्यं ज्ञानं यत्स्वस्वरूपदम् । तदिना तु पशुभ्यश्च नरो हीनतरो मतः ॥१३६॥
अतिभायान्पुष्पतमः श्रद्धावान् गुर्वधोभुजैः । कीटिष्वेकाः स्वयं साक्षात्सरो नारायणो भवेत् ॥१३७॥
केनचिद्रामतोभद्रं मुद्रा पट्टिपदान्तिका । रामांकिना च मन्त्ररूपे विविच्यते च ते उभे ॥१३८॥
लोकाः सप्त यथाङ्गिऽस्मिस्तथा तत्र प्रकल्पिताः । तेनेयं रचना तुल्या ज्ञानस्य हृन्मयमुदीर्यते ॥१३९॥
ब्रह्माङ्गं रामतोभद्रं मुद्राभूतानि संमताः । रामचैतन्ययुक्तानि मम्मतानि तु सूरिभिः ॥१४०॥
यस्यां स्यान्मुद्रितं वस्तु या मुद्रेति निगद्यते । मुद्रेण चिह्नितं चाथ पिहितं व्यर्थतो भवेत् ॥१४१॥
तद्वत्सर्वासु चैतासु ब्रह्ममुद्रितमुच्यते । तथाप्यासां सवाङ्मातश्चैतन्यः संप्रकाशते ॥१४२॥
आच्छादितोऽपि कलशे स्कटिकेऽन्तर्बहिः किल । दीपः प्रकाशते कर्म लोपयेच्च तथेप्स्यते ॥१४३॥
मृषामिवत् ताद्वरसं तदाकारं प्रपद्यते । तथा ब्रह्म निराकारं मुद्राकारं विभासते ॥१४४॥

रङ्गका कमल रहेगा । पीले रङ्गसे उस कमलके रस बनाये जायेंगे ॥ १३० ॥ पीले, सफेद, लाल और काले रङ्गकी परिधियी रहेंगी । भद्रसे बाकी बचे जितने कोलक हों, उन्हें मुक्तिके साथ रंगोंसे पूर्ण कर दे ॥ १३१ ॥ इसकी श्रद्धालाएँ तथा भद्र पीले और विविध रंगके होंगे ॥ १३२ ॥ मैं भगवान्के उस कलका ध्यान करता हूँ जो संसारमें अकेला है, समस्त सुखका निधान है, सच्चिन् और आनन्दकन्द है । जिसने अपनी मायाके योगसे इस निर्मल विष्णुके प्रभुओंको ब्रह्मा, विष्णु और शिवके नामसे अभिहित कर रक्खा है । जो सृष्टि, पालन और विनाशका हेतु है । जिसकी कृपियेनि बारम्बार स्मृति की है, जो सब प्राणियोंका प्राण है, जो सब कुछ जानता है, जिसके पास सब प्रकारकी शक्तियाँ हैं, जो स्रष्टाका अन्तक और अमृतम्बरूप है ॥ १३३ ॥ अब मैं श्रीदेशिकेन्द्रके अमरपद प्राप्त करनेवाले चरणकमलको शोभाय करके सबजनोंके चित्तमें चमत्कार उत्पन्न करनेवाली आध्यात्मिकी नूतनोंका वर्णन करूँगा ॥ १३४ ॥ मृत पशुओंके नख-लोम आदि सब पदार्थ काम आ जाते हैं, किन्तु मनुष्यके मर जानेपर यह मात्तम होता है कि बिधाताने इसकी सृष्टि करके बड़ा भारी अपराध किया है ॥ १३५ ॥ इस गरीबसे आत्माका स्वरूप पहचाननेकी साधना की जा सकती है । यदि यह काम नहीं किया तो वह मनुष्य पशुसे भी होन माना जायगा ॥ १३६ ॥ करोड़ों मनुष्योंमें नहीं कोई एक मनुष्य पवित्र गुरु तथा भगवान्में थड़ा रसरेवान्ना होता है । जो ऐसा होता है, वह साक्षात् नारायण ही है ॥ १३७ ॥ कुछ लोग ऊपर बतलाये हुए रामतोभद्रकी रचना करके उसमें साठ कोष्ठोंकी मुद्रा बनाकर इस प्रकार विवेचना करते हैं— ॥ १३८ ॥ जैसे ब्रह्माण्डमें कितने ही लोक हैं, ठीक उसी तरह यह रामतोभद्र भी है ॥ १३९ ॥ रामतोभद्र ब्रह्माण्ड है, इसकी मुद्रामें ही प्राणिसमूह बसते हैं । उसमें रामरूप चैतन्य (जीव) है । ऐसा कितने ही तत्त्वदर्शजाने कहा है ॥ १४० ॥ जिसमें कोई वस्तु मुद्रित हो (अर्थात् लपेटकर रक्खी हो) उसे लोग मुद्रा कहते हैं । मुद्रितका अर्थ है—चिह्नित या पिहित (पिरोया हुआ) । यह सारी सृष्टि ब्रह्मसे मुद्रित है । फिर भी इसके बाहर चैतन्यसा प्रकाशित हो रही है ॥ १४१ ॥ १४२ ॥ स्फटिक भणिका कलश बना और उसके भीतर दीपक रखकर चाहे वह चारों ओरसे टाँक दिया जाय, फिर भी दीपकका प्रकाश कोई लुप्त नहीं कर सकता । ठीक वही दशा उस ब्रह्मकी भी है ॥ १४३ ॥ जिस तरह कि

पुरश्चक्रं प्रभुः सर्वाः पुरः पुरुष आविद्यन् । इत्युक्तं कण्वशास्त्रार्था अन्यत्रापि हि पठ्यते ॥१४५॥
 एको दशैः सर्वभूतान्तरान्मेति श्रुतेर्षद्वयः । एको देवः सर्वभूतेश्विति चैवापरा श्रुतिः ॥१४६॥
 पुरः सृष्टाः परेशेन नैव तामिस्तुतोष सः । सृष्ट्वेमां मानुषीं मुद्रां परं लोषमवार सः ॥१४७॥
 देवताश्चाज्ञमुक्त्यर्थं दृष्ट्वेमां पैक्षणीं तनुम् । इषांदाहुश्च सुकृतं वनेति श्रूयते स्फुटम् ॥१४८॥
 पुरुषं त्वेवाविस्तरमात्मेन्याह श्रुतिः स्वयम् । पुरा सृष्टैः सर्वभूतैस्तुष्टद्वयः स्वराट् ॥१४९॥
 ब्रह्मावलोमधिपणं नरं दृष्ट्वा मुद्रं गतः । इत्यस्माभिर्विष्णुदास श्रूयते भगवद्वचः ॥१५०॥
 मुद्रं करोति देवस्य द्रावयेद्दुःखपातके । इति मुद्रानिरुक्तिश्च मन्त्रशास्त्रेऽपि श्रूयते ॥१५१॥
 अतः सर्वेषु देहेषु सद्रूपग्रहणं कृतम् । स्वर्गापवर्गयोर्धैषोऽधिकारोऽस्मिन्न चेतरे ॥१५२॥
 लोके प्रसिद्धिर्यः कश्चिद्राजमुद्रांकिनो नरः । अधिकारीति मन्यन्ते पूजयन्त्यदरादिभिः ॥१५३॥
 तथानयांकिनो जीवोऽधिकारी शास्त्रभूमिषु । नान्याभिर्यो निमिश्रातुं शक्यते स्वात्मनः पदम् ॥१५४॥
 तस्मिंश्चैव नरोपार्थं पदानि षष्टि संनि हि । तानि संसेवतः मन्थक् प्रदर्श्यन्तेऽबुद्धये ॥१५५॥
 अविद्याकामकर्मणि भोक्तृभोगौ सुषुप्तिका । पदपदानि तु ज्ञेयानि देहे कारणसंज्ञके ॥१५६॥
 तमोऽज्ञानमविद्येति शब्दा एकार्थवाचिनः । अतो गुणाग्रहो नात्र दृश्यते पदेषु मो द्विज ॥१५७॥
 लिंगे पुर्यष्टकेऽविद्याकामकर्मग्रहः स्मृतः । तथाप्यत्र तु हेतुन्वाश्रयाणां ग्रहणं कृतम् ॥१५८॥
 कार्याभावेऽप्यवस्थानात्कारणे कारणान्मना । कामस्य कर्मणश्चात्र विद्यते सूक्ष्मरूपता ॥१५९॥
 अविद्या या मुख्यतोऽत्र विद्यते कारणात्मना । वस्तुतस्तु न कामोऽत्र कामना वा श्रुतेर्मतम् ॥१६०॥

सुवर्णमें लामा डाला जाता है तो सुवर्ण उसे अपने रंगमें मिला लेता है । वही दणा उस निराकर ब्रह्माकी भी है ॥ १४४ ॥ प्रभुने पहले इस जगत्की सृष्टि की । तदनन्तर उसमें पुरुषका समावेश किया । ऐसा कण्वशास्त्रमें कहा गया है । अन्य स्थानोंमें भी ऐसे ही वाक्य कहे गये हैं । उन्हें भी बतलाता हूँ ॥ १४५ ॥ श्रुतिका कवन कि प्राणियोंकी अन्तरात्मामें रहनेवाला एक ही परमात्मा है । इससे श्रुति भी इसी बातकी पुष्ट करती कहती है कि एक देवता है, जो संसारके सब प्राणियोंमें विद्यमान रहता है ॥ १४६ ॥ सृष्टिकर्ताने पहले अनेक तरहकी सृष्टियाँ कीं, किन्तु इससे उसे सन्तोष नहीं हुआ । फिर जब उसने इस मानुषी मुद्राकी सृष्टि की, तब उसे बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ १४७ ॥ अज्ञका भोग करनेके लिए देवताओंने पुरुषका शरीर देखा तो हर्षसे गद्गद होकर बोल उठे—आपने यह बहुत अच्छा किया, जो मानुषी शरीरकी सृष्टि कर दी ॥ १४८ ॥ विस्तारविहीन सूक्ष्म आत्मको ही श्रुतिने पुरुष कहा है । पहले ब्रह्माणे और-और प्राणियोंकी सृष्टि की, किन्तु उनका हृदय प्रसन्न नहीं हुआ और ब्रह्माकी प्राप्त करनेवाले मनुष्योंको उन्होंने देखा तो बहुत प्रसन्न हुए । हे विष्णुदास ! उस प्रकार हम लोगोंने भगवद्वाक्य सुने हैं—॥ १४९ ॥ १५० ॥ ब्रह्मा देवताओंको प्रसन्न करता हुआ दुर्गाओं और पातकोंको पानी-पानी धरके ब्रह्मा देता है । इस प्रकार मुद्राओंकी निरुक्ति मन्त्रशास्त्रमें भी की गयी है ॥ १५१ ॥ इसीलिए उसने देहोंमें सद्रूपका अपना घर बनाया है । स्वर्ग और अपवर्गका अधिकार भी इसी नरजातिको दिया गया है—औरोंको नहीं ॥ १५२ ॥ संसारमें भी यह बात प्रसिद्ध है कि जिस मनुष्यके पास राजकी-मुहरका कोई प्रमाणपत्र होता है । उसे लोग अधिकारी समझते हैं और उसको पूजा करते हैं ॥ १५३ ॥ उसी प्रकार इस रामतीव्रकी मुद्रासे अद्विज जीव शास्त्रभूमिका अधिकारी माना है । अन्य योनिके जीव अपना-अपना आत्मपद नहीं जान सकते ॥ १५४ ॥ नरको उपाधिमें कुल साठ पद हैं । उनको जाननेके लिए वही अच्छी तरह बतलाते हैं ॥ १५५ ॥ कारणसंज्ञक देहमें अविद्या, काम, कर्म, भोक्ता, भोग और सुषुप्तिके स्थान हैं ॥ १५६ ॥ हे द्विज ! तम, अज्ञान और अविद्या इन तीनों शब्दोंका एक ही मतलब है । इससे इसमें किसी गुणका ग्रहण किया जाना नहीं दीखता ॥ १५७ ॥ सातवें शरीररूपमें अविद्या, काम और कर्मको ग्रहण किया गया है । फिर भी कारण वश इन तीनोंको ग्रहण ही करना पड़ता है ॥ १५८ ॥ कारणका चाहे कोई कार्य हो या न हो, वही कारणरूपसे रहता ही है ।

अष्टप्रिंशत्पदानोह विद्यन्ते सूक्ष्मदेहके । दशोदियाणि पंचैव प्राणा बुद्धिर्मदस्त्विति ॥१६१॥
 सप्तदशात्मकं लिंगं प्रसिद्धं शास्त्रपरम्परातम् । पञ्चविषयग्रहणं पञ्च कर्मक्रियास्ततः ॥१६२॥
 पञ्च संप्राणव्यापाराः संकल्पो निश्चयस्त्वेवति । सप्तदश चैव धर्माः प्रसिद्धाः शास्त्रपरम्परातः ॥१६३॥
 स्वप्नाभिमानिनौ भोगी रजश्चेति चतुष्टयम् । देवानामिन्द्रियाणां च स्थानाभावेऽप्रवृत्तितः पदे ॥१६४॥
 स्थूलदेहे षोडशैव पदानि सम्मतानि हि । गणाः सप्तदश तेषामपानव्यानयोः पदे ॥१६५॥
 पायुत्यवस्थानयोर्ज्ञेये वाचोरसि निकेनने । प्राणस्य मनसश्चापि बुद्धिस्थाने पदं स्त्विति ॥१६६॥
 पदानि द्वादशे मासि भोक्तृभोगी नथा गुणः । अवस्था जागृतिश्चेति रुधितानि मनोपिभिः ॥१६७॥
 मुद्रामेतादृशीं प्राप्य वेद वेदान्माचित्पदम् । तस्य जन्म कृतार्थं स्यान्महती नष्टिरन्यथा ॥१६८॥
 मुद्रारूपं विविच्यैव यन्मात्रां सांकिनेति च । उक्तं तदधुना किञ्चित्संक्षेपेण निरुच्यते ॥१६९॥
 रामेति लोकरमणाद्रमन्ते योगिनोऽमले । परमानन्दपदे नित्यं तेन राम इतीर्यते ॥१७०॥
 रसेनैवाधुना सर्वे जीवा जीवन्ति नान्यथा । इमं रमयं लब्ध्वा भवत्यानन्दिनोऽखिलाः ॥१७१॥
 विद्यता येन विश्वं सर्वं चेतयने जगत् । न तं चेतयते कश्चित्स राम इति कीर्त्यते ॥१७२॥
 सत्ता येनाखिलं विश्वं स देवेति प्रतीयते । असत्सत्ताप्रदः साक्षाद्राम इत्यभिधीयते ॥१७३॥
 यथा प्रसिद्धं रामेति ब्रह्मणे सांभधानकम् । तथा लिंगं पदं व्याम निष्कलः परमात्मनः ॥१७४॥
 लीयन्ते यत्र भूतानि निर्गच्छन्ति यतः पुनः । तेन लिंगं पदं व्याम निष्कलः परमः शिवः ॥१७५॥
 इति शास्त्रविदा वाणी श्रमते तत्त्वदर्शनाम् । अतः सर्वाणि नामानि रूपाणि चोत्तरात्मानः ॥१७६॥
 सन्ति तेन शब्दभेदे रूपभेदेऽपि सर्वथा । तत्त्वतो नैव भेदोऽस्ति त्वर्थस्यैकस्य वस्तुनः ॥१७७॥

■ शरीरमें काम और मन ने दोनों सूक्ष्मरूपसे रहते हैं ॥ १५२ ॥ इस कारणान्नामों अविद्याकी प्रभावता है । वास्तवमें ■ उसमें काम रहता है और न कामना ही रहती है । यह भूतिका सिद्धान्त है ॥ १६० ॥ इस सूक्ष्म देहमें कुल साठ पद हैं । दस पद इन्द्रियका, पाँच पद प्राणका, बुद्धि, ■ और लिङ्गका सत्रह पद शास्त्रोंमें कहा गया है । पाँच पद विषय ग्रहण करनेवाली इन्द्रियोंका, पाँच कर्मक्रियाओंका और पाँच प्राणोंके व्यापारका । कुल सत्रह ही पद धर्मशास्त्रपरम्परातः हैं ॥ १६१-१६३ ॥ स्वप्न, अभिमान, भोग और रज ये चार देवताओं और इन्द्रियोंमें प्रवृत्ति नही कर पाते । इसलिए स्थूल शरीरमें सोलह ही पद माने गये हैं । किन्तु एण सत्रहका ही रहेगा । उनमेंसे दो पद अपान और व्याम वायुका है ॥ १६४ ॥ १६५ ॥ पायु और त्वनस्थानका दो पद, वाण और हृदयका दो पद, प्राण, मन तथा बुद्धिके एक एक पद ॥ १६६ ॥ ये बारह पद, भोक्ता और भोगका पद, इन्हे विद्वानोंने गुण, अवस्था तथा जागृति कहा है ॥ १६७ ॥ इस प्रकारकी मुद्रा प्राप्त करके प्राणों वेदका अविनाशी पद पा लेता है । इसका ध्यानसे जन्म कृतार्थ हो जाता है । अन्यथा तद् ही हो जाता है ॥ १६८ ॥ मुद्राके रहका विवेचना करके उसके नामोंसे संकेतित मुद्राओंकी भव संक्षेपरूपसे वतलाते हैं ॥ १६९ ॥ संसारके प्राणियोंको आनन्द देनेके कारण भगवानका 'राम' नाम पड़ा है । योगीगण इसी अमल परमानन्द पदमें आनन्द लेते हैं । इस लिए भी राम 'राम' कहे जाते हैं ॥ १७० ॥ इसी रमसे संसारके सब जीव जीते हैं, इस सरस पदको पाकर लोग आनन्दमय ही जाते ॥ १७१ ॥ जो जगत्में प्रविष्ट होकर सारे जगत्को चेतन्य कर देता ■ । जिस रामकी चेतन्य करनेवाला कोई भी नहीं है, वे ही राम 'राम' कहे जाते ॥ १७२ ॥ जिन भगवन्को सत्ता समस्त विश्वमें है । वे इसी कारण देवता कहलाते हैं । वे जगत् जगत्में भी अपनी सत्ता बनाये रखते हैं । अतएव लोग उन्हें राम कहते हैं ॥ १७३ ॥ जिस तरह उनका राम यह नाम प्रसिद्ध हुआ । उसी तरह परमात्माके लिङ्ग और रूप भी हैं ॥ १७४ ॥ लोग लिङ्गका अर्थ इस प्रकार करते हैं—जिसमें जगत्के सब प्राणी अन्तमें लीन होते और सृष्टिके आदिमें जिससे प्रादुर्भूत होते हैं, उसीकी लिङ्ग संज्ञा है । वह लिङ्ग, शून्य निष्कल और परम कल्याणकारी है ॥ १७५ ॥ इस प्रकार तत्त्वदर्शी शास्त्रोंकी बातें सुनायी पड़ती है । इससे यह

स त्रया स शिवश्चाथ स हरिः स सुरेश्वरः । सोऽयः परमेश्वरः ॥ स्वर्गादिति वेदवाक् ॥ १७८ ॥
 यस्येमे सन्निधानन्दाः स व्यासः सर्ववस्तुषु । तेनास्ति च त्रियं भाति वस्तुमात्रं प्रदृश्यते ॥ १७९ ॥
 आनन्दायैष च सर्वेषु गमत्रह्यात्मकीर्तनम् । आदिमध्यावसानेषु श्रूयते गुर्वनुग्रहात् ॥ १८० ॥
 ऐतरेयके आत्मा वा इदमेकः पुरा जनेः । आसीत्तेनैव लोकानां पालानां सृष्टिरिच्छया ॥ १८१ ॥
 कृतार्थः सर्वदेवानामन्तर्भुक्त्यर्थमीप्सितम् । ददायात्तनं चान्नं सृष्टं तेभ्यस्ततः परम् ॥ १८२ ॥
 विचार्य स्वायत्तामित्यर्थमीमाद्वारा प्रविष्टवान् । तत्रात्मानं ब्रह्म ततं दृष्ट्यैषोषेद्रतां किल ॥ १८३ ॥
 कोऽयमात्मानं नि संप्रश्ने येन पश्यति त्रिघनि । इत्यादिभिर्विनिर्णीतं तदेतद्ब्रह्मदयादिभिः ॥ १८४ ॥
 प्रज्ञानस्यास्य नामानि चोक्त्वा तन्मर्त्यता ममा । एष ब्रह्मेत्यादिशब्दैर्दर्शितं चाखिलं जगत् ॥ १८५ ॥
 प्रज्ञानेन च प्रज्ञाने प्रविष्टेनेत्यनेन हि । प्रज्ञानं ब्रह्म भुक्त्यान्ते त्रिकालेभ्यतिदर्शितम् ॥ १८६ ॥
 तद्राम सन्निधानन्दप्रदानान्तं न संशयः । नैतिरीयकशास्त्रायां श्रवणे लभण पुरा ॥ १८७ ॥
 सत्यं ज्ञानमनन्तं मङ्गीर्त्य वेदगुहादिकम् । यथासावज्जुने कामान्सर्वान्पुण्यपदेव हि ॥ १८८ ॥
 फलं ज्ञानस्य चोक्त्वाऽथ तस्माद्ब्रह्मात्मकं किल । क्रमोत्पत्तिर्हि गुप्तानां कोशेष्वेकवेदनम् ॥ १८९ ॥
 तत्फलं तदनात्मत्वं संप्रदर्शयन्निरस्वनः । पृच्छं ब्रह्मेति निर्णीय तदसत्सत्प्रतीतितः ॥ १९० ॥
 अमन्मद्भवति ह्यत्र संकीर्त्य च ततः परम् । कामयितुं तदेवेह स्वात्मानं जगदात्मना ॥ १९१ ॥
 कृत्वा तस्मिन् प्रविष्टैव सच्चासच्चाभ्रवन्किल । अपानप्राणयोऽवेष्टा यस्यास्ति त्वे प्रजायते ॥ १९२ ॥
 आत्मैव रम एवैष आनन्दयति चाखिलान् । मयहेतुस्तदेवंह वातादीनां प्रदर्शितम् ॥ १९३ ॥
 मानुषारभ्य ब्रह्मांता आनन्दा ये श्रुतोत्तराः । विदवस्ते परब्रह्मानन्दस्येति विनिश्चितम् ॥ १९४ ॥

निश्चय हुआ कि उस अन्तरात्माके ही नाम और रूपभेद रहते हुए भी वास्तवमें एक हैं । इसकी वास्तविक स्थितिमें कोई भी अन्तर नहीं आता ॥ १७६ ॥ १७७ ॥ वे ही ब्रह्मा, वे ही शिव, वे ही विष्णु और वे ही देवराज इन्द्र हैं । वे ही अक्षर ब्रह्म और वे ही वेदवाक्य तथा विश्वके सम्प्राद हैं ॥ १७८ ॥ वे ही सब वस्तुओंमें सन् चित् और आनन्द रूपसे व्याप्त रहते हैं । इसीके कारण सब चीजें अच्छी लगती हैं ॥ १७९ ॥ सब वेदोंमें रामरूपी ब्रह्मका कीर्तन विद्यमान है । गुणजनोंके अनुग्रहसे आदि, मध्य, अन्त समयमें रामहीका कीर्तन सुनायी पड़ता है ॥ १८० ॥ ऐतरेय उपनिषदमें लिखा है कि सर्वप्रथम यह आत्मा अकेला था । उसका यह इच्छा हुई कि हम ओकों और लोकपालोंकी सृष्टि करें ॥ १८१ ॥ ऐसा विचार होनेपर उसने सृष्टिके मनुष्य तथा देवता इन दोनोंकी ओर उनसे पहले अन्नकी सृष्टि की ॥ १८२ ॥ तदनन्तर उन्होंने अपने-अपने स्वामित्वका विचार किया और एक सामास्य देवताओंके राजा इन्द्र बने ॥ १८३ ॥ ओं कि इस संसारका देवता तथा संसारकी वस्तुएँ मूर्खता है, वह कौन ? इसका ज्ञान आदि नाम बतलाते हुए "यह ब्रह्म ही कुछ है" आदि वाक्योंसे उन्होंने इस प्रश्नको हल किया और बतलाया कि सन्, चित्, आनन्दसे लेकर घन पर्यन्त राम ही राम हैं । पूर्व समय तैत्तिरीयक शास्त्रमें ब्रह्मका लक्षण बतलाते हुए रामको सत्य, ज्ञान और अनन्तकी उपाधि दी ॥ १८४ ॥ इस संसारमें जो एक साथ भागोंको भागता और खाता-पीता है, वह ब्रह्म ही है ॥ १८५ ॥ इससे भी यह पाया गया कि समस्त सृष्टि ब्रह्ममयी है । सब प्राणियोंकी क्रमोत्पत्ति, पंचकोशका ज्ञान और आत्माकी विभिन्नता आदि दिखाकर बतलाया है कि सन् और असन्को प्रतीतियोंसे इन सबका मूल कारण ब्रह्म ही है ॥ १८६-१८७ ॥ ऐसा कहकर कहा कि सन् और असन् यह क्या वस्तु है ? इस प्रश्नको हल करते हुए कहते हैं कि जो जगत्में आकर और जगत्का आत्मा बनकर कामनाओंको चाहता हुआ उनमें लीन हो जाता है, वही सन् है । जिसके अस्तित्वसे प्राण और अपानकी चेष्टा जायमान होती है, उसे असन् कहते हैं ॥ १८८ ॥ १८९ ॥ यह आत्मा ही सारे संसारको आनन्दित करता है । वातादिका एकमात्र वही मयहेतु है ॥ १९० ॥ मनुष्यसे लेकर ब्रह्मपर्यन्त तथा इसके भी आगे जो आनन्दविन्दु है, वह एकमात्र परब्रह्मानन्दका ही नामास है ।

स यश्चायं सरोपाधावादिन्येयश्च वर्तते । स एक इति ज्ञानारं पापं पुण्यं कृताकृते ॥१९५॥
न संतापयतस्त्वेवं सम्यक् सर्वं प्रकीर्तितम् । यद्वृद्धमहिमाऽपेक्ष्यः तद्रामेति न संशयः ॥१९६॥
छांदोग्येऽपि स वेदेति ब्रह्मोपक्रम्य ब्रह्मणः । तेजोऽवस्थादिका सृष्टिः मन्मूला मा स्थितिर्हृतिः ॥१९७॥
जीवात्मना प्रवेशश्च व्याकृतिर्नामरूपयोः । श्वेतकेतोस्त्वंपदस्य तत्पदेनैक्यताऽपि च ॥

सदसंभावनायां च मद्भावे च बह्वक्तता ॥१९८॥

तज्ज्ञाने च गुणोक्तानं ज्ञानान्मोक्षोऽपुनर्भवः ।

सत्यब्रह्माभिमंघस्येत्येवं सर्वव्यापकीर्तनम् । तद्रामेति परं ब्रह्म सृष्टिस्थित्यंतहेतुकम् ॥१९९॥
अन्यस्यामपि शाखायां प्रश्नप्रत्युक्तिनः स्फुटम् । मनःप्राणेंद्रियाणां यन्मनः प्राणेंद्रियं हि तत् ॥२००॥
सर्वेषामनुभूतेः सद्भिदिताविदितान्तरम् । विषयो नेन्द्रियादीनामित्युक्त्वा तस्य शोधनम् २०१॥
सर्वदर्शी सर्ववैतृदेवानां जयकारणम् । तदज्ञानं च देवानां गुरोर्ज्ञानमुपास्तितम् ॥२०२॥
विद्यैव नान्यन्मानुष्यं प्राप्य जन्म न वेद चेत् । विनाष्टिर्मेहती तस्य चेति प्रोक्तं ततः परम् ॥२०३॥
अध्यात्माधिदेवमिदा विद्यामाधनमेव च । ब्रह्मजानेन पापानां हानिरुत्प्राप्तिरित्ययम् ॥२०४॥
ब्रह्मणो महिमा ध्रुत्वा कीर्तितो व्यासतः स्वयम् । तद्रामेति गुरोर्ज्ञेयं नान्यथा ग्रन्थकोटिभिः ॥२०५॥
मुंडकेऽपि परा विद्या विषयो ब्रह्म ब्रह्मणः । सृष्टिश्चानेकदृष्टीर्निरुक्ता तस्मिन् च सस्थिता ॥२०६॥
लघुश्चापि हि तत्रैव विश्वं सर्वं हि तन्मयम् । तारेण धनुषा वेद्यं लक्ष्यं आत्मार्पणं तथा ॥२०७॥

ऐसा निश्चित है । जो मनुष्यका उपाधिमान सूर्य दिव्यमान है । उस एकमात्र प्रभुको जान लेनेपर कर्म-
अकर्म तथा पाप-पुण्य कुछ शेष नहीं रह जाता ॥ १९४ ॥ १९५ ॥ तब किसी प्रकारका संताप नहीं भेलमा
पड़ता । ये सब गुण जिसमें हैं, वह कहा ही है । उसको महिमा देखकर निश्चित होता है कि वह
श्रीरामचन्द्रजी ही हैं । इसमें नगण नहीं है ॥ १९६ ॥ छांदोग्य उपनिषद्में भी कहा है कि प्रह्लासे ही
अग्नादिककी सृष्टि हुई है और उन्हींके आधारसे इस जगत्का पालन-पोषण होता है ॥ १९७ ॥ जीवात्मके
द्वारा ही आत्माका प्रवेश होता है, किन्तु देहके आधारपर उसके नाम और रूपमें अन्तर पड़ जाता है ।
श्वेतकेतुको उसके पिताने शिक्षा दी थी कि उस पद जानो ब्रह्मन्दके साथ एकता होना ही मुक्तिका सर्वप्रशस्त
साधन है । जब सत् पदका लाभ नहीं होता, तब एकता रहती है और सद्भावके विद्यमान रहनेपर
एकताके स्थानपर बहुत्व आ जाता है । उस सत् पदका होनेसे गुण द्वारा ज्ञान प्राप्त होता और
ज्ञान प्राप्त होनेपर पुनर्जन्मविहीन मोक्षपद प्राप्त होता है ॥ १९८ ॥ सरस्वर ब्रह्ममें जिसको स्थान लग
जाती है, उसका स्तन ही ब्रह्मकीर्तन कि वह राम ही परब्रह्म है । उन्हींके द्वारा इस जगत्की सृष्टि,
पालन और प्रलय होता है ॥ १९९ ॥ अन्य शाखाओंमें भी प्रश्न और उत्तरके रूपमें अनक प्रश्न और प्रत्युक्तियाँ
हुई हैं । उनसे भी यही सिद्ध होता है कि मन, प्राण और इन्द्रियोंका जो मन, प्राण और इन्द्रिय है । वह कहा
ही है । वह सत्यस्वरूप ब्रह्म ज्ञान और इन दोनोंसे परे है । यही सबका अनुभूत है । किन्तु वह
इन्द्रियोंके विषयगोचर नहीं होता अर्थात् अनुभवसे ही जाना जाता है । यह कहकर उसका संशोधन किया
गया है ॥ २०० ॥ २०१ ॥ वह ब्रह्म सब कुछ देखता है, सब जानता है, देवताओंके विजयका कारण
और वह देवताओंके लिए भी बजाउ रहता है । गुरुकी उपासना करनेसे ही ज्ञानकी प्राप्ति होती है ॥ २०२ ॥
विद्या ही मनुष्यका मनुष्यत्व है । इस संसारमें जन्म लेकर जिसने विद्या नहीं पायी तो यह एक
बहुत बड़ा विनाश है । ऐसा कहा गया है ॥ २०३ ॥ अग्निदेवकी भी भेदन करनेवाले ब्रह्मज्ञानसे विद्याका
साधन होता है, पापोंका नाश होता और अन्तमें उसे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है ॥ २०४ ॥ श्रुतिने स्वयं
विस्तारपूर्वक ब्रह्मकी महिमाका गान किया है । इसलिए जिज्ञासुको चाहिए कि वह गुरुसे रामका ज्ञान
प्राप्त करे । वैसे कराहीं अन्य पढ़नेसे भी उनका सच्चा ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता ॥ २०५ ॥ मुण्डक उपनिषद्में
कहा गया है कि ब्रह्म और ब्रह्मका विषय जाननेके लिए गुरु प्रधान है । उपनिषद्में अनेक दृष्टान्तोंसे
सृष्टिका वर्णन किया है ॥ २०६ ॥ वह कहती है कि यह सारी सृष्टि उसी ब्रह्ममें स्थित है और अन्तमें उसीमें

महिमातिशयस्तस्य तद्भासा भात्यशेषकम् । अगोचरं च सर्वेषां ध्यायमानोऽनुपश्यति ॥२०८॥
 वेद हि तं गुहायां योजयद्याग्रं विमिनत्ति सः । कृपया वृणुते ब्रह्म यं कञ्चन सुपाधकम् ॥२०९॥
 तेनैव लभ्यत साक्षान्मान्यथा यस्ततोऽपि हि । अथवा यं परेशं तं प्राप्तुमिच्छति गाधकः ॥२१०॥
 तेनैव हेतुना लभ्यो नान्यथा साधनान्तरैः । बलहीनादिभिरनन्द लभ्यते तस्तु लभ्यते ॥२११॥
 सन्यासयोगतः सत्त्वं शुद्धं येषां विचारतः । ते परान्तेन कालेन परिमुच्यन्ति नान्यथा ॥२१२॥
 यथा नद्यः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपतः । तथा विद्वान्कलादेवप्रतिष्ठायां च संश्रयम् ॥२१३॥
 प्रारब्धकर्मणां साक्षान्माध्वमेधपुनर्भयम् । यो वेद परमं स ब्रह्म भवतीति च ॥२१४॥
 सर्वं समुदितं यस्मात्तद्रामब्रह्माचक्षुष्यम् । पृथग्भेदः पूर्णमिति कण्डिकाया समासतः ॥२१५॥
 आदिमध्यावसानेषु पूर्णं ब्रह्मैव निश्चितम् । पूर्णं पराक्षररूपेण ज्ञातं तत्पदमज्ञितम् ॥२१६॥
 प्रत्यक्षं त्वंपदाख्येन स्थितं भूतमयेषु च । पूर्णान्निरूप्यज्ञातपूर्णं सोपाधिकमिदोच्यते ॥२१७॥
 तत्पूर्णं शास्त्रशास्त्रभ्यां स्वाविद्याज्ञानतः स्वयम् । स्वस्वर्द्धकारस्य लक्ष्यमादायोपनिषद्भिः ॥२१८॥
 निगन्तोपाधिकं सर्वं पूर्णमेवावशिष्यते । तद्राम परमं ब्रह्म योगिष्यं मनाननम् ॥२१९॥
 सवधमानवेधेन श्रुतिर्मान परान्तरम् । अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥२२०॥
 मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय । मयि सर्वमिदं प्रोक्तं सत्यं नणिगता इव ॥२२१॥
 इत्याह भगवान् साक्षाद्देऽपि तज्जलानिति । एवं सवासु श्रुतिषु स्मृत्यादिषु यदीरितम् ॥२२२॥

लय भी हो जायगी । क्योंकि समस्त विश्व उसीका स्वरूप है । जोसेको चाहिए कि जैसे धनुर्जारी एक कल्पे-चौड़े धनुषसे लक्ष्य वेधना सीखता है । उसी तरह वे धारण-बारे उस ब्रह्मके लिए आत्मसमर्पण करना सीखें ॥ २०७ ॥ उस ब्रह्मका वही महिमा है । उसीके तेजसे यह जगत् प्रकाशमान है । वह सबसे छुड़ा हुआ है, किन्तु ध्यान द्वारा दस्ता भी जा सकता है ॥ २०८ ॥ जो प्राणी हृदयस्थितता कथारामें बँडे हुए ब्रह्मको जान लेता है, वह अविद्याका काँडे गान्धका काँडे जालता है और फिर अन्तः साधकों के द्वे लेता है । वही प्राणी इन साधनोंसे उसे साक्षात् रूपसे प्राप्त कर सकता है । अन्तः साधना प्रकार वह नहीं प्राप्त हो सकता । इसके अतिरिक्त जिस किसी भी साधन द्वारा ईश्वरका प्राप्त करनेका अभिलाषा हो तो पूर्वोक्त साधनोंसे ही वह प्राप्त हो सकता है, अन्य साधनान नहीं । जो लाभ कि मिले है, व इस परको नहीं प्राप्त कर सकता । वह उन्हींको मिल सकता है, जिसका हृदय सन्यास एवं सद्बिचारोंसे शुद्ध हो चुका है । वे ही लोग सहायकको प्राप्त होकर कालकाल मुक्त होते हैं, और लाभ नहीं ॥ २०९-२१२ ॥ जिस तरह कि नदियाँ नाम और रूपके साथ अन्तम समुद्रमें जाकर मिल जता है । उसी प्रकार ज्ञाना मनुष्य ज्ञानरूपिणी कलाकी प्रतिष्ठामें स्नान हो जाता ॥ २१३ ॥ वह अपने प्राप्ति कर्मोंसे अपुनर्भव मुक्तिपदको प्राप्त होता है । जो उस परब्रह्मको जानता है, वह साक्षात् ब्रह्म हो जा जाता है ॥ २१४ ॥ जिससे सत्तार बना है, वह राम ही विद्वन्स्वरूप ब्रह्म है । कण्डिकाग्राम भी सन्तप्त रूपसे इस प्रकार कहा गया है कि वस, वह ही पूर्ण है । बाकी सब अपूर्ण हैं ॥ २१५ ॥ आदि, मध्य और अन्त सबमें वह ही पूर्ण है । यह निश्चित है । पराक्षररूपसे भी वही पूर्ण माना जा चुका है ॥ २१६ ॥ वह प्रत्यक्षरूपसे सब प्राणियोंमें रहता है । इस पूर्णके निरूपणसे साक्षात् कहा जाता है ॥ २१७ ॥ वह शास्त्र और नास्त्या इन दोनोंसे स्वयं अपनी अविलम्बमानताका नाथ करता हुआ उपनिषद्की बातोंके आधारपर सब काम करता है ॥ २१८ ॥ जब कि उसकी उपाधि नष्ट हो जाती तो वह पूर्णरूपसे नष्ट होकर अकेला रह जाता है । जो कुछ करने-घरनेवाले हैं, योगियोंके व्येय एकमात्र राम है ॥ २१९ ॥ समस्त कर्मोंका निषेध करते हुए धृतिवत् द्वारा भगवान्ने स्वयं यह कहा है कि मैं इस संसारका प्रभव (उत्पन्नकर्ता) और प्रलय (नाशक) हूँ ॥ २२० ॥ हे धनञ्जय ! मुझसे परे और कुछ है ही नहीं । यह समस्त विश्व मुझमें उसी तरह गिराया हुआ है, जैसे घागेमें मणियोंके दाने पिसीये रहते हैं ॥ २२१ ॥ ऐसा भगवान्ने वेदोंमें कहा है । उसी तरह श्रुतियों और स्मृतियोंमें भी कहा है कि परब्रह्म राम जो

तद्राम परमं ब्रह्म योगिगम्यमनामयम् । अनन्तनामरूपैश्च विश्वाकारं स्वमायया ॥२२३॥
 भूत्वा सर्वेषु भूतेषु व्यापकं भूतचालकम् । स्फुटमप्यस्फुटं तेषामज्ञानं स्वात्मनः सदा ॥२२४॥
 ब्रह्मज्ञाने परो हेतुः सर्वेऽपि बहिर्लोकताः । मानवाः सन्ति तेनेदं चिद्ब्रह्म न प्रकाशते ॥२२५॥
 परां चि खानि प्रभुणा सृष्टानि चेन्नते कराक् । वीक्षणं नांतरात्मानं प्रसिद्धं भुत्पुदार्गितम् ॥२२६॥
 सर्वोऽपि मनुजो दामो निचन्त्रोत्तु जन्मजाम् । किय स्वः कामदामोयं तेनां तद्विश्व काशते ॥२२७॥
 यदि भूयात्सदानंदस्वत्मा मां विदुः पुनश्चरः । तदा किन्नाम रोचेत् व्यासादन्यचरस्य हि ॥२२८॥
 आत्मानं चेद्विजानीयादयमन्मीति । पुरुषः । किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत् ॥२२९॥
 इत्याह च श्रुतिः सार्धं बृहदारण्यका उपम् । यस्यान्मरतिरेव स्यादान्मनुमथ मानवः ॥२३०॥
 आत्मन्येव च सन्तुष्टस्य कार्यं न विद्यते । इति सांभ्राज्जगन्नाथोऽर्जुनाय प्रोक्तवान्स्वयम् ॥२३१॥
 भोगासक्तः पुमानूर्ध्वमेकाकी रमते न च । एषामयमथद्वो यतनंऽर्थाय नित्यदा ॥२३२॥
 स लोकोऽपुत्रिण श्रुत्वा पुत्रोन्पादनत्परः । जायां सम्पादयत्यादावतियन्नेन मूढधीः ॥२३३॥
 पुत्रानुन्पाद्य कलशेन देवतांशमिमेव । कुटुम्बरक्षणार्थं च यागार्थं वा धनेच्छया ॥२३४॥
 अनिशं दृश्यते चित्ते न प्राप्तोति यथेप्सितम् । हास्योऽपि सत्क्रियावानथदासः प्रतिग्रहम् ॥२३५॥
 धनिनां यान्यमवतां ग्रामे कौलेयकं यथा । अस्पृश्यन्नमनानां तु का वानां स्वात्मचित्तने ॥२३६॥
 अनेकपुण्यपुर्जः मन्कुले जन्मा । साधुभिः । मज्जते सद्भिरुक्तेन मार्गेणति यदा तदा ॥२३७॥
 राममग्नदग्धेनार्थं मुदा स्वां पूरयत्युत । शृङ्ग्या न दत्तया साङ्गिनं स्वयाऽमूलया कश्चित् ॥२३८॥

योगियोंके ध्यानगम्य और अविच्छिन्न हैं । अपने अनन्तरूपसे अपनी माया द्वारा विश्वको आकारवाले बनकर सब प्राणियोंमें विद्यमान रहते हुए जगत्का संचालन करते हैं । जो लोग ज्ञानसे पराङ्मुख हैं, उनके आगे स्फुट या अस्फुट भावसे सामने रहता हुआ भी वह ईश्वर नहीं दीखता ॥ २२२-२२४ ॥ उस ब्रह्मके ज्ञानमें अपनी आत्मा ही सर्वप्रधान है । मानी जातीकी आत्मा केवल बाहरकी चीजोंको देखती है । यही कारण है कि उन्हें वह चिद्ब्रह्म दृष्टिगोचर नहीं होता ॥ २२२ ॥ एक प्रसिद्ध श्रुतिमें भगवान्ने कहा है कि प्राणियोंकी आत्मा मैंने बाहर बनायी है । इसलिए लोग अन्तरात्माको नहीं देख पाते ॥ २२६ ॥ संसारके सब मनुष्य अपने धन, स्त्री और पुत्रके दास बने रहते हैं । इसी कारण अन्तरात्मा उन्हें दीखती ही नहीं ॥ २२७ ॥ यदि उनके दास न होकर सदा आनन्दमग्न रहे, त्रिगुणसे परे हों और अपनी आत्माकी साक्षी बनाकर सब कार्य करें तो उन्हें जन्मजालकी बातें नहीं ही नहीं ॥ २२८ ॥ यदि लोग आत्माको जानकर यह समझ लें कि मैं ही वह परम पुण्य ब्रह्म हूँ तो फिर किसके लिए अपने शरीरकी सांसारिक ज्वालामें भूनें । यह बृहदारण्यकोपनिषद्में कहा गया है । इसके अतिरिक्त गीतामें स्वयं भगवान्ने अर्जुनसे कहा है कि जो प्राणी और किसी ओर अपनी चित्तवृत्ति न लगाकर आत्मासे प्रेम करता है, आत्मामें ही तृप्त रहता है और आत्मामें संतोष करता है । उसके लिए ससस्में कुछ भी करना शेष नहीं रह जाता अर्थात् उससे उसका सब काम पूर्ण हो जाता है ॥ २२९-२३१ ॥ भोगोंमें आसक्त प्राणी पहले एकाएक इस ओर नहीं झुकता । वह तो तीन प्रकारकी इच्छाओंके चक्करमें पड़कर सदा घन पानेकी चेष्टा करता रहता है ॥ २३२ ॥ वह मूर्ख किसीसे यदि स्वयं को अपुत्री सुनता है तो पुत्रके उत्पादनमें तत्पर हो जाता है और इसके लिए जितना चेष्टा कर सकता है, करता है ॥ २३३ ॥ देवताओं तथा तीर्थोंकी सेवासे यदि पुत्र उत्पन्न कर लेता है तो कुटुम्बके भरण-पोषण तथा यज्ञके लिए धनकी इच्छासे मन ही मन रात-दिन जला करता है, फिर अपनी कामना नहीं पूर्ण कर पाता । चाहे शान्त्रज पंडित तथा सत्तम क्रियावान् ही न हो, यदि वह धनका लोभी है तो धनियोंके घर कुत्तोंकी तरह दौड़ता रहता है । फिर यदि कोई व्युत्पन्नमति (समझदार) नहीं है तो उसके लिए आत्मचिन्तनकी चर्चा किस कामकी ॥ २३४-२३६ ॥ अनेक प्रकारके पुण्य एकत्रित होनेपर प्राणी अच्छे कुलमें जन्म और सज्जनोंकी संगति पाता है । फिर उनकी बातोंपर चलता हुआ कभी-कभी रामरूप ब्रह्मके दर्शनार्थं मुद्राओंकी भी पूर्ण करनेका उपाय करता है और

सं पूरकप्रकारं तु संक्षेपेणोच्यतेऽधुना । यथा लोकेऽऽजनं सम्यक् संपाद्य पूर्यतेऽक्षि च ॥२३९॥
निधिः प्रत्यक्षतस्तस्य दर्शनं याति नान्यथा । एवमत्रापि तत्तुल्यं साधनं यच्चतुष्टयम् ॥२४०॥
सम्पाद्य वेक्षते शुद्धं रामेति पदमव्ययम् । मायाव्यमितवर्णं यद् ब्रह्म तत्साधनं यथा ॥२४१॥
शुद्धाविद्यामयं चेति प्रोच्यते तत्त्वदर्शिनः । शास्त्रशास्त्रं च शास्त्रञ्च मिथ्याऽविद्यामयं त्रयम् ॥२४२॥

ज्ञानोत्तरमिति मतं तस्माच्चद्वर्णमीरितम् ।

चतुष्पादसाधनं तत्पूर्णमित्यभिधीयते । प्रत्येकं साधनं यच्च चतुःसाधनमुच्यते ॥२४३॥
विवेकवैराग्यशमादिषट्कं मुमुक्षुता चेति प्रसिद्धमेतत् ।
लक्ष्माणि प्रत्येकमुन्नतमानि प्रोक्तान्यमीषां स्मृतिभूमिकासु ॥२४४॥

साधनामां चतुष्कं च शेषणाभ्यागपूर्वकम् । संन्यासश्च गुरोः सेवाश्रयणादित्रयं ततः ॥२४५॥
पूर्वोत्तरसमाधि च पुञ्ज एकादशात्मकः । एतेषां तुभिषः साक्षारप्राणाद्या मङ्गतिर्मेया ॥२४६॥
मुमुक्षया तु न्यासादि पञ्चां साक्षादिहोच्यते । ममाधिरुत्तरश्चापि पृथगेवेति सम्मतः ॥२४७॥
पूर्वत्रयाणां न विना मुमुक्षा पटमिगदरः । एतैः साधनमर्धश्च पदानि पूरयत्यलम् ॥२४८॥
सर्वाणि तानि प्रोच्यन्ते श्रोतणामवबुद्धये । दर्शेन्द्रियाणि तेषां तु मोलकानि सर्वत्र तु ॥२४९॥
प्राणापानी मनोबुद्धी तस्माद्धर्माश्च तन्मिताः । बुद्धर्तानि यथाऽपेक्ष क्रिया तत्तत्रता मता ॥२५०॥
उभयेन्द्रियधर्माणामतोऽमीषामनाग्रहः । समन्विशतिसंख्यानि पदानीमानि साधनैः ॥२५१॥
योग्यानि लांछितुं सम्यक् पूरयत्येव सर्वथा । तदा यत्परमं ब्रह्म रामेति पदमव्ययम् ॥२५२॥
याति प्रत्यक्षतस्तेन कृतकृत्यो हि जायते । एतावता विधानेन रामतोभद्रमुद्रिके ॥२५३॥
रामश्च कथितश्चाथ सर्वतोभद्रमीर्यते । स्थानतो नामतश्चापि संशयस्यापनुत्तये ॥२५४॥

यदि उसके साथी सज्जन युक्तिसे उसे सही रास्तेपर ले जाते हैं तो वह अपनी साधना पूरी भी कर लेता है ॥२३७॥२३८॥ उसको पूर्ण करनेका प्रकार मैं यहाँ संक्षिप्त रूपसे कहता हूँ । जैसे संसारमें देखा जाता है कि जीवोंमें एक प्रकारका अंजन लगाकर लोग छिपे हुए खजानोंको भी प्रत्यक्ष देख लेते हैं । उसी प्रकार पूर्वजों द्वारा बताये हुए चारों साधनोंका सम्पादन करके प्राणी "राम" इस शुद्ध और नाशरहित पदको प्राप्त कर लेता है । जिस तरह कि मामाजी और असित वर्णोंवाला ब्रह्म सद्ब्रह्मकी प्राप्तिका साधन है । उसी तरह तत्त्वदर्शियोंने शुद्ध और विद्यमान साधन बतलाये हैं । शास्त्र, शास्त्र और वे तीनों मिथ्या और अविद्यामय ॥२३९-२४२॥ संसारमें जितने भी सिद्धान्त हैं, सब प्राणीको जानके पास पहुँचाते हैं । जितने चतुष्पाद साधन हैं, वे पूर्ण कहे जाते हैं और प्रायः सब साधन चतुष्पाद ही हुआ करते ॥२४३॥ स्मृतिकी भूमिकामें विवेक, वैराग्य, शम, दम आदि छः धर्म और मोक्षकी इच्छाका उत्पन्न होना ये साधकोंके उत्तम चिह्न बतलाये गये हैं ॥२४४॥ उन साधनोंमें सबसे पहला साधन इच्छाओंका त्याग करना है । फिर संन्यास, गुरुकी सेवा, श्रवण, मजन, कीर्तन, पूर्वोत्तर समाधि तथा एकादश प्रकारके पुञ्ज ही साधन हैं । इन सबके द्वारा प्राण आदिकी संगति होती है ॥२४५॥२४६॥ मोक्ष पानेके लिए यहाँपर छः प्रकारके न्यास आदि काममें लाने चाहिये । किन्तु उत्तर समाधि इससे अलग ही रहेगी, वह सब भोग मान चुके हैं ॥२४७॥ पूर्वकी तीन समाधियोंके बिना मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकता । इन साधनममूहोंसे सब पद सरल रीतिसँ पूर्ण हो जाते हैं ॥२४८॥ सुननेवालोंकी बोध करानेकी इच्छासे उनको यहाँ बतला रहे हैं । उनके विचारमें कुल बस इन्द्रियाँ हैं और नो मोलक है ॥२४९॥ अतएव प्राण, अपान, मन, बुद्धि, इन इन्द्रियोंसे इतने ही प्रकार-धर्म उत्पन्न हुए । बुद्धिसे ज्ञानकी उत्पत्ति हुई । प्राणेन्द्रिय अपने इच्छानुसार जो चाहें वह करे, उसके लिए कोई नियम नहीं है ॥२५०॥ ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय इन दोनों प्रकारको इन्द्रियोंके धर्मसे और प्राणके धर्मसे कोई सम्बन्ध नहीं है । इस तरह इन सत्ताइस प्रकारके पदोंको साधन करके पूर्ण करना चाहिए । ऐसा करनेपर जो अव्यय-परब्रह्म रामका पद है, वह प्रत्यक्ष देखने लगता है । जिससे प्राणी कृतकृत्य हो

कल्याणं सर्वतः पुंसां चित्तनाद्यस्य ब्रह्मणः । तद्गद्गत्वाचकं मुख्यं मंगलानां च मंगलम् ॥२५५॥
 यत्र यद्व्यज्यते साक्षात्तन्मात्मा तदुदीर्यते । अधिदैवं तथाऽध्यात्मं सर्वतोभद्रमिष्यते ॥२५६॥
 विविच्यतेऽत्रोभयं च प्रोच्यते वस्तुव्यक्तये । अधिदैवे तु यद्गद्गं तदादायुष्यतेऽमलम् ॥२५७॥
 अङ्गद्वयब्रह्मलोकस्तु सर्वतोभद्रमुच्यते । तेनैव भद्रं सर्वेषां लोकानामिति हि स्थितिः ॥२५८॥
 तत्र स्वर्णमयं वेङ्गं निर्मितं प्रभुणा स्वयम् । तन्वक्ष्यमिति विज्ञेयं यत्र कार्यचित्तिः स्वयम् ॥२५९॥
 न्यासेन सर्वसत्त्वानां गतानां सर्वयोगिनाम् । प्राणोपासननिष्ठानां ब्रह्मणा चिन्महाशक्ते ॥२६०॥
 ब्रह्मणा सह ते सर्वे इति स्मृतिरथागमः । क्रममुक्तेस्त्वयं पन्थाः श्रुतिस्मृतिमतोऽमलः ॥२६१॥
 आध्यात्मे हृदये यत्तत्सर्वतोभद्रमीर्यते । तेन भद्रेण कल्याणं सर्वव्ययवेत्तिवद् ॥२६२॥
 तत्र यन्पुण्डरीकं तद्ब्रह्मणः स्थानमुच्यते । श्रुतावेवं प्रसिद्धिर्हि दहगंयुजवेदमतः ॥२६३॥
 साधनसंपन्नंयुक्तास्तस्मिन्ने तु समाहिताः । गुरुपदिष्टया युक्त्या तेषां ब्रह्म प्रकाशते ॥२६४॥
 परमः पुरुषो भूर्मा न एवाध्वन्यथोपरि । इत्यादिश्रुत्या यन्प्रोक्तं तन्न पागेऽस्मिन्धपि ॥२६५॥
 आह चाहमेवाधस्तादिन्यादिममन्यामिनाम् । गूढानामपि सर्वेषां देहेऽहमिति दृश्यते ॥२६६॥
 माभूत्संभ्रम इत्यर्थमात्मैवेति पुनर्वचः । एकान्तरूपयोस्तयोर्भेदशङ्कानिवृत्तये ॥२६७॥
 सर्वाद्युपनिषत्सर्वेयं ब्रह्म द्वैतं सुनिश्चितम् । त्रैलोक्यममृतमित्याह चाथर्वणी श्रुतिः ॥२६८॥
 तत्त्वमेव त्वमेवैतदिति कैवल्यगं वचः । तत्त्वमसीति छांदोग्ये ब्रह्मात्मैक्यं न भेदधीः ॥२६९॥
 एकत्वं पदयोः स्पष्टं श्रुत्या यत्प्रतिपादितम् । साध्याभुक्तं कारणं तद्बोधस्तेषां न एव हि ॥२७०॥

जाता है । इतने विधानोंसे रामलीलाकी मुद्रायें बनायी और रामस्वरूप भी बनलाया । ■ सन्देह नष्ट करनेके लिए प्रसंगवश सर्वतोभद्रका स्वरूप बतला रहे हैं ॥ २५१-२५४ ॥ जिस ब्रह्मका स्मरण करनेसे प्राणियोंका सब प्रकार कल्याण होता है, उसे लोग भद्र कहते हैं । ■ एक यन्त्र है और मङ्गलका भी मङ्गलकारी है ॥ २५५ ॥ जहाँ कि वह ब्रह्मसाक्षान् रहसे अधिदैव या अध्यात्म रीतिसे व्यज्यमान होता है, उसीको लोग सर्वतोभद्र करते हैं ॥ २५६ ॥ अब गद्ग इसकी वास्तविकताको दिखानेके लिए तन दोनों प्रकारोंको दिखलाते हैं । अधिदैवके अन्तर्गत जो भद्र रहता है, उस विमल भद्रको पहले बतलाते हैं ॥ २५७ ॥ इस भद्रको हरण करनेवाला लोक ब्रह्मलोक कहलाता है और उसीकी सर्वतोभद्र संज्ञा भी है । क्योंकि उसी लोकसे सबका कल्याण होता है और उसीके सहारे सब लोकोंका स्थिति बनी हुई है ॥ २५८ ॥ वहाँपर प्रभुने स्वयं एक सुवर्णमय घर बनाया है । उसे पद्म या कार्यकी चेतना, जो चाहो सो कह लो ॥ २५९ ॥ न्यासके द्वारा सब प्राणियों, सब योगियों तथा प्राणकी उपासनामें लगे हुए प्राणियोंको वह नित्य पद दीक्षने लगता है ॥ २६० ॥ इससे ब्रह्म भी भासमान होने लगता है । यह स्मृतिका मत है और वेद भी इसी मतको स्वीकार करते हैं । वास्तवमें तो यह पवित्र मार्ग श्रुति और स्मृति इन दोनोंको मान्य है ॥ २६१ ॥ अध्यात्मका जो हृदय है, उसे लोग सर्वतोभद्र कहते हैं । उस भद्रसे ■ अवयवोंका कल्याण होता ■ ॥ २६२ ॥ वहाँपर जो कमल है, वह ब्रह्मका स्थान है । श्रुतियोंमें भी यह बात प्रसिद्ध है कि साधनरूपा सम्पत्तिके सम्पत्तिशाली जो लोग वहाँ रहते हैं, उन लोगोंको गुरुजनोंकी उपदिष्ट मुक्ति द्वारा ब्रह्म प्रकाशमान दीखने लगता है ॥ २६३ ॥ २६४ ॥ नीचे, ऊपर तथा मध्य इन तीनों स्थानोंमें वह पुरुष विद्यमान रहता है । इन श्रुतियोंमें जो कुछ कहा गया है, वह परोक्षमें नहीं प्रत्यक्ष ही जानना चाहिये ॥ २६५ ॥ प्रभुने स्वयं कहा है कि सूचं आदिके साथ ■ संसारमें व्याप्त रहता हूँ और संसारी मनुष्योंके शरीरमें भी रहता हूँ ॥ २६६ ॥ किसीको भ्रम न हो इस विचारसे "आत्मा एव" आदि वाक्योंको फिर-फिर सुहराया गया है । "एकात्मास्त्री उस आत्माके भेदकी शंकाकी निवृत्त करनेके लिए सब उपनिषदोंमें ■ ब्रह्मको अद्वैत बतलाया गया है । "ब्रह्म एव इदं अमृतं" आदि अथर्व वेदमें कहा गया है ॥ २६७ ॥ २६८ ॥ 'तत्त्वमेव' तथा 'त्वमेवैतत्' इन श्रुतियोंसे तथा 'तत्त्वमसि' इस छान्दोग्यके महावाक्यसे ब्रह्मके एकत्वका प्रति-

यच्च किञ्चिज्जगन्मयं दृश्यते अयमेऽपि स । अतर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायण स्थितः ॥२७१॥
इदं सर्वं यद्यभात्मैकमेवाद्वितीयकम् । सर्वं स्वस्तिवदमित्यादिश्रुतयो यद्ब्रुवन्ति हि ॥२७२॥
सर्वभूतेषु चान्मानं सर्वभूतानि चान्मनि । मपश्यन्नात्मयातीति परमार्थं मनोर्वचः ॥२७३॥
एतादृशेन बंधेन भूत्वा त्रयान्मरूपकाः । कृतकृत्याः स्वयं सर्वदा मच्छिद्यगान्प्राहयन्ति च ॥२७४॥
अत्रोक्तं श्रुत्यभिप्रायं जानन्ति विद्वदोऽनिलान् । किं बहुक्तं न चोद्दिष्टं संक्षेपेणोपसंहृतम् ॥२७५॥

नारायणाच्युत जनार्दन वामुदेव गोविन्द माधव मुकुन्द रमेश विष्णो ।

संकर्षणाज नरसिंह परावरात्मनामोहनाथ शिव वामन पाहि शिष्यन् ॥ २७६॥

येनेदं विकृतं विश्वं विशता येन चेतनम् । यत्स्थितं यत्प्रतिष्ठं च तस्मै सर्वात्मने नमः ॥२७७॥
इदानीं रामतोभद्रस्याष्टोत्तरशतस्य च । नानाभेदाः प्रकल्प्यन्ते लघुमुद्रान्वितस्य हि ॥२७८॥
पूर्वांकेऽष्टाविंशतीनां रेखावृद्धिं प्रकल्पयेत् । परिधीं द्वात्रिंशकौ तत्पक्षयोर्लिंगानि योजयेत् ॥२७९॥
प्रथमे तिथिमितोशाश्रतुर्विंशत्पदात्मकाः । वाप्यः षोडशसंख्यानास्त्रयोदशपदान्विताः ॥२८०॥
भद्रं तत्त्वमितं चाथ द्वितीयेऽर्कमिताः शिवाः । वाप्यस्त्रयोदशमिता षष्टादशपदान्विताः ॥२८१॥
भद्रमर्कपदं शेषं यथापूर्वं प्रकल्पयेत् । एतद्रामलिङ्गतोभद्रशतं ॥ यस्मै नमः ॥२८२॥
अथवाऽऽद्ये रसमुद्रा रसेमा वापिकाश्च षट् । त्रयोदश पदाः कार्या भद्रं चन्द्रकलान्मकम् ॥२८३॥
द्वितीये पंच मुद्राश्च लिंगषट्कं च वापिकाः । तन्मिताश्च भद्रकर्मपदमष्टौऽष्टमावधि ॥२८४॥
तुर्पंचतुर्यनेत्र चन्द्रसंख्याश्च मुद्रिकाः । पणेत्रनेत्रनयननेत्रेन्दुशंकरास्तथा ॥२८५॥
भद्रं षट्पदमर्कमिष्टि षट्पदं विंशपादकम् । षोडशांघ्रियुग्मपादं क्रमाज्ज्ञेयं विचक्षणैः ॥२८६॥

पादन किया गया है । वही मुक्तिका कारण है और उसका बीच होनेसे तो प्राणी साक्षात् ब्रह्म ही हो जाता ॥ २८६ ॥ २७० ॥ ॥ जगत्में बाहर-भीतर जो कुछ देखा और सुना जाता है, उन सबमें व्याप्त होकर नारायण स्थित है ॥ २७१ ॥ इस जगत्में जो कुछ है, उसमें एकमात्र वही अद्वितीय आत्मा है । "सर्वं स्वस्तिवदं ब्रह्म" आदि शान्त्योक्ते प्रतीति भी यही बात कहती है ॥ २७२ ॥ जो प्राणी संसारणी सब वस्तुओंमें अपनेको देखता ॥ और सब प्राणियोंका प्रतिबिम्ब अपनेमें देखता है । उस आत्मज्ञानके लिये यह कोई साधारण नहीं है । यह भनु भगवान्का कथन है ॥ २७३ ॥ इस प्रकारके जानसे लोग ब्रह्मात्मरूप होकर अपनेको कृतकृत्य मानते हुए स्वयं तो तरते ही हैं, साथ ही अपने अच्छे शिष्योंको भी यह उपदेशामृत पिलाकर भवसागरसे पार उतार देते हैं ॥ २७४ ॥ यहाँपर बतलायो हुई श्रुतियोंके अभिप्रायोंको विद्वान् लोग अच्छी तरह जानते हैं । अधिक कहना-सुनना व्यर्थ है । संक्षेपमें इस उद्देश्यका लपसंहार कर दिया गया है ॥२७५॥ हे नारायण, अच्युत, जनार्दन, वामुदेव, गोविन्द, माधव, मुकुन्द, रमेश, विष्णो, संकर्षण (बलराम), कृष्णके बड़े भ्राता, नरसिंह, परावरात्मन्, राम, गरुडगामिन्, शिव, वामन ! आप शिष्यकी रक्षा कीजिए ॥ २७६ ॥ संमारी जीवोंमें प्रविष्ट होकर जिससे इस विश्वको चेतन किया है, जिसमें जीव स्थित हैं, जिसमें प्रतिष्ठित हैं, ऐसे सर्वात्मा रामको प्रणाम है ॥ २७७ ॥ लघुमुद्राके साथ-साथ एक सौ आठ रामतोभद्रोंके अनेक भेद बतलाते हैं ॥ २७८ ॥ पूर्वोक्त २८ रेखाओंकी वृद्धि करे । उसमें दो परिधि त्रिकोण बनावे । फिर उनमें लिंगोंकी योजना करे ॥ २७९ ॥ प्रथम पंक्तिमें १५ ईश और सोलह पादोंका २५ भद्र बनावे ॥ २८० ॥ फिर दूसरी पंक्तिमें १२ शिव और १८ पादोंकी ३० वापी बनानी चाहिए । पहलेकी तरह १२ पादोंका भद्र बनावे । यह रामलिङ्गतोभद्र १०८ संख्याका है ॥ २८१ ॥ २८२ ॥ अथवा छः मुद्रा, छः ईश और १३ पादसे छः वापिकायें बनावे और १६ पादका भद्र बनावे ॥ २८३ ॥ दूसरी पंक्तिमें पांच मुद्रा बनावे और लिंग तथा छः ही वापी बनावे । आगे आठवीं पंक्तिसे लेकर चार, पाँच, दो, एक, इन संख्याओंकी मुद्रायें बनावे । फिर छः, दो, दो, दो, दो, एक, क्रमसे शिष्यकी रचना करे । इनमें छः पादका, बारह पादका, दो पादका, बीस पादका, सोलह पादका, चार पादका क्रमशः प्रत्येक पंक्तिमें भद्र जन्मने । ऐसा विद्वानोंको जानना चाहिए ॥२८४-२८६॥

अथवाऽष्टपदे मुद्रां विधाय तत्स्थल्लिङ्गकम् । रचयेत्स्थानके तुर्ये भद्रं विश्वदात्मकम् ॥२८७॥
 सर्वत्र सममुद्रासु मध्ये च परिचिद्वयम् । मुद्रा सीमालिङ्गगता वापरद्वा तुर्यकोऽष्टा ॥२८८॥
 लिङ्गस्कन्धगता कोष्ठा वर्णैरिष्टैः प्रकल्पयेत् । बह्निशापोर्जेष्यमानि पदान्पुर्व्वरेताऽथ तु ॥२८९॥
 भद्रभृङ्गलयोग्यानि तदर्थं विनियोजयेत् । अथवाऽऽद्ये दश मुद्रा सीमापरिधयस्तथा ॥२९०॥
 भद्रमर्कपदं मध्ये परिधी द्वे प्रकल्पयेत् । एवमग्रे परिधयस्तृतीयेऽष्टैव मुद्रिकाः ॥२९१॥
 षतुष्पादात्मकं भद्रं पञ्च मुद्राश्च पञ्चमे । अर्कपादात्मकं भद्रं नात्र द्वौ परिधी स्मृतौ ॥२९२॥
 सप्तमेऽग्रिमिता मुद्रा भद्रं तुर्यपदात्मकम् । द्वये त्रयोदशेशाश्च वाप्यश्वापि चतुर्दश ॥२९३॥
 भद्रं तच्चमितं तुर्ये नवेषा दश वापिकाः । भद्रं तच्चमिनं षष्ठे पंचेषा वापिकाश्च षट् ॥२९४॥
 भद्रं तच्चमितं शेषं यथापूर्वं प्रकल्पयेत् । अथवाऽऽद्ये पञ्चदश शिवा ज्ञेयेऽष्ट मुद्रिकाः ॥२९५॥
 शिवद्वयं त्रिपट्पादं त्रिपट्पादा च भद्रिकाः । षट्पुर्ये पंच मुद्राः स्युर्वाणं सिंधुमितास्तथा ॥२९६॥
 द्वे मुद्रिके मुद्रा गिरी मुद्रा गजेस्तथा । शिवद्वयं वापिके च सप्तमान्न भवेद्विदम् ॥२९७॥
 भद्रमानं तत्राष्टौ षट्पादशरविनु च । विश्वपादशभिधापि क्रमेणैव प्रकल्पयेत् ॥२९८॥
 यद्वा द्वौ मुद्रिकामेका मध्यलिङ्ग प्रकल्पयेत् । भद्रमिदुकुलं कृत्वा तल्लिङ्गं रचयेद्भजे ॥२९९॥
 भद्रे गजे तच्चकोष्ठ शेषं सर्वं तु पूर्व्वरेत् । अथवाऽष्टत्रिपट्किपु पंचाङ्गप्रिमिताऽष्टिगान् ॥३००॥
 मुद्रामन्ये त्रिषोडशः शेषादिपरिधिरथा । भद्रयन्त्रा न प्रथमा षट्पदा च द्वयापिका ॥३०१॥
 द्वितीया विश्वकोष्ठा स्वाद् द्वे द्वे वाप्या च लिङ्गके । रचयेन्पार्श्वयोः सप्तयक् शेषं सर्वं पुरोदिनम् ॥३०२॥
 अथोक्ताः प्रथमतः सप्त उद्वचतुर्यकाः । बह्निचन्द्रचन्द्रमुद्राः सीमापरिधयस्तथा ॥३०३॥
 षट्सु स्थानेषु च शिवास्तुर्गमिताः स्मृताः । विशेषस्तु लिङ्गद्वयं त्रिपट् त्रिपट् पदम् ॥३०४॥

अथवा आठ पादकी मुद्रा बनाकर बीच स्थान लिङ्गको रचना कर और बांस पादका भद्र बनावे ॥ २८७ ॥
 जितनी समसंख्याक मुद्राएँ हों, उन सबके मध्यमें दो परिधि बनाय । लिङ्गकी सीमाया मुद्रा आठ चार पादकी
 बायीं बनावे ॥ २८८ ॥ लिङ्गके कन्धके कोष्ठकीकी अपने दन्तानुसार तिसरा रचने का ३ । बायीं और बापीके
 बीचवाले बंध कोष्ठकीकी, यदि वे भद्र तथा लिङ्गकी रचनाके योग्य हों तो उन्हें उसी काममें ले आये । अथवा
 आदिकी दस मुद्राओं और सीमाकी परिधियोंकी आदिमें योजित कर दे ॥ २८९ ॥ २९० ॥ पांचवें चारह पादका
 भद्र बनावे और दो परिधियोंकी रचना करे । इसा तरह तीन पंक्तिमें केवल आठ मुद्राओंकी योजना करे
 ॥ २९१ ॥ चार पादका भद्र बनावे और पांचवें स्थानमें मुद्राएँ बनाकर चारह पादका भद्र बनावे । विशेषता
 केवल इतनी होगी कि इनमें दो परिधियाँ नहीं रहेंगी और चार पादका भद्र बनेगा । इसमें तेरह ईश रहेंगे और
 चौरह वापियाँ बनेंगी ॥ २९२ ॥ २९३ ॥ चौथेमें २५ पादका भद्र बनेगा, नौ ईश रहेंगे, दस बापी बनेंगी और २५
 भद्र बनेंगे । छठमें पाँच ईश, छः बापा, पचवीस भद्र, बाकी सब पूर्व्वरेत् रहेंगे । अथवा आदिमें पञ्चदश शिव अष्टादश
 मुद्रायें, नौ पादके दो शिव और नौ ही पादोंकी मुद्राएँ बनावे । चौथेमें छः या पाँच मुद्रायें, पाँचवेंमें सात मुद्रायें,
 छठेमें दो मुद्रायें, सातवेंमें एक मुद्रा, आठवेंमें एक मुद्रा, दो शिव और दो बापी रहेंगी । यह क्रम आदिसे लेकर
 सातवें स्थान तक चलेगा ॥ २९४-२९७ ॥ इनमें भद्रका मान पंचवीस, छः, सोलह, चारह, छः, बांस, सोलह, दस
 प्रकार है । बनानेवालेको चाहिए कि क्रमशः इनकी योजना करे ॥ २९८ ॥ अथवा दो मुद्राएँ बनाकर एकको लिङ्ग-
 के मध्यमें रखे और सोलह काठकीका भद्र बनाकर सातवेंसे लिङ्गकी रचना करे ॥ २९९ ॥ सातवेंमें पचवीस
 कोष्ठकीका भद्र बनावे । बाकी सब पूर्व्वरेत् रखे । अथवा आदिकी तीन पंक्तियोंमें पाँच, सात, तीन, सप्तगणों-
 का शिव बनावे ॥ ३०० ॥ मुद्राके मध्यमें मर्षाद और परिधिकी रचना करे । भद्रकी संख्या पहले जितनी ही
 रहेंगी और छः, दो या चारह पाद उनमें रहेंगे ॥ ३०१ ॥ दूसरी पंक्ति बांस कोष्ठकीकी रहेंगी और लिङ्गके बगलमें
 दो बापियोंकी रचना करे । बाकी ॥ पूर्व्वरेत् रहेंगा ॥ ३०२ ॥ अथवा आदिसे लेकर छठों पंक्ति तथा सात, छः,

वाप्योऽपि तन्मिताः कार्या भद्राणि रक्षयमाणनः । तच्चक्रोष्ठं कलाक्रोष्ठं तुर्यक्रोष्ठं च षट्पदम् ॥३०५॥
 षट्पदं च कलाक्रोष्ठं शेषं सर्वं पुनोदितम् । अथवा प्रथमाद्यावन्पञ्चमस्थानकावधि ॥३०६॥
 षट् षट् पञ्च तुर्यबहिमुद्राय मध्यशङ्करान् । तुर्यनेत्राक्षिनेत्राक्षिमर्यादापरिधीस्तथा ॥३०७॥
 विशेषस्तु लिङ्गद्वयं बाणैः षट् त्रिषट् पदम् । भद्रसंख्येन्दुकलेन्दुकलाकर्तुरसाम्भिकाम् ॥३०८॥
 प्रकल्प्यारचयेद्बुद्ध्या संपं सर्वं पुनोदितम् । एवं नानाविधा भद्रा बहवः सन्ति भो द्विज ॥३०९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदरामन्दरामायणे बाल्मीकीये मनोहरकाण्डे श्रीरामदासविष्णुदास-
 सम्पादे सधुरामतोभद्रविस्तारो नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

(रामलिङ्गतोभद्र तथा अनेक लिङ्गतोभद्रोका रचनाप्रकार)

श्रीरामदास उवाच

पूर्वोक्तश्रेष्ठमुदीर्य रामतोभद्रविस्तरान् । वदान्यहं तवाग्रं हि विष्णुदास शृणुष्व तान् ॥ १ ॥
 तिर्यगूर्ध्वरक्तरेशा एकपष्टिमिताः शुभाः । अन्तर्त्तकृष्णरक्तशुक्लधीताः परिधयः क्रमात् ॥ २ ॥
 द्वादशान्ते पीतकृष्णरक्तशुक्लाः पुनः स्मृताः । पञ्चमः पीतवर्णोऽपि सर्वतोभद्रमालिखेत् ॥ ३ ॥
 बहिः पंक्ती द्वादशान्ते सीमापरिधयः स्मृताः । पीता वा लोहिताः कार्या मध्ये द्वा परिधी स्मृता ॥ ४ ॥
 ततो मध्यगंहयोर्द्वे मुद्रिके वेदवर्णके । चतुःपार्श्वेषु चत्वारि नामानि पूर्ववलिखेत् ॥ ५ ॥
 कोणगेहेषु कोणेन्दुस्त्रिपदः शुक्लवर्णकः । एकादशपदा कृष्णा शृङ्खला पीतवर्णका ॥ ६ ॥
 दशपदा शृङ्खलाज्या चतुर्थी हरिता स्मृता । एकोनविंशत्पदजा भद्रं रक्तं नवात्मकम् ॥ ७ ॥

चार, पाँच, तीन, दो अथवा एक मुद्रा बनावे और सीमाका परिधियोंकी ओर छहों स्थानोंमें चार-
 चार शिखोंकी रचना करे । विशेषता केवल इतना रहेगा कि पाँच [] नीली पादोंके लिङ्ग बनेंगे । बाँधियाँ
 पूर्वोक्त संख्याके अनुसार ही रहेंगी, किन्तु भद्रकी संख्या रक्षयमाण संख्याके अनुसार रहेंगी । कुछ भद्र पञ्चवीस
 कोष्ठकींके, कुछ सोलह कोष्ठकींके, कुछ चार काष्ठकींके, कुछ छः काष्ठकींके, फिर छः कोष्ठकीं, कुछ सोलह
 कोष्ठकींके, इस प्रकार भद्र बनेंगे । बाँका सब पहलेके समान [] होंगे । अथवा पहली पंक्तिसे पाँचवीं पंक्ति
 पर्यन्त [] ३०३-३०६ ॥ छः, पाँच, चार, तीन मुद्राएँ बनावे । बाँचमें चार, दो, दो, दो, दो शिखोंकी रचना
 करे और मर्यादा [] परिधियोंकी ठोकसे बनाकर रखे ॥ ३०७ ॥ विशेषता इतना [] कि पाँच, तीन, छः,
 तीन, छः पादका लिङ्ग बनावे । इसमें भद्रकी संख्या सोलह, सोलह तथा छः रहेंगी । इस तरह कल्पना
 करके अपनी बुद्धिसे रचना करे । बाँका सब पूर्ववत् रहेंगे । इस प्रकार हे द्विज ! इस भद्रके बहुतसे भेद हैं,
 ॥ ३०८ ॥ ३०९ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदरामन्दरामायणे बाल्मीकीये पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥
 'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहित मनोहरकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीरामदास कहते हैं—हे विष्णुदास ! अब मैं तुम्हारे आगे पूर्वोक्त रामतोभद्रका विस्तार बतलाता [] ।
 उसे तुम सावधान मनसे सुनो ॥ १ ॥ भद्र बननेवालोंको चाहिए कि वेदों और सोधी ६१ रेखाएँ खींचे । अन्तमें
 काली, लाल, सफेद तथा पीली परिधियाँ बनावे ॥ २ ॥ बाहरकी पंक्तिके आगे पीत, कृष्ण, रक्त तथा शुक्ल
 रङ्गकी सीमापरिधियाँ रहेंगी । चाहे जो पाँचवाँ स्थान पाले रङ्गसे भी बना सकता है । बाहरके बाद बाहरकी
 पंक्तिमें पीले या लाल रङ्गकी परिधि रहेगी । बीचमें और दो परिधियाँ बनेंगी ॥ ३ ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर
 मध्यके दोनों धरोंमें चार रङ्गोंकी दो मुद्राएँ बनेंगी । इसके अनन्तर चारों वगल पूर्ववत् चार नाम लिखने
 चाहिए ॥ ५ ॥ कोणवाले कोष्ठकमें तीन [] और शुक्लवर्णका इन्दु बनावे । श्वारह पादको शृङ्खला बनावे
 और उसे कृष्ण वर्णकी रखे । [] पादकी एक दूसरी शृङ्खला पीले रङ्गसे बनावे । हरे रङ्गसे बसोस पादकी

त्रयोदशपदा कापी विंशत्यत्रिपदा भक्तम् । रक्तं भद्रं पीतभद्रं तिर्यङ्मनवपदात्मकम् ॥ ८ ॥
 भद्रया शृङ्खला रक्ता द्विपदैव समन्तरः । अष्टमुद्रात्मकं रामतोभद्रं ते मयोदितम् ॥ ९ ॥
 त्यक्त्वा पीतां शृङ्खलां मालिकां कृष्ण त्रिपदम् । खण्डकाप्यश्चतुष्पदजा भद्रं लोहितं रसैः ॥ १० ॥
 तिर्यग्भद्रं पीतवर्णं विधिजं वेदजं तथा । लिङ्गाध्वं मालिका रक्ता त्रिपदा वा त्रिलोचना ॥ ११ ॥
 अष्टमुद्रात्मकं चैतन्मालिकां रामभद्रकम् । त्रिधनुषं त्रिपञ्चाशदंशः सर्वं हि पूर्ववत् ॥ १२ ॥
 मुद्रिकापग्निधीनां च पट्टकं स्वेच्छं प्रपूयेत् । चतुर्मुद्रात्मकं चैतन्मालिकां वापि पूर्ववत् ॥ १३ ॥
 तिर्यगूर्ध्वं त्रिसमाश्र रेखाः कार्याः तुल्यदिग्वाः । तासु चतुर्गुणैः कार्याः परिधयः क्रमात् ॥ १४ ॥
 कृष्णरक्तशुक्लपीता द्वादशानि पदेषु च । कार्यः पुनश्चतुःपाशैः परिधिः पीतवर्णकः ॥ १५ ॥
 तदग्रे रक्तवर्णश्च परिधिर्हि समन्तरः । ततोऽष्टपदः परितः परिधिः पीतवर्णकः ॥ १६ ॥
 ततः षष्ठपदोऽध्वं च पुनः पीताः प्रकारयेत् । आयस्थाने च सीमारूपाः पीता परिधोऽप्यवा ॥ १७ ॥
 रक्ता वेदमिताः कार्या द्वादशानि पदेषु च । कोणगृहे पूर्ववच्च मध्ये ■ मुद्रिकात्रयम् ॥ १८ ॥
 ततो द्वितीयस्थाने हि चन्द्रः कृष्णः च शृङ्खला । मसपदा वल्लरा च चतुर्दशसु पादिका ॥ १९ ॥
 वल्लर्योर्निर्गोजनं कार्यं रक्तं भद्रं हि पट्टकम् । त्रयोदशपदा कार्या वाप्य वेदमिताः सिताः ॥ २० ॥
 पट्टविंशत्पदजाः कार्यास्त्राश्रयाः कृष्णवर्णकाः । वाप्यस्त्रयोदश लरूपा हि लिङ्गमध्ये पदेषु च ॥ २१ ॥
 रामात् रामयामात्त भध्या कंठजवर्णात् । मूद्रा चतुष्पदा जयः पादाभ्यां ■ ईरितः ॥ २२ ॥
 चतुष्पदा लिङ्गपाशैः पादस्त्राभ्यां हि पट्टपदा । शयनस्थले शुक्ले द्व पदं रचयेद्विधा ॥ २३ ॥
 वाप्युपांरुष्टाच्छेषाण यानि सष्टपदानि च । तेषु रक्तानि प्राण्यार्दा ■ पातानि चोपरि ॥ २४ ॥
 मध्येऽथ सर्वतोभद्रं पूर्ववच्चैव नो परम् । सर्वालङ्कारामभद्रत्रयमकं मयेरितम् ॥ २५ ॥

वल्लरी बनाये । लाल रङ्गसे नौ पादका भद्र बनावे ॥ ६ ॥ ७ ॥ सफेद रङ्गसे तेरह पादका वाप्य बनावे । तीन पादसे लाल रङ्गका एक दूसरा भद्र बनावे । रङ्गसे नौ पादका एक तिरछा भद्र और बनावे ॥ ८ ॥ दोनो भद्राका शृङ्खला लाल रङ्गका और चार तरफसे केवल दो पादका रहेंगे । इस प्रकार अष्टमुद्रात्मक रामतोभद्र में तुमका बतलाया ॥ ९ ॥ अथवा पाला शृङ्खलाका छड़कर काले रङ्गसे नौ पादका लिङ्ग बनावे । चार पादका एक खण्डवापा और छः पादसे लाल रङ्गका ■ बनावे ॥ १० ॥ ऊपर बतलाये तिरछे और पीले भद्रम सात या चार पादका भद्र बनावे । तदनक ऊपर लाल रङ्गका मालिका या तीन पादके छिन्न बनावे ॥ ११ ॥ यह अष्टमुद्रात्मक सर्वालङ्कारामताभद्र है । पूर्ववत् साधा और बड़ा तिरवन रेखावे बीच ॥ १२ ॥ मुद्रा और पाराधवांक छः छः पादोका अपन इच्छानुसार पहलेके समान पूर्ण करे । यह चतुर्मुद्रात्मक रामलिङ्गतोभद्र कहाता है । इसके सिवाय सब खांजे पूर्ववत् रहती है ॥ १३ ॥ लाल रङ्गसे सीधा और बड़ा तिहत्तर रेखाएं खांच और क्रमशः चारों बगल पाराधियां बना दे ॥ १४ ॥ चारह पादोका काला, लाल तथा शुक्ल वर्णोंका भद्र बनावे । फिर उसके चारों ओर पीले वर्णोंका परिधि बनावे ॥ १५ ॥ उसके आगे चारों ओरसे लाल रंगका परिधि बनावे । फिर आठ पादका परिधि उसके चारों तरफ बनावे ॥ १६ ॥ ऊपरका आठ पादका पाराध पाले रंगसे बनावे । आदिम स्थानमें सीमा नामकी परिधियां अथवा लाल रंगसे चार परिधियां बनावे । पहनका तरह कोणके धरोमें तान मुद्रायें बनावे ॥ १७ ॥ १८ ॥ इसके अनन्तर दूसरे स्थानमें चन्द्रना बनाकर काले वर्णका शृङ्खला बनावे । ■ पादकी वल्लरी अथवा चौकह पादोंसे वल्लरियाका निर्माण करे और लाल रङ्गसे छः पादका ■ बनावे । ■ पादसे सफेद रंगकी वाप्यवापियां बनावे ॥ १९ ॥ २० ॥ तदनन्तर काले रंगसे छव्वीस पादोंके तीन शिख बनावे । लिङ्गके मध्यवाले कोष्ठकोंमें तेरह वापियां बनावे ॥ २१ ॥ फिर उनमें स्याहीसे कङ्कणके समान रामके नाम लिखे । इसमें चार पादसे मस्तक, दो पादसे कंठ, चार पादसे लिङ्ग और पार्श्वभाग, छः पादसे स्कन्ध, तीन ■ पैर बनावे । सफेद रंगके दो पाद बाकी रहने दे ॥ २२ ॥ २३ ॥ अथवा ऊपरसे जो ■ पाद ■ बचे हैं,

एतद्द्वादशमुद्राभी रामलिङ्गात्मकं शुभम् । अतिरम्यं विचित्रं च समनुष्टुभार्थमारितम् ॥२६॥
 तिर्यगूर्ध्वमंकसप्त रेखाः सर्वे हि पूर्ववत् । चतुर्मुद्रात्मकं भद्रं यथा तद्वच्च मध्यमे ॥२७॥
 आद्ये तिस्रः स्थले मुद्रा सीमापरिधयस्तथा । नध्य अपरस्य वा ज्ञेया सन्तं द्वी द्वौ शुभौ स्मृतौ ॥२८॥
 ततः षोडशमुद्राभी रामतोभद्रमारितम् । अन्तर्गते कुञ्ज लिङ्गे सलिङ्गे षोडशात्मकम् ॥२९॥
 तिर्यगूर्ध्वभूमिवाणवेदरेखाः ४५१ सुलाहिकाः । अष्टमुद्रात्मकं मध्ये रामतोभद्रकं लिखेत् ॥३०॥
 तिर्यगूर्ध्वं परिधयः पात्रार्थेव समन्ततः । द्वादशानि रचनीया बहिः परिधयोऽपि च ॥३१॥
 पूर्ववत् कोणगोहानि मुद्राणां च क्रमाऽधुना । उक्ते द्वे मुद्रिके पूर्व तदधा वेदमुद्रिकाः ॥३२॥
 मध्ये सर्वत्र परिधिद्वय नान्यस्थल कदा । ततो रमानता क्षष्टविशेषः पञ्चम स्थले ॥३३॥
 पञ्चमुद्रिका वेद बाप्यश्चतुरङ्गीतिपादकाः । बाप्यन्तरस्तद्वत्पञ्च कृष्ण द्वादशपादजम् ॥३४॥
 बापीपात्रेषु भद्राणि चत्वारि लाहितानि च । पृथक् पृथक् पञ्चदशपदस्थानि तानि हि ॥३५॥
 षष्ठे स्थाने द्वादशैव मुद्रा क्षत्रे चतुर्दश । षोडशाष्टादशवाच विशद्वान्विशमुद्रिकाः ॥३६॥
 चतुर्विंशत्य षड्विंशा क्षष्टाविंशत्समुद्रिकाः । विशद्वान्विशन्मुद्राणां स्थाने षोडश मुद्रिकाः ॥३७॥
 बाप्यः षोडश विज्ञेया मध्ये बापाद्वय स्मृतम् । अष्टाचारसदृशं च रामतोभद्रमारितम् ॥३८॥
 तिर्यगूर्ध्वं हि वस्वक्रवाणरेखाः सुलाहिकाः । सर्वलिङ्गरानभद्रत्रयमकं पुरोरितम् ॥३९॥
 तदत्र मध्ये लेख्यं हि मध्यमुद्रास्थल शिवः । द्विःमन्तपदः कायः कृष्णरङ्गः प्रकाशयेत् ॥४०॥
 षट्त्रिंशद्रामनामानि वै लेख्यानि च हस्ततः । कृष्णाऽन्तर्कणिका कार्या चतुर्भिश्च शिरः स्मृतम् ॥४१॥
 कटिश्चतुर्षुपदः कार्या पात्रे द्वादशपादजे । स्कन्धा विशतद्वेष्टया भूल विशद्वत्पदात्मकम् ॥४२॥

उनके आदिवाले तीन पादोंका लाल रङ्गसे और पाँच पाद रङ्गसे रंगे ॥ २४ ॥ उनके बीचमें पूर्ववत् सर्वतोभद्रकी रचना करे । इस प्रकार मैन तुमका तीन भद्रका रामतोभद्र बतलाया ॥ २५ ॥ यह द्वादश मुद्राओंसे युक्त लिङ्गात्मक रामतोभद्र अतिरम्य, विचित्र तथा रामका प्रसन्न करनेवाला है ॥ २६ ॥ साधा और भेड़ों उग्रासी रेखाय पहलेकी तरह खींचे । ऊपर जैसे चतुर्मुद्रात्मक रामतोभद्र बतला आया है, उसी तरह बीचमें भद्रकी रचना करे ॥ २७ ॥ आदिके पादमें तीन मुद्राय बनाकर पहलक समान सीमाओंका पारध बनावे । बीचमें तीन तीन और अन्तम भा तान-तान पारधया दना शुभ है ॥ २८ ॥ यह षोडशमुद्रात्मक रामतोभद्र मैन तुमका बतलाया । यदि इसका मध्यभागमें छिद्रका भी रचना कर दी जाय तो यहा सलङ्ग-रामतोभद्र हो जायगा ॥ २९ ॥ उनका क्रम इस प्रकार है—सीधो और ४५१ रेखाये लाल रङ्गसे खींचे । उनके बीचमें अष्टमुद्रात्मक रामतोभद्र लिखे ॥ ३० ॥ इसका चारों ओर पाँच रङ्गका पारधिया रहेगा । वे परिधियाँ द्वादश पादके अन्तरपर बनायी जायना ॥ ३१ ॥ पहलेकी तरह काणवाला मुद्राओंका क्रम बतला रहे हैं । सबके ऊपर की मुद्रायें और उनके बीच चार मुद्रायें बनावे ॥ ३२ ॥ सब तरफ की परिधियाँ बनावे । इसके बाद छः मुद्रायें बनावे । फिर आठ मुद्रायें बनावे । पञ्चम स्थानमें कुछ विशेषता है, सा बतलाते हैं ॥ ३३ ॥ इसमें छः मुद्रायें, चौरासी पादका चार बापा और उस बापाके अन्तर्गत काल रङ्गसे बारह पादका कुंड बनावे ॥ ३४ ॥ बापीके आस-पास लाल रङ्गके चार भद्र बनेंगे । वे अलग-अलग पन्द्रह पादोंके बनाये जायेंगे ॥ ३५ ॥ छठी पंक्तिमें केवल बारह ही मुद्रायें रहेंगी । जहाँ चौदह, फिर बाँस, बाँस, चौबीस, छब्बीस, अट्ठा-इस, तीस, बत्तीस, ये मुद्रायें रहेंगी । और अपने स्थानपर पूर्ववत् वे सोलह मुद्रायें रहेंगी । इसमें बापा भी सोलह रहेंगी और मध्यमें दो बापियाँ रहेंगी । इस तरह मैन तुम्हें अष्टाक्षरसदृश रामतोभद्रका क्रम बतलाया ॥ ३६-३८ ॥ लाल रङ्गसे सड़ा चेड़ा और ५६८ रेखाएँ । जैसा कि मैन पहले ही सर्वलिङ्गात्मक रामतोभद्रकी रचनाका प्रकार बतलाया है । उसी तरह यहाँ भी बनावे । उसके बीचमें मुद्राकी जगहपर बहुततर पादके शिवकी रचना करे । इसका वर्ण लाल रहेगा । अबका हाथसे ३६ रामनाम लिखे । काले रंगसे उनकी कणिका और चार पादसे शिर बनावे ॥ ३९-४१ ॥ चार पादको कटि

षट्त्रिंशत्पादके ज्ञेये द्वे वापीशकले मिते । द्वाभ्यां शिवस्य वै नेत्रे सिते शेषपादानि हि ॥४३॥

पञ्च रक्तानि चत्वारि पीतानि शिवकर्णयोः ।

स्थाने तृतीये मुद्राश्च निम्नो द्वौ शंकरौ वरी । स्थाने चतुर्थे मुद्राश्च चत्वारश्चिश्चिवाः स्मृताः ॥४४॥

एवमग्रे क्रमेणैव विशेषं कथयाम्यहम् । स्थाने चतुर्थे मुद्राश्चर्दश शिवास्तथा ॥४५॥

पञ्चदशे हि विशेषा एवमग्रे शिवा शिबेन । कोणस्थगोदयोः कार्यौ द्वौ शिवा च त्रिषट्पदौ ॥४६॥

अष्टमुद्रात्मके भद्रे मन्त्रिणे च कर्तुं यथा । पद्माङ्गो लिङ्गवृद्धिर्हि कर्तव्या चरमावधि ॥४७॥

स्थाने द्वाविंशतितमे मुद्रा द्वादश चेरिताः । शयान्निच लिङ्गानि वदिः परिधयस्ततः ॥४८॥

एवं युक्त्या रचनीयं ज्ञेयं सर्वं पुरोदिताम् ।

अष्टोत्तरसहस्रं च गमयिष्याम्यहम् । रामायनं चरितं हि राघवस्यातितुष्टिदम् ॥४९॥

तिर्यग्मुखं बाणशस्त्रभूषितेनैव । पूर्ववत् । अष्टमुद्रात्मकं मध्ये परिधयः समंततः ॥५०॥

तिर्यग्मुखं द्वादशान्ते वक्तिः परित्यज्यथा । मध्ये मीमांसयिष्येदं नान्यत्स्थले कदा ॥५१॥

नेत्रस्थाने वेदमुद्रा विशेषेण वृत्तात्मकः । निम्नः पादश्चिपुद्राश्च षष्ठमे च चतुर्थके ॥५२॥

पञ्चमे दश मुद्राश्च ज्ञेयं सर्वं पुरोदिताम् । अष्टोत्तरसहस्रं गमनोभद्रं ते मयोदितम् ॥५३॥

तिर्यग्मुखं त्रिपूर्णातिरेक्याः कार्याश्च पूर्वेण । मन्त्रेणैव गममद्रयमेके पुरोदिताम् ॥५४॥

तदत्र मध्ये लेखः । हि मध्यमुद्रा स्थले निम्ना । बापो कार्या द्वादशान्ते परिधयश्च पूर्ववत् ॥५५॥

तिर्यग्मुखं शुभा कार्या वहिः परिधयस्तथा । स्थाने तृतीया मुद्राश्च निम्नो द्वौ शंकरौ वरी ॥५६॥

चतुर्थे वेदमुद्राश्च शयने शंकराः स्मृताः । पञ्चमे पञ्च मुद्राश्च चत्वारश्च हरा वराः ॥५७॥

षष्ठे स्थाने च षण्मुद्राः शिवाः सप्त प्रकीर्तिताः । कोणस्थगोदयोः कार्यौ द्वौ हरा च त्रिषट्पदौ ॥५८॥

बनावे । बारह पादसे दोनों पादों और दोन पादों का रचना बनावे ॥ ४२ ॥ छद्मीय पादसे शिव तथा बापो बनावे और दोनों शिवकी रचना करे । बाकी कोटोलीमेंसे पाँच कोष्ठक साल रङ्गसे, चार पंक्ति रङ्गसे दसवी तथा तीसरी पंक्ति तीन मुद्रायें और दो शंकर बनावे । चौथी पंक्तिमें चार मुद्रायें और तीन शिव बनावे ॥ ४४ ॥ इस क्रमसे बनानेके अनन्तर इसमें जो विशेषतायें हैं, उन्हें बतला रहा हूँ । चौदहवीं पंक्तिमें चौदह मुद्रायें और चौदह ही शिव बनावे ॥ ४५ ॥ यही क्रम पन्द्रहवीं पंक्तिमें भी रहेगा । बाकी सब शिवकी वृद्धिके अनुसार पूर्ण करे । दोनोंके दोनों धरोंमें नीची पादके दो शिव बनावे ॥ ४६ ॥ अष्टमुद्रात्मक रामतोभद्रकः लिङ्गमनुष्ठा कर लेनेके बाद अन्तर्ध्वज मुद्राके अनुसार लिङ्गकी वृद्धि करता जाय ॥ ४७ ॥ बाईसवी पंक्तिमें बारह मुद्रायें बनावे । इसमें तेईस लिङ्ग बनाकर बारहकी परिधियाँ भी बनावे ॥ ४८ ॥ इस प्रकार युक्तिके साथ इस रामतोभद्रकी बनावे । जेप अंश पहलेके समान ही रहेगा । यह अष्टोत्तरसहस्रात्मक रामतोभद्र रामचन्द्रजीको प्रमत्त करनेवाला सर्वधेष्ठ आसन है ॥ ४९ ॥ सीधी तिरछी १६५ रेखायें खींचे और अष्टमुद्रात्मक रचना करे । उसके बीचमें भद्र रहेगा । चारों ओरसे बाह्यवीं पंक्तिके बाद परिधियाँ रहेंगी । मध्यमें सीमा परिधियाँ रहेंगी और किसी पंक्तिमें कुछ भी नहीं रहेगा ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इसकी दूसरी पंक्तिमें चार मुद्रायें रहेंगी । तीसरी पंक्तिमें कुछ विशेषता है, सो बतलाते हैं । साठवीं और चौथी पंक्तिमें क्रमशः तीन बापी और तीन मुद्रायें बनावे ॥ ५२ ॥ पाचवीं पंक्तिमें दस मुद्रायें बनाकर बाकी पूर्ववत् रखे । यह मैंने तुमको अष्टोत्तरशत रामतोभद्र बतलाया ॥ ५३ ॥ सीधी और तीली २०३ रेखाएँ खींचे । फिर पूर्वोक्त रीतिके अनुसार भद्रव्यात्मक रामतोभद्रकी रचना करके उसीके समान समस्त लिंगोंकी स्थापना करे ॥ ५४ ॥ इनके मध्य पहली पंक्तिमें सफेद रंगका एक भद्र और सफेद रङ्गकी ही एक बापी बनावे । फिर पहलेकी तरह बारह पंक्तियोंके परिधियाँ बनावे ॥ ५५ ॥ बाहरकी तीली और सीधी परिधियाँ बनाकर तीसरी पंक्तिमें पाँच मुद्रा और दो शिव बनावे ॥ ५६ ॥ चौथी पंक्तिमें चार मुद्रा और तीन शंकर बनावे । पाँचवीं पंक्तिमें पाँच मुद्रा और चार शिवकी रचना करे ॥ ५७ ॥

ब्रह्ममुद्रात्मके भद्रे सलिमे ॥ कृतौ यथा । स्थाने च समने मुद्राः मरु लिङ्गानि चाष्ट वै ॥५९॥
 कोणस्थगृहयोः कार्यौ द्वौ द्वौ च त्रिपट्टपदौ एतदष्टोत्तरशतं रामलिङ्गात्मकं स्मृतम् ॥६०॥
 पठे स्थाने कोणगेहेऽथवा शंभुं न कारयेत् । स्थाने कृतौ गृहैका वाप्यौ द्वौ द्वौ इत्यपि ॥६१॥
 अष्टोत्तरात्मकं भद्रं रामलिङ्गात्मकं मया । अष्टोत्तरशते रामतोभद्रे अष्टिमपि ॥६२॥
 एवैव मुद्राः कर्तव्या अंते स्थाने हि पंचमे । पंच मुद्राः पञ्च वाप्यः अष्टमुद्रात्मके त्रिदम् ॥६३॥
 अष्टोत्तरसहस्रे श्रीरामतोभद्रके वरे । वाप्यस्थाने त्रिपट्ट वाप्यो वेदमुद्राः प्रसाधयेत् ॥६४॥
 सप्तसराममुद्राणां रामतोभद्रमीरितम् । अष्टोत्तरसहस्रे श्रीरामलिङ्गात्मकं त्वं ॥६५॥
 स्थाने चतुर्दशे कोणगेहे शंभुं न कारयेत् । मुद्रास्थाने च द्वौ वाप्यौ मध्ये कारि न कारयेत् ॥६६॥
 सप्तसराममुद्राणां रामलिङ्गात्मकं त्रिदम् । षोडश रामतोभद्रे चाप्यस्थाने त्रिदशु च ॥६७॥
 मध्यमुद्रास्थले वाप्यस्तिष्ठः कार्यो महत्तमाः । त्रयोदशात्मकं त्रिदश वाप्योऽपि ॥६८॥
 अथवाऽऽथस्थले मध्यमुद्रास्तु वेददिक्षु च । वेदस्थानेऽपि स्थाने त्रिदश त्रिदशु च ॥६९॥
 वाप्यश्चैतद्विज्ञातव्यं नवमुद्रात्मकं शुभम् । रात्रौ मय्यकं त्रयोदश वाप्योऽपि ॥७०॥
 तिर्यगूर्ध्वं वाप्यूर्ध्वभूमिरेखाश्च पूर्ववत् । त्रयोदशात्मकं त्रयोदश वाप्योऽपि ॥७१॥
 बुधामन्त्रे हि द्वौ वाप्यौ परिधयोऽकमेवमाः । द्वौ द्वौ सर्वत्र त्रयोदश वाप्योऽपि ॥७२॥
 ज्ञातव्यं रामतोभद्रं तोषदं तत्त्ववादिनाम् । कोणगेहेषु लिङ्गानि त्रयोदशानि हि पश्चिमे ॥७३॥
 कार्यं वापीस्थले लिङ्गं पञ्चविंशतिमं चम् । पञ्चविंशतिमुद्राणां रामलिङ्गात्मकं त्रिदम् ॥७४॥
 अष्टोत्तरान्ते देवतानि रामासनमवानि च । षष्ठोऽथ सर्वतोभद्रे समावाह्यं तत्त्वमुद्रा ॥७५॥
 ततो बहिस्तु लिङ्गेषु रुद्रं वापीषु वै नलम् । सूर्याय नमः भद्रेषु त्रिदशु भद्रेषु वै नलम् ॥७६॥
 पीतासु च मृद्वलासु खगदं परिकल्पयेत् । पीतमृद्वलासु तं त्रिदशं तत्त्वमुद्रा ॥७७॥

छाँई पंक्तिमें छः मुद्रा तथा सात त्रिपट्ट बनावे । कोनेवाले दो घरोंमें दो-दो कोने के शिव बनावे ॥ ५९ ॥ लिङ्गयुक्त अष्टमुद्रात्मक रामतोभद्र बना लेनेपर उसका माथी पंक्तिमें सात मुद्रा और षष्ठ लिङ्ग बनावे ॥ ५९ ॥ कोनेवाले दोनों घरोंमें दो-दो पादोंके दो शिव बनावे । षष्ठ तरह अष्टोत्तर-अष्टलिङ्गात्मक रामतोभद्र बतलाया ॥ ६० ॥ छाँई पंक्ति तथा कोणवाले घरों में शिवही न बनावे । तीसरी पंक्तिमें एक मुद्रा, दो वापी तथा दो शिवकी रचना करे ॥ ६१ ॥ यह अष्टलिङ्गात्मक रामतोभद्र बतलाया । पूर्वोक्त अष्टोत्तरसहस्र रामतोभद्रकी चौदहवीं पंक्तिमें केवल छः मुद्रा, अन्तर्जाति पाँचवीं पंक्तिमें पाँच मुद्रा और पाँच वापी बनावे तो इस लीग तत्त्वमुद्रात्मक रामतोभद्र कहते हैं ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ पूर्वोक्त अष्टोत्तरसहस्र रामतोभद्रकी पाँचवीं पंक्तिमें छः वाप्य और चार मुद्राएँ बनाये । इन लीग तत्त्व-रामतोभद्र कहते हैं । रामलिङ्गात्मक अष्टोत्तरसहस्र रामतोभद्रकी चौदहवीं पंक्तिमें कोणवाले घरमें शिवकी रचना न करे और मुद्राके स्थानमें बीचों-बीच दो वाप्यें बना ॥ और कुछ न बनावे ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ इस लीग रामलिङ्गात्मक सहस्ररामतोभद्र कहते हैं । षोडश रामतोभद्रकी पहली पंक्तिकी तीनों रिखाओंमें मध्यमुद्राके स्थानमें बड़ो-बड़ी तीन वाप्यें बनाये तो लीग इस त्रयोदशात्मक रामतोभद्र कहते हैं ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ मध्यम पहली पंक्तिमें मध्यमें मुद्राओं तथा चारों ओर चार वाप्यें बनावे और तान दिशाओंमें तीन वाप्येंकी रचना करे ॥ ६९ ॥ रामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेवाला यह नौ मुद्रात्मक रामतोभद्र है ॥ ७० ॥ देही और सोधी कन्दह रेखाएँ पूर्ववत् त्रयोदशमद्रात्मक रामतोभद्रके समान खींच । उसके बीचमें तीन मुद्राएँ बनावे ॥ ७१ ॥ मुद्राके बीचमें दो वापियोंकी रचना करे और मध्यमें सूर्य बनाकर पश्चिम बनावे । दो-दो पादोंकी परिधियाँ बनावे । इस लीग तत्त्वमुद्रात्मक रामतोभद्र कहते हैं ॥ ७२ ॥ यह रामतोभद्र तत्त्ववादिनोंके लिए आनन्ददायक है । वीरों के घरोंमें लोकोंकी रचना करे । पश्चिमकी ओर नेत्रके स्थानमें पञ्चविंश लिङ्ग बनावे । यह पञ्चविंशतिमुद्रात्मक रामतोभद्र कहलाता है ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ अब रामासनके देवताओंको बतलाते हैं । सर्वतोभद्रके बीच तथा सर्वतोभद्रके

कृष्णवर्णशृङ्खलासु समापाह विभीषणम् । बल्लीषु च जाववन्तं मैदं खंडेदुषु स्मरेत् ॥७८॥
 द्विविधं परिधिष्वेव मुद्रायां राघवं स्त्रिया । मुद्रायाः पश्चिमे चाथ दक्षिणे सुत्तरं पुरः ॥७९॥
 लक्ष्मणं भरतं चापि शत्रुघ्नं वायुनन्दनम् । पूज्यपूजकयोर्मध्ये ज्ञेया पूर्वदिमेव हि ॥८०॥
 सितापरिधिष्वत्रैव सुपेणं परिचिन्तयेत् । सर्वत्र पदमात्रेषु विस्तयेत्सर्वानरान् ॥८१॥
 बह्विधपरिधिष्वेव त्रिवेणीं परिचिन्तयेत् । चतुर्दिक्पालाभिमुखं हरा रुद्राश्च वापिकाः ॥८२॥
 कर्तव्या वात्माभिमुखाः कार्या वा पद्मसंमुखाः । चतुर्दिक्पालाभिमुखा एवं भद्रेषु मेऽकथि ॥८३॥
 पञ्चत्रये वरिष्ठास्ता वदंतीत्यं मुनीश्वराः । पूर्वोक्तभद्रे देवान् हि संख्ययादौ ततः परम् ॥८४॥
 समारमेद्राघवस्य श्रेष्ठां पूजां सविस्तराम् । पद्मस्य कर्णिकार्या च ससीतं राघवं न्यसेत् ॥८५॥
 अष्टपद्मदलेष्वेव तस्यावरणदेवताः । पूजयेदिति सर्वत्र सुपेक्षु परिक्रम्यते ॥८६॥
 पथे सङ्कोचमालक्ष्य प्रकारान्तरमुच्यते । सर्वतोभद्रकमले धान्यराशौ घटं न्यसेत् ॥८७॥
 जलपूर्णं च तस्यास्ये केतकीपत्रपूरिते । ताम्रपात्रं विस्तृतं च न्यस्य तंडुलपूरितम् ॥८८॥
 तत्र वस्त्रं सावरणं रामचन्द्रं प्रपूजयेत् । शैलीं दारुमयीं लोहीं लेप्या लेख्या च सैकती ॥८९॥
 मनोमयीं भणिमयीं प्रतिमांऽष्टविधां स्मृता । सर्वेषु रामभद्रेषु मुद्रापूज्यो रघूत्तमः ॥९०॥
 यजकश्च शिवो ज्ञेयो भद्राद्या रामपार्षदाः । श्रीरामलिंगतोभद्रमन एवोच्यते पुनः ॥९१॥
 एवं नानाविधा मेदा बहवः संति मो द्विज । श्रीमद्रामतोभद्राणां येषां संख्या न विद्यते ॥९२॥
 मया मेदाः कियतोऽत्र तवाग्रे विनिवेदिताः । नरैर्बुद्ध्या प्रकर्तव्याः पूजनार्थं रमापतेः ॥९३॥
 हेमंततुभवं चैवं कार्यमासनमुच्यते । राघवार्थं महच्छ्रेष्ठं रौप्यतन्तुभवं तु वा ॥९४॥

देवताओंका आवाहन करे । इसके बाद बाहरके लिंगोंमें रुद्रका, वापियोंमें नलका, पदोंमें सुग्रीवका, तिरछे भद्रोंमें गौका ॥ ७९ ॥ ७९ ॥ और पीले रङ्गकी शृङ्खलाओंमें अक्षयका आवाहन करे । यदि भद्रकमें पीले शृङ्खलाका अभाव हो तो तिरछे भद्रमें अक्षयका आवाहन करे ॥ ७७ ॥ कृष्णवर्णकी शृङ्खलाओंमें विभीषणका, बल्लियोंमें जाम्बवानका और खण्डेन्दुओंमें मैन्दका आवाहन करे ॥ ७८ ॥ परिधिके भीतरवाली मुद्रामें सीताके साथ-साथ रामका आवाहन करे । मुद्राके पश्चिम, दक्षिण, उत्तर तथा पूर्वकी ओर क्रमशः लक्ष्मण भरत, शत्रुघ्न और हनुमान्जीका आवाहन करे । यहाँ पूज्य-पूज्यक दोनोंके लिए पूर्वदिशा उत्तम मानी गयी है ॥ ७९ ॥ ॥ सफेद रङ्गकी परिधियोंमें सुपेणका तथा बाकी सब स्थानोंमें सारे बानरोंका आवाहन करना चाहिए । बाहरकी तीनों परिधियोंमें त्रिवेणीका आवाहन करे । हर, रुद्र और वापिकाओंकी चारों दिक्पालोंके अभिमुख कर दे ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ यह विद्या बतानेवाले आचार्यने पुजे बतलाया है कि जल्येक भद्रमें हर, रुद्र तथा वापिकाओंकी अपने सम्मुख करे या पथके आकारका बना दे अथवा दिक्पालोंके अभिमुख कर देना चाहिए ॥ ८३ ॥ मुनिगण ऐसा कहते हैं कि इन तीनों पक्षोंमें सर्वश्रेष्ठ पक्ष यह कि पूर्वोक्त भद्रमें देवता आदिकोंकी पूजा करके रामचन्द्रजीका विस्तृत पूजन प्रारम्भ करे । पद्मकी कर्णिकामें सीताके सहित रामचन्द्रजीका न्यास करे । आठ दलवाले कमलमें उनके आवरण-देवताओंका पूजन करना चाहिए । षण्डितोंका कथन है कि यह नियम सर्वत्रके लिए ॥ ८४-८६ ॥ यदि कमलमें कोई सङ्कोच दोखे तो उसके लिए प्रकारान्तर बतलाते हैं । सर्वतोभद्रके कमलमें धान्यकी राशिपर घट स्थापन करे ॥ ८७ ॥ केतकीके पत्रसे भरे हुए घटके मुँहपर चावलसे भरा एक बड़ा-सा तामेका बर्तन रखे । उसके वस्त्रपर आवरणदेवताके श्रीरामचन्द्रजीकी पूजा करे । हर-एक भद्रमें पर्यरकी, एकही, लोहेकी, चूने-ईंटकी, दालूकी, रक्तसे रङ्गकर बनायी हुई, मनसे कल्पित अथवा भणिमयी इन आठ प्रकारोंमें जो स्वे, उसकी प्रतिमा बनाकर श्रीरामका पूजन करना चाहिए ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ शिवजी यजक हैं और भद्र आदि रामजीके पार्षद हैं । इसोक्तिसे विद्वान् लोग इसे श्रीरामलिंगतोभद्र कहते हैं ॥ ९१ ॥ हे द्विज ! इस तरह श्रीरामतोभद्रके बहुतसे भेद हैं । जिनको कोई संख्या ही नहीं है ॥ ९२ ॥ यह उनमेंसे कुछ भेद बतलाये हैं । लोगोंकी उचित है कि रामकी पूजाके लिए बुद्धि

अथवा षड्कुलस्य चैव कार्यं परासनम् । अथवा लेखयेत्पत्रे सर्वमात्रे द्विजोत्तमैः ॥९५॥
 भूर्जपत्रे विलिखितं विशेषान्तिद्विदं नृणाम् । वक्षोपरि लेख्यं वा कर्तव्यं चित्रन्ततुभिः ॥९६॥
 विनासनेन या पूजा सा पूजा निष्फला भवेत् । रामभद्रासने पूजा पूजाऽतिफलप्रदा ॥९७॥
 यद्यद्रामपरं कर्म तत्तच्च द्विजपुंगवैः । रामासनस्थितं रामं पुरस्कृत्य समारमेत् ॥९८॥
 रामभद्रासनैर्हीनं यत्कर्म तच्च निष्फलम् । तस्मादेवं स्वमेवैतत्कर्तव्यं रामपूजने ॥९९॥
 अष्टोत्तरसहस्रं च रामलिङ्गात्मकं हि यत् । आसनं तद्वरिष्ठं हि राघवस्यातितोषदम् ॥१००॥
 तदधो रामतोभद्रमष्टोत्तरसहस्रकम् । तदधो रामलिङ्गात्म्यमष्टोत्तरशतात्मकम् ॥१०१॥
 तदधो रामतोभद्रमष्टोत्तरशतात्मकम् । तदधः पञ्चविंशच्छ्रीरामभद्रासनं शुभम् ॥१०२॥
 तदधो रामतोभद्र षोडशात्मकमीरितम् । त्रयोदशात्मकं रामतोभद्र तदधः स्मृतम् ॥१०३॥
 द्वादशं च नवात्म्यं च अष्टमुद्रात्मकं तथा । चतुर्मुद्रात्मकं वापि पूर्वतश्चापरं ह्यधः ॥१०४॥
 एवं क्रमेण श्रेयानि रामभद्रासनानि हि । श्रेष्ठामनेषु या पूजा तस्याः श्रेष्ठं फलं स्मृतम् ॥१०५॥
 लघ्वासनेषु या पूजा तादृशं तत्फलं स्मृतम् । एवं ज्ञात्वा फलं बुद्ध्या श्रेष्ठमेषासनं श्रुतैः ॥१०६॥
 यत्नेनैव प्रकर्तव्यं रामोपासनं मानवैः । प्रतिवर्षं नवोत्तमं कार्यमासनमादरात् ॥१०७॥
 एकस्मिन्धासने पूजा न वर्षादुर्ध्वतः शुभा । एवं शिष्टासनानां च भेदाः पृष्टास्त्वया पुरा ॥१०८॥
 तवाग्रे हि मयाख्याताः श्रीरामस्यातितोषदाः । त्वत्पृष्टरामतोभद्रवर्णनस्य प्रसङ्गतः ॥१०९॥
 स्मारिता रामचन्द्रस्य किञ्चिच्छीला मयाऽयं हि । वदाम्यहं तवाग्रे तां त्वं शृणुष्व द्विजोत्तम ॥११०॥
 प्रत्यब्दं श्रावणे मासे गुरुत्रय्याद्रघूत्तमः । चत्वारिंशद्वृक्षभित्तसुवर्णस्य पृथक् पृथक् ॥१११॥

लगाकर मद्रोमें उनकी रचना करें ॥ ९३ ॥ उपासकको चाहिए कि सुवर्णके तारोंका एक सुन्दर आसन रामचन्द्रजीके लिए बनवावे । यदि सुवर्णके तारका न हो सके तो चांदीके तारका हो बनवा ले । वह भी न बन पड़े तो रेशमके सूतका अच्छा-सा आसन बनवावे । यदि इनमेंसे कोई भी न बनवा सके तो किसी पत्तेपर आसन लिखवा ले ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ भूर्जपत्रपर लिखा हुआ आसन विशेष सिद्धिदायक होता है । इसके अतिरिक्त कपड़ेपर लिखवा ले या रङ्गीन मूतसे बुनवा ले ॥ ९६ ॥ विना आसनके जो पूजा की जाती है, वह व्यर्थ होती है और रामभद्रासनके ऊपर जो पूजाकी जाती है, वह अतिशय फलदायिनी हुआ करती है ॥ ९७ ॥ द्विजश्रेष्ठ बाह्याणोंको चाहिए ॥ श्रीरामचन्द्रके प्रीत्यर्थ जो-जो कार्य करना हो, वह रामको सामने करके उनके आगे ही करे ॥ ९८ ॥ रामभद्रासनसे रहित जो होता है, वह निष्फल होता है । इससे रामके पूजनमें आसनकी रचना अवश्य करे ॥ ९९ ॥ जो अष्टोत्तरसहस्र रामलिङ्गात्मक भद्र है, वह रामचन्द्रजीको अत्यन्त प्रसन्न करनेवाला सर्वश्रेष्ठ आसन है ॥ १०० ॥ उससे कुछ मध्यम अष्टोत्तरसहस्र रामतोभद्र है । उससे भी मध्यम अष्टोत्तरशत रामलिङ्गात्मक भद्र है ॥ १०१ ॥ उससे मध्यम अष्टोत्तरशत रामतोभद्र तथा उससे पञ्चविंशत् श्रीरामभद्रासन ॥ १०२ ॥ उससे मध्यम षोडशात्मक रामतोभद्र है ; उससे मध्यम त्रयोदशात्मक रामतोभद्र है ॥ १०३ ॥ उससे भी न्यून क्रमका द्वादशात्मक, नवात्मक, अष्टमुद्रात्मक, चतुर्मुद्रात्मक है ॥ १०४ ॥ कमसे रामचन्द्रके आसनोंको जानना चाहिए । जिसने श्रेष्ठ पूजा की जाती है, वह उतनी ही अधिक फलवती हुआ करती है ॥ १०५ ॥ जिसने ही साधारण आसनपर पूजा की जाती है, ही साधारण फल भी प्राप्त होता है । ऐसा समझकर रामकी उपासना करनेवालोंको चाहिए कि बुद्धि लगाकर धीरे-धीरे श्रेष्ठ आसनकी ही रचना करें और प्रतिवर्ष पूजनके समय तयी-नयी कित्मके बनाया करें ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ एक कित्मके आसनपर एक वर्षसे अधिक समयतक पूजन करना अच्छा नहीं होता । हे शिष्य ! तुमने पहले हमसे आसनोंका भेद पूछा था । सो रामका करनेवाले उन भेदोंको मैंने तुम्हारे सामने कह सुनाया । हाँ, तुम्हारे पूछे हुए रामतोभद्रके प्रसङ्गवश मुझे रामचन्द्रजीकी एक सीला याद आ गयी है । हे द्विजोत्तम ! उसे मैं

प्रत्यहं लक्षलिंगानि कृत्वा पत्न्या धृतोऽर्चयेत् । अष्टोत्तरसहस्रैश्च लिंगैर्यद्भद्रमुत्तमम् ॥११२॥
 सच्छम्भोरासनं शेषं महाप्रीतिविवर्द्धनम् । तन्मध्यगतकमले चैकं लिंगं निवेश्य च ॥११३॥
 षोडशैरुपचारैस्सत्संपूज्य रघूत्तमः । हेममुद्रां दक्षिणार्धं दत्त्वा संपूज्य भूसुरम् ॥११४॥
 तस्मै लिंगं सासनं तददीं प्रत्येकमादरात् । एवं स कोटिलिंगानि त्रयस्त्रिंशद्दिनैर्ददौ ॥११५॥
 एवं व्रतं श्रावणे हि प्रसिधयेऽकरोद्विभुः । दिव्यैरामरणैर्वस्त्रैर्द्विजा रामार्पितैर्वभुः ॥११६॥
 हेमतंतुसमुद्भूतान्यकरोदासनानि सः । उद्यापनं च हवनं चक्रार रघुनन्दनः ॥११७॥
 विष्णुदास

अष्टोत्तरसहस्रैर्वल्लिङ्गतोमद्रमीरितम् । कथं कार्यं तस्य मेदा विस्तराद्भक्तुमर्हसि ॥११८॥
 हेमतंतुसमुद्भूतमकरोदासनं विभुः । स हेमान्धपि लिंगानि चाकरो वराणि हि ॥११९॥
 दिव्यैरामरणैर्वस्त्रैरकरोत्स द्विजार्चनम् । अशक्तौ तद्वतं सिद्धयेत्कथं तद्वक्तुमर्हसि ॥१२०॥
 श्रीरामदास उवाच

शक्तौ च पट्टकूलस्य कंबलस्याथवा नरैः । कार्यं तदथवा वस्त्रे तंतुभिश्च प्रकारयेत् ॥१२१॥
 लेख्यं वस्त्रेऽथवा रंगलेख्यं पत्रादिसत्स्थले । अशक्तौ रत्नतान्येव लिंगानि ताम्रजानि च ॥१२२॥
 किंवा पारदभूतानि स्फटिकान्यौपलानि वा । दारुजानि चंदनेवां गोमयेन मृदाऽपि वा ॥१२३॥
 कृत्वा लिंगानि पूज्यानि स्वशक्त्या पूजयेद्द्विजान् । इदानीं लिंगतोमद्रचनां ते वदाम्यहम् ॥१२४॥
 तिर्यगूर्ध्वं रक्तरेखा द्वे शतेऽष्टादश स्मृताः । तासां पदानामेकेन पूर्णसंख्या भवेदिह ॥१२५॥
 पीताः परिधयः कार्याः पट्टपदान्तेऽत्र सर्वतः । युगेंदुमंमितास्तेषु लिंगादि रचयेद्विधा ॥१२६॥
 चतुष्कोणेषु षष्ठिनस्त्रिपदैः परिकल्पयेत् । तदग्रे शृङ्खला पञ्चवर्षादः कार्या च सर्वतः ॥१२७॥

तुम्हारे आगे कह रहा है, सुनो ॥१०८॥१०९॥११०॥ गुरु वल्लिङ्गके आजानुसार रामचन्द्रजी प्रत्येक श्रावणमासमें श्रीवल्लिङ्ग टंक सुवर्णसे प्रतिदिन एक-एक शिर्वालिंग बनाकर अपनी स्त्रीके साथ उनका पूजन करते थे । अष्टोत्तरसहस्रलिंगात्मक जो भद्र है, वह उत्तम माना जाता है । वही श्रीशिवजीका प्रीतिवर्द्धक आसन है । उसके मध्य विद्यमान कमलमें एक लिंग रखकर वे उसका षोडशोपचारसे पूजन करते और दक्षिणाके निमित्त ब्राह्मणोंको सुवर्णमयी मुद्राका दान दिया करते थे । वह लिंग तथा आसन भी उन्हीं ब्राह्मणोंको मिला करता था । इस तरह श्रीरामचन्द्रजी तैंतीस दिनोंमें एक करोड़ शिर्वालिंग बनवाकर दान दिया करते थे ॥१११-११५॥ वे सर्वव्यापक भगवान् प्रतिवर्ष श्रावणमासमें इस वस्तुका पालन करते थे । उसी समय विविध प्रकारके दिव्य आभरण पा-पाकर रामराज्यके ब्राह्मण सुशोभित होते थे ॥११६॥ उस समय रामचन्द्रजीने सुवर्ण-तन्तुका ही आसन बनवाया और उद्यापन तथा हवन कराया ॥११७॥ विष्णुदासने कहा—अभी आपने जो दो अष्टोत्तरसहस्र लिंगतोमद्र बतलाया है, उसके भेद किस प्रकार करने चाहिये । सो विस्तरपूर्वक आप हमें बतलाइये ॥११८॥ मैंने माना कि रामचन्द्रजी नुवर्णतन्तुका आसन और सुवर्णके लिंग बनवाते थे । विध्य वस्त्रों और आभूषणोंसे ब्राह्मणोंकी पूजा करते थे । लेकिन जिसमें उतनी सामर्थ्य नहीं है, उसका वत किस प्रकार सिद्ध हो, यह भी हमें बतलाइये ॥११९॥१२०॥ श्रीरामदासने कहा कि यदि न सामर्थ्य हो तो रेशमके या कम्बलके भूतसे अथवा साधारण कपड़ेपर आसनकी बुनाई करा ले ॥१२१॥ अथवा पत्र आदिपर रङ्गसे लिखवा ले । यदि सुवर्णमय लिंग बनवानेकी शक्ति न हो तो चाँदी, ताँबा, पारा, स्फटिकमणि, लकड़ी, चन्दन, गोबर अथवा मिट्टीका लिंग बनाकर पूजन करे । जिसकी अपनी सामर्थ्य हो, उतने ही ब्राह्मणोंका पूजन करे । अब मैं तुम्हें लिंगतोमद्रकी रचनाका प्रकार बतला रहा हूँ ॥१२२-१२४॥ बेंहो और खड़ी २१८ रेखाएँ लाल रङ्गसे खींचे । इस प्रकार रेखा खींचनेसे पूर्वोक्त २१८ कोठक बन जायेंगे ॥१२५॥ इस भद्रमें छः छः पाद-काली पीले रङ्गकी परिधियाँ बनेंगी । उनमें अपनी बुद्धिसे चौदह लिंग आदि बनावे ॥१२६॥ उसके चारों ओरोंमें तीन-तीन पार्श्वके पन्द्रमा बनावे । उसके चारों तरफ पाँच पार्श्वकी शृङ्खलायें बनायी जायेंगी

एकादशपदा वल्ली वापी त्रिदशपादिका । अष्टादशपदैः शम्भुः सर्वत्रैव लिखेत्कमात् ॥१२८॥
 तत्र प्रथमपरिधेरर्वाक् लिङ्गानि योजयेत् । त्रिरेकादशसंख्यानि वाप्यस्त्वेवाधिकस्ततः ॥१२९॥
 भद्रेऽर्काकपदैः कार्या द्वितीये लिङ्गसंततिः । एकत्रिंशन्मिता कार्या भद्रे नवनवात्मके ॥१३०॥
 तृतीये नवनेत्रशमंख्या भद्रे तु षट् पदे ॥ तुर्ये षड्विंशल्लिङ्गानि भद्रेऽर्काकपदे मते ॥१३१॥
 पञ्चमे तुर्यनेत्रेशा भद्रे नवनवात्मके । षष्ठे द्वादशल्लिङ्गानि भद्रे षट् षट् पदे स्मृते ॥१३२॥
 सप्तमे लिङ्गविततिरेकोनविंशत्संख्यकाः । भद्रेऽर्काकपदे ज्ञेयेऽष्टमे सप्तदशेश्वराः ॥१३३॥
 भद्रे नवनवपदे नवमे मनुशंकराः । भद्रे अष्टिकलासंख्ये दशमेऽर्कमिताः शिवाः ॥१३४॥
 भद्रेऽर्काकपदे ज्ञेये त्वेकादशे दश । शिवा नव नवपदे भद्रे ज्ञेये मनोरमे ॥१३५॥
 द्वादशे सप्त लिङ्गानि भद्रे चन्द्रकलात्मके । त्रयोदशे पञ्च हरा भद्रेऽर्काकपदे मते ॥१३६॥
 चतुर्दशे त्रिलिङ्गानि भद्रे नवनवात्मके । चरमे ततस्तु रचयेत्सर्वतोभद्रमुत्तमम् ॥१३७॥
 खंडेन्दुस्त्रिपदः कोणे शृङ्खला षट्पदात्मिका । त्रयोदशपदा वल्ली वापी तत्त्वमितिर्मता ॥१३८॥
 भद्रे षोडश षोडशपदेऽन्तः परिधिर्भवेत् । तदन्तरे पञ्च पञ्च पदैः पथं समुद्धरेत् ॥१३९॥
 विषित्रं चित्रवर्णं च श्वेतेन्दुः शृङ्खलाऽसिता । वापी शुक्लाऽसितः संपूर्णः भद्रे प्रकल्पयेत् ॥१४०॥
 नीला वल्लीश्वरस्कंधकोष्ठाश्रिता यथारुचि । यत्र यत्र पदानीह शेषभूतानि तानि तु ॥१४१॥
 यथायोग्यं धिया तत्र शृङ्खलार्थे नियोजयेत् । शुक्लरक्तकृष्णवर्णा ह्येते परिधयस्त्रयः ॥१४२॥
 वा पूर्वशीतपरिधिं दत्त्वा देवास्त्रयस्ततः । एतेषां परिधीनां वै पदान्यष्टाधिकानि हि ॥१४३॥
 नोक्तानि पूर्वसंख्याया ज्ञात्वेत्थं वृद्धिमाचरेत् । अग्रेऽप्येवं हि बोद्धव्यं परिधीनां चतुष्टये ॥१४४॥
 एतदष्टोत्तरदशशतं भद्रं लिङ्गोद्भवं स्मृतम् । एकस्त्वयं प्रकारो हि प्रकारांतरमुच्यते ॥१४५॥

॥ १२७ ॥ ग्यारह पादकी वल्ली और तेरह पादकी वापी बनायी जायगी । अष्टारह पादके शंभु बनाये जायेंगे । इसी क्रमसे लिखें ॥ १२८ ॥ उसमें पहली परिधिके पहले लिङ्गोंको योजना करे । इसके अनन्तर चौथीस वापिया बनावे ॥ १२९ ॥ सत्पञ्चात् भद्रमें बारह बारह पादके ३१ लिङ्ग बनावे । फिर तोसरो पंक्तिमें नौ-नौ पादके २९ भद्र बनावे । फिर छः पादके दो भद्रोंको रचना करे । चौथी पंक्तिमें बारह-बारह पादके २६ लिङ्ग बनावे ॥ १३० ॥ १३१ ॥ पाँचवीं पंक्तिमें नौ-नौ पादके २४ शिव बनावे । छठी पंक्तिमें छ-छः पादके भद्रोंमें १२ लिङ्गोंकी रचना करे ॥ १३२ ॥ सातवीं पंक्तिमें बारह पादवाली १९ लिङ्गोंकी श्रेणी बनावे । आठवीं पंक्तिके नौ पादके भद्रोंमें १७ शिव बनावे । नवीं पंक्तिके सोलह-सोलह पादात्मक भद्रोंमें १४ शङ्कर बनावे । दसवीं पंक्तिके बारह-बारह पादके भद्रोंमें बारह शिव बनावे ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ ग्यारहवीं पंक्तिके नौ-नौ पादात्मक भद्रोंमें शिवकी रचना करे ॥ १३५ ॥ बारहवीं पंक्तिके सोलह-सोलह पादात्मक भद्रोंमें सात लिङ्गोंकी रचना करे । तेरहवीं पंक्तिके बारह-बारह भद्रोंमें पाँच शिव बनावे ॥ १३६ ॥ चौदहवीं पंक्तिके नौ-नौ पादात्मक भद्रोंमें तीन लिङ्गोंकी रचना करे । अन्तमें उत्तम सर्वतोभद्र बनावे ॥ १३७ ॥ कोणभागमें तीन पादका एक खंडेन्दु और छः पादकी शृङ्खला बनावे । तेरह पादकी वल्ली और पञ्चास कोष्ठकी वापी बनावे ॥ १३८ ॥ भद्रमें सोलह-सोलह पादकी परिधि बनावे । इसके पाँच-पाँच पादका कमल बनावे ॥ १३९ ॥ उस कमलका रङ्ग विष-विचित्र रहेगा । वल श्वेतवर्ण और शृङ्खला काले वर्णकी रहेंगी । वापी सफेद, शिव शुक्ल, लाल भद्र, नील वल्ली रहेंगी और वल्ली तथा शिवके स्कन्धवाले कोष्ठक अपने इच्छानुसार विष-विचित्र वर्णके बनावे । इससे भी जो पाद शेष बचें, वे अपने इच्छानुसार रङ्गसे रङ्गे जाकर शृङ्खलानिर्माणके काममें आ जायेंगे । अन्तकी तीन परिधियाँ सफेद, लाल और काले वर्णकी रहेंगी ॥ १४०-१४२ ॥ अथवा पहली परिधि पीले रङ्गकी बनाकर तीन परिधियाँ और बनावे । इन परिधियोंमें पाद अधिक रहा करेंगे ॥ १४३ ॥ किन्तु ये पूर्वसंख्याकी गणना करते समय नहीं गिनाये हैं । ऐसा समझकर वृद्धि करे । इसके आगे चारों परिधियोंमें भी यही क्रम रहेगा ॥ १४४ ॥ यही अष्टोत्तरसहस्र रामतोभद्रका क्रम है । यह एक दुर्गा । दूसरा प्रकार

द्वे श्लोके सप्त पञ्चाशद्रेखाः पूर्वोत्तराः स्मृताः । पीताः परिधयः कार्याः पट्टादौत्तमं सर्वतः ॥१४३॥
 समंदुसंख्या रचयेद्विज्ञानां योजयेद्विधा । सर्वतस्तन्मिता चाद्या त्वनेत्रमिता परा ॥१४४॥
 सप्ताक्षिसंमिता त्वन्या वक्ष्यमाणानि धारय । वाशाक्षायिनयना नेत्रनेत्राय विंशतिः ॥१४५॥
 गजेंद्रुगिरिचन्द्रा च राणेंद्रुहृत्शुक्रं शशी । रुद्रादगाल्यप्रमिता पट्टं चन्वारि त्रिचन्द्रमाः ॥१४६॥
 प्रतिपंक्तिमेकवापी लिङ्गोभ्यम्बर्धिका भवेत् । चतुर्विंशत्पदं लिङ्गं वापी चम्बिदुपादिका ॥१४७॥
 भद्रसंख्या क्रमेणैव जानीयाद्वक्ष्यमाणतः । पूर्वपंक्तौ पञ्चम्यां भवस्यां हि तथैव च ॥१४८॥
 त्रयोदश समदशपोभेदं विंशपदं स्मृतम् । त्रितीयायां च पट्ट्यां च दशम्यां च तर्जो तथा ॥१४९॥
 चतुर्दश्यां स्मृतं भद्रं पञ्चविंशपदं स्मृतम् । तृतीयायां च सप्तम्यामष्टादश्यां तथैव च ॥१५०॥
 पञ्चदश्यां हि पंक्तौ च भद्रं त्रिंशपदान्महम् । षट्षिंशद्विः पदेभ्यश्चतुर्ध्यां च ततः स्मृतम् ॥१५१॥
 वक्ष्यकोषोदशीष्वेव भद्रं षोडशपादजम् । सर्वकोणेषु त्रिपदचन्द्रः शृङ्खलिकापदः ॥१५२॥
 पञ्चभिरेकादशभिर्लता कार्या ततोऽन्तरे । सर्वतोभद्रकं रच्यं चतुर्विंशस्तु चारिका ॥१५३॥
 भद्रं नवपदं सर्वपार्श्वेष्वेवं प्रकल्पयेत् । परिधयन्तभेदेष्वग्रं रक्तं चित्रं यथारुचि ॥१५४॥
 कृष्णं लिङ्गं शृङ्खलापि भद्रं रक्तं च चारिका । श्वेतः शशी मितो ज्ञेयस्तथा नीला स्मृता लता ॥१५५॥
 शिष्टानीह पदान्येव भद्राथर्वं नियोजयेत् । पीतशुक्लकृष्णरक्ता सन्ते परिधयः स्मृताः ॥१५६॥
 अष्टोत्तरसहस्राक्ष्य लिङ्गतोभद्रकं त्विदम् । एवं विकल्पतः प्रोक्ता रचना द्विविधा मया ॥१५७॥
 अथान्यत्तं प्रवक्ष्यामि प्रकारान्तरमुत्तमम् । सैकविंशच्छतैर्लिङ्गैर्लिङ्गतोभद्रमादरात् ॥१५८॥
 अष्टादशरेखाः प्राग् पश्चात् पश्चिमोत्तरदिक्षु च । सप्तार्शानिपदेष्वेव लिङ्गानां पञ्च पंक्तयः ॥१५९॥
 तासु प्राथमिकायाश्च विस्तारः कथ्यतेऽधुना । पृथक् कोणेषु त्रिपदः शशी श्वेतस्वद्वयतः ॥१६०॥

वतलाने हैं ॥ १४५ ॥ पूर्वे और उत्तरके कोने २५८ रेखाएँ लीं च । छः छः पादके अन्तमें लक्ष्मी और परिधियाँ बनावे ॥ १४६ ॥ अपनी बुद्धिके अनुसार १७ लिङ्ग बनावे । बायीं और १७ लिङ्ग रहेंगे, किन्तु आदिकी पंक्ति में २१ लिङ्ग रहेंगे ॥ १४७ ॥ इसके आगे चलकर २७ लिङ्ग वतलानेवाले हैं । सो भी समझ लो । इसके आगे २५, फिर २३, फिर २२, फिर २०, इसके बाद १७, फिर १५, फिर १३, ग्यारह, दस, आठ, छः, चार, तीन और एक लिङ्ग रहेंगे ॥ १४८ ॥ १४९ ॥ प्रत्येक पंक्तिमें लिङ्गों की अपेक्षा एक वापी अधिक रहेंगी । चौकीस पादका लिङ्ग और अठारह पादकी वापी बनेगी ॥ १५० ॥ आगे चलकर जैसा वतलानेवाले हैं, उस क्रमसे भद्रकी संख्या जाननी चाहिए । पहली, पाँचवीं, नवीं, तेरहवीं और सगहवीं पंक्तिमें दोस पादका भद्र बनाना चाहिए । दूसरी, छठी, दसवीं तथा चौदहवीं पंक्तिमें पञ्चास पादका भद्र बनाना चाहिए । तीसरी, सातवीं, ग्यारहवीं तथा पन्द्रहवीं पंक्तिमें तीस पादका भद्र बनावे । चौथी पंक्तिमें छत्तीस पादका भद्र बनावे ॥ १५१-१५४ ॥ आठवीं, बारहवीं तथा सोलहवीं पंक्तिमें सोलह पादका भद्र बनाना चाहिए । हर एक कोनेमें तीन पादका चन्द्रमा बनेगा और पाँच पादकी शृङ्खला बनेगी । इसके अन्तर ग्यारह पादकी बल्ली बनायी जायगी । तब सर्वतोभद्र बनेगा और चौकीस पादकी वापी बनेगी । सब ओर नौ पादका भद्र बनेगा और परिधिके बीचमें झाल रङ्गका जयवा जैसी अपनी हवि हो, वैसा कमल बनावे ॥ १५५-१५७ ॥ लिङ्ग और शृङ्खला काली, भद्र लाल, वापी सफेद, चन्द्रमा सफेद और बल्ली काली रहेंगी ॥ १५८ ॥ बाकी सब भद्र आदिके लिए नियत कर दे । पीत, शुकल, कालो और लाल, क्रमशः अन्तमें ये परिधियाँ रहेंगी ॥ १५९ ॥ यह अष्टोत्तरसहस्र नामका लिङ्गतोभद्र है । इस तरह विकल्पन करने रचनाके दो प्रकार वतलावे ॥ १६० ॥ मैं तुम्हें दूसरा और उत्तम प्रकार बतलाता हूँ । इनकीस सौ विगोसि इस लिङ्गतोभद्रकी रचना होगी ॥ १६१ ॥ सट्ठासी रेखाएँ पूर्व-पश्चिम तथा अष्टासी ही रेखाएँ उत्तर-दक्षिण लीं च । सप्तासी पादोंमें केवल लिङ्गके लिए पाँच पंक्तियाँ छोड़ दो जायेंगी ॥ १६२ ॥ अब मैं पहली पंक्तिका विस्तार बतलाता हूँ । प्रत्येक कोणमें तीन-

मृङ्गला कृष्णवर्णा च पर्दः पञ्चभिरुत्तमा । तस्याः पार्श्वद्वये कार्ये वन्द्यौ हरितवर्णके ॥१६४॥
 पृथगेकादशपर्दस्ततः पीते तु मृङ्गले । षड्भिः पर्दरुमयतो मद्रं षोडशपादजम् ॥१६५॥
 आरक्तं च सित्ता वाप्यो दशाष्टादशपादजाः । कृष्णान्यष्टादशपर्दनेत्र लिङ्गानि कारयेत् ॥१६६॥
 मस्तकोपरि मद्रस्य लोहिते मृङ्गले शुभे । द्वाभ्यां पदाभ्यां च पृथङ् मध्ये हरितमृङ्गला ॥१६७॥
 रचिता त्रिपदा रम्या वापीनां मस्तकोपरि । आरक्ते द्वे पदे कार्ये चैकं हरितमृङ्गला ॥१६८॥
 उभयोः पार्श्वयोर्लिङ्गमस्तकस्य सिते पदे । एवं सर्वत्र षोडशव्यं परिधिः पीतवर्णकः ॥१६९॥
 सप्ताशीतिपर्दश्चैव समाप्ता प्रथमा ततिः । प्रोच्यतेऽग्रे द्वितीया तु पक्तिस्त्रिपदादजा ॥१७०॥
 शशी च मृङ्गलावल्लयी मृङ्गले द्वेऽत्र पूर्ववत् । मद्रं त्रिष्वर्दज्ञेयं नव वाप्यस्त्रयोदशैः ॥१७१॥
 पर्दरष्टात्र लिङ्गानि भद्रयोर्मस्तकोपरि । द्वाभ्यां कार्ये मृङ्गलेऽत्र लोहिते द्युत्तरे तयोः ॥१७२॥
 द्विपदा मृङ्गला पीता हरिता त्रिपदा स्मृता । आरक्तं च पद कार्ये वापीनां मस्तकोपरि ॥१७३॥
 पूर्ववत्सकलं श्रेयमेकपट्टिपर्दः शुभाः । परिधिः पीतवर्णश्च जाता पक्तिर्द्वितीयका ॥१७४॥
 ऊर्ध्वकेन पदा पट्टिपर्दः पक्तिस्तृतीयका । भद्र षड्भिः पर्दः प्रोक्तं समलिङ्गानि कारयेत् ॥१७५॥
 वाप्यः स्मृताः शेषं पूर्ववच्च प्रकीर्तितम् । समचत्वारिंशत्पर्दः परिधिश्च प्रकीर्तितः ॥१७६॥
 जाता तृतीया पक्तिर्हि चतुर्थार्थं निगद्यते । पञ्चचत्वारिंशत्पर्दैरियं पक्तिरुदाहृता ॥१७७॥
 भद्रमर्कपर्दज्ञेयं पञ्च वाप्योऽत्र कीर्तिताः । तुर्यलिङ्गानि कार्याणि मद्रस्य मस्तकोपरि ॥१७८॥
 आरक्ता षट्पदा वल्ली परिधिस्रिभिः पर्दः । जाता चतुर्थपक्तिर्हि पञ्चमैकत्रिभिः पर्दः ॥१७९॥
 मद्रं नवपदं श्रेयं त्रिवाप्यो द्वौ हरौ स्मृतौ । त्रिपदा मृङ्गला स्वता मद्रस्योपरि कीर्तिता । १८०॥
 एकोनविंशतिपर्दः परिधिः संप्रकीर्तितः । जातेयं पञ्चमा पक्तिस्तत्र सप्तदशैः पर्दः ॥१८१॥

तीन पादका श्वेत चन्द्रमा बनावे । पाँच पादसे काले रंगकी सुन्दर मृङ्गला बनावे । उसके दोनों बगल हरे रंगसे ग्यारह पादकी बल्लियाँ बनावे । इसके बाद छः पादसे पीले रंगकी मृङ्गला बनावे और सोलह पादसे दोनों ओर भद्र बनावे, जिसका रंग लाल रविवं ॥ १६३-१६५ ॥ तदनन्तर अठ्ठाईस पादसे सफेद वापियें बनावे । अठ्ठाईस पादसे काले रंगके नौ लिङ्गोंकी रचना करे । भद्रके मस्तकपर लाल रंगकी दो मृङ्गलायें बनावे । दो पादोंसे अलग और बीच-बीचमें हरे रंगकी मृङ्गला बनावे ॥ १६६ ॥ १६७॥ जिसमें कुल तीस पाद रहेंगे । वापीके मस्तकपर लाल रंगकी दो पादोंकी मृङ्गला हरे रंगकी बनेगी । आस-पास तथा लिङ्गके मस्तकपर सफेद रंगसे दो पादकी मृङ्गला बनेगी । इसी तरह सर्वत्र जानना चाहिये । इसकी परिधिपीत वर्णकी रहेंगी । इस तरह सत्तासी पादोंकी पहली पंक्ति समाप्त हुई । तिहत्तर पादोंवाली दूसरी पंक्तिके विषयमें कहते हैं ॥ १६८-१७० ॥ इसमें चन्द्रमा, मृङ्गलायें वल्लियाँ ये पूर्व पंक्तिके समान रहेंगी । बीस पादका भद्र और तेरह पादकी नौ वापियें बनेगी । तेरह ही पादोंसे भद्रके मस्तकपर लिङ्ग बनाये जायेंगे । उसी जगह दो पादोंसे लाल रंगकी दो मृङ्गलायें बनावे । दो पादसे पीली मृङ्गला और तीन पादकी हरी मृङ्गला बनावे । वापीके मस्तकपर कुछ लाल पाद रखें ॥ १७१-१७३ ॥ बाकी चीजें पहली पंक्तिके समान ६१ पादोंसे बनेगी । दूसरी पंक्तिकी परिधि पीले वर्णकी रहेगी । यह दूसरी पंक्ति समाप्त हो गयी ॥ १७४ ॥ पादकी तीसरी पंक्ति रहेगी । छ-छ पादोंसे एक भद्र, सात लिङ्ग और आठ वापियें बनावे । बाकी पहली पंक्तिकी तरह रहेगा । इसमें सत्तालिस पादोंकी परिधि बनायी जायगी ॥ १७५ ॥ १७६ ॥ प्रकार तीसरी पंक्ति समाप्त हुई । अब चौथी पंक्तिके विषयमें बतलाते हैं । यह चौथी पंक्ति पँतालिस पादोंकी रहेगी ॥ १७७ ॥ इसमें बारह एक भद्र बनेगा । पाँच वापियें बनेगी । भद्रके मस्तकपर चार लिङ्ग बनेंगे ॥ १७८ ॥ छः पादोंसे बिल्कुल लाल वर्णकी बल्लियाँ बनेगी । तीन-तीन पादोंकी परिधि बनेगी । इस तरह चौथी पंक्ति समाप्त हुई । पाँचवीं पंक्ति कुल इकतीस पादोंकी रहेगी ॥ १७९ ॥ इसमें नौ पादवा भद्र वसिष्ठा, तीन वापियें बनेगी और दो शिवकी रचना की जायगी । भद्रके मस्तकपर लाल रंगकी तीन पादवाली

चतुष्कोणं समं तत्र सर्वतोभद्रमालिखेत् । तस्यापि कम एवामं त्रिषदश्च शशी सितः ॥१८२॥
 कृष्णाः पंचपदैः कार्याः शृङ्खलाः सर्वतः शुभाः । पदैरष्टादशैर्लिगं पश्चिमे तस्य पार्श्वयोः ॥१८३॥
 त्रयोदशपदैर्वाप्यो भद्रं तुर्यपदान्मके । याम्यप्रागुत्तरेष्वेव मध्ये तिस्रश्च वापिकाः ॥१८४॥
 भद्रं नवपदैः कार्या बल्लयो दशपदात्मिकाः । बल्लयोः स्थाने पश्चिमेऽत्र द्वाचन्ते हरिने पदे ॥१८५॥
 मध्येऽत्र धुटिता बल्ली भद्रं यच्च नवान्मकम् । तस्योपरि पदाभ्यां हि रक्ताऽत्र शृङ्खला स्मृता ॥१८६॥
 वापीनां मस्तके कार्यं पदं रक्तं च पार्श्वयोः । मिते द्वे द्वे पदे कार्ये परिधिः पंचपादजः ॥१८७॥
 रक्तमष्टदलं मध्ये कार्यं नवपदान्मकम् । कर्मिका पीतवर्णा च बाह्याः परिधयः क्रमात् ॥१८८॥
 पीतशुक्लरक्तकृष्णाः संकविंशशतान्मकम् । कवितं लिगतोभद्रं सर्वेषां मुकुटोत्तमम् ॥१८९॥
 प्रकाशंतरमन्यच्च शृणु शिष्य ब्रवीमि ते । तिर्यग्ध्वज्जुता रेखास्त्यधिकाः शतसंस्तरकाः ॥१९०॥
 शतं द्व्यधिककोष्ठेषु रचयेद्विगपंक्तयः । नवाष्टमचचारि द्व्येकमंशुशतुर्दिग्म् ॥१९१॥
 लिगसंख्याधिका बागी प्रतिपंक्ति भवेदिह । पट्मु पश्चिम्यस्तत्र पट्पदानि तु वापिकाः ॥१९२॥
 कोणेष्विदुः शृङ्खला च बल्ली च रचयेत्क्रमान् । त्रिपंचकादशपदे लिगं षष्टमितं त्रिषट् ॥१९३॥
 वापी भद्राणि क्रमशः पट्त्रिंशद्विंशतश्चरजम् । त्रिंशत्पट्त्रिंशद्विंशच्चान्यपंक्तेश्च पार्श्वके ॥१९४॥
 एकस्मिन् रचयेद्विंशद्वयं भद्रे रसान्मके । तस्योपरि भवेत्सर्वतोभद्रं तत्र वापिका ॥१९५॥
 चतुर्विंशत्पदं भद्रमंकमंशुशतं ततः परम् । परिध्यन्ते तुर्यतुर्यपदैः पञ्च समुद्धरेत् ॥१९६॥
 चित्रं वा लोहितं लिगशृङ्खले कृष्णवर्णके । हरिता बल्ली भद्रं रक्तं शुद्धेऽब्जवापिके ॥१९७॥
 एकविंशोत्तरशतं लिगतोभद्रमीरितम् । प्रकाशंतरमन्यच्च शृणु शिष्य ब्रवीमि ते ॥१९८॥

शृङ्खला बनायी जायगी ॥ १८० ॥ उन्नास पदोंकी परिधि बनायी जायगी । इस तरह यह पाँचवीं पंक्ति समाप्त हुई । आगे छठी पंक्ति कुल सत्रह पदोंकी रहेगी ॥ १८१ ॥ इसके चारों कोनोंमें सर्वतोभद्रकी रचना करे । उसका क्रम इस प्रकार है । इसमें तीन पादसे सफेद रङ्गका चन्द्रमा बनेगा ॥ १८२ ॥ पाँच पादोंसे चाटों ओर काले रङ्गकी शृङ्खला बनावे । अष्टारह पादका लिग बनाकर उसके दोनों बगल तेरह पादकी दो वापियाँ बनावे । दक्षिण, पूर्व, उत्तर दिशाओंके मध्यमें तीन वापियाँ बनावे ॥ १८३ ॥ १८४ ॥ नौ पादोंमें भद्र बनाकर दस पादोंकी बल्लियाँ बनावे । पश्चिमवाली दोनों बल्लियाँ हरे रङ्गकी रहेंगी ॥ १८५ ॥ पंक्ति के बीचकी बल्ली टूट जायगी और नौ पादवाले भद्रके स्थानमें लाल रङ्गकी शृङ्खला रहेगी ॥ १८६ ॥ वापीके मस्तकपर काले रङ्गका पाद रहेगा और आस-पासके दो पाद सफेद हों रहेंगे । पाँच परिधियाँ चनेंगी ॥ १८७ ॥ बीचमें लाल और नौ पादका अष्टदल कमल बनेगा । इसकी कर्मिका पीली रहेगी और परिधियाँ क्रमशः पीली लाल और काली रहेंगी ॥ १८८ ॥ यह मैंने एकविंशतिशतात्मक लिगतोभद्रका बतलाया । अबतक मिलने ली बतलाये हैं, उनमें सर्वतोभद्र मुकुटके समान रहेगा ॥ १८९ ॥ हे शिष्य । अब प्रकाशंतर बतलाता हूँ, सुनो । खड़ी और त्रेकी कुल १०३ रेखाएँ लीचें ॥ १९० ॥ उनमेंसे १०३ कोष्ठमें लिगकी पंक्तियाँ बनाये । इसके चारों ओर नौ, आठ, छ, चार, दो और एक संख्याके कोष्ठक लिगके लिये निर्धारित होंगे ॥ १९१ ॥ प्रत्येक पंक्तिमें लिगसंख्याकी अपेक्षा बागीकी संख्या अधिक रहेगी । छः पादोंकी परिधियाँ रहेंगी । उसके बाद वापी रहेगी ॥ १९२ ॥ कोनोंमें इन्दु, शृङ्खला तथा बल्ली बनायी जायगी । क्रमशः तीन, पाँच और ग्यारह पादोंसे २४ लिग बनाये जायेंगे और अष्टारह वापी बनेगी । फिर क्रमशः छत्तीस, बीस, पच्चीस, तीस, छत्तीस और बीस भद्र बनाये जायेंगे । अन्तिम पंक्ति के बगल एक स्थानपर छःछः पादके दो भद्र बनावे । उसके ऊपर सर्वतोभद्र रहेगा । चौबीस पादकी वापी बनेगी और नौ भद्र बनाये जायेंगे । परिधिके अनन्तर सोलह-सोलह पादके पद्य बनावे ॥ १९३-१९६ ॥ उन कमलोंका रंग विनवर्ण अथवा लाल रहेगा । लिग और शृङ्खलाएँ काले रङ्गकी रहेंगी । बल्लरी हरे रङ्गकी, भद्र लाल और कमल तथा वापी सफेद वर्णकी होंगी ॥ १९७ ॥ यह मैंने तुम्हें एकविंशोत्तरशत लिगात्मक भद्रकी रचनाका प्रकार बतलाया ।

षडधिकार्थीतिरेखास्तिर्यग्ध्वं प्रकल्पयेत् । पञ्चाङ्गीति पदानि स्युः पञ्क्तयस्तत्र सर्वतः ॥२९९॥
 तत्र षट् षट् पदान्ते स्यात्परिधिः पीतवर्णकः । सर्वतोऽनेन विधिना चतुःपरिधयः क्रमात् ॥२००॥
 तेषु वै पञ्चक्रोष्ठेषु लिङ्गादि रश्मिन्द्रिया । कोणेषु त्रिपदचन्द्रस्तदादि शृङ्खला मता ॥२०१॥
 ततो बल्ली ततो भद्र वापी लिङ्गं क्रमाद्भवेत् । तत्र प्रथमपञ्क्ती तु शृङ्खला पञ्चपादिका ॥२०२॥
 एकादशपदा बल्ली शृङ्खला षट्पदान्मिका । भद्रमेकपदं वापी त्रिषट् कोष्ठैः प्रकल्पयेत् ॥२०३॥
 ईशानस्तन्मते कार्यं एवं ते नवमंरूपया । भवन्ति चाप्यो दश ता भद्रद्वयमभीप्सितम् ॥२०४॥
 द्वितीयपञ्क्ती वापी तु त्रयोदशपदा मता । भद्रं तु षट्पदपदं शेषं पूर्वं समीक्षितम् ॥२०५॥
 अष्टौ लिङ्गानि वाप्यस्तु भवन्ति नवसमिताः । तृतीयार्था तुर्यपदं भद्रं शेषं तु पूर्ववत् ॥२०६॥
 अष्टौ वाप्यः सप्त दशः क्रमशः स्युः समुद्भूताः । द्वे वाप्यावन्ति मे न्युने त्रिभिः कोष्ठैस्तु मंस्मृते ॥२०७॥
 षतुर्थपञ्क्ती वाप्यस्तु षट्स्रः शंकरत्रयम् । भद्रं द्विदशकं ज्ञेयं शेषं पूर्ववद्द्वारेत् ॥२०८॥
 चतुर्थपरिधुपरि वाणान्ते परिधिर्भवेत् । तत्पञ्क्ती शृङ्खले न्युने पदेनैकेन बल्ली ॥२०९॥
 द्वाभ्यां पदाभ्यां चन्द्रस्तु यथापूर्वं प्रकल्पयेत् । भद्रद्वयं षट्पदपदं स्वन्यं भद्रे नवान्मके ॥२१०॥
 त्रयोदशपदवापी तत्र तत्र प्रकल्पयेत् । भद्रयोरुर्ध्वं स्याद्भद्रद्वयं षट्पदपदं शुभम् ॥२११॥
 संस्पृष्टानि पदान्येव शृङ्खलार्थे नियोजन । तस्योपरि परिधिस्तत्र वाणांते परिकल्पयेत् ॥२१२॥

उभयोर्मन्तरे वापी त्रयोदशपदात्मिका ॥२१३॥

भद्रद्वयं षट्पदपदं शेषं मयै यथोदितम् । अन्तिमेऽन्तः पञ्चपञ्चपदः एव समुद्धरेत् ॥२१४॥
 रक्तं वा चित्रवर्णं च श्वेतभन्द्रोऽमिता मता । शृङ्खला हरिता बल्ली पीतं तच्छृङ्खलाद्वयम् ॥२१५॥
 रक्तं भद्रं सिता वापी लिङ्गं कृष्णं प्रकल्पितम् । लिङ्गस्कन्धगताः कोष्ठाः शोभाकोष्ठाः प्रकल्पयेत् २१६॥

■ विषय । अब मैं तुम्हें प्रकारान्तर ~~प्रकार~~ रहा हूँ, गुणो ॥ १६८ ॥ सोची और टेढ़ी छियासी-छियासी रेखायें लीचें । ऐसा करनेपर उसमें चारों ओर पचासो-पचासो पादकी एक-एक पंक्तियां तैयार होंगी ॥ १६९ ॥ उसमें छ-छः पादके बाद पीले रंगकी परिधि रहेगी । इस रीतिसं प्रथमः चार परिधिवां बनेगी उनकी पवित्र तथा कोष्ठकमें अपनी बुद्धिके अनुसार लिङ्ग आदिकी रचना करे । प्रत्येक आदोंमें तीन-तीन पादका इन्द्रु बनावे और बसके आदिमें शृङ्खलाकी रचना करे ॥ २०० ॥ २०१ ॥ फिर उसके बाद बल्ली, फिर छः पादकी शृङ्खला, एक पादका भद्र और अट्ठारह कोष्ठकी वापीका निर्माण करे ॥ २०२ ॥ २०३ ॥ उतनी ही संख्याके शिव बनावे ।
 ■ प्रकार, दस वापियों और दो भद्र बनेंगे ॥ २०४ ॥ दूसरी पंक्तिमें तेरह पादकी वापी बनेगी । मोलह पादका भद्र बनेगा । बाकी सब चीजें पहली पंक्तिमें समान रहेंगी ॥ २०५ ॥ तीसरी पंक्तिमें आठ लिङ्ग, नौ वापियों और चार पादका एक भद्र रहेगा । बाकी सब चीजें पूर्ववत् रहेंगी ॥ २०६ ॥ आठ वापी, सात शिव एवं अन्तमें तीन पादकी दो वापी बनेगी ॥ २०७ ॥ चौथी पंक्तिमें चार वापी, तीन शंकर, बारह भद्र बनेंगे । बाकी सब पहली पंक्तिमें समान रहेगा ॥ २०८ ॥ चौथी परिधिके ऊपर पाँचवीं परिधिके बाद भी परिधि रहेंगी । इस पंक्तिमें पूर्व पंक्तिकी अपेक्षा एक कम शृङ्खला रहेंगी और एक पादकी बल्लरी बनायी जायगी ॥ २०९ ॥ तदनन्तर पहलीकी तरह दो पादोंका चन्द्रमा बनावे । छ-छ पादके दो भद्र बनावे । बाकी दो भद्र नौ नौ पादके रहेंगे ॥ २१० ॥ अपने-अपने स्थानपर तेरह-तेरह पादकी कुशा बनायें । दोनों भद्रोंके ऊपर छ-छ पादके दो भद्र बनावे ॥ २११ ॥ शृङ्खलाके लिये बने पादोंको नियुक्त करे । उसके ऊपर पाँच पादके अनन्तर परिधिकी रचना करे ॥ २१२ ॥
 ■ दोनोंके बीच तेरह पादकी एक वापी बनायी जायगी ॥ २१३ ॥ छः छः पादके बाद दो भद्र बनावे । बाकी सब पूर्ववत् रक्ते । अन्तिम पंक्तिमें पाँच-पाँच पादोंके कमल बनावे । उसका दर्प लाल अथवा बहुरंग रहें । चन्द्रमा सफेद और शृङ्खला काले वर्णकी रहेंगी । इसी प्रकार बल्लरी हरी, उसकी दोनों शृङ्खलायें पीली, लाल भद्र, सफेद वापी और काला लिङ्ग रहेगा । लिङ्गके स्कन्धवाले कोष्ठक शंभाके लिये रहेंगे ॥ २१४-२१६ ॥

पदानि शेषभूतानि यत्र क च भवन्ति हि । तानि तत्र यथायोग्यं धिया सम्यङ्निर्णययेत् ॥ २१७ ॥
 यद्वा तुर्यपरिध्वर्ध्वमेकादशपदात्परम् । परिधिः स्यात्तयोर्मध्ये कोणे चन्द्रो यथोदितः ॥ २१८ ॥
 शृङ्खला दशपादा स्याद्बल्ली स्यादेकविंशतिः । शृङ्खलाऽन्या रुद्रपदा भद्रं त्रिंशत्पदात्मकम् ॥ २१९ ॥
 एकषष्टिपदैर्वापी सम्यग्शुद्धया प्रकल्पयेत् । अथवा द्वे पदे चान्ये संयोज्य गिरिहस्तिषु ॥ २२० ॥
 पदेषु रचयेद्शुद्धया लिंगानां पक्षयः क्रमात् । नवाष्टरसत्रीण्येका शेष पूर्व यथोदितम् ॥ २२१ ॥
 विशेषस्तत्र भद्रेषु षड्लिंगे षोडशात्मकम् । एकलिंगे विंशपदं द्वाभ्यामन्यत्र चाधिकम् ॥ २२२ ॥
 पूर्ववत्सर्वतोभद्र पञ्चवर्णास्तु पूर्ववत् । पीतशुक्लरक्तकृष्णा वहिः परिधयः स्मृताः ॥ २२३ ॥
 एतदष्टोत्तरशतं लिंगतोभद्रमीरितम् । प्रकारान्तरमन्यत्तं शृणु शिष्य ब्रवीमि यत् ॥ २२४ ॥
 तिर्यगूर्ध्वं गता रेखा नवाष्टलोहिनाः स्मृताः । तत्कोष्ठेष्वब्धिनेत्राग्निः कोष्ठकं रचयेद्द्विधा ॥ २२५ ॥
 सर्वतोभद्रकं रम्यं परितः परिधिर्मतः । ततो रसरसांते स्युश्चतुःपरिधयः शुभाः ॥ २२६ ॥
 तत्र चतुर्षु पार्श्वेषु कोणेदुष्टिपदः स्मृतः । शृङ्खला पञ्चभिर्वर्ण्यं त्वेकादशपदा मत्ता ॥ २२७ ॥
 लिंगं चतुर्विंशपदं वापी त्वष्टादशा भवेत् । नव सम तथा पञ्चयुगनेत्रमिताः शिवाः ॥ २२८ ॥
 पञ्चपक्षय एव स्युर्वापिकैश्चाधिका ततः । तुर्यलिंगानि द्वे वाप्यां त्रयोदशपदात्मिके ॥ २२९ ॥
 षड्कार्करसरसभद्रसंख्या क्रमाद्भवेत् । सर्वतोभद्रकं वापी युगनेत्रमिता तथा ॥ २३० ॥
 नवकोष्ठमितं भद्रं शेष सर्वं तु पूर्ववत् । ततोऽन्तःपरिधिः कार्यस्तत्र पञ्च समुद्धरेत् ॥ २३१ ॥
 श्वेतोऽब्जः शृङ्खला कृष्णा नीला वज्रिकाऽरुणा । भद्रं वापी सिता कृष्णं लिंग परिधयोऽन्तिमाः २३२ ॥
 पीतशुक्लरक्तकृष्णाः श्रेयाः पीताश्च मध्यमाः । एतदष्टोत्तरशतं लिंगतोभद्रमीरितम् ॥ २३३ ॥

इनमें जहाँ कोई कोष्ठक बाकी बच जाय, उसे अपनी इच्छासे जिस रंगसे चाहे रंग ॥ २१७ ॥ अथवा चौपी परिधिके ऊपर ग्यारहवें पादके आगे एक परिधि बनावे । उसके बीचवाले कोणमें उक्त प्रकारसे चन्द्रमा बनावे ॥ २१८ ॥ इसमें पहली शृङ्खला दस तथा दूसरी ग्यारह पादकी बनेगी और भद्र तीस पादका रहेगा ॥ २१९ ॥ एकसठ पादकी वापी बनेगी । उन सबको अच्छी तरह मन लगाकर बनावे । अथवा और दो पादोंकी योजना करके सातवें और दसवें पादमें अपनी बुद्धिसे लिंगोंकी रचना करे । नौ, आठ, छः, तीन और एक उनकी संख्या रहेगी । बाकी पूर्ववत् रहेगा ॥ २२० ॥ २२१ ॥ इस भद्रोमेंसे छः लिंगवाले भद्रमें एक सोलह पादका और दूसरा बीस पादका लिंग रहेगा । दोसे अधिक लिंगवाले भद्रमें पूर्ववत् सर्वतोभद्रकी रचना होगी । इसके बाहरकी परिधियाँ पीत, रक्त तथा कृष्ण वर्णकी रहेंगी ॥ २२२ ॥ २२३ ॥ यह मैंने तुम्हें अष्टोत्तरशत लिंगतोभद्रका प्रकार बतलाया । अब दूसरा प्रकार बतलाता हूँ, सुनो ॥ २२४ ॥ खड़ी और बेंड़ी कुल नवासी रेखायें खींचे । उसके कानेवाले चार, दो, तीन कोष्ठकोंसे सुन्दर सर्वतोभद्र बनावे । उसके चारों ओर परिधि रखे । इसके अनन्तर छः छः पादोंके बाद परिधियोंकी रचना करे ॥ २२५ ॥ २२६ ॥ उसके चारों तरफके कोनोंमें तीन-तीन पादके चन्द्रमा बनावे । पाँच पादसे शृङ्खला और ग्यारह पादकी बल्ली बनावे ॥ २२७ ॥ चौबीस पादका लिंग और अठारह पादकी वापी बनानी होगी । इसमें नौ, सात, पाँच, चार, दो क्रमशः शिव बनाये जायेंगे ॥ २२८ ॥ इसमें कुल पाँच पंक्तियाँ रहेंगी और वापियोंकी संख्या एक-एक करके बढ़ती जायगी । इसमें चार लिंग और तेरह-तेरह पादकी दो वापियाँ रहेंगी ॥ २२९ ॥ छ, नौ, बारह, छः, छः, इस क्रमसे भद्रकी संख्या रहेगी । सर्वतोभद्रमें चार और दो वापी बनेगी ॥ २३० ॥ इनमें नौ कोष्ठकका भद्र बनेगा । बाकी बातें पहलेके समान रहेंगी । इस प्रकार भद्रकी रचना कर लेनेके बाद उसके भीतर परिधि बनाकर कमलकी रचना करे ॥ २३१ ॥ कमलका रंग सफेद रहेगा और उसकी शृङ्खला काळी रहेगी । बल्लेरियाँ नीली तथा भद्र लाल रहेगा । वापी सफेद, लिंग काळा और अन्तिम परिधियाँ नीली, सफेद, लाल तथा कृष्ण वर्णकी रहेंगी । यह भी एक प्रकारका अष्टोत्तरशत लिंगतोभद्र बतलाया ॥ २३२ ॥ २३३ ॥ अपना

तिर्यग्भूषणं पञ्च पञ्च रेखाः कार्पा मुलोहिताः । तत्कोष्ठेषु परिधयः षट् पदंते त्रयः स्मृताः ॥२३४॥
 त्रिदशकलिंगरचना चतुर्विंशतिपादिका । वापी त्र्यष्टादशपदा षट्त्रिंशद्द्विदशाङ्ककम् ॥२३५॥
 भद्रं भद्रं पीतमन्यद्भद्रपाश्वे प्रकल्पयेत् । प्रथमं नवपादं स्याद्द्वितीयं षट्पदान्मकम् ॥२३६॥
 वापीपाश्वे च त्रिपदा भृङ्खला लोहिता भवेत् । प्रतिपाश्वे भवेदेतच्छृङ्खला पञ्चपादिका ॥२३७॥
 एकादशपदा बल्ली त्रिपदश्चन्द्र ईरितः । चतुर्विंशपदं ज्ञेयं लिंगं परमसुन्दरम् ॥२३८॥
 मध्ये चन्द्रः भृङ्खला च त्रिपदा षट्पदा लता ।

भद्रमर्कपदं लिंगमष्टाविंशत्पदान्मकम् । लिंगमस्तकपाश्वस्थे पदानि पीतकानि तु ॥२३९॥
 लिंगं कृष्णं सिता वापी भद्रं रक्तं मितः शशी । भृङ्खला कृष्णहरिता बल्ली वर्णास्त्रिवीरिताः ॥२४०॥
 परिधिः पीतवर्णः स्यात्पदान्युर्वरितानि तु । यथेष्टं रज्ज्वेदेन द्वाणाक्षिलिंगसाधनम् ॥२४१॥
 पीतशुक्लरक्तकृष्णा बाह्याः परिधयः क्रमान् । प्रकाशं तरमन्यद्वा शृणु शिष्य ब्रवीम्यहम् ॥२४२॥
 चन्द्राब्धिपदसंख्यासु सर्वतरुतचसंमितम् । लिंगपीठं विरचयेत्पडते परिधिं मती ॥२४३॥
 तयोरर्वाग्लिङ्गपंक्तिद्वयं सम्यक् प्रकल्पयेत् । अष्टादशपदं लिंगं वापी त्रिदशपादिका ॥२४४॥
 त्रिपदोऽञ्जः भृङ्खला च पञ्चपादश्च वल्ली । युगलिङ्गाऽन्या पंक्तिर्लिङ्गद्वयान्विता ॥२४५॥
 आदौ भद्रं नवपादं परं भद्रं तु षट्पदम् । परिधये त्रयस्त्रिंशत्कोष्ठैर्लिङ्गं प्रकल्पयेत् ॥२४६॥
 मूलस्कंधौ सप्तसप्तपदजौ षट्पदः शिरः । पंचर्षचपदः पाश्वौ कटिः शभोस्त्रिपादजः ॥२४७॥
 चतुर्दिक्षु हरस्यास्य चतुर्भद्रं नवांगिकम् । चंद्रोऽत्र त्रिपदो ज्ञेयः भृङ्खला द्विपदा स्मृता ॥२४८॥
 बह्वरी पंचपादा स्याच्छृङ्खलाऽन्या त्रिपादजा । लिंगस्कंधगताः कोष्ठाः पीताः कार्पाः शुभावहाः ॥२४९॥

सीधो और सीखी लाल वर्णकी पाँच-पाँच रेखायें सीधे । उसके कोष्ठोंमें छः परिधियाँ और छः परिधिके आगे फिर तीन परिधि बनावे ॥ २३४ ॥ चौबीस पादसे तीन, दो लिंग बनाना होगा । अष्टारह पादकी वापी बनेगी । छत्तीस, बीस, नौ इन संख्याकोके बनावे ॥ २३५ ॥ उन भद्रोंके ही दूसरे पीत वर्णके दो भद्रोंकी रचना करे । जिसमें पहला नौ पादका और दूसरा षट् पादका रहेगा ॥ २३६ ॥ वापीके पास तीन पादकी लाल भृङ्खला रहेगी । इस प्रकार हर बगलमें पाँच पाँच पादकी भृङ्खलायें रहेंगी ॥ २३७ ॥ इसमें अष्टारह पादकी बल्लरी और तीन पादकी लता रहेगी । बारह पादका लिंग बनेगा ॥ २३८ ॥ मध्यमें एक चन्द्रमा, तीन पादकी भृङ्खला और छः पादकी लता रहेगी । बारह भद्र और अष्टादश पादका लिंग बनेगा । लिंगके मस्तकपर तथा बगलमें पीले वर्णके कुछ खाली कोष्ठक भी रहेंगे ॥ २३९ ॥ इसमें लिंग कृष्ण, वापी उज्ज्वल, लाल भद्र, उज्ज्वल चन्द्रमा, काली भृङ्खला, हरित वर्णकी बल्लरी ये वर्ण रहेंगे ॥ २४० ॥ इसकी परिधि पीले वर्णकी रहेंगी । बाकी जितने कोष्ठक बचे, उनको अपने इच्छानुसार जैसा चाहे वैसा रङ्ग दे । पञ्चोत्तम लिंग इस भद्रके साधन माने गये हैं ॥ २४१ ॥ बाहरकी परिधियाँ पीली, सफेद, लाल तथा काली रहेंगी । हे शिष्य ! मैं तुम्हें इसी भद्रका प्रकारान्तर बतला रहा हूँ ॥ २४२ ॥ एतत्तल्लिङ्ग पादोंमें पञ्चीस लिङ्ग और लिंगके बाद दो परिधि बनावे ॥ २४३ ॥ उन दोनों परिधियोंके पहले दो पंक्तियोंमें लिङ्गोंकी रचना करे । इसमें अष्टारह पादका लिंग बनेगा और तेरह पादकी वापी बनायी जायगी ॥ २४४ ॥ तीन पादका कमल और पाँच-पाँच पादके शिव तथा बल्लरीकी रचना की जायगी । पहिली पंक्तिमें चार और अन्य पंक्तियोंमें दो लिंग रखा करेंगे ॥ २४५ ॥ पहला नौ पादका रहेगा । बाकी सब भद्र छः छः पादके रहेंगे । परिधिके बाद तैंतीस पादका लिंग बनावे ॥ २४६ ॥ इसके मूल स्कन्ध सात-सात पादके रहेंगे । छः पादका मस्तक, पाँच-पाँच पादोंका पार्श्वभाग और तीन पादकी कटि बनेगी ॥ २४७ ॥ शिवके चारों ओर नौ-नौ पादके चार भद्र बनाये जावेंगे । इसमें चन्द्रमा तीन पादका, भृङ्खला दो पादकी, बल्लरी पाँच पादकी और दूसरी भृङ्खला तीन पादकी रहेगी । लिंगके स्कन्धवाले खाली कोष्ठक पीले रङ्गसे रङ्ग दिये

अन्यानि शेषभूतानि पदानि पूरयेद्विधा । यथेच्छं वै परिधयः कार्या वेदमिता बहिः ॥२५०॥
 पञ्चविंशच्छिर्वैरेतौ प्रकारौ द्वौ मयोदिता । अतिप्रिया अंकराय शातव्या द्विजसत्तम ॥२५१॥
 नमस्कृत्य महद्ब्रह्म गुरुपादसरोरुहम् । संसारतारक वक्ष्ये कथामध्यात्मसंग्रहाम् ॥२५२॥
 पञ्चविंशतिसंख्याकं लिङ्गतोभद्रमीप्सितम् । केनचिद् कल्पितं तत्किं तत्त्वं तत्कथ्यते स्फुटम् ॥२५३॥
 लिङ्गतोभद्रमित्येतन्निरुक्तमर्थवद्भवेत् । लिङ्गं गमकमित्याहुर्ज्ञानं ज्ञापकमित्यपि ॥२५४॥
 पीयूषवापनाद्वारी भद्रं भद्रसमीक्षणम् । साध्यशब्दाः प्रमिता हि वर्तन्ते साधनेष्वपि ॥२५५॥
 तस्मिन् शुक्लमुत नीलमित्यादिश्रुतिशामनात् । वर्णा अपि परस्मिस्तूपामनार्थं भवन्ति हि ॥२५६॥
 तद्ब्रह्म परमं लिङ्गं मङ्गलं भद्रवाचकम् । मङ्गलं मङ्गलानां च शिवं शांतमिति स्फुटम् ॥२५७॥
 लीयंते यत्र भूतानि निर्गच्छन्ति यतः पुनः । तेन लिङ्गं परं व्योम निष्कलः परमः शिवः ॥२५८॥
 सत्त्वं रजस्तमोवर्णश्रयं मायामु वेष्टितम् । मनश्चन्द्रो महामोहः शृङ्खला स्नेहवह्निका ॥२५९॥
 तैरिदं सर्वउत्तरं वेष्टितं घटव्योमवत् । तिर्यग्ध्वमहङ्कारः प्रसृतः पटतन्तुवत् ॥२६०॥
 तेन स्थानानि जातानि लक्षणां चतुरष्ट हि । गुणास्तेषु प्रपूर्यन्ते यथा चित्रपटो भवेत् ॥२६१॥
 आसीदेकं पुग तत्त्वं तस्मिन्मायानियोगतः । कामो बहुधा भवति भवेयमिति सादरम् ॥२६२॥
 एकः सन्निति चात्मानं स्वयमकुरुतेति च । इन्द्रो मायामिरिति च एकधा बहुधेति हि ॥२६३॥
 ऊचुश्च भुतयः साध्यो ब्रह्मणो भवनं प्रति । तज्जलानिति च श्रुत्वा न ततोऽस्ति हि किञ्चन ॥२६४॥
 यद्यप्येवं तथाप्यस्मिन् स्थितिर्मोहनो भवेत् । यावदहंकृतो भावस्तावत्संसार आयतः ॥२६५॥
 भिन्नोऽहमिति हृद्ग्रन्थो न संसारस्तदाश्रयः । गते तेजस्यं नु याति स्वप्नो निद्रानुगो यथा ॥२६६॥

जायेंगे ॥ २४८ ॥ २४९ ॥ बाकी जितने कोप्रक खाली वचें, उन्हें अपने इच्छानुसार रङ्ग दे । बाहरकी ओर स्वेच्छासे चार परिधियां बनाये ॥ २५० ॥ ये दोनों प्रकार मैने पञ्चास शिवके बतलाये हैं । हे द्विजसत्तम । ये दोनों शिवजीको परम प्रसन्न करनेवाले हैं ॥ २५१ ॥ अपने गुरुके महद्ब्रह्मस्वरूप धरणकमलको प्रणाम करके संसारतारक एक आध्यात्मिक कथा सुनाऊँगा ॥ २५२ ॥ किसीने पञ्चविंशति लिङ्गतोभद्र-नाम रचना क्यों की ? अब उसका स्पष्ट तत्त्व बतलाता हूँ ॥ २५३ ॥ पहले 'लिङ्गतोभद्र' इस शब्दका अर्थ बताते हुए कहते हैं कि लिङ्गको गमक, ज्ञान अथवा ज्ञापक नामसे पुकारा जाता है ॥ २५४ ॥ पीयूष (अमृत) का धवन करनेसे वारीका 'वारी' यह नाम पड़ा है । भद्र यानी कल्याणका समीक्षण करनेसे 'भद्र' का भद्र नाम रखवा गया है । प्रत्येक साधनोंमें उसके साध्य शब्द बतलाये जाते हैं ॥ २५५ ॥ "तस्मिन् शुक्लमुत नीलम्" आदि श्रुतियोंके कथनानुसार उपासनाके लिए वर्णकी भी आवश्यकता पड़ती है ॥ २५६ ॥ वह परब्रह्म ही लिङ्ग एवं मङ्गलवाचक भद्र शब्दसे अभिहित होता है । मङ्गलका भी मङ्गल करनेवाला शिव अर्थात् शान्त कहलाता है ॥ २५७ ॥ इन्द्रके समय जिसमें सब प्राणी सोन हों और मृष्टिकालमें उसीमेंसे निकल आये उसीको 'लिङ्ग' कहते हैं । ऐसा बौन ? वह परम व्योम, कलारहित तथा परम मङ्गलकारी शिव है ॥ २५८ ॥ सत्त्व, रज और तम ये तीन वर्ण मायाके जालसे वेष्टित हैं । इसमें मन चन्द्रमा, महामोह शृङ्खला और स्नेह बल्लरियाँ हैं ॥ २५९ ॥ इन सबसे आत्मा उसी तरह वेष्टित है, जैसे व्योम (आकाश) से घट-पट आदि जगत्के पदार्थ वेष्टित रहते हैं । उसपर भी तन्तुके समान अहङ्कारने उसे चारों ओरसे घेर रक्खा है ॥ २६० ॥ इसीसे चौगुनी लाख योनियोंकी उत्पत्ति हुई है । उनमें गुणोंका उसी तरह समावेश हो जाता है, जैसे एक कपड़ेपर कई रङ्ग चढ़ा दिये जायें, जिससे उसका रङ्ग विचित्र प्रकारका हो ॥ २६१ ॥ सृष्टिके पहले केवल एक तत्त्व यानी ब्रह्म था । भावाके योगसे उसमें बहुत प्रकारकी कामनायें उत्पन्न हुईं । तब उसे अकेले ब्रह्मने मायायोगसे अपने इच्छानुसार उस अकेले रूपसे बहुतरे रूप बना लिये ॥ २६२ ॥ २६३ ॥ इसके अनन्तर श्रुतियोंने ब्रह्मकी उत्पत्तिके लिए 'तज्जलान्' इस श्रुतिसे उस ब्रह्मकी प्रार्थना की । तब ब्रह्मकी उत्पत्ति हुई ॥ २६४ ॥ यद्यपि ये सब कार्य हुए हैं । तथापि मोहवश इसमें ब्रह्मकी स्थिति नहीं हो सकती । जबतक

एतदर्थं विरक्तः सन् जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् । आश्रयेत्सद्गुरुं साक्षाद्ब्रह्मभूतं निरामयम् ॥२६७॥
 तेन प्रबोधितः सिद्धमात्मानं संतमात्मनि । जानीयाद्ब्रह्मभावेन जगच्चित्तं स्थितं सदा ॥२६८॥
 ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशे संस्थितोऽमलः । एकोऽद्वितीयः परमो नांतः प्रज्ञादिलक्षणः ॥२६९॥
 अक्षरः सच्चिदानन्दोऽमरोऽजर उग्रश्चमः । निर्विकारो निराकारो निरामय उदीरितः ॥२७०॥
 अलिङ्गोऽरूप एवासावेकत्वगणनात्परः । मायया लिङ्गरूपीव ब्रोक इत्यभिधीयते ॥२७१॥
 पुरुषश्च प्रकृतिश्च व्यक्तोऽहंकार एव ॥ । चतुर्लिङ्गानि प्रोक्तानि लक्षणानि शिवस्य च ॥ २७२॥
 कार्यकारणभूतानामेकमेव हि पञ्चकम् । सत्त्वं रजस्तम इति त्रिसुलिङ्गानि चात्मनः ॥२७३॥
 दशेन्द्रियाणि च मनो बुद्धिर्द्वादशकं स्मृतम् । लिङ्गानां परमेश्वरस्य विवेकोऽत्र प्रतिष्ठितः ॥२७४॥
 इति कारणलिङ्गानि कार्यलिङ्गान्यनेकशः । श्रुतं सदस्यमयुतं कोटिशः संति संख्यया ॥२७५॥
 सर्वाणि ज्ञापकान्येष शिवस्य परमात्मनः । वस्तुतस्तु परं तत्त्वं सजातीयादिहीनकम् ॥२७६॥
 विचारे वर्तमाने तु तत्त्वाद्येव पटादि न । एवं सर्वं शिवो भाति न सर्वं शिव एव हि ॥२७७॥
 बिन्दुनादमकारादि मात्रत्रयमुदीरितम् । आत्मैव पञ्चधा साक्षात्तथा ब्रह्मेश्वरो हरिः ॥२७८॥
 विधिरुद्री पञ्च पञ्च सद्योजातादिरूपकः । शुद्धः साक्षी तथा प्राज्ञस्तंजसो विश्व एव च ॥२७९॥
 सच्चित्सुखत्रयं नामरूपे त्रयैव केवलम् । जातं पञ्चात्मक नान्यद्ब्रह्मैवेदमिति श्रुतिः ॥२८०॥
 प्रधानं महदहं च पञ्चतन्मात्रकं च तत् । अष्टप्रकृतिरित्येकच्छास्त्रेषु परिगीयते ॥२८१॥

ब्रह्मभाव है, तभीतक इस संसारका विस्तार है ॥ २६५॥ "अहं" इस अन्विके भिन्न होते ही न संसार रहता है और न उसका आश्रय ही रह जाता है। तेजके बिन्दुओं होते ही जलका भी हो जाता है। जैसे कि निद्राका नाश होनेके साथ ही स्वप्न भी नष्ट हो जाता है ॥ २६६ ॥ इसलिए जिज्ञासुको चाहिए कि वह विरक्त, साक्षात् ब्रह्मस्वरूप तथा रोग-शोकरहित किसी सद्गुरुकी से ॥ २६७ ॥ अब कि उसके उपदेशोंसे वह प्रबुद्ध हो जाय और अपनी आत्मामें ही सिद्ध हो जाय, अपने जगत्स्वरूप चित्तकी ब्रह्मभावसे देखे ॥ २६८ ॥ सब प्राणियोंके हृदयमें वह अमल ईश्वर निवास है। वह एक, अद्वितीय और सर्वश्रेष्ठ है। न उसका अन्त है और न प्रज्ञा आदि लक्षणोंसे ही वह जाना जा सकता है ॥ २६९ ॥ वह अक्षर (कभी मल न होनेवाला), सच्चिदानन्द, अजर, अमर और सबसे श्रेष्ठ विद्वान् है। इसलिये वह निर्विकार, निराकार और निरामय कहलाता है ॥ २७० ॥ उसका न कोई रूप है, न लिङ्ग है। अकेला रहकर भी गणनासे परे है। वह अपनी मायाके साथ लिङ्गरूपमें दोस्तता है, किन्तु वास्तवमें रहता है अकेला ही ॥२७१॥ पुरुष, प्रकृति, व्यक्त, अहंकार, ये चिह्न उस लिङ्गरूप ब्रह्मको पहचाननेके लिए बताते ॥ २७२ ॥ प्राणियोंका कार्य, कारण, सत्त्व, रज, तम इनका भी कुछ लोग आत्माका बताते हैं ॥ २७३ ॥ कुछ लोग दस इन्द्रिय तथा मन और बुद्धि, इन बारहको भी उसके चिह्न बतलाते हैं। इस प्रकार यहाँ उस परमेश्वरके लिङ्गोंका विचार किया गया है ॥ २७४ ॥ ऊपर बतलाये हुए सब चिह्न कारणके हैं। इनके अतिरिक्त कारणके भी बहुतसे लिङ्ग हैं। इन लिङ्गोंकी संख्या सैकड़ा, हजार, हजार एवं करोड़ों पर्यन्त ॥ २७५ ॥ उस मङ्गलमय परमात्माकी से संसारकी समस्त वस्तुएँ ही हैं। लेकिन वास्तवमें वही सर्वप्रधान और उसका कोई सजातीय और विजातीय नहीं ॥ २७६ ॥ अच्छी तरह विचार हो जानेपर वही निश्चित होता है कि वह केवल तत्त्व है, पट आदि नहीं ॥ २७७ ॥ जिस तरह बिन्दुभात्रसे वह अकारादि मात्रात्रयात्मक कहा जाता है। उसी तरह वह ब्रह्म, ईश्वर या हरि अकेला रहता हुआ भी पाँच प्रकारका है ॥ ७८ ॥ सद्योजातादि रूपधारी विधि (ब्रह्मा) और शिव भी पाँच ही पाँच प्रकारका है। वह स्वयं शुद्ध, साक्षी, प्राज्ञ, तंजस तथा विश्वरूप है ॥ २७९ ॥ नाम और रूपके भेदसे वह सत्, चित् तथा तीन प्रकारका है। किन्तु वह अकेला ही है। "ब्रह्मैवेदम्" इस श्रुतिसे भी वही सिद्ध होता है कि वह अकेला ब्रह्म ही पाँच प्रकारका हुआ या ॥ २८० ॥ प्रधान, महत्, अहङ्कार, पाँच तन्मात्रायेँ और

अष्टमूर्तिस्वरूपं सद्भवश्चादिनामभृत् । वस्त्वष्टकस्वरूपेण मायया भाति सर्वतः ॥२८२॥
 ज्योतिर्लिङ्गद्विषट्कं च द्वादशादित्यनामकम् । दशेंद्रियमनोबुद्धिनामभिर्भाति सत् स्फुटम् ॥२८३॥
 दशेंद्रियाणि च प्राणपंचकं भोग्यपंचकम् । चेतश्चतुष्कमान्मत्र पंचविंशमतो बुधः ॥२८४॥
 लक्षणां चतुरशीति भोगायतनविस्तरः । तस्यैव कल्प्यते आत्मा कर्मभिर्गुणभेदतः ॥२८५॥
 जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिं च भोगस्थानानि चात्मनः । भोगो भोक्ता भोजयिता सर्वं ब्रह्मैव न पृथक् ॥२८६॥
 अध्यात्ममधिदैवं च अधिभूतमिति त्रिधा । स्थूलं सूक्ष्मं कारणं च सर्वं ब्रह्मैव न पृथक् ॥२८७॥
 एतज्ज्ञानं च ध्यानं च विवेकश्च विरागिना । जीवेश्वरजगद्भानमात्मैवेति न तु पृथक् ॥२८८॥
 सर्वं खल्विदमिति चेदं सर्वं यदयमात्मना । ब्रह्मैवेदं सर्वमिति श्रुतयः प्रवदति हि ॥२८९॥
 अयं सिद्धस्य विषयो यत्सर्वात्मनि दर्शनम् । आरुरुक्षुः शान्तदांस्त्वितिष्ठुः सर्वतो भवेत् ॥२९०॥
 स्वदेष्टे प्राप्तपुरुषं निबध्नाति यक्षीकृतम् । तेनार्मा विषयाः प्रोक्ता मुमुक्षुस्तान् विवर्जयेत् ॥२९१॥
 विविक्तसेवी लज्जाशीत्यादि भागवतं वचः । किं बहुकेन विधिना समाप्तं शास्त्रद्वयम् ॥२९२॥

इदं मे गुरुणा किमप्यजडमानंदात्मवस्त्वद्रूपं

यत्सेवात् इदं तदात्मकमहं त्वं चाशु नष्टं तमः ।

जाग्रत् सहसोदितं महं श्रुतं गम्भीरमव्याकृतं

येनाच्छादितमिन्दुसूर्यपवनं विश्वं विंशपात्मकम् ॥२९३॥

तिर्यगूर्ध्वगता रेखाश्चत्वारिंशत्समाः शुभाः । तासामर्कत्रिकोष्ठेषु परिधां द्वा प्रकल्पयेत् ॥२९४॥
 समातिं प्रथमाऽन्यास्तु ततो वाष्पांतकोष्ठके । तन्मध्यं रुद्ररुद्रेषु पदेष्वष्टादशैः पदैः ॥२९५॥

आठ प्रकृष्टियाँ ये शास्त्रोंमें बतलायी गयी हैं ॥ २९१ ॥ उन आठों मूर्तियोंका स्वरूप सद्भव-शब्द आदि नामोंसे विख्यात । और मायावश । आठ वस्तुओंके नामसे भी अभिहित होते ॥ २९२ ॥ आठ ज्योतिर्लिङ्ग, द्वादश आदित्य, इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि इन नामोंसे भी । विश्वमें स्पष्ट दिखायी देता है ॥ २९३ ॥ दस इन्द्रियाँ, पाँच प्राणवायु, भोग्यपंचक और चार प्रकारका चित्त यह सब मिलाकर वह पञ्चीस प्रकारका माना गया है ॥ २९४ ॥ चौदासां लक्षण योनियाँ ही उसके भोगरूपी घरका विस्तार हैं । भ्रान्तिवश या गुण-कर्मके भेदसे उसीमें इन सबकी वस्त्वना की जाती है ॥ २९५ ॥ जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति ये आत्माके भोगस्थान हैं । भोग, भोक्ता, भोज्य ये सब वह ब्रह्म ही है और कोई नहीं ॥ २९६ ॥ अध्यात्म, अधिदेव, अधिभूत, स्थूल और सूक्ष्मका कारण एकमान ब्रह्म ही है ॥ २९७ ॥ यह ज्ञान, ध्यान, विवेक, विरागिता, जीव, ईश्वर, जगत्का भान यह सब वह आत्मा ही है और कोई नहीं ॥ २९८ ॥ "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" "यदयमात्मा" "ब्रह्मैवेदम्" ये श्रुतियाँ भी इसी बातको पृष्ट करती हैं ॥ २९९ ॥ संसारकी सब वस्तुओंको अपनी आत्माके देखना, यह विषय सिद्धपुरुषोंका है । जो प्राणी सिद्धिके गिलखरपर चढ़ना चाहता हो । उसे चाहिये कि वह शान्त, दान्त (इन्द्रियोंका दमन करनेवाला) और तितिक्षु बने ॥ २९० ॥ अपने देशमें जाये हुए पुरुषोंका ये सांसारिक विषय बाँध लेते हैं । इसीसे इन्हें लोभ विषय (विशेषेण सिन्धन्तीति विषयाः । अर्थात् भली-भाँति जकड़ लेनेवाले) कहते हैं । मुमुक्षु प्राणीको चाहिए कि इनका परित्याग कर दे ॥ २९१ ॥ "एकान्त स्यानमें रहे, योका स्थाय" इत्यादि बात भगवानने गीतामें स्वयं कही हैं । यहाँ विशेष विधि-विधान बतलानेकी आवश्यकता नहीं है । हृदयमें ज्ञानका प्रकाश होते ही सारे शास्त्र समाप्त हो जाते हैं ॥ २९२ ॥ यदि किसी सद्गुरुने कृपा करके अक्षरहित आनन्दारमक ज्ञानरूप वस्तु दे दी तो 'वह' 'हम' एक हैं । यह भाव उत्पन्न होनेसे हृदयका अज्ञानान्धकार नष्ट हो गया । एक अनिर्वचनीय प्रकाश और चन्द्रमा-सूर्य पवनपर भी आविर्पत्य जमानेवाली शक्तिसे सहसा यह विश्व आलोकित हो उठा, तब और किसी उपदेशकी आवश्यकता ही क्या है ? ॥ २९३ ॥ सीधी और टेढ़ी चाँचीस रेखाएँ बराबर-बराबर खींचे । उनके उनतालीस कोष्ठकोंमें दो परिधियाँ बना दे ॥ २९४ ॥ साठ

लिंगमेकं स्रष्टवाप्यौ तुर्यतुर्यपदान्तिके । अष्टकोष्ठात्मकं भद्रं प्रोक्तं पार्श्वचतुष्टये ॥२९६॥
 शृङ्खला द्विपदा चन्द्रं त्रिपदा वल्लरी तथा । पंचपादः स्मृतः वल्ल्यो त्रिपार्श्वेषु निमीलयेत् ॥२९७॥
 द्वितीये त्रिपदभद्रः शृङ्खला वेदपादिका । वल्लो नवपदा भद्रत्रयं नवपदात्मकम् ॥२९८॥
 त्रयोदशपदं वापीद्वयं पार्श्वे तु शृङ्खले । द्विपदे रक्तवर्णे च भद्रं तुर्यपदं हरिम् ॥२९९॥
 प्रतिपार्श्वे भवेदेतत्प्रथमाधःसु योजयेत् । प्रतिपार्श्वे चतुर्लिङ्गं वापीनां पञ्चकं तथा ॥३००॥
 अष्टादशपदं लिंगं वापी त्रयोदशात्मिका । भद्रं त्र्यसपदं ज्ञेयं वल्ली रुद्रपदात्मिका ॥३०१॥
 शृङ्खला पञ्चभिः पादैस्त्रिपदभद्रं हरितः । लिंगोपरितना वापी नीलवल्ल्या नियोजयेत् ॥३०२॥
 यथा रसाते परिधिं विधाय तदनन्तरम् । त्रिलिङ्गान्त्येकलिंगं च द्वयोः पञ्क्तयोः प्रकाशयेत् ॥३०३॥
 आदौ चन्द्रकलं भद्रं पदमर्कपदः स्मृतम् । शृङ्खलापञ्चभिर्वल्ली रुद्रकोष्ठा समीरिता ॥३०४॥
 वापीचतुष्टयं पूर्वं परं वापीद्वयं स्मृतम् । पूर्ववत्सकलं शेषं वाह्याः परिधयः क्रमात् ॥३०५॥
 पीतशुक्लरक्तकुष्मा ज्ञेयाः संरूपाधिकाः शुभाः । एतत्सप्तन्दुलिंगात्म्यं पीठं सम्यगुदाहृतम् ॥३०६॥
 अथवाऽस्मिन्निकोष्ठानि वर्द्धयित्वा क्रमेण तु । पञ्चानि परिधिं कार्यां तत्र लिङ्गानि योजयेत् ॥३०७॥
 प्रथमे त्रीणि लिंगानि द्वितीये चैकमीरितम् । चतुर्विंशपदलिङ्गं वाप्यष्टादशपादजा ॥३०८॥
 आदौ वेदमिता वाप्यो द्वे वाप्यौ च द्वितीयके । आदौ नवपदं भद्रं द्वितीयेऽर्कपदं स्मृतम् ॥३०९॥
 चन्द्रवल्ल्यादिष्वोक्तं मध्ये लिंगं प्रकाशयेत् । अष्टविंशपदं ज्ञेयं चतुःपादः शिरः कटिः ॥३१०॥
 अर्कमर्कपदे स्रष्टवाप्यौ द्विपदशृङ्खलाः । पञ्चपादा स्मृता वल्ली त्रिपदा पीतशृङ्खला ॥३११॥
 अर्कपदैश्चतुर्दिक्षु मध्ये भद्रचतुष्टयम् । चतुर्थ त्रिपदः कोणे शिवमस्तकपार्श्वके ॥३१२॥

कोष्ठकोके बाद पहिली परिधि बनाकर बाकी परिधियाँ पाँच-पाँच कोष्ठकोके बाद बनावे । उनके बीचमें एक-सौ-एकसौ पादोंमेंसे अट्ठारह-अट्ठारह पादका एक-एक लिंग बनावे । फिर चार-चार पादकी दो स्रष्टवापियोंकी रचना करे । इसके चारों बगल अष्टकोष्ठात्मक भद्र बनावे ॥ २९५ ॥ २९६ ॥ इसके बाद दो पादकी शृङ्खला, एकसे चन्द्रमा और तीन पादकी वल्लरी बनाकर इसके तीन बगलमें पाँच-पाँच पादकी वल्लरियाँ बनावे ॥ २९७ ॥ दूसरी पंक्तिमें तीन पादका चन्द्रमा, चार पादकी शृङ्खला, नौ पादकी वल्लरी, नौ-नौ पादके तीन भद्र, तेरह पादकी दो वापियाँ, बगलमें दो लाल शृङ्खलायें और चार पादसे हरे भद्रकी रचना करे ॥ २९८ ॥ २९९ ॥ यह कम प्रत्येक पार्श्वभागमें रहेगा । प्रत्येक पार्श्वभागमें चार लिंग, पाँच वापी, अट्ठारह पादका लिंग, तेरह पादकी वापी, छः पादका भद्र, बारह पादकी वल्लरी, फिर पाँच पादकी वल्लरी और तीन पादका चन्द्रमा बनेगा । लिंगके ऊपरकी चौथी मोली रहेगी और उसके साथ-साथ वल्लरी भी मोली रहेगी ॥ ३०० ॥ ३०१ ॥ ३०२ ॥ छः कोष्ठकोके बाद परिधि बनाकर तीन लिंग या एक लिंग दोनों पंक्तियोंमें बनावे ॥ ३०३ ॥ पहले सोलह भद्र बनाकर बारह पादोंकी शृङ्खला और बारह कोष्ठकोमेंसे पाँच पादकी वल्लरी बनावे ॥ ३०४ ॥ पहले चार वापी और फिर दो वापीकी रचना करे । बाकी सब पूर्ववत् रहेंगे और आहूतकी परिधियाँ क्रमजः पीली, सफ़ेद, लाल और काली रहेंगी । यह सप्तन्दुलिंगात्मक पीठ मैने अच्छी तरह बतलाया ॥ ३०५ ॥ ३०६ ॥ अथवा इसी पीठमें दो कोष्ठक और बढ़ाकर छःके बाद दो परिधि बनावे और प्रकार लिंगोंकी योजना करे ॥ ३०७ ॥ प्रथम पंक्तिमें तीन और दूसरीमें एक लिंग बनावे । इसी पीठमें चौबीस लिंग बनेगा और अट्ठारह पादकी वापी बनेंगी ॥ ३०८ ॥ आदिमें चार वापियाँ और दूसरेमें दो वापी रहेंगी । आदिमें नौ पादका भद्र बनेगा और दूसरेमें बारह पादका भद्र बनेगा । चन्द्रमा तथा वल्लरी बादि पूर्वोक्त नियमके अनुसार ही रहेंगे और मध्यमें लिंगकी रचना की जायगी । उसमें अट्ठाइस पाद रहेंगे और चार पादमें सिर तथा कमरकी रचना होगी । बारह-बारह पादसे दो स्रष्टवापियाँ बनायी जायेंगी । दो पादकी शृङ्खलायें बनेंगी । पाँच पादकी वल्लरी बनायी जायगी । तीन पादसे पीतवर्णकी शृङ्खला बनेगी ॥ ३०९ ॥ ३१० ॥ ३११ ॥ बारह पादसे चारों ओरकी शृङ्खला बनेगी ।

नेत्रार्थे द्वे पदे शुक्ले शेषाणि च पदानि हि । लिङ्गपार्श्वे पञ्च पञ्च यथेच्छं तानि पूरयेत् ॥३१३॥
 पीतशुक्लरक्तकुष्माग्निःपरिधयो मताः । एतत्सप्तदशलिंगैर्लिङ्गतोमद्रमीरितम् ॥३१४॥
 दशकं कारणानां च प्राणानां पञ्चकं मनः । षोडशेमाः कला आत्मा साक्षी सप्तदशः स्मृतः ॥३१५॥
 अर्कलिङ्गात्मकं भद्रं शृणु शिष्य मयोच्यते । प्रागुदीच्या मता रेखाः पट्त्रिंशद्वि प्रकल्पयेत् ३१६॥
 पदानि द्वादशभक्तं पञ्चविंशतिरेव च । स्रग्द्विपदः कोणे शृङ्खला पट्पदात्मिका ॥३१७॥
 त्रयोदशपदा बल्ली भद्रं तु नवभिः पदैः । भद्रोर्ध्वं त्रिपदा ज्ञेया द्वितीया पीतशृङ्खला ॥३१८॥
 त्रयोदशपदा वापी लिङ्गमष्टादशैः स्मृतम् । लिङ्गं नियम्य पङ्क्तौ तु शोभाकोष्ठमथुर्दश ॥३१९॥
 तेषामुपरि पङ्क्तौ तु कोष्ठाः सप्तदशैव तु । पूजापङ्क्तिः मिता ज्ञेया परितः परेकल्लिप्ता ॥३२०॥
 पूजापङ्क्त्यन्तरापङ्क्तौ कोष्ठा अशीनिसल्लयया । परिधिः स मण्डला रयोर्द्वयोः ॥३२१॥
 परिधयन्तरकोष्ठेषु सर्वतोभद्रमालिखेत् । विशेषश्चात्र वक्तव्यो शृङ्खला पट्पदा भवेत् ॥३२२॥
 त्रयोदशपदा बल्ली भद्रं तु द्वादशैः पदैः । पञ्चविंशत्पदा वापी परिधिः षोडशात्मकः ॥३२३॥
 मध्ये नवपदैः पञ्च कर्णिकाकेमगान्दिनम् । सप्त रजस्तमोवर्णाः परितो मण्डलस्य च ॥३२४॥
 त्रयः परिधयः कार्यास्तत्र द्वाराणि कारयेत् । मित्रेन्दुः शृङ्खला कुष्माग्निः बल्ली नीला प्रपूरयेत् ॥३२५॥
 भद्रं रक्तं शृङ्खलाऽन्या पीता वापी मिता स्मृता । लिङ्गानि कुष्माग्न्यानि पार्श्वेषु द्वादशैव तु ॥३२६॥
 परिधिः पीतवर्णः स्यात्कमलं पञ्चवर्णकम् । कर्णिका च केसरणि पीतवर्णानि कारयेत् ॥३२७॥
 प्रकारान्तरमन्यसे शृणु शिष्य मयोच्यते । पूर्वोत्तरगता रेखा सप्तविंशन्मिताः शुभाः ॥३२८॥
 तत्पट्त्रिंशत्पदेष्वेव सर्वतोभद्रमुत्तमम् । अधिधनेत्राग्रिकोष्ठश्च रचयेत्पूर्ववच्छुभम् ॥३२९॥

मध्यमें चार भद्र बनेंगे । कोणमें तीन पादका चन्द्रमा बनेगा । शिवजाके भस्त्रके पास नेत्रके लिए दो पाद सादा ही छोड़ दे । जिसने पाद हैं, उनमेंसे लिङ्गके आस-पासवाले पाँच-पाँच पादोंको अपने हृत्पदानुसार पूर्ण करे ॥ ३१२ ॥ ३१३ ॥ बाहरकी परिधियाँ पीत, शुक्ल, रक्त तथा कुष्म वर्णकी रहेंगी । यह सप्तदशलिंगात्मक भद्रकी रचनाका प्रकार बतलाया गया ॥ ३१४ ॥ दस इन्द्रियोंकी, पाँच प्राणोंकी, एक मनकी सोलह कलायें होती और सप्तहर्ष साक्षी माना जाता ॥ ३१५ ॥ हे शिष्य ! मैं द्वादशलिंगात्मक लिङ्गतोमद्रकी रचनाका प्रकार बतलाता हूँ, सुनो : पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिणको और छत्तीस-छत्तीस रेखायें खींचे ॥ ३१६ ॥ इसमें कुछ बारह सौ पञ्चोत्त पाद होंगे । तीन पादसे लक्ष्मण बनेगा और कोणकी ओर पादकी शृङ्खला रहेंगी ॥ ३१७ ॥ तेरह पादकी दो बल्लरी, नौ पादका भद्र, भद्रके ऊपर तीन पादकी पीली शृङ्खला, तेरह पादकी वापी और अट्ठारह पादका लिङ्ग बनाकर पङ्क्तिमें चौदह कोष्ठक शोभाके लिये रहने दे । उनके ऊपरवाला पङ्क्तिमें सप्तह कोष्ठक रहेंगे और चारों ओरसे सफेद रङ्गकी एक पूजापङ्क्ति रहेगी ॥ ३१८-३२० ॥ पूजापङ्क्तिको भीतरवाली पङ्क्तिमें अष्टो कोष्ठक रहेंगे । वे उन पङ्क्तियोंके बीचमें परिधिका काम देगे ॥ ३२१ ॥ परिधिके भीतरवाले कोष्ठकोंसे सर्वतोभद्रकी रचना करे । इस भद्रमें जो विशेषता है, उसे समझ लो । इसकी शृङ्खला पादकी रहेंगी ॥ ३२२ ॥ तेरह पादकी बल्लरी बनेगी । बारह पादका भद्र रहेगा । पञ्चोत्त पादकी वापी रहेगी और सोलह पादका परिधि बनेगी ॥ ३२३ ॥ बीचमें नौ पादका एक कमल बनेगा, जिसमें कर्णिका तथा केसर आदि भी रहेंगे । मण्डलके चारों ओर सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणोंकी रचना करनी होगी ॥ ३२४ ॥ इसमें तीन परिधियाँ रहेंगी और कई द्वार भी रहेंगे । इसमें उज्ज्वल चन्द्रमा, काली शृङ्खला, नील बल्लरी और लाल भद्र रहेगा । दूसरी शृङ्खला पीत वर्णकी और वापी सफेद रहेगी । आस-पास कुष्म वर्णके बारह लिङ्ग बनेंगे ॥ ३२५ ॥ ३२६ ॥ परिधि पीले रङ्गकी और कमल पाँच रंगका बनेगा । उसकी कर्णिका तथा केसर पीतवर्णका रहेगा ॥ ३२७ ॥ हे शिष्य ! अब मैं इसका एक दूसरा प्रकार बतला रहा हूँ । पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिण दोनों ओर सत्ताईस-सत्ताईस रेखायें खींचे ॥ ३२८ ॥ इसके छत्तीस पादोंसे सर्वतोभद्र तथा ३२४ पादसे अन्य वस्तुओंकी रचना करे

परिधिरतत्समंताच्च प्रकल्प्यः पीतवर्णकः । अष्टोत्तरशतैर्लिंगतोमद्रं कथितं यथा ॥३३०॥
 तस्य चतुर्षु पार्श्वेषु रचयेद्वर्कलिंगकम् । कोणे कोणे त्रिपदोऽब्जः शृङ्खला सप्तपादिका ॥३३१॥
 वल्लीमनुषदा भद्रं षट्पदं त्रींदुवापिका । लिंगं षड्विंशपदजं भद्रं स्याद्वापिकोपरि ॥३३२॥
 लिङ्गपार्श्वपदान्येव षट् पीतानि प्रकल्पयेत् । लिंगोपरितना वीर्या नीला वन्स्योनियोजयेत् ३३३॥
 चतुष्पदैर्लिङ्गशिरस्तथा परिचयो बहिः । सर्वाणि तु यथापूर्वमुक्तवर्णैः सुरञ्जयेत् ॥३३४॥
 चतुर्विंशतिरालेख्या रेखाः प्राग्दक्षिणायताः । कोणेषु शृङ्खला पञ्चपदा वन्स्यश्च पार्श्वतः ॥३३५॥
 पदैर्नवभिरालेख्याश्चतुर्विंशतशृङ्खलाः । लघुवन्स्यः पदैः षड्भिस्ततोऽष्टादशभिः पदैः ॥३३६॥
 कुर्यात् लिंगानि वाप्यस्तु त्रयोदशभिरन्तरा । ततो वीर्याद्वयेनैव पीठं कुर्याद्विचक्षणः ॥३३७॥
 तस्य पादाः पञ्चपदा द्वागप्यपि तथैव च । एकाशीनिपदं मध्ये पद्मं स्वस्तिकमिष्यते ॥३३८॥
 कोणेषु शृङ्खलाः कार्याः पदैस्त्रिभिरनः परम् । पदैश्चतुर्भिर्दिक्षु स्युर्मन्त्राण्यंघ्रां समन्ततः ॥३३९॥
 एकादशपदे वल्ग्वी मध्येऽष्टदलमालिखेत् । पद्मं नवपदं ह्येतन्लिंगतोमद्रमिष्यते ॥३४०॥
 शृङ्खला कृष्णवर्णेन वल्ली नीलेन पूरयेत् । रक्तेन शृङ्खला लघ्वी वल्ली पीतेन पूरयेत् ॥३४१॥
 लिंगानि कृष्णवर्णानि श्वेतेनाप्यथ वापिका । पीठं स्वपादं श्वेतेन पीतेन द्वारपूरणम् ॥३४२॥
 मध्ये स्युः शृङ्खला रक्ता वल्लीनीलेन पूरयेत् । भद्राणि पीतवर्णानि पीता पंकजकर्णिका ॥३४३॥
 दलानि श्वेतवर्णानि यद्वा चित्राणि कल्पयेत् । तिस्रो रेखा बहिः कार्याः सितरक्तासिताः क्रमात् ३४४॥
 ऊर्ध्वलिंगोद्भवं अष्टलिंगतोमद्रमुच्यते । अन्यन्मयातिरम्यं तच्छृणु शिष्यात्र कौतुकात् ३४५॥
 अष्टाविंशतिरेखाश्च तिर्यगूर्ध्वं समन्ततः । सप्तविंशतिकोष्ठेषु षडन्ते परिचयः स्मृताः ॥३४६॥
 कोणेषु त्रिपदैश्चन्द्रः शृङ्खला पञ्चपादिका । वाप्यर्कपादजा भद्रषट्कं षट्षट्पदात्मकम् ॥३४७॥

॥ ३२६ ॥ उसके चारों ओर पीतवर्णकी परिधि बनावे । पहले जो मैंने अष्टोत्तरशतात्मक लिंगतोमद्र बतलाया है, उसके चारों बगल द्वादश लिंगकी रचना करे । प्रत्येक कोणमें तीन पादका कमल बनाकर साठ पादकी शृङ्खला बनावे ॥ ३३० ॥ ३३१ ॥ फिर चौदह पादकी वल्लरी, छ पादका भद्र, तीन तीन पादका और वापी छब्बोस पादका लिंग वापिकाके ऊपर बनाया जायगा ॥ ३३२ ॥ लिंगके बगलवाले छः पाद पीले रङ्गसे रङ्ग दिये जायें । लिंगके ऊपरवाली शृङ्खला नील वल्लरियोंके बीचमें नियुक्त कर दे ॥ ३३३ ॥ चौदह पादसे लिंग, तथा परिचय बनावे । बाकी जैसा ऊपर कह आये है, उसके अनुसार ही रहने से ॥ ३३४ ॥ पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिणकी ओर बीबीस-बीबीस रेखायें खींचे । कोणमें पाँच पादकी शृङ्खला नौ पादोंकी वल्लरियाँ बनावे । चार पादकी छोटी शृङ्खला बनावे । छः पादकी लघु वल्लरी बनावे । अठारह पादोंसे लिंग एवं तेरह पादकी वापियाँ बनावे । फिर दो वीर्यासे पीठकी रचना करे ॥ ३३५-३३७ ॥ उस पीठका पार पाँच पादसे पाँच पादसे मध्यमें इक्यासी पादका कमल बनेगा ॥ ३३८ ॥ तीन-तीन पादोंसे कोनोंमें शृङ्खलायें बनावे । चारों दिशाओंमें चार-चार पादके भद्र बनेंगे ॥ ३३९ ॥ ग्यारह पादकी दो वल्लरियाँ बनावे । नौ पादसे मध्यमें अष्टदल कमलकी रचना करे । यह भी एक प्रकारका लिङ्गतोमद्र है ॥ ३४० ॥ इसमें भी शृङ्खला कृष्ण वर्ण और वल्लरी नीले रङ्गसे पूर्णकी जायगी । वर्णसे लघु शृङ्खला एवं पीत वर्णसे श्रेष्ठ वल्लरीकी पूर्ति जायगी ॥ ३४१ ॥ इसके लिंग कृष्ण वर्णके और वापी सफेद रङ्गकी रहेगी । इसकी पीठ और इसके पाद भी ध्वज रहेंगे और पीत वर्णसे इसके द्वार रंगे जायेंगे ॥ ३४२ ॥ मध्यमें रक्त वर्णकी शृङ्खला और नील वर्णसे वल्लरी पूर्ण की जायगी । सब पीतवर्णके रहेंगे और कमलकी कर्णिका भी पीले रङ्गकी रहेगी ॥ ३४३ ॥ कमलके दलोंको सफेद या चित्र वर्णसे पूर्ण करे । बाहर तीन रेखायें रहेंगी और क्रमशः उनका वर्ण उज्ज्वल, रक्त तथा कृष्ण रहेगा ॥ ३४४ ॥ हम ऊर्ध्वलिंगात्मक अष्टलिङ्गतोमद्रकी रचनाका दूसरा प्रकार बतलाते हैं, उसे मन लगाकर सुनो ॥ ३४५ ॥ सीधी और तिरछी बगुईस-बगुईस रेखायें खींचे । सत्ताईस कोष्ठक पर्यन्त छः छः कोष्ठकके बाद परिचय रहेंगी ॥ ३४६ ॥ कोणमें

ऊर्ध्वे भद्रे रविपदे पदैरष्टादशैः शिवाः । आत्मनोऽभिभुक्ताः सर्वे कार्या सष्ट शुभावहाः ॥३४८॥
 त्रयोदशांग्रिजा वापी तत्त्रयं पश्चिमे स्मृतम् । पूर्वे त्वेका द्वे शकले शेषं सर्वं तु पूर्ववत् ॥३४९॥
 तिर्यग्भद्रे वेदपदे पदन्यूनोर्ध्ववल्ली । दक्षिणोत्तरतश्चापि वापीनां शकलाष्टकम् ॥३५०॥
 षडयोलिङ्गयोर्माला सा त्रिमिनंवनैः स्मृता । सर्वत्र नेत्रे द्वे जेये दक्षिणोत्तरयोस्त्रिभिः ॥

पृथक् चत्वारि भद्राणि त्रयोभद्रे चतुष्पदे ॥३५१॥

दक्षिणोत्तरदिग्भागे पूर्ववन्धौ च संघयेत् । त्र्यन्ते मध्ये तु परिधिः पञ्चविंशैर्जलेरुहम् ॥३५२॥
 शृङ्खला द्विपदा मध्ये वल्ली षट्पादजा स्मृता । वाप्यः पञ्चपदैर्ज्वेया भद्रं वेदपदात्मकम् ॥३५३॥
 सिता वापी शिवः कृष्णः पद्मभद्रे च लोदिते । तिर्यग्भद्रं लिङ्गमाले परिधी पीतवर्णकौ ॥३५४॥
 नेत्रेन्दु धवली कृष्णा शृङ्खला हरिता लता । पदत्रयं हि वाप्यूर्ध्वं तद्यथाशुचि पूरयेत् ॥३५५॥
 पीतशुक्लरक्तकृष्णा बहिः परिधयः स्मृताः । अष्टलिङ्गात्मकं ज्वेयं लिङ्गतोभद्रमुत्तमम् ॥३५६॥
 अथवाऽन्यौ द्वौ प्रकारौ प्रोच्येते शृणु तावपि । द्वाविंशच्चरणेष्वेवं चतुर्लिङ्गं तथाऽष्टकम् ॥३५७॥
 युक्त्या विरचयेत्तत्र विशेषोऽयं निगद्यते । आद्यं लिङ्गं चतुर्विंशपदमष्टैर्दुवापिका ॥३५८॥
 भद्रं विंशपदं शान्त्यल्लिङ्गमष्टादशात्मकम् । भद्रं नवपदं ज्वेयं धावदवधि योजयेत् ॥३५९॥
 रेखास्त्वष्टादश प्रोक्ताश्चतुर्लिङ्गममुद्भवे । कोणेन्दुस्त्रिपदः ज्वेयस्त्रिपदः कृष्णशृङ्खला ॥३६०॥
 वल्ली सप्तपदा नीला भद्रं रक्तं चतुष्पदम् । भद्रपार्श्वे महालिङ्गं कृष्णमष्टादशैः पदैः ॥३६१॥
 शिवपार्श्वे तु वापीं कुर्यात्पञ्चपदां मितान् । पदमेकं तथा पीतं भद्रं वाप्यस्तु मध्यतः ॥३६२॥
 शिरसि शृङ्खला पार्श्वे कुर्यात्पीतं पदत्रयम् । लिङ्गानां स्कन्धतः कोष्ठा विंशत्यो रक्तवर्णकाः ॥३६३॥

तीन पादका चन्द्रमा रहेंगी और पाँच पादकी शृङ्खला बनायी जायगी । बारह पादकी वापी और छः छः पादके छः भद्र बनेंगे ॥ ३४७ ॥ ऊपरके दोनों भद्र बारह पादके रहेंगी और अट्टारह पादके भद्र बनाये जायेंगे । इन सबको अपने अभिमुख बनावे ॥ ३४८ ॥ तेरह पादकी कुल वापिया रहेंगी । तिसमें पश्चिमकी ओर तीन वापी, पूर्वकी ओर एक वापी तथा दो खण्डवापी बनायी जायगी । शेष पूर्णवत् रहेंगे ॥ ३४९ ॥ इसमें बड़ा भद्र चार पादका और तीन पादकी ऊर्ध्ववल्ली रहेगी । दक्षिण और उत्तरकी ओर खण्डवापियें रहेंगी ॥ ३५० ॥ तीन नेत्रोंसे इन दोनों लिङ्गोंकी माला बनायी जायगी । दक्षिण और उत्तर दो-दो और तीन-तीन पादोंके दो नेत्र बनेंगे । चार भद्र पृथक् बनाये जायेंगे और उनमें नीचेवाले दोनों चार पादके रहेंगे ॥ ३५१ ॥ दक्षिण और उत्तरकी ओर दो वल्लियोंकी योजना की जायगी । तीन पादसे मध्यमें परिधि बनेगी और पञ्चोस पादका कमल बनेगा ॥ ३५२ ॥ इसमें शृङ्खला दो पादकी और मध्यमें छः पादसे वल्ली बनायी जायगी । पाँच पादकी वापिया बनेगी और चार पादका भद्र बनेगा ॥ ३५३ ॥ इसकी वापिया सफेद, शिव कृष्ण, पद्म और भद्र रक्तवर्णके रहेंगे । तिरछा भद्र, लिङ्ग, माला तथा दोनों परिधियां पीत वर्णकी रहेंगी ॥ ३५४ ॥ नेत्र तथा इन्दु ये दोनों सन्देश रहेंगे । शृङ्खला काली और लता हरी रहेगी । वापीके ऊपरवाले तीन पादोंको जैसी अपनी रुचि हो, उस प्रकार रङ्गकर बनावे ॥ ३५५ ॥ इसके बाहरकी परिधियां क्रमशः पीली, सफेद, लाल तथा काली रहेंगी । यह मैंने तुमको अष्टलिङ्गात्मक लिङ्गतोभद्र बतलाया ॥ ३५६ ॥ इसके दो प्रकार बतलाते हैं, उन्हें भी सुन लो । तेईस चरणोंसे या आठ लिङ्ग युक्तिपूर्वक बनावे । अब उसमें जो विशेषछाये हैं, उन्हें बतलाते हैं । आदिवाली पंक्तिमें चौबीस पादकी अट्टारह वापियें बनेंगी ॥ ३५७ ॥ ६५८ ॥ बीस पादका भद्र बनेगा । दूसरा लिङ्ग अट्टारह पादका बनेगा । नौ पादका भद्र बनेगा । बाकी सब पहिलेके समान बनेंगे ॥ ३५९ ॥ चतुर्लिङ्गात्मक भद्रमें अट्टारह रेखायें खींचि । इसमें भी कोणका चन्द्रमा तीन और कृष्ण वर्णकी शृङ्खला रहेगी ॥ ३६० ॥ साठ पादसे नीसे रक्तकी वल्लरी, चार पादसे रक्त वर्णका भद्र और भद्रके पास अट्टारह पादसे कृष्ण वर्णका महालिङ्ग बनावे ॥ ३६१ ॥ शिवके पाँच पादकी सफेद वापी बनावे ।

परिधिः पीतवर्णस्तु पदैः षोडशभिः स्मृतः । पदैस्तु नवभिः पञ्चात्पथं चित्रं सकर्णिकम् ॥३६४॥
 तिर्यगूर्ध्वगता रेखाः कार्याः स्निग्धास्तयोदश । कोणेंदुस्त्रिपदः कार्यः शृङ्खला त्रिपदा स्मृता ॥३६५॥
 वल्ली ॥ षट्पदा नीला रक्तं भद्रं प्रकल्पयेत् । पदैर्द्वादशभिः स्पष्टपुत्रे पूर्वदक्षिणे ॥३६६॥
 पश्चिमार्धं महाकर्मस्य विंशतिकोष्ठके । लिङ्गपाथं तथा मूर्ध्नि सप्त कोष्ठास्तु पीतकाः ॥३६७॥
 लिङ्गमेकं तथा गौर्यास्तिलकं प्रोक्तमण्डले । पूजयेन्मण्डले चैव तस्य गौरी प्रसीदति ॥३६८॥
 प्राशुदीच्यां गता रेखाः कुर्यादेकोनविंशतिः । स्रग्देंदुस्त्रिपदः कोणे शृङ्खला पञ्चभिः पदैः ॥३६९॥
 एकादशपदा वल्ली भद्रं तु नवभिः पदैः । वतुविशुत्पदा वापी परिधिर्विंशकैः पदैः ॥३७०॥
 मध्यं षोडशभिः कोष्ठैः पञ्चमष्टदलं स्मृतम् । श्वेतेंदुशृङ्खला कृष्णा वल्ली नीलेन पूरयेत् ॥३७१॥

भद्रारुणं सिता वापी पाते परिधिकर्णिके ।

रक्तं वा चित्रितं पथं वाक्साः सत्वरजस्तमाः । सर्वतोभद्रकं चेदं कर्त्तव्यं सर्वकर्मसु ॥३७२॥
 एवं लिङ्गतोभद्राणां रचनाः कथिता मया । एताः शिवपरा ज्ञेया न योग्या विष्णुपूजने ॥३७३॥
 रामलिङ्गात्मकं योग्यं श्रीविष्णोरर्हणस्य ॥ पूजने त्वेक एवात्र तद्विस्तारेण कथ्यते ॥३७४॥
 शिवस्य पूजने लिङ्गसुपास्यं परिवर्तयेत् । उपासिका राममुद्रा ज्ञेया तद्वद्भवानपि ॥३७५॥
 लिङ्गतोभद्रवच्चात्र समावाद्याविबुद्धितः । रामतोभद्रकं यच्च ज्ञेयं विष्णुपरं हि तत् ॥३७६॥
 रमा रामेति वर्णवच्चिह्नितं भद्रकं कुतम् । धिया देवीपरं तच्च ज्ञातव्यं सर्वकर्मसु ॥३७७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकाण्डे रामदासविष्णुशस-

संवादे रामलिङ्गतोभद्राणां तथा लिङ्गतोभद्राणां रचनाप्रकारकथनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

एक पादका एक पीला भद्र बनावे । मध्यमें वापी, मस्तकपर शृङ्खला, बगलमें पीले रक्तके तीन पाद और लिम्ब, स्कन्धमें लाल वर्णके दोस कोष्ठक बनावे ॥ ३६२ ॥ ३६३ ॥ सोलह पादोंसे पीत वर्णको परिधि और उसके आगे नौ पादोंसे विविध वर्णकी कर्णिकायुक्त कमल बनावे ॥ ३६४ ॥ तीली और सीधी तेरह रेखायें खोचे । कोणमें तीन पादका चन्द्रमा बनावे ॥ ३६५ ॥ पीले वर्णसे छः पादकी वल्ली और रक्त वर्णका भद्र बनावे । फिर उत्तर-पूर्व-दक्षिण तथा पश्चिम कोणमें बारह पादोंसे सट्टाईस कोष्ठकोमें महाभद्रका निर्माण करे । लिङ्गके बगलमें ॥ मस्तकके आठ कोष्ठकोको पीले रक्तसे रक्ते ॥ ३६६ ॥ ३६७ ॥ इसके मण्डलमें गौरीका लिङ्ग बनावे । जो प्राणी इस मण्डलका पूजन करता है, उसपर गौरी प्रसन्न होती है ॥ ३६८ ॥ पूर्व और उत्तरकी ओर १९ रेखायें खींचे । कोणमें तीन पादका चन्द्रमा बनावे । पांच पादकी शृङ्खला, ग्यारह पादकी वल्ली और नौ पादोंसे भद्रकी रचना करे । चौबीस पादकी वापी और बीस पादकी परिधि बनावे ॥ ३६९ ॥ ३७० ॥ मध्यमें सोलह पादका अष्टदल कमल बनावे । इस भद्रमें चन्द्रमा सफेद, शृङ्खला काली, वल्ली नीली, भद्र लाल, वापी सफेद, परिधि पीले वर्णकी, कर्णिका लाल और ॥ वर्णका कमल बनावे । बाहर सत्त्व, रज और तम रहेगा । ॥ सर्वतोभद्रको सब कामोंमें बनाना चाहिए ॥ ३७१ ॥ ३७२ ॥ यह सब लिङ्गतोभद्रकी रचनाका प्रकार मैंने बतलाया है । ये सब शिवकी पूजामें काम देंगे, विष्णुपूजनमें नहीं ॥ ३७३ ॥ विष्णुकी पूजामें श्रीरामलिङ्गतोभद्रका उपयोग करना चाहिए । प्रत्येक पूजनमें एक देवताकी ही प्रधानता रहती है । इसी बातकी अव विस्तारपूर्वक बतला रहे हैं ॥ ३७४ ॥ शिवकी पूजामें लिङ्ग उपास्य रहता है । इसलिये उसीका ध्यान करना चाहिए । इसमें उपासिका राममुद्रा ॥ और लिङ्गतोभद्रके समान ही इसमें भी आवाहन किया जाता है । रामतोभद्र विष्णुपरक है ॥ ३७५ ॥ ३७६ ॥ इसमें रमा राम ये वर्ण चिह्नित किये हुए रहते हैं । इसलिए कुछ लोग रामतोभद्रको देवीपरक भी कहते हैं । अस्तु, कहनेका यह कि यह भद्र सब कामोंमें प्रयुक्त किया जा सकता ॥ ३७७ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पंचमः रामतोभद्रपाण्डेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः

(रामतोमद्रमें देवताओंकी स्थापनाविधि तथा रामनवमीकी कथा)

अथ सर्वतोमद्रं तद्देवताश्च लिखन्ते । प्राणानामस्य देशकालौ स्मृत्वा रामतोमद्रदेवतास्थापनं च
रामलिंगतोमद्रदेवतास्थापनं वा रमानामतोमद्रदेवतास्थापनं वा रमानामतोमद्रदेवतास्थापनं करिष्ये
इति संकल्प्य । ब्रह्मजज्ञानमिति मन्त्रस्य चामदेवतापिः त्रिष्टुब्धः जज्ञादेवता ब्रह्मस्थापने
विनियोगः ॥ 'ब्रह्मजज्ञानं०' सर्वतोमद्रमध्ये ब्रह्माणमावाहयामि ॥ १ ॥ उत्तरे वापीप्राग्वामे
'आप्यायस्व०' सोमाय नमः सोममावाहयामि ॥ २ ॥ ईशान्यां खण्डेदौ 'तमीज्ञानं०' ईशानाय नमः
ईशानमावाहयामि ॥ ३ ॥ पूर्वस्यां वाप्यां 'आतारमिद्र०' इन्द्राय नमः इन्द्रमावाहयामि ॥ ४ ॥
आग्नेय्यां खण्डेदौ 'अग्निदत्तं०' अग्नये नमः अग्निमावाहयामि ॥ ५ ॥ दक्षिणस्यां वाप्यां
'यमायस्वांगिर०' यमाय नमः यमावाहयामि ॥ ६ ॥ नैर्ऋत्यां खण्डेदौ 'अमुन्वतं०' निर्ऋतये
नमः निर्ऋतिमावाहयामि ॥ ७ ॥ पश्चिमायां वाप्यां 'तत्त्वायामि०' वरुणाय नमः वरुणमावाह-
यामि ॥ ८ ॥ वायव्ये खण्डेदौ 'आनोनिष्ठुद्धिः०' वायवे नमः वायुमावाहयामि ॥ ९ ॥
वायुसोममध्ये मध्ये 'निवेशनीसंगमतीवसूनां०' ध्रुवं अश्वरं सोम अपः अनिलं अनलं प्रत्युषं
प्रभासमित्यष्टवक्ष्णावाहयामि ॥ १० ॥ सोपेक्षानमध्ये मध्ये 'नमस्ते रुद्र०' वीरभद्रं शंभु मिरिशं
अर्जकपादं अहिर्बुध्न्यं पिनाकिनं भुवनाधीश्वरं कपालिनं दिक्पतिं स्थाणुं रुद्रमित्येकादश रुद्राना-
वाहयामि ॥ ११ ॥ ईशानेन्द्रमध्ये मध्ये 'आकृष्णेन०' भगं वरुण सूर्यं वेदांगं भानुं रविं गमस्ति
हिरण्यरेतसं दिवाकरं मित्रं आदित्यं विष्णुमिति द्वादशादित्यानावाहयामि ॥ १२ ॥ इन्द्राग्नि-
मध्ये मध्ये 'अश्विना तेजसा चतु०' अश्विनीकुमाराभ्यां नमः अश्विनौ देवावाहयामि ॥ १३ ॥
अग्नियममध्ये मध्ये 'समाश्रपणिर्भूतो०' सर्वतृकान् देवानावाहयामि ॥ १४ ॥ यमनिर्ऋति-
मध्ये मध्ये 'अभित्यं देवं०' यक्षेभ्यो नमः यक्षानावाहयामि ॥ १५ ॥ निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये मध्ये

अथ सर्वतोमद्र और उसके देवताओंके आवाहन तथा स्थापनको विधि बतलाते हैं । प्राणायामपूर्वक देश-
काल आदिका उच्चारण करके "रामतोमद्रके देवताका स्थापन, लिंगतोमद्रके देवताका स्थापन, रामनामतो-
मद्रके देवताका स्थापन अथवा रमारामतोमद्रके देवताका स्थापन करूँगा।" ऐसा संकल्प करके "ब्रह्मजज्ञानम्"
आदि मंत्रको पढ़ता हुआ विनियोग करे । "ब्रह्मजज्ञानम्" यह मंत्र पढ़कर ब्रह्माका आवाहन करे ।
उत्तर वापीके पास 'आप्यायस्व' यह मंत्र पढ़कर सोमका आवाहन करे ॥ १ ॥ २ ॥ ईशानके खण्डेन्दुमें
'तमीज्ञानं' इस मंत्रसे ईशका आवाहन करे ॥ ३ ॥ पूर्वकी वापीमें 'आतार' इस मंत्रसे इन्द्रका आवाहन
करे ॥ ४ ॥ अग्निकोणके इन्दुमें 'अग्निदत्तं' इस मंत्रसे अग्निका आवाहन करे ॥ ५ ॥ दक्षिण वापीमें
'यमायस्वांगिर' इस मंत्रसे यमका आवाहन करे ॥ ६ ॥ नैर्ऋत्यके खण्डेन्दुमें 'अमुन्वतं' इस मंत्रसे निर्ऋतिका
आवाहन करे ॥ ७ ॥ पश्चिम वापीमें 'तत्त्वायामि' इस मंत्रसे वरुणका आवाहन करे ॥ ८ ॥ वायव्य कोणके
खण्डेन्दुमें 'आनो निष्ठुद्धिः' इस मंत्रसे वायुका आवाहन करे ॥ ९ ॥ वायु और सोमके मध्यवाले भद्रमें
'निवेशनीसंग' इस मंत्रसे ध्रुव, अश्वर, सोम आदि आठ वस्तुओंका आवाहन करे ॥ १० ॥ सोम और ईशानके
मध्यवाले भद्रमें 'नमस्ते रुद्र' इस मंत्रसे वीरभद्र, शंभु, मिरिश, अर्जकपाद, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, भुवनाधी-
श्वर, कपाली, दिक्पति, स्थाणु और रुद्र इन एकादश रुद्रोंका आवाहन करे ॥ ११ ॥ ईशान और इन्द्रके मध्यवाले
भद्रमें 'आकृष्णेन' मंत्रसे भग, वरुण, सूर्य, वेदांग, भानु, रवि, गमस्ति, हिरण्यरेतस, दिवाकर, मित्र,
आदित्य और विष्णु इन द्वादश सूर्योंका आवाहन करे ॥ १२ ॥ इन्द्र और अग्निके मध्यवाले भद्रमें 'अश्विना
तेजसा' इस मंत्रसे अश्विनीकुमारोंका आवाहन करे ॥ १३ ॥ अग्नि और यमके मध्यवाले भद्रमें 'समाश्रपणिः'

‘आर्यगौः०’ भूतनागेभ्यो नमः भूताभ्यामावाहयामि ॥ १६ ॥ वरुणवायुमध्ये भद्रे ‘नदीभ्यः पौञ्जिह्वं’ गन्धर्वाप्सरसोभ्यो नमः गन्धर्वाप्सरस आवाहयामि ॥ १७ ॥ ब्रह्मसोममध्ये वाप्यां ‘यदक्रन्दः प्रथमं०’ स्कन्दाय नमः स्कन्दमावाहयामि ॥ १८ ॥ ‘नमः शंभवे०’ नंदीश्वराय नमः नंदीश्वरमावाहयामि ॥ १९ ॥ ‘भद्रं कर्णेभिः०’ शूलाय नमः शूलमावाहयामि ॥ २० ॥ ‘विश्वकर्मा- ज्ञान०’ महाकालाय नमः महाकालमावाहयामि ॥ २१ ॥ ब्रह्मज्ञानमध्ये वल्लीषु ‘आदितिर्द्यौरं०’ ऋषादिभ्यो नमः ऋषादीनामावाहयामि ॥ २२ ॥ ब्रह्मेन्द्रमध्ये वाप्यां ‘श्रीधत्ते०’ दुर्गायै नमः दुर्गामा- वाहयामि ॥ २३ ॥ ‘इदं विष्णु०’ विष्णवे नमः विष्णुमावाहयामि ॥ २४ ॥ ब्रह्माग्निमध्ये वल्लीषु ‘उदीरिता०’ स्वधायै नमः स्वधामावाहयामि ॥ २५ ॥ ब्रह्मयममध्ये वाप्यां ‘अरं मृत्यो०’ मृत्यवे नमः मृत्युमावाहयामि ॥ २६ ॥ ब्रह्मवरुणमध्ये वाप्यां ‘गणनां त्वा०’ गणपतये नमः गणपति- मावाहयामि ॥ २७ ॥ ब्रह्मवरुणमध्ये वाप्यां ‘शशो देवी०’ अञ्जुषो नमः अञ्जु आवाहयामि ॥ २८ ॥ ब्रह्मवायुमध्ये वल्लीषु ‘मरुतो यस्य०’ मरुते नमः मरुतमावाहयामि ॥ २९ ॥ ब्रह्मणः पादमूले कर्णिकाधः ‘स्योना पृथिवि०’ पृथ्व्यै नमः पृथ्वीमावाहयामि ॥ ३० ॥ तत्रैव ‘पञ्च नद्यः सरस्वती०’ गंगादिसर्वनदीरावाहयामि ॥ ३१ ॥ तत्रैव ‘घाम्नो घाम्नो राजस्ततो वरुण०’ सप्तसागरेभ्यो नमः सप्त- सागरानावाहयामि ॥ ३२ ॥ ततः कर्णिकोपरि नाममंत्रेण मेरवे नमः गदामावाहयामि ॥ ३३ ॥ ततः पीतपरिधौ सोमादिसन्निधौ क्रमेण आयुधानि । सोमसमीपे गदायै नमः गदामावाहयामि ॥ ३४ ॥ ईशानसमीपे शूलाय नमः शूलमावाहयामि ॥ ३५ ॥ इन्द्रसमीपे वज्राय नमः वज्रमावाहयामि ॥ ३६ ॥ अग्निमसमीपे शक्तये नमः शक्तिमावाहयामि ॥ ३७ ॥ यमसमीपे दंडाय नमः दंडमावाहयामि ॥ ३८ ॥ निर्ऋतिसमीपे खड्गाय नमः खड्गमावाहयामि ॥ ३९ ॥ वरुणसमीपे पाशाय नमः पाशमावाह- यामि ॥ ४० ॥ वायुसमीपे अंकुशाय नमः अंकुशमावाहयामि ॥ ४१ ॥ पुनः सोमस्योत्तरे सदा समीपे

इस मन्त्रसे सर्पतृक विषवेदेवका आवाहन करे ॥ १४ ॥ यम और निर्ऋतिके बीचवाले भद्रमें ‘असित्यं देव’ इस मन्त्रसे यज्ञोंका आवाहन करे ॥ १५ ॥ निर्ऋति और वरुणके बीचवाले भद्रमें ‘आर्यगौः’ इन मन्त्रसे भूतों और नागोंका आवाहन करे ॥ १६ ॥ वरुण और वायुके मध्यमें ‘नदीभ्यः’ इस मन्त्रसे गन्धर्वों और अप्सराओं- का आवाहन करे ॥ १७ ॥ ब्रह्मा और सोमके मध्यवाली वापीमें ‘यदक्रन्दः’ इस मन्त्रसे स्कन्दका आवाहन करे ॥ १८ ॥ ‘नमः शंभवे’ में नंदीश्वर, ‘भद्रं कर्णेभिः’ से शूल और ‘विश्वकर्मा’ इस मन्त्रसे महाकालका आवाहन करे ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ ब्रह्मा और इमानके मध्यवाली वल्लीमें ‘आदितिर्द्यौरं’ इस मन्त्रसे ऋषादिका आवाहन करे ॥ २२ ॥ ब्रह्मा और इन्द्रके मध्यवाली वापीमें ‘श्रीधत्ते’ मन्त्रके दुर्गाका आवाहन करे ॥ २३ ॥ ‘इदं विष्णुः’ इस मन्त्रसे विष्णुका आवाहन करे ॥ २४ ॥ ब्रह्मा और अग्निके मध्यवाली वल्लीमें ‘उदीरिता’ इस मन्त्रसे स्वधका आवाहन करे ॥ २५ ॥ ब्रह्मा और यमके मध्यवाली वापीमें ‘अरं मृत्यो’ इस मन्त्रसे मृत्युका आवाहन करे ॥ २६ ॥ ब्रह्मा और निर्ऋतिके मध्यवाली वल्लीमें ‘गणानां त्वा’ इस मन्त्रसे गणपतिके आवाहन करे ॥ २७ ॥ ब्रह्मा और वरुणके मध्यवाली वापीमें ‘शशो देवी’ मन्त्रसे अञ्जुका आवाहन करे ॥ २८ ॥ ब्रह्मा और वायुके मध्यवाली वल्लीमें ‘मरुतो यस्य’ इस मन्त्रसे मरुतका आवाहन करे ॥ २९ ॥ ब्रह्माके पाँवके कर्णिकाके नीचे ‘स्योना पृथिवि’ इस मन्त्रसे पृथ्वीका आवाहन करे ॥ ३० ॥ वहाँ ही ‘पञ्चनद्यः’ मन्त्रसे गंगा आदि सब नदियोंका आवाहन करे ॥ ३१ ॥ वहाँ ही ‘घाम्नो घाम्नो’ इस मन्त्रसे सप्त सागरोंका आवाहन करे ॥ ३२ ॥ इसके बाद कर्णिकाके ऊपर नाममन्त्रसे मेरुका आवाहन करे ॥ ३३ ॥ पीत परिधिमें सोम आदिके पास क्रमशः आयुधोंका आवाहन करे । गदाके नाम- मन्त्रसे गदाका, ईशानके समीप शूलके नाममन्त्रसे शूलका, इन्द्रके समीप वज्रका, अग्निके पास शक्तिका, यमके समीप दण्डका, निर्ऋतिके पास खड्ग और वरुणके पास पाशका आवाहन करे ॥ ३४-४० ॥ वायुके

गीतमाय नमः गीतममावाहयामि ॥४२॥ ईशान्या भरद्वाजाय नमः भरद्वाजमावाहयामि ॥४३॥
 पूर्वे विश्वामित्राय नमः विश्वामित्रमावाहयामि ॥४४॥ आग्नेय्यां कश्यपाय नमः कश्यपमावाहयामि
 ॥४५॥ दक्षिणे जमदग्निनेयनयः जमदग्निमावाहयामि ॥४६॥ नैऋत्यां वसिष्ठाय नमः वसिष्ठमावाह-
 यामि ॥४७॥ पश्चिमे अत्रये नमः अत्रिमावाहयामि ॥४८॥ वायव्यां अरुन्धत्यै नमः अरुन्धतामावा-
 हयामि ॥४९॥ पुनः पूर्वदिक्क्रमेण पूर्वे विश्वामित्रमभीषे ऐन्द्राय नमः ऐन्द्रांमावाहयामि ॥५०॥
 आग्नेय्यां कौमार्यै नमः कौमारीमावाहयामि ॥५१॥ दक्षिणे ब्राह्मण्यै नमः ब्राह्मणमावाहयामि ॥५२॥
 नैऋत्यां वाराह्यै नमः वाराहीमा० ॥५३॥ पश्चिमे चासुंडायै नमः चासुंडामा० ॥५४॥ वायव्ये वैष्णव्यै
 नमः वैष्णवीमा० ॥५५॥ उत्तरे माहेश्वर्यै नमः माहेश्वरीमा० ॥ ५६॥ ईशान्या वैनायक्यै नमः वैनाय-
 कीमा० ॥ ५७॥ अष्टदलमध्ये सूर्याय नमः सूर्यमा० ॥ ५८॥ बाह्यपूर्वाष्टदिक्षु यथास्थानेषु
 पूर्वे सोमाय नमः सोममा० ॥५९॥ आग्नेय्यां धौमाय नमः धौममा० ॥६०॥ दक्षिणे बुधाय नमः
 बुधमा० ॥ ६१॥ नैऋत्यां बृहस्पतये नमः बृहस्पतिमा० ॥ ६२॥ पश्चिमे शुक्राय नमः
 शुक्रमा० ॥६३॥ वायव्यां शनैश्चराय नमः शनैश्चरमा० ॥६४॥ उत्तरे राहवे नमः राहुमा० ॥६५॥
 ईशान्या केतवे नमः केतुमा० ॥ ६६॥ एता देवताः सर्वतोभद्रे प्रतिष्ठाप्य ततः परिधिभूतपंक्तौ
 सुपेगाय नमः सुपेणमा० ॥ ६७॥ सर्वेषु लिङ्गेषु रुद्राय नमः रुद्रमा० ॥६८॥ सर्वासु वापीषु नलाय नमः
 नलमा० ॥६९॥ सर्वेषु भद्रेषु सुग्रीवाय नमः सुग्रीवमा० ॥७०॥ सर्वेषु तिर्यग्भद्रेषु गवपाय नमः
 गवयमा० ॥७१॥ सर्वासु पीतशृङ्गलासु अंगदाय नमः अंगदमावा० ॥ ७२॥ सर्वासु कृष्णशृङ्गलासु
 विभीषणाय नमः विभीषणमा० ॥७३॥ सर्वासु वल्लीषु जांबवते नमः जांबवंतमा० ॥७४॥ सर्वेषु
 खड्गेषु मेघाय नमः मेघमा० ॥ ७५॥ सर्वासु परिधिषु द्विविदाय नमः द्विविदमा० ॥७६॥ मुद्रायां
 रामजानकीभ्यां नमः रामजानकीमा० ॥ ७७॥ मुद्रायाः पश्चिमे पोतपरिधी लक्ष्मणाय नमः
 लक्ष्मणमा० ॥७८॥ मुद्राया उत्तरे भरताय नमः भरतमा० ॥७९॥ मुद्राया दक्षिणे शत्रुघ्नाय नमः
 शत्रुघ्नमा० ॥८०॥ मुद्रायाः पुरतः वायुपुत्राय नमः वायुपुत्रमा० ॥८१॥ बहिर्लिपिपरिधिषु श्वतपरिधी

समीप अंकुशका आवाहन करे ॥ ४१॥ तदनन्तर सोमके उत्तर ओर गदाके पास गीतमका आवाहन करे
 ॥ ४२॥ ईशान कोणमें भरद्वाजका, पूर्वमें विश्वामित्रका, आग्नेयमें कश्यपका, दक्षिणमें जमदग्निका,
 नैऋत्यमें वसिष्ठका, पश्चिममें अत्रिका और वायव्यकोणमें अरुन्धतीका आवाहन करे ॥ ४३-४६॥ फिर
 पूर्व आदि दिशाओंके क्रमसे पूर्वमें विश्वामित्रके सर्नाप ऐन्द्राका आवाहन करे ॥ ५०॥ आग्नेय कोणमें
 कौमारीका, दक्षिणमें ब्राह्मणका, नैऋत्यमें वाराहका, पश्चिममें चासुण्डाका, वायव्यमें वैष्णवीका, उत्तरमें
 माहेश्वरीका और ईशान कोणमें वैनायकीका आवाहन करे ॥५१-५७॥ अष्टदलके मध्यमें सूर्यका आवाहन करे,
 बाहरके पूर्व आदि आठों दिशाओंमें यथास्थान निम्नलिखित देवताओंका आवाहन करे । पूर्वमें सोमका
 आग्नेय कोणमें धौमका, दक्षिणमें बुधका, नैऋत्यमें बृहस्पतिका, पश्चिममें शुक्रका वायव्यमें शनैश्चरका, उत्तरमें
 राहुका और ईशान कोणमें केतुका आवाहन करे ॥ ५८-६६॥ सर्वतोभद्रमें इन देवताओंकी स्थापना करके
 परिधिभूत पंक्तियोंमें सुपेणका आवाहन करे ॥ ६७॥ सब लिङ्गोंमें रुद्रका सब वापियोंमें नलका, भद्रोंमें
 सुग्रीवका, सब तीक्ष्ण भद्रोंमें गवयका, सब पीत शृङ्गलाओंमें अङ्गदका और कृष्ण शृङ्गलाओंमें
 विभीषणका आवाहन करना चाहिए ॥ ६९-७३॥ सब वल्लियोंमें नाममन्त्रसे जाम्बवान्का आवाहन करे
 ॥ ७४॥ उसी प्रकार सब कृष्णोंमें मेघका, सब परिधियोंमें द्विविदका, मुद्रामें राम और जानकीका
 करे ॥ ७५॥ ७६॥ ७७॥ मुद्राकी पश्चिमवाली पोत परिधिमें लक्ष्मणका आवाहन करे ॥७८॥ मुद्राके उत्तर
 ओर भरतका आवाहन करे ॥ ७९॥ मुद्राके दक्षिण ओर शत्रुघ्नका आवाहन करे ॥ ८०॥ मुद्राके

भागीस्थै नमः भागीस्थीमा० ॥ ८२ ॥ रक्तपरिधौ सरस्वत्यै नमः सरस्वतीमा० ॥ ८३ ॥ कृष्णपरिधौ यमुनायै नमः यमुनामा० ॥ ८४ ॥ एवमेव रमारामभद्रेऽप्यावाहनं कार्यम् । रमारामभद्रे मुदायामेव विशेषः । आदौ रमामावाह्यं राममावाहयेत् । एवमावाहनं कृत्वा षोडशोपचारैः पूजयेत् । शेषान्नेन दिग्बलिः कार्यः ॥

इति आनन्दरामायणांतर्गत रामतोषभद्रदेवतास्थापनविधिः ।

अथ रामनवमीकथा

श्रीरामदास उवाच

शिष्य यद्यस्मिन् तस्मै रामाय तद्ददाम्यहम् । मासेषु चैत्रमासस्तु राघवस्यातिवन्द्यमः ॥ १ ॥
पक्षयोः सितपक्षस्तु प्रियोऽस्ति राघवस्य हि । सर्वोऽसु तिरिषु श्रेष्ठा नवमी राघवप्रिया ॥ २ ॥
सूर्यवंशसमुद्भूतस्तस्माच्च मानुवासरः । प्रियोऽतिराघवस्यैव नक्षत्रेषु पुनर्वसुः ॥ ३ ॥
शंपकः पुष्पजाती हि तुलसी चै तथैव च । अथवा नवकं चापि पुष्पाणां राघवप्रियम् ॥ ४ ॥
जातिशंपकमंदारी तुलसी मुनिमालती । दमनः केतकी सिंही पुष्पाणां नवकं स्मृतम् ॥ ५ ॥
तथा नवविधं चान्नं राघवस्यातिवन्द्यम् । मोदको लड्डुको मंडो पूर्णगर्भाय फेणिका ॥ ६ ॥
वटकः पर्यटः खाद्यं घृतपक्वं नवं त्रिविधं । एतानि नव भक्ष्याणि राघवस्य प्रियाणि हि ॥ ७ ॥
अथचाऽन्यन्नवक्ष्यामि दिव्यान्ननवकं शुभम् । मोदको लड्डुको मंडो वटकः फेणिका तथा ॥ ८ ॥
वरान्नमोदनः श्राकं पायसं नवकं शुभम् । अन्यच्छृणुस्व भी शिष्य नवान्नं राघवप्रियम् ॥ ९ ॥
एकाशीतिकुडवं च गोक्षीरं तण्डुलास्तथा । सगदद्विकुडवाथ मुद्राथ त्रितुयास्तथा ॥ १० ॥
कुडवस्त्वेक एवाथ शर्करा कुडवा नव । त्रिकुडवं मधु प्रोक्तं घृतं च कुडवद्वयम् ॥ ११ ॥
मारीचं कुडवाष्टांशमितं नारीफलं तथा । कुडवस्त्वेक एवाथ जातीरप्रिस्तथैव च ॥ १२ ॥

हनुमान्जीका आवाहन करे ॥ ८१ ॥ बाहरकी तीन परिधियोंमेंसे श्वेत परिधिमें भागीरथी गंगाजीका आवाहन करे ॥ ८२ ॥ रक्त परिधिमें सरस्वतीजीका आवाहन करे ॥ ८३ ॥ काला परिधिमें यमुनाका आवाहन करे ॥ ८४ ॥ रमा और रामके भद्रमें भी इसी तरह आवाहन चाहिए । रमारामके भद्रकी मुद्रामें ही विशेषता है । पहले रमाका आवाहन करके रामका आवाहन करना चाहिए । इस तरह आवाहन करके षोडशोपचारसे पूजन करे और बाकी बचे अन्नसे दिग्बलि दे ॥

इति रामतोषभद्रदेवतास्थापनविधिः ।

श्रीरामदासने कहा — हे शिष्य ! रामचन्द्रजीको जो-जो वस्तुयें प्रिय हैं, अब उन्हें बतलाता हूँ । सब महीनोंमें चैत्रका महीना रामको प्रिय है ॥ १ ॥ शुक्ल कृष्ण दोनों पक्षोंमें रामकी शुक्लपक्ष प्रिय है । सब तिथियोंमें नवमी तिथि प्रिय ॥ २ ॥ सूर्यवंशमें रामका जन्म हुआ था । इसलिये उन्हें रविवार विशेष प्रिय है । सब नक्षत्रोंमें उन्हें पुनर्वसु नक्षत्र प्रिय है ॥ ३ ॥ फूलोंमें शंपक तथा तुलसी प्रिय हैं । नौ पुष्प रामको विशेष प्रिय हैं ॥ ४ ॥ जैसे—जूही, चम्पा, मग़दर, तुलसी, वैजयन्ती, मालती, दमनक, केतकी और सिंही इन्हीं फूलोंको एकत्र करके रामचन्द्रको अर्पित करना चाहिये ॥ ५ ॥ उसी तरह नौ प्रकारका अन्न भी भगवान्‌को प्रिय है । नवों हैं—मोदक, लड्डुक, मण्ड, पूरनपूरी, बटक, बत्ताशफेनी, पायड़, खासड़ा भीमें हुआ पक्वान्न, ये नौ भी भक्ष्य पदार्थ रामचन्द्रजीको प्रिय हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ अब दूसरे नौ प्रकारके खाद्य पदार्थ बतलाते हैं—मोदक, लड्डुक, मंड, बटक, फेणिका, भात, श्राक, पर्यट और पायस ये ही नौ अन्न हैं । शिष्य ! रामको दूसरे प्रिय बतलाते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ एवमासी कुडव गौका दूध, उसका ही चावल, सवा दो कुडव छित्का उसारी हुई मूँग ॥ १० ॥ एक कुडव चीनी, तीन कुडव मधु, दो कुडव घी, एक कुडवका अष्टमांश काशी मिर्च, एक कुडव तारियलकी घरी, एक कुडवका अष्टमांश जायत्री, इनको मिलाकर बनाया हुआ पाक रामचन्द्रजीको प्रिय है । इसलिये लोगोंको चाहिये कि ये पदार्थ बनाकर भगवान्‌को अर्पण करें ॥ ११ ॥ १२ ॥

मरिचमानेन नवाभं नवमिस्त्विदम् । तोषदं रामचन्द्रस्य भक्त्या कार्यं सदा नरैः ॥१३॥
 लघु नवाभं वक्ष्यामि नैवेद्यार्थं निरंतरम् । कुडवा नव गोक्षीरं तंडुलाः कुडवस्य च ॥१४॥
 चतुर्थीशमिता कुडवाष्टांशसंमिताः । ग्राक्षा वितुषमुद्राश्च कुडवार्थं शिता स्मृता ॥१५॥
 घृतं मुद्रममं ग्राक्षं तावन्मानं मधु स्मृतम् । तावन्मानं श्रीफलं च मरिचं टंकसंमितम् ॥१६॥
 टंकार्था जातिपत्रश्च नवाभं लघु कीर्तितम् । कुडवोऽर्कटकमितटंको मापचतुष्टयम् ॥१७॥
 लघु नवाभमेतच्च राघवाय निवेदयेत् । निरंतरं हि पूजायां राघवस्पातिहर्षदम् ॥१८॥
 भूतजम्बुकपित्थाश्च बीजपूरं च दाडिमम् । खजूरी नारिकेलं च कदलीफलमेव च ॥१९॥
 एतत्तं चेति रामाय फलानि नव सर्वदा । एतान्यतिप्रियाण्यत्र पूजायां तन्निवेदयेत् ॥२०॥
 सीताफलं च जंघीरं नारंगं स्निग्धमञ्जकम् । जातीफलं मातुलुंगं तथा द्राक्षाफलं शुभम् ॥२१॥
 उर्वारुकं तथा धात्रीफलं चैतानि वै नव । फलानि रामपूजायामुक्तानि मुनिभिः सदा ॥२२॥
 नवोपचारस्तांबूलो राघवाय निवेदयेत् । नागवल्लीः कम्बुकं च खदिरः सीध एव च ॥२३॥
 जातीपत्रो लवंगं च जातीफलवरंगके । एता चेति नवविधस्तांबूलः कीर्त्यते बुधैः ॥२४॥
 नवराजोपचाराश्च राघवाय निवेदयेत् । छत्रं सिंहासनं यानं चामरं ध्वजनं तथा ॥२५॥
 पानतांबूलपत्रं च पात्रं निष्ठीवनस्य । वस्त्रकोशश्चेति राज्ञामुपचाराः स्मृताः ॥२६॥
 नवाश्च भोग्यवस्तूनि राघवाय निवेदयेत् । चंदनं पुष्पमालां च द्रव्यं परिमलं तथा ॥२७॥
 अवतंसः फलं चापि सुगन्धतैलमुत्तमम् । ताम्बूलं कस्तुरी चापि तथा रक्ताक्षताः शुभाः ॥२८॥
 एतानि भोग्यवस्तूनि राघवाय निवेदयेत् । नवोपचाराः शय्याऽपि राघवाय समर्पयेत् ॥२९॥
 पर्यङ्कतूलिका रम्या वितानं चोपवर्हणम् । आदर्शो दीपिका तोयपात्रं प्रावरणं शुभम् ॥३०॥
 ध्वजनञ्चेति शय्यायाश्चोपचारा नव स्मृताः । नव वस्त्राणि रामाय देयान्यतिमहाति च ॥३१॥
 पीतांबरमुत्तरीयं चोष्णीपं कञ्जुकं तथा । उष्णीषोर्ध्वस्थितं दिव्यं तथा च कटिबंधनम् ॥३२॥

॥ १३ ॥ अब मैं अर्पण करने योग्य लघु नवाभ बतलाता हूँ— नौ कुडव गायका दूध, एक कुडवका चतुर्थांश चाबुल, कुडवका अष्टमांश बिना छिलकेकी धुन्नी सूत, कुडव बीनी, मूंगके बराबर ही घी, उतना ही मधु, उतना ही श्रीफल, एक टंक काली मिर्च, टंक जातिपत्र, लघु नवाभ कहलाते हैं । बारह टंकका एक कुडव होता और चार मासेके बराबर एक टंक होता है । यह लघु नवाभ रामचन्द्रजीको अर्पण करना चाहिए । यदि निरन्तर यह नवाभ रामचन्द्रजीको अर्पण किया जाय तो भगवान् अतिशय प्रसन्न होते हैं ॥ १४-१८ ॥ आम, जामुन, कंधा, बीजपूर, अनार, खजूर, नारियल, केला और कटहल ये नौ फल रामचन्द्रजीको अतिशय प्रिय हैं । पूजामें इन्हें भी अर्पण करना चाहिये । कुम्हड़ा, नीबू, नारन्गी, कसेरू, जायफल, बिजीरा, अंगूर, ककड़ी तथा आंवला ये नौ फल रामकी पूजामें आना आवश्यक है ॥ १९-२२ ॥ उसी तरह नौ उपचारोंके साथ ताम्बूल भी रामचन्द्रजीको अर्पण करना चाहिये । ताम्बूलके नौ उपचार ये हैं—पान, सुपारी, खैर, चूना, जावित्री, जायफल, कपूर, केसर और इलायची । नौ राखोपचार भी रामचन्द्रजीको अर्पण करने चाहिए । जैसे—छत्र, सिंहासन, रथ, चमर, पंखा, गिलास, पानदान, ओमालदान और कपड़ेकी पिटारी, ही राजाओंके नौ उपचार बतलाये गये हैं । उसी प्रकार नौ भोग्य वस्तु भी रामचन्द्रजीको अर्पण करना चाहिए । वस्तुयें इस प्रकार जाननी चाहिये—चन्दन, फूलोंकी मालाएँ, इत्र आदि सुगन्धित द्रव्य, तरह-तरहके फल, उत्तम सुगन्धित तेल, ताम्बूल, कस्तूरी और लाल बसंत, भोग्य वस्तुओंको रामचन्द्रजीको अर्पण करे । इसी तरह नौ उपचारयुक्त शय्या भी देने चाहिये ॥ २३-२९ ॥ परलङ्ग, गद्दा, बड़िया चाँदनी, तकिया, शीशा, दीपक, जलपात्र, घदरा और ध्वजन, ये शय्याके नौ उपचार हैं । इसी तरह अत्यन्त सुन्दर नौ कपड़े भी रामचन्द्रजीको अर्पण करे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ जैसे—पीताम्बर, उपरना, पगड़ी, कंजुकी, पगड़ोंके ऊपर बँधनेवाला

मुखशोधनार्थं च त्रिमुक्तं ह्यङ्कयोम्यकम् । तथा प्रावरणं दिव्यं नव वस्त्राणि भो द्विज ॥३३॥
 नव दिव्याम्बलङ्कारा देयाः श्रीराघवाय हि । कुण्डले कंकणे माला केयूरे नूपुरे तथा ॥३४॥
 पदकं कटिसूत्रं च भृङ्गला मुद्रिकेति च । एते नव त्वलङ्कारा देया राघवाय भक्तितः ॥३५॥
 एवं शिष्य मया रामप्रतिदानि महानि च । नवकान्यतिरम्याणि तवाग्रे कीर्तितानि हि ॥३६॥
 मुख्याम्बुज पदार्था हि नवकेषु मया स्मृताः । एभ्यस्त्वभ्ये पदार्थाश्च ये ये संनि महस्वशः ॥३७॥
 ■ भवे राघवायातिभक्त्या देयास्तु पूजने । प्रत्यहं रामचन्द्रस्य त्रिकालं पूजनं नरैः ॥३८॥
 कार्यं विद्यानुसारेण न कदा शाल्यमाचरेत् । प्रतिपदिनमारभ्य यावच्च नवमीतिथिः ॥३९॥
 तावद्विशेषतः कार्यं प्रत्यहं रामपूजनम् । विविधैर्मण्डपाद्यैश्च संपूज्य रघुनन्दनम् ॥४०॥
 पारायणं नदग्रे हि कर्तव्यं नवभिर्दिनैः । आनन्दरामचरितं पठनीयं तु सर्वदा ॥४१॥
 नवम्या राघवं रामतीर्थे वाहनसंस्थितम् । नीत्वा मंगलतूपाद्यैर्ध्वजद्यौन्दुमिस्वर्नः ॥४२॥
 अभिषेकस्तत्र कार्यो रुद्रसूक्तैः सुपुण्यदैः । तथा पुरुषसूक्तेन श्रीसूक्तेन तथैव च ॥४३॥
 त्रिष्णुसूक्तादिभिः सूक्तैरभिविच्य रघूत्तमम् । पूजनं विस्तरेणाथ कृत्वा मेहं समानयेत् ॥४४॥
 ततो हरेः कीर्तनानि स्वयं कार्याणि वा परैः । गायकैः करणीयानि त्रैश्याभिर्नर्तनान्यपि ॥४५॥
 ततः स्वयमुपोष्याय भक्त्या विप्रप्रपूजनम् । कार्यं वै गायकानां च पूजनं विस्तरेण हि ॥४६॥
 रात्रौ जागरणं कार्यं कथाभिर्गीतनृत्यकैः । दशम्यां प्रातस्तथाय स्नात्वा सपूज्य राघवम् ॥४७॥
 मध्याह्नं रामचन्द्रस्य पूजनं ब्राह्मणेषु हि । कार्यं तस्य विधानं ते वदाम्यथ शृणुष्व तत् ॥४८॥
 एकं धुम्यं तु विप्रस्य विप्राष्टं च निमंत्रयेत् । भूमिं गृहे विलिख्याय गोमयेनातिविस्तृताम् ॥४९॥
 रंगवल्क्याश्च पद्मानि नीलपोतादिवर्णकैः । तत्र समततः कृत्वा मध्ये विहासनं शुभम् ॥५०॥
 स्थाप्य तत्र महावस्त्रैरासनं परिकल्पयेत् । अष्टोचरसहस्रं च रामलिंगात्मकं शुभम् ॥५१॥

दिव्य वस्त्र, कमरबन्द, रुमाल, अलङ्कार तथा दुपट्टा ये नौ दिव्य वस्त्र श्रीरामचन्द्रजीको देना चाहिए ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ इसी तरह नौ प्रकारके दिव्य अलङ्कार भी समर्पण करे । कुण्डल, कंकण, माला, केयूर, नूपुर, पदक, कटिसूत्र (करचन), सिकडो और मुँदरे, ये नौ अलङ्कार रामचन्द्रजीको भक्तिपूर्वक देने चाहिये ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ हे शिष्य । इस तरह मेने रामको प्रशन्न करनेवाले अतिरम्य वस्त्र (नौ वस्तुओंका संप्रद) बतलाया । इनमें मेने मुख्य-मुख्य चीजोंका ही दिग्दर्शन कराया है । इनके अतिरिक्त भी हजारों पदार्थ हैं । पूजामें उन्हें भी भक्तिपूर्वक अर्पण करना चाहिए । भक्तको उचित ■ कि प्रतिदिन रामचन्द्रजीकी त्रिकाल पूजन करे ॥ ३६-३८ ॥ अपनी जैसी सामर्थ्य हो, उसके अनुसार स्नान भी करे । रामचन्द्रजीको पूजामें कभी कार्पण्य तो करना हो नहीं चाहिए । प्रतिपदासे लेकर नवमी पर्यन्त प्रतिदिन ■ पूजन करनेका विधान है । ■ इस प्रकार हे-चित्र-विचित्र मंडप बनाकर उसमें रामचन्द्रजीकी पूजा करके उनके आगे नौ दिनोंमें इस आनन्दरामायणका पारायण करे ॥ ३९-४१ ॥ नवमीको भगवान्को सवारीपर बिठाकर मंगलमय तुङ्गहीनगाड़े आदि बाजों तथा ढोल आदिके साथ परम पवित्र रुद्रसूक्त, पुरुषसूक्त, श्रीसूक्त तथा त्रिष्णुसूक्त आदिसे रामतीर्थमें रामचन्द्रजीका अभिषेक करे । इसके अनन्तर विस्तारपूर्वक पूजन करके उन्हें घरपर ले जाय ॥ ४२-४४ ॥ रातको स्वयं हरिकीर्तन करे वा और लोगोंमें करावे । तदनन्तर भक्तिपूर्वक विप्रों तथा गायकोंका पूजन करे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ कथा, गीत तथा नृत्य आदि करता हुआ रात्रिभर जागरण करे । दशमीको सबेरे उठकर स्नान करे और रामचन्द्रजीका पूजन करके मध्याह्नके समय ब्राह्मणोंके बीचमें उनका पूजन करे । हे शिष्य ! मैं उसका विधान बतलाता हूँ, सुनो ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ एक ब्राह्मणदम्पती तथा आठ अन्य ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे । घरकी भूमिको गोबरसे खूब फँसवमें लिखावे । फिर नील-पोता आदि वर्णोंसे चारों ओर चौक पुरवाकर बीचमें शुभ सिंहासन रखे ॥ ४९ ॥ ५० ॥ तदनन्तर बड़े-बड़े वस्त्रोंसे सिंहासनको

अथवाऽष्टोत्तरशतं रामलिङ्गात्मकं शुभम् । अष्टोत्तरसहस्रं ■ रामतोभद्रमुत्तमम् ॥५२॥
 अथवाऽष्टोत्तरशतं रामतोभद्रमुत्तमम् । मित्रासने निधायाथ रामस्यासनमुज्ज्वलम् ॥५३॥
 भद्रोपरि सप्तलीकं तत्र विप्रं निवेशयेत् । पश्चिमाभिमुखे वामभागे तत्स्त्रीं निवेशयेत् ॥५४॥
 सीतारामौ तु दम्पत्योरावाह्य तदनन्तरम् । तत्पृष्ठे लक्ष्मणं विप्रं चितयेच्च ततः परम् ॥५५॥
 भरतं रामसन्धे तु आवाह्य भूमुरे तथा ॥५६॥

विप्रेऽञ्जनिमुत चापि रामस्याग्रे विचित्रयेत् । रामस्य वायुदिग्भागास्तुग्रीवादीन् विचित्रयेत् ॥५७॥
 चतुष्कोणेषु विप्रेषु ततः पूजनमाचरेत् । नवायनपूजेयं शंया श्रीराघवस्य हि ॥५८॥
 अथवा पञ्चायतनं पञ्चविप्रेषु चितयेत् । ससीत शक्तिहीनेन नरेण सर्वदा भुवि ॥५९॥
 अथवा यतिनं रामस्थाने भक्त्या निवेशयेत् । पूर्वाफलपयीं सीतां यतिवामे निवेश्य च ॥६०॥
 कार्यं सम्यक्पूजनं च ततो गेहे सुवासिनीम् । सीता मन्त्रा पुनः पूज्य भोजनीया सविस्तरम् ॥६१॥
 आदौ सीताराघवयोः कृत्वा पूजनमुत्तमम् । ततः पूजा ■ सर्वेषां कार्या नानोपचारकैः ॥६२॥
 क्रमेण लक्ष्मणादीनामुपचारैस्तु षोडशः । अथवा सह तन्त्रेण रामपूजनमाचरेत् ॥६३॥
 आदाववाह्य विप्रेषु देयमामनमुत्तमम् । ततः प्राञ्चाख्य पादौ च सर्वेषां च पृथक् पृथक् ॥६४॥
 यतिपादोदकं भिन्नं स्थानीयं नरोत्तमः । ततः पृथक् पृथग्दर्शान् दत्त्वा मुचन्दनादिभिः ॥६५॥
 ततश्चाचमनं दत्त्वा स्नानार्थं जलमुन्सृजेत् । ततो वस्त्रं समर्प्याथ देवान्याभरणानि हि ॥६६॥
 समर्प्य ब्रह्मसूत्राणि गन्धं देयं मनोहरम् । ततो रक्ताक्षता देवाः पुष्पमालास्तथाऽपराः ॥६७॥
 ततो माङ्गल्यवस्तूनि ततश्छत्रं च चामरम् । व्यजनं च ततो देयं देयस्तूणीरकस्तथा ॥६८॥
 देवा घाणाश्च चापानि देयानि हि पृथक् पृथक् । दत्त्वा परिमलादीनि भोग्यवस्तूनि विस्तरात् ॥६९॥
 भूपो देयस्तथा दीपो नैवेद्यो दीयतां ततः । अथवाऽन्यच्छर्करादि नैवेद्यार्थं समर्पयेत् ॥७०॥

सँवारे । उसपर अष्टोत्तरशत अथवा अष्टोत्तरसहस्र लिङ्गात्मक भद्र अथवा रामतोभद्र बनाकर भद्रके ऊपर विप्रदम्पतीको बिठाये । विप्रके वामभागमें पश्चिमाभिमुख उसकी स्त्री बैठे ॥ ५१-५४ ॥ तदनन्तर उसी विप्रदम्पतीमें सीतारामका आवाहन करके ब्राह्मणके पीछे लक्ष्मणका आवाहन करे ॥ ५५ ॥ ब्राह्मणके दाहिनी ओर भरतका ध्यान करे । रामचन्द्रजीके आगे उस ब्राह्मणमें ही अञ्जनीपुत्रका ध्यान करे । रामके बायव्य कोणमें भुयीव आदिका ध्यान करे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ फिर चारों कोनोंमें ब्राह्मणोंका पूजन करे । यह श्रीरामचन्द्रजीका नवायतन पूजन है ॥ ५८ ॥ पाँच ब्राह्मणोंमें रामका पञ्चायतन पूजन करे । लेकिन यह विधान उसीके लिए है कि जो साधर्माविहीन हो ॥ ५९ ॥ अथवा रामचन्द्रजीके स्थानमें यतिकी स्थापना करे । सुगरीमें सीताको कल्पना करके उसे यतिके वामभागमें ■ दे ॥ ६० ॥ तदनन्तर अच्छी तरह रामका पूजन करे । इसके बाद सोहागिन विप्रपत्नीको सीता मानकर विस्तारपूर्वक पूजन करे और भोजन करावे ॥ ६१ ॥ पहले सीता और रामचन्द्रजीका पूजन करके अन्य लोगोंका भी नाना प्रकारके उपचारोंसे पूजन करे । क्रमशः लक्ष्मण आदिका षोडश उपचारोंसे पूजन करे । अथवा शास्त्रानुसार रामका पूजन करे ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ पहले विप्रोंका आवाहन करके उत्तम आसन दे । फिर अलग-अलग उन लोगोंके पैर धोकर यतिकी पादोदक अलग रख दे । तदनन्तर अच्छे चन्दन आदिसे पृथक्-पृथक् अर्घ्य आदि दे ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ तदनन्तर आचमनके लिए जल देकर स्नानके लिए जल छोड़े । उत्पन्नात् वस्त्र प्रदान करके ब्रह्मसूत्र समर्पित करे ॥ ६६ ॥ फिर यज्ञोपवीत देकर मनोहर गन्धदान दे । इसके बाद लाल अक्षत एवं पुष्प-बाल दे ॥ ६७ ॥ इसके पश्चात् माङ्गल्य वस्तुयें, फिर छत्र, चमर, व्यजन तथा तूणीर दे । तदनन्तर घुघु-वण आदि देकर इत्र आदि भोग्य वस्तुओंको विस्तारपूर्वक प्रदान करे ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ तदनन्तर घूप, दीप, नैवेद्य दे । यदि नैवेद्यके लिए कोई एकदान आदि न बना सके तो उसके निमित्त शर्करा आदि प्रदान करे ॥ ७० ॥

नानाफलानि देवानि देयस्तांबूल उचमः । दक्षिणां च ततो दत्त्वा देयो मुकुर उज्ज्वलः ॥७१॥
नीराजनं ततः कृत्वा मंत्रपुष्पाणि दीयताम् । प्रदक्षिणानमस्काराश्च कृत्वा ततः परम् ॥७२॥
नृत्यगीतादिकं कृत्वा प्रार्थयेद्ब्रह्मनायकम् । विनिमोच्य करौ पादौ रामाग्रे संस्थितैर्नरैः ॥७३॥

वामे भूमिसुता पुरस्तु हनुमान् शृष्टे मुमित्रासुतः

सशुष्को भरतश्च पार्श्वदलयोर्वायव्यकोणादिषु ।

सुग्रीवश्च विभीषणश्च युवराट् तारासुतो जाम्बवान्

मध्ये नीलसरोजकोमलरुचिं गमं भजे श्यामलम् ॥७४॥

रामो हत्वा दशास्यं द्विजवचनगुरुत्वेन यात्राऽख्यञ्जान

कृत्वा भुक्त्वातिभोगान्वनितलविशंभो गृहीन्वाऽयं सीताम् ।

लब्ध्वा नानास्तुपास्तास्त्वदमितलगतान्पार्थिवादींश्च जिह्वा

कृत्वा नानोपदेशान् गजपुरनिकटे स्वीयलोकं जगाम ॥७५॥

नवकाण्डमयः श्लोकः पठित्वाऽयं हरैः पुरः । ततः क्षमाप्य श्रीरामं पूजां तस्मै समर्पयेत् ॥७६॥

मया भासवते रामनवम्यां यत्प्रपूजनम् । पारायणादिकं सर्वं नवरात्रेऽपि यत्कृतम् ॥७७॥

सत्सर्वं तेऽर्पितं त्वद्य प्रसन्नो भव मे प्रभो । नवायनपूजेयं या कृता नवमीदिने ॥७८॥

नवविघ्नेषु साऽप्यद्य तेऽर्पिता राम ॥ मया । त्वं गृह्ण यथाशक्त्या कृता तां त्वं प्रसीद मे ॥७९॥

एवं तमर्प्य रामाय सकलं पूजनादिकम् । ततो भोजनरोत्या तान् सन्निवेशयाम् भोजयेत् ॥८०॥

पुनर्दत्त्वा तु तांबूलं दक्षिणां तु विसर्जयेत् । ततः स्वयं विप्रतीर्थं गृहीन्वा च ततः परम् ॥८१॥

यतिपादोदकं प्राश्य देवतीर्थं ततः परम् । गृहीत्वा भोजनं कार्यं सुहृन्मित्रजनैः सह ॥८२॥

समर्पितं यद्यतये ततश्च ॥ हि । देयं स्वगुरवे सर्वं ब्रह्मभूवादिकं शुभम् ॥८३॥

एवं ब्रतं राघवस्य पक्षे पक्षे प्रकारयेत् । अथवा शुक्लपक्षे हि कार्यं व्रतमिदं शुभम् ॥८४॥

इसके बाद नाना प्रकारके फल, ताम्बूल, दक्षिणा, सुन्दर वर्ण, नीराजन, मन्त्रपुष्प, प्रदक्षिणा, नमस्कार आदि क्रमशः समर्पण करे । तदनन्तर नृत्य-गीत आदि करके सब लोग सामने खड़े होकर रामचन्द्रजीसे प्रार्थना करे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ वामभागमें सीता, सामने हनुमान्जी, पीछे लक्ष्मणजी, दोनों ॥ भरत और शत्रुघ्न, वायव्य आदि कोणोंमें सुग्रीव, विभीषण, युवराज अङ्गद, जाम्बवान् आदि खड़े हैं और उनके बीचमें ॥ हुए नील कमलके समान कोमल दोन्तिसम्पन्न श्याम स्वरूपधारी रामका मैं भजन करता हूँ ॥ ७४ ॥ रामने रावणको मारकर ब्राह्मणके वास्यरूपी गौरवसे प्रेरित हो यात्रा तथा अस्थायी आदि किने और विविध प्रकारके भोग भोगे । फिर पाताललोक जाती हुई सीताको उन्होंने पृथ्वीसे वापस लिया । इसके बाद पृथ्वी-अण्डलके बड़े-बड़े राजाओंको परास्त करके हस्तिनापुरके आस-पासवाले बृहत्से देशोंको जीता । उन राजाओंकी कुमारियोंके साथ अपने गुत्रोंके ब्याह किये और अन्तमें अपने परम श्यामको चले गये ॥ ७५ ॥ इस भी काण्डात्मक श्लोकको रामके सामने पढ़कर जमा रागे और की हुई पूजा भगवान्को अर्पण करे ॥ ७६ ॥ साथ ही यह कहता जाय कि हे प्रभो ! मैंने इस भासवतमें रामनवमी ॥ नवरात्रमें जो पूजन-पारायण आदि किया है, वह ॥ आपको अर्पण है । हे प्रभो ! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों । रामनवमीको जो नौ विघ्नोंमें मैंने आपकी नवायन पूजा की है, वह भी आपको अर्पित है । यथाशक्ति की हुई इस पूजा-को स्वीकार करके आप मुझपर प्रसन्न हों ॥ ७७-७९ ॥ इस तरह रामको सब पूजन आदि समर्पण करके विविध उन विघ्नोंको आसनपर बिठलाकर भोजन कराये ॥ ८० ॥ फिर ताम्बूल और दक्षिणा देकर उन्हें बिदा करे । तदनन्तर स्वयं ब्राह्मणोंके चरणोदक, यातियोंके पादोदक एवं देवताओंके चरणोंके पुनीत चरणजलसे आचमन करके नातेदारों, मित्रों तथा काम्बवोंके साथ स्वयं भोजन करे ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ तदनन्तर

मासे मासे सर्वदैव रामोपासकमानवैः । एवं मासव्रतं प्रोक्तं राघवस्यातितोषदम् ॥८५॥
 सति व्रतान्पनेकानि जगत्यां पुण्यदानि हि । तथाप्यनेन सदृशं न भूतं न भविष्यति ॥८६॥
 व्रतानामुत्तमं चैतद्भक्तिमुक्तिप्रदायकम् । अवश्यमेव कर्तव्यं रामोपासकमानवैः ॥८७॥
 एवं शिष्य मया प्रोक्तं व्रतानामुत्तमं व्रतम् । सविस्तारं तवाग्रे हि राघवस्यातितोषदम् ॥८८॥

विष्णुदास उवाच

श्रीरामनवमीमासव्रतस्योद्यापनं वद । कदा कार्यं कथं कार्यं गुरो कृत्वा कृपां मयि ॥८९॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया वत्स सावधानमनाः शृणु । नवसंवत्सरं मासनवमीव्रतमुत्तमम् ॥९०॥
 कृत्वा चोत्थापनं कार्यं चैत्रे श्रीरामजन्मनि । नवम्यां समुपोष्याथ कर्तव्यमधिवासनम् ॥९१॥
 गृहे वृन्दावने वाथ गोष्ठे देवगृहादिषु । संमार्जनं गोमयेन कार्यं वा चन्दनादिभिः ॥९२॥
 ततः पाषाणचूर्णैश्च नानाधन्नादिकानि हि । भुवि संलेखनीयानि नीलपीतादिवर्णकैः ॥९३॥
 रञ्जनीयानि रम्याणि ततः पत्रादिसंस्थले । पूर्वाक्षरामभद्राणां मध्ये त्वेकं वरासनम् ॥९४॥
 लिखित्वा चित्रवर्णैश्च प्रोक्तैरेव सुरञ्जयेत् । तस्योपरि महान् रम्यश्चित्रवर्णश्च मण्डपः ॥९५॥
 देयो द्वागणि चत्वारि कार्याणि तोरणानि च । कदलीस्तम्भयुक्तानि चेलुदण्डयुतानि च ॥९६॥
 नानाघटार्किकिणीभिर्ध्वनितान्पुञ्ज्वलानि च । रम्यादर्शमण्डितानि विचित्राणि शुभानि च ॥९७॥
 शिखरध्वजैर्वितानैश्च मुक्ताहारैर्पुतान्यपि । अथ तद्रामभद्ररथे कलशे वारिपरिते ॥९८॥
 ताम्रपात्रे रामचन्द्रं नवायतनचिह्नितम् । सीतया पूजयेद्वात्री महोत्साहपुरःसरम् ॥९९॥
 नवपलमिर्गा मूर्ति हैमीं कृत्वा प्रपूजयेत् । सीता हैमीं प्रकर्तव्या शुभाऽष्टपलसंमिता ॥१००॥
 राजसास्ते लक्ष्मणाद्याः पृथक् पञ्चश्लैः स्मृताः । अशर्का च तदर्धेन तदर्धर्धेन वै पुनः ॥१०१॥

मतिथीं तथा बाह्यणोंको जो कुछ दिया हो, वही अपने गुणको भी दे ॥ ८३ ॥ इस तरह हर पक्षमें जोका व्रत करे । दोनों पक्षोंमें न कर सके सो केवल शुक्लपक्षमें यह रामव्रत करे ॥ ८४ ॥ रामकी उपासना करनेवालेके लिए रामको प्रसन्न करनेवाला यह मासव्रत मैने बतलाया ॥ ८५ ॥ यद्यपि संसारमें बहुतसे पुण्यदायक व्रत हैं । फिर भी इस व्रतके बराबर न कोई व्रत हुआ है और न होगा ॥ ८६ ॥ यह व्रतोंमें उत्तम और भुक्ति-भुक्ति देनेवाला व्रत है । रामके उपासकोंको यह अवश्य करना चाहिए ॥ ८७ ॥ हे शिष्य ! इस प्रकार रामको अत्यन्त प्रसन्न करनेवाला सब व्रतोंमें उत्तम व्रत मैने विस्तारपूर्वक तुम्हें कह सुनाया ॥ ८८ ॥ विष्णुदासनं कहा—अब आप मुझपर कृपा करके यह बताइए कि श्रीरामनवमीके उद्यापन कब और कैसे करना चाहिए ॥ ८९ ॥ श्रीरामदासनं कहा—हे वत्स ! तुमने बहुत ही अच्छी बात पूछी है । इसे सावधान मन होकर सुनो । दो वर्ष पयन्त रामका मासनवमी व्रत करना चाहिए । इसके बाद चैत्र मासमें श्रीरामनवमाक दिन इसका उद्यापन करना चाहिए ! यह कार्य नवमीको उपवास करके किया जाना चाहिए ॥ ९० ॥ ९१ ॥ घरमें, वृन्दावन (तुलसीको बगीचा) में, गोशालामें ध्यवा किसी मन्दिरमें चन्दन या गोबरसे शौका दिलाकर पाषाणके चूर्ण आदिसे अनेक प्रकारके नील-पीत कमल आदि बनावे ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ इसके बाद पत्र आदिपर पूर्वोक्त रामभद्रोंमेंसे किसी एक भद्रको बनावे । उसके बीचमें एक सुन्दर आसन रखे ॥ ९४ ॥ आसन भी अनेक प्रकारके रङ्ग-विरङ्गे रङ्गोंसे रङ्गे और उसके ऊपर अतिशय सुन्दर और चित्रवर्णका मण्डप बनावे ॥ ९५ ॥ उसमें चार द्वार बनाकर केलेके खंभे इजुदण्डके साय-साय तोरण लगावे ॥ ९६ ॥ उसमें अनेक प्रकारके घंटा किकिणी आदि बाजे बांधकर उसका शृंगार करे । उसे चित्र-विचित्र ध्वजा, वितान, मोतियोंके हार आदिते सुसज्ज करे । इसके अनन्तर रामतोभद्रके बीचमें अलपूर्ण कलशपर ताम्रका पात्र रखकर नवायतनके चिह्नसे चिह्नित सीता समेत रामका पूजन करे ॥ ९७-९९ ॥ नौ पलकी सुवर्णमयी राममूर्ति बनवाना चाहिए । आठ पलका सीतामूर्ति बनेगी ॥ १०० ॥ लक्ष्मण आदि-

तस्याप्यर्थं तदर्धार्धं विचित्रार्थं न कारयेत् । षोडशैरुपचारैश्च पूजोक्ता निशि जागरः ॥१०२॥
 दक्षम्यां प्रातरुत्थाय स्नात्वा संपूज्य राघवम् । राममंत्रेण हवनं कार्यं नवसहस्रकम् ॥१०३॥
 तिलाद्यैः पायसाद्यैश्च नवाब्जेनाथ तस्मृतम् । तदश्वाशेन क्षीरेण तर्पणं हि प्रकारयेत् ॥१०४॥
 तस्यापि दशांशेन मार्जनं द्विजभोजनम् । कर्ममुद्रां हस्तमुद्रां वसने जलमंत्रकम् ॥१०५॥
 चित्रासनमुत्तरीयं मुकुटं हार्जरीं तथा । कांस्यपात्रं भोजनस्य नवाब्जेन प्रपूरितम् ॥१०६॥
 घृतपात्रं कांस्यमयं नवाब्जोपरि संस्थितम् । पादुके पुस्तकं दिव्यं यत्किञ्चिद्राघवस्य ॥१०७॥
 तांपूलं दक्षिणां चापि प्रत्येकं भूसुराय हि । अर्पयेत्सकलं चेत्येवं सर्वान् समर्पयेत् ॥१०८॥
 ततो गुरुं समभ्यर्च्य प्रणम्य च पुनः पुनः । तामर्चामर्पयेत्सर्वां गुरवे दक्षिणान्विताम् ॥१०९॥
 ततो गुरुं प्राययेत्तं प्रणम्य च पुनः पुनः । मासे मासे नवम्यां सोद्यापनव्रतं मया ॥११०॥
 यत्कृतं नव वर्षाणि तेन तुष्यतु राघवः । अग्रेऽपि यावज्जीवामि तावत्कालं करोम्यहम् ॥१११॥
 व्रतानामुत्तमं चेदं तुष्ट्यर्थं राघवस्य च । गुरो त्वत्कृपया रामो मां प्रसीदतु सीतया ॥११२॥
 एवं संप्राप्त्य स्वीयं तं गुरुं नत्वा विमर्जयेत् । ततः स्वयं हि भुञ्जात मुहन्मित्रमुतादिभिः ॥११३॥
 एवमुद्यापनं कृत्वा कार्यमग्रे व्रतं पुनः । मासे मासे राघवस्य न त्पाज्यं सर्वथा नरैः ॥११४॥
 एकादशीव्रतं नित्यं यथा तत्क्रियते नरैः । तथा मासव्रतं चेदं नित्यमेव स्मृतं बुधैः ॥११५॥
 अशक्तेन यथाशक्त्या कार्यमुद्यापनं व्रतम् । उपोष्या नवमी शुक्ला सर्वदैव नरैर्भुवि ॥११६॥
 नवम्यां शुक्लपक्षे यो भुङ्क्तेऽन्नं मृदधीनरः । रौरवे कल्पपर्यंतं तस्य वासः स्मृतो बुधैः ॥११७॥
 एवं शिष्यं त्वया यच्च पृष्टं तत्ते निवेदितम् । का तेऽन्या श्रोतुमिच्छास्ति तां वदस्व वदामि ते ॥११८॥

की मूर्तियाँ पाँच-पाँच पल चाँदीकी बनेंगी । यदि ऐसा करनेको सामर्थ्य न हो तो उससे आधे वजनकी मूर्ति बनवाये और यदि वह भी न कर सके तो आधेके आधे वजनकी मूर्तियाँ बनवानी चाहिए । वह भी न हो सके तो उसको भी आधे वजनकी बनवाये, किन्तु कंजूसो न करे । षोडश उपचारोंसे पूजन तथा रात्रिको जागरण अवश्य करना चाहिए ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ दक्षम्याँ सवेरे उठकर स्नान और रामका पूजन करके नौ हजार हवन करे ॥ १०३ ॥ हवन तिलसे, सौरसे अथवा नवाब्जसे करना उचित है । तदनन्तर हवनके दशांश दूधसे तर्पण करे । उसका भी दशांश भाजन करे और भाजनका भी दशांश ब्राह्मणोंको भोजन करावे । इसके अनन्तर हस्तमुद्रा तथा कर्ममुद्राके वस्त्र, यज्ञोपवीत, चित्रासन, उत्तरीय वस्त्र, मुकुट, हारी, भोजनके लिए नवाब्जसे पूर्ण कांस्यपात्र, घृतपात्र, इन सबके माथ कांस्यमय पात्रोंमें नवाब्जपर रखकर चरणपादुका, दिव्य आनन्दरामायणकी पुस्तक, ताम्बूल, दक्षिणा, ये सब वस्तुएँ प्रत्येक ब्राह्मणको दे ॥ १०४-१०७ ॥ तदनन्तर गुरुका पूजन करके उसे एक गौ दे और दक्षिणा समेत वह पूजनसामग्री गुरुको अर्पण करे ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ इसके बाद गुरुको बारम्बार प्रणाम करके कहे—हे गुरो ! महीने महीने उद्यापनके साथ जो नौ वर्षपर्यन्त रामव्रत किया है । उससे श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न हों । आगे भी तक जीवित रहूँगा, बराबर यह उत्तम व्रत भगवान्को प्रसन्न करनेके लिए करता रहूँगा । हे गुरो ! आपकी कृपासे मुझपर सीता और राम प्रसन्न हों ॥ ११०-११२ ॥ इस प्रकार प्रार्थना करनेके बाद अपने गुरुजीको प्रणाम करके उसको विदा करे । इसके बाद सम्बन्धियों, मित्रों और पुत्रादिकोंके साथ स्वयं भी भोजन करे ॥ ११३ ॥ इस तरह उद्यापन करके महीने-महीने यह व्रत करता रहे, त्यागो नहीं ॥ ११४ ॥ जिस तरह लोग एकादशीका व्रत करते हैं : उसी तरह यह मासव्रत भी सदा करते रहना चाहिए ॥ ११५ ॥ यदि विवेक सामर्थ्य न हो तो अपनी शक्तिके अनुसार ही इसका उद्यापन करे । संसारके लोगोंको चाहिए कि सर्वदा शुक्लपक्षकी नवमीको उपवास किया करें ॥ ११६ ॥ जो मूर्ख मनुष्य शुक्लपक्षकी नवमीको भस्म खाता है, उसे एक कल्पतक रौरव नरकमें नियास करना पड़ता है । यह बात कितने ही विद्वानोंकी कहो हुई है ॥ ११७ ॥ रामदासने कहा—हे शिष्य ! तुमने जो पूछा, वह मैंने तुमसे कहा । अब और क्या सुनना चाहते हो, वह नदयाओ तो मैं कहूँ ॥ ११८ ॥

विष्णुदास उवाच

गुरो स्वया राघवस्य श्रीरामनवमीव्रतम् । मासे मासे प्रकर्तव्यमिति प्रोक्तं ममाग्रतः ॥११९॥
तत्केनाचरितं पूर्वं सिद्धिर्लब्धाऽत्र केन हि । तत्सर्वं विस्तरेणैव वद कृत्वा कृपां मयि ॥१२०॥
अन्यत्ते प्रष्टुमिच्छामि तत्त्वं मां वक्तुमर्हसि । अशुक्तेन नरेणेदं व्रतं कार्यं कथं भवत् ॥१२१॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

सम्यक् पृष्टं स्वया शिष्य सावधानमनाः शृणु । आसीत्पुरा द्विजः कश्चित्केरले रामतः परः ॥१२२॥
वाभूत्तस्य विवाहोऽत्र निर्धनस्य जनस्य च । नासीत्तस्मै गृहमपि न माता न पिताऽपि च ॥१२३॥
तस्यैको नियमश्चासीद्विरिद्रस्य च तं शृणु । नित्यं प्रातः समुत्थाय कृतमालानदीजले ॥१२४॥
स्नात्वा नदीसिकतायां सिकतावेदिकां नव । कृत्वा तत्र जनकजासहितं रघुनन्दनम् ॥१२५॥
पत्रनिर्मितश्रीरामलिङ्गात्मकवरासने । मण्यमायां वेदिकायां सस्याप्य धातुनिर्मितम् ॥१२६॥
अष्टदिक्षु वेदिकासु तरुपत्रासने पृथक् । समंततो राघवस्य लक्ष्मणादीन्व्यवेशयत् ॥१२७॥
ततः स राघवं प्राह रामं राजीवलोचनम् । कर्तुमावश्यकं कर्म गन्तुमर्हसि सत्वरम् ॥१२८॥
इत्युक्त्वा तं स्वयं पृष्ठे निवेश्य रघुनन्दनम् । किपद्दूरं रहा वृक्षखंडे गत्वा द्विजोत्तमः ॥१२९॥
रामं दृष्ट्वाभुवि स्याप्य तदग्रे पात्रमुत्तमम् । सज्जलमृचैर्का चापि सस्याप्य च जवन हि ॥१३०॥
किञ्चिद्दूरं स्वयं गत्वा स्थितवान् स किपत्क्षणम् । रामांतिकं पुनर्गत्वा पादप्रक्षालनदिकम् ॥१३१॥
अकरोन्मृत्तिकाशौचं च तस्य स्वकरेण हि । दक्षऽन्यपात्रतोयेन रामायाश्चमनं ततः ॥१३२॥
दंतकाष्ठेन तदंतान्संशोष्य भक्तिपूर्वकम् । गंधपार्थ जलं दत्त्वा कवोष्णं शीतलं पुनः ॥१३३॥
समर्प्याश्चमनार्थं स दक्षेणास्यं प्रमार्जयत् । संमाज्यं हस्ती पादौ च रामस्य वाससा द्विजः ॥१३४॥
तं विगृह्य पुनः पृष्ठे नम्रीभूतः शनैः शनैः । सिकतावेदिकायां च पूर्वस्थाने न्यवेशयत् ॥१३५॥
एवं सीतां लक्ष्मणं च भरतं लवणांतकम् । सुग्रीवादीन् पृथक् नोत्वावश्यकादीन्व्यकारयत् ॥१३६॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! अभी आपने हमसे कहा है कि महान-महाने श्रीरामनवमी व्रत करना चाहिए ॥११९॥
इस व्रतको किसने किया था और इसके प्रभावसे किसको सिद्धि प्राप्त हुई थी ? कृपा करके यह विस्तारपूर्वक
हमें बतलाइये ॥१२०॥ हाँ, एक बात मैं आपसे और पूछना चाहता हूँ । वह यह कि जो प्राणो असमर्थ है, वह
यह व्रत कैसे करे ? ॥१२१॥ श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य । तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है, सावधान
मनसे सुनो । एक समय रत्न (केरल) देशमें रामको प्रति में तत्पर एक ब्राह्मण रहा करता था ॥१२२॥
दीनताके कारण न उसका व्याह हुआ था, न घर-द्वार था और न माता-पिता हों थे ॥१२३॥ किन्तु उस
दरिद्रका एक नियम था, उसे सुनो । वह प्रतिदिन सबेरे उठता तो एक सुन्दर माला बनाता । फिर नदीमें
करके बालूमें नौ वेदियाँ बनाकर उनपर पत्र निर्माण करके श्रीरामलिङ्गके आसनपर मध्यवेदीमें धातु-
निर्मित रामकी प्रतिमा बैठाकर लक्ष्मणके आसनपर चारों ओर राम-लक्ष्मण आदिको बिठाकर या ॥१२४॥ ॥१२५॥
॥१२६॥ ॥१२७॥ इसके बाद राजीवलोचन रामसे कहता—हे राम । मैं आजका पूजन करूँगा । इसलिए
कृपा करके पधारिए ॥१२८॥ ऐसा कहकर रामको अपनी पीठपर लादता और कुछ दूर एकान्तकी आदिपों-
में ले आकर किसी घाट उगी हुई जगहपर बिठाता । उनके आगे जलसे भरा हुआ उत्तम और
मृत्तिका रखकर स्वयं वहाँसे कुछ दूरीपर जाकर बैठता और थोड़ी देर बाद नौदकर आता तो अपने हाथोंसे
उनका पादप्रक्षालन और मृत्तिकाशुद्धि आदि करता । फिर एक दूसरे पात्रके द्वारा जल देकर रामको कुत्ते
कराता था ॥१२९-१३२॥ तदनन्तर काष्ठकी दातोंसे उनके दाँत मोजकर पहले कुछ गरम और बादमें
शीतल अलसे नुस्से करवाता था । इसके बाद तौलियेसे उनके मुँह आदि पोंछकर हाथ पैर आदि
पोंछता और फिर अपनी पीठपर लेकर धीरे-धीरे सिकताकी बनी हुई वेदिकापर बिठाकर दिया करता
था ॥१३३-१३५॥ इसी तरह सीता, लक्ष्मण, भरत, लवण और सुग्रीव आदिको पृथक्-पृथक्

ततः पृथक्शोण्येन तैलान्यगान्विधाय सः । नीरेणास्नापयत् सर्वान् कृत्वा शोद्धर्तनान्यपि ॥१३७॥
 ततो धूतौदियन्त्राणि वस्त्रार्थं स पृथग्ददौ । ततः पत्रैः फलैः पुष्पैर्लेख्यैस्तानवर्धयत्कृत्वा ॥१३८॥
 ततः स स्थूलघोहीणां कृत्वा दनमनुत्तमम् । स्नानवा माध्याह्निकं कृत्वा पुनः संपूज्य राघवम् ॥१३९॥
 दक्षौदनस्य नैवेद्यं वैश्वदेव विधाय च । किञ्चिद्विभक्त्यामतिथये मत्स्थान्यामण्डजदिकान् ॥१४०॥
 दत्त्वा पृथक्पृथक् विप्रश्चक्रं रामाख्याऽश्ननम् । ततो रामं पुनः पृष्ठे समारोहयदादरात् ॥१४१॥
 ततः सीतां ततः सर्वान् लक्ष्मणादीन्क्रमेण हि । पञ्चोपकरणं सर्वं पेटिकायां निधाय सः ॥१४२॥
 कृत्वा तां पेटिकां कक्षे जगामाय शर्नद्धिजः । वनारामोपवनं गत्वा रामं चचोऽभ्रवीत् ॥१४३॥
 राम राजीवपत्राक्ष वनारामादिकौतुकम् । जानकीसहितः पश्य नानाद्वयमृगादिकान् ॥१४४॥
 ततो ययौ ग्रामद्वयं दर्शयन्कौतुकं विभुम् । संमर्दं ताडयामास मार्गार्थं यान् स यष्टिना ॥१४५॥
 तेऽपि तत्कौतुकाविष्टा जनाः कोपं न मेनिरे । एवं नानाकौतुकानि दर्शयामास राघवम् ॥१४६॥
 शून्ये तृणमृदे रामं तानवरुक्ष च । काष्ठनिर्मितपर्यंके कारयामास निद्रितान् ॥१४७॥
 ततो वेमाद्विड्मध्ये गत्वा स बाष्पणोत्तमः । याश्चया तदुलान् तैलं घृतं शार्कं फलानि च ॥१४८॥
 नामवल्लोदलादीनि कम्पुकं कुङ्कुमादिकम् । लब्ध्वा ताम्रमयं किञ्चिद्द्रव्यं रामान्तिकं ययौ ॥१४९॥
 वप्सामवतसिनः सर्वं ये हृष्टे स्थिता जनाः । स्वस्वनानाव्यवसायतत्परास्ते द्विजोत्तमम् ॥१५०॥
 भीरामनिष्ठं तु दृष्ट्वा ददुस्तथावितं मुदा । विप्रः सूयमृदे रामं रामाग्रे दीपमुत्तमम् ॥१५१॥
 प्रज्वारयातर्तिकं कृत्वा गन्धार्यः परिपूज्य च । बीजगम्यास रामादीन् पल्लवेन मुदान्वितः ॥१५२॥
 ततः स्तुत्वा मुहुर्जप्त्वा कृत्वा चापि प्रदक्षिणाः । चकार कीर्तनं वक्ष्यमाणैः सन्मनुभिर्द्विजैः ॥१५३॥

ले आकर मोवावधि पूर्ण किया करता था ॥ १३६ ॥ तदनन्तर राम-सीता आदिके पादोदरमें तेल लगाकर पीछे गरम जलसे स्नान कराता था । तदनन्तर भोजपत्र आदिके पत्ते कपड़ेके लिए प्रदान करता और पत्र, फल, पुष्प आदि जो कुछ मिल जाता, उससे क्रमशः उनका पूजन किया करता था ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ फिर मोटे चावलका उत्तम भात बनाता और स्नान तथा मधराह्नकालकी संध्या आदि क्रियायें कर लेनेके बाद रघुनाथजीकी पूजा करता और बलिर्वैश्वदेव करके भातका भोग उनके सामने रखता था । तदनन्तर उसमेंसे कुछ अतिथियोंके पितायें, कुछ मछलियों और पक्षियोंके लिए, कुछ गौश्री तथा चींटो आदिके लिए निकालकर रामकी आज्ञा या जानेपर स्वरं भोजन किया करता था । तदनन्तर फिर रामको आदरपूर्वक पीठपर लादकर क्रमशः सीतान् लक्ष्मण आदिको तथा पूजनकी मामग्री पेटोमें भरकर पेटो बगलमें दबाता और सबको पीठपर बैठाकर वहाँसे चलता था । इसके बाद किसी सुन्दर बगानमें पहुँचकर रामसे कहता—हूँ राजीवलोचन राम ! सीताके साथ आप इस बगीचेका तथा बगीचेमें रहनेवाले पशु-पक्षियोंका अवलोकन करिए ॥ १३९-१४० ॥ इसके बाद वह सीढ़ीवाले बाजारमें जाता और अपने भगवान्को वहाँके कौतुक दिखाता था । उस समय भीड़में भगवान्के लिए रास्ता बनाते समय वह किलोंको डण्डेसे मार भा देता तो कोई कुरा नहीं मानता था । इस तरह वह निश्चय रामचन्द्रजीको नाना प्रकारके कौतुक दिखावा करता था ॥ १४१ ॥ १४२ ॥ इसके बाद वह सूनी तृणशालामें ले जाकर उन लीनोंको उतारता और काठकी खटोलीपर सुला दिया करता था ॥ १४३ ॥ तदनन्तर तुरन्त वह बाजारमें जाता और चावल, तेल, घी, माग, फल, फूल, पान, सुगारी, कुमकुम कुछ पैसे माँगकर अपने रामके पास लौट आया करता था ॥ १४४ ॥ १४५ ॥ उस समयमें रहनेवाले अनेक प्रकारके व्यवसायोंमें लगे हुए लोग उसे अद्वितीय रामभक्त समझकर वह जो कुछ माँगता, सो दे दिया करते थे । विप्रसूने घरमें पहुँचकर रामके आगे उत्तम दीपक जलाता, फिर बारती उतारता और धूप, पीप, गन्ध आदिसं उनकी पूजा करके इसी पल्लव आदिसे पंखे करता था ॥ १४६-१४७ ॥ तत्पश्चात् रामका स्तुति, जप तथा प्रदक्षिणा करके आगे कहे जानेवाले मंत्रों द्वारा हरिकीर्तन किया करता था ।

ततस्तु याचितान्येव वस्तूनि मिश्रितानि हि । पृथक्कृत्वा तु सर्वेषां त्रीन् भागांश्च चकार सः ॥१५४॥
 द्वौ भागौ स स्वनिकटे स्थाप्यैकं भागमुत्तमम् । मित्रगेहे न्यासभूतं नवम्यर्थं चकार सः ॥१५५॥
 ततः स्वयं द्वारमध्ये चकार शयनं द्विजः । पुनः प्रभाते चोत्थायाचम्य गीतादिभिः प्रभुम् ॥१५६॥
 सालशायैः प्रबोध्याथ तान्पृष्ठे स्थाप्य पूर्ववत् । नदीतीरं ययौ विप्रः पूजयामास पूर्ववत् ॥१५७॥
 एवं नित्यपूजनं च चकाराहतमानसः । नवम्यां विज्ञेयेन पूजयित्वाऽथ राघवम् ॥१५८॥
 स्वयञ्चोपोषणं कृत्वा स्वयं चक्रे सुकीर्तनम् । रात्रौ जागरणं चापि राघवं पूज्य वै पुनः ॥१५९॥
 चकार कीर्तनैश्चाथ नर्तनाद्यैः स्वयं कृतैः । ततः प्रभाते श्रीरामं दशम्यां परिपूज्य च ॥१६०॥
 प्रतिपदिनमारभ्य नवरात्रेऽथ यत्कृतम् । आनन्दरामचरितपरायणमनुत्तमम् ॥१६१॥
 तत्समाप्य पूजयित्वा पुस्तकं ब्राह्मणाभ्यः । निमंत्रितान् समाहूय तेष्वेवैकं सपत्निकम् ॥१६२॥
 द्विजमाकारयामास ततः संचिन्तनदुलाः । मित्रगेहे न्यासभूतस्तेषां कृत्वौदनं शुभम् ॥१६३॥
 यथा संचितशकादि तथा लब्धानि यानि सः । तानि सर्वाणि संस्कृत्य वराभीर्दानि चाकरोत् ॥१६४॥
 बालुकावेदिकायां वै मध्ये पत्नीपुत्रं द्विजम् । अष्टकोणेषु विप्रांस्तानष्ट संवेश्य वै क्रमात् ॥१६५॥
 षोडशैरुपचारैस्तान् पूजयामास भक्तितः । रंभादलेषु च ततो विस्तीर्णेषु द्विजोत्तमः ॥१६६॥
 चकार तैः कृतैरभैः स मुदा परिवेषणम् । ततस्ते भोजनं चक्रेस्तद्भक्त्याऽपि मुदान्विताः ॥१६७॥
 दृष्ट्वा सुतायुलं दक्षिणां तान् प्रणम्य च । विसर्जयामास विप्रांस्तान्श्चक्रेऽशनं द्विजः ॥१६८॥
 एवं विप्रो मासि मासि नवायतनपूजगम् । नवम्याः पारणायाश्च दिवसे दशमीदिने ॥१६९॥
 नवविप्रेषु याञ्चौ कृत्वाऽपि भक्तितः । एवं गतानि वर्षाणि नव तस्य द्विजन्मनः ॥१७०॥
 एकदा भ्रातृणे मासि तदग्रामे सेनया नृपः । कश्चिद्ययौ तदा विप्रः स्वस्थले निशि निद्रितः ॥१७१॥

था । कुछ देर बाद उन माँगकर लायी हुई वस्तुओंका तीन करके दो भाग तो अपने पास रख लेता, बाकी एक भाग अपने निकटवर्ती मित्रके यहाँ नवमीके उत्सवके लिये धरोहरके ठौरपर रख भाया करता था ॥ १५३-१५५ ॥ इन सब नित्य-नियमोंसे निवटकर वह द्वारपर शयन करता और फिर सुबेरे उठकर गीतापाठ आदिसे भगवान्‌जी स्तुति करता हुआ ताली बजाकर राम आदिको जगाता और नित्य-नियमके अनुसार फिर उनको अपनी षोडश स्टादकर नदीके तटपर पहुँच जाया करता और पूर्वोक्त विधिसे पूजन करता था ॥ १५६ ॥ १५७ ॥ इस तरह आदर भरे मनसे वह नित्य पूजन किया करता था । किन्तु नवमीको उपवास करके विज्ञेय उपकरणोंके साथ पूजन करके भलों प्रकार कीर्तन और रात्रिके समय जागरण करता था ॥ १५८ ॥ १५९ ॥ फिर दशमीके दिन रामका पूजन करके प्रतिपदसे लेकर नवरात्र पर्यन्त आनन्दरामायणका पारायण करता था ॥ १६० ॥ उसे समाप्त करके नौ ब्राह्मणोंका पूजन था । तदनन्तर एक ब्राह्मणदम्पतीको बुलाकर मित्रके घरमें डकट्टा किये हुए सण्डुलसे बड़िया बनाकर जो कुछ शाक आदि एकत्र होता, उनको भली भाँति दना करके अच्छी तरह बालुकाकी बना हुई केरीपर बीचमें सपत्नीक ब्राह्मणको बिठासता और दोनोंमें उन आठ विप्रोंको बिठाकर षोडश उपचारोंसे भक्तिपूर्वक उनका पूजन करता था । तदनन्तर केलेके पत्तोंको उनके आगे बिछाकर उन बने हुए अन्नोंको बड़ी प्रसन्नताके साथ परोसना और वे ब्राह्मण उसकी भक्तिसे गद्गद होकर बड़े प्रेमसे भोजन करते थे ॥ १६१-१६७ ॥ इसके बाद बड़िया पान तथा दक्षिणा देकर उन ब्राह्मणोंको विदा करता । तब स्वयं भी भोजन करता था ॥ १६८ ॥ इस तरह वह ब्राह्मण प्रतिमासकी नवमी तथा दूसरे पारणवाले दिन नौ ब्राह्मणोंमें नवायतनका पूजन किया करता था ॥ १६९ ॥ इस तरह उस ब्राह्मणके नौ वर्ष बीत गये ॥ १७० ॥ एक बार श्रावणके महीनेमें उसके यहाँ एक बड़ी सेना अपने साथ लिये एक रात्रा का पहुँचा, किन्तु ब्राह्मण रात्रिके समय अपने घरमें पड़ा सो रहा था ॥ १७१ ॥

एतस्मिन्नन्तरे वृष्टिपीडिता नृपसेवकाः । ग्रामे गेहानि निविशुः शून्यगेहं ययुर्दश ॥१७२॥
 अमारुढाः सशस्त्रास्ते द्वारमध्ये द्विजोत्तमम् । दृष्ट्वा विनिद्रितं प्रोचुर्द्विजोत्तिष्ठ ज्वेन हि ॥१७३॥
 मार्गं देहि वयं वृष्ट्या पीडिताः स्मश्रिर बहिः । शून्यगेहेऽत्र स्यास्थामः सुखं साध्याः ससेवकाः ॥१७४॥
 तत्तेषां वचनं श्रुत्वा सभ्रमेण द्विजोऽब्रवीत् । रामचन्द्रः सीतयात्र निद्रितोऽस्ति स्वबन्धुभिः ॥१७५॥
 न वर्ततेऽत्र युष्माकं स्थलं सत्यं वचो मम । गच्छध्वं नगरे नानास्थलान्यन्यानि सन्ति हि ॥१७६॥
 ततस्तु वचनं श्रुत्वा राजदूताः पुनर्द्विजम् । प्रोचुस्ते ह्यस्ति श्रीरामः सोऽपि निर्यातु बहिः ॥१७७॥
 सीतया बन्धुभिर्पुक्तः स्थलं नो देहि भो द्विज । पुनराह द्विजस्तान् कथं रामं विनिद्रितम् ॥१७८॥
 प्रबुद्धं वै शराम्यद्य निजायां राजसेवकाः । युष्माकं प्रार्थना त्वद्य क्रियते वै मया बहूः ॥१७९॥
 प्रणम्य विधिवद्यं गच्छध्वं वै स्थलांतरम् । ततस्तन्निग्रह दृष्ट्वा तेषां वृष्ट्या प्रपीडिताः ॥१८०॥
 स विप्रः ताडयाचकस्तदा प्राह द्विजोत्तमः । रामं बहिः शराम्यद्य तिष्ठध्वं राजसेवकाः ॥१८१॥
 इत्युक्त्वाऽऽश्रम्य श्रीरामं भूसुरो वाक्पथमब्रवीत् । रामोत्तिष्ठ बहिर्दुष्टाः स्थिताः सन्त्यस्यसंस्थिताः ॥१८२॥
 तेषां वस्तुं स्थलं देहि वयं यामो बहिर्निशि । इत्युक्त्वा निजपृष्ठे तानारोहयत्स पूर्ववत् ॥१८३॥
 ततः कृत्वा महाकोशं वस्त्रादीनां द्विजोत्तमः । धृत्वा कक्षे तोयकुम्भं धृत्वा वामकरेण सः ॥१८४॥
 यष्टिं धृत्वा सन्यहस्ते शनैर्द्वाराद्वहिर्ययौ । ते द्विजं तादृश दृष्ट्वा श्रान्तं तं मेनिरे खलाः ॥१८५॥
 ततो दृष्ट्वाऽतिवृष्टिं स गेहाग्राधो बहिर्द्विजः । नम्रीभूतस्तदा तस्मां गेहे संविशिशुः खलाः ॥१८६॥
 ततोऽतिभ्रमितो निप्रश्चितयामास चेतसि । पुराणे वायुपुत्रस्य मया सारं श्रुतं ॥१८७॥
 तत्सर्वं तु मृषा त्वद्य किमस्त्यत्र प्रयोजनम् । इति निश्चित्य विप्रः स क्रोधेन महता वृतः ॥१८८॥
 शीघ्रं घटं श्रुवि स्थाप्य वामहस्तेन भारुतेः । पुच्छं धृत्वा शशिपक्षमाकाशे वेगवचरः ॥१८९॥

इसी समय बरसातसे सताये हुए कुछ राजसेवक बाह्यणके घरको खाली समझकर द्वारपर पहुँचे ॥ १७२ ॥ वे सभ्रमेण सेवक घोड़ेपर सवार थे । द्वारपर पहुँचते ही बाह्यणको जगाले हुए उन्होंने कहा—हे बाह्यण ! अल्सी उठो, मुझे जगह दो । मैं बड़ी देरसे भोग रहा हूँ । इस सूने घरमें मैं अपने सेवकों और पौकोंके साथ ठहरूँगा ॥ १७३ ॥ १७४ ॥ प्रकार उनकी बात सुनकर पबड़ाहटके बाह्यणने कहा कि इस घरमें रामचन्द्रजी अपने बन्धुओंके साथ रहे हैं । यहाँ आप लोगोंके लिए जगह नहीं है । मेरी बातको सब मानिएगा । नगरमें चले जाइए । वहाँ आप लोगोंको बहुत जगह मिल जायेंगे ॥ १७५ ॥ प्रकार बाह्यणके वचन सुनकर सिपाहियोंने कहा कि यदि घरमें राम हैं तो उन्हें भी बाहर निकाल दो और लोगोंको ठहरनेके लिये जगह खाली कर दो । बाह्यणने कहा—हे राजसेवक ! अब कि राम सो रहे हैं तो उन्हें कैसे जगाऊँ । मैं आप लोगोंसे प्रार्थना करता हूँ कि दूसरी जगह चले जाइए । इस प्रकार बाह्यणका देखकर उन वृष्टिपीडित राजसेवकोंने उसे मारा । बाह्यणने कहा—अच्छा, हे राजसेवको ! ठहरिए, मैं अभी रामचन्द्रजीको बाहर किये देता हूँ ॥ १७६-१८१ ॥ ऐसा कहकर उसने बाधमन किया और रामके पास जाकर कहा—हे राम ! उठिए । बाहर वे दुष्ट घुड़सवार खड़े हैं । आप उनको रूढ़नेके लिए यह जगह खाली कर दीजिए, हमलोग रातों-रात कहीं दूसरे स्थानपर चले चलें । ऐसा कहकर बाह्यणने रोजकी तरह उनको अपनी पीठपर लादा ॥ १८२ ॥ १८३ ॥ इसके बाद उसने वस्त्रोंकी एक बड़ी गठरी कौलमें दबायी, पानोंका घड़ा काँय हाथमें लिया और दाहिने हाथमें छड़ी लेकर धीरे-धीरे बाहर निकला । इस तरह तैयारी करके जाते हुए बाह्यणको देखकर उन सिपाहियोंने कि यह कोई पागल है ॥ १८४ ॥ १८५ ॥ विप्र बाहर निकला तो देखा कि बड़े जोरोंमें वृष्टि हो रही है । ऐसी अवस्थामें वह बाह्यण मुककर बारजेके नीचे खड़ा हो गया और सिपाही भीतर घुस गये ॥ १८६ ॥ खड़े-खड़े जब एक ठो म्मन ही मन सोचने लगा कि मैंने तो पुराणोंमें सुना था कि हनुमान्जीमें बड़ा बल है ॥ १८७ ॥ सँतप्त वे असँ दूजे हैं । ऐसा सोचकर उसने छड़ी दीवारसे सँटाकर खड़ा कर दी, बाँये हाथके कंधेको

तदा सा मारुतेर्धातुमयी मूर्तिः शुभाग्रहा । गत्वाऽऽकाशे गर्जनां वै चकारातिमयंकराम् ॥१९०॥
 तां गर्जनां महावीरं ग्रामस्यास्य बहिः स्थिताः । श्रुत्वाऽतिभयसंनता मृताः सर्वे क्षणेन हि ॥१९१॥
 अथा नागा वृषाद्याश्च मृताः सर्वे तदा क्षणात् । तद्यदग्रामे बहिर्वाऽपि चरं पुरुषसंज्ञितम् ॥१९२॥
 पुत्रगर्माश्च नारीणां सर्वे प्रापुः क्षयं तदा । तदा स पुरुषस्त्वेको न मृतो ब्राह्मणोत्तमः ॥१९३॥
 कृपया रामचन्द्रस्य मारुतेः कृपयाऽपि च । ततः प्रभाते ता नार्यः सर्वान्स्वपुरुषान्मृतान् ॥१९४॥
 दृष्ट्वाऽतिविस्मयं प्राप्नुस्ताभिर्नैव श्रुतो ध्वनिः । तदा विप्रं जीवितं दृष्ट्वा पकेऽपि मारुतिम् ॥१९५॥
 पतितं विस्मयाविष्टाः पञ्चक्षुस्तं द्विजोत्तमम् । ततः स सकलं वृत्तं नारीः संश्रावयत्तदा ॥१९६॥
 ततस्ताः प्रार्थयित्वा तं चक्रुः स्त्रीयपुराधिपम् । सोऽपि रामाङ्गया राज्यं चकार तन्पुरस्य च ॥१९७॥
 पुरस्थितानां नारीणां स एवासात्पतिस्तदा । तन्मारुतेर्भोजितं हि काले काले तु पूर्ववत् ॥१९८॥
 अद्यापि श्रूयते तस्मिन्नगरे घनशब्दवत् । तच्छ्रुत्वा पुत्रगर्माश्च प्रस्तलन्ति हि योपिताम् ॥१९९॥
 स्त्रियः सहस्रशश्चासन् पुरुषस्त्वेक एव सः । तदारभ्य तत्क्षीराज्यं कप्यते मानवोत्तमः ॥२००॥
 ततः कालान्तरेणैव स विप्रश्च मृतो यदा । तदा स्वर्णपुण्येन विष्णुसायुज्यमाप सा ॥२०१॥
 ततस्तामिस्तु नारीभिः कथित्वायः समागतः । स एव क्रियते भर्ता न तं मोक्षयन्ति हि ॥२०२॥
 कारवा तं गर्जनाकालं पुरुषान्विवरेषु हि । गोपयित्वा दुन्दुर्मानां शंखानां निःस्वनादिभिः ॥२०३॥
 न श्रावयन्ति तेषां तं ध्वनिं मारुतसंभवाम् । अतिकांतेऽथ तत्काले तान्पुनर्जी वितानिति ॥२०४॥
 मत्वा नानोत्सवैः पूज्य तैर्भोगं ता भजन्ति हि । नार्या तच्छास्यते राज्यं सदैव द्विजसत्तम ॥२०५॥
 स्त्रीणामेव मदोत्पत्तिर्जायते पुरुषस्य न । सद्राज्यनिकटस्था ये देवास्तेष्वपि भो द्विज ॥२०६॥

जमीनमें रख दिया और बायें हाथसे हनुमान्जीकी पूछ पकड़कर बड़े क्रोध और वेगके साथ आकाशमें उछालकर फेंका ॥ १८८ ॥ १८९ ॥ हनुमान्जीकी वह धातुमयी मूर्ति आकाशमें पहुँचकर बड़े जोरसे मरजी ॥ १९० ॥ वह भीषण गर्जना उन सिपाहियों, गाँववालों तथा बाहरवालोंको भी सुनायी दी । उसे सुनते ही सब धक्का-धक्काकर मर गये । उस गर्जनासे थोड़े, हाथी और बैल आदि पुरुषनामधारी जितने जीव थे, उनमेंसे उस ब्राह्मणके सिवाय और कोई नहीं बचा । वहाँ तक स्त्रियोंके गर्भमें जो बच्चे थे, भी मर गये । किन्तु श्रीरामचन्द्रजीकी कृपा और हनुमान्जीकी दयासे वह ब्राह्मण ज्योंका त्यों सड़ा रह गया । सबेरा हुआ तो उन भारियोने, जिनके पति रातको मर गये थे, अपने स्वामीको मृत देखा तो बड़ी चकरायीं । तदनन्तर जब उन्होंने उस ब्राह्मणको जीवित तथा हनुमान्जीकी मूर्ति कीचड़में पड़ी देखी तो उस ब्राह्मणसे वे सब पूछने लगीं । ब्राह्मणने उन स्त्रियोंको रात्रिकी सारा हाल कह सुनाया ॥ १९१-१९६ ॥ इसके बाद उन स्त्रियोने प्रार्थना करके ब्राह्मणको उस नगरीका राजा बना दिया । रामचन्द्रजीकी आज्ञासे वह विप्र वहाँका राज करने लगा ॥ १९७ ॥ उस समय उस नगरीकी सब स्त्रियोंका वही पति था । हनुमान्जीकी वह गर्जना कभी-कभी विकराल मेघगर्जनके अवधि सुनायी पड़ करती है । उसे सुनकर जिन स्त्रियोंके उदरमें पुत्र रहता है, उनका गर्भ गिर जाया करता है ॥ १९८ ॥ १९९ ॥ उस विप्रके पास हजारों स्त्रियाँ थीं और उनके बीचमें वह अकेला पुरुष था । तभीसे लोगोंने उसे स्त्रीराज्य कहना प्रारम्भ कर दिया । कुछ दिनों बाद जब उस विप्रकी मृत्यु हुई तो अपने पूर्वजित पुण्यके प्रभावसे उसे विष्णुकी सायुज्य मुक्ति मिली ॥ २०० ॥ २०१ ॥ इसके बाद जो कोई राही पुरुष मिल जाता, उसे ही वे स्त्रियाँ अपना पति-बना लिया करती थीं और उसे किसी तरह नहीं छोड़ती थीं ॥ २०२ ॥ यदि कभी हनुमान्जीकी गर्जनाका तो वे स्त्रियाँ उस पुरुषको बिलमें छिपा दिया करतीं । जिससे उसे वह गर्जना न सुन पड़े । इसलिए तगाड़े-जंख आदि बाजे बजाने लगती थीं । समय कुशलपूर्वक बीत जाता तो नारियाँ अपने पतियोंका पुनर्जीवन मानकर बड़ी खुशियाली मनातीं और उसीके भोग करती हुई अपना समय बिताया करती थीं । हे द्विज-सत्तम ! सबसे सदा वहाँपर स्त्रियोंका ही राज्य रहता है । स्त्रियाँ ही वहाँकी प्रजापर शासन करती हैं

मारुतेः शब्दसंस्पृष्टवायुना स्पृशिता नराः । अशक्ता एव जायन्ते न तेष्व्वासीत्सुपौरुषम् ॥२०७॥
 अतस्तेषामशक्तानां वीर्यशीणतया द्वित्र । भवन्ति दुहितर एवं कश्चित्पुत्रः प्रजायते ॥२०८॥
 आधिक्ये रजसः कन्या शुक्राधिक्ये सुतो भवेत् । नपुंसकः समत्वेन यद्येच्छा पारमेध्वरी ॥२०९॥
 अन्यत्वे कारणं शक्तिं न भवन्ति सुता यतः । कारणं भृशं तस्येदं विष्णुदाम द्विजोत्तम ॥२१०॥
 तेषु देशेषु नार्यश्च निजराज्यमदेन हि । रतिकालेऽधः पुरुषं कृत्वा कीडा भजन्ति ताः ॥२११॥
 न स्त्रीयां रतिकाले ताः पृष्ठं भूमिं स्पृशन्ति । अतएव रतिकाले शूक्रं तु भवते बहिः ॥२१२॥
 स्रग्भक्षिते तथा गर्भस्थाने तन्नैव गच्छति । नामानयनकर्णानां द्वे द्वे रंध्रे प्रकीर्तिते ॥२१३॥
 मेहनापानवक्त्राणामेकैकं रंध्रमुच्यते । दक्षमं मस्तके प्रोक्तं रंध्राणीति नृणां विदुः ॥२१४॥
 स्त्रीणां शीण्यधिकानि स्युः स्तनयोर्गर्भवर्त्मनः । सूचिकाग्रममान्येव तानि छिद्राणि सन्ति हि ॥२१५॥
 गर्भछिद्रं रतिकाले किंचिद्विकसितं द्वित्र । भूत्वा मार्गं तु वीर्यस्य ददाति पुरुषस्य च ॥२१६॥
 तन्मार्गेण गतं वीर्यं चेत् सम्यक् पुरुषस्य च । गर्भस्थाने तदा पुत्रो जायते नात्र संशयः ॥२१७॥
 स्वर्णं प्रविष्टं वीर्यं च तदा कन्या प्रजायते । रजसश्चाधिकत्वेन जानीष्वेवं विनिश्चयम् ॥२१८॥
 तस्माद्यदाऽधः शेते वै तद्देशेषु नरोत्तमः । रतिकाले तस्य वीर्यमूर्ध्वं गच्छति नैव तत् ॥२१९॥
 यदि दैववशात्किंचिद्गतं स्त्रीरंध्रमार्गतः । तदा दैववशान्पुत्रो जायते सोऽपि षट्पदः ॥२२०॥
 अतएव हि तद्देशे बहुकन्या भवन्ति हि । एवं ते कारणं प्रोक्तं कन्योत्पत्तेर्द्विजोत्तम ॥२२१॥
 एवं सर्वेषु देशेषु चेन्नार्या अधिकं बलम् । अस्ति तर्हि भवेत्कन्या पुत्रः पुरुषसारतः ॥२२२॥

॥ २०३-२०५ ॥ वहाँपर विशेष करके कन्याओंकी ही उत्पत्ति होती है, पुरुष तो बहुत ही कम होते हैं ।
 हनुमान्जीकी गर्जनासे मिली वायुके संस्पर्शसे उस राज्यके आस-पासवाले राज्यके लोग भी प्रायः
 (नपुंसक) होते हैं । इसलिए वहाँके पुरुषोंका वीर्य कमजोर होता है और अधिकांश कन्यायें ही उत्पन्न होती हैं,
 पुत्र तो शायद ही कभी ही जाता हो ॥ २०६ ॥ २०७ ॥ २०८ ॥ अब कि स्त्रीके रजकी अधिकता होती
 है तो कन्या और पुरुषके वीर्यकी अधिकता होती है, पुत्र होता है । यदि पुरुषका वीर्य और स्त्रीका रज ये
 दोनों बराबर हो जाते हैं, तब नपुंसक उत्पन्न होता है । इन बातोंके सिवाय सबसे मुख्य बात तो यह है कि
 परमेश्वरकी जैसी इच्छा होती है, वही होता है ॥ २०६ ॥ हे द्विजोत्तम विष्णुदास ! वहाँ विशेष करके कन्याओंके
 उत्पन्न होनेका एक कारण और भी है, उसे सुनो ॥ २१० ॥ उस देशकी स्त्रियाँ अपने राज्यमदसे भतवाली
 हो पुरुषका नीचे सुला स्वयं ऊपर लेटकर रति करती हैं । रतिकालके समय वे अपनी पीठको जमीनमें
 नहीं लगने देतीं । इसीलिए पुरुषका वीर्य बाहर ही रह जाता है । गर्भके सूक्ष्म छिद्रतक नहीं पहुँच पाता ।
 पुरुषके माक, नेत्र और कान इनमें दो-दो छिद्र रहते ॥ २११-२१३ ॥ लिंग, गुदा तथा पुसमें एक-एक
 छिद्र रहता है । ये सब मिलाकर नौ हुए और दसवाँ छिद्र ब्रह्मांडमें होता है । ऐसा लोगोंने बतलाया है
 ॥ २१४ ॥ किन्तु स्त्रियोंके तीन छिद्र अधिक होते हैं । दो छिद्र दोनों स्तनोंमें और एक गर्भके रास्तेमें । गर्भके
 मार्गवाला छिद्र सुईकी नोकके समान बारीक होता ॥ २१५ ॥ किन्तु रतिकालमें गर्भवाला छिद्र कुछ
 चौड़ा होकर पुरुषके वीर्यको भीतर आनेके लिये रास्ता दे देता है ॥ २१६ ॥ उस मार्गसे गया हुआ वीर्य
 यदि अच्छी तरह अपने तक पहुँच जाता है, पुत्रकी उत्पत्ति होती है । इसमें कोई संशय नहीं है ।
 यदि उस समय गर्भाशयमें कम वीर्य जाता है तो कन्याकी उत्पत्ति हुवा करती है । क्योंकि ऐसी दशामें
 स्त्रीका रज अधिक और पुरुषका वीर्य पड़ है ॥ २१७ ॥ २१८ ॥ इसीसे वहाँवाले पुरुष नीचे
 लेटते हैं, तब उनका वीर्य गर्भाशयके छिद्र तक नहीं पहुँच पाता । यदि दैववश कभी थोड़ा-सा वीर्य उछलकर
 ऊपर स्त्रीके गर्भाशय पहुँच भी जाता है, नपुंसक उत्पन्न होता है ॥ २१९ ॥ २२० ॥ इसी कारण उस देशमें
 अधिकांश कन्यायें ही होती हैं । हे द्विजोत्तम ! मैंने इस प्रकार तुम्हें वहाँ विशेष कन्याओंके उत्पन्न होनेका
 कारण बतलाया ॥ २२१ ॥ यह प्रायः सब देशोंमें देला जाता है कि जिस जगह स्त्री बलवती होती है तो कन्या

तस्मात्पुत्रार्थिना नारी पोषणीया कदापि न । पोषयेच्च सदाऽऽत्मानं नानास्वाद्यरसायनैः ॥२२३॥
 अतएव हि वैद्याश्च पालनीयाः सदा नरैः । बलावलप्रवेचारस्तैर्ज्ञेयं स्वबलावलम् ॥२२४॥
 पुष्टदेहं निरीक्ष्याथ ■ ज्ञेयं त्वधिकं बलम् । वातेनापि पुमान्पुष्टो जायतेऽत्र सदैव हि ॥२२५॥
 अतो वैद्यं विना तच्च ■ क्षास्यसि बलावलम् । अतो वैद्यास्ते प्रष्टव्याः सदा भक्तिपुरःसराः ॥२२६॥
 मंत्रे तीर्थे द्विजे देवे वैद्येऽथ गणके गुरौ । यादृशी भावना स्वीया सिद्धिर्मवति तादृशी ॥२२७॥
 अतो वैद्योक्तमार्गेण सदा गच्छेमरोत्तमः । बलावलविचारेण पुत्रा एव भवंति हि ॥२२८॥
 एक एव वरः पुत्रः किं जासा दश कन्यकाः । पुत्राम्नो नरकात्पुत्रस्तारयेत्स्वकुलं क्षणात् ॥२२९॥
 कन्या स्वीयदुराचारात्क्षणाभिजपितुः कुलम् । ■ मर्तुः कुलं चापि नरके पातयेच्च सा ॥२३०॥
 तस्मान्मरैश्च पुत्रार्थं यत्नः कार्यस्त्वहनिश्चम् । एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥

यजेत वाऽयमेधेन नीलं ■ वृषभुत्सजेत् ॥२३१॥

जीवतो वाक्यकरणात्प्रत्यब्दं भूरि भोजनात् । गयायां पिण्डदानेन त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता ॥२३२॥
 एवं शिष्य त्वया पृष्टमसक्तेन कथं व्रतम् । कार्यं तच्च मया सर्व भूसुरस्य कथानकम् ॥२३३॥
 तवाग्रे कथितं रम्यं रम्यं त्वत्तोषार्थमनुचमम् । तस्य व्रतस्य सामर्थ्यात्स दरिद्रो द्विजोत्तमः ॥२३४॥

लब्ध्वा तद्विपुलं राज्यं धुक्त्वा भोगान् मनोरमान् ।

सायुज्यं प्राप विष्णोश्च स्वायुषश्च क्षये द्विजः ॥२३५॥

एवं तद्रामचन्द्रस्य व्रतं कोऽत्र तु नाचरेत् । सुखेन भुक्तिर्दं चात्र परलोके विमुक्तिदम् ॥२३६॥
 मुनिभिश्च सुरैर्नागैर्गन्धर्वैः किन्नरैर्नृपैः । सदाऽनुभावितं चेदं व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥२३७॥

ही जन्मलक्ष्मी ■ और पुरुष बल। ही तो पुत्रकी उत्पत्ति अधिक होता है ॥ २२२ ॥ इसलिए जिन लोगोंको पुत्रकी अभिलाषा हो, उन्हें चाहिए कि स्त्रियोंको ज्यादा माल खिलाकर तगड़ा न करें । बल्कि स्वयं बड़िया चीजें तथा रसायन खाकर बलवान् बनें ॥ २२३ ॥ लोगोंको ■ भी उचित है कि बलावल जाननेवाले अच्छे वैद्योंको अपने नगरमें रखें और समय-समयपर उनसे परीक्षा करा लिया करें ॥ २२४ ॥ शरीरको मोटा देखकर ही यह न समझ ले कि इसमें अधिक बल है । सदा ऐसा देखा गया है कि लोग वायुसे भी मोटे हो जाया करते हैं ॥ २२५ ॥ इसीसे वैद्यके बिना बलावल ठीक तीरसे नहीं जाना जा सकता । अतएव लोगोंको चाहिए कि सदा वैद्योंसे आदरपूर्वक अपने स्वास्थ्यके विषयमें पूछताछ करते रहें ॥ २२६ ॥ मंत्रमें, तोषमें, ब्राह्मणमें, वैद्यमें, देवता और उपोत्थियोंमें, जैसी जिसकी भावना रहती है, वैसा ही उसे फल मिलता ■ ॥ २२७ ॥ अतएव वैद्य जिस तरह बतलाये, उसी तरह लोग चलें । यदि अच्छी तरह बलावलका विचार करके पुरुष स्त्रीके साथ रति करे तो पुत्र ही होगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ २२८ ॥ केवल एक पुत्रका होना अच्छा, किन्तु दस कन्याओंका होना ठीक नहीं है । यदि पुत्र होता है तो वह क्षणभात्रमें अपने कुलको 'पु'नामक नरकसे तार देता है ॥ २२९ ॥ इसके विपरीत कन्या दुराधार करके अपने पिता तथा पति दोनों कुलोंकी क्षणभरमें नरकमें गिरा देती है ॥ २३० ॥ इसीलिए लोगोंको चाहिए कि सदा पुत्रके लिये यत्न करें । एक ही पुत्रसे सन्तोष न कर ले, बल्कि कइयोंको इच्छा रखे । न माजूस उनमेंसे कौन गयामें जाकर पिण्डदान कर आये या अश्वमेध यज्ञ करे मयवा नील वृषभ (काला साँड़ । छोड़े ॥ २३१ ॥ जबतक पिता रहे, जबतक उसका कहना माने । मर जानेपर प्रतिवर्ष बहुतसे ब्राह्मणोंको भोजन कराये और गयामें जाकर पिण्डदान करे । इन्हीं तीन कामोंसे पुत्रकी पुत्रता सार्थक होती है ॥ २३२ ॥ इस प्रकार हे शिष्य ! तुमने मुझसे जो पूछा ■ कि अशक्त प्राणी किस प्रकार व्रत करे । सो मैंने एक ब्राह्मणकी कथा सुनाकर समझा दिया । इस व्रतकी सामर्थ्यसे वह दरिद्र ब्राह्मण विपुल राजलक्ष्मी तथा तरह-तरहके मनोरम भोगोंको भोगकर आयु समाप्त होनेपर विष्णुभगवान्की सायुज्य मुक्तिको प्राप्त हुआ ॥ २३३-२३५ ॥ इस प्रकार उन रामचंद्रजीके व्रतको कौन नहीं करेगा, जो इस लोकमें आनन्दके साथ भुक्ति और परलोकमें मुक्ति प्रदान करनेवाला है ॥ २३६ ॥ अनेक

स्त्रीपुत्रधनदं चैतत्सर्वसौख्यप्रदं नृणाम् । इहलोके परे चापि विष्णोः सायुज्यदायकम् ॥२३८॥
 सन्ति ब्रतान्यनेकानि स्वर्गं मर्त्ये रसातले । तथापि मासतनवमोत्तमानं व्रतमुत्तमम् ॥२३९॥
 विष्णुदास द्विजश्रेष्ठ ॥ भूतं न भविष्यति । तस्मात्सदा नरैः कार्यं व्रतं वेदं महत्तमम् ॥२४०॥
 एवं त्वया यथा पृष्टं तथा ते विनिवेदितम् । किमन्यच्छ्रोतुमिच्छास्ति तद्वद्वचनं वदामि ते ॥२४१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राजकाण्डे
 आदिकाण्डे नवमीकथावर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

समस्तः सर्गः

(लक्षरामनामोद्यापनविधि)

विष्णुदास उवाच

अन्यगुरो राघवस्य तुष्टिर्दं किं वदस्व तत् ।

श्रीरामदास उवाच

मृणुष्व विष्णुदास त्वं यत्तेजः प्रवदामि च । तुष्ट्यर्थं रामचन्द्रस्य नित्यं पत्रे तु मानवैः ॥ १ ॥
 लेखनीयं रामनामशतानि नव प्रत्यहम् । अथवाऽष्टोत्तरशतं पूजनीयं सविस्तरम् ॥ २ ॥
 एवं कोटिमितं लेख्यं लक्षं वा तु ततः परम् । हवनं हि दशांशेन कर्तव्यं विधिपूर्वकम् ॥ ३ ॥
 इदं विष्णुरिति श्रुत्वा तिलाज्यैः पापसेन वा । नयन्नेनाथवा कार्यं राघवं परिपूज्य च ॥ ४ ॥
 हवनांगे राघवादिदेवानां पूजने नरैः । आसनार्थं तु भद्रं च स्थापनीयं प्रयत्नतः ॥ ५ ॥
 अष्टोत्तरसहस्रं च रामलिङ्गात्मकं शुभम् । अथवाऽष्टोत्तरशतं रामलिङ्गात्मकं शुभम् ॥ ६ ॥
 अष्टोत्तरसहस्रं वा रामतोमद्रघुचमम् । अथवाऽष्टोत्तरशतं रामतोमद्रघुचमम् ॥ ७ ॥
 एवं होमं लेखनं च पूजनादि च यत्कृतम् । अर्पयेद्रघुनाथाय तत्सर्वं त्वत्तिभक्तिदः ॥ ८ ॥

मुनियों, देवताओं, नागों, गन्धर्वों, किन्नरों और राजाओंने कितने ही बार इस इतका अनुष्ठान किया ॥ २३७ ॥ यह ॥ इस लोकमें स्त्री-पुत्र-धन तथा सब सुख देनेवाला ॥ और परलोकमें विष्णुभगवान्की सायुज्य-मुक्ति प्रदान करता है ॥ २३८ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ विष्णुदास ! वेसों तो स्वर्ग, मर्त्य और रसातलमें बहुतसे व्रत हैं । किन्तु उनमेंसे रामनवमी व्रतके बराबर न कोई ॥ है और न होगा । इसी कारण लोगोंको चाहिए कि सदा इस रामनवमीके महान् व्रतको करें ॥ २३९ ॥ २४० ॥ ॥ तरह तूझने जो कुछ हमसे पूछा, सो कह सुनाया । अब और क्या सुनना चाहते, हो सो कहो ॥ २४१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्द-रामायणे वाल्मीकीये पं० रामशेषपाण्डेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटोकासहिते मनोहरकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो । रामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेवाली कोई और युक्ति बतलाइए । रामदास कहने लगे—हे विष्णुदास ! मैं तुम्हें जो बतला रहा हूँ, उसे सुनो । रामकी प्रीतिकी इच्छा रखनेवाले मनुष्योंको चाहिए कि कागजपर प्रतिदिन नौ सौ ॥ एक सौ आठ रामनाम लिखकर विस्तारके साथ उनका पूजन करें ? ॥ १ ॥ २ ॥ इस तरह लिखते हुए जब एक करोड़ अथवा एक लाख नामोंको लिख ले तो उनका दशांश विधिकत् हवन करे ॥ ३ ॥ हवन 'इदं विष्णुः' इति मन्त्रसे करे । तिल, धो और औरसे हवन करना चाहिए । यदि ये वस्तुएँ न इकट्ठी हो सकें तो नवौंन अन्नसे रामकी पूजन करके हवन करना चाहिए ॥ ४ ॥ हवन-के अन्नमें भद्रआदि बनाकर राघवआदि देवताओंका पूजन करके अष्टोत्तरसहस्रात्मक रामलिङ्गतोमद्र अथवा अष्टोत्तरशत रामलिङ्गात्मक भद्र बनावे । अथवा अष्टोत्तरसहस्र रामतोमद्र या अष्टोत्तरशत रामतोमद्रकी रचना करे ॥ ५-७ ॥ इस तरह होम-लेखन-पूजन आदि जो कुछ करे, सब भक्तिपूर्वक रामचन्द्रजीको अर्पण कर दे ॥ ८ ॥

विष्णुदास उवाच

त्वया गुरो शुभं प्रोक्तं रामनामप्रलेखनम् । न तस्योद्यापनं प्रोक्तं तद्वदस्व ममाधुना ॥ ९ ॥

श्रीरामदास उवाच

मृणु विष्य भविष्यति कथां कथयामि भूतवत् । रामनामोद्यापनस्य विस्तरेण पनोरमाम् ॥ १० ॥

पाण्डुपुत्रो महावीरो बंधुभिश्च युधिष्ठिरः । स्त्रिया मात्रा अष्टराज्यो वने वासं करिष्यति ॥ ११ ॥

तं द्रष्टुं द्वापरे कृष्णः कदा गच्छति वै वने । तं कृष्णं पूजयित्वा तस्मै प्रभं करिष्यति ॥ १२ ॥

युधिष्ठिर उवाच

देवदेव जगन्नाथ भक्तानां वरदायक । किंचित्त्वां प्रष्टुमिच्छामि मयि तुष्टोऽसि चेत्प्रभो ॥ १३ ॥

लक्ष्मीप्राप्तिकरं पुण्यं पुत्रपौत्रवर्द्धनम् । ऋतमारुपाहि देवेश राज्यभ्रष्टस्य मेऽधुना ॥ १४ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

शुभाद्गुणवत्तमं भोक्तुं यदि वाञ्छसि भूपते । तदा निगदतो मत्तः सकाशाच्छृणु सादरम् ॥ १५ ॥

रामनाम्नः परं नास्ति मोक्षलक्ष्मीप्रदायकम् । तेजोरूपं यदव्यक्तं रामानामाभिधीयते ॥ १६ ॥

तस्माच्चक्षाम जप्त्वा वै रामरूपो भवेन्नरः । एतदेव हि रामेण मारुतिं प्रति भाषितम् ॥ १७ ॥

युधिष्ठिर उवाच

कस्मिन्काले हनुमते रामेणोपोपदेशितम् । एतद्विस्तरतो ब्रूहि सुमते रुक्मिणीपते ॥ १८ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

पुरा रामावतारे च सीता नीता सुरारिणा । हनूमंतं समाहूय रामचन्द्रोऽम्बवीदधः ॥ १९ ॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

वायुधनो महावीर सीतान्वेषणहेतवे । समस्तां दक्षिणदिशं गत्वा शुद्धिं समानय ॥ २० ॥

श्रीहनुमान् उवाच

रघुनाथ जगन्नाथ दक्षिणस्था हि सागरः । महतो राक्षसाः सन्ति तत्र शक्तिः कथं मम ॥ २१ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो । आपने रामनाम लिखनेकी जो युक्ति बतलायी, वह बहुत ही उत्तम है । लेकिन उसका उद्यापन नहीं बतलाया । उसे भी मुझे अभी बतला दीजिए ॥ ९ ॥ श्रीरामदास कहने लगे—हे शिष्य ! मैं तुम्हें भविष्यकी एक सुतकारणमें समन्वित करके बतला रहा हूँ ॥ १० ॥ पाण्डुके पुत्र युधिष्ठिर अब राज्यसे वंचित हो गये, तब अपनी माता तथा बन्धुओंका साथ लेकर वनोंमें निवास करने लगे ॥ ११ ॥ उनको देखनेके लिए कृष्णचन्द्रजा वनमें गये । तब उन लोगोंने बड़े आदरसे श्रीकृष्णकी पूजा की और युधिष्ठिरने कहा—हे देवदेव ! जगन्नाथ ! हे भक्तोंको वर देनेवाले ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हों तो मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ ॥ १२ ॥ १३ ॥ हे देवेश ! यह तो आप जानते ही हैं कि इस समय मैं राज्यसे भ्रष्ट हो चुका हूँ । मतएव आप मुझे कोई ऐसा वतलाइए । जो लक्ष्मीको देनेवाला, पवित्र और पुत्र-पौत्रकी बढ़ाने-वाला हो ॥ १४ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रजाने कहा—हे भूपते ! यदि आप हमसे पुष्ट सुनना चाहते हैं तो मैं कहता हूँ, आप सुनिये ॥ १५ ॥ रामनामके जपसे बड़कर मोक्ष और लक्ष्मीका देनेवाला और कोई उपाय नहीं है । यह तेजोरूप और अव्यक्त है ॥ १६ ॥ इसी कारण रामनामका जप करके लोग रामरूप ही जाने हैं । यही बात स्वयं रामचन्द्रजाने हनुमान्जीसे कही थी ॥ १७ ॥ युधिष्ठिरने कहा—हे रुक्मिणीपते ! रामचन्द्रने हनुमान्जीसे इस बातकी चर्चा की ? श्रीकृष्णजाने कहा—रामावतारमें कि रामच सीताको हर ले गया, तब रामने हनुमान्जीको बुलाकर कहा— ॥ १८ ॥ १९ ॥ हे महावीर ! हे वायुधनो ! तुम सीताजीको खानेके लिए यही दक्षिण दिशामें भ्रमण करो और सीधे उनका समाचार लो ॥ २० ॥ श्रीहनुमान् बोले—हे ॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

मारुते रावणादीनां राक्षसानां निवारकम् । मंत्रं ददामि सुगमं येन सर्वजयी भवेत् ॥२२॥

श्रीहनुमान् उवाच

महाराज कृपासिन्धो दीनानां त्वं सुतारकः । उपदेशोऽधुना कार्यस्तस्य मंत्रस्य तत्त्वतः ॥२३॥

श्रीरामदास उवाच

इति श्रुत्वा च तदाकथं रहस्याह्वय सत्वरम् । मारुतेर्दक्षिणे कर्णे श्रीरामेऽप्युपदेशितः ॥२४॥

तस्य मंत्रस्य सकलं पुरस्सरणमुत्तमम् । लक्ष्मसम्पन्नं विधायाशु प्रतस्थे दक्षिणां दिक्षम् ॥२५॥

तन्मंत्रस्य प्रभावेण नानाजलचराचरम् । दुर्गमं सागरं तीर्त्वा लंकामग्नये समापयी ॥२६॥

न स लेभे तत्र शुद्धिमशोकाख्यवनं गतः । वृक्षमूले स्थितां सीतां दूरतोऽग्रे ददर्श सः ॥२७॥

तां दृष्ट्वा ष्ठीधमागत्य हर्षनिर्भरमानसः । सीतायाश्चरणौ नत्वा दण्डवत्पतितो भुवि ॥२८॥

अत्यन्तं स्रग्भवं पुष्पं बालकाकारसंपुतम् । तं भूमौ पतितं दृष्ट्वा सीता वचनमब्रवीत् ॥२९॥

आगतोऽसि कुतो बाल कुत्रत्यः ॥ बालकः ।

श्रीहनुमान् उवाच

सीता माता पिता रामो रामचन्द्रसमीपतः ॥३०॥

समागतोऽस्मि हनुमान् ग्रासैका मुद्रिका त्वया । रामनामांकितां मुद्रां शुद्धकांचननिर्मिताम् ॥३१॥

ज्ञात्वा रामस्य सा सीता परमं तोषमाययी । तां ज्ञात्वा तोषसहितामांजनेयोऽब्रवीद्वचः ॥३२॥

मातः शुभाऽस्त्वपि ॥ त्वयातिक्लेशकारिणी । अस्मिन्वनेऽतिमधुरः फलसघोऽतिदुर्लभः ॥३३॥

तवाङ्गयाऽहं सीतेऽद्य करिष्ये भक्षणं ध्रुवम् ।

सीतोवाच

मो बालक महावीर राजशोऽस्ति वनाधिपः ॥३४॥

हे रघुनाथ ! दक्षिण दिशामें तो विशाल सागर है और बहुतसे राक्षस हैं, फिर वहाँपर मेरी शक्ति कैसे काम देगी ? ॥ २१ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने कहा—हे मारुते ! रावण आदि राक्षसोंका निवारण करनेवाला मैं एक बहुत ही सरल मंत्र देताता हूँ । जिसको सहायतासे सर्वत्र तुम्हारी विजय होगी ॥ २२ ॥ हनुमान्जीने कहा— महाराज ! हे कृपासिन्धो ! दीनोंका उद्धार करते ! हे प्रभो ! हमें उस मन्त्रका अच्छी तरह उपदेश दीजिए ॥ २३ ॥ श्रीरामदास कहते हैं—हनुमान्जीके इस प्रकार विनय करनेपर रामने उन्हें एकान्तमें ले जाकर उनके कानमें 'श्रीराम' इस नामका उपदेश दिया ॥ २४ ॥ हनुमान्जीने उस उत्तम रीतिसे एक ऋष्य करके दक्षिण दिशाको प्रस्थान किया ॥ २५ ॥ उसी मंत्रके प्रभावेसे प्रकारके जलजन्तुओंसे भरे दुर्गम सागरको पार करके वे लङ्का पहुँच गये ॥ २६ ॥ वहाँ बहुत खोज करनेपर भी सीताका पता न पाकर अशोक वनमें गये, तब वहाँ एक वृक्षके नीचे बैठे हुई सीताको दूरसे देखा ॥ २७ ॥ सीताको देखकर उनका मुखय हर्षसे भर आया और तुरन्त उनके पास पहुँचकर कहा । फिर दण्डकी तरह पृथ्वीमें लोट गये ॥ २८ ॥ उस समय हनुमान्जीने बच्चेके समान अपना एक छोटा-सा रूप धारण कर लिया । उनको पृथ्वीमें पड़े देखकर सीताने कहा— ॥ २९ ॥ बच्चे ! तुम कहाँसे आये ? कहाँ तुम्हारा घर और तुम किसके भेटे हो ? हनुमान्जीने कहा कि सीता मेरी माता है और पिता श्रीरामचन्द्र । इस बालक की उन्हींके पाससे आ रहा ॥ ३० ॥ मेरा नाम हनुमान् है । इस अंगूठीको लीजिये । यह शुद्ध सुवर्णकी बनी हुई और इसमें श्रीरामचन्द्रजीका नाम लिखा हुआ ॥ ३१ ॥ अब सीताको यह हुआ कि यह मुद्रिका रामजीकी है वे बहुत हुई । सीता माताको देखकर हनुमान्जीने कहा—माँ ! मुझे बड़ी भूख लगी है । इससे क्या कह हो रहा है । इस बगीचेमें मैं बहुत मोटे और दुर्लभ फल खा रहा हूँ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ यदि

न शक्तिर्न च शक्यं ते कथं त्वं मध्यायिष्यसि ।

हनुमानुवाच

श्रीरामेति परो मन्त्रः शस्त्रं मे हृदयांतरे ॥३५॥

तेन सर्वाणि रक्षांसि तृणरूपाणि सांप्रतम् । इत्युक्त्वाऽयं तदीयांश्च गृहीत्वा वनभ्रूहान् ॥३६॥

हन्मूलनं चकाराय भुत्वा रक्षांसि चाययुः । पुष्टं च तुमुलं जातं पञ्चान्मन्त्रप्रभावतः ॥३७॥

दलितं राक्षसबलं दग्धा लंका हनूमता । पुनर्गत्वाऽशोकवनं सीतां नत्वा च मादतिः ॥३८॥

तदर्लंकारमादाय रामचन्द्रं समाययौ । रामायालंकृतिं दत्त्वा तस्यौ उत्पादसन्निधौ ॥३९॥

रामोऽलंकृतिमादाय तच्छ्रुत्वा मुदितोऽभवत् । रामनामप्रभावोऽयं महाराज युधिष्ठिर ॥४०॥

तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र रामनामजपं कुरु ।

युधिष्ठिर उवाच

कथं जपो विधेयोऽस्य पुरश्चरणकं फलम् ॥४१॥

कथमुपापनं चैव सर्वमाख्याहि यत्नतः ॥४२॥

श्रीकृष्ण उवाच

अथवा पुस्तके लेख्यं स्मरणं हृदयेऽथवा । कोटिमंख्यापरिमितमथवा लक्षसंमितम् ॥४३॥

मंत्रा नानाविधाः सन्ति शतशो राक्षसस्य च । तेभ्यस्त्वेकं वदाम्यद्य मंत्रं युधिष्ठिर ॥४४॥

श्रीशन्दमाद्यं जयशब्दमध्यं जयद्वयेनापि पुनः प्रयुक्तम् ।

त्रिःसप्तकृत्वो रघुनाथनामजपो निहन्त्याद्भिजकोटिहस्याः ॥४५॥

अनेनैव मन्त्रेण जपः कार्यः सुमेधसा । लक्षसंख्ये कृते तस्मिन्नुपापनविधिं चरेत् ॥४६॥

आप ■ दे तो मैं थोड़ेसे ■ तोड़कर ■ नूँ । सीताने कहा—हे महावीर बालक । इस बगीचेका भालिक राक्षस है ॥ ३४ ॥ तुममें कुछ भी शक्ति नहीं मालूम ■ रही है । तब तुम किस तरह फल खाओगे ? हनुमान्जीने ■ कि मेरे हृदयमें 'श्रीराम'के नामका एक प्रबल शस्त्र है । उसके प्रभावसे लङ्काके ■ राक्षस मेरे सामने तिनकेके बराबर है । ऐसा कह और सीताजीकी आज्ञा पाकर हनुमान्जी बगीचेमें घुस पड़े और पेड़ोंको उखाड़-उखाड़कर फेंकने लगे । यह समाचार सुनकर बहुतसे राक्षस ■ गये और उनके साथ तुमुल ■ हुआ । किन्तु अन्तमें श्रीरामनाममन्त्रके प्रभावसे हनुमान्जीने उन ■ राक्षसोंको मार ■ और लङ्का नगरीको भी जलाकर राख कर दिया । फिर लौटकर अशोकवनमें गये । वहाँ सीताको प्रणाम किया ॥ ३५-३८ ॥ फिर ■ अलंकार लेकर रामचन्द्रजीकी ओर लौट पड़े । रामके पास पहुँचकर उन्होंने वह अलंकार रामको दिया और उनके चरणोंके पास बैठ गये ॥ ३९ ॥ रामने वह अलंकार हाथमें ले लिया और सीताका समाचार सुना तो बहुत प्रसन्न हुए । हे युधिष्ठिर ! यह ■ रामनामका माहात्म्य है ॥ ४० ॥ इसलिये ■ राजन् । तुम भी रामनामका जप करो । युधिष्ठिरने कहा—हे कृष्ण ! इस रामनामके जप करनेका क्या विधान है ? इसका पुरश्चरण कैसे किया जाना है और उपापनकी क्या विधि है ? यह सब आप हमें अच्छी तरह समझाइए । श्रीकृष्णचन्द्रजीने कहा—हे राजेन्द्र ! साधकको चाहिए कि ■ करके किसी पवित्र स्थानपर ■ और तुलसीकी मालापर रामनामका जप करे । ■ किसी पुस्तकपर लिखे या हृदयमें स्मरण करे । जपकी संख्या एक करोड़ ■ एक लाख होनी चाहिए ॥ ४१-४३ ॥ ■ तो रामचन्द्रजीके अनेक मन्त्र हैं, किन्तु उनमेंसे एक उत्तम मन्त्र मैं तुमको बतलाता हूँ ॥ ४४ ॥ पूर्वमें श्रीराम शब्द, मध्यमें जय शब्द और अन्तमें दो जय शब्दोंसे मिला हुआ (श्रीराम ■ राम जय ■ राम) राममन्त्र यदि इसकीस बार जपा जाय तो वह करोड़ों ब्रह्महत्याओंके पापोंको नष्ट कर देता है ॥ ४५ ॥ बुद्धिमान् साधकको चाहिये कि

जपाच्छतगुणं पुण्यं रामनामप्रलेखने । लक्षे लक्षे पृथकार्यमुद्यापनमनुत्तमम् ॥४७॥
 उद्यापनविधानं च संक्षेपेण वदामि ते : पूर्वद्युहवासी स्याद्वात्रौ मंडपिकांतरे ॥४८॥
 रामलिङ्गात्मके भद्रे रामतोभद्रकेऽथवा । अष्टोत्तरसहस्राख्ये अष्टोत्तरशतकेऽथवा ॥४९॥
 धान्यराशौ मध्यदेशे कलशं स्थापयेत्ततः । तन्मुखे स्वर्णपात्रे वै वरवस्त्रोपश्रोभिते ॥५०॥
 सीतालक्ष्मणसंयुक्तां राघवप्रतिमां शुभाम् । आभावात्फलपर्यन्तां मौवर्णीं प्रतिमां यजेत् ॥५१॥
 राजती वा ताम्रमयी विचक्षात्रां कारयेत् । उपचारैः षोडशभिः पूजयेत्सुसमाहितः ॥५२॥
 रामनामांकितं हेमपत्रं तन्पुरतोऽर्चयेत् । कथां श्रुत्वा च विधिवद्देवदेवं श्रमापयेत् ॥५३॥
 सपराधं च शरणं न्वद्वक्तिनिरतं हि माम् । दीनानाय कृपासिन्धो त्राहि संसारसागरात् ॥५४॥
 रात्रौ जागरणं कृत्वा गीतवाद्यैश्च मंगलैः । ततः प्रभातसमये स्नात्वा होमं समारभेत् ॥५५॥
 दशांशेनैव होमः स्यात्तद्दशांशेन तर्पणम् । गन्धेन पयसा कार्यं राममंत्रेण यस्नतः ॥५६॥
 तस्यापि दशांशेन कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् । आचार्याय सवत्सां गां सालंकारां सवाससाम् ॥५७॥
 भक्त्याऽर्पयेत्सुवर्णां व्रतसंपूर्तिहेतवे । अन्यानपि द्विजांस्तोष्य राज्यं लक्ष्मीं समाप्नुयात् ५८॥
 पुत्रार्थं लभते पुत्रं धनार्थं लभते धनम् । नानादानानि तीर्थानि प्रदक्षिणतप्सोति च ॥५९॥
 तानि सर्वाणि लक्षांश्चसमान्यस्य भवंति च । निष्कामो वा सकामो वा यः कुर्याद्भक्तिसंयुतः ॥६०॥
 सर्वेऽपि लक्षांश्चसमान्यस्य भवंति च । लिखित्वा पुस्तकं वापि वरं रामायणस्य च ॥६१॥
 एवमुद्यापनं कार्यं श्लोकसंख्यादशशितः । पूर्ववद्धवनं कार्यं तद्दशांशाच्च तर्पणम् ॥६२॥

इसी भन्तका रूप करे और उसकी संख्या एक लाख हो जाय, तब उद्यापन करे ॥ ४६ ॥ उसकी ओर
 सौगुना अधिक पुण्य रामनामके लिखनेमें है । साधकको चाहिये कि जब जब रामनामकी लेखसंख्या पूरी एक
 लाख हो जाय, तब उद्यापन करे ॥ ४७ ॥ अब संक्षेपमें उद्यापनकी भी विधि बतलाता है । जिस दिन
 करना हो, उस दिनके एक दिन पहले उपवास करे और रात्रिके समय उद्यापनके लिये बनायी हुई
 मण्डपिकामें या रामलिङ्गात्मक भद्र रामतोभद्र, अष्टोत्तरसहस्राख्य या अष्टोत्तरशताख्य भद्रमें धान्यराशि
 स्थापित करके उसके मध्यमें रखे । कलशके मुखपर एक स्वर्णपात्र उसपर सुन्दर कपड़ा
 ओढ़ावे और सीता-लक्ष्मणके साथ साथ रामकी शुभ प्रतिमा स्थापित करे । प्रतिमा कमसे कम एक मासे
 सोनेकी होनी चाहिये ॥ ४८-५१ ॥ यदि सुवर्णकी प्रतिमा न सके तो चांदी या तामेकी बनवा ले । किन्तु
 कंजूसी करना ठीक नहीं है । प्रतिमा स्थापन करनेके अनन्तर षोडश उपचारोंसे उसकी पूजा करे ॥ ५२ ॥
 रामनामसे अंकित सुवर्णपात्र प्रतिमाके सामने रखकर उसकी भी पूजा करे और भगवान्की कथा सुनकर समा-
 प्रार्थना करे ॥ ५३ ॥ फिर कहे—हे दीनानाय ! हे अनापनाथ ! हे कृपासिन्धो ! मैं बड़ा अपराधी हूँ, किन्तु
 आपका हूँ । मुझे इस संसार-सागरसे उधारिए ॥ ५४ ॥ रातभर गाने और नाचे आदिके जागरण
 करे और लक्षे लक्षे तो स्नान आदि नित्यकर्मोंसे निबटकर होम करे ॥ ५५ ॥ जितना जप करके पुरश्चरण
 किया गया हो, उसका हवन और हवनका दशांश तर्पण करना चाहिये । तर्पण गीके दूधसे करनेका
 विधान ॥ ५६ ॥ तदनन्तर तर्पणका दशांश ब्राह्मणभोजन कराये और पूर्ण करनेके लिए आचार्यको
 वस्त्राभूषणसे अलंकृत एक गौ दे ॥ ५७ ॥ आचार्यके अतिरिक्त जो और-और ब्राह्मण आये हों, उन्हें भी
 करे । ऐसा करनेसे प्राणीको राज्य एवं लक्ष्मीकी प्राप्ति होता है ॥ ५८ ॥ जो पुत्र चाहते हों, उन्हें
 पुत्र और जो चाहते हों, उन्हें धनकी प्राप्ति होती है । संसारमें बितने दान, तीर्थ, प्रदक्षिणा तथा उपस्कार्य
 हैं, वे सब इस व्रतके लक्षांशके बराबर हैं । जो मनुष्य निष्काम या सकाम भावसे भक्तिपूर्वक यह व्रत करता
 है, उसकी सब कामनायें पूर्ण हो जाती हैं । यदि इस आनन्दरामायणकी पुस्तक लिखकर किसी विद्वान्
 ब्राह्मणको दी जाय तो उसके पुण्यका तो किसी तरह वर्णन हो नहीं किया जा सकता ॥ ५९-६१ ॥ इसके
 उद्यापनका विधान एक इस प्रकारका हुआ । दूसरा प्रकार यह है कि आनन्दरामायणकी जितनी श्लोकसंख्या है,

तस्यापि च दशांशेन कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् । पूर्वश्लोकेन वाऽन्येन हवनादि प्रकीर्तितम् ॥६३॥
 अथवा ग्रंथश्लोकानां दशांशैर्हवनं स्मृतम् । अथवाऽग्रे वक्ष्यमाणरीत्या वै शङ्कनस्य च ॥६४॥
 श्लोकं निष्कास्य वै ग्रंथादाचरेद्वरनादिकम् । अथवा रामगायत्रीया राममंत्रैस्तु वाऽऽचरेत् ॥६५॥
 हेमपत्रे त्वेक एव लेख्यः श्लोकः शुभाशुभः । अर्चयित्वा पूर्ववक्ष्य हेमपत्रे सविस्तरम् ॥६६॥
 राममूर्तेः पुरः स्थाप्य सर्वं तद्गुरवेऽर्पयेत् । श्रीरामचरितां कृत्वा त्वेवमुद्यापनं नरैः ॥६७॥
 अत्रत्यमेव कर्तव्यं कविनाफलमीप्सुभिः । देवालयगङ्गाश्रानां वृक्षाणां वापिकूपयोः ॥६८॥
 सर्वाणानां पथ्यानां विद्वार्थं योषितां नृणां च । काव्यानां च कवीनां च पद्मादीनां च सर्वशः ॥६९॥
 राजप्रासादवास्तूनां नामकर्म विशिष्यते । विना कर्णोपदेशेन स्थानराणां विधानकम् ॥७०॥
 कृत्वा नामकर्मणश्च कार्यमुद्यापनं नतः । लक्षपुष्पैः पूजनादि यद्यच्छ्रीराधवस्य च ॥७१॥
 सगोपार्थं कृतं तस्य कार्यमुद्यापनं वरम् । एव राजन् मया सर्वं तवाग्रे विनिर्दिष्टम् ॥७२॥
 रामनामप्रभावेण स्वीयं राज्यं लभिष्यसि ।

श्रीरामदास उवाच

युधिष्ठिरस्तु तच्छ्रुत्वा कविष्यति यथाविधि । ७३॥

मासत्रयेण तस्यैव राज्यप्राप्तिर्भविष्यति । अन्ते च परमं स्थानं गमिष्यति मनोर्यतात् ॥७४॥
 एवं कथां श्रुत्वा च तवाग्रं विनिर्दिष्टम् । रामनाममहिमानमिमं नरः शृणोति यः ॥७५॥
 परमभक्तिसमेतः पुत्रपौत्रजवत्सुखम् । सुखं भुक्त्वा प्राप्नुयात्परमं मोक्षपदं तु सः ॥७६॥
 नित्यं व्याख्या श्रीरामाग्रे कर्तव्या तत्रतिभक्तिः । आनन्दरामचरितस्याथवाऽन्यस्य विस्तरात् ॥७७॥
 सर्गस्य वाऽर्धसर्गस्य पादसर्गस्य वा तथा । नवश्लोकमिता वापि श्लोकमात्रस्य वा तथा ॥७८॥

उसके दशांशसे हवन करे । हवनका दशांश ब्राह्मणभोजन कराये । यह उद्यापनका दूसरा प्रकार हुवा ।
 ■ तीसरा प्रकार बतलाते हैं । आगे बतलाये जानेवाले क्रमके अनुसार इस ग्रंथमेंसे उतने श्लोक निकालकर
 हवन आदि करे । अथवा रामगायत्री या राममंत्रसे हवन आदि करे ॥ ६२-६५ ॥ सुदर्शके पत्रपर केवल
 एक श्लोक वा पूर्वकवित विस्तृत रीतिसे कई श्लोक लिखकर उसकी पूजा करे और अन्तमें उसे गुरुको अर्पित
 कर दे । अथवा रामचन्द्रजीके विषयकी कोई एक कविता बनाकर उद्यापन करे ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ जिन लोगोंको
 कविताका फल पानेकी इच्छा हो, उन्हें तो उद्यापन अवश्य करना चाहिए । कोई देवालय, गङ्गाशाला तथा
 अश्वशाला बनवाने समय, वृक्ष लगाने समय, वाणी या कुँकी प्रतिष्ठाके समय, किसी पुरुष या स्त्रीके विवाहके
 समय यह उद्यापनविधि अवश्य करनी चाहिये । इनके अतिरिक्त कविता या काव्य बनानेके समय और
 राजप्रासादके निर्माणकालमें भी उद्यापन करना लाभदायक है । उद्यापनके अनन्तर रामचन्द्रजीकी प्रसन्न करनेके
 लिये जैसा कि पीछे बतला आये-हैं, उसके अनुसार एक लाख पुष्पोंसे रामकी पूजा करे । इसके सिवाय
 भी श्रीरामचन्द्रजीकी प्रसन्न करनेके लिये जो-जो साधन बतलाये गये हैं, उन्हें उद्यापनके समय अवश्य करे ।
 ■ प्रकार है राजन् ! मैंने आपके समक्ष उद्यापनकी विधि बतलायी ॥ ६६-७२ ॥ यदि ऐसा करेंगे तो
 इसमें कोई संशय नहीं है कि रामनामके प्रभावसे आप अपने खोये हुए राज्यको फिर वापस पा जायेंगे ।
 श्रीरामदास कहते हैं—श्रीकृष्णचन्द्रजीकी बतलायी हुई रीतिके अनुसार युधिष्ठिर तीन मास तक इस वतका
 विधान करनेसे अपना राज्य फिर पा जायेंगे और उसी संवत्के अन्तमें परमधामको प्रस्थान करेंगे ॥ ७३ ॥
 ॥ ७४ ॥ हे विष्णुदास ! मैंने तुम्हें यह भविष्यकी कथा बतलायी है । जो मनुष्य भविष्यपूर्वक इस रामनामकी
 महिमाका अर्थ करेगा है, वह संसारमें जवतक रहता है, तवतक पुत्र-पौत्र और सांसारिक सुखोंको
 भोगता है और अन्तमें मोक्षपद प्राप्त करता है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ रामभक्तको चाहिये कि प्रतिदिन श्रीराम-
 चन्द्रजीके सामने इस आनन्दरामायण अथवा किसी दूसरे रामचरितकी भक्तिपूर्वक विस्तारसे व्याख्या
 किया करे ॥ ७७ ॥ यह आवश्यक नहीं कि व्याख्या ग्रन्थके अधिक अंशकी हो । यह चाहे एक सर्गकी,

श्लोकार्धं श्लोकपादं वाऽऽनन्दरामायणस्थितम् । ये पठन्ति नरा नित्यं ते नरा मुक्तिमाग्निनः ॥७९॥

येऽश्वत्थमूले मुनिवृक्षमूले तथा तुलस्याथ समीपदेशे ।

पुण्यस्थले भास्करभूसुराग्रे श्रीरामचन्द्रस्य पुरः सदैव ॥८०॥

तथा सभायां द्विजवृन्दमध्ये नद्यास्तटे वा रघुनायकस्य ।

आनन्दरामायणमादरेण पठन्ति धन्या भुवि मानवास्ते ॥८१॥

रामायणं लिखित्वा ■ दातव्यं भूसुराय हि । समग्रं वा कांडमेकं सर्गो वाऽतिसुपुण्यदः ॥८२॥

सर्गस्त्वेकः प्रत्यहं हि लिखित्वा भूसुराय हि । संपूज्य देयश्चानन्दरामायणसमुद्भवः ॥८३॥

अशक्तेन नव श्लोकाः सदा देया विलेख्य च । प्रीत्यर्थं रामचन्द्रस्य विप्रेभ्यः परिपूज्य वै ॥८४॥

नित्यदानमेतदेव कर्तव्यं सर्वदा नरैः । नित्यं सुवर्णमुद्राया दानेन यत्फलं स्मृतम् ॥८५॥

तत्फलं प्रत्यहं सर्गदानेन लभ्यते नरैः । दानेन मदस्य दानं राघवस्यातिशेषदम् ॥८६॥

तस्माद्व्ययमेवैतद्दानं कार्यं निरन्तरम् । श्रीरामचन्द्रतुष्ट्यर्थं नवपूजकलैस्तथा ॥८७॥

नामवत्तलोनवदलैस्तांबूलः सोपचारकः । पृथङ्नवभूसुरेभ्यो देयो नित्यं सदक्षिणः ॥८८॥

अशक्तेनैक एवापि देयस्तांबूल उत्तमः । ■ तांबूलममं दानं किञ्चिदस्ति जगत्त्रये ॥८९॥

ताम्बूलः शुद्धिदः प्रोक्तस्ताम्बूलो मंगलप्रदः । ताम्बूलः श्रीकरो ज्ञेयस्तांबूलो राघवप्रियः ॥९०॥

तस्मात्प्रयत्नतस्त्वया देयस्तांबूल उत्तमः । सदा रामं पूजयेच्च सदा रामं विचिंतयेत् ॥९१॥

श्रीरामस्मरणं नित्यं कार्यं भक्त्या मुहुर्मुहुः । यस्य वाण्यां रामनाम हस्तौ पूजनतत्परी ॥९२॥

श्रीरामचरितान्येव श्रोतुकामा च यच्छ्रुतिः । रामतीर्थानि रापेशान् रामक्षेत्राणि यानि च ॥९३॥

यदंघ्री गंतुकामी तु रामपूजोत्सवान् वरान् । संप्रदुर्कामी यच्चेन्नी स धन्यः पुरुषः स्मृतः ॥९४॥

आधे सर्गकी, सर्गके चतुर्थांशकी, नौ श्लोककी, केवल एक श्लोककी, आधे श्लोककी, आधे या चौथाई श्लोककी, जैसे बने व्याख्या अवश्य करता जाय । जो लोग नित्य ऐसा करते हैं, वे मनुष्य अवश्य मुक्तिके भागी होते हैं ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ जो लोग पीपलके नीचे, अगम्य वृक्षके नीचे, तुलसीके पास, किसी पवित्र स्थानमें, सूर्यदेव या ब्राह्मणके सामने अथवा रामचन्द्रजीके समक्ष, किसी सभामें, बाह्मणोंको मण्डलीमें या नदीके तटपर जो लोग आनन्दरामायणमें लिखे हुए चरित्रका पाठ करते हैं, वे मनुष्य धन्य हैं ॥ ८० ॥ ८१ ॥ समग्र एक काण्ड ■ एक सर्ग आनन्दरामायण लिखकर यदि किसी ब्राह्मणको दिया जाय तो भी बड़ा पुण्य होता है । रामके उपासकको चाहिये कि नित्य एक सर्ग आनन्दरामायण लिखकर उसको पूजा करे और किसी ब्राह्मणको दान दे दे ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ यदि पूरा सर्ग लिखनेमें असमर्थ हो तो राज केवल नौ श्लोक ही लिखकर उसको पूजा करे और रामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेके लिये विप्रको दान दे दिया करे ॥ ८४ ॥ लोगोंको चाहिये कि और दानोंके अपेक्षामें न पड़कर सर्वदा इसोका दान दिया करें । नित्य सुवर्णकी मुद्रा दान करनेमें जो फल मिलता है, वही फल केवल एक सर्ग आनन्दरामायण लिखकर दान देनेसे प्राप्त होता है । रामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेवाला इससे बढ़कर और कोई भी दान नहीं है ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ अतएव निरन्तर अवश्यमेव इसका दान करना चाहिए । अथवा रामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेके लिए नौ सुपाड़ी ■ अन्य वस्तुओं और दक्षिणाके साथ नौ पानके पत्ते नौ ब्राह्मणोंको दान दिया करे । यदि ऐसा न कर सके तो केवल एक ताम्बूलदान दिया करे । क्योंकि तीनों श्लोकोंमें ताम्बूलदानके बराबर जोर कोई भी दान नहीं है । ताम्बूल शुद्धि देनेवाला, मङ्गलप्रद, लक्ष्मीको बढ़ानेवाला और रामचन्द्रको प्रिय है ॥ ८७-९० ॥ इसीलिये लोगोंको चाहिये कि प्रयत्न करके उत्तम ताम्बूलका दान करें, सदा ■ लोग रामकी पूजा करें, रामका ध्यान करें और रामका स्मरण करें । जिनकी वाणीमें रामनाम विराजमान है, जिनके हाथ रामकी पूजामें लगे हुए हैं, जिनके कान रामका गुणानुवाद सुननेमें लगे हैं, जिनके पाँव रामेश्वर, रामतीर्थ और रामक्षेत्रमें जाते रहते ■ और जिनके नेत्र रामपूजनोत्सव देखनेमें लगे

राम रामेति रामेति ये वदन्ति जना भुवि । महापातकिनस्तेऽत्र मुक्तिं याति न संशयः ॥९५॥
रामचन्द्रेति मंत्रोऽस्ति वागस्ति वञ्चवर्जिनी । तथापि निरये घोरे पतन्तीत्यद्भुतं महत् ॥९६॥

श्रीरामनामामृतमंत्रोऽजमत्रोऽधर्मा चेन्मनसि प्रविष्टा ।

हालाहलं वा प्रलयामलं वा मृत्योर्मुक्तं वा विनाशकृतो भयः ॥९७॥

आमने च तथा निद्राकाले भोजनकर्मणि । क्रीडने गमने नित्यं राममेव विचिन्तयेत् ॥९८॥
श्रवणीयः कीर्तनीयश्चितनीयः सदा नरैः । गोपथ रामो ह्युपदेश्यो राम एवावनीतले ॥९९॥
स्वर्गे सुराणाममृतं यथाऽस्ति परमं शुभम् । रामनामामृतं भूम्यां सद्यं नाप्नोति वै कदा ॥१००॥
गोपीचन्दनलितांगो राममुद्राकिनो नरः । रामनामोच्चारकश्च तुलसीकाष्ठमालिकः ॥१०१॥
शंखचक्रगदाधरधारको राममानसः । यस्त्वग्र म नरो धनो नेनश्च कदाचन ॥१०२॥
स एव पुरुषोऽयं यो रामनाम मदा वदेत् । स एव पुरुषो निघस्त्वग्र रामं स्मरेन्न यः ॥१०३॥
ये नराः शिवसङ्कतिं कृत्वा निदन्ति गघवसः । एवं च स्वरास्तेऽपि नरा ज्ञेयाऽध्वनीतले ॥१०४॥
राम एव हरो ज्ञेयः शिव एव रघूनपः । उभयोर्नीतिरं ज्ञेयं मेददृङ् नास्ती नरः ॥१०५॥
रामत्रययोरत्र भिन्नं येन मानितम् । अजागलस्तनवच्च तस्य जन्म शुधा मतम् ॥१०६॥
समोश्च हृदयं रामो रामस्य हृदयं शिवः । नैवांतरं कनारीयं कुतर्कैर्विविधैर्नरैः ॥१०७॥
रामेति द्वयक्षरं नाम ये वदन्ति त्वहनिगम् । न कस्यापि भयं तेषां जीवन्मुक्ताश्च ते नराः ॥१०८॥
राममुद्राकितं दृष्ट्वा नरं ते यमकिंकराः । पलायन्ते दक्ष दिशः सिंहे दृष्ट्वा गजा यथा ॥१०९॥
ललाटे शृण्ठेऽपि च कुक्ष्यादौ जठरे तथा । हृदये भुजयोर्द्वे हि मरुके न्वति वै नय ॥११०॥

रहते हैं, वे मुख्य मन्त्र हैं ॥ ९१-९४ ॥ जो लोग इस संसारमें 'राम-राम' यह नाम जपते हैं, वे महापातकी होते हुए भी मुक्तिकी प्राप्ति होते हैं ॥ ९५ ॥ जिनके पास 'रामचन्द्र' यह मन्त्र है और वाणी अपने वशमें है, फिर भी वे लोग घोर नरकमें पड़ते हैं, यह महान् आश्चर्यकी बात है ॥ ९६ ॥ श्रीरामनामका अमृतमन्त्र-बोजकी सञ्जीवनी यदि मनमें बैठ गया तो हालाहल त्रिष, प्रलयामल और मृत्युके मुखमें भी पुस जानेसे कोई भय नहीं रह जाता ॥ ९७ ॥ लोगोंको तो चाहिए कि उठने, बैठने, सोने, खाने, पीने, खेलने, कुरते कहीं जाते-जाते समय एकमात्र रामका ध्यान करें ॥ ९८ ॥ सदा उन्हींके गुणानुवाद सुनें । उन्हींके चरित्रका कीर्तन करें और उन्हींका गुण गाएँ ॥ ९९ ॥ स्वर्गमें जिस प्रकार अमृत परम मङ्गलकारी है । उन्हींके सदृश भूमण्डलपर कर्मा भी न नष्ट होनेवाला रामनामहरी अमृत है ॥ १०० ॥ जो मनुष्य गोपीचन्दन लगाते, राममुद्रासे अङ्कित रहते, रामनामका उच्चारण करते, तुलसी (काष्ठ) की माला पहनते, शंख, चक्र, गदा और धनुषका चिह्न धारण करते और मनमें समय रामका स्मरण करते हैं । ऐसे प्राणी जहाँवर रहते हैं, वह स्थान और वे मनुष्य धर्म हैं ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ वही पुरुष सब पुरुषोंका अगुआ बन सकता है, जो सदा रामनामका जप किया करता है और वही पुरुष निन्दाका भाजन है, जो कर्मा रामचन्द्रजीका स्मरण नहीं करता ॥ १०३ ॥ जो मनुष्य शिवजीकी भक्ति करके रामचन्द्रजीकी निन्दा करते हैं, उन्हें इस भूमण्डलमें मर्चा समझना चाहिये ॥ १०४ ॥ राम ही शिव हैं और शिव ही राम हैं । इन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है । जो प्राणी इनमें कोई भेदभाव मानता है, वह नरकगामी होता है ॥ १०५ ॥ इस संसारमें जिसने राम और शिवमें कोई भेद माना तो बकरीके गलेके तलके समान उसका जीवन शृषा गया ॥ १०६ ॥ शिवजीके हृदय राम ॥ और रामके हृदय शिवजी हैं । लोगोंको चाहिए कि विविध प्रकारके कुतर्कोंमें पड़कर इनमें कोई भेद न मानें ॥ १०७ ॥ जो लोग रात दिन 'राम' ये दो अक्षर कहा करते हैं, उन्हें किसीका भय नहीं रह जाता और वे प्राणी जीवन्मुक्त हो जाते हैं ॥ १०८ ॥ राममुद्रासे चिह्नित मनुष्यको देखकर दमके दूत उसी तरह दसों दिशाओंमें भाग जाते हैं, जैसे सिंहको देखकर हाथी भाग खड़े होते हैं ॥ १०९ ॥ अतएव लोगोंका यह परम कर्तव्य है कि गोपीचन्दनसे अङ्कित राममुद्रा धारण करें । क्योंकि राममुद्रा महान् श्रेष्ठ वस्तु है और सब प्रकारके

राममुद्रा धारणीया गोपीचन्दनचिह्निता । राममुद्रा महाथेष्ठा सर्वदोषनिर्कृतनी ॥१११॥
सदा देहे नरैर्धार्या गोपीचन्दनचिह्निता । राममुद्राऽस्ति यद्देहे तं पापं स्पृशते न हि ॥११२॥
स्तुतिः सदैव रामस्य स्तोत्रैः कार्या त्वहनिशम् । प्रार्चनैश्च नवीनैश्च स्वबुद्ध्या रचितैरपि ॥११३॥

स वाग्विर्गो जननाऽवधिप्लवा यस्मिन्प्रतिश्लोकमवद्वत्यपि ।

नामान्यनंतस्य यश्चोऽङ्कितानि यच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ॥११४॥

कवित्वमस्य शुद्धं च रामनाम्नांकितं च यत् । तज्ज्ञेयमतिशुद्धं च भवणात्पातकापहम् ॥११५॥
यस्मिन् रामस्य कृष्णस्य चरित्राणि महानि च । कवित्वे तत्तुष्टयममं सदा जेयं महत्तमैः ॥११६॥
मृणु शिष्य तवाग्रेऽन्यद्गुणं किञ्चिद्वयोम्वहम् । कविताविषयं यच्च सर्वमन्दैहनाशकम् ॥११७॥
अश्वत्थामा बलिर्वासो हनुमान् विभीषणः । कृपः परशुरामश्च समैने चिरजीविनः ॥११८॥
एवं यद्वचनं शिष्य प्रोच्यते सर्वदा बुधैः । तदग्रे सर्वदा सत्यं ज्ञेयं कल्पिपुगेऽपि च ॥११९॥
येषु मन्त्रबलं भूम्यां वर्ततेऽत्र नरेषु हि । अश्वत्थामाश्रभृतास्ते ज्ञेयाश्च पुरुषा बुधैः ॥१२०॥
न्यायोपाजितद्रव्येण राज्यं कुर्वन्ति धर्मतः । बल्यशभृतास्ते ज्ञेया नानवा जगतीतले ॥१२१॥
रामस्तुतिं कवित्वे ये चरित्रं वर्णयन्ति च । अश्वत्थमाश्रभृतास्ते ज्ञेया मानवा जगतीतले ॥१२२॥
ये ये वीरास्त्वत्र भूम्यां वायुपुत्रांश्चरुणिः । ते ते ज्ञेया नरोत्तमस्य चिरजीवित्वमवकाः ॥१२३॥
ये ये शान्ता रामभक्ताः संत्यत्र मानवा भुवि । विभीषणांश्चभृतास्ते ज्ञेयाश्च सकलैर्जनैः ॥१२४॥
ये धैर्यवंतो योद्धारः संत्यत्र मानवा भुवि । कृपाचार्याश्चभृतास्ते ज्ञेयाः सर्वे बुधैः सदा ॥१२५॥
ये वीराः क्रोधयुक्तास्तेऽत्र सर्वेऽवनीतले । जामदग्न्यांश्चभृताश्च सदा ज्ञेया नरोत्तमैः ॥१२६॥

दीर्घोको नष्ट करती है। अतएव सलाह, पृष्ठदेश, दोनों कुक्षि, उदर, हृदय, दोनों भुजाओं और मस्तक इत स्थानोंमें नौ राममुद्राओंको धारण करना चाहिए ॥ ११० ॥ १११ ॥ ये मुद्राये धारण करना परमावश्यक है। क्योंकि जिसके शरीरमें राममुद्रा विद्यमान रहती है, उसे किसी प्रकारका पातक नहीं लगता ॥ ११२ ॥ उपासकोंको यह भी उचित है कि विविध प्रकारके स्तोत्रों द्वारा रामचन्द्रजीको स्तुति करे। वे स्तोत्र प्राचीन हों, नवीन हों या अपनी बुद्धिसे बनाये गये हों ॥ ११३ ॥ रामके पदमें अङ्कित भगवान्के गुणानुवादसम्बन्धी वचनोंका प्रवाह प्राणिमार्गके महान् पातकोंको भी बहा ले जाता है। अतः लोग इसे गुन, गायें और मनन करें। रामके नामसे अङ्कित कविता चाहे अतिशय भगुद्ध हो, फिर उसे अतिशुद्ध मानना चाहिये। उसके सुननेसे सब तरहके पातक नष्ट हो जाते हैं ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ जिस कवितामें राम और कृष्णके महान् चरित्रोंका वर्णन किया गया हो, वह अत्यन्त पवित्र होता है। बड़े लोगोंको चाहिए कि सदा ऐसी कविताका पान करें ॥ ११६ ॥ श्रीरामदासजी विष्णुदाससे कहते हैं—हे शिष्य । मैं तुम्हारे आगे सब प्रकारके सन्देशोंको निष्कृत करनेवाला एक गुप्त कविताका विषय कह रहा ॥ ११७ ॥ अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान्, विभीषण, कृपाचार्य और परशुराम ये चिरजीवी हैं ॥ ११८ ॥ प्रायः पण्डित लोग इस बातको कहा करते ॥ ११९ ॥ इस कल्पयुगमें भी सत्य नानना चाहिए ॥ १२० ॥ इस पृथ्वीपर जिस लोगोंके पास मन्त्रबल विद्यमान है, उनका अश्वत्थामाका अंशज मानना चाहिए ॥ १२१ ॥ जो राजे न्यायोपाजित द्रव्यसे धर्मपूर्वक राज्य करते हैं, उनको इस संसारमें बलिके अंशसे उत्पन्न समझना चाहिये ॥ १२२ ॥ जो लोग कविता करते हुए रामको स्तुति करते या उनके चरित्रोंका वर्णन करते हैं, जगतीतलमें उन मनुष्योंको व्यासके अंशसे उत्पन्न मानना चाहिये ॥ १२३ ॥ भूमण्डलमें जो जो वीर हैं, वे सब हनुमान्जीके अंशज हैं। ऊपर बतलाये हुए गुण ही उक्त प्रकारके मनुष्योंके चिरजीवित्वकी सूचना देते रहते हैं ॥ १२४ ॥ इस पृथ्वीमें जितने शान्त रामभक्त हैं, उन्हें सब लोग विभीषणके अंशसे उत्पन्न समझें ॥ १२५ ॥ इस संसारमें जो धैर्यके साथ बुद्ध करनेवाले लोग हैं, उन्हें कृपाचार्यके अंशसे उत्पन्न समझना चाहिये ॥ १२६ ॥ इस पृथ्वीमण्डलमें जितने श्रेष्ठ वीर हैं, उन सब लोगोंको

चिरंजीवीति व्यासः कः कथं ज्ञेयो जनेर्भुवि । तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि मावधानमत्ताः शृणु ॥१२७॥
 ये गीर्वाण्या कविश्रानि करिष्यन्त्यवनीतले । व्यासाश्रुतास्ते ज्ञेयाः संहिता मानदास्त्विह ॥१२८॥
 ये रामचंद्रं कृष्णं च शिवं स्तुत्वा स्तुवंति हि । वर्णयन्ति चरित्राणि ते ज्ञेया व्यासमूर्तयः ॥१२९॥
 ये राजानं च गणिकां नारीं राज्ञः सभां तथा । नरं स्तुवंति स्तुन्याः ते न ज्ञेया व्यासमूर्तयः ॥१३०॥
 यावद्भूम्या रामस्य चरित्राणि स्तुवीत हि । तावदत्र स्मृतो व्यासस्ततो मुक्तिं गमिष्यति ॥१३१॥
 किं फलं कस्य पाठाच्च तद्वचोमि तवाधुना । शृणु स्वस्यमता शिष्य विस्तरेणोच्यते च यत् ॥१३२॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे मनोहरकाण्डे रामनामलक्षोत्तापनादिधर्मनं नाम सप्तमः सर्गः ॥७॥

अष्टमः सर्गः

(वेदादिकोंको फलश्रुति)

श्रीरामदास उवाच

शिरोव्याह्निसमुक्ता गायत्री परिकल्पिता । वेदाक्षगणां तुल्या सा श्रुतेन मुनिभिः स्मृता ॥ १ ॥
 चतुःश्रुतेन गायत्र्याः संमितं परिकल्पितम् । पापघ्नानं महाएकं पदशतञ्च सुगुणदत्तम् ॥ २ ॥
 तमोषनिषदः पुण्यं गायत्र्यक्षरसंख्यया । प्रीच्यते पुण्यता लोके पुण्यमुक्तानि याच्यते ॥ ३ ॥
 संहितापाठनः प्रोक्तं द्विगुणं पदपाठनः । त्रिगुणं क्रमपाठे स्वाज्जटापाठे तु पङ्चगुणम् ॥ ४ ॥
 महाभारतपाठस्तु वेदतुल्यः प्रशंसितः । पुराणानां तदर्धेन स्मृतानां च तथोच्यते । ५ ॥
 भारते भगवद्गीता तथा नाममुहस्रकम् । गायत्र्याश्च समं प्रोक्तं पुण्ये पापक्षयेऽपि च । ६ ॥
 पाठेन यत्फलं प्रोक्तमर्थज्ञानाच्चतुर्गुणम् । मद्भक्तैः श्रवणाच्च पुण्यं दशगुणं स्मृतम् । ७ ॥

परशुरामके अक्षरों के उत्पन्न समझना चाहिये ॥ १२६ ॥ चिरञ्जीवी व्यासका इस संस्मरण केसे पहचानना चाहिये । इसके लिए उसका स्वरूप बनाने है । तब सावधान होकर सुनो ॥ १२७ ॥ जो-जो लोग संस्कृत वाणीमें कविता करेंगे, वे पण्डित पुण्यदायक अक्षरों के उत्पन्न माने जानेंगे ॥ १२८ ॥ जो लोग रामचन्द्र, कृष्णचन्द्र तथा शिवजीको स्तुतिमें करें या उनके चरित्रका वर्णन करें, उनको व्यासकी साक्षात् मूर्ति समझना चाहिये ॥ १२९ ॥ जो न्याय राजा, नजिक, स्त्री, राज-पक्ष तथा किसी दक्षिण-विशेषको स्तुति करते हैं, व्यासकी मूर्ति नहीं माने जा सकते ॥ १३० ॥ इस पृथ्वीपर प्राणों जड़तक रामजी स्तुति करता है, तबतक वह व्यास रहता है और अन्तमें मुक्तिपर प्राप्त करता है ॥ १३१ ॥ किसी ग्रन्थका पाठ करनेमें क्या फल होता है, अब मैं इस बातको बतलाऊंगा । हे शिष्य ! तुम स्वस्य मन होकर सुनो, मैं विस्तारपूर्वक बतलाता हूँ ॥ १३२ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे ८० रामतेजसाण्डेचरिचरित-ज्योत्स्नाभाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

श्रीरामदास कहने लगे-वेदकी शिरोव्याह्निले युक्त ही अक्षरोंवाली गायत्री कही गयी है ॥ १ ॥ बार ही गायत्रीके दरावर पावमान नामक महामुक्त है, जिसमें छः ही ऋचाओंका समावेश किया गया है ॥ २ ॥ गायत्रीकी अक्षरसंख्याके अनुसार उचनिषदोंके पाठसे पुण्य प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ संहितापाठकी अपेक्षा दुगुना पुण्य पदपाठ करनेमें है । क्रमके पाठ करनेमें त्रिगुना पुण्य है और जटाके पाठसे छगुना पुण्य होता है ॥ ४ ॥ महाभारतका पाठ वेदपाठ सदृश होता है । पुराणोंका पाठ आधी वेदपाठका पुण्य देनेवाला ॥ और उससे भी आधा पुण्य स्मृतिषोंके पाठसे होता है ॥ ५ ॥ महाभारतके अन्तर्गत भगवद्गीता और विष्णुसहस्रनाम, वे दोनों गायत्रीके समान पुण्यदायक एवं पापक्षयकारी माने गये हैं ॥ ६ ॥ पाठसे जितना पुण्य होता है, उससे बीगुना पुण्य उसका अर्थ समझनेसे होता ॥ और अच्छे-अच्छे भक्तोंको सुननेसे दशगुना पुण्य प्राप्त होता

भूमिदानं यथा श्रीके महादानमितीति । अथादानं दशगुणं ततोऽपि स्यात्फलप्रदम् ॥ ८ ॥

निम्नलिखित प्रश्न

कस्मै दानं प्रकरोति स सुवर्णस्योपरस्य ॥ कथं वा पात्रमिति मातामहश्चेतरोऽथवा ॥ ९ ॥

श्रीरामदास उवाच

वमन् गुरुकुले यस्तु भिक्षान्नाशी भूवि पठन् । अर्धवीत्ये शाखा पूर्णा स यथोक्तं लभते फलम् ॥१०॥

शिष्यकृपाध्यापककृपाविमर्शितां पटुतां पलायनं च शिष्यसमं तन्मायत्रीसङ्ख्यादिकलं लभेत् ॥ ११ ॥

पदपाठे ननु स्वभावेन क्रमपाठः । नहिनाशतो द्वित्वं गथावाक्यकाल म्भूतम् ॥१२॥

ततोऽप्युत्तरेण पश्येद्विगुणं कलसाग्नितम् । शङ्खं च पाठयेत्तत्तत्र कलं वै शुभमिदमर्थः ॥३॥

अधीनान्निगुणं तु म्यान्कले वै कठपाटनः । तद्वै लेखपाटनं कलमुक्तं मन्त्रादिभिः । १४॥

अधीन्यापि न यस्तु स्वान्वतुष्टुममं क्वचिः । कुतः अन्वतुष्टुममं क्वचिः ॥३५॥

प्रज्ञायामनि-नन्दो नृ-विष्णवेभ्य-रक्षितो भूतिभू-पञ्चामर-प्रसादो-मृ-ग-म-मिता-वर्जनाः॥१॥

यावदेदोन्मथयामासि पठितवानां च विद्वद्भिराचार्यैश्च नमोऽस्तुते ॥ १७॥

पादपुष्पसर्गाः च लोकं तमते नान्न नमस्त्यक्तं न राजास्यां पश्यन्तं भवत्तु य उन्नतस्त्वां वदेदपि ॥३८॥

प्रत्यक्षं तु तन्मये सापत्न्या द्विदुग्ध कालम् । पठित्वा विदुषां च । अथ । तन्मये तन्मये ॥ १९॥

[illegible]

समेकित रूपेण सर्वे तु ननु वेदोपनिषदज्ञां भवेत् अहंनि वेदोपनिषदज्ञा मोक्षं तदाप्यहंनि स्वयः ॥२१॥

दूषण अपेक्षाम् च विद्या संशयमुद्धरेत् । साधुवेदां प्रवर्तते तांश्चैव साधुभाषणम् ॥ १॥

[illegible]

उपविद्याश्चतस्रः स्मुरेयमष्टादश स्मृताः । शिक्षा कल्पे व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषम् ॥ २३ ॥
 इत्थंगानि तु वेदस्य योजनीये तत्फलं शृणु । संहितापाठकोऽप्यर्थं लभने पाठिनः फलम् ॥ २४ ॥
 शिक्षा व्याणं तु वेदस्य कल्पः पाणी प्रकीर्तितौ । मुख व्याकरणं श्लोकं निरुक्तं श्रौतसूत्रम् ॥ २५ ॥
 ज्योतिषं नयनं प्राह्वयच्छन्दः पादाविति श्रुतौ । शिक्षाः सप्तविंशत्योऽङ्गानां वेदविधौ ॥ २६ ॥
 संकथीयं प्रकुर्याति फलं तेषां चतुर्गुणम् । यदेतच्छ्रुतं तु ज्योतिषं ज्ञानं तदा तत्फलम् ॥ २७ ॥
 संहितापाठजं पुण्यं गणितज्ञो लभेत्फलम् । ज्योतिषो संहिताज्ञानादथ । लभेत्फलम् ॥ २८ ॥
 जातकप्रश्नयोगेन न सिद्धेऽप्युपनीतिम् । वेदाध्ययनो यो अथ तदा तत्फलम् ॥ २९ ॥
 न वेति गणितं यत्तु श्रेयो तदा तत्फलम् । दानं वादित्वे विदितं सत्फलम् ॥ ३० ॥
 संहितामपि न स्यात्तां योजनीयं द्वितीयम् । अंगादिव्याख्यासु नक्तः स तु विदितः ॥ ३१ ॥
 किञ्चिच्छास्त्रार्थोपनिषदोपनिषदः पठेत् । ज्ञानाधिक्येन तदा तत्फलं वेदज्ञानार्थम् ॥ ३२ ॥
 अधीति ज्ञानाय स्यात्पुण्यधिक्येन योजनम् । यो विदितः स्यात्तदा तत्फलम् ॥ ३३ ॥
 ज्ञानाधिक्येन नैव स्यात्पुण्यधिक्येन योजनम् । यो विदितः स्यात्तदा तत्फलम् ॥ ३४ ॥
 ज्ञानाधिक्येन नैव स्यात्पुण्यधिक्येन योजनम् । यो विदितः स्यात्तदा तत्फलम् ॥ ३५ ॥
 न हि ज्ञानेन स्यात्पुण्यधिक्येन योजनम् । यो विदितः स्यात्तदा तत्फलम् ॥ ३६ ॥
 परं वादिजये शक्तिर्यस्य स्यात्तदा तत्फलम् । यो विदितः स्यात्तदा तत्फलम् ॥ ३७ ॥
 वेदादिव्याख्यासु नक्तः स तु विदितः । यो विदितः स्यात्तदा तत्फलम् ॥ ३८ ॥
 ज्ञानाधिक्येन लभने वेदार्थज्ञानं फलम् । नानां द्विविधा शीला कर्मणो ब्रह्मणस्तथा ॥ ३९ ॥

धर्मशास्त्र, यं चोक्तं विद्यायै है । आयुर्वेद, वनस्पति, गन्धर्व और अर्थशास्त्र ॥ १७-२२ ॥ ये चार उपविद्यायें हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष ये छ वेदके अंग हैं । इनके अध्ययनका जो फल होता है, उसे मुक्तौ । इनका पाठ करनेसे संहितापाठका ज्ञान फल मिलता है ॥ २३ ॥ २४ ॥ वेदको नासिका शिक्षा, कल्प दोनों हाथ, मुख व्याकरण, निरुक्त ज्ञान, ज्योतिष नेत्र और छन्द (काव्य) पैर हैं । जो शिक्षा, कल्प, निरुक्त तथा छन्द इनका अर्थ समझनेके लिए उद्योग करते हैं, उन्हें वेदपाठका चतुर्गुण फल प्राप्त होता है । वेदका पाठ करनेसे ज्योतिषशास्त्रके अर्थज्ञानका भी फल मिल जाता है ॥ २५ ॥ २६ ॥ गणितको जाननेवाला विद्वान् संहितापाठका पुण्य पाता है । संहिताका ज्ञान रहनेसे ज्योतिष-शास्त्रके अध्ययनका आधा पुण्य मिलता है ॥ २७ ॥ किन्तु ज्योतिषमें भी जो विद्वान् केवल जातकका प्रश्न-मात्र जानता है और वेदाध्ययनविहीन है, उसे कुछ भी पुण्य नहीं होना । वह कांश जातक प्रश्नका ज्ञान ही कहा जायगा ॥ २९ ॥ जो ब्राह्मण गणित नहीं जानता, सब कर्मोंमें निश्चित वह विप्र किसी प्रकारका दान लेनेका अधिकारी नहीं कहा जा सकता ॥ ३० ॥ जो ब्राह्मण अपनी वेदशास्त्रोंका अध्ययन करके केवल व्याकरण-अधिकारी नहीं कहा जा सकता ॥ ३१ ॥ जो ब्राह्मण योद्धा भी निश्चित होता है ॥ ३२ ॥ जो ब्राह्मण योद्धा भी ज्योतिष आदि वेदाङ्गोंमें ही लगा रहता है, वह द्वितीयम् भी निश्चित होता है ॥ ३३ ॥ जो ब्राह्मण योद्धा भी अपनी शास्त्रोंका अध्ययन करके अपना ज्ञान बढ़ानेके लिए उपनिषद् तथा शास्त्रोंको पढ़ता है, वह वास्तविक ज्ञानवान् बनकर अधिकसे अधिक पुण्यका भागी होता है । क्योंकि ब्राह्मणोंमें वृद्धत्व या पूज्यत्व ये दोनों गुण ज्ञानसे ही आते हैं ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ज्ञानकी मायाकी अधिकतासे ही उन लोगोंमें पात्र और अपात्रका विचार करना चाहिए । पाठकोंके भी पुण्यका अधिकता तथा न्यूनतासे ही पात्रापात्रका विचार किया जा सकता ॥ ३६ ॥ ज्ञानी और पाठक इन दोनोंमें ज्ञानी विशेष पुण्यात्मा समझा जाता है । इसलिये घेरे मठसे ही पाठककी अपेक्षा ज्ञानी अधिक पूज्य है ॥ ३७ ॥ इस संसारमें ज्ञानसे बढ़कर कोई वस्तु प्रिय नहीं है । जो पाठकोंकी अपेक्षा ज्ञानी अधिक प्रिय है ॥ ३८ ॥ किन्तु पाठकोंमें तो यह प्रथा है कि संकटों पाठकोंमेंसे भी वही श्रेष्ठ जाता है, जो वादीको अपनी बचुराईसे परास्त कर सके ॥ ३९ ॥ जो मनुष्य वेद आदि ज्ञानके लिये व्याकरण आदि शास्त्रोंका अध्ययन करता है, उसे वेदाध्ययनका ही

वेदार्थज्ञानतुल्याया द्वितीयायाः फलं शृणु । ग्रन्थश्च तु लभते गायत्रीज्ञानं फलम् ॥४०॥
 वे तूपभोगिनः पाश्चाद्ग्रन्थस्तेभ्यो भवन्ति हि । तेऽप्यर्थफलदा ज्ञेया व्यवधानात् पादशः ॥४१॥
 वेदोपनिषदामर्थे ज्ञानाधिक्याय चेन्पठेत् । प्रदीपं सर्वविद्यानां यो विद्वान्प्रायविस्तरान् ॥४२॥
 वेदार्थज्ञानतुल्यं तु फलं तस्य स्वीकृतम् । केवलं जीवितार्थं तु यः पठेन्न्यायविस्तरम् ॥४३॥
 हेतुवादरतो मन्त्रानिज्ञानार्थं नैव यः पठेत् । स शृगालो भवेदेव पठितान्तायन्त्यया ॥४४॥
 वर्षाणि नम्र नदीनां वृधाभायजनन्तरः । पुराणं वैष्णवं मात्सर्यं कीर्म भागरतं तथा ॥४५॥
 आदित्यं गरुड स्कान्द मार्कण्डेयमथाष्टमम् । अथब्रह्मांडलंभ्यानि अक्षर्यवर्तमेव च ॥४६॥
 भविष्योत्तरमाग्नेयं पाद्यं वामनमेव । वाराहं चैव वायव्यं सप्तदशानि वै त्रिभिः ॥४७॥
 महापुराणान्येतादि रामायणभक्तानि हि । रामायणांपुराणानि व्यासेन खण्डितानि हि ॥४८॥
 अतः पुराणं नामाभूदेतेषां जगतीकले । आदौ कृतानि यान्यत्र तेषां ज्येष्ठसूचकः ॥४९॥
 महाशब्दः प्रोच्यते हि वैष्णवदिषु पटत्रिषु । पुराणानां तु सर्वेषां फलं शिष्यं त्रयोम्यहम् ॥५०॥
 वेदतुल्यफलं पाठे श्रवणे च तदङ्गम् । अर्थश्रवणनश्चास्य पुण्यं दशगुणं स्मृतम् ॥५१॥
 वक्तुः स्याद्द्विगुणं पुण्यं वशाख्यातुश्च ज्ञानाधिकम् । अन्यान्युपपुराणानि सति तेषां फलं शृणु ॥५२॥
 विष्णुधर्मोत्तरं शैवं बृहन्नारदमेव च । भगवत्पुण्यं च लघुनारदमेव च ॥५३॥
 भविष्यत्पंचपठं स्यात्तन्त्रं भागवतं तथा । अष्टमं नारसिंहं स्यात्पुराणं रेणुकाभिधम् ॥५४॥
 दशमं तत्त्वसारं स्याद्वायुप्रोक्तं तथैव च । नंदिप्रोक्तं द्वादशं स्याच्चथा पाशुपताभिधम् ॥५५॥
 धमनारदसंवादस्तथा हंसपुराणकम् । विनायकपुराणं च बृहद्ब्रह्मांडमेव च ॥५६॥
 पुण्यं विष्णुरहस्यं स्यादिति सप्तदशानि वै । एतान्युपपुराणानि पुराणार्थफलानि च ॥५७॥

फल मिलता है ॥ ३८ ॥ जब ज्ञान जाता है तो उसे आपसे आप वेदका अर्थ जात हो जाता है । मीमांसाशास्त्रके दो प्रकार हैं । एक कर्मपरक दूसरा ग्रहणपरक ॥३९॥ इन दोनोंमें पहले अर्थात् कर्मका मार्ग बतलानेवाले मीमांसाका अध्ययन करनेसे वेदग्रन्थका पुण्य प्राप्त होता है और दूसरे ग्रहणपरक मीमांसाको पढ़नेसे जो पुण्य होता है, उसे सुनो । उत्तर मीमांसाका अध्ययन करनेवाला प्राणी जितने अक्षरोंको पढ़ता है, प्रत्येक अक्षरसे उसे सौ गायत्रीके जपका पुण्य प्राप्त होता है ॥ ४० ॥ ऐसे लोग बड़े ही उपयोगी विद्वान् होते हैं और ग्रन्थोंकी उत्पत्ति उन्होंने लोगोंसे होती है ॥४१॥ जो मनुष्य वेदों और उपनिषदोंके अर्थज्ञानार्थ दिष्टाश्रितिके प्रदीपस्वरूप व्याख्यास्त्र पढ़ते हैं, उन्हें वेदार्थज्ञानके तुल्य फल मिलता है । किन्तु जो केवल जादू-कर्मके लिये व्याख्यानस्त्रका अध्ययन करता है और केवल हेतुवादसे भयान रहकर ब्रह्मजिज्ञासाके निमित्त नहीं पढ़ता । वह शूद्रा मनुष्य व्यासके जितने अक्षर पढ़े रहता है, उतने ही वर्षों तक शृगार हो-होकर जन्म लेता है । इसमें कोई संशय नहीं है । अब पुराणोंको गिनात है—वैष्णव, गरुड, कूर्म, भागवत, ॥ ४२-४५ ॥ आदित्य, गरुड, स्कान्द, मार्कण्डेय, अष्टम, ब्रह्माण्ड, शिव, अक्षर्यवर्त, भविष्योत्तर, अग्नेय, पद्य, वामन, वाराह और वायु ये अष्टादश महापुराण ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ये सभी महापुराण रामायणसे ही उत्पन्न हुए हैं । किन्तु वासुदेवने रामायण और पुराण इस दोनोंमेंसे बहुतसे अक्षर काट दिये हैं ॥ ४८ ॥ इसी कारण इनका पुराण यह नाम पड़ा है । सबसे पहले जो पुराण बनाये गये, उनका ज्येष्ठसूचक महाशब्द है । हे शिष्य ! अब मैं तुम्हें पुराणोंके पाठका फल सुना रहा हूँ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ पुराणोंका पाठ करनेसे वेदशास्त्रका फल मिलता और उन्हें सुननेमें उससे आधा फल मिलता करता है । किन्तु पुराणोंके अर्थका श्रवण करनेमें उससे दसगुना अधिक फल होता है ॥५१॥ वक्ताको पुण्य और व्याख्या करनेवालेको सौगुना पुण्य होता है । इनके अतिरिक्त अष्टारह उपपुराण भी हैं । अब उनका नाम सुनो— ॥ ५२ ॥ विष्णुधर्मोत्तर, शैव, बृहन्नारद, भगवत्पुण्य, लघुनारद, भविष्यत्का छठी पर्व, भागवत, नारसिंह, रेणुका ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ दसवीं तत्त्वसार, वायु द्वारा कहा हुआ वाराहकी, नदी द्वारा कहा

भारतं वेदतुल्यं स्यादर्थतोऽधिकमुच्यते । तत्रापि भगवद्गीता विष्णोर्नामसहस्रकम् ॥५८॥
 दशाधिकफलं प्रोक्तं भारतादापि सर्वशः । श्रोताऽर्धफलमाप्नोति भक्तितः श्रुणुयात् यः ॥५९॥
 भारतं त्वितिहासञ्च रामायणसमुद्भवम् । यद्वेदपाठपुण्यं तद्वह्यं रामायणस्य च ॥६०॥
 शतशतदद्वैतं श्रवणे व्याख्यातुश्च दशाधिकम् । बाल्मीकिना कृतं यच्च शतकोटिप्रविस्तरम् ॥६१॥
 तत्सर्वेषामादिभूतं महामंगलकारकम् । रामायणादेव नाना त्वि रामायणानि हि ॥६२॥
 शेषभूतं चतुर्विंशत्सहस्रं प्रथमं स्मृतम् । तथा च योगशाधिपुमव्यात्माख्यं तथास्मृतम् ॥६३॥
 बाणपुत्रकृतं चापि नारदोक्तं तथा पुनः । लघुरामायणं चैव बृहद्रामायणं तथा ॥६४॥
 अगस्त्यकृतं महाश्रेष्ठं साररामायणं तथा । देहरामायणं चापि वृत्तरामायणं पुनः ॥६५॥
 प्रह्लारामायणं रूपं भारद्वाजं तथैव च । शिवरामायणं कौचं भारतस्य च जैमिनेः ॥६६॥
 आत्मधर्मं श्वेतकेतुऋषेऽथैव जटापुषः ॥६७॥

रघुः पुलस्तकेऽप्याथ गुह्यकं मंगलं तथा । गाधिनं च मुनीः शं च सुग्रीवं विभीषणम् ॥६८॥
 तथाऽऽनन्दरामायणमेतन्मंगलकारकम् । एवं सहस्रशः सन्ति श्रीरामचरितानि हि ॥६९॥

कः समर्थोऽस्ति तेषां हि संख्यां वक्तुं सविस्तरात् ।

शतकोटिभिर्नादेव विभक्तानि पृथक् पृथक् ॥७०॥

सर्वेष्वप्यानन्दसंज्ञं वरिष्ठं प्रोच्यते त्विदम् । अस्य पाठेन दम्पुष्यं तत्तं शिष्य इदाम्यम् ॥७१॥
 शतकोटिमितं श्रुत्वा यन्फलं लभ्यते नरैः । फलमस्य तदद्वैतं हि श्रेयं शिष्य शुभप्रदम् ॥७२॥
 श्रवणाद्विगुणं पाठे व्याख्यातुश्च दशाधिकम् । तस्मादेतन्महाऽऽनन्दसंज्ञं श्राव्यं नरोत्तमैः ॥७३॥
 नानेन सदृशं किञ्चिद्भूतं नाग्रे भविष्यति । सर्वेष्वपि च शास्त्रेषु पाञ्चरात्रागमोऽधिकः ॥७४॥

विष्णुसहस्रनाम के अष्टादश उपपुराण हुए । इनका पाठ करनेसे पुराणपाठका आधा फल मिलता है ॥ ५५ ॥
 ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ महाभारत तो साक्षात् वेदके समान है । उसमें कहीं हुई भगवद्गीता और विष्णुसहस्रनाम ये दोनों महाभारतसे भी दसगुना अधिक फल देने हैं । जो श्रोता भक्तिपूर्वक उन्हें सुनता है, वह आधा फल पाता है । महाभारत रामायणसे ही निकला हुआ इतिहास है । वेदके पाठसे जो पुण्य होता है, वही फल रामायणके पाठसे ॥ ५८-६० ॥ मूल-मूल पाठ करनेसे आधा पुण्य मिलता है और व्याख्या करनेसे दसगुना अधिक फल प्राप्त होता है । सो करोड़ श्लोकोंके रामायणमें बाल्मीकिने जिस रामायणकी रचना की है, वह सब रामायणोंका मूल और महामूलका कहें । इस रामायणसे ही विविध प्रकारकी रामायणोंकी रचना हुई है ॥ ६१ ॥ उसीके परिशिष्ट अंशसे बनी और वर्तमान समयमें चलती हुई चौबीस हजार श्लोकोंवाली वाल्मीकिरा-
 मायण, योगवासिष्ठ, अष्टात्मरामायण, बाणपुत्र (हनुमान्जी) की रामायण, नारदरामायण, लघुरामायण, बृहद्रामायण, अगस्त्यजीकी रचानी, महाश्रेष्ठ साररामायण, देहरामायण, वृत्तरामायण, भारद्वाजरामायण, शिवरामायण, कौचरामायण, भरतरामायण, जैमिनिरामायण आदि बहुतेरी रामायणें हैं ॥ ६२-६६ ॥ इनके अतिरिक्त आत्मधर्मकी, जटापुकी, श्वेतकेतु ऋषिकी, पुलस्त्यकी, देवीजीकी, विभामिश्रकी, सुतीक्ष्णकी, सुग्रीवकी, विभीषणकी और यह सङ्कलनद आनन्दरामायण, इस तरह रामचरित्रका वर्णन करनेवाली हजारों रामायणें बनी हैं ॥ ६७-६९ ॥ उन सबकी सविस्तर संख्या बतलानेमें कोई भी समर्थ नहीं हो सकता । बाल्मीकिजीके सो करोड़ श्लोकार्थक रामायणसे ही इन सबका निर्माण हुआ है ॥ ७० ॥ किन्तु स्मरण गिनायी हुई रामायणोंमें यह आनन्दरामायण ही श्रेष्ठ ॥ । ऐसा लोगोंने कहा है । इसके पढ़नेसे बड़ा पुण्य होता है, सो है शिष्य । मैं तुमको इसका माहात्म्य बतला रहा हूँ ॥ ७१ ॥ पूर्वोक्त शतकोटिसंख्यात्मक वाल्मीकिरामायणके सुननेसे जो पुण्य होता है, उसका आधा पुण्य इस आनन्दरामायणके पाठसे होता है । इसको सुननेसे द्वादश और व्याख्या करनेसे दसगुना पुण्य होता है । इस कारण लोगोंको चाहिए कि इस आनन्दरामायणका श्रवण करें ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ इसके सम्य पक्षि कोई द्रव्य न अवतक हुआ है और न

भगवद्गीतया तुल्यं फलं तस्याखिलस्य च । भारतीयकथनार्थं मङ्गलैरेव निर्मितम् ॥७५॥
 तत्कथ्यं यः पठेत्प्राज्ञो दशांशं फलमाप्नुयात् । यद्भक्तैर्निर्मितं तत्तु शतांशफलदं स्मृतम् ॥७६॥
 यः करोति स्वयं काव्यं कथयित्वा स्वयंकथाम् । तच्छ्रुत्वा व्यर्थतामेति तदध्येता च दोषभाक् ॥७७॥
 पौराणी भारती वापि तथा रामायणस्थिताम् । तथा उपपुराणस्थां कथां प्रथति यः स्वयम् ॥७८॥
 रामभक्तोऽपि लभते श्रुतलोकाधिवासताम् । प्रत्यक्षं वर्षमेकं कामस्वस्य भवेद्भुवम् ॥७९॥
 रामभक्तः पुराणेभ्यः कथां प्रथति यः पुनः । व्यामर्शुः स लभते बृहस्पतिमलोकताम् ॥८०॥
 दौहित्रपोषितः शिष्य आरामश्च जलाशयः । सद्गन्धर्वपुत्रः ते पुत्रा वै प्रकीर्तिताः ॥८१॥
 एवं भूम्यामंशभूतैर्नस्ते विचरन्ति हि । अभ्यन्धामादयः सप्त ये चिरंजीविनः सदा ॥८२॥
 अतः श्रीरामभक्तश्च कविर्वैस्तन्स्तुतिः कृता । सापि मःन्या सदा श्रद्धा दृढनीया बुधैर्दुः ॥८३॥
 भारताच्च शतांशेन फलदात्री स्मृताऽत्र हि । निर्दोशे भक्तकृतां कवितां ते खराः स्मृताः ॥८४॥
 तत्तद्भाषाकृतं काव्यं रामवर्णनसंयुतम् । भारतस्य सदृशांशं श्रोतुर्वक्तुः फलं स्मृतम् ॥८५॥
 निर्मातुस्तु भवेत्पुण्यं साधुश्रद्धाशतशतः । गीर्वाणीकविनाकर्ता संऽपि व्यभ्रांश ईदृशः ॥८६॥
 स्वस्वभाषाकविरानां कर्तारस्ते कवीश्वराः । गीर्वाणीकविना चापि पदान्वयसमन्विता ॥८७॥
 अर्थप्रमाणसहिता सर्व मान्या न चेतरा । नस्तुति तु यः कुर्यात्सार्थिकार्थं कविः कविन् ॥८८॥
 निष्फलमनच्छ्रमः प्रोक्तस्तदध्येता च दोषभाक् । उत्पादेन तु यः कुर्यान्कामिनीनां तु वर्णनम् ॥८९॥
 स हि श्वयोनिं प्राप्नोति वर्षाभ्यक्षरसंख्यया । वेदोक्तार्थानुसारेण मन्वाद्याः स्मार्तकाः स्मृताः ॥९०॥

भविष्यमें होगा । सब जास्त्रोहे पाश्चरात्रके आगमको विशेष महत्त्व दिया गया है । उसका पाठ करनेसे भगवद्गीता-पाठके तुल्य फल प्राप्त होता ॥ ७५ ॥ महाभारतके कथानकोंको जोर जिनको अच्छे-अच्छे भगवद्भक्तोंने बनाया है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ उन काव्योंको जो मनुष्य पढ़ता है, उसे रामायणके पाठका दशांश पुण्य प्राप्त होता है । अन्य भक्तोंके बनाये काव्योंका अध्ययन करनेसे शतांश सिद्धता है ॥ ७६ ॥ जो मनुष्य कथाको कल्पना करके स्वयं काव्य बनाता है, उसका परिश्रम व्यर्थ जाता है और उसका पाठ करनेवाला भी दोषका भागी बनता है ॥ ७७ ॥ जो कवि पुराणोंमें, महाभारतमें, रामायणमें तथा उपपुराणोंमें लिखी हुई कथाओंका संग्रह करता है । वह रामभक्त होकर इन्द्रलोकमें निवास करता ॥ ७८ ॥ प्राणी जितने अक्षरोंको लिखे रहता है, उतने ही वर्षतक इन्द्रलोकमें रहता है ॥ ७९ ॥ ८० ॥ जो रामभक्त पुराणोंसे कथाओंका संग्रह करता है, वह साक्षात् व्यासदेवके समान पूज्य होता हुआ बृहस्पतिके लोकमें निवास करता है ॥ ८० ॥ अपनी लड़कोंका लड़का, पोष्य पुत्र, शिष्य, बगंवा, तालाब तथा मद्गन्धकी रचना, अपना निजी पुत्र, इतने सत्पुत्र माने गये हैं ॥ ८१ ॥ वे लोग अंशभूत मनुष्यों अर्थात् अभ्यन्धामा आदि जो सात चिरंजीवी बतलाये गये हैं, उनके साथ पृथ्वीमंडलपर विचरते हैं ॥ ८२ ॥ अतएव बहुतेरे रामभक्तोंने अपनी कवितामें श्रीरामकी स्तुति की है । इसलिए लोग उनकी भी कविताओंका आदर करें, बारम्बार सुनें और पढ़ें ॥ ८३ ॥ रामभक्तोंकी कविता महाभारतका शतांश फल देनेवाली होती है । जो लोग किसी रामभक्तकी बनायी कविताका निरादर करते हैं, वे एक प्रकारके गधे हैं ॥ ८४ ॥ संस्कृतभाषाके अतिरिक्त और-और भाषाओंमें रामके चरित्रवर्णन युक्त कवितायें श्रोता-श्रुताको महाभारतके सहस्र अंशका फल देनेवाली होती हैं ॥ ८५ ॥ अच्छे शहरोंमें जो हुई कविता कविको शतांश फल देता है । संस्कृतमें कविता करनेवाला प्राणी व्यास-अंश होता है ॥ ८६ ॥ अपनी-अपनी भाषामें कविता करनेवाले कवीश्वर अथवा संस्कृतमें रचना करने-वाले कवियोंमेंसे जिनकी कविता पद और अन्वय संयुक्त हो, जिसमें अर्थ तथा प्रमाण दोनों विद्यमान हों, वे ही मान्य हैं, और नहीं । जो कवि अपने स्वार्थके लिए किसी मनुष्यकी स्तुतिमयी कविता करता है, उसका परिश्रम व्यर्थ जाता है अन्य ठरका अध्ययन करनेवाला प्राणी भी दोषका भागी बनता है । जो कवि उत्पादक शिष्योंका वर्णन करता ॥ वह कवितामें लिखे हुए जितने अक्षर हैं, उतने वर्षतक भानकी योनिमें

तेषां वै स्मृतयो नाम ज्ञानाधर्मप्रवर्तकाः । नत्र केचिद्वैदिकेषु कर्मस्वधिकृताः परे ॥९१॥
 अवैदिकेषु मन्त्रेषु केचिद्विशुद्धाः स्मृताः । अवैदिकेषु च प्रोक्ता नाधिकानि भवेत्सृणान् ॥९२॥
 ब्रह्मचारी गृहस्थो वा ज्ञानप्रस्थो यतिस्तथा । प्रोक्ता ह्यध्यात्मिकसन्नेहो निबन्धमात्रेण एव च ॥९३॥
 कदा कुत्र कथं कर्म केन कार्यमिति स्फुटम् । वन्देयस्त्वं तु निर्णीतजन्यथा दोषभागमवेत् ॥९४॥
 अदेशं यत्कृतं व्यङ्ग्यफलैर्नाधिकारिणा । प्रत्येकं तद्भवेद्वैदिकं श्रवणायोऽधिको भवेत् ॥९५॥
 तस्मादावश्यकं तन् विप्राणां च विशेषतः । स्मृत्पथं ज्ञानेन शशि वैदिकेनाज्ञोऽधिकम् ॥९६॥
 श्रवणैरस्योपवेदः स्यादायुर्वेदा हि वैदिकः । परेषामुपकाराय स्वस्वसारोग्यार्थमेव वा ॥९७॥
 जीविकार्थमप्यनो हि पठितव्यो द्विजातिभिः । ब्रह्मणं रोगिणं क्षीणमुपचारेण जीवयेत् ॥९८॥
 ब्रह्महत्याभयं पापं तस्य नश्यति यं धुम् । यतः स लभते पुण्यं चतुःकृच्छ्रसमुद्भवं ॥९९॥
 एवं पुण्यं भवेत्तस्य तत्तदुपनिषत्ततः । यन्ने कृतेऽपि सो रोगी न जीवन्त्यायुषः क्षयात् ॥१००॥
 सोऽप्यर्थफलभाजोऽपि नात्र कार्या विचारणा । जीविकार्थं तु यः कुर्यादुपविद्याचतुष्टयम् ॥१०१॥
 इह लोके फलं तस्य परलोके न किञ्चन । नरं योगिनं मम योऽभ्युद्भवात् मानवः ॥१०२॥
 कस्तेन न कृता धर्मः कां वा पूजां न मोहति । गतश्रीगेणकान् देष्टि गतायुश्च चिकित्सकान् ॥१०३॥
 गतश्रीश्च गतायुश्च ब्रह्मणान् देष्टि मृदुधाः । गांधर्वमप्यधीयते रामाग्रे यश्च मायति ॥१०४॥
 तद्भक्तियुक्तो लभते गांधर्वं लोकमुत्तमम् । धनुर्वेदा वृद्धनातिब्राह्मणानां तु जाविका ॥१०५॥
 क्षत्रियाणां तु सा प्रोक्ता वेदार्थफलप्रदः । ज्ञातव्येनपु सर्वेषु पुण्ये ज्ञानानुसारतः ॥१०६॥

रहता है । वैदिक अर्थात् अनुसार अनुसार स्मृतये बना है । जिनसे विविध प्रकारके धर्मोक्तों का विचार हुआ है । उनमेंसे कुछ धर्मवाले वैदिक कर्मोंके अधिकारी हैं । कुछ ब्रह्मचरन मन्थाने सब काम करते हैं और कुछ बिल्कुल पण्डितों तरह ब्रह्म ज्ञान विज्ञान विद्वान् हैं । इन लोगोंका अवैदिक कर्म करनेका भी अधिकार नहीं दिया गया है ॥ ९०-९२ ॥ ब्रह्मचारी, गृहस्थ, ज्ञानप्रस्थ अर्थात् संन्यासी ये विद्वान्-विद्वान् मिश्रित धर्म माने गये हैं ॥ ९३ ॥ कब कहां और कैसे धर्म करना चाहिये, ये सब बातें धर्मशास्त्रोंसे ही निर्णीत की जा सकती हैं । यदि उनसे निर्णय किया बिना कोई कर्म किया जाता है तो दोषका भागी बनना पड़ता है ॥ ९४ ॥ को कर्म अदेशमें, ब्रह्महत्या, बिना समयके अथवा अनधिकारका शक्त द्वारा किया जाता है, वह सब व्यर्थ होता है और पुण्यके स्थानमें पाप ही होता है ॥ ९५ ॥ इसविषय कर्मोंके विषय धर्मशास्त्रोंसे निर्णय कर लेना आवश्यक है । तिसमें भी ब्राह्मणोंकी तो अवश्य ऐसा कर लेना चाहिए । अपने मानकी अपेक्षा स्मृतिकी आज्ञा और स्मृतिसे भी वैदिकी आज्ञा विजय माननीय है ॥ ९६ ॥ कृष्णदेवा उपवेद आयुर्वेद है । उसे परोपकारके लिए अथवा अपनी आरोग्यताके लिये या अधिकारके लिए भी द्विजातियोंको अवश्य पढ़ना चाहिए । यदि कोई ब्राह्मण रोगी होनेके कारण दुर्बल हो गया हो तो उसे दवा देकर बला-बल्ला कर देना चाहिये ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ऐसा करनेसे दवा देनेवालेके ब्रह्महत्या सदृश पातक भी अज्ञान नष्ट हो जाते हैं । साथ ही उसे चार कृच्छ्र चान्द्रायण व्रतके पुण्यकी प्राप्ति होती है ॥ ९९ ॥ इस तरह पुनर्कृत धर्मोंके अनुसार पुण्य होता है । यदि यत्न करने-पर भी कोई रोगी आयु पूर्ण हो जानेके कारण न बच सके तो भी दवा देनेवालेको आधा पुण्य होता ही है । इसमें किसी प्रकारका विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है । जो मनुष्य अपनी जीविका चलानेके लिए चारों उपविद्याओंका उपयोग करता है, उसे इन लोकमें अवश्य फल मिलता है, किन्तु परलोकमें कुछ भी नहीं मिलता । जो मनुष्य रोगरुभी सनुद्धमें डूबे हुए किसी मनुष्यका उद्धार करता है ॥ १०० ॥ १०१ ॥ उसने कौन-सा धर्म नहीं कर लिया और कौन-सी पूजा नहीं की । धर्मान् उसने सब कुछ कर लिया । जिस प्राणीकी धी नष्ट हो जाती है, वह ज्योतिषियोंसे ढूँढ करता है । जिसकी वायु क्षीण हो जाती है, वह वैद्योंसे ढूँढ करता है । गतश्री एवं गतायु ये दोनों प्राणी ब्राह्मणोंसे ढूँढ किया करते हैं । जो मनुष्य गन्धर्वविद्या (संगीत) का करके रामचन्द्रजीके सम्मुख गाता है, उसे उत्तम गन्धर्वलोककी प्राप्ति होती है ।

विवेकमनस्य कर्तव्यो द्रव्यदाने विशेषतः । अन्नस्य तु धिनः पात्रं पानीयस्य पिपासितः ॥१०७॥
 द्रव्यदाने तु कर्तव्यं विशेषात्पात्रवीक्षणम् । सुलायां वापि दुग्धं स्याद्दुग्धमप्युरगे विषम् ॥१०८॥
 पात्रापात्रविचारेण सत्पात्रे दानमुत्तमम् । यथा पुण्याधिकं पात्रं तथा दानं फलाधिकम् ॥१०९॥
 ज्ञानाधिरूपाद्भवेत्पुण्याधिकात्पात्रं श्रमेण वा । रामभक्त्यै पात्रं स्याद्वापमज्जो न सर्वथा ॥११०॥
 रामद्वेषी वर्जनीयो दर्शनालापनादिषु । संगतश्च भवेत्पूतस्तद्रक्तानां तु नान्यथा ॥१११॥
 पञ्चक्रेरधिकं दद्यात्तदानं परिकीर्तितम् । वित्तश्लाघनेन यद्दानं न तद्दानं स्मृतं दुर्धनम् ॥११२॥
 देशकालविशेषेण तत्तत्पात्रविशेषतः । दानस्य फलमुद्दिष्टमधिकं न्यूनमेव च ॥११३॥
 विप्रशृङ्खलं तु यो मृदो न दद्याच्छक्तिसंभवम् । विष्ठाकिमिभवेदेव सुवर्णैरेव संख्यया ॥११४॥
 दिव्यवर्षाणि नैवात्र स्वया कार्यसु संशयः । यस्तु ज्ञानवता कर्म क्रियते पुण्यदायकम् ॥११५॥
 अधिकं तत्फलं प्रोक्तमज्ञानिकृतकर्मणः । यथा यथाऽधिकं ज्ञानं पापहानिस्तथा तथा ॥११६॥
 यस्तु ज्ञानवता कर्म क्रियते पापकारकम् । तन्न्यूनफलदं प्रोक्तमज्ञानिकृतपातकात् ॥११७॥
 यथा यथाऽधिकं ज्ञानं पापहानिस्तथा तथा । यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्ममाकुरुते क्षण्यत् ॥११८॥
 ज्ञानाग्निर्दुष्टकर्माणि भस्मसान्कुरुते तथा । ज्ञानाधिक्यं यथा हेम्नो वाद्भिर्भस्ममेव जायते ॥११९॥
 पुण्याधिकं तथा शिष्य ज्ञानिसंगेन जायते । पुण्येन वर्द्धते पुण्यं पापं न्यूनं च जायते ॥१२०॥
 पापेन पापवृद्धिश्च पुण्यं स्वल्पं च जायते । अतिसूक्ष्मो विचारोऽयं दुर्ज्ञेयः स्थूलदृष्टिभिः ॥१२१॥
 तथाप्येवं विचार्य स्यात्तत्तज्ज्ञानानुसारतः । यस्तु सत्यधिकारेऽपि ज्ञाने वा पठनेऽपि वा ॥१२२॥

मनुवेद और दण्डमोक्ष, ये दोनों साहाय्योकी जीविकाएँ हैं ॥ १०३-१०५ ॥ किन्तु क्षत्रियोंकी वेदपाठका फल देती है। ऊपर बतलाये हुई सब आतिथीमें भानके अनुसार पुण्य होता है। इसलिये लोगोंको चाहिए कि विशेष करके द्रव्यदातके विषयमें विचार करे। भूखेको अन्नदान और प्यासेको पानी पिलाना श्रेष्ठ धर्म है ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ द्रव्यदान देते समय पात्रका विचार करना आवश्यक है। क्योंकि दुष्ट गोमें भी दूध होता और सर्पके घटमें पहुँच जानेपर दूध भी विष बन जाता है ॥ १०८ ॥ इस तरह पात्र और अपात्रका विचार करके सत्पात्रमें दान देना अच्छा है। दानका पात्र जितना ही अच्छा होगा, उतना ही अधिक पुण्य होगा ॥ १०९ ॥ इस पात्र और अपात्रका विचार, ज्ञानकी अधिकता, पुण्यकी अधिकता तथा परिश्रमकी अधिकता देखकर किया जाता है। जो मनुष्य रामका भक्त है, वही पात्र है और जो रामभाक्तसे रहित है, उसीको अपात्र जानना चाहिए। जो मनुष्य रामसे द्वेष रखता हो, उसका दर्शन और उससे सम्भाषण आदि कदापि न करे। जो रामके भक्तोंका साथ करता है, वह अपवित्र मनुष्य भी पवित्र हो जाता ॥ ११० ॥ १११ ॥ अपनी शक्तिसँ अधिक जो दान दिया जाता है, वही दान दान और कजूसीके साथ जो दान दिया जाता है, दान दान नहीं है ॥ ११२ ॥ देश-काल एवं अपात्रको विशेषताके अनुसार अधिक या न्यून फल कहा गया है ॥ ११३ ॥ जो मनुष्य साहाय्यको पारिश्रमिक नहीं देता, वह उन पैसोंकी संख्याके अनुसार दिव्य वर्षों तक विष्ठाका क्रिमि बना रहता है। इसमें किसी प्रकारका संशय नहीं करना चाहिये। ज्ञानवान् मनुष्य जिन पवित्र कर्मोंको करता है, अज्ञानियोंकी अपेक्षा उसे अधिक फल मिलता है। जैसे-जैसे ज्ञानकी मात्रा बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे उसके पाप नष्ट होते जाते हैं ॥ ११४-११६ ॥ ज्ञानी मनुष्य यदि कोई करता तो अज्ञानियों द्वारा किये पातकोंकी अपेक्षा उसे पापका न्यून ही फल मिलता है ॥ ११७ ॥ जैसे-जैसे ज्ञान होता जाता है, वैसे-वैसे पाप अपने आप नष्ट होते जाते हैं। जिस तरह जलती हुई अग्नि लकड़ियोंको जलाती है, उसी तरह ज्ञानाग्नि समस्त कर्मोंको भस्म कर डालती है। जिस तरह अग्निके संयोगसे कंचनकी कान्ति अविक हो जाती है, उसी तरह ज्ञानियोंका संज्ञ करनेसे पुण्यकी मात्रा बढ़ती जाती है। पुण्यसे पुण्य बढ़ता है और पाप कम होता जाता है ॥ ११८-१२० ॥ पापसे पापकी वृद्धि होती और पुण्य कम होता जाता है। यह बड़ा ही सूक्ष्म विचार और स्थूलदृष्टिवालोंके लिये तो और

प्रयत्नं नैव कुर्वीत स मनो जायते पशुः । ज्ञानाद्व्यव्ययमच्छति । पुनर्दिशस्व वर्धते ॥ १२३ ॥
 इति संक्षेपतः प्रोक्तमेतन्मृष्टं त्वयाऽनघ । उज्जयं चतुर्भिः । नमः शायनधारिण ॥ १२४ ॥
 धर्मास्तु बहवः संति तथा पावन्यदेवताः । नमस्तस्मैऽहो नन्दे । नमस्तस्मै नैव कुर्वेः ॥ १२५ ॥
 कर्तव्यानि जनैस्तानि सम्पश्युद्वयाधिवश्य च । तर्कैस्तर्कानरे प्रोक्तं । स्वयं पुनस्तथा ॥ १२६ ॥
 ब्रह्मीयं प्रयत्नेन । क्षमन्ताव दायताम् । सुमुखे सायने च संप्रत्ययाव दायताम् ॥ १२७ ॥
 इति शतकोटिरामचरितातर्गतं श्रीमदानन्दतन्त्रापरं चतुर्लोक्ये आदिवाक्ये मनोहरकाण्डे
 सर्वेषां देवतानां कल्याणार्थं समाप्तं ॥ १२८ ॥

नवमः सर्गः

(रामकोटि रामचन्द्रपूजा)

विष्णुसम उवाच ।

गुरोऽन्यद्रामचन्द्रस्य विशेषेण च पूजनम् । रामचन्द्रस्यैव प्रकृतं न कलं कथयस्व माम् ॥ १ ॥
 विष्णुसम उवाच ।
 मृणु शिष्य प्रवक्ष्यामि त्वत्तु पुण्यार्थं शुभम् । रामचन्द्रस्य पूजनार्थं विशेषतः ॥ २ ॥
 माघस्य शुक्लपक्षस्य वा पुण्या पञ्चमी तिथिः । पुण्यार्थोऽश्वनीनाम्नी राक्षसाऽऽरित जगत्प्रये ॥ ३ ॥
 तदारभ्य माघमासद्वयं रामं महोत्सवं । पूजयेत्तत्पुण्यां यावद्वैशाखे कृष्णपक्षजम् ॥ ४ ॥
 माघकृष्णचतुर्थ्याञ्च नवमी मधुशुक्लजा । यावत्तत्तत्फलाहारं चैवाशोति दिनानि हि ॥ ५ ॥
 सीतारामस्य नित्यं हि केचित्कुर्वन्ति पूजनम् । पूर्णिमांताः स्मृताश्चात्र मामाः सर्वत्र भो द्विज ॥ ६ ॥
 प्रत्यहं बाहजारूढं कृत्वा रामं महोत्सवं । भेरीदुन्दुभिनिर्घोषैर्महाबाद्यपुरःसरैः ॥ ७ ॥

भां कठिन है ॥ १२१ ॥ यह सब होत हुए भो तत्त्वज्ञानके अनुसार इसपर विचार करना ही चाहिए । जो मनुष्य अधिकारी होता हुआ भो जनकीलिए प्रयत्न नहीं करता, वह पशुमानस जन्म पाता है । ज्ञान अथवा अध्ययनसे विप्रका पुण्य बढ़ता है ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ हे जनप । तुम्हें जो कुछ पूछा, मैंने उसे संक्षेपमें कह सुनाया । लोगोंको चाहिए कि इसके अनुसार राम और पुण्यका निपट कर लिया करें ॥ १२४ ॥ पुण्य और पाप ये दोनों बहुत प्रकारके हैं । पाण्डित्यसे रामचन्द्रसमयपर पापके प्रायश्चित्त बतलाये हैं ॥ १२५ ॥ लोगोंको चाहिए, कि उनको अपनी बुद्धिसे अच्छी तरह विचारकर करें । सब धर्मोंका सार एवं रहस्य मैंने तुम्हारे आगे कह सुनाया । इसे यत्नके साथ ग्रहण करना चाहिए । इसे भक्तिविहीन प्राणीको न देकर उसे देना चाहिए जो शुश्रूष, साधु एवं रामभक्त हो ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितातर्गतश्रीमशमन्द-रामासणे पं० रामतेजबाण्डेयकृत उवाचस्त्वाम्पाठोकासहितं मनोहरकाण्डे अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीविष्णुदासने कहा—हे गुरु । रामचन्द्रजीका विशेष पूजन किस समय करना चाहिए । वह समय आप मुझे बतलाइये ॥ १ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य ! सुनो, मैं तुम्हें रामकी पूजाका परम पुनीत समय बतलाता हूँ । रामचन्द्रजीका पूजन करनेके लिये वह समय बहुत ही उपयोगी होता है । माघमासके शुक्लपक्षकी पञ्चमी तिथि बड़ी ही पवित्र तिथि है । श्रीपञ्चमी उसका नाम है । इसी नामसे यह दोनों लोकमें विख्यात ॥ २ ॥ ३ ॥ तबसे लेकर जनवरी के कृष्णपक्षकी पञ्चमी न आ जाय अर्थात् दस महीनेतक महान् उत्सवोंके साथ रामचन्द्रजीका पूजन करे ॥ ४ ॥ माघके कृष्णपक्षकी चतुर्थीसे वैशाखके शुक्लपक्षकी नवमी अर्थात् इक्यासी दिन केवल फलाहार करके रहे ॥ ५ ॥ जो लोग नित्य सीतारामका पूजन करते हैं, उनके लिये पूर्णिमान्त ही माना जाता है ॥ ६ ॥ प्रतिदिन बाहनपर बँडे हुए रामको भेरी-दुन्दुभी आदि बाजे-गाजे, बैरागीके नृत्य, छत्र, चमर, तोरण, विविध प्रकारकी पुष्पवर्षा, नाना प्रकारके स्तोत्र-पाठ, तरह-तरहके सुगन्धित

वारस्त्रीणां नृत्यगीतैश्छत्रचामरनोरणैः । नानाकुसुमवर्णाद्यैर्नानास्तोत्रादिपाठनैः ॥८॥
 नानापरिमलद्रव्याञ्जलीनां मोचनादिभिः । नानामांगल्यवस्तूनामञ्जलीभिः सुशोभनैः ॥९॥
 नानाकुसुमरंगानां तैलानां च परम्परम् । रामं च वारनभयंश्च जलयन्त्रैः करे धृतैः ॥१०॥
 मुहुर्मुहुः सिन्धुनार्द्यस्तथा स्त्रीणां सुगायनैः । द्विजानां वेदघोषैश्च धूपैर्नाराजनादिभिः ॥११॥
 सहकाराराममण्ये नान्वर्चं परमोन्नतैः । महकारवृक्षवददोलके तं निवेशयेत् ॥१२॥
 नागेन वा पुष्पकेण शेषथानेन वाजिना । रथेन गरुडेनापि तथा सिंहामनेन च ॥१३॥
 तथा शिबिकया वापि वायुपुत्रेण वा तथा । यानैर्नवभिरेतैश्च सदा नेयो रघूत्तमः ॥१४॥
 आभ्रवृक्षाराममण्ये वल्लीपुष्पनगान्विते । अश्विनि चन्दर्नेलिप्त्वा विकीर्य कुसुमानि च ॥१५॥
 आच्छाद्य नानावस्त्रैश्च शोभनीयाऽनभिः शुभा । हेमसिंहासनस्यैव कृत्वा दोलकभूषणम् ॥१६॥
 चूतवृक्षस्य शाखायां तं बद्ध्वा शृङ्खलादिभिः । तत्र श्रीरामतोमद्रे रामचन्द्रं प्रपूजयेत् ॥१७॥
 नानानवविधैः पुष्पैः षोडशरूपचाक्रैः । संपूज्य सीतया बन्धुमुग्राचार्यैः समन्वितम् ॥१८॥
 आदोल्लेखेदोलकं तं शिशुबालकतच्छतैः । नानैर्नव्या वारवेद्यास्तदाग्रे शतशो मुदा ॥१९॥
 गायत्रीया गायकाश्च नर्तितव्या नटादयः । वादनीयानि वाद्यानि ज्वालनीयाः सुधूपकाः ॥२०॥
 बीजनीमश्रामराद्यैः सीतया रघुनन्दनः । तदासैः कीर्तनान्येव कारयित्वा महोत्सवैः ॥२१॥
 पुनः पूज्य पूर्ववच्च समानातो गृहं प्रति । संपूजनीयः श्रीरामः कुम्भदापार्तिकादिभिः ॥२२॥
 एवं नित्यं सार्धमासद्वयं रामं प्रपूजयेत् । चूतवृक्षतले नीत्वा पूजयेच्च सविस्तरम् ॥२३॥
 यदा रामश्च सीता च वहिर्नेया निजगृहान् । तदा तपोनयनाधः कस्तूर्यागुलिनाऽसिताः ॥२४॥
 देयाश्च सिद्धो यत्नात्परदुर्दृष्टिनाशनाः । एवं दोलापूजनं च शिष्य ते कथितं मया ॥२५॥
 विशेषं शृणु तत्रापि कथ्यते यो मयाऽधुना । वसंतपूजनात्पूर्वदिवसे गणनायकम् ॥२६॥
 माघशुक्लचतुर्थ्यां हि पूजयेद्दिधननाशनम् । माघशुक्लचतुर्थ्यां तु नक्तव्रतपरायणः ॥२७॥

श्रव्योका अञ्जलीदान, विविध प्रकारके पुष्पोंके रङ्गों तथा तैलोंसे परस्पर वेण्याओंके पिचकारी छोड़ने, स्त्रियोंके सुन्दर गायन, ब्राह्मणोंके वेदघोष, धूप, नाराजन आदि वस्तुओंका आसन वगैरहमें ले जाय और वहाँ भगवानको आभ्रवृक्षमें पड़े हिंडोसेपर बिटाले ॥ ७—१२ ॥ हाथीसे, गुरूपकसे, शेषकी सवारीसे, घोड़ेसे, रथसे, गरुडसे, सिंहासनसे, शिबिका द्वारा तथा वायुपुत्र द्वारा, इन नौ सवारियोंपर रामको ले जाना चाहिए ॥ १३ ॥ १४ ॥ आभ्रवृक्षके बगीचे जिसमें कि वल्लारियों ॥ पुष्पोंके वृक्ष लगें हों, पृथ्वीको चन्दससे लोपकर फूल बिखेरे ॥ १५ ॥ भांदा प्रकारके वस्त्रोंसे ढाँककर उस पृथ्वीका भूगर्भ करे । सुवर्णका सिंहासन बनाकर शृङ्खला आदि-के द्वारा आभके वृक्षमें झुंझा डालकर रामको बिटाले और सर्वतोभद्र बनाकर उनकी पूजा करे ॥ १६ ॥ १७ ॥ तदनंतर विविध तथा नौ प्रकारके फूलों एवं षोडश उपचारोंसे सीता, बन्धु तथा सुग्रीव आदि मित्रोंके साथ भगवान्का पूजन करके वन्धुओंकी तरह उस झूलेकी घीरे-घीरे रस्सी लीधकर झुलावे । उनके जाने सेकड़ों बेर्याये नकाये, गायकोंसे गाने गवाये, नटोंसे नृत्य कराये, विविध प्रकारके वाजे बजवाये और नाना प्रकारके धूप-दीप आदि जलावे ॥ १८—२० ॥ सीता तथा रामपर चमर आदि हथके और राममस्तोंको बुलाकर कीर्तन आदि कराये ॥ २१ ॥ इसके बाद पूर्वोक्त विधिक अनुसार फिर पूजन करके रामचन्द्रजीको घरपर ले जाये । घर पहुँचनेके बाद भी कलश, दीप तथा अगरत्ती आदिसे रामकी पूजा करे ॥ २२ ॥ इस तरह प्रतिदिन बाईं महीने तक आभ्रवृक्षके नीचे भगवान् रामका पूजन करे ॥ २३ ॥ जब राम और सीताको घरसे बाहर जाना हो तो उनकी आँखोंके नीचे कस्तूरीकी काली विन्दी लगा दे ॥ २४ ॥ इसकी लगानेसे लोगोंकी दुईंछि उनपर नहीं पड़ेगी । शिष्य ! प्रकार मैंने तुम्हें दोलापूजनका प्रकार बतलाया ॥ २५ ॥ इसमें ॥ ७

ये हुंदि पूजयिष्यन्ति तेऽर्घ्याः स्युस्तुदृढाव । माघमासे चतुर्थ्यां तु तस्मिन्काल उपोषितः ॥२८॥
 अर्चयित्वा विघ्नराजं जामरं तत्र कायेन । चतुर्थी कुन्दनाम्नीयं कुन्दपुष्पैः प्रपूजयेत् ॥२९॥
 माघशुक्लपञ्चमी मा ज्ञेया श्रीपञ्चमी शुभा । तस्यां तिथौ गमानाय रामचन्द्र ियाऽर्चयेत् ॥३०॥
 माघशुक्लचतुर्थ्यां तु वरमाराध्य च श्रिया । पञ्चम्यां कुन्दकुसुमैः पूजां कुर्यान्ममृदये ॥३१॥
 नीत्वा रामं चतुर्भुजतले दोलकमस्थितम् । सीतारामं पूजयेच्च गेहे वाऽथ प्रपूजयेत् ॥३२॥
 प्रवृत्ते मधुमासे तु प्रतिपद्यदिने रक्षी । कुन्दा पावधकाशीणि संतर्प्य विघ्नेदेवताः ॥३३॥
 वन्दयेद्दोलिकाभूमिं सर्वदुःखोपशान्तये वंदिताऽपि मुद्रैर्ग व्रजणा शंकरेण च ॥३४॥
 जतस्त्वं यदि मां देवि भूते भूतिप्रदा भव । चैत्र मासि महापुण्ये पुण्ये तु प्रतिपदिने ॥३५॥
 यस्तत्र शपचं स्पृष्ट्वा स्नानं कुर्यान्नरोत्तमः । न तस्य दूरितं किञ्चिन्नाशयो व्याधयो नृप ॥३६॥
 वृत्ते तुषारसमये सिवपञ्चदश्याः मानवसंतममये समुपस्थिते च ।

संप्राप्य चूनकुसुमं सह चन्दनेन मन्यं हि विप्रपुरुषोऽथ समाः सुखी स्यात् ॥३७॥
 चूतमग्नं वसन्तस्य मार्कण्डे कुसुमं तव । सचन्दनं पिबाम्यथ सर्वकामार्थमिदमे ॥३८॥
 पञ्चम्यां माघमासेऽपि चूतपुष्पं सचन्दनम् । प्राशनीयं सर्वैकस्या कलकंठो भविष्यति ॥३९॥
 चूतपुष्पप्राशनेन कोकिलास्वरस्वरवरः । भविष्यति मानवानां कलकंठो मनोरमः ॥४०॥
 सीतारामं चूतपुष्पैस्तथा कोमलपल्लवैः । पूजयेन्ममृदये भक्त्या दोलकस्थं महोत्सवैः ॥४१॥
 चैत्रकृष्णप्रतिपदि चूतपुष्पं सचन्दनम् । पीत्वा महोत्सवेनैव सीतारामं प्रपूजयेत् ॥४२॥

विशेष बातें हैं, उन्हें बतला रहा हूँ । वसन्तपूजासे एक दिन पहले गणेशजीका पूजन करे ॥ २५ ॥ २६ ॥ माघशुक्ल चतुर्थीको गणपतिका पूजन तथा उपवास करना चाहिए ॥ २७ ॥ उस तरह ॥ २८ ॥ अतः और गणपतिका पूजन करता है, वह प्राणी देवताओं तथा असुरोंका भी पूजना ही जानता है । इसलिये लोगोंको चाहिए कि माघशुक्ल की चतुर्थीको उपवास करके गणेशजीका पूजन और रात्रि भर जागरण करें । इसका नाम 'कुन्द'चतुर्थी है । इसलिये ॥ २९ ॥ रोज कुन्दके फूलोंसे गणेशजीका पूजन करना चाहिए ॥ २८ ॥ २९ ॥ माघशुक्लकी पञ्चमीको 'श्रीपञ्चमी' समझकर उस रोज रामचन्द्रजीका भी पूजन करना चाहिए । इससे यह मतलब निकला कि माघ शुक्ल चतुर्थीको श्रीसे पूजन करके पञ्चमीका कुन्दके फूलोंसे अपनी समृद्धिके लिये पूजन करे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ विशेष अच्छा तो यह हो कि रामचन्द्रजीको आभूषणके नीचे ले जाय और झूलते बिठाकर पूजन करे । यदि ऐसा न कर सके तो घर ही में पूजन कर ले ॥ ३२ ॥ चैत्रमास लगते ही प्रतिपदाको सुयोदयके समय आवश्यक कामोंसे निवटकर गिरगिर तर्पण करे और सब प्रकारके दुःखकी शान्तिके निमित्त होलिकाभूमिकी वन्दना करता हुआ बहे-हे होतिके ! कुन्द, बह्मा तथा शत्रुरजीने माघकी वन्दना की है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ अतएव हे देवि । तुम मेरे लिये भी विभूतिशक्ति वन जाओ । परम पवित्र चैत्रके महीनेमें पुण्य नक्षत्र और प्रतिपदाको जो मनुष्य शपच (डोम) को छूकर स्नान करता है, उसे न किसी प्रकारका पातक लगता ॥ और न किसी प्रकारको आवि-व्याधि ही सताती ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ जाड़ेके दिन बीत जाने और वसन्त ऋतुके आनेपर चैत्रशुक्लपञ्चमीकी पूर्णिमाका प्रातःकाल चन्दनके आमका बीर चाटे तो हे विप्र ! वह प्राणी साधु भव ॥ ३७ ॥ सुखसे रहता है ॥ ३८ ॥ बीरको चाटते 'चूतमग्नं वसन्तस्य' यह मंत्र पढ़ता जाय । जिसका मतलब यह है कि हे सहकार वृक्ष ! मैं वसन्तऋतुके अग्नि भागमें तुम्हारा फूल चन्दनके साथ इस वास्ते चाट रहा हूँ कि मेरी सब अभिलषित कामनायें पूर्ण हो जायें ॥ ३९ ॥ माघमासकी वसन्त पञ्चमीको चन्दनके साथ बीर चाटना चाहिए । ऐसा करनेसे उसका स्वर कोकिलके समान मीठा हो जाता है ॥ ४० ॥ उस दिन आभूषणका प्राशन करनेसे प्रत्येक मनुष्यका स्वर कोयलके स्वरकी तरह मीठा हो सकता है ॥ ४१ ॥ प्रतिदिन सीता तथा रामको झूलते बिठाकर आघने और तथा कोमल पल्लवोंसे सोत्साह पूजन करे ॥ ४२ ॥ चैत्रकृष्णकी प्रतिपदाकी चन्दनके साथ

एवं चत्वारिंशति दिनं नान्ता तद्वत्तु दिनवत्तु । तान्तेत्येवमुगीनार्थनीत्या चैव ततः परम् ॥४३॥
 पञ्चम्यां चैव कृष्णेऽपि नान्तामद्वयवत्तुलः । स्नाना केसरपालकाकृतसर्गः शुभावहैः ॥ ४४॥
 चित्रितानि हि वामाणि विभवा जगताः । नानागुणैर्बलैश्चैव तैश्च तूर्धनिष्ठैः ॥४५॥
 जानक्यै रामचन्द्राय कृत्या नान्तेऽपि शुभः । केसरदिवा रमैश्च वामाणि चित्रितानि हि ॥४६॥
 दत्त्वा रामाय मीनार्थं ततो भक्त्या प्रपूजयेत् । प्रसन्नोद्भवपुनश्च नानामंगलपूर्वकम् ॥४७॥
 नानादानानि देयानि त्रिषांमन्त्रदेवतैः । नानासुतैश्चैव दद्यात् शुद्धिं च यत्परम् ॥४८॥
 एकैकोपरि विधेयं सदासांगन्धदारकम् । विष्टान्भोजयेद्विप्रान् स्वयं चापि सुहृज्जनेः ॥४९॥
 भोक्तव्यं तु यमवर्ती पञ्चम्यां मानवैः मुखम् । वगन्तवश्च पीनाम्नी महापुण्यात्मिका मिता ॥५०॥
 पक्षे पक्षे तु पञ्चम्यामप्यपापपञ्चमीम् । एवं रामं पूजयेच्च यावद्वैशाखपञ्चमी ॥५१॥
 विशेषेण तावम्यां हि पक्षे पक्षे प्रपूजयेत् । अथवा माघशुक्लायां कृष्णायां चैवमासि वै ॥५२॥
 कृष्णायां माधवे चापि पञ्चम्यां पूजयेन्नरः । महोत्साहेन श्रीरामो दौलकस्योऽतिवन्नतः ॥५३॥
 ततश्चैवशुक्लपक्षे प्रविपदि नरोत्तमैः । तैलाभ्यङ्गं स्वयं कृत्वा रामायाम्पञ्चमाचरेत् ॥५४॥
 पूजयेन्नवरात्रं न याचना नवमी तिथिः । इन्तगादी नवमार्गः बलिगज्ये तथैव च ॥५५॥
 तैलाभ्यङ्गमकुर्वाणो गरुडं प्रतिपद्यते । अर्चने स्नानगुणे नासि प्रामे चैत्रे महोत्सवे ॥५६॥
 पुण्येऽहि विप्रसन्धिने प्रपादानं सत्तमैर् । अथमुत्सवेऽपि दद्यात्तमैर्गजानेन मानवः ॥५७॥
 अरण्यं निर्जले देशे पवि प्रामेऽवत ह्यथा । अथैव उर्वरामान्याङ्गुलेभ्यः प्रतिपादिता ॥५८॥
 अस्याः प्रदाशेषितरभृत्पवन्तु हि पिबन्ताः । तान्तायां तदा दयं जलं मासचतुष्टयम् ॥५९॥
 देशालयेषु त्रिजनां देयास्तोषमन्त्रेभ्यः । प्रपां दानुमशक्तेन विशेषाद्धर्मपीप्सुना ॥६०॥

और पाकर सीतारामको पूजा कान्ती चाहिए ॥ ४३ ॥ इस तरह वह दिन तथा आगेवाले तीन दिन विसाकष मागेवाले तीन दिन विविध प्रकारके उत्सवोंके साथ चित्तमें । तदनन्तर चैत्रकृष्ण पञ्चमीको मंगलमय शोभायद्वयोंके साथ स्नान करके केसरका उबटन लगाकर तरह-तरहके कपड़े पहने और नामा प्रकारके बाजोंके साथ सुगन्धित तेल आदि लगाकर जानकी तथा रामका गुरीत तार्पजलसे स्नान कराके चित्र-विचित्र कस्तन पहनावे । इसके अनन्तर तमन्त्रके पुण्यमें प्रतिपूर्वक पूजन करे और अपने कल्याणके निमित्त नामा प्रकारके दान दे । इसके अनन्तर नामा प्रकारके गुरविये प्रत्यभिधन जलोंको लेकर लोग परस्पर एक दूसरेपर छोड़ें । अन्त्येष्ट्यके पदार्थ श्राद्धाणोंको भोजन करावे और स्वयं भी अपने मित्रोंके साथ भोजन करें ॥ ४३-४९ ॥ यह वसन्त पञ्चमा बड़ी पवित्र तिथि है । इसलिये लोगोंको चाहिए कि इस रोज अन्त्येष्ट्यके पदार्थ बनाकर स्वयं और अपने गण-मित्र-मित्रोंकी भी खिलावे ॥ ५० ॥ तरह माघ मासके शुक्लपक्षकी पञ्चमीसे लेकर वैशाख पञ्चमी पूर्वतक माघ की पूजा कान्ती चाहिये ॥ ५१ ॥ विशेषकर प्रत्येक पक्षकी नवमीको पूजन करे अथवा माघके शुक्लपक्षमें, चैत्रके कृष्णपक्षमें और वैशाखके भी कृष्णपक्षमें पञ्चमीको रामचन्द्रजीको पालनेमें बँठाकर अतिप्रसन्न और उत्साहके साथ पूजन करे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ इसके बाद चैत्र शुक्लपक्षकी प्रतिपदाको स्वयं अपने शरीरमें उबटन लगावे ॥ ५४ ॥ इस तरह नौ राति पञ्चमि अर्थात् नवमी तिथि न आये, संवत्सरके आदिमें जो प्राणी तेल-उबटन नहीं लगाता, वह नरकगामी होता है । फाल्गुनमासकी समाप्ति और चैत्रमासके प्रारम्भमें किसी पवित्र दिन अथवा आह्वण जो दिन बतला दे उस रोजसे पौसाला बँठाकर जलदान प्रारम्भ करे । विद्वान् मनुष्यको चाहिए कि प्रपादानके प्रारम्भमें 'वरुण्ये प्रान्तरे' इत्यादि उच्चारण कर लिया करे ॥ ५५-५७ ॥ अरण्य, निर्जल प्रदेश, रास्ता अथवा ग्राममें सर्वसाधारणके लिए इस पौसरेकी स्थापना कर रहा हूँ । इसके दानसे मेरे पिता-पितामह आदि पितर तृप्त हों । इस प्रकार उसकी स्थापना करके बार महीने तक निरन्तर जलदान करे ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ यदि कोई प्राणी प्रपादानका पुण्य प्राप्त पाहता हो और उसमें दान करनेकी सामर्थ्य न हो तो उसे चाहिए वह शिवालयमें शिवलिङ्गपर

प्रत्यहं धर्मघटको वसुसंवेष्टिताननः । ब्राह्मणस्य गृहे देयः शीतामलजलः शुचिः ॥६१॥
 तांबूलफलधान्यैश्च दक्षिणामिः समन्वितः । एष धर्मघटो दधौ ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ॥६२॥
 अस्य प्रदानास्तफलाः सर्वे सन्तु मनोरथाः । अनेन विधिना यस्तु धर्मकुम्भं प्रयच्छति ॥६३॥
 प्रपादानफलं सोऽपि प्राप्नोतीह न मंशयः । तृतीयायां चैत्रशुक्ले सीतारामौ प्रपूजयेत् ॥६४॥
 कुंकुमागुरुकर्पूरमणिवस्त्रसुगंधकैः । स्नानगंधधूपदीपैश्च दमनेन विशेषतः ॥६५॥
 आंदोलयेत्ततः सीतारामौ च दोलकस्थितौ । वसन्तमासमासाद्य तृतीयायां द्विजोत्तम ॥६६॥
 सौभाग्याय तदा स्त्रीभिः सौभाग्यशयनव्रतम् । कार्यं महोत्सवेनैव सुखं पुत्रसुखेऽपि ॥६७॥
 विशेषेण चात्र वक्ष्यामि तृतीयायां द्विजोत्तम । तृतीयायां तु नारीभिः शुक्लपक्षे मर्धौ शुभे ॥६८॥
 स्नात्वा मृण्मयदुर्गं हि कार्यं चित्रविचित्रितम् । तत्राष्टादश धान्यानि वापयेत्तदनंतरम् ॥६९॥
 पुष्पपुष्पांशुभान्स्तत्र वापयेत्सर्वतस्तनः । जलयंत्राणि कार्याणि चित्राण्यपि विलेखयेत् ॥७०॥
 सूर्यद्वाराणि कार्याणि पूर्ववन्मंडपादिकम् । यथा श्रीगमपूजायामुक्तं तद्वन्प्रकारयेत् ॥७१॥
 दुर्गोपरि घटं स्थाप्य सजलं पुष्पगुण्डितम् । दोलकं नतो न्यस्य धटपृष्ठं सहज्जुमम् ॥७२॥
 कांचनीं राजतीं मूर्तिं सीतायाः परिकल्प्य च । रामस्यापि शुभां मूर्तिं कुन्दा तीं पूजयेत्ततः ॥७३॥
 दोलकोपरि संस्थाप्य मासमेकं प्रपूजयेत् । केचिच्छिष्याश्च पार्वत्या शिवेन च प्रपूजनम् ॥७४॥
 वदन्ति ह्यन्यस्तत्र निर्णयं शृणु वक्ष्यते । रामस्य हृदयं शंभुः श्रीगमो हृदयं स्मृतः ॥७५॥
 शंकरस्य तथा गौरीहृदयं जानकी स्मृता । जानक्या हृदयं गौरी शिवा नैवांतरं कदा ॥७६॥
 रामस्य च शिवस्यापि सीतागिरिजयोस्तथा । ये मानयन्ति वै भेदं तेषां वासस्तु रौरवे ॥७७॥
 अतश्चैत्रतृतीयायां सीतारामौ प्रपूजयेत् । अशुक्तां ताम्रजे मूर्तिं कार्यं वा काष्ठनिर्मिते ॥७८॥

यहां बांधकर जलधारा देनेका प्रबन्ध करे ॥ ६० ॥ उन दिनों प्रतिदिन एक घड़ेमें ठण्डा और निमल जल भरके उसका मुँह कपड़ेके बांधकर ताम्बूल, फल, धान्य तथा दक्षिणा आदिके साथ किसी सुवात्र ब्राह्मणके घर दे आया करे । यह ब्रह्मा-विष्णु-शिवमय घटदान करनेसे मेरे सब मनोरथ सफल हो जायें । दान करते समय यह कहता आया । जो प्राणी इस रीतिसे धर्मकुम्भका दान है, उसे प्रपादानका फल प्राप्त होता है । इसमें कुछ संशय नहीं ॥ ६१-६४ ॥ चैत्र शुक्लपक्षकी तृतीयाको कुंकुम, अगुरु, कर्पूर, मणि, तथा सुगन्धित मालाओं, विशेषकर दमनकके फूलसे सीतारामका पूजन करे ॥ ६५ ॥ इसके मूलेपर बिठालकर झूला झुलावे । जिनको पुत्रसुख आदि पाना हो, वे स्त्रियाँ वसन्तमाससे लेकर तृतीया तक एक महान् उत्सवके साथ सौभाग्यशयन करें ॥ ६६ ॥ तृतीयामें कुछ विशेषतायें हैं, सो तुम्हें बतलाता हूँ । चैत्रशुक्लकी तृतीयाको स्नान करके मिट्टीका एक चित्र-विचित्र दुर्ग बनावे । उसमें अठारह प्रकारके धान्य बोये । वहाँपर अच्छे-अच्छे फूलोंके वृक्ष लगाये और उसमें नाना प्रकारके जन्तुओंकी रचना करे ॥ ६७-७० ॥ उस दुर्गमें पहिलेकी तरह मण्डप आदि बनावे । जैसा कि पहिले श्रीरामपूजाके प्रकरणमें बतला आये हैं ॥ ७१ ॥ उस दुर्गके ऊपर जलसे पूर्ण और पुष्पसे गुम्फित घटका स्थापन करे । घटके पीछे झूला रखकर सुवर्ण या चाँदीकी सीताजीकी मूर्ति बनवाये और रामचन्द्रजीकी भी सुन्दर प्रतिमा बनवाकर दोनोंकी पूजा करे । इस प्रकार मूलेपर बिठाकर एक मास पूजन करे । हे शिष्य ! पार्वतीजीके शिवजीकी पूजा करे, कुछ लोग ऐसा कहते हैं । इस विषयका निर्णय तुम्हें सुनाता हूँ ! रामचन्द्रजी शिवजीके हृदय हैं और शिवजी रामके हृदय ॥ ७२-७५ ॥ उसी तरह गौरी सीताजीका हृदय हैं और सीताजी गौरीका हृदय हैं । इन दोनोंमें कोई अंतर नहीं है ॥ ७६ ॥ राम, शिव और सीता तथा गिरिजामें जो लोग किसी प्रकारका भेदभाव मानते हैं, वे रौरव नरकमें वास करते हैं ॥ ७७ ॥ इसीलिये चैत्रकी तृतीयाको सीतारामका पूजन करना चाहिए । यदि सामर्थ्य न हो तो सुवर्ण या चाँदीकी प्रतिमा बनवाकर ताम्र बरवा काष्ठकी बनवाये ॥ ७८ ॥

पापाणिनिर्मिते चापि मृतौ कार्ये यथासुखम् । अन्यहं मंगलद्रव्यैः सर्वस्त्रीभिः प्रपूजयेत् ॥७९॥
 मासमेकं तु नारीभिः स्नानं हि शीतलाभिधम् । अवश्यमेव कर्तव्यं सीतातीर्थे विशेषतः ॥८०॥
 यत्र यत्र रामतीर्थे तस्य रामेश्वरनामने । सीतातीर्थे तत्र तत्र ज्ञेयं सीताकृतं शुभम् ॥८१॥
 चैत्रशुक्लतृतीयायामाश्वयुजस्ययंजिता । यावत्तृतीया वैशाखशुक्ला तावन्निरन्तरम् ॥८२॥
 शीतलासंज्ञकं स्नानं स्त्रीभिः सीतार्थमाचरेत् । चैत्रशुक्लतृतीयायामश्वयुजायां तथापि च ॥८३॥
 हनीयायां तु नारीभिर्मन्त्राभ्यंगं प्रकरयेत् । अन्यत्र दिवसे स्त्रीभिर्मन्त्राभ्यंगं न कारयेत् ॥८४॥
 अन्यहं चोन्मथाः कार्यः सीतायाः पुनः शुभाः । सुवामिनीपूजनं च कार्यं भक्त्या दिने दिने ॥८५॥
 सुवामिनीनां देव्यानि वायनानि शुभानि च । निरन्तरं पूजनार्थं यदि शक्तिर्न वनेत् ॥८६॥
 तदा कार्यं चैकदिने भुमपानां प्रपूजनम् । सुवामिनीनां देयं हि अन्यहं भोजनं वरम् ॥८७॥
 नानाएकाग्रमयुक्तं धृतपायममयुतम् । अलंकारांश्च वस्त्राणि चैव कथादि च यच्छुभम् ॥८८॥
 भर्तुराप्युपशुद्धार्थं नारीभिर्देयमुत्तमम् । एवं स्नान्वा मासमात्रं शीतलास्नानमुत्तमम् ॥८९॥
 अश्वयुजायां तृतीयायां पूजयित्वा विशेषतः । त्रिशन्तुशामिनीभ्यश्च दातव्यं भोजनादिकम् ॥९०॥
 शुक्लपत्नीं नितां पूज्य तस्यै मृत्युं विमर्शयेत् । एव स्त्रीणां यत्र शोकं मासमात्रं द्विजोत्तम ॥९१॥
 अन्यद्विशेषं वक्ष्यामि तत्राग्रे भूय चोत्तमम् । अशोककालिकाभिस्तु चैत्रशुक्लपक्षदिने ॥९२॥
 सीतागमी पूजयित्वा मद्राषंगलभ्यकम् । अशोककालिकाभ्यर्था ये धिवन्ति पुनर्वसौ ॥९३॥
 चैत्रे मासि मिताष्टम्यां न ते शोकमवाप्नुयुः । स्वामशोककराभीष्टं मधुसाममप्राप्नुवन् ॥९४॥
 पिबामि शोकमंतमो मासशोकं मदा कुरु । पुनर्वसुपुषोपेतां चैत्र मासि मिताष्टमीम् ॥९५॥

आवश्यकता पढ़नेपर प्रत्येक की प्रतिमा बनवायी जा सकती है । इस तरह मूर्ति बनवाकर गुन्तपूर्वक विविध मङ्गलमय द्रव्योंमें स्त्रियोंके साथ पूजन करे ॥ ७९ ॥ एक महीना स्त्रियोंके साथ शीतला नामक स्नान करे । यदि सीतातीर्थमें जाकर स्नान करे तो विशेष अच्छा है ॥ ८० ॥ जहाँ-जहाँ रामतीर्थ है, वहाँ-वहाँके रामके वामभागमें सीताका बनाया सीतातीर्थ भी विद्यमान रहता है ॥ ८१ ॥ चैत्र शुक्लपक्षकी तृतीयासे लेकर जवनक वैशाखको अक्षय तृतीया तक, जवनक निरन्तर सीतातीर्थमें जाकर शीतलास्नान करे ॥ ८२ ॥ स्त्रियोंको भी चाहिये कि सीताजीकी प्रसन्न करनेके लिए स्नान करे । चैत्र शुक्लपक्षकी तृतीया तथा अक्षय तृतीयाको स्त्रियोंके साथ अनन्तरमें नेलकी मालिश कराना चाहिये । इसके सिवार और किसी रोज स्त्रियोंके साथ तैल लगायेका विधान नहीं है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ प्रतिदिन स्वामीके साथ-साथ सीताकी सगद्गतरह-तरहके उत्सव करना चाहिये । नित्य भक्तिपूर्ण स्त्रियोंका पूजन करना भी प्रेम्णकर है ॥ ८५ ॥ सीतागमि स्त्रियोंकी इन दिनोंमें वायन देना भी उचित है । यदि निरन्तर पूजन करनेकी सामर्थ्य न हो तो केवल एक ही दिन सीतागमि स्त्रियोंका पूजन करे और उक्त विविध पक्वान्न पुनः अच्छा-अच्छा भोजन कराये ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ नाना प्रकारके वस्त्र-आभूषण आदि भी वे स्त्रियाँ अवश्य दिया करें, जो अपने पतिकी आशुवृद्धि करना चाहती हों । इस तरह एक महीना शीतलास्नान करनेके बाद अक्षय तृतीयाको विशेष रीतिसे पूजन करके सीतागमि स्त्रियोंकी नाना प्रकारके भोजन-वस्त्र आदि दे ॥ ८८-९० ॥ इसके बाद अपने गुहकी पत्नीका पूजन करके उसे भी वस्त्र-आभूषण आदि प्रदान करे । हे द्विजोत्तम ! इस तरह मैंने तुम्हें स्त्रियोंके लिए एक मासका व्रत बनलाया ॥ ९१ ॥ अब मैं कुछ विशेष बातें बतलाता हूँ, सो सुनो । चैत्रशुक्ल अष्टमीको अशोककी कलियोंसे सीता और रामकी पूजन करके जो लोग आठ अशोककी कलियाँ पीसकर पुनर्वसु नामक नक्षत्रमें पीते हैं, उन्हें कभी किसी प्रकारका शोक नहीं करना पड़ता । उस कलियोंका दान करते समय "स्वामशोककराभीष्ट" इत मन्त्रका पाठ करते रहना चाहिये । मन्त्रका अर्थ इस प्रकार है—हे अशोक ! तुम्हारा जैसा नाम है, उसी प्रकार तुम लोगोंको शोकरहित पी करले हो । इसी कारण चैत्रमासमें उत्पन्न तुम्हारी कलिकाको मैं पी रहा हूँ । तुम मुझे सदा शोकरहित किये रहना । जो लोग पुनर्वसु नक्षत्र तथा

प्रातस्तु विधिवत्स्नात्वा वाजपेथकं लभेत् । चैत्रे नवम्यां प्राक्पक्षे दिवा पुण्ये पुनर्वसौ ॥९६॥
 उदये गुरुगौरांश्वोः स्वोच्चस्थे ग्रहपंचके । मेघे पूषणि संग्रामे लग्ने कर्कटकाह्वये ॥९७॥
 आश्विनीमहाविष्णुः कौसल्यायां परः पुमान् । तस्मिन्दिने तु कर्तव्यमुपवासव्रतं नरैः ॥९८॥
 तत्र जागरणं कुर्याद्रघुनाथपुरे जनैः । चैत्रशुद्धा तु नवमी पुनर्वसुयुता यदि ॥९९॥
 सैव मध्याह्नयोगेन महापुण्यतमा भवेत् । केवलाय मदोपोष्या नवमीशब्दसंग्रहात् ॥१००॥
 तस्मात्सर्वात्मना सर्वैः कार्यं वै नवमीव्रतम् । श्रीरामनवमी प्रोक्ता कोटिद्युर्ग्रहादिका ॥१०१॥
 उपोषणं जागरणं पितृनुहिष्य तर्पणम् । तस्मिन् दिने तु कर्तव्यं नम्रप्रामिषभीप्सुभिः ॥१०२॥
 सर्वेषामप्ययं धर्मो भुक्तिमुक्त्यैकसाधनः । अशुचिर्वापि पापिष्ठः कृन्धेदं व्रतमुत्तमम् ॥१०३॥
 पूज्यः स्यात्सर्वभूतानां यथा रामस्तथैव सः । यस्तु रामनवम्यां वै भुंक्ते मोहात् सूदधीः ॥१०४॥
 कुम्भीपाकेषु घोरेषु पश्यते नात्र संशयः । अकृत्वा रामनवमीव्रतं सर्वव्रतोत्तमम् ॥१०५॥
 व्रतान्पन्यानि कुरुते तेषां फलभाग्भवेत् । आचार्यं चैव संपूज्य शृणुयात्प्रार्थयेन्निष्ठि ॥१०६॥
 श्रीरामप्रतिमादानं करिष्येऽहं द्विजोत्तम ! भक्त्याचार्यं भव प्रीतः श्रीरामोऽसि त्वमेव च ॥१०७॥
 स्वगृहे चोत्तमे देशे दानम्योज्ज्वलमंडपम् । शंखचक्रहनुमद्भिः प्राग्द्वारे समलंकृतम् ॥१०८॥
 गरुडमच्छाङ्गेवाणेश्व दक्षिणे ममलंकृतम् । गदासङ्कागर्दभैश्च पश्चिमे सुविभूषितम् ॥१०९॥
 पद्मस्थितिकर्णालेश्व कौबेरे ममलंकृतम् । मध्ये हस्तचतुष्पादं नेदिकायुक्तमासनम् ॥११०॥
 अष्टोत्तरसहस्रं रामलिंगात्मकं शुभम् । आर्चनायै राममोक्षदं नेदिकायामनुत्तमम् ॥१११॥
 ततः संकल्पयेद्देवं राममेव स्मरन् द्विज ! अस्यां रामनवम्यां च रामागधनतत्परः ॥११२॥

पुनर्वसु पुनः चैत्रशुद्धा की अष्टमीको प्रातःकाल विविधपूर्वक स्नान करने के, उन्हें वाजपेथ यशवा फल प्राप्त
 होता है । चैत्रशुद्धाकी नवमीको जब कि पुनर्वसु नक्षत्र था, उदित चन्द्रगति तथा चन्द्रमाक साय-माय पाँच ग्रह
 उच्चस्थानमें बँडे थे, सूर्य भेद राशिपर थे, कर्कटन थी, उसी समय महाविष्णु भगवान् राम कौसल्यासे उत्पन्न
 हुए थे । इसलिए लोगोंको उस रोज उपवास करना चाहिए ॥ ९२-९८ ॥ लोगोंको उचित है कि इस तिथिको
 अग्रध्यातृगोत्रमें जाकर रात्रिभर जागरण करे । चैत्रशुद्धाकी नवमी यदि पुनर्वसु नक्षत्रमें युक्त हो तो
 यह महापुण्यव्रती मानी जाती है । यदि पुनर्वसु नक्षत्रयुक्त नवमी न हो तो भी व्रत करना ही चाहिए । क्योंकि
 सर्वत्र नवमी इस शब्दका ही संग्रह किया गया है ॥ ९६ ॥ १०० ॥ इसलिये सब लोगोंको अच्छी तरह
 नवमीका व्रत करना चाहिए । यह रामनवमी करोड़ों सूर्यग्रहणसे अधिक पुनीत मानी जाती है ॥ १०१ ॥
 विन लोगोंकी ब्रह्मप्राप्तिकी इच्छा हो, उन्हें चाहिए कि उस दिन उपवास, जागरण तथा पितरोंकी नृप्त करनेके
 उद्देश्यसे तर्पण करें ॥ १०२ ॥ क्योंकि सब लोगोंके लिए यह तर्प भुक्ति और मुक्तिका साधक है । यदि
 कोई मनुष्य अपवित्र या पापी हो तो इस व्रतको करनेसे वह उसी प्रकार सब प्राणियोंका पूज्य हो जाता है,
 जैसे रामचन्द्रजी स्वयं सबके आराध्यदेव हैं । जो मूढ़ रामनवमीको भोजन करता है ॥ १०३ ॥ १०४ ॥
 वह बहुत समय तक कुम्भीपाक आदि घोर भस्ममें पड़कर सड़ता है । सब व्रतोंमें श्रेष्ठ इस रामनवमीका
 व्रत न करके जो प्राणी और-और व्रतोंको करता है, उसे वह व्रत करनेका फल नहीं मिलता । व्रतके दिन
 रात्रिकी आचार्यकी पूजा करके प्रार्थना करे—हे द्विजोत्तम ! आज मैं भक्तिसे श्रीरामचन्द्रजीकी प्रतिमाका
 दान करूँगा । हे आचार्य ! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ तदनन्तर अपने घरके
 किसी उत्तम स्थानपर बहिया मण्डप बनावे । उसके पूर्वद्वारपर अल-चक्र एवं हनुमान्जीकी स्थापना
 करे ॥ १०८ ॥ दक्षिण द्वारपर गरुड़, वज्र तथा बाणकी स्थापित करे । उत्तर दिशामें कमल तथा
 स्वस्तिककी स्थापना करके उसे अलंकृत करे । बीचमें चार हाथकी लम्बी-चौड़ी बेंदी बनावे । बेदीपर
 अष्टोत्तरसहस्र रामलिंगात्मक रामजीभद्रकी रचना करे ॥ १०९-१११ ॥ इसके अनन्तर हे द्विज !
 श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करता हुआ संकल्प करे कि इस रामनवमीको श्रीरामचन्द्रजीकी आराधनामें तत्पर

उपोष्याष्टसु यामेषु पूजयित्वा यथाविधि । इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां च प्रवृत्ततः ॥११३॥
 श्रीरामप्रीतये दास्ये रामभक्ताय धीमते । प्रीतो रामो हरत्वाद्यु पापानि सुबहूनि मे ॥११४॥
 अनेकजन्मसंसिद्धान्पद्मस्तानि महति च । ततः स्वर्णमयीं रामप्रतिमां पलमानतः ॥११५॥
 निर्मितां द्विभुजां दिव्यां वामां कस्थितजानकीम् । विभ्रतीं दक्षिणकरे ज्ञानमुद्रां मनोरमाम् ॥११६॥
 वामेनाभःकरेणारादेर्दीर्घालिङ्ग्य संस्थिताम् । सिद्धामने राजते च पलद्वयविनिर्मिते ॥११७॥
 अशक्तो यो महानत्र स तु चित्तानुसारतः । पलेन वा तदर्धेन तदर्धार्धेन वा पुनः ॥११८॥
 सौवर्णं राजतं वापि कारयेद्रघुनन्दनम् । पार्श्वे भरतश्शुद्धौ धृतछत्रकरावुभौ ॥११९॥
 चापद्वयमसमायुक्तं लक्ष्मणं चापि कारयेत् । मातुरंकमतं राममिन्द्रनीलसमप्रभम् ॥१२०॥
 पञ्चामृतस्नानपूर्वं सम्पूज्य विधिवत्ततः । अशोककुसुमैर्धुक्तमर्घ्यं दद्याद्विचक्षणः ॥१२१॥
 दशाननवधार्थाय धर्मसंस्थापनाय । राक्षसानां विनाशाय दैत्यानां निधनाय च ॥१२२॥
 परिव्राणाय साधूनां जातो रामः स्वयं हरिः । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं आहुतिभिः सहितोऽनघ ॥१२३॥
 दिव्यं विधिवत्कृत्वा रात्री जगत्तं चरेत् । ततः प्रातः समुत्थाय स्नानसंभ्यादिकाः क्रियाः ॥१२४॥
 समाप्य विधिवद्ग्रामं पूजयेद्विधिवन्मुने । ततो होमं प्रकुर्वीत मूलमंत्रेण मंत्रवित् ॥१२५॥
 पूर्वोक्तमण्डपे कुडे स्थण्डिले वा ममाहितः । लौकिकान्तां विधानेन शतमष्टोत्तरं श्रुतैः ॥१२६॥
 साज्येन पायसेनैव स्मरन् राममनन्यधीः । ततो भक्त्या सुमतोप्य द्याचार्यं पूजयेद्भुजः ॥१२७॥
 ततो रामं स्मरन् दद्यादेवं मंत्रमुद्गारयन् । इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां समलंकृताम् ॥१२८॥
 चित्रवस्त्रयुगान्धनां रामोऽहं राघवाय ते । श्रीरामप्रीतये दास्ये तुष्टो भवतु राघवः ॥१२९॥
 इति दत्त्वा विधानेन दद्याद्दक्षिणां भुवम् । ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥१३०॥

होकर मे आठ महत्तक उपवास करके यह स्वर्णमयी प्रतिमा रामचन्द्रजीको प्रसन्नताके लिये किसी बुद्धिमान् रामभक्तको दूंगा । इससे श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न हों और मेरे उन महापापोंको हर लें, जो मेने अनेक जन्मोंके अभ्यागवश किये हैं । तदनन्तर एक पल सुवर्णकी बनी रामकी प्रतिमा, जिसमें दो भुजाएँ बनी हों, वामभुजामें सीताजी और दाहिनी भुजामें ज्ञानमुद्रा विराजमान हो ॥ ११३-११६ ॥ वे बायें हाथसे देवीका आङ्गिकन किंवा दो पल चाँदीकी बनी सीताजीपर बैठे हों ॥ ११७ ॥ जो प्राणी सर्वथा असमर्थ हो, वह अपने चित्तानुसार एक पल, आधा पल अथवा आधेके भी आधे पल सुवर्ण या चाँदीकी प्रतिमा बनवाये । रामके पास ही छत्र और चमर लिये भरत तथा शत्रुघ्न खड़े हों और दो धनुष धारण किये लक्ष्मणजीकी प्रतिमा बनवाये । माताको गोदमें विराजमान इन्द्रनीलमणिकी प्रभाके समान प्रभाशाली रामकी पञ्चामृतसे स्नान कराकर विधिवत् पूजन करे और अशोक पुष्पयुक्त अर्घ्य प्रदान करे । अर्घ्य दत्त समय 'दशाननवधार्थाय' आदि मंत्र पढ़ना जाय । जिसका अर्थ [] प्रकार है—॥ ११८-१२१ ॥ राक्षसोंको मारने, धर्मका स्थापन, राक्षसोंका विनाश और साधुओंकी रक्षाके लिए स्वयं विष्णु भगवान्ने अवतार लिया था । सब धाताओंके साथ [] मेरे [] अर्घ्यको स्वीकार करिए ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ यह सब विधि-विधान दिनको करके रामभक्त जानरण करे । नवरे उठकर स्नान-संभ्या आदि क्रियायें करके विधिवत् पूजन करे । फिर मंत्रको जाननेवाला [] मूलमन्त्रसे होम करे ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ यह हवनविधि पूर्वोक्त मण्डपमें अथवा स्थण्डिलमें किया जाय और लौकिक अग्निमें विधानपूर्वक एक सौ आठ आहुतियाँ धीरे-धीरे दी जायें । इसका सामग्रीमें मृत् और खोरका रहना आवश्यक है । हवन करते समय अपने चित्तको इधर-उधर न दोड़ाकर रामका स्मरण करते रहना चाहिए ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ तदनन्तर 'इमां स्वर्णमयीं' इस मन्त्रका उच्चारण करता हुआ प्रतिज्ञा करे कि सब तरहसे अलंकृत यह सुवर्णमयी रामकी प्रतिमा श्रीरामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेके हेतु मैं दान करूँगा । इससे श्रीरामजी प्रसन्न हों ॥ १२८ ॥ १२९ ॥ इस

एवं शिष्य चैत्रमासे भक्त्या भूसुराय हि । दानं देयं राक्षस्य रामरांष्ट्रदेवते ॥१३१॥
 अन्यदिशेषं वक्ष्यामि चैत्रे मासि भृगुषु तन् । चैत्रस्य शुक्लैकादश्यां दोलकस्थं रघूत्तमम् ॥१३२॥
 पूजयेन्मानवो भक्त्या आश्रयस्थानले स्थितम् । चैत्रमासस्य शुक्लत्रयोदश्यां तु वैष्णवं ॥१३३॥
 आंदोलनीयो देवेशः सलक्ष्मीको महोत्सवः । द्वादश्यां चैत्रमासस्य शुक्लत्रयोदश्यां दमनोत्सवः ॥१३४॥
 बौधायनादिभिः प्रोक्तः कृतव्यः प्रविशत्समम् ।

ऊर्ध्वं वत मघां दोला भावणे तनुपूजनम् । चैत्रे च दमनारोपमकुर्वीणो यजत्पथः ॥१२५॥

बह्विविधो गिरिजा गणेशः फणो विशाखो दिनकृन्महेशः ।

दुर्गास्तकी विश्वहरिः स्मरत्य श्रुतैः सती नै तिथिषु प्रपूज्याः ॥१३६॥

अथ चैत्रपौर्णिमायां भक्त्या रामं प्रपूजयेत् । मीनया दौलकस्य वै दमनेन महोत्सवैः ॥१३७॥

चैत्री चित्रायुता चैत्स्यान्तदा पुण्य महातिथिः । ज्ञेया सर्वाधिका सा हि स्वानदानत्रयादिषु ॥१३८॥

स्त्रोभिर्देयं चित्रवस्त्रं तस्याः साभाग्यदायकम् । सीतागमौ चित्रवस्त्रैः पूजनीयौ महोत्सवैः ॥१३९॥

मंदे वार्के गुरो वापि कारेण्येतेषु चैत्रिका । तत्राश्वमेधजं पुण्यं स्नानाश्चाद्वादिमिर्लभेत् ॥१४०॥

संवत्सरकृताचार्यः साफल्ययायाखिलान् सुगन् । दमननाथवेत्तव्यं विज्ञेयं तद्युगम् ॥१४१॥

चैत्रस्तानोद्यापनं च तिथौ नम्यां स्मृतं ब्रूयैः ॥१४२॥

अथ वैशाखकृष्णार्था पञ्चम्यां परमान्वयैः । मातारामा प्रवृज्याथ दीलकम्भौ तु वधुभिः ॥२४३॥

दद्यात्तं तत्र कार्यं महाकलमभाप्युना । वेदाखे कृष्णपक्षे तु चतुर्थ्यां समुपोष्य च ॥१४४॥

विधानसे दान देकर पृथ्वीकी दक्षिणा दे । ऐसा करनेसे प्राणी ब्रह्महत्या आदि पातकोमें भी मुक्त हो जाता है । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १३० ॥ हे मित्र ! इस प्रकार चैत्र मासकी नवमी तिथिको रामजीके प्रीत्यर्थ ब्राह्मणको दान दे ॥ १३१ ॥ चैत्रमासमें और कुछ विशेषताये हैं, उन्हें कहता हूँ । चैत्रशुक्लपक्षकी एकादशीको जूनेमें बिजालकर आभूषणों नीचे नामकी पूजा करना चाहिए ॥ १३२ ॥ १३३ ॥ तदनन्तर जूला जूलाके विधान है । इसके बाद चैत्रशुक्ल द्वादशीका समस्तसम मानना चाहिए ॥ १३४ ॥ यह घोषाघन आदि आचार्योंका है । ऐसा हर वर्ष करना चाहिए । कार्तिकासम सम, चैत्रमासमें दोलाधिराट्ट, चैत्री दत्तात्रेय और श्रावणमें तन्तुधूमना करना चाहिए । जो रामायण का प्रकाशक बन नहीं करता, उसका अध्यात्म होना है ॥ १३५ ॥ अग्नि, ब्रह्मा, गिरिधर, लज्जा नारायण, कार्तिकेय, सूर्य, शिवजी, दुर्गा रामराज, विष्णुदेव, विष्णुमगवान्, कामदेव, रुद्र और चन्द्र इन देवताओंका अपनी-अपनी तिथियोंपर पूजन करनेका विधान है । ऊपर गिनते हुए सब देवता एक-एक तिथिके स्वामी हैं । जैसे—शनिवारके अग्नि, द्वितीयाके ब्रह्मा, तृतीयाकी श्यामिनी गिरिधर, चतुर्थीके लज्जा आदि ॥ १३६ ॥ चैत्रशुक्लपक्षकी पूर्णिमाका भक्तिपूर्वक सीता सहित रामको जूनेपर बिजालकर समस्त दानका महोत्सवके साथ पूजन करना चाहिए ॥ १३७ ॥ यदि ऊपर बताया हुई चैत्रकी पूर्णिमा चित्रा नक्षत्रके युक्त हो तो उस पूर्णिमाको स्नान, दान और जप आदिमें महापुण्यदायिनी समझना चाहिए ॥ १३८ ॥ स्त्रियोंको चाहिए कि उस रात्रि तश्च-तश्चके धस्वदान दें । इससे उनके सीमात्मकी वृद्धि होती है । उसी दिन महान् उत्सवके साथ सीता तथा रामको पूजा करनी चाहिए ॥ १३९ ॥ शनिवार, रविवार अथवा बुधवार इन वारोंमें यदि चैत्रकी पूर्णिमा पड़े तो इसमें स्नान-दान तथा धातु करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है ॥ १४० ॥ पूरे सालभरके लिए किसी विद्वान्को आचार्य बनाकर अच्छी कामना सकल करनेके लिए समस्त देवताओंकी विशेषतः रामको दान नामक महोत्सवसे पूजा करनी चाहिए ॥ १४१ ॥ चैत्रस्नानका उद्यापन भी इसी तिथिको करना चाहिए । ऐसा विद्वानोंका कथन है ॥ १४२ ॥ उस तिथिको उद्यापन करनेसे महाफलकी प्राप्ति होती है । जैसासकृष्ण चतुर्थीको उपवास करके रात्रिके समय पृथ्वीपर सोये । सबेरे किसी पवित्र स्थानमें मण्डप आदि बनाकर रामललात्मक

निशार्था च प्रकर्तव्यमधिवासनमुत्तमम् । द्युची देशे मंडपादि कृत्वा पूर्वोक्तवच्छ्रुतम् ॥१४५॥
 रामलिंगात्मके भद्रे धान्यराशौ महत्तमम् । सज्जलं कलशं स्थाप्य ताम्रपात्रं तु तन्मुखे ॥१४६॥
 स्थाप्य वस्त्रे दोलकस्थं रामचन्द्रं प्रपूजयेत् । हैमो वाराजनी वापि दोलकस्त्रिपलैः स्मृतः ॥१४७॥
 हैमी पलमिता राममूर्तिः कार्या मनोरमा । तावन्मिता रुक्ममूर्तिः सीतामात्रापि कारयेत् ॥१४८॥
 नानोपचारैः संपूज्य राशौ जागरणं चरेत् । नृत्यगानमंगलार्थैः पुराणश्रवणादिभिः ॥१४९॥
 प्रभाते तं पुनः पूज्य रामं सीतासमन्वितम् । महस्र इव न कार्यं तिलाज्यपायसादिना ॥१५०॥
 तर्पणं राममंत्रेण क्षीरेणैव प्रकारयेत् । ततो गुरुं सपत्नीकं संपूज्य वसनादिभिः ॥१५१॥
 रामाय प्रार्थयेद्भक्त्या प्रबद्धकरसंपुटः । सार्द्धमागद्वयं गान वसने तत्र पूजनम् ॥१५२॥
 दोलकस्थस्य जानक्या यथाशक्त्या यथा कृतम् । प्रसादानेन श्रीरामं मामुद्धर भवार्णवात् ॥१५३॥
 एवं संप्राध्य श्रीरामं तामर्चा मूर्तिमयुताम् । दद्यात्स्वगुह्ये भक्त्या तं प्रणम्य पुनः पुनः ॥१५४॥
 पंचसप्ततिधुग्मानि क्षष्टाविंशन्मिनानि । तद्वर्चान्पथराशकृत्या भोजयेद्गुरुणा सुखम् ॥१५५॥
 ततः स्वयं सुहृन्मित्रैः कार्यं वै भोजनं सुखम् । अशक्तोऽपि यथाशक्त्या व्रतमेतत् सर्वदा ॥१५६॥
 करोतु रामतुष्टयर्थं वसंतपूजनं वरम् । एवं शिष्य न्वया पृष्टं विशेषेण च पूजनम् ॥१५७॥

सीतारामस्य तत्प्रोक्तं दोलकस्थस्य ते मया ।

विष्णुदास उवाच

गुरो ते प्रष्टुमिच्छामि यत्त्वं वद तविस्तरात् ॥१५८॥

कया कामनया कस्य कार्यं पूजनमुत्तमम् । तत्सर्वं कथयस्वाद्य मपि कृत्वा परां कृपाम् ॥१५९॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया वत्स सावधानमनाः शृणु । ब्रह्मवर्चमकामस्तु यजेत ब्रह्मणस्पतिम् ॥१६०॥

इन्द्रिन्द्रियकामस्तु प्रज्ञाकामः प्रज्ञापतीन् । देवीं भार्यां तु श्रीकामस्तेजस्कामो विभावसुम् ॥१६१॥

भद्रे एक बड़ा भारी धान्यराशिका स्थापन करके उसपर सज्जल कलश रखते और उनके सामने एक ताम्र-
 पात्र धरे । फिर झूलपर कपड़ा बिछाकर रामदेवका बिठासे और उनको पूजा करे । वह झूठा तान पल
 सुवर्ण, चाँदी या ताम्रका बनावे । एक पल सुवर्णसे रामका प्रतिमा बनावे । सो वजनके मुखर्णसे सीताकी
 प्रतिमा भी बनानी चाहिए ॥ १४३-१४८ ॥ इसके अनन्तर नाना प्रकारके उपचारोंसे पूजन करके रातभर
 जागरण और उम समय नृत्य-गात आदि महत्तमय कार्य करे ॥ १४९ ॥ सबेरे फिर रामकी पूजा करके
 तिल, घी तथा क्षीर आदिसे सहस्र हवम और राममन्दका उच्चारण करता हुआ दूधसे तर्पण करे ।
 तर्पणात् सपत्नीक गुरुको वस्त्र-अभरण आदितो पूजा करे ॥ १५० ॥ १५१ ॥ इसके बाद हाथ जोड़कर
 रामकी प्रार्थना करता हुआ कहे—हे राम ! मैंने कोई महत्तम व्रत कहे तुमसे सीताके साथ आपकी पूजा
 की है । मेरे इस कार्यसे आप [] हों और भवसागरसे [] उद्धार करे ॥ १५२ ॥ १५३ ॥ इस तरह
 प्रार्थना करनेके अनन्तर प्रतिमा समेत वह पुजारा अपने गुरुको दे दे और उन्हें बार बार प्रणाम करे
 ॥ १५४ ॥ इसके बाद उड़ सी, बड़ोसे अपना अपनी शक्तिके अनुसार इससे अर्घ्यसंतुष्टक ब्राह्मणोंको
 भोजन करावे ॥ १५५ ॥ इसके पश्चात् अपने सम्बन्धियों और मित्रोंके साथ साथ स्वयं भी भोजन
 करे । कोई प्रार्थना यदि अशक्त हो तो उसे अपनी शक्तिके अनुसार ही वह यज्ञ और वसन्तऋतुमें राम-
 चन्द्रजीका पूजन करना चाहिए । हे शिष्य ! तुमने मुझसे रामकी पूजाके विषयमें जो प्रश्न किया था । सो
 मैंने दोलकस्थ राम तथा सीताके पूजनके विषयकी सब बातें कह सुनायीं । विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! मैं
 आपसे कुछ और पूछना चाहता हूँ । वह आप विस्तारपूर्वक हमें बतलाइए । यदि [] ऐसा करने तो बड़ी
 कथा होगी । दया करके आप हमें यह बतलाइए कि किस कामनासे किस देवताका पूजन करना चाहिए

१-१५९ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे वत्स ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । सावधान मनसे सुनो ।

ही अपना ब्रह्मतेज बढ़ाना हो, उसे ब्रह्मणस्पतिकी पूजन करना चाहिए ॥ १६० ॥ इन्द्रियकी कोई

वसुकामो वसन् रुद्रान्वीर्यकामोऽथ वीर्यवान् । अग्रादिकामस्त्वदिति स्वर्गकामोऽदितेः सुतान् ॥१६२॥

विश्वान् देवान् राज्यकामः साध्यान्ममाधको विश्वाम् ।

आयुष्कामोऽदिवर्जो देवैः पुष्टिकाम इलां यजेत् ॥१६३॥

प्रतिष्ठाकामः पुरुषो रोदमो लोकमानसौ । रूपाभिकामो मन्धर्वान् स्त्रीकामोऽप्सर उर्वशीम् ॥१६४॥

आधिपत्यकामः सर्वेषां यजेत परमेष्ठिनम् । यज्ञं यजेद्यज्ञस्कामः कोशकामः प्रचेतमम् ॥१६५॥

विद्याकामस्तु गिरिशं दांपत्यार्थमुपां सतीम् । धर्मार्थं उत्तमश्लोकं तन्तुं तन्वनं पितृभ्योजेत् ॥१६६॥

रक्षाकामः पुण्यजनानोजस्कामो मरुद्गणान् । राज्यकामो मनून्देवान् निर्भ्रंति त्वभिचर्यन्जेत् ॥१६७॥

कामकामो यजेन्सोमकामः पुरुषं परम् । अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ॥१६८॥

तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत रघुनन्दनम् । रामेण सदृशो देवो भूतो न भविष्यति ॥१६९॥

रुक्मान्सर्वप्रयत्नेन रामचन्द्रं प्रपूजयेत् । तस्याश्ववर्णमामर्थाद्यिदं स्मरन् रादिकम् ॥१७०॥

परं श्रेष्ठस्त्वमापन्नं विस्तारेण वदाम्बुदम् । रुक्मं रत्नं रथो रामा राक्षसो रजतं रजः ॥१७१॥

रक्षा रणो रमा रक्तं रजको रामरामटी । रजा रोमो रवी रात्री राज्यं रजस्वला तथा ॥१७२॥

एवामदीन्यनेकानि श्रेष्ठान्येवात्र भो द्विजः । रुक्मं पातं महार्हं च रत्नं रथं सुदुर्लभम् ॥१७३॥

रथो यानं वाग्धु च रामा पश्या इदं जगत् । राक्षसो देवमण्डो रजतं तत्सुदुर्लभम् ॥१७४॥

रजः साक्षात्परमाणुनित्यः सोऽत्र प्रकीर्ण्यते । रक्षा रक्षाकरी ज्ञेया रणो अथकरः स्मृतः ॥१७५॥

कामना पूर्ण करनेकी अभिलाषा हो तो इन्द्रकी, सन्तानकी हो तो प्रजापतिकी, श्रोत्रवृद्धिकी इच्छा हो तो मायादेवीकी, तेजोवृद्धिकी अभिलाषा हो तो सूर्यभगवान्की, घनवृद्धिकी इच्छा हो तो भाद्रों वसुओंकी, पराक्रमकी अभिलाषा हो तो रुद्रभगवान्की, अग्न आदिकी इच्छा हो तो अदितिकी, स्वर्गकी इच्छा हो तो अदितिके पुत्रों अर्थात् देवताओंकी, ॥ १६१-१६२ ॥ राज्यकी इच्छा हो तो इलाकी, प्रतिष्ठा चाहनेवालेको लोकमानाओंकी, सौन्दर्यकी अभिलाषा हो तो मन्धर्वोंकी, स्त्रीका कामना हो तो उर्वशी आदि अप्सराओंकी और आधिपत्यकी इच्छा हो तो सब देवताओंकी पूजा करे। जिसे यज्ञ पानेकी इच्छा हो, उसे यज्ञ करना चाहिये। कोशकी इच्छा हो तो वरुणकी, विद्याकी इच्छा हो तो गिरिकी, दाम्पत्यमुखकी इच्छा हो तो पार्वती जीकी, धर्मकी अभिलाषा हो तो उत्तमश्लोक (विष्णु भगवान्) की और वंशविस्तारकी इच्छा हो तो पितरोंकी पूजा करना चाहिये ॥ १६३-१६६ ॥ आत्मरक्षाकी इच्छा हो तो पुण्यजनोंकी, तेजोवृद्धिकी अभिलाषा हो तो मरुद्गणोंकी, राज्यकी इच्छा हो तो वीरह् मनुओंका, आभिचारिकी क्रिया करनी हो तो राक्षसोंकी, मनोऽभिलषित काम-पूतिकी इच्छा हो तो चन्द्रमाकी, निष्काम होनेकी अभिलाषा हो तो परम पुण्य परमेश्वरकी, अकाम या सकामभावसे मोक्षकी कामना रखता हो तो उसे चाहिए कि तीव्र भक्तियोगसे रघुनन्दन रामचन्द्रकी पूजा करे। रामचन्द्रजीके समान न कोई देवता हुआ है और न हो न होगा ॥ १६७-१६९ ॥ अतएव हर तरह प्रयत्न करके रामचन्द्रजी पूजा करे। उनके नामके आदिम वर्ण 'र' की सामर्थ्यसे संसारमें जितनी वस्तुएँ रकारादि हैं, वे सब अतिशय श्रेष्ठ माने गये हैं। उन वस्तुओंको अब मैं विस्तारपूर्वक बतला रहा हूँ। जैसे-रुक्म (सुवर्ण), रत्न, रथ, रामा (स्त्री), राक्षस (विभीषण आदि), रजत (चाँदी), रज (धूलि), रक्षा, रण, रमा (लक्ष्मी), रक्त, रजक (घोड़ी), राम, रामठ (हींग), रजा, रोग, रवि (सूर्य) रात्रि, राज्य, रजस्वला आदि अनेक नाम श्रेष्ठ माने गये हैं। ऊपर बताया हुआ रुक्म (सुवर्ण) पीतवर्णकी बहुमूल्य घातु है। रत्न देखनेमें सुन्दर लगता है और कठिनाईसे प्राप्त होता है। रथ एक श्रेष्ठ सवारी है। रामा (स्त्री) वह वस्तु है, जिससे जगत् उत्पन्न हुआ है। राक्षस ऐसे भयानक होते हैं, जिनसे देवता भी भयभीत रहा करते हैं। रजत (चाँदी) भी एक दुर्लभ वस्तु है। रज (धूलि) साक्षात् परमाणु और नित्य है। रक्षा रक्षाकारी है। रण (संग्राम) विजयदायक होता है ॥ १७०-१७५ ॥

रमा सा दुर्लभा त्वत्र रक्तेऽस्ति रक्तता वरा । रजको निर्मलकरो रागः प्रीतिः सुखप्रदा ॥१७६॥
 रामठः शुद्धिदोऽयस्य हविदश्च प्रकीर्तितः । राज्यं सीस्यकरं श्रेष्ठं पुत्रदा सा रजस्वला ॥१७७॥
 एवं यद्यवशरायं तत्तच्छ्रेष्ठं भुवि स्मृतम् । रामायणार्णामाध्याद्विष्णुदास मयेरितम् ॥१७८॥
 अन्यच्छिश्नश्च शृणुष्व त्वं यन्मया कथ्यते तव । यथा प्रोक्ता रामनाममुद्रा तव मया शुभा ॥१७९॥
 तथा नान्यस्य देवस्य नाममुद्रा प्रजायते । रामनाम विना नाममुद्रिकायां स्फुटाक्षरम् ॥१८०॥
 न कदा दृश्यते स्पष्टमेतच्च महद्भुतम् । अत्र प्रभावो रामस्य न्वं विद्धि द्विजपुङ्गव ॥१८१॥
 अतएव रामनाम काश्यां विश्वेश्वरः सदा । स्वयं जप्त्वोपदिशति जनूनां मुक्तिहेतवे ॥१८२॥
 स तारण्यमंभम्भे नरं यस्तारयेन्मनुः । स एव तारकस्त्वत्र राममंत्रः प्रकथ्यते ॥१८३॥
 तारकारपस्त्वयं रामनाममंत्रो न चेतरेः । अत एवांतकालेऽपि मर्तुकामनरस्य च ॥१८४॥
 कर्णे सर्वत्र देवेश्वरामनामोपदिश्यते । अन्तकाले नृणां रामस्मरणं च मुहुर्मुहुः ॥१८५॥
 शनिं कुर्वन्पुण्यदेशं मानवा मुक्तिहेतवे । अन्यथापि अवनार्हः सदा लोकेर्मुहुर्मुहुः ॥१८६॥
 रामनामैव मुक्त्यर्थं शयस्य पथि कीर्त्यते । रामनाम्नः परो मंत्रो न भूतो न भविष्यति ॥१८७॥
 रामनाम्नो जपो नित्यं कियते श्रेष्ठनापि च । पावस्या नारदेनापि वायुपुत्रादिभिः सदा ॥१८८॥
 रमयति जनान् रामो रमते वा सदात्मनि । राक्षसानां मारणाद्वा रामनाम महत्तमम् ॥१८९॥
 रसातलाद्रकारो हि त्वकारोऽवनिमंभवः । महर्लोकान्मकारश्च त्रिवर्णात्मकमुच्यते ॥१९०॥
 रकारेण निजं भक्तं भवाब्धेः परिरक्षति । अकारेणातिसौख्यं हि स्वभक्तस्य करोति यत् ॥१९१॥
 मनोरथान्मकारेण ददाति त्वजनस्य यत् । अथवा निजभक्तस्य मरणादि मुहुर्मुहुः ॥१९२॥

रमा (लक्ष्मी) ■ संसारमें दुर्लभ है । रक्तमें एक असाधारण लालिमा विद्यमान रहा करती है । रजक (धोबी) मलको धोकर साफ करता है । राग प्रीतिका नाम है, जिसने सारे संसारको अपनी गूँझोंमें कर रक्खा है ॥१७६॥ रामठ (हीन) अन्तेको पवित्र करनेवाली और एक हविकर वस्तु है । राज्य मुक्तिकारी होता है । रजस्वला स्त्री पुत्रदायिनी होती है । इस तरह जितने भी रकारादि वर्णके नाम हैं, वे सब श्रेष्ठ माने गये हैं ।
 ■ विष्णुदास ! जंसा मैंने तुम्हें बताया है, इन सबोंके श्रेष्ठ होनेका कारण वही रामके आदिम वर्णकी समानता है ॥ १७७ ॥ १७८ ॥ हे शिष्य । अब दूसरी बात तुमसे कहता हूँ, उसे सुनो । जिस तरह पहने से तुम्हें रामनामकी गुदायें बतला आया हैं, वैसे नाममुद्रा और किसी देवताकी नहीं है । रामनामके बिना किसी नाममुद्रामें इस प्रकार ' राजाराम ' जंसा स्पुट अक्षर नहीं बनता । यह एक अद्भुत बात है । हे द्विजपुङ्गव ! इसमें तुम रामका ही प्रभाव जानो ॥ १७९-१८१ ॥ इसीलिए काश्योंमें विष्णुनाथजी रामनामका जप करके प्राणियोंको मुक्त होनेका उपदेश स्वयं दिया करते हैं ॥ १८२ ॥ जो मन्त्र संसाररूपी समुद्रमें डूबे हुए मनुष्योंको तार सके, उसी राममन्त्रको 'तारक' संज्ञा है ॥ १८३ ॥ एकमात्र यह रामका नाम ही तारक है । इसीलिए सर्वत्र किसीके मरते समय उसके कानमें रामनामका ही उपदेश दिया जाता है । मुमुर्षु प्राणीकी मुक्तिके लिए उससे बार-बार यही कहा जाता है कि 'राम' ■ स्मरण करो । प्रश्नों से जानेवाले भी राम नामका ■ कीर्तन करते हैं । रामनामसे श्रेष्ठ कोई मन्त्र न ■ तक हुआ है और न होवा ॥ १८४-१८७ ॥ स्वयं शिवजी भी नित्य रामनामका ही जप किया करते हैं । उसी तरह हनुमान् भी, नारद तथा पार्वतीजी भी सदा रामनामका जप करते हैं ॥ १८८ ॥ भक्तोंके हृदयमें विहार करने या नित्य रमण करने अथवा राक्षसोंका संहार करनेके कारण ही रामनाम सर्वश्रेष्ठ माना जाता है ॥ १८९॥ 'राम' इस शब्दमें रकार रसातल लोकसे, अकार भृगुण्डलसे एवं मकार महर्लोकसे आया है । इसी कारण यह त्रिवर्णात्मक राममन्त्र है ॥ १९० ॥ वे श्रीरामचन्द्रजी रकारके द्वारा भवसिन्धुमें अपने भक्तोंकी रक्षा करते हैं । अकारसे निज भक्तोंकी अतिशय सौख्य प्रदान करते ■ । मकारसे अपने भक्तोंकी कामना पूर्ण करते ■ अथवा मकारसे बार-बार अपने भक्तोंकी मरण आदि बाधाएँ दूर करते रहते हैं ।

निवारयति तत् शीघ्रं रामनाम वरं ततः । अपमेव सदा जप्यो रामेति द्रव्यक्षरो मनुः ॥१९३॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकाण्डे
उत्तराह्णे विशेषकालपरत्वेन पूजाविस्तारो नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः

(अयोध्यामें चैत्रमासकी महिमाका वर्णन)

श्रीरामदास उवाच

एवं शिष्य त्वया पूर्वं ये ये प्रश्नाः कृताः शुभाः । श्रीरामविषये ते ते मयोक्ताः परमादरात् ॥ १ ॥
इदानीं ते पुनः श्रोतुमिच्छाऽस्ति तां वदस्व माम् । यद्यत्पृच्छसि सो वत्स तत्सर्वं ते वदाम्यहम् ॥ २ ॥

श्रीमहादेव उवाच

एवं गुरोर्वचः श्रुत्वा विष्णुदासोऽब्रवीत्पुनः ।

विष्णुदास उवाच

गुरो त्वयाऽयोध्यायां चैत्रमासफलं ममत् ॥ ३ ॥

प्रोक्तं तद्विस्तरेणाद्य कथयस्व मर्मात्मिकम् । किं दानं किं फलं तत्र कमुद्दिश्य चरेद्व्रतम् ॥ ४ ॥
को विधिश्च कदारंभः सर्वं विस्तरतो वद । यत्सरस्वामं रामतीर्थे स्नातव्यं चेति कीर्तितम् ॥ ५ ॥

श्रीरामदास उवाच

साधु साधु महाप्राज्ञ शुभः प्रश्नः कृतस्त्वया । अधुना चैत्रमासस्य महिमा प्रोच्यते ॥ ६ ॥
मासानां प्रथमो मासश्चैत्रमासः प्रकीर्त्यते । मातेव सर्वजीवानां सदैवैष्टक्यफलप्रदः ॥ ७ ॥
दानयज्ञव्रतसमः सर्वपापप्रणाशनः । धर्मसारः क्रियासारस्तपःसारः सदाऽर्चितः ॥ ८ ॥
विद्यानां वेदविद्येव मंत्राणां प्रणवो यथा । भूरुहाणां सुरतरुर्धेनूनां कामधेनुवत् ॥ ९ ॥

इसलिए रामनाम सर्वश्रेष्ठ मंत्र है । अतएव लोगोंको चाहिए कि 'राम' इस दो अक्षरके मंत्रको सर्वत्र जपते रहें ॥ १९२ ॥ १९३ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजापाण्डेयकृत-
'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

श्रीरामदास बोले—इस तरह है शिष्य ! अबतक तुमने हमसे रामविषयक जो-जो प्रश्न किये, उत्तर आवरणपूर्वक दिया ॥ १ ॥ तुम्हें जो कुछ सुनना हो, सो कहो । हे वत्स ! हमसे तुम जो भी पूछोगे, यह सब तुम्हें बतलाऊंगा ॥ २ ॥ श्रीशिवजी बोले—अपने गुरुके इन वचनोंको सुनकर विष्णुदास फिर बोले । विष्णुदासने कहा—हे गुरो । आप अयोध्यामें चैत्रमासका फल कह आये हैं । उसे विस्तारपूर्वक कहिए । उसमें दान करना चाहिए, उसके करनेसे क्या फल होता और किस उद्देश्यसे जल किया जाता है । इस बातको करनेकी क्या विधि है । इसे कब आरम्भ करना चाहिए । यह सब मुझे विस्तारपूर्वक बतलाइए । सरयूके रामतीर्थमें स्नान करना चाहिए, यह जो आप कह चुके हैं । इसका भी विधि-विधान बता दीजिए ॥ ३-५ ॥ श्रीरामदासने कहा—ठीक है, हे महाबुद्धिमान् शिष्य । तुमने बहुत ही सुन्दर प्रश्न किया है । अब मैं चैत्रमासकी महिमा बतला रहा हूँ ॥ ६ ॥ सब मासोंमें चैत्रमास वर्षका सर्वप्रथम माना गया है । यह मास सब प्राणियोंका भाताके समान हितकारी है और सबको अभीष्ट फल देता है ॥ ७ ॥ यह दानों, यज्ञों और व्रतोंके समान फलदायक है । यह सब धर्मोंका सार, क्रियाओंका सार और सब प्रकारकी तपस्याओंका सार है ॥ ८ ॥ यह मास सब विद्याओंमें [वेदविद्याके समान, मन्त्रोंमें प्रणव (अक्षर) मन्त्रके समान, वृक्षोंमें पारिजातके समान, गोओंमें काम-

शेषवत्सर्वनामानां पक्षिणां गरुडो यथा । देवानां तु यथा विष्णुर्वर्णानां ब्राह्मणो यथा ॥१०॥
प्राणवत्प्रियवस्तूनां मार्येव सुहृदां यथा । आपगानां यथा गंगा तेजसां तु रविर्यथा ॥११॥
आयुधानां यथा वज्रं घातूनां कांचनं यथा । वैष्णवानां यथा रुद्रो रत्नानां कीर्तुभो यथा ॥१२॥

पुष्पेषु च यथा पद्मं सरसां मानसं यथा ।

मासानां धर्महेतूनां चैत्रमासस्तथा स्मृतः । नानेन सदृशो लोके विष्णुप्रीतिविधायकः ॥१३॥
चैत्रस्नाने च निरते मीने प्रागरुणोदयात् । लक्ष्मीसहायो भगवान्प्रीतिं तस्मिन्करोत्यलम् ॥१४॥
जंतूनां प्रीणनं यद्वदन्नेनैव हि जायते । तद्वच्चैत्रे स्नानेन विष्णुः प्रीणात्यसंशयः ॥१५॥
यश्चैत्रस्नाननिरतान् जनान् दृष्ट्वाऽनुमोदते । तावमाऽपि विमुक्ताग्रो विष्णोर्लोकं महीयते ॥१६॥
सकृन्स्नात्वा मीनसंस्थे सूर्ये प्रातः कृताह्निकः । महापापविमुक्तोऽसौ विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥१७॥
स्नानानाथं चैत्रमासे यः पादमेक चलेद्यदि । सोऽश्वमेधायुतानां च फलं प्राप्नोत्यसंशयः ॥१८॥
अथवा कृटचित्तस्तु कुर्यात्संकल्पमात्रकम् । सोऽपि क्रतुशतं पुण्यं लभत्येव न संशयः ॥१९॥
यो मच्छेद्वचुरायामं स्नातुं मीनगते रवौ । सर्वबंधविनिर्मुक्तो विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् ॥२०॥
त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि ब्रह्मांडान्तर्गतानि च । तानि सर्वाणि भो शिष्य संति बाह्यजलेऽन्यके ॥२१॥
तत्राहसति पापानि गर्जन्ति यमशासने । यावन्न कुरुते जंतुर्ध्वरे स्नानं जलाशये ॥२२॥
तीर्थादिदेवताः सर्वाश्चैत्रे भासि द्विजोत्तम । बहिर्जलं समाश्रित्य सदा संनिहिताः भिक्षो ॥२३॥
सूर्योदयं समागम्य यावत् पङ्कटिकावधि । तिष्ठति चाक्षया विष्णोर्नराणां हितकाम्यया ॥२४॥
तत्राप्यकुर्वता स्नानं शपं दद्यात् सुदारुणम् । स्वस्थानं यासि भो शिष्य तस्मात्स्नानं समाचरेत् ॥२५॥

धेनुके समान, सर्पोंमें शेषनागके समान, पक्षियोंमें गरुडके समान, देवताओंमें विष्णुभगवान्के सदृश और वर्णोंमें ब्राह्मणके समान श्रेष्ठ है ॥ ६ ॥ १० ॥ संसारकी प्रिय वस्तुओंमें प्राणकी भाँति, मित्रोंमें मार्याकी तरह, नदियोंमें गङ्गाकी तरह, तेजस्वियोंमें सूर्यकी नाई, शास्त्रोंमें वज्रकी तरह, पातुओंमें सुवर्णकी तरह, वैष्णवोंमें रुद्रभगवान्के समान, रत्नोंमें कीर्तुभ मणिकी तरह, फूलोंमें कमलकी तरह, तालाबोंमें मानसगोवरकी तरह धर्म-हेतुक चैत्रमासमें यह चैत्रमास सर्वश्रेष्ठ है । संसारमें विष्णुके प्रति प्रीति बढ़ानेवाला और कोई मास नहीं है ॥ ११-१३ ॥ जब कि मीन लग्नपर सूर्य हों, ऐसे चैत्रमासमें अरुणोदयके पहले स्नान करनेसे लक्ष्मीके साथ-साथ विष्णुभगवान् भी प्रसन्न होते हैं ॥१४॥ जिस तरह संसारके प्राणी अन्नमें जीवित तथा प्रसन्न रहते हैं । उसी तरह चैत्रमासमें स्नान करनेसे विष्णुभगवान् तृप्त होते हैं । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १५ ॥ जो मनुष्य किसी-की चैत्रस्नानमें संलग्न देखकर उसका अनुमोदन करता है, तो इतने ही से उसके सब बंध छूट जाते हैं और वह प्राणी विष्णुलोकमें सम्मान पाता है ॥ १६ ॥ जब कि सूर्य मीन राशिपर हों, ऐसे समय केवल एक बार प्रातःकालके समय और नित्यकर्म करनेवाला प्राणी बड़े-बड़े पापोंसे मुक्त होकर विष्णुभगवान्की सायुज्य मुक्ति पाता है ॥ १७ ॥ चैत्रमासमें स्नानके निमित्त जो मनुष्य एक पग भी चलाता है, वह दस हजार अश्वमेध यज्ञका फल पाता है ॥ १८ ॥ जो प्राणी स्नानके चैत्रस्नानका संकल्पमात्र करता है, वह भी संकष्टों वज्र करनेका फल प्राप्त कर लेता है । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १९ ॥ मीनगत सूर्यके समय जो प्राणी एक घनूष विस्मृत मार्ग भी चैत्रस्नानके लिए श्रुता है, वह सब बन्धनोंसे छूटकर विष्णुकी सायुज्य मुक्ति पाता है ॥ २० ॥ त्रैलोक्य या ब्रह्माण्डके अन्तर्गत जितने भी तीर्थ हैं, वे सब उस वहीके योद्धेसे जलमें विद्यमान रहते हैं ॥ २१ ॥ तक प्राणी चैत्रमासमें किसी जलाशयमें स्नान नहीं करता, तभीतक यमराजके आज्ञानुसार सब पातक गरजते हैं ॥ २२ ॥ हे भिक्षो ! सभी तीर्थ और सब देवता चैत्रमासमें जलके बाहर आकर ठहर जाते हैं ॥ २३ ॥ सूर्योदयसे लेकर छः घड़ी दिन चड़े तक विष्णुभगवान्के आज्ञानुसार सब देवता मनुष्योंके कल्याणार्थ जलके बाहर बंटे रहते हैं ॥ २४ ॥ उस समय भी यदि कोई स्नान नहीं करता तो

न हि चैत्रसप्तमी मासो न कुतेन समं युगम् । न च वेदसमं शास्त्रं न तीर्थं गंगया समम् ॥२६॥
 जलेन समं दानं न सुखं भार्यया समम् । न हि चैत्रसप्तमं लोके पवित्रं कपयो विदुः ॥२७॥
 तस्मादयं चैत्रमासः शेषशायिभिः सदा । अव्रतेन नयेद्यस्तु चांडालश्च स जायते ॥२८॥

यथा गृहं सर्वगुणोपपन्नं परिच्छेदहीनमशोभते तथा ।
 यथैव कन्या सकलैस्तुल्यभरणैर्युक्ताऽपि जायत्यतिलभ्यो जिज्ञता ॥२९॥
 आकं तु यद्वल्लभात्तेन हीनं न शोभते सर्वगुणोपपन्नम् ।
 यथा ललामैश्च विना सभा नैवस्त्रेण हीना ललना च क्षिप्य ॥
 तथाऽन्यमासेषु कृतो हि धर्मश्चैत्रेण हीनश्च कृष्यैव याति ॥३०॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन येन केनापि देहिना । चैत्रमासस्य यो धर्मः कर्तव्य इति निश्चयः ॥३१॥
 न नन्दयन्तोः पृथगस्मिन् रामो न रामतोऽन्यो वसुदेवश्चतुः ।
 प्रतस्त्वयोऽध्यापुरीपालकस्य चैत्रे तु कार्यं विधिवत्प्रपूजनम् ॥३२॥

जानकीकांतमुद्दिश्य मीनसंस्थे दिवाकरं । प्रातः स्नात्वा जपेद्राममन्यथा नरकं व्रजेत् ॥३३॥
 चैत्रमासी हि सकलः साताराधयद्देवतः । यद्यत्कर्म हि तत्सर्वं तमुद्दिश्य चरेन्नरः ॥३४॥
 जानकीकांत है राम चैत्रे मीनगते रत्ने । प्रातःस्नानं करिष्यामि निर्विघ्नं कुरु राघव ॥३५॥
 चैत्रेऽथ मीनगे भानौ प्रातःस्नानपराश्रमः । प्रथमं तेऽहं प्रदास्यामि गृहाण रघुनायक ॥३६॥
 गंगायाः सरितः सर्वास्तीर्थानि जलदा नदाः । प्रतिगृह्य मया दत्तमध्ये सम्यक् प्रसीदथ ॥३७॥
 ब्रह्माद्या देवताः सर्वा कपयो ये च वैष्णवाः । ते गृह्यंतु मया दत्तं प्रसीदत्वर्घ्यदानतः ॥३८॥

उसे दाऊन आप देकर वे देवता अपने स्नानको चले जाते हैं । अतएव हे शिष्य ! इस समय अवश्य स्नान करना चाहिए । ॥ २५ ॥ चैत्रके समान कोई मास नहीं है, सत्ययुगके समान कोई युग नहीं है, वेदके समान कोई शास्त्र नहीं है, गंगाके समान कोई तीर्थ नहीं है, जलदानके समान कोई दान नहीं है, मायिके समान कोई सुख नहीं है, उसी तरह चैत्रके समान और कोई वस्तु पवित्र नहीं है ॥ २६ ॥ २७ ॥ इसीलिए यह चैत्रमास सदा विष्णुभगवान्का प्रिय रहा है । आ मनुष्य बिना प्रत किसे ही यह मास बित्त देता है, वह चंडाल होता है ॥ २८ ॥ जिस तरह कि सर्वगुणसम्पन्न होकर भी बिना छाजनके घर नहीं अच्छा लगता, जिस तरह कि कोई कन्या सब सुलसर्णोंमें युक्त होती हुई भी जीवत्पतिका न हो तो वह नहीं अच्छी मालूम होती, जिस तरह कि नमस्के बिना शक अच्छा नहीं लगता, जिस तरह बिना उत्सवकी सभा नहीं अच्छी लगती, जैसे वस्त्रविहीन नारी नहीं शोभित होती, उसी तरह और-और मासोंमें धर्मकार्य करनेसे भी कोई लाभ नहीं होता अर्थात् वह व्यर्थ हो जाता है ॥ २९ ॥ ३० ॥ अतएव कोई भी मनुष्य हो, उसे चैत्रमासके धर्मका पालन करना ही चाहिए ॥ ३१ ॥ श्रीकृष्णसे पूछक् श्रीराम नहीं है और न श्रीरामसे पूछक् श्रीकृष्ण ही हैं । इसलिए यह उचित है कि चैत्रमासमें अधोध्यापुरीपालक श्रीरामचन्द्रजीका विधिबत् पूजन करे ॥ ३२ ॥ जब कि सूर्यदेव मीन राशिपर चले गये हों, उस समय प्रातःस्नान करके रामनामका जप करना चाहिए । जो ऐसा नहीं करता, वह नरकगामो होता है ॥ ३३ ॥ सारे चैत्रमासके देवता राम और सीता ही हैं । अतएव उस समय जो कुछ भी कार्य करे, वह सब उन्हींके उद्देश्यसे करे ॥ ३४ ॥ स्नानके पहले इस तरह प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि हे जानकीकांत ! हे राम ! सूर्यके मीन राशिपर जानेके अनन्तर ॥ चैत्रमासमें प्रातःस्नान करूँगा । कृपया मेरे इस पुनीत स्नानकार्यको निर्विघ्न समाप्त होते दीजिए ॥ ३५ ॥ आज सूर्यदेवके मीन राशिपर चले जानेके अनन्तर मैं प्रातःस्नान करके आपको अर्घ्य दूँगा । हे रघुनायक ! उसे आप स्वीकार करिएगा । गंगा आदि सब नदी, सारे तीर्थ, मेघ तथा नद आदिका जल लाकर मैं आपको धर्घ्य दूँगा कर रहा हूँ, इससे आप प्रसन्न हो ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ब्रह्मा आदि देवता, समस्त नदियाँ और सब वैष्णव

अथमः पापिनां शास्ता यम न्वं समदर्शनः । गृहाणाध्वं मया दत्तं यथोक्तफलदो ॥३९॥
 इति चाध्वं समर्प्य पश्चात्स्नानं समाधरेत् । शसती परिधायाय कृत्वा कर्माणि सर्वशः ॥४०॥
 जानकीकांतमभ्यर्च्य प्रयुनैर्नधुस्तंभैः । श्रुत्वा रामकथां दिव्यामेतन्मासप्रशंसिनीम् ॥४१॥
 कोटिजन्माजितात्पापान्मुक्तो मोक्षमवाप्नुयात् । चैत्रे यः कांस्यभोजी हि तथा चाश्रुतस्तत्कथः ॥४२॥
 न स्नातश्चाप्यदाता च नरकानेव विंदति । यथा माघः प्रयागे हि स्नातव्यः पुण्यमिच्छता ॥४३॥
 कार्तिकेऽपि यथा काश्यां पञ्चगङ्गाजले स्मृतः । द्वारकायां यथा प्रोक्तो वैशाखो माधवप्रियः ॥४४॥
 अयोध्यायां रामतीर्थे तथा चैत्रे प्रकीर्तितः । प्रयागे मासमात्रेण यस्फलं प्राप्यते नरैः ॥४५॥
 अयोध्यायां रामतीर्थे सकृत्स्नानेन तत्फलम् । वैशाखश्चादशमं पुण्यं यद्रोमतीजले ॥४६॥
 तत्पुण्यं सरयुतोषेऽयोध्यायां प्राप्यते नरैः । चैत्रे मासि त्रिभिः स्नानैः रामतीर्थे न संशयः ॥४७॥
 कार्तिके पञ्चगङ्गायां यैः स्नानं द्वादशब्दकम् । अयोध्यायां रामतीर्थे चैत्रे पक्षेण तत्फलम् ॥४८॥
 अयोध्या दुर्लभा लोके नराणां पापकारिणाम् । तावद्दर्जन्ति पापानि यावद्दृष्टा न ॥ पुरी ॥४९॥
 अयोध्याया यदाऽभावस्तदा रामकुतानि च । जगत्यां यानि तीर्थानि तत्र स्नानं विधीयताम् ॥५०॥
 यत्रायोध्यापुरी नास्ति स्नानार्थं सरयुर्न च । रामतीर्थं न यत्रास्ति तदा तीर्थेषु कारयेत् ॥५१॥
 तैलाम्ब्यं दिवास्वापस्तथा वै कांस्यभोजनम् । सत्त्वानिद्रा गृहे स्नानं निषिद्धस्य ॥ मङ्गलम् ॥५२॥
 चैत्रे ॥ वर्जयेदष्टौ द्विष्टं नक्तभोजनम् । चैत्रे मासे तु मध्याह्ने भ्रातृनां च द्विजन्मनाम् ॥५३॥
 पादावनेजनं कुर्याच्चद्वयं तु व्रतोत्तमम् । मार्गेऽध्वगानां यो मर्त्यः प्रपादानं च चैत्रके ॥५४॥

अथि मेरे इस अर्घ्यदानको ग्रहण करते हुए प्रसन्न हों ॥ ३९ ॥ हे पापियोंपर करनेवाले यमदेवता । समदर्शी हैं । मेरे इस अर्घ्यदानको ग्रहण करिए और यथोचित फल दीजिए ॥ ३९ ॥ इस तरह अर्घ्य समर्पण करनेके अनन्तर स्नान करे । तदनन्तर कपड़े बदलकर और कोई काम करना चाहिए ॥ ४० ॥ इसके बाद वसन्त ऋतुमें उत्पन्न फूलोंसे जानकीकान्तका पूजन करे और चैत्रमासको प्रशंसा करनेवाली कथायें सुने ॥ ४१ ॥ ऐसा करनेसे करोड़ों जन्मके एकत्रित पातक नष्ट हो जाते हैं । जो मनुष्य चैत्रमासमें कांस्यके पाषमें भोजन करता है और अच्छी-बुरी कथाएँ नहीं सुनता, ॥ किसी पवित्र तीर्थमें ॥ करता है और न दान ही देता है, उसे नरकके सिवाय और किसी गतिकी प्राप्ति नहीं होती । जिस तरह कि पुण्यप्राप्तिके लिए लोग माघमासमें प्रयागस्नान करते हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ जैसे कार्तिकमासमें काशीको पञ्चगङ्गामें स्नान करते हैं, जैसे वैशाखमासमें द्वारकाजीमें स्नान करते हैं, उसी तरह रामपक्षोंको चाहिए कि चैत्रमासमें अयोध्या-स्नान ॥ करे । एक महीना प्रयागमें स्नान करनेसे जो फल ॥ होता है, वही फल अयोध्याके रामतीर्थमें केवल एक बारके स्नानसे मिल जाता है । बारह बार वैशाखमासमें द्वारकाकी गोमती नदीमें स्नान करनेसे जो ॥ मिलता है, वही ॥ अयोध्याके सरयूजलमें स्नान करनेसे प्राप्त होता है । किन्तु वह फल ॥ मिलता है, जब चैत्र मासमें तीन बार रामतीर्थमें स्नान किया जाय ॥ ४४-४७ ॥ बारह बार तक कार्तिकमें काशीकी पञ्चगङ्गामें स्नान करनेसे जो फल प्राप्त होता ॥ वही फल केवल एक ॥ अयोध्या-की सरयूजीमें ॥ करनेसे प्राप्त होता ॥ ४८ ॥ पापियोंके लिए अयोध्या दुर्लभ तीर्थ है । पापगण तभी तक गर्जन करते हैं, जबतक प्राणी अयोध्यापुरीका दर्शन नहीं कर लेता ॥ ४९ ॥ यदि किसी भावुक भक्तको अयोध्या प्राप्त न हो सके तो रामचन्द्रजीने जिन तीर्थोंका निर्माण किया हो, वहाँपर स्नान करे ॥ ५० ॥ जहाँ कि ॥ अयोध्या है, न सरयूजी है और न कोई रामतीर्थ ही है । वहाँ जो कोई ॥ तीर्थ हो, उसीमें स्नान कर ले ॥ ५१ ॥ तैल लगाना, दिनमें सोना, कांस्यपात्रमें भोजन करना, चारपाईपर सोना, घरमें स्नान करना, किसी प्रकारका निषिद्ध भोजन, रात्रिके समय भोजन तथा दिनमें दो बार भोजन इन ॥ शर्तोंको चैत्रमासमें छोड़ देना चाहिए । चैत्रमासमें जो प्राणी दोपहरके समय बके हुए बाह्यणोंके पीर पीता है, वह मानो सर्वोत्तम कृत करता है । जो प्राणी चैत्रमासमें राहु चलनेवालोंको बल पिलाता है और रास्तेमें

मार्गे छायां तु यः कुर्यात्स स्वर्गे च महीयते । सुलिलं सलिलाकांक्षी छायां छायाभिच्छति ॥५५॥

व्यजनं व्यजनाकांक्षी दानमेतत् चैत्रके ।

जलं छत्रं तु व्यजनं दानं मीने विशिष्यते । चैत्रे मासे तु सप्राप आह्वय कुरुम्विने ॥५६॥

अदस्त्वोदककुम्भं तु चातकी भुवि जायते । चैत्रे देयं जलं चान्नं देया कुरुम्विने मनोरमा ॥५७॥

आदर्शदानं ताम्बूलगुडदानं प्रकाशयेत् । गोधूमनुवरादानं दानं दध्यादनस्य च ॥५८॥

घृतयुक्तं कांस्यपात्रं दानमिच्छुग्मस्य च । तथा श्रीफलदानं च दानं चाप्रफलस्य च ॥५९॥

सहस्रवस्त्रमचकयोः पानपात्रं कमण्डलुम् । यतानां दण्डदानं वै तेलदानं मटेषु च ॥६०॥

जीर्णोद्धारं मठानां च घंटानां करणं तथा । ग्रामादकरणं चैत्रे वार्पाकृपादिकं तथा ॥६१॥

मार्गस्थानां छत्रदानं मध्याह्नेऽतिथिपूजनम् । करपात्रं यतीनां च गोश्रासं तु गवामपि ॥६२॥

एतानि चैत्रमासे तु दानानि कथितानि हि । फलं शाकं तु मूलं च फटं पुष्पं तु चन्दनम् ॥६३॥

उशीरः शीतलं द्रव्यं कर्पूरं कस्तूरी शुभा । दीपदानं धेनुदानं गेहदानं तथा स्मृतम् ॥६४॥

गोरसानां पृथग्दानं यतिब्राह्मणभोजनम् । मुनिमिर्नापूजनं च रामनामप्रलेखनम् ॥६५॥

पुस्तकानां तथा दानं तथा कुङ्कुमकेसरं । जनाफलं लवणाश्च जातिपर्वाभिरांगके ॥६६॥

घातकीं नागरं धूपं बीजपूरं कलिमकरम् । ज्वरं पनसश्च कपित्थं मातुलंगकम् ॥६७॥

कृष्माण्डदानमागमकरणं मायेशोधनम् । तथोषानहदानं च गजवाजिमवं तथा ॥६८॥

एतानि चैत्रमासे तु दानानि कथितानि हि । यानि चैत्रे तु वज्यानि तानि ते प्रवदाम्यहम् ॥६९॥

सर्वाणि चैव मासानि शौद्रं सौभाग्यं तथा । राजमापादिकं चापि चैत्रस्नायी प्रवर्जयेत् ॥७०॥

परान्नं च परद्रोहं परदारागमं तथा । तार्धघ्नानि सर्वेह चैत्रस्नायी प्रवर्जयेत् ॥७१॥

द्विदलं तिलतेलं च तथाऽन्नं अल्पदूषितम् । भावदुष्टं अन्ददुष्टं चैत्रस्नायी तु वर्जयेत् ॥७२॥

छायाका प्रबन्ध करता है, वह स्वर्गलोकमें जाकर वहीवालोंके द्वारा पूजित होता है । इस मासमें लोगोंको चाहिए कि जो मनुष्य पत्नी चाहता हो, उसे पत्नी दे । जो छायाका इच्छुक हो, उसे छाया दे । जो पानी चाहता हो, उसे पानी पिलाये । यह दान विशेष करके चैत्रमासके लिए बड़ा ही उपयोगी है । जो मनुष्य चैत्रमास आनेपर किसी कुटुम्बी ब्राह्मणको जलभरा घटदान नह देता, वह मरकर होता है । इसीलिए चैत्रमासमें जल, अन्न तथा नन्दर शय्याका देना चाहिये ॥ ५२-५७ ॥ इनके अतिरिक्त दर्पणका दान, ताम्बूल और गुडका दान, गेहूँ, तोरी, दही, चावल, घाँसे भरे हुए कांस्यपात्रका दान, ऊँसके रसका दान, बेलका दान, आमका दान, महीन कपड़े और पलंगका दान, जल पीनेका पात्र, कमण्डलु तथा सन्यासियोंके लिये दण्डदान, मठोंमें तेलका दान, मठोंका जीर्णोद्धार, घंटाघर बनवाना, बनवाना, कुर्मी-बावली आदि बनवाना, मार्गमें चलनेवालोंके लिये छत्रदान, दोपहरके समय अतिथियोंका पूजन, यतियोंका कमण्डलु-दान और गौओंको गोश्रासदान ये चैत्रमासके वतलाये गये हैं । इनके अतिरिक्त चैत्रमासमें ये दान और वतलाये गये हैं । जैसे-फल, शाक, मूल, कन्द, पुष्प, चन्दन ॥ ५८-६३ ॥ खस, इसी तरह और-और ठण्डी चीजें, कपूर, कस्तूरी, दीपदान, धेनुदान, गृहदान, गोरसदान, यतियों और ब्राह्मणोंको भोजनदान, सोहरागिन स्त्रियोंका पूजन, रामनामका लेखन, पुस्तकदान, कुम्भकुम्भ और केसरका दान, आयफल, लौंग, जावित्री ॥ ६४-६९ ॥ घातकी, नागरमोथा, धूप, बीजपूर, तरबूज, जम्बीरो नींबू, कटहल, कौआ, कृष्माण्डदान, धगी व लगवाना, रास्ता साफ करवाना, जूतेका दान, हाथी एवं घोड़ेका दान, ये सब दान चैत्रमासके लिए कहे गये हैं । तुम्हें यह वतलाता हूँ कि चैत्रमासमें किन-किन वस्तुओंका परित्याग करना चाहिए ॥ ६७-६९ ॥ चैत्रमास करनेवालेको सब प्रकारके मांस, मधु, कांजो एवं राजमाष आदि वस्तुओंका परित्याग कर देना चाहिए ॥ ७० ॥ दूसरेका बघ्न, दूसरेसे द्रोह और दूसरेकी स्त्रीके समागम, चैत्रस्नायी इन कामोंको सर्वदाके लिए छोड़

देवदेवद्विजानां च गुरुगोत्रतिनां तथा । स्त्रीराजमहतां निंदां चैत्रस्नायी विवर्जयेत् ॥७३॥
 प्राण्यमामिष चूर्णं फले जंवीरमामिषम् । धान्ये मसूरिका प्रोक्ता चान्नं पर्युषितं तथा ॥७४॥
 मक्षचयमवःसुप्तेः पत्रावल्यां च भोजनम् । चतुर्थेकाले भुञ्जीत कुर्यादेवं सदा व्रती ॥७५॥
 संवत्सरप्रातर्पादं तैलाभ्यंगं तु कारयेत् । चैत्रस्नायी नरोऽन्यत्र तैलाभ्यंगं न कारयेत् ॥७६॥
 अलावु चापि वृक्षाकं कूष्माण्डं वृहतीफलम् । श्लेष्मानकं कलिंगं च कपित्थं चैव वर्जयेत् ॥७७॥
 रजस्वलां त्यज्य श्लेच्छपतितघ्रातकैः सह । द्विजद्विड्वेदवाह्यैश्च न वदेत्सर्वदा व्रती ॥७८॥
 पलाङ्गुं लशुनं चैव छत्राकं गृजनं तथा । नालिकामूलकं शिग्रुं चैत्रस्नायी विवर्जयेत् ॥७९॥
 एभिः स्पृष्टं भवार्कैश्च घृतकान्नं च व्रजेत् । द्विपाचितं च दग्धान्नं चैत्रस्नायी विवर्जयेत् ॥८०॥
 एतानि व्रजेयेन्नित्यं व्रती सर्वत्र तेष्वपि । कुच्छ्राणं च प्रकुर्वीत स्वशक्त्या रामतुष्टये ॥८१॥
 क्रमात्कूष्माण्डवृहतीछत्राकं मूलकं तथा । श्रीफलं च कलिंगं च फल धात्रीभवं तथा ॥८२॥
 नारिकेलमलावुं च पटोलं बदरीफलम् । चर्मवृन्ताकं वल्लीशाकं तुलसिजं तथा ॥८३॥
 शाकान्येता न व्रज्यानि क्रमान्प्रतिपदादिषु । धात्रीफलं रवीं तद्वद्वर्जयेत्सर्वदा गृही ॥८४॥
 एभ्योऽन्यद्वर्जयेत्किञ्चित्प्रातर्प्रातये नरः । दद्यात् व्रतांते विप्राय मक्षयेत्सर्वदैव हि ॥८५॥
 फल्गुनीपूर्णिमामभ्य यावच्चैत्रो तु पूर्णिमा । चैत्रस्नानं च तावद्वि नरैः कार्यं च मक्तिनः ॥८६॥
 अथवा मीनगो मातुर्प्रातर्प्रातःप्रकारयेत् । दशमीं फाल्गुनीं शुद्धां समाभ्य मधोः सिता ॥८७॥
 यावद्भवेत् दशमी तावत्स्नानं प्रकाशयेत् । स्नानस्यैवं त्रयो भेदाः शिष्य ते समुदीरिताः ॥८८॥
 चैत्रशुक्लद्वितीयाया यावद्दशासप्तम्या । तृतीया शुक्लपक्षस्य द्वादश्यायेति स्मृताऽत्र या ॥८९॥

दे । क्योंकि ये तीर्थोंके सब पुण्योंकी तरह करनेवाले उत्पात हैं ॥ ७३ ॥ दाल, तिलका तेल, कंकड़-मत्पर मिला हुआ अन्न, भावसे दूषित और शब्ददूषित अन्नोंको चैत्रस्नायी मनुष्य न खाये ॥ ७४ ॥ देवता, देव, ब्राह्मण, गुरुजन, गोश्रुती, स्त्री, राजा और अपनेसे बड़ोंको निन्दाका भी परित्याग कर देना चाहिए ॥ ७५ ॥ प्राणियोंके अङ्गका मांस, मांस-मरस्यका चूर्ण, फलोंमें बंधारों नोड़ू, धान्योंमें मसूर और जूठा अन्न ये मांसतुल्य होते हैं । इसलिए इनको न खाये । बह्मचर्य, पृथ्वीपर शयन, पत्तलमें भांगम और चौधे पहरमें भोजन करता हुआ व्रती मनुष्य इन नियमोंका बराबर पालन करे ॥ ७६ ॥ ७५ ॥ केवल संवत्सरको समाप्तिवाली प्रतिपदाको शरीरमें तेल लगाये और किसी नहो ॥ ७६ ॥ लौवा, भंडा, कुम्हड़ा, छोटा मण्टा, रिसाड़ा, तरबूज तथा कंथा, इन वस्तुओंको न खाना चाहिए ॥ ७७ ॥ श्लेच्छ, पतित, रजस्वला, चाण्डाल, द्विजद्वेषा तथा वेदसे बहिष्कृत मनुष्योंसे बात भी न करे ॥ ७८ ॥ प्याज, लहसुन, छत्राक (भुईंफोर), नाजर, मूली तथा सहिजन इन वस्तुओंको भी चैत्रस्नायी मनुष्य न खाये ॥ ७९ ॥ ऊपर बतलाये पतितों, कुत्ते तथा कौएसे संपृष्ट एवं घृतकं अन्नका भी परित्याग कर देना चाहिए । दो बारका और जला हुआ अन्न भी चैत्रस्नायी मनुष्य न खाये ॥ ८० ॥ ऊपर बतायी चैत्र न खाये और अपनेसे बड़ों पर पड़े तो रामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेके लिए कुच्छ्राणद्वायण आदि भी करे ॥ ८१ ॥ कुम्हड़ा, भंडा, भुईंफाड़, मूली, बेल, तरबूज, आंवलेका फल, नारियल, लौआ, परवल, बैर, चर्मवृन्ताक, वल्लीशाक और तुलसी, इन्हें क्रमशः प्रतिपदा आदि तिथियोंको न खाये । उसी तरह रविवारको धात्रीफल (आंवला) न खाये ॥ ८२-८४ ॥ इनके अतिरिक्त भी रामको प्रसन्न करनेके लिए अपनी तरफसे कुछ वस्तुओंका परित्याग कर दे । किन्तु व्रतसमाप्तिके अनन्तर ब्राह्मणको उस वस्तुका दान देकर खाये तो कोई हर्ज नहीं है ॥ ८५ ॥ फाल्गुनकी पूर्णिमासे लेकर चैत्रकी पूर्णिमा पर्यन्त मतिपूर्वक चैत्रस्नानका करना चाहिये ॥ ८६ ॥ अथवा सूर्य मीन राशिपर रहे, तबतक घृत करता रहे । फाल्गुन कृष्णपक्षकी दशमीसे लेकर चैत्रशुक्लकी दशमी तक स्नान करना चाहिए । इस तरह हे शिष्य ! इस चैत्रस्नानके भेद भेद तुमको बतलाये ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ चैत्रशुक्लकी तृतीयासे लेकर वैशाख शुक्लपक्षकी

तावच्च शीतला गौरी स्नातव्या सुखलब्धये । शीतार्थं तु नारीभिः पूजनीया च जानकी ॥९०॥
 तृतीया या तु चैत्रस्य सितपक्षोद्भवा तथा । वैशाखशुक्लपक्षे या तृतीयाऽध्वन्यसंज्ञिका ॥९१॥
 नारी या शीतलागौरीव्रतस्नानपरायणा । अभ्यर्च्य सा कोन्वनयोस्तिथ्योर्नान्यदिते कदा ॥९२॥
 त्रिंशच्च तिथयः पुण्याश्चैत्रमासे महत्तमाः । तथापि हि विशेषोऽत्र तिथीनां वर्ण्यते यथा ॥९३॥
 चैत्रमासे कृष्णपक्षे पंचमी दशमी तथा । एकादशी द्वादशी च शिवरात्रिरुत्तमा तथा ॥९४॥
 एताः शुभाश्चैत्रकृष्णे महापातकनाशनाः । इदानीं चैत्रमामस्य सितपक्षोद्भवाः शुभाः ॥९५॥
 वर्ण्यन्ते तिथयः श्रेष्ठा नराणां हितकाम्यया । सर्वत्तरप्रतिपदपारम्प दशमीदिनम् ॥९६॥
 यावत्तावच्छुभाः सर्वाः स्नानदानादिकर्मणि । यत्कृतं च प्रतिपदि स्नानदानव्रतादिकम् ॥९७॥
 द्वितीयायां च तस्योक्तं द्विगुणं नात्र संशयः । यत्कृतं च द्वितीयायां भक्त्या स्नानादिकं नरैः ॥९८॥
 द्विगुणं तत्तृतीयायां चैत्रमासे नृपोत्तम । एवं सर्वांस्तु तिथिषु यावत्स्वाश्रयार्था शुभा ॥९९॥
 एतं विशेषो ज्ञातव्यो यथाऽद्यादिक्षुचर्चणात् । यथा र्क्षागदधि योक्तं दधनस्तु नवर्नानकम् ॥१००॥
 नवर्नानादुधतं यद्वत्तथाऽत्र तिथिनिर्णयः । चैत्रमासस्तु मासानां तत्र पक्षः सितो वरः ॥१०१॥
 सितपक्षे कर्मणैव यावत्सा नवमी तिथिः । तावदेकंकशः श्रेष्ठा सर्वास्तु नवमी वरा ॥१०२॥
 यस्यां जातं रामजन्म धर्मसंस्थापनाय हि । तस्मात्तिथिस्तु सा ज्ञेया कर्मनिर्मूलनक्षमा ॥१०३॥
 तस्यां दत्तं हुतं जप्तं यत्किञ्चिच्च कृतं शुभम् । सर्वं तदक्षयं विद्यान्मात्रं कार्या विचारणा ॥१०४॥
 प्रतिपदिनमारम्भ नवरात्रमुपोषवेन । अन्येऽहं रघुवीरस्य पूजनं चैव कारयेत् ॥१०५॥
 सर्वत्तरप्रतिपदि ज्वलाः सौधोपरि स्थिताः । दिव्यवस्त्रैश्च माल्यैश्च मण्डिताश्च मनोरमाः ॥१०६॥

अक्षयसुतीया तक इस संसारमें जातला गौरीका निवास रहता है । इसलिए तिथियोंका सव्यवस्थितके लिए शीतार्थमें जरूर स्नान तथा सोताजोंका पूजन करना चाहिए ॥ ८८ ॥ ९० ॥ चैत्रशुक्लपक्षका तृतीया तथा वैशाखशुक्लकी तृतीया ये दोनों तृतीयायें अक्षयसंज्ञक मानी गयी हैं ॥ ९१ ॥ अतएव जो नारायण शीतला गौरीया पत कर रही हो, उसे चाहिए कि इन दोनों तिथियोंको शरीरमें लेन लगाये । इनके सिवाय और किसी अन्य दिनमें ऐसा करना वर्जित है ॥ ९२ ॥ चैत्र मासचैत्रमासकी तीनों तिथियाँ वर्जित हैं । फिर भी इनमें जो विशेषता है, उसे मैं तुमको सुनाता हूँ ॥ ९३ ॥ चैत्र कृष्णपक्षको पंचमी, दशमी एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, अमावस्या, ये चैत्र कृष्णपक्षकी तिथियाँ बड़ी पवित्र और महात् पातकोंका नाश करनेवाली कही गयी हैं । अब मैं चैत्रके शुक्लपक्षकी शुभ तिथियाँ गिना रहा हूँ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ इससे अनुष्ठानोंका बड़ा कल्याण होगा । यह मेरा हृदयविश्वास है । सर्वत्तर-समाप्तिको प्रतिपदासे लेकर दशमी पर्यंत जितना तिथियाँ हैं, वे सब स्नान दान आदि कर्मोंमें शुभ कही गयी हैं । उनमें भी प्रतिपदाको स्नान-दान आदि करनेका जो फल शास्त्रोंमें कहा गया है, उसमें द्वितीया द्विगुणित फलदायक होती है । द्वितीयाको जो फल कहा है, उससे तृतीयामें द्विगुणित फल होता है । इस तरह नवमी तिथि पर्यंत सब तिथियाँ श्रेष्ठ हैं । इनमें इसी प्रकारकी विशेषता है कि जैसे जैसे रस प्रथम गाँठमें लेकर आखिरी गाँठतक क्रमशः मोटा होता है । जैसे गीसे दूध होता है, दूधसे दही तैयार होता है, दहीसे भक्खन निकलता है और भक्खनसे घी तैयार होता है । उसी तरह यही तिथियोंका भी निर्णय होता है । पहले तो सब मासोंमें चैत्रमास ही श्रेष्ठ है । उनमें शुक्लपक्ष श्रेष्ठ है और शुक्लपक्षमें भी प्रतिपदासे लेकर नवमी तककी तिथियाँ श्रेष्ठ हैं । उनमें भी नवमी तिथि सर्वश्रेष्ठ तिथि है ॥ ९६-१०२ ॥ नवमी तिथिको घर्मकी स्थापना करनेके लिए रामका जन्म हुआ था, इसीसे यह तिथि समस्त कर्मोंको नष्ट करनेवाली मानी गयी है ॥ १०३ ॥ उसमें जो कुछ दान दिया जाता, हवन किया जाता, तप किया जाता अथवा जो कोई भी शर्म कर्म किया जाता है, वह असफल होता है । इसमें संशय कोई करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ १०४ ॥ इसलिए लोगोंका चाहिए कि प्रतिपदा तिथिसे लेकर नौ रात्रिक उपवास करके रामचन्द्रजीका पूजन करे ॥ १०५ ॥ सर्वत्तरकी प्रतिपदाको भक्तिके उमर दिव्य वस्त्र

रामजन्मसूचनार्थं प्रीत्यर्थं राघवस्य च । गृहे गृहे नरैः कार्याः पूजनीयाश्च भक्तितः ॥१०७॥
 गृहे देवालये वाऽथ गोष्ठे वृन्दावने शुभे । संमार्जनादिकं नित्यं कार्यं चन्दनवारिमिः ॥१०८॥
 ततः पापघर्षणैश्च नानापद्मादिकानि हि । लेखनीयानि भूम्यां तु नीलपीतादिवर्णकैः ॥१०९॥
 अष्टोत्तरसहस्राक्षं रामतोभद्रमुत्तमम् । शनाक्ष्य वा लिखेद्भद्रमथवाऽन्यन्मनोरमम् ॥११०॥
 तस्योपरि महान् रम्यश्चित्रवर्णश्च मण्डपः । देव्यां द्वाराणि चत्वारि कार्याणि तोरणानि च ॥१११॥
 कदलीमृन्मयूक्तानि ह्रींक्षुद्रण्डयुतानि च । नानावण्टाकिंकिणीभिर्ध्वनितान्युज्ज्वलानि च ॥११२॥
 रम्यादर्शमण्डितानि विचित्राणि शुभानि च । नानाचित्रचितानैश्च मुक्ताहारैर्युतानि च ॥११३॥
 तस्यां षोडशमार्गैश्च प्रतिमां काचनोद्भवा ॥११४॥

द्विभुजा रामचन्द्रस्य सर्वलक्षणलक्ष्मिना । चतुर्विंशतिमार्गैश्च प्रतिमां रजतोद्भवा ॥११५॥
 कौशल्यायाः शुभा कार्या पूजनीया मनोरमा । यथाविज्ञानुसारेण पूजयेत्प्रत्यहं नरः ॥११६॥
 भेरीमृदंगनूयैश्च गीतनृत्यादि कारयेत् । नानापद्माभर्नवैद्यैरुपचारैः सुपूजयेत् ॥११७॥
 प्रतिपदिनमारभ्य यावत् नवमीदिनम् । रामायणं तावदेव पठनीयमिदं शुभम् ॥११८॥
 यद्वै वाल्मीकिना गीतं श्रवणान्मंगलप्रदम् । आनन्दमङ्गलं रम्यं पठनीयं मनोरमम् ॥११९॥
 नव कांडानि नवभिर्दिनैरेव पठेन्नरः । दिवसे दिवसे कांडं पठनीयं प्रयत्नतः ॥१२०॥
 अथवा प्रत्यहं सर्गः पठितव्यास्तु द्वादश । उपस्त्वेकः कदा मध्येऽधिकः सोऽपि पठेन्नरः ॥१२१॥
 अष्टोत्तरशतैः सर्गैः रामकीर्तनमालिका । मेरुयुक्ता पटेदेवं रामाग्रे नवभिर्दिनैः ॥१२२॥
 सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वदानेषु यत्फलम् । रामायणस्य पठनात्तत्फलं नवरात्रके ॥१२३॥

और माला आदिसे अलंकृत ध्वजायें रामजन्मकी सूचक तथा रामको प्रसन्न करनेके लिए घर-घर स्थापित करके भक्तिपूर्वक उनका पूजन करना चाहिए ॥१०६॥१०७॥ घरमें, देवालयमें, गोशालामें तथा तुलसीकी बगीची-में उन दिनों चन्दनके जलका छिड़काव करना चाहिए ॥ १०८ ॥ इसके बाद पत्थरके चूर्णसे नील-पीत आदि वर्णोंवाले कमल आदि बनाने चाहियें । तदनन्तर अष्टोत्तरसहस्रात्मक रामतोभद्र या शातात्मक अथवा जो अपनेको अच्छे, उस भद्रका रचना करे ॥ १०९ ॥ ११० ॥ उसके ऊपर अतिशय सुन्दर चित्र-विचित्र वर्णोंका मण्डप करावे । उस मण्डपमें चार द्वार बनावे और न्यान-स्थानपर तोरणकी स्थापना करे ॥ १११ ॥ जहाँ-तहाँ केलेके लक्ष्में तथा श्शुद्रण्ड गढ़े करे । उनमें तरह-तरहके घण्टे और किंकिणी आदि लगावे, जिनकी मधुर ध्वनि सुनार्थी पड़ती रहे ॥ ११२ ॥ जहाँ-तहाँ सुन्दर और चहुँ-चढ़े शीशे लगा दे, विविध प्रकारके चित्र लगावे, तरह-तरहकी चांदना छत्रों लगावे और मोतियोंके श्रृंग लटकावे । उसमें सुवर्णमय एवं रत्नमण्डित मंचका रचना करे और उसपर अच्छे-अच्छे कपड़ोंका मनोरम ढागा बिछावे । फिर उसपर सोलह पासेकी काचनमयी प्रतिमा स्थापित करे ॥ ११३ ॥ ११४ ॥ रामचन्द्रजीकी वह सुवर्णमयी प्रतिमा सुलक्षणोंसे लक्षित होनी चाहिए । इसके अनन्तर चौकीस पलकी रजतमयी प्रतिभा कौसल्याकी बनावे और उसकी पूजा करे । जैसी अपनी सामर्थ्य हो, उनके अनुसार प्रतिदिन पूजन करे ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ उनके सामने भेरी, मृदंग, नुडही आदि बाजे बजावे और नाचे-गावे । नाना प्रकारके नैवेद्यों और उपचारोंसे पूजन करे ॥ ११७ ॥ प्रतिपदा तिथिसे लेकर नवमी तिथि पर्यन्त इस आनन्दरामायणका पाठ करे ॥ ११८ ॥ इसका वाल्मीकि मुनिने गान किया है । यह सुननेमें मंगलप्रद और मनोरम है । इससे इसका पाठ आवश्यक है ॥ ११९ ॥ इसके नौ कांडोंको नौ दिनोंमें समाप्त करना चाहिए । पाठ करनेवालेको चाहिए कि प्रयत्नपूर्वक प्रतिदिन एक-एक कांडका पाठ करे ॥ १२० ॥ यदि ऐसा न हो सके तो प्रतिदिन बारह सर्गोंका पाठ करे । ऐसा पाठ करनेसे एक सर्ग वाकी बचेगा । उसे बीचमें किसी रोज पूरा कर देना चाहिए ॥ १२१ ॥ इस तरह अष्टोत्तरशत सर्गात्मक इस रामकीर्तन-मालिकाका नौ दिनोंमें रामचन्द्रजीके समक्ष करना चाहिए ॥ १२२ ॥ सब

श्लोक ■ श्लोकपाद ■ यद्रामायणसंभवम् । नवरात्रे पठिष्यन्ति चैत्रे ते मोक्षभागिनः ॥१२४॥
 एवं हि प्रत्यहं कार्यं कौसल्यारामपूजनम् । सपुत्राणां तु नारीणां तत्र कार्यं प्रपूजनम् ॥१२५॥
 सपुत्रद्विजवर्षाणां विशेषास्त्वजनं स्मृतम् । पञ्चाक्षरलङ्कारयुतं विप्रभोजनभोजितम् ॥१२६॥
 एवं कृत्वा विधिं सर्वं नवम्यां च विशेषतः । पूजयित्वा रामचन्द्रं ब्राह्मणरूढमुत्तमम् ॥१२७॥
 भेरीमृदंगघोषैश्च तुर्यदुन्दुमिनिःस्वनैः । शरस्रोक्तनृत्यैश्च गायकानां च गायनैः ॥१२८॥
 एवं नानासमुत्साहैर्मंडितं स्रजशोभितम् । धामरैर्वीज्यमानं च पुष्पकैः संस्थितं वरम् ॥१२९॥
 रामतीर्थार्थिकं नीत्वा पञ्चामृतघटैर्वरैः । स्नापयेद्रघुकीरं हि पुष्पतोयैस्ततः परम् ॥१३०॥
 रुद्रसूक्तविष्णुसूक्तैः सहस्रैर्नामभिस्तु वा । मांगल्यद्रव्यमग्निर्जलैस्तमभिषेचयेत् ॥१३१॥
 मांगल्यवरद्रव्यैश्च युक्तं तन्मंगलाभिषम् । प्रोच्यते मंगलस्नानं तत्त्वज्ञे दुर्लभं नृणाम् ॥१३२॥
 तत्पञ्चामृततीर्थं तु तीर्थमग्नये विनिधिषेत् । तत्र सर्वैर्जनैः शीघ्रं स्नातव्यं तदनन्तरम् ॥१३३॥
 सहस्रावभृथस्नानैर्यत्फलं प्राप्स्यते नरैः । तत्फलं रामचन्द्रस्य मंगलस्नानकारणात् ॥१३४॥
 पुष्करादिषु तीर्थेषु गङ्गाद्यासु सन्तिस्तु च । प्राप्स्यते यत्फलं स्नानान्मङ्गलस्नानकृत्स्नं यत् ॥१३५॥
 एवं रामं तु संस्नाप्य सीतायुक्तं प्रपूज्य च । पुनः पूर्वोक्तवाद्यादि मंगलैरानयेद्गृहम् ॥१३६॥
 गृहे रामं पुनः पूज्य रामायणकृतं वरम् । पारायणं समाप्याथ पुस्तकं पूजयेच्छुभम् ॥१३७॥
 मानोत्सर्वैर्दिनं नीत्वा कार्यं जागरणं निशि । दशम्यां प्रातस्तथाय भोजयित्वा द्विजान् गृहम् ॥१३८॥
 पूजयित्वा पुनः सर्वं गुरवे तन्निवेदयेत् । ततः स्वयं सुहृन्मित्रैः कुर्याद्भोजनमुत्तमम् ॥१३९॥
 एवं व्रतं समाख्यातं चैत्रस्य नवरात्रके । अतस्तन्नवरात्रं हि श्रेष्ठं चैत्रं महत्तमम् ॥१४०॥
 नवरात्रेऽपि ■ रामनवमी परमार्थदा । तत्समाना तिथिर्नान्या चैत्रमासे शुभप्रदा ॥१४१॥

तीर्थोंमें और सब दानोंमें जो पुण्य है, वही ■ नवरात्रमें इस रामायणके पाठ करनेमें है ॥ १२३ ॥ नवरात्रमें जो लोग एक श्लोक अथवा श्लोकके एक चरणका भी पाठ करेंगे, वे मोक्षके भागी होंगे ॥ १२४ ॥ इस तरह प्रतिदिन कौसल्या और रामका पूजन करना चाहिए । उस समय पुत्रवती स्त्रीके पूजनका विधान है ॥ १२५ ॥ इस अवसरपर पुत्रवान् ब्राह्मणोंके भी पूजनका विशेष महत्त्व माना गया है । पूजनके बाद उन्हें विविध प्रकारके वस्त्र, मलङ्कार और तरह-तरहके भोजन दे ॥ १२६ ॥ इस विधिसे नवरात्रमें विशेषकर नवमां तिथिको ब्राह्मणपर ब्राह्मण रामका पूजन करके भेरी, मृदंग, तुड़ही, दुन्दुभी आदिके गम्भीर तिनार, गणिकाओंके नृत्य, गायकोंके गायन आदि नाना प्रकारके उत्साहोंसे मंडित, सुन्दर छत्रसे सुशोभित, धामरसे अलंकृत, पुष्पक विमानपर भाहट रामचन्द्रजीको रामतीर्थपर ले जाकर पञ्चामृतके पड़ों तथा पवित्र जलोसे स्नान करावे ॥ १२७-१३० ॥ स्नान कराते समय रुद्रसूक्त, विष्णुसूक्त अथवा सहस्रनामावलीका पाठ करता जाय । पहले ही जलमें विविध प्रकारके मङ्गलद्रव्य मिला ले ॥ १३१ ॥ इस तरह मङ्गलद्रव्य मिले जलसे स्नान करनेको मङ्गलस्नान कहते हैं । यह चैत्रमासमें किया जाता है और बड़ी कठिनाईसे लोगोंको ऐसा सुयोग प्राप्त होता है ॥ १३२ ॥ उस स्नानके पञ्चामृतको किसी तर्बमें डाल दे और पूजामें जितने लोग सम्मिलित हुए हों, वे ■ उस तीर्थमें जाकर स्नान करें । सभी प्राणोंको मङ्गलस्नानका फल प्राप्त होता है ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ पुष्कर आदि तीर्थों तथा गङ्गा आदि नदियोंमें स्नान करनेसे जो फल मिलता है, वही फल मङ्गलस्नान करनेवालेको प्राप्त होता है ॥ १३५ ॥ इस तरह सीता समेत रामको स्नान कराकर उनको पूजा करे और पूर्वोक्त वाद्य-गायकोंके साथ फिर उन्हें अपने घर ले आवे ॥ १३६ ॥ घरपर रामको लाकर उनकी पूजा करे । तदनन्तर आनन्दरामायणका पारायण समाप्त करके पुस्तकको पूजा करे ॥ १३७ ॥ माना प्रकारके उत्सव मनाता हुआ दिन बिताये और रात-भर जागरण करे । दशमीको सबेरे उठे और निरयकृत्यसे निवृत्तकर बहुतरे ब्राह्मणोंको भोजन करावे ॥ १३८ ॥ इसके बाद बुद्धी पूजा करके उन्हें सब वस्तुयें दान दे । तत्पश्चात् सम्प्रतिषिद्धों और मित्रोंके साथ स्वयं भोजन करे ॥ १३९ ॥ चैत्रके नवरात्रमें इस तरह व्रत करनेका विधान बतलाया गया है । इसीलिए लोगोंने चैत्रके

अतः परं प्रवक्ष्यामि चैत्रोद्यापनकं विधिम् । यत्कृत्वा सफलं सर्वं चैत्रस्नानं तु जायते ॥१४२॥
 चैत्रे मासि सिते पक्षे या वै श्लोकादशी तिथिः । सर्वासु तिथिषु श्रेष्ठा चोपोष्या व्रतकारिणिः ॥१४३॥
 श्रेष्ठा सा द्वादशी ज्ञेया तस्यां तु यमपूजनम् । कार्यं दण्डोदनं दत्त्वा जलकुंभः प्रदीयताम् ॥१४४॥
 तिस्रश्च तिथयः श्रेष्ठाश्चैत्रे मासि महत्तमाः । त्रयोदशी तथाभूता पौर्णमासी तथैव च ॥१४५॥
 यासु स्नानञ्च दानं च सर्ववाञ्छितदायकम् । यैर्न स्नानं चैत्रमासे न स्नानं नवरत्रके ॥१४६॥
 तैस्तु चात्यदिने स्नान्वा चैत्रस्नानफलं लभेत् । तासु श्रेष्ठा पौर्णिमा हि सर्वपातकनाशिनी ॥१४७॥
 तस्यामुद्यापनं प्रोक्तं चैत्रस्नानफलमाप्ते । उपोष्य च चतुर्दश्यां पूर्ववन्मण्डपादिकम् ॥१४८॥
 कृत्वा तस्मिन् धान्यराशीं फलशं वारिपूरितम् । स्थापयित्वा तदुपरि हेमपात्रं सुविस्तृतम् ॥१४९॥
 पञ्चरत्नयुतं स्थाप्य वस्त्रेणाच्छादयेच्च तत् । तस्मिन्मीतायुतं रामं सौवर्णं विधिपूर्वकम् ॥१५०॥
 भ्रातृभिर्वायुपुत्रेण सुग्रीवेण समन्वितम् । विभीषणांगदाभ्यां न जाविवत्सहितं तथा ॥१५१॥
 पूजयेद्देवदेवेशं परमं गुर्वनुजया । उपचारैः षोडशमिर्नानाभक्ष्यसमन्वितैः ॥१५२॥
 राशौ जागरणं कुर्याद्भोजनवाद्यादिमंगलैः । ततस्तु पौर्णमास्यां सपत्नीकान् द्विजोचमान् ॥१५३॥
 त्रिंशन्मितानश्वैकं वा स्वशक्त्या वा निमन्त्रयेत् । ततस्तान्भोजयेद्विभान्यायसान्नादिना वनी ॥१५४॥
 भूतो देवा इति दास्यां जुहुयात्तिलमपि वा । शीतपयं देवदेवस्य देवातां च पृथक् पृथक् ॥१५५॥

दक्षिणां च यथाशक्त्या प्रदद्याच्च ततो नमेत् । पुनर्देवं समभ्यर्च्य देवांश्च तुलसीं तथा ॥१५६॥
 ततो गां कपिलां तत्र पूजयेद्विधिना व्रती । गुरुव्रतोपवेशरं वस्त्रालंकारमण्डनैः ॥१५७॥
 सपत्नीकं समभ्यर्च्य ततो विप्रान् क्षमापयेत् । पुष्पधूपसादादेवेशः सुप्रसन्नोऽस्तु वै मम ॥१५८॥

नवरात्रको बहुत ही श्रेष्ठ माना है ॥ १४० ॥ नवरात्रमें भी रामनवमी परमार्थदायिनी है । इसके समान शुभप्रद तिथि चैत्रमास भरमें कोई भी नहीं है ॥ १४१ ॥ इसके अनन्तर चैत्रके उद्यापनका विधान बतलाते हैं, जिसके करनेसे चैत्रस्नान सफल हो जाता है ॥ १४२ ॥ चैत्रमासके शुक्लपक्षमें जो एकादशी पड़ती है, वह सब तिथियोंमें श्रेष्ठ होती है । इसलिए चैत्रव्रत करनेवालोंको यह एकादशीव्रत अवश्य करना चाहिए ॥ १४३ ॥ इसी तरह चैत्र शुक्लपक्षकी द्वादशी भी श्रेष्ठ है । इस रात्रि दही-भातसे यमका पूजन करके जलसे पूर्ण धड़ेका दान करना चाहिए ॥ १४४ ॥ चैत्रमास भरमें तीन तिथियाँ श्रेष्ठ हैं । जैसे-द्वादशी, त्रयोदशी और पूर्णिमा ॥ १४५ ॥ इनमें स्नान-दान करनेसे कामनाओंको पूर्ण करती हैं । जिसने चैत्रस्नान नहीं किया और जो नवरात्रस्नान भी नहीं कर पाया, अन्तिम दिन अर्थात् पूर्णिमाको करके चैत्र-स्नानका फल प्राप्त कर लेता है । क्योंकि चैत्र भरकी तिथियोंसे पूर्णिमा तिथि श्रेष्ठ है और पातकोंको नष्ट करती ॥ १४६ ॥ १४७ ॥ अतः चैत्रस्नानका फल पानेके लिए इस पूर्णिमामें भी उद्यापन करना चाहिए । इसका विधान यह कि चतुर्दशीको उपवास करके पूर्ववत् मण्डप आदि बनाये और उसमें धान्यराशि तथा वारिपूर्ण रखकर उसके ऊपर एक बड़ासा स्वर्णपात्र रखे ॥ १४८ ॥ १४९ ॥ उसमें पञ्चरत्न डालकर वस्त्रसे ढाँक । तदनन्तर सीता, लक्ष्मण आदि भ्राताओं, हनुमान्जी, सुग्रीव, विभीषण, मङ्गद तथा जाम्बवान् सहित रामकी सुवर्णमयी प्रतिमा स्थापित करके गुरुकी आज्ञासे देव-देवेश रामकी षोडश उपचारों एवं विविध भक्ष्य पदार्थोंसे पूजन करे ॥ १५०-१५२ ॥ रात्रि भर जागरण करता हुआ गावे-बजावे और सबरे तीस सपत्नीक ब्राह्मणों अववा जसो सामर्थ्य हो, उसके अनुसार ब्राह्मणोंको बुलाकर सीर-पूड़ी आदि भोजन करावे ॥ १५३ ॥ १५४ ॥ इसके बाद 'भूतो देवा' मन्त्रके द्वारा तिल और घीसे हवन करे । इस हवनसे देवदेव शम तथा अन्यान्य देवताओंको किया जाता है ॥ १५५ ॥ यह सब करनेके बाद ब्राह्मणोंकी मयागति दक्षिणा देकर प्रणाम करे । फिर समस्त देवताओं तथा तुलसी देवीका छिस्ते पूजन करके विधिपूर्वक कपिला गौका पूजन करे और नाना प्रकारके वस्त्र-आभूषण देकर व्रतके उपदेश सपत्नीक गुरुकी पूजा करे ॥ १५६ ॥ १५७ ॥ यह करनेके बाद ब्राह्मणोंसे क्षमाप्रार्थना हुआ

अतादस्मान् यत्पापं सप्तजन्मकृतं मया । तत्सर्वं नाशमायातु स्थिरा मे चास्तु संवतिः ॥१५९॥
 मनोरथास्तु सफलाः संतु नित्यं समार्चनात् । देहांते वैष्णवं स्थानं मम चास्त्वतिदुर्लभम् ॥१६०॥
 इति समाप्य तान् विप्रान् प्रसाद्य च विसर्जयेत् । तामर्चां गुरवे दद्याद्रत्नमुक्तां सदा व्रती ॥१६१॥
 ततः सुहृत्प्रियैर्युक्तः स्वयं भुञ्जीत भक्तिमान् । एवमुद्यापनविधिश्चैत्रस्नानफलसूत्रे ॥१६२॥
 सविस्तरम् कर्तव्यश्चैत्रस्नानपरायणः । एवं यः कुरुते सम्यक् चैत्रस्नानव्रतं वरः ॥१६३॥
 सर्वपापैर्विनिर्मुक्तो विष्णुमायुज्यमानुयात् । सर्वव्रतः सर्वतीर्थैः सर्वदानैश्च यत्फलम् ॥१६४॥
 तत्कोटिगुणितं पुण्यं सम्यगस्य विधानतः । देहस्थितानि पापानि नाशमायांति तद्गुणात् ॥१६५॥
 ■ आस्यामो वदत्येषं यच्चैत्रव्रतकुश्ररः । तस्मादवश्यमेवैतच्चैत्रस्नानं समाचरेत् ॥१६६॥
 श्रीचैत्रव्रतकथनं पठन्ति भक्त्या ये वै तद्द्विजयतिवैष्णवान्वदन्ति ।
 ते सम्यक् व्रतकरणात् फलं लभन्ते तत्सर्वं कल्पविनाशनं लभन्ते ॥ १६७॥
 इति श्रीशतकोटिरामचरितांगते श्रीमदानन्दरामायणं वात्मीकीये मनोहरकाण्डे
 आदिकाण्डे चैत्रमहिमावर्णनं ■ दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः

(चैत्रस्नानका महारम्य)

विष्णुदास उवाच

किमर्थं सर्वमासेषु चैत्रमासः स्मृतो वरः । तत्कारणं वदस्वाद्य गुरो संतोषहेतवे ॥ १ ॥

श्रीरामदास उवाच

शृणु शिष्य महाबुद्धे सम्यक् पृष्टं त्वया मम । ब्रह्मप्रार्थनया विष्णुर्यदा भूम्यां द्विजोत्तम ॥ २ ॥
 अयोध्याशालकस्याथ राज्ञो दशरथस्य हि । कौसल्यायास्तु भार्याया जठराभिर्मतो बहिः ■ ■ ॥

कहें कि आप लोगोंकी कृपासे देवेश रामचन्द्रजी हमरर सदा प्रसन्न रहें ॥ १५८ ॥ मैंने सात जन्म ■ जी
 ■ किये हों, ■ इस व्रतसे नष्ट होजाय और मेरी सन्तति स्थायी हो ॥ १५९ ॥ इस पूजनके प्रभावसे मेरे
 ■ मनोरथ सफल हों और देहान्त होनेपर हमें अतिशय दुर्लभ वैकुण्ठ धाम प्राप्त हो ॥ १६० ॥ इस तरह
 जमायाधना करके उन ब्राह्मणोंको ■ करता हुआ विदा कर और रत्न तथा प्रतिमा समेत पूजनको ■
 यत्सुयें गुरुको दान दे ॥ १६१ ॥ इसके बाद नातेदारों और मित्रोंके साथ भोजन करे । इस तरह चैत्रमासका
 फल प्राप्त करनेके लिए उद्यापन करनेका विधान है ॥ १६२ ॥ जो लोग चैत्रमासके व्रतमें लगे हों, उन्हें
 विस्तारसे यह उद्यापन करना चाहिए । जो मनुष्य अच्छी तरह चैत्रस्नानका व्रत करता है, वह सब पातकोंसे
 छूटकर विष्णुभक्तानुको सायुज्य मुक्ति ■ करता है । समस्त व्रतों, सब तीर्थों और समस्त दानोंमें जो
 ■ होता है, उसका करोड़ोंगुना अधिक ■ इस चैत्रमासके व्रतसे प्राप्त होता ■ । इसके भयसे चैत्रव्रतीके
 देहमें रहनेवाले समस्त पातक नष्ट हो जाते हैं । वे पाप कहते हैं कि अब हम कहाँ जायें ? अतः चैत्रव्रत
 करनेवाले मनुष्यको चैत्रस्नान अवश्य करना चाहिए ॥ १६३-१६६ ॥ जो लोग इस चैत्रव्रतकी कथाकी
 पढ़ते या विप्र तथा संन्यासी वैष्णवोंको सुनाते हैं, वे अच्छी तरह व्रत करनेका ■ पाते ■ और उनके समस्त
 पातक नष्ट हो जाते हैं ॥ १६७ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वात्मीकीये पं० रामदेवजगन्नेयकुल 'ज्योत्स्ना'-
 भाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे दशमः सर्गः ॥ १० ॥

विष्णुदास बोले—हे गुरुदेव । सब मासोंमें यह चैत्रमास क्यों श्रेष्ठ माना गया है ? सी मेरे सन्तोषके
 लिए कहिए ॥ १ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे महाबुद्धिमान् शिष्य । तुमने बहुत ही अच्छा ध्यान किया है । मैं

चैत्रे मासि मिते गमे नवम्या परमे दिने । पुनर्वसुर्नक्षत्रे प्रोक्ष्यस्थे ग्रहपंचके ॥ ४ ॥
 मध्याह्ने प्रकटो जातः श्रीरामो राजसघनि । आनन्दश्च तदा जातः सर्वत्र जगतीतले ॥ ५ ॥
 देवदुंदुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः शुभाज्यतद् । राजसघनि शयानां संघा नेदुः पृथक् पृथक् ॥ ६ ॥
 ननृतुर्वारिणार्यश्च जगुर्गीतं मनोरमम् । तदा सर्वे हि भूमिस्था जना द्रष्टुं शिशुं शुभम् ॥ ७ ॥
 प्रयपुर्नृपजं बालं दृष्ट्वा मुदमवाप्नुयुः । नानाविमानमारुढा दिवि देवाः सवासवाः ॥ ८ ॥
 मिलिता राघवं द्रष्टुं कौसल्याजठरोद्भवम् । रुद्रश्च सूर्यश्च देवेंद्रादिसुराः शुभाः ॥ ९ ॥
 उत्सवान् विदधुः सर्वे तदा श्रीरामजन्मनि । एवमुत्साहसमये देवा हर्षादिवि स्थिताः ॥ १० ॥
 नमस्कृत्वा रामचन्द्रं तुष्टुबुविर्बिधेः स्तवैः । प्रोक्षुस्तदा सुराः सर्वे हर्षहिबं रघूत्तमम् ॥ ११ ॥
 अद्य धन्या कयं देव मुक्ताश्चासुरजाङ्गयात् । यन्निमित्तं त्वया देव शवतारः कृतो भुवि ॥ १२ ॥
 अस्माकं हर्षकालोऽयं देवदेव कृपानिधे । तस्मादयं सदा पुण्यः श्रेष्ठः कालो भविष्यति ॥ १३ ॥
 त्वं चाप्यंगीकुरुष्वाय देहस्मै सुबहून् वरान् । इति तेषां वचः श्रुत्वा देवानां राघवः शुभम् ॥ १४ ॥
 ततोपि नितरां तेषु देवेषु भगवान्दरिः ।

श्रीराम

सम्यक् प्रोक्तं सुराः सर्वे तत्रैलोक्योपकारकम् ॥ १५ ॥

भवद्भिः प्रार्थितोऽहं तु हर्षकाले महत्तमे । शृणुष्वं वचनं मेऽद्य यदर्षान्प्रोच्यते मया ॥ १६ ॥
 सर्वेषामेव मामानां श्रेष्ठथायं भविष्यति । वैशाखात्कार्तिकः श्रेष्ठः कार्तिकान्माघ एव च ॥ १७ ॥
 माघमासाद्वरथायं चैत्रमासो भविष्यति । चैत्रमासे कृतं दत्तं दूतं स्नातं विचित्रितम् ॥ १८ ॥
 सर्वं कीटिगुणं प्रोक्तमयोध्यायां विशेषतः । यच्छ्रेयश्चाश्वमेधेन यद्रोमेधेन वै फलम् ॥ १९ ॥
 यत्फलं सोमयामेन तच्चैत्रे स्नानमात्रतः । सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे यच्छ्रेयः स्नानदानतः ॥ २० ॥

उसका उत्तर देता हूँ । सुनो-॥ २ ॥ अयोध्या नगरीके पालक महाराज दशरथकी रानी कौसल्याके उदरसे चैत्रमासके शुक्लपक्षकी नवमी तिथिको पुनर्वसु नक्षत्रमें जब कि पाँच प्रह ऊँचे स्थानमें बैठे थे, तब मध्याह्नके अवधश दशरथके घरमें श्रीरामचन्द्रजी अवतरें । उस समय जगतीतलमें सर्वत्र आनन्द छा गया ॥ ३-५ ॥ देवताओंने दुन्दुभियाँ बजायीं और पुष्पवृष्टि की । राजाके महलोंमें अलग-अलग विविध प्रकारके बाजे बजे ॥ ६ ॥ वेश्यायें नाचने और गाने लगीं । उस समय पृथ्वीमण्डलके प्रमुख मनुष्य उस बच्चेको देखनेके लिए आये और उस देव-देवताकर बड़े प्रसन्न हुए । उसी तरह नाना प्रकारके विमानोंपर सड़-सड़कर इन्द्र आदि देवता भी एकत्र होकर कौसल्याके गर्भसे उत्पन्न रामको देखनेके लिए आये । उस ब्रह्मा, रुद्र, सूर्य तथा देवेन्द्र आदि देवताओंने श्रीरामचन्द्रजीके जन्मके उपलक्ष्यमें विविध उत्सव किये । इस तरह उत्साहके समय आकाशमें विद्यमान देवता रामको नाना प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति कर रहे थे । पाकर देवताओंने रामसे कहा-॥ ७-११ ॥ हे देव ! हम लोग धन्य हैं । अब हम लोग राक्षसोंके भयसे मुक्त हो गये । क्योंकि इसीलिए आपने अवतार लिया है ॥ १२ ॥ हे कृपानिधे । यह हम लोगोंके लिए महान् हर्षका समय है । इसीके कारण यह पवित्र समय सर्वश्रेष्ठ माना जायगा ॥ १३ ॥ श्री इस बातको अधिकार करते हुए समयको बहुतसे वरदान दोजिए । उनकी ऐसी बात सुनकर भगवान् रामचन्द्रजी उनपर बहुत हुए और कहा-हे देवताओं ! आपलोगोंने बड़ी अच्छी कहा है और तीनों लोकोंके उपकार करनेवाले विविध स्तोत्रोंसे स्तुति की है । इससे मैं बहुत प्रसन्न होकर कहता हूँ-॥ १४-१६ ॥ यह मास सब मासोंमें श्रेष्ठ होगा । वैशाखसे कार्तिक श्रेष्ठ है, कार्तिकसे माघ श्रेष्ठ है और माघसे भी यह चैत्रमास श्रेष्ठ होगा । इस मासमें किया हुआ दान, हवन, स्नान और ध्यान यह सब कर्म करोड़गुना फल देगा और अयोध्यामें तो उससे भी विशेष फल प्राप्त होगा । जो फल अश्वमेधसे होता है, जो फल गोमेधसे होता है

चैत्रे मासि मिते गमे नवम्या परमे दिने । पुनर्वसुर्नक्षत्रे प्रोक्ष्यस्थे ग्रहपंचके ॥ ४ ॥
 मध्याह्ने प्रकटो जातः श्रीरामो राजसघनि । आनन्दश्च तदा जातः सर्वत्र जगतीतले ॥ ५ ॥
 देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः शुभाज्यतद् । राजसघनि शयानां संघा नेदुः पृथक् पृथक् ॥ ६ ॥
 ननृतुर्वारिणार्यश्च जगुर्गीतं मनोरमम् । तदा सर्वे हि भूमिस्था जना द्रष्टुं शिशुं शुभम् ॥ ७ ॥
 प्रयपुर्नृपजं बालं दृष्ट्वा मुदमवाप्नुयुः । नानाविमानमारुढा दिवि देवाः सवासवाः ॥ ८ ॥
 मिलिता राघवं द्रष्टुं कौसल्याजठरोद्भवम् । रुद्रश्च सूर्यश्च देवेंद्रादिसुराः शुभाः ॥ ९ ॥
 उत्सवान् विदधुः सर्वे तदा श्रीरामजन्मनि । एवमुत्साहसमये देवा हर्षादिवि स्थिताः ॥ १० ॥
 नमस्कृत्वा रामचन्द्रं तुष्टुबुविर्बिधेः स्तवैः । प्रोक्षुस्तदा सुराः सर्वे हर्षहिबं रघूत्तमम् ॥ ११ ॥
 अद्य धन्या कयं देव मुक्ताश्चासुरजाङ्गयात् । यन्निमित्तं त्वया देव शवतारः कृतो भुवि ॥ १२ ॥
 अस्माकं हर्षकालोऽयं देवदेव कृपानिधे । तस्मादयं सदा पुण्यः श्रेष्ठः कालो भविष्यति ॥ १३ ॥
 त्वं चाप्यंगीकुरुष्वाय देवस्मै सुबहून् वरान् । इति तेषां वचः श्रुत्वा देवानां राघवः शुभम् ॥ १४ ॥
 ततोपि नितरां तेषु देवेषु भगवान्दरिः ।

श्रीराम

सम्यक् प्रोक्तं सुराः सर्वे तत्रैलोक्योपकारकम् ॥ १५ ॥

भवद्भिः प्रार्थितोऽहं तु हर्षकाले महत्तमे । शृणुष्वं वचनं मेऽद्य यदर्षान्प्रोच्यते मया ॥ १६ ॥
 सर्वेषामेव मामानां श्रेष्ठथायं भविष्यति । वैशाखात्कार्तिकः श्रेष्ठः कार्तिकान्माघ एव च ॥ १७ ॥
 माघमासाद्वरथायं चैत्रमासो भविष्यति । चैत्रमासे कृतं दत्तं दूतं स्नातं विचिंचितम् ॥ १८ ॥
 सर्वं कीटिगुणं प्रोक्तमयोध्यायां विशेषतः । यच्छ्रेयश्चाश्वमेधेन यद्रोमेधेन वै फलम् ॥ १९ ॥
 यत्फलं सोमयामेन तच्चैत्रे स्नानमात्रतः । सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे यच्छ्रेयः स्नानदानतः ॥ २० ॥

उसका उत्तर देता हूँ । सुनो-॥ २ ॥ अयोध्या नगरीके पालक महाराज दशरथकी रानी कौसल्याके उदरसे चैत्रमासके शुक्लपक्षकी नवमी तिथिको पुनर्वसु नक्षत्रमें जब कि पाँच प्रह ऊँचे स्थानमें बैठे थे, तब मध्याह्नके अवधश दशरथके घरमें श्रीरामचन्द्रजी अवतरें । उस समय जगतीतलमें सर्वत्र आनन्द छा गया ॥ ३-५ ॥ देवताओंने दुन्दुभियाँ बजायीं और पुष्पवृष्टि की । राजाके महलोंमें अलग-अलग विविध प्रकारके बाजे बजे ॥ ६ ॥ वेश्यायें नाचने और गाने लगीं । उस समय पृथ्वीमण्डलके प्रमुख मनुष्य उस बच्चेको देखनेके लिए आये और उस देव-देवताकर बड़े प्रसन्न हुए । उसी तरह नाना प्रकारके विमानोंपर बैठ-बैठकर इन्द्र आदि देवता भी एकत्र होकर कौसल्याके गर्भसे उत्पन्न रामको देखनेके लिए आये । उस ब्रह्मा, रुद्र, सूर्य तथा देवेन्द्र आदि देवताओंने श्रीरामचन्द्रजीके जन्मके उपलक्ष्यमें विविध उत्सव किये । इस तरह उत्साहके समय आकाशमें विद्यमान देवता रामको नाना प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति कर रहे थे । पाकर देवताओंने रामसे कहा-॥ ७-११ ॥ हे देव ! हम लोग धन्य हैं । अब हम लोग राक्षसोंके भयसे मुक्त हो गये । क्योंकि इसीलिए आपने अवतार लिया है ॥ १२ ॥ हे कृपानिधे । यह हम लोगोंके लिए महान् हर्षका समय है । इसीके कारण यह पवित्र समय सर्वश्रेष्ठ माना जायगा ॥ १३ ॥ भी इस बातको अभीकार करते हुए समयको बहुतसे वरदान दोजिए । उनकी ऐसी बात सुनकर भगवान् रामचन्द्रजी उनपर बहुत हुए और कहा-हे देवताओं ! आपलोगोंने बड़ी अच्छी कहा है और तीनों लोकोंके उपकार करनेवाले विविध स्तोत्रोंसे स्तुति की है । इससे मैं बहुत प्रसन्न होकर कहता हूँ-॥ १४-१६ ॥ यह मास सब मासोंमें श्रेष्ठ होगा । वैशाखसे कार्तिक श्रेष्ठ है, कार्तिकसे माघ श्रेष्ठ है और माघसे भी यह चैत्रमास श्रेष्ठ होगा । इस मासमें किया हुआ दान, हवन, स्नान और ध्यान यह सब कर्म करोड़गुना फल देगा और अयोध्यामें तो उससे भी विशेष फल प्राप्त होगा । जो फल अभ्यसे होता है, जो फल गोमेधसे होता है

तच्छेषः स्थान्मयी स्नानादयोष्यायां सुरोत्तमाः । अत्र वै सस्युर्तारे रावणं लोकगदणम् ॥२१॥
 इत्था तत्पापश्चात्यर्थं करिष्यामि क्रतुं शुभम् । यत्र यायममाभिर्हि भविष्यति गुरोत्तमाः ॥२२॥
 तत्तीर्थं सम नाम्ना हि स्यान्ति श्रेष्ठां गमिष्यन्ति । अयोष्यायां समतीर्थे सस्युर्जलमध्यमे ॥२३॥
 चैत्रस्नानं प्रकुर्वाणास्ते नरा मोक्षभागिनः । यथा माघः प्रयागे हि स्नातव्यः सुवृत्तिच्छता ॥२४॥
 कार्तिकोऽपि यथा काश्यां पञ्चगंगाजले स्मृतः । द्वारकायां यथा प्रोक्तो वैशाखो माधवप्रियः ॥२५॥
 अयोष्यायां समतीर्थे तथा चैत्रो भविष्यति । सर्वेषामेव भासात्तमादौ श्रेष्ठो भविष्यति ॥२६॥
 चैत्रमासे तु संप्राप्ते सर्वे देवाः सवासदाः । इतिर्जले समाश्रित्य तिष्ठन्वं हि मयाज्ञया । २७॥
 एवं हरिस्तान् मधवादिकान् सुरानुक्त्वा सुरैस्तैश्च नमस्कृतो बभौ ।

द्विपदमारुह्य शिवो निजं स्थलं यया सुरास्तेऽपि ययुर्निजं स्थलम् ॥२८॥

तस्मात्सर्वेषु मासेषु मुख्यचैत्रः प्रकीर्त्यते । मासादौ प्रथमः सर्वैः प्रोच्यते हि वराहद्वरे ॥२९॥
 एवं शिष्य यथा पृष्टं तथा ते विनिवेदितम् । कारणं चैत्रमासस्य रामचन्द्रवरादिकम् ॥३०॥

विष्णुदास उवाच

स्वामिन् गुरो त्वया चैत्रस्नानं पुण्यतमं स्मृतम् । तत्केनाचरितं पूर्वं का सिद्धिस्तत्प्रभवितः ॥३१॥
 तत्सर्वं विस्तरेणैव मयाग्रे त्वं निवेदय ।

धारासदा उवाच

मय्यकं पृष्टं स्वस्वभवाः भृणु त्वं यन्मयोच्यते ॥३२॥

मम वातो नृमिहाख्यः पुगड्यार्माद् द्विजोत्तमः । तस्यैका नियमभार्यान्मयहं भूमुनेत्तमम् ॥३३॥
 एकमञ्जकक्षेत्रस्थं द्विजमजाधिनं त्वयि । स्तुषास्त्रीपुत्रतनयदासांदासादिमिर्पुतम् ॥३४॥

और सोभयावसे जिस फलको प्राप्ति होता है, उस फलका प्राप्ति इस चैत्रमासके स्नानमात्रसे ही पाया करेगा ।
 कुरुक्षेत्रमें सूर्यग्रहणके समय स्नान लगभग जा श्रेष्ठ प्राप्त होता है ॥ १५-२० ॥ यह श्रेष्ठ चैत्रमासमें अयोध्याजाम
 स्नान करनेसे प्राप्त होगा । इस तरह नृशके तटपर जानाका स्नानवाले रावणका मारकर ब्रह्महत्याका पाप-
 की क्षान्तिके लिए में शुभ कहेगा । हे देवताओं । ऐस स्नानपर वह यत्र समाप्त होगा, वह स्थान मेरे
 नामसे विख्यात होगा । जो लोग अयोध्या, रामतीर्थ तथा रामपुत्राक जगत् चैत्रस्नान करेगा, वे अवश्य
 मोक्षप्राप्ति होंगे । जिस तरह नृशके इच्छा रखतवालाका मासमें प्रयोग स्नान करना आज्ञायक होता है
 ॥ २१-२४ ॥ जिस तरह कार्तिकमें काश्याकी पञ्चगंगाके जलमें स्नान करनेका विधान है और जिस तरह वैशाखमें
 द्वारकास्नान कल्याणकारी माना गया है, उसी तरह माहात्म्य चैत्रमासमें अयोध्याके रामतीर्थका होगा । यह
 मास सब मासोंके आदिमें और सबसे श्रेष्ठ माना जायगा ॥ २५ ॥ २६ ॥ चैत्रमासके आनेपर इन्द्रसमेत
 समस्त देवता यहाँ आकर निवास करे । यह मेरी आज्ञा है । २७ ॥ विष्णुभगवान्ने इन्द्र आदि देवताओंसे
 ऐसा कहा और देवताओंने उनको प्रणाम किया । जिससे भगवान्को एक असाधारण कान्ति चमक उठी । तद-
 न्तर शिवजी नगरीपर सवार होकर अपने स्थानको चले गये । अन्य देवता भी अपने-अपने स्थानका चल पड़े
 ॥ २८ ॥ इसी कारण चैत्रमास मासोंमें श्रेष्ठ माना जाना है और भगवान्के वरदानसे सब मासोंके आदि-
 में गिना जाता है ॥ २९ ॥ इस प्रकार हे शिष्य ! जैसा तुमने पूछा, यह रामचन्द्रजीके वरदान आदिका वृत्तान्त
 मैंने कह सुनाया ॥ ३० ॥ विष्णुदासने कहा-हे स्वामिन् । हे गुरु ! आपने पवित्र चैत्रमासका विधान बतलाया ।
 यह बतलाए कि इस धतका किसने किया था और इससे उसे कौन-सी सिद्धि प्राप्त हुई थी ॥ ३१ ॥
 यह सब विस्तारपूर्वक आप हमें बतलाइए । धारासदासने कहा-तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । अब मैं
 जो कुछ कहता हूँ, उसे सुनी ॥ ३२ ॥ मेरे पिता नृसिंहका एक नियम था । वे कमलपुरनिवासी एक ब्राह्मणकी पुत्र-
 कल्य एवं दास-दासी समेत बुलाकर सारे कुटुम्बको भोजन कराते और अच्छे तरह आदर-सत्कार करते थे ।

कुटुम्बभोजं तस्मै संज्वार्त्तविधायनाम् । लक्ष्मीनाम्नी तु मन्माता तानुमी रामतत्परौ ॥३५॥
 पुत्रात्पांचमष्ट्या तौ वृद्धौ पुत्राथमुद्यतौ । स्नदोषपरिहारार्थमुपायं कर्तुमुद्यतौ ॥३६॥
 निवासाख्ये पुर गत्वा दंपती माहर्त्ता शुभाम् । स्वीयेष्टदेवतामम्भं प्रवरातीरवासिनीम् ॥३७॥
 दृष्ट्वा देव्याश्च तौ सेशं नित्यं तत्र प्रचक्रतुः । गते बहुतिथे काले वरदा या महालया ॥३८॥
 प्रसन्ना त द्विजं भूत्वा प्राह तदापश्चात्तये । हे नृसिंह महाबुद्धं गच्छायोध्यापुरीं पति ॥३९॥
 तत्र चैव सरयुतीये रामतीर्थे महत्तमे । चैत्र मासि वसंतर्तौ यदा स्यान्मीनगो रविः ॥४०॥
 चैत्रस्नानं मासमेकं कुरु तत्र द्विजोत्तम । पातकं सकलं त्यक्त्वा पुत्रं प्राप्यस्यस्यनुत्तमम् ॥४१॥
 इति देव्या वचः श्रुत्वा द्विजश्रितापरस्तदा । ययौ मार्गे हृदि ध्यायन्नयोध्याख्यां पुरीं शुभाम् ॥४२॥
 श्रितया परया क्वापः कथं गंतुं हि शक्यते । मयाऽयोध्यापुरी दूरमितः कष्टं च जीवितम् ॥४३॥
 इति श्रितायुतो मार्गे कचिच्छिष्टं च विस्त्रुलन् । भार्यायाश्च करे घृत्वा वृद्धश्चैत्रं ययौ द्विजः ॥४४॥
 एवं गोदावरीतीरं गत्वा स्नात्वा द्विजोत्तमः । राममूर्ति पुरः स्थाप्य पूजयामास मत्तितः ॥४५॥
 तावत्तस्मै प्रसन्नोऽभूद्रामो देव्याः प्रसादतः । द्विजं प्राह रघुश्रेष्ठो मो नृसिंह द्विजोत्तम ॥४६॥
 माऽयोध्यां त्वमितो गच्छ शृणु मे वचनं शुभम् । इतः पूर्वं क्षुद्र हि योगनद्रयसमितम् ॥४७॥
 प्रतिष्ठानामिधं क्षेत्रं गोदाया उत्तरे तटे । तत्रास्ति रामतीर्थं हि मन्माता च मया कृतम् ॥४८॥
 तत्र त्वं गच्छ विप्रेभ्यः स्नात्वा शीघ्रं हि भार्याया । चैत्रमासे वसंतर्तौ यदा स्यान्मीनगो रविः ॥४९॥
 तदा कुरु विशेषेण पूजयित्वा च मां शुभम् । पापक्षयः पुत्रलाभो भविष्यति न संशयः ॥५०॥
 इत्युक्त्वा रघुवीरस्तु तत्रैवांतरधापत । यत्र गंगाददे रामः प्रसन्नोऽभूद् द्विजाप हि ॥५१॥
 तस्मात्स वै रामदहो नाम्ना सर्वत्र कीर्त्यते । तद्रामवचनादिप्रः प्रतिष्ठानपुरं ययौ ॥५२॥
 मासमेकं च वै स्थित्वा चैत्रस्नानं चकार ह । श्रयोदये समुत्थाप्य कृतशोचादिसत्क्रियः ॥५३॥

लक्ष्मीनाम्नी मेरी माता और पिता मे दोनों असाधारण रामभक्त थे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ किन्तु वृद्धावस्था पर्यन्त पुत्रका अभाव देखकर उन्होंने अपना देश शान्त करनेके लिए उपाय करना प्रारम्भ किया ॥ ३५ ॥ इसके लिए वे श्वराके तीरपर रहनेवाली अपनी इष्टदेवी माहर्त्ताके पास गये ॥ ३६ ॥ उनका दर्शन करके उन्होंने बहुत दिनों तक देवीका आराधना की । कुछ दिनों दवा प्रसन्न होकर कहने लगी—हे महाबुद्धिमान् नृसिंह ! तुम यहाँ अयोध्यापुरा जाओ । वहाँ महाशायं सरयू नदीके जलमें जब वसन्त ऋतुक समय सूर्य मानराशिपर आवे, तब एक महान् चैत्रस्नान करो । ऐसा करनेसे तुम्हारे सब पातक नष्ट हो जायेंगे और तुम्हें पुत्रकी प्राप्ति होगी ॥ ३७-४१ ॥ देवीका यह बात सुनकर वे अयोध्यापुरीका ध्यान करते हुए चले । उन्हें यह बड़ा श्रिता था कि अयोध्यापुरा तो यहाँसे बहुत दूर है और मुझे अपना भी भारी हा रहा है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ऐसा सोचते हुए वे कभी जाते, फिर पड़ते और कभी अपना स्नानका हाय पकड़कर मेरे वृद्ध पिता चलते थे ॥ ४४ ॥ इस तरह किसी प्रकार वे गोदावरीके तटतक पहुँचे । वहाँ उन्होंने स्नान किया और सामने रामकी मूर्ति रखकर भक्तिपूर्वक पूजन करने लगे ॥ ४५ ॥ तबतक देवीके आशोर्वादसे रामचन्द्रजी प्रसन्न होकर सामने आवे और कहने लगे—हे द्विजोत्तम नृसिंह ! अब तुम अयोध्या मत जाओ । यहाँ केवल तीन योगन दूर गोदावरीके उत्तर तटपर प्रतिष्ठान नामक क्षेत्र है । वहाँ मेरे नामसे प्रसिद्ध रामतीर्थ है । मैंने ही उसका स्थापना की है ॥ ४६-४८ ॥ तुम वहाँ जाओ और चैत्रमासमें जब सूर्य जीन राशिपर आवे, तब भार्याके साथ स्नान करके मेरा विधिवत् पूजन करो । ऐसा करनेसे तुम्हारे सब पातक नष्ट हो जायेंगे और तुम्हें पुत्रका प्राप्ति होगी । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ऐसा कहकर रामचन्द्रजी वहाँ ही अन्तर्धान हो गये । जित गङ्गानामक सरावरके तटपर राम हुए थे, वह स्थान रामदहके नामसे विख्यात हुआ । रामके कथनानुसार ब्राह्मणदेवता अपनी भार्याके साथ उस प्रतिष्ठानतीर्थको गये

स्नात्वा तस्मिन् रामतीर्थे सरयूमंगसमन्विते । रामचन्द्रं स्वर्णगिरौ पूजयामास भक्तितः ॥५४॥
 प्रदक्षिणाः स्वर्णगिरेश्वकार नव प्रत्यहम् । नवपुष्पैश्च नैवेद्यैः पूजयामास राघवम् ॥५५॥
 चैत्रशुक्लतृतीयाया यावद्द्वैतात्समंवा । तृतीया शीतला गौरी स्नानं चक्रे च भार्यया ॥५६॥
 एवं भागं व्रतं कृत्वा स द्विजस्तुष्टमानसः । अञ्जकं प्रति मार्गेण ययौ लक्ष्म्या समन्वितः ॥५७॥
 यावन्मार्गे द्विजोऽगच्छतावदृष्टस्त्रिभिर्नरैः । पिशाचैः क्षुत्तृपाकारैस्तानुद्धार्य समार्यया ॥५८॥
 ययौ स्वनगरं रम्यं गोदानाभिस्त्रिगजिनम् । चैत्रस्नानप्रभावेण जातस्नस्मात्सुतस्त्वहम् ॥५९॥

तस्मान्मया ते कथितं वरं हि स्नानं मधौ ते सरयुजले वै ।

साकेतपुष्पं नररामतीर्थे भुक्तिप्रदं मोक्षदमुचम च ॥६०॥

विष्णुदास उवाच

कथं पिशाचयोन्वास्ते मुक्ता विप्रेण वै प्रयः । कस्मात्पापाच्च ते सर्वे पैशाची योनिभाभिनाः ॥६१॥
 तत्सर्वं विस्तरेणैव श्रोतुमिच्छामि त्वन्मुखात् ।

श्रीरामदास उवाच

मृणु शिष्य प्रवक्ष्यामि रम्भानाम्नी वराऽप्सराः ॥६२॥

चैत्रे स्नात्वा वरायोध्यासरयुर्निर्मले जले । आर्द्रवस्त्रधुता चक्रहास्यालंकारमण्डिता ॥६३॥
 शुद्धीत्वा सरयुहोयं रत्नकांचननिर्मिते । पात्रे रामेश्वरं सेतौ द्रष्टुं मौनेन सा जवात् ॥६४॥
 ययावाकाशमार्गेण पिशाचा यत्र ते प्रयः । तदार्द्रवस्त्रकांचन्याद्रिदुभिः प्रोक्षिताश्च ते ॥६५॥
 क्रस्वभावमुत्सृज्य चाश्चर्यं परमं ययुः । पूर्वजन्मानुस्मरणमभूत्तेषां तदा नृप ॥६६॥
 विस्मयानिष्टचिचास्ते तां दृष्ट्वाऽप्सरसं दिवि । बहुधा प्रार्थयामासुस्तान्सा पप्रच्छ संवया ॥६७॥

॥ ५१ ॥ ५२ ॥ वहाँ रहकर उन्होंने एक पास पर्यन्त चैत्रस्नान किया । उनका यह नियम था कि प्रतिदिन सुयो-
 दयमें पहले सोकर उठ जाते और निरपकृत्यसे निवटकर सरयुपक्षमपर विद्यमान तीर्थमें स्नान करते और
 भक्तिपूर्वक स्वर्णगिरिपर रामचन्द्रजीकी पूजा किया करते थे ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ प्रतिदिन वे उस स्वर्णगिरिकी नौ
 परिक्रमा करते और नौ पुष्पों और विविध प्रकारके नैवेद्योंसे रामका पूजन करते थे । वह व्रत उनका
 सबतक चलता रहा, जबतक वैशाखके शुद्धअषाढकी तृतीया नहीं आयी । तृतीयाके आनेपर उन्होंने शीतलागौरी
 नामक स्नान किया ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ इस तरह एक एक तक व्रत करके प्रसन्न चित्तसे वे ब्राह्मणदेवता अपनी
 पत्नीके साथ कमलपुरकी चले ॥ ५७ ॥ जाते-जाते रास्तेमें उनकी तीन पिशाच मिले । वे तीनों बड़े भूखे ।
 मेरे पिता-माताने उनका उद्धार किया और अपने नगरको गये । उसी चैत्रस्नानके प्रभावसे मैं उनका पुत्र होकर
 ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ इसीलिए मैंने वैत्रमासमें अयोध्याके पवित्रतीर्थमें भुक्ति-भुक्तिप्रद सरयुजलमें स्नानका
 विधान बतलाया है ॥ ६० ॥ विष्णुदासनं कहे-वे तीनों पिशाच किस तरह पिशाचयोनिसे छूटे और
 किस पापसे वे पिशाचयोनिमें पड़े थे । यह वृत्तान्त भी विस्तारपूर्वक आपके मुखसे सुनना चाहता हूँ ।
 श्रीरामदास कहने लगे-हे शिष्य ! सुनो, यह कथानक भी मैं कहता । रम्भा नामकी एक सुन्दरी अप्सरा थी
 ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ उसने चैत्रमासमें अयोध्याके सरयुजलमें स्नान किया । उसके कपड़े भीग गये थे, मन्द मुस्कान
 उसके होठोंपर खेल रही थी और उसके अंगमें पड़े हुए विविध प्रकारके आभूषण अपनी वसाधारण शोभा
 दिखा रहे थे ॥ ६३ ॥ स्नानके अनन्तर उसने रत्न और कांचनसे बने हुए पात्रमें रामेश्वर शिवको स्नान करानेके
 लिये सरयुजल भरा और मौन होकर आकाशमार्गसे रामेश्वरको चल पड़ी । जाते-जाते उस स्थानपर
 पहुँची, वहाँ वे तीनों पिशाच रहते थे । रम्भाके भीगे अस्त्रसे पानीकी कई बूँदें गिरकर उस पिशाचोंपर
 पड़ी ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ इससे उनका क्रूर स्वभाव छूट गया और उन्हें पूर्वजन्मकी सब बातें याद आ गयीं ॥ ६६ ॥
 अनन्तर वे तीनों विस्मित होकर बहुत तरहसे प्रार्थना करने लगे । रम्भाने संकेतमें उनसे पूछा— ॥ ६७ ॥

कस्माद्यं पिशाचा हि जानास्तत्कथयतां । इति तत्कारकृत्संताप्रेरितास्ते त्रयस्तदा ॥६८॥
 तेषु द्वौ वर्तमानौ हि कथयामासतुश्च ताम् । शृणु भामिनि चावां हि पूर्वजन्मनि भूसुरात् ॥६९॥
 विरजायां ममृष्यन्तौ श्रोत्रियाद्वरधर्मणः । उभावध्वयनं कर्तुं कंचिन्मासायणाद्भयम् ॥७०॥
 शुश्रूषया तोषयित्वा गुरुं तत्रैव तस्थतुः । नारायणसुतां चारुहासां चन्द्रनिभाननाम् ॥७१॥
 दृष्ट्वा परम्परं मैत्र्यं बहुधा प्रार्थ्य तां स्त्रियम् । आवाभ्यां च हि सा भुक्ता नज्जातं गुरुणा शिरात् ॥७२॥
 आवाभ्यां च ददौ शापं तस्यै चाप्यशपत्क्रुधा । युवां चापि कुमारीयं पिशाचत्वं गमिष्यथ ॥७३॥
 ततोऽस्माभिस्त्रिभिस्तं तु मुनिं नन्वा पुनःपुनः । श्लाघस्यातस्ततो लब्धस्तच्छृणुष्व मनोरमे ॥७४॥
 चैत्रमासे नृसिंहाख्यः कश्चिद्विप्रश्च कानने । ददाति स्नानजं पुण्यं तदोद्गमो भविष्यति ॥७५॥
 एवं जाता पिशाचा हि ययं त्वदस्त्रविन्दुभिः । प्रोक्षिताः स्मोऽद्य नैर्जना पूर्वजन्मस्मृतिः शुभा ७६॥
 तथैषां वचनं श्रुत्वा हान्वा श्लाघस्य मोक्षणम् । सांत्वयित्वा करेणैव शीघ्रं स नृहरिः स्त्रिया ॥७७॥
 आगमिष्यति सा चितां कुरुतेति वरांगना । ययौ रामेश्वरं शीघ्रं पूजयित्वा गता दिवम् ॥७८॥
 चैत्रमासे द्यतिक्रान्ते मासे स नृहरिर्द्विजः । भार्यया सहितो दृष्टः पिशाचैर्स्तुः पिता मम ॥७९॥
 स्थित्वा दूरं च ने सर्वे तमृज्जुर्नृहरिं द्विजम् । नैजं वृत्तं समस्तं हि श्लाघस्यापि विमोक्षणम् ॥८०॥
 तच्छ्रुत्वा नृहरिर्विप्रस्तान्प्रोवाच मुदान्वितः । मा भेतद्वयं पिशाचत्वाद्यथा शंभुद्विजेन सः ॥८१॥

राक्षसो मोचितः पूर्व मोचयिष्याम्यहं ।

पिशाच उवाच

कः शंभुश्च कदा मुक्तो राक्षसः कः सविस्तरम् ॥८२॥

तुमलोग ॥ पिशाचयोनि को नयां प्राप्त हुए हो, सो कहो । इस प्रकार रम्भाके हाथोंका संकेत पाकर उन तीनोंमेंसे दो बोले-हैं भामिनो । सुनो, पूर्वजन्ममें हम दोनों विरजा नाम्नी स्त्रीद्वारा हर शर्मा नामक ब्राह्मणसे उत्पन्न हुए थे । सबस्यानुसार हम दोनों विद्या पढ़नेके लिए नारायण नामक एक गुरुके यहाँ गये । वहाँ उनको सेवा करते हुए रहने लगे । गुरुजीकी एक सुन्दरी कन्या थी । उसकी मनोहारिणी मुस्कान थी और चन्द्रमा के समान मुख था ॥ ६८-७१ ॥ उसे देखकर हम दोनोंने उससे मित्रता कर ली और समय पाकर बहुत अनुत्पन्न-विनय करके हम दोनोंने उसके साथ भोग किया । बहुत दिनों बाद वह गुरुजीकी शास हो गयी ॥ ७२ ॥ उन्होंने क्रुपित होकर हमें उस कन्याको देते हुए कहा कि इस कुमारीके तुम दोनों पिशाच हो जाओ ॥ ७३ ॥ इसके बाद हम तीनोंने उन मुनीश्वरकी बार-बार प्रणाम करके किसी तरह शापके बचन पाया । सो भो मुन लो ॥ ७४ ॥ उन्होंने कहा कि चैत्रमासमें कोई नृसिंह नामका ब्राह्मण इस वनमें आयागा और अपने चैत्रस्नानका पुण्य तुम्हें प्रदान करेगा, तुम्हारा उद्धार होगा ॥ ७५ ॥ इस तरह हमलोगोंको यह पिशाचयोनि मिला । आज हम आपके यस्त्रविन्दुसे प्रोक्षित हो गये । इस कारण हमें पूर्वजन्मकी सब बातें याद आ गयी हैं ॥ ७६ ॥ प्रकार उनकी बात सुनकर रम्भाने संकेतमें कहा कि तुम लोग धैर्य रखो । शीघ्र ही नृसिंह ब्राह्मण अपनी स्त्रीके इस वनमें आनेवाले हैं ॥ ७७ ॥ तुमलोग किसी प्रकारकी चिन्ता मत करो । इतना कहकर रम्भा रामेश्वर धली गयी । वहाँ उसने शिवजीका पूजन किया और आकाशमार्गमें ही लौटकर स्वर्गको चली गयी ॥ ७८ ॥ चैत्रमास बीतनेपर नृसिंह अपनी भार्याके साथ उस वनमें पहुँचे और उन पिशाचोंको देखा ॥ ७९ ॥ वे तीनों पिशाच नृसिंहके पास धीड़ी दूरपर खड़े हो गये और अपने पूर्वजन्मका वृत्तांत एवं शापसे मुक्ति पानेका उपाय सुनाया ॥ ८० ॥ उनकी बात सुनकर मेरे पिताजीने कहा-तुम लोग धवड़ाओ नहीं । जिस प्रकार शम्भुनामक ब्राह्मणने उस राक्षसको पिशाचयोनिसे मुक्त किया था, उसी तरह मैं भी तुम लोगोंको इस योनिसे मुक्त कर दूँगा । उनकी बात काटकर पिशाचोंमेंसे एकने कहा कि शम्भु विप्र कौन थे और वह राक्षस कौन था ? यह वृत्तान्त विस्तरपूर्वक आप हमें

कथयस्व द्विजश्रेष्ठ कृपां कृत्वा तु कौतुकात् ।

नृसिंह

मृणुष्वं कथयिष्यामि यद्वृत्तं च पुरातनम् ॥८३॥

शिवकांचीपुरीमध्ये कश्चिद्विप्रः शुचिव्रतः । शंभुनामा चिरं कालं तस्यौ ■ च स्वभार्यया ॥८४॥
स कस्मिंश्चिद्वने विप्रश्चैकांबरशिवांतिके । पौराणिकमुस्ताच्चैत्रमासमाहात्म्यवर्तिनीम् ॥८५॥
कथां श्रोतुं समायातस्तत्र श्रुत्वा महत्फलम् । अयोध्यायां हि चैत्रस्य स्नानात्कैवल्यदायकम् ॥८६॥
ततो बहुगते काले सस्मरन् तां कथां शुभाम् । ज्ञात्वा समागतं चैत्रं स्वगृहाभिर्गतस्तदा ॥८७॥
भार्यया सहितो विप्रः शनैर्मार्गेण वै ययौ । तांत्वा तां जाह्नवां रम्यां यावदग्रे स गच्छति ॥८८॥
तावद्दृष्टो हि मिल्लेन कर्कशारुणेन कानने । गृहीत्वा सशरं चापं धर्षयित्वा च भूसुरम् ॥८९॥
लुलुठ कर्कशः क्रूरो वस्त्रेणैकेन तं द्विजम् । मुमोच तस्य पाथेयं गृहीत्वा सकलं शुभम् ॥९०॥
द्विजोऽपि प्रार्थयामास कर्कशं च पुनः पुनः । वस्त्रादिकं गृहाण त्वं भस्त्रपिष्टं ददस्व माम् ॥९१॥
तप्तस्य वचनं श्रुत्वा मुक्त्वा नदस्त्रवधनम् । सर्वं ददर्श पाथेयं नानाविधमनुत्तमम् ॥९२॥
तस्मिन्ददर्श स व्याधो दश रंभाफलानि वै । अपकान्यतिशुष्काणि ततश्चित्तेऽविचारयत् ॥९३॥
एतैः फलैर्न मे कार्यं जानामि ब्राह्मणोत्तमम् । नहि दास्याम्यहं दीनं क्षुधाक्रांतं च सखिकम् ॥९४॥
इति निश्चित्य स व्याधो ददौ तानि द्विजन्मने । गृहीत्वाऽमलपद्विप्रः प्रारम्भे भार्यया मधौ ॥९५॥
तद्रंभाफलदानेन कर्कशस्य तदा शुभा । जाता बुद्धिः क्षणादेव सात्त्विकी क्रूरा गता ॥९६॥

एवं पिशाचाः सकलास्तवः परं मिल्लाय तस्मै तु शुभा मतिर्भूत् ।

समागतं चात्र कुतः स पृष्टवान् विप्रं स वै प्राह वने च कर्कशम् ॥९७॥

कम्भुस्वाच

कांचोपुर्याः समायातो गम्यतेऽयोध्यायां पुरीम् । चैत्रमासेऽवगाहार्थं सरयुनिर्मले जले ॥९८॥

वसलाहए । हे द्विजश्रेष्ठ । हमपर इतना कृपा करिए । नृसिंह कहने लगे-अच्छ सुनो । मैं एक पुरातन कथा तुम लोगोंको सुनाऊंगा ॥ ८१-८३ ॥ शिवकांचीपुरीमें पवित्रव्रतधारी एक ब्राह्मण रहता था । उसका नाम कम्भु था । वह बहुत दिनों तक अपनी स्त्रीके साथ उस नगरमें रहा ॥ ८४ ॥ एक दिन वह ब्राह्मण किसी वनमें एकांबर नामक शिवके समीप पौराणिकके मुखसे चैत्रमास-माहात्म्यकी ■ सुनने गया । वहाँ पहुँचकर उसने चैत्रमासमें अयोध्यास्नानका वड़ा ■ सुना ॥ ८५ ॥ बहुत दिनों बाद उस कथाका स्मरण करके वह चैत्रमास लगनेके पहले ही अयोध्या जानेके लिए अपने घरसे निकल पड़ा । उसने अपने साथ अपनी स्त्रीकी भी ले लिया था । वह धीरे-धीरे अयोध्याकी ओर चला । राहमें गंगाजी पड़ीं तो उन्हें पार किया । वहसि थोड़ी दूर आगे गङ्गा ही था कि वनमें कर्कश नामका एक भाल बनूष-बाण लिये हुए मिला । उसने ब्राह्मण-देवताको घमकाकर सब कुछ छीन लिया और केवल एक कपड़ा पहनाकर छोड़ दिया । यहाँ तक कि उसने इन लोगोंका पवित्र पाथेय भी ले लिया ॥ ८६-८८ ॥ तब ब्राह्मणने उससे प्रार्थना की कि मेरे कपड़े-लुत्ते सब कुछ ले लो । लेकिन रास्तेमें खानेको वस्तुओंवाला वह पोटली वापस दे दो ॥ ८९ ॥ ब्राह्मणकी ■ सुनकर कर्कशने वह पोटली खोली और देखा कि उसमें बहुत-सी खाने-पीनेकी चीजें वैबी हैं ॥ ९० ॥ उस व्याधने उसमें दस केलेके फल भी देखे । वे फल कच्चे और सूखे हुए थे । उन फलोंको देखकर उसने मनमें सोचा कि इन फलोंकी तो हमें कोई आवश्यकता है नहीं, फिर इसे क्यों न दे दूँ ॥ ९१ ॥ ९४ ॥ ऐसा निश्चय करके उसने केले वापस दे दिये और उस सपत्नीक ब्राह्मणने चैत्रमासके प्रारम्भमें वे केलेके फल खाये ॥ ९५ ॥ उस रंभाफलके दानसे कर्कश व्याधके हृदयमें शुभ बुद्धिका प्रादुर्भाव हो गया । जिससे उसकी क्रूरता नष्ट हो गयी और सात्त्विकता आ गयी ॥ ९६ ॥ हे पिशाचो । ■ उस भीलकी मति पवित्र हो गयी तो उसने

इति विप्रवचः श्रुत्वा पुनः पप्रच्छ कर्कशः । किं लभ्यते हि स्नानेन तन्मे वद सविस्तरम् ॥१९॥
 पुनः प्राह स विप्रेन्द्रः कर्कशं भक्तितः फलम् । स्नानेन मधुमासे हि रघुनाथः प्रसीदति ॥१००॥
 प्रसादात्सकलान्मोगान् लभते मानवा भुवि । अंते मोक्षोऽपि भो भिष्ट लभ्यते नात्र संशयः ॥१०१॥
 इति विप्रवचः श्रुत्वा पुनः पप्रच्छ कर्कशः । मोक्षस्वरूपं कथय कृपां कृत्वा ममोपरि ॥१०२॥
 सप्तस्य वचनं श्रुत्वा पत्नी प्राह द्विजोत्तमः । पश्य पश्य धरादेहे कौतुकं महदद्भुतम् ॥१०३॥
 यद्रंभाफलदानेन चैत्रे मासि वरानने । अयं क भिष्टजार्तीयः क प्रश्नश्चेदृशः शुभः ॥१०४॥
 मोक्षस्वरूपज्ञानार्थं तस्मादानं प्रशस्यते । इत्युक्त्वा तां प्रियां विप्रः कर्कशं प्राह मादरम् ॥१०५॥
 साधु साधु महाव्याधं सम्यक्प्रश्नः कुतस्त्वया । इदानीं प्रोच्यते मोक्षस्वरूपं तन्निशामय ॥१०६॥
 स मोक्षस्त्वं हि जानीहि यतो नास्ति पुनर्भवः । इति विप्रवचः श्रुत्वा पुनः पप्रच्छ कर्कशः ॥१०७॥

तस्य प्रार्थित्या स्यान्मे तन्मे वद द्विजोत्तम ।

शृणु कर्कश तत्प्रार्थित्या मयाचट्टयामि ते ॥१०८॥

दासपुत्रगृहादीनां प्रीतिं मुक्त्वा जनार्दनम् । दिवरात्रं चिंतयित्वा सर्वदेहस्य चालकम् ॥१०९॥
 आत्मानं बहुपुण्यौघैर्निर्मलीकृत्य मानसम् । तत्स्वरूपे यदा तिष्ठेत्स मुक्तो नेतरो जनः ॥११०॥
 एवं वदति विप्रेन्द्रे व्याधो मुक्त्वा शरं घनुः । शंभुभादी जवान्नस्वा आहि आहोति वै वदन् ॥१११॥
 प्रोवाच द्विजवर्यं स व्याधो मामुद्धरेति च । एतस्मिन्नंतरे तत्र राक्षसो घोरदर्शनः ॥११२॥
 दुद्राव दीर्घशब्देन यत्रासंस्ते त्रयो वने । आयातं राक्षसं दृष्ट्वा चक्रुस्ते तु पलायनम् ॥११३॥
 तावज्जवेन तान् धर्तुं निकटं राक्षसो ययौ । तं दृष्ट्वा निकटं शंभुस्तुंविकां सजलां निजाम् ॥११४॥

उन ब्राह्मण देवतासे पूछा कि ■■■ किस कार्यसे इधर आ पहुँचे ? ॥ ९७ ॥ शम्भुने उत्तर दिया कि मैं कांची-पुरीसे आया हूँ और अयोध्या जा रहा हूँ । वहाँ चैत्रमासमें स्नान करूँगा ॥ ९८ ॥ इस तरह ब्राह्मणकी बात सुनकर कर्कशने कहा कि चैतस्नानसे क्या लाभ होता है ? यह आप विस्तारपूर्वक हमें बतलाइए ॥ ९९ ॥ ब्राह्मण भक्तिपूर्वक कर्कशको चैत्रमासके स्नानका फल बतलाने लगा । उसने कहा कि चैत्रस्नानसे भगवान् रामचन्द्र प्रसन्न होते हैं ॥ १०० ॥ संसारके प्राणी उन्हींकी कृपासे ■■■ प्रकारके सुखोंको भोगते हैं और अन्तमें उन्हें मोक्ष भी मिलता है । इसमें कोई संदेह नहीं ॥ १०१ ॥ इस तरह विप्रकी बात सुनकर कर्कशने कहा कि कृपा करके आप हमें मोक्षका स्वरूप बतलाइए ॥ १०२ ॥ इस प्रकार कर्कशका प्रश्न सुनकर ब्राह्मणने अपनी पत्नीसे कहा—प्रिये ! देखो तो कितने आश्चर्यकी बात है । चैत्रमासमें केलेके फलोंके दानसे यह भील कैसे-कैसे प्रश्न कर रहा है । इतनी ■■■ अपनी स्त्रीसे कहकर ब्राह्मण प्रेमपूर्वक कर्कशसे कहने लगा— ॥ १०३-१०४ ॥ हे महाव्याध ! तुम्हारा प्रश्न बहुत ठीक है । अब मैं तुमको मोक्षका स्वरूप बतला रहा हूँ । तुम सावधान मनसे सुनो ॥ १०५ ॥ मोक्ष उसे कहते हैं, जिसे पाकर प्राणीको फिर जन्म न लेना पड़े । इस तरह ब्राह्मणकी ■■■ सुनकर कर्कशने फिर कहा—उसकी प्राप्ति मुझे जिस तरह हो सके, वह उपाय बतलाए । शम्भु ब्राह्मणने कहा—हे कर्कश ! जिस तरह तुम्हें मोक्षकी प्राप्ति हो सकता है । वह उपाय मैं बतलाता हूँ, सुनो ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ जो मनुष्य स्त्री, पुत्र, गृह आदिकी प्रीतिका परित्याग करके रात-दिन सदा प्राणियोंके सञ्चालक भगवान् जनार्दनका ध्यान करता है और बहुतेरे पुण्योंसे अपने चित्तको निर्मल करके उन्हींके स्वरूपमें ली जाये रहता है, वही प्राणी मुक्त होता ॥ और कोई नहीं ॥ १०९ ॥ ११० ॥ ऐसा कहने-पर कर्कशने अपना घनुध-बाण फेंक दिया और वेगके साथ शम्भुके पैरोंपर गिर पड़ा और कहने लगा—हे ब्राह्मणदेवता ! हमारी रक्षा करो । उसी समय एक राक्षस दौड़ता हुआ उस स्थानपर आ पहुँचा, जहाँ वे तीनों बैठे बातचीत कर रहे थे । राक्षसको आते देखकर वे तीनों भागे । राक्षस भी उन्हें पकड़नेके लिए

कृत्वोच्छ्रां प्राक्षिपत्स्मिन् रामचन्द्र स्मरन् हृत्वे । भवितुं रामनाम्ना च यत्नोयं मधुमासि वै ॥११५॥
 तत्सेकाद्राक्षसस्यापि ज्ञाता पूर्वभवस्मृतिः । ततः स राक्षसो दूरं स्थित्वा शंभुं व्यजिज्ञपन् ॥११६॥
 मामुद्धर मुनिश्रेष्ठ घोराद्राक्षसदेहतः । शरणं ते गतोऽस्म्यद्य ज्ञाता पूर्वस्मृतिर्मम ॥११७॥
 इति तत्कौतुकं दृष्ट्वा राक्षसं प्राह स द्विजः । कस्मात्ते राक्षसस्य हि जातं तस्य वदाऽधुना ॥११८॥
 राक्षसः प्राह वेगेन शंभुं वृत्तं निजं तदा । जनस्थाने पुरा चाहं त्रिप्रः कर्मपराङ्मुखः ॥११९॥
 प्रतिग्रहपरः पापी दुर्मार्गव्यसनी सदा । एतस्मिन्नन्तरे चैत्रे मम भार्या सती शुभा ॥१२०॥
 स्वानार्थं रामतीर्थं सा मामपृष्ट्वा गृहाययौ । सा मार्गं च मया दृष्टा घृत्वा मार्गं च तां शुभा ॥१२१॥
 प्रोक्ता क्रोधान्मया रंढे मामपृष्ट्वा कथास्थसि । सा प्राह भयभीता तु रामतीर्थं प्रगम्यते ॥१२२॥
 मधुमासेऽवगाढार्थं न मया दुष्कृतं कृतम् । एवं ध्रुत्वापि तद्राक्षसं ताडिता सा मया बलात् ॥१२३॥
 भेषिता स्वगृहं मार्गात्ततः कालांतरे गते । मृतोऽहं च तदा नीतो यमलोकं यमानुगैः ॥१२४॥
 चित्रगुप्तोऽपि दृष्ट्वा मां धिक्कृत्वापि पुनः पुनः । यमराजं स वै प्राह धर्मघन्मां स्वगर्जितैः ॥१२५॥
 भो धर्मराज पापोऽयं चैवस्नाननिवारकः । भुक्त्वादीं राक्षसो योनिं निरयान् भोक्तुमर्हति ॥१२६॥
 इति तद्वचनं श्रुत्वा यमः प्राहानुगांस्तदा । भो भट्टा राक्षसो योनिदीयतां निर्जने वने ॥१२७॥
 पापिनेऽस्मै च मद्राक्पाचनस्त्वैव यमभुगैः । दत्त्वा मे राक्षसो योनिं त्यक्त्वा चात्र गता यमम् ॥१२८॥
 तदाहमप्य वने चाहं छुत्तृवापतेर्षाडितः । पञ्चत्रिंशत्सहस्राणि वर्षाण्यत्र स्थितश्चिरम् ॥१२९॥
 किं मया सुकृतं पूर्वं कृतं यस्याद्वने तत्र । संगतिश्चाद्य वै जाता साधुसंपो गतिप्रदः ॥१३०॥
 इति तद्वचनं श्रुत्वा शंभुर्ध्यात्वा क्षणं हृदि । ज्ञात्वा तत्सुकृतं पूर्वं राक्षसाय न्यवेदयत् ॥१३१॥
 मृणु राक्षस यत्पूर्वं कृतं वै सुकृतं त्वया । तस्माज्जाता संगतिर्मे वने निर्मानुषे शुभा ॥१३२॥

बिल्कुल समीप पहुँच गया । उसे निकट देखकर शम्भुने रामचन्द्रजीका स्मरण करके अपनी तुम्बीका जल उस राक्षसके मुक्तम फेंक दिया । रामनामसे अभिमन्त्रित जलके पहनेसे उस राक्षसको अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो आया । इसलिये यह दूर हो खड़ा होकर माहृणसे कहने लगा—हे मुनिराज ! इस घोर राक्षसदेह-
 ■ आप मेरी रक्षा करिए । मैं आपकी शरण हूँ । आपके जलानिपेकसे मुझे अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो आया है ॥ १११-११७ ॥ इस प्रकारका कौतुक देखकर बाह्यजने उस राक्षससे कहा—पहले तुम हमें यह बत-
 लाओ कि इस राक्षसदेहको किस तरह प्राप्त हुए ॥ ११८ ॥ राक्षसने अपने पूर्वजन्मका हाल बताना प्रारंभ किया ।
 उसने कहा—इसके पहले मैं अपने कर्मोंसे पराङ्मुख एक माहृण था ॥ ११९ ॥ उस समय मैं जैसे-तैसे दान लेता हुआ दुराचार और व्यसनोंमें अपना जीवन बिता रहा था । उसी समय मेरी स्त्री बिना मुझसे पूछे ही चैवस्नान करनेके लिए राक्षसीयोंको चले पड़ी । मैंने उसे रास्तेमें देखा तो पकड़ लिया और उससे कहा—
 अरी राड़ ! बिना हमसे पूछे तू कहाँ जा रही है ? भयभीत होकर उसने उत्तर दिया कि मैं चैवस्नान करनेके लिए राक्षसीयों (अयोध्या) जा रही हूँ ॥ १२०-१२१ ॥ ऐसा करनेमें मैंने कोई पाप नहीं समझा, इसलिये चल पड़ी ।
 ऐसी निष्कपट बात सुनकर भी मैंने उसे बहुत मारा और घर लौटा दिया । कुछ दिन बाद मेरी मृत्यु हुई और यमके दूत पकड़कर मुझे यमलोक ले गये ॥ १२२ ॥ १२४ ॥ चित्रगुप्तने मुझे देखा तो बहुत बिकारा और धमकाकर यमराजसे कहा—हे धर्मराज ! इस पापीने अपनी स्त्रीको चैवस्नानसे रोका था । अतएव यह पहले राक्षसी योनिको भोगकर नरक भोगनेका अधिकारी है ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ इस प्रकार चित्रगुप्तकी बात सुनकर धर्मराजने अपने अनुचरोंको आज्ञा दी कि इसे किसी निजंत दनमें राक्षसी योनि दे दो । उनके आज्ञा-
 नुसार यमदूत मुझे इस वनमें छोड़कर लौट गये । तभीसे भूले-प्यासे रहकर मैंने पैंतीस हजार वर्ष बिताये हैं ॥ १२७-१२९ ॥ मुझे नहीं मालूम कि मैंने कौन-ना पुण्य किया था, जिसके प्रभावसे इन निर्जंत वनमें आप जैसे सज्जनके सद्गतिप्रद दर्शन प्राप्त हुए ॥ १३० ॥ उसकी बात सुनकर शम्भुने क्षणभर अपने हृदयमें उसके पूर्व सुकृतका ध्यान किया और कहने लगा—॥ १३१ ॥ हे राक्षस ! तुमने पूर्वजन्ममें जो सुकृत किया था, वह

एकादश्यां चैत्रशुक्ले कृत्वान्यश्नाद्भोजनम् । तांबूलो दक्षिणापुक्तः कट्यां वस्त्रे त्वया घृतः ॥१३३॥
 द्वादश्यां प्रातरुत्थाय गत्वा स्नानं त्वया कृतम् । पतितः स हि तांबूलो विस्मृत्या गौतमीतटे ॥१३४॥
 दक्षिणासहितो दृष्टः स केनापि द्विजेन वै । गृहीत्वा ■ हि द्वादश्यां न ज्ञातश्च त्वया पुनः ॥१३५॥
 तांबूलदानाद्भैत्रमासे जाता वने मेऽद्य हि संगतिस्ते ।

तस्मान्मर्घा राक्षस मानवैर्हि तांबूलदानं करणीयमेतत् ॥१३६॥

इत्युक्त्वा राक्षसं शंभुश्चैत्रमाहात्म्यमुत्तमम् । उमास्यां आवपित्वाऽथ कर्कशं वाक्यमब्रवीत् ॥१३७॥
 भो कर्कश महाबुद्धे भृशुष्य वचनं मम । आगच्छ त्वं सहैवाद्य मयाऽयोध्यापुरीं प्रति ॥१३८॥
 सरयुस्नानमात्रेण मयी पापादिमोक्ष्यसे । इत्युक्त्वा कर्कशं शंभुस्ततः प्रोवाच राक्षसम् ॥१३९॥
 भो राक्षस त्वमत्रैव मासमात्रं स्थिरो भव । अयोध्यायां प्रवेशश्च राक्षसानां न विद्यते ॥१४०॥
 अतोऽहं मधुमासे हि स्नान्वाऽनेन यथा पुनः । यदागच्छामि कांचीं त्वां चोद्धरिष्याम्यहं तदा ॥१४१॥
 मा संदेहोऽस्तु ते चित्ते श्रयधेन त्रयीम्यहम् । यत्पापं ब्रह्महत्यायास्तथा गोयतिनिन्दनात् ॥१४२॥
 नोद्धृत्य त्वां हि गच्छामि तर्हि तन्मयि तिष्ठतु । मद्यपानं च यत्पापं हेमस्तेयादिकं च यत् ॥१४३॥
 नोद्धृत्य त्वां हि गच्छामि तर्हि तन्मयि तिष्ठतु । यत्पापं भ्रूणहत्यायास्तथा चैत्रे धमज्जनात् ॥१४४॥
 नोद्धृत्य त्वां हि गच्छामि तर्हि तन्मयि तिष्ठतु । इत्यादि श्रयधैस्तर्हि राक्षसं हर्षयन् द्विजः ॥१४५॥
 यावत्पश्यति सर्वत्र तावज्जातं हि कौतुकम् । व्याघ्राय चैत्रमासस्य माहात्म्यस्योपदेशतः ॥१४६॥
 तरवः फलिनो जाता परितो दशभोजनम् । पत्रैः पुष्पैर्वनम्राश्च सौगंधः पवनो ववौ ॥१४७॥
 नद्यस्तोपं वहंत्यश्च ननृतुर्वर्हिणो वने । तद्दृष्ट्वा कर्कशश्चापि चैत्रमाहात्म्यकीर्तनात् ॥१४८॥
 दुर्वनं सुवनं जातं चैत्रश्रुत्यममन्यत । ततस्ते हि त्रयस्तस्माद्भनान्मार्गेण निर्गताः ॥१४९॥

मैं अतला रहा हूँ । उसके प्रभावसे हमारा-तुम्हारा ■■■■■ हुआ है । एक बार तुमने चैत्रशुक्ल एकादशीको किसीके यहां भोजन किया, तांबूल दक्षिणा ली और एक वस्त्रमें रखकर उसे तुमने अपनी कमरमें छिपेट लिया ॥१३२॥ द्वादशीको तुम समरे उठे और गङ्गास्नान करने चले गये । वह कमरमें लिपटी हुई दक्षिणा और तांबूल भूलसे गौतमी नदीके तटपर गिर गया । उसे किसी ब्राह्मणने उठा लिया, किन्तु उसके विषयमें तुम्हें कुछ ख्याल नहीं था ॥१३३:-१३५॥ चैत्रमासमें उस दक्षिणा और तांबूलके दानसे ही आज ■■■ निर्जन वनमें हम-
 ■ साक्षात्कार हुआ है । देखो, चैत्रमें तांबूलके दानका कितना बड़ा माहात्म्य है । अतएव ■ मासमें तांबूल-
 दान अवश्य करना चाहिए ॥१३६॥ ■ तरह उस राक्षसको चैत्रमासका माहात्म्य सुनाकर शंभुने कर्कशसे कहा—हे महाबुद्धिमान् कर्कश ! मेरी ■ मानो और आज ■ मेरे साथ अयोध्यापुरीको चल दो ॥१३७॥ १३८॥ चैत्रमासमें सरयुस्नानमात्रसे तुम सब पापोंसे मुक्त हो जाओगे । ऐसा कर्कशसे कहकर शंभुने उस राक्षससे कहा कि तुम महीने भर इसी स्थानपर रहो । क्योंकि अयोध्यानगरीमें राक्षसलोक नहीं ■ सकते ॥१३९॥ १४०॥ इस कारण जब मैं चैत्रस्नान करके उबरसे लौटूंगा और यहाँ आऊँगा, तब तुम्हारा ■ करूँगा ॥१४१॥ तुम इसमें कुछ संशय मत करो । मैं कसम खाता हूँ कि ब्राह्मणहत्या करने ■ गो एवं मुनियोंकी निन्दा करनेसे जो पातक होता है, वह पातक मुझे लगे, यदि मैं तुम्हारा उद्धार किये बिना जाऊँ । ■ पीने और सुवर्ण चुरानेसे जो पातक होता है, यदि मैं तुम्हारा उद्धार किये बिना जाऊँ तो मुझे वे ■ लगीं । जो पाप भ्रूणहत्या तथा चैत्रमासमें स्नान न करनेसे ■ है, वह मुझे लगे । यदि बिना तुम्हारा उद्धार किये बिना जाऊँ । ■ तरह विविध प्रकारकी शपथें स्थाकर शंभुने ■ ब्रह्मराक्षसको आशवासन दिया । इसके बाद जब व्याघ्रने चारों ओर दृष्टि उठाकर देखा तो चैत्रस्नानका माहात्म्य सुननेके कारण उस वनके दस योजन तक उसे सब वृक्ष फल-फूलसे लदे दितायीं दिये और सुगन्धित वायु चलने लगा ॥१४२-१४७॥ उस वनकी सब नदियोंमें धनधोर जितनाद करता हुआ ■ बहने लगा और मधुरमधुकी

शनैः शनैरयोध्यायाः पृथ्वयश्चरन्वनस्थलीम् । तावच्छब्दो महान् जातः सिंहमातंगसंभवः ॥१५०॥
 धावन्नग्रे तु मातंगः पृष्ठे धावन्ध केसरो । एवं तौ शम्भुमग्निर्ध्वं प्रामौ कलहकारिणौ ॥१५१॥
 मार्गरोधकरो दुष्टौ तौ दृष्ट्वा शम्भुवर्षात् । पश्य कर्कशं विघ्नानि चैवस्नानं पदे पदे ॥१५२॥
 संभवन्तीति वै बुद्ध्वा चैवस्नानं ॥ लंघयेत् । काश्यां विवाहे गीतायां गतायां रामचिंतने ॥१५३॥
 चैवस्नाने महादाने विघ्नानि संभवन्ति हि । एवं वदति विप्रेन्द्रे तौ दुष्टौ करिसिंहका ॥१५४॥
 चैवस्नानमभवात्पूर्वजन्मस्मृत्याऽतिविस्मिता । भूत्वा च ब्राह्मि ब्राह्मीति कृत्वा दीर्घं महास्वप्नम् ॥१५५॥
 शरणं द्विजवर्याय जग्मतुः शम्भुशर्मणे । सोऽपि शम्भुश्च ताभ्यां हि पृष्ठवान् तत्कृपान्वितः ॥१५६॥
 किमर्थं दृष्ट्वातिर्हि ॥ तत्कथ्यतां मम । इति विप्रवचः श्रुत्वा केसरो वाक्यमब्रवीत् ॥१५७॥
 सेतौ रामेश्वरक्षेत्रे पूर्वजन्मन्यहं द्विजः । निन्दकः सर्वधर्माणां पाखण्ड्याकृतस्वरः ॥१५८॥
 कदाचिच्चैत्रमासे तु तत्र श्रीरामसंज्ञके । तीर्थे जनममूढे च श्रुत्वा पौराणिकीं कथाम् ॥१५९॥
 पौराणिकेन कथिता चैत्रमाहात्म्यमृचिकाम् । कृतवान् निन्दनं चाहं वारं वारं पुनः पुनः ॥१६०॥
 तन्मत्कृतं निन्दनं च कश्चिद्विप्रस्वपःस्थितः । शुभ्राव मकलं दुष्टं तेन क्षप्तोऽस्म्यहं तदा ॥१६१॥
 कुरां जातिं त्वरं गच्छ यदा चैत्रशकीर्तनम् । भविष्यति महारण्ये श्लाघयानिस्तदिति च ॥१६२॥
 एव प्रोक्तं मया सर्वं पूर्वजन्मनि यत्कृतम् । तेन श्लाघेन जातोऽस्मि केसरो भयकारकः ॥१६३॥
 चैवस्नानमभवाज्जाता पूर्वस्मृतिरनुनमा । इदानीं रक्ष मां विप्र त्वं चतसिहदं दहतः ॥

इति सिंहस्य वृत्तं तु ज्ञात्वावाच गजं द्विजः ॥१६४॥

कस्माच्च मातंग गतोऽसि दुष्टजार्ता वदस्वाद्य महाघसंघात ।

स चापि मातंगवरः समस्तं वृत्तं निजं चाकथयच्च जार्णम् ॥१६५॥

नाचते लगी । चैत्रमासिक कीर्तनके माहात्म्यसे बनका यह मुषमा देखकर कर्कशाने भी चैत्रमासको सब मासोंमें श्रेष्ठ भागा । तदनन्तर वे दोनों उस बनेले मार्गसे अयोध्याके लिए चल पड़े ॥१५८॥१५९॥ ॥ बनस्थलीकी शोभा देखते हुए चले जा रहे थे । तबतक उन्होंने सिंह और हाथीका महान् गर्जन सुना ॥१५०॥ आगे-आगे हाथी सागा जा रहा था और उसे पीछेसे सिंह खदेड़ता जाता था । लड़ते हुए वे दोनों उसी मार्गपर ॥ पहुँचे, जहाँसे वे दोनों अयोध्या जा रहे थे ॥१५१॥ उन दुष्टोंको रास्ता रोकते देखकर शम्भुने कर्कशसे कहा—देखा ककश ! चैवस्नान करनेवालेके पद-पदपर विघ्न आते हैं । किन्तु लोगोंको चाहिए कि विघ्न-बाधाओंसे डरकर पीछे न हट । काशी-वासमें, पुत्र-पुत्रीके विवाहमें, गीतापाठमें, रामका ध्यान करनेमें, चैवस्नानमें और तुला आदि महादानमें बड़े-बड़े विघ्न आया करते हैं । ब्राह्मणके उन शब्दोंको सुनकर उन दोनों दुष्टों (हाथी और सिंह) को अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो आया । जिससे 'मेरी रक्षा करो-मेरी रक्षा करो' इस तरह कहते हुए वे चित्तलाने लगे ॥१५२-१५५॥ वे ॥ शम्भुनामक ब्राह्मणकी शरणमें गये । शम्भु भी उनपर दयालु होकर उनसे पूछने लगे कि तुम लोगोंको यह दुष्टयोनि क्यों मिली ? यह वृत्तान्त हमें सुनाओ । इस तरह विप्रका प्रश्न सुनकर सिंहने कहा— ॥१५६॥ १५७॥ इसके पूर्ववाले जन्ममें मैं रामेश्वरक्षेत्रका निवासी एक ब्राह्मण था । मैं सब धर्मोंका निन्दक था और पाखण्डसे भरी बातें किया करता था ॥१५८॥ एक बार चैत्रके महोत्सवमें श्रीरामतीर्थमें एक ब्राह्मणके मुखसे मैंने चैत्रमासका माहात्म्य सुन लिया और उसकी भरपूर निन्दा की । मेरी उन निन्दाकी बातोंको पास ही बैठे हुए किसी तपस्वी ब्राह्मणने सुन लिया और उसने उसी समय मुझे शाप देते हुए कहा—तूने चैत्रमासकी निन्दा की है । इसलिए तू किसी क्रूरजातिमें जाकर जन्म ले । ॥ कि एक वनमें तू किसी ब्राह्मणके मुखसे चैत्रमासका माहात्म्य सुनगा, उस समय तेरे शापकी शान्ति होगी ॥१५९-१६२॥ हे विप्र ! इस तरह मैंने आपको अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त कह सुनाया । उसीके शापसे मैं महाभयदायिनी इस सिंहकी योनिमें आ पड़ा हूँ ॥१६३॥ आज आपके मुखसे चैत्रमासमें रामनाम सुननेसे मुझे मेरे पूर्वजन्मकी बातें स्मरण हो गयीं । हे विप्र ! अब मुझे इस सिंहयोनिसे बचाइए ॥१६४॥ इस प्रकार सिंहकी

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि पूर्वकृतं मया कृतम् । रामनाथपुरे चाहं कावेरी उत्तरे तटे ॥१६६॥
 विप्रः परमदुर्बलः सर्वशास्त्रपराङ्मुखः । लक्ष्मीभग्नमदाक्रान्तः पण्यस्त्राभोगकारकः ॥१६७॥
 एकदा सुहृदा चाहं भोजनार्थं निमन्त्रितः । आदाहे मनुमासे हि शुक्ले श्रीनवमीदिने ॥१६८॥
 मया भुक्तं सुहृद्भेदे नवम्यां द्विजसत्तम । तेन श्रापेन जातोऽस्मि करिजानी न संशयः ॥१६९॥
 सर्वदा प्रतिमासेऽपि नवम्यां न हि भोजनम् । कार्यं विक्षेपतो रामनवम्यां निदितं ॥१७०॥
 इदानीं न हि जानामि केन पुण्येन तेऽग्र वै । संगतिश्च वने जाता सर्वेषां परमार्तिहृत् ॥१७१॥
 इति तस्य वचः श्रुत्वा शंभुध्यानेऽविचारयत् । ज्ञात्वा मातंगपुण्यं तु प्रोवाच करिणं द्विजः ॥१७२॥
 शृणु मातंग वक्ष्यामि यत्पुण्यं च त्वया कृतम् । पूर्वजन्मनि तत्सर्वं येन मे भगतिर्वने ॥१७३॥
 जाता त्वामुद्धरिष्यामि सा चित्तां कुरु सर्वथा । रामनाथपुरे रम्ये कावेरीतटशोभिते ॥१७४॥
 रामायणकथा चैत्रे श्रुता श्रीनवमीदिने । रामतीर्थे न्यया स्नातं दृष्ट्वा रामेश्वरः शिवः ॥१७५॥
 तेन पुण्येन ते जाता संगतिर्मम कानने । इदानीं शृणु सिंह त्वं शृणोतु च करी महान् ॥१७६॥
 साकेते मधुमासे हि स्नात्वाऽग्नेन पथा पुनः । यदा गच्छामि तां कांचीं युवामुद्धारयाम्यहम् ॥१७७॥
 मा संदेहोऽत्र कर्तव्यः शपथैः प्रव्रीम्यहम् । मंतोषार्थं युवाम्यां हि प्रोच्यन्ते शपथा मया ॥१७८॥
 परस्त्रीगमनात्पापं तथा मित्रवधादिकम् । पुत्रां नोद्धृत्य गच्छामि तद्धि तन्मयि तिष्ठतु ॥१७९॥
 मत्तस्वहरणात्पापं यत्स्मृतं मातुर्निन्दनात् । पुत्रां नोद्धृत्य गच्छामि तद्धि तन्मयि तिष्ठतु ॥१८०॥
 इत्युक्त्वा द्विजवर्यः स स्त्रिया मिल्लेन सयुतः । करिसिंहा वने स्थाप्य गच्छन्मार्गं शनैः शनैः ॥१८१॥

सुनकर ब्राह्मणने हाथीसे कहा कि तुम किस पापसे इस दुष्टयोनिमें आये हो ? हाथीने अपने पूर्वजन्मका हाल सुनाते हुए कहा—हे विप्र ! मैं भी अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनाता हूँ, सुनिए । उस जन्ममें कावेरी नदीके उत्तरी तटपर रामनाथपुर नामक नगरमें बड़ा दुराचारी, सब शास्त्रोंसे पराङ्मुख, धनके मदसे मतवाला और वेश्यासम्पत् ब्राह्मण था । एक चैत्रमासमें नवमीको मेरे किसी मित्रने श्राद्धमें भोजन करनेके लिए मुझे निमन्त्रण दिया ॥१६५-१६८॥ तदनुसार द्विजश्रेष्ठ । नवमीके दिन मेने मित्रके यहाँ भोजन किया । उसी पापसे इस हाथीकी योनिमें आ पड़ा हूँ ॥१६९॥ क्योंकि शास्त्रोंका यह विधान कि प्रत्येक मासकी नवमीको किसीके यहाँ भोजन करे । यदि ऐसा न हो सके तो चैत्रशुक्ल रामनवमीको तो अवश्य इस बातपर ध्यान दे ॥१७०॥ मैं नहीं जानता कि किस पुण्यसे सब प्रकारके जलेशोंको हरनेवाला आपका सत्संग प्राप्त हुआ ॥१७१॥ उसको यह सुनकर शम्भुने अपने मनमें ध्यान किया और उसके पुण्यको जानकर कहने लगा—हे मातंग ! सुनो, तुमने जो पुण्य किया है सो तुम्हें बतलाता हूँ । उसीके प्रभावसे आज हमसे भेट हुई है ॥१७२॥ ॥१७३॥ जब पयड़ाओ मत, मैं तुम्हारा हर तरहसे उद्धार करूँगा । उस जन्ममें तुमने रमणीक कावेरीके तटपर स्थित रामनाथपुरमें श्रीरामनवमीको रामकी कथा सुनी थी । उस दिन तुमने रामतार्थमें स्नान और रामेश्वर शिवका दर्शन भी किया था ॥१७४॥ ॥१७५॥ उसी पुण्यसे आज इस वनमें हमसे भेट हुई है । हे मातंग और सिंह ! मेरी सुनो, समय चैत्रमासका स्नाप करनेके लिए आयोष्या जा रहा है । स्नान करके जब मैं कांचीकी ओर लौटूँगा, तब यहाँ आकर तुम दोनोंका उद्धार करूँगा ॥१७६॥ ॥१७७॥ मेरी बातपर किसी प्रकारका संदेह मत करना । तुम्हारे विश्वासके लिए मैं साठा हूँ, सुनो ॥१७८॥ यदि मैं तुम्हारा उद्धार किये बिना जाऊँ तो परस्त्रीगमन करने और मित्रको मारनेसे जो पातक लगता है, उस पातकका भागी बनूँ ॥१७९॥ जो पाप ब्राह्मणका धन हड़पने और माताकी निन्दा करनेमें होता है, उन सब पापोंका भागी बनूँ, यदि तुम्हारा उद्धार किये बिना जाऊँ ॥१८०॥ इतना कहकर उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने अपनी स्त्री तथा उस भौलको साथ लिया और वहाँसे आयोष्याके लिए चल पड़ा । उसने हाथी तथा सिंहको उस वनमें ही छोड़ दिया ॥१८१॥

ददर्शन्यपथा यान्तं श्रेष्ठं कार्पटिकोत्तमम् । वहन्तं रामलिंगार्थं श्रेष्ठं भागीरथीजलम् ॥१८२॥
शम्भुः पप्रच्छ तं नत्वा नम्रं कार्पटिकोत्तमम् । कुतः समागतं विप्र गम्यते काधुना वद ॥१८३॥

कार्पटिक उवाच

प्रयाणादागतं विद्धि मां त्वं भूसुरसत्तम । सधुमासेऽवगाहार्थमयोध्यां प्रति गम्यते ॥१८४॥
इदानीं त्वं निजं वृत्तं वद ब्राह्मणसत्तम । कुतः समागतं चात्र गम्यते काधुना वद ॥१८५॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा शम्भुः प्रोवाच तं तदा । शिवकाञ्च्याः समायातमयोध्यां प्रति गम्यते ॥१८६॥
चैत्रमासेऽवगाहार्थं गम्यते कथितं मया । इति शम्भुवचः श्रुत्वा पुनः कार्पटिकोत्तमः ॥१८७॥
पप्रच्छ द्विजवर्षाय कौतुकाविष्टमानसः । शिवकाञ्च्यां शंभुनामा कश्चिद्विप्रोऽस्ति भो द्विज ॥१८८॥
तत्तस्य वचनं श्रुत्वा पुनः शम्भुस्तमवधीत् । बहवः शंभुनामानो वर्तन्ते द्विज तत्र हि ॥१८९॥
कस्त्वया पृच्छयते तस्य वद गोत्रोपनामनी । इति विप्रवचः श्रुत्वा पुनः कार्पटिकोऽवधीत् ॥१९०॥

भारद्वाजकुलोत्पन्नं

चक्रगोष्पुपनामकम् ।

महादेवसुतं सर्ववेदशास्त्रविशारदम् । ब्राह्मणं शंभुनामानं ज्ञानीपे त्वं न वा वद ॥१९१॥
एवं महाकार्पटिकेन सर्वं गोत्रोपनामादिकमादरेण ।
प्रोक्तं यथा तत्र स भूसुरोऽपि ज्ञात्वा निजं सर्वमथावदत्तम् ॥ १९२ ॥
भो भो कार्पटिकश्रेष्ठ किमर्थं त्वं हि पृच्छसि । तद्वदस्व सविस्तारं वा शंकां कुरु चात्र हि ॥१९३॥

कार्पटिक उवाच

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि यदर्थं पृच्छयते मया । यदाऽहं गतवान् गंगासागरं द्रष्टुमादरात् ॥१९४॥
सीताकुण्डसमीपे हि देशे कैकटनामके । दृष्टोऽहं मार्गमध्ये च पिशाचिनोरूपिणा ॥१९५॥
मां हन्तुं निकटं प्राप्तं तं दृष्ट्वाऽहं तदा द्विज । स्निग्धमकीर्तनं दीर्घं कृतवान् भयकम्पितः ॥१९६॥
कीर्तनाद्रामचन्द्रस्य स पिशाचः पलायनम् । मत्तः कृत्वा दूरदेशे स्थित्वा शुभारं कीर्तनम् ॥१९७॥

रास्तेमें शम्भुने एक कार्पटिकी विप्रको देन्ता, ओ रामेश्वर शिवके लिए गंगाजी का उत्तम जल लिये जा रहा था ॥ १८२ ॥ उसे देखकर शम्भुने पूछा—हे वि॥ ! इस समय तुम कहाँसे रहे हो और कहाँ जाओगे ? ॥ १८३ ॥ उसने उत्तर दिया—हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! इस समय मैं प्रयागसे आ रहा हूँ और चैत्ररानान करनेके लिए अयोध्या जा रहा हूँ ॥ १८४ ॥ अब आप अपना वृत्तान्त बतलाते हुए कहिए कि कहाँसे आये है और कहाँ जायेंगे ? ॥ १८५ ॥ ब्राह्मणका प्रश्न सुनकर शम्भुने कहा कि मैं शिवकाञ्चीसे आता हूँ और अयोध्या जा रहा हूँ ॥ १८६ ॥ हमें भी चैत्ररानान करना है । इस प्रकार शम्भुकी बात सुनकर ब्राह्मणने कहा कि हे द्विज ! शिवकाञ्चीमें कोई शम्भु नामका ब्राह्मण रहता है ? ॥ १८७ ॥ १८८ ॥ ब्राह्मणकी बातके उत्तरमें शम्भुने कहा कि शिवकाञ्चीमें बहुतसे शम्भु नामके ब्राह्मण हैं ॥ १८९ ॥ आप किस शम्भुको पूछते हैं ? जिसे पूछते हों, उसका गोत्र और उपनाम बतलाइए । शम्भुकी मुनकर उस ब्राह्मणने कहा कि जिन्हें मैं पूछता हूँ, वे भारद्वाज कुलमें उत्पन्न हुए हैं और चक्रगोष्पे उनका उपनाम है । वे महादेवके पुत्र हैं । वे सब वेदों और शास्त्रोंको जानते हैं । उन शम्भुको जानते हैं या नहीं, सो बतलाइए ॥ १९० ॥ १९१ ॥ इस तरह ब्राह्मणके मुखसे अपना गोत्र और उपनाम आदि सुनकर शम्भुने कहा—हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! तुम शम्भुकी क्यों पूछ रहे हो, मुझे विस्तारपूर्वक बतलाओ । इसमें किसी प्रकारका सन्देह करो ॥ १९२ ॥ १९३ ॥ कार्पटिकने कहा—हे विप्र । जिसलिए मैं उन्हें पूछ रहा हूँ, सो बतलाता हूँ । जब कि मैं गंगासागरका दर्शन करने गया था तो सीताकुण्डके समीप कैकट देशमें मुझे एक उग्ररूपधारी पिशाचने देख लिया ॥ १९४ ॥ १९५ ॥ वह मारनेके लिये बिल्कुल मेरे पास आ पहुँचा । ॥ उसे देखकर जोर-जोरसे रामनामका कीर्तन करने और भयसे कांपने लगा ॥ १९६ ॥ रामनामके कीर्तनसे वह भाग खड़ा हुआ और मेरे पाससे थोड़ी दूरपर रुककर कीर्तन

तस्माज्जाता पूर्वजन्मस्मृतिस्तस्य शुभावहा । ब्राहि ब्राहीति मां प्राह मया पृष्टः स वै पुनः ॥१९८॥
 कस्मात्पिशाचदेहे त्वं जातस्तद्वद सत्वरम् । इति मे वचनं श्रुत्वा पिशाचः प्राह मां पुनः ॥१९९॥
 कांचीपुर्यां द्विजश्चाहं दुष्टिनामा पुनः स्थितः । नामदानं मया पूर्वं कृतं स्वल्पमपि कश्चित् ॥२००॥
 तस्मात्पिशाचदेहत्वं प्राप्तं कार्पटिकोत्तम । इति तस्य वचः श्रुत्वा पुनः प्रोक्तः स वै मया ॥२०१॥
 कथं पिशाचयोन्यास्तु ते मुक्तिश्च भविष्यति । ततः पुनः स मां प्राह यदि मे तनयः शुचिः ॥२०२॥
 चैत्रे दशौ ममोद्देशादन्नदानं करिष्यति । भविष्यति ममोद्धारस्तन्क्षणमात्र संशयः ॥२०३॥
 इति तद्वचनं श्रुत्वा पुनः प्रोक्तः स वै मया । वर्तते क मुतस्ते हि किं नामा वद मां प्रति ॥२०४॥
 तस्तत्तेन यथा प्रोक्तं भारद्वाजाय चिह्नजम् । तत्प्रोक्तं च मया सर्वं निकटे तव भो द्विज ॥२०५॥
 पिशाचं हि पुनश्चाहमुक्तवान् तद्वदाम्यहम् । रामेश्वर्यं भो पिशाच नीयते जाह्नवीजलम् ॥२०६॥
 मया करंडमध्ये हि यदा गच्छामि दक्षिणाम् । दिशं कालेन कांचीं हि प्रवेक्ष्यामि यदा तदा ॥२०७॥
 तव पुत्राय वृत्तं हि कथयिष्याम्यहं । इति मद्वचनं श्रुत्वा सन्तोषं परमं गता ॥२०८॥
 पिशाचः प्राह मां विप्र स्तुत्वा नत्वा पुनः पुनः । अवश्यमेव वक्तव्यं मे वृत्तं यत्नवे ॥२०९॥
 यथा द्रुपं न्वया पाथ यथोक्तं च मया तव । अन्यच्च कथ्यतां तस्मै मम पुत्राय सादरम् ॥२१०॥
 मधुदर्शेऽन्नदानस्य महिमा श्रूयते दिनि । अतस्त्वं हि ममोद्देशेनान्नदानं मयी कुरु ॥२११॥
 एवमुक्त्वा स पिशाचः शपथं मां चकार ह । न श्रूये स्मरणं कृत्वा मम पुत्राय तद् द्विज ॥२१२॥
 भविष्यति श्रुत्वा सर्वयात्रा तव महात्मने । इति मद्वचनं श्रुत्वा मांस्त्वयिन्वा च तं पुनः ॥२१३॥
 निर्गतोऽस्मि मयी स्नातुमयोध्यां संतुमादरात् । कृत्वाऽयोध्यापुरीमध्ये चैत्रस्नानं महाफलम् ॥२१४॥
 यदा गच्छामि तां कांचीं तदा तस्मै वदाम्यहम् । अतएव मया पृष्टस्तव संसर्द्धोत्तमः ॥२१५॥

सुनते लग्न ॥ १९७ ॥ उस कोतनके श्रवणसे उसे अपने पूर्वजन्मका स्मरण गया और जोरोंसे साथ 'ब्राहि-ब्राहि' कहकर नितलाने लगा । मेने उससे पूछा कि तुम क्यों इस पिशाचजरीरको प्राप्त हुए हो, सो मुझे शीघ्र बताओ । मेरी बात सुनकर पिशाचने कहा— ॥ १९८ ॥ १९९ ॥ हे विप्र ! पूर्वजन्ममें कांचीपुरीनिवासी मैं दुष्टिनामका ब्राह्मण था । उस जन्ममें मेने कहीं थोड़ा भी अन्नदान नहीं किया था ॥ २०० ॥ इसी कारण इस पिशाचदेहको प्राप्त हुआ हूँ । उसकी बात सुनकर मेने कहा— निम्न उपायसे तुम पिशाचयोनिसे मुक्त होगे ? यह सुनकर उसने कहा कि 'यदि चैत्रकी अमावस्याको मेरा पुत्र मेरे लिए अन्नदान करे तो तत्क्षण मेरा उद्धार हो जाय, इसमें कोई संशय नहीं' ॥ २०१ ॥ २०२ ॥ २०३ ॥ इस प्रकार उसकी बात सुनकर मेने पूछा कि तुम्हारा यह लक्षण कहाँ रहता ? सो हमें बतलाओ ॥ २०४ ॥ इसके बाद उसने मुझे परिचय बतला दिया, जो अमं मेने आपसे कहा है ॥ २०५ ॥ फिर मेने कहा— हे पिशाच ! मैं इस काँवरमें गंगाजल लिये रामेश्वर शिवपर चढ़ाने जा रहा हूँ । कुछ दिनों बाद मैं दक्षिण दिशाकी ओर लौटूँगा तो कांचीपुरी जाऊँगा । यहाँ पहुँचकर तुम्हारे घंटकी तुम्हारा सब समाचार कह सुनाऊँगा । मेरी सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और मुझे बार-बार प्रणाम करके उसने कहा— हे विप्र ! मेरा वृत्तान्त मेरे पुत्रसे अवश्य कहिएगा ॥ २०६-२०९ ॥ आपने मेरी जो अवस्था देखी है, जो कुछ मेने आपकी बतलाया और इसके अतिरिक्त भी जो उचित समझिए, वह मेरे लक्षकेसे कह राजिएगा ॥ २१० ॥ सुनता हूँ कि चैत्रमासमें अन्नदान करनेका बड़ा माहात्म्य है । इसीलिए तुम चैत्रमासमें मेरे उद्देश्यसे अन्नदान करो । ऐसा कहकर उसने मुझे शपथ दिलायी कि यदि आप ब्याज करके मेरे सन्देशको मेरे पुत्रसे नहीं कहेंगे तो मैं महागते । आपकी यात्रा व्यर्थ हो जायगी । उसकी बात सुनकर मेने बारम्बार उसे मानवना दी और चैत्रस्नान करनेके निमित्त अयोध्या चल पड़ा । महाफलदायी चैत्रमासका स्नान करनेके अनन्तर जब मैं कांची जाऊँगा तो उसके पुत्रको पिशाचका सन्देश सुना दूँगा । इसीलिए मेने आपसे शम्भुके विषयमें पूछताछ की ।

प्रोक्तं गोत्रादिभिरिह वर्तते चेददस्व माम् । इति संभुः पितुर्द्वयं ज्ञात्वा मूर्च्छां गतस्तदा ॥२१६॥
 आश्वासितश्च भिन्नेन विप्रः प्रोवाच तं पुनः । भो भोः कार्पटिकश्रेष्ठ न मनोऽस्ति नरोऽयम् ॥२१७॥
 यस्त्वया पृष्ठपते संभुः सोऽहं विद्धि न संशयः । मया पुत्रेण न कृतं स्वपितुर्मोक्षदायकम् ॥२१८॥
 अन्नदानादिकं कर्म धिग्धिग्मेऽयं युथा भवः । इदानीं तव वाक्येन दास्याम्यन्नं मया पितुः ॥२१९॥

एवं शम्भुः कार्पटिकाय शोक्नवाऽयोध्यां रम्यां दूतौ वै ददर्श ।

ते प्रणेमुस्तां दंपतीर्पाथभिह्वयन्तः शम्भुश्चावदत्कर्कशं सः ॥२२०॥

शम्भुश्चाव

पश्य पश्य महामिह महायोध्यापुरीं शुभाम् । यस्यां स्नानं समायाता दृश्यन्ते कोटिशो जनाः ॥२२१॥
 जनौघानां ध्वनिश्चायं श्रूयते मेघशब्दवत् । नानाध्वजपताकाश्च दृश्यन्ते चेन्द्रचापवत् ॥२२२॥
 यथा वाद्यध्वनिश्चायं श्रूयते हि मनोहरः । अग्निहोत्राग्निधूमौघैर्न्यासं पश्य नभोऽङ्गणम् ॥

कैलासगिरिसाम्यानि पश्य मौधानि कर्कश ॥२२३॥

नवप्रतोलीपरिखात्रलयाकृतमेखलाम् । उन्मुहदम्पां विलम्बिताकाशवसंकुलाम् ॥२२४॥
 अञ्जलिहमहामीधसुवर्णकलजोज्ज्वलाम् । पश्यायोध्यापुरीं श्रेष्ठां मरुतीरनादिताम् ॥२२५॥
 हाटकोद्घाटिता रत्नस्रविर्तया कपाटकैः । सुमधूर्तविचूर्णैः रघैरुन्मिषतीव लक्ष्यते ॥२२६॥
 दीभ्यमानैर्मरुता पताकांचलवृचिनः । आह्वयतीव पुग्नो लक्ष्यते पथिकान् जनान् ॥२२७॥
 अधःकृताघोभुवना जेतुमेकामरावतीम् । प्रामादशूलव्याजेन सन्नद्धवाद्य लक्ष्यते ॥२२८॥
 पवित्रेऽस्मिन्महाक्षेत्रे निवसन्ति तिरोहिताः । अन्नशर्हाग्निः सर्वदेवास्ते ऋषयोऽमलाः ॥२२९॥
 कुबेरस्पर्द्धया यत्र चिन्वन्ति वसुमंधराः । दातुं प्रोक्तं जनाः सर्वे स्वधर्मनिरताः सदा ॥२३०॥
 मेहे मेहे सदानन्द एवार्साधव वै पुगि । येषां पक्षालयन्ति स्म चरणान् वामवादिकाः ॥२३१॥

■ तरह अपने पिताकी हालत सुनकर शम्भु मूर्च्छित हो ■ ॥ २११—२१५ ॥ उसकी यह दशा देखकर उस भील और बाहुणने उसे बहुत कुछ आश्वासन दिया । होशमें आनेपर शम्भुने कहा—हे कार्पटिकश्रेष्ठ ! जिस शम्भुके बारेमें आर गूछ रहे हैं, वह मैं हूँ । मेरे बराबर अयम और कोई नहीं हो सकता । मुझ अयम पुत्रने अपने पिताकी मुक्ति के लिए कुछ भी अन्नदान नहीं किया । मेरे शम्भुको धिक्कार है : मैं अब आपके कथनानुसार इस चैत्रमासमें अवश्य अन्नदान दूंगा ■ २१६ ॥ २१७ ॥ २१८ ॥ २१९ ॥ ऐसा कहकर शम्भु चल पड़ा और रम्य अयोध्या नगरीको दूरसे देखकर स्त्री-पुरुष, जम्भू, पथिक एवं भीलने प्रणाम किया और शम्भुने कर्कशसे कहा—हे महामिह ! इस अयोध्यापुरीको देखा, जिसमें स्नान करनेके लिए करोड़ों मनुष्य आये हुए हैं ॥ २२० ॥ २२१ ॥ महान् जलमयुदायकी छत्रि मेघवर्जनके समान सुनायी दे रहा है । उड़ती हुई विविध प्रकारकी पताकायें इन्द्रधनुषके समान देख नहीं हैं । वाजोंकी मनोहर ध्वनि सुनायी देती है । अग्निहोत्रके धूमसे सारा आकाशमण्डल भर गया है । हे कर्कश ! यही कैलासशिखरके समान उज्ज्वल और ऊँची अट्टालिकायें दीख रही हैं ॥ २२२ ॥ नयी-नयी अट्टारियों और पारखाओंसे सारी नगरें घिरी हुई हैं । ऊँचे ऊँचे भवन बने हैं और उनमें संकड़ों पताकायें फहरा रही हैं । आकाशको घूमनेवाले बड़े-बड़े भवनोंपर सुवर्णके कलशोंसे अयोध्यापुरी शोभित हो रहि है । रत्नमें लबित और सुवर्णसे भण्डित दरवाजोंसे भरो नगरी उनके खुलने और बन्द होनेपर ऐसा लगता है कि वह पलकें खोल भूँद रही है । पताकाकूपी झंझल पवन द्वारा उड़नेसे ज्ञात होता है कि यह नगरी दूर हो से पथिकोंको बुला रही है ॥ २२३—२२७ ॥ इस नगरीने अपनी शोभासे पाताललोकको भी नीचा दिखा दिया है । अब केवल अमरावती पुरीकी जीतना बाकी है । सो ऐसा लगता है कि प्रासादरूपी शूलको लिये हुए यह पुरी उसे भी जीतनेकी तैयारी कर रही है । इस पुनीत क्षेत्रमें ब्रह्मा, विष्णु और शिवके साथ-साथ सब देवता और ऋषि गृप्तरूपसे निवास करते हैं ॥ २२८ ॥ २२९ ॥ यहाँके निवासी कुबेरको जीतनेके लिए और दान तथा भोगके वास्ते घन दहोर रहे हैं ॥ २३० ॥ इसी पुरीमें

ते द्विजाः कस्य नो बंधा अयोध्यानगरीस्थिताः । औदार्ये कल्पतरवो गाभीर्ये सागरा इव ॥२३२॥
 क्षमया क्षमया तुल्या जंगमा निगमा इव । दैन्यश्रद्धमहामोक्षिप्रासादस्तपमहर्षयः ॥२३३॥
 निवसन्ति द्विजा यत्र बंधाः सर्वमहीभुजाम् । चतुर्वर्गफलोपेतं चतुराश्रममुज्ज्वलम् ॥२३४॥
 चातुर्वर्ण्यमिहैवास्ते चतुराश्रमायमार्गम् । कुमिकोटपतङ्गानां विना ज्ञानममाधिभिः ॥२३५॥
 अत्र निर्वाणपदवी सुलभाऽस्ति वनेचर । एनःपातघटान् भोक्तुं तरंगानंकुशानिव ॥२३६॥
 धिमतिं सरयुतोयं निःश्रेणिर्भोगमोक्षयोः । पश्य स्फाटिकपोषाननिविष्टानिसस्तुताम् ॥२३७॥
 सरयुनदीमृत्तरीयां कृतमिव पुराऽनया । इन्द्रनीलमहातुंगप्रतोलीचारुदर्शनः ॥२३८॥
 रामचन्द्रस्य दिव्योऽयं प्रासादस्तुङ्गतीरणः । प्रतोली यस्य घटिका काश्मीरैरुपलैरलम् ॥२३९॥
 सीतायाश्च महानेष प्रासादो रत्नतीरणः । नानारत्नैर्मण्डितश्च हेमस्त्वमविराजितः ॥२४०॥
 स्फाटिकैरुपलैश्चित्रः सरयुतीरमंथिनः । रामतीर्थमपीपेऽयं सीतारामस्य च परः ॥२४१॥
 प्रासादो विमलो भाति तप्तकांचननिर्मितः । पताकाभिर्विविचित्राभिः कलशैः सुविराजितः ॥२४२॥

उत्तमजावृन्दरत्नकुम्भः

प्रवालवर्द्धनिबद्धभूमिः ।

हेमप्रतोलीरचिनः स एव प्रासादवर्षोऽस्ति हि लक्ष्मणस्य ॥२४३॥

चातुर्यं यत्र विश्रान्तं सकलं विश्वकर्मणः । सोऽयं भरतराजस्य प्रासादो हेमतीरणः ॥२४४॥
 वेदीप्यमानोऽयं रत्नभित्तिविनिर्मितः । प्रासादो दृश्यते रम्यः शत्रुघ्नस्य शुभावहः ॥२४५॥
 स्फाटिकैर्मित्तिभिश्चित्रः प्रोच्यः कनकरेसितः । प्रासादो वायुपुत्रस्य दृश्यतेऽयं महोज्ज्वलः ॥२४६॥

य एष मुक्ताफलजालशोभी सुदर्शनांकः स्वगराजकेतुः ।

कुशस्य रम्यस्त्वयमाविमस्ते प्रासादकुम्भः किमु बालसूर्यः ॥२४७॥

सदा आनन्द छाया रहता है । जहाँके निवासी ब्राह्मणोंके पैर इन्द्रादि देवता भी धोया करते हैं, ■■■
 बल्ल क्लिसके वन्दनीय न होंगे । यहाँके विप्र उदारतामें कल्पवृक्ष, गम्भीरतामें समुद्र, क्षमामें पृथ्वी, जंग-
 मोमें वेद तथा दारिद्र्यरूपी महान् समुद्रके शोधणमें अगस्त्यके सङ्ग हैं । संसारके सब राजे इनको मस्तक
 झुकाकर प्रणाम करते हैं । इनको धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पदार्थोंमेंसे किसीको भी कमी नहीं
 रहती । ये आनन्दके साथ ब्रह्मचर्य, गार्हस्था, वानप्रस्थ एवं संन्यास, इन चारों आश्रमोंका उपभोग करते ■■■
 ॥ २३१-२३४ ॥ यहाँपर चारों वेदोंके अनुसार चार वर्णके लोग निवास करते हैं । हे वनेचर ! यहाँ ज्ञान और
 समाधिके बिना ही कीट-पतङ्ग आदिकोंके लिए भी मुक्ति सुलभ है । यहाँ पापरूपी घड़ोंका ■■■ पीनेके
 लिए योग और मोक्षको नितेनी वनकर सरयूका ■■■ गांधित ■■■ रहा है । देखो न ! स्फटिक मणिकी बनी
 सीढ़ियोंपर मुनिगण बैठे हुए स्तुति कर रहे हैं । अयोध्याकी उत्तर दिशामें इन्द्रनीलमणिसे बने मार्गके समान
 सुन्दर सरयू नदी बह रही ■■■ ॥ २३५-२३८ ॥ यह रामचन्द्रजीका दिव्य और ऊँचा प्रासाद है, जिसमें ■■■
 कंगूरे बने हुए हैं । इसके आस-पासके मार्ग काश्मीरके पत्थरोंसे बने ■■■ ॥ २३९ ॥ इस ओर सीताका महाभवन
 दिखाई पड़ता है । जिसमें रत्नके तीरण और सुवर्णके स्तम्भ लगे हुए हैं ॥ २४० ॥ जहाँतहाँ स्फटिक मणिके
 ■■■ लगे हैं, जिससे यह चित्र-विविध मालूम पड़ रहा है । रामतीर्थके पास ही सीता-रामका एक दूसरा
 भवन सुवर्णसे बना है । उसमें भी विचित्र प्रकारकी पताकायें लगी ■■■ और सुन्दर कलश सुशोभित हो रहे हैं
 ॥ २४१ ॥ २४२ ॥ जिसमें तप्तमे सुवर्ण ■■■ रत्नोंके कलश हैं, सुन्दर प्रवाल और वेदूर्ध्वमणिकी दीवारें बनी
 हैं । इसके भी आस पास सुवर्णके मार्ग बने हैं । यह श्रीलक्ष्मणजीका भवन है ॥ २४३ ॥ वह सामनेका भवन
 जिसके बनानेमें विश्वकर्माकी सारी चातुरी समाप्त हो चुकी है, श्रीभरतजीका भवन है । इसमें भी सुवर्णके
 तीरण लगे हुए हैं ॥ २४४ ॥ रत्नोंसे बनी दीवारवाला यह रम्य प्रासाद शत्रुघ्नजीका है ॥ २४५ ॥ अतिरम्य
 ऊँचा और स्फटिक मणिसे बनी दीवारका ■■■ सुवर्णमय प्रासाद वायुपुत्र श्रीहनुमान्जीका है ॥ २४६ ॥

प्रासादोऽयं लवस्यात्र बहुरत्नविराजितः । यत्र चित्राण्यनेकानि मोहयन्ति मृगीदृशाम् ॥२४८॥
 चक्षुषि जातरामाणि योगिनामपि मानसम् । विन्यस्तस्त्नविन्यासः श्रातकुंभध्रुवो बहिः ॥२४९॥
 हेपयंतीष सततं रत्नसानुमहाप्रभाम् । रत्नप्रासादमवृत्तामयोध्यां पश्य सुप्रभाम् ॥२५०॥
 यदंगणं सालयती नदीयं स्त्रीयैर्जलैः सोऽयमनर्घ्यरत्नः ।
 अग्रंकपैर्हेममयैः स्वकृमैर्विराजिनोऽयं खलु चित्रकेतोः ॥२५१॥
 दिव्यप्रवालप्रटिते कपाटे यत्र चञ्चले । प्रासादोऽयमंगदस्य रुक्मभिन्निविनिर्मितः ॥२५२॥
 गरुडोद्गारप्रटितप्रतोलीपरिशोभितः । प्रासादः पुष्करस्यायं नयनानन्दनो नृणाम् ॥२५३॥
 विशुद्धजाषूनददिव्यभूमिलसत्पातकस्त्रिदशभिर्वधः ।
 प्रासाद एषः परमो मनोज्ञस्तप्तस्य वीरस्य महान् दिभाति ॥२५४॥
 यस्याधिभूमिं नवरत्नसिंहस्त्रिभिः पदैरे विजितास्त्रयोऽपि ।
 लोकश्चतुर्थो न हि दृश्यतेऽनः पदं ममुद्यम्य किमाविरास्ते ॥२५५॥
 अधोऽधमलकरिणां घटा दारयितुं किमु । उदरचरणो यस्य रत्नसिंहो विराजते ॥२५६॥
 सोऽयं हेमभिन्निमयः प्रासादः प्रेम्नतः शुभः । सुबाहोः पश्य भो भिल्लरत्नयानुविराजितः ॥२५७॥
 रत्नप्रवालस्फटिकनीलकाञ्चोरनिर्मितः । प्रासादोऽयं यूक्तेनोर्महान् दोष्तिमयः शुभः ॥२५८॥
 कल्लारैरुत्पलैः शोणैररविन्दैः शतच्छदैः । विराजितं पापहरं रामतीर्थं प्रदृश्यते ॥२५९॥
 इन्दुपलै रविदर्लनिबद्धा यस्य भूमयः । हरति ग्रीष्मसन्तापं निष्यन्दसीकरोन्करैः ॥२६०॥
 अमन्दकुरुविन्दानां विन्यासैर्वत्र चारुभिः । मुह्यन्ति शुकचेतांसि मुहुराडिमशकया ॥२६१॥
 एवं पश्य शुभां रम्यां पताकाभिर्विराजिताम् । भिल्लायोध्यां मुक्तिपुरीं द्वितीयाभमरावतीम् ॥२६२॥

जिसमें मोतिषोंकी सालरें लगी हैं, सुदर्शन चक्र एवं गरुडके चिह्नसे चिह्नित पताकायें फहरा रही हैं, बालसूर्यकी तरह सुन्दर यह भवन कुण्डा है ॥ २४८ ॥ बहुतेरे रत्नोंसे विराजित यह लवका दिव्य भवन है, जिसमें बने हुए चित्र स्त्रियोंका मन मोह लेते हैं ॥ २४९ ॥ जहाँ कि योगियोंकी जो आत्मे पहुँचकर रागमयी बन जाती है, जिस नगरीके भवनोंमें विविध प्रकारके रत्नोंकी पन्चाकारों की हुई है, जिसके बाहरकी भूमि सुवर्णमयी है, जिसकी अटारिणां गुर्वणकूटकी तरह देवोपमान हो रही है, ऐसी अगाधगह्वरीकी देखो । जिसके प्राणणको घोंता हुई यह सरयू नदी विराजमान है । आकाशको झूनेवाले बड़े बड़े प्रासादोंके कलशोंसे सुशोभित यह पुरी साक्षात् चित्रकेतु गन्धर्वकी पुरीके समान सुन्दर दीप्त रही है ॥ २४८-२५१ ॥ दिव्य प्रवाल मणिसे बने हुए कपाट जिसमें लगे हैं और सुवर्णकी दीवारें बनी हैं, यह अश्वत्थका भवन है । गरुडमणिकी जिसमें प्रतोलियां बनी हैं, नयनोंकी आनन्द देनेवाला वह भवन पुष्करका है । जिसका फलं विगुद्ध सुवर्णकी बनी है और सुन्दर पताकायें जिसमें फहरा रही हैं, यह परम मनोज्ञ प्रासाद वीर लक्षका है ॥ २५२-२५४ ॥ इधर देखो, नवरत्नमय सिंह विद्यमान है । इस नवरत्नमय सिंहकी बड़ी महिमा है । इसके प्रभावसे वामन भगवान् ने तीन पेरसे तीनों लोकोंको नाश लिया था । चौथा कोई लोक ही नहीं बचा था, जिसे नापते ॥ २५५ ॥ जिसके घरमें ऊँरकी पैर उठाये तवरत्नका सिंह विराजमान हो तो अध (पाप) सभी मतवाले हाथियोंका उसे कुछ भी भय नहीं रह जाता ॥ २५६ ॥ हेमभिन्निमय रत्नके शिखरसे विराजित यह प्रासाद सुबाहुका है ॥ २५७ ॥ रत्न, प्रवाल, स्फटिक और नील काञ्चोरसे निर्मित यह प्रासाद यूक्तेनुका है ॥ २५८ ॥ कल्लार, उत्पल, शोण, अरविन्द तथा शतपत्रसे विराजित समस्त पापोंको हरनेवाला यह रामतीर्थ दिखलायी पड़ रहा है ॥ २५९ ॥ जिसकी भूमि चन्द्रकान्त मणिसे बनी है । अतएव टपकते हुए ठण्डे जलकी बूँदोंके गिरनेसे ग्रीष्म-शत्रुका सन्ताप दूर हो जाता है । दमकते हुए कुरुविन्द मणिके लगे रहनेसे यहाँ शुकोंको मूँग और अनारके फलका भ्रम हो जाता है ॥ २६० ॥ २६१ ॥ इस प्रकारकी सुन्दर, रम्य और पताकाओंसे विराजित दूसरी

यत्र कार्चस्वरघटाः प्रतोलीशिरसि स्थिताः । रामं द्रष्टुमनन्तास्तं प्राप्ताः सूर्या इवावधुः ॥२६१॥

नृसिंह उवाच

एवमुक्त्वा कर्कशेन पत्न्या कार्पटिकेन च । सहितश्च तदा शंभुर्त्ता पुरीं संविवेश सः ॥२६४॥

रामतीर्थं ततो गत्वा कृत्वा क्षौरादिकं विधिम् । उपोष्य दिनमेकं हि तीर्थं श्राद्धं चकार सः ॥२६५॥

अमावास्यां शुभां चैत्रं प्राप्तां ज्ञात्वा द्विजोत्तमः । मुक्त्यर्थं स्वपितृयुक्ते अन्नदानं यथाविधि ॥२६६॥

तच्चैत्रमासौ रजनीश्रमंक्षये दत्तं पितुर्यज्जुमदं मनोहरम् ।

विश्रेण चाभं पथिकस्य वाक्यतस्तस्मात्पिशाचः सुरसञ्च निस्थितः ॥२६७॥

अयोध्यायां ततः शंभुः कृत्वा चैत्रेऽवगाहनम् । उद्यापनविधिं चापि यथोक्तं ॥ चकार सः ॥२६८॥

कर्कशोऽपि मर्धो स्नात्वा मुक्त्वा पापीघमूधरम् । अयोध्यानगरीमध्ये साधुवृत्त्याऽवसच्चिरम् ॥२६९॥

श्रीरामचितनं कुर्वन्निनायायुष्यसंक्षयम् । ततः प्राप हरेर्लोकमयोध्यामरणेन सः ॥२७०॥

शंभुश्चापि मर्धो स्नानं कृत्वा कांचीपुरीं पुनः । गतुं प्रतरथे श्रीरामं नत्वाऽयोध्यां पुनः पुनः ॥२७१॥

भार्यया सहितः शंभुस्तेन कार्पटिकेन च । यया पूर्वेण मार्गेण यत्र तौ करिकाहली ॥२७२॥

स्थापितौ शपथः कृत्वा शनैस्तत्र समागमत् । दत्त्वा दिनद्वयं पुण्यमुभयभार्या मधुमासजम् ॥२७३॥

दत्त्वा स्वीयाञ्जलीं तोयं तयोर्मुक्तिं चकार मः । ततस्तौ करिसिन्धौ च दिव्यमान्यानुलेपितौ ॥२७४॥

दिश्यं विमानमारुह्य विष्णुलोकं गतावुभौ । ततोऽग्रे द्विजवर्यः सः ययौ मार्गेण भार्यया ॥२७५॥

स यत्र राक्षसः पूर्वं स्थापितः शपथं वने । तं दृष्ट्वा राक्षसश्रेष्ठ भार्या प्राह द्विजोत्तमः ॥२७६॥

अपि काश्याह्वये रम्ये शृणु मे वचनं शुभम् । ॥ ॥ शीतला गौरी स्नाता वै सरयुजले ॥२७७॥

तस्यैकदिवसस्याद्य देहि पुण्यं शुभावहम् । राक्षसाय हि मद्राक्ष्याद्गृहीतं जलमञ्जली ॥२७८॥

अमरावतीपुरीके सम्मान देदीप्यमान इति अयोध्यापुरीको देखो ॥ २६२॥ जहाँ कि प्रतोलीके मस्सकपर विराजमान सुवर्णके भवन ऐसे दीप्त रहे हैं, जंसे अनन्त सूर्य एक साथ रामचन्द्रजीका दर्शन करने आ गये हों ॥२६३॥ नृसिंहने कहा—इस तरह कहकर अपनी पत्नी, कार्पटिक ॥ कर्कशके साथ-साथ शम्भु अयोध्या पुरीमें प्रविष्ट हुआ ॥ २६४ ॥ पहले रामतीर्थपर पहुँचकर उसने ओर आदि कराया और एक दिनका उपवास करके तीर्थश्राद्ध किया ॥ २६५ ॥ चैत्रकृष्ण अमावास्या तिथि आयी तो उसने अपने पिताकी मुक्तिके लिए विधिवत् अन्नदान किया ॥ २६६ ॥ उस चैत्रमासमें अमावास्याको शम्भुने कार्पटिकके कथनानुसार जो अन्नदान किया, उसके पुण्यसे तत्काल उसका पिता पिशाचघोनिसे मुक्त होकर स्वर्गको गया ॥ २६७ ॥ तदनन्तर शम्भुने अयोध्यामें चैत्रस्नान और शास्त्राक्त विधिसे उसका उद्यापन किया । कर्कश भी चैत्रस्नान करके ॥ पापीसे मुक्त हो गया और साधुवृत्तिसे उसने अयोध्यामें ही बहुत दिन बिताये ॥ २६८ ॥ २६९ ॥ अन्तमें रामका स्मरण करते-करते उसने शरीर त्याग दिया । अयोध्यामें मरनेसे उसे विष्णुलोककी प्राप्ति हुई ॥ २७० ॥ शम्भुने भी स्नान करनेके बाद श्रीरामचन्द्रजीको बारम्बार प्रणाम करके कांचीपुरीको जानेकी तैयारी की ॥ २७१ ॥ अपनी स्त्री और उस कार्पटिकको साथ लेकर शम्भु उसी मार्गसे लौटकर उधर चला, जहाँ कि अयोध्या जाते समय सिंह और हाथीको छोड़ आया था ॥ २७२ ॥ वहाँ पहुँचकर उसने हाथमें जल लिया और चैत्रस्नानके पुण्यमेंसे दो दिनका पुण्य देकर उन दोनोंकी उस घोनिसे मुक्ति कर दी । इसके अनन्तर वे दोनों हाथी और सिंह दिव्यमाल्यसे अलंकृत हो और दिव्य विमानपर आरुढ़ होकर विष्णुलोकको चले गये । इसके बाद शम्भु अपनी स्त्रीके साथ आगे बढ़ा ॥ २७३-२७५ ॥ जाते-जाते वह उस स्थानपर पहुँचा, जहाँ कि जाते समय शपथ करके उस राक्षसको वनमें छोड़ आया था । वहाँ राक्षसको सामने देखकर शम्भुने अपनी स्त्रीसे कहा—हे काशिके ! जो तुमने शीतल गौरीका ॥ किया है । हाथमें जल लेकर उसके एक दिनका पुण्य इस राक्षसको दे दो ॥ २७६-२७८ ॥

इति शंभुवचः श्रुत्वा पद्मनेत्रा कुशोदरी । काशीनाम्नी द्विजपत्नी ददौ पुण्यं निजं तदा ॥२७९॥
 ततः स राक्षसभ्रेष्ठस्त्यक्त्वा देहं मलीमयम् । दिव्यं विमानमारुह्य नत्वा भार्यायुतं द्विजम् ॥२८०॥
 दिव्यमालयांबरधरो हरिलोकं जगाम सः । शंभुश्चापि प्रियायुक्तो मधुमातं विवर्णयन् ॥२८१॥
 ययौ काशीपुरीं भेष्टा जनान् वृत्तं निवेदयन् । भो पिशाचा यथा पृष्टं भवद्भिष्य कथानकम् ॥२८२॥
 तत्सर्वं च मयाऽऽख्यातं राक्षसोद्धारणादिकम् ।

श्रीरामदास उवाच

इत्युक्त्वा नृहरिविप्रो गृहीत्वा स्वांजलौ जलम् ॥२८३॥

ददौ दिनद्वयस्यास्य पुण्यं चैत्रकृतं निजम् । ततः श्रोत्राच्च भार्यां तु रम्ये चन्द्रप्रभे प्रिये ॥२८४॥
 या त्वया शीतलागौरी स्नाता सीताकृते वरे । तीर्थे तस्य दिनैकस्य देहि पुण्यं शुभानने ॥२८५॥
 पिशाचिन्यै समुद्धर्तुं मा विचारोऽस्तु ते इदि । इति मर्तव्यवचः श्रुत्वा रम्या पंकजलोचना ॥२८६॥
 लक्ष्मीनाम्नी मम माता ददौ पुण्यं निजं तदा । ततः पिशाचास्ते सर्वे मुक्ताः शीघ्रं शुभावहाः ॥२८७॥
 निजरूपाणि वै प्रापुः प्रणेमुर्नृहरिं जवान् । नत्वा मृत्वा पुननत्वा नृसिंहं त प्रियायुतम् ॥२८८॥
 आपृच्छद्य जग्मिरे सर्वे स्वगुरोराश्रमं प्रति । गुरुश्चापि सुतां स्वीयां तां ददावतिहपिठः ॥२८९॥
 तयोज्येष्टाय शिष्याय कनिष्ठायोपरां सुताम् । स्वीयोदरसमुत्पन्ना ददावप्रतिमां वराम् ॥२९०॥
 ततस्तौ सखियौ विप्रौ जग्मतुस्तौ मुदान्विता । स्वस्वपितुश्चाश्रमं हि तयास्तौ पितरावपि ॥२९१॥
 दृष्ट्वा पुत्रौ समायातौ सखियां तां पमायतुः । नृहरिश्च प्रियायुक्तोऽञ्जकं प्रति सभाययौ ॥२९२॥
 चैत्रस्नानेन तत्पुत्रो रामदासामिधस्त्वहम् । जानन्नतस्तौ देहान्ते जग्मतुर्वैष्णवं पदम् ॥२९३॥
 एष शिष्य मधुस्नानमहिमा बहुभिर्नरैः । दैवैः सिद्धैश्च गणैर्वैः सदाऽनुभविताऽस्ति हि ॥२९४॥
 तस्मान्मयावबोधयं हि स्नातव्यां मानवोत्तमैः । रामतीर्थेषु सर्वत्र रामचन्द्रं प्रपूजयेत् ॥२९५॥

इस प्रकार शंभुकी आज्ञा सुनकर उस काशी नाम्नी द्विजपत्नीने अपना पुण्य उसको दे दिया ॥ २७९ ॥ इसके प्रभावसे उस राक्षसने अपना वह अथम देह छोड़ दो और दिव्य विमानपर चढ़कर ब्राह्मण तथा ब्राह्मण-पत्नीको प्रणाम करता हुआ विष्णुलोकको चला गया । शंभु भी चैत्रमासके माहात्म्यका वर्णन करता हुआ काशीपुरीका चल पड़ा । हे पिशाचगण ! जान लोमोने जा कथा पूछो, सा राक्षसाके उद्धारसे सम्बन्ध रखनेवाली बातें कह मुनायों । रामदासने कहा-ऐसा कहकर नृसिंहने अंजलोमें जल लिया और अपने चैत्रस्नानके पुण्यमेंसे दो दिनका पुण्य उसे दे दिया । फिर अपनी स्नांस कहा कि तुमने चैत्रमास की शीतला गौरीका स्नान किया है । उसमेंसे एक दिनका पुण्य इस पिशाचिनीको दे दो ॥ २८०-२८१ ॥ इससे इसका उद्धार हो जायगा । इसपर कुछ विचार मत करो । इस प्रकार स्वामीकी आज्ञा सुनकर उस कमलनयनीने अपना पुण्य दे दिया । तब शीघ्र ही पिशाचयोगिसे मुक्त होकर ॥ २८६ ॥ २८७ ॥ अपने-अपने रूपको प्राप्त हो गये । इसके अनन्तर उन्होंने नृसिंहको प्रणाम किया, बारम्बार उनकी स्तुति की और उनसे पूछकर अपने गुरुके आश्रमकी चले गये । गुरुने भी अतिशय हर्षित होकर अपना कन्या उन्हें दे दो । उनमेंसे ज्येष्ठ आताको ज्येष्ठ कन्या तथा कनिष्ठको एक दूसरी सगी कन्या समर्पित की ॥ २८८-२९० ॥ इसके अनन्तर वे दोनों अपनी-अपनी स्त्रीको साथ लेकर पिताके आश्रमपर गये ॥ २९१ ॥ उनके माता-पिता भी स्त्रियोंके साथ अपने बेटेकी आत्मे देखकर प्रसन्न हुए । नृसिंह भी अपनी भायिके साथ अञ्जक नगरको चल पड़े ॥ २९२ ॥ चैत्रस्नानके पुण्यसे उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम रामदास है और वह मैं हूँ । कुछ दिनों बाद मेरे माता-पिताका देहांत हो गया और वे विष्णुलोकको प्राप्त हुए ॥ २९३ ॥ हे शिष्य ! इस प्रकार चैत्रस्नानकी महिमाका कितने ही मनुष्य, देवता, सिद्ध तथा गन्धर्वोंने अनुभव किया है ॥ २९४ ॥ इस कारण अच्छे मनुष्योंको चाहिए कि चैत्रमासमें अवश्य

एवं स्वया यथा पृष्टं तथा सर्वं निवेदितम् । मया काङ्क्षया स्पृहा तेस्ति श्रोतुं तद्वद वक्ष्यहम् ॥ २९६ ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकांडे

चैत्रस्तानमाहात्म्ये एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः

(श्रीरामचन्द्र द्वारा अद्वैतभावका प्रदर्शन)

विष्णुदास उवाच

गुरोऽन्यत्रामचन्द्रस्य चरित्रं वद मां प्रति । मृण्वतो मे सुदुर्नास्ति वृत्तिः श्रोतुं स्पृहैषते ॥ १ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया शिष्य सावधानमनाः शृणु । एकदा हयमारुढो पुत्रबन्धुवलयैः सह ॥ २ ॥

वनं ययौ विहारार्थं रामचन्द्रो मुदान्वितः । तत्र दृष्ट्वा भृगु श्रेष्ठं तं हन्तुं रघुनन्दनः ॥ ३ ॥

बाणमाकुक्ष्य तत्पृष्ठे ययौ वेगेन सादरम् । वनाद्वनांतरं रामा मृगस्य च पदानुगः ॥ ४ ॥

एकाकी हयमारुढो विवेश गहन वनम् । पश्चाद्दूरस्थिताः सर्वे लक्ष्मणाद्या वलयैः सह ॥ ५ ॥

राभ्योऽपि निजबाणेन मृगं हत्वा वनेऽचरत् । निर्जलेऽतितृपाकांतः क्षुधाव्याप्तोऽप्यभूत्तदा ॥ ६ ॥

ततो रामो वृक्षतले क्षणं तस्थौ श्रमान्वितः । तावत्तं श्वरां काचिद् दृष्ट्वा रामं मुदान्विता ॥ ७ ॥

नृपं ज्ञात्वा राजचिह्नैस्तं प्रणम्य पुरःस्थिता । तां दृष्ट्वा रात्रोऽप्याह वाक्यं श्वरि मे शृणु ॥ ८ ॥

लक्ष्मणाद्याः स्थिता दूरं क्षुत्तृड्भ्यां पादितोऽस्म्यहम् ।

किंचिद्यत्नं कुरुवात्र येन मेऽद्य सुखं भवेत् ॥ ९ ॥

तद्रामवचनं श्रत्वा श्वरी वाक्यमब्रवीत् । इतोऽविदुरे श्रीराम दुर्गास्त्रि सरसस्तटे ॥ १० ॥

श्रीमवारेऽद्य नार्यश्च बहवोऽत्र समागताः । तत्र त्वं च मया राघ यदि यास्यसि सांप्रतम् ॥ ११ ॥

स्तान करके रामतीर्थोंमें जाकर रामचन्द्रजीका पूजन करें ॥ २९५ ॥ तुमने जो पूछा, मैंने सब कुछ कह सुनाया । अब क्या सुननेकी इच्छा है, सो कहो । मैं सुनाऊँ ॥ २९६ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पंचमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ११ ॥

विष्णुदास बोले—हे गुरु । अब रामचन्द्रजीका कोई और चरित्र सुनाइए । क्योंकि रामचरित्र सुनते-सुनते मुझे तृप्ति नहीं होती । जितना ही सुनता हूँ, सुननेकी इच्छा बढ़ती जाती ॥ १ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य । तुमने बहुत ही अच्छी बात कहो है, अब मैंने मेरा सुनो । एक बार धौकुंवर सवार होकर रामचन्द्रजी अपने भाइयों, पुत्रों सेनासे साथ मृगयाविहार करनेके लिए वनमें गये । वहाँ एक अच्छा-सा भृगु देखा और उसे मारनेके लिए धनुषपर बाण चढ़ाकर उसके पीछे-पीछे दौड़ चले । जाते जाते वे गहन वनमें पहुँच गये । फिर भी राम एक वनसे दूसरे और दूसरेसे तीसरे वनमें मृगके पीछे-पीछे दौड़ते चले जा रहे थे । लक्ष्मण आदि साथी सेनाके साथ-साथ बहुत पीछे छूट गये ॥ २-५ ॥ अन्तमें वही बुर जाकर रामने उस मृगकी मारा । वह स्थान निर्जल और उन्हें भूख-प्यास ओरोसे लगी थी ॥ ६ ॥ वहाँ ही वे एक वृक्षके नीचे बैठ गये । उसी किसी श्वरीने रामको देखा और उनकी बेश-भूषासे पहचान लिया कि ये कोई राजा हैं । वह रामके आ तथा प्रणाम करने सामने बैठ गयी । उसे देखकर रामने कहा—हे श्वरी । तू मेरी बात सुन ॥ ७ ॥ ८ ॥ मेरे लक्ष्मण आदि साथी पीछे छूट गये हैं । मैं भूख-प्याससे बहुत दुखी हूँ । तू कोई ऐसा उपाय कर कि जिससे मेरा दुःख दूर हो ॥ ९ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर श्वरीने कहा—हे राम ! यहाँसे धौकी दूरपर तालाबके

तदि तत्र विचित्रान्नैस्तुष्टिं प्राप्स्यसि वै क्षणात् । ततस्या वचनं श्रुत्वा श्वरी प्राह राघवः ॥१२॥
 अहमत्रैव तिष्ठामि प्रतीक्षार्थं कुञ्जस्य च । लवस्य लक्ष्मणादीनां सैन्यस्य वनवासिनि ॥१३॥
 गच्छ त्वमेव तां दुर्गां स्त्रीर्मे वृक्षं निवेदय । तद्रामवचनं श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा त्वरान्विता ॥१४॥
 स्त्रीर्गत्वा श्वरी प्राह मृगुष्वं वचनं मम रामो राजीवप्रक्षो मृगपां कर्तुमापतः ॥१५॥
 अविदूरे वृक्षतले क्षुधाकातः स्थितोऽस्ति हि । तेनाह प्रेषिताऽस्म्यद्य वचनार्थं वराननाः ॥१६॥
 युष्माकं कथितं वृक्षं तस्य गच्छाम्यहं पुनः । शनर्पास्तद्वयः श्रुत्वा तानार्थः संभ्रमान्विताः ॥१७॥
 अभिनन्द्य निर्जैर्वाक्यैः श्वरीं तां हृष्टमृदुः । परस्परं तदा प्रोक्षुस्ता नार्यः श्वशो मुदा ॥१८॥
 धन्योऽद्य दिवसोऽस्माकं यस्मिन् राघवदर्शनम् । भविष्यति वरान्नैश्च तोषयामो रघूत्तमम् ॥१९॥
 आदौ दुर्गां पूजयित्वा नैवेद्यं तां निवेद्य च । ततः समर्थं रामाय भोऽस्यामश्च वयं ततः ॥२०॥
 इति संमंज्य तां नार्यो रुक्मालकात्मणिङ्गताः । पीनकौशेयवासिन्यो वरास्था मृगलोचनाः ॥२१॥
 विप्रसन्निधौ वेश्यानां शूद्राणां चापि वेगतः । नैवेद्यपार्श्वस्तां दुर्गां ययूर्नूपुराणिः स्वनाः ॥२२॥
 एतस्मिन्नंतरे देवी स्वालयस्य समंततः । कपाटानि दृढं बद्ध्वा नृणां मासीद्विरोन्द्रजा ॥२३॥
 ततस्ता द्वारमापाद्य द्वारं बद्धं निरीक्ष्य च । वअमुः सर्वद्वाराणि न मार्गं लेभिरे स्त्रियः ॥२४॥
 सदाश्चर्मनाः सर्वा द्वारदेशे स्थिताः सणम् । तावदेवालयान्छन्दो निर्गतः शुभ्रवुः स्त्रियः ॥२५॥
 अहमेवात्र सीताऽस्मि रामः साक्षान्महेश्वरः । ये भिन्नं मानयन्त्यत्र मां सीता राघवं हरम् ॥२६॥
 ते कोटिकल्पपर्वन्तं पच्यन्ते रौरवेषु हि । अतो यूयं हि भो नार्यो वननाथं च जगत्प्रभम् ॥२७॥
 तोषयस्व वरान्नैश्च तच्छेषेण त्वहं ततः । तुष्टा भवामि गच्छस्व क्षुधितं त रघूत्तमम् ॥२८॥
 इति नार्यो वयः श्रुत्वा देव्यास्ता विस्मयान्विताः । द्रुद्रुर्गजगामिन्यः श्वरीचरणानुगाः ॥२९॥

किनारे एक दुर्गा-मन्दिर है ॥ १० ॥ आज भङ्गलवार है । इसलिए वहाँ बहुत-सी स्त्रियें आयी होंगी । यदि मेरे ■■■ वहाँ चलें तो आपको नाना प्रकारके विचित्र अन्न खानेको मिलेंगे । जिससे आप लणभरमें तृप्त हो जायेंगे । श्वरीकी सलाह सुनकर रामने उत्तर दिया कि मैं यहाँ कुञ्ज आदिकी प्रतीक्षा करता हुआ घंटया हूँ । हे वनवासिनि ! तू ही जाकर उन स्त्रियोंको मेरा हाल सुना दे । रामके आज्ञानुसार श्वरी तुरन्त चल पड़ी ॥ ११-१४ ॥ उसने वहाँ पहुँचकर उन स्त्रियोंसे कहा—कमलके समान नेत्रोंवाले भगवान् रामचन्द्र वहाँ शिकार खेलने आये थे । ■ पास ही पेड़के नीचे भूले-प्यासे बैठे हैं । उन्होंने आप लोगोंको यह संदेश सुनानेके लिये मुझे भेजा है ॥ १५ ॥ १६ ॥ अब आप लोग ओ कुछ कहें, वह जाकर मैं रामचन्द्रजीको सुना दूँ । श्वरीकी बात सुनी तो विस्मित भावसे उन्होंने श्वरीको धन्यवाद दिया और कहा—॥ १७ ॥ १८ ॥ हमारे लिए आजका दिन धन्य है, जिसमें श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन प्राप्त होंगे और हम अन्धे-अन्धे अन्नोसि उन्हें सन्तुष्ट करेंगी ॥ १९ ॥ हम पहले दुर्गाजीको पूजा करके उनकी नैवेद्य अर्पायेंगी । उसके बाद रामको भोजन कराकर स्वयं भोजन करेंगी ॥ २० ॥ यह सुनकर सुवर्णके अलंकारोंसे अलंकृत, पीले कपड़े पहने, सुन्दर मुख एवं मृगीके समान नेत्रोंवाली वे बहूणा, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रके घरोंकी स्त्रियें तुरन्त हाथोंमें नैवेद्यके पात्र लेकर नूपुरकी मनोहर ध्वनि करते हुई चल पड़ीं ॥ २१ ॥ २२ ॥ ऊपर दुर्गाजीने चारों ओरसे मन्दिरका फाटक बन्द कर लिया और भीतर चूपचाप बैठ गयी ॥ २३ ॥ वे स्त्रियाँ मन्दिरमें पहुँचीं तो द्वार बन्द पाया । एक एक करके वे सब द्वारोंपर धूम आधीं । लेकिन किसी दरकसे भी उन्हें भीतर जानेका मार्ग नहीं मिला ॥ २४ ॥ ऐसी अवस्थामें वे विस्मित होकर वहीं बैठ गयीं । थोड़ी देर बाद मन्दिरके भीतरसे यह बाणी सुनायी दी, जिसे उन स्त्रियोंने सुना—॥ २५ ॥ मैं ही सीता हूँ और राम साक्षात् शिव है । ओ हममें और सीतामें, राममें तथा शिवमें भेद भावते हैं, वे करोड़ों जन्म प्यँल रौरव नरकमें सड़ते हैं । इस कारण हे स्त्रियो ! पहले तुमलोग अन्धे-अन्धे अन्नोसि मेरे प्रभु रामको प्रसन्न करो । उनसे ओ वने, सो लाकर मेरी पूजा करो । इससे मैं प्रसन्न हूँगी । अच्छा, अब तुम लोग जाओ । रामचन्द्रजी भूले-प्यासे बैठे हैं ॥ २६-२८ ॥

ततः सा शबरी ताम्यो दर्शयामास राघवम् । ता नेत्रपंकजैः सर्वा दृष्ट्वा रघूत्तमम् ॥३०॥
 दिव्याभ्यानि पुरः स्थाप्य द्वेभ्योऽर्जलान्पि । ततस्तं प्रार्थयामासुः स्त्रियः सर्वा पुरःस्थिताः ॥३१॥
 स्थाप्य तारिता राम वयं नार्यः सहस्रशः । शबरीं प्रेष्य गहने वनेऽत्र परमादरात् ॥३२॥
 जम्बानि स्वीकुरुष्व न्वं देव्या स्त्रीं प्रेषितानि हि । तन्नामां वचनं भत्वा राघवः प्राह सस्मितः ॥३३॥
 देव्या किमुक्तं भो नार्यः कथनीयं वमाद्य तत् । ताः प्रोक्ष्य राघवं नार्यो दुर्गावाक्यं सविस्तरम् ॥३४॥
 दुर्गावाक्यं शृणुष्व श्वहमेवात्र जानकी । रामः साध्वान्महादेवो नात्र मेदः कदाचन ॥३५॥
 मानसंयत्र मेद ये रौरवेषु पतन्ति । अतो रामं तोषयित्वा तदुच्छिष्टं त्वहं ततः ॥३६॥
 मोक्षयामि नार्यो गच्छन्तं तुभानं रघुनन्दनम् । देव्येत्थं माषितं राम ततस्त्वां समुपागताः ॥३७॥
 अग्रे त्वं पूर्वपुण्यैर्नो भूष्वान्नं रघुनन्दन । ततस्ताः प्राह श्रीरामो विहस्य मुदिताननः ॥३८॥
 यदि देवीवचः सत्यं तर्ह्यत्र गहने वने । सीतारूपेण सा दुर्गा मां समायातु सत्वरम् ॥३९॥
 पुष्पन्नारीसमूहाधु काचिन्नारी गिरीन्द्रजाम् । गत्वा मद्बचनं दुर्गा आवयत्वद्य कौतुकात् ॥४०॥
 तदाभवचनं भुत्वा स्वेका स्त्री स्त्रीकदम्बकात् । गत्वा दुर्गां रामवाक्यं आवयामास सादरम् ॥४१॥

दुर्गा श्रुत्वा रामवाक्यं तथेत्युक्त्वा तां स्त्रियम् ।

किञ्चित्कपाटमुद्घाटय सीतारूपेण निर्ययौ ॥४२॥

ततः पुनर्दृष्ट्वा कपाटं जानकी जवात् । तोषपात्रं करे धृत्वा ययौ रामं स्मितामना ॥४३॥
 नमस्कृत्वा रामचद्रं तत्पात्रं संस्थिताऽभवत् । तदा ताः सकला नार्यस्त्वभूरन् विस्मिता हृदि ॥४४॥
 ततो रामो वरान्नानि विप्रस्त्रीणां तथा पुनः । सत्रियाणां च नारीणां भोक्तुं स्नानार्थमुद्यतः ॥४५॥
 ततः क्षरासने बाण संधाय जगदीश्वरः । भुवं मित्वाऽथ पातालाज्जालं समानयत् ॥४६॥

■ तरह देवीकी बात सुनकर वे ■ गजगामिनी स्त्रियें विस्मित होकर शबरीके पीछे-पीछे चलीं ॥ २६ ॥
 वहाँ ■ शबरीने उन सब स्त्रियोंको रामचन्द्रजीका दर्शन कराया । ■ नारियोंनि कमल सरीसे नेत्री-
 वाले रामको देखा और प्रणाम किया । इसके बाद दिव्य भोजन सामने रखकर सुवर्णके पात्रोंमें जल भरकर
 रम्यता और उन ■ स्त्रियोंने एक स्वरसे भगवान्से प्रार्थना की-॥ ३० ॥ ३१ ॥ हे राम । आपने शबरीके द्वारा
 अपने आनेका संदेश भेजकर हम लोगोंको तार दिया । ॥ ३२ ॥ साध्वान् दुर्गाजीके द्वारा भेजवाये इन ■
 पदार्थोंको आप स्वीकार करें । उनकी बातोंको सुना तो मुसकाकर राम बोले-हे नारियो ! दुर्गाजीने हमारे
 विषयमें ■ कहा था, तो तो बतलाओ । स्त्रियां विस्तारपूर्वक दुर्गाजीके द्वारा कही गयी बातें बतलाती हुई कहने
 लगीं-उन्होंने कहा था कि राम साध्वान् महेश्वर हैं और मैं जानकी हूँ । जो लोग हम दोनोंमें किसी प्रकारका
 भेद मानते हैं, वे रौरव नरकमें पड़ते हैं । इसलिए तुमलोग पहले रामको भोजन कराके प्रसन्न ■ आओ ।
 उनसे जो कुछ अन्धा, तो ■ सहर्ष स्वीकार करेंगी । हे स्त्रियो । अब तुमलोग उन भूसे रामजीके पास
 जाओ । इस तरह देवीकी बात सुनकर ■ सब आपके ■ दौड़ आयीं ॥ ३३-३७ ॥ अब हमारे पूर्वसंचित
 पुण्योंके प्रतापसे इस जन्मको ग्रहण करिए । इसके अनन्तर हँसकर श्रीरामचन्द्रजीने कहा-॥ ३८ ॥ यदि
 देवीकी बात सच है तो ■ सीतारूपसे यहाँ मेरे पास आवें ॥ ३९ ॥ तुममेंसे कोई स्त्री जाकर मेरा यह संदेश
 दुर्गाजीको सुनावाये ॥ ४० ॥ रामके आज्ञानुसार उनमेंसे एक स्त्री दौड़ती हुई दुर्गाजीके पास पहुँची
 और रामका संदेश कह सुनाया ॥ ४१ ॥ उस स्त्रीके मुँहसे इस प्रकार रामका संदेश सुनकर दुर्गाजीने
 थोड़ासा दरवाजा खोला और सीतारूपसे बाहर निकल आयी ॥ ४२ ॥ उन्होंने मन्दिरके दरवाजेको
 मजबूत बन्द किया और हाथमें जलपात्र लेकर मुसकराती हुई रामकी ओर चल पड़ीं ॥ ४३ ॥ वहाँ
 पहुँचकर उन्होंने रामको प्रणाम किया और उनकी वगलमें जा बैठीं । यह कौतुक देखकर सब स्त्रियां बहुत
 विस्मित हुईं ॥ ४४ ॥ इसके बाद राम उन बाह्याणों, क्षत्रियों तथा वैश्योंकी स्त्रियोंका जन्न खानेके लिए स्नान
 करनेको ■ हुए ॥ ४५ ॥ एतदर्थं रामने अपने धनुषपर बाण चढ़ाया और पृथ्वीको फोड़कर पाताल-

तत्र सस्त्री रामचन्द्रः कृत्वा भाष्याह्निकं ततः । यावद्भोक्तुं मनश्चक्रे तावत्तेऽपि समाययुः ॥४७॥
 कृष्णघाः सर्वसैन्यैश्च रामवाजिपदानुगाः । ते सर्वे जानकीं दृष्ट्वा विस्मयं परमं ययुः ॥४८॥
 ततस्ते शबरीवाक्यात्सर्वे भूत्वा कुशादिकाः । गतमोहा रामचन्द्रं मेनिरे चन्द्रोत्तरम् ॥४९॥
 सीतां गिरीन्द्रजां चापि मेनिरे ते विनिश्चयात् । ततो रामः कुशाद्यैश्च मुदा सैन्येन सीतया ॥५०॥
 ब्रूत्वा पीत्वा जलं स्वच्छं वाक्यं स्त्रीः प्राह सादरम् । वरयस्व वराभार्यो युष्माकं यत्तु रोचते ॥५१॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा स्त्रियः प्रीचू रघूत्तमम् । येनास्माकं भवेत्कीर्तिस्तं वरं दातुमर्हसि ॥५२॥
 ततः प्राह रामचन्द्रस्ता नारीस्तुष्टमानसः । मम नामास्तु युष्माकं रामेति जगतीतले ॥५३॥
 युष्माकं मयि सद्भक्तिः पुरुषेभ्योऽपि चाधिका । भविष्यति सदा नामो वरेण मम निश्चयात् ॥५४॥
 देवे विप्रे कथायां च धर्मे भक्तिर्भविष्यति । सदा यूपं पवित्राश्च भवध्वं सधवाः स्त्रियः ॥५५॥
 मागन्ये शकुने सर्वकर्मसु च पुरःसराः । ययं भवध्वं सर्वत्र त्रिवेणीपूतमस्तकाः ॥५६॥
 मम वाणात्कुतं तीर्थं मन्नाम्नेदं भविष्यति । इति रामवचः श्रुत्वा स्त्रियः प्रीचू रघूत्तमम् ॥५७॥
 जन्मातिरेऽपि त्वं समदर्शनं देहि नः पुनः । तत्तासां वचनं श्रुत्वा राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥५८॥
 द्वापरे कृष्णरूपेण युष्माकं दर्शनं मम । भविष्यति वने यज्ञे त्वन्मयाश्चाप्रसंगतः ॥५९॥
 द्वित्रपत्न्यस्तदा ययं भविष्यथ स्त्रियो वने । इयं तु शबरी पत्नी त्रिप्रस्यैव भविष्यति ॥६०॥
 महर्षिनार्थमुद्युक्तापेनाभस्याः पतिर्वदा । स्तम्भे बद्ध्वा महादण्डं स करिष्यति वै गृहे ॥६१॥
 तदेयं मद्गतमना वने यास्यति मां प्रति । भिन्नदेहेन शबरी कौतुकं तद्भविष्यति ॥६२॥
 तदा ययं स्त्रियः सर्वास्तद्दृष्ट्वा कौतुकं महत् । भूत्वाऽत्र मद्गतमना मां ध्यात्वा सर्वदा हृदि ॥६३॥
 अति मन्लोकभासाद्य भोक्ष्यथ सुखमुत्तमम् । रामेति तारकं नाम मम नित्यं हि सबदा ॥६४॥

लोकसे जल निकाला ॥ ४६ ॥ उससे स्नान किया और मध्याह्न कालको क्रियाप्रोसे पुरसत पायी । तब जैसे ही भोजन करनेको तैयार हुए, तैसे ही कुश आदि भी सेनाके साथ उस स्थानपर आ पहुँचे । उन्होंने वहाँ जानकी-को देखा तो उनके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ फिर शबरीके मुखसे उन्होंने सब समाचार सुना । ■■■ तब लोगोंको विश्वास हुआ कि रामचन्द्रजी साक्षात् शिव ही हैं ॥ ४९ ॥ और सीताजी साक्षात् पार्वती हैं । तत्पश्चात् रामचन्द्रजीने कुश आदि बाणधरों ■■■ सेनाके साथ भोजन किया, स्वच्छ जल पिया और उन स्त्रियोंसे कहा—‘हे स्त्रियों ! अब तुम लोगोंको जो इच्छा हो, वह वर माँग लो’ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ तब रामकी बात सुनकर स्त्रियाँ बोलीं कि जिससे संसारमें हमारे सुकीर्ति हो, कोई ऐसा वरदान दीजिये ॥ ५२ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने प्रसन्न होकर उन स्त्रियोंसे कहा कि जो नाम हमारा है, वही तुम्हारा भी “रामा” वह नाम विख्यात होगा ॥ ५३ ॥ हे स्त्रियों ! हमारे वरदानके प्रभावसे दुष्टोंकी भयंका नारियोंकी हमारेमें विशेष भक्ति रहेगी ॥ ५४ ॥ देवता, ब्राह्मण, हरिकथा एवं धर्ममें तुम्हारी विशेष रुचि रहा करेगी । तुम जैसी सधवा स्त्रियाँ सदा पवित्र रहेंगी ॥ ५५ ॥ अपने मस्तकपर तान बेनी धारण करनेवाली स्त्रियाँ किसी मङ्गलमय कार्य तथा शकुन आदि सब कार्योंमें जागे-भागे चलेंगी ॥ ५६ ॥ मेरे वाणसे इस सरोवरकी रचना हुई है । अतएव यह तीर्थ मेरे ही नामसे विख्यात होगा । इस तरह रामके द्वारा वरदान पाकर उन स्त्रियोंने कहा—हे राम ! आप जम्पास्तरमें भी रूप लोगोंको अपना दर्शन दीजिएगा । उनकी बात सुनकर रामने कहा—द्वापरमें जब माँगनेके प्रसङ्गमें ही कृष्णरूपसे मैं तुम लोगोंको दर्शन दूँगा ॥ ५७-५८ ॥ उस समय जब वनमें तुम हमें मिलोगी, तब तुम सब ब्राह्मणको स्त्रियें रहोगी । यह शबरी भी उस समय द्विजपत्नी होगी ॥ ६० ॥ मेरे दर्शनके लिए जानेको उद्यत इस नारोंको जब इसका पति स्तम्भमें बाँधकर दण्ड देगा तो यह अपना मन मुझे अर्पण करके अन्य रूपसे मेरे समीप चली आयेगी । उस समय यह कौतुक देखकर तुम ■■■ बड़ी विस्मित होगी और तबसे मुझमें ■■■ मन लगाकर सर्वदा मेरा पगल करोगी ॥ ६१-६३ ॥ अन्तमें मेरे

पुष्पाभिर्जपनीयं वै तेनास्तु भनिरुत्तमा । इति दत्त्वा वरं स्ताभ्यः सीतामाह पुरःस्थिताम् ॥ ६५ ॥
 सुखं याहि स्थलं स्वीयं तथेत्युक्त्वा विदेहजा । रामं प्रणम्य स्त्रीयुक्ता ययौ देवालयं पुनः ॥ ६६ ॥
 देवालयगता भूत्वा दुर्गारूपं दधार सा । तदातिविस्मयं प्राप्नुस्ता नार्यो निजचेतसि ॥ ६७ ॥
 तास्तां दुर्गां प्रपूज्याथ नार्योजगम्बुः स्थलं निजम् । रामोऽपि बन्धुपुत्राद्यैरेषौ निजपुरीं प्रति ॥ ६८ ॥
 तसो गेहे कृच्छः सीतां पप्रच्छ वनचेष्टितम् । दृष्टवच्च यथा वृत्तं तथा सीता न्यवेदयत् ॥ ६९ ॥
 ततस्ते लक्ष्मणाद्याश्च मेनिरे राघवं हरम् । सीतां साक्षान्महादुर्गां मेनिरे गतविभ्रमाः ॥ ७० ॥
 एवं शिष्य जनानां च रामेण परमात्मना । द्रव्यबुद्धिः खंडिताऽत्र वने कृत्वा तु कौतुकम् ॥ ७१ ॥
 एवं वरेण रामस्य राभा नार्यत्र कथ्यते । तामामपि मनुष्यायं स्मृतो रामेति द्वयश्वरः ॥ ७२ ॥
 नान्यो मन्त्रोऽस्ति नारीणां शूद्राणां चापि भो द्विज । सर्वेऽप्यो मन्त्रवर्ण्यो राघवस्थाय मनुर्वरः ॥ ७३ ॥
 त्रासे भये महापापे राधायां मर्षदा नरैः । रामेति द्वयश्वरो मंत्रः कीर्त्यते जगत्तले ॥ ७४ ॥
 कृत्वा पापं महाघोरं पश्चात्तापेन यो नरः । सकृद्रामेति मंत्रं हि कीर्तयेच्छुद्धिमाप्नुयात् ॥ ७५ ॥
 रामेति मंत्रराजोऽयं गमने भोजने तथा । श्रयणे क्रोडने सर्वौ स्थिते कार्यतरे नरैः ॥ ७६ ॥
 अपनीयः सर्वदेव संख्ययोरुभयोरपि । चतुर्वर्णैः मदा जप्यश्चतुराश्रमवासिभिः ॥ ७७ ॥
 नास्य मंत्रस्य कालोऽस्ति जपार्थं कालरूपिणः । तस्माज्जनैर्जपनीयः सर्वदा मनुरुत्तमः ॥ ७८ ॥
 राममंत्रो भुक्ते यस्य देहो मुद्रांकितस्तथा । राममुद्रांकितं वस्त्रं यस्य तं नैश्चयेद्यमः ॥ ७९ ॥
 राममुद्रांकितं वस्त्रं समुद्रं वस्त्रमुच्यते । सर्ववस्त्रेषु तच्छ्रेष्ठं पवित्रं पापनाशकम् ॥ ८० ॥
 समुद्रं वसनं देहे विभ्रत मानवोत्तमम् । कृतं पापं न लिप्येत पश्चात्त्रयमिवाभयम् ॥ ८१ ॥
 समुद्रवस्त्रसयुक्तं दृष्ट्वा भुवि नरोत्तमम् । यषद्गताः पलायते मिह दृष्ट्वा मृगा यथा ॥ ८२ ॥

लोकाको प्राप्त करके तुम सब उत्तम सुख भोगीगो । मेरे 'राम' इस तारक मंत्रको तुम लोग सदा जपती रहना, इससे तुम्हें उत्तम गति होगी । इस तरह उन स्त्रियोंको वरदान देकर सामने बैठे हुए सीताओंसे कहा कि अब आप आनन्दसे अपने मन्दिरको जाइए । 'तथास्तु' कहकर वे भी उन स्त्रियोंके साथ मन्दिरकी ओर चली गयीं ॥ ६४-६६ ॥ देवालयमें पहुँचकर उन्होंने फिर पहलेकी तरह दुर्गाका रूप धारण कर लिया । समय वे स्त्रियाँ और भी विस्मित हुईं ॥ ६७ ॥ इसके बाद उन स्त्रियोंने दुर्गाकी पूजा की और अपने-अपने घरोंको चली गयीं । राम भी अपने बन्धुओं, पुत्रों एवं सेना आदिको साथ लेकर खयोष्मा चल दिये ॥ ६८ ॥ घर पहुँचकर कुशने सीतासे वह वृत्तान्त पूछा तो साताने इस तरह सब कह सुनाया कि जैसे उन्होंने अपनी बोलों कुछ देखा हो ॥ ६९ ॥ तबसे लक्ष्मण आदिने सन्देहरहित होकर रामको महेश्वर और सीताको महादुर्गा माना ॥ ७० ॥ हे शिष्य ! अपने भक्तोंकी द्रव्य बुद्धिको दूर करनेके लिए ही रामने वनमें इस प्रकारका कौतुक किया था ॥ ७१ ॥ रामचन्द्रजीके वरदानसे ही स्त्रियाँ रामा कहलाती हैं । उन लोगोंके लिए भी 'राम' यह दो अक्षरोंका मंत्र बतलाया गया है ॥ ७२ ॥ स्त्रियों और शूद्रोंके लिए इसके सिवाय और कोई मन्त्र नहीं है । मन्त्रोंमें यह राममन्त्र सर्वश्रेष्ठ ॥ ७३ ॥ किसी प्रकार जात, आया या भय आनेपर लोग इसी नामका उच्चारण करते हैं ॥ ७४ ॥ महाघोर पाप करके भाँजो प्राणी पश्चात्तापपूर्वक 'राम' इस मन्त्रका कीर्तन करता है, उसकी शुद्धि हो जाती ॥ ७५ ॥ लोगोंकी चाहिए कि कहीं जाते समय, भोजन करते समय, सोते समय, खेलते-कूदते समय अथवा कोई भी कार्य करते समय और सार्यकालको, चाहें वे किसी वर्ण तथा किसी जाति हों, राम मन्त्रका जप करते रहें । क्योंकि यह बड़ा उत्तम मन्त्र ॥ ७६-७८ ॥ जिसके पुत्रमें राममन्त्र है, जिसका शरीर रामनामसे अंकित है और जिसकी देहपर राममुद्रा-से अंकित वस्त्र पहना रहता है, उसे यमराज नहीं देख पाते ॥ ७९ ॥ राममुद्रासे अंकित वस्त्र समुद्र वस्त्र कहलाता है । यह वस्त्र सबसे श्रेष्ठ, पवित्र और पापनाशक होता है ॥ ८० ॥ उस समुद्र वसनधारो प्राणीको किसी प्रकारका पातक नहीं लगता । जैसे कमलके पत्तेपर जलका बसर नहीं होता ॥ ८१ ॥ समुद्र वस्त्र धारण किये हुए मनुष्यको

पुरैकदा तु मुनयः संमंज्योश्च रघूत्तमम् । रामं गेम महाबाहो कलावग्रे द्विजोत्तमाः ॥८३॥
 व्यग्रचित्ता मंदधियो भविष्यत्पवनीतले । निजजादरपूत्पर्थं द्वागद्द्वारं भ्रमंति हि ॥८४॥
 कुतोऽवकाशः स्मरणे तव तेषां भविष्यति । अतस्तेषां हितार्थाय त्वां याचामोऽद्य राघव ॥८५॥
 तेषां हितार्थं किञ्चिन्नुपायं वक्तुमर्हसि । तत्तेषां वचनं श्रुत्वा मुनीनां रघुनन्दनः ॥८६॥
 उवाच वाक्यं संतुष्टस्त्वान्मुनीन्सहसन्प्रभुः । सम्यगुक्तं मुनिश्रेष्ठाः शृणुष्व वचनं मम ॥८७॥
 मम मुद्रांकितं वस्त्रं कलौ धार्यं जनैः सुखम् । मम मुद्रांकितं वस्त्रं चित्रितं मानवोत्तमम् ॥८८॥
 न स्पृशेत्पातकं किञ्चित्कृतं चापि नरेण हि । शङ्खचक्रगदापद्मनाममुद्रांकितं शुभम् ॥८९॥
 वस्त्रं धार्यं नरैर्भक्त्या मुद्रयैवांकितं तु वा । शङ्खादिपञ्चभिर्पुक्तं सदा मम प्रियम् ॥९०॥
 मन्मुद्रयांकितं वापि वस्त्रं मत्तोपदं स्मृतम् । स्नान्वा धार्यं सदा तद्वच जपकाले विशेषतः ॥९१॥
 मलमूत्रोत्सर्जने च शयने क्रीडने तथा । अशुचां क्षये वृद्धौ दृष्टे राजसभासु च ॥९२॥
 पथि दुर्जनसंसर्गे मुद्रावस्त्रं न धारयेत् । तथा भोजनकालेऽपि विहारे नैव धारयेत् ॥९३॥
 स्नानकाले व्रते तीर्थे पूजायां पितृकर्मणि । होमे दाने जपे क्रुच्छ्रवांश्चापणव्रतादिषु ॥९४॥
 नित्यकर्मसु काम्येषु तथा नैमित्तिकेष्वपि । तथा तपसु मन्मुद्रावस्त्रं धार्यं सर्वदा हि ॥९५॥
 मम मुद्रांकितं वस्त्रं चित्रितं मानवोत्तमम् । अहं मोक्षं प्रशस्यामि मन्यं मन्यं मुनीश्वराः ॥९६॥
 एवं श्रुत्वा रामवाक्यं मुत्तयस्ते मुदान्विताः । रामं पृष्ट्वाऽऽश्रमे स्थं स्वं ययुस्ते मुदिताननाः ॥९७॥
 तस्मात्सदा गममुद्रावस्त्रं धार्यं नर्भुवि । रक्षेति द्वयश्रमे नम्रो जपनीयस्तु सर्वदा ॥९८॥
 राममुद्रा शुभा धार्या गोपीचन्दनसयुता । मदाश्र मानवैर्भक्त्या रामतोपार्थमादरात् ॥९९॥

देखकर यमके दूत उसी तरह भागते हैं, जैसे सिंहको देखकर मृग भाग जाते हैं ॥ ८२ ॥ एक बार बहुतसे मुनि एकत्र होकर रामसे बोले—हे महाबाहो ! आगे चलकर कलिपुगमें बाधपूर्ण बड़े मन्दबुद्धि होंगे और पेट पालनेके लिये व्यग्र रहते हुए द्वार-द्वार घूमेंगे ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ उनका आपका स्मरण करनेके लिए अवकाश कैसे मिलेगा । अतएव उनके कल्याणार्थ हम आपसे यह भिक्षा माँग रहे हैं कि उनके हितके लिये कोई उपाय बतला दीजिए । उन मुनियोंकी मुनकर रामचन्द्रजी प्रसन्न मनसे बोले कि आपने बहुत उत्तम प्रश्न छोड़ा है । अच्छा सुनिए ॥ ८५-८७ ॥ उन लोगोंकी चाहिए कि सदा मेरी मुद्रासे अंकित धारण करे । जो मेरी मुद्रासे अंकित कपड़े पहने रहेंगे, उनसे यदि किसी प्रकारका पातक भी हो जायगा तो वह उनको नहीं लगेगा । इसलिए ये सदा शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे अङ्कित कपड़े पहनें । यह भी न हो सके तो केवल मेरे नाम ही से चिह्नित कपड़े पहनें । शंख आदिसे चिह्नित वस्त्र भी मुझे बड़े प्रिय हैं ॥ ८८-९० ॥ राममुद्रासे अंकित वस्त्र मुझे प्रसन्न करते हैं । इसलिए लोगोंकी चाहिए कि स्नान करके ऐसे ही कपड़े पहने और जपके समय इसके लिए विशेष ध्यान रखें ॥ ९१ ॥ मलमूत्र त्यागते समय, बिछोनेपर, खेलते समय, अपवित्रावस्थामें, किसी वृष्टिर्वादेके मरनेपर, बाजारमें, राजसभामें, रास्तेमें और दुर्जनोके ससर्गमें इस मुद्रावस्त्रको कभी भी न पहने । भोजन करते समय और स्त्रीके साथ विहार करते समय भी इसे न पहने ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ स्नान करनेके अनन्तर, व्रतमें, तीर्थमें, पूजा करते समय, पितृश्राद्ध करते समय, होम, दान, जप आदि करते समय, आन्द्रायण आदि व्रतमें, नित्यकर्म करते समय, काम्य कर्ममें, कोई नैमित्तिक कर्म करते समय और तपस्या करते समय मेरी मुद्रासे अंकित वस्त्र अवश्य पहनना चाहिए ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ हे मुनीश्वरों ! यह बात बिल्कुल सत्य है कि मेरी मुद्रासे अंकित वस्त्र पहननेवालोंको मैं स्वयं मुक्ति देता हूँ ॥ ९६ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए और रामसे आज्ञा लेकर अपने-अपने आश्रमोंकी चले गये ॥ ९७ ॥ इसीलिये लोगोंकी यह चाहिए कि हमेशा राममुद्रासे अंकित कपड़े पहने और 'राम' दो अक्षरके मंत्रका जप करें ॥ ९८ ॥ गोपीचन्दनसे राममुद्रा

पूजा सदा राघवस्य कार्योऽत्र मानवैर्भुवि । सदा स्नानं रामतीर्थे नरैः कार्यं प्रयत्नतः ॥१००॥
 सदा रामायणं वेदं श्रवणीयं नरैर्भुवि । चिंतनीयः सदा रामो जन्ममृत्युनिवारकः ॥१०१॥
 स्तोतव्यः कीर्तनीयश्च वन्दनीयोऽत्र राघवः । न किञ्चिदणुमात्रं हि विनारामं सदाऽऽचरेत् ॥१०२॥
 हनुमत्कवचं दिव्यं पठित्वाऽऽदौ नरैर्भुवि । ततः श्रीरामकवचं पठनीयं हि सर्वदा ॥१०३॥
 पठन्ति रामकवचं हनुमत्कवचं विना । अवश्ये रोदनं तैस्तु कुतमेव न संशयः ॥१०४॥
 स्तोत्राणामुत्तमं स्तोत्रं सर्वभीतिनिवारकम् । श्रीरामकवचं नित्यं पठनीयं नरैर्भुवि ॥१०५॥

विष्णुदाम उवाच

गुरोर्ह्य श्रेतुमिच्छामि हनुमत्कवचं सुभम् । तथैव रामकवचं वद कुत्वा कृपां मयि ॥१०६॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया वत्स सावधानमनाः शृणु । हनुमत्कवचं रामकवचं च वदामि ते ॥१०७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकाण्डे
 आदिकाव्ये रामेणाद्वैतप्रदर्शनं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः

(हनुमत्कवच तथा रामकवच)

श्रीरामदास उवाच

एकदा सुखमासीनं शंकरं लोकशंकरम् । पश्यन् गिरिजाकांतं कर्पूरधवलं शिवम् ॥ १ ॥

पार्वत्युवाच

भगवन् देवदेवेश लोकनाथ जगत्प्रभो । श्लोकाकुलानां लोकानां केन रक्षा भवेद्भुवम् ॥ २ ॥

संग्रामे संकटे घоре भूतप्रेतादिके भये । दुःखदावाग्निसंतप्तचेतसां दुःखभागिनाम् ॥ ३ ॥

धारण करें । इससे श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न होंगे ॥ १६ ॥ संसारमें मनुष्योंको चाहिए कि रामचन्द्रजीकी पूजा करें और प्रयत्न करके रामतीर्थमें स्नान करें ॥ १०० ॥ सर्वदा इस आनन्दरामायणका पाठ करते हुए जन्म और मृत्युका दुःख दूर करनेवाले रामचन्द्रजीका ध्यान करते रहे । उन्हींको स्तुति करें और उन्हींका गुणानुवाद गायें । कहनेका भाव यह है कि रामचन्द्रके भजनके मित्राय कोई और काम न करें ॥ १०१॥ १०२॥ पहले हनुमत्कवचका पाठ करके श्रीरामकवचका किया करें ॥ १०३ ॥ जो लोग हनुमत्कवचका पाठ किये बिना ही श्रीरामकवचका पाठ करते हैं, मानो अरघ्यरोदन करते हैं । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १०४ ॥ सब स्तोत्रोंमें उत्तम तथा सब प्रकारके भयका निवारण करनेवाले श्रीरामकवचका पाठ सांसारिक मनुष्योंको अवश्य चाहिए ॥ १०५ ॥ विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! हम आपके मुखसे हनुमत्कवच और रामकवच सुनना चाहते हैं । मेरे कृपा करके बतलाइए ॥ १०६ ॥ रामदासने कहा—हे वत्स ! तुमने बहुत धन्यता प्राप्त किया है । मैं हनुमत्कवच और रामकवच इन दोनों कवचोंको कहूँगा । तुम सावधान होकर सुनो ॥ १०७ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पंचमोऽध्यायः ॥ रामतेजपाण्डेयविरचित'उपोस्ता' भाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—एक बार संसारका कल्याण करनेवाले शिवजी बैठे हुए थे । उसी समय पार्वतीजीने कहा—हे भगवन् ! हे देवदेवेश ! हे लोकनाथ ! जगत्प्रभो ! जो लोग किसी प्रकारके शोकसे अशक्त हों, उनकी किस प्रकार रक्षा की सकती है ? जो लोग घोर संग्राम, महान् संकट, भूतप्रेत आदिकी बाधाओं अथवा दुःखरूपी दावानलसे जल रहे हों, उनके उद्धारार्थ कौन उपाय किया जा सकता है ? ॥ १-३ ॥

देवेन्द्रप्रमुखं प्रभुस्तयश्चमं देदीप्यमानं रुचा ।

सुग्रीवादिसमस्तवानरधुतं सुव्यक्ततन्त्रप्रियं

संस्कारुणलोचनं पवनजं पीतांबरालंकृतम् ॥ १ ॥

उद्यन्मार्तण्डकोटिप्रकररुचियुतं चारुवीरामनस्थं

मौज्जीयज्ञोपवीताभरणरुचिशिखं शोभितं कुण्डलाकम् ।

भक्तानामिष्टदं तं प्रणतमुनिजनं वेदनादप्रमोदं

व्यायेदेवविधेमं प्लवगकुलपतिं गोप्यदीभूतवार्धिम् ॥ २ ॥

वज्रांगं विगकेशाख्यं स्वर्णकुण्डलमंडितम् । निगूढमुपमंगम्य पारावारपराङ्कमम् ॥ ३ ॥

स्फटिकामं स्वर्णकोटिं द्विभुजं च कृतांजलिम् । कुण्डलद्वयमंशोमि सुखामोजं हरिं मजे ॥ ४ ॥

सव्यहस्ते गदायुक्तं वामहस्ते कमण्डलुम् । उग्रहस्तिणदोदण्डं हनुमंतं विचिंतयेत् ॥ ५ ॥

मंत्रः

ॐ नमो हनुमते शोभिताननाय यशोज्ज्वलकृताय अञ्जनीगर्भसम्भूताय रामलक्ष्मणानन्दाय
कपिसैन्यप्रकाशनपर्वतोत्पाटनाय सुग्रीवसाद्यकरणपरोच्चाटनकुमारबद्धचर्यगंभीरशब्दोदय द्वीं सर्वदुष्ट-
ग्रहनिवारणाय स्वाहा । ॐ नमो हनुमते एहि एहि एहि सर्वग्रहभूतानां शाकिनीडाकिनीनां
विषमदुष्टानां सर्वेषामाकर्षयाकर्षय मर्दय मर्दय छेदय छेदय मर्त्यान्मारय मारय शोषय शोषय
प्रज्वल प्रज्वल भूतमण्डलपिशाचमण्डलनिरमलाय भूतज्वरप्रेतज्वरवातुधिकज्वरबह्वराक्षसपिशाच-
छेदनक्रियाविष्णुज्वरमहेश्वरान् छिंधि छिंधि भिंधि भिंधि असिशूले शिरोऽभ्यन्तरे ह्यभिशूले गुल्मशूले
पित्तशूले ब्रह्मराक्षसकुलश्वलनागकुलविषनिर्विष झटिति झटिति । ॐ ह्रीं फट् धे धे स्वाहा । ॐ नमो
हनुमते पवनपुत्र वैद्यानरमुखपापदष्टिहनुमतेको आज्ञापुरे स्वाहा । स्वगृहे द्वारे पङ्के
तिष्ठ तिष्ठति तत्र रोगभय राजकुलभयं नास्ति नस्योन्चारणमात्रेण सर्वे ज्वरा नश्यन्ति ।
ॐ ह्रीं ह्रीं हूं फट् धे धे स्वाहा ।

कासके सूर्यं सरोस्ता जिनका तेजस्वी है, जो राक्षसोंका अभिमान दूर करनेमें समर्थ है और जो
देवताओंमें एक प्रमुख देवता माने जाने है । जिनका प्रभुस्त यश तीनों लोकोंमें फैला हुआ है ।
जो अपनी बसाधारण शोभासे देदीप्यमान हो रहे हैं । सुग्रीव आदि बड़े-बड़े वानर जिनके साथ हैं ।
जो सुव्यक्त तन्त्रके प्रेमी हैं । जिनकी भाँसे अतिशय लाल-लाल है । पीले वस्त्रोंसे अलंकृत उन हनुमान्-
जीका मैं ध्यान करता हूँ ॥ १ ॥ उदय होते हुए करोड़ों सूर्यके समान जिनका प्रकाश है । जो सुन्दर
बीरासनसे बैठे हुए हैं । जिनके शरीरमें मौज्जीयज्ञोपवीत आदि पड़े हैं और उनकी किरणोंसे जो और भी
शोभासम्पन्न दीख रहे हैं । जिनके कानोंमें पड़े हुए कुण्डल अपनी मनोहर शोभा दिखा रहे हैं । भक्तोंकी
कामना पूर्ण करनेवाले, मुनिजनोंसे मन्दित, वेदके मन्त्रोंकी श्रद्धा सुनकर प्रसन्न होनेवाले, वानरकुलके
अग्रणी और समुद्रको गोके खुर भर अलवाला बना देनेवाले हनुमान्जीका ध्यान करना चाहिए ॥ २ ॥ वस्त्रके
समान कठोर जिनका शरीर है, मस्तकपर पीला केश मुष्माभित हो रहा है और कानोंमें सुवर्णके कुण्डल पड़े
हैं, ऐसे हनुमान्जीका मैं अतिशय आग्रहके साथ ध्यान करता हूँ । क्योंकि उनके पराक्रमरूपी समुद्रकी कोई
थाह नहीं है ॥ ३ ॥ स्फटिकमणिके समान अथवा सुवर्ण सरीखी जिनकी कान्ति है, दो भुजायें हैं, जो हाथ
जोड़े खड़े हैं, दोनों कानोंमें पड़े दो सुवर्णके कुण्डल मुष्माभित हो रहे हैं, ऐसे कमलके समान सुन्दर मुखवाले
हनुमान्जीका मैं ध्यान करता हूँ ॥ ४ ॥ जिनकी दाहिनी भुजासे गदा है, बायें हाथमें कमण्डलु है और जिनकी
दाहिनी भुजा कुछ ऊपर उठी हुई है, ऐसे हनुमान्जीका ध्यान करना चाहिये ॥ ५ ॥ अथ मन्त्रः—“ॐ
नमो हनुमते” यहाँ लेकर “ह्रीं, ह्रीं, हूं, फट् धे धे स्वाहा” यहाँ तक हनुमत्कवचमन्त्र कहा गया है ।

श्रीरामचन्द्र उवाच

हनुमान् पूर्वतः पातु दक्षिणे पवनान्तमजः । पातु प्रतीच्या रक्षोघ्नः पातु सामरपारयः ॥ १ ॥
उदीच्यामूर्ध्वतः पातु कैपरीप्रियनन्दनः । अधस्तु विष्णुशक्तस्तु पातु मध्यं च पावनिः ॥ २ ॥
लंकाविदाहकः पातु सर्वापिहृद्यो निरन्तरम् । सुग्रीवमचिवः पातु मस्तकं वायुनन्दनः ॥ ३ ॥
मत्तं पातु महावीरो अरोर्मध्ये निरन्तरम् । नेत्रे छायापहारी च पातु नः प्लवगेश्वरः ॥ ४ ॥
कपोले कर्णमूले च पातु श्रीगमकिकरः । नाभ्यग्रमंजरीमूनुः पातु श्वश्रुं हरीश्वरः ॥

वाचं रुद्रप्रियः पातु जिह्वां शिखरलोचनः ॥ ५ ॥

पातु देवः कान्गुनेष्टशिवुकं दैन्यदर्पहा । पातु कण्ठं च दैन्यशरिः श्वश्रुं पातु मुराचिवः ॥ ६ ॥
भुजौ पातु महातेजाः करौ च चरणायुधः । नखाशलायुधः पातु कुक्षौ पातु ज्योतिश्वरः ॥ ७ ॥
बलौ भुद्रापहारी च पातु पार्श्वे भुजायुधः । लंकाविभञ्जकः पातु पृष्ठे च निरन्तरम् ॥ ८ ॥
नाभिं च रामदूतस्तु कटिं पान्वनिलात्मजः । गुह्यं पातु महाप्राज्ञो लिङ्गं पातु त्रिप्रियः ॥ ९ ॥
ऊरु च जानुनी पातु लंकाप्रासादभञ्जनः । जघे पातु कपिश्रेष्ठो गुल्फौ पातु महाबलः ॥

अचलोद्धारकः पातु पादौ भास्करमग्निभः ॥ १० ॥

अज्ञान्यमितसत्त्वाढ्यः पातु पादांगुलींस्तथा । मर्मांगानि मदाशूरः पातु रंभाणि चान्मविन् ॥ ११ ॥
हनुमत्कवचं यस्तु पठेद्दिहान्विचक्षणः । स एव पुरुषश्रेष्ठो भुक्तिं मुक्तिं च विंदति ॥ १२ ॥
त्रिकालमेककालं वा पठेन्मामत्रयं ततः । सर्वान् विघ्नान् शृणाजिज्ज्वा स पुनान् श्रियमाप्नुयात् ॥
मन्थरात्रि जले स्थित्वा सप्तवारं पठेद्यदि । सयापस्मात्कुप्रादिनापत्रयनिवारणम् ॥ १४ ॥

अब हनुमान्कवच प्रारम्भ होता है । श्रीरामचन्द्रजी बोले-हनुमान् पूर्व दिशाको रक्षा करे, पवनान्तमज दक्षिण दिशाको रक्षा करे और रक्षोघ्न (गक्षलोको मारनेवाले) हनुमान्जी पश्चिम दिशाकी रक्षा करे ॥ १ ॥ समुद्रको पार करनेवाले हनुमान्जी उत्तर दिशाकी रक्षा करें, कैपरीके प्रिय पुत्र ऊरुको रक्षा करें, नीचकी और विष्णु-भक्त रक्षा करें, मद्यभागकी पावनि (पवनपुत्र) रक्षा करें ॥ २ ॥ मत्र प्रकारकी आपत्तियोंसे लड़नेवाले रक्षा करें, सुग्रीवके मन्त्रों मस्तकको रक्षा करें, वायुनन्दन ललाटकी रक्षा करें, मोड़ीके मध्यभागकी महावीरजी रक्षा करें, छायाका अपहरण करनेवाले हनुमान्जी मेरे नेत्रोंकी रक्षा करें ॥ ३ ॥ ४ ॥ कपोलोंको अवगेश्वर रक्षा करें, श्रीरामचन्द्रजीके सेवक कानके मूलभागकी रक्षा करें, नागिकाके अग्रभागका अजन्तरीमूनु रक्षा करें, हरीश्वर मुखकी रक्षा करें ॥ ५ ॥ रुद्रप्रिय वाचकी रक्षा करें, पीछे ओखोंवाले हनुमान्जी जिह्वाकी रक्षा करें, अर्जुनके मित्र श्रीहनुमान्जी विबुकषागकी रक्षा करें, दैन्योंका दर्प दूर करनेवाले कण्ठकी रक्षा करें, चरणसे आमुषका काम लेनेवाले हाथोंकी रक्षा करें, नखके आयुध धारण करनेवाले हनुमान् नखोंकी रक्षा करें, कपियोंके ईश्वर कुक्षिकी रक्षा करें ॥ ६ ॥ ७ ॥ भुद्रका अपहरण करनेवाले बलस्पलकी रक्षा करें, भुजासे ही शस्त्रका काम लेने-वाले पार्वभागकी रक्षा करें, लंकाका विनाश करनेवाले मेरे पृष्ठभागकी रक्षा करें ॥ ८ ॥ रामके दूत नाभिभागकी रक्षा करें, वायुके पुत्र कटिभागकी रक्षा करें, महान् प्रजाशाली गुह्यभागकी रक्षा करें शिवके प्रिय लिङ्गकी रक्षा करें ॥ ९ ॥ लंकाके प्रासादोंका नाश करनेवाले घुटनों तथा जानुभागकी रक्षा करें, कपिश्रेष्ठ जघेकी रक्षा करें, महाबलवान् गुल्फभागकी रक्षा करें ॥ १० ॥ पर्वतोंको उखाड़नेवाले मेरे दोनों पैरोंकी रक्षा करें, सूर्यके समान कान्तिशाली हनुमान्जी मेरे अंगोंकी रक्षा करें, अमित बलवाले हनुमान्जी मेरे पैरकी अंगुलि-योंकी रक्षा करें, महाशूरवीर मेरे सब अङ्गोंकी रक्षा करें, आत्माको जाननेवाले हनुमान्जी मेरे शरीरकी समस्त रोगोंसे रक्षा करें ॥ ११ ॥ जो भी विवक्षण विद्वान् इस हनुमत्कवचका पाठ करता है, वही सब पुण्योंमें श्रेष्ठ होता है और सारी भुक्ति-पुक्ति उसीकी मिलती है ॥ १२ ॥ जो मनुष्य तीन महीने तक तीनों कवचा एक ही क्षणमें इस हनुमत्कवचका पाठ करता है, वह सब शत्रुओंको पराजित करके अतुल लक्ष्मीका भंडार प्राप्त करता ॥ १३ ॥ यदि आधी रातके समय जलमें खड़ा होकर सात बार इस कवचका पाठ करे तो क्षय, अपस्मार, कुष्ठ एवं दैहिक, दैविक और भौतिक ये तीनों प्रकारके ताप दूर हो जाते हैं ॥ १४ ॥

अधस्त्यमूलेऽर्कवारे स्थित्वा पठति यः पुमान् । अचलां श्रियमाप्नोति संग्रामे विजयं तथा ॥१५॥
 बुद्धिर्बलं यशो वैर्यं निर्भयत्वमरोगताम् । सुदाह्यं वाक्स्फुरत्वं च हनुमत्स्मरणान्नवेत् ॥१६॥
 मारणं वैरिणां सद्यः अरणं सर्वसम्पदाम् । शोकस्य हरणे दध्ने वंदे तं रणदाहणम् ॥१७॥
 लिखित्वा पूजयेद्यस्तु सर्वत्र विजयी भवेत् । यः करे धारयेन्नित्यं स पुमान् श्रियमाप्नुयात् ॥१८॥
 स्थित्वा तु बन्धने यस्तु जपं कारयति द्विजैः । कृत्स्नान्भुक्तिमाप्नोति निगडात् तथैव च ॥१९॥

ईश्वर उवाच

मान्द्यदोषरणाविन्दयुगलं कौपीनमौजीघरं कांचिश्रेणिघरं दुकूलधमनं यज्ञोपवीताजिनम् ।
 हस्ताभ्यां धृतपुष्पकं विलमद्भागवलिं कुण्डलं यश्चालं विशिखं प्रसन्नवदनं श्रीवायुपुत्रं मजे ॥२०॥
 यो वारानिधिमल्पपञ्चलमिवोत्प्लब्धं प्रतापान्वितो वंदेऽङ्गीघनशोकतापहरणो वैकुण्ठभक्तप्रियः ।
 अक्षाद्यजितराक्षसेश्वरमहादर्पापहारी रणे सोऽयं वानरपुङ्गवोऽवतु सदा योऽस्मान्समीरात्मजः ॥२१॥

वर्जांगं पिंगनेत्रं कनकमयलसकुण्डलाकांतगण्डं
 दंभोलिस्तंभसारं ग्रहरणसुवशीभूतगक्षोधिनाथम् ।
 उद्यन्लंगूलसप्तप्रचलचलधरं भीममूर्ति कर्पीद्र
 ध्यायेत्तं रामचन्द्रं अमरदृढकरं सत्त्वसारं प्रसन्नम् ॥२२॥
 वर्जांगं पिंगनत्र कनकमयलसकुण्डलैः शोमनीयं
 सर्वापीडयादिनाथं करतलविधृतं पूर्णकुम्भं दृढं ।
 भक्तानामिष्टकारं विदधति च सदा सुप्रसन्नं हराश्रं
 त्रैलोक्यप्राप्तुकामं सकलभुवि गतं रामदूतं नमामि ॥२३॥

जो मनुष्य रविवारको योपलके नीचे बैठकर इस स्तोत्रका करता है, उसे अचल लक्ष्मी प्राप्त होती है और वह विजयी होता है ॥ १५ ॥ बुद्धि, बल, यश, वैर्य, निर्भयत्व, अरोगता, दृढ़ता और वाक्पचापल्य, ये सब हनुमान्जीके ध्यानसे प्राप्त हो सकते हैं ॥ १६ ॥ जो सब वैरियोंको मारनेवाले और संपत्तियोंके निधान है, जो शोकका अपहरण करनेमें अतिशय कुशल है, उन रणदाहण हनुमान्जीको करता है ॥ १७ ॥ जो मनुष्य लिखकर इस कवचका पूजा करता है, वह सर्वत्र विजयी होता है और जो अपनी जातिमें हमेशा बांधे रहता है, उसे लक्ष्मी प्राप्त होती है ॥ १८ ॥ यदि प्राणी किसी तरह बन्धनमें पड़ गया हो, बाह्यणों द्वारा इस कवचका जप कराये बन्धनसे हो जाता ॥ १९ ॥ शिवजी बोले-सूर्य और चन्द्रमाके समान शोभासम्पन्न जिसके चरणकमल हैं, जो कौपीन और मौजी धारण किये हैं, जो कांची श्रेणियों को पहने हैं, धारण किये हैं, यज्ञोपवीत तथा मुगधमं अलग मुशोभित रहा है, जो हाथमें पुस्तक लिये और चमकता हुआ हार जिनके वक्षस्थलपर सुशोभित हो रहा है। ऐसे भूतबासे वायुपुत्रको प्रणाम करता हूँ। जो समुद्रको एक तलैया समझकर लौघ गये, जिन्होंने सीताके महाशोक और तापको हर लिया, विष्णु भगवान्की भक्तिके प्रेमी, संग्राममें अक्षयकुमार आदि उहड़ राक्षसोंके दर्पको दूर करनेवाले कामरूपगध वायुके पुत्र हनुमान् हमारी रक्षा करें। जिनका वज्रके शरीर है, पोली-पीली आँखें हैं, सुवर्णमय कुंडलोंसे जिनका कपोलभाग भरा हुआ है, वज्ररत्नके समान जिनका मजबूत शरीर है, रावणको मारनेके लिये जिन्हें दुर्यस्त शस्त्र मिल था, उन पूँछ ऊपर उठाये, सात पर्वतोंको लादे और भयङ्कर रूपधारी हनुमान्जीका ध्यान करना चाहिये। साथ ही उन श्रीरामचन्द्रजीका भी ध्यान करना उचित है, जो सब सत्त्वोंके सार हैं और सदा प्रसन्न रहते हैं ॥ २०-२२ ॥ वज्रके समान कठिन जिनकी देह है, सुवर्णके कुंडल जिनके कानोंमें पड़े हैं, जो सब आभूषणोंके स्वामी हैं, जिन्होंने अपनी हथेलीमें पूर्णकुम्भको धारण कर रक्खा है, जो भक्तोंकी कामना पूर्ण करते हैं, जो सर्वदा प्रसन्न रहते हैं और तीनों लोकोंकी रक्षा करनेकी कामना रखते हैं, समस्त भुवनमें

वामे करे वैरिभिर्दं वहतं शैलं परं शृङ्खलहारकण्ठम् ।
 दधानमाच्छाद्य सुपर्णवर्णं भजे ज्वलत्कुण्डलमाञ्जनेयम् ॥२४॥
 पद्मरागमणिकुण्डलत्विषा पाटलीकृतकपोलमण्डलम् ।
 दिव्यदेहकदलीवनांतरे भावयामि पद्माननंदनम् ॥२५॥
 यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाजलिम् ।
 बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमस्त गक्षसांतकम् ॥२६॥
 मनोजवं मारुततुल्यदेवं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
 कृतात्मजं वानरपुंषुमुख्यं श्रीरामदूतं शिरसा नमामि ॥२७॥

रिवादे दिव्यकाले च द्यूते राजकुले रणे । दशवारं पठेन्नाश्री मिताहारो जिनेन्द्रियः ॥२८॥
 विजयं लभते लोके मानवेषु नरेषु च । भूते प्रेते महादुर्गेऽरण्ये सागरसंप्लवे ॥२९॥
 सिंहाद्याग्रभये चोग्रे शरशस्त्रपातने । भृंशलावंधने चैव कारागृहनिषंगणे ॥३०॥
 कोपे स्तम्भे वह्निचक्रे सेत्रे घोरे सुदारुणे । शोके महारणे चैव मन्त्राग्रहनिवाग्वम् ॥३१॥
 सर्वदा तु पठेन्नित्यं जपमाप्नोति निश्चितम् । भूर्जे वा वसने रक्ते श्रीमे वा तालपत्रके ॥३२॥
 त्रिगंधिना वा मध्या वा विलिख्य धारणेऽक्षरः । पंचममत्रिलोहैर्वा गोपितः सर्वतः शुभम् ॥३३॥
 करे कट्यां बाहुमूले कंठे शिरसि धारितम् । सर्वान्कामानवाप्नोति सत्यं श्रीरामभाषितम् ॥३४॥
 अपराजितं नमस्तेऽस्तु नमस्ते रामरजित । प्रस्थानं च करिष्यामि सिद्धिर्भवतु मे सदा ॥३५॥
 हस्त्युक्त्वा यो व्रजेद्ग्रामं देशं तीर्थार्तरं रणम् । आगमिष्यति शीघ्रं स क्षेमरूपो गृहं पुनः ॥३६॥
 इति वदति विशेषाद्राघवे राक्षसेन्द्रः प्रमुदितवरचित्तो रावणस्यानुजो हि ।
 रघुवरपदपद्मं वंदयामास भूयः कुलसहितकृतार्थः शर्मदं मन्यमानः ॥३७॥

भुवने में विराजमान उन रामदूत हनुमानजीकी मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २३ ॥ जो बाँवें हाथमें शत्रुओंको मारने-
 वाला पर्वत लिये है, जिनके कण्ठमें शृङ्खलाका हार और देहोप्यमान मृदणका कुण्डल कानोंमें पड़ा हुआ है,
 मैं ऐसे हनुमान्जीकी प्रणाम करता हूँ ॥ २४ ॥ कुण्डलमें जड़े हुए पुष्कराज मणिकी कान्तिसे जिनका कपोल
 पाटल वर्णका हो गया है, केलेके खनमें खड़े और दिव्य रूप धारण किये हनुमान्जीका मैं ध्यान करता हूँ
 ॥ २५ ॥ जहाँ-जहाँ रामकी कथा होती है, वहाँ भाषा सुका तथा हाथ जोड़कर जो खड़े रहते हैं और आँसूसे
 जिनके नेत्र भरे रहते हैं, राजर्षीका करनेवाले हनुमान्जीकी प्रणाम करो ॥ २६ ॥ मनके समान
 जिनका वेग है, जिन्होंने इन्द्रियोंको जीत लिया और जो बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ है, ऐसे वायुपुत्र एवं वानरपुंषुके
 मुखिया श्रीरामदूतकी मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ २७ ॥ किसीसे बहस करते समय, जुआ खेलते
 समय, सपथ खाते समय, राजकुलोंमें, संग्राममें और रात्रिमें मिताहार होकर जितेन्द्रियतापूर्वक दस बार जो
 इस कवचका पाठ करता है, वह मनुष्यों और जन्तुओंपर विजय प्राप्त कर लेता है । मृत, प्रेत, महादुर्ग,
 अरण्य और सागरमें बह जानेपर, सिंह व्याघ्र आदिका भय भा जानेपर, बाण तथा अस्त्र-सस्त्रके तिरनेपर,
 जँजीरोंसे बँध जानेपर, कारागृहमें बन्द हो जानेपर, किसीके कुपित होनेपर, अग्निकी लपटमें पड़ जानेपर
 किसी दारुण क्षत्रमें, शोकके समय, महासंग्राममें और सहाराक्षसका निवारण करते समय इन समयोंमें
 पाठ करना चाहिए । ऐसा करनेसे उसकी विजय होती है । भूर्जपत्रपर, लाल कपड़ेपर, रेशमी वस्त्रपर,
 तालपत्रपर ॥ २८-३२ ॥ त्रिगंध भयवा स्याहूँसे लिख एवं पत्र, त्रिलोहसे बनी ताबीजमें
 रत्नकर हाथ, कमर, भुजा, कण्ठ या मस्तककपर जो मनुष्य इसे बाँधता है, उसकी सब कामनायें
 पूर्ण होती हैं । यह रामका कहा बचन कभी झुठ नहीं हो सकता ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ कभी भी पराजित नहीं
 होवेवाले और रामसे पूजित है हनुमान्जी । मैं आपको प्रणाम करता हूँ । जिस कामसे बाहर जा

तं वेदशास्त्रपरिनिष्ठितशुद्धबुद्धिं शर्मप्रदं सुरसुनीन्द्रनुतं कपीन्द्रम् ।

कृष्णत्वचं कनकपिंगजटाकलापं व्यासं नमामि शिरसा तिलकं मुनीनाम् ॥३८॥

■ इदं प्रातरुत्थाय पठेत् कवचं सदा । आयुरारोग्यमंगानैस्तस्य स्तव्यः स्तवो भवेत् ॥३९॥

एवं गिरीन्द्रजे श्रीमद्भुमत्कवचं शुभम् । त्वया पृष्टं मया प्रीत्या विस्तराद्विनिवेदितम् ॥४०॥

श्रीरामदास उवाच

एवं शिवमुत्साह्युत्वा पार्वती कवचं शुभम् । हनुमतः सदा भक्त्या पपाठ तन्मनाः सदा ॥४१॥

एवं शिष्य त्वयाऽप्यत्र यथा पृष्टं तथा मया । हनुमत्कवचं चेद् तथाग्रे विनिवेदितम् ॥४२॥

इदं पूर्वं पठित्वा तु रामस्य कवचं ततः । पठनीयं नरैर्महत्या नैकमेव पठेत्कदा ॥४३॥

हनुमत्कवचं चात्र श्रीरामकवचं त्रिना । ये पठन्ति नराश्चात्र पठन् नदूषया भवेत् ॥४४॥

तस्मात्सर्वैः पठनीयं सर्वदा कवचद्वयम् । रामस्य वायुपुत्रस्य सङ्कर्तव्यं विशेषतः ॥४५॥

इति हनुमत्कवचम्

■ रामकवचम्

इदानीं रामकवचं शृणु शिष्य वदामि ते । परं गुह्यं पवित्रं च सर्ववाञ्छितपूरकम् ॥४६॥

सुतीक्ष्णस्त्वेकदाऽगस्ति प्रोवाच गृहसि स्थितम् ।

भगवन् परमानन्द तत्त्वज्ञ कर्णानिधे । गुरो त्वं मां वदस्वाद्य स्तोत्रं रामस्य पावनम् ॥४७॥

आजानुवाहुमर्गविदलायनाक्षमाजन्मशुद्धरमहासमुत्सप्रसादम् ।

श्यामं गृहीतशरचापमुदाररूपं रामं सराममभिराममनुस्मरामि ॥४८॥

शृणु वक्ष्याम्यहं सर्वं सुतीक्ष्ण मुनिसत्तम । श्रीगमकवचं पुण्यं सर्वकामप्रदायकम् ॥४९॥

रक्षा है, वह काम पूरा हो जाय ॥ ३५ ॥ ऐसा कहकर ओ किसी दूसरे गाँवको जाता है, वह कुशलपूर्वक अपना काम पूरा करके शोध लौटता है ॥ ३६ ॥ इस रामचन्द्रजीके कहनेपर रावणके भ्राता विभीषण परम प्रसन्न हुए । उन्होंने रामके चरणोंकी वन्दना की और मपरिवार अपनेको माना ॥ ३७ ॥ समस्त वेदों और शास्त्रोंमें जिनकी बुद्धि प्रविष्ट है, देवता तथा मुनिगण जिनकी वन्दना करते हैं, ऐसे शुभदाता हनुमान्जी और जिनके शरीरकी त्वचा कृष्णवर्णकी है, सुवर्णके समान वाली जिनकी है, ऐसे मुनियोंके अग्रणी श्रीव्यासजीको मैं शुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ३८ ॥ मनुष्य सर्वेरे उठकर सदा इस कवचका पाठ करता है, उसे आयु-आरोग्य और आदि वस्तुमें प्राप्त हो जाती हैं और सब लोग उसकी स्तुति करने लग जाते हैं ॥ ३९ ॥ गिरीन्द्रजे ! जैसा तुमने प्रश्न किया, उसके अनुसार मैंने तुम्हें हनुमत्कवच बतलाया ॥ ४० ॥ श्रीरामदास कहते हैं—हे शिष्य ! तरह शिवजीके मुखसे हनुमत्कवच सुनकर पार्वतीजीने उसी दिनसे तन्मयताके साथ उसका पाठ आरम्भ कर दिया ॥ ४१ ॥ जैसे तुमने पूछा, मैंने भी तुमको हनुमत्कवच कह सुनाया ॥ ४२ ॥ पहले इसका पाठ करके हो भक्तिपूर्वक श्रीरामकवचका पाठ करना चाहिये । अकेले किसी भी कवचका पाठ न करे ॥ ४३ ॥ जो लोग हनुमत्कवचका किये बिना रामकवचका पाठ करेंगे, उनका पाठ व्यर्थ हो ॥ ४४ ॥ लिए सब लोगोंको चाहिए कि सदा दोनों कवचोंका किया करें । रामके भक्त तो इस बातपर विशेष ध्यान रखें ॥ ४५ ॥ हे शिष्य ! अब तुमको रामकवच बतलाता हूँ । यह भी परम गोप्य, परम पवित्र और सब कामनाओंका पूर्ण करनेवाला है ॥ ४६ ॥ एक बार सुतीक्ष्णने अपने गुरु अगस्त्यको एकान्तमें देखकर कहा—हे भगवन् ! परमानन्ददाता ! हे तत्त्वज्ञ ! हे कर्णानिधे ! आज हमें श्रीरामचन्द्रजीका कोई पुनीत स्तोत्र सुनाइए ॥ ४७ ॥ अगस्त्यने कहा कि जानुपर्यन्त जिनकी हैं, कमलदलके समान जिनके विशाल नेत्र हैं, जन्मसे ही जिनका प्रसन्नमुख है, जिन्होंने धनुष और बाणको धारण कर रक्खा है, जिनका उबार रूप है, ऐसे अभिराम रामका मैं ध्यान करता हूँ ॥ ४८ ॥ हे मुनिसत्तम

अद्वैतानन्दचैतन्यशुद्धसर्वकलक्षणः । बहिरंतः सुतीक्ष्णश्च रामचन्द्रः प्रकाशते ॥५०॥
 तत्त्वविद्यार्थिनो नित्यं रमते चित्सुखात्मनि । इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते ॥५१॥
 अथ रामेति यस्मात् कीर्तयन्नमित्रणयेत् । सर्वपापैर्विनिर्मुक्तो याति विष्णोः परं पदम् ॥५२॥
 श्रीरामेति परं मंत्रं तदेव परमं पदम् ।

तदेव तारकं विद्धि जन्ममृत्युभयापहम् । श्रीरामेति वदन् ब्रह्मात्रमाप्नोत्यसंशयम् ॥५३॥

अस्य श्रीरामकवचस्य अगस्त्यश्चापिः अनुष्टुप्छन्दः सीतालक्ष्मणोपेतः श्रीरामचन्द्रो देवता

श्रीरामचन्द्रप्रसादमिद्वयर्थं जपे विनियोगः ।

अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि सर्वाभीष्टफलप्रदम् । नीलजीमूतसंकाशं विद्युदूर्णाम्बरावृतम् ॥५४॥
 कोमलांगं विशालाक्षं युवानमनिसुन्दरम् । सीतासीमित्रिसहितं जटामुकुटधारिणम् ॥५५॥
 सासितूणधनुर्बाणपाणि दानवमर्दनम् । सदा चोरमये राजमये शत्रुमये तथा ॥५६॥
 ध्यात्वा रघुपतिं युद्धं कालानलप्रमप्रमम् । चीरकृष्णाजिनधरं भस्मोद्भूतविग्रहम् ॥५७॥
 आकर्णाकुण्डमश्वकोदडभुजमंडितम् । रणे गिण्न् रावणादीर्क्षाक्षमार्गणवृष्टिभिः ॥५८॥
 सहरंतं महावीरमुग्रमर्दरथस्थितम् । लक्ष्मणाद्यर्महावीरैर्वृतं हनुमदादिभिः ॥५९॥
 सुग्रीवाद्यैर्महावीरैः शैलवृक्षकरोदरैः । वेगात्करालहंकारैर्भुम्भुकारमहारवैः ॥६०॥
 नदद्भिः परिवादद्भिः समरे रावण प्रति । श्रीराम शत्रुसंचान्मे हन मर्दय स्वादय ॥६१॥
 भूतप्रेतपिशाचादीन् श्रीरामाशु विनाशय । एवं ध्यात्वा जपेद्रामकवचं सिद्धिदायकम् ॥६२॥
 सुतीक्ष्ण वज्रकयचं मृणु वक्ष्याम्यनुत्तमम् । श्रीरामः पातु मे मूर्ध्नि पूर्वं च रघुवंशजः ॥६३॥
 दक्षिणे मे रघुवरः पश्चिमे पातु पावनः । उत्तरे मे रघुपतिर्भालं दक्षरथात्मजः ॥६४॥

सुतीक्ष्ण ! सुनिद्र, मैं सब कामनाओंको पूर्णकरनेवाला रामकवच बतलाऊँगा ॥ ४९॥ हे सुतीक्ष्ण ! इस संसारके बाहर-भीतर सब स्थानोंमें अद्वैत, आनन्दस्वरूप, शुद्ध और गुणमय रामचन्द्रजी प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ५० ॥ परमात्माके तत्त्वकी जाननेकी इच्छा रखनेवाले लोग जिसके चित्तगुणमें आनन्द लुटते हैं, वे ही परब्रह्म 'राम' इस नामसे पुकारे जाते हैं ॥ ५१ ॥ जो मनुष्य 'जय राम' इस मंत्रका कीर्तन करता है, वह पापोंसे छूटकर विष्णुभगवान्‌के परम पदको प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥ श्रीराम यह सर्वश्रेष्ठ मन्त्र है, यह परमपद है, यह मृत्यु-भय आदिको दूर कर देता है और श्रीराम कहला हुआ प्राणी परब्रह्मको प्राप्त होता है । इसमें कोई संशय नहीं है । विनियोगके बाद सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाला ध्यान बतला रहा हूँ । जिनका नील मेघके समान श्याम शरीर है, जो बिजलीके समान चमकते हुए पीले वस्त्रकी चारण किये हुए हैं, जिनके कोमल अङ्ग हैं, बड़ी-बड़ी आँखें हैं, जो अतिशय सुन्दर और युवा हैं, जिनके साथ सीता और लक्ष्मण विद्यमान हैं, जो जटामुकुट धारण किये हैं, तलवार, तरकस, धनुष-बाण हाथमें लिये हैं और जो दानवोंका संहार करते हैं । मनुष्यको चाहिए कि राजभय, चोरभय और संग्रामका भय आ जाय तो कालानलके समान क्रुद्ध रामचन्द्रजीका ध्यान करे । जो पीताम्बर तथा कृष्णमृगचर्म धारण किये हैं और धूलिसे जिनका शरीर घूसरित हो रहा है ॥ ५३-५७ ॥ कान्तक जिन्होंने धनुषकी डोरी खींच रखी है, संग्रामभूमिमें रावण आदि राक्षसोंपर जो तीक्ष्ण बाणवृष्टि कर रहे हैं ॥ ५८ ॥ इन्द्रके रथनर बँडे जो महावीर शत्रुका संहार करनेमें लगे हुए हैं और जो लक्ष्मण हनुमान्‌जी आदि वीरोंसे घिरे हुए हैं ॥ ५९ ॥ जिनके साथ सुग्रीव आदि योद्धा हाथमें पाषाणखण्ड और बड़े-बड़े वृक्ष लिये शत्रुओंका संहार कर रहे हैं । ऐसे हैं राम । इसकी धारो—इसकी ला-जामो और भूत, प्रेत, पिशाच आदिको नष्ट कर दो । प्रकार रामचन्द्रजीका ध्यान करके सिद्धिदायक रामकवचका करे ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ अगस्त्यजी कहते हैं कि हे सुतीक्ष्ण ! मैं अतिशय बख्शक कहला हूँ । श्रीराम मेरे मस्तक और पूर्व दिशोंकी रक्षा करें । दक्षिणकी ओर रघुवर तथा

भ्रुवोर्दूर्वादिलक्ष्यामस्तयोर्मध्ये जनार्दनः । ओत्रं मे पातु राजेशो दृष्टौ राजीवलोचनः ॥६५॥
 घ्राणं मे पातु राजर्षिर्गण्डं मे जानकीपतिः । कर्णमूले खरध्वंसी मालं मे रघुवल्लभः ॥६६॥
 जिह्वां मे वाक्पतिः पातु दन्तवल्ग्वोरघूत्तमः । ओष्ठौ श्रीरामचन्द्रो मे मुखं पातु परात्परः ॥६७॥
 कंठं पातु जगद्गन्धः स्कंधौ मे राक्षणांतकः । वक्षो मे पातु काकुत्स्थः पातु मे हृदयं हरिः ॥६८॥
 सर्वाण्यंगुलिपर्वाणि इस्तौ मे राक्षसांतकः । वक्षो मे पातु काकुत्स्थः पातु मे हृदयं हरिः ॥६९॥
 स्तनौ सीतापतिः पातु पार्श्वौ मे जगदीश्वरः । मध्यं मे पातु लक्ष्मीशो नाभिं मे रघुनायकः ॥७०॥
 कौसल्येयः कटिं पातु पृष्ठं दुर्गतिनाशनः । गुह्यं पातु हृषीकेशः सविथनी सत्यविक्रमः ॥७१॥
 ऊरू शार्ङ्गधरः पातु जानुनी हनुमत्प्रियः । जंघे पातु जगद्दधार्पी पादौ मे तटिकीतकः ॥७२॥
 सर्वांगं पातु मे विष्णुः सर्वसंधीननामयः । ज्ञानेन्द्रियाणि प्राणादीन्पातु मे मधुसूदनः ॥७३॥
 पातु श्रीरामभद्रो मे शब्दादीन्विषयानपि । द्विपदादीनि भूतानि मत्संवन्धीनि यानि च ॥७४॥
 जामदग्न्यमहादर्पदलनः पातु तानि मे । सौमित्रिपूर्वजः पातु वागादीनीन्द्रियाणि च ॥७५॥
 रोमांकुराण्यश्रेयाणि पातु सुग्रीवराज्यदः । वाङ्मनोबुद्धयहंकारैर्ज्ञानादानकृतानि च ॥७६॥
 जन्मान्तरे कृतानीह पापानि त्रिविधानि च । तानि सर्वाणि दग्ध्वाशु हरकोदंडसंघनः ॥७७॥
 पातु मां सर्वतो रामः शार्ङ्गबाणधरः सदा । इति श्रीरामचंद्रस्य कवचं वज्रसंमितम् ॥७८॥
 गुह्याद्गुह्यतमं दिव्यं सुतीक्ष्णं मुनिसत्तम । यः पठेच्छृणुयाद्वापि आवयेद्वा समाहितः ॥७९॥
 स याति परमं स्थानं रामचन्द्रप्रसादतः । महापातकयुक्तो वा गोघ्नो ■■■ अणुहा ■■■ ॥८०॥
 श्रीरामचन्द्रकवचपठनाच्छुद्धिमाप्नुयात् । नष्टदत्त्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥८१॥

पश्चिमकी पावन (पवनपुत्र) रक्षा करें । उत्तरको ओर रघुपति और ललाटकी दशरथात्मज रक्षा करें । दूर्वादिलक्ष्मी
 सभान श्याम जनार्दन भीहोके मध्यभागकी रक्षा करें, कानोंकी राजेन्द्र, आँखोंकी राजीवलोचन ॥ ६३-६४ ॥
 नाककी राजर्षि, गण्डस्थलकी जानकीपति, कर्णमूलकी खरध्वंसी और रघुवल्लभ ललाटकी रक्षा करें ॥ ६५ ॥
 उसी ■■■ जिह्वाकी रक्षा वाक्पति, दन्तवल्ग्वोकी रघूत्तम, दोनों होठों और मुखकी रक्षा परात्पर भगवान्
 करें ॥ ६७ ॥ कंठकी जगद्गन्ध, दोनों कंधों राक्षसान्तक और मेरी दोनों भुजाओंकी रक्षा वालिको मारने-
 वाले धनुर्बाणधारी राम करें ॥ ६८ ॥ मेरे सब उँगलियों और दोनों हाथोंकी रक्षा राक्षसान्तक, वक्षस्थलकी
 काकुत्स्थ और हरिभगवान् मेरे हृदयकी रक्षा करें ॥ ६९ ॥ दोनों स्तनोंकी सीतापति, पार्श्वभागकी जगदीश्वर,
 मध्यभागकी लक्ष्मीपति और नाभिकी श्रीरघुनाथजी रक्षा करें ॥ ७० ॥ कमरकी कौसल्येय, पीठकी दुर्गतिनाशन,
 गुप्तभागकी हृषीकेश और सत्यविक्रम भगवान् हड्डियोंकी रक्षा करें ॥ ७१ ॥ शार्ङ्गधर भगवान् दोनों घुटनोंकी,
 हनुमान्जीके प्रिय दोनों जानुभागकी, जगद्दधार्पी दोनों जाँघोंकी और ताडुकाका नाक करनेवाले ■■■ गङ्गाम्
 मेरे पैरोंकी रक्षा करें ॥ ७२ ॥ विष्णुभगवान् मेरे ■■■ अङ्गोंकी, अनामय मेरे शरीरकी, सन्धियोंकी और मधु-
 सूदन भगवान् मेरे प्राणादि तथा ज्ञानेन्द्रियोंकी रक्षा करें ॥ ७३ ॥ श्रीरामभद्र मेरे शब्दादि विषयोंकी रक्षा
 करें । मुझसे ■■■ रक्षनेवाले जितने ■■■ पैरके जन्तु (मनुष्य) हों, उनकी रक्षा महान् दर्पको नष्ट करनेवाले
 परशुराम भगवान् करें । सौमित्रिपूर्वज (राम) मेरी वाक् आदि इन्द्रियोंकी रक्षा करें ॥ ७४ ॥ ७५ ॥
 सुग्रीवकी राज्य देनेवाले श्रीरामचन्द्रजी मेरे सारे रोमकूपोंकी रक्षा करें । मम, बुद्धि, अहङ्कार, ■■■ एवं
 अज्ञानसे किये हुए इस जन्म तथा जन्मान्तरके पातकोंकी जलाकर भस्म करते हुए शिवजीका धनुष तोड़नेवाले
 धनुर्बाणधारी श्रीराम मेरी सब ओर रक्षा करें । हे मुनिसत्तम सुतीक्ष्ण । यह वज्रसदृश रामकवच गूढ़से भी
 गूढ़ है । जो प्राणी इसे पढ़ता, सुनता या दूसरोंको सुनाता है, वह रामचन्द्रकी कृपासे परम धामकी प्राप्ति
 करता है । वह चाहे महापातकी, गोघाती या अणुहत्याकारी ही क्यों न हो ॥ ७६-८० ॥ इस श्रीरामकवचका
 पाठ करनेसे प्राणी शुद्ध होकर ब्रह्महत्या आदि पातकोंसे भी मुक्त हो जाता है । इसमें कोई संशय नहीं है

मोः सुतीक्ष्ण यथा पृष्टं त्वया मम पुरा शुभम् । तथा श्रीरामकवचं मया ते विनिवेदितम् ॥८२॥

श्रीरामदास उवाच

एवं शिष्य त्वया पृष्टं श्रीरामकवचं वरम् । हनुमत्कवचं चापि तथा ते विनिवेदितम् ॥८३॥

वायुपुत्रस्य रामस्य कवचेऽत्र नरैर्भुवि । विना सीताकवचेन पठनीयं न वै कदा ॥८४॥

आदौ पठित्वा कवचं वायुपुत्रस्य धीमताः । पठनीयं ततः सीताकवचं सौख्यवर्द्धनम् ॥८५॥

ततः श्रीरामकवचं पठनीयं महत्तमम् । एवमेव हि मंत्राश्च जपनीयास्तयः क्रमात् ॥८६॥

विष्णुदास उवाच

गुरोऽहं श्रोतुमिच्छामि सीतायाः कवचं शुभम् । तथान्यान्यपि वैदेहाः स्तोत्रादीनि वदस्व तत् ॥८६॥

सीतायास्तोषदं भूम्यां तत्सर्वं विस्तरेण च ।

श्रीमहादेव उवाच

इति तद्वचनं श्रुत्वा रामदासोऽमबीद्वचः ॥८८॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकाण्डे कवचद्वयवर्णनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः

(सीताकवच आदिका निरूपण)

श्रीरामदास उवाच

मृणु शिष्य प्रवक्ष्यामि सीतायाः कवचं शुभम् । पुरा प्रोक्तं सुतीक्ष्णाय पृच्छते कुंभजन्मना ॥ १ ॥

एकदा कुंभजन्मान सुतीक्ष्णः प्राह ॥ मुनिः । रहः स्थितं गुरु दृष्ट्वा प्रणम्य भक्तिपूर्वकम् ॥ २ ॥

सुतीक्ष्ण उवाच

गुरोऽहं श्रोतुमिच्छामि सीतायाः प्रीतिदानि हि ।

यानि स्तोत्राणि कर्माणि तानि त्वं वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥

भगस्तिष्ठवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया वत्स सावधानमनाः मृणु । आदौ वक्ष्याम्यह रम्यं सीतायाः कवचं शुभम् ॥ ४ ॥

॥ ८१ ॥ हे सुतीक्ष्ण ! जैसा तुमने मुझसे पूछा था, मैंने श्रीरामकवच तुम्हें सुना दिया ॥ ८२ ॥ श्रीरामदास कहते हैं—हे शिष्य ! तुमने हमसे श्रीरामकवच और हनुमत्कवच पूछा था, सो मैंने कह सुनाया ॥ ८३ ॥ रामकवच तथा हनुमत्कवचका पाठ सीताकवचके बिना न करना चाहिए ॥ ८४ ॥ पहले बुद्धमान् वायुपुत्रके पाठ करके मुख बढ़ानेवाले सीताकवचका करना चाहिए ॥ ८५ ॥ उसके बाद सर्वश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रकवचका पाठ करना चाहिए । इस तरह इन तीनों कवचोंका एक साथ पाठ करे ॥ ८६ ॥ विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! मैं सीताकवच तथा सीताके अन्धान्ध स्तोत्रोंको सुनना चाहता हूँ, सो आप मुझसे कहिए ॥ ८७ ॥ जिससे सीताजी प्रसन्न हो सकें, वह सब स्तुतियाँ विस्तारपूर्वक कहें । श्रीमहादेवजीने कहा कि इस प्रकार विष्णुदासकी सुनकर रामदास बोले ॥ ८८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तसंगते श्रीमदानन्दरामायणे पंचमोऽध्यायः पाण्डेयकृत 'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—हे शिष्य ! अब मैं सीताकवच बतलाता हूँ, जिसे भगस्त्वजीने सुतीक्ष्णसे कहा था ॥ १ ॥ एक बार जब कि भगस्त्वजी एकान्तमें बैठे थे, सुतीक्ष्णने जाकर भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और कहा—हे गुरो ! मैं सीताजीको प्रसन्न करनेवाले स्तोत्र और कवच सुनना चाहता हूँ । आप कृपा करें

या सीताऽवनिसम्भवाऽथ मिथिलापत्नेन संवदित्वा पद्माक्षनृपतेः सुता नलगता या मातुलुङ्गेन्द्रवा ।
या रत्ने लयमगता जलनिर्धौ या वदन्तर मनःश्लया ना मृगलोचना शशिमुखो मां पातु रामप्रिया ॥५॥

अस्य श्रीसीताकवचस्तोत्रसद्वच्य अयस्तत्कपिः । श्रीमान् देवता । अनुष्टुप्छन्दः । रामेति
योजम् । जनकजेने शक्तिः । अर्वावेनेति कीलकम् । पद्माक्षसुतेन्यस्त्रम् । मातुलुङ्गेति कवचम् ।
मूलकासुरधातिर्नानि मन्त्रः । श्रीसीतारामचन्द्रतीत्यर्थं मङ्गलकामनासिद्धयर्थं अपे विनियोगः ।
अथ अंगुलिन्यासः ॥ ॐ ह्रीं सीतार्थं अंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐ ह्रीं रामार्थं तर्जनीभ्यां नमः । ॐ ह्रीं
जनकजायै मध्यमाभ्यां नमः । ॐ ह्रीं अवनिजायै अनामिकाभ्यां नमः । ॐ ह्रीं पद्माक्षसुतार्थं
कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ ह्रीं मातुलुङ्ग्यै कान्तलक्ष्म्याभ्यां नमः ॥ एवं हृदयाग्रगन्यासः कार्यः ।

अथ ध्यानम्

सीतां कमलपद्माक्षीं विद्युत्पुञ्जवमप्रभाम् । द्विभुजां सुकुमारग्रीं पीतकौशेयवासिनीम् ॥ ६ ॥
सिंहासने रामचन्द्रवामगामध्विनां वरां । नानालङ्कारमण्डितां कुण्डलद्रवधारिणीम् ॥ ७ ॥
चूडार्ककणकेयूरशनानूपुरान्विताम् । सीमते रत्नचन्द्राभ्यां निटिले तिलकेन च ॥ ८ ॥
मयराभरणेनापि प्राणेशितेशोभितां शुभाम् । हरिद्रां कज्जलं दिव्यं कुङ्कुमं कुसुमानि ॥ ९ ॥
त्रिभ्रतीं सुरभिद्रव्यं सुगन्धम्वेहमुत्तमम् । स्मिन्नाननां गौरवर्णां मन्दारकुसुमं करं ॥ १० ॥
विभ्रन्तीमपरं हस्ते मातुलुङ्गमनुत्तमम् । रम्यहासां च विविधैर्वाचन्द्रवाहनलोचनाम् ॥ ११ ॥
कलानाथसमानास्यां कलकण्ठमनोरमाम् । मातुलुङ्गेन्द्रवां देखीं पद्माक्षदृहितां शुभाम् ॥ १२ ॥
मैथिलीं रामदयितां दासीभिः पञ्चोज्जिताम् । एव ध्यात्वा जनकजां हेमकुम्भपयोधराम् ॥ १३ ॥

सीतायाः कवचं दिव्यं पटनीयं शुभावहम् । १४ ॥

श्रीसीता पूर्वतः पातु दक्षिणेऽवतु जानकी । प्रताच्यां पातु वैदेही पातुदीर्घ्यां च मैथिली ॥ १५ ॥
अधः पातु मातुलुङ्गी ऊर्ध्वं पद्माक्षजाऽवतु । मध्येऽवनिसुता पातु सर्वतः पातु मां रमा ॥ १६ ॥

कहिए ॥ २ ॥ ३ ॥ अगस्त्यजीने कहा—हे वरस । तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है, सावधान होकर सुनो ।
पहले मैं सीताजीका कवच सुनाता हूँ ॥ ४ ॥ जो सीता पृथ्वीसे उत्पन्न हुई और मिथिलानरेणके द्वारा पाली-
पासी गयीं, जो मातुलुङ्गसे उत्पन्न होकर पद्माक्ष नामक राजाकी पुत्री कहो गयीं, जो समुद्रके रत्नोंमें लीन
हुई और बार बार लक्ष्मी गयीं, ऐसी चन्द्रशेखरी, मृगशरी और रामकी प्रेयसी सीता मेरी रक्षा करे ॥ ५ ॥
"अस्य श्री" से लेकर "एवं हृदय अङ्गन्यासः" यहाँ विनियोग तथा अङ्गन्यासका विधान बतलाया गया
है । इसके बाद ध्यान है । जिसका अर्थ इस प्रकार जानना चाहिए—कमलकी पंखुड़ियोंके समान जिनके नेत्र
हैं, विद्युत्पुञ्जके समान जिनकी दाहिनी है, जिनके दो भुजायें हैं और जो पंताम्बर पहने हैं । जो सिंहासनपर
रामके वामभागमें बैठी हैं, कानोंमें कुण्डल पहने हैं, ऊँचेम चूडामणि, भुजाओंमें केयूर तथा कमरमें करघनी
पहने हैं, जिनके शंखभागमें सूर्यचन्द्रमाके समान अभूषण सुशोभित हो रहे हैं, माथेमें तिलक लगा
हुआ है, नाकमें मयूरके आकारका सुन्दर अभूषण पड़ा ॥ ६-९ ॥ हरिद्रा, कज्जल, कुङ्कुम, विविध प्रकारके
फूल तथा तरह तरहके गुणधित द्रव्य और इत्र आदि रहे हैं, जिनका मुस्कुराता हुआ मुखमण्डल है,
गौरवर्ण है, जो एक हाथमें मन्दारके फूल लिपे हैं, दूसरे हाथमें उत्तम मातुलुङ्ग विराजमान है, जिनकी मृदु
मुस्कान है, विश्वके समान ओष्ठ है, मृगके नेत्रोंके समान जिनके नेत्र हैं, चन्द्रमाके समान मुख है, कोयल-
के समान जिनकी मोठी वाणी है, जो मातुलुङ्ग (विजोरा नीबू) से उत्पन्न होनेवाली पद्माक्ष नृपतिकी
पुत्री और रामकी धामिनी है, जिन्हें दासिनी पक्ष सेज रही है, सुवर्णकलशके समान जिनके स्तन हैं, ऐसी
सीताका ध्यान करके इस दिव्य सीताकवचका पाठ करना चाहिए ॥ १०-१४ ॥ पूर्वकी ओर सीता मेरी रक्षा
करे, दक्षिणकी तरफ जानकी रक्षा करे, पश्चिमकी वैदेही रक्षा करे, उत्तरकी मैथिली रक्षा करे ॥ १५ ॥ निचने

स्मितानना शिरः पातु पातु भालं नृपान्मजा । पद्माऽवतु भ्रुवोर्मध्ये मृगाक्षी नयनेऽवतु ॥१७॥
 कपोले कर्णमूले च पातु श्रीरामवल्लभा । नासाग्रं नासिकी पातु पातु वक्त्रं तु राक्षसी ॥१८॥
 तामसी पातु मद्राणीं पातु जिह्वां पतिव्रता । दंतान् पातु महामाया चिबुकं कनकप्रभा ॥१९॥
 एतु कंठ सौम्यरूपा स्कंधौ पातु सुराचिता । भुजौ पातु वरागोहा करौ कंकणमंडिता ॥२०॥
 नखान् रक्तनखा पातु कुक्षौ पातु लघूदरा । वक्षः पातु रामपत्नी पार्श्वे रावणमोहिनी ॥२१॥
 पृष्ठदेशे वह्निगुप्ताऽवतु मां सर्वदेव हि । दिव्यप्रदा पातु नाभिं कटिं राक्षसमोहिनी ॥२२॥
 गुह्यं पातु रत्नगुप्ता लिङ्गं पातु हरिप्रिया । ऊरु रक्षतु रंभोरुर्जानुनी प्रियभाषिणी ॥२३॥
 ऊर्ध्वे पातु सदा सुभ्रूगुल्फी चामरवीजिता । पादौ लवसुता पातु पान्चगानि कुशविक्ता ॥२४॥
 पादांगुलीः सदा पातु मम नृपुरनिःस्वना । गोमाण्यवत मे निन्यं पीतकौशेयवासिनी ॥२५॥
 रात्रौ पातु कालरूपा दिने दानैकतन्त्ररा । सर्वकालेषु मां पातु मूलहातुग्धातिनी ॥२६॥
 एवं सुतीक्ष्ण सीतायाः कवचं ते भवेदितम् । इदं प्रतः समुन्वाप स्नान्या नित्यं पठेत्तु यः ॥२७॥
 जानकीं पूजयित्वा च सर्वान्कामानवाप्नुयान् । धनार्थं प्राप्नुवाद्भृत्यं पुत्रार्थं पुत्रमाप्नुयान् ॥२८॥
 स्त्रीकामार्थं शुभां नारीं सुखार्थं सौख्यमाप्नुयान् । अष्टवारं जपनीयं सीताया कवचं पदा ॥२९॥
 अष्टभ्यो विप्रवर्येभ्यो नरः प्रीत्याऽर्पयेन्मदा । फलपुष्पादिकादीनि यादि तानि पृथक् पृथक् ॥३०॥
 सीतायाः कवचं चेदं पुण्यं पानकनाशनम् । ये पठन्ति नरा भक्त्या ते धन्यः मानवा भुवि ॥३१॥
 पठन्ति रामकवचं सीतायाः कवचं विना । तथा विना लक्ष्मणस्य कवचेन वृथा स्मृतम् ॥३२॥
 तस्मात्सदा नैर्जल्प्यं कवचानां चतुष्टयम् । आदौ तु वायुपुत्रस्य लक्ष्मणस्य ततः परम् ॥३३॥
 ततः पठेच्च सीतायाः श्रीरामस्य ततः परम् । एवं यदा जानीय कवचाणां चतुष्टयम् ॥३४॥
 इति सीताकवचम् ।

भागकी मातृगुणी, ऊपर पद्माक्षजा, मध्यभागकी अवनिमृता और चारों ओर रमा रक्षा करें ॥ १६ ॥
 स्मितानना मुखकी, नृपान्मजा मस्तककी, भौंहोंके बीचमें पद्मा और मेरे नेत्रोंकी मृगाक्षी रक्षा करें ॥ १७ ॥
 श्रीरामचन्द्रजीकी प्रेयसी कपोल और कर्णमूली रक्षा करें । नासिकी नासिकाके अग्रभागकी, तामसी मुखकी,
 तामसी बाणीकी, पतिव्रता जिह्वाकी, महामाया दांतोंकी, कनकप्रभा चिबुककी, सौम्यरूपा कण्ठकी, सुराचिता
 कन्धोंकी, वरागोहा बाहुकी और कंकणमंडिता हाथोंकी रक्षा करें ॥ १८-२० ॥ रक्तनखा नाखूनोंकी, लघूदरा
 कुक्षिकी, रामपत्नी वक्षस्वलीकी, रावणमोहिनी पार्श्वभागकी और वह्निगुप्ता सदा मेरे पृष्ठदेशकी रक्षा करें ।
 दिव्यप्रदा मेरी नाभिकी और राक्षसमोहिनी कमरकी रक्षा करें ॥ २१ ॥ २२ ॥ रत्नगुप्ता गुह्यकी और हरिप्रिया
 लिङ्गकी रक्षा करें । रंभोरु मेरे दोनों घुटनोंकी और प्रियभाषिणी जानुभागकी रक्षा करें ॥ २३ ॥ सुभ्रू जीर्णोंकी,
 चामरवीजिता गुल्फकी तथा कुशविक्ता शरीरके सब अङ्गोंकी रक्षा करें ॥ २४ ॥ नृपुरनिःस्वना पैरकी ईगलियो-
 की और पीताम्बरधारिणी मेरे रोमोंकी रक्षा करें ॥ २५ ॥ रात्रिके समय कालरूपा, दिनकी दानैकतन्त्ररा और
 सब समय मूलकाभुरधातिनी मेरी रक्षा करें ॥ २६ ॥ हे सुतीक्ष्ण ! इस प्रकार मेने तुम्हें सीताकवच बतलाया ।
 जो प्राणी सबेरे स्नानके बाद नित्य इसका पाठ करके जानकीजीकी पूजा करता है, वह अपनी सब इच्छायें
 पूर्ण कर लेता है । धनको चाहनेवाला धन और पुत्रकी अभिलाषा रखनेवाला पुत्र पाता है ॥ २७ ॥ २८ ॥
 स्त्रीकी कामनावाला सुन्दरी स्त्री और सुख चाहनेवाला सौख्य पाता है । उपासकको चाहिए कि सदा आठ
 बार सीता-कवचका जर करे । आठ ब्राह्मणोंको फल-पुष्प आदि वस्तुयें पृथक्-पृथक् दान दे ॥ २९ ॥ ३० ॥
 यह सीताकवच बड़ा पवित्र और पापोंका नाशक है । जो लोग भक्तिपूर्वक इसका पाठ करते हैं, वे
 प्राणी संसारमें धन्य हैं ॥ ३१ ॥ जो लोग सीता तथा लक्ष्मणकवचका पाठ करते हैं, उनका वह पाठ व्यर्थ हो
 जाता है ॥ ३२ ॥ इसलिए लोगोंको चाहिए कि इन चारों कवचोंका पाठ करें । इसका क्रम इस प्रकार है-
 पहले हनुमान्जीका, फिर लक्ष्मणका, इसके बाद सीताका, तदनन्तर श्रीरामकवचका पाठ करना चाहिए

एवं सुतीक्ष्ण सीतायाः कवचं ते मयेरितम् । अतः परं शृणुष्वान्यस्मीतायाः स्तोत्रमुत्तमम् ॥३५॥
यस्मिन्मष्टोत्तरशतं सीतानामानि सन्ति हि । अष्टोत्तरशतं सीतानाम्नां स्तोत्रमनुत्तमम् ॥३६॥
ये पठन्ति नरास्तत्र तेषां च सफलो भवः । ते धन्या मानवा लोके ॥ वैकुण्ठं व्रजन्ति हि ॥३७॥

अस्य श्रीसीतानामाष्टोत्तरशतमंत्रस्य अमस्तिश्रुतिः । अनुष्टुप् छन्दः । रमेति बीजम् ।
मातुलुंगीति अक्तिः । पद्माक्षजेति कीलकम् । अवनिजेन्मन्त्रम् । जनकजेति कवचम् । मूलकासुर-
मर्दिनीति परमो मन्त्रः । श्रीसीतारामचन्द्रश्रीत्यर्थे सकलकामनासिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।
अष्टांगुलिन्यासः । ॐसीतार्यं अंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐरमार्यं तर्जनीभ्यां नमः । ॐमातुलुंग्यै
मध्यमाभ्यां नमः । ॐपद्माक्षजायै अनामिकाभ्यां नमः । ॐअवनिजायै कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।
ॐजनकजायै करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । अथ हृदयादिन्यासः । ॐसीतार्यं हृदयाय नमः ।
ॐरमार्यं शिरसे स्वाहा । ॐमातुलुंग्यै शिखायै वषट् । ॐपद्माक्षजायै नेत्रत्राय वषट् ।
ॐजनकजायै अङ्गाय फट् । ॐमूलकासुरमर्दिन्यै इति दिग्बन्धः ॥

अथ सीताष्टोत्तरशतनाम स्तोत्रम् ।

वामांगे रघुनाकस्य रुचिरे या संस्थिता शोभना या विप्राधिपयानरम्यनयना या विप्रपालनयना ।
विद्युत्पुञ्जविराजमानवसना भक्तातिमंक्षण्डना श्रीमहाधनपादपद्मयुगलम्यस्तोषणा साऽभवत् ॥३८॥
श्रीसीता जानकी देवी वैदेहा राघवप्रिया । रमाऽवनिमुक्ता रामा राक्षसान्तप्रकारिणी ॥३९॥
रत्नगुप्ता मातुलुंगी मैथिली भक्तोषदा । पद्माक्षजा कञ्जनेत्रा स्मितास्या नूपुरस्वना ॥४०॥
वैकुण्ठनिलया मा श्रीमुक्तिदा कामपूरणी । नृपात्मजा हेमवर्णा मृदुलाङ्गी सुभाषिणी ॥४१॥
कुशाम्बिका दिव्यदा च लवमाता मनोहरा । हनुमद्वन्दितपदा मुग्धा केयूरधारिणी ॥४२॥
अशोकवनमध्यस्था रावणादिकमोहिनी । विमानसंस्थिता सुभ्रूः सुकेशी रघनान्विता ॥४३॥

॥ ३३ ॥ ३४ ॥ अगस्त्यजी कहते हैं—हे सुतीक्ष्ण ॥ इस तरह मैंने तुम्हें सीताकवच सुनाया । इसके अनन्तर
सीताजीका एक दूसरा स्तोत्र सुनाता हूँ ॥ ३५ ॥ जिसमें एक सौ आठ सीताके नाम गिनाये गये हैं । इसलिये
नाम "सीताष्टोत्तरशतनाम" रखा गया है ॥ ३६ ॥ जो मनुष्य इसका पाठ करते हैं, उनका जन्म
सफल हो जाता है । वे मनुष्य धन्य हैं और वे अन्तमें वैकुण्ठलोकको जाते हैं ॥ ३७ ॥ "अस्य श्री" यहाँसे
"मूलकासुरमर्दिन्यै" यहाँ तक विनियोग तथा अंगन्यास आदिका विधान बतलाया गया है ॥ अथ ध्यानम् ॥
जो एक सुन्दर सिंहासनपर रामके सामागमें बैठी हैं, मृगके नेत्रोंको भाँति जिनके नेत्र हैं, जो चन्द्रवदनी हैं,
जो बिजलीके समूहकी तरह दमकनेवाले कपड़े पहने हैं, जो अपने भक्तोंकी पीड़ा दूर करनेमें कुछ भी बख-
र् नहीं रखती, जिनके नेत्र श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें लगे हुए हैं, वे सीता हमारी करें ॥ ३८ ॥ अब यहसि
शतनाम चलता है । जैसे—(१) श्रीसीता, (२) जानकी, (३) देवी, (४) वैदेही अर्थात् विदेह जनककी पुत्रा,
(५) राघवप्रिया, (६) रमा, (७) अवनिमुक्ता (पृथ्वीकी कन्या), (८) रामा, (९) राक्षसान्तप्रकारिणी (राक्षसों-
का नाश करनेवाली), (१०) रत्नगुप्ता, (११) मातुलुंगी, (१२) मैथिली, (१३) भक्तोषदा (भक्तोंको प्रसन्न
करनेवाली), (१४) पद्माक्षजा (पद्मक्षनामक राजाकी), (१५) कञ्जनेत्रा (कमलके समान नेत्रोंवाली),
(१६) स्मितास्या ॥ जिनका मुस्कराता हुआ मुख है), (१७) नूपुरस्वना, (१८) वैकुण्ठनिलया (वैकुण्ठलोकमें
निवास करनेवाली), (१९) मा, (२०) श्री, (२१) मुक्तिदा, (२२) कामपूरणी (अपने भक्तोंकी इच्छा पूरी
करनेवाली), (२३) नृपात्मजा, (२४) हेमवर्णा, (२५) मृदुलाङ्गी (जिनका कोमल अङ्ग है), (२६) सुभाषिणी,
॥ ३९-४१ ॥ (२७) कुशाम्बिका (कुशकी माता), (२८) दिव्या (लंकासे लौटनेपर रामके बड़े बाक्य सुनकर
आनेवाली), (२९) लवमाता, (३०) मनोहरा, (३१) हनुमद्वन्दितपदा (हनुमादजीने जिनके चरणोंकी
की धी), (३२) मुग्धा, (३३) केयूरधारिणी, (३४) अशोकवनमध्यस्था (अशोकवनमें निवास करनेवाली)

रजोरूपा सत्वरूपा तामसी बह्निवासिनी । हेममृगासक्तचित्ता वाल्मीक्याश्रमवासिनी ॥४४॥
 पतिव्रता महामाया पीतकौशेयवासिनी । मृगनेत्रा च त्रिवेष्टी धनुर्विद्याविशारदा ॥४५॥
 सौम्यरूपा दशरथस्तुषा चामरवीजिता । सुमेधादुहिता दिव्यरूपा त्रैलोक्यपालिनी ॥४६॥
 अन्नपूर्णा महालक्ष्मीर्भीर्लज्जा च सरस्वती । शान्तिः पुष्टिः क्षमा गौरी प्रभाष्योद्यानिवासिनी ॥४७॥
 वसन्तशीतला गौरी स्नानसन्तुष्टमानसा । रमानाममदसंस्था हेमकंकणमण्डिता ॥४८॥
 सुरार्चिता धृतिः कान्तिः स्मृतिर्मेधा विभावरो । लघूदरा वरारोहा हेमकंकणमण्डिता ॥४९॥
 द्विजपत्न्यर्पितनिजभूषा राघवतोषिणी । श्रीरामसेवनरता रत्नसाटकधारिणी ॥५०॥
 रामवामांगसंस्था ■ राघवचन्द्रैकरजनी । सम्यूजलसंकीडाकारिणी राममोहिनी ॥५१॥
 सुवर्णतुलिता पुण्या पुण्यकान्तिः कलावती । कलकण्ठा कम्बुकण्ठा रंभोरुर्गजगामिनी ॥५२॥
 रामपितृमना रामवन्दिता रामवल्गुभा । श्रीरामपदचिह्नांका रामरामेति भाषिणी ॥५३॥
 रामपर्यङ्कशयना रामाग्निजालिनी वरा । कामधेन्वन्नसन्तुष्टा मातुलुङ्गकरे धृता ॥५४॥
 दिव्यचन्दनसंस्था श्रीमूलकासुरमदिनी । एवमष्टोत्तरशतं सीतानाम्नां सुपुण्यदम् ॥५५॥
 ये पठन्ति नरा भूम्यां ते घन्याः स्वर्गगामिनः । अष्टोत्तरशतं नाम्नां सीतायाः स्तोत्रमुत्तमम् ॥५६॥
 जपनीयं प्रयत्नेन सर्वदा भक्तिपूर्वकम् । सति स्तोत्राण्यनेकानि पुण्यदानि महांति च ॥५७॥

(३५) रावणादिकमोहिनी, (३६) विमानमण्डिता, (३७) सुभ्रू (३८) सुकेशी, (३९) रश्मिनाम्बिता, (४०) रजोरूपा
 (४१) सरवरूपा, (४२) तामसी, (४३) बह्निवासिनी (अग्निमें निवास करनेवाली), (४४) हेममृगा-
 सक्तचित्ता (सुवर्णके मृगमें जिनका मन आसक्त हो गया था), (४५) वाल्मीक्याश्रमवासिनी (वाल्मीकि ऋषिके
 आश्रममें निवास करनेवाली) ॥४२-४४॥ (४६) पतिव्रता, (४७) महामाया, (४८) पीतकौशेयवासिनी
 (रेशमी पीताम्बर धारण करनेवाली), (४९) मृगनेत्रा, (५०) त्रिवेष्टी, (५१) धनुर्विद्याविशारदा (धनु-
 विद्यामें निपुण), (५२) सौम्यरूपा, (५३) दशरथस्तुषा, (५४) चामरवीजिता, (५५) सुमेधादुहिता, (५६)
 दिव्यरूपा, (५७) त्रैलोक्यपालिनी, (५८) अन्नपूर्णा, (५९) महालक्ष्मी, (६०) श्री, (६१) लज्जा,
 (६२) सरस्वती, (६३) शान्ति, (६४) पुष्टि, (६५) क्षमा, (६६) गौरी, (६७) प्रभा, (६८) अयोध्या-
 निवासिनी, (६९) वसन्तशीतला, (७०) गौरी, (७१) स्नानसन्तुष्टमानसा (वसन्तऋतुमें स्नानशीतली
 व्रतके अवसरपर स्नान करनेसे सन्तुष्ट होनेवाली), ॥ ७२ ॥ रमानाममदसंस्था, (७३) हेमकुम्भपदीधरा, (७४)
 सुरार्चिता, (७५) धृति, (७६) कान्ति, (७७) स्मृति, (७८) मेधा, (७९) विभावरो, (८०) लघूदरा,
 (८१) वरारोहा, (८२) हेमकंकणमण्डिता, ॥ ८३-८५ ॥ (८६) द्विजपत्न्यर्पितनिजभूषा (जिसने अपने सव
 आभूषण एक ब्राह्मणीको दे दिये थे), (७४) राघवतोषिणी, (८५) श्रीरामसेवनरता, (८६) रत्नसाटक-
 धारिणी (रत्नके बने कर्णफूल पहननेवाली), ॥ ८७ ॥ (८७) रामवामांगस्था, (८८) रामचन्द्रैकरजनी,
 (८९) सम्यूजलसंकीडाकारिणी (सम्यूजीके जलमें प्रहार करनेवाली), (९०) राममोहिनी, (९१) सुवर्ण-
 तुलिता, (९२) पुण्या, (९३) पुण्यकान्ति, (९४) कलावती, (९५) कलकण्ठा, (९६) कम्बुकण्ठा, (९७)
 रंभोरु, (९८) गजगामिनी, (९९) रामार्पितमना, (१००) रामवन्दिता, (१०१) रामवल्गुभा, (१०२)
 श्रीरामपदचिह्नांका (जिनके ■ यमें श्रीरामचन्द्रजीके चरणका चिह्न विद्यमान ■), (१०३) रामरामेतिभाषिणी
 (■ राम-राम कहनेवाली), (१०४) रामपर्यङ्कशयना, (१०५) रामाग्निजालिनी (रामके पैर घोंटनेवाली),
 (१०६) कामधेन्वन्नसन्तुष्टा, (१०७) मातुलुङ्गकरेधृता, (१०८) दिव्यचन्दनसंस्था मूलकासुरवासिनी
 (दिव्य चन्दनपर स्थित एवं मूलकासुरका नाश करनेवाली) । ये एक ही आठ सीताजीके नाम बड़े
 पुण्यदायी हैं ॥ ५१-५५ ॥ जो लोग इस अष्टोत्तरशतनामका पाठ करते हैं, वे घन्य और स्वर्गगामी
 होते हैं । यह स्तोत्र सर्वोत्तम है ॥ ५६ ॥ इसलिए लोगोंको चाहिए कि ■ भक्तिपूर्वक इसका पठ
 किया करें । यद्यपि बहुतसे बड़े-बड़े और-और पुण्यदायक स्तोत्र हैं, किन्तु हे भ्रातृ ! वे सब इसके

नानेन सदृशानीह तानि सर्वाणि भृशुर । स्तोत्राणामुत्तमं चेदं भुक्तिभुक्तिप्रदं नृणाम् ॥५८॥
 एवं सुतीक्ष्ण ते प्रोक्तमष्टोत्तरशतं शुभम् । मीतानाम्नां पुण्यदं च भवणान्मंगलप्रदम् ॥५९॥
 नरैः प्रातः समुत्थाय पठितव्यं प्रयत्नतः । सीतापूजनकालेऽपि सर्ववाञ्छितदायकम् ॥६०॥
 अन्यस्सीतातोपदानि व्रतादीनि सहाति च । यानि संत्यज्य ते शिष्य तानि सम्यग्वदाम्यहम् ॥६१॥
 नारीभिस्तु सदा कार्यं सीतायास्तुष्टिहेतवे । वसन्तशीतलागौरीस्नानं तीर्थे तु तत्कृते ॥६२॥
 यत्र सीताकृतं तीर्थं रामतीर्थं न वदते । तथा लक्ष्म्याश्च गौरीयाश्च सरस्वत्यादिषोपिताम् ॥६३॥
 तीर्थेषु च सदा कार्यं तदभावे नदीषु च । यत्र यत्र रामतीर्थं तद्वामे जानकीकृतम् ॥६४॥
 ज्ञेयं तीर्थं सर्वत्र नैकं ज्ञेयं तु राघवम् । वसन्तशीतलागौरीस्नानं भीमाग्न्यवर्द्धनम् ॥६५॥
 कुर्वन्त्यत्र या नार्याः स्नानं ताः सप्तजन्मसु । भवन्ति विधवास्तस्मान्सदा स्नानं समाचरेत् ॥६६॥

सुतीक्ष्ण उवाच

भो गुरो शीतलागौरीस्नानस्योत्थापनं कथम् । स्त्रीभिः कार्यं वदस्वाद्य सविस्तारं शुभावहम् ॥६७॥

भगवतिस्त्वाच

सम्यक् पृष्टं त्वया शिष्य सुतीक्ष्ण शृणु सादरम् । चैत्रमासे मिते स्त्रीभिस्तृतीयायाः सदाऽत्र वै ॥६८॥
 कार्यं तु शीतलागौरीस्नानं त्रिंशद्दिनानि हि । वैशाखस्य सिते पक्षे द्वितीयाष्टमिष्य च ॥६९॥
 स्त्रीभिश्च विधिना कार्यं निशायामधिवासनम् । पूर्ववच्च प्रकर्तव्यं मण्डपदिकमुत्तमम् ॥७०॥
 तत्र रमानाममष्टमष्टोत्तरसहस्रकम् । अथवाऽष्टोत्तरशतं सूक्ष्माण्यन्यानि वा क्रमात् ॥७१॥
 स्थापनीयं मध्यदेशे तन्मध्ये पङ्कजोपरि । धान्यराशी तोयपूर्णः स्थापनीयो घटः शुभः ॥७२॥
 तन्मुखे ताम्रपात्रं च स्थापनीयं तु विस्तृतम् । आच्छाद्य पात्रं कौस्तुभचूर्णेन तन्मनोरमम् ॥७३॥
 तस्मिन्सोतारामयोश्च द्वे मूर्ती रुक्मनिर्मिते । स्थापनीये पूजनीये पोटशैरुपचारकः ॥७४॥
 नवमापात्रमको रामः सीताऽष्टमापनिर्मिता । निजशक्त्याऽथवा कार्ये द्वे मूर्ती रजतस्य वा ॥७५॥

भगवदर नहीं हो सकते । यह स्तोत्र सब स्तोत्रोंमें उत्तम तथा भुक्ति-भुक्तिदायक है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥
 हे सुतीक्ष्ण ! ॥ तरह मैंने तुमसे सीताजीका अष्टोत्तरशतनाम कहा, जो पुण्यदायक और सुननेसे
 मङ्गलदाता है ॥ ५९ ॥ लोगोंको चाहिये कि रोज सबेरे उठकर और सीताजीका पूजन करके अवश्य
 ॥ पाठ करें । ऐसा करनेसे उनकी कामनायें पूर्ण हो जायेंगी । इसके अतिरिक्त और भी बहुतसे ऐसे
 ॥ वादि हैं, जिनसे सीताजी प्रसन्न हो सकती हैं । हे शिष्य ! उन्हें आज मैं तुम्हें बतलाया हूँ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ सीताजी-
 की प्रसन्न करनेके लिए स्त्रियोंको चाहिए कि सीताके द्वारा स्थापित किसी भी तीर्थमें जाकर शीतलागौरीका
 ॥ करें ॥ ६२ ॥ यदि वास-वास कोई सीतातीर्थ न हो तो लक्ष्मी, गौरी तथा सरस्वती आदि किसी भी
 देवीके तीर्थमें उक्त व्रत करें ; यदि वह ॥ न हो तो किसी नदीके तटपर जाकर व्रत करें । जहाँ-जहाँ
 रामतीर्थ है, उसके वामभागमें सीतातीर्थ अवश्य रहता है । कहींपर भी अकेला रामतीर्थ नहीं रहता ।
 वसन्तशीतला गौरी नामक व्रत स्त्रियोंका सीभाग्य बढ़ाता है ॥ ६३-६५ ॥ जो स्त्रियाँ इस व्रतको नहीं करतीं,
 ॥ सात जन्म तक तरु विषवा रहकर जीवन बिताती हैं । इससे स्त्रियोंको सदा शीतलागौरीका स्नान करना
 चाहिए ॥ ६६ ॥ सुतीक्ष्णने कहा-हे गुरो ! इस शीतला गौरीका स्नान करनेके अनन्तर इसका उत्थापन कैसे
 करना चाहिए । तो मुझे आप विस्तारपूर्वक बताइए ॥ ६७ ॥ भगवत्पुत्रोंने कहा-हे शिष्य सुतीक्ष्ण !
 तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है, मुनो । चैत्रशुक्ल तृतीयासे लेकर तीस दिनतक शीतलागौरीका स्नान करे
 और वैशाख शुक्ल द्वितीयाको उपवास करके रात्रिके समय पूर्वोक्त विधिके अनुसार मण्डप आदि बनावे
 ॥ ६८-७० ॥ उसमें अष्टोत्तरसहस्रात्मक रमानामस्तोत्र, अष्टोत्तरशतात्मक या और कम संख्याका
 बनाकर उसके मध्यमें कमलपर धान्यराशि रखकर जलसे भरा घट स्थापित करे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ कलशके
 मुखपर एक बड़ा-सा ताम्रपात्र रखे और उसको रेश्मी वस्त्रसे ढाँक दे ॥ ७३ ॥ उसपर सुवर्णकी बनी हुई सीता

गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यवसनादिकम् । सर्वं पृथगष्टविधं जानक्यै तु निवेदयेत् ॥७६॥
 ततः स्त्रीणां वायनानि वस्त्रालंकारवस्तुभिः । कुङ्कुमादिपूरितानि देयानि विविधानि च ॥७७॥
 देयानि कांस्यपात्राणि पक्वाण्यपूरितानि च । त्रयस्त्रिंशत्तथा वाऽष्टौ स्त्रीभिर्देयानि शक्तितः ॥७८॥
 त्रयस्त्रिंशच्च पुग्मानि भोजयेच्च प्रयत्नतः । अथवाऽष्टौ यथाशक्त्या भोजनीयानि पद्भूसैः ॥७९॥
 राशौ जागरणं कार्यं गीतवाद्यादिभिरलैः । प्रातःकाले तृतीयायां स्नान्वा सम्पूज्य जानकीम् ८०॥
 होमश्चापि प्रकर्तव्यः सीतामन्त्रेण यत्नतः । तिलाज्यैः पाथर्मश्चापि सहस्राण्यष्टभूसुरैः ॥८१॥
 मुद्रादीनं नवाश्वं च ज्ञेयमष्टाश्वमुत्तमम् । तन्मार्गानातोपदे ज्ञेयं तेन वा जुहुयात्सुखम् ॥८२॥
 ततः स्वयं सुहृन्मित्रैर्मोक्तव्यं यथासुखम् । एवमुद्यापनविधिस्तत्राग्रे विनिवेदितः ॥८३॥

श्रीरामदास उवाच

अगस्तिना सुतीक्ष्णाय यदिदं कथितं पुरा । तत्पत्रं च त्वया पृष्टं मया तेऽद्य निवेदितम् ॥८४॥

विष्णुदास उवाच

कथं रमानामभद्रं कार्यं स्त्रीभिः प्रपूजने । तत्सर्वं विस्तरेणऽद्य कथयस्व ममाग्रतः ॥८५॥

श्रीरामदास उवाच

यथा प्रोक्तं मया त्रिंशत् रामतोभद्रमुत्तमम् । कार्यं रमानामभद्रं तथैव सकलं शुभम् ॥८६॥
 किञ्चिद्विशेषस्तत्रास्मिन् ननुभ्यं कथयाम्यहम् । लिङ्गस्थलेषु कर्तव्या वापिकाश्चैव पूर्ववत् ॥८७॥
 मुद्रायापेव किञ्चित्च विशेषोऽस्ति मृणुष्वनन् । नकारश्च मकारश्च पूर्ववद्रचपेदधः ॥८८॥
 ऊर्ध्वं रमेत्यक्षरे ङ रचनीये तु पूर्ववत् । एवं कृत्वा रमानाम् श्वेतवर्णं निरीक्षयेत् ॥८९॥
 एतद्रमानामभद्रं देवानां पूजनादिषु । नानाकर्मसु सर्वेषु कर्तव्यं च प्रयत्नतः ॥९०॥
 विना रमानामभद्राद्यानि देव्याः कृतानि हि । पूजनादीनि कर्माणि तानि ज्ञेयानि मानवैः ॥९१॥

और रामकी दो मूर्ति रखें और पांडुशोपचारसे उनका पूजा करे ॥ ७४ ॥ मूर्तियोंमें नौ मासे सुवर्णसे रामकी और आठ मासे सुवर्णसे सीताकी मूर्ति बनवावे । यदि ऐसा न हो सके तो अपनी शक्तिके अनुसार चांदीकी दो प्रतिमाएँ बनवा ले ॥ ७५ ॥ इसके अनन्तर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य तथा आठ प्रकारके वस्त्र आदि सीताको अर्पण करे ॥ ७६ ॥ इसके बाद वस्त्र-अलंकार आदि वस्तुएँ तथा कुमकुम आदिके साथ विविध प्रकारके वायन दे ॥ ७७ ॥ तदनन्तर तरह-तरहके पक्वान्से भरकर तैलीस, आठ अथवा तीन कांस्यपात्र अर्पण करे ॥ ७८ ॥ इसके बाद तैलीस ग्राह्यणदम्पती, ग्राह्यण अथवा जैसी अपनी सामर्थ्य हो, उसके अनुसार ग्राह्यणदम्पतीको भोजन करावे ॥ ७९ ॥ रात्रिभर गीत-वाद्य आदि मङ्गलमय कार्य करता हुआ जागरण करे । तृतीयाको प्रातःकाल स्नान करके जानकीजीका पूजन करे और तिल, घी तथा खीरसे आठ ग्राह्यणोंके सीतामन्त्रसे होम करे ॥ ८० ॥ ८१ ॥ मृगको छोड़कर अन्य नौ प्रकारके अन्न सीताजीकी बहुत प्रिय हैं । यदि हो सके तो उन्हींसे हवन करे ॥ ८२ ॥ इसके बाद अपने हित-मित्रादिके सुखपूर्वक भोजन करे । इस तरह उद्यापनविधि मैंने तुमसे कही ॥ ८३ ॥ श्रीरामदासने कहा—तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने यह सब बातें कह दीं, जो सुतीक्ष्णकी अगस्त्यजीने बतलायी थीं ॥ ८४ ॥ विष्णुदासने कहा कि अब स्त्रियाँ पूजन करने लगे तो रमानामक भद्रकी रचना किस प्रकार करें । यह आप हमें विस्तारपूर्वक बतलाइए ॥ ८५ ॥ श्रीरामदासने कहा—पहले मैंने जो रामतोभद्र रचनाकी विधि बताया है, ठीक उसी तरह रमानामतोभद्रकी भी रचना होगी ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ इसकी मूर्दामें चौड़ीसी विशेषता है । सो मैं तुमको बताये देता हूँ, सुनो । वाकार और मकार ये दोनों पहलेकी ही तरह निचने भागमें बनावे ॥ ८८ ॥ ऊपर रमा इन दो अक्षरोंकी भी पहले ही की तरह रचना करे । ऐसा लेनेके बाद रमा इस नामको भद्रके श्वेत भागमें उमड़ा ॥ ८९ ॥ देवी आदिकी पूजाके अवसरपर अथवा और-और प्रकारके शुभ कर्मोंमें प्रयत्न करके इस रमानामतोभद्र-

अकृतान्यत्र तस्माद्वि कर्तव्यं यत्नतस्त्विदम् । कृता रमानामभद्रं वा पूजा मानवैर्भूवि ॥९२॥
 सा देव्यै तोषदा ज्ञेया तस्मान्कार्या प्रयत्नतः । पूर्वोक्तानि देवतानि तान्येवात्र विचिन्तयेत् ॥९३॥
 आवाहयेच्च मुद्रायां जानकीं रघुनन्दनम् । अन्यच्छृणुष्व भो शिष्य सीतारामप्रपूजने ॥९४॥
 रमानामतोभद्रं कार्यं वा मानवैर्भूवि । तत्त्वार्थि पूर्ववत्सर्वं कर्तव्यं मानवैर्भूविया ॥९५॥
 इदं सीतारामयोश्च पूजनार्थं प्रकल्पयेत् । रामनाम्ना रमानाम्ना इदं भद्रं महत्तमम् ॥९६॥
 यत्र द्वयोर्नामनी च रमा रामेति चोत्तमे । रमारामतो भद्रं च तस्माच्छ्रेष्ठं प्रकारयेत् ॥९७॥
 रमासनोपमान्वेव दैवान्यत्र विचिन्तयेत् । एवं शिष्य त्वया पृष्टं यद्यत्तन्मपोदितम् ॥९८॥

का तेऽन्वास्ति स्पृहा श्रोतुं वद तं तद्वदाम्यहम् ।

विष्णुदास उवाच

कवचं लक्ष्मणस्यापि पठनीयमिति स्मृतम् ॥९९॥

पुरा गुरो त्वया तच्छ्रमां वदस्व सविस्तरात् । भरतस्यापि कवचं शत्रुघ्नस्य तथा वद ॥१००॥

श्रीरामदास उवाच

एवमेव सुतीक्ष्णेन पृष्टं च कुंभजन्मना । पुरा तद्विस्तरेणाद्य तवाग्रे कथयाम्यहम् ॥१०१॥

सुतीक्ष्ण उवाच

गुरो त्वया पुरा प्रोक्तं कवचं लक्ष्मणस्य च । पठनीयं जर्नथेति तन्मामद्य प्रकाशय ॥१०२॥

भरतस्यापि कवचं शत्रुघ्नस्य तथा वद ।

अगस्त्यवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया वत्स सावधानमनाः शृणु । आदौ सौमित्रिकवचं कथ्यतेऽत्र मया शुभम् ॥१०३॥

इति श्रीसतकोटिरामचरितांगतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकाण्डे

सीतारामकवचादिनिरूपणं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

की रचना ॥ ९० ॥ जिता रमानामतोभद्रके देवीपूजन आदि जितना भी कुरव किया जाता है, वह ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ उससे देवी प्रसन्न होती है। इस कारण यत्नपूर्वक ऐसा करना चाहिए। पूर्वमें जितने देवता कह आये हैं, वे सब इस भद्रमें भी रहेंगे ॥ ९३ ॥ हाँ, यह बात अवश्य है कि ॥ ९४ ॥ भद्रमें राम और सीताका आवाहन करे। हे शिष्य! सीतारामके पूजनके विषयमें और भी कुछ विशेष बातें हैं। उन्हें कहता हूँ, सुनो ॥ ९५ ॥ कोई भी पूजन करते समय रमानाम-तोभद्रकी स्थापना अवश्य करे। उस भद्रमें पूर्वोक्त रीतिके अनुसार ही सब बातें रहेंगी ॥ ९६ ॥ सीता और रामकी पूजाके निमित्त इसकी स्थापना की जाती है और केवल रमानामतोभद्र अथवा केवल रामतोभद्रसे यह भद्र श्रेष्ठ है ॥ ९७ ॥ ॥ भद्रमें रमा और राम इन दोनोंके ॥ आ जाते हैं। इसीलिए यह ॥ सर्वश्रेष्ठ माना गया है ॥ ९८ ॥ रामतोभद्रमें कहे हुए हो ॥ इस भद्रमें रहेंगे। इस तरह हे शिष्य! तुमने हमसे जो पूछा, वह मैंने तुमसे कहा ॥ ९९ ॥ अब क्या सुननेकी इच्छा ॥ साँवताओ, मैं कहूँ। विष्णुदास बोले- आपने कहा था कि लक्ष्मणके ॥ भी ॥ करना चाहिए। सो उसे भी बताइए ॥ १०० ॥ श्रीरामदास- ने कहा कि इसी तरह सुतीक्ष्णने भी अगस्त्यजीसे प्रश्न किया था। सो उन्होंने सुतीक्ष्णने जो कुछ कहा था, कहा मैं तुमसे कह रहा ॥ १०१ ॥ सुतीक्ष्णने कहा-हे गुरो! आपने एक बार हमसे कहा था कि लोगोंकी लक्ष्मणकवचकी भी पाठ ॥ चाहिए। सो कृपा करके आप हमें लक्ष्मणकवच बताइए। उसके साथ-साथ भरत तथा शत्रुघ्नकवच भी बतला दीजिए। अगस्त्यने कहा-हे वत्स! तुमने बहुत उत्तम प्रश्न किया है। सावधान होकर सुनो। पहले मैं लक्ष्मणकवचकी ही वर्णन कर रहा हूँ ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पञ्चदशः सर्गः

(लक्ष्मण-भजन तथा अनुष्णकवच)

सौमित्रिं रघुनायकस्य चरणद्वन्द्वेक्षण उग्रमलं विश्रन्तं स्वकरेण रामशिरसि छत्रं विनिघ्नं दधम् ।
 विघ्नं रघुनायकस्य सुमहत्कोदण्डबाणान्मे न वन्दे कमलेक्षणं जनकजायाकये यदा तत्परम् ॥ १ ॥
 ॐ अस्य श्रीलक्ष्मणकवचमंत्रस्य । अमस्त्यश्वपिः । अनुष्टुप्छंदः । श्रीलक्ष्मणो देवता ।
 शेष इति बीजम् । सुमित्रानंदन इति शक्तिः । रामानुज इति कीलकम् । रामदास इत्यक्षम् ।
 रघुवंशज इति कवचम् । सौमित्रिरिति मंत्रः । श्रीलक्ष्मणप्रान्थर्थं सकलमनोऽभिलषितमिद्वयधे जपे
 विनियोगः । अधांगुलिन्यासः । ॐ लक्ष्मणाय अंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐ शेषाय तर्जनाभ्यां नमः ।
 ॐ सुमित्रानंदनाय मध्यमाभ्यां नमः । ॐ रामानुजाय अनामिकाभ्यां नमः । ॐ रामदासाय
 कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ रघुवंशजाय ऊर्ध्वलकरपृष्ठाभ्यां नमः । एवं हृदयाग्रगन्यासः ।
 ॐ लक्ष्मणाय हृदयाय नमः । ॐ शेषाय शिरसे स्वाहा । ॐ सौमित्राय शिखायै धृष्ट । रामा-
 नुजाय कवचाय हुम् । रामदासाय नेत्रत्रयाय वौषट् । रघुवंशजाय प्रक्षाप कट् ।
 ॐ सौमित्रये इति दिग्बंधः ।

अथ सप्तार्चं लक्ष्मणकवचम्

रामपृष्ठस्थितं रम्यं रत्नकुंडलधारिणम् । नीलोत्पलदलरूपाम् रत्नकंकणमंडितम् ॥ २ ॥
 रामस्य मस्तके दिव्यं विश्रन्तं छत्रमुत्तमम् । वीरं पीताम्बरधरं मुकुटेनानिशोभितम् ॥ ३ ॥
 तूणीरे कार्मुके चपि विश्रन्तं च स्मिताननम् । रत्नमालाधरं दिव्यं पुष्पमालाविराजितम् ॥ ४ ॥
 एवं ध्यात्वा लक्ष्मणं च राघवस्यस्तलोचनम् । कश्च जपतीयं हि ततो भक्त्याऽत्र मानवैः ॥ ५ ॥
 लक्ष्मणः पातु मे पूर्वं दक्षिणे राघवानुजः । प्रतीच्या पातु सौमित्रिः पातुदीर्घ्या रघूत्तमः ॥ ६ ॥
 अथः पातु महावीर्यध्वं पातु नृपात्मजः । मध्ये पातु रामदासः सर्वतः सत्यपालकः ॥ ७ ॥
 स्मिताननः शिरः पातु भाल पातुसिंहाश्रवः । भ्रूशोर्मध्ये धनुर्धारी सुमित्रानंदनोऽधिणी ॥ ८ ॥
 कपोले राममंथ्री च सर्वदा पातु वै मय । हर्षधूले सदा पातु कषधभुजखड्गनः ॥ ९ ॥

अथस्तथजोने कहा—मैं उन लक्ष्मणजीकी बन्दना करता हूँ, जो सदा रघुनाथजीके दोनों चरणकमल
 देखा करते हैं, जो अपने हाथसे रामचन्द्रजीके शिरपर छत्रकी छाया किये रहते हैं । जो कन्धेपर रामचन्द्रजीका
 धनुष धारण किये रहते हैं । जो सर्वदा जानकीजीकी आज्ञाका पालन करनेमें तत्पर रहते हैं और कमलके
 समान जिनको आंखें ॥ १ ॥ "अस्य श्री" से लेकर ॐ सौमित्रये इति दिग्बंधः" यहाँ तक विनियोग और
 अंगन्यासकी विधि बतलायी गयी है । उसके आगे लक्ष्मणजीका ध्यान है—जो रामचन्द्रजीके पाछे बंटे हैं,
 जिनका मनीहर स्वरूप है, गरुडः कुण्डल जिनके कानोंमें झूल रहे हैं, नील कमलके समान जिनके मुखका
 भाषा है और जिनके हाथोंमें रत्नमंडित काण्ड रहे हैं ॥ २ ॥ वीर लक्ष्मण रामके ऊपर दिव्य छत्र लगाये हुए हैं,
 सुन्दर पीताम्बर धारण हैं और मुकुटमें जो अतिभर शोभायमान दीख रहे हैं ॥ ३ ॥ जो तूणीर तथा धनुष धारण
 किये हैं, मुस्कयता हुआ जिनका मुखान्दिश है, रत्नोंकी माला जिनके गलेमें पहनी है, जिनका दिव्य नेत्र है और
 जो पूंछोंकी मालाधोसे और भी सुन्दर दीख रहे हैं ॥ ४ ॥ इस प्रकार रामचन्द्रजीपर दृष्टि लगाये लक्ष्मणजीका
 ध्यान करके लोगोंको जाहिए कि भक्तिपूर्वक लक्ष्मणकवचका पाठ करें ॥ ५ ॥ लक्ष्मणजी मेरे पूर्वभागकी
 करें और दक्षिणभागमें राघवानुज पश्चिम और होमेत्रि तथा उत्तर भागकी रघूत्तम रखा करें ॥ ६ ॥ जिससे
 भागमें रघुवीर, ऊपर नृपात्मज, मध्यमें रामदास और चारों ओर सत्यपालक रखा करें ॥ ७ ॥ शिरकी स्मिता-

नम्राग्रं मे मदा पातु सुमित्रानन्दवर्द्धनः । रामन्यस्नेहणः पातु मदा मेऽत्र मुखं भुवि ॥१०॥
 सीतावाक्यकरः पातु मम वाणीं सदाऽत्र हि । सीम्परूपः पातु जिह्वामनन्तः पातु मे द्विजान् ॥११॥
 चिबुकं पातु रक्षोघ्नः कटु पातु सुगार्दनः । शृङ्गं पातु जिह्वागनिर्भूजा पंक्तिलोचनः ॥१२॥
 कर्णं कंकणधारी च नखान् रक्तनखोज्वतु । कुक्षिं पातु विनिद्रो मे वक्षः पातु जितेन्द्रियः ॥१३॥
 पादौ रामपट्टदस्थः पृष्ठदेशं मनोरमः । नाभिं गर्भारनाभिप्लु कटं च लक्ष्मणसखलः ॥१४॥
 गुह्यं पातु सहस्राक्ष्यः पातु लिङ्गं हरिप्रियः । ऊरु पातु विष्णुतन्त्रः सुमुखोऽस्तु जानुनी ॥१५॥
 नागेंद्रः पातु मे जघं गुल्फौ नूपुरास्त्रमम । पादाधगदगतातोऽव्यातु पादगमनि सुलोचनः ॥१६॥
 चित्रकेतुपिता पातु मम पादाङ्गुलीः सदा । रोमाणि मे सदा पातु रविर्वज्रसमुद्भवः ॥१७॥
 दक्षयथसुतः पातु निशायां मम सादरम् । भृगोलघारी मां पातु दिग्गजे दिक्से सदा ॥१८॥
 सर्वकालेषु मामिद्रजिह्वताऽवतु सर्वदा । एवं सीमित्रिकवचं सुतीक्ष्ण कथितं मया ॥१९॥
 इदं प्रातः समुत्थाय पठेन्न्यत्र मानवः । न धन्या मानवा लोके तेषां च सफलो भवः ॥२०॥
 सीमित्रेः कवचस्यास्य पठनाच्चिश्चयेन हि । पुत्रार्थी लभते पुत्रान् धनार्थी धनमाप्नुवान् ॥२१॥
 पत्नीकामो लभेत्पत्नीं गोधनार्थी तु गोधनम् । धान्यार्थी प्राप्नुयाद्धान्यं राज्यार्थी राज्यमाप्नुवान् ॥२२॥
 पठित रामकवचं सीमित्रिकवचं विना । घृतेन हातो नैष्यन्तेन दत्तो न मलयः ॥२३॥
 केवलं रामकवचं पठित मानवैरेदि । तत्पाठे । सुमत्तुया न भवेद्रघुनदनः ॥२४॥
 अतः प्रयत्नतथेदं सीमित्रिकवचं नरैः । पठनीयं सर्वदेव सर्वदाङ्गिरसाचकप् ॥२५॥

नन, ललाटकी उमिलायव, भीहोके जोचमे घनुर्वागे और आखोकी मुमित्रानन्दन रक्षा करे ॥ १० ॥ कपोलकी
 राममन्त्री सदा रक्षा करत रहे और कानोको जड़न मवन्धको भुजाका रण्डन करनेवाले लक्ष्मणजी रक्षा
 करते रहें ॥ ११ ॥ सुमित्राका आनन्द बहुनेवाले मेरी नाभिका - अग्रभागकी रक्षा करें । रामकी ओर निहारते
 हुए लक्ष्मण सर्वदा मेरे मुखकी रक्षा करें ॥ १२ ॥ सीताका आनाका गालन पानेवाले लक्ष्मणजी सर्वदा मेरी
 वाणीकी रक्षा करें । सीम्परूपधारी जिह्वाका तथा अन्तर्गतधारी लक्ष्मण मेरे शरीरकी रक्षा करें ॥ १३ ॥
 राक्षसोंके वधकारी मेरे चिबुककी रक्षा करें, असुरोंका पराजय करनेवाले वज्रकी रक्षा करें, शत्रुको जीतने-
 वाले मेरे शृङ्गकी रक्षा करें और कमल सरीसृप तत्रो गले लक्ष्मण मेरे भुजाओंकी रक्षा करें ॥ १४ ॥ कंकणकी
 करनेवाले हाथकी रक्षा करें, लाल लाल नखोंका मेरे पादोंकी रक्षा करें, निद्रामें रहित लक्ष्मणजी मेरी
 कोखकी रक्षा करें और जितोद्वय लक्ष्मणजी मेरे वक्षस्थलकी रक्षा करें ॥ १५ ॥ रामधन्वजोंके पीछे बैठनेवाले
 लक्ष्मणजी मेरे पृष्ठभागकी रक्षा करें, गर्भार नाभिवाले लक्ष्मणजी नाभिपी तथा सुप्रणमयां मेखलावाले मेरी
 कमरकी रक्षा करें ॥ १६ ॥ शेषरूपवाले लक्ष्मण मेरी गुह्यकी तथा हरिप्रिय लक्ष्मण मेरे लिङ्गकी रक्षा करें ।
 विष्णुके सदृश रूपवाले लक्ष्मणजी घुटनोंकी तथा सुन्दर कम्पारों मेरे जानुधामकी रक्षा करें ॥ १७ ॥ सर्पोंके
 राजा मेरी जंघाओंकी, नूपुरवारों मेरे गुल्फभागकी, अद्भुतता मेरे पैरोंकी तथा सुन्दर आँखोंवाले लक्ष्मणजी
 मेरे समस्त अङ्गोंकी रक्षा करें ॥ १८ ॥ चित्रकेतुके पिता मेरे पैरोंकी उंगलियों तथा मूर्धवंशमें उत्पन्न होनेवाले
 लक्ष्मण मेरे रोमकी रक्षा करें ॥ १९ ॥ रात्रिक समय दशरथके पुत्र मेरी करें और दिनके समय भूताल-
 कारी लक्ष्मणजी मेरी रक्षा करते रहें ॥ २० ॥ इन्द्रजित् (मेघनाद) की मारनेवाले सर्वदा मेरी रक्षा करते
 रहें । हे सुतीक्ष्ण ! इस तरह मैंने तुम्हें लक्ष्मणकवच कह सुनाया ॥ २१ ॥ जो लोग वेरे उठकर इस कवचका
 पाठ करते हैं, वे मनुष्य धन्य और उनका जन्म सुख ॥ २२ ॥ लक्ष्मणजीके इस कवचका करनेसे
 पुत्रार्थी पुत्र तथा धनार्थी धन पाता है । इसमें कोई संशय नहीं ॥ २३ ॥ पत्नीका कामनावाला प्राणा परकी,
 पोषण चाहनेवाला गोधन, धान्यका इच्छुक धान्य और राज्यकी इच्छा रखनेवाला राज्य पाता है ॥ २४ ॥
 बिना लक्ष्मणकवचका पाठ किये रामकवचका पाठ कर्त्ता तरह व्यर्थ जाता है, जिस तरह धीके बिना तैवेष्ट
 किया जाय ॥ २५ ॥ केवल रामकवचका पाठ करनेसे रामचन्द्रजी विशेष नहीं होते ॥ २६ ॥ इसलिये

अतः परं भरतस्य कवचं ते वदाम्यहम् । सर्वपापहरं पुण्यं सदा श्रीगामभक्तिदम् ॥ २६ ॥
 कैकेयीतनयं सदा रघुवरन्यस्तेश्वरं श्यामलं समद्वीपपतेर्विदेहतनयाकांतस्य वाक्ये रतम् ।
 श्रीसीताधवसव्यपार्श्वे निःकटे स्थित्वा नरं चामरं धृत्वा दक्षिणं नकरेण भरतं नं वीजयत धजे ॥ २७ ॥

ॐ अस्य श्रीभरतकवचमंत्रस्य अगस्त्यऋषिः । श्रीभरतो देवता अनुष्टुप्छन्दः । शंख
 इति बीजम् । कैकेयीनन्दन इति शक्तिः । भरतखण्डेश्वर इति कीलकम् ।
 रामानुज इत्यस्त्रम् । समद्वीपेश्वरदाम इति कवचम् । रामांशज इति मन्त्रः । श्रीभरतप्रीत्यर्थं
 सकलमनोरथसिद्धयर्थं जपे विनियोगः । अथांगुलि-न्यामः । ॐ भरताय अंगुष्ठाभ्यां नमः ।
 ॐ कैकेयीनन्दनाय मध्यमाभ्यां नमः । ॐ भरतखण्डेश्वराय अनामिकाभ्यां नमः । ॐ रामानुजाय
 कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ अम्नाय शिरसे स्पर्शः । ॐ कैकेयीनन्दनाय त्रिष्वप्यै वषट् । ॐ
 भरतखण्डेश्वराय कवचाय हुम् । ॐ रामानुजाय नेत्रत्रयाय धौवट् । ॐ समद्वीपेश्वरदामाय अक्षाय
 फट् । रामांशजाय चेति दिग्बन्धः ।

अथ सध्यान्तं भरतकवचम्

रामचन्द्रमव्यपार्श्वे स्थितं कैकेयजामुदम् । रामाय चामरेणैव वीजयन्तं मनोरमम् ॥ २८ ॥
 रत्नकुण्डलकेयूरकंकणादिविभूषितम् । पीताम्बरपरीधानं वनमालाविराजितम् ॥ २९ ॥
 माण्डवीधौतचरणं रशनात्पुनान्वितम् । नीलोत्पलदलउपामं द्विजराजतमाननम् ॥ ३० ॥
 आजानुबाहुं भरतखण्डस्य प्रतिपालकम् । रामानुज स्मिताखं च शत्रुघ्नपरिविदितम् ॥ ३१ ॥
 रामन्यस्तेश्वरं सीम्यं विद्युत्पुञ्जसमप्रभम् । रामभक्तं महावीरं वन्दे त भरतं शुभम् ॥ ३२ ॥
 एवं ध्यात्वा तु भरतं गमपादेश्च हृदि । कवचं पठनीयं हि भरतस्येदमुत्तमम् ॥ ३३ ॥
 ॐ पूर्वतो भरतः पातु दक्षिणे कैकेयीसुतः । नृपात्मजः प्रतोऽन्यां हि पातूरीक्यां रघूत्तमः ॥ ३४ ॥
 अधः पातु श्यामलांगश्रोर्ध्वं दशरथात्मजः । मध्ये भारतवर्षेशः सर्वतः सूर्यवंशजः ॥ ३५ ॥

लोगोंको चाहिए कि प्रयत्न करके सब प्रकारकी कामना पूर्ण करनेवाले इस लक्ष्मणकवचका पाठ अवश्य
 करें ॥ २५ ॥ हे मुर्त देव ! अब मैं तुम्हें श्रीभरतजीका कवच बताऊँगा, जो पापोंको हरनेवाला, पवित्र एवं
 श्रीरामचन्द्रकी भक्ति देनेवाला है ॥ २६ ॥ मैं उन भरतजीकी बन्दना करता हूँ, जो श्रीरामचन्द्रजीकी ओर
 निहार रहे हैं । जिनका श्याम स्वरूप है । जो सातों द्वीपोंके अधिपति रामचन्द्रजीकी आज्ञामें तत्पर रहते हैं ।
 जो रामकी दाहिनी ओर बैठकर दाहिने हाथसे सुन्दर चमर हाँक रहे हैं । उन भरतजीका मैं ध्यान करता
 हूँ ॥ २७ ॥ "अस्य श्री" से लेकर "रामांशजाय चेति दिग्बन्धः" तक अंगन्यास आदिकी विधि बतलायी गयी है ।
 इसके बाद ध्यान है—श्रीरामचन्द्रजीकी दाहिनी ओर बैठकर रामवर चमर चलाते हुए, सुन्दर रत्नजटित कुण्डल,
 केयूर तथा कंकण आदिसे विभूषित, पीताम्बर धारण किये, वनमालासे बलंकृत, जिनके चरण माण्डवी
 घोती हैं, रशना और नूपुरसे विराजित, नील कमलके समान श्यामस्वरूप एवं चन्द्रमाके समान मुखवाले
 ॥ २८-३० ॥ जानुपर्यन्त भुजाओंवाले, भरतखण्डके प्रतिपालक, रामके छोटे भ्राता, शत्रुघ्नसे परिविदित,
 मुस्कुराहटयुक्त मुखवाले, रामकी ओर दृष्टि लगाये हुए, सौभाग्यस्वरूप, विद्युत्पुञ्जके समान प्रभाशाली,
 रामभक्त एवं महापराक्रमी भरतजीका ध्यान करके योही देरतक रामचन्द्रजीके चरणोंका स्मरण करें ।
 उसके बाद इस भरतकवचका पाठ करें ॥ ३१-३३ ॥ पूर्वकी ओर भरत मेरी रक्षा करें, दक्षिणकी तरफ
 कैकेयीसुत और पश्चिमकी ओर नृपात्मज मेरी रक्षा करें । उत्तरकी ओर रघूत्तम मेरी रक्षा करें ॥ ३४ ॥
 नीचे श्यामल अङ्गोंवाले, ऊपर दशरथात्मज, मध्यमें भारतवर्षके प्रभु, चारों ओर सूर्यवंशमें उत्पन्न होनेवाले

शिरस्तक्षपिता पातु भालं पातु हरिप्रियः । अङ्गोर्मण्यं जनकजादाक्यैकतत्परोऽवतु ॥३६॥
 पातु जनकजामाता मम नेत्रे सदाऽत्र हि । कपोले मांडवीकांतः कर्णमूले स्मिताननः ॥३७॥
 नासाग्र मे सदा पातु कैकेयीतीक्ष्णदर्शनः । उग्रगंघा मुखे पातु पातु वाणीं जटाधरः ॥३८॥
 पातु पुष्करतातो मे जिह्वा दंतान् प्रभामयः । चिबुकं वल्कलधरः कंठे पातु वराननः ॥३९॥
 स्कन्धौ पातु जिनारातिभृजो शत्रुघ्नवन्दितः । कर्ग कवचधारी च नखान् नङ्गधरोऽवतु ॥४०॥
 कुक्षौ रामानुजः पातुः वक्षः श्रीरामवल्लभः । पार्श्वे नाभ्यपार्श्वस्थः पातु पृष्ठं सुभाषणः ॥४१॥
 जठरं च धनुर्धारी नामि शरकोऽवतु । कटिं पद्मेश्वरः पातु गुह्यं रमैकमानसः ॥४२॥
 राममित्रः पातु लिङ्गमूरु श्रीरामसेवकः । नन्दिग्रामस्थितः पातु जानुनी मम सर्वदा ॥४३॥
 श्रीरामपादकाधारी पातु जघे सदा मम । गुल्फौ श्रीरामबन्धुषु पार्श्वे पातु मुराशितः ॥४४॥
 रामाञ्ज्वालकः पातु ममाङ्गान्यत्र सर्वदा । मम पादाङ्गुलीः पातु रघुवंशविभूषणः ॥४५॥
 रोमाणि पातु मे रम्यः पातु पार्श्वौ सुधीर्मम । तूणीरधारी दिवसे दिक्पातु मम सर्वदा ॥४६॥
 सर्वकालेषु मां पातु पांचजन्यः सदा भुवि । एवं श्रीभरतस्येदं सुतीक्ष्ण कवचं शुभम् ॥४७॥
 मया प्रोक्तं तथाग्रे हि महामङ्गलकारकम् । स्तोत्राणामुत्तमं स्तोत्रमिदं ज्ञेयं संपुष्पदम् ॥४८॥
 पठनीयं सदा भक्त्या रामचन्द्रस्य हर्षदम् । पठित्वा भरतस्येदं कवचं रघुनन्दनः ॥४९॥
 यथा याति परं तोषं तथा स्वकवचेन न । तस्मादेतन्मदा जप्यं कवचानामनुत्तमम् ॥५०॥
 अस्यात्र पठनान्पर्यः सर्वान्कामानवाप्नुयात् । विद्याकामो लभेद्विद्यां पुत्रकामो लभेत्सुतम् ॥५१॥
 पत्नीकामो लभेत्पत्नीं धनार्थो धनमाप्नुयात् । यद्यन्मनोभिज्जलपितं तत्तत्कवचापाठतः ॥५२॥

भरत मेरी रक्षा करें ॥ ३५ ॥ तक्षक के पिता मेरे मस्तकका रक्षा करें, हरिप्रिय मेरे ललाटको रक्षा करें, जानकीकी आज्ञामें तत्पर रहनेवाले भरतजी भीड़के मध्यभागकी रक्षा करें ॥ ३६ ॥ सीताको माताके समान मानने वाले भरतजी मेरी आँखोंकी रक्षा करें । माण्डवीके प्रियतम मेरे कपोलोंकी रक्षा करें । मुसकाते मुख-मण्डलवाले भरतजी मेरे कर्णमूलकी रक्षा करें ॥ ३७ ॥ कैकेयीके आनन्दको बढ़ानेवाले मेरे नासाग्रकी, उग्र अङ्गवाले मुखकी और जटाधारी भरत मेरी वाणीका रक्षा करें ॥ ३८ ॥ पुष्करके पिता जिह्वाकी, प्रभामय दाँतोंकी, वल्कलधारी चिबुककी और सुन्दर मुखवाले भात मेरे कण्ठक रक्षा करें ॥ ३९ ॥ शत्रुकी जीतनेवाले मेरे स्कन्धोंकी, शत्रुघ्नवन्दित भुजाओंकी, कवचधारी हाथोंकी और लङ्काधारी नखोंकी रक्षा करें ॥ ४० ॥ रामके छोटे भ्राता उदरकी, श्रीरामवल्लभ वक्षस्वलीकी, रामके नाभ बैठनेवाले भरतजी रसलिंगोंकी और सुन्दर भाषण करनेवाले पृष्ठभागकी रक्षा करें ॥ ४१ ॥ धनुर्धारी जठरकी, शरकर नाभिकी, कमलके समान नेत्रोंवाले कमरकी और एकमात्र रामनामका स्मरण करनेवाले मेरे गुह्यभागकी रक्षा करें ॥ ४२ ॥ रामके मित्र लिङ्गकी रक्षा करें, श्रीरामके सेवक ऊरुभागकी और नन्दिग्राममें रहनेवाले भरत सर्वदा मेरे जानुभागकी रक्षा करें ॥ ४३ ॥ श्रीरामकी पादुकाकी धारणकरनेवाले मेरी अङ्गुलीकी, श्रीरामबन्धु दोनों गुल्फभागकी तथा मुराशित भरतजी मेरे पैरोंकी रक्षा करें ॥ ४४ ॥ रामकी आज्ञा पालन करनेवाले सर्वदा मेरे सत्र नङ्गोंकी और रघुवंशके उत्तम भूषण मेरे पैरकी उँगलियोंकी रक्षा करें ॥ ४५ ॥ रम्य वपुधारी भरतजी मेरे मित्र श्रोणोंकी, रात्रिके समय सुन्दर बुद्धिवाले और तूणीरधारी भरत दिनके समय दिशाओंकी रक्षा करें ॥ ४६ ॥ पांचजन्य सब समय मेरी रक्षा करते रहें । सुतीक्ष्ण ! इस प्रकार मैंने तुम्हें श्रीभरतजीका कवच कह सुनाया । यह बड़ा मङ्गलकारी, सब स्त्रीश्रीमें उत्तम और मली भीति पुष्पदाता है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ लोगोंकी चाहिए कि श्रीरामचन्द्रजीको आनन्द देनेवाले इस भरत-कवचका पाठ करके ही रामकवचका किया करें । हम कवचके पाठसे रामचन्द्र जितने प्रसन्न होते हैं, उतने अपने कवच अर्थात् रामकवचका पाठ सुनकर नहीं प्रसन्न होते । इस कारण लोगोंकी चाहिये कि सब कवचमें श्रेष्ठ इस कवचका पाठ अवश्य करें ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इस कवचका पाठ करनेसे प्राणी सब कामनाओंकी प्राप्ति कर सक्ता है । विद्याकी कामनावाला विद्या, पुत्रकी इच्छा रखनेवाला पुत्र, पत्नी चाहनेवाला पत्नी और

लभ्यते मानवैश्च सत्त्वं सत्त्वं वदाम्यहम् । तस्मात्सदा जपनीयं रामोपासकमानवैः ॥५३॥

अथ शत्रुघ्नकवचम्

अथ शत्रुघ्नकवचं सुतीक्ष्ण शृणु सादरम् । सर्वकामप्रदं रम्यं राममङ्गलवर्द्धनम् ॥५४॥

शत्रुघ्नं धृतकामुकं धनमहानूणीरमाणोत्तमं पार्श्वे श्रीरघुनन्दनस्य विनयाद्वामे स्थितं सुन्दरम् ।

रामं स्वीयकरेण तालदलजं घृत्वाऽनिविष्टं वरं मूर्ध्नि व्यजनं सभास्थितमहं तं वीजयंतं भजे ॥५५॥

ॐ अस्य श्रीशत्रुघ्नकवचमंत्रस्य अगस्तिऋषिः । श्रीशत्रुघ्नो देवता । अनुष्टुप्छन्दः । सुदर्शन इति बीजम् । कैकेयीनन्दन इति शक्तिः । श्रीभरतानुज इति कीलकम् । भरतमन्त्रीत्यस्त्रम् । श्रीरामदास इति कवचम् । लक्ष्मणांशज इति मंत्रः । श्रीशत्रुघ्नप्रीत्यर्थं सकलमनःकामनासिद्धयर्थं जपे विनियोगः । अर्धांगुलिन्पासः । ॐ शत्रुघ्नाय अंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐ सुदर्शनाय तर्जनीभ्यां नमः । ॐ कैकेयीनन्दनाय मध्यमाभ्यां नमः । ॐ भरतानुजाय अनामिकाभ्यां नमः । ॐ भरतमन्त्रिणे कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ श्रीरामदासाय कर्णलक्ष्मणपृष्ठाभ्यां नमः । एवं हृदयादिन्यासः । लक्ष्मणांशजेति दिग्बन्धः ।

अथ ध्यानम्

रामस्य संस्थितं वामे पार्श्वे विनयपूर्वकम् । कैकेयीनन्दनं मौम्यं मुकुटेनातिरञ्जितम् ॥५६॥

रत्नकंकणकेयूरवनमालाविराजितम् । रत्ननाकुण्डलधरं रत्नहारसन्तुष्टम् ॥५७॥

व्यजनेन बीजयंतं जानकीकान्तमादरात् । रामन्धस्तेक्षणं वीरं कैकेयीतोषवर्द्धनम् ॥५८॥

द्विभुजं कञ्जनयनं दिव्यपीतांबरान्वितम् । सुभुजं सुन्दरं मेघश्यामलं सुन्दराननम् ॥५९॥

रामवाक्ये दसकणं रक्षोघ्नं सङ्गधारिणम् । धनुर्वीणधरं श्रेष्ठं धृततूणीरमुत्तमम् ॥६०॥

सभायां संस्थितं रम्यं कस्तूरीनिलकांकिनम् । मुकुटस्थावतसेन शोभितं च स्मिताननम् ॥६१॥

रविषंशोद्भवं दिव्यरूपं दशरथात्मजम् । मधुरावासिनं देवं लवणासुरमर्दनम् ॥६२॥

एवं ध्यात्वा तु शत्रुघ्नं रावपादेशनं हृदि । पठनीयं वरं चेदं कवचं तस्य पावनम् ॥६३॥

पूर्वे त्ववतु शत्रुघ्नः पातु माम्ये मुदर्शनः । कैकेयीनन्दनः पातु प्रतीच्यां सर्वदा मम ॥६४॥

धनार्थी धन प्राप्त करता है । इस तरह उसे जिस किसी वस्तुकी इच्छा होती है, वे सब इस कवचके पाठसे प्राप्त हो जाती हैं ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ यह बात मैं बिल्कुल सच कह रहा हूँ—मूठ कुछ भी नहीं । रामकी उपासना करनेवालोंको चाहिए कि सदा इस कवचका पाठ किया करें ॥ ५३ ॥ सुतीक्ष्ण । मैं तुम्हें शत्रुघ्नकवच बताऊँगा । तुम आदरपूर्वक सुनो । यह शत्रुघ्नकवच भी कामनायें पूर्ण करने और रामकी सद्भक्ति बढ़ानेवाला है ॥ ५४ ॥ शत्रुघ्न धारण करनेवाले, बड़ा-सा तरकस धारण किये, श्रीरामचन्द्रजीके पास वामभागमें लड़ें, अपने हाथसे साइका पंखा झलते हुए, सूर्यके समान अद्वितीय विचित्र उस पंखेकी दीप्ति है, ऐसे शत्रुघ्नजीको प्रणाम करता हूँ ॥ ५५ ॥ “अस्य आ” से लेकर “लक्ष्मणांशजेति दिग्बन्धः” तक ब्रह्म-न्यास आदिकी विधि बतलायी गयी है । इसके आगे ध्यान है—रामके पास वामभागमें विनयपूर्वक सड़े कैकेयीके आनन्ददाता, सौम्यस्वरूप, मुकुटसे अतिरञ्जित, रत्नजडित कंकण, केयूर तथा वनमालासे अलङ्कृत, सिकहीं ओर कुण्डल धारण किये, रत्नहार तथा सुन्दर सूपुर पहने, आदरपूर्वक रामचन्द्रजीकी पंखा झलते और रामकी ओर निहारते हुए, कैकेयीका आनन्द बढ़ानेवाले वीर, जिनके दो भुजायें हैं, कमल जैसे नेत्र हैं, दिव्य पीताम्बर पहने, सुन्दर भुजावाले, मेघके सदृश रमामल तथा सुन्दर मुखवाले, रामकी बातोंमें कान लगाये, राजसोंको मारनेवाले, सङ्ग धारण किये, धनुष और बाणसे सुवज्रित, बड़ा सा तूणोर धारण किये, सभामें स्थित, रम्य, कस्तूरीका तिलक लगाये, मुकुट और कुण्डलसे सुशोभित, मुस्कराते मुखवाले, सूर्यवैशमें प्रायमान, दिव्यरूपकारी, दशरथके पुत्र, मधुरानिवासी लवणासुरका भर्दन करनेवाले और श्रीरामके चरणोंमें

पातुद्दीप्या रामबन्धुः पात्वधो भरतानुजः । रविवंशोद्भवश्चोर्ध्वं मध्ये दशरथात्मजः ॥६५॥
 सर्वतः पातु मामत्र कैकेयीतोषवर्द्धनः । श्यामलांगः शिरः पातु भालं श्रीलक्ष्मणांशजः ॥६६॥
 भ्रुवोर्मध्ये सदा पातु मुमुक्षोऽप्रावृत्तनीले । धृतकीर्तिपतिर्नेत्रे कपोले पातु राघवः ॥६७॥
 कर्णौ कुंडलकर्णोऽध्याभामाग्रं नृपवंशजः । मुखं मम युवा पातु शर्णी पातु स्फुटाक्षरः ॥६८॥
 जिह्वा सुबाहुशतोऽव्याधूषकेतुपिता द्विजान् । चिबुकं रम्यचिबुकः कंठं पातु सुमाधवः ॥६९॥
 स्कन्धौ पातु महातेजा भुजौ राघववाक्यकृद् । कर्गं मे कंकणधरः पातु सङ्गा नखान्मम ॥७०॥
 कुक्षिं रामप्रियः पातु पातु वक्षो रघूत्तमः । पार्श्वे सुरार्चितः पातु पातु पृष्ठं वरानमः ॥७१॥
 जठरं रक्षोघ्नः पातु नाभिं सुलोचनः । कटिं भरतमर्त्रा मे गुह्य श्रीरामसेवकः ॥७२॥
 रामार्पितमनाः पातु लिङ्गमूरु स्मिताननः । कोदण्डपाणिः शाल्वश्च जानुनी मम सर्वदा ॥७३॥
 राममित्रः पातु जघे गुल्फौ पातु घनपूरः । पार्श्वे नृपतिपूज्योऽव्याच्छ्रीमान्पादाङ्गुलीर्मम ॥७४॥
 पात्वंगानि समस्तानि ह्युदात्तगः सदा मम । रोमाणि रमणीयोऽव्याद्रात्री पातु सुधार्मिकः ॥७५॥
 दिवसे सत्यसंधोऽव्याद्रोजने शरमन्करः । गमनं कलकंटोऽव्यात्सर्वदा लवणांतकः ॥७६॥
 एवं शत्रुघ्नकवचं मया ते समुदीक्षितम् । ये पठन्ति नरास्त्वेतत्त नराः सौम्यमागिनः ॥७७॥
 शत्रुघ्नस्य वरं वेदं कवचं मंगलप्रदम् । पठनीयं नरेभ्यस्तथा पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनम् ॥७८॥
 अस्य स्तोत्रस्य पाठेन यं यं कामं नरोऽर्थयेत् । तं तं लभेन्निश्चयेन सत्यमेतद्वचो मम ॥७९॥
 पुत्रार्थी प्राप्नुयात्पुत्रं धनार्थी धनमाप्नुयात् । इच्छाकामं तु कामार्थी प्राप्नुयात्पठनादिना ॥८०॥
 कवचस्यास्य भूम्यां हि शत्रुघ्नस्य विनिश्चयात् । तस्मादेतत्सदा भक्त्या पठनीयं नरैः शुभम् ॥८१॥

नेत्र लगाये हुए शत्रुघ्नजीका ध्यान करके इस उत्तम शत्रुघ्नकवचका करना चाहिए ॥५६-६३॥ पूर्वकी ओर शत्रुघ्न, दक्षिण तरफ सुदर्शन और पश्चिम ओर कैकेयीनन्दन हमारी रक्षा करें ॥ ६४ ॥ उत्तरमें रामबन्धु, नीचे भरतके छोटे भ्राता, ऊपर सूर्यवंशज और मध्यमें दशरथात्मज मेरी रक्षा करें ॥ ६५ ॥ कैकेयीको आनन्द देने-वाले मेरी चारों ओर रक्षा करें । श्यामल अङ्गुवाले शत्रुघ्न मस्तककी और लक्ष्मणके अंगज मेरे ललाटकी रक्षा करें ॥ ६६ ॥ सुन्दर मुखवाले सदा मेरे भौशिके मध्यभागकी, धृतकीर्तिके पति नेत्रोंका तथा राघव दोनों कपोलोंकी रक्षा करें ॥ ६७ ॥ कानोंमें कुंडल धारण करनेवाले मेरे कानोंकी, नृपवंशज नासिकाके अग्रभागकी युवारूपधारी शत्रुघ्न मेरे मुखकी एवं स्फुट अक्षर बोलनेवाले मेरी वाणोंकी रक्षा करें ॥ ६८ ॥ सुबाहुके पिता कर्णोंकी, यूपकेतुके पिता दाँतोंकी, सुन्दर चिबुकवाले मेरे चिबुककी और सुन्दर करनेवाले मेरे कण्ठकी रक्षा करें ॥ ६९ ॥ महातेजस्वी कर्णोंकी, रामकी अङ्गा पालन करनेवाले भुजकी, कंकणधारी मेरे हाथोंकी और लङ्काकी धारण करनेवाले शत्रुघ्न तलकी करें ॥ ७० ॥ रामके प्रिय मेरे उदरकी, रघूत्तम वक्षस्थलकी, सुरार्चित पार्श्वभागकी और वरानन पृष्ठभागकी रक्षा करें ॥ ७१ ॥ रक्षोघ्न जठरकी, सुलोचन नाभिकी, भरतके मंत्री कटिभागकी और धीररामसेवक गुह्यप्रदेशकी रक्षा करें ॥ ७२ ॥ जिन्होंने अपना मन रामकी अर्पित कर दिया वे शत्रुघ्न लिङ्गकी, मुसकाते मुखवाले ऊरुभागकी और हाथोंमें धनुष धारण करनेवाले सर्वदा मेरी जानुओंकी रक्षा करें ॥ ७३ ॥ राममित्र जाँघोंकी, सुन्दर नूपुर पहननेवाले गुल्फकी, नृपतिपूज्य पैरोंकी और श्रीमान् मेरी उँगलियोंकी रक्षा करें ॥ ७४ ॥ उदार अङ्गुवाले शत्रुघ्न सदा मेरे समस्त अङ्गोंकी रक्षा करें । रमणीय आकृतिवाले मेरे लोमोंकी, रात्रिके समय सुधार्मिक, दिवसके समय सत्यसंध, भोजनके समय सुन्दर बाण धारण करनेवाले, गमनके समय सुन्दर वाणों बोलनेवाले और सब समय लवणासुरको मारनेवाले शत्रुघ्न मेरी रक्षा करें ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ तरह मेने तुम्हें शत्रुघ्नकवच कइ सुनाया । जो लोग भक्तिपूर्वक इसका पाठ करते हैं, वे सुखयोगी होते हैं ॥ ७७ ॥ यह कवच वडा सुन्दर, मंगलप्रद तथा पुत्र-पौत्र बढ़ानेवाला है ॥ ७८ ॥ इन स्तोत्रका पाठ करनेवाला प्राणी जो-जो वस्तुयें चाहता है, उन्हें अवश्य पाता है । मेरी बात सच मानो । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ७९ ॥ पुत्र चाहनेवाला पुत्र, धन चाहनेवाला धन तथा जो प्राणी जो

आदौ नरैर्मरुतेष्व पठित्वा कवचं शुभम् । ततः शत्रुघ्नकवचं पठनीयमिदं शुभम् ॥८२॥
 पठनीयं भरतस्य कवचं परमं ततः । ततः सीमित्रिकवचं पठनीयं सदा नरैः ॥८३॥
 पठनीयं ततः सीताकवचं भाग्यवर्द्धनम् । ततः श्रीरामचन्द्रस्य कवचं सर्वथोत्तमम् ॥८४॥
 पठनीयं नरैर्भक्त्या सर्ववाञ्छितदायकम् । एवं पटू कवचाभ्यत्र पठनीयानि सर्वदा ॥८५॥
 पठनं पटुकवचानां भृष्टं मोक्षकसाधनम् । शत्रुघ्नोऽत्र मानवैर्भक्त्या कार्त्तयः पठनं सदा ॥८६॥
 अक्षकेनात्र चत्वारि पठनीयानि सादरम् । इन्द्रपुत्रश्च सौमित्रेः सीताया राघवस्य च ॥८७॥
 इमानि पठनीयानि चत्वारि कवचानि हि । चतुर्णां कवचानां पठने मानवस्य च ॥८८॥
 न यद्यथावकाशश्चेत्तदा त्रीणि पठेन्नरः । मारुतेष्वथ सीतायास्तथा श्रीराघवस्य च ॥८९॥
 त्रयाणां कवचानां च पाठावसरो यदा । पठनार्थं मानवस्य तदा द्वे कवचे स्मृते ॥९०॥
 मारुतेष्वथ रामस्य सीताया राघवस्य वा । नैकमेव पठेन्वात्र श्रीरामकवचं शुभम् ॥९१॥
 अवकाशे कवचानां पटकमेव सदा नरैः । पठनीयं क्रमेणैव कर्तव्यं नालसा कदा ॥९२॥
 यदाऽवकाशो नास्त्येव तदा तेषां सुस्मरणम् । मया विशेषः प्रोक्तोऽयं न सर्वेषां मथेरितः ॥९३॥

इति शत्रुघ्नकवचम् ।

श्रीरामदास उवाच

एवं शिष्य त्वया यद्यत्पुष्टं नत्तन्मयोदितम् । अन्यत्किञ्चित्प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्वाम् सादरम् ॥९४॥
 मोर्तः प्रवर्धः श्रीरामः सदा मेघोऽत्र मानवः । वीणावाद्यादिभिर्भक्त्या नृत्यान्पि समाचरेत् ॥९५॥
 दशरथनन्दनेति पूर्वमुक्त्वा ततः परम् । मेघश्यामेति वै चोक्त्या तथा रविकुलेति च ॥९६॥
 मन्दनराजाशमेति द्वाविंशत्क्षरजपस्त्वयम् । मनुः सदा जपनीयो वीणावाद्येन सुस्वरम् ॥९७॥

दशरथनन्दन मेघश्याम रविकुलमण्डन राजाराम इति मनुः ।

कीर्तनेऽस्य मनोर्नैव कार्थो न्यासी जपे स्मृतः । एवं सर्वेषु मंत्रेषु नोद्बध्यं मानवैर्भुवि ॥९८॥

जो चाहता है, सो उसे मिलता है ॥ ८० ॥ इस भूमण्डलमें शत्रुघ्नकवच बड़ा उत्तम है । अतएव मनुष्यको अवश्य इसका पाठ करना चाहिए ॥ ८१ ॥ लोगोंको चाहिए कि पहले हनुमत्कवचका पाठ करके इस शत्रुघ्न-कवचका पाठ करें ॥ ८२ ॥ इसके बाद भरतकवच और भरतकवचके बाद सीमित्रकवचका पाठ करें ॥ ८३ ॥ इसके बाद भाग्यको बढ़ानेवाले सीताकवचका पाठ करके श्रीरामकवचका पाठ करें ॥ ८४ ॥ इस तरह वाञ्छित फल देनेवाले कवचोंका प्रतिदिन करते रहें ॥ ८५ ॥ इन छहों कवचोंका पाठ श्रेष्ठ और मोक्षका साधन है । ऐसा समझकर लोगोंको सर्वदा इनका पाठ करते रहना चाहिए ॥ ८६ ॥ यदि ऐसा न कर सके तो हनुमान्जी, लक्ष्मण, सीता तथा रामके कवचका पाठ करें । यदि इन चारोंके पाठ करनेका समय किसी प्राणीको न मिले तो हनुमान्जी, सीता तथा रामके कवचका ही करें ॥ ८७-८८ ॥ यदि तीन कवचके पाठ करनेका भी अवसर न मिल सके तो हनुमान तथा राम इन दोनों कवचोंका ही पाठ करें । किन्तु इतना अवश्य ध्यान रखते कि ऊपर बतलाये कवचोंमेंसे किसी एकका अवसर रामकवचका ही पाठ करके न रह जाय ॥ ९० ॥ ९१ ॥ जब समय मिले, तब छहों कवचोंका क्रमशः पाठ करें । आलस्यवश टाक दे ॥ ९२ ॥ यदि किसी विषय अङ्गनके कारण कुछ भी समय न मिल सके, तबोंके लिए परिहार बतलाया गया है । यह सब समय और सबके लिए लागू नहीं है ॥ ९३ ॥ रामदासने कहा-हे शिष्य ! तुमने हमसे जो पूछा, वह सुनया । अब और कुछ बातें बतला रहा हूँ, उन्हें आदरपूर्वक सुनो ॥ ९४ ॥ लोगोंको यह भी चाहिए कि सदा मोक्ष-कविता आदिसे रामचन्द्रजीका गुण गाया करें और वीणा आदि वाद्योंके साथ भक्तिपूर्वक नाचें ॥ ९५ ॥ पहले "दशरथनन्दन" ऐसा कहकर "मेघश्याम" फिर "रविकुलमण्डन" ऐसा कहकर "राजाराम" कहते हुए "दशरथनन्दन मेघश्याम रविकुलमण्डन राजाराम" इस मन्त्रका कीर्तन और जप किया करें ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ इस

रामजयेति चोक्त्वा तु त्रिवारं चात्र सुस्वरम् । रामेति द्वेऽक्षरे त्वन्ते सोक्त्वा वीणास्वरेण च ॥९९॥

चतुर्दशाक्षरध्यायं कीर्तनार्थं मयेरितः ॥१००॥

राम जय राम राम राम इति मनुः ।

मंत्रशास्त्रेषु ये मंत्रास्ते जपार्थं प्रकीर्तिताः । इमे मंत्राः कीर्तनार्थं तातव्या मानवोत्तमैः ॥१०१॥

एतेषामपि चेद्भक्त्या मंत्राणां च जपः कृतः । तदा मस्मीमविष्यन्ति तेषां पापानि वै क्षणात् ॥१०२॥

अन्यान् मंत्रान् प्रवक्ष्यामि तान् शृणुष्व द्विजोत्तम । राजीवलोचनेन्युक्त्वा मेघश्यामेति वै ततः ॥१०३॥

तथा सीतारंजनेति राजारामेति वै ततः । एकोनविंशद्वर्णश्च राममंत्रस्त्वयं स्मृतः ॥१०४॥

राजीवलोचन मेघश्याम सीतारंजन राजाराम इति मंत्रः ।

अयं मंत्रः सुस्वरेण कीर्तनायो मुद्गुर्मुद्गुः । वीणास्वरेण संयुक्तधातने गमनेऽपि च ॥१०५॥

श्रीशब्दपूर्वं जपशब्दमध्यं जयद्वयेनापि पुनः प्रयुक्तम् ।

त्रिःसप्तकृत्वा रघुनाथनाम जपं निहन्त्याद्द्विजकोटिहत्याः ॥१०६॥

त्रयोदशाक्षरध्यायं राममंत्रः शुभावहः । जपनीयः कीर्तनीयः सर्वदाऽयं मुद्गुर्मुद्गुः ॥१०७॥

श्रीराम जय राम जय जय राम इति मनुः ।

अयं मंत्रः सुस्वरेण तथा वीणास्वरादिना । कीर्तनीयो मुदा मन्यैर्मंत्रशास्त्रेऽप्ययं स्मृतः ॥१०८॥

तस्मात्सदा जपनीयः सर्वसिद्धिप्रदायकः । अष्टादशाक्षरं मंत्रं त्वन्यं शृणु शुभावहम् ॥१०९॥

उक्त्वा सीतारंजनेति मेघश्यामेति वै ततः । कौसल्यासुतेन्युक्त्वाथ राजारामेति वै ततः ॥११०॥

सीतारंजन मेघश्याम कौसल्यासुत राजाराम इति मनुः ।

अष्टादशाक्षरध्यायं कीर्तनीयो महामनुः । वीणास्वरममेतश्च कलकंठेन सुस्वरः ॥१११॥

रविवरकुलजातं बन्धे चेति प्रकीर्त्यं च । सुरभूसुरेत्पुक्त्वाऽग्रे गीत चेति ततः परम् ॥११२॥

मन्त्रका जप करते समय ध्यास आदि करनेकी कोई भी शक्ति नहीं है। इसी तरह आगे बतलाये जानेवाले मन्त्रोंके भी विषयमें जानना चाहिए ॥ ९९ ॥ "रामजय" ऐसा तीन बार कहकर वीणाके स्वरसे "राम" इस दो अक्षरका उच्चारण करना चाहिए। यह चतुर्दशाक्षरमन्त्र मन्त्र मन्त्रोंकी कीर्तन करनेके लिए बतलाया है। "राम जय राम जय राम राम जय राम" यह मन्त्र है। मन्त्रशास्त्रमें जितने मन्त्र बतलाये गये हैं, वे सब जप करनेके लिए हैं। किन्तु ये मन्त्र कीर्तन करनेके लिए भी लिखे गये हैं ॥ ९९-१०१ ॥ यदि भक्तिपूर्वक इनका भी किया जाय तो क्षणभरमें जप करनेवालेके सारे कल जायेंगे ॥ १०२ ॥ हे द्विजोत्तम! तुम्हें मैं और भी बहुतसे मन्त्र बतलाऊँगा। 'राजीवलोचन' ऐसा कहकर 'मेघश्याम' तथा 'सीतारंजन' और 'राजाराम' ऐसा कहें। यह उन्नीस अक्षरोंका मन्त्र है ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ 'राजीवलोचन मेघश्याम सीतारंजन राजाराम' यह मन्त्र है। अच्छी तरह भीड़े स्वरसे बारम्बार इस मन्त्रका कीर्तन करता रहे। चलते-फिरते उठते बैठते सदा इस मन्त्रका कीर्तन करे ॥ १०५ ॥ आदिमें 'श्री' उसके बाद 'जय' फिर दो जयके बीचमें 'राम' इक्कीस बार नाम जपनेवाला मनुष्य करोड़ों महाहत्याके पातक नष्ट कर देता है ॥ १०६ ॥ त्रयोदशाक्षर राममंत्र बड़ा कल्याणदायक है। इसलिए लोगोंको चाहिए कि बारम्बार इस मन्त्रका जप और कीर्तन करते रहें ॥ १०७ ॥ 'श्रीराम जय राम जय जय राम' यह मन्त्र है। लोगोंको उचित है कि इस मन्त्रकी वीणा आदिके स्वरके साथ-साथ प्रीतिपूर्वक कीर्तन करें। मन्त्रशास्त्रमें भी इस मन्त्रका उल्लेख है ॥ १०८ ॥ इसलिए सर्वदा इस मन्त्रका जप भी करना चाहिए। क्योंकि यह प्रकारकी सिद्धियोंको देनेवाला है। अब मैं एक और अष्टादशाक्षर मंत्र बतला रहा हूँ। वह भी बड़ा मंगलकारी है ॥ १०९ ॥ "सीतारंजन" ऐसा कहकर "मेघश्याम" फिर "कौसल्यासुत" कहकर "राजाराम" कहना चाहिए ॥ ११० ॥ "सीतारंजन मेघश्याम कौसल्यासुत राजाराम" यह मन्त्र है। इस अष्टादशाक्षर महामन्त्रका कीर्तन करना चाहिए। कीर्तन वीणाके स्वरके साथ तथा कोहिलके समान भीड़े स्वरोंमें होनेसे विशेष लाभदायक होता है ॥ १११ ॥ "रविवरकुलजातं

सप्तदशसुत्रं यच्च राममंत्रस्त्वयं शुभः । कीर्तनीयः सुस्वरं हि वीणावाद्यस्वरादिना ॥११३॥

रविवरकुलजातं वन्दे सुरभूसुरगीतम् इति मनुः ।

विष्णुदास मृण्मयान्यत् राममंत्रान् शुभायहान् । येषां स्मरणमात्रेण महत्पापं क्षयं भवेत् ॥११४॥

कौसल्यासुतेष्वुक्तवाच रामेति द्वेऽक्षरे तथा । तथा सीतारंजनेति मेघश्यामेति वै ततः ॥११५॥

षोडशाक्षरमंत्रोऽयं कीर्तनीयः शुभायहः । वीणास्वरपूर्वकश्च कलकंठेन सुस्वरः ॥११६॥

कौसल्यासुतराम सीतारंजन मेघश्याम इति मनुः ।

षोडशाक्षरमंत्रोऽयं कीर्तनीयः सदा नरैः । सर्वपापक्षयकरः सर्ववर्धिदायकः ॥११७॥

दशरथनन्दनेति पूर्वमुक्त्वा ततः परम् । मेघश्यामेति वै चोक्त्वा सीतेति द्वेऽक्षरे ततः ॥११८॥

रंजनेति ततोक्त्वा राजारामेति वै ततः । विंशाक्षरमनुष्याय महापातकनाशनः ॥११९॥

दशरथनन्दन मेघश्याम सीतारंजन राजाराम इति मनुः ।

अथ विंशाक्षरो मन्त्रः कीर्तनीयः सुखप्रदः । वीणास्वरसमेतश्च महापुण्यप्रदः स्मृतः ॥१२०॥

वन्दे रघुवीरमिति चोक्त्वा चैव ततः परम् । उक्त्वा सीताकान्तमिति रणवीरमिति क्रमात् ॥१२१॥

चतुर्दशाक्षरश्चायं राममंत्रः शुभायहः । कीर्तनीयो जनेर्भक्त्या महामंगलकारकः ॥१२२॥

वन्दे रघुवीरं सीताकान्तं रणवीरम् इति मनुः ।

जय राम जय राम संकीर्त्य सुस्वरं ततः । जय जयेति संकीर्त्य रामेति द्वेऽक्षरे पुनः ॥१२३॥

चतुर्दशाक्षरश्चायं तृतीयः कथितो मनुः । कीर्तनीयो जनेर्नित्यं महापातकनाशनः ॥१२४॥

जय राम जय राम जय जय राम इति मनुः ।

मनुः सीताराधनेति पंचवर्णात्मकः स्मृतः । जपनीयः कीर्तनीयो वीणावाद्येन सुस्वरः ॥१२५॥

सीताराधन इति मनुः

वन्दे" इसका उच्चारण करने के "सुरभूसुर" ऐसा कहकर "मन्त्रम्" का उच्चारण करे ॥११२॥ सत्रह सुस्वर वर्णों-
 ■ इस शुभ राममंत्रका रचना की गयी है। लोगोंको चाहिए कि वीणा आदि वाद्योंके साथ मीठे स्वरसे इस मंत्रका कीर्तन किया करे ॥ ११३ ॥ "रविवरकुलजातं वन्दे सुरभूसुरगीतम्" यह मंत्रका स्वरूप है। राम-
 दास कहते हैं कि हे विष्णुदास ! अब मैं ओर-ओर बहुतसे शुभ मंत्र तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो। जिनके स्मरणमात्रसे बड़े बड़े पाप भी नष्ट हो जाते हैं ॥ ११४ ॥ "कौसल्यासुत" ऐसा कहकर 'राम' इसका उच्चारण करे। तदनन्तर "सीतारंजन" और उसके बाद "मेघश्याम" कहें ॥ ११५ ॥ यह षोडशाक्षर मंत्र बड़ा शुभ है। इसीलिए लोगोंको चाहिए कि मीठो आवाजसे आजा आदि वाद्योंके साथ-साथ इसका कीर्तन करे ॥ ११६ ॥
 "कौसल्यासुत राम सीतारंजन मेघश्याम" यही मंत्रका स्वरूप है। इस षोडशाक्षर मंत्रका लोग सर्वदा कीर्तन करें। क्योंकि यह समस्त पापोंका नाशक और सब प्रकारका अभिलषित कामनाओंका पूर्ण करनेवाला महामंत्र है ॥ ११७ ॥ "दशरथनन्दन" ऐसा कहकर पहले "मेघश्याम" और उसके बाद "सीता" इन दो अक्षरोंको कहकर "रंजन" ऐसा कहते हुए "राजाराम" कहें। यह बीस अक्षरोंवाला राममंत्र बड़े-बड़े पातकोंका नाशक है ॥ ११८ ॥ ११९ ॥ "दशरथनन्दन मेघश्याम सीतारंजन राजाराम" यही इस मंत्रका स्वरूप है।
 जनोंको चाहिए कि सब प्रकारका सुख देनेवाले इस विंशाक्षर मंत्रका मीठे स्वर तथा वीणा आदि वाद्योंके साथ कीर्तन करें। क्योंकि यह बड़ा पुण्यदायक मंत्र है ॥१२०॥ "वन्दे वीरं रघुवीरम्" ऐसा कहकर "सीताकान्तम्" तथा "रणवीरम्" ये वाक्य कहें ॥ १२१ ॥ यह परम सुखदायक चतुर्दशाक्षराल्मिक राममंत्र है। लोगोंको उचित
 ■ कि महामंगल करनेवाले इस मंत्रका मतिपूर्वक कीर्तन करें ॥ १२२ ॥ "वन्दे रघुवीरं सीताकान्तं रणवीरम्" यह इस मंत्रका स्वरूप है। "जय राम राम" ऐसा कहकर "जयजय" ऐसा कहते हुए "राम" ये ही कहें। "जय राम जय राम जय जय राम" यह इस मंत्रका स्वरूप है। चतुर्दशाक्षर मंत्रमें यह तीसरा मंत्र है। लोगोंको चाहिए कि महापातकोंका नाश करनेवाले इस मंत्रका कीर्तन किया करे ॥ १२३ ॥ १२४ ॥

भजेति द्वेऽक्षरे पूर्वं सीताराममिति क्रमात् । मानसेति ततश्चोक्त्वा भजेति द्वेऽक्षरे पुनः ॥१२६॥

ततो राजाराम इति मंत्रः पञ्चदशाक्षरः । कीर्तनीयो मनुष्याय वीणावाद्येन सुस्वरः ॥१२७॥

भज सीतारामं मानस भज राजारामम् इति मनुः ।

श्रीसीताराममित्युक्त्वा वन्दे चोक्त्वा ततः पुनः । श्रीराजाराममेति च कीर्तयेत्सुस्वरं मुहुः ॥१२८॥

द्वादशाक्षरमंशोऽयं कीर्तनीयः सदा जनैः । वीणावाद्यादिना पुण्यः सर्ववाञ्छितदायकः ॥१२९॥

श्रीसीतारामं वन्दे श्रीराजारामम् इति मनुः ।

रावणमर्दनेत्युक्त्वा रामेत्युक्त्वा ततः परम् । राघवंति ततश्चोक्त्वा वाली चेति ततः क्रमात् ॥१३०॥

मर्दनेति पुनश्चोक्त्वा रामेति द्वेऽक्षरे पुनः । स्मृतोऽष्टादशवर्णश्च द्वितीयोऽयं मनुः शुभः ॥१३१॥

रावणमर्दनं राम राघवं वालीमर्दनं रामेति मनुः ।

अयं मंत्रः कीर्तनीयः सवेदा मानवोत्तमैः । श्रीसीताराममिति च मानसेति ततः परम् ॥१३२॥

भजेति द्वेऽक्षरे चोक्त्वा रामेति द्वेऽक्षरे पुनः । राममिति द्वेऽक्षरे च मंत्रोऽयं परमः शुभः ॥१३३॥

चतुर्दशाक्षरमयं चतुर्थम् मयेरितः । कीर्तनीयः सुस्वरोऽयं वीणावाद्यपुरःसरः ॥१३४॥

श्रीसीतारामं मानस भज राजारामम् इति मनुः ।

सीताराम अयेत्युक्त्वा राजारामेति वै ततः । अयं दशाक्षरो मंत्रः कीर्तनीयोऽत्र सुस्वरः ॥१३५॥

सीताराम अथ राजाराम इति मनुः ।

श्रीसीताराममिति च वन्दे राममिति क्रमात् । जय रामं ततश्चोक्त्वा त्रयोदशाक्षरो मनुः ॥१३६॥

कीर्तनीयः सदा मर्मैः सर्वपातकनाशनः । वीणावाद्यादिना नित्यं द्वितीयोऽयं मनुः स्मृतः ॥१३७॥

श्रीसीतारामं वन्दे रामं जय रामम् इति मनुः ।

मां पाहितीति चोक्त्वाशौ दोनं राघवं चेति हि । त्वत्पदयुगलीनं वै चेत्येष षोडशाक्षरः ॥१३८॥

“सीताराघव” यह पंचवर्णात्मक राममंत्र है । पूर्ववत् मीठे स्वर और वीणा आदि वाद्योंके साथ इस मंत्रका कीर्तन और जप करे ॥ १२५ ॥ “सीताराघव” यह इस मंत्रका स्वरूप है । पहले “भज” यह शब्द कहकर “सीतारामम्” कहे । उसके बाद “मानस” यह शब्द कहकर “भज राजारामम्” ऐसा कहे । यह पंचदशाक्षरात्मक राममंत्र है । इसे जो जपे या मीठे स्वर तथा वीणा आदि वाद्योंके साथ कीर्तन करे ॥ १२६-१२७ ॥ “भज सीताराम मानस भज राजारामम्” यह इस मंत्रका स्वरूप है । पहले “श्रीसीतारामम्” ऐसा कहकर “वन्दे” कहे और उसके बाद “श्रीराजारामम्” कहकर इस मंत्रका कीर्तन करे । यह द्वादशाक्षरात्मक मंत्र है । “श्रीसीतारामं वन्दे श्रीराजारामम्” यह इस मंत्रका स्वरूप है । लोगोंको उक्ति है कि सब प्रकारकी कामनायें पूर्ण करनेवाले इस मंत्रका जप और कीर्तन करें ॥ १२८ ॥ पहले “रावणमर्दन” फिर “राम” उसके बाद “राघव” फिर “वालीमर्दन” तदनन्तर “राम” ऐसा कहे । द्वादशाक्षर मंत्रोंमें यह दूसरा मंत्र है । “रावणमर्दन राम राघवं वालीमर्दन राम” यह इस मंत्रका स्वरूप है । सज्जनोंको चाहिए कि सर्वदा ■ मंत्रका जप किया करे । पहले “सीतारामम्” उसके बाद “मानस” फिर “भज” और उसके पश्चात् “राजारामम्” ऐसा कहें । यह बड़ा पवित्र मंत्र है ॥ १३०-१३४ ॥ चतुर्दशाक्षरात्मक मंत्रोंमें यह चौथा मंत्र है । इसका भी वीणा आदि वाद्योंके साथ कीर्तन तथा जप करना चाहिए । “श्रीसीतारामं मानस भज राजारामम्” यही इस मंत्रका स्वरूप है । पहले “सीताराम जय” फिर “राजाराम” ऐसा कहे । यह दशाक्षर राममंत्र है । लोगोंको चाहिए कि मीठे स्वरसे इस मंत्रका भी कीर्तन किया करे ॥ १३५ ॥ “सीताराम जय राजाराम” यही इस मंत्रका स्वरूप है । पहले “सीतारामम्” फिर “वन्दे रामम्” और इसके बाद “जय राम” ऐसा कहें । यह त्रयोदशाक्षर राममंत्र ■ । संसारके माणियोंको चाहिए कि वीणा आदि वाद्योंके साथ नित्य इस मंत्रका कीर्तन करें ॥ १३६ ॥ १३७ ॥ “श्रीसीतारामं वन्दे रामं जय रामम्” यह मंत्रका स्वरूप है । पहले “मां पाहि मति”

कीर्तनीयो मनुर्मर्त्यैः सर्वपातकर्तनः । वीणावाद्यस्वरेणोच्चैः कलकंठेन सुस्वरः ॥१३९॥

मां पाप्मतिदीनं राघव त्वत्पदयुगलीनमिति ।

द्वितीयोऽयं मन्त्रो प्रोक्तो मंत्रो वै षोडशाक्षरः ॥१४०॥

■ जयेति वै चोक्त्वा राघवेति ततः परम् । मन्त्राक्षरमनुश्रायं कीर्तनीयः सदा नरैः ॥१४१॥

जय ■ राघव इति मनुः ।

जयजयेति संकीर्त्तं तथा रघुवरेति च । अष्टाक्षरमनुश्रायं कीर्तनीयः सदा नरैः ॥१४२॥

जय जय रघुवर इति मनुः ।

त्वं मां पालयेन्पुत्रा सीतारामेति वै पुनः । नवाक्षरमनुश्रायं कीर्तनीयः सदा नरैः ॥१४३॥

वीणावाद्यस्वरेणैव महापातकनाशनः ॥१४४॥

त्वं मां पालय सीताराम इति मनुः ।

सीताराम जयेत्पुत्रा मनुः षडक्षरः स्मृतः । कीर्तनीयः सदा मर्त्यैर्वीणावाद्येन सुस्वरः ॥१४५॥

सीताराम जय इति मनुः ।

भीसीतारामेति मनुर्ह्येवः पञ्चाक्षरः शुभः । कीर्तनीयः सदा मर्त्यैर्वीणावाद्येन सुस्वरः ॥१४६॥

भीसीताराम इति मनुः ।

सीतारामेति मनुश्चतुर्वर्णात्मकः स्मृतः ।

सीताराम इति मनुः ।

भीरामेति त्र्यक्षरश्च रामेति द्व्यक्षरो मनुः ॥१४७॥

भीराम इति मनुः । राम इति मनुः ।

राकारो बिन्दुना युक्तश्चैकवर्णात्मको मनुः । अयं सदा जपनीयः कीर्तनीयो न वै कदा ॥१४८॥

रां इति मनुः ।

रामजयेति चोक्त्वाऽऽदौ सीतारामेति ■ ततः । राघवेति ततश्चोक्त्वा मंत्रस्त्वेकादशाक्षरः ॥१४९॥

फिर "दीनं राघव" इसके बाद "त्वत्पदयुगलीनम्" ऐसा कहे । यह षोडशाक्षर मन्त्र सब प्रकारके पापोंको काटनेवाला है । इसलिए लोगोंको चाहिए कि वीणा आदि वाजों और कोकिला जैसे मीठे तथा ऊँचे स्वरसे इस मन्त्रका कीर्तन करें ॥ १३८ ॥ १३९ ॥ "मां पाप्मतिदीनं राघव त्वत्पदयुगलीनम्" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । षोडशाक्षर मन्त्रोंमें यह दूसरा मन्त्र है ॥ १४० ॥ पहले "जय जय" ऐसा कहकर "राघव" कहे । यह सप्ताक्षर मन्त्र है । लोगोंको इसका भी कीर्तन करते रहना चाहिए ॥ १४१ ॥ "जय जय राघव" यह इस मन्त्र-
■ स्वरूप है । "जय जय" कहकर "रघुवर" कहे । यह अष्टाक्षर मन्त्र है । लोगोंको इसका भी जप करते रहना चाहिए ॥ १४२ ॥ "जय जय रघुवर" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । "त्वं मां पालय" ऐसा कहकर "सीताराम" ऐसा कहे । यह नवाक्षर मन्त्र है । लोगोंको इस मन्त्रका भी जप तथा कीर्तन करते रहना चाहिये । क्योंकि यह बड़े-बड़े पापोंका नाशक है ॥ १४३ ॥ १४४ ॥ "त्वं मां पालय सीताराम" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । "सीताराम जय" यह षडक्षर राममन्त्र है । संसारके लोगोंको चाहिए कि वीणा आदि वाद्योंके साथ इस मन्त्रका भी कीर्तन करें । "सीताराम जय" यह मन्त्रका स्वरूप है । "भीसीताराम" यह पञ्चाक्षर राम-मन्त्र है । यह भी महान् पातकोंका नाशक है । इसलिए लोगोंको इसका जप तथा कीर्तन करते रहना चाहिए ॥ १४५ ॥ १४६ ॥ "भीसीताराम" यह मन्त्रका स्वरूप है । "सीताराम" यह चतुर्वर्णात्मक राममन्त्र है । "भीराम" यह त्र्यक्षर राममन्त्र है । "राम" यह द्व्यक्षर मन्त्र कहा गया है ॥ १४७ ॥ "भीराम" और "राम" यह मन्त्रका स्वरूप है । राकारको बिन्दुयुक्त (रां) कर देनेसे एकाक्षर राममन्त्र ही जाता है । लोगोंको

राम जय सीताराम राघवेति मनुः ।

दशरथनन्दनेति रघुकुलेति वै ततः । भूषणेति ततश्चोक्त्वा कौमल्येति ततः परम् ॥१५०॥

विश्रामेति ततश्चोक्त्वा पंकजलोचनेति च । रामेति द्वेऽक्षरे चापि षष्टाविंशाक्षरी मनुः ॥१५१॥

अयं सदा कीर्तनीयो वीणावाद्येन सुस्वरः । प्रोक्तः पातकविध्वंसी सर्वबांछितदायकः ॥१५२॥

दशरथनन्दन रघुकुलभूषण कौमल्याविश्राम पंकजलोचन रामेति मनुः ।

सीताराम जवेत्युक्त्वा राघवेति ततः परम् । रामेति द्वेऽक्षरे चापि मंत्रस्त्वेकादशाक्षरः ॥१५३॥

कीर्तनीयः सुस्वरोऽयं मन्त्रो वीणास्वरेण च । महापातकहन्प्रोक्तः सर्वबांछितदायकः ॥१५४॥

सीताराम जय राघव रामेति मनुः ।

एकादशाक्षरध्यायं मन्त्रः प्रोक्तो मयाऽत्र हि । द्वितीयः परमः श्रेष्ठो महापातकनाशनः ॥१५५॥

पञ्चवटीस्थितेत्युक्त्वा रामजयजयेति च । दशरथनन्दनेति रामेति द्वेऽक्षरे तथा ॥१५६॥

एकविंशाक्षरध्यायं कीर्तनीयो महामनुः । कलकण्ठेन मर्त्यश्च महापातकनाशनः ॥१५७॥

पञ्चवटीस्थित राम जय जय दशरथनन्दन रामेति मनुः ।

दशरथसुतेत्युक्त्वा बालं वन्दे त्विति क्रमात् । रामं घननीलमिति मन्त्रोऽयं षोडशाक्षरः ॥१५८॥

सृतीयोऽयं मया प्रोक्तः कीर्तनीयो मनोरमः । वीणावाद्यस्वरेण च महापुण्यविघर्जनः ॥१५९॥

दशरथसुतबालं वन्दे रामं घननीलमिति मनुः ।

कोदण्डखण्डनेत्युक्त्वा दशशिरमर्दनेति च । कौसल्यासुत रामेति सीतारंजन चेति वै ॥१६०॥

राजारामेति वै चोक्त्वा एकोनत्रिंशवर्णकः । कीर्तनीयो मनुष्याय वीणावाद्येन सुस्वरः ॥१६१॥

कोदण्डखण्डन दशशिरमर्दन कौसल्यासुत राम सीतारंजन राजारामेति मनुः ।

आहिए कि ■ एकाक्षर मन्त्रका केवल जप करें, कीर्तन नहीं ॥ १५० ॥ "रं" यह एकाक्षर मन्त्रका स्वरूप है । पहले "राम जय" कहकर "सीताराम" और इसके बाद "राघव" ऐसा कहे । यह एकादशाक्षरात्मक राममन्त्र है ॥ १५१ ॥ "राम जय सीताराम राघव" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । पहले "दशरथनन्दन" फिर "रघुकुल" फिर "भूषण" फिर "कौमल्याविश्राम" फिर "पंकजलोचन" और इसके बाद "राम" ऐसा कहे । यह अष्टादश अक्षरोंका राममन्त्र है ॥ १५० ॥ १५१ ॥ लोगोंको वीणा आदि वाद्योंके साथ मीठे स्वरसे सदा इस मन्त्रका जप और कीर्तन करना चाहिए । क्योंकि यह सब ■ ■ ■ नष्ट करनेवाला और अभीष्ट कामनाओंका पूरा करनेवाला मन्त्र है । "दशरथनन्दन रघुकुलभूषण कौमल्याविश्राम पंकजलोचन राम" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । "सीताराम जय" ऐसा कहकर "राघव" और उसके बाद "राम" ऐसा कहे । यह एकादशाक्षर मन्त्र है ॥ १५२ ॥ १५३ ॥ यह भी सब प्रकारका पातक नष्ट करनेवाला है । "सीताराम जय राघव राम" यह इस ■ ■ ■ है । इसलिए लोगोंको चाहिए कि वीणा आदि वाद्योंके ■ मीठे स्वरसे इसका जप और कीर्तन करें । क्योंकि ■ प्रकारकी कामनाये इससे पूर्ण हो आती हैं ॥ १५४ ॥ "पञ्चवटीस्थित" ऐसा कहकर "राम जय जय" और उसके बाद "दशरथनन्दन राम" ऐसा कहे । यह एकविंशाक्षर राममहामन्त्र है । इसका भी मीठे स्वरसे कीर्तन करना चाहिए । क्योंकि यह महामन्त्र बड़े-बड़े पातकोंको नष्ट कर देता है ॥ १५५ ॥ १५६ ॥ "पञ्चवटीस्थित राम जय जय दशरथनन्दन राम" यह इस एकविंशाक्षर राममन्त्रका स्वरूप है । "दशरथसुत" ऐसा कहकर "बालं वन्दे" और इसके बाद "रामं घननीलम्" यह कहे । यह षोडशाक्षर राममन्त्र है । षोडशाक्षर मन्त्रोंमें यह बड़े-बड़े पातकोंको नष्ट करनेवाला महामन्त्र है । इसे भी वीणा आदि वाद्योंके साथ मीठे स्वरसे गाना चाहिए । क्योंकि यह अतिशय पुण्यवर्धनकारी मन्त्र है ॥ १५७ ॥ १५८ ॥ "दशरथसुतबाल वन्दे रामं घननीलम्" यह इस मन्त्रका स्वरूप ■ । "कोदण्डखण्डन" ऐसा कहकर "दशशिरमर्दन" इसके बाद "कौसल्यासुत राम सीतारंजन" और "राजाराम" कहे । यह मन्त्र एकोनत्रिंशाक्षरात्मक है । इसका भी वीणा आदि वाद्योंके साथ मीठे

कोदण्डमञ्जनेत्युक्त्वा रावणमर्दनेति च । कौसल्याविश्राम सीतारञ्जन राजारामेति ततः परम् ॥१६२॥
सीतारञ्जनेति ततो राजारामेति वै ततः । सप्तविंशत्परम्पराम् मनुः प्रोक्तः शुभप्रदः ॥१६३॥

कोदण्डमञ्जन रावणमर्दन कौसल्याविश्राम सीतारञ्जन राजारामेति मनुः ।

कोदण्डखण्डनेत्युक्त्वा वालीताडन चेति वै । लंकादाहनेति ततः पापाणतारणेति च ॥१६४॥
रावणमर्दनेत्युक्त्वा रविकुलेति वै ततः । भूषणेति ततश्चोक्त्या कौसल्याविश्रामेति ततः परम् ॥१६५॥
विश्रामेति ततश्चोक्त्या सीतारञ्जन चेति वै । राजारामेति वै चोक्त्वा पञ्चाशदक्षरो मनुः ॥१६६॥
अयं सदा कीर्तनीयो वीणावाद्येन सुस्वराः । मन्त्राणां हि विष्णोऽयं महापातकनाशनः ॥१६७॥

कोदण्डखण्डन वालीताडन लंकादाहन पापाणतारण रावणमर्दन रविकुलभूषण

कौसल्याविश्राम सीतारञ्जन राजारामेति मनुः ।

एवं नानाविधा मन्त्राः सन्ति शिष्य सद्वृत्तः । सहस्रवर्षपर्यन्तं कस्तान् दत्तुं भवेत् समः ॥१६८॥
एते सर्वे कीर्तनाया वीणावाद्येन सुस्वराः । इमे मन्त्रा जपनीयाः । ज्ञेया मानयोत्तमाः ॥१६९॥
मन्त्रशास्त्रेषु यं प्रोक्तास्ते जप्या एव भार्गवः । ते मन्त्राः कीर्तनीयान् कीर्तनीयास्त्रिदमे स्मृताः १७०॥
एतान् मन्त्रान् पुरस्कृत्य प्रवधा विविधाः शुभाः । रचनीया बुद्धिनिर्दिष्टानामापाभिरदरात् ॥१७१॥
ये ये नोक्ता मया मन्त्रास्तान् युक्त्या रचयेत्तरः । रचने नैव दोषोऽस्ति तस्मिन्ने जायते हरिः ॥१७२॥
मन्त्रैः प्रवधैः काव्यैश्च स्तुतिभिः कीर्तनादिभिः । प्राचीनैर्वा कल्पितैर्वा रामो मेव सदा नरः ॥१७३॥
येन केन प्रकारेण कार्यं राघवचिन्तनम् । पापराशिः क्षणदग्धा श्रीरामचिन्तनेन हि ॥

भवत्यत्र न संदेहः पापकेन कृटी ॥१७४॥

दमेन वातिभक्त्या वा निष्कामाद्वा सकामतः । यद्यत्र राघवो गीतस्तेन पापं हुतं भवेत् ॥१७५॥

स्वरसे कीर्तन करना चाहिए ॥ १५६ ॥ १६० ॥ "कोदण्डखण्डन दशकिरमर्दन कौसल्यासुत राम सीतारञ्जन राजाराम" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । "कोदण्डमञ्जन" कहकर "रावणमर्दन" इसके बाद "कौसल्याविश्राम" और "सीतारञ्जन राजाराम" कहे । यह सप्तविंशत्परम्पराम् शुभ राममन्त्र है ॥ १६१ ॥ १६२ ॥ "कोदण्डमञ्जन रावणमर्दन कौसल्या विश्राम सीतारञ्जन राजाराम" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । "कोदण्डखण्डन" कहकर "वालीताडन" और इसके बाद क्रमशः "लंकादाहन" "पापाणतारण" "रावणमर्दन" "रविकुलभूषण" "कौसल्याविश्राम" और "सीतारञ्जन राजाराम" ऐसा कहे । यह पञ्चाशदक्षरात्मक राममन्त्र है । इसे भी वीणा आदि बाजेके साथ मोठे स्वरसे गाना चाहिए । यह मन्त्र सब राममन्त्रोंमें श्रेष्ठ है और बड़े-बड़े पातक नष्ट कर देता है ॥ १६३-१६६ ॥ "कोदण्डखण्डन वालीताडन लंकादाहन पापाणतारण रावणमर्दन रविकुलभूषण कौसल्याविश्राम सीतारञ्जन राजाराम" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । हे शिष्य ! इस प्रकार हजारों राममन्त्र हैं । जिन्हें कोई हजारों वर्ष तक कहता जाय, फिर भी पूरी तोरसे नहीं कह सकता ॥ १६७ ॥ ऊपर बतलाये सब मन्त्रोंको वीणा आदि वाद्योंके साथ मोठे स्वरसे गाना चाहिए । श्रेष्ठ धनुष्योंको यह भी जान लेना चाहिए कि ये सब मन्त्र जपनेके लिए नहीं, बल्कि कर्तन करनेके लिए हैं । इनके अतिरिक्त मन्त्रशास्त्रोंमें जितने मन्त्र बतलाये गये हैं, वे सब जपनेके लिए हैं, कीर्तन करनेके लिए नहीं । बुद्धिमान् कवियोंको चाहिए कि इन्हों मन्त्रोंके आधारपर विविध भाषाओंमें विविध प्रकारके मन्त्रोंकी रचना करें ॥ १६८-१७० ॥ मैंने जित-जित मन्त्रोंको नहीं बतलाया है, उन्हें भी बुद्धिमान् लोग च हें ता बतकर काममें ला सकते हैं । उन मन्त्रोंकी रचना करनेमें कोई दोष नहीं होता, बल्कि ऐसा करनेसे भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥ १७१ ॥ मन्त्र, प्रवध, काव्य, स्तुति, कीर्तन ये सब प्राचीन हों या अन्या औरसे नये बनाये गये हों, उनका कीर्तन करना चाहिए । किसी भी प्रकारसे रामका स्मरण करना जरूरी है । क्योंकि रामका ध्यान करनेमें मारी पापराशि उसी तरह क्षणभरमें खल जाती है । जैसे फूसकी कृटीमें आग लगती है तो क्षणभरमें उसे जलकर भस्म कर देती है ॥ १७२-१७४ ॥ दम्भसे, भक्तिसे, निष्काम या सकाम जिस किसी तरह भी रामनामका कीर्तन करनेसे पाप जल जाते हैं ॥ १७५ ॥

यथा वह्निस्तूलाग्निं स्पर्शितः कामनां विना । कामेन वा दहत्येव क्षणाच्चद्रम संशयः ॥ १७६ ॥

मंत्रैः प्रबन्धैः काव्यैश्च नानाचारित्रवर्णनैः

अत्यशुद्धैः स्तुतो रामः कल्पितैरपि स्वेच्छया । तैश्च तुष्टो भवत्यत्र श्रीरामो नात्र संशयः ॥ १७७ ॥

विनाश्रयेण रामस्य यत्कृतं स्तवनादिकम् । तेनापि तुष्टः श्रीरामो भवत्येव न संशयः ॥ १७८ ॥

आश्रयेणापि या निन्दा कृता श्रीराघवस्य च । सा भवेन्नकार्यैव नात्र कार्या विचारणा ॥ १७९ ॥

किं शास्त्रैश्च पुराणैश्च पठितैः पाठितैरपि । यदि रामे रतिर्नास्ति तर्मेवेन्मानवस्य किम् ॥ १८० ॥

रामप्रीतियुतस्यात्र मूर्खस्यापि नरस्य च । तद्भाषाकृतस्तुत्याद्यैः प्रसन्नो जायते हरिः ॥ १८१ ॥

रामचन्द्रस्य प्राप्त्यर्थं यत्कृतं मानवैर्भुवि । तेनातितुष्टः श्रीरामो भवत्येव न संशयः ॥ १८२ ॥

रामो मेयश्चिन्तनीयोऽत्र रामः स्तव्यो रामः सेवनीयोऽत्र रामः ।

ध्येयो रामो वंदनीयोऽत्र रामो दर्श्यो रामः सर्वभूतान्तरेषु ॥ १८३ ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकांडे

लहमणाश्रीनां कवचादिनिरूपणं नाम पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः

(हनुमत्पताकागोपणं वत)

श्रीरामदास उवाच

एवं यद्यश्चया पृष्टं तन्मया परिवर्णितम् । किमन्यच्छ्रोतुकामस्त्वं तद्ब्रूदस्व वदामि ते ॥ १ ॥

विष्णुदास उवाच

रामायणं नरः श्रुत्वा किं विधानं समाचरेत् । तत्त्वं वद महामाग यद्यस्ति तत्सविस्तरम् ॥ २ ॥

श्रीरामदास उवाच

रामायणे श्रुते दद्याद्रथं हेममयं सुधोः । चतुर्भिर्वाजिभिर्मुक्तं धौमपताकया ॥ ३ ॥

जिस तरह बड़ीसे बड़ी रईसी राशिकी अग्नि जला डालती है, उसी तरह किसी कामनासे वा बिना कामना होके रामका कीर्तन तत्क्षण पापराशिकों भस्म कर देता है । इसमें कोई संशय नहीं ॥ १७६ ॥ मन्त्र प्रबन्ध तथा विविध प्रकारके चरित्रोंसे पूर्ण काव्योंसे अपने बनाये अतिअशुद्ध पदोंसे ही रामका कीर्तन क्या जाता है तो भी भगवान् होते हैं । इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ १७७ ॥ बिना किसी आधारके भवने काव्योंसे रामकी स्तुति करनेसे रामचन्द्रजी प्रसन्न होते हैं । यदि रामका आधार लेकर काव्य बनाया जाय और उसमें भगवान्की निन्दा की जाय तो वह नरकका ही साधन होता है । इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ १७८ ॥ १७९ ॥ यदि राममें प्रीति नहीं तो बहुतेरे शास्त्रों और पुराणोंके पठन-पाठनसे कुछ भी लाभ नहीं होता ॥ १८० ॥ राममें प्रीति रखनेवाला मनुष्य चाहे मूर्ख ही हो, किन्तु वह यदि अपनी दूरी-फूटी भाषामें भगवान्का गुण गाता तो उससे भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥ १८१ ॥ इनके अतिरिक्त रामचन्द्रजीकी प्राप्तिके लिए जो कुछ भी उपाय किये जाते हैं, उनसे भगवान् अतिशय प्रसन्न होते हैं । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १८२ ॥ इसलिये लोगोंको चाहिए कि सदा रामका गुण गावें, उनका स्मरण करें, सेवा करें, ध्यान करें, और संसारके प्रत्येक प्राणीमें भगवान्की अलौकिक उन्नोत्तिका दर्शन करें ॥ १८३ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पंचमोऽध्यायः ॥ १५ ॥

श्रीरामदास बोले—हे शिष्य ! तुमने मुझसे जो कुछ पूछा, सो मैंने सुनाया । अब क्या सुनना चाहते हो, सो कहें ॥ १ ॥ विष्णुदासने कहा—आनन्दरामायण सुननेके अनन्तर लोगोंको क्या-क्या विधान करना चाहिए, सो आप विस्तारपूर्वक हमें बतलाइए ॥ २ ॥ श्रीरामदासने कहा—इस रामायणको सुननेके अनन्तर

एतैश्चैव समायुक्तं किंकिणीनादनादितम् । संपादितं च सम्यग्वै धेनुं दद्यात्पयस्विनीम् ॥ ४ ॥
 प्राक्पणान् भोजयेत्पश्यान् शतमष्टोत्तरं सुधीः । एवं कृते विधाने तन्महाकाव्यं फलप्रदम् ॥ ५ ॥
 रामायणं भवेन्नूनं नात्र कार्या विचारणा । यस्मिन् रामस्य संस्थानं रामायणमथोच्यते ॥ ६ ॥
 एवं त्वया यथा पृष्टं मया तत्ते निवेदितम् ।

विष्णुदास उवाच

किंचिद्भ्रतं हनुमतस्त्वं मां वक्तुमिहार्हसि ॥ ७ ॥

श्रीरामदास उवाच

यदा रामस्त्रिकूटादौ नागपाशैस्तु पीडितः । नारदस्य वचः श्रुत्वा सस्मरन् विनतासुतम् ॥ ८ ॥
 तदाऽसौ काश्यपो वीरः समागत्य रणमग्ने । प्रणाममकरोत्तस्मै रामायामिततेजसे ॥ ९ ॥
 निवार्य यत्नगास्त्रं तन्मेघनादसमीरितम् । तुष्टाव रघुवीरं तं ससैन्यं च सलक्ष्मणम् ॥ १० ॥
 उवाच प्रणिपत्यापि रामभद्रं सुगन्धरः ।

गण्ड उवाच

आश्चर्यमिदमत्यन्तं यद्भवानस्मरद्दि माम् ॥ ११ ॥

सति वीरे महाकूट्रे सगमे श्रीहनुमनि । सुग्रीवे च नले नीले सुपेने जाम्बवत्यपि ॥ १२ ॥
 अङ्गदे दधिवक्त्रे च तारे च तरले तथा । मैत्रे सति महावीर्ये किं मेऽत्रास्ति प्रयोजनम् ॥ १३ ॥

श्रीराम उवाच

भवद्भीतिमुत्तरागम् । विदुताश्च भुजङ्गमाः । एतेषु सत्सु वीरेषु किमु सैन्यमपीडयन् ॥ १४ ॥

गण्ड उवाच

रामदेव महाबाहो कपीनां चरितं शृणु । आत्मनोऽपि समाविष्टान्मा कुरुष्वान्न गर्हणम् ॥ १५ ॥
 साक्षात् भगवान्विष्णुर्लक्ष्मीस्तु जनकान्मजा । सौमित्रिः फणिराजोऽयं रुद्राश्च कपयः स्मृताः ॥ १६ ॥

बुद्धिमान् भनुष्यको उचित है कि वह चार घोड़ों जुते और रेशमी पताकासे सुनोमित रख कयावाचक बाहुणको दान दे । किंचि प्रकारसे बल्लकृत गौका दान करे । इसके बाद एक ही आठ बाहुणोंको भोजन कराये । जो प्राणा जानन्दरामायण सुनकर ऐसा करता है, उसे इस महाकाव्यके श्रवण करनेका फल प्राप्त होता है । इसने कोई संशय नहीं करना चाहिए । जिसमें श्रीरामचन्द्रजीका निवास हो, वही रामायण । अथवा जिसमें राम विद्यमान रहें, वह रामायण है ॥ ३-६ ॥ इस तरह तुमने मुझसे जैसा प्रश्न किया, मैंने उसका उत्तर दे दिया । विष्णुदासने कहा—हे श्री ! अब मुझे हनुमान्जीका भी शुभ वक्तव्य बतला दीजिए ॥ ७ ॥ श्रीरामदासने कहा—जिस समय राम त्रिकूट पर्वतपर नागपाशमें बँध गये थे, उस समय उन्होंने नारदके कपयानुसार गण्डका स्मरण किया । उसी समय गण्डजी वहाँ पहुँचे और उन्होंने संशयभूमिमें भगवान्को प्रणाम किया ॥ ८ ॥ ९ ॥ तदनन्तर मेघनाद द्वारा प्रेरित नागपाशका निवारण करके सेना और लक्ष्मण सहित रामकी स्तुति की । फिर प्रणाम करके गण्डजी भगवान् रामचन्द्रजीसे कहने लगे—हे प्रभो ! यह सोचकर मुझे आश्चर्य होता है कि श्रीहनुमान्जीके रहते हुए भी मुझ दासको आपने स्मरण किया ॥ १० ॥ ११ ॥ हनुमान्जीके अतिरिक्त सुग्रीव, नल, नील, सुधेन, जाम्बवान्, अङ्गद, दधिवक्त्र, तार, तरल, मैत्र आदि वीर थे । इन वीरोंके रहते हुए श्रीमान्को मुझे स्मरण करनेकी क्यों पट्टी ? ॥ १२ ॥ १३ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने कहा—आपके समयसे सब सर्प जाग गये, किन्तु ये लोग यहाँ रहकर भी स्वर्ग उनके पाशमें बँध गये थे ॥ १४ ॥ गण्डजी बोले—मैं आपको वानरोंका चरित्र सुनाता हूँ, सुनिए । यद्यपि यहाँ बहुतसे आत्मोपय वानर बँडे हैं, फिर भी कहूँगा । इन लोगोंको चाहिए कि मेरी बातको अपनी निन्दाके रूपमें न मानें ॥ १५ ॥ आप साक्षात् विष्णु भगवान्

सुग्रीवो वीरभद्रोऽयं शङ्खरेण स्मृतो नलः । विद्वि दाक्षरथे नूनं गिरिशो नील एव च ॥१७॥
 महायशाः सुपेणोऽयं जायवांश्चाप्यजैकपात् । अहिर्बुध्न्यस्त्वंगदोऽत्र दधिचक्रः पिनाकधृक् ॥१८॥
 अयुताजिस्त्रयं तारः स्थाणुश्च तरलो मतः । मैत्रो भर्गतेजुः साक्षान् हनुमान् भगवान् स्मृतः ॥१९॥
 अवतीर्णा महारुद्रास्त्वदर्थं रघुनन्दन । ययमन् सर्वेऽशेषु नानापर्वतमध्यतः ॥२०॥
 धृत्वा च कपिरूपाणि अवनेर्मुहूर्तातले । सर्वेऽपि कपितां प्राप्ताः कारणं तद्व्रवीमि ते ॥२१॥
 पुरा देवासुरैः सिधोर्मथिता व्याधयोऽभवन् । नानापीडाकराः सर्वा लृताविस्फोटकादयः ॥२२॥
 तैरेव व्याधिभिः सर्वं पीडितं जगतीतलम् । ऋषयोऽपि नृपालाश्च ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥२३॥
 ऊचुश्च जगतां नाथं ब्रह्माणं कमलोद्भवम् । त्राहि त्राहि जगन्नाथ व्याधिभ्यो जगतीमिमाम् ॥२४॥
 पीडितां दारुणैर्दोषैर्ज्वराद्यैश्च महोच्यर्णैः । त्रिदोषैर्जर्जरीभृतां विभ्रमैर्व्याकुलोकृताम् ॥२५॥
 औषधानि न सिद्ध्यन्ति मंत्रयंत्राणि चैव हि । पीडयन्ति महारोगा मानवाश्चाशुकारिणः ॥२६॥

एतत्तं कथितं सर्वं ब्रह्मस्त्वरपुरतः सुधीः ॥२७॥

तत्तेषां वचनं श्रुत्वा रुद्रात्मसंप्रार्थयद्विधिः । तैऽपि श्रुत्वा ब्रह्मवाक्यं रुद्रा एकादशमलाः ॥२८॥
 समाश्वास्य विरिति ते वीरभद्रादयः सुराः । संभूय वानरं चैव सुग्रीवप्रास्ता इमे ॥२९॥
 पर्वतन् पर्वताग्राणि मण्डलानि च सर्वजः । नादयन्तो जगत्पथं भुभुकारः सुदरुणैः ॥३०॥
 क्षेपितैः क्रीडनस्तेषां व्याधयो नाशमाप्नुयुः । तनस्तु सकलां दृष्ट्वा वानरैर्वोष्टतां भुवम् ॥३१॥

ततोऽपि भगवान्ब्रह्मा ददौ तेभ्यो वरान् बहून् ।

ब्रह्मवाच

धृष्टमान्वापि च मुद्राऽस्तु मृतमंजीवनी कला ॥३२॥

आज्ञाऽस्तु सर्वजगति वेगोऽस्तु मनसः ययः । धृष्टमान्मरंति ये मर्त्याः पूजयन्ति मन्त्रसन्तः ॥३३॥

हैं, श्रीसीताजी लक्ष्मी, लक्ष्मण जीव भगवान्, ये सब वानर रुद्रगण, सुग्रीव वीरभद्र और नल साक्षात् शिव-
 जीके अंशज मंभु हैं । हे दाक्षरथे ! ये लोग भगवान् जिनकी अंश-
 जिनिया हैं । इसी तरह महायणस्थी सुपेण
 महायणा, जायवान् अजैकपात्, अहिर्बुध्न्य, दधिचक्र, पिनाकधृक्, तार, अयुताजित्, तरल स्थाणु,
 मैत्र भर्गतेजु और हनुमान् साक्षान् शिव हैं ॥ १७-१९ ॥ ये रजान्ही यद्र आपको लिए उत्पन्न होकर सब देशोंमें
 अनेक पर्वतोंपर रहते थे ॥ २० ॥ किन्तु अब वानरका रूप धारण करके पृथ्वीतलपर आये हैं । ये सब
 वानर वधों हुए, इसका कारण भी मैं आपको बतला रहा हूँ ॥ २१ ॥ एक समय देवताओं तथा दैत्योंने मिल-
 कर समुद्रका मन्थन किया । उससे अनेक दुःख देनेवाले कृत्त और विस्फोट आदि बहुतसे रोग उत्पन्न
 हुए ॥ २२ ॥ उन रोगोंमें लोगों लोक संकटमें पड़ गये । ऐसा अवस्थामें बहुतसे ऋषि और देवता एकत्र
 होकर ब्रह्माजीकी शरणमें गये और कहने लगे--हे जगन्नाथ ! इन दारुण व्याधियोंसे इस विश्वकी रक्षा करिए
 ॥ २३ ॥ २४ ॥ संसारके प्राणियोंको उबर आदि मण्डल रोगों और कात, पित्त तथा कफ इन तीन दोषोंने
 घेर लिया है । इनकी शान्तिके लिए जिस किसी औषधि तथा यंत्र-मंत्र आदिका प्रयोग किया जाता है, वह
 भी सफल नहीं हो पाता । मनुष्योंका नष्ट करनेवाले रोग सर्वदैव उन्हें सताते रहते हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥
 हे ब्रह्मा ! इस तरह मैंने लोगोंके कष्ट आपको कह सुनाये ॥ २७ ॥ उनकी ऐसी बात सुनकर
 ब्रह्माजीने रुद्रोंसे प्रार्थना की । ब्रह्मसेव्य सुनकर ॥ वीरभद्र आदि एकादश रुद्रगण ब्रह्माकी सान्त्वना
 देकर सुग्रीव प्रभृति वानर होकर बड़े-बड़े पर्वतों तथा जङ्गलोंमें मण्डल बाँधकर घूमते हुए अपने दारुण
 शब्द तथा क्रीड़ासे उन व्याधियोंको नष्ट करने लगे । २८-३० ॥ इसके बाद समस्त पृथ्वीको वानरोंसे देखित
 देखकर ब्रह्माजी बड़े प्रसन्न हुए और बहुतसे वरदान दिये । ब्रह्माजीने कहा कि तुम लोगोंकी मुद्राओंमें अमृत
 संजीवनी नामकी कला विद्यमान रहेगी ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ तुम्हारा वेग मनके समान होगा । जो लोग तुम्हारे

पताका त्रिविधाः कृत्वा चित्रतोरणसंयुताः । भक्ष्यभोज्यानि खाद्यानि लेह्यं पेयं च सर्वशः ॥३४॥
 पुष्पाञ्जुदिव्य ये मर्त्या जुहन्ति हि हुताग्ने । इतिः पुण्यतमं कृत्वास्तेषां सिद्धिर्न संशयः ॥३५॥
 पायसेनैव साज्येन तथैव तिलमपि वा । यजति भवतां वृद्धं ते याति परमं पदम् ॥३६॥
 एवं वै रुद्रमखिलं गाथा वैश्वानरीस्तथा । मानस्तोकेति वा मन्त्रो मनोज्योतिरथापि वा ॥३७॥
 भवतां यजनं चात्र गायत्र्या वा प्रकीर्तितम् । एवं ये मानवा लोके विधानं परिकुर्वते ॥३८॥
 व्याधिं शुक्त्वा सुलासीमास्त्वन्ते यात्यध्वं पदम् ।

गरुड उवाच

इति राम पुरावृत्तं कपीनां कथितं मया ॥३९॥

एषु रुद्रेषु सर्वेषु हनुमान्मद्रनायकः ॥४०॥

विधानं तत्र कर्तव्यं यत्रास्ते हनुमत्तनुः । गोपुरे हनुमन्मूर्तिः शिलायां च पतिष्ठिता ॥४१॥

तत्र सर्वं प्रकर्तव्यं विधानं सुरसत्तमः ।

श्रीराम उवाच

केन केन प्रकारेण क्रियते कपिपूजनम् ॥४२॥

कीदृशीस्तत्र कति कार्या विदङ्गव । इदं कति संख्याकं किं द्रव्यं कीज्योऽत्र वै ॥४३॥

किं दानं केन विधिना तन्ममाचर्य सुमतः ।

गरुड उवाच

वनमारे समुत्पन्ने ग्रामे वा पवनेऽपि वा ॥४४॥

प्रभवत्पौर्षं नैव मणिमन्त्रपुरःक्रमाः । विधानं तत्र कर्तव्यमेकादश्यां तिथौ नृप ॥४५॥

प्रातःकाले समुत्थाय कुतश्चो द्विजोत्तमः । स्नात्वा गङ्गाजले पुण्ये तिलामलकसंस्कृतः ॥४६॥

एकादश द्विजान् श्रेष्ठान्सोपवासान्निमन्त्रयेद् । जागरस्तस्तु कर्तव्यः सर्वोपस्करसंयुतः ॥४७॥

आदौ तु मण्डपं कृत्वा सर्वत्रापि सुशोभितम् । पुष्पमण्डपकामध्ये मण्डपे स्थापयेद्दरान् ॥४८॥

शरीरकी पूजा और स्मरण करेंगे । विविध रङ्गकी पताकाये, चित्र-विधित्र तारण, तरह-तरहके भक्ष्य-भोज्य तथा पेय वदार्थ आपके उद्देश्यसे जो अग्निमें हुवन करेंगे, उनका रुद्रसिद्धि प्राप्त होगी । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ३३-३५ ॥ जो लोग घों मिलाकर लोहरका हुवन करते हैं, उनका परम पद प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ इस प्रकार "एवं वै रुद्रमखिलं" इस मन्त्रसे अथवा "वैश्वानरी" या "मानस्तोके" इस मन्त्र तथा "मनोज्योति" इस मन्त्र अथवा गायत्रीमन्त्रसे आपके लिए हुवन करनेका विधान है । जो लोग संसारमें इस विधिकी पालन करते हैं, वे सब प्रकारकी व्याधिघोस मुक्त होकर अत्य पद प्राप्त करते हैं । गरुडजीने कहा-हे राम । यह मैंने बानरोंका एक प्राचीन इतिहास कह सुनाया ॥ ३७-३९ ॥ इन आर्यों रुद्रोंमें हनुमान्जी सबके मुखिया हैं । इसलिए ऊपर बतलाये हुए विधान उसी स्थानपर करने चाहिए, जहाँ कि हनुमान्जीकी मूर्ति विद्यमान हो । गोपुर या किसी पाषाणखण्डपर हनुमान्जीकी मूर्ति स्थापित करके पूर्वलिखित विधिसे पूजन करे । श्रीरामचन्द्रजीने पूछा-हे पक्षिराज । किस-किस प्रकारसे कपिपूजन करना चाहिये ॥ ४०-४२ ॥ इनकी पूजामें कैसी पताका बनवाये, कितनी आहुतियाँ दे, किस मन्त्रका जप करे और किस-किस विधिसे क्या दान करे ? से सुव्रत ! सब बातें हमें बतलाइए । गरुडने कहा-हे प्रभो । जिस समय चासीण या भाषारिक मनुष्योंपर महामारी जैसी विपत्ति पड़े । मणि-मन्त्र आदिका प्रभाव कोई काम करे तो एकादशी तिथिकी विधान सम्पन्न करे ॥ ४३-४५ ॥ किसी उत्तम ब्राह्मणकी चाहिए कि वह प्रातःकाल उठे । शरीरमें तिल और बाँवले लगाकर पवित्र जलसे स्नान करे । इसके बदनपर उपवास किये हुए आरुह गङ्गा-जीकी निमन्त्रित करे और सब सामग्रियें एकत्रित करके उन लोगोंके रातभर जागरण करे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ पहले चारों ओरसे सुशोभित मंडप तैयार करवाये और उसमें फूलोंका एक छोटा-सा मन्दिर बनाकर बीचमें

पञ्चामृतैस्तु स्नपनं रुद्रेभ्यः परिकल्पयेत् । ततस्तु कुसुमैः पूजा शतपत्रादिभिः शुभैः ॥४९॥
 चन्दनं च सकर्पूरं रुद्रेभ्यो लेपनं व्रतम् । दशांगधूमादद्याद्वापैर्नीराजयेत्ततः ॥५०॥
 नैवेद्यं विविधं दद्यात्तांबूलैर्नैव संपुतम् । एकादश पताकास्तु षटैः सुपरिकल्पयेत् ॥५१॥
 या या यस्मै समुद्दिष्टा पताका च सुशोभना । तस्य तस्यैव रूपं सस्यामेव प्रकल्पयेत् ॥५२॥
 एवं कृते विधाने च सुपताकासुतीरणैः । प्रातःकाले तु राजेन्द्र जागरांते द्विजोत्तमः ॥५३॥
 कृतस्नानो नर्दानोये होमं कृपांस्समाहितः । पापसेन सान्येन तथैव तिलमर्पिषा ॥५४॥
 अगुतं हवनं कृत्वा पुनः पूजां प्रकल्पयेत् । पताका हनुमद्द्वारे तस्यैव निधापयेत् ॥५५॥
 राजद्वारे तु सौम्रांश्च सौपेणामाप्णे न्यसेत् । नलनीलपताके च शिवद्वारे तु विन्यसेत् ॥५६॥
 तारस्य तरलस्यापि मैदस्य खंगदस्य च । ग्रामाद्वदिश्वनृदिक्षु मार्गेषु स्थापयेद्विधा ॥५७॥
 जलस्थाने जांबवंशी दाधिवक्त्रो चतुष्पदे । स्थापयेन्मरमां दिव्यां महाबाधादिमंगलैः ॥५८॥
 द्वारदेशे जनानां च रुद्रमूर्तिं विलेखयेत् । चित्रितां पञ्चमूर्तिं च ग्रामसूत्रैश्च वेष्टयेत् ॥५९॥
 प्रस्पृहं कारयेद्विद्वान् भक्त्या ब्राह्मणतपेणम् । दद्याद्वस्त्राणि श्रुतिविग्भ्यो सालंकाराणि भूरिशः ॥६०॥
 छत्राणि करपत्रैश्च पादुकाश्च विशेषतः । धेनुं पयस्विनीं दद्यादाचार्याय सवत्सकाम् ॥६१॥
 सदक्षिणां सवस्त्रां च सालंकारां गुणान्विताम् । द्विजान् महिषीं दद्याच्चर्यैव पृथिवीधने ॥६२॥
 अन्येभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च समं धान्यानि भूरिशः । लवणं मधूनं देयं तैलं च सगुडं तथा ॥६३॥
 शय्यादानानि भूर्गाणि छत्राणि विविधानि च । एतत्कृत्वा विधानं च राजा क्षेममवाप्नुयात् ॥६४॥
 रुद्र एवात्र निर्दिष्टो जपः सर्वैः सुलक्षणः । अथवा हानं शस्तं मानस्तोकं इति स्फुटम् ॥६५॥

इति हनुमन्पताकाभिधानं व्रतम् ।

इति श्रीमत्कोटिरामचरितांगते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकांडे

हनुमत्पताकाभोपपन्नव्रतवर्णनं नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

वानरोंको स्थापित करे ॥ ४८ ॥ तदनन्तर उन रत्नोंको पञ्चामृतसे स्नान कराये और शतपत्र आदिके फूलोंसे विधिवत् पूजन करे । कपूर मिले हुए चन्दनका लेपन, दशांग धूमादद्याद्वापैर्नीराजन करे । फिर ताम्बूलके साथ विविध प्रकारके नैवेद्य समर्पित करे और अच्छे वस्त्रोंसे ग्यारह पताका बरवाये । जो पताका जिस रुद्रके लिए निर्धारित की गयी हो, उसमें उसका चित्र बनवाये ॥ ४९-५२ ॥ ये विधियाँ करनेके समस्त रुद्र सुन्दर पताका आदि समर्पित करे । वह बाह्य सवरे उठे और नदीके जलमें स्नान करके सावधानतापूर्वक तिल और घी मिले खीरमें अग्निकुम्भमें द्वादश आहुतिवाँ दे । इसके बाद फिर उन सबकी पूजा करे । हनुमान्जीके द्वारपर हनुमान्जीकी पताका, राजद्वारपर सुवीरकी पताका, बापण (बाजार) में सुपेणकी और शिवद्वारपर नल-नीलकी पताका स्थापित करे ॥ ५३-५६ ॥ तत्पश्चात् तार, तरल, मैद और अजुड़की पताकाओंको ग्रामके बाहर चारों दिशाओंसे स्थापित करे ॥ ५७ ॥ जलस्थानपर आम्बशान् और चौराहेपर दधिवक्त्रकी पताकाको विविध बाणोंकी धानिके साथ स्थापित करे । मनुष्योंके द्वारदेशपर पाँच वर्णोंसे चित्रित रुद्रमूर्ति बनाये और ग्रामसूत्रोंसे उसे परिवेष्टित करे ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ समस्त द्वार लोगोंको चाहिए कि प्रतिदिन ब्राह्मणोंको अच्छे तरह भोजन कराये और ऋषिजनोंको विविध आभूषण और वस्त्र दान दें ॥ ६० ॥ छत्र, पादुका तथा दूध देनेवाली सवत्सा गौ आचार्यको दे । उस गौके साथ पयस्वि दक्षिणा, अलंकार, आदि घी ॥ उस यज्ञमें जो बाह्यण ब्रह्मा बना हो, उसे एक भेषुका दान दे ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ इसके अतिरिक्त और जिसने ब्राह्मण हों, उन्हें भी शय्यादान और छत्र आदि दे । जो राजा इस विधानसे रुद्रयज्ञ करता है, उसका प्रकारसे कल्याण होता है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ इस विधानमें रुद्रमन्त्र अवश्य "मानस्तोके" यह मन्त्र जपना लाभकारी होता है ॥ ६५ ॥ इति श्रीमत्कोटिरामचरितांगते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये प० रामसेव-पाण्डेयकृत'ग्योरेस्ता'बाषाटीकासहिते मनोहरकांडे षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः

(श्रीरामचन्द्रोपदिष्ट साररामायण)

श्रीरामदास उवाच

विष्णुदास स्वया यद्यन्वृष्टं तत्तन्मयेरितम् । रामाज्ञया तव प्रीत्याऽऽनन्दचारित्र्यमुत्तमम् ॥ १ ॥
 रामेणैव ममास्थेन तवोपदिष्टमादरान् । स्वयस्ति रामसंप्रीतिस्तस्माद्रामेण मे द्विज ॥ २ ॥
 आज्ञापितं पूजनांते पुरा तव तपोबलान् । आनन्दरामचरितं ममेदं मंगलप्रदम् ॥ ३ ॥
 विष्णुदासाय विप्राय कथयस्वेति वै मुहुः । त्वदर्धं पूजनांते मे दर्शनं दत्तवामिजम् ॥ ४ ॥
 नवीतरश्मिलोकसाररामायणेन च । पुरा मे ग्रथितेनात्र रामेण स्मारितोऽप्यहम् ॥ ५ ॥
 श्रीराघवोपदिष्टेन महामंगलदेन च । नवाधिकशतलोकसाररामायणेन च ॥ ६ ॥
 यद्यन्मया विस्मृतं च श्रुतं पूर्वकथामकम् । सम तच्चापि स्मारितं वाल्मीकिमुत्तमनिर्गतम् ॥ ७ ॥
 ततो मया विष्णुदास राघवस्याज्ञया तव । शतकोटिमिताद्रामचरितात्मविविच्य च ॥ ८ ॥
 सारं सारं च कथितं महामांगल्यकारकम् ।

विष्णुदास उवाच

स्वयैतत्कथितं चेदमानन्दसंशक्तं मम ॥ ९ ॥
 श्रीरामचरितं रम्यं मम तोषार्थमुत्तमम् । इतकोटिमितात्तन्किं कथितं च विविच्य च ॥ १० ॥
 अथवा भारतखण्डादभिर्गादुक्तं वदस्व तत् ।

श्रीरामदास

शतकोटिमितं कुस्नं मया रामायणं शुभम् ॥ ११ ॥
 विविच्य ज्ञानदृष्ट्याऽत्र तवेदमुपदेशितम् । विद्वेषात्स्मारितं चापि साररामायणमवात् ॥ १२ ॥
 रामोपदेशिताद्रम्यात्तनस्ते कथितं मया ।

विष्णुदास उवाच

शतकोटिमिते रामचरिते पाठकापहे ॥ १३ ॥
 कति कांडानि सर्गाश्च तन्मां वक्तुं त्वमर्हसि ।

श्रीरामदास कहे—हे विष्णुदास ! तुमने हमसे जो कुछ पूछा, सो कह सुनाया । यह समस्त आनन्दरामायण रामचन्द्रजीकी आज्ञामें अवका पूँ रहो कि साक्षान् रामचन्द्रजीने ही मेरे मुखसे कहा है । तुम्हारे हृदयमें रामकी भक्ति है । इसलिये उस दिन पूजनके अन्तमें तुम्हारे तपोबलसे प्रसन्न होकर उन्होंने मुझे तुमको आनन्दरामायण सुनानेकी आज्ञा दी थी । उन्होंने कहा था—यह आनन्दरामायण बड़ा मंगलकारी ग्रन्थ है, तुम इसे विष्णुदासको सुनाओ । तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होकर ही मैं पूजनके अन्तमें तुम्हें अपना दर्शन दे रहा हूँ ॥ १-४ ॥ रामचन्द्रजीके स्मरण करानेपर ही मैंने एक सौ नौ श्लोकोंमें रामायणका सार सुनाया था । त्रिन-त्रिन कथानकोंको मैं भूल गया था । वे भी वाल्मीकिजीके मुखसे निकले रामायण द्वारा स्मरण होते गये ॥ ५-७ ॥ इसके बाद मैंने रामचन्द्रजीकी आज्ञासे रामायणके मुख्य-मुख्य अंश लेकर कहा है । विष्णुदास बोले कि आपने मुझे आनन्द देनेके लिये यह रम्य आनन्दरामायण कहा है तो कृपा करके अब यह भी बतलाइए कि सौ करोड़ संख्यात्मक रामायणसे आपने कहीं कहींसे क्या-क्या अंश लेकर कहा है? ॥ ८-१० ॥ अथवा भारतखण्डसे कौन-कौन अंश लिये हैं ? श्रीरामदास कहने लगे—पूरे रामायण सौ करोड़ श्लोकोंकी है ॥ ११ ॥ ज्ञानकी दृष्टिसे विवेचना करके मैंने तुम्हें इसका उपदेश दिया है । हमें तो रामायणके सारका अवगम

श्रीरामचन्द्र उवाच

नव लक्षणानि काण्डानि शतकोटिमिते द्विज ॥१४॥

सर्गा नवतिलकाश्च शतान्या मुनिकीर्तिताः । कोटीर्ना च शतं श्लोकमानं ज्ञेयं विचक्षणैः ॥१५॥

विष्णुदास उवाच

गुरोर्हं श्रोतुमिच्छामि यत्र श्रीराघवेण हि । उपदिष्टं मय्यं हि साररामायणं शुभम् ॥१६॥

नवोत्तरशतश्लोकसंमितं च मनोहरम् । तत्र च वदन्धुना पुण्यं वरं कीदृहलं मम ॥१७॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया शिष्य सावधानमनाः शृणु । साररामायणं तेऽद्य प्रोच्यते रामकीर्तितम् ॥१८॥

आविर्भूत्वा पूजनाते मध्ये आतुमिः शिष्या । मां प्रोवाच रघुश्रेष्ठः प्रसन्नमुखपकजः ॥१९॥

[अथ साररामायणम्]

श्रीरामचन्द्र उवाच

रामदास शृणुष्वथ यत्सारं प्रोच्यते तव । चरितं सकलं स्वीयं मया तत्त्वं सविस्तरम् ॥ १ ॥

विष्णुदासाय शिष्याय मङ्गलानिर्नाय च । कथयस्व तथाऽन्यच्च ज्ञानाद्दृष्टं यथाश्रुतम् ॥ २ ॥

यथा भारतखण्डान्तमार्गे चापि त्वयेक्षितम् । स्मरणार्थं त्वहं किञ्चित्तव वक्ष्यामि सादरम् ॥ ३ ॥

पार्वतीशिवसंवादः सूर्यवंशार्धपाण्डिवाः । मत्पित्रोर्हरणं लंकां रावणेन विसर्जनम् ॥ ४ ॥

दशरथविवाहश्च कैकेय्यै द्विवरार्पणम् । कैकेय्यै द्विजशापश्च वरदानकराय च ॥ ५ ॥

राजः श्यापो वैश्यहृत्पाश्र्वशृङ्गार्थमुद्यमः । ऋष्यशृङ्गमुनेस्तेजःप्रतापाद्वह्निनाऽर्पितम् ॥ ६ ॥

पायसं तद्विभक्तं च गृध्री भागं गिरौ नयन् । अन्तर्गर्भा नृपसत्यस्तामामासन्सुदोहदाः ॥ ७ ॥

ततो भूम्या मङ्गला मे प्रार्थनं मधराजनिः । चित्रे मासि मनोत्पत्तिवंधुभिश्च हनुमता ॥ ८ ॥

बालक्रीडा मत्कुला च यत्तद्वंधस्ततो मम । वेदाभ्यासो वसिष्ठाच्च तीर्थयात्रा च बंधुभिः ॥ ९ ॥

करनेसे ही बहुत-सी बातें याद आ गयी थीं । इन्हेंको रामकी आज्ञासे मैंने तुम्हें सुनाया है ॥ १२ ॥ १३ ॥ विष्णु-दासने पूछा—उस शतकोटिसंख्यात्मक रामायणमें कितने काण्ड और कितने सर्ग हैं ? सो कृपा करके तुम्हें बतलाइए । श्रीरामदासने कहा—हे द्विज ! सौ करोड़ संख्यात्मक रामायणमें कुल नौ लाख काण्ड तथा नब्बे लाख सर्ग हैं ॥ १४ ॥ कुल मिलाकर उस रामायणमें सौ करोड़ श्लोक हैं ॥ १५ ॥ विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! अब आपसे वह रामायण सुनना चाहता हूँ, जिसे स्वयं रामचन्द्रजीने आपको बतलाया था ॥ १६ ॥ जिसमें एक सौ नौ श्लोक हैं । कृपया अब मुझे वह सुनाइए । उसको सुननेके लिए मेरे हृदयमें बड़ा कीदृहल ॥ १७ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । सावधान होकर सुनो । आज मैं तुम्हें साररामायण सुनाऊँगा, जिसे श्रीरामचन्द्रजीने मुझसे कहा था ॥ १८ ॥ एक दिन कि मेरा पूजन समाप्त हो गया था, तब भगवान् अपने तीनों भ्राताओंके मेरे आये । उन्होंने प्रसन्न होकर यही साररामायण कहा था ॥ १९ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने कहा—हे रामदास ! मेरे चरित्रोंका जो सार अंग है, सो तुमसे कह रहा हूँ । इसे विस्तृतरूपसे तुम विष्णुदास नामके अपने शिष्यको सुनाता । क्योंकि वह मेरी भक्तिमें निमग्न है । इन चरित्रोंके अतिरिक्त तुमने अपने ज्ञानसे जो कुछ देखा-सुना हो या भारतखंडमें देखा हो, वह सब भी उसे सुना देना । स्मरण रखनेके लिए कुछ चरित्र मैं तुम्हें बतला रहा हूँ ॥ १-३ ॥ शिव-पार्वती-संवाद, आधे सूर्यवंशज राजाओंका चरित्र, मेरे माता-पिताका हरण, रावण द्वारा उनका लंका भेजा जाना, दशरथविवाह, कैकेयीको दो वरदान देना, कैकेयोंके लिए ब्राह्मणका शपथ, वरदान देनेवाले विप्रको राजाका श्राव्य, वैश्यहृत्पाश्र्वशृङ्गका लानेका उद्योग, ऋष्यशृङ्गके प्रभावसे अग्निद्वारा महाराज दशरथको पायस मिलना ॥ ४-६ ॥ उसके हिस्से लगानेपर उनका एक भाग एक गृध्रीका पर्वतपर लेकर चली जाना, रानियोंका गर्भिणी होना, भूमिके यहूका आकर मेरी स्तुति करना, मधराजी उत्पत्ति, चंद्रमासमें अपने सब भाइयों तथा हनुमान्जीके साथ मेरी उत्पत्ति, मेरी की हुई बालक्रीड़ाएँ, मेरा यज्ञोपवीतसंस्कार, वसिष्ठके पास वेदाध्ययन

विश्वमित्राद्विद्या ताडिकामर्दनं वने । प्रारम्भो रणदीक्षायाः सुबाहोर्मर्दनं मत्से ॥१०॥
 मारीचक्षेपणं चापि बह्वयोद्धरणं मया । स्वयंवरं च ज्ञापय मुनिपत्न्याः सविस्तरम् ॥११॥
 नौकापेन हि गङ्गायां मदग्निश्चालनं कृतम् । शैवं धनुर्जामदग्न्यन्यस्तं भयं सभागणे ॥१२॥
 सीतोत्पत्तिश्च सीताया लङ्कागमननिर्गमौ । वंशनां मे विवाहाश्च जामदग्न्यपराजयः ॥१३॥
 दीपावल्गुत्सवश्चापि नृपैः पथि महारणः । जीवनं भरतस्यापि मङ्गायि मुनिनेरितम् ॥१४॥
 शृंदाश्लापः पितुः पुण्यं कैकेयीपूर्वकर्म च । ततो मदिनचर्या च गर्भाधानमहोत्सवः ॥१५॥
 नारदाग्रे प्रतिज्ञा मे युवराज्यार्थमुद्यमः । कैकेयीवरदानेन दंडके गमनं मम ॥१६॥
 दर्शनं शुहकस्यापि सीतावाक्यं च ब्राह्मीम् । भारद्वाजवाल्मीकयोर्दर्शनं च गिरौ स्थितिः ॥१७॥
 काकाक्षिभेदनं चापि राक्षस मरणं पुरि । दर्शनं भरतस्यापि भरतस्य विसर्जनम् ॥१८॥
 सीतायास्तिलकोऽरण्येऽनुसूयाभूषणार्पणम् । विराघमर्दनं मार्गे नानाऽऽश्रमविलोकनम् ॥१९॥
 अगस्त्यश्चाथ गृध्रस्य दर्शनं सांघमर्दनम् । विरूपणं शूर्पणखायाः खरादीनां प्रमर्दनम् ॥२०॥
 सीतादेहविभाजश्च मारीचस्य वधो मया । सीताया हरणं लंका संगरश्च जटायुषः ॥२१॥
 इन्द्रेण पापसं दत्तं सीतायै गिग्निक्षेपणम् । कवचमर्दनं मार्गे शबरी पूजितस्त्वहम् ॥२२॥
 ततः सख्यं कपीन्द्रेण शिरशः क्षेपणं मया । छेदनं सप्तताडानां सर्पेण मालिका हता ॥२३॥
 बालेयार्तो मया तत्र सीताशुद्ध्यर्थमुद्यमः । हनुमताऽन्धितरणं लंकायां जानकीक्षेपणम् ॥२४॥
 मन्दोदरीममृत्पत्तिर्वनपाश्चादिमर्दनम् । लङ्कादाहश्च देहान्तं कर्तुं सिद्धोऽभवत्कपिः ॥२५॥
 जाम्बूनदधुशशास्त्राकथाऽन्धेस्तरणं पुनः । बहुमुद्रादर्शनं च सेतुवधस्ततः परम् ॥२६॥
 विभीषणाभिषेकश्च विश्वनाथकथा शुभा । गन्धमादनेशाख्यानं संगरश्च ततः परम् ॥२७॥

भ्राताओंके साथ तीर्थयात्रा, विश्वामित्रसे धनुर्विद्याकी प्राप्ति, ताड़िकासंहार, रणदीक्षाका प्रारम्भ, यज्ञभूमिमें सुबाहुका मर्दन, मारीचका समुद्रपार फेंका जाना, मेरे द्वारा बहल्याका उद्धार, सीतास्वयंवरमें गमन, बहल्याके शापकी विस्तृत कथा ॥७-११॥ गंगामें निषाद द्वारा मेरे पैर घोया जाना, परशुरामजीके द्वारा लाकर रखे हुए शङ्खरजीका धनुष मेरे द्वारा तोड़ा जाना, सीताकी उत्पत्ति, सीताका लंका जाना और वहाँसे फिर वापस आना, मेरा तथा मेरे भ्राताओंका विवाह, परशुरामकी पराजय, ॥ १२ ॥ १३ ॥ दीपावलीका उत्सव, रास्तेमें राजाओंके साथ महान् संग्राम, भरतका पुनर्जीवन, वृन्दाका शाप, मेरे पिताके पुण्य, कैकेयीके पूर्वकर्म, मेरी दिनचर्या, गर्भाधानमहोत्सव, ॥ १४ ॥ १५ ॥ युवराज न बननेके लिए नारदके मेरी प्रशिक्षा, मृषे युवराजपदपर अभिषिक्त करनेको तैयारियाँ, कैकेयीके वरदानसे दण्डक-वनगमन, निषादके साथ वार्तालाप, गङ्गाजीके लिए सीताकी कुछ मनोतिथियाँ, भारद्वाज और वाल्मीकि ऋषिके दर्शन, चित्रकूट पर्वतपर निवास, जयन्तके नेत्रभेदन, अयोध्यामें महाराज दशरथका मृत्यु, भरतजीका दर्शन और विसर्जन ॥ १६-१८ ॥ वनमें मेरे द्वारा सीताके माथेमें तिलक लगाया जाना, अनुसूया द्वारा भूषणार्पण, विराघमर्दन, अनेक आश्रमोंके दर्शन, ॥ १९ ॥ अगस्त्य और गृध्रके दर्शन, साम्बमर्दन, शूर्पणखाका विरूपकरण, खर आदि राक्षसोंका संहार, सीताके मारीचका विभाजन, मेरे द्वारा मारीचका वध, सीताहरण, रावण-जटायुसंग्राम, इन्द्र द्वारा सीताके लिए पापसं प्रदान, कवचमर्दन, शबरी द्वारा पूजित होकर सुग्रीवके साथ मित्रता, दुन्दुभीके अस्थि-को फेंकना, सात तालोंका भेदन, सर्पद्वारा मालिकाहरण, मेरे द्वारा मालिका संहार, सीताका पता पानेके उद्योगकी तैयारियाँ, हनुमानजी द्वारा समुद्रलंघन, लंकामें जानकीजीका दर्शन, मन्दोदरीकी उत्पत्ति-कथा, अशोकवनमें हनुमान्जीके द्वारा राक्षसोंका मारा जाना, सङ्कादहन, हनुमान्जीका शरीर त्याग करनेका आशेषन, ॥ २०-२५ ॥ जाम्बूनद धृषकी शास्त्राका वृत्तान्त, पुनः सिन्धुसंतरण, बहुमुद्रादर्शन, सेतुवधन, विभीषणका अभिषेक, विश्वनाथकी कथा, गन्धमादन पर्वतस्थ शिवजीका वृत्तान्त, राम-रावणसंग्राम, कास-

कालनेमिवधश्चाय तथैरावणमर्दनम् । मैरावणमर्दनं च मया मेषकभञ्जनम् ॥२८॥
 कुम्भकर्णवधश्चापि मेघनादस्य मर्दनम् । ततो होमस्य विष्वंसस्ततो रावणमर्दनम् ॥२९॥
 सीताया दिव्यदानं च स्वपुरोगमनं मम । रणदीक्षासमाप्तिश्च राज्याभिषेचनं ॥३०॥
 उत्पत्ती रावणादीनामिन्द्रजैत्रपरक्रमः । मानभंगो रावणस्य बालिसुग्रीवजन्मनी ॥३१॥
 वायुपुत्रजन्मकर्म वरदानं हनुमतः । शपोऽपि वायुपुत्रान्ध अगस्तेषु विसर्जनम् ॥३२॥
 इति सारकाण्डम् ॥ १ ॥

गंगायाप्राप्तमुद्योगः सरयुमेदनं ततः । मया स्वराजरेखा सीतावाक्यविसर्जनम् ॥३३॥
 कुम्भोदरस्य वाक्येन पृथ्वीयात्रा मया कृता । कुमारीवरदानं सुरभी केन मेर्जयिता ॥३४॥
 चिन्तामणेः शिवान्तामस्ततोऽयोध्याप्रवेशनम् ।

इति यात्राकाण्डम् ॥ २ ॥

आरम्भो बाजिमेषस्य पृथ्व्यां बाजी विमोचितः ॥३५॥

तुरगाय ससैन्याय मार्गदानं तु गंगया । पृथ्वीप्रदक्षिणां कृत्वा वाटेऽश्वस्य प्रवेशनम् ॥३६॥
 तमसातटशाला च कुम्भोदरप्रदर्शनम् । अष्टोत्तरशत नाम्ना मम स्तोत्रं मुनीरितम् ॥३७॥
 दिनचर्याध्वजारोपावबभूयोत्सवो मीठादानं च तन्मूर्त्ती रामतीर्थादिवर्णनम् ॥३८॥
 ततो यज्ञसमाप्तिश्च दश यज्ञा विज्ञेयतः ।

इति यागकाण्डम् ॥ ३ ॥

ततो मम स्तवराजः क्रीडाशालाप्रवर्णनम् ॥३९॥

पक्षिणां नवकं स्तोत्रं जानक्या वर्णनं मया । देहरामायणं पत्न्यै मया कथितमुत्तमम् ॥४०॥
 दिनचर्या पुनर्मे हि सीतालंकारवर्णनम् । पञ्चवाक्त्राणां च विस्तारो जलक्रीडा च सीतया ॥४१॥
 नाभ्याह्निकं भोजनादि मम कर्मप्रवर्णनम् । द्विजपत्न्यै भूषणानां दानं जनकजाकृतम् ॥४२॥
 रात्रौ नानास्पलेष्वत्र क्रीडाश्च विविधाः स्त्रियः । रुक्मषोडशमूर्तीनां न्यासाग्रे दानमर्पितम् ॥४३॥

मेमिवध, ऐरावणमर्दन, मैरावणवध, भञ्जकभञ्जन, कुम्भकर्णवध, मेघनादमरण, होमविध्वंस, रावणवध, ॥ २८-२९ ॥ सीताको शपथ, अयोध्या पुनरागमन, रणदीक्षाको समाप्ति, मेरा राज्याभिषेक, आदि-
 की उत्पत्ति और मेघनादके पराक्रमको कथा, मानभंग, बालि-सुग्रीवके जन्मको कथा, वायुपुत्रके
 जन्म-कर्मका वृत्तान्त, हनुमान्जीके लिए वरदान, हनुमान्जीके लिए माथ और अगस्त्यकृषिका विसर्जन,
 इतनी कथायें सारकाण्डमें कही गयी हैं ॥ १ ॥ ३०-३२ ॥ गंगायात्राकी तैयारी, सरयुमेदन, मेरे द्वारा बाणकी रेखा
 खिचना, कुम्भोदरके वाक्यसे मेरी पृथ्वीयात्रा, कुमारीको वरदान, मेरे लिए द्वारा सुरभी-दानका वृत्तान्त
 ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ शिवजीके पाससे चिन्तामणिकी प्राप्ति और फिर अयोध्या आना, ये इतनी कथायें
 यात्राकाण्डमें कही गयी हैं ॥ २ ॥ अश्वमेध यज्ञका आरम्भ, पृथ्वीप्रदक्षिणाके लिए घोड़ेका छोड़ा जाना, गङ्गाजीका
 मेरी सेना तथा घोड़ेके लिए रास्ता देना, समस्त पृथ्वी घूमकर घोड़ेका वापस आना, कुम्भोदर द्वारा तमसा-
 की तटशालाका अवलोकन, कुम्भोदर द्वारा कहा हुआ मेरा शतनामस्तोत्र, ॥ ३५-३७ ॥ मेरी दिनचर्या,
 ध्वजारोपण, अवभृथोत्सव, सीतादान, रामतीर्थ आदिका वर्णन, यज्ञसमाप्ति और दश यज्ञोंका वर्णन, ये
 इतनी कथायें यागकाण्डमें कही गयी हैं ॥ ३ ॥ इसके बाद मेरा स्तवराज, क्रीडाशालाका वर्णन, ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ श्री
 पक्षियोंका स्तोत्र, मेरे द्वारा जानकीकी शोभाका वर्णन, मेरे द्वारा सीताके लिए देहरामायणका वर्णन
 ॥ ४० ॥ मेरी दिनचर्या, सीताके अलङ्कारोंका वर्णन, पञ्चवाक्त्रोंका विस्तार और सीताके साथ जलक्रीडा
 ॥ ४१ ॥ भोजन आदि मेरे मध्याह्निकालीन कर्मोंका वर्णन, सीताजीके द्वारा विप्रपत्नीके

ततो निजेरपत्नीभ्यो वरदानं मयाऽर्पितम् । गुणवस्यै वरदानं पिमलायै वरार्पणम् ॥४४॥
सीतायाः प्रस्यवार्थं च दिव्यदानं मया मुदा । कुरुक्षेत्रेऽगस्तिपत्न्या संवादे जानकीजयः ॥४५॥
इति विलासकाण्डम् ॥ ४ ॥

सीताया दोहदार्यं हि कीडाऽऽरामादिषु कृता । सोमलोन्नयनादीनि नानाकर्मणि वै तवः ॥४६॥
विसर्जितश्च जनको वाल्मीकेराश्रमं मया । सीतया हं निजे रूपे कृतं मद्राज्यगौरवात् ॥४७॥
अंगुष्ठयोग्यो लिखितः कैकेय्याराधणो मदान् । लोकानां रञ्जकस्यापि क्षपरादादिदेहजा ॥४८॥
मया रञ्जस्तमोयुक्ता त्यक्ताऽऽनीतश्च तद्भुजः । पुत्ररूपेण पुत्रस्य कृतं गत्वा तु जातकम् ॥४९॥
व्रतयन्ता गत्वा कृताः श्रीजाह्नवीतटे । वाल्मीकिना लवानां च लवः पुत्रः कृत परः ॥५०॥
तयोः कृतं तु मुनिना रामरक्षाभिमतं यत् । कमलानां हरणे लवस्य विजयो महान् ॥५१॥
रामायणस्य श्रवणं पुत्रास्याभ्यां मयाऽश्वरे । मुदं लवकृतं चाथ जलैस्तस्याभिषेचनम् ॥५२॥
मुदं कुशेनाथ सीतायाः क्षपयस्वतः । सीताया ग्रहणं चापि विशस्या भूतलं पुनः ॥५३॥
ततो यज्ञसमाप्तिश्च बन्धुपुत्रजनिस्त्वतः । बालकीडोपनयनं वेदानां ग्रहणं क्रमात् ॥५४॥
बालानां शुभचिह्नानि सीतायाः पुत्रलालनम् । सर्वेषां व्रतनवाथ तेषां यातास्त्वतः परम् ॥५५॥
इति जन्मकाण्डम् ॥ ५ ॥

भूरिकीर्तेः पत्रिकया तत्पुरं गमनं मम । न्यग्रठाऽऽसीत्पुरस्त्रीणां दर्शनार्थं तदा मम ॥५६॥
वन्दितोऽहं नृपः सर्वस्तदा राजसभांमणे । क्रमेण वर्णनं चापि पार्थिवानां हि नदया ॥५७॥
कुशकण्ठे चम्पिकया रत्नमालाविसर्जनम् । क्रमेण वर्णनं चाथ पार्थिवानां सुनन्दया ॥५८॥
शुभत्वा रत्नमालाया लवकण्ठे विसर्जनम् । उत्साहोऽथ विवाहस्य नानासम्मानपूर्वकः ॥५९॥
गमनं हि स्नुषाभ्यां च सीतया स्वपुरीं मम । निग्रहो जलदेवीनां बालकानां प्रमोचनम् ॥६०॥

लिए भूषणदान, बहुत-सी स्त्रियोंके रात्रिके समय कीड़ा और सुवर्णमयी दोहश स्त्रियोंका दान, देवपत्नियोंके लिए मेरा वरदान, गुणवती और पिङ्गलक के लिए वरदान ॥ ४२-४४ ॥ सीताके विश्वासार्थ मेरी शपथ, कुरुक्षेत्रमें भगवन्की पत्नीके बातचीतमें जानकीकी विजय, इतनी कषायें विलासकाण्डमें वर्णित हैं ॥ ४॥ ४५ ॥ सीताकी गर्भकालीन इच्छा पूर्ण करनेके लिए बगीचे आदिमें विहार, सोमन्तोन्नयन आदि विविध संस्कार, मेरे द्वारा राजा जनकको वाल्मीकिके आश्रमपर भेजा जाना, मेरे कहनेसे सीताका दो रूप धारण करना, ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ सीताके अद्भुत अंगुष्ठके अनुसार कैकेयी द्वारा रावणका पूरा स्वल्प बनाया जाना, अपनी प्रजाके कर्तिपय लोगों और एक घोड़ीके मुखसे अपनी निन्दा सुनकर मेरे द्वारा सीताका परित्याग और उनकी भुजा काटकर भेगवाना, पुत्ररूपसे वाल्मीकिके आश्रमपर पहुँचकर बच्चेका जातकर्म-संस्कार करना, गङ्गाजीके तटपर मेरे द्वारा सौ अश्वमेध यज्ञ सम्पादित होना, वाल्मीकि द्वारा जल-बिन्दुओंसे लव नामक दूसरे पुत्रकी सृष्टि होना, फिर उन दोनों बच्चोंका वाल्मीकि द्वारा रामरक्षासन्धसे अभिमन्त्रित होना, कमलहरण करते समय लवकी एक बड़ी विजय ॥ ४८-४९ ॥ यज्ञभूमिमें लवकुशके मुखसे मेरा रामायणश्रवण, उनके साथ मेरे सैनिकोंका युद्ध और जलके धहोसे लवको स्नान कराया जाना, मेरे साथ कुशका संग्राम, सीताकी शपथ, पृथ्वीमें प्रवेश करती हुई सीताको मेरे द्वारा पुनः ग्रहण करना, यज्ञसमाप्ति, मेरे आश्रमोंकी पुत्रोत्पत्ति, बच्चोंकी बालकीड़ा, बच्चोंका उपनयनसंस्कार, बच्चोंका वेदाध्ययन, बालकोंके शुभ चिह्नोंका वर्णन, सीता द्वारा पुत्रोंका लालन-पालन, सब पुत्रोंका व्रतवच (उपनयन-संस्कार) ॥ ५२-५५ ॥ ये इतनी कषायें जन्मकाण्डमें हैं ॥ ५ ॥ भूरिकीर्तिकी पुत्रोंके स्वयंवरका समाचार पाकर मेरा प्रस्थान, उस पुरीकी स्त्रियों की मेरे दर्शनके लिए व्यग्रता, वहाँके सब राजाओंका मेरी बन्धना करना, नन्हा द्वारा सब राजाओंकी गोष्ठा और वंशवक्ता वर्णन, चम्पिकाका कुशके गलेमें रत्नमाला डालना, शुभति द्वारा लवके कण्ठमें मालाप्रक्षेप, विविध सम्मानपूर्वक विवाहोत्सव, सीता और अपनी पुत्रबन्धुओंके साथ रामका बयोध्याकी लौटना, जलदेवी द्वारा

सर्वेषां तु विवाहाश्च पृथक् पुत्रगृहाणि हि । कान्तिपुर्याश्च मदनसुन्दरीहरणं ततः ॥६१॥
यूपकेतोर्विवाहश्च पौत्राणां गणना ततः । पौत्रीणां गणना चापि सर्वैः सौख्यं ततो मम ॥६२॥

इति विवाहकाण्डम् ॥ ६ ॥

सहस्रनामस्तोत्रं मे कल्पवृक्षसुन्दरी । समानीतौ मया स्वर्गाद्भवं दुर्वाससेक्षणात् ॥६३॥
मत्कुम्भीपासकयोश्च संवादश्च परस्परम् । काकाय वरदानं च शतश्रीणां वरार्पणम् ॥६४॥
स्थानान्पुक्तानि निद्रायै कृतः क्रोधोऽनुयादिषु । शतशोष्णो रावणस्य पौंड्रकस्य वधोऽपि च ॥६५॥
सीताया विरहो जातो हतश्च मूलकासुरः । सीतायाश्च स्तुतिः केन लंकायां च प्रवेशनम् ॥६६॥
लंकायाः परित्यक्त्य भ्रामयित्वा पुरीं गतः । लाभः कपिलवाराहमूर्तेर्दत्ता च वंचये ॥६७॥
लवणासुरघातश्च मयुरायां निवेशनम् । पुत्राणां राज्यभागाश्च समद्वीपजयो ॥६८॥
यतिशूद्रगृध्रशिक्षा सप्तप्रेतमुज्जीवनम् । शूद्राणां वरदानं च द्विजश्रीणां वरार्पणम् ॥६९॥
षोडशश्रीसहस्राणां मृगया मम । कार्त्तिके वरदानं च पिप्पलं छेतुशुषमः ॥७०॥

इति राज्यकाण्डं पूर्वार्धम् ॥ ७ ॥

वाल्मीकेर्बचनाद्वाक्यं कतुमाज्ञापितं जनान् । आपोऽश्विनीकुमाराभ्यां गणयोश्च परस्परम् ॥७१॥
वज्रणा मेऽवताराणां वर्णनं च पृथक्कृतम् । जन्मत्रयं च वाल्मीकेर्वरदानस्मृतिर्मम ॥७२॥
मद्राज्यवर्णनं चाथ हेमायाश्च स्वयंवरम् । चित्रांगदेन संग्रामः कथा कंकणयोस्तथा ॥७३॥
लवस्य जीवदानं च राममुद्रा सविस्तरा । रामनाथपुरदानं विप्रैर्दृष्ट्य माकृतिः ॥७४॥
दिनचर्या मम ततः स्वल्पसंततिकास्थम् । कर्णध्वनेः कथा चापि मेऽवतारेष्वयं वरः ॥७५॥
पत्रपार्श्वे श्रीरासेति लेखनस्य च कारणम् । सुगुणायै वरदानं द्वे रूपे च ॥७६॥
तुलसीपत्रसंधिश्च रामायणभूतेः फलम् । सुसंभ्रजोवदानं च संग्रामश्च यमेन हि ॥७७॥

बन्धुका निग्रह और मेरे द्वारा उनका उद्धार ॥ ५६-६० ॥ सब बन्धुका विवाह, सब बालकोंके लिए अलग-अलग गृहनिर्माण, कान्तिपुरीसे मदनसुन्दरीका हरण, यूपकेतुका विवाह, मेरे पोतों और पोतियोंकी गणना, सब लोगोंके मेरा सौख्यवर्णन, ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ये इतनी कथाएँ विवाहकांडमें कही गयी हैं ॥ ६ ॥ मेरा सहस्रनामस्तोत्र, मेरे द्वारा कल्पवृक्ष और पारिजातका स्वर्गसे अपोद्धा जाना, मेरे और कृष्णके उपासकका संवाद, कोएके लिए मेरे द्वारा वरदान, सौ स्त्रियोंके लिए वरदान, अपने अनुचर आदिपर क्रोध, निद्राके लिए स्थानकपन, शतमुख रावण तथा पौंड्रकका वध, मेरा और सीताका विरह, मूलकासुरका वध, ब्रह्मा द्वारा सीताकी स्तुति और मेरा लंकामें प्रवेश, ॥ ६३-६६ ॥ लंकाकी चारों ओर घनुषकी रेखा बनाकर अपनी पुरीको प्रस्थान, बन्धुके लिए कपिलवाराहकी मूर्तिका दान, लवणासुरका वध, मयुरामें प्रवेश, पुत्रोंके लिए राज्यविभाजन, मेरे द्वारा सातों द्वीपोंकी विजय, यति-शूद्र और गृध्रका न्याय, ॥ ६७ ॥ प्रेतोंका पुनर्जीवन, शूद्रोंको वरदान, द्विज स्त्रियोंके लिए वरार्पण, सोलह हजार स्त्रियोंके लिए वरदान, मृगयावर्णन, कार्त्तिके लिए वरदान, पीपल वृक्ष काटनेके लिए उद्योग ॥ ६७-७० ॥ ये इतना कथाएँ राज्यकाण्डके पूर्वार्द्धमें वर्णित है ॥ ७ ॥ मेरे द्वारा ह्यस्यपर प्रतिबंध, वाल्मीकिके परामर्शानुसार लोगोंको हँसनेके लिए मेरे द्वारा आत्मा दिया जाना, अश्विनीकुमारों और मेरे गणोंमें परस्पर पापप्रदान, ब्रह्माजीके द्वारा मेरे अवतारोंका वर्णन, वाल्मीकिके वरदानसे तीन जन्मोंतकका स्मरण रहना, मेरे राज्यका वर्णन, हेमाका स्वयंवरवर्णन, चित्रांगदके साथ संग्राम, दोनों कंकणोंकी कथा, लवको जीवनदान, सविस्तार राममुद्राका वर्णन, रामनाथपुरका दान, विप्रों द्वारा हनुमान्जीका वर्णन ॥ ७१-७४ ॥ मेरी दिनचर्या, स्वल्प सन्ततिका कारण, कर्णध्वनिकी कथा, अन्य अवतारोंमें एक विशेष वरदान, पोथीके पन्नेकी बगलमें "श्रीराम" यह लिखनेका कारण, सुगुणकी वरदान, मेरा दो रूप धारण करना ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ तुलसीपत्र-

सप्तद्वीपेषु सर्वत्र धर्मशिक्षा मया कृता ।

हसि राज्यकाण्डमुत्तरार्धम् ॥ ॥

नारदोक्तं शतश्लोकैश्चरितं मम पावनम् ॥७८॥

पौराण्यपदेशश्च मन्मानुषा परास्यतः । मनःपूजा बहिःपूजा नररूपधर्मस्त्वहम् ॥७९॥
रामलिङ्गतोमद्राणां नानामेदा विचित्रिताः । मामनवम्या विस्तारः कथा सारराज्यसंभवा ॥८०॥
मम नामलेखनस्योद्यापनं दानविस्तरः । चिरञ्जीविन्विस्तारो वेदादीनां ध्रुतेः फलम् ॥८१॥
सार्द्धमासद्वयं नाम ते ॥ तिथिविस्तरः । गौरीव्रतस्य विस्तारो दोलके मम पूजनम् ॥८२॥
नवम्या मूर्तिदानं च मदनोत्सवविस्तरः । काम्यदेवविस्तारो रकाराद्यवरो गुणः ॥८३॥
मम नाम्नश्च महिमा मन्नामार्थ उदाहृतः । चैत्रव्रतस्य विस्तारो राक्षसादिगतिः स्मृता ॥८४॥
अद्वैतं दर्शितं लोकान्नारीणां च वरार्पणम् । मन्मुद्रावस्त्रमहिमा कवचं मे हनुमतः ॥८५॥
सीताया लक्ष्मणादीनां कवचानि पृथक् पृथक् । शीतलाव्रतमाहात्म्यं तस्य चोद्यापनं तथा ॥८६॥
रामनामतोमद्रं च मंत्राश्च कीर्तनाय च । पताकारोपणं नाम व्रतं सारुतितोषदम् ॥८७॥
पयोपदिष्टमेतच्च साररामायणं त्वयि । हनुमता शरसेतीरजुनस्यात्र खंडनम् ॥८८॥

इति मनोहरकाण्डम् ॥ ८ ॥

वाल्मीकिना सोमवंशनृपवृत्तानिवेदनम् । पुत्रयोगभिषेकश्च प्रस्थानं हस्तिनापुरम् ॥८९॥
ततो महान्तंगारश्च पुत्रयेश्च जयो मम । व्रजणा प्रार्थना मेऽत्र राज्ञमीकेश्च कुशस्य च ॥९०॥
रिपुस्त्राणां प्रार्थनया सीता पुत्रं न्यवारयद् । ततो विधेश्च वाक्येन वैकुण्ठं गन्तुमुद्यमः ॥९१॥
सोमवंशोद्भवायाश्च दशं वै हस्तिनापुरम् । आजमीढाभिषेकश्च सवर्षां च विसर्जनम् ॥९२॥
कुशस्य गमनं स्वीयपुरि राज्यं शशास मः । सर्पस्वसुः कुमुदस्या बारवंशसमुद्भवः ॥९३॥

की सन्धि, रामायणश्रवणका फल, सुमंत्रके लिए जीवनदान, यमराजके साथ सयान, सप्तद्वीपमें सर्वत्र मेरा धर्मशिक्षाका प्रचार किया जाना, ॥ ७७-७८ ॥ ये इतनी कथाएँ राज्यकाण्डके उत्तरार्धमें वर्णित हैं ॥ ७ ॥ नारद द्वारा सौ श्लोकोंमें मेरे पावन चरित्रका वर्णन, पुरवासियोंके लिए उपदेश, दूसरों द्वारा अपनी माताओं-
■ लिए उपदेश, मनःपूजा, बहिःपूजा, रामलिङ्गतोमद्रके अनेक भद्र, मात्मनवम्याका विस्तार, सारराज्यकी उत्पत्ति-
की कथा, मेरे नामलेखनका उद्यापन, दाना विस्तार, चिरञ्जीविन्विस्तार, वेदोंके श्रवणका फल ॥७९-८१॥
होई महीनेके लिए दत्त, तिथिका विस्तार, गौरीव्रतका विस्तार, दोलकमें मेरी पूजा, नवमीका मूर्तिदानकी विधि, मदनोत्सवका विस्तार, काम्य देवताओंका विस्तार, रकारादि अक्षरोंके गुणवर्णन, मेरे नामोंकी महिमा, मेरे नामके लिए उदाहृत चैत्रव्रतका विस्तार, राक्षसादि गतियोंका वर्णन, लोगोंको अद्वैत स्वस्वका दर्शन, स्त्रियोंके लिए वरार्पण, मेरी मुद्रा, मेरे नामसे अर्द्धित वस्त्रकी महिमा, हनुमत्कवचका वर्णन ॥८२-८५॥
राम, सीता, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्नकवच, शीतला व्रतका माहात्म्य, शीतला व्रतका उद्यापन, रामनामतोमद्र मंत्रका कीर्तन, पताकारोहण और हनुमान्जीकी प्रसन्न करनेवाले व्रतका वर्णन ॥ ८६-८७ ॥ इस तरह मैंने तुम्हें साररामायण सुना दिया । इसी रामायणके अन्तर्गत हनुमान्जीके द्वारा अर्जुनके शरसेतुके खण्डनकी भी कथा वर्णित है ॥ ८८ ॥ इतनी कथाएँ मनोहरकाण्डमें बतलाई गयी हैं ॥ ८ ॥
वाल्मीकिवर्णित सोमवंशके राजाओंका वृत्तान्त, दोनों पुत्रोंका अभिषेक, हस्तिनापुरके स्थानका वर्णन, दोनों पुत्रोंके साथ मेरा महासंग्राम, मेरी विजय, ब्रह्माजीके द्वारा मेरी, वाल्मीकिकी तथा लवकुशकी स्तुति, रिपु-स्त्रियोंकी प्रार्थनासे सीताका अपने पुत्रोंको छुड़ करनेसे रोकना, ब्रह्माके वाक्यसे मेरी वैकुण्ठयात्राकी तैयारी, सोमवंशियोंके लिए हस्तिनापुरका राज्यदान, आजमीढका राज्याभिषेक, सब लोगोंकी विदाई ॥ ८९-९३ ॥ लवकुशका अपनी राजधानीमें पहुँचना और नहीं करना, कुमुदतीसे सन्तानोत्पत्ति, कक्ष्मण एवं सुग्रीव आदि बानरों तथा

वरदानं लक्ष्मणाय वानरैर्यस्तथा मया । अयोध्यासंस्थितानां च ततो देहविसर्जनम् ॥९४॥
 वानरास्ते सुरा ■ सीता जाता रमा ■ । लक्ष्मणः पद्मगो जातः शंखोऽभ्रद्वारतस्तदा ॥९५॥
 सुदर्शनं च शत्रुघ्नो विष्णुरूपधरस्त्वहम् । तदोर्मिलादिकानां च प्रयाणं सर्वयोषिताम् ॥९६॥
 मीराजनं सुरसौभिस्तेषां सांगानिक पदम् । शंभुना संस्तुतश्चाहं गरुडारोहणं मम ॥९७॥
 पुष्पवृष्टिर्मपि तदा वैकुण्ठे गमनं मम । वैकुण्ठे रमया स्थित्वा देवानां च विसर्जनम् ॥९८॥
 सूर्यवंशानुक्रमश्चानन्दरामायणस्य ■ च । काण्डसंख्या सर्गसंख्या ग्रंथसंख्या फलभुक्तिः ॥९९॥
 रामायणध्वजस्योद्यापनं ■ महत्तमम् । ग्रंथदानमनुष्ठानं प्रकाराः ■ वै ततः ॥१००॥
 अनुष्ठानोद्यापनं च शकुनस्य च विस्तरः । संवादस्य पूर्णतापि युधयोर्गुरुशिष्ययोः ॥१०१॥
 भाष्यकाशेदनं देव्याः कलाऽस्य पठनस्य च । रामायणस्य महिमा चैकश्लोकेन वै त्विदम् ॥१०२॥

■ ध्यानं चेश्वदेव्योः संवादस्यापि पूर्णता ।

इति पूर्णकाण्डम् ॥ ९ ॥

एवं मया रामदास साररामायणं ■ ॥ १०३ ॥

स्मरणार्थं चरित्राणां संक्षेपेण निवेदितम् । इदं गोप्यं त्वया कार्यं महत्पुण्यप्रदं स्मृतम् ॥१०४॥
 शतकोटिमितग्रन्थात्सारं सारं मयोदितम् । कः क्षमः सकलं वक्तुं विना वाल्मीकिना भुवि ॥१०५॥
 स एव धन्यो वाल्मीकिर्येन मञ्चरितं कृतम् । साररामायणमिदं ■ पठत्यत्र मानवाः ॥१०६॥
 तेभ्यो भुक्तिश्च मुक्तिश्च द्विज दास्याम्यहं मुदा । कुत्स्नं रामायणं श्रोतुं पठितुं वा नरोत्तमान् ॥१०७॥
 अवकाशो यदा नास्ति तदैवत्संपठेभारः । अन्यद्यच्चन्मया कर्म ■ पूर्वं शुभाशुभम् ॥१०८॥
 तन्मच्छन्दस्त्वन्मुखाभिर्गमिष्यति निश्चयम् । त्वद्दृष्टिगोचरं कुत्स्नं चरितं मे भविष्यति ॥१०९॥
 विष्णुदासाय शिष्याय वद त्वमधुना सुखम् ॥११०॥

अयोध्यावासियोंके लिए वरदान, अपनी देहका त्याग, वानरोंका अपना शरीर छोड़कर फिर देवता बनना, सीताका लक्ष्मी बन जाना, लक्ष्मणका मोधरूप हो जाना, भरतका पांचजन्य शङ्ख होना, शत्रुघ्नका सुदर्शन चक्र हो जाना और मेरा विष्णुरूप धारण करना, उर्मिला आदि स्त्रियोंका प्रयाण, देवाङ्गनाओं द्वारा सब लोगोंकी आरती, शिवजी द्वारा मेरी स्तुति, मेरा गरुडारोहण, मेरे ऊपर पुष्पवृष्टि, मेरा वैकुण्ठगमन, वैकुण्ठमें लक्ष्मी-के साथ विराजमान होकर देवताओंका विसर्जन, ॥ ९३-९८ ॥ सूर्यवंशकी अनुक्रमणिका, आनन्द-रामायणकी काण्डसंख्या, सर्गसंख्या, रामायणध्वजका महाफल, ग्रन्थदानविधि, अनुष्ठानके पाँच प्रकार, ॥ ९९ ॥ १०० ॥ अनुष्ठान, उद्यापन, शकुनका विस्तार, तुम दोनों गुरु शिष्योंके संवादकी पूर्णता, देवीका भाष्यकाशेदन, इसके पाठकी कलाएँ, रामायणके एक-एक श्लोकके पाठकी महिमा, मेरा ध्यान और शिव-पार्वतीके संवादकी समाप्ति, ये इतनी कथायें पूर्णकाण्डमें कही गयी हैं ॥ ९ ॥ ■ रामदास । इस तरह ■ तुम्हें संक्षेपमें साररामायण बतलायी । इससे तुमको मेरे चरित्रोंका स्मरण करनेमें बड़ा सहायता मिलेगी । यह बड़ी पुण्यदायक रामायण है । इसलिए इसे सदा गुप्त रखना । सौ करोड़ संख्यावाली रामायणका सार अंग लेकर ही इसे मैंने तुमको बताया है । वाल्मीकिके सिवाय भला और कौन है, जो पूरे तीरसे रामायणका वर्णन कर सके ॥ १०१-१०५ ॥ वे वाल्मीकिजी ■ हैं, जिन्होंने अच्छी तरह मेरे चरित्रोंका वर्णन किया ■ । जो लोग ■ साररामायणका पाठ करते हैं । उन्हें ■ मुक्ति और मुक्ति सब कुछ देता है । यदि किसी सज्जनको पूरी रामायण पढ़ने या सुननेका ■ ■ मिले तो उन्हें इस साररामायणका ही पाठ कर लेना चाहिए । इनके अतिरिक्त ■ मैंने जो शुभ अशुभ कर्म किये हैं, वे मेरी इच्छासे तुम्हें मेरे चरित्र वर्णन करते समय अपने-आप स्मरण होते जाएंगे । मेरे सारे चरित्र तुम्हारे दृष्टि-गोचर होंगे ॥ १०६-१०९ ॥ अब तुम इसे अपने शिष्य विष्णुदासको आनन्दके साथ सुनाओ ॥ ११० ॥

श्रीरामदास उवाच

एवं श्रीरामचन्द्रेण यथाञ्च कथितं मम । साररामायणं रम्यं तदिदं ते निवेदितम् ॥१११॥
 इदं रम्यं पवित्रं च महापातकनाशनम् । सर्वदा मानवैर्जप्यं मुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥११२॥
 कृत्स्नं रामायणं श्रुत्वा यत्फलं प्राप्यते नरैः । तदस्य पठनादेव सत्यं सत्यं वचो मम ॥११३॥
 तस्माद्भूमिः सदा जप्यं सर्वेषां शान्तिकारकम् । पुत्रपौत्रप्रदं खोदं महत्सौख्यप्रदं नृणाम् ॥११४॥
 रामायणानि शतशः सन्ति शिष्यावनीतले । तथाऽप्यनेन सदृशं न भूतं न भविष्यति ॥११५॥

इति श्रीमत्कोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये मनोहरकाण्डे रामदास-

विष्णुसंवादे श्रीरामचन्द्रोपदिष्टं साररामायणं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः

(हनुमान्जीके द्वारा अर्जुननिर्मित वरसेतुमंजन)

श्रीविष्णुदास उवाच

कपिष्वजोऽर्जुनश्चेति मया पूर्वं भूतं गुरो । तन्नामकारणं मां त्वं विस्तराद्ब्रूतुमर्हसि ॥१॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया शिष्य सावधानमनाः शृणु । द्वापरान्तं भाविकथां स्वां वदामि धमत्कृताम् ॥२॥
 एकदा कृष्णरहितोऽर्जुनः स्यन्दनसंस्थितः । यथावरण्ये विचरन्मृगयार्थं द्वि दक्षिणाम् ॥३॥
 एकाकी यूतसंस्थाने स्थित्वा तत्कृत्यमाचरन् । इत्वा वने मृगान्धन्वी मध्याह्ने स्नातुमुद्यतः ॥४॥
 ययौ रामेश्वरं सेवी धनुःकोट्या विगाह्य च । मध्याह्नकृत्यं संपाद्य पुनः स्यन्दनसंस्थितम् ॥५॥
 अग्रेस्तटे विचचार किञ्चिद्भ्रमसमन्वितः । एतस्मिन्तरेऽरण्ये पर्वतोपरि संस्थितम् ॥६॥
 ददर्श मारुति वीरः सामान्यकपिरुपिणम् । राम रामेति जन्पतं विमलोमधरं शुभम् ॥७॥

दास बोले—जिस तरह रामचन्द्रजीने मेरे समक्ष साररामायणका वर्णन किया था, सो मैंने कह सुनाया ॥१११॥ यह साररामायण दिव्य, पवित्र और महान् पातकोंको नष्ट करनेवाला है। लोगोंको चाहिए कि भुक्ति और मुक्ति देनेवाले इस रामायणका पाठ करें ॥ ११२ ॥ पूरी रामायणके सुननेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल साररामायणके भी श्रवण करनेसे हो जाता है। मेरी सर्वथा सत्य है ॥ ११३ ॥ इसीलिए लोगोंको सर्वदा इसका पाठ करते रहना चाहिए। क्योंकि यह सबको शान्ति प्रदान करता है। यह पुत्र, पौत्र, स्त्री तथा महान् सुखोंका दस्ता है ॥ ११४ ॥ हे शिष्य ! वैसे तो इस पृथ्वीतलमें संकड़ों रामायण हैं, किन्तु इसके समान अबतक न कोई रामायण हुई है और न आगे होगी ॥ ११५ ॥ इति श्रीमत्कोटिरामचरितान्तर्गते श्री-मदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतंजपाख्येकृतं 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे साररामायणं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

विष्णुदास बोले—हे गुरो ! मैं कभी आपके मुखसे अर्जुनका कपिष्वज यह नाम सुन चुका हूँ। उनका यह नाम क्यों पड़ा, सो कृपा करके आप हमें बतलाइए ॥ १ ॥ श्रीरामदास कहने लगे—हे शिष्य ! तुमने ही उत्तम प्रश्न किया है। सावधान होकर सुनो। यद्यपि द्वापरके अन्तकी है, फिर भी तुम्हें बतलाता हूँ ॥ २ ॥ एक दिन कृष्णजीको छोड़कर धकेले अर्जुन वनमें शिकार खेलने गये और धूमते-धूमते दक्षिण दिशाकी ओर चले गये ॥ ३ ॥ तमय सारथीके स्थानपर स्वयं वे और घोड़ोंको हाँकते हुए चले जा रहे थे। इस तरह वनमें धूम-धूमकर दोपहरके समय उन्होंने बहुतसे वनजन्तुओंको मारा। इसके बाद स्नान करनेकी तैयारियाँ करने लगे ॥ ४ ॥ स्नान करनेके लिये वे सेतुबन्ध रामेश्वरके धनुषकोटितीर्थपर गये, बह्म किया और कुछ गर्वसे समुद्रके तटपर धूमने लगे। तभी उन्होंने एक पर्वतके ऊपर साधारण पारव करके हनुमान्जीको बैठे देखा। उस समय हनुमान्जी रामनाम रहे थे।

तमर्जुनोऽब्रवीद्वाक्यं किं नामास्ति कपे तव । तदर्जुनवचः श्रुत्वा विहस्य कपिरब्रवीत् ॥८॥
 यत्प्रतापाच्च रामेण शिलाभिः घतयोजनम् । बद्धोऽयं सागरे सेतुस्तं मां त्वं विद्धि वायुजम् ॥९॥
 इति तद्वर्त्महितं वाक्यं श्रुत्वाऽर्जुनस्तदा । गर्वाद्बिहस्य प्रोवाच मारुतिं पुरतः स्थितम् ॥१०॥
 वृथा रामेण सेतुर्वर्ध श्रमः पूर्वं कृतस्त्वयम् । कथं तेन शरैः सेतुं कृत्वा कार्यं कृतं न हि ॥११॥
 तदर्जुनवचः श्रुत्वा मारुतिः प्राह तं पुनः । मत्तुल्यकपिभारेण शरसेतुः पयोनिधौ ॥१२॥
 श्पुञ्जिष्यतीति गत्वा तं आकरोद्घुनन्दनः । तत्कपेर्वचनं श्रुत्वाऽर्जुनो मारुतिमब्रवीत् ॥१३॥
 कपिमाराद्यदा सेतुर्जले मग्नो भविष्यति । धनुर्विद्या धन्विनः का तदा वानरसत्तम ॥१४॥
 अधुनाऽहं करिष्यामि शरसेतुं तवाग्रतः । त्वं तस्योपरि नृत्पादि कुरुशत्रु यथासुखम् ॥१५॥
 धनुर्विद्यां ममाद्य त्वं कपे पश्यतुमर्हसि । तदर्जुनगिरं श्रुत्वा तमाह सस्मितः कपिः ॥१६॥
 ममाग्रगुप्फुभारेण शरसेतुस्त्वया कृतः । चेन्ममः स्यान्मसुद्रे हि तदा कार्यं त्वयाऽत्र किम् ॥१७॥
 तत्कपेर्वाक्यमाकर्ण्य सौऽर्जुनः प्राह तं पुनः । यदि ममः शरसेतुस्त्वद्भासतर्ह्यहं कपे ॥१८॥
 विश्वात्म्यप्रानलं सत्यं त्वं चाप्यद्य पणं वद । तत्प्रतिज्ञां कपिः श्रुत्वाऽर्जुनं वचनमब्रवीत् ॥१९॥
 मया स्वांगुप्फुभारेण त्वन्सेनुश्चेन्न लोपिवः । तर्हि त्वद्वज्रजम्स्थोऽहं तव साहाय्यमाचरे ॥२०॥
 तथाऽस्त्वित्यर्जुनः प्राह टण्कृत्य महद्बलुः । निर्ममे शरसंजालैः सेतुं दृढतरं वनम् ॥२१॥
 श्रतयोजनविस्तीर्णं सागरस्योर्ध्वतः स्थितम् । तं सेतुं मारुतिर्दृष्ट्वाऽर्जुनाग्रंऽब्रुवमावतः ॥२२॥
 अकरोत्सागरे मग्नं क्षणमात्रेण लीलया । तदा देवाः सर्गंधर्माः किन्नरोत्तराक्षसाः ॥२३॥
 विद्याधराश्चाप्सरसः सिद्धाद्या गगनस्थिताः । मारुतिं धर्जुनस्पाशे ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥२४॥
 तत्कर्मणाऽर्जुनश्चापि चितां कृत्वाऽन्धिरोषसि । निवारितोऽपि कपिना देहं त्यर्चुं समुद्यतः ॥२५॥

पीले रङ्गके रोए उनके शरीरपर बड़े मण्डे लग रहे थे ॥५-७॥ उन्हें देखकर अर्जुनने पूछा—हे वानर ! तुम कौन हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? अर्जुनका प्रश्न सुना तो हँसकर हनुमान्जी बोले कि जिनके प्रतापसे रामचन्द्रजीने समुद्रपर सौ योजन विस्तृत सेतु बनाया था, मैं बद्धो वायुपुत्र हनुमाव ॥८॥ ९॥ तरह वर्तमाने वचन सुनकर अर्जुनने भी गर्वसे हँसकर कहा कि रामने व्यर्थ इसना कष्ट उठाया । उन्होंने वाणोंका सेतु बनाकर क्यों नहीं अपना काम चला लिया ॥१०॥ ११॥ अर्जुनकी बात सुनकर हनुमान्जीने कहा—हम जैसे बड़े बड़े वानरोंके बोझसे वह वाणका सेतु डूब जाता, एही सोचकर उन्होंने ऐसा नहीं किया ॥१२॥ १३॥ अर्जुनने कहा—हे वानरसत्तम ! यदि वानरोंके बोझसे सेतु डूब जानेका भय हो तो उस धनुर्धारोंकी धनुर्विद्याकी ही भया विशेषता रही ॥१४॥ अभी इसी समय अपने कौशलसे वाणोंका सेतु बनाये देता हूँ, तुम उसके ऊपर आनन्दसे नाचो-कूदो ॥१५॥ इस देरी धनुर्विद्याका नमूना भी देख लो । अर्जुनकी ऐसी सुनकर हनुमान्जी मुसकराते हुए कहने लगे कि यदि मेरे परके अंगूठके बोझसे ही आपका बनाया सेतु डूब जाय तो क्या करियेगा ? ॥१६॥ १७॥ हनुमान्जीकी बात सुनकर अर्जुनने कहा कि यदि तुम्हारे भारसे सेतु डूब जायगा तो चिता लगाकर उसकी आगमें जल भरेगा । अच्छा, तुम भी कोई बाजा लगाओ । अर्जुनकी बात सुनकर हनुमान्जी कहने लगे कि यदि मैं अपने अंगूठेकी ही भारसे तुम्हारे बनाये सेतुको न डूबा सकूँगा तो तुम्हारे रथको ध्वजके पाद बैठकर जीवनभर तुम्हारी सहायता करूँगा ॥१८-२०॥ “अच्छा, यही सही” ऐसा कहकर अर्जुनने अपने धनुषका टंकोर किया और अपने वाणोंके समूहसे बहुत छोड़े समयमें एक सुदृढ़ सेतु बनाकर तैयार कर दिया ॥२१॥ सेतुका विस्तार सौ योजन था और वह सागरके ऊपर ही उतरा रहा था । उस सेतुको देखकर हनुमान्जीने उनके सामने ही अपने अंगूठके भारसे डूबा दिया । उस समय गन्धर्वोंके साथ-साथ देवताएँ भी हनुमान्जीपर फूलोंकी वर्षा की ॥२२-२४॥ हनुमान्जीके कर्मेसे सिन्न होकर अर्जुनने

एतस्मिन्मन्तरे कृष्णस्तं प्राह बहुरूपधृक् । ज्ञात्वाऽर्जुनमुखात्सर्वं पूर्ववत् एणादिकम् ॥ २६ ॥

उवाच ॥ यद्यन्वयितं पूर्वं तच्च वृथा गतम् ।

साक्षित्वेन विना कर्म सत्यं मिथ्या न बुध्यते ॥ २७ ॥

साक्षित्वेनाधुना मेऽत्र युवाभ्यां कर्म पूर्ववत् ।

कर्तव्यं तदहं दृष्ट्वा सत्यं मिथ्या वदाम्यहम् ॥ २८ ॥

तद्वदोर्वचनं श्रुत्वा द्वावृत्तस्तथेति च । ततश्चकार गांडीवी शस्त्रेण हि पूर्ववत् ॥ २९ ॥

सेतोरंतर्गतं चक्रं श्रीकृष्णश्चाकरोत्तदा ।

ततः स्वांगुष्ठभारेण कपिः सेतुं प्रपीडयत् ॥ ३० ॥

सेतुं इदं कपिर्ज्ञात्वा पादजानुकरादिभिः ।

बलेन पीडयामास ■ सेतुस्त्र्यंशचाल न ॥ ३१ ॥

तदा तूष्णीं हनुमान्स मंत्रयामास येनसि । एवं मयांगुष्ठभारात्सेतुश्चाग्नौ विलोपितः ॥ ३२ ॥

इत्यादिभिः कथं नायमिदानीं न विलुप्यते ।

कारणं बहुरेवाय बहूनायं हरिस्त्वयम् ॥ ३३ ॥

अस्तीत्यहं विजानामि स्मृतं पूर्ववरादिकम् ।

मद्गर्वपरिहारोऽद्य कृष्णेनानेन कर्मणा ॥ ३४ ॥

कृतोऽस्त्यत्र ■ कृष्णाग्रे मन्मर्कटसुपौरुषम् । इति निश्चित्य मनसि कपिः सोऽर्जुनमब्रवीत् ॥ ३५ ॥

जितं त्वया बटोर्वीणात्तत्र साहाय्यमाचरे ।

नायं बटुस्त्वयं कृष्णः सेतुश्चक्रमवेशकृत् ॥ ३६ ॥

स्वत्साहाय्यार्थमायायः सत्यं ज्ञातो मयाऽर्जुन ।

अनेन रामरूपेण त्रेगायां मे वरोऽर्पितः ॥ ३७ ॥

समुद्रके तटपर ही चिता तंगार की ओर हनुमान्जीके रोकलेपर भी वे उसमें कूदनेको उद्यत हो गये ॥ २६ ॥ इसी समय एक ब्रह्मचारीका रूप धारण करके श्रीकृष्णचन्द्रजी वहाँ आये और उन्होंने अर्जुनसे चितामें कूदनेका कारण पूछा । अर्जुनके मुँहसे ही सब ■ मालूम करके कहा कि तुम लोगोंने उस समय जो बाजी लगायी थी, वह निःसार थी । क्योंकि ■ समय तुम्हारी बातोंका कोई साक्षी नहीं था । साक्षीके बिना सब कुछका कोई ठिकाना नहीं रहता । इस समय मैं तुम्हारे समय साक्षीके रूपमें विद्यमान हूँ । अब तुम लोग फिर पहलेकी तरह कार्य करो तो मैं तुम्हारे कर्मोंको देखकर विजय-पराजयका निर्णय करूँगा ॥ २६-२८ ॥ ब्रह्मचारीजी ■ सुनकर दोनोंने कहा-ठीक है और फिर अर्जुनने पूर्ववत् सेतुकी रचना की ॥ २९ ॥ अबकी बार सेतुके नीचे कृष्णचन्द्रजीने अपना सुदर्शन चक्र ■ दिया । सेतु तंगार होनेपर हनुमान्जी पूर्ववत् अपने अंगूठेके भारसे उसे डुबाने लगे ॥ ३० ॥ अब हनुमान्जीने अबकी बार सेतुको मजबूत देखा तो पैरों, घुटनों तथा हाथोंके बलसे उसे दबाया, किन्तु वह जो भर भी नहीं डूबा ॥ ३१ ॥ चुपचाप हनुमान्जीने सोचा कि पहले तो मैंने अंगूठेके ही बलसे सेतुको डूबा दिया था तो फिर यह हाथ-पैर आदि मेरे पूरे शरीरके बलसे भी क्यों नहीं डूबता । इसमें ■ ब्रह्मचारीजी ही कारण हैं । ये ब्रह्मचारी नहीं, बल्कि साक्षात् कृष्णचन्द्रजी हैं और मेरे गर्वका परिहार करनेके लिए ही इन्होंने ऐसा किया है । वास्तवमें है भी ऐसा ही । भला, इन भगवान्के सामने हम जैसे धानरकी सामर्थ्य ही क्या ■ । ऐसा निश्चय करके हनुमान्जीने अर्जुनसे कहा कि आपने इन ब्रह्मचारीकी सहायतासे मुझे परास्त कर दिया है । ये कोई बटु नहीं, साक्षात् भगवान् हैं । इन्होंने सेतुके नीचे अपना सुदर्शन चक्र लगा दिया है ॥ ३२-३६ ॥ हे अर्जुन । हमें यह बात मालूम हो गयी है कि ये आपकी

दास्यामि दर्शनं तेऽहं द्वापरे कृष्णरूपधृक् । तत्सत्यं वचनं चाद्य कृतं त्वत्सेतुहेतुतः ॥३८॥

इत्यर्जुनं कपिर्षावदब्रवीत्सावदग्रतः ।

षडुरेवाभवत्कृष्णः पीतवासा धनप्रभः ॥३९॥

तदर्शनोर्ध्वरोमाऽभूत्प्रणनाभाज्जनीसुतः ।

आलिङ्गिनोऽपि कृष्णेन स मेने कुरुतस्तथा ॥४०॥

अहं ययौ यथास्थानं श्रीकृष्णस्थातृया तदा । सागरेण स्वकल्लोलैः क्षासेतुर्विलोपितः ॥४१॥

तदाऽर्जुनो गर्वहीनो मेने कृष्णेन जीवितः ।

कृष्णस्तदाऽर्जुनं प्राह त्वया रामेण स्पर्द्धितम् ॥४२॥

इन्मता धनुर्विद्या तवातोऽत्र मृषा कृता ।

यत्प्रतापादिति गिरा न्वयाऽपि बायुनन्दन ॥४३॥

रामेण स्पर्द्धितं यस्मात्तस्मादर्जुन संजितः । अतः परं वीनगर्वस्त्वं मां भज निरन्तरम् ॥४४॥

इत्युक्त्वा मारुतिं पृष्ट्वाऽर्जुनेन तत्पुरं ययौ ।

अतः कपिष्वज्जर्षोति जनैर्जुन ईर्यते ॥४५॥

इति भाविकथा पृष्टा त्वया साऽपि मयोदिता ।

किमग्रे श्रोतुकामोऽसि तत्पृच्छस्व वदामि ते ॥४६॥

विष्णुदास उवाच

गुरोऽधुना राघवस्य वैकुण्ठारोहणोत्सवम् ।

मां वदस्व सविस्तारं येनाहं तोषमाप्नुयाम् ॥४७॥

श्रीरामदास उवाच

पूर्वकांडं तावाद्याहं वदिष्यामि शृणुष्व तत् ।

सहायताके लिए ■ यहाँ आये हैं । यही रूप धारण करके जेतामें रामने हमें वरदान दिया था कि द्वापरके अन्तमें ■ तुम्हें कृष्णरूपसे दर्शन दूंगा । आपके सेतुके बहाने इन्होंने अपना वरदान भी आज पूरा कर दिया ॥ ३७॥ ३८॥ । हनुमान्जी अर्जुनसे ऐसा कह ही रहे थे कि इसनेमें भगवान् अपने बटरूपको त्यागकर कृष्ण ■ गये । उस ■ पीले वस्त्र पहने ■ और नववीरके ■ उनका श्याम शरीर था । उन कृष्णचन्द्रजीका दर्शन करते ■ हनुमान्जीके रोंगटे सड़े ■ गये और उन्होंने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया ॥ ■ श्रीकृष्णने हनुमान्जीको ठठाकर अपने हृदयसे लगाया, तब हनुमान्जीने अपनेको कृतकृत्य मान लिया ॥ ३९॥ ४०॥ श्रीकृष्णके आज्ञानुसार चक्र सेतुसे निकलकर अपने स्थानको चला गया और अर्जुनका ■ सेतु भी समुद्रकी तरंगोंमें लुप्त हो गया ॥ ४१॥ ■ तरह अर्जुनका गर्व नष्ट हो गया और उन्होंने समझा कि कृष्णने हमें जीवित रख लिया । ■ देर ■ श्रीकृष्णजीने अर्जुनसे कहा कि तुमने रामके साथ स्पर्द्धा की थी । इसलिए हनुमान्जीने तुम्हारी धनुर्विद्याको व्यर्थ कर दिया था । इसी प्रकार हे पवनसुत ! तुमने भी रामसे स्पर्द्धा की थी । इसी कारण तुम अर्जुनसे परास्त हुए । तुम्हारा गर्व नष्ट हो गया । ■ आज-भूके ■ मेरा भजन करो । ऐसा कह और हनुमान्जीसे पूछकर श्रीकृष्ण अर्जुनके ■ हरिनापुर चले गये । हे शिष्य ! इसी कारण अर्जुन कपिष्वज्जर्ष कह जाते हैं ॥ ४२-४५॥ । यद्यपि तुमने हमसे ■ पविष्यकी ■ पूछी थी, फिर भी मैंने कह सुनाया । अब आगे क्या सुनना चाहते हो सो बताओ । मैं तुमको सुनाऊँ ॥ ४६॥ विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! ■ मैं रामचन्द्रजीके वैकुण्ठारोहणका वस्तुन्त सुनना चाहता हूँ । श्री आप विस्तारपूर्वक हमें बताइए, जिससे हमारे हृदयको सन्तोष हो । श्रीरामदासने कहा—आगे मैं तुमसे पूर्वकांड कहनेवाला हूँ । उसमें भगवान्के वैकुण्ठारोहणका वृत्तांत तुम्हें अच्छी तरह सुननेको मिलेगा ॥ ४७॥

यस्मिंश्च रामचन्द्रस्य वैकुण्ठारोहणोत्सवम् ॥४८॥
 इदं मनोहरं काण्डं मया ते समुदीरितम् ।
 ये शृण्वन्ति नरा भूम्या तेषां रामे रतिर्भवेत् ॥४९॥
 मनोऽभिलषितान् कामास्ते लभन्ते ॥ संशयः ।
 पुत्रार्थी प्राप्नुयात्पुत्रं धनार्थी धनमाप्नुयात् ॥५०॥
 इदं रम्यं पवित्रं च श्रवणान्मगलप्रदम् ।
 पठनीयं प्रयत्नेन रामसद्भक्तिवर्द्धनम् ॥५१॥
 आनन्दरामायणमप्यसंस्वं मनोहरं काण्डमिदं विचित्रम् ।
 पठन्ति शृण्वन्ति शृण्वन्ति मर्त्यास्ते स्वीयकामानलिलान् लभन्ते ॥५२॥
 इदं पवित्रं परमं विचित्रं नानाचरित्रं त्वत्तिपुण्यदं च ।
 सदा नरैः श्राव्यमिदं मुदा श्रीसीतापतेर्भक्तिविशुद्धिकारि ॥५३॥

इति श्रीमत्तकोटिरामचरितामृतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकाण्डे रामदासविष्णु-
 दाससंवादे हनुमता शरसेतुभंगो नाम ॥ १८ ॥

मनोहरकाण्डे सर्गा आनन्दरामायणेऽष्टादशः शतक्याः ।
 एकत्रिंशच्छताः श्लोका रामदासमुनिना पापनुदः प्रोक्ताः ॥ १ ॥

अथ मनोहरकाण्डे प्रकरणानुक्रमः ।

लघुगमायणम् ॥ १०४ ॥ वैकुण्ठारोहणम् ॥ १५५ ॥ रामपूजा ॥ २७५ ॥ लघुरामतोमरम्
 ॥ १०९ ॥ रामलिंगतोमरम् ॥ ३७७ ॥ नवमीव्रतम् ॥ २४१ ॥ रामनवम्युद्यापनम् ॥ १३२ ॥ वेदा-
 दिकाव्यपूजा ॥ १२७ ॥ विशेषकालपूजा ॥ १९३ ॥ चैत्रमहिमावर्णनम् ॥ १६७ ॥ विद्याचमूक्तिः

॥ ४८ ॥ मैंने तुम्हें यह मनोहरकाण्ड सुनाया है । जो लोग इस काण्डको सुनते हैं, उन्हें रामचन्द्रजीकी भक्ति
 प्राप्त होती है ॥ ४९ ॥ ॥ अपना मनोऽभिलषित फल प्राप्त ॥ लेते हैं । इसमें कोई संशय नहीं है । इसको
 सुननेवाला यदि पुत्र चाहता हो तो पुत्र और धनार्थी धन पाता है ॥ ५० ॥ यह काण्ड बड़ा रम्य, पवित्र और
 सुननेसे मङ्गलदायक है । इसलिए लोगोंको प्रयत्न करके इसका पाठ करना चाहिए । इसके पाठसे रामके
 चरणोंमें भक्ति बढ़ती है ॥ ५१ ॥ आनन्दरामायणके अन्तर्गत यह मनोहरकाण्ड बड़ा विचित्र है । जो लोग इसका
 पठन-श्रवण तथा मनन करते हैं, वे अपना सारी कामनायें पूर्ण कर लेते हैं ॥ ५२ ॥ यह काण्ड परम पवित्र,
 विचित्र, भगवान्‌के विविध चरित्रोंसे भरा हुआ और अतिशय पुण्यदायक है । इसलिए लोगोंको चाहिए कि
 रामकी भक्ति बढ़ानेवाले इस मनोहरकाण्डका ॥ श्रवण करें ॥ ५३ ॥ इति श्रीमत्तकोटिरामचरितामृतं
 श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृतं ग्योस्नाभाषाटोकासहिते मनोहरकाण्डे
 अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

इस मनोहरकाण्डमें कुल बठारह सर्ग ॥ और इसमें रामदास मुनिने पापनाशकारी एकतीस सौ
 श्लोक कहे हैं ॥ १ ॥ मनोहरकाण्डका प्रकरणानुक्रम—लघुरामायणमें १०४, वैकुण्ठारोहणमें १५५, राम-
 पूजामें २७५, लघुरामतोमरमें ३०९, रामलिंगतोमरमें ३७७, नवमीव्रतमें २४१, रामनवमीउद्यापनमें १३२,

॥२९६॥ अद्वैतवर्णनम् ॥ १०७ ॥ कवचद्वयम् ॥ ८८ ॥ सीताकवचम् ॥ १०३ ॥ लक्ष्मण-भरत-
शत्रुघ्नकवचानि ॥ १८२ ॥ हनुमत्पताकारोपणम् ॥ ६५ ॥ साररामायणम् ॥ १५२ ॥ शरसेतुमङ्गः
॥ ५३ ॥ इति प्रकरणानि । एवं मिलित्वा मनोहरकाण्डे श्लोकसंख्या ॥३१००॥ इयं मंत्रवृत्तादि-
रहिता संख्याऽस्ति ।

देवादिकाव्यपूजामें १२७, विशेषकाष्ठी पूजामें १९३, चैत्रमहियावर्णनमें १६७, पिशाचमुक्तिमें २६६,
अद्वैतवर्णनमें १०७, हनुमत्कवच तथा रामकवचमें ८८, सीताकवचमें १०३, लक्ष्मण भरत ■ शत्रुघ्नकवचमें
१८२, हनुमत्पताकारोपणमें ६५, साररामायणमें १५२ और शरसेतुमङ्गमें ५३ श्लोक कहे गये ■ और ये ही १८
प्रकरण वर्णित हैं । सब मिलाकर ३१०० श्लोक इस काण्डमें हैं । किन्तु ■ संख्या मन्त्र और वृत्त आदि-
■ संख्या छोड़कर बतायी है ।

॥ इति आनन्दरामायणे मनोहरकाण्डं समाप्तम् ■

श्रीरामचन्द्राय नमस्तु ।



श्रीसीताय नमः
श्रीबाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं—

आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्



पूर्णकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

(सोमवंशी राजाओंकी कथाका विस्तार)

श्रीरामदास उवाच

अथ स्थासति राजेन्द्रे रामे सीताभिर्गजिने । समाधामेकदा दूतः सुषेभस्य गजाह्वयात् ॥ १ ॥
समाधयो स विकलो रामं नत्वाऽप्रसीदचः । राम राजावपत्राक्ष सानवशोऽर्जुनैः ॥ २ ॥
संवेष्टितं गजपुरं नलाद्यैश्चिरजीविभिः । तद्दूतवचनं श्रुत्वा राघवोऽर्शव विस्मितः ॥ ३ ॥
नसिष्ठं प्राह भद्राम्ये न कदा पार्थिवोत्तमाः । समागता मया योर्दु किमिदानीं हि श्रूयते ॥ ४ ॥
किं कारणं गुरो मत्र विचारय सविस्तरम् । तद्रामवचनं श्रुत्वा तं गुरुः प्रत्यभाषत ॥ ५ ॥
प्रष्टव्यमद्य वाल्मीकिं येन ते चरितं कृतम् । तच्छ्रुत्वा लक्ष्मण प्रप्य समाहूयाथ तं मुनिम् ॥ ६ ॥
सीतया पूजनं कृत्वा रामो वृत्तं न्यवेदयत् । वाल्मीकिस्तु तदा प्राह राम किंचिद्विद्वदस्य सः ॥ ७ ॥
किं त्वं न वेत्सि राजेन्द्र विनोदान्मया तु पृच्छसि । शृणुष्व तर्हि मे वाक्य सर्वं शृण्वन्तु ते प्रियाः ॥ ८ ॥
एकादश सहस्राणि वत्सराणि तथा पुनः । एकादश समाश्चापि मासास्त्वकादशव हि ॥ ९ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—जब कि रामचन्द्रजी सीताके साथ सुख भोगसे हुए अयाध्याका राज कर रहे थे । उन्हीं दिनों सुषेणका एक घबड़ाया हुआ दूत हस्तिनापुरसे आ पहुँचा । उसने भगवान्‌को प्रणाम करके कहा—हे राजावपत्राक्ष राम ! सोमवंशी राजे नल आदिने हस्तिनापुरको चारों ओरसे घेर लिया है । दूतकी यह बात सुनकर रामचन्द्रजी बड़े विस्मित हुए ॥ १-३ ॥ वे गुरु वासिष्ठसे बोले—हे गुरुवर ! यह मे क्या सुन रहा हूँ ? आज तक तो कभी ये राजे मेरे साथ युद्ध करने नहीं आये थे ॥ ४ ॥ कुछ करके आप इसपर सविस्तर विचार करिए । रामकी बात सुनकर वासिष्ठजीने कहा कि यह बात आप वाल्मीकिजीसे पूछें । क्योंकि उन्होंने ही आपके चरित्रकी रचना की है । यह सुनकर रामने लक्ष्मणका भेजकर वाल्मीकिजीको बुलवाया ॥ ५ ॥ ६ ॥ वाल्मीकिने आनेपर सीताके साथ-साथ रामने उनका पूजा की और हस्तिनापुरका सब समाचार कह सुनाया । वाल्मीकिने हँसकर कहा—क्या आपको ये बातें नहीं मालूम हैं ? मालूम हैं । किन्तु कौतुक वश आप हमसे पूछ रहे हैं । अच्छा, आपकी यही इच्छा है तो सुनिए । आपका श्रियजन भगवान्‌ सावधानीके साथ मेरी बात सुनें ॥ ७ ॥ ८ ॥ ग्यारह हजार ग्यारह वर्ष, ग्यारह महीना, ग्यारह दिन, ग्यारह घंटा और ग्यारह पलका समय

एकादश दिनान्यत्र षटिकाश्चापि तन्मिताः । एकादश पलान्येव ते राज्यं निश्चितं मया ॥१०॥

अतकोटिमिते काण्ये पुरेव तेऽवतारतः ।

तन्मध्येऽत्र सतीतानि सहस्राणि तथा समाः । अतीताः शेषभूताश्च माताः शेषं दिनादिकम् ॥११॥
 अष्टादशदिनैर्न्यूनमग्रे वर्षं प्रभोऽत्र यत् । शेषभूतं सङ्गरेण परिपूर्णं भविष्यति ॥१२॥
 अयं कालोऽवतारस्य समाप्तेस्ते समागतः । गत्वा भागीरथीं पुण्यां पूर्वजेनावनीतलम् ॥१३॥
 प्रापितां तत्र राजेन्द्र तस्यां स्नात्वा यथाविधि । स्तुतो ब्रह्मादिकैः सर्वैः पदं स्वीयं भविष्यति ॥१४॥
 तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा राघवो वाक्यमब्रवीत् । एतावत्कालपर्यन्तं नलायाः संस्थिताः ॥१५॥
 कुतोऽधुना समायातास्तत्सर्वं विस्तराद्ब्रू । तद्रामवचनं श्रुत्वा वात्मीकिर्वचनमब्रवीत् ॥१६॥
 मृगु राम महाबाहो सर्वं ते कथयाम्यहम् । अत्रिर्मुनिः पुनराम पूर्णिमायां कृते पुनः ॥१७॥
 वैशाख्यामेकदा सोमं दृष्ट्वा नारीमुखोपमम् । मुनोच वीर्यं भूम्यां स तस्मात्पुत्रो बभूव ॥१८॥
 सोमस्य दर्शनाज्जातः सोमारूपः बभूव ह । सोऽरण्ये जङ्घवीतरे चकार तप उत्तमम् ॥१९॥
 एतस्मिन्समये तत्र कश्चिदस्ती समाधायो । निहतः पक्षिभिस्तत्र तद्दृष्ट्वा कौतुकं गदत् ॥२०॥
 सोमो विचारयामास पक्षिभिर्निहतः करी । अस्या भूम्याः प्रभावोऽयं पुरं तत्र चकार सः ॥२१॥
 हस्तिनाश्रितपुरं जातं तस्माच्च हस्तिनापुरम् । तत्र पीरैः कुतो राजा सोम एव रघूत्तम ॥२२॥
 तस्य जातो बुधः पुत्रस्त्रावुभी जगतीतलम् । सद्दीपं स्ववशं कृत्वा सुरलोकं प्रजग्मतुः ॥२३॥
 तत्र जित्वा सुरान्सर्वान्सुरस्त्रीभिश्च संयुतो । मुक्त्वा देवान्स्वर्गलोके निवासं यक्रतुर्मुदा ॥२४॥
 तयोर्ददौ वरान्ब्रह्मा युवां मद्गन्धसंभवौ । युवाभ्यां मोचितस्त्वद्य देवसंघयुनस्त्वहम् ॥२५॥
 युवाभ्यां तर्ह्यहं बन्मि वरांश्छृणुत बालकौ । युष्मद्गन्धे नृपाः केचिदग्रे त्रिपुरलोर्ध्वतः ॥२६॥

आपको राज्य करनेके लिए मैंने निर्धारित किया था ॥ ६ ॥ १० ॥ ये बातें आपके अवतारके पहले ही अपने अतकोटिसंघातमक रामायणमें लिख चुका हूँ । वे ग्यारह हजार ग्यारह वर्ष व्यतीत हो गये । अब ग्यारह महीना और ग्यारह दिन तथा षष्ठी-पल आदि ही बाकी बचे ॥ ११ ॥ मिलाकर अष्टादश दिवस न्यून एक वर्ष बाकी हैं । यह समय संग्राममें समाप्त होगा ॥ १२ ॥ आपके अवतारका समय समाप्त हो रहा है । आप अपने पूर्वज अर्थात् भागीरथ द्वारा लायी हुई गङ्गामें विधिवत् स्नान करके ब्रह्मादिक देवताओंसे संस्तुत होकर अपने परम धामको जायेंगे ॥ १३ ॥ १४ ॥ वात्मीकिनी मुनकर रामने कहा कि अवतक ये नल आदि राजे कहाँ थे ? ॥ १५ ॥ कहाँसे आ गये हैं, यह सब आप हमें विस्तारपूर्वक बतलाइए । रामका वचन सुनकर वात्मीकि बोले-हे राम ! महाबाहो ! मैं सब कुछ कहता हूँ, सुनिए । बहुत दिन हुए, सत्ययुगमें अत्रि ऋषिने वैशाखकी पूर्णिमाको मुक्त स्वर्गके सुन्दर देखकर अपना वीर्य दगाग दिया और उससे एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १६-१८ ॥ चन्द्रमाको देखनेसे यह पुत्र उत्पन्न हुआ था । इसलिए वह सोम कहलाया और वनमें जाकर गङ्गाजीके तटपर उत्तम तप करने लगा ॥ १९ ॥ उसी समय वहाँ एक हारपी जा गया । उस हारपीको कुछ पक्षियोंने मिलकर मार डाला । यह महाकौतुक देखकर सोमने अपने मनमें सोचा कि यहाँके पक्षियोंने हारपीको मार डाला । अवश्य इस भूमिका ही प्रभाव है । ऐसा विचार करके सोमने उसी स्थानपर एक नगर बसाया ॥ २० ॥ २१ ॥ उसी स्थानपर पक्षियोंने हारपीका विनाश किया था । इस कारण उसका हस्तिनापुर नाम पड़ गया । हे रघूत्तम ! यहाँके पुरवासियोंने आप्रहृ करके सोमको ही वहाँका राजा बनाया ॥ २२ ॥ सोमके बुध नामका पुत्र हुआ । फिर गया था, बुध और सोमने मिलकर सब द्वीपोंको अपने अधीन कर लिया और कुछ दिनोंके अनन्तर स्वर्गलोकको गये ॥ २३ ॥ उन्होंने स्वर्गमें देवताओंको जोतकर छोड़ दिया और वे सर्वत्रिक वहाँ रहने लगे ॥ २४ ॥ उन दोनोंको ब्रह्माने अनेक वरदान दिये । ब्रह्माने

अन्यैः पराजिताः सप्त पुरुषा न भवन्ति हि । इति दत्त्वा वरं ब्रह्मा ययौ निजपदं प्रति ॥२७॥
 ततः सोमाय दौहित्री दत्ता पद्मावती शुभा । इन्द्रेण तत्र तौ सोमबुधौ स्वैरं स्थितौ चिरम् ॥२८॥
 बुधस्य तनयो भूम्या नाम्नाख्यातः पुरुरवाः । चक्रार राज्यं धर्मेण तथा तद्वस्तिनापुरे ॥२९॥
 तस्य पुत्रश्च गन्धोऽभूद्रव्यपुत्रोऽल्प उच्यते । अल्पपुत्रो नल श्रीमान् दिक्पालान् जेतुमुद्यतः ॥३०॥
 राज्ये पुरुरवादींश्च त्रीन् स्यास्य निजपूर्वजान् । सप्तद्वीपनृपैर्युक्तः प्रययौ मेरुमुन्नतम् ॥३१॥
 आदौ जित्वा सबहिं हि यमं जित्वाश्च निर्ऋतिम् । प्रययौ वरुणं जेतुं रावणादिभिरन्वितः ॥३२॥
 एतस्मिन्नन्तरे राम तूर्णं सैन्येन रावणः । प्रययौ नाकलोकं हि सुरानिद्रादिकान् रणे ॥३३॥
 जित्वा निनाय स्वां लंकां सोमो युद्धाय सान्मजः । निर्ययौ सुहृदः सर्वान्मेन्द्रान् मोचयितुं सुरान् ३४॥
 तदा निवारयामास ब्रह्मा सोमं त्वरान्वितः । विष्णुर्भूत्वा नृषेण रावणं हि हनिष्यति ॥३५॥
 एवं मास्य रावणं याहि वरस्तस्मै मयाऽर्पितः । तद्वज्रगचनं ध्रुत्वा ययौ सोमोऽधरावलीम् ॥३६॥
 भूम्यां नलस्ततो गत्वा वरुणं परमं तथा । जित्वा कुबेरमीशानं कृतकार्यममन्यत ॥३७॥
 आत्मानं च ततः स्वर्गं घेद्रे जेतुं समुद्यतः । एयं नलेन भ्रमता ममं तच्च कृतं युगम् ॥३८॥
 त्रेतायुगसमाप्तौ स ददर्श सकलं बलम् । तत्रादृष्ट्वा रावणं स दृताच्छ्रुत्वाऽवनीं त्विति ॥३९॥
 देवान्स्वशगान् कृत्वा लंकां स्वां स गतः पुराः । तत्र मागे तु भ्रमतो नलस्य नद्युक्तः सुतः ॥४०॥
 पुत्रस्यस्य जातीकस्तत्सुतो वसुदः स्मृतः । तस्य पुत्रो लघुभ्रुतः सुरयस्तत्सुतः स्मृतः ॥४१॥
 अजमीदस्तु तत्पुत्रस्त्वेवं वंशोऽभवत्पथि । ततः स मंत्रयामास नलो मंत्रिजनैः सह ॥४२॥
 किमर्थमिदलोकं तं गन्तव्यमधुना यदि । भुवि देवाः समानीता लङ्कायां रावणेन हि ॥४३॥

कहा-तुम दोनों मेरे बंधज हो । तुमने मेरे सहित सम्पन्न देवताओंको जीतकर भी छोड़ दिया है । इसलिए मैं तुम्हें यह वरदान देता हूँ कि तुम्हारे वंशमें तीन पीढ़ीके आगे सप्त युग तक बितने राजे होंगे, वे किसीसे भी पराजित नहीं होंगे । ■ प्रकार वरदान देकर ब्रह्मा अपने स्थानको चले गये ॥ २५-२७ ॥ इसके अनन्तर इन्द्रेण पद्मावती नामकी अपनी सुन्दरी नतिनी सोमको दे दी । इस तरह वे सोम और बुध आदिदेवोंके साथ बहुत दिनों तक स्वर्गलोकमें रहे ॥ २८ ॥ बुधका पुत्र ■ संसारमें पुरुरवा नामसे विख्यात हुआ । उसने धर्मपूर्वक हस्तिनापुरमें राज्य किया ॥ २९ ॥ उसका पुत्र गन्ध हुआ । गन्धका पुत्र अल्प और अल्पका पुत्र ■ हुआ । नल इतना प्रबल वीर था कि उसने दसों दिक्पालोंको जीतनेकी इच्छा की । सेनाकी तैयारी करके वह हस्तिनापुरमें पुरुरवा आदि तीन पूर्वजोंको छोड़कर सातों द्वीपोंके राजाओंके साथ उन्नत शिखरवाले मेरु-पर्वतपर चढ़ गया ॥ ३० ॥ ३१ ॥ वहाँ पहुँचकर उसने पहले अग्निको, फिर यमको और उनके बाद निर्ऋ-तिको जीतकर रावण आदि दैत्योंके साथ वरुणको जीतनेके लिए गया ॥ ३२ ॥ उसी समय रावण अपनी सेनाके साथ स्वर्गलोक पहुँचा और इन्द्रादि देवताओंको संग्राममें जीतकर अपनी लंकाको वापस ■ गया । तब सोम अपने मित्रों तथा पुत्रोंको ■ लेकर रावणसे युद्ध करने तथा इन्द्रादि देवोंको छुड़ानेके लिए चल पड़ा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ उसी समय ब्रह्माजीने आकर सोमको रावणपर चढ़ाई करनेसे रोक दिया और कहा कि स्वयं विष्णुभगवान् अनुद्यक रूप धारण करके रावणका संहार करेंगे । तुम आज रावणके पास मत जाओ । ब्रह्माकी बात मानकर सोम लंका न आकर अमरावतीपुरी गया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इसके अनन्तर वही सोम नलरूपसे इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुआ और अपने पराक्रमसे कुबेर एवं ईशानको परास्त करके उसने अपनेको कृतकृत्य माना ॥ ३७ ॥ कुछ दिनों बाद इन्द्रको जीतनेके लिए नल स्वर्गलोकमें जा पहुँचा । इस तरह उसके घूमते-फिरते सत्ययुग बीत गया ॥ ३८ ॥ त्रेतायुगके समाप्त हो जानेपर नलने सब वीरोंको तो देखा, किन्तु रावण नहीं मिला । अन्तमें नलने फिर सब देवताओंको वहाँमें किया । लंकापर भी आधिपत्य जमाया । आगे चलकर नलके नद्युक्त, नद्युक्तके जातोकर, जातोकरके वसुद, वसुदके लघुभ्रुत, लघुभ्रुतके सुरय, सुरयके अजमीद पुत्र हुआ और इस प्रकार नलकी सन्तति बनी । एक दिन नलने अपने मंत्रियों-

अस्माकं सेवकः सोऽस्ति दशास्यः क्रमादः । निजं पुरं प्रमत्तव्यमधुना चिरकालतः ॥४४॥
 दिगाश्रयादयं सर्वे जीविताः स्म चिरं त्विह । पुरुरवादिनास्ते नः पूर्वजाः संति वा मृताः ॥४५॥
 नास्माभिश्चिरकालं हि तद्वत् भ्रमतः श्रुतम् । अतः स्वीयपुरं गत्वा द्रष्टव्यास्तेऽत्रिपूर्वजाः ॥४६॥
 चेत्सोमबुधयोर्नाकं मन्तव्यं दर्शनेच्छया । तर्हि ताम्यां युता देवाः किं जेता रावणेन हि ॥४७॥
 किं ताम्यां रहिता देवा जिताश्चेति न वेद्यमहम् । अतश्च तत्कलं कृत्वा विदितं हस्तिनापुरे ॥४८॥
 भविष्यति ततो यदि कर्तव्यं तद्वद्विद्वद्भ्यः । इति निश्चितं न नलः शनैः स्वनगरं ययौ ॥४९॥
 एतस्मिन्नन्तरे राम त्वं ज्ञातोऽस्य नर्नातले । इत्था तं रावणं देवा मोक्षितास्ते दिवं गताः ॥५०॥
 सप्तद्वीपांतरस्था ये नृपास्ते सायशोकृताः । पुरुरवादिकाः स्त्रीश्च निष्कास्पात्र गजाङ्गये ॥५१॥
 सुपेणः स्थापितः पूर्वं वानरैः सहितस्त्वया । ततः पुरुरवाद्यास्ते स्वकालेन मृतास्त्विह ॥५२॥
 इदानीं ते समायाताः सोमवंशोद्भवा नृपाः । नलाद्याः मम स्वपुरं सप्तद्वीपनृपोत्तमाः ॥५३॥
 त्वत्कृताः स्ववशमा ये च द्वीपांतरस्थिताः । नृपास्तेषां पूर्वजाश्च स्वसैन्येस्ते नृपोत्तमाः ॥५४॥
 बलिनः कोटिभुः सर्वे समायाता गजाङ्गयः । भविष्यति त्वया तैश्च संगरः सोमवंशजैः ॥५५॥
 तदा ब्रह्मा सुरैर्युक्तः समागत्य तर्वातिरम् । पादयोस्ते प्रणामांश्च नलाद्यैः कारयिष्यति ॥५६॥
 कुत्वा कः प्रार्थनां तेऽपि त्वा वैकुण्ठं प्रणम्यति । एवं राम सविस्तारं तवाग्रे कथितं मया ॥५७॥
 यत्पृष्टं मां त्वया पूर्वं नलादीनां कथानकम् । विवाहकाण्डमारभ्य त्वयं रामायणं शुभम् ॥५८॥
 समग्रं हि मया राम पुण्यं श्रावितं तव । पुत्राभ्यामधुना सर्वं धृणुष्व रघुनन्दन ॥५९॥
 इत्युक्त्वा कुष्ठलवपीथकागतां मुनिस्ततः । विवाहकाण्डात्काण्डानि चत्वारि जगतुः शिशू ॥६०॥

ये भवणा की कि जब रावण सब देवताओंको पकड़कर पृथ्वीतलपर ही से आया है, तब हम स्वर्गलोकको क्यों चले ॥ ३६-४३ ॥ रावण हमारा सेवक है, वह हमें कर देता है । हम लोगोंको घूमते-घूमते भी बहुत दिन हो गये हैं । इसलिए अपनी पुरीको लौट चलना चाहिए । कितनी दिशाओंमें घूमते-फिरते हमलोग बहुत समय तक जोरित रहे, किन्तु पुरुरवा आदि हमारे पूर्वज जॉरित हैं या मर गये । मुझे उनकी कुछ भी खबर नहीं है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ अतएव चलो, अपने राजधानीको वापस चले । वहाँका हाल-बाल देखें और अपने लोगों पूर्वजोंका दर्शन करें ॥ ४६ ॥ लेकिन हमको कुछ बात भी नहीं ज्ञात है कि सोम और बुध भी तो और-और देवताओंके साथ रावण द्वारा बन्दी नहीं बना लिये गये । हस्तिनापुर घबनेसे ये बातें ज्ञात हो जायेंगी । उसके बाद जो करना उचित होगा, सो किया जायगा । ऐसा निश्चय करके वह अपने नगरको लौटा ॥ ४७-४९ ॥ इसी समय हे राम ! आपका अवतार हो गया । आपने रावणको मार डाला और देवताओंको छुड़ा लिया । जिससे ये सब देवता स्वर्गलोकको चले गये ॥ ५० ॥ सातों द्वीपोंमें रहनेवाले राजाओंको आपने अपने वशमें कर लिया, पुरुरवा आदि तीन राजे भी आपके वशमें हो गये । तब आपने उनको हस्तिनापुरसे निकालकर वानरोंके साथ सुपेणको उसका गद्दापर बिठाल दिया । कुछ दिनों बाद समय आनेपर पुरुरवा आदि भी मर गये ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ इस समय नल आदि सोमवंशी राजे उन सात राजाओंके साथ यहाँ आ रहे हैं, जिनको कि आपने अपने वशमें कर लिया और अब तक ये किसी दूसरे द्वीपमें रहा करते थे । ये राजे अकेले नहीं, बल्कि अपने पूर्वजों तथा करोड़ोंकी विशाल सेनाके साथ हस्तिनापुरपर चढ़े आ रहे हैं । उन सोमवंशियोंके साथ आपका युद्ध करना पड़ेगा ॥ ५३-५५ ॥ उस समय सब देवोंके ब्रह्माजी आकर नल आदिसे आपको प्रणाम करवायेंगे ॥ ५६ ॥ इसके बाद ब्रह्मा आपकी विधिवत् स्तुति करके अपने साथ आपको वैकुण्ठलोक ले जायेंगे । हे राम ! इस तरह मैंने आपकी आज्ञासे उन नल आदि चन्द्रवंशी राजाओंका वृत्तान्त विस्तारपूर्वक बताया ॥ ५७ ॥ हे रघुनन्दन ! बहुत दिन हुए, जब मैंने विवाहकाण्ड-से लेकर सारी रामायण आपको सुनायी थी । अब आप अपने पुत्रोंके मुखसे वह पुनोक्त कथा सुनिए ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ इतना कहकर वाल्मीकिने कुछ और लवको रामचरित्र सुनानेकी आज्ञा दी और ये विवाहकाण्ड-

वत्सवं राघवः भुत्वा परां मुदमवाप सः । विदुः ॥ जनांश्चापि नैकुठारोहणं प्रभोः ॥६१॥

इति शतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये आदिकाण्डे
सोमवंसनृपकथाविस्तारो नाम प्रथमः सर्गः ॥ ८ ॥

द्वितीयः सर्गः

(रामका सोमवंशियोंसे युद्धके लिए प्रस्थान)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामस्तदा प्राह वाल्मीकिं मुनिसत्तमम् । आशंसन् त्वया तत्र मुनिमिस्तु गजाह्वयम् ॥ १ ॥
तथेति स मुनिः प्राह राघवं भक्तवत्सलम् । ततः स लक्ष्मणं शीघ्रं राघवी वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥
पश्चापि प्रेषयश्वाद्य कुमारान् राज्यसंस्थितान् । स्वस्तराज्ये मन्त्रिणश्च कृत्वाऽत्रागम्यतां वलैः ॥ ३ ॥
एवमेव प्रलेख्यानि जम्बूद्वीपतीन्द्रान् । तथा द्वीपपर्वींश्चापि दूतास्तांस्वरयंतु नः ॥ ४ ॥
तथेति लक्ष्मणोक्तवा तथा चक्रे यथोदितम् । राघवेण सभामध्ये वाल्मीकिगुरुसभिधौ ॥ ५ ॥
ततः प्राह पुनः श्रीमान् राघवो लक्ष्मणं मुदा । वासोमेहानि नेयानि बहिर्मम रघूद्रह ॥ ६ ॥
सूहृतो वर्त्तते श्वो र्षे सेनां चोदय सादरात् । मायुधान्यश्च यन्त्राणि जीर्णानि च बहूनि हि ॥ ७ ॥
पूर्वजैर्विहितान्मेव कोशगारेषु वै सदा । तानि निष्कासनीयानि तेषां कालोऽद्य वर्त्तते ॥ ८ ॥
अन्तःपुराणि सर्वाणि बहिर्नेयानि मेऽग्रतः । अग्निहोत्रं पुरस्कृत्य सीताप्यग्रंऽनुगच्छतु ॥ ९ ॥
कोशगाराणि सर्वाणि बहिर्नेयानि बाह्वनैः । हस्त्यश्वरथपादाता नेयाः सर्वे बहिस्त्वया ॥ १० ॥
इत्याज्ञाप्य रघुश्रेष्ठो लक्ष्मणं वितयान्वितम् । मन्त्रिणौ नैगमाश्चैव वसिष्ठं वेदमब्रवीत् ॥ ११ ॥
अभिषेक्षामि भरतं सप्तद्वीपपतेः पदे । लक्ष्मणो मां विना नैव भूम्यां वासं करिष्यति ॥ १२ ॥

के बादवाले कांडोंकी कथाओंकी मिल जुलकर गाने लगे ॥ ६० ॥ यह सब कथायें सुनकर रामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए और सर्वसाधारणके लोगोंकी भी भक्तानुकी स्वर्गारोहणमन्वन्त्री बातें ज्ञात हो गयीं ॥ ६१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पंचमोऽध्यायः समाप्तः ॥ १ ॥

श्रीरामदास बोले—इसती कथा सुनकर रामचन्द्रजीने वाल्मीकिसे कहा कि ॥ भी हस्तिनापुर अबश्य जाइएगा ॥ १ ॥ महर्षि वाल्मीकिने भक्तवत्सल रामसे कहा—“बहुत अच्छा” । इसके बाद राम लक्ष्मणसे कहने लगे कि सब राज्योंके सिंहासनपर बैठे हुए कुमारोंके पास यत्र लिख दो कि वे अपने-अपने मन्त्रियोंके ऊपर राज्यका भार छोड़कर अपने-अपने सेनाके साथ वहां आ जाई ॥ २ ॥ ३ ॥ इसी प्रकारके पत्र जम्बूद्वीपजाने तथा द्वीपान्तरनिवासी राजाओंके पास लिख दो और दूतोंको कहो कि उन्हें जात्र वहां आनेकी कहें ॥ ४ ॥ “तथास्तु” कहकर लक्ष्मणजीने भी वंसा हो किया, जैसा कि रामचन्द्रजीने सभामें वाल्मीकि तथा गुरु वसिष्ठके सम्मुख कहा ॥ ५ ॥ इसके बाद श्रीरामचन्द्रजीने फिर लक्ष्मणसे कहा कि हमारे हस्त्य-वज्रात आदि सामान बाहर ले चले ॥ ६ ॥ बल बड़ा अच्छा मुझमें है । सेनाको भी शीघ्र तैयार हो जानेकी आज्ञा दे दो । बहुतसे सत्त्व जीर्ण हो गये थे, जिनको मेरे पूर्वजोंने घरोंमें बन्द कर दिये थे, उनको निकाल लो । क्योंकि आज उनके उपयोगका समय आ पहुँचा है ॥ ७ ॥ ८ ॥ अन्तःपुरकी जितनी स्त्रियाँ हैं, उनको भी बाहर ले आओ । अग्निहोत्र लेकर सीता भी मेरे साथ चलें ॥ ९ ॥ मेरे जितने खजाने ॥ उनको हावी, भोजें तथा रथकी सहायतासे बाहर ले आओ ॥ १० ॥ इस तरह लक्ष्मणजीको आज्ञा देकर मन्त्रियों, विद्वानों तथा वसिष्ठजीसे कहा कि ॥ सातों द्वीपोंके आधिपत्यके पदपर भरतजीको बिठाऊंगा । क्योंकि मेरे बिना लक्ष्मण इस भूमण्डल-

एवं वदति राजेन्द्रे पौरास्ते भयविह्वलाः । क्रुमा इव छिन्नमूला दुःखार्ताः पतिता भुवि ॥१३॥
 मूर्छितो भरतश्चापि श्रुत्वा रामामिभाषितम् । गर्हयामास राज्यं स ब्राह्म दुःखाद्रघून्ममम् ॥१४॥
 सत्येन तु शपे नाहं त्वां विना दिवि वा भुवि । कांक्षे राज्यं रघुश्रेष्ठ शपे त्वपादयोः प्रभो ॥१५॥
 अहं योग्यं वरं राज्ञमभिषिचस्व रामेन । अयोध्यायां कुशं वीरं सप्तद्वीपपतेः पदे ॥१६॥
 अस्त्युत्तरकुसुमवत् जंबूद्वीपपतेः पदे । लवोऽभिषेचितः पूर्वं स एव तेषु गच्छतु ॥१७॥
 भरतेनोदितं श्रुत्वा पतितास्ताः समीक्ष्य च । प्रजा वै भयसंविन्ना रामविश्लेषकावराः ॥१८॥
 वसिष्ठो भगवान् राममुवाच सद्यं वचः । पश्यतामादरात्सर्वाः पतिता भूतले प्रजाः ॥१९॥
 तासां भावानुभवं राम प्रसादं कर्तुमर्हसि । श्रुत्वा वसिष्ठवचनं ताः समुत्थाप्य पुञ्ज च ॥२०॥
 सस्नेहोऽधुनायस्वाः किं करोमीति चाब्रवीत् । ततः प्राञ्जलयः प्रोषुः प्रजा भक्त्या रघूद्वहम् ॥२१॥
 गन्तुमिच्छसि वैकुण्ठं त्वमस्माकं प्रभो । यत्र गच्छसि त्वं राम क्षत्रुगच्छामहे वयम् ॥२२॥
 अस्माकमेषा परमा प्राप्तिर्धर्मोऽयमवयः । त्वानुगमने राम हृदता नो दृढा मतिः ॥२३॥
 पुत्रदारादिभिः सार्द्धमनुयामोऽद्य सर्वथा । तपोवनं वा स्वर्गं वा पुरं वा रघुनन्दन ॥२४॥
 श्रुत्वा तेषां मनोदाढ्यं कारुण्याद्रघुनायकः । भर्तुं पौरजनं दीनं वाढमित्यमवीद्वचः ॥२५॥
 कृत्वैवं निश्चयं रामस्तस्मिन्नेवाहनि प्रभुः । कुशं तमभिषेक्तुं वै बोधयामास लक्ष्मणम् ॥२६॥
 सौमित्रिश्चापि गुरुणा विप्रैः पौरजनैस्तदा । शोभयित्वा स्वनगरीं मुदा तमभ्यषेचयत् ॥२७॥
 अभिषेके कुशस्यासीन्महोत्साहो गृहे गृहे । रामावरोधे सुमहान्तमुत्साहस्तदाऽभवत् ॥२८॥
 तदा सिंहासनाख्यं छत्रचामरशोभितम् । प्रजाः पतिं प्राप्य प्रणामं चक्रुरादरात् ॥२९॥

पर नहीं रह सकते ॥ ११ ॥ १२ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर वे सब पुरवासी जइसे कटे हुए कृशोंकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े । रामकी बात सुनकर भरतजी भी मूर्छित हो गये । होश आनेपर उन्होंने राज्यकी भरपूर निन्दा की और दुःखित होकर उन्होंने रामचन्द्रजीसे कहा— मैं आपके चरणोंकी शपथ खाकर कहता कि आपके बिना पृथ्वी स्वर्गलोकका भी राज्य नहीं चाहता ॥ १३-१५ ॥ हे राजन् ! हे राघव ! आप वीर कुशको इस सप्तद्वीपसिंहेके आसनपर बिठाल दीजिए ॥ १६ ॥ उत्तरकुश नामके देशमें जम्बूद्वीपपतिके पदपर तो आपने लम्बका बहुत दिनों पहले ही अभिषेक कर दिया है, वह अपने पदपर चला जाय ॥ १७ ॥ इस प्रकार भरतकी सुनकर वहकि जितने प्रजाजन थे, वे सब रामके वियोगरूपी दुःखसे विह्वल और भयभीत हो गये ॥ १८ ॥ उनकी यह दशा देखकर दयालु वसिष्ठजीने रामसे आदरपूर्वक कहा— हे राम ! देखिए, सब कितने दुःखी हैं । अब जिस तरह हमको सन्तोष हो सके, वही काम करिए । वसिष्ठजीकी बात सुनकर रामने उन लोगोंको उठाया, उनका सत्कार किया और पूछा कि मैं कहीं, जिससे आप लोग लोग प्रसन्न सकेंगे । सुना तो लोग हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक रामचन्द्रजीसे कहने लगे— हे राम ! अब यदि वैकुण्ठलोककी चाहते हों तो हमें भी अपने लेते चलिए, हम सब भी आपके साथ-साथ चलेंगे ॥ १९-२२ ॥ इससे बढ़कर हमको और कोई लाभ नहीं होया । हम लोगोंके लिए यह असाध्य बर्माकार्य है । हे राम ! आपके साथ चलनेके लिए हमने दृढ़ निश्चय कर लिया ॥ २३ ॥ आज हम अपने परिवारके आपके सङ्ग वैकुण्ठलोकको, तपोवनको, स्वर्गको अयोध्याको जायेंगे ॥ २४ ॥ रामचन्द्रजीने भर्ता और पुरजनोंकी इतनी दृढ़ता देखी तो ले चलनेकी स्वीकृति दी ॥ २५ ॥ इस तरह निश्चय करके राधने उसी दिन कुशका अभिषेक करनेके लिए लक्ष्मणसे कहा और रामके आज्ञानुसार गृह, विप्र एवं पुरवासियोंके साथ लक्ष्मणने उसी दिन कुशका राज्याभिषेक कर दिया ॥ २६ ॥ २७ ॥ कुशका अभिषेक करते अयोध्याके घर-घरमें महान् उत्सव मनाया गया । विशेषकर रामके अन्तःपुरकी नारियलें मनाया ॥ २८ ॥ जब कि छत्र और चमर आदिके सुसज्जित होकर कुश सिंहासनपर

तदा कुशो नृपो विभ्रान्धनं बहुतरं ददौ । प्रजास्यं पूजयामासुबल्लालंकातयाहनैः ॥३०॥
 ततः प्रापुजयत्सर्वाः प्रजाः स कुशभूपतिः । भोजयामास विभ्रान्कोटिभिः स कुशेश्वरः ॥३१॥
 अथ तमाश्रया शीघ्रं सौमित्रिः सीतया सह । अन्तःपुराणि सर्वाणि निनाय नगराद्गहिः ॥३२॥
 नानाराहनसंस्थानि नृत्यवाद्यादिमंगलैः । ततो रामः स्वयं बन्धुपुत्राद्यैः सर्वतो वृतः ॥३३॥
 मुनिभिर्जयघण्डैश्च स्तुतो मंगलनिःस्वनैः । अयोध्याया वहिः पतिर्ययौ मागधसंस्तुतः ॥३४॥
 रथारूढश्चामराद्यैर्वीजितश्च सैनैर्मुदा । निवेश्य चासौगंडानि तदा रामो जयः ब्रह्म ॥३५॥
 ननुतुर्वारिनाशाय तदा श्रीराघवाग्रतः । ततः पौंसः सानरोषाधांढालान्ता गिनिर्बुधुः ॥३६॥
 निन्धुस्ते मारयेयांस्तान् पुषां पौराश्चतुष्पदान् । नासन्मधिकुलांताद्यास्तनुर्यां ते बहिर्युधुः ॥३७॥
 नासीत्कोऽपि तदा पुषां जनशून्या बभूव सा । अयोध्यानगरो पुष्या गजभुक्तकपित्थवत् ॥३८॥
 एतस्मिन्नन्तरे सर्वे द्वोषांतरनिवासिनः । जंबूद्वीपांतरस्थाश्च ययुः सैन्यैर्नृपोचमाः ॥३९॥
 कोटिशो रायवं नेमुस्ततो नेमुः कुशेश्वरम् । उपायनानि रामाय कुशाय च पृथक् पृथक् ॥४०॥
 दत्त्वा संपूजितास्ताभ्यां तस्थुः सर्वे नृपोचमाः । ततोऽङ्गदधिवकेतुः पूष्करस्तथ एव च ॥४१॥
 सुबाहुर्पुष्पकेतुश्च ययुः सर्वे निर्जवलैः । सानरोषाः सपुत्राश्च सर्वांस्तस्ते स्तुपादिभिः ॥४२॥
 प्रजेसु राघवादीषु सीतादींश्चापि सादरान् । रामेणालिभिनाः सर्वे सीतया भोजिता अपि ॥४३॥
 तस्थुः सर्वे सभायां ते स्वस्वपौरजनैः सह । तदागतान् नृपान्सर्वांन् रामो वृत्तं न्यवेदयत् ॥४४॥

वैदे, उस समय सब प्रजाजनने उनको साष्टांग प्रणाम किया ॥ ३० ॥ उस समय कुशने ब्राह्मणोंको बहुत-सा धन दिया और प्रजाजनने विविध प्रकारके वस्त्रों तथा आभूषणोंसे कुशको पूजा की ॥ ३०॥ इसके बाद कुशने सब व्योमोंका अन्नर-सत्कार किया और करोड़ों ब्राह्मणोंको भोजन कराया ॥ ३१ ॥ इसके अनन्तर रामकी आज्ञासे लक्ष्मण सीता आदि अन्तःपुरकी सब नायिकोंको विविध सचारियोंपर बिठाकर नगरके बाहर ले गये ॥ ३२ ॥ उस समय तरह-तरहके नृत्य-गीत आदि मङ्गलमय कार्य हो रहे थे । इसके अनन्तर राम भी बन्धुओं, पुत्रादिकों तथा जनके ऋषिओंके साथ अयोध्याके सब पुरवासियोंको साथ लिये हुए अयोध्याके बाहर आ गये । उस समय कितने ही तरहके वाजे बज रहे थे और बन्दीजन भागवानकी शिक्करबलीका गान कर रहे थे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ जामे समय राम एक रथपर बैठे थे, उनपर छत्र लगा हुआ था और ध्वज चल रहे थे । इस तरह चलते-चलते राम उस स्वागपर पहुँचे, जहाँ टहरनेवाँ डेरा डाला गया था ॥ ३५ ॥ राम वहाँ आकर आसनपर बैठ गये । वैश्यावे रामके सामने आकर नाचने लगे । कुछ देर बाद उच्च जातिसे लेकर लण्डाल जाति तकके अयोध्याके समस्त पुरवासा अपने आभूषणोंको साथ लिये अयोध्यासे बाहर निकल गये । वे लोग अपने-अपने कुत्तों तथा बैर-गाय आदि पशुओंको भी साथ लेने आये थे । तहाँ तक कि पक्षि-कै कुल तक बाहर आ गये ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ उस समय सारी अराध्या मुनी हो गये । कोई भी उस नगरीमें ही रह गया । उस पुनीत नगरकी वहाँ दशा हो गयी थी, जो दशा हाथीके पैरसे निकले कीचकी होती है । तब यह कि हाथी जब कीचके पद छाने लगता है तो सगुनाका समूचा हाँ फल सा जाता है और मल्लयाग रते समय वे कीचें देखनेमें समूचे ही निकलते हैं, किन्तु उन्हें छानिकली ठोकर मार दी जाय तो फूट आते उनमें कुल तत्त्व नहीं रह जाता । वही दशा अराध्याकी भी हो गयी थी । ऊपरसे देखनेमें तो अयोध्या तीकी लीं दीखती थी, किन्तु उसमें कोई रहनेवाला नहीं था ॥ ३८ ॥ उसी समय जनक द्वोषांते कितने ही जे भा अपनी-अपनी सेनाके साथ आ पहुँचे ॥ ३९ ॥ उन्होंने वहाँ आकर रामको तथा नसीन राजा कुशकी राम किया और दोनोंको अलग-अलग विविध प्रकारके उपहार दिये ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ऊपर पूष्केतु तथा सुबाहु दि राजपुत्र भी अपने अस्त-सुरकी स्त्रियों और पुत्रादिकोंके साथ आ पहुँचे । वहाँ आकर उन्होंने सीता दि माताओं तथा रामकी प्रणाम किया । रामने उनको उठाकर हृदयसे लगाया और सीताने उनको अपने शीसे परोसकर भोजन कराया ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ इसके बाद वे सब अपने-अपने नागरिकोंके साथ आकर सभा-

पुनः पप्रच्छ तान्सर्वान्संस्थितान् रघुनन्दनः । शृण्वन् पूर्वजाः सर्वे समायाता गजाङ्घ्रये ॥४५॥
 भवतां रोषते युद्धं यदि तैः पूर्वजैः सह । आगन्तव्यं तर्हि सर्वं मया सह गजाङ्घ्रयम् ॥४६॥
 नोचेद्भवद्भिर्गन्तव्यमित एव निजम्यलम् । निर्वन्धोऽयं न मे तेयः सर्वैः पार्यिकमन्त्रमैः ॥४७॥
 इति रामवचः श्रुत्वा नृपा राघवमब्रुवन् । राम राम महावीर्यं वयं सर्वे त्वभालुगाः ॥४८॥
 त्वयैव वद्विताः सर्वे त्वान्नैः पोषिता वयम् । वीराः सत्रियवंशीया रणे तातप्रहाणिषः ॥४९॥
 त्वाराज्या वधामोऽद्य पितृपुत्रान् रणाजिरं । नास्मांस्त्वं विद्धि राजेन्द्र स्वामिकाय पराङ्मुखान् ५०
 इति तेषां वचः श्रुत्वा तानालिख स राघवः । संपूज्याभरणैर्वस्त्रैः सुखं सुश्राप सीतया ॥५१॥
 ततः प्रभाते श्रीरामो गत्वा तां सरयुनदीम् । स्नात्वा दानादि वै दत्त्वा सीतया विधिपूर्वकम् ॥५२॥
 नत्वा तां सरयुं पुण्यां गन्तुं पप्रच्छ वै मुहुः । तद्रामवचनं श्रुत्वा सरयुं राघवमब्रवीत् ॥५३॥
 एतावत्कालपर्यन्तं स्थिता त्वदर्शनेच्छया । अहमद्य त्वया राम यास्यामि त्वत्पदं त्विनः ॥५४॥
 तत्तस्या वचनं श्रुत्वा तामाह राघवः पुनः । यावत्कथा शुभा स्यात्स्यत्यश्राधनाशिनी ॥५५॥
 तावत्त्वमंश्रूपाऽत्र वस लोकाधनाशिनी । तथेति रामवचनादंश्रूपं निधाप सा ॥५६॥
 साकेतेऽत्र पूर्णरूपं ययौ गमेण तत्पदम् । अथ रामः सरयुवाऽपौ परिक्रम्य निजां पुरीम् ॥५७॥
 साष्टांगं तां नमस्कृत्य गन्तुं पप्रच्छ पूज्य ताम् । अयोध्येऽस्य नमस्तेऽस्तु त्वयाऽहं रक्षितस्त्विह ॥५८॥
 आकां ददस्व पृच्छामि स्वस्थलं गन्तुमुद्यतः । भमस्व मेऽपगधांस्त्वं पुनर्दर्शनमस्तु ते ॥५९॥
 इति रामवचः श्रुत्वा पुरीं राघवमब्रवीत् । एतावत्कालपर्यन्तं स्थिता त्वदर्शनेच्छया ॥६०॥
 यास्ये त्वया समर्था न सोढुं त्वद्विरहं त्यहम् । तत्तस्या वचनं श्रुत्वा पुरीमाह रघूत्तमः ॥६१॥

मे बैठे । और-और राजे भी वहाँ एकत्रित हुए तो रामने उनको अपना विचार सुनाया ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर रामने उन राजाओंसे कहा कि आपके पूर्वज हरिनापुरीमें युद्धके लिए गये थे ॥ ४५ ॥ तो यदि आपलोगों-को भी युद्ध करना हो तो मेरे साथ हरिनापुरी चलिए ॥ ४६ ॥ यदि न हो तो आप लोग अपनी-अपनी राजधानीको लौट जाइये । मैं आपलोगोंसे किसी प्रकारका आग्रह नहीं करना चाहता ॥ ४७ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर उन राजाओंने कहा—हे राम ! हे महाबाहो ! हम सब आपके अनुयायी हैं । आपने ही हम लोगोंका अभ्युदय किया है । आपके ही अन्नसे हम पले हैं । वीर क्षत्रियोंके वंशमें मेरा जन्म हुआ है । इस कारण आप यदि आज्ञा देंगे तो हम अपने पितृप्राप्तियोंको गुणगानमें अवश्य मारेंगे । हे राजेन्द्र ! आप कभी भी ऐसा न समझियेगा कि हम स्वामी (आप) के कामसे पराङ्मुख होंगे ॥ ४८-५० ॥ इस प्रकार उनकी बातें सुनीं तो रामने उन सब राजाओंको हृदयसे लगाया, विविध प्रकारके वस्त्र-आभूषणोंसे उनकी पूजा की और जाकर आनन्दपूतक सीताके साथ गयेन किया ॥ ५१ ॥ इसके अनन्तर सबेरे सीताके साथ रामचन्द्रजीने सरयूके तटपर जाकर स्नान-दान किया । इसके बाद उन्होंने प्रणाम करके सरयूजीसे अपने लिए परम धाम जानेकी आज्ञा माँगी । रामकी प्रार्थना सुनकर सरयूने कहा—॥ ५२ ॥ ५३ ॥ अबतक आपके दर्शनोंकी इच्छासे मैं भी यहाँ थी । किन्तु हे राम ! जब आप जा रहे हैं तो मैं भी आपके श्रीचरणोंके साथ चलूँगी ॥ ५४ ॥ सरयूकी बात सुनकर रामने कहा—अबतक सब पापोंकी तट करके-वालों मेरी पुनीत इस संसारमें विद्यमान है, तबतक प्रणश्यसे तुम भी यहाँ रहती हुई सबके पाप दूर करती रहो । रामके कहनेपर सरयूने तत्काल अपना एक अंशदा बनाया, जिससे यह अयोध्यामें रह गयी और पूर्णरूपसे रामके साथ चल पड़ी । सरयूकी साथ लेकर रामने अपनी पावन पुरीकी परिक्रमा की और साष्टांग प्रणाम एवं पूजन करके परमधाम जातेको आज्ञा माँगी और कहा—हे अम्ब अयोध्या ! तुमने मेरी रक्षा की है । मैं अब अपने वैकुण्ठलोक जानेकी आज्ञा माँगता हूँ । मेरे अयोध्याकी धमा करो और मुझे आशीर्वाद दो कि फिर कभी मैं तुम्हारा दर्शन कर सकूँ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर अयोध्यापुरीने कहा कि इतने दिनों तक मैं आपका दर्शन करनेके लिए यहाँ रही । आपके चले जानेपर यहाँ

यावत्कथा मम शुभा स्थास्त्यत्राघनाशिनी । तावत्परमंशरूपेण वसात्र मृन्मयी चिरम् ॥६२॥
 तथेति रामवचनादंशरूपाऽत्र मृन्मयी । अयोध्या संस्थिता दिव्या हेमा रामेण मायया ॥६३॥
 अयोध्याया सरस्वाऽपि रामः तेनास्दत्तं यया । अयोध्याया सरस्वाश्च शर्मा न गतीं न्वितः ॥६४॥
 अथ सीता महानागीमाहरोह सर्वाङ्गैः । पृथक् नार्ग्यमुमितायास्ताः समारुह्युस्तदा ॥६५॥
 अथ रामो मुदा वेगान्ममारुह्य गजोपरि । उवाच लक्ष्मण वाक्यं पुष्पके मकलान् जनान् ॥६६॥
 पौरानारोहयस्व त्वं स्वबन्धुभ्यां सुतादिभिः । नागार्कैः पृथक् शास्त्रं समारुह्य गजोपरि ॥६७॥
 अनुगच्छस्व मत्पुष्टे लक्ष्मणः स तथाऽकरान् । अथ सर्वे नृपतयो नानाधानेषु सन्निहाः ॥६८॥
 ययुः स्वस्वमलैर्घुक्ताः शीघ्रं श्रीराममाश्रितः । ययावग्रे स्वग्रमग्रे रज्जुकुडालधारिभिः ॥६९॥
 द्रुपत्कारैस्तवशर्कश्च कुठारटंकपाणिभिः । ततो यया मङ्गनागः पताकाध्वजशोभितः ॥७०॥
 ततो ययुर्यन्त्रहस्ता नानाबाहनसंस्थिताः । ततो ययुः श्वधनाभिः पूरिताः शकटाः शुभाः ॥७१॥
 ततोऽथसंस्था बाधानि बादयन्तो ययुर्भटाः । ततोऽथनस्थाः श्वतशो ययुस्ते वज्रपाणयः ॥७२॥
 ततो ययुर्मागधाश्च बन्दिनो यानसंस्थिताः । तता नटाश्चाङ्गाश्च यानस्थाः सुविभूषिताः ॥७३॥
 ततस्ता धारनार्थं च काष्ठमंचकवाहिनाः । मण्डकेषु भट्टभागो नृत्यन्त्यः प्रययुः सुखम् ॥७४॥
 ततो ययुर्भूषितास्ते श्रीरामस्य तुरङ्गमः । ततः पुनरावटपान्निभ्रम्यः प्रमदानमाः ॥७५॥
 ययुस्तकण्वः श्वतशः शस्त्रहस्ताः गुन्धिताः । गोपितास्थाः कचुकिन्पस्तुरंगादिषु सास्थिताः ॥७६॥
 ततो ययुर्दंडहस्ता रसापुत्राः सुभूषिताः । ततो यया रामचन्द्रसम्पृष्ट लक्ष्मणा यया ॥७७॥

रहती हुई मैं आगेके वियोगका दुःख नहीं सह सकूँगी । इसलिए मैं भी आपके साथ ही चलनेका तैयार बँटी हूँ । उसकी ऐसी बात सुनकर रामने अयोध्यापुत्रांसे कहा कि जबतक जगन्में मेरी पापनाशिनी कथा विद्यमान रहे, तबतक तुम अंशरूपमें मृन्मयी होकर वहाँ निवास करो ॥ ६३-६४ ॥ रामके कथनानुसार उसने अपने अंशरूपमें मृन्मयी होकर रहना स्वीकार कर दिया और नृपणमया तथा सारस्वती अयोध्या रामके साथ चल पड़ी ॥ ६५ ॥ इसके बाद राम अयोध्या तथा सरस्वती साथ अपने मेनाशिरिखी लौट गये । यद्यपि अयोध्या तथा सरस्वती दोनों अपने-अपने स्थानमें चली गयी थी, किन्तु संमानम उनका प्रभाव उषाका त्यों बना रहा । वह नहीं गया ॥ ६६ ॥ इसके अनन्तर मेना एक अचल-माँ हथिनापन मन्त्रा हुई और उमिला आदि दूसरी हथिनियोंपर जा बँटी ॥ ६७ ॥ इसके बाद राम भी प्रजापतिपुत्रके हाथोंपर सवार हुए और लक्ष्मणसे कहा कि समस्त बन्धु-यान्त्रिकोंके साथ अयोध्यावासीयोंको पृथक् विमानपर सवार करो ॥ ६८ ॥ इसके बाद तुम अपने परिवारवालोंको हाथोंपर सिठाकर मेरे पीछे-पीछे आओ । रामके आज्ञानुसार लक्ष्मणने सब द्रव्य ठीक कर दिया । इसके बाद सब राजे अनेक प्रकारकी सवारियोंपर सवार हो-होकर अपनी-अपनी सेनाके साथ रामके पास आये । आगे-आगे वे मजदूर बनें, जो रस्सियों तथा कुशल लिये थे । पछे-काटनेवाले तथा बट्टे आदि विविध प्रकारके औजार लिये थे । उनके पीछे-पीछे एक बड़ा हाथी पताका और ध्वजाओंसे अलंकृत होकर चला । उसके पीछे अपने-अपने हाथोंसे बट्टे आदि विविध प्रकारके शस्त्रधारी सैनिक तरह-तरहके बाहनोंपर सवार होकर चले । उनके पीछे नाँव आदिने लड़ी बैरगाड़ियाँ चली जा रही थीं ॥ ६६-७१ ॥ उनके पीछे-पीछे अनेक प्रकारके बाजे बजानेवाले लोग घोंडापर बैठ-बैठकर चले । उनके पीछे बहुतसे घुड़-सवार हाथमें बेंत लिये हुए चले ॥ ७२ ॥ उनके पीछे बाहनोंपर आरुढ़ होकर बहुतसे मागव और वन्दीजन चले जा रहे थे । उनके पीछे नटलोग और सजाँ चौकीयोंपर बैठा हुई बैरगायें गाती-बजाती और नाचती हुई चली जा रही थी ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ उनके भी पीछे रामके सवाये हुए घोंडे और उनके पीछे पुरुषके समान वेप धारण किये, अनेक प्रकारके अलंकार पहने, तरह-तरहके शस्त्र लिये, परसे अपना मुँह छिपाये और घोंडे आदि विविध सवारियोंपर सवार स्त्रियाँ चली जा रही थीं ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ उनके पीछे हाथमें लाठियाँ लिये तरह-तरहके आभूषण पहने दासीपुत्रगण चले जा रहे थे । उनके पीछे भगवान् रामचन्द्र और लक्ष्मण, भरत,

तत्पृष्ठे भरतश्चापि शमुध्नश्च ततो ययौ । ततः कुञ्जो लवश्चाथ ततः सोऽप्यंगदो ययौ ॥७८॥
 ययौ ततमित्रकंतुः पुष्करश्च ततो ययौ । ततस्सुक्षः सुग्राहश्च युपकेतुस्ततो ययौ ॥७९॥
 ततः सीता ययौ शीघ्रमुर्मिला च ततः परम् । मांडवी भृतकीतिश्च स्नुषाः सर्वाः क्रमाद्ययुः ॥८०॥
 ततस्ते मन्त्रिणः सर्वे शिबिकसंस्थिता ययुः । ततो ययुर्वानरश्च कोटिशः पर्वतोपमाः ॥८१॥
 ततो ययुर्नृपाः सर्वे कोटिशो वारगस्थिताः । ततो नृपणां सैन्यानि ययुर्वाजिस्थितानि हि ॥८२॥
 ययुस्तनस्ते यंत्राणां शकटाः कोटिशो वराः । शनफ्नीखड्गचर्मादिपूरिताः शकटास्तदा ॥८३॥
 ततो वारणमुख्याश्च नववायसमन्विताः । ततश्चोष्ट्राः सुरणानां ततः पृष्ठे खरादयः ॥८४॥
 एवं रामः शनर्मार्गं चामराद्यैः सुवीजितः । मांतया जालस्त्र्यश्च वीक्षितश्च मुहुर्महुः ॥८५॥
 ययौ शनैः शनैः श्रीमान्स्तुतो मागधवंदिभिः । पश्यन्नुन्यान्पश्यन्सर्वां शृण्वन्त गायनान्यपि ॥८६॥
 सेनानिवेशस्थानानां यात्राकाण्डे ययोदिता । मया पूर्वं सुरचना तददासीत्पुनस्त्विह ॥८७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे गल्पमोकोये आदिकाण्डे पूर्णकाण्डे

रामदासविष्णुसंवादे रामप्रस्थानं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः

(रामका सोममोशियोंके साथ युद्ध)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः शनैर्मार्गे नानादेशान्विलंघ्य च । एकादशदिनैः प्राप सेनया तद्गजाद्वयम् ॥ १ ॥
 राममागतमाज्ञाय सुषेणो वेगवस्तरः । प्रत्युद्यथा स्वकपिभिर्विशल्लभसमन्वितः ॥ २ ॥
 नत्वा रामं च सीतां च सर्वं वृत्तं न्यवेदयेत् । राम राम महाबाहो प्रतापान्व च मया ॥ ३ ॥

शमुध्न, कुञ्ज, अङ्गद, मित्रकंतु, पुष्कर, तल और उनके पीछे राजपुत्र सुग्राह चले जा रहे थे । राज-पुत्रोंकी टोलीके पीछे सीता, उर्मिला, मांडवी, भृतकीति और उनके पीछे उनकी पत्नीहुए चली जा रही थीं । उनके पीछे रामके मन्त्रिगण पालकिशोपर बैठे चले जा रहे थे । उनके भी पीछे पर्वतके समान बड़े-बड़े आकारवाले वानर और उनके पीछे विविध प्रकारकी सवारियोंपर सवार सब राजे चले जा रहं थे । उनके पीछे उन राजाओंकी सेनाये घोड़ोंपर सवार होकर चली रही थी । उनके पीछे कितनी ही वैज्याधियोंपर लदे हुए तोप आदि वन्य चले जा रहे ॥ ७७-८३ ॥ उनके पीछे मुख्य-मुख्य हाथों अनेक प्रकारके बाजे लादे हुए चले जा रहे थे और उनके भी पीछे एक बहुत बड़ा हाथी रहा था, जिसपर राष्ट्रीकी पताका सुशोभित हो रही थी । उनके पीछे सुवर्णसे लदे हुए जेंट और उनके पीछे और-और सामान लादे हुए गधे तथा खच्चर आदि चल रहे थे ॥ ८४ ॥ इस तरह राम धीरे-धीरे चले जा रहे थे । उनके ऊपर चमर-थ्यजन आदि चल रहे थे और सीताजी अपनी सवारीके झरोखोंसे बार-बार रामको निहार रही थीं ॥ ८५ ॥ मागध-अन्दीजन आदि विविध प्रकारकी स्तुतियों कर रहे थे और कितनी ही अप्सराओंके नृत्य-भान हो रहे थे ॥ ८६ ॥ राम-चन्द्रजीके पड़ाव ठीक उसी तरह इस समय भी थे, जैसे कि पीछे यात्राकांडमें बतलाये जा चुके हैं ॥ ८७ ॥
 इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पूर्णकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

इस तरह धीरे-धीरे चलते हुए राम अपनी सेनाके साथ अनेक देशोंको लीपते हुए ग्यारह दिनमें इस्तिनापुर पहुँचे ॥ १ ॥ रामके पहुँचनेका समाचार पाते ही सुषेण बीस लाख सैनिकोंको लेकर आ पहुँचा ॥ २ ॥ रामके समक्ष पहुँचकर उसने सीता-रामको किया और कहने लगा—हे महाबाहो राम ! आपके

चतुर्दशदिनं युद्धं कृतमेभिः सुदुष्करम् । अधुना त्वं समायातः क्वंते स्थास्यन्ति भूतले ॥ ४ ॥
 सुषेणस्य वचः श्रुत्वा समप्याधामपत्प्रभुः । अथ रामः स जाह्नव्याश्चोचरे परमे तटे ॥ ५ ॥
 सेनानिवासमकरोद्दर्शनं रिपुवाहिनीम् । तां निज्ज्ञां समतिक्रम्य द्वितीये दिग्गते ततः ॥ ६ ॥
 चोदयामास युद्धाय वानरान् रघुनन्दनः । ततस्ते वानराः सर्वे जाह्नव्यामवप्लुत्य च ॥ ७ ॥
 रामं सीतां नमस्कृत्य निर्ययुः समग्रं मुदा । ततस्ते वानराश्चक्रुः सिंहनादान्मयङ्करान् ॥ ८ ॥
 वादयामासुर्वाधानि हृदुवुः शत्रुवाहिनीम् । नलाद्यास्तेऽपि श्रीरामसेनां दृष्ट्वाऽतिविस्मिताः ॥ ९ ॥
 चकिता भयभीताश्च निर्ययुः संग्रं जवान् । ततस्ते वानराः सर्वे गंगामुल्लङ्घ्य वेगवतः ॥ १० ॥
 दृषद्भिः पर्वतैर्बुधैः शिलाभिर्मृष्टिभिः पदैः । निजघ्न्युः शत्रुवीरांस्ते कीर्तयन्तो रघुसमम् ॥ ११ ॥
 नलवीराश्च ते मर्षे शस्त्रैस्तीक्ष्णैः कवीश्वरान् । निजघ्न्युः ममरे वेगाद्भूव तुमूलो रणः ॥ १२ ॥
 अथ तैर्वानरैः सर्वे बलाद्भुजैः प्रवीढिताः । पराङ्मुखाः कृताः सर्वे रणात्ते नलसैनिकाः ॥ १३ ॥
 तान् दृष्ट्वा ते नलाद्याश्च रणाद्दीरान् पराङ्मुखान् । निहन्तान्कपिरींश्चाचोदयन्मृत्पतीस्तदा ॥ १४ ॥
 ततस्ते पार्थिवाः सर्वे जम्बूद्वीपनिवासिनः । तथा द्वीपांतरगोचूना ये बृद्धाश्च पुगेदिताः ॥ १५ ॥
 ययुर्युद्धाय सभद्रा नानाबाहनसंस्थिताः । तान्मर्षानागतान्दृष्ट्वा ययुः श्रीरामसैनिकाः ॥ १६ ॥
 जम्बूद्वीपांतरस्थाश्च तथा द्वीपांतरस्थिताः । पृथ्वानश्च नृपाः सर्वे नानाबाहनसंस्थिताः ॥ १७ ॥
 सुग्रीवश्चागदश्वाश्च हनुमान्श्च विभीषणः । जांबवाश्च सुषेणश्च संपातिर्मकरध्वजः ॥ १८ ॥
 गुहको भूरिकीर्तिश्च कंबुकठः प्रतापवान् । तथाऽन्ये जनकाद्याश्च ययुः संग्रामभूतलम् ॥ १९ ॥
 तदोभयोर्महानासीत्सैन्ययोर्वीरनिःस्वनः । नववायानि च नेदुरुभयोः सैन्ययोः पृथक् ॥ २० ॥
 तदा ब्रह्मादयो देवाः शिवेन सहिताश्च ते । सप्तधेनाय सोमेन देवद्रेण पुना मुदा ॥ २१ ॥
 नानाविमानमारुढा ददृशुर्बुद्धकीर्तुकम् । अथ चन्द्रादयो देवाश्चक्रमैत्रं परस्परम् ॥ २२ ॥

प्रतापसे मैने चौबहू दिनों ॥ इन लोगोंके साथ भयंकर युद्ध किया है । आप भी आगये हैं तो ये कुछ बचकर कहीं आयेंगे ॥ ३ ॥ ४ ॥ सुषेणकी बात सुनकर रामने भी उसे आश्वासन दिया और गङ्गाके उत्तरी तटपर अपना सेनानिवास बनाया ॥ ५ ॥ वहाँसे ही शत्रुकी सेना देखी । रात बीत जानेपर सबेरे ही रामने वानरोंको युद्धके लिए बिदा किया । रामको आशासे लोग सीता तथा रामको प्रणाम करके बड़ी प्रसन्नतासे गंगाजीको पार करके संग्रामभूमिमें जा पहुँचे । वहाँ पहुँचकर उन्होंने भयंकर सिंहनाद किया, विविध प्रकारके मारु बाजे बजाये और शत्रुकी सेनापर घावा बोल दिया । रामकी सेनाको देखकर वे नल आदि राजे बड़े विस्मित हुए ॥ ६-९ ॥ वे तुरन्त अपनी सेनाके युद्धके लिए जा डटे । इसके अनन्तर वे वानर पत्थरके बड़े-बड़े खण्ड और वृक्ष ले-लेकर रामचन्द्रजीकी जयजयकार करते हुए शत्रुपक्षके वीरोंका संहार करने लगे ॥ १० ॥ ११ ॥ उधर नलकी सेनाके भी घोर अपने तीखे शस्त्रोंसे वानरोंको मारने लगे । इस तरह कुछ देर तक घमासान युद्ध हुआ और वानरोंने अपनी वृक्ष-पाषाणवर्षसि शत्रुओंके छपके छुड़ा दिये । जिससे नलके सैनिकोंको वहाँसे पीछे हटना पड़ा ॥ १२ ॥ १३ ॥ इस तरह अपने वीरोंकी भागते देखकर नल आदिने और-और राजाओंको प्रोत्साहित किया ॥ १४ ॥ इससे जम्बूद्वीपके अन्यान्य द्वीपोंके राजे जिनकी गणना पीछे कर-आये हैं, वे अनेक प्रकारके बाहनोंपर आरुढ़ हो-होकर बड़ी तैयारीके साथ निकल पड़े । उन लोगोंको युद्धभूमिमें उपस्थित देखकर रामके सैनिक जा डटे ॥ १५ ॥ १६ ॥ उधर जम्बूद्वीप तथा अन्यान्य द्वीपोंके राजे उपस्थित थे । इधर सुग्रीव, अङ्गद, हनुमान्, विभीषण, आम्बवान्, सुषेण, सम्पाती, मकरध्वज, भूरिकीर्ति, कंबुकठ तथा जनक आदि वीर लड़नेके लिए संग्राम-भूमिमें डटे हुए थे । समय दोनों ओरके सैनिक बहुत जोर-जोरसे सिंहनाद कर रहे थे और विविध प्रकार-बाजे बज रहे थे ॥ १७-२० ॥ उस समय शिव, बुध, सोम और आदि देवताओंकी साथ सेकर

महाभयं समुत्पन्नं प्रलयोऽहं भविष्यति । ब्रह्मदत्तवराक्षते सोमवंशोद्भवा नृपाः ॥२३॥
 रामो विष्णुरयं साक्षात्कथं जयपराजयौ । भविष्यतः कथं युद्धानिर्वृत्तिरुभयोरपि ॥२४॥
 भविष्यति उवाच कः कार्यो युद्धानदारणे । तदा ब्रह्मा सुरानाह किञ्चिद्दृष्ट्वा त्रयं रणम् ॥२५॥
 करिष्यामस्तयोः सख्यं रामसोमजयोस्त्विह । इत्युक्त्वा सकलान्वेषा ददर्श गणकीतुकम् ॥२६॥
 तथोभयोः सैन्ययोश्च वभ्रुवर्षत्रनिःस्वनाः ॥ यन्त्रोन्धवद्विज्वाल्प्रभिव्यासा दशदिक्षीऽभवन् ॥२७॥
 यन्त्रोन्धनानागतिकाभिर्निजन्तुस्ते परस्परम् । अतन्मोभिस्तथा जग्मुः सकटभ्यामिरादरात् ॥२८॥
 तथा वीरा निजन्तुस्ते वारणैः सङ्घैः परस्परं तोमरैश्च मिदिपालैश्च सुद्वरैः ॥२९॥
 परिघैश्चक्रवारणैश्च कुतैः शूलैश्च पट्टिभैः । तदा जघान पितरं पुत्रः पुत्रं तथा पिता ॥३०॥
 पितामहस्तथा पौत्रं पौत्रश्चापि पितामहम् । अन्योन्यं कुलजत्वारुदादिकं मन्त्राभ्य वै मुहुः ॥३१॥
 तथा रणे प्रपौत्रं च जघान प्रपितामहः । तथा वारणैः प्रपौत्रोऽपि जघान प्रपितामहम् ॥३२॥
 मातामहं तु दौहित्रस्तदा वारणैस्ताडयत् । तथा मातामहश्चापि दौहित्रं च रणेऽहनत् ॥३३॥
 एवं परस्परं चासीद्युद्धं तल्लोमहर्षणम् । तत्र वे वे हता वीराः संगरे रामसेवकाः ॥३४॥
 तान्सर्वान् जीवयामास तदा पवननन्दनः । द्रोणाचलीपथीभिश्च वारं वारं स्वमैनिकान् ॥३५॥
 रिपुसैन्ये मृता ये ते मृता एव तु नेत्थिताः । एवं तदा सोमवंशनृपाम्ने क्षीणतां ययुः ॥३६॥
 तदा लोहितपूरा सा बभूव सुरनिम्नगा । अर्द्धपथमिता सेना नलादीनां तदा रणे ॥३७॥
 निपातिता राघवोयैर्नृपैः सा दरसंगरैः । एवं बभूव समरः कण्मासं हस्तिनापुरे ॥३८॥
 ततस्ते सोमवंशस्था नृपाः किञ्चिदलैर्दुताः । विषण्णा विगतोत्साहा निर्ययुः संगरं स्वयम् ॥३९॥
 तानागतांस्तदा वीक्ष्य कुशाद्या बालकाश्च ते । रामदोनां ययुस्त्वग्रे रथस्था रणभूतलम् ॥४०॥

अपने वाहनपर बैठे हुए ब्रह्माजी आकाशमण्डलमें आ पहुँचे और उन लोगोंका वह भयानक युद्ध देखने लगे । कुछ देर बाद चन्द्रमा आदि देवताओंने आपसमें कहा कि यह [] भयावह समय आ पहुँचा है । ऐसा लगता है कि आज प्रलय हो जायगा । इधर ये सोमवंशी राजे ब्रह्मासे वर प्राप्त किये हुए हैं, इसलिए किसीसे पराजित नहीं होंगे । उधर रामरूप धारण किये साक्षात् विष्णुभगवान् लड़ने आये हैं । ऐसी अवस्थामें जय-पराजय कैसे हो [] है ? और यदि यह झगड़ा ते करानेका विचार किया जाय तो कैसे हो ॥२१-२४॥ उनकी बात सुनकर ब्रह्माने कहा कि हम थोड़ी देरतक इनका युद्ध देखकर इन दोनोंमें सन्धि [] देंगे । ऐसा कहकर ब्रह्माजी युद्धकीतुक देखने लगे । उस समय दोनों सेनाओंसे तोप बन्दूक आदिकी मयंकर गर्जना सुनायी पड़ रही थी । उन यन्त्रोंके मुखसे निकली आगकी लपटोंसे इसी दिशासे व्याप्त हो गयीं ॥ २५-२७ ॥ बन्दूककी गोलियोंसे आपसमें एक दूसरेको मार रहा था । दूसरी ओर बड़ी-बड़ी गादियोंपर रखी हुई तोपें अलग आग उगल रही थीं । दोनों पक्षके धीरे आपसमें पट्टिण आदिसे लड़ रहे थे । उस समय युद्धके मदसे मतवाले हुंकर पिता पुत्रको, पुत्र पिताको, पौत्र पितामहको [] पितामह पौत्रको [] धाम-कुल आदि बतलाकर मार रहा था । प्रपितामह प्रपौत्रको, प्रपौत्र प्रपितामहको, दौहित्र मातामहको और मातामह दौहित्रको निःशत्रुभावसे मार रहा था ॥ २८-३३ ॥ इस तरह परस्पर लोमहर्षक युद्ध हो रहा था । उस समय संग्राम-भूमिमें जो-जो रामके सैनिक मरते थे, उन्हें हनुमान्जी द्रोणाचलकी संजीवनी वृटीसे जीवित कर लिया करते थे ॥ ३४ ॥ किन्तु शत्रुकी सेनामें जो मरे, [] मरे ही रह गये । इस कारण वे सब सोमवंशी राजे धीरे-धीरे क्षीणबल हो गये ॥ ३६ ॥ उस संग्रामसे रुधिरकी गंगा बह चली और रामके सैनिकोंने नल आदि राजाओंकी बागह यद्य सेनाका संहार कर डाला । इस तरह छः महीने तक हस्तिनापुरीमें यह महासंग्राम होता रहा ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ अन्तमें वे सोमवंशी राजे अपनी थोड़ी-सी सेना लेकर स्वयं संग्रामभूमिमें आये ॥ ३९ ॥ उनकी आये देखकर कुश आदि [] रथ-

नलं ययौ कुशः शीघ्रं नद्युक्तं स ययौ लवः । जातीकरमंगदश्च तथा च वसुदं नृपम् ॥ ४१ ॥
 चित्रकेतुर्ययौ शीघ्रं तथा लघुभृतं नृपम् । ययौ स पुष्करः शीघ्रं तद्युक्तः सुरयं ययौ ॥ ४२ ॥
 अजमीढं सुबाहुश्च यूपकेतुर्ययौ बलम् । यूपकेतुर्हि तत्सैन्यं चकारागोचरं शरैः ॥ ४३ ॥
 वायव्याग्नेण चिक्षेप लवस्तं लवणाभसि । तदा ते ॥ वीरश्च नलाथाः पर्वता ॥ ४४ ॥
 युपुधु रघुवीरस्य बालकैः सह संगरे । न चिरं जुर्बलैर्हीनाः स्कंधहीननगोपमाः ॥ ४५ ॥
 कुशो विव्याध बाणैस्तं नलं संग्राममूर्धनि । तदा नलः प्रमिमागः स्वबाणैस्तं व्यतर्जयत् ॥ ४६ ॥
 ततः कुशः स्वबाणैर्नलस्याम्बान् च जघन्युः । छत्रं सारथिनं चिक्षेप नलं बाणैरवाडयत् ॥ ४७ ॥
 नद्युक्तं चापि विव्याध स्वबाणैर्षवस्ततः । नद्युक्तश्च लवं बाणैस्तदा व्याकुलमावतनोत् ॥ ४८ ॥
 नद्युक्तं निजबाणैश्चकार विरथं लवः । एवं जातीकरं चार्थरंगदः संप्रसादयत् ॥ ४९ ॥
 घटादयजातीकरः परिघेणांगदं तदा । ततो जातीकरं बाणैरंगदोऽपातयद्बुधि ॥ ५० ॥
 चित्रकेतुः स्वबाणैर्घैः क्रोशेन वसुदं नृपम् । चिक्षेप स्वदनाद्देगात्तद्वलमिवामवत् ॥ ५१ ॥
 तथा लघुभृतो चार्थैर्हृदि विव्याध पुष्करम् । तदा स पुष्करः क्रोधाद्बाणैर्लघुभृतं रथे ॥ ५२ ॥
 मित्तिचित्रोपमं कृत्वा वादयामास हुन्दुभिम् । सुरयश्चापि तथं स ववर्ष शरवृष्टिभिः ॥ ५३ ॥
 ततस्तथः स्वबाणैर्घैः सुरयं गगनांगणे । सरयं आययामास शुष्कपर्णं यथा मरुत् ॥ ५४ ॥
 अजमीढस्तदा सर्वान् पूर्वजान् व्याकुलीकृतान् । वीर्यं रामारमबाधैर्स्तैर्वर्ष शरवृष्टिभिः ॥ ५५ ॥
 सुबाहुस्तं स्वबाणैश्चकार विरथं तदा । अजमीढस्ततोऽन्ये स रथे स्थित्वा ययौ पुनः ॥ ५६ ॥
 हुमोच पवनाद्यं स कुशादीनां रथे क्रुधा । तं दृष्ट्वा यूपकेतुस्तं पद्मनाभं सुमोच सः ॥ ५७ ॥
 तदा ते कोटिभ्यः सर्पाः पपुस्तं कंपनं क्षणात् । रथस्थः स नलः सर्पान् दृष्ट्वा गारुडवृत्तमम् ॥ ५८ ॥

पर सवार होकर रणभूमिमें जा डटे ॥ ४० ॥ उस समय नलके सम्मुख कुश, नद्युक्तके लव, जातीकरके सामने अज्जद, वसुदके सम्मुख चित्रकेतु, लघुभृतके सामने पुष्कर, सुरयके समक्ष तप्तक, अजमीढके आगने सुबाहु और बल नामक राजाके सामने यूपकेतु जा पहुँचे । यूपकेतुने घोड़े ही समयमें समस्त सेनाका नाम कर डाला ॥ ४१-४३ ॥ लवने अपने वायव्य अस्त्रमें उन मरे हुए सैनिकोंको सारे समुद्रमें फेंक दिया । ऐसी व्यवस्थामें पर्वतकी नाई बड़े-बड़े के नल आदि सातों वीर रामजीके बालकोंके साथ करने लगे । यह करते हुए भी वे राजे उसी तरह ओछे लगे रहे थे, जिस तरह दाली और पत्तोंसे चिह्नीन वृक्ष हों ॥ ४४ ॥ ॥ ४५ ॥ बोली देर बाद कुशने अपने बाणोंसे नलको घायल कर दिया । तब नल भी दूने वेगके साथ कुशपर झपटा, किन्तु मौका पाकर कुशने बाणों द्वारा नलके रथ, घोड़े, अज्जद, वसुध, छत्र और सारथीको नष्ट करके उसके गरोरपर भी प्रहार किया ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ उधर लवने अपने बाणसमूहसे नद्युक्तको और भद्रकने अपने गद्योंसे लवको व्याकुल कर दिया ॥ ४८ ॥ अन्तमें लवने अपना बाणवर्षासे नद्युक्तके रथको डाला । इसी तरह अज्जदने जातीकरपर प्रहार किया और जातीकरने परिघ चलाकर अज्जदपर प्रहार किया । अन्तमें अज्जदने अपने बाणोंसे जातीकरको घराशायी कर दिया ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इसी प्रकार चित्रकेतुने अपने बाणोंसे वसुदको उसके रथसे उठाकर दूर फेंक दिया । यह एक बड़ी कौतुकमयी घटना थी ॥ ५१ ॥ उधर लघुभृतने अपने बाणोंसे पुष्करपर प्रहार किया और पुष्करने क्रुपित होकर अपने बाणोंसे बहुभृतको एक लसवोरकी तरह उसके रथमें जड़ दिया और अपनी विजयधुम्धुभी बजा दी ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ इसके अनन्तर तप्तकने अपनी बाणवर्षासे सुरयको समेत नष्ट कर दिया, जैसे सूखे पत्तोंको वायु नचा देता है ॥ ५४ ॥ उसी समय अजमीढने देखा कि रामके वीर पुत्र उसके पूर्वजोंको बहुत सता रहे तो वह इन लोरीपर धोर बाणवृष्टि करने लगा ॥ ५५ ॥ इसी बीच सुबाहुने अजमीढके रथको काट डाला और वह दूसरे रथपर आरुढ़ होकर फिर संग्राम-भूमिमें आ डटा ॥ ५६ ॥ आते ही उसने कुश आदिको भारनेके लिए पद्मनाभका प्रयोग किया । उसके पद्मकूर पवनास्त्रको ब्रह्मकर यूपकेतुने पद्मनाभ चलाया ॥ ५७ ॥ जिससे क्षणभरमें उन सर्पोंने वायु पी ली । उधर

मुपोच ॥ निवृत्त्यर्थं ततोऽसन्नित् । तदा कुशः प्रभूमोच राक्षसास्त्रं भयावहम् ॥५९॥
 नयुक्कम् तदा वेगाद्ब्रह्मसं तं व्यसर्जयत् । तदा क्रोधास्त्रव्यापि मेघास्त्रं तं व्यसर्जयत् ॥६०॥
 तदा लघुभ्रुतव्यापि पवनास्त्रं मुपोच सः । तदा स हनुमान् शीघ्रं व्यादाय विकटाननम् ॥६१॥
 प्रपिबन्मरुतं वेगान्ननाद जलदस्वनः । एवं तच्च महायुद्धं पुष्पकाशमसंस्थितौ ॥६२॥
 सीतलामौ मुदा युक्तौ लक्ष्मणार्थैर्दर्शयतुः । एवं युद्धं पञ्चमाप्तान्संकादश दिनान्यभूत् ॥६३॥
 एकादशे दिने मार्गे गतास्तेऽस्मिन्समीरिताः । एवमेकादशैर्मासैकादशदिनैरपि ॥६४॥
 त्रेतायुगमवैर्दिव्यैः समाप्तिं संगरस्य च । अदृष्ट्वा स कुशो वेगाद्ब्रह्मसं संदधे तदा ॥६५॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पूर्णकाण्डे षोडश-
 विष्णुदाससंवादे सीमवन्तोद्भवनृपाणां युद्धवर्णनं नाम षोडशः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः

(सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजाओंमें मैत्री)

श्रीरामदास उवाच

संदधानं तं दृष्ट्वा देवाः सुराः सह । सोमेन च बुधेनापि विमानेन ययौ हवम् ॥१॥
 विमानादवक्ष्यामि तदा ॥ कुशं ययौ । कुशं तं प्रार्थयामास ॥ त्वमस्त्रं विसर्जय ॥२॥
 पथो मेऽद्य नाके सोमाय ॥ मया । द्वापरांतं वरो दक्षस्त्वजेयाय रणाजिरे ॥३॥
 भविष्यन्ति नलाद्याश्च सर्वे पुष्पकुलोद्भवाः । पुरा त्विति सुरात्रे हि कस्मिंश्चित्कारणांतरे ॥४॥
 अतस्त्वं कुश माऽस्त्रं ये नलाद्येषु विसर्जय । तद्वज्रवचनं श्रुत्वा कुशो वाक्यमथाब्रवीत् ॥५॥
 अधुना ध्वजमात्रेण सर्वान्दग्धान्करोम्यहम् । तोषेत्कथय रामाय तस्याश्चां मानयाम्यहम् ॥६॥

रथपरसे मरने ॥ पद्मनाभ देवा तो नाकास्त्रका प्रयोग किया ॥ ५८ ॥ उसकी निवृत्तिके लिए कुशने बड़े ही
 भयानक राक्षसास्त्रका प्रयोग किया ॥ ५९ ॥ उसी समय नयुक्कने ब्रह्मसं चलाया । तब मारे क्रोधके लवने
 उसपर मेघास्त्रका प्रयोग कर दिया ॥ ६० ॥ इसके अनन्तर लघुभ्रुतने पवनास्त्र छोड़ा । इसी समय हनुमान्जीने
 ॥ मुझ फंलाकर सह ॥ की ली और मेघकी तरह क्रोधास्त्र स्वरमें गरजे । ऊपर विमानपर बैठे हुए
 पुष्कर, ॥ तथा सीताजी उस महायुद्धकी देख रही थीं । ॥ तरह वह युद्ध पांच महीना ग्यारह दिन चला
 ॥ ६१-६३ ॥ ग्यारह ही दिनोंके लगभग अयोध्यासे हस्तिनापुर आनेमें लगे थे । ॥ मिलाकर त्रेतायुगके
 दिनोंके हिसाबसे उस युद्धमें ग्यारह महीने और ग्यारह दिन लगे ॥ ६४ ॥ ऊपर जब कुशने देखा कि ॥ कोई
 ॥ उपाय नहीं है तो ब्रह्मास्त्रका संधान किया ॥ ६५ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये १० राम-
 तेकपाण्डेवहृता 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते पूर्णकाण्डे धृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

श्रीरामदासने कहा-जब ब्रह्माने देखा कि कुश ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करने जा रहा है तो वे बहुतसे देवताओं
 और बुध तथा सोमको ॥ लिये हुए विमानपर बैठकर पृथ्वीतलपर आये । यहाँ पहुँचे तो विमानसे उतर-
 कर कुशके पास गये और प्रार्थना की कि तुम इस ब्रह्मास्त्रका प्रयोग मत करो ॥ १ ॥ २ ॥ आज मेरे कहनेसे
 मेरी बात मान ली । क्योंकि एक ॥ मैंने स्वर्गलोकमें इन सोमवंशियोंको वरदान दिया था कि द्वापर ॥
 संग्रामभूमिमें तुम किसीसे भी पराजित नहीं होओगे ॥ ॥ ॥ जागे चलकर तुम्हारे वंशमें नल आदि बड़े
 प्रतापशाली राजे होंगे ॥ ४ ॥ इस कारण है कुश । तुम इन नल आदि राजाओंपर ब्रह्मास्त्रका प्रयोग न
 करो । ब्रह्माकी बात सुनकर कुशने कहा ॥ मैं अभी क्षणमात्रमें इन दुष्टोंको भस्म किये देता हूँ ।
 यदि आज कुश कहना चाहते हों तो जाकर रामचन्द्रजीसे कहिए, मैं उनकी बात मानूँगा ॥ ५ ॥ ६ ॥

यदा त्वया वरो दत्तस्तदा किं विदितं तव । नासीच्छ्रीरामसामर्थ्यं ह्यधुना प्रार्थ्यसे मुधा ॥ ७ ॥
 त्वयि चेद्वर्तते किञ्चित्सारं धर्तुं रणं मया । तर्हि कुरुष्व साहाय्यं नलादीनां सुरैर्युतः ॥ ८ ॥
 त्वया रणे संगरोद्ध मम पश्यतु राघवः । सीताऽपि पुष्पकासीना जालरथैश्च पश्यतु ॥ ९ ॥
 एवं कुशस्य वचनं श्रुत्वा लज्जायुतो विधिः । सोमेनाय बुधेनापि नलाद्यान्प्राह वेगतः ॥ १० ॥
 रे रे मूढाः मृणुष्व मे वचनं हि धृतायुषः । साक्षान्मारायणं रामं युयं योद्धुं समुद्यताः ॥ ११ ॥
 केनेयं शिथिला बुद्धिः सर्वेषां घातकारिणी । गच्छध्वं शरणं रामं नोवेद्य मरिष्यथ ॥ १२ ॥
 ममार्य जनकः साक्षाद्रामो विष्णुर्न संशयः । इति धिक्कृत्य तान्वेधाः कुशं वचनमब्रवीत् ॥ १३ ॥
 यावद्यास्थास्यहं रामान्पुनस्त्वां कुशबालक । तावच्चेन्मोक्षयसे वाणं तर्हि मां हतवानसि ॥ १४ ॥
 इत्युक्त्वा तं कुशं वेधा नलाद्यैः परिवेष्टितः । पर्यां रामं सुरैर्भुक्तः पुरस्कृत्य ध्रुवन्वजम् ॥ १५ ॥
 शिवमागतमाज्ञाय पुष्पकाद्रघुनन्दनः । प्रत्युद्गम्य शिवं नत्वा प्रणनाम ततो विधिम् ॥ १६ ॥
 ततस्तान्पूजयामास शिवादीन्प्रघुनन्दनः । ततः सभायां रामस्य तिष्ठन्वेधा नलादिभिः ॥ १७ ॥
 प्रणामान्कारयामास सोमेन च बुधेन च । ततस्तान्सहसोत्थाय रामचन्द्रः करेण हि ॥ १८ ॥
 श्रुत्वा तेषां हि नामानि विधेरास्यात्पृथक् पृथक् । ततः पप्रच्छ वेगेन पुरतः स्थितम् ॥ १९ ॥
 सर्वे किमर्थमानीतास्त्वर्त्रैते सोमवंशजाः । वद त्वं कारणं शीघ्रं सत्यमेव ममाग्रतः ॥ २० ॥
 तद्रामवचनं श्रुत्वा रामं वेधा वचोऽब्रवीत् । राम महाबाहो पालयस्वाद्य मे वचः ॥ २१ ॥
 रथस्वैतान्नुपानय वरदानान्मम प्रभो । द्वापरान्तमजेयत्वं दत्तमस्ति मया पुरा ॥ २२ ॥
 ममास्थं सन्दधानं निवारय कुशं सुतम् । इति तद्वचनं श्रुत्वा विहस्य रघुनायकः ॥ २३ ॥
 सभायामाह ब्रह्माणमजेयत्वं त्वयोदितम् । गतं चाद्य समरात्किमर्थमिह चागताः ॥ २४ ॥

जब आपने उनको वरदान दिया था, तब क्या रामकी सामर्थ्यका आपको ध्यान नहीं था ? तब तो रामको कुछ समझने नहीं, अब झूठ-मूठकी प्रार्थना करने आये हैं ॥ ७ ॥ मैं कहता हूँ कि यदि आपमें कुछ शक्ति हो तो देवताओंको साथ लेकर आप नल आदिको सहायता करिए । मैं आपके साथ धनघोर युद्ध करने और रामचन्द्रजी सीता पुष्पक विमानके झरोखोंसे मेरा और आपका संघर्ष देखें ॥ ८ ॥ ९ ॥ इस प्रकार कुशकी बात सुनी तो ब्रह्माजी लज्जित हो गये और आदिको फटकारते हुए कहने लगे—मरे मूढ़ो ! जान पड़ता है कि तुम लोगोंकी आयु ही गयी है, जो साक्षान्मारायणस्वरूप रामचन्द्रजीसे युद्ध करने आये हो ॥ १० ॥ ११ ॥ सर्वनाश उपस्थित करनेवाली यह दुर्बुद्धि तुमको किसने दी है ? अब यदि अपना कल्याण चाहते हो तो रामकी शरणमें जाओ, नहीं तो एक एक करके तुम सब मार डाले जाओगे ॥ १२ ॥ मेरे पिता विष्णुभगवान् ही तो रामरूपसे पृथ्वीतलपर अवतरे हैं । तरह उन लोगोंको डाँट-फटकार करके ब्रह्माजी कुशसे कहने लगे कि मैं रामके पास जा रहा हूँ । जबतक उनके पाससे न लौट आऊँ, तबतक प्रहार न करना । ऐसा करोगे तो मानों उनका नहीं, तुमने मेरा किया ॥ १३ ॥ १४ ॥ ऐसा कुशसे कहकर ब्रह्माजी शिवजीको आगे करके नल आदिके साथ-साथ श्रीरामचन्द्रजीके पास गये । जब रामने सुना कि शिवजी आ रहे हैं तो पुष्पक विमानसे उतरकर उनका स्वागत और प्रणाम करके ब्रह्माजीको भी अभिवादन किया ॥ १५ ॥ १६ ॥ इसके अनन्तर रामने शिवजी आदिकी विधिवत् पूजा की और सब लोग सभाभवनमें गये । वहाँ ब्रह्माने सोम और बुधसे श्रीरामको प्रणाम करवाया । रामने उनको अपने हाथोंसे उठा लिया और ब्रह्माजीके मुखसे उनका नाम सुना । कुछ देर बाद रामने ब्रह्मासे पूछा कि आप इन सोम-बुधियोंको यहाँ किस लिए लाये हैं ? जो इसका वास्तविक कारण हो, वह मुझे बतलाइए ॥ १७-२० ॥ रामकी बात सुनकर ब्रह्माने कहा—हे राम ! हे महाबाहो ! आज मेरी बात मानकर इन नल आदि राजाओंकी रक्षा कीजिए । मैं इन लोगोंको यह वरदान दे रक्खा हूँ कि द्वापरपर्यन्त तुम लोग किसीसे पराजित नहीं होओगे ॥ २१ ॥ २२ ॥ जबर कुश मेरे स्व (ब्रह्मास्त्र) सन्धान करके खड़े हैं । उन्हें भी

तद्रामवचनं श्रुत्वा रामं प्राह विधिः पुनः । सर्वेषां पुरतो मेऽस्ति बलं ॥ २५ ॥
 त्वं तु मे जनकः साक्षादतस्त्वां प्रार्थयाम्यहम् । ततो रामः पुनः ॥ विहस्य चतुराननम् ॥ २६ ॥
 न श्रोष्यति वचो मेऽद्य कुशोऽयं पौवनस्त्रिभुवः । प्रायः कुमारं वृद्धानां वाक्यमग्रे मज्जन्ति न ॥ २७ ॥
 अन्यथापि शृणुष्व त्वं यच्छास्त्रेऽप्युच्यते वचः । लालयेत्येवं वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत् ॥ २८ ॥
 प्राप्ते तु पोटशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत् । अतस्ते बालकाः सर्वे कुशाद्याः स्वार्थतत्पराः ॥ २९ ॥
 न श्रोष्यति वचो मेऽद्य तान्गत्वा प्रार्थयस्व हि । ततः प्राह पुनर्बद्धा रणक्रोधान्कुशो मया ॥ ३० ॥
 वाक्यं रम्यं मञ्जुलं च नैवाद्य वदति प्रमो । ततः प्राह विधिः रामः पुनर्वाक्यं विनोदयन् ॥ ३१ ॥
 विधे त्वं गच्छ वाल्मीकिं स त्वां युक्तिं वदिष्यति । ततः स रामवाक्येन वाल्मीकिं पुष्पके स्थितम् ॥ ३२ ॥
 हनिमिर्हनिशालायामूर्ध्वं सर्वैः स्थितं विधिः । नलाद्यैः सहितो गत्वा वृक्षं सर्वं न्यवेदयत् ॥ ३३ ॥
 विधिमाहाथ वाल्मीकिर्हात्वा राममनोगतम् । शीलब्धजीविताश्चैते भवन्तु सुखिनस्त्रिभुवः ॥ ३४ ॥
 नलादीनां स्त्रियः सर्वाः प्रार्थयन्तु विदेहजाम् । कुशोऽपि जानकीवाक्याच्छान्तिमेष्यति बालकः ॥ ३५ ॥
 तथेति ते नलाद्याश्च दूतान् प्रेष्याथ सादरम् । आनीय स्वकलत्राणि शतशस्तु तदा जवात् ॥ ३६ ॥
 जानकीं प्रेषयामासुस्ताः सर्वाः पार्थिवस्त्रियः । उपायनानि संगृह्य जानकीं प्रययुर्जवात् ॥ ३७ ॥
 ददृशुर्जानकीं नारीशलायां स्वसखीवृताम् । मनुषाभिः सेवितवदां पर्यङ्के निद्रितां मुदा ॥ ३८ ॥
 ततः स्त्रीः समागताः सीता दृष्ट्वा चामरजीविना । मञ्चकादवरुणाथ धृत्वाभ्यर्चयन्वर्द्धना ॥ ३९ ॥
 त्विष्टुं मञ्चकं कृत्वा संस्थिताऽऽसीत्सर्त्तुवृता । मनुषाभिर्वाजिभिः रम्यां प्रणेषुस्तां परस्त्रियः ॥ ४० ॥
 तासां सीमन्तरत्नौघप्रभया पदपङ्कजे । विरेजतुस्ते सीतायाश्चित्ररागविचित्रिते ॥ ४१ ॥
 उपायनानि संगृह्य ताम्यः ॥ जनकात्मजः । समालिख्य निवेदयाथ ताः प्राह सुस्वरं वचः ॥ ४२ ॥

आप शोक दीजिए । ब्रह्माकी बात सुनकर रामने कहा कि आपने ॥ २५ ॥ हनको अजेय कर दिया था, ॥ फिर
 ये लोग संग्रामभूमि छोड़कर यहाँ मेरे पास क्यों आये हैं ? ॥ २६ ॥ २७ ॥ रामकी यह बात सुनकर ब्रह्मा कहने
 लगे—सब लोगोंके लिए तो मेरे पास बल है, किन्तु आपके लिए मेरेमें कुछ भी सामर्थ्य नहीं है ॥ २८ ॥
 आप मेरे पिता हैं, इसी नाते ॥ आपसे प्रार्थना ॥ २९ ॥ है । फिर राम बाले कि कुश युवावस्थामें है ।
 संसारमें प्रायः देखा जाता ॥ कि कुमार लोग वृद्धोंकी ॥ ३० ॥ नहीं मानते ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ इसके अतिरिक्त
 शास्त्रमें भी कहा गया ॥ कि पाँच वर्षकी अवस्थातक वर्षोंका दुस्मर करे, दस वर्षकी ॥ ३३ ॥ तक डराये-
 वमकाये, किन्तु सोलह वर्षका हो जानेपर बेटेके साथ मित्रताका व्यवहार करना चाहिए । इसी कारण ये
 स्वर्णी बालक मेरी ॥ ३४ ॥ नहीं मानेंगे । ॥ स्वयं जाकर उनसे प्रार्थना कीजिए । ब्रह्माने कहा कि संग्राम-
 जनित क्रोधके कारण ॥ ३५ ॥ वह हमसे सीधी ॥ ३६ ॥ भी नहीं करता । फिर विनोदवश रामने ब्रह्मासे कहा
 कि ॥ वाल्मीकिके ॥ जाइए । वे आपको कोई युक्ति बतलायेंगे । रामके कथनानुसार ब्रह्मा ॥ ३७ ॥ आदिकी
 अपने साथ लेकर वाल्मीकिके पास गये । वाल्मीकिजी ॥ ३८ ॥ रामके साथ पुष्पक विमानपर ही रहा करते
 थे । इससे उनके पास पहुँचनेमें विशेष ॥ ३९ ॥ नहीं लगा । वहाँ जाकर ब्रह्माने वाल्मीकिकी सब वृत्तांत कह सुनाया
 ॥ ४०-४१ ॥ रामका मनोगत अभिप्राय जानकर वाल्मीकिने ब्रह्माजीसे कहा कि अपनी स्त्रियोंकी कृपासे ये लोग
 जीवनदान पा सकते हैं । उसका उपाय यह ॥ ४२ ॥ नल आदिकी स्त्रियाँ सीताके पास जाकर अपने पतियोंके
 जीवनकी भीख माँगे । यदि सीता ॥ ४३ ॥ हो गयीं तो कुछ भी मान जायगा ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ वाल्मीकिके कथना-
 नुसार नल आदिने अपनी स्त्रियोंकी लिवा लातेके लिए सैकड़ों दूत भेजे और ॥ ४६ ॥ तुरन्त उनको लिये हुए आ
 पहुँचे । इसके अनन्तर वे स्त्रियाँ विविध प्रकारके उपहार लेकर सीताके पास गयीं । वहाँ पहुँचकर उन स्त्रियों-
 ने देखा कि सीता अपनी सलियोंसे घिरी हुई बैठी आपको ले रही है और पतोहुएँ उनकी सेवामें तत्पर ॥
 ४७-४८ ॥ जब सीताने उन स्त्रियोंको देखा तो तर्किया बगलमें कर ली और उठ बैठी । उस समय उन स्त्रियों-
 ने उनकी प्रणाम किया ॥ ४९ ॥ ४० ॥ उन राजदानियोंके सीमन्तरत्नौघ प्रभासे सीताके पैर चित्र-विचित्र

किमर्थमागता युयं मा मेतच्चमिताः परम् । कथयन्त्यं स्वीयमिष्टं सद्योऽथ करोम्यहम् ॥४३॥
 तदा ताः कथयामासुः सर्वं वृत्तं सविस्तरम् । देहि कङ्कणदानानि कुशं युद्धाभिचारय ॥४४॥
 तथेति जानकी चोक्त्वा ज्ञात्वा राममनोगतम् । नारीहस्तान्मोचनीयार्थेति निर्जरवद्विति ॥४५॥
 आरुह्य शिबिकायां सा ताभिर्युक्ता कुशं ययौ । तदा तं सात्वयामास क्रोधं स्मज्ज कुशाधुना ॥४६॥
 निवर्त्तस्व रणादथ मृणु मे वचनं शिशोः । तथेति जानकीशक्याद्विहस्याथ कुशस्तदा ॥४७॥
 माया सर्वधुभिर्युक्तः सेनया संन्यवन्ततः । पुष्पकं प्रययौ सीता नृपस्त्रीपरिवेष्टिता ॥४८॥
 कुशाद्यास्ते कुमारश्च सभायां राघवं ययुः । ततो वाग्मीकिना ब्रह्मा नलाद्यैः सहितस्तदा ॥४९॥
 सनिर्जरः सभां गत्वा तस्थौ श्रागघटाग्रतः । कुशाद्यान्तेऽपि श्रागमं प्रणम्य तस्य संनिधौ ॥५०॥
 तस्युस्तेनालिगिताश्च स्त्रीभिर्नारीरानिता अपि । तदा रामोऽनर्वादाक्षयं ब्रह्माणं सदसि स्थितम् ॥५१॥
 रणाभिर्वर्तिता बालाः किमग्रे तव वार्षितम् । न मे राज्ये छत्रपतिर्द्वितीयोऽत्र भविष्यति ॥५२॥
 करणीयं नलाद्यैः किं तद्वदस्व सविस्तरम् । तदाऽऽसनादुत्थितः सः वेधा रामाग्रतः स्थितः ॥५३॥
 उवाच भधुरं वाक्यं सभायां राघुनन्दनम् । राम राम महाबाहो भूमारश्च त्वया हृतः ॥५४॥
 चिरकालं कृतं राज्यं वैकुण्ठं पालयाधुना । कुरु मत्स्यं वचो मेऽथ ददस्व हस्तिनापुरम् ॥५५॥
 नलादिभ्यस्त्वयोध्यायां कुशो राज्यं प्रशामतु । तदा रामो विधिं प्राह ममाप्येतत्तु सेचते ॥५६॥
 वैकुण्ठं भो गमिष्यामि सीतया चन्द्रभियुतः । दशवर्षमदस्त्राणि प्रोक्तमायुर्पुण्येऽत्र हि ॥५७॥
 तन्मया स्वीयसामर्थ्यात्कृतमत्र विधे मृषा । एकादश मदस्त्राणि समास्त्वेकादशैव तु ॥५८॥
 तथैकादश मासाश्च गता मे दिवसा अपि । शेषमायुश्च किञ्चिन्मे तच्छ्रुः पूर्णं भविष्यति ॥५९॥

प्रकारके होल रहे ॥ ४१ ॥ इसके संताने उमरों में स्त्री-स्त्री-स्त्री और उनको हृदयसे लगाकर कहने लगी कि तुम लोग यहाँ किस कामसे आये हो ? अपना इच्छा प्रकट करो । तुम जो कुछ चाहोगा उसका मैं दूँगी ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ तब उन रानियोंने युद्धसम्बन्धी वृत्तान्त बतात हुए कहा—हे देवि ! आप मेरी उतरती हुई फूटी रखनेके लिए कुशको युद्ध करनेके रोक दीजिए ॥ ४४ ॥ संताने मन ही मन रामकी इच्छा जान ली । उन्होंने सोचा—वे चाहते हैं कि स्त्रियोंके नर आदिको जीवनदान मिले । यह सोचकर उन्होंने उन स्त्रियोंसे कहा—अच्छी है । इसके अनन्तर वे तुरन्त पालकीपर सवार हुई और कुशके पास जा पहुँची और कहा—बेटे कुश ! अब तुम अपने क्रोधका परिहराग कर दो ॥ ४४ ॥ ४६ ॥ मेरी बात मानकर संग्रामभूमिसे लौट चलो । जानकीकी बात सुनकर कुश मुस्कराये और अपने बन्धु-बान्धवों तथा सेनाको साथ लेकर लौट पड़े । सीता कुशको तथा उन स्त्रियोंकी अपने साथ लिये अपने पुष्पक विमानपर जा पहुँची । वहाँ पहुँचनेपर कुश आदि बालक सभामें रामचन्द्रजीके पास चले गये । इसके अनन्तर ब्रह्माजी भी वाल्मीकि तथा नल आदिको साथ लेकर सभामें रामचन्द्रजीके पहुँचे । कुश आदि बालक भगवान्‌को प्रणाम करके एक ओर लड़े हुए गये ॥ ४७-५० ॥ रामने उनको अपने हृदयसे लगा लिया और स्त्रियोंने उनकी आरती उतारी । कुछ देर रामने ब्रह्माजीसे कहा कि आपके इच्छाानुसार कुश आदि बालक तो संग्राम-भूमिसे लौट आये । अब आपकी क्या इच्छा है ? अबसे मेरे राज्यमें कोई दूसरा छत्रचारी राजा नहीं रहेगा ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ अब आप यह भी बतला दीजिए कि नल आदिको क्या करना चाहिए । रामकी यह बात सुनते ही ब्रह्माजी उठकर रामके आगे जा बैठे और कहने लगे—हे राम ! हे महाबाहो ! आपने पृथ्वीका छत्रार लिया । बहुत दिनोंतक पृथ्वीपर राज्य भी किया । अब चलकर वैकुण्ठवामकी करिए और मेरी सच करनेके लिए नल आदिको हस्तिनापुरी दे डालिए ॥ ५३-५५ ॥ कुश जानन्दके साथ अयोध्याका राज्य करे । रामने ब्रह्मासे कहा कि यही बात मुझे भी ज्ञेय रही है ॥ ५६ ॥ कल मैं सीता तथा अपने बान्धवोंके साथ वैकुण्ठवामको चल दूँगा । इस युगमें मनुष्यकी आयु दस हजार वर्ष निर्धारित की । किन्तु ब्रह्माजी ! मैं अपनी सामर्थ्यसे नियमको व्यर्थ करके प्यारह हजार प्यारह वर्ष और प्यारह

द्वादशायां घटिकायां सोऽहं वैकुण्ठमाश्रये । ततो विधिं कुशः प्राह नलाया यदि मां विधे ॥६०॥
 दास्यंति करभारं मे तर्हि विष्टु चान्न ते । मदाज्ञां पालयंस्त्वेते तव वाक्यात्सुरक्षिताः ॥६१॥
 छत्रहीनाः सुखं त्वय वसन्तु हस्तिनापुरे । तद्वाक्यं स विधिः श्रुत्वा पुनः प्राह कुशं प्रति ॥६२॥
 छत्रमाज्ञापयस्वैतांस्तवाज्ञावशावर्जिनः । दास्यंति करभारं त्वां मम वाक्यं हि पालय ॥६३॥
 तथेति स कुशः प्राह विधिं किञ्चिन्मिमाननः । अथ ते सोमवंशस्या नृपाः सर्वे विधिं तदा ॥६४॥
 प्रोक्षुर्बप त्वया स्त्रीभिर्यास्यामो दिवमद्य । अजमादोऽद्य नृपतिर्भवत्स्व गजाद्वये ॥६५॥

तथेति तान् विधिभोक्त्वा समायां समुपाविशत् ।

■ गजाऽजमीढाय ब्राह्मणैरभिषिच्य च । गजाद्वये तं राजानं चकार राघवाश्रया ॥६६॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितस्तोत्रं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पूर्णकाण्डे
 सोमसूर्यवंशजयो मंत्रीकरण नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

(रामका मित्रों तथा राजाओंको विदा करना)

श्रीरामचन्द्र उवाच

अथ रामं सुषेणश्च सुग्रीवश्च विभीषणः । वानराः प्रार्थयामासुर्बपं राम त्वया दिवम् ॥ १ ॥
 यास्यामो नात्र जीवामस्त्वया राम विना भुवि । ददस्वाज्ञां त्वया गतुं तथाह राघवोऽपि सः ॥ २ ॥
 विभीषण त्वया स्वेयं लंकायां मम वाक्यतः । प्रचरिष्यति यावन्मे रामनामावनीतले ॥ ३ ॥
 त्वं गच्छाच्चैव मे वाक्यात्तथेति स विभीषणः । नत्वा रामं ययौ लंकां राघवेणातिमानितः ॥ ४ ॥
 ततः प्राह जांबवतं राघवः पुरतः स्थितम् । हे जाम्बवँस्त्वया स्वेयं यावद्भूम्यां कथामम ॥ ५ ॥

महीने इस संसारमें रहा ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ सोही-सी आयु जेय बचो थी, सो भी कल पूरी हो जायगी ॥ ५९ ॥
 ठीक बारह घड़ी बाद ■ वैकुण्ठधामके लिए चल दूंगा । तदनन्तर कुशने ब्रह्माजीसे कहा कि यदि नल
 बादि राजे मुझे करभार दें और मेरे आज्ञानुसार चलें तो मैं आपकी आज्ञासे इनको हर तरहसे सुरक्षित
 रखूँगा । इनको ■ धारण करनेका अधिकार नहीं रहेगा । अर्थात् छत्रविहीन होकर ये लोग आनन्दके ■
 रह सकेंगे । कुशकी बात सुनकर ब्रह्माने कहा ■ आप इन्हें छत्र धारण करनेकी आज्ञा दे दीजिए । हाँ, ■
 सर्वे आपकी ■ पालन करते हुए करभार देंगे रहेंगे ॥ ६०-६४ ॥ कुशने ब्रह्माकी ■ स्वीकार कर ली ।
 इसके अनन्तर उन सोमवंशी राजाओंने ब्रह्मासे कहा कि हमलोग अपने रिश्वे लिये हुए आपके साथ
 स्वर्गको चले चलेंगे । ■ इस हस्तिनापुरीका ■ यह अजमाद बनेगा ॥ ६५ ॥ ब्रह्माने भी उनकी ■
 स्वीकार कर ली और सभामें बैठ गये । इसके ■ रामका आज्ञासे ब्रह्माने ब्राह्मणों द्वारा अजमादका राज्या-
 मिवेक कराके हस्तिनापुरीका ■ बना दिया ॥ ६६ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितस्तोत्रं श्रीमदानन्दरामायणे
 वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृत 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते पूर्णकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीरामदासने कहा-इसके बाद सुषेण, सुग्रीव, विभीषण तथा अन्यान्य वानरोंने भगवान्से प्रार्थना की-
 हे राम । हमलोग भी आपके साथ स्वर्गको चलेंगे । आपके बिना हमारा इस पृथ्वीपर जीवित रहना
 कठिन है । कृपया हमें भी अपने ■ चलनेकी आज्ञा दीजिए । यह सुनकर रामने कहा-हे विभीषण ! तुम मेरे
 कहनेसे तबतक लंकामें ही रहो, जबतक संसारमें मेरे नामका प्रचार होता रहे । तुम आज ■ लंका चले
 जाओ । विभीषणने भी भगवान्की बात मान ली और प्रणाम करके लङ्काको प्रस्थान कर दिया । चलते समय
 भगवान्ने विभीषणका बहुत सम्मान किया ॥ १-४ ॥ इसके अनन्तर जाम्बवान्से बोले-हे जाम्बवान् ! जबतक
 त्वं ■ मेरी कथा प्रचलित रहे, ■ तुम इसी लोकमें रहो । आपरके अन्तमें फिर तुम हमारा दर्शन

अचरिष्यति तावच्च द्वापरांते पुनर्मम । भविष्यति दर्शनं ते गच्छाद्यैव सुखं ॥ ६ ॥
 स्वया कृतं यत्माहाय्यं लंकायां मे वनेऽपि च । अरुन्धं भृगुरो भून्वा द्वापरे ख्यातिमेव्यसि ॥ ७ ॥
 तथेति रामवचनाद्दामं सीतां प्रणम्य सः । जात्राग्निर्ययौ शीघ्रं राघवेणानिपूजितः ॥ ८ ॥
 रामः प्राह हनुमन्तं वन्म तिष्ठ यथासुखम् । यदा सेतौ पणम्ये हि द्वापरांतेऽर्जुनेन वै ॥ ९ ॥
 भविष्यति शरैः सेतुं कर्तुं मे दर्शनं तदा । न्वं लभिष्यमि गच्छाद्य सुखं वस भजस्व माम् ॥ १० ॥
 तद्दामवचनं श्रुत्वा नत्वा गमं च नक्ष्मणम् । सीतां प्रणम्य हनुमान् गमनायोपचक्रमे ॥ ११ ॥
 ततो रामो निजान्कण्ठान्नरन्नविभूषितम् । हारं ददौ तथा सीता तं ददौ बाहुभूषणे ॥ १२ ॥
 ततो नत्वा रामचन्द्रं सार्द्धं नैव स मारुतिः । पश्चिम्य ययौ वेगात्तप्तुं तु हिमपर्वतम् ॥ १३ ॥
 ततोऽङ्गदं रामचन्द्रः पूज्य वस्त्रादिमण्डनैः । प्रेषयामास किष्किन्धां शृंगवेरं तु गूढकम् ॥ १४ ॥
 पातालं प्रेषयामास राघवो मकरध्वजम् । वस्त्रादिभिस्तोषयित्वा सुहृदः स्वस्थलानि हि ॥ १५ ॥
 ततो रामः समाहूय यूपकेतुं महामनाः । वस्त्रादिभिस्तोषयित्वा विदिशानगरं प्रति ॥ १६ ॥
 प्रेषयामास सैन्येन सोऽपि नत्वा रघून्ममम् । जानकीं च ययौ वेगात्स्त्रीपुत्रैः परिवारितः ॥ १७ ॥
 एवं रामः सुबाहुं तं मथुरां प्रेषयत्तदा । एवं गमः पुष्करं च प्रेषयामास बालकम् ॥ १८ ॥
 सैन्येन पुष्करावत्यां तक्षं तक्षशिलाद्वये । ततोऽङ्गदं गजाश्वं तं प्रेषयामास राघवः ॥ १९ ॥
 धनरत्नं चित्रकेतुं स्त्रीपुत्रयलवाहनैः । प्रेषयामास श्रीरामस्तोषितं वसनादिभिः ॥ २० ॥
 ततो लवं समाहूय ससीतो रघुनन्दनः । वस्त्रालंकारयानार्घ्यस्तोष्य स्त्रीपुत्रसंयुतम् ॥ २१ ॥
 उत्तरेषु कुरुष्वत्र प्रेषयामास सेनया । कामधेनुं ददौ सीता लवाय व्रजते मुदा ॥ २२ ॥
 ततः कुशं समाहूय रामः स्त्रीपुत्रसंयुतम् । प्रेषयामास साकेतं सैन्येन पार्थिवैर्युतम् ॥ २३ ॥

करोगे । तुम भी आज ही प्रस्थान कर दो और आनन्दके साथ किसी स्थानपर निवास करो ॥ ५ ॥ ६ ॥
 तुमने लंका और वनमें मेरी जो सहायता की है, उसीके प्रभावसे द्वापरमें तुम मेरे भृगुरके रूपमें विख्यात
 होओगे ॥ ७ ॥ रामकी बात स्वीकार करके गाम्बवान् सीताजी तथा रामको प्रणाम करके चल दिये ।
 चलते समय रामने उनका भी अच्छी तरह सम्मान किया ॥ ८ ॥ तदनन्तर हनुमान्जीसे रामने कहा—हे
 बत्स ! तुम भी आनन्दके साथ इसी लोकमें निवास करो । द्वापर युगके अन्तमें तुम्हारी अर्जुनके साथ
 सेतुविषयक होड़ होगी, उस समय तुम मेरा दर्शन करोगे । जात्रा और मेरा करते हुए आनन्दके
 साथ रहो ॥ ९ ॥ १० ॥ रामकी यह बात सुनकर हनुमान्जीने राम-लक्ष्मण तथा सीताको किया और
 चलनेकी संधारो कर दी ॥ ११ ॥ चलते समय रामने अपने गलेसे एक रत्नमाला उतारकर हनुमान्जीकी सी
 और सीताने अपना बाहुभूषण उतारकर दे दिया ॥ १२ ॥ इसके पश्चात् हनुमान्जीने बाँझोंमें भाँसु भरकर
 भगवान्को प्रणाम किया और परिव्रज्य करके तपस्व्य करनेके लिए हिमवान् पर्वतपर चले गये ॥ १३ ॥
 इसके बाद रामने अङ्गदको विविध प्रकारके वस्त्र-आभूषण दिये और उन्हें किष्किन्धा भेज दिया । निषादराज-
 को शृंगवेरपुर भेज दिया ॥ १४ ॥ इसके बाद रामचन्द्रजीने मकरध्वजको पातालपुरी भेजा । मकरध्वजको
 चलते समय रामने विविध प्रकारकी भेंटें दीं । इनके अतिरिक्त और-और मित्रोंको भी आदर-सत्कार करके
 अपने-अपने स्थानको भेज दिया ॥ १५ ॥ घोड़ी देर बाद रामने यूपकेतुको बुलाया और विविध प्रकारके
 वस्त्राभूषण देकर विदिशानगरीको भेज दिया । यूपकेतुने राम तथा सीताको प्रणाम किया और अपनी
 सेना तथा परिवारको साथ लेकर चल पड़े ॥ १६ ॥ १७ ॥ इसी तरह रामने सुबाहुको मथुरा भेज दिया ।
 पुष्करको भी उनकी सेनाके साथ पुष्करावती तथा तक्षको तक्षशिला भेज दिया । फिर अङ्गदको हस्तिनापुरी-
 के लिए और चित्रकेतुको स्त्री-सेना तथा लवानेके साथ उनकी राजधानीको भेज दिया । चलते समय विविध
 प्रकारके वस्त्र-आभूषणोंसे रामने इनका भी सत्कार किया ॥ १८-२० ॥ तदनन्तर राम और सीताने क-
 को बुलाकर कितने ही प्रकारके वस्त्राभूषण प्रदान किये और उनकी स्त्री तथा पुत्रके साथ उन्हें उत्तरकुब देवार्थ

इन्द्रा र्शयामि शस्त्राणि कोदण्डं च महोत्थलम् । नानाधानानि वस्त्राणि रामश्चितामणिं ददौ ॥२४॥
 मर्त्यापुत्रं कुशं तोष्य राघवो वाक्पथमवरोत् । वन्य गच्छ सुप्तं तिष्ठ भूमिं धर्मेण पालय ॥२५॥
 जंबूद्वीपस्तुषन्मर्षाम्भवा द्रव्यानमन्विताम् । मरानेतान्नालयस्व पुत्रवत्कुशबालक ॥२६॥
 इत्युक्त्वा नान्द्रुपान्शङ्खं मृगमाभिः कुशबालकः । मरुगाने माननीयोऽयं रक्षणोयस्त्वहर्निशम् ॥२७॥
 तद्रामवचने श्रुत्वा कुशः पादौ मृचनम् । स्वतेजःपुरितो बालस्त्वत्तोऽम्भाकं शलाधिकः ॥२८॥
 अन्धेव नात्र संदहः मयं । शिं मृचनम् । यथा न्वया पालिताः स्मो वयं तद्वत्कुशोऽप्ययम् ॥२९॥
 रक्षिष्यन्ति नदाऽस्मत्कं दृष्ट्वाञ्चालराजकनः । इत्युक्त्वा राघवं तन्वा मयं ते पार्थिवोत्तमाः ॥३०॥
 रामेण पूजिताः मरुक् पञ्चानलकाग्राहिनः । ययः कुशं पुरस्कृत्य स्वमर्मन्वयनमन्विताः ॥३१॥
 कुशोऽपि राघवं तन्वा मूर्ध्नि मौक्तिकव्यापिनः । वनिष्ठेन स्थे स्थित्वा पुनं गन्तुं प्रचक्रमे ॥३२॥
 तदा रामस्त्वं राजकं मयरां प्रपयन्पुनः । कुशे । तद धेनेन ममाहूयथ सादरम् ॥३३॥
 पूर्वैर्मनुस्मृत्य नाश्रं यतामर्षामर्गा । कृष्णावतारं तावैव राजको रजकोऽभरन् ॥३४॥
 मंथरा पूतना जाला इती दी पूर्वैरहः । ताः कुशः साद्रेनेधः पश्यन् राम च जानकीम् ॥३५॥
 वसिष्ठं मुनिं पृष्ठं तारं तारं स्थे स्थितः । दण्ड गच्छेत्तं तदंशं मयापार्श्वे तिर्जः करैः ॥३६॥
 सुभितः मन्थरा नैर्न्येतिताः मरुपुरी प्रति । ददमं मर्षां मृचनं श्रीरामोऽहोरात्रात् ॥३७॥
 गन्वा पुनं महोन्नतमिन्द्रासदायः । पूज्य मरान्पार्थिवींश्च ममालिख्य न्यमर्जयन् ॥३८॥

भेज दिया । जिस समय जब करने वाले लो सीताने जाने बामदेतु गो से ॥ २१ ॥ २२ ॥ इसके बाद रामने कुशको बलदा और उन्नत मरुकोपुत्र तथा मित्रता स्मनेवाने राजाओं और मेना आदिके साथ अयोध्या भेज दिया ॥ २३ ॥ वन्य मरु कुशको रामने अपने निष्प मय, महान् उज्ज्वल वन्य, विविध प्रकारको सवारियों, वस्त्र और किम्वद्विदि तित । उस तरह गता मरुको वस्तुर् देकर रामने कुशमे कहा—हे धरत ! अब तुम प्रणवण जाये और वर प्रणव पुनोको रक्षा करो । हे कुश ! इस अम्बुद्वीप तथा अन्धान्य द्वीपोंके रहनेवाले राजाओंसे भस्मिभस्मि पावन करना ॥ २४-२६ ॥ ऐसा कहनेके बाद रामने उन सब राजाओंसे कहा कि तुम लोको को कुशको मे नमान हो मानना और सदा इसकी रक्षा करते रहना ॥ २७ ॥ रामको बतते सुनकर उन राजाओंने कहा कि यह बलक कुश आपही के तेजसे परिपूर्ण है । इस कारण मेरे लिए तो यह आपने भी मेकहोगुना अधिक माननीय है । हे मरुतम ! हम जो कुछ कह रहे हैं, उसे आप सब मानिए । जिस तरह अब तक आप हमारे रक्षा करने आये हैं, उसी तरह यह भी हमारी रक्षा करेगा । यह वाक्य अश्वमेधे । जिसने उनका पराक्रम पर्व जंवा नहीं है । ऐसा कहकर उन राजाओंने रामको प्रणाम किया और रामने विविध प्रकारके वस्त्र-आभूषण तथा सवारियों आदि देकर उन्हें हँसी-खुशी विदा किया । वे सब कुशको अपने आगे करके अपनी विजाल सेनाके साथ चल पड़े ॥ २८-३१ ॥ कुशने चलते समय रामको प्रणाम किया और संताने कुशका माथा मूँधा । इसके बाद वे कुलगुह वसिष्ठके साथ स्थपर सवार होकर अयोध्यापुरीको चलनेकी तैयारी करने लगे ॥ ३२ ॥ उसी समय रामने उस निन्दक राजक (घोषी) तथा दासी मन्थराको सादर बुलाया और कुशके साथ अयोध्यापुरी भेज दिया ॥ ३३ ॥ पिछले बरका स्मरण करके ही रामचन्द्रजा इन दोनोंको अपने साथ स्वर्गलोक नहीं ले गये । कृष्णावतारमें वह राजक राजा कंसका घोषी होकर उत्पन्न हुआ और रामो मन्थरा पूतना हुई । श्रीकृष्णचन्द्रजीने अपने हाथों इन दोनोंका संहार किया । स्थपर बैठकर चलते समय बार-बार मुँह घुमाकर कुश और सीतरे नेत्रोंसे राम और जानकीकी ओर निहार रहे थे । इतर राम और सीता भी अपने हाथोंसे कुशकी जानेका संकेत कर रहे थे ॥ ३४-३६ ॥ इस तरह संकेत करनेपर कुश अपनी विजाल सेना लिये हुए अयोध्यापुरीको चल पड़े । पुरीमें पहुँचे तो वह सभी नगरों रामके द्विगेनसे सीती-सी दिलायी पड़ी ॥ ३७ ॥ अस्तु, कुश पुरीमें गये और बड़े लखाहुके साथ राजसिंहासनपर बैठे । इसके बाद अपने आये हुए राजाओंका उन्होंने

तेऽपि नत्वा कुशं स्वं स्वं स्थलं जग्मुर्नृपोत्तमाः । करमारं ददुस्मस्मै तदाज्ञावशवर्तिनः ॥३९॥
मन्थरारजकौ द्वौ तौ देवान्पुत्रौ बहिर्मुने । प्रापतुर्जन्म माकेने नृपानां न पुनर्भवः ॥४०॥
अथ रामोऽब्रवीत्सर्वान्वानरान् जाह्नवीतटे । मर्त्यं भ्रमिताः सर्वे यूथं वानरस्यचमाः ॥४१॥

द्वापराग्रे पुनः सर्वे ब्रजे गोषा मचिष्यथ ।

पुष्पाभिः सहिताः प्रीत्या कम्प्याम्यञ्जनादिकम् ॥ ४२ ॥

तदाऽब्रवीत्स सौमित्रिं गमः प्रीत्या पुरःस्थितम् । महान् श्रमः कृतः पूर्वं सेनायां मम दण्डके ॥४३॥
मम त्वं द्वापरे ज्येष्ठः शुश्रूषां ते करोम्यहम् । नगस्तान्गघवः प्राह आभ्यान्पौरान्कपीनपि ॥४४॥
सर्वमिव मया सार्धं त्रयानेति दधान्वितः । ततो ददौ कश्चिद्वृषपरिजातौ सुराधिपम् ॥४५॥

ततस्तं पुष्पकं प्राह कुबेरं वह सादरम् ।

गच्छाद्यैव तथेन्युक्त्वा रामं नत्वा तु पुष्पकम् ॥ ४६ ॥

सीतां पृष्ट्वा ययौ शीघ्रं राघवेणानिमित्तम् । ततः प्राह रघुश्रेष्ठश्चोर्मिलां मांदवीं तथा ॥४७॥
श्रुतकीर्तिं समाहूय बान्धवाकंश्च मुनेः पुरः । पुष्पाभिर्भर्तृदेहैश्च निजदेहादि वेगतः ॥४८॥
सोऽयौ दग्ध्वा स्वर्गलोकं गन्तव्यं मम वक्ष्यतः । तथेति मथव प्रोचुस्तदा ताश्चोर्मिलादिकाः ॥४९॥
रामं नत्वा ययुः सर्वाः स्वं स्वं तद्वसनगृहम् । अथ रामोऽपि तां रात्रिं सीतया रुक्ममंचके ॥५०॥
श्रपिभिः शिष्यब्रह्मस्थान्स्मृत्तत्रैव मंगलाः । सौमित्राद्याः पत्नीभिः शिष्यपरे परया मुदा ॥५१॥

इति श्रीमत्कौटिलिरामचरितात्मन्त श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पूर्णकाण्डे

सर्वेषां विसर्जनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

पूजन-आलिङ्गन करके बिदा किया ॥ ३८ ॥ वे राजे भी कुशको करके अपनी-अपनी नगरीको चले गये और वहाँपर कुशको आज्ञा में रहते हुए पूर्ववत् करभार देते रहे ॥ ३९ ॥ देववश वह रामनिन्दक घोवी तथा दासी मन्थरा ये दोनों अयोध्यापुरीमें न मन्थर अवताराके बाहर मरे । इसी लिए उन्हें फिर जन्म लेना पड़ा । वैसे तो शय्यामें जो लोग मरते हैं, उन्हें फिर माताके गर्भमें नहीं आना पड़ता ॥ ४० ॥ ऊपर सब लोगोंकी बिदा करके रामने सब बांधवोंसे कहा—हे वानर-प्रेमण ! तुम सबने मेरे लिए बड़ा कष्ट उठाया और मेरे साथ मारे-मारे फिरते रहे । आगे चलकर द्वापरमें तुम सब गोप होओगे । इस समय मैं तुम्हारे साथ भोजन तथा त्रिविध प्रकारकी लीलाये करूँगा ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ इसके बाद रामने लक्ष्मणसे कहा कि उस समय तुमने दण्डकवनमें मेरी सेवा करते समय बड़ा कष्ट उठाया था । आगे द्वापर युगमें तुम मेरे ज्येष्ठ भ्राता बलराम हीओगे और मैं स्वयं तुम्हारी सेवा करूँगा । इसके अनन्तर रामने उन भालुओं, वानरों तथा पुरवासियोंसे कहा कि तुम लोग मेरे साथ चलो । तत्पश्चात् रामने जम्बूद्वीप और परिजात ये दोनों वृक्ष इन्द्रको दे दिये । फिर पुष्पक विमानसे कहा कि तुम आज ही जाकर आदरपूवक कुबेरकी सवारीका काम करो । यह सुनकर पुष्पक राम तथा सीताको प्रणाम करके चले पड़ा । चलते समय भगवाने उसका भी अच्छी तरह आदर-सत्कार किया । वाल्मीकिके समक्ष रामने माण्डवी (भरतपत्नी), उर्मिला (लक्ष्मणकी स्त्री) तथा श्रुतकीर्ति (शत्रुघ्नकी पत्नी) से कहा—तुम सब अपने-अपने पतिके शरीरके साथ कल अपना शरीर चिताकी अग्निमें जलाकर स्वर्गलोक चली आना । उर्मिला आदिने भगवान्की आज्ञा स्वीकार कर ली ॥ ४२-४९ ॥ वे रामको प्रणाम करके अपने-अपने तम्बुओंमें चली गयीं । इसके अनन्तर राम उस रात्रिमें सीताके साथ एक सुवर्णमय मन्थर सो गये । शिव-ब्रह्मा आदि देवता भी ऋषियोंके साथ वहाँ ही रुहरे रहे और लक्ष्मण आदि भी जलारे अग्नि-मन्थर-स्त्रियोंके साथ सानन्द सोये ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इति शतकाटिरामचरितात्मन्त श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पंच रामतेजपाण्डेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते पूर्णकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः

(रामका वैकुण्ठारोहण)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः समुत्थाय प्रभाते सीतया सह । अजमीढं समाहूय मंजुलं वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥
 अघाहं सीतया स्वीयं पदं गच्छामि बन्धुभिः । वानरैः सकलैः पौरैस्त्वया श्रेष्ठ ॥ यज्ञसम् ॥ २ ॥
 वस्त्रगृहादिकं सर्वं प्रेषणीयं कुशं प्रति । यच्चरं कीटकांतं तन्मया पास्यति वै दिवम् ॥ ३ ॥
 अतस्त्वं तं कुशं गत्वा सर्वं वृत्तं निवेदय । करोतुत्तरकार्याणि कुशोऽस्माकं सविस्तरम् ॥ ४ ॥
 मा करोतु कुशोऽस्माकं खेदं तं त्वं निवारय । इति रामवचः श्रुत्वा साश्रुनेत्रस्तथेति सः ॥ ५ ॥
 अजमीढस्तदा प्राह ननाम रघुनायकम् । अथ रामः शनैः पौरैः स्नात्वा भागीरथीजले ॥ ६ ॥
 कृत्वा नित्यविधिं पूर्वं कृत्वा वह्निं सविस्तरम् । ददौ दानान्यनेकानि गङ्गासंकृतमंस्थितः ॥ ७ ॥
 ततः प्रास्थानिकं कर्म चकार स यथाविधि । वह्निं विसर्जयामास वैकुण्ठं प्रति राघवः ॥ ८ ॥
 तदा रामस्य पश्चात् सा गता दक्षिणहस्ततः । मूर्तिरूपधरा वेदा वैकुण्ठपाययुस्तदा ॥ ९ ॥
 त्रिपदा प्रणवेनैव श्रीरामास्याद्विनिर्गता । नत्वा रामं ययौ शान्तिः क्षमा मेधा धृतिर्दया ॥ १० ॥
 तेजो बलं यशः शौर्यं ययौ ॥ तदा पुरः । ततः पौरा वानराश्च सर्वे भागीरथीजले ॥ ११ ॥
 स्नात्वा निरुच्य वायुंश्च निजदेहानि तत्यजुः । अथ रामो मुदा गङ्गां स्पृष्ट्वा दर्भासनोपरि ॥ १२ ॥
 दर्मपाणिः स्थितस्तूष्णीमुत्तराभिमुखः स्त्रिया । तावत्सर्वे ददृशुस्ते देवा विष्णुं पुरःस्थितम् ॥ १३ ॥
 चतुर्भुजं नीलकांतिं पीतकीशेयधारिणम् । कौस्तुभांकितहृद्देशं श्रीवत्साकोपशोभितम् ॥ १४ ॥
 सीता बभूव सा लक्ष्मीर्विष्णोर्वामांकसंस्थिता । शेषो बभूव सौमित्रिः फणामिरतिमासुरः ॥ १५ ॥

श्रीरामदासने कहा—सबेरे रामचन्द्रजी सीताके सोनर उठे तो अजमीढ़को बुलाकर मीठी बातोंमें समझाकर कहने लगे कि आज सीता, बन्धुओं, वानरों और प्रजाजनोंके साथ अपने परमधामकी यात्रा करूँगा ॥ १ ॥ २ ॥ मेरे जितने भी सम्बू-कनात आदि वस्त्रगृह हैं, उन्हें कुशके पास अयोध्या भेज देना । वड़े जीवसे लेकर कीट पर्यन्त सब प्राणी मेरे साथ वैकुण्ठ जायेंगे । मेरे चले जानेपर तुम कुशके पास चले जाना और मेरा समाचार कह सुनाना और यह भी कह देना कि कुश हमारी ओर्ध्वदेहिकी क्रियाओंको खूब अच्छी तरह सम्पन्न करे । यदि मेरे परमधाम जानेके कारण कुश किसी संद करने लगे तो तुम उसे अच्छी तरह समझा देना । रामकी बात सुनकर अजमीढ़ने आँखोंमें आंसू भरकर उनकी आज्ञा स्वाकार की और भगवानको प्रणाम किया । इसके अनन्तर रामने सबके गङ्गाजीमें किया, नित्यकृत्य किये, हवन किया और गङ्गातटपर स्थित ब्राह्मणोंको तरह-तरहके दान दिये ॥ ३-७ ॥ इसके यात्रासे सम्बन्ध रखनेवाले जितने कर्म थे, वह सब किये । चलते समय हवनकी अग्निको वैकुण्ठलोक भेज दिया ॥ ८ ॥ उस समय रामरूपधारी विष्णुकी लक्ष्मी सात्विकी सीता रामके दक्षिण भागसे वैकुण्ठधामको चली गयी । उस समय वेद अपने मूर्तरूपसे वैकुण्ठलोकमें पहुँचे ॥ ९ ॥ रामके प्राणायाम करते शान्ति, क्षमा, धृति और दया आदि गुण चले गये ॥ १० ॥ उसी तरह तेज, बल, यश और शौर्य आदि भी कूच गये । इसके अनन्तर सब पुरवासिया तथा वानरोंने भी गङ्गाजीमें स्नान और प्राणायाम करके अपने शरीरका परित्याग कर दिया । इसी सीताके साथ रामने गङ्गाजलका स्पर्श किया और कुशासनपर बैठे ॥ ११ ॥ १२ ॥ हाथमें कुशा लेकर वे उत्तरकी ओर मुख करके बैठे । उसी समय राम देवताओंके सम्मुख विष्णुभगवान्के रूपमें पारेणत हो गये ॥ १३ ॥ उन भगवान्के चार भुजायें थीं । नीलकमलके समान प्रियम शरीर था । वे अपने शरीरपर पीले वस्त्र धारण किये हुए । कौस्तुभमणिसे उनका हृदय सुशोभित हो रहा था और श्रीवत्स अपनी निखार अलग ही दिशा रहा था ॥ १४ ॥ गङ्गाजीके तटपर रामके वामांगमें बैठी हुई सीता लक्ष्मीके

प्रहो भूव भरतः श्रीविष्णोः सव्यमन्करे । वामे करे बभूवाथ शत्रुघ्नश्च सुदर्शनम् ॥१६॥
 देवेषु विविधः सर्वे वानरास्ते क्षणात्तदा । चाण्डालकर्मिकाटाता अयोध्यापुरवासिनः ॥१७॥
 प्राप्नुस्ते दिव्यदेहानि विमानं यस्थिता वधुः । तदा निनेर्द्वाद्यानि देवानां गगनागणे ॥१८॥
 ववर्षुर्देवपत्न्यश्च पुष्पवृष्टिर्भिरादरात् । नतुतुर्वै ह्यप्सरसो जगुर्गन्धर्वकिन्नराः ॥१९॥
 प्रणनाम तदा ताक्ष्यः श्रीविष्णु रविभासुरम् । देहानि मुमुक्षुः सर्वे श्रीभिः सोमादिकाश्च ते ॥२०॥
 पतिदेहानि चालिष्य तदा ता उर्मिलादिकाः । देहान्यग्री अहुः सर्वारम्ये भार्गीरयोत्तटे ॥२१॥
 अथ ता देवपत्न्यश्च रत्नदीर्घः महस्रश्च । विष्णुं नीराजयामासुर्लक्ष्मीपुक्तं महाश्रुजम् ॥२२॥
 विष्णुस्ततोऽब्रवीद्वाक्यं वेषसं मंजुलं शनैः । अयोध्यावासिनः सर्वे तिर्यङ्मात्रादयः शुभाः ॥२३॥
 एते समागता ब्रह्मर्षेण स्थानं वदाधुना । तद्विष्णोर्वचनं श्रुत्वा तदा ब्रह्माऽवीद्वचः ॥२४॥
 मल्लोकादुपरिष्ठान्च लोकान्सांतानिकान्शुभान् । एते यांतु जनाः सर्वे स्वदर्शनमहोज्ज्वलाः ॥२५॥

ततः प्राह पुनर्विष्णुरयोध्यायां मृताय ये ।

अग्रे तेऽपि समायांतु लोकान्सांतानिकान्शुभान् ॥२६॥

तथेति स विधिः प्राह महाविष्णुं मुदान्वितः । नतस्ते दिव्यदेहाश्च ताकेतपुरवासिनः ॥२७॥
 नानाविमानमंस्थाश्च दिव्यवस्त्रविभूषिताः । दिव्यालंकारसंपुक्ता ह्यप्सरोभिर्निलेपिताः ॥२८॥
 नानासुगंधगंधार्घैर्दिव्यचामरवीजिताः । विरेजुर्गगने चंद्रयदना रविभासुराः ॥२९॥
 ततो ब्रह्मादयो दवाः प्रणेमुर्विष्णुमादरात् । तुष्टुर्विविधैः स्तोत्रैर्वेदवर्षैर्गुनीश्वराः ॥३०॥
 तदा तुष्टव शंभुस्तं विष्णुं त्रैलोक्यपालकम् । वनमालां दधानं तं दिव्यचन्दनचर्चितम् ॥३१॥

रूपमें और लक्ष्मण फणोंसे मुष्णभित जेप भगवान्‌के स्वरूपमें परिधत हो गये ॥ १५ ॥ भरतजी बांसके रूपमें परिवर्तित होकर विष्णुभगवान्‌के दाहिने हाथमें जा बिराजे । शत्रुघ्नने विष्णुके सुदर्शनचक्र बनकर वाम भुजामें अहु। अमा लिया ॥ १६ ॥ बहोपर जितने वानर थे, वे सब क्षण भरमें अपने-अपने देवताओंके शरीरमें प्रविष्ट हो गये । चाण्डालसे लेकर कृमि-कीट पर्यन्त सभी अयोध्यानिवासी अपने-अपने शरीरको छोड़कर दिव्य देह धारण करके विमानोंपर मुष्णभित होने लगे । उस समय गगनागणमें देवताओंके विविध प्रकारके बाजे ॥ १७ ॥ देवांगनाये प्रेमपूर्वक कुसुमवर्षा कर रही थीं । अप्सरायें नाच रही थीं और गन्धर्वगण तरह-तरहके गायन गा रहे थे ॥ १८ ॥ उसी समय गरुड़ने आकर सूर्यसदृश देशोप्यमान भगवान्‌को दण्डवत् प्रणाम किया । इधर सोम आदि राजाओंने भी अपने-स्त्रियों समेत अपने-अपने शरीरको छोड़ दिया ॥ २० ॥ लोगोंके परम घाम चले जानेके बाद उर्मिला, माण्डवी तथा धृतकोतिने अपने-अपने पतिके शरीरका आलिंगन करके चित्तमें जलकर शरीर छोड़ दिया ॥ २१ ॥ उधर समस्त देवताओंकी स्त्रियोंने हजारों रत्न-यय दीपक जलाकर लक्ष्मीके समेत विष्णुभगवान्‌की आरती उतारी ॥ २२ ॥ कुछ देर बाद विष्णुभगवान्‌ने ब्रह्मासे कहा कि मेरे साथ जो अयोध्याके ॥ पुरवासी तथा तिर्यग्योनि तकके प्राणी यहाँ आये हैं, इनके लिए कोई स्थान बतलाइए । विष्णुभगवान्‌की बात सुनकर ब्रह्माजी बोले कि आपके दर्शनसे ये पवित्र प्राणी मेरे लोकसे भी ऊपर एक सान्तानिक लोक है-यहाँ ही जाकर निवास करें ॥ २३-२४ ॥ इसके बाद विष्णुभगवान्‌ने फिर कहा कि इनके अतिरिक्त भी जो प्राणी अयोध्यामें शरीर स्थान करें, वे सब सान्तानिक लोक प्राप्त करें ॥ २५ ॥ ब्रह्माने भगवान्‌की यह बात भी स्वीकार कर ली । इसके अनन्तर वे सब अयोध्यावासी दिव्य शरीर धारण करके नाना प्रकारके विमानोंपर ॥ बैठे । उस समय वे लोग अच्छे-अच्छे गहने-कपड़े पहने थे और कितनी ही सुन्दरी अप्सरायें उनके शरीरमें सुगन्ध भर रही थीं । उनपर दिव्य चमर चल रहे थे । सूर्यके समान देशोप्यमान तथा चन्द्रमुखी नारियाँ सब प्रकारकी सेवायें कर रही थीं ॥ २७-२८ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा आदि देवताओंने विष्णुभगवान्‌की प्रणाम किया और बड़े-बड़े ऋषि वेदकी श्रुचाओंसे भगवान्‌की स्तुति करने लगे ॥ ३० ॥ सब लोगोंके बाद श्रीशिवजी त्रैलोक्यपालक विष्णुभगवान्‌की स्तुति करने लगे । उस

संभुवत्सव

राक्षसं कलगाक्षरं भवनाशनं दुरितापहं माधवं स्रगगामिनं जलरूपिणं परमेश्वरम् ।
 पालकं जनतारकं भवहारकं रिपुमारकं त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥ ३२ ॥
 भूधवं वनमालिनं घनरूपिणं धरणीधरं श्रीहरिं त्रिगुणात्मकं तुलसीधरं मधुरस्वरम् ।
 श्रीकं शरणप्रदं मधुमारकं वज्रपालकं त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥ ३३ ॥
 विट्पुलं मधुरास्थितं रजकांतकं गजमारकं सन्नुतं वक्रमारकं वृकधानकं तुंगादेनम् ।
 नन्दजं वसुदेवजं नलियहगं सुरपालकं त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥ ३४ ॥
 केशवं कापिंदष्टिनं कपिसारकं मृगमर्दिनं सुंदरं द्विजपालकं दितिजार्दनं दत्तुजार्दनम् ।
 बालकं खगमर्दिनं अपिपूजितं मुनिचितितं त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥ ३५ ॥
 शंकरं जलशायिनं कुशबालकं रथवाहनं सरयुनतं प्रियपुष्पकं प्रियभूसुरं लवबालकम् ।
 श्रीधरं मधुसूदनं भरताग्रजं गरुडध्वजं त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥ ३६ ॥
 गोप्रियं गुरुपुत्रदं वदतां वरं कलुषानिधिं भक्तपं जनतोषदं सूरपूजितं श्रुतिभिः स्तुतम् ।
 भुक्तिदं जनमुक्तिदं जनरंजनं नृपनन्दनं त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥ ३७ ॥
 चिद्वनं चिरजीविनं मणिमालिनं वरदोन्मुखं श्रीधरं धृतिदायकं बलवर्धनं गतिदायकम् ।
 शान्तिदं जनतारकं शरधारणं गजगामिनं त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥ ३८ ॥
 शाङ्गिणं कमलाननं कमलादृतं पदपङ्कजं ज्यामलं रविमामुरं अशिसौख्यदं कलुषार्णवम् ।

समय भगवान् वनमाला धारण किये थे और उनके शरीरमें दिव्य चन्दनका लेप किया हुआ था ॥ ३१ ॥
 आणवर्जोने कहा—रघुवंशमें उत्पन्न, वरुणाकर, संसारके आजागमनसे मुक्त करनेवाले, पापनाशकारी, लक्ष्मीके पति, जलरूपी परमेश्वर, सबके पालक, भक्तोंको तारनेवाले, भववाधाके नाशक, शत्रुसंहारकारी, नररूप-
 धारी हे जगदीश्वर रघुनन्दन ! मैं आपका प्रणाम करता हूँ ॥ ३२ ॥ पृथ्वीपति, वनमालाधारी, मधुनामक
 राक्षसको मारनेवाले, व्रजके पालक, नवीन नीरदके समान श्यामकाश, पृथ्वीको रक्षा करनेवाले, सत्त्व, रज
 और तम इन तीनों गुणोंसे युक्त, तुलसीके पति, मोठे स्वरवाले, गोभाका विस्तार करनेवाले, नररूपधारी
 जगदीश्वर हे रघुनन्दन ! ■ आपका भजन करता हूँ ॥ ३३ ॥ विट्पुल्लरूपसे मधुगामे निवास करनेवाले,
 रजकसंहारी, गजान्तकारी, सज्जनोंसे संस्तुत, वक्रामूर, वृकामूर और केशीको मारनेवाले, नन्दसुवन, वसुदेवके
 पुत्र, वागनरूपसे बलिके ध्वजमें जानेवाले, देवताओंके पालक, नररूपधारी हे जगदीश्वर रघुनन्दन ! मैं आपका
 भजन करता हूँ ॥ ३४ ॥ केशव, वानरोंसे घिरे हुए, बालि वानरको मारनेवाले, मृगरूपधारी मारीचको
 मारनेवाले, सुन्दर, ब्राह्मणोंके रक्षक, राक्षसोंका संहार करनेवाले, सबेदा बालरूपधारी, सरको मारनेवाले,
 धृष्टिधर्मसे पूजित, मुनियों द्वारा चिन्तित और नररूपधारी हे जगदीश्वर रघुनन्दन ! मैं आपका भजन
 करता हूँ ॥ ३५ ॥ संसारका कल्पाण करनेवाले, जिनके कुल जैसे गंगाकमी बालक हैं, रथ जिनकी सवारी
 है, सरयू स्वयं जिनको नमस्कार करती है, जिनकी पुष्पक विमान विशेष प्रिय है, जो ब्राह्मणोंसे अतिशय प्रेम
 रखते हैं, लव नामका जिनका बालक है, जो लक्ष्मीको रक्षा करते हैं, जिन्होंने मधुनामक दैत्यका संहार
 किया था, जो भरतके बड़े भ्राता हैं और जिनको ध्वजामें गरुडका चिह्न ■ हुआ है, ऐसे नररूपधारी ■
 जगदीश्वर रघुनन्दन ! हम आपका भजन करते हैं ॥ ३६ ॥ जिनको गो विशेष प्रिय है, जो यमलोकसे गुरुपुत्रकी
 लौटा लाये थे, जो वक्रावर्तमें श्रेष्ठ हैं, जो कलुषाके समुद्र हैं, जो सब तरहसे अपने भक्तोंकी रक्षा करते हैं,
 जो अपने भक्तोंको प्रसन्न रखते हैं, देवतागण जिनकी पूजा करते हैं, सारों वेद जिनकी स्तुति करते हैं, जो
 सब प्रकारके भोग प्रदान करते हैं और जो अपने भक्तको मुक्ति प्रदान करते हैं, महाराज इश्वरके पुत्र हे
 जगदीश्वर रघुनन्दन ! मैं आपका भजन करता हूँ ॥ ३७ ॥ विट्पुल्लरूपधारी, चिरञ्जीवी, मणिधर्मकी माला धारण
 करनेवाले, वरदोन्मुख, श्रीधर, धर्म प्रदान करनेवाले, गतिदायक, बलवर्धनकारी, शान्तिदाता, जनतारक, शर-
 धारी, गजगामी, नररूप धारण करनेवाले हे जगदीश्वर रघुनन्दन ! मैं आपका भजन ■ हूँ ॥ ३८ ॥ धनुष

सत्पतिं नृपबालकं नृपवंदितं नृपतिप्रियं न्वा भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥३९॥
 निर्गुणं सगुणान्मकं नृपमण्डनं मनिवर्द्धनमच्युतं पुरुषोत्तमं परमेष्ठिनं स्मिन्भाषिणम् ।
 ईश्वरं हनुमन्नुतं कमलाक्षिपं जनसाक्षिणं त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥४०॥
 ईश्वरोक्तमेतदुत्तमादराच्छतनामकं यः पठेद्भुवि भानवस्तव भक्तिमांस्तपनोदये ।
 त्वत्पदं निजयन्धुदारसुर्तर्पुनश्चिरमेत्य नो मोऽस्तु ते पदसेवने बहुतत्परो मम वाक्यतः ॥४१॥
 इति स्तुत्वा महाविष्णुं प्रोवाच गिरिजापतिः । आरुह्य रमानाथ गरुडोपरि वेगतः ॥४२॥
 वैकुण्ठारोहणस्यायं कालो बान्मीकिना कृतः । एकादश सहस्राथ समास्वेकादशैव च ॥४३॥
 तथैकादश भासाथ दिनान्येकादशैव च । तथैकादश नाडीथ पलान्येकादशैव च ॥४४॥
 गतानि तेऽत्र भूम्यां हि जन्मादारभ्य राघव । वनन्तपञ्चर्षानाम्नी तिथिश्चैत्रासिताऽथ हि ॥४५॥
 पुण्येऽहि स्वपदं गन्तुं त्वरां कुरु रमेश्वर । तदा विहस्य भ्राविष्णुर्बान्मीकिं मुनिपुङ्गवम् ॥४६॥
 समालिख्य मुनीन्पृष्ट्वा तस्थौ स गरुडोपरि । ध्रुवन्मु देख्याद्येषु स्तुवन्मु नारदादिषु ॥४७॥
 पुष्पैर्वर्षत्सु देवेषु प्रनर्तस्वप्सरःसु च । नानाधिमानजालैश्च सर्वत्र परिवेष्टितः ॥४८॥
 ययौ विष्णुः स वैकुण्ठं लोकान्पश्यन्मनः शुनः । वैकुण्ठे स्वपदं स्थित्वा विममजं शिवादिकान् ॥४९॥
 तस्थौ लक्ष्म्याऽऽनन्दमयः परिपूर्णमनोरथः । खगैर्द्रुसंवितपदः शेषतन्पविभूषितः ॥५०॥
 अयोध्यावासिनः सर्वे ययुः सांतानेक पदम् । ततस्ते मुनयः सर्वे ययुः स्वं स्वं स्थलं प्रति ॥५१॥
 रामवाक्यात्सांऽजर्माहः सांत्वयामास त कुशम् । स्वर्गारोहणविस्तारं कथयामास तं कुशम् ॥५२॥

धारण किये, कमलके समान मुखवाले, कमलका भाति नेत्रोंवाले, कमलके ही सराबरे चरणकमलवाले, श्याम वर्ण, सूर्यके समान देदीप्यमान, चन्द्रमाको मुख देनेवाले, कर्णोंके समुद्र, एक बरछे प्रभु, राजाओंके रक्षक, राजाओंसे बन्धित, राजाओंके प्रिय और नररूपधारा है जगदीश्वर रघुनन्दन । मैं आपका भजन करता हूँ ॥ ३९ ॥ निर्गुण होते हुए भी सगुणरूपधारा, राजाओंके कुलभूषण, बुद्धवर्द्धनकारी, परम पूजनीय, मुस्क- राकर खिलनेवाले, जगत्के प्रभु, हनुमान्जैसे नमस्कृत, भक्तोंके साक्षात्, लक्ष्मीके पति और नररूपधारा है जगदीश्वर रघुनन्दन ! मैं आपका भजन करता हूँ ॥ ४० ॥ इस प्रकार स्तुति करते हुए शिवजीने अन्तमें कहा कि प्रातःकाल सूर्योदयके समय जो कोई प्राणा भेर बहे हुए इस शतनाम-स्तोत्रका पाठ करेगा, वह मेरे आर्षावादिसे अपने बन्धुओं तथा स्त्री-पुत्रादिकोंके साथ यहाँ आकर बहुत कालतक आपके चरणोंकी सेवाका सुयोग पायेगा ॥ ४१ ॥ इस प्रकार स्तुति करनेके पश्चात् शिवजीने कहा—हे रमानाथ ! आप शीघ्र गरुड़पर आरुढ़ हों ! क्योंकि बान्मीकिजीने आपके वैकुण्ठारोहणार्थं यहाँ समय अपने रामावधमें विचरित किया है । इस समय ग्यारह हजार ग्यारह वयं, ग्यारह महाना, ग्यारह दिन, ग्यारह नाडी तथा ग्यारह पल पूरे हो रहे हैं । आज चैत्र वृष्णपक्षका पञ्चमा तिथि है ॥ ४२-४५ ॥ इस पवित्र दिवसका आप परमधाम जाननेके लिए शिघ्रता करिए । उस समय प्रभु मुनिकय । उन्होंने मुनिपुङ्गव बान्मीकि ऋषिको हृदयसे लगाया, ऋषियोंसे आज्ञा माँगा और गरुड़के ऊपर सवार हो गये । तब देवताओंने विविध प्रकारके बाजे बजाये, नारद आदि महर्षियोंने स्तुति की, देवताएँ भगवान्पर फूल बरसाने लगे और अप्सरायें नाचने लगीं ॥ ४६-४८ ॥ इस तरह गरुड़पर बैठकर भगवान् राम सब लोगके देखते-देखते वैकुण्ठलोकको चले गये । उस धाममें पहुँचकर वे अपने सिंहासनपर बैठे और शिव आदि देवताओंको विदा कर दिया । वे आनन्दमय महाप्रभु हर प्रकारसे परिपूर्ण मनोरथ होकर लक्ष्मीके साथ आनन्दपूर्वक बड़ीं रहने लगे । उस समय गरुड़ भगवान्के चरणोंकी सेवा करते थे और वे दिव्य भगवान् शेषकी शय्यापर सोते थे ॥ ४९ ॥ ५० ॥ वे सब अयोध्यावासों भगवान्के कथनानुसार साम्प्रतिक लोकमें जा विरामे । इसके अनन्तर भगवान्का स्वर्ग- आरोहण देखनेके लिए आये हुए ऋषि भी अपने-अपने आश्रमोंको चले गये ॥ ५१ ॥ रामचन्द्रजीके कथना-नुसार हस्तिनापुरके राजा अजर्माह अयोध्यामें कुशके पास गये और भगवान्की परमधामयात्रा-सम्बन्धी

कुशेन मानितः सोऽपि ययौ स्वर्गं गजाङ्गणम् । लब्ध्वा कुमुद्वतीं तस्यां कुशः पुत्रान्स निर्ममे ॥५३॥
 एवं श्रीरघुनाथस्य स्वर्गारोहणकृतकम् । ये मृण्वन्ति नरा भक्त्वा तेऽपि स्वर्गं प्रयाति हि ॥५४॥
 वैकुण्ठारोहणाभ्यायमिमं नित्यं पठेत्तु यः । सोऽन्ते गच्छति वैकुण्ठं रामचन्द्रप्रसादतः ॥५५॥
 इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पूर्ववर्षादे वैकुण्ठारोहणं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

(सूर्यवंशवर्णन)

श्रीरामदास उवाच

एवं त्वया यथा शृष्टं स्वर्गारोहणमङ्गलम् । श्रीरामस्य मया चैतत्तवाग्रऽयं निवेदितम् ॥ १ ॥
 किमन्यच्छ्रोतुमिच्छाऽस्ति तां त्वं वद श्रुत्वा विष्णुदासस्तमजवीत् ॥ २ ॥

विष्णुदास उवाच

कुशतः सूर्यवंशोऽत्र गुरो पूर्व त्वयेरितः । कुशाग्र श्रोतुमिच्छामि सूर्यवंशं सविस्तरम् ॥ ३ ॥

श्रीरामदास उवाच

विष्णोरारम्य कथिता एकपष्टितपाः पुरा । एकपष्टिनृपा सग्रे तान्वदामि सविस्तरम् ॥ ४ ॥
 श्रीरामस्य कुशः पुत्रोऽतिथिः पुषः कुशस्य सः । निषधस्तत्रातिथेः पुत्रो निषधस्यात्मजो नभः ॥ ५ ॥
 नमाञ्जली पुंडरीकः क्षेमधन्वा तु तत्सुतः । देवानीकस्तत्सुतोऽभूद्देवानीकसुतो महान् ॥ ६ ॥
 अहीनः प्राञ्चते साङ्गः पार्यात्रस्तत्सुतः स्मृतः । पार्यात्रस्य बलः पुत्रः स्थलः पुत्रो बलस्य हि ॥ ७ ॥
 स्थलस्य वज्रनाभस्तु सगणस्तस्य कात्यते । सगणाद्रधुतिजातो विधूतस्तनयः शुभः ॥ ८ ॥
 जाता हिरण्यनाभस्तु तस्य पुष्पः प्रकात्यते । पुष्पात्स ध्रुवसंधिस्तु ध्रुवसंधेः सुदर्शनः ॥ ९ ॥
 सुदर्शनादाप्रवणस्तस्माच्छीघ्रः प्रकात्यते । शीघ्राज्जाता मरुः पुत्रा मनाश्च प्रभुतः सुतः ॥ १० ॥
 प्रभुतस्य च संधिर्हि संधेः पुत्रस्तु मणः । मणस्य महस्वाश्च विश्ववाहश्च तत्सुतः ॥ ११ ॥

सब बातें बतलायी और समझा दिया कि आप किसी प्रकारका शाक न करें ॥ ५२ ॥ कुशने भी अजमीरका भरपूर आदर-सत्कार किया । कइ दिनों अयाध्यामे रहकर वे हस्तिनापुरीको चले गये । कुछ दिनों बाद कुशको कुमुद्वती नामकी एक दूसरी भार्या प्राप्त हुई । उससे कुशके बहुतसे पुत्र हुए ॥ ५३ ॥ इस प्रकार भगवान्‌क स्वर्गारोहण-वार्ताको लोग भक्तिपूर्वक सुनते हैं, वे भी स्वर्गलाभ प्राप्त करते हैं ॥ ५४ ॥ जो प्राणी वैकुण्ठारोहणके इस सर्गका नित्य पाठ करता है, वह रामचन्द्रजीको कृपासे अन्तमें वैकुण्ठ धामको प्राप्त करता है ॥ ५५ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ५ ॥

श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य । तुमने जिस तरह हमसे भगवान्‌का स्वर्गारोहण-वृत्तांत पूछा, वह मैंने कह सुनाया । अब तुम क्या सुनना चाहते हो तो कहो । वह भी मैं बतलाऊंगा । इस तरह गुरुकी बात सुनकर विष्णुदास कहने लगे—हे गुरुवर । आपने कुशतक सूर्यवंशका वर्णन किया, सो मैंने सुना । अब यह जानना चाहता हूँ कि कुशके आगे कौन-कौन रम्य हुए । यह हमें विस्तारपूर्वक बतलाइए ॥ १-३ ॥ श्रीरामदास बोले—हे शिष्य । विष्णुभगवान्‌से लेकर एकसठ राजाओंका चरित्र मैंने पहले सुनाया है । उनके बाद जो एकसठ राजे और हुए हैं, उन्हें मैं विस्तारपूर्वक बतलाता हूँ ॥ ४ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके पुत्र कुश, कुशके पुत्र अतिथि, अतिथिके निषध, निषधके नभः ॥ ५ ॥ नभके पुण्डरीक, पुण्डरीकके क्षेमधन्वा, क्षेमधन्वाके देवानीक, देवानीकके अहीन, अहीनके पार्यात्र, पार्यात्रके बल, बलके पुत्र स्थल ॥ ६ ॥ ७ ॥ स्थलके वज्रनाभ, वज्रनाभके सगण, सगणके पुत्र विधूति, विधूतिके हिरण्यनाभ, हिरण्यनाभके पुष्प, पुष्पके ध्रुवसंधि, ध्रुवसंधिके सुदर्शन, ॥ ८ ॥ ९ ॥ सुदर्शनके शीघ्रवर्ण, शीघ्रवर्णके पुत्र मरु, मरुके पुत्र प्रभुत,

तस्मात्प्रसेनजिन्प्रोक्तस्तस्माज्जातस्तु तक्षकः । बृहद्वलम्बकाश्च तस्माज्जातो बृहद्वलः ॥१२॥
 तस्मादुरुक्रियः प्रोक्तो वत्सवृद्धस्तु तत्सुतः । वत्सवृद्धस्य व्योमस्तु व्योमाङ्गानुः प्रकीर्त्यते ॥१३॥
 भानोः पुत्रो दिवाकस्तु सहदेवश्च तत्सुतः । सहदेवान्मजो वीरो वीरस्य तनयः शुभः ॥१४॥
 बृहदश्व इति ख्यातस्तस्य पुत्रस्तु भानुमान् । भानुमनः प्रतीकाशः सुप्रतीकश्च तत्सुतः ॥१५॥
 सुप्रतीकस्य पुत्रोऽभून्मरुदेव इति स्मृतः । मरुदेवान्सुनक्षत्रः सुनक्षत्राण्य पुष्करः ॥१६॥
 पुष्करस्यातिरक्षश्च सुतपा अन्तरिक्षजः । सुतपाश्च मित्रो मित्रजित्सुतः शुभः ॥१७॥
 बृहद्राज इति ख्यातस्तस्य वहिः स्मृतो बृधः । बृधः कृतञ्जयः पञ्चस्य पुत्रो रणञ्जयः ॥१८॥
 रणञ्जयान्मजपस्तु संजयाच्छाक्य उच्यते । शाक्यपुत्रस्तु शुद्धोदः शुद्धोदाङ्गाङ्गलः स्मृतः ॥१९॥
 प्रसेनजिह्वाङ्गलस्य तत्पुत्रः क्षुद्रकः स्मृतः । क्षुद्रकाङ्गणकः प्रोक्तो रणकान्सुगन्धः स्मृतः ॥२०॥
 सुगन्धात्तनयो जातस्तनयस्य सुतो महान् । नाम्ना सुमित्रः परमः पूर्णो वंशवतनः परम् ॥२१॥
 पूर्वसुतो मरुर्इति नाम्ना यो नृपतिर्मया । कलापग्राममाश्रित्य हिमाद्रौ वदिकाश्रमे ॥२२॥
 स तपश्चिरकालं हि करोत्यग्र ममाधिमान् । कृते युगे पुनः प्राप्ते सूर्यवंशं कल्प्यति ॥२३॥
 एवं मया ममाख्यातः सूर्यवंशो मनोऽहम् । विष्णोरभ्य कथिता एकपष्टिमा मया ॥२४॥
 एकपष्टिपञ्चाशच्च मध्ये रामो विराजते । त्रयोविंशोत्तमश्चाश्रयं विष्णोर्मयोदिताः ॥२५॥
 एवं यथा मया पृष्टं शिष्य दक्षानुकीर्तनम् । तन्मया कथितं सर्वं श्रवणात्पुण्यवर्द्धनम् ॥२६॥

विष्णुदास उवाच

गुरो मया श्रुतं कस्यचिन्मुनेर्मुसृतः पुनः । रामायणं सविस्तारं तच्चेदं नैव भासते ॥२७॥
 तस्मादत्रातिरं प्रोक्तं मया सर्वत्र मां गुरो । संदेहोऽनेन मे जातस्तत् त्वं छेत्तुमिहार्हसि ॥२८॥

श्रीरामदास उवाच

पुनः पुनः कल्पमेदाज्जाताः श्रीराघवस्य च । अवताराः कोटिशोऽत्र तेषु मेदः कश्चित्कश्चित् ॥२९॥

॥ १० ॥ प्रभुसूक्तके संधि, संधिके पुत्र मण्डन, मण्डनके महस्वान्, महस्वान्के विश्ववाह ॥ ११ ॥ विश्ववाहके प्रसेनजित्, प्रसेनजित् के तक्षक, तक्षकके बृहद्वल, बृहद्वलके उरुक्रिय, उरुक्रियके वत्सवृद्ध, वत्सवृद्धके व्योम, व्योमके भानु ॥ १२ ॥ १३ ॥ भानुके पुत्र दिवाक, दिवाकके सहदेव, सहदेवके वीर, वीरके पुत्र बृहदश्व, बृहदश्वके भानुमान्, भानुमान्के प्रतीकाश, प्रतीकाशके पुत्र सुप्रतीक ॥ १४ ॥ १५ ॥ सुप्रतीकके मरुदेव, मरुदेवके सुनक्षत्र, सुनक्षत्रके पुष्कर, ॥ १६ ॥ पुष्करके अन्तरिक्ष, अन्तरिक्षके सुतपा, सुतपाके पुत्र मित्र, मित्रके मित्रजित् ॥ १७ ॥ मित्रजित्के बृहद्राज, बृहद्राजके वहि, वहिके कृतञ्जय, कृतञ्जयके पुत्र रणञ्जय, ॥ १८ ॥ रणञ्जयके संजय, संजयके शाक्य, शाक्यके शुद्धोद शुद्धोदके लाङ्गल ॥ १९ ॥ लाङ्गलके पुत्र प्रसेनजित् प्रसेनजित्के क्षुद्रक, क्षुद्रकके रणक, रणकके सुगन्ध ॥ २० ॥ सुगन्धके तनय और तनयके पुत्र सुमित्र हुए । बस, यहाँ ही तक चलकर सूर्यवंश पूर्ण हो जाता है ॥ २१ ॥ पूर्वमें हम मरु नामक राजाका नाम गिना आये हैं । वे हिमालयपर वदिकाआश्रममें तप कर रहे हैं । सत्ययुग आनेपर वे फिर सूर्यवंशका विस्तार करेंगे ॥ २२ ॥ २३ ॥ इस तरह मैंने विष्णुभगवान्से लेकर एकसठ राजाओं तक सूर्यवंशका वर्णन किया ॥ २४ ॥ एकसठ राजाओंके मध्यमें भगवान् रामचन्द्रजी विराजमान हैं और उनके आगेवाले एकसठको लेकर कुल एक सौ तेईस राजे हुए ॥ २५ ॥ इस तरह हे शिष्य ! मैंने तुम्हें सूर्यवंशका विवरण कह सुनाया । इसके सुननेसे पुण्यकी वृद्धि होती है ॥ २६ ॥ विष्णुदासने कहा-हे गुरो ! मैंने किसी मुनिसे सुना था कि रामायण इससे भी विस्तृत है, किन्तु पूरी रामायण इस संसारमें विद्यमान नहीं है । फिर आपने जो रामायण सुनायी है, वह तो सब रामायणोंसे भिन्न है । यह एक प्रकारका सन्देह मेरे हृदयमें उत्पन्न होता है । कृपा करके आप इसका निवारण करिए ॥ २७ ॥ २८ ॥ श्रीरामदासने कहा कि कल्पज्ज्दसे रामके कितने ही हुए हैं और

कृतोऽस्ति राधवेणैव न सर्वे सदृशाः कृताः । रामायणान्यपि तथा पुरा शन्मीकिनैव हि ॥३०॥
 अनेकान्यन्तरेणैव कीर्तितानि सविस्तरात् । शतकोटिमिता तेषां सर्वेषां गणना कृता ॥३१॥
 तस्माच्च या न संदेहः कार्यः शिष्याश्च बुद्धिमन् । यन्मया कथितं ते हि तत्तथ्यं विद्धि नान्यथा ॥३२॥
 भागाद्भरतस्वर्णातर्गताद्रामायणापुरा । नारदादिपुराणानि व्यासेनात्र कृतानि हि ॥३३॥
 तेषु मन्कथितं चेदं सम्यग्विस्तारितं द्विज । तव जानो यथा शिष्य संदेहोऽत्र कथांतरात् ॥३४॥
 भविष्यति तथाऽन्येषामग्रे यदि कदा क्वचिन् । नारदादिपुराणेषु दर्शनीयं हि तैर्जनैः ॥३५॥
 इष्टा मदुक्तं सर्वेषु पुराणादिषु पंडितैः । त्यक्तव्याः स्वायमं देहाः सन्यं ज्ञेयं ममेरितम् ॥३६॥

इति शतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये आदिकाण्डे पूर्णकाण्डे

सूर्यवंशवर्णनं सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

(आनन्दरामायणकी सर्गानुक्रमणिका)

श्रीविष्णुदास उवाच

गुरोऽधुना वदस्व न्वं यन्मया पृच्छयते तव । अनुक्रमणिकामगं तथा पाठादिभिः फलम् ॥ १ ॥
 कांडसंख्यां सर्गसंख्यां श्लोकसंख्यां सविस्तराम् । उद्यापनं ग्रन्थदानफलं वै शकुनेक्षणम् ॥ २ ॥
 अनुष्ठानविधानं च श्रोतुं कालविनिर्णयम् । कांडानां च पृथक् संख्यां सर्वं त्वं वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥

श्रीरामदास उवाच

अनुक्रमणिकासर्गः प्रोच्यतेऽयं मयाऽधुना । यस्याः संश्रवणात्प्रोक्तं सर्वग्रंथफलं शुभम् ॥ ४ ॥
 सर्गोऽत्र प्रथमे प्रोक्तं कौसल्यायाः स्वयंवरम् । रामादीनां सुजन्मानि द्वितीये कीर्तितानि हि ॥ ५ ॥
 सीतास्वयंवरं प्रोक्तं तृतीये मिथिलापुरि । वृंदावापादिकथनं चतुर्थं मुद्गलेन हि ॥ ६ ॥

उम अवतारोंमें कुछ न कुछ भेद हो गया है । यद्यपि रामकी लीलाएँ प्रत्येक रामायणमें वर्णित हैं, किन्तु उन सबमें कुछ न कुछ भेद है । स्वयं वाल्मीकीजीने जो शतकोटि श्लोकात्मक रामायण बनायी है, उसमें भी अन्तर विद्यमान हैं । इस कारण है गिरध । तूम किसी प्रचारका सन्देह न करके मैने जो कुछ कहा है, उसे सच मानो ॥ २६-३२ ॥ भरतखण्डके अन्तर्गत विद्यमान रामायणके भागके ही आधारपर व्यासेजीने नारदादि विविध पुराणोंको रचना की है । उसी खण्डके सहारे मैने भी इस सविस्तर आनन्द-रामायणका वर्णन किया है । जिस तरह आज तुम्हें मेरा कथा सुनकर सन्देह उत्पन्न हुआ है, उसी तरह यदि आगे चलकर और किसी श्रोता-वक्ताको सन्देह हो तो उसे चाहिए कि उन नारद आदि पुराणोंको देखकर सन्देह निवृत्त ॥ ३३-३५ ॥ पण्डितोंको भी उचित कि सब पुराणोंको देखे और उनमें मेरी कही बातें देखकर अपना सन्देह मिटा ले और समझ ले कि मैं जो कुछ कहता हूँ, वे सच हैं या नहीं ॥३६॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पंच रामसेवकाण्डेऽवस्थिते ज्योत्स्नाभाषा-टीकासहिते पूर्णकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

विष्णुदासने कहा-हे गुरो ! आप हमें इस रामायणकी सर्गानुक्रमणिका तथा इसके पाठका फल बताइए ॥ १ ॥ साथ ही इसकी काण्डसंख्या, सर्गसंख्या और श्लोकसंख्या आदि भी विस्तारपूर्वक कहिए । इसका उद्यापन, ग्रन्थके दानका फल, शकुनदर्शनविधान, अनुष्ठानविधि, इसके श्रवणका समय और काण्डकी संख्या आदि भी कहिए ॥ २ ॥ ३ ॥ श्रीरामदासने कहा-अब मैं तुम्हें इस रामायणकी सर्गानुक्रमणिका बताता हूँ । जिसके श्रवणमात्रसे समस्त रामायणके श्रवणका फल मिल जाता है ॥ ४ ॥ सारकाण्डके पहले सर्गमें कौसल्याका स्वयंवर, दूसरेमें राम आदिका जन्म, तीसरे सर्गमें जनकपुरमें सीताका स्वयंवर, चौथे

दशरथपूर्वजन्म कैकेयाश्चापि पञ्चमे । वनप्रयाणं रामस्य प्रोक्तं षष्ठे सविस्तरम् ॥ ७ ॥
 विराधखगमारोचवधादिस्तप्तमेऽकथि । त्रिष्विधया बालिघातेः रामवेष्टाष्टमे कृतः ॥ ८ ॥
 नवमे जानकीशुद्धिलंका दग्धादनुमता । दशमे सेतुमाह्वानस्य काञ्चीविश्वनाथगमः ॥ ९ ॥
 एकादशे रावणदिवधाः प्रोक्ताश्च राघवान् । सीतया स्वर्णं गन्वा द्वारं लङ्कास्यो विभुः ॥ १० ॥
 त्रयोदशे राघवस्य विक्रमश्च हनुमतः । समारंभं सारकाण्डं हि यत्राहं मुदीयते ॥ ११ ॥
 बाष्पाकेः प्रथमे सर्गे श्लोकोत्पत्तिः प्रकीर्तिता । रामायणविभागेऽत्र द्वितीये समुदाहृतः ॥ १२ ॥
 तृतीये सीतया रामो यात्रार्थं प्रार्थितो मुदा । चतुर्थे रामचन्द्रस्य प्रस्थानं जह्नुर्वी प्रति ॥ १३ ॥
 पञ्चमे मुनिवाक्येन यात्रां गंतुं विनिश्चयः । षष्ठे प्रोक्ता पूर्वदेशनार्थयात्रा सविस्तरा ॥ १४ ॥
 प्रोक्ता दक्षिणार्थानां यात्रा रामस्य सप्तमे । तीर्थादनं पश्चिमायामष्टमे राघवस्य च ॥ १५ ॥
 यात्रोत्तरप्रदेशस्य रामस्य नवमेऽकथि । यात्राकाण्डसमाप्तं तु यागकाण्डमुदीर्यते ॥ १६ ॥
 मर्गेऽत्र प्रथमे प्राद्वृत्तोपकरणं गुरुः । द्वितीये रामचन्द्रस्य यागारंभोऽत्र वर्णितः ॥ १७ ॥
 पृथ्वीप्रदक्षिणा प्रोक्ता तृतीयेऽश्वमेधयज्ञिनः । कुम्भोदस्य रामस्य सप्तमोऽत्र चतुर्थके ॥ १८ ॥
 पञ्चमे गमनाम्नां वै अष्टोत्तशतं शुभम् । षष्ठेऽलङ्कितं हि सर्वेषां यात्रिमेषु प्रकीर्तितम् ॥ १९ ॥
 अश्वमेधविधानं च सप्तमे समुदाहृतम् । अष्टमेऽश्वमेधयज्ञानं राघवस्यात्र वर्णितम् ॥ २० ॥
 नवमे यात्रिमेषस्य समाप्तिः कीर्तिताऽत्र सा । यागकाण्डं समाप्तं हि विलासकाण्डमुदीर्यते ॥ २१ ॥
 प्रथमे रघुवीरस्य स्ववराजोऽत्र कीर्तितः । द्वितीये रतिशालाया जानक्याश्चापि वर्णनम् ॥ २२ ॥
 तृतीये राघवेणोक्तं देहरामायणं स्मिन् । दिनचर्याभूषणानि जानक्याश्च चतुर्थके ॥ २३ ॥
 जलयंत्रगता क्रीडा पञ्चमे उपमाह्विकम् । द्विजस्य पश्यन् प्रसादे पटुल्लंकारमण्डनम् ॥ २४ ॥

सर्गमें मुद्रित कृषिका मिलता तथा वृन्दाशार आदि वर्णित है ॥ ७ ॥ ८ ॥ पाँचवें सर्गमें दशरथ और कैकेयीके पूर्वजन्मका वृत्तांत है । छठे सर्गमें रामका वनगमन और मातर्वेग विराध-जटायु-मारोच आदिका वध तथा आठवें सर्गमें किष्किन्ध्या पर्वतपर बालिबध वर्णित है ॥ ७ ॥ ८ ॥ नवें सर्गमें सीताकी खोज और लङ्कादहन, दसवें सर्गमें सेतुमाह्वान तथा काञ्ची-विश्वनाथके आगमनका वर्णन है ॥ ९ ॥ एकादश सर्गमें रामके द्वारा रावण आदिका वध तथा बारहवें सर्गमें सीताके साथ रामके अयोध्या लौटने और राज्याभिषेकका वर्णन है ॥ १० ॥ तेरहवें सर्गमें राम और हनुमान्जोके पराक्रमका वर्णन है । वन, पर्वत हों सारकाण्ड समाप्त हो जाता है ॥ ११ ॥ अब यात्राकाण्ड कहते हैं । इसके पहले सर्गमें बाल्मीकि ■ यात्राकाण्ड उत्पत्ति दूसरे सर्गमें रामायणका विभाजन वर्णित है ॥ १२ ॥ तीसरे सर्गमें सीता द्वारा यात्राकी प्रार्थना और चतुर्थ सर्गमें जाह्नवीकी ओर रामकी यात्राका वर्णन है ॥ १३ ॥ पाँचवें सर्गमें कुम्भोदर मुनिकी सलाहसे यात्राका सविस्तर वर्णन है । छठे सर्गमें पूर्व देशकी यात्राका वर्णन है ॥ १४ ॥ सातवें सर्गमें दक्षिण भारतके तीर्थोंकी यात्रा और आठवें सर्गमें पश्चिमी प्रदेशके तीर्थोंकी यात्राका वर्णन है ॥ १५ ॥ नवें सर्गमें उत्तर प्रदेशके तीर्थोंकी यात्राका वर्णन है । वस, यात्राकाण्ड यहीं समाप्त हो जाता है । अब यागकाण्ड प्रारम्भ होता है ॥ १६ ॥ इसके पहले सर्गमें यज्ञोंकी सामग्रियोंका सविस्तर वर्णन है । दसरे सर्गमें रामचन्द्रजीके द्वारा यागारम्भ, तीसरे सर्गमें धर्मीय अश्वकी गृध्रीप्रदक्षिणा, चौथे सर्गमें राम और कुम्भोदर मुनिका संवाद है ॥ १७ ॥ १८ ॥ पाँचवें सर्गमें रामका अष्टोत्त-रशतनाम स्तोत्र है । छठे सर्गमें अश्वमेध यज्ञमें की जानेवाली रामकी दिनचर्याका वर्णन है ॥ १९ ॥ सातवें सर्गमें अश्वमेधविधान, आठवें में अश्वमेधयज्ञ और नवें सर्गमें अश्वमेध यज्ञकी समाप्ति वर्णित है ॥ २० ॥ वस, यहाँ यागकाण्ड समाप्त हो जाता है । अब विलासकाण्ड प्रारम्भ होता है ॥ २१ ॥ इसके प्रथम सर्गमें रामस्ववराज और दूसरे सर्गमें जानकीजीकी रतिशालाका वर्णन है ॥ २२ ॥ तीसरे सर्गमें सीताकी रामसे देहरामायण सुनायी है । चौथे सर्गमें सीताका दिनचर्याका वर्णन है ॥ २३ ॥ पाँचवें सर्गमें जलयंत्रकी क्रीडाएँ और बाल्मीकि कृष्णका विवेचन है । छठे सर्गमें ब्राह्मणपत्नीके लिए सीता द्वारा अलङ्कार-दानका वर्णन है ।

मूर्तिनां सप्तमे दानं देवस्त्रीणां वरास्तथा । गुणवत्या विमलाया वरदानमथाष्टमे ॥२५॥
 कुरुक्षेत्रस्य यात्रायां नवमे ज्ञानकीर्जयः । विलासकाण्डं समाप्तं हि जन्मकाण्डमुदीर्यते ॥२६॥
 आरामे दोहदक्रीडा सीतायाः प्रथमेऽकथि । द्वितीये विविधाः क्रीडाः सीमंतोत्सवोत्सवः ॥२७॥
 रजकस्योदितं श्रुत्वा सीतात्यागस्तृतीयके । जन्मकर्म चतुर्थेऽत्र कुशस्याथ लवस्य च ॥२८॥
 सर्गेऽत्र पञ्चमे प्रोक्ता रामरक्षा सुखावहा । षष्ठे लवस्य कमलहरणे जय ईरितः ॥२९॥
 युद्धादिकौतुकं प्रोक्तं पुत्रयोः सप्तमे विभोः । सीतादिव्यं तल्लामोऽष्टमे प्रोक्तोऽत्र मंडये ॥३०॥
 जन्मोपनयनादीनि बालानां नवमेऽकथि । जन्मकाण्डं समाप्तं हि विवाहाख्यमुदीर्यते ॥३१॥
 स्वयंवराय गमनं रामस्य प्रथमेऽकथि । स्वयंवरं चंपिकाया द्वितीये समुदाहृतम् ॥३२॥
 स्वयंवरं सुमत्याश्च तृतीये परिकीर्तितम् । कुशस्याथ लवस्यापि विवाहौ द्वौ चतुर्थके ॥३३॥
 गन्धर्वनागकन्यानां मोचनं पञ्चमेऽकथि । षष्ठं तामां विवाहानां निश्चयः समुदाहृतः ॥३४॥
 विवाहा द्वादशे प्रोक्ताः सर्वासां सप्तमेऽत्र हि । अष्टमे गूपकेनोश्च वर्णितोऽत्र पराक्रमः ॥३५॥
 प्रोक्तो मदनसुन्दर्या विवाहो नवमे महान् । पूर्णं विवाहकाण्डं च राज्यकाण्डमुदीर्यते ॥३६॥
 रामनामसहस्रं च सर्गे प्राथमिकेऽकथि । द्वितीयेऽत्र समानीतौ रामेण सुरपादपौ ॥३७॥
 रामकृष्णोपासकयोः संवादश्च तृतीयके । शनस्त्रीणां च निद्रायां वरदानं तथा पुनः ॥३८॥
 रामविरुपविहः सीतायाः पंचमेऽकथि । मूलकामुरयाश्च षष्ठं राज्यानि च पृथक् ॥३९॥
 जयो भरतखंडस्य रामेण सप्तमे कृतः । जम्बूद्वीपजयः प्रोक्तोऽष्टमे रामस्य विस्तरात् ॥४०॥
 षड्द्वीपानां जयः प्रोक्तो नवमे राधवस्य च । यनिशूद्रगृध्रशिखा रामेण दशमे कृता ॥४१॥
 चतुःस्त्रीणां वरदानं रामेणैकादशे कृतम् । स्त्रीषोडशमहम्नाणां द्वादशेऽत्र वरार्पणम् ॥४२॥
 अश्वत्थहसितं हास्यमुक्तंगजा त्रयोदशे । चतुर्दशे बाल्मीकिना म्यजन्मत्रयसीरितम् ॥४३॥

॥ २४ ॥ सप्तमे मूर्तियोंका दान और देवस्त्रियोंके वरदानका विधान है । अष्टम सर्गमें गुणवती और विमलाके वरदानका वर्णन है ॥ २५ ॥ नवम सर्गमें कुरुक्षेत्रकी यात्रामें ज्ञानकीविजयका वर्णन है । बस, यहाँ ही विलासकाण्ड समाप्त हो जाता है ॥ २६ ॥ अब यहाँसे जन्मकाण्डका वर्णन करते हैं—पहले सर्गमें दोहदक्रीडा तथा दूसरे सर्गमें विविध प्रकारकी क्रीडाओं और सीमन्तोत्सव सस्कारका विधान है ॥ २७ ॥ तृतीय सर्गमें सीतात्याग तथा चौथे सर्गमें कुश-लवका जन्म-कर्म वर्णित हैं । पाँचवें सर्गमें रामरक्षास्तोत्रका विधान है । षष्ठे सर्गमें लवका कमलहरण और उनके विजय वर्णित है ॥ २८ ॥ २९ ॥ सप्तम सर्गमें युद्धादिके कौतुकका विधान और अष्टम सर्गमें सीताकी शपथका वर्णन है ॥ ३० ॥ नवम सर्गमें बालकोंके जन्म और उपनयनका विधान । बस, जन्मकाण्ड यहाँ ही समाप्त हो जाता है । अब यहाँसे विवाहकाण्ड प्रारम्भ होता है ॥ ३१ ॥ इसके प्रथम सर्गमें रामके गमनकी बातें हैं । दूसरे सर्गमें चम्पिकाके विवाहका वृत्तान्त । तीसरे सर्गमें सुमतिके विवाहका वर्णन है । चौथे सर्गमें कुश और लवके विवाहकी बातें हैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ पञ्चम सर्गमें गन्धर्व तथा नागोंकी कन्याओंके छुड़ानेका हाल है । षष्ठ सर्गमें इन लोगोंके विवाहकी पक्की हो जाती है ॥ ३४ ॥ सप्तम सर्गमें सबके विवाहका वर्णन तथा अष्टम सर्गमें गूपकेतुके पराक्रमका वर्णन है ॥ ३५ ॥ नवम सर्गमें मदनसुन्दरीके विवाहका वृत्तान्त है । बस, विवाहकाण्ड यहाँ ही समाप्त हो है । अब राज्यकाण्ड प्रारम्भ है ॥ ३६ ॥ राज्यकाण्डके प्रथमसर्गमें रामसहस्रनाम । दूसरे सर्गमें रामके द्वारा स्वर्गसे कल्पवृक्ष और पारिजात नामक वृक्षोंके लानेकी बातें हैं ॥ ३७ ॥ तीसरे सर्गमें रामकृष्णके उपासकोंका संवाद, चौथे सर्गमें निद्राके लिए वरदान, पाँचवें सर्गमें सीतारामका बियोग और मूलकामुर-वध, छठे सर्गमें राज्यकार्यका वर्णन है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ सातवें सर्गमें रामके द्वारा भरतखण्डकी विजय, आठवें सर्गमें जम्बूद्वीपविजय, नवें सर्गमें रामके अन्य छः द्वीपोंको जीतनेका वृत्तान्त । दसवें सर्गमें संन्यासी, शूद्र गृध्रकी शिखाका वर्णन है ॥ ४० ॥ ४१ ॥ अारहवें सर्गमें रामके

पंचदशे रामराज्यवर्णनं विस्तरात्कृतम् । वर्णिता राजनीतिः श्रागववेणात्र षोडशे ॥४४॥
 सप्तदशेऽथ कथितं कुशकन्यास्वयंवरम् । अष्टादशे रामनाथपुरं दत्तं द्विजन्मनाम् ॥४५॥
 एकोनविंशे रामस्य दिनचर्येतिता शुभा । राज्ञां विंशेऽवनाने तु श्रेष्ठः प्रोक्तस्तदयं महान् ॥४६॥
 एकविंशे राघवेण दास्ये दत्तो वरो मुदा । सीतया तुलसीपत्रं दातुं संधितं शुभम् ॥४७॥
 त्रयोविंशे स्मृताऽऽनन्दराभायणफलश्रुतिः । यमशिक्षा चतुविंशे यमशिक्षा च भूतले ॥४८॥
 राज्यकाण्डं समाप्तं हि मनोहरमुदीयते । सर्गेऽत्र प्रथमे प्रोक्तं लघुराभायणं शुभम् ॥४९॥
 नागराणां च मानुषाणामुपदेशं द्वितीयके । रामपूजोपासनादिविस्तारश्च तृतीयके ॥५०॥
 रामतोभद्रविस्तारश्चतुर्थे समुदीरितः । रामलिंगतोभद्राणां भेदाः प्रोक्ताश्च पंचमे ॥५१॥
 नवमीव्रतविस्तारः षष्ठे प्रोक्ता च तत्कथा । श्रावणान्मां लक्ष्मणोद्यापनादानि सप्तमे ॥५२॥
 वेदादीनां हि सर्वेषामष्टमे फलमीरितम् । सार्द्धमामद्रथा पूजा कथिता नवमे विभोः ॥५३॥
 दशमे चैत्रमासस्य महिमा समुदीरिता । एकादशे सधुन्नानाद्वयवर्षा शतिरीरिता ॥५४॥
 अर्द्धत दशितं राज्ञा द्वादशे लोकदम्बकम् । यापुत्रप्रसूतं रामस्य कवचे द्वे त्रयोदशे ॥५५॥
 सीतायाः कवचादीनां प्रोक्तान्यत्र चतुर्दशे । पंचदशे कवचानि तद्वन्धुनां स्मृतानि हि ॥५६॥
 द्यतं हनुमतः प्रोक्तं पताकाख्यं हि षोडशे । प्रोक्तं सप्तदशे साररामायणमनुत्तमम् ॥५७॥
 अष्टादशे शरसंतोः खंडनं च हनुमता । त्रां मनोहरं काण्डं पूर्णकाण्डमश्रोच्यते ॥५८॥
 दान्भीकिना सोमवंशविस्तारः पथमेऽकथि । रामचन्द्रस्य मन्थानं द्वितीये हस्तिनापुरम् ॥५९॥
 सूर्यसोमवंशजयोर्युद्धं प्रोक्तं तृतीयके । सोमसूर्यवंशजयोर्मित्रिकी च चतुर्थके ॥६०॥
 कुशादीनां राघवेण पञ्चमेऽथ विमर्जनम् । वैकुण्ठाराहणं षष्ठे गङ्गायां राघवस्य च ॥६१॥
 सप्तमे सूर्यवंशीयनृपाणां वर्णनं कृतम् । अनुक्रमणिकाभगोः प्रोक्तोऽष्टमष्टमो महान् ॥६२॥

द्वारा चार स्त्रियोंको वरदानप्राप्ति, बारहवें सर्गमें सोलह स्त्रियोंके वरदान पानेका वृत्तान्त, तेरहवें सर्गमें पोषलके वृत्तकी हँसी, चौदहवें वर्णनमें वाल्मीकिके तीन जन्मका वृत्तान्त है ॥ ४२॥ ४३॥ पन्द्रहवें सर्गमें रामके राज्यका सविस्तर वर्णन और सोलहवें सर्गमें रामकी कही राजनीतिकी चर्चा है ॥ ४४ ॥ सत्रहवें सर्गमें कुशाका कन्याका स्वयंस्वर, अठारहवें सर्गमें ब्राह्मणोंके लिए रामनाथपुरके राज्यका दान ॥ ४५॥ उन्नासवें सर्गमें रामकी दिनचर्या और बीसवें सर्गमें अवतारोंमें रामावतारकी श्रेष्ठता कही गयी है ॥ ४६ ॥ इक्कीसवें सर्गमें दासीके लिये रामका वरदान, बार्हिसवें सर्गमें सीता द्वारा दूटे तुलसीपत्रको पुनः जोड़नेकी कथा है । तेईसवें सर्गमें आनन्दरामायणका श्रवणफल, चौबीसवें सर्गमें यमकी शिक्षा एवं यमशिक्षाका वर्णन है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ वस, राज्यकाण्ड यहाँ ही समाप्त । अब मनोहरकाण्ड शरम्भ होता है । इसके पहले सर्गमें लघुरामायण, दूसरे सर्गमें नगरवासियों तथा माताओंके लिए उपदेशदान, तीसरे सर्गमें रामपूजा और उपासनाका सविस्तर वर्णन है ॥ ४९ ॥ ५० ॥ चौथे सर्गमें रामतोभद्रका विस्तार, पाँचवें सर्गमें रामलिंगतोभद्रका विस्तार, छठे सर्गमें नवमीव्रतका विस्तार, सातवें सर्गमें लक्ष रामनामजपका उद्यापन है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ आठवें सर्गमें वेदादिके फलनेका फल और नवें सर्गमें दार्ढ्य महीने तक रामके पूजनका विधान है ॥ ५३ ॥ दसवें सर्गमें चैत्रमासमें पूजन करनेकी महिमा, ग्यारहवें सर्गमें चैत्रस्नानसे सबको सद्गति पानेका उपाय और बारहवें सर्गमें रामने बहुतसो स्त्रियोंको अर्द्धत पदकी बातें बतलाई हैं । तेरहवें सर्गमें राम तथा हनुमान्जीका कवच और चौदहवें सर्गमें सीताके कवच आदिका वर्णन है । पन्द्रहवें सर्गमें रामके भ्राताओंके कवच आदिका वर्णन है ॥ ५४-५६ ॥ सोलहवें सर्गमें हनुमान्जीका पताकारोपणकृत है । सत्रहवें सर्गमें साररामायण कहा गया है । अठारहवें सर्गमें हनुमान्जीके द्वारा अर्जुनके बनाये शरसेतुका खंडन वर्णित है । वस, मनोहरकाण्ड यहाँ ही समाप्त हो जाता है । अब पूर्णकाण्डके विषय गिनाते हैं ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ पूर्णकाण्डके प्रथम सर्गमें सोनवर्णी राजाओंको वंशावली, दूसरे सर्गमें रामचन्द्रजीकी हस्तिनापुरके लिए यात्रा ॥ ५९ ॥ तीसरे सर्गमें सूर्य और सोमवंशी राजाओंका युद्ध और चौथे सर्गमें सोम-

ग्रंथश्रुतिफलादीनि नवमे कीर्तितानि हि । नवमस्य पूर्णकाण्डं सम्पूर्णं नवमं निदम् ॥६३॥
 अनुक्रमणिका चैयं भग्न्या श्रियं प्रदर्शिता । अस्याः श्रवणमात्रेण रामायणश्रुतेः फलम् ॥६४॥
 रामायणपुस्तकस्य नित्यं कार्यं प्रपूजनम् । विशेषेण पूजनस्यापि गृणु शिष्य वदामि ते ॥६५॥
 सारकाण्डं विभोः स्थाने लक्ष्मणाये द्वितीयकम् । नवायतनगोत्रेभ्यं शेषायि स्थापयेत् क्रमात् ॥६६॥
 सप्त कांडानि विधिवत्तेषां पूजनमाचरेत् । अथवा राज्यकांडस्य पूर्वार्धं रामसत्स्थले ॥६७॥
 राज्यकांडस्योत्तरार्धं सीतास्थाने निवेशयेत् । लक्ष्मणाये सरकाण्डं शेषाण्यग्रे क्रमेण तु ॥६८॥
 एवं संस्थाप्य कांडानि तेषां पूजनमाचरेत् । नवायतनपूजायाः फलमेवेन कीर्तितम् ॥६९॥

इति श्रीमत्कोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पूर्णकाण्डे

अनुक्रमणिकावर्णनं नाम अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः

(ग्रन्थकी फलश्रुति)

श्रीरामचन्द्र उवाच

सारं यात्रा च यागाख्यं विलासाख्यं तु जन्मकम् । विवाहाख्यं हि राज्याख्यं श्रीमनोहरपूर्णके ॥१॥

कांडान्पुनःक्रमेणैवानन्दरामायणे नव । त्रयोदश सारकाण्डे सर्गा बह्वीरिहिरिताः ॥२॥

यात्राकाण्डे नव ज्ञेया यागकाण्डेऽपि वै नव । नव ज्ञेया विलासाख्ये जन्मकाण्डेऽपि वै नव ॥३॥

नव ज्ञेया विवाहाख्ये चतुर्विंशत्ये राज्यके । मनोहराख्ये सातव्याः सर्गा अष्टादशात्र ॥४॥

पूर्णकाण्डे षेकाः सर्गाः पापहरा नृणाम् । एवं त्रयोत्तरशतं १०९ सर्गा ज्ञेयाः शुभावहा ॥५॥

वहो और भूयंवासी राजाओंकी मित्रताका वर्णन है ॥ ६० ॥ पाँचवें सर्गमें रामचन्द्रजीके द्वारा कुब
 जादिके विसर्जनकी कथा है । छठें सर्गमें गङ्गाजीके तटपर रामको परमशामनामका वर्णन है ॥ ६१ ॥
 सातवें छमें सूर्यवंशी राजाओंका वर्णन है और आठवें सर्गमें आनन्दरामायणकी अनुक्रमणिका बतलायी
 गयी है ॥ ६२ ॥ नवें सर्गमें आनन्दरामायणके श्रवणका फल आदि वर्णित है । वस्तु, पूर्णकांड यहीं समाप्त
 हो ॥ ६३ ॥ शिष्य ! इस प्रकार मैने तुमको समस्त आनन्दरामायणकी अनुक्रमणिका बता दी । इस
 अनुक्रमणिकामात्रके सुननेसे समस्त रामायण सुननेका फल प्राप्त हो जाता है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ भक्तोंकी चाहिए
 कि नित्य इस रामायणका पूजन करें । इसका पूजामें जो विशेषकार्य हैं उन्हें बतलाता हूँ, मुनो ॥ ६५ ॥
 सारकाण्डको भगवान् रामचन्द्रजी, दूसरे कांडको लक्ष्मण तथा तीसरे कांडको सीता समझकर स्थापित करें ।
 इस तरह सात कांडोंमें क्रमशः नवायतनकी स्थापना करके पूजन करें अथवा राज्यकांडके पूर्वार्धभागको
 रामके स्थानमें तथा उत्तरार्धको सीताके स्थानमें स्थापित करके पूजन करना चाहिए और सारकाण्डको
 लक्ष्मणकी अगह्वर स्थापित करके पूजन करें । इसी तरह शेष कांडोंको क्रमशः भरत आदिके स्थानमें स्थापित
 करके पूजन करना चाहिए । इस तरह इस रामायणकी पूजा करनेसे रामनवायतन-पूजनका फल प्राप्त होता
 है ॥ ६६-६९ ॥ इति श्रीमत्कोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजशण्डेयकृत-
 'व्याख्या'भावाटीकासहिते पूर्णकाण्डेऽष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीरामचन्द्रने कहा-हे शिष्य ! सार, यात्रा, याग, विलास, जन्म, विवाह, राज्य, मनोहर पूर्णकाण्ड
 ही इस रामायणके काण्ड हैं । सारकाण्डमें वाल्मीकिजीने तेरह सर्ग, यात्राकांडमें नौ सर्ग, जन्मकांडमें
 सर्ग, विवाहकांडमें नौ सर्ग, राज्यकांडमें चौबीस सर्ग, मनोहरकांडमें अठारह सर्ग और पूर्णकांडमें पापोंको हरण
 करनेवाले कुल नौ सर्ग हैं । इस तरह इस आनन्दरामायणमें कुल मिलाकर एक सौ नौ (१०९) सर्ग हैं ॥ १-५ ॥

सारकाण्डे पंचविंशच्छतं श्लोकाः सत्रिंशकाः । यात्राकाण्डे सप्तशतं पञ्चविंशत्तरं स्मृताः ॥ ६ ॥
 यागकाण्डे षट्शतं च पञ्चविंशत्तरं शुभाः । विलासकाण्डे षट्शतं च साष्टसप्ततिं सम्भृताः ॥ ७ ॥
 जन्मकाण्डे सप्तशताः सद्भिः श्लोकाः प्रकीर्तिताः । विवाहाण्डे पञ्चशतं कीर्तिताः सत्त्वशातयः ॥ ८ ॥
 सद्भाविंशः राज्यकाण्डे सुषट्विंशच्छतं स्मृताः । एकत्रिंशच्छतं श्लोकाः प्रोक्ताः काण्डे मनोहरे ॥ ९ ॥
 पूर्णकाण्डे पञ्चशतं सप्तसप्ततिमिश्रिताः । आनन्दरामचरिते मदस्त्राणि हि द्वादश ॥ १० ॥
 द्वे शते च द्विपञ्चाशच्छ्लोकाः श्रेया मनीषिभिः । एवं शिष्य मया प्रोक्तं यथा पृष्टं त्वया पुरा ॥ ११ ॥
 रामस्य तोषचरितं श्रवणात्पातकापहम् । पूर्णकाण्डमिदं श्रेयं श्रवणात्पुण्यवर्धनम् ॥ १२ ॥
 सारकाण्डश्रवादेन संसारान्मुच्यते नरः । यात्राकाण्डेन यात्राणां लभ्यते मानवैः फलम् ॥ १३ ॥
 यागकाण्डेन यज्ञानां लभ्यते फलमुत्तमम् । विलासकाण्डश्रवणादप्सरोभिर्विमोदते ॥ १४ ॥
 जन्मकाण्डेन प्राप्नोति नरः पुत्रादिसन्ततिम् । विवाहकाण्डश्रवणाद्रम्या स्त्री लभ्यते भुवि ॥ १५ ॥
 राज्यकाण्डेन राज्यं हि मानवैर्भुवि लभ्यते । काण्डं मनोहरं श्रुत्वा लभ्यते मानसेप्सितम् ॥ १६ ॥
 पूर्णकाण्डश्रवादेन विष्णोः पूर्णपदं लभेत् । सर्वं विस्तारनः श्रुत्वाऽऽनन्दरामायणं त्विदम् ॥ १७ ॥
 सच्चिदानन्दस्वरूपं स ज्ञानो भवति मानवः । गमादणं नरैः श्रुत्वा कार्यमुद्यमनं नरैः ॥ १८ ॥
 रामायणे श्रुते दद्याद्रूपं देवमयं सुधीः । चतुर्विंशतिभिर्भुक्तं नद्या क्षीमयताकृपा ॥ १९ ॥
 यत्रैश्वर्यं समागुक्तं किंकिण्यानादनादिभिः । सेवाः स्तेजस्य सङ्घर्षं धनु दद्यात्पथःस्वर्णम् ॥ २० ॥
 ब्राह्मणान्भोजयेन्नाद्याच्छामशोणम् । एवं कृतं विधानं तु नदाज्ज्वर्यं फलप्रदम् ॥ २१ ॥
 रामायणं भवन्मूनं नात्र काया विचारणा । यस्मिन्नारमस्य संस्थानं रामायणमथाच्यते ॥ २२ ॥
 नरः प्रातः समुत्थायानन्दरामायणं पठेत् । यः स कामानवाप्नोति तच्छलान् दिवि दुर्लभान् ॥ २३ ॥

सारकाण्डमें २५३० श्लोक, यात्राकाण्डमें ७३५ श्लोक, यागकाण्डमें ६२५ श्लोक, विलासकाण्डमें ६७५ श्लोक, जन्मकाण्डमें ६०२ श्लोक, विवाहकाण्डमें ५६३ श्लोक ॥ ५-८ ॥ राज्यकाण्ड २६०२ श्लोक, मनोहरकाण्डमें ११०० श्लोक और पूर्णकाण्डमें ५७७ श्लोक हैं । इस आनन्दरामायणमें कुल मिलाकर १२३५२ श्लोक हैं ॥ ९ ॥ हे शिष्य ! मुझे हमसे जैसे पूछा, मैंने रामचन्द्रजीका प्रसन्न करने और पापीको करनेवाले रामचरितको कह मुनाया । यह पूर्णकाण्ड पुण्यको बढ़ाना है ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ सारकाण्डके सुननेसे प्राणी इस संसारसे मुक्त हो है । यात्राकाण्डका श्रवण करनेसे प्राणी सब तार्थोंका यात्राका पुण्य प्राप्त करता है ॥ १३ ॥ यागकाण्डके सुननेसे प्राणी यज्ञोंके करनेका फल पाता है और विलासकाण्डके सुननेसे स्वर्गकी अप्सराओंके साथ आनन्द करता है ॥ १४ ॥ जन्मकाण्डका श्रवण करनेसे प्राणी संसृति पाता है और विवाहकाण्ड सुननेसे सुन्दर स्त्री मिलती है ॥ १५ ॥ राज्यकाण्डके सुननेसे संसारका राज्य प्राप्त होता है, मनोहरकाण्डको सुननेसे अपनी इच्छित कामना पूर्ण होती है और इस पूर्णकाण्डको सुननेसे प्राणी साक्षात् विष्णुभगवान्का पूर्णपद पाता है । जो प्राणी समस्त आनन्दरामायण सुन लेता है ॥ १६ ॥ १७ ॥ वह सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान्में लीन हो जाता है । जो लोग यह रामायण सुनें, उन्हें इसका उद्यमन भी करना चाहिए ॥ १८ ॥ रामायण सुन लेनेके बाद श्रीता मुनानेवालेका एक ऐसा स्वर्णरथ दे, जिसमें चार घोड़े जुते हों और ऊपर रेशमी पताका पहना रही हो ॥ १९ ॥ उसमें विविध प्रकारके वस्त्र लगे हों और किंकिण्यादिकी मीठी गन्धि निकल रही हो । इसके बाद एक द्वार गो दे ॥ २० ॥ इसके पश्चात् १०८ ब्राह्मणोंका भोजन कराये । ऐसा करनेपर यह महाकाव्य पूर्ण फलदायी होता है । इसमें कितना प्रकारका संदेह न करना चाहिए । जिसमें भगवान्-निवास हो, उसे "रामायण" कहल है ॥ २१ ॥ २२ ॥ जो प्राणी सबरे उठकर इस आनन्दरायणका पाठ करता है तो देवताओंकी भी दुर्लभ उसका कामनायें पूर्ण होती हैं ॥ २३ ॥ चैव शुद्ध नवमाका रामायणके अवसर-

चैत्रमासे तिथे एते कवचाः रामजन्मनि । कृतमपसुवर्णेन वायुपुत्र विधाय ॥२४॥
 एकविंशति मासैर्वा नयाश्चक्याऽथवा नरैः । वायुपुत्र संविद्यमानन्दरामायणं त्विदम् ॥२५॥
 मौन्यद्वारा लिखितान्येकैर्विन्द्या वा स्वहस्ततः । तं पुनश्चित्ररगाद्यभूषितं सुभिर्गोधिवम् ॥२६॥
 वेष्टितं पट्टतुल्यैश्चतुर्मासपुस्तकं शुभम् । स्कन्धे आमारुते रूपं पूजितं दक्षिणान्वितम् ॥२७॥
 मध्याह्ने ब्राह्मणे पूज्यं नानाशस्त्रविशारदम् । तस्मै देयं पुस्तकं तद्वायुपुत्रममन्वितम् ॥२८॥
 एष यः कुरुते दानं तस्य पुण्यं तदाम्यहम् । कांठिभारमुवर्णस्य कुरुक्षेत्रे रविग्रहे ॥२९॥
 दानेन पुण्यं पञ्चाङ्कं तस्मादेच्छताधिकम् । अधरपुत्र यावन्ति सन्ति आनन्दमञ्जके ॥३०॥
 तावद्युगसहस्राणि वैकुण्ठे मोदते नराः । तप्तजन्म सर्वेऽपि प्रसन्नोऽयं वेदपारगः ॥३१॥
 रम्यं पवित्रमानन्ददायकं च मनोहरम् । आनन्दमञ्जकं रामचारणं पुण्यवर्द्धनम् ॥३२॥
 रामायणमिदं येऽत्र भक्त्या शृण्वन्ति मानवाः । पुत्रः पौत्रः सुहृद्भिश्च न वियागं लभन्ति ते ॥३३॥
 रामायणमिदं येऽत्र भक्त्या शृण्वन्ति मानवाः । नरैः स्त्रियैश्चैराणांऽत्र न कदापि हि जायते ॥३४॥
 आनन्दसञ्जकं पुण्यं वाः शृण्वत्यत्र वै क्षयः । स्वभर्तृभ्रातृव्यागं ता न गच्छन्ति यथा रमा ॥३५॥
 ग्रामं देशान्तरं तथैव गन्तव्यं चिरं नराः । तेषामागन्तव्यं हि पठनायमिदं सदा ॥३६॥
 येषां भार्यानि कान्याश्च लब्धुं त्वरयते मनाः । आनन्दमञ्जकं तेषु पठनीयं प्रयत्नतः ॥३७॥
 प्रथमे दिवसे काण्डान्कमे । पठच्छुभम् । नवमं च । द्वितीयं च । द्वितीयं दिवसे पठेत् ॥३८॥
 एवं क्रमेण कांडानां दृष्टः स्तोत्रो दत्तं । नव काण्डानि नवमे दिवसे सम्पठेन्नरः ॥३९॥
 अष्ट कांडानि दशमे क्षयस्तरुकेन च क्रमात् । तत्तदशारनञ्च ननुष्ठानमिदं महत् ॥४०॥
 अथवा क्रमेण कांडानि प्रथमं प्रथमं पठेत् । द्वितीयं च । द्वितीयं च । द्वितीयं च । नवमं नवमे दिने ॥४१॥
 दशमं दशमे प्रोक्तं क्षयः कार्यः क्रमेण हि । तत्तदश । दनरत्नदनुष्ठानं सुखावहम् ॥४२॥

पर सो मासे हनुमान्जाकी मूर्ति बनवाकर, उसके अभावम इक्कास मास अथवा जैसा अवनो शक्ति हो, उसके अनुसार मासतक मूर्ति बनवाया चाहिए । इसका अनन्तर लिखा है दकर या अपने हाथसे यह ग्रन्थ लिखकर इसमें विविध प्रकारक चित्र बनाय और अच्छा तरह सजावन करे । फिर दक्षिणाके साथ इस रामायणको रेमणी कपड़ेके टुकड़में बांधकर हनुमान्जाक कांठेपर रखे ॥२४-२५॥ फिर दोपहरके इसको कथा कहने-वाले विविध शास्त्राक्त जाता ब्राह्मणका पूजा करे । उस अच्छे-अच्छ कपड़े पहनाये और वह हनुमान्जाकी प्रतिमा तथा पुस्तक उस ब्राह्मणका दान द दे ॥ २६ ॥ इस तरह दान करनेका जो फल होता है, वह मैं तुमको बतलाता हूँ । मूर्धेप्रदूषण लगनेपर कुछक्षणम एक कराड़भार मुक्कदान करनेका जो फल प्राप्त होता है, उससे सैकड़ों-गुना अधिक फल इस प्रकार आनन्दरामायणका दान करनेसे प्राप्त होता है । ऐसा करनेपर इस आनन्दरामायणम जितन अक्षर है, उतन हजार युग तक प्रणा वैकुण्ठ लक्ष्म आनन्द करता है । इसका बाद राक्ष जन्म तक विप्रके घरम उसका अन्म होता है और इसके बाद वह एक भरपा लामो साक्षाण होता है ॥ २६-३१॥ यह आनन्दरामायण पवित्र, रम्य, मनोहर एवं पुण्यवर्द्धन है । जो लोग इसका अध्ययन करते हैं, वे अपने पुत्र पौत्र तथा मित्रोंसे कभी भी विपुक्त नहीं होते । ३२ ॥ ३३ ॥ जो इस रामायणको भक्तिपूर्वक सुनते हैं, वे अपनी स्त्रियोंसे कभी भी विपुक्त नहीं होते । जो स्वर्गमें इस रामायणका ध्यान करते हैं, वे लक्ष्मीको तरह सुखी रहता हुई । या अपने अपने रातसे विपुक्त नहीं होते । ३४ ॥ ३५ ॥ यदि किसीके घरवाले किसी गाँव, देश-अन्तर अथवा तार्थयात्राका गय हों तो उन्हें कुछरुपयों कोडानेके लिए इस आनन्दरामायणका पाठ करना चाहिए ॥ ३६ ॥ जिनका अपने किसी भावो कार्यका विजय विस्तार हो और उसे शान्ति पूर्ण करना चाहते हों तो वे प्रयत्नपूर्वक इस आनन्दरामायणका पाठ करे ॥ ३७ ॥ पहले रोज केवल एक कांड, दूसरे रोज पहला और दूसरा इन दो कांडोंका पाठ करे । ताने दिन पहला, दूसरा और तीसरा इन तीनों काण्डोंको, इस क्रमसे बढ़ाता हुआ नवें रोज नवों काण्डोंका पाठ करे ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ फिर अठवें रोज अठ कांड, सातवें शि-

अथवा पृथक् काण्डेषु सर्गवृद्धिभयः कथम् । एतदेकदिनानुष्ठानं समाप्तं भवेन्ननुष्ठानम् ॥४३॥
 अथवा प्रथमे सर्वस्वेक एव पठेत् । तर्हि सर्गो च द्वितीयेऽहि तृतीयेऽप्येव क्रमेण हि ॥४४॥
 नवोत्तरशते प्राप्ते दिने कृतं निर्वृतं पठेत् । पुनः सप्तशतकमनन्तरं सप्तदिनोत्तरैः ॥४५॥
 सप्तमासैरनुष्ठानं ज्ञेयं कार्यकमाधत्तुम् । अथवा अथने चाहि सर्गं प्राथमिकं पठेत् ॥४६॥
 द्वितीयेऽहि द्वितीयश्च तृतीयेऽहि तृतीयकः । नवोत्तरशते प्राप्ते दिने च चर्म पठेत् ॥४७॥
 दशोत्तरशते प्राप्ते दशोत्तरशतभिधम् । पठेन्मग्नं क्रमेणैव शिष्य सप्तदिनोत्तरैः ॥४८॥
 सप्तमासैरनुष्ठानं ज्ञेयं साधारणं नृणां । पञ्चानुष्ठानभेदाश्च मयैव पञ्चीकृतिताः ॥४९॥
 अनुष्ठानसमाप्तौ हि होमः कार्यो यथावेधि । पृथक् श्लोकं पञ्चमार्थं स्वाहांतं पायसः फलैः ॥५०॥
 नवाक्षेनाथवा कार्यो होमो द्वितरैः सह । प्रातःकालेऽप्यनुष्ठानदिनैर्मितान ॥५१॥
 एतत्प्रातः समुत्थायानन्दरामायणं सुभम् । ये पठन्ति तस्य भवन्त्या न सुखं प्राप्नुवन्ति हि ॥५२॥
 द्वादश्यामपि चैतद्वै पठनीयं प्रदत्तम् । पारायणं नवदिनैः कायं सप्त सुखावहम् ॥५३॥
 कांडं सर्गोऽथवा श्लोकस्त्वानन्दरामायणं प्रत्यहम् । न नवः सर्गः अथवा तेषां सप्त निरर्थकम् ॥५४॥
 पुत्रार्थं रतिशालायां शृणोति पुरुषः स्त्रिया । निजायां च सप्तशतैः पुत्रां पुत्रप्राप्नुयात् ॥५५॥
 नवराशिषु ब्रीहोणां व्यात्वा कार्यं तु विन्यसेत् । पूगीफलानि चत्वारि पूर्वम् कांडमुच्यते ॥५६॥
 द्वितीयेन हि सर्गस्तु तृतीयेन फलेन हि । दशमोऽस्य च विज्ञेयश्चाधुर्धनं फलेन च ॥५७॥
 श्लोको ज्ञेयः पूर्वराशेः सर्वेषां गणने रता । सर्वात्रात्येव श्लोकेन विपरीतं फलं स्मृतम् ॥५८॥
 एवं सर्वदर्शनीयः शक्यश्च शुभोऽनुष्ठानः । एवं शिष्य स्वः । यद्यन्पुत्रं न तन्नमयोदितम् ॥५९॥

सात काण्ड, छठे दिन ■ काण्ड इस क्रमसे पढाता हुआ सप्तह दिनमें यह अनुष्ठान पूर्ण करे । वैसा न कर सके तो पहले रोज पहला, दूसरे दिन दूसरा, तीसरे दिन तीसरा, इस क्रमसे भी रोजमें नौ काण्ड समाप्त करे । फिर दसवें रोज आठवाँ काण्ड, द्वादशवें रोज सातवाँ काण्ड, इस क्रमसे पढाता हुआ सप्तह दिनोंमें यह अनुष्ठान पूर्ण करे ॥ ४०-४२ ॥ अथवा प्रत्येक कांडमें सर्गवृद्धिके क्रमसे पाठ करता हुआ सात महीनोंमें अनुष्ठान पूर्ण करे ॥ ४३ ॥ ऐसा भी न कर सके तो पहले रोज पहला सर्ग, दूसरे दिन दूसरा सर्ग, तीसरे दिन तीसरा सर्ग, इस क्रमसे एक सौ नौ दिनोंमें पूर्ण करके फिर उसी क्रमसे पढाये । इस अनुष्ठानमें भी सात ही महीनेका समय लगता है । इस अनुष्ठानको करनेसे एक कार्यको सिद्धि हो सकती है । अथवा पहले रोज पहला सर्ग, दूसरे दिन दूसरा, तीसरे दिन तीसरा, इस क्रमसे पाठ करता हुआ एक सौ नवें दिन अन्तिम सर्गका पाठ करे ॥ ४४-४६ ॥ फिर एक सौ दसवें दिन एक सौ आठवाँ सर्ग, एक सौ ग्यारहवें दिन एक सौ सातवाँ सर्ग, इस क्रमसे पाठ करता हुआ सात महीनेमें इसे समाप्त करे । इस तरह मैंने अनुष्ठानके पाँच भेद बताये । अनुष्ठान समाप्त हो जानेपर विधिदत्त हवन करना चाहिए । होम करते समय ब्राह्मणोंके साथ बैठकर ■ नन्दरामायणके एक-एक श्लोकका उच्चारण करता हुआ खोर, फल जपता नये अन्नसे हवन करे । हवन हो जानेपर जितने दिनोंका अनुष्ठान किया हो, उतने ब्राह्मणोंको भोजन कराये ॥ ४८-४९ ॥ जो लोग सबरे उठकर इस रामायणका पाठ करते हैं, वे सदा सुखी रहते हैं । द्वादशीको तो अवश्य इसका पाठ करना चाहिए । नौ दिनोंमें इसका सुखावह पारायण पूर्ण करना चाहिए ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ जो लोग इस रामायणके एक काण्ड, एक सर्ग अथवा एक श्लोकका भी पाठ नहीं करते, उनका जन्म निरर्थक ॥ ५४ ॥ जो मनुष्य अपनी स्त्रीके साथ रतिशालामें पुत्रप्राप्तिके लिए इस रामायणका भ्रवण करता है, वह यदि पुत्रविहीन हो तो ■ पुत्र प्राप्त करता है ॥ ५५ ॥ अब प्रसन्नकी रीति बताते हैं । अन्नकी नौ राशियाँ बनाकर ■ प्रातः कार्यका ध्यान करे । इससे बाद चारों दिशाओंमें चार पूगीफल (सुपारी) रखे । पहली सुपारीमें कांड, दूसरीमें सर्ग, तीसरीमें दशक तथा चौथी सुपारीमें श्लोकका स्थापन करे । पूर्वकी राशिसे सक्की मचना करनी चाहिए । जब जगह जो अन्तिम श्लोक निकले, उससे विपरीत फल होता ॥ ५६-५८ ॥

आनन्दरामायणमेतदुत्तमं नवोत्तरं सर्गगतं मयेरितम् ।
 कांडानि यन्मिथुन कीर्तितानि ते हे विष्णुदासाग्रहरं मनोहरम् ॥६०॥
 दिने दिने पापचरान्गर्कुक्षरः पठेत् श्लोकमपीह भक्त्या ।
 विमुक्तसर्वापचयः प्रयाति रामस्य सालोक्यमनन्यलभ्यम् ॥६१॥
 आनन्दरामायणमेतदुत्तमं ये रामदासस्य मुखेन कीर्तितम् ।
 श्रीराघवेणैव जनाघनाशनं नानाचरित्रैर्वैरकौतुर्कयुतम् ॥६२॥
 धन्यः स वाल्मीकिभुनिः कवीश्वरो रामायणं वै शतकोटिममितम् ।
 कृतं पुरा येन सविस्तरं शुभं यस्माच्च सारं कथितं मया तव ॥६३॥
 आनन्दरामायणमेतदुत्तमं श्रीजानकीक्रीडनकौतुर्कयुतम् ।
 शृण्वन्ति गायन्ति वदन्ति चाऽपरान्कुर्वन्ति परायणमादराच्च ये ॥६४॥
 लभन्ति पृथानतिबुद्धिमत्तरान्स्त्रीश्चापि पौत्रान्परमान्मनोहरान् ।
 धनानि धान्यानि पशूश्च मानवाः श्रीरामचन्द्रस्य पदं प्रयाति ते ॥६५॥
 आनन्दसंज्ञं पठतश्च नित्यं श्रोतुश्च भक्त्या लिखितुश्च रामः ।
 अतिप्रसन्नश्च सदा समीपे सीतासमेतः श्रियमातनोति ॥६६॥
 आनन्दरामायणजह्वरीयं पापपहंघ्नी मलिनस्य अंतोः ।
 आनन्दरामायणकामधेनुस्त्रियं जनानामतिकामदोग्ध्री ॥६७॥
 रामायणं जनमनोहरपादिकाव्यं ब्रह्मादिभिः सुखैरपि संस्तुतं च ।
 श्रद्धान्वितः पठति शृणुयात्स नित्यं विष्णोः प्रयाति सदनं स विशुद्धदेहः ॥६८॥

नवोत्तरसूतः सर्गे रामकीर्तनमालिकाम् । कृत्वा कण्ठे सुखं सिष्ट शिष्येमां त्वं मयोदितम् ॥६९॥

श्रीशिव उवाच

आनन्दरामचरितमिदं स्वीयगुणोर्ध्वसाद् । श्रुत्वा स विष्णुदासस्तं ननामार्च्य पुनः पुनः ॥७०॥

प्रकार लोगोंको चाहिए कि शुभः शुभ जन्मना ही तो इस अनुक्रमे जान लें । हे शिष्य ! तुमने हमसे जो कुछ पूछा, मैंने बतलाया ॥ ५९ ॥ इस तरह हमने तुमको एक सौ सौ सर्गोंवाला यह उत्तम रामायण सुनायी । इसमें समस्त पापोंको हरनेवाले नी बांड कहे गये हैं ॥ ६० ॥ दिनों दिन पाप करनेवाला मनुष्य भी यदि इस रामायणके एक श्लोकका भी पाठ करता है तो उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं और वह रामके चरणोंकी सालोक्य मुक्ति प्राप्त करता है ॥ ६१ ॥ इस आनन्दरामायणको श्रीरामदासने सुनाया है, जिसमें रामचन्द्रजी-की अनेक कौतुकमयी कथाएँ वर्णित हैं ॥ ६२ ॥ कवीश्वर वाल्मीकि श्रद्धापूर्वक हैं कि जिन्होंने सी करोड़ श्लोकोंमें विस्तारपूर्वक रामचरितका वर्णन किया है । उसका सारांश मैंने तुम्हें सुनाया है ॥ ६३ ॥ जो लोग श्रीसीताजीकी क्रीडाओंसे मुक्त इस आनन्दरामायणका सादर श्रवण और गायन करते अथवा औरोंको सुनाते हैं, वे बड़े बुद्धिमान लोग पुनः स्त्री, विशाल वैभव, अन्न तथा उत्तम पशुओंको प्राप्त करते हैं और अन्तमें रामचन्द्रजीके चरणोंको प्राप्त होते हैं ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ जो प्राणी नित्य इस आनन्दरामायणका पाठ करते, सुनते अथवा लिखते हैं । उनपर रामचन्द्र परम प्रसन्न होकर सीताके साथ उनके हृदयमें विराजमान रहते हुए सब तरहसे कल्याण करते हैं ॥ ६६ ॥ यह आनन्दरामायणरूपिणी गङ्गा पापियोंके समस्त पाप हरती है और आनन्दरामायणरूपिणी यह कामधेनु भक्तोंकी कामना पूर्ण करती है ॥ ६७ ॥ यह आनन्दरामायण अति मनोहर और ब्रह्मादि देवताओंसे भी संस्तुत है । जो श्रद्धापूर्वक इसका पाठ करते हैं, वे लोग विशुद्धकाय होकर अन्तमें विष्णुभगवान्के लोकको पाते हैं । हे शिष्य ! एक सौ सौ सर्गोंवाला इस रामकीर्तनरूपिणी मालाको धारण करके हम जहाँ चाहो, सुखसे रहो ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ श्रीशिवजी बोले—अपने गुरु श्रीरामदासके मुखसे इस

रामदासः स्वशिष्यायानन्दरामायणं प्रिये । एवमुक्त्वा मुनिः संध्यां कर्तुं गोदां गमिष्यति ॥७१॥
 एवं देवि तवाग्रेऽयं मयाऽपि परिकीर्तितम् । आनन्दरामचरितं श्रवणात्पुण्यवर्द्धनम् ॥७२॥
 रामकीर्तनमालायां मेरुस्थाने त्वयं नहान् । सर्गो मया ते कथितः श्रवणान्मंगलप्रदः ॥७३॥

श्रीपार्वत्युवाच

यदा वाल्मीकिना देव कृतं रामायणं वरम् । तदा क्व रामदासः स संवादोऽभिस्त्वयाऽकथि ॥७४॥
 क्व तदा विष्णुदासोऽपि सद्यो मेऽत्र जायते ।

श्रीशिव उवाच

त्रिकालया ज्ञानदृष्ट्या मुनिनाऽत्र कथान्तरे ॥७५॥

उभयोर्भाषिसंवादः सोऽपि पूर्णं प्रवर्णितः । यथा रामस्य चरितं रामात्पूर्वं प्रवर्णितम् ॥७६॥
 संदेहोऽत्र न्यथा नैव कार्यः पर्वतकन्दके । रामदासमुखेनैतद्राघवर्णनं वर्णितम् ॥७७॥

आनन्दरामायणमादरेण श्रीरामचन्द्रेण मुनेर्मुखेन ।

तद्रामदासस्य मुदेव चोक्तं भक्तिप्रदं मुक्तिदमेतदत्र ॥७८॥

आनन्दरामायणमादरेण पुत्रे प्रजाने पठनीयमेतत् ।

विवादकाले जन्मवन्धकाले श्राद्धे पठेत्पर्वणि भगले च ॥७९॥

आनन्दरामायणमादरेण कारागृहस्थस्य विमुक्तये च ।

उत्पातशाल्यं भयनागनाय प्रभोः कृपार्थं पठनीयमादरात् ॥८०॥

आनन्दरामायणमादरेण शृणोति वा श्रावयते च भक्त्या ।

स स्वीयकामानाखिलानवाप्य वैकुण्ठलोकं खलु गच्छति स्वैः ॥८१॥

आनन्दरामायणतोऽधिकानि न सन्ति तीर्थानि हरेः स्थलानि ।

क्षेत्राणि दानान्यपि पुण्यदानि तथा पुगणान्धध कीर्तितानि ॥८२॥

प्रकार आनन्दरामायणको सुननेके बाद विष्णुदासने इस ग्रन्थका पूजन करके वाचस्वार प्रणाम किया ॥७०॥
 हे प्रिये ! रामदास अपने शिष्यको यह आनन्दरामायण सुनाकर सन्ध्या करनेके लिए गोदावरीके तटपर
 चले गये ॥ ७१ ॥ हे देवि ! जिस तरह रामदासने अपने शिष्यको यह आनन्दरामायण सुनायी थी । उसी
 तरह मैंने भी पुण्यवद्धक इस उत्तम रामचरित्रका वर्णन कर दिया है ॥ ७२ ॥ रामके गुणोंका गान करने-
 वाली अनेक ग्रंथमालायें हैं । उनमें यह आनन्दरामायण सुनेके समान विराजमान है । इस रामायणमें भी
 जो सर्गोंकी माला है, उसमें यह सर्ग सुनेको तरह है । इसका ध्यान करनेसे सर्वथा मङ्गल होता है ॥ ७३ ॥
 श्रीपार्वतीजीने कहा—हे देव ! जब श्रीवाल्मीकिजीने यह रामायण बनायी थी, तब रामदास और विष्णुदास
 कहाँ थे ? जिनका संवाद आपने मुझे सुनाया । वह मेरे हृदयमें एक महान् संदेह उत्पन्न हो गया है । श्रीशिवजी
 बोले—हे पार्वती ! वाल्मीकिजीने अपनी त्रिकालदर्शिता दृष्टिसे इस भावो संवादको पहले ही जान लिया था ।
 इसी कारण संवाद होनेके पहले ही उसका वर्णन कर दिया । जैसे उन्होंने रामजन्मसे पहले रामायण लिख दी
 थी । हे पर्वतकन्दके ! तुम इस विषयमें किसी प्रकारका संदेह न करो । रामदासके मुखसे साक्षात् रामचन्द्रजीने
 स्वयं इस चरित्रका वर्णन किया है । उन मुनिके मुखसे स्वयं रामचन्द्रजीने आदरपूर्वक इस रामायणको कहा है ।
 इसीलिए यह इस संसारमें भुक्ति और मुक्ति देनेवाली वस्तु बन गयी है ॥ ७४-७८ ॥ लोगोंको चाहिए कि पुत्र
 होनेपर, विवाहमें, यज्ञोपवीतमें, श्राद्धमें तथा किसी मङ्गलमय कार्यके समय आनन्दरामायणका पाठ अवश्य करें
 ॥ ७९ ॥ यदि कोई मनुष्य कारागारमें हो और उसे छुड़ानेकी आवश्यकता आ पड़े अथवा किसी उत्पात तथा
 भयको शांत करना हो अथवा भगवान्को कृपा प्राप्त करनी हो तो आदरपूर्वक इसका पाठ करना चाहिए ॥ ८० ॥
 जो मनुष्य आनन्दरामायणका आदरपूर्वक पाठ करते या सुनते-सुनाते हैं, वे अपनी समस्त कामनायें पूर्ण करके
 अन्तमें वैकुण्ठलोकको जाते हैं ॥ ८१ ॥ आनन्दरामायणसे बढ़कर तीर्थ, भगवन्मन्दिर, क्षेत्र, दान तथा पुराण

आनन्दरामायणमेतदुत्तमं श्रोतुं मया ते गिरिजे सविस्तरम् ।

त्वं चित्तवत्त्वाघहरं निरन्तरं मनोहरं लप्स्यसि राघवे मतिम् ॥८३॥

आदौ कृत्वा दशस्य द्विजवचनधुरत्वेन यात्राश्च यज्ञान्

कृत्वा भुक्त्वातिमानान्यनितलविशंतीं गृहीत्वाऽथ सीताम् ।

लब्ध्वा नानासुखास्तान्त्वयानि । लभन्त्याप्यविवादींश्च जित्वा

कृत्वा नानोपदेशान् गजपुरानिकटे स्वीयलोकं जगाम ॥८४॥

यामे भूमिसुता पुरस्तु हनुमान्पृष्ठे सुग्रीवासुतः

शत्रुघ्नो भरतश्च पार्श्वदलयोर्वायव्यकोणादिषु ।

सुग्रीवश्च विभोषणश्च सुराट् तारासुतो जाम्बवान्

मध्ये नीलनरोजसमलङ्कितं रानं भजे श्यामलम् ॥८५॥

आनन्दरामायणहारकीपमं ये पूर्णकाण्डं चरमं नरोत्तमाः ।

पठन्ति शृण्वन्ति हरेः परं पदं गच्छन्ति पूर्णोप्सितमालभन्ति ते ॥८६॥

आनन्दरामायणमेतदुत्तमं जप्यं पवित्रं श्रवणीयमादरात् ।

यन्मङ्गलात्तामपि मङ्गलप्रदं स्मरामि नित्यं प्रणमामि सादरम् ॥८७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमद्विष्णुसहस्रनाम्नोक्तं श्रीरामचन्द्ररामायणं गोण्डामण्डलान्तर्गतसिंहसहस्रं (टिप्पणिया) ग्रामनिवासि पं० रामदत्तारमज पं० रामदेवप्रसादयकृतं 'श्रीरामायणं' भाषाटीकासहितं पूर्णकाण्डं नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

आदिका श्रवण, इनमेंसे एक भी नहीं है ॥ ८३ ॥ ॥ गिरिजे ! मैंने विस्तारपूर्वक यह उत्तम आनन्द-रामायण तुम्हें सुना दिया । तुम इस पापापहारी चरित्रका निरन्तर मनन किया करो । ऐसा करनेसे तुम्हें सुन्दर भगवद्भक्ति प्राप्त होगी और तुम्हारा बुद्धि यन्त्रों और दीड़ पड़ेगा ॥ ८३ ॥ रामने पहले रावणका वध किया । फिर ब्राह्मणों के वचनका सम्मान करते हुए तीर्थोंकी यात्रायें कीं और बहुतसे यज्ञ किये । फिर विविध प्रकारके भोगोंका भोग करके पातालमें जातो हुई सीताको उवारा । तदनन्तर पृथ्वीतलके अनेक राजाओंका जातकर बहुतसा पठाहुँ लाये । तत्पश्चात् लोगोंको विविध प्रकारका उपदेश देकर वे हस्तिनापुरीके समीप गंगातटसे अपने परम धामको चले गये ॥ ८४ ॥ जिन रामचन्द्रजीके वाम भागमें सुग्रीव, आगे हनुमान्जी, पीछे लक्ष्मण, शत्रुघ्न तथा भरत, दायें-बायें एवं वायव्य आदि कोणोंमें सुग्रीव, विभोषण, अङ्गद तथा जाम्बवान् विराजमान हैं । उन सबके मध्यमें नीलकमलको नाई सुशोभित श्यामवर्ण श्रीरामचन्द्रजीका मैं भजन करता हूँ ॥ ८५ ॥ जो लोग हारको भाँति सुन्दर इस अन्तिम पूर्णकाण्डका पाठ करते या सुनते हैं, वे परम पदको प्राप्त होते हैं और उनको सब कागजाने पूर्ण हो जाती हैं ॥ ८६ ॥ लोगोंको चाहिए कि इस पवित्र आनन्दरामायणका आदरपूर्वक कातन तथा श्रवण किया करें । क्योंकि यह मङ्गलका भी मङ्गल-दाता है । इसी कारण मैं तो नित्य इसका आदरपूर्वक स्मरण और नमन करता हूँ ॥ ८७ ॥ इति श्रीशतकोटि-रामचरितान्तर्गते श्रीमद्विष्णुसहस्रनाम्नोक्तं श्रीरामचन्द्ररामायणं गोण्डामण्डलान्तर्गतसिंहसहस्रं (टिप्पणिया) ग्रामनिवासि पं० रामदत्तारमज पं० रामदेवप्रसादयकृतं 'श्रीरामायणं' भाषाटीकासहितं पूर्णकाण्डं नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

॥ इति पूर्णकाण्डं सम्पूर्णम् ॥ ९ ॥

श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु

समाप्तोऽयं ग्रन्थः